चौखम्बा संस्कृत सीरीज १५३

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्माण्डमहापुराणम्

'निर्मला' हिन्दी व्याख्या, वैज्ञानिक विमर्श एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक

प्रो. दलवीर सिंह चौहान

पूर्वार्द्धम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१५३
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्माण्डमहापुराणम्

'निर्मला' हिन्दी व्याख्या, वैज्ञानिक विमर्श एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक
प्रो. दलवीर सिंह चौहान
एम. ए., पी-एच.डी. (पुराणेतिहासाचार्य)
भू. पू. अध्यक्ष : संस्कृत विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

पूर्वार्द्धम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि.सं. २०७६, सन् २०१९

ISBN : 978-81-7080-422-2 (पूर्वार्द्ध)
978-81-7080-424-6 (सेट)

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
153
*****

BRAHMĀṆḌAMAHĀPURĀṆAM

OF

MAHARSHI VYASA

With

'Nirmala' Hindi Commentary, Scientific Notes and Sloka Index etc.

BY

Prof. Dalvir Singh Chauhan

M.A., Ph. D. (Puranetihas)
Ex. Head, Sanskrit Department,
Magadh University, Bodhgaya, (Bihar)

Vol. I

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

भूमिका

चतुर्भुजे चन्द्रकलावतंसे कुचोन्नते कुंकुमरागशोणे।
पुण्ड्रेक्षुपाशाङ्कुशपुष्पबाणहस्ते नमस्ते जगदेकमातः।।
ब्रह्माण्डप्रख्यं कठिनं पुराणं, लोकार्पणार्थं हि तव प्रसादात्।
अहं प्रपन्नोऽस्मि तथैव मातः! यथा हि पङ्गुर्गिरिलङ्घनाय।।

संसार में आज अनेकों संस्कृतियाँ प्रचलित हैं, उन सभी में भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन है। इस विषय में भारतीय विद्वान् ही नहीं, पाश्चात्य विद्वान् भी एकमत हैं। भारतीय संस्कृति के मूल आधार वेद हैं। इस चराचर जगत् में प्राचीन भारतीय विद्वानों द्वारा श्रुति क्रम से सुरक्षित वेदराशि सबसे प्राचीन है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसलिए वह वेदराशि कब प्रादुर्भूत हुई, किसने उसे उत्पन्न किया, इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए भारतीय तो वेदों को अपौरुषेय ही मानकर उनके प्रति अपार श्रद्धा प्रकट करते हैं। भारतीय मान्यता के अनुसार वेदों को न किसी मनुष्य ने रचा है और न वेद ईश्वर द्वारा ही निर्मित हैं; अपितु वेदों के स्मरणकर्ता स्वयं चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, जैसा कि पाराशर स्मृति में कहा गया है कि—

न कश्चिद् वेदकर्ता स्याद् वेदस्मर्ता चतुर्मुखः।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति सुश्रुमः।।

अर्थात् वेदों को स्वयं चतुर्मुख ब्रह्मा ने आकाशवाणी की भाँति श्रवण किया था। जिससे वेदज्ञान की ईश्वर निर्मितता ही सिद्ध होती है।

वेद साहित्य ईश्वर निर्मित है अथवा नहीं तथा ईश्वर निर्मित होना सम्भव भी है अथवा नहीं है, यह कहना तो अशक्य है, परन्तु प्रत्येक धर्मावलम्बी ने अपने-अपने धर्मग्रन्थों को ईश्वर निर्मित अथवा ईश्वर के संदेश माना है। मेरी दृष्टि में जिसका मुख्य कारण अपने-अपने धर्मग्रन्थों के अपरिमित महत्त्व को समाज में स्थापित करने का उद्देश्य है, ताकि समाज उस धर्म के सिद्धान्तों को ईश्वरीय आदेश मानकर स्वीकार करे और तदनुसार सुचारु रूप से सामाजिक व्यवस्था चल सके। जहाँ तक मेरा विचार है कि सभी धर्मों के नियम सिद्धान्त सामाजिक व्यवस्था को सही रूप से चलाने के लिए ही हैं। जो भी हो, वेदराशि एक अपूर्व और अत्यन्त प्राचीन ज्ञान की महोदधि है।

वस्तुतः भारतीय अध्ययन वेद से ही प्रारम्भ होता है, क्योंकि वेद ही भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं। वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। सम्भवतः इन चार वेदों के आधार पर ही ब्रह्माजी को चतुर्मुख के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके चारों मुख चार वेदों के प्रतीक हैं।

वैसे तो वेद चार ही हैं, परन्तु चारों के उपवेद जो क्रमशः आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अथर्ववेद तथा ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ एवं उपनिषद् साहित्य भी वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ही आता है, परन्तु प्रारम्भ में चारों वेदों का ही स्थान है तथा उन वेदों के ज्ञान के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, ये छः शास्त्र हैं।

विश्व साहित्य में वेदों से प्राचीनतर कोई भी साहित्य नहीं उपलब्ध होता है। अतः श्रद्धालु हिन्दू लोग सबसे अधिक वेदों की प्रामाणिकता को ही स्वीकार करते हैं; परन्तु वैदिक साहित्य सर्वजन ग्राह्य नहीं है। चारों वेदों के अर्थ को समझना सामान्य जन की बुद्धि के परे की बात है, इसीलिए प्राचीन मनीषियों ने स्मृति और पुराणों का प्रणयन किया।

संस्कृत वाङ्मय में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। वेदों और स्मृतियों के बाद पुराणों का ही आस्तिक जगत् में प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है, क्योंकि वेद के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए ज्ञान, कर्म और उपासनाओं के सिद्धान्त पुराणों द्वारा अत्यन्त सरल भावगम्य और प्राञ्जल भाषा में अनेकों निर्मल और अभिरमणीय कथाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से समझाये गये हैं, जिनको मनन करके साधारण बुद्धि वाले मनुष्य व्यावहारिकी स्थिति को सम्पादित करते हुए वेदों और उपनिषदों के प्रतिपाद्य मानवों के प्रधान लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त कर जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। अतः वेदों के अर्थ को जानने के लिए पुराणों का पूर्ण सहयोग है। इसलिए वेदों के अर्थ के विस्तार के लिए पुराणों के अनुशीलन की आवश्यकता है। यह भावना महाभारत के आदिपर्व में प्रदर्शित की गयी है, वहाँ कहा गया है कि—

इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपवृद्धयेत्।। म. आदिपर्व, १/२६७

इस प्रकार वेदों में जो विषय सूक्ष्म रूप से वर्णित हैं, वे ही विषय पुराणों में विस्तार के साथ वर्णित हैं। जो विद्वान् पुराणों के अध्ययन के बिना वेदों के अर्थ को जानना चाहते हैं, उनका वास्तविक रूप में वेदों के अर्थ का ज्ञान असम्भव प्रतीत होता है, क्योंकि समस्त विश्व की कल्याण सारणी भारतीय संस्कृति की परिपुष्टि के लिए वेद, रामायण, महाभारत और पुराणों का प्रवर्तन किया गया है। इसलिए पुराणों के महत्त्व प्रतिपादन में पुराणों का यह स्पष्ट उद्घोष है कि जो ब्राह्मण चारों वेदों को जानता है, किन्तु यदि पुराणों को सम्यक् प्रकार से नहीं जानता है, तो वह विचक्षण नहीं हो सकता है।

यो विद्याच्चतुरोवेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत्पुराणां संविद्यान्नेव स स्याद्विचक्षणः।। प.पु. सु.ख., २/५१

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेदों के अर्थ को पूर्ण रूप से जानने के लिए ही प्राचीन महर्षियों ने पुराणों की रचना की। उदाहरण के लिए ऋग्वेद में कहा गया है कि "विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढस्य पांसुरे" ऋग्वेद, १/५/२२/१७। इस मन्त्र का अर्थ सायणादि भाष्यों द्वारा सम्यक् प्रकार से स्पष्ट नहीं होता है कि विष्णु ने कब, कहाँ, क्यों और किस प्रकार इस विश्व को तीन पदों द्वारा धारण किया, परन्तु पुराणों में इसे बलि-वामन की कथा द्वारा पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। अतः वेदों में जो बातें संकेत और आदेश रूप में प्राप्त हैं, पुराण उनको स्पष्ट कर कथाओं के रूप में रोचक बना देते हैं। जैसा कि काव्यशास्त्र के महापण्डित मम्मट के अनुसार उपदेश तीन तरह के होते हैं— १. गुरुसम्मित, २. मित्रसम्मित और ३. कान्तासम्मित। समाज में माता, पिता और गुरु जो उपदेश देते हैं, वह राजाज्ञा के समान होता है कि तुम्हें यह करना चाहिए, यह न करना चाहिए। उसी तरह वेदों का उपदेस गुरु सम्मित उपदेश है, जो राजाज्ञा के समान है कि सत्यं वद (सत्य बोलो) धर्मं चर (धर्म करो) स्वाध्यान्मा प्रमद (स्वाध्याय करो, स्वाध्याय में आलस मत करो) यह गुरुसम्मित उपदेश वेदों का है।

अतः वेदों का उपदेश यह तो कहता है कि सत्य बोलो, धर्म करो, परन्तु यह नहीं बताता कि सत्य क्यों बोलें? उससे क्या लाभ है? धर्म क्यों करें? उससे क्या लाभ है? कोई काम क्यों करना चाहिए? क्यों नहीं करना चाहिए? यह तो सच्चा मित्र ही समझा सकता है। वही यह समझा सकता है कि सत्य बोलने से क्या लाभ और न बोलने से क्या हानि है। ऐसा ही है पुराणों का उपदेश जो कथा-कहानियों को प्रस्तुत कर बताता है कि सत्य क्यों बोलना चाहिए, धर्म क्यों करना चाहिए। वह राजा हरिश्चन्द्र की कहानी कहकर समझाता है कि सत्य बोलने से क्या लाभ हुआ? वह धर्म पर चलने वाले राजाओं के दृष्टान्तों को बताते हुए एक मित्र की तरह यह समझाता है कि धर्माचरण करने वाले राम, परशुराम, कृष्ण की विजय हुई और अधर्माचरण करने वाले रावण, सहस्रार्जुन और कंस विनाश को प्राप्त हुए।

इसलिये धर्माचरण करना चाहिये, अधर्माचरण नहीं करना चाहिये। इस प्रकार पुराणों का उपदेश मित्र सम्मित उपदेश है। उसी तरह का उपदेश रामायण और महाभारत का है। वैसे तो सर्वोत्तम उपदेश कान्तासम्मित उपदेश होता है, जो काव्य से प्राप्त होता है। अतः इन पुराणों में रामायण और महाभारत में कुछ काव्यांश भी हैं, अतः यह उपदेश उत्तम उपदेश है।

अतः वेदों के ज्ञान के विस्तार के लिए तथा उसे रोचक और मनोरंजक बना कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का काम पुराणों ने किया है। विश्व में ज्ञानियों-विज्ञानियों ने जितने भी अन्वेषण किये हैं, उन सबका मूल सिद्धान्त सूक्ष्म रूप से वेदों में विद्यमान है। उन वेदों के अर्थ को सरलता से विस्तार सहित ज्ञान के लिए ही पुराणों का आविर्भाव हुआ। आदि देव नारायण ने द्वापर युग में पाराशर से सत्यवती में व्यास रूप से अवतीर्ण होकर पुराणों की रचना की। ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि—

विस्ताराय च वेदानां स्वयं नारायणः प्रभुः।।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले।। ब्रह्मपुराण, १/१५

पुराण वाङ्मय भारतीय जीवन साहित्य का अमूल्य रत्न है तथा भूतकाल को वर्तमान काल के साथ मिलाने की एक स्वर्णमयी श्रृंखला है। ये हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक जीवन को स्वच्छ दर्पण की भाँति प्रतिबिम्बित करते हैं।

पुराणों का सामाजिक महत्त्व कम नहीं है। धार्मिक दृष्टि से तो उनमें धर्मों का ही वर्णन है। इतिहास के तो पुराण मूल स्रोत ही हैं। यही नहीं, पुराणों में प्राचीन भारतीय समस्त विद्याएँ उपलब्ध हैं। यदि देखा जाये तो उस समय भारत में जितनी तरह की विद्याएँ थीं, वे सब पुराणों में संक्षिप्त रूप से विवेचित हैं। वैसे तो पुराणों के मूल वर्ण्य विषय पाँच ही हैं, वे हैं—सृष्टि, प्रलय, वंशवर्णन, मन्वन्तर और वंशानुचरित। अतः ब्रह्माण्ड की रचना कब हुई? कब तक यह पृथ्वी (ब्रह्माण्ड) स्थित है तथा कब इसकी समाप्ति (प्रलय) होगी? उस समस्त समय की गणना मन्वन्तर के रूप में पुराण प्रस्तुत करता है तथा उन उन मन्वन्तरों (समयों) में होने वाले राजाओं का वर्णन, उनके चरित्र चित्रण प्रस्तुत कर आज के राजाओं, राजनीतिज्ञों और नेताओं को यह चेतावनी देता है कि ऐसा कोई कार्य मत करो, ताकि अमुक के अनुसार, अमुक गति को प्राप्त करो। अतः आधुनिक राजाओं, राजनेताओं, अधिकारियों और न्यायाधीशों को उनके कर्तव्यपरायणत्व के लिए पुराणों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।

प्रत्येक धर्म का उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था का सुचारु रूप से संचालन कराना है, क्योंकि 'धृञ्' धारणार्थक धातु से बने धर्म का यह अर्थ है कि 'धरति लोकान् इति धर्मः' ध्रियतेऽनेन इति धर्मः, धारयति लोकान् इति धर्मः तथा धार्यतेऽनेन इति धर्मः। इस प्रकार इस धर्म के चार अर्थ हुए। १. जो लोकों को धारण करता है, वह धर्म है। अर्थात् ऐसे नियम जो लोकों को अर्थात् प्रजा को (मनुष्यों को) धारण करते हैं, वे धर्म हैं। २. जो लोकों (मनुष्यों) द्वारा धारण किया जाता है, वह धर्म है। अर्थात् वह कोई भी नियम जिसे मनुष्य धारण करे वह धर्म है। ३. तीसरा अर्थ है, जो लोकों को धारण करवाता है, वह धर्म है। ४. जो नियम लोगों द्वारा धारण करवाया जाता है, वह धर्म है। इस प्रकार इस धृञ् धातु में 'मनिप्' प्रत्यय से बने हुए धर्म शब्द में स्वार्थक और प्रेरणार्थक दोनों अर्थ समाविष्ट हैं।

इससे स्पष्ट है कि ऐसा नियम ही धर्म कहा जाता है, जो मनुष्य को धारण करता हो। वैसे धारण करने को तो मनुष्य कोई भी नियम (कार्य) धारण कर सकता है, परन्तु वह नियम ऐसा होना चाहिए, जो धारक को धारण करे, उसकी सुरक्षा करे। उदाहरण के लिए चोरी, बलात्कार, रिश्वत, मिथ्यावादन, हिंसा आदि भी मनुष्य धारण कर सकता है, परन्तु वे नियम उसे धारण नहीं कर सकते। उनको धारण करने पर मनुष्य समाज में निन्दा का पात्र बन

सकता है। पकड़ने पर दण्ड का भागी हो सकता है। अतः ऐसे नियम जो मनुष्य को धारण करें, उनको धारण करने से समाज में उसकी प्रतिष्ठा हो, वह सर्वत्र प्रशंसा का पात्र बने। वे नियम हैं—अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दूसरे की वस्तु को देख कर न ललचाना आदि नियम ही धर्म है। ये नियम धारण करना ही धर्म है, यह अर्थ तो स्वार्थपरक है तथा ऐसे नियमों को धारण करवाना ही धर्म है, जो कार्य शासक का है। इस प्रकार धर्म का अर्थ बहुत ही व्यापक है। आज की राजनीति में धर्मनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग किया गया है, वह शब्द निरर्थक है, क्योंकि धर्मनिरपेक्ष होने का अर्थ है—अधर्मी, पापी होना। धर्मनिरपेक्ष के स्थान पर सम्प्रदायनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग होना चाहिए। हमारे वेदों और पुराणों में धर्म के सच्चे सिद्धान्त समझाये गये हैं। मनुष्य को शुभ कर्म करने चाहिए तथा शुभ कर्मों का फल सदा शुभ होता है; क्योंकि "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" अर्थात् शुभ और अशुभ कर्मों का फल मनुष्य को अवश्य ही भोगना होगा। इस रहस्य को प्रत्येक धर्म, भिन्न-भिन्न प्रकार के दृष्टान्त, कथा-कहानियों द्वारा समझाता है। कोई धर्म पुनर्जन्म का भय दिखाता है तो कोई स्वर्ग-नरक का दृष्टान्त उपस्थित कर मानव को आगाह करता है कि यदि तुम शुभ कर्म करोगे तो स्वर्ग का सुख मिलेगा तथा अशुभ कर्म करोगे तो घोर नरक में गिर कर कठोर यातनाएँ सहनी होंगी। इसलिए प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में स्वर्ग-नरक का वर्णन है। भले ही स्वर्ग और नरकों का वर्णन काल्पनिक है, परन्तु उसके द्वारा मनुष्यों के ऊपर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालकर उनको भयभीत कर दुष्कर्मों से दूर रखने का एक प्रयास तो अवश्य है।

वैसे तो मनुष्य के अच्छे-बुरे कार्य की समीक्षा कर उसको प्रशस्ति एवं दण्ड की व्यवस्था के लिये मनुष्य ने सामाजिक समझौता कर राज्य की स्थापना कर ही ली है, अतः राजा का कार्य पापियों को दण्ड देना ही है, परन्तु अच्छे-बुरे कर्मों को यदि राज्य भी नहीं देख पाता है तो इसे ईश्वर की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, अमरता का प्रतिपादन कर यह सिद्ध कर दिया है कि यदि मनुष्य के शुभाशुभ कर्मों को कोई नहीं देख रहा है तो ईश्वर तो अवश्य देख रहा है। इसलिए प्रायः सभी धर्मों ने ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया है तथा इसमें सत्यता भी है कि जब प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है तो इस चराचर जगत् का भी कोई न कोई कारण तो होगा ही। बस यही कारण कार्य भाव ही ईश्वर की सत्ता तक पहुँच जाता है तथा सभी धर्मों ने उस अदृश्य सत्ता को अन्तिम न्यायालय माना है। तथा ऐसा विश्वास अनादि काल से चला आ रहा है।

सारे संसार के धर्मशास्त्रों को गहराई से देखा जाये तो सब कुछ एक सा ही लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पशुत्व वृत्ति से जब मनुष्य जाति विनाश के कगार पर पहुँची, तभी उसने धर्म के सिद्धान्त समाज व्यवस्था के सुधार के लिए स्थापित किये, जिसने मनुष्य को 'जिओ और जीने दो' की शिक्षा दी। इसी 'जिओ और जीने दो' की भावना ने ही समाज व्यवस्था बनायी। इस भावना ने धर्मों को जन्म दिया तथा समाज ने इसके लिये कुछ नियम बनाये, जिनके पालन के लिए राज्य व्यवस्था बनी। वेदों, स्मृतियों और पुराणों में जो धर्म के नियम बने, वे कभी समाज के लिए अवश्य ही वरदान रहे होंगे, क्योंकि वह उचित व्यवस्था हेतु सामर्थ्य के अनुसार कार्यों का विभाजन था। इसी का आश्रय लेकर तथा इसके समाज व्यवस्था औचित्य को देखकर प्लेटो ने अपने समाज को सात भागों में विभक्त किया था।

जब वर्ण व्यवस्था में परस्पर घृणा, ऊँच-नीच का भाव पैदा हुआ तथा जिन्हें अधिकार दिया गया था, वे ही जब निरंकुश हो गये, जो ये कहा गया कि "जन्मना जायते शूद्रा संस्काराद् द्विजोच्यते।" अर्थात् जन्म से सभी शूद्र पैदा होते हैं, संस्कार से वे ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य बन सकते हैं। अतः जिसने शूद्र वर्ण में जन्म लिया, उसका संस्कार ही नहीं किया। उसमें प्रतिभा के रहते हुए भी उसका संस्कार नहीं किया, जिसके चलते समाज में अनेकों विप्लव

हुए। महाभारत जैसे युद्ध इसी के परिणाम हैं। जब मनीषी मनु द्वारा समाज व्यवस्था के समुचित संचालन हेतु बनायी गयी वर्णव्यवस्था दूषित हो गयी, तब उसके सुधार के लिए अन्य धर्म बने, जैसे कि हिन्दू धर्म में जब वर्णों में परस्पर घृणा, ऊँच-नीच पैदा हुई तो महात्मा गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म की स्थापना कर जाति-वर्ण विहीन समाज के सिद्धान्त बनाये तथा 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' इस सिद्धान्त के अनुसार हिन्दू धर्म में उत्पन्न बलि प्रथा के विरुद्ध जैन धर्म का उदय हुआ, क्योंकि वैदिक धर्म में यज्ञों का सिद्धान्त, जो पर्यावरण शुद्ध करने का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है तथा जिसमें विश्व कल्याण की भावना सन्निहित है, क्योंकि संसार में कोई भी वस्तु नष्ट नहीं होती। नष्ट न होने के कारण ही उसे वस्तु कहा गया है। 'वस्' (रहना) अर्थ वाली धातु में 'तुन्' प्रत्यय से बने वस्तु शब्द के अनुसार सदा रहने वाली चीज ही वस्तु कहलाती है। अतः संसार में कोई भी वस्तु नष्ट नहीं होती, वह अपना रूप बदलती है। इसीलिये आग में जलाया घी आदि समिधाएँ नष्ट नहीं होतीं, वे अपना रूप बदल कर एक के स्थान पर अनेकों को लिये लाभ पहुँचाती हैं। जिस १०० ग्राम घी को एक व्यक्ति खाये, वह १०० ग्राम घी करोड़ों के लिए लाभप्रद हो जाता है। अतः ऐसे पवित्र यज्ञ में जब स्वार्थी समाज ने पशुओं की चर्बी की आहुति देना ही धर्म मान लिया, तब उसके विरुद्ध जैन धर्म का प्रवर्तन हुआ, जिन्होंने मूलतः 'अहिंसा परमो धर्मः' के सिद्धान्त को अपनाया।

उधर मूर्तिपूजा और अनेक देववाद के विरुद्ध इस्लाम धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, क्योंकि 'न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे।' किस-किस की पूजा करें, इसकी करें तो वह नाराज, उनकी करें तो ये नाराज। अतः अल्ला एक है, वह सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, सब कुछ करने वाला है, इस सिद्धान्त को लेकर इस्लाम धर्म को मुहम्मद साहब ने स्थापित किया। वैसे यह सिद्धान्त एकेश्वरवाद वेदों का ही, परन्तु विकार होने पर अनेकेश्वरवाद सिद्धान्त हिन्दू धर्म में पुराणों द्वारा स्थापित किया गया।

अतः सभी धर्म तो मनुष्यों के ही बनाये हुए हैं, परन्तु उनको लोग स्वीकार करें, इसलिए मानव मस्तिष्क पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के लिए उन्हें ईश्वर के सन्देश सिद्ध किया गया। वेदों में वेद का अपौरुषेयत्व सिद्ध किया, पुराणों को स्वयं ब्रह्मा द्वारा कथित कहा गया। उसी तरह जैनियों ने अपने धर्मग्रन्थों को 'जिन' भगवान् के वचन माना, ईसाइयों ने बाइबिल को गॉड (ईश्वर) के वाक्य कहा। इस्लाम धर्म में कुरान मजीद को अल्लाह के सन्देश कहा गया।

हो सकता है, ऐसा हुआ हो; क्योंकि कुछ महान् पुरुष ईश्वर की शक्ति लेकर अवतरित होते हैं। इसलिए उनके वचन ईश्वर के वचन ही माने जाने चाहिएँ; क्योंकि ईश्वर अंश जीव अविनाशी। जब जीव ईश्वर का अंश है तो फिर जिसमें सबसे अधिक ईश्वर का अंश है, वह ईश्वर नहीं तो ईश्वर के समान तो अवश्य ही है, अतः उसे मानने में कोई हानि तो नहीं। अतः उनके कथन अवश्य ही ईश्वर के सन्देश ही होंगे तथा सभी धार्मिक ग्रन्थों को ईश्वर के सन्देश कहने का आशय यह भी हो सकता है कि जिससे मानव समुदाय उन पर सर्वाधिक विश्वास करे तथा उन पर पूर्णरूपेण अमल करे।

मेरी दृष्टि में कोई भी धर्म ऐसा नहीं कि जिसमें कोई बात समाज कल्याण की न हो। हो सकता है कोई सिद्धान्त आज के परिवेश में समाज सुधारक सिद्ध न हो रहा है; परन्तु वह अवश्य ही किसी न किसी दृष्टि से कभी न कभी अवश्य ही समाज के लिए वरदान रहा होगा। इसलिए किसी भी धर्म की आलोचना करना ही व्यर्थ है। धर्म आस्था पर आधारित है, उसका कोई सिद्धान्त ऐसा नहीं, जो मिथ्या हो तथा स्वीकार्य न हो। कुछ ऐसी बातें हैं, जो आज के वैज्ञानिक युग में काल्पनिक सी लगती हैं। वे काल्पनिक अवश्य हैं, परन्तु प्रायः सभी धर्मों में ऐसी बातें पायी जाती हैं, इसलिए कुछ तो अवश्य है और कुछ नहीं तो पाप में प्रवृत्त लोगों को डराने के लिये तथा पुण्यकर्म करने हेतु

मानव को प्रोत्साहित करने के लिये तो अवश्य ही जरूरी हैं तथा यह भी नहीं है कि वे सब बातें काल्पनिक ही हों, जैसे कि स्वर्ग-नरक का विचार। हो सकता है—स्वर्ग-नरक का विचार सत्य ही हो; क्योंकि सभी धर्मों में इसका वर्णन अवश्य किसी रहस्य का उद्‌घाटन करता है। यह अलग बात है कि किसी धर्म में कुछ अन्तर से वर्णित है, परन्तु है सभी धर्मों में। जैसे कि शुभ करने वाला मनुष्य स्वर्ग सुख भोगेगा, अर्थात् सब प्रकार से सुखी रहेगा। स्वर्ग कहीं है अथवा नहीं है, परन्तु सबसे सुखी रहना ही स्वर्ग सुख का प्रतीक है, सो ऐसा सुख इस जमीन पर भी है तथा कुछ लोगों को प्राप्त भी है। स्वर्ग कहीं दूसरे ग्रह पर है, ऐसा नहीं तो इसका आशय सब प्रकार से सुखी रहना तो अवश्य ही है।

इस्लाम धर्म के पवित्र ग्रन्थ कुरान मजीद में अनेकों स्थलों पर कहा गया है कि नेकी करने वालों को जन्नत में भेजा जायेगा, जहाँ नीचे नदियाँ बह रही होंगी, जन्नत बहुत आनन्द वाली जगह है, जहाँ किस्म-किस्म के मेवों के पेड़ हैं, जहाँ अतलस के बिछौने व तकिये हैं, पास में मेवों के पेड़ झुक रहे हैं, जहाँ नीची निगाह वाली औरतें हैं, जो बिल्कुल अछूती हैं, वहाँ नेक सीरत और खूबसूरत औरतें हैं तथा वे हूरें हैं, जो परदे में छिपी रहती हैं। ऐसा वर्णन कुरान मजीद में अनेकत्र उपलब्ध है। —कु. म. १-७८ तथा ५५ सूरःरहिमान।

जैनियों के अपने रत्नसागर में स्वर्ग का वर्णन किया है कि ऊर्ध्व लोक में एक सिद्ध शिलास्थली स्वर्गपुरी के उत्तर में ४५ लाख योजन लम्बी, उतनी ही पोली तथा आठ योजन मोटी है। मोती तथा दूध के समान श्वेत चमकती हुई और स्फटिक सी निर्मल वह सिद्ध शिला चौदहवें लोक की चोटी पर स्थित है, उस सिद्ध शिला पर जन्म-मरण विहीन पुरुष सानन्द रहते हैं। जो इस जन्म में अच्छे कार्य करते हैं, वे ही उस लोक में जाते हैं। —रत्नसार भाग-१, पृष्ठ २३

अब ईसाई धर्म में भी देखिए। वहाँ बहुत बड़ा स्वर्ग है, जिसका वर्णन बहुत अधिक है। जहाँ इसराइल की सन्तान ईश्वर के सिंहासन के सामने उनकी पूजा करती हैं, जहाँ अनेकों दूत हैं। घुड़चढ़इयों की संख्या बीस हजार है। स्वर्ग में एक स्त्री, जो सूर्य को पहने हुए है, चाँद उसके पैरों तले है, बारह तारों का उसका मुकुट है, जो गर्भवती होकर चिल्लाती है। एक और आश्चर्य वहाँ स्वर्ग में है कि वहाँ अजगर है, शैतान है, जो पापियों को सजा देता है, वहाँ गवाह हैं, अदालत है, फैसला होता है, वहाँ जो जैसा कार्य किया, उसको वैसा फल दिया जाता है। इस प्रकार उस स्वर्ग की लम्बाई-चौड़ाई का वर्णन कर कहा गया है कि उसमें झूठ बोलने वाला, घृणित कर्म करने वाला मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकता। वहाँ रात होगी, दीपक आदि नहीं होगा। ईश्वर उन्हें ज्योति देगा। वहाँ रहने वाले सर्वदा राज्य करेंगे। —योहान में प्रकाशित

तथा बौद्ध धर्म में भले ही पुनर्जन्म को नहीं माना गया, परन्तु जातकमाला में महात्मा बुद्ध के अनेकों जन्मों की कहानियाँ दी हैं, जिसके अनुसार वे अपने शुभ कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेते हुए गौतम बुद्ध के रूप में सबके पूज्य हुए। अतः वहाँ भी शुभ कर्म करने से उत्तम व्यक्तित्व में जन्म लेने की बात कही गयी है।

अतः पुराणों में ही क्या? सभी धर्मों में पुनर्जन्म तथा स्वर्ग-नरक का वर्णन प्रायः प्राप्त होता है। जो आज के विज्ञान युग में धर्म की सत्यता पर प्रश्नचिह्न लगा देता है तथा काल्पनिकता तो पूर्णतः सिद्ध कर ही देता है, इसीलिए आज का वैज्ञानिक मानव धर्म को एक मिथ्या कल्पना कहने में भी नहीं चूकता; परन्तु वह यह नहीं सोचता कि सभी धर्मों में ऐसे वर्णन समाज व्यवस्था शोधनपरक हैं, मनुष्य शुभ करने के प्रति प्रोत्साहित हो और अशुभ कर्मों को न करे, इसलिये स्वर्गनरक प्राप्ति का विवेचन प्रायः समस्त धर्मग्रन्थों में उपलब्ध है।

मेरी दृष्टि में ये सभी वर्णन काल्पनिक हैं; परन्तु इतना तो अवश्य है कि प्रत्येक शुभ अथवा अशुभ कर्म का फल मनुष्य को अवश्य भोगना पड़ता है। यह सब भूत और वर्तमान को मिलाकर भविष्य की समीक्षा यदि मनुष्य

करे तो सत्यता तो अवश्य परिलक्षित हो जायेगी। हम अपने इधर-उधर आँख पसार कर यदि देखें तो अवश्य ही कृत कर्मों के फल का प्रमाण मिल ही जायेगा। लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति पाप करते हुए भी आगे क्यों बढ़ रहा है तो इसका कारण है कि ईश्वर उससे नाराज है, वह उस पर प्रसन्न नहीं है। उसका फल उसको इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में भोगना है, क्योंकि समय का पता नहीं कब बदल जायेगा। कुरान मजीद में कहा गया है कि बुरे कर्म करने से खुदा नाराज होता है तो उसे ऊँचा उठाता है, जैसे कि पतंग उड़ाने वाला पतंग में ढील देता जाता है, उसी तरह खुदा उसे ढील देता जाता है। जब बहुत ऊँचा उठा देता है, तब गिराता है, सो उसका नामो निशान भी न रहे। खुदा इतना नासमझ नहीं कि थोड़ा ऊँचा उठाकर गिरा दे, ताकि वह फिर तैयार हो जाये।

उसे अपने कृत कर्मों का फल अवश्य भोगना है। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में भोगना ही होगा। जब पुनर्जन्म की बात आती है तो फिर काल्पनिकता की पुष्टि होती है कि मनुष्य का दूसरा जन्म होता भी है या नहीं, यह तो विज्ञान की कसौटी पर कस कर सिद्ध नहीं किया जा सकता है, परन्तु यह तो सत्य है कि जो महाभारत में कहा गया है कि 'आत्मा वै जायते पुत्रः'।

अर्थात् मनुष्य की आत्मा उसके पुत्र के रूप में जन्म लेती है। अब मनुष्य का पुत्र ही उसका पुनर्जन्म है, यह तो विज्ञान की कसौटी पर भी कस कर सत्य सिद्ध किया जा चुका है। अतः इस सिद्धान्त के आधार पर मनुष्य के किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल यदि वह नहीं भोग कर सका है तो उसकी सन्तान तथा सन्तान की सन्तान को अवश्य भोगना होगा।

व्यवहार में देखिए, पिता सम्पत्ति छोड़ कर मरता है तो उसका सुख सन्तान को प्राप्त होता है तथा पिता यदि कर्ज छोड़कर जाता है तो सन्तान को चुकाना पड़ता है। अतः धर्मों में कही गयी बातें सब सत्य हैं, परन्तु आज के इस वैज्ञानिक युग में काल्पनिक मान कर निर्भय हो मानव पापाचार में आकण्ठ डूब गया है, जिससे सामाजिक व्यवस्था चरमरा गयी है, गरीबी और अमीरी लगातार बढ़ती जा रही है। गरीब़ और अधिक गरीब़ और अमीर और अधिक अमीर होते जा रहे हैं। पाप से किसी को भय ही नहीं रह गया। स्वार्थ में समाज आकण्ठ डूब चुका है। धन की लिप्सा उसी तरह बढ़ गयी है, जिस प्रकार अग्नि में घी। अग्नि में जितना भी घी दीजिए, वह उतनी ही बढ़ती जाती है, उसी प्रकार मनुष्य को जितना भी अधिक धन हो, उतनी ही उसकी लालसा बढ़ रही है। पता नहीं उसकी धन की भूख कितनी बढ़ गयी है। अपच ही नहीं होती, जितना भी खाता है, पचा लेता है। धन के लालच में मानव ने लज्जा, मान-मर्यादा सबका परित्याग कर दिया है। जो जितने बड़े पद पर है, वह उतना ही भ्रष्ट है। इसका कारण है कि सभी लोग धर्म का वास्तविक अर्थ ही भूल गये। धर्म आज केवल उनके आडम्बर का प्रतीक है, वे धर्म का पालन केवल और केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए करते हैं। धर्म आज केवल मानव की स्वार्थ सिद्धि का कारण बन गया है। आज मन्दिरों, मस्जिदों, गिरिजाघरों, गुरुद्वारों में भीड़ तो बहुत नजर आती है; परन्तु वह सब भीड़ स्वार्थ की सिद्धि के लिए दिखाई देती है। मनुष्य ने धर्मग्रन्थों में लिखे गये उन तथ्यों को सत्य मान लिया है कि अमुक देवता की पूजा करने से, अमुक तीर्थ पर जाने से, अमुक व्रत रखने से, अमुक फल की प्राप्ति होगी। इसे सत्य मान कर वह मन्दिरों, मस्जिदों, गिरिजाघरों, गुरुद्वारों में माथा टेक कर ऊपर वाले से बहुत सारी धन-दौलत, बेटा-बेटी तो माँग रहा है तथा उसका मिलना सत्य समझ रहा है, इसीलिये पूजास्थलों में भी भीड़ की वृद्धि निरन्तर हो रही है, परन्तु 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' अर्थात् किये हुए शुभ अथवा अशुभ कर्म का फल अवश्य भोगना होगा, गीता के इस तथ्य को नहीं मान रहा है। वाह रे मानव, पूजा करने से फल अवश्य मिलेगा, यह सत्य है, परन्तु शुभ और अशुभ कर्म का फल अवश्य भोगना है, यह सत्य नहीं है। यदि धर्मशास्त्रों के इस सिद्धान्त को मनुष्य

सत्य मान ले तो फिर धरती पर सर्वत्र स्वर्ग स्थापित हो जाये, फिर पूजा-पाठ की कोई आवश्यकता ही न रह जायेगी। मैं तो कहता हूँ कि धर्मशास्त्रों के अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। को सत्य मान कर पूजा-पाठ करना पाप का प्रतीक है तथा पाप का प्रमाणपत्र प्राप्त करना और फिर उसे पुनः-पुनः नवीनीकरण करवाना है।

कथन का आशय है कि सभी धर्मग्रन्थ मनुष्य को किसी न किसी रूप में समाज को व्यवस्थित करने की शिक्षा प्रदान करते हैं। इनमें पुराणों की सबसे अधिक भूमिका है। हमारे अठारहों पुराण प्राचीन राजाओं, महाराजाओं की कहानियाँ सुनाकर मनुष्यों को सत्कर्म के प्रति प्रेरित करते हैं और बुरे कर्मों का परित्याग करने की शिक्षा देते हैं। अमुक राजा सत्यवादी था, उसको संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, अमुक राजा अत्याचारी था, उसका विनाश हुआ, यह सब पुराण मनुष्य को मित्रवत् उपदेश देते हैं, ताकि मानव अच्छे कर्मों को करे और बुरे कर्मों से दूर रहे। अतः आज पुराणों के अध्ययन की महती आवश्यकता है। पुराण मनुष्य को सत्कर्म की ओर प्रेरित करते हैं तथा यही नहीं, वे पापी मनुष्य को सुधारने का भी प्रयास करते हैं। इसके लिए पुराणों में प्रायश्चित्त की भी व्यवस्था है, परन्तु वह पुनः वैसा पाप न करे। यदि सुबह का भूला हुआ शाम को घर वापस आ जाये तो वह भूला हुआ नहीं माना जा सकता, अतः यदि मनुष्य पाप का प्रायश्चित्त करे तथा फिर कभी पाप न करे तो वह पापी नहीं कहा जा सकता है। ऐसी व्यवस्था भी पुराणों में की गयी है। पुराणों में ही क्या? यह व्यवस्था प्रायः सभी धर्मों में है। जैसे कि इस्लाम में काबे में जाकर मनुष्य यदि वहाँ प्रतिज्ञा करे कि अब तक के मेरे गुनाह माफ करो, आगे अब कभी नहीं करूँगा तो अल्लाह उसके गुनाह जरूर माफ करता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सामाजिक व्यवस्था के सुचारु रूप से संचालन में सब धर्मग्रन्थों का अप्रत्याशित सहयोग है। जिसमें पुराणों के सहयोग को नकारा नहीं जा सकता है। पुराण मनुष्य को पुनर्जन्म का भय दिखाकर, सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करता है, कहीं नरकों की कठोर यातनाओं का भय दिखाकर सुमार्ग पर लाता है, कहीं स्वर्ग सुख का लालच देकर सन्मार्ग दिखाता है तो कहीं ईश्वर की सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता बता कर पाप करने से विमुख करता है। इस प्रकार पुराण चिरकाल से समाज की सेवा में सतत संलग्न है, अतः पुराणों के अध्ययन की आज महती आवश्यकता है।

आज का मानव पूर्ण रूप से विज्ञान पर निर्भर है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक की कल्पनाएँ उसे मिथ्या दृष्टिगोचर हो रही हैं, फलतः मानव अर्थ के लिए कोई भी अनर्थ करने में जरा भी संकोच अथवा भय नहीं देख रहा है। वेद-पुराण-शास्त्रादि तो उसके लिए सब कपोल कल्पित बातें हो गयी हैं, परन्तु वह यह नहीं जान रहा है कि "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।" जब कि हमारे पुराण अनेकों स्थलों पर आर्ततायी, अत्याचारी, भ्रष्ट, क्रूर एवं अहंकारी राजाओं के विनाश की कहानी कहकर सचेत करते रहे हैं। पुराणों ने मानव को यह अच्छी तरह समझा दिया है कि अत्याचारी, अन्यायी, अहंकारी कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, उसका एक दिन विनाश अवश्य हुआ है। अतः मनुष्य को पुराणों से यह सीख अवश्य लेनी चाहिए; परन्तु दुर्भाग्य है कि आज के नेताओं, अधिकारियों तथा कर्मचारियों को पुराणों के प्रति विश्वास समाप्त हो गया है; परन्तु पुराणों का अध्ययन कर मनुष्य पाप-पुण्यों के रहस्य को समझे तो निश्चित ही यह संसार स्वर्ग बन सकता है, फिर अन्याय, अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार और अहंकार जैसी भावनाओं का सर्वथा विनाश हो ही जायेगा।

अब हम पुराणों की संख्या पर विचार करते हैं।

पुराणों की संख्या—पुराणों की संख्या अठारह है। संसार की सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त समस्त विश्व के क्रमबद्ध इतिहास के निर्देशक भारतीय संस्कृति के प्रतीक सनातन धर्म की परम्परा के परिपोषक अठारह पुराणों के

परिचय प्रसङ्ग में महर्षि वेदव्यास ने विष्णुपुराण के तृतीय अंश में पुराणों का नाम और क्रम प्रतिपादित किया है। वैसे तो प्रायः सभी पुराणों में नाम और क्रम प्रतिपादित किया है, परन्तु यहाँ विष्णुपुराण का नाम क्रम अधिक उचित मानते हुए दिया जा रहा है। वह है—१. ब्रह्मपुराण, २. पद्म पुराण, ३. विष्णु पुराण, ४. शिव पुराण, ५. भागवत पुराण, ६. नारदीय पुराण, ७. मार्कण्डेय पुराण, ८. अग्नि पुराण, ९. भविष्य पुराण, १०. ब्रह्मवैवर्त पुराण, ११. लिङ्ग पुराण, १२. वाराह पुराण, १३. स्कन्द पुराण, १४. वामन पुराण, १५. कूर्म पुराण, १६. मत्स्य पुराण, १७. गरुड़ पुराण, १८. ब्रह्माण्ड पुराण।

—विष्णु पुराण, ३/६/२१-२४

श्रीभागवत पुराण के अनुसार भी प्रायः यही क्रम है। वहाँ तो स्पष्ट कहा गया है कि—

ब्राह्मं पाद्मं च वैष्णवं शैवं लिङ्गं सगारुणम्।
नारदीमाग्नेयं च भागवतं स्कन्दसंज्ञितम्।।
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्।।

श्रीभागव., १२/१०/२३-२४

प्रायः यही क्रम अधिकांश पुराणों में है, परन्तु देवी भागवत के प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय के तृतीय श्लोक में तो पहले अक्षर के क्रम से पुराणों के नाम निर्देशित हैं, जो स्मरण करने की दृष्टि से अत्यन्त ही उपादेय हैं। वहाँ एक श्लोक है, जो इस प्रकार है—

मद्वयं भद्वयञ्चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते।। दे. १/२/३

इस प्रकार 'म' अक्षर से दो पुराण—१. मत्स्य, २. मार्कण्डेय। 'भ' अक्षर से दो पुराण—१. भागवत, २. भविष्य। फिर 'ब्र' अक्षर से तीन पुराण—१. ब्रह्म, २. ब्रह्मवैवर्त, ३. ब्रह्माण्ड। उसके बाद 'व' अक्षर से चार पुराण—१. वायु, २. वामन, ३. विष्णु, ४. वाराह। अब अनापलिङ्गकूस्कानि—इन अक्षरों में 'अ' से अग्नि पुराण, 'ना' से नारद पुराण, 'प' से पद्म पुराण, 'लि' से लिङ्ग पुराण और 'ग' अक्षर से गरुड़ पुराण, तथा 'कू' से कूर्म पुराण तथा 'स्क' से स्कन्दपुराण। इस प्रकार कुल मिलाकर १८ पुराण हुए।

ये अठारह पुराण कलियुग और द्वापर युग की संधि के समय पाराशर मुनि से सत्यवती में उत्पन्न भगवान् वेदव्यास द्वारा लिखे गये हैं।

पद्मपुराण और भविष्य पुराण में पुराणों का विभाजन सत्त्व, रजस् और तमस् के आधार पर किया गया है। तदनुसार ६ पुराण सात्त्विक पुराण हैं, ६ पुराण राजसिक हैं तथा ६ तामसिक पुराण हैं।

सात्त्विक पुराण हैं—१. विष्णु पुराण, २. नारदीय पुराण, ३. भागवत पुराण, ४. गरुड़ पुराण, ५. पद्म पुराण और ६. वाराह पुराण।

राजसिक पुराण हैं—१. ब्रह्माण्ड पुराण, २. ब्रह्मवैवर्त पुराण, ३. मार्कण्डेय पुराण, ४. भविष्य पुराण, ५. वामन पुराण और ६. ब्रह्म पुराण।

तामसिक पुराण हैं—१. मत्स्य पुराण, २. कूर्म पुराण, ३. लिङ्ग पुराण, ४. स्कन्द पुराण, ५. आग्नेय पुराण और ६. शिव पुराण।

इस प्रकार ये अठारह पुराण हैं। ये सभी अठारह पुराण महापुराण माने गये हैं। जहाँ तक सम्पूर्ण पुराणसाहित्य

के विषय में विचार करें तो कुल १ महापुराण, २ पुराण, ३ उप पुराण, ४ औप पुराण और ५ उपौपपुराण, ये पाँच वर्ग पुराण साहित्य के हैं। इस प्रकार कुल संख्या ९० हो जाती है, क्योंकि पाँचों वर्ग १८ की संख्या में हैं। जिनमें कुछ पुराणसाहित्य तो प्रकाश में आ चुका है तथा कुछ पुराणसाहित्य पाण्डुलिपियों के रूप में कहीं न कहीं सुरक्षित है तथा कुछ प्रकाशन के क्रम में है।

पुराणों के रचयिता

पुराणों के वर्णन के अनुसार पुराणों के रचयिता भगवान् वेदव्यास और उनकी वंशशृङ्खला है—वैसे तो पुराणों के रचयिता स्वयं प्रभु नारायण हैं, देखिये। पुराणार्णव में नारायण को ही पुराण का रचयिता माना गया है।

—पुराणार्णव ५/७।

वेदों के विस्तार के लिये व्यास रूप से पुराणों को इस पृथ्वी पर स्थापित किया है। मत्स्य पुरण में ही नहीं अनेकों पुराणों में ऐसा विवेचन प्राप्त होता है; परन्तु यहाँ केवल मत्स्यपुराण का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरंच वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता।।

इस कथन से पुराणों के रचयिता स्वयं स्वयम्भू तथा प्रवचनकर्त्ता महर्षिविदव्यास सिद्ध होते हैं। महर्षि वेदव्यास ने बिखरे हुए पुराणों को मूल संहिता का रूप दिया, फिर उसे अपने शिष्य रोमहर्षण को पढ़ाया। रोमहर्षण से उनके शिष्य शांशपायन ने आदि से अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार विभाजन किया और सूतों द्वारा उन कथाओं का प्रचार मनमाने ढंग से होने लगा। शिष्य एवं परिशिष्य परम्परा ने पुराण कथाओं को अभियन्त्रित और अमर्यादित बना दिया। अतः पुराणों के रचयिता भिन्न-भिन्न ऋषिगण हैं। गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर पुराण का रचयिता कोई एक नहीं प्रतीत होता है; परन्तु इतना अवश्य है कि पुराणों की एकरूपता यह बताती है कि प्रायः सभी पुराण एक-दूसरे की अनुकरण परम्परा पर रचित प्रतीत होते हैं तथा इस पुराणों के समान वर्णन से पुराण किसी एक व्यक्ति अथवा शिष्य समुदाय द्वारा लिखे हुए प्रतीत होते हैं; परन्तु इतना कहने में मुझे लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि सभी पुराण समान वर्ण्य विषयों पर आधृत हैं। यहाँ तक कि अधिकांश श्लोक सभी पुराणों में आप अक्षरशः समान प्राप्त कर सकते हैं।

पुराणों का रचनाकाल—अनुसन्धानात्मक दृष्टि से जब पुराणों के निर्माणकाल पर विचार किया जाये, तब ये पुराण किसी एक समय में तथा कसी एक व्यक्ति की रचना नहीं प्रतीत होते हैं। आधुनिक आलोचक और इतिहासकारों को पुराणों का रचनाकाल ईशा की प्रथम शताब्दी भी स्वीकार्य नहीं है। परन्तु इतना अवश्य है कि कुछ पुराण अत्यन्त प्राचीन हैं तथा कुछ अर्वाचीन हैं। ऐसा लगता है कि प्रत्येक पुराण पहले से ही लिखना प्रारम्भ कर दिया गया है तथा समय समय पर उसमें घटनायें जोड़ी जाती रहीं हैं। इस प्रकार पुराण एक प्रकार का इतिहास है, जिनमें समय समय पर राजाओं और उनके राज्यकाल की घटनायें सम्प्रेषित की जाती रही है। इसीलिये भविष्य पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में यवनकाल तक के शासनकाल का वर्णन प्राप्त होता है। पुराणों में भविष्यत्काल की कथायें कहकर जो भविष्य के राजाओं और उनके राज्यव्यवस्था का वर्णन किया गया है, उससे पुराणों की अर्वाचीनता लक्षित होना तो स्वाभाविक है; परन्तु हो सकता है कि भविष्य की सांकेतिक घटनाओं को अतिरंजित और विकासवाद में बना दिया गया हो; किन्तु फिर भी भविष्यत्काल की कथाओं के आधार पर पुराणों की प्राचीनता पर आक्षेप स्वभाविक है; परन्तु भविष्य में होने वाले कल्कि अवतार और उससे पहले होने वाली सामाजिक घटनाओं के वर्णन की सत्यता को सहसा इसलिये नहीं नकारा जा सकता कि प्रायः पुराण वर्णित घटनाओं की सत्यता दिन प्रतिदिन सत्य होती जा रही है।

कुछ भी हो, यह यथार्थ है कि पुराण साहित्य का लेखन कम से कम ईशा की प्रथम शताब्दी में महाभारत के रचनाकाल में ही प्रारम्भ हो गया था तथा यथासम्भव उनमें समय समय पर घटनायें जोड़ी जाती रही हों।

यहाँ पर घटनाओं के जोड़ने के विषय में कोई तर्क ही नहीं करना चाहिये; क्योंकि पुराण एक इतिहास है तथा इतिहास में घटनायें जुड़ती ही रहती हैं। अतः जब इतिहास किसी काल की रचना नहीं, तब पुराण कैसे हो सकते हैं? यह सम्भव ही नहीं, यथार्थ सत्य है कि प्राचीन काल में पुराणों में ही उस उस समय के शासकों का इतिहास लिखा जाता था तथा वह परम्परा अभी तक प्रचलित है। यह क्षत्रियों के वंशवर्णन में देखा जाता है। आज भी अधिकांश क्षत्रिय जातियों के अपने अपने इतिहास लेखक है, जो अपने पास अपने यजमान क्षत्रियों के वंशावली को लिखते हैं, जिनको आज जगा कहा जाता है। सम्भव ही नहीं यथार्थ है कि ये ही जगा पुराणों के संकलनकर्ता रहे होंगे, जो राजामहाराजाओं के वंशावलियां लिखते होंगे। इसलिये पुराणों को एक काल की रचना नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतना कहने में मुझे लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि पुराण साहित्य एक इतिहास है तथा वह समग्र इतिहास है; क्योंकि आधुनिक इतिहास तो केवल कुछ काल के शासकों और शासन व्यवस्था का वर्णन करता है; परन्तु पुराणसृष्टि से लेकर आज तक के इतिहास का वर्णन करते हैं। इसलिये वे इतिहास के स्रोत माने जाते हैं।

ब्रह्माण्डपुराण—ब्रह्माण्डपुराण भी अट्ठारह पुरणों में से एक महापुराण ही है; क्योंकि सभी पुराणों में जो पुराणों की संख्या दी गयी है, उसमें ब्रह्माण्डपुराण को अन्तिम पुराण माना गया है। पुराणों को जो तीन प्रकार के पुराण माना गया है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। उनमें से यह पुराण राजसिक पुराण के रूप में स्वीकार किया गया है। पुराणों के वर्णन के अनुसार जो सब पुराण उस पुराण पुरुष (ब्रह्मा) के शारीरिक अंग के रूप में चित्रित किये गये हैं, वहाँ यह पुराण पुराण पुरुष (ब्रह्मा) की रीढ़ की हड्डी के रूप में ही माना गया है।

ब्रह्माण्डपुराण का विस्तार—इस पुराण में चार पाद हैं—१. प्रक्रिया पाद, २. अनुषंग पाद, ३. उपोद्घातपाद और ४. उपसंहारपाद। वहाँ पहला दो पाद पूर्वभाग कहा जाता है, तीसरा पाद मध्म भाग कहा जाता है तथा चौथा पाद उत्तर भाग कहा जाता है। इस पुरण में लगभग १२,२०० श्लोक हैं। इसके वर्ण्यविषय दे दिये गये हैं। यह पुराण तीन भागों में विभक्त है—१. पूर्वभाग जिसमें १ से ३८ अध्याय हैं। २. मध्यभाग जिसमें १ से ७४ अध्याय हैं तथा ३. उत्तर भाग जिसमें १ से ४४ अध्याय हैं। कुल मिलाकर इसमें १५६ अध्याय हैं। इसका आन्तरिक विभाग भी है, जिसमें प्रक्रिया पाद १-५ अध्याय, अनुषंग पाद ६-३४, उपोद्घातपाद १-७४ और उपसंहार १-४ और ललितोपाख्यान ५-४४। नारद पुरण में भी इस पुरण का विवेचन इसी प्रकार है। नारदपुराण १/१०९/१-३ जिसके अनुसार इस पुराण में १२,२०० श्लोक हैं।

वैसे सभी पुराणों में प्रायः एक ही प्रकार की कथायें तथा चरित्र चित्रण हैं; परन्तु इस पुराण की विशेषता यह है कि इसमें ८०० श्लोकों में भविष्य में आने वाले युगों का विस्तृत वर्णन है तथा 'ललितोपाख्यान' इसका अलग अध्याय है। ब्रह्माण्डपुराण की साहित्यिक प्रकृति के विषय में विचार करें तो ब्रह्माण्डपुराण केवल उपनिषद् और ब्राह्मण साहित्य से ही सम्बन्ध नहीं रखता है; अपितु यह वैदिक संहिताओं के साहित्य एवं शिक्षा से सम्बन्ध रखता है। वैसे यह पुराण साहित्य के क्षेत्र में वैदिक साहित्य से भाषा भिन्नता रखता है; परन्तु जहाँ तक विषय वर्णन का सम्बन्ध है, वह वैदिक साहित्य से सम्बन्धित है। वैसे तो सभी पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित के वर्णन हैं; परन्तु इस पुराण की यह विशेषता है कि इसमें सृष्टि और प्रलय के रहस्यों पर अधिक जोर दिया गया है।

ब्रह्माण्डपुराण का रचना काल—प्रत्येक पुराण में पुराणों की क्रम संख्या का निर्देश प्राप्त होता है। अतः अधिकांश पुराणों में ब्रह्माण्डपुराण का क्रम सबके बाद में वर्णित है। इस संख्या क्रम में यह अठारहवां पुराण है।

इस पुराण के अनुसन्धाताओं ने इस पुराण के काल को सबसे अर्वाचीन माना है। डॉ. हाजरा के अनुसार यह पुराण ३२५ ई. से ४०० ई. की रचना है। डॉ.एस. एन. राय के अनुसार पुराण वर्णित राधा और तान्त्रिक प्रभाव के अनुसार इसका रचनाकाल लगभग १००० ई. माना गया है। जो भी हो, समस्त पुराण के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह ३५० ई. से लेकर १२०० ई. तक लिखा जाता रहा होगा अथवा यह भी हो सकता है कि यह पुराण १००० से १२०० ई. के बीच लिखा गया हो। जहाँ तक प्राचीन वर्णनों का प्रश्न है, जिसके आधार पर इस पुराण को बहुत अधिक प्राचीन माना जाये, वह सम्भव नहीं है; क्योंकि इस पुराण में प्रायः अनेकों पुराणों की नकल सी प्रतीत होती है तथा वायुपुराण की तो यह पूर्णरूपेण अनुकृति है। तब यह भी हो सकता है कि इस पुरण को अन्तिम काल १००० से १२०० के मध्य में दूसरे पुराणों की नकल करके लिखा गया हो। अतः यह मानना होगा कि यह पुराण अन्य पुराणों की भांति अधिक प्राचीन नहीं है।

ब्रह्माण्डपुराण और वायुपुराण—वैसे तो सभी पुराणों में अधिकांश घटनाओं का यथावत् वर्णन है। केवल शब्दों का अत्यल्प अन्तर है। कहीं कहीं तो पूर्णतः समान श्लोक पाये जाते हैं, जिससे पुराणों की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। सब पुराणों की तरह यह पुराण भी अधिकांश पुराणों से कुछ स्थलों पर समानता रखता है; परन्तु वायुपुराण के तो यह पुराण अत्यन्त सन्निकट है, जिसमें कुछ कुछ स्थानों पर तो इस पुराण के श्लोक वायु पुराण के श्लोकों से पूरी तरह मेल खाते हैं तथा बहुत से स्थलों पर श्लोक साम्य नहीं तो भावसाम्य तो अवश्य हैं; परन्तु इस समानता से ब्रह्माण्डपुराण की प्रतिष्ठा को कम नहीं समझा जा सकता; क्योंकि इस पुराण का उत्तर भाग ललितोपाख्यान अपने में एक अनूठा उपाख्यान है तथा वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है।

समस्त ब्रह्माण्डपुराण दो सुविस्तृत विभागों परशुराम सागरवृत्तान्त और ललितोपाख्यान को छोड़कर वायुपुराण के समान ही है। इसीलिये आधुनिक अनुसन्धाता पार्जीटर ने अपने विचार प्रकट करते हुए यह घोषणा की है कि ये दोनों पुराण अलग अलग नहीं हैं, केवल इनके शीर्षक भिन्न भिन्न हैं[1]। वहीं डॉ. हाजरा यह और जोड़ देते हैं कि मूलतः ये दोनों पुराण एक ही थे; परन्तु कब और कैसे ये दोनों पुराण भिन्न-भिन्न शीर्षक के रूप में सामने आये।[2]

पुराण कथा एवं पुराण कथाकार—ब्रह्माण्डपुराण में कथा की परम्परानुसार ब्रह्माण्ड पुराण को स्वयं ब्रह्मा ने वायु को कहा है तथा वायुदेव ने इसे दूसरों को सुनाया है, जिसका सम्पूर्ण वर्णन इस पुराण के प्रारम्भ में ही वर्णित है। जो इस प्रकार है—

वेदसम्मत तथा लोकतत्व समर्थित सम्पूर्ण पुराण को भगवान् प्रजापति ने प्रथमतः ऋषि वशिष्ठ को बताया। ऋषि वशिष्ठ ने अपने पौत्र तथा शक्तिपुत्र पराशर को पवित्र ज्ञानामृत पुराणों को पढ़ाया और पराशर ने भगवान् जातुकर्ण्य ऋषि को दिव्य पुराणों को पढ़ाया। परमज्ञानी, जातुकर्ण ने पुराणों के अध्ययन से प्राप्त विशिष्ट ज्ञान के साथ पुराण विद्या को सनातन ब्रह्मस्वरूप महाज्ञानी द्वैपायन को प्रदान किया। तत्पश्चात् इन्द्रियजयी द्वैपायन ने लोकतत्त्व के विस्तार के लिए अद्भुतज्ञानसम्पन्न पाँच श्रेष्ठ शिष्यों को पुराण ज्ञान प्रदान किया।

विश्व में पुराणों के ज्ञान के विस्तार और प्रसार के लिए तथा अनेकार्थयुक्त, श्रुति सम्मत पुराण ज्ञान के व्याख्यान के लिये जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन, पैल और पाँचवें लोमहर्षण को इस विद्या को दिया। साथ ही द्वैपायन ने यह अद्भुत आख्यान-कथा विनीत, धार्मिक और पवित्र सूत को भी पढ़ायी। सूत लोमहर्षण ने पुराण विद्या को द्वैपायन

1. F. E. Pargiter Ancient Indian Historical Tradition Rep., Delhi, 1962.
2. R. C. Hazara Studies on the puranic record on Hindu rites & Customs (Dacca 1940) p.18.

से पढ़ा तथा जब उन्होंने पढ़ लिया, तब प्रज्ञा प्राप्त, विशिष्ट धर्मानुरागी ऋषियों ने लोमहर्षण से पुराणविद्या प्राप्त करने की जिज्ञासा की। वहाँ मुनियों द्वारा शिर झुकाकर महर्षि वशिष्ठ को प्रणाम कर तथा परमभक्ति युक्त होकर महर्षि वशिष्ठ की प्रदक्षिणा कर लेने पर, लोमहर्षण पुराण विद्या प्राप्त कर कुरुक्षेत्र जा पहुँचे। जहाँ प्रचलित सत्र में पवित्र ऋषियों द्वारा ज्ञानयज्ञ चल रहा था। तब ऋषिगण ज्ञान सत्र संचालक लोमहर्षण के पास विनयपूर्वक शास्त्रीयविधि के अनुसार ज्ञान पाने की इच्छा से पहुंचे। ऋषिगण तब लोमहर्षण का दर्शन कर परम प्रसन्न हुए। तब सभी का लोमहर्षण ने भी अर्घ्यपाद्यादि से सत्कार कर, उन आगत ऋषियों की अर्चना की। सभी मुनिगण बिछे हुए रम्य आसन पर सम्यक् रूप से बैठ गये। बैठ जाने पर सभी मुनियों से कुशलक्षेम पूछा गया। सभी ऋषियों ने महाव्रतधारी सूतपुत्र रोमहर्षण से परम प्रीतिपूर्वक कहा। हे महाभाग! हम लोग श्रुति सम्मत, धर्म और अर्थ से युक्त पुराणों की कथा जो आपने महर्षि व्यास से सुनी है, उसे सुनने की इच्छा करते हैं।

इस प्रकार मुनियों द्वारा सूत को कहे जाने पर, परमज्ञानवान् सूत नन्दन ने परम विनय से कहा कि जो सत्य है। जिस ज्ञान को जानने की आपकी इच्छा है, उसको बताने की आप मुझे आज्ञा दो। सूत जी के इस मधुर वचन को सुनकर मुनयों ने आँखों में आँसू भरे हुए सूत जी से कहा कि आप इस ज्ञान के विषय में विशेष कुशल हैं; क्योंकि इस ज्ञान के ज्ञाता महर्षि वेदव्यास को आपने साक्षात् (प्रत्यक्ष रूप से) देखा है। इसलिए आप इस समस्त संसार का सार बताने में समक्ष हैं। अतः हमें इस संसार सार का विशेष रूप दिखाओ। इस प्रकार पूछे जाने पर महात्मा रोमहर्षण सब ऋषियों का आदर करके विस्तार से पूर्व से लेकर कथा कहने लगे। —ब्रह्माण्डपु. १।१।८-१४

सूतजी बोले जो मेरी द्वैपायन से प्रीति हुई, जिस पुण्य कथा को ब्राह्मणों ने कहा, उसको मैं क्रम से अवश्य कहूँगा। तब जिस पुराण को वायुदेव ने कहा, उसको सम्यक् प्रकार से कहूँगा तथा इसकी अन्य कथन परम्परा भी है, जो इस प्रकार है—

ब्रह्माण्डपुराण कथन परम्परा—इस समस्त पापों को नष्ट करने वाले पुण्य, पवित्र और यशस्वी पुराण को ब्रह्मा जी ने वायुदेव को प्रदान किया था। उन वायुदेव से शुक्राचार्य ने प्राप्त कर लिया और फिर शुक्राचार्य से बृहस्पति ने प्राप्त किया, उसके बाद बृहस्पति ने सविता को कहा।

उसके बाद सविता ने मृत्यु को और मृत्यु ने इन्द्र को कहा। इन्द्र ने वसिष्ठ को कहा, वसिष्ठ ने सारस्वत को कहा। फिर सारस्वत ने त्रिधामा को और त्रिधामा ने शरद्वत को, शरद्वत ने त्रिविष्टा को, त्रिविष्टा ने अन्तरिक्ष को प्रदान किया। फिर अन्तरिक्ष ने चर्षी को, उन चर्षी ने त्रय्यारुण को, फिर त्रय्यारुण से धनञ्जय ने प्राप्त किया, तब उन धनञ्जय ने कृतञ्जय को कहा। कृतञ्जय से तृणञ्जय ने प्राप्त किया और उसने भी भारद्वाज को प्रदान किया, भरद्वाज ने गौतम को दिया, गौतम ने फिर निर्य्यन्तर को कहा। निर्य्यन्तर ने तो फिर वाजश्रवा के लिए कहा, उन वाजश्रवा ने सोमसुष्म के लिए, सोमसुष्म ने तृणबिन्दु को प्रदान किया। तृणबिन्दु ने दक्ष को कहा और दक्ष ने शक्ति को कहा। शक्ति से गर्भस्थ पाराशर ने इस पुराण को सुना। इसीलिये इस पुराण में सर्वत्र वायुप्रोक्त कहकर प्रवचन किया गया है।

पाराशर से जातुकर्ण्य ने प्राप्त किया और उन जातुकर्ण्य से प्रभु द्वैपायन ने प्राप्त किया, उसके बाद हे मुनिश्रेष्ठ! द्वैपायन से सूतजी ने प्राप्त किया। सूतजी ने फिर इस पुराण को असीमित बुद्धिवाले अपने पुत्र को कहा। इस प्रकार यह पुराण ब्रह्मा आदि गुरुओं का कहा हुआ वाक्य है। यह कोई सामान्य नहीं है। —ब्रह्माण्डपु. ३।४।५८-६७

इससे यह सिद्ध होता है कि यह पुराण सूतजी ऋषियों को सुना रहे हैं तथा जो सुना रहे हैं, वह सब कहानी वायुप्रोक्त है।

परन्तु इस पुराण के पांचवें अध्याय से कथा क्रम बदलता है, वहाँ से ललितोपाख्यान प्रारम्भ होता है, जो कथा हयग्रीव और अगत्स्य संवाद नाम से वर्णित है, जिससे अगस्त्य मुनि महादेवी ललिता माहात्म्य के जिज्ञासु बन कर भगवान हयग्रीव से पूछते हैं और फिर वे उत्तर देते हैं। इस प्रकार समस्त ललितोपाख्यान हयग्रीव और अगस्त्य संवाद पर आधारित है।

ब्रह्माण्डपुराण और पौराणिक लक्षण—समस्त पौराणिक साहित्य में पांच विषयों पर ही वर्णन उपलब्ध होता है, जिसको 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' कहा जाता है, वे लक्षण हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितश्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।। ब्रह्माण्डपुराण १.१.३७-३८

अतः सभी पुराणों में इन्हीं पांच विषयों पर विशद वर्णन प्राप्त होता है। अन्य पुराणों की भांति यह पुराण भी पुराणों के पंच लक्षणों के वर्णन में सबसे अधिक खरा उतरता है। इसमें भी ये विषय विस्तार से वर्णित हैं, जैसे कि—

सर्ग (सृष्टि रचना)—सृष्टिरचना का वर्णन इस पुराण में बहुत विस्तार से किया गया है। इस पुराण में इस विषय में १३ अध्याय हैं, जो हैं १-१३, ५ तथा ८-१३ और २.१-४।

इस पुराण में प्रारम्भ में ही बताया गया है कि सृष्टि से पूर्व केवल ब्रह्म का ही अस्तित्व था। सबसे पहले प्रकृति ही थी, जो इस पंचभूत की सृष्टि करती है।

इस प्रकृति से समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है। पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश ये तो पञ्चभूत हैं; परन्तु यह प्रकृति उन सबकी उत्पत्तिकर्त्री होने के कारण महाभूत है। जो प्रकृति परंब्रह्म जो अव्यक्त (न दिखायी देने वाली) होते हुए भी निश्चय ही सभी पञ्चभूत वालों का शरीर है। जो प्रकृति अनादि अजन्मा और सूक्ष्म है तथा जो सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुणों वाली है। यह प्रकृति असाम्प्रतिक (अर्थात् यदि कोई कहे कि प्रकृति यहाँ इस समय है ये हैं, वह अज्ञेय है, उसे न कोई जान सका, न जान सकेगा तथा जो सत् और असत् से परे है, उसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह है अथवा नहीं है।

प्रकृति के तीनों गुणों के समान होने पर सृष्टि नहीं होती है। वह प्रलय काल होता है। जब सृष्टि का समय होता है, उस समय क्षेत्रज्ञ (पुरुष, जीव) निश्चित रूप से अधिष्ठित होता है अर्थात् प्रकृति में क्षेत्रज्ञ अधिष्ठित रहते हैं। क्षेत्रज्ञ आत्मा को कहा जाता है। गुणभाव की प्रतीति होने पर वह महा तत्त्व होता है। भाव यह है कि जब आत्मा के गुणभाव अर्थात् गुणों वाली प्रकृति (प्रधान) का सम्बन्ध होता है अर्थात् आत्मा और प्रकृति के एक साथ रहने पर महत्तत्त्व होता है। महत्तत्त्व (बुद्धि) को कहते हैं। प्रकृति पुरुष के संयोग से ही बुद्धि तत्त्व अपना कार्य करता है अर्थात् शरीर में ज्ञान शक्ति आत्मा के कारण ही आती है। आत्मतत्त्व के अभाव में यह प्रकृति निश्चेष्ट हो जाती है। वह सूक्ष्म महत्तत्त्व तो आगे अव्यक्त (प्रकृति) से समावृत रहता है। सत्त्वगुण की अधिकता (सत्त्व के उद्रेक) से महत्तत्त्व सत्त्वमात्र का प्रकाश करने वाला है। सत्त्व गुण से ही महत्तत्त्व जाना जाता है। इस महत्तत्त्व (बुद्धि) का सत्त्वगुण ही कारण है। यह महत्तत्त्व लिङ्गमात्र रूप उत्पन्न आत्मा में अधिष्ठित है। सम्यक् प्रकार से कल्पना करना अर्थात् किसी विषय में सोच विचार करना और सोच विचार कर किसी विशेष कार्य को करने का निर्णय लेना उस महत्तत्त्व के दो ही कर्त्तव्य हैं। यही प्रकृति में समाया हुआ होकर सृष्टि करने की इच्छा से महासृष्टि करता है। पुरुष विषयों का भोग करने वाला है; क्योंकि समस्त इन्द्रियां जो भोग कराने की साधनमात्र हैं, वे पुरुष (आत्मा) के रहने पर ही क्रियाशील रहती हैं।

यह आत्मा भोगसम्बन्ध के कारण उस प्रकृति में समाविष्ट रहता है और उसी प्रकृति (प्रधानतत्त्व) के द्वारा भोग करता है; क्योंकि बुद्धि, अहंकार, मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां, शब्द स्पर्श रूप रस और गंध पाँच सूक्ष्म भूत एवं आकाश, वायु, अग्नि (तेज), जल और पृथ्वी आदि सभी तत्त्व तो प्रकृति के ही अधीन हैं। अतः प्रकृति से विना सम्बन्ध स्थापित किये, यह पुरुष विषयों का भोग नहीं कर सकता।

वे भूतादिक स्वाद लेने वाले और अशील जाने गये थे तथा वह सत्त्वाधिक प्राणियों (मनुष्यों) का सर्ग था और ब्रह्मा के महत्तत्त्व का प्रथमसर्ग जाना गया; क्योंकि महत्तत्त्व बुद्धि को कहा जाता है। अतः महत्तत्त्व बुद्धि का सर्ग वह ब्रह्मा का पहला सर्ग कहा गया है। तन्मात्राओं का दूसरा सर्ग है, जो भूतसर्ग कहा गया है। वैकारिक सर्ग तो तृतीय सर्ग है। वह तो ऐन्द्रिय सर्ग कहा जाता है। इस प्रकार ये सब प्राकृत सर्ग हैं। प्राकृत से तात्पर्य है कि ये सब सर्ग प्रकृति से उत्पन्न हैं; क्योंकि प्रकृति जिसे माया, दुर्गाचण्डी, पार्वती, उमा, शिवा आदि नामों से व्यवहृत किया गया है तथा जिसे अंग्रेजी में Nature कहा गया, उससे महत्तत्त्व पैदा हुआ। यह पहला सर्ग है, इसे **बुद्धिसर्ग** कहा जाता है। फिर उस महत्तत्त्व से पञ्च तन्मात्रायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पैदा हुए। ये **भूत सर्ग** हैं; क्योंकि इस सर्ग में ही महत्तत्त्व से पंचतन्मात्राओं से उनके आधार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है तथा ये सब पञ्चमहाभूत हैं; इसलिए इस सर्ग को द्वितीय भूतसर्ग कहा गया है तथा जब इनमें विकार होता है, तब तीसरा सर्ग **ऐन्द्रिय सर्ग** होता है अर्थात् अहंकार में विकार हुआ मन पैदा हुआ मन में विकृति हुई, तो इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई, फिर शब्द तत्त्व से श्रोत्र, स्पर्श से त्वक्, रूप से चक्षु, रस से जिह्वा और गन्ध से नासिका आदि पञ्च ज्ञानेन्द्रियां पैदा हुईं और फिर उन ज्ञानेन्द्रियों के आज्ञापालक हस्त, पाद, मुख, लिङ्ग और गुदा सब हुए। ये सब तन्मात्राओं में विकृति से उत्पन्न हुए। इसलिए इस सर्ग को **वैकारिक सर्ग** कहा गया है। ये तीनों ही प्राकृत सर्ग हैं, ये सब बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुए हैं। मुख्य सर्ग तो चौथा सर्ग है और मुख्य स्थावर (जड़पदार्थ) कहे गये हैं। तिर्यक् स्रोत वह सर्ग है, जिससे तिर्यक् योनि उत्पन्न हुए अर्थात् ज्ञानहीन पर्वत नदी आदि का सर्ग-पञ्चम सर्ग है तथा ऊर्ध्वस्रोत वाले देवताओं का सर्ग छठां सर्ग है, जिसको **दैवत सर्ग** कहा गया है। इस सर्ग में ऊपर रहने वाले सूर्यचन्द्र अग्नि वायु आदि देवताओं की उत्पत्ति हुई है। वहाँ पर ऊर्ध्वस्रोत वालों का सप्तम सर्ग **मानुष सर्ग** कहा गया और आठवां सर्ग **अनुग्रह सर्ग** है तथा वह सात्त्विक और तामस है।

इस प्रकार से पाँच सर्ग वैकृत सर्ग है, जिनमें स्थावर वाला चौथा मुख्यसर्ग, पञ्चम तिर्यक् स्रोत वाला पर्वत नदी सर्ग, षष्ठ ऊर्ध्व स्रोत का दैवत सर्ग, सातवां ऊर्ध्वस्रोतों का मानुषसर्ग और आठवां सात्विक तामसयुक्त अनुग्रह सर्ग गणनीय है तथा प्रथम तीन प्रकृति से महत्तत्त्व की, महतत्त्व से तन्मात्राओं का सर्ग तथा फिर तीसरा तन्मात्राओं से महाभूतों का सर्ग ये सब प्राकृत सर्ग हैं। प्राकृत सर्ग तीन, वैकृत सर्ग पाँच कुल मिलाकर आठ हुए और नवां सर्ग कौमारसर्ग है। प्राकृत सर्ग बुद्धिपूर्व है अर्थात् वे सब महत्तत्त्व बुद्धि के विकार हैं तथा तीन वैकृत सर्ग हैं। बुद्धिपूर्व जितने भी सर्ग हैं, वे सब बुद्धि से प्रवृत्त होते हैं तथा उसके सर्ग निश्चय ही ब्रह्मा से सम्बन्धित हैं अर्थात् वे ब्रह्मा के ही सर्ग हैं। इस प्रकार इस पुराण का यह सर्ग क्रमपूर्ण वैज्ञानिक है। इस पर अनुसन्धान की आवश्यकता है।

इस प्रकार निष्कर्षतः प्रधान प्रकृति ही सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुणों के साथ विद्यमान था। उसमें जब सत्त्व का उद्रेक हुआ, तब महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई तथा जब महत्तत्त्व में विकार हुआ, तब अहंकार की उत्पत्ति हुई तथा उस अहंकार से दो प्रकार की सृष्टि हुई—एक तामसिक सृष्टि और दूसरी सात्त्विक सृष्टि। तामसिक सृष्टि में पंचतन्मात्रों की सृष्टि हुई तथा सात्त्विक अहंकार से मन और दश इन्द्रियां उत्पन्न हुईं पंच तन्मात्रायें हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। फिर इन सब तन्मात्राओं से विपर्यास क्रम से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति

हुई तथा उधर पंचतन्मात्राओं के बोध के लिये क्रमशः कान, त्वचा, आंख, जिह्वा और घ्राणेन्द्रिय नासिका की उत्पत्ति हुई तथा तथा उनके आदेश पालक पांच कर्मेन्द्रियों की सृष्टि हुई। इस प्रकार यह प्रारम्भिक रचना है। इसे प्राकृत सर्ग कहा गया है। सृष्टि प्रकृति की है, जिसे प्राकृत सर्ग कहा गया तथा दूसरी उस प्रकृति में विकार से तन्मात्राओं की सृष्टि हुई, वह क्योंकि प्रकृति में विकार से हुई इसलिये उसे वैकृत सर्ग कहा गया, उसके बाद तीसरी सृटि स्थावर सृष्टि है, जिसमें जड़ पदार्थों की रचना हुई, फिर चौथी सृष्टि त्रिर्यक् स्रोत है, जिसे तिरछे चलने वाले झरना आदि की सृष्टि भी माना जा सकता है, फिर ऊर्ध्वस्रोत की सृष्टि हुई इसके बाद अनुग्रह सृष्टि है, उसके बाद ब्रह्मा की मानस सृष्टि है। जिसमें ब्रह्मा ने अपने पुत्रों को मन से पैदा किया।

परन्तु जब इससे भी काम नहीं चला, तब ब्रह्मा ने अपने शरीर को मनुष्य और स्त्री दो भागों में विभक्त कर दिया। जिनके नाम थे स्वायम्भुव मनु और सत्यरूपा। जिनसे मनुष्यों की मैथुनी सृष्टि का आरम्भ हुआ।

प्रतिसर्ग—सृष्टि का विनाश और फिर सृष्टि रचना का वर्णन इस पुराण में १/३ तथा ३७ में वर्णित है। प्रलय सृष्टि का व्युतिक्रम है, जैसे कि प्रधान से महतत्त्व पैदा हुआ था। और फिर अहंकार पैदा हुआ, उससे फिर पंचतन्मात्रायों, पंचमहाभूत तथा इन्द्रियां आदि पैदा हुई थीं। अब प्रतिसर्ग यह क्रम विपरीत होता चला जाता है जो जिससे पैदा हुआ वह उसमें समाता चला जाता है। दश इन्द्रियां अपनेउत्पत्ति स्थान मनमें पंचभूत, तन्मात्राओं में और फिर सब अहंकार में तथा अहंकार महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व प्रधान तत्त्व प्रकृति में लीन हो जाता है। तब केवल सत्त्व, रजस और तमस् वाली प्रकृति अपने तीनों गुणों की समानता में स्थित रहती है;परन्तु यह प्रक्रिया तब होती है जबकि प्रकृति में तमस् का उद्रेक होता है अर्थात् प्रकृति में तमस् की अधिकता से ही प्रलय की स्थिति होती है; परन्तु सत्त्व की अधिकता होने पर सृष्टि होती है। प्रलय में केवल प्रधानतत्त्व ही रहता है, जो ब्रह्म में लीन रहता है। यह प्रलय प्रत्येक मन्वन्तर में होती है। एक महाप्रलय १४ मन्वन्तर के बाद होती है। ब्रह्मा के१०० दिव्य वर्षों के बाद प्राकृतप्रलय होती है और अन्त में आत्यन्तिक प्रलय होती है, जिसका वर्णन ३/३ में है।

प्रलयकाल में गन्धर्व आदि और पिशाच तथा मनुष्य ब्राह्मण आदि पशुगण, पक्षीगण एवं स्थावर, नदी, पर्वत, वृक्षादि, जमीन पर रेंगने वाले (सर्प छिपकली) आदि सब उन पृथ्वीतलवासियों के स्थित रहने पर इस पृथ्वी पर जिस सूर्य की हजारों किरणें हैं, वे सूर्य विनष्ट हो जाते हैं, सूर्य का गोला फट जाता है। तब वे सूर्य की सात रश्मियां अलग-अलग हो जाती हैं और उन सबका एक-एक सूर्य बनकर सात सूर्य हो जाते हैं और फिर क्रम से सौ सौ सूर्य होकर सात सौ सूर्य हो जाते हैं और फिर वे सैकड़ों सूर्य तीनों लोकों को जला देते हैं तथा वे सैकड़ों सूर्य जीवों (मनुष्य, पशु आदि जङ्गम जीवों), पेड़-पौधे, नदी, पर्वत आदि (स्थावर) पदार्थों नदियों पर्वतों सबको जला देते हैं; क्योंकि सूखा होने पर पहले से ही वर्षा न होने के कारण वे सब जैसे तैसे पूरी तरह तापित हो जाते हैं, जब नदियां पर्वतादि करोड़ों डिग्री ताप से प्रतापित होंगे, तब क्या होगा यह तो विज्ञान का ही विषय है। तब वे स्थावर और जङ्गम (जड़-चेतन) पदार्थ और उनके धर्म अधर्म आदि निश्चित ही विवश होकर सूर्य की किरणों से निर्दग्ध हो जाते हैं (पूर्णतः जल जाते हैं)। जहाँ जो जैसे पहले थे, वैसे ही फिर उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् पर्वत पर्वत के रूप में नदियां नदियों के रूप में तथा जिस पृथ्वी-तल पर पहले जैसे जीव पैदा हुए थे, वे सब जैसे रूप बदलते रहे, उसी तरह के फिर पैदा हो जाते हैं तथा विकास तो परम्परा और कालगति की देन है और उस प्रलयकाल में जिसे कि अव्यक्त जन्म ब्रह्मा की रात्रि कहा जाता है।

पुनः सर्ग—यहाँ इस ब्रह्माण्ड में फिर ब्रह्मा की मानसी प्रजाओं की रचना होती है। उसके बाद त्रैलोक्यवासी लोगों के आश्रय ग्रहण करने पर मनुष्यों द्वारा पुनः सर्ग होता है तथा जब सूर्यों की प्रखर किरणों द्वारा समाप्त लोकों

को जला दिया जाता है, तब उसके बाद वर्षा होती है; क्योंकि वे सब पदार्थ समुद्र नदी पर्वत पशु-पक्षी मिट्टी आदि सभी में तो जल होता ही है। अतः वह सब जलेगा तो निश्चित है कि भाप बनेगी। अतः वर्षा होगी ही। अतः वर्षा होती है और वर्षा से पृथ्वी के आप्लावित हो जाने पर चारों ओर जल ही जल हो जाता है तथा सर्वत्र पृथ्वी पर जल ही जल रहने पर समुद्र, मेघ, जलयुक्त पार्थिव हो जाता है और जलाख्य (समुद्र) तथा अचल रहने वाले सभी तीर की तरह घूमते रहते हैं। अत्यन्त गति से आता हुआ जल इस स्थित पृथ्वी को सम्यक् प्रकार से ढक लेता है और तब यह भूमि अर्णव समुद्र नामक हो जाती है। अतः प्रलयकाल में चारों तरफ जल ही जल चमकता है। इसलिये 'भा' धातु से बनने के कारण उसका नाम अम्भ (जल) कहा जाता है। यही जल को अम्भ कहने का कारण है।

तब सहस्रशीर्षा पुरुष, नारायण नाम वाले होकर उस जल में शयन करते हैं। भाव यह है कि वही ब्रह्माण्ड रचयिता ब्रह्म जो एक ही है। वही पुरुष कहा गया; क्योंकि 'पुरा शेते इति पुरुषः' पहले शयन करने के कारण वह पुरुष कहा गया। हजार नेत्र और एक हजार पैर और हजार शिर तो उस सर्वत्रद्रष्टा सर्वत्रगामी और सर्वज्ञ होने के प्रतीक हैं। वही ब्रह्मा एकार्णव (एक समुद्र) में शयन करने के नारायण (नार + अयन) जल का घर कहे गये। सत्त्व के उद्रेक से जब वे जगे, तब उन्होंने इस संसार को शून्य देखा। तब उन्होंने पुनः सृष्टि की रचना की।

वंश वर्णन—वंशवर्णन प्रसंग में ब्रह्माण्डपुराण में अनेकों अध्याय हैं, जिनमें सबसे पहले प्रजापति ब्रह्मा का नाम आता है, फिर मनुष्य जाति में राजाओं और ऋषियों के वंशों का वर्णन आता है। अतः इस पुराण में प्रजापति के वंश का वर्णन १/१३/२/२ में ऋषियों के वंशों का वर्णन है १/८/९, अंगिरा २/१, अत्रि १/१३/२/२, भृगुवंश २/१, कश्यप २/५/७, मरीचि १/३८, वशिष्ठ २/८, वैवस्वत मनुवंश २/५९/६१, सूर्यवंशीय राजाओं का वंश वर्णन २/६३,लूनर वंश वर्णन २/६५-६६, यदुवंशके राजाओं की वंशावली २/६९, क्रोष्टु वंश वर्णन २/७, राजा प्रियव्रत वंशवर्णन १/१४, पृथुवंश वर्णन १/३७, निमिवंश वर्णन २/६४, आयुष २/६७, मरुत् २/६, नहुष २/६ और तुर्वसु २/७४। इन्हीं वंशों के बीच में हिरण्यकशिपु आदि राक्षसों के वंशों का वर्णन भी किया गया है, जो २/५ में उपलब्ध तथा अध्याय २/६ में दनु और सिंहिका के वंशों के वर्णन हैं। इन वर्णन प्रसंगों में कश्यप के वंश वर्णन में कश्यप के सभी पुत्रों के वंशों का वर्णन है, जिनमें संसार के समस्त मानवेतर प्राणी सिंह,वानर, भालू आदि से लेकर पशु पक्षी, कीट पतंग यहाँ तक स्वेदजादि सूक्ष्म से सूक्ष्म कीटों के वंशों का वर्णन किया गया है।

मन्वन्तर वर्णन—पुराणों का चौथा लक्षण मन्वन्तर वर्णन है अतः सभी पुराणों में प्रायः मन्वन्तरों का वर्णन उपलब्ध होता है। अतः यह पुराण फिर क्यों इसे छोड़ देगा। अतः इस पुराण में भी १.६ और ३६ अध्यायों में तथा अन्य अनेक स्थलों पर मन्वन्तर वर्णन आया है। चार युग कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग सब चतुर्युग का निर्माण करते हैं तथा ७१ चतुर्युगों का वह एक मन्वन्तर कहा जाता है जो एक मन्वन्तर एक मनु का काल है। इस प्रकार १४ मन्वन्तरों का एक कल्प होता है। तब ब्रह्माण्डपुराण १/२/३५ के अनुसार एक मन्वन्तर ८,५२,००० दिव्य वर्षों का होता है, उसे यदि मानव वर्षों में बदलें तो ८,५२,००० × ३६० = ३०,६७,२०,००० वर्ष हुए। फिर उन्हें १४ मन्वन्तरों में बदला जाये, तब ३०,६७,२०,००० × १४ = ४,२९,४०,८०,००० चार अरब उनतीस करोड़ चालीस लाख अस्सी हजार वर्ष ब्रह्मा का एक दिन होता है, जो पूर्ण वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक भी पृथ्वी की आयु ४ अरब वर्ष के लगभग बताते हैं। १४ मनु जो कि ब्रह्मा के पुत्र हैं, वे हैं—स्वायम्भुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तम, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत इनमें से छः मनुओं का काल तो बीत चुका है। इस समय वैवस्वत मनु का काल चल रहा है। इसके बाद सात मनु और होंगे, जिनके नाम पुराणकार ने पहले ही खोल दिये

हैं, वे हैं—८. रौच्य, ९. भौत्य, १०. पांच सावर्णि, ११. सर्यू सावर्णि, १२. दक्ष सावर्णि, १२. ब्रह्मसावर्णि, १३. धर्मसावर्णि, १४. रुद्र सावर्णि। इन विभिन्न मनुओं के काल में उन उन राज्यव्यवस्था का परिचय पुराण में दिया गया है।

अध्याय ३/१ और ३ आभूत सम्प्लवाख्यान वर्णन विशेष रूप से अत्यन्त रूचिकर है, जिसमें कि आगे आनेवाले मन्वन्तरों का वर्णन है। उसी क्रम में इसमें पैदा होने वाले मनुओं, ऋषियों, यक्ष, राक्षसों के भी नाम वर्णित है। तदनुसार इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है।

वंशानुचरित—राजाओं, ऋषियों, राक्षसों और गन्धर्वों यहाँ तक पशु-पक्षियों के वंश वर्णन करने के बाद उन वंशों में उत्पन्न राजाओं के चरित्रों का वर्णन भी इस पुराण में बहुत विस्तृत रूप से किया गया है। उन उन राजाओं का जीवनकाल कितने समय तक रहा तथा अपने जीवन काल में उन्होंने कौंन कौंन शुभ और अशुभ कार्य किये, उनका वर्णन और तत्तत् कालीन घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। वैसे तो सृष्टिकाल से लेकर यवनकाल पर्यन्त राजाओं के चरित्रों का वर्णन इस पुराण में उपलब्ध है; परन्तु विशेष रूप से यह पुराण जमदग्नि पुत्र परशुराम के वंशचरित्र एवं उनके कृत्यों पर अधिक प्रकाश डालता है। इसी क्रम में हैहयवंशी राजा कार्तवीर्यर्जुन, सूर्यवंशी राजा सगर का वर्णन अधिकांश अध्यायों में वर्णित है। इससे सम्बन्धित वर्णन इस पुराण के मध्य भाग में अध्याय २१ से ५८ अध्याय तक वर्णन है। इसके लिये दूसरा वंशानुचरित के प्रसंग में ललितोपाख्यान इस पुराण का प्रमुख आख्यान है। जिसके लगभग चालीस अध्याय हैं तथा यह ललितोपाख्यान इस पुराण में उत्तरभाग अध्याय पाँच से अध्याय चवालीस तक किया गया है। जिसमें महाराज्ञी ललितेश्वरी के साथ भण्डासुर दैत्य का युद्ध वर्णित है। जिस युद्ध में त्रैलोक्यविजयी असुरेश्वर भण्ड पर ललितेश्वरी की विजय गाथा वर्णित है।

ब्रह्माण्डपुराण में स्तोत्र—ब्रह्माण्ड पुराण स्तोत्र साहित्य का एक प्रचुर भण्डार है। इस पुराणों में देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये विभिन्न देवी देवताओं तथा मानवों द्वारा स्तुतियां की गयी हैं। ये स्तुतियां देवों, राक्षयों एवं मनुष्यों द्वारा ऐसे समयों पर की गयी हैं, जब कि वे किसी विशेष आपत्ति में फंस गये हैं तथा उन स्तुतियों द्वारा उनकी आपत्तियाँ का निवारण भी हुआ है। तदनुसार वे स्तुतियां अथवा स्तोत्र आज भी मानव कल्याण के साधन बने हुए हैं, जो व्यक्ति उन पर विश्वास करते हैं, उन्हें अवश्य इन स्तोत्रों से लाभ पहुंच रहा है। ये स्तोत्र अवश्य ही मनुष्य को अकालग्रस्त आपत्तियों से मुक्ति दिलाते हैं।

इस पुराण में स्तोता को स्तोत्र के विषय में यह बताया गया है कि स्तोता को अपने इष्ट देव के प्रति पूर्ण भक्ति और आस्था रखते हुए इन स्तोत्रों का जाप करना चाहिये तथा उस जाप में ध्यान का केन्द्रीयकरण भी आवश्यक है तथा ये स्तोत्र मनुष्य, ऋषि और देवताओं से सम्बन्धित हैं। सभी पुराणों में स्तोत्रो की पद्धतियां और प्रकार अनेकविध हैं, जैसेकि अष्टक, दशक, नामावलि, कवच, पुष्पांजलि इत्यादि।

इस पुराण में उपर्युक्त विधियों को ही अपनाया गया है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के दीर्घतम स्तोत्र हैं। ध्यान श्लोकों को लेकर अष्टक, दशक, कवच, नामावलि, स्तुतियां आदि अनेक प्रकार हैं, जिनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्तोत्र निम्नवत् है। इस पुराण में ब्रह्मा और विष्णु द्वारा भगवान् शिव की स्तुति के रूप में उन्हें प्रसन्न करने हेतु पूर्वभाग अध्याय २६ और ३१ से ५० तक दिया गया है तथा केवल ब्रह्मा के द्वारा शिव के प्रति स्तोत्र पूर्वभाग अध्याय २५ तथा ६४ से ७६ में वर्णित हैं। दारुवन के ऋषियों द्वारा स्तुत स्तोत्र मध्यभाग अध्याय ७ तथा ६३-१०० तक परशुराम द्वारा पढ़ा गया स्तोत्र २/२४-२५-३१, २.२५, ५-३१, २.३२.२५-३२, शुक्र द्वारा २/७२/१६३-१६५ परशुराम द्वारा पर्वती के लिये स्तोत्र परशुराम द्वारा पठित भद्रकाली स्तोत्र, देवों द्वारा ललितेश्वरी के प्रति

ललितास्तवराज स्तोत्र। भण्डासुर के विनाश के लिये ब्रह्मा सहित सभी देवों द्वारा की गयी स्तुति ललितास्तुति ३/३०/१-५१ वर्णित है।

इसके अलावा समस्त शरीर को अस्त्र शस्त्र एवं विविध दुर्घटना से बचाने के लिये कवच स्तोत्र भी वर्णित है। तथा तीनों लोकों को जीतने के लिये त्रैलोक्य कवच स्तोत्र वर्णित है तथा सहस्राक्षरीविद्या तथा ललितादेवी को प्रसन्न करने के लिये पुष्पांजलि स्तोत्र (३।४३।१५) में वर्णित है।

इन स्तोत्रों से सभी प्रकार की सफलताओं का दावा पुराणकार ने किया है तथा इस पुराण के प्रत्येक अध्याय को पढ़ने, सुनने, सुनाने की फलाप्ति का विवेचन भी पुराणकार सर्वत्र करता रहा है; परन्तु पुराणकार ने इन स्तोत्रों से तत्तत् कामना की पूर्ति का दावा तभी किया है, जबकि स्तोता इन स्तोत्रों को पूर्ण आस्था एवं भक्ति के साथ अन्यत्र कहीं न ध्यान लगाता हुआ जाप करे। उस समय उसे अपनी मनसहित समस्त इन्यिों को उस देवी देवता के ही ध्यान में लगा देना है, तभी साफल्य सम्भव है।

ब्रह्माण्डपुराण में वेद की शाखाओं का परिचय—इस पुराण में उन ऋषियों, महर्षियों का परिचय प्राप्त होता है, जिन्होंने वेदों की शाखाओं का प्रणयन किया है। इस पुराण के पूर्वभाग अध्याय ३३ में वेद की शाखाओं का वर्णन मिलता है और वेदमन्त्रों के लक्षण उनके विभाग और उनकी प्रकृति तथा उनके रचयिता आदि का विवरण पूर्वभाग अध्याय ३४ में उपलब्ध होता है, जिसमें कि राजा जनक की यज्ञ सभा में वेदों के विषय में एक विशेष प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था, जिसमें शास्त्रार्थ में जीतने वाले के लिये धन के रूप में पुरस्कार की घोषणा की गयी, जहाँ शाल्मणि और याज्ञवल्क्य ऋषि में शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें याज्ञवल्क्य विजेता हुए।

इस पुराण के पूर्वभाग अध्याय ३५ में ब्राह्मण आरण्यक और वेदाङ्गों का भी विवेचन है।

ब्रह्माण्डपुराण में संगीत विद्या—इस पुराण के मध्य भाग अध्याय ६१-६२ अध्यायों में संगीत विद्या का संक्षिप्त वर्णन है। जिनका वर्णन बलभद्र और रेवती के प्रसंग में हुआ है। जहाँ संगीत की स्वर ग्राम और मूर्च्छना विवेचित है तथा उस प्रसंग में संगीत के अधिकांश यन्त्रों का विवेचन प्राप्त होता है; परन्तु मेरे विचार से यह विवरण सम्पूर्ण और क्रमिक तथा सारवित नहीं है।

ब्रह्माण्डपुराण में नक्षत्रविज्ञान और काल विभाजन—इस पुराण के चार अध्याय पूर्व भाग के अध्याय २१ से २४ तक नक्षत्र विज्ञान और काल विभाग पर वैदिक एवं पौराणिक विचारप्रस्तुत करते हैं। इस प्रसंग में पृथ्वी की नक्षत्रात्मक स्थिति, सूर्य की गति, रात और दिन होने के कारण, ऋतुओं और उत्तरायण दक्षिणायन काल का दिव्यवर्ष विभाग, मेघों का बनना और बिगड़ना, सूर्य का सब प्रकाशों का कर्ता होना तथासभी प्राकृतिक देवताओं की दिव्य ऊर्जा का वर्णन है, जो सब वैज्ञानिक है।

ब्रह्माण्डपुराण में भूगोल—भौगोलिक वर्णन इस पुराण की अप्रतिम विशेषता है। यह पुराण हिन्दू धर्म पद्धति के अनुसार पृथ्वी की भौगोलिक स्थिति का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है। इस पुराण में अनेक स्थलों पर भौगोलिक वर्णन है, जिसमें मुख्यतया पूर्वभाग अध्याय १५-२० तक छः अध्यायों में भूगोल का वर्णन प्राप्त होता है।

इस भौगोलिक वर्णनानुसार इस भूमण्डल पर सात द्वीपों और सात समुद्रों का वर्णन है। ये सात द्वीप हैं—जम्बूद्वीप, २. प्लक्षद्वीप, ३. शाल्मलद्वीप, ४ कुशद्वीप, ५. क्रौंचद्वीप, ६. शाकद्वीप तथा ७. पुष्करद्वीप।

इनमें जम्बूद्वीप की स्थिति पृथ्वी के केन्द्र में महामेरु पर्वत के इधर-उधर बतायी गयी है। महामेरु के चारों ओर नौ पर्वतों का विवेचन मिलता है तथा इसके चारों ओर तथा ऊपर अनेकों देशों की स्थिति बतायी गयी है, वे देश हैं—इलावृत वर्ष जो मेरु के ऊपर बसा हुआ बताया गया। अतः वह आज का तिब्बत हो सकता है। मेरु के

उत्तर में रम्यक, हिरण्मय और कुरु देश हैं तथा हरिवर्ष भारतवर्ष और किम्पुरुषवर्ष इस महामेरु के दक्षिण में स्थित है और केतुमालवर्ष और भद्राश्ववर्ष मेरु के पश्चिम के देश हैं।

इसके अलावा इस ब्रह्माण्डपुराण में मेरु से निकलने वाली सीता, अलकनन्दा, सुचक्षु और भद्रवती नदियां हैं, जो मेरु के चारों दिशाओं में बहती हैं। अलकनन्दा भारत में बहती है। (ब्र.पु. १।३।५६-५२) तथा नदियों के नाम वर्णित हैं तथा मेरु के इधर-उधर के पर्वतों और उन पर पैदा होने वाले वृक्षों का विवेचन मिलता है। उसे बाद इस पुराण के पूर्वभाग अध्याय १५-१९ में भारतवर्ष के पर्वतों, नदियों, वृक्षों एवं वनस्पतियों तथा वहाँ बसने वाली जातियों का वर्णन किया गया है। उसके बाद पूर्वभाग अध्याय २० में तत्वल, सुतल, तलातल, अतल, अर्वाक्तल, रसातल और पाताल का विवेचन है। इन लोकों में गान्धर्व, राक्षस और पिशाचों के वास का वर्णन प्राप्त होता है। उसके बाद सात ऊर्ध्वलोकों का वर्णन है। वे हैं—१. भूलोक, २. भुवर्लोक, ३. स्वर्लोक, ४. महर्लोक, ५. जनलोक, ६. तपोलोक, ७. सत्यलोक ये सब दैवीय लोक हैं तथा इनमें शुभ करने वाले लोगों को ही जन्म मिलता है तथा इस पुराण में बताया गया है कि इन लोकों में रहने वालों के चरित्र शरीर, जीवनावधि तथा प्रवृत्तियाँ भिन्न भिन्न तरह की होती हैं, वहाँ हजारों वर्ष जीवन की-आयु बतायी गयी है।

ब्रह्माण्डपुराण में स्वर्ग नरक विवेचन—ब्रह्माण्डपुराण में शुभ कर्म करने वालों के लिये दूसरे जन्म में स्वर्ग की प्राप्ति और अशुभ कर्म करने वालों के लिये नरक की प्राप्ति का विवेचन मिलता है। स्वर्ग असीमित सुखों का संस्थान है और नरक अपरिमित दुःखों की खान है। नरक स्वर्ग के बिल्कुल विपरीत है। विभिन्न प्रकार के पाप करने वाले व्यक्ति अपने-अपने पापों की यातनाओं और कष्टों को सहने के लिये नरक भेजे जाते हैं। स्वर्ग नरक का वर्णन एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह स्वर्ग नरक विवेचन भले ही काल्पनिक हो; परन्तु इसका वर्णन प्रत्येक धर्म में पाया जाता है। यह विवेचन क्यों है? इसका वर्णन हम पूर्व में कर चुके हैं; परन्तु यहाँ ब्रह्माण्डपुराण के विषय में कहना है कि इसमें भी नरकों का विवेचन उत्तर भाग अध्याय २ श्लोक १४६-९५ में उपलब्ध है। जहाँ पर यह पुराण एक कथन प्रस्तुत करता है—

धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो जायन्ति मूर्तयः।
उपभोगार्थमुत्पत्तिरौपपत्तिककर्मतः ।। (३.२.१९२)

मनुष्य ने अपने इस पूर्व जन्म के शरीर में जो भी कर्म किये हैं, तदनुसार उनको जन्म प्राप्त हुआ है। उसी के अनुसार मनुष्य प्रत्येक युग में पशु इत्यादि केरूप में जन्म लेते हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण में श्राद्धकल्प—श्राद्धकल्प इस पुराण का एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन विषय है। श्राद्ध अर्थात् पितरों का तर्पण करने से मनुष्य को क्या क्या लाभ मिलते हैं, उनका वर्णन इस पुराण के मध्य भाग अध्याय ९-१९ तक विस्तार में वर्णित है। उसी क्रम में यज्ञों के अनेकों अध्याय वर्णित हैं। यज्ञ संस्थाओं के मूल रूप वर्णित हैं। इसी क्रम में इस पुराण में श्राद्धों की विधि, तर्पणविधि आदि वर्णित हैं। इस पुराण के मध्यभाग अध्याय ११ में विश्वेदेव आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। अध्याय १२ मे श्राद्धवर्णन का विवेचन है और उसके बाद श्राद्ध के लिये पवित्र स्थान और तीर्थों का वर्णन है तथा उन तीर्थों के श्राद्ध करने से क्या क्या फल मिलते हैं? उसका विस्तृत विवेचन है। अध्याय १३ में श्राद्ध के समयों का और १४ मे श्राद्ध में प्रयोज्य वस्तुओं का और अध्याय १७ में अनेकों श्राद्ध योग्य दिनों का और अध्याय १८ में श्राद्ध योग्य नक्षत्रों का विवेचन है।

ब्रह्माण्डपुराण में व्युत्पत्तिशास्त्र—वैसे तो सभी पुराणों में यत्र तत्र शब्दों का विवेचन उपलब्ध हो जाता है; परन्तु इस पुराण में शब्दों की व्युत्पत्ति बहुत ही अच्छे ढंग से दी गयी है। जैसे कि प्रलय प्रसंग में 'भा' शब्द से 'अम्भ' शब्द का निर्वचन किया गया है। जो बहुत ही वैज्ञानिक है; क्योंकि प्रलयकाल में सर्वत्र केवल जल ही जल

चमकता है। इसलिये उसको 'अम्भ' कहा गया है। इसी तरह 'नार' की व्युत्पत्ति अनेकों प्रकार से बतायी गयी है। जिसमें 'न + अर्' के अनुसार नहीं जो चलता है, वह जल कहा गया है। अतः प्रलयकालीन एकार्णव में जल नहीं चलता है, इसलिये जल को 'नार' कहना उचित ही है तथा नार को जीवन भी कहा गया है। अतः जल जीवन तो है ही तथा नारायण जीवन का घर है। वैसे भी आज का विज्ञान जल से ही जीवन की उत्पत्ति मान रहा है। इस प्रकार इस पुराण में शब्दों की व्युत्पत्ति, देवताओं की व्युत्पत्ति और पुराण शब्द की व्युत्पत्ति जो की गयी है, वह निरुक्त सम्मत है। असुर, देवताओं, यजुर्वेद और पुराण की व्युत्पत्ति नीचे देखी जा सकती है—

असुर— असुः प्राणः स्मृतो विज्ञैस्तज्जन्मानस्ततोऽसुराः।१.८.५
ततो मुखात् समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः।
देवता— यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्तिताः।।१.८.९
धातुर्दिव्येति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते।
यजुर्वेद— तस्मात्तन्वास्तु दिव्याया जज्ञिरे तेन देवताः।।
यच्छिष्टं तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमयुञ्जत।
यजनात् स यजुर्वेदे इति शास्त्रविनिश्चयः।।२.३४.२२
पुराण— यस्मात् पुरा ह्यणन्तीदं पुराणं तेन कथ्यते।।३.४.५४

प्रकीर्ण विषय—इन उपर्युक्त विषयों के अलावा इस पुराण में अन्य अनेकों विषय विवेचित हैं। जैसे विभिन्न मन्दिरों का निर्माण, नाप तौल के नियम आदि तथा विभिन्न प्रकार के दुर्गों का निर्माण, शहरों, भवनों, राजमार्गों, उद्यानों एवं वनस्पति जगत् एवं अनाजों की उत्पत्ति का वर्णन इस पुराण में यत्र तत्र उपलब्ध है। मध्यभाग अध्याय १४ में श्राद्ध प्रसंग में अनेकों प्रकार के पौधे, फल, वनस्पतियों के नाम दिये गये हैं तथा अनेकों प्रकार के जंगली एवं पालतू पशुओं के नाम इस पुराण में वर्णित हैं।

ललितोपाख्यान के अन्तर्गत चतुरंगिणी सेना और अस्त्र शस्त्रों के अनेक प्रकार, अनेक प्रकार की सेनाओं में धनुषों और तीरों का विवेचन प्राप्त होता है। वहीं पर भोजन तैयार करने, वेषभूषा, आभूषण आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। साथ ही नगर व्यवस्था, भवन निर्माण कला और अत्यन्त सुन्दर चित्राकृतियों का वर्णन इस पुराण में प्राप्त होता है।

ब्रह्माण्डपुराण में साहित्यिक विवेचन—साहित्यिक विवेचन के क्षेत्र में तो संस्कृत साहित्य काव्यों के अनेकों क्षेत्रों में जिस स्तर को छू चुका है, उस स्तर का विवेचन तो इस पुराण में नहीं है। यह पुराण केवल वर्णनात्मक रूप को लेकर चल रहा है, फिर भी यदि इस पुराण का गहनतापूर्वक अध्ययन किया जाये तो अनेक स्थलों पर शब्दसौष्ठव और अलंकार योजना का विन्यास प्राप्त हो सकता है। इस पुराण में सामान्य रूप से काव्यात्मक सरल प्रवाह, मध्य भाग अध्याय २२ में ७-४३ श्लोकों में देखा जा सकता है।

जहाँ हिमालय के वर्णन में उच्चकोटि की काव्यप्रतिभा उपलब्ध होती है तथा जहाँ तक वृत्ति का प्रश्न है, तो इस पुराण में उन्हीं श्लोकों में गौडीवृत्ति का प्रयोग उपलब्ध होता है तथा काव्य प्रतिभा उस समय देखी जा सकती है, जबकि महर्षि जमदग्नि ने कामधेनु के प्रभाव से दिव्य नगर का निर्माण किया था तथा मध्य भाग अध्याय २६ श्लोक ५६-६२ तक तथा अध्याया २७ श्लोक १-२० तक के श्लोकों में काव्यात्मक सौन्दर्य दर्शनीय है तथा भगवान् विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण किया था। उस समय मोहिनी के रूप का जो शृङ्गारिक विवेचन पुराणकार ने किया है, वह किसी कवि एवं काव्य से कम नहीं है। यह शृङ्गारिक विवेचन उत्तर भाग अध्याय १० श्लोक ५०-

७० में उपलब्ध है तथा महाराज्ञी ललितेश्वरी के रूप विवेचन में जो शृङ्गारिक सौन्दर्य वर्णित है, उसमें भी शृङ्गाररस का अद्भुत् विवेचन है। यह प्रसंग उत्तर भाग अध्याय ३९ श्लोक ७९-९४ श्लोकों में उपलब्ध है।

शृङ्गाररस के अतिरिक्त वीररस का भी प्रचुर प्रयोग है। जिसे अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। जैसे की परशुराम कातवीर्य के युद्ध में तथा सगर से विभिन्न राजाओं के युद्धों में अवलोकनीय है। ललिता भण्डासुर युद्ध में तो वीररस के साथ साथ भयानक रस का भी प्रचुर प्रयोग उपलब्ध होता है।

जैसाकि महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव में लिखा है कि जब पार्वती भगवान् शंकर को पति रूप में प्राप्त करने के लिये वन में घोर तपस्या कर रही थीं, उस समय जब भगवान् शंकर ब्राह्मण के वेष में उनके सामने प्रकट हुये, तो उन्होंने उनसे पूंछा कि तुम किसके लिये तपस्या कर रही हो? तब उनके द्वारा बताने पर ब्राह्मण वेषधारी भगवान् शंकर ने अपनी अनेकों बुराईयां की और ऐसे बुरे व्यक्ति से सम्बन्ध करने के लिये पार्वती को मना किया, ठीक वैसा ही वर्णन इस पुराण में उस समय प्राप्त होता है, जबकि घोर तपरत पशुराम के समक्ष एक कुरूप व्याध के वेष में भगवान् शंकर उपस्थित होते हैं। उस समय जो उनका वेष है, वह अत्यन्त घृणित है। उस समय काला कलूटे रूप वाले और फटे वस्त्रों पर खून के छींटे, कन्धे पर मरे हुये, सड़े हुये मांस को लेकर चलने वाले व्याध रूप धारी शंकर परशुराम के समक्ष उपस्थित हुये थे तथा उन्होंने भी परशुराम से ऐसे कुरूप एवं अपवित्र, घृणित, दुर्गन्ध वस्त्रधारी शंकर की उपासना करने से मना किया। अतः यहाँ ठीक कुंमारसम्भव जैसा वर्णन है तथा इस वर्णन में वीभत्सरस का अत्यन्त सुन्दर विवेचन उपलब्ध होता है।

परशुराम और गणेश के युद्ध में परशुराम के परशु द्वारा गणेश जी का दाँत दूट गया, उस समय मां पार्वती का गणेश के प्रति वात्सल्य प्रेम इस पुराण में वात्सल्य रस के अस्तित्व को सिद्ध करता है तथा जब पार्वती क्रोधित होकर अपने दोनों सन्तानों को लेकर शंकर से अलग जाना चाहती हैं, उस समय रौद्र रस दर्शनीय है।

ब्रह्माण्डपुराण में विज्ञान

वैसे तो ब्रह्माण्डपुराण कोई एक नवीन पुराण नहीं है, ललितोपाख्यान को छोड़कर जो विषय अन्य महापुराणों में हैं, वे ही सब विषय भाषा परिवर्तन के साथ इस पुराण में भी विवेचित हैं; परन्तु वायुपुराण की भांति इस पुराण में सृष्टि और प्रलय से सम्बन्धित कुछ विषय विस्तार से वर्णित हैं। सृष्टि और प्रलय से सम्बन्धित विषय तो इस पुराण में अनेक स्थलों पर विवेचित हैं, जिनमें वैज्ञानिक रहस्य भरे पड़े हैं। वैसे तो मैंने अपनी बुद्धि की क्षमता के अनुसार उसी स्थल पर उनकी वैज्ञानिकता का निदर्शन कर ही दिया; परन्तु फिर भी यहाँ मैं यह अवश्य कहूँगा कि सृष्टि एवं प्रलय विषयक समस्त तथ्य पूर्ण वैज्ञानिक है। जैसे कि आज का विज्ञान जिस परमाणुवाद के सिद्धान्त को लेकर ईश्वर तत्त्व गॉड पार्टिकल के अन्वेषण की ओर अग्रसर है। वह परमाणुवाद का सिद्धान्त वेदों और पुराणों की देन है। इस विषय में अपने जीवन की एक घटना यहाँ बताना मैं आवश्यक समझता हूँ। वह यह कि अपने अनुसन्धान काल में एक बार मैं अपने गाँव कचौरा में इग्लैण्ड से इञ्जीनियर की उपाधि प्राप्त एक महाशय से अपने इस शोध के विषय में चर्चा कर रहा था। उस समय मेरे मुख से सहसा ये शब्द निःसृत हो गये कि परमाणुवाद का सिद्धान्त संस्कृत साहित्य की देन है। इस पर वे महाशय हंसने लगे और बोले कि क्या अनर्गल बातें अपने शोध प्रबन्ध में लिख रहे हैं। संस्कृत वालों ने कुछ भी नहीं किया है। ऐसा कहकर ताव में आकर वे अपने अध्ययन कक्ष से 'डाल्टन्स थ्यौरी आफ एटम्स' की हिन्दी में अनूदित पुस्तक उठाकर ले आये। तब उन्होंने जब उसे खोला तो उसमें प्रारम्भ में ही लिखा हुआ था कि परमाणुवाद की चर्चा भारत में बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही थी, उसी से प्रेरणा लेकर मैं परमाणु के अनुसन्धान हेतु प्रयासरत हूँ।

जब ऐसा उन्होंने पढ़ा, तो वे हतप्रभ तो हुए ही; परन्तु मुझे एक ठोस प्रमाण भी मिल गया। तब मैंने उसे अपने शोधप्रबन्ध में अंकित कर दिया। अतः यह परमाणुवाद का सिद्धान्त पुराणों की देन है देखिये, परमाणु की

व्याख्या करते हुए यह पुराण भी कहता है कि—"परमाणु वह सूक्ष्मतमकण है, जिसका होना आंख से भी न ग्रहण किया जा सके तथा जो संसार में सबसे अधिक अभेद्य हो, उसे परमाणु जानना चाहिये।"

परमाणुः सुसूक्ष्मस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा।
यदभेद्यतमं लोके विज्ञेयं परमाणवत्।। ब्रह्माण्डपु. ३।२।११७

इस परमाणुवाद के सिद्धान्त पर ही पदार्थ की संरचना निर्भर करती है तथा पदार्थ की संरचना पर तो वस्तुमय समस्त ब्रह्माण्ड स्थिर है, जिसे हम प्रकृति ही कह सकते हैं। प्रकृति के तीन तत्त्व सत्त्व, रजस् और तमस् आज के परमाणु के प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और इलेक्ट्रान ही हैं; क्योंकि इनकी हिन्दी देखिये तो प्रोटॉन धनात्मक और न्यूट्रॉन ऋणात्मक शक्ति तथा इलेक्ट्रान दोनों को प्रवृत्त करने वाली शक्ति है। पुराण तथा सांख्यशास्त्र में भी रजोगुण को प्रवर्तक कहा गया है—'रजःप्रवर्तकम्।' प्रवर्तक का अर्थ है—चलाने वाला। अतः यह रजोगुण (इलेक्ट्रान) ही प्रोटॉन (धनात्मक) और न्यूट्रॉन (ऋणात्मक) दोनों शक्तियों को क्रियाशील बनाता है, जिसके कारण कोई पदार्थ स्थिर रहता है।

अब पदार्थ की संरचना की बात आती है, तब गुणों के वैषम्य पर ही पदार्थ की स्थिति रहती है। उधर यह पुराण कहता है कि जब सत्त्वगुण प्रोटॉन की अधिकता होती है, तब सृष्टि की स्थिरता रहती है। उधर इसी बात को विज्ञान भी सिद्ध करता है। पुराणवर्णन के अनुसार जब रजोगुण का उद्रेक होता है, तब सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है, फिर सत्त्वगुण की अधिकता रहने पर पदार्थ स्थिर रहता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि जब तक प्रोटान (सत्त्वगुण) अर्थात् ऑक्सीजन आदि जीवनीय गैसों की अधिकता रहती है, तभी किसी भी ग्रह पर जीवन रहता है तथा जब न्यूट्रान (तमस्) अर्थात् जीवननाशक गैसों की अधिकता होती है, तब प्रलय होती है। यह स्वाभाविक है कि जब प्रकृति में तमस् (जीवननाशक गैसों) की अधिकता हो जायेगी, तो इस पृथ्वी का नाश हो जायेगा। ऐसा पुराणों में कहा गया है तथा यह भी कहा गया है कि प्रलयकाल में सबका गुण साम्य रहेगा अर्थात् सत्त्व, रज और तम तीनों समान अवस्था में रहेंगे तथा वे उतने वर्ष तक रहेंगे, जितने वर्ष तक सत्त्व ऑक्सीजन आदि गैसों की अधिकता से सृष्टि स्थिर रही हो, जिसे ब्रह्मा की रात्रि अर्थात् प्रलय कहा जायेगा। अब जितने समय तक सृष्टि की स्थिति रही, उतने ही वर्ष तक प्रलय भी रहेगी तथा प्रलयकाल में सत्त्व, रज और तीनों गुण समान अवस्था में रहेंगे तथा तब वह जो प्रलय जितने समय तक रहेगी, उसके विषय में इस पुराण के पूर्वभाग अध्याय ३५ में एक मन्वन्तर का मान ८,५२,००० दिव्य वर्ष बताया गया है तथा एक मानव वर्ष के एक वर्ष का अर्थात् ३६० अथवा ३६५ दिन का एक दिव्य वर्ष होता है। अतः ८,५२,००० दिव्य वर्ष को मानव वर्ष में बदलने के लिये ३६० अथवा ३६५ का गुणा करने पर ८,५२,००० × ३६० = ३०,६७,२०,००० मानववर्ष होते हैं, फिर क्योंकि १४ मन्वन्तरों का ब्रह्मा का एक दिन होता है, उस हिसाब से ३०,६७,२०,००० × १४ = ४,२९,४०,८०,००० (चार अरब उनतीस करोड़ चालीस लाख अस्सी हजार मानव वर्ष का ब्रह्मा का एक दिन होता है तथा यदि ३६५ वर्ष का एक दिव्य वर्ष माना जाये तो ८,५२,००० × ३६५ × १४ = ४,३५,३७,२०,००० (चार अरब, पैंतीस करोड़, सेंतीस लाख, बीस हजार मानव वर्ष का ब्रह्मा का एक दिन होता है। अतः लगभग चार अरब का ब्रह्मा का एक दिन अर्थात् इस पृथ्वी की आयु है, जिसे आज के विज्ञान ने भी स्वीकार किया है तथा डिस्कवरी चेनल पर यह अनेकों बार कहा गया है।

यही नहीं, इस पुराण में तथा समस्त पुराणों में यह जो कहा गया कि प्रलय काल में एकार्णव में भगवान् विष्णु नारायण शयन करते है। यह भी वैज्ञानिक तथ्य है; क्योंकि नार जल को और जीवन को कहा जाता है। अतः वह जल जीवन का घर है, जिसमें आत्मा रूपी विष्णु का स्थान है। वैसे विष्णु जीवनदायक तत्त्वों यथा आक्सीजन आदि को भी कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि पुराणों की समस्त कहानियां प्रतीकात्मक हैं। इस प्रकार गहनतापूर्वक विचार करने पर ये तीनों देवता प्रकृति के सत्त्व, रजस् और तमस् के प्रतीक हैं; क्योंकि रजोगुण सृष्टि करता है। अतः ब्रह्मा सृष्टि कर्ता है। विष्णु सत्त्वगुण के प्रतीक हैं; क्योंकि सत्त्वगुण जीवनीय तत्त्वों यथा आक्सीजन के रहने पर सृष्टि स्थित रहती है। अतः विष्णु को सृष्टि स्थिति का देवता अर्थात् पालन करने वाला कहा गया है तथा तमस् गुण के प्रतीक भगवान् शंकर हैं; क्योंकि

प्रकृति तमस् गुण (जीवन विनाशक गैसों की अधिकता) होने पर सृष्टि का विनाश प्रलय होती है, इसलिये शंकर को विनाश का देवता कहा गया है; क्योंकि विनाश करने वाला सबसे महान् होता है। अतः शंकर सबसे महान् हैं।

ये सब इन तीन तत्त्वों के ही प्रतीकात्मक नाम हैं तथा इन गुणों का मानवीयकरण है। अब यह मानवीयकरण तो पुरुष के रूप में है तथा स्त्री के रूप में रजोगुण कीप्रतीक सर्जन करने वाली सरस्वती, सत्त्वगुण की प्रतीक पालन करने वाली लक्ष्मी जी तथा तमोगुण की प्रतीक संहार करने वाली चण्डी काली पार्वती आदि नामों वाली देवी ये प्रकृति के गुणों की प्रतीक हैं। अतः यह प्रकृति ही सबकुछ है, इसमें ही जीव की उत्पत्ति होती है, जो गुणों के विपर्यास पर निर्भर है। यह तो प्रकृति द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय का रूप है, जो पूर्ण वैज्ञानिक है। स्वाभाविक है कि प्रकृति में जब तक विष्णु रूप सत्त्वगुण आक्सीजन है, तब तक इस पृथ्वी पर जीवन है तथा जब इस आक्सीजन से अधिक जीवन विनाशक गैसों का अस्तित्त्व होगा, तो जीवन समाप्त हो जायेगा।

आज विज्ञान ने प्रकृति (परमाणु) के तीनों गुणों की खोज कर ली है; परन्तु वह अभी उस तत्त्व की खोज नहीं कर पा रहा है जो तत्त्व इलेक्ट्रान (रजोगुण) को दोनों तत्त्वों प्रोटान, न्यूट्रान (सत्त्व एवं तमस्) को प्रवृत्त कर स्थायित्व प्रदान करता है। आज आवश्यकता उस शक्ति को खोजने की है, जो इस रजोगुण इलेक्ट्रान को प्रवृत्त करती है। इस 'विशेष' की खोज तो संस्कृत साहित्य में पहले ही कणाद मुनि ने कर ली है। वह विशेष (God) ईश्वर ही है, जो इस इलेक्ट्रान को शक्ति प्रदान करता है। जहाँ तक पुराणों में प्रलय प्रवृत्ति और प्रलयकालीन वर्णन की वैज्ञानिकता की बात है, सो वह पूर्ण वैज्ञानिक है। इस पुराण में कहा गया है, जब प्रलय की स्थिति होगी, तब पहले तो सैकड़ों वर्षों तक वर्षा नहीं होगी, फिर धीरे-धीरे पृथ्वी पूर्ण ताप से तपने लगेगी तथा सूर्य का गोला फट जायेगा और फिर उसकी सात किरणें सात भागों में विभक्त होकर एक-एक किरण हजार की संख्या में विभक्त होकर पृथ्वी को तापित कर देंगी, तब सब कुछ समाप्त हो जायेगा। पृथ्वी आग से जलकर लाल हुए लोहे के समान हो जायेगी। फिर चिरकाल के बाद वर्षा होगी, तब पुनः जल से सृष्टि होगी। अतः यह तथ्य भी पूर्ण वैज्ञानिक है। तथा यह सब प्रकृति के साथ छेड़खानी से ही होगा। प्रकृति के विपरीत जब मानव चलना प्रारम्भ कर देगा, वृक्षों का विनाश करेगा, कार्बन डाइ आक्साइड आदि विषैली गैसों को उत्पन्न कर प्राकृतिक वातावरण को दूषित कर देगा, तो अवश्य ही प्रकृति की विनाशलीला प्रारम्भ हो ही जायेगी, जो प्रायः हो रहा है।

वैसे तो जो होगा, उसे कोई रोक नहीं सकता है, जो होने वाला है, उसको प्रकृति स्वयं कराती है; परन्तु फिर भी हमारे पूर्वज ऋषियों को इस बात का ज्ञान था कि वृक्षों के विनाश करने और प्राकृतिक वातावरण को दूषित करने से प्रकृति देवी नाराज हो जायेंगी और फिर वे विनाश लीला प्रारम्भ कर देंगी। अतः उन्होंने वृक्षों, वनों और पर्वतों को सुरक्षित रखने के लिये उनकी पूजा का विधान किया था तथा वे ही प्राकृतिक सौनदर्य समन्वित स्थल देवी देवताओं के निवास स्थल बताये थे तथा प्राकृतिक वातावरण को शुद्ध करने के लिये यज्ञ प्रथा का संचालन किया था, ताकि सुगन्धित वातावरण बना रहे। आज मानव निरन्तर प्रकृति के विनाश में लगा हुआ है। ये कूलर, वातानुकूलित यन्त्र, पेट्रोल, डीजल, वाहन मानव को विनाश की ओर ले जा रहे हैं। अतः इन सबके द्वारा एक दिन मानव का विनाश सुनिश्चित है।

याद रहे, इस पुराण में आया है कि जब एक चतुर्युग की समाप्ति होती है, तो कलियुग के अन्त में जब प्रजा में अत्याचार, अनाचार बढ़ जायेगा, मानव प्रकृति का विनाश करने लगेगा तो प्रकृति एक आंशिक विनाश उपस्थित करेगी, जिसमें किसी प्राकृतिक विप्लव, भूकम्प, जलप्लावन, वायु के प्रकोपादि द्वारा सब कुछ नष्ट हो जायेगा। कुछ ही मनुष्य बचेंगे, जिन्हें शिष्ट कहा जायेगा। वे शिष्ट ही आगे सतयुग के प्रणेता होंगे; क्योंकि उन्होंने अत्याचार भ्रष्टाचार का परिणाम देखा है। इसलिये फिर वे पूर्ण रूप से धार्मिक होंगे। अतः शिष्ट शब्द को इस पुराण ने बहुत मार्मिक ढंग से परिभाषित किया है—

शेषः शब्दः शिष्ट इति शेषं शिष्टं प्रचक्षते।
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः।।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि आंशिक प्रलय अर्थात् चतुर्युग में कलि की समाप्ति पर जो प्राकृतिक विप्लव होगा उसमें ये झुग्गी, झोपड़ी अथवा पहाड़ों पर रहने वाले ही शेष रहेंगे तथा वे ही शिष्ट होंगे और आगे आने वाले सतयुग के प्रणेता होंगे। भले ही लोग सातमंजिला लोहे के भवन बना लें। प्राकृतिक विप्लव से बच नहीं पायेंगे; परन्तु जो होना है, होगा ही तथा इसी तरह सब हो रहा है और होता रहेगा।

इस पुराण की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इसने प्राचीन भौगोलिक स्थिति को पूरी तरह वर्णित किया है तथा ऐसा लगता है कि प्राचीन पुरुषों ने इन सबको अच्छी तरह परख लिया था। मैं सबके विषय में सही होने का दावा तो नहीं कर सकता; परन्तु यह सम्भव है कि उस समय के योजनों की माप के अनुसार सही ही हों। उदाहरण के लिये सूर्य से पृथ्वी की दूरी पुराणकार दश लाख योजन बता रहे हैं तथा आधुनिक माप के अनुसार यह दूरी लगभग पन्द्रह करोड़ कि.मी. तथा दश लाखयोजन का १०००००० × १५ = १,५०,००,०००। एक करोड़ पचास तो हो ही जाता है तथा हो सकता है, दिव्य वर्ष की तरह दिव्य माप भी दश गुनी रही हो तब तो १५ अरब कि.मी. हो ही सकता है। अतः पुराणों के वर्णन सब काल्पनिक ही नहीं हैं, अवश्य तथ्यपूर्ण हैं। आवश्यकता है गहन अनुसन्धान की।

अब जहाँ तक पुराणों में तथा इस पुराण में नदियों और पर्वतों के पुत्र पुत्रियों की कहानियां आती हैं, वे सब प्रतीकात्मक हैं तथा इन विषयों पर गहन अनुसन्धान की आवश्यकता है; क्योंकि वेदों और पुराणों में आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा सूर्य चन्द्रमा यहाँ तक कि उषा आदि प्राकृतिक देवों का भी मानवीयकरण कर दिया गया है और फिर उसके विषय में अनेकों प्रकार की कहानियां गढ़ दी गयी हैं। ये सब प्रतीकात्मक है तथा इनके रहस्य को समझना सामान्य मानव के मस्तिष्क से परे की बातें हैं।

पुराण में दूसरे लोकों में मनुष्यों की हजारों वर्ष की आयु होने का विवरण मिलता है, सो यह सम्भव है कि किसी ग्रह पर वहाँ के प्राकृतिक वातावरण के अनुसार प्राणी की आयु हजार वर्ष हो।

अतः वेदों और पुराणों में अभी बहुत कुछ अनुसन्धान के लिये अवशिष्ट है। अतः आधुनिक विज्ञान के विद्यार्थियों को इन विषयों पर अनुसन्धान करना चाहिये; परन्तु खेद है कि विज्ञान के विद्यार्थी वेद पुराणों को काल्पनिक कथायें कहकर उनका तिरस्कार करते हैं।

पुराणों के ऐसे अनेकों वर्णन है, जो प्रतीकात्मक हैं जैसे कि हम चित्र में देखते हैं कि क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर भगवान् विष्णु शयन कर रहे हैं,लक्ष्मी जी उनके पैर दबा रही हैं, उनकी नाभि से कमल की उत्पत्ति होती है, उस पर ब्रह्मा का जन्म होता है। अतः यह सांख्य का प्रतीकात्मक स्वरूप हैं। यहाँ पर विष्णु पुरुष (आत्मा) हैं, लक्ष्मी जी त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं। क्षीरसागर उनके सत्त्व गुण (प्रोटान) का प्रतीक है; क्योंकि क्षीर (दूध) का तो सागर कहीं नहीं है, क्षीर अर्थात् श्वेत तथा श्वेत गुण सत्त्व (प्रोटॉन) का द्योतक है। शेषनाग काला, भयंकर और नाशक होने के कारण तमस् (न्यूट्रॉन) का द्योतक है तथा रक्तकमल रजोगुण (इलेक्ट्रान) का प्रतीक है। अतः प्रकृति में आत्मतत्त्व के मेल से रजस् की प्रवृत्ति से कमल पैदा हुआ। उस कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। यह लक्ष्मी प्रकृति हैं तथा विष्णु आत्मतत्त्व हैं।

अतः आज के विज्ञान ने भी यह माना है कि जल से ही जीवन की उत्पत्ति है। जल से वनस्पति और वनस्पतियों से प्राणियों की उत्पत्ति हुई। अतः कमल उस प्रारम्भिक वनस्पति का प्रतीक है, जिसने सबसे पहले अमीबा जैसे अस्थिहीन प्राणी को पैदा किया, जिससे अनेकों योनियों में विकसित होते हुए यह जीव मनुष्य के रूप में आज दृष्टिगोचर है। पुराण भी इस बात को स्वीकार करता है कि ८४००० योनियों में होकर जीव ने इस मानव रूप को पाया है। अतः पुराणों की समस्त कथायें पूर्ण वैज्ञानिक हैं तथा उन सबका वर्णन यह पुराण भी पूर्णरूपेण कर रहा है।

ब्रह्माण्डपुराण का एकेश्वरवाद—प्रायः समस्त पुराण ऊपर से देखने पर अनेकेश्वरवाद के समर्थक प्रतीत होते हैं; क्योंकि पुरणों में अनेकों प्रकार के ईश्वरों का वर्णन है। कहीं ब्रह्मा हैं, कहीं शिव हैं, तो कहीं सरस्वती, लक्ष्मी, काली, चण्डी, पार्वती आदि का भिन्न-भिन्न नाम वाली देवियां यहाँ तक कि इन्द्र, सूर्य आदि देवता हैं।

अतः इसमें सन्देह नहीं कि ये जो साक्षात् दिखाई देने वाले इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल, वायु आदि देवता हैं। ये तो अवश्य ही पूजनीय है; क्योंकि ये साक्षात् जीवन दे रहे हैं; परन्तु जहाँ पुराणों में वर्णित ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि अदृश्य देवों को भिन्न भिन्न ईश्वर मानने की कल्पना कर अनेकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया जाता है, वह भ्रामक है; क्योंकि जब हम पुराण में किसी देवी, देवता, मनुष्य, राक्षस, गान्धर्वादि द्वारा इन भिन्न-भिन्न देवों के प्रति स्तुतियों को पढ़ते हैं, तो उनमें यही कथन प्रायः उपलब्ध होता है कि स्तोता उन ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा समस्त देवियों को यही कहता हुआ स्तुति करता है कि तुम्हीं ब्रह्मा हो, तुम्ही विष्णु हो, तुम्हीं शंकर, पार्वती, दुर्गा, लक्ष्मी आदि सब तुम्हीं हो। इस प्रकार तो एकेश्वरवाद की पुष्टि होती है। मैं एक उदाहरण इस पुराण से प्रस्तुत कर रहा हूँ जिसे स्वयं भगवान् शंकर ने हयग्रीव से कहा है। भगवान् शिव कहते हैं कि—.

मैं ही त्रिमूर्ति हूँ, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश अथवा यों कहिये कि सृष्टि, स्थिति और प्रलयवाली तीनों मूर्ति मैं ही हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही विष्णु हूँ और मैं ही महेश्वर हूँ। मैं ही सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों गुणों से भी परे हूँ। मेरी स्थिति उनसे भी आगे है तथा मैं गुणहीन भी हूँ, अर्थात् मेरे अन्दर प्रकृति के तीनों गुण नहीं भी हैं तथा तीनों गुण ही क्या मेरे अन्दर तो कोई गुण ही नहीं है, मैं तो निर्गुण हूँ। अतः मुझे कोई नहीं बता सकता कि मैं छोटा हूँ, मोटा हूँ, लाल हूँ, पीला हूँ, उदार हूँ, अनुदार हूँ। अतः मैं गुणविहीन हूँ। यही नहीं, मैं गुणविहीन होते हुए भी गुणयुक्त हूँ, क्योंकि तीन गुणों वाली प्रकृति से युक्त होकर जब मैं सृष्टि, स्थिति और प्रलय की स्थिति में हूँ, तब मैं सगुण हूँ, इसलिए मैं गुणाश्रय हूँ। मैं ही अपनी इच्छा से सर्वत्र विहार करने वाला भूतात्मा (प्राणियों की आत्मा) हूँ। प्रधान और पुरुष कहा जाने वाला मैं हूँ, प्रधान प्रकृति को कहा जाता है तथा पुरुष (आत्मा (जीव) है, अतः ये दोनों अलग-अलग नहीं, दोनों मैं ही हूँ। इस प्रकार हे ब्रह्मन्! तीनों लोकों को धारण करने वाले मेरे दो प्रकार के रूप बना दिये हैं, एक प्रधान और दूसरा पुरुष।

मेरा जो प्रधान रूप है, वह समस्त संसार रूपी गुण वाला है, अर्थात् यह जो सारा संसार दिखाई दे रहा है, वह मेरा गुणात्मक रूप है। अर्थात् संसार के जड़-चेतन जितने भी पदार्थ हैं, वे सब मेरा प्रधान रूप हैं, जिन्हें प्रकृति भी कहा जाता है। यह मेरा प्रधान रूप गुणात्मक रूप है तथा दूसरा जो मेरा गुणातीत रूप है, वह पर से भी पर है।

—(उत्तर भाग अध्याय ५)

इस प्रकार यह उदाहरण सब ईश्वरों का एक होना सिद्ध करता है तथा यह जो प्रधान प्रकृति है, वह उस एक परम ब्रह्म की शक्ति है। यह कथन शिव का समझ कर भ्रान्त लोग उनको यदि व्यक्ति समझते हैं तो दुर्भाग्य है; क्योंकि यह तो पुराण लेखक का कथन है, जिसकी प्रामाणिकता की पुष्टि के लिये लेखक ने स्वयं शिव द्वारा प्रोक्त कहा है।

अब हम यदि ललितोपाख्यान पर विचार करें तो उस उपाख्यान की देवी ललितेश्वरी प्रकृति की प्रतीक हैं, वे ललितेश्वरी साक्षात् त्रिगुणात्मक प्रकृति ही हैं तथा कामेश्वर भगवान् शिव की गोदी में बैठे होना, उनका शिव (परं ब्रह्म परमेश्वर) की शक्ति होना ही सिद्ध होता है तथा भण्डासुर दैत्य के साथ उनका युद्ध तो प्रकृति और प्रकृति विनाशक तत्त्वों के साथ युद्धों तथा उसमें प्रकृति के विजय की कहानी है।

आज हम दूरदर्शन के विभिन्न चेनलों पर देवों और राक्षयों के युद्धों की कहानियां देख रहे हैं, जिन्हें देखकर उनकी काल्पनिकता प्रकट हो जाती है तथा ऐसा लगता है कि ये सब हुआ भी है अथवा नहीं। अतः यह सब देवों

और असुरों का संग्राम समय-समय पर पैदा होने वाले जीवन विनाशक तत्त्वों का जीवनीय तत्त्वों वाली प्रकृति के साथ युद्ध वर्णित है। जैसाकि दुर्गासप्तशती में आया है कि भगवान् विष्णु का मधु कैटभ के साथ ५००० दिव्य वर्षों तक युद्ध चलता रहा। अतः ऐसा युद्ध इतने दिन तक चलना कैसे सम्भव है। अतः यह युद्ध सृष्टि के प्रारम्भ में जीवन देने वाली शक्तियों आक्सीजन आदि के प्रतीक विष्णु और जीवन विनाशक तत्त्वों (गैसों) के प्रतीक मधुकैटभ के बीच युद्ध का प्रतीक हैं। अतः यह विज्ञान बता सकता है कि कौंन सी एसी दो गैसे हैं, जो आक्सीजन को दबाती रहती थीं।

जहाँ तक ललितेश्वरी के स्वरूप की वैज्ञानिकता का प्रश्न है, सो वह मां ललितेश्वरी प्रकृति का ही स्वरूप हैं। वह मेरे द्वारा भूमिका में लिखित प्रथम श्लोक से ही सिद्ध हो जाता है। जिसके अनुसार ये ललितेश्वरी—

महात्रिपुर सुन्दरी, दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती तथा प्रकृति कही जाती है। हे चार भुजाओं वाली, मस्तक पर चन्द्रकला को धारण करने वाली, उन्नत स्तनों वाली, कुङ्कुम (केसर) के रंग के समान वर्ण वाली, हाथों में पुण्ड्र नामक गन्ने, पाश, अंकुश और पुष्पबाण को रखने वाली, संसार की एकमात्र जननी हैं।

उपर्युक्त श्लोक में ये जितने भी विशेषण प्रस्तुत किये गये हैं, वे प्रकृति के प्रतीक हैं। यथा माँ ललिता की चार भुजाओं में से प्रकृति की चारों दिशाओं में व्याप्तता सूचित होती है, मस्तक पर चन्द्रकला से तात्पर्य है कि समस्त ग्रह नक्षत्र, सूर्य-चन्द्रादि को वही धारण किये हुए हैं। माँ ललिता के उन्नत स्तन प्रकृति के ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के प्रतीक हैं। एक हाथ में गन्ना प्रकृति की मधुर वनस्पतियों, वृक्षादिकों का प्रतीक है, पाश और अंकुश पापियों को दण्ड के प्रतीक हैं और पुष्पबाण उसकी मोहन शक्ति कामभाव पैदा करने के प्रतीक हैं। संसार की एकमात्र जननी से तो पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। ये सभी देवियाँ लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, पार्वती, चण्डी कालिका, सब उस प्रकृति के ही नाम हैं, क्योंकि वही एकमात्र संसार की जननी हैं। अतः वे माँ ललितेश्वरी प्रकृति देवी हैं, जिन्हें विभिन्न नामों से पुकारा गया है, वे ही शिव परंब्रह्म की शक्ति हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ईश्वर एक है, प्रकृति उसकी शक्ति है। सब कुछ वह ब्रह्म ही है। अलग अलग नाम तो उसके कर्मों के अनुसार हैं। उसका नाम तो एक ॐकार है। ये ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सरस्वती, काली, ललितेश्वरी ये सब नाम तो उसके कर्मानुसार हैं; क्योंकि उस ब्रह्म में लिङ्ग भेद नहीं है। स्त्रीलिंग, पुल्लिंग आदि सब उसी के नाम हैं। जैसे कोई व्यक्ति खेती करता है, तो वह किसान नाम वाला होता है, वही जब दुकान पर बैठे तो दुकानदान तथा पढ़ने जाये तो विद्यार्थी कहा जाकर अनेक नाम पाता है। इसी प्रकार वह ईश्वर और उसकी शक्ति प्रकृति यह एक ही है। भिन्न-भिन्न कर्मों के अनुसार उसके भिन्न-भिन्न नाम हैं। उदाहरण के लिये वह सृष्टि करता है, इसलिये ब्रह्मा, पालन करता है तथा सबमें समाया हुआ है, इसलिये विष्णु तथा संहार करने के कारण वह शिव 'रुद्र' कहा जाता है। भिन्न-भिन्न समझना मनुष्य का भ्रम है तथा इसकी पूजा करो तो वह नाराज, उसकी करो, तो यह नाराज, इस भ्रामकता से बचाने के लिये यह पुराण एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है।

इस पुराण का ललितोपाख्यान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण आख्यान है। इसमें श्रीयन्त्र का वर्णन आया है, जो श्रीयन्त्र घर में रखने से लक्ष्मी लाने का प्रतीक है। इस पर आज हिन्दूसमाज पूर्ण विश्वास कर रहा है। अतः जब श्रीयन्त्र घर में लक्ष्मी ला सकता है, तो जिस पुराण में श्रीललितेश्वरी की समस्त कथा ही उपलब्ध है, वह पुराण क्यों नही घर में सब प्रकार से सुख एवं समृद्धि लायेगा।

इस पुराण में असंख्य विशेषतायें हैं; परन्तु यह कहने में मुझे जरा भी संकोच नहीं है कि इसमें घटनाओं का प्रस्तुतीकरण उचित नहीं है। घटनाओं को प्रस्तुत करने में लेखक यह भी भूल गया है कि जो परशुराम राम से पूर्व हुए थे तथा राम के समय में धनुष भंग के बाद उनका कुछ पता नहीं चला, वे परशुराम कैसे कृष्ण और राधा की स्तुति कर रहे हैं तथा कैसे उनके आशीर्वाद से विजय श्री प्राप्त करते हुए दिखाये गये हैं? इसे हम लेखक की कृष्ण के प्रति अपार भक्ति मान सकते हैं, परन्तु इससे पुराण की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न तो अवश्य लग जाता

है। वैसे कथा की तो ऐतिहासकता सिद्ध होती है; परन्तु वह प्रासंगिक नहीं है। जहाँ तक इस पुराण में श्राद्ध तर्पण तथा तीर्थों पर श्राद्ध करने के वर्णन है तथा उनसे प्राप्त होने वाले फलों के विवेचन हैं उनकी सत्यता के विषय में कुछ कहना मैं उचित नहीं समझता हूँ; क्योंकि धर्म आस्था पर आधारित होता है। इन तीर्थों पर जाने तथा विद्वान् ब्राह्मणों को दान देने के पीछे उस समय के समाज का अवश्य कुछ लक्ष्य रहा है। हो सकता है कि श्राद्ध उस समय के विद्वद्वर्ग की जीविका का साधन हो, जिस परम्परा के प्रति प्रोत्साहन स्वरूप श्राद्ध माहात्म्य का वर्णन पुराणकार द्वारा किया गया है। हो सकता है आज के विद्वान् शिक्षकों की भांति उस समय वेतन की व्यवस्था न हो। सब कुछ दान पर ही चलता रहा हो।

जो भी हो, यह पुराण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, ऐसे महत्त्वपूर्ण लोकोपकारी पुराण का हिन्दी अनुवार अभी तक नहीं हुआ था। वैसे पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा इसके बहुत कम अंशों का अनुवाद उपलब्ध होता है; परन्तु वह पूर्ण न होने के कारण प्रामाणिक नहीं है।

वैसे तो मैं चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी के प्रकाशक माननीय श्री व्रजमोहनदास जी के सौजन्य से अनेक ग्रन्थों की सानुवाद समीक्षा एवं व्याख्या लिख चुका हूँ; परन्तु उनके सौजन्य से प्रदत्त इस विशालकाय ग्रन्थ का अनुवाद करने में मुझे अत्यन्त परिश्रम करना पड़ा है। इसके कुछ अंशों की वायुपुराण से सहायता तो मिली है; परन्तु अधिकांश कठिन परिश्रम साध्य ही रहे हैं। उधर इसी बीच मातृतुल्य भाभी की मृत्यु के दारुण दुःख को सहते हुए भी मैं इसकी सम्पन्नता प्राप्त करने में प्रयासरत रहा हूँ। तथापि ललितोपाख्यान के अनुवाद में बहुत कठिनाई हुई। परन्तु वह भी मां ललितेश्वरी की कृपा से सरलता से सम्पन्न हो गया। जब मैं इसे पढ़ता हूँ तो मुझे आश्चर्य होता है कि आखिर मुझ अज्ञानी से इतना बड़ा अनुवाद कैसे सम्पन्न हो गया। तब सोचता हूँ कि इसमें मां ललितेश्वर की कृपा ही कारण है। अतः मैं इस कृति को उन मां ललितेश्वरी को ही समर्पित करता हूँ—

लोकार्पणं पुराणस्य त्वत्कृपया कृतं मया।
मातस्तवप्रसादोऽयं तुभ्यमेव समर्पये।।

अतः इस लोकोपकारी समर्पण कार्य के कराने में स्वजीविका को अधिक महत्त्व न देकर ग्रन्थों का लोकार्पण कराकर लोकोपकार करने वाले चौखम्बा के प्रकाशक श्रीव्रजमोहनदास जी तथा प्रकाशन कर्मियों, टंकणकर्ता श्री संदीप कुमार का आभारी हूँ।

इस अनुवाद में सहायक ग्रन्थों के लेखकों का भी आभारी हूँ तथा अपनी पत्नी रामवेटी देवी, पुत्र डॉ. रूपेश कुमार चौहान और पुत्रवधू डॉ. निर्मल तथा भतीजे श्री ओम प्रकाश, डॉ. थान सिंह, श्री नीलम कुमार, श्री शिवकुमार, श्री भीमसिंह आदि सबका मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य करने हेतु निश्चिन्त रखते हुए प्रोत्साहित किया है; क्योंकि मैंने इस पुराण की हिन्दी टीका निर्मल एवं निष्पक्ष मन से की है तथा मेरी पुत्रवधू का नाम निर्मला है। अतः निर्मल मन वाली निर्मला के नाम पर मैं इस परम पवित्र पुराण की हिन्दी टीका का नाम 'निर्मला' हिन्दी टीका रख रहा हूँ।

मैं एक सामान्य व्यक्ति हूँ, उच्चकोटि का विद्वान् नहीं; तदपि अपने अथक परिश्रम से मैंने इस दुर्गम कार्य को सम्पन्न किया है। अतः अनेकों बार प्रूफ पढ़ने के बाद भी मानवस्वभाववश कहीं कोई त्रुटि रह ही जाती है। कभी-कभी तो ऐसी त्रुटि रह जाती है, जो लेखक की योग्यता पर प्रश्न चिह्न लगा देती है जैसे कि 'भा' धातु की जगह 'मा' धातु का रह जाना; क्योंकि अनेकों बार कक्ष में झाड़ू लगाने पर कहीं कुछ न कुछ रजकण रह ही जाता है। अतः यदि भूलवश कोई त्रुटि रह गयी हो, उसे क्षमा करते हुए पाठक मुझे आलोचना का पात्र न बनाकर परामर्श का पात्र बनायेंगे।।

विनीत

दलवीर सिंह चौहान

ब्रह्माण्डपुराण के वर्ण्यविषय

पूर्वभाग में प्रक्रियापाद

१. कृत्यसमुद्देश—पुराणानुक्रमणिका, इसमें पुराण का अवतरण, रोमहर्षण का कुरुक्षेत्र में होना। ऋषियों का कुरुक्षेत्र में एकत्रित होना भाग और फिर उनका रोमहर्षण के ब्रह्माण्ड पुराण के वर्ण्यविषय का पूछना और फिर ब्रह्माण्ड पुराण के समस्त अध्यायों के विषयों का क्रमशः वर्णन।

२. नैमिषाख्यान कथन—नैमिषारण्य का वर्णन, राजा पुरुरवा की कहानी, ऋषियों के हाथों उसका विनाश।

३. हिरण्यगर्भोत्पत्ति वर्णन—संसार की रचना, जल से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, प्रकृति पुरुष विवेचन।

४. लोक की कल्पना—ब्रह्माण्ड के जीवन की स्थितियाँ– सत्त्व, रजस् और तमस् के गुण और विष्णु तथा अन्य देवों की प्रकृति, कल्प का वर्णन एवं कल्पयुग व्याख्या।

५. लोककल्पन—विष्णु का अवतार वर्णन और पृथ्वी का उद्धार वर्णन, देवों, ऋषियों और मनुष्यों की उत्पत्ति और उनका विनाश (अन्त)।

पूर्वभाग अनुषंग पाद

६. कल्प मन्वन्तर व्याख्यान वर्णन—देवों की उपस्थिति एवं घटना, देवों ऋषियों और मनुष्यों की उत्पत्ति।

७. लोकज्ञान वर्णन—पृथ्वी का विभाग, चार युग, कल्प और मन्वन्तर वर्णन, सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि चार युगों का वर्णन, पृथ्वी का भूगोल, वनस्पति और प्राणियों की उत्पत्ति, चार धर्म और उनके कर्त्तव्य।

८. मानव सृष्टि वर्णन—देवादि सृष्टिकथन, देवों, ऋषियों और मानवों की उत्पत्ति।

९. रुद्र की उत्पत्ति वर्णन—ब्रह्म, रुद्र और अन्य देवों की उत्पत्ति, भृगु, अंगिरा और मनु के द्वारा मनुष्यों की उत्पत्ति, रुद्र के द्वारा भूत और पिशाचों की उत्पत्ति।

१०. महादेव विभूति वर्णन—रुद्र की उत्पत्ति, नीललोहित की उत्पत्ति, उनके आठ नाम और आठ आकृतियाँ।

११. ऋषिवंश वर्णन—भृगु, अंगिरा, मरीचि और पुलस्त्य की उत्पत्ति।

१२. अग्निवंश वर्णन—अग्नि की उत्पत्ति, उसकी सन्तान और १० प्रकार की अग्नियों का वर्णन।

१३. काल सद्भाव—ऋतुओं की उत्पत्ति, दक्ष की सन्तानें तथा दक्ष यज्ञ में उनकी पुत्री सती जो शंकर की पत्नी थीं, जिनको यज्ञ में न बुलाने पर शंकर के अपमान के कारण दक्ष यज्ञ का विध्वंस।

१४. प्रियव्रतवंश वर्णन—स्वायम्भुव प्रियव्रत और उनकी संतानों का वर्णन।

१५. पृथिवी के आकार के विस्तार—जम्बूद्वीप का वर्णन, उसके विभाग, देशों और पर्वतों का वर्णन।

१६. भारतवर्ष वर्णन—भारत के विभाग, इसके निवासी तथा पर्वत।

१७. किंपुरुष आदि देश वर्णन—इलावृत वर्ष और हरिवर्ष वर्णन।

१८. जम्बूद्वीप वर्णन—कैलास से गंगा की उत्पत्ति, गंगा का चार दिशाओं में चार नदियों के रूप में बहना।

१९. प्लक्षद्वीप वर्णन—प्लक्षद्वीप का वर्णन तथा अन्य शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर द्वीपों का वर्णन।

२०. अधोलोक वर्णन—अधोलोक वर्णन—नाग और राक्षसों का वर्णन।

पौराणिक नक्षत्र विज्ञान

२१. आदित्य व्यूह वर्णन—पृथ्वी की स्थिति, सूर्य, चन्द्र और उनकी गति समयविभाजन और खगोलीय नक्षत्रों की गति।

२२. देवग्रहों का वर्णन—नक्षत्र, तारों की गति, मेघों की उत्पत्ति, सूर्यरथ का वर्णन।

२३. ध्रुवचर्या का वर्णन—भिन्न देवों का व्यवसाय, महीनों के देवता, छः ऋतुएं, ध्रुव के चारों ओर ग्रह-नक्षत्रों का घूमना।

२४. ज्योतिष सन्निवेशन—सूर्य प्रकाश का स्रोत तथा अन्य ग्रह नक्षत्रों का प्रकाशक, ऋतुओं का कारण तथा वनस्पतियों को पैदा करने वाला।

२५. नीलकण्ठ नाम की उत्पत्ति—क्षीरसागर के मन्थन में निकले हुए कालकूट विष को पीने से शंकर के कण्ठ का नीला हो जाना।

२६. लिङ्ग की उत्पत्ति कथन—शिव के लिङ्ग की उत्पत्ति, विष्णु के द्वारा शिव का आदिशास्त्र।

२७. दारुवन प्रवेश वर्णन—शिव का नग्न अवस्था में ऋषियों के बीच जाना और लिङ्ग का प्रदर्शन करना, ऋषियों द्वारा शिव को शाप देना, बाद में ऋषियों द्वारा उनके महत्त्व एवं भस्म रमाने के महत्त्व को समझना।

२८. अमावस्या श्राद्ध में पितरों का परिचय—अमावस्या श्राद्ध में पितृविचय।

२९. संख्या वालों का वर्णन—युगचक्र और उसकी अवधि।

३०. यज्ञ प्रवर्तन वर्णन—यज्ञ प्रवर्तनम्। यज्ञों के नाम तथा फल वर्णन।

३१. चतुर्युगों का वर्णन—चार युगों का वर्णन, चार वर्ण और युगों की प्रकृति।

३२. युग प्रजा लक्षण ऋषिप्रवर वर्णन—विभिन्न युग में मनुष्यों और पशुओं के लक्षण, मन्वन्तरों का कालमान, चारों युगों में शिष्ट और अशिष्ट मनुष्यों के शुभ और अशुभ कार्य। शुभ कर्मों का प्रभाव। चारों आश्रमों के कर्तव्य। चारों यगों में ऋषियों की स्थिति और उनकी सन्तानों का वर्णन।

३३. ऋषिणलक्षण वर्णन—मुख्य-मुख्य ऋषियों और उनके शिष्यों एवं पुत्रों का परिचय। ऋषि जिन्होंने वैदिक मन्त्रों का प्रणयन किया। वैदिक मन्त्रो के विभागों का वर्णन।

३४. व्यासशिष्यों की उत्पत्ति वर्णन—महर्षि वेदव्यास द्वारा वेदों और पुराणों की रचना करना तथा द्वापर युग में उनकी शिष्य-परम्परा। महर्षि याज्ञवल्क्य और महर्षि शाकल्य के बीच राजा जनक के अश्वमेध यज्ञ की सभा में शास्त्रार्थ और शाकल्य की पराजय।

३५. वेदव्यासाख्यान स्वायंभुवमन्वतर वर्णन—महर्षि शाकल्य द्वारा वेद की शाखाओं का वर्णन, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की शाखाओं और उनकी संहिताओं के रचयिता ऋषियों का वर्णन, ब्राह्मण, आरण्यक और निरुक्त साहित्य का परिचय, याज्ञवल्क्य और वैशम्पायन की कहानी, ऋषि वंश परम्परा तथा ऋषियों की संख्या, वैवस्वत मनु का परिचय, मनुष्य की सृष्टि और फिर आगे मन्वन्तरों का वर्णन, मन्वन्तरों का काल परिचय। भिन्न-भिन्न मन्वन्तरों में देवता, पितर, ऋषियों, मनुष्यों और राक्षसों का वर्णन।

३६. शेष मन्वन्तर वर्णन—शेष मन्वन्तराख्यान और पृथ्वी दोहन, शेष बीते हुए मन्वन्तरों का वर्णन, स्वारोचिष उत्तम तामस रैवत चाक्षुष मन्वन्तरों में मनुष्यों की सृष्टि और उसके मन्वन्तरों का कालमान। उसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तर में राजा वेन का परिचय, राजा वेन से आदि राजा पृथु की उत्पत्ति तथा पृथु द्वारा पृथ्वी का दोहन वर्णन, फिर भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न देवों, राक्षसों और मनुष्यों द्वारा पृथ्वी दोहन का वर्णन।

३७. पृथुवंशानुकीर्तन चाक्षुषसर्ग वर्णन—पृथ्वी के भिन्न-भिन्न नामों की सार्थकता, राजा पृथु के वंश का वर्णन, दक्ष का जन्म, चाक्षुष मन्वन्तर वर्णन।

३८. वैवस्वत मन्वन्तर वर्णन—वैवंस्वत मन्वन्तर, मरीचि ऋषि की उत्पत्ति, वैवस्वत मन्वन्तर के राजाओं का परिचय।

२. मध्य भाग

१. ऋषिसर्ग वर्णन—सप्तर्षियों की उत्पत्ति, प्रत्येक मन्वन्तर में इन्हीं सप्तर्षियों की स्थिति का वर्णन, भृगु और अंगिरा ऋषि की उत्पत्ति का वर्णन।

२. प्रजाप्रतिवंश वर्णन—प्रजापति दक्ष और उनकी सन्तानों का वर्णन, प्रजापति दक्ष द्वारा ऋषि, देवता, गन्धर्व, मनुष्य, सर्प, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पक्षी, पशु, मृगादि की मानस उत्पत्ति, नारद की उत्पत्ति।

३. स्वयंभू त्रैगुण्यस्वरूप वर्णन—वैवस्वत मन्वन्तर में देवों, दानवों, मनुष्यों की विस्तार से उत्पत्ति, धर्म निसर्ग वर्णन, नरनारायण, अग्नि, वायु आदि की उत्पत्ति, मुहूर्तों एवं नक्षत्रों की उत्पत्ति, कश्यप की सन्तानों का वर्णन, देवताओं और ऋषियों की उत्पत्ति।

४. जय अभिव्याहार—प्रजासर्ग की इच्छा से ब्रह्मा द्वारा मुख से जय देवताओं की उत्पत्ति उनके द्वारा सन्तान उत्पत्ति न करने के कारण ब्रह्मा द्वारा शाप देना, उसके बाद शाप की वापसी।

५. मरुद्गण की उत्पत्ति वर्णन—दैत्य, दानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, भूत, पिशाच, वसु, पशु-पक्षी और वृक्ष-लताओं की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन, कश्यप पत्नी दिति से हिरण्यकशिपु की उत्पत्ति, उसके अत्याचारों से संसार में हाहाकार, फिर विष्णु द्वारा उसका संहार, दिति और कश्यप से राहु का एवं मरुद्गणों का जन्म।

६. दनुवंश कीर्तन—दनु और सिंहिका से महाबली राक्षसों की उत्पत्ति।

७. काश्यपेय वर्णन—गन्धर्व और अप्सराओं के पुत्र मौनेयों की वंशावली, कद्रु की सन्तानों का वर्णन, खश की वंशावली, यक्ष और राक्षसों का दैत्यों के साथ विवाह सम्बन्ध और उनसे वंशोत्पत्ति, यक्ष की वंशावली, गुह्यक और अप्सराओं की वंशावली, गरुड़, सिंह शरभ, गौ आदि की उत्पत्ति, वानर वंश का वर्णन, बाली, सुग्रीव की कहानी, रावण को बाली द्वारा पराजित करना, सूर्य का मार्तण्ड कहा जाना, हाथी आदि की स्थिति, भूत और पिशाचों की जातियाँ तथा उनका निवास स्थान, जंगली और पालतू (घरेलू) जानवरों चिड़ियों और सूक्ष्म कीटों, मच्छरों तक की उत्पत्ति कथा।

८. ऋषिवंश वर्णन—महर्षि कश्यप द्वारा अपनी सन्तानों का राज्याभिषेक कर यथास्थान उन्हें नियुक्त करना, उसके बाद अत्रि और वशिष्ठ की वंशावली।

९. पितृकल्प वर्णन—हिमालय से उमा (पार्वती) गंगा आदि की उत्पत्ति का वर्णन, मानवों के लिए श्राद्ध का महत्त्व, श्राद्ध की विधि का वर्णन, देवपितृगण विवेचन, देवों और पितरों की स्थिति, श्राद्ध में दान की महिमा, दान के पात्र।

१०. पितृ पितरों के राज्यकल्प—जय नामक पितरों में सात गणों से संसार की सृष्टि का वर्णन, हिमवान् और मेना से उमा की उत्पत्ति, उमा और शंकर से स्कन्द की उत्पत्ति की कथा, जिसमें अग्नि द्वारा वीर्य वहन करने और फिर गंगा को गर्भ देने और कृत्तिकाओं द्वारा पालन करने से कार्तिकेय की जीवन कथा। अच्छोदा नामक नदी सत्यवती और पीवरी की कहानी, श्राद्ध के लाभ।

११. श्राद्धकल्प में समिधा वर्णन—श्राद्ध में देय वस्तुओं के दान का फल वर्णन, श्राद्ध में श्रेष्ठ वस्तुओं

के नाम तथा उनके फल, श्राद्ध एवं बलिकर्म विधि, श्राद्ध और बलि कर्म में देय एवं त्याज्य वस्तुओं का विवेचन एवं श्राद्ध महिमा वर्णन तथा श्राद्धफल विवेचन।

१२. श्राद्धकल्प—सर्व श्राद्ध कर्म में सबसे पहले और आगे रहने वाले विश्वेदेव की उत्पत्ति और उनका प्रायश्चित्त वर्णन, पितरों के लिए पिण्डदान और ब्राह्मणों को भोजन कराने के फल।

१३. श्राद्धकल्प में पुण्य देशों का वर्णन—श्राद्ध करने के योग्य तीर्थ, नदियाँ, पर्वतादि का वर्णन तथा उन-उन तीर्थ स्थलों में पिण्डदान करने के भिन्न-भिन्न फल। अन्नदान, गुरु तथा ध्यान योग की महिमा।

१४. श्राद्ध में शौचविधि वर्णन—श्राद्ध करने का समय, श्राद्ध में प्रयोज्य वस्तुओं तथा वर्ज्य वस्तुओं का वर्णन, श्राद्ध के पात्र, श्राद्ध करने हेतु पवित्र होने की विधि, अशौच निवारण।

१५. श्राद्धकल्प में ब्राह्मणपरीक्षा वर्णन—श्राद्ध कर्म में दान देने अथवा भोजन कराने योग्य ब्राह्मणों की परीक्षा। विद्वान् एवं मूर्ख ब्राह्मण को दान देने का फलाफल वर्णन।

१६. श्राद्धकल्प में दान की प्रशंसा का वर्णन—श्राद्ध में भिन्न-भिन्न वस्तुओं को दान करने से भिन्न-भिन्न फलों की प्राप्ति का वर्णन।

१७. श्राद्धकल्प में नक्षत्र तिथि श्राद्ध का फल—श्राद्ध के लिए समुचित समय का विवेचन तथा कुछ निश्चित दिन एवं तिथियों में श्राद्ध करने से लाभ का वर्णन।

१८. नक्षत्रों में श्राद्ध करने के फल का वर्णन—श्राद्धकर्म में कौंन-कौंन नक्षत्र श्रेष्ठ हैं तथा उनमें श्राद्ध करने का फल वर्णन।

१९. श्राद्धकल्प में ब्राह्मणों की परीक्षा—श्राद्ध में भिन्न-भिन्न भोज्य पदार्थों का भोजन कराने का महत्त्व। श्राद्ध में आमन्त्रित करने योग्य अथवा न करने योग्य मनुष्यों का वर्णन, पंक्तिपावन परिचय।

२०. श्राद्धकल्पवर्णन—पितृगण, पितरों के सात समूहों का वर्णन, पिण्डदान की महिमा।

२१. परशुरामकथारम्भ—परशुराम की कहानी, ऋचीक ऋषि के पुत्र जमदग्नि के पुत्र परशुराम महर्षि और्व द्वारा भगवान् शिव की आराधना कर अस्त्र प्राप्त करने हेतु परशुराम से कटना।

२२. परशुराम की तपस्या का वर्णन—परशुराम द्वारा हिमालय पर तपस्या हेतु गमन, हिमालय पर वृक्षों, नदियों और सरोवरों का वर्णन, यहाँ परशुराम द्वारा घोर तप करना और योग की अन्तिम अवस्था समाधि में लीन होना।

२३. परशुराम शंकर संवाद—परशुराम की तपस्या देखने हेतु ऋषियों का आगमन, महर्षि भगवान् परशुराम द्वारा शिव को प्रसन्न करना, परशुराम की परीक्षा के लिए व्याध का अत्यन्त भयंकर वेष धारण कर भगवान् शिव का परशुराम के समक्ष उपस्थित होना, परशुराम शिव का संवाद।

२४. शिव द्वारा परशुराम को आयुध देना—परशुराम द्वारा व्याध वेषधारी भगवान् शिव को पहचानना और उनके चरणों में नतमस्तक होकर उनकी स्तुति करना, फिर शिव द्वारा परशुराम को आयुध प्रदान करना और परशुराम द्वारा देवों के शत्रुओं के संहार हेतु प्रस्थान तथा जहाँ पर व्याध वेषधारी शंकर उपस्थित हुए थे, वहीं पर उनकी मूर्ति स्थापित करना।

२५. परशुराम द्वारा शिव की स्तुति और ब्राह्मण बालक की रक्षा—परशुराम द्वारा भगवान् शिव की स्तुति करना, फिर वहाँ से चल देना, मार्ग में एक सिंह और भेड़िये से आक्रान्त ब्राह्मण बालक का मिलना और परशुराम द्वारा उसकी रक्षा करना और फिर उसे अपना प्रिय मित्र बनाकर साथ लेकर अपने पिता के आश्रम में पहुँचना।

२६. जमदग्नि के आश्रम में कार्तवीर्य का आना—हैहयवंशीय राजा कार्तवीर्य अर्जुन का ससैन्य शिकार के लिए प्रस्थान, उसके बाद जमदग्नि के आश्रम में आगमन, वहाँ कामधेनु के प्रभाव से उनका भव्य स्वागत।

२७. कार्तवीर्य अर्जुन का जमदग्नि द्वारा किया गया अतिथि सत्कार—महर्षि जमदग्नि द्वारा कामधेनु के प्रभाव से समस्त सुविधाओं से युक्त नगर का बसाना और सभी प्रकार के संसाधनों वाले राजभवन तथा अनेकों दिव्य भवनों का निर्माण करा देना, जहाँ राजा कार्तवीर्य का ससैन्य पूर्ण आनन्द के साथ रात्रिविश्राम करना।

२८. कार्तवीर्य के मन्त्री द्वारा गोहरण समारम्भ—कार्तवीर्य के मन्त्री चन्द्रगुप्त द्वारा राजा कार्तवीर्य को जमदग्नि की कामधेनु गाय को प्राप्त करने के लिए कहना, ब्राह्मण मन्त्री द्वारा गोहरण करने को मना करना, परन्तु मन्त्री द्वारा राजा का अधिकार बताकर कार्तवीर्य को गोहरण के लिए तत्पर करना और फिर सैनिकों को लेकर सेनापति द्वारा गो ग्रहण करने जाना।

२९. जमदग्नि हनन—गो ग्रहण में जमदग्नि द्वारा गाय के कण्ठ को पकड़ कर लटकना और फिर सैनिकों द्वारा जमदग्नि का वध करना, कामधेनु का स्वर्ग को चला जाना। यह देख कार्तवीर्य का चिन्तित हो जाना।

३०. जमदग्नि का पुनः जीवित होना—जमदग्नि के मरने पर उनकी पत्नी रेणुका का करुण क्रन्दन, वन से घूम कर लौटे परशुराम का उनको समझाना, फिर रेणुका द्वारा पति के साथ शरीर को भस्म कर देने का निश्चय करना, उन्हें अग्निदाह से रोकने की भविष्यवाणी होना, उसके बाद महर्षि भृगु का उस आश्रम में आकर जमदग्नि को जीवित करना, फिर परशुराम द्वारा २१ बार क्षत्रियों के संहार की प्रतिज्ञा करना।

३१. भृगु का परशुराम को उपदेश—जमदग्नि के जीवित होने पर अपने पितामह भृगु का स्वागत करना और वध का समस्त वृत्तान्त बता देना, वहीं पर परशुराम द्वारा अपनी प्रतिज्ञा बताना, भृगु द्वारा क्षत्रिय संहार की प्रतिज्ञा को कठिन बताते हुए परशुराम को भगवान् शंकर की तपस्या कर त्रैलोक्य कवच को प्राप्त करने का परामर्श देना।

३२. परशुराम का तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न करना—परशुराम अपनी तपस्या से शिव को प्रसन्न कर उनसे त्रैलोक्य कवच को प्राप्त करते हैं और शक्तिशाली पाशुपतास्त्र को भी प्राप्त करते हैं और फिर पुष्कर द्वीप को चले जाते हैं।

३३. त्रैलोक्य कवच वर्णन—त्रैलोक्य कवच मन्त्र तथा उसकी प्रयोगविधि, श्रीकृष्ण की उपासना।

३४. मृगमृगी संवाद—पुष्कर तीर्थ में परशुराम द्वारा स्नान करते समय मृगमृगी के संवाद में अपनी प्रतिज्ञा की कहानी को सुनना, उसके बाद मृगमृगी मिथुन द्वारा अगस्त्य के आश्रम पर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेमामृत स्तोत्र कथा के महत्त्व के विषय में जानना।

३५. मृग और मृगी की कथा, परशुराम का अगस्त्याश्रम में जाना—मृगमृगी मिथुन के पूर्वजन्म की कहानी सुनना, फिर परशुराम द्वारा अगस्त्य मुनि के आश्रम का पुनरुद्धार करना, तथा वहीं पर मृगमृगी का पहुँचना।

३६. अगस्त्य द्वारा कृष प्रेमामृत स्तोत्र का कथन—परशुराम द्वारा कृष्ण प्रेम से सम्बन्धित कहानी को सुनना, वहीं पर मृगमिथुन का शरीर त्याग करना।

३७. परशुराम को कृष्ण का वरदान—परशुराम द्वारा अपनी समस्त बीती हुई घटना को सुनाना और फिर कृष्ण द्वारा उन्हें पृथ्वी पर के समस्त क्षत्रियों के विनाश का वरदान देना।

३८. कार्तवीर्य अर्जुन के साथ परशुराम युद्ध, राजा मत्स्य का वध—परशुराम का कार्तवीर्य की राजधानी महिष्मती में प्रस्थान करना और कार्तवीर्य को युद्ध के लिए ललकारना तथा कार्तवीर्य द्वारा भेजे गये राजा मत्स्य के साथ परशुराम का घोर संग्राम तथा महाराज मत्स्य का युद्ध में वीरगति को प्राप्त होना।

३९. परशुरामकृत भद्रकाली स्तुति—परशुराम द्वारा अनेकों क्षत्रिय राजाओं का मारा जाना, परन्तु राजा सुचन्द्र को मारने के लिए असमर्थ होकर भद्रकाली देवी की स्तुति करना, भद्रकाली द्वारा उन्हें अग्निबाण प्रदत्त करना और उसकी प्रयोग विधि बताना और फिर उस अग्न्यस्त्र द्वारा राजा सुचन्द्र का वध करना।

४०. कार्तवीर्य अर्जुन वध—परशुराम द्वारा अनेकों राजाओं के वध के बाद कार्तवीर्य के साथ घोर युद्ध और उस युद्ध में कार्तवीर्य का वध करना।

४१. परशुराम का कैलास जाना—कार्तवीर्य के समस्त पुत्रों का वध करने के बाद परशुराम का भगवान् शंकर के पास कैलास पर्वत पर जाना और वहाँ पर गणेश द्वारा उनको जाने की अनुमति न देना, तब वहाँ गणेशजी के साथ परशुराम का वाग्युद्ध होना, गणेश परशुराम का युद्ध और परशुराम द्वारा परशु प्रहार तथा परशु को रोक कर गणेश जी का तीनों लोकों में घूमना, फिर वहीं पर आकर स्थित होना।

४२. परशुराम गणेश युद्ध वर्णन—परशु को गणेशजी द्वारा दाँत से रोकना और उनके दाँत का टूट जाना, उसकी घोर ध्वनि सुन कर सबका उपस्थित होना और फिर पुत्र गणेश का टूटा हुआ दाँत देखकर पार्वती का क्रोधित होना, पार्वती के क्रोध को शान्त करने के लिए शिवजी द्वारा स्तुति किये जाने पर राधा-कृष्ण का आगमन, कृष्ण के वरदान से गणेश को वक्रतुण्ड नाम प्राप्त होना, श्रीराधा द्वारा पार्वती को समझाना तथा श्रीराधा के हाथ के स्पर्श से गणेशजी के घाव का भर जाना।

४३. परशुरामकृत पार्वती स्तुति—परशुराम को श्रीकृष्ण द्वारा वर की प्राप्ति, श्रीराधा द्वारा परशुराम और गणेशजी को वर की प्राप्ति, पार्वती द्वारा परशुराम को वर प्राप्ति, उसके बाद परशुराम का अपने घर आना।

४४. कार्तवीर्यवंश विनाश वर्णन—पिता जमदग्नि के समक्ष परशुराम द्वारा हैहयवंशीय कार्तवीर्य के विनाश का वृत्तान्त कहना, तब क्षत्रियों के विनाशरूपी पाप की निवृत्ति के लिए जमदग्नि द्वारा परशुराम को प्रायश्चित्त का उपदेश देना, फिर तप करने हेतु परशुराम का महेन्द्र पर्वत पर जाना।

४५. जमदग्नि वध—मृगयोत्सुक शूरसेनादि राजपुत्रों द्वारा परशुराम से वैर का बदला लेने की दृष्टि से जमदग्नि के आश्रम में आकर जमदग्नि के शिर को काटकर अपने नगर को ले जाना, जमदग्नि पत्नी रेणुका द्वारा प्राण त्यागना, उसके पुत्रों द्वारा उसकी दाहक्रिया करना और बारह वर्ष बाद तप से लौट कर परशुराम का अपने आश्रम पर आना।

४६. परशुराम द्वारा २१ बार क्षत्रिय वध वर्णन—पितृ निधन को सुनकर परशुराम द्वारा यह प्रतिज्ञा करना कि मैं क्षत्रियों के रुधिर से पिता का तर्पण करूँगा, फिर युद्ध करने के लिए माहिष्मती नगर जाना और शूरसेन आदि का वध करना तथा इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करना।

४७. परशुराम का तपस्या के लिये महेन्द्र पर्वत पर जाना—परशुराम द्वारा कुरुक्षेत्र में पाँच नदियाँ खोदकर क्षत्रियों के रुधिर से भर कर वहाँ पितृतर्पण कर स्यमन्तक पञ्चक नामक तीर्थ बनाना, उस तीर्थ पर परशुराम के समस्त पितरों का उपस्थित होना और परशुराम को क्षत्रियवध का प्रायश्चित्त करने के लिए कहकर अन्तर्धान हो जाना, परशुराम का तीर्थाटन करना और फिर सिद्धिवन में तप करना, वहाँ अश्वमेध यज्ञ कर समस्त पृथ्वी को कश्यप के लिए प्रदान करना, अन्त में महर्षि और्व के आश्रम में राजा सगर का जन्म होना और फिर पृथ्वी के सभी राजाओं को जीतना तथा राजा सगर द्वारा वशिष्ठ की आज्ञा से अश्वमेध यज्ञ का विचार करना।

४८. सगर प्रतिज्ञापालन—अश्वमेध यज्ञ के प्रसङ्ग से राजा सगर द्वारा कार्तवीर्य के वंशज राजाओं का वशिष्ठ की आज्ञा से वध न करके उन्हें राज्यभ्रष्ट, धर्मभ्रष्ट और जातिभ्रष्ट करना।

४९. सगर दिग्विजय—सगर की दिग्विजय यात्रा, सगर का विवाह वर्णन, पृथ्वी के सभी राजाओं से कर ग्रहण करते हुए अपने नगर में लौट कर नागरिक सत्कार को प्राप्त करना, वशिष्ठ के आश्रम में जाना, वहाँ उनका सत्कार, उसके बाद अपनी दो पत्नियों के साथ राज्यसुख भोगना।

५०. सगर का और्व ऋषि के आश्रम जाना—राजा सगर को अपनी दोनों पत्नियों से पुत्र प्राप्ति न होने के कारण दुःखी होना और अपनी दोनों पत्नियों सहित पुत्रप्राप्ति के लिए महर्षि और्व के आश्रम में जाना, राजा से ऋषि का पूछना और राजा द्वारा अपने अपुत्रत्व दुःख को बताना और फिर ऋषि द्वारा उन्हें पुत्र होने का उपाय करना।

५१. असमंजस त्याग—सगर पत्नियों में एक को एक और दूसरी पत्नी को साठ हजार पुत्र होने का ऋषि द्वारा वरदान प्राप्त होना, उसके बाद केसिनी को एक असमंजस का जन्म होना और सुमति को साठ हजार पुत्रों का जन्म होना, फिर असमंजस के शरीर में पिशाच का वास होने से उसके घोर अत्याचारों से राजा सगर द्वारा उस पुत्र का परित्याग करना।

५२. अश्वमोचन—सगर पुत्रों के उपद्रव से त्रस्त देवों का ब्रह्माजी के पास आना, पितामह के निर्देश पर देवों का कपिलाश्रम जाना, सगर पुत्रों के नाश के लिए कपिल मुनि का वरदान, सगर के घर में अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ होना, सगर पुत्रों का अश्व के साथ समस्त भूतल पर जाना।

५३. सगर पुत्रों का विनाश—देवराज इन्द्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अश्व को चुराना और कपिलमुनि के आश्रम में उसे छोड़ना, सगर के साठ हजार पुत्रों द्वारा अश्व को वहाँ देखना, कपिल मुनि के आश्रम में अश्व को देखकर उन सबका कहना कि अश्व को चुराने वाले ये कपिल मुनि ही हैं, ऐसा सोचकर उनको घसीटना तब कपिलमुनि की क्रोधाग्नि में उन सबका जलकर भस्म हो जाना।

५४. कपिल आश्रम में स्थित अश्व को लाना—राजा सगर के पास नारदमुनि का आना, उनके सब पुत्रों के वध से दुःखी राजा को समझाना और फिर असमंजस के पुत्र अंशुमान् द्वारा कपिलाश्रम से अश्व को लाने की राय देना, अंशुमान् का अश्व को लेकर लौटना।

५५. अंशुमान द्वारा राज्य प्राप्ति—महाराजा सगर का अश्वमेध यज्ञ को सम्पन्न कर अपने पौत्र अंशुमान् को राज्य सौंपना।

५६. गंगा का लाना—सगर के साठ हजार पुत्रों द्वारा खोदी गयी भूमि पर सर्वत्र गड्ढे पैदा होना और समुद्र द्वारा पृथ्वी को आप्लावित करना, गोकर्ण तीर्थ की महानता की प्रशंसा, गोकर्ण तीर्थ के ऋषियों का महेन्द्र पर्वत पर परशुराम के पास जाना और समुद्र द्वारा भूमि को ऊबड़-खाबड़ बनाने की बात कहकर भूमि को समतल बनाने का अनुरोध करना, समुद्र द्वारा भूमि को सही कर देना, उसके बाद अंशुमान् पुत्र भगीरथ द्वारा अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए गङ्गा को लाने के लिए शिव को प्रसन्न करना, शिवजी द्वारा गङ्गा को शिर में रोकना, फिर गङ्गा के जल को महर्षि जह्नु द्वारा पी लेना और जाँघ से निकालना, जिसके कारण गङ्गा का जाह्नवी नाम होना।

५७. वरुण का आगमन वर्णन—सगर-पुत्रों द्वारा खोदी गयी भूमि को सागर द्वारा नष्ट करने के कारण ऋषियों का परशुराम के पास जाना, उनसे सागर द्वारा भूमि को छोड़ने का अनुरोध करना, क्रोधित परशुराम धनुष पर बाण रख कर चलाना, जिससे समुद्र का सूखना, समुद्र के स्वामी वरुणदेव का आना, परशुराम से हाथ जोड़कर निवेदन करना।

५८. राम द्वारा गोकर्ण क्षेत्र का समुद्धार—परशुराम द्वारा यज्ञपात्र फेंकने से तालाब और झरने बनना,

समुद्र द्वारा नष्ट-भ्रष्ट की गयी भूमि को छोड़कर ऊपरी सीमा में स्थित होना, ऋषियों द्वारा परशुराम की प्रशंसा कर गोकर्ण तीर्थ पर लौटना, देवताओं द्वारा परशुराम की प्रशंसा करना।

५९. वैवस्वत मनु की उत्पत्ति—वरुण की वंशावली, मार्तण्ड की वंशावली और उनका वंश वर्णन।

६०. वैवस्वतमनु की सृष्टि वर्णन—वैवस्वत मनु से दश पुत्रों की उत्पत्ति, पिर यज्ञ से इला नामक कन्या का होना, इला का सुद्युम्न के रूप में बदलना और फिर उमावन में जाने के कारण सुद्युम्न का पुनः स्त्री हो जाना और फिर इला और बुध से चन्द्रमा की उत्पत्ति होना, जिससे चन्द्रवंश का प्रारम्भ होना।

६१. गान्धर्वमूर्च्छनालक्षण वर्णन—द्वारकापुरी के बलभद्र द्वारा राजकुमारी रेवती का विवाह होना और रेवती और बलभद्र का वृद्धता से प्रभावित न होने में गान्धर्व विद्या (संगीत) का प्रभाव तथा संगीत विद्या का संक्षिप्त परिचय।

६२. गान्धर्व लक्षण—पुनः संगीतशास्त्र का विस्तार से परिचय।

६३. इक्ष्वाकुवंश वर्णन—राजा शर्याति की वंशावली, राजा इक्ष्वाकु की वंशावली, राजा इक्ष्वाकु द्वारा अपने पुत्र विकुक्षि को अत्याचारी होने के कारण नष्ट करना, बाद में राजा कुवलाश्व द्वारा राक्षस धुन्धु का वध करना, कुवलाश्व की वंशोत्पत्ति, मान्धाता की राज्य समृद्धि, अन्य राजाओं और उनके कार्यों का वर्णन, राजा सत्यव्रत का चरित्र वर्णन, सत्यव्रत द्वारा विश्वामित्र के परिवार का पालन करना, वशिष्ठ की गाय को मार कर विश्वामित्र के परिवार को खिलाने से सत्यव्रत को शाप देना, तब त्रिशंकु नाम पाना, राजा त्रिशंकु को विश्वामित्र द्वारा स्वर्ग भेजना, राजा हरिश्चन्द्र, सगर आदि की रोचक कथा, सगर द्वारा समस्त हैहयवंशीय राजाओं को पराजित् कर उनके धर्म को नष्ट करना, राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का चरित्र वर्णन, फिर अंशुमान्, दिलीप, राजा भगीरथ, नाभाग आदि का चरित्र चित्रण, इसके बाद दिलीप, रघु, दशरथ, राम और उनके भाई एवं पुत्रों का वर्णन। फिर राम से लेकर राजा बृहद्बल तक के राजाओं के कार्यों का वर्णन।

६४. निमिवंश वर्णन—इक्ष्वाकुपुत्र निमि के वंश में राजा जनक की उत्पत्ति, उन्हीं के वंश में आगे राजा सीरध्वज की पुत्री सीता की उत्पत्ति, जिनका राम के साथ विवाह, उसके बाद राजा निमि के वंशज बहुलाश्व तथा अन्य राजाओं का वर्णन।

६५. यदुवंश वर्णन —अत्रि से चन्द्रोत्पत्ति, चन्द्रमा के पृथ्वी पर गिरने से औषधियों की उत्पति, ब्रह्माजी द्वारा चन्द्रमा को लोकपालक बनाना, राज्य पाकर भ्रष्ट चन्द्रमा द्वारा वृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण करना, उससे सम्भोग करना, तारा द्वारा चन्द्रमा को पुत्र बुध का जन्म होना, फिर बुध और इला से राजा पुरुरवा की उत्पति, पुरुरवा-उर्वशी से छः पुत्रों की उत्पति, चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग होना और अत्रि द्वारा उसका रोग निवारण।

६६. चन्द्र वंश का वर्णन—पुरुरवा उर्वशी कथानक, बुध पुत्र पुरुरवा का उर्वशी के साथ विवाह वर्णन, पुरुरवा उर्वशी की रोचक कहानी, पुरुरवा के चार पुत्रों में विश्वावसु के भीम, भीम के जह्नु, उसके बाद विश्वामित्र और परशुराम की उत्पत्ति कथा, परशुराम और विश्वामित्र की वंशावली, दान, व्रत, सत्य और तप की महिमा वर्णन।

६७. धन्वन्तरि की उत्पत्ति वर्णन—राजा पुरुरवा का पुत्र आयुष् का वंशानुचरित, सागर मन्थन से धन्वन्तरि की उत्पत्ति कथा, विष्णु के वरदान से दूसरे जन्म में राजा दीर्घतमा के पुत्र के रूप में धन्वन्तरि की उत्पत्ति तथा उनकी वंशावली, काशी और लखनऊ के वसने की कथा, भगवान् शंकर द्वारा काशीवास की कथा, काशीवासियों द्वारा गणेश्वर निकुम्भ की पूजा करना, निकुम्भ से काशीराज द्वारा पुत्र का वर न प्राप्त होने के कारण

गणेश्वर के स्थान का छिन्न-भिन्न करना, गणेश्वर द्वारा काशी को निर्जन होने का शाप देना और फिर वहाँ भगवान् शंकर का वसना, काशी के राजाओं का क्रमशः वर्णन, रजि वंश वर्णन, महाराज रजि से इन्द्र द्वारा पुत्रत्व प्राप्त कर राज्य ग्रहण करना, फिर राजपुत्रों द्वारा इन्द्र से राज्य छीनना, इन्द्र का बृहस्पति के पास जाना, बृहस्पति द्वारा रजि पुत्रों की बुद्धि भ्रष्ट करना और इन्द्र की पुनः प्रतिष्ठा करना।

६८. ययातिचरित वर्णन—मरुत् और नहुष की वंशावली, वृद्ध राजा ययाति द्वारा पुत्रों से आयु माँगना तथा सबसे छोटे पुत्र पुरु द्वारा आयु देना और युवावस्था का पूर्ण भोग करने के बाद आयु को पुरु को लौटा कर राजा का सन्यास ग्रहण करना, भोग से वैराग्य को प्राप्त राजा द्वारा नैतिक उपदेश देना।

६९. कार्तवीर्य अर्जुन की उत्पत्ति—महाराजा यदु का वंश वर्णन और वंशानुचरित वर्णन में कार्तवीर्य, सहस्त्रार्जुन का जन्म और दत्तात्रेय से अजेयत्व वरों की प्राप्ति, कार्तवीर्य का समुद्रावगाहन तथा कार्तवीर्य द्वारा सूर्य को शक्ति प्रदान करना तथा सूर्य द्वारा आपव मुनि के आश्रम को जलाना तथा आपव मुनि द्वारा शाप देना कि इस अजस्र तपोवन को आगे अर्जुन बहाल करेगा तथा तेरा परशुराम वध करेगा, सहस्रार्जुन द्वारा अनेकों राजाओं को जीतने के वृत्तान्त में लङ्काधीश रावण पर भी विजय प्राप्त करना, उसके बाद कार्तवीर्य के वंशज तालजंघादि का वर्णन।

७०. तपोवन दग्ध वर्णन—कार्तवीर्य के पास विप्ररूप से सूर्य का आना और राजा से समुद्र, नदी, वन, पर्वतादि को भोजनार्थ माँगना, राजा द्वारा देने पर सूर्य द्वारा सबको जला देना, उसी में आपव मुनि के आश्रम को जलाना और मुनि द्वारा शाप देना, फिर राजा क्रोष्टु की वंशावली।

७१. वृष्णि वंश वर्णन—महाराजा सात्वत की वंशावली एवं वंशानुचरित, सूर्य से सत्राजित् को स्यमन्तकमणि की प्राप्ति, फिर स्यमन्तकमणि कैसे भगवान् कृष्ण को प्राप्त हुई और उन्होंने वभ्रु (अक्रूर) को दिया, इसकी सम्पूर्ण कहानी, फिर माद्रीवंश का वर्णन, अन्धकवंश वर्णन, पाण्डवों की उत्पत्ति, वसुदेव की कहानी, भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म का वृत्तान्त, कृष्ण द्वारा कंस वध, देवकी और वसुदेव, यशोदा के जन्मों की कथा, विष्णु के अवतार के रूप में श्रीकृष्ण की कथा का विस्तार से वर्णन, बलराम और कृष्ण की वंशावली, कृष्ण की सभी पत्नियों तथा उनसे उत्पन्न पुत्रों का वर्णन।

७२. स्तव समाप्ति वर्णन—ऋषियों के द्वारा भगवान् विष्णु का मनुष्य के रूप में अवतार लेने का कारण पूछना, फिर सूतजी द्वारा भगवान् विष्णु के बारह अवतारों की कहानी बताना, उसके बाद शुक्राचार्य द्वारा असुरों को जीतने के लिए भगवान् शिव की तपस्या करने जाना, उसी बीच भृगुपत्नी द्वारा रक्षित असुरों को मारने का इन्द्र का प्रयास, भृगुपत्नी द्वारा इन्द्र का जड़त्व, इन्द्र के शरीर में प्रविष्ट विष्णु द्वारा भृगुपत्नी के शिर को काटना, फिर भृगु द्वारा विष्णु को मनुष्य के रूप में जन्म ग्रहण करने का शाप देना, उधर इन्द्र द्वारा अपनी पुत्री जयन्ती को शुक्राचार्य की सेवार्थ भेजना, उधर भगवान् शंकर का शुक्राचार्य के समक्ष उपस्थित होना और शुक्राचार्य द्वारा उनकी स्तुति करना।

७३ विष्णु माहात्म्य वर्णन—शुक्राचार्य द्वारा शिव से मन्त्र प्राप्त कर लौटना, इन्द्रपुत्री जयन्ती की सेवा से प्रसन्न शुक्राचार्य द्वारा जयन्ती के साथ दश वर्ष तक अदृस्य होकर सहवास में स्थित होना, असुरों का शुक्राचार्य के पास आना तथा उन्हें न देख कर निराश लौटना, फिर देवगुरु बृहस्पति द्वारा शुक्राचार्य के रूप में असुरों को शिक्षा देना, दश वर्ष पूर्ण होने पर शुक्राचार्य का असुरों के पास आना और स्वयं को शुक्राचार्य बताना तथा बृहस्पति को शुक्राचार्य न कहकर असुरों को समझाना, असुरों द्वारा असली शुक्राचार्य को छली-कपटी कहकर लौटाना, क्रुद्ध शुक्र

द्वारा उन्हें बुद्धिहीन होने का शाप देना, फिर बृहस्पति के कपट का पता चलना, तब वामन वेषधारी विष्णु द्वारा असुरेश्वर बलि को बांधना और असुरों की देवों द्वारा पराजय होना और असुरों द्वारा शुक्राचार्य से क्षमा माँगना, अन्त में भगवान् विष्णु के ९ अवतारों का वर्णन तथा भावी दशवें अवतार में कल्कि के रूप में अवतरित होकर संसार के प्राणियों के दुःखों को हरने की भविष्यवाणी करना।

७४. तुर्वसु आदि का वंश वर्णन—ययाति पुत्र तुर्वसु के पुत्रों का वर्णन, तुर्वसु वंश का पुरुवंश में विलय, द्रुह्युवंश वर्णन, अनुवंश वर्णन, अनु के वंश में कुछ राजाओं के बाद हेमपुत्र बलि की उत्पत्ति और उनका चरित्र वर्णन, सुदेष्णा पुत्र दीर्घतमा की कथा, उषिज की पत्नी ममता के साथ उषिज के भाई बृहस्पति का सहवास, गर्भ में उषिज के वीर्य द्वारा उन्हें रोकना और फिर बृहस्पति द्वारा उसे शाप देना, तब उषिज के वीर्य से दीर्घतमा की उत्पत्ति, दीर्घतमा द्वारा वृषभ से वृषभ धर्म की प्राप्ति और फिर वृषभधर्मानुसार उनका अपने छोटे भाई औतथ्य की पत्नी के साथ सहवास, बृहस्पति द्वारा नदी में बहाना, वहाँ बलि द्वारा अपने रनवास में रखना, फिर दासी और बलि की पत्नी से बलि पुत्रों को पैदा करना, अन्त में गौतम ऋषि के रूप में विख्यात होना, फिर बृहद्रथ के २५ राजाओं की वंशावली, फिर नन्दवंश वर्णन, मौर्य वंश, गुप्त वंश, शुक्लवंशीय अन्धक वंशीय, आभीर, गदमी, यवन और तुषार (अंग्रेज) राजाओं का राज्यकाल वर्णन, उसके बाद अन्त में कलियुग की अन्त की स्थिति और सतयुग के आने की भविष्यवाणी तथा परिस्थितियों का वर्णन।

उत्तर भाग उपसंहार पाद ४

१. प्रलय का आख्यान—बीस ऋषियों का वर्णन, अमितभासी २० ऋषियों का वर्णन, बीस सुखों का अस्तित्व, चौदह मनुओं का वर्णन, स्वयम्भू को दक्ष धर्म, भव और ब्रह्म से उसी रूप के चार पुत्रों का वर्णन, प्रथम मेरुसावर्ण में दक्ष पुत्रों मरीचि आदियों और सुधर्मा के द्वादश और नौ का होना, द्वितीय सावर्ण में धर्म के पुत्रों का देवता होना, इन्द्र होना और सप्तर्षि होना, तृतीय सावर्ण में देवों की काम गमन जवाद्युति, चतुर्थ सावर्ण में रुद्र के पुत्रों का पंचगण होना, सब मन्त्रों के क्षीण होने पर संहार स्थिति, तब सब प्रपञ्च का प्रकृति में लीन हो जाना, ब्रह्मा के दिन की वर्णगणना अर्थात् सृष्टिकाल की गणना।

२. शिवपुर वर्णन—भूर्भुवः स्वः आदि सात कृत लोकों और सात अकृत लोकों के स्थानियों के साथ स्थानों का वर्णन—वैराजों की ब्रह्मस्वरूपता, परार्द्ध संख्या गणना, गणना करने योग्य संख्या और न गणना करने योग्य असंख्या विचार, क्रोशयोजनादि का परिमाण विचार, पृथ्वी से लेकर ध्रुवपर्यन्त योजनों की ऊँचाई का विचार, ध्रुव से ऊपर ब्रह्मलोक की योजनों में ऊँचाई का विचार, मनुष्य के दुष्कर्मों द्वारा अधोगति प्राप्त करने वाले नरकादिकों का भेद विवेचन, उस उस कर्म के करने से उस उस नरक की प्राप्ति का वर्णन, सब पंचभूत निर्मित प्राणियों की स्वयम्भू द्वारा बनायी गयी संख्या से गणना, लोकोत्तर वर्णन प्रसङ्ग में शिवपुर वर्णन।

३. प्रतिसर्ग वर्णन—भक्तियुक्त पुरुषों का शाश्वत रुद्रपद का प्राप्त करना अर्थात् रुद्र में विलीन हो जाना, संहार प्रसंग में पाँच भूतों का एक-दूसरे में लीन हो जाने के वर्णन, धर्म और अधर्मों का गुणमात्रात्मकता से वर्णन, तीन प्रकार के मोक्षों का वर्णन, स्वर्गीय देवों और मनुष्यों के विषय में दोष देखने से वैराग्य के उदय होने का वर्णन, सत्य क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, अक्षर, भोज्य, विभु, पुरुष आदि शब्दों का निर्वचन और अन्त में तीन प्रकार के प्रलयों का वर्णन।

४. ब्रह्माण्डावर्त वर्णन—ब्रह्मा की पुनः उत्पत्ति, इस चार पाद वाले वायु प्रोक्त ब्रह्माण्ड महापुराण के सुनने, पढ़ने, पढ़ाने से प्राप्त फल का वर्णन, ब्रह्माण्ड पुराण के सृजन से लेकर ऋषियों द्वारा उसके संरक्षण की शिष्य परम्परा का इतिहास, इस ब्रह्माण्ड पुराण के दानाधिकारियों का लक्षण वर्णन तथा अन्त में श्री महेश्वर के लिए नमन।

ब्रह्माण्डपुराण के अन्तर्गत ललितोपाख्यान की विषयानुक्रमणिका

५. अगस्त्ययात्राजनार्दन का आविर्भाव—तीर्थयात्रा प्रसङ्ग में महर्षि अगस्त्य का कांचीपुर पहुँचना और देवी कामाक्षी की पूजा करना, वहाँ पर उनके समक्ष भगवान् विष्णु का प्रकट होना और अगस्त्य मुनि से देवी ललितेश्वरी की कथा को वर्णन करने का अनुरोध करना।

६. हिंसादि रूप कथन—तीनों लोकों के शासक होने के कारण मद में चूर इन्द्र ने स्वेच्छा से विहार करने पर मध्य मार्ग में श्रीशंकर द्वारा भेजे गये ऋषि दुर्वासा के लिए तुष्टदेवी से प्राप्त माला से किसी विद्याधरी द्वारा माल्यार्पण किया जाना, सामने आये हुए इन्द्र के लिए दुर्वासा द्वारा उस दिव्य माला का अर्पण किया जाना और इन्द्र द्वारा उस माला को अपने हाथी ऐरावत के शिर में डाल देना, ऐरावत के शिर से भूमि पर गिरना और दुर्वासा द्वारा इन्द्र को शाप देना और फिर उस शाप से इन्द्र का राज्यविहीन होना, तब इन्द्र का गुरु बृहस्पति से अपने दुःख की कहानी कहना और फिर गुरु बृहस्पति द्वारा इन्द्र को पाप के फल का परिपाक और हिंसा के स्वरूप का वर्णन करना।

७. स्तेय पान कथन—विश्वासघात और धन हरण के प्रसङ्ग द्वारा काँचीपुर में रहने वाले वज्र नामक चोर के भूमि में गाड़े हुए धन के दशवें भाग को चुरा कर वीरदत्त किरात द्वारा जलाशय, देवाशय आदि का बनवाना तथा उसके मरने पर वज्राख्य चोर की मृत्यु पर्यन्त वायुमार्ग में स्थित होना, तब द्विजवर्मा (वीरदत्त) किरात की पत्नी द्वारा रुद्र की पूजा, करना तब वज्राख्य चोर की मृत्यु होना, तब उस चोर को स्वर्ग मिलना और वीरदत्त को शिवलोक को प्राप्त करना और फिर चोरी और सुरापान आदि करने के पाप का वर्णन और उससे प्राप्त फल का वर्णन।

८. अगम्य और आगमादि और उनका प्रायश्चित्त वर्णन—माता, भाभी, बहिन के साथ समागम करने के पाप का प्रायश्चित्त वर्णन तथा अपनी पत्नी के साथ समागम विधि वर्णन तथा अभक्ष्य भक्ष्य भोजन विधान।

९. देवासुर अमृत मंथन—कश्यप पुत्र दनु की पुत्री से उत्पन्न पुत्र देवरूप का इन्द्र द्वारा शिर काटने के पाप से तथा दुर्वासा ऋषि के शाप से इन्द्र सहित सब देवों का राज्यश्री से विहीन होना, फिर इन्द्र का भगवान् विष्णु के पास जाना, वहाँ उन्हें असुरों से मिल कर समुद्र मन्थन का परामर्श देना और यह कहना कि समुद्र में से जो अमृत निकलेगा, उसे मैं छल द्वारा देवताओं को पिला दूँगा, तब सब देवता अमर हो जायेंगे। अतः देवों दानवों का सागर मन्थन में लग जाना, सागर मन्थन में दैत्यों की पराजय।

१०. मोहिनी का प्रकट होना, मलकासुर वध—समुद्र मन्थन में प्राप्त अमृत को लेकर देवों और दैत्यों में युद्ध होना, तब विष्णु का मोहिनी रूप धारण कर अमृत बाँटना और फिर समस्त अमृत देवों को दे देना और फिर पुनः देवदानव संग्राम होना तथा अमृतपान के कारण देवों की जय और दैत्यों की पराजय होना, विष्णु द्वारा मोहिनी रूप धारण की चर्चा सुनकर शिव का पार्वती के साथ विष्णु के पास आना और उनसे उस मोहिनी रूप को धारण करने का निवेदन करना, तब विष्णु का मोहिनी रूप धारण करना तो उनको देख कर शिव का मोहित होकर उस मोहिनी के पीछे दौड़ना और फिर उनके वीर्यपात से महाबल का जन्म होना, उसके बाद भण्डासुर और उसकी राज वंशावली और ललिता देवी की उत्पत्ति।

भण्डासुर की कहानी

११. भण्डासुर की उत्पत्ति—शंकर द्वारा भस्म किये गये राख से भण्डासुर की उत्पत्ति, गणेशोपदिष्ट शतरुद्री जाप करने के कारण भगवान् शंकर द्वारा उसे साठ हजार वर्ष तक अखण्ड राज्य करने का वरदान देना।

१२. ललिताप्रादुर्भाव—भण्डासुर का शोणितपुर में साठ हजार वर्ष तक राज्य करना, अपने भ्रष्ट राज्य को पुनः प्राप्त करने हेतु इन्द्रप्रस्थ में इन्द्र का ललिता देवी की पूजा करना, भण्डासुर द्वारा पूजा में विघ्न पहुँचाना।

१३. ललिता देवी की स्तुति—ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं द्वारा ललिता शक्ति की स्तुति करना।

१४. मदनकामेश्वर प्रादुर्भाव—अलौकिक रूप सौन्दर्य के अनुरूप वर हेतु विष्णु, ब्रह्मा का विचार करना और तब करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य को लेकर भगवान् शंकर का प्रकट होना।

१५. महादेवी शंकर विवाहोत्सव वर्णन—ललितादेवी का शंकर के साथ विवाह और वैवाहिक महोत्सव में कामधेनु कल्पादि सदा समृद्धि देने वाले पदार्थों का उस नगर में वास होना, समस्त देवों द्वारा अपने अपने अनुसार वैवाहिक उपहार प्रस्तुत करना और उनकी प्रसन्नतार्थ वहाँ देवों का विकास।

१६. सेना सहित विजय यात्रा—देवी ललिता का भण्डासुर के साथ युद्ध के लिए तत्पर होना, ललिता देवी के आयुध और अश्वारूढ़ शक्तियों का वर्णन।

१७. दण्डिनाथाश्यामलसेना यात्रा—दण्डिनाथ की पैदल सेना के पदार्पण का वर्णन तथा दण्डिनाथा के आयुधों और सैनिक शक्तियों का वर्णन।

१८. ललितापरमेश्वरी सेना जययात्रा—महाराज्ञी ललिता का युद्ध के लिए प्रस्थान करना और उनकी सैन्यशक्तियों का वर्णन तथा ललिता के पच्चीस नामों का वर्णन।

१९-२० श्रीचक्रराजरथ तथा ज्ञेयचक्रपर्वस्थ देवतानामों का प्रकाशन, किरिचक्ररथ में देवियों के नामों का वर्णन—ललिता और भण्डासुर का युद्ध प्रारम्भ वर्णन।

२१. भण्डासुर अहंकार—भण्डासुर द्वारा अपने नगर की सुरक्षा करना, भण्डासुर के भाई विषंग को मन्त्री कुटिलाक्ष द्वारा युद्ध के लिए भेजना।

२२. दुर्मद कुरुण्ड वध वर्णन—ललिता देवी की सेनापति संपत्करी के साथ भण्डासुर के सेनापति और उसके भाई कुरण्ड का युद्ध और उस युद्ध में दोनों का वध।

२३. करंकादि पाँच सेनापतिवधवर्णन—भण्डासुर की कुटिलाक्ष के साथ युद्धविषयक मन्त्रणा करना और उसके परामर्श से करंकादि पाँच सेनापतियों को युद्ध के लिए भेजना, वहाँ राक्षस सेना द्वारा सर्पिणियों को पैदा करने वाला अस्त्र प्रहार करना और शक्ति सेना द्वारा नेवले पैदा करने वाला अस्त्र पैदा कर सर्पिणियों का संहार करना।

२४. बलाहक आदि सात सेनापति वध वर्णन—भण्डासुर द्वारा सात सेनापतियों को प्रकाश से चकाचौंध करने वाले सूर्य यन्त्र के साथ युद्धक्षेत्र भेजना तथा उनके द्वारा शक्ति सेना को तेज प्रकाश से व्याकुल कर देना, तब दण्डिनाथा द्वारा अन्धकार के रथ पर सवार होकर उनका वध करना।

२५. विषंगपलायन वर्णन—युद्ध में त्रिलोक विजयी सेनापति के मरने से भण्डासुर का चिन्तित होना और फिर अपने बहादुर भाई विषंग को युद्ध क्षेत्र में भेजना और साथ में पन्द्रह सेनापतियों और १५ अक्षौहिणी सेना को भेजना तथा रात्रि के समय सोती हुई शक्तिसेना पर प्रहार करना, वहाँ घोर युद्ध होना तथा उस युद्ध में विषंग का युद्धक्षेत्र से भागना।

२६. भण्डपुत्र वध—देवी ललितेश्वरी के आदेश से युद्धशिविर की रक्षा के लिए शिविर के चारों ओर बहुत ऊँचा अग्नि प्राकार का निर्माण कराना और फिर युद्धक्षेत्र में भण्डासुर द्वारा भेजे गये भण्डासुर के पुत्रों के साथ नौ वर्ष की ललिता कुमारी का युद्ध होना और उस युद्ध में कुमारी द्वारा भण्डासुर के पुत्रों का दो सौ अक्षौहिणी सेना के साथ वध करना।

२७. गणनाथपराक्रम वर्णन—भण्डासुर द्वारा विशुक्र को युद्धक्षेत्र में भेजना और विशुक्र द्वारा मायावी

युद्ध को प्रारम्भ कर शक्तिसेना को आतंकित करना तब ललितेश्वरी के मुख से गणनाथ का उत्पन्न होना और गणनाथ के युद्ध कौशल से भण्ड और विशुक्र का युद्धक्षेत्र से पलायन करना।

२८. विशुक्र विषंगवध वर्णन—भण्डासुर के दो पुत्रों विषंग और विशुक्र का विशाल सेना के साथ युद्ध क्षेत्र में आना और उनका ललिता देवी की सेनापति दण्डिनाथा और मन्त्रिनाथा का किरिचक्ररथ और गेयचक्ररथ पर सवार होकर युद्ध करना और भण्डासुर के दोनों भाइयों विशुक्र और विषंग का वध करना।

२९. भण्डासुर वध वर्णन—भण्डासुर का कुटिलाक्ष के साथ मन्त्रणा करना और कुटिलाक्ष के साथ विशाल सेना लेकर ललिता देवी के साथ अनेकों प्रकार के आसुर अस्त्रों एवं असुरों को उत्पन्न कर युद्ध करना तथा ललिता देवी द्वारा सबका संहार करना। वहाँ भण्डासुर द्वारा हिरण्यकशिपु, हिरयाक्ष, रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, केशादि को उत्पन्न कर युद्ध करना तथा ललिता द्वारा नरसिंह, वाराह, राम, लक्ष्मण, कृष्ण आदि को उत्पन्न कर सबका संहार करना, अन्त में ललितेश्वरी द्वारा भण्डासुर वध।

३०. मदनपुनर्भव वर्णन—शिव पार्वती विवाह की कथा, कार्त्तिकेय की जन्मकथा, तारकासुर वध वर्णन, इन्द्र पुत्री देवसेना का कार्त्तिकेय के साथ विवाह वर्णन।

३१. सप्तकक्ष्या मतंगकन्या उत्पत्ति वर्णन—श्रीललिता द्वारा भण्डासुर को मार देने पर ब्रह्मा आदि देवताओं से प्रेरित विश्वकर्मा और मयदानव द्वारा हेमकूट आदि नवीन पर्वतों पर लवणादि और सात समुद्रों पर विचित्र गोपुरमुकुट द्वार, शाल, उद्यान आदि से युक्त ललिता देवी और मन्त्रिणी के लिये सात कक्ष्यों वाले नगर का निर्माण करना और फिर मतंग कन्या का प्रादुर्भाव होना।

३२. श्रीनगर त्रिपुरा सप्तकक्षापालक देवता प्रकाशन वर्णन—श्रीललिता के लिये दिव्य श्रीनगर का निर्माण।

३३. पुष्पराग प्राकारादिमुक्ताकारान्त सप्तकक्षान्तर कथन—रत्नमयगृह में ललिता देवी की रस रसायन सिद्ध आराधकों, सिद्धों, अप्सराओं और गोरक्षों के लिये बनाये गये श्रीनगर का वर्णन, रुद्रालोक का वर्णन।

३४. दिक्पालों द्वारा शिवलोक का अन्तर—महारुद्र और दूसरे रुद्रों के द्वारा श्री ललिता की आराधना। चन्द्रशेखर के साथ साथ अन्य देवों द्वारा श्रीललिता की स्तुति, पूजा आदि का वर्णन।

३५. महापद्माटवी अर्घ्यस्थापन कथन—महाराज्ञी श्रीललिता देवी की अति शानदार प्रभुसत्ता का वर्णन, अनेकों मार्तण्ड, भैरव और शीत, चन्द्र आदि द्वारा श्रीललितेश्वरी की स्तुति, पूजा आदि का वर्णन। महापद्माटवी में शक्तियों का आगमन तथा उस श्रीनगर में अग्नि, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की उपस्थिति वर्णन।

३६. चिन्तामणि गृह के अन्दर की कथा का वर्णन—चिन्तामणि गृह का वर्णन, देवियों के आवासों का वर्णन, शक्तियों द्वारा देवी की स्तुति, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिशाली श्रीचक्र का वर्णन।

३७. गृहराज के अन्दर का कथन—दिव्यगृहराजभवन में ललिता देवी की पजा अर्चना, शिव और ललिता का अलौकिक सौन्दर्य वर्णन।

३८. मन्त्रराज साधन कथन—महादेवी ललिता के अप्रतिम और अलौकिक शृङ्गारिक रूप सौन्दर्य का वर्णन और उनकी पूजा का फल (प्रभाव) वर्णन।

३९. काञ्चीय कामक्षी वर्णन—काञ्चीपुरम में महादेवी ललितेश्वरी काकामाक्षी के रूप में वर्णन तथा वहाँ पूजा करने का फल वर्णन तथा दशरथादि को वहाँ पूजन करने से फल प्राप्ति का वर्णन।

४०. काञ्चीपुर माहात्म्य—काञ्चीपुरम में खेल-खेल में गौरी द्वारा शिव जी की आंखों को हाथों से ढक

देने पर समस्त संसार में अन्धकार छा जाने से सांसारिक क्रियाओं के संचालन बन्द होने के वर्णन, जिस पर शिव द्वारा गौरी का त्याग करना और गौरी का दुःखित होना और बाद शिव और गौरी का एक हो जाने का वर्णन। काञ्चीपुरम में कम्पानदी में स्नान करने का फल कथन और वहाँ परपूजा करने का फल वर्णन।

४१. श्रीविद्यायन्त्र उपासना—श्रीविद्या के ध्यान करने और पूजा आराधना करने से सभी प्रकार की मनोकामनाओं का पूर्ण हो जाना।

४२. देवी पूजा में मुद्रा—कामाक्षी देवी की पूजा में हाथ की आकृतियों (मुद्राओं) द्वारा पूजा करने का महत्त्व वर्णन।

४३. श्रीदेवीपूजन दीक्षा कथन—सहस्राक्षर विद्या के साथ देवी की पूजा के लिये विधि विधान, शिक्षा अथवा पूजा के विषय गुरु का महत्त्व और गुरु शिष्य सम्बन्ध वर्णन।

४४. देवी पूजा प्रकार वर्णन—कामाक्षी देवी की पूजा के लिये विधि विधान सावधानियाँ।

***

विषयानुक्रमणिका

मध्य भाग उपोद्घात पाद-३

उत्तर भाग उपसंहार पाद-४

ललितोपाख्यान

***

।।ब्रह्माण्डमहापुराणपूर्वभागप्रारम्भः।।

।।श्रीः।।

ब्रह्माण्डमहापुराण

।।श्रीगणेशाय नमः।। ।।श्री सरस्वत्यै नमः।। ।।श्रीरामचन्द्राय नमः।।

।।ॐ नमः शिवाय।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे प्रथम प्रक्रिया पादे

कृत्यसमुद्देशो नाम

प्रथमोऽध्यायः

नमोनमः क्षये सृष्टौ स्थितौ सत्त्वमयाय वा। नमो रजस्तमःसत्त्वत्रिरूपाय स्वयंभुवे।।१।।
जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा। अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना।।२।।
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्वज्ञमपराजितम्। प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम्।।३।।
ज्ञानमप्रतिमं तस्य वैराग्यं च जगत्पतेः। ऐश्वर्य्यं चैव धर्मश्च सद्भिः सेव्यं चतुष्टयम्।।४।।
इमान्नरस्य वै भावान्नित्यं सदसदात्मकान्। अविंशकः पुनस्तान्वै क्रियाभावार्थमीश्वरः।।५।।
लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय योगवित्। असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च।।६।।

।।श्री।।

श्रीगणेशाय नमः।।श्रीसरस्वत्यै नमः।। श्री रामचन्द्रायनमः।।

ॐ नमः शिवाय

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग प्रथम प्रक्रिया पाद

अध्याय-१

कृत्यसमुद्देश

सृष्टि, स्थिति तथा विनाश में सत्त्वमय (सदा रहने वाले, सत्व, रज और तम तीनों रूपों) में स्थित स्वयं उत्पन्न होने वाले परमात्मा को नमस्कार है।।१।। अजन्मा, विश्वरूपधारी, प्रकृति के सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से जो परे है; परन्तु अनन्त कल्याण, अजरता, अमरता गुणों से जो सम्पन्न हैं, उसी प्रभु को जो हरि रूप से समस्त लोकों को धारण किये हुए हैं।।२।। जो सर्वज्ञ अपराजेय और लोकों की रचना करने वाले हैं तथा भूत, भविष्य और वर्तमान के स्वामी तथा जिसने सब कुछ जीत लिया है। उस जगत्पति के अनुपम ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म चारों का विद्वानों द्वारा सेवन करना चाहिए।।३-४।। मनुष्यों के भाव नित्य सत् और असदात्मक हैं। उन्हीं को क्रिया रूप में लाने के लिये उन्हीं भावों में न प्रवेश करने वाले, लोकतत्त्व जानने वाले, योगतत्त्व के ज्ञाता ईश्वर, सभी चर-अचर भूतों की रचना

तमहं विश्वकर्माणं सत्पतिं लोकसाक्षिणम्। पुराणाख्यानजिज्ञासुर्गच्छामि शरणं विभुम्॥७॥
पुराणं लोकतत्त्वार्थमखिलं वेदसंमितम्। प्रशशंस स भगवान् वसिष्ठाय प्रजापतिः॥८॥
तत्त्वज्ञानामृतं पुण्यं वसिष्ठो भगवानृषिः। पौत्रमध्यापयामास शक्तेः पुत्रं पराशरम्॥९॥
पराशरश्च भगवान् जातूकर्ण्यमृषिं पुरा। तमध्यापितवान्दिव्यं पुराणं वेदसंमितम्॥१०॥
अधिगम्य पुराणं तु जातूकर्ण्यो विशेषवित्। द्वैपायनाय प्रददौ परं ब्रह्म सनातनम्॥११॥
द्वैपायनस्ततः प्रीतः शिष्येभ्यः प्रददौ वशी। लोकतत्त्वविधानार्थं पंचभ्यः परमाद्भुतम्॥१२॥
विख्यापनार्थं लोकेषु बह्वर्थं श्रुतिसंमतम्। जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशंपायनमेव च॥१३॥
चतुर्थं पैलवं तेषां पंचमं लोमहर्षणम्। सूतमद्भुतवृत्तान्तं विनीतं धार्मिकं शुचिम्॥१४॥
अधीत्य च पुराणं च विनीतो लोमहर्षणः। ऋषिणा च त्वया पृष्टः कृतप्रज्ञः सुधार्मिकः॥१५॥

वसिष्ठश्चापि मुनिभिः प्रणम्य शिरसा मुनीन्।
भक्त्या परमया युक्तः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्॥१६॥

अवाप्तविद्यः सन्तुष्टः कुरुक्षेत्रमुपागमत्। सत्रे सवितते यत्र यजमानानृषीञ्शुचीन्॥१७॥
विनयेनोपसंगम्य सत्रिणो रोमहर्षणम्। विधानतो यथाशास्त्रं प्रज्ञयातिजगाम ह॥१८॥
ऋषयश्चापि ते सर्वे तदानीं लोमहर्षणम्। दृष्ट्वा परमसंहृष्टाः प्रीताः सुमनसस्तथा॥१९॥
सत्कारैरर्च्चयामासुरर्घ्यपाद्यादिभिस्ततः। अभिवाद्य मुनीन्सर्वान् राजाज्ञामभिगम्य च॥२०॥

करने वाले, सत्पति लोकसाक्षी भगवान् की, पुराण और आख्यान विद्या जानने की इच्छा रखने वाला मैं शरणागत होता हूँ।।५-७।। वेदसम्मत तथा लोकतत्व समर्थित सम्पूर्ण पुराण को भगवान् प्रजापति ने प्रथमतः ऋषि वशिष्ठ को बताया।।८।। ऋषि वशिष्ठ ने अपने पौत्र तथा शक्तिपुत्र पराशर को पवित्र ज्ञानामृत पुराणों को पढ़ाया।।९।। और पराशर ने भगवान् जातुकर्ण्य ऋषि को उस प्राचीन काल में ही वेद सम्मित दिव्य पुराणों को पढ़ाया।।१०।। परमज्ञानी, जातुकर्ण ने पुराणों के अध्ययन से प्राप्त विशिष्ट ज्ञान के साथ पुराण विद्या को सनातन ब्रह्मस्वरूप महाज्ञानी द्वैपायन को प्रदान किया।।११।। तत्पश्चात् इन्द्रियजयी द्वैपायन ने लोकतत्त्व के विस्तार के लिए अद्भुतज्ञानसम्पन्न पांच श्रेष्ठ शिष्यों को पुराण ज्ञान प्रदान किया।।१२।।

विश्व में पुराणों के ज्ञान के विस्तार और प्रसार के लिए तथा अनेकार्थयुक्त, श्रुति सम्मत पुराण ज्ञान के व्याख्यान के लिये जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन, पैल और पाँचवें लोमहर्षण को इस विद्या को दिया। साथ ही द्वैपायन ने यह अद्भुत आख्यान-कथा विनीत, धार्मिक और पवित्र सूत को भी पढ़ायी।।१३-१४।। सूत लोमहर्षण ने पुराण विद्या को द्वैपायन से पढ़ा तथा जब उन्होंने पढ़ लिया, तब प्रज्ञा प्राप्त, विशिष्ट धर्मानुरागी ऋषियों ने लोमहर्षण से पुराणविद्या प्राप्त करने की जिज्ञासा की। वहाँ मुनियों द्वारा शिर झुकाकर महर्षि वशिष्ठ को प्रणाम कर तथा परमभक्ति युक्त होकर महर्षि वशिष्ठ की प्रदक्षिणा कर लेने पर, लोमहर्षण पुराण विद्या प्राप्त कर कुरुक्षेत्र जा पहुंचे। जहाँ प्रचलित सत्र में पवित्र ऋषियों द्वारा ज्ञानयज्ञ चल रहा था। तब ऋषिगण ज्ञान सत्र संचालक लोमहर्षण के पास विनयपूर्वक शास्त्रीयविधि के अनुसार ज्ञान पाने की इच्छा से पहुँचे।।१५-१८।। ऋषिगण तब लोमहर्षण का दर्शन कर परम प्रसन्न हुए। तब सभी का लोमहर्षण ने भी अर्घ्यपाद्यादि से सत्कार कर, उन आगत ऋषियों की अर्चना की। राजाज्ञा को ध्यान में रखकर सभी मुनियों का अभिवादन हो जाने पर सदस्यों द्वारा

ऋषिभिस्तैरनुज्ञातः पृष्टः सर्वमनामयम्। अभिगम्य मुनीन्सर्वांस्तेजो ब्रह्म सनातनम्।
सदस्यानुमते रम्ये स्वास्तीर्णे समुपाविशत्॥२१॥
उपविष्टे तदा तस्मिन्मुनयः शंसितव्रताः। मुदान्विता यथान्यायं विनयस्थाः समाहिताः॥२२॥
सर्वे ते ऋषयश्चैनं परिवार्य महाव्रतम्। परमप्रीतिसंयुक्ता इत्यूचुः सूतनंदनम्॥२३॥
स्वागतं ते महाभाग दिष्ट्या च त्वां निरामयम्।
पश्याम धीमन्नत्रस्थाः सुव्रतं मुनिसत्तमम्॥२४॥
अशून्या मे रसाद्यैव भवतः पुण्यकर्मणः। भवांस्तस्य मुनेः सूत व्यासस्यापि महात्मनः॥२५॥
अनुग्राह्यः सदा धीमाञ् शिष्यः शिष्यगुणान्वितः।
कृतबुद्धिश्च ते तत्त्वमनुग्राह्यतया प्रभो॥२६॥
अवाप्य विपुलं ज्ञानं सर्वतश्छिन्नसंशयः। पृच्छतां नः सदा प्राज्ञ सर्वमाख्यातुमर्हसि॥२७॥
तदिच्छामः कथां दिव्यां पौराणीं श्रुतिसंमिताम्।
श्रोतुं धर्मार्थयुक्तां तु एतद्व्यासाच्छ्रुतं त्वया॥२८॥
एवमुक्तस्तदा सूतस्त्वृषिभिर्विनयान्वितः। उवाच परमप्राज्ञो विनीतोत्तरमुत्तमम्॥२९॥
ऋषेः शुश्रूषणं यच्च तस्मात्प्रज्ञा च या मम।
यस्माच्छुश्रूषणार्थं च तत्सत्यमिति निश्चयः॥३०॥
एवं गतेऽर्थे यच्छक्यं मया वक्तुं द्विजोत्तमाः। जिज्ञासा यत्र युष्माकं तदाज्ञातुमिहार्हथ॥३१॥
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो मधुरं तस्य भाषितम्। प्रत्यूचुस्ते पुनः सूतं बाष्पपर्याकुलेक्षणम्॥३२॥
भवान् विशेषकुशलो व्यासं साक्षात्तु दृष्टवान्।
तस्मात्त्वं संभवं कृत्स्नं लोकस्येमं विदर्शय॥३३॥

निवेदन को ध्यान में रखकर सभी मुनिगण बिछे हुए रम्य आसन पर सम्यक् रूप से बैठ गये।।१९-२१।। बैठ जाने पर सभी मुनियों को सनातन ब्रह्म-तेज से दीप्त जानकर तथा शिष्टाचारपूर्वक प्रसन्नता सहित व्रतधारी मुनियों से कुशलक्षेम पूछा गया। सभी ऋषियों ने महाव्रतधारी सूतपुत्र रोमहर्षण से परम प्रीतिपूर्वक कहा।।२२-२३।।हे महाभाग! आपका स्वागत है। हमारा यह सौभाग्य है कि हम सुन्दर व्रत वाले निष्पाप मुनियों में श्रेष्ठ मुनि को देख रहे हैं।।२४।। आपको देखकर हम कृतार्थ हो गये हैं। आप उन महात्मा व्यास तथा महात्मा सूत के भी कृपापात्र, बुद्धिमान्, शिष्य के गुणों से युक्त शिष्य हैं। उनके कृपापात्र होने के कारण प्राप्त ज्ञान से दृढ़ बुद्धिवाले, सभी संशयों से मुक्त हो गये हैं। हम लोग द्वारा पूछे जाने पर, सब कुछ बताने में समर्थ है।।२५-२७।। हम लोग श्रुति सम्मत, धर्म और अर्थ से युक्त पुराणों की कथा जो आपने महर्षि व्यास से सुनी है, उसे सुनने की इच्छा करते हैं।।२८।। इस प्रकार मुनियों द्वारा सूत को कहे जाने पर, परमज्ञानवान् सूत नन्दन ने परम विनय से कहा कि ऋषियों की जो मैंने सेवा-सुश्रषा की है, उससे जो मैंने प्रकृष्ट ज्ञान प्राप्त किया है, जिस ज्ञान को आप सुनने की इच्छा रखते हैं तथा जो सत्य है, ऐसा निश्चय है। जिस ज्ञान को जानने की आपकी इच्छा है, उसको बताने की आप मुझे आज्ञा दो।।२९-३१।। सूत जी के इस मधुर वचन को सुनकर मुनयों ने आँखों में आँसू भरे हुए सूत जी से कहा कि आप इस ज्ञान के विषय में विशेष कुशल हैं; क्योंकि इस ज्ञान

यस्य यस्याऽन्वये ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम्।
तेषां पूर्वविसृष्टिं च विचित्रां त्वं प्रजापतेः॥
सत्कृत्य परिपृष्टः स महात्मा रोमहर्षणः॥३४॥
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तमः॥

सूत उवाच

यो मे द्वैपायनप्रीतः कथां वै द्विजसत्तमाः॥३५॥
पुण्यामाख्यातवान्विप्रास्तां वै वक्ष्याम्यनुक्रमात्। पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना॥३६॥
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं नैमिषीयैर्महात्मभिः। सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च॥३७॥
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्। प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायां स्यात्परिग्रहः॥३८॥
अनुषङ्ग उत्पोद्धात उपसंहार एव च। एवं पादास्तु चत्वारः समासात्कीर्तिता मया॥३९॥
वक्ष्यामि तान्पुरस्तात्तु विस्तरेण यथाक्रमम्। प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा श्रुतम्॥४०॥
अनंतरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः। अङ्गानि धर्मशास्त्रं च व्रतानि नियमास्तथा॥४१॥
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्। महदादिविशेषांतं सृजामीति विनिश्चयः॥४२॥

के ज्ञाता महर्षि वेदव्यास को आपने साक्षात् (प्रत्यक्ष रूप से) देखा है। इसलिए आप इस समस्त संसार का सार बताने में समक्ष हैं। अतः हमें इस संसार सार का विशेष रूप दिखाओ।।३२-३३।। तब ऋषियों ने कहा कि हे सूतजी संसार में जिस जिस के जो जो ज्ञान हैं, उन-उन को हम जानना चाहते हैं। उनके पूर्व प्रजापति की विशेष सृष्टि जो विचित्र है, उसे हम जानना चाहते हैं। इस प्रकार पूछे जाने पर महात्मा रोमहर्षण सब ऋषियों का आदर करके विस्तार से पूर्व से लेकर कथा कहने लगे।।३४-३४½।।

सूतजी बोले—जो मेरी द्वैपायन से प्रीति हुई, जिस पुण्य कथा को ब्राह्मणों ने कहा, उसको मैं क्रम से अवश्य कहूँगा। तब जिस पुराण को वायुदेव ने कहा, उसको सम्यक् प्रकार से कहूँगा।।३४½-३६।। प्राचीन काल में महात्मा नैमिषारण्य वासी मुनियों द्वारा पूछने से बताया गया कि सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंश्यों का अनुचरित ये पाँच पुराण के लक्षण हैं। अर्थात् इस पुराण में सृष्टि, प्रलय का वर्णन, राजवंशों का वर्णन उसके बाद मन्वन्तर (कालगणना) और राजवंशों में उत्पन्न हुए व्यक्तियों के चरित्रों का वर्णन है तथा यही सभी पुराणों का लक्षण है। ये ही पाँच विषय सभी पुराणों में कुछ अन्तर से वर्णित हैं, वही इसमें भी है। इस पुराण में चार पाद हैं, पहला पाद प्रक्रिया पाद है, जिसमें कथाओं का परिग्रह है।।३७-३८।। अनुषङ्ग, उत्पोद्धात और उपसंहार इस प्रकार चार पाद संक्षेप में मैंने वर्णन किये हैं।।३९।। उन सबको मैं पहले विस्तार से क्रमानुसार कहूँगा। पहले सब शास्त्रों के सार पुराण को ब्रह्मा द्वारा सुना गया।।४०।। उसके बाद ब्रह्मा जी के चारों मुखों से चार वेदों का निर्गमन हुआ अर्थात् चार मुखों से चार वेद निःसृत हुए।[1] उन ब्रह्मा जी के अंग धर्मशास्त्र हैं तथा व्रत और नियम हैं।।४१।। अव्यक्त कारण जो है, वह नित्य है और सत् असत् आत्मक है। अव्यक्त कारण प्रकृति है, जो सत् और असत् दोनों प्रकार

---

१. यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है; क्योंकि प्रत्येक धार्मिक ग्रन्थ में उसके महत्त्व को दर्शाने के लिए ऐसा कहा गया है। वेदों में कहा गया है कि वेदों का ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है। सभी पुराण भी ऐसा ही कहते हैं। ईसा मसीह का वाइविल, इस्लाम का कुरान सब अपने को ईश्वर निर्मित ही मानते हैं, परन्तु यह विश्वसनीय नहीं है; परन्तु ये सब ईश्वर प्रेरित ज्ञान है, यह माना जा सकता है।

अण्डं हिरण्मयं चैव ब्रह्मणः सूतिरुत्तमा। अण्डस्यावरणं वार्धिरपामपि च तेजसा॥४३॥
वायुना तस्य वायोश्च खेन भूतादिना ततः। भूतादिर्महता चैव अव्यक्तेनावृतो महान्॥४४॥
अन्तर्वर्ति च भूतानामण्डमेवोपवर्णितम्। नदीनां पर्वतानां च प्रादुर्भावोऽत्र पठ्यते॥४५॥
मन्वंतराणां सर्वेषां कल्पानां चैव वर्णनम्। कीर्त्तनं ब्रह्मवृक्षस्य ब्रह्मजन्म प्रकीर्त्यते॥४६॥
अतः परं ब्रह्मणश्च प्रजासर्गोपवर्णनम्। अवस्थास्तत्र कीर्त्यंते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥४७॥
कल्पानां संभवश्चैव जगतः स्थापनं तथा। शयनं च हरेरप्सु पृथिव्युद्धरणं तथा॥४८॥
सविशेषः पुरादीनां वर्णाश्रमविभाजनम्। ऋक्षाणां ग्रहसंस्थानां सिद्धानां च निवेशनम्॥४९॥
योजनानां यथा चैव संचरो बहुविस्तरः। स्वर्गस्थानविभागश्च मर्त्यानां शुभचारिणाम्॥५०॥
वृक्षाणामौषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्त्तनम्। देवतानामृषीणां च द्वे सृती परिकीर्तिते॥५१॥
आम्रादीनां तरूणां च सर्जनं व्यंजनं तथा। पशूनां पुरुषाणां च सम्भवः परिकीर्तितः॥५२॥
तथा निर्वचनं प्रोक्तं कल्पस्य च परिग्रहः। नव सर्गाः पुनः प्रोक्ता ब्रह्मणो बुद्धिपूर्वकाः॥५३॥

की है अर्थात् प्रकृति से अन्य सब की उत्पत्ति है; परन्तु प्रकृति की उत्पत्ति किसी से नहीं अर्थात् प्रकृति अविकृति है, प्रकृति किसी का विकार नहीं, सभी तत्त्व उसके विकार है। प्रकृति से महतत्त्व (बुद्धि) से विशेष तक के तत्त्वों की उत्पत्ति हुयी है।।४२।। अण्ड कटाह और हिरणमय ये दोनों ब्रह्मा की उत्तम सृष्टि है। अण्ड का आवरण जलों का समुद्र है, जल से ब्रह्माण्ड पैदा हुआ, जल अग्नि से, अग्नि वायु से, वायु आकाश से, आकाश अहं तत्त्व से, अहं तत्त्व बुद्धि से तथा बुद्धि प्रकृति से उत्पन्न हुए। इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी जल से, जल अग्नि से, अग्नि वायु से, वायु आकाश से, आकाश अहं तत्त्व से, अहं तत्त्व महतत्त्व (बुद्धि) से तथा महतत्त्व अव्यक्त प्रकृति से आवृत अर्थात् ये व्यक्त पञ्चमहाभूत आदि अव्यक्त अर्थात् प्रकृति से आवृत हैं।।४३।।

भाव यह है कि ब्रह्माण्ड में जो भी भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश दिखायी दे रहे हैं, वे सब प्रकृति (Nature) से आवृत हैं अर्थात् उस प्रकृति के ही विकार हैं।।४४।। अतः इस पुराण में पञ्चमहाभूतों के अण्ड का ही उपवर्णन है। यहाँ नदियों और पर्वतों का प्रादुर्भाव पढ़ा जाता है।।४५।। इस पुराण में मन्वन्तरों और सभी कल्पों का वर्णन है और ब्रह्म वृक्ष का वर्णन तथा ब्रह्म के जन्म का वर्णन किया जाता है।।४६।। इसके बाद ब्रह्मा की सन्तति का वर्णन किया गया है। वहीं पर अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा की अवस्थाओं का वर्णन किया जाता है।।४७।। और कल्पों की उत्पत्ति तथा संसार की स्थापना, भगवान् विष्णु का जलों में शयन तथा पृथ्वी का उद्धरण वर्णित हैं।।४८।। पुर (नगर) आदियों की विशेषता, नागरिकों में वर्ण और आश्रम का विभाजन, तत्कालीन ऋक्ष जातियों के घरों का निर्माण, सिद्धों के रहन-सहन का वर्णन है।।४९।। उसके बाद शुभ आचरण करने वाले मर्त्यशील मनुष्यों के स्वर्ग और स्थानों के विभाग का वर्णन योजनों में बहुत विस्तार के साथ किया गया है।।५०।।

इसके बाद वृक्षों लताओं और औषधियों का वर्णन है, तब फिर ऋषियों और देवताओं दोनों की उत्पत्ति वर्णित है।।५१।। उसके बाद आम्र[१] आदि वृक्षों का सर्जन और व्यंजन (खाने का लाभ) तथा पुरुषों और पशुओं का उत्पन्न होना तथा निर्वचन और कल्प का परिग्रह वर्णित है और उसके बाद बुद्धिपूर्वक ब्रह्मा के नवसर्ग कहे गये हैं।।५३।।

१. वायुपुराण में आम्रादीनां के स्थान पर अन्नादीनां तथा तरुणां के स्थान पर तनूनां शब्द आये हैं, जिसके अनुसार अन्नों तथा शरीरों की उत्पत्ति अर्थ होता है। मेरी दृष्टि में आम्रादीनां शब्द अधिक उचित है, जो फलदार वृक्षों की उत्पत्ति का प्रतीक है।

त्रयो ये बुद्धिपूर्वास्तु तथा यल्लोकल्पनम्। ब्रह्मणोऽवयवेभ्यश्च धर्मादीनां समुद्भवः।।५४।।
ये द्वादश प्रसूयंते प्रजाकल्पे पुनः पुनः। कल्पयोरंतरे प्रोक्तं प्रतिसंधिश्च यस्तयोः।।५५।।
तमोमात्रावृतत्वात्तु ब्रह्मणोऽधर्मसंभवः। सत्त्वोदिद्रक्ताच्च देहाच्च पुरुषस्य च संभवः।।५६।।
तथैव शतरूपायां तयोः पुत्रास्ततः परम्। प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकृतयः शुभाः।।५७।।
कीर्त्यंते धूतपाप्मानस्त्रैलोक्ये ये प्रतिष्ठिताः। रुचेः प्रजापतेश्चोर्द्धमाकूत्यां मिथुनोद्भवः।।५८।।
प्रसूत्यामपि दक्षस्य कन्यानामुद्भवः शुभः। दाक्षायणीषु वाप्यूर्ध्वं शब्दाद्यासु महात्मनः।।५९।।

धर्मस्य कीर्त्यंते सर्गः सात्त्विकस्तु सुखोदयः।
तथाऽधर्मस्य हिंसायां तामसोऽशुभलक्षणः।।६०।।

भृग्वादीनामृषीणां च प्रजासर्गोपवर्णनम्। ब्रह्मर्षेश्च वसिष्ठस्य यत्र गोत्रानुकीर्त्तनम्।।६१।।

अग्नेः प्रजायाः संभूतिः स्वाहायां यत्र कीर्त्यते।
पितॄणां द्विप्रकाराणां स्वधायां तदनन्तरम्।।६२।।

पितृवंशप्रसंगेन कीर्त्यंते च महेश्वरात्। दक्षस्य शापः सत्याश्च भृग्वादीनां च धीमताम्।।६३।।
प्रतिशापश्च दक्षस्य रुद्रादद्भुतकर्मणः। प्रतिषेधश्च वैरस्य कीर्त्यंते दोषदर्शनात्।।६४।।
मन्वन्तरप्रसंगेन कालाख्यानं च कीर्त्यते। प्रजापतेः कर्द्दमस्य कन्यायाः शुभलक्षणम्।।६५।।
प्रियव्रतस्य पुत्राणां कीर्त्यंते यत्र विस्तरः। तेषां नियोगो द्वीपेषु देशेषु च पृथक् पृथक्।।६६।।

फिर तीन ये बुद्धि पूर्व हैं तथा जिनसे लोक की कल्पना की जाती है। फिर ब्रह्मा के अंगों से धर्मादि की उत्पत्ति वर्णित है।।५४।। जो बारह हैं तथा जो प्रजाकल्प में पुनः पुनः उत्पन्न किये जाते हैं। दोनों कल्पों के मध्य में उनकी प्रतिसंधि कही गयी है।।५५।। जब ब्रह्मा तमोगुण की अधिकता से आवृत होते हैं, तब ब्रह्मा से अधर्म की उत्पत्ति होती है तथा जब ब्रह्मा के शरीर में सत्त्व का उद्रेक होता है, तब सत्त्वोद्रेक वाले ब्रह्मा के शरीर से पुरुष की उत्पत्ति होती है।।५६।। अतः उसी प्रकार जब ब्रह्मा के शरीर में सत्त्व गुण का उद्रेक हुआ, तब शतरूपा में उन दोनों के पुत्र पैदा हुए, जो शुभ आकृतियों वाले प्रियव्रत उत्तानपाद थे।।५७।। तथा प्रसूति और आकूति पैदा हुए, जिनसे सृष्टि का विस्तार हुआ। पुनः जिनके स्मरण से लोग पवित्र हो जाते हैं। जिनमें लोक प्रतिष्ठित है, उनका वर्णन है। रुचि और प्रजापति दोनों की उत्पत्ति के बाद फिर आकूति से मैथुनात्मक सृष्टि, प्रसूति से दक्ष कन्याओं की उत्पत्ति, श्रद्धा आदि में महात्माओं की उत्पत्ति आदि बतायी गयी है।।५८-५९।।

फिर सात्त्विक धर्म की सृष्टि सात्त्विक गुण से हुई है और धर्म से सुख की उत्पत्ति होती है तथा अधर्म की हत्या (हिंसा) में तम का अशुभ लक्षण है, यह वर्णन किया गया है।।६०।। फिर भृगु आदि ऋषियों की सन्तानों की उत्पत्ति का वर्णन है। जहाँ ब्रह्मर्षि वशिष्ठ और उनके गोत्र की प्रशंसा वर्णित है।।६१।। अग्नि से प्रजा की संभूति जहाँ स्वाहा में वर्णन की जाती है। उसके बाद दो प्रकार के पितरों की उत्पत्ति स्वधा में हुयी।६२।। पिता के वंश के प्रसंग द्वारा सती और महेश्वर से दक्षयज्ञ का विध्वंश वर्णन किया जाता है। फिर दक्ष का शाप और सती का और बुद्धिमान् भृगु आदि का वर्णन है।।६३।। फिर दक्ष का प्रतिशाप रुद्र रूप भगवान् शिव के अद्भुत कर्म का वर्णन है और फिर वैर के न करने का तथा वैर में दोष दर्शन का वर्णन है।।६४।। फिर मन्वन्तर वर्णन प्रसङ्ग में काल का वर्णन किया गया है। उसके बाद प्रजापति कर्दम की कन्या के शुभ लक्षणों का वर्णन है।।६५।। जहाँ पर महाराजा

स्वायंभुवस्य सर्गस्य ततश्चाप्यनुकीर्त्तनम्। वर्षाणां च नदीनां च तद्भेदानां च सर्वशः॥६७॥
द्वीपभेदसहस्राणामन्तर्भावश्च सप्तसु। विस्तरान्मण्डलं चैव जम्बूद्वीपसमुद्रयोः॥६८॥
प्रमाणं योजनाग्रेण कीर्त्यंते पर्वतैः सह। हिमवान्हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च॥
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च कीर्त्यन्ते सप्त पर्वताः॥६९॥
तेषामन्तरविष्कंभा उच्छ्रायायामविस्तराः॥७०॥
कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तत्र निवासिनः। भारतादीनि वर्षाणि नदीभिः पर्वतैस्तथा॥७१॥
भूतैश्चोपनिविष्टानि गतिमद्भिर्ध्रुवैस्तथा। जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः॥७२॥
ततः स्वर्णमयी भूमिर्लोकालोकश्च कीर्त्यते। सप्रमाणा इमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी॥७३॥
रूपादयः प्रकीर्त्यन्ते करणात्प्राकृतैः सह। सर्वं चैतत्प्रधानस्य परिणामैकदेशिकम्॥७४॥
पर्यायपरिमाणं च संक्षेपणात्र कीर्त्यते। सूर्याचन्द्रमसोश्चैव पृथिव्याश्चाप्यशेषतः॥७५॥
प्रमाणं योजनाग्रेण सांप्रतैरभिमानिभिः। महेन्द्राद्याः शुभाः पुण्या मानसोत्तरमूर्धनि॥७६॥
अत ऊर्द्धगतिश्चोक्तासूर्यस्यालातचक्रवत्। नागवीथ्यवीथ्योश्च लक्षणं च प्रक्रीर्त्यते॥७७॥
कोष्ठयोर्लेखयोश्चैव मण्डलानां च योजनैः। लोकालोकस्य सन्ध्याया अह्नो विषुवतस्तथा॥७८॥
लोकपालाः स्थिताश्चोर्द्ध्वं कीर्त्यंते ते चतुर्दिशम्।
पितॄणां देवतानां च पन्थानौ दक्षिणोत्तरौ॥७९॥

प्रियव्रत के पुत्रों की कीर्ति विस्तार से वर्णित है। उनका द्वीपों और देशों में अलग अलग नियोग (वर्णित है)।।६६।। उसके बाद स्वायम्भुव मनु के सर्ग का वर्णन है। उसके बाद उस युग के देशों, नदियों और उनके सब भेदों का वर्णन है।।६७।। फिर हजारों द्वीपों के भेदों का सात द्वीपों में अन्तर्भाव किया गया है। अर्थात् हजारों प्रकार के द्वीपों को सात भाग में बाँटा गया है, जिससे यह पृथ्वी सप्तद्वीपा पृथ्वी कही जाती है, वहाँ पर विस्तार वाली चारों ओर जम्बूद्वीप और समुद्र का मण्डल है।।६८।। अनेकों योजन प्रमाण वाले पर्वतों से घिरा हुआ, वह जम्बूद्वीप है, जिसमें हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गी ये सात पर्वत वर्णित हैं।।६९।। उनकी ऊँचाई में कोई विस्तार नहीं अर्थात् असीमित ऊँचे-ऊँचे विष्कम्भ (शिखर) हैं।।७०।। वहाँ के निवासियों का निवासस्थान जिसका प्रमाण योजनों में दिया गया है, वह वर्णन किया गया है। भारत आदि देश नदियों तथा पर्वतों से घिरे हुए हैं।।७१।।

जो देश गतिशील और स्थिर रहने वाले प्राणियों वाले हैं। जम्बूद्वीप आदि द्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए हैं।।७२।। उसके बाद स्वर्णमयी भूमि लोक और अलोकों का वर्णन किया जाता है। ये लोक सभी सप्रमाण हैं और यह पृथ्वी सात द्वीपों वाली है।।७३।। उसके बाद प्रकृति से उत्पन्न पदार्थों के कारण से रूप आदि वर्णन किये गये हैं। ये सभी प्रधान प्रकृति में परिणाम के एक देशिक हैं अर्थात् सभी पदार्थ प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं।।७४।। यहाँ संक्षेप से सूर्य और चन्द्रमा का प्रकार और परिमाणं वर्णन किया गया है।।७५।। योजनों विस्तार वाले महेन्द्र आदि पर्वतों के शुभ और पुण्यशाली उत्तर शिखर पर मानसरोवर का वर्णन है।।७६।। इसके बाद सूर्य की अंगारे के चक्र के समान ऊर्ध्व गति बतायी गयी है, वहाँ नागवीथी और अवीथी के लक्षण बताये गये हैं।।७७।। फिर कोष्ठ और लेख मण्डलों के प्रकोष्ठ और रेखाओं को योजनों द्वारा बताया गया है तथा लोक अलोक की सन्ध्या का और दिन की विषुवत् रेखा को बताया गया है।।७८।। उसके बाद ऊपर लोकपाल स्थित हैं, जिनकी चारों दिशाओं में स्थिति बतायी गयी है।

गृहिणां न्यासिनां चोक्तो रजःसत्त्वसमाश्रयः।
कीर्त्यते च पदं विष्णोर्धर्माद्या यत्र च स्थिताः॥८०॥
सूर्याचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा।
कीर्त्यते धृतसामर्थ्यात्प्रजानां च शुभाऽशुभम्॥८१॥
ब्रह्मणा निर्मितः सौरः सादनार्थं च स स्वयम्।
कीर्त्यते भगवान्येन प्रसर्प्पति दिवः क्षयम्॥८२॥
स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः॥८३॥
अपां सारमयात्स्यन्दात्कथ्यते च रसस्तथा। वृद्धिक्षयौ च सोमस्य कीर्त्येते सोमकारितौ॥८४॥
सूर्यादीनां स्यन्दनानां ध्रुवादेव प्रवर्त्तनम्। कीर्त्यते शिशुमारस्य यस्य पुच्छे धवुः स्थितः॥८५॥
तारारूपाणि सर्वाणि नक्षत्राणि ग्रहैः सह। निवासा यत्र कीर्त्यन्ते देवानां पुण्यकर्मणाम्॥८६॥
सूर्यरश्मिसहस्त्रं च वर्षशीतोष्णविश्रवः। प्रविभागश्चरश्मीनां नामतः कर्मतीर्थतः॥८७॥
परिमाणं गतिश्चोक्ता ग्रहाणां सूर्यसंश्रयात्। वेश्यारूपात्प्रधानस्य परिमाणो महद्भवः॥८८॥

दक्षिण और उत्तर में पितरों और देवताओं के मार्ग हैं अर्थात् दक्षिण में पितरों के और उत्तर में देवताओं के मार्ग हैं।।७९।। वहाँ के निवासी गृहस्थों को रज और सत्त्व पर समाश्रित माना गया है, जहाँ विष्णु के चरणों की कीर्ति है और धर्म आदि की स्थिति है।।८०।। तथा सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रों की गति तथा प्रजा को धारण करने की सामर्थ्य से शुभ और अशुभ लक्षण बताये हैं। अर्थात् प्रजाओं के जीवन पर इन सूर्य चन्द्रमा और ग्रह नक्षत्रों की गति का क्या प्रभाव पड़ता है, वे कब शुभ और कब अशुभ माने जाते हैं, यह बताया गया है।।८१।। उसके बाद बताया गया है कि ब्रह्मा ने उस सौर मण्डल को स्वयं रहने के लिए बनाया है। जिसके द्वारा भगवान् सूर्य स्वर्ग के अन्त तक चमकते रहते हैं।।८२।। वे भगवान् सूर्य रथ पर चढ़े हुए देवताओं, द्वादश आदित्यों, ऋषियों तथा गन्धर्व अप्सराओं और ग्रामीणों, सर्पों, राक्षसों से युक्त रहते हैं। भाव यह कि सब सूर्य भगवान् से ही जीवन पाते हैं।।८३।।

जलों के सारमय स्पन्द (बहने) से वह रस कहा जाता है। उसी से चन्द्रमा में की गयी चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय होता है। अर्थात् चन्द्रमा से ही जल और औषधियों में रस की उत्पत्ति होती है।।८४।। सूर्य आदि के रथों का ध्रुव (केन्द्र) से प्रवर्तन होता है। वहीं पर शिशुमार चक्र है, जिसके पुच्छ पर ध्रुव स्थित है।।८५।। देवों का ग्रहों के साथ तारों के रूप में सभी नक्षत्र हैं। अर्थात् ग्रह और नक्षत्र सभी तारों के रूप में हैं, जहाँ कि पुण्य कर्म करने वाले देवों के निवास बताये जाते हैं।।८६।। और सूर्य की सहस्रों किरणें वर्षाकाल, शीतकाल, गर्मी और वसन्त पैदा करती है तथा सूर्य की किरणों का विभाजन नाम से और उनके कर्मतीर्थ पर आधारित है। सूर्य द्वारा ही उपर्युक्त क्रियाओं का होना एक वैज्ञानिक रहस्य है।८७।। ग्रहों का परिमाण और उनकी गति सूर्य पर आश्रित है। अर्थात् सभी ग्रहों का विस्तार और उनकी गति सूर्य पर आश्रित है। भाव यह कि सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं तथा सूर्य पर ही उनका विस्तार निर्भर है। प्रधान प्रकृति Nature के वेश्या रूप से महत्त्वत्व से उत्पन्न शरीर का वर्णन किया गया है। यहाँ पर यह भी अर्थ हो सकता है कि प्रकृति सूर्य के संश्रय से वेश्या के रूप में महतत्त्व (बुद्धि) को उत्पन्न करती है, जिसका वर्णन है।८८।।

पुरूरवस ऐलस्य माहात्म्यस्यानुकीर्त्तनम्। पितॄणां द्विप्रकाराणां माहात्म्यं वा मृतस्य च॥८९॥
ततः पर्वाणि कीर्त्यन्ते पर्वणां चैव संधयः। स्वर्गलोकगतानाञ्च प्राप्तानाञ्चाप्यधोगतिम्॥९०॥
पितॄणां द्विप्रकाराणां श्राद्धेनानुग्रहो महान्। युगसंख्याप्रमाणं च कीर्त्यते च कृतं युगम्॥९१॥
त्रेतायुगे चापकर्षाद्वार्त्तायाः संप्रवर्तनम्। वर्णानामाश्रमाणां च संस्थितर्धर्मतस्तथा॥९२॥
वज्रप्रवर्त्तनं चैव संवादो यत्र कीर्त्यते। ऋषीणां वसुना सार्द्धं वसोश्चाधः पुनर्गतिः।
शब्दत्वं च प्रधानात्तु स्वायम्भुवमृते मनुम्॥९३॥
प्रशंसा तपसश्चोक्ता युगावस्थाश्च कृत्स्नशः। द्वापरस्य कलेश्चापि संक्षेपेण प्रकीर्त्तनम्॥९४॥
मन्वन्तरं च संख्या च मानुषेण प्रकीर्त्तिता। मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव च लक्षणम्॥९५॥
अतीतानागतानां च वर्त्तमानं च कीर्त्यते। तथा मन्वन्तराणां च प्रतिसंधानलक्षणम्॥९६॥
अतीतानागतानां च प्रोक्तं स्वायम्भुवे ततः।
ऋषीणां च गतिः प्रोक्ता कालज्ञानगतिस्तथा॥९७॥
दुर्गसंख्याप्रमाणं च युगवार्ता प्रवर्त्तनम्। त्रेतायां चक्रवर्तीनां लक्षणं जन्म चैव हि॥९८॥
प्रमतेश्च तथा जन्म अथो कलियुगस्य वै। अंगुलैर्ह्रासनं चैव भूतानां यच्च चोच्यते॥९९॥
शाखानां परिसंख्यानं शिष्यप्राधान्यमेव च।
वाक्यं सप्तविधं चैव ऋषिगोत्रानुकीर्तनम्॥१००॥

उसके बाद इला के पुत्र पुरूरवा का माहात्म्य वर्णन है। मृत व्यक्ति के दो प्रकार के पितरों का वर्णन है।।८९।। उसके बाद पर्वों और पर्वों की सन्धियों का वर्णन है, फिर स्वर्गलोक में गये हुए तथा स्वर्ग को प्राप्त करने वालों की अधोगति बतायी गयी है।।९०।। फिर दो प्रकार के पितरों का श्राद्ध करना, उन पर महान् कृपा करना है; क्योंकि श्राद्ध से ही उनका उद्धार होता है। उसके बाद युगों की संख्या का प्रमाण और सतयुग का वर्णन किया गया है।।९१।। और त्रेतायुग में धर्म के अपकर्ष से उत्पन्न वातावरण का वर्णन है, फिर वर्णों और आश्रमों की स्थिति और उनके धर्म बताये गये हैं।।९२।। और वर्णाश्रमों में भारी प्रवर्तन जहाँ कि संवाद किया जाता है, वो है—ऋषियों का धनदौलत के साथ लगाव, धन-दौलत की निम्न गति मानी जाती है। स्वायम्भुव मनु के विना प्रधान से शब्दत्व, तप की प्रशंसा और समस्त युगों की अवस्थायें तथा द्वापर और कलियुग का संक्षेप में वर्णन किया गया है।।९३-९४।। उसके बाद मन्वन्तर और संख्या जो मनुष्य के द्वारा बनायी गयी है, उसका तथा सब मन्वन्तरों का यही लक्षण है, इसका वर्णन है।।९५।। उसके बाद भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमानकाल का वर्णन किया जाता है तथा मन्वन्तरों के सन्धिकाल का लक्षण वर्णित है।।९६।। उसके बाद स्वायम्भुव मनु, मन्वन्तर, भूत और भविष्य का वर्णन किया गया है तथा ऋषियों की गति कही गयी है और फिर काल का ज्ञान और उसकी गति का वर्णन है।।९७।।

उसके बाद दुर्ग की संख्याओं का प्रमाण और युग की वार्ता का कार्यक्रम तथा त्रेता युग में चक्रवर्तियों का लक्षण और जन्मों का वर्णन है।।९८।। इसके बाद कलियुग के राजा प्रमति का जन्म और जो प्राणियों की अंगुलियों के द्वारा ह्रासन (अवनति) कहा जाता है अर्थात् प्राणियों की अवनति का काल कहा जाता है, उसका वर्णन है। अर्थात् मनुष्य जो अपनी अंगुलियों पर अवनति की गिनती करता है, उसका वर्णन है।।९९।। उसके बाद शाखाओं की परिगणना, शिष्य की प्रधानता तथा सात प्रकार के वाक्य जो ऋषियों के गोत्रों का वर्णन करते हैं, उनका वर्णन है—।।१००।।

लक्षणं सूतपुत्राणां ब्राह्मणस्य च कृत्स्नशः। वेदानां व्यसनं चैव वेदव्यासैर्महात्मभिः॥१०१॥
मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेशानां च कीर्त्तनम्। मन्वंतरक्रमश्चै कालज्ञानं च कीर्त्यंते॥१०२॥
दक्षस्य चापि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः शुभाः।
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता॥१०३॥
सावर्णाश्चात्र कीर्त्यन्ते मनवो मेरुमाश्रिताः। ध्रुवस्यौत्तानपादस्य प्रजासर्गोपवर्णनम्॥१०४॥
चाक्षुषस्य मनोः सर्गः प्रजानां वीर्यवर्णनम्। प्रभुणां चैव वैन्येन भूमिदोहप्रवर्तता॥१०५॥
पात्राणां पयसां चैव वत्सानां च विशेषणम्। ब्रह्मादिभिः पूर्वमेव दुग्धा चेयं वसुन्धरा॥१०६॥
दशभ्यश्च प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतेः। दक्षस्य कीर्त्यते जन्म समस्यांशेन धीमतः॥१०७॥
भूतभव्यभवेशत्वं महेंद्राणां च कीर्त्यते। मन्वादिका भविष्यंति आख्यानैर्बहुभिर्वृताः॥१०८॥
वैवस्वतस्य च मनोः कीर्त्यते सर्गविस्तरः।
ब्रह्मादिकोश उत्पत्तिर्भृग्वादीनां च कीर्त्यते॥१०९॥
विनिष्कृष्य प्रजासर्गे चाक्षुषस्य मनोः शुभे। दक्षस्य कीर्त्यते सर्गो ध्यानाद्वैवस्वतांतरे॥११०॥
नारदः कृतसंवादो दक्षपुत्रान्महाबलान्। नाशयामास शापाय मानसो ब्रह्मणः सुतः॥१११॥
ततो दक्षोऽसृजत्कन्या वैरिणा नाम विश्रुताः। मरुत्प्रवाहे मरुतो दित्यां देव्यां च संभवः॥११२॥
कीर्त्यते मरुतां चात्र गणास्ते सप्तसप्तकाः। देवत्वमिन्द्रवासेन वायुस्कन्धेषु चाश्रमः॥११३॥

तदनन्तर ब्राह्मण के सूतपुत्रों के लक्षणों का पूरी तरह वर्णन है और महात्मा वेदव्यास द्वारा वेदों की व्याख्या वर्णित है।।१०१।। फिर मन्वन्तरों में देवों और राजाओं का वर्णन और मन्वन्तर का क्रम और काल का ज्ञान वर्णन किया जाता है।।१०२।। उसके बाद दक्ष प्रजापति की प्रियपुत्री के शुभ नाती, जिनको ब्रह्मा आदि द्वारा बुद्धिमान दक्ष के द्वारा उत्पन्न किया गया है।।१०३।। यहाँ के मेरु पर्वत पर रहने वाले सावर्ण मनु का वर्णन किया गया है। यहीं पर उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव का वर्णन किया गया है।।१०४।। उसके बाद चाक्षुष मनु के मन्वन्तर की सृष्टि और वहाँ की प्रजा का पराक्रम वर्णन तथा महाराजा वेन के पुत्र पृथु द्वारा पृथ्वी के दोहन करने में लगे हुए राजा वेन के पुत्र पृथु का वर्णन है।।१०५।। फिर पात्रों, जलों और वत्सों के विशेषण बताये गये हैं। पहले ब्रह्मा आदि द्वारा भी यह वसुन्धरा दोहन की गयी है, यह भी बतलाया गया है।।१०६।।

प्रजापति दक्ष से मारिषा में दश प्रचेताओं ने जन्म लिया, वहाँ बुद्धिमान दक्ष के जन्म पूर्ण रूप से वर्णन किया गया है।।१०७।। इसके बाद भूत, भविष्य और वर्तमान के राजाओं का वर्णन किया जाता है। मनु आदि सभी बहुत से आख्यानों से चारों तरफ से घिरे होंगे।।१०८।। उसके बाद वैवस्वत मनु के सर्ग विस्तार का वर्णन किया जाता है। भृगु आदि ऋषियों की उत्पत्ति ब्रह्मा आदि के कोश की उत्पत्ति वर्णन की जाती है।।१०९।। फिर चाक्षुष मनु के शुभ प्रजासर्ग में पूरी तरह निष्कर्ष निकालकर वैवस्वत मन्वन्तर में ध्यान से दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति वर्णन की जाती है।।११०।। बातचीत करते हुए ब्रह्मा के मानसपुत्र नारद जी ने दक्ष के महाबली पुत्रों को स्वयं शाप पाने के लिये नष्ट कर दिया, उसका वर्णन किया जाता है।।१११।। उसके बाद प्रजापति दक्ष ने वैरिणा नाम वाली प्रसिद्ध कन्या को उत्पन्न किया, वायु के प्रवाह में वायुदेवता से दिति देवी में वह उत्पन्न हुयी। अर्थात् जब वह पैदा हुई, तब तेज हवा चल रही होगी।।११२।। और अब यहाँ उनकी मरुतों (वायुओं) के सात-सात अर्थात् ४९ गण वर्णन किये जाते हैं। उनका इन्द्र के साथ रहने से

दैत्यानां दानवानां च यक्षगन्धर्वरक्षसाम्। सर्वभूतपिशाचानां यक्षणां पक्षिवीरुधाम्॥११४॥
उत्पत्तयश्चाप्सरसां कीर्त्यंते बहुविस्तरात्। मार्तण्डमण्डलं कृत्स्नं जन्मैरावतहस्तिनः॥११५॥
वैनतेयसमुत्पत्तिस्तथा राज्याभिषेचनम्। भृगूणां विस्तरश्चोक्तस्तथा चाङ्गिरसामपि॥११६॥
कश्यपस्य पुलस्त्यस्य तथैवात्रेर्महात्मनः। पराशरस्य च मुनेः प्रजानां यत्र विस्तरः॥११७॥

तिस्रः कन्याः सुकीर्त्यंते यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः।
इच्छाया विस्तरश्चोक्त आदित्यस्य ततः परम्॥११८॥
किंकुविच्चरितं प्रोक्तं ध्रुवस्यैव निबर्हणम्।
बृहद्बलानां संक्षेपादिक्ष्वाक्वाद्याः प्रकीर्त्तिताः॥११९॥

निम्यादीनां क्षितीशानां पलाण्डु हरणादिभिः। कीर्त्यंते विस्तरात्सर्गो ययातेरपि भूपतेः॥१२०॥
यदुवंशसमुद्देशो हैहयस्य च विस्तरः। क्रोधादनंतरं चोक्तस्तथा वंशस्य विस्तरः॥१२१॥
ज्यामघस्य च माहात्म्यं प्रजासर्गश्च कीर्त्यते। देवावृधस्यांधकस्य धृष्टेश्चापि महात्मनः॥१२२॥

अनिमित्रान्वयश्चैव विष्णोर्मिथ्याभिशंसनम्।
विवस्वतोऽथसंप्राप्तिर्मणिरत्नस्य धीमतः॥१२३॥

सत्राजितः प्रजासर्गे राजर्षेर्देवमीढुषः। शूरस्य जन्म चाप्युक्तं चरितं च महात्मनः॥१२४॥
कंसस्यापि च दौरात्म्यमेकीवंश्यात्समुद्भवः। वासुदेवस्य देवक्यां विष्णोरमिततेजसः॥१२५॥

देवत्व प्राप्त हुआ और वायु के कन्धों में आश्रम बना।।११३।। उसेक बाद दैत्यों, देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों राक्षसों, सभी भूतों, पिशाचों, यक्षों, पक्षियों, लताओं (पेड़-पौधों) की उत्पत्तियों का वर्णन है।।११४।। उसी क्रम में अप्सराओं की उत्पत्ति बहुत विस्तार से बतायी गयी है। उसके बाद समस्त सौर मण्डल का वर्णन है, फिर ऐरावत हाथी के जन्म का वर्णन है।।११५।। उसके बाद राजा वैनतेय की उत्पत्ति और उसके राज्याभिषेक का वर्णन है, फिर भृगु ऋषियों और अङ्गिरस ऋषियों का विस्तार से वर्णन किया गया है।।११६।। उसी प्रकार कश्यप, पुलस्त्य और महात्मा अत्रि और पाराशर मुनि की सन्तानों का विस्तारपूर्वक वर्णन है।।११७।। फिर पाराशर की तीन कन्याओं का वर्णन किया जाता है, जिनमें सभी लोक प्रतिष्ठित हैं, फिर इच्छा का विस्तार और उसके बाद आदित्य का विस्तार वर्णित है।।११८।। फिर ध्रुव के ही विनाश (वध) के लिए क्या कुविचार किये गये? उनका वर्णन है। उसके बाद बृहद् बलों का संक्षेप से वर्णन है तथा इक्ष्वाकु वंश के राजाओं की प्रशंसा की गयी है।।११९।। पलांडु हरणादियों द्वारा निमि आदि राजाओं और राजा ययाति के वंश का विस्तार से वर्णन किया जाता है।।१२०।। उसके बाद यदुवंश का वर्णन है, तब हैहय वंश का विस्तार से वर्णन है। हैहय वंश का क्रोध के कारण विनाश हुआ, यह बताया गया है, फिर उसके वंश का विस्तार बताया गया है।।१२१।। उसके बाद ज्यामघ का माहात्म्य और उसकी सन्तानोत्पत्ति तथा महात्मा धृष्टद्युम्न देवावृध और अन्धक का वर्णन किया जाता है।।१२२।। और अनिमित्र का अन्वय (वंश) राजा विष्णु की मिथ्या निन्दा, फिर बुद्धिमान् महायति विवस्वान् को मणिरत्न की सम्प्राप्ति वर्णित है।।१२३।। महाराज सत्राजित की सन्तान की उत्पत्ति के क्रम में महान् शूरवीर राजर्षि देवमीढुष् का जन्म और उनका चरित्र कहा गया है।।१२४।। उसके बाद एकीवंश से उत्पन्न कंस की दुरात्मता तथा असीमित तेज वाले भगवान् वासुदेव का देवकी में आधान और

अनन्तरमृषेः सर्गः प्रजासर्गोपवर्णनम्। देवासुरे समुत्पन्ने विष्णुना स्त्रीवधे कृते॥१२६॥

संरक्षता शक्रवधं शापः प्राप्तः पुरा भृगोः।
भृगुश्चोत्थापयामास दिव्यां शुक्रस्य मातरम्॥१२७॥

देवानां च ऋषीणां च संक्रमाद्द्वादशाहृताः। नारसिंहप्रभृतयः कीर्त्यंते पापनाशनाः॥१२८॥
शुक्रेणाराधनं स्थाणोर्घोरेण तपसा तथा। वरप्रदानकृत्तेन यत्र शर्वस्तवः कृतः॥१२९॥
अनंतरं च निर्दिष्टं देवासुरविचेष्टितम्। जयंत्या सह शक्रेण यत्र शुक्रो महात्मनि॥१३०॥
असुरान्मोहयामास शक्ररूपेण बुद्धिमान्। बृहस्पतिश्च तं शुक्रं शशाप स महाद्युतिः॥१३१॥

उक्तं च विष्णोर्माहात्म्यं विष्णोर्जन्मनि शब्द्यते।
तुर्वसुश्चात्र दौहित्रो यवीयान्यो यदोरभूत्॥१३२॥

अनुर्द्रुह्यादयः सर्वे तथा तत्तनया नृपाः। अनुवंश्या महात्मानस्तेषां पार्थिवसत्तमाः॥१३३॥

कीर्त्यंते यत्र कात्स्न्येंन भूरिद्रविणतेजसः।
आतिथ्यस्य तु विप्रर्षेः सप्तधा धर्मसंश्रयात्॥१३४॥

बार्हस्पत्यं सूरिभिश्च यत्र शापमुपावृतम्। हर वंशयशः स्पर्शः शंतनोर्वीर्यशब्दनम्॥१३५॥
भविष्यतां तथा राज्ञामुपसंहारशब्दनम्। अनागतानां संघानां प्रभूणां चोपवर्णनम्॥१३६॥

भौत्यस्यांते कलियुगे क्षीणे संहारवर्णनम्।
नैमित्तिकाः प्राकृतिका यथैवात्यंतिकाः स्मृताः॥१३७॥

विविधः सर्वभूतानां कीर्त्यंते प्रतिसंचरः। अनावृष्टिर्भास्करस्य घोरः संवर्त्तकानलः॥१३८॥

कृष्ण का जन्म वर्णित है।।१२५।। उसके बाद ऋषि की उत्पत्ति और प्रजा की उत्पत्ति का वर्णन है, फिर देवासुर संग्राम के उत्पन्न होने पर विष्णु द्वारा स्त्री वध करने पर इन्द्र का संरक्षण करने वाले विष्णु को भृगु का शाप मिलना तथा भृगु का शुक्र की दिव्य माता को उठाना वर्णित है।।१२६-१२७।। उसके बाद देवताओं और असुरों के संक्रमण से बारह नारसिंह आदि पापनाशक संग्रामों का वर्णन है।।१२८।। फिर शुक्राचार्य ने घोर तप द्वारा भगवान् शंकर की स्तुति की। शंकर जी ने उन्हें वर प्रदान किया, जहाँ शुक्र द्वारा शंकर की स्तुति का वर्णन है।।१२९।। बाद में देवासुर की विशेष चेष्टा को निर्दिष्ट किया। इन्द्र के द्वारा जयन्ती के साथ शुक्र का विवाह हुआ।।१३०।। फिर बुद्धिमान शुक्र ने इन्द्र के रूप द्वारा असुरों को मोहित कर लिया। उसके बाद महाकान्ति वाले बृहस्पति ने उस शुक्र को शाप दे दिया।।१३१।। और फिर विष्णु के जन्म लेने में विष्णु का माहात्म्य कहा, फिर शुक्र की बेटी देवयानी से शुक्र के नाती तुर्वसु का जन्म हुआ। दूसरे तुर्वसु के छोटे भाई यदु उत्पन्न हुए, इस सबका वर्णन है।।१३२।।

अनुद्रुह्य आदि सब उनकी पुत्री से उत्पन्न राजा थे। अनु के वंशी अनकों महान् आत्मा राजा हुए।।१३३।। जहाँ उनके द्रविड़ तेज की बार बार प्रशंसा की जाती है। विप्रर्षि के आतिथ्य की तो सात प्रकार से धर्माधारता कही जाती है, यह सब वर्णित है।।१३४।। विद्वानों ने जहाँ बृहस्पति के शाप को प्राप्त किया भगवान् शंकर के वंश के यश के स्पर्श वाले शन्तनु राजा के पराक्रम का वर्णन किया गया है।।१३५।। तथा भविष्य में होने वाले राजाओं का उपसंहार वर्णन, फिर अनागत संघों (बौद्ध-जैन धर्मों) का वर्णन है।।१३६।। उसके बाद भौत्य के अन्त में कलियुग के क्षीण होने पर संहार वर्णन। नैमित्तिक प्राकृतिक और आत्यन्तिक प्रलयों का वर्णन है।।१३७।। फिर सब प्राणियों के विशेष

सांख्ये लक्षणमुद्दिष्टं ततो ब्रह्म विशेषतः। भुवादीनां च लोकानां सप्तानां चोपवर्णनम्॥१३९॥
अपरार्द्धापरैश्चैव लक्षणं परिकीर्त्यते। ब्रह्मणो योजनाग्रेण परिमाणविनिर्णयः॥१४०॥
कीर्त्यंते चात्र निरयाः पापानां रौरवादयः। सर्वेषां चैव सत्त्वानां परिणामविनिर्णयः॥१४१॥
ब्रह्मणः प्रतिसंसर्गात्सर्व संसारवर्णनम्। गतिरूर्द्धमधश्चोक्ता धर्माधर्मसमाश्रया॥१४२॥
कल्पे कल्पे च भूतानां महतामपि संक्षयम्।
असंख्यया च दुःखानि ब्रह्मणश्चाप्यनित्यता॥१४३॥
दौरात्म्यं चैव भोगानां संहारस्य च कष्टता। दुर्लभत्वं च मोक्षस्य वैराग्याद्दोषदर्शनात्॥१४४॥
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य सत्त्वं ब्रह्मणि संस्थितम्।
नानात्वदर्शनाच्छुद्धस्तवस्ततत्र निवर्त्तते॥१४५॥
ततस्तापत्रयाद् भीतो रूपार्थो हि निरंजनः। आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य न बिभेति कुतश्चन॥१४६॥
कीर्त्यते च पुनः सर्गो ब्रह्मणोऽन्यस्य पूर्ववत्। कीर्त्यंते जगतश्चात्र सर्गप्रलयविक्रियाः॥१४७॥
प्रवृत्तयश्च भूतानां प्रसूतानां फलानि च। कीर्त्यते ऋषिवर्गस्य सर्गः पापप्रणाशनः॥१४८॥
प्रादुर्भावो वसिष्ठस्य शक्तेर्जन्म तथैव च। सौदासास्थिग्रहश्चास्य विश्वामित्रकृतेन तु॥१४९॥
पाराशरस्य चौत्पत्तिरदृश्यंत्यां तथा विभोः। संजज्ञे पितृकन्यायां व्यासश्चापि महामुनिः॥१५०॥
शुकस्य च तथा जन्म सह पुत्रस्य धीमतः। पाराशरस्य प्रद्वेषो विश्वामित्रऋषिं प्रति॥१५१॥

प्रकार और समस्त जगत् का फिर प्रकृति में लीन हो जाना, सूर्य की अनादृष्टि अर्थात् सूर्य का विलुप्त हो जाना और घोर प्रलयाग्नि का उदय हो जाना वर्णित है।।१३८।। तदनन्तर सांख्य दर्शन में बताये गये लक्षण वाले ब्रह्म का विशेष रूप से वर्णन और भुव आदि सात लोकों का वर्णन है।।१३९।। अपरार्द्धापरै (और अन्य लोगों द्वारा लक्षण बताये जाते हैं। ब्रह्मा द्वारा आगे की योजना परिमाण का विशेष निर्णय लिया जाता है।।१४०।। और फिर यहाँ पापों के रौरव आदि नरकों का वर्णन है, जो सभी प्राणियों के कर्मों के परिणाम का विशेष निर्णय है।।१४१।। ब्रह्मा के प्रतिसंसर्ग (ब्रह्मा की रचना से)से समस्त संसार का वर्णन तथा धर्म और अधर्म का आश्रय लेने वालों की ऊर्ध्व और अधोगति बतायी गयी है।।१४२।। फिर महत्तत्त्व और सभी भूतों का कल्प कल्प में सम्यक् विनाश। असंख्या से दुःख और ब्रह्म की भी अनित्यता वर्णित है।।१४३।। इसके बाद सभी भोगों का दुरात्मत्व (नीच आत्मा वाला होना) और भोगों के संहार में कष्टता तथा वैराग्य में दोष-दर्शन के कारण मोक्ष की दुर्लभता वर्णित है। इसलिए व्यक्त और अव्यक्त को छोड़कर जीव की ब्रह्म में स्थिति तथा अनेकत्व को छोड़कर एक की स्तुति करना ही शुद्ध स्तुति कही जाती है। वह स्तुति करके दैहिक दैविक और मौलिक तीन प्रकार के तापों से भयभीत नर भगवान् शंकर के रूपार्थ ब्रह्म के आनन्द प्राप्त करके कहीं किसी से नहीं डरता है।।१४४-१४६।। फिर पूर्व के समान अन्य ब्रह्म की सृष्टि वर्णन की जाती है और यहाँ सृष्टि और प्रलय की विशेष क्रिया का वर्णन है।।१४७।। और फिर उत्पन्न हुए प्राणियों की प्रवृत्तियां और फलों का वर्णन है तथा ऋषियों के पाप को पूरी तरह नष्ट करने वाली सृष्टि का वर्णन है। उसी क्रम में वशिष्ठ ऋषि का प्रादुर्भाव और उसी प्रकार शक्ति का जन्म फिर सौदास की अस्थि का ग्रहण, जो विश्वामित्र ने किया, उसका वर्णन है।।१४८-१४९।। उसके बाद दृषद्वती के गर्भ से प्रभु पाराशर की उत्पत्ति, फिर पितृ कन्या के गर्भ से महर्षि व्यास की उत्पत्ति।।१५०।। और उसी प्रकार बुद्धिमान् पुत्र शुकदेव जी के जन्म की कथा। पाराशर ऋषि का विश्वामित्र ऋषि के प्रति विद्वेष और फिर विश्वामित्र को मारने की इच्छा से वशिष्ठ का अग्नि संग्रह दैव विधि

वसिष्ठसंभृतिश्चाग्नेर्विश्वामित्रजिघांसया। देवेन विधिना विप्र विश्वामित्रहितैषिणा॥१५२॥
संतानहेतोर्विभुना गीर्णस्कंधेन धीमता। एकं वेदं चतुष्पादं चतुर्द्धा पुनरीश्वरः॥१५३॥
तथा बिभेद भगवान् व्यासः शार्वादनु ग्रहात्।
तस्य शिष्यप्रशिष्यैश्च शाखा वेदायुताः कृताः॥१५४॥
प्रयोगे प्रह्वला नैव यथा दृष्टः स्वयंभुवा। पृष्टवन्तो विशिष्टास्ते मुनयो धर्मकांक्षिणः॥१५५॥
देशं पुण्यमभीप्सतो विभुना तद्धितैषिणा। सुनाभं दिव्यरूपाभं सप्ताङ्गं शुभशंसनम्॥१५६॥
आनौपम्यमिदं चक्रं वर्त्तमानमतंद्रिताः। पृष्ठतो यात नियतास्ततः प्राप्स्यथ पाटितम्॥१५७॥
गच्छतस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते। पुण्यः स देशो मंतव्यः प्रत्युवाच तदा प्रभुः॥१५८॥
उत्त्वा चैवमृषीन्सर्वानदृश्यत्वमुपागमत्। गंगा गर्भं यवाहारा नैमिषेयास्तथैव च॥१५९॥
ईशिरे चैव सत्रेण मुनयो नैमिषे तदा॥१६०॥
मृते शरद्वति तथा तस्य चोत्थापनं कृतम्। ऋषयो नैमिषेयाश्च दयया परया युताः॥१६१॥
निःसीमां गामिमां कृत्वा कृष्णं राजानमाहरत्।
प्रीतिं चैव कृतातिथ्यं राजानं विधिवत्तदा॥१६२॥
अंतः सर्गगतः क्रूरः स्वर्भानुरसुरोऽहरन्। द्रुते राजनि राजानुमद्रते मुनयस्ततः॥१६३॥
गंधर्वरक्षितं दृष्ट्वा कलापग्रामकेतनम्। सन्निपातः पुनस्तस्य तथा यज्ञे महर्षिभिः॥१६४॥

से विश्वामित्र के हितैषी बुद्धिमान् विभु स्कन्द के द्वारा सन्तान के निमित्त उसका पालन करना वर्णित है।।१५१-१५२।। सन्तान के लिए बुद्धिमान् विभु स्कन्द ने स्तुतिपूर्ण स्कन्ध एक वेद को चार पाद में विभक्त किया, उसका वर्णन है तथा भगवान् व्यास ने शार्व के अनुग्रह से वेदों के विभेद किये, उसके शिष्यों और प्रशिष्यों द्वारा वेद से युक्त शाखायें रची गयीं।।१५३-१५४।। जिस प्रकार स्वयम्भू ने प्रयोग में उसकी पहेली को नहीं देखा, तब धर्म को चाहने वाले विशिष्ट मुनियों ने पूछा।।१५५।। तो उनके हितकामना से पुण्यदेश पाने के इच्छुक मुनियों के पूछताछ करने पर सुन्दर नाभिवाला दिव्य रूप नामक शुभ विक्रम अनुत्तम वर्तमान चक्र को बताकर कहा कि निरालस्य हो दृढ़तापूर्वक पीछे चले जाओ, तब कल्याण होगा। जब जाते जाते जहाँ इस धर्मचक्र की नेमि (धुरी) शीर्ण हो जाये, उसी को पुण्यदेश समझना। ऐसा कहकर फिर ब्रह्मा अदृश्य हो गये, फिर गङ्गा के गर्भ तथा नैमिषेय का वर्णन बताया है।।१५६-१५९।। कि मुनियों ने नैमिषारण्य में यज्ञ किया। शरद्वान् के मरने पर नैमिषारण्य के ऋषियों ने बड़ी श्रद्धा से उसका उत्थापन किया।।१६०-१६१।।

उसे इस सम्पूर्ण पृथ्वी (निःसीम) पृथ्वी का राजा बनाकर ले आये और विधिपूर्वक शास्त्रीय विधि से उनका अतिथि सत्कार किया। जब विधिपूर्वक अतिथि सत्कार से राजा प्रसन्न हुए तो उसको छिपकर स्वर्भानु ने चुरा लिया। प्राचीन काल में जैसे ऋषिगण के चुराये जाने पर भी गन्धर्वों के साथ कलाप ग्राम में रहने वाले राजा ऐड के पीछे गये और यज्ञ में ऋषियों के साथ मिलना आदि वर्णित है। महात्मा मुनियों के यज्ञ में सब वस्तु हिरण्मयी देखकर उस बारह वर्ष में होने वाले नैमिषारण्य के ऋषियों के यज्ञ में कैसे विवाद हुआ और ऐड को उन्होंने कैसे स्थापित किया? सब वर्णित है। वन में ऐड के पुत्र आयुष को उत्पन्न कराकर, उस यज्ञ को समाप्त कर आयुध की उपासना की। वह सब कैसे हुआ? यह सब बताया गया है।।१६२-१६३।। प्राचीनकाल में कलापग्राम को गन्धर्वों से रक्षित देखकर यज्ञ में ऋषियों द्वारा उनका मिलना वर्णित है। महर्षियों के यज्ञ में सब वस्तुओं को सोने की बनी हुई देखकर, उस बारह वर्ष में होने वाले ऋषियों के उस यज्ञ में कैसे विवाद हुआ और कैसे उन्होंने यदु को स्थापित किया? यह वर्णित

दृष्ट्वा हिरणमयं सर्वं विवादस्तस्य तैरभूत्। तदा वै नैमिषेयानां सत्रे द्वादशवार्षिके।।१६५।।
तथा विवदमानैश्च यदुः संस्थापितश्च तैः। जनयित्वा त्वरण्यं वै यदुपुत्रमथायुषम्।।१६६।।
समापयित्वा तत्सत्रं वायुं ते पर्युपासत। इति कृत्यसमुद्देशः पुराणंशोपवर्णितः।।१६७।।
अनेनानुक्रमेणैव पुराणं संप्रकाशते। सुखमर्थः समासेन महानप्युपलक्ष्यते।।१६८।।
तस्मात्समासमुद्दिश्य वक्ष्यामि तव विस्तरम्। पादमाद्यमिदं सम्यग् योऽधीते विजितेन्द्रियः।।१६९।।
तेनाधीतं पुराणं स्यात्सर्वं नास्त्यत्र संशयः। यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदान् द्विजाः।।१७०।।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।१७१।।
अभ्यसन्निममध्यायं साक्षात्प्रोक्तं स्वयंभुवा। नापदं प्राप्य मुह्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम्।।१७२।।
यस्मात्पुरा ह्यभूच्चैतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम्। निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।।१७३।।

अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं नारायणः सर्वमिदं पुराणम्।
संसर्गकालेऽपि करोति सर्गं संहार काले च यो वास्ति भूयः।।१७४।।

।।इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे प्रथमे प्रक्रियापादे कृत्यसमुद्देशो नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

है। वन में यदु के पुत्र आयुष को उत्पन्न कराकर, उस यज्ञ को समाप्त कर कैसे आयु की पर्युपासना की, यह वर्णित है। इस प्रकार यह इस पुराण का कृत्य समुदेश (वर्ण्यविषयों का क्रम) है। जो यह सब इस पुराण में उपवर्णित है।।१६४-१६७।। इसी अनुक्रम से ही यह पुराण प्रकाशित होता है। संक्षेप रूप से यह पुराण महान् सुख और धन को प्राप्त कराने वाला है। अतः यहाँ हमने इसका संक्षेप में दिग्दर्शन कर दिया है। अब आगे विस्तार से वर्णन किया जायेगा।।१६८-१६८½।।

अब इस प्रथम पाद के अध्ययन का फल बताते हैं कि इस प्रथम पाद का जो जितेन्द्रिय व्यक्ति सम्यक् अध्ययन करता है, उसने समझो कि समस्त पुराण पढ़ लिया, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जो ब्राह्मण पुराण को जानते हैं, वे सांगोपांग चारों वेदों और उपनिषदों को जानते हैं।।१६८-१७०।। इतिहास और पुराणों में वेदों का उपवृंहण अर्थात् विस्तार है। अल्पज्ञानी से वेद डरता है कि यह अज्ञानी मुझे मार डालेगा। अर्थात् अर्थ का अनर्थ कर देगा।।१७१।। इस अध्याय को स्वयं ब्रह्मा ने साक्षात् कहा है, जो व्यक्ति इसका सम्यक् अभ्यास करेगा, उसको कोई आपत्ति नहीं होगी तथा उसे यथेष्ठ गति प्राप्त होगी।।१७२।। जो प्राचीन काल बीत चुका है, उसका कथन पुराण करता है। यह इस पुराण शब्द से ही सिद्ध हो जाता है; क्योंकि इसकी व्युत्पत्ति 'पुरा अनति इति पुराणम्' (प्राचीन को बताता है, वह पुराण है। जो व्यक्ति पुराण शब्द की इस निरुक्ति को जानता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।।१७३।। इस संसार में नारायण व्याप्त रहते हैं, अतः संक्षेप में इस पुराण को सुनिये, यह पुराण नारायण है। जो संसर्गकाल में सृष्टि करते हैं और संहार काल में फिर नवीन हो जाते हैं। अर्थात् प्रलयकाल में शयनकर पुनः नवीन हो जाते हैं, उनकी सर्गकाल की समस्त थकान दूर हो जाती है, उसके बाद पुनः सृष्टि करते हैं।।१७४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग प्रक्रिया पाद प्रथम अध्याय कृत्यसमुदेश्य का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर. दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

विशेष—यो विद्याच्चतुरो..... यह श्लोक इस पुराण में आधा ही दिया है; परन्तु पूरे का अर्थ है कि जो ब्राह्मण साङ्ग चारों वेदों और उपनिषदों को जानता है; परन्तु यदि पुराणों को नहीं जानता, तो वह ब्राह्मण विचक्षण नहीं हो सकता।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे प्रथम प्रक्रिया पादे

नैमिषाख्यानकथनं नाम

द्वितीयोऽध्यायः

प्रत्यवोचन्पुनः सूतमृषयस्ते तपोधनाः। कुत्र सत्रं समभवत्तेषामद्भुतकर्मणाम्॥१॥
कियन्तं चैव तत्कालं कथं च समवर्त्तत। आचचक्षे पुराणं च कथय तत्सप्रभंजनः॥२॥
आचख्यौ विस्तरेणैव परं कौतूहलं हि नः। इति संचोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः॥३॥
शृणुध्वं यत्र ते धीरा मेनिरे सत्रमुत्तमम्। यावन्तं चाभवत्कालं यथा च समवर्तत॥४॥
सिसृक्षमाणो विश्वं हि यजते विसृजत्पुरा। सत्रं हि तेऽतिपुण्यं च सहस्रपरिवत्सरान्॥५॥
तपोगृहपतेर्यत्र ब्रह्मा चैवाभवत्स्वयम्। इडाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान्॥६॥
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन्सत्रे महात्मनाम्। विबुधाश्चोषिरे तत्र सहस्रपरिवत्सरान्॥७॥
भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत। कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम्॥८॥
यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारणसेविता। रोहिणी स सुता तत्र गोमती साभवत् क्षणात्॥९॥
शक्तिर्ज्येष्ठा समभवद्वसिष्ठस्य महात्मनः। अरुंधत्याः सुतायात्रादानमुत्तमतेजसः॥१०॥
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शक्रश्च शक्तिना। यत्र वैरं समभवाद्विश्वामित्रवसिष्ठयोः॥११॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग प्रथम प्रक्रिया पाद

अध्याय-२

नैमिषाख्यान कथन

उन तपस्वी ऋषियों ने सूत जी ने पुनः पूछा कि उन आश्चर्यपूर्ण कर्म करने वालों का यज्ञ कहाँ हुआ और वह कितने समय तक हुआ तथा कैसे हुआ और पुराण को कैसे खण्ड-खण्ड करके वर्णन किया? इस रहस्य को विस्तार से वर्णन करो; क्योंकि इस रहस्य को जानने को हमारी उत्कट इच्छा हो रही है। इस प्रकार पुराण वर्णन करने के लिए पूरी तरह प्रेरित किये गये सूत जी शुभ वचन बोले।।१-३।। सूत जी ने कहा कि सुनो! जहाँ उन धैर्यशाली पुरुषों ने उत्तम यज्ञ किया, यथा जब तक वह यज्ञ हुआ तथा जिस प्रकार वह होता रहा।।४।। प्राचीन काल में संसार को उत्पन्न करने की इच्छा वाला यज्ञ करता है, जिसने पहले संसार को पैदा किया। वह यज्ञ अतिपुण्य वाला था और हजारों वर्षों तक चला।।५।। उस यज्ञ में तपोगृहपतिः स्वयं ब्रह्मा हुए। इडा का जहाँ पत्नीत्व हुआ अर्थात् इडा उनकी पत्नी बनी शामित्र जहाँ बुद्धिमान था।।६।। उस यज्ञ में महात्मा महातेजस्वी मृत्यु ने कार्य किया, वहाँ देवताओं ने हजारों वर्षों तक निवास किया।।७।। धर्मचक्र का भ्रमण करते हुए नेमि जहाँ दुर्बल हो गये। अपने उस कर्म के द्वारा मुनिपूजित नैमिषारण्य विख्यात हो गया; क्योंकि वह यज्ञ नैमिषारण्य में हुआ था।।८।। जहाँ पर वह पुण्यशाली गोमती नदी है, जो सिद्ध पुरुषों और चारणों से सेवित है। क्षणभर में वह गोमती रोहिणी से ससुता हो गयी अर्थात् गोमती की पुत्री रोहिणी हुई।।९।। महात्मा वशिष्ठ के अरुन्धती से पुत्र पैदा हुए, जिनमें शक्ति ज्येष्ठ पुत्र था।।१०।।

अदृश्यंत्यां समभवन्मुनिर्यत्र पराशरः। पराभवो वसिष्ठस्य यस्य ज्ञाने ह्यवर्त्तयत्॥१२॥
तत्र ते मेनिरे शैलं नैमिषे ब्रह्मवादिनः। नैमिषं जज्ञिरे यस्मान्नैमिषीयास्ततः स्मृताः॥१३॥
तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम्। पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुंधराम्॥१४॥
अष्टादश समुद्रस्यद्वीपानश्नन् पुरूरवाः। तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम्॥१५॥
उर्वशी चकमे तं च देवदूतप्रचोदिता। आजहार च तत्सत्रमुर्वश्या सह संगतः॥१६॥
तस्मिन्नरपतौ सत्रे नैमिषीयाः प्रचक्रिरे। यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम्॥१७॥
तद्दुल्बं पर्वते न्यस्तं हिरण्यं समपद्यत। हिरण्मयं ततश्चक्रे यज्ञवाटं महात्मनाम्॥१८॥
विश्वकर्मा स्वंयदेवो भावनो लोकभावनः। स प्रविश्य ततः सत्रे तेषाममिततेजसाम्॥१९॥
ऐडः पुरूरवा भेजे तं देशं मृगयां चरन्। तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम्॥२०॥
लोभेन हतविज्ञानस्तदादातुमुपाक्रमत्। नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतिं भृशम्॥२१॥
निजघ्नुश्चापि तं क्रुद्धाः कुशवज्रैर्मनीषिणः। तपोनिष्ठाश्च राजानं मुनयो देवचोदिताः॥२२॥
कुशवज्रौर्विनिष्पिष्टः स राजा व्यजहात्तनुम्। और्वशेयैस्ततस्तस्य युद्धं चक्रे नृपो भुवि॥२३॥
नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते। य तेष्ववभृथेष्वेव धर्म्मशीलो महीपतिः॥२४॥
आयुरायभवायाग्र्यमस्मिन् सत्रे नरोत्तमः। शान्तयित्वा तु राजानं तदा ब्रह्मविदस्तथा॥२५॥
सत्रमारेभिरे कर्त्तुं पृथ्वीवत्सात्ममूर्तयः। बभूव सत्रं तेषां तु बह्वाश्चर्यं महात्मनाम्॥२६॥

जहाँ कल्माषपाद नामक राजा शक्ति द्वारा इन्द्र थे। जहाँ पर विश्वामित्र और वशिष्ठ में वैर पैदा हो गया।।११।। जहाँ अदृश्यन्ती के गर्भ से पराशर मुनि पैदा हुए, जिसके ज्ञान में वशिष्ठ की पराजय हुई।।१२।। वहाँ पर नैमिषारण्य में उन ब्रह्मवादियों ने एक पर्वत को (पैदा किया) नैमिषारण्य में उन्होंने यज्ञ किये इसलिए वे नैमिषीय कहे गये।।१३।। वहाँ पर उन बुद्धिमान् ऋषियों का बारह वर्षों तक यज्ञ हुआ, जिस समय कि पुरुरवा पृथ्वी पर शासन कर रहे थे।।१४।। अठारह समुद्र और द्वीपों का भोग करते हुए वे पुरुरवा लोभवश रत्नों से नहीं सन्तुष्ट हुए।।१५।। देवदूतों से प्रेरित उर्वशी ने उनको कामाकृष्ट कर लिया और उन्होंने उस यज्ञ को उर्वशी के साथ पूरा किया।।१६।।

राजा के उस यज्ञ में नैमिषीयों ने उस यज्ञ को सम्पन्न किया। उस अग्नि से दीप्त गर्भ को गंगा ने धारण किया किया।।१७।। पर्वत पर उस उल्ब को सम्यक् रूप से रखा गया, जो सोना बन गया। उसके बाद वह महात्माओं का सोने का यज्ञमण्डप बन गया।।१८।। जिसको लोकभावन स्वयं देव विश्वकर्मा ने बनाया था। उस के बाद उस अमिततेज वाले यज्ञ में प्रवेश करके पुरुरवा ने उस देश में मृगया (शिकार) करते हुए भेड़ के बच्चे की सेवा की। उसको देखकर यज्ञ के मण्डप में महान् आश्चर्य हुआ।।२०।। लोभ से ज्ञानशून्य किंकर्तव्यविमूढ़ उन पुरुरवा ने उस भेड़ के बच्चे को लेने का उपक्रम किया। उसके बाद वहाँ के नैमिषारण्य वासी ऋषियों ने उन राजा पर भारी क्रोध किया।।२१।। वहाँ पर हुए क्रोधित ऋषयों ने कुश के वज्रों से उस राजा को मार दिया।।२२।। कुश के वज्रों से पूरी तरह पिसे हुए (चकनाचूर) (चूर-चूर हुए) उस राजा पुरुरवा ने अपने शरीर को त्याग दिया। उसके बाद पुरूरवा के वीर्य से उर्वशी के गर्भ में उत्पन्न उर्वशी के पुत्रों द्वारा उस राजा ने पृथ्वी पर युद्ध किया, उसी राजा को नहुष का पिता कहा जाता है।।२३।। उस धर्मात्मा राजा ने ऋषियों के प्रति अच्छा बर्ताव किया। उस राजा की आयु और स्वास्थ्य अत्युत्तम था। इस यज्ञ में उस नरश्रेष्ठ राजा को शान्त करके ब्रह्म को जानने वाले ऋषियों ने धर्म की वृद्धि के लिये विधिवत्

विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव। वैखानसैः प्रियसखैर्वाल खिल्यैर्मरीचिभिः॥२७॥
अजैश्च मुनिभिर्जातं सूर्यवैश्वानरप्रभः। पितृदेवाप्सरः सिद्धैर्गंधर्वोरगचारणैः॥२८॥
भारतैः शुशुभे राजा देवैरिन्द्रसमो यथा। स्तोत्रशस्त्रैर्गृहैर्देवान्पितृन्पित्र्यैश्च कर्मभिः॥२९॥
आनर्चुःस्म यथाजाति गन्धर्वादीन् यथाविधि। आराधने य सस्मार ततः कर्मांतरेषु च॥३०॥
जगुः सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः। व्याजह्रुर्मुनयो वचं चित्राक्षरपदां शुभाम्॥३१॥
मंत्रादि तत्र विद्वांसो जजपुश्च परस्परम्। वितंडावचनैश्चैव निजघ्नुः प्रतिवादिनः॥३२॥
ऋषयश्चैव विद्वांसः शब्दार्थ न्यायकोविदाः। न तत्र हारितं किंचिद्विविशुर्ब्रह्मराक्षसाः॥३३॥
नैव यज्ञहरा दैत्या नैव वाजमुखास्त्रिणः। प्रायश्चित्तं दरिद्रं च न तत्र समजायत॥३४॥
शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिराशीष्वनुष्ठितः। एवं च ववृधे सत्रं द्वादशाब्दं मनीक्षिणाम्॥३५॥

ऋषीणां नैमिषीयाणां तदभूदिव वज्रिणः।
वृद्धाद्या ऋत्विजो वीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक्पृथक्॥३६॥

चक्रिरे पृष्ठगमनाः सर्वानयुतदक्षिणान्। समाप्तयज्ञो यत्रास्ते वायुदेवं महाधिपम्॥३७॥
पप्रच्छुरमितात्मानं भवद्भिर्यदहं द्विजः। प्रचोदितः स्ववंशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभुः॥३८॥
शिष्यः स्वयंभुवो देवः सर्वं प्रत्यक्षदृग्वशी। अणिमादिभिरष्टाभिः सूक्ष्मैरंगैः समन्वितः॥३९॥

यज्ञ को आरम्भ किया। उन महात्माओं का यज्ञ बहुत आश्चर्ययुक्त था।।२४-२६।। तब पृथ्वी के समान आत्ममूर्ति ब्रहमज्ञानियों ने यज्ञ करना आरम्भ किया। वह यज्ञ उन महात्माओं के पहले विश्व को उत्पन्न करने वालों के समान सृष्टि करने की इच्छा वाले तपस्वियों, बालखिल्यों, मरीचियों, अग्नि और सूर्य की कान्ति वाले अजन्मा मुनियों द्वारा सम्पन्न हुआ। पितृदेवता अप्सरायें सिद्धों, गन्धर्वों, सर्पों, चारणों, पक्षियों और भारतवासियों देवों द्वारा राजा इन्द्र के समान शोभित हुए। स्तोत्र रूपी शस्त्रों के ग्रहण द्वारा देवताओं और पितृकर्मों द्वारा पितरों को जैसी जिसकी जाति है, उसकी उस विधि से पूजा की और कर्मों के अन्तरों में आराधन में उसने याद किया।।२७-३०।। वहाँ गन्धर्वों ने सामवेद के छन्दों का गान किया और अप्सराओं ने नृत्य किया। मुनियों ने चित्रविचित्र अक्षरों वाली शुभवाणी का उच्चार किया।।३१।।

वहाँ पर विद्वानों ने परस्पर मन्त्रों का जाप किया। आलोचनापूर्ण तर्कों द्वारा विपक्षियों को हरा दिया। वहाँ ब्रह्मराक्षसों द्वारा कुछ भी नहीं छीना गया।।३२-३३।। वहाँ नहीं तो यज्ञ का विध्वंस करने वाले और न बाण की नोंक पर युद्ध करने वाले योद्धा थे। वहाँ पर प्रायश्चित्त (पछतावा) और दरिद्र वहाँ पैदा नहीं हुआ।।३४।। शक्ति, बुद्धि, क्रिया और योगों द्वारा यज्ञों में विधि का अनुष्ठान किया गया। इस प्रकार वह मनीषियों का यज्ञ बारह वर्षों तक चला।।३५।। नैमिषारण्य के निवासी ऋषियों का वह वज्र के समान हो गया। वृद्ध आदि ऋत्विजवीरों ने अलग-अलग ज्योतिष्टोम किये। वहाँ पर लाखों की दक्षिणायें दी गयीं। यज्ञ समाप्त कर उन्होंने महान् राजा वायुदेव को पूछा कि आपने जो मुझ द्विज को यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया और वह मैं अपने वंश के लिए प्रेरित हुआ, तब वह उनको बोला।।३६-३८।। कि स्वयम्भू का शिष्य वायुदेव सब कुछ प्रत्यक्षदर्शी और इन्द्रियों को वश में रखने वाला है। वह अणिमा गरिमा महिमा लघिमा आदि आठ सिद्धियों वाले सूक्ष्म अंगों से युक्त है और तिरछी बहने वाली वायु और वर्षाओं से सभी लोकों का भरण-पोषण करते हैं। जिसकी सात स्कन्धों वाली शाखायें हैं, जो सब ओर योजनयोजनों तक संस्थित हैं। उनके विषयों द्वारा जिस वायु के सात सप्तक ४९ मरुद्गण अपने-अपने स्थान पर स्थित

तिर्यग्वातादिभिर्वर्षैः सर्वाल्लोकान्बिभर्ति यः।
सप्तस्कन्धा भृताः शाखाः सर्वतोयोजनाद्वरान्॥४०॥
विषयैर्मरुतो यस्य संस्थिताः सप्तसप्तकाः। व्यूहत्रयाणां भूतानां कुर्वन् सत्रं महाबलः॥४१॥
तेजसश्चाप्युपायानां दधातीह शरीरिणः। प्राणाद्या वृत्तयः पंच धारणानां स्ववृत्तिभिः॥४२॥
पूर्यमाणः शरीराणां धारणं यस्य कुर्वते। आकाशयोनिर्द्विगुणः शब्दस्पर्शसमन्वितः॥४३॥
वातारणिः समाख्यात शब्दशास्त्रविचक्षणैः।
भारत्याः श्लक्ष्णया सर्वान्मुनीन्प्रह्लादयन्निव॥४४॥
पुराणज्ञाः सुनमसः पुराणाश्रययुक्तया। पुराण नियता विप्राः कथामकथयद्विभुः॥४५॥
एतत्सर्वं यथावृत्तमाख्यानं द्विजसत्तमाः। ऋषीणां च परं चैतल्लोकतत्त्वमनुत्तमम्॥४६॥
ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तं पुराणं ज्ञानमुत्तमम् देवतानामृषीणां च सर्वपापप्रमोचनम्॥४७॥
विस्तरेणानुपूर्व्या च तस्य वक्ष्याम्यनुक्रमम् ४८॥

॥इति श्रीब्रह्माण्ड महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे प्रथमे प्रक्रियापादे नैमिषाख्यानकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

हैं। भूतों के तीन तीन व्यूह बनाकर सत्र करते हुए वे महाबली यहाँ शरीरधारी अग्नि के उपायों द्वारा शरीर को धारण करते हैं। प्राण आदि पाँच वृत्तियाँ अर्थात् पाँचों प्रकार के वायु प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान यहाँ पर अपना-अपना कार्य करते हैं।।३९-४२।। जो शरीरों को पूर्ण करता हुआ धारण करता है। आकाश का निश्चित ही दोगुण वाला शब्द और स्पर्श से युक्त वायु है। अर्थात् वायु आकाश के शब्द गुण और अपने स्पर्श गुण से बना हुआ है।।४३।।

शब्दशास्त्र के विद्वानों ने इस वायु को वातारणि कहा है, उन वायु ने अपनी वाणी से बस मुनियों को प्रसन्न कर दिया।।४३-४४।। तब पुराण को जानने वाले सुन्दर मन वाले पुराण पर नियत विप्रों को विभु (वायु) ने कथा को कहा।।४५।। कि यह सब जो यथावृत्तक पुराण का कथानक है और ऋषियों द्वारा कथित संसार का सार है तथा जिस उत्तम ज्ञान को ब्रह्माजी ने पूर्वकाल में कहा है और जो देवताओं और ऋषियों को पाप से मुक्त करने का मार्ग है, उसको मैं आदि से लेकर अन्त तक क्रमानुसार विस्तार से कहूँगा।।।४६-४८।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग प्रक्रिया पाद द्वितीय अध्याय नैमिषाख्यानकथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ श्री ब्रह्माण्डपुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे प्रथमे प्रक्रियापादे

हिरण्यगर्भोत्पत्ति वर्णनम्

तृतीयोयाध्यायः

सूत उवाच

शृणु तेषां कथां दिव्यां सर्वपापप्रमोचनीम् कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसंमताम्।।१।।
य इमां धारयेन्नित्यं श्रणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः। स्ववंशं धारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते।।२।।
विश्वतारा या च पंच यथावृत्तं यथाश्रुतम्। कीर्त्यमानं निबोधार्थं पूर्वेषां कीर्तिवर्द्धनम्।।३।।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं शत्रुघ्नमेव च। कीर्त्तनं स्थिरकीर्त्तीनां सर्वेषां पुण्यकर्मणाम् ४।।
यस्मात्कल्पायते कल्पः समग्रं शुचये शुचिः। तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च।।५।।
अजाय प्रथमायैव वरिष्ठाय प्रजासृजे। ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयंभुवे।।६।।
महदाद्यं विशेषांतं सवैरूप्यं सलक्षणम्। पंचप्रमाणं षट्श्रान्तः पुरुषाधिष्ठितं च यत्।।७।।
आसंयमात्प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम्। अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।।८।।
प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्वचिंतकाः। गंधरूपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।।९।।
जगद्योनिम्महाभूतं परं ब्रह्मसनातनम्। विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तभवत्किल।।१०।।

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग प्रथम प्रक्रिया पाद

अध्याय-३

हिरण्यगर्भोत्पत्ति वर्णन

सूत ने कहा कि अब उन नैमिषारण्यवासियों की मेरे द्वारा कही गयी पापों को नष्ट करने वाली अनेकों अर्थों वाली तथा वेदसम्मत दिव्य कथा को सुनो।।१।। जो व्यक्ति नित्य बारबार सुनने से अपने मन में धारण करे, तो वह अपने वंश को धारण करके अर्थात् अपने वंश को अच्छी तरह सुख समृद्ध बनाकर स्वर्ग लोक में महत्त्व को प्राप्त करता है।।२।। जो कथा पाँच प्रकार से विश्वतारा है, जिनको जैसे बताया गया है, वैसा ही सुना गया है, जो कथा पूर्वजों की कीर्ति को बढ़ाने वाली है।।३।। जिस हिरण्यगर्भ की कीर्तन कथा सब पुण्य कर्म करने वालों को धन देने वाली, यश देने वाली, आयु देने वाली, स्वर्ग सुख देने वाली और शत्रु को नष्ट करने वाली है, जिससे कल्प की कल्पना की जाती है। समग्र पवित्रता के लिए जो पवित्र है, उस हिरण्यगर्भ और पुरुषों के ईश्वर (रचयिता), अजन्मा, सबसे पहले पुरुष, सबसे बड़े प्रजा की उत्पत्ति करने वाले, स्वयं उत्पन्न होने वाले, लोक के तन्त्ररूप ब्रह्म के लिये नमस्कार करके मैं जो महतत्त्व आदि से विशेष (प्रधान) तक अनेकों रूपों वाली, जो पाँच प्रमाणों वाला छठे में श्रान्त पुरुष से अधिष्ठित है, उसका संयमपूर्वक वर्णन करूँगा। जो उस पञ्चभूतों की सृष्टि में उत्तम है तथा जो अव्यक्त कारण है तथा जो नित्य है अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं होता और सत् और असत् है और जो वर्तमान है और नहीं भी है, जिसको कि तत्त्व का चिन्तन करने वाले मनस्वी लोग प्रधान और प्रकृति कहते हैं। जो प्रकृति गन्ध, रूप, रसों से हीन है, एवं शब्दस्पर्श से रहित है।।४-९।। यह प्रधान (प्रकृति) ही संसार की योनि है अर्थात् जैसे योनि से प्राणी

अनाद्यंतमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम्। असांप्रतिकमज्ञेयं ब्रह्म यत्सदसत्परम्॥११॥
तस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम्। गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभातं तमोमयम्॥१२॥
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै। गुणभावाद्भासमाने महातत्त्वं बभूव ह॥१३॥
सूक्ष्मः स तु महानग्रे अव्यक्तेन समावृतः। सत्त्वोद्रेको महानग्रे सत्त्वमात्रप्रकाशकः॥१४॥
सत्त्वान्महान्स विज्ञेय एकस्तत्कारणस्त्र स्मृतः। लिङ्गमात्रं समुत्पन्नं क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं महत् १५॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् महासृष्टिं च कुरुते वीतमानः सिसृक्षया॥१६॥
धर्मादीनि च भूतानि लोकतत्त्वार्थहेतवः। मनो महात्मनि ब्रह्म दुर्बुद्धिख्यातिरीश्वरात्॥१७॥
प्रज्ञासंधिश्च सर्वस्वं संख्यायतनरश्मिभिः। मनुते सर्वभूतानां तस्माच्चेष्टफलो विभुः॥१८॥
भोक्ता त्राता विभक्तात्मा वर्त्तनं मन उच्यते। तत्त्वानां संग्रहे यस्मान्महांश्च परिमाणतः॥१९॥
शेषेभ्यो गुणतत्त्वेभ्यो महानिव तनुः स्मृतः। विभक्तिमानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि वा॥२०॥

की उत्पत्ति होती है, वैसे ही यह प्रकृति संसार की योनि है। इस प्रकृति से समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है, जो महाभूत है। पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश ये तो पञ्चभूत हैं; परन्तु यह प्रकृति उन सबकी उत्पत्तिकर्त्री होने के कारण महाभूत है। जो प्रकृति परंब्रह्म और बहुत प्राचीन है तथा जो अव्यक्त (न दिखायी देने वाली) होते हुए भी निश्चय ही सभी पञ्चभूत वालों का शरीर है।।१०।। जो प्रकृति अनादि अजन्मा और सूक्ष्म है तथा जो सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुणों वाली है। यह प्रकृति असाम्प्रतिक (अर्थात् यदि कोई कहे कि प्रकृति यहाँ इस समय है ये है, ऐसा नहीं कहा जाता। वह जब दिखाई ही नहीं देती, तब कैसे कहा जा सकता है कि वह अब है, तब है। वह अज्ञेय है, उसे न कोई जान सका, न जान सकेगा तथा जो सत् और असत् से परे है, उसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह है अथवा नहीं है।।११।।

उसका यह ब्रह्माण्ड तमोमयं व्याप्त है। उस प्रधान के तीनों गुणों की समानता होने पर तमोमय ब्रह्माण्ड प्रकाशित नहीं होता। अर्थात् प्रकृति के तीनों गुणों के समान होने पर सृष्टि नहीं होती है। वह प्रलय काल होता है।।१२।। जब सृष्टि का समय होता है, उस समय क्षेत्रज्ञ (पुरुष, जीव) निश्चित रूप से अधिष्ठित होता है अर्थात् प्रकृति में क्षेत्रज्ञ अधिष्ठित रहते हैं। क्षेत्रज्ञ आत्मा को कहा जाता है। गुणभाव की प्रतीति होने पर वह महान् तत्त्व होता है। भाव यह है कि जब आत्मा के गुणभाव अर्थात् गुणों वाली प्रकृति (प्रधान) का सम्बन्ध होता है अर्थात् आत्मा और प्रकृति के एक साथ रहने पर महत्तत्व होता है। महत्तत्त्व (बुद्धि) को कहते हैं। प्रकृति पुरुष के संयोग से ही बुद्धि तत्त्व अपना कार्य करता है अर्थात् शरीर में ज्ञान शक्ति आत्मा के कारण ही आती है। आत्मतत्त्व के अभाव में यह प्रकृति निश्चेष्ट हो जाती है।।१३।। वह सूक्ष्म महतत्त्व तो आगे अव्यक्त (प्रकृति) से समावृत रहता है। सत्त्वगुण की अधिकता (सत्त्व के उद्रेक) से महत्तत्त्व सत्त्वमात्र का प्रकाश करने वाला है।।१४।। सत्त्व गुण से ही महत्तत्त्व जाना जाता है। इस महतत्त्व (बुद्धि) का सत्त्वगुण ही कारण है। यह महत्तत्त्व लिङ्गमात्र रूप उत्पन्न आत्मा में अधिष्ठित है।।१५।। सम्यक् प्रकार से कल्पना करना अर्थात् किसी विषय में सोच विचार करना और सोच विचार कर किसी विशेष कार्य को करने का निर्णय लेना उस महत्तत्त्व के दो ही कर्त्तव्य हैं। यही प्रकृति में समाया हुआ होकर सृष्टि करने की इच्छा से महासृष्टि करता है।।१६।। लोकतत्त्व के अर्थ के कारण धर्म आदि और भूतों की रचना करता है। इस महान् आत्मा में मन ब्रह्म है, जिसको ईश्वर से दुर्बुद्धि कहा गया है।।१७।। यह मन ही भोग करने वाला है, शरीर की रक्षा करने वाला और आत्मा से विभक्त होकर व्यवहार करने वाला है। तत्त्वों के संग्रह में जिस परिमाण

पुरुषो भोगसंबंधात्तेन चासौ सति स्मृतः।
बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च भावानामखिलाश्रयात्॥२१॥
यस्माद् बृंहयत भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते। आपूरयति सस्माच्च सर्वान् देहाननुग्रहैः॥२२॥
बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वान् भावान्पृथक् पृथक्।
तस्मिंस्तु कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणः पुरा॥२३॥
प्राकृतं देवि वर्तं मां क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंमितः। स वै शरीरी प्रथमः पुरा पुरुष उच्यते॥२४॥
आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तिनाम्॥२५॥
हिरण्यगर्भः सोऽण्डेऽस्मिन्प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः। सर्गे च प्रतिसर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्म संमितः॥२६॥
करणैः सह पृच्छंते प्रत्याहारैस्त्यजंति च। भजन्ते च पुनर्देहांस्ते समाहारसंधिसु॥२७॥
हिरण्यमस्तु यो मेरुस्तस्योद्धर्तुर्महात्मनः। गर्तोदकं संबुदास्तु हरेयुश्चापि पंचताः॥२८॥

से मन महान् है। शेष गुणवालों से शरीर महान् कहा गया है। वह अपने को विशेष भक्तिमान् (विभागवाला) अथवा विभाग (अलग) मानता है।।२०।। पुरुष विषयों का भोग करने वाला है; क्योंकि समस्त इन्द्रियां जो भोग कराने की साधनमात्र हैं, वे पुरुष (आत्मा) के रहने पर ही क्रियाशील रहती हैं। पुरुष के अभाव में न श्रोत्र श्रवण का, न त्वक् स्पर्श का, न आँख दर्शन का, न जिह्वा रसास्वादन का और नासिका घ्राण का आनन्द ले पाती है। जब ज्ञानेन्द्रियां किसी विषय का ज्ञान ही नहीं करायेंगी तो फिर कर्मेन्द्रियां काम ही क्या करेंगी वे भी तो शरीर में आत्मा के रहने पर ही क्रियाशील होती हैं।।२०।।

यह आत्मा भोगसम्बन्ध के कारण उस प्रकृति में समाविष्ट रहता है और उसी प्रकृति (प्रधानतत्त्व) के द्वारा भोग करता है; क्योंकि बुद्धि, अहंकार, मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां, शब्द स्पर्श रूप रस और गंध पांच सूक्ष्म भूत एवं आकाश, वायु, अग्नि (तेज), जल और पृथ्वी आदि सभी तत्त्व तो प्रकृति के ही अधीन हैं। अतः प्रकृति से विना सम्बन्ध स्थापित किये यह पुरुष विषयों का भोग नहीं कर सकता। यह पुरुष उस प्रकृति में समाया हुआ रहकर उसी के द्वारा भोग करता है। अतः पाप पुण्य का फल भी उसी प्रकृति के द्वारा उसमें स्थित रहकर उसे ही भोगना पड़ता है। उस अखिल पुरुष से ही भावों की वृद्धि होती है। यह पुरुष ही बृहत् बड़ा होने और बढ़ने उगने का कारण है। अर्थात् होना जो क्रिया है, जिसके अन्तर्गत बड़ा होना और बढ़ना (उगना) आदि भाव रहते हैं, वे सब भाव पुरुष से ही होते हैं।।२१।। जिस पुरुष से भावों की वृद्धि होने से उस पुरुष के द्वारा ब्रह्मा कहा जाता है और जिससे ब्रह्मा सभी शरीरधारियों को अपनी कृपा से पूरी तरह पूर्ण करता है।।२२।। जिसके द्वारा यहां यह पुरुष सब भावों को जानता है, उसमें तो कार्य कारण की संसिद्धि पहले ब्रह्मा की हुई है।।२३।।

हे देवि! प्राकृत तो विद्यमान और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) ब्रह्म से युक्त है। वह ब्रह्म से युक्त पुरुष (आत्मा) ही निश्चित रूप से शरीरी (शरीर वाला) और प्राचीन पुरुष कहा जाता है; क्योंकि पुरुष शरीर वाला है, शरीर प्रकृति है। प्रकृति पुरुष के संयोग से ही सृष्टि करती है। पुरुष के विना प्रकृति निश्चेष्ट है।।२३।। वह पुरुष ही ब्रह्मा के आगे सम्वर्तमान भूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) का आदि कर्ता है।।२५।। इस अण्ड में वह चारमुख वाला हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ है। वह सृष्टि और प्रलय में यह क्षेत्रज्ञ (आत्मा) ब्रह्म से सम्मित है।।२६।। इन्द्रियों के साथ जब पुरुष होते हैं, तब वे प्रच्छन्त (प्रलयकाल में) शरीर रूपी चादर से ढके हुए रहते हैं। प्रत्याहारों के द्वारा शरीर छोड़ते हैं और फिर पुनः शरीरों को धारण करते हैं। जिस ब्रह्माण्ड में ये सात लोक निश्चित ही सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित हैं। सात समुद्रों

यस्मिन्नंड इमे लोकाः सप्त वै संप्रतिष्ठिताः। पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैः सह सप्तभिः॥२९॥
पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः। अन्तःस्थस्य त्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत्॥३०॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ संग्रहः सह वायुना।
लोकालोकं च यत् किंचिदंडे तस्मिन्प्रतिष्ठितम्॥३१॥
आपो दशगुणे नैव तेजसा बाह्यतो वृताः। तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम्॥३२॥
वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः। आकाशमावृतं सर्वं बहिर्भूतादिना तथा॥३३॥
भूतादिर्महता चैव प्रधानेनावृतो महान्। एभिरावरणैरंड सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम्॥३४॥
इच्छयावृत्य चान्योन्यमरणे प्रकृतयः स्थिताः।
प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसंतश्च परस्परम्॥३५॥
एवं परस्परैश्चैव धारयन्ति परस्परम्। आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिषु॥३६॥

और सात द्वीपों के साथ पृथ्वी इस ब्रह्माण्ड में प्रतिष्ठित हैं।।२९।। हजारों विशाल पर्वतों और नदियों से युक्त यह ब्रह्माण्ड है। इस अण्ड के अन्तर्गत ये लोक स्थित है; इसके अन्दर ही यह समस्त विश्व है।।३०।। चन्द्रमा और सूर्य सनक्षत्र वायु के साथ एकत्र होकर स्थित हैं तथा लोक और अलोक जो कुछ भी है, इस अण्ड में प्रतिष्ठित है। यहाँ लोक से तात्पर्य वे ग्रह अथवा नक्षत्र हैं, जहाँ लोक अर्थात् जनजीवन है तथा अलोक अर्थात् जहाँ जनजीवन नहीं है। ऐसे सभी ग्रह-नक्षत्र इस ब्रह्माण्ड में स्थित हैं।।३१।।

यह ब्रह्माण्ड जल के दश गुने अग्नि द्वारा बाहर से आवृत है और तेज (अग्नि) के दश गुने वायु द्वारा बाहर से आवृत है।।३२।। वायु के दश गुने आकाश के द्वारा बाहर से घिरा हुआ है और समस्त आकाश सब भूतादि (पञ्चमहाभूत और पञ्च सूक्ष्मभूतों) से बाहर से घिरा हुआ है।।३३।। और ये भूतादि महत्तत्त्व से घिरे हुए हैं और महत्तत्त्व प्रधानतत्त्व प्रकृति से आवृत है और इन प्रकृति के सात आवरणों से यह अण्ड आवृत है।।३४।। परस्पर मरण में इच्छा से आवृत्त करके प्रकृतियाँ स्थित हैं। सृष्टि रचना के समय में वे परस्पर एक-दूसरे को ग्रसते हुए स्थित हैं।।३५।। इस प्रकार एक-दूसरे के द्वारा वे एक-दूसरे को धारण करते हैं। आधार और आधेय भाव से वे परस्पर विकारियों में विकार पैदा करते हैं।।३६।।

अर्थात् प्रकृति आधार है और आधेय है—महत्तत्त्व। प्रकृति में विकार हुआ तो महान् की सृष्टि हुई और महत्तत्त्व में विकार हुआ तब अहंकार पैदा हुआ था। अब अहंकार से दो प्रकार की सृष्टि हुई। एक सात्त्विक, दूसरी तामसिक। सात्त्विक सृष्टि में मन सहित पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों की सृष्टि हुई और तामसिक अहंकार से पांच तन्मात्राओं की उत्पत्ति हुई। तब यह अहंकार १६ तत्त्वों की उत्पत्ति का कारण है। उसके बाद वे सूक्ष्म तत्त्व क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्त्वों के कारण हैं। इन सबमें आधार आधोय भाव सम्बन्ध है। ये सब एक दूसरे के आधार और आधेय हैं। अतः प्रकृति अविकृत है। यह किसी का विकार नहीं और प्रकृति के विकार सात हैं, वे हैं—महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्च सूक्ष्मतत्त्व ये ही सप्त प्रकृतियां हैं। ये सातों एक-दूसरे के प्रकार और विकार हैं। महत्तत्त्व प्रकृति का विकार तथा अहंकार का प्रकार है। अहंकार पाँच सूक्ष्म तत्त्वों तथा एकादश इन्द्रियों का प्रकार है। अतः ये सब एक-दूसरे को पैदा करने वाले और पैदा होने वाले हैं। यही इन श्लोकों का रहस्य है। आगे कहते

अव्यक्तं क्षेत्रमित्युक्तं ब्रह्म क्षेत्रज्ञमुच्यते। इत्येवं प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः॥३७॥
अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा। एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेत्ति तत्त्वतः।
आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रज्ञावांश्च न संशयः॥३८॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे प्रथमे प्रक्रियापादे हिरण्यगर्भोत्पत्ति-वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

हैं कि यह क्षेत्र अर्थात् प्रकृति अव्यक्त है अर्थात् अ = नहीं, वि = अञ्ज् + क्त। अर्थात् विशेष रूप से व्यक्त न हो, वह अव्यक्त होता है अर्थात् जो किसी इन्द्रिय से न जाना जा सके, वह अव्यक्त है। इस प्रकार यह प्रकृति किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं है। यही सांख्य दर्शन का सिद्धान्त है। अतः यह क्षेत्र (प्रकृति) को जानने वाला क्षेत्रज्ञ (आत्मा) है, जिसे पुरुष कहा गया है, जो ब्रह्म का ही रूप है। अतः यह ब्रह्म ही प्रकृति को जानने वाले हैं। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) से अधिष्ठित है। क्षेत्र (प्रकृति) पहले बुद्धि से रहित है; परन्तु जब इसमें क्षेत्रज्ञ (आत्मा) ब्रह्म का संयोग होता है, तब वह उसी प्रकार उत्पन्न होता है, जैसे कि आकाश में बिजली पैदा होती है। इस प्रकार हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति है। इस प्रकार हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति को जो तत्त्वरूप से जानता है, वह आयुवाला कीर्तिवाला, धन से सम्पन्न और बुद्धिमान् होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३७-३८।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग प्रक्रिया पाद तृतीश अध्याय हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति वर्णन का हिन्दी अनुवाद डॉ. दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

विशेष—हिरण्यगर्भ का अर्थ है—हिरण्य है गर्भ में जिसके, यहाँ पर हिरण्य/सोने को कहा जाता है। ब्रह्मा को सोने के अण्डे से पैदा होने वाला कहा गया है। सोने से पैदा होने का अर्थ पीले वर्ण वाले किसी से, जिसके आधार पर सूर्य से पैदा हुआ भी माना जा सकता है। जो वैज्ञानिक रहस्य है; क्योंकि पृथ्वी आदि अनेक ग्रह सूर्य से पैदा हुये विज्ञान भी मानता है।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे प्रथम प्रक्रिया पादे

लोककल्पनं

चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच

आत्मन्यवस्थिते व्यक्ते विकारे प्रतिसंहते। साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषौ तदा॥१॥
तमःसत्त्व गुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ। अनुद्रिक्तावनुचरौ तेन प्रोक्तौ परस्परम् २॥
गुणसाम्ये लयो ज्ञेय आधिक्ये सृष्टिरुच्यते।
सत्त्ववृद्धौ स्थितिरभूद् ध्रुवं पद्म शिखास्थितम्॥३॥
यदा तमसि सत्त्वे च रजोप्यनुगतं स्थितम्। रजः प्रवर्तकं तच्च बीजेष्विव यथा जलम् ४॥
गुणा वैषम्यमासाद्य प्रसंगेन प्रतिष्ठिताः। गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो ज्ञेया हि सादरे॥५॥
शाश्वताः परमा गुह्याः सर्वात्मान शरीरिणः। सत्त्वं विष्णू रजो ब्रह्मा तमो रुद्रः प्रजापतिः॥६॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग प्रथम प्रक्रिया पाद

अध्याय–४

लोक की कल्पना

आत्मा में प्रकृति के विकार के प्रतिसंहत हो जाने पर तब प्रधान और पुरुष दोनों ही समानधर्मता के साथ स्थित रहते हैं।।१।। उस समय प्रकृति (प्रधान) तत्त्व के तम और सत्त्वगुण समानता के साथ स्थित रहते हैं। उस प्रकृति के द्वारा वे दोनों बिना एक-दूसरे से अधिकता को प्राप्त हुए। एक-दूसरे का अनुसरण करने वाले कहे गये हैं।।२।। उन दोनों गुणों सत्त्व और तम की समानता होने पर प्रलय और अधिकता होने पर सृष्टि होती है। वह भी सत्त्वगुण की वृद्धि होने पर निश्चय ही कमल की शिखा पर स्थिति हुई अर्थात् सत्त्वगुण की वृद्धि होने पर ही वनस्पति की उत्पत्ति होती है; क्योंकि यहाँ पर पद्म वनस्पति का प्रतीक है।।३।। आगे कहते हैं कि जब तमोगुण और सत्त्वगुण के साथ रजोगुण भी अनुगत होता है। अर्थात् रजोगुण भी जब तम और सत्त्वगुण के साथ रहता है; क्योंकि जैसे बीजों से वृक्ष की उत्पत्ति में जल प्रवर्तक होता है, उसी प्रकार यह रजोगुण–तमोगुण और सत्त्वगुण का प्रवर्तक है। रजोगुण के विना ये दोनों कोई क्रिया नहीं करते। तीनों गुण सत्त्व, रजस् और तमस् विषमता को प्राप्त करके प्रसङ्ग से प्रतिष्ठित होते हैं अर्थात् जब गुणों में विषमता होती है। सत्त्व की अधिकता तमस् की न्यूनता या फिर तमस् की अधिकता सत्त्व की न्यूनता तथा उसके साथ रजोगुण की प्रवर्तकता रहती है तभी प्रसङ्ग अर्थात् कुछ निर्माण या विनाश होता है। प्रसङ्ग (घटना) को भी कहा जाता है अर्थात् गुणों की विषमता से ही कुछ होता है। गुणों के बीच उथल-पुथल होने से ही तीन आदर सहित जाने गये[१] हैं।।५।। इस शरीर वाले आत्मा के ये गुण परमगुह्य और शास्वत हैं, ये आत्मा के रूप

१. इन उपर्युक्त पाँच श्लोकों में वैज्ञानिक रहस्य का उद्‌घाटन किया गया है। जिस प्रकार यहाँ तथा सब संस्कृत साहित्य में प्रकृति को सत्त्व, रज और तम तीन तत्त्वों वाली कहा गया है, उसे विज्ञान पदार्थ की संरचना इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान के रूप में स्वीकार करता है। जो पूर्णतः इलेक्ट्रान प्रकृति का रजो गुण है; क्योकि रज को प्रवर्तक कहा

रजः प्रकाशको विष्णुर्ब्रह्मस्त्रष्टत्वमाप्नुयात् जायते च यतश्चित्रा लोकसृष्टिर्महौजसः॥७॥

तमःप्रकाशको विष्णुः कालत्वेन व्यवस्थितः।

सत्त्वप्रकाशको विष्णुः स्थितित्वेन व्यवस्थितः॥८॥

एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः। एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः॥९॥

परस्परान्वया ह्येते परस्परमनुव्रताः। परस्परेण वर्तंते प्रेरयन्ति परस्परम्॥१०॥

अन्योन्यं मिथुनं ह्येते अन्योन्यमुपजीविनः।

क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजंति परस्परम्॥११॥

प्रधानगुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्त्तते। अदृष्टाऽधिष्ठितात्पूर्वे तस्मात्सदसदात्मकात् १२॥

ब्रह्मा बुद्धित्वमिथुनं युगपत्संबभूव ह। तस्मात्तमोव्यक्तमयं क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञकः॥१३॥

संसिद्धकार्यकरणो ब्रह्माग्रे समवर्त्तत। तेजसाप्रतिमो धीमानव्यक्तः संप्रकाशकः॥१४॥

में कभी नष्ट नहीं होते। इनकी स्थिति शरीर के अन्दर आत्मा में रहती है। अतः इन तीनों गुणों को विष्णु ब्रह्मा और तम को रुद्र प्रजापति कहा गया है।।६।। रज का प्रकाशक विष्णु, ब्रह्मा होता है, जिसने सृष्टि करने वाले गुण को प्राप्त किया। अर्थात् रजोगुण ने सत्त्व गुण का प्रकाश किया, तब सृष्टि हुई। भाव यह है कि सत्त्वगुण में रजोगुण की प्रवृत्ति से सत्त्वोद्रेक के कारण इस चित्र-विचित्र पेड़-पौधों वाले संसार की रचना हुई।।७।। तम का प्रकाशक विष्णु, कालता (संहारकर्ता) के रूप में व्यवस्थित हुआ। अर्थात् वह प्रलयकाल का समय है। भाव यही है कि सत्त्व में जब तम की अधिकता होती है, तब प्रलयकाल होता है तथा सत्त्व का प्रकाशक विष्णु स्थितित्व रूप से व्यवस्थित है। अर्थात् जब तक सत्त्वगुण का उद्रेक रहता है, उस समय संसार स्थित रहता है। पेड़-पौधे जीव-जन्तु पैदा होते हैं बढ़ते हैं, घटते हैं और नष्ट होते हैं, यही स्थितिकाल है।।८।।

ये ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों गुण हैं। ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नि हैं।।९।। ये तीनों गुण सत्त्व, रज और तम या फिर विष्णु ब्रह्मा और रुद्र परस्पर अन्वय हैं अर्थात् एक-दूसरे के अनुगामी हैं और एक-दूसरे के अनुसार व्रत (नियम) का पालन करने वाले हैं। एक-दूसरे के साथ रहते हैं और एक-दूसरे को प्रेरित करते हैं।।१०।। ये सभी एक दूसरे के मिथुन (जोड़ा) दम्पति हैं। इन सबका एक क्षण भर के लिये भी एक-दूसरे से वियोग नहीं होता है। ये क्षण भर के लिये भी एक-दूसरे को नहीं छोड़ते हैं।।११।। प्रधान अर्थात् प्रकृति के तीनों गुणों सत्त्व रज और तम में जब विषमता होती है, तब उत्पत्तिकाल में प्रधान प्रवृत्त होता है अर्थात् गुणों की विषमता में प्रकृति जीवों की उत्पत्ति करती है। उसी समय वनस्पतियां जीव-जन्तु पैदा होते हैं। उस समय न दिखायी देने वाले रूप से अधिष्ठित प्रकृति असत् आत्मकभाव से सदात्मकभाव में स्थित हो जाती है। इसलिये सांख्य में कहा गया है कि असत् से सत् की उत्पत्ति हुई।।१२।। ब्रह्मा ने बुद्धित्व मिथुन को एक साथ उत्पन्न किया। उससे तमो अव्यक्त मय क्षेत्रज्ञ (आत्मा) ब्रह्मसंज्ञक हुआ। अर्थात् प्रलयकाल में जो तमोगुण प्रधान प्रकृति थी, उसमें जब बुद्धि (महत्तत्त्व) आया, तो वह तमोमय प्रकृति क्षेत्रज्ञ आत्मा अर्थात् ब्रह्म के नाम वाला हुआ; क्योंकि बुद्धि ने जब उसको जाना, तब वह क्षेत्रज्ञ (प्रकृति को जानने वाला) पुरुष ब्रह्म कहा गया।१३।। सम्यक् रूप

गया है तथा न्यूट्रान और प्रोटान ऋणात्मक और धनात्मक शक्तियाँ हैं, जिनको प्रवृत्त करने वाला इलेक्ट्रान रजोगुण है। विज्ञान के अनुसार इलेक्ट्रान ही गतिशील रहता है, जो पदार्थ को जोड़कर रखता है तथा विज्ञान भी यह मानता है कि जब तक तीनों में विषमता होती है, तभी पदार्थ का अस्तित्व रहता है, समता में तो पदार्थ स्थिर रह ही नहीं सकता।

स वै शरीरप्रथमो धारणत्वव्यवस्थितः। ज्ञानेनाप्रतिमेनेह वैराग्येण च सप्ततिः॥१५॥

अव्यक्तत्वाय तेनास्य मनसा यद्यदिच्छति।
वशीकृतत्वात्त्रैगुण्यात्सापेक्षत्वाच्च भावतः॥१६॥

ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकृद्भवः। सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्त्रोऽवस्थाः स्वयंभुवः॥१७॥

सर्वंरजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः। सात्त्विकः पुरुषत्वे च गुणवृत्तं स्वयंभुवः॥१८॥

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे संक्षयत्यपि।
पुरुषत्वे उदासीनस्तिस्त्रोऽवस्थाः स्वयंभुवः॥१९॥

ब्रह्मा कमलपत्राक्षः कालो जात्यंजनप्रभः। पुरुषः पुण्डरीकाक्षो रूपेण परमात्मनः॥२०॥

से सिद्धि सफलता कार्य और उसका साधकतम कारण ब्रह्मा के आगे वर्तमान था। उस समय अव्यक्त प्रकृति तेज के समान बुद्धियुक्त हो प्रकाशक थी। अर्थात् प्रकृति में आत्म संयोग बुद्धितत्त्व की स्थिति हुई थी।।१४।। वह निश्चित पहला शरीर था, उस समय असीमित ज्ञान और वैराग्य से युक्त था।।१५।। वह पुरुष अव्यक्तता के लिये अर्थात् प्रकृति के लिए इस मन के द्वारा जो जो चाहता है, वह प्रदान करता है; क्योंकि वह आत्मा (पुरुष) कहो या ब्रह्मा कहो इस प्रकृति के ही मन से जो जो चाहता है, वह प्राप्त करता है; क्योंकि उस प्रकृति द्वारा अपने तीनों गुणों के सापेक्षत्व से और भाव से वह पुरुष वशीभूत किया जा चुका है।।१६।। ब्रह्मत्व में चतुर्मुख अर्थात् सर्जनकालमें वह ब्रह्मा चतुर्मुख रहते हैं और कालत्व में अन्त करने वाला होता है। अर्थात् प्रलयकाल में अन्त करने वाला रुद्र (शंकर) होता है। वह पुरुष सहस्रमूर्धा है तथा उस स्वयंभू (स्वयं उत्पन्न होने वाले) की तीन अवस्थायें हैं।।१७।। ब्रह्मत्व में (अर्थात्) ब्रह्मा के होने पर सृष्टिकाल में सब जगह रज रहता है अर्थात् जब सृष्टि हो रही होती है, उस समय रजोगुण का उद्रेक रहता है और जब काल (प्रलयकाल) होता है, उस समय रज और तम दोनों की अधिकता रहती है तथा पुरुषत्व काल में स्वयम्भू सात्त्विकगुण से वृत्त रहते हैं। अर्थात् जब सात्त्विक गुण का प्रावल्य होता है, उसी समय प्रकृति में पुरुष की पूर्ण स्थिति रहती है। अर्थात् जब प्रकृति में रजोगुण की अधिकता होती है, उस समय सृष्टि का सृजनकाल होता है, स्पष्ट है कि उस समय किसी भी ग्रह नक्षत्र में जीवनोपयोगी वातावरण उपस्थित होता है। जलवायु जीवन के अनुकूल बनने की स्थिति होती है; परन्तु जब सत्त्व गुण की अधिकता होती है, तब प्राणियों की उत्पत्ति होती है अर्थात् उस समय उस वातावरण में मनोमयकोश (जीवधारी) प्राणियों की उत्पत्ति होती है।।१८।।

आगे कहते हैं कि ब्रह्मत्व की अवस्था में वे स्वयम्भू लोकों की रचना करते हैं, लोकों को उत्पन्न करते हैं और कालत्वे (प्रलयकाल) आने पर सम्यक् प्रकार से सब कुछ को विनष्ट कर देते हैं और पुरुषत्व में स्वयम्भू उदासीन रहते हैं। उस समय उनकी तीनों अस्थायें होती हैं। भाव यह है कि ब्रह्मत्व (रज की अधिकता) के काल में संसारों की रचना करते हैं। कालत्व अर्थात् (तमोगुण के आधिक्यकाल) में प्रलय करते हैं और पुरुषत्व अर्थात् सत्त्वगुण की अधिकता होने पर वे स्वयम्भू सृष्टि, स्थिति और संहार तीनों कार्य करते हैं। अर्थात् सत्त्व के उद्रेक से समय, संसार रहता है अर्थात् उसमें लोग जन्म लेते हैं, जीवन जीते हैं और मृत्यु को भी प्राप्त होते हैं। उस समय प्रकृति में पुरुष (आत्मा) की पूर्ण स्थिति रहती है, यही है किसी ग्रह का जीवनकाल; क्योंकि वहाँ पर पुरुष (जीव) की पूर्णतः स्थिति है। पुरुष (आत्मा) को भी तो अपने जीने के अनुकूल प्रकृति चाहिये, जहाँ पर यह प्रकृति अनुकूल नहीं रहेगी, वहाँ से पुरुष (आत्मा) (जीवन) भला कैसे रह सकेगा।।१९।। आगे कहते हैं ब्रह्मा कमलपत्र की आंख वाला है और काल (रुद्र) अंजन (काजल) से पैदा हुआ

एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः। योगीश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च॥२१॥
नानाकृतिक्रियारूपमाश्रयंति स्वलीलया। त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते॥२२॥
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्त्तितः। यदा शेते तदार्धांते यद्भुंक्ते विषयान्प्रभुः॥२३॥

यत्स्वस्थाः सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते।
ऋषिः सर्वगतश्चात्र शरीरे सोऽभ्ययात्प्रभुः॥२४॥

स्वामी सर्वस्य यत्सर्वंविष्णुः सर्वप्रवेशनात्। भगवानग्रसद्भावान्नागो नागस्वसंश्रयात् २५॥
परमः संप्रहृष्टत्वाद्देवतादोमिति स्मृतिः। सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वं यतस्ततः॥२६॥

नाराणां स्वापनं ब्रह्मा तस्मान्नारायणः स्मृतः।
त्रिधा विभज्य चात्मानं सकलः संप्रवर्त्तते॥२७॥
सृजते ग्रसते चैव पाल्यते च त्रिभिः स्वयम्।
सोऽग्रे हिरण्यगर्भः सन् प्रादूर्भूतः स्वयं प्रभुः॥२८॥

है तथा परमात्मा के रूप से पुरुष पुण्डरीकाक्ष है। यहाँ पर यह समझना चाहिये कि ब्रह्मा रजोगुण के प्रतीक हैं। अतः उनका कमलपत्र की आँख वाला होना रक्त वर्ण का प्रतीक है अर्थात् रजोगुण का वर्ण लाल है तथा तमोगुण रुद्र शिव का प्रतीक है, जो काजल की कान्ति वाला है अर्थात् तमोगुण का रंग काला है तथा विष्णु को जो पुण्डरीकाक्ष कहा गया सो विष्णु सत्त्व के प्रतीक है तथा उनका पुण्डरीक की आँख वाला होना, श्वेत गुण का प्रतीक है; क्योंकि पुण्डरीक (श्वेत कमल) को कहा जाता है तथा यह जो कहा कि 'परमात्मनः रूपेण पुरुषः पुण्डरीकाक्षः' इसका भाव यह है कि परमात्मा के रूप द्वारा यह पुरुष पुण्डरीकाक्ष है। पुरुष यहाँ विष्णु को कहा गया है, जो सत्त्व के प्रतीक हैं। अतः सत्त्वगुण श्वेत होता है। वह योगीश्वर पुरुष एक बार, दो बार, तीन बार और अनेकों बार पुनः पुनः शरीरों को बनाता है और बिगाड़ता है।।२०।।

वह योगीश्वर पुरुष प्रकृति के संयोग से अपनी लीला से अनेकों प्रकार की आकृतियाँ और क्रिया के रूपों का आश्रय लेता है। संसार में जो तीन प्रकार वर्तमान हैं, उससे त्रिगुण (सत्व, रजस् तमस् वाला) कहा जाता है।।२१।। चार प्रकार का विशेषरूप से विभक्त होने के कारण चतुर्व्यूह कहा गया है। जब वे स्वयम्भू अर्धान्त में शयन करते हैं, जो कि विषयों का भोग करते हैं। जो निरन्तर स्वस्थभाव हैं, उससे वे आत्मा कहे जाते हैं। वह विष्णु मन्त्रद्रष्टा है और सबमें गमन करने वाला है और शरीर में वह प्रभु विचरण करता है।।२४।। वह विष्णु सभी में प्रविष्ट होने के कारण सबका स्वामी है और वही सब कुछ है। उन भगवान् ने संसार को उसी तरह ग्रस लिया जैसे कि नाग (सर्प) अपने आश्रय रहने वाले नागों (सर्पों) को ग्रस लेता है।।२५।। परम प्रहृष्ट होने के कारण ही वह देवता से 'ओम्' ऐसी स्मृति है। सब कुछ जहाँ से वहाँ तक विशिष्ट रूप से जानने के कारण वह सर्वज्ञ कहा जाता है।।२६।।

जलों का स्वापन (सुलाना) भी वह ब्रह्मा है। अर्थात् जलों का उनका शयन स्थान है; इसलिए वे नारायण कहलाये। यहाँ नारायण का अर्थ है—नार + अयन। नार जल को कहा जाता है तथा अयन का अर्थ है—स्थान। अतः विष्णु का स्थान जल में है; इसलिए उन्हें नारायण कहा गया है। नार का अर्थ जीवन भी है। इस प्रकार से नारायण का अर्थ जीवन का स्थान हुआ, वैसे वैज्ञानिक दृष्टि से भी देखा जाये तो जीव की उत्पत्ति जल से ही हुई है। जहाँ

आद्यो हि स्ववशश्चैव अजात्वादजः स्मृतः। तस्माद्धिरण्यगर्भश्च पुराणेषु निरुच्यते॥२९॥
स्वयंभुवो निवृत्तस्य कालो वर्णाग्रतस्तु यः। न शक्यः परिसंख्यातुं मनुवर्षशतैरपि॥३०॥
कल्पसंख्यानिवृत्तस्तु परार्धो ब्रह्मणः स्मृतः।
तावत्त्वे योऽस्य कालोऽन्यस्तस्यांते प्रतिबुद्ध्यते॥३१॥
कोटिवर्षसहस्राणि गहभूतानि यानि च। समतीतानि कल्पानां तावच्छेषात्परे तु ये॥३२॥
यत्स्वयं वर्त्तते कल्पो वाराहस्तन्निबोधत। प्रथमं सांप्रतस्तेषां कल्पो वै वर्त्तते च यः॥३३॥
पूर्णे युगसहस्रे तु परिपाल्यं नरेश्वरैः॥३४॥

॥इति श्रीब्रह्माण्ड महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे प्रथमे प्रकियापादे लोककल्पनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

जल है, वहाँ जीवन अवश्य होगा; इसलिए जल को जीवन कहा गया है। इसीलिये आज वैज्ञानिक जीवन के प्रमाण के लिये ग्रहों पर जल को खोज रहे हैं। वे स्वयम्भू विष्णु इस आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त कर समस्त कलाओं से प्रवृत्त होते हैं और फिर वे ही संसार को या जीव को उत्पन्न करते हैं। ग्रसते और पालन करते हैं। ये तीनों ही कार्य वे प्रभु स्वयं करते हैं। वही प्रभु आगे चलकर स्वयं हिरण्यगर्भ के रूप में प्रकट हुए।।२७-२८।। सबसे पहले वे स्वयम्भू अपने वश के कारण न उत्पन्न होने वाला होने के कारण अज रूप में विख्यात हुए। उसी कारण वे पुराणों में हिरण्यगर्भ कहे गये हैं। हिरण्य का अर्थ सोना और आत्मा दोनों है। अतः वह परमात्मा आत्माओं का गर्भ है, उसी से सभी आत्माओं की उत्पत्ति हुई; इसलिए उस स्वयम्भू अथवा विष्णु को हिरण्यगर्भ कहा जाना उचित ही है।।२९।।

जो स्वयम्भू का निवृत्तकाल इतना आगे हो चुका है अर्थात् उस स्वयं उत्पन्न होने वाले विष्णु हिरण्यगर्भ या स्वयम्भू की कालगणना सैकड़ों मनुष्यों के वर्षों से भी नहीं की जा सकती है अर्थात् वे स्वयम्भू कब पैदा हुए, कब उनका अन्त होगा, यह नहीं बताया जा सकता। अतः वे अनादि और अनन्त हैं।।३०।। अनेकों कल्पों की संख्या बीतने पर तो ब्रह्मा का एक परार्द्ध होता है। यह ब्रह्म कल्प कहलाता है। उस ब्रह्म कल्प के अन्त में अन्य कल्प जाना जाता है।।३१।। हजारों करोड़ वर्ष बीतने पर अन्य कल्प का स्थान आता है। उस कल्प को वाराह कल्प कहा जाता है तथा इस समय यह वाराह कल्प ही वर्तमान है।।३२।। हजारों युगों के बीतने तक यह कल्प चलेगा और राजाओं द्वारा पालन किया जायेगा।।३३-३४।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग प्रक्रिया पाद चतुर्थ अध्याय लोक की कल्पना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे प्रथम प्रक्रिया पादे

लोककल्पनम्

पञ्चमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच

आपोऽग्रे सर्वगा आसन्नेतस्मिन्पृथिवीतले। शांतवातैः प्रलीनेऽस्मिन्न प्राज्ञायत किञ्चन॥१॥
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे। विभुर्भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् २॥
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतींद्रियः। ब्रह्म नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा॥३॥
सत्त्वोद्रेकान्निषिद्धस्तु शून्यं लोकमवैक्षत। इमं चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति॥४॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः प्रोक्तास्तेन नारायणः स्मृतः॥५॥

तुल्यं युगसहस्रस्य वसन्कालमुपास्यतः। स्वर्णपत्रे प्रकुरते ब्रह्मत्वादर्शकारणात्॥६॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग प्रथम प्रक्रिया पाद

अध्याय–५

लोककल्पन

सबसे पहले सभी जगह पृथ्वीतल पर जल ही जल था और शान्त वायुओं से प्रलीन जल में कुछ भी नहीं अच्छी तरह जाना जाता था।।१।। तब एकार्णव में स्थावर जङ्गमों के नष्ट हो जाने पर ब्रह्मा विभु सहस्राक्ष हजार आँखों वाले और सहस्रपाद (हजारों पैरों वाले) वह ब्रह्मा विभु (उत्पन्न) हुए।।२।। उस समय रुक्मवर्ण (सुनहरे वर्णवाले) सहस्रशीर्षापुरुष जो इन्द्रियों से नहीं जाने जा सकते थे। अर्थात् न वे कान से सुने जा सकते थे, न त्वक् से स्पर्श किये जा सकते थे, न आँख से देखे जा सकते थे, न जिह्वा से चखे जा सकते थे और न नासिका से सूँघे जा सकते थे, यही नहीं वे मन से सोचे भी नहीं जा सकते थे कि वह इस प्रकार के होंगे। अर्थात् वे किसी भी इन्द्रिय द्वारा ज्ञेय नहीं थे। ऐसे वे नारायण नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म जल में शयन कर रहे थे।।३।। उन्होंने सत्त्व के उद्रेक से निषिद्ध संसार को शून्य देखा। अर्थात् प्रकृति में सत्त्व का उद्रेक नहीं था तथा जब तक सत्त्व का उद्रेक नहीं होगा, तब तक सृष्टि नहीं होगी। यहाँ नारायण के प्रति इस श्लोक का उदाहरण है।।४।।

आपः = आप् (जल) का बहुवचन है अतः जलों, अर्थ हुआ तथा नार जल को कहा जाता है। अतः नाराः का अर्थ जलों हुआ और नार शब्द नर से बना है। अतः जल—नर (पुरुष) आत्मा जीव या परमात्मा जो कहिये, के पुत्र हैं। जल को नर का पुत्र कहने का एक वैज्ञानिक रहस्य है; क्योंकि नर का अर्थ आत्मा या जीव है तथा उस जीव की उत्पत्ति जल से ही हुई है; इसलिए जल को नरसूनु कहना उचित ही है। उसका अयन अर्थात् घर = नारायण। अतः नारायण का अर्थ हुआ जलों का घर। सृष्टि के आदि में सर्वत्र जल ही जल था। उस जल में सहस्राक्ष सहस्रपात् पुरुष अर्थात् जीव मौजूद था। इसलिए उस तात्कालिक पुरुष को नारायण कहा गया।।५।। हजारों युगों के तुल्य समय तक उस जल में बैठकर रहते हुए स्वर्णपत्र पर ब्रह्मा आदर्शकारण से स्थित थे।।६।।

ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्नवाग् भूत्वा तदा चरन्।
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः॥७॥
ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायांतर्गते महत् अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति॥८॥
ॐकाराष्टतनुं त्वन्यां कल्पादिषु यथा पुरा। ततो महात्मा मनसा दिव्यरूपमचिन्तयत्॥९॥
सलिलेऽवप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स समचिंतयत्। किं तु रूपमहं कृत्वा सलिलादुद्धरे महीम्॥१०॥
जलक्रीडासमुचितं वाराहं रूपमस्मरत्। अदृश्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम्॥११॥
दशयोजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम्। नीलमेघप्रतीकाशं मेघ स्तनितनिःस्वनम्॥१२॥
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेततीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम्। विद्युदग्निप्रतिकाशमादित्यसमतेजसम्॥१३॥
पीनवृत्तायतस्कंधं विष्णुविक्रमगामि च। पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम्॥१४॥
आस्थाय रूपमतुलं वाराहममितं हरिः। पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम्॥१५॥
दीक्षासमाप्तीष्टिदंष्ट्रः क्रतुदन्तो जुहूमुखः। अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः॥१६॥
वेदस्कंधो हविर्गन्धिर्हव्यकव्यादिवेगवान्। प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः॥१७॥

ब्रह्मा तो उस जल में निःशब्द होकर आचरण कर रहे थे। अर्थात् वे बिल्कुल मौन थे, कुछ भी शब्द नहीं बोल रहे थे; परन्तु स्वर्णपत्र पर स्थित उस जल में वे वर्षाकालीन रात्रि में खद्योत के समान प्रतीत हो रहे थे; क्योंकि चारों तरफ जल ही जल था। सत्त्वहीन प्रकृति अर्थात् घोर अन्धकार उसमें स्वर्णपत्र पर विराजमान ब्रह्मा वर्षाकालीन रात्रि में खद्योत के समान चमक रहे थे। यह यहाँ जलमध्य आत्मा की स्थिति का प्रतीक है। उसके बाद उस जल में उसके अन्तर्गत महत् (बुद्धितत्त्व) को विशेष रूप से असम्मूढ (जगा हुआ) उन्होंने अनुमान से भूमि के उद्धार के बारे में विचार किया।।८।। जैसे पहले कभी अर्थात् इससे पूर्व अन्य कल्पों में ओंकार ने आठ शरीरों को धारण किया था। अतः उस महान् आत्मा (पुरुष) ने मन से दिव्य रूप का विचार किया।।९।। उस समय जल में डूबी हुई पृथ्वी को देखकर वे सोचने लगे कि किस रूप को धारण करके मैं जल से पृथ्वी को निकालूँ।।१०।। तब उन्होंने जल-क्रीडा करने में समुचित वाराह के समुचित रूप का स्मरण किया। जो रूप सब भूतों का अदृश्य था। ब्रह्म नामक वाणी से युक्त था।।११।। वह रूप दशयोजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा था। वह रूप नील मेघ के समान गर्जना करने वाला विजलियों वाला था। जैसे घनघोर काले बादलों की बिजली की चमक के साथ भयंकर गर्जना होती है, ठीक वही रूप इस वाराह का था।।१२।।

महान् पर्वत के समान शरीर वाले श्वेत और तीक्ष्ण और उग्र दाँतों वाले, बिजली की आग के समान सूर्य समान तेज वाले मोटे गोल और चौड़े कन्धों वाले, विष्णु के यान गरुड़ के समान चलने वाले, मोटे और ऊँचे कटि प्रदेश वाले बैल के लक्षणों से युक्त रूप को अपने में स्थित कर हरि ने वाराह रूप को धारण किया और फिर वाराह रूप से पृथ्वी को निकालने के लिए उन्होंने रसातल में प्रवेश किया।।१३-१५।। यहाँ पर वाराह यज्ञ पशु का प्रतीक है। दीक्षा समाप्ति में इच्छा का पूर्ण होना, उसकी दाढ़ है और यज्ञ उसका दाँत है और यज्ञ में घी डालने वाला काठ का चमचा उसका मुख है। अग्नि उसकी जिह्वा है। कुश उस यज्ञ पशु के रोम हैं और ब्रह्मशीर्ष उसका महान् तप है।।१६।। उस यज्ञ पशु (वाराह) के वेद स्कन्ध है, हवि उसकी नासिका है तथा हव्य और कव्य आदि के समान वह वेग वाला है। अनेकों दीक्षाओं से युक्त और कान्ति वाला उसका प्राग्वंश शरीर है।।१७।।

दक्षिणा हृदयो योगी श्रद्धासत्त्वमयो विभुः। उपाकर्मरुचिश्चैव प्रवर्ग्यावर्तभूषणः॥१८॥
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः। मायापत्नीसहायो वै गिरिशृंगमिवोच्छ्रयः॥१९॥
अहोरात्रेक्षणधरो वेदांगश्रुतिभूषणः। आज्यगंधः स्रुवस्तुंडः सामघोषस्वनो महान् २०॥
सत्यधर्ममयः श्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृतः। प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्महामखः॥२१॥
उद्गातांत्रो होमलिंगः फलबीजमहौषधीः। वाद्यंतरात्मसत्रस्य नास्मिकासोमशोणितः॥२२॥
भक्ता यज्ञवराहांताश्चापः संप्राविशत्पुनः। अग्निसंछादितां भूमिं समामिच्छन्प्रजापतिम्॥२३॥
उपगम्या जुहावैता मद्यश्चाद्यसमन्यसत्। सामुद्राश्च समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च।
पृथक् तास्तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन्॥२४॥
प्राक्सर्गे दह्यमानास्तु तदा संवर्तकाग्निना। तेनाग्निना विलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वशः॥२५॥
सत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुना यत्तु संहिताः। निषिक्ता यत्रयत्रासंस्तत्रतत्राचलोऽभवत् २६॥
ततस्तेषु प्रकीर्णेषु लोकोदधिगिरींस्तथा। विश्वकर्मा विभजते कल्यादिषु पुनःपुनः॥२७॥

योगी हृदय उसकी दक्षिणा है, श्रद्धा और सत्त्व युक्त होना उसका स्वामी है। उपासना उस यज्ञपशु का कर्म है और रुचि है तथा सोमयाग से किया जाने वाला अनुष्ठान उसका आभूषण है।।१८।। अनेकों प्रकार के छन्द उसका चलने का मार्ग है और गुप्त उपनिषद् ज्ञान उस यज्ञपशु वाराह का आसन है। माया उस वाराह की सहायक पत्नी है तथा पर्वत की चोटी के समान उसकी ऊँचाई है।।१९।। दिन रात उस वाराह की आँखें हैं और वेदांग उस यज्ञपशु वाराह के श्रोत्र हैं। पिघला हुआ घी उस वाराह (यज्ञपशु) का गन्ध है और काठ का चमचा उसका थूथुन (तुण्ड) है तथा सामवेद की महान् घोषध्वनि उसकी आवाज है।।२०।।

सत्य और धर्म उसकी शोभायमान अयः (गति) चाल है तथा सत्कृत कर्म उसके कदम हैं। प्रायश्चित करना उसके घोर नाखून हैं। महायज्ञ उस पशु के घुटने हैं।।२१।। उद्गाता (सामवेद के छन्दों को गाने वाले) उसकी आँतें (अतड़ी) हैं। होम उसका लिङ्ग है। बीज और महौषधियां उस यज्ञपशु के फल हैं। वाद्यन्तर आत्म यज्ञ पशु की नासिका और सोमरस शोणित (रक्त) है।।२२।। पुनः उस यज्ञ वाराह के पास उसके भक्त जल प्रवेश कर गये। अग्नि से संछादित भूमि चाहते हुए अर्थात् अग्नि से ढकी हुई भूमि चाहते हुए उस यज्ञ वाराह ने प्रजापति के पास जाकर यज्ञ किया और इससे नदियां पैदा की और फिर उस यज्ञवाराह ने समुद्र में होने वाली जीव-जन्तुओं तथा जलों को समुद्रों में और नदियों में होने वाले जलों को नदियों में स्थिर कर दिया और उन नदियों को पृथक् कर और उन्हें समान करके पृथ्वी पर पर्वतों का चयन किया। अर्थात् उस यज्ञवाराह ने पृथ्वी पर समुद्र नदियां और पर्वतों को अलग अलग क़र दिया।।२४।। सृष्टि के पूर्व पृथ्वी पर पर्वत सवंर्तक (प्रलयकालीन अग्नि) द्वारा जल रहे थे। उस प्रलयाग्नि से पृथ्वी पर सब ओर विलीन हो गये थे।।२५।। उस समय समस्त पृथ्वी पर एक ही समुद्र फैला हुआ था। उस समुद्र में पृथ्वी के होने पर जो वायु से उस जल को संहत किया अर्थात् वायु द्वारा अब उस जल को हटाया गया अथवा वायु और जल का मेल हुआ, तब वायु से निषिक्त जल जहाँ जहाँ थे, वहाँ वहाँ पर्वत हो गया।।२६।। उसके बाद उन जलों के बिखरने पर जहाँ जहाँ लोक समुद्र और पर्वत हो गये। अर्थात् समस्त का भाव यही है कि इस सृष्टि से पूर्व या पहले जो सृष्टि थी, उस पर जब प्रलय हुई, तो जो पृथ्वी अग्नि द्वारा जल चुकी थी। उसके बाद धीरे-धीरे इस पृथ्वी पर अपार जल वर्षा हुई, उस वर्षा से पृथ्वी पर जल ही जल हो गया। यही एकार्णव (एक समुद्र) की कल्पना

ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्वताम्। भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पुनः पुनरकल्पयत्॥२८॥
लोकान्प्रकल्पयित्वा च प्रजासर्गं ससर्ज ह।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥२९॥
ससर्ज सृष्टं तद्रूपं कल्पादिषु यथा पुरा। तस्याभिध्याययतः सर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ३०॥
प्रधानसमकाले च प्रादुर्भूतस्तमो मयः। तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रो ह्यंधसंज्ञितः॥३१॥
अविद्या पंचपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः। पंचधावस्थितः सर्गो ध्यायतः साभिमानिनः॥३२॥
सर्वतस्तमसा चैव बीजकुंभलतावृताः। बहिरंतश्चाप्रकाशस्तथानिःसंज्ञ एव च॥३३॥
यस्मात्तेषां कृता बुद्धिर्दुःखानि करणानि च।
तस्माच्च संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः॥३४॥
मुख्यसर्गे तदोद्भूतं दृष्ट्वा ब्रह्मात्मसंभवः। अप्रतीतमनाः सोथ तदोत्पत्तिममन्यत॥३५॥

है। एकार्णव का अर्थ है कि पृथ्वी पर सर्वत्र जल ही जल था। अतः वहाँ पर पहले संवर्तक अग्नि (प्रलयाग्नि) पैदा हुई; क्योंकि स्वाभाविक है कि पृथ्वी आग का गोला थी तथा जब उस पर जल ही जल हो गया तो फिर पृथ्वी के अन्तराग्नि पर उस जल के पहुंचने से वहाँ पर ज्वाला उत्पन्न होने पर वडवाग्नि का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वही हुआ, उस अग्नि से भूमि के पर्वत अवश्य विलीन हो गये होंगे; परन्तु जब वायु द्वारा जलों को बिखेर दिया गया, तब जहाँ जहाँ वायु द्वारा जलों को बिखेरा गया, वहीं पर्वत, लोक और पर्वत उत्पन्न हो गये। यह वैज्ञानिक तथ्य है। आगे चलकर विश्वकर्मा पुनः पुनः इस पृथ्वी को कल्प आदियों में विभक्त करते हैं।।२७।।

समुद्रों से युक्त और पर्वतों से युक्त सातद्वीपों वाली पृथ्वी को पहले चार लोकों के रूप में बार-बार कल्पित किया।।२८।। लोकों की प्रकल्पना करके विश्वकर्मा ने प्रजा की रचना की, उस समय स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने अनेकों प्रकार की प्रजा की रचना कर दी।।२९।। उन स्वयम्भू ने इस सृष्टि को उसी रूप में उत्पन्न किया, जिस रूप में पहले कल्पों में थी। बुद्धिपूर्वक उन्होंने ठीक उसी प्रकार का ध्यान कर लोकों को पैदा किया।।३०।। प्रधानतत्त्व प्रकृति के समकाल में अर्थात् सत्त्व, रज, तम तीनों की समान स्थिति में पहले तमोमय रूप प्रकट हुआ। अर्थात् पहले अन्धकार ही अन्धकार था। वह अन्धकार पाँच नाम का था तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र, और अन्ध।।३१।। ये महान् आत्मा (जीव) की पाँच प्रकार की अविद्यायें थीं। ये पाँच प्रकार की अविद्याओं की उत्पत्ति ध्यान करने वाले अभिमानी अहंकार स्वरूप आत्मा की थी। ये अविद्यायें आत्माओं में पहले ही पैदा कर दी थीं।।३२।। उस समय सभी ओर बीज कुम्भ और लतायें अन्धकार से आवृत थीं। तात्पर्य है कि जिनसे वनस्पतियां या जीवन पैदा होते हैं, वे बीज जहाँ पर पैदा होते हैं, वे कुम्भ (स्थानभूमि) और जो पैदा करने वाला वातावरण (गैसें) आदि जिन्हें लतायें कहा गया, सब पर अन्धकार छाया हुआ था और बाहर और अन्दर अप्रकाश (अन्धकार) था, जिसके कारण उनका क.ई नामनिशान नहीं था। कथन का आशय यही है कि आज जो बीज, कुम्भ अर्थात् बीज को फलने का वातावरण और उसका विकास है, यह कुछ भी नहीं था। सब कुछ निःसंज्ञ (अचेतन) था।।३३।।

जिस अन्धकार से कारण बुद्धि को उत्पन्न किया और दुःखों के साधकतम कारणों को बनाया। उस बुद्धि से संवृत (ढकी हुई) आत्मा वाले नग नामक मुख्य सर्ग कहलाये।।३४।। तब मुख्य सर्ग में पैदा हुये आत्मसम्भव ब्रह्मा ने मुख्य नगों को प्रकीर्ण किया।।३५।।

तस्याभिध्यायतश्चान्यस्तिर्यक्स्त्रोतोऽभ्यवर्तत। यस्मात्तिर्यग्विवर्त्तेत तिर्यक्स्त्रोतस्ततः स्मृतः॥३६॥
तमोबहुत्वात्ते सर्वे ह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः। उत्पाद्यग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः॥३७॥
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मिकाः। एकादशेन्द्रियविधा नवधात्मादयस्तथा॥३८॥

अष्टौ तु तारकाद्याश्च तेषां शक्तिवधाः स्मृताः।
अंतः प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहिः पुनः॥३९॥
तिर्यक् स्त्रोतस उच्यंते वश्यात्मानस्त्रिसंज्ञकाः॥४०॥
तिर्यक् स्त्रोतस्तु सृष्ट्वा वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः।
अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वा सर्गं तथाविधम्॥४१॥
तस्याभिध्यायतो योन्त्यः सात्त्विकः समजायत।
ऊर्द्ध्वस्त्रोतस्तृतीयस्तु तद्वै चोर्द्ध्वं व्यवस्थितम्॥४२॥
यस्मादूर्द्ध्वं न्यवर्तंत तदूर्द्ध्वस्त्रोतसंज्ञकम् ताः।
सुखं प्रीतिबहुला बहिरंतश्च ऊर्द्ध्वस्त्रोतःप्रजाः स्मृताः।
नवधातादयस्ते वै तुष्टात्मानो बुधाः स्मृताः॥४४॥

ऊर्द्ध्वस्त्रोत स्तृतीयो यः स्मृतः सर्वः सदैविकः। ऊर्द्ध्वस्त्रोतः सु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभुः॥४५॥

उन नगों को मुख्य सर्ग में देखकर उनकी उत्पत्ति को अप्रतीत मन वाली माना। अर्थात् उनमें मन नहीं था। आगे नगों को पैदा करने के बाद आगे की उत्पत्ति की प्रबल कामना से नगों में तिरछे चलने वाले सर्ग को पैदा किया, जिनमें तिरछा चलने के स्वभाव के कारण उन्हें स्त्रोत कहा गया। यहाँ तिर्यक् बुद्धिहीन जीवों को भी कहा जाता है। अतः सम्भव है, पहले बुद्धिहीन जानवरों को पैदा किया हो। तम की अधिकता के कारण वे सब अज्ञान बहुल अर्थात् अधिक अज्ञानी कहे गये थे। भाव यही है कि सबसे पहले ब्रह्मा ने पर्वतों और नदियों को पैदा किया, जो ज्ञानहीन होते हैं। यह उस स्वयम्भू की पहली सृष्टि है। जो सभी ज्ञानमानी के अज्ञान में ग्रहण करने वाले थे। बाद में उन्होंने ज्ञान वाले जीवों को पैदा किया, वे सब अहंकारकृत और अहं को मानने वाले अठारह प्रकार के थे। उनमें ग्यारह इन्द्रियों के प्रकार और नौ प्रकार की आत्मा आदि हैं।।३८।।

आठ प्रकार तारक आदि उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये इस प्रकार ये अट्ठाईस प्रकार की सृष्टि हुयी। वे सभी अन्तःप्रकाश वाले थे, उनके अन्तर्गत प्रकाश था। बाद में उनके बाहर प्रकाश हुआ।।३९।। वे सभी तीन संज्ञाओं वाले तिर्यक् स्त्रोत कहे जाते हैं।।४०।। तिर्यक स्त्रोत की रचना कर उस हिरण्यगर्भ ने इसके बाद अभिप्राय को देखकर उसी प्रकार के द्वितीय विश्व को उत्पन्न किया। उसका ध्यान करते हुए उसको सात्त्विक ने उत्पन्न किया। अर्थात् सात्त्विक सृष्टि हुई तथा तीसरी सृष्टि ऊर्ध्वस्त्रोत की हुई; क्योंकि वह निश्चय ऊर्ध्व पर अवस्थित थी।।४२।।

जिससे अर्थात् सत्त्वगुण के आधिक्य से वह ऊर्ध्व पर निवर्तमान रहने के कारण ऊर्ध्वस्त्रोत संज्ञक कही गयी। वह सृष्टि बाहर भीतर सुख और प्रीतिबहुल थी। अर्थात् उस सृष्टि के जीवों में सुख था तथा परस्पर प्रीति थी।।४३।। इस सात्त्विक सृष्टि में बाहर और भीतर ज्ञान का प्रकाश था, इसलिये इसे ऊर्ध्वस्त्रोतस् प्रजा कहा गया। वह सृष्टि नौ प्रकार की थी तथा उस सृष्टि के आत्मा के ज्ञाता कहे गये।।४४।।

ऊर्ध्वस्त्रोत तृतीय सर्ग हुआ, जो सब दैविक कहा गया अर्थात् तीसरा सर्ग देवों का हुआ। तब ऊर्ध्व स्त्रोत वाले देवों की रचना करने पर वे प्रभु सर्वसमर्थ ब्रह्मा प्रीतिमान् हुये अर्थात् उनमें प्रेम का जागरण हुआ और फिर उन्होंने

प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं नाभिमन्यत। सर्गमन्यं सिसृक्षुस्तं साधकं पुनरीश्वरः॥४६॥
तस्याभिध्यायतः सर्गं सत्याभिध्यायिनस्तदा।
प्रादुर्बभौ भौतसर्गः सोर्वाक् स्त्रोतस्तु साधकः॥४७॥
यस्मात्तेर्वाक्प्रवर्तते ततोर्वाक्स्त्रोतसस्तु ते। ते च प्रकाशबहुलास्तमस्पृष्टरजोधिकाः॥४८॥
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः। प्रकाशा बहिरंतश्च मनुष्याः साधकाश्च ते॥४९॥
लक्षणैर्नारकाद्यैस्तैरष्टधा च व्यवस्थिताः। सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वैः सह धर्मिणः॥५०॥
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्द्धा स व्यवस्थितः। विपर्ययेण शक्त्या च सिद्ध मुख्यास्तथैव च॥५१॥
निवृत्ता वर्तमानाश्च प्रजायंते पुनः पुनः। भूतादिकानां सत्त्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते॥५२॥
स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते। प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः॥५३॥
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूत सर्गः स उच्यते। वैकारिकस्तृतीयस्तु तच्चेन्द्रियः सर्ग उच्यते॥५४॥
इत्येते प्राकृताः सर्गा उत्पन्ना बुद्धिपूर्वकाः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः॥५५॥

अन्य सर्ग करने का विचार किया और फिर उस रचयिता (ईश्वर) ने अन्यसर्ग की रचना करनी चाहिए। अर्थात् जिसकी व्यवस्था विपर्यय, शक्ति, तुष्टि और सिद्धि इन चार प्रकारों से की गयी है॥४५-४६।। तब उस सर्ग का ध्यान करते हुए सत्य का ध्यान करने वाले ब्रह्मा का अर्वाक् स्रोत नामक साधक सर्ग उत्पन्न हो गया।।४७।। क्योंकि वे वाक् वाणी से प्रवर्त होते थे, इसलिए वे अर्वाक् स्रोत कहे गये और वे प्रकाश बहुल थे अर्थात् उनमें सत्त्वगुण की अधिकता थी तथा तमोगुण से छुये हुए मात्र थे तथा रजोगुण की अधिकता थी।।४८।। उसी कारण वे दुःख बहुला थे अर्थात् रजोगुण की अधिकता के कारण उनमें दुःख बहुत थे और बार-बार करने वाले थे। अर्थात् पुनः पुनः जन्म धारण करने वाले थे तथा वे बाहर और भीतर सत्त्व के प्रकाश वाले साधना करने वाले मनुष्य थे। वे नारक आदि लक्षणों द्वारा आठ प्रकार से व्यवस्थित थे। वे सिद्ध आत्मा वाले मनुष्य गन्धर्वों के साथ धर्म करने वाले थे।।४९।। पाँचवां अनुग्रह सर्ग है, जो चार प्रकार से व्यवस्थित है।।५१।। इसमें वर्तमान मनुष्य निवृत्त होते हैं अर्थात् समाप्त होते हैं और फिर बार-बार जन्म लेते हैं। सत्त्वादिक भूतादिकों का वह षष्ठ सर्ग कहा जाता है।।५२।। वे भूतादिक स्वाद लेने वाले और अशील जाने गये थे तथा वह सत्त्वाधिक प्राणियों (मनुष्यों) का सर्ग था और ब्रह्मा के महत्तत्त्व का प्रथमसर्ग जाना गया; क्योंकि महत्तत्त्व बुद्धि को कहा जाता है। अतः महत्तत्त्व बुद्धि का सर्ग वह ब्रह्मा का पहला सर्ग कहा गया है।।५३।।

तन्मात्राओं का दूसरा सर्ग है, जो भूतसर्ग कहा गया है। वैकारिक सर्ग तो तृतीय सर्ग है। वह तो ऐन्द्रिय सर्ग कहा जाता है।।५४।। इस प्रकार ये सब प्राकृत सर्ग हैं। प्राकृत से तात्पर्य है कि ये सब सर्ग प्रकृति से उत्पन्न हैं; क्योंकि प्रकृति जिसे माया, दुर्गाचण्डी, पार्वती, उमा, शिवा आदि नामों से व्यवहृत किया गया है तथा जिसे अंग्रेजी में Nature कहा गया, उससे महत्तत्त्व पैदा हुआ। यह पहला सर्ग है, इसे बुद्धिसर्ग कहा जाता है। फिर उस महत्तत्त्व से पञ्च तन्मात्रायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पैदा हुए। ये भूत सर्ग हैं; क्योंकि इस सर्ग में ही महत्तत्त्व से पंच-तन्मात्राओं से उनके आधार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है तथा ये सब पञ्चमहाभूत हैं; इसलिए इस सर्ग को द्वितीय भूतसर्ग कहा गया है तथा जब इनमें विकार होता है, तब तीसरा सर्ग ऐन्द्रिय सर्ग होता है अर्थात् अहंकार में विकार हुआ मन पैदा हुआ मन में विकृति हुई, तो इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई, फिर शब्द तत्त्व से

तिर्यक्स्रोतःससर्गस्तु तैर्यग्योन्यस्तु पंचमः। तथोर्द्धस्त्रोतसां सर्गः षष्ठो दैवत उच्यते॥५६॥
तत्रोर्द्धस्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः। अष्टमोनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः॥५७॥
पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृताद्यास्त्रयः स्मृताः। प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः॥५८॥
प्राकृता बुद्धिपूर्वास्तु त्रयः सर्गास्तु वैकृताः। बुद्धिपूर्वाः प्रवर्तेयुस्तर्द्धा ब्राह्मणास्तु वै॥५९॥

विस्तराच्च यथा सर्वे कीर्त्यमानं निबोधत।
चतुर्द्धा च स्थितस्सोऽपि सर्वभूतेषु कृत्सनशः॥६०॥
विपर्ययेण शक्त्या च बुद्ध्या सिद्ध्या तथैव च।
स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तितः॥६१॥

श्रोत्र, स्पर्श से त्वक्, रूप से चक्षु, रस से जिह्वा और गन्ध से नासिका आदि पञ्च ज्ञानेन्द्रियां पैदा हुईं और फिर उन ज्ञानेन्द्रियों के आज्ञापालक हस्त, पाद, मुख, लिङ्ग और गुदा सब हुए। ये सब तन्मात्राओं में विकृति से उत्पन्न हुए। इसलिए इस सर्ग को वैकारिक सर्ग कहा गया है। ये तीनों ही प्राकृत सर्ग हैं, ये सब बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुए हैं। मुख्य सर्ग तो चौथा सर्ग है और मुख्य स्थावर (जड़पदार्थ) कहे गये हैं।।५५।। तिर्यक् स्रोत वह सर्ग है, जिससे तिर्यक् योनि उत्पन्न हुए अर्थात् ज्ञानहीन पर्वत नदी पशु आदि का सर्ग-पञ्चम सर्ग है तथा ऊर्ध्वस्रोतवाले देवताओं का सर्ग छठां सर्ग है, जिसको दैवत सर्ग कहा गया है। इस सर्ग में ऊपर रहने वाले सूर्यचन्द्र अग्नि वायु आदि देवताओं की उत्पत्ति हुई है।।५६।। वहाँ पर ऊर्ध्वस्रोत वालों का सप्तम सर्ग मानुष सर्ग कहागया और आठवां सर्ग अनुग्रह सर्ग है तथा वह सात्त्विक और तामस है।।५७।।

इस प्रकार से पाँच सर्ग वैकृत सर्ग है, जिनमें स्थावर वाला चौथा मुख्यसर्ग, पञ्चम तिर्यक् स्रोत वाला पर्वत नदी पशु सर्ग, षष्ठ ऊर्ध्व स्रोत का दैवत सर्ग, सातवां ऊर्ध्वस्रोतों का मानुषसर्ग और आठवां सात्विक तामसयुक्त अनुग्रह सर्ग गणनीय है तथा प्रथम तीन प्रकृति से महत्तत्त्व की, महत्तत्त्व से तन्मात्राओं का सर्ग तथा फिर तीसरा तन्मात्राओं से महाभूतों का सर्ग ये सब प्राकृत सर्ग हैं। प्राकृत सर्ग तीन वैकृत सर्ग पाँच कुल मिलाकर आठ हुए और नवां सर्ग कौमारसर्ग है।।५८।। प्राकृत सर्ग बुद्धिपूर्व है अर्थात् वे सब महत्तत्त्व बुद्धि के विकार हैं तथा तीन वैकृत सर्ग हैं। बुद्धिपूर्व जितने भी सर्ग हैं, वे सब बुद्धि से प्रवृत्त होते हैं तथा उसके सर्ग निश्चय ही ब्रह्मा से सम्बन्धित हैं अर्थात् वे ब्रह्मा के ही सर्ग हैं। यहाँ कहने का तात्पर्य है कि लेखक यह कहना चाहता है कि पहले जो तीन प्राकृत सर्ग कहे गये हैं, उनमें वास्तव में एक ही सर्ग प्राकृत है, वह है—महत्तत्त्व बुद्धि का सर्ग, जिससे कि तन्मात्रा सर्ग हुआ है। शेष तीन सर्ग, तन्मात्रा सर्ग भूतसर्ग तथा ऐन्द्रिय सर्ग ये वैकृत सर्ग हैं; क्योंकि ये प्रकृति के विकार है तथा फिर एक-दूसरे के विना नहीं रह सकते। जैसे विस्तार से सब वर्णन किये जाते हुए जाने गये और चार गुना वह ब्रह्मा सब प्राणियों (भूतों) में सर्वत्र स्थित हैं।।६०।।

वे सब आपस में व्यतिक्रम द्वारा शक्ति द्वारा और उसी प्रकार बुद्धि द्वारा तथा सिद्धि से आपस में स्थित हैं। चतुर्धा का अर्थ यहाँ चार गुना हो सकता है, जो भूतों के विषय में है, जैसे भूतों का सर्ग है कि उसमें आधा अपना भाग है, शेष चार आधे में हैं। जैसे आकाश में १/२ आकाश है और १/२ में चारों हैं, जैसे कि आकाश में १/२ आकाश १/८, वायु १/८, अग्नि १/८, जल १/८ पृथ्वी। इस प्रकार आकाश बना है, तो उसी प्रकार वायु में १/२ वायु, १/८ आकाश, १/८ अग्नि, १/८ जल, १/८ पृथ्वी। अग्नि में १/२ अग्नि, १/८ आकाश १/८ वायु, १/८ जल, १/८ पृथ्वी। जल में १/२ जल, १/८ आकाश, १/८ वायु, १/८ अग्नि और १/८ पृथ्वी। पृथ्वी में १/२ पृथ्वी, १/८ आकाश, १/८ वायु, १/८ अग्नि, १/८ जल। यही अर्थ यहाँ विपर्यय का है।

सिद्धात्मनो मनुष्यास्तु पुष्टिर्देवेषु कृत्स्नशः। अथो ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान्॥६२॥
वैवर्त्येन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः। संबुद्ध्य चैव नामाथो अपवृत्तास्त्रयस्तु ते॥६३॥
असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं ततस्ततः। ब्रह्मा तेषु व्यरक्तेषु ततोऽन्यान्साधकान्सृजन् ६४॥

स्थानाभिमानिनो देवा देवाः पुनर्ब्रह्मानुशासनम्।
अभूतसृष्ट्यवस्था ये स्थानिनस्तान्निबोध मे॥६५॥

आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षो दिवं तथा। स्वर्गो दिशः समुद्राश्च नद्यश्चैव वनस्पतीन्॥६६॥

औषधीनां तथात्मानो ह्यात्मनो वृक्षवीरुधाम्।
लताः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ताः संधिरात्र्यहाः॥६७॥
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च।
स्थाने स्रोतःस्वभीमानाः स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः॥६८॥
स्थानात्मनः स सृष्ट्वा तु ततोऽन्यान्स तदाऽसृजत्।
देवांश्चैव पितृंश्चैव यैरिमा वर्द्धिताः प्रजा॥६९॥

स्थावरों (नदियों पर्वतों) आदि पदार्थों में विपर्यास है अर्थात् उनमें अन्दरुनी परिवर्तन है। वे एक-दूसरे से मिलकर और एक दूसरे में अन्तःक्रियाओं द्वारा पैदा हुए हैं। उदाहरण के लिये जल केवल जल से नहीं बना है, उसमें आकाश वायु अग्नि पृथ्वी चारों का योग है; परन्तु जल तत्त्व अधिक है। अतः सभी पञ्चमहाभूत एक-दूसरे के विपर्यास से बने हैं तथा तिर्यक योनियों में वह विपर्यास शक्ति से हुआ है। अर्थात् नदी, पर्वत, पशुआदि अज्ञानी योनियां, शक्ति से उत्पन्न हुई हैं।।६१।। सिद्ध आत्मा वाले तो मनुष्य हैं, उनकी सब प्रकार देवों में पुष्टि होती है। इसके बाद ब्रह्मा ने अपने समान मानसों की रचना की, जिसे ब्रह्मा की मानस सृष्टि कहा गया।।६२।। वे ब्रह्मा के मानस पुत्र महान् ओज वाले वैवर्त्य ज्ञान से निवृत्त हो गये। उनके अच्छी प्रकार नाम जानकर वे तीनों ही अपवृत्त (समाप्त) हो गये।।६३।।

प्रजाओं की सृष्टि न करके ही प्रतिसर्ग होते रहे। उसके बाद फिर उसके बाद प्रतिसर्ग (प्रलय) होते रहे ब्रह्मा उनमें विशेष रूप से लगे रहे, उन्होंने बार-बार की प्रलय पर ध्यान नहीं दिया और अन्य साधकों की सृष्टि करते हुए लगे ही रहे।।६४।। स्थान के अभिमानी देवों ने पुनः ब्रह्मा के अनुशासन को माना और फिर सृष्टि की अवस्थायें हुई और उन अवस्थाओं ने बताया कि ये हमारी अवस्थायें हैं, इन्हें जानों।।६५।। वे हैं जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष स्वर्ग, दिशायें, समुद्र, नदी और वनस्पति को समझो।।६६।। आत्मतत्त्व वाली औषधियों तथा आत्मतत्त्व वाले वृक्षों और लताओं को पैदा किया। इस तरह लतायें, काष्ठा[१], कला[२], मुहूर्त[३] और दिन और रात की संधियां (सायं प्रातः) तथा अर्द्धमास (माह का आधा भाग अमावस्या) मास फिर अयन[४] फिर शब्द (सौ वर्ष वाली) शताब्दी और युग के सर्जना की। स्थान स्थान पर झरने नदियां पैदा की और वे सब स्थानों के नाम से याद किये गये।।६८।।स्थान से मन की सृष्टि करके तब उन (ब्रह्मा) ने देवतागण पितृगण की सृष्टि की, जिनके द्वारा यह प्रजा

---

१. ३० काष्ठा की एक कला।
२. ३० कला का एक मुहूर्त होता है।
३. ४८ मिनट का समय मुहूर्त होता है। एक कला में १ मि० ४८ सेकेण्ड होता है।

भृग्वंगिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। दक्षोऽत्रिश्च वसिष्ठश्च सोऽसृजन्नव मानसान्॥७०॥
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः। ब्रह्मा यथात्मकानां तु सर्वेषां ब्रह्मयोगिनाम् ७१॥
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् संकल्पं चैव धर्मं च सर्वेषामेव पर्वतौ॥७२॥
सोऽसृजद्व्यवसायं तु ब्रह्मा भूतं सुखात्मकम्।
संकल्पाच्चैव संकल्पो जज्ञे सोऽव्यक्तयोनिनः॥७३॥
प्राणाद्दक्षोऽसृजद्वाचं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम् भृगुश्च हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलयोनिनः॥७४॥
शिरसश्चांगिराश्चैव श्रोत्रादत्रिस्तथैव च। पुलस्त्यश्च तथोदानाद्व्यानात्तु पुलहस्तथा॥७५॥
समानतो वसिष्ठश्च ह्यपानान्निर्ममे क्रतुम् इत्येते ब्रह्मणः श्रेष्ठाःपुत्रा वै द्वादश स्मृताः॥७६॥
धर्मादयः प्रथमजा विज्ञेया ब्रह्मणः स्मृताः। भृग्वादयस्तु ये सृष्टा न च ते ब्रह्मवादिनः॥७७॥
गृहमेधिपुराणास्ते विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः। द्वादशैते प्रसूयंते सह रुद्रेण च द्विजाः॥७८॥
क्रतुः सनत्कुमारश्च द्वावेतावूर्द्ध्वरेतसौ। पूर्वोत्पत्तौ पुरा ह्येतौ सर्वेषामपि पूर्वजौ॥७९॥
व्यतीतौ सप्तमे कल्पे पुराणौ लोकसाधकौ। विरजेतेऽत्र वै लोके तेजसाक्षिप्य चात्मनः॥८०॥
तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मना। प्रजाधर्मं च कामं च वर्तयेते महौजसौ॥८१॥

वृद्धि को प्राप्त हुई।।६९।। उसके बाद ब्रह्मा जी ने भृगु, अंगिरा, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ अपने नौ-मानस पुत्रों को उत्पन्न किया।।७०।। पुराण में नौ ब्रह्मा से उत्पन्न इन सबने ब्रह्म योगियों की जो आत्मा होती है, उसके निश्चय को प्राप्त किया। अर्थात् ये नौ ब्रह्मपुत्र ब्रह्मयोगी की आत्मा वाले थे।।७१।। उसके बाद फिर ब्रह्मा ने क्रोध आत्मा वाले रुद्र को उत्पन्न किया तथा सभी के संकल्प और धर्म रूप दो पर्वतों को पैदा किया।।७२।। उसके बाद ब्रह्मा ने प्राणियों को सुख प्रदान करने वाले व्यवसाय को पैदा किया। यह सब उस ब्रह्मा अव्यक्तयोनि के संकल्प से संकल्प पैदा हुआ। अर्थात् अव्यक्त प्रकृति (प्रधान) है योनि जिसकी, उस ब्रह्मा ने प्रकृति के मन तत्त्व संकल्प से संकल्प को पैदा किया। अर्थात् सभी ऋषियों की सृष्टि ब्रह्मा ने संकल्प से की है तथा संकल्प मन से होता है। इसीलिए उन नौ ऋषियों को ब्रह्मा का मानस पुत्र माना गया है।।७३।।

वे मानसपुत्र इस प्रकार हैं कि ब्रह्मा जी ने अपने प्राण से दक्ष को और और आँखों से वाणी वाले मरीचि को उत्पन्न किया और जल ही जिसकी योनि है, ऐसे उन ब्रह्मा के हृदय से भृगु उत्पन्न हुए।।७४।। शिर से अङ्गिरा उत्पन्न हुए और उसी प्रकार कान से अत्रि उत्पन्न हुए। महर्षि पुलस्त्य ब्रह्मा की उदान वायु (डकार) से पैदा हुए तथा समस्त शरीर में व्याप्त रहने वाली व्यान वायु से पुलस्त्य ऋषि पैदा हुए।।७५।। और समान वायु से वशिष्ठ एवं अपानवायु से क्रतु पैदा हुए। इस प्रकार ये ब्रह्मा के १२ श्रेष्ठ पुत्र कहे गये।।७६।। ब्रह्मा के प्रथम उत्पन्न पुत्र धर्म आदि कहे गये। ये सब धर्मात्मा थे तथा भृगु आदि जो उत्पन्न हुए वे ब्रह्मवादी नहीं थे।।७७।। वे सब ब्रह्मपुत्र गृहस्थ जाने गये। ये बारह पुत्र ब्राह्मण रुद्र के साथ उत्पन्न हुए।।७८।। इनमें क्रतु और सनत्कुमार ये दोनों ही ऊर्ध्वरेतस् (आजन्म ब्रह्मचारी) थे। ये पहले ही सबके पूर्व उत्पन्न हुए थे। अतः ये सभी पूर्वज थे।।७९।। सप्तम कल्प के व्यतीत होने पर संसार के साधक ये दोनों प्राचीन पुरुष निश्चित आत्मतेज से आक्षिप्त होकर संसार में विराजमान थे।।८०।। वे दोनों महान् ओजस्वी अपनी आत्मा से आत्मा में योग और धर्म को आरोपित कर प्रजाधर्म और काम का व्यवहार करते थे।।८१।।

यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते। ततः सनत्कुमारेति नाम तस्य प्रतिष्ठितम् ८२॥
तेषां द्वादशं ते वंशा दिव्या देवगणान्विताः। क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृताः॥८३॥
प्राणजांस्तु स दृष्ट्वा वै ब्रह्मा द्वादश सात्त्विकान्।
ततोऽसुरान्पितॄन्देवान्मनुष्यांश्चासृजत्प्रभुः ॥८४॥
मुखाद्देवानजनयत् पितॄंश्चैवाथ वक्षसः। प्रजननान्मनुष्यान्वै जघनान्निर्ममेऽसुरान् ८५॥
नक्तं सृजन्पुनर्ब्रह्मा ज्योत्स्नाया मानुषात्मनः। सुधायाश्च पितॄंश्चैव देवदेवः ससर्ज ह॥८६॥
मुख्यामुख्यान् सृजन्देवानसुरांश्च ततः पुनः। मनसश्च मनुष्यांश्च पितृवन्महतः पित्तॄन् ८७॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च लोहितेन्द्रधनूंषि च। ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये॥८८॥
उच्चावचानि भूतानि महसस्तस्य जज्ञिरे। ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं देवर्षिपितृमानवम् ८९॥
पुनः सृजति भूतानि चराणि स्थावराणि च।
यक्षान्पिशाचान् गन्धर्वान्सर्वशोऽप्सरसस्तथा॥९०॥
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान्। अव्ययं वा व्ययञ्चैव द्वयं स्थावरजंगमम्॥९१॥
तेषां ते यांति कर्माणि प्राक् सृष्टानि स्वयंभुवा। तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥९२॥

जैसे वह उत्पन्न हुये, उसी प्रकार इस संसार में कुमार इस नाम से कहे गये। उसके अनुसार सनत्कुमार यह उनका नाम प्रतिष्ठित हुआ अर्थात् वे सनत्कुमार नाम से संसार में प्रसिद्ध हुए।।८२।। उनके वे वारह वंश दिव्य देवगणों से युक्त क्रियावान् और प्रजावान् हैं तथा महर्षि की उपाधियों से अलंकृत हुए।।८३।। उसके बाद अपने प्राण वायु से उत्पन्न वाराह सात्त्विक ऋषियों को देखकर सर्वसमर्थ प्रभु ब्रह्मा ने असुरों, पितरों, मनुष्यों को उत्पन्न किया।।८४।। उस समय उन्होंने मुख से ही पितरों को पैदा किया तथा वक्षस्थल से मनुष्यों को उत्पन्न किया और फिर जंघाओं से राक्षसों का निर्माण किया।।८५।। फिर ब्रह्मा ने असुरों के लिये रात्रि को उत्पन्न किया और मानुष आत्मा वालों को ज्योत्स्ना प्रकाश (दिन) को बनाया तथा फिर देवों के देव ब्रह्मा ने पितरों को अमृत का सृजन किया।।८६।। उसके बाद मुख्य और अमुख्य देवताओं और असुरों को पैदा किया और फिर मन से मनुष्यों को तथा पितृवत् पितरों को पैदा किया।।८७।। और विद्युत् और अशनि (बादलों में बिजली का वज्र) और बादलों (मेघों) और लाल इन्द्रधनुष को बनाया, फिर यज्ञ की सिद्धि के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद वेदत्रयी का निर्माण किया।।८८।।

फिर अब यज्ञ के ऊँचे नीचे (भूतों) पदार्थों को पैदा किया। ब्रह्मा से चार प्रकार का प्रजा का सर्ग है, वह है देव, ऋषि, पितृ और मनुष्य।।८९।। फिर ब्रह्मा ने पञ्चमहाभूतों आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को तथा चलने वाले जीवों स्थिर रहने वाले पर्वत वृक्षों, यक्षों, पिशाचों, गन्धर्वों और सब स्थानों पर अप्सराओं को पैदा किया।।९०।। नर, किन्नर, राक्षस, पशु (दूध देने वाले पशु), मृग (सिंह शृगाल रीछ आदि हिंसक पशु) और उरग (सर्पों) को पैदा किया तथा दो स्थावर जङ्गम थे, जिनमें स्थावरों का व्यय नहीं होता था तथा जङ्गम (चलने वाले) प्राणी व्ययशील थे। कथन का आशय है कि स्थिर रहने वाले नदी पर्वत आदि घटना बढ़ना होता है; परन्तु त्वरित न होने के कारण पता नहीं चलता; परन्तु जङ्गम पदार्थ मनुष्य पशु आदि घटते, बढ़ते, मरते, पैदा होते रहते हैं; इसीलिये जङ्गमों का व्ययशील कहा गया है।।९१।। वे जितने भी ब्रह्मा ने उत्पन्न किये थे, उन सभी के कर्म स्वयम्भू ब्रह्मा ने पहले ही निश्चित

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मौ कृताकृते। तेषामेव पृथक् सूतमविभक्तं त्रयं बिदुः॥९३॥
एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे तथा। कर्म स्वविषयं प्राहुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः॥९४॥
नामात्मपंचभूतानां कृतानां च प्रपंचताम् दिवशब्देन पंचैते निर्ममे स महेश्वरः॥९५॥
आर्षाणि चैव नामानि याश्च देवेषु सृष्टयः। शर्वर्यां न प्रसूयन्ते पुनस्तेभ्यो दधत्प्रभुः॥९६॥
इत्येवं कारणाद्भूतो लोकसर्गः स्वयंभुवः।
महदाद्या विशेषान्ता विकाराः प्राकृताः स्वयम्॥९७॥
चन्द्रसूर्यप्रभो लोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः। नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च सहस्रशः॥९८॥
पुरैश्च विविधै रम्यै स्फीतैर्जनपदैस्तथा। अस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्तो ब्रह्मा चरति सर्ववित्॥९९॥

कर दिये थे। उन्हीं कर्मों को पुनः पुनः प्रतिपादन किया जाता है।।९२।। हिंसक प्राणी में हिंसा करने का अहिंसक में हिंसा न करने का, कोमल स्वभाव वाले प्राणी में मृदु पूर्ण कार्य करने का, क्रूर प्राणी में क्रूरता पूर्ण कार्य करने का कार्य, पहले ही निश्चित कर दिया था तथा उन प्राणियों के धर्म (करणीय कार्य के नियम) अधर्म (अकरणीय कार्य) कृत और अकृत उन्हें क्या करना चाहिये? क्या नहीं? यह सब अलग अलग सबको पहले ही उत्पन्न कर दिये थे।।९३।। यह इस प्रकार है और यह इस प्रकार नहीं हैं, यह दोनों नहीं है तथा ये दोनों हैं, ऐसा सत्त्वस्थ समदर्शियों के कर्म अपने विषय को कहते हैं। अर्थात् जो प्राणी सत्त्व प्रधान हैं, वे सबको समान देखते हैं, उनके कर्म सर्वत्र अपने विषय के अधीन हैं, उनके लिये यह ऐसा है, ऐसा नहीं दोनों प्रकार नहीं, दोनों प्रकार हैं, ये सन्देहशील विषय सत्त्वस्थ समदर्शी व्यक्ति के विषय में नहीं है।।९४।।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पाँच महाभूतों के नाम और उनके कर्म और उनका अपना विषय सत्त्वशील प्राणियों को कहते हैं अर्थात् सभी जीवन धारण करने वाले प्राणी इन पांच महाभूतों से ही वने हैं तथा वे ही उनके जीने के साधन हैं। ये पाँचों महाभूत दिव शब्द से उस महेश्वर ब्रह्मा ने निर्माण किये थे। ये सभी महदादि विशेषान्त विकार हैं तथा ये सभी प्राकृत हैं। ये ऋषि सम्बन्धी वैदिक, मानव, ऋषि आदि जितने भी नाम हैं, जो देवों की सृष्टि में आते हैं, ये सभी रात्रि में नहीं उत्पन्न किये जाते हैं, फिर उनको प्रभु ब्रह्मा ने धारण किया।।९६।। इस प्रकार स्वयंभू ब्रह्मा ने प्रकृति कारण से समस्त पञ्चमहाभूत संसार की रचना की है। इनमें महत्तत्त्व आदि सब विशेष पर्यन्त विकृत और प्राकृत दोनों हैं; परन्तु प्रकृति केवल प्राकृत है; क्योंकि प्रकृति किसी का विकार नहीं, उसका विकार महत्तत्त्व है, जिसे बुद्धि कहा गया है। महत्तत्त्व से अहंकार पैदा हुआ। अतः महत्तत्त्व अहंकार की प्रकृति और प्रकृति का विकार है, क्योंकि प्रकृति से पैदा हुआ है, उसी प्रकार महत्तत्त्व से पैदा होने वाले आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी सब परस्पर किसी की प्रकृति और किसी की विकृति हैं, ये सभी महत्तत्त्व के विकार हैं तथा फिर सभी एक-दूसरे के प्रकार और विकार हैं; क्योंकि ये सभी एक-दूसरे से पैदा हुए हैं, जैसे आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी इस प्रकार सभी एक-दूसरे की प्रकृति विकृति हैं।।९७।।

सूर्य चन्द्र की प्रभा और ग्रहनक्षत्रों से मण्डित हजारों नदियों, समुद्रों, पर्वतों और अनेकों प्रकार के रम्य नगरों तथा जनपदों से घिराहुआ यह संसार है। इस ब्रह्मवन में सब कुछ जानने वाले अव्यक्त ब्रह्मा विचरण करते हैं। यह अव्यक्त बीज ब्रह्म की प्रकृति है। इस अव्यक्त बीज से ही यह समस्त प्रपञ्च निर्मित है और उसके ही अनुग्रह में स्थित हैं अर्थात् उस अव्यक्त बीज (प्रकृति) Nature की कृपा में ही सब कुछ स्थित है। अर्थात् उसी की कृपा से यह ब्रह्माण्ड संचालित है। यह समस्त प्रपंच बुद्धिस्कन्धमय है अर्थात् इस सबका आधार बुद्धि महत्तत्व है और इन्द्रियों का

अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहे स्थितः। बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इंद्रियान्तरकोटरः॥१००॥
महाभूतप्रकाशश्च विशेषैः पत्रवांस्तु सः। धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः॥१०१॥
आजीवः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः। एतद् ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य तत्॥१०२॥
अव्यक्तं कारणं यत्र नित्यं सदसदात्मकम् प्रधानं प्रकृतिं मायां चैवाहुस्तत्त्वचिंतकाः॥१०३॥
इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मनैमित्तिकः स्मृतः।
अबुद्धिपूर्वकाः सर्गा ब्रह्मणः प्राकृतास्त्रयः॥१०४॥
मुख्यादयस्तु षट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः। वैकल्पात्संप्रवर्तंते ब्रह्मणस्तेभिमन्यवः॥१०५॥
इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृताः। सर्गाः परस्परोत्पन्नाः कारणं तु बुधैः स्मृतम्॥१०६॥
मूर्द्धानं वै यस्य वेदा वदंति वियन्नाभिश्चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे।
दिशः श्रोत्रे विद्धि पादौ क्षितिं च सोऽचिंत्यात्मा सर्वभूतप्रणेता॥१०७॥
वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूता वक्षसश्चैव क्षत्रियाः पूर्वभागे।
वैश्या ऊरुभ्यां यस्य पद्भ्यां च शूद्रा सर्वेवर्णाः गात्रतः सम्प्रसूताः॥१०८॥
नारायणात्परो व्यक्तादण्डमव्यक्त संज्ञितम्।
अण्डजस्तु स्वयं ब्रह्मा लोकस्तेन कृताः स्वयम्॥१०९॥

अन्तःकोटर है अर्थात् इन्द्रियां इसी बुद्धितत्त्व से उत्पन्न हुई हैं। यह लोक महाभूतों के प्रकाश वाला है। इसमें जो प्रकाश है, वह सब आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पंच महाभूतों का ही है तथा यह विशेषों द्वारा ही पत्रों वाला हुआ है अर्थात् इन पञ्चतत्त्वों से ही यह लोक फल फूल रहा है। यहाँ विशेष प्रकृति को अथवा ब्रह्मा (ईश्वर) को माना जा सकता है। धर्म और अधर्म इस लोक के सुन्दर पुष्प हैं और सुख और दुःख इस संसार वृक्ष के फल हैं।।९९-१०१।। सब प्राणियों और महाभूतों का यह ब्रह्मवृक्ष आजीव है अर्थात् ब्रह्म से ही समस्त लोक प्रतिपालित हैं तथा इस ब्रह्म वृक्ष का यह संसार ब्रह्मवन है।।१०२।। जहाँ कि नित्य और सद् और असत् आत्मक अव्यक्त कारण है, जिसको कि तत्त्व चिन्तक प्रधान अथवा प्रकृति अथवा माया कहते हैं।।१०३।। इस प्रकार यह ब्रह्मनैमित्तिक अनुग्रहसर्ग कहा गया है; क्योंकि ब्रह्म इस सृष्टि में निमित्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण है। ब्रह्म की कृपा से ही प्रकृति से यह संसार पैदा हुआ है। ब्रह्म के प्राकृत तीन सर्ग बुद्धिपूर्वक नहीं हैं।।१०४।।

मुख्यादि छः सर्ग तो वैकृत हैं तथा वे बुद्धिपूर्वक हैं, ये सब ब्रह्म की विकल्पता से एक-दूसरे में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार ये सब प्राकृत सर्ग हैं और वैकृत नौ सर्ग हैं। ये सभी सर्ग परस्पर कारण कार्य भाव से उत्पन्न हुए तथा इनमें सब परस्पर कारण हैं, ऐसा विद्वानों ने कहा है।।१०६।।उस ब्रह्मा के सिर वेद हैं। वेद चार हैं, इसीलिए ब्रह्मा को चतुर्मुख कहा गया है। नाभि आकाश है। सूर्य और चन्द्रमा उसके दोनों नेत्र/दिशायें-श्रोत्र तथा पृथ्वी को उनके पैर समझो। इस प्रकार समस्त महाभूतों वाले इस प्रपंच को बनाने वाले वह ब्रह्मा अचिन्त्य आत्मा है अर्थात् उनकी कल्पना मन से भी नहीं की जा सकती है कि वे ऐसे होंगे, अन्य इन्द्रियों द्वारा जानने की तो बात ही नहीं है।।१०७।। इन ब्रह्मा जी के मुख से ब्राह्मण पैदा हुए। वक्षस्थल के पूर्वभाग (भुजाओं) से क्षत्रिय उत्पन्न हुए। जंघाओं से वैश्य और जिसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार उनके शरीर से सब वर्ण उत्पन्न हुए हैं।।१०८।। नारायण से पर अव्यक्त से अव्यक्त संज्ञित अण्डा उत्पन्न हुआ तथा उस अण्ड से स्वयं ब्रह्मा उत्पन्न हुए, फिर उन ब्रह्मा ने स्वयं लोकों को पैदा किया।।१०९।।

तत्र कल्पान् दश स्थित्वा सत्यं गच्छंति ते पुनः।
ते लोका ब्रह्मलोकं वै अपरावर्त्तिनीं गतिम्॥११०॥
आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः। भवन्ति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च॥१११॥
तत्र ते ह्यवतिष्ठंते प्रीतियुक्ताः स्वसंयुताः। अवश्यंभाविनार्थेन प्राकृतं तनुते स्वयम्॥११२॥
नानात्वेनाभिसंबंध्यास्तदा तत्कालभाविताः।
स्वपतोऽबुद्धिपूर्वं हि बोधो भवति वै यथा॥११३॥
तत्कालभाविते तेषां तथा ज्ञानं प्रवर्त्तते। प्रत्याहारैस्तु भेदानां तेषां हि न तु शुष्मिणाम्॥११४॥
तैश्च सार्धं प्रवर्तंते कार्याणि कारणानि च नानात्वदर्शिनां तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम्॥११५॥

वहाँ दश कल्पों तक ठहर कर वे लोक निश्चित ही अपरावर्तिनी गति वाले सत्यनिष्ठ ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं[1]। परन्तु अब वहाँ प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ने पर आवर्तिनी स्थिति है तथा इस पुराण वचन के अनुसार यही तथ्य निकलता है।।११०।। कल्पों तक लोक की स्थिति रहने पर अर्थात् जनजीवन की दशा के बाद वहाँ पर आवर्तिनी दशा होती है, वही ब्रह्मलोक की स्थिति है। कल्प की संख्या १००० युग की होती है, तदनुसार एक कल्प ४,३२,००,००,००० वर्ष होते हैं। एकदनुसार पृथ्वी का जीवन का काल ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष है। ऐसा ही आज के वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है। कुछ अन्तर के साथ पृथ्वी की आयु का पुराण वर्णित काल और वैज्ञानिक काल प्रायः समान ही है। इससे पुराण वर्णन की वैज्ञानिकता सिद्ध होती है। आधिपत्य के विना वे सब लोक और ऐश्वर्य से तो उस ब्रह्म के समान और प्रकार रूप और विषय से ब्रह्म के समान स्थित रहते हैं। अर्थात् दसकल्प की सृष्टि के बाद सब कुछ ब्रह्म में लीन हो जाता है। तब समस्त स्थावर, जङ्गम, भूत तत्त्व (अर्थात् समस्त लोक) उस ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं; जहाँ कि उथल-पुथल की स्थिति होती है।।१११।। वहाँ वे सब लोक तत्त्व अपने में संयत होकर प्रीतिपूर्वक अवस्थित रहते हैं तथा अवश्य होने वाले अर्थ से स्वयं प्रकृति की अवस्था का विस्तार करते हैं अर्थात् वे सभी लोक (महत्तत्त्व अहंकार पञ्चतन्मात्रायें एकादशेन्द्रिया और पञ्चमहाभूत) प्राकृत अवस्था में संयुत होते हैं अर्थात् प्रकृति में लीन हो जाते हैं।।११२।।

जब ये जीव ब्रह्म लोक में जाते हैं, तो ब्रह्म ही हो जाते हैं। वे ब्रह्म के साथ मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं, फिर जो स्वयं प्रकृति से मिल जाते हैं, वे सब अवश्य होने वाली सृष्टि के उद्देश्य से अनेकत्व को प्राप्त करते हैं। भाव यह कि आत्मा (पुरुष) तो एक है, वह तो उस ब्रह्म का अंश है अर्थात् ब्रह्म ही है; परन्तु जब वही पुरुष जब प्रकृति से सम्बद्ध होता है, तव अनेकों शरीरों के रूप में अनेकत्व को प्राप्त हो जाता है। उस समय देवों की भी ऐसी दशा हो जाती है, जैसे जान बूझकर बहाना करने वाली होती है।।११३।। वे उस समय जैसे सोये हुए भी जागते रहते हैं। उसी प्रकार उस समय उन मुक्त पुरुषों के मन में उस समय के सम्बन्ध वाले अनेक होने का ज्ञान जग जाता है। जो उन प्रकाश युक्त अग्नि युक्त (अर्थात् आत्मा युक्त शरीरधारियों के भेदों का ज्ञान प्रलयों से होता है अर्थात् जब आत्मा इस शरीर को छोड़कर जाती है, तभी ज्ञान होता है।।११४।। अपने धर्म में स्थित उन ब्रह्मलोक के निवासी परन्तु प्रलयकाल में अनेकत्व से रहित महापुरुषों को जब प्रकृति के रहस्य का ज्ञान हो जाता है, तब कारण

---

१. यहाँ अपरावर्तिनी का अर्थ है कि दूसरी आवर्तिनी दशा। आवर्तिनी का अर्थ है कि जहाँ प्रकृति का आवर्तन होता रहता है अर्थात् चारों तरफ उथल-पुथल तथा प्राकृतिक तत्त्वों का घूर्णन होना जैसा कि आज भी कुछ ग्रहों में पाया गया है। अतः वहाँ पर कभी जन जीवन रहा होगा।

विनिवृत्तविकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम्।
तुल्यलक्षण सिद्धास्तु शुभात्मानो निरंजनाः॥११६॥
प्राकृते करणोपेताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः।
प्रस्थापयित्वा चात्मानं प्रकृतिस्त्वेष तत्त्वतः॥११७॥

पुरुषान्यबहुत्वेन प्रतीता न प्रवर्तते। प्रवर्तते पुनः सर्गस्तेषां साकारणात्मनाम्॥११८॥
संयोगः प्रकृतिर्ज्ञेया युक्तानां तत्त्वदर्शिनाम्। तत्रोपवर्गिणी तेषामपुनर्भारगामिनाम्॥११९॥
अभावतः पुनः सत्यं शांतानामर्चिषामिव। ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्वं त्रैलोक्यात्तु मुदात्मसु॥१२०॥
ते सार्द्धं यैर्महर्ल्लोकस्तदानासादितस्तु वै। तच्छिष्या ये ह तिष्ठंति कल्पदाह उपस्थिते॥१२१॥
गंधर्वाद्याः पिशाचाश्च मानुषा ब्राह्मणादयः। पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराः ससरीसृपाः॥१२२॥
तिष्ठत्सुतेषु तत्कालं पृथिवीत लवासिषु। सहस्त्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विनश्यति॥१२३॥
ते सप्त रश्मयो भूत्वा एकैको जायते रविः। क्रमेण शतमानास्ते त्रींल्लोकान्प्रदहंत्युत॥१२४॥
जंगमान्स्थावरांश्चैव नदीः सर्वांश्च पर्वतान्। शुष्के पूर्वमनावृष्ट्या यैस्तैश्चैव प्रतापिताः॥१२५॥

और कार्य की सृष्टि होने लगती है। उस समय शुद्धात्मा निष्पाप सिद्ध पुरुष सदा समान लक्षण में रहते हुए प्रकृति के कारणों से युक्त रहते हुए अर्थात् शारीरिक बन्धन में रहते हुए भी अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित रहते हैं।।११५-११६½।। यह प्रकृति तत्त्व रूप से अपने में आत्मा को प्रस्थापित करके पुरुषों के बहुत न होने की प्रतीत कराती हुई, प्रवृत्त नहीं होती है। अर्थात् प्रलयकाल में जब यह प्रकृति आत्मस्थ रहती है, तब बहुत पुरुषों के रूप में नहीं सृष्टि करती है अर्थात् तब एक होती है और वह कारण बन जाती है, तब वह महतत्त्व अहंकार, मन पंचतन्मात्राओं पंचमहाभूतों, इन्द्रियों आदि का कारण बन जाती है।।११६½-११८।। जो योग में लगे हुए तत्त्वदर्शी पुरुष हैं, वे सृष्टिकाल में प्रकृति के संयोग में रहते हैं। प्रलयकाल में जब आत्मस्थ हो जाते हैं, तो फिर पुनःसर्गकाल में वे हो जाते हैं अर्थात् फिर उन पर प्रकृति का मार नहीं पड़ता, तब वहाँ आत्माओं का एक उपवर्ग हो जाता है। अर्थात् सृष्टि काल में उनकी शान्त अग्नि की ज्वाला के समान पुनः उत्पत्ति नहीं होती। उसके बाद वे महापुरुष त्रैलोक्य से बाहर महः लोक में चले जाते हैं। इस प्रकार उन आनन्दयुक्त आत्मा वाले महापुरुषों के त्रैलोक्य से चले जाने पर जिनके साथ जिन्होंने महर्लोक को नहीं प्राप्त किया है, वे कल्पदाह उपस्थित होने पर महर्लोक में ही शरीर धारण कर निवास करते हैं। अर्थात् जिन्होंने उतना अच्छा पुण्य नहीं किया कि वे महर्लोक से ऊपर जा सकें तो वे कल्पदाह (प्रलयकाल) में महर्लोक में ही शरीर धारण कर निवास करते हैं।।११९-१२१।।

प्रलयकाल में गन्धर्व आदि और पिशाच तथा मनुष्य ब्राह्मण आदि पशुगण, पक्षीगण एवं स्थावर, नदी, पर्वत, वृक्षादि, जमीन पर रेंगने वाले (सर्प छिपकली) आदि सब उन पृथ्वीतलवासियों के स्थित रहने पर इस पृथ्वी पर जिस सूर्य की हजारों किरणें हैं, वे सूर्य विनष्ट हो जाते हैं, सूर्य का गोला फट जाता है।।१२२-१२३।। तब वे सूर्य की सात रश्मियां अलग-अलग हो जाती हैं और उन सबका एक-एक सूर्य बनकर सात सूर्य हो जाते हैं और फिर क्रम से सौ सौ सूर्य होकर सात सौ सूर्य हो जाते हैं और फिर वे सैकड़ों सूर्य तीनों लोकों को जला देते हैं।।१२४।। तथा वे सैकड़ों सूर्य जीवों (मनुष्य, पशु आदि जङ्गम जीवों), पेड़-पौधे, नदी, पर्वत आदि (स्थावर) पदार्थों नदियों पर्वतों सबको जला देते हैं; क्योंकि सूखा होने पर पहले से ही वर्षा न होने के कारण वे सब जैसे तैसे पूरी तरह तापित

तदा ते विवशाः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः।
जंगमाः स्थावराश्चैव धर्माधर्मादिकास्तु वै॥१२६॥
दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगात्यये। ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया॥१२७॥
ततस्ते ह्युपपद्यंते तुल्यरूपैर्जनैर्जनाः। उषित्वा रजनीं ते च ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥१२८॥
पुनः सर्गे भवंतीह मानस्यो ब्रह्मणः प्रजाः। ततस्तेषु प्रपन्नेषु जनैस्त्रैलोक्यवासिषु॥१२९॥
निर्दग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्यैस्तु सप्तभिः।
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विजनेष्वर्णवेषु वा॥१३०॥
समुद्राश्चैव मेघाश्च आपश्चैवाथ पार्थिवाः।
शरमाणा व्रजन्त्येव सलिलाख्यास्तथाचलाः॥१३१॥
आगतागतिकं चैव यदा तु सलिलं बहु। संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्यं तदाऽभवत्॥१३२॥
आभाति यस्माच्चाभासाद्भाशब्दः कांतिदीप्तिषु।
स सर्वः समनुप्राप्ता मासां भाभ्यो विभाव्यते॥१३३॥

हो जाते हैं, जब नदियां पर्वतादि करोड़ों डिग्री ताप से प्रतापित होंगे, तब क्या होगा यह तो विज्ञान का ही विषय है।।१२५।। तब वे स्थावर और जङ्गम (जड़-चेतन) पदार्थ और उनके धर्म अधर्म आदि निश्चित ही विवश होकर सूर्य की किरणों से निर्दग्ध हो जाते हैं (पूर्णतः जल जाते हैं)।।१२६।। तब वे सब जले हुए शरीर वाले युग के बीतने पर धूतपाप हो जाते हैं अर्थात् उनके सब पाप धुल जाते हैं और ख्यातातप (जले हुए) पदार्थ शुभ अतिबन्ध (बन्धन) से विनिर्मुक्त हो जाते हैं।।१२७।। उसके बाद वे मनुष्य तुल्यरूप वाले मनुष्यों द्वारा सिद्ध हो जाते हैं अर्थात् जहाँ जो जैसे पहले थे, वैसे ही फिर उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् पर्वत पर्वत के रूप में नदियां नदियों के रूप में तथा जिस पृथ्वी-तल पर पहले जैसे जीव पैदा हुए थे, वे सब जैसे रूप बदलते रहे, उसी तरह के फिर पैदा हो जाते हैं तथा विकास तो परम्परा और कालगति की देन है और उस प्रलयकाल में जिसे कि अव्यक्त जन्म ब्रह्मा की रात्रि कहा जाता है।।१२८।।

यहाँ इस ब्रह्माण्ड में फिर ब्रह्मा की मानसी प्रजाओं की रचना होती है। उसके बाद त्रैलोक्यवासी लोगों के आश्रय ग्रहण करने पर मनुष्यों द्वारा पुनः सर्ग होता है।।१२९।। तथा जब सूर्यों की प्रखर किरणों द्वारा समाप्त लोकों को जला दिया जाता है, तब उसके बाद वर्षा होती है; क्योंकि वे सब पदार्थ समुद्र नदी पर्वत पशु-पक्षी मिट्टी आदि सभी में तो जल होता ही है। अतः वह सब जलेगा तो निश्चित है कि भाप बनेगी। अतः वर्षा होगी ही। अतः वर्षा होती है और वर्षा से पृथ्वी के आप्लावित हो जाने पर चारों ओर जल ही जल हो जाता है।।१३०।। तथा सर्वत्र पृथ्वी पर जल ही जल रहने पर समुद्र, मेघ, जलयुक्त पार्थिव हो जाता है और जलाख्य (समुद्र) तथा अचल रहने वाले सभी तीर की तरह घूमते रहते हैं।।१३१।। अत्यन्त गति से आता हुआ जल इस स्थित पृथ्वी को सम्यक् प्रकार से ढक लेता है और तब यह भूमि अर्णव समुद्र नामक हो जाती है।।१३२।। 'आभाति यस्मात्' अर्थात् अम्भ शब्द 'भा' धातु से बना है, जिसका अर्थ है जो चमकता है, वह अम्भ। अतः प्रलयकाल में चारों तरफ जल ही जल चमकता है। जो 'भा' शब्द 'प्रकाश' और 'व्याप्ति' करने के अर्थ में व्यवहृत होता है। इस समस्त संसार के भस्म हो जाने के बाद अपनी कान्ति और दीप्ति से सब ओर प्रकाशित होता है, इसलिये उसका नाम अम्भ (जल) कहा जाता है। यही जल को अम्भ कहने का कारण है।।१३३।।

तदंतस्तनुते यस्मात्सर्वां पृथ्वीं समंततः। धातुस्तनोति विस्तारं ततोपतनवः स्मृताः॥१३४॥

शार इत्येव शीर्णे तु नानार्थो धातु रुच्यते।
एकार्णवे भवंत्यापो न शीर्णास्तेन ता नराः॥१३५॥
तस्मिन् युगसहस्त्रांते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि।
तावत्कालं रजन्यां च वर्तन्त्यां सलिलात्मनः॥१३६॥
ततस्ते सलिले तस्मिन् नष्टाग्नौ पृथिवीतले।
प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके समंततः॥१३७॥

येनैवाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मणः पुरुषः प्रभुः। विभागमस्य लोकस्य प्रकर्तुं पुनरैच्छत॥१३८॥
एकार्णवे ततस्तस्मिन्नष्टे स्थावर जंगमे। तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥१३९॥

जल को अपतनु भी कहा जाता है। वह इसलिये कि 'तदन्तस्तनुते यस्मातः' अर्थात् वह जल सर्वत्र विस्तृत हो जाता है, फैल जाता है। इसलिये अपतनु कहा जाता है; क्योंकि 'तनु विस्तारे' के अनुसार 'तनु' धातु विस्तार अर्थात् फैलने के अर्थ में आती है। अतः अपने फैलने वाले गुण के कारण जल को तनु कहा जा सकता है; परन्तु प्रलयकाल में वह जल 'अपतनु' कहा जाना चाहिये। क्योंकि अप उपसर्ग सदैव किसी शब्द से पूर्व प्रयुक्त होकर बुरे अर्थ को प्रकाशित करता है, जैसे कि कीर्त्ति का बुरा अर्थ है अपकीर्ति। उसी प्रकार अपतनु का अर्थ होगा—बुरी तरह फैलने वाला जल। इस प्रकार प्रलय काल में जल बुरी तरह ही फैलता है। इसलिये उसे अपतनु नाम दिया गया है, जो नाम देना इस पुराण का एक विशेष रहस्य है।।१३४।।

'शृ' धातु में 'अच्' अथवा 'घञ्' प्रत्यय से 'शार' शब्द बनता है। वैसे 'कोश' के शार का अर्थ वायु है; क्योंकि वायु 'शीर्ण' होती है। इधर-उधर वखेरती है। अतः उसे शार कहना उचित है तथा प्रलयकालीन जल को 'शार' कहना उचित ही है; क्योंकि 'शृ' धातु अनेकों अर्थ वाली है। यह क्रयादिगणीय धातु है 'जिससे शृणाति क्रिया बनती है। इस धातु के अनेक अर्थ हैं, वे हैं—टुकड़े कर देना, चोट पहुंचाना, मार डालना, बर्बाद करना, फाड़ डालना। अतः प्रलयकालीन वायु यह सब कार्य करता है, वह सब कुछ को शीर्ण कर देता है। इसलिये उसे शार या शीर्ण नाम दिया गया है। अतः जब सर्वत्र एक समुद्र हो गया (एकार्णव) हो गया, तब वह प्रलयकालीन जल शीर्ण नहीं रहे। अर्थात् वे अब शीर्ण नहीं रहे, अब वे नर हो गये। इसलिये जल को नार कहा गया; क्योंकि नार में नर का अस्तित्व था। जो नार श्री नारायण (भगवान् विष्णु) का घर था। अर्थात् समस्त जीवनीय तत्त्व उस जल में समा गये। इससे जल में जीवनीय शक्ति का होना भी सिद्ध होता है, जिसे विज्ञान ने भी स्वीकार किया है। अतः प्रलयकाल का वह एकार्णव (एक समुद्र) सभी नरों (जीवों) का उत्पत्ति स्थान था। इसलिये उसे 'नार कहा गया; क्योंकि नर + अण = नार अर्थात् नर का भाव = नार।। इस प्रकार समस्त पृथ्वी पर एक ही समुद्र हो गया।।१३५।।

उस एकार्णव में १००० युग तक दिन में ब्रह्मा के रहने पर उतने ही समय तक १००० युग तक ४,३२,००,००० वर्षों तक रात में ही जल में ब्रह्मा का निवास रहा।।१३६।। उसके बाद अग्नि द्वारा नष्ट किये गये पृथ्वीतल पर व्याप्त जल में वायु के पूरे शान्त होने पर चारों तरह कुछ भी दिखाई न देने वाले घोर अन्धकार में ब्रह्मा के अधिष्ठित पुरुष ने इस संसार के विभाग करने की इच्छा की।।१३७-१३८।। उसके बाद जड़चेतन पदार्थों के नष्ट जल वाले एकार्णव में तब वह ब्रह्मा सहस्राक्ष (हजारों आँख वाले) और सहस्रपात् (हजारों पैर वाले) होते हैं।।१३९।।

सहस्त्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा॥१४०॥
सत्त्वोद्रेकात्प्रबुद्धस्तु स शून्यं लोकमैक्षत। अनेनाद्येन पादेन पुराणं परिकीर्तितम्॥१४१॥

।।इति श्रीब्रह्माण्ड महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे प्रथमे प्रकियापादे लोकल्पनं नाम पंचमोऽध्यायः।।५।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंगपादे

कल्पमन्वन्तराख्यान वर्णनम्

षष्ठोऽध्यायः

सूत उवाच

इत्येवं प्रथमं पादं प्रकृत्यर्थं प्रकीर्तितम्। श्रुत्वा तु संहृष्टमनाः कापेयः संशयायति॥१॥
आराध्य वचसा सूतं तस्यार्थं त्वरां कथाम्। अथ प्रभृति कल्पज्ञः प्रतिसंधिः प्रचक्षते॥२॥
समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चानयोः। कल्पयोरंतरं यत्र प्रतिसंधिश्च यस्तयोः॥
एतद्वेदितुमिच्छामि यथावत्कुशलो ह्यसि॥३॥

तब सहस्त्रशीर्षा (हजार सिर वाले) पुरुष, इन्द्रियों से न जानने योग्य सुनहरे वर्ण वाले ब्रह्मा, नारायण नाम वाले होकर उस जल में शयन करने लगे। भाव यह है कि वही ब्रह्माण्ड रचयिता ब्रह्म जो एक ही है। वही पुरुष कहा गया; क्योंकि 'पुरा शेते इति पुरुषः' पहले शयन करने के कारण वह पुरुष कहा गया। हजार नेत्र और एक हजार पैर और हजार शिर तो उस सर्वत्रद्रष्टा सर्वत्रगामी और सर्वज्ञ होने के प्रतीक हैं।।१४०।। वही ब्रह्मा एकार्णव (एक समुद्र) में शयन करने के नारायण (नार + अयन) जल का घर कहे गये। सत्त्व के उद्रेक से जब वे जगे, तब उन्होंने इस संसार को शून्य देखा। उस आद्यपाद द्वारा पुराण प्रकीर्तित हुआ।।१४१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग प्रक्रिया पाद पञ्चम अध्याय लोककल्पन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय–६

कल्प मन्वन्तर व्याख्यान वर्णन

सूत जी बोले कि—इस प्रकार मैंने प्रथम पाद प्रकृति के लिए वर्णन किया है, इसे सुनकर बहुत ही प्रसन्नचित्त (काश्यप) संशय को प्राप्त हो जाते हैं।।१।। तब सूत जी से आराधना करके दूसरी कथा कहने को कहा और कहा कि यहाँ से लेकर आगे कल्प का ज्ञान और प्रतिसन्धि देखी जाती है।।२।। (काश्यपजी) ने सूत जी से कहा कि सम्यक्

काश्यपेनैवमुक्तस्तु सूतः प्रवदतां वरः। त्रैलोक्यस्योद्भवं कृत्स्नमाख्यातुमुपचक्रमे॥४॥

सूत उवाच

अत्र वै वर्णयिष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः। कल्पं भूतं भविष्यं च प्रतिसंधिश्च यस्तयोः॥५॥
मन्वंतराणि कल्पेषु यानि यानि च सुव्रताः। यश्चायं वर्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः॥६॥
अस्मात्कल्पात्तु यः पूर्वः कल्पोऽतीतः सनातनः।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां निबोधत॥७॥
प्रत्यागते पूर्वकल्पे प्रतिसंधिं विनाऽनघाः। अन्यः प्रवर्त्तते कल्पो जनलोकादयः पुनः॥८॥
व्युच्छिन्नप्रतिसंधिस्तु कल्पात्कल्पः परस्परम्।
व्युच्छिद्यंत प्रजाः सर्वाः कल्पांते सर्वशस्तदा॥९॥
तस्मात्कल्पात्तु कल्पस्य प्रतिसंधिर्न विद्यते। मन्वंतरे युगाख्यानामविच्छिन्नास्तु संधयः॥१०॥
परस्परात् प्रवर्तंते मन्वंतरयुगैः सह। उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पाः समासतः॥११॥
तेषां परार्द्धकल्पानां पूर्वो यस्मात्तु यः परः। आसीत्कल्पे व्यतीते वै परार्द्धात्परमस्तु यः॥१२॥
कल्पास्त्वन्ये भविष्या ये ह्यपरार्द्धगुणीकृताः।
प्रथमः सांप्रतस्तेषां कल्पो यो वर्तते द्विजाः॥१३॥

प्रकार से बीते हुए कल्प और वर्तमान कल्प दोनों के बीच में जहाँ दोनों की संधि है, यही मैं जानना चाहता हूँ तथा आप यह बताने में कुशल हैं।।३।। काश्यप के ऐसा कहने पर प्रवचन करने में श्रेष्ठ सूत जी तीनों लोकों की उत्पत्ति सम्बन्धी सब कुछ कथा कहने लगे।।४।।

सूत जी ने कहा—अब यहाँ मैं कल्प, भूत और भविष्य और दो कल्पों की प्रतिसन्धि इस सबको याथातथ्य रूप से वर्णन करूँगा।।५।। कल्पों में जो मन्वन्तर होते हैं और जो यह वाराह कल्प इस समय विद्यमान है, उसका वर्णन करूँगा।।६।। सूत जी कहते हैं कि इस कल्प से पूर्व जो पुराना कल्प बीत गया, उस और इस कल्प की मध्य अवस्था समझो[१]।।७।। आगे कहते हैं कि हे मुनियो! निष्पाप पूर्वकल्प के बीत जाने पर प्रतिसन्धि के विना जनलोक आदि वाला अन्य कल्प प्रवृत्त हो जाता है।।८।। एक कल्प का विराम (पूर्व विनाश) और प्रतिसन्धि (दो कल्पों का मेल) कल्प से कल्प में परस्पर होता रहता है। जब कल्प का अन्त होता है, तब सर्वत्र समस्त प्रजा समाप्त हो जाती है।।९।। उसी कारण से कल्प से कल्प की प्रतिसन्धि नहीं विद्यमान रहती। मन्वन्तर में युगों की समाप्ति ही सन्धियां हैं।।१०।। परस्पर एक कल्प से दूसरे कल्प में मन्वन्तरयुगों के साथ प्रवृत्त होते रहते हैं, जिनको प्रक्रिया अर्थ से संक्षेप में बता दिया गया है अर्थात् प्रक्रिया पाद में बता दिया है।।११।। उन परार्द्ध कल्पों के पूर्व जो जिससे परे (बाद) में है, वह कल्प के बीतने पर परार्द्ध से परे जो भी हो।।१२।। अन्य कल्प जो भविष्य में आने वाले हैं, उनके अपरार्द्ध

---

१. उस और इस कल्प की मध्यावस्था से तात्पर्य है कि दोनों कल्प बराबर हैं तथा इस समय वाराह कल्प चल रहा है, जिसकी मध्य अवस्था इस समय है; क्योंकि एक कल्प की आयु चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष है तथा सृष्टि सम्वत् के अनुसार १९७२९५०००० वर्ष लगभग बीत चुके हैं। इस रहस्य को विज्ञान ने भी स्वीकार किया है। वैज्ञानिकों ने भी पृथ्वी की आयु लगभग चार अरब ही मानी है।

अस्मिन्पूर्वे परार्द्धे तु द्वितीयः पर उच्यते। एष संस्थितकालस्तु प्रत्याहारस्ततः स्मृतः॥१४॥
अस्मात्कल्पात्ततः पूर्वं कल्पोऽतीतः पुरातनः। चतुर्युगसहस्रांते सह मन्वंतरैः पुरा॥१५॥
क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते। तस्मिन्काले तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये॥१६॥
नक्षत्रग्रहताराश्च चन्द्रसूर्यादयस्तु ते। अष्टाविंशतिरेवैताः कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम्॥१७॥
मन्वंतरे यथैकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा। त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्यो द्विनवतिस्तथा॥१८॥
अष्टाधिकासप्ततिश्च सहस्राणां पुरा स्मृता। एकैकस्मिस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः॥१९॥
अथ मन्वंतरेष्वासंश्चतुर्दशसु खे दिवि। देवाश्च पितरश्चैव ऋषयोऽमृतपास्तथा॥२०॥
तेषामनुचराश्चैव पत्न्यः पुत्रास्तथैव च। वर्णाश्रमातिरिक्ताश्च तस्मिन्काले तु खे सुराः॥२१॥
तैस्तैः सायुज्यगैः सार्द्धं प्राप्ते वस्तुमये तदा। तुल्यनिष्ठाभवन्सर्वे प्राप्ते ह्याभूतसंप्लवे॥२२॥

ततस्तेऽवश्यभावित्वाद् बुद्ध्वयाः पर्यायमात्मनः।
त्रैलोक्यवासिनो देवा इह तानाभिमानिनः॥२३॥

स्थितिकाले तदा पूर्णे आसन्ने पश्चिमोत्तरे। कल्पावसानिका देवास्तस्मिन्प्राप्ते ह्युपप्लवे॥२४॥
तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः। महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मनः॥२५॥
तेयुक्ता नुपपद्यंते महतीं च शरीरिके। विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः॥२६॥

से गुणा करने पर होते हैं। वह उनका इस समय का प्रथम कल्प है, जो विद्यमान है।।१३।। इस पूर्व में और दूसरे के आधे में द्वितीय पर कहा जाता है। अर्थात् इस समय सृष्टि का दूसरा भाग चल रहा है, जिसका अन्त है। अभी इस कल्प का तीसरा, चौथा भाग अवशिष्ट ही है। यह संस्थिति काल है, उसके बाद प्रत्याहार (प्रलयकाल) कहा गया है। अर्थात् पूर्व और परपरार्द्धकाल स्थितिकाल हैं, इसके बाद का काल प्राकृत प्रलय काल कहा जाता है।१४।। पहले चार हजार युग के अन्त में मन्वन्तरों के साथ इस कल्प से पूर्व पुराना कल्प बीत चुका है।।१५।। उस कल्प के क्षीण होने पर दाह काल के उपस्थित होने पर उस समय तब पुण्यशाली देवता जो वैमानिक थे अर्थात् आकाश में थे।।१६।। नक्षत्रग्रह और तारागण तथा चन्द्रमा सूर्य आदि सब २८ करोड़ थे, यह एक मन्वन्तर के देवों की संख्या है।।१७।। जैसे कि एक मन्वन्तर में २८ करोड़ तो १४ मन्वन्तरों में ३९२००००००० तीन अरब वानबे करोड़ देवता हुये।।१८।। पहले बीते हुए कल्प में जो आकाशचारी देव थे, उनकी संख्या ७८००० कही गयी है। प्रत्येक कल्प में देवता और वैज्ञानिक ही थे। वे आकाशवासी ही थे।।१९।। इसके बाद १४ मन्वन्तरों में देवता, पितर, ऋषि और अमृत पीने वाले लोग आकाश (व्योम) में रहे।।२०।। और उनके सेवक पत्नियां और पुत्र प्रलय काल के लक्षणों के उपस्थित हो जाने पर साथ साथ समानभाव से एकीकृत होकर एक साथ एक दूसरे का अनुसरण करते हुए वर्णाश्रम व्यवस्था के विना एक होकर एक वस्तु के रूप में स्वर्गलोक में थे।।२०-२२।।

भाव यह है कि देवों को प्रलय का पता लग गया था। अतः सब प्रेम से, बिना किसी भेदभाव के आकाश में थे। अतः वे त्रैलोक्यवासी देवतागण जो अपने महत्त्व पर अभिमान करने वाले थे, अपने अवश्यम्भावी विनाश को समझ गये।।२३।। तब पश्चिम और उत्तर में प्रलय की स्थिति का समय आने पर वे उस कल्प के अवसान वाले देवता लोग अपने अपने स्थान को छोड़कर उत्सुक और दुःखी होकर महर्लोक जाने के लिये उत्कण्ठा पूर्वक मन में सोचने लगे।।२४-२५।। तब उन देवता लोगों ने बहुत अधिक आत्मा की विशेष शुद्धि के कारण महर्लोक के योग्य जो शरीर होना चाहिये, उस शरीर को प्राप्त कर लिया और इस प्रकार सबने मानसी सिद्धि को प्राप्त कर

तैः कल्पवासिभिः सार्द्धं महानासादितस्तदा। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भवैश्चापरैर्जनैः॥२७॥
गत्वा तु ते महर्लोकं देवसंघाश्चतुर्दश। स्ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दधिरे मनः॥२८॥
एतेन क्रमयोगेन ययुस्ते कल्पवासिनः। एवं देवयुगानां तु सहस्राणि परस्परम्॥२९॥

विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः।
तैः कल्पवासिभिः सार्द्धं जन आसादितस्तु वै॥३०॥
तत्र कल्पान्दश स्थित्वा सत्यं गच्छंति वै पुनः।
गत्वा ते ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम्॥३१॥

आधिपत्यं विमाने वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः। भवंति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च॥३२॥
तत्र ते ह्यवतिष्ठन्ते प्रीतियुक्ताश्च संयमान्। आनंदं ब्रह्मणः प्राप्त मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह॥३३॥
अवश्यभाविनार्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम्। मानार्चनाभिः संबद्धास्तदा तत्कालभाविताः॥३४॥
स्वपतो बुद्धिपूर्वं तु बोधो भवति वै यथा। तथा तु भाविते सेवां तथानंदः प्रवर्तते॥३५॥

प्रत्याहारैस्तु भेदानां येषां भिन्नानि शुष्मिणाम्।
तैः सार्द्धं वर्द्धते तेषां कार्याणि करणानि च॥३६॥

नानात्वदर्शिनां तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम्। विनिवृत्ताधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम्॥३७॥

ते तुल्यलक्षणाः सिद्धाः शुद्धात्मानो निरंजनाः।
प्राकृते करणोपेताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः॥३८॥

लिया।।२६।। तब उन कल्पवासियों के साथ उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और उनसे पैदा हुए दूसरे पुरुषों के द्वारा महान् पद को प्राप्त कर लिया।।२७।। फिर वहाँ महर्लोक में जाकर वहाँ व्याकुल उन चौदह प्रकार के देवताओं ने जनलोक जाने का मन बनाया।।२८।। इस क्रम योग से वे सभी कल्पवासी देवगण जनलोक में चले गये और इस प्रकार उन हजारों विशुद्ध हृदय देवताओं ने परस्पर मानसी सिद्धि को प्राप्त कर लिया और उन कल्पवासियों के साथ जनलोक को प्राप्त कर लिया।।२९-३०।। वहाँ उस जन लोक में दशकल्प तक स्थित रहकर वे फिर सत्य लोक को चले गये और वहाँ 'ब्रह्म' लोक में जाकर ऐसी गति को प्राप्त हो जाते हैं, जहाँ से फिर कभी लौटते नहीं हैं। वहाँ ब्रह्मलोक में आधिपत्य तो प्राप्त नहीं कर पाते; परन्तु ऐश्वर्य रूप और विषय में उन ब्रह्मा के समान हो जाते हैं।।३२।। वायु पुराण में 'आधिपत्यं विमाने' के स्थान पर 'आधिपत्यं विना वै ते' पाठ है, जो अधिक शुद्ध है। अतः यहाँ भी यही उचित है।

वहाँ ब्रह्मलोक वे देवतालोक ब्रह्म के साथ ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर जन्म मृत्यु (उत्पत्ति, विनाश) से मुक्त हो जाते हैं।।३३।। वहाँ वे अवश्य होने वाले प्राकृत अर्थ से स्वयं बद्ध हो जाते हैं। अर्थात् स्वयं और अवश्य होने वाले अर्थ से सम्बद्ध होकर तब मान अर्चना आदि उस समय होने वाले भावों से भावित हो जाते हैं।।३४।। जिस प्रकार सोये हुये व्यक्ति को बुद्धिपूर्वक बोध रहता है, ठीक उसी प्रकार आनन्द बदल जाता है।।३५।। उनकी सेवा होने पर उन अनेकों के रूप में दिखाई देने वाले, समाप्त अधिकार वाले, अपने अपने धर्म में स्थित ब्रह्मलोक निवासियों की तुल्य लक्षण वाली आत्मायें सिद्ध और शुद्ध होकर प्रकृति के गुणों से युक्त होकर अपनी अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित

प्रख्यापयित्वा चात्मानं प्रकृतिस्त्वेष तत्त्वतः। पुरुषान्यबहुत्वेन प्रतीता तत्प्रवर्तते॥३९॥
प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां साकारणात्मनाम्। संयोगे प्रकृतिर्ज्ञेया मुक्तानां तत्त्वदर्शिनाम्॥४०॥
तत्रोपवर्गिणां तेषां न पुनर्मार्गगामिनाम्। अभावः पुनरुत्पन्नः शांतानामर्चिषामिव॥४१॥
ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं त्रैलोक्येषु महात्मसु। एतैः सार्धं महर्लोकस्तदानासादितस्तु वै॥४२॥
तच्छिष्या वै भविष्यंति कल्पदाह उपस्थिते। गंधर्वाद्याः पिशाचाश्च मानुषा ब्राह्मणादयः॥४३॥
पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराश्च सरीसृपाः। तिष्ठत्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु॥४४॥
सहस्रं यत्तु रश्मीनां स्वयमेव विभाव्यते। तत्सप्तरश्मयो भूत्वा एकैको जायते रविः॥४५॥
क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रींल्लोकान्प्रदहंत्युत। जंगमाः स्थावराश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः॥४६॥

शुष्काः पूर्वमनावृष्ट्या सूर्य्यैस्ते च प्रधूपिताः।
तदा तु विवशाः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः॥४७॥

जंगमाः स्थावराश्चैव धर्माधर्मात्मकास्तु वै। दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगांतरे॥४८॥
ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया। ततस्ते ह्युपपद्यंते तुल्यरूपैर्जनैर्जनाः॥४९॥

हो जाती हैं।।३६-३८।। फिर ये प्रकृति उस आत्मा को अपने रूप से दिखायी देने वाला बनाकर अनेक पुरुषों के रूप में प्रतीत कराने में प्रवृत्त हो जाती है। भाव यह है कि आत्मा प्रकृति तत्त्व में मिलकर 'देहधारी जीवों' के रूप में अनेकत्व में बदल जाती है अर्थात् फिर जीवों की सृष्टि हो जाती है, इसमें वैज्ञानिक रहस्य है। इस प्रकार पुरुष और प्रकृति के संयोग में पुनः सर्ग के लागू हो जाने पर साकार आत्माओं वाले मुक्त तत्त्वदर्शियों की ज्ञेय प्रकृति ही होती है।।४०।। अर्थात् प्रकृति ही उस आत्मा को सबकुछ करने का ज्ञान प्रदान करती है; क्योंकि बुद्धि मन अहंकार और सभी इन्द्रियां तो प्रकृति की हैं, उनके विना पुरुष तो बिल्कुल बेकार हैं। पुरुष जो भी करता है, भोगता है, वह सब प्रकृति के माध्यम से ही। वहाँ सृष्टि हो जाने पर अथवा कारण के उपस्थित होने पर योगी तत्त्वदर्शी युक्त आवागमन से रहित पुरुषों की उस प्राकृतसंयोग के समय भी शान्त अग्निज्वाला के समान फिर दुबारा कभी उत्पत्ति नहीं होती।।४१।।

उसके बाद वे महापुरुष जिनको तत्त्व का ज्ञान हो चुका है, ऊर्ध्वलोक में चले जाते हैं और उन महापुरुषों के ऊर्ध्वस्थित त्रैलोक्यों में चले जाने पर इन्हीं के साथ रहने वाले, उन महापुरुषों को अत्यन्त महान् महर्लोक की प्राप्ति हो जाती है।।४२।। और फिर वहां महर्लोक में कल्पदाह के उपस्थित होने पर गन्धर्वादि, पिशाच, मानुष और ब्राह्मण आदि पशु-पक्षी और पर्वत नदियां आदि जड़ पदार्थ तथा रेंगने वाले कीड़े-मकोड़े आदि सभी उनके शिष्य हो जायेंगे तथा उन सब पृथ्वीतलवासिओं को उस कल्पदाह का सामना करना पड़ेगा। उस समय जबकि प्रलयकाल होगा। तब सूर्य की जो हजारों किरणें चमकने लगेंगी और जो सूर्य की सात रश्मियां हैं, वे सब एक-एक सूर्य बन जायेंगी।।४३-४५।। और फिर हजारों किरणों वाले सात सूर्य उठते हुए तीनों लोकों को निश्चित ही जला देंगे। उसमें स्थित चेतन, जड़, नदियां और सब पर्वत सब, पहले वर्षा न होने से सूर्य की प्रचण्ड धूप से धूपिल होकर विवश हो, सूर्य की किरणों द्वारा जला दिये जाते हैं।।४६-४७।। तब चेतन और जड़ पदार्थ दूसरे युग में अपने अपने धर्म वाले होकर जले हुए शरीर वाले होकर धूतपाप (निष्पाप) हो जाते हैं। अपने ख्यात तप के उन जले शरीरों से उनका सम्बन्ध बना ही रहता है तथा उसके बाद फिर वे लोग अपने अपने पूर्व रूपों के तुल्य रूपों को प्राप्त करते हैं।।४८।। अर्थात् दूसरे युग में जड़, चेतन पशु, पक्षी, नर, वानर, नदी, पर्वत सब उसी रूप में उत्पन्न होते हैं, यह भाव है। यह

उषित्वा रजनीं तत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। पुनः सर्गे भवंतीह मानसा ब्रह्मणः सुताः॥५०॥
तस्तेषूपपन्नेषु जनैस्त्रैलोक्यवसिषु। निर्दग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्यैस्तु सप्तभिः॥५१॥
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विजनेष्वर्णवेषु च।
सामुद्राश्चैव मेघाश्च आपः सर्वाश्च पार्थिवाः॥५२॥
शरमाणा व्रजंत्येव सलिलाख्यास्तथानुगाः। आगतागतिकं चैव यदा तत्सलिलं बहु॥५३॥
संछाद्येतां स्थितां भूमिमर्णवाख्यं तदाभवत्।
आभाति यस्मात् स्वाभासो भाशब्दो व्याप्तिदीप्तिषु॥५४॥
सर्वतः समनुप्राप्त्या तासां चाम्भो विभाव्यते। तदंतस्तनुते यस्मात्सर्वां पृथ्वीं समंततः॥५५॥
धातुस्तनोति विस्तारे नचैतास्तनवः स्मृताः। शर इत्येष शीर्णे तु नानार्थो धातुरुच्यते॥५६॥
एकार्णवे भवत्यापो न शीघ्रस्तेन ते नराः। तस्मिन् युगसहस्रान्ते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि॥५७॥

प्रलयकाल है। उस प्रलयकाल में वे सब जड़ चेतन पदार्थ अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की रात्रि को वहाँ रहकर बिताते हैं। पुनः सृष्टिकाल में ब्रह्माके मानसपुत्र के रूप में उत्पन्न होते हैं।।४९-५०।। अब प्रलय की स्थिति को पुनः बताते हैं कहते हैं कि जब सात सूर्यो की किरणें प्रचण्ड धूप से जनलोक के त्रैलोकवासियों, पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल के निवासियों को जला देती हैं। तब पृथ्वी परकुछ भी नहीं रहता, पृथ्वी विजन (जीवनहीन) हो जाती है। उस समय पृथ्वी पर वर्षा से जल ही जल हो जाता है। सब आवास स्थान नष्ट हो जाते हैं। तब समुद्र मेघ और जल और पृथ्वी तथा उस पर पैदा होने वाले सभी जलमग्न हो एक जल नाम से जाने जाते हैं। तब पृथ्वी पर चारों ओर आती हुई गति वाला जल ही जल होता है।।५१-५३।।

तब इस समस्त भूमण्डल को जल पूरी तरह से आप्लावित कर 'अर्णव' नामक हो जाता है। उस समय जो जल की स्थिति है, उसी के कारण इस जल को अम्भ कहा जाता है; क्योंकि 'आभाति यस्मात्' अर्थात् जिससे सब कुछ प्रकाशित होता है, जिसमें अपना प्रकाश है, जो अपने व्यापकगुण तथा दीप्तिगुण के कारण चारों ओर फैला रहता है, इसी गुण के कारण जल को अम्भ कहते हैं; क्योंकि भा धातु का अर्थ है—व्याप्त होना और प्रकाशित होना। अतः जल का सर्वत्र फैलना और प्रकाश करना एक गुण है, इसी गुण के कारण उसे अम्भ कहा गया है। वह अम्भ (जल) पृथ्वी को चारों ओर से विस्तृत करता है। इसीलिये (तनु विस्तारे) अर्थ में 'तनु' धातु से बने 'तनु' शब्द जल के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अर्थात् चारों ओर विस्तार करने के कारण जल को 'तनु' कहा जाता है।।५४-५५।। तनु धातु का अर्थ है—विस्तार करना। अतः तन् धातु से बने तनु शब्द का अर्थ हुआ—विस्तार करने वाला; क्योंकि जल पृथ्वी का विस्तार करता है; इसलिए जल को तनु कहा गया है। 'शृ' धातु में 'क्त' प्रत्यय से 'शीर्ण' शब्द बना, वैसे इसका अर्थ शीर्ण करना है; परन्तु यह धातु अनेक अर्थों में आती है। शीर्ण का अर्थ है, इधर-उधर बखेरना, फैला देना। अतः जल ऐसा करता है, इसलिये उसे शीर्ण कहा जाना उचित ही है।।५६।।

एकार्णव में जल ही होता है। 'अर्' इसका अर्थ शीघ्र है, जो निपात है। न् अर् का अर्थ है, नहीं जो शीघ्र होता है अर्थात् जो शीघ्र नहीं होता है। अतः उस समय वह जल शीघ्र समाप्त नहीं होता है तथा न शीघ्र चलता है,

विशेष—पुराणकार ने शर धातु से शीर्ण शब्द बना बताया है। अतः वह 'शृ' धातु ही है। पादपूर्ति के लिये शृ को शर कहना किसी तरह उचित माना जा सकता है; परन्तु इससे व्याकरण ज्ञान की परिपक्वता सिद्ध नहीं होती।

तावत्काले रजन्यां च वर्तंत्यां सलिलात्मना। ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टाग्नौ पृथ्वीतले॥५८॥
प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके समंततः। एतेनाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मा स पुरुषः प्रभुः॥५९॥
विभागमस्य लोकस्य प्रकर्तुं पुरैच्छत। एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे॥६०॥
तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्। सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो जितेन्द्रियः।
इमं चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति॥६१॥
आपो नारास्तत्तनव इत्यर्था ननु शश्रुम। आपूर्यमाणास्तत्रास्ते तेन नारायणः स्मृतः॥६२॥

सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रकृत्।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीमयोऽयं पुरुषो निरुच्यते॥६३॥
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यमूर्तः प्रथमस्त्वसौ विराट्।
हिरण्य गर्भः पुरुषो महात्मा संपद्यते वै मनसः परस्तात्॥६४॥

कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूस्त्वाऽसृजत्प्रभुः।
कल्पान्ते तमसोद्रिक्तः कालो भूत्वाग्रसत्पुनः॥६५॥
स वै नारायणो भूत्वा सत्त्वोद्रिक्तो जलाशये।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते॥६६॥

इसीलिये उस समय के जल को नर कहा गया है तथा नार भी कहा गया है। हजारों युगों परिणाम वाले ब्रहमा के एक दिन के बीतने के बाद जबकि सृष्टिकाल होता है, उस सृष्टिकाल को ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है। उस एक दिन के बीत जाने के बाद तब रात्रिकाल में सर्वत्र जल की स्थिति में ब्रह्मा की रात्रि उतने ही काल की होती है। अर्थात् ब्रह्मा का एक दिन जबकि सृष्टि रहती है, वह जितनी अवधि का होता है, उतनी ही अवधि की ब्रह्मा की रात्रि अर्थात् प्रलय की अवधि होती है। तब उस रात्रिकाल में पृथ्वी तल पर जल में अग्नि के नष्ट हो जाने पर, जहाँ वायु भी शान्त हो गयी है, उस अन्धकार में जहाँ सर्वत्र कुछ भी नहीं देखा जा सकता था, वहाँ उस स्थित में युगों तक ब्रह्मा ने रात्रि में शयन किया। तब जिसमें समस्त जड़ चेतन पदार्थ नष्ट हो गये, उस सर्वत्र एक समुद्र रूप (एकार्णव) में स्थिति ब्रह्मा की पुनः लोकों के विभाग करने की इच्छा हुई।।५७-६०।। तब केवल इच्छामात्र से ही वे ब्रह्मा सहस्राक्षः (हजारों आँख वाले) और सहस्रपात् (हजारों पैरों वाले) और सहस्रशीर्षा (हजारों शिरों वाले) रुक्मवर्ण वाले और इन्द्रियों से भी न जानने योग्य हो गये तथा नर, नार में उनका शयन था। अतः उनका नाम नारायण हो गया, जिसका अर्थ है—नार (जल) है, घर जिनका, वे नारायण कहे गये। इस निम्न श्लोक को उन नारायण के प्रति उदाहृत करते हैं।।६१।।

नारायण के सम्बन्ध में उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि जल का नर और तनु नाम है। उस जल में वे नाभि तक डूबे हुए रहते हैं। इसलिये वे नारायण कहे जाते हैं।।६२।। वे ही सहस्रशीर्षा, सुमना, सहस्रपात्, सहस्रचक्षुः, सहस्रवदन, सहस्रकृत्, सहस्रबाहु, प्रथमप्रजापति, त्रयीमय और पुरुष कहे जाते हैं। यही महापुरुष आदित्य वर्ण, भुवनपालक, अपूर्व, प्रथम प्रजापति, विराट् हिरण्यगर्भ पुरुष महान् आत्मा और मन से परतत्त्व कहे जाते हैं।।६३-६४।। उन्होंने ही कल्प के आदि में रजोगुण के उद्रेक से युक्त होकर प्रजा की सृष्टि की हैं और कल्प के अन्तकाल में (प्रलयकाल में) तमोगुण के बढ़ जाने से काल बनकर सबको पुनः निगल लिया।।६५।। वही ब्रह्मा

सृजति ग्रसते चैव वीक्ष्यते च त्रिभिः स्वयम्। एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे॥६७॥
चतुर्युगसहस्त्रान्ते सर्वतः स जलावृते। ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु स चकाशे भवे स्वयम्॥६८॥
चतुर्विधाः प्रजाः सर्वा ब्रह्मशक्त्या तमोवृताः। पश्यंति तं महर्लोकि कालं सुप्तं महर्षयः॥६९॥
भृग्वादयो यथोद्दिष्टास्तस्मिन् काले महर्षयः। सत्यादयस्तथा त्वष्टौ कल्पे लीने महर्षयः॥
तदा विवर्त्यमानैस्तैर्महत्परिगतं पराम्॥७०॥
गत्यर्थादृषते धांतोर्नामनिष्पत्तिरुच्यते। यस्मादृषतिसत्त्वेन महत्तस्मान्महर्षयः॥७१॥
महर्लोकस्थितैर्दृष्टः कालः सुप्तस्तदा च तैः।
सत्त्वाद्याः सप्त ये त्वासन्कल्पेऽतीते महर्षयः॥७२॥
एवं ब्रह्मा तासु तासु रजनीषु सहस्त्रशः। दृष्टवन्तस्तदानीताः कालं सुप्तं महर्षयः॥७३॥
कल्पस्यादौ सुबहुला यस्मात्संस्थाश्चतुर्दश।
कल्पया मास वै ब्रह्मा तस्मात्कल्पो निरुच्यते॥७४॥
स स्त्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः। व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥७५॥

नारायण होकर जलाशय में सत्त्व गुण के उद्रेक (बढ़ने) पर स्वयं तीन लोकों (पाताल, मध्यलोक और स्वर्गलोक) तीनों का विभाजन करके उनके पालन में पूरी तरह प्रवृत्त हो जाते हैं।।६६।। अपने तीन स्वरूपों के द्वारा वे स्वयं ही ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं, स्वयं ही निगलते हैं और स्वयं इस स्थित ब्रह्माण्ड को देखते हैं अर्थात् पालन करते हैं। चार हजार युगों के बाद जब जड़ चेतन पदार्थ पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं और चारों ओर जल ही जल दिखायी देता है, तब ब्रह्मा नारायण नाम से भवसागर में स्वयं प्रकाशित होते हैं।।६७-६८।। जब चारों प्रकार की प्रजायें जब ब्रह्म की शक्ति से तमोगुण से आवृत्त हो जाती हैं, तब उन काल रूप ब्रह्मा को सोता हुआ महर्षिगण देखते हैं।।६९।। वे देखने वाले महर्षिगण भृगु आदि हैं, जिन्होंने कि उन पुरुष रूप ब्रह्म का आश्रय लिया है। सत्य आदि आठ महर्षियों ने भी उसी प्रकार कल्प के लीन होने पर देखा था। तब वहाँ पर विशेषरूप वाले वर्तमान ब्रह्म को देखने के कारण उन्होंने महत् तत्त्व से युक्त परा गति को प्राप्त किया और गत्यर्थक 'ऋष्' धातु से 'इन्' + 'कित्' प्रत्यय में वने शब्द के अर्थानुसार उनका नाम 'महर्षि' हुआ। अर्थात् उन्होंने इस उपर्युक्त तत्त्व को अपनी महत् बुद्धि से जाना था (देखा था) इसलिये उनका नाम महर्षि हुआ[1]।।७१।।

तब महर्लोक में स्थित उन समस्त ऋषिगणों ने सोते हुए काल को देखा। पूर्वकल्प में सत्य आदि जो सात ऋषिगण थे, उन्होंने भी काल को उसी प्रकार देखा था।।७२।। इस प्रकार उन उन हजारों रात्रियों में उन लाये हुए महर्षियों ने सोते हुए काल को देखा।।७३।। क्योंकि कल्प के आदि में चौदह संस्था बहुत बड़ी बनाने की कल्पना की। अतः कल्पना करने के कारण उन्हें कल्प कहा गया।।७४।। वह व्यक्त और अव्यक्त महादेव कल्प आदियों में पुनः पुनः बार पञ्चमहाभूतादियों की रचना करने वाले हैं और यह संसार उन्हीं का है।।७५।।

---

१. क्योंकि 'ऋष्' धातु गमन अर्थ वाली है तथा 'गम्' का अर्थ 'पाना' और 'जाना' दोनों होता है। अतः 'ऋषि' का अर्थ हुआ जानने वाले जैसे कि आज भी Research शब्द इसी ऋषि शब्द का रूप है तथा ऋषिकुल को आज स्कूल कहा जाता है। यह स्कूल शब्द भी ऋषिकुल का ही रूप है। ऋषि का अर्थ स्पष्ट रूप से 'अनुसन्धाता' किया जाये, तो सबसे उचित है।

इत्येष प्रतिसंबन्धः कीर्तितः कल्पयोर्द्वयोः। सांप्रतं हि तयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूवह॥७६॥
कीर्तितस्तु समासेन पूर्वकल्पे यथातथम्। सांप्रतं संप्रवक्ष्यामि कल्पमेतं निबोधत॥७७॥

॥इति श्रीब्रह्माण्ड महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीये अनुषंगपादे कल्पमन्वन्तराख्यान-वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

लोकज्ञानवर्णनम्

सप्तमोऽध्यायः

सूत उवाच

तुल्यं युगसहस्त्रं वै नैशं कालमुपास्यसः। शर्वर्यंते प्रकुरते ब्रह्मा तूत्सर्गकारणात्॥१॥
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत्। अन्धकारार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे॥२॥
जलेन समनुप्लाव्य सर्वतः पृथिवीतले। प्रविभागेन भूतेषु सत्यमात्रे स्थितेषु वा॥३॥

इस प्रकार दोनों कल्पों के बीच में जो कुछ घटित हुआ, उसे प्रतिकल्प कहते हैं, जिसे बताया गया है। इस समय उन दोनों कल्पों के बीच पहली अवस्था जो थी, वह मैंने संक्षेप में जैसी है, वैसी बता दी है। अब मैं आपको इस वर्तमान कल्प के विषय में अच्छी तरह बताऊँगा, उसे आप ध्यानपूर्वक समझिये।।७६-७७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद सप्तम अध्याय कल्प मन्वन्तर आख्यान का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-७

लोकज्ञान वर्णन

अब सप्तम अध्याय प्रारम्भ होता है। इस अध्याय में लोकज्ञान का वर्णन है, जो वायु द्वारा कहा गया है। सूत जी वर्णन करते हैं। सूत जी कहते हैं कि—

हजार युग के तुल्य रात्रिकाल को बिताकर रात्रि के अन्त में वे परं ब्रह्म सृष्टि के कारण वे ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं।।१।। ब्रह्मा तो तब वायु बनकर जो जल ही जल पृथ्वी पर है, उस जल में घूमते रहते हैं। वह भी उस स्थिति में जब कि वहाँ जड़ चेतन नष्ट हो गया रहता है। घोर अन्धकार चारों ओर क्षिति, जल, अग्नि, वायु और आकाश समस्त भूत तत्त्व अविभक्त रहते हैं तथा सत्यमात्र स्थित चारों और पृथ्वी जल से डूबी हुई रहती है। उसमें भी वे विचरण करते हैं।।२-३।।

निशायामिव खद्योतः प्रावृट् काले ततस्तदा। तदा कामेन तरसा मन्यमानः स्वयं धिया॥४॥
सोप्युपायं प्रतिष्ठायां मार्गमाणस्तदा भुवम्।
ततस्तु सलिले तस्मिन् ज्ञात्वा त्वन्तर्गतो महीम्॥५॥
अन्धमन्यतमं बुद्धा भूमेरुद्धरणक्षमः। चकार तं तु देवोऽथ पूर्वकल्पादिषु स्मृतः॥६॥
सत्यं रूपं वराहस्य कृत्वांभोऽनुप्रविश्य च।
अद्भिः संछादितामिच्छन् पृथिवीं स प्रजापतिः॥७॥
उद्धृत्योर्वीमथ न्यस्ता सापत्यांतामतिन्यसत्। सामुद्राश्च समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च॥८॥
पृथक्तास्तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन्।
प्राक्सर्गे दह्यमाने तु पुरा संवर्तकाग्निना॥९॥
तेनाग्निना विलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वशः। शैत्यादेकार्णवे तस्मिन्वायुना ये तु संहिताः॥१०॥
निषिक्ता यत्र यत्रासं स्तत्रतत्राचलोऽभवत्।
स्कन्धाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः॥११॥
गिरयो हि निगीर्णत्वादयनात्तु शिलोच्चयाः। तत स्तावासमुद्धृत्य क्षितिमंतर्जलात्प्रभुः॥१२॥
सप्तसप्त तु वर्षाणि तस्या द्वीपेषु सप्तसु। विषमाणि समीकृत्य शिलाभिरभितो गिरीन्॥१३॥

वर्षा ऋतु के समय खद्योत की भाँति उस समय अपनी बुद्धि के द्वारा इच्छा से मानते हुए वे पृथ्वी को खोजते हैं, उसको स्थित करने का उपाय खोजते रहते हैं। फिर उसके बाद उस जल के अन्दर पृथ्वी को डूबा हुआ जानकर पृथ्वी को अन्ध और अन्यतम जानकर उसको ऊपर लाने (उद्धरण) में समर्थ प्रभु देव ने जैसे पूर्व कल्पों में किया था, वैसे ही भूमि को ऊपर लाने के लिए सचेष्ट हो गये।।४-६।। और फिर वाराह का सत्यरूप धारण करके उन प्रजापति ने जल में प्रवेश करके जलों से डूबी हुई पृथ्वी को ऊपर कर जलों के ऊपर स्थापित कर दिया और फिर समुद्र के जल को समुद्रों में, नदियों के जल को नदियों में, स्थापित कर दिया।।७-८।। उसके बाद वाराहरूपधारी उन प्रजापति ने पृथिवी पर पर्वतों को समान रूप से अलग अलग कर दिया, जिनको पहले पूर्व सर्ग में संवर्तक (प्रलयकालीन) अग्नि में जला दिये जाने पर उसी अग्नि द्वारा वे पर्वत पृथ्वी पर सभी ओर जल में विलीन हो गये थे।[१] अतः जलप्लावन के समय, तब वहाँ उस एकार्णव में शीत के कारण वे पर्वतादि वायु से युक्त हो गये और वायु द्वारा जल के सूखने पर वे पर्वत जहाँ के तहाँ स्थिर हो गये और फिर वे स्वतन्त्र और अचल हो गये। गतिहीन होने के कारण और न चलने वाला होने के कारण उनका नाम अचल हुआ, पर्व (गांठ) के कारण वे 'पर्वत' कहे गये, जल में डूबे हुए थे, इस कारण वे गिरि कहे गये तथा पत्थरों के चयन के कारण उनका नाम शिलोच्चय हुआ।।९-११½।। उसके बाद तु प्रजापति ने जल के अन्तर्गत से पृथ्वी को ऊपर उठाकर निर्दिष्ट स्थान पर स्थापित किया। उसको पहले सात-सात द्वीपों में तथा द्वीपों को सात-सात वर्षों में विभक्त किया। जो ऊँचे नीचे स्थान थे, उनको समतल बना

१. अतः स्वाभाविक है कि आग द्वारा सब कुछ राख हो जायेगा तो फिर पानी में वह गल ही जायेगा। अतः वन पर्वत नद नदी सब कुछ जब पूरी तरह भस्म हो गया, तब वहाँ कुछ भी नहीं था। जब जल ही जल होगा तो भयंकर शीत हुआ तथा अधिक शीत होता है, तो बर्फ बनती है।

द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशत्तथैव तु। तावंतः पर्वताश्चै वर्षांते समवस्थिताः॥१४॥
स्वर्गादौ कांतिविष्टास्ते स्वभावे नैव नान्यथा।
सप्तद्वीपा समुद्राश्च अन्योन्यस्यानुमण्डलम्॥१५॥
सन्निविष्टाः स्वभावेन समावृत्य परस्परम्। भूराद्याश्चतुरो लोकाश्चंद्रादित्यौ ग्रहैः सह॥१६॥
पूर्ववन्निर्ममे ब्रह्मा स्थावराणीह सर्वशः।
कल्पस्य चास्य ब्रह्मा चासृजद्यः स्थानिनः सुरान्॥१७॥
आपाग्निं पृथिवीं वायुमंतरिक्षं दिवं तथा। स्वर्गं दिशः समुद्रांश्च नदीः सर्वांस्तु पवतान्॥१८॥
ओषधीनामात्मनश्च आत्मनो वृक्षवीरुधाम्। लवाकाष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्त्तान्संधिरात्र्यहान्॥१९॥
अर्द्धमासांश्च मासांश्च अयनाब्दान् युगानि च।
स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक्पृथक्॥२०॥
स्थानात्मनस्तु सृष्ट्वा च युगावस्था विनिर्ममे। कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चैव तथा युगम्॥२१॥
कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमं सोऽसृजत्प्रजाः।
प्रागुक्ताश्च मया तुभ्यं पूर्व्वे कल्पे प्रजास्तु ताः॥२२॥
तस्मिन्संवर्तमाने तु कल्पे दग्धास्तदग्निना। अप्राप्तायास्तपोलोकं पृथिव्यां याः समासत॥२३॥
आवर्तन्ते पुनः सर्गे वीक्षार्थं ता भवन्ति हि।
वीक्ष्यार्थं ताः स्थितास्ततत्र पुनः सर्गस्य कारणात्॥२४॥

करके चारों ओर शिलाओं से पर्वतों को स्थापित किया।।११½-१३।। उन द्वीपों में चालीस वर्षों (देशों) को बनाया तथा आवश्यकता के अनुसार उतने ही पर्वत उन उन वर्षों के अन्त में ठीक प्रकार से अवस्थित किये।।१४।। स्वर्ग आदि में कान्तिविष्ट वे स्वभाव से अन्य प्रकार के नहीं थे अर्थात् प्रकृति के अनुकूल जैसे जितने आकार प्रकार में होने चाहिये, उसी आकार प्रकार में उनको स्थापित किया गया। सातों द्वीप, सातों समुद्र एक-दूसरे के मण्डल स्वभावतः घेर कर स्थापित किये गये।।१५।। ब्रह्मा ने सबसे पहले भूः आदि चार लोकों को चन्द्रमा, सूर्य आदि अन्य ग्रहों के सहित बनाया और उन पर अच्छी प्रकार से स्थानों को भी विभक्त किया।।१६।। ब्रह्मा ने सबसे पहले यहाँ इस कल्प के स्थावरों (पर्वत, नद, नदी) आदि को बनाया और सब स्थानों के देवों को बनाया।।१७।। वे देवता हैं—जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, दिव, स्वर्ग, दिशायें, समुद्र, नदियाँ और समस्त पर्वतों को बनाया।।१८।। फिर ब्रह्मा ने आत्मा (जीवन) की औषधियों, वृक्षों और लताओं, लव, काष्ठ, कला, मुहूर्तो,रात्रि और दिन की सन्धियों को बनाया।।१९।। फिर अर्द्धमास, मास, अयन (दक्षिणायन उतरायरण), अब्दों (शताब्दियों) और युगों को बनाया तथा फिर पृथक्-पृथक् स्थानों और स्थानाभिमानियों को उत्पन्न किया।।२०।।

उसके वाद स्थानात्माओं की सृष्टि की और सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग आदि युगों को बनाया।।२१।। कल्प के आदि में सतयुग में पहले उन्होंने प्रजा की सृष्टि की। मैंने यह सब तुमको पहले ही बता दिया था कि पूर्वकल्प में वे सब प्रजायें बनायी गयीं थीं। उस कल्प में जो संवर्तक अग्नि (प्रलय की आग) से जला दिये गये थे, वे तपोलोक को प्राप्त न होकर पृथ्वी पर रह गये थे। वे ही पुनः सृष्टि में लौटकर आते हैं और सर्ग में कारण बनते हैं। वे ही उस सृष्टि को देखने के लिये वह सर्ग के कारण रूप में स्थित हैं। अर्थात् वे ही सृष्टि का कारण बनते हैं।।२४।।

ततस्ताः सृज्यमानास्तु सन्तानार्थं भवन्ति हि।
धर्म्मार्थ काममोक्षाणामिह ताः साधिताः स्मृताः॥२५॥
देवाश्च पितरश्चैव क्रमशो मानवास्तथा। ततस्ते तपसा युक्ताः स्थानान्यापूरयन्पुरा॥२६॥
ब्राह्मणो मनवस्ते वै सिद्धात्मानो भवन्ति हि। आसंगद्वेषयुक्तेन कर्मणा ते दिवं गताः॥२७॥
आवर्तमानास्ते देहे संभवन्ति युगे युगे। स्वकर्म्मफलशेषेण ख्याताश्चैव तदात्मकाः॥२८॥
संभवन्ति जने लोकाः कल्पागमनिबन्धनाः।
अप्सु यः कारणं तेषां बोधयन्कर्म्मणा तु सः॥२९॥
कर्म्मभिस्तैस्तु जायन्ते जनलोकाच्छुभाशुभैः। गृह्णन्ति ते शरीराणि नानारूपाणि योनिषु॥३०॥
देवाद्याः स्थावरांतास्तु आपद्यन्ते परस्परम्। तेषां मेध्यानि कर्म्माणि प्रायशः प्रतिपेदिरे॥३१॥
तस्माद्यन्नामरूपाणि तान्येव प्रतिपेदिरे। पुनः पुनस्ते कल्पेषु जायन्ते नामरूपिणः॥३२॥
ततः सर्गो ह्युपसृष्टिं सिसृक्षोर्ब्रह्मणस्तु वै। ताः प्रजा ध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा॥३३॥
मिथुनानां सहस्त्रं तु मुखात्समभवत्किल। जनास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः सुतेजसः॥३४॥
चक्षुषोऽन्यत्सहस्त्रं तु मिथुनानां ससर्ज्ज ह। ते सर्वे रजसोद्रिक्ता शुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः॥३५॥
सहस्त्र मन्यदसृजद्बाहूनामसतां पुनः। रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता गृहशीलास्ततः स्मृताः॥३६॥

उसके बाद वे ही जो उत्पन्न किये गये प्रजा, देवता, ऋषि, मनु आदि सन्तान की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। वे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने वाले माने गये हैं। वे ही तपस्यायुक्त होकर अपने कार्यों को पूरा करते थे।।२५-२६।। ब्रह्मा के वे मनु लोग सिद्ध आत्मा होते हैं। आसक्ति से द्वेष रखने वाले कर्म के द्वारा वे स्वर्ग को प्राप्त हुए।।२७।। वे ही सब लौटते हुए युग युग में पुनः उत्पन्न होते हैं। वे ही अपने कर्मफल के शेष रहने के कारण ऐसे रूप वाले शरीर को धारण करते हैं।।२८।। वे अपने शुभ और अशुभ कारणों के कारण ही जनलोक से यहाँ आते हैं और योनियों में अनेकों रूपों वाले शरीरों को प्राप्त करते हैं।।३०।। कल्प के आगम में बन्धनयुक्त लोग जन लोक में उत्पन्न होते हैं। अपने अपने कर्मों द्वारा जानते हुए जलों में अपना कारण खोजते हैं; क्योंकि जब सर्वत्र जल ही रहता है, तब सबका कारण जल में रहता है अथवा यों कहिये कि जल ही जीवन का कारण है।।२९।। वे देवयोनि से स्थावर पर्यन्त तक परस्पर उत्पन्न होते हैं, उनके जो जो पूर्वयोनि में कार्य थे, प्रायः उन्हीं कर्मों को प्राप्त करते हैं।।३१।। पूर्वयोनि में जो उनके नाम और रूप थे, उन्हीं नाम रूपों को प्राप्त करते हैं। अर्थात् पर्वत पर्वत, नदी नदी, वृक्ष वृक्ष, मनुष्य मनुष्य, पशु पशु, पक्षी पक्षी, नाम में और जैसे जैसे उनके रूप हैं, उन रूपों में ही कल्पों में उत्पन्न होते हैं।।३२।।

उसके बाद रचना करने ब्रह्मा की उपसृष्टि होती रहती है; क्योंकि प्रतिदिन जन्म लेना और मृत्यु होना यह तो जारी रहता ही है। तब उनकी प्रजा सत्य का अभिध्यान करते हुए उसका ध्यान करती है।।३३।। उस ब्रह्मा के मुख से हजारों स्त्री पुरुष (सब प्रकार के जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधे के नर और मादा) उत्पन्न हुए। वे सब जन (जीव) ब्रह्मा में सत्त्व के उद्रेक से उत्पन्न हुए।।३४।। उनके नेत्र से हजारों मिथुन (नर-मादा) पैदा हुए, वे सब रजोगुण के उद्रेक से पैदा हुए थे तथा सभी तेजस्वी और तेजहीन थे।।३५।। उसके बाद उन ब्रह्मा की भुजाओं से हजारों अन्य जोड़े पैदा हुए, जो रजोगुण और तमोगुण की अधिकता के होने पर उत्पन्न हुए थे। इसलिए सभी गृहशीला (घर में

आयुषोऽते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव वासकृत्। कूटकाकूटकाश्चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षुणाम्॥३७॥

कुतः कुलमथोत्पाद्य ताः शरीराणि तत्यजुः।
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन्मैथुनानां च संभवः॥३८॥

ध्यानेन मनसा तासां प्रजानां जायते कृते। शब्दादिविषयः शुद्धः प्रत्येकं पञ्चलक्षणम्॥३९॥

इत्येवं मानसैर्भावैः प्रेष्ठं तिष्ठंति चाप्रजाः। तथान्वयास्तु संभूता यैरिदं पूरितं जगत्॥४०॥

सरित्सरः समुद्रांश्च सेवंते पर्वतानपि। तदा ता ह्यल्पसंतोषा युद्धे तस्मिंश्चरंति वै॥४१॥

पृथ्वी रसवती नाम आहारं व्याहरंति च।
ताः प्रजाः कामचारिण्यो मानसीं सिद्धिमिच्दतः॥४२॥

तुल्यमायुः सुखं रूपं तासामासीत्कृते युगे। धर्माधर्मौ तदा न स्तः कल्पादौ प्रथमे युगे॥४३॥

स्वेनस्वेनाधिकारेण जज्ञिरे तु युगेयुगे। चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां दिव्यसंख्यया॥४४॥

आदौ कृतयुगं प्राहुः संध्यांशौ च चतुःशतौ। ततः सहस्रशस्तास्तु प्रजासु प्रथितास्विह॥४५॥

न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वंद्वं नापि च क्रमः।
पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः॥४६॥

विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तसुखिनः प्रजाः।
ताश्शश्वत् कामचरिण्यो नित्यं मुदितमानसाः॥४७॥

रहने वाले) अर्थात् कामुक हुए।।३६।। वे अपने आयुके अन्त तक केवल एक मिथुन (लड़का-लड़की) को उत्पन्न करते थे।। उस समय मरने की इच्छा करने वालों के कूटक कूटक उत्पन्न होते हैं।।३७।। इस प्रकार वे कुल को पैदा करके शरीरों का त्याग करते थे। उसी समय से लेकर उस कल्प में मैथुन से उत्पत्ति होना प्रारम्भ हुई।।३८।।

उन प्रजाओं को मन से ध्यान करने से प्रत्येक को पाँच लक्षणों वाले शुद्ध शब्दादि विषयों का ज्ञान हो गया। अर्थात् पञ्चलक्षण वाले पुराणों का ज्ञान हो गया।।३९।। इस प्रकार मानसभावों के द्वारा अप्रजा (स्थावर सृष्टि) प्रेष्ठ स्थित होती हैं तथा मानसभावों से अन्य सृष्टि भी हुई, जिनसे यह संसार पूर्ण हो गया।।४०।। नदियाँ, तालाब, समुद्र और पर्वतों का सभी सांसारिक प्राणी सेवन करते हैं। तब जो कम सन्तोष वाले लोग हैं, वे उस युद्ध में आचरण करते हैं।।४१।। यह पृथ्वी रसवती है, इसमें आहार और विहार होता है। वे प्रजायें मानसी सिद्धि की इच्छा करती हुई काम का आचरण करने वाली हैं।।४२।। उस समय सतयुग में उन सबकी तुल्य आयु तुल्य सुख और तुल्य रूप थे। उस समय प्रथमकल्प में धर्म और अधर्म दोनों नहीं थे। अर्थात् उस समय आपस में कोई भेदभाव नहीं था।।४३।। पहले सतयुग में लोग अपने अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का पालन करते थे। उस सतयुग का वर्ष प्रमाण चार हजार दिव्य वर्ष है।।४४।। आदि में जो युग है, उसे कृतयुग कहते हैं तथा कृतयुग और त्रेता की सन्ध्याओं के अंश चार सौ वर्ष है। उस सतयुग की प्रजाओं में हजारों की संख्या थी।।४५।। उस समय प्रजाओं का आपस में न किसी को चोट पहुँचाना था और न कोई का किसी प्रकार का द्वन्द्व ही था तथा न किसी प्रकार का ऊँच-नीच का क्रम था। उस समय के लोग पर्वतों और समुद्रों के पास रहते थे।।४६।। वह प्रजायें अनिकेताश्रय थीं अर्थात् उनका आश्रय (निवास) विना घर का था। वे शोकरहित, अधिक सत्त्वगुण वाली और एकान्त में सुखी रहने वाली प्रजायें थीं और वे प्रजायें

पशवः पक्षिणश्चैव न तदासन्सरीसृपाः। नोद्विजा नोत्कटाश्चैव धर्मस्य प्रक्रिया तु सा॥४८॥
समूल फलपुष्पाणि वर्त्तनाय त्वशेषतः। सर्वैकान्तसुखः कालो नात्यर्थं ह्युष्णशीतलः॥४९॥
मनोऽभिलक्षितः कामस्तासां सर्वत्र सर्वदा। उत्तिष्ठंति पृथिव्यां वै तेषां ध्यानै रसातलात्॥५०॥
बलवर्णकरी तेषञ्जं जरारोगप्रणाशिनी। असंस्कार्यैः शरीरैस्तु प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः॥५१॥
तासां विना तु संकल्पाज्जयंते मिथुनात्प्रजाः।
समं जन्म च रूपं च प्रीयन्ते चैव ताः समाः॥५२॥
तदा सत्यमलोभश्च संतुष्टिश्च च सुखं दमः। निर्विशेषाश्च ताः सर्वा रूपायुःशिल्पचेष्टितैः॥५३॥
अबुद्धिपूर्विका वृत्तिः प्रजानां भवति स्वयम्। अप्रवृत्तिः कृतद्वारे कर्मणः शुभपापयोः॥५४॥
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन्न तत्कराः। अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ता वर्त्तयन्ति परस्परम्॥५५॥
तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमवर्जिताः। सुखप्राया विशोकाश्च उत्पद्यंते कृते युगे॥५६॥
लाभालाभौ न वा स्यातां मित्रामित्रौ प्रियाप्रियौ। मनसा विषयस्तासां निरीहाणां प्रवर्तते॥५७॥
नाति हिंसंति वान्योन्यं नानुगृह्लंति वै तदा॥५८॥

निरन्तर काम का आचरण करती हुई मुदित मन वाली थीं।।४७।। पशु-पक्षी और जमीन पर रेंगने वाले सर्प, बिच्छू आदि उस काल में नहीं थे तथा न पीड़ित लोग और न बहुत अधिक घमण्ड करने वाले लोग थे। उस समय वही धर्म की प्रक्रिया थी।।४८।। कन्दमूल, फल और पुष्प उनके व्यवहार खाने आदि के लिये पूर्णरूप से थे। सबको एकान्त सुख काल था, वहाँ उस समय न अधिक शीत था और न अधिक गर्मी थी।।४९।। उन प्रजाओं के ध्यान करने पर पृथ्वी पर रसातल से मनवाञ्छित फल पुष्प दैनिक जीवनयापन के लिये प्राप्त हो जाते थे।।५०।।

उस समय वहाँ के पुरुषों के ध्यान करने से ही बल और वर्ण को बढ़ाने वाली वृद्धावस्था और रोग को नष्ट करने वाली औषधियां मिल जाती थीं। बिना संस्कार किये अर्थात् विना नहाये धोये शरीरों द्वारा भी उस समय प्रजायें सदैव जवान बनी रहती थीं।।५१।। उस समय पुरुष स्त्री के विना सम्पर्क किये हुए ही स्त्री पुरुष के संकल्प से ही सन्तानोत्पत्ति हो जाती थी तथा उस समय के लोग जन्म और रूप में समान थे और साथ साथ ही परस्पर प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहते थे।।५२।। तब वहाँ सत्य, अलोभ, सन्तुष्टि, सुख और इन्द्रियों का दमन का ही प्रचार था। वे लोग रूप आयु, शील (शिल्प) चेष्टाओं में निर्विशेष थे। अर्थात् रूप, आयु, शील और चेष्टाओं में परिपूर्ण थे अर्थात् उस समय उपर्युक्त सब कुछ सुलभ था।।५३।। प्रजाओं के व्यापार और व्यवहार बुद्धि पूर्वक नहीं होते थे, स्वाभाविक थे अर्थात् व्यापार और व्यवहारों में अधिक बुद्धि नहीं लगानी पड़ती थी, आज की तरह माथापच्ची नहीं थी। सतयुग के द्वार पर शुभ और पाप कर्म की प्रवृत्ति ही नहीं थी।।५४।। उस समय के समाज में वर्ण और आश्रम व्यवस्था नहीं थे और न उसको बनाने वाले ही थे। विना किसी इच्छा और विना किसी आपसी द्वेष के परस्पर लोग जीवनयापन करते थे।।५५।। सतयुग में सभी लोग समान आयु के होते थे, उस समय अधम और उत्तम का विचार नहीं था। सभी लोग समान आयु के होते थे। सभी लोग सुखी और शोकरहित उत्पन्न होते थे।।५६।। उस समय लाभ और हानि, मित्र और शत्रु, प्रिय और अप्रिय के व्यवहार नहीं थे, वे निरीह थे और मन से ही विषयों में प्रवृत्त होते थे अर्थात् मन की स्वाभाविक प्रेरणा से किसी विषय में प्रवृत्त होते थे।।५७।। वे परस्पर एक-दूसरे को मारते नहीं थे और न एक-दूसरे पर अनुग्रह करते थे; क्योंकि किसी को किसी की कृपा की आवश्यकता ही नहीं थी।।५८।।

ज्ञानं परं कृतयुगे त्रेतायां यज्ञ उच्यते। प्रवृत्तं द्वापरे युद्धं स्तेयमेव कलौ युगे॥५९॥
सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरं तु रजस्तमः। कलिस्तमस्तु विज्ञेयं गुणवृत्तं गुणेषु तत्॥६०॥

कालः कृतयुगे त्वेष तस्य सन्ध्यां निबोधत।
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्॥६१॥
साध्यांशौ तस्य दिव्यानि शतान्यष्टौ तु संख्यया।
चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु॥६२॥

तदा तासु भवंत्याशु नोत्क्रोशाच्च विपर्ययाः। ततः कृतयुगे तस्मिन् ससंध्यांशे गते तदा॥६३॥

पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वशः।
सन्ध्यायास्तु व्यतीतायाः सांध्यः कालो युगस्य सः॥६४॥

पादमिश्रावशिष्टेन संध्याधर्मे पुनः पुनः। एवं कृतयुगे तस्मिन्निश्शेषेंतर्दधे तदा॥६५॥

तस्यां च सन्धौ नष्टायां मानसी चाभवत्प्रजा।
सिद्धिरन्ययुगे तस्मिंस्त्रेताख्येऽनन्तरे कृतात्॥६६॥
सर्गादौ या मयाष्टौ तु मानस्यो वै प्रकीर्तिताः।
अष्टौ ताः क्रमयोगेन सिद्धयो यान्ति संक्षयम्॥६७॥

कल्पादौ मानसी ह्येका सिद्धिर्भवति सा कृते। मन्वंतरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागशः॥६८॥

अतः सतयुग में ज्ञान का महत्त्व था, त्रेता में यज्ञ का महत्त्व था। द्वापर में युद्ध और कलियुग में चोरी का महत्त्व है। अर्थात् सतयुग में ज्ञान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में युद्ध और कलियुग में चोरी, भ्रष्टाचार को श्रेष्ठ समझा जाता है।।५९।। सतयुग में सत्त्वगुण, त्रेता में रजोगुण, द्वापर में रजोगुण और तमोगुण एवं कलियुग में तमोगुण की प्रधानता समझनी चाहिये। यही चारों युगों का गुण विधान है।।६०।। सतयुग का जो काल है अर्थात् सतयुग कितने समय तक रहेगा तथा उसकी सन्ध्या को समझो। अतः चार हजार सतयुग की कालावधि है अर्थात् सतयुग ४ हजार दिव्य वर्ष तक रहेगा।।६१।। उसके बाद सतयुग और द्वापर का मेल, जिसको दोनों का सन्ध्यांश कहा जायेगा, वह आठ सौ दिव्य वर्ष का होगा। अतः ४ सौ वर्ष कृतयुग की सन्ध्या फिर ४ सौ वर्ष त्रेतायुग का प्रातःकाल, इस प्रकार दोनों की सन्धियां ८ सौ दिव्यवर्ष की होंगी। चार हजार दिव्य वर्षों का ही मनुष्यत्व रहेगा।।६२।। उस सतयुग के समय प्रजाओं में शीघ्र क्रोधित होना और विपरीत भाव पैदा होना नहीं था। उसके बाद उस सन्ध्यांश के बीत जाने पर दूसरे युग की सन्ध्या पर युगधर्म एक पैर से ही हीन हो गया।।६४।। दोनों युगों की सन्धि होने पर युगधर्म के चौथाई शेष रह जाने पर उस निःषेश सतयुग में पुनः पुनः सन्धि भी लुप्त हो गयी।।६५।। उस सन्धि के नष्ट हो जाने पर अर्थात् जब दोनों की सन्धि का समय बीत गया, तब प्रजा मानसी हो गयी और फिर सतयुग से उस अन्य युग त्रेता नामक युग में दूसरी सिद्धि प्रारम्भ हुई।।६६।। सर्ग के आदि में जो मेरे द्वारा आठ मानसी सिद्धियां बतायीं गयी हैं, वे आठों सिद्धियां क्रमशः विनाश को प्राप्त हो जाती हैं।।६७।।

कल्प के आदि में सतयुग में वह केवल मानसी सिद्धि होती है। सब मन्वन्तरों में चारों युगों के विभाग के क्रम से वर्ण और आश्रम धर्म के आचार पालन के द्वारा कर्मों में सफलतायें मिलती हैं; परन्तु सतयुग के साथ वर्णाश्रमों

वर्णाश्रमाचारकृतः कर्मसिद्ध्युद्भवः कृतः। संध्या कृतस्य पादेन संक्षेपेण वशात्ततः॥६९॥
कृतसंध्यांशका ह्येते त्रीनादाय परस्परम्। हीयंते युगधर्मास्ते तपः श्रुतबलायुषः॥७०॥
कृते कृतांशेऽतीते तु बभूव तदनन्तरम्। त्रेतायुगसमुत्पत्तिः सांशा च ऋषिसत्तमाः॥७१॥

तस्मिन् क्षीणे कृतांशे वै तासु शिष्टासु सप्तसु।
कल्पादौ संप्रवृत्तायास्त्रेतायाः प्रमुखे तदा॥७२॥
प्रणश्यति तदा सिद्धिः कालयोगेन नान्यथा।
तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायामन्या सिद्धिरजायत॥७३॥

अपांशौ तो प्रतिगतौ तदा मेघात्मना तु वै। मेघेभ्यः स्तनयितृभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम्॥७४॥
सकृदेव तया वृष्ट्या संसिद्धे पृथिवीतले। प्रजा आसंस्ततस्तासां वृक्षाश्च गृह संज्ञिताः॥७५॥
सर्वः प्रत्युपभोगस्तु तासां तेभ्यो व्यजायत। वर्त्तयंते स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः॥७६॥

ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात्।
संगलोलात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत्॥७७॥

यत्तद्भवति नारीणां जीवितांते तदार्तवम्। तदा तद्वै न भवति पुनर्युगबलेन तु॥७८॥
तासां पुनः प्रवृत्तं तन्मासिमासि तदार्तवम्। ततस्तेनैव योगेन वर्त्तते मैथुनं तदा॥७९॥

तेषां तत्कालभावित्वान्मासिमास्युपगच्छताम्।
अकाले चार्तवोत्पत्त्या गर्भोत्पत्तिस्तदाभवत्॥८०॥

के आधार और कर्मों में जो सफलतायें हैं, वे भी नष्ट हो जाती हैं। सतयुग के सन्ध्याकाल में युगधर्म का एक पाद सन्ध्या के अंश काल में सन्ध्याकालीन धर्म का एक पाद एवं त्रेता के प्रारम्भ में उस सन्ध्यांशकालीन धर्म का एक पाद नष्ट हो जाता है। इसी क्रम से तपस्या, वेदज्ञान, बल और आयु भी क्षीण हो जाती है। हे ऋषिश्रेष्ठो! सतयुग के क्षीण हो जाने पर त्रेतायुग का आरम्भ होता है।।६७½-७१।। उस सतयुग के क्षीण हो जाने पर उन शेष सात में तब कल्प के आदि क्रम में त्रेतायुग के सम्यक् रूप से प्रवृत्त हो जाने पर जो सतयुग की सिद्धि थी, वह कालयोग से नष्ट हो जाती है और उस सिद्धि के नष्ट हो जाने पर अन्य सिद्धि पैदा हो जाती है।।७२-७३।। जलों के प्रतिगत हो जाने पर अर्थात् उड़ान भरने पर फिर मेघ के रूप में बदल जाने पर तो निश्चय ही गर्जनाओं में प्रवृत्त मेघों से वृष्टि (वर्षा) की सृष्टि होती है। स्वाभाविक है कि जल जब भाप बनकर उड़ान भरेंगे तो वे मेघ बनेंगे, उनसे वर्षा होगी ही।।७४।। पृथ्वी तल पर एक बार भी वर्षा के हो जाने से प्रजाओं के वासस्थानों में वृक्ष उग जाते हैं। इससे त्रेतायुग में सबको उपभोग के साधन प्राप्त हो जाते हैं। त्रेतायुग के प्रारम्भकाल में प्रजाजन उन वृक्षों से ही जीविका निर्वाह करते हैं।।७५-७६।। उसके बाद समय बीतने पर प्रजाओं में महान् परिवर्तन होने लगता है और अचानक ही एक-दूसरे के प्रति राग आसक्ति और पुरुष स्त्री में परस्पर भोगविलास के भाव पैदा हो जाते हैं।।७७।। सतयुग में जो नारियों में जीवन के अन्त में भी गर्भधारण करने की शक्ति थी, वह त्रेता युग में युगबल के द्वारा नहीं रहती।।७८।। स्त्रियों के महीने महीने पर स्राव (मासिकधर्म) प्रारम्भ हो जाता है, उसके बाद उस मासिकधर्म के योग के कारण ही उनमें मैथुन का भाव उत्पन्न हो जाता है।।७९।। उन स्त्रियों में उन पुरुषों के भावविभोर हो जाने पर प्रतिमास समागम करने

विपर्ययेण तेषां तु तेन तत्कालभाविता। प्रशश्यंति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः॥८१॥

ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रांता व्याकुलेन्द्रियाः।
अभिध्यायंति ताः सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा॥८२॥

प्रादुर्बभूवुस्तेषां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः। वस्त्राणि च प्रसूयंते फलान्याभरणानि च॥८३॥
तथैव जायते तेषां गन्धर्वाणां रसान्वितम्। आन्वीक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु॥८४॥
तेन ता वर्त्तयन्ति स्म मुखे त्रेतायुगस्य वै। हृष्टपुष्टास्तया सिद्ध्या प्रजास्ता विगतज्वराः॥८५॥
ततः कालांतरेप्येवं पुनर्लोभावृताः प्रजाः। वृक्षांस्ताः पर्यगृह्णंत मधु वा माक्षिकं बलात्॥८६॥
तासां तेनापचारेण पुनर्लोभकृते वै। प्रनष्टा प्रभुणा सार्द्धं कल्पवृक्षाः क्वचित्क्वचित्॥८७॥

तस्यामेवाल्पशिष्टायां सिद्ध्यां कालवशात्तदा।
वर्त्तन्ते चानया तासां द्वंद्वान्यत्युत्थितानि तु॥८८॥
शीतवातातपास्तीव्रास्ततस्ता दुःखिता भृशम्।
द्वंद्वैस्तैः पीड्यमानास्तु चुक्रुशुरावृणानि वा॥८९॥

कृत्वा द्वन्द्वप्रतीयातं निकेतानि विचेतसः। पूर्वं निकामचारास्ते ह्यनिकेता यथाऽभवन्॥९०॥
यथायोगं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन्पुरा। मधुधुन्वत्सु निम्नेषु पर्वतेषु नदीषु च॥९१॥

से असमय ही आर्तवोत्पत्ति के द्वारा गर्भोत्पत्ति होने लगती है। अर्थात् कम उम्र में ही बालायें रजस्वला होने लगती हैं तथा जब रजस्वला होंगी तो पुरुष के समागम से गर्भवती हो ही जायेंगी।।८०।। पुरुषों के अन्तर्गत परिवर्तन के द्वारा उस समय प्रजाओं के निवास में उगे हुए वृक्ष विनष्ट होने लगते हैं।।८१।। उसके बाद उन वृक्षों के विनष्ट हो जाने पर विभ्रान्त और व्याकुल प्रजायें उस समय सतयुग में जो सिद्धियां थी अर्थात् जिन कार्यों से सतयुग में सफलता मिलती थी, उन्हीं सिद्धियों का ध्यान करती हैं।।८२।। उन प्रजाओं के उस ध्यान से उन गृहस्थियों के वृक्ष पुनः उगने लगते हैं और वे वृक्ष, वस्त्र, फल और आभूषण उत्पन्न करते हैं।।८३।। उसी प्रकार के उन वृक्षों के पुटक पुटक में गन्ध के बाणरूप सुन्दर सरस और अत्यन्त महान् वीर्य (कारी) उन वृक्षों से मधु उत्पन्न होता है। उस मधु से त्रेता युग के प्रारम्भ की प्रजा जीवनयापन करती हैं, उस सिद्धि से उस काल की व प्रजायें हृष्ट पुष्ट और ज्वररहित हो जाती थीं।।८५।।

उसके बाद कालान्तर में भी पुनः प्रजायें लोभावृत हो गयीं और उन वृक्षों के मधु (रस) मिठास और माक्षिक (शहद) को बलपूर्वक प्राप्त करने लगे। उन प्रजाओं के उस बार बार लोभकृत अभद्र आचरण से कहीं-कहीं कल्प वृक्ष अपनी सामर्थ्य के साथ पूरी तरह नष्ट हो गये। अर्थात् लोगों के लोभयुक्त अभद्र आचरण से अर्थात् लोभ से बहुत अधिक मधु रस आदि ग्रहण करने के कारण वे कल्प वृक्ष नष्ट हो गये।।८७।। तथा जब कहीं-कहीं कल्प वृक्ष नष्ट हो गये, तब वहाँ कम वृक्षों के रह जाने पर सिद्धि में कालवशता के कारण उस समय की प्रजा में परस्पर क्लेश पैदा होने लगी।।८८।। और वह क्लेश यह था कि तीव्र शीत, तीव्र वायु और तीव्र गर्मी के कारण वे प्रजायें बहुत अधिक दुःखी हो गयीं तथा उन क्लेशों से पीड़ित होती हुई प्रजाओं ने शरीर ढकने के लिये वस्त्र बनाये।।८९।। उस तीव्र शीत, तीव्र वायु और तीव्र आतप से बचने के लिये लोग घर बनाकर रहने लगे, उससे पूर्वकाल में उस समय के लोग गृहविहीन थे और स्वेच्छा से कहीं भी विचरण करते थे।।९०।। अब त्रेतायुग में क्लेश से बचने के लिये

संश्रयंति च दुर्गाणि धन्वपार्वतमौदकम्। यथाजोषं यथाकामं समेषु विषमेषु च॥९२॥
आरब्धास्तान्निकेतान्वै कर्तुं शीतोष्णवारणात्। तस्तान्निर्मयामासुः खेटानि च पुराणि च॥९३॥
ग्रामांश्चैव यथाभागं तथैव नगराणि च। तेषामयामविष्कंभाः सन्निवेशातराणि च॥९४॥
चक्रुस्तदा यथाज्ञानं मीत्वामीत्वात्मनोंगुलैः। मानार्थानि प्रमाणानि तदा प्रभृति चक्रिरे॥९५॥
ययांगुलप्रदेशांस्त्रीन्हस्तः किष्कुं धनूंषि च। दश त्वंगुलपर्वाणि प्रादेश इति संज्ञितः॥९६॥
अंगुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यासप्रादेश उच्यते। तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया॥९७॥
कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशांगुल उच्यते। रत्निरंगुलपर्वाणि संख्यया त्वेकविंशतिः॥९८॥
चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादंगुलानि तु। किष्कुः स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदंगुलः॥९९॥
चतुर्हस्तो धनुर्दंडो नालिका युगमेव च। धनुः सहस्रे द्वे तत्र गव्यूतिस्तैः कृता तदा॥१००॥
अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं तैर्विभावितम्। एतेन योजनेनेह सन्निवेशस्ततः कृताः॥१०१॥

चतुर्णामथ दुर्गाणां स्वयमुत्थानि त्रीणि च।
चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तस्य वक्ष्यामि निर्णयम्॥१०२॥

सोत्सेधरंध्रप्राकारं सर्वतः खातकावृतम्। रुचकः प्रतिकद्वारं कुमारीपुरमेव च॥१०३॥
द्विहस्तः स्रोतसां श्रेष्ठं कुमारीपुरम् तीन्। हस्तस्रोतो दशश्रेष्ठो नवहस्तोष्ट एव च॥१०४॥

वे अपने अपने घरों में प्रीतिपूर्वक निवास करते थे और उन्होंने मरुस्थलों, नीचे-ऊँचे स्थानों, पर्वतों और नदियों में और परती भूमियों में यथाजोश और यथेच्छ रूप से शीत और उष्ण के निवारण के लिए दुर्ग बनाना प्रारम्भ कर दिया। उसके बाद बाजार और पुरों का निर्माण किया और यथाभाग गाँव बनाये और उसी प्रकार नगरों को बनाया। उन लोगों के व्यायाम स्थल खम्भे सन्निवेश (घूमने के स्थान) (पार्क) और अन्तःपुर बनाये गये।।९१-९४।। उनकी लम्बाई चौड़ाई यथाविधि निश्चित की गयी। उनकी ऊँचाई मोटाई नापने के लिए अंगुलि के माप द्वारा अनेकों प्रकार के नाम की संख्या भी तय हुई। जिससे अंगुल स्थान फिर तीन हाथ, उसके किंष्कु और धनुः नाम रखे गये। दश अंगुल लम्बाई का एक प्रादेश कहा गया।।९५-९६।। अंगूठे से लेकर तर्जनी तक के विस्तार की नाप को व्यास प्रादेश कहा जाता है। अंगूठे से मध्यमा अंगुलि तक का माप ताल, अंगूठे से अनामिका के अन्त तक गोकर्ण तथा अंगूठे कनिष्ठा तक का वितस्ति (द्वादशांगुल) कहा जाता है। वितस्ति को आजकल (विलांद) कहा जाता है और २१ अंगुलियों के पर्वों की रत्नि, चौबीस अंगुलियों के पर्वों का हस्त, दो रत्नियों अर्थात् ४२ अंगुलियों का एक किंष्कु होता है। चार हाथ का एक धनु, नालिका या युग होता है। दो हजार धनुषों की एक गव्यूति उन उस समय के लोगों द्वारा बनायी गयी।।९७-१००।। आठ हजार धनुषों का एक योजन (अर्थात् ४ गव्यूति का एक योजन) उनके द्वारा कल्पित किये गये और उसके बाद इन योजानों के अनुसार उन्होंने सन्निवेश (रहने के स्थान) बनाये।।१०१।।

उन लोगों ने चार प्रकार के दुर्गों का निर्माण किया, उनमें से तीन तो स्वयं उठे हुए होते थे। जैसे कि पर्वतों की गुफायें स्वयं उठे हुए दुर्ग माने गये हैं; परन्तु चौथा दुर्ग बनाया हुआ होता था, जिसका निर्णय मैं बताऊँगा सुनिये।।१०२।। सबसे ऊँचे घेरे वाले कमरे, बहुत जल से भरी हुई चारों तरफ परिखायें (खाइयां) द्वारदेश पर सेतु होता था और स्वास्तिक द्वार होते थे। दुर्ग में कुमारीपुर भी रहता था।।१०३।। दो हाथ स्रोतों का कुमारीपुर श्रेष्ठ होता है तथा दश नौ और आठ हाथ का श्री श्रेष्ठ होता है।।१०४।।

खेटानां च पुराणां च ग्रामाणां चैव सर्वशः।
त्रिविधानां च दुर्गाणां पर्वतोदकधन्विनाम्॥१०५॥
कृत्रिमाणां च दुर्गाणां विष्कम्भायाममेव च।
योजनादर्द्धविष्कम्भमष्टभागाधिकायतम्॥१०६॥
परमार्द्धार्द्धमायामं प्रागुदक्प्लवनं पुरम्। छिन्नकर्णविकर्णं च व्यजनाकृतिसंस्थितम्॥१०७।
वृत्तं वज्रं च दीर्घं च नगरं न प्रशस्यते। चतुरस्त्रयुतं दिव्यं प्रशस्तं तैः पुरं कृतम्॥१०८॥
चतुर्विंशत्परं ह्रस्वं वास्तु वाष्टशतं परम्। अत्र मध्यं प्रशंसंति ह्रस्वं काष्ठविवर्ज्जितम्॥१०९॥
अथ किष्कुशतान्यष्टौ प्राहुर्मुख्यं निवेशनम्। नगरादर्द्धविष्कंभः खेटं पानं तदूर्द्धतः॥११०॥
नगराद्योजनं खेटं खेटाद्ग्रामोर्द्धयोजनम्। द्विक्रोशः परमा सीमा क्षेत्रसीमा चतुर्द्धनुः॥१११॥
विंशद्धनूंषि विस्तीर्णो दिशां मार्गस्तु तैः कृतः।
विंशद्धनुर्ग्राममार्गः सीमामार्गो दशैव तु॥११२॥
धनूंषि दश विस्तीर्णः श्रीमान् राजपथः कृतः। नृवाजिरथनागानामसंबाधस्तु संचरः॥११३॥
धनूंषि चापि चत्वारि शाखरथ्याश्च तैर्मिताः।
त्रिका रथ्योपरथ्याः स्युर्दिकाश्चाप्युपरथ्यकाः॥११४॥
जंघापथश्चतुष्पादस्त्रिपदं च गृहान्तरम्। धृतिमार्गस्तूर्द्धषष्ठ। क्रमशः पदिकः स्मृतः॥११५॥
अवस्कारपरीवारः पादमात्रं समंततः। कृतेशु तेषु स्थानेषु पुनर्गेहगृहाणि वै॥११६॥

सब ओर खेट नगर और ग्रामों की और तीन प्रकार के दुर्गों की सीमा पर्वत अथवा जल द्वारा बांधी जाती थी।।१०५।। विष्कम्भ परिमाण में बनावटी दुर्गों का आयतन योजन के आधे विष्कम्भ के आठवें भाग का होता है।।१०६।। वृत्त (गोलाकार) वज्र और लम्बा नगर प्रशंसनीय नहीं होता है। चौकोर कुछ बड़ा पुर नगर उत्तम होता है।।१०८।। नगर के परिणाम खेट का परिणाम आधा होता है और खेट (कस्बा) पुर का आधा होता है। छिन्नकर्ण (कोंन कटा हुआ) विकर्ण (जिसके अधिक कोंण हों) व्यजन (पंखे) की आकृति में स्थित दुर्ग भी प्रशंसनीय नहीं होता।।१०७।। चौबीस हाथ और एक सौ आठ हाथों के विष्कम्भ परिमाण से युक्त चौकोर मध्यभाग वाला पुर प्रशंसनीय होता है। पुर के मध्य में मुख्य निवास का स्थान ८०० किष्कु परिमाण का होता है। यह विष्कम्भ का आकार है, नगर से आधा विष्कम्भ होता है, उसका आधा खेट (कस्बा) होता है।।१०८-११०।। नगर से खेट एक योजन दूरी पर होता है और खेट से ग्राम आधे योजन दूरी पर होता है। दो कोश की चरमसीमा और क्षेत्र की सीमा चार धनु की होती हैं।।१११।। प्रत्येक दिशा को जाने वाले मार्गो का विस्तार २० धनुओं ग्राममार्ग का विस्तार भी बीस धनु और सीमा मार्ग का परिमाण दस धनु होता है। शोभायमान राजपथ का विस्तार दस धनुओं का होता है, जिसमें मनुष्य, घोड़े, रथ, हाथी, फैल फूटकर चल सकें।।११२-११३।। उस समय के व्यक्ति शाखागली चार धनु का बनाते थे। तीन धनु की रथ्या (गली) और उपरथ्या (उपगली) और दो धनु की रथ्या उपरथ्यका बनाते थे।।११४।। जंघापथ (घंटापथ) चार पाद का और घर का अन्तर तीन पद का होता था। धृति मार्ग (चौराहा) के बीच में ऊपर को ६ पाद ऊंचा बनाते थे।।११५।। चारों ओर से पदमात्र न खुले हुए गुप्त स्थानों में उनके घर बनते थे।।११६।।

यथा ते पूर्वमासंश्च वृक्षास्तु गृह संस्थिताः। तथा कर्तुं समारब्धाश्चिंतयित्वा पुनः पुनः॥११७॥
वृक्षस्यार्वाग्गताः शाखा इतश्चैवापरा गताः।
अत ऊर्द्धं गताश्चान्या एवं तिर्यग्गताः परा॥११८॥
बुद्ध्यान्विष्य यथान्यायं वृक्षशाखा गता यथा।
यथा कृतास्तु तैः शाखास्त स्माच्छालास्तु ताः स्मृताः॥११९॥
एवं प्रसिद्धाः शाखाभ्यः शालाश्चैव गृहाणि च।
तस्मात्ताश्च स्मृताः शालाः शालात्वं तासु तत्स्मृतम्॥१२०॥
प्रसीदन्ति यतस्तेषु ततः प्रासादसंज्ञितः।
तस्माद् गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिताः॥१२१॥
कृत्वा द्वंद्वाभिघातांस्तान्त्वार्तोपायमचिन्तयन्। नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा॥१२२॥
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजाः सृष्टास्तु दर्शिताः।
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे तदा॥१२३॥
सर्वार्थसाधका ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः।
तासां वृष्ट्युदकानीह यानि मिष्टगतानि च॥१२४॥
एवं नयः प्रवृत्तस्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने। ये परस्तादपां स्तोकाः संपाताः पृथिवीतले॥१२५॥
अपां भूमेस्तु संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन्। पुष्पमूलफलिन्यस्तु ओषध्यस्ता हि जज्ञिरे॥१२६॥

जैसे कि वे पहले वृक्षों के निकट वास करते थे। वैसे ही आकार-प्रकार के घरों को बनाने के विषय में विचार कर घर बनाने लगे।।११७।। वृक्ष की शाखा जिस प्रकार आगे-पीछे ऊपर और इधर-उधर फैली रहती है, उसी प्रकार काठ फैलाकर उन लोगोंने उत्तम घर बनाये। इस प्रकार वे घर शाखाओं से बने प्रसिद्ध हो गये। इसीलिए उन घरों का शाला नाम रखा गया।।११८।। क्योंकि शाल एक उत्तमकोटि की लकड़ी वाले वृक्ष का नाम है। अतः उस वृक्ष से बने घर को शाला कहा गया; क्योंकि शाखाओं से ही शाला और शालात्व बने हैं।।११९-१२०।।

उन्हें प्रासाद इसलिये कहा गया कि उन मकानों में लोग प्रसन्न होते हैं, इसी कारण उन घरों का नाम शाला और प्रासाद हुआ। अर्थात् शाल (वृक्ष) से बने होने के कारण शाला तथा मन प्रसन्न करने के कारण वे घर प्रासाद कहलाये।।१२१।। इस प्रकार घर निर्माण करके उस काल के लोग शीत वायु और आतप आदि प्राकृतिक प्रकोपों का निवारण करके जीवन रक्षण का उपाय सोचने लगे; क्योंकि मधु के साथ-साथ कल्प वृक्षों के नष्ट हो जाने पर कुछ भी जीवन रक्षण के उपाय नहीं थे।।१२२।। पहले सतयुग में तो वे वृक्षों से जो मांगते थे, वह मिल जाता था; परन्तु उनके नष्ट हो जाने पर अब सब कुछ कहाँ से मिलता। समस्त प्रजा भूख, प्यास और विषाद से व्याकुल हो रही थी। तब सतयुग की त्रेतायुग में भी सभी कामनाओं को सिद्ध करने वाली वृष्टि (वर्षा) रूप दूसरी सिद्धि प्राप्त हुई। अर्थात् वर्षा होना प्रारम्भ हुई और फिर वहाँ मीठे जल की वर्षा हुई।।१२२-१२४।। इस प्रकार दूसरी वर्षा के सर्जन में उनकी नीति प्रवृत्त हो गयी। अर्थात् त्रेता युग की दूसरी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। उस वर्षा से पृथ्वी के जलहीन सूखे स्थान जलपूर्ण हो गये।।१२५।। जलों और भूमि के संयोग से पृथ्वी पर औषधियां उत्पन्न हो गयीं, पुष्प, कन्दमूल, फल

अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश। ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे॥१२७॥
प्रादुर्भूतास्तु त्रेतायां मायायामौषधस्य वा। तदौषधेन वर्तंते प्रजास्त्रेता मुखे तदा॥१२८॥
ततःपुनरभूत्तासां रागो लोभस्तु सर्वदा। अवश्यभाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन च॥१२९॥
ततस्ते पर्यगृह्णंस्तु नदीक्षेत्राणि पर्वतान्। वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम्॥१३०॥

सिद्धात्मानस्तु ये पूर्वं व्याख्याता वः कृते मया।
ब्रह्मणो मानसास्ते वै उत्पन्ना ये जनादिह॥१३१॥
शांता ये शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुःखितास्तथा।
तत आवर्त्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः॥१३२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रोहजनास्तथा।
भाविताः पूर्वजातीषु ख्यात्या ते शुभपापयोः॥१३३॥
ततस्ते प्रबला ये तु सत्यशीला अहिंसकाः।
वीतलोभा जितात्मानो निवसंति स्मृतेशु वै॥१३४॥

परिग्रहं न कुर्वन्ति वदंतस्तु उपस्थिताः। तेषां कर्माणि कुर्वन्ति तेभ्यश्चैवाबलाश्च ये॥१३५॥
परिचर्यासु वर्त्तन्ते तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजसः। एवं विप्रतिपन्नेषु प्रपन्नेषु परस्परम्॥१३६॥
तेन दोषेण वै शांता ओषध्यो नितरां तदा। प्रनष्टा गृह्यमाणा वै मुष्टिभ्यां सिकता यथा॥१३७॥
अथाऽस्य तु युगबलाद्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश। फलैर्गृह्णंति पुष्पैश्च तथा मूलैश्च ताः पुनः॥१३८॥

और औषधियों को प्रजा ने पैदा किया।।१२६।। विना हल के जोते हुए चौदह प्रकार की औषधियाँ ऋतु के फल, पुष्प, वृक्ष, गुल्म वाली वनस्पतियाँ उत्पन्न हो गयीं।।१२७।। उस त्रेता युग में व्यक्ति की जीविका के रूप में औषधियों की उत्पत्ति हो गयी, उन औषधियों से उस समय त्रेतायुग के प्रारम्भ काल के लोग जीवनयापन करने लगे।।१२८।। उसके बाद त्रेतायुग के प्रभाववश जो अवश्य होने वाला था, वह राग और लोभ प्रजाजनों में व्याप्त हो गया।।१२९।। अपनी शक्ति के अनुसार उन लोगों ने नदी, क्षेत्रों, पर्वतों, वृक्ष, गुल्म, औषधियों को बलपूर्वक अपने अधिकार में कर लिया।।१३०।। पूर्व युग (सतयुग) में जिन सिद्धात्माओं की व्याख्या मेरे द्वारा तुमसे की गयी है, वे ब्रह्मा के मानसपुत्र त्रेता युग में जन्म ग्रहण करते हैं।।१३१।। तब त्रेता युग कर्म के अनुसार शान्त, पराक्रमी और दुःखी के रूप में यथाक्रम से त्रेता में पुनः उत्पन्न हुए।।१३२।। अपने शुभ अशुभ कर्मों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र और इन सबसे द्रोह करने वाले लोग पैदा हुए, जैसे कि सतयुग में थे।।१३३।।

उसके बाद उनके बीच में जो सत्यशील, अहिंसक, लोभरहित, इन्द्रियों को जीतने वाले रहते थे, वे प्रबल माने गये अर्थात् ऊपर गिने गये।।१३४।। जो दूसरों का कुछ भी ग्रहण नहीं करते थे, वे प्रबल (बलवान्) माने गये और उनके जो कार्यों को करते थे, वे निर्बल कहे गये।।१३५।। तथा उनमें में जो प्रबलों की परिचर्या में जीवनयापन करते थे, अल्पतेज वाले थे। इस प्रकार वे उस त्रेतायुग के लोग परस्पर वियुक्त और संयुक्त रहते थे। अर्थात् आपस में एक दूसरे पर आश्रित रहते हुए और कभी कभी परस्पर झगड़ा आदि करते हुए रहते थे।।१३६।। उनके उस दोष से औषधियां पूरी तरह से उसी प्रकार समाप्त हो गयीं जैसे मुट्ठी में से बालू सरक सरक कर समाप्त हो जाती है।।१३७।। इसके बाद युगबल से ग्रामीण और जंगली चौदह औषधियाँ समाप्त हो गयीं, जिससे कि उस काल के

ततस्तासु प्रनष्टासु विभ्रांतास्ताः प्रजास्तदा।
क्षुधाविष्टास्तदा सर्वा जग्मुस्ता वै स्वयम्भुवम्॥१३९॥
वृत्त्यर्थमभिलिप्संत्यो ह्यादौ त्रेतायुगस्य ताः।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् ज्ञात्वा तासां मनीषितम्॥१४०॥
पुष्टिप्रत्यक्षदृष्टेन दर्शनेन विचार्य सः। ग्रस्ताः पृथिव्या त्वोषध्यो ज्ञात्वा प्रत्यरुहत्पुनः॥१४१॥
कृत्वा वत्सं सुमेरुं तु दुदोह पृथिवीमिमाम्। दुग्धेयं गौस्तदा तेन बीजानि वसुधातले॥१४२॥
जज्ञिरे तानि बीजानि ग्रामारण्यास्तु ताः प्रभुः।
ओषध्यः फलपाकांताः क्षणसप्तवशास्तु ताः॥१४३॥
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमाश्चणकास्तिलाः। प्रियंगव उदारास्ते कोरदुष्टाः सवामकाः॥१४४॥
माषा मुद्रा मसूरास्तु नीवाराः सकुलत्थकाः। हरिकाश्चरकाश्चैव गणः सप्तदश स्मृताः॥१४५॥
इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातयः स्मृताः।
श्यामाकश्चैव नीवारा जर्तिलाः सगवेधुकाः॥१४६॥
कुरुविंदो वेणुयवास्ता मातीर्काटकाः स्मृताः।
ग्रामारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्दश॥१४७॥
उत्पन्नाः प्रथमस्यैता आदौ त्रेतायुगस्य ह। अफालकृष्टास्ताः सर्वा ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥१४८॥
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यो वीरुधस्तृणजातयः। मूलैः फलैश्च रोहैश्चागृह्णन्पुष्टाश्च यत्फलम्॥१४९॥
पृथ्वी दुग्धा तु बीजानि यानि पूर्वं स्वयंभुवा।
ऋतुपुष्पफलास्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह॥१५०॥
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्रथंतीह याः पुनः। ततस्तासां च वृत्त्यर्थे वार्तोपायं चकार ह॥१५१॥

लोग फलों, पुष्पों और कन्दमूलों को ग्रहण करते हैं।।१३८।। उसके बाद उनके नष्ट हो जाने पर प्रजायें विभ्रान्त हो गयीं और क्षुधा से व्याकुल हो गयीं तब सब प्रजायें स्वम्भू ब्रह्मा जी के पास गयीं।।१३९।। अपनी जीविको को चाहने वाले त्रेतायुग के उन प्रजाजनों के मन की बात को स्वयम्भू ब्रह्मा ने जाना और प्रत्यक्षरूप से देखा भी तथा उन्होंने ध्यानपूर्वक विचार कर यह निष्कर्ष निकाला कि वनस्पतियों का अधिक विनाश करने के कारण पृथ्वी ने औषधियों को छिपा लिया। अतः पृथ्वी को पुनः दुहा।।१४०-१४१।।

सुमेरु पर्वत को बछड़ा बनाकर इस पृथ्वी को दुहा। दुहे जाने पर इस धेनुरूपा पृथ्वी के ग्रामीण तथा जंगली बीजों को पृथ्वी तल पर पुनः उत्पन्न किया। फल पकने पर जिनके बीज रहें वे औषधियां हैं तथा वे सत्तरह प्रकार की है, धान, जौ, गेहूँ, चना, तिल, प्रियंगु, उदार, कोरदुष्ट (कोदो) सवामक, उड़द, मूँग, मसूर, नीवार, कुलथी, हरिका और चरका ये सत्तरह प्रकार के बीज उत्पन्न हुए।।१४२-१४५।। जंगली तथा ग्रामीण औषधियों में चौदह प्रकार की औषधियां यज्ञ का साधन हैं, वे हैं—सर्मा, सवां, नीवार, जर्तिल (काले तिल), सगेवेधुका, कुरविन्द (नागरमोथा), वेणु (बांस) जौ, मातीकार्टका। सब ग्रामीण चौदह प्रकार के ग्रामीण बीज यज्ञ में प्रयुक्त होते थे। वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, वीरुध और तृण जाति की वनस्पतियां तथा कन्दमूल फल आदि उत्पन्न होकर मूल फल आदि

तासां स्वयंभूर्भगवान् हस्तसिद्धिं स्वकर्मजाम्।
ततः प्रभृति चौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे॥१५२॥
संसिद्धकायो वार्तायां ततस्तासां प्रजापतिः।
मर्यादां स्थापयामास ययाऽरक्षत्परस्परम्॥१५३॥
ये वै परिग्रहीतारस्तासामासन्बलीयसः। इतरेषां कृतत्राणान् स्थापयामास क्षत्रियान्॥१५४॥
उपतिष्ठन्ति तावन्तो यावन्तो निर्मितास्तथा।
सत्यं ब्रूत यथाभूतं ध्रुवं वो ब्राह्मणास्तु ताः॥१५५॥
ये चान्ये ह्यबलास्तेषां संरक्षाकर्म्मणि स्थिताः।
क्रीतानि नाशयंति स्म पृथिव्यां ते व्यवस्थिताः॥१५६॥
वैश्यानित्येव तानाहुः कीनाशान्वृत्तिसाधकान्। सेवंतश्च द्रवंतश्च परिचर्यासु ये रताः॥१५७॥
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रांस्तानब्रवीच्च सः।
तेषां कर्माणि धर्मांश्च ब्रह्मा तु व्यदधात्प्रभुः॥१५८॥

से प्रजाओं को समृद्ध बनाने लगे; किन्तु जब वे औषधियां अच्छी तरह उगीं नहीं, तब उन्होंने (ब्रह्माजी ने) उनकी जीविका का यह उपाय किया।।१४६-१५१।। कि स्वयं ब्रह्मा ने उनके हाथ की सफलता से अपने कर्म द्वारा उत्पन्नहोने वाले जोतकर उगाये जाने वाले उपाय को पैदा किया, तभी जोतने से अन्न उत्पन्न विधि आरम्भ हुई।।१५२।। उसी समय सम्यक् सफलता के शरीर रूप ब्रह्मा ने जीविकोपार्जन की वार्ता में मर्यादा स्थापित की।।१५३।। जिससे कि प्रजाजन परस्पर रक्षा करने लगे। प्रजा के उन मनुष्यों में जो भूमि का परिग्रहण करने वाले और बलवान् थे, उन क्षत्रियों को समाज की रक्षा करने के लिये स्थापित किया।।१५४।। जो उन क्षत्रियों के पास बैठते थे तथा जो सत्य बोलते और ब्रह्मज्ञानी थे, वे ब्राह्मण कहे गये।।१५५।। और जो उनसे दुर्बल थे, सबकी संरक्षा (भोजनादि सामग्री पैदा करने) में स्थित और खरीदी हुई वस्तु का नाश कराते थे (अर्थात् खरीद कर दूसरी जगह आवश्यकतानुसार ले जाकर बेचते थे) उन कीटनाशक (खेती) से जीविका साधन करने वाले लोगों को वैश्य कहा गया। अर्थात् व्यापार और कृषि कार्य पर समाज की भोजन व्यवस्था जुटाने वाले लोगों को वैश्य कहा गया। जो सेवा करते हुए इधर उधर घूमते थे तथा सेवा में लगे रहते थे, वे तेजहीन और कम पराक्रमी शूद्र बोले गये। इस प्रकार उनके धर्म और कर्म सब ब्रह्माजी ने निर्धारित कर दिये[1]।।१५७-१५८।।

---

१. इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मा जी ने ही चारों वर्णों को बनाकर उनके अलग-अलग कर्म निश्चित किये थे। इसलिये वेद में "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरु तदस्य यद्वैश्यःपद्भ्यां शूद्रोऽजायत। द्वारा यह कहा गया है कि ये चारों वर्ण ब्रह्मा के मुख से, भुजाओं से, जंघाओं से तथा पैरों से पैदा हुए। यह क्रम उनके अधिकार और कर्त्तव्यों के अनुसार है, न कि शरीर से पैदा होने को स्पष्ट करता है। यह तो एक प्रतीकात्मक कथन है। मुख से पैदा होने का अर्थ है ब्राह्मण सबसे मुख्य है तथा मुख का कार्य शिक्षा देना है। अतः ब्राह्मण शिक्षक हुआ। क्षत्रिय भुजाओं से पैदा हुआ। अतः शरीर की रक्षा भुजाओं से होती है। इसलिये क्षत्रिय को रक्षा का कार्य दिया गया। पेट शरीर का पाषण करता है अतः वैश्य को समाज का पोषण कार्य कृषि, वाणिज्य दिया गया। पैर सारे शरीर की सेवा करता है अतः पैरों से पैदा होने का अर्थ है—समाज की सेवा करना। इस प्रकार यहाँ ब्रह्मा के शरीर से पैदा होना प्रतीकात्मक है।

संस्थित्यां तु कृतायां हि चातुर्वर्ण्यस्य तेन वै।
पुनः प्रजास्तु ता मोहाद्धर्म्मंतं नान्वपालयन्॥१५९॥
वर्णधर्मैश्च जीवन्त्यो व्यरुद्ध्यंत परस्परम्। ब्रह्मा बुद्धा तु तत्सर्वं याथातथ्येन स प्रभुः॥१६०॥
क्षत्रियाणां बलं दण्डं युद्धमाजीव्यमादिशत्।
याजनाध्यापने ब्रह्मा तथा दानप्रतिग्रहम्॥१६१॥
ब्राह्मणानां विभुस्तेषां कर्माण्येतान्यथादिशत्।
पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिंर्वै विशां ददौ॥१६२॥
शिल्पाजीवभृतां चैव शूद्राणां व्यदधात्पुनः।
सामान्यानि च कर्माणि ब्रह्मनक्षत्रविशां पुनः॥१६३॥
यजनाध्यापने दानं सामान्यानीतरेषु च। कर्माजीवं तु वै दत्त्वा तेषामिह परस्परम्॥१६४॥
तेषां लोकान्तरे मूर्ध्नि स्थानानि विदधे पुनः।
प्राजापत्यं द्विजातीनां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्॥१६५॥
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम्।
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वस्वकर्मोपजीविनाम्॥१६६॥
गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचर्ये च तिष्ठताम्।
स्थानान्येतानि वर्णानां योग्याचारवतां सताम्॥१६७॥
संस्थित्यां सुकृतायां वै चातुर्वर्ण्यस्य तस्य तत्।
वर्णास्तु दंडभयतः स्वेस्वे वर्ण्ये व्यवस्थिताः॥
ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास ह्याश्रमान्॥१६८॥

इस प्रकार कुल ब्रह्मा जी ने चार वर्णों की व्यवस्था करके उनको कर्तव्यों का पालन करना बताया और सब मोहवश अपने-अपने धर्म का पालन करने लगे। फिर वे अपने-अपने वर्ण धर्मों का अनादर कर जब परस्पर विरुद्ध आचरण करने लगे। अर्थात् एक वर्ण दूसरे वर्ण के कर्म का पालन करने लगा। तब ब्रह्मा जी ने क्षत्रियों को बल शासन और युद्ध जीविकोपार्जन का आदेश दिया और यज्ञ कराना, पढ़ाना और दान लेना कार्य करने का ब्रह्मा ने आदेश वैश्यों को दिया।।१५९-१६१।। एवं शूद्रों के लिए शिल्प तथा सेवा करना कर्म बताया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लिये यज्ञ अध्ययन एवं दान की सामान्य रूप से व्यवस्था की। अर्थात् ये तीनों कार्य तीनों वर्ण कर सकते थे।।१६२-१६३।। ब्रह्मा ने उन्हें परस्पर कर्म और जीविका देकर उनकी सफलता के अनुरूप लोकान्तर में भी स्थानों का निर्देश कर दिया। क्रियाशील ब्राह्मणों के लिये प्राजापत्य (ब्रह्मा का) स्थान दिया।।१६४-१६५।।

संग्राम में न भागने वाले क्षत्रियोंके लिये ऐन्द्रस्थान और अपने अपने धर्म में निष्ठा रखने वाले वैश्यों के लिये मारुतनामक स्थान तथा आचरण निरत शूद्रों के लिये गान्धर्वस्थान का निरूपण किया। अपने अपने धर्म में लगे हुए चारों वर्णों के लिये उन्होंने इन स्थानों का विधान किया। सुकृत संस्थिति में अर्थात् जब वर्ण अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते थे, उस सुन्दर स्थिति में तो चारों वर्ण दण्ड के भय से अपनी अपने वर्ण्य कर्म में व्यवस्थित रहे उसके बाद उस स्थिति में वर्णों के रहने पर आश्रमों की स्थापना की।।१६६-१६८।।

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो यतिस्तथा। आश्रमांश्चतुरो ह्येतान्पूर्ववत्स्थापयन्प्रभुः॥१६९॥
वर्णकर्माणि ये केचित्तेषामिह चतुर्भवः। कृतकर्म्म कृतावासा आश्रमादुपभुञ्जते॥१७०॥
ब्रह्मा तान्स्थापयामास आश्रमान् भ्रामतामतः। निर्द्दिदेश ततस्तेषां ब्रह्मा धर्मान्प्रभाषते॥१७१॥

प्रस्थानानि तु तेषां च यमान्सनियमांस्तथा।
चतुर्वर्णात्मकः पूर्वं गृहस्थस्याश्रमः स्थितः॥१७२॥
त्रयाणामाश्रमाणां च वृत्तियोनीति चैव हि।
यथाक्रमं च वक्ष्यामि व्रतैश्च नियमैस्तथा॥१७३॥

दाराग्नयश्चातिथय इष्टाः श्राद्धक्रियाः प्रजाः। इत्येष वै गृहस्थस्य समासाद्धर्मसंग्रहः॥१७४॥
दण्डी च मेखली चैव अधःशायी तथाजिनी। गुरुशुश्रूषणं भैक्ष्यं विद्यार्थी ब्रह्मचारिणः॥१७५॥
चीरपत्राजिनानि स्युर्वनमूलफलौषधैः। उभे संध्ये वगाहश्च होमश्चारण्यवासिनाम्॥१७६॥
विपन्नमुसले भैक्ष्यमस्तेयं शौचमेव च। अप्रमादोऽव्यवायश्च दया भूतेषु च क्षमा॥१७७॥
श्रवणं गुरुशुश्रूषा सत्यं च दशमं स्मृतम्। दशलक्षणको ह्येष धर्मः प्रोक्तः स्वयंभुवा॥१७८॥
भिक्षोर्व्रतानि पंचात्र भैक्ष्यवेदव्रतानि च। तेषां स्थानान्यशुष्मिं च संस्थितानामचष्ट सः॥१७९॥
अष्टाशीतिसस्त्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्। स्मृतं तेषां तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम्॥१८०॥

वे आश्रम हैं—गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यास। इन चारों आश्रमों को प्रभु ब्रह्मा ने सतयुग के समान स्थापित किया।।१६९।। उसके बाद उन चारों आश्रमों को क्या करना चाहिये? कहाँ रहना चाहिये? इस प्रश्न के उत्तर स्वरूप उन इधर भ्रमण करने वाले भ्रमित चारों आश्रमों को उन उनको उन उन कर्मों को करने का प्रवचन दिया।।१६९-१७०।। तव ब्रह्मा ने उनके प्रकृष्ट स्थान (पद) (अधिकार) तथा यम नियम बताये और वताया कि चारों वर्णों का आश्रय स्थान गृहस्थाश्रम है, वही तीनों आश्रमों की वृत्ति और नीति है, अर्थात् गृहस्थाश्रम से ही ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का पालन-पोषण होगा। उसके क्रमानुसार नियमों और व्रतों के द्वारा कहूँगा।।१७०-१७३।। पत्नी को रखना (विवाहित होना), यज्ञ करना, अतिथियों का सत्कार, यज्ञ श्राद्ध आदि क्रियायें करना यह संक्षेप से गृहस्थ आश्रम का धर्मसंग्रह है।।१७४।। दण्डी, मेखला, जटाधारण, पृथ्वी पर सोना, मृगचर्म पर वैठना, गुरु की सेवा करना, भिक्षा से जीवन यापन करना, विद्यार्थी ब्रह्मचारी का कर्तव्य है।।१७५।। चीरपत्र और मृगचर्म धारण करना, वन्य, मूल और फलों और औषधियों का भोजन, प्रातः और सायं स्नान और यज्ञ अनुष्ठान यह वानप्रस्थियों का कर्तव्य है।।१७६।।

जिस समय मूसल का शब्द न सुना जाता हो, उस समय भिक्षा करना, चोरी न करना, पवित्रता से रहना, आलस्य न करना और सम्भोग से रहित होना, प्राणियों के प्रति दया, क्षमा, श्रवण (ध्यान), गुरुओं की सेवा करना और सत्य बोलना ये दस कर्म वानप्रस्थ के हैं। यह स्वयम्भू ब्रह्मा ने दस लक्षण वाला धर्म संन्यासियों के लिये बताया है।।१७७-१७८।। इनमें ऊपर वाले वानप्रस्थियों के लिये भैक्ष्य वेदव्रत हैं। अर्थात् केवल वानप्रस्थियों के पालन से सम्बन्धित है। जैसे कि मूसल शब्द श्रवण से पूर्व भिक्षा मांगना, चोरी न करना, पवित्रता से रहना, आलस्य न करना और सम्भोग से रहित हो पाँच कर्म तो भिक्षा लेने वाले संन्यासी के और शेष सामान्य हैं। उन ब्रह्मा ने उन आश्रमों स्थित लोगों के बताये।।१७९।। गुरु के पास रहने वाले अनवरत ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले ऋषियों

सप्तर्षीणा तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम्।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिना ब्रह्मणः क्षयम्॥१८१॥
योगिनामकृतं स्थानं तानाजित्वा न विद्यते।
स्थानान्याश्रमिणस्तानि ब्रह्मस्थानस्थितानि तु॥१८२॥
चत्वार एव पंथानो देवयानानि निर्मिताः। पंथानः पितृयानास्तु स्मृताश्चत्वार एव ते॥१८३॥
ब्रह्मणा लोकतन्त्रेण आद्ये मन्वन्तरे पुरा। पंथानो देवयाना ये तेषां द्वारं रविः स्मृतः।
तथैव पितृयानानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते॥१८४॥
एवं वर्णाश्रमाणां च प्रविभागे कृते तदा। यदा प्रजा नावर्द्धत वर्णधर्मसमासिकाः॥१८५॥
ततोऽन्यां मानसीं स्वां वै त्रेतामध्येऽसृजत्प्रजाः।
आत्मनस्तु शरीरेभ्यस्तुल्याश्चैवात्मना तु ताः॥१८६॥
तस्मिंस्त्रेतायुगे त्वाद्ये मध्यं प्राप्ते क्रमेण तु।
ततोऽन्यां मानसीं सोऽथ प्रजाः स्त्रष्टुं प्रचक्रमे॥१८७॥
ततः सत्त्वरजोद्रिक्ताः प्रजाः सह्यसृजत्प्रभुः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां वार्त्तानां साधकाश्च याः॥१८८॥
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा। युगानुरूपा धर्मेण यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः॥१८९॥
उपस्थिते तदा तस्मिन् सृष्टिवर्गे स्वयंभुवः।
अभिध्याय प्रजा ब्रह्मा नानावीर्याः स्वमानसीः॥१९०॥

के अट्ठासी हजार स्थान हैं। सप्तर्षियों का जो स्थान है, वही स्थान उन वन में रहने वाले (तपस्वियों) का है। गृहस्थों का स्थान प्राजापत्य है। गृहों में रहकर वानप्रस्थ का पालन करने वालों का स्थान प्राजापत्य है।।१८०-१८१।। संन्यासियों का अमृत स्थान है; किन्तु अजिन के लिये कोई स्थान नहीं है। अर्थात् जो अजिन, जिन (संन्यासी) नहीं है, उसका कोई स्थान नहीं है। ये सभी स्थान चारों आश्रमों में जो अपने अपने धर्म में स्थित हैं, उनके हैं।।१८२।। चार पन्थ देवयान पन्थ के हैं और चार ही पन्थ पितृयान के हैं।।१८३।। लोक को बनाने ब्रह्मा ने पूर्वकाल में प्रथम मन्वन्तर में देवयान प्राप्ति के लिये जो देवयान पान्थ बनाये, उनका द्वार, रवि (सूर्य) को बताया, उसी प्रकार पितृयान का द्वार चन्द्रमा को बताया।।१८४।।

इस प्रकार ब्रह्मा ने वर्ण और आश्रमों के विभाग किये तथा विभाग करने पर भी प्रजा ने जब उन उन के धर्म को समास रूप से नहीं बढ़ाया। तब ब्रह्मा ने अपनी अन्य मानसी सिद्धि का प्रयोग कर त्रेतायुग में प्रजा की रचना की। तब उन्होंने अपने शरीर से अपने ही समान प्रजाजनों को उत्पन्न किया।।१८६।। उस त्रेतायुग के क्रम से मध्यकाल में उन्होंने दूसरी मानसी सृष्टि करने का उपक्रम किया।।१८७।। उसके बाद सत्त्वगुण और रजोगुण की अधिकता वाली प्रजा को उन ब्रह्मा जी ने उत्पन्न किया, जो प्रजा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और जीवनयापन के व्यवहार को सिद्ध करने वाली थी।।१८८।। वे सब देवता पितर ऋषि और मनुष्य थे, युग के अनुरूप धर्म के द्वारा अर्थात् सन्तानोपत्ति द्वारा प्रजा का विस्तार किया।।१८९।। तब उस स्वयम्भू के सृष्टिवर्ग के उपस्थित होने पर ब्रह्मा की मानसी

पूर्वोक्ता या मया तुभ्यं जनानीकं समाश्रिताः।
कल्पेऽतीते पुराण्यासीद्देवाद्यास्तु प्रजा इह॥१९१॥
ध्यायतस्तस्य तानीह संभूत्यर्थमुपस्थिताः। मन्वंतरक्रमेणेह कनिष्ठाः प्रथमेन ताः॥१९२॥
ख्यातास्तु वंश्यैरेतैस्तु पूर्वं यैरिह भाविताः। कुशलाकुशलैः कंदैरक्षीणैस्तैस्तदा युताः॥१९३॥
तत्कर्मफलदोषेण ह्युपबाधाः प्रजज्ञिरे। देवासुरपितृंश्चैव यक्षैर्गन्धर्वमानुषैः॥१९४॥
राक्षसैस्तु पिशाचैस्तैः पशुपक्षिसरीसृपैः। वृक्षनारककीटाद्यैस्तैस्तैः सर्वैरुपस्थिताः॥
आहारार्थं प्रजानां वै विदात्मानो विनिर्ममे॥१९५॥

।इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे लोकज्ञानवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

प्रजा अनेकों प्रकार की होने लगी।।१९०।। यह तो मैंने पहले ही कहा है कि जनलोक के बीते हुए कल्प में जो पुण्यात्मा देवाधि थे, वे ही यहाँ प्रजा होकर आये।।१९१।। ब्रह्मा का ध्यान करने से ही इस प्रकार की प्रजा की उत्पत्ति हुई। मन्वन्तर के क्रम से पहले या कनिष्ठ मन्वन्तर में जैसे वे सभी रहे थे, वैसे ही रहते हैं अर्थात् पूर्वकाल में वे लोग कर्मों के द्वारा कुशल, अकुशल, कन्द, (दुर्बल) अक्षीण (बलवान्) पैदा होते हैं।।१९२-१९३।। अपने अपने कर्म के फल के दोष से सब अपने लिये बाधा उपस्थित करते हैं। देव, असुर, पितरगण, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, राक्षस, पिशाच, पशु, पक्षी और रेंगने वाले सर्पादि वृक्ष, नारक, कीट, आदि उन सभी के द्वारा प्रजाओं के आहार के लिये सृष्टि को उत्पन्न किया।।१९४-१९५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद सातवाँ अध्याय लोकज्ञान वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

मानस सृष्टि वर्णनं नाम

अष्टमोऽध्यायः

सूत उवाच

ततोभिध्यायतस्तस्य मानस्यो जज्ञिरे प्रजाः। तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह॥१॥
क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तत क्षेत्रस्यैतस्य धीमतः। ततो देवासुरपितॄन्मनुष्यांश्च चतुष्टयम्॥२॥
सिसृक्षुरयुतांतानि च चात्मानमयूयुजत्। युक्तात्मनस्ततस्तस्य तमोमात्रासमुद्भवः॥३॥
तदाभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नोऽभूत्प्रजापतेः। ततोऽस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः॥४॥
असुः प्राणः स्मृतो विज्ञैस्तज्जन्मानस्ततोऽसुराः। सृष्टा यया सुरास्तन्वा तां तनुं स व्यपोहत॥५॥
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत। सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिस्त्रियामिका॥६॥
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात्स्वयं पुनः। सृष्ट्वासुरांस्ततः सोऽथ तनुमन्यामपद्यत॥७॥
अव्यक्तां सत्त्वबहुलां तस्तां सोऽभ्ययुंजत। ततस्तां युंजमानस्य प्रियमासीत्प्रभोः किल॥८॥
ततो मुखात्समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः। यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्त्तिताः॥९॥
धातुर्दिव्येति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते। तस्मात्तन्वास्तु दिव्याया जज्ञिरे तेन देवताः॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-८

मानव सृष्टि वर्णन

सूत जी बोले—उन ब्रह्मा के ध्यान से मानसी प्रजा पैदा हुई। अब इस अध्याय में बताते हैं कि जब ब्रह्माजी ने ध्यान किया तो उसके बाद उस मानसी प्रजाओं के शरीरों से उत्पन्न कार्य कारणों के साथ क्षेत्र (प्रकृति) का क्षेत्रज्ञ समूह (आत्मायें) उत्पन्न हुई। अर्थात् क्षेत्र (प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (पुरुष) के योग से सृष्टि हुई।।१-१½।। देव, असुर, पितृ और मनुष्य इन चारों की सृष्टि की इच्छा रखने वाले ब्रह्मा ने स्वयं को आत्मयोग में युक्तकर दिया। ब्रह्म के आत्मयोग में युक्त हो जाने पर उन युक्तात्म ब्रह्मा के शरीर से तमोगुण की मात्रा का सम्यक् उद्भव हुआ।।३।। तब प्रजापति के ध्यान करने पर सर्ग का जो प्रयत्न हुआ तो उनकी जंघा से पहले असुर नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई।।४।। विशिष्ट ज्ञानी पुरुषों ने असु प्राणों को कहा है। अतः उन ब्रह्मा के (प्राणों से) जन्म लेने के कारण वे असुर कहलाये; क्योंकि ब्रह्मा ने जिस शरीर से असुरों को पैदा किया था, उस शरीर को त्याग दिया था।।५।। उस छोड़े गये शरीर से रात्रि उत्पन्न हो गयी, वह रात्रि तमोबहुल थी, जिसके कारण रात्रि त्रियामा कहलायी।।६।। क्योंकि रात्रि तमोबहुल होती है, इसीलिये ब्रह्मा की प्रजा अर्थात् संसार के प्राणी रात्रि में तमोगुण से आवृत हो जाते हैं। असुरों की सृष्टि करने के बाद ब्रह्मा ने अन्य शरीर को धारण किया।।७।। तब उन ब्रह्मा ने अव्यक्त सत्त्वबहुल उस शरीर को धारण किया, तब उस शरीर को धारण करने से ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न थे।।८।। तब प्रकाशमान उन ब्रह्मा जी के मुख से देवता उत्पन्न हुए; क्योंकि वे प्रकाश से हुए थे, इसलिये वे देव कहलाये[1]।।९।। देवों की सृष्टि करने के बाद उन ब्रह्माजी ने दिव्य

---

१. क्योंकि दिव् धातु का अर्थ है— चमकना अर्थात् प्रकाश करना तथा प्रकाश से पैदा होने से देव कहलाये। दिव् धातु में अच् प्रत्यय से देव शब्द बना है, जिसका अर्थ है—प्रकाश करने वाला।

देवान् सृष्ट्वा ततः सोऽथ तनुं दिव्यामपोहत। उत्सृष्टा सा तनुस्तेन अहः समभवत्तदा॥११॥
तस्मादहः कर्मयुक्ता देवताः समुपासते। देवान्सृष्ट्वा ततः सोऽथ तनुमन्यामपद्यत॥१२॥
सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यामभ्ययुंक्त वै। पितेव मन्यमानस्तान्पुत्रान्प्रध्याय स प्रभुः॥१३॥
पितरो ह्यभवंस्तस्या मध्ये रात्र्यहयोः पृथक्।
तस्मात्ते पितरो देवाः पितृत्वं तेशु तत्स्मृतम्॥१४॥
यया सृष्टास्तु पितरस्तां तनुं स व्यपोहत। सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः संध्या व्यजायत॥१५॥
तस्मादहर्देवतानां रात्रिर्या साऽऽसुरी स्मृता। तयोर्मध्ये तु वै पैत्री या तनुः सा गरीयसी॥१६॥
तस्माद्देवासुराश्चैव ऋषयो मानवास्तथा। युक्तास्तनुमुपासंते उषाव्युष्ट्योर्यदंतरम्॥१७॥
तस्माद्रात्र्यहयोः संधिमुपासंते तथा द्विजाः। ततोऽन्यस्यां पुनर्ब्रह्मा स्वतन्वामुपपद्यत॥१८॥
रजोमात्रात्मिका या तु मनसा सोऽसृजत्प्रभुः। मनसा तु सुतास्तस्य प्रजनाज्जज्ञिरे प्रजाः॥१९॥
मननाच्च मनुष्यास्ते प्रजनात्प्रथिताः प्रजाः।
सृष्ट्वा पुनः प्रजाः सोऽथ स्वां तनुं स व्यपोहत॥२०॥
साऽपविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत।
तस्माद्भवंति संहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः॥२१॥

शरीर को धारण किया। धातु 'दिव्' जो कही गयी है, उसका अर्थ क्रीडा भी माना जाता है। उस क्रीडार्थक दिव्य शरीर से पैदा होने के कारण वे देवता कहलाये।।१०।। देवताओं की सृष्टि करके उन ब्रह्मा ने उस दिव्य शरीर को छोड़ दिया और अन्य शरीर को धारण किया। वह छोड़ा हुआ शरीर तुरन्त दिन हो गया।।११।। उसी कारण देवता लोग दिन की उपासना करते हैं अर्थात् दिन में ही अपना कार्य करते हैं। देवताओं की सृष्टि करने के बाद उन ब्रह्मा ने दूसरे शरीर को धारण किया।।१२।। क्योंकि वह शरीर सत्त्व की अधिक मात्रा से युक्त था। अतः उन्होंने पिता के समान स्वयं को मानते हुए उस प्रभु ने पुत्रों को पैदा किया।।१३।। उन पितरों की सृष्टि दिन और रात्रि के मध्य सन्ध्या काल में हुई थी, इसीलिये उन देवों की पितृ संज्ञा हुई।।१४।। ब्रह्मा ने जिस शरीर से पितरों की सृष्टि की थी, उस शरीर को भी छोड़ दिया। वह शरीर जब छोड़ दिया, तब उस छोड़े हुए शरीर के द्वारा शीघ्र ही सन्ध्या उत्पन्न हुई।।१५।। तब इस प्रकार देवताओं का दिन, असुरों की रात्रि और दिन और रात्रि के मध्य वाली सन्ध्या पितरों के लिये गरीयसी (बहुत श्रेष्ठ) हो गयी।।१६।। उसी कारण से देवता, असुर, ऋषिगण तथा मानव ब्रह्मा के उस मध्यम शरीर दिन-रात के मध्य भाग उषा के विस्तार सन्ध्या की उपासना लगे। उसी कारण से ब्राह्मण लोग दिन और रात की सन्धि सन्ध्या की उपासना करते हैं।।१७-१७½।।

उसके बाद ब्रह्मा जी अन्य शरीर के रूप में प्रस्तुत हुए। वह शरीर प्रभु ने रजोगुण की अधिकता वाले मन से पैदा किया था। उनके उन पुत्रों का मन से प्रजनन हुआ था; इसलिए वे सब प्रजा कहे गये। प्रजननात् जायते इति प्रजा (प्रजनन से जो पैदा होती है, वह प्रजा कहलाती है) इस व्युत्पत्ति के अनुसार वे सब प्रजा कहे गये।।१७½-१९।। क्योंकि मनन करने से पैदा होने के कारण वे मुनष्य कहे गये और प्रजनन (प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न किये जाने के प्रजा कहे गये फिर प्रजा की सृष्टि करके ब्रह्माजी ने अपने शरीर को छोड़ दिया।।२०।। वह जो छोड़ा हुआ शरीर था, उससे शीघ्र ही ज्योत्स्ना उत्पन्न हो गयी। तब ज्योत्स्ना के पैदा होने पर प्रजा प्रसन्न हो गयी।।२१।।

इत्येतास्तनवस्तेन ह्यपविद्धा महात्मना। सद्यो रात्र्यहनी चैव संध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे॥२२॥

ज्योत्स्ना संध्याहनी चैव सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम्।
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मान्नियामिका॥२३॥

तस्माद्देवा दिव्यतन्वा तुष्ट्या सृष्टा मुखात्तु वै। यस्मात्तेषां दिवा जन्म बलिनस्तेन ते दिवा॥२४॥

तन्वा यदसुरान्रात्र्या जघ्नादसृजत्प्रभुः। प्राणेभ्यो रात्रिजन्मानो ह्यजेया निशि तेन ते॥२५॥

एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह। पितॄणां मानुषाणां च अतीतानां गतेषु वै॥२६॥

मन्वंतरेषु सर्वेषु निमित्तानि भवंति हि। ज्योत्स्ना रात्र्यहनी संध्या चत्वार्येतानि तानि वा॥२७॥

भान्ति यस्मात्ततो भाति भाशब्दो व्याप्तिदीप्तिषु।
अंभांस्येतानि सृष्ट्वा तु देवदानवमानुषान्॥२८॥
पितॄंश्चैव तथा चान्यान्विविधान्व्यसृजत्प्रजाः।
तामुत्सृज्य ततो ज्योत्स्नां ततोऽन्यां प्राप्य स प्रभुः॥२९॥
मूर्त्तिं रजस्तमोद्रिक्तां ततस्तां सोऽभ्ययंजत।
ततोऽन्याः सोंऽधकारे च क्षुधाविष्टाः प्रजाः सृजन्॥३०॥

ताः सृष्टास्तु क्षुधाविष्टा अम्भांस्यादातुमुद्यताः। अम्भांस्येतानि रक्षाम उक्तवंतस्तु तेषु ये॥३१॥

फिर उसके बाद उन ब्रह्मा ने ये जितने भी शरीर पैदा किये थे, सबको त्याग दिया। शीघ्र ही रात्रि दिन और सन्ध्या को उत्पन्न किया।।२२।। ज्योत्स्ना (चांदनी) सन्ध्या और दिन ये तीनों ही सत्त्वमात्रात्मक हैं। तमो मात्रात्मिका रात्रि है, वह निश्चित ही नियामिका है। अर्थात् वह सबको नियमित करने वाली है।।२३।। ब्रह्मा के दिव्य शरीर से उत्पन्न होने के कारण देवता दिव्य शरीर वाले हैं और वे मुख से उत्पन्न हैं, जिस कारण से उनका दिन में जन्म है। अतः वे दिन में अधिक बलवान् होते हैं।।२४।।

असुर जो ब्रह्मा के शरीर से रात्रि में उत्पन्न हुए तथा जिन्हें प्रभु ब्रह्मा ने अपनी जंघा से उत्पन्न किया। प्राणों से रात्रि में जन्म लेने के कारण वे असुर रात्रि में अजेय होते हैं।।२५।। देवों, पितरों, मनुष्यों की असुरों के साथ, भविष्य, भूत और वर्तमान में सभी मन्वन्तरों में ज्योत्स्ना रात्रि, दिन और सन्ध्या ये चार ही निमित्त कारण होते हैं अर्थात् दिन से देवों की, सन्ध्या से पितरों की, ज्योत्स्ना से मनुष्यों की और रात्रि से असुरों की उत्पत्ति हुई। अतः ये सभी देवासुर, पितर और मनुष्यों के निमित्त हैं।।२६।। भान्ति (आभासित) होते हैं अर्थात् उस एकार्णव (एक समुद्र) में ये चारों आभासित होते हैं। अतः व्याप्ति और दीप्ति अर्थ 'भा' धातु से बने रहने के कारण जल का नाम अम्भस् पड़ा। अतः उन ब्रह्मा ने जलों की सृष्टि करके ही इन देव दानवों और मनुष्यों को उत्पन्न किया तथा यह वैज्ञानिक तथ्य भी है कि जल से जीव की उत्पत्ति हुई है तथा ८४ लाख योनियों को पार करते हुए मनुष्य योनि में जाना तो विकास की प्रक्रिया है।।२७-२८।। पितरों तथा अन्य अनेकों प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न किया, फिर उन प्रभु ब्रह्मा ने उस शरीर को भी पूरी तरह से छोड़ दिया और रजोगुण और तमोगुण प्रधान मूर्ति को धारण किया।।।२९-२९½।।

उसके बाद अन्धकार में अन्य क्षुधा से आविष्ट प्रजा को पैदा किया, वे जो प्रजायें उत्पन्न हुईं तो वे जल ग्रहण करने के लिए ही उद्यत हो गयीं।।२९½-३०½।। तब हम जल की रक्षा करते हैं, ऐसा कहते हुए जो पैदा हुये वे क्रोधी कहलाये। प्रसन्न होकर जिन्होंने कहा था कि हम उन राक्षसों के जलों को नष्ट कर देंगे। अतः वे अपने उस

राक्षसास्ते स्मृतास्तस्मात्क्षुधात्मानो निशाचराः।
येऽब्रुवन् क्षिणुमोऽम्भांसि तेषां हृष्टाः परस्परम्॥३२॥
तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यकाः क्रूरकर्मिणः। रक्षेति पालने चापि धातुरेष विभाव्यते॥३३॥
य एष क्षीतिधातुर्वै क्षपणे स निरुच्यते। रक्षणाद्रक्ष इत्युक्तं क्षपणाद्यक्ष उच्यत॥३४॥
तान्दृष्ट्वा त्वप्रियेणास्य केशाः शीर्णाश्च धीमतः।
ते शीर्णा व्युत्थिता ह्यूर्द्ध्वमारो हंतः पुनः पुनः॥३५॥
हीना ये शिरसो बालाः पन्नाश्चैवापसर्पिणः।
बालात्मना स्मृता व्याला हीनत्वादहयः स्मृताः॥३६॥

कर्म के अनुसार छिपकर क्रूरकर्म करने वाले यक्ष कहलाये[१]। तथा इस 'क्षी' इस धातु से क्षपण अर्थ में बने थे, वे यक्ष कहलाये। रक्षा करने के कारण राक्षस और क्षपण (नाश) करने के कारण यज्ञ कहे जाते हैं।।३०½-३४।। उन राक्षस और यक्षों को देखकर उनके अप्रिय कार्य के कारण बुद्धिमान् ब्रह्मा की केशराशि शीर्ण हो गयी अर्थात् क्रोध से उनके बाल बिखर गये तथा वे बिखरे हुए बाल बार-बार व्यथित होकर ऊपर को चढ़ने लगे। हीन जो शिर के बाल थे, वे पन्न (गिरे हुए) होकर अपसर्पिणः (टेड़े होकर चलने वाले) थे। वे बालात्मक होने के कारण ब्याल[२] कहे गये और हीन होने के कारण 'अहि' सर्प कहे गये।।३५-३६।।

---

१. यह 'रक्ष्' धातु पालन अर्थ में प्रयुक्त होती है, इसी कारण उनका नाम राक्षस पड़ा; क्योंकि उन्होंने जल की रक्षा की थी। व्याकरण की दृष्टि से 'रक्ष्' धातु का अर्थ है, रक्षा करना, पालन करना तथा उसमें 'असुन्' प्रत्यय से 'रक्षस्' शब्द बनता है तथा उस रक्षस् शब्द में 'रक्षस इदम्' से उसी अर्थ में 'अण्' प्रत्यय से 'राक्षस' शब्द बना है; परन्तु आप्टे कोशकार ने 'इक्ष्यते हविरस्मात्' जिनसे हवि (हवन सामग्री की रक्षा की जाये वे रक्षस् (राक्षस) होते हैं। अतः यह भी अर्थ उचित ही है; क्योंकि राक्षस लोग जहाँ भी यज्ञ होता था, उसे भंग करते थे; इसीलिये उन्हें राक्षस कहा गया; परन्तु यज्ञ में प्रयुक्त पशुओं की बलि देने वाले यज्ञ को विध्वंस कर पशुओं की रक्षा करने के कारण भी उन्हें राक्षस कहा गया तथा यज्ञों में पशुबलि के प्रमाण तो धर्मशास्त्रों में अनेकों स्थलों पर उपलब्ध हैं। जो भी हो, राक्षस एक संस्कृति थी, जो यज्ञादि की विरोधी थी।

२. वायु पुराण में बाल के स्थान पर व्याल शब्द है; परन्तु शिर पर उगने वालों को बाल ही कहा जाता है तथा 'बल्' धातु में 'अण्' प्रत्यय से बने 'बाल' शब्द का अर्थ बालक के साथ साथ, मारने वाला या चोट पहुँचाने वाला भी है; क्योंकि 'बल्' धातु का अर्थ है—चोट पहुँचाना। अतः यह जो कहा गया कि बालात्मक होने कारण 'बाल' कहे गये, उचित ही है तथा बालात्मक होने के कारण ब्याल कहे गये यह भी उचित है; क्योंकि वि+आ+अल्+अच् (व्याल) शब्द का अर्थ है वि = विशिष्ट रूप से, 'आ' (पूरी तरह), 'अल्' (रोकने वाले)। अतः सर्प के काटने से रक्त संचार के पूरी तरह रुकने के कारण मौत हो जाती है; इसीलिये सर्प को 'व्याल' कहा जाता है।

यह व्याल शब्द सर्प के प्रभाव के वैज्ञानिक अर्थ से सम्बन्धित है तथा पन्नता के कारण सर्प को 'पन्नग' कहा गया तथा असर्पण (सरकने) के कारण सर्प कहा गया यह भी सार्थक ही है; क्योंकि पत् + न=पन्न का अर्थ है—गिरा हुआ तथा जब उसमें गम् धातु से बना 'ग' शब्द लग जाता है, तो पन्नग का अर्थ होता है, 'गिरा हुआ चलने वाला अर्थात् पृथ्वी पर गिरा हुआ चलने वाला' तथा अपसर्पण—टेढ़ा चलना अर्थ के कारण सांप को सर्प कहा गया; क्योंकि 'सर्पति इति सर्पः' अर्थात् जो सरकता है, वह सर्प होता है, सृप् (सरकना) + अच् प्रत्यय = सर्प।

पन्नत्वात्पन्नगाश्चापि व्यपसर्पाच्च सर्प्पता। तेषां लयः पृथिव्यां यः सूर्याचन्द्रमसौ घनाः॥३७॥

तस्य क्रोधोद्भवो योऽसावग्निगर्भः सुदारुणः।
स तान्सर्प्पान् सहोत्पन्नानाविवेश विषात्मकः॥३८॥
सर्प्पान्सृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्मिताः।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः॥३९॥
भूतत्वात्ते स्मृता भूताः पिशाचा पिशिताशनात्।
गायतो गां ततस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरे सुताः॥४०॥

धयेति धातुः कविभिः पानार्थे परिपठ्यते। पिबतो जज्ञिरे वाचं गन्धर्वास्तेन ते स्मृताः॥४१॥

अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः। छन्दतश्चैव छन्दांसि वयांसि वयसासृजत्॥४२॥

पक्षिणस्तु स सृष्ट्वा वै ततः पशुगणान्सृजन्।
मुखतोजाः सृजन्सोऽथ वक्षसश्चाप्यवीः सृजन्॥४३॥
गावश्चैवोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्यां च विनिर्ममे।
पादतोऽश्वान्समातंगान् रासभान् गवयान्मृगान्॥४४॥

पन्नत्व के कारण वे पन्नग और अपसर्पण (टेढ़े चलने) के कारण सर्प कहे गये। जहाँ पर सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश नहीं पहुँच सकता, वहीं पर उनका निवास हुआ।।३७।। जब वे केश बिखर गये थे, उस समय ब्रह्मा को बहुत अधिक क्रोध हुआ था, जाहिर है कि बाल अप्रतिम क्रोधावस्था में ही बिखरते हैं। अतः वह जो आग है, जिसके अन्दर ऐसा जो विषात्मक दारुण क्रोध हुआ था, उस क्रोध ने सर्पों को विषात्मक बना दिया।।३८।। उसके बाद क्रोध से सर्पों की सृष्टि करके उन क्रोधात्मा ब्रह्मा ने कपिश वर्ण वाले भूत पिशाचों को उत्पन्न किया। भूतत्व (बीते हुए) होने के कारण वे भूत कहे गये तथा पिशित (मांस) को खाने वाले होने के कारण पिशाच कहे गये। पिशितम् + आचमति=जो मांस को खाता है, वह पिशाच। इस व्युत्पत्ति के अनुसार यथा नाम तथा गुण के कारण वे पिशाच कहे गये। फिर उसके बाद ब्रह्मा ने गाना गाते हुए अपने पुत्र गन्धर्वों को उत्पन्न किया।।४०।। 'धय' ये धातुयें कवियों द्वारा पान करने के अर्थ में पढ़ी जाती है; क्योंकि उन्होंने वाणी का पान कर लिया था। अतः वे गान्धर्व कहलाये। गां (वाणी का) पान करना से गन्ध शब्द बना फिर 'अर्व' धातु में 'अच्' प्रत्यय से गान्धर्व शब्द बन सकता है, जिसका अर्थ वाणी का पान करने वाले हैं। वैसे आप्टे के कोष के अनुसार गन्ध+अर्व्+अच् से गन्धर्व शब्द बना है, जिसका अर्थ है—'गन्धम् अर्व्वति इति गन्धर्वः' अर्थात् जो गन्ध को प्राप्त करता है, वह गन्धर्व तथा गानवाद्यादि जनित प्रमोद को गन्ध कहा है। अतः जो गानवाद्य आदि से उत्पन्न आनन्द को प्राप्त करता है, वह गन्धर्व कहा जाता है।।४१।।

इन आठों सृष्टियों में देवयोनि की सृष्टि करके उन प्रभु ब्रह्मा ने 'छन्द' से छन्दों का 'वयस्' (आयु) से वयांसि (पक्षियों) को पैदा किया।।४२।। छन्द का अर्थ है पंख तथा पंखवाले 'छन्दस्' पक्षी अतः सीधा अर्थ हुआ कि जो पंखों से बने वे पक्षी 'वयांसि' का भी अर्थ पक्षी है, जिनको 'वयः' से बना हुआ कहा गया है।।४२।। पक्षियों की सृष्टि करके उन प्रभु ब्रह्मा ने पशुगणों की सर्जना की। अतः मुख से ब्रह्मा जी ने बकरे की सृष्टि की तो वक्षस्थल से भेड़ को पैदा किया।।४३।। गायों को ब्रह्मा ने दो पार्श्वों वाले उदर से उत्पन्न किया अर्थात् गायों को उदर के दोनों

उष्ट्रांश्चैव वराहांश्च शुनोऽन्यांश्चैव जातयः। ओषध्यः फल मूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥४५॥
एवं पञ्चौषधीः सृष्ट्वा व्ययुंजत्सोऽध्वरेषु वै। अस्य त्वादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे पुरा॥४६॥
गौरजः पुरुषोऽथाविरश्वाश्वतरगर्दभाः। एते ग्राम्याः स्मृताः सप्त आरण्याः सप्त चापरे॥४७॥
श्वापदो द्वीपिनो हस्ती वानरः पक्षिपंचमः। औदकाः[1] पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः॥४८॥
महिषा गवयोष्ट्राश्च द्विखुराः शरभो द्विपः। मर्कटः सप्तमो ह्येषां चारण्याः पशवस्तु ते॥४९॥
गायत्रीं च ऋचं चैव त्रिवृत्स्तोमरथंतरे। अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्॥५०॥
यजूंषि त्रैष्टुभं छंदः स्तोमं पञ्चदशं तथा। बृहत्साम तथोक्तं च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात्॥५१॥
सामानि जगतीं चैव स्तोमं सप्तदशं तथा। वैरूप्यतिरात्रं च पश्चिमात्सोऽसृजन्मुखात्॥५२॥
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामं तथैव च। अनुष्टुभं सवैराजं चतुर्थादसृजन्मुखात्॥५३॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च। सृष्ट्वासौ भगवान्देवः पर्जन्यमितिविश्रुतम्॥५४॥
ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये। उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥५५॥
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः। सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवर्षिपितृमानवान्॥५६॥
ततोऽसृजत भूतानि चराणि स्थावराणि च। सृष्ट्वा यक्षपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा॥५७॥
नरकिन्नररक्षांसि पयःपशुमृगोरगान्। अव्ययं च व्ययं चैव द्वयं स्थावरजंगमम्॥५८॥

तरफ से पैदा किया। पैर से घोड़ों, हाथियों, गधों, नील गायों, हिरनों, ऊँटों, शूकरों, कुत्तों और अन्य जातियों को उत्पन्न किया। औषधियाँ, फल और मूल, उन ब्रह्मा के रोमों से पैदा हुए।।४४-४५।। गौ, बकरा, पुरुष, भेड़, घोड़े, अश्वतर, गदहे ये सात ग्रामीण पशु हैं और दूसरे सात जंगली पशु हैं।।४७।। श्वापद (बाघ) द्वीपी (शेर), हाथी, वानर, पाँचवां पक्षी, छठे जल में रहने वाले पशु, मगरमच्छ आदि और सातवें रेंगने वाले साँप आदि ये सब जंगली पशु हैं।।४८।। भैंसे, नीलगाय, ऊँट, दो खुर वाले, शरभ हाथी, बन्दर ये सात जंगली पशु हैं।।४९।।

गायत्री और ऋच त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर, अग्निष्टोम आदि श्रेष्ठ यज्ञ ब्रह्मा जी के प्रथम मुख से उत्पन्न हुए।।५०।। यजुर्वेद के मन्त्र त्रैष्टुभछन्द स्तोम छन्द के पन्द्रह प्रकार वृहत्साम इत्यादि को ब्रह्मा जी ने दक्षिणमुख से पैदा किया।।५१।। सामवेद जगतीछन्द के सत्तरह प्रकार वैरूप्य, अतिमात्र इत्यादि ब्रह्मा जी के पश्चिम (पीछे) वाले मुख से उत्पन्न हुए।।५२।। इक्कीस अथर्ववेद के प्रकार आप्तोर्यामा, अनुष्टुभ, और वैराज को उन्होंने उत्तरमुख से उत्पन्न किया।।५३।। विद्युत् (बिजली), वज्र और मेघ, रोहित (लालमेघ) इन्द्रधनुष को भगवान् ब्रह्मा ने पैदा किया, जिन्हें पर्जन्य कहा गया।।५४।। ऋग्वेद की ऋचायें, सामवेद को, यज्ञ की सफलता के लिये, तथा ऊँचे-नीचे प्राणी उन ब्रह्मा के शरीरों से पैदा हुए।।५५।। प्रजा की सृष्टि करने वाले प्रजापति ब्रह्मा ने पहले चार प्रकार के देव, ऋषि, पितर और मनुष्यों की सृष्टि की।।५६।। उसके बाद स्थिर रहने वाले नदी, पर्वत, पेड़-पौधे और चलने वाले पशु-पक्षी मनुष्य आदि को उत्पन्न किया, उन्हें उत्पन्न करके उन्होंने, यक्ष, पिशाच, गन्धर्व और अप्सराओं को उत्पन्न किया।।५७।। फिर नर, किन्नर (हिजड़े), राक्षस, पक्षी, पशु, मृग (जंगली पशु), साँप आदि तथा अव्यय और व्यय दोनों स्थावर जङ्गमों की उत्पत्ति की।। अव्यय का अर्थ है—जिनका व्यय न होता हो, जैसे पर्वत, नदी, जल, वायु, आकाश आदि अर्थात् स्थावर तथा व्यय है—मनुष्य, पशु-पक्षी जो कि चलते फिरते हैं अर्थात्

---

१. ओदक के स्थान पर उन्क वायुपराण में है, जिसका अर्थ उद्‌विलाव है।

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्टानि प्रपेदिरे। तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥५९॥
हिंस्राहिंस्रे सृजन् क्रूरे धर्माधर्मावृतानृते। तद्भाविताः प्रवद्यंते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥६०॥
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु। विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात्स्वयम्॥६१॥
केचित्पुरुषकारं तु प्राहुः कर्म च मानवाः। दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं भूतचिन्तकाः॥६२॥
पौरुषं कर्म दैवं च फलवृत्तिस्वभावतः। न चैव तु पृथग्भावमधिकेन ततो विदुः॥६३॥
एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे न च। स्वकर्मविषयं ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः॥६४॥
नानारूपं च भूतानां कृतानां च प्रपंचनम्। वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः॥६५॥
आर्षाणि चैव नामानि याश्च देवेषु दृष्टयः। शर्वर्यंते प्रसूतानां पुनस्तेभ्यो दधात्यजः॥६६॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे मानससृष्टिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

जङ्गमजीव।।५८।। पहली सृष्टि में जिन लोगों ने जैसा कर्म किया था, वैसा ही कर्म इन लोगों ने बार-बार उत्पन्न किये जाने पर भी पाया।।५९।। उसी कारणवश वे सब प्राणी हिंसा, अहिंसा, आदि क्रूर कर्म युक्त धर्म और अधर्म आदि कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, जिनकी जैसी रुचि होती है, उसके अनुसार वे कर्म करते हैं।।६०।। उस बनाने वाले ब्रह्मा ने स्वयं ही महाभूतों यथा—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश में अनेकों प्रकार का होना तथा इन्द्रियों से युक्त जो मूर्तियां अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षी, कीटादि प्राणी हैं, उनमें अनेक प्रकार का होना तथा उन सब का परस्पर विनियोग[1] (विशेष प्रकार से मिलना) सम्भोग आदि को उत्पन्न किया है।।६१।। कुछ लोग पुरुषार्थ (कम) को कुछ लोग दैव (भाग्य) को अपने अपने स्वभाव के अनुसार फल प्राप्ति का कारण मानते हैं।।६२।। पौरुष कर्म (पुरुषार्थ) और दैव (भाग्य) इनकी फलवृत्ति अर्थात् फल का व्यवहार स्वभाव के अनुसार है, इनका पृथक् भाव नहीं है, इनमें कम या अधिक नहीं है अर्थात् दोनों ही आवश्यक हैं। कर्म और भाग्य दोनों ही जब एक साथ बराबर रहते हैं, तभी सफलता मिलती है। किसी के कम अधिक से नहीं। ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।।६३।।

कोई कहे कि यह कर्म भाग्य के द्वारा हुआ है अथवा कोई कहे कि यह पुरुषार्थ द्वारा हुआ है, यह नहीं कहा जा सकता तथा न यह भी कहा जा सकता है कि यह दोनों ने किया है अथवा दोनों ने नहीं किया है। अतः कार्य की सम्पन्नता को सत्त्वस्थ समदर्शी कर्मविषय समूह को स्वकर्मविषयक मानते हैं। भाव यह है कि न कर्म और न भाग्य ही कुछ फलप्राप्ति का साधन है। सबकुछ पूर्व निर्धारित है, जो उसके पूर्व कर्मों के अनुसार उस कर्म के अनुसार मनुष्य को कर्म की सम्पन्नता सम्भव है। जैसा कि तुलसीदास ने कहा है 'हुइयहि वही जो राम रचि राखा, क्यों करि तर्क बढ़ावहिं शाखा।।'' सब कुछ विधि पर निर्भर है, तदनुसार मनुष्य कर्म करता है, सफलता असफलता मिलती है।।६४।। उस महेश्वर ब्रह्मा ने प्राणियों के अनेक रूपों और उनके कर्मों के प्रपञ्च को वेदवचन द्वारा निर्माण किया है।।६५।। रात्रि के अन्त में और दिन के आरम्भ में ऋषियों को और उनके नामों को जो कि देवों में देखे जाते हैं, उनको धारण करते हैं।।६६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद आठवां अध्याय मानव सृष्टि वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

१. विनियोग का अर्थ बिछुड़ना और विशेष रूप से मिलना दोनों हो सकता है; परन्तु यह विछुड़ना ही अधिक उचित है; क्योंकि सम्भोग शब्द आया है, जिसका अर्थ मिलना सम्यक् प्रकार से भोग करना है।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

रुद्रप्रसववर्णनं नाम

नवमोऽध्यायः

सूत उवाच

रुद्रं धर्मं मनश्चैव रुचिं चैवाकृतिं तथा। पंच कर्तॄन्हि स तदा मनसा व्यसृजत्प्रभुः॥१॥

एते महाभुजाः सर्वे प्रजानां स्थितिहेतवः।
औषधीः प्रतिसंधत्ते प्रतिसंधत्ते रुद्रः क्षीणः पुनः पुनः॥२॥

प्राप्तौषधिफलैर्देवः सम्यगिष्टः फलार्थिभिः। त्रिभिरेव कपालैस्तु त्र्यंबकैरोषधीक्षये॥३॥

इज्यते मुनिभिर्यस्मात्तस्मात् त्र्यंबक उच्यते।
गायत्रीं चैव त्रिष्टुप् च जगती चैव ताः स्मृताः॥४॥

अंबिकानां मया प्रोक्ता योनयः सवनस्पतेः। ताभिरेकत्वभूता भिस्त्रिविधाभिः स्ववीर्यतः॥५॥

त्रिसाधनः पुरोडाशस्त्रिकपालस्ततः स्मृतः। त्र्यंबकः स पुरोडाशस्तेनेह त्र्यंबकः स्मृतः॥६॥

धत्ते धर्मः प्रजाः सर्वा मनो ज्ञानकरं स्मृतम्। आकृतिः सुरुचे रूपं रुचिः श्रद्धाकरः स्मृतः॥७॥

एवमेते प्रजापालाः प्रजानां स्थितिहेतवः। अथास्य सृजतः सर्गं प्रजानां परिवृद्धये॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-९

रुद्र की उत्पत्ति वर्णन

सूत जी ने कहा कि हे ऋषियों! अब आप लोग रुद्र की उत्पत्ति कैसे हुई, यह सुनिये—रुद्र, धर्म और मन, रुचि तथा आकृति इन पाँच कर्ताओं को प्रभु ब्रह्मा ने मन से उत्पन्न किया।।१।। ये सभी महाभुज प्रजाओं की स्थिति के कारण हैं। रुद्र बार-बार क्षीण होकर औषधियों में मिल जाते हैं।।२।। प्राप्त औषधि के फलों द्वारा फल चाहने वाले रुद्र ने सम्यक् इष्ट फल प्राप्त किया। तीन कपालों से त्र्यम्बक द्वारा फल प्राप्त किया, औषधि के क्षय होने पर फल प्राप्त किया।।३।। मुनियों के द्वारा जिससे यज्ञ किया जाता है, इस कारण से वे त्र्यम्बक कहे जाते हैं। गायत्री त्रिष्टुप और जगती ये तीन छन्द त्र्यम्बक कहे गये हैं।।४।।

सूतजी ने कहा कि वनस्पति सहित अम्बिकाओं की योनियां मैंने बतायीं। उन योनियों के द्वारा एकत्वभूत (एक हुई) तीनों प्रकार से अपने पराक्रम से तीनों एक ओर शक्तिशाली बन जाती हैं।।५।। उसके बाद पुरोडाश तीन साधन वाला पुरोडाश त्रिकपाल कहा गया। वह पुरोडाश त्र्यम्बक (तीन अम्बिकाओं) वाला था; इसलिये वह त्र्यम्बक कहा गया।।६।। पूर्व में जो पाँच महाभुज (प्रजापाल) कहे गये, जो रुद्र, धर्म, मन, रुचि और आकृति है। अतः रुद्र से औषधियां पैदा हुईं, फिर धर्म को सब प्रजायें धारण करती हैं, इसलिये वह धर्म कहा गया है तथा मन ज्ञान को कराने वाला होता है। आकृति प्रजा का सुन्दर रुचि वाला रूप है तथा रुचि को श्रद्धा करने वाला कहा गया है।।७।। इस प्रकार ये सब महाभुज (प्रजापाल) प्रजाओं की स्थिति के कारण है अर्थात् इन पाँचों से प्रजा स्थित रहती हैं; क्योंकि

न व्यवर्द्धंत ताः सृष्टाः प्रजाः केनापि हेतुना। ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्॥९॥
अथात्मनि समद्राक्षीत्तमोमात्रां तु चारिणीम्। रजः सत्त्वं परित्यज्य वर्तमानां स्वकर्मतः॥१०॥
ततः स तेन दुःखेन शुचं चक्रे जगत्पतिः। तमश्च व्यनुदत्पश्चाद् रजसा तु समावृणोत्॥११॥
तत्तमः प्रतिनुत्तं वै मिथुनं संप्रसेयत। अधर्माचरणात्तस्य हिंसा शोको व्यजायत॥१२॥
ततस्तस्मिन्समुद्भूते मिथुने वरणात्मके। ततः स भगवानासीत् प्रीतश्चैतं हि शिश्रिये॥१३॥
एवं प्रीतात्मनस्तस्य स्वदेहार्द्धाद्विनिःसृता। नारी परमकल्यणी सर्वभूतमनोहरा॥१४॥

सा हि कामात्मना सृष्टा प्रकृते सा स्वरूपिणी।
शतरूपेति सो प्रोक्ता सा प्राक्तैव पुनः पुनः॥१५॥

ततः प्रजा समुद्भूता यथाप्रोक्ता मयापुरा। प्रक्रियां तुभ्यं त्रेतामध्ये महात्मनः॥१६॥

यदा प्रजास्तु ताः सृष्टा न व्यवर्द्धंत धीमतः।
ततोऽन्यान्मानसन्पुत्रानात्मनः सदृशोऽसृजत्॥१७॥

भृग्वंगिरोमरीचींश्च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। दक्षमत्रिं वसिष्ठं च निर्ममे मानसान्सुतान्॥१८॥
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः। ब्रह्मा यतात्मकानां तु सर्वेषामात्मयोनिनाम्॥१९॥
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा धर्मं भूतसुखावहम्। प्रजापतिं रुचिं चैव पूर्वेषामेव पूर्वजौ॥२०॥

रुद्र औषधियों का रूप है। औषधियों से यज्ञ होता है। धर्म प्रजा को धारण करता है, मन से ज्ञान होता है। आकृति से प्रजा रूप पाती है और रुचि से उसे श्रद्धा प्राप्त होती है। अतः यह ब्रह्मा ने प्रजाओं की वृद्धि के लिए उत्पन्न किया था।।८।; परन्तु जब प्रजाओं की वृद्धि किसी कारण न हुई, तब उन प्रभु ब्रह्मा ने अर्थ का निश्चय प्राप्त करने वाली बुद्धि को उत्पन्न किया।।९।। इसके बाद जब ब्रह्मा ने अपने कर्म से आत्मा में रजोगुण और सत्त्वगुण को छोड़कर तमोगुण की मात्रा को विचरण करते हुए सम्यक् प्रकार से देखा, तब वे जगत्पति ब्रह्मा उस दुःख से शोक करने लगे और तमोगुण विशेष रूप से नहीं प्रकट हुआ और वह रजोगुण द्वारा सम्यक् प्रकार से आवृत कर दिया गया।।१०-११।। दबे हुये (आवृत हुए) उस तमोगुण ने निश्चित रूप से मैथुन (स्त्री-पुरुष) को उत्पन्न कर दिया। उसके अधर्माचरण से हिंसा और शोक उत्पन्न हो गये।।१२।।

जाहिर है कि हिंसा और शोक मैथुन के कारण ही होते हैं। यह सर्वविदित है। उसके बाद उस एक-दूसरे को वरण करने वाले मिथुन (स्त्री-पुरुष के जोड़े) के उत्पन्न होने पर वे भगवान् प्रेमपूर्वक शयन करने लगे।।१३।। तब प्रसन्न आत्मा वाले उन जगत्पति के अपने आधे शरीर से सब प्राणियों के मन को हर लेने वाली परमकल्याणी नारी निःसृत हो गयी।।१४।। वह नारी काम की आत्मा के द्वारा उत्पन्न की गयी, इसलिए वह स्वभावतः बहुत सुन्दर रूप वाली थी। वह अपने सुन्दर रूप के कारण शतरूपा कही गयी तथा बार बार शतरूपा कही गयी।।१५।। त्रेता के मध्य में उससे प्रजायें पैदा हुई थीं, जैसा कि मैंने पहले तुमसे कहा था कि यह पूर्व प्रक्रिया में हुआ था। जब बुद्धिमान् ब्रह्मा की प्रजा फिर भी नहीं वृद्धि को प्राप्त हुई, तब उसके बाद ब्रह्मा जी ने अपने ही समान अन्य मानसपुत्रों को उत्पन्न किया।।१७।। तब उन्होंने भृगु, अंगिरा, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ नौ मानस पुत्रों को पैदा किया।।१८।। पुराणों में ये नौ ही ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मा ही इन सब संयत आत्मा आत्मयोनि वालों के स्रष्टा थे।।१९।। उसके बाद प्राणियों के लिए सुख प्रदान करने वाले धर्म की सर्जना की और पूर्वों के ही पूर्वज

बुद्धितः ससृजे धर्मं सर्वभूतसुखावहम्। मनसस्तु रुचिर्नाम जज्ञे योऽव्यक्तजन्मना॥२१॥
भृगुस्तु हृदयाज्ज्ञे ऋषिः सलिलयोनिनः। प्राणाद्दक्षं सृजन्ब्रह्मा चक्षुभ्यो तु मरीचिनम्॥२२॥
अभिमानात्मकं निर्ममे नीललोहितम्। शिरसोंगिरसं चैव श्रोत्रादत्रिं तथैव च॥२३॥
पुलस्त्यं च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलहं पुनः। समानजो वसिष्ठश्च ह्यपानान्निर्ममे क्रतुम्॥२४॥
इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः प्रजादौ द्वादश स्मृताः। धर्मस्तेषां प्रथमजो देवतानां स्मृतस्तु वै॥२५॥
भृग्वादयस्तु ये सृष्टास्ते वै ब्रह्मर्षयः स्मृताः। गृहमेधिपुराणास्ते धर्मस्तैः प्राक् प्रवर्त्तितः॥२६॥
द्वादशैते प्रसूयंते प्रजाः कल्पे पुनः पुनः। तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विताः॥२७॥
क्रियावंतः प्रजावंतो महर्षिभिरलंकृताः। यदा तैरिह सृष्टैस्तु धर्म्माद्यैश्च महर्षिभिः॥२८॥
सृज्यमानाः प्रजाश्चैव न व्यवर्द्धंत धीमतः। तमोमात्रावृतः सोऽभूच्छोकप्रतिहतश्च वै॥२९॥

यथाऽऽवृतः स वै ब्रह्मा तमोमात्रा तु सा पुनः।
पुत्राणां च तमोमात्रा अपरा निःसृताऽभवत्॥३०॥

प्रतिस्रोतात्मकोऽधर्मो हिंसा चैवाशुभात्मिका। ततःप्रतिहते तस्य प्रतीते वरणात्मके॥३१॥
स्वां तनुं स तदा ब्रह्मा समपोहत भास्वराम्। द्विधा कृत्वा स्वकं देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्॥३२॥
अर्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत। प्रकृतिर्भूतधात्री सा कामाद्वै सृजतः प्रभोः॥३३॥

प्रजापति और रुचि को उत्पन्न किया।।२०।। अपनी बुद्धि से ब्रह्मा ने सब प्राणियों को सुख देने वाले धर्म को उत्पन्न किया और अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा ने मन से रुचि को उत्पन्न किया।।२१।। उन जलयोनि वाले ब्रह्मा के हृदय से ऋषि पैदा हुए थे। उन ब्रह्मा ने प्राण से दक्ष को और नेत्रों से मरीचि को उत्पन्न किया।।२२।। उन्होंने अभिमानात्मक नीललोहित रुद्र को उत्पन्न किया। शिर से अंगिरा और कान से अत्रि को उत्पन्न किया।।२३।। तथा पुलस्त्य को उदान वायु (डकार) से और फिर व्यान वायु से पुलह को, समानवायु से वशिष्ठ और अपान वायु से क्रतु को उत्पन्न किया।।२४।।

इस प्रकार से ब्रह्मा के पुत्र प्रजा के आदि में बारह कहे गये।। ये बारह हैं—धर्म, प्रजापति, रुचि तथा नौ ऋषि = कुल बारह हुए। इनमें धर्म सबसे पहले उत्पन्न हुआ था तथा वह देवताओं में गिना गया।।२५।। भृगु आदि जो उत्पन्न किये गये, वे ब्रह्मर्षि कहे गये। वे सभी ऋषि प्राचीन गृहस्थ थे, उन ऋषियों ने प्रजा में धर्म को प्रवर्त किया।।२६।। ये उपर्युक्त १२ बार बार कल्प में प्रजाओं को उत्पन्न करते हैं। उनके वे बारह वंश दिव्य और देवगुणों से युक्त हैं। वे क्रियावान् हैं, गृहस्थों के सभी कार्यों को करते हैं तथा प्रजावान् (सन्तानों) हैं और महर्षियों के द्वारा अलंकृत हैं। जब उन सृष्ट बारहों धर्म आदि महर्षियों के द्वारा सृष्ट ब्रह्मा की प्रजा की वृद्धि नहीं हुई, तब तमोगुण की मात्रा से आवृत ब्रह्मा जी शोक से प्रतिहत हो गये।।२७-२९।।

जैसे ही वे ब्रह्मा तप से आवृत हुये तो वह तमोमात्रा नामक दूसरी पुत्रों की उत्पत्ति हो गयी अर्थात् उस तमस् मात्रा से अन्य पुत्रों की उत्पत्ति हो गयी।।३०।। उस समय अधर्म प्रतिश्रोतात्मक हो गया और हिंसा अशुभात्मिका हो गयी तथा जब अधर्म और हिंसा सर्वत्र फैल गये, तब उसकी प्रतीति होने पर उन ब्रह्मा ने अपने शरीर को कान्तियुक्त बना दिया और अपने शरीर को दो भागों में बाँटकर आधे शरीर से पुरुष आधे से नारी हो गये और वह नारी शतरूपा हो गयीं। वह पञ्चभूतों को धारण करने वाली सृष्टि करने वाले ब्रह्मा की प्रकृति है।।३१-३३।।

सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य सुस्थिता।
ब्रह्मणः स तनुः पूर्वा दिवमावृत्य तिष्ठतः॥३४॥
या त्वर्द्धा सृज्यते नारी शतरूपा व्यजायत। सा देवी नियुतं तप्त्वा तपः परम दुश्चरम्॥३५॥
भर्त्तारं दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत। स वै स्वायंभुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते॥३६॥
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वंतरमिहोच्यते। लब्ध्वा तु पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम्॥३७॥
तया स रमते सार्द्धं तस्मात्सा रतिरुच्यते। प्रथमः संप्रयोगः स कल्पादौ समवर्त्तत॥३८॥
विराजमसृजद्ब्रह्मा सोऽभवत्पुरुषो विराट्। सम्राट् सशतरूपस्तु वैराजस्तु मनुः स्मृतः॥३९॥
स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषो मनुः। वैराजात्पुरुषाद्वीरौ शतरूपा व्यजायत॥४०॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ। कन्ये द्वे सुमहाभागे याभ्यां जाता इमाः प्रजाः॥४१॥
देवी नाम्ना तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते शुभे। स्वायंभुवः प्रसूतिं तु दक्षाय व्यसृजत्प्रभुः॥४२॥
रुचेः प्रजापतेश्चैव आकूतिं प्रत्यपादयत्। आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम्॥४३॥
यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमलौ तौ बभूवतुः। यज्ञस्य दक्षिणायां च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे॥४४॥
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेंतरे। यमस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामस्तु ते स्मृताः॥४५॥

जिसको उन्होंने काम (इच्छा) से पैदा किया। काम से पैदा होने के कारण ही यह प्रकृति काम का अनुसरण करती है। उस शतरूपा ने अपनी महिमा से आकाश और पृथ्वी को व्याप्त कर दिया। ब्रह्मा का वह शरीर जो पहले स्वर्ग को आवृत कर स्थित था।।३४।। जो वह नारी ब्रह्मा जी के आधे शरीर से पैदा होती है, वह शतरूपा विशिष्ट रूप वाली हो गयी। उस शतरूपा देवी ने दस लाख वर्ष तक घोर तप किया।।३५।। तब उस दुश्चर तप से उन शतरूपा ने दीप्तयश वाले पति को प्राप्त किया। वही निश्चत ही सबसे पहले पुरुष स्वायम्भुव मनु कहे जाते हैं।।३६।। उन मनु का ७१ युग के काल परिमाण का काल मन्वन्तर कहा जाता है। स्वायम्भुव मनु उस अयोनिजा पत्नी शतरूपा को प्राप्त कर उसके साथ रमण करने लगे। अतः रमण करने के कारण वह रति कही जाती है। रति शब्द रम् धातु में क्तिन् प्रत्यय से बना है, जिसका अर्थ ही 'रम्यते यया सह सा रतिः' अर्थात् जिसके साथ रमण किया जाय वह रति कहलाती है। कल्प के आदि पुरुष और स्त्री का वही पहला सम्प्रयोग (सम्भोग) था।।३७-३८।।

तब उन स्वाम्भुव (मनु) ब्रह्मा ने शत रूपा से विराज की सृष्टि की वह विराज ही विराट् पुरुष हुए। वे ही विराट् शतरूप और वैराज मनु कहे गये अर्थात् शतरूपा से उत्पन्न होने के कारण वे शतरूप और वैराज मनु कहे गये अर्थात् शतरूपा से उत्पन्न होने के कारण वे शतरूप तथा विराज से उत्पन्न होने के कारण वैराज कहे गये।।३९।। उन वैराज मनु ने प्रजासर्ग की सर्जना की। वैराज पुरुष से शतरूपा ने प्रियव्रत और उत्तानपाद दो वीर पुत्रों को और दो महाभाग कन्याओं को उत्पन्न किया, जिनसे ये प्रजायें पैदा हुईं।।४०-४१।। वे शुभ कन्याएँ आकूति और प्रसूति नाम की थीं। प्रभु स्वायम्भुव ने प्रसूति को दक्ष के लिये सौंप दिया।।४२।। रुचि प्रजापति को आकूति नाम की कन्या दे दी। ब्रह्मा के मानसपुत्र रुचि ने आकूत शुभ मिथुन (जोड़े) को उत्पन्न किया, जिनके नाम यज्ञ और दक्षिण हुए। यज्ञ से दक्षिणा में बारह पुत्र पैदा हुए।।४३-४४।। स्वायम्भुव मन्वन्तर में उन बारह पुत्रों का नाम याम पड़ा। यम का अर्थ यज्ञ है। अतः यम कहो या यज्ञ कहो यम (यज्ञ) के पुत्र होने के कारण वे याम कहे गये। यमस्यापत्यम् यामः

अजिताश्चैव शुक्राश्च द्वौ गणौ ब्रह्मणः स्मृतौ।
यामाः पूर्वं परिक्रांता येषां संज्ञा दिवौकसः॥४६॥
स्वायंभुव सुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः। तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः॥४७॥
सर्वास्ताश्च महाभागाः सर्वाः कमललोचनाः।
योगपत्न्यश्च ताः सर्वाः सर्वास्ता योगमातरः॥४८॥
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वा विश्वस्य मातरः।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा तथा क्रिया॥४९॥
बुद्धिर्लज्जा वसुः शान्तिः सिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदश।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः॥५०॥
द्वाराण्येतानि चैवास्य विहितानि स्वयंभुवा।
याऽन्याः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः॥५१॥
सती ख्यातिश्च संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा॥५२॥
तास्तदा प्रज्यगृह्णंत पुनरन्ये महर्षयः। रुद्रो भृगुर्मरीचश्चि अंगिराः पुलहः क्रतुः॥५३॥
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च।
सतीं भवाय प्रायच्छत्ख्यातिं च भृगवे तथा॥५४॥
मरीचये तु संभूतिं स्मृतिमंगिरसे ददौ। प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च॥५५॥

(यम की सन्तान सो याम) इस व्युत्पत्ति के अनुसार वे ब्रह्मा के अजित और शुक्र नामक दो गण कहे गये; किन्तु वे पहले पैदा हुए थे। अतः वे देवों के याम कहे गये[१]।।४५-४६।।

उस स्वायम्भुव सुता प्रसूति में प्रभु दक्ष प्रजापति ने संसार की मातारूपी चौबीस कन्याओं को उत्पन्न किया।।४७।। वे सभी कन्यायें अत्यन्त भाग्यवती और कमलतुल्य नेत्रों वाली थीं। वे सभी योग पत्नियां और सब योगमातायें थीं।।४८।। और सब ब्रह्मवादिनी और विश्व का मातायें (पैदा करने वाली) थीं। उनके नाम हैं—१. श्रद्धा, २. लक्ष्मी, ३. धृति, ४. तुष्टि, ५. पुष्टि, ६. मेधा, ७. क्रिया, ८. बुद्धि, ९. लज्जा, १०. वसु, ११. शान्ति, १२. सिद्धि, १३. कीर्ति ये तेरह हुईं। इन सब दक्ष से उत्पन्न कन्याओं को प्रमुधर्म ने पत्नी के रूप में प्रतिग्रहण किया।।४९-५०।। स्वायम्भुव ब्रह्मा ने इन्हें धर्म द्वारों के रूप में विशेष रूप से धारण किया। इनकी शेष अन्य छोटी बहिनें जो ग्यारह सुन्दर नेत्रों वाली—१. सती, २. ख्याति, ३. सम्भूति, ४. स्मृति, ५. प्रीति, ६. क्षमा, ७. सन्नति, ८. अनुसूया, ९. ऊर्जा, १०. स्वाहा तथा ११. स्वधा थीं। उनको अन्य महर्षियों, १. रुद्र, २. भृगु, ३. मरीचि, ४. अंगिरा, ५. पुलह, ६. क्रतु, ७. पुलस्त्य, ८. अत्रि, ९. वशिष्ठ, १०. पितर, ११ अग्नि ने क्रमशः प्रतिग्रहण किया (पत्नी बनाया) सती, भव (शिव) को और ख्याति को भृगु ऋषि के लिये दान कर दिया।।५१-५४।। तथा संभूति को मरीचि के लिये, स्मृति को अंगिरा के लिये प्रदान कर दिया है। प्रीति को पुलस्त्य के लिये और क्षमा

१. वायुपुराण मन्वन्तर वर्णन अध्याय १० में शुक्र के स्थान पर शूक शब्द का पाठ है।

क्रतवे संततिं नाम अनसूयां तथात्रये। ऊर्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहां चैवाग्नये ददौ॥५६॥
स्वधां चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानि मे श्रुणु।
एताः सर्वा महाभागाः प्रजास्त्वनुसृताः स्थिताः॥५७॥
मन्वंतरेषु सर्वेषु यावदाभूतसंप्लवम्। श्रद्धा कामं प्रजज्ञेऽथ दर्पो लमी सुतः स्मृतः॥५८॥
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः संतोष उच्यते।
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्राः श्रुतस्तथा॥५९॥
क्रियायास्तनयौ प्रोक्तौ दमश्च शम एव च। बुद्धेर्बोधः सुतश्चापि अप्रमादश्च तावुभौ॥६०॥
लज्जाया विनयः पुत्रो व्यवसायो वसो सुतः।
क्षेमः शान्तेः सुतश्चापि सुखं सिद्धेर्व्यजायत॥६१॥
यशः कीर्तेः सुतश्चापि इत्येते धर्मसूनवः। कामस्य तु सुतो हर्षो देव्यां सिद्ध्यां व्यजायत॥६२॥
इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य सात्त्विकः। जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृतिं चानृतं च ते॥६३॥
निकृत्यनृतयोर्जज्ञे भयं नरक एव च। माया च वेदना चापि मिथुनद्वयमेतयोः॥६४॥
भयाज्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्। वेदनायां ततश्चापि जज्ञे दुःखं तु रौरवात्॥६५॥
मृत्योर्व्याधिर्जराशोकक्रोधासूया विजज्ञिरे। दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः॥६६॥
तेषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ह्यनिधनाः स्मृताः। इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः॥६७॥

को पुलह के लिये प्रदान किया।।५५।। संतति को क्रतु के लिये, अनुसूया को अत्रि के लिये, ऊर्जा को वशिष्ठ के लिये और स्वाहा को अग्नि के लिये और स्वधा को पितर के लिये प्रदान कर दिया। उनकी सन्तानों को भी मुझसे सुनो। ये सभी महाभागा जब तक प्रलय होती है, तब तक सभी मन्वन्तरों प्रजा को पैदा करती हुई स्थित रहती हैं। श्रद्धा ने काम को पैदा किया। इसके बाद लक्ष्मी के पुत्र को दर्प कहा गया।।५६-५८।। धृति से नियम पुत्र तथा तुष्टि का पुत्र सन्तोष कहा जाता है। पुष्टि से लाभ और मेधा का पुत्र श्रुत कहा गया।।५९।। और क्रिया को दो पुत्र हुए, जो दम और शम कहे गये और बुद्धि के बोध और अप्रमाद दो पुत्र हुए।।६०।। लज्जा का पुत्र विनय, वसु का पुत्र व्यवसाय, शान्ति का पुत्र क्षेम, तथा सिद्धि का पुत्र सुख उत्पन्न हुआ तथा कीर्ति का पुत्र यश हुआ। इस प्रकार ये धर्म के पुत्र हुए कामपुत्र तो हर्ष देवी सिद्धि से उत्पन्न हुआ।। इस प्रकार यह धर्म के सुख रूप फल का सात्त्विक सर्ग है। अर्थात् यह धर्म के परिणाम हैं। यहाँ धर्म से इन सबकी प्राप्ति होती है, यह भी यहाँ ध्वनित हो रहा है।।६१-६२½।। अब अधर्म के सुत अर्थात् परिणाम को बताते हैं। अधर्म की हिंसा के गर्भ से निकृति नाम की कन्या और अनृत नाम का पुत्र पैदा हुआ। निकृति और अनृत ने भय और नरक नामक दो पुत्रों एवं माया और वेदना नामक दो पुत्रियों को जन्म दिया।।६२½-६४।। भय से माया ने प्राणियों को नष्ट करने वाले मृत्यु को उत्पन्न किया। उसके बाद रौरव अर्थात् नरक से वेदना में दुःख नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई।।६५।। तथा मृत्यु से वेदना में व्याधि, जरा, शोक, क्रोध और असूया चार पैदा हुए। ये सब सन्ततियाँ दुःखमय और अधर्म के लक्षणों वाली हैं। इससे यह भी कि अधर्म करने वाले को इन उपर्युक्त सभी की प्राप्ति होती है।६६।। उन सबकी पत्नियां अथवा पुत्र अनिधन (कभी न मरने वाले) हैं। इस प्रकार यह तामस सर्ग धर्म का नियामक (धर्म को रोकने वाला) होकर पैदा हुआ है।।६७।।

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः।
सोऽभिध्याय सतीं भार्यां निर्ममे चात्मसंभवान्॥६८॥

नाधिकान्न च हीनास्तान्मानसानात्मना समान्। सहस्रं च सहस्राणामसृजत्कृत्तिवाससः॥६९॥
तुल्यानेवात्मना सर्वान् रूपतेजोबलश्रुतैः। पिंगलान्सनिषङ्गांश्च कपर्दी नीललोहितान्॥७०॥
विशिखान्हीनकेशांश्च दृष्टिघ्नांस्तान्कपालिनः। महारूपान्विरूपांश्च विश्वरूपांश्च रूपिणः॥७१॥
रथिनो वर्मिणश्चैव धन्विनोऽथ वरूथिनः। सहस्रशतबाहूंश्च दिव्यभौमान्तरिक्षगान्॥७२॥
अतिमेढ्रोग्रकायांश्च शितिकंठोग्रमन्युकान्। सनिषङ्गतनुत्रांश्च धन्विनो ह्यसिचर्मिणः॥७४॥

आसीनान् धावतश्चापि जृंभतश्चाप्यधिष्ठितान्।
अधीयानाश्च जपतो युंजतो ध्यायतस्तथा॥७५॥

ज्वलतो वर्षतश्चैव द्योतमानान्प्रधूपितान्। बुद्धान्बुद्धतमांश्चैव ब्रह्मस्वान् ब्रह्मदर्शिनः॥७६॥
नीलग्रीवान्सहस्राक्षान् सर्वांश्चैव क्षमाचरान्। अदृश्यान्सर्वभूतानां महायोगान्महौजसः॥७७॥
रुदतो द्रवतश्चैव एवं युक्तान्सहस्रशः। अयातयामान् सृजतं रुद्रमेतान्सुरोत्तमान्॥७८॥

दृष्ट्वा ब्रह्माऽब्रवीदेनं मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः।
न स्रष्टव्याऽत्मनस्तुल्या प्रजा नैवाधिका तथा॥७९॥

अन्याः सृजस्व भद्रं ते प्रजास्त्वं मृत्युसंयुताः। नारभंते हि कर्माणि प्रजा विगतमृत्यवः॥८०॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनं नाहं मृत्युजरान्विताः। प्रजाः स्रक्ष्यामि भद्रं ते स्थितोऽहं त्वं सृज प्रभो॥८१॥
एते ये वै मया सृष्टा विरूपा नीललोहिताः। सहस्रं हि सहस्राणामात्मनो मम निःसृताः॥८२॥

ब्रह्मा ने नीललोहित (शिव) को प्रजा की सृष्टि करने का आदेश दिया, तब उन्होंने अपनी पत्नी सती का ध्यान करके स्वयं से अधिक और न कम; परन्तु अपने ही समान अपने हजारों हजार पुत्रों को पैदा किया।।६८-६९।। वे सभी शिवपुत्र रूप, तेज और बल में शिव के ही तुल्य थे। उन सब रूप तेज बल में तुल्य पिङ्गल वर्णवाले, तर्कश धारण करने वाले, जटाधारी, नीललोहित, विना शिखाओं वाले, हीनकेश, दृष्टिहीन, कपालधारी, महारूप और विश्वरूप वाले, रथी, कवचधारी, धनुषधारी, वरुथी (कवचधारी) सौ और हजार भुजाओं वाले, स्वर्ग पृथ्वी और अन्तरिक्ष में जाने वाले मोटे शिरों वाले, नष्ट दाँतों वाले, तीन तीन आँखों वाले, अन्नभोजी, मांसभोजी, घृतपायी, सोमपायी, अतिमेढ़ (अति मोटे) भयंकर शरीर वाले, शितिकंठ, उग्रक्रोधी, तर्कश शरीर वाले, धन्वी (धनुष धारण करने वाले), असि और चर्मधारी, आसीन, धावमान, जम्हाई लेने वाले, अधिष्ठित, अध्ययनशील, जप करते हुए, लगे हुए, ध्यान करते हुए, जलते हुए, वर्षते हुए, द्योतमान् (चमकते हुए), प्रकृष्ट रूप से धूपि (तापयुक्त) बुद्ध, बुद्धतम, ब्राह्म में लीन, ब्रह्मदर्शी, नीली ग्रीवा वाले, हजार आँखों वाले, क्षमाचर, कभी कभी अदृश्य हो जाने वाले, सर्वभूत, महायोगी, महापराक्रमी, कभी रोते हुए, द्रवित होते हुए, ऐसे हजारों उत्पन्न सुरोत्तमों को देखकर उनको उत्पन्न करने वाले शिव को कहा कि आप ऐसी प्रजा मत पैदा करें, न तो आप अपने समान, प्रजा पैदा करें न अपने से अधिक करें।।७०-७९।। आप मृत्यु से युक्त अन्य प्रजाओं की उत्पत्ति करें; क्योंकि मृत्युरहित प्रजायें कर्मों को आरम्भ नहीं करतीं।।८०।। इस प्रकार जब ब्रह्मा जी ने कहा तो रुद्र (शिव) ने कहा कि आपका कल्याण हो, मैं मृत्यु और वृद्धावस्था से युक्त प्रजाओं की सृष्टि नहीं करूँगा। प्रभो ऐसी सृष्टि आप ही कीजिये।।८१।। ये सब जितने भी मैंने विरूप और नीले एवं लाल वर्ण वाले हजारों हजार पैदा किये हैं, वे सब मेरी अपनी आत्मा से निःसृत हैं।।८२।।

एते देवा भविष्यंति रुद्रा नाम नाम महाबलाः।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च रुद्राण्यस्ताः परिश्रुताः॥८३॥
शतरुद्रे समाम्नाता भविष्यंतीह भविष्यंतीह यज्ञियाः।
यज्ञभाजो भविष्यन्ति सर्वे देवगणैः सह॥८४॥
मन्वंतरेषु ये देवा भविष्यंतीह छंदजाः। तैः सार्द्धमिज्यमानास्ते स्थास्यंतीहायुगक्षयात्॥८५॥
एवमुक्तस्ततो ब्रह्मा महादेवेन स प्रभुः। प्रत्युवाच तथा भीमं हृष्यमाणः प्रजापतिः॥८६॥
एवं भवतु भद्रं ते यथा ते व्याहृतं प्रभो। ब्रह्मणा समनुज्ञाते ततः सर्वमभूत्किल॥८७॥
ततः प्रभृति देवः स न प्रासूयत वै प्रजाः। ऊर्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम्॥८८॥
यस्मात्प्रोक्तं स्थितोऽस्मीति तस्मात्स्थाणुर्बुधैः स्मृतः।
ज्ञानं तपश्च सत्यं च ह्यैश्वर्यं धर्म एव च॥८९॥
वैराग्यमात्मसंबोधः कृत्स्नान्येतानि शंकरे। सर्वान्देवानृषींश्चैव समेतानसुरैः सह॥९०॥
अत्येति तेजसा देवो महादेवस्ततः स्मृतः। अत्येति देवा नैश्वर्याद्बलेन च महासुरान्॥९१॥
ज्ञानेन च मुनीन्सर्वान्योगाद्भूतानि सर्वशः। एवमेव महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः॥
प्रजामनुद्यमां सृष्ट्वा सर्गादुपरराम ह॥९२॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे रुद्रप्रसववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

ये सभी रुद्र नाम के महाबली देवता होंगे और पृथिवी और अन्तरिक्ष में वे रुद्र ही कहे जायेंगे।।८३।। इस लोक में शतरुद्र नाम में यज्ञिय होंगे और सब देवगणों के साथ यज्ञ का भोग करेंगे।।८४।। यहाँ इस संसार में मन्वन्तरों में जो छन्द से उत्पन्न देवता होंगे, उनके साथ यज्ञकरते हुए महाप्रलय पर्यन्त स्थित रहेंगे।।८५।। इस प्रकार महादेव रुद्र के कहने पर वे प्रसन्न हुए प्रभु प्रजापति ब्रह्मा उन भयंकर रूप वाले रुद्र से बोले।।८६।। हे प्रभो! रुद्र! आपका कल्याण हो, आपने जो किया है, वह सर्वथा उचित ही है।।८७।।

उसके बाद उस समय से उन रुद्र ने वैसी प्रजा की सर्जना नहीं की, उसके बाद वे प्रलयपर्यन्त स्थाणु और ऊर्ध्वरेता बनकर रहे।।८८।। जिससे उन्होंने यह कहा था कि मैं अब स्थित हूँ अर्थात् ठहर गया हूँ। उसी कारणसे वे विद्वानों द्वारा स्थाणु कहे गये। ज्ञान, तप, सत्य ऐश्वर्य और धर्म, वैराग्य तथा आत्मसम्बोध ये दोष गुण शंकर में सदा वर्तमान रहते हैं। सब देवताओं, ऋषियों और समस्त असुरों से भी वे अत्यन्त तेज से युक्त है; इसलिए उनका नाम महादेव हुआ। वे अपने ऐश्वर्य के कारण बल से महान् देवताओं का तथा ज्ञान से सब मुनियों और योग से सब भूतों का अतिक्रमण करते हैं। इसलिए वे सब देवों द्वारा नमस्कृत महादेव कहे गये हैं। इस प्रकार अनुद्यम अकर्मण्य (अपरिवर्तनीय) प्रजा की सृष्टि कर वे रुद्र सृष्टि कार्य से विरत हो गये।।८९-९२।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद नवम अध्याय रुद्र प्रसव वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

महादेव विभूतिवर्णनं नाम

दशमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच

अस्मिन्कल्पे त्वया नोक्तः प्रादुर्भावो महात्मनः। महादेवस्य रुद्रस्य साधकैर्ऋषिभिः सह॥१॥

सूत उवाच

उत्पत्तिरादिसर्गस्य मया प्रोक्ता समासतः। विस्तरेण प्रक्ष्यामि नामानि तनुभिः सह॥२॥
पत्नीषु जनयामास महादेवः सुतान्बहून्। कल्पेष्वन्येष्वतीतेषु ह्यस्मिन्कल्पे तु ताञ्शृणु॥३॥
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतमध्यायत प्रभुः। प्रादुरासीत्ततोऽङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः॥४॥
रुरोद सुस्वरं घोरं निर्दहन्निव तेजसा। दृष्ट्वा रुदंतं सहसा कुमारं नीललोहितम्॥५॥
किं रोदिषि कुमारेति ब्रह्मा तं प्रत्यभाषत। सोऽब्रवीद्देहि मे नाम प्रथमं त्वं पितामह॥६॥
रुद्रस्त्वं देव नामाऽसि स इत्युक्तोऽरुदत्पनुः। किं रोदिषि कुमारेति ब्रह्मा तं प्रत्यभाषत॥७॥
नाम देहि द्वितीय मे इत्युवाच स्वयंभुवम्। भवस्त्वं देवनाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः॥८॥
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदंतं प्रत्युवाच ह। तृतीयं देहि मे नाम इत्युक्तः सोऽब्रवीत्पुनः॥९॥
शर्वस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तःसोऽरुदत्पनुः। किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदंतं पुनरब्रवीत्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-१०

महादेव विभूति वर्णन

ऋषियों ने सूत जी से कहा कि हे महामुनि इस कल्प में आपने महात्मा महादेव रुद्र का साधक ऋषियों के साथ प्रादुर्भाव नहीं बताया।।१।। तब सूत जी बोले—कि मैंने आदि सर्ग की उत्पत्ति संक्षप से बतायी है। अब आगे शरीरों के साथ उनके नाम विस्तार से कहूँगा।।२।। बीते हुए अन्य कल्पों में महादेव ने अपनी पत्नियों में अनेकों पुत्रों को पैदा किया। इस कल्प में जिनको पैदा किया, उनको सुनिये।।३।। कल्प के आदि में प्रभु ब्रह्मा ने अपने समान पुत्र का ध्यान किया तो फिर उसके बाद उनकी गोद में कुमार नीललोहित उत्पन्न हो गया।।४।। वह जलते हुए तेज के समान घोर सुन्दर स्वर में रोने लगा। नीललोहित कुमार को अचानक रोता हुआ देखकर ब्रह्मा जी ने कहा।।५।। कि हे कुमार तुम क्यों रो रहे हो? इस पर कुमार ने कहा कि हे पितामह मुझे नाम दीजिये।।६।। तब ब्रह्मा जी ने (यथानाम तथागुण) वाला नाम देते हुए कहा कि तुम्हारा रुद्र देव नाम है, ऐसा जब कहा, तव वह पुनः रोने लगा तो ब्रह्माजी ने फिर पूंछा कि तुम क्यों रो रहे हो?।।७।। तब उस कुमार ने ब्रह्मा जी से कहा कि मुझे दूसरा नाम दीजिये। तब ब्रह्मा जी ने रोते हुए उस कुमार से कहा कि तुम्हारा भव देव नाम है।।८।। उसके बाद वह कुमार फिर रोया तो ब्रह्मा जी ने कहा कि क्यों रोते हो? तब कुमार ने कहा कि मुझे तीसरा नाम दीजिये।।९।। तब ब्रह्मा

चतुर्थं देहि मे नाम इत्युक्तः सोऽब्रवीत्पुनः। ईशानो देवनाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः॥११॥
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा पुनरब्रवीत्। पंचमं नाम देहीति प्रत्युवाच स्वयंभुवम्॥१२॥
पशूनां त्वं पतिर्देव इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः। किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदंतं पुनरब्रवीत्॥१३॥
षष्ठं वै देहि मे नाम इत्युक्तः प्रत्युवाच तम्।
भीमस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः॥१४॥
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदंतं पुनरब्रवीत्। सप्तमं देहि मे नाम इत्युक्तः प्रत्युवाच ह॥१५॥
उग्रस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः। तं रुदंतं कुमारं तु मारोदीरिति सोऽब्रवीत्॥१६॥
सोऽब्रवीदष्टमं नाम देहि ते त्वं विभो पुनः। त्वं महादेवनामासि इत्युक्तो विरराम ह॥१७॥
लब्ध्वा नामानि चैतानि ब्रह्माणं नील लोहितः।
प्रोवाच नाम्नामेतेषां स्थानानि प्रदिशेति ह॥१८॥
ततो विसृष्टास्तनव एषां नाम्ना स्वयंभुवा। सूर्यो जलं मही वायुर्वह्निराकाशमेव च॥१९॥
दीक्षिता ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येवं तेऽष्टधा तनुः। तेषु पूज्यश्च वंद्यश्च नमस्कार्यश्च यत्नतः॥२०॥
प्रोवाच तं पुनर्ब्रह्मा कुमारं नीललोहितम्। यदुक्तं ते मया पूर्वं नाम रुद्रेति वै विभो॥२१॥
तस्यादित्यतनुर्नाम्नः प्रथमा प्रथमस्य ते। इत्युक्ते तस्य यत्तेजश्चक्षुस्त्वासीत्प्रकाशकम्॥२२॥
विवेश तत्तदाऽदित्यं तस्माद्रुद्रो ह्यसौ स्मृतः। उद्यंतमस्तं यंतं च वर्जयेद्दर्शने रविम्॥२३॥

जी ने कहा कि तुम शर्वदेव नाम से हो। ऐसा कहने पर वह फिर रोने लगा, क्यों रोते हो? यह ब्रह्मा जी रोते हुए कुमार से बोले।।१०।। तब उसने फिर कहा कि मुझे चौथा नाम दीजिये, तब ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम नाम से ईशान देव हो, ऐसा कहने पर वह फिर रोने लगा।।११।। क्यों रोते हो? इस प्रकार ब्रह्मा फिर उस रोते हुए कुमार से बोले तब कुमार ने कहा मुझे पाँचवां नाम दीजिये।।१२।। इस प्रकार जब उसने स्वायम्भुव से कहा। तब ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम पशुओं के पति (पशुपति) हो, ऐसा कहने पर वह फिर रोने लगा, तब रोते हुए उससे ब्रह्मा बोले क्यों रोते हो?।।१३।। तब उसने उनको उत्तर दिया कि मेरा छठा नाम दीजिये, ऐसा कहने पर ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम भीम नाम से प्रसिद्ध हो, तब ऐसा कहने पर वह फिर रोने लगा।।१४।।

तब उस रोते हुए से ब्रह्मा जी ने पुनः कहा, क्यों रोते हो? तब उसने कहा कि मेरा सातवां नाम दीजिये।।१५।। तब ब्रह्मा जी ने उससे कहा कि तुम उग्रदेव नाम वाले हो। ऐसे कहने पर वह पुनः रोने लगा, तब उस रोते हुए कुमार से ब्रह्मा जी बोले कि कुमार मत रोओ।।१६।। तब उसने कहा कि हे विभो! मेरा आठवां नाम दीजिये। तब तुम महादेव नामक हो ऐसा कहकर ब्रह्मा जी रुक गये।।१७।। इन नामों को प्राप्त करके नीललोहित रुद्र ब्रह्मा जी से बोले कि इन नामों के स्थान बताइये।।१८।। उसके बाद स्वयम्भू ने उनके नाम से उनके शरीरों को विशेष रूप से रचा वे हैं—सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, दीक्षित, ब्राह्मण और चन्द्रमा। इस प्रकार ये आठ प्रकार के शरीर हैं। उनमें सबकी यत्न से पूजा वन्दना और नमन करना चाहिये।।१९-२०।। फिर ब्रह्मा ने उन नीललोहित से कहा कि मैंने जो पहले तुम्हारा प्रथम नाम रुद्र दिया है, उस प्रथम का प्रथम आदित्य तनु नाम वाला होगा।।२१-२१½।। ऐसा कहने पर उसका जो प्रकाश करने वाला आँखों का तेज था, वह उस आदित्य में प्रवेश कर गया, इसलिए वह रुद्र कहे गये। इसलिये उगते हुए, अस्त होते हुये और चलते हुए सूर्य को नहीं देखना

शश्वच्च जायते यस्माच्छश्वत्संतिष्ठते तु यत्।
तस्मात्सूर्यं न वीक्षेत आयुष्कामः शुचिः सदा॥२४॥

अतीतानागतं रुद्रं विप्रा ह्याप्याययंति यत्। उभे संध्ये ह्युपासीना गृणंतः सामऋग्यजुः॥२५॥
उद्यन्स तिष्ठते ऋक्षु मध्याह्ने च यजुःष्वथ। सामस्वथापराह्ने तु रुद्रः संविशति क्रमात्॥२६॥
तस्माद्भवेन्नाभ्युदितो बाह्यस्तमित एव च। न रुद्रम्प्रति मेहेत सर्वावस्थं कथंचन॥२७॥
एवं युक्तान् द्विजान् देवो रुद्रस्तान्न हिनस्ति वै। ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं नीललोहितम्॥२८॥
द्वितीयं नामधेयं ते मया प्रोक्तं भवेति यत्। एतस्यापो द्वितीया ते तनुर्नाम्ना भवत्विति॥२९॥
इत्युक्ते त्वथ तस्यासीच्छरीरस्थं रसात्मकम्। विवेश तत्तदा यत्तु तस्मादापो भवः स्मृतः॥३०॥
यस्माद्भवंति भूतानि ताभ्यस्ता भावयंति च। भावनाद्भावनाच्चैव भूतानामुच्यते भवः॥३१॥

तस्मान्मूत्रं पुरीषं च नाऽप्सु कुर्वीत कर्हिचित्।
न निष्ठीवेन्नाग्नावगाहेन्नैव गच्छेच्च मैथुनम्॥३२॥

चाहिये।।२१½-२३।। उसमें निरन्तर प्रतिक्रिया होती रहती है, जिसके कारण वह लगातार नित्य स्थित रहता है अर्थात् वह लगातार प्रतिक्रियाशील एवं नित्य स्थित है। उसी कारण से आयु की इच्छा करने वाले तथा पवित्र व्यक्ति को सूर्य नहीं देखना चाहिये[१]।।२४।।

उन अतीत और अनागत रुद्र को प्रातः और सायं दोनों सन्ध्याओं में सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्र को बोलते हुए उपासना करने वाले विप्र आगे बढ़ते हैं।।२५।। उदित होते हुए वे आदित्य (रुद्र) ऋग्वेद की ऋचाओं में स्थित रहते हैं। दिन के मध्यभाग में यजुर्वेद के मन्त्रों में स्थित रहते हैं और दोपहर बाद वे रुद्र क्रम से सामवेद के छन्दों में प्रवेश करते हैं।।२६।। उसी कारण से उन रुद्र भगवान् सूर्य के सामने अर्थात् सूर्योदय की स्थिति में सोना नहीं चाहिये और न उनके बाहर होना चाहिये और उनके सामने खड़ा होना चाहिये तथा किसी भी स्थिति में उन रुद्र के सामने खड़े होकर मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये।।२७।। इस प्रकार जो द्विजगण व्यवहार करते हैं, उनको वे रुद्र देवता (सूर्य) नहीं मारते हैं। इसके बाद ब्रह्मा ने उन देव नीललोहित (शिव) से कहा कि मैंने जो तुम्हारा नाम भव रखा है, इसका तुम्हारा दूसरा शरीर तनु अर्थात् जल नाम से होवे।।२८-२९।। इसके बाद ब्रह्मा जी के ऐसा कहने पर उनके शरीर में स्थित जो रस रूप जल था, वह जल में प्रवेश कर गया, तब जल भी भव हो गया। अतः जल भी शिवरूप है।।३०।। जिससे प्राणी पैदा होते हैं तथा उससे ही सभी प्राणी जीवित रहते हैं। भवन (पैदा होने) और (भावन) जीवित करने वाला होने के कारण जल को 'भव' कहा गया।।३१।। इसीलिए जल में कभी भी मलमूत्र त्याग नहीं करना चाहिये, न थूकना चाहिये, न नग्न होकर स्नान करना चाहिये और न मैथुन करना चाहिये।।३२।।

---

१. यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक रहस्य पर प्रकाश डाला गया है कि उगते हुए और अस्त होते हुएसूर्य को नहीं देखना चाहिये; क्योंकि उस समय उन सूर्य भगवान् में प्रतिक्रिया होती रहती है। वैसे प्रतिक्रिया तो सूर्य में हर समय होती है, ऐसा विज्ञान मानता है कि सूर्य में विस्फोट प्रतिपल होता रहता है। अतः किसी भी समय सूर्य को नहीं देखना चाहिये। यही उचित है; परन्तु यह पुराणकार प्रातः सायं को न देखना इसलिये कह रहे हैं कि उस समय प्रतिक्रिया स्पष्ट दिखायी देती है, जिससे आँखों पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है।

न चैताः परिचक्षीत वहंत्यो वा स्थिता अपि।
मेध्यामेध्यास्त्वपामेतास्तनवो मुनिभिः स्मृताः॥३३॥
विवर्णरसगंधाश्च वर्ज्या अल्पाश्च सर्वशः। अपां योनिः समुद्रस्तु तस्मात्तं कामयंति ताः॥३४॥
मध्याश्चैवामृता ह्यापो भवंति प्राप्य सागरम्। तस्मादपो न रुंधीत समुद्रं कामयंति ताः॥३५॥
न हिनस्ति भवो देवो य एवं ह्यप्सु वर्तते। ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा कुमारं नीललोहितम्॥३६॥
शर्वेति यत्तृतीयं ते नाम प्रोक्तं मया विभो। तस्य भूमिस्तृतीयस्य तनुर्नाम्ना भवत्वियम्॥३७॥
इत्युक्ते यत्स्थिरं तस्य शरीरे ह्यस्थिसंज्ञितम्। विवेश तत्तदा भूमिं यस्मात्सा शर्व उच्यते॥३८॥
तस्मात्कृष्टेन कुर्वीत पुरीषं मूत्रमेव च। न च्छायायां तथा मार्गे स्वच्छायायां न मेहयेत्॥३९॥
शिरः प्रावृत्य कुर्वीत अंतर्धाय तृणैर्महीम्। एवं यो वर्त्तते भूमौ शर्वस्तं न हिनस्ति वै॥४०॥
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा कुमारं नीललोहितम्। ईशानेति चतुर्थं ते नाम प्रोक्तं मयेह यत्॥४१॥
चतुर्थस्य चतुर्थी तु वायुर्नाम्ना तनुस्तव। इत्युक्ते यच्छरीरस्थं पंचधाप्राणसंज्ञितम्॥४२॥
विवेश तस्य तद्वायुमीशानस्तेन मारुतः। तस्मान्नैनं परिवदेत्प्रवांतं वायुमीश्वरम्॥४३॥
यज्ञैर्व्यवहरंत्येनं ये वै परिचरंति च। एवं युक्तं महेशानौ नैव देवो हिनस्ति तम्॥४४॥
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं धूम्रमीश्वरम्। नाम यद्वै पशुपतिरित्युक्तं पंचमं मया॥४५॥
पंचमी पंचमस्यैषा तनुर्नाम्नाग्निरस्तु ते। इत्युक्ते यच्छरीरस्थं तेजस्तस्योष्णसंज्ञितम्॥४६॥

न स्थिर या बहते हुए जल के प्रति कोई अपमानजनक बात कहनी चाहिये। पवित्र या अपवित्र शरीर से जल कभी दूषित नहीं होता, ऐसा ही शरीर जल का बनाया है।।३३।। विवर्ण (मटमैले) और दुर्गन्धयुक्त और कम जल को छोड़ देना चाहिये, उसको उपयोग में नहीं लाना चाहिये। जलों की योनि समुद्र है, जल समुद्र से पैदा हुआ है, इसलिए जल सदैव समुद्र की कामना करता है, जैसे कि मनुष्य अपने उतपत्ति स्थान योनि की सदैव कामना करता है।।३४।। इस प्रकार जल तत्त्व को जानकर जो जल मध्य रहता है, उसकी हिंसा भव देवता (जल देवता) नहीं करते।। उसके बाद ब्रह्मा फिर कुमार नीललोहित से बोले।।३५।। ब्रह्मा जी ने कहा कि हे विभो! मैंने जो आपका तीसरा नाम शर्व रखा है, उसका शरीर यह पृथ्वी होवे।।३७।। इस प्रकार कहने पर उनका जो स्थिर शरीर अस्थि नामक था, उसमें तब भूमि प्रविष्ट हो गयी, इसलिए वह भूमि शर्व कही जाती है।।३८।। इसलिये कृष्ट (जुती हुई) भूमि पर तथा न छाया में, न मार्ग में और न अपनी छाया में मलमूत्र त्याग करना चाहिये।।३९।। शिर को ढककर तथा भूमि को तृण से ढक कर मलमूत्र त्याग करना चाहिये। इस प्रकार जो भूमि पर व्यवहार करता है, उसे शर्व देवता निश्चित ही नहीं मारते हैं।।४०।। इसके बाद फिर ब्रह्मा कुमार नीललोहित से बोले कि मैंने तुम्हारा चौथा नाम ईशान इसलिए रखा है।।४१।। कि चतुर्थ का चौथा तुम्हारा शरीर वायु होगा। ब्रह्मा जी के ऐसा कहते ही जो उनके शरीर में स्थित वायु पाँच नामों वाली थी, उस वायु में मारुत (सांसारिक वायु) प्रवेश कर गयी। इसलिए इस प्रवान्त (तेज चलने वाली वायु) रूप ईश्वर से परिवाद नहीं करना चाहिए। अर्थात् वायु की निन्दा नहीं करनी चाहिए।।४२-४३।। जो लोग इस वायु को यज्ञों के द्वारा व्यवहार करते हैं और उसकी पूजा करते हैं। इस प्रकार व्यवहार एवं पूजा करने वालों को ये वायु देवता नहीं मारते हैं।।४४।। इसके बाद फिर ब्रह्मा उस घूम्रेश्वर से बोले कि मैंने तुम्हारा पाँचवां नाम जो पशुपति रखा है, पंचम का यह पांचवां शरीर अग्नि नामक है।।४५-४५½।। ऐसा कहने पर उनका जो उष्ण

विवेश तत्तदा ह्यग्निं तस्मात्पशुपतिस्तु सः।
यस्मादग्निः पशुश्चासीद्यस्मात्पाति पशूंश्च सः॥४७॥
तस्मात्पशुपतेस्तस्य तनुरग्निर्निरुच्यते। तस्मादमेध्यं न दहेन्न च पादौ प्रतापयेत्॥४८॥
अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमतिलंघयेत्। नैनं पशुपतिर्देव एवं युक्तं हिनस्ति वै॥४९॥
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं श्वेतपिंगलम्। षष्ठं नाम मया प्रोक्तं तव भीमेति यत्प्रभो॥५०॥
आकाशं तस्य नाम्नस्तु तनुः षष्ठी भवत्विति। इत्युक्ते सुषिरं तस्य शरीरस्थमभूच्च यत्॥५१॥
विवेश तत्तदाऽऽकाशं तस्माद्भीमस्य सा तनुः।
यदाकाशे स्मृतो देवस्तस्मान्ना संवृतः क्वचित्॥५२॥
कुर्यान्मूत्रं पुरीषं वा न भुंजीत पिबेन्न वा। मैथुनं वाऽपि न चरेदुच्छिष्टानि च नोत्क्षिपेत्॥५३॥
न हिनस्ति च तं देवो यो भीमे ह्येवमाचरेत्। ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं सबलं प्रभुम्॥५४॥
सप्तमं यन्मया प्रोक्तं नामोग्रेति तव प्रभो। तस्य नाम्नस्तनुस्तुभ्यं द्विजो भवति दीक्षितः॥५५॥
एवमुक्ते तु यत्तस्य चैतन्यं वै शरीरगम्। विवेश दीक्षितं तद्वै ब्राह्मणं सोमयाजिनम्॥५६॥
तावत्कालं स्मृतो विप्र उग्रो देवस्तु दीक्षितः। तस्मान्नेमं परिवदेन्नाश्लीलं चास्य कीर्त्तयेत्॥५७॥
ते हरंत्यस्य पाप्मानं ये वै परिवदंति तम्। एवं युक्तान् द्विजानुग्रो देवस्तान्न हिनस्ति वै॥५८॥

संज्ञा वाला शरीरस्थ तेज था, वह तब अग्नि में प्रवेश कर गया, उसके कारण वह अग्निदेव पशुपति हो गये।।४५½-४६½।। जिस कारण से अग्नि पशु थे, जिस कारण से वह पशुओं की रक्षा करती है, उसी कारण से उन पशुपति का शरीर अग्नि कहा जाता है। उसी कारण अग्नि में यज्ञ के लिये अनुपयोगी वस्तु को नहीं जलाना चाहिये और न अग्नि में पैर सेकना चाहिये।।४६½-४८।। और न अग्नि को अपने नीचे रखना चाहिये और न अग्नि को लांघना चाहिये। जो यह सब नहीं करता है, ऐसे व्यक्ति को वे पशुपति (अग्निनामा) नहीं मारते हैं।।४९।। उसके बाद ब्रह्मा उस श्वेत पिङ्गलदेव से बोले कि हे प्रभो! मैंने तुम्हारा छठा नाम भीम रखा है।।५०।। उसके नाम का षष्ठ शरीर आकाश होगा। ऐसा करने पर उनके शरीर पर स्थित छिद्र हो गया। अर्थात् उनका शरीर एक विशाल खोखला आवरण हो गया।।५१।।

तब भीम का वह शरीर आकाश में प्रवेश कर गया। जब वह देव आकाश में सम्यक् प्रकार से व्याप्त हो गये, तब उनसे विना ढका हुआ कुछ नहीं था, समस्त प्रपञ्च को उन्होंने आवृत कर लिया (ढक लिया)।।५२।। अतः आकाश (खुले स्थान) में मल तथा मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये और न भोजन करना चाहिये तथा न पानी पीना चाहिये अथवा न मैथुन करना चाहिये और न जूठन फेंकना चाहिये।। जो व्यक्ति उन भीम (आकाश) में ऐसा आचरण करता है, उसको वे भीम नहीं मारते हैं।।५३½।। उसके बाद फिर ब्रह्मा उन देव प्रभु सबल से बोले कि प्रभो! मैंने जो तुम्हारा सातवां नाम उग्र यह रखा है, उस नाम का शरीर तुम्हारे लिये दीक्षित द्विज होता है। अर्थात् सातवां शरीर दीक्षित द्विज है। ऐसा कहने पर उसके शरीर में चलने वाला चैतन्य सोमयाजी ब्राह्मण दीक्षित में प्रवेश कर गया।।५३½-५६।। तब उस काल में उग्रदेव दीक्षित 'विप्र' कहे गये। इसलिए इस विप्र (ब्राह्मण) की निन्दा नहीं करनी चाहिये तथा न अश्लील (गाली) आदि देनी चाहिये।।५७।। जो लोग उनकी निन्दा करते हैं, वे इस पाप को हरते हैं। अर्थात् पाप को हर (चुरा) कर पापी हो जाते हैं। इस प्रकार ऐसा करने वाले अर्थात् ब्राह्मणों को दुःखी न

ततोब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं भास्करद्युतिम्। अष्टमं नाम यत् प्रोक्तं महादेवेति ते मया॥५९॥
तस्य नाम्नोऽष्टमस्यास्तु तनुस्तुभ्यं तु चन्द्रमाः।
इत्युक्ते यन्मन स्तस्य संकल्पकमभूत्प्रभोः॥६०॥
विवेश तच्चंद्रमसं महादेवस्ततः शशी। तस्माद्विभाव्यते ह्येष महादेवस्तु चन्द्रमाः॥६१॥
अमावास्यां न वै छिंद्याद्वृक्षगुल्मौषधीर्द्विजः।
महादेवः स्मृतः सोमस्तस्यात्मा ह्यौषधीगणः॥६२॥
एवं यो वर्त्तते चेह सदा पर्वणि पर्वणि। हंति तं महादेवो य एवं वेद तं प्रभुम्॥६३॥
गोपायति दिवादित्यः प्रजा नक्तं तु चन्द्रमाः। एकरात्रौ समेयातां सूर्या चन्द्रमसावुभौ॥६४॥
अमावास्यानिशायां तु तस्यां युक्तः सदा भवेत्। रुद्राविष्टं सर्वमिदं तनुभिर्न्नामभिश्च ह॥६५॥
एकाकी यश्चरत्येष सूर्याऽसौ रुद्र उच्यते। सूर्यस्य यत्प्रकाशेन वीक्षंते चक्षुषा प्रजाः॥६६॥
मुक्तात्मा संस्थितो रुद्रः पिबत्यंभो गभस्तिभिः।
अद्यते पीयते चैव ह्यन्नपानादिकाम्यया॥६७॥
तनुरंबूद्भवा सा वै देहेष्वेवोपचीयते। यया धत्ते प्रजाः सर्वाः स्थिरीभूतेन तेजसा॥६८॥
पार्थिवी सा तनुस्तस्य साध्वी धारयते प्रजाः।
या च स्थिता शरीरेषु भूतानां प्राणवृत्तिभिः॥६९॥
वातात्मिका तु चैशानी सा प्राणः प्राणिनामिह। पीताशितानि पचति भूतानां जठरेष्विह॥७०॥

करने वालों और उनकी निन्दा न करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों को उग्रदेव नहीं मारते हैं।।५८।। उसके बाद फिर ब्रह्मा जी सूर्य की कान्ति वाले उन देव (नीललोहित) से बोले कि तुम्हारा जो आठवां नाम 'महादेव' मैंने कहा, उस आठवें नाम का शरीर चन्द्रमा है। ऐसा कहने पर उन प्रभु का संकल्प करने वाला मन चन्द्रमा में प्रवेश कर गया, उसके बाद वे महादेव चन्द्रमा हो गये, उसी कारण से ये महादेव चन्द्रमा रूप से माने जाते हैं।।५९-६१।। इसलिये अमावस्या में द्विज (वृक्ष), गुल्म और औषधि को नहीं काटना चाहिये। अतः महादेव सोम कहे गये और उनकी आत्मा औषधीगण कही गयी।।६२।।

इस प्रकार जो सदा पर्व में व्यवहार करता है, जो इस प्रकार उन प्रभु को जानता है, उसको वे महादेव नहीं मारते हैं।।६३।। दिन में सूर्य प्रजा की रक्षा करते हैं, तो रात में चन्द्रमा करते हैं। अमावस्या की एक रात्रि में ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा एक साथ चलते हैं, उस रात्रि में दोनों के शरीरयुक्त होकर रहते हैं अर्थात् मिल जाते हैं। उस समय नाम और शरीरों के साथ यह सारा संसार रुद्र से आविष्ट है।।६४-६५।। अकेले जो ये सूर्य चलते हैं, वे रुद्र कहे जाते हैं। सूर्य के जिस प्रकाश के द्वारा आँख से प्रजायें देखती हैं।।६६।। जो अन्न और जल अन्नपानादि की कामना से खाया और पिया जाता है। वे रुद्र मुक्त आत्मा अर्थात् स्वतन्त्र होकर अपनी किरणों से उस जल का पान करते हैं।।६७।। जल से उत्पन्न होने वाला वह जलरूप शरीर प्राणियों की देहों में जाकर उनकी वृद्धि करता है। जिस स्थिरीभूत तेज द्वारा समस्तप्रजा को धारण करते हैं, वही उनकी पार्थिवी मूर्ति है।।६८-६८½।। जो प्राण बनकर प्राणियों के शरीरों में स्थित होकर समस्त प्रजा को धारण करती है। वह वायु रूपी ईशान वाली ऐशानी मूर्ति है, जो इस संसार में प्राणियों का प्राण है तथा जो प्राणियों के पेटों में खाये हुए और पिये हुए को पचाती है, वह उन शिव की पाशुपती

तनुः पाशुपती तस्य पाचकः सोऽग्निरुच्यते। यानीह शुषिराणि स्युर्देहिष्वंतर्गतानि वै॥७१॥
वायोः संचरणार्थानि भीमा सा प्रोच्यते तनुः।
वैतान्यदीक्षितानां तु या स्थितिर्ब्रह्मवादिनाम्॥७२॥
तनुरुग्रात्मिका सा तु तेनोग्रो दीक्षितः स्मृतः।
यत्तु संकल्पकं तस्य प्रजास्विह समास्थितम्॥७३॥
सा तनुर्मानसी तस्य चन्द्रमाः प्राणिषु स्थितः। नवोनवो यो भवति जायमानः पुनः पुनः॥७४॥
पीयतेऽसौ यथाकालं विबुधैः पितृभिः सह। महादेवोऽमृतात्मा स चन्द्रमा अम्मयः स्मृतः॥७५॥
तस्य या प्रथमा नाम्ना तनू रौद्री प्रकीर्त्तिता। पत्नी सुवर्च्चला तस्याः पुत्रश्चास्य शनैश्चरः॥७६॥
भवस्य या द्वितीया तु आपो नाम्ना तनुः स्मृता।
तस्या धात्री स्मृता पत्नी पत्रश्च उशना स्मृतः॥७७॥
शर्वस्य या तृतीयस्य नाम्नो भूमिस्तनुः स्मृता।
तस्याः पत्नी विकेशी तु पुत्रोऽस्यांगारकः स्मृतः॥७८॥
ईशानस्य चतुर्थस्य नाम्ना वातस्तनुस्तु या।
तस्याः पत्नी शिवा नाम पुत्राश्चास्या मनोजवः॥७९॥
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रौ चाऽनिलस्य तु। नाम्ना पशुपतेर्या तु तनुरग्निर्द्विजैः स्मृता॥८०॥

मूर्ति है, जिसे पचाने वाली अग्नि कहा जाता है।।६८½-७०½।। शरीरों के अन्दर जितने भी खाली स्थान (रन्ध्र) हैं, वे ही उनकी आकाशमूर्ति है, जो वायु के संचरण के लिये बनायी गयी है, जिसे भीमा कहा गया है।।७०½-७१½।। यज्ञ में दीक्षित ब्रह्मवादियों की जो स्थिति है, वही उनकी उग्ररूप वाली मूर्ति है। इसी कारण से वह उग्र दीक्षित कहा गया है।।७१½-७२½।।

इस संसार में प्रजाओं में जो उसका संकल्प करने वाला भाव सम्यक् प्रकार से स्थित है, वह उसका मन रूपी शरीर चन्द्रमा के रूप में प्राणियों में स्थित है। मन का प्रतीक चन्द्रमा माना गया है, वही शिव की सोमरूप मूर्ति है, जो बार-बार उत्पन्न होता हुआ नित्य नया नया बना रहता है। यहाँ मन का भी यही स्वभाव है। अतः चन्द्रमा और मन दोनों ही एक स्वभाव वाले हैं; इसलिये सोम को मन का प्रतीक माना गया है।।७२½-७४।। वह चन्द्रमा यथाकाल देवों और पितरों के साथ पिया जाता है। महादेव की अमृत आत्मा चन्द्रमा जलमय कहे गये हैं।।७५।। उनका जो पहला शरीर रौद्र नाम से कहा गया है, उसकी पत्नी सुवर्च्चला है और उसके पुत्र शनैश्चर हैं। नीलोलोहित का दूसरा शरीर जल नाम से है। उसकी पत्नी धात्री है और पुत्र उशना कहा गया है।।७६।।

वायु पुराण में धात्री के स्थान पर उषा शब्द आया है। नीललोहित महादेव का जो तृतीय नाम शर्व है, जिसका शरीर भूमि है, उसकी पत्नी विकेशी है अर्थात् भूमि शरीर वाले शर्व महादेव की पत्नी विकेशी है और पुत्र अंगारक कहा गया है।।७७।। नीललोहित महादेव का जो चौथा नाम ईशान है, जिसका शरीर वायु है, उनकी पत्नी का नाम शिवा है और उसका पुत्र मनोजव और अविज्ञात गति हैं। इस प्रकार वायु शरीर वाले ईशान के दो पुत्र हुये।।७८-७९½।। नीललोहित का पशुपति नाम से जो अग्नि शरीर ब्राह्मणों ने बताया है, उसकी पत्नी स्वाहा है और स्कन्द

तस्याः पत्नी स्मृता स्वाहा स्कन्दस्तस्याः सुतः स्मृतः।
नाम्ना षष्ठस्य या भीमा तनुराकाशमुच्यते॥८१॥
दिशः पत्न्यः स्मृतास्तस्य स्वर्गश्चापि सुतः स्मृतः।
उग्रा तनुः सप्तमी या दीक्षितो ब्राह्मण स्मृतः॥८२॥
दीक्षा पत्नी स्मृता तस्याः संतानः पुत्र उच्यते। नाम्नाष्टमस्य महस्तनुर्या चन्द्रमाः स्मृतः॥८३॥
तस्य वै रोहिणी पत्नी पुत्रस्तस्या बुधः स्मृतः।
इत्येतास्तनवस्तस्य नामभिः सह कीर्तिताः॥८४॥
तासु वंद्यो नमस्यश्च प्रतिनामतनूषु वै। सूर्येप्सूर्व्यां तथा वायावग्नौ व्योम्न्यथ दीक्षिते॥८५॥
भक्तैस्तथा चन्द्रमसि भक्त्या वंद्यस्तु नामभिः। एवं यो वेत्ति तं देवं तनुभिर्नामभिश्च ह॥८६॥
प्रजावानेति सायुज्यमीश्वरस्य भवस्य सः। इत्येतद्वो मया प्रोक्तं गुह्यं भीमस्य यद्यशः॥८७॥
शन्नोऽस्तु द्विपदे विप्राः शन्नोऽस्तु च चतुष्पदे। एतत्प्रोक्तमिदानीं च तनूनां नामभिः सह॥
महादेवस्य देवस्य भृगोस्तु श्रृणुत प्रजाः॥८८॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे महादेवविभूतिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

उनका पुत्र कहा गया है।।७९½-८०½।। नीललोहित का जो छठा नाम भीम है, जिसको आकाश कहा जाता है, उसकी पत्नी दिशायें कहीं गयी है और पुत्र स्वर्ग कहा गया है।।८०½-८१½।। उनका सातवां शरीर जो उग्र है, जिसका दीक्षित नाम है, जिसे ब्राह्मण भी कहते हैं, उसकी पत्नी दीक्षा है और पुत्र सन्तान कहा गया है। उन नीललोहित का आठवां नाम जो मह है, जिसका शरीर चन्द्रमा कहा गया है, उनकी पत्नी रोहिणी है तथा पुत्र बुध कहा गया है। इस प्रकार से सब उन महादेव के शरीर हैं, जिनका नामों के साथ वर्णन किया गया है।।८१½-८४।। ये सब शरीर अपने नामों के साथ नमस्करणीय हैं, जो मनुष्य सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, दीक्षित और चन्द्रमा रूपी नीललोहित महादेव के शरीरों में क्रमशः रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और सोम (महादेव) नामों से भक्तों द्वारा वन्दनीय हैं। इस प्रकार जो उन महादेव को उन शरीरों और नामों से जानता है, वह निश्चय सन्तान वाला होता है। भव महादेव शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है अर्थात् शिवमय हो जाता है।।८५-८६½।। शुकदेव जी बोले कि इस प्रकार मैंने तुमसे भीम (शिव) का जो यश है, वह कहा है, इसके श्रवण से दो पैर वाले मनुष्यों और चार पैर वाले पशुओं का कल्याण हो। यह इस समय मैंने नीललोहित महादेव के शरीरों को नामों के साथ बताया है। अब इसके बाद भृगु ऋषि के वंश वर्णन को सुनिये।।८६½-८८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद दशवां अध्याय महादेव विभूति वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖
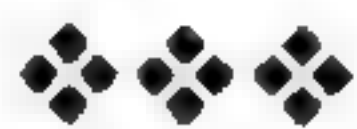
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

ऋषिवंश वर्णनं नाम

एकादशोऽध्यायः

सूत उवाच

भृगोः ख्यातिर्विजज्ञे वै ईश्वरौ सुखदुःखयोः। शुभाशुभप्रदातारौ सर्वप्राणभृतामिह॥१॥
देवौ धातृविधातारौ मन्वंतरविचारिणौ। तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभाविनी॥२॥

सा तु नारायणं देवं पति मासाद्य शोभना।
नारायणात्मजौ तस्यां बलोन्मादौ व्यजायताम्॥३॥
बलस्य तेजः पुत्रस्तु उन्मादस्य तु संशयः।
तस्याऽन्ये मानसाः पुत्रा आसन् व्योमविचारिणः॥४॥

ये वहन्ति विमानानि देवानां पुण्यकर्मणाम्। मेरुकल्पे स्मृते भार्ये विधातुर्धातुरेव च॥५॥
आयतिर्नियतिश्चैव तयोः पुत्रौ दृढव्रतौ। प्राणश्चैव मृकण्डश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ॥६॥
मनस्विन्यां मृकण्डस्य मार्कण्डेयो बभूव ह। सुतो वेदशिरास्तस्य धूम्रपत्न्यामजायत॥७॥
पीवर्यां वेदशिरसः पुत्रा वंशकरारू स्मृताः। मार्कण्डेयाः समाख्याता ऋषयो वेदपारगाः॥८॥
प्राणस्य पुण्डरीकायां द्युतिमानात्मजोऽभवत्। उन्नतश्चद्युतिमतः स्वनवातश्च तावुभौ॥९॥
तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च भर्गवाणां परस्परात्। स्वायंभुवेंतरेऽतीता मरीचेः शृणुत प्रजाः॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-११

ऋषिवंश वर्णन

सूत जी बोले—भृगु ऋषि के पुत्र ख्याति ने सुख दुःख को पैदा करने वाले इस संसार में सब प्राणियों को शुभ और अशुभ फल के देने वाले, मन्वन्तर में विचरण करने वाला धाता और विधाता नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। उन दोनों की बड़ी बहिन लोकभावनी श्रीदेवी (लक्ष्मी) थी।।१-२।। उन शोभायुक्त श्री देवी ने विष्णु को पति के रूप में प्राप्त किया फिर नारायण से उनके गर्भ में बल और उन्माद दो पुत्र उत्पन्न हुए।।३।। बल का पुत्र तेज और उन्माद का पुत्र संशय हुआ। उसके अन्य मानस पुत्र आकाश में विचरण करने वाले हुए।।४।। जो पुण्यकर्म करने वाले देवताओं के विमानों को चलाते हैं। मेरुकल्प में विधाता और धाता की दो पत्नियां आयति और नियति उन दोनों के दो पुत्र प्राण और मृकण्डु नामक दृढव्रत वाले और सनातन ब्रह्मकोश रूप हुए।।४-६।। मृकण्डु का मनस्विनी के गर्भ से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए। मार्कण्डेय का मूर्धन्या के गर्भ से वेद शिरा नामक पुत्र पैदा हुआ।।७।। वेदशिरा का पीवरी के गर्भ में बहुत से वंश को बढ़ाने वाले पुत्रों ने जन्म लिया। वे सब ऋषि वेद में पारङ्गत मार्कण्डेय कहे गये।।८।। प्राण का पुण्डरीका के गर्भ से द्युतिमान् पुत्र पैदा हुआ। द्युतिमान् के उन्नत और स्वप्नवात नामक दो पुत्र पैदा हुए।।९।। उन दोनों के पुत्र और पौत्रों ने परस्पर भार्गव का नाम पाया अर्थात् भृगु की सन्तान होने के कारण

पत्नी मरीचेः संभूतिर्विजज्ञे ह्यात्मसंभवम्। प्रजापतेः पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत॥११॥
कृषिर्वृष्टिस्त्विषा चैव तथा चोपचितिः शुभा। पूर्णमासः सरस्वत्यां पुत्रौ द्वावुदपादयत्॥१२॥
विरजं चैव धर्मिष्ठं पर्वशं चैव तावुभौ। विरजस्यात्मजो विद्वान् सुधामा नाम विश्रुतः॥१३॥
सुधामा स तु वैराजः प्राचीं दिशमुपाश्रितः। लोकपालः स धर्मात्मा गौरीपुत्रः प्रतापवान्॥१४॥
पर्वशः पर्वगणनां प्रविष्टः स महायशाः। पर्वशः पर्वशायां तु जनया मास वै सुतौ॥१५॥
यजुर्धाम च धीमंतं स्तंभकाश्यपमेव च। तयोर्गोत्रकरौ पुत्रौ जातौ संन्यासनिश्चितौ॥१६॥

स्मृतस्त्वं गिरसः पत्नी जज्ञे सा ह्यात्मसंभवान्।
पुत्रौ कन्याश्चतस्त्रश्च पुण्यास्ता लोकविश्रुताः॥१७॥

सिनीवाली कुहूश्चैव राका चाऽनुमतिस्तथा। तथैव भरताग्निं च कीर्तिमंतं च तावुभौ॥१८॥
अग्नेः पुत्रं च पर्जन्यं सद्व्रती सुषुवे तथा। हिरण्यरोमा पर्जन्यो मारीच्यामुदपद्यत॥१९॥
आभूतसंप्लवस्थायी लोकपालः स वै स्मृतः। यज्ञे कीर्तिमतश्चापि धेनुका वीतकल्मषौ॥२०॥
चरिष्णुं धृतिमंतं च उभावंगिरसां वरौ। तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च अतीता वै सहस्रशः॥२१॥
अनसूया विजज्ञे वै पंचात्रेयानकल्मषान्। कन्यां चैव श्रुतिं नाम माता शंखपदस्य सा॥२२॥
कर्दमस्य तु पत्नी सा पौलहस्य प्रजापतेः। सत्यनेत्रश्च हव्यश्च आपो मूर्त्तिः शनैश्चरः॥२३॥
सोमश्च पंचमस्तेषामासीत्स्वायंभुवेंतरे। यामदेवैस्सहातीताः पंचात्रेयाः प्रकीर्तिताः॥२४॥

सब भार्गव कहे गये। इस प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तर के बीत जाने पर मरीचि की प्रजा को सुनिये।।१०।। प्रजापति मरीचि की पत्नी सम्भूति ने अपने से उत्पन्न होने वाले पूर्णमास नामक पुत्र और कृषि, वृष्टि और त्विषा और अपचिति नामक शुभ कन्याओं को उत्पन्न किया। पूर्णमास ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया।।११-१२।। वे दोनों पुत्र धर्मिष्ठ विरज और पर्वश थे, विरज का सुधामा नामक विकार पुत्र विख्यात हुआ।।१३।। वह सुधामा तो वैराज (विराज की सन्तति) थे। अतः उन्होंने पश्चिम दिशा का आश्रय लिया। धर्मात्मा प्रतापवान् महापराक्रमी गौरी पुत्र पर्वश लोकपाल होकर पर्व गणना में प्रविष्ट हो गये। पर्व की गणना में प्रविष्ट हो गये, इसका अर्थ है कि पर्व में गिने जाने वाले अथवा पर्वत के गणों में गिने जाने लगे। कुछ स्पष्ट नहीं है। पर्वश ने पर्वशा के गर्भ से दो पुत्रों को जन्म दिया।।१४-१५।। उन दोनों के नाम धीमान्, यजुर्धम, स्तम्भ करने वाले कश्यप था। वे दोनों पुत्र गोत्र को बढ़ाने वाले और संन्यास में निश्चित हुए।।१६।। अंगिरा की पत्नी स्मृति के गर्भ से दो पुत्र और चार लोक प्रसिद्ध कन्याओं ने जन्म लिया।।१७।। जिनके नाम हैं सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति। उसी प्रकार भरताग्नि और कृतमान् दो पुत्र भी थे।।१८।। अग्नि से सद्वति ने पर्जन्य नामक पुत्र पैदा किया। फिर हरिण्य रोमा पर्जन्य ने मारीची के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न किया।१९।। मारीची का वह पुत्र प्रलयकाल तक रहने वाला लोकपाल हुआ। यज्ञ में कृतमान् ने धेनुका और वीतकल्मष को पैदा किया और फिर चरिष्ठ और धृतमान् नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। ये दोनों ही पुत्र अङ्गिरस कहलाये। वे दोनों के हजारों पुत्र और पौत्र हुए।।२०-२१।।

अनुसूया ने अत्रि से पाँच निष्पाप पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया। इस कन्या का नाम श्रुति था। जो शंख पद की माता थी और कर्दम की पत्नी थी। पौलह प्रजापति के सत्यनेत्र हव्य आपोमूर्ति शनैश्चर और सोम नामक पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। वे स्वायंभुव मनु के अधिकार काल में विद्यमान थे।।२२-२३।। याम नामक देवगणों के बीत

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च आत्रेयाणां महात्मनाम्।
स्वायंभुवेऽन्तरेऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः॥२५॥
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दानाग्निस्तत्सुतोऽभवत्।
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायंभुवेऽन्तरे॥२६॥
मध्यमो देवबाहुश्च अत्रिनामा च ते त्रयः। स्वसा यवीयसी तेषां सद्वती नाम विश्रुता॥२७॥
पर्जन्यजननी शुभ्रा पत्नी चाग्नेः स्मृता शुभा।
पौलस्त्यस्य च ब्रह्मर्षेः प्रीतिपुत्रस्य धीमतः॥२८॥
दानाच्च सुषुवे पत्नी सुजंघी च बहून्सुतान्।
पौलस्त्या इति विख्याताः स्मृताः स्वायंभुवेऽन्तरे॥२९॥
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान्पुलस्त्यस्य प्रजापतेः। त्रेताग्निवर्चसः सर्वे येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता॥३०॥
कर्दमश्चोर्वरीवांश्च सहिष्णु श्चेति ते त्रयः। ऋषिः कनकपीठश्च शुभा कन्या च पीवरी॥३१॥
कर्दमस्य श्रुतिः पत्नी आत्रेय्यजनयत्स्वयम्। पुत्रं शंखपदं नाम कन्यां काम्यां तथैव च॥३२॥
स वै शंखपदः श्रीमाँल्लोकपालः प्रजापतिः।
दक्षिणस्यां दिशि रतः काम्या दत्ता प्रियव्रते॥३३॥
काम्या प्रियव्रताल्लेभे स्वायंभुवसमान्सुतान्। दश कन्याद्वयं चैव यैः क्षत्रं सम्प्रवर्त्तितम्॥३४॥
पुत्रं कनकपीठस्य सहिष्णुं नाम विश्रुतम्। यशोधरा विजज्ञे वै कामदेवं सुमध्यमा॥३५॥
क्रतोः क्रतुसमान्पुत्रान् विजज्ञे संनतिः शुभान्। तेषां न भार्या पुत्रो वा सर्वे ते उर्द्धरेतसः॥३६॥

जाने पर ये पाँचों आत्रेय कहे गये। उनके पुत्र और पौत्री महात्मा अत्रि के साथ विद्यमान थे। जो स्वायंभुव मनु के अधिकार काल में हुए।।२३½-२५।।

प्रीति के गर्भ से पुलस्त्य को दानाग्नि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पूर्व जन्म में स्वायंभुव मनु के समय वही अगस्त्य थे।।२६।। मध्यम पुत्र देवबाहु और अत्रि नामक अंतिम पुत्र था। इस प्रकार ये तीन पुत्र हुए। इनकी छोटी बहन का नाम सद्वती था, जो पर्जन्य की माता थी और अग्नि की पत्नी थीं। ब्रह्मर्षि पौलस्त्य की प्रीत पुत्र के दान से सुजंघी आदि अनेकों पुत्र पैदा हुए। जो स्वायम्भुव मनवन्तर में पौलस्त्य नाम से विख्यात हुए।।२७-२९।।

पौलस्त्य प्रजापति की पत्नी क्षमा ने अनेक पुत्रों को पैदा किया। त्रेतायुग में जो अग्नितुल्य तेजस्वी और कृतमान् थे। उनके नाम कर्दम, उर्वरीवान् और सहिष्णु थे। ऋषि कनकपीठ और शुभ कन्या पीवरी इनकी बहन थी।।३१।। कर्दम की पत्नी अत्रि पुत्री श्रुति ने शंखपाद नामक पुत्र और काम्या नाम की पुत्री को जन्म दिया।।३२।।

उन दक्षिण दिशा में लोकपाल पद पर आसीन श्रीमान् प्रजापति शंखपद ने अपनी पुत्री काम्या को प्रियव्रत को प्रदान कर दिया।।३३।। तब काम्या ने प्रियव्रत से स्वायम्भुव मनु के समान पुत्रों को प्राप्त किया। उनमें दश कन्यायें और दो पुत्र थे। जिनके द्वारा क्षत्र कुल की वृद्धि हुई।।३४।। कनकपीठ का पुत्र सहिष्णु नाम से विश्रुत हुआ। सुन्दर कटिभाग वाली यशोधरा ने कामदेव पुत्र को जन्म दिया।।३५।। क्रतु से सन्नति ने क्रतु के समान शुभ पुत्रों को पैदा किया, उनकी पत्नी और पुत्र सभी ऊर्ध्वरिता थे। वे साठ हजार बालखिल्य कहलाये, जो सूर्य के चारों ओर

तानि षष्टिसहस्त्राणि बालखिल्या इति श्रुताः। अरुणस्याग्रतो यांति परिवार्य दिवाकरम्॥३७॥

आभूतसप्लवात्सर्वे पतंगसहचारिणः। स्वसारौ तद्यवीयस्यौ पुण्या सत्यवती च ते॥३८॥

पर्वशस्य स्नुषे ते वै पूर्णमास सुतस्य तु। ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य वासिष्ठाः सप्त जज्ञिरे॥३९॥

ज्यायसी च सुता तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा।
जननी सा द्युतिमयः प्राणस्य महिषी प्रिया॥४०॥

तस्यास्तु ये यवीयांसो वासिष्ठाः सप्त विश्रुताः। रक्षो गर्त्तोर्द्धबाहुश्च सवनः पवनश्च यः॥४१॥

सुतपाः शंकुरित्येते सर्वे सप्तर्षयः स्मृताः। रत्नो वरांग्यजनयन्मार्कण्डेयी यशस्विनी॥४२॥

प्रतीच्यां दिशि राजानं केतुमंतं प्रजापतिम्।
गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम्॥४३॥

स्वायंभुवेऽन्तरेतीतान्यग्नेस्तु शृणुत प्रजाः। इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबंधः प्रकीर्तितः॥४४॥

विस्तरेणानुपूर्व्याच्च अग्नेर्वक्ष्याम्यतः परम्॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे ऋषिसर्गवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

से घेर कर अरुण के आगे चलते हैं।।३६-३७।। महाप्रलयपर्यन्त ये सूर्य के सहचारी बने रहते हैं। इनकी दो छोटी बहिनें पुण्य और सत्यवती हैं।।३८।। ये दोनों पूर्णमास के पुत्र पर्वश की पुत्रवधुएं थीं। वशिष्ठ ऋषि के ऊर्जा के गर्भ से सात वशिष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए।।३९।। उनकी बड़ी पुत्री सुन्दर कमरवाली पुण्डरीका थी, वह द्युतिमान् की माता और प्राण की प्रियपत्नी थीं।।४०।। उसी के तो सात पुत्र वाशिष्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए, जिनके नाम थे—रक्ष, गर्त्त, अर्धबाहु, सवन, पवन, सुतपा और शंकु इन नामों वाले सब सप्तर्षि कहे गये, रज ने वराङ्गी मार्कण्डेयी यशस्विनी से प्रजापति राजा केतुमान् को जन्म दिया।।४१-४२।। राजा प्रजापति केतुमान् को पश्चिम दिशा में स्थापित किया। उन महात्मा वाशिष्ठों का गोत्र नामों के साथ स्वायंभुव मन्वन्तर में ही समाप्त हो गया। अब अग्निकी प्रजा को सुनो। इस प्रकार इस ऋषि सर्ग विस्तार को कहा।।४४।। अब आगे अग्नि का वंश पूर्वकाल विस्तार के साथ वर्णन करूँगा।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ग्यारहवां अध्याय ऋषिसर्ग वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖
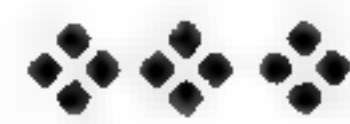
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

अग्निवंशवर्णनं नाम

द्वादशोऽध्यायः

सूत उवाच

योऽसावग्नेरभिमानी स्मृतः स्वायंभुवेऽन्तरे। ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजायत॥१॥
पावकं पवमानं च शुचिरग्निश्च यः स्मृतः। निर्मथ्यः पवमानस्तु वैद्युतः पावकः स्मृतः॥२॥
शुचिः सौरस्तु विज्ञेयः स्वाहापुत्रास्तु ते त्रयः।
निर्मथ्यः पवमानस्तु शुचिः सौरस्तु यः स्मृतः॥३॥
अब्योनिर्वैद्युतश्चैव तेषां स्थानानि तानि वै। पवमानात्मजश्चैव कव्यवाहन उच्यते॥४॥
पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः। देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितॄणां कव्यवाहनः॥५॥
सह रक्षोऽसुराणां तु त्रयाणां तु त्रयोऽग्नयः। एतेषां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशन्नवैव तु॥६॥
वक्ष्यामि नामभिस्तेषां प्रविभागं पृथक्पृथक्।
विश्रुतो लौकिकोऽग्निस्तु प्रथमो ब्रह्मणः सुतः॥७॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय–१२

अग्निवंश वर्णन

सूत जी बोले—स्वायम्भुव मनु के मन्वन्तर में जो ब्रह्मा के मानसपुत्र अभिमानी अग्नि थे, उन अग्नि से स्वाहा नामक पुत्र उत्पन्न हुए।।१।। जो पावक, पवमान और शुचि नाम अग्नि कहे गये। पवमान को निर्मथ्य, पावक को वैद्युत् और शुचि को सौर समझना चाहिये। इस प्रकार स्वाहा के ये तीन पुत्र हुये।।२।। भाव यह है कि अग्नि का पुत्र स्वाहा, स्वाहा के तीन पुत्र पावक, पवमान और शुचि हुये। पवमान को निर्मथ्य कहा गया, इसका आशय है क मन्थन से पैदा होने वाली आग जो आजकल माचिस आदि से पैदा होती है, वह है, जो कि पूर्वकाल में दो लकड़ियों के मन्थन (रगण) से पैदा हुई थी। अतः वही पवमान है। पावक आकाश में चमकने वाली बिजली है तथा शुचि सूर्य की अग्नि है। इस प्रकार यह वर्णन पूर्ण वैज्ञानिक है। जिसकी योनि जल है अर्थात् जो जल से पैदा हुई, वे वैद्युत अग्नि हैं, उनके स्थान वही हैं अर्थात् वैद्युत जल से पैदा हुई और उसका स्थान जल ही है। पवमान का पुत्र कव्यवाहन कहा जाता है।।३-४।।

पावक का पुत्र सहरक्ष और शुचि का पुत्र हव्यवाह हुआ। देवताओं का हव्यवाह अग्नि है और पितरों का कव्यवाहन अग्नि है। ये दोनों प्रकार के अग्नि अरणि मन्थन से पैदा किये जाते थे। अतः ये पवमान के पुत्र अर्थात् भेद हैं।।५।। सहरक्ष असुरों की अग्नि है, इस प्रकार तीनों की तीन अग्नियां हैं। इनके पुत्र और पौत्र उनंचास हैं।।६।। सूत जी बोले कि मैं अनेक नामों से उनके विभाग अलग-अलग बताऊँगा। पहले ब्रह्मा के प्रथम पुत्र लौकिक

ब्रह्मो दत्ताग्निसत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः। वैश्वानरः सुतस्तस्य वहन् हव्यं समाः शतम्॥८॥
संभृतोऽथर्वणा पूर्वमेधितिः पुष्करोदधौ। सोथर्वालौकिकोऽग्निस्तु दर्पहाऽथर्वणः स्मृतः॥९॥

अथर्वा तु भृगुर्जज्ञे ह्यग्निराथर्वणः स्मृतः।
तस्मात्स लौकिकोऽग्निस्तु दध्यङ्ङाथर्वणो मतः॥१०॥
आथर्वः पवमानस्तु निर्मथ्यः कविभिः स्मृतः।
स ज्ञेयो गार्हपत्योऽग्निस्तस्य पुत्रद्वयं स्मृतम्॥११॥
शंस्यस्त्वाह वनीयोऽग्निः स्मृतो यो हव्यवाहनः।
द्वितीयस्तु सुतः प्रोक्तः शुकोऽग्निर्यः प्रणीयते॥१२॥

तथा सव्यापसव्यौ च शंस्यस्याग्नेः सुतावुभौ। शंस्यस्तु षोडश नदीश्चकमे हव्यवाहनः॥१३॥
यो सावाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः। कावेरीं कृष्णवेणां नर्मदां यमुनां तथा॥१४॥
गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम्। विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रूं सरयूं तथा॥१५॥
सीतां सरस्वतीं चैव ह्लादिनीं पावनीं तथा। तासु षोडशधामानं प्रविभज्य पृथक्पृथक्॥१६॥

आत्मानं व्यदधात्तासु धिष्णीष्वथ बभूव सः।
कृत्तिकाचारिणी धिष्णी जज्ञिरे ताश्च धिष्णयः॥१७॥
धिष्णीषु जज्ञिरे यस्माद् धिष्णयस्तेन कीर्त्तिताः।
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्णीष्वेवं विजज्ञिरे॥१८॥

अग्नि प्रसिद्ध हुए।।७।। ब्रह्मा के दत्ताग्नि सत्पुत्र भरत नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके पुत्र वैश्वानर हुए, जिन्होंने सौ वर्ष तक हव्य को वहन किया।।८।। पूर्वकाल में पुष्कर समुद्र के मन्थनकाल में अमृत निकलने के बाद अथर्वणा अग्नि की उत्पत्ति हुई है। वह अथर्वा ही लौकिक अग्नि है, वह दर्प को नष्ट करने वाला अथर्वण कहा गया है।।९।। अथर्वा तो भृगु हैं, जिनसे पैदा हुए अग्नि को आथर्वण कहा गया। उनसे वह लौकिक अग्नि तो अथर्वा पुत्र दध्यङ्ङ माने गये हैं।।१०।। आथर्व पवमान है, जिसको कवियों ने निर्मथ्य कहा है अर्थात् वह मन्थन से पैदा हुई है। वही गार्हपत्य अग्नि कही गयी है, उसके दो पुत्र प्रसिद्ध हैं।।११।।

एक है शंस्याग्नि, जो आहवनीय अग्नि कहा गया, जो हव्यवाहन (हव्य को ले जाने वाली) है। दूसरा पुत्र तो शुक अग्नि कहे गये, जो कि प्रकृष्ट रूपसे ले जाये जाते हैं।।१२।। उसके बाद सव्य और अपसव्य शंस्याग्नि के दो पुत्र हुए। शंस्याग्नि हव्यवाहन ने सोलह नदियों की इच्छा की।।१३।। जो वह आहवनीय अग्नि ब्राह्मणों द्वारा कहा गया। वे कावेरी, कृष्ण वेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शंतद्रू, सरयू, सीता, सरस्वती, ह्लादनी और पावनी सोलह नदियां हैं। उन नदियों के १६ धाम पृथक्-पृथक् विभक्त कर स्वयं को उन धिष्णियों (नदियों) में विशेष रूप से धारण किया तथा अग्नि स्वयंधिष्णी है।। कृत्तिका का आचरण करने वाले धिष्णी ने उन धिष्ण्यः (धिष्णी के पुत्रों) को उत्पन्न किया।।१४-१७।। वे धिष्णियों में पैदा हुए थे, इसलिए उन्हें धिष्णि कहा गया। वैसे भी धिष्णि शब्द मेंअण् (अपत्यार्थक) प्रत्यय से धिष्ण्य शब्द बनता है, जिसका अर्थ है धिष्णि से जो पैदा हुआ, वह ''धिष्ण्य'' हुआ। इस प्रकार वे सब नदी पुत्र धिष्णियों में इसी प्रकार उत्पन्न हुए।।१८।।

तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च येऽग्नयः। ताञ्शृणुध्वं समासेन कीर्त्यमानान्यथातथम्॥१९॥
विभुः प्रवाहणोग्नीधस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे। विधीयंते यथास्थानं सूत्याहे सवने क्रमात्॥२०॥
अनुद्देश्य निवास्यानामग्नीनां शृणुत क्रमम्। सम्राडग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोंऽतरवेदिकः॥२१॥
सम्राडग्निमुखानष्टो उपतिष्ठंति तान् द्विजान्। परिषत्यवमानस्तु द्वितीयः सोऽनुदिश्यते॥२२॥
प्रतल्कान्यो नभोनाम चत्वरेसौ विभाव्यते। हव्यस्ततो ह्यसंमृष्टः शामित्रेऽग्नौ विभाव्यते॥२३॥
ऋतुधामा च सुज्योतिरौदुंबर्यः प्रकीर्त्यत। विश्वव्यचाः समुद्रोऽग्निर्ब्रह्मस्थाने स कीर्त्यते॥२४॥
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्धामा ब्रह्मस्थाने स उच्यते। अजैकपादुपस्थो यः स वै शालासुखीयकः॥२५॥

अनुद्देश्यो ह्यहिर्बुध्न्यो सोऽग्निर्गृहपतिः स्मृतः।
शंस्यस्यैते सुताः सर्वे उपस्थेया द्विजैः स्मृताः॥२६॥
ततो विहरणीयांश्च वक्ष्यामम्यष्टौ च तत्सुतान्।
विभुः प्रवाहणोऽग्नीधस्तेषां धिष्ण्यस्तथा परे॥२७॥
विधीयंते यथास्थानं सौत्येऽह्नि सवने क्रमात्।
होत्रीयस्तु स्मृतो ह्यग्निर्वह्नियो हव्यवाहनः॥२८॥

प्रशान्तोऽग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयश्चात्र नामकः। ततोऽग्निर्वैश्वदेवस्तु ब्राह्मणाच्छंसिरुच्यते॥२९॥

वे जो नदी पुत्र धिष्णियों में उत्पन्न हुए। उनके विहरण करने योग्य तथा उनके उपस्थित रहने योग्य जो स्थान हैं, उनको संक्षेप से सुनिये। जो यथावत् बताये गये हैं।।१९।। विभु (ऋतु वायु) प्रवाहण,अग्नीध्र और अपर में धिष्णि क्रम से यथास्थान यज्ञ के दिन यज्ञ में स्थित रहते हैं।।२०।। अब जिनका निवास स्थान नहीं निर्धारित्त हुआ है, उनको क्रम से सुनिये। कृशानु नामक जो सम्राट् अग्नि हैं, वे यज्ञ के उत्तर द्वितीय वेदी पर निवास करते हैं।।२१।। सम्राट् अग्नि जो प्रमुख हैं, उनको ब्राह्मण आठ प्रकार के बताते हैं। प्रस्तुत अग्नियों में परिषत् अग्नि द्वितीय प्रकार के हैं। वे वेदी के पीछे रहते हैं।।२२।। अन्य अग्नि तो पाताल में रहने वाले हैं। आकाश में रहने वाले अग्नि तो चार प्रकार के बताये गये हैं। हव्य उसके बाद शास्त्रीय अग्नि कहे जाते हैं, हव्य यज्ञ में आहूत द्रव्य की गन्ध को ले जाने वाले हैं। वह असम्पृष्ट अर्थात् सूर्य से मिले हुए नहीं हैं, वह शामित्र कर्म में प्रयुक्त होते हैं।।२३।। ऋतुधाम और सुज्योति औदुम्बरीय कही गयी है। विश्वव्यच अग्नि समुद्री अग्नि है (जो समुद्र में ज्वार भाटा का कारण है) वह ब्रह्म स्थान में रहने वाली बतायी जाती है।।२४।।

ब्रह्मज्योति और वसु अग्नि ब्रह्म स्थान में रहते हैं। अजैकपाद अग्नि पास में रहने वाले हैं, जो यज्ञशाला मुख में स्थापित किये जाते हैं।।२५।। अहिर्बुध्न अग्नि का कोई स्थान निर्धारित नहीं, वह गृहपति कहलाते हैं। शस्य अग्नि के सब पुत्र ब्राह्मणों द्वारा उपस्थापित करने योग्य कहे जाते हैं।।२६।। इसके बाद विहरण करने योग्य अग्नियों और उनके आठ पुत्रों को बताऊँगा। विभु, प्रवाहण, आनीध्र तथा अपर ये धिष्णी से पैदा ये सब यज्ञकर्म में एक के दिन यथास्थान विधिपूर्वक प्रयोग किये जाते हैं। ये सब अग्नि यज्ञीय अग्नि हैं तथा ये अग्नि यज्ञ में आहूत सुगन्धित द्रव्य को ले जाने वाले जो वातावरण को शुद्ध करते हैं।।२७-२८।। प्रशान्त अग्नि प्रचेता तो यहाँ पर दूसरे अग्नि हैं अर्थात् उनका दूसरा स्थान है। उसके बाद अग्नि वैश्वदेव हैं, जो ब्राह्मण से शंसि कहे जाते हैं।।२९।।

उशिगग्निः कविर्यस्तु पोतोऽग्निः स विभाव्यते। आवारिरग्निर्वाभारिर्वैष्ठीयः स विभाव्यते॥३०॥

अवस्फूर्जो विवस्वांस्तु आस्थांश्चैव स उच्यते।
अष्टमः सुध्युरग्निर्यो मार्जालीयः स उच्यते॥३१॥

धिष्ण्यावाहरणा ह्येते सौत्येह्नीज्यंत वै द्विजैः।
अपां योनिः स्मृतोऽसौ स ह्यप्सुनामा विभाव्यते॥३२॥

ततो यः पावको नाम्ना अब्जो यो गर्भ उच्यते।
अग्निः सोऽवभृथे ज्ञेयो वरुणेन सहेज्यते॥३३॥

हृच्छयस्तत्सुतो ह्यग्निर्जठरे यो नृणां पचन्।
मृत्यु माञ् जाठरस्याग्नेर्विद्वानग्निः सुतः स्मृतः॥३४॥

परस्परोत्थितः सोऽग्निर्भूतानीह विनिर्दहेत्। पुत्रस्त्वग्नेर्मन्युमतो घोरः सवंर्तकः स्मृतः॥३५॥
पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखः। समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते॥३६॥
सहरक्षसुतः क्षामो गृहाणां दहते नृणाम्। क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषानत्ति यो मृतान्॥३७॥
इत्येते पावकस्याग्नेः पुत्रा एव प्रकीर्त्तिताः। ततः शुचिस्तु वै सौरो गन्धर्वैरायुराहुतः॥३८॥
मथितो यस्त्वरण्यां च सोऽग्निरग्निं समिंधति। आयुर्नाम्ना तु भगवानसौ यस्तु प्रणीयते॥३९॥
आयुषो महिषः पुत्रः सहसो नाम तत्सुतः। पाकयज्ञेष्वभीमानी सोग्निस्तु सहसः स्मृतः॥४०॥

उशिक् अग्नि कवि हैं, वह पोत अग्नि के रूप में कल्पित किये जाते हैं, जो जल तक रहते हैं अथवा आभारि अग्नि वैष्ठीय कहे जाते हैं।।३०।। अवस्फूर्ज (चिनगारी न पैदा करने वाले) अग्नि विवस्वान् हैं। यह आस्थान् (एक स्थान पर रहने वाले) हैं। आठवें अग्नि सुधी अग्नि हैं, वे मार्जालीय कहे जाते हैं।।३१।। धिष्णी आवाहरणा ये सब ब्राह्मणों द्वारा एक दिन के यज्ञ में व्यवहार किये जाते हैं। जिस अग्नि की योनि जलों की है, जिसको जलों में होना कहा जाता है। अतः वही जो पावक नाम से जो जल से उत्पन्न है, जिसका गर्भ ही जल है, उसे अग्नि अवभृथ जानना चाहिये, जो कि वरुण के साथ रहते हैं।।३२-३३।।

अवभृथ अग्नि के पुत्र हृच्छय हैं, जो अग्नि मनुष्यों के पेट में खाद्य पदार्थ पचाते हुए स्थित हैं। हृच्छयः शब्द का अर्थ है—'हृदि शेते' अर्थात् जो अग्नि हृदय में सोते हैं, वे हृच्छय हुए (हृत् + शी + अच्) से हृच्छय शब्द बना है। मृत्युमान् अग्नि जिसे वायु पुराण में मन्युमान कहा गया है, वे अग्नि हृच्छय (जाठराग्नि) के विद्वान् पुत्र कहे गये हैं।।३४।। आपस में टकराकर उठे हुए वे इस संसार में प्राणियों को विशेष रूप से जला देते हैं। मन्युमान् अग्नि के पुत्र घोर संवर्तक अग्नि कहे गये हैं। संवर्तक बडवानल को कहा जाता है, जो कि समुद्र में से पैदा होती है, यही अग्नि प्रलयकालीन अग्नि हैं। इसलिए उसे घोर कहा गया।।३५।। जल को पीते हुए, जो वडवामुख समुद्र में ही रहते हैं, उन समुद्रवासी अग्नि का पुत्र सहरक्ष बताये जाते हैं।।३६।। सहरक्ष का पुत्र क्षाम अग्नि मनुष्यों के घरों को जला देते हैं। क्षाम के पुत्र क्रव्याद अग्नि हैं, जो मृतकों को जलाते हैं।।३७।। इस प्रकार से पावक अग्नि के पुत्रों का ही वर्णन किया गया है। उसके बाद शुचि अग्नि तो निश्चित ही सौर हैं, सूर्य भी अग्नि हैं। गन्धर्वों द्वारा समुद्र मन्थन में अरणि में पैदा हुए, जो अग्नि भगवान् आयु नाम से पुकारे जाते हैं।।३८-३९।। आयु अग्नि के पुत्र महिष हैं और उनके पुत्र सहस हैं। पाक यज्ञों में ये अग्नि प्रतिष्ठित होते हैं, वे सहस कहे जाते हैं।।४०।।

पुत्रश्च सहसस्याग्नेरद्भुतः स महायशाः। विविधिश्चाद्भुतस्यापि पुत्रोऽग्नेस्तु महान्स्मृतः॥४१॥
प्रायश्चित्तेष्वभीमानी हुतं भुंक्ते हविः सदा। विविधेस्तु सुतो ह्यर्क्कं स्तस्य चाग्नेः सुता इमे॥४२॥
अनीकवान् वाजसृक् च रक्षोहा यष्टिकृत्तथा। सुरभिर्वसुरन्नादो प्रविष्टो यः स रुक्मराट्॥४३॥
शुचेरग्नेः प्रजा ह्येषा वह्नयश्च चतुर्दश। इत्येते चाग्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेध्वरेषु वै॥४४॥
आदिसर्गे व्यतीता वै यामैः सह सुरोत्तमैः। स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेभिमानिनः॥४५॥
एते विहरणीयेषु चेतनाचेतनेषु वै। स्थानाभिमानिनो लोके प्रागासन्हव्यवाहनाः॥४६॥
काम्यनैमित्तिका यज्ञेष्वेते कर्मस्ववस्थिताः। पूर्वमन्वतंरेऽतीताः शुक्रैर्यागैश्च तैः सह॥४७॥
देवैर्महात्मभिः पुण्यैः प्रथमस्यांतरे मनोः। इत्येतानि मयोक्तानि स्थानानि स्थानिनश्च ह॥४८॥
तैरेव तु प्रसंख्यातमतीतानागतेष्विह। मन्वंतरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम्॥४९॥
सर्वे तपस्विनो ह्येते सर्वे ब्रह्मभृतस्तथा। प्रजानां पतयः सर्वे ज्योतिष्मंतश्च ते स्मृताः॥५०॥
स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सावर्ण्यं तेषु सप्तसु। मन्वंतरेषु सर्वेषु नामरूपप्रयोजनैः॥५१॥
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च यामैर्देवैः सहाग्नयः। अनागतैः सुरैः सार्द्धं वर्त्स्यंतेऽनागताग्नयः॥५२॥
इत्येष निचयोऽग्नीनामनुक्रान्तो यथाक्रमम्। विस्तरेणानुपूर्व्या च पितॄणां वक्ष्यते पुनः॥५३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे अग्निनिचयो नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

सहस अग्नि के पुत्र अद्भुत महाशय हैं तथा अद्भुत के भी महान् पुत्र विविधि कहे गये हैं।।४१।। ये अभिमानी विविधि प्रायश्चित्त होमों में यज्ञ में डाले हवि का सदा भोग करते हैं। विविधि अग्नि के पुत्र अर्क्क अग्नि हैं। उस अर्क्क अग्नि के पुत्र हैं—अनीकवान्, वाजसृक्, रक्षोहा, यष्टिकृत (पित्तकृत) और सुरभि, जो धन और रत्न आदि में प्रविष्ट हैं।।४२-४३।। ये शुचि अग्नि की सन्तानें हैं, ये सब चौदह प्रकार के वह्नि हैं। ये चौदहों अग्नि जो कहे गये हैं, वे यज्ञों में प्रकृष्ट रूप से लिये जाते हैं।।४४।। वे सभी अभिमानी अग्नि आदि सर्ग स्वायंभुव मन्वन्तर में याम वेदों के साथ पहले ही बीत गये।।४५।। वे सब अग्नि विहरण करने वाले हैं तथा चेतन और अचेतन सब में स्थित हैं। पहले प्राचीनकाल में ये स्थानाभिमानी संसार में हव्यवाहन थे अर्थात् यज्ञ की सुगन्ध को सर्वत्र ले जाने वाले थे।।४६।। पूर्व मन्वन्तर में ये काम्य और नैमित्तिक कर्मों में स्थित होकर महात्मा पुण्यात्माओं के शुक्लयज्ञों के साथ बीत जाते थे। इस प्रकार ये सब अग्नियों के स्थान तथा उन उन स्थानों पर रहने वाले अग्नियों का वर्णन मैंने किया है।।४७-४८।। अतीत और अनागत सभी मन्वन्तरों में अग्नियों के ये ही लक्षण कहे गये हैं।।४९।। ये सभी अग्नि तपस्वी, ब्रह्मभृत् (ब्रह्म को धारण करने वाले) अवभृत् (वायु.) प्रजाओं के पति और ज्योतिषमान् कहे गये हैं।।५०।। स्वायम्भुव से लेकर स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत् सातों मन्वन्तरों में अनेकों प्रकार के प्रयोजनों के द्वारा तत्काल वर्तमान याम देवों के साथ ये अग्नि निवास करते हैं और अनागत सुरों के साथ अनागत अग्नि निवास करेंगे।।५१-५२।। तब सूत जी ने ऋषियों से कहा कि इस प्रकार मैंने यथाक्रम अग्नियों का वर्णन किया। अब आगे पितरों का वर्णन करूंगा।।५३।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद बारहवां अध्याय अग्निवंश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

कालसद्भाव वर्णनं नाम

त्रयोदशोध्यायः

अथ श्री ब्रह्माण्डमहापुराणे वायुप्रोक्तो पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे कालसद्भाव वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।

सूत उवाच

ब्रह्मणः सृजतः पुत्रान् पूर्वं स्वायंभुवेंऽतरे। गात्रेभ्यो जज्ञिरे तस्य मनुष्यासुरदेवताः।।१।।
पितृवन्मन्यमानास्तं जज्ञिरे पितरोऽपि च। तेषां निसर्गः प्रागुक्तः समासाच्छ्रूयतां पुनः।।२।।
देवासुरमनुष्यांश्च सृष्ट्वा ब्रह्माभ्यमन्यत। पितृवन्मन्यमाना वै जज्ञिरेऽस्योपपक्षतः।।३।।
मध्वादयः षड्तवः पितॄंस्तान्परिचक्षते। ऋतवः पितरो देवा इत्येषा वैदिकी श्रुतिः।।४।।
मन्वंतरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेषु वै। एते स्वायंभुवे पूर्वमुत्पन्नाश्चांतरे शुभे।।५।।
अग्निष्वात्ता स्मृता नाम्ना तथा बर्हिषदश्च वै। अयज्वानस्तथा तेषामासन्ये गृहमेधिनः।।६।।
अग्निष्वात्ता स्मृतास्ते वै पितरो नाहिताग्नयः। यज्वानस्तेषु ये त्वासन्पितरः सोमपीथिनः।।७।।
स्मृता बर्हिषदस्ते वै पितर स्त्वग्निहोत्रिणः। ऋतवः पितरो देवाः शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयं गताः।।८।।
मधुमाधवौ रसौ ज्ञेयौ शुचिशुक्रौ च शुष्मिणौ। नभाश्चैव नभस्यश्च जीवावेतावुदाहृतौ।।९।।

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-१३

काल सद्भाव

पहले स्वायम्भुव मनु के काल में पुत्रों की उत्पत्ति करने वाले ब्रह्मा जी के शरीरों से मनुष्य असुर और देवता उत्पन्न हुए।।१।। पिता के समान मानने वाले ब्रह्मा से पितर भी उत्पन्न हुए। उनकी उत्पत्ति संक्षेप से पहले बता दी गयी है। अब पुनः विस्तार से सुनिये।।२।। देवताओं, असुरों और मनुष्यों की सृष्टि करके ब्रह्मा स्वयं को पिता के समान मानते हुए उनके उपपक्ष वाले अर्थात् उनको जीवित रखने वाले बसन्त आदि छः ऋतुओं को पैदा कर दिया। बसन्तऋतु पितृदेव है, यह वैदिकी श्रुति है।।३-४।। स्वायम्भुव आदि सभी अतीत और अनागत मन्वन्तरों में पितर उत्पन्न हुए।।५।। इनके नाम अग्निष्वात्ता तथा वर्हिषत् हैं। इनमें कुछ अग्निहोत्र करने वाले हैं और कुछ अग्निहोत्र नहीं करने वाले हैं तथा कुछ गृहमेधि हैं।।६।।

अग्निष्वात्ता पितरगण वे कहे गये हैं, जो कि अग्नि को नहीं धारण करने वाले हैं अर्थात् अग्नि से वे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उनमें जो यज्ञ करने वाले हैं, वे पितर सोमपीथी हैं तथा वे ही वर्हिषत् कहे गये हैं तथा वे ही पितरगण अग्निहोत्र करने वाले हैं। ऋतुएं ही पितर देव हैं, यह शास्त्र में निश्चित किया गया है।।७-८।। मधु और माधव (चैत्र और वैसाख) को रस जानिये। ज्येष्ठ और आषाढ को ग्रीष्म समझिये, सावन और भादों को जीवन बताया गया

इषश्चैव तथोर्जश्च स्वधावंतावुदाहृतौ। सहश्चैव सहस्यश्च घोरावेतावुदाहृतौ॥१०॥
तपाश्चैव तपस्यश्च मन्युमन्तौ तु शैशिरौ।
कालावस्थासु षट्स्वेते मासाख्या वै व्यवस्थिताः॥११॥
इमे च ऋतवः प्रोक्ताश्चेतनाचेतनेषु वै। ऋतवो ब्रह्मणः पुत्रा विज्ञेयास्तेऽभिमानिनः॥१२॥
मासार्द्धमासस्थानेषु ऋतवो मताः। स्थानानां व्यतिरेकेण ज्ञेयाः स्थानाभिमानिनः॥१३॥
अहोरात्राणि मासाश्च ऋतवश्चायनानि च।
संवत्सराश्च स्थानानि कामाख्या ह्यभिमानिनाम्॥१४॥
एतेषु स्थानिनो ये तु कालावस्था व्यवस्थिताः।
तत्सतत्त्वास्तदात्मानस्तान्वक्ष्यामि निबोधत॥१५॥
पार्वण्यस्तिथयः संध्याः पक्षा मासार्द्धसंमिताः।
निमेषाश्च कलाः काष्ठा मुहूर्त्ता दिवसाः क्षपाः॥१६॥
द्वावर्द्धमासौ मासस्तु द्वौ मासावृतुरुच्यते। ऋतुत्रयं चाप्ययनं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे॥१७॥
संवत्सरस्त्र समेतश्च स्थानान्येतानि स्थानिनाम्।
ऋतवस्तु निमेः पुत्रा विज्ञेयास्ते तथैव षट्॥१८॥

है।।९।। आश्विन (क्वार) और कार्तिक स्वधा (सुधा वायु) कहे गये हैं। अगहन और पौष ये दोनों घोर कहे गये हैं। माघ और फागुन तो मन्युमान घोर शैशिर कहे गये हैं। काल की अवस्थाओं में ये सब छहों मास नाम से व्यवस्थित है।।१०।। और ये सभी ऋतुयें जो कहीं गयीं, वे चेतन और अचेतन सभी में व्याप्त रहती हैं। ये सभी अभिमानी ऋतुयें ब्रह्मा के पुत्र जानने चाहिये।।१३।।

मासार्द्धकाल में अमावस्या को ऋतुएँ आर्तव हो जाती हैं और भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न प्रकार के अनुसार उन ऋतुओं को समझना चाहिये, वे ऋतुएँ स्थानाभिमानी है।।१३।। अर्थात् अपने अपने स्थान पर अपना अलग अलग प्रभाव दिखाती हैं। जैसे कि कहीं किसी स्थान पर गर्मी अधिक होती है, जैसे अफ्रीका तथा किसी स्थान पर शीत होता है, जैसे ग्रीनलैण्ड आदि; परन्तु सभी स्थानों पर कालक्रम से छः ऋतुएँ तो अवश्य होती हैं। जैसे ज्येष्ठ, आषाढ़, ग्रीष्म प्रधान हैं, अतः जो गर्म स्थान है; वहाँ पर गर्मी बहुत अधिक होगी, परन्तु जो शीत स्थान है, वहाँ शीतकाल से अधिक गर्मी हो जायेगी। अतः यहाँ ऋतुओं का स्थानाभिमानी कहना उचित ही है।।१३।। दिन, रात, मास, ऋतु, अयन (दक्षिणायन उत्तरायण) संवत्सर ये अभिमानी काल के नाम कहे गये हैं।।१४।। इनमें जो अभिमानी काल की अवस्था व्यवस्थित करने वाले हैं, वे सब उसी अस्तित्व में रहने वाले उन्हीं के समान हैं। उनको मैं कहूँगा समझिये—पर्व, तिथि, सन्ध्या, पक्ष (शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष) जो महीने का आधा भाग होता है, निमेष, कला, काष्ठ, मुहूर्त, दिन और रात।।१५-१६।। दो अर्द्धमास का एक मास होता है और दो माह की एक ऋतु कही जाती है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है। इस प्रकार दक्षिण और उत्तर क्रम से दो अयन होते हैं। जब सूर्य दक्षिण की ओर होते हैं, तब दक्षिणायन तथा जब उत्तर की ओर रहते हैं, तब उत्तरायण होता है।।१७।। इन दोनों अयनों को मिलाकर एक संवत्सर समेत होता है। ये सभी स्थान धारियों के स्थान हैं। ये ऋतुएँ तो इस समेत के पुत्र हैं, इनकी

ऋतुपुत्राः स्मृताः पंच प्रजाः स्वार्तवलक्षणाः।
यस्माच्चैवार्त्तवेभ्यस्तु जायन्ते स्थाणु जंगमाः॥१९॥
आर्तवा पितरस्तस्मादृतवश्च पितामहाः। समेतास्तु प्रसूयंते प्रजाश्चैव प्रजापतेः॥२०॥
तस्मात्स्मृतः प्रजानां वै वत्सरः प्रपितामहः।
स्थानेषु स्थानिनो ह्येते स्थानात्मानः प्रकीर्त्तिताः॥२१॥
तदाख्यास्तत्ससत्त्वाश्च तदात्मनश्च ते स्मृताः। प्रजापति स्मृतो यस्तु स तु संवत्सरो मतः॥२२॥
संवत्सरसुतो ह्यग्नि ऋत इत्युच्यते बुधैः। ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्ततः॥२३॥
मासाः षडर्तवो ज्ञेयास्तेषां पंचर्तवाः स्मृताः। द्विपदां चतुष्पदां चैव पक्षिणां सर्पतामपि॥२४॥
स्थावराणां च पंचानां पुष्पं कालार्त्तवं स्मृतम्।
ऋतुत्वमार्तवत्वं च पितृत्वं च प्रकीर्त्तितम्॥२५॥
इत्येते पितरो ज्ञेया ऋतवश्चार्तवाश्च ये। सर्वभूतानि तेभ्यो यदृतुकालाद्विजज्ञिरे॥२६॥
तस्मादेते हि पितर आर्तवा इति नः श्रुतम्। मन्वंतरेष्विह त्वेते स्थिताः कालाभिमानिनः॥२७॥
कार्यकारणयुक्तास्तु ऐश्वर्याद्व्याप्य संस्थिताः।
स्थानाभिमानिनो ह्येते तिष्ठंतीह प्रसंगमात्॥२८॥

संख्या छः समझनी चाहिये।।१८।। ऋतुपुत्रों की संख्या पाँच है, जो सब आर्तव लक्षणों वाले हैं। आर्तव का अर्थ ही है, जो ऋतु से पैदा हुये, इसीलिये ऋतुपुत्रों को आर्तव कहा गया है। उन उन आर्तवों से ही स्थाणु (पृथ्वी पर जल नदी पर्वतादि) तथा जङ्गम (नर वानर पक्षी पशु आदि) उत्पन्न होते हैं।।१९।। इस प्रकार ऋतु पुत्र आर्तव जड़ चेतन के पिता हैं, उसी कारण ऋतु में सब जड़चेतन के पितामह हुए। समेत ही तो प्रजापति की समस्त प्रजाओं को उत्पन्न करते हैं। उसी कारण से संवत्सर निश्चय ही प्रजाओं के प्रपितामह कहे जाते हैं। ये सभी अपने अपने स्थान पर रहने के कारण स्थानात्मक कहे गये हैं।।२०-२१।। उसी रूप में वर्तमान रहने के कारण वे उनके पुत्र कहे गये हैं, जो प्रजापति कहे गये हैं। वे तो संवत्सर ही माने गये हैं।।२२।।

संवत्सर का पुत्र अग्नि विद्वानों द्वारा ऋत कहा जाता है। ऋत से ऋतुओं का जन्म हुआ, इसलिये वे ऋतु कहे गये।।२३।। महीनों को ही छः ऋतुएं समझना चाहिये अतः मास भी ऋतु ही हैं। उनके पाँच पुत्र हुए, जो ऋतुओं की अपत्य होने से आर्तवकहे गये हैं। वे हैं दो पैर वाले मनुष्य, चार पैर वाले पशु-पक्षियों, सरकने वाले जीव सर्पादि और स्थावर नदी पर्वत वृक्षादि पंचभूतों का जो पुष्पकाल है, वही आर्तव कहलाता है। ऋतुत्व और आर्तत्व पितृत्व कहा गया है।।२४-२५।। इस प्रकार ये सभी ऋतु और आर्तव पितर समझे जाने चाहिये। उन ऋतु और आर्तव से ही सभी प्राणी ऋतु काल से उत्पन्न हुए हैं। इसी कारण ये सब आर्तव पितर कहे गये हैं। ऐसा हमने सुना है। मन्वन्तरों में ये सब कालाभिमानी स्थित रहते हैं।।२६-२७।। ये सभी कार्य और कारण से युक्त होकर ऐश्वर्य से व्याप्त होकर स्थित हैं। ये सब स्थानाभिमानी हैं और इस लोक में प्रसङ्ग (सम्भोग) से स्थित हैं। भाव यह है कि समस्त प्रपंच की कारण ये ऋतुयें ही हैं, उसी के कारण सब जड़ चेतन स्थित हैं अर्थात् प्रकृति ही समस्त प्रपंच का मूल कारण है। ऋतुयें प्रकृति की प्रतीक हैं तथा वे ऋतुयें अकेले ही सकल प्रपंच की कारण नहीं, उनमें ऐश्वर्य व्याप्त है अर्थात् वे सब ईश्वर की शक्ति से सकल प्रपञ्च की कारण हैं।।२८।।

अग्निष्वात्ता बर्हिपदः पितरो विविधाः पुनः। जज्ञे स्वधापितृभ्यस्तु द्वे कन्ये लोकविश्रुते॥२९॥
मेना च धारणी चैव याभ्यां धृतमिदं जगत्। ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चैव ते उभे॥३०॥
पितरस्ते निजे कन्ये धर्मार्थं प्रददुः शुभे। अग्निष्वात्तास्तु ये प्रोक्तास्तेषां मेना तु मानसी॥३१॥
धारणी मानसी चैव कन्या बर्हिषदां स्मृता।
मेरोस्तां धारणीं नाम पत्न्यर्थं वा सृजन् शुभाम्॥३२॥
पितरस्ते बर्हिषदः स्मृता ये सोमपायिनः। अग्निष्वात्तास्तु तां मेना पत्नीं हिमवते ददुः॥३३॥
उपहूता स्मृता ये वै तद्दौहित्रान्निबोधत। मेना हिमवतः पत्नी मैनाकं सा व्यजायत॥३४॥
गंगां सरिद्वरां चैव पत्नी या लवणोदधेः।
मैनाकस्यात्मजः क्रौंचः क्रौंचद्वीपो यतः स्मृतः॥३५॥
मेरोस्तु धारणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम्। मंदरं सुषुवे पुत्रं तिस्रः कन्याश्च विश्रुताः॥३६॥
वेलां च नियतिं चैव तृतीयां चायतिं विदुः। धातुश्चैवायतिः पत्नी विधातुर्नियतिः स्मृता॥३७॥
स्वायंभुवेऽतरे पूर्वं ययोर्वै कीर्त्तिताः प्रजाः। सुषुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिंदिताम्॥३८॥
सवर्णां नाम सामुद्रीं पत्नीं प्राचीनबर्हिषः। सवर्णायां सुता जाता दश प्राचीनबर्हिषः॥३९॥
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः। तेषां स्वायंभुवो दक्षः पुत्रत्वं जग्मिवान्प्रभुः॥४०॥
त्र्यंबकस्याभिशापेन चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। एतच्छ्रुत्वा ततः सूतमपृच्छच्छांशपायनिः॥४१॥

अग्निष्वाता और बर्हिषत् ये पितर पुनः दो प्रकार के हैं, उन्होंने लोकप्रसिद्ध दो कन्याओं को उत्पन्न किया।।२९।। उनका नाम था मेना और धारिणी, जिन्होंने इस संसार को धारण किया। वे दोनों ब्रह्मवादिनीऔर योगिनी थीं।।३०।। पितरों ने उन दोनों कन्याओं को धर्म के लिये प्रदान कर दिया। अग्निष्वात्ता जो कहे गये उनकी मानसी पुत्री मेना थी।।३१।। धारणी बर्हिषद् की मानसी कन्या कही गयी है। बर्हिषद् पितर ने धारणी मेरु की पत्नी बनाने के लिये उत्पन्न किया था।।३२।। बर्हिषद् पितर जो सोम पीने वाले हैं। अग्निष्वात्ता ने तो मेना को हिमालय को प्रदान कर दिया अर्थात् हिमालय के साथ मेना का विवाह कर दिया।।३३।। ये सब उपहूत (क्षमाद) बताये गये और उनके नातियों (धेवतों) का नाम सुनिये। मेना हिमवान् की पत्नी थी, उसने मेनाक को पैदा किया।।३४।। गंगा श्रेष्ठ नदी थी, जो लवणोदधि की पत्नी थी[१]।मेनाक पर्वत का पुत्र क्रोञ्च था, जो कि क्रोञ्च द्वीप कहा गया।।३५।।

मेरु की पत्नी धारणी थी, जो दिव्य औषधियों से सम्पन्न थी। उसका पुत्र मन्दर हुआ और तीन कन्यायें प्रसिद्ध हैं।।३६।। उन कन्याओं के नाम हैं बेला, नियति और तीसरी आयति जानिये, उसके बाद धाता की पत्नी आयति हुई और विधाता की पत्नी नियति प्रसिद्ध हुई।।३७।। स्वायंभुव मन्वन्तर में पहले इन दोनों से ही प्रजायें कीर्तित हुई। सागर से वेला ने एक अनिन्दित कन्या को उत्पन्न किया।।३८।। प्राचीन बर्हिष् की सवर्णा नाम की सामुद्री पत्नी, सवर्णा के गर्भ से प्राचीन बर्हिष् के दशपुत्र पैदा हुए।।३९।। वे सभी प्राचेतस नाम वाले थे और सब धनुर्वेद में पारङ्गत थे। उनका स्वायम्भुव प्रभु दक्ष ने पुत्रत्व प्राप्त किया अर्थात् उनके पुत्र स्वायंभुव दक्ष हुए। चाक्षुष मनु के मन्वन्तर में त्र्यमक के शाप से स्वायंभुव दक्ष प्राचेतस के पुत्र रूप में पैदा हुए। यह सुनकर उसके शाशंपायन ने सूत जी से

१. गंगा नदी लवण समुद्र में गिरती है। अतः समुद्र की पत्नी होना प्रतीकात्मक है; क्योंकि पत्नी पति पास गिरती है।

उत्पन्नः स कथं दक्षो ह्यभिशापाद्भवस्य तु। चाक्षुषस्यांतरे पूर्वं तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्॥४२॥

इत्युक्तः कथयामास सूतो दक्षाश्रयां कथाम्।
शांशपायनिमामंत्र्य त्र्यंबकाच्छापकारणम्॥४३॥

सूत उवाच

दक्षस्यासन्सुता ह्यष्टौ कन्या साः कीर्त्तिताः मया।
स्वेभ्यो गृहेभ्य अनाय्य ताः पिताभ्यर्चयद्गृहे॥४४॥
ततस्त्वभ्यर्चिताः सर्वा न्यवसंस्ताः पितुर्गृहे।
तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या त्र्यंबकस्य वै॥४५॥

नाजुहावात्मजां तां वै दक्षो रुद्रमभिद्विषन्। अकरोत्संनतिं दक्षे न कदाचिन्महेश्वरः॥४६॥

जामाता श्वशुरे तस्मिन्स्वभावात्तेजसि स्थितः।
ततो ज्ञात्वा सती सर्वाः स्वसृः प्राप्ताः पितुर्गृहम्॥४७॥
जगाम साप्यनाहूता सती तत्स्वपितुर्गृहम्।
ताभ्यो हीनां पिता चक्रे सत्याः पूजामसंमताम्॥४८॥

ततोऽब्रवीत्सा पितरं देवी क्रोधादमर्षिता। यवीयसीभ्यां ह्यधमां पूजां कृत्वा मम प्रभो॥४९॥
असत्कृत्य पितर्मां त्वं कृतवानसि गर्हितम्। अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा च त्वं मां सत्कर्तुमर्हसि॥५०॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः संरक्तलोचनः। त्वत्तः श्रेष्ठावरिष्ठाश्च पूज्या बालाः सुता मम॥५१॥
तासां चैव तु भर्तारस्ते मे बहुमताः सति। ब्रह्मिष्ठाः सुतपस्काश्च महायोगाः सुधार्मिकाः॥५२॥

पूछा कि चाक्षुष मनु के अधिकार काल में शंकर के अभिशाप से दक्ष कैसे उत्पन्न हुआ यह हम पूछने वालों को बताइये।।४०-४२।। यह सुनकर सूत जी ने दक्ष से आश्रित कथा को शांशपायनि को बुलाकर त्र्यम्बक के शाप के कारण वाली कथा को कहा।।४३।। सूत जी बोले कि दक्ष की आठ कन्यायें थीं, यह मैं पहले ही कह चुका हूँ। उन सबको उनके अपने अपने घरों से बुलाकर पिता दक्ष ने अपने घर में पूजा सत्कार किया।।४४।। उसके बाद जिनका आदर सत्कार किया, वे सभी उनकी पुत्रियां पिता के घर में रहने लगीं। उनकी सबसे बड़ी पुत्री सती नाम की थी, जो त्र्यम्बक भगवान् शिव की पत्नी थीं।।४५।।

दक्ष ने रुद्र से अभिद्वेष होने के कारण उनकी पत्नी को नहीं बुलाया; क्योंकि कभी रुद्र भगवान् शिव ने दक्ष को अच्छी प्रकार झुककर नमस्कार नहीं किया था।।४६।। जामाता और श्वसुर में उसी समय से स्वभाव से तेज में स्थित थे अर्थात् एक-दूसरे पर क्रोधित थे। जब सती ने जाना कि उनके पिता ने उनकी सब बहिनों को बुलाया है, वे भी विना बुलाये ही पिता दक्ष के घर चली गयीं। अपनी सभी पुत्रियों में सती को सत्कार से हीन रखा। अर्थात् सबसे बड़ी पुत्री के रूप में उनकी पूजा (आदर) नहीं किया।।४७-४८।। तब क्रोध से धैर्य खोयी हुई सती पिता से बोली कि हे पिताजी मैं अपनी बहिनों में सबसे बड़ी हूँ, फिर भी आपने मेरी पूजा (मेरी सत्कृति) सबसे अधम की की है।।४८।। हे पिता जी आपने मेरा अनादर करके बहुत गर्हित कार्य किया है। मैं सबसे बड़ी हूँ, इसलिये आपको मेरा सत्कार करना चाहिये।।५०।। सती जी के ऐसा कहने पर क्रोध से लाल आँखें किये हुए दक्ष ने कहा कि तुम से श्रेष्ठ, वरिष्ठ और पूज्य मेरी सब पुत्रियां हैं; क्योंकि उन सबके पतियों ने मुझे बहुत माना है। वे सब ब्रह्म में स्थित

गुणैश्चैवाधिकाः श्लाघ्याः सर्वे ते त्र्यंबकात्सति।
वसिष्ठोऽत्रिः पुलस्त्यश्च ह्यंगिरा पुलहः क्रतुः॥५३॥
भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम। यस्मान्मां स्पर्द्धते शर्वः सदा चैवावमन्यते॥५४॥
तेन त्वां न विभूषामि प्रतिकूलो हि मे भवः। इत्युक्तवांस्तदा दक्षः संप्रमूढेन चेतसा॥५५॥
शापार्थमात्मनश्चैव ये चोक्ताः परमर्षयः। तथोक्ता पितरं सा वै क्रुद्धा देवीदमब्रवीत्॥५६॥
वाङ्मनः कर्मभिर्यस्माददुष्टां मां विगर्हसे। तस्मात्त्यजाम्यहमिमं देहं तात तवात्मजम्॥५७॥
ततस्तेनावमानेन सती दुःखादमर्षिता। अब्रवीद्वचनं देवी नमस्कृत्य स्वयंभुवे॥५८॥
यत्राहमुपपद्ये च पुनर्देहेन भास्वता। तत्राप्यहमसंभूता संभूता धार्मिकादपि॥५९॥
गच्छेयं धर्मपत्नीत्वं त्र्यंबकस्यैव धीमतः। तत्रैवाथ समासीना युक्तात्मानं समादधे॥६०॥
धारयामास चाग्नेयीं धारणां मनसात्मनः। तत आत्मसमुत्थोऽस्या वायुना समुदीरितः॥
सर्वांगेभ्यो विनिःसृज्य वह्निस्तां भस्मसात्करोत्॥६१॥
तदुपश्रुत्य निधनं सत्या देवोऽथ शूलभृत्। संवादं च तयोर्बुद्ध्वा याथातथ्येन शंकरः।
दक्षस्य च ऋषीणां च चुकोष भगवान्प्रभुः॥६२॥

रुद्र उवाच

सर्वेषामेव लोकानां भूर्लोकस्त्वादिरुच्यते। तं सदा धारयिष्यामि निदेशात्परमेष्ठिनः॥६३॥

हैं। अच्छी तपस्या करने वाले हैं। महान् योगी और अच्छे धार्मिक हैं।।५१-५२।। वे सभी गुणों के द्वारा त्र्यम्बक से अधिक प्रशंसनीय हैं। वशिष्ठ, अत्रि, पुलस्त्य, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, भृगु और मरीचि सभी मेरे श्रेष्ठ जामाता हैं। वह शिव मुझसे स्पर्धा करता है तथा तुम उसी को मानती हो। इसीलिये मैं तुमको नहीं विभूषित कर रहा हूँ; क्योंकि वह तुम्हारा पति शिव मेरे प्रतिकूल (विरुद्ध) है। तब इस प्रकार किंकर्तव्यविमूढ चित्त से कहने वाला दक्ष अपने शाप के लिये कारण बन गया। ऐसा परम ऋषियों ने कहा है। इसके बाद क्रुद्धा सती देवी ने अपने पिता से यह कहा।।५४-५६।। हे तात! जिस वाणी मन और कर्म से मुझे आप दुष्टा दुष्टा कहकर निन्दा कर रहे हो, उसी के कारण अर्थात् उस वाणी मन और कर्म वाली तुम्हारी आत्मा से उत्पन्न इस शरीर को मैं छोड़ती हूँ।।५७।।

उसके बाद उस अपमान के द्वारा सती दुःख से धैर्यहीन हो गयीं और स्वाम्भुव को नमस्कार करके देवी इस प्रकार बचन बोली कि जहाँ भी मैं फिर शरीर को प्राप्त करूँ वहाँ मैं इसी प्रकार के धर्म से युक्त और अयुक्त शरीर को प्राप्त करूँ अर्थात् जो गुण और अवगुण मेरे इस शरीर में है, वैसे ही गुणावगुणयुक्त शरीर को प्राप्त करूँ तथा मेरा यह शरीर फिर बुद्धिमान् त्र्यम्बक भगवान् शिव के ही पत्नीत्व को प्राप्त करे अर्थात् मैं उन्हीं की पत्नी बनूँ। इस प्रकार वहीं कहकर वे सती वहीं पर बैठ गयीं और उन्होंने अपनी आत्मा को सम्यक् प्रकार से योग में लीन कर दिया।।५७-६०।। तब उन्होंने अपने मन से अग्नि की धारणा की, तब उनकी आत्मा से उठे हुये वायु से प्रज्वलित अग्नि ने सभी अंगों से निकलकर उनके शरीर को भस्म कर दिया।।६१।। इसके बाद शूलधारण करने वाले महादेव ने सती के निधन के समाचार को सुनकर तथा उन दोनों के संवाद यथा तथा जानकर दक्ष के ऊपर तथा उन ऋषियों पर प्रभु शंकर क्रोधित हो गये।।६२।।

रुद्र बोले—समस्त लोकों में भूलोक आदि लोक कहा जाता है। उस भूलोक को मैं परमनिष्ठ की आज्ञा से

अस्यां क्षितौ धृता लोकाः सर्वे तिष्ठंति भास्वराः। तानहं धरयामीह सततं च तदाज्ञया॥६४॥
चातुर्वर्ण्यं हि देवानां ते चाप्येकत्र भुंजते। नाहं तैः सह भोक्ष्ये वै ततो दास्यंति ते पृथक्॥६५॥
यस्मादवमता दक्ष मत्कृतेऽनागसा सती। प्रशस्ताश्चेतराः सर्वाः स्वसुता भर्तृभिः सह॥६६॥
तस्माद्वैवस्वते प्राप्ते पुनरेते महर्षयः। उत्पत्स्यंते द्वितीये वै मम यज्ञे ह्ययोनिजाः॥६७॥
हुते वै ब्रह्मणा शुक्रे चाक्षुषस्यांतरे मनोः। अभिव्याहृत्य सर्वांस्तान् दक्षं चैवाशपत्पुनः॥६८॥
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्य त्वमन्वये। प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसाम्॥६९॥
दक्ष एवेह नाम्ना तु मारिषायां जनिष्यसि। कन्यायां शाखिनां त्वं वै प्राप्ते वैवस्वतेंऽतरे॥७०॥
विघ्नं तत्राप्यहं तुभ्यमाचरिष्यामि दुर्मते। धर्म्मयुक्ते च ते कार्ये एकस्मिंस्तु दुरासदे॥७१॥

सूत उवाच

तदुपश्रुत्य दक्षस्तु रुद्रं सोऽभ्यशपत्पुनः। यस्मात्त्वं मत्कृतेऽनिष्टमृषीणां कृतवानसि।
तस्मात्सार्द्धं सुरैर्यज्ञे न त्वां यक्ष्यंति वै द्विजाः॥७२॥
हुत्वाऽऽहुतिं तव क्रूरः ह्यपः स्प्रक्ष्यंति कर्मसु। इहैव वत्स्यसि तथा दिवं त्विा युगक्षयात्॥७३॥
ततो देवैः स तैः सार्द्धं नेज्यते पृथगिज्यते। ततोऽभिव्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा॥७४॥
स्वायंभुवीं तनुं त्यक्त्वा उत्पन्नो मानुषेष्विह॥७५॥

ही धारण कर रहा हूँ।।६३।। इस पृथ्वी पर धारण किये गये जितने भी प्रकाशमान लोक स्थित हैं, उनको मैं उनकी आज्ञा से निरन्तर धारण करता हूँ।।६४।। देवों मैं चातुर्वण्य व्यवस्था है, वे सब एक स्थान पर बैठकर एक साथ भोजन करते हैं। मैं उनके साथ नहीं खाता, इसलिये वे मुझे अलग से देते हैं। अर्थात् मुझे अपने से अलग कर दिया, जिसके कारण देवों के स्वामी दक्ष ने मेरे लिये निरपराध सती का अपमान किया और ये सब अपनी पुत्रियों को उनके अपने अपने पतियों के साथ सम्मानित किया।।६५-६६।। इसलिये ये सब ऋषि वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर ये ब महर्षि पुनः उत्पन्न होंगे तथा चाक्षुष मनु के काल में मेरे द्वितीय यज्ञ में ब्रह्मा द्वारा शुक्र के आहुति देने पर वे महर्षि अयोनिज उत्पन्न होंगे। इस प्रकार शंकर जी ने महर्षियों को शाप देकर पुनः दक्ष के पास जाकर उनको शाप दिया।।६७-६८।। कि तुम चाक्षुष मन्वन्तर काल में राजा होगे और वहाँ तुम प्राचीन बर्हिष् के पौत्र और प्रचेतस् के पुत्र होगे।।६९।। वह मानुष राजा प्रचेतस् तुम्हें वैवस्वत मनु के काल में वृक्षों की कन्या मारिषा दक्ष इस नाम से ही उत्पन्न करेगा।।७०।। वहाँ पर हे दुर्बुद्धि दक्ष मैं तुम्हारे एक दुरासद धर्म्मयुक्त कार्य में तुम्हारे लिये विघ्न का आचरण करूँगा।।७१।।

तब सूत जी बोले—शंकर जी के इस शाप को सुनकर दक्ष ने फिर शंकर जी को शाप दिया कि जिस कारण से तुम मेरे लिए ऋषियों का अनिष्ट कर रहे हो, उसी कारण ब्राह्मण लोग यज्ञ में देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे।।७२।। हे क्रूर शंकर! वे ब्राह्मण तुम्हारी आहुति देकर यज्ञकर्म में अर्थात् कुण्ड में जल छोड़ दिया करेंगे और तुम स्वर्ग को छोड़कर यहाँ इस पृथ्वी पर युग के अन्त तक निवास करोगे। उसके बाद भगवान् शंकर उन देवताओं के साथ पृथक् रूप से पूजे जाते हैं।।७३-७३½।। उसके बाद भगवान् रुद्र के असीमित तेज वाले शाप से शापित दक्ष स्वायम्भुवी शरीर को छोड़कर भूलोक में मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए।।७३½-७५।।

ज्ञात्वा गृहपतिर्दक्षो यज्ञानामीश्वरं प्रभुम्। समस्तेनेह यज्ञेन सोऽयजद्दैवतैः सह।।७६।।
अथ देवी सती या तु प्राप्ते वैवस्वतेंऽतरे। मेनायां तामुमां देवीं जनयामास शैलराट्।।७७।।
या तु देवी सती पूर्वमासीत्पश्चादुमाऽभवत्। सदा पत्नी भवस्यैषा न तया मुच्यते भवः।।७८।।
मारीचं कश्यपं देवी यथादितिरनुव्रता। यथा नारायणं श्रीश्च मघवंतं शची यथा।।७९।।
विष्णुं कीर्ती रुषा सूर्यं वसिष्ठं चाप्यरुंधती। नैतास्तु विजहत्येतान् भर्तॄन्देव्यः कदाचन।।८०।।
आवर्तमानाः कल्पेषु जायंते तैः पुनः सह। एवं प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेंऽतरे।।८१।।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां पुनर्नृपः। जज्ञे तदाभिशापेन द्वितीय इति नः श्रुतम्।।८२।।
भृग्वादयश्च ये सप्त जज्ञिरे च महर्षयः। आद्ये त्रेतायुगे पूर्वं मनोर्वैवस्वतस्य च।।८३।।
देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्। इत्येषोऽनुशयो ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरानुगः।।८४।।
प्रजापतेश्च दक्षस्य त्र्यंबकस्य च धीमतः। तस्मान्नानुशयः कार्यो वैरेष्विह कदाचन।।८५।।
जात्यंतरगतस्यापि भवितस्य शुभाशुभैः। ख्यातिं न मुंचते जंतुस्तन्न कार्यं विपश्चिता।।८६।।
इत्येषा समनुक्रांता कथा पापप्रमोचनी। या दक्षमधिकृत्येह त्वया पूर्वं प्रचोदिता।।८७।।
पितृवंशप्रसंगेन कथा ह्येषा प्रकीर्त्तिता। पितॄणामानुपूर्व्येण देवान्वक्ष्याम्यतः परम्।।८८।।
त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन्स्वयंभुवेंऽतरे। देवा यामा इति ख्याताः पूर्वं ये यज्ञसूनवः।।८९।।

अपने को यज्ञों का ईश्वर (पैदा करने वाला सबका स्वामी) और प्रभु समझकर गृहपति दक्ष ने देवताओं के साथ समस्त यज्ञविधान से यज्ञ किया।।७६।। इसके बाद वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर हिमालय ने देवी सती को मेना के गर्भ से उमा नाम से उत्पन्न किया।।७७।। जो पहले देवी सती थीं, वही बाद में उमा हो गयीं तथा वे सदा भव (शंकर) की पत्नी हैं; इसलिए शंकर उन्हें नहीं छोड़ते हैं।।७८।। जैसे मारीच और कश्यप को देवी अदिति और अनुव्रता नहीं छोड़ती, जैसे नारायण श्री (लक्ष्मी) और इन्द्र को इन्द्राणी (शची) नहीं छोड़तीं। जैसे विष्णु को कीर्ति, सूर्य को उषा और वशिष्ठ को अरुन्धती नहीं छोड़ती। ये सभी देवियां अपने अपने पतियों को कभी नहीं छोड़तीं।।७९-८०।। कल्पों के बीतने पर वे उनके साथ फिर पैदा होती हैं। इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर में प्रचेता से प्राचेतस दक्ष का जन्म हुआ।।८१।। प्रचेतस से मनीषा के गर्भ में दश पुत्र उत्पन्न हुए उस शाप के कारण उन्हें दुबारा जन्म लेना पड़ा, हमने सुना है।।८२।।

पहले वैवस्वत मन्वन्तर के पहले त्रेतायुग में भृगु आदि सात महर्षि उत्पन्न हुए।।८३।। वे सभी महर्षिगण देवों के महान् यज्ञ में वरुण सदृश शरीर को धारण करके ये जो पूर्वजन्म के अनुसार उत्पन्न हुए और जो बुद्धिमान् त्र्यम्बक और दक्ष प्रजापति का जात्यन्तरानुग (जातियों के अन्तर्गत चलने वाला वैर) विद्वेष था, वह पूर्वजन्म की भाँति चलने लगा।। उसी कारण कभी भी वैरों में अनुशय नहीं करना चाहिये। अर्थात् वैर को प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाना चाहिये। अनुशय का अर्थ उसी में स्थित रहना अर्थात् वैर के बारे में ही सोचते रहना है।।८५।। शुभ और अशुभ कर्मों से युक्त जो जन्तुओं के आन्तरिक भाव हैं, वे दूसरे जन्म में नहीं छोड़ते। अतः विद्वानों द्वारा किसी से विद्वेष नहीं करना चाहिये।।८६।। तब ऋषियों ने सूत जी से कहा कि यह जो आपने दक्ष को लेकर पाप को नष्ट करने वाली कथा कही है। वह कथा पितृवंश वर्णन प्रसङ्ग द्वारा कही गयी है और पितरों की कथा के बाद क्रमानुसार देवों की कथा को कहूँगा। पूर्वकाल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में त्रेतायुग के प्रारम्भ में देवता लोग यामा इस नाम से प्रसिद्ध थे। पहले जो यज्ञके पुत्र के रूप में प्रसिद्ध थे।।८७-८९।।

प्रथिता ब्रह्मणः पुत्रा अजत्वादजितास्तु ते। पुत्राः स्वायंभुवस्यैते शुक्रा नाम तु मानसाः॥९०॥
तेषां यतो गणा ह्येते देवानां तु त्रयः स्मृताः। छन्दजास्तु त्रयस्त्रिंशत्सर्गे स्वायंभुवस्य ह॥९१॥
यदुर्ययातिर्देवौ द्वौ वीवधस्त्रासतो मतिः। विभासश्च क्रतुश्चैव प्रयातिर्विश्रुतो द्युतिः॥९२॥
वायव्यः संयमश्चैव यामा द्वादश कीर्त्तिताः। असमश्चोग्रदृष्टिश्च सुनयोऽथ शुचिश्रवाः॥९३॥
केवलो विश्वरूपश्च सुदक्षो मधुपस्तथा। तुरीय इंद्रयुक्चैव युक्तो ग्रावजितस्तु वै॥९४॥
जनिमा विश्वदेवा च जविष्ठो मितवानपि। जरो विभुर्विभावश्च स ऋचीकोऽथ दुर्दिहः॥९५।
श्रुतिर्गृणनोऽथ बृहच्छुक्रा द्वादश कीर्त्तिताः। आसन्स्वायंभुवस्यैते चान्तरे सोमपायिनः॥९६॥
दीप्तिमंतो गणा ह्येते वीर्यवन्तो महाबलाः। तेषामिन्द्रस्तदा ह्यासीत्प्रथमे विश्वभुक् प्रभुः॥९७॥
असुरा ये तदा तेषामासन् दायादबान्धवाः। सुपर्णयक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः॥९८॥

अष्टौ ताः पितृभिः सार्द्धमासन्या देवयोनयः।
स्वायंभुवेंतरेऽतीताः प्रजास्तासां सहस्त्रशः॥९९॥

प्रभावरूपसंपन्ना आयुषा च बलेन च। विस्तरादिह नोच्यंते माप्रसंगो भवेदिह॥१००॥
स्वायंभुवो विसर्गस्तु विज्ञेयः सांप्रतेन ह। अतीतो वर्तमानेन दृष्टो वैवस्वतेन सः॥१०१॥

वे अजन्मा होने के कारण ब्रह्मा के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हुए तथा वे अजित थे अर्थात् उन्हें कोई जीत नहीं सकता था। स्वायम्भुव मनु के पुत्र शुक्र नामक मानस कहे गये।।९०।। उनमें जो गण थे, वे देवों के तीन गण हुए। स्वायम्भुव के सर्गकाल में ३३ छन्दज (छन्द से पैदा होने वाले) देवता हुए।।९१।। तथा १. यदु और २. ययाति दो, ३. वीवधस्, ४. त्रासत, ५. मति, ६. विभास, ७. क्रतु, ८. प्रयाति, ९. विश्रुत, १०. द्युति, ११. वायव्य और १२. संयम ये बारह याम कहे गये हैं। १. असम[1], २. उग्रदृष्टि, ३. सुनय, ४. शुचिश्रवा, ५. केवल, ६. विश्वरूप, ७. सुदक्ष, ८. मधुप, ९. तुरीय, १०. इन्द्रयुक्, ११. युक्त, १२. ग्रावजित्, १३. जनिमा, १४. विश्वदेव, १५. जविष्ठ, १६. मितवान्, १७. जर, १८. विभु, १९. विभाव, २०. ऋचीक और २१. दुर्दिह, २२. श्रुति, २३. गृणन, और २४. बृहत् शुक्र ये सब और जो पहले बारह कहे गये, वे सब सोम का पान करने वाले देवता स्वायम्भुव मन्वन्तर में विद्यमान थे।।९१-९६।।

इनमें से पहले १२ गण दीप्तिमान् थे और बाद वाले वीर्यवान् थे। उनमें सबसे पहले विश्व का भोग करने वाले सबके स्वामी राजा थे।।९७।। तब असुर उनके अपने द्रायादबन्धु थे अर्थात् सुर असुर दोनों एक ही परिवार के थे। इसलिए दोनों का सभी में बराबर का भाग था। सुपर्ण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, उरग (सर्प) और राक्षस ये छः और सुर एवं असुर कुल आठ हुए ये सब पितरों के साथ देवयोनि हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तर काल में उनकी हजारों सन्तानें बीत चुकी हैं।।९८-९९।। वे सभी आयु और बल से प्रभाव रूप सम्पन्न थे। अर्थात् आयु और बल में सबका प्रभाव और रूप दोनों ही भरपूर थे। कोई किसी से कम नहींथा। यहाँ पर उनका वर्णन विस्तार रूप से नहीं किया जा रहा है तथा यहाँ पर यह प्रसंग भी नहीं है।।१००।।

स्वायम्भुव मनु की सृष्टि का विस्तार वर्तमान और वैवस्वत मनु के समान ही समझना चाहिये। अतीत भी

---

१. वायुपुराण अभिमन्यु।

प्रजाभिर्देवताभिश्च ऋषिभिः पितृभिः सह। तेषां सप्तर्षयः पूर्वमासन्ये तान्निबोधत॥१०२॥
भृगवंगिरा मरीचिश्च पुलस्त्य पुलहः क्रतुः। अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च सप्त स्वायंभुवेंऽतरे॥१०३॥

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान्हव्यः सवनः सत्र एव च॥१०४॥

मनोः स्वायंभुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः। वायुवेगा महासत्त्वा राजानः प्रथमेंऽतरे॥१०५॥
सासुरं तत्सुगंधर्वं सयक्षोरगराक्षसम्। सपिशाचमनुष्यं च ससुपर्णाप्सरोगणम्॥१०६॥
नशक्यमानुपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि। बहुत्वान्नामधेयानां संख्या तेषां कुतः कुले॥१०७॥

या वै प्रजा युगाख्यास्तु आसन्स्वायंभुवेंऽतरे।
कालेन महताऽतीता अयनाब्दयुगक्रमैः॥१०८॥

ऋषय ऊचुः

क एष भगवान् कालः सर्वभूतापहारकः।
कस्य योनिः किमादिश्च किं सतत्त्वः किमात्मकः॥१०९॥
किमस्य चक्षुः का मूर्तिः के वा अवयवाः स्मृताः।
किं नामधेयं कोऽस्यात्मा एतत्त्वं ब्रूहि तत्त्वतः॥११०॥

सूत उवाच

श्रूयतां कालसद्भावः श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
सूर्ययोनिर्निमेषादिः संख्याचक्षुः स उच्यते॥१११॥

वर्तमान की तरह ही देखा जाता है।।१०१।। प्रजाओं, ऋषियों, देवताओं और पितरों के साथ पहले उनके जो सप्तर्षि थे, उनको जानो।।१०२।। वे हैं—१. भृगु, २. अंगिरा, ३. मरीचि, ४. पुलस्त्य, ५. पुलह क्रतु, ६. अत्रि और ७. वशिष्ठ ये सात स्वायंभुव मन्वन्तर काल में थे।।१०३।। १. आग्नीध्र, २. अग्निबाहु, ३. मेधा, ४. मेधातिथि, ५. वसु, ६. ज्योतिष्मान्, ७. द्युतिमान्, ८. हव्य, ९. सवन और १०. सत्र ये दश पुत्र महान् ओजस्वी स्वायम्भुव मनु के थे। प्रथम मन्वन्तर में ये वायु के समान वेग वाले महान् पराक्रमी राजा थे।।१०३-१०५।। असुरों सहित, गन्धर्वो सहित और यक्ष, उरग और राक्षसों सहित तथा पिशाच और मनुष्यों सहित एवं सुपर्ण और अप्सरागणों सहित सबका वर्णन यथाक्रम सैकड़ों वर्षों में नहीं किया जा सकता है; क्योंकि उन राजकुलों की संख्या बहुत अधिक थी।।१०६-१०७।। स्वायम्भुव मन्वन्तरकाल में जो युग नामक प्रजागण थे, उनको अयन वर्ष और युगक्रम से बहुत समय बीत चुका है।।१०८।।

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी यह बताइये कि यह सबके प्राणों का अपहरण करने वाले भगवान् काल कौन हैं? ये किसकी योनि अर्थात् ये किससे पैदा हुए हैं? क्या उनका आदि है, अर्थात् इनसे पहले क्या था? क्या उनके तत्त्व हैं? तथा क्या इनकी आत्मा है? कौन इनकी आँख है? क्या इनकी मूर्ति (आकृति) है? क्या इनके अवयव हैं? क्या इनका नाम है? तथा कौन इनकी आत्मा है?।।१०९-११०।।

सूत जी बोले कि काल का सद्भाव सुनो और सुनकर के ध्यान दीजिये। इन काल की योनि सूर्य अर्थात् काल को पैदा करने वाले सूर्य हैं। इनका आदि (प्रारम्भ) निमेष है और संख्या इनकी आँख कही जाती है।।१११।।

मूर्तिरस्य त्वहो रात्रो निमेषावयवश्च सः। संवत्सरः सतत्त्वश्च नाम चास्य कलात्मकः॥११२॥
साम्प्रतानागतातीतकालात्मा स प्रजापतिः।
पंचधा प्रविभक्तां तु कालावस्थां निबोधत॥११३॥
दिवसार्द्धमासमासैश्च ऋतुभिस्त्वयनैस्तथा। संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः॥११४॥
इड्वत्सरस्तृतीयश्च चतुर्थश्चानुवत्सरः। पंचमो वत्सरस्तेषां कालः स युगसंज्ञितः॥११५॥
तेषां तत्त्वं प्रवक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत।
क्रतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः॥११६॥
आदितेयस्त्वसौ सूर्यः कालाग्निः परिवत्सरः।
शुक्लकृष्णगतिश्चापि अपां सारमयः खगः॥११७॥
स इडावत्सरः सोमःपुराणे निश्चयं गतः। यश्चायं पवते लोकांस्तनुभिः सप्तसप्तभिः॥११८॥
अनुवाता च लोकस्य स वायुरनुवत्सरः। अहंकाराद्रुदद्रुद्रः संभूतो ब्रह्मणस्तु यः॥११९॥
स रुद्रो वत्सर स्तेषां विज्ञेयो नीललोहितः। सतत्त्वं तस्य वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत॥१२०॥
अंगप्रत्यंगसंयोगात्कालात्मा प्रपितामहः। ऋक्समयजुषां योनिःपंचानां पतिरीश्वरः॥१२१॥
सोऽग्निर्यमश्च कालश्च संभूतिः स प्रजापतिः।
प्रोक्तः संवत्सरश्चेति सूर्य योनिर्मनीषिभिः॥१२२॥
यस्मात्कालविभागानां मासर्त्वयनयोरपि। ग्रहनक्षत्रशीतोष्णवर्षायुः कर्मणां तथा॥१२३॥
योनिः स प्रविभागानां दिवसानां च भास्करः।
वैकारिकः प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः॥१२४॥

इस काल की मूर्ति दिन और रात हैं और निमेष इनके अवयव हैं। कलात्मक सतत्त्व संवत्सर इनका नाम है। वर्तमान, भविष्य और भूत उनकी आत्मा है तथा पाँच प्रकारों में बँटी हुई काल की अवस्थायें जानिये।।११२-११३।। दिन, अर्द्धमास और मासों के साथ ऋतुयें और अयन (उत्तरायण दक्षिणायन) है, अयन (घर) है। ये इनकी पाँच अवस्थाएँ हैं—प्रथम संवत्सर, द्वितीय परिवत्सर, तीसरा इड्वत्सर, चौथा अनुवत्सर और पांचवाँ वत्सर युग नामक काल कहलाता है।।११४-११५।। उनके वर्णनीय तत्त्वों को बताऊँगा, सुनिये। क्रतु नामक अग्नि को जो मैंने पहले कहा है, वही संवत्सर माना गया है।।११६।। सूर्य से उत्पन्न परिवत्सर काल की अग्नि के रूप वाला है। शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की गतिवाला जलों के सार से युक्त वह आकाशगामी सोम (चन्द्रमा) इडावत्सर है, ऐसा पुराण में निश्चय किया गया है। जो यह अपने उनञ्चास शरीरों से लोकों को पवित्र करते हैं तथा जो संसार को अनुप्राणित करने वाले हैं, वे वायु अनुवत्सर हैं। अहंकार के कारण रोये हुए रुद्र जो ब्रह्मा से सम्भूत हुए वे नीललोहित रुद्र वत्सर समझने चाहिये। उनको तत्त्वसहित मैं बताऊँगा सुनिये।।११७-१२०।। अंग प्रत्यङ्ग के संयोग से ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद के उत्पत्ति स्थान कालात्मा प्रपितामह पाँचों के स्वामी हैं।।१२१।। वे ही अग्नि हैं, वे ही यम हैं, वे ही काल हैं और वे ही प्रजापति हैं। विद्वानों ने सूर्य को संवत्सर की योनि कहा है अर्थात् सूर्य से संवत्सर उत्पन्न हुए, ऐसा विद्वानों ने कहा।।१२२।। इन्हीं सूर्य के कालों का विभाग अर्थात् मास, ऋतु, अयन, ग्रह, नक्षत्र, शीत, उष्ण, वर्षा, आयु, कर्म तथा दिनों का विभाग होता है।।१२३।। ये भास्कर (सूर्य) ही अनेकों प्रकार के विभागों के और दिनों के

एको नैकोऽथ दिवसो मासोऽथर्तुः पितामहः।
आदित्य सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृतः॥१२५॥
प्रभावश्चाव्ययश्चैव भूतानां तेन भास्करः। ताराभिमानी विज्ञेयो द्वितीयः परिवत्सरः॥१२६॥
सोमः सर्वौषधिपतिर्यस्मात्स प्रपितामहः। आजीवः सर्वभूतानां योगक्षेमकृदीश्वरः॥१२७॥
आवेक्षमाणः सततं बिभर्ति जगदंशुभिः। तिथीनां पर्वसंधीनां पूर्णिमादर्शयोरपि॥१२८॥
योनिर्निशाकरो यश्च अमृतात्मा प्रजापतिः।
तस्मात्स पितृमान्सोमः स्मृत इड्वत्सरात्मकः॥१२९॥
प्राणापानसमानाद्यैर्व्यानोदानात्मकैरपि। कर्मभिः प्राणिनां लोके सर्वचेष्टाप्रवर्तकः॥१३०॥
पंचानां चेंद्रियमनोर्बुद्धिस्मृतिबलात्मनाम्। समानकालकरणक्रियाः संपादयन्नपि॥१३१॥
सर्वात्मा सर्वलोकेश आवहप्रवहादिभिः। वर्त्तते चोपकारैर्यस्तनुभिः सप्तसप्तभिः॥१३२॥
विधाता सर्वभूतानां क्षेमी नित्यं प्रभंजनः। योनिरग्नेरपां भूमे रवेश्चन्द्रमसश्च यः॥१३३॥
वायुः प्रजापतिर्भूतो लोकात्मा प्रपितामहः। अहोरात्रकरस्तस्मात्स वायुरनुवत्सरः॥१३४॥
एते प्रजानां पतयश्चत्वार उपपक्षजाः। पितरः सर्वलोकानां लोकात्मानः प्रकीर्त्तिताः॥१३५॥
ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्राद्रुदन्समभवद्भवः। ऋषिर्विप्रा महादेवो भूतात्मा प्रपितामहः॥१३६॥
ईश्वरः सर्वभूतानां प्रणवो योऽथ पठ्यते। आत्मावेशेन भूतानामंगप्रत्यंगसंभवः॥१३७॥

उत्पत्तिकर्त्ता है। ये प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्र प्रजापति सूर्य एक एक दिन मास और ऋतु में विकार पैदा करने वालेहैं। ये ही आदित्य, सविता, भानु, जीवन और ब्रह्मसत्कृत कहे जाते हैं। ये सूर्य ही सब भूतों को पैदा करने वाले और अविनाशी हैं; इसीलिये वे भास्कर कहे जाते हैं।।१२४-१२५½।। द्वितीय परिवत्सर ताराभिमानी चन्द्रमा को समझिये। ये सोम समस्त औषधियों के पति हैं, इसलिये वे प्रपितामह कहे जाते हैं। ये सभी जीवों को जीवन देने वाले और योगक्षेम करने वाले हैं। ये सदैव जगत् को जागरूक होकर देखते हुए अपनी किरणों से जगत् का पालन करते हैं। तिथि, पर्व, पूर्णिमा, अमावस्या के योनि (उत्पादक) और रात को पैदा करने वाले अमृत की आत्मा रूप प्रजापति हैं। इसीलिये ये चन्द्रमा इड्वत्सर कहे गये हैं ।।१२५½-१२९।। ये जो प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानात्मक कर्मों द्वारा संसार में सब प्राणियों की सब प्रकार की चेष्टाओं के प्रवर्तक हैं।।१३०।। ये इन्द्रियां, मन, बुद्धि, स्मृति और बल इन पाँचों की समान काल क्रिया सम्पादित करते हुए अपनी आवह (चारों ओर हवा चलने) तथा प्रवह (सर्वत्र व्याप्त) होने की क्रिया से सबकी आत्मा है और समस्त संसार की रचना करते हैं तथा जो उपकार करने वाले अपने उनञ्चास शरीरों से वर्तमान हैं।।१३१-१३२।। ये वायु ही सब प्राणियों को विशेष रूप से धारण करने वाले हैं। ये ही अग्नि, जल, भूमि, सूर्य, चन्द्रमा की योनि है अर्थात् इनके पैदा करने वाले हैं। ये वायु ही प्रजापति होकर लोक की आत्मा हैं, ये ही प्रपितामह हैं। ये दिन और रात को करने वाले हैं। इसीलिये ये वायु देवता ही अनुवत्सर है।।१३३-१३४।। ये प्रजाओं के स्वामी चार उपपक्ष से उत्पन्न हैं, ये सब सब लोकों के पितर तथा लोकों की आत्मा कहे गये हैं।।१३५।। ध्यान करते हुए ब्रह्मा के मुख से रुद्र उत्पन्न हुए। ये ही ऋषि महात्मा, भूतात्मा और प्रपितामह हैं।।१३६।। ये ही सभी प्राणियों के ईश्वर और प्रणव (ॐ) कहे जाते हैं। ये ही आत्मा के वेश से प्राणियों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की उत्पत्ति करने

उन्मादकोऽनुग्रहकृद्रुद्रो वत्सर उच्यते। सूर्य्यश्च चन्द्रमाश्चाग्निर्वायू रुद्रस्तथैव च॥१३८॥
युगाभिमानी कालात्मा नित्यं संक्षयकृद्विभुः।
रुद्रः प्रविष्टो भगवाञ्जगत्यस्मिन्स्वतेजसा॥१३९॥
आश्रयान्मयि संयोगात्तनुभिर्नामभिस्तथा। ततस्तस्य तु वीर्येण लोकानुग्रहकारकम्॥१४०॥
देवत्वं च पितृत्वं च कालत्वं चास्य यत्परम्। तस्माद्वै सर्वथा रुद्रस्तद्विद्विद्भिरभीज्यते॥१४१॥
यतः पतिः स भगवान् प्रजेशानां प्रजापतिः।
भावनः सर्वभूतानां सर्वात्मा नीललोहितः॥१४२॥
औषधीः प्रतिसंधत्ते रुद्रः क्षीणाः पुनः पुनः। प्रजापतिमुखैर्देवैः सम्यगिष्टफलार्थिभिः॥१४३॥
त्रिभिरेव कपालैश्च त्र्यंबकैरौषधिक्षये। इज्यते भगवन् यस्मात्तस्मात्त्र्यंबक उच्यते॥१४४॥
गायत्री चैव त्रिष्टुप्च जगती चैव याः स्मृताः।
त्र्यंबका नामतः प्रेम्णा योनयस्ता वनस्पतेः॥१४५॥
ताभिरेकत्वभूताभिस्त्रिविधाभिः स्ववीर्यतः।
त्रिसाधनः पुरोडाशस्त्रिकपालः स वै स्मृतः॥१४६॥
त्र्यंबकः स पुरोडाशस्तेनैष त्र्यंबकः स्मृतः। इत्येतत्पंचवर्षं हि युगं प्रोक्तं मनीषिभिः॥१४७॥
यश्चैष पंचधात्मा वै प्रोक्तः संवत्सरो द्विजैः।
सैकः षट्को विजज्ञेऽथ मध्वादिऋतुसंज्ञकः॥१४८॥

वाले हैं।।१३७।। ये ही उन्मादक अर्थात् प्राणियों में उन्माद पैदा करने वाले, अनुग्रह करने वाले हैं। ये ही वत्सर कहे जाते हैं। ये ही सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु और रुद्र हैं।।१३८।। ये ही युगाभिमानी (युग के अहं रूप) कालात्मा (समय की आत्मा) नित्य, समस्त प्रपंच का सम्यक् प्रकार क्षय करने वाले और समस्त प्रपंच को पैदा करने वाले हैं। ये भगवान् इस संसार में अपने तेज से प्रविष्ट हो गये हैं। ये ही भगवान् अपने तेज से अपने आश्रयों में शरीरों और नामों से स्थित हैं। उसके बाद वे ही अपने पराक्रम से संसार पर अनुग्रह करने वाले हैं।।१३९-१४०।। विद्वानों द्वारा वे भगवान् रुद्र देवत्व, पितृत्व, कालत्व जो भी है, उससे भी परे है अर्थात् देवता, पितर और यहाँ काल से भी वे महान् हैं। इसी कारण वे रुद्र विद्वानों द्वारा पूजे जाते हैं।।१४१।। क्योंकि वे भगवान् रुद्र प्रजेशों के भी प्रजापति हैं। वे नीललोहित सर्वप्राणियों को उत्पन्न कराने वाले और सब प्राणियों की आत्मा है।।१४२।। ये भगवान् रुद्र क्षीण औषधियों को पुनः पुनः उत्पन्न करते हैं। औषधियों के नष्ट हो जाने पर सम्यक् रूप से चाहे गये फल की इच्छा रखने वाले प्रजापति प्रमुख देवों द्वारा और तीन ही कपालों वाले त्र्यम्बकों से जो पूजे जाते हैं; इसीलिये वे त्र्यम्बक कहे गये हैं।।१४३-१४४।। गायत्री, त्रिष्टुप और जगती जो तीन वेद के छन्द कहे गये हैं। इन तीनों के नाम से प्रेम से वे त्र्यम्बक कहे गये हैं और वे वनस्पति की योनियां हैं अर्थात् वनस्पतियों को पैदा करने वाले हैं।।१४५।। उन एकत्व को प्राप्त हुये तीन प्रकारों से अपने पराक्रम के कारण तीन साधन वाले पुरोडाश के कारण त्रिकपाल कहे गये।। वह त्रयम्बक ही पुरोडाश हैं, उसी कारण से ये त्र्यम्बक कहे गये हैं। इस प्रकार ये पंचवर्ष वाले युग को मनीषियों ने कहा है।।१४६-१४७।। यह जो पांच प्रकार की आत्मा है, उसे ही ब्राह्मणों ने संवत्सर कहा है। उनमें वह एक छठा

ऋतुपुत्रार्त्तवाः पंच इति सर्गः समासतः। इत्येष बहुमानो वै प्राणिनां जीवितानि च।
नदीवेग इवासक्तः कालो धावति संहरन्॥१४९॥
एतेषां यदपत्यं वै तदशक्यं प्रमाणतः। बहुत्वात्परिसंख्यातुं पुत्र पौत्रमनंतकम्॥१५०॥
इमं वंशं प्रजेशानां महतः पुण्यकर्मणाम्।
कीर्त्तयन्पुण्यकीर्त्तीनां महतीं सिद्धिमाप्नुयात्॥१५१॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे कालसद्भाववर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

प्रियवतवंशानुकीर्तनं नाम

चतुर्दशोऽध्यायः

सूत उवाच

अथान्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह। तुल्याभिमानिनः सर्वे जायन्ते नामरूपतः॥१॥
देवाश्चाष्टविधा ये च तस्मिन्मन्वन्तरेऽधिपाः। ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः॥२॥
महर्षिसर्गः संक्रान्तो वंशं स्वायंभुवस्य तु। विस्तरेणानुपूर्व्या च कीर्त्यमानं निबोधत॥३॥

वसन्तादि ऋतु नाम वाला है।।१४८।। ऋतुपुत्र पांच आर्तव हैं। उनका वर्णन संक्षेप में किया गया। इस प्रकार बहुत माने जाने वाले ये सभी प्राणियों के जीवन हैं। नदी वेग के समान असक्त होकर समय (काल) संहार करता हुआ दौड़ रहा है।।१४९।। इन सबकी सन्तानों की संख्या और प्रमाण का वर्णन करना असम्भव है; क्योंकि इनके पुत्र और पौत्र अनन्त होने के कारण (बहुत होने कारण) गिनना असम्भव है।।१५०।। जो व्यक्ति स्थिर कीर्ति वाले, महान् पुण्यकर्म करने वाले, प्रजा के ईशों के इस वंश का कीर्तन करता है, वह महान् सिद्धि को प्राप्त करता है।।१५१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद तेरहवां अध्याय काल सद्भाव का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय–१४

प्रियव्रतवंश वर्णन

सूत जी बोले—बीते हुए और आने वाले और वर्तमान सभी मन्वन्तरों में अर्थात् नाम और रूप से समान रहने वाले अभिमानी देवता पैदा होते हैं।।१।। उस स्वायम्भुव मन्वन्तरकाल में अनेक विध राजा ऋषिगण और मनुष्य सब समान प्रयोजन वाले थे।।२।। महर्षियों के सर्ग का वर्णन पहले ही किया जा चुका है, अब स्वायंभुव मनुका वंश

मनोः स्वायंभुवस्यासन् दश पौत्रास्तु तत्समाः। यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना॥४॥
मुद्रा करवती प्रतिवर्ष निवेशिता। स्वायंभुवेंऽतरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तथा॥५॥
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तेः पौत्रैः स्वायंभुवस्य तु। प्रजा सत्त्वतपोयुक्तैस्तैरियं विनिवेशिता॥६॥
प्रियव्रतात्प्रजोपेतान् वीरान्काम्यान्व्यजायत। कन्या सा तु महाभागा कर्दमस्य प्रजापतेः॥७॥
कन्ये द्वे दश पुत्राश्च सम्राट् कुक्षिश्च ते शुभे। तयोर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमा दश॥८॥

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान्हव्यः सवनः सत्त्र एव च॥९॥

प्रियव्रतोऽभ्यषिंचत्तान्सप्तसप्तसु पार्थिवान्। द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपांतांश्च निबोधत॥१०॥
जंबूद्वीपेश्वरं चक्रे आग्नीध्रं सुमहाबलम्। प्लक्षदीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः॥११॥
शाल्मले तु वपुष्मंतं राजानं सोऽभिषिक्तवान्। ज्योतिष्मंतं कुशद्वीपे राजनं कृतवान्प्रभुः॥१२॥
द्युतिमंतं च राजानं क्रौंचद्वीपेऽभ्यषेचयत्। शाकद्वीपेश्वरं चापि हव्यं चक्रे प्रियव्रतः॥१३॥
पुष्कराधिपतिं चैव सवनं कृतवान्प्रभुः। पुष्करे सवनस्याथ महावीतःसुतोऽभवत्॥१४॥
धातकिश्चापि द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ। महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः॥१५॥

नाम्ना च धातकेश्चापि धातकीखण्ड उच्यते।
हव्यो व्यजनयत्पुत्रान् शाकद्वीपेश्वरान् प्रभुः॥१६॥

जलदं च कुमारं च सुकुमारं मणीवकम्। कुसुमोत्तरमोदाकौ सप्तमं च महाद्रुगम्॥१७॥

वर्णन विस्तारपूर्वक सुनिये।।३।। स्वायंभुव मनु के दश पौत्र थे, जिनके द्वारा समुद्रों सहित सात द्वीपों वाली समस्त पृथ्वी का प्रतिवर्ष कर ग्रहण किया गया था।।४।। तब स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्रथम त्रेतायुग में प्रियव्रत के पुत्रों और स्वायम्भुव के उन पौत्रों ने तप और योग के द्वारा प्रजा का शासन किया।।६।। वीर प्रियव्रत से एक कन्या की उत्पत्ति हुई वह कन्या महती भाग्यवती थी और प्रजापति कदर्म को ब्याही गयी।।७।। दो कन्यायें और दश पुत्र सम्राट् कुक्षि आदि थे, उन दोनों के प्रजापति के समान शूरवीर दश भाई थे।।८।। वे आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान, द्युतिमान्, हव्य, सवन और सत्र[1] हैं। प्रियव्रत ने सात राजाओं का सात भागों में विभक्त सात द्वीपों में धर्मानुसार अभिषेक किया, उन द्वीपों के विषय में सुनिये।।९-१०।।

जम्बू द्वीप का राजा महावली आग्नीध्र को बनाया, और प्लक्षद्वीप का अधिपति मेधातिथि को बनाया।।११।। शाल्मल द्वीप में तो वपुष्मान् का राज्याभिषेक किया तथा प्रभु प्रियव्रत ने कुशद्वीप में ज्योतिष्मान् को राजा बनाया।।१२।। द्युतिमान् को क्रौंच द्वीप में राजा बनाया और शाक द्वीप का राजा हव्य को बनाया।।१३।। पुष्कर द्वीप का अधिपति सवन को नियुक्त किया। पुष्कर द्वीप में सवन के महावीत और धातकि दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए। उस महान् आत्मा महावीत के नाम से महावीत नाम का वर्ष चलाया गया।।१४-१५।। धातकि के नाम से एक खण्ड हुआ, जिसे धातकि खण्ड कहा जाता है। हव्य वाहन ने शाकद्वीप में, जलद, कुमार, सुकुमार, मणवीक, कुसुमोत्तर, मोदक और महादुर्ग नाम के सात पुत्रों को पैदा किया।।१६-१७।।

१. वायुपुराण में सत्र को सव्य कहा गया है।

जलदं जलदस्याथ प्रथमं वर्षमुच्यते। कुमारस्य तु कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम्॥१८॥
सुकुमारं तृतीयं तु सुकुमारस्य तत्स्मृतम्। मणीवस्य चतुर्थं तु मणीवकमिहोच्यते॥१९॥
कुसुमोत्तरवर्षं यत्पञ्चमं कुसुमोत्तरम्। मोदकस्यापि मोदाकं षष्ठं वर्षं प्रकीर्त्तितम्॥२०॥
महाद्रुमस्य नाम्ना च सप्तमं तन्महाद्रुमम्। मेषां तु नामभिस्तानि सप्त वर्षाणि तत्र वै॥२१॥
क्रौंचद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रो द्युतिमतस्तु वै। कुशलो मनोनुगश्चोष्णः पावनश्चांधकारकः॥२२॥
मुनिश्च दुंदुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै। तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौंचद्वीपाश्रयाः शुभाः॥२३॥
कुशलस्य तु देशोऽभूत् कौशलो नाम विश्रुतः। देशो मनोनुगस्यापि मानोनुगे इति स्मृतः॥२४॥

उष्णास्योष्णः स्मृतो देशः पावनस्यापि पावनः।
अंधकारस्य देशस्तु आंधकारः प्रकीर्त्तितः॥२५॥

मुनेश्च मौनिदेशो वै दुंदुभेर्दुंदुभिः स्मृतः। एते जनपदाः सप्त क्रौंचद्वीपे तु भास्वराः॥२६॥
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैवासन्महौजसः। उद्भिज्जो वेणुमांश्चैव वैरथो लवणो धृतिः॥२७॥
षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्तमः कपिलः स्मृतः। उद्भिज्जं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम्॥२८॥
तृतीयं वै रथाकारं चतुर्थं लवणं स्मृतम्। पंचमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम्॥२९॥
सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्त्तितम्। तेषां देशाः कुशद्वीपे तत्सनामान एव च॥३०॥

आश्रमाचारयुक्ताभिः प्रजाभिः समलंकृताः।
शाल्मलस्येश्वराः सप्त सुतास्ते च वपुष्मतः॥३१॥

जलद का जलद नामक प्रथम वर्ष कहा जाता है। कुमार का कौमार द्वितीय वर्ष कहा गया है।।१८।। सुकुमार का वह तीसरा सुकुमार वर्ष कहा गया तथा मणीवक का चौथा मणीवक वर्ष कहा गया।।१९।। कुसुमोत्तर वर्ष जो है, कुसुमोत्तर का कहा गया तथा मोदक का छठा वर्ष मेदाक प्रसिद्ध हुआ।।२०।। महाद्रुम के नाम से सातवां महाद्रुम वर्ष हुअ।। इस प्रकार उनके नामों से वहाँ पर सात वर्ष हुए।।२१।। क्रौंच द्वीप के अधिपति द्युतिमान् के भी कुशल, मनोनुग्[1] उष्ण, पावन, अन्धकारक, मुनि ये सब द्युतिमान् के पुत्र हुए। उनके ही नाम निर्देश के अनुसार क्रौंच द्वीप के वर्षों शुभ (देशों) का नाम हुआ।।२२-२३।।

कुश का देश कौशल नाम से विशिष्टतः सुना गया। मनोनुग का देश मानोनुग नाम में प्रसिद्ध हुआ।।२४।। उष्ण का उष्णदेश, पावन का भी पावन और अन्धकार का देश अन्धकार प्रसिद्ध हुआ।।२५।। और मुनि का मौनिदेश और दुन्दुभि का दुन्दुभि देश स्मृत हुआ। ये सभी जनपद क्रौञ्चद्वीप में प्रदर्शित हैं।।२६।। महान् पराक्रमी ज्योतिष्मान् के कुशद्वीप में, उद्भिज, वेणुमान्, वैरथ, लवण, धृति, छठा प्रभाकर और सातवां कपिल पुत्र हुए, जिनमें पहले पुत्र उद्भिज को उद्भिज्जवर्ष प्राप्त हुआ, दूसरा वेणुमान् का वेणुमण्डल वर्ष हुआ।।२८।। तीसरे वैरथ का रथाकार वर्ष चौथे लवण का लवण वर्ष स्मृत हुआ। पांचवें धृति का धृतिमान् वर्ष छठे प्रभाकर का प्रभाकरवर्ष हुआ।।२९।। सातवें कपिल का कपिल नामक देश प्रसिद्ध हुआ कुशद्वीप में उन राजपुत्रों के नाम पर ही उन देशों के समान नाम हैं। इनके नाम पर देशों का नाम रखते हुए वहाँ का राजा बनाया गया। ये सभी देश चारों आश्रमों के आचार से युक्त प्रजाओं से अलंकृत हैं।।३०-३१½।। अब शाल्मलि द्वीप के राजाओं तथा देशों का वर्णन करते

१. मनोनुग को वायुपुराण में मनुग तथा पावन को पवीर कहा गया है।

श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा। वैद्युतो मानसश्चापि सुप्रभः सप्तमस्तथा।।३२।।
श्वेतस्तु देशः श्वेतस्य हरितस्य सुहारितः। जीमूतस्यापि जीमूतो रोहितस्यापि रोहितः।।३३।।
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानसस्य तु मानसः। सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्तैते देशपालकाः।।३४।।
प्लक्षद्वीपं प्रवक्ष्यामि जंबूद्वीपादनंतरम्। सप्त मेधातिथे पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः।।३५।।
ज्येष्ठः शांतभयो नाम द्वितीयः शिशिरः स्मृतः। सुखोदयस्तृतीयस्तु चतुथा नंद उच्यते।।३६।।
शिवस्तु पंचमस्तेषां क्षेमकः षठ उच्यते। ध्रुवस्तु सप्तमो ज्ञेयः पुत्रा मेधातिथेः स्मृताः।।३७।।
सप्तानां नामभिस्तेषां तानि वर्षाणि सप्त वै। तस्माच्छांतभयं चैव शिशिरं च सुखोदयम्।।३८।।
आनन्दं च शिवं चैव क्षेमकं ध्रुव तथा। तानि तेषां समानानि सप्त वर्षाणि भागशः।।३९।।
निवेशितानि तैस्तानि पूर्वं स्वायंभुवेंतरे। मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः प्लक्षद्वीपेश्वरैर्नृपैः।।४०।।
वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्लक्षद्वीपे प्रजाः कृताः। प्लक्षद्वीपादिषु त्वेषु शाकद्वीपांतिकेषु वै।।४१।।
ज्ञेयः पंचसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभाजकः। सुखमायुश्च रूपं च बलं धर्मश्च नित्यशः।।४२।।
पंचस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वसाधारणं स्मृतम्। प्लक्षद्वीपः परिष्क्रान्तो जंबूद्वीपं निबोधत।।४३।।
आग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं काम्यापुत्रं महाबलम्। प्रियव्रतोऽभ्यषिंचत्तं जंबूद्वीपेश्वरं नृपम्।।४४।।

हैं। वपुष्मान् के शाल्मलिद्वीप के अधिपति सात पुत्र हुए। वे हैं—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सातवां सुप्रभ।।३½-३२।। तब श्वेत का श्वेत, हरित का सुहारित, जीमूत का जीमूत, रोहित का रोहित, वैद्युत का वैद्युत, मानस का मानस और सुभ्रम का सुप्रभ देश हुआ। इस प्रकार नामों के अनुसार सात देशों के सात अधिपति हुए।।३४।। सूत जी बोले कि अब मैं जम्बूद्वीप के बाद प्लक्ष द्वीप का वर्णन करूँगा।। मेधातिथि के सात पुत्र प्लक्षद्वीप के राजा हुए।।३५।। पहला ज्येष्ठ पुत्र शांतभय नाम का दूसरा शिशिर कहा गया। सुखोदय तीसरा और चौथा नन्द कहा जाता है।।३६।। शिव तो उनका पाँचवाँ पुत्र था तथा क्षेमक छठा पुत्र कहा जाता है। सातवां पुत्र ध्रुव समझना चाहिये। इस प्रकार मेधातिथि के सात पुत्र स्मरण किये गये हैं।।३७।।

उन सातों के नाम से वे सात वर्ष प्रसिद्ध हुए। वे उनके नामों के अनुसार शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक तथा ध्रुव ये सात वर्ष प्रसिद्ध हुए।।३८-३९।। स्वायंभुव मन्वन्तर में मेधातिथि के पुत्र उन प्लक्षद्वीप के स्वामी राजाओं ने वे राज्य स्थापित किये।।४०।। उन सभी राजाओं ने प्लक्षद्वीप में प्रजा को वर्ण और आश्रम के आचार से युक्त कर दिया।। प्लक्ष दीपादि में शाकद्वीप के अन्त तक पाँचों द्वीपों में वर्ण और आश्रम में प्रजा को बाँटने वाला धर्म चल रहा था। इन पाँचों द्वीपों में सुख, आयु, रूप, बल और धर्म नित्य सभी को सुलभ थे। अर्थात् उपर्युक्त पाँचों सभी को प्राप्त थे।।४१-४२½।। अब प्लक्ष द्वीप से घिरे हुए जम्बूद्वीप का वर्णन सुनिये।।४३।। महाराजा प्रियव्रत ने अपने कन्यापुत्र ज्येष्ठ दामाद महाबलवान् आग्नीध्र को जम्बूद्वीप का राज्याभिषेक किया[१]।।४४।।

१. यहाँ पर काम्यापुत्र आया है तथा वायुपुराण में कन्या पुत्र शब्द है; परन्तु दायाद शब्द दोनों में है तथा दायाद का अर्थ दाय का अधिकारी पुत्र या दामाद दोनों हो सकता है। अतः यहाँ मैंने दायाद का अर्थ दामाद ही उचित समझा है तथा काम्यापुत्र अशुद्ध माना है, वैसे यहाँ यह भी अर्थ सम्भव है कि आग्नीध्र ने काम्यापुत्र अर्थात् काम्या पत्नी से उत्पन्न पुत्र; परन्तु मेरा उपर्युक्त अर्थ अधिक उचित है।

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमा नव। ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोऽनुजः॥४५॥
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः। रम्यस्तु पंचमः पुत्रो हिरण्वान् षष्ठ उच्यते॥४६॥
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वश्चाष्टमः स्मृतः। नवमः केतुमालश्च तेषां देशान्निबोधत॥४७॥
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाख्यं तु पिता ददौ। हेमकूटं तु यद्वर्षं ददौ किंपुरुषाय तत्॥४८॥
नैषधं यत्स्मृतं वर्षं हरिवर्षाय तं ददौ। मध्यमं यत्सुमेरोस्तु ददौ स तदिलावृतम्॥४९॥
नीलं तु यत्स्मृतं वर्षं रम्यायैतत्पिता ददौ। श्वेतं यदुत्तरं तस्मात्पित्रा दत्तं हिरण्वते॥५०॥
यदुत्तरे शृंगवतो वर्षं तत्कुरवे ददौ। माल्यवन्तं तथा वर्षं भद्राश्वाय न्यवेदयत्॥५१॥
गन्धमादनवर्षं तु केतुमाले न्यवेदयत्। इत्येतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भागशः॥५२॥
आग्नीधस्तेषु वर्षेषु पुत्रांस्तानभ्यषेचयत्। यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः॥५३॥

इत्येतैः सप्तभिः कृत्स्ना सप्तद्वीपा निवेशिताः।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायंभुवस्य च॥५४॥

एवं वर्षेषु सर्वेषु सन्निवेशाः पुनः पुनः। क्रियन्ते प्रलये वृत्ते सप्त सप्तसु पार्थिवैः॥५५॥
एवं स्वभावः कल्पानां द्वीपानां च निवेशने। यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ श्रुतानि तु॥५६॥
तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्रायमयत्नतः। विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च॥५७॥
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः। न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टासु सर्वशः॥५८॥

उसके बाद प्रियव्रत को प्रजापति के समान ९ पुत्र हुए, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र नाभि नाम से प्रसिद्ध हुआ, उसका अनुज किं पुरुष हुआ।।४५।। तीसरा पुत्र हरि वर्ष और चौथा इलावृत हुआ। रम्य पाँचवां पुत्र हुआ और हिरण्यवान् छठा कहा जाता है।।४६।। उनमें कुरु सातवां और भद्राश्व आठवां पुत्र प्रसिद्ध हुआ और फिर नवां पुत्र केतुमान् हुआ। अब उनके देशों को सुनिये।।४७।। पिता आग्नीध्र ने अपने पुत्र नाभि को हिम नाम का दक्षिण वर्ष दिया अर्थात् दक्षिण हिमवर्ष का राजा नाभि को बनाया। हेमकूट जो देश था, वह किम्पुरुष के लिये दे दिया।।४८।। नैषध जो वर्ष कहा गया, उसको हरिवर्ष दे दिया तथा जो सुमेरु पर्वत के मध्य में है, (तिब्बत) को इलावृत को दे दिया।।४९।। नील नाम का जो वर्ष था, वह पिता आग्नीध्र ने रम्य नामक पुत्र को दिया तथा उससे उत्तर जो श्वेतवर्ष है, उसको पिता ने हिरण्यवान् को दे दिया।।५०।। जो जो वर्ष शृङ्गवान् पर्वत के उत्तर में था, उसे कुरु को प्रदान कर दिया। माल्यवान् वर्ष भद्राश्व को दे दिया।।५१।। गन्धमादनवर्ष केतुमाल को प्रदान कर दिया। इस प्रकार ये नौ वर्ष खण्ड-खण्ड करके मेरे द्वारा कहे गये।।५२।। महाराजा धर्मात्मा आग्नीध्र ने क्रमशः उन-उन देशों में उन-उन पुत्रों को अभिषिक्त किया और फिर वे तपस्या में स्थित हो गये।।५३।।

इस प्रकार स्वायंभुव मनु के पौत्रों और प्रियव्रत के उन सातों पुत्रों के द्वारा सातों द्वीप राज्य रूप में निवेशित हुए।।५४।। इस प्रकार सब देशों में पुनः पुनः राज्य स्थापित हुए तथा उन सात राजाओं द्वारा फिर सात सात राजाओं ने राज्य स्थापित किये।।५५।। द्वीपों और कल्पों के निवेशन में इस प्रकार का स्वभाव रहा, जितने भी पुरुषवर्षादि आठ वर्ष सुने गये हैं। उन देशों में रहने वाली प्रज़ा की सफलता स्वाभाविक ही है, वहाँ विना प्रयत्न के प्रजा सुखी रहती थी। वहाँ प्रजा में न किसी प्रकार का परिवर्तन है और न प्रजा में वृद्धावस्था और मृत्यु का भय है।।५७।। वहाँ उन आठों क्षेत्रों में चारों ओर न धर्म और अधर्म थे, न उत्तम मध्यम अधम भाव था और न ही वह युगावस्था थी।।५८।।

नाभेर्निसर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वेऽस्मिन्निबोधत। नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिम्॥५९॥
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्। ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः॥६०॥
सोभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्रव्रज्यया स्थितः। हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्॥६१॥
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः। भरतस्यात्मजो विद्वान्सुमतिर्नाम धार्मिकः॥६२॥
बभूव तस्मिन् राज्ये तं भरतस्त्वभ्यषेचयत्। पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश सः॥६३॥
तेजसस्तत्सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित्। तेजसस्यात्मजो विद्वानिंद्रद्युम्न इति स्मृतः॥६४॥
परमेष्ठी सुतश्चापि निधने तस्य चाप्यभूत्। प्रतीहारः कुलं तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयः॥६५॥
प्रतिहर्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः। उन्नेता प्रतिहर्तुस्तु भूमा तस्य सुतः स्मृतः॥६६॥
उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रस्ताविश्चापि तत्सुतः। प्रस्तावेस्तु विभुः पुत्र पृथुस्तस्य सुतोऽभवत्॥६७॥

पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः।
गयस्यापि नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट्॥६८॥

विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत्। धीमतश्च महान्पुत्रो महतश्चापि भौवनः॥६९॥
भौवनस्य सुतस्त्वष्टा विरजास्तस्य चात्मजः। रजा विरजसः पुत्रः शतजिद्रजसस्तथा॥७०॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीद्राजानं सर्व एव तु। विश्वज्योतिष्प्रधानास्ते यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः॥७१॥
तैरिदं भारतं वर्षं सप्तद्वीपामिहांकितम्। तेषां वंशप्रसूतैस्तु भुक्तेयं भारती पुरा॥७२॥
कृतत्रेतादियुक्तास्तु युगाख्या ह्येकसप्ततिः। येऽतीतास्तैर्युगैः सार्धं राजानस्ते तदन्वयाः॥७३॥

सूत जी ने कहा कि अब हम हिमक्षेत्र के अधिपति नाभि के वंश का वर्णन करेंगे, उनको सुनिये। नृप नाभि ने मेरुदेवी में सब राजाओं में श्रेष्ठ, सब क्षत्रियों के पूर्वज, अत्यन्त कीर्तिवान् ऋषभ नामक पुत्र को पैदा किया। ऋषभ से अपने सौ भाइयों में ज्येष्ठ पुत्र भरत की उत्पत्ति हुई।।५९-६०।। उन ऋषभ ने अपने पुत्र भरत का राज्याभिषेक करके सन्यास ले लिया तथा हिमालय का दक्षिण क्षेत्र भरत को दे दिया, वही भारतवर्ष है।।६१।। उन भरत के नाम से उस देश कानाम भारतवर्ष विद्वानों ने जाना। भरत का पुत्र सुमति नामक विद्वान् और धार्मिक था।।६२।। तब भरत ने सुमति को राज्य दे दिया। फिर भरत सुमति को राज्य देकर स्वयं वन को चले गये।।६३।। सुमति का पुत्र तैजस था, जो प्रजा का रक्षक एवं शत्रुओं को जीतने वाला था। तेजस के पुत्र विद्वान् इन्द्रद्युम्न कहे गये।।६४।। इन्द्रद्युम्न के मर जाने पर उसके कुल में परमेष्ठी (परमात्मा) प्रतीहार नाम से उत्पन्न हुए।।६५।।

उन विद्वान् प्रतीहार को विख्यात पुत्र प्रतिहर्ता पैदा हुआ। प्रतिहर्ता के पुत्र उन्नेता और उन्नेता के पुत्र भूमा हुए।।६६।। भूमा के पुत्र उद्‌गीथ, उद्‌गीथ के प्रस्तावि, प्रस्तावि के पुत्र विभु और विभु के पुत्र पृथु हुये।।६७।। पृथु के नुक्त, नुक्त के गय, गय के नर और नर के पुत्र विराट् हुए।।६८।। विराट् के महावीर्य, महावीर्य के धीमान्, धीमान् के महान्, महान् के पुत्र भौवन हुये।।६९।। भौवन के पुत्र त्वष्टा, त्वष्टा के पुत्र विरजा, विरजा के पुत्र रजा तथा रजा के पुत्र शतजित् हुआ।।७०।। शतजित् के सौ पुत्र थे, जो सभी राजा हुए। वे प्रधान विश्व की ज्योति थे, जिनके द्वारा इस प्रजा की वृद्धि हुई।।७१।। उन सौ राजाओं के द्वारा यह भारतवर्ष पहले सातद्वीपों में अंकित हुआ। उनके वंश में उत्पन्न उन राजाओं ने पूर्वकाल में इस भारती का भोग किया।।७२।। उन राजाओं के द्वारा यह भारतभूमि

स्वायंभुवेंऽतरे पूर्वं शतशोऽथ सहस्त्रशः। एवं स्वायंभुवः सर्गो येनेदं पूरितं जगद्॥७४॥
ऋषिभिर्दैवतैश्चापि पितृगन्धवराक्षसैः। यक्षभूतपिशाचैश्च मनुष्यमृगपक्षिभिः।
तेषां सृष्टिरियं प्रोक्ता युगैः सह विवर्त्तते॥७५॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे प्रियव्रतवंशानु-कीर्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

पृथिव्यायाम विस्तरो नाम

पञ्चदशोऽध्यायः

सूत उवाच

एवं प्रजासन्निवेशं श्रुत्वा वै शांशपायनिः। पप्रच्छ नियतं सूतं पृथिव्युदधिविस्तरम्॥१॥
कति द्वीपा समुद्रा वा पर्वता वा कति स्मृताः।
कियंति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः॥२॥
महाभूतप्रमाणं च लोकालोकं तथैव च। पर्यायं परिमाणं च गतिं चन्द्रार्कयोस्तथा॥
एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं विस्तरेण यथार्थतः॥३॥

सतयुग, त्रेतायुग आदि ७१ युगों में उपभोग की गयी अर्थात् ७१ बार चारों युग आये।।७३।। पहले स्वायंभुव मनु के काल में सैकड़ों हजारों राजा जो स्वायम्भुव मनु के ही वंशज थे, जिनके द्वारा।।७४।। ऋषियों, देवताओं, पितरों, गन्धर्वों, राक्षसों, यक्षों, भूतों, पिशाचों, मनुष्यों, मृगों, पक्षियों के साथ यह संसार पूर्ण हुआ। उनकी यह सृष्टि कही गयी है, जो समयों के साथ चलती रहेगी।।७५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद चौदहवां अध्याय प्रियव्रतवंश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-१५

पृथिवी के आकार के विस्तार

सूत जी बोले—इस प्रकार प्रजा की कथायें सुनने के बाद शांशपायनि ने सूत जी से पृथिवी के विस्तार के बारे में पूछा।।१।। कि इस पृथ्वी पर कितने द्वीप हैं? कितने समुद्र हैं? अथवा कितने पर्वत बताये गये हैं और कितने देश हैं तथा कितनी नदियाँ हैं?।।२।। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों का प्रमाण क्या है?

सूत उवाच

हंत वोऽहं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यायामविस्तरम्।।४।।
संख्यां चैव समुद्राणां द्वीपानां चैव विस्तरम्। द्वीपभेदसहस्राणि सप्तस्वन्तर्गतानि च।।५।।
न शक्यंते क्रमेणेह वक्तुं यैः सततं जगत्। सप्त द्वीपान्प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह।।६।।
तेषां मनुष्यास्तर्क्केण प्रमाणानि प्रचक्षते।
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।।७।।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यं प्रचक्षते। नववर्षं प्रवक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथातथम्।।८।।
विस्तरान्मण्डलाच्चैव योजनैस्तन्निबोधत। शतमेकं सहस्राणां योजनाग्रात्समंततः।।९।।
नानाजनपदाकीर्णः पुरैश्च विविधैश्शुभैः। सिद्धचारणसंकीर्णः पर्वतैरुपशोभितः।।१०।।
सर्वधातुनिबद्धैश्च शिलाजालसमुद्भवैः। पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिः सर्वतस्ततः।।११।।
जंबूद्वीपः पृथुः श्रीमान् सर्वतः पृथुमण्डलः। नवभिश्चावृतः सर्वो भुवनैर्भूतभावनैः।।१२।।
लवणेन समुद्रेण सर्वतः परिवारितः। जंबूद्वीपस्य विस्तारात् समेन तु समंततः।।१३।।
प्रागायताः सुपर्वाणः षडिमे वर्षपर्वताः। अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ।।१४।।
हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान्। सर्वर्त्तुषु सुखश्चापि निषधः पर्वतो महान्।।१५।।
चतुर्वर्णश्च सौवर्णो मेरुश्चारुतमः स्मृतः। द्वात्रिंशच्च सहस्राणि विस्तीर्णः स च मूर्द्धनि।।१६।।

लोकालोक का प्रमाण क्या है? चन्द्र और सूर्य की गति, उनके घेरे की नाप क्या है? यह यथार्थ रूप से विस्तार पूर्वक हमें बताइये।।३।। तब सूत जी ने कहा कि मैं पृथिवी का आयाम विस्तार बताऊँगा।।४।।

सूत जी बोले—पृथिवी पर समुद्रों और द्वीपों की संख्या और उनका विस्तार तथा सात द्वीपों के अन्तर्गत हजारों अन्यद्वीपों को विस्तार से क्रमशः इस संसार में वर्णन नहीं किया जा सकता है, फिर भी मैं चन्द्र और सूर्य और ग्रहों के साथ सात द्वीपों को बताऊँगा।।५-६।। उनके विस्तार के विषय में मनुष्य तर्क द्वारा (प्रमाणों द्वारा) परिमाण को खोजते हैं; परन्तु जो अचिन्त्य हैं, उनको तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता। उनके विषय में तर्क नहीं करना चाहिये।।७।। जो प्रकृति से परे है, वही अचिन्त्य कहलाता है। अतः जो अचिन्त्य है, जिसके बारे में विचार नहीं किया जा सके वहाँ, प्रमाण देना तो सम्भव ही नहीं है, फिर भी मैं जम्बूद्वीप के नौ वर्षों का यथा तथा वर्णन करूँगा।।८।। इस जम्बूद्वीप का जो योजनों में विस्तार है, उसे सुनिये। इस द्वीप का परिमाण हजारों योजन का है।।९।। यह जम्बूद्वीप अनेकों शुभ जनपदों और पुरों से घिरा हुआ है तथा सिद्ध चारणों से संकीर्ण और पर्वतों से सुशोभित है।।१०।। यह सब धातुओं से और अनेकों पर्वतखण्डों, पर्वतों से उत्पन्न नदियों से युक्त है।।११।। जम्बूद्वीप ही श्रीसम्पन्न पृथु है और वह सब ओर से घिरा हुआ है तथा वह नौ वर्षों वाला सब ओर से भूतभावन भुवनों द्वारा आवृत है।।१२।। यह द्वीप सब ओर नौ लवण समुद्रों से घिरा हुआ है। जम्बू द्वीप के विस्तार के समान ही समुद्रों का विस्तार है।।१३।। पूर्व की ओर आयताकार सुन्दर शिखाओं से युक्त छः वर्ष पर्वत हैं, जो कि पूर्व और पश्चिम के समुद्रों में डूबे हुये हैं अर्थात् ये पर्वत पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक फैले हुए हैं।।१४।। ये पर्वत हैं—१. हिमप्राय, २. हिमवान्, ३. हेमकूट और ४. हेमवान् और सब ऋतुओं में सुख देने वाला महान् पर्वत निषध है।।१५।। फिर चार वर्णों वाला तथा स्वर्णमण्डित सन्दरतम सुमेरु पर्वत है और वह ३२ हजार योजन ऊपर की

वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्त्रः समुच्छ्रितः। नानावर्णास्तु पार्श्वेषु प्रजापतिगुणान्वितः॥१७॥
नाभिबन्धनसंभूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। पूर्वतः श्वेतवर्णश्च ब्राह्मणस्तस्य तेन तत्॥१८॥
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णः स्वभावतः। तेनास्य क्षत्त्रभावस्तु मेरोर्नानार्थकारणात्॥१९॥
पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते। भृंगपत्रनिभश्चापि पश्चिमेन समाचितः॥२०॥
तेनास्य शूद्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्त्तिताः।
वृत्तः स्वभावतः प्रोक्तो वर्णतः परिमाणतः॥२१॥
नीलश्च वैदूर्यमयः वेतः शुक्लो हिरणमयः। मयूरबर्हवर्णस्तु शातकौंभश्च शृङ्गवान्॥२२॥
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः। तेषामंतरविष्कम्भो नवसाहस्त्र उच्यते॥२३॥
मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समंतमः। नवैवं तु सहस्त्राणि विस्तीर्णं सर्वतस्तु तत्॥२४॥
मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः। वेद्यर्द्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्द्धं तथोत्तरम्॥२५॥
वर्षाणि यानि षट् चैव तेषां ये वर्षपर्वताः। द्वे द्वे सहस्त्रे विस्तीर्णा योजनानां मुच्छ्रयात्॥२६॥
जंबूद्वीपस्य विस्तारात्तेषामायाम उच्यते। योजनानां सहस्त्राणि शतं द्वायायतौ गिरी॥२७॥
नीलश्च निषधश्चैव ताभ्यां हीनास्तु ये परे। श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्छृंगवांस्तथा॥२८॥
नवती द्वे अशीती द्वे सहस्त्राण्यायतास्तु तैः। तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै॥२९॥
प्रपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु। संततानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम्॥३०॥

ओर फैला हुआ है अर्थात् ३२ हजार योजन उसकी ऊँचाई है।।१६।। इसका प्रमाण वृत्ताकार है तथा चौकोर फैला हुआ है। इसके पार्श्व में अनेकों प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं।।१७।। यह पर्वत अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा जी की नाभि से उत्पन्न हुआ है। पूर्व से यह श्वेतवर्ण है; इसलिये यह ब्राह्मण जाना जाता है।।१८।। दक्षिण की ओर से यह रक्त वर्ण है, इसलिये इसका क्षत्रिय होना जाना जाता है।।१९।। दक्षिण की ओर यह पीला वर्णयुक्त है, इसलिये इसका वैश्य होना सिद्ध होता है। तथा यह सुमेरु पर्वत पश्चिम की भृंगपत्र के समान अर्थात् काला है; इसलिये इसका उधर शूद्र होना जाना जाता है। इस प्रकार वर्ण और स्वभाव रूप से उसका वृत्त कहा गया है।।२०-२१।।

इसके चारों ओर नील, वैदूर्यमय, श्वेत, शुक्ल, हिरण्यमय, मयूरवर्हण, शतकौम्भ और शृङ्गवान् पर्वत हैं।।२२।। ये पर्वतराज सिद्धों और चारणों से सेवित हैं। उनके अन्तर्गत ९ हजार योजन ऊँचा एक विष्कम्भक (खम्भा) है, उसके मध्य में इलावृत नाम का एक देश है, जो महामेरु के चारों और फैला हुआ है। यह सुमेरु पर्वत आज का पामीर का पाठार है, यह वर्णनानुसार प्रतीत होता है तथा इलावृत वर्ष आज का चीन सिद्ध होता है। उस इलावृत वर्ष का विस्तार ९ हजार योजन है।।२३-२४।। उसके बीच में महामेरु ऐसा प्रतीत होता है, जैसे विना धुएँ की अग्नि उस मेरु के दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्ध में वेदियां हैं।।२५।। उन उत्तर वेदी और दक्षिण वेदी में छः वर्ष (देश) और छः वर्ष पर्वत हैं। वे पर्वत ऊँचाई में दो दो हजार योजन हैं।।२६।। जम्बूद्वीप के विस्तार से उनका प्रसार कहा जाता है।।२७।। नील और निषध उन दो पर्वतों का प्रसार दो हजार दो सौ योजन का है, फिर श्वेत हेमकूट, हिमवान् और शृङ्गवान् पर्वत हैं, जो पर्वत व्यासी तथा बानवे योजन विस्तृत है अथ त् पूर्व के दो व्यासी तथा तीसरे चौथे बानवे योजन विस्तृत हैं, उनके मध्य में जनपद हैं, जो सात वर्षों में विभक्त हैं।।२८-२९।। वे सभी वर्ष (देश) झरनों, ऊबड़-खाबड़ जमीनों तथा पर्वतों से घिरे हुए हैं तथा अनेकों नदियों से घिरे हुए होने के कारण परस्पर अगम्य वने हुए हैं।।३०।।

वसंति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः। इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्॥३१॥
हेमकूटं परं ह्यस्मान्नाम्ना किंपुरुषं स्मृतम्। नैषधं हेमकूटात्तु हरिवर्षं तदुच्यते॥३२॥
हरिवर्षात्परं चापि मेरोश्च तदिलावृतम्। इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम्॥३३॥
रम्यकात्परतः श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्मयम्। हिरण्मयात्परं चैव शृङ्गवत्तः कुरु स्मृतम्॥३४॥
धनुः संस्थेतु विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे। दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम्॥३५॥
अर्वाक् च निषधस्याथ वेद्यर्द्धं दक्षिणं स्मृतम्। परं नीलवतो यच्च वेद्यर्द्धं तु तदुत्तरम्॥३६॥
वेद्यर्द्धे दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे। तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुर्मध्य इलावृतम्॥३७॥
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु। उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नाम नामतः॥३८॥
योजनानां सहस्रं तु आनील निषधायतः। आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रकीर्तितः॥३९॥

तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः पर्वतो गन्धमादनः।
आयामतोऽथ विस्तारान्माल्यवानिति विश्रुतः॥४०॥

परिमण्डलयोर्मेरुर्मध्ये कनकपर्वतः। चतुर्वणः स सौवर्णः चतुरस्रः समुच्छ्रितः॥४१॥
सुमेरुः शुशुभेशुभ्रो राजवत्समधिष्ठितः। तरुणादित्यवर्णाभो विधूम इव पावकः॥४२॥
योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः। प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतः षोडशैव तु॥४३॥
शरावसंस्थितत्वात्तु द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः। विस्तारात्त्रिगुणस्तस्य परिणाहः समंततः॥४४॥

जैसे कि चीन, जापान, रूप, भारत आदि के बीच में विशाल पर्वत एवं अनेकों नदियां हैं।।३०।। उन देशों के चारों ओर में अनेकों जातियों के प्राणी निवास करते हैं। यह दक्षिण में जो हैमवत पर्वतमाला है, वही भारतवर्ष कहा जाता है।।३१।। इसके बाद हैमकूट पर्वत वाला किंपुरुष वर्ष कहा गया है। हेमकूट से नैषध पर्वत है, जो हरिवर्ष कहा जाता है।।३२।। हरिवर्ष से परे मेरु के आगे इलावृतवर्ष है। इलावृत से परे नीलपवर्त वाला रम्यक नाम देश कहा गया है।।३३।। रम्यक देश के बाद श्वेत पर्वत वाला हिरण्यमय नामक देश है। हिरण्यमय देश के बाद शृङ्गवान् पर्वत का कुरु नामक देश है।।३४।। मेरु के दक्षिणोत्तर में दो देश धनुषाकार रूप में स्थित है, वहाँ पर चार बड़े-बड़े देश हैं, वहाँ इलावृत वर्ष मध्य में हैं। निषध के पूर्वभाग के दक्षिण आधी वेदी है तथा नील पर्वत के पर भाग में उत्तर आधी वेदी। दक्षिण वेदी के आधे भाग में तीन और उत्तर वेदी के आधे भाग में तीन देश स्थित हैं। उन दोनों के मध्य में इलावृत वर्ष स्थित है।।३५-३७।। नील के दक्षिण से और निषध के उत्तर से ऊंचा गान करता हुआ माल्यवान् नामक पर्वत स्थित है।।३८।। नीलपर्वत से लेकर निषध पर्वत तक हजारों योजन जिसका विस्तार है, जो चौंतीस हजार योजन कहा गया है।।३९।। इसके पश्चिम में गन्धमादन नाम का पर्वत है, यह लम्बाई और चौड़ाई में माल्यवान् के ही समान है।।४०।। दोनों परिमण्डलों के बीच मेरु स्वर्ण पर्वत है। वह पर्वत चारों ओर चार वर्णों वाला है तथा ऊपर स्वर्ण के वर्ण का चौकोर ऊँचा है अर्थात् इसकी ऊँचाई चौकोर है, एक दम उठी हुई चोटी वाला नहीं ऊपर चौकोर है।।४१।। यह शुभ्र सुमेरु पर्वत सब पर्वतों के राजा के समान सम्यक् प्रकार से अधिष्ठित है तथा तरुण (मध्याह्नकाल) के सूर्य के समान आभा वाला विना धुएँ की अग्नि के समान है।।४२।। यह ८४ हजार योजन ऊँचा है। सोलह हजार योजन फैला हुआ है और सोलह हजार योजन ही पृथ्वी में घुसा हुआ है।।४३।। इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह पर्वत १६ हजार योजन अन्दर जमीन में है और १६ हजार

मण्डलेन प्रमाणेन त्र्यस्रे मानं तदिष्यते। चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानां समंततः॥४५॥
अष्टाभिरधिकानि स्युस्त्र्यस्रे मानं प्रकीर्त्तितम्। चतुरस्रेण मानेन परिणाहः समंततः॥४६॥
चतुःषष्टिसहस्राणि योजनानां विधीयते। स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः॥४७॥
भुवनैरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः। तत्र देवगणाः सर्वे गन्धर्वोरगराक्षसाः॥४८॥
शैलराजे प्रदृश्यन्ते शुभाश्चाप्सरसां गणाः। स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः॥४९॥
चत्वारो यस्य देशा वै चतुःपार्श्वेष्वधिष्ठिताः। भद्राश्वा भरताश्चैव केतुमालाश्च पश्चिमाः॥५०॥
उरुराः कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः। गन्धमादनपार्श्वे तु परैषाऽपरगंडिका॥५१॥
सर्वर्त्तुरमणीया च नित्यं प्रमुदिता शिवा। द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि योजनैः पूर्वपश्चिमात्॥५२॥
आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रमाणतः। तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः प्रतिष्ठिताः॥५३॥

तत्र काला नराः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः।
स्त्रियश्चोत्पल पत्राभाः सर्वास्ताः प्रियदर्शनाः॥५४॥

तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः षड्रसाश्रयः। ईश्वरो ब्रह्मणः पुत्रः कामचारी मनोजवः॥५५॥

तस्य पीत्वा फलरसं जीवन्ति च समायुतम्।
पार्श्वे माल्यवतश्चापि पूर्वेऽपूर्वा तु गण्डिका॥५६॥

ही ऊपर है तथा ८४ हजार योजन इसका क्षेत्रफल है। थाली के समान सम्यक् प्रकार से स्थित होनें के कारण यह ३२ हजार योजन ऊपर चोटी पर फैला हुआ अर्थात् इसकी चोटी थाली की तरह बत्तीस हजार योजन विस्तृत है। उस चोटी के विस्तार से तीन गुणा ९६ हजार योजन इसका चारों ओर परिणाह (परिधि) विस्तार है।।४४।। मण्डल के प्रमाण से त्रिकोण में उसका मान बताया जाता है। ४० हजार योजन उसका मान है।।४५।। तथा ८ और अधिक योजन उसका मान है, इसका मान कुल ४८ हजार योजन हुआ। चौकोर मान से उसका परिणाह (परिधि) विस्तार कहा गया।।४६।। चौसठ हजार योजन चौकोर परिधि विस्तार है वह पर्वत महादिव्य और दिव्य औषधियों से युक्त है।।४७।। वह जातरूपमय भूतभावन भुवनों से आवृत है। वहाँ पर सब देवगण गन्धर्व, उरग (सर्पगण) और राक्षस तथा उसके ऊपर शुभ और अशुभ अप्सराओं के समूह देखे जाते हैं। इस प्रकार वह मेरु भूतभावन भुवनों से घिरा हुआ है।।४८-४९।। जिसके चारों ओर पार्श्व (बगल) में चार देश अधिष्ठित हैं, वे भद्राश्व[१], भारत, केतुमाल और उत्तरकुरुवर्ष इसके पश्चिम में जहाँ पुण्य कर्म करने वाले लोग रहते हैं। गन्धमादन के पार्श्व में दूसरी एक अपर गण्डिका है सामुद्री खाई है।।५०-५१।।

जो गण्डिका सब ऋतुओं में रमणीय और नित्य प्रमुदित और कल्याणकारिणी है। पूर्व पश्चिम से ३२ हजार योजन लम्बी है।।५२।। जिसका विस्तार प्रमाण से ३४ हजार योजन है, वहाँ पर वे शुभकर्म करने वाले केतुमाल प्रतिष्ठित हैं।।५३।। वहाँ पर सभी मनुष्य महापराक्रमी और महाबलशाली है। स्त्रियां कमलपत्र की आभा वाली हैं और वे सब प्रियदर्शना हैं।।५४।। वहाँ पर पनस (कटहल) नामक दिव्य महावृक्ष हैं, जिसमें छः रस विद्यमान हैं, जो महावृक्ष ब्रह्मा का पुत्र ईश्वर और कामाचारी साक्षात् कामदेव हैं।।५५।। उसके फल के रस को पीकर लोग सैकड़ों

विशेष–भद्राश्व आज का चीन है, भारत- हिन्दुस्तान है, केतुमाल वर्ष रूस है तथा उरुरकुरु वर्ष आज का जापान है।

आयामादथ विस्ताराद्यथैषापरगंडिका। भद्राश्वास्तत्र विज्ञेया नित्यं मुदितमानसाः॥५७॥
भद्रशालवनं चात्र कालाम्रस्तु महाद्रुमः। तत्र ते पुरुषाः श्वेता महोत्साहा बलान्विताः॥५८॥
स्त्रियः कुमुदवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः। चन्द्रप्रभाश्चंद्रवर्णाः पूर्णचन्द्र निभाननाः॥५९॥
चन्द्रशीतलगात्र्यस्ताः स्त्रिय उत्पलगंधिकाः। दशवर्षसहस्राणि तेषामायुरनामयम्॥६०॥
कालाम्रस्य रसं पीत्वा सर्वे च स्थिरयौवनाः। दक्षिणेन तु श्वेतस्य नीलस्यैवोत्तरेण च॥६१॥
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः। रतिप्रधाना विमला जरादौर्गंध्यवर्जिताः॥६२॥
शुक्लऽभिजनसंपन्नाः सर्वे प्रियदर्शनाः। तत्रापि सुमहान्वृक्षो न्यग्रोधो रोहितो महान्॥६३॥
तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्त्तयंति वै। दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पंच च॥६४॥
जीवंति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः। दक्षिणे वै शृङ्गवतः श्वेतस्याप्युत्तरेण च॥६५॥
वर्षं हैरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी। महाबला सुतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः॥६६॥
यक्षा वीरा महासत्त्वा धनिनः प्रियदर्शनाः। एकादशसहस्राणि वर्षाणां ते महौजसः॥६७॥
आयुः प्रमाणं जीवंति शतानि दश पंच च। यस्मिन्वर्षे महावृक्षो लकुचः षड्रसाश्रयः॥६८॥

वर्षों तक जीते हैं। माल्यवान् पर्वत के पास में पूर्व की ओर एक अपूर्व गंडिका (खाड़ी) है।।५६।। प्रसार से और विस्तार से यह एक दूसरी खाड़ी है, वहाँ भद्राश्वदेश के लोग नित्य प्रसन्नचित्त से रहते हैं।।५७।। वहीं पर भद्रशाल वन और कालाम्र नाम का महान् वृक्ष है, वहाँ के पुरुष श्वेत वर्ण के तथा बहुत अधिक उत्साही और बलयुक्त होते हैं।।५८।। वहाँ की स्त्रियां कुमुद (चाँदी) के वर्ण की आभा वाली बहुत सुन्दर और प्रियदर्शना होती है। वे स्त्रियां चन्द्रमा की प्रभा वाली चन्द्रमा के समान वर्ण वाली और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाली होती हैं।।५९।। वे सब चन्द्रमुखी ही नहीं चन्द्रमा के समान शीतल शरीर वाली और कमल के समान गन्धवाली होती हैं तथा उनकी आयु निरोग रहते हुए दश हजार वर्ष की होती हैं।।६०।।

कालाम्र के रस को पीकर वे सब सदैव जवान बनी रहती हैं।।६०½।। इस प्रकार भद्राश्ववर्ष का वर्णन हुआ। अब रम्यक वर्ष का वर्णन करते हैं। रमणक नाम का एक देश है, वहाँ पर सम्भोग करने में प्रधान, विमल और वृद्धावस्था की दुर्गन्धरहित मानव जन्म लेते हैं।।६०½-६२।। वे सब शुक्ल अभिजन (कुलीन पुरुषों) से सम्पन्न और प्रियदर्शन (देखने में बहुत प्रिय) हैं। वहाँ भी एक बहुत अच्छा न्यग्रोध नामक लाल रंग का महान् वृक्ष है।।६३।। उस न्यग्रोध (बरगद) के फल के रस का पान करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं तथा वे महाभाग्यशाली मनुष्यों में श्रेष्ठ व्यक्ति प्रसन्न रहते हुये दश हजार, दश सौ पाँच वर्ष तक जीते हैं[1]।।६३-६४½।।

शृङ्गवान् पर्वत के दक्षिण में और श्वेत पर्वत के उत्तर में हैरण्वत नाम का देश है, जहाँ हैरण्वती नाम की नदी है तथा वहाँ महान् बलशाली सुन्दर तेज वाले मनुष्य पैदा होते हैं।।६४½-६६।। वहाँ पर यक्षगण वीर महापराक्रमी, धनी और देखने में प्रिय होते हैं, वे सब महापराक्रमी ग्यारह हजार वर्ष तक आयु पर्यन्त तक के होते हैं तथा दश हजार या पांच हजार वर्ष तक जीते हैं। जिस देश में छः रसों वाला लकुच (बड़हर) नामक महान् वृक्ष

१. यहाँ दश हजार सौ दश और पाच १०११५ वर्ष भी गिना जा सकता है तथा दश हजार दश सौ पाँच भी कहा जा सकता है तथा वर्णनानुसार यही उचित है।

तस्य पीत्वा फलरसं ते जीवंति निरामयाः। त्रीणि शृंगवतः शृंगाण्युच्छ्रितानि महांति च॥६९॥
एकं मणिमयं तेषामेकं चैव हिरणमयम्। सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम्॥७०॥
उत्तरे वै शृंगवतः समुद्रस्य च दक्षिणे। कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम्॥७१॥
तत्र वृक्षा मधु फला नित्यपुष्पफलोपगाः। वस्त्राणि च प्रसूयंते फलेष्वाभरणानि च॥७२॥
सर्वकामप्रदास्तत्र केचिद् वृक्षा मनोरमाः। गन्धवर्णरसोपेतं प्रक्षरंति मधूत्तमम्॥७३॥
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः। ये क्षरंति सदा क्षीरं षड्रसं ह्यमृतोपमम्॥७४॥
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकांचनवालुका। सर्वर्तुसुखसम्पन्नान्निष्पंका नीरजा शुभा॥७५॥
देवलोकच्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः। शुक्लाभिजनसंपन्नाःसर्वे च स्थिरयौवनाः॥७६॥
मिथुनानि प्रसूयंते स्त्रियश्चाप्सरसः समाः। तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबंति ह्यमृतोपमम्॥७७॥
मिथुन जायते सद्यः समं चैव विवर्द्धते। समं शीलं च रूपं च प्रियता चैव तत्समा॥७८॥
अन्योन्यमनुरक्ताश्च चक्रवाकसधर्मिणः। अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं सुखनिषेविणः॥७९॥
त्रयोदशसहस्राणि शतानि दश पंच च। जीवंति ते महावीर्या न चान्यस्त्रीनिषेविणः॥८०॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे पृथिव्यायामविस्तरो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

होता है, जिस रस को पीकर वे नीरोग होकर जीवन जीते हैं। वहाँ शृङ्गवान् पर्वत के तीन ऊँचे ऊँचे शिखर हैं, उनमें से एक मणिओं से युक्त है और एक स्वर्ण से युक्त है तथा एक सब रत्नों से युक्त और भवनों से उपशोभित है।।६६-७०।। शृङ्गवान् पर्वत के उत्तर में और समुद्र के दक्षिणमें सिद्धगणों से सेवित पुण्य कुरुवर्ष है।।७१।। वहाँ के वृक्ष मधुर फल वाले हैं, नित्य फल पैदा करने वाले हैं। वे फलों के रूप में वस्त्रों और आभूषणों को पैदा करते हैं।।७२।। वहाँ पर कुछ वृक्ष समस्त इच्छाओं को देने वाले और मनोरम हैं। वे वृक्ष गन्ध वर्ण और से से युक्त उत्तम मधु को निकालते हैं।।७३।। वहाँ अन्य दूधिया (क्षीरी) वृक्ष हैं, जो सदा छः रसों वाले अमृत के समान क्षीर (दूध) को उत्पन्न करते हैं।।७४।। वहाँ की सब भूमि मणिमयी सूक्ष्म बालू के कणों वाली है, वहाँ सब ऋतुयें सुख से सम्पन्न और वहाँ शुभ विना पंक (कादौ) के नीरज (कमल) है (अर्थात् वे पंकज नहीं अपितु नीरज हैं)।।७५।। वहाँ पर देवलोक से च्युत शुभमानव उत्पन्न होते हैं। वे सभी शुक वर्ण वाले परिवार से सम्पन्न और सदा जवान रहने वाले हैं।।७६।। वहाँ के मिथुन (स्त्री और पुरुष जोड़े) अप्सराओं के समान स्त्रियों को पैदा करते हैं, वहाँ वे शिशु उन दूध देने वाली स्त्रियों के अमृत के समान दूध को पीते हैं।।७७।। मिथुन शीघ्र उत्पन्न करते हैं और साथ ही वे बच्चे वृद्धि को प्राप्त करते हैं। वहां उन शिशुओं में शील रूप और प्रियता उनके ही समान है।।७८।। वहाँ के लोग परस्पर एक-दूसरे से चकवा-चकवी के समान अनुराग करते हैं तथा वे नीरोग, शोकरहित और नित्य सुख से रहने वाले हैं।।७९।। तथा वे महापराक्रमी अन्य स्त्रियों का सेवन करने वाले तेरह हजार, दश सौ पांच वर्ष तक जीते हैं।।८०।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद पंद्रहवां अध्याय पृथिवी के आकार के विस्तार का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

भारतवर्षवर्णनं नाम

षोडशोऽध्यायः

सूत उवाच

एवमेव निसर्गो वै वर्षाणां भारते शुभे। दृष्टः परमतत्त्वज्ञैर्भूयः किं वर्णयामि वः॥१॥

ऋषिरुवाच

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन्स्वायंभुवादयः। चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गेऽभवन्पुनः॥२॥
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम। एतच्छ्रुतवचस्तेषामब्रवीद्रोमहर्षणः॥३॥
अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः। इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम्॥४॥
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत्। वर्षं तद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा॥५॥
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते। निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम्॥६॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते। न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते॥७॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोधत। समुद्रांतरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम्॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-१६

भारतवर्ष वर्णन

सूत जी बोले—इस प्रकार परमतत्त्वज्ञ ऋषियों ने सब देशों में शुभ, भारत में जो देखा वैसा वर्णन कर दिया, फिर आगे क्या हुआ? यह मैं वर्णन कर रहा हूँ।।१।। ऋषि बोले—कि जो यह भारतवर्ष है, जहाँ प्रजा की सृष्टि में स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए।।२।। यह हम जानना चाहते हैं। अतः हमें बताइये। इस बात को सुनकर पुराण कथावाचक रोमहर्षण से कहने लगे।।३।।

सूत जी बोले— हे द्विजगण! यह मैं तुमको इस भारत में प्रजा का वर्णन करूँगा। यह भारतवर्ष शुभ और अशुभ फल का उदय करने वाला मध्यम चित्र है।।४।। जो समुद्र के उत्तर और हिमवान् (हिमालय पर्वत) के दक्षिण की ओर है, वह देश भारत देश है, जहाँ यह भारती प्रजा है।।५।। प्रजाओं का भरण (पालन-पोषण) करने के कारण भरत मनु कहे जाते हैं। इस निरुक्त के निवर्चन के कारण ऐसा वर्ष भारतवर्ष कहा गया है। निरुक्त के अनुसार जो प्रजा का पालन करे, वह भरत है। अतः भरत ने प्रजा का पालन किया था, इसलिये यथा नाम तथा गुण के अनुसार महाराज ऋषभदेव को भरत कहा गया तथा उनके नाम पर इस वर्ष का नाम भारतवर्ष हुआ।।६।। यहीं पर स्वर्ग, मोक्ष, मध्य और अन्त गति होती है। इस स्थान के अतिरिक्त भूमि पर कहीं भी मर्त्यलोकवासियों को कर्म विधान नहीं है अर्थात् यहीं पर लोग पापपुण्य के फल के भोग का विधान करते हैं, पाप से डरते हैं तथा पुण्य के लिये सजग रहते हैं।। इस भारतवर्ष के नौ भेदों को सुनिये—ये नौ द्वीप समुद्र से घिरे हुए हैं और परस्पर अगम्य हैं।।८।।

इंद्रद्वीपः कशेरूमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्। नागद्वीपस्तथा सौम्यो गांधर्वस्त्वथ वारुणः॥९॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः। योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात्॥१०॥
आयतो ह्याकुमार्य्यां वै चागंगाप्रभवाच्च वै। तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु॥११॥
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरंतेषु सर्वशः। पूर्वे किराता ह्यस्यांते पश्चिमे यवनाः स्मृताः॥१२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः।
इत्यायुधवणिज्याभिर्वर्त्तयंतो व्यवस्थिताः॥१३॥
तेषां संव्यवहारोऽत्र वर्त्तते वै परस्परम्। धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु॥१४॥
संकल्पः पंचमानां च ह्याश्रमाणां यथाविधि। इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी॥१५॥
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायाम उच्यते। कृत्स्नं जयति यो ह्येनं सम्राडित्यभिधीयते॥१६॥
अयं लोकस्तु वै सम्राडंतरिक्षं विराट् स्मृतम्।
स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात्॥१७॥
सप्तैवास्मिन्सुपर्वाणो विश्रुताः कुलपर्वताः। महेंद्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः॥१८॥
विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः। तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः॥१९॥
अविज्ञाताः सारवंतो विपुलाश्चित्रसानवः। मंदरः पर्वतश्रेष्ठो वैहारो दुर्दुरस्तथा॥२०॥
कोलाहलः ससुरसो मैनाको वैद्युतस्तथा। वातंधमो नागगिरिस्तथा पाण्डुरपर्वतः॥२१॥
तुंगपस्थः कृष्णागिरिर्गोधनो गिरिरेव च। पुष्प गिर्युज्जयंतो च शैलो रैवतकस्तथा॥२२॥

ये द्वीप हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वारुण ये आठ हुए।।९।। उनमें नौवां द्वीप भारतवर्ष सागर से घिरा हुआ है, यह द्वीप दक्षिण से उत्तर तक एक हजार योजन है।।१०।। यह गंगा की उत्तरी स्थली से कन्याकुमारी तक तिर्यक् उत्तर में ९ हजार योजन विस्तीर्ण है।।११।। यह द्वीप सब ओर से अपने अन्दर म्लेच्छों से युक्त है, पूर्व में अन्त तक किरात लोग रहते हैं और पश्चिम में यवनों का वास प्रसिद्ध है।।१२।। इस देश के मध्य भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं, जिनका कार्य वर्ण क्रम से यज्ञ करना, युद्ध करना, व्यापार आदि के द्वारा व्यवस्थित है।।१३।। उन वर्णों का अपने अपने कर्मों में परस्पर व्यवहार धर्म अर्थ और काम से संयुक्त होता है।।१४।। अर्थात् वे धर्म से अर्थ और अर्थ से काम की नीति रखते हैं।।१४।। यहाँ पाँच आश्रमों को यथाविधि पूरा किया जाता है, वैसे तो आश्रम चार ही है। इन आश्रमों में यहाँ के मनुष्यों की प्रवृत्ति स्वर्ग और मोक्ष प्राप्ति से सम्बन्धित है।।१५।। यह जो नौवा द्वीप है, वह तिर्यक् (तिरछा) फैला हुआ कहा जाता है, जो व्यक्ति इस समस्त को जीत लेता है, वही इसका सम्राट् कहा जाता है।।१६।। वह इस लोक में सम्राट् अन्तरिक्ष में विराट्, अन्य लोक में स्वराट् कहा जाता है, फिर मैं विस्तारपूर्वक कहूँगा।।१७।। इस देश में सुन्दर पर्व (चोटियों) वाले सात कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं। वे हैं—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य, परियात्र ये सात कुल पर्वत हैं। उनके समीप जाने वाले हजारों अन्य पर्वत हैं।।१८-१९।। इनमें कुछ ऐसे हैं, जो अभी तक नहीं जाने गये हैं तथा ये सब सारयुक्त है, विशाल हैं और विचित्र हैं। पर्वत श्रेष्ठ मन्दर, वैहार, दुर्दुर, कोलाहल, ससुरस, मैनाक तथा वैद्युत, वातन्धम, नागगिरि, पाण्डुर, तुंगप्रस्थ, कृष्णगिरि, गोधनगिरि, पुष्पगिरि,

श्रीपर्वताश्चित्रकूटः कूटशैलो गिरिस्तथा।
अन्ये तेभ्योऽपरिज्ञाता ह्रस्वाः स्वल्पोपजीविनः॥२३॥
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च भागशः। पीयंते यैरिमा नद्यो गंगा सिन्धुः सरस्वती॥२४॥
शतद्रुश्चंद्र भागा च यमुना सरयूस्तथा। इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः॥२५॥
गोमती धूतपापा च बुद्‌बुदा च दृषद्वती। कौशिकी त्रिदिवा चैव निष्ठीवी गंडकी तथा॥२६॥
चक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पादनिस्सृताः। वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च॥२७॥
वर्णाशा नन्दना चैव सदानीरा महानदी। पाशा चर्मण्यवतीनूपा विदिशा वेत्रवत्यपि॥२८॥
क्षिप्रा ह्यवंति च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः।
शोणो ममहानदश्चैव नर्म्मदा सुरसा क्रिया॥२९॥
मंदाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च। तमसा पिप्पला श्येना करमोदा पिशाचिका॥३०॥
चित्रोपला विशाला च बंजुला वास्तुवाहिनी। सनेरुजा शुक्तिमती मंकुती त्रिदिवा क्रतुः॥३१॥
ऋक्षवत्सप्रसूतास्ता नद्यो मणिजलाः शिवाः।
तापी पयोष्णी निर्विंध्या सृपा च निषधा नदी॥३२॥
वेणी वैतरणी चैव क्षिप्रा वाला कुमुद्वती। तोया चैव महागौरी दुर्गा वान्त्रशिला तथा॥३३॥
विंध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः। गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणाथ बंजुला॥३४॥
तुंगभद्रा सुप्रयोगा बाह्या कावेर्यथापि च। दक्षिणप्रवहा नद्यः सह्य पादाद्विनिः स्मृताः॥३५॥
कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजात्युत्पलावती।
नद्योऽभिजाता मलयात्सर्वाः शीतजलाः शुभाः॥३६॥

उज्जयन्त, रैवतक, श्रीपर्वत, चित्रकूट तथा कूटशैलगिरि हैं। इनके अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे भी कितने पर्वत हैं, जो अच्छी तरह ज्ञात नहीं हैं।।२०-२३।। उन पर्वतों से विशेष रूप से मिले हुए जनपद है, जहाँ पर आर्य और म्लेच्छ भागशः निवास करते हैं, जिनके द्वारा इन निम्न नदियों का जल पिया जाता है।।२४।। वे नदियां हैं—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा, बुद्‌बुदा,. दृषद्वती, कौशिका, त्रिदिवा, निष्ठीवी, गंडकी चक्षु और लोहिता ये नदियाँ हिमालय के पाददेश से निकली हैं।।२४-२६½।। वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वर्णाशा, नन्दना, सदानीरा, महानदी, पाशा, चर्मण्वती, नूपा, विदिशा, वेत्रवती, क्षिप्रा, अवन्ती, ये नदियां पारियात्र पर्वत से निकली हैं।।२६½-२८½।। शोण, महानद, नर्म्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमशा, पिप्पला, श्येना, करमोदा, पिशाचिका, चित्रोपला, विशाला, वंजुला, वास्तुवाहिनी, सनेरुजा, शुक्तिमती, मंकुति, त्रिदिवा नदियां ऋक्षवान् पर्वत से निकली हैं तथा इनका जल मणितुल्य और कल्याणकारी हैं।।२८½-३१½।। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, सृपा, निषधा, वेणी, वैतरणी, क्षिप्रा वाला, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा, वान्त्रिशिला ये नदियां विन्ध्यपर्वत के पाद प्रवेश से निःसृत हैं, जो पुण्यजल वाली और शुभ हैं।।३१½-३३½।। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणा, बंजुला, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या, कावेरी दक्षिण की ओर बहने वाली नदियां सह्य पर्वत के पाद प्रदेश से निकली हैं।।३३½-३५।। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजाति, उत्पलावती, ये नदियां मलयपर्वत से निकली हैं, जो सब शुभ और शीतल जल वाली हैं।।३६।।

त्रिसामा ऋषिकुल्या च बंजुला त्रिदिवाबला। लांगूलिनी वंशधरा महेंद्रतनयाः स्मृताः॥३७॥
ऋषिकुल्या कुमारी च मंदगा मंदगामिनी। कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः॥३८॥

तास्तु नद्यः सरस्वत्यः सर्वा गंगाः समुद्रगाः।
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः॥३९॥
तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः।
तास्विमे कुरुपांचालाः शाल्वा माद्रेयजांगलाः॥४०॥
शूरसेना भद्रकारा बोधाः सहपटच्चराः।
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुन्तलाः काशिकोशलाः॥४१॥
गोधा भद्राः कलिंगाश्च मागधाश्चोत्कलैः सह।
मध्यदेश्या जनपदाः प्रायशस्तत्र कीर्त्तिताः॥४२॥

सह्यस्य चोत्तरांतेषु यत्र गोदावरी नदी। पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः॥४३॥
तत्र गोवर्द्धनं नाम पुरं रमेण निर्मितम्। रामप्रियाथ स्वर्गीया वृक्षा दिव्यास्तथौषधीः॥४४॥
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवरोपिताः। अतः पुरवरोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरमः॥४५॥

बाह्लीका वाटधानाश्च आभीरा कालतोयकाः।
अपरांताश्च सुह्याश्च पाञ्चालाश्चर्ममंडलाः॥४६॥

गान्धारा यवनाश्चैव सिंधुसौवीरमण्डलाः। चीनाश्चैव तुषाराश्च पल्लवा गिरिगह्वराः॥४७॥

शका भद्राः कुलिंदाश्च पारदा विन्ध्यचूलिकाः।
अभीषाहा उलूताश्च केकया दशमालिकाः॥४८॥

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्यशूद्रकुलानि तु। कांबोजा दरदाश्चैव बर्बरा अंगलौहिकाः॥४९॥

त्रिसामा, ऋषिकुल्या, बंजुला, त्रिदिवा, बला, लांगूलिनी, वंशधरा, महेन्द्रतनया, ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दगामिनी, कृपा और पलाशिनी ये नदियां शुक्तिमान् पर्वत से निकली हैं। वे सभी सरस्वती गङ्गा आदि नदियां समुद्र में जाकर गिरी है। वे सभी विश्व की मातायें और संसार के पापों को हरने वाली कही गयी हैं।।३७-३९।। उनके अलावा सैकड़ों हजारों नदियां उपनदियां हैं, उनमें ये कुरुदेश, पाञ्चाल, शाल्व और माहेन्द्र जंगल हैं।।४०।। शूरसेन, भद्रकारा, बोधा, सहपटच्चर, मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्तल, काशिकोशल, गोध, भद्र, कलिङ्ग, मगध, उत्कल ये सब मध्यदेश के जनपद कहे गये हैं।।४१-४२।। सह्य पर्वत के उत्तरान्त में जहाँ गोदावरी नदी है, वह प्रदेश समस्त पृथ्वी पर मनोरम है।।४३।। वहाँ पर राम के द्वारा बनाया गया गोबर्द्धन नाम का नगर है। वह स्वर्गीय वृक्ष और दिव्य औषधियों वाला नगर है, उस नगर को मुनि भारद्वाज ने राम की प्रिया सीता जी के लिये अन्तःपुर के रूप में बनाया था। अतः वह नगर उस उद्देश्य से उन्होंने मनोरम बनाया था।।४५।। उत्तर की ओर इतने देश हैं—वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, सुह्य, अपरान्त, सुह्य, पाञ्चाल, चर्ममण्डल, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मण्डल, चीन, तुषार, पल्लव, गिरिगह्वर, शक, भद्र, कुलिन्द, पारद, विन्ध्य, चूलिक, अभीष, उलूत, केकय, दशमालिक, ये सब ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र कुलों के निवेश हैं।।४६-४८½।। काम्बोज, दरद, बर्बर, अंगलोहि, अत्राय, समरद्वाज, प्रस्थल, दशेरक, लमक, ताल, शाल, भूषिक,

अत्र यः सभरद्वाजाः प्रस्थलाश्च दशेरकाः। लमकास्तालशालाश्च भूषिका ईजिकैः सह॥५०॥
एते देशा उदीच्या वै प्राच्यान्देशान्निबोधत। अंगवंगा श्चोलभद्राः किरातानां च जातयः।
तोमरा हंसभंगाश्च काश्मीरास्तंगणास्तथा॥५१॥
झिल्लिकाश्चाहुकाश्चैव हूणदर्वास्तथैव च॥५२॥
अंधवाका मुद्गरका अंतर्गिरिबहिर्गिराः। ततः प्लवंगवो ज्ञेया मलदा मलवर्तिकाः॥५३॥
समंतराः प्रावृषेया भार्गवा गोपपार्थिवाः। प्राग्ज्योतिषाश्च पुंड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः॥५४॥
मल्ला मगधगोनर्दाः प्राच्यां जनपदाः स्मृताः। अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः॥५५॥
पंड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुल्यास्तथैव च। सेतुका मूषिकाश्चैव क्षपणा वनवासिकाः॥५६॥
माहाराष्ट्रा महिषिकाः कलिंगाश्चैव सर्वशः। आभीराश्च सहैषीका आटव्या सारवास्तथा॥५७॥
पुलिन्दा विन्ध्यमौलीया वैदर्भा दंडकैः सह।
पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः॥५८॥
कोंकणाः कंतलाश्चांधाः कुलिन्दाङ्गारमारिषाः।
दाक्षिणाश्चैव ये देशा अपरांस्तान्निबोधत॥५९॥
सूर्य्यारकाः कलिवना दुर्गालाः कुन्तलैः सह।
पौलेयाश्च किराताश्च रूपकास्तापकैः सह॥६०॥
तथा करीतयश्चैव सर्वे चैव करंधराः। नासिकाश्चैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः॥६१॥
सहकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैरपि। कच्छिपाश्च सुराष्ट्राश्च आनर्ताश्चार्बुदः॥६२॥
इत्येते अपरांताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः। मलदाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः॥६३॥
उत्तमानां दशार्णाश्च भोजाः किष्किंधकैः सह।
तोशलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा॥६४॥
तुहुण्डा बर्बराश्चैव षट्पुरा नैषधैः सह। अनूपास्तुंडिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवंतयः॥६५॥

ईजिक, ये देश उत्तर पूर्व के देश समझिये।।४८½-५०½।। अंग, बंग, चोल, भद्र, किरात जाति, तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, तंगण, झिल्लिका, आहुका, हूढ़दर्वा, अन्धवाका, मुद्गरका, अन्तर्गिरि बहिगिरि, प्लवंगव, मलद, मलवर्तिका, समन्तर, प्रावृषेय, भार्गव, गोपपार्थिव, प्राग्ज्योतिष, पुण्ड्र, विदेह ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध, गोर्नद ये पूर्व के जनपद कहे गये हैं।।५०½-५४½।। इसके बाद दूसरे जनपद दक्षिण पथ पर रहने वाले हैं। वे हैं पण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, सेतुक, मूषिक, क्षपण, वनवासिक, महाराष्ट्र, महिषिक, कलिङ्ग, आभीर, सहैषीक, आटव्य, साख, पुलिन्द, विन्ध्यमौलीय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगबर्द्धन, कौंकण, कुन्तल, आन्ध्र, कुलिन्द, अंगार, मारिष, ये सभी देश दक्षिण भारत के समझिये। दूसरे उनको सुनिये।।५४½-५९।। सूर्पाकारा, कलिवना, दुर्गा, कुन्तल, पौलेय, किरात, रूपक, तापक, करीति, करंधर और नासिक ये सब जनपद नर्मदा नदी के किनारे पर हैं।।५९-६१।। सहकच्छ, समाहेय, सहस, सारस्वत, कच्छिप, सुराष्ट्र, आनर्त अर्बुद।। ये सब अपरान्त के देश हैं। अब विन्ध्यवासियों को सुनिये। मलद, करूष, मेक, चोत्कल, उत्तमार्ण, दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोशल, कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुहुण्ड, बर्बर, षट्पुर, नैषध, अनूप, तुण्डिकेर, वीतिहोत्र, अवन्ति

एते जनपदाः सर्वे विंध्यपृष्ठनिवासिनः। अतो देशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये॥६६॥
निहीरा हंसमार्गाश्च कुपथास्तंगणाः शकाः। अपप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्वाः सहूहुकाः॥६७॥
त्रिगर्त्ता मंडलाश्चैव किराजास्तामरैः सह। चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन्॥६८॥
कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं तिष्यमेव च। तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टादशेषतः॥६९॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे भारतवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

किं पुरुषादि वर्षवर्णनं नाम

सप्तदशोऽध्यायः

सूत उवाच

यच्च किंपुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च। आचक्ष्व नो यथातत्त्वं कीर्त्तितं भारतं त्वया॥१॥
शुश्रूषा यत्र वो विप्रास्तच्छृणुध्वमतंद्रिताः। प्लक्षखंडः किंपुरुषे सुमहान्नंदनोपमः॥२॥
दशवर्षसहस्राणि स्थितिः किंपुरुषे स्मृता। सुवर्णवर्णाः पुरुषाः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः॥३॥

ये सब जनपद विन्ध्यपर्वत के पीछे रहने वालों के हैं।।६२-६५½।। अतः अब पर्वताश्रयी देशों का वर्णन करूँगा, वे हैं—निहीर, हंसमार्ग, कुपथ, तंगण, शक, अपप्रावरण, ऊर्ण, दर्व, सहूहुक, त्रिगर्त, मण्डल, किरात, तामर।।६५½-६७½।। भारतवर्ष में चार युग ऋषियों ने बताये वे हैं—सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। इनके स्वभाव का पूर्ण वर्णन ऊपर से किया जायेगा, ऐसा समझिये।।६७½-६९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद सोलहवां अध्याय भारतवर्ष वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-१७

किंपुरुष आदि देश वर्णन

यह जो किम्पुरुष वर्ष है, उसी प्रकार हरिवर्ष है, इसको भी हमें यथातत्त्व बताइये जिस प्रकार कि आपने भारतवर्ष को यथातत्त्व बताया है। ऐसा ऋषियों ने कहा, तब सूतजी बोले—ब्राह्मणों आप लोग, जो सुनना चाहते हैं, उसे निरालस्य होकर सुनिये। किंपुरुषवर्ष में नन्दनवन के समान एक प्लक्षखण्ड है, वहाँ के पुरुषों की आयु दश हजार वर्ष की है, वहाँ के पुरुष स्वर्ण के वर्ण के होते हैं और स्त्रियां अप्सराओं के समान होती हैं।।१-३।।

अनामया अशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः। जायन्ते मानवास्तत्र निस्तप्तकनकप्रभाः॥४॥
वर्षे किंपुरुषे पुण्ये वृक्षो मधुवहः शुभः। तस्य किंपुरुषाः सर्वेऽपिबन् हि रसमुत्तमम्॥५॥
ततः परं किंपुरुषो हरिवर्षः प्रचक्षते। महाराजतसंकाशा जायन्ते तत्र मानवाः॥६॥
देवलोकच्युताः सर्वे देवानूकाश्च सर्वशः। हरिवर्षे नराः सर्वे पिबंतीक्षुरसं शुभम्॥७॥
एकादश सहस्राणि वर्षाणां तु निरामयाः। हरिवर्षे तु जीवंति सर्वे मुदितमानसाः॥८॥
न जरा बाधते तत्र न म्रियन्ते च तेऽचिरात्। मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम्॥९॥
न तत्र सूर्यस्तपति न तु जीर्यंति मानवाः। चंद्रसूर्यौ सनक्षत्रौ न प्रकाशाविलावृते॥१०॥
पद्मप्रभाः पद्मवर्णास्तथा पद्मनिभेषणाः। पद्मपत्रसुगंधाश्च जायन्ते तत्र मानवाः॥११॥
जंबूफलरसाहारा अनिष्यंदाः सुगन्धिनः। मनस्विनो भुक्तभोगाः सत्कर्मफलभोगिनः॥१२॥
देवलोकच्युताश्चैव महारजतवाससः। त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः॥१३॥
आयुःप्रमाणं जीवंति ये तु वर्ष इलावृते। मेरोः प्रतिदिशं यच्च नवसाहस्रविस्तृतम्॥१४॥
योजनानां सहस्राणि षट्त्रिंशत्तस्य विस्तरः। चतुरस्रं समंताच्च शरावाकारसंस्थितम्॥१५॥
मेरोः पश्चिमभागे तु नवसाहस्रसम्मिते। चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि गन्धमादनर्वतः॥१६॥
उदग्दक्षिणतश्चैव आनीलनिषधायतः। चत्वारिंशत्सहस्राणि परिवृद्धो महीतलात्॥१७॥

वहाँ पर नीरोग, शोकरहित, नित्यप्रसन्न चित्त और पूरी तरह तपाये हुए सोने के समान कान्ति वाले पुरुष पैदा होते हैं।।४।। पुण्य किंपुरुष देश में शुभ मधु को वहन करने वाला वृक्ष है, उस वृक्ष के उत्तम रस का पान वहाँ के सब पुरुष करते थे।।५।। उस किंपुरुष वर्षके बाद हरिवर्ष का वर्णन करते हैं। वहाँ हरिवर्ष में विशुद्ध चांदी के समान लोगों का रंग होता है।।६।। वे सब देवलोक से च्युत हैं तथा सब प्रकार से देवों के ही समान हैं। हरिवर्ष में सभी मुनष्य शुभ ईख के रस का पान करते हैं।।७।।

हरि वर्ष में सभी ग्यारह हजार वर्षों तक नीरोग और प्रसन्नचित्त रहते हुए जीवित रहते हैं।।८।। वहाँ पर न वृद्धावस्था उन्हें वाधित करती है और न वे शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं।।८½।।। अब इलावृत वर्ष के बारे में बताते हैं कि मध्यम देश जो मैंने कहा, वह इलावृत वर्ष नाम से प्रसिद्ध है।।९।। इलावर्त वर्ष में न सूर्य अधिक तपते हैं और न मनुष्य जीर्ण (बृद्ध) होते हैं।।९½।। नक्षत्रों सहित सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश नहीं होता। वहाँ के लोग लालकमल की कान्ति वाले, लालकमल के वर्णवाले तथा कमल के समान नेत्रों वाले होते हैं तथा वहाँ कमलपत्र के समान सुगन्ध वाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं। वे सब जामुन के फल के रस का आहार करने वाले निष्यन्द अच्छी गन्ध वाले, विचारशील और सत्कर्म के फल का भोग करने वाले होते हैं। वहाँ के लोग देवलोक से परिभ्रष्ट हैं और विशुद्ध चांदी के रंग के समान होते हैं। इलावृत वर्ष में श्रेष्ठ मनुष्य तेरह हजार वर्ष तक की आयु के प्रमाण तक जीवित रहते हैं।।१२-१३½।। जो इलावृत वर्ष सुमेरु पर्वत की दिशा में नौ हजार योजन विस्तृत हैं। उसका विस्तार छत्तीस हजार योजनों का है, वह चारों ओर चौकोर तथा थाली के समान स्थित हैं।।१३½-१५।। मेरु के परिचम में नौ जहार योजन दूर चौंतीस हजार योजन विस्तार वाला गन्धमादन पर्वत है।।१६।। यह उत्तर दक्षिण की ओर वह नील और निषध पर्वत तक फैला हुआ है। वह पर्वत पृथ्वी तल से चालीस हजार योजन ऊपर बढ़ा हुआ है।।१७।।

सहस्रमवगाढश्च तावदेव च विस्तृतः। पूर्वेण माल्यवाञ्छैलस्तत्प्रमाणः प्रकीर्त्ततः॥१८॥
दक्षिणेन तु नीलश्च निषधश्चोत्तरेण तु। तेषां मध्ये महामेरुः स्वैः प्रमाणैः प्रतिष्ठितः॥१९॥
सर्वेषामेव शैलानामवगाढो यथा भवेत्। विस्तरस्तत्प्रमाणः स्यादायामो नियुतं स्मृतः॥२०॥
वृत्तभावास्समुद्रस्य महीमण्डलभावतः। आयामाः परिहीयन्ते चतुरस्रसमाः स्मृताः॥२१॥
इलावृतं चतुष्कोणं भिंदंती मध्यभागतः। प्रभिन्नांजनसंकाशा जम्बूरसवती नदी॥२२॥
मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण च। सुदर्शना नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः॥२३॥
नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः। तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः॥२४॥
योजनानां सहस्रं च शतं चान्यन्महात्मनः। उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवं स्पृशति सर्वतः॥२५॥
अरत्नीनां शतान्यष्टावेकषष्ट्यधिकानि तु। फलप्रमाणं संख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥२६॥
पतमानानि तान्युर्व्यां कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् ।
तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदी भूत्वा प्रसर्प्पति॥२७॥
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलं विशत्यधः। तं पिबंति सदा हृष्टा जंबूरसमिलावृते॥२८॥
जंबूफलरसे पीते न जरा बाधते तु तान्। न क्षुधा न श्रमश्चापि न मृत्युर्न च तंद्रितम्॥२९॥
तत्र जांबूनदं नाम कनकं देवभूषणम्। इंद्रोपकसंकाशं जायते भास्वरं तु तत्॥३०॥

वह हजार योजन पृथ्वी के अन्दर धंसा हुआ है और उतना ही ऊपर की ओर बढ़ा हुआ है। उसके पूर्व से माल्यवान् पर्वत उसी के बराबर माप वाला कहा गया है।।१८।। उस माल्यवान् के दक्षिण से नील पर्वत है और उत्तर की ओर निषध है, उनके बीच में सुमेरुपर्वत अपने पूरे प्रमाण के साथ प्रतिष्ठित है।।१९।। वह सब पर्वतों का अवगाढ सा है अर्थात् उसमें सब पर्वत डूबे हुये से लगते हैं। विस्तार से उसका प्रमाण दश लाख योजन तक फैला हुआ है।।२०।। पृथ्वीमण्डल के भाव से समुद्र का वृत्तभाव अधिक है तथा चौकोर से वृत्त का प्रमाण कम हो जाता है।।२१।। इलावृत वर्ष चौकोर है और उसके मध्यभाग से प्रभिन्न अंजन के समान जम्बू (जामुन) के रसवाली जम्बूनदी बहती है।।२२।। वह नदी मेरु को दक्षिण पार्श्व तथा निषध के उत्तर पार्श्व में बहती है।। वहाँ पर एक सुन्दर दिखायी देने वाला वहुत पुराना महान् जामुन का वृक्ष है।।२३।।

वह जामुन का वृक्ष नित्य पुष्प और फल से लदा रहता है और सिद्ध एवं चारणों से सेवित है। उसी वृक्ष के नाम से उस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप प्रसिद्ध हुआ।।२४।। वह महान् वृक्ष सौ योजन विशाल है, उस महावृक्ष का शिखर स्वर्ग का स्पर्श करता है।।२५।। तत्त्वदर्शियों द्वारा उसके प्रत्येक फल का परिणाम आठ सौ अरत्नि बताया जाता है।।२६।। ये फल पृथ्वी पर गिर कर महान् शब्द करते हैं और उस वृक्ष के फलों का रस नदी बनकर बहता है।।२७।। वह नदी मेरु की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करके जम्बू वृक्ष के मूल में ही प्रवेश कर जाती है। इलावृत वर्ष में उसी जम्बू रस को लोग खुश होकर पीते हैं।।२८।। जम्बू के फल का रस पीने पर उनको वृद्धावस्था, मृत्यु और आलस्य बाधा नहीं पहुँचाते हैं। अर्थात् न वे वृद्धावस्था में दुःखी होते हैं, न असमय मृत्यु होती है, न आलस्य बाधित करता है।।२९।। वहाँ पर जम्बूनद नामक देवभूषण सोना है, जो इन्द्रगोप कीट (बरसाती राम की गुड़िया जिसे कहते हैं) के समान चमकीला है।।३०।।

सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसः स्तुतः। स्कन्नं भवति तच्छुभ्रं कनकं देवभूषणम्॥३१॥
तेषां मूत्रं पुरीषं च दिक्षु सर्वासु सर्वशः। ईश्वरानुग्रहाद्भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान्॥३२॥
रक्षःपिशाचयक्षाश्च सर्वे हैमवतः स्मृताः। हेमकूटे तु गन्धर्वा विज्ञेयाः साप्सरोगणाः॥३३॥
सर्वे नागास्तु निषधे शेषवसुकितक्षकाः। महामेरौ त्रयस्त्रिंशत्क्रीडन्ते यज्ञियाः सुराः॥३४॥
नीले तु वैदूर्यमये सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽमलाः। दैत्यानां दानवानां च श्वेतः पर्वत उच्यते॥३५॥
श्रृंगवान्पर्वतश्रेष्ठः पितृणां प्रतिसंचरः। नवस्वेतेषु वर्षेषु यथाभागं स्थितेषु वै॥३६॥
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमंति धुवाणि च। तेषां विवृद्धिर्बहुधा दृश्यते दिव्यमानुषी।
न संख्या परिसंख्यातुं श्रद्धो तु बुभूषताम्॥३७॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे किंपुरुषादिवर्षवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

सब देश के वक्षों का शुभ फल रस गिरकर, शुभ्र कनक देवभूषण बन जाता है।।३१।। उनका मूत्र और पुरीष भी विभागशः सभी दिशाओं में बिखर जाता है और ईश्वर की कृपा से भूमि उस मृत्तिका को ग्रस लेती है।।३२।। राक्षस, पिशाच, यक्ष, हैमवान् कहे गये तथा वे सभी तथा गन्धर्व और अप्सरायें हेमकूट पर निवासी समझने चाहिये।।३३।। सभी नाग शेष वासुकि निषध पर निवास करते हैं। महामेरु पर तो तैंतीस करोड़ यज्ञीय देवता क्रीडा करते हैं।।३४।। मूंगे के समान नील पर्वत पर तो सिद्धगण, अमल ब्रह्मर्षिगण निवास करते हैं। दैत्यों और देवताओं का पर्वत श्वेत पर्वत कहा जाता है।।३५।। शृङ्गवान् पर्वतश्रेष्ठ पितरों का संचरण स्थल है। इन नौ देशों में यथा निर्धारित भागों में गतिशील और एक स्थान पर स्थित प्राणी रहते हैं, उनकी देवमानुष के रूप में वृद्धि बहुत अधिक देखी जाती है, जिनकी गणना नहीं की जा सकती।।३७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद सत्तरहवां अध्याय किंपुरुष आदि देश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

जम्बूद्वीपवर्णनं नाम

अष्टादशोऽध्यायः

सूत उवाच

मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः। तस्मिन्निवसति श्रीमान्कुबेरः सह राक्षसैः॥१॥
अप्सरोनुचरो राजा मोदते ह्यलकाधिपः। कैलासपादात्संभूतं पुण्यं शीतजलं शुभम्॥२॥
मदं नाम्ना कुमुद्वत्तत्सरस्तूदधिसन्निभम्। तस्माद्दिव्यात्प्रभवति नदी मंदाकिनी शुभा॥३॥
दिव्यं च नंदनवनं तस्यास्तीरे महद्वनम्। प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यं सर्वौषधिं गिरिम्॥४॥
रत्नधातुमयं चित्रं सबलं पर्वतं प्रति। चन्द्रप्रभो नाम गिरिः सुशुभ्रो रत्नसन्निभः॥५॥
तस्य पादे महद्दिव्यं स्वच्छोदं नाम तत्सरः। तस्माद्दिव्यात्प्रभवति स्वच्छोदा नाम निम्नगा॥६॥
तस्यास्तीरे महद्दिव्यं वनं चैत्ररथं शुभम्। तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः॥७॥
यक्षसेनापतिः क्रूरो गुह्यकैः परिवारितः। पुण्या मंदाकिनी चैव नदी स्वच्छोदका च या॥८॥
महीमण्डलमध्येन प्रविष्टे ते महोदधिम्। कैलासाद्दक्षिणे प्राच्यां शिवसत्वौषधिं गिरिम्॥९॥
मनः शिलामयं दिव्यं चित्रांगं पर्वतं प्रति। लोहितो हेमशृंगश्च गिरिः सूर्यप्रभो महान्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय–१८

जम्बूद्वीप वर्णन

सूत जी बोले—हिमवान् (हिमालय) पर्वत के मध्य में (पीठ पर) कैलाश नाम का पर्वत है। उस पर्वत पर श्रीमान् (धनपति) कबेर राक्षसों के साथ निवास करते हैं।।१।। अलकाधिपति वहाँ अप्सराओं के साथ आनन्द लिया करते हैं। कैलास के पाद प्रदेश से संभूत पुण्य और शुभ शीतल जल है। मन्द नाम से कमलों वाला सरोवर है। उस दिव्य सरोवर से शुभ मन्दाकिनी नदी उत्पन्न होती हैं।।२-३।। उन नदी के किनारे पर दिव्य विशाल नन्दन वन है। कैलास के पूर्वोत्तर से सभी दिव्य औषधिओं वाला पर्वत है।।४।। वह पर्वत रत्नों और धातुओं से युक्त हैं, जो सुन्दर शुभ्ररत्नों के समान विचित्र हैं तथा उसका नाम चन्द्रप्रभ है।।५।। उसके पाद प्रदेश में महान् दिव्य स्वच्छोद नामक सरोवर है, उस दिव्य सरोवर से स्वच्छोदा नामक नदी निकलती है।।६।। उसके तीर पर अत्यन्त दिव्य चैत्ररथ नाम का शुभ वन है। उस कैलास पर्वत पर मणिभद्र अपने अनुचरों के साथ निवास करता है।।७।। क्रूर यक्ष सेनापति कुबेर अपने गुह्यकों से घिरा हुआ रहता है।। वहाँ पर पुण्य मन्दाकिनी नदी स्वच्छ जलवाली है।।८।। वह मन्दाकिनी नदी पृथ्वीमण्डल के मध्य से होती हुई महासमुद्र में प्रविष्ट हो जाती है। कैलास से दक्षिण पूर्व में शिवसत्त्व की औषधि वाले पर्व मनःशिल नामक धातु वाले दिव्य चित्राङ्ग पर्वत की तरफ लाल वर्ण वाला हेमशृङ्ग (सुनहरी चोटियों से युक्त) सूर्यप्रभ नामका महान् पर्वत है।।९-१०।।

तस्य पादे महद्दिव्यं लोहितं नाम तत्सरः। तस्मात्पुण्यः प्रभवति लौहित्यः स नदो महान्॥११॥
देवारण्यं विशोकं च तस्य तीरे महद्वनम्। तस्मिन्गिरौ निवसति यक्षोमणिधरो वशी॥१२॥
सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यके परिवारितः। कैलासद्दक्षिणे पार्श्वे क्रूरसत्त्वौषधिर्गिरिः॥१३॥
वृत्रकायात्किलोत्पन्नमञ्जनं त्रिककुं प्रति। सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान्वैद्युतो गिरिः॥१४॥
तस्य पादे सरःपुण्यं मानसं सिद्धसेवितम्। तस्मात्प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकविश्रुता॥१५॥
तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम्। कुबेरानुचरस्तत्र प्रहेतितनयो वशी॥१६॥
ब्रह्मापेतो निवसति राक्षसोऽनंतविक्रमः। अंतरिक्षचरैर्घोरैर्यातुधानशतैर्वृतः॥१७॥
अपरेण तु कैलासात्पुण्यसत्त्वौषधिर्गिरिः। अरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुमयः शुभः॥१८॥
भवस्य दधितः श्रीमान्पर्वतो मेघसन्निभः। शातकौंभमयैः शुभ्रैः शिलाजातैः समावृतः॥१९॥
शतसंख्यैस्तापनीयैः श्रृंगैर्दिवमिवोल्लिखन्। मुंजवांस्तु महादिव्यो दुर्गः शैलो हिमांचितः॥२०॥
तस्मिन्गिरौ निवसति गिरीशो धूम्रलोचनः। तस्य पादात्प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः॥२१॥

तस्मात्प्रभवते पुण्या शिलोदा नाम निम्नगा।
सा चक्षुः सीतयोर्मध्ये प्रविष्टा लवणोदधिम्॥२२॥

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं विश्रुतं सुरभीति वै। सव्योत्तरेण कैलासाच्छिवः सत्त्वौषधिर्गिरिः॥२३॥
गौरं नाम गिरिश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति। हिरण्यश्रृंगः सुमहान् दिव्यो मणिमयो गिरिः॥२४॥

उस पर्वत के पाद प्रदेश में महादिव्य लोहित नाम का सरोवर है। उस सरोवर से लौहित्य नामक महानद उत्पन्न होता है।।११।। उसके किनारे पर विशोक नामक देवों का वन है। उस पर्वत पर सरल स्वभाव वाले अच्छे धार्मिक गुह्यकों से घिरा हुआ, जितेन्द्रिय मणिधर नामक यक्ष निवास करता है।।११-१२½।। कैलास से दक्षिण में तथा पार्श्व में ही क्रूर प्राणियों और औषधियों वाला पर्वत है तथा वृत्तासुर के शरीर से उत्पन्न तीन चोटियों वाले अंजन पर्वत की तरफ वहाँ समस्त धातुयुक्त सुन्दर और महान् वैद्युत नामक पर्वत हैं।।१२½-१४।। उस पर्वत के पाद प्रदेश में सिद्धों से सेवित मानस नाम का पुण्य सरोवर हैं। उस सरोवर से लोक प्रसिद्ध पुण्य सरयू नदी उत्पन्न होती है।।१५।। उस नदी के किनारे पर वैभ्राज नाम का प्रसिद्ध दिव्य वन है। वहाँ पर अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले सैकड़ों घोर राक्षसों से घिरा हुआ प्रहेति का पुत्र ब्रह्मापेत नामक कुबेर का जितेन्द्रिय सेवक रहता है, जो अनन्तपराक्रमी राक्षस है।।१६-१७।। कैलास पर्वत के दूसरी ओर अर्थात् पश्चिम में पुण्यशील प्राणियों तथा स्वर्णधातुमय अरुण नाम का शुभ पर्वत है, जिसके पास में स्वर्णमय शुभ्र शिलासमूहों से समावृत भगवान् शिव का प्रिय मेघ के समान श्रीमान् (शोभायमान) पर्वत स्थित है।।१९।।

सैकड़ों की संख्या में तपाने वाले श्रृङ्गों (शिखरों) से स्वर्ग को छूता हुआ, मूंज नामक घास वाला, हिम से ढका हुआ महादिव्य दुर्गपर्वत है। उस पर्वत पर धूम्रलोचन भगवान् शिव निवास करते हैं। उस कैलासपर्वत के पाद प्रदेश (नीच) से शैलोद नामक सरोवर है।।२०-२१।। उस सरोवर के पुण्य शिलोदा नामक नदी निकलती है, वह नदी सीता और चक्षु के मध्य से होती हुई दक्षिण में लवण समुद्र में प्रविष्ट हो गयी है।।२२।। उस नदी के किनारे पर एक सुरभि नामक दिव्य वन सुना गया है। कैलास से दक्षिण उत्तर की ओर प्राणियों और औषधियों वाला हरिताल मय गिरिश्रेष्ठ गौर नाम का पर्वत है। वह सुनहरी शिखरों वाला सुमहान् दिव्य मणिमय गिरि है।।२४।।

तस्य पादे महद्दिव्यं शुभं काञ्चनवालुकम्। रम्यं बिंदुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः॥२५॥
गंगानिमित्तं राजर्षिरुवास बहुलाः समाः। दिवं यास्यंति तेपूर्वे गंगातोयपरिप्लुताः॥२६॥
मदीया इति निश्चित्य समाहितमनाः शिवे। तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता॥
सोमपादात्प्रसूता सा सप्तधा प्रतिपद्यते॥२७॥
यूपा मणिमयास्तत्र वितताश्च हिरण्मयाः। तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं शक्रः सर्वैः सुरैः सह॥२८॥
दिवि च्छायापथो यस्तु अनुनक्षत्रमण्डलः। दृश्यते भास्वरो रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा॥२९॥
अंतरिक्षं दिवं चैव भावयंती सुरापगा। भवोत्तमांगे पतिता संरुद्धा योगमायया॥३०॥
तस्या ये बिंदवः केचित् क्रुद्धायाः पतिता भुवि। कृतं तु तैर्बिंदुसरस्ततो बिंदुसरः स्मृतम्॥३१॥
ततो निरुद्धा सा देवी भवेन स्मयता किल। चिन्तयामास मनसा शंकरक्षेपणं प्रति॥३२॥
भीत्त्वा विशामि पातालं स्त्रोतसागृह्य शंकरम्।
ज्ञात्वा तस्या अभिप्रायं क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम्॥३३॥
तिरोभावयितुं बुद्धिरासीदंगेषु तां नदीम्। तस्यावलेपं ज्ञात्वा तु नद्याः क्रुद्धस्तु शंकरः॥३४॥
न्यरुणच्च शिर स्येनां वेगेन पततीं भुवि। एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः॥३५॥
धमनीसंततं क्षीणं क्षुधया व्याकुलेन्द्रियम्। अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थं पूर्वमेव तु॥३६॥
बुद्ध्वाऽस्य वरदानं च कोपं नियतवांस्तु सः। ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा धारय स्वर्णदीमिति॥३७॥

उस गिरि के पाद प्रदेश में शुभ्र एवं सुनहरी बालू वाला मनोहर बिन्दु नाम का सरोवर है, जहाँ राजा भगीरथ ने बहुत वर्षों तक गंगा के लिये निवास किया था; क्योंकि उनके पूर्वज सगर के पुत्र गंगा के जल से पवित्र होकर स्वर्ग चले जायेंगे।।२५-२६।। यह मेरी है, ऐसा निश्चित करके शिव में समाहित चित्त गङ्गा देवी वहाँ पहले ही प्रतिष्ठित हैं। सोमपाद से उत्पन्न होकर वे सात भागों में विभक्त हुई हैं।।२७।। वहाँ पर मणिजड़ित यज्ञयूप तथा सोने की सीढ़ियां हैं, वहाँ पर इन्द्र ने सब देवों के साथ यज्ञ करके सिद्धि को प्राप्त किया था।।२८।। आकाश में जो नक्षत्रमण्डलों वाला छाया पथ है, जो रात में चमकता है। वह त्रिपगा देवी गंगा का ही रूप हैं, जिसे आज आकाश गङ्गा कहा जाता है।।२९।। इस प्रकार यह गंगा जब अन्तरिक्ष और आकाश को प्लावित करती हुई भगवान् शंकर के शिर पर गिरी, तो वहाँ शंकर ने उन्हें अपनी योगमाया से रोक लिया।।३०।।

जब शंकर जी ने रोक लिया, तब क्रुद्ध गंगा की कुछ बूंदें पृथ्वी पर गिरीं और उन बिन्दुओं से बिन्दु नाम का सरोवर बन गया।।३१।। उसके बाद रोकी गयी वे देवी गंगा शंकर पर बहुत क्रोधित हो गयीं तथा मन में शंकर को बहाने की बात सोचने लगी तथा यह सोचने लगीं कि अपने प्रवाह में शंकर को लेकर पाताल में प्रविष्ट हो जाऊँगी।।३१-३२½।। इस पर क्रुद्ध भगवान् शंकर ने उनके क्रूर अभिप्राय को जानकर उन गङ्गा को अपनी बुद्धि से अपने शिर की जटाओं में छिपाना चाहा।।३२½-३४।। जब वेग से पृथ्वी पर गिरती हुई गंगा को सिर पर छिपा लिया, उसी समय उन्होंने राजा भगीरथ को देखा, जिसकी धमनियां क्षीण हो चुकी थीं और भूख से इन्द्रियां व्याकुल हो चुकी थीं। इस प्रकार राजा भगीरथ ने शंकरजी को गंगा नदी के लिये पहले से ही सन्तुष्ट कर लिया था; क्योंकि जब उनके पूर्वज सगरपुत्रों को शाप के बदले यह वरदान मिला था कि तुम्हारा वंश, जब गंगा को लायेगा, तब इनका उद्धार होगा। अतः इस वरदान को शंकर जी ने जाना और क्रोध को रोक लिया। इसी बीच ब्रह्मा जी ने महादेव को

ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा। नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः॥३८॥

ततो विसृज्यमानायाः स्त्रोत स्तत्सप्तधा गतम्।
तिस्त्रः प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं तिस्त्र एव तु॥३९॥

नद्याः स्त्रोतस्तु गंगायाः प्रत्यपद्यत सप्तधा। नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगाः॥४०॥

सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च प्रतीचीं दिशमास्थिताः।
सप्तमी त्वन्वगात्तासां दक्षिणेन भगीरथम्॥४१॥

तस्माद्भागीरथी या सा प्रविष्टा लवणोदधिम्। सप्तैता भावयंतीदं हिमाह्वं वर्षमेव तु॥४२॥

प्रसूताः सप्त नद्यस्ताः शुभा बिन्दु सरोद्भवाः।
नानादेशान्प्लावयन्त्यो म्लेच्छप्रायांस्तु सर्वशः॥४३॥
उपगच्छंति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः।
शिलीन्ध्रान्कुन्तलांश्चीनान्बर्बरान्यवनांधकान् ॥४४॥
पुष्करांश्च कुलिन्दांश्च अंचोलद्विचराश्च ये।
कृत्वा त्रिधा सिंहवंतं सीताऽगात्पश्चिमोदधिम्॥४५॥
अथ चीनमरूंश्चैव तालांश्च मसमूलिकान्।
भद्रांस्तुषाराँल्लाम्याकान्बाह्लावान्पारटान्खशान्॥४६॥

एताञ्जनपदांश्चक्षुः प्लावयंती गतोदधिम्। दरदांश्च सकाश्मीरान् गांधरान् रौरसान् कुहान्॥४७॥
शिवशैलानिन्द्रपदान्वसतीश्च विसर्जमान्। सैंधवान्रंधकरकाञ्छमठाभीररोहकान्॥४८॥

वरदान की याद दिलाई और कहा कि अब स्वर्ण की दीप्ति को धारण करो! ब्रह्मा जी के इस वचन को सुनकर भगीरथ के उग्र तप से प्रसन्न शंकर जी ने भगीरथ के लिये अपने तेज से रोकी गयी गङ्गा को छोड़ दिया।।३७-३८।। उसके बाद छोड़ी हुई गङ्गा का स्त्रोत सात भागों में विभक्त हो गया। तीन धारायें पूर्व की ओर और तीन पश्चिम की ओर चली गयीं।।३९।। अतः नदी गंगा का जो स्त्रोत सात प्रकार का हुआ उनमें नलिनी, ह्लादिनी और पावनी ये तीन धारायें पूर्व की ओर जाने वाली हो गयीं। इसके बाद सीता, चक्षु और सिन्धु ये तीन धारायें पश्चिम की ओर बहने लगीं तथा सातवीं धारा ने दक्षिण की ओर राजा भगीरथ का अनुगमन किया।।४०-४१।।

उसी कारण से उनका नाम भागीरथी हुआ और फिर वह दक्षिण के लवण समुद्र में गिर गयीं।। ये सातों धारायें हिमवर्ष को आप्लावित करती हैं।।४२।। ये सभी उत्पन्न नदियां बिन्दु नामक सरोवर से उत्पन्न हुई हैं। अनेकों म्लेच्छ प्रायः देशों को आप्लावित करती हुई, वहाँ जाती हैं, जहाँ पर वासव (इन्द्र) (मेघ) बरसाते हैं। जैसे कि सब नदियाँ शिलीन्ध्र, कुन्तल, चीन, बर्बर, यवन, आन्ध्रक, और पुष्कर, कुलिन्द, अंचोल और द्विचर इन देशों में बहती हुई सीता नदी सिन्धुवान् को तीन भागों में विभक्त करती हुई पश्चिम समुद्र में गिरजाती है।।४३-४५।। इसके बाद चीन, मरू, ताल, मस मूलिक, भद्र, तुषार, लाम्यक, बाह्लव, पारट और खश इन इतने जनपदों को आप्लावित करती हुई चक्षु नदी समुद्र में गिर जाती हैं।।४६½।। दरद, काश्मीर, गान्धार, रौरस, कुह, शिवशैल, इन्द्रपद, वसती, विसर्जमा, सैन्धव, रन्ध्रकरक, शमठ, आभीर, रोहक, शुन, आमुख, ऊर्ध्वमरु इन जनपदों को सिन्धु नदी

शुनामुखांश्चोर्द्धमरून्सिन्धुरेतान्निषेवते। गन्धर्वकिन्नरान्यक्षान्रक्षोविद्याधरोरगान्॥४९॥
कलापग्रामकांश्चैव पारदांस्तद्गणान् खशान्। किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् सभरतानपि॥५०॥
पंचालान्काशिमत्स्यांश्च मगधांगांस्तथैव च। सुह्मोत्तरांश्च वंगांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च॥५१॥
एताञ्जनपदान्मान्यान्गंगा भावयते शुभान्। ततः प्रतिहता विंध्यात्प्रविष्टा लवणोदधिम्॥५२॥
ततश्च ह्लादिनी पुण्या प्राचीमभिमुखा ययौ। प्लावयंत्युपभागांश्च नैषधांश्च त्रिगर्तकान्॥५३॥
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि। केकरानौष्टकर्णांश्च किरातानपि चैव हि॥५४॥
कालोदरान्विवर्णांश्च कुमारान्स्वर्णभूमिकान्। आमंडलं समुद्रस्य तिरोभूतांश्च पूर्वतः॥५५॥
ततस्तु पावनी चापि प्राचीमेव दिशं ययौ। सुपथान्प्लावयं तीहत्विंद्रद्युम्नसरोपि च॥५६॥
तथा खरपथांश्चैव वेत्रशंकुपथानपि। मध्यतोजानकिमथो कुथप्रावरणान्ययौ॥५७॥
इंद्रद्वीप समुद्रं तु प्रविष्टां लवणोदधिम्। ततस्तु नलिनी प्रायात् प्राचीमाशां जवेन तु॥५८॥
तोमरान्भावयंतीह हंसमार्गान्सहैहयान्। पूर्वान्देशांश्च सेवंती भित्त्वा सा बहुधागिरीन्॥५९॥
कर्णप्रावरणान्प्राप्य संगत्या श्वमुखानपि। सिकतापर्वतमरुं गत्वा विद्याधरान्ययौ॥६०॥
नगमंडलमध्येन प्रविष्टा लवणोदधिम्। तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्त्रशः॥६१॥
उपगच्छंतिताः सर्वा यतो वर्षति वासवः। वस्वौकसायास्तीरे तु वनं सुरभि विश्रुतम्॥६२॥
हिरण्यशृंगे वसति विद्वान्कौबेरको वशी। यज्ञोपेतश्च सुमहानमितौजाः सुविक्रमः॥६३॥
तत्रत्यैस्तैः परिवृतो विद्वद्भिर्ब्रह्मराक्षसैः। कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तु समाः स्मृताः॥६४॥

सिंचित करती है।।४६½-४८½।। गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, रक्ष, विद्याधर, उरग, कलाप, ग्रामक,पारद, तद्गण, खश, किरात, पुलिन्द, कुरु, भारत, पांचाल, काशी, मत्स्य, मगध, सुह्म, उत्तर, वंग, और ताम्रलिप्त, इन इतने मान्य शुभ जनपदों को गंगा भावित करती है (आप्लावित करती हैं) उसके बाद वह गंगा विन्ध्य पर्वत पर टकराकर लवण समुद्र में गिर जाती है।।४८½-५२।।

उसके बाद पुण्यह्लादिनी नामक नदी पूर्व की ओर अभिमुख हो जाती है और उपभोग नैषध, त्रिगर्तक, धीवर, ऋषिक, नीलमुख, केकर, औष्टकर्ण, किरात, कालोदर, विवर्ण, कुमार, स्वर्णभूमिक, जनपदों से होती हुई पूर्व से समुद्रपर्यन्त सबको आप्लावित करती हुई, वह पवित्र नदी पूर्व की दिशा की ओर चली गयी है और फिर अच्छे अच्छे मार्गों को गमन करती हुई इन्द्रद्युम्न नामक सरोवर को आप्लावित करती है।।५३-५६।। तथा खरपथ, वेत्रंशुक पथ के मध्य से गुजरती हुई अजानकि जैसे कुपथों पर चली गयी है। इन्द्रदीप नामक लवण समुद्र में गिर जाती है।।५७½।। वहाँ हिमालय से निकलकर नलिनीपूर्व की ओर चली गयी है। वह नदी तोमर जनपदों से होती हुई, हंसमार्ग, हैहय, आदि पूर्व देशों की सेवा करती हुई बहुत से पर्वतों को तोड़कर कर्ण, प्रावरण को प्राप्त कर श्वमुख जनपद के साथ मिलकर बालू के पर्वत मरु जनपद में जाकर विद्याधर जनपद को चली गयी और पर्वत मण्डलों के मध्य से लवण समुद्र में प्रवेश कर गयी है। उसकी सैकड़ों नदियां हजारों उपनदियाँ वहाँ पर चली जाती हैं, जहाँ कि इन्द्र वर्षा करते हैं। अर्थात् अनेकों बरसाती नदियाँ भी हैं।।५७½-६१½।। वस्वौकसा के किनारे पर सुरभि नाम का वन सुना गया है। उस वन में हिरण्यशृङ्ग पर जितेन्द्रिय विद्वान् कौबरेक मुनि रहते हैं, जो यज्ञ से युक्त, अतिमहान् असीमित ओजस्वी और अच्छे पराक्रमी हैं।।६१½-६३½।। वहाँ विद्वान् ब्रहमराक्षसों से परिवृत चार कुबेर के अनुचर निवास करते हैं।।६४।।

एवमेव तु विज्ञेया ऋद्धिः पर्वतवासिनाम्। परस्परेण द्विगुणा धर्मतः कामतोऽर्थतः॥६५॥
हेमकूटस्य पृष्ठे तु वर्चोवन्नामतः सरः। मनस्विनी प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती च या॥६६॥
अवगाढे ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ। सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे॥६७॥
तस्ताद् द्वयं प्रभवति गांधर्वी नाकुली च तैः। मेरोः पार्श्वात्प्रभवति ह्रदश्चंद्रप्रभो महान्॥६८॥
तत्र जंबूनदी पुण्या यस्या जांबूनदं स्मृतम्। पयोदं तु सरो नीले सुशुभ्रं पुंडरीकवत्॥६९॥
पुंडरीका पयोदा च तस्मान्नद्यौ विनिर्गते। श्वेतात्प्रवर्त्तते पुण्यं सरयूर्मानसाद्ध्रुवम्॥७०॥

ज्योत्स्ना च मृगकामा च तस्माद् द्वे संबभूवतुः।
सरः कुरुषु विख्यातं पद्म मीनद्विजाकुलम्॥७१॥

रुद्रकान्तमिति ख्यातं निर्मितं तद्भवेन तु। अन्ये चाप्यत्र विख्याताः पद्ममीनद्विजाकुलाः॥७२॥

नाम्ना ह्रदा जया नाम द्वादशोदधिसन्निभाः।
तेभ्यः शान्ता च माध्वी च द्वे नद्यौ संबभूवतुः॥७३॥

यानि किंपुरुषाद्यानि तेषु देवो न वर्षति। उद्भिदान्युदकान्यत्र प्रवहंति सरिद्वराः॥७४॥
ऋषभो दुन्दुभिश्चैव धूम्रश्च सुमहागिरिः। पूर्वायता महापर्वा निमग्ना लवणांभसि॥७५॥

चंद्रः काकस्तथा द्रोणः सुमहांतः शिलोच्चयाः।
उदग्याता उदीच्यान्ता अवगाढा महोदधिम्॥७६॥

इस प्रकार ही उस पर्वत वासियों की समृद्धि समझनी चाहिये। वहाँ के वे सब निवासी आपस में धर्म अर्थ और काम के क्षेत्र में एक-दूसरे से दुगुने हैं।।६५।। हेमकूट पर्वत की पीठ पर वर्चोवान् नामक सरोवर है, उस सरोवर से मनस्विनी ज्योतिष्मती नामक नदी निकलती है, वह दोनों ही भागों में अवगाहन कर पूर्व पश्चिम समुद्र में गिर जाती है।।६६½।। उत्तम निषध पर्वत पर विष्णुपद नाम का सरोवर है। उस सरोवर से गान्धर्वी और नाकुली दो नदियां उत्पन्न होती हैं।।६६½-६७½।। मेरुपर्वत के पास से चन्द्रप्रभ नामका महाह्रद (महासर) उत्पन्न होता है, वहाँ पर पुण्य जम्बूनदी जिसको जाम्बूनद कहा गया है। यहाँ इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि जहाँ पर सोना बताया गया है, हो सकता है कि जम्बूनदी में सोना पाया जाता हो।।६७½-६८½।।

नीलगिरि (नील पर्वत) पर सफेद कमल के समान जल वाला पयोद नामक सरोवर है, उस सरोवर से पुण्डरीका और पयोदा नामक दो नदियाँ निकलती हैं।।६८½-६९½।। श्वेत पर्वत से लगा हुआ सरोवर जो मानस है, उस मानसरोवर से ज्योत्स्ना और मृगकामा नदी निकलती है, यह सरोवर कुरु जनपदों में विख्यात है तथा कमलों मछलियों और पक्षियों के समूहों से व्याप्त है। रुद्रकान्त नाम का वहाँ एक और सरोवर है, जिसको भगवान् शंकर ने बनाया था।।६९½-७१½।। अन्य अनेकों सरोवर भी कमलों मच्छियों और पक्षियों से व्याप्त हैं, जो बारह जय नाम से प्रसिद्ध हैं तथा बारहों, बारह समुद्रों के समान प्रतीत होते हैं, उन सरोवरों से शांता और माध्वी दो नदियां उत्पन्न हुई हैं।।७१½-७३।। किम्पुरुषादि देशों में वर्षा नहीं होती है, वहाँ की श्रेष्ठ नदियां जमीन से निकले हुए जल को लेकर अन्य स्थानों पर बहती हैं।।७३-७४।। तथा ऋषभ दुन्दुभि तथा सुन्दर महापर्वत धूम्र आदि पर्वतों में आयताकार बहती हुई लवण समुद्र में गिर जाती हैं।।७५।। उदग्याता, उदीच्यान्ता नदियां चन्द्रकाक तथा सुमहान्त द्रोण पर्वत, जिनकी ऊंची चोटिया हैं, उनसे बहती हुई उत्तरी सीमा में जाकर समुद्र में मिल जाती हैं।।७६।।

सोमकश्च वराहश्च नारदश्च महीधरः। प्रतीच्यामायतास्ते वै प्रविष्टा लवणोदधिम्॥७७॥
चक्रो बलाहकश्चैव मैनाको यश्च पर्वतः। आयतास्ते महाशैलाः सुद्रं दक्षिणं प्रति॥७८॥
चक्रमैनाकयोर्मध्ये विदिशं दक्षिणां प्रति। तत्र संवर्त्तको नाम सोऽग्निः पिबति तज्जलम्॥७९॥
नाम्ना समुद्रवासस्तु और्वः स बडवामुखः। द्वादशैते प्रविष्टा हि पर्वता लवणोदधिम्॥८०॥
महेंद्रभयवित्रस्ताः पक्षच्छे दभयात्पुरा। यदेतदृश्यते चंद्रे वेते कृष्णशशाकृति॥८१॥
भारतस्य तु वर्षस्य भेदास्ते नव कीर्त्तिताः। इहोदितस्य दृश्यन्ते यथान्येऽन्यत्र चोदिते॥८२॥
उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्दिश्यते गुणैः। आरोग्यायुः प्रमाणानां धर्मतः कामतोऽर्थतः॥८३॥
समन्वितानि भूतानि पुण्यैरेतैस्तु भागशः। वसंति नानाजातीनि तेषु वर्षेषु तानि वै॥
इत्येषा धारयंतीदं पृथ्वी विश्वं जगत्स्थितम्॥८४॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे जम्बूद्वीपवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥
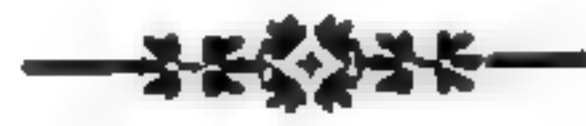
सोमक, वराह, नारद, पर्वत हैं, जो पश्चिम दिशा में आयताकार फैले हुए लवण समुद्र में प्रविष्ट हैं।।७७।। चक्र, बलाहक और जो मेनाक पर्वत है, वे सब महापर्वत दक्षिण समुद्र तक आयताकार फैले हुए हैं।।७८।। चक्र और मेनाक पर्वत के मध्य में दक्षिण दिशा की ओर वहाँ पर संवर्तक नाम का अग्नि है, वह अग्नि उस जल को पीता है।।७९।। नाम से ये सब समुद्रवास, और्व और वडवामुख कहे जाते हैं, वे बारहों पर्वत इन्द्र द्वारा पंख काटने के भय से लवण समुद्र में प्रविष्ट हो गये हैं तथा जो श्वेत चन्द्र में खरगोश की आकृति दिखाई देती है, ये भारतवर्ष के नौ भेद ही दिखाई देते हैं, ये भारत के नौ भागों के प्रतिबिम्ब यहाँ भारत में ही दिखायी देते हैं। अन्यत्र कहीं भी चन्द्रमा के उदय होने पर नहीं दिखायी देते।।८०-८२।। इस देश के वासी आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ और काम आदि गुणों से उत्तरोत्तर पूर्व पूर्व देशवासियों की अपेक्षा अधिक समृद्ध हैं।। इस प्रकार उन देशों में अनेकों जातियों के प्राणी निवास करते हैं। इस प्रकार यह पृथ्वी सम्पूर्ण विश्व को धारण करती है।।८३-८४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद अट्ठारहवां अध्याय जम्बूद्वीप वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

प्लक्षद्वीपवर्णनं नाम

नवदशमोऽध्यायः

सूत उवाच

प्लक्षद्वीपं प्रवक्ष्यामि यथावदिह संग्रहात्। श्रृणुतेमं यथातत्त्वं ब्रुवतो मे द्विजोत्तमाः॥१॥
जंबूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः। विस्तराद्द्विगुणश्चास्य परिणाहः समंततः॥२॥
तेनावृतः समुद्रो वै द्वीपेन लवणोदकः। तत्र पुण्या जनपदाश्चिरान्न म्रियते जनः॥३॥
कृत एव च दुर्भिक्षं जराव्याधिभयं कुतः। तत्रापि पर्वताः पुण्याः सप्तैव मणिभूषणाः॥४॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तासां नामानि च ब्रुवे। प्लक्षक्षीपादिषु त्वेषु सप्त सप्त तु पंचसु॥५॥
ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टा वर्षपर्वताः। प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्त द्वीपान् महाबलान्॥६।
गोमेदकोऽत्र प्रथम : पर्वतो मेघसन्निभः। ख्यायते यस्य नाम्ना तु वर्षं गोमेदसंज्ञितम्॥७॥
द्वितीयः पर्वतश्चंद्रः सर्वौषधिसमन्वितः। अश्विभ्याममृतस्यार्थमोषध्यो यत्र संभृताः॥८॥
तृतीयो नारदो नाम दुर्गशैलो महोच्चयः। तत्राचले समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्वतौ॥९॥
चतुर्थस्तत्र वै शैलो दुदुंभिर्न्नाम नामतः। छन्दमृत्युः पुरा तस्मिन्दुंदुभिः सादितः सुरैः॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय–१९

प्लक्षद्वीप वर्णन

सूत जी बोले—कि जैसा कि मैंने यहाँ संग्रह किया है, तदनुसार मैं प्लक्षद्वीप का वर्णन करूँगा। अतः हे ब्रह्माणश्रेष्ठ! मुझ बोलते हुए से आप लोग यथावत् श्रवण करें।।१।। जम्बूद्वीप के विस्तार से प्लक्षद्वीप का विस्तार दो गुना है और विस्तार से दुगुनी उसकी परिधि है।।२।। उस द्वीप से लवण समुद्र चारों ओर से घिर हुआ है। वहाँ पर पुण्य जनपद हैं, जिनके निवासी मनुष्य चिरकाल तक नहीं मरते हैं।।३।। वहाँ पर कभी दुर्भिक्ष (भूख से मरना) नहीं होता है, न वहाँ कहीं भी बुढ़ापा रोग आदि का भय है। वहाँ भी सात ही मणियों से भूषित पर्वत हैं।।४।। वहाँ की नदियाँ तथा समुद्र जितने हैं, उनके नामों को सुनें। प्लक्ष द्वीपादियों में सात सात पाँच पाँच में बंटे हुए हैं।।५।। यहाँ पर वर्षपर्वत (देशों के पर्वत) सीधे आयताकार प्रत्येक दिशा में फैले हुए हैं। सूत जी ने कहा कि मैं उन महाबल वाले सात द्वीपों का वर्णन करूँगा।।६।। यहाँ इस द्वीप में गोमेद नाम का पहला पर्वत है, जो मेघ के समान हैं, जिसके नाम पर इस पर्वत का नाम गोमेद पड़ा।।७।।

दूसरा सब औषधियों से युक्त चन्द्र पर्वत है, वे सभी अमृत के समान औषधियां वहाँ अश्विनी कुमारों द्वारा लायी गयी हैं।।८।। तीसरा नारद नाम का महान् ऊँचाई वाला दुर्ग पर्वत है, उस पर्वत पर पूर्वकाल में नारद और पर्वत ऋषि उत्पन्न हुए थे।।९।। चौथा पर्वत वहाँ नाम से दुन्दुभि नाम का है, उस पर्वत पर पूर्वकाल में देवताओं

रज्जुदोलोरुकामं यः शाल्मलिश्चासुरान्तकृत्। पंचमः सोमको नाम देवैर्यत्रामृतं पुरा॥११॥
संभृतं चाहृतं चैव मातुरर्थे गरुत्मता। षष्ठस्तु सुमना नाम सप्तमर्षभ उच्यते॥१२॥
हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिञ्छैले निषूदितः।
वैभ्राजः सप्तमस्तत्र भ्राजिष्णुः स्फाटिको महान्॥१३॥
अर्चिर्भिर्भ्राजते यस्माद्वैभ्राजस्तेन संस्मृतः। तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि नामतस्तु यथाक्रमम्॥१४॥
गोमेदं प्रथमं वर्षं नाम्ना शांतभयं स्मृतम्। चन्द्रस्य शिशिरं नाम नारदस्य सुखोदयम्॥१५॥
आनन्दं दुंदुभेर्वर्षं सोमकस्य शिवं स्मृतम्। क्षेमकं वृषभस्यापि वैभ्राजस्य ध्रुवं तथा॥१६॥
एतेषु देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः। विहरंति रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह॥१७॥
तषां नद्यस्तु सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः। नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि सप्तगंगास्तपोधनाः॥१८॥
अनुतप्ता सुखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्रमुः। अमृता सुकृता चैव सप्तैताः सरितां वराः॥१९॥
अभिगच्छंति ता नद्यस्ताभ्यश्चान्याः सहस्रशः। बहूदका ह्योघवत्यो यतो वर्षति वासवः॥२०॥
ताः पिबंति सदा हृष्टा नदीजनपदास्तु ते। शुभाः शांतभयाश्चैव प्रमुदं शैशिराः शिवाः॥२१॥
आनंदाश्च सुखाश्चैव क्षेमकाश्च ध्रुवैः सह। वर्णाश्रमाचारयुता प्रजास्तेष्ववधिष्ठिताः॥२२॥

ने नगाड़ा बजाते हुए प्राणियों को मारने वाले मृत्यु छन्द का गान किया था, जिससे कि वह मृत्यु छन्द रज्जुदौल और सुमना राक्षस का अन्त करने वाला हो गया था।।१०½।। पाँचवां सोमक नाम का पर्वत, जिस पर देवों ने पहले अमृत रखा था और गरुड़ ने उसे अपनी माता के लिए हर लिया था।।१०½-११½-।। छठा पर्वत सुमना नाम का है, जो सप्तर्षभ कहा जाता है। उस पर वाराह भगवान् ने हिरण्याक्ष का वध किया था।।११½-१२½।। वहाँ वैभ्राज नामक सातवां पर्वत है, जो बहुत अधिक चमकने वाले स्फटिकमणि (संगमरमर) वाला है। अपनी चमकती हुई किरणों से वह भासमान होता है, इसलिए वह वैभ्राज नाम से प्रसिद्ध है।।१२½-१३½।।

सूत जी ने कहा कि अब मैं क्रमशः उन पर्वतों के देशों का वर्णन करूँगा। अतः देशों में गोमेद प्रथम देश है, जो नाम से शान्तमय प्रसिद्ध है। दूसरे चन्द्र पर्वत के पास वाला देश है, जिसका नाम शिशिर है, जो नारद पर्वत के देश को सुखोदय कहा गया।।१३½-१५।। दुन्दुभि पर्वत के पास वाले देश को आनन्द और सोमक पर्वत के देश को शिव कहा गया।।१६।। वृषभ पर्वत के देश को क्षेमक तथा वैभ्राज पर्वत के देश को ध्रुव कहा गया है।।१७।। इन देशों में देवगन्धर्व सिद्धगण और चारण दिखायी देते हुए विहार करते हैं तथा रमण करते हैं।।१८।।

अर्थात् वहाँ खुला कामाचार है, जैसा कि आज भी उन देशों में है। उन सातों देशों में प्रत्येक देश क्रम से सात ही समुद्र में जाने वाली नदियां हैं। सूतजी ने कहा कि हे तपस्वी ऋषियों! इन सप्तगंगा नाम की नदियों को मैं नामतः बताऊँगा।।१८।। ये सप्तगंगा है—(१) अनुतप्ता, (२) सुखी, (३) विपाशा (४) त्रिदिवा, (५) क्रमु, (६) अमृता और (७) सुकृता ये सातों नदियां नदियों में श्रेष्ठ नदियां हैं।।१९।। वे नदियां तो बहती ही हैं तथा अन्य हजारों नदियां हैं, जो बहुत जलवाली और वेग से बहने वाली हैं; क्योंकि इन्द्र यहीं पर अधिक वर्षा करते हैं।।२०।। वहाँ उन नदियों के जनपदों के निवासी प्रसन्नचित्त होकर उन नदियों के जल को पीते हैं। शुभा, शान्तमया, प्रमुदा, शैशिरा, शिवा, आनन्द, सुखा, क्षेमका और ध्रुवा ये सात नदियां हैं। इन नदियों के पास वर्ण और आश्रम के आचरण को करने वाली प्रजायें अधिष्ठित हैं।।२१-२२।।

सर्वे त्वरोगाः सुबलाः प्रजाश्चामयवर्तिताः।
अवसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी न च॥२३॥
न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृता क्वचित्। त्रेतायुगसमः कालः सर्वद तत्र वर्त्तते॥२४॥
प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयः पंचस्वेतेषु सर्वशः। देशस्यानुविधानेन कालस्यानुविधाः स्मृताः॥२५॥
पंचवर्षसहस्राणि तेषु जीवंति मानवाः। सुरूपाश्च सुवेषाश्च ह्यरोगा बलिनस्तथा॥२६॥
सुखमायुर्बलं रूपमारोग्यं धर्म एव च। प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयः शाकद्वीपांतिकेषु वै॥२७॥
प्लक्षद्वीपः पृथुः श्रीमान्सर्वतो धनधान्यवान्। दिव्यौषधिफलोपेतः सर्वौषधिवनस्पतिः॥२८॥
आवृतः पशुभिः सर्वैर्ग्राम्यारण्यैः सहस्रशः।
जंबूवृक्षेण संख्यातस्तस्य मध्ये द्विजोत्तमाः॥२९॥
प्लक्षो नाम महावृक्षस्तस्य नाम्ना स उच्यते। स तत्र पूज्यते स्थाने मध्ये जनपदस्य ह॥३०॥
स चापीक्षुरसोदेन प्लक्षद्वीपः समावृतः। प्लक्षद्वीपसमेनैव वैपुल्याद्विस्तरेण तु॥३१॥
इत्येवं संनिवेशो वः प्लक्षद्वीपस्य कीर्तितः। आनुपूर्व्यात्समासेन शाल्मलं तु निबोधत॥३२॥
ततस्तृतीयं वक्ष्यामि शाल्मलं द्वीपमुत्तमम्। शाल्मलेन समुद्रस्तु द्वीपेनेक्षुरसोदकः॥३३॥
प्लक्षद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समावृतः। तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः॥३४॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां वर्षेषु सप्तसु। प्रथमः सूर्यसंकाशः कुमुदो नाम पर्वतः॥३५॥

वहाँ के प्रजागण सब रोगरहित, बलवान्, और आधिव्याधि से रहित हैं। उनमें न तो नीचे जाने वाले विचार हैं और न अत्युच्च ही हैं अर्थात् वे न तो व्यवहार में अधिक नीचे गिर सकते हैं और न अत्यधिक ऊपर भी जा सकते हैं।।२३।। उन देशों में सतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग वाली युगावस्था नहीं है, वह सर्वदा त्रेतायुग के समान समय रहता है।।२४।। यह ऐसी व्यवस्था प्लक्षादि पाँचों द्वीपों में वर्तमान रहती है; क्योंकि देश के विधान के अनुसार काल का भी विधान है। अर्थात् जैसा देश वैसा वहाँ का समय है।।२५।।

वहाँ के मनुष्य सुन्दर रूप वाले सुन्दर वेश वाले, नीरोग और बल वाले रहते हुए पाँचहजार वर्षो तक जीवित रहते हैं।।२६।। सुख, आयु, बल, रूप, आरोग्य और धर्म जैसा प्लक्ष आदि द्वीपों में वैसा ही शाकद्वीपादि में भी जानना चाहिये।।२७।। वह प्लक्ष, द्वीप श्रीसम्पन्न सब और धनधान्यवान् दिव्य औषधियों और फलों से युक्त सभी औषधियों वनस्पतियों से युक्त तथा हजारों ग्रामीण (पालतू) और जंगली पशुओं से आवृत हैं। जम्बूद्वीप के जम्बूवृक्ष की तरह उस देशके मध्य में भी एक प्लक्ष नाम का महावृक्ष है, जिसके नाम पर ही उस द्वीप का नाम प्लक्षद्वीप कहा जाता है तथा उस जनपद के मध्य स्थान में वह वृक्ष पूजा जाता है।। वह प्लक्षद्वीप ईख के रस से समावृत है अर्थात् उस द्वीप में ईख की खेती अधिक होती है।।२७-३०½।।

सूत जी बोले कि इस प्रकार आप लोगों को समस्त प्लक्ष द्वीप का विपुलता से वर्णन कर दिया। अब आप पूर्व से लेकर संक्षेप से शाल्मल द्वीप का वर्णन सुनिये।।३०½-३२।। यहाँ से मैं तीसरे उत्तम शाल्मल द्वीप का वर्णन करूँगा।। ईख के रस के सागर को यह द्वीप घेरे हुए हैं।।३३।। प्लक्षद्वीप के विस्तार से यह द्वीप द्विगुने विस्तार से समावृत है। वहाँ भी सात पवर्त हैं, जो रत्नों को पैदा करने वाले हैं।।३४।। तथा वहाँ उन देशों में सात समुद्र

सर्वधातुमयैः श्रृंगैः शिलाजालसमाकुलैः। द्वितीयः पर्वतश्चात्र ह्युत्तमो नाम विश्रुतः॥३६॥
हरितालमयैः श्रृंगैर्दिवमावृत्य तिष्ठति। तृतीयः पर्वतस्तत्र बलाहक इति श्रुतः॥३७॥
जात्यंजनमयैः श्रृंगैर्दिवमावृत्य तिष्ठति। चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्र सा वै महौषधिः॥३८॥
विशल्यकरणी चैव मृतसञ्जीविनी तथा। कंकस्तु पंचमस्तत्र पर्वतः सुमहोदयः॥३९॥
नित्यपुष्पफलोपेतो वृक्षवीरुत्समावृतः। षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र महिषो मेघसन्निभः॥४०॥
यस्मिन्सोऽग्निर्निवसति महिषो नाम वारिजः। सप्तमः पर्वतस्तत्र ककुद्मान्नाम भाष्यते॥४१॥
तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः। प्रजापतिमुपादाय प्रजाभ्यो विधिवत्स्वयम्॥४२॥
इत्येते पर्वताः सप्त शाल्मले मणिभूषणाः। तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि सप्तैव तु शुभानि वै॥४३॥
कुमुदस्य स्मृतं श्वेतमुत्तमस्य च लोहितम्। बलाहकस्य जीमूतं द्रोणस्य हरितं स्मृतम्॥४४॥
कंकस्य वैद्युतं नाम महिषस्य च मानसम्। ककुदः सुप्रदं नाम सप्तैतानि तु सप्तधा॥४५॥
वर्षाणि पर्वताश्चैव नदीस्तेषु निबोधत। ज्योतिः शांतिस्तथा तुष्टा चंद्रा शुक्रा विमोचनी॥४६॥

निवृत्तिः सप्तमी तासां प्रतिवर्षं तु ताः स्मृताः।
तासां समीपगाश्चान्याः शतशोऽथ सहस्त्रशः॥४७॥
न संख्यां परिसंख्यातुं शक्नुयात्कोऽपि मानवः।
इत्येष संनिवेशो वः शालमलस्य प्रकीर्त्तितः॥४८॥

तथा सात नदियां हैं, जिनमें पहला सूर्य के समान सम्यक् प्रकाश तथा कुमुद नाम का पर्वत है। जो पर्वत सब धातुमय शिलाओं वाली चोटियों से व्याप्त है।।३५-३५½।। दूसरा पर्वत यहाँ उत्तम नाम से प्रसिद्ध है। वह पर्वत हरितालमय चोटियों से स्वर्ग को घेर कर स्थित है।।३५½-३६½।। तीसरा पर्वत बलाहक है, ऐसा सुना गया है। वह पर्वत अपने अंजन के समान शिखरों से आकाश स्वर्ग को आवृत कर स्थित है।।३६½-३७½।। चौथा पर्वत द्रोण है, जहां विशल्यकरणी (विशेष रूप शल्य चिकित्सा) करने वालीं तथा मृत व्यक्ति को भी जीवित करने वाली महान् औषधियां हैं।।३७½-३८½।। पाँचवां सुन्दर और महान् दिखाई देने वाला कङ्क नामक पर्वत है, जो कि नित्य पुष्प और फलों से युक्त वृक्षों और लताओं से समावृत है।।३८½-३९½।। छठा तो वहाँ मेघ के समान महिष नाम का पर्वत है, जिस पर्वत पर जल से उत्पन्न महिष नाम के अग्नि निवास करते हैं।।३९½-४०½।।

सातवां पर्वत वहाँ ककुद नाम का बोला जाता है। वहाँ पर इन्द्र प्रजापति ब्रह्मा को पास में लाकर प्रजाओं के लिये स्वयं विधिवत् रत्नों की रक्षा करते हैं।।४०½-४२।। इस प्रकार ये शाल्मली द्वीप के सात मणिभूषण पर्वत हैं।। अब मैं उन द्वीपों के सात शुभ देशों का वर्णन करूँगा।।४३।। कुमुद पर्वतीय देश को श्वेत देश, उत्तम पर्वतीय देश को लोहित देश बलाहक पर्वतीय देश को जीमूत देश और द्रोण पर्वतीय देश को हरित देश कहा गया है।।४४।। कंक पर्वतीय देश को वैद्युत देश, महिष पर्वतीय देश को मानस देश, ककुदपर्वतीय देश को सुप्रद देश नाम दिया गया है। इस प्रकार ये सात प्रकार के हैं।।४५।। ये उस द्वीप के देश तथा पर्वत हैं, अब उन देशों में नदियों को सुनिये।।४५½।। ज्योति, शान्ति, तुष्टा, चन्द्रा, शुका, विमोचनी और सातवी नदी निवृत्ति है। वे नदियाँ क्रमशः प्रत्येक देश में एक नदी के हिसाब से हैं तथा उन नदियों के समीप से जाने वाली अन्य सैकड़ों और हजारों नदियां हैं, जिनकी संख्याओं की गिनती कोई भी मनुष्य नहीं कर सकता है। इस प्रकार मैंने यह तुम्हें शाल्मल द्वीप का वर्णन

प्लक्षवृक्षेण शंखतस्तस्य मध्ये महाद्रुमः। शाल्मलिर्विपुलस्कंधस्तस्य नाम्ना स उच्यते॥४९॥
शाल्मलस्तु समुद्रेण सुरोदेन समावृतः। विस्तराच्छाल्मलस्यैव समे न तु समंततः॥५०॥
उत्तरेषु तु धर्मज्ञा द्वीपेषु शृणुत प्रजाः। यथाश्रुतं यथान्यायं ब्रुवतो मे निबोधत॥५१॥
कुशद्वीपं प्रवक्ष्यामि चतुर्थं तु समासतः। सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्वतः॥५२॥
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समंततः। सप्तैव च गिरींस्तत्र वर्ण्यमानान्निबोधत॥५३॥
कुशद्वीपे तु विज्ञेयः पर्वतो विद्रुमश्च यः। द्वीपस्य प्रथमस्तस्य द्वितीयो हेमपर्वतः॥५४॥
तृतीयो द्युतिमान्नाम जीमूतसदृशो गिरिः। चतुर्थः पुष्पवान्नाम पंचमस्तु कुशेशयः॥५५॥
षष्ठो हरिगिरिर्नाम सप्तमो मन्दरः स्मृतः। मंदा इति ह्यपां नाम मन्दरो दारणादयम् ॥५६॥
तेषामंतरविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागतः। उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥५७॥
तृतीयं वै रथाकारं चतुर्थं लवणं स्मृतम् । पंचमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥५८॥
सप्तमं कपिलं नाम सर्वे ते वर्ष भावकाः। एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजास्तु जगदीश्वराः॥५९॥
विहरंति रमंते च हृष्यमाणास्तु सर्वशः। न तेषु दस्यवः संति म्लेच्छ जातय एव च॥६०॥
गौरप्रायो जनः सर्वः क्रमाच्च म्रियते तथा। तत्रापि नद्यः सप्तैव धूतपापा शिवा तथा॥६१॥
पवित्रा संततिश्चैव विद्युद्दंभा मही तथा। अन्यास्ताभ्योऽपरिज्ञाताः शतशोऽथ सहस्रशः॥६२॥

कर दिया।।४५½-४८।। प्लक्षवृक्ष के समान उस द्वीप के मध्य में शाल्मल नाम का एक बहुत सी शाखाओं वाला महावृक्ष है। उस वृक्ष के नाम से उस द्वीप का नाम शाल्मलि द्वीप रखा गया है।।४९।। वह शाल्मलि द्वीप सुरा समुद्र से आवृत है तथा विस्तार में भी चारों ओर शाल्मलि (सेमर) के ही अनुरूप है।।५०।। इसमें उत्तर द्वीपों में प्रजा किस तरह निवास करती है, उसको हमने जैसा सुना है, वैसा ही कहते हैं, सुनिये।।५१।। चौथे कुश द्वीप का वर्णन हम संक्षेप से करते हैं। कुशद्वीप के द्वारा चारों ओर से सुरा समुद्र घिरा हुआ है।।५२।। शाल्मल द्वीप के विस्तार से इसका विस्तार चारों ओर दुगुना है। इसमें वर्णन किये जाने वाले सात पर्वतों को सुनिये।।५३।।

कुशद्वीप में जो विद्रुम नाम का पर्वत जानने योग्य है, वह उस द्वीप का पहला पर्वत है तथा दूसरा हेम पर्वत है।।५४।। तीसरा मेघ के समान द्युतिमान् पर्वत है। चौथा पुष्पवान् नामक है तथा पाँचवाँ कुशेशय नामक पर्वत है।।५५।। छठा हरिगिरि नामक है, तो सातवां मन्दर नामक पर्वत कहा गया है। मन्द जलों का नाम है और जल का दारण करने के कारण इसे मन्दर कहा है अर्थात् जल को फोड़कर निकलने के कारण इसे मन्दर कहा गया।।५६।। उस पर्वत के बीच में विष्कम्भक (स्तम्भ) है, वह उसके दूने विस्तार का है। वहाँ कुशद्वीप में पहला उद्भिद् नामक देश है, दूसरा वेणुमण्डल नामक देश है।।५७।।

तीसरा रथाकार देश है, जिसे लवण कहा गया है। पाँचवां धृतिवर्ण है। छठा प्रभाकर वर्ष (देश) है।।५८।। सातवां कपिल नामक देश है। ये सब वहाँ पर्वतों पर होने वाले देश हैं। उन देशों में संसार में सम्पन्न देव और गन्धर्वों की प्रजायें सब ओर प्रसन्नचित्त होकर विहार और रमण करती हैं। वहाँ प्रजाओं में कोई डकैत (लुटेरा) नहीं है और न ही म्लेच्छ जातियां ही हैं।।६०।। वहाँ सभी लोग प्रायः गौरवर्ण के हैं तथा वे क्रमानुसार ही मरते हैं अर्थात् वहाँ अकाल मृत्यु नहीं होती। वहाँ भी सात ही नदियां हैं। वे हैं—धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सन्तति, विद्युत्, अम्भा और मही। उनसे सैकड़ों हजारों अन्य नदियां जानी गयीं हैं।।६१-६२।।

अभिगच्छंति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः। घृतोदेन कुशद्वीपो बाह्यतः परिवारितः॥६३॥
विज्ञेयः स तु विस्तारात्कुशद्वीपसमेन तु। इत्येष सन्निवेशो वः कुशद्वीपस्य कीर्त्तितः॥६४॥
क्रौंचद्वीपस्य विस्तारं वक्ष्याम्यहमतः परम्।
कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणः स तु वै स्मृतः॥६५॥
घृतोदकसमुद्रो वै क्रौंच द्वीपेन संयुतः। तस्मिन्द्वीपे नगश्रेष्ठः क्रौंचस्तु प्रथमो गिरिः॥६६॥
क्रौंचात्परो वामनको वामनादंधकारकः। अंधकारात्परश्चापि दिवावृन्नाम पर्वतः॥६७॥
दिवावृतः परश्चापि द्विविदो गिरिसत्तमः। द्विविदात्परतश्चापि पुंडरीको महागिरिः॥६८॥
पुंडरीकात्परश्चापि प्रोच्यते दुंदुभिस्वनः। एते रत्नमयाः सप्त क्रौंचद्वीपस्य पर्वताः॥६९॥
बहुपुष्पफलोपेतनानावृक्षलतावृताः। परस्परेण द्विगुणा विस्तृता हर्षवर्द्धनाः॥७०॥
वर्षाणि तत्र वक्ष्यामि नामतस्तान्निबोधत। क्रौंचस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोनुगः॥७१॥
मनोनुगात्परश्चोष्णस्तृतीयं वर्षमुच्यते। उष्णात्परः पीवरकः पीवरादंधकारकः॥७२॥
अंधकारात्परश्चापि मुनिदेशः स्मृतो बुधैः। मुनिदेशात्परश्चैव प्रोच्यते दुंदुभिस्ववनः॥७३॥
सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायो जनः स्मृतः। तत्रापि नद्यः सप्तैव प्रतिवर्षं स्मृताः शुभाः॥७४॥
गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा।
ख्यातिश्च पुंडरीका च गंगाः सप्तविधाः स्मृताः॥७५॥

अन्य जो सैकड़ों हजारों नदियां वे वहीं पर बहती हैं, जहाँ कि इन्द्र बरसते हैं। अर्थात् वे सब बरसाती नदियां हैं। घृत समुद्र द्वारा कुशद्वीप बाहर से घिरा हुआ है।।६३।। उस समुद्र का विस्तार भी कुशद्वीप के समान जानना चाहिये। इस प्रकार यह कुशद्वीप का वर्णन मैंने आप लोगों से कर दिया है।।६४।। अब मैं इसके बाद क्रौञ्च द्वीप का विस्तार वर्णन करूँगा। कुशद्वीप के विस्तार से उसका दुगुना विस्तार सुना गया है।।६५।। घृत समुद्र निश्चित ही क्रौञ्च द्वीप से संयुक्त है। उस द्वीप में पहला पर्वत श्रेष्ठ क्रौञ्च पर्वत है।।६६।। क्रौञ्च से परे वामनक पर्वत है। वामनक से परे अन्धकारक है। अन्धकारक से परे दिवावृत् नाम का पर्वत है।।६७।। दिवावृत् पर्वत से परे द्विविद नाम का श्रेष्ठ पर्वत है। द्विविद से परे पुण्डरीक नाम का महान् पर्वत है।।६८।। और पुण्डरीक पर्वत से परे दुन्दुभि नाम का पर्वत है। ये सब क्रौञ्चद्वीप के पर्वत रत्नमय हैं, इन सबमें रत्न भरे हुए हैं।।६९।।

ये सभी पर्वत बहुत से पुष्प और फलों से युक्त अनेकों प्रकार के वृक्षों और लताओं से घिरे हुए हैं। वे सब एक-दूसरे से दुगुने हर्ष को बढ़ाने वाले हैं। जिसको देखो वह एक दूसरे से दुगुना आनन्ददायक है।।७०।। अब इस द्वीप के वर्ष (देशों) का नामतः वर्णन करूँगा, जिन्हें सुनिये। क्रौञ्च पर्वत का कुशल देश है। वामनक पर्वत का देश मनोनुग है।।७१।। मनोनुग के बाद उष्ण तृतीय देश कहा जाता है। उष्ण देश से परे पीवरक देश है और पीवरक से अन्धकारक है।।७२।। अन्धकार से परे (बाद) में विद्वानों द्वारा मुनि देश बताया गया है और मुनिदेश से परे दुन्दुभि देश कहा जाता है।।७३।। वह द्वीप सिद्ध और चारणों से घिरा हुआ है तथा वहाँ प्रायः मनुष्य गौर वर्ण के सुने जाते हैं। वहाँ भी सात ही शुभ नदियां प्रतिदेश के क्रम से सुनी जाती हैं।।७४।। वे नदियां हैं—गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका इस प्रकार सात प्रकार की गंगा कही गयी है। उन नदियों के समीप

तासां सहस्त्रशश्चान्या नद्यो यास्तु समीपगाः।
अभिगच्छंति ताः सर्वा विपुलाः सुबहूदकाः॥७६॥

क्रौंचद्वीपः समुद्रेण दधिमंडोदकेन तु। आवृतः सर्वतः श्रीमान्क्रौंचद्वीपसमेन तु॥७७॥
प्लक्षद्वीपादयो ह्येते समासेन प्रकीर्त्तिताः। तेषां निसर्गो द्वीपानामानुपूर्व्येण सर्वशः॥७८॥
न शक्यो विस्तराद्वक्तुं दिव्यवर्षशतैरपि। निसर्गो यः प्रजानां तु संहारो यश्च तासु वै॥७९॥
शाकद्वीपं प्रवक्ष्यामि यथावदिह निश्चयात् । शृणुध्वं तु यथातथ्यं ब्रुवतो मे यथार्थवत्॥८०॥
क्रौंचद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः। परिवार्य समुद्रं स दधिमंडोदकं स्थितः॥८१॥
तत्र पुण्या जनपदाश्चिरात्तु म्रियते जनः। कुत एव च दुर्भिक्षं जराव्याधिभयं कुतः॥८२॥
तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव मणिभूषणाः। रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु॥८३॥
देवर्षिगंधर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते। प्रागायतः स सौवर्णो ह्युदयो नाम पर्वतः॥८४॥
वृष्ट्यर्थं जलदास्तत्र प्रभंवति च यांति च। तस्यापरेण सुमहाञ्जलधारो महागिरिः॥८५॥
यतो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् । ततो वर्षं प्रभवति वर्षाकाले प्रजास्विह॥८६॥
तस्योत्तरे रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठितम् । रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः॥८७॥

तस्यापरेण सुमहान् श्यामो नाम महागिरिः।
तस्माच्छ्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्वमिमाः किल॥८८॥

हजारों अन्य नदियां साथ-साथ बहती हैं, जो सब बहुत जल वाली हैं।।७५-७६।। क्रौञ्चद्वीप अपने ही समान विस्तार वाले दधिमण्डोदक समुद्र से घिरा हुआ है।।७७।। अब इस प्रकार से प्लक्षद्वीपादि संक्षेप से बता दिये गये हैं। उन सब द्वीपों का प्राकृतिक वर्णन अर्थात् उन द्वीपों की प्रकृति (स्वभाव) पूर्व से अन्त तक सम्पूर्ण वर्णन सौ दिव्य वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है। जो प्रजाओं का निसर्ग है, वहाँ उनमें ही प्रजा का संहार भी है।।७८-७९।। अब मैं यहाँ निश्चयपूर्वक शाकद्वीप का यथावत् वर्णन करूँगा। आपलोग उसका याथातथ्य वर्णन यथार्थवत् सुनिये।।८०।।

क्रौञ्चद्वीप के विस्तार से इस शाकद्वीप का दोगुना विस्तार है। वह शाकद्वीप दधि मण्डोदक समुद्र को घेरकर स्थित है।।८१।। वहाँ पर पुण्य जनपद है तथा वहाँ मनुष्य देर से मरता है। वहाँ न कहीं भूख से लोग मरते हैं और न वहाँ कहीं बुढ़ापा रोग आदि का भय है अर्थात् वृद्धावस्था और कोई रोग नहीं होता।।८२।। वहाँ भी सात ही मणिभूषण शुभ पर्वत हैं। सात ही नदियां हैं और सात ही समुद्र हैं। उनके नाम सुनिये—।।८३।। देवता, ऋषि और गन्धर्वो से युक्त पहला नाम मेरु कहा जाता है। पूर्व से आयताकार सुनहरे रंग का उदय नाम का पर्वत है।।८४।। वर्षा करने के लिये बादल (मेघ) वहाँ पैदा होते हैं और चले जाते हैं। उसके दूसरी ओर सुन्दर और महान् जलधार नाम का पर्वत है।।८५।। जहाँ से इन्द्र (मेघ) नित्य जल ग्रहण करते हैं, उसके बाद वर्षा के समय प्रजाओं में जल की वर्षा करते हैं।।८६।। अर्थात् यह वर्षा हमेशा और नित्य होती है। उस पर्वत के उत्तर में रैवतक पर्वत नित्य प्रतिष्ठित है, जहाँ पितामह ब्रह्मा का विधिपूर्वक बनाया गया स्वर्ग में रेवती नक्षत्र है।।८७।। उस पर्वत के दूसरी ओर सुन्दर और महान् श्याम का नाम का पर्वत है। वहाँ निश्चित रूप से कालापन को प्राप्त प्रजायें हैं अर्थात् वहाँ पर सभी लोग काले रंग के हैं। अतः यह आज का अफ्रीका ही है।।८८।।

तस्यापरेण सुमहान्राजतोऽस्तगिरिः स्मृतः। तस्यापरे चांबिकेयो दुर्गशैलो महागिरिः॥८९॥
अंबिकेयात्परो रम्यः सर्वाषधिसमन्वितः। केसरी केसरयुतो यतो वायुः प्रजापतिः॥९०॥
उदयात्प्रथमं वर्ष। महत्तज्जलदं स्मृतम् । द्वितीयं जलधारस्य सुकुमारमिति स्मृतम् ॥९१॥
रैवतस्य तु कौमारं श्यामस्य च मणीवकम् ।
अस्तस्यापि शुभं वर्षं विज्ञेयं कुसुमोत्तरम् ॥९२॥
अम्बिकेयस्य मोदाकं केसरस्य महाद्रुमम् । द्वीपस्य परिमाणं तु ह्रस्वदीर्घत्वमेव च॥९३॥
क्रौंचद्वीपेन विख्यातं तस्य केतुर्महाद्रुमः। शाको नाम महोत्सेधस्तस्य पूज्या महानुगाः॥९४॥
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः। नद्यश्चापि महापुण्या गंगाः सप्तविधास्तथा॥९५॥
सुकुमारी कुमारी च नलिनी वेणुका च या। इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्तिः सप्तमी तथा॥९६॥
नद्यश्चान्याः पुण्यजलाः शीततोयवहाः शुभाः।
सहस्त्रशः समाख्याता यतो वर्षति वासवः॥९७॥
न तासां नामधेयानि परिमाणं तथैव च। शक्यं वै परिसंख्यातुं पुण्यास्ताः सरिदुत्तमाः॥९८॥
ताः पिबंति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते। शांशपायनविस्तीर्णो द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः॥९९॥
नदीजलैः प्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाभ्रसन्निभैः। सर्वधातुविचित्रैश्च मणिविद्रुमभूषितैः॥१००॥

उस श्याम पर्वत के अपर भाग में सुन्दर और महान् सुशोभित अस्तगिरि नाम का पर्वत सुना गया है। उसके दूसरी ओर अम्बिका आम्बिकेय नाम का महान् पर्वतों का दुर्ग शैलरूप पर्वत है।।८९।। अम्बिकेय पर्वत से परे सभी औषधियों से समन्वित रम्य नामक पर्वत है। इसका नाम केसरी है तथा यह केसर (सिंहों अथवा केसर लता) से युक्त भी है तथा वायु यहाँ से बहा करती है।।९०।। अब पर्वतों के पास स्थित देशों को बताते हैं कि प्रथम उदय पर्वत के पास महान् देश है, जिसे जलद कहा जाता है। दसरा जलधार पर्वत की तलहटी में सुकुमार नाम का देश है, ऐसा सुना गया है।।९१।। रैवतक पर्वत के पास कौमार नाम का देश है और श्याम पर्वत के पास मणीवक नाम का देश है। अस्त पर्वत के पास कुसुमोत्तम नाम का शुभ देश समझना चाहिये।।९२।।

अम्बिकेय पर्वत के पास मोदाक और केसर पर्वत के पास महाद्रुम नाम का वर्ष (देश) है, उस द्वीप का परिमाण कम या अधिक शाकद्वीप के ही बराबर है।।९३।। उस द्वीप का ध्वजरूपी महावृक्ष क्रौञ्चद्वीप नाम से विख्यात है तथा वहाँ शाकनाम का बहुत ऊँचा वृक्ष है, जिसकी पूजा वहाँ के लोग करते हैं।।९४।। वहाँ पर पुण्य जनपद; चार वर्णों ब्राह्मण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों से युक्त है अर्थात् चारों वर्णों के लोग वहाँ रहते हैं। वहाँ की नदियां भी महापुण्य वाली हैं तथा वे सात प्रकार की गंगा है अर्थात् सात प्रकार से गमन करने वाली हैं।।९५।। वे हैं— सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, वेणुका, इक्षु, धेनुका और गभस्ति इस प्रकार ये सात नदियाँ हैं। वायुपुराण में इनके नाम कुछ भिन्न हैं।।९६।। अन्य भी शीतलजल को वहन करने वाली पुण्य जलवाली हजारों नदियां हैं, जहाँ कि मेघ बरसते हैं अर्थात् अन्य हजारों बरसाती नदियां हैं। उन उत्तम नदियों के नाम और गणना नहीं की जा सकती है।।९८।। वहां उन नदियों के जनपद के लोग उन नदियों के जल को पीकर सदा प्रसन्न रहते हैं। सूत जी बोले कि हे शांशपायन जी नदी के जलों से आवृत मेघतुल्य पर्वतों से आवृत सब धातुओं, मणियों, मूंगों से विभूषित, अनेकों के फैले हुए

नगरैश्चैव विविधैः स्फीतैर्जनपदैरपि। वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः समंताद्धनधान्यवान् ॥१०१॥
क्षीरोदेन समुद्रेण सर्वतः परिवारितः। शाकद्वीपस्य विस्तारात्समेन तु समन्ततः॥१०२॥

तस्मिञ्जनपदाः पुण्याः पर्वताः सरितः शुभाः।
वर्णाश्रमसमाकीर्णा देशास्ते सप्त वै स्मृताः॥१०३॥
न संकरश्च तेष्वस्ति वर्णाश्रमकृतः क्वचित् ।
धर्मस्य चाव्यभीचारादेकांतसुखिताः प्रजाः॥१०४॥
न तेषु लोभो माया वा हीर्षासूयाकृतः कुतः।
विपर्ययो न तेष्वस्ति कालात्स्वाभाविकं परम्॥१०५॥

करावाप्तिर्न तेष्वस्ति न दंडो न च दंड्यकाः। स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षंति परस्परम् ॥१०६॥
एतावदेव शक्यं वै तस्मिन्द्वीपे प्रभाषितुम् । एतावदेव श्रोतव्यं शाकद्वीपनिवासिनाम् ॥१०७॥
पुष्करं सप्तमं द्वीपं प्रवक्ष्यामि निबोधत। पुष्करेण तु द्वीपेन वृतः क्षीरोदको बहिः॥१०८॥
शाकद्वीपस्य विस्तराद् द्विगुणेन समंततः। पुष्करे पर्वतः श्रीमानकेक एव महाशिलः॥१०९॥

चित्रैर्मणिमयैः शृंगैः शिलाजालैः समुच्छ्रितः।
द्वीपस्य तस्य पूर्वार्द्धे चित्रसानुः स्थितो महान् ॥११०॥

स मंडलसहस्राणि विस्तीर्णः पंचविंशतिः। उर्द्धं चैव चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि महीतलात्॥१११॥
द्वीपार्धस्य परिक्षिप्तः पर्वतो मानसोत्तरः। स्थितो वेलासमीपे तु नवचन्द्र इवोदितः॥११२॥

नगरों और जनपदों से युक्त, वृक्षों, पुष्पों और फलों से युक्त, धनधान्य से सम्पन्न यह द्वीप सब ओर से क्षीर सागर से घिरा हुआ है। यह द्वीप शाकद्वीप के विस्तार के समान विस्तार वाला है।।९९-१०२।।

उस द्वीप में पुण्यशाली शुभ जनपद पर्वत और नदियां हैं। वे वहाँ के सातों देश वर्ण और आश्रमों का सम्यक् प्रकार से पालन करने वाले हैं। वर्ण और आश्रम का पालन करते हुए वहाँ कहीं वर्णसंकरता नहीं है। अर्थात् वहाँ लोग वर्ण तोड़कर सन्तानोत्पत्ति नहीं करते। यहाँ धर्म में व्यभिचार न होने के कारण प्रजा पूरी तरह सुखी है।।१०३-१०४।। वहाँ के मनुष्यों में न लोभ है, न माया है, न ईर्ष्या (जलन) है तथा न असूया (परनिन्दा) है। उनमें आपस में कोई विपरीत भाव नहीं है। समय के अनुसार वे सब पूरी तरह स्वभाविक हैं।।१०५।। वहाँ पर न कर ग्रहण किया जाता है, न वहाँ दण्ड दिया जाता है और न दण्ड देने योग्य लोग ही हैं। वहाँ धर्म को जानने वाले लोग अपना-अपना धर्म समझकर ही एक दूसरे की रक्षा करते हैं।।१०६।। अब सूत जी बोले कि इतना ही इस द्वीप के बारे में मैं तुमको बता सकता हूँ तथा इतना ही शाकद्वीप के निवासियों के बारे में सुनने योग्य है।।१०७।। अब मैं सातवें पुष्कर द्वीप का वर्णन करूँगा। आप लोग ध्यान दीजिये—पुष्कर द्वीप से क्षीरसागर घिरा हुआ है।।१०८।। शाकद्वीप के विस्तारसे चारों ओर दुगुने विस्तार वाला पुष्कर द्वीप है। पुष्कर द्वीप में एक ही शोभायमान् विशाल पर्वत है।।१०९।। वह पर्वत विचित्र और मणिमय शिलासमूह वाले शिखरों से बहुत अधिक ऊँचाई को प्राप्त किये हुए है। उस द्वीप के पूर्वार्द्ध में महान् चित्रसानु (विचित्र चोटी) स्थित है।।११०।। उस चित्रसानु का घेरा पच्चीस हजार योजन विस्तृत है तथा वह पृथ्वी तल से चौंतीस हजार योजन ऊँचा है।।१११।। यह पर्वत उस द्वीप के आधे विस्तार

योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पंचाशदुच्छ्रितः। तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः॥११३॥
स एव द्वीपपश्चार्द्धे मानसः पृथिवीधरः। एक एव महासारः सन्निवेशो द्विधा कृतः॥११४॥
स्वादूदकेनादधिनार सर्वतः परिवारितः। पुष्करद्वीपविस्ताराद्विस्तीणाऽसौ समंततः॥११५॥
तस्मिन्द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ। अभितो मानसस्याथ पर्वतस्य तु मंडले॥११६॥
महावीतं तु यद्वर्षं बाह्यतो मानसस्य तत्। तस्यैवाभ्यंतरेणापि धातकीखंडमुच्यते॥११७॥

दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवंति मानवाः।
अरोगाः सुखबाहुल्या मानसीं सिद्धिमास्थिताः॥११८॥
सममायुश्च रूपं च तस्मिन्वर्षद्वये स्मृतम्।
अधमोत्तमा न तेष्वस्ति तुल्यास्ते रूपशीलः॥११९॥

न तत्र दस्युर्दमको नेर्ष्यासूया भयं तथा। निग्रहो न च दंडोऽस्ति न लोभो न परिग्रहः॥१२०॥

सत्यानृतं न तत्रास्ति धर्माधर्मौ तथैव च।
वर्णाश्रमौ वा वार्ता वा पाशुपाल्यं वणिक्पथः॥१२१॥

त्रयी विद्या दंडनीतिः शुश्रूषा शिल्पमेव च। वर्षद्वये सर्वमेतत्पुष्करस्य न विद्यते॥१२२॥
न तत्र वर्षं नद्यो वा शीतोष्णं वापि विद्यते। उद्भिदान्युदकान्यत्र गिरिप्रस्रवणानि च॥१२३॥

वाला एक मानस पर्वत है, जो समुद्र तट पर उगे हुए एक नवीन चन्द्रमा की भाँति उदित है।। यह पचास हजार योजन ऊपर को उठा हुआ है। उतना ही यह सब ओर घेरा बनाकर फैला हुआ है।।११३।। इसके वाद आधे भाग में मानस नाम का पर्वत है, यह एक ही महासार है (महान् सार वाला है), जो दो भागों में बँटा हुआ है।।११४।। यह स्वादूदक समुद्र से सब ओर से घिरा हुआ पुष्करद्वीप के विस्तार से चारों ओर फैला हुआ है।।११५।। उस द्वीप में मानस पर्वत के मण्डल पर चारों ओर शुभ और पुण्य दो ही जनपद सुने गये हैं।।११६।। उनमें एक महावीत वर्ष है, जो मानसपर्वत के बाहर से है। उसके बीच से जो स्थित है, वह धातकी खण्ड कहा जाता है।।११७।। वहाँ उस द्वीप में मनुष्य दश हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं तथा वे नीरोग बहुत सुखी और मानसी सिद्धि में स्थित रहते हैं[१]।।११८।। यहाँ पर इन दोनों देशों में मनुष्यों की समान आयु समान रूप होता है। ऊँच-नीच का भाव नहीं है। सब वहाँ रूप और शील से समान हैं।।११९।।

न वहाँ कोई डकैत (लुटेरा) है, न कोई किसी को दबाने वाला है, न वहाँ ईर्ष्या है और न भय है, न वहाँ निग्रह (इन्द्रियों को वश में करना) है, न दण्ड है, न लोभ है और न दूसरे का धन ग्रहण करना है।।१२०।। वहाँ पर सत्य और असत्य नहीं है और उसी प्रकार न वहाँ धर्म और अधर्म है, वहाँ न वर्ण और आश्रम है, न पशुपालन है और न क्रय और विक्रय है।।१२१।। अर्थात् वहाँ के लोग समुद्री मछलियों को खाते हैं, मस्त रहते हैं, फिर अन्य व्यवसायों की आवश्यकता ही क्या है? न वहाँ पर त्रयीवार्ता है, न दण्डनीति है, न सेवा है और शिल्पकला है। यह सब पुष्करद्वीप के दोनों देशों में कुछ भी नहीं है।।१२२।। न वहाँ पर वर्षा होती है, न नदियाँ हैं और शीतोष्ण है,

---

१. ये निश्चय ही उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव हैं। दो ध्रुवों के कारण ये दो देश कहे गये हैं। यहाँ बर्फ के कारण मानसी सिद्धि तो हो ही जाती है।

उत्तराणां कुरूणां च तुल्यकालो जनस्तथा। सर्वर्त्तुसुसुखस्तत्र जराक्रमविवर्जितः॥१२४॥
इत्येष धातकीखंडे महावीते तथैव च। आनुपूर्व्याद्विधिः कृत्स्नः पुष्करस्य प्रकीर्त्तितः॥१२५॥
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करःपरिवारितः। विस्तारान्मंडलाच्चैव पुष्करस्य समेन तु॥१२६॥
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः। द्वीपस्यानंतरो यस्तु सामुद्रस्तत्समस्तु सः॥१२७॥
एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परात् । अपां चैव समुद्रेकात्सामुद्र इति संज्ञितः॥१२८॥
विशंतिर्निवसंत्यस्मिन्प्रजा यस्माच्चतुर्विधाः। तस्माद्वर्षमिति प्रोक्तं प्रजानां सुखदं यतः॥१२९॥
ऋष इत्येष रमणे वृषशक्तिप्रबंधने। रतिप्रबंधनात्सिद्धं वर्षं तत्तेषु तेन वै॥१३०॥
शुक्लपक्षे चन्द्रवृद्ध्या समुद्रः पूर्यते सदा। प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमिते खगे॥१३१॥
आपूर्यमाणो ह्युदधिः स्वत एवाभिपूर्यते। तथोपक्षीयमाणेऽपि स्वात्मन्येवावकृष्यते॥१३२॥
उखास्थमग्निसंयोगादुद्रिक्तं दृश्यते यथा। महोदधिगतं तोयं स्वत उद्रिच्यते तथा॥१३३॥

न जमीन से निकलने वाले जल हैं और न पर्वतीय झरने हैं।।१२३।। उत्तर कुरु वर्ष के समान वहाँ की ऋतुएं और वहाँ के लोग हैं, वहाँ पर बुढ़ापा आने के क्रम से रहित, सब ऋतुओं का सुख है।।१२४।। इस प्रकार यह धातकीखण्ड में है, उसी प्रकार महावीत वर्ष में है।। प्रारम्भ से अन्त तक पुष्कर द्वीप की समस्त विधि धातकी खण्ड में है।।१२५।।

स्वादूदक समुद्र से पुष्कर द्वीप घिरा हुआ है। उसके विस्तारमण्डल से पुष्करद्वीप का विस्तार मण्डल समान है अर्थात् समुद्र और द्वीप दोनों का क्षेत्रफल बराबर है।।१२६।। इस प्रकार सात द्वीप, सात समुद्रों से घिरे हुए हैं। द्वीपों को जो समुद्र घेरे हुए हैं, वे उसी के बराबर हैं।।१२७।। द्वीप और समुद्रों की वृद्धि की स्थिति इसी प्रकार की होती है। जलों के सम्यक् उद्रेक (ठीक अधिकता) के कारण समुद्र को समुद्र कहा गया है। समुद्र का अर्थ ही है, जलों की अधिकता। अतः जहाँ जलों की अधिकता, वह समुद्र हुआ। अतः समुद्र का समुद्र नाम सार्थक है।।१२८।। इस द्वीप में चार प्रकार की जीवनयापन करने वाली प्रजायें निवास करती हैं। इसलिए प्रजाओं को सुख देने वाला वर्ष कहा जाता है। ('विश्' धातु से विशन्ति शब्द बनता है। 'विट्' प्रजा को कहा जाता है, उसी से विशन्ति शब्द प्रथमा बहुवचन में बना है, जिसका अर्थ है प्रजायें रहती हैं)।।१२९।। 'ऋष्' धातु रमण अर्थ वाली है तथा 'वृष्' धातु शक्ति प्रबन्धन अर्थ वाली है अर्थात् 'ऋष्' का अर्थ है—रमण करना और 'वृष्' का अर्थ है—शक्ति का प्रवन्ध करना। जिस प्रकार 'ऋष्' धातु से 'ऋषि' शब्द बना है, जिसका अर्थ हुआ रमण करने वाले। उसी प्रकार 'वृष्' धातु से 'वर्ष' शब्द बना है, जिसका अर्थ हुआ—शक्ति का प्रबन्धन जहाँ किया गया है। अतः 'वर्ष' शब्द का अर्थ देश हुआ। यहाँ पर व्युत्पत्ति निरुक्त के अनुसार की गयी है। यदि 'ऋष्' धातु से वर्ष शब्द का बना माना जायेगा तब उसका अर्थ होगा कि जहाँ पर लोग रमण करते हैं, वह स्थान वर्ष होता है।

इस प्रकार रमण करना और प्रबन्ध करने से वर्ष शब्द सिद्ध होता है। अतः यह सब उन उन देशों में होता है अर्थात् वर्ष में प्रजा रमण करती है और वहाँ व्यवस्था (प्रबन्ध) किया जाता है।।१३०।। शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि के द्वारा समुद्र पूर्ण होता जाता है अर्थात् जैसे-जैसे चन्द्रमा बढ़ता है, वैसे-वैसे समुद्रों में जलवृद्धि (ज्वार-भाटा) आता है तथा कृष्णपक्ष के आने पर समुद्र जल को अपने में खीच लेता है, जैसे बर्तन में रखा गया जल अग्नि के संयोग के कारण खोलकर ऊपर की ओर उठने लगता है, उसी प्रकार चन्द्रवृद्धि काल में महासमुद्र में गया हुआ जल

अन्यूनानतिरिक्तांश्च वर्द्धंत्यापो ह्रसंति च।
उदयास्तमये त्विन्दौ पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥१३४॥
क्षयवृद्धत्वमुदधेः सोमवृद्धिक्षयात्पुनः। दशोत्तराणि पंचैव ह्यंगुलानि शतानि च॥१३५॥
अपां वृद्धिः क्षयो दृष्टः सामुद्रीणां तु पर्वसु।
द्विराप्कत्वात्स्मृता द्वीपाः सर्वतश्चोदकावृताः॥१३६॥
उदकस्यायनं यस्मात्तस्मादुदधिरुच्यते। अपर्वाणस्तु गिरयः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः॥१३७॥
प्लक्षद्वीपे तु गोमेदः पर्वतस्तेन चोच्यते। शाल्मलिः शाल्मले द्वीपे पूज्यते सुमहाव्रतैः॥१३८॥
कुशद्वीपे कुशस्तंबस्तस्य नाम्ना स उच्यते। क्रौंचद्वीपे गिरिः क्रौंचो मध्ये जनपदस्य ह॥१३९॥
शाकद्वीपे द्रुमः शाकस्तस्य नाम्ना स उच्यते।
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे तत्रत्यैः स नमस्कृतः॥१४०॥
महादेवः पूज्यते तु ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः। तस्मिन्निवसति ब्रह्मा साध्यैः सार्द्धं प्रजापतिः॥१४१॥
उपासंते तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः। स तत्र पूज्यते चैव देवैर्देवोत्तमोत्तमः॥१४२॥
जंबूद्वीपात्प्रवर्त्तंते रत्नानि विविधानि च। द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां क्रमतस्तु वै॥१४३॥

स्वतः ऊपर की ओर उठने लगता है।।१३३।। शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के उदय और अस्त न अधिक न कम जल बढ़ते और घटते हैं। अर्थात् शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में जल का बढ़ना और घटना तो होता है; परन्तु वह एक सीमा में होता है।।१३४।। इस प्रकार समुद्र का घटना और बढ़ना चन्द्रमा के घटने बढ़ने के कारण है। पर्वों में समुद्र के जल का बढ़ना और घटना एक सौ पन्द्रह अंगुल तक देखा गया है।।१३५-१३५½।। दोनों ओर से जल बढ़ने के कारण और द्वीप को द्वीप कहा गया है; क्योंकि सब ओर से जलों से घिरे रहते हैं। जल का अयन है, इस कारण समुद्र को उदधि कहा गया है। अर्थात् द्वि+अप (ईप) से द्वीप शब्द बना, जिसका अर्थ है—'द्वयोर्दिशयोर्वागता आपो यत्र' अर्थात् दोनों में जहाँ जल गये, उसे द्वीप कहा जाता है तथा उदधि—उन्द् + अधि से न लोप होकर बना है, जिसका अर्थ है—जल का आयन। अतः जहाँ जल का आयन है, वह उदधि हुआ।

अतः जल का आयन है, इसलिये उदधि शब्द के अनुसार समुद्र को उदधि कहा गया है। उसी प्रकार जो विना पर्व वाले हैं, वे गिरि हैं तथा जो पर्व + अतच् पर्वो से युक्त हैं, वे पर्वत कहे जाते हैं। पर्व का अर्थ है—गाँठ (चोटी) अतः चोटी वाले पर्वत कहे जाते हैं तथा जिनकी चोटी नहीं होती, वे गिरि कहे जाते हैं।।१३७।। प्लक्षद्वीप में तो गोमेद पर्वत ही पर्वत है; क्योंकि वह पर्व चोटियों वाला है। शाल्मल द्वीप में शाल्मलि वृक्ष सुन्दर और महाव्रतधारियों द्वारा पूजा जाता है।।१३८।। कुश द्वीप में कुश नाम की घास है, इसीलिये वह कुश द्वीप कहा जाता है तथा क्रौञ्चद्वीप में जनपद के मध्य में क्रौञ्च नाम का पर्वत है, उसी के कारण उसका नाम क्रौञ्च द्वीप रखा गया है।।१३९।। शाक द्वीप में शाक (सागौन) नाम का वृक्ष है, जिसके कारण उस द्वीप को शाकद्वीप कहा जाता है। पुष्कर द्वीप में न्यग्रोध (वरगद) का वृक्ष है तथा वहाँ के निवासियों द्वारा नमस्कृत है, सब लोग उसको नमन करते हैं।।१४०।। वहाँ महादेव और त्रिभुवन प्रति ब्रह्मा पूजे जाते हैं, वहाँ पर साध्यों के साथ ब्रह्मा जी निवास करते हैं।।१४१।। तथा वहाँ ३३ महर्षियों के साथ देवगण उपासना करते हैं। वहाँ देवों के साथ देवों में उत्तम देव ब्रह्मा पूजे जाते हैं।।१४२।। जम्बूद्वीप के अन्तर्गत से अनेकों प्रकार से रत्न उत्पन्न होते हैं, उन सभी द्वीपों में सब ओर

सर्वशो ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च। आरोग्यायुः प्रमाणाभ्यां प्रमाणं द्विगुणं ततः॥१४४॥
एतस्मिन्पुष्करद्वीपे यदुक्तं वर्षकद्वयम्। गोपायति प्रजास्तत्र स्वयंभूर्जंड पण्डिताः॥१४५॥
ईश्वरो दंडमुद्यम्य ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः। स विष्णोः सचिवो देवः स पिता स पितामहः॥१४६॥
भोजनं चाप्रयत्नेन तत्र स्वयमुपस्थितम्। षड्रसं सुमहावीर्यं भुंजते तु प्रजाः सदा॥१४७॥
परेण पुष्करस्यार्द्धे आवृत्यावस्थितो महान्। स्वादूदकः समुद्रस्तु समंतात्परिवेष्ट्य तम्॥१४८॥
परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः। कांचनी द्विगुणा भूमिः सर्वाह्येकशिलोपमा॥१४९॥
तस्यापरेण शैलश्च पर्यासात्परिमंडलः। प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते॥१५०॥

आलोकस्तस्य चार्वाक्तु निरालोकस्ततः परम्।
योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः॥१५१॥
तावांश्च विस्तरस्तस्य पृथिव्यां कामगश्च सः।
आलोको लोकवृत्तिस्थो निरालोको ह्यलौकिकः॥१५२॥
लोकार्द्धे संमिता लोका निरालोकास्तु बाह्यतः।
लोकविस्तारमात्रं तु ह्यलोकः सर्वतो बहिः॥१५३॥

परिच्छिन्नः समंताच्च उदकेनावृतस्तु सः। आलोकात्परतश्चापि ह्यंडमा वृत्य तिष्ठति॥१५४॥

अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी।
भूलाकोऽथ भुवर्ल्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्तथा॥१५५॥

प्रजागण क्रम से ब्रह्मचर्य सत्य और इन्द्रिय दमन द्वारा आरोग्य और आयु प्रमाण से दुगुने प्रमाण की आयु प्राप्त करते हैं।।१४३-१४४।। इस पुष्कर द्वीप में जिन दो देशों को बताया है, वहाँ के सीधे साधे लोग स्वयं अपनी रक्षा करते हैं।।१४५।। वहाँ ईश्वर विष्णु और शिव के साथ स्वयं ब्रह्मा दण्ड विधान कर वहाँ का शासन करते हैं। वहाँ के लोग विना प्रयत्न के ही छः रस और बलशाली भोजन प्राप्त करते हैं। यह पुष्कर द्वीप स्वादु जलवाले समुद्र से घिरा हुआ है।।१४६-१४८।। उस द्वीप के आगे एक महती लोकस्थिति दिखायी देती है, दोगुनी भूमि एक शिला की तरह समान और घनी बसी हुई है।।१४९।। उससे परे एक पर्वत है, जो उसकी सीमा में है, जिसकी एक दिशा में प्रकाश और दूसरी दिशा में अन्धकार है। अतः वह लोक और अलोक कहलाता है।।१५०।।

उसका आलोक पूर्व दिशा में और अन्धकार पश्चिम दिशा में है। उसकी ऊँचाई दश हजार योजन कही गयी है।।१५१।। पृथ्वी पर ये पर्वत इच्छीधीन गमन करने वाला है। उसका प्रकाश लोक व्यवहार में स्थित है अर्थात् जहाँ प्रकाश है, वहाँ पर लोग आते जाते कार्यादि करते हैं;; परन्तु उसका अन्धकार अलौकिक है।।१५२।। अर्थात् जहाँ प्रकाश नहीं, वहाँ लोक भी नहीं है। अतः आलोक के कारण ही उसे लोक कहा जाता है।।१५३।। पर्वत के आधे भाग में लोक स्थित हैं तथा बाहर कोई लोक नहीं है। वह सब भाग जल से ढका हुआ है। प्रकाश से परे जो भाग है, वह अण्ड को आवृत कर स्थित है।।१५४।। उस अण्ड के मध्य में ये लोक और सात द्वीपों वाली पृथ्वी स्थित है। जिस पर भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपेलोक और सत्यलोक इतने लोकों का संग्रह है। लोकों के विषय में इतनी ही ज्ञान प्राप्त है। इसलिये इतने ही लोकों को समझना चाहिये। इसके बाद कुछ भी

जनस्तपस्तथा सत्यमेतावांल्लोकसंग्रहः।
एतावानेव विज्ञेयो लोकांतश्चैव यः परः॥१५६॥
कुंभस्थायी भवेद्यादृक्प्रतीच्यां दिशि चन्द्रमाः।
आदितः शुक्लपक्षस्य वपुश्चांडस्य तद्विधम्॥१५७॥
अंडानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः।
तिर्यगूर्द्धमधो वापि कारणस्याव्ययात्मनः॥१५८॥

धरणैः प्राकृतैस्तत्तदावृतं प्रति सप्तभिः। दशाधिक्येन चान्योन्यं धरयंति परस्परम्॥१५९॥
परस्परावृताः सर्वे उत्पन्नाश्च परस्परम्। अण्डस्यास्य समंतात्तु सन्निविष्टो घनोदधिः॥१६०॥
समंतात्तु वनोदेन धार्यमाणः स तिष्ठति। बाह्यतो घनतो यस्य तिर्यगूर्द्ध्वं तु मण्डलम्॥१६१॥
धार्यमाणं समंतात्तु तिष्ठते यत्तु तेजसा। अयोगुडनिभो वाह्नः समंतान्मंडलाकृतिः॥१६२॥
समंताद्धनवातेन धार्यमाणः स तिष्ठति। घनवातं तथाकाशो दधानः खलु तिष्ठति॥१६३॥
भूतादिश्च तथा काशं भूतादिश्चाप्यसौ महान्। महांश्च सोऽप्यनंतेन ह्यव्यक्तेन तु ार्यते॥१६४॥
अनंतमपरिव्यक्तं दशधा सूक्ष्ममेव च। अनंतमकृतामनमनादिनिधनं च यत्॥१६५॥
अनित्यं परतोऽघोरमनालंबमनामयम्। नैकयोजनसाहस्त्रं विप्रकृष्टमनावृतम्॥१६६॥
तम एव निरालोकममर्य्यादमदैशिकम्। देवानामप्यविदितं व्यवहारविवर्ज़ितम्॥१६७॥

नहीं है।।१५५-१५६।। पश्चिम दिशा में शुक्ल पक्ष के आदि में जब चन्द्रमा पूर्ण होकर घड़े के आकार के समान बिल्कुल गोल दिखाई देते हैं, उसी प्रकार का अण्ड का शरीर अर्थात् ब्रह्माण्ड बिल्कुल पूर्ण चन्द्राकार है।।१५७।। इस प्रकार अनेकों करोड़ों अण्ड हैं, जो अव्ययात्मा कारण के ऊपर नीचे और बीच में स्थित हैं।।१५८।। ये प्रत्येक सात सात प्रकृति के कारणों द्वारा आवृत हैं। ये सब एक-दूसरे से दश गुने बड़े हैं और प्रत्येक एक-दूसरे को धारण करते हैं।।१५९।। वे सब परस्पर एक-दूसरे से ढके हुए है तथा एक-दूसरे से उत्पन्न हैं। इन अण्डों के चारों ओर घनी भूत सागर स्थित है।।१६०।। वह सागर चारों ओर से घन के जल को धारण करता हुआ स्थित है। इस घनीभूत जल का भी तिरछा घेरा ऊपर की ओर है।।१६१।।

वह चारों ओर से तेज के द्वारा धारण किया हुआ स्थित है। जैसे कोई आग से तपा हुआ लोहे का गोला हो, उसी तरह अग्नि से तपते हुए इस अण्ड के चारों और अग्नि है।।१६२।। तथा वह अग्नि चारों ओर से घनीभूत वायु के द्वारा धारण किया जाता हुआ स्थित है। घनीभूत वायु को धारण करता हुआ चारों ओर आकाश स्थित है।।१६३।। भूतादि अर्थात् पञ्चमहाभूत तथा आकाश को महान् (महत्तत्त्व) आवृत कर धारण करता हुआ स्थित है तथा उस महत्तत्त्व को अनन्त अव्यक्त (प्रकृति) के द्वारा धारण किया जा रहा है। जो प्रकृति अन्तहीन और इन्द्रियातीत है।।१६४।। यह अपरिव्यक्त अनन्त दश प्रकार का है। सूक्ष्म, अकृतात्मा, अनादिनिधन, अनित्य, अघोर, अनालम्ब, अनामय, अनेकों हजारों योजन दूर स्थित भी नहीं, विप्रकृष्ट (बहुत श्रेष्ठ) और अनावृत है।।१६५-१६६।। अन्धकार ही निरालोक (लोकों का अभाव) है। वहीं पर लोक की न मर्यादा है और न लोक का स्थान ही है। वह स्थान देवताओं द्वारा भी अविदित है; क्योंकि वह स्थान व्यवहार से वर्जित है। अर्थात् वहाँ उस अन्धकार में कोई लोक-व्यवहार नहीं है।।१६७।।

तमसोंते च विख्यातमाकाशांते ह्यभास्वरम्। मर्यादायामनंतस्य देवस्यायतनं महत्॥१६८॥
त्रिदशानामगम्यं तत्स्थानं दिव्यमिति श्रुतिः। महतो देवदेवस्य मर्यादाया व्यवस्थिताः॥१६९॥
चंद्रादित्यावधस्तात्तु ये लोकाः प्रथिता बुधैः।
ते लोका इत्यभिहिता जगतश्च न संशयः॥१७०॥
रसातलतलाः सप्त सप्तैर्वीतलाश्च ये। सप्तस्कंधस्तथा वायोः सब्रह्मसदना द्विजाः॥१७१॥
आपातालाद्दिवं यावदत्र पंचविधां गतिः। प्रमाणमेतज्जगत एष संसारसागरः॥१७२॥
अनाद्यंतां व्रजंत्येव नैकजातिसमुद्भवाः। विचित्रा जगतः सा वै प्रकृतिर्ब्रह्मणः स्थिता॥१७३॥
चच्चेह दैविकं वाथ निसर्गं बहुविस्तरः। अतींद्रियैर्महाभागैः सिद्धैरपि न लक्षितः॥१७४॥
पृथिव्यंब्वग्निवायूनां नभसस्तमसस्तथा। मानसस्य तु देहस्य अनंतस्य द्विजोत्तमाः॥१७५॥
क्षयो वा परिणामो वा अन्तो वापि न विद्यते। अनंत एष सर्वत्र एवं ज्ञानेषु पठ्यते॥१७६॥
तस्य चोक्तं मया पूर्वं तस्मिन्नामानुकीर्तने।
यः पद्मनाभनाम्ना तु तत्कात्स्न्यन च कीर्त्तितः॥१७७॥
स एव सर्वत्र गतः सर्वस्थानेषु पूज्यते। भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले॥१७८॥
अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः। तथा तमसि विज्ञेय एष एव महाद्युतिः॥१७९॥
अनेकधा विभक्तांगो महायोगी जनार्दनः। सर्वलोकेषु लोकेश इज्यते बहुधा प्रभुः॥१८०॥
एवं परस्परोत्पन्ना धार्यंते च परस्परम्। आधाराधेयभावेन विकारास्तेऽविकारिणः॥१८१॥

अन्धकार के अन्त में अर्थात् आकाश के अन्त भाग में अनन्त देव भगवान् शिव का एक चमकता हुआ देदीप्यमान महान् आयतन (मन्दिर) है।।१६८।। वह दिव्य स्थान है, जहाँ कि देवता लोग भी नहीं जा सकते, वह आयतन महादेव की मर्यादा में व्यवस्थित है।।१६९।। उन महादेव के आयतन की सीमा में चन्द्रमा और सूरज की किरणें पड़ने वाले जो लोक हैं, वे ही लोक विद्वानों द्वारा जगत् कहे गये हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं।।१७०।।

वे हैं—रसातल के नीचे और ऊपर कुल मिलाकर जो सात लोक हैं, वे वायु से ब्रह्मसदन तक सात स्कन्ध वाले हैं।।१७१।। वहाँ पाताल से लेकर स्वर्ग तक वायु की गति पाँच प्रकार की है, यही जगत् का प्रमाण है और यही संसार सागर है।।१७२।। अनेकों जातियों की उत्पत्ति करने वाली यह अनादि अनन्त जगत् परम्परा इसी प्रकार चलती रहती है। ब्रह्मा के इस संसार की प्रकृति विचित्र है।।१७३।। यह जो दैविक (ईश्वरीय) निःसर्ग (संसार की रचना) है, उसका बहु विस्तार है। उसके रहस्य को इन्द्रियों को जीतने वाले महाभाग सिद्धों द्वारा भी नहीं देखा गया है।।१७४।। हे ब्राह्मणो! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और तम का तथा मनुष्य के अनन्त शरीर का न क्षय होता है, न उसका परिणाम (परिवर्तन) होता है। यह अनन्त ही सर्वत्र सब ज्ञानों में पढ़ा जाता है।।१७६।। इसे हमने नामों के गणनाक्रम में पहले ही कह दिया है तथा जो कमल की नाभि नामवाले अर्थात् कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा हैं, उनके बारे में विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया गया है।।१७७।। वही पद्मनाभा विष्णु सर्वत्र व्याप्त हैं तथा वे ही भूमि, रसातल, आकाश, वायु, अग्नि, जलों आदि सब स्थानों में पूजे जाते हैं तथा तपस्या में जानने योग्य यही वे महाकान्तिरूप विष्णु हैं।।१७९।। वे ही महायोगी जनार्दन अनेक अंगों में विभक्त होकर सबलोकों में लोकों के रचयिता ऐसा मानकर अनेकों प्रकार से पूजे जाते हैं।।१८०।।

यस्मात्सृष्टास्तु तेऽन्योन्यं तस्मात्स्थैर्यमुपागताः।
प्रागासन्नविशेषास्तु विशेषोऽन्यविशेषणात्॥१८२॥
यस्मात्सृष्टास्तु तेऽन्योन्यं तस्मात्स्थैर्यमुपागताः।
प्रागासन्नविशेषास्तु विशेषज्ञेऽन्यविशेषणात्॥१८३॥
पृथिव्याद्यास्तु वाद्यंतापरिच्छिन्नास्त्रयस्तुते। गुणोपचयसारेण परिच्छेदो विशेषतः॥१८४॥
शेषाणां तु परिच्छेदः सौक्ष्म्यान्नेह विभाव्यते।
भूतेभ्यः परस्तेभ्यो व्यालोकासा धरा स्मृता॥१८५॥
भूतान्यालोक आकाशे परिच्छिन्नानि सर्वशः। पात्रे महति पात्राणि यथैवांतर्गतानि तु॥१८६॥

अब संसार की रचना के बारे में बताते हैं। विकार (प्रपञ्च महत्तत्व अहंकार मन १० इन्द्रियां पंच तन्मात्रायें पंचमहाभूत) जो सभी विकार है, ये विकार हैं, प्रकृति विकार नहीं है। अतः ये विकार प्रकृति को आधार आधेय भाव से धारण करते हैं। अतः आधार प्रकृति हैं तथा विकार आधेय है। इस प्रकार ये सभी विकार एक-दूसरे को उत्पन्न करते हुए परस्पर एक दूसरे को धारण करते हैं।।१८१।। पृथिवी आदि विकार परस्पर परिच्छित्र अर्थात् अलग-अलग हैं। परस्पर एक-दूसरे से अधिक होते हुए एक-दूसरे में प्रविष्ट हो जाते हैं। जैसे कि पृथ्वी तत्त्व से जल तत्त्व अधिक है, जल से अग्नि तत्त्व, अग्नि से वायु तथा वायु से आकाश, इस प्रकार चौबीसों तत्त्व एक दूसरे से अधिक है, फिर भी वे एक-दूसरे को उत्पन्न करते हैं। जैसे कि अविकारी प्रकृति से महतत्त्व, उससे अहंकार, अहंकार से मन, इन्द्रियां, सूक्ष्म स्थूलभूतादि एक-दूसरे से उत्पन्न हैं तथा वे फिर नीचे से ऊपर को एक-दूसरे में प्रविष्ट हो जाते हैं। जैसे पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में प्रविष्ट हो जाते हैं। यह सृष्टि का क्रम है, यहाँ विस्तार से बताना उचित नहीं है।।१८२।।

जिस कारण से वे परस्पर पैदा हुए हैं, उसी कारण उनमें स्थिरता भी पायी जाती है। पहले वे विशेष रूप से विद्यमान हैं, फिर विशेष अन्य विशेषण से विशेष बने। यहाँ विशेषण और विशेष को समझना है, विशेष में विशेषण रहता है। अतः जो जिससे पैदा हुआ, उनमें परस्पर विशेष विशेषण भाव है। विशेष से विशेषण पैदा हुआ, जैसे आकाश से वायु उत्पन्न हुई। अतः आकाश विशेष हुआ और वायु उसका विशेषण है तथा वायु से अग्नि उत्पन्न हुआ, तब वायु विशेष हुआ और अग्नि उसका विशेषण है। इसी क्रम से ये सभी तत्त्व एक-दूसरे के विशेष विशेषण हैं; परन्तु प्रकृति (प्रधान) किसी का विशेषण नहीं, वह तो विशेष ही है, क्योंकि वह किसी से पैदा नहीं हुई, सब उससे पैदा हुए हैं। वही अविकारी है तथा सभी परस्पर अविकारी विकारी है। अर्थात् सभी विकारी है।।१८३।। पृथिवी आदि तीन विकार पृथिवी, जल और अग्नि तो आदि अन्त से युक्त है अर्थात् इनका आदि भी है और अन्त भी तथा वे परिच्छिन्न (परिसीमित) हैं तथा इनका परिसीमन गुणों के एकत्र होने के कारण है अर्थात् इनमें गुण अधिक हैं। इसलिए इनकी एक सीमा है। वे गुणों की अधिकता के कारण दिखाई देते हैं। जिसमें अधिक गुण है, वह उतना ही परिसीमित है। जैसे पृथ्वी में पाँचों गुण हैं। अतः वह अधिक सीमित है, उससे कम जल तथा जल से कम अग्नि परिसीमित है। शेष जो वायु आकाश आदि हैं, उनका परिसीमन (परिच्छेद) सूक्ष्म होने के कारण नहीं जाना जाता है। उन भूतों (पंचतत्त्वों) से परे एक एक विशेष आलोक ये पृथ्वी कही गयी है; क्योंकि वह पूरी तरह दिखायी देती है। आलोकमय आकाश में विभक्त हुये पृथिव्यादि सभी भूत उसी प्रकार समाये हुए हैं, जैसे कि बड़े पात्र के अन्तर्गत छोटा पात्र समा

भवन्त्यन्योन्यहीनानि परस्परसमाश्रयात्।
तथा ह्यालोक आकाशे भेदास्त्वंतर्गता मताः॥१८७॥
कृत्स्नान्येतानि चत्वारि ह्यन्योन्यस्याधिकानि तु।
यावदेतानि भूतानि तावदुत्पत्तिरुच्यते॥१८८॥
तंतूनामिव संतारो भूतेष्वंतर्गतो मतः। प्रत्याख्याय तु भूतानि कार्योत्पत्तिर्न विद्यते॥१८९॥
तस्मात्परिमिता भेदाः स्मृताः कार्य्यात्मकास्तु ते।
कारणात्मकास्तथैव स्युर्भेदा ये महदादयः॥१९०॥
इत्येष संनिवेशो वै मया प्रोक्तो विभागशः।
सप्तद्वीपसमुद्राढ्यो याथातथ्येन वै द्विजाः॥१९१॥
विस्तरान्मंडलाश्चैव प्रसंख्यानेन चैव हि। वैश्वरूपप्रधानस्य परिणामैकदेशिकः॥१९२॥
अधिष्ठितं भगवता यस्य सर्वमिदं जगत्। एवंभूतगणाः सप्त सन्निविष्टाः परस्परम्॥१९३॥
एतावान्संनिवेशस्तु मया शक्यःप्रभाषितुम्। एतावदेव श्रोतव्यं संनिवेशे तु पार्थिवे॥१९४॥
सप्त प्रकृतयस्त्वेता धारयंति परस्परम्। तास्त्वहं परिमाणेन न संख्यातुमिहोत्सहे॥१९५॥
असंख्याताः प्रकृतयस्तिर्य्यगूर्द्धमधस्तथा। तारकासंनिवेशश्च यावद्दिव्यानुमण्डलम्॥१९६॥

जाता है।।१८५-१८६।। और इस प्रकार सब एक दूसरे का आश्रय लेने से एक-दूसरे से हीन होते चले जाते हैं। जैसे आकाश से वायु हीन है, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी हीन है तथा आलोक और आकाश में सभी तत्त्वों के अन्तर्गत भेद माना गया है।।१८७।। ये जो सब चार तत्त्व वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हैं, ये एक-दूसरे से अधिक बलशाली हैं। ये जितने भूत हैं, उतनी ही उत्पत्ति कही जाती है।।१८८।। जैसे तन्तुओं से संतार रस्सी बनती है, वैसी ही स्थिति इन भूतों में पायी जाती है, जैसे कि सभी तत्त्वों से मिलकर पृथ्वी बनी, उसी प्रकार पांच महाभूतों से ही मनुष्य शरीर बना है। इन पञ्चभूतों की अवहेलना कर कार्यरूप संसार की उत्पत्ति नहीं हो सकती।।१८९।। इसी कारण कार्यात्मक इस प्रपञ्च संसार के जड़-चेतन पदार्थों के जितने सीमित भेद हैं, कारणात्मक जगत् और महत्तत्वादि के भी उतने ही भेद हैं।।१९०।।

सूत जी ने कहा कि ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने खण्ड-खण्ड कर सात समुद्र और सात द्वीप वाली पृथ्वी का यथा तथा सन्निवेश (उनकी स्थिति) का वर्णन कर दिया है। विस्तार और मण्डल की गणना से इस विश्वरूपा प्रकृति का यह एक अंश परिणाम है।।१९१-१९२।। यह समस्त जगत् ईश्वर का बनाया हुआ है, वही इसको उत्पन्न करने वाले हैं और उन्होंने ही इस जगत् को अधिष्ठित किया है। इस प्रकार उन्होंने ही इन प्राणियों को कहिये अथवा पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि सभी जड़-चेतनों को सात द्वीपों में परस्पर आश्रित किया है।।१९३।। लोकों की यथास्थिति के विषय में इतना ही बताने की शक्ति रखता हूं। हे पार्थिव! आपको भी मुझसे लोकों की स्थिति के विषय में इतना ही सुनना चाहिये।।१९४।।

ये सात प्रकृतियां ही तो परस्पर एक-दूसरे को धारण करती हैं। यहां मैं उनका परिमाण से वर्णन करने का उत्साह नहीं करता है अर्थात् वे सात द्वीप समुद्र, पर्वतों, वनों का नाम तो लम्बाई-चौड़ाई क्या है? यह वर्णन नहीं कर सकूंगा; क्योंकि ये प्रकृतियां असंख्य हैं, जो ऊपर, नीचे और तिरछी आकाशमण्डल में, तारों में, तारागणों में

पर्य्यायसन्निवेशस्तु भूमेस्तदनु मण्डलः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पृथिव्या वै विचक्षणाः॥१९७॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे प्लक्षादिद्वीपवर्णनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः॥१९॥

—❀—
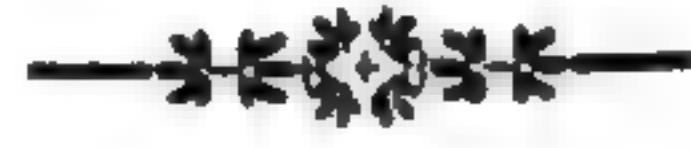
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

अधोलोकवर्णनं नाम

विंशोऽध्यायः

सूत उवाच

अधःप्रमाणमूर्द्धं च वक्ष्यमाणं निबोधत। पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्॥१॥
अनंता धातवो ह्येते व्यापकास्तु प्रकीर्त्तिताः। जननी सर्वभूतानां सर्वसत्त्वधरा धरा॥२।
नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना। नानानदनदीशैला नैकजातिसमाकुला॥३॥
अनंता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा। नदीनदसमुद्रस्थास्तथा क्षुद्राश्रयस्थिताः॥४॥
पर्वताकाशसंस्थाश्च अंतर्भूमिगताश्च याः। आपोऽनंता हि विज्ञेयास्तथाग्निः सर्वलोकगः॥५॥

सन्निविष्ट हैं। मैंने पृथ्वी पर जितना भी प्रकृति के सन्निवेश हैं, बता दिये है। अब मैं पृथिवी पर जितने आकाशीय अनुमण्डल हैं, उनको वताऊंगा।।१९५-१९७।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद उन्नीसवां अध्याय प्लक्षद्वीप वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖
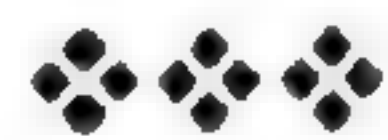
श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-२०

अधोलोक वर्णन

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अब आप लोग पृथ्वी के नीचे और ऊपर के भागों के प्रमाण को जानिये। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और पांचवां ज्योति (अग्नि) ये पाँच तत्त्व हैं और ये ही अनन्त धातुयें हैं, जो व्यापक हैं, जिनको बताया जा चुका है।। यह पृथ्वी सब भूतों (पञ्चभूतों जड़चेतनादि) को धारण करने वाली है। इस पृथ्वी पर अनेकों जनपद हैं, अनेकों अधिष्ठान हैं। अनेकों जातियों से व्याप्त अनेकों नद नदी पर्वत हैं।।१½-३।। इस प्रकार यह पृथ्वी देवी अनन्त और बहुत विस्तार वाली के रूप में बतायी जाती है।।४।। नद, नदी, समुद्र, छोटे छोटे तालाब पर्वत

अनंतः पठ्यते चैव व्यापकः सर्वसंभवः। तथाकाशमनालेख्यं रम्यं नानाश्रयं स्मृतम्॥६॥
अनन्तं पठ्यते चैव वायुश्चाकाशसम्भवः। आपः पृथिव्यामुदके पृथिव्युपरि संस्थिताः॥७॥
आकाशश्चापरमथ पुनर्भूमिः पुनर्जलम्। एवं मतमनंतस्य भौतिकस्य न विद्यते॥८॥
परस्परैः सोपचिता भूमिश्चैव निबोधत। भूमिर्जलमथाकाशमिति या या परम्परा॥९॥
स्थितिरेषां तु विख्याता सप्तमेऽस्मिन्रसातले। दशयोजनसाहस्त्रमेकं भौमं रसातलम्॥१०॥
साधुभिः परिसंख्यातमेकैकेनैव विस्तरम्। प्रथमं तत्वलं नाम सुतलं तु ततः परम्॥११॥
ततस्तलातलं विद्यादतलं बहुविस्तरम्। ततोऽर्वाक्च तलं नाम परतश्च रसातलम्॥१२॥
एतेषामप्यधोभागे पातालं सप्तमं स्मृतम्। कृष्णभौमश्च प्रथमो भूमिभागः प्रकीर्त्तितः॥१३॥
पांडुभूमिर्द्वितीयस्तु तृतीयो नीलमृत्तिकः। पीतभौमश्चतुर्थस्तु पंचमः शर्करामयः॥१४॥
षष्ठः शिलामयो ज्ञेयः सौवर्णः सप्तमः स्मृतः। प्रथमेऽस्मिंस्तले ख्यातमसुरेंद्रस्य मंदिरम्॥१५॥
नमुचेरिंद्रशत्रोश्च महानादस्य चालयम्। पुरं च शंकुकर्णस्य कबंधस्य च मंदिरम्॥१६॥
निष्कुलादस्य च पुरं प्रहृष्टजनसंकुलम्। राक्षसस्य च भीमस्य शूलदंतस्य चालयम्॥१७॥
लोहिताक्षकलिंगानां नगरं श्वापदस्य च। धनंजयस्य च पुरं नागेंद्रस्य महात्मनः॥१८॥
कालियस्य च नागरस्य नगरं कौशिकस्य च। एवं पुरसहस्त्राणि नागदानवरक्षसाम्॥१९॥

आकाश तथा भूमि के अन्तर्गत जो कुछ स्थित है, उन सबमें जल अनन्त हैं, सब लोकों में जाने वाला अग्नि अनन्त है। वह सर्वत्र व्यापक है और सबको पैदा करने वाला है तथा आकाश निरालम्ब है, रम्य है और अनेकों प्रकार तत्त्वों का आश्रय है।।५-६।। आकाश से उत्पन्न वायु भी अनन्त है। जल पृथिवी में और पृथ्वी के ऊपर स्थित हैं।।७।। आकाश के नीचे पृथ्वी है, फिर जल है। ऐसा मत अनन्तों का है, भौतिक का नहीं है।।८।।

परस्पर जो उपचित भूमि है, उसके बारे में सुनिये। भूमि, जल और आकाश की जो जो परम्परा है, इस सातवें रसातल में यह स्थित है। यह दश हजार योजन विस्तृत भूमि का रसातल है। उसका विद्वानों ने एक एक की गणना कर विस्तार बताया है। उनमें पहला अतल है, उसके बाद सुतल है, उसके बाद तलातल समझना चाहिये। अतल बहुत विस्तृत है, उसके बाद तल है, फिर रसातल है।।९-१२।। इनके भी नीचे पाताल सातवां पाताल बताया गया है। भूमि के प्रथम भाग की मृत्तिका कृष्ण वर्ण की है।।१३।। भूमि का दूसरा भाग पीले रंग की मिट्टी वाला तथा तीसरा भाग नीली मिट्टी वाला है। पृथ्वी का चौथा भाग पीले रंग की मिट्टी का है तथा पाँचवां शर्करामय अर्थात् शक्कर के वर्ण वाली मिट्टी का है।।१४।।

पृथ्वी का छठा भाग पत्थर की शिलाओं वाला जानना चाहिये तथा सातवां भाग सोने के वर्ण वाला समझना चाहिये। इस प्रथम तल में सुरेन्द्र का प्रसिद्ध मन्दिर है।।१५।। और इन्द्र के शत्रु नमुचि का घर है तथा शंकुकर्ण का पुर (नगर) है और कबन्ध का मन्दिर है।।१६।। तथा प्रसन्न रहने वाले लोगों से आवृत निष्कुलाद का नगर है और भीम और शूलदन्त राक्षस का घर है।।१७।। श्वापद के लोहिताक्ष कलिङ्गों का नगर है और महात्मा नागेन्द्र धनञ्जय का नगर है।।१८।। कालियनाग और कौशिक का नगर है। इस प्रकार नागों, दानवों और राक्षसों के हजारों नगर हैं।।१९।।

तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न संशयः। द्वितीये सुतले विप्रा दैत्येन्द्रस्य च रक्षसः॥२०॥
महाजंभस्य तु तथा नगरं प्रथमस्य तु। हयग्रीवस्य कृष्णस्य निकुम्भस्य च मंदिरम्॥२१॥

शंखाख्यस्य च दैत्यस्य नगरं गोमुखस्य च।
राक्षसस्य च नलीलस्य मेघस्य कथनस्य च॥२२॥

आलयं कुकुपादस्य महोष्णीषस्य चालयम्। कंबलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च॥२३॥
कद्रूपत्रस्य च पुरं तक्षकस्य महात्मनः। एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्॥२४॥

द्वितीयेऽस्मिन् तले विप्राः पांडुभौमे न संशयः।
तृतीये तु तले स्यातं प्रह्लादस्य महात्मनः॥२५॥

अनुह्लादस्य पुरं पुरमग्निमुखस्य च। तारकाख्यस्य च पुरं पुरं त्रिशिरसस्तथा॥२६॥
शिशुमारस्य च पुरं त्रिपुरस्यस्य तथा परम्। पुरंजनस्य दैत्यस्य हृष्टपुष्टजनाकुलम्॥२७॥
च्यवनस्य तु विज्ञेयं राक्षसस्य मंदिरम्। राक्षसेंद्रस्य च पुरं कुम्भिलस्य खरस्य च॥२८॥
विराधस्य च क्रूरस्य पुरमुल्कामुखस्य च। हेमकस्य च नागस्य तथा पांडुरकस्य च॥२९॥
मणिनागस्य च पुरं कपिलस्य च मंदिरम्। नंदकस्योरगपतेर्विशालाक्षस्य मंदिरम्॥३०॥
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्। तृतीयेऽस्मिंस्तले विप्रा नीलभौमे न संशयः॥३१॥
चतुर्थे दैत्यसिंहस्य कालनेमेर्महात्मनः। गजकर्णस्य च पुरं नगरं कुञ्जरस्य च॥३२॥
राक्षसेंद्रप्य च पुरं सुमालेर्बहुविस्तरम्। मुंजस्य लोकनाथस्य वृकवक्त्रस्य चालयम्॥३३॥
बहुयोजनविस्तीर्णं बहुपक्षिसमाकुलम्। नगरं वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन्नसातले॥३४॥
पञ्चमे शर्कराभौमे बहुयोजनविस्तरम्। विरोचनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः॥३५॥

इस प्रकार ये नगरादि प्रथमतल काली मिट्टी वाली भूमि पर समझने चाहिये। अतः हे विप्रो! द्वितीय तल सुतल पर दैत्यों के राजा महाजम्भ का नगर है। हयग्रीव कृष्ण और निकुम्भ का मन्दिर है।।२१।। संख्या नामक दैत्य का नगर तथा गोमुख का नगर है और राक्षस नील मेघ और कथन का नगर है।।२२।। तथा ककुपाद तथा महोष्णीष का घर है तथा कम्बल, नाग और अश्वतर का नगर है।।२३।। कद्रूपुत्र महात्मा तक्षक का नगर है। इस प्रकार नाग, दानव, राक्षसों के हजारों नगर है।।२४।। इस द्वितीय तल पीली भूमि पर ये उपर्युक्त नगरादि हैं।।२४½।। अब तृतीय के विषय में बताते हुए कहते हैं कि तृतीय तल पर तो अनुह्राद, अग्निमुख, तारक, त्रिशिरा, शिशुमार, त्रिपुर तथा पुरञ्जन दैत्यों के हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों के व्याप्त नगर हैं।।२४½-२७।।

तथा वहाँ पर च्यवन राक्षस का मन्दिर ज्ञेय है और राक्षसेन्द्र कुम्भिल और खर का नगर है।।२८।। वहाँ क्रूर विराध और उल्कामुख का नगर है तथा हेमक और पाण्डुरक का पुर है। मणिनाग, कपिल, नन्दक और सर्पराज विशालाक्ष का मन्दिर है। विप्रो! इस प्रकार नीली भूमि वाले तृतीय तल पर नाग, दानव; राक्षसों के हजारों नगर हैं।।२९-३१।। चौथे तल में महात्मा दैत्यसिंह कालनेमि और गजकर्ण तथा कुञ्जर का नगर है।।३२।। वहाँ राक्षसों के राजा सुमालि का बहुत विस्तार वाला नगर है तथा मुञ्ज लोकनाथ और वृकवक्त्र का घर है।।३३।। इस चौथे तल पर बहुत योजन विस्तीर्ण बहुत से पक्षियों से भरा हुआ वैनतेय का नगर है।।३४।। पाँचवें तल शर्करा के वर्ण वाली

वैद्युतस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चालयम्।
पुरं च विद्युज्जिह्वस्य राक्षसेन्द्रस्य धीमतः॥३६॥

सहामेघस्य च पुरं राक्षसेंद्रस्य मालिनः। किर्मीरस्य च नागस्य स्वस्तिकस्य जयस्य च॥३७॥
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्। पञ्चमेऽस्मिंस्तले ज्ञेयं शर्करानिचये सदा॥३८॥
षष्ठे तले दैत्यपतेः केसरे नगरोत्तमम्। सुपर्वणः पुलोम्नश्च नगरं महिषस्य च॥३९॥
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं सुरोषस्य महात्मनरू। तत्रास्ते सुरमापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः॥४०॥
महेंद्रस्य सखा श्रीमान्वासुकिनाम नागराट्। एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्॥४१॥
षष्ठे तलेऽस्मिन्विख्याते शिलाभौमे रसातले। सप्तमे तु तले ज्ञेयं पाताले सर्वपश्चिमे॥४२॥
पुरं बले प्रमुदितं नरनारी राणाकुलम्। असुराशीविषेपूर्णं सुखितैः देवशत्रुभिः॥४३॥
मुचुकुन्दस्य दैत्यस्य तत्रैव नगरं महत्। अनेकैर्दितिपुत्राणां समुदीर्मैर्महापुरैः॥४४॥
तथैव नागनगरैर्द्युतिमद्भिः सहस्रशः। दैत्यानां दानवानां च समुदीर्णैर्महापुरैः॥४५॥
उदीर्णै राक्षसावासैरनेकैश्च समाकुलम्। पातालान्ते च विप्रेन्द्रा विस्तीण बहुयोजने॥४६॥
आस्ते रक्तारविंदाक्षो महात्मा ह्यजरामरः। धौतशंखोदरवपुर्नील वासा महाबलः॥४७॥
विशालभोगो द्युतिमांशचित्रमाल्यधरो बली। रुक्मशृङ्गावदातेन दीप्तास्येन विराजता॥४८॥

प्रभुर्मुख सहस्रेण शोभते चैककुण्डली।
स जिह्वामालया दीप्तो लोलज्ज्वालानलार्चिषा॥४९॥

ज्वालामालापरिक्षिप्तः कैलास इव लक्ष्यते। स तु नेत्रसहस्रेण द्विगुणेन विराजता॥५०॥

भूमि पर बहुत योजन विस्तार वाला दैत्यसिंह बुद्धिमान् विरोचन का नगर है।।३५।। तथा वैद्युत अग्निजिह्व और हिरण्याक्ष के घर हैं और विद्वान् राक्षसेन्द्र विद्युज्जिह्व का नगर है।।३६।। और सहामेघ और राक्षसेन्द्र माली का नगर है तथा किर्मीर, नाग, स्वास्तिक और जय का नगर है।।३७।। इस प्रकार इस शर्करा मिट्टी की भूमि वाले पंचमतल पर सदा नागदानव और राक्षसों के हजारों नगर है।।३८।। इस छठे तल पर दैत्यपति केसर का उत्तम नगर है। सुपर्वा, पुलोमा, और महिष का नगर है।।३९।। महात्मा राक्षसेन्द्र सुरोप का नगर है, वहाँ पर आनन्द से युक्त सुरमापुत्र शतशीर्ष बैठते हैं।।४०।। वहाँ महेन्द्र के मित्र श्रीमान् वासुकि नाम के नागराज हैं।। इस प्रकार इस विख्यात शिलाभूमि वाले छठे रसातल पर हजारों नाग दानव राक्षसों के नगर हैं।।४१-४१½।।

सातवें सबसे पश्चिम पाताल में राजा बलि का नर नारियों से भरा हुआ नगर है। यह असुरों तथा नागों से पूर्ण उत्कट देवशत्रुओं से व्याप्त है।।४१½-४३।। वहीं पर मुचुकुन्द दैत्य का महानगर है। यह तल दितिपुत्रों के अनेकानेक विशाल पुरों तथा धनसम्पन्न हजारों द्युतिमान् नागनगरों से तथा दैत्यों दानवों के बड़े बड़े महापुरों से और राक्षसों के अनेकों विशालभवनों से भरा पड़ा है।।४४-४५½।। हे विप्रेन्द्रो! वहाँ पर पाताल के अन्त में लाल कमल के समान आँखों वाले अजर और अमर सफेद शंख के उदर के समान शरीर वाले, नील वस्त्र वाले, महाबलवान् विशालभोग वाले द्युतिमान् विचित्र माला को धारण करने वाले ये विशाल भुजा वाले और विशाल शरीर वाले नागाधिराज शेषनाग हैं। ये स्वर्ण शिखरमय प्रदीप्तमुख से विराजित हैं। हजारों मुखों की इनकी एक कुण्डली शोभित होती है। वे चमकती

बालसूर्याभिताम्रेण शरीरस्निग्धपांडुना। तस्य कुंदेंदुवर्णस्य नेत्रमाला विराजते॥५१॥
तरुणादित्यमालेव श्वेतपर्वतमूर्द्धनि। विकरालोच्छ्रिततनुर्लक्ष्यते शयनासने॥५२॥
विस्तीर्ण इव मेदिन्यां सहस्त्रशि खरो गिरिः। महानागैर्महाभोगैर्महाविज्ञैर्महात्मभिः॥५३॥
उपास्यते महातेजा महानागपतिः स्वयम्। स राजा सर्वनागानां शेषोऽनंतो महाद्युतिः॥५४॥
सा वैष्णवी व्यवहृतिर्मर्यादा या व्यवस्थिता। सप्तैवमेते कथिता व्यवहार्या रसातलाः॥५५॥
देवासुरमहानागराक्षसाध्युषिताः सदा। अतः परमनालोकमगम्यं सिद्धसाधुभिः॥५६॥
देवानामप्यविदितं व्यवहारविवक्षया। पृथ्व्यंबुवह्निवायूनां नभसश्च द्विजोत्तमाः॥५७॥
महत्त्वमृषिभिश्चैव वर्ण्यते नात्र संशयः। अत ऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि सूर्याचंद्रमसोर्गतिम्॥५८॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादेऽधोलोकवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः॥२०॥

हुई और जलती हुई अग्नि की लपट वाली लपलपाती हुई जीभों वाले हैं। वे ज्वालाओं से परिक्षिप्त कैलास पर्वत के समान दिखाई देते हैं तथा वे हजार शिरवाले एक सर में दो आंख के अनुसार दो हजार नेत्र वाले हैं।। चिकने शरीर से कुण्डली बनाये हुए नागराज बालसूर्य की भाँति ताम्रपूर्ण वाले अपने दो हजार नेत्रों से विराजमान हैं।।४५½-५०½।। कुन्द और इन्दु के समान उज्ज्वल नागराज के नयनों के पंक्ति श्वेत पर्वत के मस्तक पर तरुण सूर्य की पंक्ति के समान विराजती है। जिस समय वे शेषनाग सोते हैं। शयनासन पर शयन करने पर उनका शरीर विकराल और उठा हुआ दिखाई देता है, जिस प्रकार पृथ्वी पर हजारों शिखरों वाला पर्वत फैला हुआ रहता है। उसी प्रकार वे अपने हजारों फणों से प्रतीत होते हैं। ऐसे वे महान् तेजस्वी महानागपति शेषनाग महान् नागों, महान् सर्पों, महाविज्ञों और महापुरुषों द्वारा स्वयं उपासना किये जाते हैं। वे शेषनाग सभी नागों के राजा, शेष कभी अन्त न होने वाले महाकान्तिवान् हैं।।५२½-५४।।

वह वैष्णवी व्यवहार और मर्यादा है, जो यहाँ बतायी गयी है। इस प्रकार ये व्यवहार्य सात रसातल बताये गये। इन रसातलों में देवता, महानाग, राक्षस सदा निवास करते हैं। इससे आगे सिद्ध साधुओं द्वारा भी न देखे जाने वाला और पहुँचने वाला स्थान है। जो स्थान व्यवहार बताने की इच्छा रखने वाले देवताओं द्वारा भी अविदित हैं। अतः उस स्थान के व्यवहार के विषय में देवता भी नहीं जान सकते।।५५-५६½।। ब्राह्मणो! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का महत्त्व ऋषियों ने इस प्रकार ही बताया है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसके बाद हम सूर्य और चन्द्रमा की गति को बतायेंगे।।५६½-५८।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद बीसवां अध्याय अधोलोक वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

आदित्यव्यूहवर्णनं नाम

एकविंशोऽध्यायः

सूत उवाच

सूर्या चंद्रमसावेतौ भ्रमतो यावदेव तु। प्रकाशैस्तु प्रभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समुच्छ्रितौ॥१॥
सप्तानां तु समुद्राणां द्वीपानां स तु विस्तरः। विस्तरार्द्धे पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः॥२॥
पर्यासपरिमाणं तु चंद्रादित्यौ प्रकाशतः। पर्यास्तात्पारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम्॥३॥

अवति त्रीनिमाँल्लोकान् यस्मात्सूर्यः परिभ्रमन्।
अविधातुः प्रकाशाख्यो ह्यवनात्स रविः स्मृतः॥४॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चंद्रसूर्ययोः। महित्तत्त्वान्महीशब्दोऽह्यस्मिन्वर्षे निपाद्यते॥५॥
अस्य भारतवर्षस्य विष्कंभात्तुल्यविस्तृतम्। मंडलं भास्करस्याथ योजनानि निबोधत॥६॥
नवयोजनसाहस्त्रो विस्तारो भास्करस्य तु। विस्ताराात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहस्तु मंडले॥७॥

विष्कंभमंडलाच्चैव भास्कराद् द्विगुणः शशी।
अथ पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः सह॥८॥

सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मंडलं च यत्। इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः॥९॥

तद्वक्ष्यामि समाख्याय सांप्रतैरभिमानिभिः।
अभिमानिनो व्यतीता ये तुल्यास्ते सांप्रतैस्त्विह॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-२१

आदित्य व्यूह वर्णन

मण्डलों से उठे हुए ये सूर्य और चन्द्रमा अपनी किरणों के प्रकाशों द्वारा जितना ही भ्रमण करते हैं, वही सात द्वीपों और सात समुद्रों का विस्तार है।।१-२।। सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी के बाहरी भाग से परिमाण में प्रकाश करते हैं। यह आकाशमण्डल भूमि की परिधि के नाप के बराबर है।।३।। यह सूर्य भ्रमण करते हुए तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं, इसीलिये 'अवि' प्रकाश अर्थ वाली धातु से प्रकाशित करने के कारण वे 'रवि' कहे जाते हैं।।४।। इसके बाद मैं चन्द्र और सूर्य का प्रमाण बताऊँगा। इस भारतवर्ष में मही शब्द 'महित्वात्' अर्थात् पूज्यत्व के कारण निपातन से सिद्ध हुआ है।।५।। इस भारतवर्ष का सूर्य के मण्डल के समान विस्तार है। सूर्य का मण्डल (घेरा) योजनों समझिये।।६।। ९० हजार योजन सूर्य का विस्तार है। विस्तारसे तीन गुना मण्डल इनकी परिधि का विस्तार है।।७।। सूर्य विष्कम्भ से चन्द्रमा का विस्तार दुगुना है। अब मैं योजनों के द्वारा पृथिवी का प्रमाण बताऊँगा।।८।।

सात द्वीप और सात समुद्रों वाली पृथ्वी का जो विस्तार और मण्डल (घेरा) है। पुराण में माप के अनुसार यहाँ यह संख्या बतायी है। वर्तमान अभिमानी देवताओं द्वारा गणना किया गया या पुराण प्रतिपादित जो परिमाण है,

देवा ये वै व्यतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च। तस्मात्तु सांप्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम्॥११॥
दिवस्तु सन्निवेशं वै सांप्रतैरेव कृत्स्नशः। शतार्द्धकोटिविस्तारापृथिवी कृत्स्नशः स्मृता॥१२॥
तस्या अर्द्धप्रमाणेन मेरोर्यावत्तु संस्थितिः। पृथिव्या ह्यर्द्धविस्तारो योजनाग्रात्प्रकीर्तितः॥१३॥
मेरोर्मध्यात्प्रतिदिशं कोटिरेका तु सा स्मृता। तथा शतसहस्राणामेकोन नवतिः पुनः॥१४॥

पंचाशत्तु सहस्राणि पृथिव्यर्द्धस्य मंडलम्।
गणितं योजनाग्रात्तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः॥१५॥

तथा शतसहस्राणि सप्तत्रिंशाधिकानि तु। इत्येतदिह संख्यातं पृथिव्यंतस्य मंडलम्॥१६॥
तारकासंनिवेशस्य दिवि यावच्च मंडलम्। पर्याससन्निवेशश्च भूमेर्यावत्तु मंडलम्॥१७॥
पर्यासपरिमाणेन भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम्। सप्तानामपि द्वीपानामेतत्स्थानं प्रकीर्तितम्॥१८॥
पर्यासपरिमाणेन मंडलानुगतेन च। उपर्युपरि लोकानां छत्रवत्परिमंडलम्॥१९॥
संस्थितिर्विहिता सर्वा येषु तिष्ठंति जंतवः। एतदंडकपालस्य प्रमाणं परिकीर्त्तितम्॥२०॥

अंडस्यांतस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी।
भूर्लोकश्च भुवर्ल्लोकस्तृतीयस्सुरिति स्स्वतः॥२१॥
महर्ल्लोको जनश्चैव तपः सत्यं च सप्तमम्।
एते सप्त कृता लोकाश्छत्राकारा व्यवस्थिताः॥२२॥

उसे ही मैं बता रहा हूँ। जो अभिमानी देवगण बीत चुके थे, वे सभी इस समय के देवताओं के ही समान हैं।।९-१०।। जो देव भूतकाल में थे, उन्हीं के रूप और नामों से मैं इस समय के देवों द्वारा बताये अनुसार भूमण्डल का वर्णन करूँगा।।११।। स्वर्ग का सन्निवेश निश्चित ही इस समय के ही समान है। ५० करोड़ योजन समस्त पृथ्वी का विस्तार बताया गया है। उसके आधे प्रमाण से आधे तक मेरु की स्थिति है।।१२½।। पृथिवी का जो आधा विस्तार है, वह मेरु के एक योजन बाद कहा गया है। मेरु के मध्य बिन्दु से प्रत्येक दिशाकी ओर एक कोटि (एक करोड़) पृथ्वी बतायी गयी है। एक लाख नवासी फिर और जोड़िये उसके बाद पचास हजार योजन मिलाकर कुल एक करोड़ एक लाख पचास हजार नवासी हुए। इस प्रकार १०१५००८९ योजन हुए। अतः पृथ्वी का अर्ध विस्तार १०१५००८९ योजन है।।१४½।। पृथ्वी के अन्त तक का मण्डल घेरा (वृत्त) योजन के आगे ग्यारहे करोड़ कहा गया तथा शतसहस्र एक लाख हुआ फिर सप्तत्रिंशत् से तीस कुल मिलाकर ग्यारह करोड़ एक लाख सैंतीस ११०१०००३७ योजन पृथ्वी की अन्तिम परिधि है। अर्थात् पृथ्वी का पूरा घेरा उपर्युक्त संख्या का है।।१४½-१६।। आकाश में जहाँ तक तारागण और उनका मण्डल है, पृथ्वी के सन्निवेश का मण्डल उतना ही है। भूमि के विस्तार परिमाण के अनुसार ही आकाश का भी परिमाण है। सातों लोकों का ऐसा ही मान कहा गया है।।१६-१८।। पर्यास[1] नाप के अनुसार मण्डलानुक्रम से सातों लोक छत्र की तरह ऊपर ऊपर घेरे हुए हैं।।१९।।

यह उन लोकों की संस्थिति बतायी गयी है, जिनमें कि प्राणी रहते हैं। इस प्रकार यह अण्डकपाल का परिमाण बताया गया है।।२०।। उस अण्डकपाल (ब्रह्माण्ड) के अन्तर्गत ही ये सब लोक हैं और सात द्वीप वाली पृथ्वी हैं। वे सात लोक हैं—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक। ये सातों लोक छत्र

१. पर्यास का अर्थ इधर उधर चारों ओर का घेरा ही होगा।

स्वकैरावरणैः सूक्ष्मैर्धार्यमाणाः पृथक्पृथक्।
दशभागाधिकाभिश्च ताभिः प्रकृतिभिर्बहिः॥२३॥
पूर्यमाणा विशेषैश्च समुत्पन्नैः परस्परात्। अस्यांडस्य समंताच्च सन्निविष्टो घनोदधिः॥२४॥
पृथिव्या मंडलं कृत्स्नं घनतोयेन धार्यते। घनोदधिः परेणाथ धार्य्यते घनतेजसा॥२५॥
बाह्यतो घनतेजश्च तिर्य्यगूर्द्धं तु मंडलम्। संमतादूघनवातेन धार्यमाणं प्रतिष्ठितम्॥२६॥
घनवातं तथाकाशमाकाशं च महात्मना। भूतादिना वृतं सर्वं भूतादिर्महता वृतः॥२७॥
वृतो महाननंतेन प्रधानेनाव्ययात्मना। पुराणि लोकपालानां प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम्॥२८॥
ज्योतिर्गुणप्रचारस्य प्रमाणपरिसिद्धये। मेरोः प्राच्यां दिशि तथा मानसस्यैव मूर्द्धनि॥२९॥
वस्वौकसारा माहेंद्री पुरी हेमपरिष्कृता। दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्द्धनि॥३०॥
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे। प्रतीच्यां तु नुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्द्धनि॥३१॥
सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः। वरुणो यादसां नाथस्सुखाख्ये वसते पुरे॥३२॥
दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि। तुल्या महेंद्रपुर्य्यास्तु सोमस्यापि विभावरी॥३३॥
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम्। स्थिता धर्मव्यवस्यार्थं लोकसंरक्षणाय च॥३४॥
लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने। काष्ठागतस्य सूर्यस्य गतिया तां निबोधत॥३५॥
दक्षिणोऽपक्रमे सूर्य्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति। ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति॥३६॥

(छाते) के आकार के रूप में स्थित हैं।।२१-२२।। ये सातों लोक अपने सूक्ष्म आवरणों से एक-दूसरे से बंधे अलग-अलग स्थित हैं। ये सब आवरण दश गुने अधिक उन प्रकृतियों वाले विशेषों से समुत्पन्न परस्पर धारण करते हुए तथा परस्पर एक-दूसरे को पूर्ण करते हुए स्थित हैं। इस अण्ड के चारों ओर घनीभूत समुद्र है।।२३-२४।। पृथिवी पर समस्त मण्डल सघन जल द्वारा धारण किया गया है। इसके बाद सघन समुद्र सघन तेज (अग्नि) के द्वारा धारण किया जाता है।।२५।। बाहर से सघन तेज (अग्नि) तिरछे और ऊपर अर्थात् ऊपर नीचे, आगे पीछे सर्वत्र चारों ओर सघन वायु द्वारा धारण किये जाता हुआ अधिष्ठित है।।२६।। सघनवायु मण्डल को आकाश धारण किये हुए स्थित है और आकाश महात्मा पञ्चमहाभूतों से आवृत है और सब भूतादि महत्तत्त्व से आवृत हैं।।२७।। यह महत्तत्त्व जिसका कभी अन्त नहीं होता न जिसका कभी व्यय होता है, इस प्रकार का महतत्त्व प्रधान तत्त्व प्रकृति द्वारा आवृत हैं।।२७½।।

सूत जी बोले— अब मैं क्रमानुसार ज्योतिष के गुण प्रचार की सिद्धि के लिये लोकपाल के नगरों का वर्णन करूँगा।।२८½।। मेरु (पामीर के पठार) से पूर्व दिशा में तथा मानस के शिखर पर स्वर्ण से परिष्कृत धनधान्य से भरी हुई महेन्द्र की पुरी है।।२९½।। फिर मेरु के दक्षिण में मानस के शिखर पर संयमपुर में वैवस्वत यम निवास करते हैं।।३०½।। फिर मेरु के पश्चिम में मानस के शिखर पर बुद्धिमान् वरुण की सुखा नाम की रम्या पुरी है। जिस सुख नाम के पुर में यक्षों के स्वामी (राजा) वरुण निवास करते हैं।।३०½-३२।। मेरु की उत्तर दिशा में मानस के शिखर पर महेन्द्र की नगरी के समान सोम की विभावरी नाम की पुरी है।।३३।। मानस के उत्तर पृष्ठ पर धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा संसार का संरक्षण करने के लिये चारों दिशाओं में लोकपाल स्थित हैं।।३४।। लोकपालों के ऊपर रहने वाले सूर्य के दक्षिणायन हो जाने पर काष्ठागत (उस दिशा में गये हुए) सूर्य की जो गति है, उसको सुनिये।।३५।। दक्षिण दिशा में गये हुए सूर्य फेंके गये वाण की तरह चलते हैं। वे ज्योतिषचक्र को लेकर

मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः। वैवस्वते संयमते उदयस्तत्र दृश्यते॥३७॥
सुखायामर्द्धरात्रं स्याद्विभायामस्तमेति च। वैवस्वते संयमने मध्यगः स्याद्रविर्यदा।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन्स तु दृश्यते॥३८॥
विभायामर्द्धरात्रं स्यान्माहेंद्यामस्तमेति च। यदा दक्षिणपूर्वेषामपराह्णो विधीयते॥३९॥
दक्षिणापरदेश्यानां पूर्वाह्णः परिकीर्त्तिः। तेषामपररात्रश्च ये जना उत्तराः परे॥४०॥
देशा उत्तरपूर्वा ये पूर्वरात्रस्तु तान्प्रति। एवमेवोत्तरेष्वर्को भुवनेषु विराजते॥४१॥
सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने चार्यमा यदा।
विभायां सोमपुर्यां वा उत्तिष्ठति विभावसुः॥४२॥
रात्र्यर्द्धं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य च। सोमपुर्यां विभायां तु मध्याह्ने स्याद्दिवाकरः॥४३॥
महेंद्रस्यामरावत्यां सूर्य उत्तिष्ठते तदा। अर्द्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च॥४४॥
स शीघ्रमेव पर्येति भास्करोऽलातचक्रवत्। भ्रमन्वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः॥४५॥
एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणां तेन सर्पति। उदयास्तमने चासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः॥४६॥
पूर्वाह्ने चापराह्ने च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः। तपत्यर्कश्च मध्याह्ने तैरेव च स्वरश्मिभिः॥४७॥
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नं तपन्रविः। अतः परं ह्रसंतीभिर्गोभिरस्तं निगच्छति॥४८॥

निरन्तर चलते रहते हैं।।३६।। जब सूर्य अमरावती के मध्य चलते हैं, तब यमराज के संयमनपुर में सूर्योदय दिखायी देता है।।३७।। जब सूर्य सुखा नामक पुरी में आ जाते हैं, तब वहां आधी रात हो जाती है और विभावरी में जब आते हैं, तव वे अस्त हो जाते हैं।।३८।। वैवस्वत यम के संयम पुर के बीचोबीच जब सूर्य होते हैं, तब इसी कारण की सुखा नामक पुरी में उठते हुए दिखाई देते हैं।।३८।।

विभावरी में अर्धरात्रि हो जाती है और माहेन्द्री (इन्द्रपुरी) में अस्त हो जाते हैं। जब दक्षिणपूर्व के देशों में अपराह्ण हो जाता है तथा दक्षिण के अपर देशों में पूर्वाह्ण हो जाता है। जो लोग उत्तर पथ में निवास करते हैं, उनके लिये यह अपर रात्रि का समय होता है।।३९-४०।। जो देश उत्तरपूर्व में हैं, वहाँ पर उनके लिये वह आधी रात के पूर्व का समय होता है। इस प्रकार उत्तर में रहने पर सूर्य भुवनों में विराजते हैं।।४१।। इसके बाद जब सूर्य वरुण की सुखा नामक पुरी में आ जाते हैं, तब मध्याह्न होता है, वह सोम की पुरी विभावरी में होते हैं, तो वहां से उठते हुए दिखाई देते हैं।।४२।।

आधी रात को अमरावती में रहने पर तथा यम की नगरी में अस्त हो जाते हैं। सोम की पुरी विभावरी में रहने पर मध्याह्नकाल होता है।।४३।। महेन्द्र की अमरावती में जब सूर्य उठते हैं, तब यम की संयमनपुरी में आधी रात तथा वारुणी में अस्त हो जाते हैं।।४४।। जब सूर्य शीघ्र भ्रमण करते हैं, तब वे आग के गोले की तरह प्रतीत होते हैं। तब भ्रमण करते हुए सूर्य के साथ भ्रमण करते हुए नक्षत्र भी चलते हैं।।४५।। इस प्रकार चारों दिशाओं में दक्षिणा करते हुए वे घूमते हैं, उदय और अस्त होते रहते हैं और पुनः पुनः उठते हैं।।४६।। पूर्वाह्ण और अपराह्ण दो दो सूर्य के देवालय हैं। वे मध्याह्न में अपनी उन किरणों से तपाते हैं।।४७।। उदित होकर मध्याह्न तक बढ़ते हुए सूर्य मध्याह्न में पूरी तरह तपाते हैं, इसके बाद घटती हुई अपनी किरणों के साथ निकल जाते हैं, नीचे चले जाते हैं।।४८।।

उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे दिशौ। यावत्पुरस्तात्तपति तावत्पृष्ठेऽथ पार्श्वयोः॥४९॥
यत्रोद्यन्दृश्यते सूर्यस्तेषां स उदयः स्मृतः। प्रणाशं गच्छते यत्र तेषामस्तः स उच्यते॥५०॥
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकश्च दक्षिणे। विदूरभावादर्कस्य भूमिलेखावृतस्य च॥५१॥
लीयन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते। ग्रहनक्षत्रसोमानां दर्शनं भास्करस्य च॥५२॥
उच्छ्रयस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमथोदयम्।
शुक्लच्छायोऽग्निरापश्च कृष्णाच्छाया च मेदिनी॥५३॥
विदूरभावादर्कस्य ह्युद्यतोऽपि विरश्मिता। रक्तभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णता॥५४॥
लेखायामास्थितः सूर्यो यत्र यत्र च दृश्यते। ऊर्ध्वं शतसहस्रं तु योजनानां स दृश्यते॥५५॥
प्रभा हि सौरी पादेन ह्यस्तं गच्छति भास्करे। अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशते॥५६॥
उदिते हि पुनः सूर्ये ह्यौष्ण्यमाग्नेयमाविशेत्। संयुक्तो वह्निना सूर्यस्तपते तु ततो दिवा॥५७॥
प्राकाश्यं च तथौष्ण्यं च सौराग्नेये च तेजसी। परस्परानुप्रवेशाद्दीप्येते तु दिवानिशम्॥५८॥
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा तस्मिंश्च दक्षिणे। उत्तिष्ठति तथा सूर्ये रात्रिराविशतित्वपः॥५९॥

उदय और अस्त से ही पूर्व और पश्चिम दिशाओं का ज्ञान होता है। जितना सूर्य सामने तपते हैं, उतना ही पीछे भी तपते हैं अर्थात् जहाँ जिसके सामने होते हैं, वहाँ तपाते हैं, फिर धीरे-धीरे जिस-जिस देश स्थान के सामने जाते हैं, वहाँ भी तपाते चले जाते हैं।४९।। जहाँ पर सूर्य उठते हुए दिखाई देते हैं, वहाँ उनके उदय का (प्रातःकाल) कहा जाता है तथा पर सूर्य प्रणाश (नष्टव) को प्राप्त करते हैं। वहीं उनका अस्त कहा जाता है।।५०।। बहुत दूर होने के कारण भूरेखा से आवृत सूर्य के उत्तर में मेरु है तथा लोक और अलोक दक्षिण में हैं। अर्थात् सूर्य ने जो पृथ्वी के बीच में रेखा खींच दी है, उसके उत्तर में केवल मेरु है तथा दक्षिण में सब लोक अलोक है। अतः उत्तर में केवल मेरु को लेकर तो सब दक्षिण में माने ही जा सकते हैं; क्योंकि मेरु का उत्तरान्त, रेखा का दक्षिण हो ही गया, वहीं तो सब देश ही है।।५१।।

जिस कारण से किरणें विलीन हो जाती है, उसी कारण से वहाँ रात्रि हो जाती है। रात में सूर्य की किरणें लीन होने के कारण दिखाई नहीं देतीं। ग्रह नक्षत्र चन्द्रमा और सूर्य का उदय और अस्त बहुत ऊँचे स्थान से जाना गया है।।५२-५२½।। अग्नि और जल की छाया शुक्लवर्ण की होती है और पृथ्वी की छाया कृष्ण वर्ण की है।। जब सूर्य बहुत दूर होते हैं, तब उदयकाल में सूर्य के दूर होने के कारण किरणें क्षीण होती हैं। ऐसा लगता है कि मानो सूर्य विना किरण वाले हैं, उस समय सूर्य लाल वर्ण के हो जाते हैं तथा लाल हो जाने के कारण उनमें उष्णता भी नहीं रहती।।५२½-५४।। अपनी रेखा पर स्थित सूर्य जहाँ जहाँ दिखाई देते हैं, वहाँ से हजार योजन ऊपर दिखायी देते हैं।।५५।। सूर्य के अस्त हो जाने पर उनकी प्रभा (कान्ति) रात्रिकाल में अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है; इसलिए रात्रि के समय अग्नि दूर से दिखाई देती है।।५६।। सूर्य के पुनः उदित होने पर अग्नि की उष्णता सूर्य में प्रविष्ट हो जाती है। इसलिये अग्नि से संयुक्त सूर्य दिन में बहुत अधिक तपाते हैं (गर्म हो जाते हैं)। प्रकाशित करना और गर्म करना ये दोनों ही सूर्य और अग्नि के तेज हैं। अर्थात् सूर्य का तेज है—प्रकाशित करना तथा अग्नि का तेज है—गर्म करना है। अतः ये दोनों तेज एक दूसरे में प्रवेश कर दिन और रात के रूप में प्रजा का पालन करते हैं।।५७-५८।। भूमि के अर्धभाग से सूर्य के उत्तर अथवा दक्षिण में रहने पर, जब सूर्योदय होता है, तब रात्रि जल में प्रवेश कर जाती

तस्माच्छीता भवंत्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात्। अस्तं याति पुनः सूर्ये दिनमाविशते त्वपः॥६०॥
तस्मादुष्णा भवंत्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात्। एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे॥६१॥
उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्रं विशत्यपः। दिनं सूर्यप्रकाशाख्यं तामसी रात्रिरुच्यते॥६२॥
तस्माद्व्यवस्थिता रात्रिः सूर्यापेक्षमहः स्मृतम्। एवं पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्करः॥६३॥
अंशांशकं तु मेदिन्यां मुहूर्त्तेनैव गच्छति। योजनाग्रान्मुहूर्त्तस्य इह संख्यां निबोधत॥६४॥
पूर्णे शतसहस्राणामेकत्रिंशाधिकं स्मृतम्। पंचाशत्तु तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च॥६५॥
मौहूर्त्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते। एतेन गतियोगेन यदा काष्ठां तु दक्षिणाम्॥६६॥
पर्यागच्छेत्पतंगोऽसौ मध्ये काष्ठांतमेव हि। मध्येन पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने॥६७॥
मानसोत्तरशैले तु अंतरे विषुवं च तत्। सर्पते दक्षिणायां तु काष्ठायां वै निबोधते॥६८॥
नवकोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम्। तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पंच च॥६९॥
अहोरात्रात्पतंगस्य गतिरेषा विधीयते। दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः॥७०॥
क्षीरोदस्य समुद्रस्योत्तरतश्चाद्रितश्चरन्। मण्डलं विषुवत्तस्य योजनैस्तन्निबोधत॥७१॥
तिस्रः कोट्यस्तु संख्याता विषुवस्यापि मण्डलम्।
तथा शतसहस्राणामशीत्येकाधिका पुनः॥७२॥

है; इसलिये दिन में रात्रि के प्रवेश कर लेने के कारण जल शीतल हो जाता है और पुनः सूर्य के अस्त हो जाने पर दिन जल में प्रवेश कर जाता है। उस कारण से रात में दिन के प्रवेश हो जाने से जल उष्ण हो जाता है।।५९-६०½।। इस क्रमयोग से भूमि के दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध में सूर्य के उदय और अस्त होने पर दिन और रात जल में प्रवेश कर जाते हैं।।६०½-६१½।। यहाँ एक वैज्ञानिक कारण पर प्रकाश डाला गया है; क्योंकि दिन में जो सूर्य तपते हैं, उस समय समुद्रादि का पानी गर्म होता रहता है; परन्तु जब सूर्य छिप जाते हैं, तब सूर्य की उष्णता तो समाप्त हो जाती है; परन्तु जो सूर्य की गर्मी जल में समा गयी है, वह फिर रात में हवा द्वारा वातावरण को गर्म करती है। फिर जब तक उसकी गर्मी कम होती, तब तक सूर्य की गर्मी पुनः वातावरण में गर्म करने लगती है; परन्तु तब तक जो जल ठंडा हो चुका होता है, वह दिन में अपनी शीतलता से दिन की गर्मी को ठंडा करने लग जाता है। इस प्रकार वहां पर मौसम समान रहता है। सूर्य के प्रकाश से युक्त दिन होता है और अन्धकारमयी रात्रि होती है। अतः सूर्य के उदय और अस्त से ही दिन और रात की व्यवस्था होती है।।६१½-६२½।। इस प्रकार जब पुष्कर के मध्य से सूर्य गुजरते हैं, तब पृथ्वी के तीन अंश को वे एक मुहूर्त में ही पार कर जाते हैं। सूर्य एक मुहूर्त में जितने योजन जाते हैं, वह सुनिये।।६२½-६४।। एक लाख पचास हजार एकतीस योजन प्रतिमुहूत सूर्य चलते हैं।।६५।। यह सूर्य की मौहूर्तिकी गति बतायी गयी है। इस गतियोग से जब सूर्य दक्षिण दिशा को जाते हैं।।६६।। तब वे सूर्य दक्षिण दिशा के मध्य में गुजरते हुए जब दक्षिण दिशा के अन्त में पहुँचते हैं। तब पुष्कर के मध्य से चलते हुए दक्षिणायन में भ्रमण करते हैं।।६७।। उसके बाद मानस के उत्तर शैल पर और विषुवत् रेखा के अन्तर पर दक्षिण दिशा में चलते हैं, उसको सुनिये।।६८।। इस विषुवत् रेखा का घेरा नौ करोड़ एक लाख पैतालीस योजन है। सूर्य की दिन रात की गति यही बनायी गयी है।।६९-६९½।। दक्षिण दिशा से लौटे हुए सूर्य जब विषुवत् रेखा पर स्थित होते हैं, तब क्षीरोद समुद्र के उत्तर से पर्वत पर चलते हुये होते हैं, तब विषवत् मण्डल के योजनप्रमाण को सुनिये।।६९½-७१।। तीन करोड़

श्रवणे चोत्तराषाढे चित्रभानुर्यदा भवेत्। शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरातो दिशश्चरन्॥७३॥

उतरायाः प्रमाणं च काष्ठाया मण्डलस्य च।
योजनाग्रात्प्रसंख्याता कोटिरेका तु सा द्विजाः॥७४॥

अशीतिर्नियुतानीह योजनानां तथैव च। अष्टपंचाशतं चैव योजनान्यधिकानि तु॥७५॥
नागवीथ्युत्तरावीथी ह्यजवीथी च दक्षिणा। मूलं चैव तथाषाढे त्वजवीथ्युदयास्त्रयः॥७६॥
अश्विनी कृत्तिका याम्यं नागवीथ्युदयास्त्रयः। काष्ठयोरंतरं यच्च तद्वक्ष्ये योजनैः पुनः॥७७॥
एतच्छतसहस्त्राणामष्टाभिश्चोरुरं शतम्। त्रयः शताधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशच्च योजनैः॥७८॥
काष्ठयोरंतरं ह्येतद्योजनाग्रात्प्रकीर्तितम्। काष्ठयोर्लेखयोश्चैव ह्यंतरं दक्षिणोत्तरे॥७९॥
तेन्ववक्ष्ये प्रसंश्याय योजनैस्तन्निबोधत। एकैकमंतरं तस्य वियुतान्येकसप्ततिः॥८०॥

सहस्त्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्या पंचसप्ततिः।
लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यंतरयोः स्मृतम्॥८१॥

अभ्यंतरं तु पर्येति मंडलान्युत्तरायणे। बाह्यतो दक्षिणे चैव सततं तु यथाक्रमम्॥८२॥
मंडलानां शतं पूर्णं त्र्यशीत्यधिकमुत्तरम्। चरते दक्षिणे चापि तावदेव विभावसुः॥८३॥
प्रमाणं मण्डलस्याथ योजनाग्रं निबोधत। योजनानां सहस्त्राणि सप्तादश समासतः॥८४॥
शते द्वे पुनरप्यन्ये योजनानां प्रकीर्त्तिते। एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिकैर्हि ते॥८५॥

एक लाख अस्सी विषुवत् रेखा का मण्डल है। इस संख्या को तीन करोड़ इक्यासी लाख भी पढ़ा जा सकता है।।७१-७२।। श्रावण और उत्तराषाढ़ में जब सूर्य होवें, तब छठे शाकद्वीप के उत्तर दिशा में चलते हैं।।७३।। उस समय उत्तर दिशा के मण्डल (घेरा) का प्रमाण योजना में बताया गया है। वह एक करोड़ अस्सी नियुत (लाख) अट्ठावन योजन है।।७४-७५।। सूर्य की दो गतियां हैं। सूर्य दो मार्ग से जाते हैं। एक मार्ग का नाम है—नागवीथी और दूसरा—अजवीथी। इस प्रकार नागवीथी उत्तर वाला मार्ग है और अजवीथी दक्षिण मार्ग है। मूल, पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ़ नामक तीनों नक्षत्रों में जब सूर्य उदय होते हैं, तब उसका नाम अजवीथी रहता है, एवं अभिजित् से लेकर तीन नक्षत्रों अश्विनी, कृतिका और याम्य नक्षत्रों में नागवीथी होती है। दोनों दिशाओं के बीच में, जो प्रमाण है, वह योजनों द्वारा बताऊँगा।।७६-७७।।

वह आठ लाख तीन सौ तैंतीस योजन है।।७८।। दूसरी ओर दोनों दिशाओं के बीच का परिमाण जो योजन से बताया गया है, वह दोनों दिशाओं दक्षिण और उत्तर के बीच जो अन्तर है, उसकी योजनों से गणना कर बताऊँगा, उसे सुनिये।।७८-७९½।। इन दोनों दिशाओं का अन्तर सात करोड़ दश लाख एक हजार पचहत्तर योजन है। यह दोनों दिशाओं का रेखाओं का बाहरी और अन्दरुनी अन्तर बताया गया है। जब सूर्य उत्तर की ओर रहते हैं, तब वे भीतरी मण्डल में घूमते हैं और जब दक्षिण में रहते हैं, तब बाहरी मण्डल की परिक्रमा करते हैं।।७९½-८२।। इसी क्रम से सदा एक सौ अस्सी मण्डलों के भीतर बाहर घूमा करते हैं। दक्षिण दिशा में भी सूर्य इसी प्रकार चला करते हैं।।८२-८३।। यहाँ मण्डलों का परिमाण भी संक्षेप में योजनों में सुनिये। इस मण्डल का प्रमाण इक्कीस हजार दो सौ इक्कीस योजन कहा गया है।।८४-८५।।

एतत्प्रमाणमाख्यातं योजनैर्मंडलस्य च। विष्कंभो मंडलस्याथ तिर्यक् स तु विधीयते॥८६॥
प्रत्यहं चरते तानि सूर्यो वै मंडलक्रमात्। कुलालचक्रपर्यंतो यथा शीघ्रं निवर्त्तते॥८७॥
दक्षिणप्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं प्रवर्त्तते। तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति॥८८॥
सूर्यो द्वादशभिः शैघ्र्यान्मुहूर्तैर्दक्षिणायने। त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्ना तु चरते रविः॥८९॥
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन्। कुलालचक्रमध्ये तु यथा मंदं प्रसर्पति॥९०॥
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मंदविक्रमः। तस्माद्दीर्घेन कालेन भूमिं स्वल्पानि गच्छति॥९१॥
अष्टादश मुहूर्तं तु उत्तरायणपश्चिमम्। अहो भवति तच्चापि चरते मंदविक्रमः॥९२॥
त्रयोदशार्द्धं माह्नेन त्वृक्षाणां चरते रविः। मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्त द्वादशभिश्चरन्॥९३॥
ततो मन्दतरं नाभ्यांचक्रं भ्रमति वै यथा। मृत्पिंड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा॥९४॥
त्रिंशन्मुहूर्तानेवाहुरहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन्। उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मंडलानि तु॥९५॥
कुलालचक्रनाभिश्च यथा तत्रैव वर्त्तते। ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्त्तते॥९६॥
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मंडलानि सः। दिवानक्तं च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः॥९७॥

मण्डल का विष्कम्भ (ऊपरी धरातल) टेढ़ा है। सूर्य प्रतिदिन क्रमशः एक एक मण्डल में घूमते हुए विचरण करते हैं। कुम्भकार का चक्का जैसे-जैसे तेजी से घूम कर लौट आता है, उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिण में जाकर लौट आते हैं।।८६½-८७½।। सूर्य थोड़े ही समय अर्थात् बारह घड़ियों में उत्तम से उत्तम स्थानों में घूम जाते हैं। अतः दक्षिणायन में सूर्य मुहूर्तों में ही अपनी यात्रा पूरी कर अर्थात् दक्षिणायन सूर्य के होने पर दिन मुहूर्तों का ही होता है। वे दिन में साढ़े तेरह नक्षत्रों का भ्रमण कर लेते हैं। रात में सूर्य १८ मुहूर्तों में उतने ही नक्षत्रों का भ्रमण करते हैं।।८७½-८९½।। जिस प्रकार कुम्हार के चक्के का मध्यभाग धीरे-धीरे घूमता है, उसी प्रकार वे सूर्य उत्तरायण होने पर परमन्द पराक्रम वाले हो जाते हैं। उसी कारण वे दीर्घकाल में कम भूमि पर चलते हैं।।८९½-९१।। उस समय वे अठारह मुहूर्तों से ही पश्चिम दिशा का परिभ्रमण दिन में करते हैं। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि दक्षिणायन सूर्य होने पर वे दिन में १२ मुहूर्त में यात्रा पूरी करते हैं तथा उत्तरायण होने पर १८ मुहूर्त में यात्रा पूरी करते हैं। अतः दक्षिणायन अर्थात् जाड़े के दिनों में दिन १२ मुहूर्त का हुआ तथा उत्तरायण सूर्य होने पर अर्थात् गर्मी में दिन १८ मुहूर्त का हुआ तथा १ १/४ मुहूर्त का एक घण्टा होता है। १२ मुहूर्त का १२×४/५=४८/५। ९ घण्टा ३६ मिनट का सबसे छोटा दिन हुआ तथा उत्तरायण में १८ मुहुर्त १८×४/५=७२/५। १४ घण्टा २४ मिटन का दिन हुआ। अतः यह मान प्रायः सत्य ही है।

इसलिए उस तरह सूर्य के चलने पर दिन उनका कम पराक्रम वाला हो जाता है। उस समय भी सूर्य साढ़े तेरह नक्षत्रों का संचरण करते हैं। फिर रात में भी बारह मुहूर्तों से उतने ही नक्षत्रों का भ्रमण करते हैं।।९१-९३।। जिस प्रकार चक्र की नाभि के मध्य स्थित मिट्टी का पिण्ड धीरे धीरे घूमता है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड चक्र की नाभि के मध्य स्थित ध्रुव भी धीरे धीरे घूमता है।।९४।। ३० मुहूर्तों में दिन और रात भ्रमण करते हुए ध्रुव दोनों दिशाओं के मध्य मण्डलों का भ्रमण करते हैं।।९५।। अतः जैसे कुम्हार के चक्की की नाभि जैसी की तैसी तथा जहाँ पहले थी, वहीं बनी रहती है, उसी प्रकार ध्रुव को भी वहीं पर घूमते हुए जानना चाहिये।।९६।। दोनों दिशाओं के बीच

उत्तरप्रक्रमे चापि दिवा मंदा गतिस्तथा। तथैव च पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः॥९८॥
दक्षिणप्रक्रमेणैव दिवा शीघ्रं विधीयते। गतिः सूर्यस्य नक्त न मन्दा चैव गतिस्तथा॥९९॥
एवं गतिविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु। तदापि संचरन्मार्गं समेन विषमेण च॥१००॥
लोकालोकस्थिता ह्येते लोकपालाश्चतुर्दिशम्। अगस्त्यश्चरते तेषामुपरिष्टाज्जवेन तु॥१०१॥
भंजन्नसावहोरा त्रमेवं गतिविशेषणम्। दक्षिणे नागवीथ्यास्तु लोकालोकस्य चोत्तरे॥१०२॥
लोकसन्तानको ह्येष वैश्वानरपथाद्बहिः। पृष्ठे यावत्प्रभासौरी पुरस्तात्संप्रकाशते॥१०३॥
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव लोकालोकस्य वर्त्तते। योजनानां सहस्राणि दशकं तूच्छ्रितो गिरिः॥१०४॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च सर्वतः परिमंडलः। नक्षत्रचंद्रसूर्याश्च ग्रहैस्तारागणैः सह॥१०५॥
अभ्यंतरं प्रकाशंते लोकालाकस्य वै गिरेः। एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्ततः परम्॥१०६॥
लोकेनालोकवानेष निरालोकस्त्वलोकतः। लोकालोकं तु संधत्ते यस्मात्सूर्यपरिग्रहम्॥१०७॥

तस्मात्सन्ध्येति तामाहुरुषाव्युष्ट्योर्यदंतरम्।
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि त्वहः स्मृतम्॥१०८॥
सूर्याग्निग्रसमानानां संध्याकाले हि रक्षसाम्।
प्रजापतिनियोगेन शापस्त्वेषां दुरात्मनाम्॥१०९॥

मण्डलों में घूमते हुए सूर्य की गति दिन में मन्द और रात में तेज हो जाती है।।९७।। उत्तर की ओर सूर्य के चले जाने पर दिन में सूर्य की गति मन्द हो जाती है। उसी प्रकार फिर रात में सूर्य की गति शीघ्र (तेज) हो जाती है।।९८।। अर्थात् उत्तरायण होने पर सूर्य दिन में धीरे-धीरे चलते हैं। अतः दिन बड़े हो जाते हैं तथा रात में शीघ्र चलते हैं। इसलिये रात की यात्रा कम समय में पूरी कर लेने से रात छोटी होती है।। जब सूर्य दक्षिण में परिक्रमा करते हैं, तब दिन शीघ्र पूरा हो जाता है अर्थात् दिन में तेज चलकर यात्री पूरी कर लेते हैं तथा रात में सूर्य की गति मन्द हो जाती है। अतः रात को वे देर से यात्रा पूरी करते हैं। इसीलिये सूर्य के दक्षिण में होने पर दिन छोटे और रातें बड़ीं होती हैं।।९९।। इस प्रकार गतिविशेष से रात और दिन का विभाग करते हुए तभी सम और विषम मार्गों से संचरण करते रहते हैं।।१००।। लोक और अलोक में जितने भी हैं तथा चारों दिशाओं में जो लोकपाल हैं, उन सबके ऊपर से होकर वेगपूर्वक अगस्त्य चला करते हैं। वे अगस्त्य ही अपनी गतिविशेष से दिन और रात्रि का बँटवारा करते हैं।।१०१-१०१½।।

नागवीथी के दक्षिण में और लोकालोक के उत्तर में तथा वैश्वानर पथ के बाहर पीछे जितनी सूर्य की प्रभा चमकती है, उतनी ही लोकालोक के पीछे और पार्श्व में चमकतीहै।।१०१½-१०३½।। यह लोकालोक पर्वत एक हजार दश योजन ऊँचा है। यह एक ओर प्रकाशयुक्त और दूसरी ओर प्रकाशरहित एवं चारों ओर मण्डलाकार है।।१०३½-१०४½।। ग्रह और तारागणों के साथ नक्षत्र सूर्य और चन्द्रमा लोकालोक पर्वत के भीतर प्रकाश करते रहते हैं। इतना ही लोक है, उसके बाद निरालोक है।।१०४½-१०६।। लोक न दिखाई देने के कारण यह लोकवान् है नहीं दिखाई देने के कारण यह अलोक है। जिस कारण सूर्य भ्रमण करते हुए लोकालोक का सन्धान करते हैं, उसी कारण उषा और व्युष्टि का मध्य भाग विप्रों द्वारा सन्ध्या उषा को रात्रि और व्युष्टि को दिन कहा जाता है।।१०७-१०८।। सन्ध्याकाल में सूर्य और अग्नि को ग्रसने वाले दुष्ट राक्षसों को ब्रह्माजी ने शाप दे दिया था, जिससे उनकी

अक्षयत्वं तु देहस्य प्रापितामरणं तथा।
तिस्त्रः कोट्यस्तु विख्याता मंदेहा नाम राक्षसाः॥११०॥
प्रार्थयंति सहस्त्रांशमुदयन्तं दिनेदिने। तापयंतं दुरात्मानः सूर्यमिच्छंति खादितुम्॥१११॥
अथ सूर्यस्य तेषां च युद्धमासीत्सुदारुणम्।
ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमाः॥११२॥
संध्यां तु समुपासीनाः प्रक्षिपंति जलं सदा। ओंकारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमंत्रितम्॥११३॥
स्फूर्जज्ज्योतिश्च चंडांशुस्तथा दीप्यति भास्करः। ततः पुनर्महातेजा महाबलपराक्रमः॥११४॥
योजनानां सहस्त्राणि ऊर्द्धमुत्तिष्ठते शतम्। प्रयाति भगवानाशु ब्राह्मणैरभिरक्षितः॥
वालखिल्यैश्च मुनिभिर्धृतार्चिः समरीचिभिः॥११५॥
काष्ठा निमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठां गणयेत्कलां तु।
त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्त्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते॥११६॥
ह्रासवृद्धी त्वहर्भागैर्दिवसानां यथाक्रमात्॥११७॥
संध्या मुहूर्त्तमात्रा तु ह्रासवृद्धिस्तु सा स्मृता। लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्त्तगते तु वै॥११८॥
प्रातस्ततः स्मृतः कालो भागश्चाह्नः स पञ्चमः।
तस्मात्प्रातस्तनात्कालात्त्रिमुहूर्त्तस्तु संगवः॥११९॥

उसी समय मृत्यु हो गयी।।१०९।। किन्तु उन राक्षसों की देहों ने अक्षय न होना और न मरना प्राप्त कर लिया अर्थात् वे सदा के लिये अमर हो गये। वे मन्देह नाम के राक्षस तीन करोड़ विख्यात हैं।।११०।। वे सब प्रतिदिन उदय होते हुए सूर्य पीड़ित करते हुए ही प्रार्थना करते हैं और तापित करते हुए सूर्य को खा जाना चाहते हैं।।१११।।

इस प्रकार सूर्य का और उनका दारुण युद्ध शुरू हो जाता है, तब ब्रह्मा, देवगण और श्रेष्ठ ब्राह्मण लोक सन्ध्या में सम्यक् रूप से उपासना में स्थित हो ॐ कार ब्रह्मयुक्त गायत्री मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित जल को सदा फेंकते हैं।। तब उन मन्त्रों के प्रभाव से स्फूर्ति और ज्योति प्राप्त कर सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों के साथ चमकने लग जाते हैं।।११२-११३½।। उसके बाद फिर महातेज और महाबल एवं पराक्रम वाले सूर्य एक लाख योजन ऊपर उठते हैं।।११३½-११४½।। इतना सब करने के बाद भगवान् ब्रह्मा ब्राह्मणों से अभिरक्षित हो बालखिल्य धृतार्चि और मरीचि आदि मुनियों के साथ चले जाते हैं।।११४½-११५।। अब समय की माप बताते हैं कि १५ निमेषों की एक काष्ठा होती है और ३० काष्ठा की एक कला गिननी चाहिये।। ३० कलाओं का एक मुहूर्त होना चाहिये और ३० मुहूर्तों का रात दिन होना चाहिये।।११६।। यथाक्रम दिनों का ह्रास और विकास होता रहता है; किन्तु सन्ध्या केवल एक मुहूर्त रहती है। दिन के कम बड़े या अधिक बड़े होने का प्रभाव सन्ध्या पर नहीं पड़ता, वह तो मात्र ४८ मिनट तक ही रहती है। सूर्योदय और सूर्यास्त का वह ४८ मिनट का समय सन्ध्या है।।११७-११७½।। सूर्य जब अपनी रेखा पर उदयकाल से तीन मुहूर्त (२ घं० २४ मिनट) तक चलते हैं, तब वह प्रातःकाल माना जाता है तथा वह दिन का पाँचवाँ भाग होता है।।११७½-११८½।। उस प्रातस्तन काल से तीन मुहूर्त तक अर्थात् सूर्योदय से ४ घं० ४८ मि० तक संगवकाल कहा जाता है तथा उस काल से ३ मुहूर्त बाद अर्थात् सूर्योदय के ७ घं० १२ मि० तक

मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तस्तु तस्मात्कालश्च संगवान्।
तस्मान्मध्यंदिनात्कालादपराह्न इति स्मृतः॥१२०॥
त्रय एव मुहूर्त्तास्तु कालभागः स्मृतो बुधैः। अपराह्ने व्यतीते तु कालः सायाह्न उच्यते॥१२१॥
दशपंच मूहूर्त्ताह्नो मुहूर्त्तास्त्रिय एव च। दशपंचमूहूर्त्तं वै ह्यहर्वैषुवतं स्मृतम्॥१२२॥
वर्द्धन्ते च ह्रसंते च ह्यने दक्षिणोत्तरे। अहस्तु ग्रस्ते रात्रिं रात्रिश्च ग्रसते त्वहः॥१२३॥
शरद्वसंतयोर्मध्यं विषवत्परिभाव्यते। अहोरात्रे कलाश्चैव समं सोमः समश्नुते॥१२४॥
तथा पंचदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते। द्वौ च पक्षौ भवेन्मासो द्वौ मासावर्कजावृतुः॥१२५॥
ऋतुत्रितयमयने द्वे हि वर्षं तु सौकरम्। निमेषा विद्युतश्चैव काष्ठास्ता दश पंच च॥१२६॥
कलास्तास्त्रिंशतः काष्ठा मात्राशीतिद्वयात्मिका।
सप्तैका द्व्यधिका त्रिंशन्मात्रा षट्त्रिंशदुत्तरा॥१२७॥
द्विषष्टिना त्रयोविंशन्मात्रायाश्च कला भवेत्।
चत्वारिंशत्सहस्राणि शतान्यष्टौ च विद्युतः॥१२८॥
सप्ततिश्चैव तत्रापि नवतिं विद्धि निश्चये। चत्वार्येव शतान्युर्विद्युते द्वे च संयुते॥१२९॥
वरांशो ह्येष विज्ञेयो नाडिका चात्र कारणम्। संवत्सरादयः पंच चतुर्मानविकल्पिताः॥१३०॥
निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते। संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः॥१३१॥
इडावत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः। पंचमो वत्सरस्तेषां कालस्तु युगसंहितः॥१३२॥

मध्याह्नकाल होता है।।११८½-११९½।। फिर उस मध्याह्न काल के बाद दिन में अपराह्न काल होता है। ये तीन ही मुहूर्त हैं। इस प्रकार विद्वानों ने दिन के समय का विभाजन किया है।।११९½-१२०½।। अपराह्न के व्यतीत हो जाने पर तो सायङ्काल कहा जाता है, यह सायाह्न (सायङ्काल) १५ मुहूर्त दिन बीतने के बाद ३ मुहूर्तों तक अर्थात् २ घं० २४ मि० तक सूर्यास्त से) सायाह्न होता है।।१२०½-१२१½।। जब सूर्य विषवुत् रेखा पर स्थित होते हैं, तब १५ मुहूर्त का दिन और १५ मुहूर्त की रात्रि होती है। दक्षिण और उत्तर अयनों में दिन रात बढ़ते और घटते रहते हैं। उन समयों में दिन रात्रि को ग्रस लेता है और रात्रि दिन को ग्रस लेती है।।१२१½-१२३।। शरद् ऋतु और बसन्त ऋतु के मध्य (२३ सितम्बर और २३ मार्च) सूर्य विषवत रेखा के मध्य होते हैं। उस समय दिन और रात की समान कला का पान चन्द्रमा करते हैं अर्थात् दिन रात बराबर हो जाते हैं।।१२४।।

१५ दिनों का एक पक्ष कहा जाता है। दो पक्ष का एक मास होता है तथा दो मास की सूर्य से उत्पन्न होने वाली ऋतु है अर्थात् दो माह की एक ऋतु होती है, जिसे सूर्य पैदा करते हैं।।१२५।। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है तथा दो अयन (दक्षिणायण और उत्तरायण) का एक वर्ष होताहै। वह भी सूर्य का वर्ष है।।१२५½।। निमेषों द्वारा काल विभाग इस प्रकार है—१५ निमेषों की एक काष्ठा होती है। ३० काष्ठाओं की एक कला तथा वयासी कलाओं की एक मात्रा होती है। ९९, ३६, बासठ और तेईस मात्राओं की एक कला होती है। चालीस हजार आठ सौ सत्तर या नब्बे मात्राओं की एक विद्युत होती है। चार सौ विद्युत परिमाण का एक वरांश यानालिका होती है।।१२५½-१२९½।। संवत्सर तो पांच प्रकार के हैं, उनका चार प्रकार का मान कहा गया है। सब काल का निश्चय युग ऐसा कहा जाता है। संवत्सर प्रथम पहला है, दूसरा परिवत्सर है। इडावत्सर तीसरा है और चौथा तो अनुवत्सर

त्रिंशच्छतं भवेत्पूर्णं पर्वणां तु रवेर्युगे। शतान्यष्टादश त्रिंशदुदयाद्भास्करस्य च॥१३३॥
ऋतवस्त्रिंशतः सौरादयनानि दशैव तु। पंच च त्रिशतं चापि षष्टिवर्षं च भास्करम्॥१३४॥
त्रिंशदेव त्वहोरात्रास्तैस्तु मासस्तु भास्करः। एकषष्टि त्वहोरात्रमृतुरेको विभाव्यते॥१३५॥
अह्नां तु त्र्यधिकाशीतिः शतं चाप्यधिकं भवेत्।
मानं तच्चित्रभानोस्तु विज्ञेयमयनस्य ह॥१३६॥
सौरं सौम्यं तु विज्ञेयं नाक्षत्रं सावनं तथा। मानान्येतानि चत्वारि यैः पुराणे हि निश्चयः॥१३७॥
यः श्वेतस्योत्तरश्चैव शृङ्गवान्नाम पर्व्वतः। त्रीणि तस्य तु शृंगाणि स्पृशंतीव नभस्तलम्॥१३८॥
तैश्चापि शृङ्गैस्स नगः शृंगवानिति कथ्यते। एकश्च मार्गविष्कंभविस्तारश्चास्य कीर्तितः॥१३९॥
तस्य वै पूर्वतः शृंगं मध्यमं तद्धिरण्मयम्। दक्षिणं राजतं चैव शृंगं तु स्फटिकप्रभम्॥१४०॥
सर्वरत्नमयं चैव शृंगमुत्तरमुत्तमम्। एवं कूटैस्त्रिभिः शैलः शृंगवानिति विश्रुतः॥१४१॥
यत्तद्वै पूर्वतः शृंगं तदर्कः प्रतिपद्यते। शरद्वसंतयोर्मध्ये मध्यमां गतिमास्थितः॥१४२॥
अतस्तुल्यमहोरात्रं करोति तिमिरापहः। हरिताश्च हया दिव्यास्तस्य युक्ता महारथे।
अनुलिप्ता इवाभांति पद्मरक्तैर्गभस्तिभिः॥१४३॥

है तथा पाँचवां तो उनमें वत्सर है, यही सब युग नाम का काल है।।१२९½-१३२।। तीस सौ[1] पर्वों के पूर्ण हो जाने पर एक सूर्य युग होता है। सूर्य के अड़तालीस बार उदय होने पर होता है।।१३३।। सूर्य के दश अयन तीस ऋतुओं के होते हैं। इस प्रकार के पैंतीस सौ अयनों के सूर्य के साथ महीने होते हैं।।१३४।।

सूर्य के एक महीने में ३० दिन-रात होते हैं। इस प्रकार के ६१ दिन रात का एक दनु होता है।।१३५।। भानु का भुवन घूमने का माप १८३ दिनों का है।।१३६।। सौर, सौम्य, नक्षत्र और सावन ये चार मान पुराणों में कहे गये हैं।।१३७।। जो श्वेत पर्वत के उत्तर में स्थित हैं। वह शृङ्गवान् नाम का पर्वत है, उसके तीन शृंग (शिखर) आकाशतल को स्पर्श कर रहे हैं।।१३८।। उन शृंगों के कारण वह पर्वत शृङ्गवान् कहा जाता है। इसका मार्ग विष्कम्भ विस्तार आदि पहले ही बताया जा चुका है।।१३९।।

उस पर्वत का पूर्व शिखर स्वर्णमय है और दक्षिण शृङ्ग रजत मय तथा संगमरमर के समान है।।१४०।। इस पर्वत का उत्तरशृंग सब उत्तम और रत्नमय हैं। इस प्रकार तीन कूट वाला पर्वत शृङ्गवान् कहा गया।।१४१।। जो उसका पूर्वशृङ्ग है। उस पर सूर्य भगवान् शरत् और वसन्त ऋतु के मध्य में मध्यगति से चलते हुए आनन्द लेते हैं।।१४२।। अतः उस समय दिन और रात बराबर कर देते हैं और अन्धकार को दूर कर देते हैं। सूर्य के महारथ में हरे रंग के दिव्य घोड़े जुते हुए हैं, जो पद्मरागमणियों की किरणों से अनुलिप्त की भाँति सुशोभित होते हैं।।१४३।।

---

१. ३० सौ के स्थान पर वायुपुराण में २० सौ कहा गया है। सप्तैका = ७ + १ = ८ द्वयधिका = दोधि = ८ + २ = १० त्रिंशत् = ३०। इस प्रकार ३० + १० = ४०।

श्लोक १२७ में सप्तैकाद्वयधिकात्रिंशन्मात्रा का ४० होना ही उचित है; परन्तु यह श्लोक या तो पाण्डुलिपि से सही रूप में नहीं लिया गया है अथवा लेखक की अज्ञानता का प्रतीक है। वायु पुराण में इसके स्थान पर ९९ की संख्या मानी गयी है तथा शब्दों में भी अन्तर है।

मेषान्ते च तुलान्ते च भास्करोदयतः स्मृताः। मुहूर्त्ता दश पंचैव अहो रात्रिश्च तावती॥१४४॥

कृत्तिकानां यदा सूर्यः प्रथमां शगतो भवेत्।
विशाखानां तदा ज्ञेयश्चतुर्थांशे निशाकरः॥१४५॥
विशाखानां यदा सूर्यश्चरतेंशं तृतीयकम्।
तदा चन्द्रं विजानीयात्कृत्तिकाशिरसि स्थितम्॥१४६॥
विषुवं तं विजानीयादेवमाहुर्महर्षयः॥१४७॥

सूर्येण विषुवं विद्यात्कालं सोमेन लक्षयेत्। समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवं भवेत्॥१४८॥
तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवेषु च। ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुखमेतत्तु दैवतम्॥१४९॥

ऊनमासाधिमासौ च कला काष्ठा मुहूर्त्तकाः।
पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा॥१५०॥
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात्।
नभोनभस्याविष[1]ऊर्जसंज्ञौ सहः सहस्याविति दक्षिणं स्यात्॥१५१॥
आर्तवाश्च ततो ज्ञेया पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः॥१५२॥
तस्माच्च ऋतवो ज्ञेया ऋतुभ्यो ह्यार्तवाः स्मृताः।
तस्मादृतुमुखी ज्ञेया अमावास्यास्य पर्वणः॥१५३॥

मेष राशि के अन्त मेंऔर तुला राशि के अन्त में सूर्य के पहुँचने पर दिन और रात पन्द्रह पन्द्रह मुहूर्त के ही होते हैं।।१४४।। जव सूर्य कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम चरण में होते हैं, तब चन्द्रमा को विशाखा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में समझना चाहिये।।१४५।। जब सूर्य विशाखा नक्षत्र के तृतीय अंश (चरण) में विचरण कर रहे होते हैं, तब चन्द्रमा को कृत्तिका के शिर पर स्थित समझना चाहिये। महर्षिगण इसी को विषुवकाल कहते हैं।।१४७।। सूर्य चन्द्रमा के द्वारा विषुवकाल को जानना चाहिये। उस समय दिन और रात्रि समान हो जाते हैं, वही समय विषुव होता है।।१४८।।

उस समय विषवों में पितरों के निमित्त विशेषतः ब्राह्मणों को दान देना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मण प्रमुख देवता होते हैं।।१४९।। कला काष्ठा और मुहूर्त की गणना के अनुसार ऊनमास (वर्ष में एक माह का कम होना) अधिमास (वर्ष में एक मास का बढ़ जाना) होता है। अनुमति और राका नाम की दो पूर्णिमा और सिनीवाली और कुहू नाम की दो अमावस्यायें समझनी चाहिये।।१५०।। माघ, फाल्गुन, चैत, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ ये माह उत्तरायण सूर्य के रहने पर होते हैं। एवं श्रावण, भादों, आश्विन (क्वार), कार्तिक, अगहन और पौष दक्षिणायन सूर्य के रहने पर होते हैं। इन्हीं बारह महीनों का एक संवत्सर होता है।।१५१।।

उसके बाद आर्तव समझना चाहिये। पाँच आब्द का एक ब्रह्मसुत या ब्रह्म तनय होता है।।१५२।। उस आर्तव से ऋतु ज्ञेय है; क्योंकि ऋतुओं से ही आर्तव कहा गया है; क्योंकि ऋतुयें इन्हीं से पैदा हुई हैं; इसलिये अमावस्या इस पर्व की ऋतुओं में प्रमुख समझनी चाहिये।।१५३।।

१. समासेऽप्यसन्धिरार्षः।

तस्मात्तु विषुवं ज्ञेयं पितृदेवहितं सदा। पर्व ज्ञात्वा न मुह्येत पित्र्ये दैवे च मानवः॥१५४॥
तस्मात्स्मृतं प्रजानां वै विषुवत्सर्वगं सदा।
आलोकात्तु स्मृतो लोकोलोकालोकः स उच्यते॥१५५॥
लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः।
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठंत्याभूतसंप्लवात्॥१५६॥
सुधामा चैव वैराजः कर्दमः शंखपास्तथा। हिरण्यरोमा पर्जन्यः केतुमान्राजसश्च यः॥१५७॥
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निःसीमा निष्परिग्रहाः।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम्॥१५८॥
उत्तरं यदपस्तस्य ह्यजवीथ्याश्च दक्षिणम्। पितृयानः स वै पंथा वैश्वानरपथाद्बहिः॥१५९॥
तत्रासते प्रजावन्तो मुनयो येऽग्निहोत्रिणः।
लोकस्य संतानकराः पितृयानपथे स्थिताः॥१६०॥
भूतारंभकृतं कर्म आशिषो ऋत्विगुद्यताः। प्रारभंते लोककामास्तेषां पंथाः स दक्षिणः॥१६१॥
चलितं ते पुनर्धर्मं स्थापयंति युगेयुगे। संतप्तास्तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च॥१६२॥
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेष्विह। पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्वपि॥१६३॥
एवमावर्त्तमानास्ते तिष्ठंत्याभूतसंप्लवात्। अष्टाशीतिसहस्त्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम्॥१६४॥
सवितुर्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचंद्रतारकम्। क्रियावतां प्रसंख्यैषा ये श्मशानानि भेज़िरे॥१६५॥

इसी प्रकार विषुव को पितरों और देवों के कार्य पूजा पाठ के लिये हितकर समझना चाहिये। अतः देव पितर सम्बन्धी कार्य पर्वमुख विषुव चैत्र तथा क्वार की अमावस्या को ही करना चाहिये। उसे पर्व जानकर मनुष्य, पितर और देवों को तर्पण कार्य में आलस्य नहीं करना चाहिये।। इस प्रकार सभी लोगों को यह सबको जानने योग्य रहस्य विषुवतत्त्व को जान लेना चाहिये।।१५४-१५४½।। आलोक (सूर्य का प्रकाश) जहाँ तक जाता है, वह लोक कहा गया है। जहाँ प्रकाश नहीं पहुँचता, वह अलोक कहा गया है तथा यह पर्वत है, जिसके एक तरफ प्रकाश रहता है, दूसरी तरफ अन्धकार रहता है।।१५५।। लोकालोक के मध्य लोकपालस्थित हैं, वे चार महात्मा प्रलयकाल तक रहते हैं।।१५६।। उनके नाम हैं—वैराज-सुधामा, शंखपा-कर्दम, हिरण्यरोमा पर्जन्य और केतुमान् राजस्।।१५७।। ये उपर्युक्त चारों लोकपाल वहाँ विना किसी विवाद, विना किसी अभिमान, विना किसी सीमा में तथा विना किसी का कुछ लेन-देन के साथ लोकालोक के चारों दिशायें में स्थित हैं।।१५८।।

अगस्त्य के उत्तर, अजवीथी के दक्षिण एवं वैश्वानर मार्ग के बाहर पितृयान मार्ग है।।१५९।। वहाँ उस पितृयान मार्ग में संसार को सन्तान पैदा करने वाले प्रजावान् अग्निहोत्र करने वाले ऋषिगण निवास क़रते हैं।।१६०।। वे सब दक्षिणपन्थी ऋषिगण लोक की कामना रखने वाले हैं तथा जो प्राणी किसी भी कामना से कर्मों को आरम्भ करते हैं, उन्हें आशीर्वाद देने के लिये तत्पर रहते हैं।।१६१।। वे सम्यक् प्रकार से तप किये हुए ऋषिगण, तप से, मर्यादाओं से और शास्त्रज्ञान से युग युग में विचलित धर्म की पुनः स्थापना करते हैं।।१६२।। इनके पूर्व में उत्पन्न हुए, जो है, उनका पश्चिम के गृहों में जन्म होता है और पश्चिमों का पूर्वों के घर में मरण होने पर जन्म होता है। इस प्रकार इनका जन्म-मरण चलता रहता है।।१६३।। इस प्रकार क्रमशः मरते हुये और जन्म लेते हुए ये सब प्रलयकाल तक वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार अट्ठासी हजार गृहस्थ ऋषिगणों की संख्या है।।१६४।। जो सब सूर्य

लोक संव्यवहाराश्च भूतारंभकृतेन च। इच्छाद्वेषप्रवृत्त्या च मैथुनोपगमेन वै॥१६६॥
तथा कामकृतेनेह सेवनाद्विषस्य च। एतैस्तैः कारणैः सिद्धा ये श्मशानानि भेजिरे॥१६७॥
प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे। नागवीथ्युत्तरो यश्च सप्तर्षिगणदक्षिणः॥१६८॥
उत्तरः सवितुः पंथा देवयानश्च स स्मृतः। यत्र ते वासिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः॥१६९॥
संततिं ते जुगुप्संते तस्मान्मृत्युस्तु तैर्जितः। अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्द्धरेतसाम्॥१७०॥
उदक्पंथानमत्यर्थं श्रिता ह्याश्रितसंप्लवात्। ते संप्रयोगाल्लोकस्य मैथुनस्य च वर्जनात्॥१७१॥
इच्छाद्वेषनिवृत्त्या च भूतारंभविवर्जनात्। पुनश्चाकामसंयोगाच्छब्दादेर्दोषदर्शनात्॥१७२॥
इत्येतैः कारणैः सिद्धास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे। आभूतसंप्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते॥१७३॥
त्रैलोक्यस्थितिकालाय पुनर्दाराभिगामिनाम्। भ्रूणहत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरे॥१७४॥
आभूतसंप्लवांते तु क्षीयं ते ह्यूर्ध्वरेतसः। ऊर्द्धोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र स वै स्मृतः॥१७५॥
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम्। यत्र गत्वा न शोचंति तद्विष्णोः परमं पदम्॥
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठंति यत्र ते लोकसाधकाः॥१७६॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे आदित्यव्यूहकीर्तनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः॥२१॥

के दक्षिण मार्ग का आश्रय लेकर चन्द्रमा और तारागणों तक रहते हैं। इन क्रियाशील ऋषियों की यह एक बड़ी संख्या ने श्मशान में आश्रय ग्रहण किया था।।१६५।। इन ऋषियों ने संसार में एक दूसरे के साथ उचित व्यवहार करते हुए प्राणियों की उत्पत्ति करने की दृष्टि से इच्छा, द्वेष की प्रकृति से, मैथुन के प्रति उपगम से तथा इस लोक में कामकृत विषय के सेवन से, इन कारणों से श्मशान का आश्रय लिया है। इन ऋषियों ने प्रजा की उत्पत्ति की कामना से द्वापर युग में जन्म लिया था।।१६६-१६७½।। नागवीथी के उत्तर में सप्तर्षिगण के दक्षिण में तथा सूर्य के उत्तर में जो मार्ग है, वह देवयान मार्ग कहलाता है। वहाँ वे रहने वाले सब सिद्ध पुरुष एवं विशुद्ध ब्रह्मचारी हैं। वे सब सन्तान उत्पत्ति की निन्दा करते हैं; इसलिए उन्होंने मृत्यु को जीत लिया है।।१६७½-१६९½।। इसके बाद अठासी ऊर्ध्वरिता ऋषिगण हैं, जो सूर्य के उत्तर मार्ग में प्रलयकाल तक रहते हैं। वे सब लोक-व्यवहार और मैथुन से रहित हैं। उनमें इच्छा और द्वेष की समाप्ति हो चुकी है तथा प्राणियों के आरम्भ काम से भी विरत हैं। वे इच्छापूर्ति करना भी नहीं चाहते तथा वेदादिशास्त्रों में दोष दर्शन से भी विरत हैं। इस प्रकार इन कारणों से उन सिद्ध ऊर्ध्वरिताओं ने अमृतत्व (अमरता) को प्राप्त कर लिया है तथा प्रलयकाल तक वे अमरत्व को प्राप्त करते रहते हैं।।१६९½-१७३।।

यहाँ इन प्रपंच में तीनों लोकों की स्थितिकाल को संचालन के लिये पुनः पुनः पत्नी से सम्भोग करने वाले भ्रूणहत्या और अश्वमेध आदि करने वाले पाप पुण्य करने वाले तथा ऊधर्वरिता आदि सभी प्रकार के लोग प्रलयकाल तक रहते हैं, इसके बाद उन सबका नाश हो जाता है।।१७४-१७४½।। सप्तर्षिमण्डल के ऊपर ध्रुव तक आकाश में चमकता हुआ यह दिव्य विष्णुपद है। जहाँ जाकर लोग शोक नहीं करते हैं; क्योंकि वह विष्णु का परमपद है। धर्म और ध्रुव आदि जो लोक-व्यवहार के साधक हैं, वे सब यहीं पर स्थित है।।१७५-१७६।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद इक्कीसवां अध्याय आदित्यव्यूह वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

देवग्रहानुकीर्तनं नाम

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

स्वायंभुवनिसर्गे तु व्याख्यातान्यंतराणि च।
भविष्याणि च सर्वाणि तेषां वक्ष्याम्यनुक्रमम्॥१॥

एतच्छ्रुत्वा तु मुनः पप्रच्छू रोमहर्षणम्। सूर्याचंद्रमसोश्चारं ग्रहाणां चैव सर्वशः॥२॥

ऋषय ऊचुः

भ्रमंति कथमेतानि ज्योतींषि दिवमंडलम्। अव्यूहेन च सर्वाणि तथैवासंकरेण वा॥३॥
कश्चिमद्भ्रामयते तानि भ्रमंते यदि वा स्वयम्। एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम॥४॥

सूत उवाच

भूतसंमोहनं ह्येतद्वदतो मे निबोधत। प्रत्यक्षमपि दृश्यं च संमोहयति यत्प्रजाः॥५॥
योऽयं चतुर्द्दिशं पुच्छे शैशुमारे व्यवस्थितः। उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवोदिवि॥६॥
स वै भ्रामयते नित्यं चंद्रादित्यौ ग्रहैः सह। भ्रमंतमनुगच्छंति नक्षत्राणि च चक्रवत्॥७॥
ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते ज्योतिषां गणः। सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-२२

देवग्रहों का वर्णन

सूत जी बोले—हे ऋषियो! स्वायंभुव निसर्ग में तो मैंने अन्तर्गत विषयों की व्याख्या की है, अब जो सब भविष्य की बातें हैं, उनका क्रमशः वर्णन करूंगा।।१।। यह सुनकर मुनियों ने महात्मा रोमहर्षण सूत जी से सूर्य और चन्द्रमा और सब प्रकार के नक्षत्रों की गति के विषय में पूंछा।।२।।

ऋषियों ने कहा कि हे सूत जी बताइये कि ये ग्रह नक्षत्र आकाशमण्डल में कैसे भ्रमण करते हैं, ये सब विना व्यूह (घेरा बनाये हुए) अथवा विना एक-दूसरे से मिले हुए स्वतन्त्र भ्रमण करते हैं।।३।। उनको कोई भ्रमण करवाता है अथवा वे स्वयं भ्रमण करते हैं। यह हम जानना चाहते हैं। हे सत्तम! वह सब हमें बताइये।।४।।

सूत जी बोले—प्राणियों का जो यह सम्मोहन है, वह मैं आपको बताता हूँ। आप लोग सुनिये जो यह सूर्यदेव प्रत्यक्ष दर्शनीय हैं, जो प्रजा का सम्मोहन करते अर्थात् समस्त प्राणी जिनके द्वारा जीवन पाते हैं।।५।। जो यह चारों दिशाओं में शिशुमार चक्र की पूँछ में व्यवस्थित है, वे उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हैं, जो मेढ़ बनकर आकाश (स्वर्ग) में स्थित हैं।।६।। वही ध्रुव नित्य ग्रहों के साथ सूर्य और चन्द्रमा को भ्रमण करवाते हैं। नक्षत्र चक्र के समान घूमते हुए उनका अनुगमन करते हैं।।७।। सूर्य चन्द्रमा तारागण ग्रहों के साथ नक्षत्र तथा यह समस्त नक्षत्र समूह ध्रुव के

वातानीकमयैर्बंधैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै। तेषां योगश्च भेदश्च कालश्चारस्तथैव च॥९॥
अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे। विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्त्तते॥१०॥
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः संध्या चैव दिनं तथा। शुभाशुभं प्रजानां च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्त्तते॥११॥
ध्रुवेणाधिष्ठितश्चैव सूर्योऽपो गृह्य वर्षति। तदेष दीप्त किरणः स कालाग्निर्दिवाकरः॥१२॥
परिवर्त्तक्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन् दिशः। सूर्यः किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वशः॥१३॥
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमाः। आदित्यपीतं सकलं सोमः संक्रमते जलम्॥१४॥
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकधारा प्रवर्त्तते। यत्सोमात्स्त्रवते ह्यंबु तदन्नेष्वेव तिष्ठति॥१५॥
मेघा वायुविघातेन विसृजंति जलं भुवि। एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते चासकृज्जलम्॥१६॥
न नाश उदकस्यास्ति तदेव परिवर्त्तते। संधारणार्थं लोकानां मायैषा विश्वनिर्मिता॥१७॥
अनया मायया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्। विश्वेशो लोककृद्देवः सहस्त्राक्षः प्रजापतिः॥१८॥
धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभविष्णुर्दिवाकरः।
सार्वलौकिकमंभो यत्तत्सोमान्नभसश्च्युतम्॥१९॥
सोमाधारं जगत्सर्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्तितम्। सूर्यादुष्णं निस्त्रवते सोमाच्छीतं प्रवर्त्तते॥२०॥

मन से संचरण करते हैं।।८।। वायुसमूह मयबन्धनों से वे सब ध्रुव में बंधे हुए हैं। उनका योग और भेद और काल व्यवहार उसी की तरह है।।९।। सूर्य चन्द्रादि का अस्त होना और उदय होना सूर्य का दक्षिणायन और उत्तरायण होना विषवत् रेखा, ग्रह और वर्ण सब ध्रुव के कारण से प्रवृत्त होते हैं, वर्षा, घाम (धूप), वर्फ का गिरना, रात्रि सन्ध्या तथा दिन और प्रजाओं के शुभ और अशुभ परिणाम सब ध्रुव से ही प्रवृत्त होते हैं।।१०-११।। ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित सूर्य जल को ग्रहणकर वर्षा करते हैं। वह यह चमकती हुई किरणकाल की अग्नि वाले दिवाकर हैं।।१२।।हे विप्रो! परिवर्तन क्रम से अपने प्रकाशों द्वारा समस्त दिशाओं को प्रकाशित करते हुए ये सूर्य सब ओर किरण समूहों द्वारा समस्त संसार के जल को ग्रहण करते हैं तथा सूर्य द्वारा पिये हुए जल का चन्द्रमा संक्रमण कर लेते हैं। वायुयुक्त नाड़ियों द्वारा लोकधारा उत्पन्न होती है। अतः जो जल चन्द्रमा ने संक्रमण किया, वह चन्द्रमा से स्त्रवित होता है। वह जल अन्नों में समा जाता है, स्थिर हो जाता है।।१३-१५।

मेघ वायु के प्रहारों से पृथ्वी पर जल छोड़ते हैं। इस प्रकार अनेकों बार जल उठाया जाता है और पृथ्वी पर गिराया जाता है। कथन का आशय है कि सूर्य द्वारा जलग्रहण और मेघ बनकर बरसने की क्रिया निरन्तर चलती रहती है, जो वर्षा का कारण है।।१६।। जल का नाश नहीं होता, वह तो बदलता रहता है अर्थात् जल का वाष्प बनता है तथा फिर वह जल बनकर बरस जाता है। अतः जल का नाश नहीं होता है। लोकों को अच्छी तरह धारण करने के लिए अर्थात् सृष्टि संचालन के लिये यह विश्वनिर्मित माया है।।१७।। इस माया के द्वारा जड़ चेतनात्मक तीनों लोक व्याप्त हैं। इस संसार को बनाने वाले विश्वेश सहस्राक्ष प्रजापति (ब्रह्मा) हैं।।१८।। समस्त संसार को धारण करने वाले ये सबके प्रभु भगवान् सूर्य हैं। ये जल सब लोक के प्राणियों का है, जो कि चन्द्रमा और आकाश से गिरा है। अतः यह समस्त जगत् सोम के आधार पर स्थित है, यह तथ्य बताया गया है।।१९-१९½।। सूर्य से उष्णता (गर्मी) निकलती है और चन्द्रमा से शीत प्रवृत होता है। शीत उष्ण पराक्रम वाले ये दोनों संसार को धारण

शीतोष्णवीर्यौ द्वावेतौ युक्त्या धारयतो जगत्। सोमाधारा नदी गंगा पवित्रा विमलोदका॥२१॥
भद्रसोमपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमाः। सर्वभूतशरीरेषु ह्यापो ह्यनुसृताश्च याः॥२२॥
तेषु संदह्यमानेषु जंगमस्थावरेषु च। धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामंतीह सर्वशः॥२३॥
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम्। तेजोऽर्कः सर्वभूतेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम्॥२४॥
समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहंत्यापो गभस्तयः। संजीवनं च सस्यानामंभस्तदमृतोपमम्॥२५॥

ततस्त्वृतु वशात्काले परिवर्त्य दिवाकरः।
यच्छत्यापो हि मेघेभ्यः शुक्लाशुक्लैर्गभस्तिभिः॥२६॥

अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः। सर्वभूतहितार्थाय वायुमिश्रा समंततः॥२७॥
ततो वर्षति षण्मासान्सर्वभूतविवृद्धये। वायव्यं स्तनितं चैव वैद्युतं चाग्निसंभवम्॥२८॥
मेहनाच्च मिहेधातोमघत्वं व्यंजयंति हि। न भ्रश्यंति यतश्चापस्तदभ्रं कवयो विदुः॥२९॥
मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते। आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधाः॥३०॥

त्रिधा मेघाः समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि संभवम्।
आग्नेयास्तूष्णजाः प्रोक्तास्तेषां धूमप्रवर्त्तनम्॥३१॥

शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिताः। महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातंगरूपिणः॥३२॥

करते हैं।।१९½-२०½।। हे द्विजश्रेष्ठ ऋषियो! यह पवित्र और विमल जल वाली गङ्गा नदी भद्र, सोम आदि नगरों में वहने वाली नदियां सोम पर आधारित हैं।।२०½-२१½।। सव प्राणियों के शरीरों में जो जल अनुसृत है। चराचर पदार्थों के सूर्य की किरणों से गर्म होने पर भाप वनकर जल वाहर निकल जाते हैं।। उस जल के द्वारा (मेघ) पैदा होते हैं। जहाँ मेघ पैदा होते हैं, वह स्थान मेघमय कहा गया है।।२१½-२३½।। अग्नियुक्त सूर्य सब भूतों (पृथ्वी, जल, पेड़-पौधों, नदियों, पर्वतों, प्राणियों के शरीरों) से अपनी किरणों द्वारा जल ग्रहण करते हैं।।२४।। ये सूर्य किरणें वायु के संयोग से समुद्र से जल को उठाते हैं और फिर वे जल अन्नों में अमृत के समान संजीवन बन जाते हैं।।२५।। उसके बाद ऋतुवश समय पर वे सूर्य अपनी शुक्ल और अशुक्ल किरणों द्वारा मेघों के लिये देते हैं।।२६।। फिर मेघस्थ जल वायु द्वारा विदीरित होकर वायु से मिश्रित होकर चारों ओर पृथ्वी पर गिरते हैं।।२७।। उसके बाद छः माह तक सब चराचर जगत् की विवृद्धि के लिये तेज हवा के साथ गरजते हुए अग्नि से उत्पन्न बिजली गिराते हुये वर्षा करते हैं।।२८।।

अतः 'मेहन' वर्षा करने के कारण 'मिह्' धातु में 'धञ्' प्रत्यय से 'मेघ' शब्द बना है, जो मेघत्व को व्यक्त करता है तथा 'नञ्' निषेधार्थक पूर्वक भ्रंश् (नष्टहोना) अर्थ वाली धातु से 'अभ्र' शब्द बना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। 'नञ्' को अ तथा भ्रश् के भ्र को मिलाकर अभ्र बनता है, जिसकाअर्थ होता है 'न भ्रश्यन्ति यतश्चापः' नहीं नष्ट होते हैं, जिनसे जल; उन्हें अभ्र कहा जाता है।।२९।। फिर मेघों की उत्पत्ति तीन प्रकार से बतायी जाती है। आग्नेय, ब्रह्मज और पक्षज ये अलग अलग प्रकार हैं।।३०।। तीन प्रकार के मेघ बताये गये हैं। मैं उनकी उत्पत्ति बताऊँगा। आग्नेय मेघ तो गर्मी से उत्पन्न हुए कहे गये हैं। जलों का धुएं (भाप) में प्रवर्त्तन हो जाता है। अर्थात् गर्मी के कारण जल भाप बन जाता है।।३१।। शीतकाल दुर्दिन और वायु का चलना ये उनके अपने गुण के कारण होता है; क्योंकि जल का गुण शीतलता लाना और चारों तरफ भाप से दुर्दिन बनाना होता है। वह ये आग्नेय मेघ करते

भूत्वा धरणिमभ्येत्य रमन्ते विचरंति च। जीमूता नाम ते मेघा ह्येतेभ्यो जीवसंभवः॥३३।
विद्युद्गुणविहीनाश्च जलधारा विलंबिनः। मूकमेघा महाकाया आवहस्य वशानुगाः॥३४॥
क्रोशमात्राच्च वर्षंति क्रोशार्द्धादपि वा पुनः। पर्वताग्र नितंबेषु वर्षंति च रसंति च॥३५॥
बलाकागर्भदाश्चैव बलाकागर्भधारिणः। ब्रह्मजा नाम ते मेघा ब्रह्मनिश्वाससंभवाः॥३६॥
ते हि विद्युद्गुणोपेतास्तनयित्नुप्रियस्वनाः। तेषां शश्वत्प्रणादेन भूमिः स्वांगरुहोद्भवा॥३७॥
राज्ञी राज्याभिषिक्तेव पुनर्यौवनमश्नुते। तेष्वियं प्रावृडासक्ता भूतानां जीवितोद्भवा॥३८॥
द्वितीयं प्रवहं वायुं मेघास्ते तु समाश्रिताः। एते योजनमात्राच्च साध्यर्द्धा निष्कृतादपि॥३९॥
वृष्टिर्गर्भस्त्रिधा तेषां धारासारः प्रकीर्त्तितः। पुष्करावर्त्तका नाम ते मेघाः पक्षसंभवाः॥४०॥
शक्रेण पक्षच्छिन्ना ये पर्वतानां महौजसाम्। कामगानां प्रवृद्धानां भूतानां शिवमिच्छता॥४१॥
पुष्करा नाम ते मेघा बृंहंतस्तोयमत्सराः। पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः॥४२॥
नानारूपधराश्चैव महाघोरस्वनाश्च ते। कल्पांतवृष्टेः स्रष्टारः संवर्तार्ग्नेर्नियामकाः॥४३॥
वर्षंत्येते युगांतेषु तृतीयास्ते प्रकीर्त्तिताः। अनेकरूपसंस्थानाः पूरयंतो महीतलम्॥४४॥

हैं तथा गर्मी से जल से भाप बनकर बने हुए मेघ भैंसे, सूअर और मत्त हाथी के रूप वाले हो जाते हैं।।३२।। और फिर भैंसे, सूअर और हाथी बनकर पृथ्वी पर आकर रमण और भ्रमण करते हैं। ये जीमूत नाम के मेघ हैं। इन मेघों से जीवों की उत्पत्तिहोती है।।३३।। इन मेघों में विद्युत गुण नहीं होता अर्थात् इनमें बिजली नहीं कड़कती; परन्तु जल खूब बरसाते हैं। ये मेघ ध्वनि नहीं करते और विशाल शरीर वाले होते हैं तथा वायु के वशीभूत होते, वायु देव जहाँ चाहते हैं, वहाँ इनको ले जाते हैं।।३४।। ये मेघ एक कोश अथवा फिर आधे कोश तक बरसते हैं तथा पर्वतों के नितम्बों पर ये मेघ बरसते हैं और आनन्द लेते हैं।।३५।। जो मेघ बगुलियों को गर्भ देने वाले हैं, जिनके आने पर बगुलियां गर्भधारण करती हैं, वे मेघ ब्रह्मज कहे जाते हैं; क्योंकि वे ब्रह्म (ईश्वर) की निःश्वास से उत्पन्न हुए हैं।।३६।। वे मेघ विद्युत् के गुणों से युक्त होते हैं; क्योंकि वे बिजली की चमक के साथ कड़कने की प्रियध्वनि करते हैं। उनके लगातार तीव्र ध्वनि से भूमि अपने अंगों से वनस्पतियों घासादि उत्पत्ति कर हरी-भरी हो जाती है।।३७।। उन मेघों की गर्जना से भूमि राज्याभिषेक की हुई रानी के समान पुनः यौवन को प्राप्त कर लेतीहै। यह मेघ पृथ्वी के प्राणियों के जीवन को पैदा करती है। इसलिए पृथ्वी इनसे प्रेम करता है।।३८।।

ये मेघ द्वितीय प्रवह (तेज हवा) का आश्रय ग्रहण करते हैं। ये एक योजन अथवा आधे योजन तक वर्षा करते हैं।।३९।। उन मेघों की वर्षा मूसलाधार होती है। इनके बरसने का यही तरीका है। इस प्रकार ये ब्रह्मज मेघ हैं।।३९½।। अब पक्षज मेघों के विषय में बताते हैं। ये पक्षज मेघ पुष्करार्वक नाम से कहे जाते हैं। वे मेघ पक्षों से उत्पन्न हुए हैं। प्राणियों के कल्याण की इच्छा रखने वाले इन्द्र ने महाबलशाली अपनी इच्छा से बढ़ने वाले पर्वतों के पक्ष (पंख) काट डाले थे। वे ही उनके पंखों से उत्पन्न मेघ पुष्कर नाम से विशाल जलराशि वाले हो गये। इस कारण वे पुष्करावर्तक नाम से पुकारे जाते हैं।।३९½-४२।। ये मेघ अनेकों रूपों को धारण करते हैं तथा महाघोर ध्वनि करते हैं। ये ही कल्प के अन्त में वर्षा पैदा करने वाले संवर्तक अग्नि के नियामक हैं।।४३।। ये तृतीय मेघ एक युग के अन्त में बरसते हैं। इसलिये वे तृतीय कहे गये हैं। अनेकों रूपों को धारण करने वाले ये मेघ पृथ्वी को जलपूर्ण कर देते हैं।।४४।।

वायुं पुरा वहन्तः स्युराश्रिताः कल्पसाधकाः।
यान्यंडस्य तु भिन्नस्य प्राकृतस्याभवंस्तदा॥४५॥
यस्मिन्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुवक्त्रः स्वयंप्रभुः। तान्येवांडकपालानि सर्वे मेघाः प्रकीर्त्तिताः॥४६॥
तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः। तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः॥४७॥
गजानां पर्वतानां च मेघानां भोगिभिः सह। कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम्॥४८॥
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसंभवाः। तुषारवृष्टिं वर्षंति शिष्टः सस्यप्रवृद्धये॥४९॥
षष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः। योऽसौ बिभर्त्ति भगवान्गंगामाकाशगोचराम्॥५०॥
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिधास्वातिपथे स्थिताम्।
तस्या निष्यंदतोयानि दिग्गजाः पृथुभिः करैः॥५१॥
शीकरं संप्रमुंचंति नीहार इति स स्मृतः। दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः॥५२॥
उदग्घिमवतः शैल उत्तरप्रायदक्षिणे। पुंड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र विस्तृतम्॥५३॥
तस्मिन्निपतितं वर्षं तत्तुषारसमुद्भवम्। ततस्तदा वहो वायुर्हेमवंतं समुद्वहन्॥५४॥
आनयत्यात्मयोगेन सिंचमानो महागिरिम्। हिमवंतमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम्॥५५॥
इहाभ्येति ततः पश्चादपरांतविवृद्धये। वर्षद्वयं समाख्यातं सस्यद्वयविवृद्धये॥५६॥

प्राचीन काल में वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक और कल्प पर आश्रित थे अर्थात् इन्होंने ही वायु के साथ कल्प (सृष्टि) की सफलता की थी। ये उसी समय कल्प के आदि में जिस अण्ड कपाल से चार मुख वाले स्वयं प्रभु ब्रह्मा पैदा हुये, उसी प्राकृत अण्ड कपाल के टूटने से पैदा हुए हैं। अतः वे ही अण्ड कपाल के रूप वाले होने के कारण ये मेघ कहे गये।।४५-४६।।

सामान्यतया उन सबकी आकृति का निर्माण धूम करते हैं अर्थात् धूम के रूप में उनका स्थूल रूप दिखाई देता है। उन मेघों में सबसे श्रेष्ठ मेघ पर्जन्य नामक मेघ है और चार ही दिग्गज हैं। ये मेघ चारों दिशाओं के दिग्गज हैं।।४७।। हाथियों, पर्वतों और सर्पों के साथ-साथ मेघों का पृथक् हुआ एक ही कुल है तथा उनका एक उत्पत्ति स्थान जल है।।४८।। हेमन्त ऋतु में शीत से उत्पन्न पर्जन्य और दिग्गज संसार में अन्न की वृद्धि के लिये जल की वर्षा करते हैं। श्रेष्ठ परिवह नाम का वायु उनका आश्रयस्थान है, जो वे भगवान् आकाश में जाने वाली तीन स्वाति पथ में बहने वाली अमृत के समान पवित्र जलवाली दिव्य आकाशगंगा को धारण करते हैं। उसके बहते हुये जलों को दिग्गज (दिशाओं के हाथी) अपनी मोटी-मोटी सूड़ों द्वारा ऊपर को बौछार करते हैं। वही जलकण 'नीहार' इस नाम से प्रसिद्ध है।।४९-५१½।। सुमेरु के दक्षिण की तरफ तथा हिमालय के अर्थात् सुमेरु और हिमालय के बीच हेमकूट नामक पर्वत है। वहाँ उनके उत्तरप्राय दक्षिण में पुण्ड्र नामका बहुत विस्तृत एवं सम्यक् रूप से प्रसिद्ध नगर है।।५१½-५३।। उस नगर में वहाँ तुषार से उत्पन्न वर्षा होती है। वहाँ केवल बर्फ ही बरसती है, अर्थात् वहाँ केवल बर्फ ही है। उसके बाद वहाँ पर बहने वाली हवा हेमवान् (बर्फ) को पूर्णतः वहन कर अपनी सामर्थ्य से हिमालय की सींचती हुई पूरे हिमालय पर अतिक्रमण कर उस पर वर्षा कर देती है तथा जो भी वृष्टि शेष रह जाती है, वह उसके बाद यहाँ पर आती है तथा जो भी यहाँ वर्षा होती है, उसी से अन्न की वृद्धि होती है। दो अन्नों की विशेष वृद्धि के लिये दो वर्षा प्रसिद्ध हैं। ये वर्षायें शीतकालीन वर्षायें हैं।।५३-५६।।

मेघाश्चाप्यायनं चैव सर्वमेतत्प्रकीर्त्तितम्। सूर्य एव तु वृष्टीनां स्त्रष्टा समुपदिश्यते॥५७॥
सूर्यमूला च वै वृष्टिर्जलं सूर्यात्प्रवर्तते। ध्रुवेणाधिष्ठितः सूर्यस्तस्यां वृष्टौ प्रवर्त्तते॥५८॥
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः। ग्रहो निःसृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले॥५९॥
चरित्वान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम्। ततःसूर्यरथस्याथ सन्निवेशं निबोधत॥६०॥
संस्थितेनैकचक्रेण पंचारेण त्रिनाभिना। हिरणमयेन भगवांस्तथैव हरिदर्वणा॥६१॥
अष्टापदनिबद्धेन षट्प्रकारैकनेमिना। चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यंदनेन प्रसर्पति॥६२॥
दशयोजनसाहस्त्रो विस्तारायामतः स्मृतः। द्विगुणोऽस्य रथोपस्थादीषादंडः प्रमाणतः॥६३॥
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु। असंगः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः॥६४॥
छंदोभिर्वाजिरूपैस्तु यतश्चक्रं ततः स्थितैः। वारुणस्यंदनस्येह लक्षणः॥ सदृशस्तु सः॥६५॥
तेनासौ सर्पते व्योम्नि भास्वता तु दिवाकरः। अथैतानि तु सूर्यस्य प्रत्यंगानि रथस्य ह॥६६।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितस्य यथाक्रम्। अहस्तु नाभिः सौरस्य एकचक्रस्य वै स्मृतः॥६७॥
अराः पंचार्त्तवांस्तस्य नेमिः षड्तवः स्मृतः। रथनीडः स्मृतोह्येष चायने कूबरावुभौ॥६८॥
मुहूर्त्ता बंधुरास्तस्य रम्याश्चास्य कलाः स्मृताः।
रात्रिर्वरूथो धर्मोऽस्य ध्वज ऊर्द्धं समुच्छ्रितः॥६९॥

मेघों का यह वृद्धि व्यवहार इस प्रकार कहा गया; किन्तु सूर्य ही तो वर्षाओं के उत्पन्न करने वाले बताये जाते हैं।।५७।। क्योंकि वर्षा के मूल कारण सूर्य ही हैं। सूर्य से ही जल भाप बनकर बादलों के रूप में प्रवृत्त होता है। ध्रुव के द्वारा स्थित सूर्य उस वर्षा में प्रवृत्त होते हैं अर्थात् वर्षा करते हैं, फिर ध्रुव द्वारा अधिष्ठित वायु वृष्टि को रोक देते हैं। फिर सूर्य ग्रह से निकलकर वायु समस्त नक्षत्रमण्डल में भ्रमण करके अन्त में ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित सूर्य में ही प्रवेश कर जाता है।।५८-५९½।। उसके बाद अब सूर्य के रथ का सन्निवेश सुनिये। एक चक्र, पांच अर, तीन नाभि वाले, स्वर्णवर्ण वाले, हरे घोड़ों वाले, बंधे हुए आठ पैरों, वाले छः प्रकार की एक नेमि वाले, देदीप्यमान चक्र वाले रथ से भगवान् सूर्य चलते हैं।।५९½-६२।। दशहजार योजन इस रथ का विस्तार बताया गया है। इस रथ के ईषा दण्ड का विस्तार दोगुना है। सृष्टि को चलाने के अर्थवश ब्रह्मा ने इस रथ का निर्माण किया था। यह आसक्तिरहित, स्वर्णवर्ण वाला दिव्यरथ हवा के समान चलने वाले घोड़ों से युक्त है। यहाँ सूर्य का शरीर (गोली) रथ हुआ और हवा उसके घोड़े हो गये। छन्दः स्वरूप अश्वों से युक्त यह रथ जहाँ शुक्र है, वहाँ ठहरा है तथा लक्षणों से वरुण के रथ के समान है।।६५।।

उसी कारण से वे सूर्यदेव आकाश में चमकते हुए सरकते हैं (चलते रहते हैं)। इस प्रकार ये सूर्य तथा सूर्य के अंगों का वर्णन है।।६६।। सूर्य रथ का नाभि स्थान दिन है। यही एक चक्र भी कहा गया है। पांच ऋतुयें, उसकी अरायें और छः ऋतुएं उसकी नेमि कही गयी हैं।रथ का नीड (मध्यभाग) वर्ष कहा गया है तथा अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन) ये दोनों उसके दोनों कूबर (रथ के जुए के दोनो हिस्से, जिनमें दोनों तरफ बैल या घोड़े बाँधे जाते हैं)। मुहूर्त उस रथ के बन्धुर (बन्धे हुए धुरे हैं), रम्या कला है, काष्ठा नामक समय की माप उस सूर्य का घोड़ा है तथा क्षण नामक समय उसका अक्षदण्ड है।।६९।।

निमेषश्चानुकर्षोऽस्य हीषा चास्य लवाः स्मृताः।
रात्रिर्वरूथो धर्मोऽस्य ध्वज ऊर्द्ध्व समुच्छ्रितः॥७०॥
युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ। सप्तश्वरूपाश्छंदांसि वहन्तो वामतो धुरम्॥७१॥
गायत्री चैव त्रिष्टुप्च ह्यनुष्टुब्जगती तथा। पंक्तिश्च बृहती चैव ह्युष्णिक्चैव तु सप्तमी॥७२॥
चक्रमक्षे निबद्धं तु धुवे चाक्षः समर्पितः। सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमते धुवः॥७३॥
अक्षेण सह चक्रेशो भ्रमतेऽसौ धुवेरितः। एवमर्थवशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु॥७४॥
तथा संयोगभावेन संसिद्धो भासुरो रथः। तेनासौ तरणिर्देवो भास्वता सर्पते दिवि॥७५॥
युगाक्षकोटिसन्नद्धौ द्वौ रश्मी स्यन्दनस्य तु। धुवे तौ भ्राम्यते रश्मी च चक्रयुगयोस्तु वै॥७६॥
भ्रमतो मण्डलान्यस्य खेचरस्य रथस्य तु। युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यंदनस्य हि॥७७॥
धुवेण प्रगृहीते वै विचक्रम तुरक्षवत्। भ्रमंतमनुगच्छेतां धुवं रश्मी तु तावुभौ॥७८॥
युगाक्षकोटिस्तत्तस्य रश्मिभिः स्यंदनस्य तु।
कीलासक्ता यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतो दिशम्॥७९॥
ह्रसतस्तस्य रश्मी तु मंडलेषूत्तरायणे। वर्द्धते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु॥८०॥
युगाक्षकोटिसंबद्धौ रश्मी द्वौ स्यन्दनस्य तु। धुवेण प्रगृहीतौ वै तौ रश्मी नयतो रविम्॥८१॥
आकृष्येते यदा तौ वै धुवेण समधिष्ठितौ। तदा सोऽभ्यंतरे सूर्यो भ्रमते मंडलानि तु॥८२॥

निमेष उस सूर्य का अनुकर्ष (धुरे का लट्ठा) है तथा लव (सबसे छोटी समय की माप) उस रथ की लव है। रात्रि उस रथ का बरूथ रथ के पीछे का डण्डा है, जो रथ को पलटने से बचाता है और ध्वज उस रथ का ऊपर हुआ हिस्सा है।।७०।। धर्म और काम उस रथ के दोनों धुरों की कोटियां कही गयी हैं। सात अश्वरूप वेद के सात छन्द हैं।।७१।। वे हैं गायत्री, त्रिष्टुप, अनुष्टुप, जगती, पंक्ति, बृहती, उष्णिक् और सप्तमी ये सातों छन्द उस रथ के साथ घोड़े हैं।।७२।। चक्रअक्ष (धुरे) में बंधा हुआ है और ध्रुव में अक्ष बँधा हुआ है। चक्र के साथ अक्ष घूमता है और अक्ष के साथ ध्रुव घूमता है।।७३।। अक्ष के साथ ध्रुव से प्रेरित वे चक्रेश घूमते हैं। इस प्रकार संसार कल्याण के प्रयोजनवश रथ की संरचना की गयी है।।७४।। तथा परस्पर संयोगभाव से आकाश में चमकता हुआ रथ बना है, उस रथ से वे सूर्य भगवान् प्रकाशित होते हुए वेगपूर्वक आकाश में गमन करते हैं।।७५।।

वे रश्मी ध्रुव में दोनों चक्रों पट्टियों के बीच घूमती है।।७६।। और फिर आकाश में मण्डप बना देती हैं। दोनों धुरी में जुड़ी हुई, वे किरणें रथ के दक्षिण भाग में युगाक्ष कोटि अर्थात् रथ के युग और अक्षकोटि में दो किरणें जुड़ी हुई हैं, जो घोड़ों की लगाम की तरह हैं, जो ध्रुव द्वारा पकड़े जाने पर घोड़ों की तरह दौड़ने लगती हैं, वे दोनों (लगाम रूपी) किरणें भ्रमण करते हुए ध्रुव का अनुगमन करने लगती हैं।।७७-७८।। उस रथ की युगाक्षकोटि एक खूंटे से बँधी हुई हैं। जैसे कि रस्सियाँ सब ओर दिशाओं में घूमती हैं।।७९।। किन्तु उत्तरायण होने पर वे किरणें कुछ घट जाती हैं तथा दक्षिणायन होने पर बढ़ जातीहैं।।८०।। रथ की युगाक्षकोटि में बँधी हुई, वे दो रश्मियां ध्रुव के द्वारा पकड़े जाने पर सूर्य को ले जाती हैं।।८१।। ध्रुव द्वारा जब उन रश्मिरूपी लगामों को खींचा जाता है, तब वे सूर्य घेरा बनाकर अन्दर ही घूमने लगते हैं।।८२।।

अशीतिर्मंडलशतं काष्ठयोरंतरं स्मृतम्। ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु॥८३॥
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मंडलानि तु। उद्वेष्टयन्स वेगेन मंडलानि तु गच्छति॥८४॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे देवग्रहानुकीर्तनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥२२॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

ध्रुवचर्याकीर्त्तनं नाम

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैमुनिभिस्तथा। गंधर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्परराक्षसैः॥१॥
एते वंसति वै सूर्ये द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु। धाताऽर्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः॥२॥
ऐरावतो वासुकिश्च कंसो भीमश्च तावुभौ। रथकृच्च रथौजाश्च यक्षावेतावुदाहृतौ।३॥
तुंबुरुर्नारदश्चैव सुस्थला पुंजिकस्थला। रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ॥४॥
एते वंसति वै सूर्य्ये मधुमाधवयोः सदा। मित्रश्च वरुणश्चैव मुनिरत्रिरुदाहृतः॥५॥
तथा वसिष्ठो विख्यातः सहजन्या च मेनका। राक्षसौ च समाख्यातौ पौरुषेयो वधस्तथा॥६॥

उस समय सूर्य १८० मण्डलों का चक्कर लगाते हैं। तब जब ध्रुव रश्मि रूपी लगामों को छोड़ देते हैं। सूर्य बाहरी मण्डल में घूमते रहते हैं। उस समय वे वेग से मण्डलों को घेरकर घूमते रहते हैं।।८३-८४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद बाईसवां अध्याय देवग्रहो का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-२३

ध्रुवचर्या का वर्णन

सूत जी बोले— ध्रुव का जो रथ है, वह रथ, देवों, आदित्यों, ऋषियों, गन्धर्वो, अप्सराओं, ग्रामीणों, सर्पो, राक्षसों से अधिष्ठित है। ये सभी सूर्य के रथ पर दो दो माह तक रहते हैं।।१-१½।। धाता, अर्यमा, पुलस्त्य-पुलह, प्रजापति, ऐरावत् के वासुकि, कंस और भीम ये दोनों, रथ को बनाने वाला और रथ के ओजा ये दोनो यक्ष, तुम्बरु, नारद, सुस्थल, पुंजिकस्थल, हेति, प्रहेति, ये दोनों राक्षस, ये सब चैत, वैसाख में सूर्य के रथ पर सदा सूर्य के साथ रहते हैं।।१½-४½।। मित्र, वरुण, अत्रिमुनि, वशिष्ठ, सहजन्या, मेनका, दो प्रसिद्ध राक्षस तथा पौरुषेय का वध करने वाला राक्षस, हाहा, हूहू, गन्धर्व, यज्ञ, रथस्वन, रथचित्रकार उसी प्रकार अन्य नागतक्षक नामक और रम्भक

हाहा हूहूश्च गन्धर्वौ यज्ञश्चापि रथस्वनः। रथचित्रस्तथैवान्यो नागसाक्षकसंज्ञितः॥७॥
रंभकश्च वसन्त्येते मासयोः शुचिशुक्रयोः। ततः सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसंतीह देवताः॥८॥
इंद्रश्चैव विवस्वांश्च अंगिरा भृगुरेव च। एलापत्रस्तथा सर्पः शंखपालाश्च तावुभौ॥९॥
विश्वावसूग्रसेनौ च श्वेतश्चैवारुणस्तथा। प्रम्लोचा इति विख्याताऽनुम्लोचेति च ते उभे॥१०॥
यातुधानस्तदा सर्पो व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ। नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे॥११॥
शरद्यन्याः पुनः शुभ्रा वसंति मुनिदेवताः। पर्जन्यश्चैव पूषा च भारद्वाजः सगौतमः॥१२॥
परावसुश्च गंधर्वस्तथैव सुरुचिश्च यः। विश्वाची च घृताची च उभे ते शुभलक्षणे॥१३॥
नाग ऐरावतश्चैव विश्रुतश्च धनंजयः। श्येनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ॥१४॥
आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानावुदाहृतौ। वसंत्येते तु वै सूर्ये सदैवाश्विनकार्तिके॥१५॥
हैमन्तिकौ तु द्वौ मासौ वंसति च दिवाकरे। अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुश्च ह॥१६॥
भुजंगश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा। चित्रसेनश्च गंधर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ॥१७॥
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च तथैवाप्सरसा उभे। तार्क्षश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्चतौ॥१८॥
विद्युत्स्फूर्जः शतायुश्च यातुधानावुदाहृतौ। सहे चैव सहस्ये च वसंत्येते दिवाकरे॥१९॥
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसंति वै। त्वष्टा विष्णुर्जामदग्न्यो विश्वामित्रस्तथैव च॥२०॥
काद्रवेयौ तथा नागौ कंबलाश्वतरावुभौ। गन्धर्वौ धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथैव च॥२१॥
तिलोत्तमा तथा रंभा ब्रह्मापेतश्च राक्षसः। यज्ञोपेतस्तथैवान्यो विख्यातो राक्षसोत्तमः॥२२॥
ऋतजित्सज्यजिच्चैव गन्धर्वौ समुदाहृतौ। तपस्तपस्ययोः सूर्ये वसंति मुनिसत्तमाः॥२३॥
पितृदेवमनुष्यादीन्स सदाप्याययन्प्रभुः। परिवर्त्तत्यहोरात्राकारणं सविता द्विजाः॥२४॥

ये सब ज्येष्ठ आषाढ महीने में सूर्य्य के रथ के साथ रहते हैं।।४½-७½।। उसके बाद सूर्य के रथ पर अन्य देवता रहते हैं—वे हैं—इन्द्र, विवस्वान् (अग्नि), अंगिरा, भृगु, एलापत्र, सर्प, शंखपाल, विश्वावसु, उग्रसेन, श्वेत, वारुण, प्रम्लोचा, अनुलोमा, यातुधान (राक्षस) सर्प, व्याघ्र ये सब श्रावण और भाद्रपद के महीने में सूर्य के साथ रहते हैं।।७½-११।। अन्य शरद् ऋतु में शुभ्र मुनिदेवता रहते हैं—वे हैं—पर्यन्य, पूषा, भारद्वाज, गौतम, परावसु, गन्धर्व, सुरुचि, विश्वाची, घृताची, नाग, ऐरावत, धनञ्जय, श्येनजित्, सुषेण सेनानी, और ग्रामणी, आप और वात नामक दो राक्षस।। ये सब आश्विन् और कार्तिक में सूर्य के रथ पर सदैव रहते हैं।।११-१५।।

हेमन्तऋतु के दो मास तक सूर्य के रथ पर जो देवता रहते हैं, वे हैं— अंश, भग, कश्यप, क्रतु, भुजंग और महापद्मसर्प और कर्कोटक सर्प, चित्रसेन और ऊर्णायु गन्धर्व, उर्वशी और पूर्वचित्ति दो अप्सरायें, तार्क्ष सेनानी और अरिष्टनेमि ग्रामणी ये दोनों, विद्युत्स्फूर्ज और शतायु ये दो राक्षस ये सब अगहन और पौष के महीने में सूर्य के रथ पर सूर्य के साथ रहते हैं।।१५-१९।। उसके बाद शिशिर ऋतु के दो माह में जो सूर्य के साथ रहते हैं, वे हैं—त्वष्टा, विष्णु, जामदग्न्य, विश्वामित्र, काद्रवेय और कम्बलाश्वर सर्प, गन्धर्व, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, तिलोत्तमा, रम्भा ब्रह्मोपेतराक्षस, यज्ञोपेत राक्षस तथा अन्य विख्यात उत्तम राक्षस, ऋतजित् और सत्यजित् नामक दो गन्धर्व। ये सब मुनिश्रेष्ठ माघ और फाल्गुन मास में सूर्य के रथ पर निवास करते हैं।।१९-२३।। इस प्रकार हे हे ब्राह्मणो! हे विप्रों!

एते देवा वसंत्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु। स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादशसप्तकाः॥२५॥
सूर्यस्याप्याययंत्येते तेजसा तेज उत्तमम्। ग्रथितैः स्वैर्वचोभिश्च स्तुवंति ह्यृषयो रविम्॥२६॥
गंधर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते। ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम्॥२७॥
सर्पा वहंति वै सूर्यं यातुधानास्तु यांति च। वालखिल्या नयंत्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम्॥२८॥
एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः। यथाधर्मं यथायोगं यथासत्यं यथाबलम्॥२९॥
तपत्यसौ तथा सूर्य एषामिन्द्रस्तु तेजसा। इत्येते निवसंतीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे॥३०॥
ऋषयो देवगंधर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः। ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च मुख्यशः॥३१॥
एते तपंति वर्षंति भांति वांति सृजंति च। भूतानां चाशुभं कर्म व्यपोहंति प्रकीर्त्तिताः॥३२॥
मानवानां शुभं ह्येते हरंते दुरितात्मनाम्। दुरितं सुप्रचाराणां व्यपोहंति क्वचित्क्वचित्॥३३॥
एते सहैव सूर्येण भ्रमंति दिवसानुगाः। वर्षंतश्च तपंतश्च ह्लादयंतश्च वै प्रजाः॥३४॥
गोपायंति च भूतानि सर्वाणीहामनुक्षयात्। स्थानाभिमानिनामेतत्स्थानं मन्वंतरेषु वै॥३५॥
अतीतानागतानां वर्त्तंते सांप्रतं च ये। एवं वसंति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दश।
चतुर्दशसु सर्वेषु गणा मन्वंतरेष्विह॥३६॥

पितरों, देवताओं, मनुष्यो आदि को आप्यायित करते हुए वे भगवान् सूर्य दिन और रात को बदलते रहते हैं।।२४।। ये देव सूर्य के रथ पर क्रम से दो दो महीने रहते हैं। ये सभी देव पितर और ऋषिगण १२ महीने के क्रम से सात सात स्थानाभिमानी हैं।।२५।। ये सब सूर्य के तेज से उत्तम तेज को आप्यायित करते हैं।ये ऋषिगण अपने ग्रथित (बनाये हुए) वचनों (मन्त्रों) से सूर्य की स्तुति करते हैं।।२६।। गन्धर्व और अप्सरायें गीत और नृत्यों के द्वारा सूर्य की उपासना करती हैं। ग्रामणी, पक्ष और भूत सब सूर्य के घोड़ों की लगाम रूप किरणों का संग्रह (खींचना) करते हैं।।२७।। सर्प, सूर्य के रथ को ढोते हैं, ले जाते हैं और राक्षस उनका अनुसरण करते हैं अर्थात् रक्षा करते हैं। बालखिल्य उदय होने के बाद सूर्य को उदय से हटाकर अस्त की ओर ले जाते हैं।।२८।।

इन देवों का जैसा पराक्रम है, जैसा तप है, जैसा धर्म है, जैसा योग है, जैसा सत्य है और जैसा बल है, उनके उन सब विशेषताओं से बाकी उसी प्रकार के तेज से ये सूर्य तपते हैं। इस प्रकार ये सब दो-दो महीने सूर्य में निवास करते हैं।।२९-३०।। ऋषिगण, देवतागण और गन्धर्वगण, सर्पगण, अप्सराओ के समूह, ग्रामणी, यक्षगण, राक्षसगण और यक्षगण ये ही सब बरसते हैं; प्रकाश करते हैं (चमकते हैं) और सृष्टि को उत्पन्न करते हैं तथा प्राणियों के अशुभकर्मों का विशेष निर्णय करते हैं। कही ये मानवों के शुभ कर्मो का हरण कर लेते हैं, तो कभी अशुभ कर्मों को करने वाले के अशुभ कर्मों को हर लेते हैं।।३०-३३।।

ये सब देवपितृ और ऋषिगण सभी दिन का अनुसरण करने वाले बरसते हुए तपते हुए और प्रजा को आनन्दित करते हुए सूर्य के साथ निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं तथा ये सब यहाँ इस लोक में सब नष्ट होने से रक्षा करते हैं।।३४-३४½।। इन स्थानाभिमानी देवों का यह स्थान भूत भविष्य और वर्तमान सभी मन्वन्तरों में एक सा रहता है, इस प्रकार ये सात देव चौदहों मन्वन्तर के समय सूर्य के चारों ओर इसी प्रकार निवास करते हैं।।३४½-३६।।

ग्रीष्मे च वर्षासु च मुंचमानो घर्मं हिमं वर्ष दिनं निशां च।
गच्छत्यसावृतुवशात्परिवृत्तरश्मिर्देवान् पितृंश्च मनुजांश्च हि तर्पयन्वै॥३७॥
प्रीणाति देवानमृतेन सूर्यः सोमं सुषुम्णेन च वर्द्धयित्वा।
शुक्ले तु पूर्णं दिवसक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधा पिबंति॥३८॥
पीतं च सोमं हि कलावशिष्टं कृष्णक्षये रश्मिभिरक्षरंतम्।
सुधामृतं तत्पितरः पिबंति देवाश्च सौम्याश्च तथैव काव्याः॥३९॥
सूर्येण गोभिश्च समुज्झिताभिरद्भिः पुनश्चैव समुद्धताभिः।
वृष्ट्याभिवृद्धाभिरथौषधीभिर्मर्त्या क्षुधं त्वन्नपानैर्जयंति॥४०॥
तृप्तिश्च शुक्ले सुधया सुराणां पक्षे च कृष्णे सुधया पितृणाम्।
अन्नेन शश्वच्च दधाति मर्त्यान्सूर्यस्तपंस्तान्सुबिभर्त्ति गोभिः॥४१॥
ह्रियन्हरिस्तैर्हरिभिस्तुरंगमैर्हरत्यथापः किरणैर्हरिद्भिः।
विसर्गकाले विृजंश्च ताः पुनर्बिभर्त्ति शश्वत्सविता चराचरम्॥४२॥
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरंगमैः पिबत्यथापो हरिभिः सहस्रधा।
ततः प्रमुंचत्यपि तास्त्वसौ हरिः समूह्यमानो हरिभिस्तुरंगमैः॥४३॥
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णरथेन तु। भद्रैस्तैरक्रमैरश्वैः स्पंदने वैदिकक्षयः॥४४॥
अहोरात्राद्रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन्। सप्तद्वीपसमुद्रातां सप्तभिः सप्तभिर्हयैः॥४५॥
छंदोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रं ततः स्थितैः। कामरूपैः सकृद्युक्तैर्वामतस्तैर्मनोजवैः॥४६॥

वे ग्रीष्म में घाम, जाड़े में शीतलता और बरसात में पानी बरसा कर दिन और रात को बाँटते हैं। वे सूर्य समयानुसार किरणों को बदल कर देवता, पितर और मनुष्यों को तृप्त करते हुये चलते रहते हैं।।३७।। वे सूर्यदेव अपनी सुषुम्णा किरण द्वारा चन्द्रमा के अमृत से देवताओं को प्रसन्न किया करते हैं। दिन के क्रम से जब चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में पूर्ण हो जाते हैं, तब कृष्णपक्ष में देवगण उनको (चन्द्रमा) को पी जाते हैं अर्थात् चन्द्रमा के अमृत का पान कर लेते हैं।।३८।। उस पिये हुये चन्द्रमा को जिसमें दो ही कलायें बची रहती हैं, कृष्णपक्ष में इन किरणों से गिरते हुये सुधामृत को देवता लोग, पितरलोग, सज्जन लोग और कवि लोग पी जाते हैं।।३९।।

सूर्य की सम्यक् प्रकार छोड़ी गयी किरणों के द्वारा जल उत्पन्न होता है, फिर जल में किरणों द्वारा सम्यक् प्रकार से उठाये जलों से वृष्टि होती है तथा समुद्धृत वर्षा की अभिवृद्धि से औषधियां और अन्न उत्पन्न हाते हैं तथा अन्नपान द्वारा मनुष्य लोग क्षुधा को मिटाते हैं।।४०।। देवों को अमृत से आधे माह तक तृप्ति होती है; क्योंकि सूर्य, अन्नों से किरणों से अन्न की पुष्टि किया करते हैं।।४१।। सूर्य हरे रंग के घोड़ों पर चढ़कर हजारों किरणों द्वारा जल का शोषण किया करते हैं। फिर वर्षाकाल में जल बरसा कर जड़चेतन संसार का पालन-पोषण करते हैं।।४२।। इस प्रकार ये सूर्य प्रलयकाल तक एक पहिये के रथ पर सवार होकर मंगलकारक बलवान् अश्वों द्वारा वेगपूर्वक आकाश में भ्रमण करते हैं।।४४।। सात छन्द स्वरूप बीच में चक्र स्थित है, जिसके ऐसे रथ को खींचते हुये इच्छानुसार शरीर धारण करने वाले मन की तरह अत्यधिक वेगवाले हैं। वे हरे और पिंगलवर्ण के ब्रह्मवादी सतत घोड़ों द्वारा दिन-

हरितैरव्ययैः पिंगैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः। त्र्यशीतिमंडलशतं भ्रमंत्यब्देन ते हयाः॥४७॥
बाह्यमाभ्यंतरं चैव मंडलं दिवसक्रमात्। कल्पादौ संप्रयुक्तास्ते वहंत्याभूतसंप्लवात्॥४८॥
आवृत्ता वालखिल्यैस्ते भ्रमंते रात्र्यहानि तु। वचोभिरग्र्यैर्ग्रंथितैः स्तूयमानो महर्षिभिः॥४९॥
सेव्यते गीतनृत्यैश्च गंधर्वैश्चाप्सरोगणैः। पतंगैः पतगैरश्वैर्भ्रममाणो दविस्पतिः॥५०॥
रथास्त्रचक्रः सोमस्य कुदाभास्तस्य वाजिनः। वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन चरंत्यसौ॥५१॥
वीथ्याश्रयाणि ऋक्षाणि ध्रुवाधारेण वेगिताः। ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मीनां सूर्यवत्स्मृते॥५२॥
त्रिचक्रोभयतोऽश्वश्च विज्ञेयः शशिनो रथः। अपां गर्भात्समुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः॥५३॥
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः। दशभिस्तु कृशैर्दिव्यैरसंगैस्तैर्मनोजवैः॥५४॥
सकृद्युक्ते रथे तस्मिन्वहंते चायुगक्षयात्। संगृहीतरथे तस्मिञ्श्वेतश्चक्षुःश्रवाश्च वै॥५५॥
अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहंते शंखवर्चसः। यजुश्चंडमनाश्चैव वृषो वाजी नरो हयः॥५६॥
अश्वो गविष्णुर्विख्यातो हंसो व्योमो मृगस्तथा। इत्येते नामभिः सर्वे दश चंद्रमसो हयाः॥५७॥
एते चंद्रमसं देवं वहंति सह दीक्षया। देवैः परिवृतः सोमः पितृभिश्चैव गच्छति॥५८॥
सोमस्य शुक्लपक्षादौ भास्करे परतः स्थिरे। आपूर्यते परस्यांते सततं दिवसक्रमात्॥५९॥
देवैः पीततनुं सोममाप्याययति नित्यदा। क्षीणं पंचदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः॥६०॥

रात एक चक्र से घूमते हुये सातद्वीप और सात समुद्र वाली पृथ्वी के अन्त तक दिवस क्रम से समस्त पृथ्वीमंडल के बाहर और भीतर एक वर्ष में एक सौ तिरासी मण्डल का भ्रमण किया करते हैं।।४५-४७½।। कल्प के आदि मे रथ में जुड़े हुए वे घोड़े कल्प के अन्त तक चलते रहते हैं।।४८।। वे अग्रज ऋषियो द्वारा रचे गये वचनो (मनों) से स्तुति किये जाते हुए बालखिल्यों से घिरे हुए दिनरात घूमते रहते हैं।।४९।। वे दिन के स्वामी भगवान् सूर्य गन्धर्व और अप्सराओं के गीतनृत्यों से आकाशगामी अश्वो द्वारा भ्रमण करते हुए, सेवा किये जाते हैं।।५०।। चन्द्रमा का रथ तीन पहिये का है, उसमे नक्षत्र रूपी घोड़े जुते हुए हैं। इनके रथ के बांये और दक्षिण की ओर दश घोड़े जुते हुए है। उन दश घोड़ों वाले रथ से चन्द्रमा चलते हैं। ये चन्द्रमा ध्रुव के आधार से वेगपूर्वक नक्षत्रों की गलियों में होकर चला करते हैं।। इनकी किरणों का घटना बढ़ना सूर्य के समान बताया गया है।।५१-५२।।

चन्द्रमा के रथ में तीन पहिये हैं तथा दोनों तरफ घोड़े जुते हुए हैं। इनका रथ अश्वों और सारथि के साथ जलों के गर्भ (समुद्र) से उत्पन्न हुआ है।।५३।। ये चन्द्रमा, मन के वेग के समान कृश दिव्य, आसक्तिरहित शुक्ल रंग के दश घोड़े जुटे हुए सौ अरों वाले तीन पहियो से युक्त हैं, ये घोड़े एक बार जुटे हुए उस रथ में युगान्तपर्यन्त तक चलते रहते हैं।।५४-५४½।। सम्यक् प्रकार ग्रहण किये गये उस रथ श्वेत वर्ण के घोड़े हैं। वे सब एक वर्ण के घोड़े उस रथ को ढोते हैं। वे घोड़े हैं, यजु, चण्डमना, वृष, वाजी तथा हय तथा जो अश्व तेज दौड़ने में विख्यात हैं, वे हंस, व्योम और मृग ये नाम वाले सभी घोड़े चन्द्रमा के घोड़े हैं।।५४½-५७।। ये घोड़े देव चन्द्रमा को दीक्षा के साथ ले जाते हैं।। इस प्रकार देवों और पितरो से घिरे हुए चन्द्रदेव चलते हैं।।५८।। शुक्लपक्ष में सूर्य चन्द्रमा के आगे रहते हैं और देवों द्वारा पिये गये चन्द्र को दिवसक्रम से नित्यप्रति परिपुष्ट कर तृप्त करते हैं। इस प्रकार पन्द्रह दिन तक क्षीण चन्द्रमा को एक-एक किरण द्वारा सूर्य पुष्ट करते हैं।।५९-६०।।

आपूरयन्सुषुम्णेन भागं भागमहःक्रमात्। सुषुम्णाप्यायमानस्य शुक्ला वर्द्धंति वै कलाः॥६१॥
तस्माद्रसंति वै कृष्णे शुक्ले स्वाप्यायंयति तम्।
इत्येवं सूर्यवीर्येण चंद्राश्चाप्यायितस्ततः॥६२॥
पौर्णमास्यां स दृश्येत शुक्लः संपूर्णमंडलः।
एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षे दिनक्रमात्॥६३॥
ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्द्दशीम्। अपां सारमयस्येंदो रसमात्रात्मकस्य तु॥६४॥
पिबत्यंबुमयं देवा हृष्टाः सौम्यं स्वधामृतम्। संभृतं त्वर्द्धमासेन ह्यमृतं सूर्यतेजसा॥६५॥
भक्षार्थममृतं सोमः पौर्णमास्यामुपासते। एकां रात्रिं सुरैः सर्वैः पितृभिः सर्षिभिः सह॥६६॥
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य तु।
प्रक्षीयंते पितृदेवैः पीयमानाः कलाः क्रमात्॥६७॥
त्रयश्च त्रिंशतश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तथैव च। त्रयश्च त्रिसहस्राश्च देवाः सोमं पिबंति वै॥६८॥
इत्येतैः पीयमानस्य कृष्णा वर्द्धंति वै कलाः।
क्षीयंति तस्माच्छुक्लाश्च कृष्णा आप्यायंयंति॥६९॥
एवं दिनक्रमात्पीते विबुधैस्तु निशाकरे। पीत्वार्द्धं मासं गच्छंति चामावास्यां सुरोत्तमाः॥७०॥
पितरश्चोपतिष्ठंति ह्यमावास्यां निशाकरम्। ततः पंचदशे काले किंचिच्छिष्टे कलात्मके॥७१॥

ये भगवान् भास्वर दिन के क्रम से अर्थात् एक एक दिन अपनी सुषुम्णा किरण द्वारा एक एक भाग को क्रमशः पूर्ण करते हुए सुषुम्णा से आप्यायित करते हुए शुक्ल कलाओं को बढ़ाते हैं। अतः प्रतिदिन चन्द्रमा बढ़ते चलते जाते हैं।।६१।। अतः कृष्णपक्ष में चन्द्रमा घटते हैं और शुक्लपक्ष में वे सूर्य की किरणें चन्द्रमा की कलाओं की वृद्धि करती है। इस प्रकार सूर्य के पराक्रम से चन्द्रमा वृद्धि को प्राप्त करते हैं।।६२।। पूर्णमासी में वे चन्द्रमा अपने सम्पूर्ण मण्डल को शुक्ल देखें, इस प्रकार चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हुये हैं।।६३।। उसके बाद द्वितीया से लेकर चतुर्दशी तक देवतागण जलों के सारमय और रसात्मक चन्द्रमा के जल बहुल सुधामय मधु का पान करते हैं।।६४-६४½।। सूर्य के तेज से आधे महीने (१५ दिन) में संचित वह अमृत पूर्णमासी में देवों के भक्षणार्थ प्रस्तुत हो जाता है।।६४-६५½।। कृष्णपक्ष के आदि में एक रात सब देवों, पितरों और ऋषियों द्वारा सूर्य के सम्मुख उपस्थित पी गयी चन्द्रमा की कलायें क्षीण होने लगती हैं।।६५½-६७।।

३३३३३ देवता सोम (चन्द्र कलाओं) का पान करते हैं।।६८।। इस प्रकार इन देवताओं द्वारा पिये गये चन्द्रमा की कलायें कृष्णपक्ष में बढ़ती हैं। उसी कारण चन्द्रकलायें शुक्लपक्ष में घटने लगती है तथा कृष्ण पक्ष में बढ़ने लगती है।।६९।। अर्थात् पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र को देखकर देवता पितरादि सब उनकी कलाओं को पीना प्रारम्भ कर देते हैं, फिर प्रतिदिन घटते-घटते जब अमावस्या को बिल्कुल नष्ट हो जाती है, तब छोड़ते हैं, फिर बढ़ने की प्रतीक्षा करते हैं, फिर जब पूरी तरह बढ़कर पूर्ण हो जाती, तब पीना प्रारम्भ कर देता है। इस प्रकार प्रतिदिन देवों द्वारा चन्द्रमा के पिये जाने पर पीकर अर्धमास तक अमावस्या तक देवता लोग पीते चले जाते हैं।।७०।। पुन अमावस्या आते ही पितरगण चन्द्रमा के पास बैठ जाते हैं, तब पन्द्रह दिन तक पीने से बचे हुए कलात्मक चन्द्र का पान अपराह्ण

अपराह्णे पितृगणा जघन्यं पर्युपासते। पिवन्ति द्विलवं कालं शिष्टास्तस्य कलास्तु याः॥७२॥
निःसृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्।
तां स्वधां मासतृप्त्यै च पीत्वा गच्छंति तेऽमृतम्॥७३॥
सूर्यस्तस्मिन्सुषुम्णे यस्तापितस्तेन चंद्रमाः। कृष्णपक्षे सुरैस्तद्वत्पीयते वै सुधामयः॥७४॥
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा। काव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व एव ते॥७५॥
संवत्सरास्तु वै काव्याः पंचाब्दा ये द्विजैः स्मृताः।
सौम्यास्तु ऋतुवो ज्ञेया मासा बर्हिषदः स्मृताः॥७६॥
अग्निष्वात्तार्त्तवाश्चैव पितृसर्गा हि वै द्विजाः। पितृभिः पीयमानस्य पंचदश्यां कला तु वै॥७७॥
यावत्प्रक्षीयते तस्य भागः पंचदशस्तु यः। अमावास्यां तदा तस्य तत आपूर्यते परः॥७८॥
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडस्यां शशिनः स्मृता। एवं सूर्यनिमित्तैष क्षयो वृद्धिर्निशाकरे॥७९॥
ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथान्पुनः। तोयतेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः॥८०॥
सोपासंगपताकस्तु सध्वजो मेघनिस्वनः। भार्गवस्य रथः श्रीमांस्तेजसा सूर्यसन्निभः॥८१॥
पृथिवीसंभवैर्युक्तो नानावर्णैर्हयोत्तमैः। श्वेतः पिशंगः सारंगो नीलः पीतो विलोहितः॥८२॥
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषतः। दशभिस्तैर्महाभागैरकृशैर्वातरंहसैः॥८३॥
अष्टाश्वः कांचनः श्रीमान्भौमस्यापि रथोत्तमः। असंगैर्लोहितैरश्वैः सर्वगैरग्निसंभवैः॥८४॥

में जघन्य रूप से करते हैं। अब जो शेष रह जाता है, उसे दो कलाओं की स्थिति में अर्थात् द्वितीया को पान कर पितर लोग एक एक माह तक तृप्त हो जाते हैं।।७१-७३।। सूर्य ने जिस सुषुम्णा किरण में चन्द्रमा को तापित किया था, कृष्णपक्ष में देवों द्वारा उसी प्रकार सुधामय को पिया जाता है।।७४।। सौम्य और बर्हिषद तथा अग्निष्वात ये तीन हुए तथा काव्य जो कहे गये वे सब पितर ही हैं तथा संवत्सर ये पाँच प्रकार के अब्द ब्राह्मणों ने बताये हैं।।७५-७५½।। ऋतुओं को सौम्य जानना चाहिये तथा मासों (महीनों) को बर्हिषद् कहा गया है।। अग्निष्वात्त आर्तव हैं, ब्राह्मणों पितरों का सर्ग इसी प्रकार का है।।७६-७६½।। अमावस्या में पितरों द्वारा जिसकी कलायें पी ली गयी हैं, उस चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला के पूर्ण भाग का जब तक क्षय होता है, तब तक उनका अन्तिम भाग पूर्ण हो जाता है। दोनों पक्षों शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कलाओ का वृद्धि क्षय इसी प्रकार होता है; परन्तु सोलहवीं कला में चन्द्रमा यथावत् रहते हैं, उनका क्षय नहीं होता। इस प्रकार ये जो चन्द्रकलाओं का बढ़ना और घटना है, उसके कारण सूर्य ही है।।७६½-७९।। अब मैं तारागणों ग्रहों और सूर्यपुत्र राहु के रथों का वर्णन करूँगा। चन्द्रमा के पुत्र बुध का रथ जल के तेज से युक्त शुभ्रवर्ण का है।।८०।।

उस रथ पर ध्वजपताका फहरा रही है तथा वह मेघ के समान है।। शुक्रग्रह का रथ बहुत शोभायमान तथा सूर्य के रथ के समान है।।८१।। शुक्र के रथ मे पृथ्वी से उत्पन्न अनेकों रंग के मोटे-मोटे वायु की भाँति वेगशाली घोड़े जुते हुये हैं। ये सब घोड़े, श्वेत, पीले, सारंग, नील, पीत, विलोहित (विशेष लाल), काले, हरे, पृषत (छोटे कदके) और पृश्नि (दही के वर्ण) के हैं।।८२-८२½।। अब मंगल ग्रह के रथ को बताते हैं। उन मंगलग्रह का रथ वायु के वेग के समान दौड़ने वाले मोटी दशाओं वाले बलवान् आठ घोड़े वाला सोने का उत्तम रथ है।। कुमार मंगलग्रह इन आसक्तिरहित, अग्नि से उत्पन्न सर्वत्र गमन करने वाले सीधे और टेढ़े मार्गों पर चलने वाले अश्वों द्वारा

प्रसर्पति कुमारो वै ऋजुवक्रानुभव क्रमैः। ततश्चांगिरसो विद्वान्देवाचार्यो बृहस्पतिः॥८५॥
गौरैरश्वैः कांचनेन स्यंदनेन प्रसर्पति। अब्जैस्तु वाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातरंहसैः॥८६॥
नक्षत्रेऽब्दं स तिष्ठन्वै संवेधास्तेन गच्छति। ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः सबलैर्व्योमसंभवैः॥८७॥

काष्णायसं समारुह्य स्यंदनं याति वैः शनैः।
स्वर्भानोश्च तथैवाश्वाः कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवाः॥८८॥

रथं तमोमयं तस्य सकृद्युक्ता वहं त्युत। आदित्यान्निःसृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु॥८९॥
आदित्यमेति सोमश्च पुनः सौरेषु पर्वसु। अथ केतुरथस्याश्वा अष्टौ वै वातरंहसः॥९०॥
पलालधूमवर्णाभा सबला रासभारुणाः। एते वाहा ग्रहाणां च ह्युपाख्याता रथैः सह॥९१॥
सर्वे ध्रुवनिबद्धास्ते प्रवृद्धा वातरश्मिभिः। तपंते भ्राम्यमाणास्तु यथायोगं भ्रमंति वै॥९२॥
वायव्याभिरदृश्याभिः प्रवृद्धा वातरश्मिभिः। परिभ्रमंति तद्बद्धांश्चंद्रसूर्यग्रहा दिवि॥९३॥
भ्रमंतमनुगच्छंति ध्रुवं ते ज्योतिषीं गणाः। यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहो ह्यते॥९४॥
तथा देवालया ह्येते ऊह्यंते वातरश्मिभिः सर्प्यमाणा न दृश्यंते व्योम्नि देवगणास्तु ते॥९५॥
यावत्यश्चैव ताराश्च तावंतो वातरश्मयः। सर्वा ध्रुवे निबद्धाश्च भ्रमंत्यो भ्रामयंति ताः॥९६॥
तैलपीडा यथा चक्रं भ्रमंतो भ्रामयंति ह। तथा भ्रमंति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः॥९७॥
अलातचक्रवद्यांति वातचक्रेरितानि तु। यतो ज्योतींषि वहते प्रवहस्तेन स स्मृतः॥९८॥

भ्रमण करते हैं।।८२½-८४½।। उसके बाद अङ्गिरा पुत्र देवों के आचार्य विद्वान् बृहस्पति गौरवर्ण वाले घोड़ों द्वारा जोते गये सोने के रथ से चलते हैं। वे जल से उत्पन्न, वायु के वेग के समान दौड़ने वाले आठ दिव्य अश्वों द्वारा एक वर्ष में एक नक्षत्र पर रुकते हुये चलते हैं।।८४½-८६½।। उसके बाद शनैश्चर भी आकाश से उत्पन्न बलशाली अश्वों द्वारा काले लोहे के बने हुए रथ पर अच्छी तरह चढ़कर धीरे-धीरे चलते हैं।।८६½-८७½।। उसी प्रकार इन सूर्यपुत्र राहु के रथ में मन के समान वेगवाले काले रंग के आठ घोड़े जुते हुए हैं। उनका रथ अन्धकारयुक्त एक बार जुटकर होकर चलता ही रहता है। सूर्य से निकले हुए ये राहु पर्वों (अमावस्याओं) में चन्द्रमा में प्रवेश कर जाते हैं और फिर पर्वों में चन्द्रमण्डल से निकलकर सूर्यमण्डल में प्रवेश किया करते हैं।।८७½-८९½।। केतु के रथ के आठ घोड़े वायु समान वेग वाले गधे की भाँति धुंधले रंग के, चितकबरे और धान के भूंसे के धुंये की तरह हैं।। ८९½-९०½।। इस प्रकार रथों के साथ ग्रहों का वर्णन किया गया। ये सभी वायु किरणों द्वारा (अर्थात् आकर्षण द्वारा) ध्रुव से संलग्न हैं। ये भ्रमण कराते हुये तपते हैं, यथाक्रम भ्रमण करते हैं।।९०½-९२।।

वायु सम्बन्धित अदृश्य वायु किरणों द्वारा अच्छी तरह बँधे हुये अर्थात् आकर्षण में आकृष्ट ये चन्द्र सूर्य आदि ग्रह आकाश में चलते रहते हैं।।९३।। वे चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्रादि घूमते हुए ध्रुव का अनुगमन करते हैं। जिस प्रकार नदी के जल में नौका जल के साथ ले जायी जाती है, उसी प्रकार ये सब देवालय (देवों के रथ) वायु की किरणों द्वारा ले जाये जाते हैं। आकाश में चलते हुए ये देवगण दिखाई नहीं देते हैं।।९३-९५।। जितने तारागण हैं, उतनी ही वायु की किरणें हैं।। वे सब तारागण आकाश में घूमते और घुमाते हैं।।९६।। कोल्हू का चक्का जैसे स्वयं घूमता और दूसरों को घुमाता है। उसी प्रकार समस्त नक्षत्र सब वार वार स्वयं घूमते हैं और दूसरों को घुमाते हैं।।९७।। वायु के चक्र से प्रेरित ये सब नक्षत्रमण्डल अलातचक्र की भाँत भ्रमण करता है; क्योंकि यह नक्षत्र वायु द्वारा चलता

एवं ध्रुवनिबद्धोऽसौ सर्पते ज्योतिषां गणः। सैष तारामयो ज्ञेयः शिशुमारो ध्रुवो दिवि॥९९॥
यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वा तन्निशि मुञ्चते। यावत्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि॥१००॥

तावंत्येव तु वर्षाणि जीवताभ्यधिकानि तु।
साकारः शिशुमारश्च विज्ञेयः प्रविभागशः॥१०१॥

औत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः। यज्ञः परस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रितः॥१०२॥
हृदि नारायणः साध्यो ह्यश्विनौ पूर्वपादयोः। वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी॥१०३॥

शिश्नं संवत्सरस्तस्य मित्रोऽपानं समाश्रितः।
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मारीचः कश्यपो ध्रुवः॥१०४॥

तारकाः शिशुमारस्य नास्तं यांति चतुष्टयम्। नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह॥१०५॥

उन्मुखा विमुखाः सर्वे वक्रीभूताः श्रिता दिवि।
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम्॥१०६॥

परियांतीश्वरश्रेष्ठं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि। अग्नींद्रकश्यपानां तु चरमोऽसौ ध्रुवः स्मृतः॥१०७॥
एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्द्धनि। ज्योतिषां चक्रमेतद्धि गदा कर्षन्नवाङ्मुखः।

मेरुमालोकयत्येष पर्यंते हि प्रदक्षिणम्॥१०८॥

इति श्रीमहाब्रह्मांडे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे ध्रुवचर्याकीर्तनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥२३॥

है, ऐसा कहा गया है।।९८।। इस प्रकार यह ज्योतिषों (ग्रहनक्षत्रों) का समूह ध्रुव से निबद्ध होकर चलता है, वह यही तारामय जाना जाता है तथा आकाश में शिशुमार ध्रुव ही कहा गया है।।९९।। जो दिन में पाप किया जाता है, वह पाप रात में ध्रुव को देखकर नष्ट हो जाता है। आकाश में जितने भी तारागण शिशुमार पर आश्रित हैं, उतने ही वर्ष शिशुमार (ध्रुव) को देखने से जीवित रहता है तथा उससे भी अधिक वह जीता है। यह साकार शिशुमार है। इस प्रकार विभाग क्रम से इसे जानना चाहिये।।१००-१०१।। उत्तानपाद जिसकी ऊपर वाला हनु (ठोड़ी), यज्ञ नीचे वाला हनु, धर्ममस्तक, नारायण हृदय, अश्विनी कुमार पूर्व दो पैर, वरुण अर्यमा पश्चिम दो पैर, शिश्न संवत्सर, मित्र अपान (गुदादेश, पूंछ, अग्नि, महेन्द्र, मारीच, कश्यप तथा ध्रुव है।।१०२-१०४।। नक्षत्र चन्द्र सूर्य और तारागणों के साथ ग्रहों इन चारों शिशुमार चक्र के तारों का अस्त नहीं होता है।।१०५।। ये सब आमने-सामने मुख करके अथवा एक-दूसरे के विमुख हो अथवा वक्र होते हुए आकाश में आश्रित रहते हैं तथा ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित ये सब ध्रुव की ही परिक्रमा करते हैं।।१०६।। ये सभी दौनी की मथानी की तरह आकाश में ध्रुव की ही परिक्रमा करते हैं। अग्नि, इन्द्र और कश्यपों में ध्रुव ही सबसे श्रेष्ठ हैं। ये एक ध्रुव ही मेरुपर्वत के ऊपर ज्योतिष चक्र का आकर्षण करते हैं, अधोमुख होकर घूमते रहते हैं तथा परिक्रमा पर्यन्त ये मेरु को देखते हैं।।१०७-१०८।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद तेईसवां अध्याय ध्रुवचर्या का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

ज्योतिषसन्निवेशनम्

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्ते संशयान्विताः। पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते रोमहर्षणम्॥१॥
यदेतदुक्तं भवता गृहाणीत्येव विस्तृतम्। कथं देवगृहाणि स्युः कथं ज्योतींषि वर्णय॥२॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिषां चैव निर्णयम्।

वायुरुवाच

श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः॥३॥
उवाच परमं वाक्यं तेषां संशयनिर्णयम्। अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं ज्ञानबुद्धिभिः॥४॥
एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्भवम्। यथा देवगृहाणीह सूर्यचन्द्रग्रहाः स्मृताः॥५॥
ततः परं च त्रिविधस्याग्नेर्वक्ष्ये समुद्भवम्। दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरब्योनेः पार्थिवस्य तु॥६॥
व्युष्टायां तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसावृतम्॥७॥
सर्वभूतावशिष्टेऽस्मिँल्लोके नष्टविशेषणे। स्वयंभूर्भगवांस्तत्र लोकतंत्रार्थसाधकः॥८॥
खद्योतवत्स व्यचरदाविर्भावचिकीर्षया। सोऽग्निं दृष्ट्वाथ लोकादौ पृथिवीजलसंश्रितम्॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय–२४

ज्योतिष सन्निवेशन

सूत जी बोले—जब मुनियों ने ध्रुवचर्या वर्णन सुना तो उसे सुनकर मुनि लोग संशयान्वित हो गये और संशययुक्त मुनियों ने रोमहर्षण सूत जी से पूछा।।१।। कि जो आपने देवों के घरों का वणर्न किया है, वे देवों के घर कैसे हैं और वे ग्रह नक्षत्रादि कैसे हैं?।।२।। यह सब सम्यक् प्रकार ग्रह-नक्षत्रों का निर्णय हमें बताइये, तब वायु ने कहा।। इस प्रकार उन मुनियों के बचन को सुनकर समाहित चित्त होकर उन ऋषियों के सन्देह का निर्णय करने वाले परम वाक्य बोले—कि इस विषय में महान् विद्वानों ने ज्ञान और बुद्धियों से जो कहा है, वह मैं सूर्य और चन्द्रमा की उत्पत्ति आप लोगों को बताऊँगा। जैसे देवों के घर हैं तथा जैसे वे सूर्य और चन्द्र ग्रह कहे गये हैं, यह सब मैं आपको बताऊँगा और उसके पहले तीन प्रकार की अग्नि की उत्पत्ति बताऊँगा।।३-५½।।

सूत जी कहते हैं कि अग्नि तीन प्रकार के हैं—दिव्य, भौतिक और पार्थिव। जिनके जन्म के बारे में कुछ भी व्यक्त नहीं, उन ब्रह्मा की रात्रि के बीत जाने पर केवल यह विना आकृति वाली प्रकृति (प्रधानतत्त्व) थी अर्थात् कहीं कोई आकृति नहीं थी। केवल रूप विहीन प्रकृति थी। सब कुछ रात्रि के अन्धकार से आवृत था।।५½-७।। उस समय सभी भूत (पञ्चतत्त्व) जड़चेतन रूप विशेषण नष्ट हो चुके थे। वहां केवल विशेष लोकतन्त्र के अर्थ को सिद्ध करने वाले भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा ही थे।।८।। वे स्वयम्भू संसार का आविर्भाव करने की इच्छा से खद्योत के समान यदा

संवृत्य तं प्रकाशनार्थं त्रिधा व्यभजदीश्वरः।
पवनो यस्तु लोकेऽस्मिन्पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते॥१०॥
यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृतः।
वैद्युतोऽब्जस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्येऽथ लक्षणम्॥११॥
वैद्युतो जाठरः सौरो ह्यषां गर्भास्त्रयोऽग्रयः।
तस्मादयः पिबन्सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि॥१२॥
वैद्युतेन समाविष्टो वार्ष्यो नाद्भिः प्रशाम्यति।
मानवानां च कुक्षिस्थो नाद्भिः शास्यति पावकः॥१३॥
तस्मात्सौरो वैद्युतश्च जाठरश्चाप्यनिंधनः।
किंचिदप्सु मतं तेजः किंचिद्दिष्टमबिंधनम्॥१४॥
काष्ठेंधनस्तु निर्मथ्यः सोऽद्भिः शाम्यति पावकः।
अर्चिष्मान्पवमानोऽग्निर्निष्प्रभो जाठरः स्मृतः॥१५॥
यश्चायं मण्डले सुक्लो निरूष्मा संप्रकाशकः।
प्रभा सौरी तु पादेन ह्यस्तं याति दिवाकरे॥१६॥

कदा प्रकाश करते हुए विचरण कर रहे थे। उन्होंने लोक के आदि में पृथ्वी और जल में सम्यक् प्रकार से आश्रित अग्नि को देखकर तथा उसका संवरण करके प्रकाश करने के लिये तीन भागों में बाँट दिया।।९-९½।। पवन[१] जो इस लोक में है, वह पार्थिव अग्नि कहा जाता है और जो सूर्य में तपती है, वह शुचि अग्नि कही जाती है, तीसरी वैद्युत अग्नि है, जो जल से उत्पन्न हुई है। अब उसका लक्षण बताते हैं।।९½-११।।

वैद्युत, जाठर और सौर ये तीनों अग्नि जल से उत्पन्न हुए हैं। उसी कारण से जल को पीते हुये सूर्य अपनी किरणों के द्वारा आकाश (स्वर्ग) में चमकते हैं।।१२।। वैद्युत से जलों में समाया हुआ अग्नि जलों से भी शान्त नहीं होता है। अर्थात् मेघ में जो कड़कने वाली बिजली है, वह वर्षा के जल से भी शान्त नहीं होती, जबकि जल से अग्नि शान्त हो जाती है। मनुष्यों के पेट में खाना पचाने वाली अग्नि भी जलों से शान्त नहीं होती है। भाव यह है कि पेट में जल भी रहता ही है तथा अग्नि जल से शान्त हो जाता है; परन्तु पेट की अग्नि जल से शान्त नहीं होती, यदि शान्त हो जाती, तब तो खाना ही नहीं पचता।।१३।। इसीलिए वैद्युत और जाठर अग्नि ये तीनों (अनिन्धन) विना ईंधन वाले अग्नि हैं। इस प्रकार कुछ जलीय अग्नि माने गये हैं, जिनका जलों में तेज है और कुछ इन्धन लकड़ी से उत्पन्न देखी गयी हैं।।१४।। लकड़ी के ईंधन की अग्नि तो निर्मथ्य कही जाती है; क्योंकि वह अरणियों (लकड़ियों) के मन्थन से पैदा हुई है। अतः वह अग्नि तो पानी से शान्त हो जाती है। पेट में खाना पचाने वाले जो जाठराग्नि हैं, वे प्रभाहीन; परन्तु बहुत तेज वाले अग्नि हैं।।१५।। जो यह आकाशमण्डल में विना उष्मा (Energy) वाले; परन्तु

१. पवन का अर्थ यहाँ अग्नि है; क्योंकि 'पूञ्' धातु से 'अन' प्रत्यय से पवन शब्द बना है। जिसका अर्थ है— पवित्र करने वाला (पुनातीति पवनः)। अतः अग्नि भी पवित्र करने वाला है तथा पवित्र करने के कारण वायु को भी पवन कहा गया है।

अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशके।
उद्यंतं च पुनः सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशत्॥१७॥
पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ।
प्राकाश्यं च तथौष्ण्यं च सौराग्नेये तु तेजसी॥१८॥
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते परस्परम्। उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा ह्यग्निश्च दक्षिणे॥१९॥
उत्तिष्ठति पुनः सूर्ये रात्रिराविशते ह्यपः। तस्मात्तप्ता भवंत्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात्॥२०॥
अस्तं याति पुनः सूर्ये अहर्वै प्रविशत्यपः।
तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला आपोऽदृश्यंत भास्वराः॥२१॥
एतेन क्रमयोमेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे। उदयास्तमने नित्यमहोरात्रं विशत्यपः॥२२॥
यश्चासौ तपते सूर्यः पिबन्नंभो गभस्तिभिः।
पार्थिवाग्निविमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः॥२३॥
सहस्रपादसौ वह्निर्घृतकुंभनिभः शुचिः। आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समंततः॥२४॥
नादेयीश्चैव सामुद्रीः कौप्याश्चैव समंततः। स्थावरा जंगमाश्चैव याश्च कुल्यादिका अपः॥२५॥
तस्य रश्मिसहस्रं तु शीतवर्षोष्णनिःस्तवम्। तासां चतुःशता नाड्यो वर्षते चित्र मूर्त्तयः॥२६॥
चन्दनाश्चैव साध्यश्च कूतनाकूतनास्तथा। अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः॥२७॥

सम्यक् प्रकाश करने वाले शुक्र हैं, उनमें सूर्य के एक चरण की प्रभा है, जो दिन में सूर्य के रहने पर अस्त हो जाते हैं तथा रात्रि में अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं। उसी कारण वे दूर से प्रकाशित होते हैं और फिर उदित हुए सूर्य की अग्नि में समा जाते हैं।।१६-१७।। फिर सूर्य के उदय होने पर पार्थिव अग्नि के एक चरण से वह अग्नि तपाती है। अर्थात् सूर्योदय काल में पार्थिव अग्नि की गर्मी सूर्य में समा जाती है, जिसके कारण सूर्य तपाते हैं। प्रकाशित करना और वातावरण को गर्म करना ये दोनों गुण परस्पर पार्थिव अग्नि और सूर्य दोनों में एक-दूसरे में प्रवेश करके पैदा होते हैं।।१७-१८½।। इस गोल पृथ्वी के दो भाग हैं, आधा भाग उत्तर में, आधा दक्षिण में अतः इन दोनों गोलार्धों में जव सूर्य उदित होते हैं, तब रात्रि जल में प्रवेश कर जाती है। उसी कारण से दिन में रात्रि के प्रवेश करने से जल तप्त (गर्म) हो जाता है।।१८½-२०।। पुनः सूर्य के अस्त हो जाने पर दिन जल में प्रवेश कर जाता है, इसीलिये रात्रि में जल और चमकते हुए दिखाई देते हैं।।२१।।

इस क्रमयोग से दक्षिण और उत्तर गोलार्द्ध में सूर्य के उदय और अस्त होने पर रात और दिन जल में प्रवेश किया करते हैं।।२२।। यह जो अपनी किरणों द्वारा जल पीते हुए सूर्य तपते हैं, यह विशेष मिला हुआ पार्थिव अग्नि दिव्य शुचि अग्नि कहा गया है।।२३।। हजारों किरणों वाले सूर्य की यह शुचि अग्नि घृत के घड़े के समान पवित्र है। इस जल को सूर्य अपनी हजारों किरणों से चारों ओर से ग्रहण करते हैं। यह जल नदियों का है, समुद्रों का है और कुओं का है तथा स्थावर पृथ्वी पर्वतादि स्थानों तथा चलने वाले प्राणियों के शरीरों का है। यह सूर्य ने अपनी किरणों द्वारा इन सबमें से खींचा है।।२४-२५।। उन सूर्य की हजारों किरणें शीत, वर्षा और उष्ण को पैदा करने वाली हैं। उनमें विचित्र मूर्तिवाली चार सौ किरणें वर्षा किया करती हैं।।२६।। ये किरणें आनन्द देने वाली हैं। साध्य हैं और नई और पुरानी हैं; क्योंकि ये निरन्तर निकलती रहती हैं। अतः नयी पुरानी होती रहती हैं। ये सभी किरणें

हिमोद्वताश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशताः पुनः।
दृश्या मेघाश्च याम्यश्च ह्रदिन्यो हिमसर्जनाः॥२८॥
चन्द्रास्ता नामतः प्रोक्ता मिताभास्तु गभस्तयः।
शुक्लाश्च कुहुकाश्चैव गावो विश्वभृतस्तता॥२९॥
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशता धर्मसर्जनाः। समं विभज्य नाडीस्तु मनुष्यपितृदेवताः॥३०॥
मनुष्यानौषधेनेह स्वधया तु पितृनपि। अमृतेन सुरान्सर्वांस्त्रींस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ॥३१॥
वसंते चैव ग्रीष्मे च शतैः स तपति त्रिभिः। वर्षास्वथो शरदि वै चतुर्भिश्च प्रवर्षति॥३२॥
हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजते त्रिभिः। इंद्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा॥३३॥
अंशुर्विवस्वांस्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च। माघमासे तु वरुणः पूषा चैव तु फाल्गुने॥३४॥
चैत्रे मासि तु देवोंशुर्धाता वैशाखतापनः। ज्येष्ठमासे भवेदिंद्रश्चाषाढे सविता रविः॥३५॥
विवस्वाञ्छ्रावणे मासि प्रोष्ठे मासे भगः स्मृतः।
पर्जन्योऽश्वयुजे मासि त्वष्टा च कार्तिके रविः॥३६॥
मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः। पंचरश्मिसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि॥३७॥
षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोंऽशुसप्तभिस्तथा। धाताऽष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिस्तु शतक्रतुः॥३८॥
सविता दशभिर्याति यात्येकादशभिर्भगः। सप्तभिस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाष्टभिस्तपेत्॥३९॥

अमृत नाम वाली हैं तथा वर्षा को उत्पन्न करने वाली हैं।।२७।। इसके बाद हिम से निकली हुई अन्य ३०० किरणे हैं, जो दृश्य, मेध्य, याम्य, ह्रादिनी तथा चन्द्र इस नाम से प्रसिद्ध हैं तथा वे हिम की वर्षा करने वाली हैं तथा वे किरणें सीमित आभावाली हैं।।२८-२८½।। शुक्ला, कुहुका, गौ तथा विश्वभृत नामक किरणें हैं, जो सब शुक्ल वर्ण की हैं तथा वे ३०० किरणें घाम को पैदा करने वाली हैं।।२८½-२९½।। ये किरणें समानरूप से विभक्त होकर मनुष्य, पितर और देवों का पोषण करती हैं। इस लोक में ये किरणें मनष्यों को औषधि से पितरों को स्वधा से और सब देवों को अमृत से तप्त करती हैं।।२९½-३१।। बसन्त और ग्रीष्म में ये सूर्य तीन सौ किरणों के द्वारा ताप प्रदान करती हैं तथा वर्षाओं में और शरद् ऋतुओं में चार सौ किरणों के द्वारा वर्षा करते हैं।।३२।।

हेमन्त और शिशिर में ये तीन के द्वारा हिम का उत्सृजन करते हैं। इन्द्र, धाता, भग, पूषा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अंशु, विवस्वान्, त्वष्टा, रवि और विष्णु ये भी वे सूर्य ही हैं, उनके ही कर्मानुसार ये नाम हैं।।३३-३३½।। माघ मास में वरुण, फाल्गुन में पूषा, चैत्रमास में देव अंशु तथा धाता वैसाख में ताप प्रदान करने वाले हैं। ज्येष्ठ मास में इन्द्र आषाढ़ में सविता, श्रवण मास मे विवस्वान्, भादो के महीने मे भग, आश्विन में त्वष्टा, कार्तिक में रवि, अगहन में मित्र तथा पौष में विष्णु नाम वाले से सूर्य ही सदा संसार का पालन करते हैं।।३३½-३६½।। ये सब सूर्य कितनी कितनी किरणों से संसार को ताप वितरण करते हैं। सूर्य के द्वारा पृथ्वी को ताप वितरण कर्म में वरुण की पांच हजार किरणें माघ मास में वरुण छः हजार किरणों से पृथ्वी को तपाते हैं, उसी तरह फाल्गुन में छः हजार किरणों से पूषा, चैत में सात हजार से अंशु, वैसाख में आठ हजार से धाता, ज्येष्ठ में नौ हजार से शतक्रतु, आषाढ़ में दश हजार से सविता, सावन मे ग्यारह हजार से भग, फिर भादो में सात हजार से मित्र, क्वार में आठ हजार से

अर्यमा दशभिर्याति पर्जन्यो नवभिस्तपेत्। षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति मेदिनीम्॥४०॥
वसंते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मेऽर्कः कनकप्रभः। श्वेतवर्णस्तु वर्षासु पांडुः शरदि भास्करः॥४१॥
हेमन्ते ताम्रवर्णस्तु शैशिरे लोहितो रविः। इति वर्णाः समाख्याताः सूर्यस्यर्तुसमुद्भवाः॥४२॥
औषधीषु बलं धत्ते स्वधया च पितृष्वपि। सूर्योऽमरेष्वप्यमृतं त्रयं त्रिषु न यच्छति॥४३॥
एवं रश्मिसहस्रं तु सौरं लोकार्थसाधकम्। भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णानिस्त्रवम्॥४४॥
इत्येतन्मंडलं शुक्लं भास्वरं सूर्य संज्ञितम्। नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठा योनिरेव च॥४५॥
चंद्रऋक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसंभवाः। नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रह राजो दिवाकरः॥४६॥
शेषाः पंच ग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामचारिणः। पठ्यते चाग्निरादित्य उदकं चंद्रमाः स्मृतः॥४७॥
शेषाणां प्रकृतीः सम्यग्वर्ण्यमाना निबोधत। सुरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः॥४८॥
नारायणं बुधं प्राहुर्वेदज्ञानविदो बुधाः। रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद्यमो लोकप्रभुः स्वयम्॥४९॥
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मंदगामी शनैश्चरः। देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ॥५०॥
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती। आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः॥५१॥

त्वष्टा, कार्तिक में अर्यमा दश हजार से, अगहन में नौ हजार से पर्जन्य और पौष में छः हजार किरणों से विष्णु पृथ्वी को तापित करते हैं।।३६½-४०।। बसन्त में सूर्य कपिल वर्ण के होते हैं। ग्रीष्म में सूर्य सवर्ण वर्ण के होते हैं। वर्षाओं में श्वेतवर्ण के और शरद् ऋतु में भगवान् भास्कर पाण्डु वर्ण के हो जाते हैं।।४१।। उसी तरह हेमन्त ऋतु में ताम्रवर्ण के, शिशिर में लाल वर्ण के हो जाते हैं। इस प्रकार ये ऋतुओं में उत्पन्न सूर्य के वर्ण सम्यक् प्रकार से कहे गये हैं।।४२।। ये सूर्य औषधियों में बल धारण कर देते हैं। पितरों में स्वधा से उन्हें धारण करते हैं और देवों मे अमृत देकर उन्हें धारण करते हैं। अतः वे तीनो को तीनों नहीं प्रदान करते। सबको अलग-अलग प्रदान करते हैं।।४३।। इस प्रकार सूर्य की हजारों किरणें लोक-कल्याण करने वाली हैं। वे किरणें समय पर ऋतुओं को प्राप्त वर्षा में जल शीतकाल में शीतलता और गर्मी की ऋतु में गर्मी पैदा करती है।।४४।। इस प्रकार जो यह ऊपर श्वेतवर्ण का चमकता हुआ मण्डल सूर्य का नाम का है, वह सूर्य नक्षत्र ग्रह और चन्द्रमा की प्रतिष्ठा और उत्पत्ति स्थल है[1] अर्थात् ये नक्षत्रादि सब सूर्य से ही पैदा हुए हैं तथा उसी के कारण प्रतिष्ठित हैं। सबको सूर्य ही चला रहे हैं।।४५।।

चन्द्रमा ग्रह और नक्षत्र सब सूर्य से उत्पन्न हुए हैं। अतः नक्षत्रों के राजा चन्द्रमा को कहा जाता है तथा ग्रहों के राजा सूर्य हैं।।४५।। शेष पाँच इच्छानुसार विचरण करने वाले और सर्वसमर्थ हैं। पुस्तकों में शास्त्रों में अग्नि को आदित्य और जल को चन्द्रमा कहा गया है।।४६।। शेष ग्रहों की प्रकृति वर्णन की जा रही है, ध्यानपूर्वक सुनिये। देवों के सेना पति स्कन्द (कार्तिकेय) मंगल ग्रह कहे जाते हैं।। वेद ज्ञान के ज्ञाता बुध को नारायण कहते हैं। लोक में रुद्र ही साक्षात् वैवम्वत् यम और स्वयं संसार के उत्पत्तिकर्ता कहे जाते हैं।।४७-४९।। धीरे धीरे चलने वाला द्विजश्रेष्ठ महाग्रह शनैश्चर हैं। देवों और असुरों के दो गुरु सूर्य से प्रकाशित दो महाग्रह हैं। ये दोनों महाग्रह प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र हैं, जिनके नाम शुक्र और बृहस्पति है। ये त्रिलोकी (अर्थात् इन तीनों लोकों के मूल कारण सूर्य ही हैं,

१. यहाँ यह एक वैज्ञानिक तथ्य है, इसका तात्पर्य है कि पूर्वज ऋषियों को यह विदित था कि सभी ग्रह सूर्य से ही पैदा हुए हैं, जिसे आज विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है।

भवत्यस्माज्जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्। रुद्रोपेन्द्रेन्द्रचंद्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम्॥५२॥
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्नं यत्तेजः सार्वलौकिकम्।
सर्वात्मा सर्व लोकेशो महादेवः प्रजापतिः॥५३॥
सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम्। ततः संजायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते॥५४॥
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा।
जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान्सुप्रभो रविः॥५५॥
अत्र गच्छंति निधनं जायते च पुनः पुनः।
क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च कृत्स्नशः॥५६॥
मासा; संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च। तदादित्यादृते ह्येषा कालसंख्या न विद्यते॥५७॥
कालादृते न निगमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः। ऋतूनमविभागाच्च पुष्पमूलफलं कुतः॥५८॥
कुतः सस्यविनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणोऽपि वा। अभावो व्यवहाराणां जंतूनां दिवि चेह च॥५९॥
जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम्। स एष कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः॥६०॥
तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचम्। स एष तेजसां राशिस्तमो घ्नन्सार्वलौकिकम्॥६१॥
उत्तमं मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदं जगत्। पार्श्वमूर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः॥६२॥
यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्येऽवलंबितः। पार्श्वमूर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम्॥६३॥

इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५०-५१।। इन सूर्य से ही देवता असुर और मनुष्यों सहित समस्त संसार पैदा होता है। विप्रो! रुद्र, उपेन्द्र, इन्द्र एवं चन्द्रादि देवों का जो तेज है, वह सूर्य का ही तेज है। ये ही सबकी आत्मा, लोक के रचयिता महादेव और प्रजापति हैं। सूर्य ही त्रिलोक के मूल कारण और परमदेवता हैं।। उन सूर्य से ही सब कुछ पैदा होता है और उन्हीं में विलीन हो जाता है अर्थात् सृष्टि और प्रलय कर्ता सूर्य ही हैं।।५२-५४।।

हे विप्रो! लोकों का भाव (पैदा होना) और अभाव (नष्ट होना) ये दोनों पूर्व काल में आदित्य से निःसृत हैं। इसलिये यह संसार ही ग्रह है और सूर्य दीप्तिमान् सुन्दर ग्रह हैं। यह जानना चाहिये।।५५।। जहां से बार-बार, क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष (शुक्ल और कृष्ण) ये सभी तथा मास और संवत्सर तथा ऋतुयें आदि इन सूर्य में निधन (मृत्यु) को प्राप्त करते हैं और फिर उत्पन्न होते हैं। उन सूर्य के विना यह समय की गणना भी नहीं हो सकती।।५६-५७।। तथा कालगणना के विना न वेदों का ज्ञान हो सकता है, न कोई दीक्षा हो सकती है, न दैनिक कार्य कलाप हो सकते हैं और न ऋतुओं का विभाग होगा। जब ऋतु विभाग नहीं होगा, तब पुष्प-फल और मूल कहां से होंगे।।५८।। सूर्य के विना अन्नों की उत्पत्ति, तृण औषधियां कहां से होंगी, फिर तो स्वर्ग (आकाश) और पृथ्वी पर प्राणियों के व्यवहारो का भी अभाव हो जायेगा। सब कुछ सबका कार्य रुक जायेगा।।५९।। ये सूर्य ही काल हैं, अग्नि हैं और द्वादशात्मा प्रजापति हैं। भास्कर के विना संसार का प्रताप (उष्णत्व) जल द्वारा नष्ट हो जायेगी।।६०।। हे विप्रो! ये सूर्य जड़ चेतन सहित समस्त संसार को तपाते हैं (उष्णता) Energy प्रदान करते हैं। वह यह सूर्य ही तेजो की राशि है तथा समस्त संसार के अन्धकार का नाश करने वाले हैं।।६१।। ये सूर्य भगवान् वायु के उत्तम मार्ग का आश्रय लेकर इस संसार को पास से, ऊपर से और नीचे से सब ओर से ताप प्रदान करते हैं।।६२।। जिस प्रकार

तद्वत्सहस्त्रकिरणो ग्रहराजो जगत्पतिः। सूर्यो गोभिर्जगत्सर्वमादीपयति सर्वतः॥६४॥
रवे रश्मिसहस्त्रं यत्प्राङ्मया समुदाहृतम्। तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः॥६५॥
सुषुम्णो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च। विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः संपद्वसुरतः परः॥६६॥
अर्वावसुः पुनश्चान्यः स्वराडन्यः प्रकीर्त्तितः। सुषुम्णः सूर्यरश्मिस्तु क्षीणशशिनमेधयेत्॥६७॥
तिर्यगृर्ध्वप्रचारोऽसौ सुषुम्णः परिकीर्त्तितः। हरिकेशः पुरस्ताद्य ऋक्षयोनिः स कीर्त्यते॥६८॥

दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिन्वर्द्धयते बुधम्।
विश्वश्रवास्तु यः पश्चाच्छुक्रयोनिः स्मृतो बुधैः॥६९॥

संपद्वसुस्तु यो रश्मिः स योनिर्लोहितस्य तु। षष्ठस्त्वर्व्वावसू रश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पतेः॥७०॥
शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट्। एवं सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारकाः॥७१॥
वर्त्तन्ते दिवि ताः सर्वा विश्वं चेदं पुनर्जगत्। न क्षीयन्ते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रसंज्ञिताः॥७२॥
क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतंति गभस्तिभिः। तेषां क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्यो नक्षत्रकारकाः॥७३॥
तीर्णानां सुकृतेनेह सुकृतांते ग्रहाश्रयात्। तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः॥७४॥

घर के मध्य में लटकता हुआ प्रकाश करने वाला दीपक पास का, ऊपर का और नीचे का सब अन्धकार नष्ट कर देता है। उसी प्रकार हजारों किरणों वाले समस्त ग्रहों के राजा संसार के स्वामी सूर्य अपनी किरणों से समस्त संसार को सब ओर से प्रकाशित करते हैं।।६३-६४।।

सूत जी बोले कि सूर्य की जो हजार किरणें मैंने पहले आपको वतायी हैं, उनमें से सात किरणें श्रेष्ठ हैं, जो ग्रहों की उत्पत्ति स्थान हैं।।६५।। वे सात किरणें हैं—१-सुषुम्णा, २-हरिकेश, ३-विश्वकर्मा, ४-विश्वश्रवा उसके बाद ५-सम्पत् वसु, फिर अन्य किरण हैं। अर्वावसु तथा सातवीं किरण स्वराट् कही गयी है।।६६-६६½।। सुषुम्णा नामक सूर्य की वह किरण है, जो क्षीण चन्द्र की वृद्धि करे। इस सुषुम्णा का फैलाव (प्रसार) तिरछा और ऊपर से बताया गया है। हरिकेश नामक किरण आगे की ओर होतीहै तथा यह नक्षत्रों की जननी कही गयी है।।६६½-६८।। दक्षिण में सूर्य की किरण विश्वकर्मा है, जो बुध ग्रह की वृद्धि करती है अर्थात् बुध ग्रह को प्रकाशित करती है। विश्वश्रवा वह पीछे वाली किरण है, जो विद्वानों द्वारा शुक्र की जननी कही गयी है।।६९।। संपद्वसु जो किरण है, वह लोहित (मंगल ग्रह) की योनि (जननी) है तथा छठी रश्मि अर्व्वावसु है, जो बृहस्पति ग्रह की उत्पत्तिकर्ता है।।७०।।

सातवीं रश्मि स्वराट् शनैश्चर ग्रह को बढ़ाती है (प्रकाशित करती है)।।७०½।। इस प्रकार सूर्य के प्रभाव से ग्रह नक्षत्र और तारे ये सब आकाश में तथा इस समस्त संसार में वर्तमान रहते हैं।।७०½-७१½।। 'नक्षीयते यतस्तानि' जो नष्ट नहीं होते हैं, इस व्युत्पत्ति के अनुसार नक्षत्र शब्द बना है। अतः यथा नाम तथा गुण के अनुसार न नष्ट होने वाले होने के कारण ये सब नक्षत्र नक्षत्र कहे जाते हैं।।७१½-७२।। पहले सूर्य अपनी किरणों द्वारा क्षेत्रों में पतित होते हैं और उनके क्षेत्रों का ग्रहण करते हैं। अतः सूर्य भी नक्षत्र कहलाते हैं।।७३।। अच्छे कर्मों के तीर्ण करने वाले अर्थात् अच्छे कर्मों के द्वारा जो तारने वाले हैं तथा ग्रहों का यही कार्य है। इस तारण (उद्धार) करने के कारण तथा शुक्लता के कारण तारक (तारे) तारे कहे जाते हैं। अतः तारक का अर्थ है—तारने वाले। अतः ये तारे सुकर्म द्वारा लोगों को तारते हैं, इसीलिये ये तारे कहे जाते हैं।।७४।।

दिव्यानां पार्थिवानां च नैशानां चैव सर्वशः। आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसां तपसामपि॥७५॥
सवनं स्यन्दनार्थे च धातुरेषु विभाव्यते। सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता मतः॥७६॥
बह्वर्थश्चदिरित्येष ह्लादने धातुरुच्यते। शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते॥७७॥
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मंडले भास्वरे खगे। जलतेजोमये शुक्लं वृत्तकुंभनिभे शुभे॥७८॥
घनतोयात्मकं तत्र मंडलं शशिनः स्मृतम्। घनतेजोमयं शुक्लं मंडलं भास्करस्य तु॥७९॥
विशंति सर्वदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः। मन्वंतरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः॥८०॥

तानि देवगृहाण्यव तदाख्यास्ते भवंति च।
सौरं सूर्यो विशेत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च॥८१॥
शौक्रं शुक्रो विशेत्स्थानं षोडशार्चिः प्रभास्वरम्।
जैवं बृहस्पतिश्चैव लौहितं चैव लोहितः॥८२॥

शनैश्चरो विशेत्स्थानं देवः शानैश्चरं तथा। बौधं बुधोऽथ स्वर्भानुः स्वर्भानुस्थानमास्थितः॥८३॥

नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशंत्युत।
गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम्॥८४॥

दिव्य, पार्थिव और रात्रि सम्बन्धी सब ओर के अन्धकार को आदान करने अर्थात् ले लेने के कारण आदित्य आदित्य कहे गये हैं। आ उपसर्ग पूर्वक 'दा' धातु 'क्यप्' प्रत्यय से आदित्य शब्द बना, जिसका अर्थ है—'ले लेने वाला'। अतः सूर्य अन्धकार को ले लेता है। इसलिए उसका नाम आदित्य है।।७५।। सवन और स्यन्दन अर्थ में यह धातु 'सु' आती है। 'सु' धातु में 'तृच्' प्रत्यय से 'सवितृ' शब्द बना है, जो प्रथमा के एकवचन में सविता कहा जाता है। अतः 'सु' धातु का अर्थ 'सवन' अर्थात् 'खींचना' और 'स्फुरण करना'। अतः 'तृच्' प्रत्यय से सविता का अर्थ हुआ 'खींचने वाला' तथा 'फेंकने वाला'। अतः सूर्य जल खींचने वाले हैं तथा तेज फेंकने वाले हैं। इसलिए ये सविता कहे गये हैं।।७६।। 'चदि' धातु अनेकार्थक है, जिसके अर्थ है—चमकना, प्रकाशित करना, आनन्द देना। 'चदि ह्लादने' के अनुसार यह अर्थ है। 'चदि' धातु से 'चन्द्र' शब्द बना है, जिसका अर्थ शीतत्व, शुक्लत्व और अमृतत्व में निहित है अर्थात् जो शीतलता प्रदान करता है, जिसमें शुक्लत्व है और अमृतत्व है तथा जो अमृत्व प्रदान करता है, वह चन्द्रमा है।।७७।। जल और तेजयुक्त सफेद वृत्ताकार घड़े के समान सूर्य चन्द्रमा के चमकने वाले दिव्य आकाश मण्डल में घने जल वाला जो मण्डल है, वह चन्द्रमा कहा गया है तथा घने तेज वाला जो शुक्लमण्डल है, वह सूर्य का मण्डल है।।७९।।

सब मन्वन्तरों में नक्षत्र सूर्य ग्रहों पर आश्रित सभी देवता इन सूर्य के स्थानों में प्रवेश करते हैं।।८०।। वे स्थान देवगृह कहे जाते हैं, जो जिस गृह में प्रवेश करता है, वह उसका नाम कहलाता है। सूर्य सौर स्थान में सोम सौम्य स्थान में प्रवेश करते हैं।।८१।। शुक्र शौक्र स्थान में प्रवेश करते हैं। शुक्र सोलह किरण वाले और प्रतापवान् हैं। बृहस्पति जैव स्थान में और मंगल लोहित स्थान में प्रवेश करते हैं।।८२।। तथा शनैश्चर शानैश्चर स्थान में करते हैं। बुध बौध स्थान में प्रवेश करते हैं तथा स्वर्भानु (राहु) स्वर्भानु स्थान में प्रवेश करते हैं।।८३।। सब नक्षत्र नक्षत्रों में प्रवेश करते हैं। ये सब जो ग्रह हैं, सुकर्म करने वालों की ज्योतियों में प्रवेश करते हैं।।८४।।

कल्पादौ संप्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयंभुवा। स्थानान्येतानि तिष्ठंति यावदाभूतसंप्लवम्॥८५॥
मन्वंतरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै। अभिमानिनोऽवतिष्ठंते देवस्थानानि वै पुनः॥८६॥
अतीतैस्तु सहातीता भाव्या भाव्यैः सुरैः सह। वर्त्तन्ते वर्तमानैश्च स्थानिभिस्तैः सुरैः सह।
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैतानिकाः स्मृताः॥८७॥
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वैवस्वतेऽन्तरे। त्विषिनाना धर्मसुतः सोमो देवो वसुः स्मृतः॥८८॥
शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः। बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽगिरस्सुतः॥८९॥
बुधो मनोहरश्चैव त्विषिपुत्रस्तु स स्मृतः। शनैश्चरो विरूपस्तु संज्ञापुत्रो विवस्वतः॥९०॥
अग्नेर्विकेश्यां जज्ञे तु युवाऽसौ लोहिताधिपः।
नक्षत्राण्यृक्षनामानो दाक्षायण्यस्तु ताः स्मृताः॥९१॥
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसंतापनोऽसुरः। सोमर्क्षग्रहसूर्येषु कीर्त्तिता ह्यभिमानिनः॥९२॥
स्थानान्येतानि चोक्तानि स्थानिनश्चाथ देवताः।
शुक्लमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः॥९३॥
सहस्रांशोस्त्विषेः स्थानमम्मयं शुक्लमेव च। आप्यं श्यामं मनोज्ञस्य पंचरश्मेर्गृहं स्मृतम्॥९४॥
शुक्रस्याप्यम्मयं शुक्लं पद्मं षोडशरश्मिषु। नवरश्मेस्तु भौमस्य लोहितं स्थानमम्मयम्॥९५॥

कल्प के आदि में स्वयम्भू ने इन सब ग्रह नक्षत्र एवं तारागणों को बनाया और सम्यक् रूप में प्रवृत्त किया। ये सब अपने अपने स्थानों में प्रलयकाल तक स्थित रहते हैं।।८५।। मन्वन्तरों में वे देवों के स्थान उन स्थान के अभिमानी देवों के पुनः वे ही स्थान अवस्थित होते हैं।।८६।। अतीत काल में जिन होने वाले देवताओं ने होने वाले देवताओं के स्थानों में समय बिताया भविष्य में उन्हीं स्थानियों का समय आता है। इस मन्वन्तर में ग्रह वैतानिक कहे गये हैं।।८७।। इस वैवस्वत मन्वन्तर में विवस्वान् सूर्य अदिति के पुत्र हैं तथा त्विषि नाम वाले धर्मपुत्र सोमदेव वसु कहे गये हैं।।८८।। शुक्र को असुरों के यज्ञकर्ता भार्गव जानना चाहिये। बहुत अधिक तेज वाले देवों के आचार्य बृहस्पति महर्षि अङ्गिरा के पुत्र हैं।।८९।। मनोहर बुध भी त्विषि के ही पुत्र कहे गये हैं। भयङ्कर रूप वाले शनिदेव विवस्वान् (सूर्य) के संज्ञा पुत्र हैं।।९०।। अग्नि के विकेशी के गर्भ से लोहिताधिप मंगल का जन्म हुआ है। ये ऋक्ष नाम वाले दाक्षायणी नक्षत्र कहे गये हैं। दाक्षायणी का अर्थ है—सीधे गमन करने वाले अर्थात् ये राशियों पर मेष, वृष, मिथुन के क्रम से सीधे गमन करते हैं।।९१।।

स्वर्भानु (सूर्यपुत्र) राहु सिंहिका के पुत्र हैं, जो प्राणियों को कष्ट देने वाले असुर हैं। सोम (चन्द्रमा) नक्षत्र ग्रह सूर्य में ये अभिमानी कहे गये हैं।।९२।। ये ही इन स्थानों के देवता हैं और ये ही इनके स्थान हैं।।९२-९२½।।। हजारों किरण वाले विवस्वान् (सूर्य) का अग्निमय शुक्ल स्थान है। हजार किरण वाले चन्द्रमा का स्थान भी जलमय शुक्ल स्थान ही है। दोनों में अन्तर यह है कि सूर्य का स्थान अग्निमय है तथा चन्द्रमा का जलमय है; परन्तु है दोनों का श्वेत वर्ण स्थान ही।।९२½-९३½।। मनोरम बुध का स्थान जलमय और कृष्णमय दोनों मिला हुआ स्थान है; क्योंकि वे कुछ काले सफेद वर्ण के हैं।।९४।। सोलह किरणों वाले शुक्र का स्थान भी जलमय शुक्ल वर्ण का है। नौ किरणों वाले मंगलग्रह का स्थान जलमय लोहित वर्ण का है अर्थात् जल में कुछ लालिमा के समान उनका स्थान है तथा वही रंग उनका दिखायी भी देता है।।९५।।

हरिदाप्यं बृहत्स्थानं द्वादशांशैर्बृहस्पतेः। अष्टरश्मिगृहं प्रोक्तं कृष्णं मंदस्य चाम्मयम्॥९६॥
स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसंतापनालयम्।
विज्ञेयास्तारकाः सर्वा अम्मयास्त्वे करश्मयः॥९७॥
आश्रयाः पुण्यकीर्तीनां सुशुक्लाश्चापि वर्णतः।
धनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादावेव निर्मिताः॥९८॥
आदित्यरश्मिसंयोगात्संप्रकाशात्मिकाः स्मृताः।
नवयोजनसाहस्रो विष्कंभः सवितुः स्मृतः॥९९॥
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मंडलस्य प्रमाणतः।
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः॥१००॥
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात्प्रसर्पति। उद्धृत्य पृथिवीछायां निर्मितो मंडलाकृतिः॥१०१॥
स्वर्भानोस्तु बृहत्स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम्।
आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु॥१०२॥
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु। स्वर्भासा नुदते यस्मात्तस्मात्स्वर्भानुरुच्यते॥१०३॥
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्तु विधीयते।
विष्कंभान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात्प्रमाणतः॥१०४॥

वारह किरणों वाले बृहस्पति का स्थान हरे जल के वर्ण का है और आठ किरणों वाले शनि का स्थान कृष्णजलमय (काले जल) के वर्ण का है।।९६।। सूर्य पुत्र राहु का स्थान ताम्रवर्ण का प्राणियों को कष्ट पहुँचाने का घर है। इसके बाद जो भी एक किरण वाले तारे हैं, उनका स्थान जलमय (जल के समान) है।।९७।। ये सब ग्रह पुण्य करने वाले लोगों के आश्रय हैं। वर्ण से शुक्ल हैं, जलात्मक हैं तथा कल्प के आदि में ब्रह्मा द्वारा बनाये गये हैं, यह जान लेना चाहिये।।९८।।

ये सब ग्रह नक्षत्र तारे आदि सूर्य की किरणों के संयोग से प्रकाश करने वाले कहे गये हैं। सूर्य का विष्कम्भ नौ हजार योजन बताया गया है। विष्कम्भ का अर्थ है—खम्भा अर्थात् वृत्त केबीच की दूरी, विष्कम्भ ९००० योजन।। इस विष्कम्भ का तिगुना विस्तार उनके मण्डल (वृत्त) का है, वैसे भी त्रिज्या से वृत्त तीन गुना होता है। वृत्त=त्रिज्य का २२/७ अतः तीन गुना हुआ। अतः यह कथन गणित के अनुसार उचित ही है। सूर्य के विस्तार से चन्द्रमा का दुगुना है। उन दोनों के बराबर राहु का भी विस्तार राहु का है, जो इन दोनों के नीचे होकर चलते हैं। यह मण्डलाकार राहु पृथ्वी की छाया द्वारा निर्मित हुआ है। अर्थात् पृथ्वी की छाया जब सूर्य अथवा चन्द्रमा पर पड़ती है, तब सूर्य पर पड़ने से सूर्यग्रहण और चन्द्र पर पड़ने से चन्द्रग्रहण होता है। अतः यह वैज्ञानिक तथ्य है।।१०१।। राहु का बहुत बड़ा स्थान अन्धकारमय है। वे राहु पर्वों (पूर्णिमा अमावस्या) को सूर्य से निकलकर चन्द्रमा में चले जाते हैं।।१०२।। फिर ये राहु चन्द्रमा से निकलकर सौर पर्वों (अमावस्या) को सूर्य में चले जाते हैं।। जिस कारण ये अपनी किरणों को प्रेरित करते हैं; इसीलिये स्वर्भानु कहे जाते हैं।।१०३।। चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग भार्गव (शुक्र) कहे जाते हैं। इनके विष्कम्भ और मण्डल से योजनों का प्रमाण बताया गया है अर्थात् शुक्र विष्कम्भ और मण्डल दोनों के योजन के हिसाब से सोलहवाँ भाग है।।१०४।।

भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः। बृहस्पतेः पादहीनौ भौमसौरावुभौ स्मृतौ॥१०५॥
विस्तारान्मंडलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः। तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मंति च यानि वै॥१०६॥
बुधेन समरूपाणि विस्तारान्मंडलाच्च वै।
प्रायशश्चन्द्रयोगीनि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित्॥१०७॥
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परात्। शतानि पंच चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने॥१०८॥
पूर्वापरनिकृष्टानि तारकामंडलानि च। योजनाद्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते॥१०९॥
उपरिष्टास्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः। सौरोंगिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः॥११०॥
तेभ्योऽध स्तात्तु चत्वारः पुनरेव महाग्रहाः। सूर्यसोमौ बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः॥१११॥
तावत्यस्तारकाकोट्यो यावदृक्षाणि सर्वशः।
विधिना नियमाच्चैषामृक्षचर्या व्यवस्थिता॥११२॥
गतिस्तासु च सूर्यस्य नीचोच्चे त्वयनक्रमात्। उत्तरायणमार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमाः॥११३॥
उच्चत्वाद्दृश्यते शीघ्रं नीतिव्यक्तैर्गभस्तिभिः।
तदा दक्षिणमार्गस्थो नीचां वीथीमुपाश्रितः॥११४॥
भूमि लेखावृतः सूर्यः पूणारमावास्ययोः सदा।
न दृश्यते यथाकालं शीघ्रमस्तमुपैति च॥११५॥
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावस्यां निशाकरः। दृश्यते दक्षिणे मार्गे नियमादृश्यते न च॥११६॥
ज्योतिषां गतियोगेन सूर्याचन्द्रमसावृतः। समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ॥११७॥

शुक्र से एक चौथाई कम विस्तार वाले बृहस्पति हैं। फिर बृहस्पति से मंगल और शनि एक चौथाई अंश कम हैं।।१०५।। उन दोनों मंगल और शनि के विस्तार से एक चौथाई अंश कम बुध है। फिर जो अन्य नक्षत्र तारागणादि रूप और शरीर वाले हैं, वे सब विस्तार में बुध के ही समान हैं तथा प्रायः सभी नक्षत्र तारागण चन्द्रमा से जुड़े हुए तत्त्वज्ञानी समझें।।१०६-१०७।। ये तारे नक्षत्र आपस में एक दूसरे से पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ योजन पर स्थित हैं।।१०८।। इनमें कुछ बड़े हैं, कुछ छोटे हैं। आधे योजन से कम दूरी पर ये स्थित नहीं हैं।।१०९।। शनि गुरु और मंगल ये तीनों ग्रह सबके ऊपर से तथा दूर से गमन करते हैं तथा इनकी गति वक्र होती है तथा धीरे धीरे गमन करते हैं।।११०।।

उनके नीचे ये पुनः चार महाग्रह चलते हैं, जो हैं—सूर्य, चन्द्रमा, बुध और शुक्र ये सब शीघ्र गमन करने वाले हैं। सामान्य रूप से जितने ही करोड़ों तारे दिखायी देते हैं, उतने ही सब और नक्षत्र हैं। इस प्रकार यह विधि व्यवस्था बनायी है।।१११।। अपने दक्षिणायन और उत्तरायण क्रम से सूर्य भी उसी मार्ग में नीचे और ऊपर होकर गमन करते हैं।। जब पर्वों (पूर्णिमा) में चन्द्रमा उत्तर मार्ग पर स्थित हाते हैं। ये बहुत दूर होने पर भी स्पष्ट किरणों द्वारा शीघ्र दिखाई देने लगते हैं। जब सूर्य दक्षिणायन होकर नागवीथी (नीची गली) में चलते हैं, तब पृथ्वी की छाया द्वरा आवृत होकर अमावस्या और पूर्णिमा में नहीं दिखाई पड़ते; क्योंकि इनका अस्त शीघ्र ही हो जाता है।।११२-११५।। चन्द्रमा जब उत्तरमार्गस्थ होते हैं, तब ये दिखाई देते हैं; परन्तु दक्षिण मार्गस्थ होने पर नियमपूर्वक अर्थात् प्रतिदिन नहीं दिखाई देते, कभी दीख पड़ते हैं, कभी नहीं।।११६।। उस समय नक्षत्रों के गति योगक्रम से ये सूर्य

उत्तरासु च वीथीषु व्यंतरास्तमनोदयौ। पूर्णामवास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्तिनौ॥११८॥
दक्षिणायनमार्गस्थो यदा चरति रश्मिनाव्। तदा सर्वग्रहाणां च सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति॥११९॥
विस्तीर्णं मंडलं कृत्वा तस्योर्द्ध्वं चरते शशी। नक्षत्रमंडलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति॥१२०॥
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्द्धं बुधादूर्द्ध्वं तु भार्गवः। वक्रस्तु भार्गवादूर्द्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः॥१२१॥

तस्माच्छनैश्चरश्चोऊर्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमंडलम्।
ऋषीणां चापि सप्तानां ध्रुव ऊर्ध्वं व्यवस्थितः॥१२२॥

द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च। ताराग्रहांतराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम्॥१२३॥
ग्रहाश्च चंद्रसूर्यौ च दिवि दिव्येन तेज सा। नित्यमृक्षेषु युज्यंते गच्छंतो नियताः क्रमात्॥१२४॥
ग्रहनक्षत्रसूर्यास्तु नीचोच्चमृजवस्तथा। समागमे च भेदे च पश्यंति युगपत्प्रजाः॥१२५॥
परस्परस्थिता ह्येते युज्यंते च परस्परम्। असंकरेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः॥१२६॥
इत्येवं सन्निवेशो वै पृथिव्या ज्यौतिषस्य च। द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां तथैव च॥१२७॥
वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसंति वै। एतेष्वेव ग्रहाः सर्वे नक्षत्रेषु समुत्थिताः॥१२८॥
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै चाक्षुषेंऽतरे। विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः॥१२९॥

और चन्द्रमा दोनों का अस्त और उदय विषुवत् रेखा पर आने पर समान काल में ही होता है। जैसे सूर्योदय होता है, उसी तरह चन्द्रास्त होता है। जैसे चन्द्रास्त होता है, उसी समय सूर्योदय हो जाता है, यह स्थित दक्षिणायन सूर्य के रहने पर होती है।।११७।। फिर जब वे उत्तरमार्ग पर वर्तमान रहते हैं, तब पूर्णिमा और अमावस्या समस्त ग्रह नक्षत्र तारामण्डल का अनुवर्तन करने वाले उन दोनों का अस्त और उदयकाल अन्तरयुक्त हो जाता है। उस समय जब दक्षिणमार्गस्थ होकर रश्मिवान् महातेजस्वी सूर्य चलते हैं, तब वे सब ग्रहों के नीचे होकर चलते हैं।।११८-११९।। तथा अपने मण्डल को विस्तीर्ण करके उन सूर्य के नीचे होकर चन्द्रमा चलते हैं। उस समय समस्त नक्षत्रमण्डल चन्द्रमा से ऊपर चलता है।।१२०।।

नक्षत्रों से बुध ऊपर रहते हैं, बुध से ऊपर शुक्र रहते हैं। फिर वक्र शुक्र के ऊपर बृहस्पति चलते हैं।।१२१।। उन शुक्र से ऊपर शनैश्चर चलते हैं तथा शनैश्चर के ऊपर सप्तर्षिमण्डल रहता है तथा सप्तर्षिमण्डल के ऊपर ध्रुव रहते हैं।।१२२।। ताराग्रहों का अन्तर ऊपर से दो दो लाख योजन का है। एक एक-दूसरे से दो दो लाख योजन दूर दूर हैं।।१२३।। ग्रहगण, चन्द्र और सूर्य आकाश में अपने दिव्य तेज के साथ नियमित रूप से ग्रहों के साथ चलते हुए ग्रहों में नित्य मिलते हैं और अलग होते हैं।।१२४।। ग्रह नक्षत्र और सूर्य को नीचे ऊपर और सीधे समागम काल में या नीचे ऊपर होते समय जब प्रजा उन्हें देखती है।।१२५।। आपस में एक दूसरे में स्थित होते हैं अथवा परस्पर संयुक्त होते हैं, फिर भी उनका संसर्ग असंकर न मिलने वाला ही विद्वानों द्वारा समझना चाहिये।।१२७।। इस प्रकार यह पृथ्वी की ज्योतिष अर्थात् पृथ्वी से सम्बन्धित ग्रहनक्षत्रों का वर्णन किया गया। द्वीपों का समुद्रों का पर्वतों का वर्णन उसी प्रकार किया गया।।१२८।। वर्षों नदियों तथा जो उनमें रहते हैं, ये सब पहले ग्रहनक्षत्रसमूह में समुत्पन्न हुए हैं। अदिति पुत्र विवस्वान् सूर्य जो पहले ग्रह हैं, चाक्षुष नक्षत्र में पैदा हुए।।१२९।।

त्विषिमान् धर्मपुत्रस्तु सोमो देवो वसोस्सुतः।
शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः॥१३०॥

षोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शुक्रः सूर्यादनंतरम्। ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्यन्त्रऋक्षे समुत्थितः॥१३१॥
ग्रहस्त्वांगिरसः पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः। फाल्गुनीषु समुत्पन्नः पूर्वासु च जगद्गुरुः॥१३२॥
नवार्चिर्लोहितांगश्च प्रजापतिसुतो ग्रहः। आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति श्रुतिः॥१३३॥
रेवतीष्वेव सप्तार्चिस्तथा सौरिः शनैश्चरः। सौम्यो बुधो धनिष्ठासु पंचार्चिरुदितो ग्रहः॥१३४॥
तमोमयो मृत्युसुतः प्रजाक्षयकरः शिखी। आश्लेषासु समुत्पन्नः सर्वहारी महाग्रहः॥१३५॥
तथा स्वनामधेयेषु दाक्षायण्यः समुच्छ्रिताः। तमोवीर्यमयो राहुः प्रकृत्या कृष्णमंडलः॥१३६॥
भरणीषु समुत्पन्नो ग्रहश्चंद्रार्कमर्दनः। एते तारा ग्रहाश्चापि बोद्धव्या भार्गवादयः॥१३७॥
जन्मनक्षत्रपीडासु यंति वैगुण्यतां यतः। स्पृश्यंते तेन दोषेण ततस्तद्ग्रहभक्तिः॥१३८॥
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते। ताराग्रहाणां शुक्रस्तु केतूनामपि धूमवान्॥१३९॥

ध्रुवः कीलो ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम्।
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम्॥१४०॥

वर्षाणां चापि पंचानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः। ऋतूनां शिशिरश्चापि मासानां माघ एव च॥१४१॥
पक्षाणां शुक्लपक्षश्च तिथीनां प्रतिपत्तथा। अहोरात्रविभागानामहश्चापि प्रकीर्तितम्॥१४२॥
मुहूर्त्तानां तथैवादिर्मुहूर्त्तो रुद्रदैवतः। क्षणश्चापि निमेषादिः कालः कालविदां वराः॥१४३॥

त्विषिमान, धर्मपुत्र, सोम, विश्वावसु, शीतरश्मि चन्द्रमा कृतिका नक्षत्र में पैदा हुए हैं।।१३०।। सोलह किरणों वाले भृगुपुत्र शुक्र जो तारागणों में प्रवर हैं, सूर्य के बाद पुष्य नक्षत्र में पैदा हुए हैं।।१३१।। बारह किरणों वाले अंगिरापुत्र जगद्गुरु बृहस्पति पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में पैदा हुए हैं।।१३२।। नौ किरणों वाले लोहित (लाल) शरीर वाले प्रजापति पुत्र मंगलग्रह पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में पैदा हुए हैं, ऐसा श्रुति के अनुसार है।।१३३।। सात किरणों वाले सूर्य पुत्र शनैश्चर रेवती नक्षत्र में पैदा हुए हैं। पाँच किरणों से उदय होने वाले सौम्य ग्रह बुध धनिष्ठा नक्षत्र में पैदा हुए हैं।।१३४।। मृत्यु पुत्र अन्धकारमय प्रजा का नाश करने वाले शिखा वाले सबका हरण करने महाग्रह केतु आश्लेषा नक्षत्र में पैदा हुए।।१३५।। तथा जो महाधन्य ग्रह जिन्हें दक्षिणायनी कहा गया है, जो अन्धकार रूप पराक्रम वाले तथा कृष्ण मण्डल वाले हैं, वे चन्द्र और सूर्य का मर्दन करने वाले राहु भरणी नक्षत्रों में पैदा हुये हैं।। इस प्रकार ये सब भार्गवादि तारागण और ग्रहों के विषय में भी समझना चाहिये।।१३६-१३७।।

इस प्रकार जिनके जन्म के नक्षत्र जिस प्रकार के स्वभाव के हैं, उन उन स्वभाव के नक्षत्रों से जन्म ग्रहादि उसी तरह के विशेषगुणता को प्राप्त करते हैं। अतः उन उन अपने ग्रहों से उन्होंने वैसे दोष गुण प्राप्त किये हैं।।१३८।। इन सब ग्रहों में आदि ग्रह आदित्य (सूर्य) ही कहे जाते हैं। तारागणों में आदितारा शुक्र हैं तथा केतु समस्त केतुग्रहों में आदि हैं।।१३९।। ध्रुव चारों दिशाओं में विभक्त ग्रहों के कील (मुख्यधुरी) हैं, जैसे पहिया धुरी पर घूमता है, उसी तरह सभी ग्रह ध्रुव के द्वारा ध्रुव के चारों ओर सभी ग्रह घूमते रहते हैं।। नक्षत्रों में सबसे श्रेष्ठ श्रविष्ठा और अयनों में उत्तरायण श्रेष्ठ है।।१४०।। पाँच वर्षों में संवत्सर प्रथम हैं। ऋतुओं में शिशिर, मासों में माघ मास श्रेष्ठ है।।१४१।। पक्षों में शुक्ल पक्ष, तिथियों में प्रतिपदा पहले है। दिन-रात के विभाग करने पर दिन श्रेष्ठ तथा प्रथम कहा गया है।।१४२।। यहाँ श्रेष्ठ तथा प्रथम का अर्थ है कि गिनती करते समय इन सबको पहला

श्रवणांतं धनिष्ठादि युगं स्यात्पंचवार्षिकम्। भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत्परिवर्त्तते॥१४४॥
दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालस्तद्विद्धिरीश्वरः। चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः॥१४५॥
तस्यापि भगवान्रुद्रः साक्षाद्देवः प्रवर्त्तकः। इत्येष ज्योतिषामेव संनिवेशोऽर्थनिश्चयात्॥१४६॥
लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः। उत्तराश्रवणेनासौ संक्षिप्तश्च ध्रुवे तथा॥१४७॥
सर्वतस्तेषु विस्तीर्णो वृत्ताकार इव स्थितः। बुद्धिपूर्वं भगवता कल्पादौ संप्रवर्त्तितः॥१४८॥
साश्रयः सोऽभिमानी च सर्वस्य ज्योतिषात्मकः। वैश्वरूपप्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः॥१४९॥
नैतच्छक्यं प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित्। गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा॥१५०॥
आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः। परीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता॥१५१॥
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं बुद्धिवित्तमाः। पंचैते हेतवो विप्रा ज्योतिर्गणविवेचने॥१५२॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे ज्योतिषां सन्निवेशनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥२४॥

मानिये। उसी प्रकार मुहूर्तों में आदि मुहूर्त रुद्रदैवत है। काल को बताने वाले कालविज्ञों में श्रेष्ठ लोग क्षण और निमेष को आदि मानते हैं।।१४३।। श्रवण से लेकर धनिष्ठा तक पाँच वर्षों का एक युग होता है, जो सूर्य की गति द्वारा चक्र की भाँति घूमता रहता है। इसी कारण सूर्य ही काल कहे जाते हैं। दिन को पैदा करने के कारण ही सूर्य दिवाकर कहे गये हैं तथा उस दिन के अनुसार समय की गणना होती है तथा इसीलिये वे ही ईश्वर हैं; क्योंकि वे सूर्य ही चारों प्रकार के प्राणियों को अपने अपने काम में लगाने वाले तथा उन्हें निवृत्त कराने वाले हैं।।१४४-१४५।। तथा उन सूर्य भगवान् के साक्षात् प्रवर्तक भगवान् रुद्र हैं। इस प्रकार यह खगोलस्थ ग्रह नक्षत्र तारागणों का वर्णन अर्थ निश्चयपूर्वक किया गया है।।१४६।। ये सब ग्रह नक्षत्रादि लोक-व्यवहार के लिये ईश्वर द्वारा विशेषरूप से बनाये गये हैं। ये सब श्रवण से उत्तर हैं अर्थात् सब श्रवण नक्षत्र से पैदा हुए हैं तथा फिर ध्रुव के द्वारा अपने चारों ओर संक्षिप्त कर दिये गये हैं। सब उनमें आकर्षित हैं।।१४७।। वे सब गोल आकार वाले होकर ध्रुव के चारों ओर फैले हुए हैं। यह कल्प के आदि में भगवान् प्रजापति द्वारा सम्यक् प्रकार से एक-दूसरे से प्रवृत्त कर दिये गये हैं।।१४८।। इन सबका वही आश्रय है, वही इनका अभिमानी तथा वह ईश्वर ही सबका प्रकाशात्मक है। सब उस ईश्वर के प्रकाश से प्रकाशित हैं। अतः वैश्वरूप प्रधानतत्त्व प्रकृति का ही यह अद्भुत परिणाम है। प्रधान तत्त्व प्रकृति से ही ये सब उत्पन्न हुए हैं।।१४९।। अतः इस नक्षत्रग्रहतारामण्डल का यथा तथा वर्णन किसी मांस वाली आँख से देखने वाले मनुष्य द्वारा नहीं किया जा सकता।।१५०।। अतः बुद्धिमान् मनुष्यों को आगम (शास्त्रादि) अनुमान प्रमाण से तथा प्रत्यक्ष उपपत्ति से अच्छी तरह परीक्षा करके समझकर इस वर्णन पर श्रद्धा करनी चाहिये।।१५१।। अतः हे बुद्धिमान् ब्राह्मणो! चक्षु, शास्त्र, जल, लिखित सामग्री ग्रन्थादि और गणित ये ही पाँच कारण कहे गये हैं, जिनके द्वारा इन रहस्यों को जाना जा सकता है।।१५२।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद चौबीसवां अध्याय ज्योतिष सन्निवेशन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

नीलकण्ठ नामोत्पत्तिनामवर्णनम्

पंचविंशतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

एतदुक्त्वा महाबुद्धिर्वायुर्ल्लोकहिते रतः। जजाप जप्यं भगवान्मध्यं प्राप्ते दिवाकरे॥१॥
ऋषयश्चापि ते सर्वे ये तत्रासन्समागताः। ते सर्वे नियतात्मानस्तस्थुः प्रांजलयस्तथा॥२॥
य इज्यो नियमस्यांते प्राणिनां जीवनः प्रभुः। नीलकंठ नमस्तेऽस्तु इत्युवाच सदागतिः॥३॥
श्रुत्वा तु भावितात्मानो मुनयः शंसितव्रताः। वालखिल्येति विख्याताः पतंगसहचारिणः॥४॥
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्। ते स्म पृच्छंति वायुं च वायुपर्णांबु भोजनाः॥५॥
नीलकंठेति यत्प्रोक्तं त्वया पवनसत्तम। एतद्गुह्यं पवित्राणां पुण्यं पुण्यविदां वरः॥६॥
तद्वयं श्रोतुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभंजन॥७॥
नीलता येन कंठस्य कारणेनांबिकापतेः। श्रोतुमिच्छामहे देव तव वक्राद्विशेषतः॥८॥
यावद्वाचः प्रवर्त्तंते सर्वास्ताः प्रेरितास्त्वया। वर्णस्थानगते वायो वाग्विधिः संप्रवर्त्तते॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-२५

नीलकण्ठ नाम की उत्पत्ति

सूत जी बोले—कि वायुदेव जो ऋषियों को ज्योतिषगणों का वर्णन कर रहे थे तो तव वहाँ ग्रहनक्षत्र और सूर्य के महत्व का वर्णन कर लोककल्याण में लगे हुए महाबुद्धि वायुदेव सूर्य के मध्य उपस्थित होकर भगवान् सूर्य के सामने जप करने योग्य जप करने लगे।।१।। और वे सभी ऋषिगण जो कि वहाँ पर आये हुए थे। सब नियत आत्मा वाले ऋषिगण हाथ जोड़कर स्थित हो गये।।२।। और बोले कि जो पूजनीय हैं और नियमान्त के प्राणियों के जीवन को उत्पन्न करने वाले हैं, उन सदागति स्वरूप भगवान् नीलकण्ठ को नमस्कार है। इस प्रकार सदागति वायु ने कहा।।३।। इस बात को सुनकर भावविभोर आत्मा वाले मुनि संशयग्रस्त सूर्य के साथ चलने वाले बालखिल्य नाम से विख्यात हैं, जो संख्या में अस्सी हजार ऊर्ध्वरेता ऋषिगण हैं और पत्तों को खाने वाले ऋषिगण वायु से पूछते हैं कि हे पवनश्रेष्ठ पुण्य ज्ञानवालों में श्रेष्ठ आपने जो 'नीलकण्ठ' ऐसा कहा है, यह गुप्त रखने योग्य पवित्रों में पुण्य है, उसको हम लोग सुनना चाहते हैं, उसे हे वायुदेव! हमें बताइये। हे वायुदेव! उस सबको हम लोग आपके प्रसाद से सुनना चाहते हैं।।४-६।।

हे वायुदेव! जिस कारण से अम्बिकापति भगवान् शिव के कण्ठ की नीलता हुई। हे देव! वह सब विशेषरूप से आपके मुख से हम लोग सुनना चाहते हैं।।७।। ऋषिगण पुनः हाथ जोड़कर वायु से बोले हे वायुदेव! जितनी भी वाणियां प्रवृत्त होती हैं अर्थात् जो भी वाणियां मुँह से निकलती हैं, वे सभी आपके द्वारा ही प्रेरित होती हैं; क्योंकि जो वर्ण उच्चारण होते हैं, वहाँ उस वर्ण को उच्चारण करने में वायु की वाग्विधि ही सम्यक् प्रकार से प्रवृत्त होती

ज्ञान पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायो प्रवर्त्तते। त्वयि निष्पूयमाने तु शेषा वर्णप्रवृत्तयः॥१०॥
यत्र वाचो निवर्त्तंते देहवर्णाश्च दुर्लभाः। त्वत्तो हि वर्णसद्भावः सर्वगस्त्वं सदानिलः॥११॥
नान्यः सर्वगतो देवस्त्वदृतेऽस्ति समीरण। एष वै जीवलोकस्ते प्रत्यक्षः सर्वतोऽनिल॥१२॥
वेत्थ वाचस्पतिं देवं मनोनायकमीश्वरम्। ब्रूहि तत्कंठदेशे तु किं कृत्वा रूपविक्रिया॥१३॥
वचःश्रुत्वा ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। प्रत्युवाच महातेजा वायुर्ल्लोकनमस्कृतः॥१४॥
पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्परः। वसिष्ठो नाम धर्मात्मा मानसो वै प्रजापतिः॥१५॥
पप्रच्छ कार्त्तिकेयं वै मयूरवरवाहनम्। महिषासुरनारीणां नयनांजनतस्करम्॥१६॥
महासेनं महात्मानं मेघस्तनितनिस्वनम्। उमामनःप्रहर्षामां बालकच्छद्मरूपिणम्॥१७॥
क्रौंचजीवितहर्तारं गौरीहृदयनंदनम्। यदेतदृश्यते वर्य शुभ्रं शोभ्रोजनोपमम्॥१८॥
तत्किमर्थं समुत्पन्नं कंठे कुंदेंदुसप्रभे। एतद्दीप्ताय दांताय भक्ताय ब्रूहि पृच्छते॥१९॥
कथां मंगलसंयुक्तां पवित्रां पापनाशिनीम्। मत्प्रियार्थं महाभाग वक्तुमर्हस्यशेषतः॥२०॥
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः। प्रत्युवाच महातेजा देवारिबलसूदनः॥२१॥

है अर्थात् किसी भी वर्ण के उच्चारण मुख के अवयवों में वायु के टकराने से ततत् शब्द का उच्चारण होता है। अतः वाग्विधि में वायु की प्रेरणा ही मूल कारण है। इसलिये वायुदेव वन्दनीय हैं।।८-९।। आगे ऋषिगण निवेदन करते हैं कि हे वायुदेव! ज्ञानपूर्वक जो उत्साह है, वह उत्साह वायु से ही प्रेरित होकर प्रवृत्त होता है। आपके निकल जाने पर वर्ण प्रवृत्ति वर्णों का उच्चारण नहीं हो सकता। जैसाकि प्रायः देखा जाता है कि जिनके मुँह में दाँत नहीं रहते, वे शुद्ध वर्ण का उच्चारण नहीं कर पाते; क्योंकि वायु सीधी निकल जाती है। दाँत न होने के कारण टकराव रहित होने के का स्पष्ट उच्चारण नहीं हो पाता।।१०।। जहाँ वाणियां समाप्त हो ही जाती हैं, वहाँ शरीर और वर्ण भी दुर्लभ हो जाते हैं अर्थात् वायु के विना वाणियाँ निकलना तो दूर शरीर भी समाप्त हो जाते हैं। अतः हे वायुदेव आपसे वर्णों का सही सही अस्तित्व है। अतः हे वायुदेव आप सदा और सर्वत्र गमन करने वाले हैं।।११।।

ऋषियों ने कहा—हे वायुदेव आपके अतिरिक्त सर्वत्र गमन करने वाला अन्य कोई नहीं है। यह जो प्रत्यक्ष सामने दिखायी देने वाला जीवलोक है, वह आपके द्वारा ही स्थित है तथा यह समस्त जीवलोक आपको वाचस्पति (वाणी का स्वामी) मन का नायक और ईश्वर समझता है। अतः हे वायुदेव हमें बताइये, उन महादेव के कण्ठ के नीलवर्ण होने की क्रिया क्यों और कैसे हुई?।।१२-१३।। उसके बाद उन भावविभोर मुनियों के वचनों को सुनकर संसार द्वारा नमस्कृत महातेजस्वी वायुदेव ने कहा।।१४।। वायुदेव ने कहा कि ब्राह्मणो! पहले सतयुग में प्रजापति के मानस पुत्र विद्वान् और धर्मात्मा वशिष्ठ नाम के ब्राह्मण थे, जो सदा वेद निर्णय में तत्पर रहते थे।।१५।।

उन वशिष्ठ ने मयूर वाहन वाले महिषासुर की स्त्रियों के आँखों का काजल चुराने वाले, महासेना वाले, मेघ की गर्जना के समान गर्जना करने वाले, बालक होने के बहाने, उमा के मन को प्रसन्न करने वाले, क्रौंच नामक राक्षस के जीवन का अपहरण करने वाले, गौरी के हृदय को आनन्दित करने वाले, शिवपुत्र कार्त्तिकेय से पूछा कि श्रेष्ठ कार्तिकेय जी भगवान् के कमल और चन्द्रमा के समान निर्मल कण्ठ में यह जो काजल की तरह चमकती हुई नीलिमा दिखादी देती है, यह क्या है? हे महाभाग आप इस पापनाशिनी मंगल कथा को हमारे कल्याण के लिये विस्तारपूर्वक कहें।।१६-२०।। उसके बाद उन महात्मा वशिष्ठ के वाक्य को सुनकर महान् तेजस्वी देवों के शत्रुओं

शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम। उमोत्संगोपविष्टेन यथापूर्वं मया श्रुतम्॥२२॥
पार्वत्या सह संवादः शर्वस्य च महात्मनः। तमहं संप्रवक्ष्यामि त्वत्प्रियार्थं महामुने॥२३॥
कैलासशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रते। तरुणादित्यसंकाशे तप्तचामीकरप्रभे॥२४॥
वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपादशिलातले। जांबूनदमये दिव्ये नानाधातुविचित्रिते॥२५॥
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पफलोपगे। हंसकारंडवाकीर्णे किन्नरैरुपशोभिते॥२६॥
षट्पदोद्गीतबहुले धारासंपातनादिते। मत्तक्रौंचमयूराणां नादैर्विक्रुष्टकंदरे॥२७॥
अप्सरोगणसंकीर्णे किन्नरैरुपशोभिते। जीवं जीवकजातीनां विरावैरुपकूजिते॥२८॥
कोकिलारावबहुले सिद्धचारणसेविते। सौरभेयनिनादाढ्ये मेघस्तनित निस्वने॥२९॥
विनायकभयोद्विग्रकुंजरैर्मुक्तकंदरै। वीणावादित्रनिर्घोषैः श्रोत्रेंद्रियमनोरमैः॥३०॥
दोलालंबितसंघाते वनितासंघसेविते। ध्वजालंबितदोलानां घंटानां निनदाकुले॥३१॥
वल्लकीवेणुबहुले त्रिंशद्बर्हिणसंकुले। मुखमर्द्दलवादित्रैर्वलितास्फोटितैस्तथा॥३२॥
क्रीडावेगाविवादानां निर्घोषैः पूर्णकंदरे। हंसैःपारावतैश्चैव बकराजैः सुखस्थिते॥३३॥
देवबंधैर्विचित्रैश्च प्रक्रीडितगणेश्वरे। सिंहव्याघ्रमुखैर्घोवाशितैश्चंडवेगितैः॥३४॥

को मारने वाले कार्तिकेय ने कहा।।२१।। हे विद्वानों में श्रेष्ठ वशिष्ठ जी मेरे द्वारा के गये वचन को सुनिये, जिसको कि मैंने अपनी माता पार्वती के साथ बैठे हुए सुना था।।२२।। वह जो भगवान् शङ्कर का पार्वती के साथ संवाद है, उस संवाद को आपको प्रसन्न करने के लिए कहना चाहता हूँ।।२३।। हे महामुनि! मैं आपको बता रहा हूँ। जिसको मेरे पिता शंकर जी से मां पार्वती ने पूंछा था। यह तब पूंछा था, जब कि वे शंकर ऐसे कैलास पर्वत के शिखर पर विराजमान थे, जो कि अनेकों धातुओं से युक्त चित्रमय शिलातल से मनोहर अनेकों प्रकार की धातुओं से जटित, दिव्य, सुवर्णमय था, जिस पर तरुण सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। जो तपे हुए सोने की किरणों की प्रभा वाला था।।२४।। तथा जो शंकर हीरे और संगमरमर से बने सीढ़िसों पर पैर रखे हुए थे। जहाँ दिव्य जाम्बूनद स्थित था तथा जो कैलास अनेक धातु से चित्रविचित्र था।।२५।। अनेकों प्रकार के वृक्षों और लताओं से आच्छादित, अनेक प्रकार के पुष्पों से वह कैलास शिखर अनेकों प्रकार के वृक्षों और लताओं से घिरा हुआ था। अनेकों प्रकार के पुष्प वहाँ खिले हुए थे। हंसों कारण्डवों से घिरा हुआ और किन्नरों से शोभित था।।२६।।

उस शिखर पर भौंरे गीत गा रहे थे। इधर उधर जल की धाराओं की ध्वनियां होरही थीं। वहाँ मदमत्त क्रौञ्च और मोरों की आवाजों से उस पर्वत की कंदायें गुंजायमान थीं।।२७।। वह पर्वत शिखर अप्सराओं से घिर हुआ, किन्नरों से शोभित, जीवजीवक जातियों के विरावों से रमणीय, कोयल की मीठी बोली से मधुर, सिद्धों और चारणों से सेवित, मेघ की गर्जना से युक्त था।।२८-२९।। तथा वह शिखर गणेश जी के भय से चिंघाड़ते हुए हाथियोंयुक्त कन्दराओं वाला तथा कानों को अच्छी लगने वाली वीणावादन के घोष वाला था।।३०।। कहीं वह हिंडोलों पर चढ़ी हुई स्त्रियों के संपात से ध्वजा में लटकती हुई बजती घण्टियों की ध्वनि से व्याकुल था, जहाँ बहुत वीणा और बांसुरी था तथा कहीं तीस मारों से व्याप्त था, कहीं मुख बजाते टाल ठोंकते तथा त्रिवली (कमर) पर हाथ मारने की ध्वनि वाले पहलवानों से युक्त था।।३१-३२।। तो कहीं क्रीड़ा के वेग में वाद-विवादों की आवाजों युक्त कन्दराओं वाले, हंसों, कबूतरों, बगुलों से सुखपूर्वक स्थित था। कहीं वहाँ शरीर की विचित्र गंध वाले गणेश्वरों की क्रीडा वाले,

मृगमेषमुखैश्चान्यैर्गजवाजिमुखैस्तथा। बिडालवदनैश्चोग्रैः क्रोष्टुकाकारमूर्त्तिभिः॥३५॥
ह्रस्वैर्दीर्घैश्च सुकृशैर्लंबोदरमहोदरैः। ह्रस्वजंघैः प्रलंबोष्ठैस्तालजंघैस्तथापरैः॥३६॥
गोकर्णैरेककर्णैश्च महाकर्णैरकर्णकैः। बहुपादैर्महापादैरेकपादैरपादकैः॥३७॥
बहुनेत्रैर्महानेत्रैरेकनेत्रैरनेत्रकैः। एकदंष्ट्रैर्महादंष्ट्रैर्बहुदंष्ट्रैरदंष्ट्रकैः॥३८॥
एकशीर्षैर्महाशीर्षबहुशीर्षैरशीर्षकैः। एकजिह्वैर्महाजिह्वैर्बहुजिह्वैरजिह्वकैः।
एवंरूपैर्महायोगैर्भूतैर्भूतपतिर्वृतः॥३९॥
विशुद्धमुक्तामणिरत्नभूषिते शिलातले स्वर्णमये सुरम्यके।
सुखोपविष्टं मदनांगनाशनं प्रोवाच वाक्यं गिरिराजपुत्री॥४०॥
भगवन्भूतभव्येश गोवृषांकितशासन। तव कंठे महादेव भ्राजतेंबुदसन्निभम्॥४१॥
नात्युल्बणं शुभंशुभ्रे नीलांबुजचयोपमम्। किमिदं दीप्यते देव कंठे कामांगनाशन॥४२॥
को हेतुः कारणं किं वा कंठे नीलस्त्वमीश्वर। एतत्सर्वं यथान्यायं ब्रूहि कौतूहलं हि मे॥४३॥
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याः पार्वत्याः पार्वतीप्रियः।
कथां मंगलसंयुक्तां कथयामास शंकरः॥४४॥

महेश्वर उवाच

मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीरोदे सुरदानवैः। अग्रे समुत्थितं घोरं विषं कालानलप्रभम्॥४५॥
तं दृष्ट्वा सुरसंघाश्च दैत्याश्चैव वरानने। विषण्णवदनाः सर्वे गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम्॥४६॥
दृष्ट्वा सुरगणान्भीतान्ब्रह्मोवाच महाद्युतिः। किमर्थं वै महाभागा भीता उद्विग्नचेतनाः॥४७॥

रमणीक कैलास के शिखर पर जहाँ कि सिंह, व्याघ्र, प्रमुख और हाथियों चण्डवेग युक्त हिरन, भेड़ें, प्रमुख अन्य हाथी घोड़े प्रमुख तथा क्रोष्टुकाकार विडालमुखों वाले, छोटे-बड़े, दुबले-मोटे, लम्बे विशाल पेट वाले, छोटी जांघ वाले, लम्बे ओष्ठ वाले, ताड़के आकार की जाँघ वाले, गोकर्ण, एकवर्ण, महाकर्ण, अकर्ण एवं अनेक सिरवाले, अनेक आँख वाले, विशाल आँख वाले, एक आँख वाले और अन्धे भूतों से घिरे हुए अनेकों भूतगण थे। उनके बीच भूतों के राजा भगवान् शंकर महादेव विराजमान थे। वहाँ पर उस समय उस स्थिति में विशुद्ध मोती और मणियों से विभूषित स्वर्णमय सुरम्य शिलातल पर सूखपूर्वक बैठे हुए कामदेव के शरीर को भस्म कर देने वाले शंकर जी से पार्वती जी ने पूछा—।।३३-४०।। हे भूत और भविष्य के रचयिता वृषभध्वज महादेव! आपके कण्ठ में यह जो मेघ की तरह, न अधिक स्पष्ट न शुभ्र है, जो नीलकमल के समान है, वह क्या आपके कण्ठ में प्रदीप्त हो रहा है?।।४१-४२।। हे महादेव! इसके काला होने का क्या कारण है? इस सबको ठीक-ठीक प्रकार से हमें बताइये। यह जानने की हमें उत्कण्ठा हो रही है।।४३।। उसके बाद पार्वती के उस वाक्य को सुनकर पार्वती के प्रिय भगवान् शंकर पार्वती से कल्याण कथा को कहने लगे।।४४।।

महेश्वर बोले—हे पार्वती! पूर्वकाल में किसी समय सुर और असुर मिलकर अमृत निकालने के लिये क्षीरसागर का मन्थन कर रहे थे। अतः अमृत निकलने से पहले काल की अग्नि के समान घोर विष निकल गया।।४५।। उस विष को देखकर सुर और असुर दोनों मुँह लटकाये हुए ब्रह्माजी के पास पहुँचे।।४६।। भयभीत देवताओं को देखकर महाकान्ति वाले ब्रह्मा जी बोले कि हे महाभाग! देवताओ! आप लोग भय से क्यों बेचैन

मया त्रिगुणमैश्वर्यं भवतां संप्रकल्पितम्। तेन व्यावर्त्तितैश्वर्या यूयं भो सुरसत्तमाः॥४८॥
त्रैलोक्यस्येश्वरा यूयं सर्वे वै विगतज्वराः। प्रजासर्गे न सोऽस्तीह यश्चाज्ञां मेऽतिवर्तयेत्॥४९॥
विमानचारिणः सर्वे सर्वे स्वच्छंदगामिनः। आध्यात्मिके चाधिभूते अधिदैवे च नित्यशः॥५०॥
प्रजाः कर्मविपाकेन शक्ता यूयं प्रवर्त्तितुम्। तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगाः सिंहार्दिता इव॥५१॥
किं दुःखं कोऽनुसंतापः कुतो वा भयमागतम्। एतत्सर्वं यथान्यायं शीघ्रमाख्यातुमर्हथ॥५२॥
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः। ऊचुस्ते ऋषिभिः सार्द्धं सुरदैत्येंद्रदानवाः॥५३॥
सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोराशौ पितामह। भुजंगभृंगसंकाशं नीलजीमूतसन्निभम्॥५४॥
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम्। कालमृत्युरिवोद्भूतं युगांतादित्यवर्चसम्॥५५॥
त्रैलोक्योत्सादसूर्याभं विस्फुरत्तत् समंततः। विषेणोत्तिष्ठमानेन कालानलसमत्विषा॥५६॥
निर्दग्धो रक्तगौरांगो कृतः कृष्णो जनार्दनः। तं दृष्ट्वा रक्तगौरांगे कृतं कृष्णं जनार्द्दनम्॥५७॥
ततः सर्वे वयं भीतास्त्वामेव शरणं गताः। सुराणामसुराणां च श्रुत्वा वाक्यं भयावहम्॥५८॥
प्रत्युवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः। शृण्वंतु देवताः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः॥५९॥
यत्तदग्रे समुत्पन्नं मथ्यमाने महोदधौ। विषं कालानलप्रख्यं कालकूटमिति श्रुतम्॥६०॥
येन प्रोद्भूतमात्रेण न व्यराजंत देवताः। तस्य विष्णुरहं वापि सर्वे वा सुरपुंगवाः॥६१॥
न शक्नुवंति वै सोढुं वेगमन्यत्र शंकरात्। इत्युक्त्वा पद्मगर्भाभः पद्मयोनिरयोनिजः॥६२॥

हैं?।।४७।। मैंने आप सबके लिये तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) का ऐश्वर्य संकल्पित किया है। उस ऐश्वर्य के द्वारा आप लोग देवता बने हैं।।४८।। आप लोग तीनों लोकों के ईश्वर हैं। आप लोगों को कोई दुःख नहीं है तथा न इस प्रजा की सृष्टि में कोई ऐसा व्यक्ति है, जो आप लोगों की आज्ञा का उल्लंघन करे।।४९।। आप लोग सभी विमानों में विचरण करने वाले तथा स्वतन्त्र रूप से कहीं भी जा सकते हैं। आप प्रजाजन को कर्मविपाक द्वारा आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक में प्रवर्तित कर सकते हैं। अर्थात् प्रजा द्वारा उपर्युक्त तीनों में से किसी प्रकार का कर्म करा सकते हैं। फिर भी आप लोग सिंह से पीडित हिरन की तरह भय से व्याकुल क्यों हैं?।।५०-५१।।

आप लोगों को क्या दुःख, क्या शोक है तथा यह भय कहाँ से आ गया? यह सब आप लोग मुझे शीघ्र बताइये।।५२।। परमात्मा ब्रह्मा जी की बात को सुनकर ऋषियों के साथ आये हुए सुरदैत्य और दानव कहने लगे कि हे पितामह! क्षीरसागर को हम सुर और असुरों के मथे जाने पर काले सर्प के समान चमकता हुआ नीलमेघ के समान, संवर्तक अग्नि के तुल्य कालमृत्यु की तरह, प्रलयकाल में तीनों लोकों को जलाने वाले सूर्य सभी दिशाओं में फैली हुई प्रतप्त किरण की तरह, विशेषरूप से उठे हुये कालाग्नि के समान, गौरवर्ण के प्राणियों को काले वर्ण का कर देने वाला घोर विष निकल गया है। उस विष को देखकर लाल और गौरवर्ण शरीर वाले हम लोगों का शरीर काला हो गया है।।५२-५७।। उसके बाद भय से डरे हुए हम सब आपकी शरण में आये हैं। तब देवों के भयावह वचनों को सुनकर लोक पितामह महातेजस्वी ब्रह्मा जी बोले कि सभी देवता और तपस्वी ऋषिगण सुनिये।।५८-५९।। समुद्र के मन्थन किये जाने पर कालाग्नि के समान जो विष निकला है, जिसको कालकूट नाम से स्मरण किया गया है।।६०।। जिसके उत्पन्न होने मात्र से देवता लोग दुःखी हो गये हैं, उस विष को विष्णु अथवा मैं अथवा सभी देवता सहन नहीं कर सकते। उसके वेग को भगवान् शंकर सहन कर सकते हैं।।६१-६१½।। यह कहकर कमल के गर्भ

ओंकारं समनुस्मृत्य ध्यायञ्ज्योतिः समंततः। ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा वेदविदां वरः॥६३॥
नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्ते दिव्यचक्षुषे। नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः॥६४॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतानां पतये नमः। नमः सुरारिहंत्रे च सोमसूर्याग्निचक्षुषे॥६५॥
ब्रह्मणे चैव रुद्राय विष्णवे चैव ते नमः। सांख्याय चैव योगाय भूतग्रामाय वै नमः॥६६॥
मन्मथांगविनाशाय कालपृष्ठाय वै नमः। सुरेतसेऽथ रुद्राय देवदेवाय रंहसे॥६७॥
कपर्दिने करालाय शंकराय हराय। कपालिने विरुपाय शिवाय वरदाय च॥६८॥
त्रिपुरघ्नमखघ्नाय मातृणां पतये नमः। वृद्धाय चैव शुद्धाय मुक्तायैव बलाय च॥६९॥
लोकत्रयैकवीराय चंद्राय वरुणाय च। अग्राय चैव चोग्राय विप्रायानेकचक्षुषे॥७०॥
रजसे चैव सत्त्वाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये। नित्याय चैवानित्याय नित्यानित्याय वै नमः॥७१॥

व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः।
चिंत्याय चैवाचिंत्याय चिंत्याचिंत्याय वै नमः॥७२॥

जगतामार्त्तिनाशाय प्रियनारायणाय च। उमाप्रियाय शर्वाय नंदिवक्त्रांकिताय च॥७३॥
पक्षमासार्द्धमासाय ऋतुसंवत्सराय च। बहुरूपाय मुंडाय दंडिने च वरूथिने॥७४॥

की आभा वाले पद्म से उत्पन्न होने वाले, योनि से न उत्पन्न होने वाले ओंकार भगवान् शिव का स्मरण कर वेदज्ञों में श्रेष्ठ ब्रह्मा जी ने शंकर की स्तुति करना आरम्भ कर दिया।।६१½-६३।। ब्रह्मा जी ने कहा हे अनेक नेत्र वाले, विरूपाक्ष! हे पिनाक और वज्र धारण करने वाले! आपको नमस्कार है।।६४।। हे तीनों लोकों के स्वामी, भूतों के स्वामी, आपको नमस्कार है। हे देवों के शत्रुओं को मारने वाले सोम, सूर्य और अग्नि की आँख वाले ब्रह्मरूप रुद्र रूप और विष्णु रूप वाले, आपको नमस्कार है। हे सांख्य स्वरूप, योगरूप और भूतसमूहरूप शिव आपको नमस्कार है।।६५-६६।। हे कामदेव के शरीर को नष्ट करने वाले कालपीठ, रुद्र सुरेश कपर्दी कराल शंकर, प्राणों का हरण करने वाले कपाल धारण करने वाले, विकट रूप वाले शिव (कल्याण करने वाले) वर देने वाले, त्रिपुरा सुर को मारने वाले, यज्ञविनाश करने वालों को मारने वाले, माताओं के पति आपको नमस्कार है।।६७-६८½।। वृद्ध, शुद्ध, मुक्त, और बल तीनों लोकों में एक वीर, चन्द्ररूप, वरुणरूप, सबसे आगे रहने वाले, उग्ररूप वाले ,विप्ररूप, अनेक आँख वाले, रजो गुण और सत्त्वगुण रूप जिनकी पैदा करने वाली योनि का पता नहीं ऐसे है अव्यक्तयोनि आपके लिये नमस्कार है।।६८½-७०½।। कभी नित्य कभी अनित्य रहने वाली तथा सदा नित्यानित्य स्वरूप शिव आपको मेरा नमस्कार है।।६८½-७१।। तथा हे कभी व्यक्त एवं कभी अव्यक्त अर्थात् कभी इन्द्रियों द्वारा जानने योग्य तथा कभी न जानने योग्य शिव आपको नमस्कार है। तथा चिन्तन करने योग्य, अथवा अचिन्त्य (अर्थात् जिनकी आकृति आदि के विषय में विचारा ही नहीं जा सकता) तथा हे चिन्त्य औश्र अचिन्त्य स्वरूप वाले शिव आपको नमस्कार है।।७२।। संसार के दुःखी प्राणियों के दुःखों को नाश करने वाले प्रियनारायण, उमा को प्रिय लगने वाले शर्व, नन्दिमुखाङ्कित आपको नमस्कार है।।७३।। पक्ष, मास, अर्धमास रूप वाले संवत्सर वाले, बहुत रूप वाले, वरूथी, कपालहस्त, दिग्वस्त्र[1], शिखण्डी, रूप आपको नमस्कार है तथा धन्वी, रथी, यमी, ब्रह्मचारी,

---

१. दिग्वस्त्र = दिशायें ही है वस्त्र जिनके अर्थात् वस्त्रहीन शरीर वाले।

नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखंडिने। धन्विने रथिने चैव यमिने ब्रह्मचारिणे॥७५॥
ऋग्यजुःसामवेदाय पुरुषायेश्वराय च। इत्येवमादिचरितैः स्तोत्रैः स्तुत्य नमोऽस्तु ते।
एवं स्तुत्वा ततो ब्रह्मा प्रणिपत्य वरानने॥७६॥
ज्ञात्वा तु भक्तिं मम देवतानां गंगाजलास्फालितमुक्तकेशः।
सूक्ष्मोऽसि योगातिशयादचिंत्यो न हि प्रभो व्यक्तिमुपैषि रुद्रः॥७७॥
एवं भगवता पूर्वं ब्रह्मणा लोककर्तृणा। स्तुतोऽहं विविधैः स्तोत्रैर्वेदवेदांगसंभवैः॥७८॥
ततोऽहं मुख्यया वाचा पितामहमथाब्रवम्। भूतभव्यभवन्नाथ लोकनाथ जगत्पते॥७९॥
किं कार्यं ते मया ब्रह्मन्कर्त्तव्यं वद सुव्रत। श्रुत्वा वाक्यं ततो ब्रह्मा प्रत्युवाचांबुजेक्षणः॥८०॥
भूतभव्यभवन्नाथ श्रूयतां कारणेश्वर। सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधौ पंकजेक्षण॥८१॥
भगवन्मेघसंकाशं नीलजीमूतसन्निभम्। प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्त्ताग्निसमप्रभम्॥८२॥
तं दृष्ट्वा च वयं सर्वे भीताः संभ्रांतचेतसः। तत्पिबस्व महादेव लोकानां हितकाम्यया॥८३॥
भवाञ्छक्तश्च भोक्ता वै भवान्देववरः प्रभो। त्वदृतेऽन्यो महादेव वेगं सोढुं न विद्यते॥८४॥
एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। बाढमित्येव तद्वाक्यं प्रतिगृह्य वरानने॥८५॥
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमंतकसन्निभम्। पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयप्रदम्॥८६॥
कंठः समभवत्तूर्णं कृष्णो वै वरवर्णिनि। तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं कंठसक्तमिवोरगम्॥८७॥

ऋग्यजुसामवेद पुरुष और ईश्वर तथा ऐसे अन्य गुणों से विभूषित आपको नमस्कार है।।७४-७५½।। महादेव जी ने आगे कहा कि सुमुखि! पार्वति! इस प्रकार मेरी स्तुति और प्रणाम करके ब्रह्मा जी ने कहा कि हे देवाधिदेव आपके केश गंगाजल से धोये हुये और खुले हुए हैं।आप इतने सूक्ष्म हैं कि योग द्वारा भीनहीं चिन्तन किये जा सकते। हे रुद्र! आप किसी व्यक्ति को प्राप्त नहीं होते हैं। हे देव! हमारी भक्ति जानकर आप प्रसन्न हों।।७५½-७७।। इस लोक की रचना करने वाले ब्रह्मा अनेकों प्रकार के वेद वेदाङ्गों से उत्पन्न स्तोत्रों द्वारा स्तुति किये जाने पर हम प्रसन्न हो गये और फिर हमने महात्मा पितामह ब्रह्माजी से मुख्य वाणी द्वारा कहा।।७८-७८½।।

हे भूत, भविष्य और वर्तमान काल के स्वामी हे लोकनाथ! जगत्पति! आपका कौन कार्य है? जो मेरे द्वारा किया जाना है। कृपया मुझे बताइये।।७८½-७९½।। मेरे वाक्य को सुनकर कमलनेत्र ब्रह्मा जी बोले—हे भूत, भविष्य और वर्तमान के स्वामी सब कारणों के ईश्वर महादेव जी! सुर और असुरों के द्वारा क्षीरसागर का मन्थन किये जाने पर हे भगवन्! नीलमेघ के समान, संवर्तक (प्रलयकालीन) अग्नि के समान घोर विष उत्पन्न हो गया है।।७९½-८२।। इस विष को देखकर हम सब भयभीत और भ्रान्तचित्त होकर आपके पास आये हैं। हे महादेव! आप लोकहित की कामना से उस विष को पी लीजये।।८३।। हे देव! श्रेष्ठ प्रभो! महादेव! आप उसका भोग करने योग्य हैं। हे महादेव आपके अतिरिक्त अन्य कोई उसके वेग को सहन नहीं कर सकता है।।८४।। इस प्रकार उन परमेष्ठी ब्रह्माजी के वचन को सुनकर हे सुमुखि! पार्वति! मैंने हाँ कर दिया।।८५।। उसके बाद मैंने देवों को भय देने वाले, मृत्युके समान उस विष को पीना आरम्भ कर दिया।।८६।। उसके बाद वरवर्णिनि! पार्वति! मेरा कण्ठ उसी समय काला हो गया।।८६-८६½।। उस कमलपत्र की आत्मा वाले, लपलपाती हुई जिह्वा वाले नागराज तक्षक की तरह उस

तक्षकं नागराजानं लेलिहानमिवोत्थितम्। अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः॥८८॥
शोभसे त्वं महादेव कंठेनानेन सुव्रत। ततस्तस्य वचःश्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे॥८९॥
कंठे धृतं विषं घोरं नीलकण्ठस्ततोऽस्म्यहम्। पश्यतां सुरसंघानां दैत्यानां च वरानने।
यक्षगंधर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम्॥९०॥
तत्कालकूटं विषमुग्रवेगं कंठे धृतं पर्वतराजपुत्रि।
निवेश्यमानं सुरदैत्यसंघो दृष्ट्वा परं विस्मयमाजगाम॥९१॥
ततः सुरगणाः सर्वे सदैत्योरगराक्षसाः। ऊचुः प्रांजलयो भूत्वा मत्तमातंगगामिनि॥९२॥
अहो बलं वीर्यपराक्रमस्ते त्वहो वपुर्योगबलं तवेश॥९३॥
अहो प्रभुत्वं तव देवदेव महाद्भुतं मन्मथदेहनाशन।
त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव मृत्युर्वरदस्त्वमेव॥९४॥
त्वमेव सूर्यो रजनीकरश्च व्यक्तिस्त्वमेवास्य चराचरस्य।
त्वमेव वह्निः पवनस्त्वमेव त्वमेव भूमिः सलिलं त्वमेव॥९५॥
त्वमेव सर्वस्य चराचरस्य धाता विधाता प्रलयस्त्वमेव।
इत्यमेव मुक्त्वा वचनं सुरेन्द्राः प्रगृह्य सोमं प्रणिपत्य मूर्ध्ना॥९६॥
गता विमानैरनिलोपवेगैर्महानगं मेरुमुपेत्य सर्वे।
इत्येतत्परमं गुह्यं पुण्यात्पुण्यतमं महत्॥९७॥
नीलकंठं इति प्रोक्तं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। स्वयंभुवा स्वयं प्रोक्ता कथा पापप्रणाशिनी॥९८॥

कण्ठलग्न विष को देखकर लोकपितामह ब्रह्मा ने कहा। हे महादेव! अब आप इस कण्ठ से शोभा को पा रहे हो।।८६½-८८½।। ब्रह्मा के उस वचन को सुनकर देव दानवों, यक्ष, गन्धर्व, भूतो और पिशाच, सर्प एवं राक्षसों के सामने उस घोर विष को कण्ठ में धारण कर लिया। हे सुमुखि! उस समय से हम नीलकण्ठ कहे जाते हैं।।८८½-८९½।। देखो हे सुमुखि! पार्वति! देवों, दैत्यो, यक्ष, गन्धर्व, भूतों, पिशाचो, सर्पों, राक्षसो के सामने मैंने जब उस उग्रवेग वाले कालकूट विष को अपने कण्ठ में धारण कर लिया, तब हे पर्वतराजपुत्रि वहाँ उपस्थित सुर और दैत्य का समुदाय यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया।।८९½-९१।। उसके बाद हे गजगामिनि! सभी देवता दैत्य सर्प राक्षस हाथ जोड़कर बोले।।९२।। हे महादेव आपका यह बल, पराक्रम धन्य है, हे ईश! आपका शरीर और योगबल धन्य है।।९३।। हे देवाधिदेव कामदेव के शरीर को नष्ट करने वाले महादेव आपका अद्भुत प्रभुत्व धन्य है।।९२-९३½।। हे देव! आप ही विष्णु हैं, आप ही चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, आप ही मृत्यु हैं, आप ही वर देने वाले हैं। आप ही सूर्य और चन्द्रमा हैं। आप ही इस चराचर जगत् के व्यक्ति हैं। आप ही अग्नि हैं, आप ही वायु हैं, आप ही भूमि हैं, आप ही जल हैं।।९३½-९५।।

हे महादेव आप सब चर अचर जगत् को धारण करने वाले हैं और विधान करने वाले हैं। आप ही प्रलय हैं, इस प्रकार इतने वचनों को देवों ने कहा और फिर सिर झुका कर महादेव को प्रणाम करके वे सब महात्मा अपने अपने वेगगामी विमानों पर चढ़कर मेरु की ओर चले गये।।९५-९६।। यह कथा तीनों लोकों में विख्यात परमगुह्य

यस्तु धारयते नित्यं ब्रह्मोद्गीतामिमां शुभाम्। तस्याऽहं संप्रवक्ष्यामि फलं सुविपुलं महत्॥९९॥
विषं तस्य वरारोहे स्थावरं जंगमं तथा। गात्रं प्राप्य तु सुश्रोणि क्षिप्रं तत्प्रतिहन्यते॥१००॥
शमयत्यशुभं घोरं दुःस्वप्नं चापकर्षति। स्त्रीषु वल्लभतां याति सभायां पार्थिवस्य च॥१०१॥
विवादे जयमाप्नोति युद्धे विजयमेव च। गच्छति क्षेममध्वानं गृहेभ्यो नित्यसंपदा॥१०२॥
शरीरस्येह वक्ष्यामि गतिं तस्य वरानने। हरिश्मश्रुर्नीलकंठः शशांकांकितमूर्द्धजः॥१०३॥
त्र्यक्षस्त्रिशूलपाणिश्च वृषयानः पिनाकधृकः। नंदितुल्यबलः श्रीमान्नंदितुल्यपराक्रमः॥१०४॥
विचरत्यखिलाँल्लोकान्सप्तलोकान्ममाज्ञया। न हन्यते गतिस्तस्य अनिलस्य यथांबरे॥१०५॥

मम तुल्यबलो भूत्वा तिष्ठत्याभूतसंप्लवात्।
मम भक्त्या वरारोहे ये च शृण्वंति मानवाः॥१०६॥

तेषां गतिं प्रवक्ष्यामि त्विह लोके परत्र च। ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विंदते महीम्॥१०७॥

वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः सुखमवाप्नुयात्।
व्याधितो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बंधनात्॥१०८॥

गुर्विणी लभते पुत्रं कन्या विंदति सत्पतिम्। नष्टं च लभते द्रव्यमिह लोके परत्र च॥१०९॥

गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्।
तत्फलं लभते मर्त्यः श्रुत्वा दिव्यामिमां कथाम्॥११०॥

और पवित्रतम है तथा यह नीलकण्ठ की कथा जो ब्रह्मा द्वारा स्वयं कही गयी है, पाप को नष्ट करने वाली है।।९७-९८।। इस ब्रह्मा द्वारा कही गयी कथा को जो व्यक्ति नित्य धारण करता है, उसके बहुत बड़े फल को मैं तुम्हें बताऊँगा।।९९।। हे सुश्रोणि! हे वरारुहे! स्थावर जङ्गमों के शरीर में प्रवेश करके जो विष शरीर को शीघ्र नष्ट कर देता है।। स्थावर अर्थात् पेड़-पौधों को भी तो विष नष्ट करता है। अतः ऐसे विष को यह कथा शान्त कर देती है। घोर बुरे स्वप्नों के दुष्प्रभाव को नष्ट कर देती है।।१००-१००½।। यह कथा स्त्रियों और सभाओं और राजाओं के बीच सम्मान प्राप्त कराती है। विवाद (मुकदमे) में जीत कराती है। युद्ध में विजय दिलाती है। मार्ग को सुखकर बनाती है। घर में नित्य सम्पत्ति प्राप्त कराती है।।१००½-१०२।। हे सुमुखी! अब मैं उनके शरीर की गति बताऊँगा कि जो व्यक्ति नीलकंठ, हरी दाढी, सिर पर अंकित चन्द्रमा वाले, तीन आँख वाले, त्रिशूलपाणि! बैल की सवारी वाले और पिनाक धारण करने वाले, नाम को शरीर में धारण करता है। वह नन्दि के समान बलवान् और पराक्रमी श्रीसम्पन्न होता है।।१०३-१०४।। वह व्यक्ति मेरी आज्ञा से समस्त लोकों में विचरण करता है। जिस प्रकार आकाश में वायु की गति कोई रोक नहीं सकता, उसी प्रकार तीनों लोकों में उसकी गति को कोई नहीं रोक सकता।।१०५।।

तथा फिर वह मेरे समान बल वाला होकर प्रलयकाल तक स्थित रहता है। हे वरारोहे! मेरी कथा जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनते हैं, उनकी इस लोक और परलोक में क्या गति होती है? यह मैं बताऊँगा।।१०६-१०६½।। मेरी कथा सुनकर ब्राह्मण वेद (ज्ञान) को प्राप्त करता है। क्षत्रिय पृथ्वी का राज्य प्राप्त करता है, वैश्य लाभ प्राप्त करता है और शूद्र सुख को प्राप्त करता है।।१०६½-१०७½।। रोगी रोग से मुक्त हो जाता है, जो बन्धन में है, बन्धन से मुक्त हो जाता है। गर्भिणी पुत्र को प्राप्त करती है। कन्या सद्गुणी पति को प्राप्त करती है तथा इस लोक और परलोक में नष्ट हुये धन को मनुष्य प्राप्त करता हो।।१०७½-१०९।। इस कथा को पढ़ने सुनने से एक लाख गायों के दान

पादं वाथार्द्धपादं वा श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा।
यस्तु धारयते नित्यं रुद्रलोकं स गच्छति॥१११॥
अथवा सर्वमेवेदं देवब्राह्मणसन्निधौ। यः पठेन्मानवो नित्यं मद्गतेनांतरात्मना॥११२॥
श्रद्धधानः सदा भक्तो रुद्रलोकं स गच्छति।
पठेच्च देवि भक्त्या च पाठयेच्च नरः सदा॥११३॥
अतः परतरं स्तोत्रं न भूतं न भविष्यति। नापि यक्षाः पिशाचा वा न भूता न विनायकाः।
कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्रायं तिष्ठति स्तवः॥११४॥
मया नु तुष्टेन तवांबुजेक्षणे स्तवस्य माहात्म्यमघोघनाशनम्।
निवेदितं पुण्यफलादियुक्तं स्वयं च गीतं चतुराननेन॥११५॥
कथामिमां पुण्यफलादियुक्तां निवेद्य देव्यै शशिबद्धमूर्द्धजः।
वृषस्य पृष्ठेन सहोमया प्रभुर्जगाम कैलासगुहां गुहप्रियः॥११६॥
श्रुतं मया पापहरं तदंतिके निवेदितं तेऽथ मया प्रजापतेः।
अधीत्य सर्वं त्वखिलं सलक्षणं प्रयाति चादित्यपदं द्विजोत्तमः॥११७॥

इति श्रीब्रह्माण्ड महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे नीलकंठनामोत्पत्तिकथनं नाम पंचविंशतितमोऽध्यायः॥२५॥

—**—

का फल प्राप्त होता है। इस प्रकार इस दिव्य कथा को सुनकर मनुष्य उपर्युक्त फल को प्राप्त करता है।।११०।। एक पाद अथवा आधा पाद एक श्लोक अथवा आधे श्लोक को भी जो धारण करता है, वह नित्य रुद्रलोक को प्राप्त करता है।।१११।। अथवा इस कथा को देव ब्राह्मण के पास में जो मानव सदा नित्य पढ़ता है, वह मद्गत आत्मा द्वारा सदा मुझमें श्रद्धा रखता हुआ रुद्रलोक को चला जाता है तथा जो इस कथा को पढ़े अथवा पढ़ाये, वह नर भी रुद्रलोक को प्राप्त करता है।।११२-११३।। इससे अधिक श्रेष्ठ स्तोत्र न हुआ और न होगा, न यक्ष, न पिशाच और न भूत और न विनायक उसके घर में विघ्न कर सकते हैं, जो इस स्तव में स्थिर होकर बैठता है।।११४।।

हे पार्वति! मैंने चतुरानन ब्रह्मा के प्रति प्रसन्न होकर पुण्यफल देने वाली इस कथा को कहा था, वही आज तुम्हारे समक्ष कही गयी है।।११५।। इसके बाद इस पुण्य फल प्रदान करने वाली कथा को पार्वती को बताकर जिनके शिर में चन्द्र शोभित है, वे शंकर जी बैल की पीठ पर सवार होकर उमा के साथ गुह प्रिय कैलास पर्वत की गुफा में घुस गये।।१०६।।

अब सूत जी ने कहा—हे ब्राह्मणो! तब वायुदेव पापनाशिनी महापद देने वाली सुलक्षण इस कथा को ऋषियों से कहकर आदित्यपथ की ओर चले गये और हमने भी इस कथा को उसी अनुसार आपको दान दिया है।।११७।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद पच्चीसवां अध्याय नीलकण्ठ नाम की उत्पत्ति का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

लिङ्गोत्पत्तिकथनम्

षड्विंशतितमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

महादेवस्य माहात्म्यं प्रभुत्वं च महात्मनः। श्रोतुमिच्छामहे सम्यगैश्वर्यगुणविस्तरम्।।१।।

सूत उवाच

पूर्वं त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहृतम्। बलिं बद्ध्वा महावीर्यं त्रैलोक्याधिपतिं पुरा।।२।।

प्रनष्टेषु तु दैत्येषु प्रहृष्टे तु शचीपतौ। अथाजग्मुः प्रभुं द्रष्टुं सर्वे देवाः सनातनम्।।३।।

यत्रास्ते विश्वरूपात्मा क्षीरोदस्य समीपतः। सिद्धा ब्रह्मर्षयो यक्षा गंधर्वाप्सरसां गणाः।।४।।

नागा देवर्षयश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः। अभिगम्य महात्मानं स्तुवंति पुरुषं हरिम्।।५।।

त्वं धाता त्वं च कर्तासि त्वं लोकान्सृजसि प्रभो।

त्वत्प्रसादाच्च कल्याणं प्राप्तं त्रैलोक्यमव्ययम्।।६।।

असुराश्च जिताः सर्वे बलिर्बद्धश्च वै त्वया। एवमुक्तः सुरैर्विष्णुः सिद्धैश्च परमर्षिभिः।।७।।

प्रत्युवाच तदा देवान् सर्वांस्तान्पुरुषोत्तमः। श्रूयतामभिधास्यामि कारणं सुरसत्तमाः।।८।।

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-२६

लिङ्ग की उत्पत्ति कथन

जब सूत जी ने ऋषियों को यह बता दिया कि ऋषियों द्वारा पूछे गये वायुदेव ने शंकर जी द्वारा पार्वती को कथित नीलकण्ठ नाम पड़ने का सारा वृत्तान्त सुना दिया, तब सूतजी के समक्ष उपस्थित ऋषियों ने सूत जी से कहा— ऋषिगण बोले कि महात्मा महादेव का माहात्म्य, प्रभुत्व और उनके ईश्वरीय गुण हम विस्तार से सम्यक् प्रकार से सुनना चाहते हैं।।१।। तब सूत जी बोले—बहुत पहले प्राचीनकाल में तीनों लोकों को विजय करने में, जब महापराक्रमी तीनों लोकों के अधिपति दैत्यराज बलि को बाँध लिया।।२।।

तब दैत्यों के नष्ट हो जाने पर और शचीपति इन्द्र के प्रसन्न हो जाने पर सनातन प्रभु विष्णु को देखने के लिये सब देवता आये, जहाँ कि क्षीरसागर के समीप विश्वरूपात्मा विष्णु थे।।३-३½।। तब वहाँ सिद्धगण, ब्रह्मर्षिगण, यक्षगण, गन्धर्वगण, अप्सरायें, नाग देवर्षिगण और सब नदीपर्वत, महात्मा पुरुष हरि (विष्णु) के पास जाकर उनकी स्तुति करते हैं।।३½-५।। कि हे हरि! आप धाता (विश्व को धारण करने वाले) हैं। आप विश्व के कर्ता हैं। हे प्रभो! तुम ही लोकों की रचना करते हो, आपकी कृपा से ही यह न व्यय होने वाले त्रैलोक्य ने कल्याण को प्राप्त किया है।।६।। आपने ही सब असुरों को जीत लिया है और अपने ही दैत्यराज बलिको बाँध लिया है। जब देवों, सिद्धगणों और परमर्षियों ने इस प्रकार विष्णु से कहा, तब पुरुषोत्तम विष्णु उन सब देवों से बोले कि हे सुरश्रेष्ठगण! आप लोग सुनिये मैं कारण बताऊंगा।।७-८।।

यः स्रष्टा सर्वभूतानां कालः कालकरः प्रभुः।
येनाहं ब्रह्मणा सार्द्धं सृष्टा लोकाश्च मायया॥९॥
तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतः। पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रसिते मया॥१०॥
उदरस्थेषु भूतेषु त्वेकोऽहं शयितस्तदा। सहस्रशीर्षा भूत्वा च सहस्राक्षः सहस्रपात्॥११॥
शंखचक्रगदापाणिः शयितो विमलेऽभसि। एतस्मिन्नंतरे दूरात्पश्याभि ह्यमितप्रभम्॥१२॥
शतसूर्यप्रतीकाशं ज्वलंते स्वेन तेजसा। चतुर्वक्रं महायोगं पुरुषं कांचनप्रभम्॥१३॥
कृष्णा जिनधरं देवं कमंडलुविभूषितम्। निमेषांतरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तमः॥१४॥
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोकनमस्कृतः।
कस्त्वं कुतो वा किं चेह तिष्ठसे वद मे विभो॥१५॥
अहं कर्तास्मि लोकानां स्वयंभूर्विश्वतोमुखः। एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाऽहमुवाच तम्॥१६॥
अहं कर्त्ता हि लोकानां संहर्ता च पुनः पुनः। एवं संभाषमाणौ तु परस्परजयैषिणौ॥१७॥
उत्तरां दिशमास्थाय ज्वालामद्राक्ष्व विष्ठिताम्।
ज्वालां ततस्तामालोक्य विस्मितौ च तदानघाः॥१८॥
तेजसा च बलेनाथ शार्वं ज्योतिः कृतांजली। वर्द्धमानां तदा ज्वालामत्यंतपरमाद्भुताम्॥१९॥
अभिदुद्राव तां ज्वालां ब्रह्मा चाहं च सत्वरौ।
दिवं भूमिं च निर्भिद्य तिष्ठंते ज्वालमण्डलम्॥२०॥

तब विष्णु ने कहा कि जो सब प्राणियों को पैदा करने वाले हैं, काल हैं और काल को पैदा करने वाले सर्वसमर्थ हैं और जिन्होंने माया से ब्रह्मा के साथ सब लोकों की सृष्टि की है, उन्हीं की कृपा से हमने पहले दैत्यों को जीतने की सफलता प्राप्त की है।।९-९½।। प्राचीनकाल में जब तीनों लोक अव्यक्त अन्धकार में ग्रसित थे तथा जीवगण हमारे उदर में वास कर रहे थे, उस समय हम भी, हजार सिर, हजार आँख और हजार पैर वाले होकर तथा शङ्ख, चक्र और गदा हाथों में लेकर स्वच्छ जल में शयन किये हुए थे।।९½-११½।। उसी समय हमने अत्यन्त प्रभा से युक्त सौ सूर्यों की तरह प्रकाशवाले अपने तेज से जलते हुए, चार मुख वाले महायोगी स्वर्णकान्ति के समान कृष्णाचरम तथा कमण्डलु से विभूषित पल मारने मात्र से प्राप्त होने वाले उन पुरुषोत्तम (उत्तम शरीर वाले) को देखा।।११½-१४।। तब सब लोकों द्वारा नमस्कृत ब्रह्मा ने हमसे कहा कि हे विभो! आप कौंन हैं और कहाँ से आकर यहाँ स्थित हैं? यह हमें बताइये।।१५।।

इस प्रकार तब ब्रह्मा ने हमसे कहा कि हम चतुर्मुख ब्रह्मा स्वयंभू हैं। इस प्रकार ब्रह्मा के कहे जाने पर हमने उन ब्रह्मा जी से कहा कि लोक का कर्ता मैं हूँ और मैं ही बार-बार लोक का संहार करने वाला भी हूँ। इस प्रकार हम परस्पर अपनी अपनी जीत की डींग मार ही रहे थे कि हम दोनों ने उत्तर की ओर एक जलती हुई ज्योति को देखा।।१५-१७½।। उस ज्वाला को देखकर हम दोनों ही आश्चर्यचकित हो गये; क्योंकि उस तेज के प्रभाव से समस्त जल जगमगा उठा। उस धीरे-धीरे बढ़ते हुए अत्यन्त परम अद्भुत तेज वाली ज्वाला के पास हम दोनों शीघ्र गये।।१७½-१९½।। हमने देखा कि आकाश और पृथ्वी को फोड़कर वह ज्वाला निकल रही है। उस ज्वाला के

तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम्।
प्रादेशमात्रमव्यक्तं लिंगं परमदीप्तिमत्॥२१।
न च तत्कांचने मध्ये न शैलं न च राजतम्।
अनिर्देश्यमचिन्त्यं च लक्ष्यालक्ष्यं पुनः पुनः॥२२॥

ज्वालामालासहस्राढ्यं विस्मयं परमद्भुतम्। महता तेजसा युक्तं वर्द्धमानं भृशं तथा॥२३॥
ज्वालामालाततं न्यस्तं सर्वभूतभयंकरम्। घोररूपिणमत्यर्थं भिंदं तमिव रोदसी॥२४॥
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा अधो गच्छ त्वमाशु वै। अंतमस्य विजानीवो लिंगस्य तु महात्मनः॥२५॥
अहमूर्ध्वं गमिष्यासि यावदंतोऽस्य दृश्यते। तदा तु समयं कृत्वा गत ऊर्ध्वमधश्च हि॥२६॥
ततो वर्षसहस्रं तु ह्यहं पुनरधो गतः। न पश्यामि च तस्यांतं भीतश्चाहं ततोऽभवम्॥२७॥
तथैव ब्रह्मा ह्यूर्ध्वं च न चांतं तस्य लब्धवान्। समागतो मया सार्द्धं तत्रैव च महांभसि॥२८॥
ततो विस्मयमापन्नौ भीतौ तस्य महात्मनः। मायया मोहितौ तेन नष्टसंज्ञौ व्यवस्थितौ॥२९॥
ततो ध्यानरतौ तत्र चेश्वरं सर्वतोमुखम्। प्रभवं निधनं चैव लोकानां प्रभुमव्ययम्॥३०॥
प्रह्वांजलिपुटौ भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने। महाभैरवनादाय भीमरूपाय दंष्ट्रिणे।
अव्यक्तायाथ महते नमस्कारं प्रकुर्वहे॥३१॥

मध्य में हम देखते हैं कि एक विपुल प्रभावाला एक वितस्ति परिमाण अस्पष्ट परमदीप्ति वाला एक लिङ्ग था।।१९½-२१।। मध्य में शोभित वह लिङ्ग न सोने का था, न चाँदी का था और न पत्थर का ही था। वह अनिर्दिश्य (न बताया जाने योग्य) अचिन्त्य जिसे यह नहीं विचारा जा सकता कि वह ऐसा होगा तथा बार-बार कभी दिखाई देने वाला तथा कभी न दिखाई देने वाला था।।२२।।

वह लिङ्ग हजारों जलती हुई ज्वालाओं का समूह था। आश्चर्यकारी और परम अद्भुत था। वह महान् तेज से युक्त और अनेकों बार बढ़ते हुए तेज वाला था।।२३।। अपनी ज्वाला की मालाओं से चित्रित, सब प्राणियों को भय पैदा करने वाला था तथा वह घोर रूपवाला और पृथ्वी तथा आकाश अन्धकार को फोड़ता हुआ सा दिखायी दे रहा था।।२४।। उसके बाद ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा कि हे विष्णु तुम शीघ्र नीचे जाओ, मैं इसका अन्त जानने के लिये ऊपर जाऊँगा। जब तक कि इसका अन्त दिखाई न देता है, हम दोनों पता करेंगे।। तब फिर समय (प्रतिज्ञा करके) करके हम दोनों ऊपर और नीचे गये।।२५-२६।। उसके बाद फिर हजार वर्षों तक मैं नीचे जाता रहा, पता लगाता रहा; परन्तु मैंने उसका अन्त नहीं देखा और मैं भयभीत हो गया।।२७।।

उसी प्रकार ब्रह्मा भी जो ऊपर गये; परन्तु उसका अन्त नहीं पा सके। फिर मेरे साथ वे ब्रह्मा वहीं महासमुद्र में आ गये।।२८।। उसके बाद आश्चर्यचकित और डरे हुये हम दोनों उस महान् आत्मा की माया से मोहित हो गये और क्या करें? क्या न करें ऐसे होकर चेतना शून्य हो गये।।२९।। फिर उसके बाद वहाँ हम दोनों उस ईश्वर सब ओर मुखवाले, ईश्वर, लोकों को पैदा करने वाले और अन्त करने वाले, न नष्ट होने वाले, प्रभु के ध्यान में तल्लीन हो गये।।३०।। तब अपने दोनों हाथों को जोड़कर उस शर्व, शूली, महाभैरव शब्द करने वाले, भयंकर रूप वाले, दंष्ट्री और अव्यक्त की स्तुति करने लगे।।३१।।

नमोऽस्तु ते लोकसुरेश देव नमोऽस्तुते भूतपते महात्मन्।
नमोऽस्तु ते शाश्वतसिद्धयोगिने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्प्रतिष्ठित॥३२॥
परमेष्ठी परं ब्रह्म त्वक्षरं परमं पदम्। ज्येष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कंदः शिवः प्रभुः॥३३॥
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परंतपः।
स्वाहाकारो नमस्कारः संस्कारः सर्वकर्मणाम्॥३४॥
स्वधाकारश्च यज्ञश्च व्रतानि नियमास्तथा। वेदा लोकाश्च देवाश्च भगवानेव सर्वशः॥३५॥
आकाशस्य च शब्दस्त्वं भूतानां प्रभवाप्ययः। भूमौ गंधो रसश्चाप्सु तेजोरूपं महेश्वरः॥३६॥
वायोः स्पर्शश्च देवेश वपुश्चंद्रमसस्तथा॥३७॥
बुद्धौ ज्ञानं च देवेश प्रकृतेर्बीजमेव च॥३८॥
संहर्त्ता सर्वलोकानां कालो मृत्युमयोऽतकः।
त्वं धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो॥३९॥
पूर्वेण वदनेन त्वमिंद्रत्वं प्रकरोषि वै। दक्षिणेन तु वक्रेण लोकान्संक्षिपसे पुनः॥४०॥
पश्चिमेन तु वक्रेण वरुणस्थो न संशयः। उत्तरेण तु वक्रेण सोमस्त्वं देवसत्तमः॥४१॥
एकधा बहुधा देव लोकानां प्रभवाप्ययः। आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च सहाश्विनः॥४२॥
साध्यां विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधनाः।
बालखिल्या महात्मानस्तपःसिद्धाश्च सुव्रताः॥४३॥
त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः। उमा सीता सिनीवाली कुहूर्गायत्र्य एव च॥४४॥

लोक और देव दोनों के ईश! आपको नमस्कार है। भूतपति महात्मन् ! आपको नमस्कार है। हे शास्वत सिद्धयोगी आपको नमस्कार है। हे समस्त संसार की प्रतिष्ठा करने वाले! आप परमेष्ठि हैं, परं ब्रह्म हैं, आप अक्षर (न क्षरित होने वाले) हैं और परमपद हैं। आप सबसे बड़े हैं, वामदेव हैं। रुद्र हैं, स्कन्द हैं, शिव हैं, प्रभु हैं।।३२-३३।। आप ही यज्ञ है, आप ही ॐकार हैं। आप ही बषट्कार हैं और आप ही परंतप हैं। आप ही स्वाहा के आकार हैं, नमस्कार हैं और सबकर्मों के संस्कार हैं।।३४।। आप ही स्वधा के आकार हैं और यज्ञव्रत तथा नियम आप ही हैं। हे प्रभो! वेदलोक और देव और सब प्रकार से भगवान् ही हैं।।३५।। आप ही आकाश के शब्द हैं। आप ही सब प्राणियों को पैदा करने वाले हैं। भूमि में गन्ध जलों से रस और तेजोरूप महेश्वर आप ही हैं।।३६।। हे देवेश! वायु के स्पर्श तथा चन्द्रमा के शरीर आप ही हैं।।३७।। हे देवेश! बुद्धि में ज्ञान प्रकृति के बीज ही आप हैं।।३८।। आप समस्त लोकों का संहार करने वाले हैं, आप मृत्युमय और अन्त करने वाले काल हैं। हे प्रभो आप ही लोकों को धारण करते हैं और आप ही लोकों की रचना करते हैं।।३९।। अपने पूर्व वाले मुख से आप इन्द्रत्व को प्राप्त करते हैं अर्थात् इन्द्र रूप में सृष्टि करते है।। दक्षिणमुख से सभी लोकों का पुनः विनाश करते हैं।।४०।। पश्चिम मुख से वरुण का कार्य करते हैं तथा उत्तर मुख से हे देवसत्तम! आप चन्द्रमा हैं। अर्थात् चन्द्रमा को कार्य करते हैं। हे देव! आप लोकों की एक बार अनेक बार उत्पत्ति और विनाश करने वाले हैं।।४१-४१½।। हे देवेश! बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, उनञ्चास मरुत् तथा दोनों अश्विनी कुमार तथा अन्य निश्चित व्रत वाले सभी आपसे

लक्ष्मीः कीर्त्तिर्धृतिर्मेधा लज्जा कांतिर्वपुः स्वधा। तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव वाचां देवी सरस्वती।
त्वत्तः प्रसूता देवेश संध्या रात्रिस्तथैव च॥४५॥
सूर्यायुतानामयुतप्रभाव नमोऽस्तु तेचंद्रसहस्रगौर।
नमोऽस्तुते वज्रपिनाकधारिणे नमोस्तु ते सायकचापपाणये॥४६॥
नमोस्तु ते भस्मविभूषितांग नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यगर्भ नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाससे॥४७॥
नमोऽस्तु ते देव हिरण्ययोनेन मोऽस्तु ते देव हिरण्यनाभ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरेतसे नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र॥४८॥
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्ण नमोऽस्तु ते देव हिरण्यकेश।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवीर नमोऽस्तु ते देव हिरण्यदायिने॥४९॥
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यनाथ नमोऽस्तु ते देव हिरण्यनाद।
नमोऽस्तु ते देव पिनाकपाणे नमोऽस्तु ते शंकर नीलकंठ॥५०॥
एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः। देवदेवो जगद्योनिः सूर्यकोटिसमप्रभः॥५१॥
आबभाषे कृपाविष्टो महादेवो महाद्युतिः। वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवांबरम्॥५२॥
कंबुग्रीवः सुजठरो नानाभूषणभूषितः। नानारत्नविचित्रंगो नानामाल्यानुलेपनः॥५३॥
पिनाकपाणिर्भगवान्सुरपूज्यस्त्रिशूलधृक्। व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयंकरः॥५४॥

ही पैदा हुए हैं।।४१½-४३½।। हे देवेश! उमा, सीता, सिनीवाली, कुहू, गायत्री, लक्ष्मी, कीर्ति, धृति, मेधा, लज्जा, कान्ति, वपु, स्वधा, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया और वाणियों की देवी सरस्वती तथा उसी प्रकार सन्ध्या और रात्रि ये सब आप ही से उत्पन्न हुई हैं।।४३½-४५।। हे दश हजार सूर्यों से भी अधिक प्रभावशाली! आपको नमस्कार है। हे हजारों चन्द्रमा के समान गौरवर्ण वाले, तुम्हें, हमारा नमस्कार है। हे वज्र और पिनाक धारण करने वाले, तुम्हें नमस्कार है। हाथ में बाण और धनुष धारण करने वाले, तुम्हें नमस्कार है।।४६।। हे भस्म से विभूषित अंग वाले, तुम्हें नमस्कार है। हे कामदेव के शरीर को नष्ट करने वाले, तुम्हें नमस्कार है। हे देव हिरण्यगर्भ! तुम्हें नमस्कार है। हे स्वर्णवस्त्र धारण करने वाले, तुम्हें नमस्कार है। देव हिरण्यरेता आपके लिये नमस्कार है। हमारे नेत्र चित्र तुम्हें नमस्कार है।।४८।। हे सोने के वर्ण वाले देव! तुम्हें नमन करता हूं। हे सुनहरे केश वाले देव! तुम्हें नमन करता हूँ। हे हिरण्य (सुनहरा) चीर धारण करने वाले देव! तुम्हें नमस्कार है। हे स्वर्ण प्रदान करने वाले देव! तुम्हें नमस्कार है।।४९।। हे सुवर्ण के स्वामी देव! तुम्हें नमस्कार है। हे हिरण्य (सोने) का नाद करने वाले देव! तुम्हें नमस्कार है। हे हाथ में पिनाक धारण करने वाले देव! तुम्हें नमन करता हूँ तथा हे नीलकण्ठ शंकर! आपको नमस्कार है।।५०।।

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर महाबुद्धिमान् करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले उस समय हजारों करोड़ मुखों से आकाश को ग्रसते हुए से लगने वाले, वे शंख के समान गर्दन वाले, सुगठित शरीर वाले और अनेक प्रकार के भूषणों से भूषित शरीरवाले, अनेकों प्रकार के रत्नों से विचित्र अंग वाले शरीर पर अनेकों प्रकार की मालाओं वाले,

दुंदुभिस्वरनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः। मुक्तो हासस्तदा तेन सर्वमापूरयञ्जगत्॥५५॥
तेन शब्देन महता चावां भीतौ महात्मनः। अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ॥५६॥
पश्यतां च महायोगं भयं सर्वं प्रमुच्यताम्। युवां प्रसूतौ गात्रेभ्यो मम पूर्वं सनातनौ॥५७॥
अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामहः। वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्यं युद्धेष्वनिर्जितः॥५८॥
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्यां यथेप्सितम्। ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयोः प्रभोः॥५९॥
अब्रूतां च महादेवं प्रसादाभिमुखं स्थितम्। यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च ते।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर॥६०॥

देवदेव उवाच

एवमस्तु महाभागौ सृजतां विपुलाः प्रजाः। एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवांतरधाद्विभुः॥६१॥
एष एव मयोक्तो वः प्रभावस्तस्य धीमतः। एतद्धि परमं ज्ञानमव्यक्तं शिवसंज्ञितम्॥६२॥
एतत्सूक्ष्ममचिंत्यं च पश्यंति ज्ञानचक्षुषः। तस्मै देवाधिदेवाय नमस्कारं प्रकुर्महे॥
महादेव नमस्तेऽस्तु महेश्वर नमोऽस्तु ते॥६३॥

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा गताः सर्वे सुराः स्वं स्वं निवेशनम्। नमस्कारं प्रकुर्वाणाः संकराय महात्मने॥६४॥
इमं स्तवं पठेद्यस्तु चेश्वरस्य महात्मनः। कामांश्च लभते सर्वान् पापेभ्यश्च प्रमुच्यते॥६५॥

पिनाकपाणि भगवान् सुरपूज्य हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले, सर्प का यज्ञोपवीत धारण करने वाले सुरों को अभय प्रदान करने वाले, मेघ की गर्जना के समान दुन्दुभि के स्वर से युक्त मुक्तहास वाले, अपने उस हास संसार को पूरित करने वाले, कृपाविष्ट संसार के योनि अर्थात् संसार को उत्पन्न करने वाले देवों के देव महादेव जी प्रकट हो गये।।५०-५५।। उन महात्मा के तेज से हम दोनों ही भयभीत हो गये। इसके बाद महादेव जी ने कहा कि देवताओं श्रेष्ठ देवो! मैं प्रसन्न हूँ।।५६।। आप लोग महायोग को देखें तथा सब भय को छोड़ दें। आप दोनों प्राचीन पुरुष पूर्वकाल में मेरे शरीर से उत्पन्न हुए हैं।।५७।। यह मेरा जो दक्षिण बाहु है, वह लोक पितामह ब्रह्मा है तथा मेरा वाम बाहु विष्णु हैं, जो युद्धों में नित्य जीतने वाले हैं।।५८।। देवो! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ और तुम्हें यथेच्छित वर दे रहा हूँ। शिव की ऐसी बातें सुनकर प्रसन्नचित्त होकर हम दोनों उन प्रभु के पैरों में गिर गये।।५९।। और महादेव के सामने कृपामुख होकर बोले कि हे महादेव यदि आपकी हम पर प्रीति पैदा हुई है, तो हमें वर दीजिये कि हमारी आप में ही नित्य भक्ति होवे।।६०।। तब महादेव जी बोले—हे महाभाग! ब्रह्मा और विष्णु! ऐसा ही होगा आप लोग बहुत प्रजा की सृष्टि करें ऐसा कहकर वे भगवान् अन्तर्धान हो गये।।६१।।

यही उन बुद्धिमान् शंकर का प्रभाव है, जिसे मैंने आप लोगों को सुना दिया। यही शिवनाम का परम अव्यक्त ज्ञान है।।६२।। इस सूक्ष्म और अचिन्तनीय ज्ञान को ज्ञान का नेत्र रखने वाले ही देखते हैं। अतः हम सब उन देवाधिदेव महादेव को नमस्कार करते हैं। हे महादेव! आपको नमस्कार है। हे महेश्वर! आपको नमस्कार है।।६३।। सूत जी बोले—यह सुनकर वे सभी देवता महात्मा शंकर को नमस्कार करते हुए अपने अपने निवास-स्थान को चले गये।।६४।। इस महान् आत्मा ईश्वर के इस स्तव (स्तोत्र) जो पढ़े वह समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है और

एतत्सर्वं तदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना। महादेवप्रसादेन ह्युक्तं ब्रह्म सनातनम्।
एतद्वः सर्वमाख्यातां मया माहेश्वरं बलम्॥६६॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे लिंगोत्पत्तिकथनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥२६॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

दारुवनप्रवेश वर्णनम्

सप्तविंशतितमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

भूयः सूत महाबुद्धे कथयस्व महात्मनः। महादेवस्य माहात्म्यं श्रोतुं कौतूहलं च नः॥१॥
कथं दारुवणे देवऋषिसंघनिषेविते। चकारं वेषं विकृतं येन बुद्धा महर्षयः॥२॥
ज्ञात्वा च तं महादेवं ततो भ्रांता ह्यचेतसः। आराधयन्प्रसादार्थं नैषां तुष्टः पुनर्भवः॥३॥
एतत्सर्वं यथावृत्तं देवदेवेन चेष्टितम्। तत्सर्वं कथयस्वेहं त्वं नो बुद्धिमतां वरः॥४॥

सब पापों से मुक्त हो जाता है। तब सर्वसमर्थ विष्णु ने महादेव की कृपा से यह सब सनातन ब्रह्म का वर्णन किया था, वह मैंने महेश्वर के बल को आप लोगों को बता दिया।।६६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद छब्बीसवां अध्याय लिङ्ग की उत्पत्ति कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-२७

दारुवन प्रवेश वर्णन

ऋषियों ने सूत जी से कहा—हे महाबुद्धे! सूत जी हम महात्मा महादेव के माहात्म्य को सुनने की हमारी उत्कण्ठा है। अतः आप हमें बताइये।।१।। हे देव! ऋषियों से निषेवित दारुवन में महादेव ने क्यों विकृत वेष किया? जिसके द्वारा ऋषियों ने जान लिया।।२।। उन महादेव को जानकर भ्रान्त और अचेता उन ऋषियों ने महादेव की आराधना की; परन्तु वे महादेव उनसे सन्तुष्ट नहीं हुए।।३।। इस सबको जैसा था, वैसा जानने की महादेव ने चेष्टा की उस सबको हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ सूत जी हमें बताइये।।४।।

सूत उवाच

श्रूयतामभिधास्यामि धर्ममेतमतंद्रिताः। निर्म्मितं देवदेवेन भक्तानामनुकंपया॥५॥
पुरा कृतयुगे विप्राः श्रृंगे हिमवतः शुभे। देवदारुवनं रम्यं नानाद्रुमलताकुलम्॥६॥
बहवो मुनयस्तत्र तपस्यंतो मुनिव्रताः। शैवाल भोजनाः केचित्केचिदंतर्जलेशयाः॥७॥
केचिदभ्रावकाशास्तु पादांगुष्ठाग्रधिष्ठिताः। दंतोलूखलिनश्चान्ये त्वश्मकुट्टास्तथा परे॥८॥
स्थानवीरासनाश्चान्ये मृगचर्यारतास्तथा। कालं नयंति तपसा तीव्रेण च महाधियः॥९॥
ततस्तेषं प्रसादार्थं देवस्तद्वनमागतः। भस्म पांडुरदिग्धांगो नग्नो विकृतलक्षणः॥१०॥
विकृतस्त्रस्तकेशश्च करालदशनस्तथा। उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिंगललोचनः॥११॥
शिश्नं सवृषण तस्य रक्तगैरिकसन्निभम्। मुखमंगारवर्णेन शुक्लेन च विभूषितम्॥१२॥
क्वचित्स हंसते रौद्रं क्वचिद्गायति विस्मितः। क्वचिन्नृत्यति शृंगारी क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः॥१३॥
नृत्यतं रुरुधुस्तूर्णं पत्न्यस्तेषां विमोहिताः।
आश्रमेऽभ्यागतोऽभीक्ष्णं याचते च पुंनः पुनः॥१४॥
भार्या कृता तथारूपा तृणाभरणभूषिता। वृषनादं प्रगर्जन्वै खरनादं ननाद च॥१५॥
तथा वंचितुमारब्धो हासयन्सर्वदेहिनः। ततस्ते मुनयः क्रुद्धाः क्रोधेन कलुषीकृताः॥१६॥

ऋषियों के इस कथन को सुनकर सूत जी बोले—हे ऋषियो! मैं इस धर्म को आप लोगों से कहूँगा, जिसका कि महादेव ने भक्तों की कृपा द्वारा बनाया है। आप लोग निरालस्य होकर सुनिये।।५।।

हे ब्राह्मणो! पहले सतयुग में हिमालय के शुभ शिखर पर अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से व्याप्त देवदारु नामक वृक्षों वाला रम्य वन था।।६।। वहाँ पर अनेकों मुनिगण मुनिव्रत धारण करते हुए तपस्या कर रहे थे। उनमें से कुछ जल के अन्दर खड़े रहकर शिवार का भोजन करते थे।।७।। कुछ केवल पैर के अंगूठे के बल खड़े रहकर केवल जल पीकर तपस्या कर रहे थे। कुछ मुनिगण अपने दांतों को ओखली बनाये हुए अर्थात् केवल दांत पीसकर निराहार तपस्या कर रहे थे, तो कुछ दूसरे वानप्रस्थी भक्तगण पत्थर पीस कर खाकर तपस्या कर रहे थे।।८।। कुछ ऋषिगण स्थान पर ही वीरासन लगाये हुए थे तथा कुछ मृगचर्म पर ही तपस्या में लीन थे। वे सब महाबुद्धिवाले ऋषिगण तीव्र तप द्वारा समय बिता रहे थे।।९।। उसके बाद उनको प्रसन्न करने के लिए महादेव उस वन में आये। उस समय महादेव जी शरीर पर भस्म रमाये हुये पीले और जले हुए अंग वाले नग्न और अंगभंग लक्षण युक्त थे। उनके केश बिखरे हुए थे तथा दांत कराल (भयावह) थे। वे हाथों में मशाल लिये हुए थे और उनकी पीले व लाल रंग की आँखे थीं।।१०-११।।

उनका शिश्न वृषभ के शिश्न के समान लाल गेरू के समान था। उनका मुख जलते हुए अंगारे के समान श्वेतवर्ण से विभूषित या।।१२।। कभी वे भयंकर हंसी हँसते थे, कभी विस्मित हो गाते थे।। कभी वे शृङ्गारी नृत्य करते थे, तो कभी बार-बार रोने लगते थे।।१३।। नाचते हुए शीघ्र रोने लगते थे। यह देखकर उन मुनियों की पत्नियां मूर्च्छित हो गयीं। वे आश्रम में अभ्यागत थे, निरन्तर बार बार माँग रहे थे। उनकी भार्या अर्थात् पत्नी पार्वती भी उसी तरह क्रियाकलाप करती थीं, वह भी तिनके के आवरण से विभूषित थीं। अर्थात् घास-फूस से शरीर को ढके हुई थी। वहाँ बैल के रंभाने की गर्जना हुई और गधे की आवाज हुई।।१३-१५।। उसी प्रकार उन्होंने वहाँ उनको सबको

मोहिता मायया सर्वे शपितुं समुपस्थिताः। खरवद्गायसे यस्मात्खरस्तस्माद्भविष्यसि॥१७॥
राक्षसो वा पिशाचो वा दानवो वाथ वा तथा।
यथा वैच्छंस्तथा सर्वे क्रुद्धास्ते मुनयः समम्॥१८॥
शेपुः शापैस्तु विविधैस्तं देवं भुवनेश्वरम्। तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यतं शंकरे॥१९॥
यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसि स्थिताः। न द्योतंते प्रकाशेन तद्वत्तेजांसि शंकरे॥२०॥
श्रूयते ऋषिशापेन ब्रह्मणः सुमहात्मनः। समृद्धः श्रेयसां योनिर्यज्ञो वै नाशमाप्तवान्॥२१॥
भृगोरपि च शापेन विष्णुः परमवीयवान्। प्रादुर्भावान्दश प्राप्तो दुःखितश्च सदा कृतः॥२२॥
इंद्रस्यापि हि धर्मज्ञः शिश्नं सवृषणं पुरा। ऋषीणा गौतमेनोर्व्यां क्रुद्धेन विनिपातितम्॥२३।
गर्भवासो वसूनां च शापेन विहितस्तथी। ऋषीणां चैव शापेन नहुषः सर्पतां गतः॥२४॥
क्षीरोदश्च समुद्रश्च ह्यपेयो ब्राह्मणैः कृतः। धर्मश्चात्र प्रशप्तो वै मांडव्येन महात्मना॥२५॥
एते चान्ये च बहवो यातनां च समागताः। वर्जयित्वा विरूपाक्षं देवदेवं महेश्वरम्॥२६॥
एवं हि मोहितास्तेन न चाबुद्ध्यंत शंकरम्। ततस्ते ऋषयः सर्वे परस्परमथाब्रुवन्॥२७॥
न चायं विधिरस्माकं गृहस्थानां विधीयते। ब्रह्मचर्यरतानां च वने वा वनवासिनाम्॥२८॥
यतीनां वा तथा धर्मो नायं दृष्टः कथंचन। अनयस्तु महानेष येनायं मोहितो द्विजाः॥२९॥
लिंगं प्रपातयस्वैतन्नायं धर्मस्तपस्विनाम्। वदस्व वाचा मधुरं वस्त्रमेकं समाश्रय॥३०॥

धोखा देना आरम्भ कर दिया। सब देहधारियों को हंसाने लगे। उसके बाद यह देखकर सब मुनि क्रोधित हो गये और क्रोध से मनमलीन और माया से मोहित वे सब शाप देने के लिए उपस्थित हो गये। और वे शाप देने लगे कि आप जो गधे के समान गा रहे हो; इसलिये आप गधा हो जाओगे।।१६-१७।। आप राक्षस हो जाओ, अथवा पिशाच हो जाओ अथवा दानव हो जाओ। इस प्रकार जो जैसा चाहते थे, वैसा सब मुनियों ने अनेकों प्रकार के शापों द्वारा भगवान् शंकर को शाप दिये। उन सबके तप शंकर के प्रति प्रभावकारी हुए।।१८-१९।। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश के द्वारा तारेगण आकाश में स्थित हैं, उसी प्रकार अपने प्रकाश द्वारा शङ्कर में तेज नहीं प्रकट होते हैं।।२०।। हे ब्राह्मणो! सुना जाता है कि ऋषि के शाप से समस्त श्रेयों को प्रदान करने वाला समृद्ध यज्ञ भी नाश को प्राप्त हो गया था।।२१।। भृगु के शाप से परम पराक्रम वाले विष्णु दुःखित हो गये थे।।२२।।

हे धर्मज्ञ! प्राचीनकाल में ऋषि शाप से इन्द्र का शिश्न बैल का शिश्न बन गया था तथा क्रुद्ध ऋषि गौतम ने इन्द्र को पृथ्वी पर गिरा दिया था।।२२-२३।। ऋषियों के शाप से वसुओं को गर्भवास कर दिया गया था अर्थात् आठों वसु गर्भ में स्थित हो गये थे। ऋषियों के शाप से नहुष सर्प बन गये थे।।२४।। क्षीर सागर और अन्य समुद्र ऋषियों के शाप से अपेय (न पीने योग्य) खारे पानी वाले हो गये थे और धर्म को महात्मा माडव्य ने शाप दे दिया था।।२५।। केवल देवाधिदेव महादेव को छोड़कर ये सब अन्य भी बहुत सारे ऋषियों के शाप से यातना प्राप्त हुये थे।।२६।। इस प्रकार मोहित हुए ऋषियों ने शंकर को जताया, उसके बाद सब ऋषिगण परस्पर कहने लगे।।२७।। यह हम गृहस्थों की विधि नहीं है, यह धर्म ब्रह्मचर्यरत मनुष्यों अथवा वन में रहने वालों का है।।२८।। संन्यासियों का यह धर्म किसी प्रकार नहीं देखा गया। यह तो महान् अनीतिकर हुआ, जिसके द्वारा हमारी पत्नियों को देखकर यह लिंग मोहित हुआ। इस लिङ्ग को गिराओ, यह हम तपस्वियों का धर्म नहीं है। इस प्रकार तपस्वीगण मधुर वाणी बोले और कहा कि एक वस्त्र का सहारा लो। नग्न रहना उचित नहीं।।२९-३०।।

त्याजिते च त्वया लिंगे ततः पूजामवाप्स्यसि। ऋषीणां तद्वचः श्रुत्वा भगवान्भगनेत्रहा॥३१॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा प्रहसन्निव शंकरः। न शक्यमिदमस्माकं लिंगं पातयितुं बलात्॥३२॥
ब्रह्मादिदैवतैः सर्वैः किमुतान्यैस्तपोधनैः। पातयेयमहं चैतल्लिंगं भो द्विजसत्तमाः॥३३॥
आश्रमे तिष्ठ वा गच्छ वाक्यमित्येव तेऽब्रुवन्। एवमुक्तो महादेवः प्रहृष्टेन्द्रियचेष्टितः॥३४॥
सर्वेषां पश्यतामेव तत्रैवांतर्दधे प्रभुः। अंतर्हिते भगवति तथा लिंगे कृते भवे॥३५॥
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां प्रादुर्भावो न जायते। व्याकुलं च तदा सर्वं न प्रकाशेत किंचन॥३६॥
तपते चैव नादित्यो निष्प्रभः पावकस्तथा। नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव विपरीता विजज्ञिरे॥३७॥
संतानार्थं प्रवृत्तानामृषीणां विभवात्मनाम्। ऋतवो न व्यवर्त्तंत ऋतुकालाभिगामिनाम्॥३८॥
ते चरंति पुनर्द्धर्म्मं निर्ममा निरहंकृताः। नष्टप्रभाववीर्याश्च नष्टतेजस एव च॥३९॥
धर्मे चैव मतिस्तेषां तदा न व्यवतिष्ठते। ते तु सर्वे समागम्य ब्रह्मलोकमुपागताः॥४०॥
ब्रह्मणो भवनं गत्वा दृष्ट्वा पुष्पकसंभवम्। पादयोः पतिताः सर्वे शिववृत्तांतमूचिरे॥४१॥
विकटः स्तब्धकेशश्च करालदशनस्तथा। उलूकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिंगललोचनः॥४२॥
शिश्नं सवृषणं तस्य रक्तं गैरिकमंडितम्। स्नुषाणां च दुहितॄणां पुत्रीणां च विशेषतः॥४३॥
वर्तमानस्ततः पार्श्वे विपरीताभिलाषतः। उन्मत्त इति विज्ञाय सोऽस्माभिरवमानितः॥४४॥
आक्रुष्टस्ताडितश्चापि लिंगं चाप्यस्य चोद्धृतम्। तस्य क्रोधप्रसादार्थं वयं ते शरणं गताः॥४५॥

उसके बाद तुम्हारे द्वारा लिंग को त्यागने पर तुम पूजा को प्राप्त करोगे अर्थात् इस लिंग को गिराने पर तुम पूज्य हो जाओगे।। ऋषियों के उस वचन को सुनकर जिनका भग ही नेत्र है अर्थात् कामदेव को मारने वाले भगवान् शङ्कर मुस्कराते हुए कोमल वाणी से बोले—कि यह हमारा लिङ्ग बलपूर्वक नहीं गिराया जा सकता।।३१-३२।। हे ब्राह्मणो! ब्रह्मादि सभी देवताओं, किमुत अन्य तपस्वियों द्वारा मैं इस लिंग को गिरा दूँगा।।३३।। आप लोग आश्रम में बैठो अथवा चले जाओ। इस प्रकार यह वाक्य उन्होंने कहा। इस प्रकार कहकर प्रसन्न इन्द्रियों वाले महादेव सबके देखते देखते अन्तर्धान हो गये।।३४-३४½।। भवकृत भगवान् लिङ्ग के अन्तर्धान हो जाने पर तीनों लोकों में सब प्राणियों की उत्पत्ति नहीं हो रही थी। तब सब कुछ व्याकुल हो गया। कुछ प्रकाश नहीं हो रहा था।।३६।। तब सूर्य नहीं तप रहे थे तथा अग्नि भी निष्प्रभ हो गये। नक्षत्र और ग्रह विपरीत भाव पैदा कर रहे थे।।३७।।

सन्तान के लिए प्रवृत्त ऋतुकाल के लिये अभिगमन करने वाले वैभवशाली ऋषियों की यज्ञें नहीं हो रही थी। अर्थात् स्त्रियों में ऋतुयें (मासिकधर्म) नहीं हो रहे थे।।३८।। वे सब ममत्वरहित अहंकाररहित तथा जिनके पराक्रम का प्रभाव नष्ट हो गया है तथा जिनका तेज नष्ट हो गया है, वे पुनः धर्म करते हैं।।३९।। परन्तु उनकी बुद्धि धर्म में व्यवस्थित नहीं होती है। वे सब मिलकर ब्रह्मलोक में पहुँचे।।४०।। ब्रह्मा के भवन में जाकर पुष्प से उत्पन्न ब्रह्मा को देखकर उनके पैरों में गिरकर सबने ब्रह्माजी को शिव का वृत्तान्त कहा।।४१।। कि विक्राल भयंकर दाँतों वाले तथा हाथ में मशाल लिये हुए पीली और लाल आँखों वाले शिवजी वहाँ हम लोगों के बीच आये थे।।४२।। उनका साँड़ जैसा लिङ्ग गेरू के रंग का लाल लाल था। वहाँ हमारी पुत्रियां पुत्रवधुएँ दुहितायें थीं। अतः उन वर्तमान के प्रति विपरीत अभिलाषा वाला जानकर हम सबने उनका अपमान कर दिया।।४४।। आक्रुष्ट और ताडित भी किये गये

एतत्कार्यं न जानीमस्तन्नो ब्रूहि पितामह। ऋषीणां तद्वचः स्तुत्वा ध्यानाद्विज्ञाय चेश्वरम्॥४६॥
प्रत्युवाच ततो ब्रह्मा वाक्यं च सुसमाहितः। एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः॥४७॥
न तस्य परमं किंचित्पदं समधिगम्यते। देवानां च ऋषीणां च पितॄणां चैव स प्रभुः॥४८॥
सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम्। संहरत्येषो भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः॥४९॥
एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा। एष चक्री च वक्षोजश्रीवत्सकृतलक्षणः॥५०॥
योगी कृतयुगे चैव त्रेतायां क्रतुरुच्यते। द्वापरे चैव कालाग्निर्धर्मकेतुः कलौ स्मृतः॥५१॥

रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्त्रो विज्ञेयाश्चापि पंडितैः।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकः॥५२॥

मूर्त्तिरिका स्मृता यस्य दिग्वासाश्च शिवाह्वया। यत्र तिष्ठंति तद्ब्रह्मयोगेन तु समन्वितम्॥३॥
तस्माद्देवं देवदेवमीशानं प्रभुमव्ययम्। आराधयत विप्रेन्द्रा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः॥५४॥
दृष्टं वै यादृशं तस्य लिंगमासीन्महात्मनः। तादृक्प्रतिकृतिं कृत्वा शूलपाणिं प्रपद्यत॥५५॥
ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः। यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति॥५६॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा ब्रह्माणममितौजसम्। आस्थिता वीतशोकास्ते देवदारुवने ततः॥५७॥

अर्थात् हम लोगों ने उन्हें मारा पीटा भी तथा उनके लिंग पर भी आघात किया, उसके बाद उनका लिङ्ग उखड़ गया और वे क्रोधित हो गये। अतः उनके क्रोध को शान्त करने के लिये हम आपके पास आये हैं।।४५।। उनको प्रसन्न करने का कार्य हम नहीं जानते हैं। अतः हे पितामह! हमें बताइये कि हम उन्हें कैसे प्रसन्न करें। ऋषियों के इस वचन को सुनकर और ध्यान से ईश्वर (महादेव) को जानकर ब्रह्मा ने ध्यानपूर्वक उत्तर दिया कि आप लोगों को जानना चाहिए कि महान् ईश्वर देवाधिदेव महादेव हैं।।४६-४७।। उनका परमपद कोई नहीं प्राप्त कर सकता है। वे महादेव समस्त देवों, ऋषियों और पितरों के प्रभु (पैदा करने वाले) हैं।।४८।।

हजार युग के पर्यन्त प्रलय में ये महेश्वर काल बनकर सब शरीरधारी प्राणियों का संहार करते हैं। वह अकेले ही अपने तेज से समस्त प्रजा की सृष्टि करते हैं।।४९।। ये महेश्वर चक्री हैं अर्थात् संसारचक्र को चलाने वाले हैं, जिनके वक्षस्थलपर श्री वत्सकृत लक्षण हैं।।५०।। ये ही सतयुग में योगी, त्रेत्रा में क्रतु (यज्ञ), द्वापर में कालाग्नि और कलियुग में धर्मकेतु कहे गये हैं।।५१।। रुद्र की तीन मूर्तियां पण्डितों द्वारा विज्ञेय हैं। तम अग्नि है, रज ब्रह्मा है, और सत्त्व विष्णु जो प्रकाश करने वाले हैं। अतः तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण की प्रतीक क्रमशः अग्नि, ब्रह्मा और विष्णु उन्हीं शिव की मूर्तियां हैं।।५२।। ब्रह्मा जी ने कहा कि जिनकी दिशाओं में वास करने वाली शिव नाम की एक मूर्ति कही गयी है, जहाँ पर वे ब्रह्मयोग से समन्वित होकर स्थित हैं।।५३।। इसलिये हे विप्रो! आप लोग क्रोध को जीतकर तथा अपनी इन्द्रियों को जीतकर उन देवों के देव ईशान महाप्रभु शिव की आराधना करें।।५४।। जैसा आप लोगों ने उन महात्मा महादेव का लिङ्ग देखा है, वैसे लिङ्ग की प्रतिकृति (नकल) मूर्ति बनाकर शूलपाणि को प्रसन्न करें।।५५।। उसके बाद आप लोग अपनी अकृत आत्माओं से कठिनाई से देखने वाले देवेश महादेव को देखोगे, जिसको देखकर आप लोगों का सब अज्ञान और अधर्म नष्ट हो जायेगा।।५६।। उसके बाद असीमित तेज वाले ब्रह्मा की परिक्रमा करके वे सब देवर्षिपितृगण शोक त्यागकर देवदारु के वन में आस्थित हो गये और फिर वहाँ उन्होंने ब्रह्मा की कथनानुसार आराधना करना प्रारम्भ कर दिया।।५७।।

आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा। स्थंडिलेषु विचित्रेषु पर्वतेषु गुहासु च॥५८॥
नदीनां च विचित्रेषु पुलिनेषु शुभेषु च। एवं संवत्सरे पूर्णे वसंते समुपस्थिते।
तदेव रूपमास्थाय देवस्तद्वनमागतः॥५९॥
कुसुमितबहुपादपालताकं भ्रमरगणै रुपगीयमानखण्डम्।
परभृतपरिपूर्णचारुशब्दं प्रविशति तद्वनमाश्रमं महेशः॥६०॥
ततस्तं मुनयः सर्वे तुष्टुवः सुसमाहिताः॥६१॥
अद्भिर्विविधमाल्यैश्च धूपगन्धैस्तथैव च। सपत्नीका महाभागाः सुपुत्राः सपरिच्छदाः॥६२॥
मृदुभिस्ते तदा वाग्भिर्गिरीशमिदमब्रुवन्। अज्ञानाद्देवदेवस्य यदस्माभिरनुष्ठितम्॥६३॥
कर्मणा मनसा वाचा तत्सर्वं क्षंतुमर्हसि। चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च॥६४॥
ब्रह्मादीनां च देवानां दुर्विज्ञेयानि शंकर। स्वागतं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च॥६५॥
विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते। स्तुवंति त्वां महात्मानो देवदेवं महेश्वरम्॥६६॥
नमो भवाय भव्याय भावनायोद्भवाय च। अनन्तबलवीर्याय भूतानां पतये नमः॥६७॥
संहर्त्रे कपिशांगाय अव्ययाय व्ययाय च। गंगा सलिलधाराय चाधाराय गुणात्मने॥६८॥
त्र्यंबकाय त्रिनेत्राय त्रिशूलवरधारिणे। कंदर्पाय नमस्तुभ्यं नमोऽस्तु परमात्मने॥६९॥
शंकराय वृषांकाय गणानां पतये नमः। दंडहस्ताय कालाय पाशहस्ताय वै नमः॥७०॥

तब वहाँ बंजर भूमियों, पर्वतों, गुफाओं, नदियों के शुभ विचित्र पुलों पर संवत्सरपूर्ण वाला वसन्त समुपस्थित हो गया तथा तब वही रूप धारण करके शंकर जी उस वन में आये।।५८-५९।। तव अनेकों वृक्षों और लताओं और पुष्पों से युक्त जो वन था, जिसमें कि भौंरे गुञ्जार कर रहे थे, कोयल का मधुर स्वर जिस वन में विद्यमान था, उस वनाश्रम में महादेव प्रवेश करते हैं।।६०।। उसके बाद उन समस्त ऋषियों सुसमाहित होकर उन्हें प्रसन्न किया।।६१।। जलों से, अनेकों प्रकार की मालाओं से, उसी प्रकार धूपगन्धों से, वे सब अपनी पत्नी, पुत्र और परिवार के साथ मृदु वाणियों द्वारा गिरीश्वर भगवान् शंकर से यह बोले— हे देव! हमने अज्ञान के कारण कर्म से, वाणी से और मन से जो कुछ व्यवहार किया, उसकी क्षमा माँगते हैं, आप क्षमा कर सकते हैं।।६२-६४।। हे शंकर! ब्रह्मा आदि देवों के चरित्र बहुत ही दुर्विज्ञेय होते हैं। हे महादेव! आपका स्वागत है। हम आपकी गति को नहीं जानते हैं। क्या है? क्या नहीं है?।।६५।।

हे विश्वेश्वर! महादेव! आप जो हैं, सो हैं। अतः आपको नमस्कार है। हम महात्मा सब देवों के देव! महेश्वर! आपकी स्तुति करते हैं।।६६।। आप भव (उत्पन्न करने वाले), भव्य (उत्पन्न होने वाले), भावनायें (उत्पन्न कराने वाले), अनन्त बल और पराक्रम वाले और समस्त भूतों के स्वामी आपको नमस्कार है।।६७।। हे संहार करने वाले, हे कपिश अंग वाले, नष्ट न होने वाले और नष्ट होने वाले, गंगाजल की धारा वाले, सबके आधार, गुण रूप आत्मा वाले, त्र्यम्बक (तीन) तीन नेत्र वाले, श्रेष्ठ त्रिशूल को धारण करने वाले कन्दर्प आपको नमस्कार है। हे आत्माओं की परमात्मा आत्माओं के समष्टि रूप परमात्मा आपके लिये नमस्कार है।।६८-६९।। शंकर, ध्वजा पर बैल के चिह्न वाले गणों के पति आपको नमस्कार है। हाथ में दण्ड रखने वाले, काल, हाथ में पाश रखने वाले, आपको नमस्कार है।।७०।।

वेदमन्त्रप्रधानाय शतजिह्वाय ते नमः। भूतं भव्यं भविष्यच्च स्थावरं जंगमं च यत्॥७१॥
तव देहात्समुत्पन्नं देव सर्वमिदं जगत्। शंभो पाहि च भद्रं ते प्रसीद भगवंस्ततः॥७२॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यत्किंचित्कुरुते नरः। तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया॥७३॥
एवं स्तुत्वा तु मुनयः प्रहृष्टेनांतरात्मना। याचंते तपसा युक्ताः पश्यामस्त्वां यथा पुरा॥७४॥
प्रकृतिस्थं च ते लिंगं तथैवास्तु यथा पुरा। नमो दिग्वाससे नित्यं किंकिणीजालमालिने॥७५॥
विकटाय करालाय करालवदनाय च। अरूपाय सुरूपाय विश्वरूपाय ते नमः॥७६॥
कटंकटाय रुद्राय स्वाहाकाराय वै नमः। सर्वप्राणात्मने तुभ्यं गुणदेहाय वै नमः॥७७॥
दुर्गन्धाय सुगन्धाय शूलहस्ताय वै नमः। स्वयं नीलशिखंडाय श्रीकण्ठाय नमो नमः।
नीलकण्ठाय देवाय चिताभस्मांगरागिणे॥७८॥
गुणत्रयात्मने तुभ्यं नमो विश्वाय वेधसे। श्मशानवासिने नित्यं प्रेतरूपाय वै नमः॥७९॥
त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः। आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यते॥८०॥
पर्वतानां महामेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः। ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं देवानां वासवस्तथा॥८१॥
ओंकारः सर्ववेदानां ज्येष्ठसाम च सामसु। आरण्यानां च सर्वेषां सिंहस्त्वं परमेश्वरः॥८२॥
ग्राम्याणामृषभश्चापि भगवाँल्लोकपूजितः। सर्वथा वर्त्तमानोऽपि यो यो भावो भविष्यति॥८३॥

हे वेदमन्त्र प्रधान, सौ जिह्वा वाले, आपको नमस्कार है।।७०½।। जो भूत और भव्य और भविष्य है, जो स्थावर और जङ्गम है। वह समस्त जगत् हे देव! आपके शरीर से उत्पन्न हुआ है। हे शम्भो! आप हमारी रक्षा कीजिये अतः हे भगवन्! और प्रसन्न हो जाइये।।७०½-७२।। अज्ञान से अथवा ज्ञान से मनुष्य जो कुछ करता है, वह सब भगवन् आप ही अपनी योगमाया से करते हैं। तप से युक्त मुनि लोग प्रसन्न आत्मा से स्तुति करके माँग करते हैं कि जैसे पहले थे, वैसा देखते हैं।।७४।। हे महादेव! प्रकृति में स्थित जो आपका लिङ्ग है, वह उसी प्रकार का होवे जैसा कि पहले प्राचीन काल में था। अतः दिशायें ही हैं, वस्त्र जिनके ऐसे दिगम्बर! आपको नमस्कार है तथा किंकिणी घुंघुरुओं की मालाओं वाले, आपको नमस्कार है।।७५।। विकट, कराल और कराल वदनवाले, अरूप (विना रूप वाले), सुरूप, और विश्वरूप आपको नमस्कार है।।७६।। हे कंटकट, रुद्र और स्वाहा के आकार वाले, आपको नमस्कार है। सबके प्राणात्मा रूप गुणरूप शरीर वाले, आपको नमस्कार है।।७७।। आप दी दुर्गन्ध हैं, आप ही सुगन्ध हैं, अतः दुर्गन्ध सुगन्ध रूप आपको नमस्कार है। शूल हाथ में रखने वाले, आपको नमस्कार है। स्वयं नीली चोटी वाले, श्रीकण्ठ आपको नमस्कार है। नीलकण्ठ महादेव के लिये तथा शरीर पर चिता की भस्म लगाने वाले देव के लिये नमस्कार है।।७८।। हे तीनों गुणों के आत्मा, रूप, विश्व रूप तथा विधाता रूप आपको नमस्कार है। श्मशान में नित्य निवास करने वाले प्रेतरूप! आपको नमस्कार है।।७९।। हे देव! आप सब देवों के ब्रह्मा हो, रुद्रों में नीललोहित हो। सांख्यो द्वारा आप ही सब भूतों (पञ्चमहाभूतो) अथवा प्राणियों की आत्मा पुरुष कहे जाते हैं।।८०।। हे देव! तुम पर्वतों में महान् सुमेरु पर्वत हो। नक्षत्रों में चन्द्रमा हो। ऋषियों में वशिष्ठ हो तथा देवों में इन्द्र हो।।८१।। आप वेदों में ॐकार हो, सामों (सामवेद के छन्दों) में सबसे बड़े साम (छन्द) हो तथा हे परमेश्वर! सभी जंगली जीवों में तुम सिंह हो।।८२।। ग्रामीणों में तुम लोकपूजित भगवान् ऋषभ देव हो। जो जो भाव होंगे, उन सभी में आप सब प्रकार से वर्तमान रहते हैं।।८३।।

त्वामेव तत्र पश्यामो ब्रह्मणा कथितं यथा। कामः क्रोधश्च लोभश्च विषादो मद एव च॥८४॥
एतदिच्छाम वै रोद्धुं प्रसीद परमेश्वर। महासंहरणे प्राप्ते त्वया देव कृतात्मना॥८५॥

करं ललाटे संपीड्य वह्निरुत्पादितस्त्वया।
तेनाग्निना तदा लोका अर्चिर्भिः सर्वतो वृताः॥८६॥
तस्मादग्निसमा ह्येते बहवो विकृताग्नयः।
यानि चान्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च॥८७॥

दह्यंते प्राणिनस्ते तु त्वत्समुत्थेन वह्निना। अस्माकं दह्यमानानां त्राता भव सुरेश्वर॥८८॥
त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिंचसि। महेश्वर महाभाग प्रभो शुभनिरीक्षक॥८९॥
आज्ञापय वयं नाथ कर्त्तारो वचनं तव। रूपकोटिसहस्रेषु रूपकोटिशतेषु च॥९०॥
अंतं गंतुं न शक्ताः स्म तव देव नमोऽस्तु ते। ततस्तु भगवानीश इदं वचनमब्रवीत्॥९१॥

ये हि मे भस्मनिरता भस्मना दग्धकिल्बिषाः।
यथोक्तकारिणो दांता विप्रा ध्यानपरायणाः॥९२॥

न तान्परिवदेद्विद्वान् न च तानतिलंघयेत्। न चेमानप्रियं ब्रूयादमुत्रेह हितार्थवान्॥९३॥
यस्तान्निन्दति मूढात्मा महादेवं स निंदति। यस्त्वेतान्पूजयेन्नित्यं स पूजयति शङ्करम्।

एवं चरथ भद्रं वो मत्तः सिद्धिमवाप्स्यथ॥९४॥

जैसा कि ब्रह्मदेव ने कहा है कि हम काम, क्रोध, लोभ, विवाह और मद में सर्वत्र आपको ही देखते हैं अर्थात् यह सब आप ही पैदा करते हैं। अतः यह सब जो काम क्रोधादि हैं, उनको रोकना चाहता हूँ। हे परमेश्वर आप प्रसन्न हो जाओ।।८४-८४½।। महाप्रलय प्राप्त होने पर हे देव! कृतात्मा आपने अपने मस्तक पर हाथ रगड़कर अग्नि पैदा कर दी थी। उसी अग्नि से सभी लोक लपटों से व्याप्त हो गये। सब ओर आग की ज्वालायें जलने लगीं।।८४½-८६।। उस अग्नि से संसार में उस अग्नि के समान बहुत से प्रकारों की विकृत अग्नियां उत्पन्न हो गयीं जिस तुम्हारे द्वारा उठायी गयी अग्नि से संसार में जितने अन्य प्राणी स्थावर जङ्गम पदार्थ जल जाते हैं, हे देव देवेश्वर महादेव! हम जलते हुए लोगों के आप ही रक्षा करने वाले हैं।।८७-८८।। हे महेश्वर! हे महाभाग! हे शुभ निरीक्षण करने वाले हे प्रभो! आप ही लोककल्याण के लिये भूत तत्त्वों का परिसिंचन करते हैं अर्थात् पंच महाभूतों तथा प्राणियों की पुनः सृष्टि करते हो।।८९।।

हे नाथ! हमें आज्ञा दीजिये कि हम आपके वचन का पालन करने वाले हैं। हे नाथ! आप हजारों सैकड़ों करोड़ रूपों में हैं, हम आपका अन्त नहीं जान सकते हैं। अतः हे देव! आपको नमस्कार है।।९०-९०½।। उसके बाद भगवान् शंकर यह वचन बोले जो मेरे भस्म से युक्त हैं, भस्म लगाते हैं, भस्म से जिनके पाप जल गये हैं तथा जो उदार और इन्द्रियों को दमन करने वाले हैं तथा ध्यान परायण हैं। मेरे ध्यान में लगे रहते हैं। विद्वान् उनसे परिवाद नहीं करते और न उनका उल्लङ्घन करते हैं, न उनको कोई अप्रिय बोलता है, यहां सव उनके हित को चाहने वाले ही होते हैं।।९०½-९३।। जो मूढात्मा मेरे भक्तों की निन्दा करता है, वह महादेव की निन्दा करता है तथा जो उनकी पूजा करता है, वह शंकर की पूजा करता है। इस प्रकार आप करते हैं, तो मुझसे अवश्य सिद्धि प्राप्त करोगे।।९४।।

अतुलमिह महातमः प्रणाशं शिवकथितं परमं विधिं विदित्वा।
अपगतभयलोभमोहचिंताः सह पतिताः सहसा शिरोभिरूहुः॥९५॥

ततस्ते मुदिता विप्राः प्रकृतिस्थे महेश्वरे। गन्धोकैः सुशुद्धैश्च कुशपुष्पविमिश्रितैः॥९६॥
स्नापयंति महाकुम्भैरद्भिर्देवं महेश्वरम्। गायंति विविधैर्गुह्यैर्हुंकारैश्चापि सुस्वरैः॥९७॥
नमो दिग्वाससे देव किंकिणीधाय वै नमः। अर्द्धनारीशरीराय सांख्ययोगप्रवर्त्तिने॥९८॥
घनवाहनकृष्णाय गजचर्मनिवासिने। कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयंज्ञोपवीतिने॥९९॥

सुरचित चित्रविचित्रकुण्डलाय सुरचितमाल्यविभूषणाय तुभ्यम्।
मृगपतिवरचर्मवाससे ते पृथुपरशो च नमोस्तु शंकराय॥१००॥

भूयश्च स्थापिते लिंगे लोकानां हितकाम्यया। वर्णधर्मपराश्चैव चेरुस्ते मुनिसत्तमाः॥१०१॥
ततस्तान्नास मुनीन्प्रीतः प्रत्युवाच महेश्वरः। प्रीतोऽस्मि युष्मत्तपसा वरं वृणुत सुव्रताः॥१०२॥
ततस्ते मुनयस्सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम्। भृग्वंगिरा वसिष्ठश्च विश्वामित्रस्तथैव च॥१०३॥

गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
मरीचिः कश्यपश्चापि संवर्तश्च महातपाः॥१०४॥

ते प्रणम्य महादेवमिदं वचनमब्रुवन्। भस्मस्नानं च नग्नत्वं वामत्वं प्रतिलोमता।
सेव्यासेव्यत्वं तु विभो एतदिच्छाम वेदि तुम्॥१०५॥

अतः जो इस संसार में अतुल महान् अंधकार को पूरी तरह नाश करने वाली शिवकथित परम विधि को जानकर पूजा करता है, वह लोभ मोह चिन्ता रहित होकर अचानक मनुष्यों का शिरोमणि बन जाता है।।९५।। उसके बाद महेश्वर में प्रकृतिस्थ होकर मुदित विप्र, सुगन्धित, अच्छी तरह से शुद्ध, कुशपुष्पमिश्रित, महाकुम्भ के जलों से स्नान करते हैं और अनेकों प्रकार की गुह्य हुंकार पूर्ण स्वरों से गाने लगते हैं।।९६-९७।। विप्रगण गान करते हैं कि—हे देव दिगम्बर तुम्हें नमस्कार है, हे घुँघरुवाले तुम्हें नमस्कार है। हे अर्धस्त्रीतनु तुम्हें नमस्कार है। हे सांख्ययोग के प्रवर्तक! हे शिव! सर्वेश्वर तुम्हें नमस्कार।।९८।। हे मेघों के समान कृष्णवर्ण! गजकर्म निवासी महाप्रभो! कृणाजिनधारी, नागों के यज्ञोपवीत को अपने शरीर पर धारण करने वाले तुम्हें नमस्कार है।।९९।।

हे शिवशंकर भोले, तुम्हें नमस्कार है। सुरचित विचित्र चित्रितकुण्डल, सुरचित मालागहनों वाले, मृगपतिवरचर्मवस्त्र वाले (सिंह के चर्म का वस्त्र पहनने वाले), पृथुपरसुपाणिते (हाथ में परशु धारण करने वाले) आपको नमो नमस्कार है।।१००।। इस प्रकार स्तुति करके मुनियों ने कहा कि हे नाथ लोकों के हित की कामना से पुनः स्थापित लिङ्ग में संसार वर्ण और धर्म को प्रवृत्त कीजिये।।१०१।। उसके बाद प्रसन्न हुये महेश्वर उन मुनियों से बोले—सुन्दर व्रत में स्थित मुनियों! मैं तुम्हारी तपस्या से तुम पर प्रसन्न हूँ। अतः वर माँगो।।१०२।। उसके बाद वे भृगु, अङ्गिरा, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि आदि मुनिगण महादेव को प्रणाम करके महादेव से यह वचन बोले। मुनियों ने कहा कि हे महादेव, भस्म से स्नान करना, नग्न रहना, वामत्व और प्रतिलोमता, सेवा करने योग्य और न सेवा करने योग्य, यह सब क्या है? इनका क्या महत्त्व है? यह हम सब जानना चाहते हैं?।।१०३-१०५।।

भगवानुवाच

एतद्वः संप्रवक्ष्यामि कथासर्वस्वमद्य वै। अग्निर्ह्यहं सोमयुतः सोमश्चाग्निमुपाश्रितः॥१०६॥

कृताकृतं वदंत्यग्निं भूयो लोकाः समाश्रिताः।
असकृच्चाग्निना दग्धं जगत्स्थावरजंगमम्॥१०७॥

भस्मसाध्यं हि तत्सर्वं पवित्रमिदमुत्तमम्। भस्मना वीर्यमास्थाय भूतानि परिषिंचति॥१०८॥

अग्निकार्यं च यत्कृत्वा करिष्यति च त्र्यायुषम्।
भस्मना मम वीर्येण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥१०९॥

भासयत्येव यद्भस्म शुभं वासयते च यत्। तत्क्षणात्सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्त्यते॥११०॥

ऊष्मपाः पितरो ज्ञेया देवा वै सोमसंभवाः। अग्नीषोमात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजं गमम्॥१११॥

अहमग्निर्महातेजाः सोमश्चैषा ममांबिका। अहमग्निश्च सोमश्च प्रकृत्या पुरुषः स्वयम्॥११२॥

तस्माद्भस्म महाभागा मद्वीर्यमिति चोच्यते।
स्ववीर्यं वपुषा चैव धारयामीति वै स्थितिः॥११३॥

तदा प्रभृति लोकेषु रक्षार्थमशुभेषु च। भस्मना क्रियते रक्षा सूतिकानां गृहेषु च॥११४॥

भस्मस्नानविशुद्धात्मा जितक्रोधो जितेंद्रियः। मत्समीपमुपागम्य न भूयो विनिवर्तते॥११५॥

व्रतं पाशुपतं योगं कापालं योगनिर्मितम्। पूर्वं पाशुपतं ह्येतन्निर्मितं तदनुत्तमम्॥११६॥

भगवान् बोले—कि यह सब कथा मैं तुम्हें आज बताऊँगा। मैं अग्नि सोम से युक्त हूँ तथा सोम अग्नि के प्रति उपाश्रित है अर्थात् मैं सूर्य हूँ तथा सोम चन्द्रमा से युक्त तथा चन्द्रमा सूर्य पर आश्रित है, यह तथ्य भी है कि चन्द्रमा सूर्य से ही प्रकाशित है।।१०६।। अग्नि को कृत और अकृत कहते हैं। अर्थात् वही सबकुछ करने वाली तथा न करने वाली है। इस अग्नि पर समस्त लोक सम्यक् रूप से आश्रित हैं। अनेको बार अग्नि द्वारा स्थावर और जङ्गम पदार्थ जला दिये गये हैं। अग्नि का जो भस्म है, वह भस्म साध्य और पवित्र हैं; क्योंकि भस्म के द्वारा वीर्य को पूरी तरह स्थित करके स्थावर जङ्गमादि भूतों को परिसिंचित (पुनर्जीवित) करते हैं।।१०७-१०८।।

जो अग्निकार्य (यज्ञ) करके त्र्यायुष करेगा, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। जिसके शरीर भस्म भासित हो तथा जो शुभ भस्म को वस्त्र बनाता है, उसी समय समस्त पापों को भस्म कर देती है; इसीलिये भस्म, भस्म कही जाती है।।११०।। ऊष्मा (अग्निताप) का पान करने वाले पितरगणों को तथा सोम से उत्पन्न देवता लोग हैं तथा अग्नि और सोम से उत्पन्न सब स्थावर जङ्गम जगत् हैं।।१११।। मैं ही महातेजवाला अग्नि हूँ और यह मेरी पार्वती सोम (चन्द्रमा) है तथा मैं अग्नि और उमा सोम हैं। उमा प्रकृति है, तो मैं स्वयं पुरुष।।११२।। इसलिये महाभाग तपस्वियो! यह भस्म मेरा वीर्य (पराक्रम) कही जाती है। मैं अपने वीर्य को अपने शरीर पर धारण करता हूँ। यह एक स्थिति है।।११३।। तब से लेकर लोकों में अशुभ कार्यों में बचाने के लिये सूतिकाओं (जिनको बच्चा पैदा हुआ है, उन स्त्रियों) के घरों में भस्म द्वारा रक्षा की जाती है। अर्थात् नवशिशु के उत्पन्न होने पर सोहबर में बच्चों की रक्षा के लिए भस्म (राख) लगाने से रक्षा होती है।।११४।। भस्म के स्नान से विशुद्ध आत्मा वाला मनुष्य क्रोध को जीतने वाला और जितेन्द्रिय मेरे पास आकर फिर नहीं लौटता है अर्थात् वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।।११५।। पाशुपतयोग व्रत है, जो कापालयोग निर्मित है। इनमें पहले पाशुपतयोग जो निर्मित है, वह उत्तम नहीं

शेषाश्चाश्रमिणः सर्वे पश्चात्सृष्टाः स्वयंभुवा।
सृष्टिरेषा मया सृष्टा लज्जामोहभयात्मिका॥११७॥
नग्ना एव हि जायंते देवता मुनयस्तथा। ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जायंत्यवाससः॥११८॥
इंद्रियैरजितैर्नग्ना दुकूलेनापि संवृताः। तैरेव संवृतो गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्॥११९॥
क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यं चैव सर्वशः। तुल्यौ मानापमानौ च तत्प्रावरणमुत्तमम्॥१२०॥
भस्मपांडुरदिग्धांगो ध्यायते मनसा भवम्।
यद्यकार्यसहस्राणि कृत्वा स्नायति भस्मना॥१२१॥
तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम्। तस्माद्यत्नपरो भूत्वा त्रिकालमपि यः सदा॥१२२॥
भस्मना कुरुते स्नानं गाणपत्यं स गच्छति। संहृत्य च क्रतून्सर्वान्गृहीत्वामृतमुत्तमम्॥१२३॥
ध्यायंति ये महादेवं लीनास्तद्भावभाविताः। उत्तरेणाथ पंथानं तेऽमृतत्वमवाप्नुयुः॥१२४॥
दक्षिणेनाथ पंथानं ये श्मशानानि भेजिरे। अणिमा महिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेव च॥१२५॥
गरिमा पंचमी चैव षष्ठं प्राकाम्यमेव च। ईशित्वं च वशित्वं च ह्यमरत्वं च ते गताः॥१२६॥
इंद्रादयस्तथा देवाः कामिकं व्रतमास्थिताः। ऐश्वर्यं परमं प्राप्य सर्वे प्रथिततेजसः॥१२७॥

है।।११६।। शेष जो योग है, वे आश्रम धर्म का पालन करने वाले हैं। वे सब स्वायम्भुव ने बाद में उत्पन्न किये हैं। हे ऋषियो! यह लज्जा, मोह और भयात्मक सृष्टि मैंने उत्पन्न की है।।११७।। देवता और मुनि सब नग्न ही पैदा हुए हैं तथा अन्य जितने भी मानव इस संसार में हैं, वे सब भी वस्त्ररहित ही पैदा होते हैं।।११८।। जिन मनुष्यों ने अपनी इन्द्रियों को नहीं जीता है, वे सब दुकूल (वस्त्रों) से ढके हुये होने पर भी नग्न ही हैं। इन्द्रियों को जीतना ही गुप्तवस्त्र है। वही वस्त्र का कारण है।।११९।। धैर्य, क्षमा, अहिंसा, वैराग्य और सब प्रकार से मान और अपमान में समान रहना ही सबसे उत्तम प्रावरण (शरीर ढकने वाला वस्त्र है) है।।१२०।।

श्वेतभस्म से दिग्ध अंग वाला मनुष्य मन से शंकर का ध्यानकरता है तथा जो अनेकों अकरणीय कार्य करके भस्म से स्नान करता है, उस मनुष्य के समस्त अकरणीय कार्यों अर्थात् पापों को भस्म जला देती है, जैसे कि अग्नि अपने तेज से वनों को जला देता है, उसी कारण से जो मनुष्य यत्नपरक होकर तीनों कालों प्रातः दोपहर और सायं को सदा भस्म से स्नान करता है, वह गाणपत्य को प्राप्त करता है अर्थात् शिवजी का गणहो जाता है।।१२१-१२२½।। समस्त यज्ञों को मिलाकर उत्तम अमृत को ग्रहण कर जो महादेव के भावों में भावविभोर होकर महादेव का ध्यान करते हैं, वे उत्तर पथ से अमृतत्व को प्राप्त करते हैं अर्थात् अमर हो जाते हैं।।१२२½-१२४।। तथा दक्षिणमार्ग से जो श्मशान में भजन करते हैं, वे अणिमा, महिमा, लघिमा और प्राप्ति सिद्धि को प्राप्त करते हैं तथा वे पाँचवीं गरिमा, छठी प्राकाम्य, सातवीं ईशित्व, वशित्व तथा आठवीं अमरत्व सिद्धि को प्राप्त करते हैं। ये आठ सिद्धियाँ हैं—१. अणिमा (अणु के समान हो जाना), २. महिमा(महान् होना), ३. लघिमा (छोटा हो जाना), ४. प्राप्ति (कुछ प्राप्त करना), ५. गरिमा (विशाल रूप बनाना), ६. प्राकाम्य (अपनी इच्छा के अनुसार पाना), ७. इशित्व (ईश्वर बनना), वशित्व (वश में करना), ८. अमरत्व (अमर हो जाना) ये आठ सिद्धियाँ हैं।।१२५।। तथा इन्द्र आदि देवों ने इस कामना पूरक व्रत को धारण किया था। उन्होंने परम ऐश्वर्य पद को प्राप्त करके सब अतिशय तेज वाले हो गये।।१२६-१२७।।

व्यपगतमदमोहमुक्तरागास्तमरजदोषविवर्जितस्वभावाः।
परिभवमिदमुत्तमं विदित्वा पशुपतिदयितमिदं व्रतं चरध्वम्॥१२८॥
यः पठेद्वै शुचिर्भूत्वा श्रद्दधानो जितेंद्रियः। सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति॥१२९॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे दारुवनप्रवेशभस्मस्नान-विधिर्नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः॥२७॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

अमावस्या श्राद्धे पितृवचयवर्णनम्

अष्टविंशतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच

अगात्कथममावस्यां मासि मासि दिवं नृपः। ऐलः पुरूरवाः सूत कथं वातर्पयत्पितृन्॥१॥

सूत उवाच

तस्य तेऽहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं शांशपायने। ऐलस्यादित्यसंयोगं सोमस्य च महात्मनः॥२॥
अंतःसारमयस्येंदोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः। ह्रासवृद्धी पितृमतः पित्र्यस्य च विनिर्णयम्॥३॥

मद मोह को त्यागकर आसक्ति से मुक्त होकर तथा तमोगुण, रजोगुण दोषों से रहित स्वभाव वाले इस दक्षिणव्रत (श्मशान पूजा) वाले परिभव निन्दनीय कहे जाने वाले व्रत को उत्तम जानकर पशुपति को प्रिय लगने वाले इस दक्षिणमार्ग वाले व्रत को करना चाहिये।।१२८।। इस प्रकार जो इन्द्रियों को जीतने वाला मनुष्य श्रद्धा रखता हुआ पवित्र होकर इस स्तोत्र को पढेगा, वह सब पापों से विशुद्ध होकर रुद्र लोक को प्राप्त करता है।।१२९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद २७वां अध्याय दारुवन प्रवेश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय–२८

अमावस्या श्राद्ध में पितरों का परिचय

ऋषि बोले—शाशंपायन ऋषि ने सूत जी से पूंछा कि हे सूत जी!—इलापुत्र पुरूरवा अमावस्या की रात्रि को प्रत्येक मास में कैसे स्वर्ग में जाते थे और कैसे पितरों का तर्पण करते थे?।।१।। तब सूत जी ने कहा—हे शाशंपायन! उन पुरुरूवा का प्रभाव मैं आपको बतलाऊँगा। मैं आपको इस क्रम में इलापुत्र पुरूरवा और सूर्य का मिलन, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में जाल के सारभूत चन्द्रमा का घटना और बढ़ना, पितरों वाले पितरो के योग्य विषय

सोमाच्चैवामृतप्राप्तिं पितॄणां तर्पणं तथा। काव्याग्निष्वात्तसौम्यानां पितॄणां चैव दर्शनम्॥४॥
यथा पुरूरवाश्चैव तर्पयामास वै पितॄन्। एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि पर्वाणि च यथाक्रमम्॥५॥
यदा तु चंद्रसूर्यौ वै नक्षत्रेण समागतौ। अमावस्यां निवसत एकरात्रैकमंडलौ॥६॥
स गच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ। अमावस्याममावास्यां मातामहपितामहौ॥७॥
अभिवाद्य स तौ तत्र कालापेक्षः प्रतीक्षते। प्रस्यंदमानात्सोमात्तु पित्रर्थं तु परिश्रवान्॥८॥
ऐलः पुरूरवा विद्वान्मासश्राद्धचिकीर्षया। उपास्ते पितृमंतं तं सोमं दिवि समास्थितः॥९॥

द्विलवां कुहूमात्रां च ते उभे तु विचार्य सः।
सिनीवालीप्रमाणेभ्यः सिनीवालीमुपास्य सः॥१०॥

कुहूमात्रः कलां चैव ज्ञात्वोपास्ते कुहूं तथा। स तदा तामुपासीनः कालोपक्षः प्रपश्यति॥११॥
सुधामृतं तु तत्सोमात्स्रवद्वै मासतृप्तये। दशभिः पंचभिश्चैव सुधामृतपरिस्रवैः॥१२॥
कृष्णपक्षे भुजां प्रीत्या दह्यमानां तथांशुभिः। सद्यः प्रक्षरता तेन सौम्येन मधुना तु सः॥१३॥
निर्वातिष्वथ पक्षेषु पित्र्येण विधिना दिवि। सुधामृतेन राजेंद्रस्तर्पयामास वै पितॄन्॥१४॥

सौम्यान्बर्हिषदः काव्यानग्निष्वात्तांस्तथैव च।
ऋतमग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः॥१५॥

जज्ञिरे ह्यृतवस्तस्माद्ध्यतुभ्यश्चार्त्तवास्तथा। आर्तवा ह्यर्द्धमासाख्याः पितरो ह्यृतुसूनवः॥१६॥

का निर्णय, चन्द्रमा से अमृत की प्राप्ति तथा पितरों का तर्पण, काव्य, अग्निष्वात्त और सौम्य पितरों का दर्शन तथा जिस प्रकार पुरूरवा ने पितरों का तर्पण किया, इन सब पर्वों को मैं क्रमानुसार आपको बतलाऊँगा।।२-५।। जब सूर्य और चन्द्रमा अमावस्या की रात में एक नक्षत्र पर, एक मण्डल पर रहते हैं।।६।। उस समय प्रत्येक अमावस्या की रात में वे पुरूरवा अपने नाना चन्द्रमा और पितामह (बाबा) सूर्य को देखने जाते हैं।। तब उन दोनों को अभिवादन कर वहां समय की प्रतीक्षा करते हैं कि प्रसन्न हुए चन्द्रमा से पितरों के लिये अमृत का झरना शुरू होवे।।७-८।।

विद्वान् इलापुत्र पुरूरवा मासश्राद्ध करने की इच्छा से दिन में आकाश में समास्थित उन पितरों से युक्त चन्द्रमा की उपासना करते हैं।।९।। दो लव कुहू मात्र तक ही वे दोनों पितर और सोम रहते हैं। अर्थात् कव्य ग्रहण करते हैं।वहां वे पुरूरवा सिनीवाली के प्रमाण से दो लव कुहू मात्र ही वे दोनों सूर्य और चन्द्रमा एक जगह रहेंगे यह विचार कर सिनीवाली की उपासना कर अर्थात् सिनीवाली के पास बैठकर कुहू मात्र की कला को जानकर कुहू की उपासना करते हैं। उस समय वे पुरूरवा कुहू की उपासना करते हुए (पास बैठते हुए) कब उनके नाना बाबा (सूर्य चन्द्रमा) आयें, इस काल की अपेक्षा करते हैं।।१०-११।।

पितरों को एक माह तक तृप्त करने के लिए चन्द्रमा से अमृत चूता है। कृष्णपक्ष में अमृत को चुआने वाली पन्द्रह सूर्य की किरणें चन्द्रमा से निकले हुए अमृत का पान करती हैं। राजा पुरूरवा इस शीघ्र चूने वाले चन्द्रमा के अमृत से पितृविधि से तर्पण कर पितरों को तृप्त करते थे।।१२-१४।। सौम्य, बर्हिषद्, काव्य और अग्निष्वात्त ये चार पितर हैं। वर्षा ऋतु जो अग्नि कहा गया है, वही संवत्सर माना गया है।।१५।। उसी से ऋतुएं उत्पन्न हुई हैं। ऋतुओं से आर्तव पैदा हुए। आर्तव अर्धमास नाम से ख्यात ऋतुओं के पुत्र और पिता हैं।।१६।।

ऋतवः पितामहा मासा अयना ह्यब्दसूनवः।
प्रपितामहास्तु वै देवाः पंचाब्दा ब्रह्मणः सुताः॥१७॥
सौम्यास्तु सोमजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेयाः कवेः सुताः।
उपहूताः स्मृता देवाः सोमजाः सोमपाः स्मृताः॥१८॥
आज्यपास्तु स्मृताः काव्यास्तिस्त्रस्ताः पितृजातयः।
काव्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च तास्त्रिधा॥१९॥
गृहस्था ये च यज्वान ऋतुर्बर्हिषदो ध्रुवम्।
गृहस्थाश्चाप्ययज्वान अग्निष्वात्तास्तथार्त्तवाः॥२०॥
अष्टकापतयः काव्याः पंचाब्दास्तान्निबोधत। तेषां संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः॥२१॥
सोम इड्वत्सरः प्रोक्तो वायुश्चैवानुवत्सरः। रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पंचाब्दास्ते युगात्मकाः॥२२॥
काव्याश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः।
ये ते पिबंत्यमावस्यां मासिमासि सुधां दिवि॥२३॥
तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत्पुरूरवाः। यस्मात्प्रस्त्रवते सोमानमासि मासि धिनोति च॥२४॥
तस्मात्सुधामृतं तद्वै पितृणां सोमपायिनाम्। एवं तदमृतं सौम्यं सुधा च मधु चैव ह॥२५॥
कृष्णपक्षे यथा वेंदोः कलाः पंचदश क्रमात्। पिबंत्यंबुमयं देवास्त्रयस्त्रिंशत्तु छंदनाः॥२६॥

ऋतुएं पितामह हैं। वे ही मास नाम से प्रसिद्ध तथा वर्ष के पुत्रगण कहे जाते हैं। प्रपितामह तो वही देव हैं, जो पंचाब्द नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मा के पुत्र हैं।।१७।। सौम्य नामक पितरों को चन्द्रमा से उत्पन्न समझना चाहिये और काव्य-पितरों को ही कवि (शुक्राचार्य) का पुत्र समझना चाहिये। चन्द्रमा से उत्पन्न होने वाले और सोम (चन्द्रमा) को पान करने वाले देवगण उपहूत (पास में बुलाये गये) कहे जाते हैं।।१८।। घृत का पान करने वाले पितरगण काव्य कहे जाते हैं। तीन पितरों की जातियां हैं। काव्य बर्हिषद और अग्निष्वात्त ये तीन प्रकार के हैं।।१९।। यज्ञ करने वाले ग्रहस्थ, ऋतु और बर्हिषद पितरों के श्रेणी के होते हैं तथा वे ही न यज्ञ करने वले ग्रहस्थ अग्निष्वात्त तथा आर्तव होते हैं।।२०।। अष्टकापति काव्यों को ही पंचाब्द समझिये। उनके संवत्सर ही अग्नि और सूर्य तो परिवत्सर हैं।।२१।।

चन्द्रमा को इड्वत्सर कहा गया है और वायु अनुवत्सर है तथा रुद्र उनके वत्सर हैं। इस प्रकार इन पाँच प्रकार के अब्दों का युग होता है। यही युगात्मक पंचाब्द है।।२२।। ऊष्मपा (ऊर्जा को पीने वाले) काव्य हैं, जो दिवाकीर्त्या नाम से स्मरण किये जाते हैं। जो कि वे प्रत्येक महीने अमावस्या में आकाश सुधा का पान करते हैं।।२३।। राजा पुरूरवा जब तक जीवित रहे, इसी प्रकार अमृत द्वारा उन अपने नाना बाबा को तृप्त करते रहे। प्रत्येक महीने चन्द्रमा से अमृत गिरता था। उससे पुरूरवा अपने नाना बाबा (चन्द्र सूर्य) को तृप्त करते रहे। इसीलिए वह सोमपान करने वाले पितरों के लिए सुधामृत था, जो सौम्य, सुधा और मधु नाम से प्रसिद्ध हो गया।।२४।।जिस प्रकार कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की पन्द्रह कलायें हैं, उन जलमयी कलाओं का पान छन्द से उत्पन्न तैंतीस देवगण करते हैं। फिर एक मास तक पान करने के बाद चतुर्दशी में देवता लोग चले जाते हैं। इस प्रकार सब देवों द्वारा दिये गये चन्द्रमा अमावस्या में पन्द्रहवें भाग में क्षीण रूप से स्थित होकर भ्रमण करते हैं। यथाक्रम सूर्य की सुषुम्णा किरण द्वारा बढ़ाये गये चन्द्रमा

पीत्वार्द्धमासं गच्छंति चतुर्दश्यां सुधामृतम्। इत्येवं पीयमानैस्तु देवैः सर्वैर्निशाकरः॥२७॥
समागच्छत्यमावस्यां भागे पंचदशे स्थितः।
सुषुम्णाप्यायितं चैव ह्यमावस्यां यथा क्रमम्॥२८॥
पिबंति द्विलवं कालं पितरस्ते सुधामृतम्। पीतक्षयं ततः सोमं सूर्योऽसावेकरश्मिना॥२९॥
आप्याययत्युषुम्णातः पुनस्तान्सोमपायिनः।
निःशेषायां कलायां तु सोममाप्याययत्पुनः॥३०॥
सुषुम्णाप्यायमानस्य भागं भागमहः क्रमात्।
कलाः क्षीयंति ताः कृष्णाः शुक्ला चाप्याययंति तम्॥३१॥
एवं सूर्यस्य वीर्येण चंद्रस्यासपयायिता तनुः।
दृश्यते पौर्णमास्यां वै शुक्लः संपूर्णमंडलः॥३२॥
संसिद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः। इत्येवं पितृमान्सोमः स्मृत इड्वत्सरात्मकः॥३३॥
क्रांतः पंचदशैः सार्द्धं सुधामृतपरिस्त्रवैः। अतः पर्वाणि वक्ष्यामि पर्वणां संधयश्च ये॥३४॥
ग्रंथिमंति यथ पर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवंत्युत। तथार्द्धमासि पर्वाणि शुक्लकृष्णानि चैव हि॥३५॥
पूर्णामावस्ययोर्भेदौ ग्रंथयः संधयश्च वै।अर्द्धमासं तु पर्वाणि द्वितीयाप्रभृतीनि तु॥३६॥
अग्न्याधानक्रिया यस्मात्क्रियते पर्वसंधिषु। तस्मात्तु पर्वणामादौ प्रतिपत्सर्वसंधिषु॥३७॥
सायाह्नेऽह्यनुमत्यादौ कालो द्विलव उच्यते। लवौ द्वावेव राकायां कालो ज्ञेयोऽपराह्लकः॥३८॥
प्रतिपत्कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्लके। सायाह्ने प्रतिपन्ने च स कालः पौर्णमासिकः॥३९॥

के सुधामृत को क्रमशः पितृगण अमावस्या में दो कला मात्र समय तक पान करते हैं। इस प्रकार देवों के पान करने से चन्द्रमा के क्षीण हो जाने पर सूर्य अपनी सुषुम्णा किरण द्वारा सोमपान करने वाले पितरों की तृप्ति करता है। जब कलायें विल्कुल निःशेष हो जाती हैं, तब सूर्य पुनः उन्हें बढ़ाते हैं।।२५-३०।। सुषुम्णा किरण द्वारा प्रत्येक दिन एक एक कला के क्रम से बढ़ी हुई चन्द्रकलायें, जो शुक्ल पक्ष में क्षीण हुई थीं, उन्हें सूर्य कृष्णपक्ष में बढ़ाते चले जाते हैं।।३१।। इस प्रकार सूर्य के पराक्रम से चन्द्रमा का शरीर बढ़ता जाता है और पौर्णमासी में चन्द्रमण्डल सम्पूर्ण शुक्ल दिखायी देता है।।३२।। इस प्रकार यह शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की संसिद्धि (सफलता) है। इस प्रकार पितरों वाले चन्द्रमा इड्वसरात्मक कहे गये हैं।।३३।। तथा वे चन्द्रमा सुधामृत परिश्रवित पन्द्रह किरणों से घिरे हुए हैं।।३३½।। अब इसके बाद जो पर्वों की सन्धियां हैं, उनका वर्णन करूँगा। जिस प्रकार ईख या बांस की गाँठें होती हैं, उसी प्रकार अर्धमास के शुक्ल और कृष्ण नाम के दो पर्व होते हैं।।३३½-३५।। पूर्णमासी और अमावस्या के हिसाब से पर्व के दो भेद हैं तथा ग्रन्थियां और सन्धियां हैं। द्वितीया आदि तिथियां अर्धमास की पर्व हैं। पर्व का अर्थ है—गाँठ, जैसे ईख में गाँठ होती है, उसी तरह अर्धमास में पन्द्रह गांठ होती हैं, जिन्हें तिथियां कहते हैं, यही भाव है।।३६।। अग्न्याधान (यज्ञ) क्रियायें विशेषतः इन्हीं पर्वों की संधियों में की जाती हैं। इसलिये पर्वों के आदि में सब सन्धियों में प्रतिपदा को दिन के सायङ्काल में अनुमति के आदि में दो लव काल तथा राका (पूर्णिमा) का तीसरे पहर का दो लव काल, यज्ञादि सत्क्रियाओं के योग्य माना जाता है।।३७-३८।। इसी प्रकार कृष्णपक्ष की

व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखार्द्धे तु युगांतरे। युगांतरोदिते चैव लेखार्द्धे शशिनः क्रमात्॥४०॥

पौर्णमासी व्यतीपाते यदीक्षेतां परस्परम्।
यस्मिनकाले समौ स्यातां तौ व्यतीपात एव सः॥४१॥

तं कालं सूर्यनिर्देश्यं दृष्ट्वा संख्यां तु सर्पति।
स वै वषट्क्रियाकालः सद्यः कालं विधीयते॥४२॥

पूर्णेदोः पूर्णपक्षे तु रात्रिसंधिश्च पूर्णिमा। ततो विरज्यते नक्तं पौर्णमास्यां निशाकरः॥४३॥
यदीक्षेते व्यतीपाते दिवा पूर्णे परस्परम्। चन्द्रार्कावपराह्ले तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा॥४४॥
यस्मात्तामनुमन्यंते पितरो दैवतैः सह। तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता॥४५॥

अत्यर्थं भ्राजते यस्माद्व्योम्न्यस्यां वै निशाकरः।
रंजनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयोऽब्रुवन्॥४६॥

अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ। राका पञ्चदशी रात्रिरमावास्या ततः स्मृता॥४७॥
व्युच्छिद्य तममावस्यां पश्यतस्तौ समागतौ। अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते॥४८॥

प्रतिपदा तिथि का समय तीसरे पहर के बीतने पर सायङ्काल के आने पर वह समय पूर्णमासी का है, वह भी यज्ञादि सत्क्रियाओं के योग्य है।।३९।। चन्द्रमा और सूर्य आपस में युगान्तर में विषुवत् रेखा के अर्धभाग पर जब समान रूप से स्थित रहते हुये उदित होते हैं, तब दर्शन होता है। अर्थात् विषुवत् रेखा के इधर आधे भाग पर चन्द्रमा तथा उधर आधे भाग पर सूर्य रहते हैं तभी चन्द्र सूर्य का दर्शन होता है। इसी को व्यतीपात कहते हैं। पौर्णमासी को इसी प्रकार दर्शन होता है, वही व्यतीपात है। जिस काल में वे दोनों सूर्य और चन्द्रमा समान हो, वही व्यतीपात है।।४०-४१।। सूर्य को ही निर्देश करके समय की संख्या चलती है। अर्थात् सूर्य के अनुसार समय की गणना की गयी है। सूर्य ही वषट् क्रियाकाल है, वही काल का विधान करता है।।४२।। जब पूर्ण चन्द्रमा होते हैं, तब पक्ष पूर्ण होता है तथा पूर्णपक्ष में रात्रि और दिन की सन्धि पूर्णिमा होती है। उसके बाद रातभर पौर्णमासी में चन्द्रमा विराजमान रहते हैं।।४३।। दिन के पूर्ण होने पर व्यतीपात में परस्पर चन्द्रमा और सूर्य की दिन के तीसरे पहर अपराह्न में पूर्णात्मा पूर्णिमा होती है। उस समय सायंकाल में दोनों आमने-सामने होते हैं, यही व्यतीपात है।।४४।।

जिस रात्रि के सन्धिभाग में पूर्णिमा तिथि हो, पूर्णचन्द्रमा का प्रकाश हो, उसे अनुमति पूर्णिमा कहा जाता है अर्थात् जिस दिन, दिन के अस्त और रात्रि के उदय काल में ही पूर्णिमा हो, वह पूर्णिमा अनुमति पूर्णिमा कही जाती है; क्योंकि ऐसा प्रायः कम ही होता है। क्योंकि चन्द्रतिथि को रात दिन में कभी-कभी भी प्रारम्भ हो जाती है। यह पञ्चाङ्ग द्वारा ही ज्ञात हो सकता है। अतः बिल्कुल सूर्यास्त के समय यदि पूर्णिमा हो, तभी वह अनुमति पूर्णिमा कही जायेगी तथा वह अनुमति पूर्णिमा इसीलिये कही गयी है कि उसे देवता और पितरगणों ने अनुमत किया है, उसे वे सत्क्रियार्थ अनुमति प्रदान करते हैं।।४५।। पूर्णिमा तिथि को चन्द्रमा आकाश में अत्यन्त प्रकाशित होते हैं। चन्द्रमा का रंजन (मनोरंजन) करने के कारण पूर्णिमा को कवि लोगों द्वारा राका कहा गया है।।४६।। जिस अमावस्या की रात्रि में जब सूर्य और चन्द्रमा एक नक्षत्र पर विराजमान रहते हैं, उसे पूर्णिमा पन्द्रहवीं रात्रि अमावस्या कहते हैं।।४७।। उस अमावस्या को पार कर जब सूर्य और चन्द्रमा समान रूप से आमने-सामने होते हैं तथा एक-दूसरे को आमने सामने देखते हैं, वह दर्श कहा जाता है, वहीं पूर्णिमा है।।४८।।

द्वौ द्वौ लवावमावास्या स कालः पर्वसंधिषु।
द्व्यक्षरः कुहुमात्रश्च पर्वकालास्त्रयः स्मृताः॥४९॥
नष्टचन्द्रा त्वमावस्या या मध्याह्नात्प्रवर्त्तते। दिवसार्द्धेन रात्र्या च सूर्यं प्राप्य तु चंद्रमाः॥५०॥
सूर्येण सह सामुद्रं गत्वा प्रातस्तनात्स वै। द्वौ कालौ संगमं चैव मध्याह्ने नियतं रविः॥५१॥
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्य मंडलात्। विमुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मंडलयोस्तु वै॥५२॥
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य तु वषट्क्रिया। एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यास्य पर्वणः॥५३॥
दिवापर्व ह्यमावास्या क्षीणेंदौ बहुले तु वै। तस्माद्दिवा ह्यमावास्यां गृह्यतेऽसौ दिवाकरः॥५४॥
गृह्यते तु दिवा तस्मादमावास्यां दिवि क्षयाम्।
कलानामपि चैतासां वृद्धिहान्या जलात्मनः॥५५॥
तिथीनां नामधेयानि विद्वद्भिः संज्ञितानि वै। दर्शयेतामथात्मानं सूर्याचन्द्रमसावुभौ॥५६॥
निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्यमंडलात्। द्विलवोनमहोरात्रं भास्करं स्पृशते शशी॥५७॥
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य तु वषट्क्रिया।
कुहेति कोकिलेनोक्तो यः स कालः समाप्यते॥५८॥
तत्कालसंमिता यस्मादमावास्या कुहूः स्मृता।
सिनीवालीप्रमाणस्तु क्षीणशेषो निशाकरः॥५९॥

अमावस्या तिथि के दो लव तथा पर्व सन्धियों के दो लव काल यज्ञादि सत्क्रियाओं के योग्य माना जाता है तथा वह समय उतना ही होता है, जितना कि कुहू इन दो वर्णों के उच्चारण में समय लगता है॥४९॥ अमावस्या को नष्ट चन्द्रमा जब मध्याह्न में प्रवृत्त होते हैं, तब दिन के आधे और रात के आधे होने पर चन्द्रमा सूर्य को प्राप्त करके सूर्य के साथ समुद्र में जाकर प्रातः तक स्नान करते हैं, फिर प्रातःकाल में दो कला तक चन्द्रमा के साथ रहकर मध्याह्न में सूर्य चन्द्रमण्डल से बाहर निकलते हैं॥५०-५१॥ शुक्लपक्ष की प्रतिपदा (एकम) को चन्द्रमा सूर्य मण्डल से निकलकर उन विमुक्त हुए दोनों मण्डलों के बीच में स्थित होते हैं॥५२॥ उस समय वह यज्ञ में आहुति का समय है तथा पितरों के तर्पण का समय है; क्योंकि वह सूर्य और चन्द्रमा की सन्धि का काल है। यह अमावस्या के पर्व का ऋतुमुख समझना चाहिये॥५३॥

दिवा पर्व अमावस्या के दिन चन्द्रकलाओं का अधिक अंश क्षीण हो जाता है। उसी कारण उस दिन सूर्य राहु द्वारा ग्रस लिया जाता है, जो सूर्यग्रहण कहा जाता है॥५४॥ दिन ग्रहण कर लिया जाता है। अमावस्या के आकाश में क्षय को प्राप्त होता है। तदनुसार प्रत्येक दिन के क्रम से चन्द्रमा की कलाओं की बढ़ने और घटने के अनुसार विद्वानों ने तिथियों के नाम निर्धारित किये हैं। उस तिथि अमावस्या को ही सूर्य और चन्द्रमा एक-दूसरे को देखते हैं और फिर इसी क्रम से चन्द्रमा सूर्यमण्डल से निकलते हुए दो लव से कम दिन और रात दिन में चन्द्रमा सूर्य का स्पर्श करते हैं॥५५-५७॥ उस समय वह यज्ञ का आहुति काल होता है और पितरों के तर्पण की क्रिया का काल होता है। कोयल की 'कूहू' बोली के समय के समान वह काल होता है। अर्थात् कोयल 'कूहू' कहने के समय के समान वह समय बीत जाता है॥५८॥ उस काल से युक्त जो अमावस्या होती है, वह कूहू अमावस्या कही जाती है, उस समय चन्द्रमा सिनीवाली के प्रमाण के समान क्षीण होने पर शेष रह जाते हैं॥५९॥

आमावस्यां विशत्यर्कस्सिनीवाली ततः स्मृता।
अनुमत्याश्चराकायाः सिनीवाल्याः कुहूं विना॥६०॥
एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रं कुहूःस्मृता। चंद्रसूर्यव्यतीपाते संगते पूर्णिमांतरे॥६१॥
प्रतिपत्प्रतिपद्येत पर्वकालो द्विमात्रकः। कालः कहूसिनीवाल्योः सामुद्रस्य तु मध्यतः॥६२॥
अर्काग्निमंडले सोमे पर्वकालः कलासमः। एवं स शुक्लपक्षे वै रजन्यां पर्वसंधिषु॥६३॥
संपूर्णमंडलः श्रीमांश्चंद्रमा उपरज्यते। यस्मादाप्यायते सोमः पञ्चदश्यां तु पूर्णिमा॥६४॥
दशभिः पंचभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात्। तस्मात्कलाः पञ्चदश सोमेनास्य तु षोडशी॥६५॥
तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्यामपां क्षयः। इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्द्धनाः॥६६॥
आर्तवा ऋतवो ह्यब्धा देवास्तान्भावयंति वै। अतः पितॄनप्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये॥६७॥
तेषां गतिं सतत्त्वां च प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि।
न मृतानां गतिः शक्या ज्ञातुं न पुनरागतिः॥६८॥
तपसापि प्रसिद्धेन किंपुनर्मांसचक्षुषा। अनुदेवपितॄनेते पितरो लौकिकाः स्मृताः॥६९॥

जब अमावस्या में सूर्य प्रवेश करते हैं, तब उसके बाद सिनीवाली[१] कही जाती है। अनुमति, राका और सिनीवाली और कूहू इन सबका दो लव काल केवल ''कूहू'' कहने मात्र तक रहता है। इस प्रकार अनुमति, राका, सिनीवाली और कूहू इन सब का लवकाल 'कूहू' कहने मात्र तक होता है और वही 'कूहू' कहा जाता है। चन्द्रमा और सूर्य के व्यतीपात में अर्थात् जब चन्द्रमा और सूर्य पर आपत्ति का अपशकुन होने पर पूर्णिमा के अन्तर पर दोनों के संगम पर प्रतिपदा और पूर्णिमा का पूर्वकाल द्विमात्रक होता है अर्थात् पूर्णिमा के अन्त में प्रतिपदा जब शुरू होती है, तब मात्र 'कूहू' ये दो मात्रायें बोलने तक ही समय होता है, वह समय कूहू और सिनीवाली समुद्र के मध्य से होता है।।६०-६२।।

चन्द्रमा के सूर्य और अग्नि से युक्त होने पर जो पर्वकाल होता है, वह कला समान होता है। इस प्रकार शुक्ल पक्ष में रात्रि में पर्व की सन्धिओं पर पूर्णिमा को सम्पूर्ण मण्डलाकार चन्द्रमा उपरक्त होते हैं अर्थात् पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण होता है।।६३-६३½।। जिस कारण से चन्द्रमा वृद्धि को प्राप्त करते हैं। तब वहाँ बढ़ते हुए पूर्णिमा हो जाती है तथा वह पूर्णिमा चन्द्रमा के पन्द्रह दिनों तक बढ़ने पर होती है। इसीलिये पंचदशी को पूर्णिमा होती है। दिवस क्रम से दश और पाँच कलाओं से ही चन्द्रमा बढ़ते हैं। इसलिए चन्द्रमा में पन्द्रह कलायें ही होती हैं, सोलह नहीं होती। इसलिए तो पंचदशी (पन्द्रहवीं) को ही चन्द्रमा के जल का क्षय होता है।।६३½-६५½।। इस प्रकार ये इतने पितर और देवता सोमपा (चन्द्रमा का पान करने वाले) और सोमवर्द्धन (चन्द्रमा को बढ़ाने वाले) कहे गये हैं। ये ऋतु और आर्तव देवगण उनको परस्पर भावयुक्त बनाते हैं अर्थात् पुष्ट करते हैं।।६५½-६६½।। इसके बाद में मासश्राद्ध का भोग करने वाले पितरों का वर्णन करूँगा गति और उनके श्राद्ध की प्राप्ति तत्त्व सहित वर्णन करूँगा।।६६½-६७½।। मृत व्यक्ति की गति और पुनरागति को तप से प्रसिद्ध मनुष्य भी नहीं जान सकते, फिर मांस की आंख वाले मनुष्य की क्या शक्ति।।६७½-६८½।। देवों के बाद जो पितर हैं, वे लौकिक कहे जाते हैं। देवता,

१. प्रतिपदा वह जिस दिन चन्द्रमा नहीं दिखायी देता है अर्थात् अमावस्या के बाद की प्रतिपदा तिथि सिनीवाली कही जाती है।

देवाः सौमयाश्च काव्याश्च अयज्वानो ह्ययोनिजाः।
देवास्ते पितरः सर्वे देवास्तान्वादयन्त्युत॥७०॥
मनुष्यपितरश्चैवतेभ्योऽन्ये लौकिकाः स्मृताः। पिता पितामहश्चापि तथा यः प्रपितामहः॥७१॥
यज्वानो ये तु सामेन सोमवंतस्तु ते स्मृताः। ये यज्वानो हविर्यज्ञे ते वै बर्हिषदः स्मृताः॥७२॥
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तेषां होमिनोऽयाज्ययाजिनः।
तेषां तु धर्मसाधर्म्यात्स्मृताः सायुज्यगा द्विजैः॥७३॥
ये चाप्याश्रमधर्माणां प्रस्थानेषु व्यवस्थिताः। अन्ते तु नावसीदंति श्रद्धायुक्तास्तु कर्मसु॥७४॥
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञेन प्रजया च वै। श्राद्धेन विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा॥७५॥
कर्मस्वेतेषु ये युक्ता भवंत्यादेहपातनात्। दैवैस्तैः पितृभिः सार्द्धं सूक्ष्मजैः सोमयाजनैः॥७६॥
स्वर्गता दिवि मोदंते पितृवत्त उपासते। तेषां निवापे दत्ते तु तत्कुलीनैश्चबंधुभिः॥७७॥
मासश्राद्धभुजस्तृप्तिं लभंते सोमलौकिकाः। एते मनुष्यपितरो मासश्राद्धभुजस्तु ये॥७८॥
तेभ्योऽपरे तु येऽप्यन्ये संकीर्णाः कर्मयोनिषु।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्यः स्वधास्वाहाविवर्जिताः॥७९॥
भिन्नदेहा दुरात्मानः प्रेतभृता यमक्षये। स्वकर्माण्यनुशोचंतो यातनास्थानमागताः॥ ८०॥
दीर्घायुषोऽतिशुष्काश्च श्मश्रुलाश्च विवाससः। क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्तस्ततस्ततः॥८१॥
सरित्सरस्तडागानि वापीश्चाप्युपलिप्सवः। परान्नानि च लिप्संतः काल्यमानास्ततस्ततः॥८२॥

सौम्य, काव्य, यज्ञ न करने वाले और योनि से न उत्पन्न होने वाले, वे सब देव पितर हैं, उनका देवता भी सम्मान करते हैं।।६८½-७०।। मनुष्य पितर और उनसे अन्य पिता, पितामह और प्रपितामह ये लौकिक पितर कहे गये हैं।।७१।। जो साम के छन्दों से यज्ञ करते हैं, वे सोमवन्त कहे जाते हैं तथा जो यज्ञ में हवि से यज्ञ करने वाले हैं, वे बर्हिषद कहे जाते हैं। अर्थात् यज्ञ करने वाले मर कर वर्हिषद पितर बनते हैं।।७२।। उनमें जो होम जानने वालों द्वारा होम करवाते हैं, स्वयं यज्ञ करने वाले नहीं होते, वे अग्निष्वात्त पित्तर कहे जाते हैं। उनका तो धर्म साधर्म्य से यज्ञकर्ता ब्राह्मणों के साथ यज्ञकरना सायुज्य कर्म होता है।।७३।। वे आश्रमधर्मों के प्रस्थानों में व्यवस्थित हैं और अन्त में कर्म में श्रद्धायुक्त रहते हुए, वे दुःखी नहीं होते।।७४।।

तप, ब्रह्म, यज्ञ, प्रज्ञा, श्राद्ध, विद्या और दान इन सात प्रकारों वाले कर्मों में शरीर को समाप्त होने तक लगे रहते हैं। वे उन देवताओं, पितरों, सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न देवों और सोमयाग करने वालों के साथ स्वर्ग जाते हैं और स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करते हैं और पितरों की उपासना करते हैं।।७५-७६½।। उन पितरों को उनके कुलीनों बन्धुओं द्वारा उनको दान दिये जाने पर श्राद्धान्न से सोमलोक में रहने वाले श्राद्ध भोजी पितर एक महीने तक तृप्त रहते हैं। ऐसे ही मनुष्य पितरों को मासश्राद्धभुक् कहा जाता है।।७८।। उनसे परे जो अन्य भी हैं, जो कि कर्मयोनियों में सङ्कीर्ण रहते हैं, कर्मों के अनुसार जन्म लेते हैं तथा आश्रम धर्मों एवं स्वधा और स्वाहा से रहित होते हैं अर्थात् यज्ञादि कार्य नहीं करते हैं, वे दुरात्मा शरीर छोड़ने केबाद यमपुरी में प्रेत बनकर भिन्न-भिन्न प्रकार की यातनाओं को सहते हुये, अपने कर्मों पर पश्चात्ताप करते हुए, बहुत अधिक आयु वाले वे अत्यन्त सूखे शरीर वाले, दाढ़ी मूँछ वाले होकर वस्त्रविहीन, भूख, प्यास से व्याकुल हो इधर-उधर भटकते फिरते हैं।।७९-८१।। नदी, तालाब, वापी आदि

स्थानेषु पात्यमानाश्च यातनाश्च पुनः पुनः। शाल्मले वैतरण्यां च कुंभीपाके तथैव च॥८३॥
करंभवालुकायां च असिपत्रवने तथा। शिला संपेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः॥८४॥
तत्रस्थानां हि तेषां वै दुःखितानामनाशिनाम्। तेषां लोकांतरस्थानां बांधवैर्नामगोत्रतः॥८५॥
भूमावसव्यं दर्भेषु दत्ताः पिंडास्त्रयस्तु वै। यांति तांस्तर्पयंते च प्रेतस्थानष्वधिष्ठितान्॥८६॥
अप्राप्ता यातनास्थानं प्रभ्रष्टा यं च पंचधा। पश्चाद्ये स्थावरांते वै जाता नीचैः स्वकर्मभिः॥८७॥
नानारूपासु जायन्ते तिर्यग्योनिष्वयोनिषु। यदाहारा भवंत्येते तासु तास्विह योनिषु॥८८॥
तस्मिंस्तस्मिंतदाहारे श्राद्धं दत्तं प्रतिष्ठते। काले न्यायागतं पात्रे विधिना प्रतिपादितम्॥८९॥
प्राप्नोत्यन्नं यथादत्तं जंतुर्यत्रावतिष्ठते। यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विंदति मातरम्॥९०॥
तथा श्राद्धेषु दत्तान्नं मन्त्रः प्रापयते पितृन्। एवं ह्यविफलं श्राद्धं श्रद्धादत्तं तु मन्त्रतः॥९१॥
तत्तत्कुमारः प्रोवाच पश्यन्दिव्येन चक्षुषा। गतागतज्ञः प्रेतानां प्राप्ति श्राद्धस्य तैः सह॥९२॥

बाह्लीकाश्चोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नायशर्वरी॥९३॥

इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै। ऋत्वार्तवार्द्धमासास्तु अन्योन्यं पितरः स्मृताः॥९४॥
इत्येत पितरो देवा मनुष्यपितरश्च ये। प्रीतेषु तेषु प्रीयंते श्राद्धयुक्तेषु कर्मसु॥९५॥
इत्येष विचयः प्रोक्तः पितृणां सोमपायिनाम्। एवं पितृसतत्त्वं हि पुराणे निश्चयं गतम्॥९६॥

में जल पाने की इच्छा से तथा दूसरों के अन्न को खाना चाहते हुए इधर-उधर घूमते रहते हैं।।८२।। वे भयंकर नरकपुरी के यातना स्थानों में यथा शाल्मल, वैतरणी, कुम्भीपाक, करम्भवालुका, असिपत्रवन, शिलासंपेषण आदि घोर नरकों में अपने अपने कर्मानुसार गिराये जाते हैं।।८३-८४।। ऐसे दुःखी एवं दुःख का नाश न होने वाले मृतकों के परिजनों को चाहिये कि वे उन प्रेतात्माओं के नाम गोत्र का उच्चारण कर भूमि पर सिर के बल होकर कुशा के ऊपर उनके निमित्त तीन पिण्ड दें। ऐसा करने से प्रेतस्थानों में अधिष्ठित पितरों को तर्पण करते हैं, जिससे पितरों को शान्ति मिलती है।।८५-८६।। जो यातना स्थान को नहीं प्राप्त होते हैं, वे प्रभ्रष्ट पाँच प्रकार के होते हैं। वे बाद में पशु स्थावर आदि पांच योनियों में जन्म लेते हैं अथवा तिर्यग्योनियो और अयोनियों में अनेकों रूपों में पैदा होते हैं। वहाँ जो जो जिस योनि में उन उन में उनका अन्न उन्हें मिलता है।।८७-८८।। उनको श्राद्ध में दिया गया अन्न योनियों के उपयुक्त आहार बनकर उनको मिलता है।।८९।।

श्राद्ध मे जो यथाविधि अन्न दिया गया है, वह प्राणी जहाँ भी जिस योनि में रहता है, उसको उसी रूप में प्राप्त हो जाता है। जैसे कि गाँओं में छिपी अपनी मां को बछड़ा प्राप्त कर लेता है।।९०।। उसी प्रकार श्राद्धों में दिये गये अन्न को मन्त्र पितरों को प्राप्त करा देता है। इस प्रकार अविफल श्राद्ध और मन्त्र से श्रद्धापूर्वक दिये गये श्राद्ध के पदार्थों की प्राप्ति के विषय में प्रेतों के गत और अगत को जानने वाले सनत्कुमार ने अपने दिव्य चक्षु से देखते हुए कहा है कि ये पितर वाह्लीक ऊष्मप, दिवाकीर्त्य कहे गये हैं। कृष्णपक्ष उन पितरों का दिन और शुक्लपक्ष विश्राम करने के लिये रात्रि है।।९१-९३।। इस प्रकार ये सब पितर देवता और पितर ऋतु, आर्तव सब एक-दूसरे के पितर हैं।।९४।। इस प्रकार ये देव, पितर और मनुष्य पितर जितने भी हैं, वे श्राद्धयुक्त कर्मों मे उनके प्रसन्न होने पर सभी प्रकार के पितर प्रसन्न हो जाते हैं।।९५।। इस प्रकार यह सोमपायी पितरों का विचय (विशेष चयन) कहा गया। इस

इत्यर्कपितृसोमानामैलस्य च समागमः। सुधामृतस्य च प्राप्तिः पितॄणां चैव तर्प्पणम्॥९७॥
पूर्णामावास्ययोः कालो यातनास्थानमेव च। समासात्कीर्तितस्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः॥९८॥

वैश्वरूप्यं तु सर्गस्य कथितं ह्येकदेशिकम्।
न शक्यं परिसंख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता॥९९॥
स्वायंभुवस्य हि ह्येष सर्गः क्रांतो मया तु वै।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम्॥१००॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे अमावस्याश्राद्धे पितृविचयोनामाऽष्टाविंशतितमोध्यायः॥२८॥

प्रकार पितरों का तत्त्व सहित वर्णन पुराण में निश्चय पूर्वक किया गया है।।९६।। इस प्रकार सूर्य, सोम, इलापुत्र, पुरूरवा, समागम, सुधामृत की प्राप्ति और पितरों का तर्पण, पूर्णिमा और अमावस्या का काल और यातनास्थान संक्षेप से तुमने कहा है, ये ही सनातन धर्म है।।९८।। इस सर्ग का रूप तो बहुत ही विस्तृत है। मैंने इसके एक देश का ही वर्णन किया है। इनकी संख्या की गणना नहीं की जा सकती। ऐश्वर्य चाहने वाले प्राणियों को इन पर श्रद्धा करनी चाहिये।।९९।। यह मैंने स्वायम्भुव मनु के सर्ग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। अब पुनः आगे क्या वर्णन करूँ? आप लोग बतायें।।१००।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद २८वां अध्याय अमावस्या श्राद्ध में पितृतर्पण का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

संख्यावतो नाम

एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच

चतुर्युगानि यान्यासन्पूर्वे स्वायंभुवेऽन्तरे। तेषां निसर्गं तत्त्वं च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात॥१॥

सूत उवाच

पृथिव्यादिप्रसंगेन यन्मया प्रागुदीरितम्। तेषां चतुर्युगं ह्येतत्तद्वक्ष्यामि निबोधत॥२॥
संख्ययेह प्रसंख्याय विस्तराच्चैव सर्वशः। युगं च युगभेदश्च युगधर्मस्तथैव च॥३॥
युगसंध्यांशकश्चैव युगसंधानमेव च। षट्प्रकाशयुगाख्यैषा तां प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः॥४॥
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दं तु मानुषम्। तेनाब्देन प्रसंख्यायै वक्ष्यामीह चतुर्युगम्॥
निमेषकाल तुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरं च यत्॥५॥
काष्ठा निमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलां तु।
त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्त्तस्तै स्त्रिंशता रात्र्यहनी समे ते॥६॥
अहोरात्रौ विभजते सूर्यो मानुषलौकिकौ॥७॥
तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्पते। पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-२९

संख्या वालों का वर्णन

ऋषि बोले हे सूत जी—वैवस्वत मन्वन्तर में जो चतुर्युग थे, उनका निःसर्ग तत्त्व को विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।।१।। सूत जी बोले—कि पृथिवी आदि प्रसङ्ग से मैंने जो चतुर्युग के विषय में पहले आपसे कहा था, उस चतुर्युग को मैं तुम्हें बताऊँगा, आप ध्यानपूर्वक सुनिये।।२।। प्रत्येक युग का मान संख्या से परिगणना कर युग, युगधर्म, युग भेद, युग सन्ध्या, युगांश और युग सन्धान इन छः प्रकार के युगों को तत्त्वतः बतला रहा हूँ।।३-४।। मानव वर्ष लौकिक प्रमाण से माना गया है। उस मानववर्ष के प्रमाण से मैं चतुर्युग को बताउँगा। एक लघु अक्षर के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे निमेष[1] काल जानना चाहिये।।५।।

पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठा की एक कला गिनी जाती है और तीस कला का एक मुहूर्त होना चाहिये तथा तीस मुहूर्त के दिन और रात होते हैं।।६।। दिन और रात का विभाजन सूर्य करते हैं, जो मानुष लौकिक दिन रात कहे जाते हैं।।७।। वहाँ पर दिन कर्मों को करने के लिये बताया है और रात्रि सोने के लिये बनायी

---

१. एक छोटे अक्षर यथा 'अ' के उच्चारण मे जो समय लगता है, वह निमेष कहा जाता है अथवा पलक मारने में लगने वाले समय को भी निमेष कहा जाता है।

कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी।
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पित्र्योमासस्तु सः स्मृतः॥९॥
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते॥१०॥
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्। पितृणां त्रीणि वर्षाणि संख्यातानीह तानि वै॥११॥
दश चैवाधिका मासाः पितृसंख्येह संज्ञिता।
लौकिकेनैव मानेन ह्यब्दो यो मानुषः स्मृतः॥१२॥
एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रे स्यान्निश्चयो गतः। दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः॥१३॥
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्। ये ते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्यानं तयोः पुनः॥१४॥
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः।
यनमानुषं शतं विद्धि दिव्या मासास्त्रयस्तु ते॥१५॥
दश चैव तथाऽहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः।
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः॥१६॥
त्रीणि वर्ष सहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः। त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः॥१७॥
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु। अन्यानि नवतिश्चैव ध्रुवः संवत्सरः स्मृतः॥१८॥
षड्विंशतिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु।
वर्षाणां तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः॥१९॥

गयी है। पितरों का एक दिन रात मनुष्यों के एक मास के बराबर होता है। फिर उसका भी विभाग हो जाता है। कृष्ण पक्ष तो उनका दिन और शुक्ल पक्ष सोने के लिए रात्रि होती है। तीस जो मानुष मास है, वह पितरों का एक मास है।।९।। तीन सौ साठ मानव महीनों का पितरों का एक वर्ष होता है।।१०।। मनुष्य वर्ष के मान के अनुसार उसके सौ वर्ष का पितरों का तीन वर्ष १० मास होता है। लौकिक मान से मनुष्य के एक वर्ष का देवताओं का एक दिन इस शास्त्र में निश्चित किया गया है।।११-१२½।। देवताओं का एक दिन और एक रात मनुष्य वर्ष के एक वर्ष बराबर मान का होता है, जिसमें जब छः महीने तक सूर्य उत्तरायण होते हैं, तब देवों का दिन होता है तथा छः माह तक जब सूर्य दक्षिणायन होते हैं, तब देवो की रात्रि होती है।।१२½-१३½।।

जो वे दिव्य रात और दिन कहे गये, उसके तीस दिन रात का एक दिव्य मास होता है। अर्थात् मानवीय ३० मासों का एक दिव्य मास कहा जाता है। इस प्रकार मानवीय सौ वर्ष के ३ मास १० दिन देवताओं के जानने चाहिये।।१३½-१५½।। मानवीय ३६० वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है। मनुष्यों के तीन हजार तीस वर्षों का एक सप्तर्षि संवत्सर होता है तथा नौ हजार नब्बे वर्षों का एक ध्रुव संवत्सर स्मरण किया गया है।।१५½-१८।। मनुष्य के छत्तीस हजार वर्षों का देवों का एक सौ वर्ष जानना चाहिये। यह दिव्य वर्ष की गणना की विधि स्मरण की गयी है।।१९।।

त्रीण्येव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु॥२०॥
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया। दिव्यवर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः॥२१॥
इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया त्विह। दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम्॥२२॥
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन्। कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुष्टयम्॥२३॥
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते। द्वापरं च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत्॥२४॥
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशः संध्यया समः॥२५॥
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु। एकन्यायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥२६॥
त्रीणि द्वे च सहस्राणि त्रेताद्वापरयोः क्रमात्।
त्रिशती द्विशती संध्ये संध्यांशौ चापि तत्समौ॥२७॥
कलिं वर्षसहस्रं तु युगमाहुर्द्विजोत्तमाः। तस्यैकशतिका संध्या संध्यांशः संध्यया समः॥२८॥
तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्त्तिता। कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम्॥२९॥
अत्र संवत्सरा दृष्टा मानुषेण प्रमाणतः। कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणि च निबोधत॥३०॥
सहस्राणां शतान्याहुश्चतुर्दश हि संख्यया। चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम्॥३१॥

तीन नियुत साठ हजार (३ लाख ६० हजार) मानव वर्षों का एक हजार दिव्य वर्ष संख्या जानने वाले विद्वान् बताते हैं अर्थात् ३६० मानववर्ष का एक दिव्य वर्ष हुआ।।२०-२१।। इस प्रकार ऋषियों द्वारा दिव्य संख्या द्वारा दिव्य प्रमाण से ही युग संख्या की कल्पना की गयी है।।२२।। भारत वर्ष में कवियों ने चार युग बताये हैं—वे हैं सतयुग नाम का, उसके बाद त्रेतायुग का विधान किया जाता है। उसके बाद द्वापर युग तथा फिर चौथा कलियुग की कल्पना करनी चाहिये।।२४।। इनमें सतयुग को चार हजार दिव्य वर्षों का कहा गया है और उसकी सन्ध्या और सन्ध्या के अंश का प्रमाण चार सौ वर्षों का है।।२५।। अन्य तीनों युगों के प्रमाण में और सन्ध्या और सन्ध्या के अंश में क्रम से एक एक हजार वर्ष तथा एक एक सौ वर्ष की कमी होती चली जाती है। इस प्रकार वर्ष का त्रेता और उसकी सन्ध्या सन्ध्यांश ३०० वर्ष हुए, फिर २००० वर्ष का द्वापर तथा उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश दो सौ वर्ष हुआ।।२६-२७।। इस प्रकार विद्वानों ने कलियुग को एक हजार दिव्यवर्ष का तथा उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश का समय एक सौ दिव्य वर्ष का माना है।।२८।।

यह सतयुग त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग की कुल संख्या बारह हजार वर्ष की कही गयी है।। यहाँ पर इस संख्या में ऐसे समझिये कि ४ सतयुग ३ त्रेता, २ द्वापर तथा एक कलि कुल हुए दश हजार। उसके बाद ४ सतयुग की पूर्व सन्ध्या, ४ पर सन्ध्या, ८ सौ वर्ष हुये, फिर ३ त्रेता की पूर्व सन्ध्या ३ पर सन्ध्या, छः सौ वर्ष हुये, फिर द्वापर की २ वर्ष पूर्व सन्ध्या, २ पर सन्ध्या ४ सौ वर्ष हुए, उसके बाद कलियुग की १ पूर्व सन्ध्या तथा एक पर सन्ध्या २ सौ वर्ष हुए, फिर ८ + ६ + ४ + २ = २० सौ वर्ष अर्थात् दो हजार वर्ष तथा १० हजार चारों का मान मिलाकर कुल चारों युगों का मान १२ हजार दिव्य वर्ष हुआ। यह दिव्य वर्षों का प्रमाण है।।२९।। यहाँ इसके बाद मानव वर्षों के प्रमाण से इस संसार में जो हुई है, उसके अनुसार सतयुग की संख्या बताऊँगा, उसे जानिये।।३०।। तदनुसार सतयुग चौदह लाख चालीस हजार वर्ष मानव वर्षों का कहा गया है।।३१।।

तथा शतसहस्त्राणि वर्षाणि दशसंख्यया। अशीतिश्च सहस्त्राणि कालस्त्रेतायुगस्य सः॥३२॥
सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषेण तु। विंशतिश्च सहस्त्राणि कालः स द्वापरस्य च॥३३॥
तथा शतसहस्त्राणि वर्षाणां त्रीणि संख्यया। षष्टिश्चैव सहस्त्राणि कालः कलियुगस्य तु॥३४॥
एवं चतुर्युगेकाल ऋतैः संध्यांशकैः स्मृतः। नियुतान्येव षड्विंशान्निरसानि युगानि वै॥३५॥
चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुता नीह संख्यया। विंशतिश्च सहस्त्राणि स संध्यांशश्चतुर्युगः॥३६॥
एवं चतुर्युगाख्यानां साधिक ह्येकसप्ततिः। कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरंतरमुच्यते॥३७॥
मन्वंतरस्य संख्यां तु वर्षाग्रेण निबोधत। त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण प्रकीर्त्तिताः॥३८॥

सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु।
विंशतिश्च सहस्त्राणि कालोऽयं साधिकं विना॥३९॥
मन्वंतरस्य संख्यैषा संख्या विद्भिर्द्विजैः स्मृता।
मन्वंतरस्य कालोऽयं युगैः सार्द्धं च कीर्त्तितः॥४०॥

चतुःसाहस्त्रयुक्तं वै प्राकृतं तत्कृतं युगम्। त्रेताशिष्टं प्रवक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च॥४१॥
युगपत्समयेनार्थो द्विधा वक्तुं न शक्यते। क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं नोक्तं युगद्वयम्॥४२॥
ऋषिवंशप्रसंगेन व्याकुलत्वात्तथैव च। अत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ये॥४३॥
श्रौतं स्मार्त्तं च ते धर्मं ब्रह्मणानुप्रचादितम्। दाराग्निहोत्रसंबंधमृग्यजुःसामसंहितम्॥४४॥
इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन्। परंपरागतं धर्मं स्मार्त्तं चाचारलक्षणम्॥४५॥
वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्। सत्येन ब्रह्मचर्येण तपसा च वै॥४६॥

दश लाख अस्सी हजार मानव वर्षों का काल मान त्रेता युग का है।।३२।। सात लाख बीस हजार मानव वर्षों का मान द्वापर युग का है।।३३।। तथा तीन लाख सात हजार मानव वर्षों का मान कलियुग का है।।३४।। इस प्रकार यह चारों युगों का काल, ऋतु और सन्ध्यांश के विना बताया गया है। इस प्रकार चारों युगों का काल छत्तीस लाख मानव वर्षों का है।।३५।। तैतालीस लाख मानव वर्षों का काल चारों युगों का है तथा बीस हजार मानव वर्षों का चारों युगों का सन्ध्यांश है।।३६।। इस प्रकार चारों युगों का कालमान इकहत्तर (७१) लाख वर्ष का है, इसी को मन्वन्तर कहा जाता है।।३७।। मन्वन्तर की संख्या तो वर्षों की और आगे समझिये। तीन करोड़ सरसठ लाख बीस हजार (३६७२००००) मानव वर्षों का एक मन्वन्तर बताया गया है। मन्वन्तर का यह कालमान सन्ध्यांशों को छोड़कर विद्वानों ने बताया है। मन्वन्तर का समय यह युगों के साथ बताया गया है।।३७-४०।।

यह पहले कहा जा चुका है कि सतयुग चार हजार दिव्य वर्ष का है। फिर त्रेता द्वारा और कलियुग में एक कम करते चले जाइये।।४१।। इस प्रकार मैंने वर्णन कर दिया है। अब दुबारा वर्णन नहीं किया जा सकता है। इसके पहले ऋषियों के वर्णन प्रसंग में व्याकुलतावश वर्णन कर ही चुका हूँ। यहाँ त्रेतायुग के आदि में जो मनु और सप्तर्षि थे, उनके लिये ब्रह्मा ने श्रौत (वेदसम्मत) स्मार्त (स्मृतिसम्मत) जो धर्म बताये थे, उनका उन मनु और ऋषियों ने प्रचार किया था। जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तथा स्मृतियों से अनुमत स्त्रीपरिग्रह, अग्नि होत्रादि श्रौत धर्म का प्रचार ऋषियों ने किया था तथा परम्परागत धर्म स्मार्त है, जो आचार लक्षणों वाला है, इस आचार लक्षण वाले वर्ण आश्रम

तेषां तु तप्ततपसा आर्येणोपक्रमेण तु। सप्तर्षीणां मनोश्चैव ह्यादौ त्रेतायुगे तथा॥४७॥
अबुद्धिपूर्वकं तेषामक्रियापूर्वमेव च। अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनैः॥४८॥
आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु याः स्वयम्।
प्रणाशेष्वथ सिद्धीनामन्यासां च प्रवर्त्तनम्॥४९॥
आसन्मन्त्रा व्यतीतेषु ये कल्पेषु सहस्रशः। ते मत्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभायामुपस्थिताः॥५०॥
ऋचोयजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणानि तु। सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ताः स्मार्त्तं धर्मं मनुर्जगौ॥५१॥
त्रेतादौ संहिता वेदाः केवलाधर्मसेतवः। संरोधादायुषश्चैव वत्स्यंते द्वापरेषु वै॥५२॥
ऋषयस्तपसा वेदान्द्वापरादिष्वधीयते। अनादिनिधिना दिव्याः पूर्वे सृष्टाः स्वयंभुवा॥५३॥
सधर्माः सव्रताः सांगा यथाधर्मे युगेयुगे। विक्रियन्ते समानार्था वेदवादा यथायुगम्॥५४॥
आरंभयज्ञाः क्षत्राश्च हविर्यज्ञा विशस्तथा। परिचारयज्ञाः शूद्रास्तु जपयज्ञा द्विजोत्तमाः॥५५॥
तदा प्रमुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मपालिताः। क्रियावंतः प्रजावंतः समृद्धाः सुखिनस्तथा॥५६॥
ब्राह्मणाननुर्त्तन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियान्विशः। वैश्यानुवर्त्तिनः शूद्राः परस्परमनुव्रताः॥५७॥
शुभाः प्रवृत्तयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमास्तथा। संकल्पितेन मनसा वाचोक्तेन स्वकर्मणा॥५८॥
त्रेतायुगे च विफलः कर्मारंभः प्रसिद्ध्यति। आयुर्मेधा बलं रूपमारोग्यं धर्मशीलता॥५९॥

आचारयुक्त धर्म को स्वायम्भु मनु ने बताया था।।४२-४५½।। उस त्रेतायुग के प्रारम्भ काल में उन परमतपस्वी सप्तर्षियों और मनु के सत्य ब्रह्मचर्य ज्ञान और तपस्या के कारण वेदों में कहे गये क्रम से विना बुद्धि तथा विना कार्य किये हुए ही उन मन्त्रों की अभिव्यक्ति तारे आदि के देखने से ही हो गयी थी।।४५½-४८।। आदि कल्प में वे मन्त्र देवताओं के लिये स्वयं ही प्रकट हो गये थे; किन्तु सिद्धियों के नष्ट हो जाने पर उनका पुनः प्रवर्तन हुआ।।४९।। वे बीते हुए हजारों मन्त्र कल्पों में विद्यमान थे। मन्त्रों का उन ऋषियों की प्रतिमा से पुनः आविर्भाव हुआ।।५०।। ऋग्, यजु, साम और अथर्वण इन सभी मन्त्रों को सात ऋषियों ने प्रचारित किया तथा स्मार्तधर्म को मनु ने प्रचारित किया।।५१।। त्रेता के आदि में वेद संहितायें ही केवल धर्म की सेतु थीं।। द्वापर युग में आयु की अल्पता एवं विघ्नपूर्णता के कारण उनका विभाग किया गया द्वापर आदि मे तप द्वारा ऋषि लोग अध्ययन करते हैं।। अनादिनिधन स्वयंभू ब्रह्मा ने दिव्य वेदों की स्वयं ही सृष्टि की थी।।५२-५३।।

प्रत्येक युग समान अर्थ वाले वेदों के वाक्य समूह युगों के स्वभाव के क्रम से धर्म प्रजा एवं अनेकों प्रकार के अंगों के सहित विकृत हो जाते हैं।।५४।। यज्ञों का आरम्भ करना क्षत्रियों का धर्म है तथा हवन, यज्ञ वैश्य का धर्म है तथा सेवा करना, यज्ञ रूप शूद्रों का धर्म है तथा जप और यज्ञ ब्राह्मणों का धर्म है।।५५।। तब उस त्रेतायुग में सभी लोग धर्म का पालन करते हुये प्रसन्न रहते थे। वे क्रियाशील और सन्तानयुक्त रहते हुए समृद्ध तथा सुखी रहते थे।।५६।। क्षत्रिय ब्राह्मण का अनुसरण करते थे। क्षत्रियों का वैश्य अनुसरण करते थे एवं वैश्य का अनुसरण शूद्र करते थे। इस प्रकार सभी एक-दूसरे का अनुसरण करते हुए अपने-अपने धर्म का पालन करते थे। उन सभी की विचारधारायें शुभ थीं तथा धर्म, वर्ण और आश्रम सभी कल्याणपरक थे। उस समय त्रेता युग में लोगों के कार्य मन, वाणी और कर्म से सिद्ध हो जाते थे।।५८-५८½।। आयु, बुद्धि, बल, स्वरूप, आरोग्य, धर्मशीलता ये सभी त्रेतायुग में सभी को प्राप्त थे। ब्रह्मा ने उन सभी की वर्णाश्रम व्यवस्था बाँध रखी थी। पुनः प्रजा ने अज्ञानवश वर्णाश्रम व्यवस्था

सर्वसाधारणा ह्येते त्रेतायां वै भवंत्युत। वर्णाश्रमव्यवस्थानं तेषां ब्रह्मा तदाऽकरोत्॥६०॥
पुनः प्रजास्तु ता मोहाद्धर्मास्तानप्यपालयन्। परस्परविरोधेन मनुं ताः पुनरभ्ययुः॥६१॥
पुनः स्वायंभुवो दृष्ट्वा याथातथ्यं प्रजापतिः। ध्यात्वा तु शतरूपायां पुत्रौ स उदपायत्॥६२॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रथमौ तौ महीक्षितौ। ततः प्रभृति राजान उत्पन्ना दंडधारिणः॥६३॥
प्रजानां रंजनाच्चैव राजानस्तेऽभवन्नृपाः। प्रच्छन्न पापास्तैर्ये च न शक्यास्तु नराधिपैः॥६४॥
धर्मराजः स्मृतस्तेषां शास्ता वैवस्वतो यमः। वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां संप्रकीर्त्तिताः॥६५॥
संभृताच्च तदा मंत्रा ऋषिभिर्ब्रह्मणः सुतैः। यज्ञाः प्रवर्त्तिताश्चैव तदा ह्येव तु दैवतैः॥६६॥
यामशुक्रार्जितैश्चैव सर्वसाधन संभृतैः। सार्द्धं विश्वभुजा चैव देवेंद्रेण महौजसा॥६७॥
स्वायंभुवेंऽतरे देवैर्यज्ञस्तैः प्राक्प्रवर्त्तितः। सत्यं जपस्तपो दानं त्रेताया धर्म उच्यते॥६८॥
तदा धर्मसहस्रांतेऽहिंसाधर्मः प्रवर्त्तते। जायंते च तदा शूरा आयुष्मंतो महाबलाः॥६९॥
व्यस्तदंडा महाभागा धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः। पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथूरस्काः सुसंहताः॥७०॥
सिंहातंका महासत्त्वा मत्तमातंगगामिनः। महाधनुर्द्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्त्तिनः॥७१॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णा न्यग्रोधपरिमंडलाः। न्यग्रोधौ तु स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते॥७२॥
व्यामेनैवाच्छ्रयो यस्य सम ऊर्द्ध्वं तु देहिनः। समोच्छ्रपरीणाहो ज्ञेयो न्यग्रोधमंडलः॥७३॥

का पालन नहीं किया और परस्पर धर्मविषयक विवाद पैदा हो गया, तब सभी एकत्र होकर मनु के पास गये।।५८½-६१।। फिर प्रजापति स्वायंभुव मनु ने उनको देखकर यथातत्त्व का चिन्तन कर शतरूपा में दो पुत्रों को उत्पन्न किया।।६२।। प्रिय और उत्तानपाद तो प्रथम महीपति हुये। उसके बाद दण्डधारी राजा उत्पन्न हुए।।६३।। प्रजाओं का रञ्जन करने के कारण वे नृप राजा कहे गये। पाप करने वाले मनुष्य पृथ्वी पर राजाओं द्वारा वशीभूत न हो सके, तब धर्मराज को याद किया गया। फिर उन पर शासन करने वाले वैवस्वत यम हुए, तब उन्होंने वर्णों के विभाग त्रेतायुग में स्थापित किये।।६४-६५।। उस समय ब्रह्मा के पुत्र ऋषियों द्वारा मन्त्रों का प्रचार किया गया तथा देवताओं द्वारा यज्ञों का प्रचार किया गया।।६६।।

यम और शुक्र द्वारा अर्जित सब साधन संभूत महापराक्रमी विश्वभुक् देवराज इन्द्र के साथ स्वायंभुव मन्वन्तर में यज्ञों का सबसे पहले प्रवर्तन किया।।६७-६७½।। सत्य, जप, तप और दान त्रेतायुग में धर्म कहा जाता है। उस समय हजारों धर्मों के बीच मे अहिंसा धर्म पालन करने का प्रचलन अधिक था।।६७½-६८½।। उस समय त्रेतायुग शूरवीर, अधिक आयु वाले महान् बलवान्, दण्ड में व्यस्त रहने वाले, महान् भाग्यशाली, धर्म में आस्था रखने वाले, ब्रह्मवादी, कमलपत्र के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाले, चौड़ी छाती वाले, गठे हुए शरीर वाले, सिंह का भी अन्त करने वाले महापराक्रमी, मदमस्त हाथी की तरह गमन करने वाले महान् धनुषधारी, चक्रवर्ती राजा लोग उत्पन्न होते थे।।६८½-७१।। वे राजा लोग सब लक्षणों से सम्पूर्ण एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले थे। न्योग्रोध दोनों भुजाओं को और दोनों भुजाओं के बीच के भाग को व्याम कहते हैं। वह व्यामही न्योग्रोध है। जिस शरीरधारी के शरीर की ऊँचाई अपने व्याम के नाप के समान होती है अर्थात् जिसकी ऊँचाई और दोनों भुजाओं के विस्तार समान होते हैं, उसके शुभलक्षण अर्थात् जिसकी ऊँचाई और दोनों भुजाओ के विस्तार समान होते हैं। उसके शुभलक्षण न्योग्रोधमण्डल जानना चाहिये।।७२-७३।।

चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वो गतस्तथा। सप्तैतानि च रत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनम्॥७४॥
चक्रं रथो मणिः खड्गश्चर्मरत्नं च पंचमम्। केतुर्निधिश्च सप्तैव प्राणहीनानि चक्षते॥७५॥
भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः। मंत्र्यश्वः कलभश्चैव प्राणिनः सप्त कीर्त्तिताः॥७६॥
रत्नान्येतानि दिव्यानि संसिद्धानि महात्मनाम्। चतुर्दश विधेयानि सर्वेषां चक्रवर्त्तिनाम्॥७७॥
विष्णोरंशेन जायंते पृथिव्यां चक्रवर्त्तिनः। मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह॥७८॥
भूतभव्यानि यानीह वर्त्तमानानि यानि च। त्रेतायुगे च तान्य. जायंते चक्रवर्त्तिनः॥७९॥
भद्राणीमानि तेषां वै भवंतीह महीक्षिताम्। अत्युद्भुतानि चत्वारि बलं धर्मः सुखं धनम्॥८०॥
अन्योन्यस्यावि रोधेन प्राप्यंते तु नृपैः समम्। अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च॥८१॥
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च। श्रुतेन तपसा चैव मुनीनभिभवंति वै॥८२॥
बलेन तपसा चैव देवदानवमानवान्। लक्षणैश्चैव जायंते शरीरस्थैरमानुषैः॥८३॥

केशाः स्निग्धा ललाटोच्चा जिह्वा चास्य प्रमार्जनी।
ताम्रप्रभोष्ठनेत्राश्च श्रीवत्साश्चोर्द्धरोमशाः॥८४॥

आजानुबाहवश्चैव ताम्रहस्ताः कटौकृशाः। न्यग्रोधपरिणाहाश्च सिंहस्कंधास्तु मेहनाः॥८५॥
गजेंद्रगतयश्चैव महाहनव एव च। पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शंखपद्मौ तु हस्तयोः॥८६॥
पंचाशीतिसहस्राणि ते राजंत्यजरा नृपाः। असंगगतयस्तेषां चतस्रश्चक्रवर्त्तिनाम्॥८७॥

चक्र, रथ, मणि, पत्नी, कोष, अश्व, गज, ये सात रत्न सब चक्रवर्ती राजाओं के थे।।७४।। चक्र, रथ, मणि खड्ग और पांचवां चर्म, केतु और निधि ये सात रत्न प्राणहीन कहे गये हैं।।७५।। भार्या, पुरोहित, सेनानी और रथकार, मन्त्री अश्व और हाथी का बच्चा ये सात प्राणधारी रत्न कहे गये हैं।।७६।। ये उपर्युक्त १४ प्रकार के रत्न दिव्य और युद्ध राजनीति आदि सफलता प्राप्त कराने वाले होते थे तथा सभी चक्रवर्ती राजाओ के लिये विधेय थे।।७७।। इस लोक मे भूतकाल, भविष्यकाल में होने वाले चक्रवर्ती राजा लोग इस पृथ्वी पर विष्णु के अंश से पैदा होते हैं। भूत भविष्य और वर्तमान जितने भी चक्रवर्ती राजा इस पृथ्वी पर पैदा होते हैं, उन सबके कल्याण के लिए ये उपर्युक्त १४ रत्न हैं।।७८-७९½।। चार और अद्भुत रत्न है. वे हैं—बल, धर्म, सुख और धन। इन रत्नों को राजा लोग बिना एक-दूसरे के विरोध के स्वतः ही प्राप्त करते हैं। अर्थ, धर्म, काम, यश और विजय, ऐश्वर्य अणिमा, आदिसिद्धियां, प्रभुशक्ति, वेदज्ञान एवं तपस्या से मुनियो को भी परास्त कर देते हैं।। वे बल और तपस्या से देवदानव और मानवों को भी परास्त कर देते हैं।।७९½-८२½।। वे अपने शरीरों के दिव्य लक्षणों से पैदा होते हैं। उनके केश चिकने होते हैं। ललाट ऊँचा होता है, उनकी जिह्वा स्वच्छ तथा चिकनी होती है। ताँबे की चमक के समान नेत्र होते हैं, उनके शरीर के रोम ऊपर को उठे हुए होते हैं। इस प्रकार वे श्रीवत्स चिह्न से युक्त होते हैं।।८२½-८४।। उनकी भुजायें घुटनो से नीचे तक होती हैं। उनके हाथ ताम्रवर्ण के होते हैं और कमर पतली होती है। उनकी दोनों भुजाओं के बीच का भाग, जिसे न्यग्रोध कहा जाता है, वह बहुत विशाल होता है तथा सिंह के कन्धों के समान उनके कन्धे विशाल होते हैं और वे सुन्दर लिङ्गवाले और गजराज के समान गति वाले होते हैं, उनकी ठोड़ी (चिबुक) चौड़ी होती है तथा पैरों में चक्र और मत्स्य तथा हाथो में शंख और पद्म अंकित होते हैं।।८५-८६।। पिचासी हजार वर्ष के राजा राज्य करते हैं। उन चक्रवर्ती राजाओं की गति असंगत होती है। अन्तरिक्ष में समुद्र मे और पर्वतों पर

अंतरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च। इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते॥८८॥
तदा प्रवर्त्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः। मर्यादास्थापनार्थं च दंडनीतिः प्रवर्त्तते॥८९॥
त्दृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा अरोगाः पूर्णमानसाः। एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः॥९०॥
त्रीणि वर्षसहस्त्राणि तदा जीवन्ति मानवाः। पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियंते च क्रमेण तु॥९१॥
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासंध्यां निबोधत। त्रेतायुगस्वभावानां संध्या पादेन वर्त्तते॥
संध्यापादः स्वभावस्तु सोंऽशपादेन तिष्ठति॥९२॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराण वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे संख्यावर्त्तो नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥२९॥

गमन करते हैं।।८७-८७½।। यज्ञ, दान, तप और सत्य त्रेता में धर्म कहा जाता है। उस समय वर्ण और आश्रम के विभाग के क्रम से धर्म प्रचलित था।।८७½-८८½।। मर्यादा की स्थापना के लिये दण्डनीति प्रवृत्त होती थी। उस समय समस्त प्रजा हृष्ट-पुष्ट रोगरहित पूर्ण मन वाली होती थी।।८८½-८९½।। उस समय त्रेतायुग में वेद चार पादों में विभक्त थे। उस समय वे मनुष्य तीन हजार वर्ष तक जीते थे तथा वे पुत्र और पौत्रों से घिरे हुए क्रम से मरते थे अर्थात् पिता बाबा के सामने वेटा या पोता की मृत्यु नहीं होती थी। यह त्रेतायुग का धर्म है, अब त्रेता की सन्ध्या को सुनिये। त्रेतायुग के स्वभाव के अनुसार ही उस युग की सन्ध्या के लोग होते थे और सन्ध्या का स्वभाव युगपाद रहता है।।८९½-९२।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद २९वां अध्याय संख्या वालों का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

यज्ञप्रवर्तनं नाम

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

शांशपायनिरुवाच

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्य स्यात्प्रवर्त्तनम्। पूर्वे स्वायंभुवे सर्गे यथावत्तच्च ब्रूहि मे॥१॥
अंतर्हितायां संध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन वै। कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा॥२॥
औषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने। प्रतिष्ठितायां वार्त्तायां गृहाश्रमपरे पुनः॥३॥
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृतवंतश्च संख्यया। संभारांस्तांस्तु संभृत्य कथं यज्ञः प्रवर्त्तितः॥४॥
एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायने। यथा त्रेता युगमुखे यज्ञस्य स्यात्प्रवर्तनम्॥५॥
पूर्वं स्वायंभुवे सर्गे तद्वक्ष्याम्यानुपूर्व्यतः। अंतर्हितायां संध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन तु॥६॥
कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा। औषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने॥७॥
प्रतिष्ठितायां वार्त्तायां गृहाश्रमपरेषु च। वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृत्वा मंत्रांस्तु संहतान्॥८॥
मंत्रांस्तान्योजयित्वाथ इहामुत्र च कर्मसु। तदा विश्वभुगिंद्रश्च यज्ञं प्रावर्त्तयत्प्रभुः॥९॥
दैवतैः सहितैः सर्वैः सर्वसंभारसंभृतैः। तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय–३०

यज्ञ प्रवर्तन वर्णन

शाशंपायनि बोले—शाशंपायनि ऋषि ने सूतजी से पूछा कि पूर्व स्वायंभुवमनु के त्रेतायुग में यज्ञ का प्रचलन कैसे था? इसको विस्तारपूर्वक बताइये।।१।। सतयुग के साथ सतयुग की सन्ध्या के समाप्त होने पर तथा कलामात्र त्रेतायुग के प्रारम्भ होने पर, सृष्टि होने पर—पुनः औषधियों के पैदा होने पर, पुनः प्रजा में गृहाश्रय प्रतिष्ठित होने पर, ऋषियों ने तथा मनु ने किस प्रकार पुनः वर्णाश्रम व्यवस्था स्थापित की तथा समस्त संभारों को एकत्र कर कैसे यज्ञ को पुनः प्रचलित किया? इसके बाद सूत जी ने कहा कि पूर्व स्वायम्भुव सर्ग के अन्त और त्रेता युग के प्रारम्भ में जिस प्रकार पुनः यज्ञ प्रचलित हुआ, उसको मैं पूर्व से लेकर अन्त तक बताऊंगा, सुनो।।२-५½।।

पूर्व स्वायम्भुव सर्ग में जब सतयुग की सन्ध्या हुई और एक कलामात्र त्रेतायुग की सन्धि प्रारम्भ हुई, तब वृष्टि हुई और औषधियां उत्पन्न हुईं। फिर वनस्पतियो के पैदा हो जाने पर सतयुग के साथ समय बीतने पर त्रेतायुग के प्रवृत्त होने पर वृष्टि होने पर औषधियो के उत्पन्न होने पर प्रजा खाना-पीना रहने-सहने की व्यवस्था प्रारम्भ होने पर विश्वभोक्ता देवराज इन्द्र ने वर्ण और आश्रमधर्म की व्यवस्था करके इस लोक और परलोक के कल्याणकारी कर्मों में मन्त्रों और संहिताओं का प्रचार कर उनका उन उन कर्मों में नियन्त्रित कर सब देवताओं के साथ सम्पूर्ण सामग्रियों एवं सामानों सहित यज्ञ की प्रथा प्रारम्भ की।।५½-९½।। उन इन्द्र के उस अश्वमेध यज्ञ के मण्डप में ऋषिलोग सम्मिलित हुए और मेध्य पशुओ द्वारा यज्ञकार्य का प्रारम्भ सुनकर आये हुए सभी ऋषिगण और पुरोहितगण उन

यजंतं पशुभिर्मेध्यैरूचुः सर्वे समागताः। कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु संतते यज्ञकर्मणि॥११॥
संप्रगीथेषु सर्वेषु सामगेष्वथ सुस्वरम्। परिक्रांतेषु लघुषु ह्यध्वर्युवृषभेषु च॥१२॥
आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु च। हविष्यग्नौ हूयमाने ब्राह्मणैश्चाग्निहोत्रिभिः॥१३॥
आहूतेषु च सर्वेषु यज्ञभाक्षु क्रमात्तदा। य इंद्रियात्मका देवास्तदा ते यज्ञभागिनः॥१४॥
तद्यजन्ते तदा देवान्कल्पादिषु भवंति ये। अध्वर्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता वै महर्षयः॥१५॥
महर्षयस्तु तान्दृष्ट्वा दीनान्पशुगणांस्तदा। प्रपच्छुरिंद्रं संभूय कोऽयं यज्ञ विधिस्तव॥१६॥
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया ततः। ततः पशुवधश्चैष तव यज्ञे सुरोत्तम॥१७॥
अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुहिंसया। नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते॥१८॥
आगमेन भवानयज्ञं करोतु यदिहेच्छति। विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यपसेतुना॥१९॥
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा च विद्यते। त्रिवर्षे परमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः॥२०॥
एष धर्मो महाप्राज्ञ विरंचिविहितः पुरा। एवं विश्वभुगिंद्रस्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥२१॥
तदा विवादः सुमहानिंद्रस्यासीन्महर्षिभिः। जंगमस्थावरैः कैर्हि यष्टव्यमिति चोच्यते॥२२॥
ते तु खिन्ना विवादेन तत्त्वमुक्त्वा महर्षयः। सन्धाय वाक्यमिंद्रेण पप्रच्छुः खेचरं वसुम्॥२३॥
महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप। औत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं नो नुद प्रभो॥२४॥
श्रुत्वा वाक्यं वसुस्तेषामविचार्य बलाबलम्। वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह॥२५॥

निरन्तर चलने वाले यज्ञ कार्यों में व्यस्त हो गये।।९½-११।। तथा जब उच्च स्वरों में सामवेद के छन्दों का गायन होने लगा तथा जब छोटे-छोटे कम आयु के बैलों के चारों तरफ यज्ञकर्ताओं ने लाना प्रारम्भ कर दिया तथा जब पशु समूहों की चर्बियां वहाँ लायी जाने लगीं और फिर उस यज्ञ में अग्निहोतृ ब्राह्मणों द्वारा उस हविष्य अग्नि में उनकी आहुतियां दी जानें लगी, यज्ञ में भाग लेने वाले सब देवतागण बुलाये जाने लगे, जो कल्प के आदि में पैदा होते हैं, वे सब यज्ञ करने लगे। ठीक उसी समय जब यज्ञ का प्रैष काल था, ऋषिगण उठ खड़े हुए।।१२-१५।। ऋषियों ने तो उन दीन, हीन, पशुओं को देखकर, दुःखी होकर इन्द्र से पूछा कि यह आपके यज्ञ की कैसी विधि है।।१६।। हिंसायुक्त धर्म करने की इच्छा से यह तुम्हारा महान् अधर्म है। यह जो तुम्हारे यज्ञ में पशुवध हो रहा है। हे सुरोत्तम! यह धर्म को नष्ट करने के लिए अधर्म है, जो कि तुमने पशुहिंसा से प्रारम्भ किया है। यह धर्म नहीं है, अधर्म है; क्योंकि हिंसा कभी धर्म नहीं कहा जाता।।१७-१८।।

यदि तुम्हें यज्ञ करने की इच्छा है, तो वेद में जो विधि दिखायी गयी है, उस अव्यय सेतु यज्ञ रूप धर्म से यज्ञ करो।।१९।। हे सुरश्रेष्ठ यज्ञबीजों के द्वारा अर्थात् अन्नों आदि के द्वारा यज्ञ करने में हिंसा नहीं है। प्राचीन काल में तीन वर्ष के पुराने रखे गये अंकुररहित बीजों द्वारा ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था।।२०-२०½।। इस प्रकार उन तत्त्वदर्शी ऋषियों के कहने पर विश्वभोक्ता इन्द्र को महर्षियों के साथ महान् विवाद उत्पन्न हो गया कि अब हमें स्थावर और जङ्गम पदार्थों में किनके द्वारा यज्ञ करना चाहिये, ऐसा कहा जाता है।।२०½-२२।। उन सब तत्त्ववक्ता महर्षिगण ने विवाद से खिन्न होकर इन्द्र के साथ सन्धि करके आकाश में विचरण करके राजा वसु से पूंछा— ।।२३।। हे महाविद्वान् उत्तानपाद के पुत्र राजन्! हमें बतायें कि आपने यज्ञ की विधि किस प्रकार की देखी है। यह बताकर आप हमारे संशय को दूर करें।।२४।। राजा वसु ने उनके वाक्य को सुनकर बलवान् और दुर्बल का विचार

यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः। यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ बीजैः फलैरपि॥२६॥
हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागमौ। यथेह देवता मंत्रा हिंसालिंगा महर्षिभिः॥२७॥
दीर्घेण तपसा युक्तैर्दर्शनैस्तारकादिभिः। तत्प्रामाण्यान्मया चोक्तं तस्मात्स प्राप्तुमर्हथ॥२८॥
यदि प्रमाणं तान्येव मंत्रवाक्यानि वै द्विजाः। तथा प्रवर्ततां यज्ञो ह्यन्यथा वोऽनृतं वचः॥२९॥
एवं कृतोत्तरास्ते वै युक्तात्मानस्तपोधनाः। अवश्यभावितं दृष्ट्वा तमथो वाग्यताऽभवन्॥३०॥
इत्युक्तमात्रे नृपतिः प्रविवेश रसातलम्। ऊर्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत्॥३१॥
वसुधातलवासी तु तेन वाक्येन सोऽभवत्। धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः॥३२॥
तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि संशये। बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दूरतरा गतिः॥३३॥
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यस्तु केनचित्। देवानृषीनुपादाय स्वायंभुवमृते मनुम्॥३४॥
तस्मादहिंसा धर्मस्य द्वारमुक्तं महर्षिभिः। ऋषिकोटिसहस्राणि स्वतपोभिर्दिवं ययुः॥३५॥
तस्मान्न दानं यज्ञं वा प्रशंसंति महर्षयः। उञ्छमूलफलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः॥३६॥
एतद्दत्वा विभवतः स्वर्गे लोके प्रतिष्ठिताः। अद्रोहश्चाप्य लोभश्च तपो भूतदया दमः॥३७॥

न करते हुए वेदशास्त्र का स्मरण कर यज्ञ के तत्त्व को बताया।।२५।। राजा ने कहा यथावधि यज्ञोपवीतधारण करके यज्ञ करना चाहिये तथा पशुओं की चर्वी से तथा अन्न और फलों से यज्ञ करना चाहिये।।२६।। मैंने तो यज्ञ का हिंसा का स्वभाव देखा है। ऐसा आगम मुझे ज्ञात हुआ है। महर्षियों द्वारा आविष्कृत मंत्रसमूह हिंसा के द्योतक हैं। इस रहस्य को तारकादि दर्शनों से ऋषियों ने दीर्घ तपस्या द्वारा यह जो बताया है, वह मैंने उस प्रमाण के अनुसार आपको बता दिया है। इसलिए आप प्राप्त कर सकते हैं।।२७-२८।। यदि आप मेरी बातों को असत्य मानते हैं, तो मुझे क्षमा करेंगे। हे ब्राह्मणो! यदि उन मन्त्रादिकों के वचन प्रमाण हैं, तो यज्ञ में प्रवृत्त होवें, अन्यथा वेदो के वाक्य असत्य समझें।।२९।।

राजा वसु की बात सुनकर निरुत्तर होकर उन योगात्मा तपस्वियों और ऋषियों ने उससे कहा कि हे राजन्! तुझे बुरे कार्य का फल अवश्य मिलना है, यह देखकर वाग्यत हो गये अर्थात् बिल्कुल चुप हो गये।।३०।। तथा जब राजा वसु ने ऐसा कहा तो इतना कहने मात्र में ही राजा रसातल में प्रविष्ट हो गया। वह ऊपर विचरण करने वाला राजा वसु अब रसातल में विचरण करने वाला बन गया।।३१।। उस वाक्य से वह राजा वसु वसुधा तल पर रहने वाला बन गया। धर्मों के विषय में संशय को दूर करने वाला वह राजा वसु आकाश से नीचे पृथ्वी पर चला गया।।३२।। अतः बहुत जानने वाले भी किसी व्यक्ति को धार्मिक संशय में कुछ नहीं बोलना चाहिये, क्योंकि धर्म के अनेक द्वार होते हैं तथा धर्म की बहुत सूक्ष्म और दूरतर गति है। अर्थात् धर्म का वास्तविक ज्ञान बहुत ही गूढ़ है।।३३।। उसी कारण स्वायंभुव मनु के अतिरिक्त देवों और ऋषियों में कोई भी निश्चित रूप से धर्मतत्त्व का निर्णय नही कर सकता।।३४।। उन स्वायंभुव मनु के अनुसार महर्षियों ने अहिंसा को धर्म का द्वार बताया है। प्राचीनकाल में सहस्रों करोड़ ऋषिगण अपने-अपने तपो के प्रभाव से स्वर्ग को चले गये हैं।।३५।।

इसी कारण ऋषिगण यज्ञ तथा दान की प्रशंसा नहीं करते। वे तुच्छ मूल, फल, शाक, जलपात्र आदि दान करके अपने विभव से ऋषिलोग स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं।।३६-३६½।। किसी से वैर न करना और लोभ न करना, तप, प्राणियों पर दया, इन्द्रियों का दमन, ब्रह्मचर्य तथा सत्य, करुणा, क्षमा और धैर्य ये सब सनातन धर्म

ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः। सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम्॥३८॥
श्रूयंते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रादयोऽनघाः। प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः॥३९॥
सुधामा विरजाश्चैव शंखः पांड्यज एव च। प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः॥४०॥
एवं चान्ये च बहवः स्वैस्तपोभिर्दिवं गताः। राजर्षयो महासत्त्वा येषां कीर्त्तिः प्रतिष्ठिता॥४१॥
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वैस्तु कारणः। ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा॥४२॥
तस्मान्नान्वेति तद्यज्ञस्तपोमूलमिदं स्मृतम्। द्रव्यमंत्रात्मको यज्ञस्तपस्त्वनशनात्मकम्॥४३॥
यज्ञेन देवानाप्नोति वैराजं तपसा पुनः। ब्राह्मं तु कर्म संन्यासाद्वैराग्यात्प्रकृतेर्जयम्॥४४॥
ज्ञानात्प्राप्तनोति कैवल्यं पंचैतागतयः स्मृताः। एवं विवादः सुमहानयज्ञस्यासीत्प्रवर्त्तने॥४५॥
देवतानामृषीणां च पूर्वे स्वायंभुवेऽन्तरे। ततस्तमृषयो दृष्ट्वा हतं धर्मबलेन तु॥४६॥
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुः सर्वे यथागतम्। गतेषु मुनिसंघेषु देवा यज्ञं समाप्नुवन्॥४७॥
यज्ञप्रवर्त्तनं ह्येवमासीत्स्वायंभुवेऽन्तरे। ततः प्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह विवर्त्तितः॥४८॥

इति श्रीब्रह्मांड महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे यज्ञप्रवर्तनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३०॥

के मूल हैं और बहुत ही कठिनाई से प्रयुक्त किये जा सकते हैं।।३६½-३८।। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि निष्पाप महापुरुष तपस्या से सफलता प्राप्त किये हुए सुने जाते हैं। प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधातिथि, वसु, सुधामा, विरज, शंख, पाण्ड्य से उत्पन्न राजागण, प्राचीनबर्हिपर्जन्य हविर्धान आदि राजा ये सब तथा अन्य बहुत से अपने तपों से स्वर्ग को चले गये। राजर्षि तथा महापराक्रमी जिनकी कीर्ति प्रतिष्ठित हुई।।३९-४१।। उसी कारण से यज्ञ से तप को सभी के द्वारा विशिष्ट कारण माना गया है। पहले ब्रह्मा ने तप से इस विश्व को रचा है।।४२।। इसीलिये यज्ञ कभी भी तप से बढ़कर नहीं हो सकता। यहाँ तप ही मूल कहा जाता है। यज्ञ, द्रव्य और मन्त्रात्मक होते हैं तथा तप अनशनात्मक होता है। अर्थात् यज्ञ द्रव्य और मन्त्र से सिद्ध होते हैं तथा तप विना अन्न जल के भूखे रहकर किये जाते हैं।।४३।।

यज्ञ से मनुष्य देवों को प्राप्त करता है और तप से वैराग्य प्राप्त करता है। ब्राह्मकर्म सन्यास से और वैराग्य से प्रकृति पर विजय प्राप्त होती है तथा ज्ञान से कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त करता है, ये पाँच गतियां बतायी गयी हैं।।४४-४५½।। इस प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तर के काल में देवताओं और ऋषियों का यज्ञ में प्रवृत्त होने का यही विशेष व्यवहार था। उसके बाद हारा हुआ वसु को देखकर और उनके वाक्य का अनादर कर सब ऋषि लोग अपने-अपने गन्तव्य स्थान पर चले गये। फिर उन मुनियों के चले जाने पर देवताओं ने यज्ञ को समाप्त कर दिया।।४५½-४७।। इस स्वायम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ का प्रचलन था। उस समय से लेकर यह यज्ञ युगों के साथ बदलता रहा और चलता रहा है।।४८।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ३०वां अध्याय यज्ञ प्रवर्तन वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

चतुर्युगाख्यानं नाम

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सूत उवाच

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः। तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते॥१॥
द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या। परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततस्ताभिः प्रणश्यति॥२॥
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः। संभेदश्चैव वर्णानां कार्याणां च विपर्ययः॥३॥
यज्ञावधारणं दंडोमदो दंभः क्षमा बलम्। एषा रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता॥४॥
आद्ये कृते यो धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तते। द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे॥५॥
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीयत तथाश्रमाः। द्वैविध्यं प्रतिपद्येते युगे तस्मिञ्छ्रुति स्मृती॥६॥
द्वैधात्तथा श्रुतिस्मृत्योर्निश्चयो नाधिगम्यते। अनिश्चयाधिगमनार्द्धमतत्त्वं न विद्यते॥७॥
धर्मासत्त्वेन मित्राणां मतिभेदो भवेन्नृणाम्। परस्परविभिन्नैस्तैदृष्टीनां विभ्रमेण च॥८॥
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते।
कारणानां च वैकल्प्यात्कार्याणां चाप्यनिश्चयात्॥९॥
मतिभेदेन तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत्। ततो दृष्टिविभिन्नैस्तु कृतं शास्त्रकुलंत्विदम्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-३१

चतुर्युगों का वर्णन

सूत जी बोले—अब इसके बाद मैं द्वापर युग की विधि को पुनः वर्णन करूँगा। त्रेतायुग के क्षीण होने पर द्वापर युग आता है।।१।। त्रेतायुग में मनुष्यों की जो सिद्धियां प्राप्त होती हैं, वे द्वापर युग में युग के प्रारम्भ होने पर नष्ट हो जाती हैं।।२।। त्रेतायुग के बाद द्वारपर युग में प्रजाओं में परस्पर वर्णो के कार्यो में परस्पर भेदभाव विपरीतता, प्रवृत्त हो जाती है।।३।। यज्ञ का निश्चय, दण्ड, मद, दम्भ, क्षमा और बल ये सब रजोगुण और तमोगुण से युक्त हो जाते हैं। यही प्रवृत्ति द्वापर युग में कही गयी है।।४।। पहले सतयुग में जो धर्म है, वह त्रेता में लागू हो जाता है, वह द्वापर युग में व्याकुल होकर कलियुग में नष्ट हो जाता है।।५।।

वर्णों का पूरी तरह से नाश हो जाता है और आश्रम व्यवस्था भी बहुत संकीर्ण हो जाती है। बहुत कम लोग आश्रमधर्म का पालन करते हैं। उस युग में श्रुति (वेद) और स्मृति की दो विधियां प्रचलित हो जाती हैं।।५।। तथा द्वापर युग में उन दोनों वेदों और स्मृतियों के द्वारा भी निश्चय नहीं प्राप्त होता है। तब प्रजा किसी निश्चय पर नहीं पहुँचती है। अतः वहाँ कोई धर्म तत्त्व नहीं विद्यमान रहता है। लोग दुविधा में पड़ जाते हैं।।६-७।। जब धर्म विद्यमान नहीं रहता तब मनुष्यों के मित्रों में परस्पर मतभेद पैदा हो जाता है। उनमें परस्पर भिन्न-भिन्न मतियां पैदा हो जाने से लोगों में दृष्टि विभ्रम पैदा हो जाता है। लोग किसी भी विषय का कारण और विकल्प नहीं खोज पाते। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। उसके बाद जब सबकी दृष्टियां भिन्न-भिन्न हो जाती हैं, तब शास्त्र व्याकुल हो जाते हैं।।८-१०।।

एको वेदश्चतुष्पाद्धि त्रेतास्विह विधीयते। संक्षयादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु च॥११॥
ऋषिमंत्रात्पुनर्भेदाद्भिद्यते दृष्टितिभ्रमैः। मंत्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः॥१२॥
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संपठ्यंते महर्षिभिः।
सामान्या वैकृताश्चैव दृष्टिभिन्ने क्वचित्क्वचित्॥१३॥
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मंत्रप्रवचनानि च।
अन्येऽपि प्रस्थितास्तानवैकेचित्तानप्रत्यवस्थिताः॥१४॥
द्वापरेषु प्रवर्त्तंते निवर्त्तंते कलौ युगे। एकमाध्वर्यवं त्वासीत्पुनर्द्वैधमजायत॥१५॥
सामान्यविपरीतार्थैः कृतशास्त्राकुलं त्विदम्।
आध्वर्यवस्य प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतैः॥१६॥
तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चापि संज्ञया। व्याकुले द्वापरे नित्यं क्रियते भिन्न दर्शनैः॥१७॥
तेषां भेदाः प्रतीभेदा विकल्पाश्चापि संख्यया। द्वापरे संप्रवर्त्तंते विनश्यंति ततः कलौ॥१८॥
तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवंति द्वापरे पुनः। अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः॥१९॥
वाङ्मनःकर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः। निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा॥२०॥

एक वेद जो चार पाद में त्रेतायुग में था, वही यहाँ विद्यमान रहता है। मनुष्यों की आयु कम हो जाने के कारण द्वापर और कलियुग में वेदव्यास ने वेदों के चार भाग किये। उसके बाद भी ऋषिमन्त्रों द्वारा वेदों का पुनर्विभाजन हुआ, जिसमें स्वर और वर्ण के विपर्यय से मन्त्र और ब्राह्मण दो भाग हुए।।११-१२।। द्वापर में महर्षियों द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की संहितायें पढ़ी जाती हैं, जिनमें कुछ संहितायें तो सामान्य रहीं और कुछ विकृत हो गयीं। कहीं-कहीं किसी मन्त्र के अर्थ में लोगों की दृष्टि भिन्न हो गयी, कोई उसका अर्थ किसी तरह करने लगा, कोई किसी तरह।।१३।। परिणामस्वरूप ब्राह्मणभाग, कल्पसूत्र और मन्त्रभाग तथा अन्य भी अन्य प्रकार के भाग उत्पन्न हो गये।।१४।। द्वापर युग में जो कोई नियम प्रवृत्त होता है, वह कलियुग में समाप्त हो जाता है। पूर्वकाल में केवल यजुर्वेद का एक अध्वर्यु कर्म था, अब द्वापर में उसमें द्विविधा पैदा हो गयी।।१५।।

सामान्य और विपरीत अर्थों से शास्त्रों में आकुलता पैदा हो गयी। आध्वर्यव (यजुर्वेद वर्णित यज्ञकार्य) के समाप्त हो जाने पर अत्यन्त व्याकुलता हो जाने से अनेकों प्रकार के अर्थों से अथर्ववेद, ऋग्वेद और सामवेद के अर्थों में विकल्पों से अर्थ होने लगे।।१६-१६½।। जब द्वापर युग में वेदों के अर्थों में विकल्प होने लगे, तब भिन्न भिन्न दर्शनों के द्वारा लोग सोचने लगे। फिर इस प्रकार वेदों के अनेक भेद फिर भेदों के भेद तथा फिर विकल्पों से अपार संख्या हो गयी। इस प्रकार यह स्थिति द्वापर में लागू होती है और फिर कलियुग में समाप्त हो जाती है अर्थात् वेदों शास्त्रों में तरह तरह के विचार द्वापर में पैदा होते हैं अर्थात् वेदादिशास्त्रों को लोग मानते हैं; परन्तु सबके उनके अर्थों के विषय में भिन्न-भिन्न विचार हो जाते हैं; परन्तु कलियुग में तो वेदादिशास्त्र समाप्त ही हो जाते हैं।।१६½-१८।। यही हुआ उन शास्त्रादि के विषय में द्वापर युग में विपरीतता पैदा हो गयी, तब वर्षा का न होना, मृत्यु, व्याधि, उपद्रव तथा वाणी, मन और कर्म से उत्पन्न दुखों से निर्वेद पैदा हो जाता है और जब निर्वेद पैदा हो जाता है, तब उस निर्वेद से प्रजा में दुःख से मुक्त होने के विचार पैदा होते हैं। लोग सोचते हैं कि दुःख से मुक्ति कैसे हो?।।१९।। दुःख

विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम्। दोषदर्शनतश्चैव द्वापरेऽज्ञानसंभवः॥२१॥
तेषामज्ञानिनां पूर्वमाद्ये स्वायंभुवेऽन्तरे। उत्पद्यंते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपंथिनः॥२२॥
आयुर्वेदविकल्पश्च ह्यंगानां ज्योतिषस्य च। अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम्॥२३॥

प्रक्रियाकल्पसूत्राणां भाष्यविद्याविकल्पनम्।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदश्च प्रस्थानानि पृथक्पृथक्॥२४॥

द्वापरेष्वभिवर्त्तंते मतिभेदाश्रयान्नृणाम्। मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिद्ध्यति॥२५॥
द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता। लोभो वृत्तिर्वणिक्पूर्वा तत्त्वानामविनिश्चयः॥२६॥
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा। वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामक्रोधौ तथैव च॥२७॥
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रागो लोभो वधस्तथा। वेदं व्यासश्चतुर्द्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु॥२८॥
निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य संध्या तु यादृशी। प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु॥२९॥
तथैव संध्या पादेन ह्यंगः संध्या इतीष्यते। द्वापरस्यावशेषेण तिष्यस्य तु निबोधत॥३०॥
द्वापरस्यांशशेषेण प्रतिपत्तिः कलेरपि। हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम्॥३१॥
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयंति च वै प्रजाः। एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते॥३२॥

मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्ता सिध्यति वा न वा।
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि च॥३३॥

अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः। न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोकेषु वै युगे॥३४॥

से मुक्ति पाने के विषय में सोचने से निर्वेद पैदा हो जाता है और निर्वेद से लोग एक-दूसरे के दोष देखने लगते हैं तथा सब में दोष देखने से द्वापर में अज्ञान उत्पन्न हो जाता है।।२०-२१।। इस प्रकार पूर्व स्वायंभुव मन्वन्तर के द्वापर युग में शास्त्रों के अनेक विरोधी ग्रन्थ पैदा हो जाते हैं। आयुर्वेद, वेदों के सभी अंग, ज्योतिष के अंग, अर्थशास्त्र के, अनेकों विकल्प, हेतुशास्त्र के अनेकों विकल्प, कल्पसूत्रों की प्रक्रियायें, भाष्य विद्या के अनेक प्रकार के विकल्प, स्मृति और शास्त्रों के अनेकों प्रभेद प्रस्थान अलग अलग पैदा हो जाते हैं।।२२-२४।।

द्वापर में मनुष्यों में मतिभेद हो जाता है। मन से कर्म से और वाणी से अत्यन्त कठिनता से सामाजिक व्यवस्था (जीवन) का निर्वाह होता है।।२५।। द्वापर में सब प्राणियों में शारीरिक कष्ट प्राप्त होते हैं। लोभ की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है, वणिक् बुद्धि, तत्त्वों का अनिश्चय, वेदशास्त्र का प्रणयन, धर्मों में संकरता, वर्ण-व्यवस्था का विनाश तथा काम क्रोध पैदा हो जाते हैं।।२६-२७।। द्वापर में राग, लोभ तथा वध पैदा हो जाते हैं। द्वापर में वेदव्यास वेद के चार भाग कर देते हैं।।२८।। समस्त द्वापरयुग में द्वापर की सन्ध्या तो ऐसी होती है कि उस समय धर्म गुणहीन हो जाता है।।२९।। उसी प्रकार द्वापर का अन्तिम एक चरण ही द्वापर की सन्ध्या कहा जाता है। द्वापर के अवशेष भाग को कलि के प्रारम्भ को ही द्वापर की सन्ध्या समझिये।।३०।। द्वापर के एक अंश के शेष रहने पर कलियुग की भी प्रतिपत्ति हो जाती है। जब प्रजा में हिंसा, असूया, असत्य बोलना, माया और तपस्वियों का वध प्रारम्भ हो जाता है।।३१।। ये सब कलियुग के स्वभाव हैं, जिन्हें प्रजा अपना साधन बनाती है। यही प्रजा का धर्म हो जाता है। असली धर्म तो नष्ट हो जाता है।।३२।। मन से कर्म से और स्तुति से जीविका सिद्ध हो अथवा न हो अर्थात् मन कर्म और

गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः।
स्थविराः केऽपि कौमारे म्रियन्ते वै कलौ प्रजाः॥३५॥
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुष्कृतैश्च दुरागमैः। विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम्॥३६॥
हिंसा माया तथेर्ष्याच क्रोधोऽसूया क्षमा नृषु।
तिष्ये भवंति जंतूनां रागो लोभश्च सर्वशः॥३७॥
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थे कलिमासाद्य वै युगम्। पूर्णे वर्षसहस्रे वै परमायुस्तदा नृणाम्॥३८॥
नाधीयते तदा वेदान्न यजं ते द्विजातयः। उत्सीदंति नराश्चैव क्षत्रियाश्च विशः क्रमात्॥३९॥
शूद्राणामंत्ययोनेस्तु संबंधा ब्राह्मणैः सह। भवंतीह कलौ तस्मिञ्छयनासनभोजनैः॥४०॥
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाखंडानां प्रवर्त्तकाः। गुणहीनाः प्रजाश्चैव तदा वै संप्रवर्त्तते॥४१॥
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलं चैव प्रणश्यति। शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः॥४२॥
राजवृत्ताः स्थिताश्चोराचोराचाराश्च पार्थिवाः। भृत्या एते ह्यसुभृतो युगांते समवस्थिते॥४३॥
अशीलिन्योऽनृताश्चैव स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः। मायाविन्यो भविष्यंति युगंति मुनिसत्तम॥४४॥
एकपत्न्यो न शिष्यंति युगांते मुनिसत्तम। श्वापदप्रबलत्वं च गवां चैव ह्युपक्षयः॥४५॥
साधूनां विनिवृत्तिं च विद्यास्तस्मिनयुगक्षये। तदा धर्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान्॥४६॥

स्तुति करने के बाद भी लोगों की जीविका होने में सन्देह नहीं बना रहता है। कलियुग में महामारी लगातार भूखमरी, अनावृष्टि, भय, घोर, देशों में उथल-पुथल, सर्वदा मची रहती है। स्मृतियों का लोक में कोई प्रमाण नहीं। लोग स्मृतियों को प्रमाण नहीं मानते।।३३-३४।। कोई बच्चा गर्भ में ही मर जाता है, कोई युवावस्था में मरता है, कुछ विचारे कुमारावस्था में ही मर जाते हैं, कलियुग में प्रजा की यही दशा होती है।।३५।। कलियुग में बुरी बात को अच्छा मानने वाले, बुरी बात को पढ़ने वाले, दुष्कर्म करने वाले, बुरे ग्रन्थों के अध्ययन करने वालों के द्वारा ब्राह्मणों के कर्म का भेद हो जाता है, जिससे प्रजा में भय पैदा हो जाता है।।३६।। कलियुग में मनुष्यों में सर्वत्र हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमा (क्षमा न करना) राग और लोभ पैदा हो जाता है।।३७।। कलियुग में लोगों में अत्यन्त क्षोभ पैदा हो जाता है। उस समय लोगों की आयु सौ वर्ष की हो जाती है।।३८।। उस समय लोग ब्राह्मण वेदों का अध्ययन नहीं करते और ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य यज्ञ नहीं करते तथा क्षत्रिय और वैश्य सहित सभी लोग नष्ट होने लगते हैं।।३९।। उस समय शूद्र वर्ण तथा अन्त्य जातियों के साथ ब्राह्मणो का शयन आसन एवं भोजनादि में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।।४०।। राजा लोग अधिकतर शूद्रजाति के हो जाते हैं और वे पाखण्ड फैलाते हैं। उस समय गुणहीन प्रजा सर्वत्र पैदा हो जाती है।।४१।। आयु, बुद्धि, बल, रूप और कुल नष्ट हो जाते हैं। शूद्र ब्राह्मणों का आचरण और ब्राह्मण शूद्रों का आचरण करने लगते हैं।।४२।। कलियुग के अन्त की स्थिति में राजा लोग चोर हो जाते हैं और चोर का आचरण करने वाले ही राजा बनते हैं। हे मुनि श्रेष्ठ! कलियुग के अन्त में नौकर लोग भक्तिविहीन हो जाते हैं। स्त्रियां चरित्रहीन असत्य बोलने वाली, मद्य और मांस खाने वाली और मायावी हो जायेंगी।।४३-४४।। हे मुनिश्रेष्ठ कलियुग के अन्त में एक पत्नी वाला कोई पुरुष नहीं होता है। सर्वत्र कुत्तों की अधिकता हो जायेगी और गौओं का नाश हो जायेगा।।४५।। उस युग के अन्त में साधु पुरुषों की विद्या से विनिवृत्ति हो जायेगी। उस समय

चातुराश्रमशैथिल्यो धर्मः प्रविचरिष्यति।
तदा ह्यल्पफला भूमिः क्वचिच्चापि महाफला॥४७॥
न रक्षितारो भोक्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः। युगान्ते च भविष्यंति स्वरक्षणपरायणाः॥४८॥
अरक्षितारो राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः। शूद्राभिवादिनः सर्वे युगान्ते द्विजसत्तमाः॥४९॥
अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजास्तथा। प्रमदाः केशशूलाश्च युगान्ते समुपस्थिते॥५०॥
तपायज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः। यतयश्च भविष्यंति बहवोऽस्मिन्कलौ युगे॥५१॥
चित्रवर्षी यदा देवस्तदा प्राहुर्युगक्षयम्। सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यंत्यधमे युगे॥५२॥
भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यं विक्रीणते जनाः। कुशीलचर्यापाखंडैर्वर्याधरूपैः समावृतम्॥५३॥
पुरुषाल्पंबहुस्त्रीकं युगान्ते समुपस्थिते। बाहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम्॥५४॥
अव्याकर्ता क्रूरवाक्या नार्जवानानसूयकः। न कृते प्रतिकर्त्ता च युगे क्षीणे भविष्यति॥५५॥
अशंका चैव पतिते युगान्ते तस्य लक्षणम्। ततः शून्या वसुमती भविष्यति वसुन्धरा॥५६॥
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यंति शासकाः। हर्त्तारः पररत्नानां परदारिविमर्शकाः॥५७॥
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहसप्रियाः। प्रनष्टचेष्टना धूर्त्ता मुक्तकेशास्त्वशूलिनः॥५८॥
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये। शुक्लदंता जिताक्षाश्च मुंडाः काषायवाससः॥५९॥

धर्म का महान् अन्त हो जायेगा। वह दुर्लभ और बहुत दान मूल वाला बन जायेगा।।४६।। उस समय धर्म चारों आश्रमों से शिथिल होकर चलेगा। उस समय भूमि कहीं कोई फल न देने वाली और कहीं बहुअधिक फल देने वाली हो जायेगी।।४७।। कलियुग के अन्त में राजा लोग बलिभाग (जो देवों को बलियां दी जाती हैं) के रक्षा करने वाले नहीं होंगे, खाने वाले होंगे। अर्थात् राजा लोग पशुवध की रक्षा नहीं करेंगे; अपितु उनको खाने वाले हो जायेगे तथा वे राजा लोग अपनी रक्षा में ही सदा लगे रहेंगे।।४८।। कलियुग के अन्त में राजा लोग रक्षा न करने वाले हो जायेंगे और ब्राह्मण शूद्रों के उपजीवी हो जायेंगे। उस समय में ब्राह्मण शूद्रो के अभिवादन करने वाले हो जायेंगे।।४९।।

उस युग के अन्त में जनपद ऊँची ऊँची अटारियों वाले तथा ब्राह्मण शिवशूल हो जायेंगे तथा स्त्रियां बड़े-बड़े केश रखने वाली हो जायेंगी।।५०।। ब्राह्मण सब तप और यज्ञ के फलों के बेचने वाले हो जायेंगे और इस कलियुग में संन्यासी बहुत हो जायेंगे।।५१।। जब देवता चित्त में उपस्थित रहने वाले होंगे, तब उसे युग का क्षय कहते हैं। उस अधम युग में सब मनुष्य व्यापार करने लगेंगे।।५२।। उस समय बहुत अधिक कपटपूर्ण तौल द्वारा वस्तुयें बेचने लगेंगे। सभी लोग चरित्रहीन आचरण पाखण्ड को व्याधरूप से युक्त हो जायेंगे।।५३।। उस युग में पुरुषों की कमी और स्त्रियों की अधिकता हो जायेगी। लोक में एक दूसरे से माँगने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ जायेगी।।५४।। कलियुग के क्षीण होने पर अव्याकर्ता (विना व्याकरण के अशुद्ध भाषा बोलने वाले) क्रूर वाक्य बोलने वाले रहेंगे, अकोमल स्वभाव वाले रहेंगे और निन्दा करने वाले रहेंगे और न कृत कार्य का अहसान न मानने वाला होंगो।।५५।।

उस युग के पतित होने पर अशंका ही रह जाती है। उसके बाद यह पृथ्वी धन दौलतों को धारणकरने वाली हो जाती है।।५६।। रक्षा करने वाले और न रक्षा करने वाले शासक पैदा होंगे। दूसरे के रत्नों को चुराने वाले, दूसरो की स्त्रियों के साथ सम्भोग करने वाले पैदा होंगे।।५७।। उस युग में कामात्मा, दुष्टात्मा, अधम, साहसप्रिय, चेतनाहीन, धूर्त, खुले केश वाले, चूल धारण करने वाले लोग, पैदा होंगे।।५८।। उस युग के क्षय काल में सोलह

शूद्रा धर्मे चरिष्यंति युगान्ते समुपस्थिते। सस्यचोरा भविष्यंति तथा चैलापहारिणः।।६०।।
चोराच्चोराश्च हर्त्तारो हर्तुर्हर्त्ता तथापरः। ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते।।६१।।
कीटमूषकसर्पाश्च धर्पयिष्यंति मानवान्। अभीक्ष्णं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तथा।।६२।।
कौशिकान्प्रतिवत्स्यंति देशाः क्षुद्भयपीडिताः। दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं तदा।।६३।।
दृश्यंते च न दृश्यंते वेदा कलियुगेऽखिलाः। तत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलाधर्मपीडिताः।।६४।।
काषायिणोऽथ निर्ग्रंथा तथा कापालिकाश्च ह। वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे।।६५।।
वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाखण्डाः परिपंथिनः। उत्पद्यंते तदा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे।।६६।।
अधीयते तदा वेदाञ्छूद्रा धर्मार्थकोविदाः। यजंते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः।।६७।।
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा इत्वान्ये च परस्परम्। अपहृत्य तथाऽन्योन्यं साधयंति तदा प्रजाः।।६८।।
दुःखप्रवचनाल्पायुर्देहाल्पायुश्च रोगतः। अधर्माभिनिवेशित्वात्तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्।।६९।।
प्रजासु भ्रूणहत्या च तदा वैरात्प्रवर्त्तते। तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते।।७०।।
तदा चाल्पेन कालेन सिद्धिं गच्छंति मानवाः।
धन्या धर्मं चरिष्यंति युगान्ते द्विजसत्तमाः।।७१।।

वर्ष से कम की आयु में सन्तान की उत्पत्ति लोग करेंगे।। युग के अन्त काल के आने पर श्वेत दांत वाले अपने को जितेन्द्रिय प्रकट करने वाले, गेरुआ वस्त्र पहनने वाले शूद्र लोग धर्म का आचरण करेंगे और वे अन्न तथा वस्त्रों के चोर होंगे।।६०।। चोर से चुराने वाले चोर पैदा होंगे तथा फिर लुटेरों से भी लूटने वाले लुटेरे पैदा होंगे। लोक में लोग ज्ञान और कर्म सर्वथा निवृत्त होकर निष्क्रिय (निष्कर्मण) हो जायेंगे।।६१।। कीड़े, चूहे, सर्प मनुष्यों को पीड़ित करेंगे। कुशलता, आरोग्य और सामर्थ्य दुर्लभ होंगी।।६२।। जबकि देश भूखभय से पीड़ित होंगे, तब वहाँ उल्लुओं को बसायेंगे। दुःख से पीड़ित वहाँ के लोगों की आयु अधिक से अधिक सौ वर्ष की होगी।।६३।। उस समय कलियुग में सभी वेद कहीं पर दिखायी पड़ते हैं, कहीं नहीं दिखाई पड़ते। वे वेद कष्ट प्राप्त करते हैं तथा यज्ञ केवल अधर्म से पीड़ित होते हैं।।६४।। उस समय कलियुग के पूरी तरह व्याप्त होने पर काषाय वस्त्र धारण करने वाले साधु संन्यासी विना ग्रन्थ पढ़ने वाले और कपाल धारण करने वाले होंगे। उनमें कुछ वेद विक्रय करने वाले होंगे तथा कुछ तीर्थों का विक्रय करने वाले होंगे। दूसरे के नाम पर किताब लिखना वेद विक्रय है तथा तीर्थों में प्राप्त दक्षिणा वहीं न लगाकर उसको लूटना तीर्थविक्रय है।।६५।।

उस कलियुग के समाप्त होने पर वर्ण और आश्रमों के अन्य कुपन्थगामी पाखण्डी पैदा हो जाते हैं।।६६।। उस समय शूद्र लोग वेदों को पढ़ते हैं और धर्म और अर्थ के जानने वाले हो जाते हैं और शूद्र जाति में पैदा होने वाले राजा लोग अश्वमेध के द्वारा यज्ञ करते हैं।।६७।। उस समय प्रजा स्त्री, बाल और गौ वध करके परस्पर अपघात करके एक दूसरे के कार्य सिद्ध करते हैं।।६८।। दुःख, धोखा, अल्पायु अल्पशरीर और रोग से युक्त होना तथा अधर्म से युक्त होने के कारण अन्धकार से आवृत होना कलियुग में प्रसिद्ध है।।६९।। उस समय प्रजाओं भ्रूणहत्या और आपस में वैर प्रवृत्त हो जाता है और उस वैर के कारण आयु, बल और रूप कलि को प्राप्त कर नष्ट होने लगते हैं।।७०।। उस समय कम तप में लोग सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। उस युग के अन्त में वे ब्राह्मण धन्य हैं, जो वेद और स्मृति से उत्पन्न धर्म का विना किसी प्रकार की निन्दा के पालन करते हैं। त्रेतायुग में जिस किसी पुण्य

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरंत्यनसूयकाः। त्रेतायामाब्दिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः॥७२॥
यथाशक्ति चरन्प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात्कलौ। एषा कलियुगावस्था संध्यांशं तु निबोधत॥७३॥
युगेयुगे तु हीयंते त्रिस्त्रिपादास्तु सिद्धयः। युगस्वभावात्संध्यासु तिष्ठन्तीह तु यादृशः॥७४॥
संध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादशेषाः प्रतिष्ठिताः।
एवं संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतिके॥७५॥
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे। समाः स विंशतिः पूर्णाः पर्यटन्वै वसुंधराम्॥७७॥
अनुकर्षन्स वै सेनां सवाजिरथकुंजराम्। प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्त्रशः॥७८॥
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान्हंति स्मसर्वशः। सह वा सर्वशश्चैव राज्ञस्ताञ्छूद्रयोनिजान्॥७९॥
पाखण्डांस्तु ततः सर्वान् निःशेषं कृतवान्विभुः।
नात्यर्थं धार्मिका ये च तान्सर्वान्हंति सर्वशः॥८०॥
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये च ताननुजीविनः। उदीच्यानमध्यदेश्यांश्च पर्वतीयांस्तथैव च॥८१॥
प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विंध्यपृष्ठचरानपि। तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह॥८२॥
गांधारान्पारादांश्चैव पह्लवान्यवनाञ्शकान्। तुषारान्बर्बरांश्चीनाञ्छूलिकान्दरदान् खशान्॥८३॥
लंपाकारान्सकतकान्किरातानां च जातयः। प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामंतकृत्प्रभुः॥८४॥
अदृष्टः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम्। माधवस्य तु सोंऽशेन देवस्येह विजज्ञिवान्॥८५॥
पूर्वजन्मनि विख्यातः प्रमतिर्न्नाम वीर्यवान्। गोत्रतो वै चंदमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः॥८६॥

कर्म का फल एक वर्ष में प्राप्त होता है, वही द्वापर में एक मास में और कलियुग की अवस्था है। अब कलियुग के सन्ध्यांश का वर्णन सुनिये।।७२-७३।। युग के बाद दूसरे युग में सिद्धियां अपने पिछले युग की अपेक्षा तीन चरणों से हीन हो जाती है। अर्थात् केवल एक चरणमात्र शेष रह जाती है। जैसा युग का स्वभाव होता है, उसी के अनुसार वे चौथाई रहता है, जैसे कि सतयुग में सद्गुण चौथाई रहेंगे तो कलियुग में जो भी थोड़े बहुत पुण्यादि शेष थे, वे सब कलियुग के सन्ध्यांश उसके भी चौथाई रह जायेंगे। इस प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तर में कलियुग के सन्ध्यांशकाल के उपस्थित होने पर उन असत्पुरुषों को दण्ड देने वाला भृगुवंशियों की मृत्यु के बाद उसी वंश में उत्पन्न हुआ चन्द्रमा के गोत्र का प्रमति नामक राजा भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न होता है। वह इस भूमण्डल पर सैकड़ों शस्त्रास्त्रधारी ब्राह्मणों के द्वारा घोड़े रथ और हाथी वाली विशाल सेना की सहायता से पूरे बीस वर्ष तक म्लेच्छों का संहार करता है।।७४-७८½।। उस राजा ने पहले सब ओर फैले हुए शूद्र राजाओं को मारा और सब पाखण्डों को नष्ट किया तथा जो धर्म का उल्लंघन करने वाले थे, उनका नाश किया। इसके अलावा जो वर्ष संकरता से राजा उत्पन्न हुए थे तथा जो उनके अनुजीवी थे, उनका संहार करता है।।७८½-८०½।। इसके बाद वह राजा उत्तरदेशी, मध्यदेशीय, पर्वतीय, पूर्वदेशीय, पश्चिमदेशीय तथा विन्ध्यपर्वतीय उसी प्रकार दक्षिण देशीय—द्रविड और सिंहलों के साथ गान्धार, पारद, पह्लव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, चीन, चूलिक, दरद, खश, देशों लौर लंपक, सकतक, किरात की जातियों वाले बलवान् म्लेच्छों का अन्त करता है।।८०½-८४।। और फिर अजेय वह राजा वसुधा पर विचरण करता था। वह राजा भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न हुआ था।।८५।। पूर्वजन्म में वह राजा पराक्रमी प्रमति

द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रांतो विंशतीः समाः। विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानवानेव सर्वशः॥८७॥
कृत्वा बीजावशेषं तु पृथ्व्यां क्रूरेण कर्मणा। परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु॥८८॥
सुसाधयित्वा वृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान्। गंगायमुनायोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः॥८९॥
नतो व्यतीते कल्पे तु सामान्ये सहसैनिकः। उत्साद्य पार्थिवान्सर्वान्म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः॥९०॥
तत्र संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतुके।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित्॥९१॥
अपग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टास्तु वृंदशः। उपहिंसंति चानयोन्यं पोथयंतः परस्परम्॥९२॥
अराजके युगवशात्संक्षये समुपस्थिते। प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः॥९३॥
व्याकुलाश्च परिभ्रांतास्त्यक्त्वा दारान्गृहाणि च।
स्वान्प्राणाननपेक्षंतो निष्कारणसुदुःखिताः॥९४॥
नष्ट श्रौते स्मृतौ धर्मे परस्परहतास्तदा। निर्मर्यादा निराक्रंदा निःस्नेहा निरपत्रपाः॥९५॥
नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वकाः पंचविंशतिम्। हित्वा पुत्रांश्च दारांश्च विषादव्याकुलेंद्रियः॥९६॥
अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः। प्रत्यंतांस्ता निषेवंते हित्वा जनपदान्स्वकान्॥९७॥
सरितः सागरानूपान्सेवंते पर्वतांस्तथा। मांसैर्मूलफलैश्चैव वर्तयंतः सुदुःखिताः॥९८॥
चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः। वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः॥
एतां काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्ततः॥९९॥

नाम से विख्यात था। वह सर्वसमर्थ राजा पूर्वकलियुग मे चन्द्रमा के गोत्र से उत्पन्न हुआ था।।८६।। ३२ वर्ष की आयुमें २० वर्षों तक शासन करते हुए, वह राजा समस्त प्राणियों को विघ्नरहित करता हुआ पृथ्वी को क्रूर कर्म से निर्बीज करके अर्थात् पृथ्वी पर क्रूर कर्म का समूल नाश करके, आपस में आकस्मिक कोप के कारण उन अधार्मिक (पापी) शूद्रों को दण्ड देकर गंगा और यमुना के मध्य में अपने सहचर अनुयायियों के साथ शरीर त्याग करता है।।८७-८९।। उसके बाद उस सन्ध्यांश काल में हजारों शूद्रवंशीय राजाओं और सभी म्लेच्छों को नष्ट कर सैनिकों और मन्त्रियों के साथ राजा प्रमति के स्वर्गस्थ हो जाने पर जहाँ तहाँ थोड़ी संख्या में प्रजायें शेष रह जाती हैं।।९०-९१।। उसके बाद शासकाभाव में प्रजायें लोभाविष्ट हो जाती हैं तथा परस्पर एक दूसरे की निन्दा करते हुए उपहास करते हैं।।९२।। अराजक स्थिति समय के अनुसार प्रजा के संशय के उपस्थित हो जाने पर समस्त प्रजा में परस्पर भय व्याप्त हो जाता है।।९३।।

और फिर सभी लोग व्याकुल और परिभ्रान्त होकर पत्नी और घरों को छोड़कर विना कारण के दुःखी हो जाते हैं।।९४।। वेद और स्मृतियों के धर्म के नष्ट हो जाने पर सारे लोग मर्यादा, दया, लज्जा और स्नेहरहित हो जाते हैं।।९५।। धर्म के नष्ट हो जाने पर लोगों की आयु पच्चीस वर्ष की ही रह जाती है। वे कम आयु में ही पुत्र पत्नी का छोड़कर विषाद से व्याकुलेन्द्रिय हो जाते हैं।।९६।। लगातार वर्षा न होने से पीड़ित वे जीविका की आशा छोड़ देते हैं और अपने अपने जनपदों को छोड़कर समीपस्थ देशों में जाकर बसते हैं और नदियों, पर्वतों सागरों के किनारों पर रहकर मांस, कन्दमूल और फलों के जीवन व्यतीत करते हुए दुःखित होते हैं।।९७-९८।। चीरकर्म के

जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन्।
विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणात्॥१००॥
साम्यावस्थात्मको बोधः संबोधद्धर्मशीलता।
तासूपशमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम्॥१०१॥
अहोरात्रं तदा तासां युगान्ते परिवर्त्तिनि। चित्तसंमोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत्॥१०२॥
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्त्तत। प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन्पूते कृतयुगे तु वै॥१०३॥
उत्पन्नाः कलिशिष्टासु प्रजाः कार्तयुगास्तदा। तिष्ठंति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विचरंति च॥१०४॥
सह सप्तर्षिभिश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः। ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थे ये स्मृता इह॥१०५॥
कलिजैः सह ते संति निर्विशेषास्तदाभवन्। तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयंतीतरेषु च॥१०६॥
वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्त्तो द्विधा तु सः।
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्तंते वै प्रजाः कृते॥१०७॥
श्रौतस्मार्त्ते कृतानां च धर्मे सप्तर्षिदर्शिते। केचिद्धर्मव्यवस्थार्थे तिष्ठंतीहायुगक्षयात्॥१०८॥
मन्वंतराधिकारेषु तिष्ठंति मुनयस्तु वै। यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपेन तु॥१०९॥

धारण स्त्रीपुत्रादि से विरहित, मर्यादाहीन, वर्ण और आश्रम से परिभ्रष्ट घोर, घोर वर्ण संकरता में उत्पन्न वे प्राणी इस सीमा को प्राप्त कर बहुत कम शेष रह जाते हैं।।९९।। कलियुग के अन्त में प्रजा वृद्धावस्था, रोग, भूख से व्याकुल दुःख से निर्वेद को प्राप्त करने लगती है। निर्वेद के कारण साम्यावस्था का बोध होता है। अर्थात् प्रजा में सर्वत्र दुःख ही दुःख होने से निर्वेद होता है तथा जब निर्वेद होता है, तब मनुष्य परस्पर समानता का विचार करता है तथा समानता का विचार करने से विशेष प्रकार का ज्ञान यथार्थ ज्ञान होता है और यथार्थ ज्ञान (सम्बोध) से धर्मशीलता पैदा होती है अर्थात् लोग धर्म की ओर उन्मुख होते हैं तथा फिर कलियुग के अन्त में दिनरात उन शेष प्रजाओं में परिवर्तन होने लगता है, तब उन प्रजाओ के चित्त का सम्मोहन कर सोये हुए मत्त व्यक्ति के समान भावी अर्थ की भाँति बलपूर्वक सतयुग की प्रवृत्ति हो जाती है।।१००-१०२½।। उसके बाद पवित्र सत युग के प्रवृत्त हो जाने पर कलियुग की अवशिष्ट प्रजाओं से सतयुग की प्रजाओं की उत्पति होती हैं। अर्थात् घोर कलियुग के अन्त में सतयुग आता है।।१०२-१०४।। उस समय जब सतयुग की उत्पत्ति हो जाती है, तब सप्तर्षियों के साथ अदृष्ट सिद्ध पुरुष उपस्थित होते हैं और विचरण करने लगते हैं। तथा वे सिद्धपुरुष सप्तर्षियों के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जो बीजार्थ रूप में स्मरण किये गये, उनकी वे ऋषिगण पुनः व्यवस्था करते हैं।।१०५।।

वे कलि में उत्पन्न होने वालों के साथ उस समय बिल्कुल समाप्त हो चुके थे। उन सबको सप्तर्षि लोग धर्म का उपदेश करते हैं।।१०६।। तथा उनको तथा दूसरों को वर्ण और आश्रम के आचरण युक्त वेद और स्मृतियों के धर्म का उपदेश देते हैं, जिससे सतयुग की प्रजायें उन क्रियाशील कार्यों में प्रवृत होती है अर्थात् सब प्रजा वेदस्मृतिविहित वर्णाश्रम धर्म को अपने व्यवहार का विषय बनाती है।।१०७।। इस प्रकार सतयुग मे पैदा होने वाले सप्तर्षि द्वारा दिखाये श्रौत और स्मार्त धर्म में ये सप्तर्षिगण किसी धर्म की व्यवस्था बनाने के लिए युगक्षय से ही विद्यमान रहते हैं।।१०८।। तथा सभी मन्वन्तरों में धर्म की व्यवस्था करने के लिए ये ऋषिगण उपस्थित होते हैं। वे ऋषिगण उसी प्रकार उपस्थित होते हैं, जिस प्रकार कि सूर्य के ताप से ग्रीष्मकाल में भस्म हुए तृण समूहों के मूल भाग में पहली

वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु संभवः। तथा कार्तयुगानां तु कलिजेष्विह संभवः॥११०॥
एवं युगो युगस्येह संतानस्तु परंस्परम्। वर्त्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावनमनवंतरक्षयः॥१११॥
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मोऽर्थः काम एव च। युगेष्वेतानि हीयंते त्रित्रिपादाः क्रमेण च॥११२॥
ससंध्यांशेषु हीयंते युगानां धर्मसिद्धयः। इत्येष प्रतिसंधिर्यः कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः॥११३॥
चतुर्युगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम्। एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्राद्गुणीकृता॥११४॥
ब्रह्मणस्तदहः प्रौक्तं रात्रिश्चैतावती स्मृता। अत्रार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात्॥११५॥
एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम्। एषा चतुर्युगानां च गुणिता ह्येकसप्ततिः॥११६॥
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरंतरमुच्यते। चतुर्युगे यथैकस्मिनभवतीह यथा तु यत्॥११७॥
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वद्यथाक्रमम्। सर्गे सर्गे तथा भेदा उत्पद्यंते तथैव तु॥११८॥

पंचत्रिंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकाः स्मृताः।
तथा कल्पा युगैः सार्द्धं भवंति सह लक्षणैः।
मन्वंतराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम्॥११९॥

यथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात्।
तथा न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः॥१२०॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः॥१२१॥

बरसात में ही अंकुर फूट जाते हैं। उसी प्रकार कलिकाल के अन्त में थोड़ी बची हुई कलि की प्रजाओं से सतयुग की प्रजायें उत्पन्न हो जाती हैं।।१०९-११०।। इस प्रकार एक युग का दूसरा युग परस्पर सन्तान होता है अर्थात् एक युग से दूसरा युग पैदा होता है। दूसरे युग की प्रजाओं की पहले युग की प्रजाओं से उत्पत्ति होती है।।१११।। सुख, आयु, बल, रूप, धर्म, अर्थ और काम ही ये सभी युगो में एक एक चरण कम होते चले जाते हैं और युगों की धर्मसन्धियां उस युग की सन्ध्या और सन्ध्यांश में विलुप्त हो जाती है। हे ऋषियों यह युगों की प्रतिसंधि मैंने आपको बता दी है।।११२-११३।।

सब चारों युगों का इसके द्वारा ही प्रसाधन (ज्ञान) होता है। यह चारों युगों का व्यवहार है। इन चारों युगों के एक हजार बार बीत जाने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है और उतने ही समय की रात होती है।।११४-११४½।। यहाँ चेतनता और जड़ता भूततत्त्वों में युग के नष्ट होने तक रहती है, यही तो सब युगों का लक्षण कहा गया है। यह चारों युगों की गुणता ७१ है अर्थात् ७१ मन्वन्तर में चारों युगों की आवृत्ति होती है, तब मन्वन्तर कहा जाता है।।११४½-११६½।।

एक चतुर्युग में जिस प्रकार जो जैसे होता है, वह वैसा ही, अन्य चतुर्युगों में उसी के समान क्रमानुसार होता है; परन्तु एक सृष्टि की अपेक्षा दूसरी सृष्टि में भेद उत्पन्न हो जाते हैं।।११६½-११८।। वे भेद २५ होते हैं, न कम और न अधिक होते हैं तथा कल्प युगों के साथ समान लक्षण वाले होते हैं। सब मन्वन्तरों का यही लक्षण है।।११९।। इस प्रकार सभी युगों का परिवर्तन युगस्वभाव से बहुत प्राचीन काल से प्रवृत्त समझना चाहिये। क्षय और उदय इन दो अवस्थाओं में जीवलोक वैसा ही अर्थात् समान नहीं स्थित रह सकता। वह परिवर्तित रहता हुआ स्थित रहता है।।१२०।। इस प्रकार मैंने यह युगों का संक्षेपत: लक्षण कहा है।।१२१।।

अतीतानागतानां हि सर्वमन्वंतरेष्विह। मन्वंतरेण चैकेन सर्वाण्येवांतराणि वै॥१२२॥
ख्यातानीह विजानीध्वं कल्पं कल्पेन चैव ह।
अनागतेपु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता॥१२३॥
मन्वंतरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह। तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवंत्युत॥१२४॥
देवा ह्यष्टविधा ये वा इह मन्वंतरेश्वराः। ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः॥१२५॥
एवं वर्णाश्रमाणां तु प्रतिभागं पुरा युगे। युगस्वभावांश्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः॥१२६॥
वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः। अनुपंगात्समाख्याताः सृष्टिसर्गं निबोधत।
विस्तरेणानुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह॥१२७॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषंगपादे चतुर्युगाख्यानं नामैकत्रिंशतमोऽध्यायः॥३१॥

भूतकाल और भविष्यकाल के सभी मन्वन्तरों में इस ब्रह्माण्ड मे यही स्थिति रहती है। अतः एक मन्वन्तर के वर्णन के समान सभी में उसी तरह वर्णन समझना चाहिये॥१२२-१२३॥ भूतकाल और भविष्यकाल के सभी मन्वन्तरों में सब अभिमानी देवता नाम रूप से समान होते हैं। वे आठ प्रकार के देव ऋषि तथा मनुगण सब समान प्रयोजन वाले और सब मन्वन्तरों के ईश्वर (स्रष्टा) होते हैं॥१२४-१२५॥ इस प्रकार वर्ण और आश्रमों के विशेष विभाग प्राचीन युग में युगस्वभाव के अनुसार सदैव प्रभु सम्पादित करते हैं॥१२६॥ यहाँ तक वर्ण आश्रमों के विभाग युग और युगसिद्धियों का अनुषङ्ग से वर्णन किया जा चुका है। अब तक सृष्टि सर्ग का वर्णन सुनिये। अब मैं विस्तार से पूर्व से लेकर सभी युगों में स्थिति को बताऊँगा॥१२७॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ३१वां अध्याय चतुर्युगो का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

युगप्रजालक्षणऋषिप्रवर वर्णनम्

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

सूत उवाच

युगेषु यास्तु जायन्ते प्रजास्ता मे निबोधत। आसुरी सर्पगांधर्वा पैशाची यक्षराक्षसी।।१।।
यस्मिन्युगे च संभूति स्तासां यावच्च जीवितम्। पिशाचासुरगंधर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।।२।।
परिणाहाच्छ्रयैस्तुल्या जायंते ह कृते युगे। षण्णवत्यंगुलोत्सेधो ह्यष्टानां देवजन्मनाम्।।३।।
स्वेनांगुलप्रमाणेन निष्पन्नेन च पौष्टिकात्। एतत्स्वाभाविकं तेषां प्रमाणमिति कुर्वते।।४।।
मनुष्या वर्तमानास्तु युगं संध्यांशकेष्विह। देवासुरप्रमाणं तु सप्तसप्तांगलादसत्।।५।।
अंगुलानां शतं पूर्णमष्टपंचाशदुत्तरम्। देवासुरप्रमाणं तु उच्छ्रयात्कलिजैः स्मृतम्।।६।।
चत्वारश्चाप्यशीतिश्च कलिजैरंगुलैः स्मृतः। स्वेनांगुलिप्रमाणेन ऊर्द्धवमापादमस्तकात्।।७।।
इत्येष मानुषोत्सेधो ह्रसतीह युगांशके। सर्वेषु युगकालेषु अतीतानागतेष्विह।।८।।
स्वेनांगुलिप्रमाणेन अष्टतालः स्मृतो नरः। आपादतलमस्तिष्को नवतालो भवेत्तु यः।।९।।
संहता जानुबाहुस्तु स सुरैरपि पूज्यते। गवाश्वहस्तिनां चैव महिषस्थावरात्मनाम्।।१०।।

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-३२

युग प्रजा लक्षण ऋषिप्रवर वर्णन

सूत जी बोले—चारों युगों के आसुरी, सर्प, गान्धर्व, पैशाची, यक्ष और राक्षसी जो भी प्रजायें होती हैं तथा जिस युग में उनकी उत्पत्ति होती है और फिर जब तक जीवित रहते हैं, वह मैं आप लोगों को बता रहा हूँ। सुनिये।।१-१½।। पिशाच, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प ये सब विस्तार और वृद्धियों से सतयुग में समान होते हैं।।१½-२½।। आठ देवों की ऊँचाई ९६ अंगुल होती है, अपनी ही अंगुलियों के प्रमाण से ही नाम की पुष्टि की जाती है। यह प्रमाण स्वाभाविक है, इसी से नाम की जाती है।।२½-४।। इस संसार में युग, युगों की सन्ध्या तथा सन्ध्यांशों में जो मनुष्य वर्तमान रहते हैं, उनका प्रमाण देवताओं और असुरों के प्रमाण में सात सात अंगुल कम होता है अर्थात् देवों और असुरों से मनुष्य सात अङ्गुल कम लम्बे होते हैं।।५।।

कलियुग में उत्पन्न देवों और असुरों की ऊँचाई का प्रमाण १५८ अंगुल का कहा गया है।।६।। कलियुग में उत्पन्न मनुष्य की ऊँचाई अपने अंगुल प्रमाण से पैर से लेकर मस्तक तक ८४ अंगुल की होती है।।७।। यही मानव की ऊँचाई तथा युगों के अंशकों में अर्थात् युगों के कुछ अंश शेष रहने पर और कम हो जाती है। यही स्थिति सब बीते हुए और आने वाले युगों में रहती है।।८।। अपने अंगुल प्रमाण से मनुष्य आठ ताल का होता है, ताल अर्थात् आठ वित्ता = ४ हाथ तथा पैर से लेकर मस्तक तक जो मनुष्य नौ ताल का होता है, वह आजानुबाहु पुरुष देवताओं द्वारा भी पूजा जाता है। आजानुबाहु उसे कहा जाता है, जिसके हाथ घुटनों से नीचे तक पहुँच जाते हैं।।९-

कर्मणैतेन विज्ञेये ह्रासवृद्धी युगे युगे। षट्सप्तयंगुलोत्सेधः पशूनां ककुदस्तु वै॥११॥
अंगुलाष्टशतं पूर्णमुत्सेधः करिणां स्मृतः। अंगुलानां सहस्रं तु चत्वारिंशांगुलैर्विना॥१२॥
पञ्चाशता यवानां च उत्सेधः शाखिनां स्मृतः। मानुषस्य शरीरस्य सन्निवेशस्तु यादृशः॥१३॥
तल्लक्षणस्तु देवानां दृश्यते तत्त्वदर्शनात्। बुद्ध्यातिशययुक्तश्च देवानां काय उच्यते॥१४॥
तथा सातिशयश्चैव मानुषः काय उच्यते। इत्येते वै परिक्रांता भावा ये दिव्यमानुषाः॥१५॥
पशूनां पक्षिणां चैव स्थावराणां च सर्वशः।
गावो ह्यजावयोऽश्वाश्च हस्तिनः पक्षिणो नगाः॥१६॥
उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्विहसर्वशः। देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुनः॥१७॥
यथाशयोपभोगास्तु देवानां शुभमूर्त्तयः। तेषां रूपानुरूपैस्तु प्रमाणैः स्थाणुजंगमैः॥१८॥
मनोज्ञैस्तत्र भावैस्ते सुखिनो ह्युपपेदिरे। अतः शिष्टान्प्रवक्ष्यामि सतः साधूंस्तथैव च॥१९॥

९½।। गौ, अश्व, हाथी और भैंसे इन स्थावरों का घटना और बढ़ना प्रत्येक युग में कर्म के अनुसार होता है[1]।।९½-१०½।। पशुओ मे बैल की ऊँचाई ७६ अंगुल लगभग साढ़े तीन हाथ अर्थात् आदमी के बराबर की निश्चित है। एक सौ आठ अंगुल (९ हाथ) की ऊँचाई हाथी की कही गयी है। ४० अंगुल कम एक हजार अर्थात् ९६० अंगुल (चालीस हाथ) वृक्षों की ऊँचाई तथा पचास अंगुल (सवा चार हाथ) अश्वों की ऊँचाई कही गयी है[2]।।१०½-१२½।। मनुष्य के शरीर की जैसी बनावट है, ठीक वैसी देवताओं के शरीर की भी होती है। देवताओं का शरीर केवल बुद्धिविशिष्ट कहा जाता है, यह तत्त्वदर्शन से सिद्ध[3] है।।१२½-१४।। तथा जिन मनुष्यों का शरीर बुद्धि की अधिकता से युक्त होता है, ऐसे भावों वाले मनुष्य दिव्य मनुष्य कहे जाते हैं। पशुओं और पक्षियों का तथा सभी स्थावर में गौ, बकरे, भैंसे, घोड़े, हाथी, पक्षी, एवं न चलने वाले वृक्ष आदि सब इस संसार मनुष्य की याज्ञिक क्रियाओं के लिए उपयुक्त हैं। यज्ञों में उपयोग किये गये वे सभी देवस्थानों में उसी रूप वाले होकर पुनः उत्पन्न होते हैं।।१५-१७।। वे सभी उपर्युक्त जीवगण देवताओं की शुभ मूर्तियां हैं। ये सभी स्थावर जङ्गम जीवों के उपयुक्त प्रमाणों के अनुरूप तथा उन्हीं के रूप के अनुसार मनोहर रूप धारण कर मनोहर भावों से सुखी रहते हैं।।१८-१८½।। अब इसके बाद मैं शेष साधु सन्तों के बारे में बताऊँगा। सत् यह ब्रह्म का शब्द है, उस ब्रह्म वाले होने के कारण अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ

१. यह यहाँ के विकासवाद का सिद्धान्त सिद्ध होता है; क्योंकि जो प्राणी जैसा कार्य किया तदनुसार उसके शरीर की संरचना हो गयी जैसे कि जो ऊपर को मुँह करके पेड़ की पत्तियों को खाने लगे, उनकी गरदन लम्बी हो गयी, जो भूमि पर घास खाने लगे, उनकी गरदन छोटी हो गयी।

२. वायु पुराण में हयानां शब्द है तथा ब्रह्माण्ड पुराण में 'यवनां' शब्द आया है। अतः ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार इसका यह अर्थ भी हो जाता है कि वृक्षों की अधिकतम ऊँचाई ९६० अंगुल होती है तथा कम से कम ५० यव की भी होती है। यव-एक अंगुल को १/८ भाग होता है। अतः लगभग ७ अंगुल हुआ तथा ७ अंगुल वृक्ष वनस्पति की सबसे कम ऊँचाई कहना उचित ही है।

३. यहाँ पर ब्रह्माण्डपुराण मे एक अत्यन्त महत्त्पूर्ण बात कही गयी है, जिससे इस भ्रम का निवारण हो जता है कि देवता लोग कहीं किसी अन्य ग्रह या स्वर्ग में होते हैं। अतः यही हमारे बीच में ही जो मनुष्य बुद्धि में तेज है, वे ही देवता है।

सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तद्वंतो ये भवंत्युत। साजात्याद्ब्रह्मणस्त्वेते तेन सन्तः प्रचक्षते॥२०॥
दशात्मके ये विषये कारणे चाष्टलक्षणे। न क्रुध्यंति न हृष्यंति जितात्मानस्तु ते स्मृताः॥२१॥
सामान्येषु तु धर्मेषु तथा वैशेषिकेषु च। ब्रह्मक्षत्रविशो यस्माद्युक्तास्तस्माद्द्विजातयः॥२२॥
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गतौ सुखचारिणः। श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मज्ञ उच्यते॥२३॥
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः। गृहाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते॥२४॥

साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः।
यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात्॥२५॥

एवमाश्रमधर्माणां साधनात्साधवः स्मृताः। गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्था यतिस्तथा॥२६॥
अथ देवा न पितरो मुनयो न च मानुषाः। अयं धर्मो ह्ययं नेति विंदते भिन्नदर्शनाः॥२७॥
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ। कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविह स्मृतम्॥२८॥
धारणार्थो धृतिश्चैव धातुः शब्दे प्रकीर्त्तितः। अधारणामहत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते॥२९॥
अथेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते। अधर्मश्चानिष्टफलोह्याचार्यैरुपदिश्यते॥३०॥

होने के कारण सन्त कहे जाते हैं। सत् + अजात्यात् अर्थात् अजाति होने के साथ ही अर्थात् ब्राह्मण जाति में जन्म न लेने पर भी, जो ब्रह्मनिष्ठ होते हैं, वे सन्त कहे जाते हैं।।१८½-२०।। जो लोग दश प्रकार के विषयों एवं आठ प्रकार के कारणों में फँसकर कभी क्रोधित और प्रसन्न नहीं होते, वे जितात्मा कहे जाते हैं।।२१।। जो सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के धर्मों का आचरण करते हैं, इसलिए वे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य लोग द्विजाति कहलाते हैं।।२२।। वर्ण और आश्रम से युक्त स्वर्ग की गति में सुख का आचरण करने वाले श्रुति (वेद) सम्मत और स्मृति में वर्णित धर्म के ज्ञान से युक्त जन धर्मज्ञ कहे जाते हैं।।२३।। विद्यारूप साधन से युक्त तथा गुरु का हित करने वाला ब्रह्मचारी व्यक्ति साधु कहा जाता है। गृहों के साधनों से युक्त व्यक्ति गृहस्थ साधु कहा जाता है।।२४।। साधनपूर्वक जो वन में तपस्या करता है, वह साधु वैखानस कहा गया है। योग की साधना से योग की साधना में लीन साधु यति कहलाता है।।२५।। इस प्रकार आश्रमधर्मों के साधन करने से मनुष्य साधु कहे गये हैं। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं।।२६।।

न कहीं देवता हैं, न पितर हैं, न मुनि हैं, और न मनुष्य हैं। यह धर्म है, यह धर्म नहीं है, इस प्रकार भिन्न भिन्न दर्शन कहते हैं। अतः धर्म और अधर्म ये जो दो शब्द कहे गये हैं, वे शब्द क्रियात्मक हैं। मनुष्य के कर्म के अनुसार हैं। मनुष्य के जो कुशल और अकुशल कर्म हैं, वे ही इस लोक मे धर्म और अधर्म कहे गये हैं।।२७-२८।। धारण अर्थ वाली 'धृञ्' धातु में 'मनिप्' प्रत्यय से धर्म शब्द बना है। अतः जो मनुष्यों द्वारा धारण किया जाय तथा जो मनुष्यों को धारण करे, वह धर्म है; क्योंकि अच्छा कर्म ही मनुष्य को धारण करता है, इसलिये अच्छा कर्म धर्म है तथा जो कर्म मनुष्य नहीं धारण करता, जैसे हिंसा, चोरी मनुष्य को धारण नहीं कर सकते; क्योंकि ये सब जेल में पहुँचायेंगे; इसलिये कोई भी कुकर्म धर्म नहीं हो सकता।। अतः न धारण करने के महत्त्व में किया गया कर्म अधर्म कहा जाता है।।२९।। इस मनवांछित वस्तु को प्राप्त कराने वाला धर्म का आचार्य लोग उपदेश देते हैं तथा अधर्म अनिष्ट फल देने वाला है, ऐसा आचार्य लोग कहते हैं।।३०।।

वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव त्वात्मवन्तो ह्यदांभिकाः।
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान्प्रचक्षते॥३१॥
स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि।
आचिनोति च शास्त्राणि आचार्यस्तेन चोच्यते॥३२॥
धर्मज्ञैर्विहितो धर्मः श्रौतः स्मार्त्तो द्विधा द्विजैः।
दाराग्निहोत्रसम्बन्धाद्द्विविधा श्रौतस्य लक्षणम्॥३३॥
स्मार्त्तो वर्णाश्रमाचारैर्यमैः सनियमैः स्मृतः। पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौतं सप्तर्षयोऽब्रुवन्॥३४॥
ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि च श्रुतिः।
मनवंतरस्यातीतस्य स्मृत्वाचारान्मनुर्जगौ॥३५॥
तस्मात्स्मार्त्तः स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभाजकः।
स एष विविधो धर्मः शिष्टाचार इहोच्यते॥३६॥
शेषशब्दः शिष्ट इति शेषं शिष्टं प्रचक्षते। मन्वंतरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठंति धार्मिकाः॥३७॥
मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसंतानकारणात्। धर्मार्थं ये च तिष्ठंति ताञ्छिष्टान्वै प्रचक्षते॥३८॥
मन्वादयश्च येऽशिष्टा ये मया प्रागुदीरिताः। तैः शिष्टैश्चरितो धर्मः सम्यगेव युगे युगे॥३९॥

वृद्ध, लोभ न करने वाले, आत्मवान् और दम्भ (घमण्ड) न करने वाले, सम्यक् प्रकार से विनम्र और जो सरल स्वभाव के हैं, वे आचार्य कहे जाते हैं।।३१।। जो स्वयं अच्छा आचरण करते हैं तथा अच्छे आचरण की स्थापना करते हैं, वे आचार्य कहे जाते हैं तथा (आ उपसर्ग पूर्व चि) धातु से भी आचार्य शब्द बना है तदनुसार आचिनोति शास्त्राणि अर्थात् जो शास्त्रों को चुनता है। शास्त्र के अर्थों का चयन करता है, वह आचार्य कहा जाता है।।३२।। धर्मज्ञ पुरुषों द्वारा स्वीकार किया गया धर्म श्रौत और स्मार्त नाम से दो प्रकार का विप्रों द्वारा कहा गया है। दारा और अग्निहोत्र के सम्बन्ध से स्त्री और हवन अर्थात् ग्रहस्थाश्रम में हवन करने के सम्वन्ध से श्रौत धर्म के दो प्रकार के लक्षण हैं, जिसे वैदिकधर्म भी कहा जा सकता है। धर्म वेदसम्मित हैं। वर्ण आश्रमों के आचार बताने वाला स्मृतियों में वर्णित धर्म स्मार्त धर्म है। जो यम और नियमो से युक्त है अर्थात् मनुष्य को यम और नियम भी सिखाता है। पूर्वज ऋषियों ने अच्छी तरह जानकर श्रौत (वेदोक्त) धर्म को वताया है।।३३-३४।।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, ब्राह्मण ग्रन्थ और वेदों के अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये सब श्रुतियां हैं। मन्वन्तर के बीते हुए समय में स्मरण करके मनु ने जिसे उत्पन्न किया, वह स्मार्त धर्म है; क्योंकि वह स्मार्त्त (याद किया हुआ) धर्म है, इसीलिए स्मार्त धर्म कहा गया है, जो वर्ण और आश्रम का विभाग करने वाला है। इस प्रकार वह यह अनेकों प्रकार का धर्म यहाँ इस लोक में शिष्टाचार कहा जाता है।।३५-३६।। शेष शब्द से शिष्ट शब्द की निष्पत्ति होती है। शिष्ट का अर्थ है—बचे हुए। अतः जो मन्वन्तरों के नष्ट होने से बचे रह गये थे, जो प्रकृति के विनाश से बचे रह गये थे, जिनके विषय में मैंने (सूत जी) ने पहले ही बता दिया है, वे ही इस संसार में धार्मिक हो जाते हैं।।३७।। मनु और सप्तर्षि जो एक युग के अन्त में बच गये थे, उन्होंने संसार में सन्तान उत्पन्न किये और उन्हें धर्माचरण सिखाया। उनके बताये हुए, जो धर्म अर्थ बचे हैं, वे ही शिष्ट कहे जाते हैं,

त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिरिज्या वर्णाश्रमस्तथा। शिष्टैराचर्यते यस्मान्मनुना च पुनः पुनः॥४०॥
पूर्वैः पूर्वगतत्वाच्च शिष्टाचारः स सात्वतः। दानं सत्यं तपो ज्ञानं विद्येज्याब्रजनं दया॥४१॥
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम्। शिष्टा यस्माच्चरंत्येनं मनुः सप्तर्षयस्तु वै॥४२॥
मन्वंतरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः। विज्ञेयः श्रवणाच्छ्रौतः स्मरणात्स्मार्त्त उच्यते॥४३॥

इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्त्तो वर्णाश्रमात्मकः।
प्रत्यंगानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम्॥४४॥

दृष्ट्वा तु भूतमर्थं यः पृष्टो वै न निगूहति। यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम्॥४५॥
ब्रह्मचर्यं जपो मौनं निराहारत्वमेव च। इत्येतत्तपसो रूपं सुघोरं सुदुरासदम्॥४६॥
पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा। ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते॥४७॥
आत्मवत्सर्वभूतेषु या हितायाहिताय च। प्रवर्त्तते समा दृष्टिः कृत्स्नाप्येषा दया स्मृता॥४८॥

आक्रुष्टो निहतो वापि नाक्रोशेद्यो न हंति च।
वाङ्मनःकर्मभिर्वेत्ति तितिक्षैषा क्षमा स्मृता॥४९॥

उन सबके द्वारा जो चरित धर्म है, जो युग युग में सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त है।।३८-३९।। त्रयी वार्ता दण्डनीति, यज्ञ, वर्ण, आश्रम, इन सबका शिष्ट आचार्यों और मनु ने पुनः पुनः आचरण किया था। अतः उन शिष्ट पुरुषों के आचरण से चरितधर्म ही शिष्टाचार कहा गया है। इस प्रकार पूर्व युग, जिसमें कि दुष्कर्म करने वालों का नाश हुआ। उस समय असीमित भ्रष्टाचार के कारण जो सृष्टि का विनाश हुआ, उससे बचे हुए वे लोग जो पूर्व की सब घटनाओं को जानते थे। उन बचे हुए पूर्वजों द्वारा अनुभव से बताया गया आचार/शिष्टाचार कहा गया है। अतः दान, सत्य, तप, ज्ञान, विधा, यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति और दया ये आठ चरित्र शिष्टाचार का लक्षण है।।४०-४१½।। शेष बचे हुए मनु और सप्तर्षि जिससे आचरण करते हैं, इसीलिये यह सभी मन्वन्तरों में शिष्टाचार कहा गया।।४१½-४२½।। श्रवण (सुनने) के कारण श्रौत और स्मरण के कारण स्मार्त्त कहा जाता है। यज्ञादि वर्णन करने वाला वेदात्मक धर्म श्रौत है तथा स्मृतियों में वर्णित वर्ण और आश्रमों को बताने वाला धर्म स्मार्त्त है।।४२½-४३½।।

पूर्वकाल में जब लेखन साधन का अभाव था, तब वंश परम्परा से जिस साहित्य को ऋषियों ने एक दूसरे को सुनाकर आज तक जीवित रखा। अतः सुनने से आज तक चला रहने वाला धर्म श्रोत कहा जाता है, जो वेद है तथा पूर्व युग में भ्रष्टाचार तथा प्रकृति के साथ छेड़खानी से विनष्ट युग में बचे हुए लोगों ने जो पूर्व अनाचार भ्रष्टाचार को तथा उसके परिणामों को याद कर समाज की व्यवस्था बनाने का जो सिद्धान्त बनाया, वह स्मार्त धर्म है। अतः याद करने के कारण बनने से यह स्मार्त्त कहलाता है।अब मैं धर्म के प्रत्येक अग और लक्षण को बताऊंगा। जो व्यक्ति घटित घटना को देखकर पूछे जाने पर कुछ भी नहीं छिपाता और सच्चाई को ज्यों का त्यों प्रकट कर देता है, उसके इस व्यवहार को सत्या कहा जाता है।।४३½-४५।। ब्रह्मचर्य, जप, मौन और निराहार ये अत्यन्त कठिन और दुर्लभ तपस्या के कारण हैं।।४६।। पशुओं, द्रव्य, हवि, ऋक्, साम और यजुर्वेद के मन्त्रों, पुरोहितों और दक्षिणाओं का संयोग यज्ञ कहा जाता है।।४७।। हित और अहित करने वाले सब जीवों के प्रति समान भाव रखना दया का लक्षण कहा गया है।।४८।। जो दूसरे के द्वारा आक्रोश किये जाने पर मारपीट करने पर भी न वह आक्रोश करता है और न उसे मारता है तथा मन वाणी और कर्म से वह सहन करने की शक्ति क्षमा कही जाती है।।४९।।

स्वामिना रक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानां च संभ्रमे। परस्वानागनादानमलोभ इति कीर्त्यते॥५०॥
मैथुनस्यासमाचारो न चिंता नानुजल्पनम्। निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्रं तप उच्यते॥५१॥
आत्मार्थं वा परार्थं वा चेंद्रियाणीह यस्य वै। मिथ्या न संप्रवर्त्तंते शमस्यैतत्तु लक्षणम्॥५२॥
दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे। न कुद्ध्येत प्रतिहतः स जितात्मा विभाव्यते॥५३॥
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवागतं च यत्। तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम्॥५४॥
दानं त्रिविधिमित्येतत्कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम्। तत्र नैश्रेयसं ज्येष्ठं कनिष्ठं स्वार्थसिद्धये॥५५॥

कारुण्यात्सर्वभूतेषु संविभागस्तु मध्यमः।
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः॥५६॥

शिष्टाचाराविरुद्धश्च धर्मः सत्साधुसंमतः। अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टस्याभिनंदनम्॥५७॥
प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता। संन्यासः कर्मणां न्यासः कृतानामकृतैः सह॥५८॥
कुशलाकुशलानां तु प्रहाणं न्यास उच्यते। अव्यक्ता ये विशेषास्ते विकारेऽस्मिन्नचेतने॥५९॥
चेतनाचेतनान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते। प्रत्यंगानां तु धर्मस्य त्वित्येतल्लक्षणं स्मृतम्॥६०॥
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे। अत्र वो वर्णयिष्यामि विधिं मन्वंतरस्य यः॥६१॥
तथैव चातुर्होत्रस्यचातुर्विद्यस्य चैव हि। प्रतिमन्वंतरे चैव श्रुतिरन्या विधीयते॥६२॥

स्वामी द्वारा न रक्षा की जाने वाली अथवा छोड़ी गयी या पड़ी पराई हुई वस्तु को न लेना अलोभ कहा जाता है।।५०।। मैथुन (स्त्री के साथ संभोग) करने के समय व्यवहार न करना, न उसके विषय में चिन्तन करना, उसकी चर्चा करना तथा मैथुन निवृत्ति अर्थात् समाप्ति ब्रह्मचर्य है तथा ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना तप कहा जाता है।।५१।। अपने लिये अथवा दूसरे के लिए जिसकी इन्द्रियां मिथ्या नहीं प्रवृत्त होती है, वह शम का लक्षण है।।५२।। जो व्यक्ति दशों इन्द्रियों के विषयों में सुनने, स्पर्श करने, देखने, चखने, सूंघने, चलने, काम करने, संभोग करने, खाने और मलमूत्र त्यागने इन सब दश विषयों और आठ लक्षण वाले कारणों में फंस कर भी प्रतिहत नहीं होता, वह जितात्मा कहा जाता है।।५३।। जो इष्टतमधन न्याय के द्वारा अर्जित किया गया है, उसको गुणवान् व्यक्ति के लिये देना दान का लक्षण है।।५४।। इस प्रकार यह दान तीन प्रकार का है कनिष्ठ, ज्येष्ठ और मध्यम उनमें मोक्ष अर्थात् सामाजिक कल्याण के लिये दिया जाता है, वह दान नैश्रेयस ज्येष्ठ दान है और स्वार्थसिद्धि के लिये किया गया दान कनिष्ठ दान है। सभी जीवों तथा अपने भाई बन्धुओं को दया वश दिया गया मध्यम दान कहा जाता है।।५५-५५½।। श्रुति और स्मृतियों में विहित धर्म वर्ण और आश्रम वाला है। वह धर्म शिष्टाचार से अनुमत है तथा सज्जन पुरुषों द्वारा पूरी तरह माना गया है।।५५½-५६½।। अनिष्ट विषयों के प्रति द्वेष न करना तथा इष्टों के प्रति भी स्वागत भाव प्रेम दुःख और विषाद की समाप्ति विरागियों का धर्म है।।५६½-५७½।। किये गये तथा न किये गये कर्मों तथा कुशल तथा अकुशलता का परित्याग ही न्यास (त्याग) कहा जाता है।।५७½-५८½।।

इस अचेतन जड़तत्वयुक्त पञ्चमहाभूत वाले विकार मे अव्यक्त जो विशेष प्रधान तत्त्व प्रकृति है, उसका ज्ञान तथा चेतनतत्त्व आत्मा और अचेतन तत्त्व प्रकृति का विकार रूप शरीर का विशेष ज्ञान ही ज्ञान कहा जाता है।।५८½-५९½।। धर्म के प्रत्येक अंग का तो यही लक्षणपहले स्वायम्भुव मन्वन्तर में धर्म के तत्व को जानने वाले ऋषियों ने बताया है। यहाँ अब मैं आपको मन्वन्तर की जो विधि है, उसे बतलाऊंगा।।५९½-६१।। प्रत्येक मन्वन्तर में वेदों

ऋचोयजूंषि सामानि यथा च प्रतिदैवतम्। आभूतसंपल्वस्यापि वर्ज्यैकं शतरुद्रियम्।।६३।।
विधिर्हौत्रस्तथा स्तोत्रं पूर्ववत्संप्रवर्तते। द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं फलस्तोत्रं तथैव च।।६४।।
चतुर्थमाभिजनकं स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम्। मन्वंतरेषु सर्वेषु यथा देवा भवंति ये।।६५।।
प्रवर्तयति तेषां वै ब्रह्मा स्तोत्रं चतुर्विधम्। एवं मत्रगणानां तु समुत्पत्तिश्चतुर्विधा।।६६।।
अर्थर्वग्र्यजुषां साम्नां वेदेष्विह पृथक्पृथक्। ऋषीणां तप्यतामुग्नं तपः परमदुष्करम्।।६७।।
मंत्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वंतरेष्विह। असंतोषाद्भया दुःखात्सुखाच्छोकाच्च पंचधा।।६८।।
ऋषीणां तारकाख्येन दर्शनेन यदृच्छया। ऋषीणां यदृषित्वं हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणैः।।६९।।
अतीतानागतानां च पंचधा त्वृषिरुच्यते। अतस्त्वृषीणां वक्ष्यामि तत्र ह्यार्षसमुद्भवम्।।७०।।
गुणसाम्ये वर्त्तमाने सर्वसंप्रलये तदा। अविभागे तु वेदानामनिर्देश्ये तमोमये।।७१।।
अबुद्धिपूर्वकं तद्वै चेतनार्थे प्रवर्त्तते। चेतनाबुद्धिपूर्वं तु चेतनेन प्रवर्त्तते।।७२।।

का अन्य तरह का विधान होता है। उसी प्रकार प्रत्येक मन्वन्तर में चार प्रकार यज्ञ और चार प्रकार की विद्याओं की स्थिति है। प्रत्येक मन्वन्तर में श्रुतियों के अन्य तरह के विधान होते हैं अर्थात् वेदों के अलग अलग विधान होते हैं।।६२।। भूतकाल के प्रलयकाल के शतरुद्रिय को छोड़कर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ये जैसे पहले देवता के प्रति थे, वैसे ही प्रवृत्त होते हैं।।६३।। पहले की तरह ही हवन की विधि तथा स्तुतिपाठ के मन्त्र पूर्वयुग के समान ही प्रवृत्त होते हैं तथा द्रव्यस्तोत्र, गुणस्तोत्र, फलस्तोत्र तथा चौथा अभिजनकस्तोत्र ये चार प्रकार के स्तोत्र कहे गये हैं। सब मन्वन्तरों में जैसे जो देवता होते हैं, ब्रह्मा उनको उसी प्रकार चार प्रकार के स्तोत्र प्रवृत्त करते हैं।।६४-६५½।।

इस प्रकार मन्त्रों की उत्पत्ति उपर्युक्त चार प्रकार की है। अथर्ववेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन चारों वेदों में पृथक् पृथक् है।। ६५½-६६½।। पूर्व मन्वन्तरों में तपस्वियों ऋषियों का परम दुष्कर उग्र तप हुआ, जिससे मन्त्र उत्पन्न हुए।।६६½-६७½।। असन्तोष, भय, दुःख और शोक इन पाँच प्रकार के कारणों से ऋषियों के तारे नामक दर्शन से ईश्वरेच्छा से पूर्व मन्वन्तरों में मन्त्रों की उत्पत्ति हुई।।६७½-६८½।।

आशय यह है कि चारों वेदों के मन्त्र कठिन तपस्या करने वाले ऋषियों के अन्तःकरण में असन्तोष, भय, दुःख, सुख और शोक इन कारणों से जैसे आकाश में तारे चमकते हैं, उसी प्रकार हृदय में पैदा हुए।। अर्थात् वेद ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है।। अब सूत जी कहते हैं कि उन ऋषियों का जो ऋषित्व है, वह मैं यह लक्षणों के द्वारा बताऊँगा।।६९।। भूतकाल और भविष्यकाल के पाँच प्रकार के ऋषि कहे जाते हैं। अब मैं ऋषियों के आर्ष धर्म की उत्पत्ति को बताऊँगा।।७०।। जब समस्त जड़-चेतन संसार नष्ट हो जाता है, उस प्रलयकाल में तीनों गुण, जो इस प्रकृति (प्रधान) तत्त्व के हैं, वे सब साम्यावस्था में आ जाते हैं। अर्थात् उस समय प्रकृति के तीनों सत्त्व, रजस् और तमस् समान अवस्था में हो जाते हैं, तब वेद अर्थात् ज्ञान जो चार भागों में विभक्त है, अविभक्त हो एक रूप में तमोमय अन्धकार में विलीन रहता है। वे वेद भी अनिर्देश्य होते हैं।।७१।।

उस समय प्रकृति चेतनतत्त्व शून्य होती है। प्रकृति में महत्तत्त्व बुद्धि उस समय नहीं रहता। अतः अब बुद्धिपूर्वक प्रकृति चेतन अर्थ में प्रवृत्त होती है। चेतना तो बुद्धि महत्तत्त्व से पूर्व का तत्त्व है। चेतन तत्त्व से ही प्रकृति तत्त्व का प्रवर्तन होता है; क्योंकि प्रकृति तो निष्चेष्ट और निष्क्रिय है, जब उसमें चेतन तत्त्व का स्फुरण होता है, तब वह चालू हो जाती है, जैसे कि जल और मछली का सम्बन्ध है, उसी तरह प्रकृति और चेतन तत्त्व का सम्बन्ध है।

प्रवर्त्तते तथा द्वौ तु यथा मत्स्योदके उभे। चेतनाधिष्ठितं सत्त्वं प्रवर्त्तति गुणात्मकम्॥७३॥
कारणत्वात्तथा कार्यं तदा तस्य प्रवर्त्तते। विषयो विषयित्वाच्च अर्थेऽर्थत्वात्तथैव च॥७४॥
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु करणात्मकाः। संसिध्यंति तदा व्यक्ताः क्रमेण महदादयः॥७५॥
महतश्चाप्यहंकारस्तस्माद्भूतेंद्रियाणि च। भूतभेदाश्च भूतेभ्यो जज्ञिरे स्म परस्परम्॥७६॥
संसिद्धकार्यकरणः सद्य एव व्यवर्त्तत। यथोल्मुकात्तु त्रुटयः एककालद्भवंति हि॥७७॥
तथा विवृत्ताः क्षेत्रज्ञाः कालेनैकेन कारणात्। यथांधकारे खद्योतः सहसा संप्रदृश्यते॥७८॥
तथा विवृत्तो ह्यव्यक्तात्खद्योत इव सज्वलन्। स महानसशरीरस्तु यत्रैवायमवर्त्तत॥७९॥
तत्रैव संस्थितो विद्वान्द्वारशालामुखे विभुः। महांस्तु तमसः पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते॥८०॥

जैसे मछली मे जल से चेतनता आती है, उसी तरह प्रकृति में चेतनतत्त्व, जिसे सांख्य मे पुरुष कहा जाता है, मे चेतनता आती है। स्फुरण पैदा हो जाता है। वैसे प्रधान तत्त्व प्रकृति और अप्रधान चेतन तत्त्व पुरुष दोनों ही भिन्न-भिन्न हैं; परन्तु जब चेतन तत्त्व प्रधान तत्त्व प्रकृति मे अधिष्ठित होता है, तब उसके तीनों गुणों में विषमता पैदा होती है और चेतनाधिष्ठित प्रधान में सत्त्वगुण का उद्रेक होता है। तब प्रधान कारण प्रकृति से कार्य की उत्पत्ति की प्रवृत्ति होती है। जब जैसे विषय विषयी और अर्थ और अर्थी के भाव पैदा होते हैं। अर्थात् जैसे विषयी में विषय रहता है, विषयी विषय का आधार है, अर्थी में अर्थ रहता है, अर्थी ही अर्थ का आधार है। विषयी नहीं तो विषय नहीं, अर्थी नहीं तो अर्थ नहीं, यही सम्बन्ध यहाँ हो जाता है। प्रकृति विषय है तथा चेतनतत्त्व पुरुष विषयी है। प्रकृति, पुरुष से अस्तित्व और क्रियाशील है। अर्थी पुरुष के विना, अर्थ प्रकृति का कोई अर्थ नहीं।।७२-७४।।

काल प्राप्त कराने के बाद अर्थात् प्रकृति में चेतनतत्त्व के मिलने के बाद सत्त्वगुण के उद्रेक से कुछ समय बाद करणात्मक भेद पैदा होते हैं, जिनमें परस्पर आगे वाले तत्त्व एक-दूसरे करण (साधकतमकारण) बनाते हैं। तब वे दिखाई देने वाले (व्यक्त) कार्य उत्पन्न होते हैं। अतः प्रकृति सबका मूल कारण है, उसका कारण कोई नहीं। उस कारण रूप प्रकृति से महदादि कार्यों की उत्पत्ति होती है।।७५।। ये महत्तत्त्वादि एक-दूसरे का कारण बनकर कार्य की उत्पत्ति करने लगते हैं। तब महत्तत्त्व (बुद्धि) से अहंकार, पञ्चभूत और इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। भूतों से परस्पर भूतों के भेद उत्पन्न होते हैं। जैसे कि पंचसूक्ष्म हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इनसे पञ्चमहाभूत, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न होते हैं। अर्थात् अहंकार से शब्दादि पंचतन्मात्रायें और फिर पञ्चतन्मात्राओं से आकाशादि पञ्चमहाभूत पैदा होते हैं। इनमें कार्य और उस कार्य को पैदा करने वाले कारण संसिद्ध है अर्थात् कारण कार्यभाव स्वयं ही और शीघ्रतापूर्वक होता रहता है।। अर्थात् प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहंकार फिर अहंकार से पञ्चतन्मात्रायें उनसे पञ्चमहाभूत, उधर अहंकार मन आदि एकादश इन्द्रिया यही उत्पति क्रम है।।७६-७६½।। जिस प्रकार लकड़ी की जलती मशाल एक समय में ही सर्वत्र प्रकाश कर देती है, उसी प्रकार यह क्षेत्रज्ञ (पुरुष (चेतनतत्त्व) एक ही काल में विवृत (फैलकर) सर्वत्र व्याप्त हो जाता है।।७६½-७७½।।

जिस प्रकार अन्धकार में खद्योत (रात में चमकने वाला कीड़ा) अचानक दिखाई दे जाता है, उसी प्रकार अव्यक्त (प्रकृति) में महतत्त्व में महत्तत्त्व (बुद्धि) खद्योत के समान जलती हुई (चमकती हुई) शीघ्र दिखाई देती है अर्थात् महतत्त्व प्रकृति मे विवृत हो जाता है। सम्पूर्ण ज्ञान का आधार वह महतत्त्व, जिसे बुद्धि कहा जाता है, वही महान् शरीर है, जहाँ पर रहता है, वहीं पर विद्वान् (बुद्धि) शरीररूपी घर के द्वार पर मुख में स्थित रहता है। अर्थात् बुद्धितत्त्व मुख मे स्थित रहता है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति मे मुख स्थित रहता है, यह है तथा शरीर के मुख प्रकृति मे स्थित

तत्रैव संस्थितो विद्वांस्तमसोऽन्त इति श्रुतिः। बुद्धिविवर्त्तमानस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा॥८१॥
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम्। सांसिद्धिकान्यथैतानि विज्ञेयानि नरस्य वै॥८२॥
स महात्मा शरीरस्य वैवर्त्तात्सिद्धिरुच्यते। अनुशेते यतः सर्वान्क्षेत्रज्ञानमथापि वा॥८३॥
पुरिषत्वाच्च पुरुषः क्षेत्रज्ञानात्स उच्यते। यस्माद्बुद्ध्यानुशेते च तस्माद्बोधात्मकः वै॥८४॥
संसिद्धये परिगतं व्यक्ताव्यक्तमचेतनम्। एवं विवृत्तः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रज्ञानाभिसंहितः॥८५॥
विवृत्तिसमकालं तु बुद्ध्याव्यक्तमृषिः स्वयम्। परं ह्यर्षयते यस्मात्परमर्षित्वमस्य तत्॥८६॥
गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नाम निर्वृतिरादितः। यस्मादेव स्वयं भूतस्तस्माच्चपयृषिता स्मृता॥८७॥
ईश्वरात्स्वयमुद्भूता मानसा ब्रह्मणः सुताः। यस्मादुत्पद्यमानैस्तैर्महान्परिगतः परः॥८८॥
यस्मादृषंति ते धीरा महांतं सर्वतो गुणैः। तस्मान्महर्षयः प्रोक्ता बुद्धेः परम दर्शिना॥८९॥

रहता है, यह भी हो सकता है।।७८½-७९½।। यह महतत्त्व (बुद्धि) जो प्रकृति में सत्त्वोद्रेक से पैदा हुआ, वह अन्धकार रूप तमोगुण से पार स्थित हो विलक्षणता के कारण वहीं पर स्थित रहता हुआ विद्वान् तमस् का अन्त कहा जाता है, ऐसा श्रुति का कथन है। वह महान् महतत्त्व बुद्धि मे विशिष्ट रूप से वर्तमान रहता है। अतः बुद्धि में विवर्तमान महतत्त्व चार प्रकार का होता है। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म।। इसे ही चार प्रकार की बुद्धि कहा जाता है। यह बुद्धि महान् का विवर्त है तथा महान् ही बुद्धि है तथा बुद्धि के चार प्रकार हैं। यह चतुर्विधा बुद्धि ही मानव के समस्त कार्यों को भलीभाँति सिद्ध कराने वाली जाननी चाहिये। शरीरयुक्त महतत्त्व के विवर्त से ही सिद्धि प्राप्त होती कही जाती है, जो अव्यक्त नाम से प्रसिद्ध उस पुरी (प्रकृति) में शयन करता है, यही महान् आत्मा है। वह उस पुरी का स्वामी है तथा शयन करने के कारण उसे पुरी का और पूरा ज्ञान है।।७९½-८३।।

पुरी में शयन करने के कारण वह महान् आत्मा पुरुष और उस प्रकृति रूपी क्षेत्र का समस्त ज्ञान रखने वाला होने के कारण क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। वह महान् आत्मा अखण्ड बुद्धि के साथ शयन करता है; इसलिये वह बोधात्मक कहा जाता है।।८४।। सम्यक् प्रकार से सफलता के लिये ही व्यक्त यह दृश्यमान महत्तत्त्व अहंकार पञ्चतन्मात्रा महाभूतों और इन्द्रियों वाला यह शरीर तथा अव्यक्त (उसका प्रधान तत्त्व प्रकृति) जिससे यह सब व्यक्त पैदा हुआ और चेतनतत्व पुरुष ये तीनों मिलकर सिद्धि (सफलता) प्राप्त करते हैं। अर्थात् मनुष्य रूप बनता है।। इस प्रकार से व्यक्ता व्यक्त में विवर्त क्षेत्रज्ञ (पुरुष) क्षेत्रज्ञ नामक कहा जाता है अर्थात् वह पुरुष अव्यक्त अचेतन प्रकृति के स्वाभाविक गुण और परिणामवश व्यक्ताव्यक्त सभी पदार्थों में लोकसिद्धि के लिये व्याप्त रहता है।।८५।।

जो ऋषि ससारिक विषयों से छुटकारा पाने के समय अपनी बुद्धि से उस अव्यक्त परमतत्त्व को स्वयं गमन करता है, उसकी खोज करता है, क्योंकि 'ऋष्' धातु से 'ऋषि' शब्द बनता है, जो जाने जानने, मोक्ष प्राप्त करने आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त होती है तथा 'ऋष्' धातु से 'ऋषि' शब्द बना है। अतः जो परमतत्त्व अव्यक्त प्रकृति के रहस्य को जानता है, उसकी खोज करता है तथा मोक्ष प्राप्त करता है, ऋषि कहा जाता है तथा परमतत्त्व को खोजने जानने के कारण परमर्षि तथा महर्षि कहा जाता है।।८६।। गत्यर्थक धातु 'ऋष्' धातु से 'ऋषि' शब्द की निष्पत्ति होती है। तदनुसार जो सृष्टि के आदिकाल में स्वयं उत्पन्न हुए थे; इसलिए वे ऋषित्व को प्राप्त हुए अर्थात् वे ऋषि कहे गये।।८७।। ब्रह्मा के मानस पुत्र स्वयं ईश्वर से पैदा हुये थे, जिस ईश्वर से उत्पन्न होने के कारण उन ब्रह्मा के मानस पुत्रों द्वारा महान् परिगत रहता है अर्थात् वे सब मानस महान् का अवलम्बन करते हैं, जिस कारण से वे सब

ईश्वराणां सुतास्तेषां मानसा औरसाश्च वै। अहंकारं तपश्चैव ऋषंति ऋषितां गताः॥९०॥
तस्मात्सप्तर्षयस्ते वै भूतादौ तत्त्वदर्शनात्। ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसंभवाः॥९१॥
तन्मात्राणि च सत्यं च ऋषंते ते महौजसः। सप्तर्षयस्ततस्ते च परसत्यस्य दर्शनाः॥९२॥
ऋषीकाणां सुतास्ते स्युर्विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः। ऋषंति ते ऋतं यस्माद्विशेषांश्चैव तत्त्वतः॥९३॥
तस्मात्सप्तर्षयस्तेऽपि श्रुतेः परमदर्शनात्। अव्यक्तात्मा महानात्माहंकारात्मा तथैव च॥९४॥
भूतात्मा चेंद्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते। इत्येता ऋषिजातीस्ता नामभिः पंच वै शृणु॥९५॥
भृगुर्मरीचिरत्रिश्च ह्यंगिराः पुलहः क्रतुः। मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश॥९६॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः। परत्वेनर्षयो यस्मात्स्मृतास्तस्मान्महर्षयः॥९७॥
ईश्वराणां सुता ह्येते ऋषयस्तान्निबोधत। काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्च्यवनस्तथा॥९८॥
उतथ्यो वामदेवश्च अपास्यश्चोशिजस्तथा।
कर्दमो विश्रवाः शक्तिर्वालखिल्यास्तथार्वतः॥९९॥
इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसा चर्षितां गताः। ऋषिपुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत॥१००॥

धैर्यशाली सब ओर के अपने गुणों से महान् (परमपद) को ऋषन्ति (प्राप्त करते हैं।) महत्तत्त्व बुद्धि को प्राप्त करते हैं। उस कारण से वे बुद्धि के परमदर्शी गुण के द्वारा महान् की निकटता के कारण महर्षि कहलाते हैं।।८९।। उन ईश्वर (ऐश्वर्यशालियों) के मानस और औरस पुत्र अहंकार और तप करते हैं, उसके बाद ऋषित्व को प्राप्त करते हैं। वे अहंकार और तप का अवलम्बन कर शोध करने वाले ऋषि होते हैं। इस प्रकार भूत आदि में तत्त्वदर्शन करने के कारण मैथुन से गर्भ से उत्पन्न होने के कारण वे सप्तर्षि ऋषिपुत्र ऋषीक कहे गये।।९०-९१।। वे महापराक्रमी ऋषिपुत्र पञ्चतन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) और सत्य का अनुसन्धान करते हैं। उसी के बाद परमतत्त्व सत्य का दर्शन करने वाले सप्तर्षि कहलाते हैं।।९१-९२।।

ऋषिपुत्र ऋषिकों के वे पुत्र भी ऋषिपुत्र कहे गये हैं, वे सब सत्य की खोज करते हैं। तत्त्वतः विशेष का अध्ययन करते हैं। उसी कारण वे भी श्रुति (वेदों) में परमतत्त्व का दर्शन के कारण वे अव्यक्तात्मा, महानात्मा, अहंकारात्मा, भूतात्मा और इन्द्रियात्मा कहे जाते हैं और जो जैसे हैं, उनका वैसा ही ज्ञान होता है। अव्यक्तात्मा अव्यक्त (प्रकृति) की खोज करने वाले होते हैं। महानात्मा ((महत्तत्त्वं बुद्धि) की खोज कर्ता होते अहङ्कारात्मा अहङ्कारतत्त्व के शोधकर्ता हैं, तो भूतात्मा (पंचतन्मात्राओं और पंचमहाभूतों) का अध्ययन करते हैं तथा इन्द्रियात्मा इन्द्रिय तत्त्वों के अध्येता होते हैं। इस प्रकार ये पाँच प्रकार के ऋषि होते हैं। इनके नाम आगे बताते हैं, उन्हें सुनिये।।९३-९५।। १. भृगु, २. मरीचि, ३. अत्रि, ४. अङ्गिरा, ५. पुलह, ६. क्रतु, ७. मनु, ८. दक्ष, ९. वशिष्ठ और १०. पुलस्त्य ये दश ऋषि हैं।।९६।।

ये ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा के मानस पुत्र स्वयं उत्पन्न हुए हैं। परमतत्त्व को जानने वाले परमतत्त्व की खोज करने वाले होने के कारण वे परमर्षि (महर्षि) कहे गये।।९७।। ये जितने भी ऋषि हैं, उन्हें समझना चाहिये—वे हैं, काव्य (शुक्राचार्य), बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, उतथ्य, वामदेव, अपास्य, उशिज्, कदर्म, विश्रव, शक्ति, बालखिल्य तथा आवर्त। इस प्रकार ये ऋषिगण तपस्या से ऋषित्व को प्राप्त हुए अर्थात् तप से ऋषि हुए।।९८-९९½।। अब आगे उन ऋषिपुत्र ऋषीकों को गर्भ से उत्पन्न हुआ समझो, वत्सर, नगृहू, भरद्वाज, दीर्घतमा ऋषि, बृहदुक्थ, शरद्वान्,

वत्सरो नगृहूश्चैव भरद्वाजस्तथैव च। ऋषिदीर्घतमाश्चैव बृहदुक्थः शरद्वतः॥१०१॥
वाजश्रवाः शुचिश्चैव वश्याश्वश्च पराशरः। दधीचिः शंशपाश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा॥१०२॥
इत्येते ऋषिकाः प्रोक्तास्ते सत्यादृषितां गताः।
ईश्वरा ऋषयश्चैव ऋषिकाश्चैव ते स्मृताः॥१०३॥
एते मंत्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत।
भृगुः काव्यः प्रचेताश्च ऋचीको ह्यात्मवानपि॥१०४॥
और्वोद्धथ जमदग्निश्च विदः सारस्वतस्तथा।
आर्ष्टिषेणो युधाजिच्च वीतहव्यसुवर्चसौ॥१०५॥
वैन्यः पृथुर्दिवोदासोबाध्यश्वो गृत्सशौनकौ। एकोनविंशतिर्ह्येते भृगवो मंत्रवादिनः॥१०६॥
अंगिरा वैद्यगश्चैवभरद्वाजोऽथ वाष्कलिः। ऋतवाकस्तथा गर्गः शिनिः संकृतिरेव च॥१०७॥
पुरुकुत्सश्च मांधाता ह्यंबरीषस्तथैव च। युवनाश्वः पौरकुत्सस्त्रसद्दस्युश्च दस्युमान्॥१०८॥
आहार्यो ह्यजमीढश्च तुक्षयः कपिरेव च। वृषादर्भो विरूपाश्वः कण्वश्चैवाथ मुद्गलः॥१०९॥
उतथ्यश्च सनद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि। अयास्यश्चक्रवर्त्ती च वामदेवस्तथैव च॥११०॥
असिजो बृहदुक्थश्च ऋषिर्दीर्घतमास्तथा। कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत्स्मृता ह्यांगिरसा वराः॥१११॥
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत। काश्यपश्चैव वत्सारो नैधुवो रैभ्य एव च॥११२॥
असितो देव लश्चैव, षडेते ब्रह्मवादिनः। अत्रिरर्वसनश्चैव श्यावाश्वश्च गविष्ठिरः॥११३॥
आविहोत्र ऋषिर्द्धीमांस्तथा पूर्वातिथिश्च सः। इत्येते चा त्रयः प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षयः॥११४॥
वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तथैव च पराशरः। चतुर्थ इन्द्रप्रमतिः पंचमश्च भरद्वसुः॥११५॥

वाजश्रवा, शुचि, वश्य, पराशर, दधीचि, शशप तथा राजा वैश्रवण। ये सब ऋषीक कहे गये हैं। ये सत्य के कारण ऋषि हुये हैं।।१०१-१०२½।। ये ऐश्वर्यशाली (ईश्वर) ऋषि ऋषीक कहे गये हैं।।१०३।। ये ऋषिगण जो मन्त्र की रचना करने वाले हैं, उनको सुनिये। १. भृगु, २. काव्य, ३. प्रचेता, ४. ऋचीक, ५. आत्मवान्, ६. और्व, ७. जमदग्नि, ८. विद, ९. सारस्वत, १०. आर्ष्टिषेण, ११. युधाजित्, १२. वीतहव्य, १३. सुवर्चस, १४. वैन्य, १५. पृथु, १६. दिवोदोस, १७. वाध्यश्व, १८. गृत्स, १९. शौनक ये उन्नीस भृगुवंशी (भार्गव) मन्त्रवादी ऋषिगण हैं।।१०३½-१०६।। १. अंगिरा, २. वैद्यग, ३. भरद्वाज, ४. वाष्कलि, ५. ऋतवाक, ६. गर्ग, ७. शिनि, ८. संकृति, ९. पुरुकुत्स, १०. मान्धाता, ११. अम्बरीष, १२. युवनाश्व, १३. पौरकुत्स, १४. त्रसद्दस्यु, १५. दस्युमान्, १६. आहार्य, १७. अजमीढ़, १८. तुक्षय, १९. कवि, २०. वृषादर्भ, २१. विरूपाक्ष, २२. कण्व, २३. मुद्गल, २४. उतथ्य, २५. सनत्वाज तथा २६. वाजश्रवा, २७. अयास्य, २८. चक्रवर्ती, २९. वामदेव, ३०. असिज, ३१. बृहदुक्थ, ३२. ऋषिदीर्घतमा और ३३. कक्षीवान् ये तेंसीस श्रेष्ठ अङ्गिरस ऋषि कहे गये हैं।।१०७-१११।। ये सब मन्त्र द्वारा कहे गये काश्यपों को सुनिये ये हैं—काश्यप, वत्सार, नैध्रुव, रैभ्य, असित और देवल ये छः ब्रह्मवादी हैं।।१११-११२½।। अत्रि, वसन, श्यावा, अश्य, गविष्ठिर, आविहोत्र, धीमान्, पूर्वातिथि इस ये सब आत्रयः ऋषिगण मन्त्रकार ऋषि कहे गये हैं।।११२½-११४।। वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, चौथे

षष्ठश्च मैत्रावरुणिः कुंडिमः सप्तमस्तथा। इति सप्त वशिष्ठाश्च विज्ञेया ब्रह्मवादिनः॥११६॥
विश्वामित्रस्तु गाधेयो देवरातस्तथोद्गलः। तथा विद्वान्मधुच्छदा ऋषिश्चान्योऽघमर्षणः॥११७॥
अष्टको लोहितश्चैव कतः कोलश्च तावुभौ। देवश्रवास्तथा रेणुः पूरणोऽथ धनञ्जयः॥११८॥
त्रयोदशैते धर्मिष्ठा विज्ञेयाः कुशिकावराः। अगस्त्योऽयो दृढायुश्च विघ्नवाहस्तथैव च॥११९॥
ब्रह्मिष्ठागस्तपा ह्येते त्रयः परमकीर्त्तयः। मनुर्वैवस्वतश्चैव ऐलो राजा पुरूरवाः॥१२०॥
क्षत्रियाणां चरावेतौ विज्ञेयौ मंत्रवादिनौ। भलंदनश्च वत्सश्च संकीलश्चैव ते त्रयः॥१२१॥

एते मंत्रकृतश्चैव वैश्यानां प्रवराः स्मृताः।
इत्येषा नवतिः प्रोक्ता मन्त्रा यैर्ऋषिभिः कृताः॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषिपुत्रान्निबोधत॥१२२॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषङ्गपादे युगप्रजालक्षणमृषिप्रवरवर्णनं च नाम द्वात्रिंशतमोऽध्यायः॥३२॥

इन्द्रप्रमति, पांचवे भरद्वसु छठे मैत्रावरुणि सातवे कुण्डिन, ये सप्त वशिष्ठ ब्रह्मवादी समझने चाहिये।।११५-११६।। विश्वामित्र, गाधेय हैं, देवरात, उद्गल, विद्वान् मधुच्छदा तथा अन्य पापनाश करने वाले ऋषिगण, अष्टक, लोहित, कत और कोल, देवश्रवा तथा रेणु, पूरक, धनञ्जय, ये तरह धर्मिष्ठ श्रेष्ठ कुशिक कहे गये हैं।।११७-११८½।। अगस्त्य, दृढायु और विघ्नवाह, ये तीन ऋषि ब्रह्मिष्ठ, अगस्तय परमकीर्ति कहे गये हैं।।११९½।। मनु, वैवस्वत, ऐल, राजा पुरूरवा, ये ऋषिगण क्षत्रियों का आचरण करने वाले मन्त्रों को बोलने वाले समझने चाहिये। भलन्दन, वत्स और संकील तीन ऋषि मन्त्रकृत (मन्त्र बनाने वाले) वैश्यों के प्रवर ऋषि कहे गये हैं।।१२०।। इस प्रकार ये नब्बे मन्त्रकर्ता ऋषिगण कहे गये हैं। इस प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य ऋषिपुत्रों को समझिये।।१२२।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ३२वां अध्याय युग प्रजा लक्षण ऋषिप्रवर वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

ऋषिलक्षणं नाम

त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

सूत उवाच

ऋषिकाणां सुताश्चापि विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः। ब्राह्मणानां प्रवक्तारो नामतश्च निबोधत॥१॥
सप्रधानाः प्रवक्ष्यन्ते समासाच्च श्रुतर्षयः। बह्वचो भार्गवः पैलः सांकृत्यो जाजलिस्तथा॥२॥
सन्ध्यास्तिर्माठरश्चैव याज्ञवल्क्यः पराशरः। उपमन्युरिंद्रप्रमतिर्मांडूकिः शाकलिश्च सः॥३॥
बाष्कलिः शोकपाणिश्च नैलः पैलोऽलकस्तथा। पन्नगाः पक्षगंताश्च षडशीतिः श्रुतर्षयः॥४॥
एते द्विजातयो मुख्या बह्वृचानां श्रुतर्षयः। वैशंपायनलौहित्यौ कंठकालावशावधः॥५॥
श्यामापतिः पलांडुश्च आलंबि कमलापतिः। तेषां शिष्याः प्रशिष्याश्च षडशीति श्रुतर्षयः॥६॥
एते द्विजर्षयः प्रोक्ताश्चरकाध्वर्यवो द्विजाः। जैमिनिः सभरद्वाजः काव्यः पौष्यंजिरेव च॥७॥
हिरण्यनाभः कौशिल्यो लौगाक्षिः कुसुमिस्तथा।
लांगली शालिहोत्रश्च शक्तिराजश्च भार्गवः॥८॥
सामगानामथाचार्य ऐलो राजा पुरूरवाः। षड्चत्वारिंशदन्ये वै तेषां शिष्याः श्रुतर्षयः॥९॥
कौशीतिः कङ्कमुद्गश्च कुंडकः सपराशरः। लोभालोभश्च धर्मात्मा तथा ब्रह्म बलश्च सः॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-३३

ऋषिणलक्षण वर्णन

सूत जी वोले—हे ऋषियो! जो मैंने ऋषियों के पुत्र ऋषीक बताये हैं—इनको ऋषिकों के पुत्रों को भी ऋषिपुत्र ही समझने चाहिये। वे ब्राह्मणों के प्रवक्ता ऋषिगण जो वेदों के ऋषि हैं, उनमें जो प्रधान हैं, उनके नाम में संक्षेप में बताऊँगा, आप लोग सुनिये—ब्रह्व, भार्गव, पैल, सांकृत्य तथा जाजलि, सन्ध्यास्ति, मार्ठर, याज्ञवल्क्य, पराशर, उपमन्यु, इन्द्र, प्रमति, माण्डूकि, शाकलि, बाष्कलि, शोकपाणि, नैल, पैल, अलक, पन्नग ,पक्षगंत, ये कुछ ८६ श्रुतर्षि हैं।।४।। ये सभी बह्वच ऋषि के कुल के मुख्य ब्राह्मण जात के श्रुतर्षि हैं।। ग्यारहवें वताये जा चुके हैं आगे हैं—वैशम्पायन, लौहित्य, कण्ठकाल वश, अवध, श्यामापति, पलांडु, आलंवि, कमलापति, उनके शिष्य और प्रशिष्य भी ८६ श्रुतर्षि थे।।५-६।।

ये सब ऋषिगण, द्विजर्षि, चरक, अध्वर्यु (यज्ञ करने वाले) ब्राह्मण हैं। जैमिनि, भरद्वाज, काव्य, पौष्यंजि, हिरण्यनाभ, कौशिल्य, लौगाक्षि, कुसुमि, लांगलि, शालिहोत्र, शक्तिराज, भार्गव, सामवेद का गान करने वाले आचार्य इलापुत्र पुरूरवा इनके अलावा ४६ अन्य उनके शिष्य श्रुत ऋषि थे।।७-९।। कौशीति, कंकमुद्ग, कुण्डक, पराशर, धर्मात्मा लोभालोभ, ब्रह्मबल, कन्थल, मद, गल और मार्कण्डेय ये नौ धर्म को जानने वाले यज्ञ करने वाले

क्रंथलोऽथो मदगलो मार्कण्डेयोऽथ धर्मवित्। इत्येते नवतिर्ज्ञेया होत्रवद्ब्रह्मचारिणः॥११॥
चरकाध्वर्यवश्चापि ह्यनुमन्त्रं तु ब्राह्मणम्। चलूभिः सुमतिश्चैव तथा देववरश्च यः॥१२॥
अनुकृष्णस्तथायुश्च अनुभूमिस्तथैव च। तथा प्रीतः कृशाश्वश्च सुमूलिर्बाष्कलिस्तथा॥१३॥
चरकाध्वर्यकाध्वर्युनमस्युर्ब्रह्मचारिणः। वैयासकिः शुको विद्वाँल्लौकिर्भूरिश्रवास्तथा॥१४॥
सोमाविरतुनांतक्यस्तथा धौम्यश्च काश्यपः। आरण्या इलकश्चैव उपमन्युर्विदस्तथा॥१५॥
भार्गवो मधुकः पिङ्गः श्वेतकेतुस्तथैव च। प्रजादर्पः कहोडश्च याज्ञवल्क्योऽथ शौनकः॥१६॥
अनङ्गो निरतालश्च मध्यमाध्वर्यवस्तु ते। अदितिर्देवमाता च जलापा चैव मानवी॥१७॥
उर्वशी विश्वयोषा च ह्यप्सरःप्रवरे शुभे। मुद्गला चातुजीवैव तारा चैव यशस्विनी॥१८॥

प्रातिमेधी च मार्गा च सुजाता च महातपा।
लोपामुद्रा च धर्मज्ञा या च कोशीतिका स्मृता॥१९॥
एताश्च ब्रह्मवादिन्य अप्सरो रूपसम्मताः।
इत्येता मुख्यशः प्रोक्ता मया च ऋषिपुत्रकाः॥२०॥

वेदशाखाप्रणयनास्तस्ते ऋषयः स्मृताः। ईश्वरा मन्त्रवक्तार ऋषयो ह्यृषिकास्तथा॥२१॥

ऋषिपुत्राः प्रवक्तारः कल्पानां ब्राह्मणस्य तु।
ईश्वराणामृषीणां च ऋषिकाणां सहात्मजैः॥२२॥

तथा वाक्यानि जानीष्व यथैषां मन्त्रदृष्टयः। तत्राज्ञायुक्तमद्वैतं दीप्तं गंभीरशब्दवत्॥२३॥
अत्यन्तमपरोक्षं च लिङ्गं नाम तथैव च। सर्वभूतान्यभूतं च परिदानं च यद्भवेत्॥२४॥

क्वचिन्निरुक्तप्रोक्तार्थं वाक्यं स्वायंभुवं विदुः।
यत्किंचिन्मन्त्रसंयुक्तं तत्र नामविभक्तिभिः॥२५॥

ब्रह्मचारी जानने चाहिये।।१०-११।। अब चरकाध्वर्यु मन्त्रों को अनुसरण करने वाले ब्राह्मण हैं, जो हैं—चलूभि, सुमति, देववर, अनुकृष्ण, आयु, अनुभूमि, प्रीत, कृशाश्व, सुमूलि, बाष्कलि, ये चरकाध्वर्यु नाम के ब्रह्मचारी नमन योग्य ब्राह्मण हैं।।१२-१३½।। वैयासकि, शुक, भूरिश्रवा, सोमावि, अतुनान्तक्य, धौम्य, काश्यप, आरण्य, इलक, उपमन्यु, विद, भार्गव, मधुक, पिङ्ग, श्वेतकेतु, प्रजादर्प, कहोड, याज्ञवल्क्य, शौनक, अनङ्ग, निरताल, ये मध्यम अध्वर्यु हैं।।१३½-१६½।। अदिति, देवमाता, जलापा, मानवी, उर्वशी और विश्वयोषा ये दो शुभ अप्सरायें, मुद्गला, अतुजीवा तथा यशस्विनी तारा, प्रातिमेधी, मार्गा, महातमा सुजाता, धर्म को जानने वाली मुद्रा और कौशीतकी, नामक याद की गयी हैं। ये सभी अप्सराओं के समान ब्रह्मवादिनी विदुषियां हैं।।१६½-१९½।। सूत जी बोले कि—इस प्रकार मैंने ये सब मुख्य ऋषिपुत्रों को बताया है। वे सब ऋषिपुत्र वेद की शाखाओं की रचना करने वाले हैं; इसीलिए ऋषि कहे गये हैं। ये सव मन्त्र वक्ता ऋषि और ऋषीक ईश्वर (ऐश्वर्यशाली) हैं। ये ऋषिपुत्र, ईश्वर ऋषि, ऋषीक अपने पुत्रों के साय ब्राह्मण कल्पों के प्रवक्ता हैं।।१९½-२२।।

जो वेदों के वाक्य जाने गये हैं, वे सब इनकी मन्त्रदृष्टियों अर्थात् सभी वाक्यों को इन्होंने अपने मन्त्र की दृष्टि से देखा है अर्थात् सभी वेद वाक्य जो मन्त्र कहे जाते हैं, वे इनकी दृष्टियां हैं। वहां वेद में जो आज्ञात्मक गम्भीर शब्द के समान अद्वैत हैं, जिनको अत्यन्त और अपरोक्ष तथा लिङ्ग नाम दिया गया है, सब भूत और अभूत का जो

प्रत्यक्षाभिहितं चैवमृषीणां वचनं मतम्। नैगमैर्विविधैः शब्दैर्निपातैर्बहुलं च यत्॥२६॥
यच्चाप्यस्ति महद्वाक्यमृषीकाणां वचः स्मृतम्।
अविस्पष्टपदं यच्च यच्च स्याद्बहुसंशयम्॥२७॥
ऋषिपुत्रवचस्तद्वै सर्वाश्च परिदेवताः। हेतुदृष्टान्त बहुलं चित्रशब्दमपार्थकम्॥२८॥
सर्वास्तु तमशक्तं च वाक्यमेतत्तु मानुषम्।
मिश्रा इति समाख्याताः प्रभावादृषितां गताः॥२९॥
समुत्कर्षाय कर्षाभ्यां जातिव्यत्याससम्भवाः।
भूतभव्यभवज्ज्ञानं जन्मदुःखचिकित्सनम्॥३०॥
मिश्राणां तद्भवेद्वाक्यं गुरोर्बलप्रवर्त्तनम्। धर्मशास्त्रप्रणेतारो महिम्ना सर्वगाश्च वै॥३१॥
तपःप्रकर्षः सुमहान्येषां ते ऋषयः स्मृताः। बृहस्पतिश्च शुक्रश्च व्यासः सारस्वतस्तथा॥३२॥
व्यासाः शास्त्रप्रणयना वेदव्यास इति स्मृताः।
यस्मादवरजाः सन्तः पूर्वेभ्यो मेधयाधिकाः॥३३॥
ऐश्वर्येण च सम्पन्नास्ततस्ते ऋषयः स्मृताः। यस्मिन्कालो न च वयः प्रमाणमृषिभावने॥३४॥
दृश्यते हि पुमान्कश्चित्कश्चिज्ज्येष्ठतमो धिया।
यस्माद्बुद्ध्या च वर्षीयान्बलोऽपि श्रुतवानृषिः॥३५॥
यः कश्चित्पादवान्मध्ये प्रयुक्तोऽक्षर सम्पदा। विनियुक्तावसानां तु तामृचं परिचक्षते॥३६॥
यः कश्चित्करणैर्मन्त्रो न च पादाक्षरैर्मितः। अतियुक्तावसानं च तद्यजुर्वै प्रचक्षते॥३७॥

परिदान हो, कहीं निरुक्त प्रोक्त अर्थ वाले वाक्य को स्वायंभुव जानते हैं। जो कुछ भी नाम और विभक्तियों से कहीं मन्त्रसंयुक्त हैं। प्रत्यक्ष रूप से ऋषियों के वचन कहे गये हैं।।२३-२५½।।

वेदों के अनेकों प्रकार के शब्दों द्वारा निपातों (अव्ययों) से जो बहूक्त हैं तथा जो भी महाकाव्य हैं, वह ऋषि का ही वचन कहा गया है। कहीं-कहीं जो अस्पष्ट और बहुसन्देहास्पद वाक्य हैं, वे सब निश्चय ही ऋषयों के वचन हैं तथा सभी वचन विलापास्पद हैं। देवताओं से परिगत हैं।।२५½-२७।। हेतु और दृष्टान्त की अधिकता वाले चित्रशब्द हैं, वे निरर्थक हैं।।२८।। वे सब अशक्त वाक्य मानुष वाक्य हैं। ऐसे वाक्य मिश्रवाक्य कहे गये हैं। वे अपने प्रभाव से ही ऋषिता को प्राप्त हुए हैं।।२९।। जाति विपर्यय से उत्पन्न दो जातियों के आकर्षण से उत्पन्न जातियों के समुत्कर्ष के भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान जन्म दुःख और चिकित्सा ये मिश्र ब्राह्मणों के वह गुरु के बल प्रवर्तक के वाक्य हुए। वे मिश्र ब्राह्मण धर्मशास्त्र के प्रणेता और अपनी महिमा से सब कुछ जानते थे।।३०-३१।। जिनका तप का प्रकर्ष अच्छा और महान् था। वे बृहस्पति, शुक्र, व्यास तथा सारस्वत तथा व्यास ये सब ऋषि कहे गये।।३२।। व्यासशास्त्र का प्रणयन करने वाले थे; इसलिए वे वेद व्यास नाम से स्मरण किये गये। जिससे उनके बाद में जन्म लेने वाले पूर्व वालों से बुद्धि से अधिक थे।।३३।।

उसी से ऐश्वर्य से सम्पन्न वे ऋषि याद किये गये। जिस ऋषि बनने में अवस्था नहीं समय देखा जाता है, कोई कोई बुद्धि से ज्येष्ठतम थे तथा कुछ बहुत अधिक भी श्रुतवान् ऋषि हुए।।३५।। जो कोई मध्य में अक्षर आ गिरने से पाद वाला प्रयुक्त हो गया तो व्यवहार के अवसान में उस ऋचा को वे श्रुतवान् ऋषि परीक्षण करते थे। यदि कोई मन्त्र पाद के अक्षरों से नपा-तुला नहीं है, उसे अतियुक्तावसान को यजुर्वेद परीक्षण करता है।।३७।।

हींकारः प्रणवो गीतः प्रस्तावश्च चतुर्थकम्। पञ्चमः प्रतिहोत्रश्च षष्ठमाहुरुपद्रवम्।।३८।।
निधनं सप्तमं साम्नः सप्तविन्ध्यमिदं स्मृतम्। पञ्चविन्ध्य इति प्रोक्तं हींकारः प्रणवादृते।।३९।।
ब्रह्मणे धर्ममत्युक्तौ यत्तदा ज्ञाप्यतेऽर्थतः। आशास्तिस्तु प्रसंख्याता विलापः परिदेवना।।४०।।
क्रोधाद्वा द्वेषणाच्चैव प्रश्नाख्यानं तथैव च। एतत्तु सर्वविद्यानां विहितं मन्त्रलक्षणम्।।४१।।

मन्त्र नवविधाः प्रोक्ता ऋग्यजुःसामलक्षणाः।
मूर्तिर्निन्दा प्रशंसा चाक्रोशस्तोपस्तथैव च।।४२।।

प्रश्नानुज्ञास्तथाख्यानमाशास्तिविधयो मताः। मन्त्रभेदांश्च वक्ष्यामि चतुर्विंशतिलक्षणान्।।४३।।
प्रशंसा स्तुतिराक्रोशो निन्दा च परिदेवना। अभिशापो विशापश्च प्रश्नः प्रतिवचस्तथा।।४४।।

आशीर्यज्ञस्तथाऽक्षेप अर्थाख्यानं च संकथा।
वियोगा ह्यभियोगाश्च कथा संस्था वरश्च वै।।४५।।

प्रतिषेधोप देशौ च नमस्कारः स्पृहा तथा। विलापश्चेति मन्त्राणां चतुर्विंशतिरुद्धृताः।।४६।।
ऋषिभिर्यज्ञतत्त्वज्ञैर्विहितं ब्राह्मणं पुरा। हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशस्तिः संशयो निधिः।।४७।।
पुराकृतिपुराकल्पौ व्यवधारणकल्पना। उपमा च दशैते वै विधयो ब्राह्मणस्य तु।।४८।।
लक्षणं ब्राह्मणस्यैतद्विहितं सर्वशाखिनाम्। हेतुर्हन्तेः स्मृतो धातोर्यंन्निहन्त्युदितं परैः।।४९।।
अथवार्थे परिप्राप्ते हिनोतेर्गतिकर्मणा। तथा निर्वचनं ब्रूयाद्वाक्यार्थस्यावधारणम्।।५०।।

हींकार प्रणव (पवित्र अक्षर) ओऽम् गीत है तथा वह चौथा प्रस्ताव है।। पांचवां प्रतिहोत्र है तथा छठा उपद्रव है। निधन सामवेद का सातवां है, जिसे सात विधि योग्य कहा गया है। पांचवी विधि के योग्य ॐकार (प्रणव) के विना हींकार कहा गया है। इस प्रकार ब्रह्म में यह धर्म कहा गया है, जो उस समय अर्थ से ज्ञान कराया जाता था। अर्थात् ब्रह्म, पुत्र, धन आदि प्राप्ति की आशा से जो ब्रह्म में अनुष्ठान किया जाता है, प्रकृष्ट रूप से गिनाये गये हैं तथा विलाप परिदेवना को कहा जाता है।।४०।। उसी प्रकार क्रोध से द्वेषण से जो प्रश्न किये गये हैं, वे प्रश्नाख्यान हैं, इस प्रकार सब विद्याओं के मन्त्रलक्षण किये गये हैं।।४१।। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद लक्षण वाले मन्त्र नौ प्रकार के कहे गये हैं। वे हैं— १. मूर्ति, २. निन्दा, ३. प्रशंसा, ४. आक्रोश, ५. तोष, ६. प्रश्न, ७. अनुज्ञा, ८. आख्यान, ९. आशास्ति ये विधियां मानी गयी हैं। अब मैं मन्त्रों के चौबीस लक्षणों वाले मन्त्रों के भेदों को बतलाऊंगा।।४२-४३।। ये हैं—१. प्रशंसा, २. स्तुति, ३. आक्रोश, ४. निन्दा, ५. परिदेवना, ६. अभिशाप, ७. विशाप, ८. प्रश्न, ९. प्रतिवचन, १०. आशी, ११. यज्ञ, १२. आक्षेप, १३. अर्थाख्यान, १४. संकथा, १५. वियोग, १६. अभियोग, १७. कथा, १८. संस्था, १९. वर, २०. प्रतिशोध, २१. उपदेश, २२. नमस्कार, २३. स्पृहा और २४. विलाप ये चौबीस मन्त्रों के लक्षण कहे गये हैं।।४४-४६।। इन उपर्युक्त तत्त्व को जानने वाले २४ ऋषियो ने पूर्वकाल मे ब्राह्मण ग्रन्थ बनाया। १. हेतु, २. निर्वचन, ३. निन्दा, ४. प्रशस्ति, ५. संशय, ६. निधि, ७. पुराकृति, ८. पुराकल्प, ९. व्यवधारणकल्पना और १०. उपमा ये दश ब्राह्मण ग्रन्थों की विधियां हैं। सब शाखाओं वाले ब्राह्मण का यह लक्षण विहित है। पहला लक्षण हेतु है, जिसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है—हेतु शब्द 'हन्' धातु से स्मृत है। जिसका अर्थ है कि जो दूसरों के द्वारा उदित है, उनको जो नष्ट करता है, मारता है, वह हेतु है।।४९।। अथवा यह हेतु शब्द, गति और कर्म अर्थ वाली 'हिनु' धातु से भी बताया गया है, जिसके अनुसार उसका निर्वचन और वाक्य के अर्थ का निश्चय करना चाहिये। अतः वाक्यार्थ के अनुसार दूसरे के मत मे दोष दिखाकर अपने मत का स्थापन करना हेतु है।।५०।।

निन्दां तामाहुराचार्या यद्दोषे निन्दने वचः। प्रपूर्वाच्छंसतेधीतोः प्रशंसागुणवत्तया॥५१॥
इदं त्विदमिदं नेदमित्यनिश्चित्य संशयम्। इदमेवं विधातव्यमित्ययं विधिरुच्यते॥५२॥
अन्यस्यान्यस्य चोक्तिर्या बुधैः सोक्ता पुराकृतिः।
यो ह्यत्यन्तपरोक्षार्थः स पुराकल्प उच्यते॥५३॥
पुरात्रिक्रान्तवाचित्वात्पुरांकल्पस्य कल्पनाम्। मन्त्रब्राह्मणकल्पैश्च निगमैः शुद्धविस्तरैः॥५४॥
अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम्। यथा हीदं तथा तद्वै इदं चैव तथैव तत्॥५५॥
इत्येवमेषा ह्युपमा दशमो ब्राह्मणस्य तु। इत्येतद्ब्राह्मणस्यादौ विहितं लक्षणं बुधैः॥५६॥
तस्य तद्विद्भिरुद्दिष्टा व्याख्याम्यनुपदं द्विजैः। मन्त्राणां कल्पना चैव विधिदृष्टेषु कर्मसु॥५७॥
मन्त्रो मन्त्रयतेर्द्धातोर्ब्राह्मणो ब्राह्मणेन तु। अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्॥
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥५८॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषङ्गपादे ऋषिलक्षणं नाम त्रयस्त्रिंत्तमोऽध्यायः॥३३॥

आचार्य लोग निन्दा उसको कहते हैं, जो यज्ञादिविधान में दोष बताते हैं, उन दोष बताने वालों की निन्दा करने वाले वचन निन्दा कहे गये हैं। 'प्र' उपसर्ग पूर्व शंस् (कहना) अर्थवाली धातु से प्रशंसा शब्द बना है, जिसका अर्थ है—'किसी भी बात को प्रकृष्ट रूप से कहना।' अतः प्रशंसा उसकी गुणवत्ता को बताती है।।५१।। यह है, यह नहीं है, ऐसा निश्चय करके निर्णय करना संशय है।। यह इसी प्रकार करना चाहिये। इस प्रकार की उक्ति यह विधि कही जाती है।।५२।। दूसरे दूसरे लोगों के कथन जो विद्वानों ने कहे हैं, वे पुराकृति हैं तथा जो अत्यन्त परोक्ष अर्थ है, वह पुराकल्प कहा जाता है। अर्थात् जो बहुत प्राचीन काल में कल्पना की गयी, वह पुराकल्प है।।५३।। 'पुरा' शब्द प्राचीन अर्थ को प्रकट करने वाला है। अर्थात् जो बहुत पहले बीत चुका है, उस अर्थ के अनुसार पुराकल्प शब्द की कल्पना हुई है। उस पुराकल्प में होने वाली घटनायें शुद्ध एवं विस्तृत मन्त्रों, ब्राह्मणों और कल्पों तथा निगमों द्वारा निश्चय न करके ही जिनको कहा जाता है, उनका ही व्यवधारण कल्पना कहा जाता है। निश्चय करना, जैसा यह कल्प है, वैसा ही निश्चित रूप वह भी होगा। इस प्रकार से यह ब्राह्मण का दशवां लक्षण उपमा है।।५४-५५½।।

इस प्रकार प्राचीन काल में विद्वानों ने ब्राह्मण के ये ही लक्षण बताये हैं और बाद में ब्राह्मणों ने उसके प्रत्येक पद की व्याख्या भी की है। इसके अतिरिक्त उन्हीं ब्राह्मणों द्वारा विधिपूर्वक दिखाये गये कर्मों में मन्त्रों की कल्पना भी है। 'मन्त्र' धातु से 'मन्त्र' शब्द की निष्पत्ति होती है, 'मन्त्र' धातु का अर्थ परामर्श देना, उपदेश देना है। अतः परामर्श उपदेश सलाह देने वाले वाक्य मन्त्र कहे जाते हैं, जो समाजकल्याणपरक होते हैं। ब्रह्मा के आदेश को पालन करने के कारण ब्राह्मण नाम पड़ा है। निर्दोष, आडम्बर रहित सभी प्रकार सारवान् सन्देहरहित अर्थ वाले कम अक्षरों में बँधे हुए वाक्य को सूत्र बनाने वाले विद्वानों ने सूत्र कहा है।।५५½-५८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ३३वां अध्याय ऋषिणलक्षण वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

व्यासशिष्योत्पत्ति वर्णन नाम

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

वायुरुवाच

ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा सूतमाहुस्तदुत्तरम्। कथं वेदाः पुनर्व्यस्तास्तन्नो ब्रूहि महामते॥१॥

सूत उवाच

द्वापरे तु पुरावृत्ते मनोः स्वायंभुवान्तरे। ब्रह्मा मनुमुवाचेदं रक्ष वेदं महामते॥२॥
परिवृत्तं युगं तात स्वल्पवीर्या द्विजातयः। संवृता युगदोषेण सर्वे चैव यथाक्रमम्॥३।
तस्य मानं युगवशादल्पं चैव हि दृश्यते। दशसाहस्त्रभागेन ह्यवशिष्टं कृतोदितम्॥४॥
वीर्यं तेजो बलं चाल्पं सर्वं चैव प्रणश्यति। वेदक्रिया हि कार्याः स्युर्माभूद्वेदविनाशनम्॥५॥
वेदे नाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाशं गमिष्यति। यज्ञे नष्टे वेदनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति॥६॥
आद्यो वेदश्च तुष्पादः शतसाहस्त्रसंमितः। पुनर्दशगुणः कृष्णो यज्ञोवै सर्वकामधुक्॥७॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा मनुर्लोकहिते रतः। वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्द्धा व्यभजत्प्रभुः॥८॥
ब्रह्मणो वचनात्तात लोकानां हितकाम्यया। तदहं वर्त्तमानेन युष्माकं वेदकल्पनम्॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-३४

व्यासशिष्यों की उत्पत्ति वर्णन

वायु ने कहा कि ऋषियों ने उनके वचनों को सुनकर उसके बाद सूत जी से कहा कि महामति सूत जी जो वेद अवव्यवस्थित हो चुके थे, वे फिर कैसे पुनः व्यवस्थित हुए, वह वृत्तान्त हमें बतलाइये।।१।।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! सुनिये, स्वायंभुव मनु के मन्वतर के द्वापर युग में ब्रह्माजी ने मनु से कहा कि हे महामते! वेदों की रक्षा करो।।२।। क्योंकि युगदोष के कारण सभी ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य क्रम से बहुत कम पराक्रम वाले हो गये हैं।।३।। इस प्रकार एक युग से दूसरे युग मे, दूसरे युग से तीसरे युग में वे पराक्रम कम होते होते अन्तिम युग में बहुत ही कम रह जाते हैं तथा वे सभी पराक्रम तेज और बल सतयुग की अपेक्षा दश हजार भाग शेष रहते हुए अन्त में नष्ट हो जाते हैं।।४-४½।। वेद की क्रियायें हों, तो वेद का विनाश नहीं होता अर्थात् यदि यज्ञ होते रहें, तो वेद का विनाश नहीं होता।।४½-५।। वेद का नाश होने की स्थिति में यज्ञ का नाश हो जाता है तथा यज्ञ के नष्ट होने पर वेदों का नाश हो जाता है। उसके बाद सब कुछ नष्ट हो जाता है।।६।।

पहले यह वेद चार पाद तथा एक लाख सूक्तों में युक्त था, उसके बाद समस्त कामनाओ को पूर्ण करने वाले फिर यज्ञ की दशगुनी वृद्धि हुई।।७।। ब्रह्मा जी के कहने पर लोकहित में सदा तत्पर रहने वाले मनु ने एक वेद को चार पाद (चार प्रकार) से विभाजित कर दिया।।८।। ब्रह्मा जी के वचन से लोकहित की कामना से जो वेदों की

मन्वन्तरेण वक्ष्यामि व्यतीतानां प्रकल्पनम्। प्रत्यक्षेणपरोक्षं वै तन्निबेधत सत्तमाः॥१०॥
अस्मिन्युगे तदा व्यासः पाराशर्यः परन्तपः। द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः सनातनः॥११॥
ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन् वेदं वक्तुं प्रचक्रमे।
अथ शिष्यान्सजग्राह चतुरो वेदकारणात्॥१२॥
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशंपायनमेव च। चतुर्थं पैलमेतेषां पञ्चमं लोमहर्षणम्॥१३॥
ऋग्वेदश्रावकं पैलमग्रहीद्विधिवद्द्विजाः। यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशंपायनमेव च॥१४॥
जैमिनिं सामवेदार्थश्रावकं सोऽन्वपद्यत। तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्॥१५॥
इतिहासपुराणस्य कल्पवाक्यस्य चैव हि। मां चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः॥१६॥
एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा व्यकल्पयत्। चातुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत्॥१७॥
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च। औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः॥१८॥
ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं समकल्पयत्। होतृकं कल्पयत्तेन यजुर्वेदं जगत्पतिः॥१९॥
सामभिः सामवेदं च तेनौद्गात्रमकल्पयत्। राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत्॥२०॥
आख्यानैश्चाप्युपा ख्यानैर्गाथाभिः कल्पजोक्तिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥२१॥

कल्पना है, वह वेद राशि जो आपके सामने वर्तमान है, उसको मैं बीते हुए कल्पों के अन्तर के साथ बताऊंगा। अतः श्रेष्ठ ऋषियों! आप लोग इस समय जो प्रत्यक्ष वेद राशि हैं तथा जो परोक्षभूत में थी, उसको सुनिये।।९-१०।। इस द्वापरयुग में उस समय पराशर पुत्र परमतपस्वी विष्णु के अंश सनातन द्वैपायन व्यास नाम से प्रसिद्ध हुए।।११।। ब्रह्मा जी द्वारा प्रेरित होकर उन्होंने इस द्वापर युग में वेद का प्रवचन करने का उपक्रम किया।। इसके बाद उन्होंने वेदों के चार विभाग करने के लिये चार शिष्यों को ग्रहण किया।।११-१२।। वे हैं—जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन चौथे पैल और इनके पाँचवें लोमहर्षण। ये लोमहर्षण उनके शिष्य थे, आचार्य चार ही थे।।१३।। महर्षि वेदव्यास ने महर्षि पैल को ऋग्वेद को सुनाने वाला अर्थात् व्याख्याता के रूप में विधिवत् ग्रहण किया। यजुर्वेद का प्रवक्ता वैशम्पायन को बनाया।।१४।। सामवेद के अर्थ को सुनाने वाला उन्होंने जैमिनि को बनाया। उसी प्रकार अथर्ववेद का व्याख्याता श्रेष्ठ ऋषि सुमन्तु को बनाया।।१५।।

और उन भगवान प्रभु वेदव्यास ने इतिहास और पुराण की व्याख्या करने के लिये उन्होंने मुझ लोमर्हण (सूत) को नियुक्त किया।।१६।। पहले यजुर्वेद एक ही था। उसके बाद वह चार भागों में विभक्त किया गया। इस प्रकार इसमें चार यज्ञ की कल्पना हुई, जिससे चार यज्ञों का प्रचलन हुआ।।१७।। ऋग्वेद के मन्त्रों से हवन सामवेद के मन्त्रों से उद्गात्र और अथर्ववेद के मन्त्रों से ब्रह्मतत्त्व की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार यज्ञों में जितने ब्रह्मकार्य हैं, वे अथर्ववेद द्वारा प्रतिष्ठित हैं।।१८।। उसके बाद उन्होंने ऋचाओं को उद्धृत कर (उठाकर) ऋग्वेद का सम्पादन किया। जिसके द्वारा संसार का कल्याण करने वाले हवन करने योग्य पदार्थों के वाहक होताओं की कल्पना की गयी।।१९।। साम के इधर-उधर पड़े मन्त्रों का संग्रह करके सामवेद का सम्पादन किया। जो सामवेद के गान करने वाले, जिन्हें उद्गाता कहा जाता है, उनको अधिक रुचिकर हुआ। अथर्ववेद द्वारा राजाओं के परमावश्यक समस्त कर्मकाण्डों का विधान कराया।।२०।। इसी प्रकार पुराण के विशारद, द्वैपायन ने आख्यान, उपाख्यान, गाथाओं एवं कुलाचार की

यच्छिष्टं तु यजुर्वेदि तेन यज्ञमयुंजत। यजनात्स यजुर्वेद इति शास्त्रविनिश्चयः॥२२॥
पादानामुद्धतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि च। शतेनोद्धतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः॥२३॥
प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा पुष्यते तु सः। ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तु द्विधा पुनः॥२४॥
द्वे कृत्वा संहिते चैव शिष्याभ्या मददाद्विभुः। इन्द्रप्रमतये चैकां द्वितीयां बाष्कलाय च॥२५॥

चतस्त्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलो द्विजसत्तमः।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान्हितान्॥२६॥
बोध्यां तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमातरम्।
पाराशरीं तृतीयां तु याज्ञवल्क्यामथापराम्॥२७॥

इन्द्रप्रमतिरेकां तु संहितामृषिसत्तमः। अध्यापयन्महाभागं माण्डूकेयं यशस्विनम्॥२८॥
सत्यस्त्रवसमग्र्यं तु पुत्रं च तु महायशाः। सत्यस्त्रवाः सत्यहितं पुत्रमध्यापयद्विभुः॥२९॥
सोऽपि सत्यहितः पुत्रं पुनरध्यापयद्द्विजाः। सत्यश्रियं महात्मानं सत्य धर्मपरायणम्॥३०॥
अभवंस्तस्य शिष्या वै त्रयस्तु सुमहौजसः। सत्यश्रियाश्च विद्वांसः शास्त्रग्रहणतत्पराः॥३१॥
शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथीतरः। बाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्त्तकाः॥३२॥
देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानाहङ्कारगर्वितः। जनकस्य स यज्ञे वै विनाशमगमद्द्विजाः॥३३॥

शांशपायन उवाच

कथं विनाशमगमत्स मुनिर्ज्ञानगर्वितः। जनकस्याश्वमेधे तु कथं वादोऽभ्यजायत॥३४॥

परम्पराओ द्वारा पुराणो की विस्तृत कथाओं की रचना की।।२१।। जो भाग यजुर्वेद में बच गया था, उससे यज्ञों का विधान किया, जिसके द्वारा याज्ञिक क्रियाये पूर्ण की जाती हैं, वही यजुर्वेद है। शास्त्रों का यही निष्कर्ष है।।२२।। वेदों में पारङ्गत अन्य ऋषियों के संसर्ग से स्फुट यजुर्वेद के मन्त्र एवं पदसमूहो को एकत्र कर संकलित किया।।२३।।

उन्हीं यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा अश्वमेध यज्ञ का प्रचलन हुआ। परम ऋषि पैल ने ऋग्वेद की ऋचाओं को ग्रहण कर दो भागों मे विभक्त किया।।२४।। फिर उनकी दो संहितायें बनाकर दो शिष्यो को विभु पैल ने प्रदान किया। एक संहिता इन्द्रप्रमति को और दूसरी वाष्कल को दी।।२५।। फिर द्विजश्रेष्ठ वाष्कल ने चार संहितायें बानकर सेवाओं से कल्याण मे लगे हुए शिष्यों को अध्ययन कराया।।२६।।उनमें पहली शाखा का बोध्या को, दूसरी शाखा का अग्नि माठर को, तीसरी का पाराशरी को तथा चौथी शाखा को याज्ञवल्क्य को अध्ययन कराया।।२७।।

ऋषिश्रेष्ठ इन्द्रप्रमति ने एक संहिता को महाभाग मार्कण्डेय यशस्वी को पढ़ाया।।२८।। मार्कण्डेय ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सत्यश्रवा को और विभु सत्यश्रवा ने अपने पुत्र सत्यहित को पढ़ाया।।२९।। सूत जी कहते हैं कि फिर हे ब्राह्मणो! उस सत्यहित ने भी अपने धर्मपरायण महात्मा सत्यश्रिय को पढ़ाया।।३०।। उस महा ओजस्वी सत्यश्रिय के तीन पुत्र हुए, जो बहुत ही विद्वान् और शास्त्र की शिक्षा ग्रहण करने में तत्पर थे।।३१।। उनमें से शाकल्य सबसे प्रथम थे, उसके बाद दूसरे नम्बर पर रथीतर थे। बाष्कलि और भारद्वाज ये शाखा प्रवर्तक थे।।३२।। अपने ज्ञान के अहंकार से गर्वित शाकल्य देवमित्र नाम जनक के यज्ञ मे विनाश को प्राप्त हुए।।३३।।

शाशंपायन ने कहा कि सूत जी ज्ञान के अहंकार से गर्वित वे मुनि कैसे विनाश को प्राप्त हुए? राजा जनक

किमर्थं वाऽभवद्वादः केन सार्द्धमथापि वा। एतत्सर्वं यथा वृत्तमाचक्ष्व विदितं तव॥३५॥

सूत उवाच

जनकस्याश्वमेधे तु महानासीत्समागमः। ऋषीणां हि सहस्राणि तत्राजग्मुरनेकशः॥३६॥
राजर्षेर्जनकस्याथ तं यज्ञं हि दिदृक्षवः। आगतान्ब्राह्मणान्दृष्ट्वा जिज्ञासास्याभवत्ततः॥३७॥

को न्वेषां ब्राह्मणश्रेष्ठः कथं मे निश्चयो भवेत्।
इति निश्चित्य मनसा बुद्धिं चक्रे जनाधिपः॥३८॥

गवां सहस्रमादाय सुवर्णमधिकं ततः। ग्रामान्रत्नानि दासीश्च मुनीन्प्राह नराधिपः॥३९॥
सर्वानहं प्रपन्नो वः शिरसा श्रेष्ठभागिनः। यदेतदाहृतं वित्तं यो वा श्रेष्ठतमो भवेत्॥४०॥
तस्मै तदुपनीतं मे वित्तवित्तं द्विजोत्तमाः। जनकस्य वचः श्रुत्वा ऋषयस्ते श्रुतिक्षमाः॥४१॥
दृष्ट्वा धनं महासारं धनगृध्ना जिघृक्षवः। आह्वयांचक्रिरेऽन्योन्यं वेद ज्ञानमदोल्बणान्॥४२॥
मनसा गतवित्तास्ते ममैतद्धनमित्युत। ममैतन्न तवेत्यन्यो ब्रूहि वा किं विकत्थसे॥४३॥
इत्येवं धनदोषेण वादांश्चक्रुरनेकशः। अथान्यस्तत्र वै विद्वान्ब्रह्मणस्तु सुतः कविः॥४४॥

याज्ञवल्क्यो महातेजास्तपस्वी ब्रह्मवित्तमः।
ब्रह्मणोंऽशसमुत्पन्नो वाक्यं प्रोवाच सुस्वरम्॥४५॥

शिष्यं ब्रह्मविदां श्रेष्ठं धनमेतद्गृहाण वै। नयस्व च गृहंवत्स ममैतन्नात्र संशयः॥४६॥
सर्ववादेष्वहं वक्ता नान्यः कश्चित्तु मत्समः। यो वा न प्रीयते विद्वान्समाह्वयतु माचिरम्॥४७॥

के अश्वमेध में कैसे विवाद उत्पन्न हो गया था?।।३४।। और वह विवाद किसलिये तथा किसके साथ हुआ था? यह सब वृत्तान्त जो आपको विदित हैं, हमें बताइये।।३५।।

सूत जी बोले—राजा जनक के अश्वमेध यज्ञ में बहुत महान् समागम था। वहाँ अनेकों हजार ऋषियों के समूह आये थे।।३६।। वहाँ उस यज्ञ को देखने की इच्छा रखने वाले समागत ऋषियों को देखकर राजर्षि जनक को यह जानने की इच्छा हुई।।३७।। कि कौन यहाँ आये हुए ब्राह्मणों में श्रेष्ठ है, यह मुझे कैसे निश्चय हो, ऐसा निश्चय करके राजा ने मन से बुद्धि लगायी।।३८।। और कहा कि हजार गौएं उससे भी अधिक सुवर्ण उससे अधिक ग्राम और उससे दासियां हैं। ये सब आप लोगों के सामने हैं। हे श्रेष्ठ भाग्यवाले ऋषियो! आप लोगों में जो सबसे श्रेष्ठ हो, वह इस समस्त धन को ग्रहण करे। मैं इस धन को आपको प्रदान करूँगा। राजा जनक के इस वाक्य को सुनकर तथा उस को देखकर वेद पारङ्गत ऋषियों ने धनराशि को ग्रहण करने की इच्छा से अपने वेद ज्ञान के मद से उन्मत्त होकर एक-दूसरे को विवाद के लिए ललकारा।।३९-४२।। उस समय सबके मन में ये भाव उठ रहे थे कि यह धन मेरा है, कुछ ये तर्क कर रहे थे कि यह मेरा नहीं आपका है अथवा किसी अन्य का है। बोलो क्या तर्क कर रहे हो।।४३।। इस प्रकार वे सब ऋषि लोग तर्क कर ही रहे थे कि वहाँ पर ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ महान् तेजस्वी तपस्वी जो कि ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न थे। उन, महर्षि याज्ञवल्क्य ने सुन्दर स्वर से ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ अपने शिष्य को यह वाक्य कहा कि इस धन को ग्रहण करो और हे वत्स! इस धन को मेरे घर को ले चलो, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।४४-४६।। और फिर उन्होंने कहा सभी वादों (शास्त्रार्थों) में मैं श्रेष्ठ हूँ, मेरे समान दूसरा कोई

ततो ब्रह्मार्णवः क्षुब्धः समुद्र इव संप्लवे। तानुवाच ततः स्वस्थो याज्ञवल्क्यो हसन्निव॥४८॥
क्रोधं मा कार्ष्ट विद्वांसो भवन्तः सत्यवादिनः। वदामहे यथाशक्ति जिज्ञासन्तः परस्परम्॥४९॥
ततोऽभ्युपगतास्तेषां वादाः शब्दैरनेकशः। सहस्रदा शुभैरर्थैः सूक्ष्मदर्शनसंभवैः॥५०॥
लोके वेद तथाऽध्यात्मविद्यास्थानैरलंकृतैः। संत्युत्तमगुणैर्युक्ता नृपस्यापि परीक्षकाः॥५१॥
वादाः समभवंस्तत्र धनहेतोर्महात्मनाम्। ऋषयस्त्वेकतः सर्वे याज्ञवल्क्यस्तथैकतः॥५२॥
सर्वे ते मुनयस्तेन याज्ञवल्क्येन धीमता। एकैकशस्ततः पृष्टा नैवोत्तरमथाब्रुवन्॥५३॥
स विजित्य मुनीन्सर्वान् ब्रह्मराशिर्महामतिः। शाकल्यमिति होवाच वादकर्त्तारमंजसा॥५४॥
शाकल्य वद वक्तव्यं किं ध्यायन्नवतिष्ठसे। पणस्तु यजमानेन बद्धो नीतो यथा धृतः॥५५॥
एवं स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्रास्यलोचनः। प्रोवाच याज्ञवल्क्यं स पुरुषं मुनिसन्निधौ॥५६॥
त्वमस्मांस्तृणवत्कृत्वा तथैवान्यान्द्विजोत्तमान्। विद्याधनं महासारं स्वयंग्राहं जिघृक्षसि॥५७॥
शाकल्येनैवमुक्तस्तु याज्ञवल्क्यस्तमब्रवीत्। ब्रह्मिष्ठानां बलं विद्धि विद्यातत्त्वार्थदर्शनम्॥५८॥
कामस्यार्थेन सम्बन्धस्तेनार्थं कामयामहे। कामप्रश्नधना विप्राः कामप्रश्नं वदामहे॥५९॥

नहीं है। जो विद्वान् इस बात को अच्छा (प्रिय) न समझता हो, वह शीघ्र मेरे सामने आ जाये।।४७।। याज्ञवल्क्य की इस बात को सुनकर ब्राह्मण रूपी समुद्र प्रलयकालीन समुद्र की तरह क्षुब्ध हो गया। फिर स्वस्थ चित्त याज्ञवल्क्य ऋषि ने हँसते हुये उन सबसे कहा कि।।४८।। हे विद्वान् ऋषियो क्रोध मत करो। आप लोग सभी सत्य बोलने वाले हैं। आप लोग जानने की इच्छा रखते हैं, तो मैं आपसे कहता हूँ कि आप यथाशक्ति शास्त्रार्थ करें।।४९।। उसके बाद जो वहाँ आये थे, उनके साथ अनेक शब्दों द्वारा शास्त्रार्थ होने लगा, धन के लोभ से युक्त उन महात्मा ऋषियों में लौकिक वैदिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर सूक्ष्म दर्शनों से उत्पन्न कल्याणकारी अर्थों द्वारा हजारों प्रकार के वाद होने लगे। वे वाद (शास्त्रार्थ) उत्तम गुणों से युक्त थे तथा राजा की भी परीक्षा करने वाले थे अर्थात् अन्य विषयों के साथ राजनीति विषय पर भी शास्त्रार्थ होने लगा।।५०-५१।।

वहाँ पर वह महात्माओ का शास्त्रार्थ धन के लिये हो रहाया। सभी ऋषि एक तरफ थे और अकेले याज्ञवल्क्य एक तरफ थे।।५२।। उन सभी ऋषियों से याज्ञवल्क्य ने एक एक करके प्रश्न किये, किसी ने भी ठीक उत्तर नहीं दिया।।५३।। उसके बाद उन ब्रह्मराशि महामति याज्ञवल्क्य ने सब मुनियों को जीतकर वाद प्रतियोगिता में प्रमुख भागी महामुनिशाकल्य से शीघ्रतापूर्वक कहा।।५४।। हे शाकल्य! क्या सोच रहे हो? यजमान के द्वारा प्रण से ले जाया गया और बाँधा गया द्रव्य है, जिसे हमने लिया है। इस प्रकार याज्ञवल्क्य द्वारा अपमानित होने पर शाकल्य का मुख क्रोध के ताम्रवर्ण का हो गया। तब उन मुनियों के सामने याज्ञवल्क्य से उन्होंने कठोरवाणी में कहा कि याज्ञवल्क्य तुम हमें और इन श्रेष्ठ ऋषियों को हराकर इस प्रभूत धन को अकेले स्वयं ही लेना चाहते हो।।५५-५७।।

शाकल्य के ऐसा कहने पर याज्ञवल्क्य ने उनसे कहा कि ब्रह्मज्ञानियों का बल विद्या के तत्त्व और उसके अर्थ के ज्ञान के दर्शन वाला है।।५८।। इच्छा (काम) का धन से सम्बन्ध है, सबको धन की इच्छा होती है। इसलिये मैं भी धन चाहता हूँ। धन की इच्छा से विप्रों ने प्रश्न किया धन की इच्छा से मैं भी उत्तर देता हूँ। आप लोगों ने धन की इच्छा से मुझसे प्रश्न किया, मैंने उत्तर दिया। अब मैं भी धन की इच्छा से प्रश्न करता हूँ।।५९।।

पणश्चैवास्य राजर्षेस्तस्मान्नीतं धनं मया। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शाकल्यः क्रोधमूर्च्छितः॥६०॥
याज्ञवल्क्यमथोवाच कामप्रश्नार्थकृद्वचः। ब्रूहीदानीं मयोद्दिष्टान्कामप्रश्नान्यथार्थतः॥६१॥
ततः समभवद्वादस्तयोर्ब्रह्मविदोर्महान्। साग्रं प्रश्नसहस्रं तु शाकल्यः सोऽकरोत्तदा॥६२॥
याज्ञवल्क्योऽब्रवीत्सर्वमृषीणां शृण्वतां तदा।
शाकल्यस्त्वास निर्वादो याज्ञवल्क्यस्तमब्रवीत्॥६३॥
प्रश्नमेकं ममापि त्वं शाकल्य वद कामिकम्। पणप्राप्यस्य वादस्य ब्रुवतोर्मृत्युरत्र वै॥६४॥
सुसूक्ष्मज्ञानसंयुक्तं सांख्यं योगमथापि वा।
अध्यात्मस्य गतिं मुख्यां ध्यानमार्गमथापि वा॥६५॥
अथ संचोदितः प्रश्नो याज्ञवल्क्येन धीमता। शाकल्यस्तमविज्ञाय तथा मृत्युमवाप्तवान्॥६६॥
एवं स्मृतः स शाकल्यः प्रश्नव्याख्यानपीडितः। एवं विवादः सुमहानासीत्तेषां धनार्थिनाम्॥६७॥
ऋषीणामृषिभिः सार्द्धं याज्ञवल्क्यस्य चैव हि। याज्ञवल्क्यो धनं गृह्य यशो विख्याय चात्मनः।
जगाम वै गृहं स्वच्छं शिष्यै परिवृतो वशी॥६८॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषङ्गपादे व्यासशिष्योत्पत्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३४॥

यह इन राजर्षि जनक का प्रण ही था, सो इस कारण मैं धन को ले आया।। याज्ञवल्क्य का यह वचन सुनकर शाकल्य मुनि क्रोध से मूर्च्छित हो गये।।६०।। फिर शाकल्य मुनि याज्ञवल्क्य से इच्छा से धन प्राप्त करने वाला वचन कहा कि अब मेरे प्रश्नों का यथार्थ उत्तर बोलो। उसके बाद दोनों विद्वानों में घोर शास्त्रार्थ हुआ, शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से एक हजार प्रश्न किये, जिनका उसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने सब ऋषियों को सुनाते हुए उत्तर दिया। जब शाकल्य ने प्रश्न पूछना बन्द कर दिया, तब याज्ञवल्क्य ने उनसे कहा कि।।६१-६३।। हे शाकल्य एक मेरा भी कामिक प्रश्न है, तुम उसका उत्तर दीजिये; किन्तु यहाँ यह एक शर्त है कि यदि तुम मेरे प्रश्न का उत्तर न दे सकोगे तो मृत्यु को प्राप्त होगे। याज्ञवल्क्य ने अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञान से युक्त सांख्य और योग का प्रश्न, अध्यात्म की मुख्य गति और ध्यानमार्ग से सम्बन्ध रखने वाला प्रश्न किया। इसमें अध्यात्मक की मुख्य गति वाला प्रश्न सांख्यदर्शन से था और ध्यानमार्ग से सम्बन्धित प्रश्न योगदर्शन का था।।६४-६५।। इसके बाद याज्ञवल्क्य के द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर न जानकर शाकल्य मुनि मृत्यु को प्राप्त हो गये।।६६।। अतः वे शाकल्यमुनि प्रश्न व्याख्यान पीडित नाम से स्मरण किये गये।। इस प्रकार यह अच्छा और महान् विवाद (शास्त्रार्थ) उन धन चाहने वाले ऋषियों का और ऋषियों के साथ महर्षि याज्ञवल्क्य का था, जिसमें याज्ञवल्क्य ने सबको हराकर धन ग्रहण करके अपने यश का विस्तार कर अपने शिष्यों से परिवृत होकर अपने स्वच्छ घर को प्रस्थान किया।।६६-६८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ३४वां अध्याय व्यासशिष्यों की उत्पति वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

वेदव्यासाख्यान स्वायम्भुवमन्वतरवर्णनं नाम

सूत उवाच

देवमित्रश्च शाकल्यो महात्मा द्विजपुंगवः। चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान्वेदवित्तमः॥१॥
पञ्च तस्याभवञ्छिष्या मुद्‌गलो गोखलस्तथा। खलीयान्सुतपा वत्सः शैशिरेयश्च पञ्चमः॥२॥
प्रोवाच संहितास्तिस्त्रः शाको वैणो रथीतरः। निरुक्तं च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तमः॥३॥
तस्य शिष्यास्तु चत्वारः पैलश्चेक्षलकस्तथा। धीमाञ्छ तवलाकश्च गजश्चैव द्विजोत्तमाः॥४॥

बाष्कलिस्तु भरद्वाजस्तिस्त्रः प्रोवाच संहिताः।
त्रयस्तस्याभवञ्छिष्या महात्मानो गुणान्विताः॥५॥

धीमांश्च त्वापनापश्च पात्रगारिश्च बुद्धिमान्। तृतीयश्चार्जवस्ते च तपसा शंसितव्रताः॥६॥
वीतरागा महातेजाः संहिताज्ञानपारगाः। इत्येते बहूवृचाः प्रोक्ताः संहिता यैः प्रवर्तिताः॥७॥
वैशंपायनशिष्योऽसौ यजुर्वेदमकल्पयत्। षडशीतिस्तु तेनोक्ताः संहिता यजुषां शुभाः॥८॥
शिष्येभ्यः प्रददौ ताश्च जगृहुस्ते विधानतः। एकस्तत्र परित्यक्तो याज्ञवल्क्यो महातपाः॥९॥

षडशीतिस्तथा शिष्याः संहितानां विकल्पकाः।
सर्वेषामेव तेषां वै त्रिधा भेदाः प्रकीर्त्तिताः॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-३५

वेदव्यासाख्यान स्वायंभुवमन्वतर वर्णन

सूत जी बोले कि वेदज्ञों में सर्वश्रेष्ठ, द्विजपुङ्गव देवों के मित्र परम बुद्धिमान् महात्मा शाकल्य ने वेद की पांच संहिताओं की रचना की।।१।। उनके पांच शिष्य हुये वे हैं—मुद्‌गल, गोखल, खलीय, मत्स्य और पाँचवे शैशिरेय।।२।। द्विजश्रेष्ठ शाकल्य ने शाक, वैणी और रथीतर तीन संहिताओं का प्रणयन किया। द्विजश्रेष्ठ शाकवैणी रथीतर ने तीन संहिताओं का प्रणयन किया, फिर चौथे निरुक्त का प्रणयन किया।।३।। उनके पैल, चेक्षलक, बुद्धिमान्, तवलाक और गज ये चार द्विजश्रेष्ठ शिष्य थे। बाष्कलि पुत्र भरद्वाज ने तीन संहिताओं का प्रवचन किया, उन महात्मा के गुणान्वित तीन शिष्य हुए।।५।। पहला बुद्धिमान् आपनाम था, दूसरा बुद्धिमान् पात्रगारि था और तीसरा तप से प्रशंसित व्रत वाला आर्जव था।।६।। ये तीनों शिष्यगण, वीतराग, महातेजस्वी और संहिताओं के पारङ्गत ऋषि थे। इन्होंने बहुत सी संहिताओं का प्रवर्तन किया। इसीलिए उन्हें बह्वृच कहा गया।।७।।

वैशम्पायन शिष्य ने यजुर्वेद की कल्पना की। उन्होंने यजुर्वेद की छः शुभसहिता का प्रवचन किया और फिर उन्होंने उन संहिताओं को विधानपूर्वक अपने शिष्यों को प्रदान किया तथा शिष्यों ने विधानतः ग्रहण किया। उनमें केवल महातपस्वी याज्ञवल्क्य को छोड़ दिया।।८-९।। तथा ८६ शिष्य संहिताओं के विकल्पक हुए और उन सबके

त्रिधा भेदास्तु ते वेद भेदेऽस्मिन्नवमे शुभे। उदीच्या मध्यदेश्याश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधाः॥११॥
श्यामायनिरुदीच्यानां प्रधानः संबभूव ह। मध्यदेशप्रतिष्ठाता चासुरिः प्रथमः स्मृतः॥१२॥
आलंबिरादिः प्राच्यानां त्रयोदेश्यादयस्तु ते।
इत्येते चरकाः प्रोक्ताः संहिता वादिनो द्विजाः॥१३॥

ऋषय ऊचुः

चरकाध्वर्यवः केन कारणं ब्रूहि तत्त्वतः। किं चीर्णं कस्य वा हेतो श्चरकत्वं हि भेजिरे॥१४॥

सूत उवाच

कार्यमासीदृषीणां च किञ्चिद्ब्राह्मणसत्तमाः। मेरुपृष्ठं समासाद्य तैस्तदा त्विति मन्त्रितम्॥१५॥
यो वात्र सप्तरात्रेण नागच्छेद्द्विजसत्तमः। स कुर्याद्ब्रह्महत्यां वै समयो न प्रकीर्तितः॥१६॥
ततस्ते सगणाः सर्वे वैशंपायनवर्जिताः। प्रययुः सप्तरात्रेण यत्र सन्धिः कृतोऽभवत्॥१७॥
ब्रह्मणानां तु वचनाद्ब्रह्महत्यां चकार सः। शिष्यानथ समानीय स वैशंपायनोऽब्रवीत्॥१८॥
ब्रह्महत्यां चरध्वं वै मत्कृते द्विजसत्तमाः। सर्वे यूयं समागम्य ब्रूत कामं हितं वचः॥१९॥

याज्ञवल्क्य उवाच

अहमेकश्चरिष्यामि तिष्ठन्तु मुनयस्त्विमे। बलेनोत्थापयिष्यामि तपसा स्वेन भावितः॥२०॥
एव मुक्तस्ततः क्रुद्धो याज्ञवल्क्यमथात्यजत्। उवाच यत्त्वयाऽधीतं सर्वं प्रत्यर्पयस्व मे॥२१॥

तीन भेद प्रसिद्ध हुए। इस नौ भेद युक्त संहिता के उत्तरी, मध्यदेशीय और पूर्वीय ये तीन प्रमुख भेद कहे गये हैं।।१०-११।। इस प्रकार उत्तर देशवासियों की श्यामायनि प्रधान भेद प्रधान हो गया। मध्य देश की प्रतिष्ठाता आसुरी संहिता प्रथम कही गयी।।१२।। प्राच्य देशों की आलम्बि आदि संहिता थी। इस प्रकार ये तीनों देशों की संहितायें थीं। इस प्रकार इन सभी संहिताओं के प्रवचन करने द्विजचरक कहे गये हैं।।१३।।

उसके बाद ऋषियों ने सूत जी की बातें सुनकर कहा कि ये पुरोहित चरक किस कारण से कहे गये, इसका तत्त्वपूर्वक कारण हमें बताइये। इन्होंने क्या चीर दिया किस कारण से वे चरकत्व को प्राप्त हुए।।१४।।

सूत जी बोले—हे ब्राह्मश्रेष्ठ ऋषियो! प्राचीनकाल में एक समय ऋषियों को कोई ऐसा कार्य आन पड़ा, जिसके लिये सुमेरु पर्वत पर जाकर वे सब सम्पत्ति के लिये उपस्थित हुए। उस समय उन्होंने यह प्रण किया।।१५।। जो ब्राह्मण सात रात के बीच में हमारी इस मन्त्रणा में सहयोग देने के लिये नहीं आ जाता, वह ब्रह्महत्या का भागी होगा। ऐसी हमारी प्रतिज्ञा है।।१६।। ऋषियों की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर सभी ऋषिमुनि अपने अपने शिष्यादि को साथ लेकर वहीं उपस्थित हुए, जहाँ कि पहुँचना था, केवल वैशम्पायन ऋषि नहीं गये।।१७।। ब्राह्मणों के वचनानुसार वैशम्पायन ने ब्रह्महत्या की अर्थात् भागी हुए। इसके अपने शिष्यों को बुलाकर वैशम्पायन ने कहा।।१८।। हे द्विजश्रेष्ठ शिष्यो! मेरे लिये आप सब ब्रह्महत्या का भोग करो बोलो मेरे वचन हितकर हैं न।।१९।। याज्ञवल्क्य ने कहा, मैं अकेला चला जाऊँगा आप सभी मुनि लोग यहाँ ठहरिये, मैं भावित होकर अपने तप बल से उठा लूँगा। अर्थात् इस पाप का भागी नहीं बनूँगा।।२०।। याज्ञवल्क्य के इस प्रकार कहे जाने पर क्रोधित वैशम्पायन ने याज्ञवल्क्य को छोड़ दिया और कहा कि जो तुमने मुझसे पढ़ा है, उस सबको लौटा दो।।२१।।

एवमुक्तः सरूपाणि यजूंषि गुरवे ददौ। रुधिरेण तथोक्तानि च्छर्दित्वा ब्रह्मवित्तमाः॥२२॥
ततः स ध्यानमास्थाय सूर्यमाराधयद्द्विजः। सूर्ये ब्रह्म यदुत्पन्नं तं गत्वा प्रतिष्ठिति॥२३॥
ततो यानि गतान्यूर्ध्वं यजूंष्यादित्यमंडलम्। तानि तस्मै ददौ तुष्टः सूर्यो वै ब्रह्मरातये॥२४॥

अश्वरूपाय मार्त्तण्डो याज्ञवल्क्याय धीमते।
यजूंष्यधीयते तानि ब्राह्मणा येन केनचित्॥२५॥
अश्वरूपाय दत्तानि ततस्ते वाजिनोऽभवन्।
ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरकाः स्मृताः॥२६॥

वैशंपायनशिष्यास्ते चरकाः समुदाहृताः। इत्येते चरकाः प्रोक्ता वाजिनस्तु निबोधत॥२७॥

याज्ञवल्क्यस्य शिष्यास्ते कण्वो बौधेय एव च।
मध्यंदिनस्तु सापत्यो वैधेयश्चाद्धबौद्धकौ॥२८॥

तापनीयाश्च वत्साश्च तथा जाबालकेवलौ। आवटी च तथा पुंड्रो वैणोयः सपराशरः॥२९॥
इत्येते वाजिनः प्रोक्ता दशपञ्च च सत्तमाः। शतमेकाधिकं ज्ञेयं यजुषां ये विकल्पकाः॥३०॥
पुत्रमध्यापयामास सुमन्तुमथ जैमिनिः। सुमन्तुश्चापि सुत्वानं पुत्रमध्यापयत्पुनः॥३१॥
सुकर्माणं ततः सुन्वान्पुत्रमध्यापयत्पुनः। स सहस्त्रमधीत्याशु सुकर्माप्यथ संहिताः॥३२॥
प्रोवाचाथ सहस्त्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चसः। अनध्यायेष्वधीयानांस्तञ्जघान शतक्रतुः॥३३॥
प्रायोपवेशमकरोत्ततोऽसौ शिष्यकारणात्। क्रुद्धं दृष्ट्वाततः शक्रोवरं सोऽथ पुनर्ददौ॥३४॥

वैशम्पायन के इस प्रकार कहने पर ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ याज्ञवल्क्य ने वमन द्वारा खून से भींगे हुए समस्त यजुर्वेद को गुरु के सामने उगल दिया।।२२।। उसके बाद याज्ञवल्क्य मुनि ने ध्यान लगाकर सूर्य की आराधना की, तब जो भी यजुर्वेद (ब्रह्मज्ञान) उत्पन्न हुआ, वह सब सूर्य मे जाकर प्रतिष्ठित हो गया।।२३।। उसके बाद जो भी यजुर्वेद ऊपर सूर्यमण्डल में गया था, उस सबको प्रसन्न हुए भगवान् सूर्य ने अश्वरूप वाले ब्रह्मज्ञानी बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य मुनि को प्रदान कर दिया।।२४-२४½।। वे यजुर्वेद जिस किसी के द्वारा अध्ययन किये जाते हैं। वे सब ब्राह्मण अश्वरूप वालों को देने के कारण अश्व बन गये। ब्रह्महत्या को जिन्होंने चीरा वे चीर्णकरने केकारक चरक नाम से स्मरण किये गये।।२४½-२६।। तथा ब्रह्महत्या का अनुभव जिन लोगों ने किया था, वे वैशम्पायन के शिष्य चरक कहे गये। यह चरक विषयक वृत्तान्त है। अब वाजिनी शाखा को सुनिये।।२७।।

याज्ञवल्क्य के कण्व और बौधेय दो शिष्य थे तथा मध्यंदिन, सापत्य, वैधेय, आद्ध, बौद्धक, तापनीय, वत्स, जावाल, केवल, आवटी, पुण्ड्र, वैणोय और पराशर ये पन्द्रह ऋषि वाजनेयी शाखा के कहे गये हैं तथा यजुर्वेद के विकल्पक संख्या १०१ हैं। यजुर्वेद की वाजिनी शाखा को पहले जैमिनि ने अपने पुत्र सुमन्तु को पढ़ाया, उसके बाद सुमन्तु ने अपने पुत्र सुत्वा को पढ़ाया।।३१।। फिर सुत्वा ने अपने पुत्र सुकर्मा को पढ़ाया। सुकर्मा ने थोड़े ही समय में ३१ हजार संहिताओं का अध्ययन कर सूर्य के समान तेजस्वी अपने एक हजार शिष्यो को उसका अध्ययन कराया; किन्तु अनध्ययन के दिन भी अध्ययन करने के कारण इन्द्र ने उन सभी शिष्यों को मार दिया।।३१-३३।। उसके बाद दुःखी होकर सुकर्मा ने अपने शिष्यो के लिए प्रायोपवेश (आमरण अनशन) किया। उसके बाद सुकर्मा

भविष्यतो महावीर्यौ शिष्यौ तेऽतुलवर्चसौ। अधीयातां महाप्राज्ञौ सहस्त्रं संहिता उभौ॥३५॥

एते सुरा महाभागाः संक्रुद्धा द्विजसत्तम।
इत्युक्त्वा वासवः श्रीमान्सुकर्माणं यशस्विनम्॥३६॥
शान्तक्रोधं द्विजं दृष्ट्वा क्षिप्रमंतर धात्प्रभुः।
तस्य शिष्योऽभवद्धीभान् पौष्यञ्जिर्द्विजसत्तमाः॥३७॥
हिरण्यनाभः कौशल्यो द्वितीयोऽभून्नराधिपः।
अध्यापयत पौष्यञ्जिः सहस्त्रार्द्धं तु संहिताः॥३८॥
ते नाम्नोदीच्यसामानः शिष्याः पौष्यंजिनः शुभाः।
सत्त्वानि पञ्च कौशिल्यः संहितानामधीतवान्॥३९॥

शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मृतास्तु प्राच्यसामगाः। लौगाक्षिः कुशुमिश्चैव कुशीदिर्लांगलिस्तथा॥

पौष्यञ्जि शिष्याश्चत्वारस्तेषां भेदान्निबोधत॥४०॥
नाडायनीयः सहतण्डिपुत्रस्तस्मादनोवैननामा सुविद्वान्॥
सकोतिपुत्रः सुसहाः सुनामा चैतान्भेदान्वित्तलौगाक्षिणस्तु॥४१॥
त्रयस्तु कुशुमेः शिष्या औरसः स पराशरः॥४२॥

नाभिर्वित्तस्तु तेजस्वी त्रिविधा कौशुमाः स्मृताः। शौरिषुः शृङ्गिपुत्रश्च द्वावेतौ तु चिरव्रतौ॥४३॥
राणायनीयिः सौमित्रिः सामवेदविशारदौ। प्रोवाच संहितास्ति स्त्रः शृङ्गिपुत्रौ महातपाः॥४४॥
वैनः प्राचीनयोगश्च सुरालश्च द्विजोत्तमः। प्रोवाच संहिताः षट् तु पाराशर्यस्तु कौथुमः॥४५॥

मुनि को क्रुद्ध देखकर इन्द्र ने पुनः यह वर दिया कि तुम्हारे अग्नि के समान परम तेजस्वी और महान् पराक्रमी दो शिष्य होंगे। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम्हारे वे दोनों शिष्य महान् पण्डित होंगे और इन सहस्त्र संहिताओं का अध्ययन करेंगे। आप क्रोध न करें। परमयशस्वी द्विजश्रेष्ठ से ऐसी बातें कहकर और उनके क्रोध को शान्त कर इन्द्र अन्तर्धान हो गये।।३४-३६½।। हे द्विजश्रेष्ठ! उसके बाद उन सुकर्मों के परम बुद्धिमान् पौष्यञ्जी नामक प्रथम और हिरण्यनाभ राजा कौशिल्य नामक दूसरा शिष्य हुआ। पौष्यञ्जी ने पांच संहिताओं को अपने शिष्यों को पढ़ाया।।३६½-३८।। वे पौष्यञ्जि के शुभ शिष्य उत्तरी सामग (उत्तरी सामगान करने वाले) नाम से विख्यात हुए। पराक्रमी कौशिल्य ने भी पाँच सौ संहिताओं को अपने शिष्यों को पढ़ाया। हिरण्यनाभ राजा कौशिल्य के शिष्य प्राच्य सामग (पूर्वी सामगान करने वाले) नाम से विख्यात हुए।।३९-३९½।।

अप पाष्यञ्जि के शिष्यों के नाम सुनिये—लौगाक्षि, कुसुमि, कुशीदि, लांगलि, ये चार पौष्यञ्जि के शिष्य समझिये।।३९½-४०।। नाडायनीय, तण्डिपुत्र उससे अनोवैन नामक सुविद्वान्, सकोतिपुत्र सुसहा और सुनामा ये सब लौगाक्षि के शिष्य हैं।।४१।। कुशुमि के औरस पराशर और तेजस्वी मनाभिर्वृत्त ये तीन प्रकार के कौशुम कहे गये। शौरिघु और शृङ्गिपुत्र ये दो परम तपस्वी और व्रतपरायण थे।।४२-४३।। राणायनीय और सोमित्रि ये दो सामवेद के विशारद थे। महातपस्वी शृङ्गीपुत्र ने तीन संहिताओं का उपदेश किया था।।४४।। द्विजश्रेष्ठ वैन, प्राचीन योग और सुराल और कुसुमि के शिष्य पाराशर्य ने छः संहिताओं का उपदेश किया था।।४५।।

आसुरायणवैशाख्यौ वेदवृद्धपरायणौ। प्राचीनयोगपुत्रश्च बुद्धिमांश्च पतञ्जलिः॥४६॥
कौथुमस्य तु भेदाश्च पाराशर्यस्य षट् स्मृताः।
लाङ्गलः शालिहोत्रश्च षडुवाचाथ संहिताः॥४७॥
हालिनिर्ज्यामहानिश्च जैमिनिर्लोमगायनिः। कंडुश्च कोहलश्चैव षडे ते लांगलाः स्मृताः॥४८॥
एते लाङ्गलिनः शिष्याः संहिता यैः प्रवर्त्तिताः।
एको हिरण्यनाभस्य कृतः शिष्यो नृपात्मजः॥४९॥
सोऽकरोत्तु चतुर्विंशसंहिता द्विपदां वरः। प्रोवाच चैव शिष्येभ्यो येभ्यस्तांश्च निबोधत॥५०॥
राडिश्च राडवीयश्च पञ्च मौ वाहनस्तथा। तलको माण्डुकश्चैव कालिको राजिकस्तथा॥५१॥
गौतमश्चाजबस्तश्च सोमराजायनस्ततः। पुष्टिश्च परिकृष्टश्च उलूखलक एव च॥५२॥
यवीयसस्तु वै शालीरङ्गुलीयश्च कौशिकः। शालिमञ्जरिपाकश्च शधीयः कानिनिश्च यः॥५३॥
पाराशर्यस्तु धर्मात्मा इति क्रान्तास्तु सामगाः। सामगानां तु सर्वेषां श्रेष्ठौ द्वौ परिकीर्त्तितौ॥५४॥
पौष्यञ्जिश्च कृतश्चैव संहितानां विकल्पकौ। अथर्वाणं द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददाद्द्विजाः॥५५॥
कबन्धाय पुनः कृष्णं स च विद्वान्यथाश्रुतम्।
कबन्धस्तु द्विधा कृत्वा पथ्यायैकं पुनर्ददौ॥५६॥
द्वितीयं देवदर्शाय स चतुर्धाकरोत्प्रभुः। मोदो ब्रह्मबलश्चैव पिप्पलादस्तथैव च॥५७॥
शौल्कायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थस्तपसि स्थितः। देवदर्शस्य चत्वारः शिष्या ह्येते दृढव्रताः॥५८॥
पुनश्च त्रिविधं विद्धि पथ्यानां भेदमुत्तमम्। जाजलिः कुमुदादिश्च तृतीयः शौनकः स्मृतः॥५९॥

अनुरायण, वैशाख्य, वेदवृद्धपरायण, प्राचीन योगपुत्र, बुद्धिमान पतञ्जलि, ये कौशुभि के शिष्य पाराशर्य के छः भेद कहे गये हैं।।४६-४६½।। लाङ्गल और शालिहोत्र ने छः संहिताओं का उपदेश किया। हालिनि, ज्यामहानि, जैमिनि, लोमगायनि, कण्डु, कोहल ये छः लाङ्गल कहे गये।।४६½-४८।। ये सब लाङ्गलि के शिष्य हैं, जिन्होंने संहिताओं का प्रवर्तन किया। एक जो कौशलि राजा पुत्र के हिरण्यनाम था, उसने २४ संहिताओं का प्रणयन किया और उन सबको अपने शिष्यों को पढ़ाया। उनको जानिये।।४९-५०।।

वे हैं—राडि, राडवीय, पञ्चम, वाहन, तलक, माण्डुक, कालिक और राजिक, गौतम, आजव, सोमराजायन, पुष्टि, परिकृष्ट, उलूखलक, यवीयस, वैशाली, अंगुलीय, कौशिक, शालि, मंजरीपाक, शधीय, कानिनि और धर्मात्मा पाराशर्य ये सभी भूतकाल के ऋषिगण सामवेद का गान करने वाले थे।।५१-५३½।। सामगान करने वाले समस्त ऋषियों पौष्यञ्जि और कृति दो श्रेष्ठ कहे गये हैं।।५३½-५४½।। हे ब्राह्मणो! सुमन्तु ने अथर्ववेद को दो भागों में करके सबकी कबन्ध नामक शिष्य को शिक्षा दी।।५४½-५५½।। कबन्ध ने फिर दो भाग करके एक को पथ्य नाम शिष्य को और दूसरे को देवदर्श नामक शिष्य को उपदेश दिया। उसके बाद देवदर्श ने उसके चार भाग किये। मोद, ब्रह्मबल, पिप्पलाद और धर्मज्ञ शौल्कायनि ये चार देवदर्श (वेदस्पर्श) के चार शिष्य हैं। चौथे शिष्य शौल्कायनि तप में स्थित थे। देवदर्श के ये चारों शिष्य दृढव्रत धारण करने वाले थे।।५५½-५८।। पथ्य के उत्तम शिष्यों की संख्या तीन समझिये, जो हैं—जाजलि, कुमुदादि और शौनक नाम से स्मरण किये गये।।५९।।

शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकां तु बभ्रवे। द्वितीयां संहितां धीमान्सैन्धवायनसंज्ञिते॥६०॥
सैंधवो मुञ्जकेशयश्च भिन्नामाधाद्द्विधा पुनः। नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः॥६१॥
चतुर्थोऽगिरसः कल्पः शान्तिकल्पश्च पञ्चमः।
श्रेष्ठास्त्वथर्वणामेते संहितानां विकल्पकाः॥६२॥
खड्गः कृत्वा मया युक्तं पुराणमृषिसत्तमाः।
आत्रेयः सुमतिर्धीमान् काश्यपो ह्यकृतव्रणः॥६३॥
भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वासिष्ठा मित्रयुश्च यः। सावर्णिः सोमदत्तिश्च सुशर्मा शांशपायनः॥६४॥
एते शिष्या मम प्रोक्ताः पुराणेषु धृतव्रताः। त्रिभिस्तत्र कृतास्तिस्त्रः संहिताः पुनरेव हि॥६५॥
काश्यपः संहिता कर्त्ता सावर्णिः शांशपायनः।
मामिका तु चतुर्थी स्याच्चतस्त्रो मूलसंहिताः॥६६॥
सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः।
पाठान्तरे वृथाभूता वेदशाखा यथा तथा॥६७॥
चतुःसाहस्त्रिकाः सर्वाः शांशपायनकामृते। लौमहर्षणिका मूला ततः काश्यपिका परा॥६८॥
सावर्णिका तृतीयासावृजुवाक्यार्थमण्डिता। शांशपायनिका चान्या नोदनार्थविभूषिता॥६९॥
सहस्त्राणि ऋचां चाष्टौ षट्शतानि तथैव च।
एताः पञ्चदशान्याश्च दशान्या दशभिस्तथा॥७०॥
सवालखिल्याः सप्तैताः ससुपर्णाः प्रकीर्त्तिताः।
अष्टौ सामसहस्त्राणि सामानि च चतुर्द्दश॥७१॥

शौनक ने दो विभाग करके एक संहिता को बभ्रु को दिया और दूसरी को सैन्धवायन नाम शिष्य को दिया।।६०।। सैन्धव ने मुञ्जकेश्य को दिया, फिर वह दो भागों में विभक्त हो गयी। पहली नक्षत्र कल्प, दूसरी वैतान और तीसरी संहिता विधि, चौथा आङ्गिरस कल्प और पाँचवां शान्तिकल्प है। अथर्ववेद की संहिताओं के ये विकल्पक श्रेष्ठ माने गये हैं।।६१-६२।। फिर सूत जी कहते हैं कि हे विप्रवृन्द! मैंने भी पुराणों को छः भाग किये हैं। अत्रि पुत्र आत्रेय, सुमति, बुद्धिमान् काश्यप अकृत व्रण, भारद्वाज, अग्निवर्चा, वाशिष्ठ, मित्रयु, सावर्णि, सोमदत्ति, सुशर्मा, शांशपायन ये सब मेरे पुराणों में शिष्य हैं, जो सब दृढ़व्रत धारण करने वाले हैं।।६३-६४½।।

इनमें से तीन शिष्यों ने संहिता के तीन विभाग कर फिर तीन भाग किये। जो संहिताकर्त्ता काश्यप सावर्णि और शांशपायन हैं। सामिका तो चौथी संहिता है। इस प्रकार चार मूल संहितायें हैं।।६४½-६६।। वे सभी चार पाद वाली हैं और सभी एक अर्थ को बताने वाली हैं। वेद की शाखाओं की भाँति पाठान्तर में भिन्न-भिन्न हैं।।६७।। शांशपायन की संहिता को छोड़कर सभी चार हजार संख्या वाली हैं, जिनमें लोमहर्षण की संहिता मुख्य है। उसके बाद कश्यप शाखा का स्थान है।।६८।। सावर्णिका शाखा तीसरे स्थान पर है, वह सरल वाक्य के अर्थ से मण्डित है। शांशपायन शाखा चौथे स्थान पर है, जो प्रेरणा प्रदान करने वाले अर्थ से विभूषित है।।६९।। उसकी ऋचाओं की संख्या आठ हजार छः सौ है। इनके अतिरिक्त पन्द्रह संहितायें तथा दश दश संहितायें और भी हैं।।७०।। जो ये सात बालखिल्य और सुपर्ण के नाम से जानी जाती हैं। आठ हजार साम संहितायें, चौदह हजार साममन्त्र आरण्यक

सारण्यकं सदोहं च एतद्गायन्ति सामगाः। द्वादशैव सहस्राणि च्छन्द आध्वर्यवं स्मृतम्॥७२॥
यजुषां ब्राह्मणानां च तथा व्यासो व्यकल्पयत्।
सग्राम्यारण्यकं तस्मात्समन्त्रकरणं तथा॥७३॥
अतःपरं कथानं तु पूर्वा इति विशेषणम्। ग्राम्यारण्यं समन्त्रं तदृग्ब्राह्मणयजुः स्मृतम्॥७४॥
तथा हारिद्रवीर्याणां खिलान्युपखिलानि तु। तथैव तैत्तिरीयाणां परक्षुद्रा इति स्मृतम्॥७५॥
द्वे सहस्रे शतन्यूने वेदे वाजसनेयके। ऋग्गणः परिसंख्यातो ब्राह्मणं तु चतुर्गुणम्॥७६॥
अष्टौ सहस्राणि शतानि वाष्टावशीतिरन्यान्यधिकानि वा च॥
एतत्प्रमाणं यजुषामृचां च सशुक्रियं सखिलं याज्ञवल्क्यम्॥७७॥
तथा चारणविद्यानां प्रमाणसहितं शृणु। षट्सहस्रमृचामुक्तमृचः षड्विंशतिं पुनः॥७८॥
एतावदधिकं तेषां यजुः कि मपि वक्ष्यते। एकादशसहस्राणि ऋचश्चान्या दशोत्तराः॥७९॥
ऋचां दशसहस्राणि ह्यशीतिस्त्रिशदेव तु। सहस्रमेकं मन्त्राणामृचामुक्तं प्रमाणतः॥८०॥
एतावानृचि विस्तारो ह्यन्यच्चाथर्विकं बहु। ऋचामथर्वणां पञ्चसहस्राणीति निश्चयः॥८१॥
सहस्रमन्यद्विज्ञेयमृषिभिर्विंशतिं विना। एतदङ्गिरसां प्रोक्तं तेषामारण्यकं पुनः॥८२॥
इति संख्या प्रसंख्याता शाखाभेदास्तथैव तु। कर्तारश्चैव शाखानां भेदहेतूंस्तथैव च॥८३॥
सर्वमन्वन्तरेष्वेवं शाखाभेदाः समाश्रिताः।
प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः॥८४॥

सहित, तथा हवन मन्त्र के साथ सामवेद के छन्दों का गान करने वाले इनका गान करते हैं।।७१-७१½।। इसके अतिरिक्त महामुनि वेदव्यास ने यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों के बारह हजार छन्दों का प्रणयन किया, जो आध्वर्यव कहे गये, जिनमें ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित तथा वन प्रदेश से सम्बन्धित छन्द बनाये गये थे।।७१½-७३।।

इसके बाद कथाओं को 'पूर्वा' विशेषण कहा गया है। ऋग्, ब्राह्मण और यजु ये तीन मन्त्रों के साथ ग्राम्य और अरण्य नाम से जाने जाते हैं।।७४।। हारिद्रवीर्यों के खिलभाग और उपखिलभाग हैं। उसी प्रकार तैत्तिरीयों के पर और क्षुद्र ये दो भाग कहे गये हैं।।७५।। इसके अलावा दो हजार से एक सौ कम अर्थात् उन्नीस सौ वाजसेनय में संहिता की ऋचाओं को और उसके चौगुनी संख्या वाले ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रणयन किया।।७६।। आठ हजार आठ सौ अस्सी यजुर्वेद और ऋग्वेद की शाखायें कही गयी हैं, जो शुक्रिय और खिल सहित याज्ञवल्क्य शाखायें हैं।।७।। तथा चारण विद्याओं की संख्या प्रमाण के साथ सुनिये। इस चारणविद्या कथाओं की संख्या छः हजार बत्तीस है।।७८।।

इससे भी अधिक यजुर्वेद की कितनी शाखायें हैं, बतायी जायेंगीं। ग्यारह हजार बीस यजुर्वेद की ऋचाओं की संख्या हैं, उनमें दश हजार तीन सौ अस्सी तो ऋचाओं की संख्या है तथा एक हजार मन्त्रों की ऋक् संख्या प्रमाणतः बतायी गयी है।।७९-८०।। इतनी ऋचाओं का विस्तार यजुर्वेद अथर्वेद की संहितायें भी बहुत हैं। अथर्ववेद की ऋचाओं की संख्या पाँच हजार है, ऐसा निश्चय है।।८१।। उन्नीस हजार अन्य ऋचाओं की संख्या ऋषियों द्वारा बतायी गयी हैं। यह अङ्गिरा ऋषि द्वारा कही गयी आरण्य की संख्या है।।८२।। इस प्रकार यह संख्या बतायी गयी, उसी प्रकार उनके शाखा भेद भी बताये गये तथा भेदों के भेद उनके हेतु भी बताये गये हैं।।८३।। सभी मन्वन्तरों में इसी

अनित्यभावाद्देवानां मन्त्रोत्पत्तिः पुनः पुनः। द्वापरेषु पुनर्भेदाः श्रुतीनां परिकीर्त्तिताः॥८५॥
एवं वेदं तदाप्यस्य भगवानृषिसत्तमः। शिष्येभ्यश्च प्रदत्त्वा तु तपस्तप्तुं वनं गतः॥८६॥
तस्य शिष्यप्रशिष्यैस्तु शाखाभेदास्त्विमे कृताः।
अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः॥८७॥
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्याश्चेमांश्चतुर्दश। आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः॥८८॥
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव हि। ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्वं तेभ्यो देवर्षयः पुनः॥८९॥
राजर्षयः पुनस्तेभ्य ऋषिप्रकृतयस्त्रिधा। काश्यपेषु वसिष्ठेषु तथा भृग्वङ्गिरोऽत्रिषु॥९०॥
पञ्चस्वेतेषु जायन्ते गोत्रेषु ब्रह्मवादिनः। यस्मादृषन्ति ब्रह्माणं ततो ब्रह्मर्षयः स्मृताः॥९१॥
धर्मस्याथ पुलस्त्यस्य क्रतोश्च पुलहस्य च। प्रत्यूषस्य च देवस्य कश्यपस्य तथा पुनः॥९२॥
देवर्षयः सुतास्तेषां नामतस्तान्निबोधत। देवर्षी धर्मपुत्रौ तु नरनारायणभुवौ॥९३॥
वालखिल्याः क्रतोः पुत्राः कर्दमः पुलहस्य तु। कुबेरश्चैव पौलस्त्यः प्रत्यूस्य दलः सुत॥९४॥
नारदः पर्वतश्चैव कश्यपस्यात्मजावुभौ। ऋषन्ति वेदान्यस्मात्ते तस्माद्देवर्षयः स्मृताः॥९५॥
मानवे चैव ये वंशे ऐलवंशे च ये नृपाः। ये च ऐक्ष्वाकनाभागा ज्ञेया राजर्षयस्तु ते॥९६॥

प्रकार शाखाभेद समान रूपसे आश्रित हैं। प्रजापति ब्रह्मा द्वारा बनायी गयी श्रुतियां (वेदसाहित्य) नित्य हैं। इसके विकल्प ये ही कहे जाते हैं।।८४।। देवों के अनित्य (नाशशील) होने के कारण बार-बार मन्त्रों की उत्पत्ति होती है। ये जो भेद कहे गये हैं, वे द्वापर युग में श्रुतियों के भेद कहे गये हैं।।८५।। इस प्रकार वेदों का विभाग करके ऋषि श्रेष्ठ भगवान् व्यास अपने शिष्यों को सौंपकर तप करने के लिये वन को चले गये।।८६।। उसके बाद उनके शिष्यों और प्रशिष्यों ने इन शाखा भेदों का इस प्रकार विभाग किया। श्रुतियों के छः अंग (शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योति) चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद); मीमांसा (पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा) और न्याय धर्मशास्त्र और पुराण ये चौदह विद्यायें हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र इन चारों को मिलकर अठारह प्रकार की विद्यायें हैं।।८७-८८½।। अब ऋषियों के विषय में बताते हैं।

सर्वप्रथम ब्रह्मर्षि को जानना चाहिये दूसरे स्थान पर देवर्षि हैं और फिर उनके बाद राजर्षियों को जानना चाहिये। इस प्रकार ऋषियों की तीन प्रकृतियां हैं।।८८½-८९½।। काश्यप वशिष्ठ, भृगु, अंगिरा और अत्रि इन पांच ऋषियों के गोत्रों में ब्रह्मर्षि पैदा होते हैं। ब्रह्मर्षि शब्द का अर्थ है कि जो ब्रह्म की खोज करते हैं। ब्रह्म को प्राप्त करते हैं अथवा ब्रह्म को देखते हैं, वे ब्रह्मर्षि कहलाते हैं।।८९½-९१।। धर्म, पुलस्य, क्रतु, पुलह, प्रत्यूष, प्रभास और कश्यप के पुत्रों को देवर्षि कहा जाता है। उनके नाम सुनये—धर्म के दो पुत्र राजर्षि नर और नरायण हैं।।९२-९३।। बालखिल्यगण क्रतु के पुत्र हैं। कर्दम पुलह के पुत्र हैं। कुबेर पुलस्त्य के पुत्र हैं तथा दल को प्रत्यूष का पुत्र कहा गया है।।९४।। नारद और पर्वत ये दोनों कश्यप के पुत्र हैं। ऋषन्ति देवान् देवताओं तक पहुँचते हैं, इस अर्थ के कारण वे देवर्षि कहे गये हैं। ब्रह्मा के अनुसार—ऋषन्ति वेदान् अर्थात् जो वेदों का अनुसंधान करते हैं, वे देवर्षि कहे जाते हैं। यही अर्थ उचित है।।९५।। जो मानववंश ऐलवंश में जो राजागण पैदा हुए अर्थात् मनु से इला में जो पैदा हुए वे ऐल कहे गये। अतः उस वंश में पैदा होने वाले इक्ष्वाकु पुत्र ऐक्ष्वाकु और नाभाग को राजर्षि जानना चाहिये।।९६।।

ऋषन्ति रञ्जनाद्यस्मात्प्रजा राजर्षयस्ततः। ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्षयोऽमलाः॥९७॥
देवलोकप्रतिष्ठास्तु ज्ञेया देवर्षयः शुभाः। इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्तु सर्वे राजर्षयो मताः॥९८॥
अभिजात्याऽथ तपसा मन्त्रव्याहरणैस्तथा। ये च ब्रह्मर्षयः प्रोक्ता दिव्या देवर्षयश्च ये॥९९॥
राजर्षयस्तथा चैव तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्।
भूतं भव्यं भवज्ज्ञानं सत्याभि व्याहृतं तथा॥१००॥
सन्तुष्टाश्च स्वयं येतु सम्बुद्धा येच वै स्वयम्। तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भे यैश्च प्रवेदितम्॥१०१॥
मन्त्रव्याहारिणो ये च ऐश्वर्यात्सर्वगाश्च ये। एते एते राजर्षयो युक्ता देवद्विजनृपाश्च ये॥१०२॥
एतान्भावानधिगता ये वैत ऋषयो मताः। सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः॥१०३॥
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वराहिव्यचक्षुषः। बुद्धाः प्रत्यक्ष धर्माणोगोत्रप्रावर्त्तकाश्च ते॥१०४॥
षट्कर्मनिरता नित्यं शालीना गृहमेधिनः। तुल्यैर्व्यवहरन्ति स्म ह्यदुष्टैः कर्महेतुभिः॥१०५॥
अग्राम्यैर्वर्त्तयन्ति स्म रसैश्चैव स्वयंकृतैः। कुटुम्बिनो बुद्धिमन्तो वनान्तरनिवासिनः॥१०६॥
कृतादिषु युगाख्यासु सर्वैरेवपुनः पुनः। वर्णाश्रमव्यवस्थानं क्रियते प्रथमं तु वै॥१०७॥
प्राप्ते त्रेतायुगमुखे पुनः सप्तर्षयस्त्विह। प्रवर्त्तयन्ति ये वर्णानाश्रमां श्चैव सर्वशः॥१०८॥
तेषामेवान्वये वीरा उत्पद्यन्ते पुनः पुनः। जायमाने पितापुत्रे पुत्रः पितरि चैव हि॥१०९॥

राजर्षि शब्द का अर्थ है—प्रजाओं को रंज (सुखी रखने) के कारण जो प्रजाओ तक पहुँचते हैं, वे राजर्षि कहे जाते हैं। अर्थात् प्रजाओं को आनन्दित करने का अनुसन्धान करते हैं, वे राजर्षि हुए।। जो ऋषिगण ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, वे अमल ब्रह्मर्षि कहे गये हैं।।९७।। जो देवलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, वे शुभ देवर्षि कहे जाते हैं। इन्द्रलोक में प्रतिष्ठा तो सब राजर्षियों की मानी गयी है।।९८।। अच्छे कुल में उत्पन्न, तपस्या अथवा मन्त्रों की व्याख्या जो दिव्यगुण वाले राजर्षि करते हैं, वे भी ब्रह्मर्षि कहे गये हैं।।९९।। अब जो राजर्षि हैं, उनका मैं लक्षण बताऊँगा। भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमानकाल का ज्ञान रखने वाले तथा सत्य पर रहने वाले, स्वयं पर सन्तुष्ट रहने वाले, स्वयं को जानने वाले, इस संसार में तपस्या से प्रसिद्ध तथा जिन्हें गर्भ में प्रकृष्ट रूप से ज्ञान हो गया है तथा जो मन्त्रों के जानने वाले हैं तथा जो ऐश्वर्य से सर्वत्र गमन करने वाले हैं, वे सब देवता, ब्राह्मण अथवा राजा ही क्यों न हों, राजर्षि कहे जाते हैं।।१००-१०२।। जिन्होंने इन भावों को प्राप्त कर लिया है, वे ऋषि माने गये हैं। दीर्घायु सम्पन्न मन्त्रकर्ता, ऐश्वर्यशाली, दिव्यदृष्टि सम्पन्न, ज्ञानी, प्रत्यक्ष, धर्मात्मा और गोत्र को चलाने वाले ये जो गुण हैं, इन सात गुणों से युक्त ऋषिगण सप्तर्षि कहे गये हैं।।१०३-१०४।। वे ऋषिगण सर्वदा छः कर्मों में (यज्ञ करना कराना, पढ़ना-पढ़ाना, दान देना लेना) में लगे रहते थे, शालीन गार्हस्थ्याश्रयी थे, सज्जनों के साथ समानतापूर्ण व्यवहार करने वाले अपने द्वारा अपने ही में आनन्द लेने वाले अर्थात् आत्म ज्ञान से सबके साथ शिष्ट व्यवहार करते थे। वे कुटुम्बी, बुद्धिमान् तथा वन में निवास करने वाले थे।।१०५-१०६।। सतयुग आदि युगों में सबसे पहले वे ऋषिगण बार बार वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था स्थापित करते हैं।।१०७।। पुनः त्रेतायुग मे प्रारम्भ होने पर वे ही सप्तर्षिगण इस पृथ्वी पर सर्वत्र वर्ण और आश्रमो का पुनः प्रचलन करते हैं।।१०८। उन्हीं ऋषियों के वंश में वीरपुरुष पुनः पुनः उत्पन्न होते हैं। पुत्र के पैदा होने में पिता और पिता में पुत्र ऐसा उस काल मे था। अर्थात् पिता

एवं सन्तत्य विच्छेदाद्वर्तयन्त्यायुगक्षयात्।
अष्टाशीतिसहस्राणि प्रोक्तानि गृहमेधिनाम्॥११०॥
अर्यम्णो दक्षिणं ये तु पितृयानं समाश्रिताः।
दाराग्निहोत्रिणस्ते वै ये प्रजाहेतवः स्मृताः॥१११॥
गृहमेधिनस्त्वसंख्येयाः श्मशानान्याश्रयन्ति ते।
अष्टाशीतिसहस्राणि निहिता उत्तरापथे॥११२॥

ये श्रूयन्ते दिवं प्राप्ता ऋषयो ह्यूर्ध्वरेतसः। मन्त्रब्राह्मणकर्त्तारो जायन्ते च युगक्षयात्॥११३॥
एवमावर्त्तमा नास्ते द्वापरेषु पुनः पुनः। कल्पानामार्षविद्यानां नानाशास्त्रकृतश्च ये॥११४॥
क्रियते यैर्व्यवहृतिर्वैदिकानां च कर्मणाम्। वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्द्वापरेषु पुनः पुनः॥११५॥

अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभिः।
सप्तमे द्वापरे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयंभुवा॥११६॥

द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः। तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः॥११७॥
सविता पञ्चमे व्यासो मृत्युः षष्ठे स्मृतः प्रभुः। सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः॥११८॥
सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः। एकादशे तु त्रिवर्षा सनद्वाजस्ततः परम्॥११९॥
त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे। त्रैय्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः॥१२०॥
कृतञ्जयः सप्तदेश ऋजीषोष्टादशे स्मृतः। ऋजीषात्तु भरद्वाजो भरद्वाजात्तु गौतमः॥१२१॥

से पुत्र और फिर वह पुत्र जो पिता बन गये, उससे फिर पुत्र उत्पन्न होते हैं। अर्थात् पुरुष परस्त्रीगामी तथा स्त्रियाँ परपुरुषगामिनी नहीं थीं। इस प्रकार विना काल व्यवधान के वे ऋषिगण युग के नष्ट होने तक वर्तमान रहते हैं। उन गार्हस्थाश्रय में रहने वाले ऋषियों की संख्या अठासी हजार कही गयी है।।१०९-११०।। जो सूर्य के उत्तरायण होने पर जो मुनिगण पितृयान पर समाश्रित होते हैं। पत्नी और अग्निहोत्र से सम्बन्ध रखने वाले वे सन्तानोत्पत्ति के कारण कहे गये हैं।।१११।। वे ही असंख्य ऋषिगण ग्रहस्थाश्रमियों में गिने जाने योग्य हैं, जो उत्तरायण सूर्य के होने पर श्मशान का आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे मुनि अठासी हजार हैं।।११२।। जो ऊर्ध्वरेता ऋषिगण स्वर्ग को प्राप्त हुए सुने जाते हैं, वे युग के नष्ट होने पर पुनः मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों के बनाने वाले बनकर उत्पन्न होते हैं।।११३।। इस प्रकार बार-बार द्वापर युग में आते हुए कल्पों और आर्षविद्याओं तथा अनेको शास्त्रों के रचयिता बनते हैं।।११४।। उस वैवस्वत मन्वन्तर में जिनके द्वारा पुनः पुनः वैदिक कर्मों का व्यवहार किया जाता है।।११५।। उन महर्षियों ने अट्ठाईस बार वेदों को पुनः व्यस्त किया। सातवें द्वापर युग में स्वायंभुव ने स्वयं वेदों को व्यस्त किया।।११६।। दूसरे द्वापरयुग में प्रजापति वेदव्यास थे, तीसरे द्वापर में उशना व्यास थे। चतुर्थ द्वापर में बृहस्पति व्यास हुए।।११७।। पाँचवें द्वापर में मृत्यु व्यास हुए। छठे द्वापर में प्रभु स्मृत हुए। सातवें द्वापर में इन्द्र और आठवें द्वापर में वशिष्ठ व्यास हुए।।११८।। नवें द्वापर द्वापर में सारस्वत तथा दशवें द्वापर युग में त्रिधामा व्यास हुए। ग्यारहवें द्वापर में त्रिवर्षा, बारहवें द्वापर में सनद्वाजव्यास हुए।।११९।। तेरहवें द्वापर में अन्तरिक्ष और चौदहवें द्वापर में धर्म, पन्द्रहवें द्वापर में त्रैय्यारुणि तथा सोलहवें द्वापर में धनञ्जय व्यास हुए।।१२०।। सत्तरहवें

गौतमादुत्तमश्चैव ततो हर्यवनः स्मृतः। हर्यवनात्परो वेनः स्मृतो वाजश्रवास्ततः॥१२२॥
अर्वाक्च वाजश्रवसः सोममुख्यायनस्ततः। तृणबिन्दुस्ततस्तस्मात्ततजस्तृणबिन्दुतः॥१२३॥
ततजाच्च स्मृतः शक्तिः शक्तेश्चापि पराशरः।
जातूकर्णो भवत्तस्मात्त स्मादद्वैपायनः स्मृतः॥१२४॥
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः। भविष्ये द्वापरे चैव द्रोणिर्द्वैपायनेऽपि च॥१२५॥
वेदव्यासे ह्यतीतेऽस्मिन्भविता सुमहातपाः। भविष्यन्ति भविष्येषु शाखाप्रणयनानि तु॥१२६॥
तस्यैव ब्रह्मणो ब्रह्म तपसः प्राप्तमव्ययम्।
तपसा कर्म च प्राप्तं कर्मणा चापि ते यशः॥१२७॥
पुनश्च तेजसा सत्यं सत्येनानन्दमव्ययम्। व्याप्तं ब्रह्मामृतं शुक्रं ब्रह्मैवामृतमुच्यते॥१२८॥
ध्रुवमेकाक्षरमिदमोमित्येव व्यवस्थितम्। बृहत्वाद्बृंहणाच्चैव तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते॥१२९॥
प्रणवावस्थितं भूयो भूर्भुवःस्वरिति स्मृतम्।
अथर्वऋग्यजुःसाम्नि यत्तस्मै ब्रह्मणे नमः॥१३०॥
जगतः प्रलयोत्पत्तौ यत्तत्कारणसंज्ञितम्। महतः परमं गुह्यं तस्मै सुब्रह्मणे नमः॥१३१॥
अगाधापारमक्षय्यं जगत्संमोहसंभवम्। संप्रकाशप्रवृत्तिभ्यां पुरुषार्थप्रयोजनम्॥१३२॥
सांख्यज्ञानवतां निष्ठा गतिः शमदमात्मनाम्। यत्तदव्यक्तमतं प्रकृतिर्ब्रह्म शाश्वतम्॥१३३॥

द्वापर में कृतञ्जय, अठारहवें द्वापर युग द्वापर में ऋजीष, उन्नीसवें द्वापर में भरद्वाज, बीसवें द्वापर में गौतम व्यास हुए।।१२१।। गौतम से इक्कीसवें द्वापर में उत्तम, उसके बाद बाईसवें द्वापर युग द्वापर में हर्यवन व्यास हुए। तेईसवें द्वापर में वेन, उसके बाद चौबीसवें द्वापर मे वाजश्रवा के अर्वाक बताये गये हैं। पच्चीसवें द्वापर में अर्वाक् उसके बाद सोममुख्यान उसके पच्चीसवें द्वापर में तृणबिन्दु व्यास हुए।।१२२-१२३।। उसके बाद छब्बीसवें द्वापर में शक्ति, सत्ताईसवें द्वापर में व्यास पराशर, उसके बाद अट्ठाइसवें द्वापर में व्यास जातुकर्ण और फिर द्वैपायन कहे गये हैं। इस प्रकार ये अट्ठाईस प्राचीनकाल के वेदव्यास हैं।।१२३-१२४½।। तथा भविष्य के द्वापर में भी द्रोणि द्वैपायन उत्पन्न होंगे। उनको ब्रह्मा की तपस्या का अविनाशी ब्रह्मपद प्राप्त होगा। उन्हे तपस्या से कर्म और कर्म के द्वारा यश प्राप्त होगा।।१२४½-१२७।। और फिर तेज से सत्य और सत्य के द्वारा कभी न नष्ट होने वाला आनन्द प्राप्त होता है। अव्यय ब्रह्मपद से अमृत प्राप्त है। ब्रह्म ही अमृत से व्याप्त है। अमृत से शुक्र व्याप्त है तथा ब्रह्म ही अमृत कहा जाता है।।१२७-१२८।। निश्चय ही यह एक अक्षर वाला ओइम् (ॐ) ही व्यवस्थित है। इसी में ब्रह्म व्यवस्थित है। वह ॐ ही अतिबृहत् होने तथा जड़चेतन संसार का पालन करने के कारण ब्रह्म कहा जाता है।।१२९।।

पहले यह प्रणव (ॐकार) में अवस्थित होता है, फिर 'भूर्भुवः स्वः' में भी स्मरण किया जाता है। अथर्व, ऋग्, यजुः और साम जो इन चारों वेदों में है, उस ब्रह्म को नमस्कार है।।१३०।। संसार के प्रलय और उत्पत्ति में जो कारण कहा गया है, उस महान् और परमगुह्य सुन्दर ब्रह्म को हमारा नमस्कार है।।१३१।। जिसका पार नहीं पाया जा सकता। गहराई अगाध है, जो कभी नष्ट नहीं होता तथा जो समस्त संसार का सम्मोहन करने वाला है, जिसके सम्यक् प्रकाश और प्रवृत्ति से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस पुरुषार्थ का प्रयोजन सिद्ध होता है।।१३२।। जो सांख्यदर्शन को जानने वालों की निष्ठा तथा शम और दम आत्माओं की गति है अर्थात् सांख्यदर्शन न जानने वाले

प्रधानमात्मयोनिश्च गृह्यं सत्त्वं च शस्यते। अविभागस्तथा शुक्रमक्षरं बहुधात्मकम्॥१३४॥
परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमोनमः। कृते पुनः क्रिया नास्ति कुत एवाकृतक्रिया॥१३५॥

सकृदेव कृतं सर्वं यद्वै लोके कृताकृतम्।
श्रोतव्यं वा श्रुतं वापि तथैवासाधु साधु वा॥१३६॥
ज्ञातव्यं वाप्यमन्तव्यं स्प्रष्टव्यं भोज्यमेव च।
द्रष्टव्यं वाथ श्रोतव्यं घ्रातव्यं वा कथञ्चन॥१३७॥

दर्शितं यदनेनैव ज्ञातं तद्वै सुरर्षिभिः। यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमर्हति॥१३८॥
सर्वाणि सर्वं सर्वांश्च भगवानेव सोऽब्रवीत्। यदा यत्क्रियते येन तदा तत्सोऽभिमन्यते॥१३९॥

यत्रेदं क्रियते पूर्वं न तदन्येन भाषितम्।
यदा च क्रियते किञ्चित् केनचिद्वा कथं क्वचित्॥१४०॥

तेनैव तत्कृतं कृत्यं कर्त्तॄणां प्रतिभाति वै। विरिक्तं चातिरिक्तं च ज्ञानाज्ञाने प्रियाप्रिये॥१४१॥
धर्माधर्मौ सुखं दुःखं मृत्युश्चामृतमेव च। ऊर्द्धं तिर्य्यगधोभावस्तस्यैवादृष्टकारिणः॥१४२॥
स्वयंभुवोऽथ ज्येष्ठस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। प्रत्येकवेद्यं भवति त्रेतास्विह पुनः पुनः॥१४३॥
व्यस्यते ह्येकवेद्यं तु द्वापरेषु पुनः पुनः। ब्रह्मा चैतानुवाचादौ तस्मिन्वैवस्वतेऽन्तरे॥१४४॥

व्यक्ति इन्द्रियों के शमन और दमन से उस ब्रह्म की गति को प्राप्त करते हैं। जो वह ब्रह्म अव्यक्त (प्रकृति) माना गया है, वह प्रकृति ब्रह्म ही है, जो शास्वत है।।१३३।। वही प्रधान तत्त्व है। आत्माओं की योनि (उत्पत्तिस्थान) वही ब्रह्म है। परमगुह्य और सत्त्वगुणमय है। उसका विभाग नहीं हो सकता तथा उस शुक्र, कभी न नष्ट होने वाले, अनेकों प्रकार की आत्माओ वाले परमब्रह्म को हमारा नित्य नमस्कार है।।१३४-१३४½।। सतयुग में जब किसी प्रकार के कर्म की प्रवृत्ति नहीं थी, तब अकरणीय कार्य को करने की प्रवृत्ति कैसे होती? संसार में जितने भी अच्छे या बुरे काम हैं, उन सबको उस ब्रह्म ने एक वार ही में कर दिया।।१३४-१३६।। जानने योग्य, पीने योग्य, मानने योग्य, स्पर्श करने योग्य, खाने योग्य, देखने योग्य, सुनने योग्य, सूँघने योग्य अथवा किसी प्रकार के कृत और अकृत कार्य हैं, वे सब उसी परमब्रह्म के किये हुए हैं।।१३७।। जो उस परमब्रह्म ने दिखाया, ऋषियों और देवताओं ने ज्ञान प्राप्त किया, जो कुछ उन्हें दिखलाया, उसका दूसरा कौन अन्वेषण कर सकता है?।।१३८।।

संसार में नपुंसक लिङ्ग, पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग जितने भी जो कुछ भी हैं, वे सब कुछ भगवान् ही हैं। जब जो जिसके द्वारा किया जाता है, वह सब ब्रह्म ही करता है।।१३९।। जहाँ यह पहले कभी नहीं किया गया तथा किसी दूसरे ने कहा अथवा जब किसी के द्वारा कहीं भी कुछ भी किया जाता है, वह कृत्य उसी के द्वारा किया गया है, जो कि करने वालों में प्रकट होता है। भाव यह है कि मानव जो भी करता है, वही करता है, वह सब वही कराता है, मनुष्य कुछ भी नहीं करता।।१३९-१४०½।। विरिक्ति, अतिरिक्ति, ज्ञान, अज्ञान, प्रिय, अप्रिय, धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, मृत्यु, अमृत, ऊँचा, तिरछा और नीचा होना, यह सब अदृष्टकारी के कारण है।।१४०½-१४२।। स्वायम्भुव मनु जो कि परमेष्ठी पितामह ब्रह्मा के पुत्र हैं, वे प्रत्येक त्रेतायुग में सब विद्याओं के ज्ञाता होकर फिर द्वापरयुग में उस एक विद्या का विभाग करते हैं। ब्रह्मा ही उस वैवस्वत मन्वन्तर में ब्रह्मा ही सब विद्याओं का उपदेश करते हैं।।१४३-१४४।।

आवर्त्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुनः पुनः।
कुर्वन्ति संहिता ह्येते जायमानाः परस्परम्॥१४५॥
अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणां स्मृतानि वै। तावत्यः संहिता ह्येता आवर्त्तते पुनः पुनः॥१४६॥
श्रिता दक्षिणपंथानं ये श्मशानानि भेजिरे।
युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तै पुनः पुनः॥१४७॥
द्वापरेष्विह सर्वेषु संहितास्तु श्रुतर्षिभिः। तेषां गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्ति हि पुनः पुनः॥१४८॥
ताः शाखास्ते च कर्त्तारो भवं तीहायुगक्षयात्। एवमेव तु विज्ञेया अतीतानागतेष्वपि॥१४९॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै। अतीतेषु व्यतीतानि वर्त्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे॥१५०॥
भविष्यन्ति च यानि स्युर्वर्त्स्यंतेऽनागतेष्वपि। पूर्वेण पश्चिमं ज्ञेयं वर्त्तमानेन चोभयम्॥१५१॥
एतेन क्रमयोगेन मन्वन्तरविनिश्चयः। एवं देवाः सपितर ऋषयो मनवश्च वै॥१५२॥
मन्त्रैः सहोर्ध्वं गच्छन्ति ह्यावर्त्तन्ते च तैः सह।
जनलोकात्सुराः सर्वे दशकल्पान्पुनःपुनः॥१५३॥
पर्यायकाले सम्प्राप्ते सम्भूता निधनस्य ते। अवश्यभाविनाऽर्थेन सम्बध्यन्ते तदा तु ते॥१५४॥
ततस्ते दोषवज्जन्म पश्यन्तो रोगपूर्वकम्। निवर्त्तते तदा वृत्तिः सा तेषां दोषदर्शनात्॥१५५॥
एवं देवयुगानीह दशकृत्वो विवर्त्य वै। जनलोकात्तपोलोकं गच्छन्तीहानिवर्त्तकम्॥१५६॥

उसके बाद फिर प्रत्येक युग में आते जाते हुए ऋषिगण पिता पुत्र के वंशानुक्रम से परस्पर उत्पन्न होते हुए संहिताओं की रचना करते हैं।।१४५।। अट्ठासी हजार (८८०००) ऋषियों की ऋचायें हैं, उतनी ही उनकी संहितायें जो पुनः पुनः आवर्त होती रहती हैं।।१४६।। सूर्य के दक्षिणपथ में आश्रित हो जाने पर जो श्मशान वास करने वाले ऋषिगण हैं। वे ही युग युग में उन उन वेद की शाखाओं को पुनः पुनः विभाग करते हैं।।१४७।।

इस प्रकार सभी द्वापर युगों में इन वैदिक ऋषियो द्वारा उनके गोत्रों मे पुनः पुनः संहितायें और शाखाओं का विधान किया जाता है।।१४८।। वेदो की वे शाखायें और उनके रचयिता ऋषिलोग युग के अन्त तक रहते हैं। इसी प्रकार वे बीते हुए आने वाले और वर्तमान तीनो समयों में जान लेना चाहिये।।१४९।।

इसी प्रकार वेद की शाखाओं का प्रणयन सभी मन्वन्तरों मे, जो बीत गये उन अतीतों में, जो इस समय है, उनमे तथा आगे आने वाले भविष्यकाल में जो होंगे, उन सब में भी पहले के समान बाद में और वर्तमान में समान ही होगा। आशय यह है कि वेद की शाखायें और उनका प्रणयन सब कालो में होता रहेगा।।१५०-१५१।। इसी क्रम से मन्वन्तरों का निश्चय करना चाहिये। इस प्रकार देवता पितर ऋषि और मनुगण सभी मन्त्रों के साथ ऊर्ध्वलोक को गमन करते हैं और फिर उन्हीं मन्त्रों के साथ पुनः इस लोक में वापस आते हैं।।१५२-१५२½।।

सभी देवतालोग सृष्टि का समाप्तिकाल आ जाने पर निधन से युक्त होकर अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होकर अवश्य होने वाले अर्थ से सम्बन्धित हो जाते हैं अर्थात् वे ही जैसे कर्म किये हैं, वैसे फल के भागी होते हैं। तब वे विधि के विधान से सम्बद्ध होकर वे रोग दुःखादिपूर्ण जन्म ग्रहण कर अपने अपने कर्मों का फल भोगते हैं। उनका यह पाप व्यवहार अपने अन्दर दोष देखने से समाप्त हो जाता है, इस प्रकार वे दशवार देवयुगों तक पापयोनियों में भ्रमण कर निवृत्त होते हैं और फिर जनलोक से वे तपोलोक को जाते हैं, फिर वहां से नहीं लौटते।।१५२½-१५६।।

एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः। निधनं ब्रह्मलोके वै गतानि ऋषिभिः सह॥१५७॥

न शक्य आनुपूर्व्येण तेषां वक्तुं सुविस्तरः।
अनादित्वाच्च कालस्य संख्यानां चैव सर्वशः॥१५८॥
मन्वन्तराण्यतीतानि यानि कल्पैः पुरा सह।
पितृभिर्मुनिभिर्देवैः सार्द्धं च ऋषिभिः सह॥१५९॥

कालेन प्रतिसृष्टानि युगानां च विवर्त्तनम्। एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च॥१६०॥
सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः। मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च संभवः॥१६१॥
देवतानामृषीणां च मनोः पितृगणस्य च। न शक्य आनूपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि॥१६२॥
विस्तरस्तु निसर्गस्य संहारस्य च सर्वशः। मन्वन्तरस्य संख्या तु मानुषेण निबोधत॥१६३॥

मन्वन्तरास्तु संख्याताः संख्यानार्थविशारदैः।
त्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णा संख्याताः संख्यया द्विजैः॥१६४॥
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकं विना॥१६५॥

मन्वन्तरस्य संख्येयं मानुषेण प्रकीर्त्तिता। वर्षाग्रेणापि दिव्येन प्रवक्ष्याम्युत्तरं मनोः॥१६६॥

अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतम्।
द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु॥१६७॥

चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ह्याभूतसम्प्लवम्। पूर्णं युगसहस्रं स्यात्तदहर्ब्रह्मणः स्मृतम्॥१६८॥

इस प्रकार यहाँ हजारों देवयुग इस संसार में बीत चुके हैं। उनका ऋषियों के साथ निधन होता है और फिर ब्रह्मलोक को चले जाते हैं। उनका पूर्व से अन्त तक का वर्णन समय और संख्याओं के अनन्त होने के कारण किया नहीं जा सकता है।।१५७-१५८।। प्राचीन काल में तथा पितरों, मुनियों, देवताओं और ऋषियों से युक्त उन उन कल्पों के साथ जितने मन्वन्तर बीत चुके हैं, उतने ही काल के युग पुनः उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार युगों का चक्र चलता रहता है।। इसी क्रम योग से कल्प और मन्वन्तर उस अपने समय की प्रजाओं के साथ सैकड़ों और हजारों बीत चुके हैं। इस प्रकार मन्वन्तर के अन्त में संहार तथा फिर संहार के बाद पुनः देवताओं, ऋषियों, मनु तथा पितरगणों की सृष्टि होती है। इस रहस्य को सैकड़ों वर्षों में भी पूर्व से अन्त तक वर्णन करना सम्भव नहीं है।।१५९-१६०।। सृष्टि और प्रलय का विस्तार तथा मन्वन्तरों की संख्या मनुष्यकाल के अनुसार सुनिये।।१६३।। गणना के अर्थ के विशारद ब्राह्मणों द्वारा सन्धिकाल को छोड़कर एक मन्वन्तर की अवधि छत्तीस करोड़ सत्तर लाख बीस हजार ३६७०२०००० वर्ष बतायी गयी है।।१६३-१६५।। मन्वन्तर की यह संख्या मानुषकाल के अनुसार बतायी गयी है। दिव्य वर्ष के अनुसार भी मन्वन्तर की समय संख्या बताऊँगा।।१६६।। आठ लाख बावन हजार दिव्य वर्ष की संख्या एक मन्वन्तर की बतायी जाती है। इसका चौदह गुणा काल महाप्रलय का[1] है। एक युग पूरे हजार दिव्य वर्ष का है, जिसे ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है।।१६७-१६८।।

---

१. आठ लाख बावन हजार दिव्य वर्ष का एक मन्वन्तर इसका चौदह गुणा महाप्रलय का काल। अतः ८५२००० × १४ = ११९२८००० दिव्य वर्ष महाप्रलय का काल है। इस बीच छोटी मोटी असंख्य प्रलय होती रहती

ततः सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः। ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सह देवर्षिदानवैः॥१६९॥
प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं प्रभुम्। स स्रष्टा सर्व भूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः॥१७०॥
इत्येष स्थितिकालो वै मतो देवर्षिभिः सह। सर्वमन्वन्तराणां हि प्रतिसन्धि निबोधत॥१७१॥
युगाख्या या समुद्दिष्टा प्रागेतस्मिन्मयाऽनघाः। कृतत्रेतादिसंयुक्तं चतुर्युगमिति स्मृतम्॥१७२॥
तच्चैकसप्ततिगुणं परिवृत्तं तु साधिकम्। मनोरेतमधीकारं प्रोवाच भगवान्प्रभुः॥१७३॥
एवं मन्वन्तराणां च सर्वेषामेव लक्षणम्। अतीतानागतानां वै वर्त्तमानेन कीर्त्तितम्॥१७४॥

इत्येष कीर्त्तितः सर्गो मनोः स्वायंभुवस्य ते।
प्रतिसन्धिं तु वक्ष्यामि तस्य चैवापरस्य च॥१७५॥

मन्वन्तरं तथा पूर्वमृषिभिर्दैवतैः सह। अवश्यभाविनार्थेन यथावद्विनिवर्त्तते॥१७६॥
एतस्मिन्नन्तरे पूर्वं त्रैलोक्यस्येश्वरास्तु ये। सप्तर्षयश्च देवाश्च पितरो मनवस्तथा॥१७७॥

मन्वन्तरस्य काले तु सम्पूर्णे साधिके तदा।
क्षीणेऽधिकारे संविग्ना बुद्ध्वा पर्ययमात्मनः॥१७८॥

महर्लोकाय ते सर्वे उन्मुखा दधिरे मतिम्। ततो मन्वन्तरे तस्मिन्प्रक्षीणे देवतास्तु ताः॥१७९॥

उसके बाद सब भूततत्त्व अर्थात् संसार के सभी जड़-चेतन पदार्थ सूर्य की किरणो से जल जाते हैं, तब देवताओं ऋषियों और दानवो के साथ ब्रह्मा को आगे करके सुरश्रेष्ठ सर्वसमर्थ नारायण में प्रवेश कर जाते हैं। वे ही नारायण ही कल्पादियों इस संसार के पुनः पुनः स्रष्टा हैं।।१६९-१७०।। इस प्रकार यह देवताओं और ऋषियों के साथ स्थितिकाल माना गया है। अतः इसे सब मन्वन्तरों की प्रतिसन्धि समझो।।१७१।।

सूत जी बोले— कि देवताओं हे निष्पाप और ऋषियो के साथ मनु की स्थिति की कालावधि मैं बतला चुका हूं। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के क्रम से यह चतुर्युग कहा गया है। इसका इकहत्तर गुना काल एक मनु के अधिकार में आता है। यह सर्वसमर्थ भगवान् ने बताया है।।१७२-१७३।। इसी प्रकार वर्तमान के साथ भूतकाल और भविष्यकाल के सभी मन्वन्तरों का लक्षण बता दिया गया है।।१७४।। इस प्रकार यह स्वायम्भुव मनु के सर्ग का वर्णन किया गया है। अब मैं उसकी तया दूसरे मन्वन्तरं की प्रतिसन्धि को बताऊँगा।।१७५।। अवश्य घटित होने वाली विधि की इच्छा है। 'होनहार हो के रहे मिटा सके ना कोई।।' विधि के विधान से बंधे हुए ऋषियों और देवताओं के साथ प्राचीनकाल में जिस प्रकार मन्वन्तर वीत चुके हैं। उसी प्रकार भविष्य में भी होंगे। प्राचीनकाल में इस मन्वन्तर के अन्तर में तीनों लोकों के ईश्वर जो सप्तऋषि, देवता, पितर और मनुगण रहते हैं, वे मन्वन्तर के सम्पूर्ण काल में सृष्टि के साधक रहते हैं, फिर जब दूसरा समय आया जानकर अपने अधिकार से क्षीण हो जाने पर महर्लोक जाने की बुद्धि बनाते हैं।।१७६-१७८½।। उसके बाद उस मन्वन्तर के नष्ट हो जाने पर वे सब देवता

है। अब जब हम इस काल को अपने मानव वर्ष मे बदलेगे तो उसमे ३६५ का गुणा करना होगा; क्योंकि ३६५ मानवीय वर्ष का एक दिव्य वर्ष होता है। तब ११९२८००० × ३६५ = ४,३५,३७,२०,००० चार अरब पेतीस करोड़ संतीस लाख बीस हजार वर्ष महाप्रलय का काल है। यही सृष्टि की आयु है। आज का विज्ञान भी (डिस्कवरी, दूरदर्शन) पर उच्चकोटि के वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी की आयु लगभग चार अरब वर्ष मानी गयी है। अतः यह पौराणिक कथन पूर्ण वैज्ञानिक है तथा पुराणों मे वर्णित सभी कथन वैज्ञानिक हैं। आवश्यकता है वैज्ञानिको द्वारा अनुसन्धान करने की।

सम्पूर्णे स्थितिकाले तु तिष्ठेदेकं कृतं युगम्। उत्पद्यन्ते भविष्यन्तो ये वै मन्वन्तरेश्वराः॥१८०॥
देवताः पितरश्चैव ऋषयो मनुरेवच। मन्वन्तरे तु सम्पूर्णे तद्वदन्ते कलौ युगे॥१८१॥
सम्पद्यते कृतं तेषु कलिशिष्टेषु वै तदा। यथा कृतस्य सन्तानः कलिपूर्वः स्मृतो बुधैः॥१८२॥
तथा मन्वन्तरान्तेषु आदिर्मन्वन्तरस्य च। क्षीणे मन्वन्तरे पूर्वे प्रवृत्ते चापरे पुनः॥१८३॥
मुखे कृतयुगस्याथ तेषां शिष्टास्तु ये तदा। सप्तर्षयो मनुश्चैव कालापेक्षास्तु ये स्थिताः॥१८४॥
मन्वन्तरप्रतीक्षास्ते क्षीयमाणास्तपस्विनः। मन्वन्तरोत्सवस्यार्थे संतत्यर्थे च सर्वदा॥१८५॥
पूर्ववत्संप्रवर्त्तन्ते प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने। द्वन्द्वेषु समप्रवृत्तेषु उत्पन्नास्वौषधीषु च॥१८६॥

प्रजासु चानिकेतासु संस्थितासु क्वचित्क्वचित्।
वार्त्तायां सम्प्रवृत्तायां धर्मे चैवोपसंस्थिते॥१८७॥

निरानन्दे चापि लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे। अग्रामनगरे चैव वर्णा श्रमविवर्जिते॥१८८॥

सम्पूर्ण स्थितिकाल तक एक सतयुग में ठहरते हुये, इसी प्रकार भविष्य के अन्य मन्वन्तरों मे ईश्वर देवता, पितर, ऋषि और मुनिगण उत्पन्न होते हैं और फिर वे सम्पूर्ण कलियुग में उसके अन्त तक रहते हैं।।१७८½-१८१।। सभी मन्वन्तरों में कलियुग में बची हुई प्रजाओं मे सतयुग सम्पन्न रहता है जैसा कि विद्वानों ने कलिपूर्ण सतयुग होने के कारण कलियुग को सतेयुग की सन्तान कहा है। उसी प्रकार पहले मन्वन्तर के अन्त होने पर मन्वन्तर के आदि के लोगों की तथा पूर्व मन्वन्तर के क्षीण हो जाने पर आगे वाले मन्वन्तर मे पूर्व मन्वन्तर के लोगों की प्रवृत्ति होती है। आशय यह है कि प्रत्येक मन्वन्तर की प्रजाओं मे पूर्व मन्वन्तर की प्रवृत्ति रहती हैं।।१८२-१८३।। सतयुग के प्रारम्भ होने पर तब जो भी कलियुग में समाप्त हो गये थे, उनमें से जो बचे हुये थे, वे सप्तर्षिगण और मनु, समय की अपेक्षा करते हुए स्थित रहते हैं।।१८४।।

मन्वन्तर की प्रतीक्षा करने वाले वे क्षीयमाण तपस्विगण मन्वन्तर के उत्सव के लिए अर्थात् मन्वन्तर को सुखी समृद्ध बनाने के लिए, सन्तान की उत्पत्ति के लिए, पूर्व मन्वन्तर की भाँति सम्यक् प्रकार से प्रवृत्त हो जाते हैं तथा जब सृष्टि पर पूर्व की भाँति वर्षा की उत्पत्ति हो जाने पर, जब पृथ्वी पर औषधियां उत्पन्न हो जाती हैं, तब जो गृहहीन प्रजाये हैं, वे कहीं-कहीं अपना रहने का स्थान अर्थात् घर बना लेती हैं, तब जीवनयापन की सारी सामग्रियां धीरे-धीरे लोग जुटाते हैं; क्योंकि कलियुग में अपार भ्रष्टाचार अनाचार से जब प्रजा आपस मे लड़कर अथवा उनके अपार अत्याचार से प्रकृति ने विनाश कर दिया था। तब जब कुछ भी नहीं था, कुछ थोड़े से लोग गृहविहीन थे; क्योंकि प्राकृतिक विप्लव से सब कुछ तो समाप्त कर दिया था। अतः बचे हुए लोग गृहविहीन थे। धीरे धीरे वे अपना कहीं-कहीं घर बनाकर रहना प्रारम्भ करते हैं। उसके बाद वार्ता का व्यवहार शुरू करते हैं अर्थात् जीवनयापन के साधन कृषि व्यापार गोरक्षा आदि द्वारा जीवन जीते हैं, उसके बाद वहाँ धर्म की स्थापना होती है; क्योंकि बिना धर्म से सामाजिक व्यवस्था नही चल सकती।।१८५-१८७।।

अब पुनः कलियुग की समाप्ति के बाद सतयुग का जब प्रारम्भ होता है, उस समय कलियुग के घोर अत्याचारों से प्रकृति द्वारा सबकुछ नष्ट कर दिये जाने पर न घर मकान रहते हैं, न जीव-जन्तु रहते हैं। ग्राम और नगर भी नहीं रहते। संसार में वर्ण आश्रम-व्यवस्था बिल्कुल समाप्त हो जाती है। तब जो भी उस कलिकाल की चपेट से बचे रह जाते हैं, वे ही शिष्ट कहे जाते हैं, वे सब कुछ अच्छे बुरे कार्यों के परिणाम का अनुभूति किये हुए होते

पूर्वमन्वन्तरे शिष्टा ये भवन्तीह धार्मिकाः। सप्तर्षयो मनुश्चैव सन्तानार्थं व्यवस्थिताः॥१८९॥
प्रजार्थं तपतां तेषां तपः परमदुश्चरम्। उत्पद्यन्ते हि पूर्वेषां निधनेष्विह पूर्ववत्॥१९०॥
देवासुराः पितृगणा ऋषयो मानुषास्तथा। सर्पा भूतपिशाचाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसाः॥१९१॥
ततस्तेषां तु ये शिष्टाः शिष्टाचारान्प्रचक्षते। सप्तर्षयो मनुश्चैव ह्यादौ मन्वन्तरस्य हि॥१९२॥
प्रारभन्ते च कर्माणि मनुष्यो दैवतैः सह। ऋषीणां ब्रह्मचर्येण गत्वानृण्यं तु वै तदा॥१९३॥
पितॄणां प्रजया चैव देवानामित्यजा तथा। शतं वर्षसहस्राणां धर्मे वर्णात्मके स्थिताः॥१९४॥
त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिर्धर्मान्वर्णाश्रमांस्तथा। स्थापयित्वाश्रमांश्चैव स्वर्गाय दधिरे मनः॥१९५॥
पूर्वदेवेषु तेष्वेवं स्वर्गायां भिमुखेषु वै। पूर्वदेवास्ततस्ते वै स्थिता धर्मेण कृत्स्नशः॥१९६॥
मन्वन्तरे पुरावृत्ते स्थानान्युत्सृज्य सर्वशः। मन्त्रैः सहोर्ध्वं गच्छन्ति महर्लोकमनामयम्॥१९७॥

विनिवृत्ताधिकारास्ते मानसीं सिद्धिमास्थिताः।
अवेक्षमाणावशिनस्तिष्ठंत्या भूतसंप्लवात्॥१९८॥

ततस्तेषु व्यतीतेषु पूर्वदेवेषु वै तदा। शून्येषु देवस्थानेषु त्रैलोक्ये तेषु सर्वशः॥१९९॥

उपस्थिता इहान्ये वै ये देवाः स्वर्गवासिनः।
ततस्ते तपसा युक्ताः स्थानान्यापूरयन्ति च॥२००॥

हैं, वे जानते हैं कि पूर्वयुग का विनाश सामाजिक अव्यवस्था, अनाचार, अत्याचार, परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य के कारण तथा प्रकृति के नियमों का पालन न करने के कारण हुआ। अतः पिछले सब अनुभवों को रखने वाले वे शिष्टजन धार्मिक हो जाते हैं। वे सप्तर्षि और मनु सन्तान के लिए व्यवस्थित हुये हैं।।१८८-१८९।। सन्तान के लिये तपस्या करने वाले उनका तप बहुत ही दुष्चर होता है, वह बहुत कठिन होता है। अतः जैसे पूर्वकाल में लोगों के मरने पर पैदा होने की भाँति इस युग में देव, असुर, पितर, ऋषि, मनुष्य, सर्प, भूत- पिशाच, गन्धर्व, यक्ष ये सभी पैदा होते हैं।।१९०-१९१।। उसके बाद कलियुग के प्रकोप से कुछ बचे हुए लोग थे, जिन्हें शिष्ट कहा गया, वे सप्तर्षि मनु आदि मन्वन्तर के आदि में फिर उन उत्पन्न हुए देव पितर मनुष्यादि उपर्युक्त सभी को शिष्टाचार सिखाते हैं।।१९२।। तथा विशिष्ट सप्तर्षि और मनु, मनुष्य और देवताओं के साथ कर्मों को प्रारम्भ करते हैं। तब वे अवशिष्ट मनुष्यगण ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा ऋषियों के ऋण से सन्तानोत्पत्ति करके पितरों के ऋण से और यज्ञ द्वारा देवों के ऋण से मुक्त होते हैं। उन सबने एक लाख वर्षों तक वर्णाश्रम व्यवस्था वाले धर्म में व्यवस्थित रहकर त्रयीवार्ता, दण्डनीति, धर्मों और वर्णाश्रमों को स्थापित कर आश्रमधर्म का पालन कर स्वर्ग जाने का मन बनाया।।१९३-१९५।।

प्राचीनकाल में उन प्रमुख देवों के स्वर्ग के लिये अभिमुख हो जाने पर पहले देवता फिर वे लोग सभी पूरी तरह धर्म से स्थित हो गये। मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर वे सब लोग अपने स्थान को छोड़कर मन्त्रों के साथ अनामय महर्लोक को चले जाते हैं।।१९६-१९७।। जिनके अधिकार समाप्त हो गये। मानसी सिद्धि को प्राप्त वे जितेन्द्रिय लोग इस प्रकार महाप्रलयपर्यन्त अवस्थित रहकर मन्वन्तर का परिवर्तन देखते हैं।।१९८।। उसके बाद जब सभी पूर्व देवताओ के बीत जाने पर त्रैलोक्य में सभी देवताओं के स्थान शून्य में परिणित हो जाते हैं। तब उनमें अन्य स्वर्गवासी देवगण उपस्थित होते हैं। तब वे तप से युक्त हो, उन खले स्थानों की पूर्ति करते हैं।।१९९-२००।।

सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विताः। सप्तर्षीणां मनोश्चैव देवानां पितृभिः सह॥२०१॥
निधनानीह पूर्वेषा मादितां च भविष्यताम्। तेषां सन्त्यविच्छेद इहामन्वन्तरक्षयात्॥२०२॥
एवं पूर्वानुपूर्व्येण स्थितिस्तेषामवस्थिता। मन्वन्तरे सर्वेषु यावदाभूतसम्प्लवम्॥२०३॥
पूर्वमन्वन्तराणां तु प्रतिसंधानलक्षणम्। अतीतानागतानां वै प्रोक्तं स्वायंभुवेन तु॥२०४॥
मन्वन्तरेष्वतीतेषु भविष्याणां तु साधनम्। एवं सन्त्यविच्छेदो भवत्याभूतसम्प्लवात्॥२०५॥

मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि ह्येकान्ततस्तानि महर्गतानि।
महाजनं चैव जनान्तपश्च चैकान्तगानि प्रभवन्ति सत्ये॥२०६॥
तद्भाविनां तत्र तु दर्शनेन नानात्वदृष्टेन च प्रत्ययेन॥
सत्ये स्थिता नित्यतया तु नित्यं प्राप्ते विकारे प्रतिसर्ग काले॥२०७॥
मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि मुञ्चन्ति सत्यं तु ततोऽपरान्ते।
ततोऽभियोगा विषयप्रहाणाद्विशन्ति नारायणमेव देवम्॥२०८॥
मन्वन्तराणां परिवर्त्तनेषु चिरप्रवृत्तेषु विधिस्वभावात्।
क्षणं न वै तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः॥२०९॥
इत्यन्तराण्येवमृषिस्तुतानां धर्मात्मनां दिव्यदृशां मनूनाम्।
वायुप्रणीतान्युपलभ्य दृश्याद् दिव्यौजसां व्याससमासयोगैः॥२१०॥

सत्य ब्रह्मचर्य और वेदज्ञान से समन्वित, पितरों सहित देवताओं, सप्तर्षियों और मनुओं का विधान पूर्वकाल देवर्षि पितर मनुओं की भाँति इस काल में भी होता है और भविष्य में भी होगा। उन सबका अत्यन्त वियोग इस लोक में एक मन्वन्तर के बीतने के बाद घटित होता है।।२०१-२०२।। सभी मन्वन्तरों में इस प्रकार पूर्वमन्वन्तरों के समान प्रलयकाल पर्यन्त निश्चित परिवर्तन के साथ सृष्टि स्थित, हो जाती है। इस प्रकार भूतकाल और भविष्य में होने वाले मन्वन्तरों के प्रतिसंधान का लक्षण स्वायम्भुव मनु ने बताया है।।२०३-२०४।। बीते हुए मन्वन्तरों भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों का साधन इसी प्रकार सन्तति का विच्छेद प्रलयकालपर्यन्त तक होता है।।२०५।।

मन्वन्तरों के बदलने पर सभी महर्लोक को प्राप्त करते हैं। फिर महर्लोक के बाद क्रमशः जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक को प्राप्त करते हैं।।२०६।। वहाँ होने वाले लोगों को अनेकों प्रकार का देखने के विश्वास से नित्यता के साथ नित्य रूप से अर्थात् अमरता से सत्य लोक में स्थित रहते हैं। जब तक सत्यलोक सत्य रहता है, तब तक रहते हैं; परन्तु सत्यलोक में विकार प्राप्त होने पर प्रलय काल में जब मन्वन्तरों का परिवर्तन होता है, तब उसके बाद वे सत्यलोक को छोड़ देते हैं। उसके बाद विषयों का पूरी तरह नाश हो जाने के कारण उस नारायण प्रभु की ओर लगन आसक्ति हो जाने से वे सब परमदेव नारायण में प्रवेश कर जाते हैं।।२०७-२०८।। यह विधि का स्वभाव है कि बहुत प्राचीन काल से जो मन्वन्तरों में परिवर्तन होते चले आये हैं, उन परिवर्तनों में जो जीवों का नाश और उत्पत्ति होती हैं, वहाँ वह परिवर्तन करता हुआ जीवलोक एक क्षण में स्थिर नहीं रहता है अर्थात् मन्वन्तरों के परिवर्तन होने पर समस्त जीवन पुनः अपना शरीर धारण करते हैं।।२०९।। इस प्रकार ऋषियों द्वारा स्तुति किये गये धर्मात्मा दिव्य दृष्टि वाले दिव्य ओज वाले मनुओं का वायु द्वारा देखकर लिखा गया अन्दरूनी रहस्य (जीवन-विवरण) विस्तार

सर्वाणि राजर्षिसुरर्षिमन्ति ब्रह्मर्षिदेवोरगवन्ति चैव।
सुरेशसप्तर्षिपितृप्रजेशैर्युक्तानि सम्यक् परिवर्त्तनानि॥२११॥
उदारवंशाभिजनश्रुतीनां प्रकृष्टमेधाभिसमेधितानाम्।
कीर्तिद्युतिख्यातिभिरर्चितानां पुण्यं हि विख्यापनमीश्वराणाम्॥२१२॥
स्वर्गीयमेतत्परमं पवित्रं पुत्रीयमेतच्च परं रहस्यम्।
जप्यं महापर्वसु चेतदग्र्यं दुःखापशान्तिप्रदमायुषीयम्॥२१३॥
प्रजेशदेवर्षिमनुप्रधानां पुण्यां प्रसूतिं प्रथितामजस्य।
ममापि विख्यापयतः समासात्सिद्धिं प्रजेशाः प्रदिशन्तु युक्ताः॥२१४॥
इत्येतदन्तरं प्रोक्तं मनो स्वायम्भुवस्य च। विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम्॥२१५॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषङ्गपादे वेदव्यसनाख्यानं स्वायंभुवमन्वन्तर-वर्णनं च नाम पञ्चत्रिंशतमोऽध्यायः॥३५॥

—✻✻✻—

और संक्षेप दोनों के योग से वर्णन किया गया अर्थात् कहीं विस्तार के साथ कहीं संक्षेप में बताया गया है।।२१०।। ये सभी विवरण राजर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, सर्पवालो के हैं तथा सुरेश (इन्द्र) सप्तर्षि, पितर प्रजाओ के स्वामी (राजाओं) से युक्त है अर्थात् इन सबका भी सम्यक् परिवर्तन होता रहता है।।२११।। उदारवंश, कुलीन, वेदों का अध्ययन करने वाले, प्रकृष्ट बुद्धि वाले, सूक्ष्म बुद्धि वाले, एवं प्रसिद्ध ऐश्वर्यवान् महापुरुषों का यह रहस्य परमपवित्र परमपुण्यप्रद स्वर्गप्रदान करने वाला और पुत्र प्रदान करने वाला है। अतः दुःखों का नाश कर शान्ति प्रदान करने वाले तथा आयु प्रदान करने वाले इस चरित्र को महापर्वों (होली दिवाली दशहरा) आदि के अवसर पर जपना चाहिये।।२१२-२१३।। प्रजापति, देवर्षिगण, मनु, प्रधान तथा ब्रह्मा की प्रसिद्ध सन्तानों की उत्पत्ति कथाओं से युक्त मेरे द्वारा संक्षेप से व्याख्या किये गये ये कथानक राजा लोगों को सिद्धि प्राप्त करायें।।२१४।। इस प्रकार यहाँ यह स्वायम्भु मनु का वृत्तान्त पूर्व से लेकर विस्तार से मैं वर्णन कर दिया है, अब आगे मैं क्या वर्णन करूँ।।२१५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ३५वां अध्याय वेदव्यासाख्यान स्वायंभुवमन्वतर वर्णनस्वायंभुवमन्वतर वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

शेषमन्वताख्यानं नाम

षड्त्रिंशात्तमोऽध्यायः

शांशपायन उवाच

मन्वन्तराणि शेषाणि श्रोतुमिच्छाम्यनुक्रमात्। मन्वन्तराधिपांश्चैव शक्रदेवपुरोगमान्॥१॥

सूत उवाच

मन्वन्तराणि यानि स्युरतीतानागतानि ह। समासाद्विस्तराच्चैव ब्रुवतो मे निबोधत॥२॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥३॥
षडेते मनवोऽतीता वक्ष्याम्यष्टावनागतान्। सावर्णिश्चैव रौच्यश्च भौत्यो वैवस्वतस्तथा॥४।
वक्ष्याम्येतान्पुरस्तात्तु मनोर्वैवस्वतस्य च। मनवः पञ्च येऽतीता मानसांस्तान्निबोधत॥५॥

मन्वन्तरं मया वोऽद्य क्रान्तं स्वायंभुवस्य ह।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोः स्वारोचिषस्य ह॥६॥

प्रजासर्गे समासेन द्वितीयस्य महात्मनः। आसन्वै तुषिता देवा मनोः स्वारोचिषेऽन्तरे॥७॥
पारावताश्च विद्वांसो द्वावेव तु गुणौ स्मृतौ। तुषितायां समुत्पन्नाः क्रतोः पुत्राः स्वरोचिषः॥८॥
पारावताश्च वासिष्ठा द्वादश द्वौ गणौ स्मृतौ। छन्दजाश्च चतुर्विंशद्देवास्ते वै तदा स्मृताः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-३६

शेष मन्वन्तर वर्णन

शांशपायन ने कहा—जब स्वायम्भुव मन्वन्तर का वायु कथित वृत्तान्त सूत जी ने सुना दिया, तव शांशपायन ऋषि ने कहा कि हे सूत जी! हम लोग अब शेष मन्वन्तरों को क्रम से सुनना चाहते हैं तथा उन मन्वन्तरों के राजाओं इन्द्रों और देव पुरोहितों को भी सुनना चाहते हैं।।१।। तब सूत जी बोले— कि भूतकाल में जितने भी मन्वन्तर बीत चुके हैं तथा जो भविष्य में होने वाले हैं, उनका संक्षेप से और विस्तार से वर्णन सुनिये।।२।। सबसे पहले मनु स्वायंभुव हैं, उसके बाद स्वारोचिष मनु हुये, फिर क्रम से उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष मनु हुए इस प्रकार ये छः मनु बीत चुके हैं अब मैं आठ आने वाले मनुओं का वर्णन करूँगा।।३-३½।। सावर्णि रौच्य, भौत्य तथा वैवस्वत इन सबका वर्णन करूँगा, उसके बाद मनु वैवस्वत का वर्णन करूँगा। इस प्रकार ये पाँच मनु बीत चुके हैं, उनको मानस जानिये।।३½-५।।

मैंने जो आज आप लोगों को स्वायम्भुव मन्वन्तर का वर्णन किया, अब उसके ऊपर स्वारोचिष मनु का वर्णन करूँगा।।६।। यहाँ मैं संक्षेप से दूसरे महात्मा स्वारोचिष के प्रजा सर्ग का वर्णन करूँगा। सुनिये, मनु स्वारोचिष के काल के मध्य में तुषित देवता और पारावत विद्वान् दो ही गण कह गये थे।।८।। तुषिता के गर्भ से स्वारोचिष के

दिवस्पर्शोऽथ जामित्रो गोपदो भासुरस्तथा। अजश्च भगवांश्चैव द्रविणश्च महाबलः॥१०॥
आयश्चापि महाबाहुर्महौजाश्चापि वीर्यवान्।
चिकित्वान्विश्रुतो यस्तु चांशो यश्चैव पठ्यते॥११॥
ऋतश्च द्वादशस्तेषां तुषिताः परिकीर्त्तिताः। इत्येते क्रतुपुत्रास्तु तदाऽसन्सोमपायिनः॥१२॥
प्रचेताश्चैव यो देवोविश्वदेवस्तथैव च। समंजो विश्रुतो यस्तु ह्यजिह्मश्चारिमर्द्दनः॥१३॥
आयुर्दानो महामानो दिव्यमानस्तथैव च। अजेयश्च महाभागो यवीयांश्च बहाबलः॥१४॥
होता यज्वा तथा ह्येते परिक्रान्ताः परावताः। इत्येता दवता ह्यासन्मनोः स्वारोचिषान्तरे॥१५॥
सोमपास्तु तदा ह्येताश्चतुर्विंशति देवताः। तेषामिंद्रस्तदा ह्यासीद्विपश्चिल्लोकविश्रुतः॥१६॥
ऊर्जा वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च। भार्गवश्च तथा प्राण ऋषभोऽङ्गिरसस्तथा॥१७॥
पौलस्त्यश्चैव दत्तोऽत्रि रात्रेयो निश्चलस्तथा। पौलहोऽथार्वरीवांश्च एते सप्तर्षयस्तथा॥१८॥
चैत्रः किंपुरुषश्चैव कृतान्तो विभृतो रविः। बृहदुक्थो नवः सेतुः श्रुतश्चेति नव स्मृताः॥१९॥
मनोः स्वारोचिषस्यैते पुत्रा वंशकराः प्रभो। पुराणेपरिसंख्याता द्वितीयं वै तदंतरम्॥२०॥
सप्तर्षयो मनुर्देवाः पितरश्च चतुष्टयम्। मूलं मन्वन्तरस्यैते तेषां चैवान्वयाः प्रजाः॥२१॥
ऋषीणां देवताः पुत्राः पितरो देवसूनवः। ऋषयो देवपुत्राश्च इति शास्त्रे विनिश्चयः॥२२॥
मनोः क्षत्रं विशश्चैव सप्तर्षिभ्यो द्विजातयः। एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं समासाच्च न विस्तरात्॥२३॥

पुत्र पारावत और वशिष्ठ हुये, जो बारह-बारह गण के रूप में कहे गये हैं। छन्द से उत्पन्न होने वाले देवगण तब चौबीस कहे गये हैं।।९-१०।। वे हैं—१. दिवस्पर्श, २. जामित्र, ३. गोपद, ४. भासुर, ५. अज, ६. भगवान्, ७. द्रविण महाबल, ८. आपमहापराक्रमी, ९. महौजा, १०. चिकित्वान्, ११. विश्रुत एवं १२. अंश ये बारह तुषित कहे गये हैं। ये सभी स्वारोचिषक्रतु के पुत्र उस समय सोमपान करने वाले थे।।११-१२।। तथा जो देव हैं, वे हैं— १. प्रचेता जो देव २. विश्वदेव समंज, ३.विश्रुत, ४. अजिह्म और ५. अरिमर्दन, ६. आयु, ७. दान, ८. महामान, ९. दिव्यमान, १०. महभाग, ११. अजेय और १२. महाबलशाली अजीयान्। ये सबके सब यज्ञ करने वाले थे तथा सब पारावत के कुल के गण हैं। इस प्रकार ये सब देवता स्वारोचिष मन्वन्तर काल में थे।।१३-१५।।

उस समय ये चौबीस देवता सोमपान करने वाले थे। उस समय उन देवताओं का स्वामी लोकप्रसिद्ध विद्वान् इन्द्र थे।।१६।। वशिष्ठ के पुत्र अर्ज, कश्यप के पुत्र स्तम्व, भृगु के पुत्र प्राण[1] तथा अङ्गिरा के पुत्र ऋषभ, पुलस्त्य के पुत्र दत्तात्रि अत्रि के पुत्र निश्चल, पुलह के पुत्र अर्थवरी, ये सात ऋषि कहे गये हैं।।१८।। तया १. चैत्र, २. किंपुरुष, ३. कृतान्त, ४. विभूत, ५. रवि, ६. बृहद्, ७. उक्थ, ८. सेतु और ९. श्रुत ये नौ स्वारोचिष मनु के वंश को बढ़ाने वाले पुत्र पुराणों में परिगणित किये गये हैं।।१९-२०।। सप्तर्षि, देवता, पितर और मनु ये चार प्रत्येक मन्वन्तर के मूल माने गये हैं और सब जितनी भी प्रजाये हैं, वे सब इन्हीं के अन्तर्गत हैं। देवगण ऋषियों के पितरगण देवताओं के तथा ऋषिगण देवताओं के पुत्र कहे गये हैं। ऐसा शास्त्रों का निश्चय है।।२२।। मनु से क्षत्रियों तथा वैश्यों की तथा सप्तर्षि से द्विजातियों की उत्पत्ति कही गयी है। यही विस्तार से नहीं, अपितु संक्षेप में मन्वन्तर कहा गया

१. वायुपुराण में प्राण के स्थान पर द्रोण कहा गया है।

स्वायंभुवे न विस्तारो ज्ञेयः स्वारोचिपस्य च। न शक्यो विस्तरस्तस्य वक्तुं वर्षशतैरपि॥२४॥
पुनरुक्तबहुत्वात्तु प्रजानां वै कुलेकुले। तृतीये त्वथ पर्याये उत्तमस्यान्तरे मनोः॥२५॥
पञ्च देवगणा प्रोक्तास्तान्वक्ष्यामि निबोधत। सुधामानश्च ये देवा ये चान्ये वशवर्त्तिनः॥२६॥

प्रतर्दनाः शिवाः सत्या गणा द्वादशकाः स्मृताः।
सत्यो धृतिर्दमो दान्तः क्षमः क्षामो ध्वनिः शुचिः॥२७॥

इषोर्ज्जश्च तथा श्रेष्ठः सुपर्णो द्वादशस्तथा। इत्येते द्वादश प्रोक्ताः सुधामानस्तु नामभिः॥२८॥
सहस्रधारो विश्वायुः समितारो बृहद्वसुः। विश्वधा विश्वकर्मा च मानसस्तु विराजसः॥२९॥
ज्योतिश्चैव विभासश्च कीर्त्तिता वंशवर्तिनः। अवध्योऽवरतिर्देवोवसुर्धिष्ण्यो विभावसुः॥३०॥
वित्तः क्रतुः सुधर्मा च धृतधर्मा यशस्विजः। रथोर्मिः केतुमांश्चैव कीर्त्तितास्तु प्रतर्दनाः॥३१॥
हंसस्वारौ वदान्यौ च प्रतर्दनयशस्करौ। सुदानो वसुदानश्च सुमञ्जसविषावुभौ॥३२॥
यमो वह्निर्यतिश्चैव सुचित्रः सुतपास्तथा। शिवा ह्येते तु विज्ञेया यज्ञिया द्वादशापराः॥३३॥
सत्यानामपि नामानि निबोधत यथातथम्। दिक्पतिर्वाक्पतिश्चैव विश्वः शम्भुस्तथैव च॥३४॥
स्वमृडीको दिविश्चैव वर्चोधामा बृहद्वपुः। अश्वश्चैव सदश्वश्च क्षेमानन्दौ तथैव च॥३५॥
सत्या ह्येते परिक्रान्ता यज्ञिया द्वादशापराः। इत्येता देवता ह्यासन्नौत्तमस्यान्तरे मनोः॥३६॥

है॥२३॥ स्वायम्भुव मन्वन्तर के समान स्वारोचिष मन्वन्तर का विस्तार समझना चाहिये, उसका विस्तार सौ वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता; क्योंकि प्रजाओं के बहुत विस्तार के कारण एक कुल के बाद दूसरे कुल में अधिकांश वे ही नाम होने के कारण उनका वर्णन नहीं किया जा सकता॥२४-२४½॥ तीसरे औत्तममन्वन्तर में पाँच देवगण कहे गये हैं, उनको बताऊँगा सुनिये॥२४½-२५½॥ वे जो देव थे, उनमें इन्द्रियों को वश में करने वाले सुधामा, प्रतर्दन, शिव और सत्व ये पाँच देवगण कहे गये हैं। जिनमें प्रत्येक की संख्या १२ है। वे हैं—१. सत्य, २. धृति, ३. दम, ४. दान्त, ५. क्षम, ६. क्षाम, ७. ध्वनि, ८. शुचि, ९. ईष, १०. ऊर्ज्जा, ११. श्रेष्ठ तथा १२. सुपर्ण। इस प्रकार ये बारहों सुधामा नाम से विख्यात देवगण है॥२५½-२८॥

सहस्रधार, विश्वायु, शमिता[1] बृहत्, वसु, विश्व को धारण करने वाले विश्वकर्मा, मानस विराट, ज्योति, विभाग और कीर्तिमान् ये वंश को बढ़ाने वाले हैं॥२९-२९½॥ १. अवध्य, २. अवरति, ३. देव, ४. वसु, ५. धिष्णि, ६. विभावसु, ७. वित, ८. क्रतु, ९. सुधर्मा, १०. धृतधर्मा, ११. यशस्वी और १२. केतुमान्। ये बारह प्रतर्दनगण नाम से कहे गये हैं॥२९½-३१॥ १. हंस, २. स्वार, ३. प्रतर्दन, ४. यशस्कर, ५. सुदान, ६. वसुदान, ७. सुमंजस, ८. विष, ९. यम, १०. वह्नि, ११. यति, १२. सुचित्र, १३. सुतप तथा १४. शिव ये बारह तथा अन्य दो यज्ञ कराने वाले हैं॥३२-३३॥ अब सत्य के अनुगामियों के नाम सुनिये वे हैं—१. दिक्पति, २. वाक्पति, ३. विश्व, ४. शम्भु, ५. स्वमृडीक, ६. दिवि, ७. वर्चोधामा, ८. बृहद्वपु, ९ अश्व, १० सदश्व, ११. क्षेम और १२. आनन्द ये बारह सत्य गण नाम से प्रसिद्ध यज्ञिय हैं॥ इस प्रकार ये सब देवतागण उत्तम मनु के काल के देवता हैं॥३४-३६॥

---

१. शताधार (वायुपुराण)।

तेषामिंद्रस्तु देवानां सुशान्तिर्नाम विश्रुतः। पुत्रास्त्वंगिरसस्ते वै उत्तमस्य प्रजापतेः॥३७॥
वशिष्ठपुत्राः सप्तासन्वाशिष्ठा इति विश्रुताः। सप्तर्षयस्तु ते सर्व उत्तमस्यान्तरे मनोः॥३८॥
आजश्च परशुश्चैव दिव्यो दिव्यौपधिर्नयः। देवाम्बुजश्चाप्रतिमौ महोत्साहो गतस्तथा॥३९॥
विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुमतिः श्रुतिः। उत्तमस्य मनोः पुत्रास्त्रस्योदश महात्मनः॥४०॥
एते क्षत्रप्रणेतारस्तृतीयं चैतदन्तरम्। औत्तमः परिसंख्यातः सर्गः स्वारोचिषेण तु॥४१॥
विस्तरेणानुपूर्व्या च तामसस्य निबोधत। चतुर्थे त्वथ पर्याये तामसस्यान्तरे मनोः॥४२॥

सत्याः सुरूपाः सुधियो हरयश्च गणाः स्मृताः।
पुलस्त्यपुत्रास्ते देवास्तामसस्यान्तरे मनोः॥४३॥

गणस्तु तेषां देवानामेकैकः पञ्चविंशकः। इन्द्रियाणां प्रतीयेत ऋषयः प्रतिजानते॥४४॥
सप्रमाणास्तु शीर्षण्यं मनश्चैवाष्टमं तथा। इन्द्रियाणि तथा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृताः॥४५॥
तेषां बभूव देवानां शिबिरिन्द्रः प्रतापवान्। सप्तर्षयोंऽतरे ये च तान्निबोधत सत्तमाः॥४६॥

काव्य आङ्गिरसश्चैव काश्यपः पृथुरेव च।
आत्रेयस्त्वग्निरित्येव ज्योतिर्धामा च भार्गवः॥४७॥

पौलहश्चरकश्चात्र वाशिष्ठः पीवरस्तथा। चैत्रस्तथैव पौलस्त्य ऋषयस्तामसेंऽतरे॥४८॥
जानुजङ्घस्तथा शान्तिर्नरः ख्याति शुभस्तथा। प्रियभृत्यो परीक्षिच्च प्रस्थलोऽथ दृढेषुधी॥४९॥
कृशश्वं कृतबन्धुश्च तामसस्य मनो सुत। पञ्चमे त्वथ पर्याये मनोः स्वारोचिषेंऽतरे॥५०॥

उन देवताओं के इन्द्र सुशान्ति नाम के कहे गये हैं। ये सब प्रजापति उत्तम के पुत्र अङ्गिरा के पुत्र हैं।।३७।। वशिष्ठ के सात पुत्र थे, जिन्हें वाशिष्ठ कहा गया। वे सब उत्तम मनु के काल मे हुए।।३८।। १. आज, २. परशु, ३. दिव्य, ४. दिव्यौषधि, ५. नय, ६. देवाम्बुज, ७. अप्रतिम, ८. महोत्साहीगज, ९. विनीत, १०. सुकेतु, ११. सुमित्र, १२. सुमति और १३. श्रुति ये तेरह महात्मा उत्तम मनु के पुत्र हैं।।३९-४०।।

ये सब क्षत्रिय वंश को बढ़ाने वाले हैं। यह तृतीय मन्वन्तर का संक्षिप्त वर्णन है। स्वारोचिष मनु के कार्यकाल में जो सृष्टि का विस्तार हुआ था, उसी प्रकार उत्तम मनु की सृष्टि का विस्तार कहा गया है। अव इसके बाद तामस मनु की सृष्टि का विस्तार वर्णन क्रमपूर्वक सुनिये।।४१-४१½।। चौथे तामस मन्वन्तर में, सत्य, सरूप, सुधी और हरि नाम के गण कहे गये हैं। उस तामस मन्वन्तर में वे सब देवता पुलस्त्य के पुत्र थे। उन देवताओं का एक-एक गण पच्चीस का था। वे परम श्रेष्ठ शीर्षस्थ मुनिगण प्रमाणसहित आठ इन्द्रियों और मन को अपने अन्तर्गत स्थित कर चुके थे अर्थात् केवल गुदा और उपस्थ को छोड़कर सबको वश मे कर चुके थे।।४१½-४५।।

उन सब देवताओं के इन्द्र प्रतापवान् शिवि हुए।। उन सप्तर्षियों के मध्य कौन थे? हे ब्राह्मणो! उनको सुनिये।।४६।। वे हैं—कवि पुत्र अङ्गिरस, कश्यप के पुत्र पृथु, अत्रि के पुत्र अग्नि, भृगपुत्र ज्योतिर्धामा, पुलहपुत्र चरक, वशिष्ठ पुत्र पीवर, पुलस्त्य पुत्र चैत्र, तामसमन्वन्तर मे सप्तर्षि हुए।।४७-४८।। जानुजंघ, शान्ति, नर, ख्याति, शुभ, प्रियभृत्य परीक्षित्, प्रस्थल दृढेषुधि, कृशाश्वः और कृतबन्धु ये तामसमन्वन्तर में मनु के पुत्र थे।।४९-४९½।। अब पर्याय क्रम से पाँचवें मनुस्वारोचिष के अन्तर पर रैवत मनु के जो गण कहे गये, उनको सुनिये।। उस

गुणास्तु ये समाख्याता देवानां तान्निबोधत। अमिताभा भूतरयो वैकुण्ठाः ससुमेधसः॥५१॥
वरिष्ठाश्च शुभाः पुत्रा वसिष्ठस्य प्रजापतेः। चतुर्दश तु चत्वारो गणास्तेषां सुभास्वराः॥५२॥
उग्रः प्रज्ञोऽग्निभावश्च प्रज्योतिश्चामृतस्तथा। सुमतिर्वा विरावश्च धामा नादः श्रवास्तथा॥५३॥
वृत्तिराशी च वादश्च शबरश्च चतुर्दश। अमिताभाः स्मृता ह्येते देवाः स्वारोचिषेंऽतरे॥५४॥
मतिश्च सुमतिश्चैव ऋतसत्यौ तथैधनः। अधृतिर्विधृतिश्चैव दमो नियम एव च॥५५॥
व्रतो विष्णुः सहश्चैव द्युतिमान्सुश्रवास्तथा। इत्येतानीह नामानि आभूतरयसां विदुः॥५६॥

वृषो भेत्ता जयो भीमः शुचिर्दांतो यशो दमः।
नाथो विद्वानजेयश्च कृशो गौरो ध्रुवस्तथा॥५७॥

कीर्त्तितास्तु विकुण्ठा वै सुमेधांस्तु निबोधत। मेधा मेधा तिथिश्चैव सत्यमेधास्तथैव च॥५८॥
पृश्निमेधाल्पमेधाश्च भूयोमेधाश्च यः प्रभुः। दीप्तिमेधा यशोमेधा स्थिरमेधास्तथैव च॥५९॥
सर्वमेधा सुमेधाश्च प्रतिमेधाश्च यः स्मृतः। मेधजा मेधहन्ता च कीर्त्तितास्ते सुमेधसः॥६०॥
विभुरिन्द्रस्तथा तेषामासीद्वि क्रान्तपौरुषः। पौलस्त्यो देवबाहुश्च सुधामा नाम काश्यपः॥६१॥
हिरण्यरोमाङ्गिरसोवेदश्रीश्चैव भार्गवः। ऊर्ध्वबाहुश्च वाशिष्ठः पर्जन्यः पौलहस्तथा॥६२॥
सत्यनेत्रस्तथात्रेय ऋषयो रैवतेंऽतरे। महावीर्यः सुसंभाव्यः सत्यको हरहा शुचिः॥६३॥
बलबन्धुर्निरामित्रः कम्बुः शृङ्गो धृतव्रतः। रैवतस्य च पुत्रास्ते पञ्चमं वै तदन्तरम्॥६४॥
स्वारोचिषश्चोत्तमोऽपि तामसो रैवतस्तथा। प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवः स्मृताः॥६५॥

समय उन वशिष्ठ प्रजापति के अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ और सुमेधा ये चार शुभ पुत्र थे तथा उनके चौदह चौदह गण थे, जो भास्कर कहे गये थे।।४९½-५२।। वे थे—१. उग्र, २. प्रज्ञ, ३. अग्नि, ४. भाव, ५. प्रज्योति, ६. अमृत, ७. सुमति, ८. विराव, ९. धामा, १०. नाद, ११. श्रवा, १२. वृत्तिराशी, १३. बाद और १४. शबर। ये सभी चौदहों गण रैवत मन्वन्तर में अमिताभ नाम से कहे गये हैं।।५३-५४।। १. मति, २. सुमति, ३. ऋत, ४. सत्य ५. इंधन, ६. अधृति, ७. विधृति, ८. दम, ९. नियम, १०. व्रत, ११. विष्णु, १२. सह १३. द्युतिमान, १४. सुश्रवा इस प्रकार सब चौदह नाम भूतरयगण नाम से जानिये।।५३-५५।। १. वृष, २. भेत्ता, ३. जय, ४. भीम, ५. शुचि, ६. दान्त, ७. यश, ८. दम, ९. नाथ, १०. विद्वान्, ११. अजेय, १२. कृश १३. गौर तथा १४. ध्रुव।। ये सब वैकुण्ठ नाम से कहे गये हैं। अब जो समेधा नाम से कहे गये हैं, उनको सुनिये।।५६-५७½।।

१. मेधा, २. मेधातिथि, ३. सत्यमेधा, ४. पृश्निमेधा, ५. अल्पमेधा, ६. भूयोमेधा, ७. दीप्तिमेधा, ८. यशोमेधा, ९. स्थिरमेधा, १०. सर्वमेधा, ११. सुमेधा, १२. प्रतिमेधा, १३. मेधजा और १४. मेधहन्ता ये चौदह सुमेधस नाम के गण कहे गये हैं।।५७½-६०।। उस पाँचवें मन्वन्तर के इन्द्र अतिक्रान्त पुरुषार्थ वाले 'विभु' थे। पुलस्त्यपुत्र, देवबाहु कश्यपपुत्र सुधामा, अङ्गिरापुत्र हिरण्यरोमा, भृगुपुत्र वेदश्री, वशिष्ठपुत्र ऊर्ध्वबाहु, पुलहपुत्र पर्जन्य, अत्रिपुत्र, सत्यनेत्र ये सब सप्तर्षि रैवत मन्वन्तर में हुए थे।।६१-६२½।। महावीर्य, सुसंभाव्य, सत्यक, हरहा, शुचि, बलबन्धु, निरामित्र, कम्बु, शृङ्ग, धृतव्रत ये सब पञ्चम मन्वन्तर के बीच रैवत के पुत्र थे। इस प्रकार ये पाँच मन्वन्तर हो चुके।।६२½-६४।। स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत इन चार मनुओं का वर्णन किया गया,

षष्ठे खल्वपि पर्याये देवा ये चाक्षुषेंऽतरे। आद्याः प्रसूता भाव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकसः॥६६॥
महानुभावा लेखाश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः। दिवौकसः सर्व एव प्रोच्यन्ते मातृनामभिः॥६७॥
अत्रेः पुत्रस्य नप्तारो ह्यारण्यस्य प्रजापतेः। गणास्तु तेषां देवानामेकैको ह्यष्टकः स्मृतः॥६८॥
अन्तरिक्षो वसुर्हव्यो ह्यतिथिश्च प्रियव्रतः। श्रोता मन्तानुमन्ता च त्वाद्या ह्येते प्रकीर्त्तिताः॥६९॥
श्येनभद्रस्तथा चैव श्वेतचक्षुर्महायशाः। सुमनाश्च प्रचेताश्च वनेनः सुप्रचेतसौ॥७०॥
मुनिश्चैव महासत्त्वः प्रसूताः परिकीर्त्तिताः। विजयः सुजयश्चैव मनस्योदौ तथैव च॥७१॥
मतिः परिमतिश्चैव विचेताः प्रियनिश्चयः। भव्या ह्येते स्मृतादेवाः पृथुकांश्च निबोधत॥७२॥
ओजिष्ठः शकुनो देवो वानपृष्ठस्तथैव च। सत्कृतः सत्यदृष्टिश्च जिगीषुर्विजयस्तथा॥७३॥
अजितश्च महाभागः पृथुकास्ते दिवौकसः। लेखांस्तथा प्रवक्ष्यामि नामतस्तान्निबोधत॥७४॥
मनोजवः प्रघासश्च प्रचेताश्च महायशाः। ध्रुवो ध्रुवक्षितिश्चैव अच्युतश्चैव वीर्यवान्॥७५॥
युवना बृहस्पतिश्चैव लेखाः सम्परिकीर्त्तिताः। मनोजवो महावीर्यस्तेषामिन्द्रस्तदाभवत्॥७६॥
उत्तमो भार्गवश्चैव हविष्मानंगिरःसुतः। सुधामा काश्यपश्चैव वशिष्ठो विरजास्तथा॥७७॥
अतिनामा च पौलस्त्यः सहिष्णुः पौलहस्तथा। मदुरात्रेय इत्येते सप्त वै चाक्षुषेंऽतरे॥७८॥
ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कृतिः। अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव॥७९॥
अभिमन्युश्च दशमो नाड्वलेया मनोः सुताः। चाक्षुषस्य सुताः ह्येते षष्ठं चैव तदन्तरम्॥८०॥

जो प्रियव्रत के पुत्र कहे गये हैं। अब पर्याय क्रम से छठे मन्वन्तर चाक्षुष में जो देवगण हुए हैं, उनका वर्णन कर रहा हूं। १. आद्य, २. प्रसूत, ३. भाव्य, ४. स्वर्गपुरुष पृथुक और ५. महानुभाव लेख। ये पाँच महानुभाव देवगण उस मन्वन्तर के देवगण कहे गये हैं। ये सभी देवता मातृनाम से पुकारे गये हैं।।६५-६७।। प्रजापति अत्रि के पुत्र आरण्य ऋषि के ये समस्त देवगण नाती माने गये हैं। उन देवों के पाँचों गणो में एक एक गण के आठ आठ देवता स्मरण किये गये हैं।।६८।। १. अन्तरिक्ष २. वसु, ३. हव्य, ४. अतिथि, ५. प्रियव्रत, ६. श्रोता, ७. मन्ता, ८. अनुमन्ता, ये सब आठ आद्यगण के देवता कहे गये हैं।।६९।। १. श्येनभद्र, २. श्वेत, ३. चक्षु, ४. महायशस्वी, ५. सुमन, ६. प्रचेता, ७. वनेन और ८. सुप्रचेता ये आठ देवगण महापराक्रमी प्रसूत के नाम से प्रसूत गण कहे जाते हैं।।६९-७०½।। १. विजय, २. सुजय, ३. मन, ४. मति, ५. परिमति, ६ विचेता, ७. प्रिय और ८. निश्चय ये आठ भव्य नामक गण के देवता हैं। अब आठ देवता पृथुक नाम के देवताओं को सुनिये।।७०½-७२।। १. ओजिष्ठ, २. शकुन, ३. वानपृष्ठ, ४. सत्कृत, ५. सत्यदृष्टि, ६. जिगीषु तथा ७. विजय और ८. अजित ये आठ देवता पृथुक नाम देवता कहे गये हैं।।७२-७३½।।

अब मैं लेख महानुभाव के आठ देवता हैं, जिन्हें लेख नाम के देवता कहा जाता है, उनको सुनिये। वे हैं— १. मनोजव, २. प्रघास, ३. महायशस्वी प्रचेता, ४. ध्रुव, ५. ध्रुवक्षिति, ६. पराक्रमी अच्युत, ७. युवना और ८. बृहस्पति ये आठ देवता लेख नाम के देवता कहे जाते हैं। उस समय महापराक्रमी मनोजव उन देवताओं के इन्द्र हुए।।७३½-७६।। भृगु के उत्तम, अङ्गिरा के पुत्र हविष्मान्, कश्यपपुत्र, सुधामा, वशिष्ठपुत्र विरजा, पुलस्य पुत्र अतिनामा, पुलहपुत्र सहिष्णु तथा अत्रिपुत्र मधु ये चाक्षुष मन्वन्तर के सात ऋषि हैं।।७७-७८।। १. ऊरु, २. पुरु, ३. शतद्युम्न, ४. तपस्वी, ५. सत्यवाक्, ६. कृति, ७. अग्निष्णुत, ८. अतिरात्र और ९. सुद्युम्न ये नौ तथा दशम

वैवस्वतेन संख्यातस्तत्सर्गः साम्प्रतेन तु। विस्तरेणानुपूर्व्या च चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥८१॥

ऋषय ऊचुः

चाक्षुषः कस्य दायादः सम्भूतः कस्य वाऽन्वये।
तस्यान्ववाये येऽप्यन्ये तान्नो ब्रूहि यथातथम्॥८२॥

सूत उवाच

चाक्षुषस्य विसर्गं तु समासाच्छृणुत द्विजाः। यस्यान्वयाये सम्भूतः पृथुर्वैन्यः प्राप्तवान्॥८३।
प्रजानां पतयश्चान्ये दक्षः प्राचेतसस्तथा। उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिप्रजापतिः॥८४॥
दत्तकः स तु पुत्रोऽस्य राजा ह्यासीत्प्रजापतिः। स्वायंभुवेन मनुना दत्तोऽत्रेः कारणं प्रति॥८५॥
मन्वन्तरमथासाद्य भविष्यच्चाक्षुषस्य ह। षष्ठं तदनु वक्ष्यामि उपोद्धातेन वै द्विजाः॥८६॥
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृताऽसूत भामिनी। धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता॥८७॥
उत्पन्ना चापि धर्मेण ध्रुवस्य जननी शुभा।
धर्मस्य पत्न्यां लक्ष्म्यां वै उत्पन्ना सा शुचिस्मिता॥८८॥
ध्रुवं च कीर्त्तिमन्तं च त्वायुष्मन्तं वसुं तथा। उत्तानपादोऽजनयत्कन्ये द्वे च शुचिस्मिते॥८९॥
स्वरा मनस्विनी चैव तयोः पुत्राः प्रकीर्त्तिताः।
ध्रुवो वर्षसहस्राणि दश दिव्यानि वीर्यवान्॥९०॥
तपस्तेपे निराहारः प्रार्थयन्विपुलं यशः। त्रेतायुगे तु प्रथमे पौत्रः स्वायंभुवस्य तु॥९१॥

अभिमन्यु ये चाक्षुष मनु के दश पुत्र हैं, जो नाड्वलेय नाम से भी जाने जाते हैं। छठे मन्वन्तर का यही वर्णन है।।७९-८०।। इन महात्मा चाक्षुष मनु का सृष्टिक्रम वैवस्वत मनु की भाँति ही कहा जाता है। विप्रगण! उसका विस्तार वृत्तान्त सुनाया जा चुका है।।८१।।

ऋषियों ने कहा कि चाक्षुष किसके दायाद हैं अथवा किसके वंश में उत्पन्न हुए, उसके वंश में अन्य कौन-कौन उत्पन्न हुए, उन्हें यथातथ्य बतलाइये।

सूत जी बोले—हे ब्राह्मणो! चाक्षुष मनु के विशेष सर्ग को संक्षेप से सुनिये! जिनके वंश में राजा वेन पुत्र प्रतापवान् राजा पृथु पैदा हुए।।८३।। इसके अलावा अन्य प्रजापति पैदा हुए जिनमें प्रचेता के पुत्र दक्ष नामक प्रजापति थे। प्रजापति अत्रि ने उत्तानपद नामक पुत्र को गोद रख लिया। इस दक्ष प्रजापति का पुत्र राजा था, जिसे स्वायम्भुव मनु ने अत्रि के लिए दिया था। अतः मैं अब प्रसंगवश भविष्यत्कालीन स्वायम्भुव मन्वन्तर का जो छठा मन्वन्तर माना जाता है, विस्तारपूर्वक पुनः वर्णन कर रहा हूँ।।८४-८६।। उत्तानपाद की जो अमृत पत्नी थी, जिसका नाम सुनृता था, जो परम चतुर धर्मज्ञा थी, वह उत्तानपाद से अपने गर्भ में ध्रुव नामक पुत्र की जननी थी, वह धर्म के द्वारा धर्म की पत्नी लक्ष्मी के गर्भ से उत्पन्न थी तथा बहुत ही सुन्दर और पवित्र मुस्कान वाली थी। राजा उत्तानपाद ने ध्रुव, कीर्तिमान् तथा आयुष्मान् वसु नामक दो पुत्रों और स्वरा और मनस्विनी नामक पवित्र मुस्कान वाली दो कन्याओं को उत्पन्न किया।।८७-८९½।। अत्यन्त पराक्रमी ध्रुव ने निराहार रहकर विपुल यश प्राप्त करने की इच्छा रखते हुए दश हजार दिव्यवर्षों तक घोर तप किया था तथा वह स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्रथम त्रेतायुग में वे स्वायंभुव मनु के पौत्र

आत्मानं धारयन्योगान्प्रार्थयन्सुमहद्यशः। तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो ज्योतिषां स्थानमुत्तमम्॥९२॥
आभूतसंप्लवाद्दिव्यमस्तोदयविवर्जितम्। तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य तु॥९३॥
दैत्या सुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ। अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो व्रतम्॥९४॥
कृत्वा यदेनमुपरि ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः। ध्रुवे त्रिदिवमासक्तमीश्वरः स दिवस्पतिः॥९५॥
ध्रुवात्सृष्टिं च भव्यं च भूमिस्तौ सुषुवे नृपौ। स्वां छायामाह वै सृष्टिर्भव नारीति तां प्रभुः॥९६॥
सत्याभिव्याहृतेस्तस्य सद्यः स्त्री साभवत्तदा। दिव्यसंहनना छाया दिव्याभरणभूषिता॥९७॥
छायायां सृष्टिराधत्त पञ्च पुत्रानकल्मषान्। प्राचीनगर्भं वृषभं वृकं च वृकलं धृतिम्॥९८॥
पत्नी प्राचीनगर्भस्य सुवर्चा सुषुवे नृपम्। नाम्नोदारधियं पुत्रमिन्द्रो यः पूर्वजन्मनि॥९९॥
संवत्सरसहस्रान्ते सकृदाहारमाहरन्। एवं मन्वन्तरं युक्त इन्द्रत्वं प्राप्तवान्प्रभुः॥१००॥
उदारधेः सुतं भद्राऽजनयत्सा दिवंजयम्। रिपुं रिपुंजयाज्जज्ञे वरांगी तु दिवंजयात्॥१०१॥
रिपोराधत्त बृहती चक्षुषं सर्वतेजसम्। तस्य पुत्रो मनुर्विद्वान् ब्रह्मक्षत्त्रप्रवर्त्तकः॥
व्यजीजनत्पुष्करिणी वारुणी चाक्षुषं मनुम्॥१०२॥

ऋषय ऊचुः

प्रजापतेः सुता कस्माद्वारुणी प्रोच्यतेऽनघ। एतदाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि विस्तरे॥१०३॥

थे।।८८½-९१।। जब उस समय वे ध्रुव अपनी आत्मा में शरीर को धारण करते हुए बहुत अधिक महान् यश प्रार्थना कर रहे थे, उस समय ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उन्हें ज्योतिर्गणों का परम स्थान प्रदान किया था।।९२।। महाप्रलयपर्यन्त दिव्य अस्त और उदय से रहित उन ध्रुव की बहुत अधिक समृद्धि वाली महिमा को देखकर दैत्यों और असुरों के आचार्य शुक्र ने उनका यशोगान किया। धन्य है, इन महापुरुष की तपस्या का पराक्रम, धन्य है। इनका शास्त्र ज्ञान और धन्य है, इनका व्रत जो कि ये महामना ध्रुव इन सप्तर्षियों के ऊपर स्थित हैं तथा दिन के स्वामी भास्कर भी इनकी तीनों लोकों में भ्रमण कर इनका आश्रय ग्रहण करते हैं।।९३-९५।।

ध्रुव से भूमि ने सृष्टि और भव्य दो पुत्रों को जन्म दिया। परम ऐश्वर्यशालिनी पुष्टि ने अपनी छाया से कहा कि तू स्त्री होजा। जैसे ही सत्य बोलने वाले सृष्टि ने ऐसा कहा कि वह छाया स्त्री हो गयी और दिव्य अङ्गों वाली छाया दिव्य आभूषणों से भूषित हो गयी।।९६-९७।। छाया नामक पत्नी में सृष्टि ने पाँच पुत्रों को पैदा किया, वे थे प्राचीनगर्भ, वृषभ, वृक, वृकल और धृति।।९८।। प्राचीन गर्भ की पत्नी सुवर्चा ने राजा उदारधी नामक पुत्र को जन्म दिया, जो पूर्व जन्म में इन्द्र था।।९९।। जिसने हजार वर्षों के अन्त तक केवल एक बार आहार (भोजन) ग्रहण किया था। इस प्रकार उसने एक मन्वन्तर के अन्त तक इन्द्रपद प्राप्त किया था।।१००।। उदारधी से उस भद्रा ने दिवञ्जय नामक पुत्र को जन्म दिया तथा शत्रुओं को जीतने वाले दिवञ्जय से वराङ्गी ने रिपु नामक पुत्र को पैदा किया।।१०१।। रिपु से वृहती ने परम तेजस्वी चाक्षुष नामक पुत्र को पैदा किया।। उसके पुत्र ब्राह्मणों और क्षत्रियों के प्रवर्तक विद्वान् मनु हुए।। चाक्षुषपुत्र मनु को वरुणपुत्री पुष्करणी ने पैदा किया।।१०२।।

ऋषियों ने कहा—प्रजापति की पुत्री वारुणी कैसे कही गयी, हे निष्पाप सूत जी यह हमें तत्त्वपूर्वक विस्तार में बताइये; क्योंकि आप कुशल हैं।।१०३।।

सूत उवाच

अरण्यस्योदकः पुत्रो वरुणत्वमुपागतः। तेन सा वारुणी ज्ञेया भ्रात्रा ख्यातिमुपागता॥१०४॥
मनोरजायन्त दश नड्वलायां सुताः शुभाः। कन्यायां सुमहावीर्या विरजस्य प्रजापतेः॥१०५॥
ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कृतिः। अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति वै नव॥१०६॥
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां मनोः सुताः। ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाप्रभान्॥१०७॥
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं गयं शुक्रं वज्राजिनौ। अङ्गात्सुनीथापत्यं वै वेनमेकं व्यजायत॥१०८॥
तस्यापराधाद्वेनस्य प्रकोपस्तु महानभूत्। प्रजार्थमृषयो यस्य ममंथुर्दक्षिणं करम्॥१०९॥
जनितस्तस्य पाणौ तु मथिते रूपवान्पृथुः। जनयित्वा सुतं तस्य पृथुं प्रथितपौरुषम्॥११०॥

अब्रुवंस्त्वेष वो राजा ऋषयो मुदिताः प्रजाः।
स धन्वी कवची जज्ञे तेजसा निर्दहन्निव॥१११॥

वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति नराधिपः। पृथुर्वैन्यस्तदा लोकान्ररक्ष क्षत्रपूर्वजः॥११२॥
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यस्स वसुधाधिपः। तस्य स्तवार्थमुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ॥११३॥
तेनेयं गौर्महाराज्ञा दुग्धा सस्यानि धीमता। प्रजानां वृत्तिकामानां देवैश्चर्षिगणैः सह॥११४॥
पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः। सर्पैः पुण्यजनैश्चैव पर्वतैर्वृक्षवीरुधैः॥११५॥
तेषु तेषु तु पात्रेषु दुह्यमाना वसुंधरा। प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन्॥११६॥

सूत जी बोले—कि अरण्यक का पुत्र उदक वरुणत्व को प्राप्त हो गया, उसके भाई द्वारा वह वारुणी ख्याति को प्राप्त हुई।।१०४।। प्रजापति विराज की पुत्री नड्वला मे मनु के महापराक्रमी दशपुत्र उत्पन्न हुए।।१०५।। वे थे— १. ऊरु, २. पुरु, ३. शतद्युम्न, ४. तपस्वी, ५. सत्यवाक्, ६. कृति, ७. अग्निष्टुत, ८. अतिरात्र, ९. सुद्युम्न ये नौ पुत्र तथा दशवां पुत्र अभिमन्यु इस प्रकार ये दश पुत्र मनु के हुए।।१०६-१०६½।। ऊरु की पत्नी आग्नेयी ने महाकान्तिशाली छः पुत्र पैदा किये, वे हैं—१. अंग, २. सुमना, ३. ख्याति, ४. गय, ५. शुक्र और ६. वज्राजिन्। गुरु के प्रथम पुत्र अंग से उनकी पत्नी सुनीथा ने अपने एक पुत्र वेन को पैदा किया।।१०६½-१०८।। उस वेन के अपराध से महान् प्रकोप हुआ, प्रजा के कल्याण के लिए ऋषियो ने जिसके दाँये हाथ[1] का मन्थन किया।।१०९।।

उसके हाथ का मन्थन करने पर सुन्दर रूपवाले राजा पृथु पैदा हुए। उन प्रसिद्ध पुरुषार्थ वाले पुत्र पृथु को उत्पन्न कर प्रसन्न हुए ऋषियों ने कहा कि यह राजा धनुष और कवच धारण करने वाले जलते हुए तेज के समान पैदा हुआ है। अतः ये राजा आप समस्त प्रजाओं को जीविका देने वाला राजा होगा, उसके बाद उस क्षत्रियों के पूर्वज वेन पुत्र राजा पृथु ने सारे लोकों की रक्षा की।।१०९-११२।। राजसूय यज्ञ से अभिषिक्त राजाओं में वसुधा का स्वामी वह पृथु ही पहला राजा था। उस समय दो सूत और मागध उसकी स्तुति के लिए पैदा हुए।।११३।। परमविद्वान् उन महाराजा पृथु ने जीविका को चाहने वाली प्रजाओं के लिये ऋषियो, देवताओं, पितरों, गन्धर्वों, अप्सराओं सभी पुण्यशील पुरुषो, वृक्षों, पर्वतों के समूहो के साथ गौरूप धारण करने वाली पृथ्वी का दोहन किया।।११४-११५।। उस समय अलग अलग बर्तनों में दुही गयी वसुन्धरा ने दुग्ध प्रदान किया, जिससे सभी ने प्राणों को धारण किया।।११६।।

१. किसी-किसी पुराण में जंघा का मन्थन करना बताया गया है।

शांशपायन उवाच

विस्तरेण पृथोर्जन्म कीर्त्तयस्व महाव्रत। यथा महात्मना तेन पूर्वं दुग्धा वसुंधरा॥११७॥
यथा देवैश्च नागैश्च यथा ब्रह्मर्षिभिः सह। यक्षै राक्षसगन्धर्वैरप्सरोभिर्यथा पुरा॥११८॥
यथा यथा च वै सूत विधिना येन येन च। तेषां पात्रविशेषांश्च दोग्धारं क्षीरमेवच॥११९॥
तथा वत्सविशेषांश्च त्वं नः प्रब्रूहि पृच्छताम्। यथा क्षीरविशेषांश्च सर्वानेवानुपूर्वशः॥१२०॥
यस्मिंश्च कारणे पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा। क्रुद्धैर्महर्षिभिः पूर्वैः कारणं ब्रूहि तद्धिनः॥१२१॥

सूत उवाच

कथयिष्यामि वो विप्राः पृथोर्वैन्यस्य सम्भवम्।
एकाग्राः प्रयताश्चैव शुश्रूषध्वं द्विजोत्तमाः॥१२२॥
नाशुद्धाय न पापाय नाशिष्यायाहिताय च। वर्त्तनीयमिदं ब्रह्म नाव्रताय कथञ्चन॥१२३॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं श्रृणुयाद्योऽनसूयकः॥१२४॥
यश्चैवं श्रावयेन्मर्त्यः पृथोर्वैन्यस्य संभवम्।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम्॥१२५॥
गोप्ता धर्मस्य राजासौ बभूवात्रिसमः प्रभुः।
अत्रिवंशसमुत्पन्नो ह्यङ्गो नाम प्रजापतिः॥१२६॥
तस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धार्मिकस्तथा। जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः॥१२७॥

उसके वाद शांशपायन ऋषि ने कहा कि हे सूत जी—अब आप महाव्रती पृथु के जन्म को विस्तार से बताइये कि जिस प्रकार उन महापुरुष पृथु ने वसुन्धरा को दुहा था।।११७।। तथा वह वृत्तान्त भी बताइये कि देवताओं, नागों, ब्रह्मर्षियों, यक्षों, गन्धर्वों एवं अप्सराओं के साथ जिस प्रकार एवं जिस विधान से पृथ्वी का दोहन किया गया, उनके जो जो विशेष वर्तन रहे, यह भी बताइये।।११८-११९।। तथा उन-उन समूहों में कौन प्रमुख दुहने वाला हुआ? किस प्रकार का दूध पैदा हुआ? कौन कौन बछड़े बने? सबका वर्णन हमें बताइये तथा जैसे विशेष दुग्ध निकला यह पूर्व सेलेकर हमें बताइये तथा पूर्वकाल के कुछ क्रुद्ध महर्षियों ने किस कारण के रहने पर वेन के दक्षिण कर का मन्थन किया, यह सब हमको बताइये।।१२०-१२१।।

सूत जी बोले—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋषियो! वेन का पुत्र पृथु की उत्पत्ति को आपको बताऊँगा। आप लोग एकाग्र होकर ध्यानपूर्वक सुनिये।।१२२।। यह पवित्र जीवन चरित्र कभी कभी अपवित्रता, अशिष्य, अहितकारी एवं व्रतादि से उन्मुख रहने वाले व्यक्ति को नहीं बताऊँगा।।१२३।। जो धन्य है, यशस्वी है, आयुष्मान् है, पुण्यात्मा है और वेदों से युक्त है अर्थात् वेदों का अध्ययन करता है तथा किसी की निन्दा न करने वाला व्यक्ति है, उसको ही इस ऋषियों द्वारा कहे गये महाराजा पृथु के वृत्तान्त को सुनना चाहिये।।१२४।। जो मनुष्य वेन पुत्र पृथु के वृत्तान्त को ब्राह्मणों को नमस्कार कर किसी को सुनाता है, उसे किये गये और न किये गये पाप पुण्यों में सोच नहीं करना चाहिये।।१२५।। महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न अंग नामक प्रजापति हुए, जिसका पुत्र वेन हुआ। वेन परम धार्मिक

स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजात्मजः। स धर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोकेष्ववर्तत॥१२८॥

स्थापनां स्थापयामास धर्मायैतां स पार्थिवः।
वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य सोऽधर्मे निरतोऽभवत्॥१२९॥

निःस्वाध्यायवषट्कारे तस्मिन्राज्यं प्रशासति। न पिबंति तदा सोमं महायज्ञेषु देवताः॥१३०॥

न यष्टव्यं न दातव्यमिति तस्य प्रजापतेः। आसीत्प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते॥१३१॥

अहमीज्यश्च पूज्यश्च यज्ञे देवद्विजातिभिः। मयि यज्ञा विधातव्या मयि होतव्यमित्यपि॥१३२॥

तमतिक्रान्तमर्यादमवदानसुसंवृतम्। ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तदा॥१३३॥

वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरशतं नृप। त्वं मा कार्षीरधर्मं वै नैष धर्मः सनातनः॥१३४॥

निधने सम्प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयः। पालयिष्ये प्रजाश्चेति पूर्वं ते समयः कृतः॥१३५॥

तां स्तथा वादिनः सर्वान् ब्रह्मर्षीनब्रवीत्तदा। वेनः प्रहस्य दुर्बुद्धिर्विदितेन च कोविदः॥१३६॥

स्त्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वा मया।
वीर्येण तपसा सत्यैर्मया वा कः समो भुवि॥१३७॥

मन्दात्मानो न नूनं मां यूयं जानीत तत्त्वतः। प्रभवं सर्वलोकानां धर्माणां च विशेषतः॥१३८॥

इच्छन्दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलेन वा। सृजेयं वा ग्रसेयं वा नात्र कार्या विचारणा॥१३९॥

राजा नहीं था। वह मृत्यु की पुत्री सुनीथा मे पैदा हुआ था।।१२६-१२७।। वह वेन अपने मातामह नाना के दोष के कारण क्रूर स्वभाव का था। धर्म को पीछे छोड़कर काम से लोभ में व्यस्त हो गया।।१२८।। और उसने अपने एक विशेष धर्म की स्थापना की, जिसमें वेदशास्त्रों के विरुद्ध बातें थीं, इस प्रकार वह अधर्म में निरत हो गया।।१२९।। उस अधर्मी राजा वेन के शासन करते समय प्रजायें स्वाध्याय एवं वषट्कार से विहीन हो गयीं। उस समय महायज्ञों में देवता लोग सोम का पान नहीं करते थे।।१३०।। उस प्रजापति के काल में यह नियम बना था कि न किसी को यज्ञ करना चाहिये तथा न किसी को दान देना चाहिये, यह उसकी विनाश उपस्थित होने पर क्रूर प्रतिज्ञा ती।।१३१।। उसका कहना था कि मैं ही ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ करने योग्य हूँ अर्थात् मेरा यज्ञ कीजिये, मेरा ही पूजन कीजिये। मुझमें ही यज्ञ किया जाने चाहिये; क्योंकि मैं ही होतव्य हूँ।।१३२।। जब उसने अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर दिया, तब उस मर्यादा उल्लंघन करने वाले वृत्तान्त से युक्त उस राजा से मरीचिप्रमुख सब महर्षियों ने कहा कि हे नृप! हम तुम्हें सौ वर्षों तक दीक्षा देंगे। अतः तुम अधर्म मत करो, जो तुम कर रहे हो, वह सनातन धर्म नहीं है।।१३३-१३४।।

हे राजन् तुम अपने पिता के निधन होने पर पैदा हुए हो तथा तुम पहले राजा बनते समय यह प्रतिज्ञा कर चुके हो कि मैं प्रजा का पालन करूँगा।।१३५।। इस प्रकार वैसी बातें करने वाले उन सभी ऋषियों से दुर्बुद्धि राजा वेन ने हँसते हुए कहा कि धर्म को पैदा करने वाला मेरे अतिरिक्त दूसरा कौंन है? अथवा मुझे किसकी बात सुननी चाहिये। इस पृथ्वी पर पराक्रम में, तपस्या में अथवा सत्य में मुझसे महान् कौंन है?।।१३६-१३७।। तुम लोग मुझे मन्द आत्माओं वाला तथा तत्त्वरूप से कम मत समझो। मुझे समस्त लोकों का तथा विशेषरूप से सब धर्मों का प्रभु (उत्पन्न करने वाला) समझो।।१३८।। मैं चाहूँ तो इस पृथ्वी को जला दूं अथवा इस पृथ्वी को जल से पूर्ण कर दूं। मैं इसकी सृष्टि कर दूं अथवा इसे निगल जाऊँ, इसमें थोड़ा भी विचार मत करो।।१३९।।

यदा न शक्यते स्तम्भादानार्य्यभृशसंहितः। अनुनेतुं तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः॥१४०॥
निगृह्य तं च बाहुभ्यां विस्फुरन्तं महाबलम्। ततोऽस्य वामहस्तं ते ममंथुर्भृशकोपिताः॥१४१॥
तस्मात्प्रमथ्यमानाद्वै जज्ञे पूर्वमिति श्रुतिः। ह्रस्वोऽतिमात्रं पुरुषः कृष्णश्चापि बभूव ह॥१४२॥
स भीतः प्राञ्जलिश्चैव तस्थिवानाकुलेन्द्रिय। तस्मार्त्तं विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रुवन्किल॥१४३॥
निषादवंशकर्तासौ बभूवानन्तविक्रमः। धीवरानसृजच्चापि वेनकल्मसंभवान्॥१४४॥

ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तंबुरास्तुबुराः खशाः।
अधर्मरुचयश्चापि विद्धि तान्वेनकल्मषान्॥१४५॥

पुनर्महर्षयस्तस्य पाणिं वेनस्य दक्षिणम्। अरणीमिव संरब्धा ममंथुर्जातमन्यवः॥१४६॥

पृथुस्तस्मात्समुत्पन्नः कराज्जलजसन्नभात्।
पृथोः करतलाद्वापि यस्माज्जातः पृथुस्ततः॥१४७॥

दीप्यमानश्च वपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलनम्। आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महावरम्॥१४८॥
शरांश्च बिभ्रद्रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम्। तस्मिञ्जा तेऽथ भूतानि संप्रहृष्टानि सर्वशः॥१४९॥
समापेतुर्महाराजं वेनश्च त्रिदिवं गतः। समुत्पन्नेन राजर्षिः सत्पुत्रेण महात्मना॥१५०॥
त्रातः स पुरुषव्याघ्रः पुन्नाम्नो नरकात्तदा। तं नद्यश्च समुद्राश्च रत्नान्यादाय सर्वशः॥१५१॥
अभिषेकाय तोयं च सर्व एवोपत स्थिरे। पितामहश्च भगवानंगिराभिः सहामरैः॥१५२॥

इस प्रकार अनुनय करने पर श्री ऋषिगण राजा वेन को अनार्य मार्ग पर जाने से नहीं रोक सके, तब ऋषि लोग वेन पर क्रोधित हो गये।।१४०।। तब बहुत क्रोधित ऋषियों ने छटपटाते हुए उस महाबली राजा वेन की भुजाओं को पकड़कर फिर उसके बाँये हाथ को मथना प्रारम्भ कर दिया। तब उसके बायें हाथ के मन्थन से एक बहुत अधिक लघुकाय और काले रंग का पुरुष पैदा हो गया, जैसा कि यह पहले वेद में भी कहा गया है।।१४१-१४२।। वह पुरुष बहुत ही डरा हुआ हाथ जोड़कर समस्त इन्द्रियो से व्याकुल होता हुआ खड़ा था। उसको व्याकुल और दुःखी देखकर ऋषियों ने कहा कि "निषीद" अर्थात् बैठ जाओ।।१४३।। इस प्रकार वह अनन्त पराक्रम वाले निषादवंश का कर्ता हुआ तथा उसने वेन के पापों से पैदा होने वाले धीवरों (कहारों) को उत्पन्न किया।।१४४।। जो विन्ध्यपर्वत पर रहने वाले तुम्बुर, खस, जाति वाले अधर्मी लोग हैं, उन्हें उसी वेन के पाप से उत्पन्न हुआ समझो।।१४५।। फिर महर्षियों ने वेन के दक्षिण कर को बहुत अधिक क्रोधित (आग पैदा करने हेतु लकड़ी को रगड़ने की भाँति) मथना प्रारम्भ किया। तब उस राजा वेन के कमल के समान दाहिने कर से पृथु उत्पन्न हुए। पृथु का अर्थ करतल होता है। अतः यथा नाम तथा गुण के अनुसार उनका नाम पृथु रखा गया।।१४६-१४७।।

वे पृथु अपने शरीर की चमक के कारण साक्षात् अग्नि की भाँति देदीप्यमान प्रतीत हो रहे थे। सबसे पहले उन्होंने महान् ध्वनि करने वाले आजगव नामक धनुष को धारण किया तथा बाणों को धारण करते हुये बहुत अधिक कान्ति वाले रक्षा के लिये कवच को धारण किया, उसके पैदा होने सब ओर प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हो गये।।१४८-१४९।। महाराज पृथु को पैदाकर वेन स्वर्ग को चले गये।। इस प्रकार महान् आत्मा सत्पुत्र के उत्पन्न होने के कारण वह पुरुष व्याघ्र राजा वेन पुन्नाम नामक नरक में जाने से बच गया।। सभी नदियां और समुद्र सब प्रकार के रत्नों को तथा जलों को लेकर अभिषेक के लिए प्रभु पृथु के पास पहुँचे। उसके बाद सब देवताओं और अङ्गिरा आदि ऋषियों

स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः। समागम्य तदा वैन्यमभ्य षिंचन्नराधिपम्॥१५३॥
महता राजराजेन प्रजापालं महाद्युतिम्। सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरंगिरसः सुतैः॥१५४॥
आदि राजो महाभागः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्। पित्रापरंजितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः॥१५५॥
ततो राजेति नामास्य ह्यनुरागादजायत। आपस्तस्तंभिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः॥१५६॥
पर्वताश्चावदीर्यन्त ध्वजभङ्गश्च नाभवत्।
अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यंत्यन्नानि चिन्तया॥१५७॥
सर्वकामदुधा गावः पुटके पुटके मधु। एतस्मिन्नेव काले तु यजतस्तस्य वै मखे॥१५८॥
सोमे सुते समुत्पन्नः सूतः सौत्ये तदाहनि। तस्मिन्नेवं समुत्पन्ने पुनर्जज्ञेऽथ मागधः॥१५९॥
सामगेषु च गायत्सु शुभांडे वैश्वदेविके। समागते समुत्पन्नस्तस्मान्मागध उच्यते॥१६०॥
ऐन्द्रेण हविषा चापि हविः पृक्तं बृहस्पतेः। जुहावेन्द्राय दैवेन ततः सूतो व्यजायत॥१६१॥
प्रमादस्तत्र संजज्ञे प्रायश्चित्तं च कर्मसु। शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः॥१६२॥
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम्। यच्च क्षत्रात्समभवद्ब्राह्मण्यां हीनयोनितः॥१६३॥
सूतः पूर्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्मः प्रकीर्त्तितः। मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम्॥१६४॥
रथनागाश्वचरितं जघन्यं च चिकित्सितम्। पृथुस्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ महर्षिभिः॥१६५॥

के साथ भगवान् पितामह (ब्रह्मा) ने तथा स्थावर जङ्गम आदि सभी पदार्थों ने आकर उन वेन पुत्र राजा पृथु का अभिषेक किया।।१५०-१५३।। देवों और महर्षि अङ्गिरा के पुत्रों द्वारा अभिषेक किये गये वे राजा पृथु राजाओं के राजा होकर महान् प्रताप और यश को प्राप्त हुए।। पिता से दुःखी रहने वाली प्रजा को उन्होंने अत्यधिक प्रसन्न किया। उसके बाद प्रजा का अनुरञ्जन करने के कारण उसी अर्थ के अनुसार उनका नाम राजा हुआ; क्योंकि राजा शब्द का अर्थ है कि जो प्रजा का अनुरञ्जन करे अर्थात् प्रजा को प्रसन्न करे।।१५४-१५५½।। वह ऐसा राजा था कि जब वह समुद्र पर अभियान करता था, तो सारा जल रुक जाता था। पर्वत फैल जाते थे। कभी उसकी ध्वजायें भङ्ग नहीं होती थीं, पृथ्वी विना जोते हुए चिन्तनमात्र से अन्न पैदा करती थी। गौएँ सभी मन की इच्छाओं को पूर्ण करने वाली थीं, प्रपत्तों के दोनों (पुटकों) में मधु मिलता था। इसी समय यज्ञ करते हुए ब्रह्मा के यज्ञ में सूत का जन्म हुआ था। उसी महायज्ञ में बुद्धिमान् मागध भी उत्पन्न हुए।।१५५½-१५९।।

सामवेद का गान होते समय विश्व वैश्वदेविक शुभाण्ड में इन्द्र की हवि के साथ बृहस्पति की मिली हुई हवि से देवताओं द्वारा इन्द्र के लिये हवन करने से सूत की उत्पत्ति हुई।।१६०-१६१।। वहाँ पर प्रमादवश गुरु और शिष्य का हवि मिलने से वहाँ कर्मों में प्रायश्चित्त हुआ; क्योंकि ऊँच-नीच के आचरण से वर्ण विकार पैदा हुआ; क्योंकि वह क्षत्रिय से ब्राह्मणी में हीनयोनि से सूत और मागध का जन्म हुआ है। यहाँ राजा इन्द्र क्षत्रिय तथा बृहस्पति ब्राह्मण के आधार पर ऐसा कहा गया है।।१६२-१६३।। और मागध सूत ने पूर्व वाले धर्म के समान ही धर्म को ही प्रसिद्ध किया। यहाँ सूत का यह धर्म ब्राह्मण और क्षत्रिय का मध्यम धर्म तथा क्षत्रिय की उपजीविका वाला था।। अर्थात् क्षत्रिय वर्ण का सहायक धर्म था; क्योंकि क्षत्रिय धर्म है—युद्ध द्वारा देश की रक्षा करना तथा सूत का धर्म था कि युद्ध में प्रयुक्त होने वाले रथ, हाथी और घोड़ों का परिचालन और चिकित्सा करना आदि जघन्य कार्य था। उन महर्षियों के द्वारा वे दोनों सूत और मागध पृथु के लिये बुलाये गये सब मुनियों ने उन दोनों से कहा कि आप दोनों इस राजा की

तावूचुर्मुनयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः। कर्मैतदनुरूपं च पात्रं चायं नराधिपः॥१६६॥
तावूचतुस्ततः सर्वांस्तानृषीन्सूतमागधौ। आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मतः॥१६७॥
न चास्य विद्वो वै कर्म न तथा लक्षणं यशः।
स्तोत्रं येनास्य कुर्याव प्रोचुस्तेजस्विनो द्विजाः॥१६८॥
एष कर्मरतो नित्यं सत्यवाक्संयतेन्द्रियः। ज्ञानशीलो वदान्यश्च संग्रामेष्वपराजितः॥१६९॥
ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति।
यानि कर्माणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महाबलः॥१७०॥
तानि गीतनिबद्धानि ह्यस्तुतां सूतमागधौ। ततस्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः॥१७१॥
अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च। तदादि पृथिवीपालाः स्तूयन्ते सूतमागधैः॥१७२॥
आशीर्वादैः प्रबोध्यन्ते सूतमागधबंदिभिः। तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजा ऊचुर्महर्षयः॥१७३॥
एष वृत्तिप्रदो वैन्यो भविष्यति नराधिपः। ततो वैन्यं महाभागं प्रजाः समभिदुद्रुवुः॥१७४॥
त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवच नात्तदा। सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया॥१७५॥
धनुर्गृहीत्वा बाणांश्च वसुधामाद्रवद्बली। ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वाप्राद्रवन्मही॥१७६॥
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत। सा लोकान्ब्रह्मलोकादीन्गत्वा वैन्यभयात्तदा॥१७७॥
संददर्शाग्रतो वैन्यं कार्मुकोद्यतपाणिकम्। ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणै र्दीप्ततेजसमच्युतम्॥१७८॥

स्तुति करो (सेवा करो)। यह राजा पृथु तुम्हारे कार्य के अनुरूप हैं।।१६४-१६६।। उसके बाद उन दोनों सूत और मागध ने उन सब ऋषियों से कहा कि हम दोनों देवता और ऋषियों को अपने कर्म से प्रसन्न करते हैं। हम लोग इस राजा के कर्म को नहीं जानते और न इसके लक्षण और यश को ही जानते हैं। अतः हे विप्रो! जिस कारण से हम इनकी स्तुति करें, आप हमें बताओ।।१६७-१६८।। तब ऋषियो ने कहा कि यह राजा सत्य बोलने वाला, इन्द्रियों को वश में करने वाला है, नित्य कर्म में लगा रहने वाला ज्ञानशील, धाराप्रवाह बोलने वाला और संग्राम में नहीं हारने वाला है।।१६९।। इस प्रकार भविष्यकाल के ऋषियो ने उन दोनों को नियुक्त कर दिया और कह दिया कि इन राजा की स्तुति करो।। फिर बाद में जिन जिन कार्यों को महाबली पृथु ने किया, उन कर्मों को मैं गीतबद्ध कर सूत मागध दोनों ने राजा की स्तुति की। उसके बाद स्तुति करने पर प्रसन्न हुए राजा पृथु ने सूत को अनूप देश और मागध के लिये मगध दे दिया। उसी समय से राजा लोग सूत और मागधों द्वारा स्तुति किये जाते हैं।। राजा, महाराजा, सूतों, मागधो और बन्दियों के आशीर्वादों से जगाये जाते हैं। उसको देखकर महर्षियों ने परम प्रिय प्रजा से कहा कि यह वेन पुत्र पृथु भविष्य का राजा होगा।।१६९-१७३½।।

उसके बाद प्रजा ने उन वैन्य (पृथु) को चारो ओर से घेर लिया तथा कहा महर्षियो के वचन के अनुसार आप हमारी रक्षा का व्यवहार करें अर्थात् आप राजवृत्ति करें। तब वह महाराज पृथु प्रजा का कल्याण करने की इच्छा से प्रजाओं द्वारा उकसा दिये गये।।१७३½-१७५।। और फिर धनुषबाण लेकर बली राजा ने पृथ्वी पर आक्रमण कर दिया। उसके बाद वेन पुत्र राजा पृथु के भय से पृथ्वी गौ बनकर भागने लगी।।१७६।। तब पृथु धनुष लेकर उस डर से भागती हुई पृथ्वी के पीछे दौड़ने लगे। तब ब्रह्म लोकादि लोको में जाकर सर्वत्र भागकर उस पृथ्वी तीक्ष्ण बाणों की चमक के तेज से जलते के समान प्रतीत हो रहे, देवताओं द्वारा भी न हराये जाने वाले सामने खड़े हुए हाथ

महायोगं महात्मानं दुर्द्धर्षममरैरपि। अलभन्ती तु सा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत॥१७९॥
कृताञ्जलिपुटा देवी पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा। उवाच वैनं नाधर्मः स्त्रीवधे परिपश्यति॥१८०॥

कथं धारयिता चासि प्रजा या वर्द्धिता मया।
मयि लोकाः स्थिता राजन्मयेदं धार्यते जगत्॥१८१॥
मत्कृते न विनश्येयुः प्रजाः पार्थिववर्द्धिताः।
स मां नार्हसिवै हन्तुं श्रेयस्त्वं च चिकीर्षसि॥१८२॥

प्रजानां पृथिवीपाल श्रृणु चेदं वचो मम। उपायतः समारब्धा सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः॥१८३॥
हत्वापि मां न शक्तस्त्वं प्रजानां पालने नृप। अन्तर्भूता भविष्यामि जहि कोपं महाद्युते॥१८४॥
अवध्याश्च स्त्रियः प्राहु स्तिर्यग्योनिगतेष्वपि। सत्त्वेषु पृथिवीपाल धर्मे न त्यक्तुमर्हसि॥१८५॥

एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा तस्या महामनाः।
क्रोधं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत्॥१८६॥
एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य च।
एकं प्राणी बहून्वापि कर्म तस्यास्ति पातकम्॥१८७॥
यस्मिंस्तु निहते भद्रे जीवन्ते बहवः सुखम्।
तस्मिन्हते नास्ति शुभे पातकं चोपपातकम्॥१८८॥
सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि वसुन्धरे।
यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम्॥१८९॥

में धनुष-बाण लिये हुए राजा पृथु को देखा। जब उसे कहीं शरण नहीं मिली तो तब उसने वेन पुत्र राजा पृथु के सामने गिर गयी और सदा तीनों से पूज्य देवी पृथ्वी हाथ जोड़कर वेन पुत्र पृथु से बोली कि हे राजन्! आप स्त्री का वध करने में कोई धर्म नहीं देख रहे हैं।।१७८½-१८०।। मेरे द्वारा जो प्रजायें बढ़ाई गयीं, उन प्रजाओं को आप मेरे विना कैसे धारण कर सकोगे।। हे राजन्! मेरे अन्दर ही सारे लोक स्थित हैं तथा मेरे द्वारा ही यह समस्त जगत् धारण किया जाता है।।१८१।। हे राजन् मेरे लिये (मुझे मारकर) पृथ्वी पर बढ़ी हुई प्रजाओं को नष्ट न करें, आप जो मुझे मार कर कल्याण करना चाहते हैं, वह नहीं हो सकता।।१८२।। हे प्रजाओं का पालन करने वाले राजन्! आप मेरी यह बात सुनें कि उपाय से सभी सम्यक् प्रकार से आरम्भ किये कार्य सफल हो जाते हैं।।१८३।।

हे राजन्! आप मुझे मारकर भी प्रजाओं के पालन करने में समर्थ नहीं हो सकते। मैं अन्तर्भूत हो जाऊंगी। अतः हे महाकान्ति वाले राजन्! क्रोध को त्याग दो।।१८४।। हे पृथ्वीपाल! पशु और कीट की योनयों वाले जीवों में भी स्त्रियाँ अवध्य होती हैं। अतः आप को धर्म नहीं छोड़ना चाहिये।।१८५।। इस प्रकार उस पृथ्वी के अनेकों प्रकार के वाक्यों को सुनकर महामना धर्मात्मा राजा ने क्रोध को रोककर वसुधा से यह कहा।।१८६।। अपने अथवा किसी दूसरे एक व्यक्ति के हित के लिए एक प्राणी को अथवा बहुतों को कोई मारता है। उसका वह कर्म पाप होता है।।१८७।। तथा भद्रे! जिस एक के मारने पर बहुत लोग सुख से जीते हैं! हे शुभे ! उस एक के मारने पर न कोई बड़ा पाप न छोटा पाप है।।१८८।। हे वसुन्धरे! यदि तुम आज मेरी संसार का हित करने वाली बात नहीं मानोगी,

त्वां निहत्याशु बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम्।
आत्मानं प्रथयित्वेह प्रजा धारयिता स्वयम्॥१९०॥
सा त्वं वचनमास्थाय मम धर्मभृतां वरे। संजीवय प्रजां नित्यं शक्ता ह्यसि न संशयः॥१९१॥
दुहितृत्वं च मे गच्छचैवमेतमहं शरम्। नियच्छेयं त्वद्वधार्थमुद्यन्तं घोरदर्शनम्॥१९२॥
प्रत्युवाच ततो वैन्यमेवमुक्ता सती मही। सर्वमेतदहं राजन्विधास्यामि न संशयः॥१९३॥
वत्सं तु मम तं पश्य क्षरेयं येन वत्सला। समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्म्मभृतां वर॥
यथा विस्पन्दमानं मे क्षीरं सर्वत्र भावयेत्॥१९४॥

सूत उवाच

तत उत्सारयामास शिलाजालानि सर्वशः।
धनुष्कोट्या तथा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः॥१९५॥
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद्वसुन्धरा। स्वभावेना भवत्तस्याः समानि विषमाणि च॥१९६॥
न हि पूर्वनिसर्गे वै विषमे पृथिवीतले। प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वापि विद्यते॥१९७॥
न सस्यानि न गोरक्षं न कृषिर्न वणिक्पथः। चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व मासीदेतत्पुरा किल॥१९८॥
वैवस्वतेऽतरे तस्मिन् सर्वस्यैतस्य संभवः। समत्वं यत्र यत्रासी द्भूमेः कस्मिंश्चिदेव हि॥१९९॥
तत्र तत्र प्रजास्ता वै निवसन्ति च सर्वशः। आहारः फल मूले तु प्रजानामभवत्किल॥२००॥

तो मैं प्रजा के लिये तुमको मारूँगा।।१८९।। तुमको मैं बाण से शीघ्र ही मारकर मेरे शासन के प्रति प्रसन्न प्रजा को अपने शरीर को पृथ्वी बनाकर अर्थात् अपने शरीर को फैलाकर उस पर स्वयं प्रजा को धारण करूँगा।।१९०।। अतः हे धर्म को धारण करने वालों में श्रेष्ठ! भू देवि! मेरे वचन को ध्यान में रखकर तुम प्रजा को सम्यक् प्रकार से आजीविका प्रदान करो तथा तुम इस कार्य में नित्य समर्थ हो, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१९१।। अतः हे पृथ्वी! तुम मुझे अपना दुहने वाला बना लो, तो मैं यह तुम्हारे वध के लिये जो मेरा बाण है, उसे मैं समेट लूँ।।१९२।। उसके बाद वह पृथ्वी राजा पृथु से यह कहती हुई बोली कि हे राजन्! मैं यह सब करूँगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१९३।। मेरा वत्स (वछड़ा) तो तुम उसे देखो जो मेरे इस दूध चारों तरफ फैलाये, इसलिये हे धर्मधारण करने वालों में श्रेष्ठ राजन्! पहले तुम मुझे समतल करो, ताकि मेरा फैला हुआ दूध सब जगह हो जाये।।१९४।।

इसके बाद सूतजी बोले—उस वेन पुत्र राजा पृथु ने धनुष की कोटि से समस्त छोटे-छोटे शिलाखण्डों को उखाड़कर अलग अलग एक जगह कर दिया, जिससे पर्वत बढ़ गये। अर्थात् जो ऊबड़-खाबड़ जमीन थी, उसके सब शिलाखण्डों को एक-एक जगह कर दिया, जिससे पर्वत ऊँचे हो गये और जमीन समतल हो गयी, यही भाव है।।१९५।। बीते हुए मन्वन्तरों में वह भूमि विषम (ऊँची-नीची) थी, उसका स्तर स्वभाव से ही कही समतल और कहीं विषमतल वाला था। अर्थात् वह ऊबड़-खाबड़ थी।।१९६।। पूर्व सृष्टिकाल में उस ऊँची-नीची भूमि पर पुरों और ग्रामों का प्रकृष्ट विभाग नहीं था।।१९७।। उस समय इस पृथ्वी पर न तो अन्न ही था, न पशुपालन था और नहीं कृषि और व्यापार ही था। यह ऐसी स्थिति पहले चाक्षुष मन्वन्तर के काल में निश्चय ही थी।।१९८।। वैवस्वत मन्वन्तर में यह सब कुछ सम्भव था कि जहाँ जहाँ कहीं किसी स्थान पर भूमि की समतलता थी, वहाँ वहाँ पर प्रजायें सब ओर निवास करती थीं, उस समय फल और मूल प्रजाओं का आहार था।।१९९-२००।।

कृच्छ्रेणैव तदा तासामित्येवमनुशुश्रुम। वैन्यात्प्रभृति लोकेऽस्मिन्सर्वस्यैतस्य संभवः॥२०१॥
स कल्पयित्वा वत्सं तु चाक्षुषं मनुमीश्वरः। पृथुर्दुदोह सस्यानि स्वे तले पृथिवीं ततः॥२०२॥
तेनान्नेन ततस्ता वै वर्त्तयन्ति शुभाः प्रजाः। ऋषिभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा॥२०३॥
वत्सः सोमस्त्वभूत्तेषां दोग्धा चापि बृहस्पतिः। छन्दांसि पात्रमासीत्तु गायत्र्यादीनि सर्वशः॥२०४॥
क्षीरमासीत्तदा तेषां तपो ब्रह्म च शाश्वतम्। पुनस्ततोदेवगणैः पुरन्दरपुरोगमैः॥२०५॥
सौवर्णं पात्रमादाय दुग्धा संश्रूयते मही। वत्सस्तु मघवानासी द्दोग्धा च सविता विभुः॥२०६॥
क्षीरमूर्जं च मधु च वर्त्तन्ते तेन देवताः। पितृभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा॥२०७॥
राजतं पात्रमादाय स्वधामाशु वितृप्तये। वैवस्वतो यमस्त्वासीत्तेषां वत्सः प्रतापवान्॥२०८॥
अन्तकश्चाभवद्दोग्धा पितॄणां बलवान्प्रभुः। असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा॥२०९॥
आयसं पात्रमादाय किल मायाश्च सर्वशः। विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वत्सस्तेषां महायशाः॥२१०॥
ऋत्विग्द्विमूर्द्धा दैत्यानां दोग्धाऽभूद्दितिनन्दनः। पायसाते च मायाभिः सर्वे मायाविनोऽसुराः॥२११॥
वर्त्तयन्ति महावीर्यास्तदेषां परमं बलम्। नागैस्तु श्रूयते दुग्धा वत्सं कृत्वा तु तक्षकम्॥२१२॥
अलाबूपात्रमादाय विषं क्षीरं तदा मही। तेषां वै वासुकिर्दोग्धा काद्रवेयः प्रतापवान्॥२१३॥
नागानां वै द्विजश्रेष्ठ सर्पाणां चैव सर्वशः। तेनैव वर्त्तयंत्युग्रा महाकाया विषोल्बणाः॥२१४॥
तदाहारास्तदाचारास्त द्वीर्यास्तदुपाश्रयाः। आम्रपात्रे पुनर्दुग्धा त्वन्तर्धानप्रियं मही॥२१५॥

उस समय प्रजाओं का जीवनयापन बड़ी कठिनाई से होता था। ऐसा हमने सुना है। वेन पुत्र राजा पृथु से लेकर ही इस संसार में यह सब सम्भव हुआ है।।२०१।। उस सर्वसमर्थ राजा पृथु ने चाक्षुष मनु की वत्स के रूप में कल्पना करके पृथ्वी तल पर अन्नों को दुहा।।२०२।। उसके बाद उस अन्न से वे सब शुभ प्रजायें जीवनयापन करती थीं, सुना जाता है कि उसके बाद ऋषियों द्वारा वसुन्धरा दुबारा दुही गयी थी।।२०३।। उस समय चन्द्रमा बछड़ा थे और बृहस्पति दुहने वाले थे तथा सब गायत्री आदि छन्द पात्र थे। उस समय क्षीर ऋषियों का शास्वत ब्रह्म को पाने वाला तप था।।२०४½।। उसके बाद फिर इन्द्र आदि देवताओं ने सोने का पात्र लेकर पृथ्वी का दोहन किया था, ऐसा सुना जाता है। उस समय इन्द्र बछड़ा थे और दुहने वाले सर्वसमर्थ विभु सूर्य थे। उस दोहन से देवताओं ने क्षीर ऊर्जा और मधु को प्राप्त किया।।२०४½-२०६½।। और भी सुना जाता है कि वसुन्धरा को पितरों ने दुहा था, उन्होंने उस पृथ्वी को चाँदी के पात्र को लेकर पितरों की विशेष तृप्ति के लिये स्वधा को दुहा था, जिसमें प्रतापी वैवस्वत यम उसके बछड़ा थे और दुहने वाले पितरों के बलवान् प्रभु अन्तक (यमराज) हुए।।२०६½-२०८½।।

और प्राचीनकाल मे असुरों के द्वारा लोहे के पात्र में सर्वत्र माया की स्थिति में भी पृथ्वी को दुहा गया, ऐसा सुना जाता है। उस समय उनके बीच बछड़ा प्रह्लाद पुत्र महायशस्वी विरोचन थे तथा दुहने वाले दैत्यों के राजा दितिनन्दन ऋत्विक् विमूर्धा थे। वे सब मायावी महापराक्रमी असुर माया से बनी खीर से बहुत अधिक बलपूर्वक व्यवहार करते हैं, जीवन जीते हैं।।२०८½-२११½।। सुना जाता है कि नागों ने तक्षक को वत्स (बछड़ा) बनाकर अलाबू के पात्र को लेकर, उसमें क्षीर रूप विष को पृथ्वी से दुहा था। उनमें पृथ्वी को दुहने वाले कद्रुसुत प्रतापी वासुकि थे। हे द्विजश्रेष्ठ! उसी कारण से अर्थात् उस विष के ही कारण नागों और सर्पों के विशाल शरीर विष से भरे हुए उग्र और भयंकर होते हैं, वे उस विष का ही आहार करते हैं, विष का ही आचरण करते हैं। उसी का पराक्रम उनमें होता है और उसी पर आश्रित रहते

वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तथा। दोग्धा रजतनाभस्तु पिता मणिधरस्य यः॥२१६॥
यक्षात्मजो महातेजा वशी च सुमहायशाः। तेन ते वर्त्तयन्तीति परमार्थतया च ह॥२१७॥
राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा। ब्रह्मा ब्राह्मयास्तु वै दोग्धा तेषामासीत्कुबेरकः॥२१८॥
वत्सः सुमाली बलवान् क्षीरं रुधिरमेव च। कपालपात्रे निर्दुग्धा ह्यन्तर्द्धानं च राक्षसैः॥२१९॥
तेन क्षीरेण रक्षांसि वर्त्तयन्तीह सर्वशः। पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः॥२२०॥
वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन्गन्धामहीं तदा। तेषां वसुरुचिस्त्वासीद्दोग्धा पुत्रो मुनेः शुभः॥२२१॥
गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभः। शैलैश्च श्रूयते दुग्धा पुनर्देवी वसुन्धरा॥२२२॥
तदौषधीर्मूर्तिमती रत्नानि विविधान च। वत्सस्तु हिमवानासीद्दोग्धा मेरुर्महागिरिः॥२२३॥
पात्रं तु शैलमेवासीत्तेन शैलाः प्रतिष्ठिताः। श्रूयते वृक्षवीरुद्भिः पुनर्दुग्धा वसुन्धरा॥२२४॥
पालाशं पात्रमादाय छिन्नदग्धप्ररोहणम्। कामधुक् पुष्पितः शालः प्लक्षो वत्सो यशस्विनाम्॥२२५॥
सर्वकामदुधा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी। सैव धात्री विधात्री च धारणी च वसुन्धरा॥२२६॥
दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुनेति हि नः श्रुतम्। चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च॥२२७॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषङ्ग पादे शेषमन्वन्तराख्यानं पृथिवीदोहनं च नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३६॥

है॥२११½-२१४½॥ फिर पुण्यात्मा पुरुष यक्षों ने विश्रवा पुत्र वैश्रवण को बछड़ा बनाकर आम्रपात्र में अन्तर्धान प्रिय पृथ्वी का दोहन किया। उसके दुहने वाले मणिधर के पिता रजतनाभ थे॥ यक्ष के पुत्र महातेजस्वी इन्द्रियों को वश मे करने वाले और अच्छे महायशस्वी उस क्षीर से परमार्थतया जीविका चलाते थे॥२१४½-२१७॥ राक्षसों और पिशाचों ने फिर पृथ्वी का दोहन किया, जिसमें दुहने वाले ब्रह्ममानी ब्रह्मा कुबेरक थे॥२१८॥ बछड़ा सुमाली और बलवान् क्षीर रुधिर था। राक्षसों ने कपाल पात्र में छिपकर रक्त को दुहा था, उस क्षीर (रक्त) से राक्षस लोग अपनी जीविका चलाते थे॥२१९-२१९½॥ फिर कमल के पात्र में गन्धर्वों और अप्सराओं के समूहों ने चित्ररथ को बछड़ा बनाकर पृथ्वी से पवित्रगन्ध को उस समय दुहा। उस समय मुनि का शुभ पुत्र वसुरुचि दोग्धा (दुहने वाला) था॥ गन्धर्वराज अतिबलवान् सूर्य के समान महान् आत्मा थे॥२१९½-२२१½॥ सुना जाता है कि फिर पर्वतों के द्वारा देवी वसुन्धरा दुही गयी। उस समय मूर्तिमती औषधियां और अनेकों प्रकार के रत्न क्षीर रूप से दुहे गये। उस समय बछड़ा हिमालय पर्वत और दुहने वाले महान् सुमेरू पर्वत थे। उस समय पात्र पर्वत थे, उसी कारण से पर्वत प्रतिष्ठित हुए॥२२१½-२२३½॥ सुना जाता है कि वृक्ष और लाताओं द्वारा यह वसुन्धरा पलास के पात्र में फिर दुही गयी, जब वृक्ष के अंकुर तोड़कर दूध दुहा गया, जिसमें इच्छा से दुहने वाला पुष्पित शाल वृक्ष हुआ और बछड़ा प्लक्ष वृक्ष हुआ॥२२३½-२२५॥ अतः सभी पञ्चभूतों वाली यह पृथ्वी समस्त कामनाओं को देने वाली, वही संसार को धारण करने वाली संसार के सब कार्यों का विधान करने वाली, समस्त प्राणियों को धारण करने वाली है। समस्त वसुओं सम्पत्तियों को धारण करने वाली है। ऐसी इस पृथ्वी को संसार की भलाई के लिये महाराजा पृथु ने दुहा, ऐसा हमने सुना है। अतः यह पृथ्वी जड़ चेतन समस्त संसार को स्थित करने वाली और पैदा करने वाली है॥२२५-२२७॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ३६वां अध्याय शेष मन्वन्तर वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

पृथुवंशानुकीर्तनं चाक्षुषसर्गवर्णनं नाम

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथ श्री बह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागेऽद्वितीयेऽनुषङ्गपादे मन्वन्तरवर्णनं नाम
सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सूत उवाच

आसीदिह समुद्रान्ता वसुधेति यथा श्रुतम्। वसु धत्ते यतस्तस्माद्वसुधा सेति गीयते॥१॥
मधुकैटभयोः पूर्वं मेदसा संपरिप्लुता। तेनेयं मेदिनीत्युक्ता निरुक्त्या ब्रह्मवादिभिः॥२॥
ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य धीमतः। दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवी पठ्यते ततः॥३॥
पृथुना प्रविभागश्च धरायाः साधितः पुरा। तस्याकरवती राज्ञः पत्तनाकरमालिनी॥४॥
चातुर्वर्ण्यसमाकीर्णा रक्षितातेन धीमता। एवंप्रभावो राजाऽसीद्वैन्यः सद्विजसत्तमाः॥५॥
नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामेण सर्वशः। ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥६॥
पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः। पार्थिवैश्च महाभागैः प्रार्थयद्भिर्महद्यशः॥७॥
आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्। योधैरपि च संग्रामे प्राप्तुकामैर्जयं युधि॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय-३७

पृथुवंशानुकीर्तन चाक्षुषसर्ग वर्णन

सूत जी बोले—कि इस संसार में समुद्र के अन्त तक वसुधा फैली हुई है, ऐसा सुना गया है। वसुओं (धन दौलतों) को धारण करती है। इसलिये इस पृथ्वी को वसुधा कहा जाता है।।१।। अति प्राचीनकाल में इस पृथ्वी को मधु और कैटभ नामक दो राक्षसों की चर्बी से पूरी तरह ढका रहने के कारण ब्रह्मवादियों ने निरुक्ति के द्वारा मेदिनी कहा था। अर्थात् 'मेद' शब्द में 'णिनि' प्रत्यय से स्त्रीलिङ्ग ङीप् प्रत्यय में मेदिनी शब्द बना है, जिसका अर्थ है—'मेद' (चर्बी तथा मेदिनी चर्बी वाली) अतः जो मधुकैटभ के मांस से ढकी हुई है, वह मेदिनी हुई।।२।।

वेनपुत्र राजा पृथु की पुत्री होने के कारण उसे पृथ्वी पढ़ा जाता है।।३।। पूर्वकाल में विद्वान् महाराजा पृथु ने उस पृथ्वी के विभाग किये और उसको समतल बनाया, अन्न और रत्नों की खानों से युक्त बनाया तथा बड़े-बड़े नगरों वाली बनाया। चारों वर्णों की प्रजाओं से भरपूर बनाया और फिर इस पृथ्वी की रक्षा की। इस प्रकार हे द्विश्रेष्ठ ब्राह्मणों! यह वेनपुत्र राजा पृथु का ही प्रभाव था।। इस पृथ्वी का सुधार करने के कारण वे महाराजा पृथु प्राणिसमूह द्वारा सब प्रकार नमन करने योग्य और पूजा करने योग्य हैं।।४-५½।। ब्रह्मा के पुत्र सनातन पुरुष पृथु ही ब्राह्मणों तथा वेद वेदाङ्ग में पारङ्गत महाभाग विद्वानों द्वारा पृथु ही नमस्कार करने योग्य हैं।।५½-६½।। युद्ध में विजय की इच्छा रखने वाले योद्धाओं को वेनपुत्र पृथ्वी के आदि राजा पृथु को नमस्कार करना चाहिये। युद्धों के आदि कर्ता पृथु

आदिकर्त्ता रणानां वै नमस्यः पृथुरेव हि। यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम्॥९॥
स घोररूपात्संग्रामात्क्षेमी तरति कीर्त्तिमान्। वैश्यैरपि च राजर्षिर्वैश्यवृत्तिमिहास्थितैः॥१०॥
पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदानान्महायशाः। एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च॥११॥
पात्राणि च मयोक्तानि सर्वाण्येव यथाक्रमम्।
ब्रह्मणा प्रथमं दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना॥१२॥
वायुं कृत्वा तथा वत्सं बीजानि वसुधातले। ततः स्वायंभुवे पूर्वं तदा मन्वन्तरे पुनः॥१३॥
वत्सं स्वायम्भुवं कृत्वा सर्वसस्यानि चैव हि। ततः स्वारोचिषे वापि प्राप्ते मन्वन्तरेऽधुना॥१४॥
वत्सं स्वारोचिषं कृत्वा दुग्धा सस्यानि मेदिनी। उत्तमेन तु तेनापि दुग्धा देवानुजेन तु॥१५॥
मनुं कृत्वोत्तमं वत्सं सर्वसस्यानि धीमता। पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी तामसस्यान्तरे मनोः॥१६॥
दुग्धेयं तामसं वत्सं कृत्वा वै बलबन्धुना। चारिष्टवस्य वै षष्ठे सम्प्राप्त चान्तरे मनोः॥१७॥
दुग्धा मही पुराणेन वत्सं चारिष्टवं प्रति। चाक्षुषे चापि सम्प्राप्ते तदा मन्वन्तरे पुनः॥१८॥
दुग्धा मही पुराणेन वत्सं कृत्वा तु चाक्षुषम्। चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः॥१९॥
वैन्येनेयं पुरा दुग्धा यथा ते कथितं मया। एतैर्दुग्धा पुरा पृथ्वी व्यतीतेष्वन्तरेषु वै॥२०॥
देवादिभिर्मनुष्यैश्च ततो भूतादिभिश्च ह। एवं सर्वेषु विज्ञेया अतीतानागतेष्विह॥२१॥
देवा मन्वन्तरे स्वस्थाः पृथोस्तु श्रृणुत प्रजाः।
पृथोस्तु पुत्रौ विक्रान्तौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपावनौ॥२२॥

ही नमस्करणीय हैं। जो योद्धा महाराजा पृथु को स्मरण कर उनकी कीर्ति का गान कर युद्ध में जाता है, वह कीर्तिमान् घोर संग्राम से कुशलतापूर्वक लौटकर आता है। वैश्यों को अपने व्यापार को स्थापित करते समय अच्छे लाभ की आशा के लिये महायशस्वी महाराजा पृथु को ही नमस्कार करना चाहिये, ताकि वे उसे अच्छी जीविका प्रदान करें।।९½-१०½।। ये सब जो पूर्व अध्याय में वत्सविशेष और पृथ्वी को दुहने वाले तथा पात्र मैंने क्रमानुसार बताये हैं।।१०½-११½।। अतः सबसे पहले वायु को बछड़ा बनाकर महात्मा ब्रह्मा ने इस पृथ्वी तल पर बीजों को दुहा था।।११½-१२½।। उसके बाद तब स्वायम्भुव मनु के मन्वन्तर में पुनः स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर सब अन्नों को ब्रह्मा जी ने दुहा था। फिर उसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तर में स्वारोचिष मनु को वत्स बनाकर अन्नों को दुहा था।।१२½-१३½।। उसके बाद उत्तम मन्वन्तर में विद्वान् ब्रह्मा ने उत्तम मनु को बछड़ा बनाकर सब अन्नों को दुहा था।।१४½-१५½।। उसके बाद फिर पाँचवे तामस मन्वन्तर में तामस मनु को बछड़ा बनाकर ब्रह्मा ने इस पृथ्वी से अन्नों को दुहा था।।१५½-१६½।। फिर छठे चारिष्ट मन्वन्तर में पुराणपुरुष ब्रह्मा ने चारिष्टव को बछड़ा बनाकर इस पृथ्वी को दुहा।।१६½-१७½।। फिर चाक्षुष मन्वन्तर के प्राप्त होने पर उस काल में चाक्षुष मनु को बछड़ा बनाकर पुराणपुरुष ब्रह्मा ने इस पृथ्वी को दुहा।।१७½-१८½।। फिर यह पृथ्वी वैवस्वत मन्वन्तर में वैवस्वत मनु को बछड़ा बनाकर ब्रह्म द्वारा दुही गयी। इसी प्रकार प्राचीनकाल में वेनपुत्रा पृथु द्वारा दुही गयी थी। जैसा मैंने कहा कि इस प्रकार यह पृथ्वी बीते हुए मन्वन्तरों में दुही गयी थी।।१८½-२०।। अतः बीते हुए और आगे आने वाले कालों में इस संसार में इसी प्रकार देवादियों मनुष्यों नदी पर्वत सर्प नागादि अन्यों द्वारा इस पृथ्वी का दोहन जानना चाहिये।।२१।। सब मन्वन्तरों में देवता लोग स्वस्थ थे। आप लोग यह सुन चुके अब आप लोग महाराज पृथु की प्रजा को सुनिये। उन

शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्द्धानाव्द्यजायत। हविर्धानात्षडाग्नेयी धिषणाजनयत्सुतान्॥२३॥
प्राचीनबर्हिषं शुक्लं गयं कृष्णं प्रजाजिनौ। प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत्प्रजापतिः॥२४॥
बलश्रुततपोवीर्यैः पृथिव्यामेकराडसौ। प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य तस्मात्प्राचीनबर्ह्यसौ॥२५॥
समुद्रतनयायां तु कृतदारः स वै प्रभुः। महतस्तपसःपारे सवर्णायां प्रजापतिः॥२६॥
सवर्णाऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः। सर्वान्प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगान्॥२७॥
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः। दशवर्ष सहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः॥२८॥
तपश्च तेषु पृथिवीं तप्यत्स्वथ महीरुहाः। अरक्ष्यमाणामावब्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः॥२९॥
प्रत्याहृते तदा तस्मिञ्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। नाशकान्मारुतो वातुं वृत्तं खमभवद्द्रुमैः॥३०॥
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितं प्रजाः। तदुपश्रुत्य तापसा सर्वे युक्ताः प्रचेतसः॥३१॥
मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः। उन्मूलानथ वृक्षांस्तान्कृत्वा वायुरशोषत्॥३२॥
तानग्निरदहद्घोर एवमासीद्द्रुमक्षयः। द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिष्टेषु शाखिषु॥३३॥
उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोमः प्रचेतसः। दृष्ट्वा प्रयोजनं सत्यं लोकसंतानकारणात्॥३४॥

कोपं त्यजत राजानः सर्वे प्राचीनबर्हिषः।
वृक्षाः क्षित्यां जनिष्यन्ति शाम्यतामग्निमारुतौ॥३५॥

महाराजा पृथु के अन्तर्द्धि और पावन नामक दो पुत्र हुए।।२२।। फिर अन्तर्द्धि (अन्तर्धान) से शिखण्डिनी ने हविर्धान नामक पुत्र को जन्म दिया। हविर्धान से षडाग्नेयी धिषणा ने प्राचीन बर्हिष, शुक्ल, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन नामक छः पुत्रों को उत्पन्न किया।।२३-२३½।। भगवान् प्राचीन बर्हिष एक महान् प्रजापति थे, वह अपने बल, शास्त्रज्ञान, तप और पराक्रमों से पृथ्वी पर एकमात्र राजा था। उस समय प्राचीन बर्हिष एक महान् प्रजापति थे। वह अपने बल, शास्त्रज्ञान, तप और पराक्रमों से पृथ्वी पर एकमात्र राजा था। उस प्राचीन बर्हिष के राज्यकाल के यज्ञादि कार्यों में उसके कुशों के अग्रभाग पुराने पड़ जाते थे। इसीलिए प्रचीन बर्हिष नाम से वह प्रसिद्ध हुआ।।२३½-२५।। उस सर्वप्रथम राजा प्राचीन बर्हिष ने समुद्र पुत्री को अपनी पत्नी बनाया और फिर महा तपस्या पार कर उस समुद्रपुत्री, सवर्णा में दश पुत्रों को जन्म दिया। वे सबकेसब प्रचेतस नाम वाले धनुर्वेद में पारङ्गत थे।।२६-२७।।

एक ही प्रकार के धर्म का आचरण करने वाले उन प्रचेताओं ने दश हजार वर्षों तक समुद्र के जल में सोकर घोर तप किया।।२८।। उनके तप करने के समय विना रखवाली और कॉंट-छॉंट के वृक्ष सब पृथ्वी पर ऊपर बढ़कर आकाश तक छा गये, जिससे प्रजा को हानि होने लगी।।२९।। इस प्रकार उस चाक्षुष मन्वन्तर में प्रजाओं के ऊपर घोर विपत्ति आ गयी। वायुदेव विनाशकारी हवाओं को चलाने लगे। सारा आकाश वृक्षों से ढक गया।।३०।। ऐसी स्थिति दश हजार वर्षों तक रही, प्रजायें कोई चेष्टा न कर सकीं। तप द्वारा प्रजाओं की ऐसी स्थिति को सुनकर सभी प्रचेतसों ने एक होकर क्रोधित हो, अपने मुखों से एक ही साथ वायु और अग्नि को छोड़ा।। तब उस वायु ने वृक्षों को उखाड़ सुखा दिया।।३१-३२।। उन वृक्षों को उन प्रचेताओं के मुख से निःसृत घोर अग्नि ने नष्ट कर दिया। जब उन वृक्षों में कुछ बचे हुए वृक्षों की शाखाओं के विषय में सोम ने जाना, तब राजा सोम ने प्रचेताओं से जाकर कहा कि हे वर्हिषं के पुत्र प्रचेतागण! आप लोग लोगों के उत्पन्न न होने वाली संततियों के नित्य आने वाले सभी प्रयोजनों को देखकर क्रोध को छोड़ दीजिये; क्योंकि ये वृक्ष ही पैदा होने वाली प्रजा के प्रयोजन सिद्ध करते हैं। इन्हीं से प्रजा

रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनीः। भविष्यज्जानता ह्येषा धृता गर्भेण वै मया॥३६॥
मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षैरेव विनिर्मिता। भार्या भवतु वो ह्येषा सोमगर्भा विवर्द्धिता॥३७॥
युष्माकं तेजसाऽर्द्धेन मम चार्धेन तेजसा। अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान्दक्षो नाम प्रजापतिः॥३८॥
स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै। अग्निनाऽग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति॥३९॥
ततः सोमस्य वचनाज्जगृहस्ते प्रचेतसः। संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम्॥४०॥
मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः। दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः॥४१॥
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन वीर्यवान्। असृजन्मनसा त्वादौ प्रजा दक्षोऽथ मैथुनात्॥४२॥
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः। विसृज्य मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः॥४३॥
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयो दश। कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिंदवे॥४४॥
एभ्यो दत्त्वा ततोऽन्या वै चतस्रोऽरिष्टनेमिने। द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवां गिरसे तथा॥४५॥
कन्यामेकां कृशाश्वाय तेभ्योऽपत्यं बभूव ह। अन्तरं चाक्षुषस्याथ मनोः षष्ठं तु गीयते॥४६॥
मनोर्वैवस्व तस्यापि सप्तमस्य प्रजापतेः। वसुदेवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः॥४७॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः। ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्रजा मैथुनसंभवाः॥
सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वासां सृष्टिरुच्यते॥४८॥

जीवन प्राप्त करती है। इनका ही उनके जीवन मे सर्वाधिक उपयोग है। ये नहीं रहेंगे तो प्रजा (लोग) नहीं रहेंगे अतः आप तथा अग्नि और वायु को शान्त कर दीजिये। जिससे ये वृक्ष पृथ्वी पर पुनः उत्पन्न होंगे।।३३-३५।। यह रत्नभूत कन्या वृक्षों की श्रेष्ठ पुत्री है। भविष्यगत घटनाओं को जानकर मैंने अपनी किरणों से इसे बढ़ाया है, इसका नाम मारिषा है। इसको वृक्षों ने ही उत्पन्न किया है। सोम (मेरे) गर्भ में बढ़ी हुई यह कन्या तुम्हारी पत्नी होगी।।३६-३७।। आधे तुम्हारे तेज से और आधे मेरे तेज से उसके गर्भ से विद्वान् दक्ष प्रजापति का जन्म होगा।।३८।। सो वह अग्नि द्वारा अग्नि के समान महातेजस्वी होकर इस आपके तेज से जली वसुधा का तथा सारी पृथ्वी का पुनः पालन-पोषण करेगा।।३९।। तब सोमदेव (चन्द्रमा) के वचन को सुनकर प्रचेताओं ने उस को ग्रहण कर लिया तथा क्रोध को समाप्त कर वृक्षों से निकाली गयी मारिषा को धर्म द्वारा पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया।।४०।। उसके बाद उन सब प्रचेताओं ने मारिषा में मन से गर्भ को धारण कराया तथा उस मारिषा में दश प्रचेताओं के अंश से महातेजस्वी पराक्रमी प्रजापति दक्ष का जन्म हुआ।।४१-४१½।।

आदिकाल में तो प्रजापति दक्ष को मन के संकल्प से पैदा किया गया था; मैथुन से नहीं किया गया था। इसके बाद दक्ष प्रजापति ने मैथुन से नहीं मन से पहले जड़ पदार्थों को, फिर चेतन प्राणियों के दो पैर वाले (मनुष्यो) को चार पैर वाले (पशुओं) को मन के सङ्कल्प मे पैदा करके बाद में स्त्रियों को उत्पन्न किया।।४१½-४३।। उन्होंने दश स्त्रियां धर्म को दी तथा तेरह स्त्रियां कश्यप को दीं तथा समय विभाजन से नियुक्त सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रमा को दिया।।४४।। इन सबको देकर चार कन्याओं को अरिष्टनेमि को, दो बाहुपुत्र को और दो अंगिरा को प्रदान किया।।४५।। एक कन्या को कृशाश्व के लिये दिया। उसके बाद उनकी सन्तानें पैदा हुईं।। इसी प्रकार धीरे धीरे छठवां चाक्षुष मन्वन्तर व्यतीत हो गया।।४६।। फिर सातवें वैवस्वत मनु प्रजापति के काल में उन दक्ष की कन्याओं में देवता, पक्षी, नाग, दैत्य, दानव, गन्धर्व अप्सरायें एवं अन्यान्य जातियां उत्पन्न हुईं।। इसके बाद इस पृथ्वी पर

ऋषिरुवाच

देवानां दानवानां च देवर्षीणां च ते शुभः। संभवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः॥४९॥
प्राणात्प्रजापतेर्जन्म दक्षस्य कथितं त्वया। कथं प्राचेतसत्वं च पुनर्लेभे महातपाः॥५०॥
एतं नः संशयं सूत व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि। दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः॥५१॥

सूत उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु सत्तमाः। ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जनाः॥५२॥
युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विजाः। पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति॥५३॥
ज्यैष्ठ्यकानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वमासीद्‌द्विजोत्तमाः। तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम्॥५४॥
इमां विसृष्टिं यो वेद चाक्षुषस्य चराचरम्। प्रजावानायुषस्तीर्णः स्वर्गलोकेमहीयते॥५५॥
एवं सर्गः समाख्यातश्चाक्षुषस्य समासतः। इत्येते षट् निसर्गाश्च क्रान्ता मन्वन्तरात्मकाः॥५६॥
स्वायम्भुवाद्याः संक्षेपाच्चाक्षुषान्ता यथाक्रमम्।
एते सर्गा यथा प्राज्ञैः प्रोक्ता ये द्विजसत्तमाः॥५७॥
वैवस्वतनिसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः। अन्यूनानतिरिक्तास्ते सर्वे सर्गा विवस्वतः॥५८॥
आरोग्यायुःप्रमाणेभ्यो धर्मतः कामतोऽर्थतः। एतानेव गुणानेति यः पठन्ननसूयकः॥५९॥

प्रजायें मैथुन के द्वारा पैदा होने लगीं।। उनके पूर्व होने वालों की सृष्टि, संकल्प, दर्शन एवं स्पर्श से होती कही जाती है।।४७-४८।।

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी! आपने देवताओं, दानवों और देवर्षियों की उत्पति महात्मा दक्ष की उत्पति से पूर्व बतायी है।।४९।। तथा प्रजापति दक्ष का जन्म अपने प्राण से बताया है। फिर उन प्रजापति दक्ष को प्रचेताओं के पुत्र कहा गया।।५०।। इस बात का हमें सन्देह है। इस सन्देह को तुम दूर कर सकते हो। हमें बताओ तथा यह भी बताओ कि वह दक्ष प्रजापति चन्द्रमा का नाती था, फिर कैसे वह चन्द्रमा का श्वसुर हो गया।।५१।।

इसके बाद सूत जी बोले—हे सज्जन ऋषियो! संसार के प्राणियों में उत्पत्ति और विनाश नित्य होता रहता है। अतः जो ऋषि है तथा विद्यावान् मनुष्य हैं, वे इसमें मोह नहीं करते हैं। प्रत्येक युग में ये दक्ष आदि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पैदा होते रहते हैं। पुनः पुनः उनका नाश होता है। अतः इसमें विद्वान् पुरुष मोह नहीं करते।।५२-५३।। पूर्वकाल में इनमें कुछ ज्येष्ठ थे, कुछ कनिष्ठ थे। अतः सब प्रकार के थे। उनमें तपस्या ही उनको महान् बनाने का मुख्य कारण है।।५४।। इस प्रकार इस चाक्षुष मन्वन्तर की जड़-चेतन पदार्थों की विशेष सृष्टि को जो जानता है, वह स्वर्गलोक में महान् पद को प्राप्त करता है।।५५।। इस प्रकार हमने चाक्षुष मनु का सर्ग संक्षेप से बताया है। इस प्रकार ये छः निःसर्ग मन्वन्तरों के सम्बन्धित हैं। स्वायम्भुव मनु के सर्ग से लेकर चाक्षुष मनु के मन्वन्तर तक का वर्णन संक्षेप से क्रमानुसार किया जा चुका है। ये इतने सर्ग जिस प्रकार प्रकृष्ट ज्ञान वाले विद्वानों ने बताये हैं, वे वर्णन कर दिये गये।।५६-५७।। इन सभी मन्वन्तरों का काल विस्तार वैवस्वत मनु के निसर्ग के काल विस्तार के समान जान लेना चाहिये। विस्तार में वे सब सर्ग कम नहीं थे।। आरोग्य आयु प्रमाणों से धर्म से, काम से, अर्थ से, वैवस्वत मनु के सब कार्य अन्यों के समान ही हैं।।५८-५८½।। इन सबके गुणों को जो व्यक्ति असूया भाव

वैवस्वतस्य वक्ष्यामि साम्प्रतस्य महात्मनः। समासव्यासतः सर्गं ब्रुवतो मे निबोधत॥६०॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषङ्गपादे चाक्षुषसर्गवर्णनं नाम सप्तत्रिंशतमोऽध्यायः॥३७॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे पूर्वभागे द्वितीय अनुषंग पादे

वैवस्वतमन्वन्तर वर्णनं नाम

अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सूत उवाच

सप्तमे त्वथ पर्याये मनोर्वैवस्वतस्य ह। मारीचात्कश्यपाद्देवा जज्ञिरे परमर्षयः॥१॥

आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणः। भृगवोऽगिरसश्चैव तेऽष्टौ देवगणाः स्मृताः॥२॥

आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः।
साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रास्त्रयो गणाः॥३॥

भृगोस्तु भृगवो देवा ह्यंगिरसोंऽगिरःसुताः। वैवस्वतेंऽतरे ह्यस्मिन्नित्ये ते छन्दजा मताः॥४॥

को छोड़कर पढ़ता है, वह आरोग्य आयु प्रमाणों के साथ धर्म से काम से अर्थ से इनके गुणों को प्राप्त करता है। सूत जी बोले कि अब आगे मैं इस मन्वन्तर के प्रवर्तक महात्मा वैवस्वत के सर्ग को संक्षेप से वर्णन करूँगा। अतः आप लोग वर्णन करते हुए मुझसे सुनिये।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ३७वां अध्याय पृथुवंशानुकीर्तन चाक्षुषसर्ग वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद

अध्याय–३८

वैवस्वत मन्वन्तर मन्वन्तर वर्णन

सूत जी बोले— इसके बाद वैवस्वत मनु के सातवें मन्वन्तर में मरीचि पुत्र कश्यप से देवता लोग और ऋषि पैदा हुए।।१।। आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, विश्वदेवगुण, मरुद्गण, भृगुपुत्र एवं अङ्गिरा पुत्र ये देवगण स्मरण किये गये हैं।।२।। इनमें आदित्यगण, मरुद्गण और रुद्रगण कश्यप के पुत्र जानने चाहिये। साध्यगण, वसुगण विश्वेदवगण ये तीन गण धर्म के पुत्र हैं।।३।। भृगु के तो भृगुगण देवता हैं और अङ्गिरा के अङ्गिरस देवता हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के ये देवगण छन्दों से उत्पन्न कहे गये हैं।।४।।

एतेऽपि च गमिष्यन्ति महान्तं कालपर्ययात्। एवं सर्गस्तु मारीचो विज्ञेयः साम्प्रतः शुभः॥५॥
तेजस्वी साम्प्रतस्तेषामिन्द्रो नाम्ना महाबलः। अतीतानागता ये च वर्त्तन्ते साम्प्रतं च ये॥६॥
सर्वे मन्वन्तरेंद्रास्ते विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः। भूतभव्यभवन्नाथाः सहस्राक्षाः पुरंदराः॥७॥
मघवंतश्च ते सर्वे शृङ्गिणो वज्रपाणयः। सर्वैः क्रतुशतेनेष्टं पृथक्छतगुणेन तु॥८॥
त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च। अभिभूयावतिष्ठन्ति धर्माद्यैः कारणैरपि॥९॥
तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः। भूतभव्यभवन्नाथा यथा ते प्रभविष्णवः॥१०॥
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत। भूतभव्यभवद्ध्येतत्स्मृतं लोकत्रयं द्विजैः॥११॥

भूर्लोकोऽयं स्मृतो भूतमन्तरिक्षं भवत्स्मृतम्।
भव्यं स्मृतं दिवं ह्येतत्तेषां वक्ष्यामि साधनम्॥१२॥

ध्यायता लोकनामानि ब्रह्मणाऽग्रे विभाषितम्। भूरिति व्याहृतं पूर्वं भूर्लोकोऽयमभूत्तदा॥१३॥
भू सत्तायां स्मृतो धातु स्तथाऽसौ लोकदर्शने। भूतत्वाद्दर्शनाच्चैव भूर्लोकोऽयमभूत्ततः॥१४॥

अतोऽयं प्रथमो लोको भूतत्वाद्भूर्द्विजैः स्मृतः।
भूतेऽस्मिन्भवदित्युक्तं द्वितीयं ब्रह्मणा पुनः॥१५॥

भवदित्यत्पद्यमाने काले शब्दोऽयमुच्यते। भवनात्तु भुवर्ल्लोको निरुक्त्या हि निरुच्यते॥१६॥

ये सभी देवगण महाप्रलय काल तक चलेंगे। यह जो इस समय सर्ग चल रहा है, वह मरीचि पुत्र कश्यप का सर्ग जानना चाहिये।।५।। इस मन्वन्तर का इन्द्र महाबली इन्द्र है। अर्थात् इस मन्वन्तर का राजा महावली इन्द्र है। भूतकाल भविष्यकाल और इस समय वर्तमान काल के जितने भी मन्वन्तरों के इन्द्र हुये हैं, होंगे और हैं, वे सब समान लक्षणों वाले जानने चाहिये। भूत, भविष्य और वर्तमान के सभी मन्वन्तरों के स्वामी हजार आँखों वाले इन्द्र ही रहे हैं।।६-७।। वे मघवान् हैं, शृङ्गी हैं तथा वज्र धारण करने वाले हैं।। सभी सौ यज्ञों को पूरी करने वाले तथा अपने सैकड़ों निजी गुणों से सम्पन्न हैं।।८।। तीनों लोकों में जितने भी चलने वाले तथा स्थिर रहने वाले पदार्थ हैं, वे इन्द्र धर्म आदि कारणों से उन सबको अतिक्रमण करके स्थित हैं।।९।

तेज से, तप से, बुद्धि से, बल, शास्त्रज्ञान और पराक्रम से वे अन्य सभी से श्रेष्ठ होते हैं। भूत भविष्य और वर्तमान सभी समयों में वे सबसे अधिक प्रभावशाली और सबके स्वामी होते हैं।।१०।। अतः यह सब मैं तुमको बताऊँगा। आप लोग ध्यान दीजिये।। पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से सबसे पहले ब्रह्मा ने ध्यान मग्न होकर सबसे पहले भूः इस अक्षर का उच्चारण किया। उसी समय यह भू-लोक हुआ।।११-१३।। भू ''सत्तायाम्'' अर्थात् 'भू' धातु का अर्थ है—सत्ता अर्थात् विद्यमान रहना। अतः लोकदर्शन अर्थ मे ही उसकी सिद्धि होती है। अतः भू तत्त्व से दिखाई दिये जाने के कारण यह भूलोक, भूलोक हो गये। अर्थात् ये सब प्राणी दिखाई देते हैं, इसलिए यह भूलोक कहा गया है।।१४।।

अतः यह पहला लोक है—भूतत्त्व (दिखाई दिया जाने वाला) होने के कारण ब्राह्मणों द्वारा भूलोक कहा गया।।१४-१४½।। इस भूलोक के प्रकट हो जाने पर ब्रह्मा ने फिर 'भवत्' इस शब्द का उच्चारण किया। 'भवत्' का अर्थ है—वर्तमान काल में होता हुआ। इस प्रकार इस बोध के कारण यह शब्द 'भवत्' कहा जाता है। निरुक्त

अन्तरिक्षं भवत्तस्माद्द्वितीयो लोक उच्यते। उत्पन्ने तु तथा लोके द्वितीये ब्रह्मणा पुनः॥१७॥
भव्येति व्याहृतं पश्चाद्भव्यो लोकस्ततोऽभवत्। अनागते भव्य इति शब्द एष विभाव्यते॥१८॥

तस्माद्भव्योह्यसौ लोको नामतस्त्रिदिवं स्मृतम्।
भूरितीयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं भुवः स्मृतम्॥१९॥
दिवं स्मृतं तथा भव्यं त्रैलोक्यस्यैष निर्णयः।
त्रैलोक्ययुक्तैर्व्याहारैस्तिस्रो व्याहृतयोऽभवन्॥२०॥

नाथ इत्येष धातुर्वै धातुज्ञैः पालने स्मृतः। यस्माद्भूतस्य लोकस्य भव्यस्त भवतस्तथा॥२१॥
लोकत्रयस्य नाथास्ते तस्मादिंद्रा द्विजैः स्मृताः। प्रधानभूता देवेन्द्रा गुणभूतास्तथैव च॥२२॥
मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि। यक्षगन्धर्वरक्षांसि पिशाचोरगमानुषाः॥२३॥
महिमानः स्मृता ह्येते देवेन्द्राणां तु सर्वशः। देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजानः पितरो हि ते॥२४॥
रक्षंतीमाः प्रजा ह्येते धर्मेणेह सुरोत्तमाः। इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं देवेन्द्राणां समासतः॥२५॥

सप्तर्षीन्सम्प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं ये दिवं श्रिताः।
गाधिजः कौशिको धीमान् विश्वामित्रो महातपाः॥२६॥

भार्गवो जमदग्निश्च ह्यौर्वपुत्रः प्रतापवान्। बृहस्पतिसुतश्चापि भरद्वाजो महायशाः॥२७॥

के अनुसार "भवनात्तु भुवर्लोकः" होने वाले इस अर्थ के अनुसार भुवर्लोक की निरुक्ति करते हैं। अतः अन्तरिक्ष द्वितीय भुवर्लोक के नाम से कहा जाता है।।१४½-१६½।। भुवर्लोक के उत्पन्न हो जाने पर ब्रह्मा ने 'भव्य' इस तीसरे शब्द को कहा जिससे भव्यलोक हो गया। न आया है, जो समय अर्थात् भविष्य ऐसा अर्थ होने पर जो भविष्य में होने वाला है, इसी से यह लोक भव्यलोक हुआ। नाम से यह भव्यलोक स्वर्गलोक स्मरण किया गया है।।१६½-१८½।। यह भू लोक भूमिवाला लोक है, जहाँ कि पृथ्वी "भुवः" अन्तरिक्ष कहा गया है तथा 'भव्य' स्वर्गलोक स्मरण किया गया। इस प्रकार यही त्रैलोक्य का निर्णय है। इस तीनों के उच्चारणों से तीन प्रकार की व्याहृतियाँ हुई, जिसे 'भूर्भुवः स्वः' यह महाव्याहृति (महान् उच्चारण) इस त्रैलोक्य की प्रतीक हैं।।१८½-२०।। 'नाथ्' इस धातु को जानने वाले विद्वानों ने पालन करने के अर्थ में स्मरण किया है। अतः जो भूतकाल, भविष्यकाल तथा वर्तमान काल तीनों कालों के लोक, भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तीनों का पालन करने वाले जो हैं, वे द्विजों द्वारा इन्द्र स्मरण किये गये। अर्थात् तीनों लोकों का पालन करने वाले इन्द्र हैं।।२१-२१½।।

वे देवेन्द्र प्रधान भूत तथा गुणों में श्रेष्ठ होते हैं, जो देवता यज्ञ भाग का भोग करने वाले होते हैं। यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, सर्प और मनुष्य ये सब प्रकार देवेन्द्रों की महिमा बताने वाले कहे गये हैं। वे देवों के इन्द्र, गुरु, नाथ, राजा और पितर सबकुछ हैं। ये सब सुरश्रेष्ठ धर्म के द्वारा यहाँ इन प्रजाओं की रक्षा करते हैं। इस प्रकार ये संक्षेप से देवताओं के लक्षण कहे गये हैं।।२१½-२५।।

सूत जी बोले—अब हम उन सप्तर्षियों का वर्णन करेंगे जो कि स्वर्ग में में आश्रित हैं। महाराजा गाधि से उत्पन्न कुशिकवंशी बुद्धिमान् महातपस्वी विश्वामित्र, भृगुगोत्रीय प्रतापी ऊरु पुत्र जमदग्नि, बृहस्पति पुत्र महायशस्वी भारद्वाज, परम धार्मिक उतथ्य के पुत्र गौतम विद्वान् शरद्वान्, स्वयम्भू ब्रह्मा के पुत्र पञ्चम ऋषि भगवान् अत्रि, छठे

औतथ्यो गौतमो विद्वाञ्शरद्वान्नाम धार्मिकः।
स्वायंभुवोऽत्रिर्भगवान्ब्रह्मकोशः सपञ्चमः॥२८॥

षष्ठो वसिष्ठपुत्रस्तु वसुमाँल्लोकविश्रुतः। वत्सरः काश्यपश्चैव सप्तैते साधुसंमताः॥२९॥
एते सप्तर्षयश्चोक्ता वर्त्तन्ते साम्प्रतेंऽतरे। इक्ष्वाकुश्चनृगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च॥३०॥
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभागो दिष्ट एव च। करूषश्च पृषध्रश्च पांशुश्च नवमः स्मृतः॥३१॥
मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः सुधार्मिकाः। कीर्तिता वै तथा ह्येते सप्तमं चैतदन्तरम्॥३२॥

इत्येष ह मया पादो द्वितीयः कथितो द्विजाः।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं कथयाम्यहम्॥३३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते पूर्वभागे द्वितीयेऽनुषङ्गपादे मन्वन्तरवर्णनं नामाष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३८॥

॥समाप्तोऽयं ब्रह्माण्डमहापुराणपूर्वभागः॥

वशिष्ठ पुत्र लोकप्रसिद्ध वसुमान् तथा सातवें ऋषि कश्यप गोत्रीय वत्सर हैं। इस प्रकार ये सात सज्जनों द्वारा माने गये ऋषि हैं।।२६-२९।।

ये ही इस वर्तमान मन्वन्तर में सात ऋषि कहे गये हैं।।२९½।। इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, विख्यात नाभाग, करुष, पृषघ्र, पांशु नवें स्मरण किये गये। इस प्रकार नौ सुधार्मिक वैवस्वत मनु के पुत्र हैं।सूत जी बोले कि मैंने आपको इस सातवें मन्वन्तर का वर्णन किया है। इस प्रकार हे ब्राह्मणो! मैंने यह दूसरे पाद का वर्णन क्रमानुसार पूर्व से लेकर विस्तार पूर्वक कर दिया है। अब आगे मैं क्या कहूँ।।२९½-३३।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त पूर्वभाग द्वितीय अनुषंग पाद ३८वां अध्याय वैवस्वत मन्वन्तर मन्वन्तर वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

॥ब्रह्माण्डमहापुराण का पूर्वभाग समाप्त॥

❖❖❖

।।ब्रह्माण्डमहापुराणमध्यभागप्रारम्भः।।

॥श्रीगणेशाय नमः॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

ऋषिसर्ग वर्णनं नाम

प्रथमोऽध्यायः

शांशपायन उवाच

पादः सोक्तो द्वितीयस्तु अनुषङ्गेन नस्त्वया। तृतीयं विस्तरात्पादं सोपोद्धातं प्रवर्त्तय॥१॥

सूत उवाच

कीर्त्तयिष्ये तृतीयं वः सोपोद्धातं सविस्तरम्। पादं समुच्चयाद्विप्रागदतो मे निबोधत॥२॥
मनोर्वैवस्वतस्येमं साम्प्रतं तु महात्मनः। विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्गं शृणुत द्विजाः॥३॥
चतुर्युगैकसप्तत्या संख्यातं पूर्वमेव तु। सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवैस्सह॥४॥
पितृगन्धर्वयक्षैश्च रक्षोभूतमहोरगैः। मानुषैः पशुभिश्चैव पक्षिभिः स्थावरैः सह॥५॥
मन्वादिकं भविष्यान्तमाख्यानैर्बहुभिर्युतम्। वक्ष्ये वैवस्वतं सर्गं नमस्कृत्य विवस्वते॥६॥
आद्ये मन्वन्तरेऽतीताः सर्गप्रावर्त्तकास्तु ये। स्वायंभुवेंऽतरे पूर्वं सप्तासन्ये महर्षयः॥७॥
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः। दक्षस्य च ऋषीणां च भृग्वादीनां महौजसाम्॥८॥
शापान्महेश्वरस्यासीत् प्रादुर्भावो महात्मनाम्। भूयः सप्तर्षयस्त्वेव मुत्पन्नाः सप्त मानसाः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-१

ऋषिसर्ग वर्णन

वहाँ नैमिषारण्य में वायु द्वारा कही गयी पुराण कथा को कहने वाले सूत जी ने जब ब्रह्माण्डपुराण के अनुषङ्गपाद की कथा सुना दी, तब शांशपायन ऋषि ने उनसे कहा कि हे सूत जी! आपने इस पवित्र ब्रह्माण्डमहापुराण के दूसरे अनुषङ्ग पाद का वर्णन हमें सुना दिया। अब आप हमें तीसरे उपोद्घात पाद का विस्तार से वर्णन कीजिये।।१।।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अब मैं तीसरे उपोद्घात पाद का विस्तारसहित वर्णन करूँगा। अतः हे विप्रो! इस पाद का विस्तार से वर्णन ध्यान पूर्वक सुनिये।।२।। यह जो इस समय वैवस्वत मनु का मन्वन्तर चल रहा है, उसे हे ब्राह्मणो! आप लोग प्रारम्भ से अन्त तक विस्तापूर्वक सुनिये।।३।। मैं यह पहले ही बता चुका हूँ कि ७१ बार चारो युगों के बीतने पर एक मन्वन्तर समाप्त होता है। देवताओं, ऋषियो, दानवों, पितरों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, भूतों, सर्पों, मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों और स्थावरों के साथ मनु आदि भविष्य में होने वाले आख्यानों से युक्त वैवस्वत सर्ग का वर्णन भगवान् विवस्वान को नमस्कार कर करूँगा।।४-६।। पहले स्वायम्भुव मन्वन्तर में सृष्टिकार्य के प्रवर्तक जो सप्तर्षि विद्यमान थे, चाक्षुष मन्वन्तर के बीत जाने पर वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में भी महेश्वर के शापवश

पुत्रत्वे कल्पिताश्चैव स्वयमेव स्वयंभुवा। प्रजासंतानकृद्भिस्तै रुत्पदद्भिर्महात्मभिः॥१०॥
पुनः प्रवर्तितः सर्गो यथापूर्वं यथाक्रमम्। तेषां प्रसूतिं वक्ष्यामि विशुद्धज्ञानकर्मणाम्॥११॥
समासव्यासयोगाभ्यां यथावदनुपूर्वशः। येषामन्वयसम्भूतैर्लोकोऽयं सचराचरः॥
पुनरापूरितः सर्वो ग्रहनक्षत्रमण्डितः॥१२॥

ऋषय ऊचुः

कथं सप्तर्षयः पूर्वमुत्पन्नाः सप्त मनसाः। पुत्रत्वे कल्पिताश्चैव तन्नो निगद सत्तम॥१३॥

सूत उवाच

पूर्वं सप्तर्षयः प्रोक्ता ये वै स्वायंभुवेंऽतरे। मनोरन्तरमासाद्य पुनर्वैवस्वतंकिल॥१४॥
भवाभिशाप संविद्धा अप्राप्तास्ते तदा तपः। उपपन्ना जने लोके सकृदागमनास्तु ते॥१५॥
ऊचुः सर्वे सदाऽन्योन्यं जनलोके महर्षयः। एत एव महाभागा वरुणे विततेऽध्वरे॥१६॥
सर्वे वयं प्रसूयामश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। पितामहात्मजाः सर्वे तन्नः श्रेयो भविष्यति॥१७॥
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। स्वायंभुवेन्तरे प्राप्ताः सृष्ट्यर्थं ते भवेन तु॥१८॥
जज्ञिरे ह पुनस्ते वै जन लोकादिहागताः। देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्॥१९॥
ब्रह्मणो जुह्वतः शुक्र मग्नौ पूर्वं प्रजेप्सया। ऋषयो जज्ञिरे दीर्घे द्वितीयमिति नः श्रुतम्॥२०॥
भृग्वंगिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च ह्यष्टौ ते ब्रह्मणः सुताः॥२१॥

उन प्रजापति दक्ष का भृगु आदि महा ओजस्वी एवं महात्मा ऋषियों का पुनः प्रादुर्भाव होता है। वे ही स्वयम्भू ब्रह्मा के द्वारा पुत्र के रूप में कल्पित मानसी सिद्धि द्वारा उत्पन्न सप्तर्षि पुनः उत्पन्न होते हैं।।७-९।। और उत्पन्न होकर वे महात्मा मर्हिषगण अनेकों प्रकार की प्रजाओं और सन्तानों की कामना से पुनः सृष्टि का कार्य पहले क्रम के अनुसार प्रारम्भ करते हैं।।९-१०½।। अब मैं जिसके वंश से उत्पन्न होने वालों से ग्रहों एवं नक्षत्रों से ढके हुये इस जड़चेतन संसार की रचना पुनः पूर्ण की जाती है। उन विशुद्ध ज्ञान और एवं विशुद्ध कर्मवाले महात्माओं की सन्तानों का वर्णन संक्षेप और विस्तारपूर्वक क्रम से कर रहा हूँ।।१०½-१२।।

इसके बाद ऋषियों ने कहा—हे सूत जी! पूर्वकाल में ये ब्रह्मा के मानसपुत्र ऋषि कैसे उत्पन्न हुए तथा ब्रह्मा जी ने उन्हें कैसे पुत्र के रूप में कल्पित कर लिया? हे सज्जनों में श्रेष्ठ सूत जी यह हमें बताइये।।१३।।

सूत जी बोले—कि पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में जो सात ऋषिगण कहे गये हैं, उन्होंने सिद्धि प्राप्त की और फिर वैवस्वत मन्वन्तर में ब्रह्मा के शाप से अपनी सिद्धि देने वाली तपस्या से च्युत होते हुए मर्त्य लोक में आकर उत्पन्न हुए। इसका मैं वर्णन कर रहा हूँ। उत्पन्न हुए वे ऋषि लोग एक बार जनलोक में जन्म धारण किये हैं।।१४-१५।। वहाँ वे सदा आपस में एक-दूसरे से बोले कि वरुण यज्ञ के समाप्त हो जाने पर चाक्षुष मन्वन्तर में चलकर हम सभी पितामह ब्रह्मा जी के पुत्र होंगे। तब फिर हमारा कल्याण होगा।।१६-१७।।

ऐसा कहकर वे सभी स्वायम्भुव मन्वन्तर में शिव के द्वारा शापित होकर चाक्षुष मन्वन्तर में पुनः उत्पन्न हुए और जनलोक से इस लोक में आये और देवों के महान् यज्ञ में वरुण का शरीर धारण कर सन्तान उत्पत्ति की इच्छा से अग्नि में वीर्य की आहुति देते हुए ब्रह्मा से ऋषियों का पुनः जन्म हुआ, ऐसा हमने सुना है।।१८-२०।। १. भृगु, २. अङ्गिरा, ३. मरीचि, ४. पुलस्त्य, ५. पुलह, ६. क्रतु, ७. अत्रि, ८. वशिष्ठ, ये आठ ब्रह्मा के पुत्र

तथास्य वितते यज्ञे देवाः सर्वे समागताः। यज्ञांगानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्त्तिमान्॥२२॥
मूर्त्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः। ऋग्वेदश्चाभवत्तत्र यश्च क्रमविभूषितः॥२३॥
यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य ओंकारवदनोज्ज्वलः। स्थितो यज्ञार्थसंपृक्तः सूक्तब्राह्मणमन्त्रवान्॥२४॥
सामवेदश्च वृत्ताढ्यः सर्वगेयपुरःसरः। विश्वावस्वादिभिः सार्द्धं गन्धर्वैः संभृतोऽभवत्॥२५॥
ब्रह्मवेदस्तथा घोरैः कृत्वा विधिभिरन्वितः। प्रत्यङ्गिरसयोगैश्च द्विशरीरशिरोऽभवत्॥२६॥
लक्षणा विस्तराः स्तोभा निरुक्तस्वर भक्तयः॥आश्रयस्तु वषट्कारो निग्रहप्रग्रहावपि॥२७॥
दीप्तिमूर्त्तिरिलादेवी दिशश्च सदिगीश्वराः। देवकन्याश्च पत्न्यश्च तथा मातर एव च॥२८॥
आययुः सर्व एवैते देवस्य यजतो मखे। मूर्तिमन्तः सुरूपाख्या वरुणस्य वपुर्भृतः॥२९॥
स्वयंभुवस्तु तान्दृष्ट्वा रेतः समपतद्भुवि। ब्रह्मर्षिभाविनोऽर्थस्य विधानाच्च न संशयः॥३०॥
धृत्वा जुहाव हसताभ्यां स्रुवेण परिगृह्य च। आस्रवज्जुहुयां चक्रे मन्त्रवच्च पितामहः॥३१॥
ततः स जनयामास भूतग्रामं प्रजापतिः। तस्यार्वाकूतेजसश्चैव जज्ञे लोकेषु तैजसम्॥३२॥

तमसा भावि याप्यत्वं तथा सत्त्वं तथा रजः।
आज्यस्थाल्यामुपादाय स्वशुक्रं हुतवांश्च ह॥३३॥

शुक्रे हुतेऽथ तस्मिंस्तु प्रादुर्भूता महर्षयः। ज्वलन्तो वपुषा युक्ताः सप्रभावैः स्वकैर्गुणैः॥३४॥

हैं।।२१।। वरुण के उस विशाल यज्ञ मे सभी देवता सम्मिलित हुए थे। यज्ञ के सभी अङ्ग एवं वषट्कार वहाँ साक्षात् साकार रूप में उपस्थित थे। सामवेद, यजुर्वेद की हजारों ऋचायें साक्षात् मूर्ति रूप में उपस्थित थीं। क्रम से विभूषित ऋग्वेद कभी साक्षात् मूर्ति रूप में उपस्थित थे।।२२-२३।। यज्ञ के अर्थ सम्पृक्त सूक्त और ब्राह्मण मन्त्रों वाला वृत्तियों से भरा हुआ ओंकार रूप मुख से उज्ज्वल यजुर्वेद भी वहाँ साक्षात् मूर्ति रूप में उपस्थित थे।।२४।। सभी गाने योग्य छन्दों को आगे कर विश्वावसु आदि गन्धर्वों के साथ वृत्त से युक्त सामवेद भी वहाँ शोभित हो रहे थे।।२५।। तथा ब्रह्मवेद घोर विधियों से युक्त तथा प्रत्यङ्गिरसंयोग से युक्त होकर दो भागों में विभक्त होकर उपस्थित था।।२६।। इन सबके अलावा, लक्षणा विस्तर, स्तोभ निरुक्त स्वरभक्तियाँ, आश्रय, वषट्कार, निग्रह, प्रग्रह, सब उपस्थित थे।।२७।। दीप्ति, मूर्ति, इलादेवी, दिशायें, दिशाओं के स्वामी, देवकन्याये, पत्नियां तथा मातायें (मातृकायें) तथा आयु ये सब भी सुन्दर रूप वाले वरुण का शरीर धारण कर यज्ञ करते हुए देवयज्ञ में उपस्थित थे। अतः ये सब भी देवों के साथ यज्ञ कर रहे थे।।२८-२९।।

वहाँ पर स्त्रियाँ भी थीं ही, अतः उन स्त्रियों को देखकर ब्रह्मा जी का वीर्य स्खलित हो गया और पृथ्वी पर गिर गया। ब्रह्मर्षि के भाव से प्रभावित निश्चित विधान के कारण पितामह ने पृथ्वी पर गिये हुये अपने वीर्य को घृत की भाँति दोनों हाथों से स्रुवा (चमचा) पर रखकर यज्ञ में मन्त्रों का विधिवत् उच्चारण कर हवन कर दिया।।३०-३१।। उसके बाद प्रजापति ब्रह्मा ने पञ्चभूतमय समूह की उत्पत्ति की लोक में परम तेजयुक्त; किन्तु पृथ्वी पर गिरने के कारण कुछ क्षीण तेज वाले उस वीर्य से सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणयुक्त सृष्टि हुई।। फिर ब्रह्मा ने घृत की थाली में उठाकर अपने वीर्य से आहुति दी। जैसे ही वीर्य की आहुति दी गयी, वैसे ही उस यज्ञ में से महर्षिगण उत्पन्न हो गये। वे ऋषिगण अपने गुणों और प्रभावों से युक्त शरीर वाले थे।।३२-३४।।

हुते चाग्नौ सकृच्छुक्रे ज्वालाया निसृतः कविः।
हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा ज्वालां भित्त्वा विनिर्गतम्॥३५॥
भृगुस्त्वमिति चोवाच यस्मात्तस्मात्स वै भृगुः।
महादेवस्तथोद्भूतो दृष्ट्वा ब्रह्माणमब्रवीत्॥३६॥
ममैष पुत्रकामस्य दीक्षितस्य त्वया प्रभो। विजज्ञे प्रथमं देव मम पुत्रो भवत्वयम्॥३७॥
तथेति समनुज्ञातो महादेवः स्वयंभुवा। पुत्रत्वे कल्पयामास महादेवस्तदा भृगुम्॥३८॥
वारुणा भृगवस्तस्मात्तदपत्यं च स प्रभुः। द्वितीयं च ततः शुक्रमंगारेष्वजुहोत्प्रभुः॥३९॥
अङ्गारेष्वंगिरोंगानि संहतानि ततोंगिराः। सम्भूतिं तस्य तां दृष्ट्वा वह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत्॥४०॥
रेतोधास्तुभ्यमेवाहं द्वितीयोऽयं ममास्त्विति।
एवमस्त्विति सोऽप्युक्तो ब्रह्मणा सदसस्पतिः॥४१॥
जग्राहाग्निस्त्वंगिरस आग्नेया इति नः श्रुतम्।
षट् कृत्वा तु पुनः शुक्रे ब्रह्मणा लोककारिणा॥४२॥
हुते समभवंस्तस्मिन्यद् ब्रह्माण इति श्रुतिः। मरीचिः प्रथमं तं मरीचिभ्यः समुत्थितः॥४३॥
क्रतौ तस्मिन्क्रतुर्जज्ञे यतस्तस्मात्स वै क्रतुः। अहं तृतीय इत्यत्रिस्तस्मादत्रिः स कीर्त्यते॥४४॥
केशैस्तु निचितैर्भूतः पुलस्त्यस्तेन स स्मृतः। केशैर्लंबैः समुद्भूतस्तस्मात्स पुलहः स्मृतः॥४५॥

एक बार उस शुक्र के अग्नि में डालने पर उस उठी हुई ज्वाला से कवि (भृगु) उत्पन्न हुए। हिरण्यगर्भ ने उन्हें अग्नि को फोड़कर निकले हुए होने के कारण तुम 'भृगु' हो ऐसा कहा; क्योंकि तुम तोड़कर निकले हो, इसलिये भृगु हो। निरुक्त के अनुसार 'भित्त्वा गच्छति' तोड़कर निकलता है—वह 'भृगु'। अतः शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार उन्हें भृगु कहा गया। फिर महादेव ने उन उत्पन्न हुये भृगु को देखकर ब्रह्मा जी से कहा कि प्रभो! मेरी इच्छा से आपने यह मेरा पुत्र पैदा किया है। अतः हे देव! यह पहला पुत्र मेरा होवे।।३५-३७।। तब स्वयंभू ब्रह्मा ने 'ऐसा ही हो' कहकर महादेव को सम्यक् प्रकार से आज्ञा दे दी। तब महादेव ने भृगु को पुत्र के रूप में मान लिया। वे वारुण यज्ञ से पैदा हुए थे; इसलिये उसकी सन्तान भी कहे गये।।३८-३८½।।

उसके बाद प्रभु ब्रह्मा ने वीर्य की दूसरी आहुति यज्ञ के अङ्गारों में दी, तब अङ्गारों में अङ्गारों से संहत अंगिरा ऋषि की उत्पत्ति हुई। उनकी उत्पत्ति को देखकर अग्नि ने ब्रह्मा से कहा कि हे प्रभो! मैंने तुम्हारे लिए वीर्य को धारण किया है। अतः यह दूसरा पुत्र मेरा होवे। तब ब्रह्मा जी ने कहा कि ऐसा ही हो। इसलिए अग्नि से ग्रहण किये जाने के कारण अंगिरा आग्नेय होते हैं, ऐसा सुना गया है।।३८½-४१½।। इस प्रकार लोक रचयिता ब्रह्मा ने छः भाग करके अपने वीर्य की यज्ञ में आहुतियाँ दी, ऐसा श्रुति का कथन है।।४१½-४२½।। वहाँ पहले अग्नि की मरीचियों (लपटों) से मरीचि ऋषि उत्पन्न हुए। उस क्रतु (यज्ञ) से क्रतु उत्पन्न हुए, इसलिए उनका नाम क्रतु रखा गया। वहाँ से जब अत्रि पैदा हुये, तो उन्होंने कहा कि मैं तीसरा हूँ, इसलिये वे अत्रि कहे गये।।४४।। अपने केशों को नीचे लटकते हुए पैदा हुये इसलिये वे "पुलस्त्य" कहे गये; क्योंकि पुलस्त्य शब्द का अर्थ है (लटकते केश वाले) अतः यथानाम तथागुण के अनुसार उनका नाम पुलस्त्य हुआ। उसके बाद थोड़े केशों से युक्त पुलह उत्पन्न हुये। अतः उन्हें

वसुमध्यात्समुत्पन्नो वशी च वसुमान् स्वयम्।
वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञैः प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः॥४६॥

इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः षण्महर्षयः। लोकस्य सन्तानकरा यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः॥४७॥
प्रजापतय इत्येवं पठ्यन्ते ब्रह्मणः सुताः। अपरे पितरो नाम एतैरेव महर्षिभिः॥४८॥
उत्पादिता देवगणाः सप्तलोकेषु विश्रुताः। अजेयाश्च गणाः सप्त सप्तलोकेषु विश्रुताः॥४९॥
मारीचा भार्गवाश्चैव तथैवांगिरसोऽपरे। पौलस्त्याः पौलहाश्चैव वासिष्ठाश्चैव विश्रुताः॥५०॥

आत्रेयाश्च गणाः प्रोक्ता पितॄणां लोकवर्द्धनाः।
एते समासतः ख्याताः पुनरन्ये गणास्त्रयः॥५१॥

अमर्त्ताश्चाप्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विश्रुताः। तेषां राजा यमो देवो यमैर्विहितकल्मषः॥५२॥

अपरं प्रजानां यतयस्ताञ्छृणुध्वमतन्द्रिताः।
कश्यपः कर्दमः शेषो विक्रान्तः सुश्रवास्तथा॥५३॥

बहुपुत्रः कुमारश्च विवस्वान्स शुचिव्रतः। प्रचेतसोरिष्टनेमि र्बहुलश्च प्रजापतिः॥५४॥
इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवो वै प्रजेश्वराः। कुशोच्चया वालखिल्याः सभूताः परमर्षयः॥५५॥
मनोजवाः सर्वगताः सर्वभोगाश्च तेऽभवन्। जाताश्च भस्मनो ह्यन्ये ब्रह्मर्षिगणसम्मताः॥५६॥
वैखानसा मुनिगणास्तपःश्रुतपरायणाः। नस्तो द्वावस्य चोत्पन्नावश्विनौ रूपसम्मतौ॥५७॥

भी यथा नाम तथा गुण के कारण पुलह कहा गया। पुलह का अर्थ भी यही है।।४५।। एक पुत्र अन्नादि सामग्री से उत्पन्न हुआ, इसलिये उसका नाम वशी 'वसुमान्' रखा गया; क्योंकि वसु का अर्थ ही है—अन्नादि सम्पत्ति। ब्रह्मवादी तत्त्व को जानने वाले ऋषियों द्वारा उनको वशिष्ठ कहा जाता है।।४६।। इस प्रकार ये छः महर्षि ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हैं। ये ही संसार में सन्तान की उत्पत्ति करने वाले हैं तथा इन्हीं के द्वारा संसार में प्रजाओं की वृद्धि की गयी है।।४७।। इस प्रकार ये सभी ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति इस प्रकार पढ़े जाते हैं। इन्हीं महर्षियों के द्वारा दूसरे पितरगण, देवतागण उत्पन्न किये गये, जो सातों लोकों में प्रसिद्ध हुए तथा सातों लोकों में प्रसिद्ध अजेयगण भी उत्पन्न किये गये।।४८-४९।। वे हैं—मरीचि से मारीच, उसी प्रकार अङ्गिरा से अङ्गिरस, पुलस्त्य से पौलस्त्य, पुलह से पौलह, वशिष्ठ से वाशिष्ठ प्रसिद्ध हैं।।५०।। तथा अत्रि से आत्रेय ये लोक को बढ़ाने वाले पितृगण कहे गये हैं। इस प्रकार ये संक्षेप से हमने बता दिये हैं। फिर अन्य तीन गण हैं।।५१।। ये सभीगण अमर, स्वयं प्रकाशस्वरूप और ज्योतिर्मन्त सुने गये हैं। उनके राजा यमदेव हैं, जो इन्द्रियों के दमनों (यमों) से पापरहित हो चुके हैं।।५२।। अब आप लोग दूसरे इन्द्रियों को वश में रखने वाले (पतियों) के बारे में निरालस्य होकर सुनिये, वे हैं—कश्यप, कर्दम, शेष, विक्रान्त, सुश्रवा, बहुपुत्र कुमार, विवस्वान, शुचिव्रत, प्रचेतस, अरिष्टनेमि एवं बहुल नामक प्रजापति हैं।।५३-५४।। इस प्रकार ये सब आदिकालीन हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से प्रजापति हुये हैं, जिनमें कुशोच्चय और बालखिल्य आदि परमऋषिगण हैं।।५५।। वे सब ऋषिगण मन के समान वेग वाले, सर्वत्र गमन करने वाले, सब कुछ भोग करने वाले हुए।।५६।। अन्य ब्रह्मर्षि समूह से सम्यक् प्रकार से माने हुए तपस्या और शास्त्र ज्ञान परायण तपस्वी मुनिगण भस्म से उत्पन्न हुए। नाक के दो छिद्रों से दोनों रूपसम्मत दोनों अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए।।५७।।

विदुर्जन्मर्क्षरजसो तथा तन्नेत्रसंचरात्। अन्ये प्रजानां पतयः श्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥५८॥
ऋषयो रोमकूपेभ्यस्तथा स्वेदमलोद्भवाः। अयने ऋतवो मासार्द्धमासाः पक्षसंधयः॥५९॥
वत्सरा ये त्वहोरात्राः पित्तं ज्योतिश्च दारुणम्।
रौद्रं लोहितमित्याहुर्लोहितं कनकं स्मृतम्॥६०॥
तत्तैजसमिति प्रोक्तं धूमाश्च पशवः स्मृताः।
येऽर्चिषस्तस्य ते रुद्रास्तथादित्याः समुद्गताः॥६१॥
अङ्गारेभ्यः समुत्पन्ना अर्चिषो दिव्यमानुषाः।
आदिभूतोऽस्य लोकस्य ब्रह्मा त्वं ब्रह्मसंभवः॥६२॥
पर्वकामदमित्याहुस्तथा वाक्यमुदाहरन्। ब्रह्मा सुरगुरुस्तत्र त्रिदशैः सम्प्रसादितः॥६३॥
इमे वै जनयिष्यन्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वराः। सर्वे प्रजानां पतयः सर्वे चापि तपस्विनः॥६४॥
त्वत्प्रसादादिमाँल्लोकान्धारयेयुरिमाः क्रियाः। त्वद्वंशवर्द्धनाः शश्वत्तव तेजोविवर्द्धनाः॥६५॥
भवेयुर्वेदविद्वांसः सर्वे वाक्पतय स्तथा। वेदमन्त्रधराः सर्वे प्रजापतिसमुद्भवाः॥६६॥
श्रयन्तु ब्रह्मसत्यं तु तपश्च परमं भुवि। सर्वे हि वयमेते च तवैव प्रसवः प्रभो॥६७॥
ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव लोकाश्चैव चराचराः। मरीचिमादितः कृत्वा देवाश्च ऋषिभिः सह॥६८॥
अपत्यानीति सञ्चिन्त्य तेऽपत्ये कामयामहे। तस्मिन् यज्ञे महाभागा देवाश्च ऋषयश्च ये॥६९॥

ऋक्ष वानर आदि का जन्म नेत्र संचर से हुआ; इसलिये वे आँखें चलाते हैं। अन्य प्रजापति उन ब्रह्मा के कानों से पैदा हुए।।५८।। कुछ ऋषि ब्रह्मा के शरीर पर होने वाले रोमों से उत्पन्न हुए तथा कुछ उनके पसीने और मल से उत्पन्न हुए हैं। फिर अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन), मास, अर्द्धमास, पक्ष संधियाँ, वर्ष, दिन, रात, पित, ज्योति (प्रकाश) दारुण का प्रादुर्भाव हुआ।।५९-५९½।। रौद्र को लोहित कहा गया है। लौहित कनक को कहा जाता है अर्थात् सोना सुवर्ण जो कि तैजस भी कहा गया है। अतः तेज (अग्नि) से पैदा हुआ, इसलिये उस सुवर्ण को तैजस कहा गया है। अग्नि के धुएं से पशु पैदा हुए स्मरण किये गये हैं। उस यज्ञ की प्रकाश किरण (लौ) से वे रुद्र और आदित्य देवगण पैदा हुए।।५९½-६१।।

अगारों से दिव्य एवं मानुष का प्रादुर्भाव हुआ।।६१-६१½।। देवताओं के गुरु ब्रह्मा जी की वहाँ देवताओं द्वारा पूजा अर्चना की गयी। सभी कामनाओं को देने वाले अर्थात् सभी मनोऽभिलाषाओं को पूरा करने वाले ब्रह्मा जी से देवता लोग इस प्रकार वाक्य बोले कि हे ब्रह्मा जी! आप इस संसार के आदि प्राणी हैं, संसार के मूल हैं तथा आप, आप से उत्पन्न हैं अर्थात् आप स्वयंभू हैं, आपको पैदा करने वाला कोई नहीं है।।६१½-६३।। हे प्रजापति! ये सभी प्रजाओं के ईश्वर प्रजाओं की उत्पत्ति करेंगे, ये सभी प्रजापति तथा सभी तपस्वी हैं।।६४।। हे प्रजापति आपकी कृपा से ये सब इन लोकों को और लोकों में होने वाली सभी क्रियाओं को धारण करें, यह आशीर्वाद दीजिये। हे प्रजापति! ये प्रजापति ये तुम्हारे अंश से बढ़े हुए तथा तुम्हारे तेज से बढ़े हुए होवें।।६५।। सभी विद्वान् और बोलने में कुशल होवें। वेदमन्त्र को धारण करने वाले सब प्रजापति से उत्पन्न सभी पृथ्वी पर ब्रह्मसत्य और तपस्या का आश्रय ग्रहण करें।।६६-६६½।। हे प्रभो! ये हम सब ब्रह्म ब्राह्मण तथा समस्त स्थावर जङ्गम संसार आपकी ही सन्तानें हैं।।६६½-६७½।। इस प्रकार मरीचि को आगे करके देवताओं ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना की कि हे प्रजापति! हम सभी सन्तान की

एते त्वद्वंशसम्भूताः स्थानकालाभिमानिनः। तव तेनैव रूपेण स्थापयेयुरिमाः प्रजाः॥७०॥
युगादिनिधनाश्चापि स्थापयन्तु इति द्विजाः। ततोऽब्रवील्लोकगुरुः परमित्यभिधारयन्॥७१॥
एतदेव विनिश्चित्य मया सृष्टा न संशयः। भवतां वंशसम्भूताः पुनरेते महर्षयः॥७२॥
तेषां भृगोः कीर्त्तयिष्ये वंशं पूर्वं महात्मनः। विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमस्य प्रजापतेः॥७३॥
भार्ये भृगोरप्रतिमे उत्तमाभिजने शुभे। हिरण्यकशिपोः कन्या दिव्या नाम परिश्रुता॥७४॥
पुलोम्नश्चैव पौलोमी दुहिता वरवर्णिनी। भृगोस्त्वजनयद्दिव्या पुत्रं ब्रह्मविदां वरम्॥७५॥
देवासुराणामाचार्यं शुक्रं कविवरं ग्रहम्। शुक्र एवोशना नित्यमतः काव्योऽपि नामतः॥७६॥

पितॄणां मानसी कन्या सोमपानां यशस्विनी।
शुक्रस्य भार्या गौर्नाम विजज्ञे चतुरः सुतान्॥७७॥

त्वष्टा चैव वरत्री च शडामर्कौ च तावुभौ। तेजसादित्यसंकाशा ब्रह्मकल्पाः प्रभावतः॥७८॥
रजतः पृथुरश्मिश्च विद्वान्यश्च बृहंगिराः। वरत्रिणः सुता ह्येते ब्रह्मिष्ठा दैत्ययाजकाः॥७९॥
इज्याधर्मविनाशार्थं मनुमेत्याभययाजयन्। निरस्यमानं वै धर्मं दृष्ट्वेन्द्रो मनुमब्रवीत्॥८०॥
एतैरेव तु कामं त्वां प्रापयिष्यामि याजनम्। श्रुत्वेन्द्रस्य तु तद्वाक्यं तस्माद्देशादपाक्रमन्॥८१॥

कामना करते हैं।।६७½-६८½।। उस यज्ञ में महाभाग देवताओं और ऋषियों ने कहा कि हे प्रजापति! हे सभी स्थान और काल के अभिमानी तुम्हारे ही वंश में पैदा हुए हैं। अतः तुम्हारे उसी रूप के द्वारा ये इन प्रजाओं को धारण करें और युगादि के निधनों को ब्राह्मण लोग स्थापित करें।।६८½-७०½।। उसके बाद लोकगुरु ब्रह्मा ने कहा कि बहुत अच्छा। यही विशेष रूप से निश्चय करके मैंने इस संसार की रचना की है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आपके ये सभी महर्षिगण वंशों के उत्पन्न करने वाले बनेंगे।।७०½-७२।। उन सबमें सबसे पहले महात्मा भृगु का वंश कीर्ति को प्राप्त करेगा। वे भृगु ही प्रथम प्रजापति हैं। अतः पहले प्रथम प्रजापति भृगु का प्रारम्भ से लेकर विस्तार के साथ वर्णन करूँगा।।७३।। महात्मा भृगु की अनुपम उत्तम कुलीन और शुभ दो पत्नियाँ थीं। हिरण्यकशिु की दिव्या नाम की कन्या सुनी गयी है।।७४।। राजा पुलोम की पौलोमी श्रेष्ठवर्ण वाली पुत्री थी। भृगु ऋषि से दिव्या ने ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ देवताओ और असुरों के आचार्य शुक्र को जन्म दिया, जो कवि श्रेष्ठ नाम से भी पुकारे जाते हैं। शुक्र उशना कहे गये हैं तथा वे नित्य काव्य नाम से पुकारे गये।।७५-७६।। सोमपान करने वाले पितरों की मानसी कन्या जो बहुत ही यशस्विनी थी, जिसका नाम गौ था, उसने चार पुत्रों को जन्म दिया। वे हैं—त्वष्टा, वस्त्री, षण्ड एवं अमर्क। वे सब तेज से आदित्य (सूर्य) के समान तथा प्रभाव से ब्रह्मा के समान थे।।७७-७८।। वस्त्री के रजत, पृथुरश्मि और विद्वान् बृहंगिर ये ब्रह्मिष्ठ और दैत्य यज्ञ करने वाले पुत्र थे।।७९।। एक बार यज्ञरूप अधर्म के विनाश के लिये मनु से निवेदन किया[१]। परन्तु धर्म को नष्ट हुआ देखकर इन्द्र ने मनु से कहा।।८०।। कि मैं इन्हीं दैत्यों के

१. यहाँ यह कारण उभर कर आता है कि दैत्यों ने यज्ञ का विरोध इसलिये किया कि यज्ञों मे बलि प्रथा प्रारम्भ हो गयी थी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (वेद में (यज्ञ में) हिंसा नही होती। इसका आशय तो यह था कि यज्ञकार्य में समिधा में यदि किसी भी प्रकार कोई कीट रह जाये तो उसे हिंसा नही माना जाता तथा उसमे जो अन्न जलाया जाता है, वह भी हिंसा नहीं माना जाता, यही आशय था; परन्तु इसके अर्थ का अनर्थ हुआ और इस कथन ने यज्ञों मे बलि प्रथा को जन्म दिया, जिसका विरोध दैत्यो ने किया तथा वह विरोध उचित भी था।

तिरोभूतेषु तेष्विंद्रो मनुपत्नीमचेतनाम्। ग्रहेण मोचयित्वा च ततश्चानुससार ताम्॥८२॥
तत इन्द्रविनाशाय यतमानान्मुनींस्तु तान्। तानागतान्पुनर्दृष्ट्वा दुष्टानिन्द्रो विहस्य तु॥८३॥
ततस्तानदहत्क्रुद्धो वेद्यर्द्धे दक्षिणे ततः। तेषां तु धृष्यमाणानां तत्र शालावृकैः सह॥८४॥
शीर्षाणि न्यपतंस्तानि खर्जूरा ह्यभवंस्ततः। एवं वरत्रिणः पुत्रा इन्द्रेण निहताः पुरा॥८५॥

जयन्त्यां देवयानी तु शुक्रस्य दुहिताऽभवत्।
त्रिशिरा विश्वरूपस्तु त्वष्टुः पुत्रोऽभवन्महान्॥८६॥

यशोधरायामुत्पन्नो वैरोचन्यां महायशाः। विश्वरूपानुजश्चैव विश्वकर्मा च यः स्मृतः॥८७॥

भृगोस्तु भृगवो देवा जज्ञिरे द्वादशात्मजाः।
दिव्याऽनुसुषुवे कन्या काव्यस्यैवानुजा प्रभोः॥८८॥
भुवनो भावनश्चैव अन्त्यश्चान्त्यायनस्तथा।
क्रतुः शुचिः स्वमूर्द्धा च व्याजश्च वसुदश्च यः॥८९॥

प्रभवश्चाव्ययश्चैव द्वादशोऽधिपतिः स्मृतिः। इत्येते भृगवो देवाः स्मृता द्वादश यज्ञियाः॥९०॥
पौलोम्यजनयत्पुत्रं ब्रह्मिष्ठं वशिनं द्विजम्। व्यादितः सोऽष्टमे मासिगर्भः क्रूरेण रक्षसा॥९१॥
च्यव नाच्च्यवनः सोऽथ चेतनात्तु प्रचेतनः। प्रचेताः श्च्यवनः क्रोधाद्दग्धवान्पुरुयादकान्॥९२॥
जनयामास पुत्रौ द्वौ सुकन्यायां स भार्गवः। आप्रवानं दधीचं च तावुभौ साधुसंमतौ॥९३॥

द्वारा तुमसे यज्ञ करवाऊंगा, इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर दैत्य उस स्थान (देश) से भाग गये।।८१।। उन दैत्यों के तिरोभूत (भाग जाने) पर इन्द्र ने मनु पत्नी अचेतना को ग्रह से मुक्त कराकर उसका अनुसरण किया।।८२।। उसके बाद इन्द्र के विनाश के लिये प्रयत्नशील उन उन दुष्ट मुनियों को देखकर मुस्कराकर इन्द्र ने क्रोधित होकर उन सबका संहार कर दिया और यज्ञ की वेदी के दक्षिण भाग में शयन किया। उसके बाद वहां उनके मृत शरीरों को वहां गुफाओं में रहने वाले भेड़ियों द्वारा खेंच खेंच कर खाने से जहां उनके सिर गिरे वहां पर खजूर के पेड़ हो गये। इस प्रकार प्राचीन काल में वरत्री के पुत्र इन्द्र द्वारा मार दिये गये।।८३-८५।।

शुक्र की पत्नी जयन्ती में देवयानी उनकी पुत्री पैदा हुई। त्रिशिरा और विश्वरूप त्वष्टा के महान् पुत्र हुए, जो वैरोचनी और यशोधरा में महायशस्वी पुत्र पैदा हुए थे अर्थात् त्वष्टा की पत्नी विरोचना और यशोधरा से त्रिशिरा और विश्वरूप दो महायशस्वी पुत्र पैदा हुए।। विश्वरूपा के अनुज विश्वकर्मा नाम से स्मरण किये गये।।८५-८७।। भृगु के बारह पुत्र हुए, जो भृगु देवता कहे गये। प्रभु काव्य की अनुजा कन्या दिव्या ने १. भुवन, २. भावन, ३. अन्त्य, ४. आत्यायन, ५. क्रतु, ६. शुचि, ७. स्व, ८. श्रवा, ९. मूर्द्धा, १०. व्याज, ११. वसुद और १२. प्रभव ये बारह भृगुपुत्र कहे गये हैं। इस प्रकार बारह भृगुगण देवता बारह यज्ञीय देवता कहे गये हैं।।८८-९०।। पुलोमा पुत्री पौलोमी ने इन्द्रियों को वश में करने वाले ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मण पुत्र को जन्म दिया। जिसको क्रूर राक्षस द्वारा गर्भ के आठवें मास में ही व्याधित कर दिया गया, अतः वह गर्भ गिराया।।९१।। क्योंकि वह गर्भ च्युत हुआ था (गिर गया) था। अतः उसी गिरने के 'च्युत' शब्द के अनुसार उस शिशु का नाम 'च्यवन' रखा गया तथा उस च्युतगर्भ शिशुमें चेतना थी, इसलिए उसे 'प्रचेतन' कहा गया। प्रचेता च्यवन ने सुकन्या नामक पत्नी में क्रोध से जले हुए आप्रवान और दधीचि नामक दो सज्जनों द्वारा मान्य पुत्रों को पैदा किया।।९२-९३।।

सारस्वतः सरस्वत्यां दधीचस्योदपद्यत। ऋची पत्नी महाभागा अप्रवानस्य नाहुषी॥९४॥
तस्यामौर्वऋषिर्जज्ञे ऊरुं भित्त्वा महायशाः। और्वस्यासीदृचीकस्तु दीप्तोऽग्निसमतेजसा॥९५॥
जमदग्निऋचीकस्य सत्यवत्यामजायत॥भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा॥९६॥
जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निवरजायत। रेणुका जगदग्नेश्च, शक्रतुल्यपराक्रमम्॥९७॥
ब्रह्मक्षत्रमयं रामं सुषुवेऽमिततेजसम् । ओर्वस्यासीत्पुत्रशतं जमदग्निपुरोगमम् ॥९८॥
तेषां पुत्र सहस्राणि भार्गवाणां परस्परात्। ऋष्यतरेषु वै बाह्या बहवो भार्गवाः स्मृताः॥९९॥

वत्सा विदा आर्ष्टिषेणा यस्का वैन्याश्च शौनकाः।
मित्रेयुः सप्तमा ह्येते पक्षा ज्ञेयास्तु भार्गवाः॥१००॥

श्रृणुतांगिरसो वंशमग्नेः पुत्रस्य धीमतः। यस्यान्ववाये सम्भूता भारद्वाजाः सगौतमाः॥१०१॥

देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्तिषिमन्तो महौजसः।
सुरूपा चैव मारीची कार्दमी च तथा स्वराट्॥१०२॥
पथ्य च मानवी कन्या तिस्रो भार्या ह्यथर्वणः।
अथर्वणस्तु दायादास्तासु जाताः कुलोद्वहाः॥१०३॥

दधीचि ने अपनी पत्नी सरस्वती में सारस्वत को जन्म दिया। नहुष की पुत्री महाभाग्यशालिनी ऋची आप्रवान की पत्नी थी। आप्रवान का ऋषि उरु नामक महायशस्वी पुत्र जङ्घाओं को फाड़कर पैदा हुआ। उस औंर्व का पुत्र ऋचीक जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी था।।९४-९५।। ऋचीक ऋषि ने सत्यवती में जमदग्नि को जन्म दिया। बताया जाता है कि पूर्वकाल में भृगु ने जो चरु दिये थे, उन चरुओं के बदल जाने से रौद्र चरु सत्यवती को मिल जाने से सत्यवती के गर्भ से रुद्र स्वभाव वाले जमदग्नि का जन्म हो गया। अर्थात् भृगु ने पुत्र प्राप्ति के लिये यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने दो चरु बनाये। एक वैष्णव चरु था, दूसरा रौद्र चरु था। उसमें रौद्र चरु देना था, सत्यवती की माँ गाधि की पत्नी को; क्योंकि वह क्षत्रिया थी तथा वैष्णव चरु देना था, ऋचीक ऋषि की पत्नी सत्यवती को; परन्तु वह बदल गया। फलतः रौद्र चरु का भोग करने के कारण सत्यवती को रुद्र स्वभाव वाले जमदग्नि पैदा हुए तथा गाधि की पत्नी को शान्त स्वभाव वाले विश्वमित्र पैदा हुए। जमदग्नि की पत्नी रेणुका ने जमदग्नि से इन्द्र के समान पराक्रमी असीमित तेज वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय के पराक्रम वाले परशुराम को उत्पन्न किया।।९६-९७½।।

ऊर्वपुत्र ऋचीक के एक सौ पुत्र थे, जिनमें जमदग्नि सबसे बड़े पुत्र थे। उन सौ पुत्रों के एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए। उन सभी भृगु वंशीय ऋषियों के वंशज परस्पर अन्यान्य ऋषियों के वंशजों से बाह्यादि कार्यों में योग्य माने गये हैं।।९७½-९९।। १. वत्स, २. विद्, ३. आर्ष्टिषेण, ४. यस्क, ५. वैन्य, ६. शौनक और ७. मित्रेयु ये सात भार्गव पक्ष के ऋषिगण माने गये हैं।।१००।। अब आप बुद्धिमान् अग्नि के पुत्र आङ्गिरस के वंश को सुनिये। जिसके गोत्र में परम तेजवाले भारद्वाज, गौतम एवं इषुमान् नामक मुख्य देवता पैदा हुए।।१०१।। आङ्गिरस अथर्वा की मरीचिनन्दिनी सुरूपा, कर्दम पुत्री स्वराट् तथा मनुकन्या पथ्या नामक तीन स्त्रियां थीं। उनमें होने वाले सन्तानों को वृत्तान्त बतला रहा हूँ।।१०२-१०२½।। अथर्वा के उत्तराधिकारीगण जो अथर्वा के कुल को आगे ले जाने वाले थे, वे अङ्गिरा की कठोरतपस्या के फलस्वरूप पैदा हुए थे। वहाँ सुरूपा में बृहस्पति का जन्म हुआ और स्वराट् ने गौतम

उत्पन्ना महता चैव तपसा भावितात्मनः। बृहस्पतिं सुरूपायां गौतमं सुषुवे स्वराट्॥१०४॥
अयास्यं वामदेवं च उतथ्यमुशितिं तथा। धृष्णिः पुत्रस्तु पथ्यायाः संवर्त्तश्चैव मानसः॥१०५॥
कितवश्चाप्ययास्यस्य शरद्वांश्चाप्युतथ्यजः।
अथोशिजो दीर्घतमा बृहदुक्थो वामदेवजः॥१०६॥
धृष्णोः पुत्रः सुधन्वा तु ऋषभश्च सुधन्वनः। रथकाराः स्मृता देवा ऋभवो ये परिश्रुताः॥१०७॥
बृहस्पतेर्भरद्वाजो विश्रुतः सुमहायशाः। बृहस्पतेर्यवीयांसो देवा आङ्गिरसाः स्मृताः॥१०८॥
औरसाङ्गिरसः पुत्राः सुरूपायां विजज्ञिरे। आधार्यायुर्दनुर्दक्षो दमः प्राणस्तथैव च॥१०९॥
हविष्यांश्च हविष्णुश्च ऋतः सत्यश्च ते दश।
अयास्याश्चाप्युतथ्याश्च वामदेवास्तथौशिजाः॥११०॥
भारद्वाजाः सांकृतयो गर्गाः कण्वरथीतराः। मुद्गला विष्णुवृद्धाश्च हरिताः कपयस्तथा॥१११॥
तथा रूक्षभरद्वाजा आर्षभाः कितवस्तथा। एते चाङ्गिरसां पक्षा विज्ञेया दश पञ्च च॥११२॥
ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या बहवोंगिरसः स्मृताः। मरीचेरपि वक्ष्यामि भेदमुत्तमपूरुषम्॥११३॥
यस्यान्ववाये सम्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम्। मरीचिरापश्चकमे नाभिध्यायन्प्रजेप्सया॥११४॥
पुत्रः सर्व गुणोपेतः प्रजावान्प्रभवेदिति। संयुज्यात्मानमेवं तु तपसा भावितः प्रभुः॥११५॥
आहताश्च ततः सर्वा आपः समभवंस्तदा। तासु प्रणिहितात्मानमेकंसोऽजनयत्प्रभुः॥११६॥
पुत्रमप्रतिमं नाम्नाऽरिष्टनेमिं प्रजापतिम्। पुत्रं मरीचिस्तपसि निरतः सोऽप्स्वतीतपत्॥११७॥

को पैदा किया।।१०२½-१०४।। अपास्य, वामदेव, उतथ्य, उशति, धृष्णि ये सभी पुत्र पथ्या के गर्भ से उत्पन्न हुए तथा सवर्त उसके मानस पुत्र हुए।।१०५।। अयास्य के पुत्र कितव हुए तथा उतथ्य के पुत्र शरद्वान् हुए उशिज के पुत्र दीर्घतमा तथा वामदेव के पुत्र वृहद्रथ हुए, धिष्णु के पुत्र सुधन्वा और सुधन्वा का पुत्र ऋषभ हुआ। ऋषभ के रथकार नामक देवगण स्मरण किये गये तथा परमविख्यात ऋषिगण सुने गये हैं।।१०६-१०७।।

बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज महायशस्वी सुने गये हैं। बृहस्पति के छोटे भाई आङ्गिरस गोत्रीय देवगण माने जाते हैं। ये आङ्गिरस गोत्रीय देवगण सुरूपा के औरस पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे, उनकी संख्या दश है तथा उनके नाम हैं—१. औदार्य., २. आयु, ३. दनु, ४. दक्ष, ५. दम, ६. प्राण, ७. हविष्य, ८. हविष्णु, ९. ऋत और १०. सत्य तथा १. अयास्य, २. उतथ्य, ३. वामदेव, ४. औशिज, ५. भारद्वाज, ६. सांकृति, ७. गर्ग, ८. कण्व, ९. रथीतर, १०. मुद्गल, ११. विष्णुवृद्ध, १२. हरित, और १३. कपि रूक्ष, १४. भरद्वाज और १५. कितव ये पन्द्रह आङ्गिरस पक्ष के देवतागण हैं। जो अन्यान्य ऋषियों के गोत्रों से विवाहादि सम्बन्धों में स्वीकार किये गये हैं।।१०८-११२½।। अब मैं उत्तम पुरुष वाले मरीचि वंश के भेदों का वर्णन करूँगा, जिसके वंश में समस्त स्थावर जङ्गमों की उत्पत्ति हुई। सबसे पहले उन मरीचि ने सन्तानोत्पत्ति की कामना से जल की इच्छा की, उसके बाद उन्होंने मेरा पुत्र सर्वगुणसम्पन्न और सन्तान वाला होवे। इस कामना से जलों का आवाहन करने पर सभी जल जब उनके समीप उपस्थित हुए, तब परम ऐश्वर्यशाली मरीचि ने जल में मिलकर तप करने से परमतेजस्वी अरिष्टनेमि नामक प्रजापति पुत्र को प्राप्त किया। जलराशि में खड़े रहकर सज्जनों की कल्याण करने वाली वाणी का विशेष ध्यान करते हुए मरीचि ७००० वर्ष तक जल में खड़े रहे, जिसके कारण वह उनका पुत्र अनुपम हुआ था।।११२½-११७।।

प्रध्याय हि सतीं वाचं पुत्रार्थी सलिले स्थितः। सप्तवर्षसहस्राणि ततः सोऽप्रतिमोऽभवत्॥११८॥
कश्यपः सवितुर्विद्वांस्तेजसा ब्रह्मणा समः। मन्वन्तरेषु सर्वेषु ब्रह्मणोंऽशेन जायते॥११९॥

कन्यानिमित्तमत्युक्तो दक्षेण कुपितः प्रभुः।
अपिबत्स तदा कश्यं कश्यं मद्यमिहोच्यते॥१२०॥
हास्ये कशिर्हि विज्ञेयो वाङ्मनः कश्यमुच्यते।
कश्यं मद्यं स्मृतं विप्रैः कश्यपानां तु कश्यपः॥१२१॥
कशेति नाम यद्वाचो वाचा क्रूरमुदाहृतम्।
दक्षाभिशप्तः कुपितः कश्यपस्तेन सोऽभवत्॥१२२॥
तस्माच्च कश्यपायोक्तो ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
तस्मै प्राचेतसो दक्षः कन्यास्ताः प्रत्यपादयत्॥१२३॥

सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वा वै लोकमातरः। इत्येतमृषिसर्गं तु पुण्यं यो वेद वारुणम्॥१२४॥

आयुष्मान्पुण्यवाञ्छुद्धः सुखमाप्नोति शाश्वतम्।
धारणाच्छ्रवणाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१२५॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्तो मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे ऋषिसर्गवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

इसी अरिष्ट नेमिका का दूसरा नाम कश्यप था। कश्यप सविता (सूर्य) के जनक (पैदा करने वाले पिता) थे। अतः उनकी महत्ता ब्रह्मा के समान थी। सभी मन्वन्तरों में वे ब्रह्मा के अश से अवतरित होते हैं।।११८½-११९।। कन्या के निमित्त क्रोधित दक्ष प्रजापति ने तब उस 'कश्य' को पी लिया, जिससे उनको नशा हो गया। तब से कश्य को मद्य कहा जाता था। हास्य में अर्थात् कश् धातु शब्द करने (हंसने) के अर्थ में आती है। अतः कश्य जो हँसाने योग्य है, जो सब काम, मन और वाणी से होता है। अतः 'कश्य' का अर्थ मन और वाणी से हंसाना भी जानना चाहिये। तब मद्य हँसाने वाली है। अतः कश्य का अर्थ मद्य हुआ तथा कश्यप का अर्थ हुआ 'मद्य पान करने वाला'। कन्या के निमित्त दक्ष ने कुपित और तिरस्कृत होकर कठोर वाक्यों का प्रयोग किया था। अतः वे सब 'कश्यप' नाम से प्रसिद्ध हुये।।१२१-१२२।। परमेष्ठी ब्रह्मा के अनुरोध पर एवं कश्यप की प्रार्थना पर दक्ष ने अपनी कन्यायें कश्यप को दे दीं।।१२३।। वे दक्ष कन्यायें ब्रह्मवादिनी एवं लोकमातायें थीं। इस प्रकार इस पुण्यशील वारुणसृष्टि के सर्ग को जो जानता है, लम्बी आयु वाला पुण्यवान्, पवित्रात्मा, शुद्ध एवं शास्वत सुख को प्राप्त करता है तथा इस वर्णन को ध्यान करने अथवा सुनने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।१२४-१२५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद प्रथम अध्याय ऋषिसर्ग वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

प्रजापतिवंशानुकीर्त्तनं नाम

द्वितीयोऽध्यायः

सूत उवाच

विनिवृत्ते प्रजासर्गे षष्ठे वै चाक्षुषस्य ह। प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः स्वयं दक्षः स्वयंभुवा॥१॥
ससर्ज सर्वभूतानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च। मानसानि च भूतानि स पूर्वमसृजत्प्रभुः॥२॥
ऋषीन्देवांश्च गन्धर्वान् मनुष्योरगराक्षसान्। यक्षभूतपिशाचांश्च वयःपशुमृगांस्तथा॥३॥
यदाऽस्य मनसा सृष्टा न व्यवर्द्धत ताः प्रजाः। अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता॥४॥
स मैथुनानेनभावेन सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। असिक्नीमावहद्भार्यां वीरणस्य प्रजापतेः॥५॥
सुतां सुमहता युक्तां तपसा लोक धारिणीम्। यया धृतमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥६॥
अत्राप्युदाहरंतीमौ श्लोकौ प्राचेतसां प्रति। दक्षस्योद्वहतो भार्यामसिक्नीं वैरणीं पुरा॥७॥
कूपानां नियुतं दक्षं सर्पिणां साभिमानिनाम्। नदीगिरिष्वसज्जन्तं पृष्ठतोऽनुययौ प्रभुम्॥८॥

तं दृष्ट्वा ऋषिभिः प्रोक्तं प्रतिष्ठास्यति वै प्रजाः।
प्रथमोऽत्र द्वितीयस्तु दक्षः स हि प्रजापतिः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-२

प्रजापतिवंश वर्णन

छठे चाक्षुष सर्ग के समाप्त हो जाने पर स्वायंभुव प्रजापति ने स्वयं दक्ष को आदेश दिया कि तुम प्रजाओं की सृष्टि करो।।१।। उन्होंने कहा कि समस्त गतिशील और स्थिर रहने वाले पदार्थों की रचना करो; क्योंकि पहले ब्रह्मा ने समस्त पदार्थों गतिशील तथा स्थिर, ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों, मनुष्यों, सर्पों, राक्षसों, यक्षों, भूतों, पिशाचों, पक्षियों, पशुओं, हिंसकपशुओं को मन से उत्पन्न किया था। अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने इन सबको मन के संकल्प से पैदा किया था।।२-३।।

जब इस मानसिक सृष्टि से प्रजा की वृद्धि नहीं हुई, तब बुद्धिमान् भगवान् महादेव द्वारा ब्रह्मा जी को भला बुरा कहे जाने पर मैथुनी सृष्टि करने के इच्छुक ब्रह्माजी ने वीरण प्रजापति की पुत्री असिक्नी को पत्नी के रूप में स्वीकार किया। वह असिक्नी महान् गुणों वाली थी। तप से लोक को धारण करने वाली थी, जिसने इस स्थावर और जङ्गम समस्त जगत् को तपस्या से धारण किया था।।४-६।। इस विषय में लोग प्राचेतस दक्ष के लिये इन दो श्लोकों को कहा करते हैं, जिनका भाव है कि परमश्रेष्ठ वीरण की पुत्री असिक्नी को व्याहते समय दक्ष ने दश लक्ष चलने वाले कुंओं का निर्माण किया। जो नदियों और पर्वत में विलीन हो गये। ऐश्वर्यशाली दक्ष ने उन सबका अनुगमन किया।।७-८।। दक्ष को इस प्रकार परम ऐश्वर्यसम्पन्न देखकर ऋषियों ने कहा कि इसके द्वारा प्रजाओं की प्रतिष्ठा होगी। इस

अथागच्छद्यथाकालं प्रहीनां नियुतं तु यत्। असिक्नीं वैरणीं तत्र दक्षः प्राचेतसोऽवहत्॥१०॥
अथ पुत्रसहस्त्रं स वैरण्याममितौजसम्। असिक्न्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसः प्रभुः॥११॥
तांस्तु दृष्ट्वा महातेजाः स विवर्द्धयिषुः प्रजाः। देवर्षिप्रियसंवादो नारदो ब्रह्मणः सुतः॥१२॥
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनोऽब्रवीत्। यः कश्यपसुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत॥१३॥
मानसः कश्यपस्यासीद्दक्षशापवशात्पुनः। तस्मात्सकाश्यपस्याथ द्वितीयो मानसोऽभवत्॥१४॥
स हि पूर्वं समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः। तेन वृक्षस्य पुत्रा वै हर्यश्वा इति विश्रुताः॥१५॥
धर्मार्थं नाशिताः सर्वे विधिना च न संशयः।
तस्योद्यतस्तदा दक्षः क्रुद्धः शापाय वै प्रभुः॥१६॥
ब्रह्मर्षीन्वै पुरस्कृत्य याचितः परमेष्ठिना। ततोऽभिसन्धिं चक्रे वै दक्षश्च परमेष्ठिना॥१७॥
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति। ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने॥
तस्मात्स नारदो जज्ञे भूयः शापभयादृषिः॥१८॥

शांशपायन उवाच

कथं वै नाशिताः पूर्वं नारदेन सुरर्षिणा। प्रजापतिसुतास्ते वै श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥१९॥

सूत उवाच

दक्षपुत्राश्च हर्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः। समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह॥२०॥
बालिशा बत यूयं वै न प्रजानीथ भूतलम्। अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथं स्त्रक्ष्यथ वै प्रजाः॥२१॥

प्रकार प्रजापति दक्ष की पहली सृष्टि सन्तान रूप में तथा दूसरी प्रजा रूप में परिणत हुई।।९।। उसके बाद यथासमय दश लाख कुंओं का निर्माण किया और फिर वीरण की पुत्री असिक्नी के साथ विवाह कर लिया।।१०।। इसके बाद प्रचेता पुत्र प्रभु दक्ष ने वीरणपुत्री असिक्नी से असीमित पराक्रम वाले हजार पुत्रों को उत्पन्न किया।।११।। प्रजाओं की वृद्धि की इच्छा रखने वाले उन दक्ष पुत्रों को देखकर ब्रह्मपुत्र प्रियभाषी देवर्षि नारद ने उनके नाश के लिये और अपने शाप के लिये कहा।।१२-१२½।। ये परमेष्ठी नारद कश्यप के द्वितीय मानस पुत्र जाने गये हैं।।१३-१४।। वह नारद ब्रह्मा के पुत्र पहले ही पैदा हुए थे तथा वृक्ष के पुत्र हर्यश्वा हुए, ऐसा सुना गया है।।१५।। ब्रह्मा ने उन्हें धर्म के लिए नष्ट किया था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस समय जब दक्ष क्रुद्ध होकर शाप के लिये तैयार हुए।।१६।। तब समस्त ऋषियों को आगे करके परमेष्ठी पितामह ने दक्ष से इनके लिये याचना की। उसके बाद दक्ष ने परमेष्ठी ब्रह्मा से सन्धि कर ली और यह शर्त रखी गयी कि मेरे द्वारा दी गयी कन्या में नारद तुम्हारे पुत्र होवें। उसके बाद दक्ष प्रजापति ने अपने प्रिय पुत्री परमेष्ठी ब्रह्मा को प्रदान कर दिया। उससे शाप के भय से डरते हुए ऋषि नारद उत्पन्न हुए।।१७-१८।।

इस पर शाशंपायन ऋषि ने कहा कि हे सूत जी—पूर्वकाल में देवर्षि नारद जी ने प्रजापति दक्ष के पुत्रों को क्यों नष्ट कर दिया। हम इसे तत्त्वतः सुनना चाहते हैं।।१९।।

सूत जी बोले—दक्ष के पुत्र हर्यश्व प्रजा को बढ़ाने की इच्छा रखने वाले थे। उनके पास महापराक्रमी नारद आये और उनसे बोले।।२०।। मूर्खों तुम लोग भूतल को नहीं जानते, इसके अन्दर क्या है? इसके ऊपर क्या है? तथा नीचे क्या है? यही नहीं जानते हो, तो कैसे प्रजा की सृष्टि करोगे?।।२१।।

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशम्। अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रस्था इवापगाः॥२२॥
अथ तेषु प्रणष्टेषु दक्षः प्राचे तसः पुनः। वैरण्यामेव पुत्राणां सहस्त्रमसृजत्प्रभुः॥२३॥
प्रजा विवर्द्धयिषवः शबलाश्वाः पुनस्तु ते। पूर्वमुक्तं वचस्तद्वै श्राविता नारदेन ह॥२४॥
अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह ऋषिः स्वयम्। भ्रातृणां पदवीं चैव गन्तव्या नात्र संशयः॥२५॥
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथव्या वै सुखं स्त्रक्ष्यामहे प्रजाः। प्रकाशाः स्वस्थमनसा यथावदनुशासिताः॥२६॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतो दिशम्। अद्यापि न निवर्त्तन्ते विस्तारायामलिप्सवः॥२७॥
ततःप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रतः। प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विजानता॥२८॥
नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽशपद्विभुः। नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च॥२९॥
तदा तेष्वपि नष्टेषु महात्मा स प्रभुः किल। षष्टिं दक्षोऽसृजत्कन्या वैरण्यामेव विश्रुताः॥३०॥
तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्तं कश्यपः सुताः। धर्मः सोमश्च भगवांस्तथा चान्ये महर्षयः॥३१॥
इमां विसृष्टिं दक्षस्य कृत्स्नां यो वेद तत्त्वतः। आयुष्मान्कीर्त्तिमान्धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत॥३२॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे प्रजापतिवंशानुकीर्त्तनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

वे सब नारद जी के वचनों को सुनकर सब दिशाओं की ओर चले गये। वे आज भी नहीं लौटे हैं अर्थात् समुद्र के जलों में विलीन हो गये।।२२।। उसके बाद उनके विनष्ट हो जाने पर प्रचेतापुत्र दक्ष ने पुनः हजार पुत्रों को वैरणी से उत्पन्न किया।।२३।। पुनः वे भी शबलाश्व आदि जव प्रजाओं को बढ़ाने की इच्छा करने वाले हुए कि फिर नारद जी वहाँ आये और जैसे पूर्व पुत्रों से कहा था, उन्हीं वचनों को इनसे भी कहा।।२४।। नारद जी की बात को सुनकर उन सब ऋषियों ने आपस में कहा कि देवर्षि ने ठीक ही कहा है। हम लोगों को भाइयों की पदवी को अवश्य प्राप्त करना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं है।।२५।। हम लोग पृथ्वी का प्रमाण जानकर सुखपूर्वक प्रजाओं की उत्पत्ति करेंगे। इस प्रकार स्वस्थ मन से प्रसन्नचित्त यथावत् अनुशासित वे भी उसी मार्ग से सब ओर दिशाओं में चले गये। वे विस्तार को न प्राप्त करने वाले आज तक भी नहीं लौटे।।२६-२७।।

उसी समय से बड़े भाई को खोजने छोटा भाई उसी मार्ग पर जाता है, तो वह नष्ट हो जाता है। इसलिये जानते हुए यह कार्य नहीं करना चाहिये।।२८।। उन शबलाश्व पुत्रों के नष्ट हो जाने पर उन सर्वसमर्थ दक्ष प्रजापति ने नारद जी को शाप दिया कि नारद तुम नाश को प्राप्त करो और गर्भ से वास करो।।२९।। तब उन अपने सब पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्रभु दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी वैरणी में साठ कन्याओं को जन्म दिया, ऐसा सुना जाता है।।३०।। फिर उसके बाद दक्ष प्रजापति की उन कन्याओं को भगवान् कश्यप, सोम (चन्द्रमा) धर्म तथा अन्य ऋषियों ने पत्नी के रूप में अङ्गीकार किया।।३१।। इस प्रकार इस दक्ष की समस्त सृष्टि को तत्त्वतः जानता है। वह निश्चय ही दीर्घायु, कीर्तिमान्, धनवान् और सन्तान वाला होता है।।३२।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद द्वितीय अध्याय प्रजापतिवंश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

स्वयंभूत्रैगुण्य स्वरूप वर्णनं नाम

तृतीयोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च दैत्यानां चैव सर्वशः। उत्पत्तिं विस्तरेणैव ब्रूहिवैवस्वतेंऽतरे॥१॥

सूत उवाच

धर्मस्यैव प्रवक्ष्यामि निसर्गं तं निबोधत। अरुन्धती वसुर्जामा लंबा भानुर्मरुत्वती॥२॥
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा तथैव च। धर्मस्य पत्न्यो दश ता दक्षःप्राचतसो ददौ॥३॥
साध्यापुत्रास्तु धर्मस्य साध्या द्वादश जज्ञिरे। देवेभ्यस्तान्परान्देवान्देवज्ञाः परिचक्षते॥४॥
ब्राह्मणा वै मुखात्सृष्टा जया देवाः प्रजेप्सया। सर्वे मन्त्रशरीरास्ते स्मृता मन्वन्तरेष्विह॥५॥
दर्शश्च पौर्णमासश्च बृहद्यच्च रथंतरम्। वित्तिश्चैव विवित्तिश्च आकूतिः कूतिरेव च॥६॥
विज्ञाता चैव विज्ञातो मनो यज्ञस्तथैव च। नामान्येतानि तेषां वै यज्ञानां प्रथितानि च॥७॥
ब्रह्मशापेन ते जाताः पुनः स्वायंभुवे जिताः। स्वारोचिषे वै तुषिताः सत्याश्चैवोत्तमे पुनः॥८॥
तामसे हरयो नाम वैकुण्ठा रेवतांतरे। ते साध्याश्चाक्षुषे नाम्ना छन्दजा जज्ञिरे सुराः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-३

स्वयंभू त्रैगुण्यस्वरूप वर्णन

ऋषियों ने कहा कि हे सूत जी! वैवस्वत मन्वन्तर में देवताओं दानवों और दैत्यों की सब प्रकार की उत्पत्ति हमें विस्तार से बतलाइये।।१।।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! मैं पहले धर्म की सृष्टि (सन्तान) को बताऊँगा आप लोग ध्यान दीजिये। अरुन्धती, वसु, जामा, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा ये दश धर्म की पत्नियां हैं, जिन्हें प्रचेता पुत्र दक्ष ने धर्म को दिया।।२-३।। धर्म की साध्या नामक पत्नी ने बारह साध्यपुत्रों को उत्पन्न किया। ये सभी बारहों को दैव को जानने वाले देवताओं से अधिक प्रभाववाले देवता कहते हैं।।४।। ब्रह्मा के द्वारा सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से मुख से जय नामक देवों की उत्पत्ति की गयी। सभी इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में मन्त्रमय शरीर वाले कहे गये हैं।।५।। १. दर्श, २. पौर्णमास, ३. बृहद्यत्, ४. रथन्तर, ५. वित्ति, ६. विवित्ति, ७. आकूति, ८. कूति, ९. विज्ञाता, १०. विज्ञात, ११. मन और १२. यज्ञ ये ही उन जय देवगणों के नाम हैं।।६-७।। वे ही बारह देवगण ब्रह्मशाप के कारण पुनः स्वायंभुव मन्वन्तर में जित नाम से उत्पन्न हुए। स्वरोचिष मन्वन्तरों में तुषित नाम से तथा उत्तम मन्वन्तर मे सत्य नाम से पुनः प्रकट होते हैं।।८।। तामस मन्वन्तरों में वे हरि नाम से तथा रैवत मन्वन्तर में वैकुण्ठ नाम से कहे जाते हैं तथा वे ही साध्य देवगण चाक्षुष मन्वन्तर मे छन्दज नाम से उत्पन्न हुए।।९।।

धर्मपुत्रा महाभागाः साध्या ये द्वादशामराः। पूर्वं समनुसूयन्ते चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥१०॥
स्वारोचिषेऽतरेऽतीता देवा येवै महौजसः। तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वै चाक्षुषेऽतरे॥११॥
किञ्चिच्छिष्टे तदा तस्मिन्देवा वै तुषिताऽब्रुवन्।
एतामेव महाभागां वयं साध्यां प्रविश्य वै॥१२॥
मन्वन्तरे भविष्यामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति। एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥१३॥
तस्यां द्वादश सम्भूता धर्मात्स्वायम्भुवात्पुनः। नरनारायणौ तत्र जज्ञाते पुनरेव हि॥१४॥
विपश्चिदिंद्रो यश्चाभूत्तथा सत्यो हरिश्च तौ। स्वारोचिषेऽतरे पूर्वमास्तां तौ तुषितासुतौ॥१५॥
तुषितानां तु साध्यत्वे नामान्येतानि चक्षते। मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरोऽपानश्च वीर्यवान्॥१६॥
वितिर्नयो हयश्चैव हंसो नारायणस्तथा। विभुश्चापि प्रभुश्चापि साध्या द्वादश जज्ञिरे॥१७॥
स्वायंभुवेऽतरे पूर्वं ततः स्वारोचिषे पुनः। नामान्यासन्पुनस्तानि तुषितानां निबोधत॥१८॥
प्राणापानावुदानश्च समानो व्यान एव च। चक्षुः श्रोत्रं रसा घ्राणं स्पर्शो बुद्धिर्मनस्तथा॥१९॥
नामान्येतानि वै पूर्वं तुषितानां स्मृतानि च।
वसोस्तु वसवः पुत्राः साध्यानामनुजाः स्मृताः॥२०॥
धरो ध्रुवश्च सोमश्च आयुश्चैवानलोऽनिलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥२१॥
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यो रजस्तथा। ध्रुवपुत्रोऽभवत्तात कालो लोकप्रकालनः॥२२॥

ये महाभाग्यशाली साध्य नामक बारह देवगण पहले चाक्षुष मन्वन्तर में सम्यक् प्रकार से पैदा होते हैं।।१०।। स्वारोचिष मन्वन्तर जो बीत गया, उसमें ये महापराक्रमी साध्य देवगण तुषिता नाम के उत्पन्न हुए थे, उस समय ही उन्होंने स्वारोचिष मन्वन्तर के थोड़ा शेष रहने पर यह एक-दूसरे से कहा था कि चाक्षुष मन्वन्तर में हम लोग साध्य नामक देवगणों के रूप में जन्म ग्रहण करेंगे, जिससे हम लोगों का कल्याण होगा।।११-१२½।। इस प्रकार कहकर वे सभी पुनः चाक्षुष मन्वन्तर में स्वयंभू के पुत्र धर्म के यहाँ बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए।।१२½-१३½।। उस स्वारोचिष मन्वन्तर में नर और नारायण भी पुनः जन्म ग्रहण करते हैं। वे विपश्चित नाम से इन्द्र और सत्यनाम से हरि कहे जाते हैं। उस मन्वन्तर में वे दोनों तुषित नामक देवगणों में सम्मिलित थे।।१३½-१५।।

उन तुषित नामक देवगणों के साध्य नामक देवगण बनने पर जो उनके नाम हुए, वे हैं—१. मन, २. अनुमन्ता, ३. प्राण, ४. नर, ५. अपान, ६. विति, ७. नय, ८. हय, ९. हंस, १०. नारायण, ११. विभु और १२. प्रभु ये बारह साध्यगण पैदा हुए।।१५-१७।। पहले स्वायंभुव मन्वन्तर में फिर उसके बाद स्वारोचिष में वे ही साध्य देवगण जब तुषित नाम से पैदा होते हैं, उनके नाम हैं—१. प्राण, २. अपान, ३. उदान, ४. समान, ५. व्यान, ६. चक्षु, ७. श्रोत्र, ८. रस, ९. घ्राण, १०. स्पर्श, ११. बुद्धि और १२. मन।। पूर्वकाल में इन तुषितों के नाम प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ही था।।१८-१९½।। वसु से धर्म के संयोग से वसुदेवगण पैदा हुए, जो साध्य देवगणों के भाई थे। वे हैं—१. धर, २. ध्रुव, ३. सोम, ४. आयु, ५. अनल, ६. अनिल, ७. प्रत्यूष, ८. प्रभास ये आठ वसु देवगण कहे गये हैं।।१९½-२१।। धर के पुत्र द्रविण, हुतकृव्य और रज हुए और हे तात! ध्रुव के पुत्र लोक संहारक काल हुए। सोम चन्द्रमा के पुत्र भगवान् वर्चा और बुध हुए, जो ग्रह के नाम से

सोमस्य भगवान्वर्चा बुधश्च ग्रहबोधनः। धरोर्मी कलिलश्चैव पञ्च चन्द्रमसः सुताः॥२३॥
आपस्य पुत्रो वैतंड्यः शमः शान्तस्तथैव च। स्कन्दः सनत्कुमारश्च जज्ञे पादेन तेजसः॥२४॥
अग्नेः पुत्रं कुमारं तु स्वाहा जज्ञे श्रिया वृतम्।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च प्रष्टजाः॥२५॥
अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः। अविज्ञान गतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च॥२६॥
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाऽथ देवलम्। द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ॥२७॥
बृहस्पतेस्तु भगिनी भुवना ब्रह्मवादिनी। योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमशक्ता चरति स्म ह॥२८॥
प्रभासस्य तु भार्या सा वसूनामष्टमस्य ह। विश्वकर्मा सुतस्तस्याः प्रजापतिपतिर्विभुः॥२९॥
विश्वेदेवास्तु विश्वाया जज्ञिरे दश विश्रुताः।
क्रतुर्दक्षः श्रवः सत्यः कालः कामो मुनिस्तथा॥३०॥
पुरूरवो मार्द्रवसो रोचमानश्च ते दश। धर्मपुत्राः सुरा एते विश्वायां जज्ञिरे शुभाः॥३१॥
मरुत्वत्यां मरुत्वंन्तो भानवो भानुजा स्मृताः। मुहूर्ताश्च मुहूर्ताया घोषलंबा ह्यजायत॥३२॥
सङ्कल्पायां तु संजज्ञे विद्वान्सङ्कल्प एव तु। नव वीथ्यस्तु जामायाः पथत्रयमुपाश्रिताः॥३३॥
पृथिवी विषयं सर्वमरुंधत्यामजायत। एष सर्गः समाख्यातो विद्वान्धर्मस्य शाश्वतः॥३४॥
मुहूर्ताश्चैव तिथ्याश्च प्रतिभिः सह सुव्रताः। नामतः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत॥३५॥
अहोरात्रविभागश्च नक्षत्राणि समाश्रितः। मुहूर्त्ताः सर्वनक्षत्रा अहोरात्रभिदस्तथा॥३६॥

जाने गये। उसके बाद धर उर्मी और कलिल तीन पुत्रों को मिलाकर चन्द्रमा के पांँच पुत्र हुए।।२२-२३।। आपके पुत्र वैतण्ड्य, शम और शान्त हुए। स्कन्द और सनत्कुमार अग्नि के चौथे हिस्से से उत्पन्न हुए।।२४।। लक्ष्मी से घिरे हुए अग्नि के पुत्र कुमार को स्वाहा ने पैदा किया। उसके शाख, विशाख और नैगमेय छोटे भाई हुए।।२५।। अनिल की पत्नी शिवा थी। उसके पुत्र मनोजव और अविज्ञान गति दो पुत्र अनिल के हुए।।२६।। विद्वान् प्रत्यूष के पुत्र ऋषि देवल नाम के हुए। देवल के भी दो पुत्र हुए क्षमावान् और मनीषी नामक हुए।।२७।। बृहस्पति की भुवना नाम की बहिन ब्रह्मादिनी और योगसिद्ध थी, जो विना आसक्ति के समस्त संसार में घूमती थी।।२८।।

वह आठवें वसु प्रभास की वह पत्नी थी, उसके पुत्र की विश्वकर्मा हुए, जो सभी शिल्पकारों के प्रजापति थे।।२९।। विश्वा ने दश पुत्रों को जन्म दिया, जो सब विश्वेदेव नाम से पुकारे गये। वे हैं—१. क्रतु, २. दक्ष, ३. श्रुव, ४. सत्य, ५. काल, ६. काम, ७. मुनि, ८. पुरूरवा, ९. मार्द्रवस और १०. रोचमान। वे सब धर्म के शुभ पुत्र हैं, जो धर्म ने विश्वा में पैदा किये।।३०-३१।। इसी प्रकार मरुत्वती में मरुद्गण तथा भानु में भानुगण नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। मुहूर्ता के मुहूर्तगण तथा लम्बा के घोष नामक पुत्र का जन्म हुआ।।३२।। सङ्कल्पा नामक धर्म की पत्नी से विद्वान् सङ्कल्प पैदा हुए। धर्म की जामा नामक पत्नी से नववीथ्या उत्पन्न हुईं, जो तीन पथों में समाश्रित थीं।।३३।। पृथिवी के समस्त विषय अर्थात् पृथ्वी पर जितनी भी वस्तु जीवजन्तु हैं, वे सब धर्म की पत्नी अरुन्धती से पैदा हुईं।। इस प्रकार यह विद्वान् धर्म का शास्वत सर्ग वर्णन किया गया।।३४।। मुहूर्त और तिथियां और उनके स्वामियों के साथ शुभव्रतों को नाम से बताऊँगा, आप लोग मेरी बातों को सुनिये।।३५।। उसी के प्रसङ्ग में दिन और

अहोरात्रकलानां तु षडशीत्यधिकाः स्मृताः। रवेर्गति विशेषेण सर्वर्त्तुषु च नित्यशः॥३७॥
ततो वेदविदश्चैतां गतिमिच्छन्ति पर्वसु। अविशेषेषु कालेषु ज्ञेयः सवितृमानतः॥३८॥
रौद्रः सार्पस्तथा मैत्रः पित्र्यो वासव एव च। आप्योऽथ वैश्वदेवश्च ब्राह्मो मध्याह्नसंश्रितः॥३९॥
प्राजापत्यस्तथैवेन्द्र इन्द्राग्नी निर्ऋतिस्तथा। वारुणश्च यथार्यम्णो भगश्चापि दिनश्रिताः॥४०॥
एते दिनमुहूर्ताश्च दिवाकरविनिर्मिताः। शङ्कुच्छाया विशेषेण वेदितव्याः प्रमाणतः॥४१॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पूषाश्वियमदेवताः। आग्नेयश्चापि विज्ञेयः प्राजापत्यस्तथैव च॥४२॥
सौम्यश्चापि तथादित्यो बार्हस्पत्यश्च वैष्णवः।
सावित्रश्च तथा त्वाष्ट्रो वायव्यश्चेति संग्रहः॥४३॥
एते रात्रेर्मुहूर्त्ताः स्युः क्रमोक्ता दश पञ्च च। इंदोर्गत्युदया ज्ञेया नाडिका आदितस्तथा॥४४॥
कालावस्थास्त्विमास्त्वेते मुहूर्त्ता देवताः स्मृताः।
सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि विहितानि च॥४५॥
दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विद्याद्यथाक्रमम्। स्थानं जारद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम्॥४६॥
वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः। अश्विनी कृत्तिका याम्यं नागवीथीति विश्रुता॥४७॥
ब्राह्मं सौम्यं तथार्द्रा च गज वीथीति शब्दिता।
पुष्याश्लेषे तथादित्यं वीथी चैरावती मता॥४८॥

रात के विभाग सभी नक्षत्रों के विस्तार और उनकी गति एवं दिनरात में आने वाले मुहूर्त आदि का भी संक्षेप से वर्णन कर रहा हूँ।।३६।। एक दिन और रात के भीतर छः सौ से अधिक कलायें मानी गयी हैं। सूर्य की गति विशेष के अनुसार नित्य सब ऋतुओं में परिवर्तन होता है।।३७।। उसके बाद सूर्य की गति विशेष के अनुसार ही वेद के जानने वाले पर्वों में भी परिवर्तन मानते हैं। अर्थात् पर्व भी सूर्य की गति के अनुसार आते हैं। जो विशेष काल नहीं है, जैसे कि मुहूर्तो और पर्वों से भिन्न समय जो नित्य दिन-रात तिथि परिवर्तन सब तथा आपत्ति के काल भी सूर्य के मान से आते हैं।।३८।। १. रौद्र, २. सार्व, ३. मैत्र, ४. पिण्ड्य, ५. वासव, ६. आप्य, ७. वैश्वदेव, ८. ब्राह्म, ९. प्राजापत्य, १०. ऐन्द्र, ११. इन्द्राग्नी, १२. निर्ऋति, १३. वारुण, १४. आर्यम्ण, और १५. भग ये सब जो दिन पर आश्रित मुहूर्त हैं, वे सब दिन के मुहूर्त सूर्य द्वारा ही विशेष रूप से बनाये गये हैं। कील आदि गाड़कर उसकी छाया से इन सब मुहूर्तों का समय ज्ञात किया जा सकता है।।३९-४१।।

१. अज, २. एकपाद, ३. अहि, ४. बुध्न, ५. पूषा, ६. यम देवता, ७. आग्नेय, ८. प्राजापत्य, ९. सौम्य, १०. आदित्य, ११. बार्हस्पत्य, १२. वैष्णव, १३. सावित्र, १४. त्वष्टा, १५. वायव्य, ये पन्द्रह रात्रि के मुहूर्त हैं, जो क्रमशः कहे गय हैं।। चन्द्रमा की गति के अनुसार इनके उदय आदि से नाडी का ज्ञान होता है।।४२-४४।। ये मुहूर्त समय की अवस्थाओं का ज्ञान कराते हैं तथा ये देवता कहे गये हैं। सब ग्रहों के तीन ही स्थान माने गये हैं।।४५।। इन्हें क्रमानुसार दक्षिण, उत्तर और मध्य इस प्रकार जानिये—मध्य मार्ग में जारद्गव स्थान है तथा उत्तर में ऐरावत है।।४६।। एवं दक्षिण में वैश्वानर स्थान है, जो इस संसार में तत्त्वतः निर्दिष्ट हैं। अश्विनी से कृत्तिका अर्थात् अश्विनी, भरणी, कृत्तिका ये तीनों दक्षिणमार्गी नागवीथी सुनी गयी हैं।।४७।। ब्राह्म, सौम्य तथा आर्द्रा ये उत्तरमार्गी गजवीथी है। पुष्य, श्लेष तथा आदित्य से ऐरावती वीथी मानी गयी है।।४८।।

तिस्रस्तु वीथतो ह्येता उत्तरो मार्ग उच्यते। पूर्वोत्तरे च फल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी स्मृता॥४९॥
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती गोवीथीति तु शब्दिता।
ज्येष्ठा विशाखाऽनुराधा वीथी जारद्गवी मता॥५०॥
एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते। मूलं पूर्वोत्तराषाढे अजवीथ्यभिशब्दिते॥५१॥
श्रवणं च धनिष्ठा च मार्गी शतभिषक्तथा। वैश्वानरी भाद्रपदे रेवती चैव कीर्त्तिता॥५२॥
एतास्तु वीथयस्तिस्रो दक्षिणे मार्ग उच्यते।
अष्टाविंशति याः कन्या दक्षः सोमाय ता ददौ॥५३॥
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्यौतिषे परिकीर्त्तिताः। तासामपत्यान्यभवन्दीप्तयोऽमिततेजसः॥५४॥
यास्तु शेषास्तदा कन्याः प्रतिजग्राह कश्यपः।
चतुर्दशा महाभागाः सर्वास्ता लोकमातरः॥५५॥
अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठारिष्टानायुः खशा तथा। सुरभिर्विनता ताम्रा मुनिः क्रोधवशा तथा॥५६॥
कद्रूर्माता च नागानां प्रजास्तासां निबोधत। स्वायंभुवेऽन्तरे तात ये द्वादश सुरोत्तमाः॥५७॥
वैकुंठा नाम ते साध्या बभूवुश्चाक्षुषेंऽतरे। उपस्थितेंऽतरे ह्यस्मिन्पुनर्वैवस्वतस्य ह॥५८॥
आराधिता अदित्या ते समेत्योचुः परस्परम्। एतामेव महाभागामदितिं सम्प्रविश्य वै॥५९॥
वैवस्वतेंऽतरे ह्यस्मिन्योगादर्द्धेन तेजसा। गच्छेमपुत्रतामस्यास्तन्नः श्रेयो भविष्यति॥६०॥
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे वर्त्तमानेंऽतरे तदा। जज्ञिरे द्वादशादित्या मारीचात्कश्यपात्पुनः॥६१॥

ये तीन वीथियां उत्तरमार्ग कही जाती है अर्थात् उत्तरमार्ग में उपर्युक्त तीन गलियां हैं। पूर्व और उत्तर में फल्गुनि (पूर्वा फाल्गुनी तथा उत्तरा फाल्गुनी) और मघा इन तीन नक्षत्रों की आर्ष भी वीथी है स्मरण की गयी है।।४९।। हस्त, चित्रा और स्वाति गो वीथी कही गयी है। ज्येष्ठा विशाखा और अनुराधा जारद्गवी वीथी मानी गयी है।।५०।। इस प्रकार ये तीन वीथियां मध्य मार्ग कही जाती हैं अर्थात् मध्मार्ग में ये तीन गलियां हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ को अजवीथी नाम दिया गया है।।५१।। श्रवण धनिष्ठा और शतभिषा की गार्गी वीथी कही गयी है। पूर्वाभाद्रपद उत्तरा भाद्रपद और रेवती इनकी वैश्वानरी वीथी कही गयी है।।५२।। ये जितनी भी तीन वीथियां हैं, वे दक्षिणमार्ग कही गयी हैं।।५२½।। प्रजापति दक्ष की जो २८ कन्यायें थीं उन कन्याओं को दक्ष ने चन्द्रमा को दे दिया। वे सभी कन्यायें नक्षत्र नाम से ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध हो गयीं।। इन दक्ष कन्याओं में अमित तेजस्वी सन्तानें पैदा हुईं।।५२½-५४।।

जो भी दक्ष की शेष कन्यायें थीं, उनको कश्यप ने प्रतिग्रहण कर लिया। वे सभी महाभाग्यशालिनी चौदहों कन्यायें लोक मातायें बनीं।।५५।। जिनके नाम हैं—१. अदिति, २. दिति, ३. दनु, ४. काष्ठा, ५. अरिष्टा, ६. आयु, ७. खश, ८. सुरभि, ९. विनता, १०. ताम्रा, ११. मुनि, १२. क्रोधवशा, १३. इरा और १४. नागों की माता कद्रू इस प्रकार समस्त प्रजायें इन्हीं की सन्तानें जानिये।।५६-५६½।। सूत जी ने कहा कि हे तात स्वायम्भुव मन्वन्तर मेंजो बारह वैकुण्ठ नाम के उत्तम देवतागण थे, वे सब चाक्षुष मन्वन्तर में साध्य नामक देवता बने।।५६½-५७½।। उसके बाद वैवस्वत मन्वन्तर के अन्तर्गत वे अदिति द्वारा आराधित हुए, जिससे एकत्र होकर उन्होंने आपस में यह कहा कि वैवस्वत मन्वन्तर में हम लोग अपने आधे योगबल के तेज से इन महाभागा अदिति के गर्भ में प्रवेश कर इनके पुत्र होंगे, उससे हम लोगों का कल्याण होगा।।५७½-६०।। इस प्रकार उन्होंने वैसा ही किया, तब समय

शतक्रतुश्च विष्णुश्च जज्ञाते पुनरेव हि। वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन्नरनारायणौ तदा॥६२॥
तेषामपि हि देवानां निधनोत्पत्तिरुच्यते। तथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमयावुभौ॥६३॥

दृष्टानुश्रविके यस्मात्सक्ताः शब्दादिलक्षणे।
अष्टात्मकेऽणिमाद्ये च तस्मात्ते जज्ञिरे सुराः॥६४॥
इत्येष विषये रागः सम्भूत्याः कारणं स्मृतम्।
ब्रह्मशापेन सम्भूता जयाः स्वायम्भुवे जिताः॥६५॥

स्वारोचिषे वै तुषिताः सत्याश्चैवोत्तमे पुनः। तामसे हरयो देवा जाताश्चारिष्टवे तु वै॥६६॥

वैकुंठाश्चाक्षुषे साध्या आदित्याः सप्तमे पुनः।
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा॥६७॥

इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः। ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः॥६८॥

इत्येते द्वादशाऽदित्याः कश्यपस्य सुता विभोः।
सुरभ्यां कश्यपाद्रुद्रा एकादश विजज्ञिरे॥६९॥

महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती। अङ्गारकं तथा सर्पं निर्ऋतिं सदसत्यतिम्॥७०॥

बीतने पर वैवस्वत मन्वन्तर में वे सभी मरीच पुत्र कश्यप से पुनः बारह आदित्य उत्पन्न हुए।।६१।। फिर उन्हीं से शतक्रतु और विष्णु उत्पन्न हुए, जो उस समय वैवस्वत मन्वन्तर में नर और नारायण नाम से जाने गये।।६२।। इन सब देवताओं की उसी प्रकार मृत्यु और उत्पत्ति दोनों कही जाती है, जिस प्रकार कि इस लोक में भगवान् भास्कर का उदय और अस्त दोनों होता है।।६३।।

उसी प्रकार इन देवों का भी आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है, प्रत्यक्ष जो प्रमाण है, उसके अनुसार तथा वेदशास्त्रादि मे जो शब्द प्रमाण के आधार पर यह कहा गया हैं कि अणिमा, महिमा, गरिमा आदि आठ सिद्धियां होती है, उससे युक्त वे सब देवगण उत्पन्न होते हैं। अर्थात् वे देवगण सूक्ष्म विशाल और कभी अदृश्य आदि सब कुछ होने की क्षमता रखते हैं।।६४।। इस प्रकार विषय (भोग-विलास) आदि के प्रति आसक्ति (लगाव) ही सम्यक् प्रकार से जन्म लेने का कारण कहा गया है। स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मा के शाप से जय नामक देवतागण जित नाम से उत्पन्न हुए।।६५।। वे ही स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित नाम के देवगण हुए और फिर उत्तम मन्वन्तर में वे सत्य नामक देवगण हुये, उसके बाद तामस मन्वन्तर में वे देवगण सब हरिगणों के नाम से प्रसिद्ध हुए और चारिष्ट (रैवत) मन्वन्तर में वे सब वैकुण्ठ[1] कहे गये और छठे चाक्षुष मन्वन्तरे वे साध्य कहे गये तथा सातवें वैवस्वन्तर में उन देवों को आदित्य की संज्ञा दी गयी।।६६-६६½।। तथा १. धाता, २. अर्यमा, ३. मित्र, ४. वरुण, ५. अंश, ६. भग, ७. इन्द्र, ८. विवस्वान्, ९. पूषा और दशवां १०. पर्जन्य स्मरण किये, उसके बाद त्वष्टा और विष्णु। इस प्रकार इनमें विष्णु सबसे छोटे माने गये हैं, अन्य सब जघन्य (बड़े) हैं। इस प्रकार ये बारह आदित्यगण कश्यप के पुत्र कहे गये। सुरभी ने कश्यपऋषि के संयोग से ग्यारह रुद्रों को पैदा किया।।६६½-६९।। सुरभी ने अपनी तपस्या से महादेव को प्रसन्न कर वे ग्यारह रुद्र उत्पन्न किये थे, उनके नाम हैं—१. अङ्गारक, २. सर्प, ३. निर्ऋति, ४.

---

१. वायु पुराण मे विष्णु।

अजैकपादहिर्बुध्न्यौ द्वावेकं च ज्वरं तथा। भुवनं चेश्वरं मृत्युं कपालीति च विश्रुतम्॥७१॥
देवानेकादशैतांस्तु रुद्रांस्त्रिभुवनेश्वरान्। तपसोग्रेण महता सुरभिस्तानजीजनत्॥७२॥
ततो दुहितरावन्ये सुरभिर्देव्यजायत। रोहिणीचैव सुभगां गान्धर्वीं च यशस्विनीम्॥७३॥
रोहिण्या जज्ञिरे कन्याश्चतस्रो लोकविश्रुताः। सुरूपा हंसकाली च भद्रा कामदुघा तथा॥७४॥
सुषुवे गाः कामदुघा सुरूपा तनयद्वयम्। हंसकाली तु महिषान्भद्रायास्त्वविजातयः॥७५॥

विश्रुतास्तु महाभागा गान्धर्व्या वाजिनः सुताः।
उच्चैःश्रवादयो जाताः खेचरास्ते मनोजवाः॥७६॥
श्वेताः शोणाः पिशंगाश्च सारंगा हरितार्जुनाः।
उक्ता देवोपवाह्यास्ते गान्धर्वीयोनयो हयाः॥७७॥

भूयो जज्ञे सुरभ्यास्तु श्रीमांश्चंद्रप्रभो वृषः। स्त्रग्वी ककुद्मान्द्युतिमा नमृतालयसम्भवः॥७८॥
सुरभ्यनुमते दत्तो ध्वजो माहेश्वरस्तु सः। इत्येते कश्यपसुता रुद्रादित्याः प्रकीर्त्तिताः॥७९॥
धर्मपुत्राः स्मृताः साध्या विश्वे च वसवस्तथा। यथेंधनवशाद्वह्निरेकस्तु बहुधा भवेत्॥८०॥
भवत्येकस्तथा तद्वन्मूर्त्तीनां स पितामहः। एको ब्रह्मान्तकश्चैव पुरुषश्चेति तत्र यः॥८१॥

एकस्यैताः स्मृतास्तिस्त्रस्तनवस्तु स्वयंभुवः।
ब्राह्मी च पौरुषी चैव कालाख्या चेति ताः स्मृताः॥८२॥

सदसत्पति, ५. अजैकपात्, ६. अहिर्बुध्न, ७. ऊर्ध्वकेतु, ८. ज्वर भुवन, ९. ईश्वर, १०. मृत्यु और ११. कपाली।।७०-७१।। इन सभी तीनों लोकों के स्वामी रुद्रों को सुरभि ने महान् तपस्या से उत्पन्न किया था।।७२।। इन सन्तानों के अतिरिक्त दो कन्याओं को भी सुरभि ने पैदा किया, जिनमें एक रुद्र के समान कान्तिवाली रोहिणी थी और दूसरी परम यशस्विनी गान्धारी थी।।७३।। रोहिणी ने, सुरूपा, हंसकाली, भद्रा तथा कामदुघा इन चार लोकप्रसिद्ध कन्याओं को पैदा किया।।७४।। उनमें सुरूपा और कामदुघा ने दो पुत्रों को पैदा किया। हंसकाली ने महिषों (भैंसों) और भद्रा के सामान्य जाति के प्राणी पैदा हुए।।७५।। गान्धर्वी के उच्चैःश्रवा आदि महाभाग्यशाली अश्वपुत्र हुये। वे श्वेत, शोण (लाल) पिशंग (पीले), सारंग (हरे) और अर्जुन वर्ण के थे। ये गान्धर्वीय अश्व देवों को वहन करने वाले थे।।७६-७७।। उसके बाद फिर सुरभि के गर्भ से शोभायमान चन्द्रमा के समान कान्तिवाले वृष पैदा हुए, जो माला धारण करने वाले ऊँची टाट वाले, कान्तिमान् अमृत के आगार थे। उनकी माता सुरभि की अनुमति से वे वृषभदेव भगवान् शङ्कर को दे दिये गये, जो उनकी ध्वजा के चिह्न भी बने। इस प्रकार ये सभी कश्यप ऋषि के पुत्र रुद्र और आदित्य कहे गये हैं।।७८-७९।।

ये साध्यगण विश्वेदेवगण तथा वसुगण सभी धर्म के पुत्र कहे गये हैं, जिस प्रकार इन्धन के वश के कारण एक अग्नि अनेक प्रकार की हो जाती है, उसी प्रकार वे पितामह धर्म अनेक मूर्तियों के एक ही हैं। वे एक ही ब्रह्मा (पैदा करने वाले) हैं तथा वे एक ही अन्त (अन्त करने वाले) हैं। वह जो यह पुरुष कहे गये हैं।।८०-८१।। उस एक स्वयंभू के ही ये तीनों शरीर हैं, तीन मूर्तियां हैं, जिन्हें ब्राह्मी, पौरुषी एवं कालाख्या कहा गया है। ब्राह्मी का अर्थ है, उत्पन्न करने (सृष्टि करने वाली), पौरुषी का अर्थ है पालन करने वाली और कालाख्या का अर्थ है—संहार करने

या तत्र राजसी तस्य तनुः सा वै प्रजाकरी।
मता सा या तु कालाख्या प्रजाक्षयकरी तु सा॥८३॥
सात्त्विकी पौरुषी या तु सा तनुः पालिका स्मृता।
राजसी ब्रह्मणो या तु मारीचः कश्यपोऽभवत्॥८४॥
तामसी चांतकृद्या तु तदंशो विष्णुरुच्यते॥८५॥
त्रैलोक्ये ताः स्मृतास्तिस्रस्तनवो वै स्वयंभुवः।
नानाप्रयोजनार्था हि कलावस्थाः करोति सः॥८६॥

सृजत्यथानुगृह्णाणि तथा संहरति प्रजाः। एवमेताः स्मृतास्तिस्रस्तनवो हि स्वयंभुवः॥८७॥
प्राजापत्या च रौद्रा च वैष्णवी चेति तास्त्रिधा। एतास्तन्वः स्मृता देवा धर्मशास्त्रे पुरातने॥८८॥
सांख्ययोगरतैर्धीरैः पृथगेकार्थदर्शिभिः। अभिजातिप्रभावज्ञैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥८९॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन तासु भिन्नाः प्रजास्त्विमाः। इदं परमिदं नेति ब्रुवते भिन्नदर्शिनः॥९०॥
ब्रह्माणं कारणं केचित्केचिदाहुः प्रजापतिम्। केचिद्भवं परत्वेन प्राहुर्विष्णुं तथापरे॥९१॥

अभिज्ञानेन सम्भूताः सक्तारिष्टविचेतसः।
सत्त्वं कालं च देशं च कार्यं चावेक्ष्य कर्म च॥९२॥

वाली।।८२।। वहाँ जो राजसी (रजोगुणप्रधान) मूर्ति है, वह प्रजाकरी (प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न करने वाली) है, जो कालाख्या मानी गयी है, वह प्रजा को नष्ट करने वाली है।।८३।। सत्त्वगुण प्रधान सात्त्विकी मूर्ति जो पौरुषी कही गयी है, वह शरीर का पालन करने वाली कही गयी है। ब्रह्मा की जो रजोगुण प्रधान (राजसी) मूर्ति है, वही मरीचिपुत्र कश्यप हुए।।८४।। तमोगुण प्रधान तामसी मूर्ति तो इस संसार का अन्त करने वाली मूर्ति है, उसका अंश विष्णु कहे जाते हैं।।८५।। इस त्रिलोकी में वे तीनों ही उन स्वयंभु के शरीर हैं (मूर्तियां) हैं। अनेकों प्रयोजनों के लिए वह स्वयंभू अनेकों कलाओं की अवस्था करते हैं।।८६।। और फिर वह प्रजा की रचना करते हैं, उसका पालन करते हैं और संहार करते हैं। इस प्रकार तत्त्वदर्शियों द्वारा स्वयंभू की ये तीन मूर्तियां कही गयी है। प्राजापत्या, रौद्री तथा वैष्णवी स्वयंभू की ये तीन मूर्तियां प्राचीन धर्मशास्त्र में स्मरण की गयी हैं।।८७-८८।।

सांख्य और योगदर्शन के अध्ययन में निरन्तर संलग्न जो मुनिगण हैं, जो कि उन स्वयंभू की प्रतिष्ठा और मर्यादा के प्रभाव को जानते हैं तथा जिन्होंने उन प्रभु स्वायंभू के अनेक होने और एक होने के तत्त्व को अच्छी तरह देख लिया है, उन मुनियों ने उन स्वयंभूत को एक मूर्ति के रूप में माना है, जबकि उस स्वयंभू के एक होने और पृथक् पृथक् होने को लेकर प्रजाओं में भिन्न-भिन्न विचार हैं। कुछ लोग इन मूर्तियों को एक तथा कुछ अनेक मानते हैं। इस प्रकार 'यह परं ब्रह्म है' कोई कहता है कि शिव रौद्री मूर्ति परंब्रह्म है, कोई कहता है 'विष्णु (वैष्णवी) मूर्ति ही सबकुछ है' तथा कोई कहता है कि ब्रह्मा (ब्राह्मी) मूर्ति ही सब कुछ है अर्थात् कोई कहता है कि 'यह ही सब कुछ है', कोई कहता है, यह नहीं, यह है।।८९-९०।। कुछ ब्रह्मा को संसार का कारण बताते हैं, तो कुछ प्रजापति को बताते हैं, कुछ शंकर जी को परं कारण कहते हैं, तो कुछ विष्णु को परं कारण मानते हैं।।९१।। जो व्यक्ति विशेष ज्ञान नहीं रखते हैं तथा सदा अपने चित्त को दुर्व्यसनों में लगाये रखते हैं तथा अस्तित्व (घटना), समय, स्थान और

कारणं तु स्मृता ह्येते नानार्थेष्विह देवताः। एकं प्रशंसमानस्तु सर्वानेव प्रशंसति॥९३॥
एकं निंदति यस्त्वेषां सर्वानेव स निंदति। न प्रद्वेषस्ततः कार्यो देवतासु विजानता॥९४॥
न शक्या ईश्वरा ज्ञातुमैश्वर्येण व्यवस्थिताः।
एकत्वात्स त्रिधा भूत्वा सम्प्रमोहयति प्रजाः॥९५॥
एतेषां वै त्रयाणां तु विचिन्वंत्यंतरं जनाः। जिज्ञासवः परीहन्ते सक्ता दुष्टा विचेतसः॥९६॥
इदं परमिदं नेति संरंभाद्भिन्नदर्शिनः। यातुधाना विशेषा ये पिशाचाश्चैवनान्तरम्॥९७॥
एकः स तु पृथक्त्वेन स्वयं भूत्वा च तिष्ठति। गुणमात्रात्मिकाभिस्तु तनुभिर्मोहयन्प्रजाः॥९८॥
तेष्वेकं यजते यो वै स तदा यजते त्रयम्। तस्माद्देवास्त्रयो ह्येते नैरंतर्येणाधिष्ठताः॥९९॥
तस्मात्पृथक्त्वमेकत्वं संख्या संख्ये गतागतम्।
अल्पत्वं वा बहुत्वं वा तेषु को ज्ञातुमर्हति॥१००॥
तस्मात्सृष्ट्वानुगृह्णाति ग्रसते चैव सर्वशः। गुणात्मकत्ववै कल्प्ये तस्मादेकः स उच्यते॥१०१॥

कार्य को न देखकर कर्म करते हैं। उन अज्ञानी पुरुषों ने ही इस प्रपंच का कारण अनेक प्रकार के अर्थों में लिया है अर्थात् ऐसे लोग ही अनेकेश्वरवादी हैं। उनमें कोई किसी की पूजा करता है, तो किसी की कोई ब्रह्मा को मानता है, तो कोई विष्णु अथवा शिव को पूजता है; परन्तु जो एक की प्रशंसा करता है, वह समझो सबकी करता है तथा जो एक की निन्दा करता है, वह सबकी निन्दा करता है। अतः विशेष ज्ञानी मनुष्य को इन देवताओं से विशेष द्वेष नहीं करना चाहिये।।९२-९४।।

उन ईश्वरीय गुणों से व्यवस्थित ईश्वर देवों को कोई नहीं जान सकता है। वह स्वयंभू एक होता हुआ ही तीन प्रकार का होकर समस्त प्रजा को सम्यक् प्रकार मोहित कर लेता है।।९५।। इन तीनों मूर्तियों में जो अन्तर जानने की इच्छा रखने वाले लोग हैं, वे विकृत चित्त वाले विषयों में आसक्त दुष्ट लोग पूरी तरह बर्बाद हो जाते हैं, उनका वही होता है कि न खुदा ही मिला न गुलावे सनम, न इधर के रहे ना उधर के रहे। देवों को भिन्न-भिन्न देखने वाले लोग 'यह परंतत्त्व है, यह नहीं है', इसी हड़बड़ी (किंकर्तव्यविमूढता) में पड़े रह जाते हैं। वे सब राक्षस पिशाच विशेष लोग ही होते हैं।।९६-९७।। परन्तु वास्तविकता तो ये है कि वह स्वयंभू अलग-अलग होते हुए भी स्वय एक होकर सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण रूप भिन्न-भिन्न मात्राओं वाले शरीरों से समस्त प्रजा को मोहित करते हुए अर्थात् संसार को चलाते हुए स्थित हैं।।९८।। उनमें से जो एक की पूजा करता है, वह तीनों की पूजा करता है। उसी कारण से ये तीनों देवता निरन्तरता से अधिष्ठित होते हैं।।९९।।

अतः उन देवों का अलग-अलग होना और एक होना यह बुद्धि में गया, आया का भाव है। उस परब्रह्म की सत्ता में कम होना एक होना अथवा बहुत होना यह कौंन जान सकता है?।।१००।। यह एक ही शक्ति सृष्टि करके (संसार की रचना) करके उसका पालन करती हैं और फिर समस्त प्रपंच का संहार करती हैं। गुणात्मक वैकल्प्य के होने पर अर्थात् जब गुणों में किसी एक की अधिकता रहती है, तब सृष्टि, पालन तथा प्रलय की स्थिति होती है। अर्थात् जब प्रकृति में रजोगुण की अधिकता होती है, तव सृष्टि होती है और जब सत्त्वगुण की अधिकता होती है, तब संसार की स्थिति की दशा होती है तथा जब तमोगुण की अधिकता होती है, तब प्रलय होती है; परन्तु इस गुणात्मक ऊँच-नींच में वह एक ही शक्ति कही जाती है।।१०१।।

रुद्रं ब्रह्माणमिन्द्रं च लोकपालानृषीन्मनून्। देवं तमेकं बहुधा प्राहुर्नारायणं द्विजाः॥१०२॥
प्राजापत्या च रौद्री च तनुर्या चैव वैष्णवी। मन्वन्तरेषु वै तिस्र आवर्त्तन्ते पुनः पुनः॥१०३॥

क्षेत्रज्ञाअपि चान्येऽस्य विभोर्जायन्त्यनुग्रहात्।
तेजसा यशसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च॥१०४॥
जायन्ते तत्समाश्चैव तानपीमान्निबोधत
राजस्या ब्रह्मणोंऽशेन मारीचः कश्यपोऽभवत्॥१०५॥
तामस्यास्तस्य चांशेन कालो रुद्रः स उच्यते।
सात्त्विक्याश्च तथांशेन यज्ञो विष्णुरजायत॥१०६॥

त्रिषु कालेषु तस्यैता ब्रह्मणस्तनवो द्विजाः। मन्वन्तरेष्विह स्त्रष्टुमावर्त्तन्ते पुनः पुनः॥१०७॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्रजाः स्थावरजङ्गमाः। युगादौ सकृदुत्पन्नास्तिष्ठंतीहाप्रसंयमात्॥१०८॥

प्राप्ते प्राप्ते तु कल्पान्ते रुद्रः संहरति प्रजाः।
कालो भूत्वा युगात्माऽसौ रुद्रः संहरते पुनः॥१०९॥

सम्प्राप्ते चैव कल्पान्ते सप्तरश्मिर्दिवाकरः। भूत्वा संवर्त्तकादित्यस्त्रींल्लोकांश्च दहत्युत॥११०॥

विष्णुः प्रजानुग्रहकृत्सदा पालयति प्रजाः।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत उत्पाद्य कारणम्॥१११॥
सत्त्वोद्रिक्ता तु या प्रोक्ता ब्रह्मणः पौरुषी तनुः।
तस्यांशेन च विज्ञेयो मनोः स्वायंभुवेंतरे॥११२॥

विद्वान् लोग उस एक आदि देव को ही रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, लोकपालगण, ऋषिगण और मनु और नारायण कहते हैं।।१०२।। प्राजापत्या, रौद्री और वैष्णवी ये तीन मूर्तियां इस ब्रह्माण्ड में मन्वन्तरों में पुनः पुनः लौटती हैं।।१०३।। अन्य क्षेत्रज्ञ (आत्माएँ) (पुरुष) इस सर्वशक्तिमान् परब्रह्म के तेज से, यश से, बुद्धि से, शास्त्रज्ञान से और बल से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् समस्त आत्मायें उस परम आत्मा से ही उपर्युक्त सब लेकर आती हैं।।१०४।। फिर वे आत्मायें उनके समान ही उत्पन्न होती हैं, उन इन आत्माओं को सुनिये।। रजोगुण वाले ब्रह्मा के अंश से मरीचि पुत्र कश्यप पैदा हुए।।१०५।। उन्हीं के तमोगुण वाले अंश से काल पैदा हुए, जिनको रुद्र कहा जाता है तथा उन ब्रह्म के सात्विक अंश से यज्ञ रूप विष्णु पैदा हुए।।१०६।।

इस प्रकार विप्रवृन्द! सृष्टिकाल, स्थितिकाल एवं संहारकाल इन तीनों कालों में ब्रह्म की ये तीनों मूर्तियां यह सब मन्वन्तरों में (पुनः पुनः) सृष्टि करने को आती हैं।।१०७।। सब मन्वन्तरों में ये स्थावर और जंगम प्रजायें युग के आदि में एक बार उत्पन्न होती हैं और इस संसार में पूर्ण संयम के साथ स्थित रहती हैं।।१०८।; परन्तु जब कल्प का अन्त होता है, तब भगवान् रुद्र प्रजाओं (सारे प्रपंच) का संहार करते हैं। वे युग की आत्मा भगवान् रुद्र उस समय काल बनकर पुनः संसार का संहार करते हैं।।१०९।। कल्प के अन्त के प्राप्त हो जाने पर सूर्य सात किरणों वाले होकर अपनी प्रलय की अग्नि से तीनों लोकों को जला देते हैं।।११०।। प्रजा पर कृपा करने वाले विष्णु सदैव प्रजा का पालन करते हैं। उस उस अवस्था में उसी से कारण की उत्पत्ति होती है।।११-११½।। सबसे पहले स्वायंभुव

आकृत्यां मनसा देव उत्पन्नः प्रथमं विभुः। ततः पुनः स वै देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे॥११३॥
तुषितायां समुत्पन्नो ह्यजितस्तुषितैः सह। औत्तमे ह्यन्तरे वापि ह्यजितस्तु पुनः प्रभुः॥११४॥
सत्यायामभवत्सत्यः सह सत्यैः सुरोत्तमैः। तामसस्यान्तरे चापि स देवः पुनरेव हि॥११५॥
हरिण्यां हरिभिः सार्द्धं हरिरेव बभूव ह। वैवस्वतेंतरे चापि हरिर्देवैः पुनस्तु सः॥११६॥
वैकुण्ठो नाभतो जज्ञे विधूतरजसैः सह। मारीचात्कश्यपाद्विष्णुरदित्यां संबभूव ह॥११७॥
त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा विष्णुस्त्रिविक्रमः। प्रत्यपादयदिन्द्राय दैवतैश्चैव स प्रभुः॥११८॥
इत्येतास्तनवो जाता व्यतीताः सप्तसप्तसु। मन्वन्तरेष्वतीतेषु याभिः संरक्षिताः प्रजाः॥११९॥
यस्माद्विश्वमिदं सर्वं जायते लीयते पुनः। यस्यांशेनामराः सर्वे जायन्ते त्रिदिवेश्वराः॥१२०॥
वर्द्धन्ते तेजसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च। यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा॥१२१॥
तत्तदेवावगच्छध्वं विष्णोस्तेजोंऽशसंभवम्।
स एव जायतेंऽशेन केचिदिच्छन्ति मानवाः॥१२२॥
एके विवदमानास्तु दृष्टान्ताच्च ब्रुवन्ति हि। एषां न विद्यते भेदस्त्रयाणां द्युसदामिह॥१२३॥
जायन्ते मोहयन्त्यंशै रीश्वरा योगमायया॥१२४॥

मन्वन्तर में उसके अंश से (संकल्प स) देवी आकृति के गर्भ से विभुदेव उत्पन्न हुए, फिर स्वारोचिष मन्वन्तर के प्राप्त होने पर तुषितों के साथ तुषिता के गर्भ में अजित नाम से उत्पन्न हुए।।१११½-११३½।। उत्तम मनु के औत्तम मन्वतर में वे अजित पुनः सुरश्रेष्ठ सत्यगणों के साथ सत्या के गर्भ में सत्यनाम से उत्पन्न हुए।।११३½-११४½।। तामस मन्वतर में पुनः वे सत्य, देव हरिणी के गर्भ में हरिगणों के साथ हरि ही हुए।।११४½-११५½।। और वैवस्वत मन्वतर में भी वे हरि विधूत रजों के साथ-साथ वैकुण्ठ नाम से उत्पन्न हुए उस समय वे मरीचिपुत्र कश्यप से अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए उस समय वे विष्णु कहे गये।।११५½-११७।। तब उन्होंने तीन पगों से तीनों को जीतकर विष्णु त्रिविक्रम नाम से प्रसिद्ध हुए। वहाँ उन्होंने देवगणों के द्वारा इन्द्र के अनेकों कार्यों को सिद्ध किया।।११८।। इस प्रकार बीते हुए सात मन्वन्तरों में उनकी ये अनेकों मूर्तियां हुईं। अतीत के मन्वन्तरों में जिन मूर्तियों के द्वारा प्रजाओं की विधिवत् रक्षा की गयी।।११९।।

जिस परं ब्रह्म से यह समस्त संसार उत्पन्न होता है और फिर विलीन हो जाता है। जिसके अंश से सभी देवता तथा तीनों स्वर्गों के स्वामी पैदा होते हैं।।१२०।। तथा वे सभी देवगण उन विष्णु के तेज से, बुद्धि से, शास्त्रज्ञान से और बल से वे बढ़ते हैं। संसार में ज़ितने भी जीव, मनुष्य, श्री तथा ऐश्वर्य युक्त हैं, वे सब उन विष्णु की ऊर्जा से ऊर्जित हैं। जैसे कि विद्युत् से मशीनें चलती हैं, उसी प्रकार उन विष्णु श्रीमत् (प्रकृति वाली) (विशेष ऐश्वर्य वाली) ऊर्जा से सभी जीव चलते फिरते सोते बैठते हैं।।१२१।। तथा जो जो सत्त्व प्राणी ऐश्वर्य वाले हैं तथा श्रीमत् उर्जित हैं अर्थात् धनलक्ष्मी से ऊर्जा प्राप्त कर चुके हैं, उन उन सबको विष्णु के तेज के अंश से उंत्पन्न हुआ समझिये। वही अपने अंश रूप में इस प्रकार उत्पन्न होता है, कुछ मनुष्य ऐसी ही इच्छा करते हैं।।१२२।। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो यह तर्क करते हैं कि वह अन्य अंशों से पैदा होता है। यहाँ इन तीनों देवों के अन्तर्गत कोई भेद नहीं है।।१२३।। ये सर्वसमर्थ ईश्वर महान् पुरुष योगमाया से उन्हीं देवों के अंशों से उत्पन्न होते हैं और योग माया से सांसारिक मोह

तस्मात्तेषां प्रचारे तु युक्तायुक्तं न विद्यते। भूतानुवादिनामाद्या मध्यस्था भूतवादिनाम्॥१२५॥

भूतानुवादिनः सक्तास्त्रयश्चैव प्रवादिनाम्।
परीक्ष्य चानुगृह्णन्ति निगृह्णन्ति खलान्स्वयम्॥१२६॥

मत्तः पूर्व्वे च ते तस्मात्प्रभवश्च ततोऽधिकाः। तथाधिकरणैरतैर्यथा तत्त्वनिदर्शकाः॥१२७॥
देवानां देवभूताश्च ते वै सर्वप्रवर्त्तकाः। कर्म्मणां महतां ते हि कर्त्तारो जगदीश्वराः॥१२८॥
श्रुतिज्ञैः कारणैरेतैश्चतुर्भिःपरिकीर्त्तिताः। बालिशास्ते न जानन्ति दैवतानि प्रभागशः॥१२९॥
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं योगेश्वरान्प्रति। कुर्याद्योगबलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महांश्चरेत्॥१३०॥
प्राप्नुयाद्विषयांश्चैव पुनश्चोर्द्ध्वं तपश्चरेत्। संहरेत पुनः सर्व्वान् सूर्य्यो ज्योतिर्गणानिव॥१३१॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे स्वयंभूत्रैगुण्यस्वरूपवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

को प्राप्त होते हैं। इसलिये उन महान् विभूतियों के प्रचार में अच्छा या बुरा नहीं देखा जाता है। वे इस संसार को चलाने के लिये बुरा भी करते हैं, तो उसे बुरा नहीं माना जाता है। अर्थात् किसी बहुत अत्याचारी को मिटाने के लिए यदि अन्याय का सहारा लिया जाये तो भी वह अन्याय नहीं है।।१२४-१२४½।।

भूतों (प्राणियों) की तीन श्रेणियां हैं, कुछ भूतों का अनुवाद करने वालों में पहले हैं, कुछ पूर्व की बातों का अनुसरण करने वाले हैं, अर्थात् भूतवादियों में मध्यस्थ है तथा भूतवादी ही है। अर्थात् कुछ मनुष्य प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, कुछ मध्यस्थ हैं तथा कुछ भूतों का समर्थन करने वाले लकीर के फकीर हैं, ये तीन ही प्रवादियों कुछ मनुष्य स्वयं दुष्टों की परीक्षा करके उन्हें माफ करते हैं, उन पर कृपा करते हैं, कुछ उनका दमन करते हैं, मुझसे पूर्वकाल में वे सब उसी से उत्पन्न होने वाले थे। उससे भी अधिक थे, उसी प्रकार इन अधिकरणों द्वारा जैसा कि तत्व का निर्देश करने वाले कहते हैं।।१२४½-१२७।। देवताओं के देवभूत हैं। वे ही सब कुछ प्रवृत्त करने वाले हैं। वे ही जगत् की रचना करने वाले हैं, वे ही संसार के स्वामी हैं।।१२८।।

वेदशास्त्रों को जानने वाले इन चार कारणों से कहे गये हैं। वे मूर्ख उन देवों को पूरी तरह नहीं जानते हैं।।१२९।। इस श्लोक का यहाँ इन योगेश्वरों के प्रति उदाहृत करते हैं कि मनुष्यों द्वारा योगबल को प्राप्त कर कार्य करना चाहिये, उन सबके द्वारा महान् आचरण करना चाहिये।।१३०।। मनुष्य भोगविलासादि विषयों को पायें, फिर ऊर्ध्व तप करें अर्थात् कठोर परिश्रम करें और फिर सब विषयों का संहार करें, जैसे कि भगवान् भास्कर अपनी किरणों को पैदा कर विषयों का भोग करते हैं, फिर ऊर्ध्व रूप से तप करते हैं और अन्त मे अपनी किरणों को समेट लेते हैं। यही संसार की गति है तथा उन तीनों देवों का स्वरूप है, वे एक ही सब कार्यों को करते हैं।।१३१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद तृतीय अध्याय स्वयम्भू त्रैगुण्यस्वरूप वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

जयाभिव्याहारो नाम

चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच

ब्रह्मणा वै मुखात्सृष्टा जया देवाः प्रजेप्सया। सर्वे मन्त्रशरीरास्ते स्मृता मन्वन्तरेष्विह॥१॥
दर्शश्च पौर्णमासश्च बृहत्साम रथन्तरम्। चितिश्च सुचितिश्चैव ह्याकूतिः कूतिरेव च॥२॥

विज्ञातश्चैव विज्ञाता मनो यज्ञश्च द्वादशः।
दाराग्निहोत्रसम्बन्धं वितत्य यजतेति च॥३॥
एवमुक्त्वा तु तान्ब्रह्मा तत्रैवान्तरधात्प्रभुः।
ततस्ते नाभ्यनन्दन्त तद्वाक्यं परमेष्ठिनः॥४॥

संन्यस्येह च कर्माणि वासनाः कर्मजाश्च वै। यमेष्वेवावतिष्ठन्ते दोषं दृष्ट्वा तु कर्मसु॥५॥

क्षयातिशययुक्तं च ते दृष्ट्वा कर्मणां फलम्।
जुगुप्सन्तः प्रसूतिं च निःसत्त्वा निर्ममाभवन्॥६॥
अजन्म काङ्क्षमाणास्ते निर्मुक्ता दोषदर्शिनः।
अर्थं धर्मं च कामं च हित्वा ते वै व्यवस्थिताः॥७॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–४

जय अभिव्याहार

ऋषियों द्वारा देवों की उत्पत्ति के बारे में पूछे जाने पर सूत जी ने कहा कि यहाँ सब मन्वन्तरों में प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा से ब्रह्मा जी के मुख से जितने भी देवगण उत्पन्न हुए, वे सब मन्त्रमय शरीर कहे जाते हैं। वे हैं—१. दर्श, २. पौर्णमास, ३. बृहत्, ४. रथन्तर, ५. चिति, ६. सुचिति, ७. आकूति, ८. कूत, ९. विज्ञात, १०. विज्ञात, ११. मन और १२. यज्ञ, ये बार देवगण हैं। इनको ब्रह्माजी ने उत्पन्न किया, इन्हें उत्पन्न कर इन सबसे ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम सब अपनी पत्नी के साथ रहकर सन्तानोत्पत्ति करते हुए अग्निहोत्र का विस्तार करो अर्थात् संसार संचालन रूपी यज्ञ करो। उन सबको इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये।।१-३½।। उसके बाद उन सबने परमेष्ठी ब्रह्माजी के वाक्यों का अभिनन्दन नहीं किया। वे सब कर्म से उत्पन्न वासनाओं को छोड़कर कर्मों में दोष देखकर यम और नियम के पालन में अवस्थित हो गये।।३½-५।। कर्मों के फलों को बहुत अधिक महत्त्व वाले; परन्तु नाशशील देखकर सन्तान प्राप्त करने की इच्छा से रहित और ममतारहित हो गये अर्थात् उनमें सन्तानोत्पत्ति की न इच्छा रही और न उनके प्रति ममता ही रही।।६।। जन्म के बन्धन में पड़ने की इच्छा न रखते हुए वे जन्म

परमं ज्ञानमास्थाय तत्संक्षिप्य सुसंस्थिताः। तेषां तु तमभिप्रायं ज्ञात्वा ब्रह्मा तु कोपितः॥८॥
तानब्रवीत्ततो ब्रह्मा निरुत्साहान्सुरानथ। प्रजार्थमिह यूयं वै मया सृष्टाः स्थनान्यथा॥९॥
प्रसूयध्वं यजध्वं चेत्युक्तवानस्मि वः पुरा। यस्माद्वाक्यमनादृत्य मम वैराग्यमास्थिताः॥१०॥

जुगुप्समानाः स्वं जन्म संततिं नाभ्यनंदत।
कर्मणां न कृतोऽभ्यासो ह्यमृतत्वाभिकाङ्क्षया॥११॥

तस्माद्यूयमिहावृत्तिं सप्तकृत्वो ह्यवाप्स्यथ। ते शप्ता ब्रह्मणा देवा जयास्तं वै प्रसादयन्॥१२॥
क्षमास्माकं महादेव यदज्ञानात्मकं प्रभो। प्रणतान्वै सानुनयं ब्रह्मा तानब्रवीत्पुनः॥१३॥
लोकेऽप्यथानुभुञ्जीत कः स्वातन्त्र्यमिहार्हति। मयागतं तु सर्वं हि कथमच्छंदतो मम॥१४॥

प्रतिपत्स्यन्ति भूतानि शुभं वा यदि वोत्तरम्।
लोके यदपि किञ्चिद्वै शं वा शं वा व्यवस्थितम्॥१५॥
बुद्ध्यात्मना मया व्याप्तं को मां लोकेऽतिवर्त्तयेत्।
भूताना मीहितं यच्च यच्चाप्येषां विचिंतितम्॥१६॥

तथोपचरितं यच्च तत्सर्वं विदितं मम। मया बद्धमिदं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्॥१७॥

में दोष देखने वाले तथा सब सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो गये तथा जो धर्म अर्थ काम रूप सांसारिक कार्यों को छोड़कर व्यवस्थित हो गये।।७।। उस समय परम ज्ञान मोक्ष को आधार बनाकर उसे संक्षिप्त कर अच्छी प्रकार स्थित कर लिया। उनके उस अभिप्राय को जानकर ब्रह्मा जी उन पर क्रोधित हो गये।।८।। तब उन सांसारिक सन्तानोत्पत्ति आदि कार्यों के प्रति निरुत्साह हुए उनसे ब्रह्मा जी ने कहा कि मैंने यहाँ इस संसार में आपको सन्तानोत्पत्ति के लिए उत्पन्न किया था, अन्य कार्य के लिये नहीं किया था।।९।। मैंने पहले आप लोगों से कहा था, तुम सन्तानोत्पत्ति करो और यज्ञ करो, जिस मेरे वचन का अनादर करके आप लोगों ने वैराग्य को धारण कर लिया।।१०।। अपने ही जन्म का लाभ प्राप्त करने की इच्छाओं वाले आप लोगों ने सन्तान का अभिनन्दन नहीं किया। अपने लिये अमर होने की इच्छाओं वाले आप लोगों ने कर्मों का अभ्यास नहीं किया।।११।।

उसी कारण से आपलोग इस संसार में सात बार इस विना कर्म वाले जन्म को धारण करो इस प्रकार ब्रह्मा जी ने उन्हें शाप दिया, तब वे सब जय देवगण ब्रह्मा जी को प्रसन्न करते हुए बोले।।१२।। हे प्रभो! महादेव आप हम अज्ञान आत्माओं को क्षमा प्रदान करें। इस प्रकार नतमस्तक उन जय देवगणों से अनुनयपूर्वक ब्रह्मा जी ने फिर कहा।।१३।। इस संसार में मेरी आज्ञा के विना कौन स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकता है। यहाँ सब कुछ तो मेरे द्वारा आया हुआ है, कुछ भी मुझसे परतन्त्र नहीं, सब मेरे ही वश में हैं।।१४।।

संसार में प्राणी शुभ अथवा अशुभ सफलता प्राप्त करेंगे, सब मेरे द्वारा ही है, संसार में जो कुछ भी कल्याण व्यवस्थित है, वह सब मेरे द्वारा ही है।।१५।। संसार मेरे द्वारा ही बुद्धि और आत्मा से व्याप्त है अर्थात् संसार में जितने भी पदार्थ हैं, उन सब में बुद्धि और आत्मा से मैं ही व्याप्त हूँ। इस संसार में कौन मेरा अतिक्रमण कर सकता है? प्राणियों की जो इच्छायें होती हैं तथा जो भी इनका विशेष चिन्तन होता है तथा जो वे प्राणी कार्य करते हैं, वह सब मुझे विदित है। मेरे द्वारा ही यह समस्त जड़ चेतन जगत् बँधा हुआ है अर्थात् यह समस्त जड़ चेतन जगत् मुझसे सम्बद्ध (जुड़ा हुआ) है।।१६-१७।।

आशामयेन बन्धेन कस्तं छेत्तुमिहोत्सहेत्। यस्माद्वहति दृप्तो वै सर्वार्थमिह नान्यथा॥१८॥
इति कर्माण्यनारभ्य कामं छन्दाद्विमोक्षते। एवं संभाष्य तान्देवान् जयानध्यात्मचेतसः॥१९॥

अथ वीक्ष्य पुनश्चाह ध्रुवं दंड्यान्प्रजापतिः।
यस्मान्मानभिसंधाय सन्यासादिः कृतः सुराः॥२०॥
तस्मात्स विपुलायत्तोव्यापारस्त्वथ मत्कृतः।
भविता च सुखोदर्को दिव्यभावेन जायताम्॥२१॥
आत्मच्छन्देन वो जन्म भविष्यति सुरोत्तमाः।
मन्वन्तरेषु संसिद्धाः सप्तस्वाविर्भविष्यथः॥२२॥

वैवस्वतांतेषु सुरास्तथा स्वायंभुवादिषु। एवं च ब्रह्मणा तत्र श्लोको गीतः पुरातनः॥२३॥

त्रयी विद्या ब्रह्ममयप्रसूतिः श्राद्धं तपो यज्ञमनुप्रदानम्।
एतानि नित्यैः सहसा रजोभिर्भूत्वा विभुर्वसतेऽन्यत्प्रशस्तम्॥२४॥

एवं श्लोकार्थमुक्त्वा तु जयान्देवानथाब्रवीत्। वैवस्वतेंऽतरेतीते मत्समीपमिहैष्यथ॥२५॥
ततो देवस्तिरोभूत ईश्वरो ह्यकुतोभयः। प्रपन्नाधारणामाद्यां युक्त्वा योगबलान्विताम्॥२६॥

ततस्तेन रुषा शप्तास्तेऽभवन्द्वादशाजिताः।
जया इति समाख्याताः कृता एवं विसन्निभाः॥२७॥

ततः स्वायंभुवे तस्मिन् सर्गेऽतीते तु वै सुराः। पुनस्ते तुषिता देवा जाताः स्वारोचिषेंऽतरे॥२८॥

यह समस्त संसार आशामय बन्धन में बँधा हुआ है, इसे कौन इस काट सकता है? मैंने सृष्टि विस्तार के लिए ही यह सब कार्य प्रारम्भ किया था, किसी अन्य अभिप्राय से नहीं। इस प्रकार इस कार्य को आरम्भ न करके कैसे मुक्ति की इच्छा आप लोग कर रहे हैं? इस प्रकार ब्रह्मा जी ने उन अध्यात्म में चित्त लगाने वाले जय नामक देवगणों से कहा।।१८-१९।। प्रजापति ने उन शापदण्ड का धारण करने वाले जय नामक देवगणों से पुनः कहा कि आप लोगों ने मेरी बात न मानकर संन्यास धारण कर लिया था और उसी भावना से जो प्रयत्न किया था, वह भी नष्ट हो गया। अतः इसका फल अच्छा ही होगा। अतः आप लोग दिव्यभाव से पैदा होंगे।।२०-२१।।

आपकी अपनी आत्मा के कार्य से आपका जन्म सभी मन्वन्तरों में सुरश्रेष्ठों के रूप में होगा और आप लोग सभी सातों मन्वन्तरों में स्वायम्भुव मन्वन्तर से लेकर वैवस्वत मन्वन्तर के अन्त तक उत्पन्न होंगे। इस प्रकार ब्रह्मा जी ने वहाँ एक पुरातन श्लोक का गान किया।।२२-२३।। उसका आशय है—कि मनुष्य त्रयी विद्या (ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद का ज्ञान) ब्रह्ममय प्रसूति अर्थात् ब्रह्मचर्ययुक्त सन्तानोत्पत्ति (एकस्त्रीपुरुषव्रतत्व) श्राद्ध, तप, यज्ञ और अनुष्ठान इन सब कार्यों को करते हुए सहसा नित्य रजोगुणों से युक्त होते हुए दूसरों द्वारा प्रशंसित होते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।।२४।। इस प्रकार के श्लोकार्थ को कहकर ब्रह्मा जी ने उन देवगणों से कहा कि वैवस्वत मन्वन्तर के बीतने पर आप लोग मेरे समीप आयेंगे।।२५।। उसके बाद ऐसा कहकर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये और सब देवता लोगों ने आप अपने योगबल के आधार पर निर्भय हो गये।।२६।। उसके बाद ब्रह्मा जी के क्रोध से शापित वे सब बारहों अजित नामक देवगण हुए तथा वे सब अग्नि के समान जय नाम से विख्यात हुए।।२७।। उसके बाद

उत्तमस्य मनोः पुत्राः सत्यायां जज्ञिरे तदा।
ततः सत्याः स्मृता देवा औत्तमे चांतरे मनोः॥२९॥

हरिण्यां नाम तुषिता जज्ञिरे द्वादशैव तु। हरयो नाम ते देवा यज्ञभाजस्तदाऽभवन्॥३०॥
ततस्ते हरयो देवाः प्राप्ते चारिष्ठवेंतरे?। विकुंठायां पुनस्ते वै वरिष्ठा जज्ञिरे सुराः॥३१॥
वैकुंठा नाम ते देवाः पंचमस्यांतरे मनोः। ततस्ते वै पुनर्देवा वैकुंठाः प्राप्य चाक्षुषम्॥३२॥
ततस्ते वै पुनः साध्याः संक्षीणे चाक्षुषेंतरे। उपस्थिते पुनः सर्गे मनोर्वैवस्वतस्य ह॥३३॥
अंशेन साध्यास्तेऽदित्यां मारीचात्कश्यपात्पुनः। जज्ञिरे द्वादशादित्या वर्त्तमानेंतरे सुराः॥३४॥
यदा चैते समुत्पन्नाश्चाक्षुषस्यांतरे मनोः। शप्ताः स्वयंभुवा साध्या जज्ञिरे द्वादशामराः॥३५॥

एवं शृणोति यो मर्त्यो जयस्तस्य भवेत्सदा।
जयानां श्रद्धया युक्तः प्रत्यध्यायं तु गच्छति॥३६॥
इत्येता वृत्तयः सप्त देवानां जन्मलक्षणाः।
परिक्रांता मया वोऽद्या किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥३७॥

॥इति ब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे जयाभिव्याहारो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

बीत हुए उस स्वायम्भुव मन्वन्तर में वे ही देवता जय नाम से पैदा हुए और फिर स्वारोचिषमन्वन्तर में तुषित नाम से प्रसिद्ध हुए।।२८।। उसके बाद उत्तम मन्वन्तर में उत्तम मनु से सत्या के गर्भ से उत्पन्न हुए, तब वे देवगण सत्य नाम से विख्यात हुए।।२९।। उसके तामस मन्वन्तर में तामस मनु की हरिणी नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुए, तब वे बारहों देवगण हरि नाम से विख्यात हुए तथा उस समय वे यज्ञ मे भाग लेने वाले हुए।।३०।। उसके बाद वे हरि नामक देवगण चाक्षुष मन्वन्तर के प्राप्त होने पर चाक्षुष मनु से उनकी पत्नी विकुण्ठा से वे वरिष्ठ देवगण पुनः उत्पन्न हुए, तब वे देवगण पाँचवें चाक्षुष मन्वन्तर में वैकुण्ठ नामक देवगणों के रूप में विख्यात हुए।।३१-३२।। उसके बाद फिर चाक्षुष सर्ग के बीतने पर तथा वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ होने पर उस साध्य के अंश से मरीचिपुत्र कश्यप से अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए, तब वैवस्वत मन्वतर में वे बारहों देवगण आदित्य कहे गये।।३३-३४।। और जब ये देवगण चाक्षुष मन्वन्तर मे उत्पन्न हुए थे, जो स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मा के शाप द्वारा वे बारह देवगण साध्य कहे गये थे।।३५।। इस प्रकार जो मनुष्य उन जय देवताओं की इस कथा को श्रद्धा से प्रति अध्याय सुनता है, उसकी सदा जय होती है। इस प्रकार जय नामक देवगणों की कथा वाला अध्याय समाप्त हो रहा है।।३६।। इस प्रकार इन बारह देवगणों का सात जन्मों का जीवन व्यवहार मैंने आप ऋषिगणो को बता दिया, अब आप क्या जानना चाहते हैं? बताइये इस प्रकार सूत जी ने कहा।।३७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद चौथा अध्याय जय अभिव्याहार का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

मरुदुत्पत्तिवर्णनं नाम

पञ्चमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच

दैत्यानां दानवानां च गंधर्वोरगरक्षसाम्। सर्पभूतपिशाचानां वसूनां पक्षिवीरुधाम्।।१।।
उत्पत्तिं निधनं चैव विस्तारात्कथयस्व नः। एवमुक्तस्तदा सूतः प्रत्युवाचर्षिसत्तमम्।।२।।

सूत उवाच

दितेः पुत्रद्वयं जज्ञे कन्या चैका महाबला। कश्यपस्यात्मजौ तौ तु सर्वेभ्यः पूर्वजौ स्मृतौ।।३।।
सौत्येऽहन्यतिरात्रस्य कश्यपस्याश्वमेधिकाः। हिरण्यकशिपुर्नाम प्रथितं पृथगासनम्।।४।।
दित्या गर्भाद्विनिःसृत्य तत्रासीनः समंततः। हिरण्यकशिपुस्तस्मात् कर्मणा तेन स स्मृतः।।५।।

ऋषय ऊचुः

हिरण्यकशिपोर्जन्म नाम चैव महात्मनः। प्रभावं चैव दैत्यस्य विस्ताराद्ब्रूहि नः प्रभो।।६।।

सूत उवाच

कश्यपस्याश्वमेधोऽभूत् पुण्ये वै पुष्करे तदा। ऋषिभिर्देवताभिश्च गंधर्वैरुपशोभितः।।७।।
उत्सृष्टे स्वे च विधिना आख्यानादौ यथाविधि।
आसनान्युपक्लृप्तानि सौवर्णानि तु पंच वै।।८।।

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–५

मरुद्गण की उत्पत्ति वर्णन

ऋषि ने कहा—कि महामना सूत जी! दैत्यों, दानवों, गन्धर्वों, सर्पों, राक्षसों, सर्पभूतों, पिशाचों, वसुओं (दौलतों) पक्षियों, पेड़-पौधों लताओ की उत्पत्ति और उनका निधन (मृत्यु) अन्त हमें विस्तार से बताइये। इस प्रकार कहे जाने पर सूत जी ने ऋषिश्रेष्ठों से कहा।।१-२।।

सूत जी बोले—दिति के दो पुत्र उत्पन्न हुए और एक महाबला कन्या ने जन्म लिया। कश्यप के वे दोनों पुत्र सबसे पहले जन्म लेने वाले कहे गये।।३।। कश्यप जब अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, उस समय अतिरात्रियाम सौत्यदिन के अवसर पर वह प्रसिद्ध दिति के गर्भ से निकलकर यज्ञमण्डप में स्थित पुरोहित वाले सर्वोच्च आसन पर आसीन हो गया। अपने इस कार्य के कारण ही वह हिरण्यकशिपु नाम से स्मरण किया गया।।४-५।।

ऋषियों ने कहा—हे प्रभो! सूत जी! हमें महात्मा हिरण्यकशिपु दैत्यराज के नाम जन्म और प्रभाव को विस्तारपूर्वक बताइये।।६।।

सूत जी बोले–कि उस समय पुष्कर में हिरण्यकशिपु का ऋषियों गन्धर्वों और देवताओं से शोभित अश्वमेध यज्ञ हुआ।।७।। उस महान् यज्ञ में शास्त्रीय विधिसम्मत आख्यान आदि के लिये पांच सोने से बने हुए आसन बनाये

कुलस्पदापि? त्रीण्यत्र कूर्चः फलकमेव च। मुख्यर्त्विजस्तु चत्वारस्तेषां तान्युपकल्पयन्॥९॥
क्लृप्तं तत्रासनं चैकं होतुरर्थे हिरणमयम्। निषसाद सगर्भोऽत्र तत्रासीनः शशंस च॥१०॥
आख्यानमानुपूर्व्येण महर्षिः कश्यपो यथा।
तं दृष्ट्वा ऋषयस्तस्य नाम कुर्वंति वर्द्धितम्॥११॥
हिरण्यकशिपुस्तस्मात्कर्मणा तेन स स्मृतः।
हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य सिंहिका तस्य चानुजा॥१२॥
राहोः सा जननी देवी विप्र चित्तेः परिग्रहः। हिरण्यकशिपुर्दैत्यश्चत्वार परमं तपः॥१३॥
शतं वर्षसहस्राणां निराहारो ह्यधःशिराः। वरयामास ब्रह्माणं तुष्टं दैत्यो वरेण तु॥१४॥
सर्वामरत्वमवधं सर्वभूतेभ्य एव हि। योगाद्देवान् विनिर्जित्य सर्वदेवत्वमास्थितः॥१५॥
कारयेऽहमिहैश्वर्यं बलवीर्यसमन्वितः। दानवास्त्वसुराश्चैव देवाश्च सह चारणैः॥१६॥
भवंतु वशगाः सर्वे मत्समीपानुभोजनाः। आद्रशुष्कैरवध्यश्च दिवा रात्रौ तथैव च।
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मानुजज्ञे संतरं वरम्॥१७॥

ब्रह्मोवाच

महानयं वरस्तात वृतो दितिसुत त्वया। एही दानीं प्रतिज्ञानं भविष्यत्येवमेव तु॥१८॥

गये थे।।८।। वहाँ पर कुश से पवित्र किये हुए तीन आसन थे एक पर कुशों की मुट्ठी (कूची) रखी हुई थी शेष चार आसन मुख्य यज्ञकर्ताओं ऋत्विजों के लिए सजाये गये थे।।९।। उनमें एक आसन मुख्य होता के लिये स्वर्ण से मढ़ा हुआ बनाया गया वह सुवर्ण निर्मित आसन था। वहाँ पर किसी अन्य आसन पर कश्यप और दिति बैठे हुए थे। उसी समय दिति के गर्भ से निकल कर वह हिरण्यकशिपु उस मुख्य आसन पर आसीन हो गया, जिस पर कि मुख्य होता को बैठना था। दिति के गर्भ से निकलकर वह हिरण्यकशिपु गर्भ के साथ आसीन हो गया और वहाँ से वेदादि का व्याख्यान करने लगा।।१०।। उसने उसी प्रकार वेदों के अतिरिक्त आख्यान करना प्रारम्भ कर दिया, जिस प्रकार महर्षि कश्यप करते थे, उसको देखकर ऋषियों ने उसका बढ़ा हुआ नाम रखा अर्थात् पिता तो केवल कश्यप ही थे; परन्तु उसका नाम उससे बढ़ा हुआ हिरण्यकशिपु हुआ। हिरण्याक्ष उसका छोटा भाई था और सिंहिका उसकी बहिन हुई।।११-१२।। वह सिंहिका विप्रचित्त की पत्नी थी तथा राहु को उत्पन्न करने वाली जननी थी अर्थात् राहु की माता थी। हिरण्यकशिपु दैत्य ने घोर तप किया।।१३।। उसने वह तप एक लाख वर्षों तक नीचे को सिर करके निराहार रहकर किया था। उस तप से जब ब्रह्मा जी खुश हो गये, तब उसने वर माँगा।।१४।।

उस वर में उसने सब देवों से भी न मरने वाला वर माँगा तथा सब प्रकार के प्राणियों से न मरने वाला वर माँगा और कहा कि हे ब्रह्मा जी मैं सब देवों को जीतकर सब देवों में विशिष्ट स्थान पर स्थित होऊँ। बल और पराक्रम से युक्त होकर मैं ऐश्वर्य पूर्ण कार्य करूँ।।१५-१५½।। दानव असुर देवता और चारण सब मेरे वश में होवें और मेरे पास में मेरा दिया हुआ भोजन करें तथा गीले स्थान में तथा सूखे स्थान में उसी प्रकार दिन अथवा रात्रि में मुझे कोई न मार सके। ऐसा कहने पर ब्रह्मा जी ने उसे वर प्रदान कर दिये।।१५½-१७।।

ब्रह्मा जी ने कहा—हे तात! दितिपुत्र यह महान् वर है, जो तुमने माँगा है। लो इस वर को प्राप्त करो, इसका

दत्त्वा चाभिमतं तस्मै तत्रैवान्तरधादथ। सोऽपि दैत्यस्तदा सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्॥१९॥
महिम्ना व्याप्य संतस्थे बहुमूर्त्तिरमित्रजित्। स एव तपति व्योम्नि चंद्रसूर्यत्वमास्थितः॥२०॥
स एव वायुर्भूत्वा च ववौ जगति सर्वदा। स गोपालोऽविपालश्च कर्षकश्च स एव ह॥२१॥
स ज्ञाता सर्वलोकेषु मंत्रव्याख्याकरस्तथा।
नेता गोप्ता गोपयिता दीक्षितो याजकः स तु॥२२॥
तस्य देवाः सुराः सर्वे तदासन्सोमपायिनः। एवंप्रभावो दैत्योऽसावतो भूयो निबोधत॥२३॥
तस्मै सर्वे नमस्कारं कुर्वंतीज्यः स एव च।
हिरण्यकशिपोर्दैत्यैः श्लोको गीतः पुरा त्विह॥२४॥
हिरण्यकशिपू राजा यां यामाशं निरैक्षत। तस्यै तस्यै तदा देवा नमश्चक्रुर्महर्षिभिः॥२५॥
तस्यासीन्नरसिंहस्तु मत्युर्विष्णुः पुरा किल। नरात्तु यस्माज्जन्मास्य नरमूर्त्तिश्च यत्प्रभुः॥२६॥
तस्मात्स नरसिंहो वै गीयते वेदवादिभिः। सागरस्य च वेलायामुच्छ्रितस्तपसो विभुः॥२७॥
शरीरं तस्य देवस्य ह्यासीद्देवमयं प्रभो। नाम्ना सुदर्शनं चैव विश्रुतश्च महाबलः॥२८॥
ततः स बाहुयुद्धेन दैत्येद्रं तं महाबलम्। नखैर्बिभेद संक्रुद्धो नार्द्राः शुष्का नखा इति॥२९॥
हिरण्याक्षसुताः पंच विक्रांताः सुमहाबलाः। शंबरः शकुनिश्चैव कालनाभस्तत्तैव च॥३०॥

प्रतिज्ञान करो, जो तुमने माँगा है, वही होगा।।१८।। इस प्रकार उस हिरण्यकशिपु द्वारा अभिमत वर को देखकर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये। फिर उसके बाद वह दैत्य भी समस्त स्थावर और जंगम संसार को अपनी महिमा से आवृत कर बहुमूर्ति और शत्रुओं को जीतने वाला हुआ।।१९-१९½।। वह ही आकाश में सूर्य और चन्द्र बनकर तप रहा था। वह ही वायु बनकर संसार में बह रहा था। वही पशुपालन कर रहा था, वही भेड़ों का पालक था तथा वही कृषक था अर्थात् कृषिकार्य भी वही कर रहा था।।१९½-२१।। वह सब लोको में ज्ञाता था और वही वेदों के मन्त्रों की व्याख्या करने वाला था, वही समाज का नेतृत्व करने वाला था, वही प्रजा की रक्षा करने वाला था, वही रक्षा कराने वाला था, वही दीक्षित था और वही यज्ञ करने वाला था।।२२।। वहाँ जितने भी देवता थे, वे सब उसका सोमपान करने वाले थे। इस प्रकार उस दैत्य का प्रभाव सर्वत्र छा गया था, इसे समझिये।।२३।। उस समय यज्ञकर्ता सब उसको नमस्कार करते थे। अर्थात् यज्ञ में उसी की वन्दना की जाती थी। अर्थात् वही उस समय इज्यपुरुष था। उस समय प्राचीन काल में दैत्यों के द्वारा हिरण्यकशिपु का यह गीत गाया जाता था अर्थात् दैत्य लोग इस श्लोक द्वारा उसकी स्तुति का गान करते थे।।२४।।

वह हिरण्यकशिपु राजा जिस-जिस दिशा को निरीक्षण करने जाता था, उस-उस दिशा के देवता और महर्षि उसको नमन करते थे, उसे नमस्कार करते थे।।२५।। उसकी मृत्यु पूर्वकाल भगवान् विष्णु ने की। उसका जन्म नर से हुआ था। इसलिये वे प्रभु नरमूर्ति हो गये।।२६।। उसी कारण से वे वेदो का प्रवचन करने वालों द्वारा नरसिंह रूप में स्तुति किये जाते हैं। सर्वसमर्थ विभु सागर की वेला में तप से उठे थे।।२७।। उन प्रभु नरसिंह का शरीर देवमय था तथा उनका नाम सुदर्शन था तथा वे महाबलशाली सुने गये।।२८।। उसके बाद उन महाबली नरसिंह रूपधारी सुदर्शन (भगवान्) विष्णु ने क्रोधित होकर नाखूनों से भेदकर मार डाला। उनके नाखून न गीले ही थे और न सूखे ही थे, जिससे ब्रह्माजी के शाप का उल्लंघन भी नहीं हुआ।।२९।। उधर हिरण्यकशिपु के छोटे भाई हिरण्याक्ष

महानाभः सुविक्रांतो सुत संतापनस्तथा। हिरण्याक्षसुता ह्येते देवैरपि दुरासदाः॥३१॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दैतेयाः सगणाः स्मृताः। स शतानि सहस्राणि निहतास्तारकामये॥३२॥
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः सुमहाबलाः। प्रह्लादः पूर्वजस्तेषामनुह्ला दस्तथापरः॥३३॥
संह्लादश्चैव ह्लादश्च ह्लादपुत्रौ निबोधत। सुंदो निसुन्दश्च तथा ह्लादपुत्रौ बभूवतुः॥३४॥
ब्रह्मघ्नौ तौ महावीरौ मूकस्तु ह्लाददायकः। मारीचः सुन्दपुत्रस्तु ताडकायामजायत॥३५॥
दंडके निहतः सोऽथ राघवेण बलीयसा। मूको विनिहतश्चापि कैराते सव्यसाचिना॥३६॥
संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले। उत्पन्ना महता चैव तपसा भाविताः स्वयम्॥३७॥
अरयो देवतानां ते जंभस्य शतदुंदुभिः। तथा दक्षो सुरश्चंडश्चत्वारो दत्यनायकाः॥३८॥
बाष्कलस्य सुता ह्येते कालनेमेः सुताञ्छृणु। ब्रह्मजित्क्रतुजिच्चैव देवांतकनरांतकौ॥३९॥
कालनेमिसुता ह्येते शंभोस्तु शृणुत प्रजाः। राजाजश्चैव गोमश्च शंभोः पुत्रौ प्रकीर्त्तितौ॥४०॥
विरोचनस्य पुत्रश्च बलिरेकः प्रतापवान्। बलेः पुत्रशतं जज्ञे राजानः सर्व एव ते॥४१॥
तेषां प्रधानाश्चत्वारो विक्रांताः सुमहाबलाः। सहस्रबाहुः श्रेष्ठोऽभूद्वाणो राजा प्रतापवान्॥४२॥
कुंभगर्त्तो दयो भोजः कुंचिरित्येवमादयः। शकुनी पूतना चैव कन्ये द्वे तु बलेः स्मृते॥४३॥

बलेः पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
बालेया नाम विख्याता गणा विक्रांतपौरुषाः॥४४॥

के पाँच विक्रान्त और अधिक बलशाली पाँच पुत्र हुए, वे हैं—शंबर, शकुनि, कालनाभ, महानाभ और सुविक्रान्त। हिरण्याक्ष के ये सब पुत्र देवों के द्वारा भी कठिनाई से जीतने योग्य थे।।३०-३१।। उनके पुत्र और पौत्र, दैतेय गण नाम से स्मरण किये गये। वे एक लाख पुत्र और पौत्र तारकासुर के युद्ध में मारे गये।।३२।। हिरण्यकशिपु के चार महाबली पुत्र हुए, उनमें सबसे बड़े पुत्र प्रह्लाद हुए, उसके अनुज अनुह्लाद थे।।३३।। हिरण्यकशिपु के तृतीय पुत्र संह्लाद हुए तथा चौथे ह्लाद हुए। अब ह्लाद के पुत्रों को सुनिये वे हैं—सुन्द और निसुन्द दो ह्लाद के पुत्र हुए।।३४।।

वे दोनों महापराक्रमी ब्रह्मघ्न और मूक थे। सुन्द का पुत्र मारीच ताड़का से पैदा हुआ था अर्थात् सुन्द की पत्नी ताड़का से मारीच उत्पन्न हुआ था।।३५।। इसके बाद महाबली भगवान् रामचन्द्र द्वारा वह मारीच दण्डक वन में मारा गया। मूक को किरातों के साथ युद्ध करते हुए धनुषधारी अर्जुन द्वारा मारा गया।।३६।। संह्लाद दैत्य के कुल में निवातकवच पुत्र उत्पन्न हुए अर्थात् वे इतने सुरक्षित थे कि हवा भी उनको नहीं हानि पहुँचा सकती थी, वे सब स्वयं महान् तप से भावित थे।।३७।। वे देवताओं के शत्रु थे, जम्भ के पुत्र शतदुन्दुभि दक्ष, सुर और चण्ड ये चार दैत्यनायक हुए।।३८।। विरोध, मनु, वृक्षायु और कुशलीमुख ये चार पुत्र बास्कल के थे। अब कालनेमि के पुत्रों को सुनिये। वे हैं—ब्रह्मजित्, क्रतुजित्, देवांतक, नरांतक।।३९।। ये उपर्युक्त कालनेमि के पुत्र हैं। अब शम्भु के पुत्रों को सुनिये। राजा अज और गोमज ये दो पुत्र प्रसद्ध हुए।।४०।। प्रह्लाद पुत्र विरोचन को एकमात्र प्रतापी पुत्र बलि हुए, बलि के सौ पुत्र उत्पन्न हुए, वे सबके सब राजा थे।।४१।। उन पुत्रों में से चार पुत्र प्रधान थे, जो विक्रान्त और महाबलवान् थे। जिनमें सहस्रबाहु वाण प्रतापी राजा हुए।।४२।। अन्य तीन कुम्भगर्त[1] दप, भोज[2] और कुंचि[3] इसके अतिरिक्त अन्य भी थे। शकुनी और पूतना ये दो कन्यायें भी स्मरण की गयी हैं।।४३।। बलि के पुत्र और

१. वायुपुराण कुर्मानाभ, २. वायुपुराण गर्दभाक्ष, ३. वायु पुराण कुशि

बाणस्य चेन्द्रधन्वा तु लोहिन्यामुदपद्यत। दितिर्विहितपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्॥४५॥
तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्त्वथ। वरेण छंदयामास सा च वव्रे परं ततः॥४६॥
अथ तस्यै वरं प्रादात् प्रार्थितो भगवान्पुनः। उक्ते वरे तु सा तुष्टा दितिस्तं समभाषत॥४७॥
मारीचं कश्यपं देवी भर्त्तारं प्राजंलिस्तदा। हतपुत्राऽस्मि भगवन्नादित्यैस्तव सूनुभिः॥४८॥
शक्रहंतारमिच्छामि पुत्रं दीर्घतपोऽर्जितम्। साहं तपश्चरिष्यामि गर्भमाधातुमर्हसि॥४९॥
पुत्रमिंद्रवधे युक्तं त्वं मे वै दातुमर्हसि। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मारीचः कश्यपस्तदा॥५०॥
प्रत्युवाच महातेजा दितिं परमदुःखितः। एवं भवतु गर्भे तु शुचिर्भव तपोधने॥५१॥
जनयिष्यसि पुत्रं त्वं शक्रहंतारमाहवे। पूर्णं वर्षसहस्रं तु शुचिर्यदि भविष्यसि॥५२॥
पुत्रं त्रिलोकप्रवरं मन्मथं जनयिष्यसि। एवमुक्त्वा महातेजास्तथा समभवत्तदा॥५३॥
तामालभ्य स्वभवनं जगाम भगवानृषिः। गते भर्त्तरि सा देवी दितिः परमहर्षिता॥५४॥
कुशप्लवनमासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम्। शक्रस्तु समुपश्रुत्य संवादं तं तयोः प्रभुः॥५५॥
कुशप्लवनमागम्य दितिं वाक्यमभाषत। शुश्रूषां ते करिष्यामि मानुज्ञां दातुमर्हसि॥५६॥
समिधश्चहरिष्यामि पुष्पाणि च फलानि च। यथा त्वं मन्यसे वत्स शुश्रूषाभिरतो भव॥५७॥
सर्वकर्मसु निष्णात आत्मनो हितमाचर। वरं श्रुत्वा तु तद्वाक्यं मातुः शक्रः प्रहर्षितः॥५८॥

पौत्र सैकड़ों और हजारों हुए, जो विक्रान्तपौरुष वाले सभी वालेयगण नाम से विख्यात हुए।।४४।। इन्द्र के समान वाण की राजधानी लोहिनी थी। अपने पुत्रों के मर जाने पर दिति ने कश्यप को सेवा द्वारा सन्तुष्ट किया।।४५।। सम्यक् प्रकार की आराधना से प्रसन्न कश्यप ने वर के द्वारा दिति को प्रसन्न किया। तब उसके बाद उसने कश्यप से वर माँगा।।४६।। इसके बाद भगवान् कश्यप ने प्रार्थना किये जाने पर वर दे दयिा तया वर देने को कहे जाने पर सन्तुष्ट हुई दिति ने तब दिति देवी ने हाथ जोड़कर अपने पति मरीचि पुत्र कश्यप जी को कहा कि भगवन् आपके पुत्रों को अदिति के पुत्र आदित्यों (देवों) ने मार दिया है।।४८।।

अतः मैं देवों के स्वामी इन्द्र को मारने वाला जो अर्जित दीर्घतप है। इसलिये मैं उस तप को करूँगी। आप मुझे गर्भधारण करायें, जो इन्द्र का वध करने के लिए युक्त हो, ऐसा पुत्र आप मुझे प्रदान करें।।४९।। तब उसके वचन को सुनकर महातेजस्वी परमदुःखित मरीचिपुत्र कश्यप जी ने दिति से कहा।।५०।। तपस्विनी तुम प्रसन्न हो जाओ, ऐसा ही होगा, तुम्हारे गर्भ मे तुम युद्ध मे इन्द्र को मारने वाला पुत्र पैदा करोगी।।५१½।। तथा कश्यप जी ने कहा यदि हे पवित्रे! यदि पूरे एक हजार वर्ष तक पवित्र रहकर तप करोगी, तब तुम तीनों लोकों में श्रेष्ठ कामदेव पुत्र को उत्पन्न करोगी।।५१½-५२½।। तब इस प्रकार वरदान देकर महातेजस्वी भगवान् ऋषि कश्यप अपने घर चले गये।।५२½-५३½।। पति के चले जाने पर उस परम प्रसन्न दिति देवी ने कुश के आसन को प्राप्त कर कठोर तप किया।।५३½-५४½।। जब इन्द्र ने उन दोनों के इस संवाद को सुना तो उस कुश के आसन पर आकर दिति से इस वाक्य को बोले—।।५४½-५५½।। इन्द्र ने दिति से कहा कि मैं आपकी सेवा करूँगा, आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपकी के लिये समिधायें फूल फल आदि सब लाऊँगा।।५५½-५६½।। तब दिति ने प्रसन्न होकर इन्द्र से कहा कि पुत्र! जैसा तुम मानते हो, पुत्र सेवा मे अभिरत हो जाओ। सब कर्मों में निष्णात होकर अपनी भलाई का आचरण

शुश्रूषाभिरतो भूत्वा कलुषेणांतरात्मना। शुश्रूषते तु तां शक्रः सर्वकालमनुव्रतः॥५९॥
फलपुष्पाण्युपादाय समिधश्च दृढव्रतः। गात्रसंवाहनं काले श्रमापनयने तथा॥६०॥
शक्रः सर्वेषु कालेषु दितिं परिचचार ह। किंचिच्छिष्टे व्रते देवी तुष्टा शक्रमुवाच ह॥६१॥
प्रीताऽहं ते सुरश्रेष्ठ दशवर्षाणि पुत्रक। अवशिष्टानि भद्रं ते भ्रातरं द्रक्ष्यसे ततः॥६२॥
तमहं त्वत्कृते पुत्र सह धास्ये जयैषिणम्। त्रैलोक्यविजयं पुत्र भोक्ष्यसे सह तेन वै॥६३॥
नाहं पुत्राभिजानामि मद्भक्तिगतमानसम्। एवमुक्त्वा दितिः शक्रं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे॥६४॥

निद्रयापहृता देवी शिरः कृत्वा तु जानुनि।
केशान्कृत्वा तु पादस्थान्सा सुष्वाप च देवता॥६५॥

अधस्ताद्यत्तु नाभेर्वै सर्वं तदशुचि स्मृतम्। ततस्तामशुचिं ज्ञात्वा सोंतरं तदमन्यत॥६६॥
दृष्ट्वा तु कारणं सर्वं तस्य बुद्धिरजायत। गर्भं निहन्तु वै देव्या स हि दोषोऽत्र दृश्यते॥६७॥
ततो विवेश दित्या वै ह्युपस्थेनोदरं वृषा। प्रविश्य चापि तं दृष्ट्वा गर्भमिंद्रो महौजसम्॥६८॥
भीतस्तं सप्तधा गर्भं विभेद रिपुमात्मनः। स गर्भो भिद्यमानस्तु वज्रेण शतपर्वणा॥६९॥
रुरोद सुस्वरं भीमं वेपमानः पुनःपुनः। मारोद मारोद इति गर्भं शक्रोऽभ्यभाषत॥७०॥

करो।।५६½-५७½।। जब दिति ने इन्द्र को यह वर प्रदान कर दिया, तब कलुषित आत्मा वाले इन्द्र दिति की सेवा मे अभिरत हो गये।।५७½-५८½।। इसके बाद वे दृढ़प्रतिज्ञ इन्द्र अपना एक व्रत समझकर सब समय फलपुष्प और समिधा लेकर दिति की सेवा कर रहे थे।।५८½-५९½।। थकान दूर करने के समय पर शरीर का दबानाआदि इन्द्र ने सब समय दिति की सेवा की तथा जब तक उन्होने तपस्या की, वे सेवा करते रहे; परन्तु कुछ समय बचाव व प्रसन्न हुई दिति देवी ने इन्द्र से कहा।।५९½-६०½।। दिति ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम्हारे कल्याण के दशवर्ष और शेष रह गये हैं, उसके बाद तुम अपने भाई को देखोगे।।६०½-६२।। जय की कामना से युक्त परम पराक्रमी पुत्र को मैं तुम्हारे लिए प्राप्त करूंगा। उसके साथ तु तीनों लोकों की विजय करोगे।।६३।। मैं अपनी भक्तिगत मन वाले पुत्र को अच्छी तरह नहीं जानती हूँ, ऐसा कहकर सूर्य के दिन के मध्य होने पर दिति निद्रा से अभिभूत होकर इन्द्र के जंघाओ पर सिर रखकर के सो गयी।।६३-६४½।।

दोनों पैरों पर बाल बिखरने के कारण तथा उन बालों को नाभि से नीचे के स्थानों में पहुँचने पर वे अपवित्र हो गये; क्योंकि नाभि से नीचे के स्थान को अपवित्र कहा गया है।।६४½-६५½।। उसके बाद दिति को अपवित्र जानकर इन्द्र ने अपने मन में विचार किया और फिर उसने उस तपस्या के कारण पर विचार करके कि यह तप मुझे मारने वाले पुत्र की प्राप्ति के लिये किया जा रहा है। यह सब जानकर सोचा कि इसका गर्भ नष्ट कर दिया जाये, तब इन्द्र ने यह भी सोचा कि यह कार्य करना उचित नहीं है, यह करना पाप है; परन्तु शत्रु को मारना कोई पाप नहीं, ऐसा सब विचार कर इन्द्र ने उपस्थेन्द्रिय द्वारा दिति के गर्भ में प्रवेश किया अर्थात् इन्द्र ने उपस्थेन्द्रिय को दिति के गर्भ में प्रवेश कर दिया।।६५½-६७½।। प्रवेश करके इन्द्र ने उस महा ओजस्वी गर्भ को देखकर भयभीत हो अपने शत्रु गर्भ को सात भागो में विभक्त कर दिया।।६७½-६८½।। इन्द्र के उपस्थेन्द्रिय रूपी वज्र से सात भागो में तोड़ा गया वह गर्भ बार बार काँपता हुआ भयंकर और सुन्दर स्वर में रोने लगा। मत रोओ, मत रोओ, इस प्रकार गर्भ से इन्द्र ने कहा।।६८½-७०।।

तं गर्भं सप्तधा कृत्वा ह्येकैकं सप्तधा पुनः। कुलिशेन बिभेदेन्द्रस्ततो दिदिरभुध्यत॥७१॥
न हंतव्यो न हंतव्य इत्येवं दितिब्रवीत्। निष्पपात ततो वज्री मातुर्वचनगौरवात्॥७२॥
प्रांजलिर्वज्रसहितो दितिं शक्रोऽभ्यभाषत। अशुचिर्देवि सुप्तासि पादयोर्गतमूर्द्धजा॥७३॥
तदं तरमनुप्राप्य गर्भं हंतारमाहवे। भिन्नवानहमेतं ते बहुधा क्षन्तुमर्हसि॥७४॥
तस्मिंस्तु विफले गर्भे दितिः परमदुःखिता। सहस्राक्षं दुराधर्षं वाक्यं सानुनयाब्रवीत्॥७५॥
मापराधाद्गर्भोऽयं यदि ते विफलीकृतः। नापराधोऽस्ति देवेश तव पुत्र महाबल॥७६॥
शत्रोर्वधे न दोषोऽस्ति भेतव्यं न च ते विभो॥
प्रियं तु कृतमिच्छामि श्रेयो गर्भस्य मे कुतः॥७७॥
भवंतु मम पुत्राणां सप्त स्थानानि वै दिवि। वातस्कंधानिमान्सप्त चरंतु मम पुत्रकाः॥७८॥
मरुतस्ते तु विख्याता गतास्ते सप्तसप्तकाः। पृथिव्यां प्रथमस्कंधो द्वितीयश्चापि भास्करे॥७९॥
सोमे तृतीयो विज्ञेयश्चतुर्थो ज्योतिषां गणे। ग्रहेषु पञ्चमश्चैव षष्ठः सप्तर्षिमंडले॥८०॥
ध्रुवे तु सप्तमश्चैव वातस्कंधाश्च सप्त ये। तानेते विचरंत्वद्य कालेकाले ममात्मजाः॥८१॥
वातस्कंधाधिपा भूत्वा चरंतु मम पुत्रकाः। पृथिव्यां प्रथमस्कंध आ मेघेभ्यो य आवहः॥८२॥
चरंतु मम पुत्रास्ते सप्त ये प्रथमे गणे। द्वितीयश्चापि मेघेभ्य आ सूर्यात्प्रवहस्ततः॥८३॥

उसके बाद सात भागों में विभक्त उस गर्भ को फिर एक एक को सात सात भागों मे विमक्त कर दिया। उसके बाद दिति को ज्ञान हुआ और दिति ने इन्द्र से कहा कि अब इन्हें मत मारो, मत मारो।। उसके बाद वज्रधारी इन्द्र माता दिति के वचन के महत्व को मानकर उनके पैरों पर गिर गये और वज्रसहित हाथ जोड़कर दिति से इन्द्र ने कहा कि हे देवि! तुम पैरों पर सिर के बालों को गिराकर अपवित्र होकर सो गयी थी, उस अन्तर को मैंने प्राप्त कर युद्ध मे मुझे ही मारने वाले अपने शत्रु गर्भ को मैंने इसे तोड़ दिया। अतः हे मां! मुझे इसके लिए क्षमा करो।।७१-७४।। उसके बाद उस गर्भ के नष्ट होने से दिति बहुत दुःखी हुई और हजार नेत्रो वाले उस इन्द्र से इस प्रकार अनुनयसहित बोलीं।।७५।। हे इन्द्र! मेरे अपराध के कारण तुमने यह मेरा गर्भ विफल कर दिया। अतः इसमें महावली पुत्र देवेन्द्र! तुम्हारा कोई अपराध नहीं है।।७६।।

हे पुत्र! शत्रु का वध करने में कोई दोष नहीं है। अतः हे विभु! (ईश्वर) तुमको डरना नहीं चाहिये। मैं तुम्हारी भलाई ही करना चाहती हूं। तुम मेरे इस गर्भ का कल्याण करो।।७७।। मेरे इन सात पुत्रों के आकाश (स्वर्ग) में सात स्थान होवे तथा मेरे ये सातों पुत्र वायु के सात स्कन्ध बनकर विचरण करें।।७८।। उनके एक एक गण में सात सात मरुत् हों, इनका पहला स्कन्ध पृथ्वीतल पर हो, दूसरा सूर्यमण्डल में, तीसरा स्कन्ध चन्द्रमण्डल में हो, चौथा स्कन्ध तारागणो में हो, पाँचवा स्कन्ध ग्रहो में, छठा सप्तर्षिमण्डल मे हो और सातवां स्कन्ध ध्रुवमण्डल में होवे। इस प्रकार मेरे सातों पुत्र वायु के स्कन्ध वने तथा उपर्युक्त सभी स्थानों में मेरे पुत्र अव वायु बनकर समय समय पर विचरण करें।।७९-८१।। दिति ने आगे कहा कि ये मेरे सातों पुत्र वायु के स्कन्धों के अधिपति बनकर स्वतन्त्र विचरण करें। पृथिवी पर पहला स्कन्ध मेघों को वहन करने वाला बने अर्थात् बादलों को ढोने वाला बने।।८२।। तथा इस प्रथम गण में मेरे सातों मरुद्गण विचरण करें अर्थात् मेरे सात मरुद्गण प्रथम स्कन्ध पृथ्वी तल पर मेघो को ले जाने वाले बनकर विचरण करें, जो आवाह कहे जायें। मेरे दूसरे स्कन्द सातो मरुद्गण मेघो से लेकर अर्थात्

वातस्कंधो हि विज्ञेयो द्वितीयश्चरतां गणः। सूर्यादूर्ध्वमधः सोमादुद्वहोऽथ स वै स्मृतः॥८४॥
वातस्कंधस्तृतीयश्च पुत्राणां चरतां गणः। सोमादूर्द्धमधर्क्षेभ्यश्चतुर्थः संवहस्तु सः॥८५॥
चतुर्थो मम पुत्राणां गणस्तु चरतां विभो। ऋक्षेभ्यश्च तथैवोर्द्धमाग्रहाद्विवहस्तु यः॥८६॥
वातस्कंधः पंचमस्तु पुत्राणां चरतां गणः। ग्रहेभ्य ऊर्द्धवमाधिभ्यः षष्ठो ह्यनुवहश्च यः॥८७॥
वातस्कंधस्तत्र मम पुराणां चरतां गणः। ऋषिभ्य ऊर्द्धमाधौवं सप्तमो यः प्रकीर्त्तितः॥८८॥
वातस्कंध परिवहस्तत्र तिष्ठंतु मे सुताः। एतान्सर्वांश्चरंत्वेते कालेकाले ममात्मजाः॥८९॥
त्वत्कृतेन च नाम्ना वै भवंतु मरुतस्त्विमे। ततस्तेषां तु नामानि मत्पुत्राणां शतक्रतो॥९०॥
तद्विधैः कर्मभिश्चैव समवेहि पृथक्पृथक्। शक्रज्योतिस्तथा सत्यः सत्यज्यो तिस्तथापरः॥९१॥

चित्रज्योतिश्च ज्योतिष्मान् सुतपाश्चैत्य एव च।
प्रथमोऽयं गणः प्रोक्तो द्वितीयं तु निबोधत॥९२॥

ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा। सुतमित्रो ह्यमित्रश्च सुरमित्रस्तथापरः॥९३॥
गण एष द्वितीयस्तु तृतीयं च निबोधत। धातुश्च धनदश्चैव ह्युग्रो भीमस्तथैव च॥९४॥
वरुणश्च तृतीयं च मया प्रोक्तं निबोधत। अभियुक्ताक्षिकश्चैव साह्वायश्च गणः स्मृतः॥९५॥
ईदृक् चैव तथायादृक् ससरिद्द्रुमवृक्षकाः। मितश्च समितश्चैव पंचमश्च तथा गणः॥९६॥
ईदृक् च पुरुषश्चैव नान्यादृक् समचेतनः। संमितः समवृत्तिश्च प्रतिहर्ता च षड् गणाः॥९७॥

जहां तक मेघ रहते हैं, वहां से लेकर सूर्य तक बहते रहें, उनको प्रवह नामक द्वितीयगण के वायु स्कन्ध जाना जाये।।८३-८३½।। सूर्य से ऊपर और चन्द्रमा से नीचे उद्वह नाम मरुद्गण कहे जायें, जो तृतीय वायुस्कन्ध के विचरण करने वाले पुत्रों के गण हों।।८३½-८४½।। चन्द्रमा से ऊपर और नक्षत्रों से नीचे चौथा संवह नामक मरुद्गण होवे, जो मेरे विचरण करने वाले पुत्रों का चौथा गण होवे।।८४½-८५½।। उसी प्रकार नक्षत्रों से ऊपर और ग्रहों से नीचे विवह नामक मरुद्गण हो, जो मेरे विचरण करने वाले पुत्रों का पांचवां वात स्कन्ध होवे।।८५½-८६½।। ग्रहों के ऊपर और सप्तर्षि-मण्डल से नीचे छठा अनुवह नामक मरुद्गण होवे, जो वहां मेरे विचरण करने वाले पुत्रों का छठवां वायुस्कन्ध होवे।।८६½-८७½।।

सप्तर्षिमण्डल से ऊपर और ध्रुवमण्डल से नीचे, जो सातवां परिवह नामक वातस्कन्ध है, वहां पर मेरे सातवें खण्डित पुत्र विचरण करे। इस प्रकार इन सभी स्कन्धो में मेरे सभी पुत्र समय समय पर वचरण करें।।८७½-८९।। और तुम्हारे द्वारा 'मारुद' (मत रोओ) के कथन के आधार पर उनका नाम 'मरुत्' नाम से विख्यात होवे।।९०।। फिर दति ने कहा इन्द्र मेरे उन पुत्रो के नाम उनकी विधि और उनके कर्मों के अनुसार अलग-अलग समझो जो इस प्रकार हों—१. शक्र, २. ज्योति, ३. सत्य, ४. ज्योति, ५ चितज्योति, ६. ज्योतिष्मान् ७. सुतपा। यह मेरे प्रथमगण के सातों के नाम होवें तथा दूसरों के नाम इस प्रकार जानिये।।९१-९२।। वे हैं—१. ऋतजित्, २. सत्यजित्, ३. सुषेण, ४. सेनजित्, ५. सुतमित्र, ६. अमित्र, ७. सुरमित्र।।९३।। ये द्वितीय गण हैं, अब तृतीय को सुनिये—१. धातु, २. धनद, ३. उग्र, ४. भीम, ५. वरुण, ये तृतीयगण मरुद्गणो के नाम हैं।।९४-९४½।। १. अभियुक्त, २. आक्षिक, ३. साह्वाय तथा अन्य चार ये चतुर्थ मरुद्गणों के नाम हैं १. सरित्, २. द्रुम, ३. वृक्ष, ४. मित, ५. समित् आदि पंचम मरुद्गणों के नाम हैं।।९४½-९६।। १. ईदृक्, २. पुरुष, ३. अन्यादृक्, ४. समचेतन, ५.

यज्ञैश्चित्वाऽस्तुवन्सर्वे तथान्ये मानुषा विशः।
दैत्यदेवाः समाख्याताः सप्तैते सप्तसप्तकाः॥९८॥
एते ह्येकोनपंचाशन् मरुतो नामतः स्मृताः।
प्रसंख्यातास्तदा ताभ्यां दित्या शक्रेण चैव वै॥९९॥
कृत्वा चैतानि नामानि दितिरिंद्रमुवाच ह। वातस्कन्धांश्चरंत्वेते भ्रातरो मम पुत्रकाः॥१००॥
विचरंतु च भद्रं ते देवैः सह ममात्मजाः। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः पुरंदरः॥१०१॥
उवाच प्रांजलिर्भूत्वा मातर्भवतु तत्तथा। सर्व मेतद्यथोक्तं ते भविष्यति न संशयः॥१०२॥
एवंभूता महात्मानः कुमारा लोकसंमताः। देवैः सह भविष्यंति यज्ञभाजस्तवात्मजाः॥१०३॥
तस्मात्ते मरुतो देवाः सर्वे चेंद्रानुजा वराः। विज्ञेयाश्चामराः सर्वे दितिपुत्रास्तरस्विनः॥१०४॥
एवं तौ निश्चयं कृत्वा मातापुत्रौ तपोवने। जग्मतुस्त्रिदिवं दृष्टौ शक्रमाभूद्गतज्वरः॥१०५॥
मरुता च शुभं जन्म श्रृणुयाद्यः पठेच्च वा।
वादे विजयमाप्नोति लब्धात्मा च भवत्युत॥१०६॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे मरुदुत्पत्तिवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः॥५॥

संमित, ६. समवृत्ति, ७. प्रतिहर्ता ये छठे मरुद्गण हैं।।९७।। अन्य सब मानुषी प्रजायें यज्ञों द्वारा चुनकर बनायी गयी है। इस प्रकार दितिपुत्र देवता एक एक गण में सात सात की संख्या में थे।।९८।। इस प्रकार ये सात सात के सात मरुद्गण कुल मिलाकर उनचास विख्यात हैं तथा इन्द्र और दिति के द्वारा इनका नामकरण किया गया है।।९९।। इन सबका नामकरण करके दिति ने इन्द्र से कहा कि हे इन्द्र! ये तुम्हारे भाई और मेरे पुत्र वायुस्कन्ध होकर विचरण करें।।१००।। ये सब मेरे पुत्र देवताओ के साथ विचरण करें। दिति के उस वचन को सुनकर सहस्र नेत्र इन्द्र ने हाथ जोड़कर दिति से कहा कि हे मातः! जो तुम चाहती हो, वैसा ही होगा। जैसा तुमने कहा है, ठीक उसी के अनुसार तुम्हारा लाभ होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१०२।। इस प्रकार जो तुम्हारे पुत्र वातस्कन्ध हैं, वे संसार में सम्मान को प्राप्त करेंगे, महान् होंगे तथा देवों के साथ यज्ञभाग के भोगी बनेंगे।।१०३।। उसी कारण से मरुत् देवगण इन्द्र के श्रेष्ठ अनुज दिति के पुत्र तपस्वी देवगण जाने गये। इस प्रकार निश्चय कर वे माता और पुत्र दोनों तपोवन को चले गये, इन्द्र भी स्वर्ग को चले गये।।१०५।। मरुद्गणों के इस शुभ जन्म वृत्तान्त को जो सुनेगा अथवा पढ़ेगा अथवा इसका प्रवचन करेगा वह विजय प्राप्त करेगा और प्रतिष्ठित आत्मा वाला होगा।।१०६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद पाचवां अध्याय मरुद्गण की उत्पति वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

दनुवंशकीर्तनं नाम

षष्ठोऽध्यायः

सूत उवाच

अभवन्दनुपुत्रास्तु वंशे ख्याता महासुराः। विप्रचित्तिप्रधानास्तेऽचिंतनीयपराक्रमाः॥१॥
सर्वे लब्धवराश्चैव ते तप्ततपसस्तथा। सत्यसंधाः पराक्रांताः क्रूरा मायाविनश्च ते॥२॥
महाबलास्ते जवना ब्रह्मिष्ठा ये च साग्नयः। कीर्त्यमानान्मया सर्वान् प्राधान्येन निबोधत॥३॥
द्विमूर्द्धा शंबरश्चैव तथा शंकुरतो विभुः। शंकुकर्णो विपादश्च गविष्ठो दुंदुभिस्तथा॥४॥
अयोमुखस्तु मघवान्कपिलो वामनो मयः। मरीचिरसिपाश्चैव महा मायोऽशिरा भृशी॥५॥
विक्षोभश्च सुकेतुश्च केतुवीर्यशताह्वयौ। इंद्रजिद्विविदश्चैव तथा भद्रश्च देवजित्॥६॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः। वैश्वानरः पुलोमा च प्रापणोऽथ महाशिराः॥७॥
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च पुरंडश्च महासुरः। धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चंद्रमा इन्द्रतापनः॥८॥
सूक्ष्मश्चैव निचंद्रश्च चूर्णनाभो महागिरिः। असिलोमा सुकेशश्च शठश्च मूलकोदरः॥९॥
जम्भो गगनमूर्द्धा च कुंभमानो महोदकः। प्रमदोऽद्मश्च कुपथो ह्यश्वग्रीवश्च वीर्यवान्॥१०॥
वैमृगः सविरूपाक्षः सुपथश्च हलाहलौ। अक्षो हिरण्मयश्चैव शतग्रीवश्च शंबरः॥११॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–६

दनुवंश कीर्तन

सूत जी ने कहा—अब दानवों को सुनिये—ये दनु के पुत्र अपने वंश में प्रसिद्ध महान् असुर थे, उनमें सबसे प्रधान 'विप्रचित्ति' नामक असुर थे।।१।। वे सब दानव वर प्राप्त तपस्या से तपे हुए, सत्य, प्रतिज्ञ, शत्रुओं को भयभीत करने वाले, क्रूर और मायावी थे।।२।। वे सब महाबलवान्, जवन, ब्रह्म में निष्ठा रखने वाले और अग्निहोत्री थे। अब मेरे द्वारा कहे गये प्रधानता से उनके नामों को सुनिये।।३।। १. द्विमूर्ध, २. शंबर, ३. शङ्कुर, ४. विभु, ५. शङ्कुकर्ण, ६. विपाद, ७. गविष्ठ, ८. दुन्दुभि, ९. अयोमुख, १०. मघवा, ११. कपिल, १२. वामन, १३. मय, १४. मरीचि, १५. रसिपा, १६. महामाया, १७. अशिरा, १८. भृशी, १९. विक्षोभ, २०. सुकेत, २१. केतुवीर्य, २२. शताह्वय, २३. इन्द्रजित्, २४. द्विविद, २५. भद्र, २६. देवजित्, २७. एकचक्र, २८. महाबाहु, २९. तारक, ३०. महाबल, ३१. वैश्वानर, ३२. पुलोमा, ३३. प्रापण, ३४. महाशिर, ३५. स्वर्भानु, ३६. वृषपर्वा, ३७. पुरण्ड, ३८. महासुर, ३९. धृतराष्ट्र, ४०. सूर्य, ४१. चन्द्रमा, ४२. इन्द्रतापन, ४३. सूक्ष्म, ४४. निचन्द्र, ४५. चूर्णनाभ, ४६. महागिरि, ४७. असिलोमा, ४८. सुकेश, ४९. शठ, ५०. मूलकोदर, ५१. जम्भ, ५२. गगनमूर्धा, ५३. कुम्भमान, ५४. महोदक, ५५. प्रमद, ५६. अद्म, ५७. कुपथ, ५८. हयग्रीव, ५९. वीर्यवान्, ६०. वैमृग, ६१. विरूपाक्ष, ६२. सुपथ, ६३. हला, ६४. हल, ६५. अक्ष, ६६. हिरण्मय, ६७. शतग्रीव, ६८.

शरभः शलभश्चैव सूर्याचंद्रमसावुभौ। असुराणां स्मृतावेतौ सुराणां च प्रभाविणौ॥१२॥
इति पुत्रा दनोर्वंशप्रधानाः परिकीर्त्तिताः। तेषामपरिसंख्येयं पुत्रपौत्रमनंतकम्॥१३॥
इत्येत असुराः क्रांता दैतेया दानवास्तथा। सुत्वानस्तु स्मृता दैत्या असुत्वानो दनोः सुताः॥१४॥
इमे च वंशानुगता दनोः पुत्रान्वयाः स्मृताः। एकाक्षेश्चप्रभारिष्टः प्रलंबनरकावपि॥१५॥
इंद्राबाधनकेशी च पुरुषः शेपवानुरुः। गरिष्ठश्च गवाक्षश्च तालकेतुश्च वीर्यवान्॥१६॥
एते मनुष्या वध्यास्तु दनुपुत्रान्वयाः स्मृताः। दैत्यदानवसंयोगे जाता भीमपराक्रमाः॥१७॥
सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुता इमे। सैंहिकेयाः समाख्याताश्चतुर्दश महासुराः॥१८॥
शलश्च शलभश्चैव सव्यसिव्यस्तथैव च। इल्वलो नमुचिश्चैव वातापिस्तु सुपुंजिकः॥१९॥
हरकल्पः कालनाभो भौमश्च कनकस्तथा। राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै सूर्यचंद्रप्रमर्द्दनः॥२०॥
इत्येत सिंहिकापुत्रा देवैरपि दुरासदाः। दारुणाभिजनाः क्रूराः सर्वे ब्रह्महणश्च ते॥२१॥
दश तानि सहस्राणि सैंहिकेया गणाः स्मृताः। निहता जामदग्न्येन भार्गवेण बलीयसा॥२२॥
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता। उपदानवी सदस्याथ शर्मिष्ठा वृषपर्वणः॥२३॥
पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे। प्रभायां नहुषः पुत्रो जयंतस्तु शचीसुतः॥२४॥

शबर, ६९. शरभ, ७०. शलभ। ये सत्तर प्रमुख दानव कहे गये हैं। सूर्य और चन्द्रमा भी इसमें कहे गये हैं। अतः सूर्य और चन्द्रमा पहले असुरों के देवता थे, इस समय वे देवताओं के देवता हैं।।४-१२।। इस प्रकार ये सब दनु के वंश के प्रधान देवता कहे गये हैं, उनके पुत्र और पौत्रों की संख्या अनन्त है।।१३।।

इस प्रकार ये सब दिति के पुत्र दैत्य और दनु के पुत्र दानव जो असुर नाम से कहे गये हैं, उनका वृत्तान्त कहा जा चुका है। जो सुत्वान् (राहु) हैं, वे दैत्य कहे गये हैं और असुत्वान् (केतु) वे दानव कहे गये हैं।।१४।। ये उपर्युक्त वंशपरम्परागत दनु के पुत्र कहे गये हैं। १. एकाक्ष, २. ऋषभ, ३. अरिष्ट, ४. प्रलम्ब, ५. नरक, ६. इन्द्रबाधन, ७. केशी, ८. पुरुष, ९. शेषवान्, १०. उरु, ११. गरिष्ठ, १२. गवाक्ष, १३. वीर्यवान् और १४. तालकेतु ये सब चौदह मनुष्य रूप थे और वध्य भी थे अर्थात् मनुष्य की भाँति मरणशील थे। इस प्रकार ये दनु पुत्र बताये गये हैं। दैत्य और दानवों के मिल जाने पर ये सब भीम पराक्रमी पैदा होते थे अर्थात् दैत्य और दानव के स्त्रीपुरुषों के संयोग पर महान् पराक्रमी पैदा होते थे।।१५-१७।। ये सब महाभयंकर पराक्रमी पुत्र विप्रचित्ति नामक प्रधान दानव से सिंहिका में उत्पन्न हुए थे तथा वे सब चौदह महान् असुर सैंहिकेय नाम से विख्यात हुए।।१८।।

वे हैं—१. शल, २. शलभ, ३. सव्य, ४. सिव्य, ५. इल्वल, ६. नमुचि, ७. वातापि, ८. सुपुंजिक, ९. हरकल्प, १०. काल, ११. नाभ, १२. भौम, १३. कनक और १४. राहु जो ज्येष्ठ पुत्र था तथा वह सूर्य और चन्द्रमा को कष्ट देने वाला था।।१८-२०।। इस प्रकार ये सिंहिका पुत्र थे, जो देवताओं द्वारा भी कठिनाई से जीतने योग्य थे। सबके सब अत्यधिक क्रूर और दारुणचित्तवृत्ति वाले तथा ब्रह्म हत्यारे थे।।२१।। वे दश हजार सैंहिकेय गण स्मरण किये गये हैं, जो भृगुवंशी जमदग्नि पुत्र बलशाली परशुराम द्वारा मारे गये।।२२।। स्वर्भानु (राहु) की प्रभा नाम की कन्या थी और पुलोमा की शची नाम की पुत्री थी। उपदानवी मय दानव की पुत्री थी और वृषपर्वा दैत्य की पुत्री शर्मिष्ठा थी।।२३।। वैश्वानर की पुलोमा और कालिका दो पुत्रियां थीं। उनमें से प्रभा का पुत्र नहुष और शची का पुत्र जयन्त हुआ।।२४।।

पुरुं जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यंतमुपदानवी। वैश्वानरसुते एते पुलोमा कालका तथा॥२५॥
बह्वपत्यं उवं कन्ये मारीचस्य परिग्रहः। तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवपुंगवाः॥२६॥
चतुर्दश तथान्यानि हिरण्यपुरवासिनम्। पोलोमाः कालकेयाश्च दानवाः सुमहाबलाः॥२७॥
अवध्या देवतानां ते निहताः सव्यसाचिना।
मयस्य जाता रंभायां पुत्राः षट् च महाबलाः॥२८॥
मायावी दुंदुभिश्चैव पुत्रश्च महिषस्तथा। कालिकश्चाजकर्णश्च कन्या मंदोदरी तथा॥२९॥
दैत्यानां दानवानां च सर्ग एष प्रकीर्त्तितः। अनायुषायाः पुत्रास्ते स्मृताः पंच महाबलाः॥३०॥
अररुर्बलवृत्रौ च विज्वरश्च वृषस्तथा। अररोस्तनयः क्रूरा धुंधुर्नाम महासुरः॥३१॥
निहतः कुवलाश्वेन उत्तंकवचनाद्बिले। बलपुत्रौ महावीर्यौ तेजसाऽप्रतिमावुभौ॥३२॥
निकुंभश्चक्रवर्मा च स कर्णः पूर्वजन्मनि। विजरस्यापि पुत्रौ द्वौ कालकश्च खरश्च तौ॥३३॥
वृषस्य तु पुनः पुत्राश्चत्वारः क्रूरकर्मणः। श्राद्धातो यज्ञहा चैव ब्रह्महा पशुहा तथा॥३४॥
क्रांता ह्यनायुषः पुत्रा वृत्रस्यापि निबोधत। जज्ञिरेऽसुमहाघोरा वृत्रस्येंद्रेण युध्यता॥३५॥
बका नाम समाख्याता राक्षसाः सुमहाबलाः।
शतं तानि सहस्राणि महेन्द्रानुचराः स्मृताः॥३६॥
सर्वे ब्रह्मविदः सौम्या धार्मिकाः सूक्ष्ममूर्त्तयः। प्रजास्वंतर्गताः सर्वे निवसंति क्रुधावृताः॥३७॥

शर्मिष्ठा ने पुरु को और उपदानवी ने दुष्यन्त को जन्म दिया। वैश्वानर की ये पुलोमा तथा कालका जो दो पुत्रियां थीं।।२५।। वे दोनों की कन्यायें मरीचि की पत्नी थी तथा बहुत सन्तानों वाली हुईं। उनके साठ हजार श्रेष्ठ दानव पुत्र हुए।।२६।। इसके अतिरिक्त हिरण्यपुरवासियों के चौदह हजार अन्य पुत्र थे, पुलोमा और कालका से उत्पन्न पौलोम और कालकेय नामक दानव बहुत ही बलशाली थे।।२७।। वे सब देवों द्वारा भी अवध्य थे, जो सव्यसाची द्वारा मारे गये, मय दानव के रम्भा में छः महाबली पुत्र पुत्री उत्पन्न हुए।।२८।

वे हैं—१. मायावी, २. दुन्दुभि, ३. महिष, ४. कालिक और ५. अजकर्ण ये पुत्र तथा ६. मन्दोदरी कन्या हुई।।२९।। इस प्रकार दैत्य और दानवो का सर्ग पूरी तरह वर्णन किया गया है। दनायुषा के पांच महाबली पुत्र कहे जाते थे।।३०।। वे हैं—१. अररु, २. बल, ३. वृत्र, ४. विज्वर और ५. वृष। अररु का पुत्र धुंधु नामका महान् असुर था।।३१।। उस धुन्धु नामक असुर का वध उतंक के वचन से कुवलाश्व ने किया। बलि के दो बलवान् पुत्र थे, जो महापराक्रमी तथा दोनों ही तेज अनुपम थे।।३२।। बलि के दोनो पुत्रों का नाम निकुम्भ और चक्रवर्मा था तथा बलि पूर्वजन्म में कर्ण थे। विजर के दो पुत्र हुए वे दोनों कालक और खर नामक थे।।३३।। वृष के फिर चार पुत्र क्रूरकर्मा थे। जो श्राद्धहा, यज्ञहा, ब्रह्महा तथा पशुता नाम से विख्यात थे।।३४।।

अनायुष के पुत्रों तथा वृत्र के क्रान्तिकारी पुत्रों को सुनिये, जो इन्द्र से वृत्र का युद्ध होते समय उत्पन्न हुए थे।।३५।। वे सब महाबली राक्षस वक नाम से विख्यात हुए। उनमें एक लाख तो महेन्द्र (शिव) के अनुचर स्मरण किये गये हैं।।३६।। वे सभी ब्रह्मज्ञानी, सौम्य, धार्मिक तथा सूक्ष्ममूर्तिधारी हैं। प्रजा के अन्तर्गत वे सभी विद्वानों से आवृत्त होकर निवास करते थे।।३७।।

क्रोधा त्वप्रतिमान्पुत्रान् जज्ञे वै गायनोत्तमान्।
सिद्धः पूर्णश्च वह्नी च पूर्णांशश्चैव वीर्यवान्॥३८॥
ब्रह्मचारी शतगुणः सुपर्णश्चैव सप्तमः। विश्वावसुश्च भानुश्च सुचंद्रो दशमस्तथा।
इत्येते देवगंधर्वाः क्रोधायाः परिकीर्त्तिताः॥३९॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे दनुवंशकीर्तनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

काश्यपेयवर्णनं नाम

सप्तमोऽध्यायः

सूत उवाच

गन्धर्वाप्सरसः पुत्रा मौनेयास्तान्निबोधत। भीमसेनोग्रसेनौ च सुपर्णो वरुणस्तथा॥१॥
धृतराष्ट्रश्च गोमांश्च सूर्यवर्चास्तथैव च। पत्रवानर्कपर्णश्च प्रयुतश्च तथैव हि॥२॥
भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यातः सर्वजिद्वशी। त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः॥३॥
कलिः पंचदशस्तेषां नारदश्चैव षोडशः। इत्येते देवगन्धर्वा मौनेयाः परिकीर्त्तिताः॥४॥

क्रोधा ने उत्तम गायन करने वाले पुत्रों को जन्म दिया, वे हैं—सिद्ध, पूर्ण, वह्नी, पूर्णांश, वीर्यवान्, ब्रह्मचारी, शतगुण और सातवां सुपर्ण, विश्वावसु, भानु तथा दशवां सुचन्द्र। इस प्रकार ये सब देवगन्धर्व क्रोधा के पुत्र कहे गये हैं।।३९।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद छठवां अध्याय दनुवंश कीर्तन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–७

कश्यपवंश वर्णन

सूत जी ने कहा हे ऋषि वृन्द! पूर्व अध्याय में गन्धर्व और अप्सराएं और मुनि की सन्ततियां कही गयी हैं, उन्हें सुनिये। वे हैं—१. भीमसेन, २. उग्रसेन, ३. सुपर्ण, ४.वरुण, ५. धृतराष्ट्र, ६. गोमान्, ७. सूर्यवर्चा, ८. पक्षवान्, ९. अर्कपर्ण, १० प्रयतु, ११. भीम, १२. चितरथ और विख्यात सबको जीतने वाले जितेन्द्रिय तेरहवे साल शिरा चौदहवे पर्जन्य ने उनमें कलि पन्द्रहवें थें, सोलहवे नारद थे, इस प्रकार ये मुनि से उत्पन्न देवगन्धर्व कहे गये।।१-४।।

चतुर्विंशाश्चावरजास्तेषामप्सरसः शुभाः। अरुणा चानपाया च विमनुष्या वरांबरा॥५॥
मिश्रकेशी तथाचासिपर्णिनी चाप्यलंबुषा। मारीचिः शुचिका चैव विद्युत्पर्णा तिलोत्तमा॥६॥
अद्रिका लक्ष्मणा क्षेमा दिव्या रंभा मनोभवा। असिता च सुबाहूश्च सुप्रिया सुभुजा तथा॥७॥
पुंडरीकाऽजगन्धा च सुदती सुरसा तथा। तथैवास्याः सुबाहूश्च विख्यातौ च हहाहुहू॥८॥
तुंबुरुश्चेति चत्वारः स्मृता गन्धर्वसत्तमाः। गन्धर्वाप्सरसो ह्येत मौनेयाः परिकीर्त्तिताः॥९॥
हंसा सरस्वती चैव सूता च कमलाभया। सुमुखी हंसपादी च लौकिक्योऽप्सरसः स्मृताः॥१०॥

हंसो ज्योतिष्टोमो मध्य आचारस्त्विह दारुणः।
वरूथोऽथ वरेण्यश्च ततो वसुरुचिः स्मृतः॥११॥

अष्टमः सुरुचिस्तेषां ततो विश्वावसु स्मृतः। सुषुवे सा महाभागा रिष्टा देवर्षिपूजिता॥१२॥
अरूपां सुभगां भासीमिति त्रेधा व्यजायत। मनुवंती सुकेशी च तुंबरोस्तु सुते शुभे॥१३॥
पंचचूडास्त्विमा विद्यादेवमप्सरसो दश। मेनका सहजन्या च पर्णिनी पुंजिकस्थला॥१४॥

कृतस्थला घृताची च विश्वाची पूर्वचित्त्यपि।
प्रम्लोचेत्यभिविख्याताऽनुम्लोचैव तु ता दश॥१५॥

अनादिनिधनस्याथ जज्ञे नारायणस्य या। कुलोचितानवद्यांगी उर्वश्येकादशी स्मृता॥१६॥
मेनस्य मेनका कन्या जज्ञे सर्वांगसुन्दरी। सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यो महाभागाश्च ताः स्मृताः॥१७॥
गणास्त्वप्सरसां ख्याताः पुण्यास्ते वै चतुर्दश। आहृत्यः शोभवत्यश्च वेगवत्यस्तथैव च॥१८॥

इनमें चौवीस कल्याणी अप्सराएं हैं, जिनके नाम हैं—१. अरुणा, २. अनपाया, ३. विमनुष्या, ४. पराम्बरा, ५. मिश्रकेशी, ६. असिपर्णिनी, ७. अलम्बुषा, ८. मारीचि, ९. शुचिका, १०. विद्युत्पर्णा, ११. तिलोत्तमा, १२. अद्रिका, १३. लक्ष्मणा, १४. क्षेमा, १५. दिव्या, १६. रम्भा, १७. मनोभवा, १८. असिता, १९. सुबाहु, २०. सुप्रिया तथा २१. सुभुजा, २२. पुण्डरीका, २३. अजगन्धा, २४. सुदती ये २४ अप्सरायें हुई तथा सुरसा और सुबाहु, हहाहुहू और तुम्बरू ये चार गन्धर्व श्रेष्ठ कहे गये हैं। ये गन्धर्व अप्सरायें मुनियों की सन्तान कही गयी हैं।।५-९।। १. हंसा, २. सरस्वती, ३. सूता, ४. कमलामया, ५. सुमुखी और ६. हंसपदी ये छः लौकिक अप्सरायें कही गयी हैं।।१०।। हंस, ज्योतिष्टम्, इनके मध्य 'आचार' वरुथ, वरेण्य उसके बाद वसुरुचि स्मरण किये गये तथा उनमें आठवें सुरुचि उसके बाद विश्ववसु स्मरण की गयी। वह महाभागा विश्वावसु देवों और ऋषियों से पूजित होकर शोभित होती थीं।।११-१२।। अरूपा, सुभगा और भासी इन तीन प्रकार की अप्सराओं को उत्पन्न किया। मनुवंती और सुकेशी ये दो तुम्बरु की पुत्रियां थीं।।१३।।

ये पंचचूडा नामक देवों की अप्सरायें दश हैं—१. मेनका, २. सहजन्या, ३. पर्णिनी, ४. पुंजिकस्थला, ५. कृतस्थला, ६. घृताची, ७. विश्वाची, ८. पूर्वचित्ति, ९. प्रम्लोचा और दशवीं अनुम्लोचा इस प्रकार वे दश हैं।।१४-१५।। तथा जिनका न आदिकाल है और न निधनकाल है अर्थात् जो अनादि और अनन्त हैं, उन नारायण की कन्या उर्वशी उत्पन्न हुई, जो ग्यारहवीं अप्सरा स्मरण की गयी।।१६।। मेन गन्धर्व की सर्वाङ्ग सुन्दरी मेनका कन्या उत्पन्न हुई, वे सभी अप्सरायें महाभाग्यशालिनी और ब्रह्मवादिनी कही गयीं।।१७।। ये अप्सराओं के चौदह

ऊर्ज्जाश्चैव युवत्यश्च स्रुचस्तु कुरवस्तथाश्च। वर्हयश्चामृताश्चैव मुदाश्च मृगवो रुचः॥१९॥
भीरवः शोभयंत्यश्च गणा ह्येते चतुर्दश। ब्रह्मणो मानसाहत्यः शोभवत्यो मरुत्सुताः॥२०॥
वेगवत्यश्चरिष्टाया ऊर्ज्जाश्चैवाग्निसंभवाः। युवत्यश्च तथा सूर्यरश्मिजाताः सुशोभनाः॥२१॥
गभस्तिभिश्च सोमस्य जज्ञिरे कुरवः शुभाः। यज्ञोत्पन्ना स्रुचो नाम कुशवत्यां च बर्हयः॥२२॥
वारिजा ह्यमृतोत्पन्ना अमृता नामतः स्मृताः। वायूत्पन्ना मुदा नाम भूमिजा मृगवस्तथा॥२३॥
विद्युतोऽत्र रुचो नाम मृत्योः कन्याश्च भीरवः।
शोभयंत्यश्च कामस्य गणाः प्रोक्ताश्चतुर्दश॥२४॥
इत्येते बहुसाहस्रा भास्वरा अप्सरोगणाः। देवतानामृषीणां च पत्न्यश्च मातरश्च॥२५॥
सुगंधाश्चाथ निष्यंदा सर्वाश्चाप्सरसः समाः। संप्रयोगस्तु कामेन माद्यं दिवि हरं विना॥२६॥
तासां देवर्षि संस्पर्शा जाताः साधारणा यतः। पर्वतस्तत्र संभूतो नारदश्चैव तावुभौ॥२७॥
ततो यवीयसी चैव तृतीयारुंधती स्मृता। देवर्षिभ्यस्तयोर्जन्म यस्मान्नारदपर्वतौ॥२८॥
तस्मात्तौ तत्सनामानौ स्मृतौ नारदपर्वतौ। विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ अरुणो गरुडश्च ह॥२९॥
गायत्र्यादीनि छंदांसि सौपर्णेयानि पक्षिणः। व्यवहार्याणि सर्वाणि ऋजुसन्निहितानि च॥३०॥
कद्रूर्नागसहस्रं वै विजज्ञे धरणीधरम्। अनेकशिरसां तेषां खेचराणां महात्मनाम्॥३१॥

पुण्यशाली विख्यात गण कहे गये हैं। वे हैं—१. आहतीगण, २. शोभावतीगण, ३. वेगवतीगण, ४. ऊर्ज्जागण, ५. युवतीगण, ६. स्रुक्गण, ७. कुरुगण, ८. वर्हिगण, ९. अमृतगण, १०. मदुगण, ११. मृगुगण, १२. रुचगण, १३. भीरुगण, १४. शोभयन्तीगण। ये १४ गण हैं। ये ब्रह्मा की मानस कन्यायें शोभावती मरुद्‌गणो की कन्यायें हैं।।१८-२०।। वेगवतीगण की अप्सरायें रिष्टा से तथा ऊर्ज्जागण की अप्सरायें सूर्य की किरणों से पैदा हुई हैं।।२१।। कुरुगणीय शुभ अप्सरायें चन्द्रमा की किरणों से पैदा हुई हैं, स्रुक् गण की अप्सरायें यज्ञ से उत्पन्न हुई हैं तथा वर्हिगण की उत्पत्ति कुशों से हुई है।।२२।। अमृत गणीय अप्सरायें जल से उत्पन्न हुई हैं; इसलिये उन्हें अमृता नाम से कहा गया है। वायु से उत्पन्न मुदा हैं तथा भूमि से उत्पन्न भृगु गणीय अप्सरायें हैं।।२३।। रुच अप्सरायें विद्युत् से पैदा हुई हैं तथा भीरु मृत्यु की कन्यायें हैं। शोभयन्तीगण की अप्सरायें कामदेव की सन्तानें हैं। इस प्रकार ये चौदह गण कहे गये हैं।।२४।।

इस प्रकार ये हजारों वहुत ही सुन्दरी अप्सराओं के गण हैं। ये अप्सरायें देवों और ऋषियों की मातायें और पत्नियां थीं।।२५।। सुगन्धा और निष्यंदा ये दोनों अप्सराओं के समान सुन्दरियां थीं, जिनका स्वर्ग में शंकर के विना कामदेव से संप्रयोग (संभोग) हुआ। उन अप्सराओं के देवर्षियों से संस्पर्श हुआ, तब वहां पर्वत और नारद दो पुत्र उत्पन्न हुए।।२६-२७।। उसके बाद यवीयसी और अरुन्धती नाम की कही गयी हैं, उन दोनों का जन्म देवर्षियों से हुआ था, जिससे नारद और पर्वत पैदा हुए। उसी कारण से उनके नाम नारद और पर्वत हुए।।२८-२८½।। विनता के दो पुत्र अरुण और गरुड़ पैदा हुए तथा गायत्री आदि छन्द एवं गरुड़ नाम पक्षी पैदा हुए, जो सबके सब व्यवहार के योग्य थे तथा छन्दादि ऋग्वेद के मन्त्रों से युक्त हैं। अर्थात् गरुड़ देवताओं के वाहन थे तथा गायत्री आदि छन्दों का ऋग्वेद में व्यवहार किया जाता था।।२८½-३०।। विनता से कद्रू नामक हजारों धरणीधर नाग उत्पन्न हुए। उन आकाशगामी महान् आत्माओं के अनेकों शिर और अनेकों नाम थे, जिन प्रधानों का वर्णन सुनिये, उन नागों में प्रधान

बहुत्वान्नामधेयानां प्रधानांश्च निबोधत। तेषां प्रधानां नागानां शेषवासुकितक्षकाः॥३२॥
अकर्णो हस्तिकर्णश्च पिंजरश्चार्यकस्तथा। ऐरावतो महापद्मः कंबलाश्वतरावुभौ॥३३॥
एलापत्रश्च शंखश्च कर्कोटकधनंजयौ। महाकर्णमहानीलौ धृतराष्ट्रबलाहकौ॥३४॥
करवीरः पुष्पदंष्ट्रः सुमुको दुर्मुखस्तथा। सूनामुखो दधिमुखः कालियश्चालिपिण्डकः॥३५॥
कपिश्चांबरीषश्च अक्रूरश्च कपित्थकः। प्रह्लादस्तु ब्रह्मणश्च गंधर्वोऽथ मणिस्थकः॥३६॥
नहुषः कररोमा च मणिरित्येवमादयः। काद्रवेयाः समाख्याताः खशायास्तु निबोधत॥३७॥
खशा विजज्ञे द्वौ पुत्रौ विकृतौ परुषव्रतो। श्रेष्ठं पश्चिमसंध्यायां पूर्वस्यां च कनीयसम्॥३८॥
विलोहितैककर्णं च पूर्वं साऽजनयत्सुतम्। चतुर्भुजं चतुष्पादं किंचित्स्पंदं द्विधागतिम्॥३९॥
सर्वांगकेशं स्थूलांगं शुभनासं महोदरम्। स्वच्छशीर्षं महाकर्णं मुञ्जकेशं महाबलम्॥४०॥
ह्रस्वास्यं दीर्घजिह्वं च बहुदंष्ट्रं महाहनुम्। रक्तपिंगाक्षपादं च स्थूलभ्रूदीर्घनासिकम्॥४१॥
गुह्यकं शितिकंठं च महापादं महामुखम्। एवंविधं खशापुत्रं जज्ञेऽसावतिभीषणम्॥४२॥
तस्यानुजं द्वितीयं सा ह्युषस्यंते व्यजायत। त्रिशीर्षं च त्रिपादं च त्रिहस्तं कृष्णलोचनम्॥४३॥
ऊर्द्धकेशं हरिच्छ्मश्रुं शिलासंहननं दृढम्। ह्रस्वकायं प्रबाहुं च महाकायं महावरम्॥४४॥
आकर्णदारितास्यं च बलवत्स्थूलनासिकम्। स्थूलौष्ठमष्टदंष्ट्रं च जिह्वास्यं शंकुकर्णकम्॥४५॥
पिंगलोद्वृत्तनयनं जटिलं द्वंद्वपिंडकम्। महास्कन्धं महोरस्कं पृथुघोणं कृशोदरम्॥४६॥

शेषनाग वासुकि और तक्षक थे।।३१-३२।। अकर्ण, हस्तिकर्ण, पिञ्जर, आर्यक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, सूनामुख, दधिमुख, कालिय, लिपिण्डक, कपिल, अम्बरीष, अक्रूर, कपित्यक, प्रह्लाद, ब्रह्मण, गन्धर्व, मणिस्थंक, नहुष, कररोमा, मणि, आदि ये सब अन्य नागगण हैं।। ये सब उपर्युक्त कद्रू की सन्तानों का वर्णन किया गया अब स्वशा की सन्तानों का वर्णन सुनिये।।३३-३७।। श्वशा ने दो पुत्रों को विकृत और परुषव्रत को जन्म दिया। पश्चिम सन्ध्या में श्रेष्ठ को और पूर्वसन्ध्या में कनीयस् को पैदा किया।।३८।। विलोहित एककर्ण पुत्र को उसने पहले ही जन्म दिया था, जो चार भुजाओं वाला चार पैरों वाला कुछ फड़कता हुआ दोनों ओर आगे और पीछे चलने वाला था, जिसके समस्त शरीर पर बाल (केश) थे तथा बहुत मोटे शरीर वाला था, शुभनासा और बहुत बड़ा पेट था, जिसका साफ-सुथरा शिर था, बड़े-बड़े कान थे तथा वह बहुत ही बलशाली था।।३९-४०।।

उसका मुख छोटा और लम्बी जिह्वा थी, बहुत बड़े दांत और विशाल ठोड़ी थी, जिसकी आँखें लाल और पीली थीं तथा मोटी भौंहें और लम्बी नासिका थी।।४१।। जिसकी (गुह्यक) (शितिकण्ठ) छोटी गर्दन बड़े बड़े पैर और बहुत बड़ा मुख था। इस प्रकार अत्यन्त भयंकर खशा का पुत्र उत्पन्न हुआ।।४२।। खशा का दूसरा पुत्र अन्त, उषा में पैदा हुआ, जिसके तीन शिर, तीन पैर, तीन हाथ और काली आंखे थीं।।४३।। जिसके ऊपर उठे केश थे, हरे रंग की दाढ़ी एवं मजबूत पत्थर के समान सहनन (कंधे) थे। जिसका छोटा शरीर बड़ी-बड़ी भुजाये अर्थात् शरीर की अपेक्षा भुजायें बड़ी थी तथा शरीर भीबहुत विशाल था तथा बहुत ऊँची आवाज थी अर्थात् घोर गर्जना थी।।४४।। तथा उसका मुख कानों तक फैला हुआ था तथा बहुत अधिक मोटी नासिका थी। मोटा ओष्ठ और आठ दाँत थे तथा जीभ और मुख शंकुकर्णक था।।४५।। जिसके नेत्र पीले और गोल थे तथा पिण्डियां (घुटने से नीचे का भाग) बहुत

अस्थूलं लोहितं ग्रीवलंबमेढ्रांडपिंडकम्। एवंविधं कुारं सा कनिष्ठं समसूयत॥४७॥
सद्यः प्रसूतमात्रौ तौ विवृद्धौ च प्रमादतः। उपयोगसमर्थाभ्यां शरीराभ्यां व्यवस्थितौ॥४८॥
सद्योजातौ विवृद्धांगौ मातरं पर्यकर्षताम्। तयोः पूर्वस्तु यः क्रूरो मातरं सोऽभ्यकर्षत॥४९॥
ब्रुवंश्च मातर्भक्षाव रक्षार्थं क्षुधयार्दितः। न्यषेधयत्पुनर्ह्येन स्वयं स तु कनिष्ठकः॥५०॥
पूर्वेषां क्षेमकृत्त्वं वै रक्षैतां मातरं स्वकाम्। बाहुभ्यां परिगृह्येन मातरं सोऽभ्यभाषयत्॥५१॥
एतस्मिन्नेव काले तु प्रादुर्भूतस्तयोः पिता। तौ दृष्ट्वा विकृताकारौ खशां तामभ्यभाषत॥५२॥
तौ सुतौ पितरं दृष्ट्वा ह्येकभूतौ भयान्वितौ। मातुरेव पुनश्चांगे प्रलीयतां स्वमायया॥५३॥
अथाब्रवीदृषिभार्या किमाभ्यामुक्तवत्यसि। सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन तवैवायं व्यतिक्रमः॥५४॥
मातृतुल्यश्च जनने पुत्रो भवति कन्यका। यथाशीला भवेन्माता तथाशीलो भवेत्सुतः॥५५॥
यद्वर्णा तु भवेद्भूमिस्तद्वर्णं सलिलं ध्रुवम्। मातृणां शीलदोषेण तथा रूपगुणैः पुनः॥५६॥
विभिन्नास्तु प्रजाः सर्वास्तथा ख्यातिवशेन च।
इत्येवमुक्त्वा भगवान् खशामप्रतिमस्तदा॥५७॥

जटिल (बालों वाला) था। वह विशाल कन्धों वाला, विशाल छातीवाला मोटी घोग वाला, पतले उदर वाला था।।४६।। जिसकी पतली और लाल गर्दन लम्बा मेढ़ और अण्डपिण्ड था। इस प्रकार कनिष्ठ कुमार को खशा ने उत्पन्न किया।।४७।। जैसे ही उनको खशा ने जन्म दिया, वैसे ही वे प्रमाद (घमण्ड) से बढ़ने लगे तथा उपयोग करने योग्य शरीर से व्यवस्थित हो गये। अर्थात् उनका शरीर पैदा होते सब कुछ करने योग्य हो गया।।४८।। शीघ्र ही पैदा हुए उन दोनों ने अपनी माता को ही खींच लिया। उन दोनों में से पहला जो क्रूर था।।४९।। 'मैं भूख से व्याकुल हूँ अपने जीवन की रक्षा के लिए मां को खा रहा हूँ' यह कहते हुए उसने अपनी माता को पहले खींचा।।४९-४९½।। फिर छोटे पुत्र ने स्वयं उसको ऐसा करने से रोका और उसने अपनी माता को पूर्वपुत्र से बचाने के लिए अपनी बाँहों में भर लिया और बाँहों में भरकर चिल्लाने लगा।।४९½-५१।।

इसी समय उन दोनों के पिता प्रकट हो गये। उन भयंकर विकृत आकृति वाले दोनों पुत्रों को देखकर उसने अपनी पत्नी खशा से कहा।।५२।। पिता को देखकर भयभीत हुए वे दोनों पुत्र एक होकर अपनी माया से पुनः माता के शरीर में प्रविष्ट हो गये।।५३।। इसके बाद ऋषि (कश्यप) अपनी पत्नी खशा से बोले कि हमसे तुम क्या कह रही हो, यह सब तत्त्वपूर्वक विचार करो तो यह तुम्हारे कर्मों का फल है।।५४।। माता के समान पुत्र और कन्या होती है, जैसे शील (अचार-विचार) वाली माता होती है, वैसे आचार-विचार वाला पुत्र होना चाहिये अर्थात् माता के गुण पुत्र में अवश्य पाते हैं।।५५।। जिस वर्ण की भूमि होती है, निश्चित ही उसी वर्ण का उस पर होने वाला जल होता है। माताओं के आचरण दोष के कारण तथा रूप और गुणों से समस्त प्रजायें (सन्तानें) उत्पन्न होती हैं, ऐसी ख्याति है, जिसके कारण ऐसा हुआ है[१]।।५६-५६½।। इस प्रकार ऐसा कहकर अप्रतिम भगवान् काश्यप ने दोनों पुत्रों को बुलाकर सामगान द्वारा उन दोनों पुत्रों के दो नाम रख दिये, उस समय उन पुत्रों ने जो भी माता के साथ क्रियाकलाप

१. यह वैज्ञानिक तथ्य है कि माता के गुण और दोष रूपादि पुत्र में आते हैं, यहाँ जिसे आज विज्ञान ने सिद्ध किया है, इस रहस्य का ज्ञान पूर्वकाल में भी था।

पुत्रावाहूय साम्ना वै चक्रे ताभ्यां तु नामनी।
पुत्राभ्यां यत्कृतं तस्यास्तदाचष्ट खशा तदा॥५८॥
माता यथा समाख्याता तर्काभ्यां च पृथक्पृथक्। तेन धात्वर्थयोगेन तत्तदर्थे चकार ह॥५९॥
मातर्भक्षेत्यथोक्तो वै खादने भक्षणे च सः। भक्षावेत्युक्तवानेष तस्माद्यक्षोऽभवत्त्वयम्॥६०॥
रक्ष इत्येष धातुर्यः पालने स विभाव्यते। उक्तवांश्चैष यस्मात्तु रक्षमेमां मातरं स्वकाम्॥६१॥
नाम्ना रक्षोऽपरस्तस्माद्भविष्यति तवात्मजः।
स तदा तद्विधां दृष्ट्वा विक्रियां च तयोः पिता॥६२॥
तदा भाविनमर्थं च बुद्ध्वा मात्रा कृतं तयोः। तावुभौ क्षुधितौ दृष्ट्वा विस्मितः परिमृष्टधीः॥६३॥
तयोः प्रादिशदाहारं खशापतिरसृग्वसे। पिता तौ क्षुधितौ दृष्ट्वा वरमेतं तयोर्ददौ॥६४॥
युवयोर्हस्तसंस्पर्शाद्रक्तधाराश्च सर्वशः। असृङ्मांसवसाभूता भविष्यंतीह कामतः॥६५॥
नक्ताहारविहारौ च द्विजदेवादिभोजनौ। नक्तं चैव बलीयांसौ दिवा वै निर्बलौ युवाम्॥६६॥
मातरं रक्षत इमां धर्मश्चैवानुशिष्यते। इत्युक्त्वा काश्यपः पुत्रौ तत्रैवांतरधीयत॥६७॥
गते पितरि तौ क्रूरौ निसर्गादेव दारुणौ। विपर्ययेषु वर्त्तेतेऽकृतज्ञौ प्राणिहिंसकौ॥६८॥
महाबलौ महासत्त्वौ महाकायौ दुरासदौ। मायाविदावदृश्यौ तावंतर्धानगतावुभौ॥६९॥

किया, वह सब खशा ने कहा।।५६½-५८।। माता ने तर्कों द्वारा दोनों का अलग-अलग कर्म बताया कि एक ने भक्षण करने का प्रयास किया, दूसरे ने रक्षा की, तब उस 'भक्ष' धातु और 'रक्ष' धातु के योग से वे अर्थ लिये गये।।५९।। जिसने कहा था कि माता को खालो (मातुर्भक्ष) उसके अनुसार 'भक्ष्' धातु खाने के (भक्षण के) अर्थ में आती है। अतः हम दोनों माता को खा लें, ऐसा कहने के कारण पहले पुत्र का नाम यक्ष होवे क्योंकि 'यक्ष' का अर्थ ही खाने वाला। अतः यथा गुण तथा नाम उसका रखा गया।।६०।। फिर ऋषि ने कहा कि 'रक्ष' यह धातु पालन करने के अर्थ में मानी जाती है। यह जिसने कि कहा था कि अपनी इस माता की रक्षा करो इसलिये तुम्हारा जो दूसरा पुत्र है, जिसने 'रक्षा' की, वह रक्ष (राक्षस) नाम से प्रसिद्ध होगा। तब उन दोनों पुत्रों को उसी प्रकार का देखकर उन दोनों के पिता कश्यप के मन में विशेष क्रिया हुई।।६१-६२।।

तब होने वाले अर्थ को माता ने जान लिया और फिर उन दोनों को वही किया अर्थात् माता ने समझ लिया कि ये भूखे हैं, तो खायेंगे अवश्य, इसलिये पिता कश्यप ने उन दोनों को भूखा देखकर आश्चर्यचकित होकर बुद्धि से विचार किया तथा फिर खशापति कश्यप ने उन्हें खून, और चर्बी खाने के लिए आदेश दिया। पिता ने उन्हें यह वर भूखे देखकर दिया था।।६३-६४।। तथा पिता ने उनसे कहा कि आप दोनों के हाथ के स्पर्शमात्र से ही आपकी इच्छा से सब प्रकार रक्त की धारायें बहने लगेंगी तथा आपके चाहते ही सब जगह रक्त मांस और चर्बी सब कुछ प्राप्त हो जायेगा।।६५।। रात्रि में आप लोगों का आहार-विहार होगा तथा आपके भोजन ब्राह्मण और देवता होंगे तथा आप दोनों ही रात्रि में बलवान् हो जायेंगे तथा दिन में निर्बल होंगे।।६६।। अरे आप दोनों अपनी माता की रक्षा करो; क्योंकि धर्म यही शिक्षा देता है। अतः तुम्हें अपनी मां को नहीं खाना चाहिये। ऐसा कहकर काश्यप ऋषि अन्तर्धान हो गये।।६७।। पिता काश्यप के चले जाने पर वे दोनों यक्ष और रक्ष स्वभाव से ही क्रूर और दारुण थे। अतः वे सब मनुष्यों के विपरीत कार्य करने लगे और दुष्ट प्रकृति के हिंसक प्राणी बन गये।।६८।। वे दोनों महावलशाली,

तौ कामरूपिणौ घोरौ नीरुजौ च स्वभावतः। रूपानुरूपैराचारैः प्रचरंतौ प्रबाधकौ॥७०॥
देवानृषीपितृंश्चैव गंधर्वान्किन्नरानपि। पिशाचाश्च मनुष्यांश्च पन्नगान्पक्षिणः पशून्॥७१॥
भक्षार्थमिह लिप्संतौ चेरतुस्तौ निशाचरौ। इन्द्रस्यानुचरौ चैव क्षुब्धौ दृष्ट्वा ह्यतिष्ठताम्॥७२॥
राक्षसं तं कदाचिद्वै निशीथं ह्येकमीश्वरम्। आहारं स परीप्सन्वै शब्देनानुससार ह॥७३॥
आससाद पिशाचौ वै त्वजः शंडश्च तावुभौ। कपिपुत्रौ महावीर्यौ कूष्मांडौ पूर्वजावुभौ॥७४॥

पिंगाक्षाबूर्द्धरोमाणौ वृत्ताक्षौ च सुदारुणौ।
कन्याभ्यां सहितौ तौ तु ताभ्यां भर्तुश्चिकीर्षया॥७५॥

ते कन्ये कामरूपिण्यौ तदाचरमुभे च तम्। आहारार्थे समीहंतो सकन्यौ तु बुभुक्षितौ॥७६॥
अपश्यतां राक्षसं तौ कामरूपिणमग्रतः। सहसा सन्निपातेन दृष्ट्वा चैव परस्परम्॥७७॥
ईक्षमाणाः स्थितान्योन्यं परस्परजिघृक्षवः। पितरावूचतुः कन्ये युवा मानयतं द्रुतम्॥७८॥
जीवग्राहं निगृह्यैन विस्फुरंतं पदेपदे। ततस्तमभिसृत्येनं कन्ये जगृहतुस्तदा॥७९॥

संगृहीत्वा तु हस्ताभ्यामानीतः पितृसंसदि।
ताभ्यां कन्यागृहीतं तं पिशाचौ वीक्ष्य राक्षसम्॥८०॥

अपृच्छतां च कस्य त्वं स च सर्वमभाषत। तस्य कर्माभिजाती च श्रुत्वा तौ रक्षसस्तदा॥८१॥

महापराक्रमी, विशालकाय, दुर्जेय, मायावी, अदृश्य हो जाने वाले तथा तुरन्त अन्तर्धान होने की कला के जानने वाले थे।।६९।। वे दोनों इच्छानुसार रूप धारण करने वाले तथा स्वभाव से घोर और नीरुज (नीरोग) थे तथा अपने रूप के अनुरूप आचरण करने से समस्त संसार के प्राणियों के लिये पूर्णबाधक बने हुए थे।।७०।। वे दोनों निशाचर— देवों, ऋषियों, पितरों, गन्धर्वों, किन्नरो, पिशाचों, मनुष्यो, सर्पों, पक्षियों और पशुओं को खाने के लिये इधर-उधर घूमते रहते थे। इन्द्र के दो क्षुब्ध अनुचर उस राक्षस को देखकर ठहर गये।।७१-७२।। कभी रात्रि में आहार खोजते हुये उन्होंने उस राक्षस के शब्द का अनुसरण किया। आगे चलकर वे दोनों अज और शण्ड नामक दो पिशाचों के पास पहुँचे। वे पिशाच कपि (वानर) के पुत्र थे तथा महान् पराक्रमी बहुत मोटे और बहुत पहले जन्मे हुए थे।।७३-७४।। उनके रोम पीले वर्ण के तथा ऊपर को उठे हुए थे तथा आँखें गोल और घोर आकृति वाले थे। दोनों ही अपनी अपनी कन्याओं के साथ थे तथा उन दोनों कन्याओं द्वारा पति बनाने की इच्छा रखने वाले थे अर्थात् वे दोनों अपनी कन्याओं के लिये पति खोजना चाहते थे।।७५।। वे दोनों कन्यायें इच्छानुसार रूप धारण करने वाली थीं और आचरण में पिशाचो के ही समान थी। वे दोनों भूखी कन्यायें आहार खोज रही थीं।।७६।।

उसी समय उन्होंने इच्छानुसार रूप धारण करने वाले राक्षस को अपने सामने देखा।।७७।। अचानक ही एक-दूसरे को आमने-सामने देखकर वे पिशाच कन्यायें और राक्षस अपनी अपनी जान बचाने की इच्छा में लग गये। उसके बाद दोनों कन्याओं ने अपने अपने पिता को बतला दिया।।७८।। दोनों के पिताओं ने कन्याओं से कहा कि उस युवा राक्षस को जो कि जीवों को पकड़ता हुआ पग-पग पर फड़कता हुआ चल रहा है, शीघ्र पकड़कर लाओ। उसके बाद उस राक्षस के पास जाकर उन दोनों कन्याओं ने उस राक्षस को पकड लिया।।७६-७९।। वे दोनों कन्यायें उस राक्षस को हाथ से पकड़कर पिता की सभा में लेकर आयीं।।७९½।। कन्याओं द्वारा पकड़े गये, उस राक्षस को देखकर उनके पिताओं ने उससे पूछा कि तुम किसके पुत्र हो? यह हमें बताओ।।७९½-८०।। उस राक्षस की जाति

अजः शंडश्च तस्मै ते कन्यके प्रत्यपादयत्। तौ तुष्टौ कर्मणा तस्य कन्ये ते ददतुस्तु वै॥८२॥
पैशाचेन विवाहेन रुदंत्यावुद्ववाह सः। अजः शंडः सुताभ्यां तु तदा श्रावयतां धनम्॥८३॥
इयं ब्रह्मधना नाम कन्या या सहिता शुभा। ब्रह्म तस्याऽपराहार इति शंडोऽभ्यभाषत॥८४॥
इयं जंतुधना नाम कन्या सर्वांगजंतिला। जंतुभाव धनादाना त्यजोऽश्रावयन्द्धनम्॥८५॥
सर्वांगकेशपाशा च कन्या जन्तुधना तु या। यातुधानप्रसूता सा कन्या चैव महारवा॥८६॥
अरुणा चाप्यलोपा च कन्या ब्रह्मधना तु या। ब्रह्मधनाप्रसूता सा कन्या चैव महारवा॥८७॥
एवं पिशाचकन्ये ते मिथुने द्वे प्रसूयताम्॥ तयोः प्रजानिसर्गं च कथयिष्ये निबोधत॥८८॥
हेतिः प्रहेतिरुग्रश्च पौरुषेयो वधस्तथा। विद्युत्स्फूर्जश्च वातश्च अयो व्याघ्रस्तथैव च॥८९॥
सूर्यश्च राक्षसा ह्येते यातुधानात्मजा दश। माल्यवांश्च सुमाली च प्रहेतितनयौ शृणु॥९०॥
प्रहेतितनयः श्रीमान्पुलोमा नाम विश्रुतः। मधुः परो महोग्रस्तु लवणस्तस्य चात्मजः॥९१॥
महायोगबलोपेतो महा देवमुपस्थितः। उग्रस्य पुत्रो विक्रांतो वज्रहा नाम विश्रुतः॥९२॥
पौरुषेयसुताः पंच पुरुषादा महाबलाः। क्रूरश्च विकृतश्चैव रुधिरादस्तथैव च॥९३॥
मेदाशश्च वशाशश्च नामभिः परिकीर्त्तिताः। वधपुत्रौ दुराचारौ विघ्नश्च शमनश्च ह॥९४॥
विद्युत्पुत्रो दुराचारौ रसनो नाम राक्षसः। स्फूर्जक्षेत्रो निकुंभस्तु जातौ वै ब्रह्मराक्षसः॥९५॥

और कुल को सुनकर अज और शण्ड दोनों पिशाचों ने अपनी दोनो कन्याओं को उस राक्षस के लिये प्रतिपादित कर लिया और दोनों ने प्रसन्न होकर अपनी कन्याओं को उस राक्षस को प्रदान कर दिया।।८१-८२।। उसके बाद पैशाच विवाह की रीति से अपनी रोती हुई दोनों कन्याओ को राक्षस के साथ विवाह कर दिया। फिर अपनी पुत्रियों द्वारा धन के विषय में अज और शुण्ड ने सुनाया।।८३।। इनमें इस एक कन्या का नाम ब्रह्मधना है, जिसका ब्रह्मण ही धन है अर्थात् इसका आहार ब्राह्मण है। इस प्रकार शुण्ड ने कहा।।८४।। यह जिसके समस्त शरीर पर बाल है, वह जन्तुधना नाम की कन्या है, इसका धन जन्तुभाव है अर्थात् इसका भोजन जन्तु है। यह अज ने उसका भोजनरूपी धन बताया।।८५।। और कहा कि जिसके सारे शरीर पर केश है, वह जो कन्या जन्तु-धना नाम की है, वह राक्षस प्रसूत कन्या है तथा महान् गर्जना करने वाली है।।८६।।

ब्रह्मधना नाम की जो कन्या है, वह लाल वर्ण की है तथा उसके शरीर पर रोम नहीं है। वह ब्रह्म के आधान से प्रसूत कन्या है तथा वह भी घोर गर्जना करने वाली है।।८७।। इस प्रकार दो पिशाचकन्या उत्पन्न हुई थीं, उन दोनों की सन्तानों की उत्पत्ति मैं बताऊँगा, आप सुनिये।।८८।। उनके नाम हैं— १. हेति, २. प्रहेति, ३. उग्र, ४. पौरुषेय, ५. वध, ६. विद्युत्स्फूर्ज, ७. वात, ८. आय, ९. व्याघ्र और १०. सूर्य ये दश राक्षस, जन्तुधना राक्षस की सन्तानें हैं। अब इनमे माल्यवान् और सुमाली हेति के दो पुत्र हैं, उनको सुनिये।।८९-९०।। प्रहेति के पुत्र श्रीमान् पुलोमा सुने गये हैं। उसके पुत्र मधु और दूसरा महाउग्र लवण हुआ।।९१।। वह महायोग और बल से युक्त था और महादेव शंकर के पास रहता था। उग्र का पुत्र विक्रान्त और वज्रहा सुने गये। पौरुषेय के पाँच पुत्र थे, जिनके नाम हैं— १. क्रूर, २. विकृत, ३. रुधिराद, ४. मेदाश और ५. वशाश नाम से प्रसिद्ध हैं। वध के दो दुराचारी पुत्र हैं— विघ्न और शमन।।९१-९४।। विद्युत् का एक रसन नामक दुराचारी राक्षस पुत्र हुआ। स्फूर्ज के क्षेत्र मे निकुम्भ नामक ब्रह्मराक्षस पैदा हुआ।।९५।।

वातपुत्रो विरोधस्तु तथा यस्य जनांतकः। व्याघ्र पुत्रो निरानंदः क्रतूनां विघ्नकारकः॥९६॥
सर्पस्य चान्वये जाताः क्रूराः सर्पाश्च राक्षसाः।
यातुधानाः परिक्रांता ब्रह्मधानान्निबोधत॥९७॥
यज्ञापेतो धृतिः क्षेपो ब्रह्मापेतश्च यज्ञहा। श्वातोंऽबुकः केलिसर्पौ ब्रह्मधानात्मजा नव॥९८॥
स्वसारो ब्रह्मराक्षस्यस्तेषां चेमाः सुदारुणाः। रक्तकर्णी महाजिह्वा क्षमा चेष्टाऽपहारिणी॥९९॥
एतासामन्वये जाताः पृथिव्यां ब्रह्मराक्षसाः।
इत्येते राक्षसाः क्रांता यक्षस्य विनिबोधत॥१००॥
चकमे सरसं यक्षः पञ्चचूडां ऋतुस्थलाम्। तल्लिप्सुश्चिंतयान स देवोद्यानानि मार्गते॥१०१॥
वैभ्राजं सुरभिं चैव तथा चैत्ररथं च यत्। विशोकं सुमनं चैव नंदनं च वनोत्तमम्॥१०२॥
बहूनि रमणीयानि मार्गते जातलालसः।
दृष्ट्वा तां नंदने सोऽथ अप्सरोभिः सहासिनीम्॥१०३॥
नोपायं निवंदते तत्र तस्या लाभाय चिंतयन्। दूषितः स्वेन रूपेण कर्मणा चैव दूषितः॥१०४॥
प्रमोद्विजंति हिंस्त्रस्य तथाभूतानि सर्वशः तत्कथं नाम सर्वांगीं प्राप्नुयामहमंगनाम्॥१०५॥
दृष्ट्वोपायं ततः सोऽथ शीघ्रकारी व्यवर्त्तयत्। कृत्वा रूपं वसुरुवेर्गंधर्वस्य च गुह्यकः॥१०६॥
ततः सोऽप्यसरसां मध्ये ता जग्राह क्रतुस्थलाम्।
बुद्धा वसुरुचिं तं स भावेनैवाभ्यवर्त्तत॥१०७॥

वात का पुत्र विरोध हुआ तथा आय का पुत्र जनान्तक हुआ व्याघ्र का पुत्र निरानन्द हुआ, जो यज्ञों में विघ्न करने वाला था।।९६।। सर्प के वंश में अनेकों क्रूर सर्प और राक्षस पैदा हुए। अब राक्षसों से घिरे हुए ब्रह्मधना के पुत्रों को सुनिये।।९७।। वे हैं—१. यज्ञपेत, २. धृति, ३. क्षेम, ४. ब्रह्मापेत, ५. यज्ञहा, ६. श्वांत, ७. अबुक, ८. कलि और ९. सर्प ये नव ब्रह्मधना के पुत्र हैं।।९८।। उनकी सभी बहिनें ब्रह्मराक्ष सी थीं। उनमें ये निम्न बहुत ही दारुण स्वभाव वाली थीं, वे हैं—१. रक्तकर्णी, २. महाजिह्वा, ३. क्षमा, ४. अपहारिणी। इन ब्रह्मराक्षसियो के गर्भ से समस्त पृथ्वी पर निवास करने वाले ब्रह्मराक्षसो के जन्म हुए। इस प्रकार इन राक्षसों का वर्णन किया गया, अब यक्ष के वंश को सुनिये।।९९-१००।। यक्ष ने अपने मन में क्रतुस्थली नामक पाँच अवयवों से स्थूल अंगों वाली अप्सरा को पाने की इच्छा की। उसको प्राप्त करने की चिन्ता में वह देवोद्यानों में विचरण करता रहा।।१०१।। वह वैभ्राज, सुरभि, चैत्ररथ, विशोक, सुमन और उत्तमवन नन्दनवन में विचरण करता रहा।।१०२।।

उस अप्सरा को पाने की इच्छावाले उसने अनेकों रमणीय मार्गों को खोजा।अन्त में नन्दनवन में अन्यान्य अप्सराओं के साथ सिंह पर बैठी हुई, उस अप्सरा को देखा।।१०३।। तब उसको प्राप्त करने का उसे कोई उपाय नहीं है, यह सोचता रहा; क्योंकि वह अपने रूप और कर्म से दूषित था। अतः उसे पाने का उसे कोई उपाय नहीं दिखाई दिया।।१०४।। उसने सोचा कि मुझ हिंसक प्राणी से सभी प्राणी डरते हैं, तब मैं इस सब सुन्दर अंग वाली (सर्वांगसुन्दरी) को कैसे प्राप्त कर सकूँगा?।।१०५।। उसके बाद उसने अपने मन मे एक उपाय सोचकर सुन्दर 'वसुरुचि' नामक गन्धर्व का सुन्दर रूप बना लिया।।१०६।। उसके बाद अप्सराओं के मध्य स्थित क्रतुस्थला अप्सरा को उसने पकड़ लिया, उस अप्सरा ने उसे वसुरुचि जानकर पूर्ण सद्भाव के साथ व्यवहार किया।।१०७।।

संभूतः स तया सार्द्धं दृश्यमानोऽप्सरोगणैः। जमाग मैथुनं यक्षः पुत्रार्थे स तया सह॥१०८॥

दृश्यमानोऽप्सरो लिप्सुः शंकां नैव चकार सः।
ततः संसिद्धकरणः सद्यो जातः सुतस्तु वै॥१०९॥

उच्छ्रयात्परिणाहेन सद्यो वृद्धः श्रिया ज्वलन्। राजाहमिति नाभिर्हि पितरं सोऽभ्यवादयत्॥११०॥
भवान् रजतनाभेति पिता तं प्रत्युवाच ह। मात्रानुरूपो रूपेण पितुर्वीर्येण जायते॥१११॥
जाते तस्मिन्कुमारे तु स्वरूपं प्रत्यपद्यत। स्वरूपं प्रतिपद्यंते गृहतो यक्षराक्षसाः॥११२॥

सुप्ता म्रियंतः क्रुद्धाश्च भीतास्ते हर्षितास्तथा।
ततोऽब्रवीत्सोऽप्सरसं स्मयमानस्तु गुह्यकः॥११३॥

गृहं मे गच्छ भद्रं ते सुपुत्रा त्वं वरानने। इत्युक्त्वा सहसा तत्र दृष्ट्वा स्वं रूपमास्थितम्॥११४॥

विभ्रांताः प्रद्रुताः सर्वाः समेत्याप्सरसस्तदा।
गच्छंतीमन्वगच्छत्तां पुत्रस्तप्तां त्वयन् शिरा॥११५॥
गंधर्वप्सरसां मध्ये नयित्वा स न्यवर्त्तत।
तां च दृष्ट्वा समुत्पत्तिं यक्षस्याप्सरसां गणाः॥११६॥
यक्षाणां तु जनित्री त्वं इत्यूचुस्तां क्रतुस्थलाम्।
जगाम सह पुत्रेण ततो यक्षः स्वमालयम्॥११७॥
न्यग्रोधो रोहिणो नाम्ना शेरते तत्र गुह्यकाः।
तस्मिन्निवासो यक्षाणां न्यक्रोधे रोहिणे स्मृतः॥११८॥

वह उसके साथ सम्यक् प्रकार से मिल गया और उसने अप्सराओं के देखते हुए ही उसके साथ पुत्र के लिये समागम किया।।१०८।। देखते हुए समागम करते हुए उस अप्सरालोभी यक्ष ने कोई शंका नहीं की, उसके बाद सम्यक् सिद्धि के फलस्वरूप उसने शीघ्र ही पुत्र को प्राप्त किया।।१०९।। वह बहुत लम्बा-चौड़ा था तथा जन्मते ही वह शोभा सम्पन्न हो गया और जन्मते ही उसने अपने पिता से कहा कि मैं राजा हूँ।।११०।। उसके बाद पिता ने पुत्र से कहा कि तुम्हारा नाम रजतनाभ होगा। वह रजतनाभ माता के समान सुन्दर और पिता के समान पराक्रमी था।।१११।। ऐसे पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर वह यक्ष अपने वास्तविक स्वरूप में आ गया। प्रायः बड़े-बड़े राक्षस और यक्ष जो अपना रूप छिपाये हुए रहते हैं, वे सोते समय, मरते समय, क्रुद्ध होते हुए, डरते समय और हर्षित होते समय अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाते हैं। तब जब वह यक्ष अपने वास्तविक स्वरूप में आ गया, तब आश्चर्यचकित होता हुआ, वह यक्ष उस अप्सरा से बोला।।११२-११३।। उसने अप्सरा से कहा कि हे सुमुखि! अब तुम अपने पुत्रों के साथ घर चलो। ऐसा कहकर अचानक वहाँ अपने रूप में आये हुए उस यक्ष को देखकर सभी अप्सराएँ क्रोध से विभ्रान्त हो गयीं और भाग चलीं, उन जाती हुई अप्सरा के पीछे क्रतुस्थली भी चली और उसके पुत्र ने सान्त्वना देते हुए उसे गन्धर्वों और अप्सराओं के समूह में पहुँचाया और पहुँचाकर लौट आया और फिर उनकी उस उत्पत्ति को यक्ष और अप्सराओं के समूहों ने क्रतुस्थली से कहा कि तुम यक्षों को पैदा करने वाली हो। उसके बाद यक्ष अपने पुत्र के साथ अपने घर को चला गया।।११४-११७।। जहाँ पर वरगद के पेड़ होते हैं, वहाँ पर

यक्षो रजतनाभश्च गुह्यकानां पितामहः। अनुह्लादस्य दैत्यस्य भद्रां मणिवरां सुताम्॥११९॥
उपयेमेऽनवद्यांगीं तस्यां मणिवरो वशी। जज्ञे सा मणिभद्रं च शक्रतुल्यपराक्रमम्॥१२०॥
तयोः पत्न्यौ भगिन्यौ च क्रतुस्थस्यात्मजे शुभे।
नाम्ना पुण्यजनी चैव तथा देवजनी च या॥१२१॥
विजज्ञे मणिभद्रात्तु पुत्रान्पुण्यजनी शुभा। सिद्धार्थं सूर्यतेजश्च सुमनं नंदनं तथा॥१२२॥
मंडूकं रुचकं चैव मणिमंतं वसुं तथा। सर्वानुभूतं शंखं च पिंगाक्षं भीरुमेव च॥१२३॥
असोमं दूरसोमं च पद्मं चन्द्रप्रभं तथा। मेघवर्णं सुभद्रं च प्रद्योतं च महाद्युतिम्॥१२४॥
द्युतिमंतं केतुमंतं दर्शनीयं सुदर्शनम्। चत्वारो विंशतिश्चैव पुत्राः पुण्यजनीभवाः॥१२५॥
जज्ञिरे मणिभद्रस्य सर्वे ते पुण्यलक्षणाः। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यक्षाः पुण्यजनाः शुभाः॥१२६॥
विजज्ञे वै देवजनी पुत्रान्मणिवराच्छुभा। पूर्णभद्रं हैमवंतं मणिमंत्रविवर्द्धनौ॥१२७॥
कुकुं चरं पिशंगं च स्थूलकर्णं महामुदम्। श्वेतं च विमलं चैव पुष्पदंतं जयावहम्॥१२८॥
पद्मवर्णं सुचन्द्रं च पक्षं च बलकं तथा। कुमुदाक्षं सुकमलं वर्द्धमानं तथा हितम्॥१२९॥
पद्मनाभं सुगंधं च सुवीरं विजयं कृतम्। पूर्णमासं हिरण्याक्षं सारणं चैव मानसम्॥१३०॥
पुत्रा मणिवरस्यैते यक्षा वै गुह्यकाः स्मृताः।
सुरूपाश्च सुवेशाश्च स्रग्विणः प्रियदर्शनाः॥१३१॥

यक्ष गण शयन करते थे। अतः बरगद के वृक्षों में यक्षों का निवास स्थान है।।११८।। रजतनाभ नाम का यक्ष यक्षों का पितामह था, उसने अनुह्लाद नामक दैत्य की परमसुन्दरी कन्या भद्रा के साथ अपना विवाह किया था, उस भद्रा में जितेन्द्रिय मणिवर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। भद्रा ने एक दूसरे पुत्र मणिभद्र को भी उत्पन्न किया, जो इन्द्र के समान पराक्रमी था।।११९-१२०।। उन दोनों की पत्नियां सभी बहिनें थीं और वे क्रतुस्थली की शुभ पुत्रियां थीं। उनका नाम पुण्यजनी और देवजनी था।।१२१।। मणिभद्र से पुण्यजननी जिन शुभ आचरण वाले पुत्रों को पैदा किया, उनके नाम हैं—१. सिद्धार्थ, २. सूर्यतेज, ३. सुमन, ४. नन्दन, ५. मण्डूक, ६. रुचक, ७. मणिमन्त, ८. वसु, ९. सर्वानुभूत, १०. शंख, ११. पिंगाक्ष, १२. भीरु, १३. असोम, १४. दूरसोम, १५. पद्म, १६. चन्द्रप्रभ, १७. मेघवर्ण, १८. सुभद्र, १९. प्रद्योत, २०. महाद्युति, २१. द्युतिमान्, २२. केतुमान्, २३. दर्शनीय, २४. सुदर्शन। ये चौबीस पुत्र पुण्यजनी से उत्पन्न हुए थे।।१२२-१२५।।

मणिभद्र के वे सब पुत्र पुण्यलक्षण वाले थे, उन पुत्रों के पुत्र और पौत्र सभी पुण्य लक्षण वाले तथा शुभ लक्षण वाले थे।।१२६।। देवजनी ने मणिवर के संयोग से १. पूर्णभद्र, २. हैमवन्त, ३. मणिमन्त्र, ४. विवर्द्धन, ५. कुसु, ६. चर, ७. पिशंग, ८. स्थूलकर्ण, ९. महामुद, १०. श्वेत, ११. विमल, १२. पुष्पदन्त, १३. जयावह, १४. पद्मवर्ण, १५. सुचन्द्र, १६. पक्षबलक, १७. कुमुदाक्ष, १८. सुकमल, १९. वर्द्धमान, २०. हित, २१. पद्मनाभ, २२. सुगन्ध, २३. सुवीर, २४. विजय, २५. कृत, २६. पूर्णमास, २७. हिरण्याक्ष, २८. सारण, २९. मानस नाम शुभपुत्रों को उत्पन्न किया।।१२७-१३०।। मणिवर के ये पुत्र यक्ष गुह्यक नामक स्मरण किये गये। वे सभी सुन्दर रूप वाले, सुन्दर वेश वाले, माला धारण करने वाले और प्रिय दिखायी देने वाले थे।।१३१।।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
खशायास्त्वपरे पुत्रा राक्षसाः कामरूपिणः॥१३२॥
तेषां यथा प्रधानान्वै वर्ण्यमा नान्निबोधत।
लालाविः क्रथनो भीमः सुमाली मधुरेव च॥१३३॥
विस्फूर्जनो बृहज्जिह्वो मातंगो धूम्रितस्तथा।
चंद्रार्कभीकरो बुध्नः कपिलोमा प्रहासकः॥१३४॥
पीडापरस्त्रिनाभश्च वक्राक्षश्च निशाचरः। त्रिशिराः शतदंष्ट्रश्च तुंडकोशश्च राक्षसः॥१३५॥
अश्वश्चाकंपनश्चैव दुर्मुखश्च निशाचरः। इत्येते राक्षसवरा विक्रांता गणरूपिणः॥१३६॥
सर्वलोकचरास्ते तु त्रिदशानां समक्रमाः।
सप्त चान्या दुहितरस्ताः शृणुध्वं यथाक्रमम्॥१३७॥
यासां च यः प्रजासर्गो येन चोत्पादिता गणाः।
आलंबा उत्कचोत्कृष्टा निर्ऋता कपिला शिवा॥१३८॥
केशिनी च महाभागा भगिन्यः सप्त याः स्मृताः।
ताभ्यो लोकनिकायस्य हंतारो युद्धदुर्मदाः॥१३९॥
उदीर्णा राक्षसगणा इमे चोत्पादिताः शुभाः।
आलंबेयो गणः क्रूर औत्कचेयो गणस्तथा॥१४०॥
तथौ त्कार्ष्टेयशैवेयौ रक्षसां ह्युत्तमा गणाः। तथैव नैर्ऋतो नाम त्र्यंबकानुचरेण ह॥१४१॥

उनके पुत्र और पौत्रों की संख्या सैकड़ों से हजारों तक थी। खशा के दूसरे पुत्र इच्छानुसार रूप धारण करने वाले राक्षस थे।।१३२।। उनमें से जो प्रधान वर्ण्यमान हैं, उनके नाम सुनिये। उनके नाम थे—१. लालावि, २. क्रथन, ३. भीम, ४. सुमाली, ५. मधु, ६. विस्फूर्जन, ७. बृहज्जिह्व, ८. मातंग, ९. धूम्रित, १०. चन्द्र, ११. अर्क, १२. भीकर, १३. बुध्न, १४. कपिलोमा, १५. प्रहासक, १६. पीडापर, १७. त्रिनाभ, १८. वक्राक्ष, १९. निशाचर, २०. त्रिशिरा, २१. शतदंष्ट्र, २२. तुण्डकोश, २३. राक्षस, २४. अश्व, २५. अकम्पन, २६. दुर्मुख, २७. निशाचर। इस प्रकार ये सब सत्ताईस राक्षस विशेष पराक्रमी और गणरूपी थे।।१३३-१३६।। वे सभी लोकों में विचरण करने वाले राक्षस देवताओं के समान आक्रमण करने वाले थे और उनकी सात और बेटियाँ थीं, उनके यथाक्रम नामों को सुनिये।।१३७।।

साथ ही उन कन्याओं द्वारा जिन सन्तानों की उत्पत्ति हुई और जिनगणों की उत्पत्ति हुई, उनको भी सुनिये, वे सात कन्यायें हैं—१. आलम्बा, २. उत्कचा, ३. उत्कृष्टा, ४. निर्ऋता, ५. कपिला, ६. शिवा, ७. केशिनी। ये महाभाग्यशालिनी सात बेटियां थीं। उनसे समस्त लोक को मारने वाले युद्ध में न हारने वाले ये निम्न राक्षसगण उत्पन्न हुए उनके एक आलम्बा के पुत्रों का नाम आलम्बेय तथा दूसरी उत्कचा के पुत्रों का नाम औत्कचेयगण था।।१३८-१४०।। उसी प्रकार उत्कृष्टा के पुत्र औत्कृष्टेयगण हुए तथा शिवा के पुत्रगण शैवेयगण हुए। उसी प्रकार निर्ऋति के पुत्रों को नैर्ऋतिगण कहा गया, जो भगवान् शंकर के अनुचर थे।।१४१।।

उत्पादितः प्रजासर्गे गणेश्वरवरेण तु। विक्रांताः सौर्यसंपन्ना नैर्ऋता देवराक्षसाः॥१४२॥
येषामधिपतिर्युक्तो नाम्ना ख्यातो विरूपकः।
तेषां गणशतानीका उद्धर्तानां महात्मनाम्॥१४३॥
प्रायेणानुचरंत्येते शंकरं जगतः प्रभुम्। दैत्यराजेन कुम्भेन महाकाया महात्मना॥१४४॥
उत्पादिता महावीर्या महाबलपराक्रमाः। कापिलेय महावीर्या उदीर्णा दैत्यराक्षसाः॥१४५॥
कपिलेन च यक्षेण केशिन्यां ह्यपरे जनाः। उत्पादिता बलवता उदीर्णा यक्षराक्षसाः॥१४६॥
केशिनी दुहिता चैव नीला या क्षुद्रराक्षसी। आलंबेयेन जनिता नैका सुरसिकेन हि॥१४७॥
नैला इति समाख्याता दुर्जया घोरविक्रमाः।
चरंति पृथिवीं कृत्स्नां तत्र ते देवलौकिकाः॥१४८॥
बहुत्वाच्चैव सर्गस्य तेषां वक्तुं न शक्यते।
तस्यास्त्वपि च नीलाया विकचा नाम राक्षसी॥१४९॥
दुहिता सुताश्च विकचा महासत्त्वपराक्रमाः। विरूपकेन तस्यां वै नैर्ऋतेन इह प्रजाः॥१५०॥
उत्पादिताः सुघोराश्च शृणु तास्त्वनुपूर्वशः। दंष्ट्राकराला विकृता महाकर्णा महोदराः॥१५१॥
हारका भीषकाश्चैव तथैव क्लामकाः परे। रेखाकाः पिशाचाश्च वाहकास्त्रासकाः परे॥१५२॥
भूमिराक्षसका ह्येते मंदाः परुषविक्रमाः। चरंत्यदृष्टपूर्वास्तु नानाकारा ह्यनेकशः॥१५३॥
उत्कृष्टबलसत्त्वा ये तेषां वै खेचराः स्मृताः।
लक्षमात्रेण चाकाशं स्वल्पात्स्वल्पं चरंति वै॥१५४॥

उन भगवान् शंकर के अनुचर गणों ने प्रजासर्ग में विक्रान्त और शौर्यसम्पन्न नैर्ऋत नाम के देवराक्षसों को उत्पन्न किया। उन सबका अधिपति विरूपक नाम से प्रसिद्ध हुआ। नैर्ऋत नामक उद्दण्ड स्वभाव वाले उन महात्मा देवराक्षसो के सैकड़ों गण प्रायः जगत् पति शंकर भगवान् के अनुचर हुए। महात्मा दैत्यराज कुम्भ ने महाबलवान्, महापराक्रमी, परम साहसी एवं विशाल शरीरी कपिला से कापिलेय नामक दैत्यों एवं राक्षसो को पैदा किया।।१४२-१४५।। कपिल नामक यक्ष ने केशिनी के गर्भ में अन्य जनों को उत्पन्न किया, जो बहुत ही बलशाली राक्षस थे।।१४६।। केशिनी की पुत्री नीला जो क्षुद्र राक्षसी थी, उसके संयोग से आलम्बेयगण के द्वारा उत्पन्न सुरसिक राक्षस के द्वारा अनेकों राक्षसगण पैदा हुए।।१४७।। उन सब राक्षसों का नाम नैला नाम से सुप्रसिद्ध हुआ तथा वे दुर्जय और घोर पराक्रम वाले राक्षसगण समस्त पृथ्वी पर विचरण करते थे तथा वे देव और लोक दोनों प्रकार के शक्तियों से सम्पन्न थे।।१४८।। उनके वंश की संख्या बहुत होने के कारण बतायी नहीं जा सकती है। उस नीला की भी तो विकचा नाम की पुत्री थी, जो स्वभाव से महान् पराक्रम वाली थी, उस विकचा में भी कुरूप नैर्ऋत द्वारा अतिघोर स्वभाववाले राक्षसो का जन्म हुआ, उनका क्रमानुसार वर्णन सुनिये—वे अतिघोर राक्षसगण कराल दाँतों वाले, विकृत आकृति वाले, बड़े-बड़े कानों वाले और बड़े-बड़े पेटों वाले थे।।१४९-१५१।। उनके नाम हैं—१. हारक, २. भीषक, ३. क्लामक, ४. रेखाक, ५. पिशाच, ६. वाहक, ७. त्रासक,।।१५२।। ये सबके सब भूमि राक्षस थे मन्द स्वभाव वाले और कठोर पराक्रम वाले थे। वे अनेको बार ऐसे अनेकों आकारों में हो जाते थे, जैसा कि किसी ने कभी नहीं देखा हो।।१५३।। वे सब उत्कृष्ट बल और पराक्रम सम्पन्न थे, इनमें कुछ आकाशगामी भी थे। देखते

एतैर्व्याप्तमिदं विश्वं शतशोऽथ सहस्त्रशः। भूमिराक्षसकैः सर्वैरनेकैः क्षुद्रराक्षसैः॥१५५॥
नानाप्रकारैरक्रांता नाना देशाः समंततः। समासाभिहिताश्चैव ह्यष्टौ राक्षसमातरः॥१५६॥
अष्टौ विभागा ह्येषां हि व्याख्याता अनुपूर्वशः।
भद्रका निकराः केचिदज्ञनिष्पत्तिहेतुकाः॥१५७॥
सहस्त्रशतसंख्याता मर्त्य लोकविचारिणः। पूतना मातृसामान्यास्तथा भूतभयंकराः॥१५८॥
बालानां मानुषे लोके ग्रहा मरणहेतुकाः।
स्कन्दग्रहादयो ह्यस्या आपकास्त्रासकादयः॥१५९॥
कौमारास्ते तु विज्ञेया बालानां गृहवृत्तयः। स्कन्दग्रहविशेषाणां मायिकानां तथैव च॥१६०॥
पूतना नाम भूतानां ये च लोकविनायकाः। एवं गणसहस्त्राणि चरंति पृथिवीमिमाम्॥१६१॥
यक्षाः पुण्यजना नाम पूर्णभद्राश्च ये स्मृताः।
यक्षाणां राक्षसानां च पौलस्त्यागस्तयश्च ये॥१६२॥
नैर्ऋतानां च सर्वेषां राजभूदलकाधिपः। यक्षा दृष्ट्या पिबंतीह नृणां मांसमसृग्वसे॥१६३॥
रक्षांस्यनुप्रवेशेन पिशाचैः परिपीडनैः। सर्वलक्षणसंपन्नाः समासैश्चापि दैवतैः॥१६४॥
भास्वरा बलवंतश्च ईश्वराः कामरूपिणः।
अनाभिभाव्या विक्रांताः सर्वलोकनमस्कृताः॥१६५॥

देखते ही वे छोटे से छोटारूप धारण कर आकाश में विचरण करते थे।।१५४।। ये सैकड़ों और हज़ारों की संख्या में इस लोक को छेके हुए थे। इन सब अनेकों प्रकार के भूमि राक्षसों तथा अन्य क्षुद्र राक्षसों ने मिलकर चारों ओर से प्रायः सभी देशों को आक्रान्त कर लिया था। संक्षेप से उन राक्षसों की आठ मातायें कही गयी हैं।।१५५-१५६।। आठ माताओं के अनुसार उनके आठ विभाग प्रसिद्ध हैं, जो पूर्व से लेकर इस प्रकार हैं—भद्रका, और गणका नाम निकर है, जिनमें कुछ ज्ञान की उत्पत्ति का कारण हैं।।१५७।। एक लाख संख्या वाले मर्त्यलोक में विचरण करने वाले राक्षसगण हैं, दूसरी माता पूतना नाम मातृसामान्य है, जो भयंकर भूत है, यह पूतना मनुष्य लोक में बच्चों को पकड़ने वाली और उन्हें मारने वाली है। स्कन्द ग्रहादिक आपक, त्रासक आदि और कौमारगण इन सबको बालकों को कष्ट देने वाले समझने चाहिये।।१५८-१५९।।

माया करने वाले मायिक नामक ग्रहों, स्कन्द नामक गहों तथा कौमार नामक ग्रहों तथा पूतना नामक भूतग्रह जो लोक में अनेकों प्रकार के विघ्नों के पैदा करने वाले हैं। इस प्रकार के हजारों गण इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं।।१६०-१६१।। यक्ष पुण्यशाली और पूर्णभद्र स्मरण किये गये हैं। यक्ष और राक्षसगणों में जो पुलस्त्य और अगस्त्य ऋषि की सन्तानें हैं तथा जो नैर्ऋत राक्षस हैं, उनके राजा अलकाधिपति कुबेर हुये।। यक्षगण देखने मात्र से ही मनुष्यों के मांसरक्त और चर्बी को पी जाते हैं।।१६२-१६३।। राक्षस मनुष्यों के शरीरों में प्रवेश कर मांसरक्त तथा चर्बी को पीते हैं तथा पिशाच कष्ट देते हुए मांसरक्त और चर्बी को पीते हैं। ये सब संक्षेप में सब देवों के लक्षणों से सम्पन्न होते हैं।।१६४।। ये सब देवों के समान तेजस्वी, बलशाली, ऐश्वर्यशाली एवं इच्छानुसार रूप धारण करने वाले अनुपमशक्तिसम्पन्न, विशेष कान्ति वाले और सभी लोकों द्वारा नमस्करणीय, सूक्ष्म स्वरूप धारण करने वाले,

सूक्ष्माश्चौजस्वि नो मेध्या वरदा याज्ञिकाश्च वै। देवानां लक्षणं होत दसुराणां तथैव च॥१६६॥
हीना देवैस्त्रिभिः पादैर्गंधर्वाप्सरसः स्मृताः। गंधर्वेभ्यस्त्रिभिः पादै र्हीना गुह्यकराक्षसाः॥१६७॥
ऐश्वर्यहीना रक्षोभ्यः पिशाचस्त्रिगुणं पुनः। एवं धनेन रूपेण आयुषा च बलेन च॥१६८॥
धर्मैश्वर्येण बुद्ध्या च तपःश्रुतपराक्रमैः। देवासुरेभ्यो हीयंते त्रिंस्त्रीन्पादान्परस्परम्॥१६९॥

गंधर्वाद्याः पिशाचांताश्चतस्रो देवयोनयः।
अतः शृणुत भद्रं वः प्रजाः क्रोधवशान्वयाः॥१७०॥
क्रोधायाः कन्यका जज्ञे द्वादशैवात्मसंभवाः।
ता भार्या पुलहस्यासन्नामतो मे निबोधत॥१७१॥

मृगी च मृगमन्दा च हरिभद्रा त्विरावती। भूता च कपिशा दंष्ट्रा ऋषा तिर्या तथैव च॥१७२॥
श्वेता च सरमा चैव सुरसा चेति विश्रुता। मृग्यास्तु हरिणाः पुत्रा मृगाश्चान्ये शशास्तथा॥१७३॥
न्यंकवः शरभा ये च रुरवः पृषताश्च ये। ऋक्षाश्च मृगमंदाया गवयाश्चापरे तथा॥१७४॥
महिषोष्ट्रवराहाश्च खड्गा गौरमुखास्तथा। हर्य्यास्तु हरयः पुत्रा गोलांगूलास्तरक्षवः॥१७५॥

वानराः किन्नराश्चैव मायुः किंपुरुषास्तथा।
सिंहा व्याघ्राश्च नीलाश्च द्वीपिनः क्रोधिताधराः॥१७६॥

सर्पाश्चाजगरा ग्राहा मार्जारा मूषिकाः परे। मंडूका नकुलाश्चैव वल्कका वनगोचराः॥१७७॥
हंसं तु प्रथमं जज्ञे पुलहस्य वरं शुभा। रणचंद्रं शतमुखं दरीमुखमथापि च॥१७८॥

ओजस्वी, बुद्धिमान्, वर देने वाले तथा यज्ञ करने वाले होते हैं, ये ही देवो के लक्षण हैं, उसी प्रकार इनके भी हैं।।१६५-१६६।। गन्धर्व और अप्सरायें देवों से तीन पादों में हीन होते हैं। अर्थात् गन्धर्व और अप्सरायें देवों से ३/४ कम होते हैं। देवों के चौथाई होते हैं तथा गन्धर्वों से ३ पादों से हीन गुह्यक (यक्ष) और राक्षस होते हैं। एवं राक्षसों से तीन गुने हीन पिशाच होते हैं। इस प्रकार धन, रूप, आयु, बल, धर्म, ऐश्वर्य, बुद्धि, तप, वेदज्ञान और पराक्रमों में देवता असुरो में परस्पर तीन पाद की हीनता होती है।।१६७-१६९।। गन्धर्व आदि से पिशाचो तक चार देवयोनियां होती हैं।।१६९½।।

सूत ने कहा कि ऋषिवृन्द! अब आप क्रोध के वश में रहने वाली प्रजाओं का वर्णन सुनिये क्रोधा की बारह कन्यायें उत्पन्न हुईं और वे सब पुलस्त्य की पत्नियां हुईं, उनके नाम सुनिये—१. मृगी, २. मृगमन्दा, ३. हरिभद्रा, ४. इरावती, ५. भूता, ६. कपिशा, ७. दंष्ट्रा, ८. ऋषा, ९. तिर्या, १०. श्वेता, ११. सरमा, १२. सुरसा नाम सुने गये हैं। मृगी के पुत्र हरिण हुए अन्यान्य मृग खरगोश, शरभ, रुरु और पृषत् नामक पशु से उत्पन्न हुए। मृगमन्दा से रीक्ष पैदा हुए तथा अन्य नील गाय उत्पन्न हुए। महिष, ऊँट, वाराह खड्ग (गैंडा) तथा गौरमुख नाम जंगली पशु भी उसी से उत्पन्न हुए।।१६९½-१७४½।। हरि के पुत्र वानर हुये, तथा लांगूली बन्दर, तरक्षु (भेड़िया) अन्यान्य छोटी जातियों के बन्दर, किन्नर, बाघ, किंपुरुष, सिंह, व्याघ्र, नील, हाथी, आदि क्रोधित होने वाले सर्प, अजगर, ग्राह, मार्जार, मूषिक, मेंढक, नकुल (नेवले), वल्कल आदि जंगली जानवर उसी से उत्पन्न हुए।।१७४½-१७७।। पुलह की पत्नी शुभा ने श्रेष्ठ हंस को पहले पैदा किया तथा उसने शतमुख, दरीमुख, हरित, हरितवर्मा, भीषण,

हरितं हरिवर्माणं भीषणं शुभलक्षणम्। प्रथितं मथितं चैव हरिण लांगलिं तथा॥१७९॥
श्वेताया जज्ञिरे वीरा दश वानरपुंगवाः। उर्द्धदृष्टिः कृताहारः सुव्रतो विनतो बुधः॥१८०॥
पारिजातः सुजातश्च हरिदासो गुणाकरः। क्षेममूर्तिश्च बलवान् राजानः सर्व एव ते॥१८१॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बलवंतः सुदुःसहाः। अशक्याः समरे जेतुं देवदानवमानवैः॥१८२॥
यक्षभूतपिशाचैश्च राक्षसैः सुभुजंगमैः। नाग्निशस्त्रविषैरन्यैर्मृत्युरेषां विधीयते॥१८३॥
असंगगतयः सर्वे पृथिव्यां व्योम्नि चैव हि। पाताले च जले वायौ ह्यविनाशिन एव ते॥१८४॥
दशकोटिसहस्राणि दशार्बुदशतानि च। महापद्मसहस्राणि महापद्मशतानि च॥१८५॥
दशार्बुदानि कोटीनां सहस्राणां शतं शतम्। नियुतानां सहस्राणि निखर्वाणां तथैव च॥१८६॥
दशार्बुदानि कोटीनां षष्टिकोटिस्तथैव च। अर्बुदानां च लक्षं तु कोटीशतमथापरम्॥१८७॥

दश पद्मानि चान्यानि महापद्मानि वै नव।
संख्यातानि कुलीनानां वानराणां तरस्विनाम्॥१८८॥

सर्वे तेजस्विनः शूराः कामरूपा महाबलाः। दिव्याभरणवेषाश्च ब्रह्मण्याश्चाहिताग्नयः॥१८९॥
यष्टारः सर्वयज्ञानां सहस्रशतदक्षिणाः। मुकुटैः कुंडलैर्हारैः केयूरैः समलंकृताः॥१९०॥
वेदवेदांगविद्वांसो नीतिशास्त्रविचक्षणाः। अस्त्राणां मोचने चापि तथा संहारकर्मणि॥१९१॥
दिव्यमंत्रपुरस्कारा दिव्यमंत्रपुरस्कृताः। समर्था बलिनः शूराः सर्वशस्त्रप्रहारिणः॥१९२॥
दिव्यरूपधराः सौम्या जरामरणवर्जिताः। कुलानां च सहस्राणि दश तेषां महात्मनाम्॥१९३॥

शुभलक्षण, प्रथित, मथित, हरिण तथा लांगलि को उत्पन्न किया।।१७८-१७९।। श्वेता से पुलस्त्य ने दशवानर पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम हैं—१. ऊर्द्धदृष्टि, २. कृताहार, ३. सुव्रत, ४. विनत, ५. बुध, ६. पारिजात, ७. सुजात, ८. हरिदास, ९. गुणाकर और १०. क्षेममूर्ति तथा ये सभी राजा हुए।।१८०-१८१।। उनके पुत्र और पौत्र सभी बलवान् एवं दुःसह थे, वे सभी युद्ध में देव दानव और मनुष्यों द्वारा नहीं जीते जा सकते थे।।१८०-१८२।। तथा यक्ष भूत, पिशाच, राक्षस, सुन्दर सर्पों द्वारा अग्निशस्त्रों विषों अथवा अन्य शस्त्रों द्वारा इनकी मृत्यु नहीं की जा सकती है।।१८३।। ये सभी पृथ्वी, आकाश, पाताल, जल, वायु में विना गति रुके हुए जा सकते थे तथा वे सभी अविनाशी थे।।१८४।।

दश हजार करोड़ दशियों और सैकड़ों अरब हजारों और सैकड़ों महापद्म (शंख) दश अरब साठ करोड़ लाखों अरब सैकड़ों करोड़ दश पद्म तथा नौ महापद्म ये संख्यायें कुलीन वानरों की थी।।१८४-१८८।। सभी वानर तेजस्वी, शूरवीर, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, महाबली, दिव्य आभरण और वेशभूषा वाले थे तथा ब्रह्मज्ञानी और अग्निहोत्र करने वाले थे।।१८९।। वे सभी यज्ञ करने वाले थे तथा सैकड़ों और हजारों यज्ञों के कराने में कुशल थे, वे सब मुकुटों, कुण्डलों, हारों, केयूरों से समलंकृत थे।।१९०।। सब के सब वेदों और वेदाङ्गों के विद्वान् तथा नीतिशास्त्र विशारद थे तथा सभी अस्त्रों के संचालन में तथा संहार कर्म में कुशल थे।।१९१।। वे सभी दिव्यमन्त्रों से पुरस्कृत तथा दिव्यमन्त्रों का प्रयोग करने वाले थे। वे सभी बली शूरवीर तथा सब शस्त्रों का प्रहार करने वाले थे।।१९२।। वे सभी दिव्यरूप को धारण करने वाले सौम्य और जरामरण से रहित थे। उन महापुरुषों के कुलों में

चतुर्षु मेरुपार्श्वेषु हेमकूटे हिमाह्वये। नीले श्वेतनगे चैव निषधे गंधमादने॥१९४॥
द्वीपेषु सप्तसु तथा या गुहा ते च पर्वताः। निलयास्तेषु ते प्रोक्ता विश्वकर्मकृता स्वयम्॥१९५॥
पुरैश्च विविधाकारैः प्रकारैश्च विभूषिताः। सर्वर्तुरमणीयास्ते ह्युद्यानानि च सर्वशः॥१९६॥
गृहभूमिषु शय्यासु पुष्पगंधसुखोदिताः। आलेपनैश्च विविधैर्दिव्यभक्तिकृतैस्तथा॥१९७॥
सर्वरत्नसमाकीर्णा मानसीं सिद्धिमास्थिताः। वानरा वानरीभिस्ते दिव्याभरणभूषिताः॥१९८॥
पिबंतो मधु माध्वीकं सुधाभक्षानुमिश्रितम्। क्रियामयाः समुदिता दिवि देवगणा इव॥१९९॥

देवगन्धर्वमुख्यानां पुत्रास्ते वै सुखे रताः।
धार्मिकाश्च वरोत्सिक्ता युद्धशौंडा महाबलाः॥२००॥

अक्षुद्राः सर्वसत्त्वानां देवद्विजपरायणाः। अम्लानिनः सत्यसंधा नानार्थे बहुजल्पिनः॥२०१॥
मितभाषाः क्षमावंतो ह्याचारपरिनिष्ठिताः। वनालंकारभूतो हि सृष्टा वै ब्रह्मणा स्वयम्॥२०२॥
भक्त्या निमित्तं लोकेषु रामस्यार्थे गुणाकरः। कपीनामवतारोऽयं सर्वपापविनाशनः॥२०३॥
धन्यः पुण्यो यशस्यश्च रमणीयः सुखावहः। तदेव कीर्तयिष्यामि तच्छृणुध्वमतंद्रिताः॥२०४॥

ऊर्द्ध्वदृष्टेश्च तनयो व्याघ्रो नामाऽभवद्बली।
व्याघ्रस्य भ्रातरः पञ्च स्वकारश्च तथास्य वै॥२०५॥

तांस्तथा स्वानुरूपेषु वानरेषु कृतात्मसु। प्रतिपादिता स्वयं भ्रात्रा भातृदारास्तथैव च॥२०६॥
व्याघ्रस्य तु सुतो जज्ञे शरभो लोकविश्रुतः। शरभस्यापि विद्वांसो भ्रातरो वीर्यसंमताः॥२०७॥

दश हजार मेरु के पास में चारों ओर हेमकूट, हिमालय, नील,श्वेत, निषध, गन्धमादन, पर्वतों वाले सात द्वीपों में उन्होंने अपने घर बनाये थे, जिन घरों को विश्वकर्मा ने स्वयं बनाया था।।१९५।। अनेकों आकारों और प्रकारों वाले नगरों से विभूषित और सभी ऋतुओं में रमणीय उनके उद्यान थे।।१९६।। अनेकों प्रकार के दिव्य भक्तिकृत आलेपनोंसे घर की भूमियों पर शय्याओं पर फूलों की सुखदायक गन्ध फैली रहती थी। सब रत्नों से व्याप्त मानसीसिद्धि में स्थित दिव्य आभूषणों से भूषित वे वानर वानरियों के साथ अमृतभक्ष से मिश्रित अंगूर से बनी हुई शराब को पीते हुए देवगणों के समान क्रियाशील एवं विकासशील थे।।१९७-१९९।।

मुख्य देवों और गन्धर्वों में उनके पुत्र सुख में रत, धार्मिक, वरोत्सिक्त (वरप्राप्त), युद्ध में कुशल और महाबली थे।।२००।। वे सब प्राणियों में महान् थे, देवों और ब्राह्मणों में कुशल थे, ये सब निष्पाप, सत्यप्रतिज्ञावाले और बहुत बोलने वाले थे।।२०१।। सबके सब मितभाषी, क्षमावान् और आचारपरिनिष्ठित थे। वे वन की शोभा थे तथा ब्रह्मा ने उन्हें स्वयं ही उत्पन्न किया था।।२०२।। राम की भक्ति के निमित्त वन की शोभा के रूप में गुणाकर ब्रह्मा ने स्वयं उन्हें उत्पन्न किया था।।२०२½।। कपियों का यह अवतार सब पापों का विनाश करने वाले, भगवान् राम की भक्ति के निमित्त हुआ था तथा वह अवतार धन्य, पुण्य, यशस्य, रमणीय और सुखावह था, उसी का वर्णन किया जायेगा। अतः आप लोग सावधान होकर सुनिये।।२०३-२०४।। ऊर्द्ध्वदृष्टि का व्याघ्र नामक बली पुत्र हुआ। व्याघ्र के पांच भाई और उसकी बहिनें भी थीं तथा उन्होंने अपने आप ही अपने ही अनुरूप अपनी अपनी पत्नियों को प्राप्त किया।।२०५-२०६।। व्याघ्र का शरभ नाम लोकप्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। शरभ के पराक्रमसम्मत विद्वान् भाई हुए।।२०७।।

राजानो वानराणां च सर्वधर्मप्रतिष्ठिताः। शरभस्य सुतो धीमाञ्शुको नाम महाबलः॥२०८॥
तस्यापि पुत्रो बलवान् व्याघ्री जठरसंभवः। संमतः सर्वशूराणां चक्रवर्ती दुरासदः॥२०९॥
ऋक्षोनाम महातेजाः सर्ववानरयूथपः। हंता सदैव शत्रूणां सर्वास्त्रविधिपारगः॥२१०॥
तस्मै तादृग्विशिष्टाय सुतां गुणगणैर्युताम्। प्रजापतिरुपादाय कन्यां हेमविभूषिताम्॥२११॥
विरजो विरजां तस्मै प्रत्यपादयदंजसा। पाणिं जग्राह तस्यास्तु ऋक्षो वानरयूथपः॥२१२॥
दर्शनीयाऽनवद्यांगी सा कन्या चारुहासिनी।
चकमे तां महेन्द्रस्तु दृष्ट्वा वै प्रियदर्शनाम्॥२१३॥
तेन तस्यां सुतो जातो बाली विक्रमपौरुषः। विरजायां महेंद्रेण महेंद्रसमविक्रमः॥२१४॥
तथा स्वांशो भानुना वै तस्यामेव यथाविधि। रहस्युत्पादितः पुत्रः सुग्रीवो हरियूथपः॥२१५॥
ऋक्षो दृष्ट्वा तु तनयौ बलरूपश्रिया युतौ। हर्षं चक्रे सुविपुलं सर्ववानरयूथपः॥२१६॥
सोऽभ्यषिंचत्सुतं ज्येष्ठं वालिनं हेममालिनम्।
अभिषिक्तस्ततो वाली सुग्रीवानुगतो बली॥२१७॥
कारयामास राज्यं च दिवि देवेश्वरो यथा।
सुषेणस्य सुता चापि भार्या तस्य महात्मनः॥२१८॥
तारा नाम महाप्राज्ञा ताराधिपनिभानना। सुषुवे सापि तनयमंगदं कनकांगदम्॥२१९॥
अंगदस्यापि तनयो जातो भीमपराक्रमः। मैंदस्य ज्येष्ठकन्यायां ध्रुवो नाम महायशाः॥२२०॥

वे वानरों के सर्वधर्मप्रतिष्ठित राजा हुए। शरभ के बुद्धिमान् और बहाबलवान् शुक्र नामक पुत्र हुए।।२०८।। उनका भी बलवान् पुत्र व्याघ्री के उदर से उत्पन्न हुआ, वह सब शूरो मे सम्माननीय चक्रवर्ती और अजेय हुआ।।२०९।। वह समस्त वानरो का स्वामी ऋक्ष नाम का वानर महातेजस्वी सदैव सब शत्रुओं को मारनेवाला और सब अस्त्रो की विधि मे पारंगत था।।२१०।। उस उन उन विशिष्ट गुणों से युक्त ऋक्ष के लिये प्रजापति ने स्वर्णभूषित तथा अनेक गुणो से युक्त विरज की पुत्री विरजा को सांजलि प्रदान किया। तब उस वानरयूथपति ऋक्ष ने उसका पाणिग्रहण कर लिया।।२११-२१२।। वह कन्या बहुत ही दर्शनीय अनवद्याङ्गी और सुहासिनी थी। महेन्द्र भी उस प्रियदर्शना को देखकर कामुक हो गये थे।।२१३।।

उन महेन्द्र से उस विरजा में विक्रमपौरुष वाला महेन्द्र के समान पराक्रमी बाली नामक पुत्र पैदा किया।।२१४।। तथा महेन्द्र ने ही अपने भानु के अंश से उसी यथाविधि एकान्त में संभाग द्वारा वानराधिपति सुग्रीव को उत्पन्न किया।।२१५।। समस्त वानर समुदाय स्वामी ऋक्ष ने जब बल रूप और सुन्दरतायुक्त अपने पुत्रों को देखा तो उन्हें बहुत अधिक प्रसन्नता हुई।।२१६।। फिर उन वानराधिपति ऋक्ष ने अपने स्वर्णमालाधारी ज्येष्ठ पुत्र वाली का राज्याभिषेक किया। अभिषिक्त वाली का सुग्रीव ने अनुसरण किया और स्वर्ग मे जैसे देवेश्वर इन्द्र राज्य करते हैं, उसी तरह वाली से राज्य करवाया। सुषेण की पुत्री उस महापुरुष वाली की पत्नी थी।।२१७-२१८।। उसका नाम तारा था, जो ताराधिपति चन्द्रमा के समान सुन्दर और महान् बुद्धिमती थी। उसने स्वर्ण का अंग देने वाले अंगद नामक पुत्र को पैदा किया।।२१९।। अगद का भी मेन्द की ज्येष्ठ कन्या में भीमपराक्रमी, महान् यशस्वी ध्रुव नामक पुत्र पैदा हुआ।।२२०।।

सुग्रीवस्य रूमा भार्या पनसस्य सुता शुभा।
तस्यापि च सुता जातास्त्रयः परमकीर्त्तय;॥२२१॥
तेषां दारांस्तथाऽसाद्य सुस्वरूपान्बली ततः।
वालिनः पार्श्वतोऽतिष्ठत्सुग्रीवः सह वानरैः॥२२२॥

बहून्वर्षगणानुग्रो भ्रात्रा सह यथाऽमरः। केसरी कुंजरस्याथ सुतां भार्यामविंदत॥२२३॥
अंजना नाम सुभागा गत्वा पुंसवने शुचिः। पर्युपास्ते च तां वायुर्यौवनादेव गर्विताम्॥२२४॥
तस्यां जातस्तु हनुमान् वायुना जगदायुना। ये ह्यन्ये केसरिसुता विख्याता दिवि चेह वै॥२२५॥
ज्येष्ठस्तु हनुमांस्तेषां मतिमांस्तु ततः स्मृतः। श्रुतिमान्केतुमांश्चैव मतिमान्धृतिमानपि॥२२६॥
हनुमद्भ्रातरो ये वै ते दारैः सुप्रतिष्ठिताः। स्वानरूपैः सुताः पित्रा पुत्रपौत्रसमन्विताः॥२२७॥
ब्रह्मचारी च हनुमान्नासौदारैश्च योजितः। सर्वलोकानपि रणे यो योद्धुं च समुत्सहेत्॥२२८॥
जवे जवे च वितते वैनतेय इवापरः। अग्निपुत्रश्च बलवान्नलः परमदुर्जयः॥२२९॥
क्षेत्रे कनकविंदोस्तु जातो वानरपुंगवः। तथात्वन्ये महाभागा बलवंतश्च वानराः॥२३०॥
सप्रधानास्तु विज्ञेया हरियूथप यूथपाः। तारश्च कुसुमश्चैव पनसो गंधमादनः॥२३१॥
रूपश्रीर्विभवश्चैव गवयो विकटः सरः। सुषेण सुधनुश्चैव सुबंधुः शतदुंदुभिः॥२३२॥
विकचः कपिलो रौद्रः पारियात्रः प्रभंजनः। कुंजरः शरभो दंष्ट्री कालमूर्तिर्महासुखः॥२३३॥
नंदः कंदरसेनश्च नलो वारुणिरेव च। चिरवः करवस्ताम्रश्चित्रयोधी रथीतरः॥२३४॥
भीमः शतबलिश्चैव कालचक्रोऽनलो नलः। यक्षास्यो गहनश्चैव धूम्रः पंचरथस्तथा॥२३५॥

पनस की शुभ पुत्री रूमा सुग्रीव की पत्नी हुई, उसके भी परमकीर्ति वाले तीन पुत्र पैदा हुए।।२२१।। उनकी सुन्दर रूप वाली पत्नियों को प्राप्तकर वली सुग्रीव वाली के पीछे वानरो के साथ स्थित था।।२२२।। वहुत वर्षो तक भाई के साथ उग्र एवं अमर सुग्रीव उनकी रक्षा मे स्थित रहे। कुंजर की पुत्री को केशरी ने अपनी पत्नी बनाया।।२२३।। केशरी की पत्नी सुभागा अंजना पवित्र पुंसवन में जा पहुँची, जहाँ उन यौवन से गर्वित अंजना के साथ वायु ने समागम किया।।२२४।। तब उन अंजना मे संसार के आयुस्वरूप वायु द्वारा हनुमान् का जन्म हुआ और अन्य भी केसरी के पुत्र पृथ्वी तथा स्वर्ग लोक मे विख्यात हुए।।२२५।। अंजनी के पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ पुत्र हनुमान् थे, उसके वाद मतिमान् स्मरण किये गये हैं। उसके बाद श्रुतिमान्, केतुमान्, मतिमान् और धृतिमान् भी हुए।।२२६।। हनुमान् के जितने भी भाई थे, वे सब पत्नियों से प्रतिष्ठित थे तथा फिर वे सभी अपने अपने अनुरूप पुत्रों-पौत्रों से समन्वित थे।।२२७।।

हनुमान् ब्रह्मचारी थे, वे पत्नी वियुक्त थे। वे युद्ध में समस्त संसार से भी युद्ध करने का साहस कर सकते थे। तीव्र मे तीव्र गमन मे वे दूसरे गरुड़ थे।।२२८-२२८½।। अग्नि के पुत्र बलवान् नल नामक वानर भी परम दुर्जय थे, जो वानरश्रेष्ठ कनकविन्दु के क्षेत्र मे अग्नि देव से पैदा हुए थे।।२२९½।। तथा अन्य महाभाग बलवान् वानर हुए, जो वानराधिपतियों के समूह में प्रधान वानर जानने चाहिये, उनके नाम हैं—तार कुसुम पनस गन्धमादन रूपश्री, विभव, गवय, विकट, मर, सुषेण, सुधनु, सुबन्धु, शतदुन्दुभि, विकच, कपिल, रौद्र, पारिपात्र, प्रभञ्जन,

पारिजातो महादीप्तः सुतपा वलसागरः। श्रुतायुर्विजयाकांक्षी गुरुसेवी यथार्थकः॥२३६॥
धर्मचेतास्सुहोत्रश्च शालिहोऽत्रोथ सर्पगः। पुंड्रश्चावरगात्रश्च चारुरूपश्च शत्रुजित्॥२३७॥
विकटः कवटो मैंदो बिंदुकरोऽसुरांतकः। मन्त्री भीमरथः संगो विभ्रांतश्चारुहासवान्॥२३८॥
क्षणक्षणमिताहारो दृढभक्तिः प्रमर्दनः। जाजलिः पंचमुकुटो बलवंधुः समाहितः॥२३९॥

पयःकीर्त्तिः शुभः क्षेत्रो बिंदुकेतुः सहस्त्रपात्।
नवाक्षो हरिनेत्रश्च जीमूतोऽथ बलाहकः॥२४०॥

गजो गवयनामा च सुबाहुश्च गुणाकरः। वीरबाहुः कृती कुंडो कृतकृत्यः शुभेक्षणः॥२४१॥
द्विविदः कुमुदो भासः सुमुखः सुरुवुर्वृकः। विकटः कवकश्चैव जवसेनो वृषाकृतिः॥२४२॥
गवाक्षो नरदेवश्च सुकेतुर्विमलाननः। सहस्वारः शुभक्षेत्रः पुष्पध्वंसो विलोहितः॥२४३॥
नवचन्द्रो बहुगुणः सप्तहोत्रो मरीचिमान्। गोधामा च धनेशश्च गोलांगूलश्च नेत्रवान्॥२४४॥
इत्येते हरयः क्रांताः प्राधान्येन यथार्थतः। बहुत्वान्नामधेयानां न शक्यमभिवर्णितुम्॥२४५॥
नागकोटीदशबले एकैकस्य प्रतिष्ठितम्। सर्ववानरसैन्यस्य सप्तद्वीपस्थितस्य तु॥२४६॥

किष्किंधामाश्रितो वाली राजाऽसीच्छत्रुतापनः।
रणे निगूह्य वामेन भुजेन स महाबलः॥२४७॥
विष्टभ्य पार्श्वे संस्थाप्य रावणं ध्यानमास्थितः।
मौहूर्तिकीं गतिं गत्वा चतुःपार्श्वानुपस्पृशन्॥२४८॥

समुद्रं दक्षिणं पूर्वपश्चिमं च तथोत्तरम्। मनोवायुगतिर्भूत्वा वाली व्यपगतक्रमः॥२४९॥

कुंजर, शरभ, दंष्ट्री, कालमूर्ति, महासुख, नन्द, कन्दरसेन, नल, वारुणि, चिरव, करव, ताम्र, चित्रयोधी, रथीतर, भीम, शतवलि, कालचक्र, अनल, नल, यक्षास्य, गहन, धूम्र, पंचरथ, पारिजात, महादीप्त, सुतपा, वलसागर, श्रुतायु, विजयाकांक्षीगुरुसेवी, यथार्थक, धर्मचेता, सुहोत्र, शालिहोत्र, सर्पगा, पुण्ड्र, अवरगात्र, चारुरूप, शत्रुजित्, विकट, कवट, मैन्द, विन्दुकार, असुरान्तक, मन्त्रीभीमरथ संग और विभ्रान्त तथा दृढ़ ये सब सुन्दर हासवान् थे।।२२९½-२३८।। भक्ति रखने वाले थे तथा क्षणक्षण पर कम आहार करने वाले थे। प्रमर्दन, जाजलि, पंचमुकुट, समाहित, बलवन्धु, पयःकीर्ति, शुभक्षेत्र, बिन्दुकेतु, सहस्त्रपात्, नवाक्ष, हरिनेत्र, जीमूत, बलाहक, गज, गवयनामा, सुवाहु, गुणाकर, बीरवाहु, कृती, कुण्ड, कृतकृत्य, शुभेक्षण, द्विविद, कुमुद, भास, सुमुख, सुरुवुर्वृक, विकट, कवक, जवसेन, वृषाकृति, गवाक्ष, नरदेव, सुकेतु, विमलानन, सहस्वार, शुभक्षेत्र, पुष्पध्वंस, विलोहित, नवचन्द्र, बहुगुण, सप्तहोत्र, मरीचिमान्, गोधामा, धनेश, गोलांगूल और नेत्रवान्। इस प्रकार ये सब यथार्थ रूप से प्रधानता से वर्णन किया गया है अर्थात् ये सब प्रधान वानरों का वर्णन किया गया है। इनकी संख्या बहुत अधिक होने के कारण नामों का वर्णन नहीं किया जा सकता।।२४५।। एक एक नाग कोटि के दश दश बलवान् वानर थे। सब वानर सैन्य की स्थिति सातों द्वीपों में थी।।२४५½।। वाली किष्किन्धा पर्वत का आश्रय लेकर स्थित थे तथा वे किष्किन्धा के राजा थे, जो शत्रुओं को सन्ताप देने वाले थे।।२४६½।। महाबली वाली बाँयी भुजा से रावण को पकड़कर बगल में छिपाकर ध्यानावस्थित हो थोड़ी देर में ही पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण की दिशाओं को स्पर्श करता हुआ मन और वायु

स निर्जित्य महावीर्यो रावणं लोकरावणम्। वाली बाहुविनिर्मुक्तं विह्वलं नष्टचेतसम्॥२५०॥
वृक्षमूलप्रदेशे च स्थापयित्वा बलोत्कटः। सिच्यांभसा सुशीतेन ह्यापादतलमस्तकात्॥२५१॥
स च तं लब्धसंज्ञं च कृत्वा विस्मयमास्थितः। उवाच रणचंडं तं राक्षसेंद्रं कपीश्वरः॥२५२॥
भो भो राक्षसराजेंद्र महेन्द्रसमविक्रम। असंख्येयं बलं जित्वा यमं ससचिवं रणे॥२५३॥
वरुणं च कुबेरं च शशिनं भास्करं तथा। मरुद्गणं तथा रुद्रानादित्यानश्विनौ वसून्॥२५४॥
दैतेयान्कालकेयांश्च दानवान्सुमहाबलान्। सिद्धांस्तथैव गंधर्वान्यक्षरक्षोभुजंगमान्॥२५५॥
पक्षिणां प्रवरांश्चैव ग्रहनक्षत्रतारकाः। तथा भूतपिशाचांश्च विवृद्धबलदर्पितान्॥२५६॥
मानुषाणां नृपांश्चैव शतशोऽथ सहस्रशः। कथमीदृग्गुणो भूत्वा मनोवायुसमो जवे॥२५७॥
शक्तोऽसि चालने मेरोः कृतांत इव दुर्जयः। विद्राव्य सर्वाल्लोकेषु वीरान्परपुरंजयः॥२५८॥
बलैरशनिकल्पैश्च समीकृत्य च पर्वतान्। विक्षोभ्य सागरान्सप्त सप्तकृत्वो महारथः॥२५९॥
निर्विकारो जयप्रेप्सुः स्मयमानो बलाद्बली। दुर्बलेन मयाक्रान्तो वानरेण विशेषतः॥२६०॥
किमर्थमीदृशं शप्तो बलवानपि दुर्जयः। प्रब्रूहि हेतुना केन ब्रह्मन्राक्षसपुंगव॥२६१॥
अभयं ते मया दत्तं विश्वस्तो भव ते न भीः।
वचनं वालिनः श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान्॥२६२॥
उवाच भयसंविग्नः सांत्वपूर्वमिदं वचः। असंशयं जिताः सर्वे मया देवासुरा रणे॥२६३॥

की गति बनकर सर्वत्र घूम गया था।।२४६½-२४९।। उस महापराक्रमी तथा बलोत्कट वाली ने संसार को दहाड़ से डराने वाले महाबली रावण को जीतकर बेचैन और मूर्च्छित अवस्था में एक वृक्ष के मूल प्रदेश में ले जाकर वहाँ उस मूर्च्छित अवस्था में पैर से सिर तक शीतल जल से अच्छी तरह सींचकर तथा उसे होश में लाकर आश्चर्यचकित कर दिया।।२४९-२५१½।। उसके वाद उस कपीश्वर वाली ने युद्धवीर राक्षसों के अधिपति रावण से कहा कि हे इन्द्र के समान पराक्रम वाले राक्षसराज! आपने अगणनीय बल वाले सचिव सहित यमराज को, वरुण, कुबेर, चन्द्रमा, सूर्य, मरुद्गण, रुद्र, आदित्यगण, वसुओं, दैत्यों, कालकेयों, दानवों, महाबली, सिद्धों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, भुजङ्गो, पक्षिकुलों, ग्रहनक्षत्र तारों, भूतपिशाचों और अपने बढ़े हुये बल से गर्वित सैकड़ों और हजारों मानुष राजाओं को युद्ध में जीत लिया है।।२५१½-२५६½।।

इतने गुणों से युक्त होकर कैसे आपकी यह दशा है? क्योंकि आप यमराज के मेरु पर्वत को भी उठाकर चलाने में समर्थ हैं। आप लोकों में सब वीर शत्रुओं को जीत सकते हैं।।२५६½-२५८।। आप अपने वज्रसमान बल से पर्वतों को समतल कर सकते हैं। सातों समुद्रों को सात-सात भागों में विभक्त कर सकते हैं। आप महारथी, निर्विकार, जय की इच्छा रखने वाले, आश्चर्य पैदा करने वाले और बलवान् से भी बलवान् हैं। मुझ दुर्बल वानर द्वारा विशेषतः हरा दिये गये।।२५९-२६०।। वाली ने रावण से कहा कि हे राक्षसराज इतने बलवान् और दुर्जय होते हुए भी आप किसलिये किस कारण से शापयुक्त हो गये अर्थात् मुझसे क्यों हार गये। अतः अब मैं आपको अभय दान करता हूँ, अतः आप मुझसे मत डरिये।।२६१-२६१½।। वाली के वचन को सुनकर प्रतापी रावण ने भय से काँपते हुए इस प्रकार सान्त्वनापूर्ण वचन कहा कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैंने युद्ध में समस्त देवों और असुरों को जीत लिया है।।१६१½-१६३।।

एवंविधस्तु बलवान्न मयासादितः क्वचित्।
तदिच्छामि त्वया सार्द्धं सौहृदंय भयवर्जितम्॥२६४॥

मत्तो भवेन्न ते वीर कदाचिद्वै रणाजिरम्। एवमुक्तोऽब्रवीद्वाली भवत्येतद्वचस्तव॥२६५॥
समये स्थापयित्वा तु रावणो वालिनं पुरा। जगाम लंकां सगणः प्रहृष्टेनांतरात्मना॥२६६॥
वाली विजित्य बलवान् पुष्करे राक्षसेश्वरम्। आजहार बहून्यज्ञानन्नपानसमावृतान्॥२६७॥

दक्षिणाभिः प्रवृद्धाभिः शतशोऽथ सहस्त्रशः।
अग्निष्टोमाश्वमेधांश्च राजसूयान्नृमेधकान्॥२६८॥

सर्वमेधानपि बहून्सर्वदानसमन्वितान्। तर्पयित्वाथ देवांश्च देवेन्द्रं बहुभिस्तथा॥२६९॥

ब्रह्माणं तोषयित्वा च हुत्वाग्निं बहुवार्षिकम्।
सुग्रीवेण सह भ्रात्रा सुखी भूत्वा यवीयसा॥२७०॥

राज्यं च पालयित्वा स कपीनामकुतोभयः। ब्रह्मण्यो ब्रह्मरमो धर्मसेतुः क्रियापरः॥२७१॥
बहून्वर्षगणान्नेमे सर्वशास्त्रविशारदः। यस्य देवमुनिर्गाथां जगौ यज्ञेषु नारदः॥२७२॥
न यज्ञहवने दाने जवेनापि पराक्रमे। तुल्योऽस्ति त्रिषु लोकेषु वालिनो हेममालिनः॥२७३॥

शांशपायन उवाच

अहो महाप्रभावस्तु महेंद्रतनयो बली। वाली यज्ञसहस्त्राणां यज्वा परमदुर्जयः॥२७४॥
चक्रवर्त्ती महाप्राज्ञो वाली च कथितस्त्वया। मार्त्तंडस्य तु नो ब्रूहि कथं मार्त्तंडता स्मृता।
निरुक्तमस्य तु विभो याथातथ्येन सुव्रत॥२७५॥

परन्तु ऐसा मुझे कहीं भी नहीं मिला, इसलिए मैं तुम्हारे साथ में भय वर्जित मित्रता करना चाहता हूँ।।२६४।। मुझसे अधिक वीर तुम्हें कभी भी नहीं मिल सकता। इस प्रकार जब रावण ने कहा, तब वाली बोला कि ठीक है, आपका यह वचन माना जायेगा।।२६५।। इस प्रकार फिर समय निकालकर रावण प्रसन्नचित्त होकर वाली को लंका ले गया।।२६६।। पुष्कर में वाली ने राक्षसेश्वर रावण को जीतकर अनेकों यज्ञों, अन्नपानादि कार्यक्रमों को किया।।२६७।। सैकड़ों हजारों की दक्षिणाओं से प्रवृद्ध अग्निष्टोम, अश्वमेध, राजसूय, नरमेधयज्ञों को सम्पन्न किया।।२६८।। सब प्रकार के दानों से समन्वित सब मेधयज्ञों को भी किया तथा बहुत यज्ञों द्वारा देवों और देवेन्द्र को तर्पण करके फिर ब्रह्मा को सन्तुष्ट कर तथा बहुत से वार्षिक यज्ञ करके वह अपने छोटे भाई सुग्रीव के साथ सुखी होकर रहने लगा।।२६९-२७०।। जिस समय वह राज्य का पालन कर रहा था, उस समय वानरों को कहीं से भी कोई भय नहीं था। वह ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मपरक, धर्मसेतु और क्रियापरक था अर्थात् वह प्रत्येक कार्य को पूर्ण करने वाले धर्म को ही मानता था।।२७१।। जिस वाली की गाथा को सर्वशास्त्रविशारद देवमुनि नारद ने यज्ञों मे बहुत वर्षों तक गान किया।।२७२।। यज्ञ, हवन, दान, वेग और पराक्रम में तीनों लोकों मे उस सुवर्ण मालाधारी वाली के समान कोई नहीं था।।२७३।।

शाशंपायन मुनि ने सूत जी से कहा कि अहो सूत जी! महाप्रभावशाली बली महेन्द्रतनयवाली महाप्रभावशाली, हजारों यज्ञों को करने वाला था और परम अजेय था।।२७४।। अतः ऐसे वाली के बारे में तो आपने बताया कि वह

सूत उवाच

सृज्यमानेषु भूतेषु प्रजापतिरथ स्वयं॥२७६॥

त्रैलोक्याद्यत्परं तेजस्तदाहृत्यादितेर्हृदि। प्रवेशयामास तदा योगेन महता वृतः॥२७७॥
पूर्वमंडं तु भगवानस्याश्चक्रे तथोदरे। तत्रावर्त्तत गर्भो वै अंडस्याभ्यंतरे बली॥२७८॥
वर्द्धमानोऽतिमात्रं वै देवा निस्तेजसोऽभवन्। सर्वतो निर्मितं ज्ञात्वा गर्भं ते हततेजसः॥२७९॥

ऊचुः प्रजापतिं भीता कथं नो भविता त्विदम्।
बलं तेजोऽस्य भविता निर्मितस्याधिकं विभो॥२८०॥

नूनं कथं भविष्यामो नूनं नष्टा हि शाश्वत। सर्वभूतानि यानीह स्थावराणि चराणि च॥२८१॥
तानि दग्धानि न चिराद्भविष्यंति न संशयः। यदंडे स्थापितं तेजो बलं च द्विजसत्तम॥२८२॥
तत्संहर विचिंत्येह यन्नः श्रेयस्करं भवेत्। श्रुतितेजःप्रभावश्च धक्षते सर्वतोऽजसा॥२८३॥
स चिंतयित्वा भगवान्प्रजापतिरथाक्षिपत्। बलं चांडे चकाराथ ततस्त्वंडांतरे शिशुः॥२८४॥
यदंडं तद्बलं प्राहुर्यत्तेजः स शिशुर्मतः। तत्तूदराद्विनिष्क्रांत मृतपिंडोपमं स तु॥२८५॥
प्रजापतिस्ततो दृष्ट्वा तदंडं वै द्विधाकरोत्। शकले द्वे समास्याथ स एकस्मिन्नपश्यत॥२८६॥
गर्भं दुर्बलभावेन युक्तं तेजोमयं सकृत्। तत्समुद्यम्य चोत्थायादित्युत्संगे निवेद्य च॥२८७॥

वाली चक्रवर्ती और महान् बुद्धिमान् था; परन्तु आपने मार्तण्ड के बारे में नहीं बताया कि मार्तण्ड ने मार्तण्डता कैसे प्राप्त की?। हे सुव्रत! निरुक्त के अनुसार यथातथ्य मुझे बताओ।।२७५।।

सूत जी बोले—कि जब व्रती प्रजापति ब्रह्मा ने स्वयं जब भूततत्त्वों की रचना की थी, उस समय तीनों लोकों से जो परे जो तेज था, उसको योगबल से अदिति के हृदय में प्रविष्ट कर दिया।।२७६-२७७।।

सबसे पहले अण्डे को भगवान् प्रजापति ने इस अदिति के उदर में स्थापित किया था। उस अण्ड के अन्दर में एक बली गर्भ विद्यमान था।।२७८।। वह गर्भ बढ़ता हुआ, ऐसा हो गया कि देवता भी उसके सामने निस्तेज हो गये। उस सबका तेज हरणकर लेने वाले गर्भ को निर्मित होता जानकर देवों ने भयभीत होकर प्रजापति ब्रह्मा से कहा कि यह इसका बल और तेज कैसा है? क्या होने वाला है?।।२७९-२७९½।। इस अण्ड का तेज और बल इतना अधिक बढ़ रहा है, अब क्या होगा? निश्चय ही अब हम सब सदा के लिये नष्ट हो जायेंगे।।२७९½-२८०½।।

हे विभो! इस संसार में जितने स्थावर और जङ्गम समस्त प्राणी हैं, वे सभी भस्म हो जायेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है।।२८०½-२८१½।। अतः, द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मा जी आपने जो इस अण्ड मे तेज और बल स्थापित किया है, उसको विचारकर पूर्णरूप से हर लीजिये; वह हमारे लिये श्रेयस्कर नहीं होगा; क्योंकि श्रुति (वेदो) के तेज और प्रभाव सब ओर शीघ्र नष्ट हो रहा है।।२८१½-२८३।। उसके बाद प्रजापति भगवान् ब्रह्मा ने अण्डे के बल का आक्षेप किया, उसके बाद उस अण्डे में शिशु पैदा हुआ।।२८४।। जिस अण्डे पर बल दिया, उसे बल कहा गया तथा जिस पर तेज कहा गया, उसे तेज शिशु कहा गया। उसके बाद उदर से मरे हुए पिण्ड के समान पैदा हुआ देखकर प्रजापति ने उस अण्डे को दो भागों में विभक्त कर दिया। दो टुकड़े रखकर ब्रह्माजी ने एक में दुर्बलभाव से युक्त तेजोमय एक गर्भ को देखा।।२८४-२८६½।। उसको उठाकर ब्रह्माजी ने अदिति के गोद में रखकर निवेदन करके कहा कि

उवाचादित्यभावाच्च यस्मादंडेन वै स्मृतः। तेन मार्त्तंड इति वै कथ्यते सविता बुधैः॥२८८॥
तेजश्चैवाधिकं तस्मै निर्ममे प्रपितामहः। ये ते अंडकपाले द्वे तद्बलं परमं मतम्॥२८९॥
नाभौ पृथग्व्यवस्थाप्य इरावत्यै ददौ प्रभुः। उदरे प्रवेशयामास तस्याः स जननेच्छया॥२९०॥
इरावत्यास्तथा जाताश्चत्वारो लोकसंमताः। दोवोपवाह्या राजानो हस्तिनो बलवत्तराः॥२९१॥
ऐरावणोऽथ कुमुदो ह्यंजनो वामनस्तथा। उत्तरत्र च वो भूयस्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम्॥२९२॥

योऽयं प्रधानो लोकेऽस्मिन्नधिकेनामितौजसा।
भगवान्सविता साक्षात्प्रभासयति रश्मिभिः॥२९३॥

निरालोकं जगदिदं लोकालोकांतरं द्विजाः। बाह्यं तमोवृत्तं सर्वं तत्प्रमाणमशेषतः॥२९४॥
एतदुक्तं मया सर्वं यथावद्विजसत्तमाः। श्रुतं भगवतो व्यासात्पाराशर्यान्महात्मनः॥२९५॥
सनत्कुमारेण पुरा प्रोक्तं वै वायुना पुरा। विमृश्य बहुधा तत्तु पुनरन्यैः पृथक्पृथक्॥२९६॥
पुराणामृतकं श्रुत्वा पुण्यं सर्वार्थसाधकम्। अभयो विचरत्येव जात्यंतरशतं गतः॥२९७॥

मार्तंडजननं ह्येतद्गेहे यस्य व्यवस्थितम्।
कथ्यते वा कथा यस्य न तं विद्धि समानकम्॥२९८॥
न चाकाले म्रियंतेऽस्य बाला अपि कदाचन।
ऋक्षस्य भगिनी रक्षा वानरस्य बलीयसः॥२९९॥

अदिति से पैदा होने के कारण इसे आदित्य कहा जायेगा तथा अण्डे से पैदा होने के कारण उसके दो भाग किये गये थे अर्थात् उसको मारा गया था, इसलिये इस सविता (सूर्य) को विद्वानों द्वारा मार्तण्ड कहा गया।। मृत+अण्ड=मार्तण्ड।।२८६½-२८८।। उसके बाद उन मार्तण्ड सूर्य के लिये ब्रह्माजी ने अधिक तेज का निर्माण किया और जो दो अण्डकपाल थे, उनमें परमबल माना गया।।२८९।। उन दोनों अण्डकपालों को अलग-अलग व्यवस्थित करके प्रभु ब्रह्मा ने इरावती को दे दिया तथा उत्पन्न करने की इच्छा से इरावती के उदर में प्रवेश करा दिया।।२९०।। तब उस इरावती के लोकसम्मत देवों द्वारा वाहन बनाने योग्य बलवत्तर चार हस्तिराज पैदा हुये।।२९१।। उनके नाम हैं—ऐरावण (ऐरावत) कुमुद, अंजन और वामन। इसके बाद फिर जो हुआ, उसे मैं विस्तार से कहूँगा।।२९२।। जो ये सबसे मुख्य भगवान् सविता (सूर्य) हैं, जो इस संसार में बहुत अधिक असीमित तेज से अपनी किरणों द्वारा प्रकाशरहित इस संसार को तथा लोक लोकान्तरों को जो कि पूरी तरह अन्धकार से आवृत हैं, उनको बहुत अधिक असीमित तेज से अपनी किरणों द्वारा साक्षात् निःशेषतः प्रकाशित करते हैं।।२९३-२९४।।

सूत जी ने कहा कि हे द्विजश्रेष्ठो! मैंने महात्मा भगवान् पारासर वेद व्यास से सुना था, उसको यथावत् आप लोगों को बता दिया।।२९५।। इस वृत्तान्त को प्राचीनकाल में सनत्कुमार और वायु ने अलग अलग विचारविमर्श करके कहा था।।२९६।। इस सब अर्थों को सिद्ध करने वाले पुण्य पुराणामृत को सुनकर मनुष्य सैकड़ों जन्मों तक निडर होकर विचरण करता है।।२९७।। यह मार्तण्ड के जन्म की कथा जिसके घर में व्यवस्थित है अर्थात् रखी गयी है अथवा कही जाती है, उसके समान किसी को नहीं जानना चाहिये। उस घर में कभी की असमय में बच्चे नहीं मरते हैं। अर्थात् बच्चों की अकाल मृत्यु नहीं होती।।२९८-२९८½।। बलवान् वानर ऋक्षु की भगिनी रक्षा ने प्रजापति

प्रजापतिसकाशात्सा जज्ञे शूरपरिग्रहम्। ऋक्षराजं महाप्राज्ञं जाबवंतं यशस्विनम्॥३००॥

तस्या जंबवती नाम सुता व्याघ्र्यामजायत।
वासुदेवस्य सा दत्ता पित्रा राजीवलोचना॥३०१॥
तथान्ये ऋक्षराजस्य सुता जाता महाबलाः।
जयंतोऽथ च सर्वज्ञो मृगराट् संकृतिर्जयः॥३०२॥

मार्जारो बलिबाहुश्च लक्षणज्ञः श्रुतार्थकृत्। भोजो राक्षसजिच्चैव पिशाचवनगोचरौ॥३०३॥
शरभः शलभश्चैव व्याघ्रः सिंहस्तथैव च। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥३०४॥
ऋक्षाणामेव तु गणो देवदानवपूजितः। मार्जारस्य तु मार्जारा वाद्याः पुत्रा महाबलाः॥३०५॥

बभूवुः शतसाहस्राः सर्वे वीर्यसमन्विताः।
आचार्याः श्वापदादीनां शरभाणां महौजसः॥३०६॥
स्वादकाः पृषतादीनां मूषिकाणां च पक्षिणाम्।
पाधवे प्लवने युक्ताः सर्वसत्त्वावसादकाः॥३०७॥

ग्रामेषु वनखंडेषु कोटरेषु गुहासु च। गृहेषु गृहगर्भेषु गृहवासावलंबिनः॥३०८॥
नानागतिषु संचाराः कुशला ग्रामगोचराः। तथा वनचराश्चैव स्वभावात्समवस्थिताः॥३०९॥
रात्रौ दिवाचराश्चैव संध्यासु च चरंति ते। नीलजीमूतवर्णाश्च कपिला केकरारुणाः॥३१०॥

के सकाशात (समागम) से महाप्राज्ञ, शूरवीर और यशस्वी जामबन्त को जन्म दिया। उनकी जांबवती नामक पुत्री व्याघ्री में उत्पन्न हुई, जिसको जाबवन्त ने उस कमललोचना को वायुदेव को प्रदान कर दिया।।२९८½-३०१।। तथा उस ऋक्षराज के अन्य महाबली पुत्र पैदा हुए, जो जयन्त सर्वज्ञ मृगराज संकृति और जय नाम के थे। मार्जार (बिलाव) बलिवाहु, तथा उन्हीं के लक्षण वाले अन्य प्राणी पैदा हुए और भोज और राक्षसजित् नामक पिशाच और वनगोचर हुए। उसके बाद उन्हीं के शरभ और शलभ व्याघ्र और सिंह पैदा हुए, फिर उनके सैकड़ों और हजारों पुत्र हुए।।३०२-३०४।। ऋक्षों के गण देवों और दानवों से पूजित थे। मार्जर के मार्जार नामक महाबली पुत्र हुए। मार्जार विलाव को कहते हैं। अतः इनके पूर्वज मार्जार नाम के थे, जिनके नाम से इनका नाम मार्जार हुआ।।३०५।। ये सब सैकड़ों हजार की संख्या में पैदा हुए तथा सब पराक्रम सम्पन्न थे। वे सब मार्जार शिकार करने वाले जंगली जानवरों के तथा महान् पराक्रमी शरभों के आचार्य थे।।३०६।।

शरभ सिंह से भी भयंकर जीव था, जो आज अनुपलब्ध है तथा सिंह की ही जाति का था। जिनका भी आचार्य विलाव था, वैसे आज भी विल्ली को शेर की मौसी कहा जाता है। वे सभी मार्जार चूहे और पक्षियों के मांस खाने में स्वादु लेने वाले थे, शिकार करने के उपाय छोटा होने और कूदने में कुशल थे तथा इस कार्य में सभी जीवों को नीचा दिखाने वाले थे।।३०७।। वे सब गाँवों में, वनखण्डों में, पेड़ के कोटरों (खुलाड़ों) में, पर्वत की गुफाओं में, घरों में, घरों के अन्दर कमरों में रहते थे तथा गाँववासियों पर आश्रित थे।।३०८।। मार्जार अनेकों प्रकार की गति में कुशल थे तथा तरह तरह की चाल चलते थे तथा ग्राम में चलने में कुशल थे तथा वे वन में चलने में कुशल थे। स्वभाव से ही वे दोनों प्रकार की गति में कुशल ग्राम और वन दोनों में चलने रहने में कुशल थे।।३०९।। वे रात्रि में और दिन में चलने वाले थे; परन्तु विशेषतः सन्ध्याओं (प्रातःकाल और सायंकाल) में ही चलते थे।। वे

कृष्णवर्णास्तथा पिंगा भक्तिचित्रास्तथापरे। नखदंष्ट्रायुधा घोरा मयूरसमभाषणाः॥३११॥
सरमायाः सुतौ जातौ शूरौ परमदुःसहौ। श्यामश्च शबलश्चैव यमस्यानुचरौ स्मृतौ॥३१२॥
तयोः पुत्रा दुराधर्षाः पुत्रपौत्रसमन्विताः। श्रुतिमाप्तः पुनर्वंशः सारमेयेषु सर्वदा॥३१३॥
सांप्रतं तत्सजातीया घोररूपा महाबलाः। विषादयंति च नरसर्वजातिसमन्वितान्॥३१४॥
ग्रामासक्तो निवासस्तु तेषामेव भवत्युत। य इदं शृणुयाज्जन्म दंष्ट्रिणां श्रावयेत्तु यः॥३१५॥
दंष्ट्रिभ्यो न भयं तस्य न चोरेभ्यो नवान्यतः। तात्कालमरणं चैव भवतीति विनिर्णयः॥३१६॥
न च बंधनमाप्नोति न वियोनिं न संकरम्। वानप्रस्थाश्रितं धर्ममाप्नोति मुनिसेवितम्॥३१७॥
संपन्नश्चैव दिव्येन धनेन च बलेन च। च्यवते न च ज्ञानेन जायते देवयोनिषु॥३१८॥

द्वीपिनः शरभाः सिंहा व्याघ्रा नीलाश्च शल्यकाः।
ऋक्षा मार्जारलोहासा वानरा मायवस्तथा॥३१९॥

एता एकादश मता वानराणां तु जातयः। एषां प्रणेतां सर्वेषां वाली राजा प्रतापवान्॥३२०॥
देवासुरविमर्देषु जिघ्नतां नित्यमानिनाम्। प्रसह्य हन्ता रौद्राणामसुराणां बलीयसाम्॥३२१॥
उत्सिक्तबलनाशाय विचिंत्य तु महात्मना। पक्ष एष समुद्दिष्टो महेन्द्रस्य सहायवान्॥३२२॥
विहितः पूर्वमेवात्र ब्रह्मणा लोकधारिणा। इत्येते हरयः प्रोक्ता इरावत्या निबोधत॥३२३॥

कुछ नीले बादल के समान वर्ण वाले, कुछ कपिल (कुछ भूरे पीले) वर्ण वाले, कुछ लाल वर्ण वाले तथा सभी मेंगी आँखों वाले थे।।३१०।। कुछ काले रंग के थे, तथा पिंग वर्ण के एवं कुछ चितकबरे थे। उनके नाखून और दाँत बहुत ही घोर नुकीले तथा भयंकर थे तथा वे बोलने में मोर के समान बोलने वाले थे।।३११।। सरमा के शूर एवं बहुत अधिक कठिनायी का सामना करने वाले दो पुत्र श्याम और सबल पैदा हुए, जो यम के अनुचर स्मरण किये ये।।३१२।। उन दोनों के कठिनायी से जीतने योग्य पुत्र और पौत्रों से युक्त अनेकों पुत्र पैदा हुए। जिनका वंश सारमेयों (कुत्तों) में श्रुतिप्राप्त है (वेदविख्यात है) अथवा सुना जाता है; क्योकि सरमा नामक देवों की कुतिया थी, जिससे कुत्तों का वंश चला।।३१३।। इस समय उसकी जाति वाले घोर रूप वाले और महान् बलशाली हैं,जो कि समस्त मनुष्य जाति को दुःखी कर रहे हैं।।३१४।। कष्ट पहुँचाते हैं। इन सारमेयों (कुत्तों) का निवास भी गाँवों में ही होता है।।३१४-३१४½।। जो मनुष्य इन दन्तधारी कुत्तों के इस जन्मवृत्तान्त को सुनता है अथवा सुनाता है, उसे दाँतधारी कुत्तों से तथा न अन्य नये चोरों से कोई भय नहीं रहता है। उसका तत्काल मरण नहीं होता, ऐसा विशेष निश्चय है। वह न बन्धन को प्राप्त करता है, न पशुयोनि प्राप्त करता है और न वर्णसंकर होता है।।३१४½-३१६½।।

वह व्यक्ति वानप्रस्थ पर आश्रित मुनिसेवित धर्म को प्राप्त करता है। वह दिव्य धन और बल से सम्पन्न होता है तथा ज्ञान से कभी च्युत नहीं होता और देवयोनियों में जन्म लेता है।।३१६½-३१८।। १. हाथी, २. शरभ, ३. सिंह, ४. व्याघ्र, ५. नील, ६. शल्यक, ७. ऋक्ष, ८. मार्जार, ९. लोहास, १०. मायव और ११. वानर ये सब ग्यारह वानरों की जातियाँ मानी गयी हैं। इन सब जातियों के प्रणेता प्रतापवान् वाली राजा थे।।३१९-३२०।। जो देवासर संग्राम में नित्य अभिमानी भयंकर असुरों को बलपूर्वक मारने वाला था।।३२१।। उस महात्मा वाली ने देवों और असुरों में जिनका बल अधिक था, उन असुरों के बल को नाश करने के लिये देवों के राजा इन्द्र के सहायक बनकर देवों का पक्ष लिया था।।३२२।। तथा यह यहाँ संसार को धारण करने वाले ब्रह्मा ने पहले ही निर्धारित कर

सूर्यस्यांडकपाले द्वे समानीय तु भौवनः। हस्ताभ्यां परिगृह्याथ रथंतरमगायत॥३२४॥
साम्ना प्रस्तूयमाने तु सद्य एव गतोऽभवत्। संप्रायच्छदिरावत्यै पुत्रार्थं स तु भौवनः॥३२५॥
इरावत्याः सुतो यस्मात्तस्मादैरावतः स्मृतः। देवराजोपवाह्यत्वात्प्रथमः स मतंगराट्॥३२६॥
श्वेताभ्राभश्चतुर्दंतः श्रीमानैरावतो गजः। अंजनस्यैकमूलस्य सुवर्णाभस्य हस्तिनः॥३२७॥
षड्दंतस्य हि भद्रस्य ह्यौपवाह्यस्य वै वलेः। तस्य पुत्रोंऽजनश्चैव सुप्रतीकश्च वामनः॥३२८॥
पद्मश्चैव चतुर्थोऽभूद्धस्तिनी चाभ्रमुस्तथा। दिग्गजान्बलिनश्चैवाभ्रमुर्ज नयताप्सुगान्॥३२९॥

भद्रं मृगं च मंदं च संकीर्णं चतुरः सुतान्।
संकीर्णो ह्यंजनो योऽसावौपवाह्यो यमस्य सः॥३३०॥

भद्रो यः सुप्रतीकस्तु हस्तिः स ह्यपांपतेः। पद्मो मंदस्तु यो गौरो द्विपो ह्यैलविलस्य च॥३३१॥

मृगश्यामस्तु यो हस्ती चौप वाह्यः स पावकेः।
पद्मोत्तमः पद्मगुल्मो गजो वातगजो गजः॥३३२॥

चपलोऽरिष्टसंज्ञश्च तस्याष्टौ जज्ञिरे सुताः। उदग्रभावेनोपेता जायंते तस्य चान्वये॥३३३॥
श्वेतबालनखाः पिंगा वर्षावंतो मतंगजाः। सामजांस्तु प्रवक्ष्यामि नानानन्यानपि क्रमात्॥३३४॥
कपिलः पुंडरीकश्च सुनामानौ रथंतरात्। जातौ नाम्ना श्रुतौ ताभ्यां सुप्रतीकप्रमर्दनौ॥३३५॥

दिया था।।३२२½।। इस प्रकार यह वानरों की उत्पत्ति कही गयी, अब इरावती के पुत्रों को सुनिये।।३२३।। एक बार भौमन ने सूर्य के दो अण्ड कपालों को लाकर अपने दोनों हाथों से उसे पकड़कर रथ्यन्तर छन्द का गान किया था।।३२४।। उस समय सामवेद के रथ्यन्तर छन्द की स्तुति करते समय शीघ्र ही एक हाथी की उत्पत्ति हुई थी, भौवन ने वैसे ही पुत्र की इच्छा से इरावती के साथ समागम किया था।।३२५।। इसलिये इरावती के गर्भ से पैदा होने के कारण वह हाथी ऐरावत कहा गया। देवराज इन्द्र का वाहन होने के कारण वह प्रथम मतङ्गराज (हाथियों का राजा) हुआ।।३२६।।

वह श्वेतबादल के समान चार दाँतो वाला बहुत अधिक श्रीमम्पन्न गजराज है। जो अंजन के एकमूल से ही उत्पन्न छः दांतों वाले स्वर्ण के समान कान्तिमान् भद्रनामक हाथी था, जो बलि को वहन करने वाला था। उस भद्र नामक हाथी से पैदा था। उस ऐरावत के १. अञ्जन, २. सुप्रतीक, ३. वामन और ४. पद्म ये चार पुत्र थे। हस्तिनी का नाम अभ्रमु था। श्वेता ने चार दिग्गजों को उत्पन्न किया, जो अतिशीघ्र गमन करने वाले थे। चारों पुत्रों के नाम भद्र, मृग, मन्द और संकीर्ण थे। इनमें संकीर्ण और अंजन ये यमराज के वाहन हैं।।३२७-३३०।। भद्र और सुप्रतीक जो हाथी हैं, वे जल के अधिपति वरुण के वाहन हैं। पद्म और मन्द जो गौर वर्ण के हैं, ऐलविल (कुबेर) के हाथी हैं।।३३१।। मृग नामक श्याम वर्ण का जो हाथी है, वह अग्निदेव हाथी हैं। पद्मोत्तर पद्म नामक, जो गज है, वह वायुदेव का वातगज नामक गज है।।३३२।। वह गज चतुर है और उसे अरिष्ट नाम से भी कहा जाता है तथा उसके आठ पुत्र उत्पन्न हुए, उसके वंश में उग्र स्वभाव वाले श्वेत बाल और नाखूनों वाले पीले वर्ण के शरीर वाले मतंगज उत्पन्न हुए। अब मैं उनको तथा अन्यान्य नागों को भी क्रमशः सुना रहा हूँ।।३३३-३३४।। पुण्डरीक नामक गज सुन्दर नामवाला और भूरे वर्ण का रथान्तर नामक पुष्प के रंग के समान शोभावाला है। उन दोनों के सुप्रतीक और प्रमर्दन नामक पुत्र हुए।।३३५।।

शूराः स्थूलाशिरोदंताः शुद्धबालनखास्तथा।
बलिनः शंकिताश्चैव स्मृतास्तद्वंशिनो गजाः॥३३६॥
पुष्पदंतो बृहत्साम्नः षड्दंतः पद्मपुच्छवान्। ताम्रपर्णश्च तत्पुत्राः संघचारिविषाणिनः॥३३७॥
अन्वये चास्य जायंते लंबोष्ठाश्चारुदर्शनाः।
श्यामत्वग्रसनाशुण्डा नागाः पीनायताननाः॥३३८॥
वामदेवोऽजनः श्यामः साम्नो जज्ञेऽथ वामनः।
भार्या चैवांगना तस्य नीलवल्लक्षणौ सुतौ॥३३९॥
चण्डाश्चारु शिरोग्रीवा व्यूढोरस्कास्तरस्विनः।
नीचैर्बद्धाः कुले तस्य जायंते निबिडा गजा;॥३४०॥
सुप्रतीकस्तु वैरूप्यात्साम्नः सारूप्यमागतः।
तस्य प्रहारी संपातिः पृथुश्चेति सुतास्त्रयः॥३४१॥
प्रांशवो दीर्घताल्वोष्ठाः सुविभक्तशिरोरुहाः। जायंते मृदुसंभोगा वंशे तस्य मतंगजाः॥३४२॥
अंजनांजनः साम्नो विजज्ञे चांजनावती। सुतौ जातौ तयोश्चापि प्रमाथिपुरुषो स्मृतौ॥३४३॥
महाविभक्तशिरसः स्निग्धजीमूतसन्निभाः। सुदर्शनाः सुवर्ष्माणः पद्माभाः परिमंडलाः॥३४४॥
शूरा दीनायतमुखा गजास्तस्यान्वयेऽभवन्। जज्ञे चांद्रमसः साम्नः कुमुदः कुमुदद्युतिः॥३४५॥

इनके अतिरिक्त शूर, मोटे शिर और मोटे दाँतों वाले, शुद्ध बालों और नाखूनो वाले बलवान् शक्तिशाली गज हुए, उनके वंश के गज बली और डराने वाले स्मरण किये गये।।३३६।। उनके वंश में पुष्पदन्त, बृहत्सामा, षड्दन्त, पद्मपुच्छ, ताम्रपर्ण आदि गज उत्पन्न हुए। इनके हथिनियों के साथ समागम से पुत्र उत्पन्न हुए।।३३७।। इसके वंश में लम्बे ओष्ठ वाले, श्यामवर्ण के उग्र स्वभाव वाले, लम्बी सूंड वाले, मोटे और लम्बे मुख वाले, सुन्दर दिखायी देने वाले गज उत्पन्न होते हैं।।३३८।। वामदेव नामक हाथी काजल के समान काले रंग का है, साम से वामन नाम का गज उत्पन्न हुआ, जिसकी पत्नी अंगदा थी, उसके नीलवान् और लक्षण दो पुत्र उत्पन्न हुए।।३३९।। ये सब हाथी उग्र स्वभाव वाले थे, इनके शिरोभाग और कन्धे देखने में में सुन्दर थे, ये चौड़ी छाती वाले थे तथा ये सब तेज चलने वाले थे। उसके वंश जो नीच पुरुषों द्वारा बांधे हुए गज उत्पन्न हुए, जो निविड (घरों) में रखे गये।।३४०।।

सुप्रतीक कुरूपता से तथा सामा सुरूपता से युक्त थे। उस सुप्रतीक के प्रहारी, संपाति और पृथु ये तीन पुत्र थे।।३४१।। उसके वंश में विशाल कन्धों वाले, दीर्घ तालु और ओष्ठ वाले, अच्छी तरह विभक्त बालों वाले, मृदुसम्भोग करने वाले, गज उत्पन्न होते हैं।।३४२।। अंजन से अंजन और साम से अंजनावती का जन्म हुआ। उन दोनों के भी प्रमाथि और पुरुष दो पुत्र उत्पन्न हुए, ऐसा स्मरण किया गया है।।३४३।। ये सब महाविभक्त शिरवाले, जल से भरे मेघ के समान, सुन्दर दिखायी देने वाले, सुन्दर शरीर वाले, कमल की आभा के समान परिमण्डल वाले, मोटे ताजे और पीले रंग के चौड़े मुख वाले उनके वंश में हुए थे।।३४३-३४४½।। चान्द्रमस् साम के कमल के समान कान्तिवाले कुमुद की उत्पत्ति हुई, फिर उस कुमुद से पिङ्गला में महापद्म और ऊर्मिमाली नामक दो पुत्र पैदा

पिंगलायां सुतौ तस्य महापद्मोर्मिमालिनौ। शैलजीमूतसंकासान् सुबुद्धान्बलिनो वरान्॥३४६॥
हस्तियुद्धप्रियान्नागान्विद्धि तस्य कुलोद्भवान्। एतान्देवासुरे युद्धे जयार्थं जगृहुः सुराः॥३४७॥
कृतार्थैश्च विसृष्टास्ते पूर्वोक्ताः प्रययुर्दिशः। एतेषां चान्वये जातान्विनीतांस्त्रिदशा ददुः॥३४८॥
अंगाय लोमपादाय सूत्रकाराय वै द्विपान्। द्विरदो रदनद्वाभ्यां हस्ती हस्तात्करात्करी॥३४९॥
वारणो वारणाद्दन्ती दंताभ्यां गर्जनाद्गजः। कुंजरः कुंजचारित्वान्नागो नगम्यमस्य यत्॥३५०॥

मत्तं यातीति मातंगो द्विपो द्वाभ्यां पिबन्स्मृतः।
सामजः सामजातत्वादिति निर्वचनक्रमः॥३५१॥
एषां जिह्वापरावृत्तिर्ह्युक्ता वै चाग्निशापजा।
बलस्यानवबोधो यो या चैषां गूढमुष्कता॥३५२॥

उभयं दंतिनामेतज्ज्ञेयं तु सुरशापजम्। देवदानवगंधर्वपिशाचोरगरक्षसाम्॥३५३॥
कन्यासु जाता दिग्नागैर्नानासत्त्वास्ततो गजाः। संभूतिश्च प्रभूतिश्च नामनिर्वचनं तथा॥३५४॥

हुए। उसके कुल में उत्पन्न होने वाले उनको पर्वत और मेघ के समान, अच्छी बुद्धिवालों में श्रेष्ठ, हाथियों के युद्ध में रुचि रखने वाले जानिये।।३४४½-३४६½।। देवासुर संग्राम मे इन्हीं हाथियों को देवो ने अपने विजय प्राप्ति के लिए रखा था और अपने कार्य में सफलता पाने के बाद उन्हें छोड़ दिया, तब वे सभी हाथी विभिन्न दिशाओं में चले गये।।३४६½-३४७½।। इनके वंश में पैदा हुए विनम्र स्वभाव वाले हाथियों को अंग, लोमपाद और सूत्रकार ये तीन दशायें दी गयीं। दो रद (दाँत) होने के कारण, इन्हें 'द्विरद' का नाम दिया गया, हस्त शुण्ड होने के कारण हस्ती (हाथी), कर (शुण्ड) होने के कारण 'करी' नाम दिया गया।।३४७½-३४९।। वरण (पूजन) अर्थात् इनका पूजन होने के कारण भी 'वारण' कहा गया। इनके बड़े-बड़े दाँत होने के कारण 'दन्ती' कहा गया, ये विशेष गर्जना करते हैं, इसलिये इन्हें 'गज' नाम दिया गया। कुंजों में विचरण करने के कारण, इन्हें 'कुंजर' कहा गया। 'न अगम्यम् अस्य' इसको कुछ भी अगम्य नहीं है, इसलिए इसे (न-अग) 'नाग' कहा गया। नाग का अर्थ है, जिसको कोई स्थान अगम्य न हो, जो सब जगह जा सके। वायुपराण में नगविरोधात् शब्द है, जिसके अनुसार पर्वत का विरोध करने के कारण हाथी को नाग कहा गया, ऐसा माना गया है।।३५०।।

(मत्तं याति इति) जो मत्त होकर चलता है, इसलिए उसे 'मतंग' कहा गया।। वा. पु. में (मत्वा गच्छति इति) के अनुसार जो मानकर चलता है, इसलिए मातंग नाम माना है। (द्वाभ्यां पिबति) दो से पीता है, इस निरुक्ति के अनुसार शुण्ड और मुख, दो से पीने के कारण हाथी को 'द्विप' कहा गया। साम नामक हाथी से पैदा होने के कारण हाथी को 'सामज' कहा गया। यहाँ सामगान से पैदा होने वाला भी माना जा सकता है। यह हाथी के विभिन्न नामों का निर्वचनक्रम है।।३५१।। इन हाथियों की जीभ जो पीछे की ओर रहती है, जिससे बोलने की शक्ति उनमें नहीं पायी जाती, ऐसा अग्नि के शाप के कारण है। हाथियों के बल में जो उन्हें अपने बल का बोध नहीं होता तथा उनमें जो गूढमुष्कता (अण्डकोशों का छिपा होना) पाया जाता है, ये दोनो ही हाथियो मे देवों के शाप से उत्पन्न दोष है। देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प तथा राक्षस ये सब जिन कन्याओं मे पैदा हुए उन्हीं में दिग्गजो के संयोग से हाथियों की उत्पत्ति हुई, जिससे वे विपुल पराक्रमी हुए। इस प्रकार इन हाथियों की ऐश्वर्य कथा और उत्पत्ति कथा तथा नाम निर्वचन कथा यही है।।३५२-३५४।।

एतद्गजानां विज्ञेयमेषां राजा स चाभ्रमः। कौशिक्या ह्यासमुद्रात्तु गंगायाश्च यदुत्तरम्॥३५५॥
अंजनस्यैकमूलस्य विज्ञेयं गहनं तु तत्। उत्तरं चैव विंध्यस्य गंगाया दक्षिणं च यत्॥३५६॥
गंगोद्भेदे सकेरुभ्यः सुप्रतीकस्य पत्तनम्। अपरेणोत्कलं चैव कावेरीभ्यश्च पश्चिमम्॥३५७॥
एकसूकात्मजस्यैतद्वामनस्य वनं स्मृतम्। अपरेण तु लौहित्यमासिंधोः पश्चिमेन तु॥३५८॥
पद्मस्यैतद्वनं प्रोक्तमनुपर्वतमेव तत्। भूता विजज्ञे भूतैंस्तु रुद्रस्यानुचरानिह॥३५९॥

स्थूलान्कृशांश्च दीर्घांश्च वामनान्ह्रस्वकान्समान्।
लंबकर्णान्प्रलंबौष्ठान् लंबजिह्वांस्तनूदरान्॥३६०॥
एकनेत्रान्विरूपांश्च लंबस्फिक्स्थूलपिंडिकान्।
सकृष्णगौरान्नीलांश्च श्वेतान्वे लोहिताननान्॥३६१॥

बभ्रून्वै शबलान्धूम्रान्विकद्रून्रासमारुणान्। मुंजकेशान्हृष्टरोम्णः सर्पयज्ञोपवीतिनः॥३६२॥

बहुशीर्षान्विपादांश्च ह्येकशीर्षानशीर्षकान्।
चण्डांश्च विकटांश्चैव निर्मितांश्च द्विजिह्वकान्॥३६३॥

मुंडांश्च जटिलांश्चैव कुब्जान्वक्रान्सवामनान्। सरः श्रेष्ठसमुद्राद्रिनदीपुलिनसेविनः॥३६४॥

इन गजों का राजा अभ्र[1] को जानना चाहिये। कौशिकी से लेकर समुद्र तक और समुद्र से गंगा के उत्तर तक अंजन तथा उस मूल के हाथियों का गहन वन है अर्थात् वहाँ पर अंजन नामक हाथी के परिवार के हाथी रहते हैं।।३५५-३५५।। और विन्ध्यपर्वत के उत्तर में और गंगा के दक्षिणमें जो वन है तथा गंगा के उद्गम स्थल से लेकर सकेरु[2] देश तक सुप्रतीक नामक हाथी का वन है।।३५५½-३५६½।।

उत्कल (उड़ीसा) प्रान्त के पश्चिमी छोर से लेकर कावेरी नदी से पश्चिम एक सूत के पुत्र वामन नामक हाथी का जंगल है।।३५६½-३५७½।। लौहित्य (ब्रह्मपुत्रनदी) के दूसरे छोर से पश्चिम सिन्धु नदी के पश्चिम पर्वत के पास में पद्मनामक हाथियों के वंशजों का जंगल है।। ३५७½-३५८½।। हे प्रभो! भूति ने बहुत कुछ मोटे, कुछ बहुत पतले, कुछ लम्बे, कुछ बौने, कुछ बहुत ही छोटे, कुछ समान आकार वाले, कुछ लम्बे कान वाले, कुछ लम्बे होठों वाले, कुछ लम्बी जिह्वा वाले, कुछ पतले पेट वाले, कुछ एक नेत्र वाले, कुरूप, कुछ लम्बे चूतड़ वाले, कुछ मोटे पिण्डाकार पेट वाले, कुछ रंग के काले, कुछ गोरे और कुछ नीले तथा कुछ लाल मुंह वाले, रुद्र के अनुचरों को पैदा किया।।३५७-३६१।। वे रुद्र के अनुचर कुछ गहरे पीले वर्ण के, कुछ चितकबरे तथा धुएं के रंग के, तथा कुछ हल्के पीले रंग के थे। ये सभी भूतगण दारुण राक्षसों के समान उग्र स्वभाव वाले थे। इनमें से कोई मूंज जैसे बालों वाला था, तो कोई खड़े रोम वाला था तथा कोई सर्प का यज्ञोपवीत धारण करने वाला था।।३६२।। उनमें कुछ बहुत सिर वाले, कुछ विना पैरों वाले, कुछ एक शिर वाले, कुछ विना शिर वाले, कुछ उग्र स्वभाव वाले, कुछ अत्यन्त विकट स्वभाव वाले थे, तो कुछ दो जिह्वा वाले थे।।३६३।। उनमें कुछ मुड़े सिर वाले थे, कुछ जटाओं वाले थे, कुछ झुकी हुई कमर वाले थे। कुछ टेढ़े मेढ़े शरीर वाले थे तथा कुछ बौने थे। ये सबके सब सरोवर, समुद्र और नदी तट पर निवास करते थे।।३६४।।

१. वायुपुराण विभावस. २. वायुपुराण करुप

एककर्णान्महाकर्णाञ्छकुकर्णानकर्णकान् ।
दंष्ट्रिणो नखिनस्चैव निर्दंतांश्च विजिह्वकान्॥३६५॥
एकहस्तान्द्विहस्तांश्च त्रिहस्तांश्चाप्यहस्तकान्।
एकपादान्द्विपादांश्च त्रिपादान्बहुपादकान्॥३६६॥
महायोगान्महासत्त्वान् सुमनस्कान्महाबलान्।
सर्वत्रगानप्रतिघान् ब्रह्मज्ञान्कामरूपिणः॥३६७॥
घोरान्क्रूरांश्च मेध्यांश्च मद्यमेध्यान्सुधार्मिकान्।
कूटदंतान्महाजह्वान्विकेशान्विकृताननान् ॥३६८॥
हस्तादांश्च मुखादांश्च शिरोदांश्च कपालिनः। धन्विनो मुद्गरधरानसिशूलधरांस्तथा॥३६९॥
दिग्वाससश्चित्रवेषांश्चित्रमाल्यानुलेपनान्। अन्नादान्पिशितादांश्च सुरापान्सोमपांस्तथा॥३७०॥
केचित्संध्याचरा घोराः केचित्सौम्या दिवाचराः।
नक्तंचराः खरस्पर्सा घोरास्तेषां निशाचराः॥३७१॥
परत्वेन भवं देवं सर्वे ते गत मानसाः। नैषां भार्याऽस्ति पुत्रा वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥३७२॥

इनमें कोई एक कान वाला था, कोई बड़े-बड़े कान वाला था, कोई शंकु के समान कान वाला था, तो कोई विना कान वाला ही था। कुछ दाँतों वाले थे, तो कुछ दंतविहीन था, कुछ नाखूनों वाले थे, कुछ विना जीभ के थे।।३६५।। उनमें किसी के एक हाथ तो किसी के दो हाथ थे, किसी के तीन हाथ थे, तो कोई विना हाथों वाला ही था। कुछ एक पैर वाले थे, कुछ दो पैर वाले थे, कुछ तीन पैर वाले थे, तो कुछ बहुत पैरों वाले थे।।३६६।। उनमें कुछ महान् योगी थे, कुछ महापराक्रमी थे, कुछ अच्छे मन वाले थे, तो कुछ महाबली थे। उनमें कुछ सब जगह जा सकने वाले थे, कुछ क्रोध न करने वाले थे, कुछ ब्रह्मज्ञानी थे, तो कुछ इच्छा से अनेकों प्रकार के रूप धारण करने वाले थे।।३६७।। कुछ परमघोर तथा क्रूर स्वभाव वाले थे, कुछ परम पवित्र कल्याणकारी, कुछ सुधार्मिक थे, कुछ कूटदन्त थे, कुछ बड़ी जीभ वाले थे कुछ विशेष बालों वाले थे तो कुछ विकृत मुख वाले थे।।३६८।। उनमें कितने हाथ से खाने वाले थे, कितने मुख से खाने वाले थे, कितने शिर से खाने वाले थे, तो कितने कपाल धारण करने वाले, कितने मुद्गर धारण करने वाले थे, कितने धनुषधारी थे तथा कितने तलवार और शूल धारण करने वाले थे।।३६९।।

उनमें से कुछ दिशाओं को ही वस्त्र मानने वाले थे अर्थात् नंगे वदन थे, कुछ रंग-बिरंगे वस्त्र धारण करने वाले थे, कुछ चित्र माला और सुगन्धित लेप आदि किये हुए थे। कितने ही अन्न खाने वाले थे, कितने मांसाहारी थे, कितने सुरापान करने वाले तथा कितने सोमपान करने वाले थे।।३७०।। उनमें कुछ सन्ध्या (प्रातः और सायं) विचरण करने वाले घोर स्वभाव थे, कुछ दिन में विचरण करने वाले सौम्य स्वभाव थे, कुछ रात्रि में विचरण करने वाले, कुछ स्पर्श करने में बहुत खुरदरे, कुछ स्वरूप एवं स्वभाव से घोर रात्रि में घूमने वाले, निशाचर थे। इन सबको भूति ने उत्पन्न किया था।।३७१।। ये सभी राक्षस थे तथा सभी भगवान् शंकर महादेव को मन से मानने वाले थे। न इनकी, न इन सबके पत्नियाँ थी और पुत्र थे, सबके सब ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) थे।।३७२।।

शतं तानि सहस्राणि भूतानामात्मयोगिनाम्। भवपारिषदास्ते वै सर्वे भूताः प्रकीर्त्तिताः॥३७३॥
कपिशायाश्च कूष्मांडा जज्ञिरे च पुनः पुनः। मिथुनेन पिशाचांश्च वर्णेन कपिशेन तु॥३७४॥
कपिशत्वात्पिशाचास्ते सर्वे च पिशिताशनाः।
युग्मानि षोडशाद्यानि वर्त्तमानस्तदन्वयः॥३७५॥
नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि रूपतश्च तदन्वयम्। छगलश्छगला चैव वक्रो वक्रमुखी तथा॥३७६॥
दुष्पूरः पूरणा चैव सूचीमुखस्तथा। विपादश्च विपादी च ज्वाला चांगारकस्तथा॥३७७॥
कुंभपात्रश्च कुंभी च प्रतुंदश्च प्रतुंदिका। उपवीरश्च वीरा च ह्युलूखल उलूखली॥३७८॥
अकर्मकः कर्मकी च कुषंडश्च कुषंडिका।
पाणिपात्रः पाणिपात्री पांशुः पांशुमती तथा॥३७९॥
नितुंदश्च नितुंदी च निपुणो निपुणी तथा। बालादः केषमादी च प्रस्कन्दः स्कंदिका तता॥३८०॥
षोडशानां पिशाचानां गणाः प्रोक्तास्तु षोडश।
अजा मुखा वक्रमुखाः पूरणः स्कंदिनस्तथा॥३८१॥
विपादांगारिकाश्चैव कुंभपात्राः प्रतुंदकाः। उपवीरोलूखलिका अर्कमर्काः कुषंडिकाः॥३८२॥
पांशवः पाणिपात्राश्च नैतुंदा निपुणास्तथा। सूचीमुखोच्छेषणादाः कलान्येतानि षोडश॥३८३॥
इत्येता ह्यभिजातास्तु कूष्मांडानां प्रकीर्त्तिताः।
पिशाचास्ते पिशाच्यस्ताः सकुल्याः संप्रजज्ञिरे॥३८४॥

इन आत्मयोगी भूतों की संख्या एक लाख थी, वे सब के सब भगवान् शंकर के परिषद् के सदस्य थे तथा वे सब भूत कहे गये।।३७३।। कपिशा से कूष्माण्डा ने उन्हें पुनः पुनः पैदा किया, इसलिये मिथुन से वे पिशाच वर्ण के हुए और वर्ण से कपिश भूरे वर्ण के हो गये।।३७४।। कपिश वर्ण के कारण वे पिशाच कहे गये। वे सब मांसाहारी थे। अन्य १६ पिशाच वंश आज भी विद्यमान हैं।।३७५।। अतः नाम से उनको तथा रूप के अनुसार उनके वंश को बता रहा हूँ। अर्थात् जिनसे जो पैदा हुए उसी के नाम पर इनके वंश कहे गये। जैसे कि छगल के वंशज छगल कहलाये तथा वक्र के वंशज वक्रमुखी कहे गये।।३७६।। इसी प्रकार दुष्पूर के वंशज पूरण कहे गये तथा सूची के सूचीमुख कहे गये, विषाद के विषादी कहे गये तथा ज्वाला राक्षस के वंशज आंगारक कहे गये।।३७७।।

फिर कुम्भपात्र के वंशज कुम्भी और प्रतुंद के वंशज प्रतुन्दिक कहे गये। उसी प्रकार उपविन्द के वीरगण तथा उलूखल के वंशज उलूखलीकहे गये।।३६८।। अकर्मक के कर्मकी, कुषण्ड के कुषण्डिक कहे गये। पाणिपात्र के पाणिपात्री तथा पांशु के वंशज पांशुमती कहलाये।।३७९।। नितुंद के वंशज नितुंदी और निपुण के निपुणी तथा बालाद के केषमादी और प्रस्कंद के वंशज प्रस्कंदिक गण कहे गये।।३८०।। इस प्रकार सोलह पिशाचों के ये सोलह गण कहे गये हैं, जो हैं—१. अजामुख, २. वक्रमुख, ३. पूरण, ४. स्कन्दिन, ५. विषाद, ६. आंगरिक, ७. कुंभपात्र, ८. प्रतुंदक, ९. उपवीर, १०. उलूखलिक, ११. कुषण्डिक, १२. पांशु, १३. पाणिपात्र, १४. निपुण नैतुन्द, १५. सूचीमुख और १६. उच्छेषाणाद सोलह गण हैं।।३८१-३८३।। इस प्रकार यह कूष्माण्ड वैकुण्ठ में होने वाले कुलीनों का वर्णन किया गया है। इन्हीं के कुल में पैदा होने वाले अन्यान्य पिशाचों को जानना चाहये।।३८४।।

बीभत्सं विकृताकारं पुत्रपौत्रमनंतकम्। अतस्तेषां पिशाचानां लक्षणानि निबोधत॥३८५॥

सर्वांगकेशा वृत्ताक्षा दंष्ट्रिणो नखिनस्तथा।
तिर्य्यगंगाः पारुषदाः पिशाचास्ते ह्यजामुखाः॥३८६॥
अकर्णका ह्यरोमाणोऽवाससश्चर्मवाससः।
कुषंडिकपिशाचास्ते प्रियभक्षाः सदामिषाः॥३८७॥
वक्रांगहस्तपादाश्च वक्रशीलमतास्तता।
ज्ञेया वक्राः पिशाचास्ते वक्रगाः कामरूपिणः॥३८८॥
लंबोदरास्तुंडनासा ह्रस्वकाय शिरोभुजाः।
नितुंदकाः पिशाचास्ते तिलभक्षाः प्रियासृजः॥३८९॥

वानराकृतयश्चैव वाचालाः प्लुतगामिनः। पिशाचा अर्कमर्कास्ते वृक्षवासोदनप्रियाः॥३९०॥
ऊर्ध्वबाहूर्द्ध्वरोमाण उद्धताक्षा यथालयाः। मुंचंति पांशुमंगेभ्यः पिशाचाः पांशवस्तु ते॥३९१॥

भ्रमरीसन्निभाः शुष्का सशूलाश्चीरवाससः।
उपवीराः पिशाचास्ते श्मशानायतनाः सदा॥३९२॥

निष्टब्धाक्षा महाजिह्वा लेलिहाना ह्युलूखलाः। उलूखलैराभरणा रत्नधाराश्च ते खलाः॥३९३॥

पाणिपात्राः पिशाचास्ते निसृष्टबलिभोजनाः।
हस्त्युष्ट्रस्थूलशिरसो विनतोद्धतपिंडिकाः॥३९४॥

अतः अत्यन्त घृणित विकृत आकृतिवाले इनके अनन्त पुत्र और पौत्र हुए। इसलिए उन पिशाचों के लक्षण बतला रहा हूँ।।३८५।। उन पिशाचों के सभी अंगों पर केश होते हैं, उनकी गोल आँखें होती हैं। उनके बड़े-बड़े दाँत और बड़े-बड़े नाखून होते हैं। उनके अंग टेढ़े-मेढ़े होते हैं तथा वे पुरुष को खाने वाले होते हैं। उनके मुख नीचे की ओर झुके हुए होते हैं।।३८६।। कूष्माण्डिक कहलाने वाले पिशाच विना कान के विना रोम के तथा विना वस्त्र के होते हैं तथा वस्त्र के स्थान पर चमड़े को लपेटे रहते हैं। वे सदैव मांस के होते हैं तथा वस्त्र के स्थान पर चमड़े को लपेटे रहते हैं। वे सदैव मांस के भोजन को अपना प्रिय आहार मानते हैं।।३८७।। वक्र नामक पिशाचों के सब अंग हाथ पैर वक्र होते हैं तथा उनका चलना-फिरना भी वक्र ही होता है तथा वे इच्छानुसार रूप भी बदल लेते हैं।।३८८।। नितुन्दक नाम के पिशाच तिल अर्थात् तेल का भोजन तथा रक्त पान के शौंकीन होते हैं, उनके पेट लम्बे और ऊपर को उठी हुई लम्बी नाक होती है और शरीर शिर और भुजायें छोटी होती हैं।।३८९।। अर्कमर्क नाम के पिशाच वानर के समान आकृति वाले वहुत बोलने वाले, उछल उछल कर चलने वाले, वृक्षों पर निवास करने वाले होते हैं।।३९०।। पांशु नाम से पुकारे जाने वाले पिशाच ऊर्ध्वबाहुधारी होते हैं तथा उनके रोम ऊपर को उठे हुए होते हैं। उनके घर भी ऊपर ही होते हैं अर्थात् पेड़ अथवा ऊँचे स्थान पर निवास करते हैं तथा अपने शरीर से धूल गिराते रहते हैं।।३९१।। उपवीर नाम के पिशाच अपनी भ्रमरी के समान सूखे हुए शूल युक्त, चीरधारण करने वाले तथा श्मशान में रहने वाले होते हैं।।३९२।। उलूखल नाम के पिशाच, निश्चल आंखो वाले, लम्वी जीभ वाले, होंठ चाटने वाले, उलूखल आभरण वाले और शरीर रत्न की धारों वाले होते हैं।।३९३।। पाणिपात्र

पिशाचाः कुंभपात्रास्ते अदृष्टान्नानि भुंजते। सूक्ष्मास्तु रोमशाः पिंगा दृष्टादृष्टाश्चरंति ये॥३९५॥

अयुक्तान्प्रचरंतीह निपुणास्ते पिशाचकाः।
आकर्णाद्दारितास्याश्च लंबभ्रूस्थूलनासिकाः॥३९६॥
शून्यागारप्रियाः स्थूलाः पिशाचास्ते तु पूरणाः।
हस्तपादाक्रांततुंडा ह्रस्वकाः क्षितिदृष्टयः॥३९७॥

बालादास्ते पिशाचा वै सूतिकागृहसेविनः। पृष्ठतः पाणिपादाश्च पृष्ठतो वातरंहसः॥३९८॥

विपादकाः पिशाचास्ते संग्रामे रुधिराशनाः।
नग्नका ह्यनिकेताश्च लंबशेफांडपिंडकाः॥३९९॥
पिशाचाः स्कंदिनस्ते वै अन्य उच्छेषणादिनः।
षोडशैता हि जात्यस्ताः पिशाचानां प्रकीर्त्तिताः॥४००॥
एवंविधान्पिशाचांस्तु दीनान्दृष्ट्वाऽनुकंपया।
ब्रह्मा तेभ्यो वरं प्रादात्कारुण्यादल्पचेतसः॥४०१॥

अंतर्धानं प्रजायां हि कामरूपित्वमेव च। संध्ये उभे प्रचारं च स्थानान्याजीवमेव च॥४०२॥

गृहाणि यानि भग्नानि शून्यान्यल्पजलानि च।
विध्वस्तानि च यानि स्युरनाचारोपितानि च॥४०३॥

असंमृष्टोपलिप्तानि संस्कारैर्वर्जितानि तु। राजमार्गोपरथ्याश्च निष्कुटाश्चत्वराणि च॥४०४॥

नाम के पिशाच वे होते हैं, जो बचेहुए बलि का भोजन करते हैं तथा जो हाथी ऊँट की तरह मोटे शिर वाले तथा झुकी हुई और उठी हुई पिण्डलियों वाले होते हैं।।३९४।। कुम्भपात्र नाम के पिशाचगण वे हैं, जो विना देखे हुए अन्न को भोजन करते हैं तथा बहुत सूक्ष्म आकृति वाले, शरीर पर रोमावली वाले तथा कहीं दिखायी देने वाले और कहीं न दिखायी देने वाले होते हैं।।३९५।। निपुण नामक पिशाचगण इस लोक में अकेले होने पर मनुष्यों के बीच आ जाते हैं, जिनके मुख कान तक फैले हुए होते हैं तथा उनकी भौंहे लम्बी और नाक मोटी होती है।।३९६। पूरण नामक पिशाच शून्य भवनों (खण्डहरों) में रहते हैं, उनके शरीर मोटे तथा हाथ पैर बहुत छोटे और उनकी निगाह भूमि की ओर होती है।।३९७।। ये बालाद पिशाचगण सदा बालकों का भक्षण करते हैं तथा सर्वदा सूतिका गृहों का सेवन करते हैं। उनके हाथ पैर पीछे की ओर होते हैं तथा वायु के समान तेज चलने वाले होते हैं।।३९८।।

विषादक नाम के पिशाचगण संग्राम में रुधिर पीने वाले, नंगे रहने वाले, विना घर वाले लम्बे शेफ वाले तथा पिण्डाकार होते हैं।।३९९।। स्कन्दी नामक पिशाच वे होते हैं, जो सदैव दूसरो का जूठन खाते हैं। इस प्रकार ये सोलह पिशाचों की जातियों का वर्णन किया गया।।४००।। इस प्रकार अपनी प्रजाओं में विभिन्न आकृति एवं गुण दोष वाले इन पिशाचों को अल्पबुद्धियुक्त एवं दीन अवस्था में देख ब्रह्मा ने अनुग्रहपूर्वक अन्तर्धान होने और इच्छानुसार विविध रूप धारण करने का वरदान दिया।।४०१-४०२।। जो घर टूटे-फूटे होते हैं, जिनमें लोग नहीं रहते हैं, जिनमें कम जल होता है अथवा जो ध्वस्त हो जाते हैं, जिनमें अनाचार किया जाता है, जो घर विना सजे हुए, विना लिपे पुते हुए और संस्कारों से वर्जित होते हैं, उनमें इनका निवास होता है, इसके अलावा राजमार्ग, सड़क,

द्वाराण्यट्टालकांश्चैव निर्गमास्संक्रमास्तथा। पथो नद्योऽथ तीर्थानि चैत्यवृक्षा महापथम्॥४०५॥

पिशाचा विनिविष्टा वै स्थानेष्वेतेषु सर्वशः।
अधार्मिको जनस्तेषामाजीवो विहितः सुरैः॥४०६॥
वर्णाश्रमाः संकरिकाः कारुशिल्पिजनास्तथा।
प्रकृतोपधिसंधानाश्चोरा विश्वासघातिनः॥४०७॥

एतैरन्यैश्च बहुभिरन्यायोपार्जितैरपि। आरभ्यन्ते क्रियायास्तु पिशाचास्तत्र दैवतम्॥४०८॥
मधुमांसोदनैर्दध्ना तिलचूर्णैः सुरासवैः। धूपैर्हारिद्रकृसरैस्तिलभक्षगुडौदनैः॥४०९॥
कृष्णानि चैव वासांसि धूपः सुमनसोऽक्षयः। एवमुक्तास्तु बलयस्त्वेषां वै पर्वसंधिषु॥४१०॥
पिशाचानामनुज्ञाय ब्रह्मा चाधिपतिं ददौ। सर्वभूतपिशाचानां गिरीणां शूलपाणिनाम्॥४११॥

दंष्ट्रा त्वजनयत्पुत्रान्सिंहान्व्याघ्रांश्च भामिनी।
द्वीपिनश्च सुतास्तस्याः श्वापदाशचामिषाशिनः॥४१२॥
ऋषायास्त्वपि कात्स्र्न्येन प्रजासर्गं निबोधत।
तस्या दुहितरः पंच तासां नामानि मे शृणु॥४१३॥

मीनामीना तथा वृत्ता परिवृत्ता तथैव च। अनुवृत्ता च विज्ञेया तासां वै शृणुत प्रजाः॥४१४॥
सहस्रदंष्ट्रा मकराः पाठीनास्तिमिरोहिताः। इत्येवमादिर्हि गणो मैनो विस्तीर्ण उच्यते॥४१५॥
ग्राहाश्चतुर्विधा ज्ञेया मद्गुराः शंकवस्तथा। उग्राश्च शिशुमाराश्चामीनाश्चैतान्व्यजायत॥४१६॥

गलियां, चबूतरे, चौराहों में इनका निवास होता है।।४०३-४०४।। इसके अलावा द्वारदेश, निकलने और घुसने के स्थानों में रास्तों, तीर्थों, चैत्यवृक्षों, महामार्गो, श्मशान मार्गों तथा इन सभी विनष्ट स्थानों पर पिशाचगण निवास करते हैं, जो अधार्मिक लोग हैं, जो वर्ण और आश्रमों में परस्पर मिले हुये अर्थात् जो वर्णसंकर हैं, कारीगरी या शिल्पकर्म करने वाले हैं, देवताओं ने उनको ही इन पिशाचों की आजीविका बनाया है। धनार्जन के स्वाभाविक धर्मसंगत उपायों के अलावा चोरी, विश्वासघात आदि तथा इसी प्रकार के अन्य उपायों के द्वारा जो धन उपार्जित करने की जो क्रियायें की जाती हैं, उनमें देवता पिशाच होते हैं।।४०५-४०८।। मधु, मांस, भात, दही, तिलचूर्ण, मदिरा, आसव, धूप, हल्दी, खिचड़ी, तेल, मौथा, गुड़भात, काले वस्त्र, धूप और पुष्प इन सब सामग्रियों सहित पर्वों की सन्धियों के अवसर पर पिशाचों को बलि दी जानी चाहिये। ऐसी आज्ञा उन पिशाचों को ब्रह्मा ने दी और शूलपाणि शंकर जी को इन पिशाचों का अधिपति बनाया।।४०९-४११।।

सुन्दरी दंष्ट्रा ने व्याघ्रों और सिंहों को उत्पन्न किया तथा हाथी एवं अन्य मांसभक्षी जंगली पशुओं को पैदा किया।।४१२।। अब ऋषा के समस्त पुत्रों की उत्पत्ति को सुनिये। उनकी पाँच पुत्रियां थी, उनके नामों को सुनिये।।४१३।। १. मीना, २. अमीना, ३. वृत्ता, ४. परिवृत्ता, ५. अनुवृत्ता ये पाँच जानिये। अब उनकी सन्तानों को सुनिये।।४१४।। वे हैं—१. सहस्रदंष्ट्रा, २. मकर, ३. पाठीन, ४. तिमि (एक प्रकार की मछली), ५. रोहित (रोहू मछली) ये मीना की संतानें कही गयी हैं। इस प्रकार ये सब मीना से उत्पन्न सन्तानें मैन कही गयी हैं।।४१५।। ग्राह चार प्रकार के कहे गये हैं—१. मुद्गर, २. शंकु, ३. उग्र तथा ४. शिशुमार ये सब अमीना की सन्तानें हैं,

वृत्ता कर्मविकाराणि नैकानि जलचारिणाम्।
तथा शंखविकाराणि जनयामास नैकशः॥४१७॥
मंडूकानां विकाराणि ह्यनुवृत्ता व्यजायता। ऐणेयानां विकाराणि शंबूकानां तथैव च॥४१८॥
तथा शुक्तिविकाराणि वराटविकृतानि च। तथा शंखविकाराणि परिवृत्ता व्यजायत॥४१९॥
कालकंठविकाराणि जलूकाविकृतानि च। इत्येष हि ऋषावंशः पंचशाखः प्रकर्त्तितः॥४२०॥
तिर्याहेतुकमप्याहुर्बहुलं वंशविस्तरम्। संस्वेदजविकाराणि यथा येभ्यो भवंति ह॥४२१॥
स्वेदक्लिन्नशरीरेभ्यो यूकालिक्षादिका द्विजाः। मनुष्यस्वेदमलजा उशना नाम जंतवः॥४२२॥
नानापिपीलिकगणाः कीटका बहुपादकाः।
शंखोपलविकाराणि कीलकावरकाणि च॥४२३॥
इत्येवमादिबहुलाः स्वेदजाः पार्थिवा गणाः।
यथा धर्मादितप्ताभ्यश्चाद्भ्यो वृष्टिभ्य एव॥४२४॥
नैका मृगशरीरेभ्यो जायंते जंतवस्त्विमे।
मक्षिकाः पिच्छला देशास्तथा तित्तिरिपुत्तिकाः॥४२५॥
नीलाचत्राश्च जायंते मलजा बहुविस्तराः। जलजाः स्वेदजाश्चैव जायंते जंतवस्त्विमे॥४२६॥
काशतोयजकाः कीटा नलदा बहुपादकाः।
सिंहला रोमलाश्चैव पिच्छिलाः परिकीर्त्तिताः॥४२७॥

ये सव अमीना से पैदा हुए हैं।।४१६।। वृत्ता ने जल में विचरण करने वाले सभी प्रकार के अनेकों कछुओं, शंखों को उत्पन्न किया।।४१७।। अनुवृत्ता ने मेढक जाति के अनेकों प्रकार के जीवों को पैदा किया तथा ऐणेय (हिरण में पैदा होने वाले) शाम्बूक (घोंघा) की सभी जातियों को उत्पन्न किया।।४१८।। तथा परिवृत्ता ने शुक्ति (सुतुही) वराटिका (कौड़ी) तथा शंख आदि बनाने वाली जाति के जीवों को पैदा किया। इसके अलावा कालकूट और जलौका (जोंक) की सभी जातियों को भी उसने उत्पन्न किया। इस प्रकार यह कश्यप पत्नी ऋषा के वंश का वर्णन किया गया है, जिसकी उपर्युक्त पांच शाखायें कही गयी हैं।।४१९-४२०।।

कुछ विना कारण के उत्पन्न होने वाली जातियों का वंश विस्तार बहुत ही विशाल है, जो विना कारण अर्थात् अयोनिज होते हैं। जो पशीने आदि विकारों से ही पैदा हो जाते हैं तथा वे सभी स्वेदज मनुष्य के शरीर के पसीने से पैदा हो जाते हैं। स्वेद और मल से पैदा होने वाले जन्तुगण उशना नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सव सिर के बालों तथा पसीने से वस्त्रों में पैदा होने वाले जन्तु यूका (जूही) डींगर नाम से पुकारे जाते हैं।।४२१-४२२।। अनेकों प्रकार के चींटी आदि गण बहुत पैरों वाले कीड़े (गिजाई) जो पंक्ति बनाकर चलते हैं तथा शंख और मोती आदि रत्नों को बनाने वाले जन्तु कीलक, अवरक ये सभी जन्तु पृथ्वी के पशीने से पैदा होने वाले जन्तु है, जो घाम से गर्म हुई पृथ्वी पर वर्षा होने पर स्वतः पैदा हो जाते हैं।।४२३-४२४।। बहुत से जन्तु पशुओं के शरीरों से पैदा होने वाले हैं, वे हैं—मक्खियां, पिच्छल (वा. पिप्पल) डांस, तथा तित्तिरपुत्तिका (किलीले) नील और अचत्र मल से पैदा होने वाले जन्तु हैं आदि इनकी संख्या बहुत है। ये सभी उपर्युक्त जन्तु जल से उत्पन्न होने वाले और पशीने से पैदा होते हैं।।४२५-४२६।। घास के जल से पैदा होने वाले जन्तु हैं, जो नलद, बहुपादक, सिंहल, रोमल, पिच्छल आदि

इत्येवमादिर्हि गणो जलजस्वेदजः स्मृतः। शिंबिभ्यो माषमुद्गानां जायंते कृमयस्तथा॥४२८॥
बिल्वजं ब्वाम्रपूगेभ्यः फलेभ्यश्चैव जंतवः। मुद्गेभ्यः पनसेभ्यश्च तंडुलेभ्यस्तथैव च॥४२९॥
तथा कोटरशुष्केभ्यो निहितेभ्यो भवंति हि।
अन्येभ्योऽपि च जायंते न हि तेभ्यश्चिरं सदा॥४३०॥
जंतवस्तुरगादिभ्यो विषादिभ्यस्तथैव च। बहून्यहानि निक्षिप्ते संभवति च गोमये॥४३१॥
जायंते कृमयो विप्राः काष्ठेभ्यश्चापि सर्वशः।
संस्वेदजाश्च जायन्ते वृश्चिकाः शुष्कगोमयात्॥४३२॥
गोभ्यो हि महिषेभ्यश्च तथान्येभ्यश्च जंतवः।
मत्स्यादिभ्यश्च विविधा अन्नकूटे विशेषतः॥४३३॥
वैकारिकाश्च जायंते तथा गाजकुलानि च।
तथान्यानि च सूक्ष्माणि जलौकादीनि जातयः॥४३४॥
कपोतकुररादिभ्यः सूक्ष्माः शूकास्तथैव च।
माक्षिकाणां विकाराणि जायंते जातयोऽपरे॥४३५॥
प्रायेणानुवसंत्यस्मिन्नुच्छिष्टोदककर्दमे। मशकानां विकाराणि भ्रमराणां तथैव च॥४३६॥
गोभ्यः समभिजायंते पुत्तिकापुत्रसप्तकाः।
मणिच्छेदाः स्मृता व्यालाः पोतजाः परिकीर्त्तिता;॥४३७॥

नामों से पुकारे जाते हैं।४२७।। इस प्रकार ये सब जल और पसीनों से पैदा होने वाले जन्तुगण बताये गये तथा कुछ उड़द और मूंग से पैदा होने वाले भी कीटगण होते हैं।।४२८।। कुछ बेल तथा सुपारी के फलों से पैदा होने वाले जन्तुगण होते हैं तथा कुछ मूँग, कटहल तथा चावलों से भी पैदा होते हैं।।४२९।। तथा कुछ जन्तु वृक्षों के कोटरों (खुलाड़ों) में तथा रखे हुए सामान में भी पैदा हो जाते हैं। एवं अन्य वस्तुओं जो कि बहुत समय तक रखी रहती है, उनसे भी जन्तु पैदा हो जाते हैं।।४३०।। कुछ जन्तु घोड़े आदि से पैदा होते हैं, उसी प्रकार विषादि से भी पैदा होते हैं, बहुत से जन्तु वहुत दिन से रखे हुए गोबर में भी पैदा हो जाते हैं।।४३१।।

सूत जी कहते हैं कि विप्रो! कुछ कीड़े लकड़ी में भी सब प्रकार से पैदा हो जाते हैं। पसीने से जो जन्तु पैदा होते ही है, शुष्क गोवर से विच्छुओ की उत्पत्ति होती है।।४३२।। बैलों गायों से तथा भैंस भैंसों से भी कुछ कीट गण पैदा होते हैं तथा कुछ मछली आदि से पैदा होते हैं तथा कुछ अन्नकूट, गेहूं, मक्का, जौ आदि में भी पैदा होते हैं।।४३३।। किसी वस्तु मे विकार पैदा होने पर भी कुछ जन्तु पैदा हो जाते हैं तथा कुछ गाजकुल वाले होते हैं तथा अन्य जोंक आदि सूक्ष्म जातियां भी हैं।।४३४।। कुछ जन्तु कबूतर कुररी पक्षी आदि से सूक्षम शूक पैदा होते हैं।। माक्षिकों (मक्खियों) के कुछ विकार स्वरूप अनेकों जातियां होती हैं। अर्थात् मक्खिओं की जाति के अनेकों जन्तु हैं।।४३५।। प्रायः कुछ जन्तु कहीं बचे हुए जलयुक्त कीचड़ मे मच्छरो की अनेक जातियां पैदा होती है, उसी प्रकार भ्रमरों की जातियां भी पैदा होती हैं।।४३६।। पुत्तिका, पुत्रसप्तका, मणिच्छेद व्याल, पोतज ये जन्तु 'गो'[१] से पैदा

---

१. गो का यहाँ पर अर्थ समस्त पालतू पशुओं से है।

शतवेरिविकाराणि करीषेभ्यो भवंति हि। एवमादिरसंख्यातो गणः संस्वेदजो मया॥४३८॥
समासाभिहितो ह्येष प्राक्कर्मवशजः स्मृतः।
ये चान्ये नैर्ऋंताः सत्त्वास्ते स्मृता उपसर्गजाः॥४३९॥
भूतास्तु योनिजाः केचित् केचिदौत्पत्तिकाः स्मृताः।
प्रायेण देवाः सर्वे वै विज्ञेया ह्युपपत्तिजाः॥४४०॥
केचित्तु योनिजा देवाः केचिद्देवा निमित्ततः।
दुल्लोलकं ललोहं च सरमा द्वौ व्यजायत॥४४१॥
तयोरपत्यं चत्वारो विज्ञेयाः सृमरादयः। श्यामाश्च शबलाश्चैव लोहिता अंजनास्तथा॥४४२॥
कृष्णधूम्रारुणाश्चैव दुल्लोलस्याष्ट कद्रुकाः। सर्पाणां सुरसा जज्ञे शतं नैकशिरोभृताम्॥४४३॥
सर्पाणां तक्षको राजा नागानां चापि वासुकिः।
तमोबहुल इत्येष गणः क्रोधवशान्वयः॥४४४॥
पुलहस्यात्मजः सर्गस्ताम्रायास्तु निबोधत।
षट् कन्यास्त्वभिविख्यातास्ताम्रायाश्च विजिज्ञिरे॥४४५॥
गृध्री भासी शुकी क्रौंची श्येनी च धृतराष्ट्रिका।
अरुणस्य च गृध्री तु वीर्यवंतौ महाबलौ॥४४६॥
संपातिं च जटायुं च प्रसूता पक्षिसत्तमौ। संपातेर्विजयाः पुत्रा द्विरास्याः प्रसहाश्च ये॥४४७॥

होते हैं। शतवेरि के जितने भेदोभेद हैं, वे करीषों[1] से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के अन्यान्य स्वेदज क्षुद्र जन्तुओं की संख्या अगणित है, केवल संक्षेप में इसका वर्णन किया गया है। ये सब जन्तु पूर्वजन्म के कर्म वश कहे गये हैं अर्थात् पाप करने वाले मनुष्य इन योनियों में भटकते रहते हैं। इनके अतिरिक्त जो नैर्ऋत जन्तु हैं, वे उपसर्गज कहे गये हैं।।४३७-४३९।। संसार के कुछ प्राणी योनि से उत्पन्न होने वाले कहे गये तथा कुछ स्वतः उत्पन्न होने वाले कहे गये हैं। प्रायः सभी देवतागण उपपत्ति से जन्म लेने वाले होते हैं अर्थात् उनकी उत्पत्ति सिद्धि से होती है।।४४०।। तथा उनमें कुछ देवता योनि से पैदा होते हैं, तो कुछ किसी निमित्त से पैदा होते हैं। सरमा ने दुल्लोलक और तुलोह नामक दो पुत्रों को जन्म दिया।।४४१।। उन दोनों की चार सन्ताने हुईं, जिन्हें सृमरादिगण (चलने वाले हिरन आदि) जानना चाहियें उनके नाम हैं— श्याम, सबल, लोहित और अंजना, कृष्ण, धूम, अरुण और दुल्लोल आठ कद्रु की सन्तानें हैं। सुरसा ने एक सौ सिरों वाले सर्पो कों जन्म दिया।।४४२-४४३।। सर्पों का राजा तक्षक था और नागों के राजा वासुकि थे। ये नाग और सर्पगण सब तमोबहुल गण क्रोध के वशीभूत रहने वाले वंश हैं।।४४४।।

अब पुलह ऋषि की ताम्रा के साथ पैदा हुई सन्तानों को सुनिये। ताम्रा की छः कन्यायें मुख्य रूप से विख्यात हैं, जो ताम्रा से पैदा हुई हैं।।४४५।। उनके नाम हैं—१. गृध्री, २. भासी, ३. शुकी, ४. क्रौञ्ची, ५. श्येनी और ६. धृतराष्ट्रिका। अरुण की पत्नी गृध्री ने संपाति और जटायु नामक दो महापराक्रमी और महाबली पक्षीश्रेष्ठ पुत्रों को जन्म दिया। संपाति के विजय पुत्र हुआ, जिसके दो मुख थे, जिनका विजय और प्रसह नाम था।।४४६-४४७।।

१. करीष = अग्नि सूखे गोबर या कण्डों की आग।

जटायुषः पुराः पुत्राः कंकगृध्राश्च कर्णिकाः।
भार्या गरुत्मतश्चैव भासी क्रौंची तथा शुकी॥४४८॥
धृतराष्ट्री तथा श्येनी तास्वपत्यानि वच्मि ते। शुकी गरुत्मतः पुत्रान्सुषुवे षट् परिश्रुतान्॥४४९॥
सुखं सुनेत्रं विशिखं सुरूपं सुरसं बलम्। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडानां महात्मनाम्॥४५०॥
चतुर्दश सहस्राणि पुराणां पन्नगाशिनाम्। पुत्रपौत्रविसर्गाच्च तेषां वै वंशविस्तरे॥४५१॥
व्याप्तानि यानि स्थानानि तानि वक्ष्ये यथाक्रमम्।
शाल्मलिद्वीपमखिलं देवकूटं च पर्वतम्॥४५२॥
मणिमंतं च शैलेंन्द्रं सहस्रशिखरं तथा। पर्णमालं सुकेशं च शतशृंगं तथाऽचलम्॥४५३॥
कौररं पंचशिखरं हेमकूटं च पर्वतम्। प्रचंडवायुप्रजवैर्दीपितैः पद्मरागिभिः॥४५४॥
शैलशृंगाणि व्याप्तानि गारुडैस्तैर्महात्मभिः।
भासीपुत्राः स्मृता भासा उलूकाः काककुक्कुटाः॥४५५॥
मयूराः कलविंकाश्च कपोतालावतित्तिराः।
क्रौंचा वाधीणसाः श्येनाः कुरराः सारसा बकाः॥४५६॥
इत्येवमादयोऽन्येऽपि क्रव्यादा ये च पक्षिणः। धृतराष्ट्रीय तु हंसांश्च कलहंसांश्च भामिनी॥४५७॥
चक्रवाकांश्च विहगान्सर्वांश्चैवौदकान्द्विजान्।
श्येन्यनन्तं विजज्ञे तु पुत्रपौत्रं द्विजोत्तमाः॥४५८॥
गरुडस्यात्मजाः प्रोक्ता इरायाः शृणुत प्रजाः।
इरा विजज्ञे कन्या वै तिस्रः कमललोचनाः॥४५९॥

जटायु के जो पुत्र हुए वह कंक, गृध्र और कर्णिक कहे गये। गरुत्मान् की पत्नी भासी, क्रौञ्ची तथा शुकी थी।।४४८।। धृतराष्ट्री तथा श्येनी उनकी सन्तानों को मैं बता रहा हूँ, शुकी ने गरुत्मान से छः प्रसिद्ध पुत्रों को जन्म दिया।।४४९।। उनके नाम हैं—१. सुख, २. सुनेत्र, ३. विशिख, ४. सुरूप, ५. सुरस और ६. बल हुए, फिर उन महात्मा गरुड़ के अनेको पुत्र और पौत्र हुए।।४५०।। इन क्रूर सर्पभक्षी गरुड़ों की संख्या चौदह हजार थी, उनके पुत्र पौत्र आदि से ही पक्षियों का सृष्टि पर विस्तार हुआ।।४५१।।

उन पक्षियों ने जिन जिन स्थानों को व्याप्त किया, उनके नाम यथाक्रम बता रहा हूँ—वे समस्त शाल्मलिद्वीप में देवकूट पर्वत, मणिमान् पर्वत, सहस्रशिखर, पर्णमाल, सुकेश, शतशृङ्ग पर्वत, तथा कुरर पर्वत, पंचशिखर, हेमकूट पर्वत पर रहते हैं। प्रचण्ड वायु से उत्पन्न होने वाले अतिकान्तिमान्, पद्म के समान रंग वाले उन महाबलशाली गरुड़ नामक पक्षियों से इन पर्वतों की चोटियां भरी पड़ी हैं।।४५२-४५४½।। भासी के पुत्र भास नाम से प्रसिद्ध हुए। उल्लू, कौए, मुर्गे, मोर, कलविंक (गौरैया), कबूतर, लवा, तीतर आदि सभी पक्षी भासी की सन्तान कहे गये हैं।।४५४½-४५५½।। क्रौंची ने भास नाम पक्षियों को उत्पन्न किया कुरर, सारस, बगले आदि अन्यान्य जो मांसभक्षी पक्षी हैं, उन्हें श्येनी ने उत्पन्न किया। सुन्दरी धृतराष्ट्री ने हंस, कलहंस, चक्रवाक तथा अन्य प्रकार के सभी जलपक्षियां को पैदा किया। श्येनी ने अनन्त पुत्र पौत्रों को जन्म दिया।।४५५½-४५८।। गरुड़ की पत्नियों का वर्णन

वनस्पतीनां वृक्षाणां वीरुधां चैव मातरः। लता चैवालता चेति वीरुधा चेति तत्र या॥४६०॥
लता वनस्पतिर्ज्जज्ञे पुष्पादपि फलावहान्। पुष्पैः फलग्रहैर्वृक्षानलता समसूयत॥४६१॥

गुल्मास्तथा लतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः।
वीरुधस्तदपत्यं हि वंशश्चात्र समाप्यते॥४६२॥
एते कश्यपदायादा व्याख्याताः स्थाणुजंगमाः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यैरिदं संततं जगत्॥४६३॥

एष सर्गैकदेशस्य कीर्त्तिततोऽवयवो मया। मारीचो वः प्रजासर्गः समासेन प्रकीर्त्तितः॥४६४॥
न शक्यं व्यासतो वक्तुं वर्षाणां च शतैरपि। अदितिर्धर्मशीला तु बलशीला दितिस्तथा॥४६५॥
तपःशीला तु सुरभिर्मायाशीलादनुस्तथा। गन्धशीला मुनिश्चैव क्रोधाऽध्ययनशीलिनी॥४६६॥

गीतशीला ह्यरिष्टा तु क्रूरशीला खशा स्मृता।
क्रोधशीला तथा कद्रूः क्रोधा च शुचिशीलिनी॥४६७॥

वाहशीला तु विनता ताम्रा वै घातशीलिनी। इरानुग्रहशीला तु ह्यनायुर्भक्षणे रता॥४६८॥

अभवँल्लोकमातॄणां शीलान्येतानि सर्वशः।
धर्मतः शीलतो बुद्ध्या क्षमया बलरूपतः॥४६९॥

रजःसत्त्व तमोद्रिक्ता धार्मिकाधार्मिकाश्च वै। मातुस्तुल्याभिजाताश्च कश्यपस्यात्मजाः प्रभोः॥४७०॥

कर चुका, अब इरा की सन्तानों को सुनिये। इरा ने कमल समान नेत्रों वाली तीन कन्याओं को उत्पन्न किया।।४५९।। वे कन्यायें वनस्पतियों वृक्षों तथा लताओं की माता थीं। उनका नाम लता, अलता और वीरुधा था।।४६०।। लता वनस्पति ने पुष्पों से फल देने वाली वेलों को पैदा किया अर्थात् पुष्पों से आनन्द देने वाली वेल को पैदा किया। अतः उन पर फल नहीं आते। अतः पुष्पों द्वारा फल ग्रहण करने वाले वृक्षों को अलता ने पैदा किया।।४६१।। वीरुधा ने गुल्म लता वल्ली, समस्त तृण जाति, त्वक्सार जिनके छाल मे ही सार हो अर्थात् बांस आदि में ही उनकी समाप्ति होती है।।४६२।। इस प्रकार ये कश्यप के स्थावर एवं जंगम वंशजों का वर्णन किया गया तथा उनके पुत्र और पुत्रों को भी बताया गया, जो संसार में निरन्तर विद्यमान हैं।।४६३।।

अब सूत जी कहते हैं कि मैंने इस सृष्टि के समस्त सर्ग का एक अंश वर्णन कर दिया है। अतः यह मरीचिपुत्र कश्यप की सन्तानों का सर्ग संक्षेप से बताया जा चुका है।।४६४।। उनके वंश का विस्तार से वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है। अदिति धर्मशीला थी और दिति बलशीला थी।।४६५।। सुरभि तपःशीला थी और दनु मायाशीला थी। मुनि गन्धशीला और क्रोधा अध्ययनशीला थी।।४६६।। अरिष्ट गीतशीला (गाना गाने के स्वभाव वाली) थी तथा खशा क्रूर स्वभाव वाली थी। क्रोध स्वभाव वाली कद्रू थी तथा क्रोधा पवित्र आचरण वाली थी।।४६७।। विनता भारवहन करने के स्वभाव वाली थी, ताम्रा निश्चय ही दूसरों को चोट पहुँचाने तथा विश्वासघात के स्वभाव वाली थीं। इरा दूसरों पर अनुग्रह करने के स्वभाव वाली थी तथा अनायु भक्षण करने के स्वभाव वाली थी।।४६८।। लोकमाताओं के ये ही स्वभाव हैं। उनके शील आचरण आदि का समष्टि में यही परिचय है। इन सबके धर्मशील आचरण आदि बुद्धि, क्षमा, बल और स्वरूप ये राजसी, तामसी एवं सात्त्विकी प्रवृत्तियां उनमें पायी जाती हैं और इस प्रकार वे धार्मिक और अधार्मिक दोनों विचारों वाली मानी जाती हैं। कश्यप की ये सभी सन्तानें अपनी

देवतासुरगंधर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। पिशाचाः पशवश्चैव मृगाः पतगवीरुधः॥४७१॥
यस्माद्दाक्षायणीष्वेते जज्ञिरे मानुषीष्विह। मनुष्यप्रकृतीस्तस्माद्देवादींश्च विजानते॥४७२॥
यस्माच्च संभवः कृत्स्नो देवानां मानु,ष्विह। मन्वन्तरेषु सर्वेषु तस्माच्छ्रेष्ठास्तु मानुषाः॥४७३॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां मानुषाः साधकास्तु वै।
ततोऽर्वाक्स्रोतसस्ते वै उत्पद्यंते सुरासुराः॥४७४॥

जायन्ते कार्यसिद्ध्यर्थं मानुषेषु पुनःपुनः। इत्येष वंशप्रभवः प्रसंख्यातस्तु विस्तरात्॥४७५॥
सुराणमसुराणां च गंधर्वाप्सरसां तथा। यक्षरक्षःपिशाचानां सुपर्णोरगपक्षिणाम्॥४७६॥

व्यालानां शिखिनां चैव औषधीनां च सर्वशः।
कृमिकीटपतंगानां क्षुद्राणां जलचारिणाम्॥४७७॥

पशूनां ब्राह्मणानां च श्रीमतां पुण्यलक्षणः। आयुष्यश्चैव धन्यश्च श्रीमान् हितसुखावहः।

श्रोतव्यश्चैव सततं ग्राह्यश्चैवानसूयतः॥४७८॥

इमं तु वंशं नियमेन यः पठेन्महात्मनां ब्राह्मणवंद्यसंसदि।
अपत्यलाभं लभते च पुष्कलं प्रियं धनं प्रेत्य च शोभनां गतिम्॥४७९॥

॥इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीयो उपोद्घातपादे कश्यपवंशवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अपनी माताओं के समान स्वभाव वाली एवं कुलीन थी।।४६९-४७०।। देवता, असुर, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस, पन्नग, पिशाच, पशु, जंगलीपशु (मृग), पक्षी, लतायें ये सभी सन्तानें दक्ष की मानुषी कन्याओं में उत्पन्न हुईं।। अतः मनुष्य का स्वभाव इन सबमें श्रेष्ठ माना गया।।४७१-४७२।। यहाँ इस प्रकार जितनी भी सृष्टियां हुई हैं, उन सब देवताओं और मनुष्यों में देखा जाये तो मनुष्य की सृष्टि सर्वश्रेष्ठ है। अर्थात् मनुष्य की योनि सबसे श्रेष्ठ है।।४७३।। क्योंकि मनुष्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों साधनो का साधक हैं। उनके इस लोक में सुर और असुर कार्य की सफलता के लिए वारम्वार निम्न स्रोत के रूप मे सुर और असुर पैदा होते रहते हैं। इस प्रकार यह वंशों की उत्पत्ति विस्तार से वर्णन की गयी है।।४७४-४७५।।

सुरों, असुरों, गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, पक्षियों, सर्पों, विहंगमों, व्यालों, शिखियों, सभी प्रकार की औषधियों, कृमि, कीट, पतंगों, क्षुद्र जलचरों, पशुओं, ब्राह्मणों एवं श्रीमानों के पुण्यदायी लक्षण एवं वंशविस्तार को मैं बतला चुका हूँ, उनका वर्णन है। यह वर्णन आयुष्प्रद, धनप्रद, श्रीसम्पन्न, कल्याणदायी एवं सुखसाधन प्रदान करने वाला है। इस वर्णन को लगातार सुनना चाहिये और असूयारहित होकर ग्रहण करना चाहिये।।४७६-४७८।। इस सृष्टि के वंश वर्णन को जो नियम से महात्माओं, ब्राह्मणो और वैद्यों की सभा में पाठ करेगा, वह सन्तान एवं पूर्ण धनसम्पत्ति का प्राप्त करके परलोक में सुन्दर गति को प्राप्त करेगा।।४७९।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सातवां अध्याय काश्यपेय वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

ऋषिवंशवर्णनं नाम

अष्टमोऽध्यायः

सूत उवाच

एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना। प्रतिष्ठितासु सर्वासु चरासु स्थावरासु च॥१॥
अभिषिच्याधिपत्येषु तां मुख्यान्प्रजापतिः। ततः क्रमेण राज्यानि आदेष्टुमुपचक्रमे॥२॥
द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्राणां ग्रहैः सह। यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत्॥३॥
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावंगिरसां पतिम्। भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्॥४॥
आदित्यानां पुनर्विष्णुं वसूनामथ पावकम्। प्रजापतीनां दक्षं च मरुतामथ वासवम्॥५॥
दैत्यानामथ राजानं प्रह्लादं दितिनंदनम्। नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां च वृषध्वजम्॥६॥
विप्रचित्तिं च राजानं दानवानामथादिशत्। अपां च वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं तथा॥७॥
यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां धनस्य च। वैवस्वतं पितॄणां च यमं राज्येऽभ्यषेचयत्॥८॥
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम्। शैलानां हिमवंतं च नदीनामथ सागरम्॥९॥
गंधर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं तथा। उच्चैःश्रवसमश्वानां राजानं चाभ्यषेचयत्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-८

ऋषिवंश वर्णन

सूत जी ने कहा— हे ऋषियो! इस प्रकार महात्मा कश्यप ने जब समस्त चराचर प्रजाओं की सृष्टि कर दी तथा उनको अच्छी तरह प्रतिष्ठित कर दिया, तब उसके बाद उस सबके मुख्य प्रजापति ब्रह्मा ने उनसबके आधिपत्यों पर नियुक्त करने का उपक्रम किया।।१-२।। अतः उन्होंने द्विजातियों (ब्राह्मणक्षत्रिय एवं वैश्यों) वीरुधों, नक्षत्रों, ग्रहों, यज्ञों और तपों के राज्य पद पर सोम को अभिषिक्त किया।।३।। अंगिरा के वंश में उत्पन्न होने वाले सभी प्रजाओं का राज्यपद बृहस्पति को दिया। भृगुकुल के सभी वंशजों के अधिपति पद पर काव्य (शुक्राचार्य) को अभिषिक्त किया।।४।। इसके समस्त आदित्यगण का प्रजाओं का अधिपति विष्णु को बनाया और वसुगण का अधिपति अग्निदेव को बनाया और प्रजापतिगण राजा दक्ष को बनाया तथा मरुद्गणों की प्रजाओ का राज्य वासव को दिया।।५।।

इसके बाद दैत्यों का राजा दितिनन्दन प्रह्लाद को बनाया तथा साध्यगणों का राजा नारायण को और रुद्रगणों का राजा वृषध्वज शंकर को बनाया।।६।। दानवों का राजा विप्रचित को बनाया तथा जलो के राजा के पद परवरुण को अभिषिक्त किया एवं राजाओं, राक्षसों, यक्षों और पार्थिवों (पृथ्वी से प्राप्त धनों) का राजा विश्रवा पुत्र कुबेर को बनाया तथा पितरों का राजा विवस्वान् पुत्र यम को नियुक्त किया।।७-८।। समस्त भूतों, पिशाचों का राजा शूलपाणि गिरीश शंकर को बनाया तथा पर्वतों का राजा हिमालय को और नदियों का राजा सगार को बनाया।।९।। गन्धर्वो का अधिपति चित्ररथ को बनाया तथा अश्वों का राजा उच्चैःश्रवा अश्व को अभिषिक्त किया।।१०।।

मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च ककुद्मिनाम्। पक्षिणामथ सर्वेषां गरुडं पततां वरम्।।११।।
गंधानां मरुतां चैव भूतानामशररिणाम्। समकालबलानां च वायुं बलवतां वरम्।।१२।।
सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं नागानामथ वासुकिम्। सरीसृपाणां सर्पाणां पन्नगानां च तक्षकम्।।१३।।
सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षितस्य च। आदित्यानामन्यतमं पर्जन्यमभिषिक्तवान्।।१४।।
सर्वाप्सरोगणानां च कामदेवं तथा प्रभुम्। ऋतूनामथ मासानामार्त्तवानां तथैव च।।१५।।
यक्षाणां च विपक्षाणां मुहूर्त्तानां च पर्वणाम्। कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा।।१६।।
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम्। प्रजापतेर्विरजसः पूर्वस्यां दिशि विश्रुतम्।।१७।।
पुत्रं नाम्ना सुधन्वानं राजानं सोऽभ्यषेचयत्। दक्षिणस्यां दिशि तथा कर्दमस्य प्रजापतेः।।१८।।
पुत्रं शंखपदं नाम राजानं सोभ्यषेचयत्। पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम्।।१९।।
केतुमंतं महात्मानं राजानं चाभ्यषेचयत्। तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः।।२०।।
उदीच्यां दिशि दुर्द्धर्षपुत्रं राज्येऽभ्यषेचयत्। मनुष्याणामधिपतिं चक्रे वैवस्वतं मनुम्।।२१।।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते।।२२।।
स्वायंभुवेंतरे पूर्वं ब्रह्मणा तेऽभिषेचिताः। नृपश्चैतेऽभिषिच्यंते मनवो ये भवन्ति वै।।२३।।
मन्वंतरेष्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवाः। एवमन्येऽभिषिच्यंते प्राप्ते मन्वंतरे पुनः।।२४।।

इसके बाद हिंसक पशुओं का राजा शार्दूल को जो सिंह से अधिक बलशाली हिंसक पशु था, जो अब उपलब्ध नहीं है, को बनाया और ऊँची टाट वाले चतुष्पदों गाय भैंस नील गाय आदि का राजा सांड को नियुक्त किया और उड़ने वाले सभी पक्षियों का राजा श्रेष्ठ गरुड़ को बनाया। अशरीरी भूतों गन्धों और समकालबल वाले बलवान् मरुतों का राजा श्रेष्ठ वायु को बनाया।।११-१२।। सभी विषदन्तधारी सर्पों का स्वामी शेष को और नागों का राजा वासुकि को बनाया। सब जमीन पर सरकने वाले सर्पादि विच्छू कांतर आदि पन्नगों का राजा तक्षक को बनाया।।१३।। समुद्र, नदियों, वर्षा करने वाले मेघों, आदित्यों का अन्तिम राजा पर्जन्य को अभिषिक्त किया।।१४।।

सभी अप्सराओं का स्वामी कामदेव को बनाया। ऋतुओं, मासों तथा आर्तवों, पक्षों, विपक्षों मुहूतों और पर्वों तथा कला, काष्ठ जो कि समय को बताने वाले हैं एवं अयन (उत्तरायण एवं दक्षिणायन) गति द्योतक को और गणित के योग का स्वामी संवत्सर को नियुक्त किया। अर्थात् ज्योतिष विद्या का अध्यक्ष संवत्सर को बनाया।।१५-१६½।। दक्षिण दिशा में प्रजापति कर्दम के पुत्र शंखपद को राजा बनाया।।१६½-१७½।। प्रजापति विरज के पुत्र सुधन्वा को पूर्व दिशा का राजा बनाया।।१७½-१८½।। पश्चिम दिशा में रज के पुत्र महात्मा केतुमान् अच्युत को राजा बनाया।।१८½-१९½।। तथा उत्तर दिशा में प्रजापति पर्जन्य के दुर्धष पुत्र हिरण्यरोमा को राज्यपद पर अभिषिक्त किया। मनुष्यों का अधिपति सूर्य पुत्र वैवस्वत मनु को बनाया।।१९½-२१।। आज भी ये सब अधिपतिगण अपने अपने प्रदेशों में इन सातों से समन्वित पृथ्वी का पालन करते हैं।।२२।। प्राचीन काल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्मा जी ने इन्हें उन उन पदों पर अभिषिक्त किया, तदनुसार प्रत्येक मन्वन्तर में उसी प्रकार वे ही मनु अपने अपने पद पर अभिषिक्त होते हैं।।२३।। बीते हुए मन्वन्तरों में कितने राजालोग बीत चुके हैं। इसी प्रकार फिर मन्वन्तर के आने पर फिर अन्य अभिषिक्त किये जायेंगे।।२४।।

अतीतानागताः सर्वे स्मृता मन्वंतरेश्वराः। राजसूयेऽभिषिक्तश्च पृथुरेभिर्नरोत्तमः॥२५॥
वेददृष्टेन विधिना ह्यधिराजः प्रतापवान्। एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात्॥२६॥
पुनरेव महाभागः प्रजानां पतिरीश्वरः। कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार परमं तपः॥२७॥
पुत्रौ गोत्रकरौ मह्यं भवेतामिति चिंतयन्। तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः॥२८॥
ब्रह्मणोंऽशौ सुतौ पश्चात्प्रादुर्भूतौ महौजसौ। वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ॥२९॥
वत्सारान्निध्रुवो जज्ञे रेभ्यश्च सुहमायशाः। रेभ्यस्य रैभ्यो विज्ञेयो निध्रुवस्य निबोधत॥३०॥

च्यवनस्य सुकन्यानां सुमेधाः समपद्यत।
निध्रुवस्य तु या पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम्॥३१॥

असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत। शांडिल्यानां वरः श्रीमान् देवलः समुहायशाः॥३२॥

निध्रुवाः शांडिला रैभ्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः।
वज्रिप्रभृतयो देवा देवास्तस्य प्रजास्विमाः॥३३॥

चतुर्युगे त्वतिक्रान्ते मनोर्ह्येकादशे प्रभोः। अथावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे संप्रवर्त्तिते॥३४॥
मरुतस्य नरिष्यंतस्तस्य पुत्रो दमः किल। राज्यवर्द्धनकस्तस्य सुधृतिस्तत्सुतो नरः॥३५॥
केवलश्च ततस्तस्य बंधुमान्वेगवांस्ततः। बुधस्तस्याभवद्यस्य तृणबिंदुर्महीपतिः॥३६॥
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये स बभूव ह। तस्य चेलविला कन्यालंबुषागर्भसंभवा॥३७॥
तस्यां जातो विश्रवास्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धनः। बृहस्पतिर्बृहत्कीर्तिर्देवाचार्यस्तु कीर्त्तितः॥३८॥

भूत एवं भविष्य के मन्वन्तरों के जो राजा लोग बताये गये हैं, वे सभी मन्वन्तरों के अधीश्वर कहे गये हैं। इन अधिपतियों द्वारा ही राजसूय यज्ञ नरश्रेष्ठ महाराजा पृथु को अभिषिक्त किया गया था।।२५।। उन प्रतापवान् महाराजा पृथु ने वेदविहित विधि से प्रभा की सन्तानों को पैदा करने के लिए इन पुत्रों को पैदा करके।।२६।। फिर उसके बाद प्रजापति, सबके स्वामी महाभाग कश्यप जी ने गोत्र बनाने की कामना से घोर तप किया।।२७।। मेरे गोत्र करने वाले दो पुत्र होवें, यह विचार करते हुए उन ध्यान करने वाले महात्मा कश्यप के दो महान् पराक्रमी ब्राह्मण अंश वाले ब्रह्मज्ञानी, वत्सार और असित पुत्र पैदा हुए।।२८-२९।। वत्सार ने निध्रुव और रेभ्य नामक महान् यशस्वी पुत्रों को पैदा किया। रेभ्य के पुत्रों को रैभ्य जाना गया। अब निध्रुव के वंशजों को सुनिये।।३०।। च्यवन की पत्नी सुकन्या में सुमेधा उत्पन्न हुई, जो सुमेधा निध्रुव की पत्नी थी तथा कुण्डपायियों की माता थी।।३१।। असित की पत्नी एकपर्णा में शाण्डिल्य गोत्र के श्रेष्ठ पराक्रमी ब्रह्म में निष्ठा रखने वाले श्रीमान् देवल उत्पन्न हुए।।३२।।

इस प्रकार निध्रुव, शाण्डिल और रैभ्य ये तीन काश्यप पक्ष हुए। उनकी सन्तानों में वज्रि आदिदेव पैदा हुए।।३३।। चारों युगों के बीत जाने पर मनु के ग्यारहवें युगमें द्वापर के अवशिष्ट रह जाने पर मरुत के नरिष्य पुत्र हुए, फिर उनके पुत्र दम हुए, दम के राज्यवर्द्धक हुए, फिर राज्यवर्द्धन के सुधृति पुत्र हुए।।३४।। उसके बाद उन सुधृति के पुत्र केवल हुए, केवल के बन्धुमान् और रबन्धुमान् के बुध हुए तथा बुध के पुत्र राजा तृणबिन्दु हुए।।३६।। तीसरे तेत्रायुग के प्रारम्भ में उन तृणबिन्दु की पत्नी अलम्बुषा के गर्भ से उत्पन्न इलविला कन्या हुई।।३७।। उस कन्या से पौलस्त्य कुल की वृद्धि करने वाले विश्रवा उत्पन्न हुए, जो बृहस्पति, बृहस्कीर्ति देवताओं के आचार्य कहे गये।।३८।।

कन्यां तस्योपयेमे स नाम्ना वै देववर्णिनीम्। पुष्पोत्कटां च वाकां च सुते माल्यवंतस्तथा॥३९॥
कैकसीं मालिनः कन्यां तासां तु शृणुत प्रजाः। ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देववर्णिनी॥४०॥
दिव्येन विधिना युक्तमार्षेण च श्रुतेन च। राक्षसेन च रूपेण आसुरेण बलेन च॥४१॥
त्रिपादं सुमहाकायं स्थूलशीर्षं महाहनुम्। अष्टदंष्ट्रं हरिच्छमश्रुं शंकुकर्णं विलोहितम्॥४२॥
ह्रस्वबाहुं प्रबाहुं च पिंगलं सुद्विभीषणम्। वैवर्त्तज्ञानसंपन्नं संबुद्धं चैव संभवात्॥४३॥
पिता दृष्ट्वाऽब्रवीत्तं तु कुबेरोऽयमिति स्वयम्।
कुत्सायां क्विति शब्दोऽयं शरीरं बेरमुच्यते॥४४॥
कुबेरः कुशरीरत्वान्नाम्ना वै तेय सोंऽकितः। यस्माद्विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव॥४५॥
तस्माद्वैश्रवणो नाम नाम्ना तेन भविष्यति। ऋद्धयां कुबेरोऽजनयद्विश्रुतं नलकूबरम्॥४६॥
रावणं कुम्भकर्णं च कन्यां शूर्पणखीं तथा। विभीषणचतुर्थांस्तु कैकस्यजनयत्सुतान्॥४७॥
शंकुकर्णो दशग्रीवः पिंगलो रक्तमूर्द्धजः। चतुष्पाद्विंशतिभुजो महाकायो महाबलः॥४८॥
जात्यंजननिभो दंष्ट्री लोहितग्रीव एव च। राक्षसेनौजसा युक्तो रूपेण च बलेन च॥४९॥
सत्त्वबुद्धिजितैर्यक्षराक्षसैरेव रावणः। विसर्ग दारुणः क्रूरो रावणो द्रावणस्तु सः॥५०॥
हिरण्यकशिपुर्ह्यासीद्रावणः पूर्वजन्मनि। चतुर्युगानि राजाभून्त्रयोदश स राक्षसः॥५१॥
ताः पंचकोट्यो वर्षाणां संख्याताः संख्यया द्विजाः।
नियुतान्येकषष्टिं च शरदां गणितानि वै॥५२॥

उस कन्या में देववर्णिनी पुष्पोत्करा और वाका दो पुत्रियां और माल्यवान् नामक पुत्र पैदा हुए।।३९।। माल्यवान् की कन्या कैकसी हुई और उनके ज्येष्ठ पुत्र वैश्रवण हुए, जो विश्रवा ने देववर्णिनी से उत्पन्न किये।।४०।। ये वैश्रवण शास्त्र और वेदविधि से युक्त थे, राक्षस के रूप तथा असुरबल से युक्त थे। उनके तीन पैर, विशाल शरीर, बड़ा शिर, बड़ी ठोड़ी, आठ दाँत, हरी दाड़ी, शंकु जैसे कान और लाल वर्ण था, उनकी छोटी और मोटी भुजायें तथा भयंकर पिंगलवर्ण था तथा वे जन्म से ही वैवर्तज्ञान से सम्पन्न एवं सम्बुद्ध थे।।४२-४३।। पिता विश्रवा ने उन्हें देखकर यह कह दिया कि इनका नाम स्वयं ही कुबेर हो गया; क्योंकि 'कु' का अर्थ है—बुरा'' तथा 'बेर' शब्द का अर्थ है ''शरीर'' अतः इनका बुरा शरीर है, इसलिए इन्हें कुबेर कहा जायेगा।।४४।। तब बुरे शरीर वाला होने के कारण उन्हें कुबेर कहा गया तथा वे विश्रवा के समान थे तथा विश्रवा के पुत्र थे, उस कारण उन्हें वैश्रवण नाम से कहा गया। कुबेर ने ऋद्धी में प्रसिद्ध नलकूबर को उत्पन्न किया।।४५-४६।।

रावण, कुम्भकर्ण, कन्या सूर्पणखा और चौथा पुत्र विभीषण कैक की विश्रवा से चार और सन्तानें पैदा हुईं।।४७।। इनमें रावण, शंकु के समान कान वाला, दश शिर वाला, पीले रंग वाला, सिर के लाल बालों वाला, चार पैरों वाला, बीस भुजाओं वाला, महाशरीर और महाबल वाला, काजल के समान काले दाँत वाला, लाल गर्दन वाला, रूप और बल में राक्षसी ओज से युक्त, पराक्रम और बुद्धि में राक्षसों में सबसे श्रेष्ठ, जन्म से ही भयंकर और क्रूर वह रावण वास्तव में रावण ही था।।४८-५०।। वह रावण पूर्वजन्म में हिरण्यकशिपु था। चारों युगों में राजा हुआ तथा वह तेरहवाँ राक्षस था।।५१।। सूत जी बोले, हे विप्रगण! उस रावण ने पाँच करोड़ इकसठ लाख वर्ष

षष्टिं चैव सहस्राणि वर्षाणां वै स रावणः। देवतानामृषीणां च घोरं कृत्वा प्रजागरम्॥५३॥
त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात्। रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमीयिवान्॥५४॥
महोदरः प्रहस्तश्च महापार्श्वः खरस्तथा। पुष्पोत्कटायाः पुत्रास्ते कन्या कुम्भी नसी तथा॥५५॥
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वः सराक्षसः। कन्यानुपालिता चैव वाकायाः प्रसवः स्मृतः॥५६॥
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश। दारुणाभिजनाः सर्वे देवैरपि दुरासदाः॥५७॥

सर्वे लब्धवराः शूराः पुत्रपौत्रैः समन्विताः।
यक्षाणां चैव सर्वेषां पौलस्त्या ये च राक्षसाः॥५८॥

आगस्त्यवैश्वामित्राणां क्रूराणां ब्रह्मरक्षसाम्। वेदाध्ययनशीलानां तपोव्रतनिषेविणाम्॥५९॥
तेषामैडविडो राजा पौलस्त्यः सव्यपिंगलः। इतरे ये यज्ञजुषस्ते वै रक्षोगणास्त्रयः॥६०॥

यातुधाना ब्रह्मधाना वार्त्ताश्चैव दिवाचराः।
निशाचरगणास्तेषां चत्वारः कविभिः स्मृताः॥६१॥
पौलस्त्या नैर्ऋताश्चैव आगस्त्याः कौशिकास्तथा।
इत्येताः सप्त तेषां वै जातयो राक्षसाः स्मृताः॥६२॥
तेषां रूपं प्रवक्ष्यामि स्वाभाव्येन व्यवस्थितम्।
वृत्ताक्षाः पिंगलाश्चैव महाकाया महोदराः॥६३॥

अष्टदंष्ट्राः शंकुकर्णा ऊर्द्ध्वरोमाण एव च। आकर्णा हारितास्याश्च मुंजधूम्रोर्ध्वमूर्धजाः॥६४॥

तक राज्य किया।।५२।। और साठ हजार वर्ष तक उस रावण ने देवताओं और ऋषियों को जगाने वाला घोर तप किया था तथा चौबीसवें त्रेतायुग में वह दशरथ पुत्र राम द्वारा नाश को प्राप्त हुआ।।५३-५४।। महा उदर वाला 'प्रहस्त' तथा विशाल पार्श्ववाल 'खर' पुष्पोत्कटा के पुत्र थे और कुम्भीनसी कन्या थी।।५५।। त्रिशिरा और दूषण तथा राक्षस विद्युज्जिह्व तथा अनुपालिका नामक कन्या, पाल्यवान् पत्नी वांका से उत्पन्न स्मरण किये गये थे।।५६।। इस प्रकार ये क्रूरकर्म करने वाले पौलस्त्य कुल के दश राक्षस थे। सभी के सभी भयंकर कुलीन और सब देवताओं द्वारा भी जीतने योग्य नहीं थे। वे सब जितने भी पुलत्स्य के वंशज राक्षस थे, सब के सब यक्षों में भी पुत्र पौत्रों सहित लब्धप्रतिष्ठ शूरवीर थे।।५७-५८।। अगस्त्य, विश्वामित्र और क्रूर ब्रह्मराक्षसों वेदाध्ययनशील तप और व्रत में स्थित उनमें एडविड नाम का राजा पुलस्त्य पुत्र सव्यपिङ्गल था। इनके अतिरिक्त जो यज्ञ का भोग करने वाले राक्षस थे, वे तीन गण वाले थे। वे तीन हैं—१. यातुधान, २. ब्रह्मधान ३. वार्ता और दिवाचर।।५९-६०½।। उनमें निशाचरगण कवियों द्वारा चार प्रकार के स्मरण किये गये हैं। वे हैं—१. पौलस्त्य, २. नैर्ऋत, ३. आगस्त्य और ४. कौशिक। इस प्रकार ये सात जाति वाले राक्षस कहे गये हैं।।६०½-६२।।

सूत जी ने कहा कि अब मैं उन उन राक्षसों के स्वभावों के अनुसार उनके रूप का वर्णन करूँगा। 'वे वृत्ताक्ष, पिङ्गल (पील रंग वाले), महाकाय (विशाल शरीर वाले), महोदर (विशाल उत्तर वाले), आठ दाँत वाले थे, (शंकु के समान कान वाले थे), ऊपर को बाल वाले, कान तक फटे हुए मुखवाले, मूंज के समान धुंए के रंग के सिर के बालों वाले, मोटे शिर वाले, श्वेत आभा वाले, छोटी और मोटी भुजाओं वाले, ताम्र के समान मुख वाले, लम्बी

स्थूलशीर्षाः सिताभाश्च ह्रस्वसक्थिप्रबाहवः।
ताम्रास्या लंबजिह्वोष्ठा लंबभ्रूस्थूलनासिकाः॥६५॥
नीलांगा लोहितग्रीवा गंभीराक्षा विभीषणाः। महाघोरस्वराश्चैव विकटोद्बद्धपिंडिकाः॥६६॥
स्थूलाश्च तुंगनासाश्च शिलासंहनना दृढाः।
दारुणाभिजनाः क्रूराः प्रायशः क्लिष्टकर्मिणः॥६७॥
सकुण्डलांगदापीडा मुकुटोष्णीषधारिणः। विचित्राभरणाश्चित्रमाल्यगंधानुलेपनाः॥६८॥
अन्नादाः पिशितादाश्च पुरुषादाश्च ते स्मृताः। इत्येतद्रूपसाधर्म्यं राक्षसानां स्मृतं बुधैः॥६९॥
न समास्ते बले बुद्धौ युद्धे माया कृते तदा।
पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः॥७०॥
भूताः सर्प्याः पिशाचाश्च सृमर हस्तिनस्तथा। वानराः किन्नराश्चैव मायुः किंपुरुषास्तथा॥७१॥
प्रागप्येते परिक्रांता मया क्रोधवशान्वयाः। अनपत्यः क्रतुर्ह्यस्मिन्स्मृतो वैवस्वतेंऽतरे॥७२॥
न तस्य पत्न्यः पुत्रा वा तेजः संक्षिप्य च स्थितः।
अत्रेर्वंशं प्रवक्ष्यामि तृतीयस्य प्रजापतेः॥७३॥
तस्य पत्न्यस्तु सुन्दर्यो दशैवासन्पतिव्रताः। भद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः॥७४॥
भद्रा शूद्रा च मद्रा च शलभा मलदा तथा।
बला हला च सप्तैता या च गोपचपलाः स्मृताः॥७५॥
तथा तामरसा चैव रत्नकूटा च तादृशः। तत्र यो वंशकृच्चासौ तस्य नाम प्रभाकरः॥७६॥
मद्रायां जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम्। स्वर्भानुना हते सूर्यो पतमाने दिवो महीम्॥७७॥

जीभ और ओंठ वाले, लम्बी भौंहें और मोटी नाक वाले, नीले शरीर वाले, लाल गर्दन वाले, गहरी आँख वाले, भयंकर शरीर वाले, महाघोर स्वर वाले, विशाल और बंधी हुई पिण्डी वाले, स्थूल, ऊँची नाक वाले, पत्थर के समान मजबूत, दारुण कुल वाले, क्रूर, प्रायः क्लिष्ट कर्म करने वाले, कुण्डल मुकुट और उष्णीष धारण करने वाले, विचित्र आभरण, चित्रमाला एवं गन्ध का लेप करने वाले थे। उन राक्षसों में अन्न खाने वाले, कुछ मांस खाने वाले तथा कुछ मनुष्यों को खाने वाले कहे गये हैं। इस प्रकार यह राक्षसों के रूप साधर्म्य को विद्वानों ने बताया है। बल, बुद्धि और मायाकृत युद्ध में उन राक्षसों के समान कोई नहीं था।।६३-६९½।। पुलह के पुत्र मृग (हिंसक प्राणी) है, जो सभी दन्तधारी और व्याल हैं। भूत, सर्प्प, पिशाच, सृमर (हिरन), हाथी, वानर, किन्नर, आयु तथा किम्पुरुष जो भी मैंने बताये हैं, वे सभी क्रोध के वशीभूत रहने वाले कुल हैं। वैवस्वतमन्वन्तर में क्रतु सन्तानहीन कहे गये हैं। उनके न पत्नियां थीं और न पुत्र थे तथा उनका तेज संक्षिप्त करके स्थित था।।६९½-७२½।।

सूत जी बोले कि अब मैं तीसरे प्रजापति अत्रि के वंश का वर्णन करूँगा उनकी दश सुन्दरी पत्नियां थीं तथा सभी पतिव्रतायें थीं। भद्राश्व की घृताची अप्सरा में उनके दश पुत्र हुए, वे हैं—भद्रा, शूद्रा, मद्रा, शलभा, मलदा, बला और हला ये सात हुईं, आठवीं गोचपला कही गयी हैं तथा तामरसा और वैसा ही अन्नकूटा थी, वहाँ जो वंश पैदा करने वाले थे, उनका नाम प्रभाकर था।।७२½-७६।। मुद्रा में अत्रि ने यशस्वी पुत्र सोम को उत्पन्न किया। राहु

तमोऽभिभूते लोकेऽस्मिन्प्रभा येन प्रवर्त्तिता।
स्वस्ति तेस्त्विति चोक्तो वै पतन्निह दिवाकरः॥७८॥

ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य न पपात दिवो महीम्। अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः॥७९॥
यज्ञेष्वनिधनं चैव सुरैर्यस्य प्रवर्तितम्। स तासु जनयामास पुत्रानात्मसमानकान्॥८०॥
दश तान्वै सुमहता तपसा भावितः प्रभुः। स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः॥८१॥
तेषां द्वौ ख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ सुमहौजसौ। दत्तो ह्यनुमतो ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः॥८२॥
यवीयसी सुता तेषामबला ब्रह्मवादिनी। अत्राप्युदाहरंतीमं श्लोकं पौराणिकाः पुरा॥८३॥
अत्रेः पुत्रं महात्मानं शातात्मानमकल्मषम्। दत्तात्रेयं तनुं विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥८४॥

तस्य गोत्रवयाज्जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि।
श्यावाश्वा मुद्गलाश्चैव वाग्भूतकगवि स्थिराः॥८५॥

एतेऽत्रीणां तु चत्वारः स्मृताः पक्षा महौजसः। काश्यपो नारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा॥८६॥
जज्ञिरे मानसा ह्येतेऽरुन्धत्यास्तन्निबोधत। नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धतीं प्रत्यपादयत्॥८७॥
उद्धवरिता महातेजा दक्षशापात्तु नारदः। पुरा देवासुरे तस्मिन्संग्रामे तारकामये॥८८॥
अनावृष्ट्या हते लोके व्यग्रे शस्ते सुरैः सह। वसिष्ठस्तपसा धीमाञ्जवयामास वै प्रजाः॥८९॥
अनेकफलमूलिन्य औषधीश्च प्रवर्तय्। तास्तेन जीवयामास कारुण्यादौषधेन सः॥९०॥

द्वारा सूर्य के हत हो जाने पर तथा स्वर्ग के भूमि पर गिरने पर तथा इस लोक के अन्धकार से ढक जाने पर जिन सोम ने प्रकाश को प्रवर्तित किया था। उस समय आकाशमण्डल से गिरते हुए सूर्य को महर्षि अत्रि ने कहा कि तुम्हारा कल्याण हो, उनके आशीर्वचन से वे भूमि पर नहीं गिरे।।७७-७८½।। सूत जी ने कहा कि महातपस्वी अत्रि ने जिन श्रेष्ठ गोत्रों को पैदा किया, उनके नाम बता रहा हूँ, देवताओं द्वारा जिसका यज्ञों में अनिधन (नहीं मरना) प्रवृत्त हुआ था, तो उन्हीं अत्रि ऋषि ने दशों स्त्रियों में अपने ही समान दश पुत्रों को पैदा किया, वे सभी पुत्रगण अपनी तपस्या के कारण परम कान्तिमान् थे। कल्याण प्रदान करने वाले आत्रेय नाम से प्रसिद्ध वे सभी ऋषिगण वेदों में पारङ्गत थे।।७८½-८१।। उनके सुविख्यात, यशस्वी, ब्रह्मवादी, महातेजस्वी दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें सबसे बड़े दत्तात्रेय थे और छोटे दुर्वासा थे।।८२।। उनकी एक छोटी पुत्री अवला नाम की थी, जो ब्रह्मवादिनी थी। आज भी यहां पौराणिक लोग उनकी प्रशंसा में इस श्लोक का उच्चारण करते हैं कि अत्रि के महान् आत्मा, शान्त आत्मा और निष्कलंक पुत्र दत्तात्रेय भगवान् विष्णु के स्वरूप हैं। पुराण के ज्ञाता जन यह कहते हैं।।८३-८४।। उनके गोत्र में पैदा होने वाले चार वंश पृथ्वी पर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। उनके नाम श्यावाश्व, मुद्गल, वाग्भूत और गविष्ठिर।।८५।। ये चारों महाओजस्वी हैं। अत्रि के काश्यप, नारद, पर्वत तथा अरुन्धती अर्थात् नारद, पर्वत और अरुन्धती ये कश्यप के पुत्र हैं।।८६।। अब हे पण्डितो! अरुन्धती मे पैदा होने वाले पुत्रों को सुनिये—नारद ने अरुन्धती को वशिष्ठ के लिए प्रदान किया। नारद दक्ष के शाप से ऊर्ध्वरिता और महातेजस्वी थे। वह इस प्रकार कि प्राचीन काल में दक्ष के शाप के कारण जब देवताओं और असुरों में विख्यात तारकामय नामक संग्राम छिड़ गया था तथा वर्षा न होने के कारण समस्त लोक ध्वस्त हो गया था और देवताओं सहित देवराज इन्द्र व्याकुल हो गये थे। उस समय परम बुद्धिशाली वशिष्ठ ने अपने तप के बल से प्रजाओं की रक्षा की थी।।८७-८९।। उस समय उन्होंने अनेक फल, मूल, औषधियों को प्रवर्तित कर अपनी करुणा और औषधियों से प्रजाओं को जीवित रखा था।।९०।।

अरुंधत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत्सुतम्। स्वांगजं जनयच्छक्तिरदृश्यंत्यां पराशरम्॥९१॥
काल्यां पराशरज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनः प्रभुः। द्वैपायनादरण्यां वै शुको जज्ञे गुणान्वितः॥९२॥
उपपद्यंत षडिमे पीवर्यां शुकसूनवः। भूरिश्रवाः प्रभुः शंभुः कृष्णो गौरश्च पंचमः॥९३॥
कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता। जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सा त्वणुहस्य च॥९४॥
श्वेताः कृष्णाश्च पौराश्च श्यामधूम्राश्च चंडिनः। ऊष्मादा दारिकाश्चैव नीलाश्चैव पराशराः॥९५॥
पराशराणामष्टौ ते पक्षाः प्रोक्ता महात्मनाम्। अत ऊर्द्ध्वं निबोध त्वमिंद्रप्रमति संभवम्॥९६॥
वसिष्ठस्य कपिंजल्यां घृताच्यामुदपद्यत। कुणीति यः समाख्यात इंद्रप्रमतिरुच्यते॥९७॥
पृथोः सुतायां संभूतः पुत्रस्तस्याभवद्वसुः। उपमन्युः सुतस्तस्य यस्येमे ह्यौपमन्यवः॥९८॥
मित्रावरुणयोश्चैव कुंडिनेयाः परिश्रुताः। एकार्षेयास्तथा चान्ये वसिष्ठा नाम विश्रुताः।९९॥
एते पक्षा वसिष्ठानां स्मृता ह्येकादशैव तु। इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसा अष्ट विश्रुताः॥१००॥
भ्रातरः सुमहाभागा येषां वंशाः प्रतिष्ठिताः। त्रींल्लोकान्धारयंतीमान्देवर्षिगणसंकुलान् ॥१०१॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः। व्याप्ता यैस्तु त्रयो लोकाः सूर्यस्येव गभस्तिभिः॥१०२॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे ऋषिवंशवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

उस समय वशिष्ठ ने अरुन्धती में शक्ति नामक पुत्र को पैदा किया था, फिर अदृश्यन्ती ने शक्ति के संयोग से पराशर को जन्म दिया था।।९१।। काली ने पराशर के संयोग से परम ऐश्वर्यशाली कृष्णद्वैपायन को पैदा किया। द्वैपायन के संयोग से अरणी में परम गुणवान् शुक की उत्पत्ति हुई।।९२।। पीवर से शुकदेव ने छः पुत्र पुत्री उत्पन्न किये वे हैं—१. भूरिश्रवा, २. प्रभु, ३. शंभु, ४. कृष्ण और ५. गौर।।९३।। उनकी छठी कीर्तिमती नामक कन्या भी उत्पन्न हुई, जो योगमाता और व्रतधारण करने वाली थी, वह ब्रह्मदत्त को पैदा करने वाली माता और अणुह की पत्नी थी।।९४।। उसके १. श्वेत, २. कृष्ण, ३. गौर, ४. श्याम, ५. धूम्र, ६. ऊष्माद, ७. दारक और ८. नील ये आठ भयंकर पुत्र थे। जो पराशर गोत्र में पैदा होने वाले महापुरुषों के गोत्रकर्ता हैं। अब इसके बाद इन्द्रप्रमनि के पुत्रों को सुनिये।।९५-९६।। वशिष्ठ का कपिञ्जली घृताची में कुणीति नामक पुत्र पैदा हुआ। जो इन्द्रप्रमति नाम से प्रसिद्ध हुआ।।९७।। पृथु की पुत्री में वशिष्ठ एक वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र उपमन्यु हुआ, जो सभी औपमन्व कहे गये।।९८।। मित्रावरुण के वंश में पैदा होने वाले जो कुण्डिनेय नाम से प्रसिद्ध हैं, वे एक ही मूल ऋषि के वंशज हैं तथा अन्य वशिष्ठ नाम से विख्यात हैं।।९९।। इस प्रकार ये वशिष्ठ के ग्यारह पक्ष कहे गये हैं। ये उपर्युक्त आठ ब्रह्मा के मानसपुत्र रूप में विख्यात हैं।।१००।। ये सभी महाभाग्यशाली हैं। इनके वंश आज तक भूमण्डल पर स्थित हैं। ये देवों और ऋषियों से भरे हुए तीनों लोकों को धारण करते हैं।।१०१।। इनके पुत्रों और पौत्रों की संख्या सैकड़ों और हजारों हैं तथा जिस प्रकार सूर्य की किरणे तीन लोकों में व्याप्त है, उसी प्रकार इनके वंश तीनों लोकों में व्याप्त हैं।।१०२।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद आठवां अध्याय ऋषिवंश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

पितृकल्पवर्णनं नाम

नवमोऽध्यायः

ऋषयः ऊचुः

कथं द्विवारायुत्पन्ना भवानी प्राक्सती तु या। आसीद्दाक्षायणी पूर्वमुमा कथमजायत॥१॥
मेनायां पितृकन्यायां जनयच्छैलराट् स्वयम्। के वै ते पितरो नाम येषां मेना तु मानसी॥२॥
मैनाकश्चैव दौहित्रो दौहित्री च तथा ह्युमा। एकपर्णा तथा चैव तथा चैवैकपाटला॥३॥
गंगा चापि सरिच्छ्रेष्ठा सर्वासां पूर्वजा तथा। सर्वमेतत्त्वयोद्दिष्टं निर्देशं तस्य नो वद॥४॥
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते श्राद्धस्य च विधिं परम्। पुत्राश्च के स्मृतास्तेषां कथं च पितरस्तु ते॥५॥
कतं वा ते समुत्पन्नाः किंनामानः किमात्मकाः। स्वर्गे वै पितरो ह्येते देवानामपि देवताः॥६॥
एवं वेदितुमिच्छामि पितृणां सर्गमुत्तमम्। यथा च दत्तमस्माभिः सार्द्धं प्रीणाति वै पितॄन्॥७॥
यदर्थं ते न दृश्यंते तत्र किं कारणं स्मृतम्। स्वर्गे तु के च वर्त्तंते पितरो नरके च के॥८॥
अभिसंभाष्य पितरं पितुश्च पितरं तथा। प्रपितामहं तथा चैव त्रिषु पिंडेषु नामतः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-९

पितृकल्पवर्णन

ऋषियों ने सूत जी से पूछा कि हे सूत जी! महादेव की प्रिया सती जी दूसरी बार कैसे उत्पन्न हुईं? पूर्वजन्म में वे दक्ष प्रजापति की पुत्री थी बाद मे वे कैसे उत्पन्न हुईं?।।१।। शैलराज हिमालय ने उन्हें पितरों की कन्या मेना में उत्पन्न किया। अतः वे पितरगण कौंन हैं? जिनकी कि वह मेरी मानसी कन्या है।।२।। मैनाक उन हिमालय का दौहित्र धेवता (नाती) है और उमा उन हिमालय की धेवती (नतिनी) है। जो उमा तपकाल में एक पत्ता खाकर जीवन जीने वाली तथा एक पाटला[1] थी।।३।।

नदियो में श्रेष्ठ गंगा उनकी पहली सन्तान है, इस सबको हमने पहले ही बता दिया। आपका कल्याण हो, हम श्राद्ध की विधि को सुनना चाहते हैं तथा ये पितरगण कौंन हैं? ये किसके पुत्र हैं? किस कारण इनके वंश पितर नाम से विख्यात हैं? तथा किस प्रकार ये उत्पन्न हुए? उनके क्यानाम हैं? उनका स्वरूप क्या है? स्वर्ग में ये पितर देवों के भी देवता हैं।।४-५।। इस प्रकार मैं पितरों की उत्तम सृष्टि को जानना चाहता हूँ, जैसा कि हम लोगों द्वारा दिया श्राद्ध पितरों को प्रसन्न करता है, जिस कारण वे दिखायी नही देते, इसका क्या कारण है? स्वर्ग में कौंन पितरगण निवास करते हैं और नरक में कौंन निवास करते हैं?।।६-८।। पिता को, पिता के पिता को, पिता के पितामह को

---

१. एक पाटला का अर्थ यहाँ पर एक चावल खाकर रहने वाली होगा। वैसे पाटल का अर्थ गुलाब का फूल या लोध्र वृक्ष भी है। अतः एक फूल सूंघकर रहना भी हो सकता है; परन्तु एक चावल खाकर रहना अधिक उपयुक्त है।

नाम्ना दत्तानि श्राद्धानि कथं गच्छंति वै पितृन्।
कथं च शक्तास्ते दातुं नरकस्थाः फलं पुनः॥१०॥
के च ते पितरो नाम कान्यजामो वयं पुनः। देवा अपि पितृन्स्वर्गे यजंतीति हि नः श्रुतम्॥११॥
एतदिच्छामि वै श्रोतुं विस्तरेण बहुश्रुतम्। स्पष्टाभिधानमपि वै तद्भवान्वक्तुमर्हसि॥१२॥

सूत उवाच

अत्र वो कीर्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम्। मन्वंतरेषु जायंते पितरो देव सूनवः॥१३॥
अतीतानागताः श्रेष्ठाः कनिष्ठाः क्रमशस्तु वै। देवैः सार्द्धं पुरातीताः पितरोऽन्येंतरेषु वै॥१४॥
वर्तंते सांप्रतं ये तु तान्वै वक्ष्यामि निश्चयात्। श्राद्धक्रियां मनुश्चैषां श्राद्धदेवः प्रवर्त्तयेत्॥१५॥
देवान्सृजत ब्रह्मा मां यक्ष्यंतीति च प्रभुः। तमुत्सृज्य तदात्मानमयजंस्ते फलार्थिनः॥१६॥
ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा भविष्यथ। तस्मात्किंचिन्न जानीत ततो लोकेषु मुह्यत॥१७॥
ते भूयः प्रणताः सर्वे याचंति स्म पितामहम्। अनुग्रहाय लोकानां पुनस्तानब्रवीत्प्रभुः॥१८॥
प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि वः कृतः। पुत्रान्स्वान्परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ॥१९॥
ततस्ते स्वसुतांश्चैव प्रायश्चित्तजिघृक्षवः। अपृच्छन्संयतात्मानो विधिवच्च मिथो मिथः॥२०॥
तेभ्यस्ते नियतात्मानः पुत्रा शंसुरनेकधा। प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनः कर्मजानि च॥२१॥

तीनों पिण्डदानों में नाम से और नाम द्वारा उच्चारण करके पितरों को कैसे श्राद्ध करना चाहिये? अर्थात् पिता, दादा, परदादा को पिण्डदान करते समय क्या उच्चारण कर श्राद्ध करना चाहिये तथा ये दी गयी वस्तुएँ पितरों को किस प्रकार प्राप्त होती हैं? तथा वे कैसे श्राद्धकर्ता को फल देने में समर्थ होते हैं? क्योंकि जब स्वयं ही नरक में हैं, तब वे फल कैसे देंगे?।।९-१०।। और वे पितर कौंन नाम वाले हैं तथा हम फिर किनकी पूजा करें? देवता लोग भी स्वर्ग में पितरों की पूजा करते हैं, यह हमने सुना है।।११।। यह मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ। अतः हे सूत जी आप स्पष्ट रूप से हमें बतायें। ऐसा ऋषि ने सूत जी से कहा।।१२।।

सूत जी बोले—ऋषिगण! अब यहाँ जैसा मैंने सुना है तथा जैसे मैंने समझा है, उसके अनुसार आप द्वारा पूछी हुई बातों का उत्तर दे रहा हूँ, प्रत्येक मन्वन्तर में ये पितर क्रमशः ज्येष्ठ और कनिष्ठ रूप में प्रकट होते हैं। बीते हुए मन्वन्तरों में पितरगण देवों के साथ उत्पन्न हुए थे और जो इस समय पितरगण विद्यमान हैं, उन दोनों को निश्चयपूर्वक बताऊँगा। श्राद्धदेव मनु इन पितरों की श्राद्धक्रिया को प्रवर्तित करें।।१३-१५।। प्राचीनकाल में ब्रह्मा ने देवों की सृष्टि की, तो उन्होंने सोचा कि देवता मेरी पूजा करेंगे। उसको छोड़कर फल की इच्छा रखने वाले वे देवता स्वार्थ में लिप्त हो गये।।१६।। तब ब्रह्मा जी ने उन्हें शाप दिया कि तुम सब मूढ़ तथा चेतनाहीन हो जाओगे, तुम लोग कुछ भी नहीं जानोगे, पूरी तरह तीनों लोकों में मोहवश हो जाओगे।।१७।।

उसके बाद वे सभी देवता ब्रह्मा जी के सामने नतमस्तक हो गये और ब्रह्मा जी से याचना करने लगे। प्रभु ब्रह्मा ने लोक कल्याण की भावना से उन देवों से फिर कहा।।१८।। ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम लोगों ने बहुत बड़ा व्यभिचार किया है, उसका प्रायश्चित्त करो और उसकी विधि अपने पुत्रों से पूछो, उसके बाद ज्ञान प्राप्त करोगे।।१९।। उसके बाद प्रायश्चित्त करने की इच्छा वाले उन देवों ने आत्मा को अपने वश में रखकर परस्पर अपने अपने पुत्रों से प्रायश्चित्त की विधियां बार-बार पूछीं।।२०।। उन धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय देवपुत्रों ने देवताओं को वाणी से, मन से

ते पुत्रानब्रुवन्प्रीता लब्धसंज्ञा दिवौकसः। यूयं वै पितरोऽस्माकं यैर्वयं प्रतिबोधिताः॥२२॥
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यं को वरो वः प्रदीयताम्। पुस्तानब्रवीद्ब्रह्मा यूयं वै सत्यवादिनः॥२३॥

तस्माद्यदुक्तं युष्माभिस्तत्तथा न तदन्यथा।
उक्तं च पितरोऽस्माकं चेति वै तनयाः स्वकाः॥२४॥

पितरस्ते भविष्यंति तेभ्योऽयं दीयतां वरः। तेनैव वचसा ते वै ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥२५॥
पुत्राः पितृत्वमाजग्मुः पुत्रत्वं पितरः पुनः। तस्मात्ते पितरः पुत्राः पितृत्वं तेषु तत्स्मृतम्॥२६॥
एवं स्मृत्वा पितॄन्पुत्राः पुत्रांश्चैव पितॄंस्तथा। व्याजहार पुनर्ब्रह्मा पितॄनात्मविवृद्धये॥२७॥

यो ह्यनिष्टान्पितॄञ्श्राद्धे क्रियां कांचित्करिष्यति।
राक्षसा दानवाश्चैव फलं प्राप्स्यंति तस्य तत्॥२८॥
श्राद्धैराप्यायिताश्चैव पितरः सोममव्ययम्।
आप्यायमाना युष्माभिर्वर्द्धयिष्यंति नित्यशः॥२९॥

श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति। कृत्स्नं सपर्वतवनं जंगमाजंगमैर्वृतम्॥३०॥
श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यंति मानवाः। तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव दास्यंति पितरः सदा॥३१॥
श्राद्धे येभ्यः प्रदास्यंति त्रीन्पिंडान्नामगोत्रतः। सर्वत्र वर्तमानास्ते पितरः प्रपितामहाः॥३२॥
तेषामाप्याययिष्यंति श्राद्धदानेन वै प्रजाः। एवमाज्ञा कृता पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥३३॥

और कर्म से सम्पन्न होने वाले प्रायश्चित्तों को धर्मज्ञ और संपत आत्मा वाले पुत्रों ने अनेक बार कहा। पुत्रों द्वारा प्रायश्चित्तों की शिक्षा प्राप्त कर उन देवताओं को पुनः चेतना प्राप्त हुई और उन्होंने अपने पुत्रों से निवेदन किया कि जिन तुम लोगों ने हमें ज्ञान दिया है, इसलिये तुम लोग ही हमारे पिता हो।।२१-२२।। तुम लोगों को धर्म ज्ञान और वैराग्य किसका वर प्रदान करें बतलाओ। उसके बाद ब्रह्मा जी ने कहा कि आप लोग सत्य बोलने वाले हैं।।२३।। जो कुछ आप लोगों ने अपने मुख से कहा है, वैसा ही होगा, अन्यथा नहीं होगा; क्योंकि तुम लोगों ने स्वयं ही अपने पुत्रों को पिता कहा है। अतः वे तुम्हारे पिता होवें, यही वर उन्हें दो।।२४-२४½।। प्रजापति ब्रह्मा के उसी वचन से वे देवपितृगण पुत्रकोटि में आ गये। इसी कारणवश वे पितरण देवपुत्र कहे जाते हैं तथा वे पुत्र होने पर भी पितर कहे जाते हैं।।२४½-२६।। इस प्रकार पितरों को पुत्र रूप में और पुत्रों को पितर रूप में स्मरण कर पितामह ब्रह्मा ने अपने वंश की वृद्धि के लिये पुनः पितरों से कहा।।२७।।

श्राद्धकर्म में जो पितरों की पूजा बिना किये ही अन्य क्रिया का अनुष्ठान करेगा, उसकी उस क्रिया का फल राक्षस तथा दानवों को प्राप्त होगा।।२८।। श्राद्धों द्वारा प्रसन्न पितरगण अव्यय सोम को सन्तुष्ट करते हैं और श्राद्धों द्वारा सन्तुष्ट सोम नित्य समस्त पर्वतों, वनों तथा स्थावर और जङ्गम पदार्थों से युक्त समस्त लोकों को सन्तुष्ट करेंगे।।२९-३०।। जो मनुष्य पोषण की कामना करते हुए श्राद्ध करेंगे, उनके पितरगण सदा पोषण और सन्तान प्रदान करेंगे।।३१।। जिनके लिये श्राद्ध में नाम और गोत्र उच्चारण के साथ तीन पिण्ड दान करेंगे, वहाँ सर्वत्र वे पितर और पितामह वर्तमान रहते हुए उस श्राद्धदान से प्रसन्न होकर उनको सन्तान प्रदान करेंगे। इस प्रकार की आज्ञा परमेष्ठि ब्रह्मा जी ने पूर्वकाल में ही दे दी है।।३२-३३।।

तैनैतत्सर्वथा सिद्धं दानमध्ययनं तपः। ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः॥३४॥
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः। अन्योन्यपितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह॥३५॥
एतद्ब्रह्मवचः श्रुत्वा सूतस्य विदितात्मनः। पप्रच्छुर्मुनयो भूयः सूतं तस्माद्यदुत्तरम्॥३६॥

ऋषयः ऊचुः

कियंतो वै मुनिगणाः कस्मिन्काले च ते गणाः।
पूर्वे तु देवप्रवरा देवानां सोमवर्द्धनाः॥३७॥

सूत उवाच

एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि पितृसर्गमनुत्तमम्। शंयुः पप्रच्छ यत्पूर्वं पितरं वै बृहस्पतिम्॥३८॥
बृहस्पतिमुपासीनां सर्वज्ञानार्थकोविदम्। पुत्रः शंयुरिमं प्रश्नं पप्रच्छ विनयान्वितः॥३९॥
क एते पितरो नाम कियंतः के च नामतः। समुद्भूताः कथं चैते पितृत्वं समुपागताः॥४०॥
कस्माच्च पितरः पूर्वं यज्ञं पुष्णंति नित्यशः। क्रियाश्च सर्वा वर्त्तंते श्राद्धपूर्वा महात्मनाम्॥४१॥

कस्मै श्राद्धानि देयानि किं च दत्ते महाफलम्।
केषु चाप्यक्षयं श्राद्धं तीर्थेषु च नदीषु च॥४२॥
केषु वै सर्वमाप्नोति श्राद्धं कृत्वा द्विजोत्तमः।
कश्च कालोभवेच्छ्राद्धे विधिः कश्चानुवर्त्तते॥४३॥

एतदिच्छामि भगवन्विस्तरेण यथा तथा। व्याख्यातमानुपूर्व्येण यत्र चोदाहृतं मया॥४४॥
बृहस्पतिरिदं सम्यगेवं पृष्टो महामतिः। व्याजहारानुपूर्व्येण प्रश्नं प्रश्नविदां वरः॥४५॥

अतः श्राद्ध दान करने से दान अध्ययन और तप सब सिद्ध होते हैं। इसमें कोई सन्देह नही कि वे पितरगण ज्ञान प्रदान करने वाले हैं।।३४।। इस प्रकार ये पितर ही देवता हैं और देवता ही पितर हैं अर्थात् ये देवता और पितर आपस में एक-दूसरे के देवता और पितर दोनों हैं।।३५।। सूत कथित ब्रह्मा जी के इस वचन को सुनकर मुनियों ने उनसे शेष प्रश्न के बारे में पूछा।।३६।। ऋषियो ने कहा—सूत जी! पितरों के समूह कितने हैं? देवताओं के परमपूज्य एवं चन्द्रमा के पुष्टिकर्ता पितरगण किस समय वर्तमान रहते हैं।।३७।।

सूत जी बोले—कि अब मैं तुम्हे पितरो की उत्तम उत्पति का वर्णन करूंगा। जिसको कि पूर्वकाल में शंयु ने अपने पिता बृहस्पति से पूछा था।।३८।। बृहस्पति के पुत्र शंयु ने विनयपूर्वक बृहस्पति के पास बैठे हुए सर्वप्रकार के ज्ञान को जानने वाले बृहस्पति से इस प्रश्न को पूछा।।३९।। हे पिता जी! ये पितर कौन हैं? इनके क्या नाम हैं? तथा वे नाम से कितने हैं? और ये सब कैसे पैदा हुए और कैसे इन्हें पितृत्व प्राप्त हुआ?।।४०।। किस कारण यज्ञ में पितरों की नित्य पूजा की जाती है। महान् आत्माओं की ये श्राद्धादि क्रियायें सभी श्राद्ध से पूर्व की जाती है।।४१।। किसके लिये श्राद्धदान करना चाहिये तथा क्या देने से श्राद्ध का फल होता है और किन तीर्थों और नदियों में श्राद्ध अक्षय होता है।।४२।। तथा हे द्विजश्रेष्ठ किन तीर्थों और नदियों मे श्राद्ध करके सबकुछ प्राप्त होता है और श्राद्ध करने का क्या समय उचित है तथा श्राद्ध की विधि क्या है?।।४३।। ऋषियो ने कहा यह उपर्युक्त सब हम विस्तार से सुनना चाहते हैं, जिन जिन बातों का हमने आपसे निवेदन किया है, उनको हमे बताइये इस प्रकार

बृहस्पतिरुवाच

कथयिष्यामि ते तात यन्मां त्वं परिपृच्छसि। विनयेन यथान्यायं गम्भीरं प्रश्नमुत्तमम्॥४६॥
द्यौरंतरिक्षं पृथिवी नक्षत्राणि दिशस्तथा। सूर्याचन्द्रमसौ चैव तथाऽहोरात्रमेव च॥४७॥
न बभूवुस्तदा तात तमोभूतमभूज्जगत्। ब्रह्मैको दुश्चरं तत्र ततापं परमं तपः॥४८॥
शंयुस्तमब्रवीद्भूयः पितरं ब्रह्मवित्तमम्। सर्ववेदव्रतस्नातः सर्वज्ञानविदां वरः।
कीदृशं सर्वभूतेशस्तपस्तेपे प्रजापतिः॥४९॥

बृहस्पतिरुवाच

सर्वेषां तपसां यत्तत्तपो योगमनुत्तमम्। ध्यांस्तदा स भगवांस्तेन लोकनवासृजत्॥५०॥
ज्ञानानि भूतभव्यानि लोका वेदाश्च सर्वशः। योगामृतास्तदा सृष्टा ब्रह्मणा लोकचक्षुषा॥५१॥
लोकाः संतानका नाम यत्र तिष्ठंति भास्वराः।
वैराजा इति विख्याता देवानां दिवि देवताः॥५२॥
योगेन तपसा युक्तः पूर्वमेव तदा प्रभुः। देवानसृजत ब्रह्मा योगायुक्तान्सनातनान्॥५३॥
आदिदेवा इति ख्याता महस्त्वा महौजसः। सर्वकामप्रदाः पूज्या देवदानवमानवैः॥५४॥
तेषां सप्त समाख्याता गणास्त्रैलोक्यपूजिताः। अमूर्त्तयस्त्रयस्तेषां चत्वारस्तु समूर्त्तयः॥५५॥

प्रश्नतत्त्ववेत्ता महामति बृहस्पति ने क्रमशः शंयु के उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया।।४४-४५।।

बृहस्पति ने कहा—हे पुत्र! जो बातें तुमने मुझसे पूछी हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। तुम्हारा यह प्रश्न, विनय, न्याय, गम्भीरता एवं श्रेष्ठता आदि अच्छे गुणों से पूर्ण हैं। हे तात! जिस समय यह आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, दिशाये, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात ये कुछ भी नहीं थे, उस समय सारा संसार अन्धकार से आवृत था। सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था। उस समय केवल एक ब्रह्मा ही दुश्चर और परम तप कर रहे थे।।४६-४८।। पिता बृहस्पति की बात सुनकर सदा सब वेद और व्रत में स्नात, सब ज्ञानों के ज्ञानियों में श्रेष्ठ शंयु ने ब्रह्मविद्या के ज्ञानी बृहस्पति से फिर पूछा कि पिता जी! ऐसी परिस्थिति में सभी भूतों के स्वामी प्रजापति ब्रह्मा किस प्रकार तपस्या में प्रवृत्त थे, पुत्र के ऐसा पूछने पर परम तेजस्वी बृहस्पति ने उनसे कहा।।४९।।

बृहस्पति ने कहा—हे तात! सब तपस्याओं में जो तप, योग हैं, उससे कोई भी उत्तम नहीं है। उस समय भगवान् ब्रह्मा ने उसी योग का आश्रय लेकर लोकों की सृष्टि की थी।।५०।। लोकचक्षु ब्रह्मा ने अपनी योगदृष्टि से भूत, भविष्य लोक और वेद के ज्ञानों की रचना उसी योगामृत का सहारा लेकर की थी।।५१।। जहाँ सन्तानक नामक लोकों की स्थिति है, वही पर भगवान् भाष्कर हैं[1]। वहीं स्वर्ग में देवों के देव और वैराज नामक देव निवास करते हैं।।५२।। पहले सृष्टि के आदि में सनातन योग और तपस्या में लीन होकर भगवान् ब्रह्मा ने उन देवों को उत्पन्न किया था।।५३।। वे देवगण आदि देव के नाम से प्रसिद्ध हैं। महान् पराक्रमी और महान् ओजस्वी हैं देवताओं, दानवों एवं मनुष्यों में सबके पूज्य तथा सभी के मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं।।५४।। उन तीनों लोकों में पूजित सात गण

---

१. मेरे विचार से इसका आशय है कि जिन लोको (ग्रहों नक्षत्रों) मे भगवान् सूर्य अपनी सीमा में स्थित हैं, वहीं पर सन्तान अर्थात् जीवन की स्थिति है।

उपरिष्टात्त्रयस्तेषां वर्त्तन्ते भावमूर्तयः। तेषामधस्ताद्वर्त्तंते चत्वारः सूक्ष्ममूर्त्तयः॥५६॥
ततो देवास्ततो भूमिरेषा लोकपरम्परा। लोके वर्षंति ते ह्यस्मिंस्तेभ्यः पर्जन्यसं भवः॥५७॥

अन्नं भवति वै वृष्ट्या लोकानां संभवस्ततः।
आप्याययंति ते यस्मात्सोमं चान्नं च योगतः॥५८॥
ऊचुस्तान्वै पितॄंस्तस्माल्लोकानां लोकसत्तमाः।
मनोजवाः स्वधाभक्ष्याः सर्वकामपरिष्कृताः॥५९॥
लोभमोहभयोपेता निश्चिन्ताः शोकवर्जिताः।
एते योगं परित्यज्य प्राप्ता लोकान्सुदर्शनान्॥६०॥

दिव्याः पुण्या विपाप्मानो महात्मानो भवंत्युत। ततो युगसहस्रांते जायन्ते ब्रह्मवादिनः॥६१॥
प्रतिलभ्य पुनर्योगं मोक्षं गच्छंत्यमूर्त्तयः। व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य महायोगबलेन च॥६२॥
नस्यंत्युल्केव गगने क्षणाद्विद्युत्प्रभेव च। उत्सृज्य देहजालानि महायोगबलेन च॥६३॥
निराख्योपास्यतां यांति सरितं सागरं यथा। क्रियया गुरुपूजाभिर्योगं कुर्वंति यत्नतः॥६४॥

श्राद्धे प्रीतास्ततः सोमं पितरो योगमास्थिताः।
आप्याययंति योगेन त्रैलोक्यं येन जीवति॥६५॥
तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगानां यत्नतः सदा।
पितॄणां हि बलं योगो योगात्सोमः प्रवर्त्तते॥६६॥

प्रसिद्ध हैं। उनमें तीन गण अमूर्त (निराकार) हैं तथा चार गण साकार हैं।।५५।। ये भाव शरीरी अथवा निराकार तीन देवगण सबसे ऊपर निवास करते हैं, उनके नीचे वे चार गण निवास करते हैं, जो सूक्ष्म शरीर वाले हैं।।५६।।

उसके बाद साधारण देवताओं का निवास स्थल है, उसके नीचे पृथ्वी की स्थिति है, यही लोकपरम्परा है। ये देवगण इसी लोक में निवास करने वाले हैं, उन्हीं से बादलों की उत्पत्ति होती, बादलों से वर्षा होती है।।५७।। वर्षा से अन्न की उत्पत्ति होती है, उसके बाद उस अन्न से लोको (लोगों और वस्तुओं) की उत्पत्ति होती है; क्योंकि वे पितर लोग अपने योगबल से सोम एवं अन्न को दोनों को सन्तुष्ट करते हैं।।५८।। ये पितरगण मन के समान वेगशाली स्वधा का भक्षण करने वाले सभी इच्छाओं एवं सुविधाओ को देने वाले हैं।।५९।। इन सभी पितरलोगों ने योग को छोड़कर लोभ, मोह और भय से रहित शोकरहित एवं चिन्ताविहीन होकर सुन्दर दिखाई देने वाले लोकों को प्राप्त किया।।६०।। ये दिव्यगुणयुक्त, पुण्यशाली, महात्मा तथा निष्पाप होते हैं तथा हजार युग के उपरान्त ये ब्रह्मवादी हो जाते हैं।।६१।। तथा पुनः योग को प्राप्त कर शरीर को छोड़कर निराकार होकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। महान् योग के बल से व्यक्त और अव्यक्त का परित्याग कर और महान् योग के बल से देह जाल को छोड़कर आकाश में उल्कापात की तरह क्षण भर में नाश को प्राप्त होते हैं।।६२-६३।। उसके बाद वे न कहने योग्य स्थिति को प्राप्त होते हैं, जैसे कि नदियाँ समुद्र में मिलकर न कहने योग्य स्थिति को प्राप्त होती हैं। वे फिर नित्य प्रति गुरुपूजा आदि सत्क्रियाओ में लगे रहते हैं।।६४।। उसके बाद श्राद्ध करने पर वे प्रसन्न होते हैं, फिर योगाभ्यास में लगे रहकर पितरगण अपने योगबल से सोम को तृप्त करते हैं, जिससे तीनों लोकों को जीवन प्राप्त होता है।।६५।। इसलिये योग ज्ञानियों को सर्वदा यत्नपूर्वक श्राद्ध देने चाहिये; क्योकि पितरों का योग बल है और योगबल से ही चन्द्रमा प्रवृत्त

सहस्रशतविप्रान्वै भोजयेद्यावदागतान्। एकस्तानपि मन्त्रज्ञः सर्वानर्हति तच्छृणु॥६७॥
एतानेव च मन्त्रज्ञान्भोजयेद्यः समागतान्। एकस्तान्स्नातकः प्रीतः सर्वानर्हति तच्छृणु॥६८॥
मन्त्रज्ञानां सहस्रेण स्नातकानां शतेन च। योगाचार्येण यद्भुक्तं त्रायते महतो भयात्॥६९॥
गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च। ब्रह्मचारिसहस्रेण योग एव विशिष्यते॥७०॥
नास्तिको वाऽप्यधर्मो वा संकीर्णस्तस्करोऽपि वा।
नान्यत्र तारणं दानं योगेष्वाह प्रजापतिः॥७१॥
पितरस्तस्य तुष्यंति सुवृष्टेनैव कर्षकाः। पुत्रो वाप्यथ वा पौत्रो ध्यानिनं भोजयिष्यति॥७२॥
अलाभे ध्याननिष्ठानां भोजयेद्ब्रह्मचारिणम्। तदलाभे उदासीनं गृहस्थमपि भोजयेत्॥७३॥
यस्तिष्ठेदेकपादेन वायुभक्षः शतं समाः। ध्यानयोगी परस्तस्मादिति ब्रह्मानुशासनम्॥७४॥
आद्य एष गणः प्रोक्तः पितॄणाममितौजसाम्।
भावयन्सर्वलोकान्वै स्थित एष गणः सदा॥७५॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सर्वानपि गणान्पुनः। संततिं संस्थितिं चैव भावनां च यथाक्रमम्॥७६॥

॥इति श्रीब्रह्मांडमहापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे पितृकल्पो नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

होते हैं।।६६।। अतः श्राद्ध के अवसर पर सहस्रों अथवा सैकड़ों आये हुए ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये; क्योंकि उनमें से एक भी ब्राह्मण यदि मन्त्र को जानने वाला है, तो वह सबसे अधिक समर्थ होता है। कथन का आशय है कि सैकड़ों और हजारों में यदि एक भी ब्राह्मण विद्वान् है, तो वह सबसे बढ़कर है अर्थात् उसका पुण्य सबसे अधिक है, इसको सुनिये।।६७।। जो इन आये हुए मन्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मणों को भोजन कराये, उनमें से भी एक भी प्रसन्न हुआ स्नातक ब्राह्मण हजारों मन्त्रज्ञों से अधिक पुण्यफलदायी होता है, इसको सुनिये।।६८।। हजार मन्त्रज्ञ, ब्राह्मणों, सौ स्नातकों और एक योगाचार्य द्वारा जो भोजन किया गया है, वह महान् भय (नरक) से रक्षा करता है।।६९।। एक हजार गृहस्थों, सौ वानप्रस्थों अथवा एक हजार ब्रह्मचारियों इन सबसे एक योगी (योगभ्यासी) बढ़कर है।।७०।। वह चाहे नास्तिक, चाहे अधर्मी हो, चाहे संकीर्ण विचार वाला हो अथवा चोर ही क्यों न हो, योगी के अलावा अन्यत्र कहीं किसी को दान नहीं देना चाहिये, ऐसा प्रजापति ने कहा है।।७१।। जिस व्यक्ति का पुत्र और पौत्र ध्यान करने वाले योगी ब्रह्मचारी को भोजन करायेगा, उसके पितर उसी तरह प्रसन्न होंगे जैसे कि अच्छी वर्षा होने पर किसान प्रसन्न होते हैं।।७२।। श्राद्ध के अवसर पर ध्यान करने वाले योगी के न मिलने पर ब्रह्मचारियों को भोजन कराना चाहिये, उनके भी न मिलने पर उदासीन (निरास) गरीब गृहस्थ ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये।।७३।। जो व्यक्ति एक पैर पर सौ वर्षों तक खड़े रहकर केवल वायु का भोजन कर रहता है, उससे भी बढ़कर ध्यानी एवं योगी है, ऐसा ब्रह्मा जी का अनुशासन है।।७४।। उन अमित तेजस्वी पितरों में यह प्रथमगण समूह कहा गया पितरों का यह गण सभी लोकों की भावना करता हुआ निश्चित रूप से सदा स्थित है।।७५।। अब इसके बाद पुनः समस्त पितरों का वर्णन करूँगा, उनकी सन्तानों का तथा उनकी स्थिति तथा उनकी भावना का क्रमानुसार वर्णन करूँगा।।७६।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद नवां अध्याय पितृकल्प वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

पितृराज्यकल्पनाम

दशमोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

सप्तैते जयतां श्रेष्ठाः स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः। चत्वारो मूर्त्तिमंतश्च त्रयस्तेषाममूर्त्तयः॥१॥
तेषां लकान्विसर्गं च कीर्त्तयिष्ये निबोधत। या वै दुहितरस्तेषां दौहित्राश्चैव ये स्मृताः॥२॥
लोकाः संतानका नाम यत्र तिष्ठंति भास्वराः। अमूर्त्तयः पितृगणास्ते वै पुत्राः प्रजापतेः॥३॥
विराजस्य द्विजश्रेष्ठा वैराजा इति विश्रुताः। एते वै पितरस्तात योगानां योगवर्धनाः॥४॥
अप्यायमंति ये नित्यं योगायोगबलेन तु। श्राद्धैराप्यायितास्ते वै सोममाप्याययंति च॥५॥
आप्यायितस्ततः सोमो लोकानाप्याययत्युत। एतेषां मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः॥६॥
पत्नी हिमवतः पुत्रो यस्या मैनाक उच्यते। पर्वतप्रवरः सोऽथ क्रौंचश्चास्य गिरेः सुतः॥७॥
तिस्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट्। अपर्णामेकपर्णां च तृतीयामेकपाटलाम्॥८॥
न्यग्रोधमेकपर्णा तु पाटलं त्वेकपाटला। आश्रिते द्वे अपर्णा तु ह्यनिकेता तपोऽचरत्॥९॥
शतं वर्षसहस्राणां दुश्चरं देवदानवैः। आहारमेकपर्णेन ह्येकपर्णा समाचरत्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-१०

पितृ पितरों के राज्यकल्प

बृहस्पति ने सूत जी से कहा कि हे सूत जी! ये जय प्राप्त करने वाले पितरों में ये सात गण कहे गये हैं, जिनमें ये चार मूर्तिमान (साकार) हैं और तीन अमूर्त (निराकार) हैं। उनके द्वारा होने वाली संसार की सृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये। उनकी जो पुत्रियां हैं और पुत्रियों के पुत्र (धेवते) हैं, उनको सुनिये।।१-२।। हे द्विजश्रेष्ठ! ये पितरगण विराज के पुत्र हैं; इसलिए उन्हें वैराज कहा जाता है। अतः हे तात! ये सब निश्चय ही योगियों के योग को बढ़ाने वाले हैं।।३।। जो नित्य योग और अयोग के बल से सन्तुष्ट करते हैं (रहते हैं) तथा श्राद्धों द्वारा सन्तुष्ट होकर चन्द्रमा को प्रसन्न (सन्तुष्ट) करते हैं।।४।। उसके बाद श्राद्धों से प्रसन्न चन्द्रमा समस्त लोकों को प्रसन्न करते हैं। इन्हीं वैराजों की मानसी कन्या मेना थी, जो महान् हिमवान् की पत्नी थी, जिसमें मैनाक की उत्पत्ति हुई। ये पर्वतश्रेष्ठ मैनाक क्रौंच पर्वत का पुत्र हुआ।।५-६।।

पर्वतराज मैनाक ने तीन कन्याओं को जन्म दिया, जिनके नाम अपर्णा, एकपर्णा तथा एक पाटला थे। इन कन्याओं में दो ने आश्रय ग्रहण किया तथा एक अपर्णा ने अपना कोई आश्रय नहीं बनाया, उसने गृहहीन रहकर तप किया।।९।। तथा अपर्णा ने देवताओं और दानवों से भी कठिनाई से करने योग्य तप को किया।।९½।। एकपर्णा ने एक पत्ते का आहार किया तथा एक पत्ते का आहार कर तप किया; इसलिए वह एकपर्णा कही गयी। एकपाटला

पाटलेनैव चैकेन व्यदधादेकपाटला। पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे चाहारं वै प्रचक्रतुः॥११॥
एका तत्र निराहारा तां माता प्रत्यभाषत। निषेधयंती सोमेति मातृस्नेहेन दुःखिता॥१२॥
सा तथोक्ता तदाऽपर्णा देवी दुश्चरचारिणी। उमेति हि महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता॥१३॥
तथैव नाम्ना तेनासौ निरुक्तोक्तेन कर्मणा। एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत्स्थावरजंगमम्॥१४॥
एतासां तपसा सृष्टं यावद्भूमिर्द्धरिष्यति। तपःशरीरास्ताः सर्वास्तिस्त्रो योगबलान्विताः॥१५॥
सर्वास्ताः सुमहाभागाः सर्वाश्च स्थिरयैवनाः। सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्ध्वरेतसः॥१६॥
उमा तासां वरिष्ठा च श्रेष्ठा च वरवर्णिनी। महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता॥१७॥
दत्तकश्चोशनस्तस्याः पुत्रो वै भृगुनन्दनः। असितस्यैकपर्णा तु पत्नी साध्वी पतिव्रता॥१८॥
दत्ता हिमवता तस्मै योगाचार्याय धीमते। देवलं सुषुवे सा तु ब्रह्मिष्ठं ज्ञानसंयुता॥१९॥
या वै तासां कुमारीणां तृतीया चैकपाटला। पुत्रं शतशलाकस्य जैगीषव्यमुपस्थिता॥२०॥

तस्यापि शंखलिखितौ स्मृतौ पुत्रावयोनिजौ।
इत्येता वै महाभागाः कन्या हिमवतः शुभाः॥२१॥

रुद्राणी सा तु प्रवरा स्वैर्गुणैरतिरित्यते। अन्योन्यप्रीतमनसोरुमाशंकरयोरथ॥२२॥

ने एक पाटल चावल का आहार कर तप किया तथा दो हजार वर्ष बीतने पर उन दोनों ने आहार किया।।९½-११।। उनमें एक अपर्णा ने निराहार तप किया, उसको माता कहा गया। आहार का निषेध करती हुई वह उमा इस प्रकार मातृस्नेह से दुःखी हुई। अर्थात् उसने आहार का निषेध किया; इसलिये वे उमा कही गयीं; क्योंकि उमा शब्द का अर्थ है कि उ, मा (वह मत दो)।।१२।। वे उमा इसीलिये अपर्णा कही गयीं कि दुश्चरतप करने वाली उन्होंने पत्ते का भी भोजन नहीं किया और फिर वे अपर्णा महाभागा, उमा इस नाम से तीनों लोकों में विख्यात हुईं।।१३।। अतः जैसा उनका कर्म था, उसी कर्म अर्थात् पत्ते का भी आहार न करने और इसे भी 'मत दो' इस अर्थ के आधार पर निरुक्त के अनुसार उनका अपर्णा और उमा नाम, यथा नाम तथा गुण के अनुसार विख्यात हुआ।।१३½।। इस प्रकार यह जड़ चेतन संसार उन तीन कुमारी कन्याओं द्वारा ही उत्पन्न किया गया है, इनकी तपस्याओं से ही यह समस्त भूमि जो धारण कर रही है, उत्पन्न की गयी है। इन तीनों ही देवियां तपशरीरभूत हैं और योग और बल से युक्त हैं। वे सभी सुमहाभागा सदैव रहने वाले यौवन से युक्त थीं तथा सभी ब्रह्मवादिनी और सभी ऊर्ध्वरेतायें (उच्च कोटि की तपस्विनियां) थीं।।१३½-१६।।

उन तीनों में उमा सबसे वरिष्ठ, श्रेष्ठ और श्रेष्ठवर्ण वाली थीं तथा महान् योगबल से युक्त एवं महादेव के पास रहने वाली थीं।।१७।। भृगुनन्दन शुक्राचार्य उनके दत्तक पुत्र थे।।१७½।। असित की पत्नी एकपर्णा बहुत ही साध्वी और पतिव्रता थी, जिसे हिमवान् ने बुद्धिमान् योगाचार्य असित को प्रदान कर दिया था। उस ज्ञानसंयुत एकपर्णा ने ब्रह्म में आस्था रखने वाले पुत्र देवल को उत्पन्न किया था।।१७½-१९।। उन कुमारियों में जो तीसरी एकपाटला थी, उसने शतशलाक नामक अपने पति से जैगीषव्य को उपस्थित किया।।२०।। उस एकपाटला के भी शंख और लिखित दो अयोनिज (योनि से न उत्पन्न होने वाले) पुत्रों को पैदा किया। इस प्रकार ये हिमवान् की महाभाग्यशाली शुभ कन्यायें थीं।।२१।। वह उमा जो अपने गुणों की अधिकता से श्रेष्ठ रुद्राणी कही गयी, जो एक-दूसरे से अनन्य प्रेम करने के कारण उमाशंकर के नाम से प्रसिद्ध हुईं।।२२।।

श्लेषं संसक्तयोर्ज्ञात्वा शंकितः किल वृत्रहा।
ताभ्यां मैथुनशक्ताभ्यामपत्योद्भवभीरुणा॥२३॥
तयोः सकाशमिंद्रेण प्रेषितो हव्यवाहनः। अनयो रति विघ्नं च त्वमाचर हुताशन॥२४॥
सर्वत्र गत एव त्वं न दोषो विद्यते तव। इत्येवमुक्ते तु तदा वह्निना च तथा कृतम्॥२५॥
उमां देवः समुत्सृज्य शुक्रं भूमौ व्यसर्जयत्। ततो रुषितया सद्यः शप्तोऽग्निरुमया तया॥२६॥
इदं चोक्तवती वह्निं रोषगद्गदया गिरा। यस्मान्नाववितृप्ताभ्यां रतिविघ्नं हुताशन॥२७॥
कृतवानस्य कर्त्तव्यं तस्मात्त्वमसि दुर्मतिः। यदेवं विगतं गर्भं रौद्रं शुक्रं महाप्रभम्॥२८॥
गर्भे त्वं धारयस्वैवमेषा ते दण्डधारणा। स शापदोषाद्रुद्राण्या अन्तर्गर्भो हुताशनः॥२९॥
बहून्वर्षगणान्गर्भं धारयामास वै द्विज। स गंगामभिगम्याह श्रूयतां सरिदुत्तमे॥३०॥
सुमहान्परिखेदो मे जायते गर्भधारणात्। मद्धितार्थमथो गर्भमिमं धारय निम्नगे॥३१॥
मत्प्रसादाच्च तनयो वरदस्ते भविष्यति। तथेत्युक्त्वा तदा सा तु संप्रत्दृष्टा महानदी॥३२॥
तं गर्भं धारयामास दह्यमानेन चेतसा। सापि कृच्छ्रेण महता खिद्यमाना महानदी॥३३॥
प्रकृष्टं व्यसृजद्गर्भं दीप्यमान मिवानलम्। रुद्राग्निगंगातनयस्तत्र जातोऽरुणप्रभः॥३४॥

वे उमा और शंकर एक-दूसरे से असीमित प्रेम के कारण एक दूसरे से चिपक गये, तब दोनों को चिपका हुआ जानकर वृत्र को मारने वाले इन्द्र शंकित हो गये। तब उमा और शंकर के मैथुन सामर्थ्य से उत्पन्न होने वाले पुत्र से भयभीत इन्द्र ने उन उमा और शंकर के मैथुन में विघ्न पैदा करने के लिये उनके पास अग्निदेव को भेजा और अग्नि से कहा कि तुम उन दोनों के सम्भोग में विघ्न पैदा कर दो; क्योंकि तुम तो सभी जगह जा सकते हो, तुम्हारे जाने में कही कोई दोष नहीं है। तब इस प्रकार इन्द्र के कहने पर अग्निदेव ने वैसा ही किया।।२२-२५।। जब अग्निदेव उन दोनों के सम्भोग में उपस्थित हो गये तो उनके सम्भोग में विघ्न हो गया, तब भगवान् शंकर ने उमा को छोड़ दिया तथा सम्भोग चरमोत्कर्ष पर था और वीर्यपतन के कगार पर था, अतः उस वीर्य को भूमि पर ही गिरा दिया। उसके बाद उस क्रोधित उमा ने अग्निदेव को शाप दे दिया।।२६।। तथा उमा ने अग्नि को क्रोधयुक्त गद्‌गद् वाणी में यह कहते हुए शाप दिया कि अरे अग्नि! तुमने जो हम दोनों के मैथुन में विघ्न पैदा किया है। अतः हे दुर्बुद्धि वाले अग्नि! यह जो नष्ट गर्भ वाला अर्थात् इससे पैदा होने वाला गर्भ नष्ट हो गया है, वह महान् रौद्ररूप महाप्रभावशाली शुक्र (वीर्य) है, उसे तुम अपने गर्भ में धारण करो। यही तुम्हें दण्ड दिया जाता है। इस प्रकार रुद्राणी (उमा) के शाप दोष के कारण अग्निदेव ने उस गर्भ को धारण किया।।२६-२९।।

सूत जी ने कहा हे विप्रगण! बहुत वर्षों तक अग्नि ने उस गर्भ को धारण किया, बाद मे उन्होंने गंगा के पास जाकर कहा कि हे नदियों में श्रेष्ठ गङ्गे! मुझे इस गर्भ को धारण करने में बहुत ही अधिक कष्ट हो रहा है। अतः हे गङ्गे! मेरे हित के लिये तुम इस गर्भ को धारण करो। मेरे प्रसाद से तुम्हारा वर पुत्र पैदा होगा। तब उस गङ्गा नदी ने वैसा ही होगा, ऐसा कहकर उस महानदी ने प्रसन्न होकर उस शुक्र को धारण कर लिया।।३०-३२।। जब दह्यमान मन से गङ्गादेवी ने उस गर्भ को धारण किया, तब वह महानदी उस शुक्र को धारण करने में महान् कष्ट का अनुभव करने लगीं।।३३।। तब उन्होने अग्नि के समान महाप्रभा से युक्त दीप्यमान गर्भ को उत्पन्न किया, तब रुद्र अग्नि और गंगा तीनों की शक्ति से युक्त सूर्य की प्रभा वाला सूर्य के समान प्रकाश वाला महातेजस्वी वह गङ्गा का पुत्र उत्पन्न

आदित्यशतसंकाशो महातेजाः प्रतापवान्। तस्मिञ्जाते महाभागे कुमारे जाह्नवीसुते॥३५॥
विमानयानैराकाशं पतत्रिभिरिवावृतम्। देवदुंदुभयो नेदुराकाशे मधुरस्वनाः॥३६॥
मुमुक्षुः पुष्पवर्षं च खेचराः सिद्धचारणाः। जगुर्गंधर्वमुख्याश्च सर्वशस्तत्र तत्र ह॥३७॥
यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किन्नराश्चैव सर्वशः। महानागसहस्राणि प्रवराश्च पतत्रिणः॥३८॥
उपतस्थुर्महाभागमाग्नेयं शंकरात्मजम्। प्रभावेण हतास्तेन दैत्यवानरराक्षसाः॥३९॥
स हि सप्तर्षिभार्याभिरारादेवाग्निसंभवः। अभिषेकप्रयाताभिर्दृष्टो वर्ज्य त्वरुंधतीम्॥४०॥

ताभिः स बालार्क निभो रौद्रः परिवृतः प्रभुः।
स्निह्यमानाभिरत्यर्थं स्वकाभिरिव मातृभिः॥४१॥

युगपत्सर्वदेवीभिर्दिधित्सुर्जाह्नवीं सुतः। षण्मुकान्यसृजच्छ्रीमांस्तेनायं षण्मुखः स्मृतः॥४२॥
तेन जातेन महता देवानामसहिष्णवः। स्कंदिता दानवगणास्तस्मात्स्कन्दः प्रतापवान्॥४३॥
कृत्तिकाभिस्तु यस्मात्स वर्द्धितो हि पुरातनः। कार्त्तिकेय इति ख्यातस्तस्मादसुरसूदनः॥४४॥
जृंभतस्तस्य दैत्यारेर्ज्वाला मालाकुला तदा। मुखाद्विनिर्गता तस्य स्वशक्तिरपराजिता॥४५॥
क्रीडार्थं चैव स्कंदस्य विष्णुना प्रभविष्णुना। गरुडातिसृष्टौ हि पक्षिणौ द्वौ प्रभद्रकौ॥४६॥
मयूरः कुक्कुटश्चैव पताका चैव वायुना। यस्य दत्ता सरस्वत्या महावीणा महास्वना॥४७॥

हुआ।।३३-३४½।। उस महाभाग्यशाली गङ्गा पुत्र कुमार के उत्पन्न होने पर उड़ते हुए विमान यानों से आकाश व्याप्त हो गया और देवों ने अपने दुन्दुभि वाजों के मधुर स्वर से आकाश को भर दिया।।३४½-३६।। आकाश में विचरण करने वाले सिद्धों और चारणों ने पुष्पों की वर्षा की तथा गन्धर्वमुख्य सभी जगह जहाँ तहाँ गान करने लगे।।३७।। यक्षगण, विद्याधरगण, सिद्धगण, किन्नर सभी हजारों महानाग तथा प्रवर पक्षिगण, सभी महाभाग अग्नि से उत्पन्न शंकर पुत्र के पास उपस्थित हुए तथा उन्होंने अपने प्रभाव से दैत्य, वानर और राक्षसों को मार दिया।।३८-३९।। वे कुमार सप्तर्षियों की पत्नियों के पास से ही अग्नि से उत्पन्न हुए थे। अरुन्धती को छोड़कर उन सप्तऋषियों के पत्नियों ने ही उनका अभिषेक किया था।।४०।।

उन महादेवियों द्वारा ही वे प्रभु कुमार बाल सूर्य की भाँति रौद्र से परिवृत हुए। अरुन्धती के छोड़कर उन छः देवियों के अपनी माताओं के समान प्रेम किये जाने वाली माताओं द्वारा एक साथ उन गङ्गा के पुत्र को धारण किया गया था अर्थात् छः ऋषियों की पत्नियों ने अपने पुत्र के समान उन गङ्गापुत्र कुमार का पालन किया था। छः ऋषिपत्नियों ने उनका पोषण किया, इसलिये उनके छः मुख उत्पन्न हुए, अतः षण्मुख कहे गये।।४१-४२।। उन महान् के पैदा होने से देवों के प्रभाव को न सहन करने वाले दानवगण स्कन्दित हो गये अर्थात् दानवों को भय हुआ, इसलिये उनका नाम प्रतापवान् स्कन्द रखा गया।।४३।। क्योंकि उन्हें कृत्तिकाओं द्वारा पालपोष कर बड़ा किया गया था; इसलिये उन्हें, असुरों को कष्ट देने वाला कार्त्तिकेय कहा गया।।४।। उन दैत्यों के शत्रु कार्तिकेय के जंभाई लेते हुए मुख से भयंकर ज्वालाओं के समूह किसी से भी न पराजित होने वाली शक्ति निःसृत हुई।।४५।। स्कन्द की क्रीड़ा के लिये सर्वप्रथम भगवान् विष्णु ने गरुड़ से अतिश्रेष्ठ दो पक्षियों मोर और मुर्गा को उत्पन्न किया तथा वायु ने उनके शिर पर पताका स्थापित कर दी, जिसको कि सरस्वती ने महान् शब्द करने वाली महावीणा प्रदान कर दी। उन स्कन्द को

अजः स्वयंभुवा दत्तो मेषो दत्तश्च शंभुना। मायाविहरणे विप्र गिरौ क्रौंचे निपातिते॥४८॥
तारके चासुरवरे समुदीर्णे निपातिते। सेंद्रोपेंद्रैर्महाभागैर्देवैरग्निसुतः प्रभुः॥४९॥
सेनापत्येन दैत्यारिरभिषिक्तः प्रतापवान्। देवसे नापतिस्त्वेष पठ्यते सुरनायकः॥५०॥
देवारिस्कंदनः स्कंदः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः। प्रमथैर्विविधैर्देवस्तथा भूतगणैरपि॥५१॥
मातृभिर्विविधाभिश्च विनायकगणैस्ततः। लोकाः सोमपदा नाम मरीचेर्यत्र वै सुताः॥५२॥
तत्र ते दिवि वर्त्तते देवास्तान्पूयंत्युत। श्रुता बर्हिषदो नाम पितरः सोमपास्तु ते॥५३॥

एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा।
अच्छोदं नाम तद्दिव्यं सरो यस्मात्समुत्थिता॥५४॥

तया न दृष्टपूर्वास्तु पितरस्ते कदाचन। संभूता मानसी तेषां पितॄन्स्वान्नाभिजानती॥५५॥
सा त्वन्यं पितरं वव्रे ताननतिक्रम्य वै पितॄन। अमावसुमिति ख्यातमैलपुत्रं नभश्चरम्॥५६॥
अद्रिकाप्सरसा युक्तं विमानाधिष्ठितं दिवि। सा तेन व्यभिचारेण गगने नाप्रचारिणी॥५७॥
पितरं प्रार्थयित्वाऽन्यं योगभ्रष्टा पपात ह। त्रीण्यपश्यद्विमानानि पतंती सा दिव्यश्च्युता॥५८॥
त्रसरेणुप्रमाणानि तेषु चावस्थितान्पितॄन्। सुसूक्ष्मानपरिव्यक्तानग्नीनग्निष्विवाहितान्॥५९॥

त्रायध्वमित्युवाचार्ता पतंती चाप्यवाक्शिराः।
तैरुक्ता सा तु मा भैषी रित्यतोऽधिष्ठिताऽभवत्॥६०॥

ब्रह्मा ने अज (बकरा) दिया तो शम्भु (भगवान् शंकर) ने मेष (भेड़ा) प्रदान किया।।४६-४७½।। सूत जी ने कहा कि हे विप्र! उसके बाद क्रौञ्च पर्वत पर माया से विहार करने वाले तारक नाम के असुर के उत्पन्न होने पर इन्द्र, उपेन्द्र और महाभाग देवताओं के साथ सभी ने उन अग्निपुत्र स्कन्द को सेनापति नियुक्त कर दिया। तब से वे स्कन्द (कुमार कार्त्तिकेय) देवों के सेनापति कहे जाते थे।।४७½-५०।। तब देवताओं के शत्रुओं का स्कन्दन (नाश) करने के कारण सब लोकों के प्रभु कार्त्तिकेय 'स्कन्द' कहे गये। स्वर्ग में सोमपाद नाम का लोक है, जहाँ मरीचि के पुत्र पितृगण वर्तमान हैं। वे पितरगण अग्निष्वात्त नाम से विख्यात हैं और सबके सब अमित तेजस्वी हैं। इन पितरों की मानसी कन्या अच्छोदा नाम की नदी है, जिससे निकला हुआ अच्छोद नामक दिव्य सरोवर भी वहाँ विराजमान है।।५१½-५४।। उस अच्छोदा नदी ने अपने पितरों को कभी नहीं देखा था। उनकी अपने पुत्रों को न जानती हुई एक मानसी कन्या उत्पन्न हुई।।५५।। उसने उन पितरों का अतिक्रमण कर आकाश में विचरण करने वाले अन्य पितर प्रसिद्ध ऐल पुत्र अमावसु को शोभित किया।।५६।।

एक बार उसी सरोवर के पास अद्रिका अप्सरा से युक्त आकाश में देवों के विमान से शोभित हो रहे थे। वहाँ उसने उस मानसिक व्यभिचार के कारण आकाश में अन्य पितर की प्रार्थना करके अर्थात् अन्य पितर की इच्छा करके योगभ्रष्ट हो गयी और फिर स्वर्ग से नीचे गिर गयी। स्वर्ग से गिरते हुए उसने तीन विमानों को देखा।।५७-५८।। और वहाँ त्रसरेणु के प्रमाणों के समान परमसूक्ष्म पूरी तरह से व्यक्त न होने वाले और आग की ज्वालाओं के समान वहाँ पर अवस्थित पितरों को देखा।।५९।। आकाश से गिरते हुए उसने मेरी रक्षा करो, ऐसी अवाक् शिरा आरत वाणी को कहा। अचानक किसी भय एवं उत्साह में जो अचानक आवाज निकल जाती है, ऐसे स्वर अवाक् स्वर कहे जाते हैं। पितरों ने उस अद्रिका से कहा कि मत डरो तथा ऐसा कहने पर वह सुस्थिर हो गयी।।६०।।

ततः प्रासादयत्सा वै सीदंती त्वनया गिरा। ऊचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्यां व्यतिक्रमात्॥६१॥
भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण पतसि त्वं शुचिस्मिते। यैराचरंति कर्माणि शरीरैरिह देवताः॥६२॥
तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवंति सदा स्म ह। सद्यः फलंति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे॥६३॥
तस्मात्स्वतपसः पुत्रि प्रेत्य संप्राप्स्यसे फलम्। इत्युक्तया तु पितरः पुनस्ते तु प्रसादिताः॥६४॥

ध्यात्वा प्रसादं ते चक्रुस्तस्यास्तदनुकंपया।
अवश्यं भाविनं दृष्ट्वा ह्यर्थमूचुस्तदा तु ताम्॥६५॥

सोमपाः पितरः कन्यां राज्ञोऽस्यैव त्वमावसोः। उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु मानुषेषु महात्मनः॥६६॥

कन्या भूत्वा त्विमाँल्लोकान्पुनः प्राप्स्यसि भामिनि।
अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा॥६७॥

अस्यैव राज्ञो दुहिता ह्यद्रिकायाममावसोः। पराशरस्य दायादमृषिं त्वं जनयिष्यसि॥६८॥
स वेदमेकं ब्रह्मर्षिश्चतुर्द्धा विभजिष्यति। महाभिषस्य पुत्रौ द्वौ शंतनोः कीर्त्तिवर्द्धनौ॥६९॥
विचित्रवीर्यं धर्मज्ञं त्वमेवोत्पादयिष्यसि। चित्रांगदं च राजानं सर्वसत्त्वबलान्वितम्॥७०॥

एतानुत्पादयित्वाथ पुनर्लोकानवाप्स्यसि।
व्यभिचारात्पितॄणां त्वं प्राप्स्यसे जन्म कुत्सितम्॥७१॥
तस्यैव राज्ञस्त्वं कन्या अद्रिकायां भविष्यसि।
कन्या भूत्वा ततश्च त्वमिमाँल्लोकानवाप्स्यसि॥७२॥

उसके बाद उसने अत्यन्त दुःखी होती हुई वाणी से पितरों को प्रसन्न किया। मानसिक भावों के व्यतिक्रम से उस भ्रष्ट ऐश्वर्य वाली कन्या से पितरों ने कहा कि हे सुन्दर मुस्कान वाली! तुम अपने दोष से ही ऐश्वर्य भ्रष्ट होकर गिर रही हो। इस संसार में देवता जिन शरीरों से कर्म करते हैं, उन्हीं कर्मों के द्वारा उस कर्म के फल को सदा प्राप्त करते हैं।।६१-६२½।। देवयोनि में कर्म का फल शीघ्र प्राप्त हो जाता है तथा मनुष्य योनि में आगे चल कर प्राप्त होता है। उसी कारण से तुम पुत्रि! अपनी तपस्या से आगे चलकर फल को प्राप्त करोगी।।६२½-६३½।। ऐसा कहकर उसने पितरों को पुनः प्रसन्न किया। उस प्रसन्नता को ध्यान में रखकर उन पितरों ने उस पर बड़ी अनुकम्पा की।।६३½-६४½।। अवश्य होने वाले कर्मफल को देखकर सोम का पान करने वाले उन पितरों ने तब उस अमावसु राजा की उस कन्या से कहा कि पृथ्वी पर तुम पुनः अमावसु राजा की कन्या होकर पुनः अपने लोकों को प्राप्त करोगी।।६४½-६६½।। अट्ठाईसवें द्वापर युग में तुम्हारी उत्पत्ति मत्स्य की योनि से होगी और इसी राजा अमावसु से अद्रिका में तुम कन्या रूप से उत्पन्न होगी और पाराशर ऋषि के पुत्र वेदव्यास को उत्पन्न करोगी।।६६½-६८।।

वह ब्रह्मर्षि वेदव्यास एक वेद को चार भागों में बाँटेगा। महाभिष शन्तनु के दो कीर्तिवर्धन पुत्र होंगे।।६९।। तुम ही उन एक धर्मज्ञ विचत्रवीर्य को उत्पन्न करोगी तथा दूसरे परम तेजस्वी सब प्रकार के पराक्रम से युक्त और बलयुक्त राजा चित्रांगद को उत्पन्न करोगी।।६९-७०।। इन पुत्रों को पैदा करने के बाद तुम पुनः लोकों को प्राप्त करोगी। पितरों के साथ सोचे गये व्यभिचार के कारण तुम कुत्सित जन्म प्राप्त करोगी।।७१।। उस योनि में भी तुम अद्रिका के गर्भ में उसी राजा के वीर्य से उत्पन्न होगी, उसके बाद कन्या होकर तुम इन लोकों को अवश्य प्राप्त करोगी।।७२।।

एवमुक्त्वा तु दाशेयी जाता सत्यवती तु सा।
अद्रिकायाः सुता मत्स्या सुता जाता ह्यमावसोः॥७३॥
अद्रिकामत्स्यसंभूता गंगायमुनसंगमे। तस्य राज्ञो हि सा कन्या राज्ञो वीर्येण चैव हि॥७४॥
विरजा नाम ते लोका दिवि रोचंति ते गणाः।
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तत्र पितरो भास्करप्रभाः॥७५॥
तान्दानवगणा यक्षा रक्षोगंधर्वकिंनराः। भूतसर्पपिशाचाश्च भावयंति फलार्थिनः॥७६॥
एते पुत्राः समाख्याताः पुलहस्य प्रजापतेः। एतेषां मानसी कन्या पीवरी नाम विश्रुता॥७७॥
योगिनी योगपत्नी च योगमाता तथैव च। भविता द्वापरं प्राप्य अष्टाविंशतिमेव तु॥७८॥
श्रीमान्व्यासो महायोगी योगस्तस्मिद्विजोत्तमाः।
व्यासादरण्यां संभूतो विधूम इव पावकः॥७९॥
पराशरकुलोद्भूतः शुको नाम महातपाः। स तस्यां पितृकन्यायां पीवर्यां जनयंद्विभुः॥८०॥
पुत्रान्पंच योगचर्यापरिपूर्णान्परिश्रुतान्। कृष्णं गौरं प्रभुं शंभुं तथा भूरिश्रुतं च वै॥८१॥
कन्यां कीर्तिमतीं चैव योगिनीं योगमातरम्। ब्रह्मदत्तस्य जननी महिषी त्वणुहस्य सा॥८२॥
आदित्यकिरणोपेतमपुनर्मार्गमास्थितः। सर्वव्यापी विनिर्मुक्तो भविष्यति महामुनिः॥८३॥
त्रय एते गणाः प्रोक्ताश्चतुःशेषान्निबोधत। तान्वक्ष्यामि द्विजश्रेष्ठाः प्रभामूर्त्तिमतो गणान्॥८४॥
उत्पन्नास्तु स्वधायां ते काव्या ह्यग्नेः कवेः सुताः।
पितरो देवलोकेषु ज्योतिर्भासिषु भास्वराः॥८५॥

ऐसा कहकर वह दासों की पुत्री सत्यवती अमावसु के संयोग से अद्रिका नामक मछली पेट से उत्पन्न हुई।।७३।। गंगा यमुना के संगम पर अद्रिका मछली के पेट से वह सत्यवती राजा अमावसु के वीर्य से पैदा हुई थी, अतः वह उस राजा की कन्या थी।।७४।। स्वर्ग में विरज नामक पितरों से स्वर्ग में वे लोक शोभायमान हैं तथा सूर्य के समान कान्तिमान् हैं। वे अग्निष्वात्त नाम से विख्यात हैं।।७५।। उन पितरों की सभी दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, भूत, सर्प और पिशाचगण फल प्राप्ति की इच्छा से पूजा करते हैं।।७६।। पुलह प्रजापति के इन पुत्रों का वर्णन किया जा चुका है। इनकी मानसी कन्या पीवरी नाम से विख्यात है।।७७।।

वह पीवरी, योगिनी, योगपत्नी और योगमाता के रूप में भी विख्यात थी।।७७½।। हे विप्रवर! उस अट्ठाईसवें द्वापर युग के आने पर पराशर के कुल में श्रीमान् महायोगी व्यास होंगे और व्यास से अरणी में पैदा हुई अग्नि की भाँति पराशर के कुल में उत्पन्न शुक नाम के महातपस्वी होंगे, वे महातपस्वी शुक पितृ कन्या पीवरी में ही पैदा हुये। वे शुकदेव योग का आचरण करने में परिपूर्ण और योग में विख्यात कृष्ण, गौर, प्रभु, शंभु तथा भूरिश्रुत नामक पुत्रों को तथा परमयोगिनी योगमाता कीर्तिमती नामक कन्या को उत्पन्न करेंगे जो ब्रह्मदत्त की जननी और अणुह की पत्नी होगी।।७७½-८२।। सूर्य की किरणों से युक्त परमतेज को प्राप्त कर वे पुनर्जन्म नहीं प्राप्त कर सर्वव्यापी और जन्ममरण से मुक्त महामुनि होंगे।।८३।। इस प्रकार ये पितरों के तीन गण कहे गये। अब हे विप्रवर! आगे मैं प्रभामूर्तिमान् चार गणों को बताऊँगा।।८४।। वे पितरगण कवि अग्नि की पुत्री स्वधा से उत्पन्न हुए हैं और ज्योतिर्भासि नामक प्रकाशमय देवलोकों में उनका निवास स्थान है।।८५।।

सर्वकामसमृद्धेषु द्विजास्तान्भावयंत्युत। एतेषां मानसी कन्या योगोत्पत्तिरिति श्रुता॥८६॥
दत्ता सनत्कुमारेण शुक्रस्य महिषी तु या। एकशृंगेति विख्याता भृगूणां कीर्त्तिवर्द्धिनी॥८७॥
मरीचि गर्भास्ते लोकाः समावृत्य दिवि स्थिताः।
एते ह्यंगिरसः पुत्राः साध्यैः संवर्द्धिताः पुरा॥८८॥
उपहूताः स्मृतास्ते वै पितरो भास्वरा दिवि। तान्क्षत्रियगणाः सप्त भावयंति फलार्थिनः॥८९॥
एतेषां मानसी कन्या यशोदा नाम विश्रुता। मता या जननी देवी खट्वांगस्य महात्मनः॥९०॥
यज्ञे यस्य पुरा गीता गाथागीतैर्महर्षिभिः। अग्नेर्जन्म तदा दृष्ट्वा शांडिल्यस्य महात्मनः॥९१॥
यजमानं दिलीपं ये पश्यंत्यत्र समाहिताः। सत्यव्रतं महात्मानं तेऽपि स्वर्गजितो नरा;॥९२॥
आज्यपा नाम पितरः कर्दमस्य प्रजापतेः। समुत्पन्नस्य पुलहादुत्पन्नास्तस्य ते सुताः॥९३॥
लोकेषु तेषु वैवर्ताः कामगेषु विहंगमाः। एतान्वैश्यगणाः श्राद्धे भावयंति फलार्थिनः॥९४॥
एतेषां मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता। ययातेर्जननी साध्वी पत्नी सा नहुषस्य च॥९५॥
सुकाला नाम पितरो वसिष्ठस्य महात्मनः। हैरण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तां भावयंत्युत॥९६॥
मानसा नाम ते लोका वर्त्तंते यत्र ते दिवि। एतेषां मानसी कन्या नर्मदा सरितां वरा॥९७॥
सा भावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी। जननी सात्रसद्दस्योः पुरुकुत्सपरिग्रहः॥९८॥
एतेषामभ्युपगमान्ममनुर्मन्वंतरेश्वरः। मन्वंतरादौ श्राद्धानि प्रवर्तयति सर्वशः॥९९॥

सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले उन ज्योतिर्मय लोकों में द्विजगण इसी प्रकार की भावना करते हैं। इनकी मानसी कन्या योगोत्पत्ति कही गयी, जिसे सनत्कुमार ने शुक्र की रानी को सौंपा था, जो भृगुओं की कीर्ति को बढ़ाने वाली एकशृङ्गा नाम से विख्यात हुई।।८७।। वे सभी लोक मरीचि के गर्भ से थे, प्राचीनकाल में ये सभी अङ्गिरा के पुत्र साध्यों के द्वारा संवर्धित थे।।८८।। स्वर्ग में वे पितर प्रकाशमान उपहूत कहे गये, उनको उन क्षत्रियों के पितर की शुभफल की प्राप्ति के इच्छुक प्राणी भावना करते हैं।।८९।। इनकी मानसी कन्या यशोदा नाम से विख्यात हुई। जो देवी महात्मा खट्वाङ्ग दिलीप की जननी मानी गयी।।९०।। प्राचीनकाल में जिस खट्वाङ्ग की गाथा यज्ञ में महर्षियों ने गीतों द्वारा गायी थी, तब महात्मा शाण्डिल्य का अग्नि से जन्म देखकर जो मनुष्य ध्यानमग्न होकर सत्यव्रतपरायण एवं महात्मा यजमान दिलीप का दर्शन करते हैं, वे भी स्वर्ग को जीतने वाले मनुष्य हैं। जिनके नाम आज्यपा हैं। उन प्रजापति कर्दम के उत्पन्न पुलह से उत्पन्न वेपुत्र आज्यपा (घृत का पान करने वाले हैं)।।९१-९३।।

उन लोकों में ये आकाशचारी पितरगण अपने इच्छानुरूप भ्रमण करते हैं, शुभ फल चाहने वाले वैश्यगण श्राद्धों में इनकी पूजा करते हैं।।९४।। इनकी मानसी कन्या का विरजा नाम विशेषरूप से सुना गया है, जो साध्वी राजा ययाति की जननी थी तथा राजा नहुष की पत्नी थी।।९५।। महात्मा वशिष्ठ के सुकाल नाम के पितरगण जो हिरण्यगर्भ के पुत्र हैं। इन पितरों की पूजा शूद्रगण करते हैं।।९६।। स्वर्ग में मानस नाम के लोक हैं, जिनमें ये निवास करते हैं। इनकी मानसी कन्या नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा है।।९७।। भारतभूमि के दक्षिणमार्ग में बहती हुई, वह सभी जीवों को पवित्र करती है। वह नर्मदा त्रसदस्यु की माता और पुरुकुत्स की पत्नी थी।।९८।। इन्हीं उपर्युक्त पितरगणों के कारण मनु मन्वन्तर के अधीश्वर हैं और मन्वन्तर के आदिमकाल में ये सभी प्रकार के श्राद्धों का प्रवर्तन करते हैं।।९९।।

पितॄणामानुपूर्व्येण सर्वेषां द्विजसत्तमाः। तस्मादेतत्स्वधर्मेण देयं श्राद्धं च श्रद्धया॥१००॥
सर्वेषां राजतैः पात्रैरपि वा रजतान्वितैः। दत्तं स्वधां पुरोधाय श्राद्धं प्रणाति वै पितॄन्॥१०१॥
सौम्यायने वाग्रयणे ह्यश्वमेधं तदाप्नुयात्। सोमश्चाप्यायनं कृत्वा ह्यग्नेर्वैवस्वतस्य च॥१०२॥
पितॄन्प्रीणाति यो वंश्यः पितरः प्रीणयंति तम्।
पितरः पुष्टिकामस्य प्रजाकामस्य वा पुनः॥१०३॥
पुष्टिं प्रजास्तथा स्वर्गं प्रयच्छंति न संशयः। देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते॥१०४॥
देवताभ्यः पितॄणां हि पूर्वमाप्यायनं स्मृतम्।
न हि योग गतिः सूक्ष्मा पितॄणां न पितृक्षयः॥१०५॥
तपसा विप्रसिद्धेन दृश्यते मासचक्षुषा। इत्येते पितरश्चैव लोका दुहितरश्च वै॥१०६॥
दौहित्रा यजमानाश्च प्रोक्ता ये भावयंति यान्। चत्वारो मूर्तिमंतस्तु त्रयस्तेषाममूर्तयः॥१०७॥
तेभ्यः श्राद्धानि सत्कृत्य देवाः कुर्वन्ति यत्नतः।
भक्त्या प्रांजलयः सर्वे सेंद्रास्तद्गतमानसाः॥१०८॥
विश्वे च सिकताश्चैव पृश्निजाः शृंगिणस्तथा।
कृष्णाः श्वेतांबुजाश्चैव विधिवत्पूजयंत्युत॥१०९॥
प्रशस्ता वातरसना दिवाकृत्यास्तथैव च। मेघाश्च मरुतश्चैव ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः॥११०॥

हे द्विजश्रेष्ठ ऋषिगण! यह मैं आदि से लेकर सब पितरों का वर्णन कर चुका हूँ, अतः इन सबको अपने धर्म के अनुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्ध प्रदान करना चाहिये।।१००।। इसमें चांदी के बने हुए अथवा मिश्रित चांदी के बने हुए पात्रों द्वारा पितरों को उद्देश्य करके पुरोहित को दी गयी स्वधा पितरों को प्रसन्न करती है।।१०१।। सोम अग्नि एवं सूर्यपुत्र मनु को स्वधादि से पूरी तरह सन्तुष्ट करके तथा उत्तरायण सूर्य के समय अग्नि में हवनादि करके अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है।।१०२।। जो जितेन्द्रिय मनुष्य पितरों को प्रसन्न करता है, पितर उसको प्रसन्न करते हैं। पुष्टि (आर्थिक खुशहाली) प्रजा (सन्तान) का चाहने वाला व्यक्ति यदि पितरों को प्रसन्न करता है, तो पितरगण उसे पुष्टि, प्रजा तथा स्वर्ग प्रदान करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः देवकार्य (यज्ञादि) से सदैव पितरों का श्राद्धकर्म अधिक फलदायी है।।१०३-१०४।।

देवताओं से पहले पितरों को प्रसन्न करना चाहिये। ऐसा स्मरण किया गया है, पितरों की यह योगगति सूक्ष्म (कम) नहीं होती है तथा कभी पितरों का क्षय नहीं होता है। भाव यह है कि पितरों को प्रसन्न करने का फल न कम होता है और न उसके द्वारा प्राप्त फल का नाश ही होता है।।१०५।। तथा उसकी योगगति तपस्या द्वारा विशेष सिद्धि प्राप्त करने वाले मास के चक्षु से देखी जाती है।।१०५½।। इस प्रकार ये पितरगण, उनके लोक, उनकी पुत्रियां, उनके नातीगण (धेवते) और यजमान जो कहे गये हैं, जो जिनकी भावना (पूजा) करते हैं, उनमें चार मूर्तिमान् (साकार) है और तीन अमूर्त (निराकार) हैं।।१०५½-१०७।। उन पितरों के लिए देवता लोग यत्नपूर्वक सत्कार करके श्राद्ध देते हैं, इन्द्र सहित वे सभी देवगण इन पितरों में मन लगाकर हाथ जोड़कर उनके उनके श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करते हैं।।१०८।। इनके साथ सभी विश्वेदेवगण, सिकता, पृश्निज, शृङ्गी, कृष्ण, श्वेत अज आदि भी विधिवत् पूजा करते हैं।।१०९।। प्रशंसनीय वातरसन, दिव्याकृत्य नामक प्रजायें, मेघ, मरुत्गण, ब्रह्मा आदि देवगण, अत्रि, भृगु,

अत्रिभृग्वंगिराद्याश्च ऋषयः सर्व एव ते। यक्षा नागाः सुपर्णाश्च किन्नरा राक्षसैः सह॥१११॥
पितृंस्तेऽपूजयन्सर्वे नित्यमेव फलार्थिनः। एवमेते महात्मानः श्राद्धे सत्कृत्य पूजिताः॥११२॥
सर्वान्पाकान्प्रयच्छंति शतशोऽथ सहस्रशः। हित्वा त्रैलोक्यसंसारं जरामृत्युमयं तथा॥११३॥
मोक्षं योगमथैश्वर्यं सूक्ष्मदेहमदेहिनाम्। कृत्स्नं वैराग्यमानंत्यं प्रयच्छंति पितामहाः॥११४॥
ऐश्वर्यं विहितं योगमैश्वर्यं योग उच्यते। योगैश्वर्यमृते मोक्षः कथंचिन्नोपपद्यते॥११५॥
अपक्षस्येव गमनं गगनं पक्षिणो यथा। वरिष्ठः सर्वधर्माणां मोक्षधर्मः सनातनः॥११६॥
पितृणां हि प्रसादेन प्राप्यते स महात्मनाम्। मुक्तावैडूर्यवासांसि वाजिनागायुतानि च॥११७॥
कोटिशश्चापि रत्नानि प्रयच्छंति पितामहाः। हंसबर्हिणयुक्तानि मुक्तावैडूर्यवंति च॥११८॥
किंकिणीजालनद्धानि सदा पुष्पफलानि च।
विमानानां सहस्राणि युक्तान्यप्सरसां गणैः॥११९॥
सर्वकामसमृद्धानि प्रयच्छंति पितामहाः। प्रजां पुष्टिं स्मृतिं मेधां राज्यमारोग्यमेव च।
प्रीता नित्यं प्रयच्छंति मानुषाणां पितामहाः॥१२०॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीये उपोद्घातपादे पितृराज्यकल्पो नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

अंगिरा आदि ऋषिगण वे सभी, यक्ष, नाग, सुपर्ण (गरुड) किन्नर और राक्षस वे सब नित्य ही फल की इच्छा वाले पितरों की पूजा करते थे।।११०-१११½।। इस प्रकार ये महात्मा श्राद्ध में सत्कृत होकर पूजित होते हैं, तो सभी सैकड़ों और हजारों कामनाओं अभिलाषाओं को प्रदान करते हैं। तीनों लोकों संसार, वृद्धावस्था एवं मृत्युके भय को छोड़कर पितामह मोक्ष, योग तथा ईश्वरीयशक्ति एवं समस्त सांसारिक वस्तुओं से उत्पन्न होने वाले वैराग्य को तथा कभी न अन्त होने की शक्ति को प्रदान करते हैं।।१११½-११४।। विधिवत् किया गया योग ही ऐश्वर्य है और ऐश्वर्य ही योग कहा जाता है तथा योग और ऐश्वर्य के विना मोक्ष किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकती।।११५।। जिस प्रकार विना पंख के पक्षियों का आकाश में उड़ना सम्भव नहीं। उसी प्रकार योग और ऐश्वर्य के विना मोक्ष किसी प्रकार सम्भव नहीं। सब धर्मों में मोक्ष धर्म सबसे महान् और सबसे प्राचीन है।।११६।। वह व्यक्ति जो पितरों को प्रसन्न करता है, उसको महात्मा पितरों के प्रसाद से पितामह मुक्ता, वैदूर्य, वस्त्र, घोड़े, हाथी और करोड़ों रत्नों को प्रदान करते हैं तथा हंश और मोर से युक्त मुक्ता और वैदूर्य प्रदान करते हैं।।११७-११८।। तथा किंकिणी के जालों से गुंथे हुए सदा पुष्प और फलों तथा अप्सराओं के समूहों से युक्त हजारों विमानों को पितामह प्रदान करते हैं।।११९।। पितामह सब मनोरथों को सिद्ध करने में समृद्ध होना प्रदान करते हैं तथा सन्तान, आर्थिक वृद्धि, स्मृति (स्मरणशक्ति) बुद्धि राज्य, आरोग्य आदि मनुष्यों को पितामह प्रदान करते हैं।।१२०।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद दसवां अध्याय पितृ पितरो के राज्यकल्प का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध को तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

श्राद्धकल्पे समिद्वर्णनं नाम

एकादशोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

राजतं राजताक्तं वा पितॄणां पात्रमुच्यते। राजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव वा॥१॥
अनंतमक्षयं स्वर्गे राजते दानमुच्यते। पितॄनेतेन दानेन सत्पुत्रास्तारयंत्युत॥२॥
राजते हि स्वधा दुग्धा पात्रे तैः पृथिवी पुरा।
स्वधां वा पार्थिभिस्तात तस्मिन् दत्तं तदक्षयम्॥३॥
कृष्णाजिनस्य सांनिध्यं दर्शनं दानमेव च। रक्षोघ्नं ब्रह्मवर्चस्यं पशून्पुत्रांश्च तारयेत्॥४॥
कनकं राजतं पात्रं दौहित्रं कुतुपस्तिलाः। वस्तूनि पावनीयानि त्रिदंडीयोग एव वा॥५॥
श्राद्धकर्मण्ययं श्रेष्ठो विधिर्ब्राह्मः सनातनः। आयुःकीर्तिप्रजैश्वर्यप्रज्ञासंततिवर्द्धनः॥६॥
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां वेदिस्थानं निवेदयेत्। सर्वतोऽरत्निमात्रं च चतुरस्रं सुसंस्थितम्॥७॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-११

श्राद्धकल्प में समिधा वर्णन

बृहस्पति ने कहा—कि हे सूतजी! चांदी या राजताक्त (चांदी से मढ़ा हुआ) पात्र पितरों के पात्र कहे जाते हैं। चांदी के दान अभाव मे उसका दर्शन अथवा उसका चांदी का दान ही है।।१।। यह चांदी का दान स्वर्ग में कभी न अन्त होने वाला अथवा कभी न नष्ट होने वाला होता है। अर्थात् चांदी के दान का फल अनन्त और अक्षय है। इस दान के द्वारा सत्पुत्र अपने पितरों को तार देते हैं।।२।। हे तात! प्राचीन काल में उन पितरों ने चांदी के पात्र में स्वधा रूप पृथ्वी को दुहा था। अतः चांदी के पात्र मे मनुष्यों द्वारा दान देने से स्वधा की अथवा अक्षयफल की प्राप्ति होती है।।३।। काले मृगचर्म का सान्निध्य, दर्शन एवं दान ही राक्षसों का विनाश करने वाला, ब्रह्मवर्चस्व को प्रदान करने वाला होता है और पशुओं तथा पुत्रों का तारने वाला होता है।।४।।

सुवर्ण (सोना) और चांदी का पात्र, दौहित्र (नाती) कुतुप[1], तिल, पवित्र वस्तुयें, त्रिदण्डीयोग (मन, वचन, कर्म तीनों का योग) ये सब वस्तुयें श्राद्ध मे श्रेष्ठ कही जाती हैं। यह बहुत प्राचीन परम्परा से चली आयी ब्राह्मविधि है। इस विधि से किया गया श्राद्ध विधान आयु, कीर्ति, सन्तान, ऐश्वर्य, बुद्धि और सन्तान की वृद्धि करने वाला होता है।।५-६।। दक्षिण और पूर्व दिशा के मध्य मे वेदि की स्थापना करनी चाहिये। सर्वत्र अरत्नि मात्र नाप का (अर्थात् कनिष्ठा अंगुलि से कहुनी तक नाप का) चौकोर सुन्दर स्थान होना चाहिये।।७।।

---

१. दिन ही के दूसरे पहर की पिछली घड़ी से लेकर पहर की पहली घड़ी तक समय नेपाल देश का कम्बल, कुश का तिनका आदि श्राद्धकर्म की उपयोगी कई वस्तुओं का नाम कुतुप है, परन्तु यहाँ पर समय से, नेपाली कम्बल से तथा कुश से तात्पर्य है।

वक्ष्यामि विधिवत्स्थानं पितृमामनुशासितम्। धन्यमायुष्यमारोग्यं बलवर्णविवर्द्धनम्॥८॥
तत्र गर्तास्त्रयः कार्यास्त्रयो दंडाश्च खादिराः। अरत्निमात्रास्ते कार्या रजतैः प्रविभूषिताः॥९॥
ते वितस्त्यायता गर्त्ताः सर्वतश्चतुरंगुलाः। प्राग्दक्षिणमुखान्कुर्यात्स्थिरानशुषिरांस्तथा॥१०॥
अद्भिः पवित्रयुक्ताभिः पावयेत्सततं शुचिः। पयसा ह्याजगव्येन शोधनं चाद्भिरेव च॥११॥
सततं तर्पणं ह्येतत्तृप्तिर्भवति शाश्वती। इह वामुत्र च वशी सर्वकामसमन्वितः॥१२॥
एवं त्रिषवमस्नातो योऽर्चयेत्प्रयतः पितॄन्। मंत्रेण विधिवत्सम्यगश्वमेधफलं लभेत्॥१३॥

तान्स्थापयेदमावास्यां गर्त्तान्वे चतुरंगुलान्।
त्रिःसप्तसंस्थास्ते यज्ञास्त्रैलोक्यं धार्यते तु यैः॥१४॥

तस्य पुष्टिस्तथैश्वर्यमायुः संततिरेव च। दिवि च भ्राजते लक्ष्म्या मोक्षं च लभते क्रमात्॥१५॥
पाप्मापहं पावनीयं ह्यश्वमेधफलं लभेत्। अश्वमेधफलं ह्येतद्द्विजः संस्कृत्य पूजितम्॥१६॥
मंत्रं वक्ष्याम्यहं तस्मादमृतं ब्रह्मनिर्मितम्। दैवतेभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च॥१७॥
नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव भवत्युत। आद्येऽवसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्तं जपेत्सदा॥१८॥
पिंडनिर्वपणे वापि जपेदेतं समाहितः। क्षिप्रमा यांति पितरो रक्षांसि प्रद्रवंति च॥१९॥

अब मैं पितरों के कार्य में जो आदेश शास्त्रों का है, उसको बताऊँगा, जो कि धन देने वाला आरोग्य देने वाला, लम्बी आयु देने वाला और बल एवं वर्ण को बढ़ाने वाला है।।८।। वहाँ पर पितरों के उस श्राद्धस्थान में तीन गड्ढे बनाने चाहिये तथा तीन खदिर के डण्डे बनाने चाहिये। जो कनिष्ठा अंगुलि से कुहनीतक अर्थात् हाथ भर के होने चाहिये तथा वे चांदी से सजे हुए होने चाहिये।।९।। वे गड्ढे एक वितस्त (वित्ते) भर लम्बे हों उनके चारों ओर चार अंगुल नाप के वेष्ठन बने हों। उन डंडों को पूर्व और दक्षिण की ओर मुख करके रखना चाहिये तथा वे स्थिर होने चाहिये। गंध युक्त नहीं होने चाहिये।।१०।। डण्डों को पवित्र जल से नहलाना चाहिये। गाय अथवा बकरी के दूध से और जल से उन डण्डों का शोधन करना चाहिये।।११।। इस प्रकार तर्पण करने से सार्वकालिक तृप्ति होती है। इस प्रकार विधिपूर्वक कार्य करने वाला जितेन्द्रिय मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में समस्त मनोरथों से पूर्ण होता है, उसकी समस्त अभिलाषायें पूर्ण होती हैं।।१२।।

इसी प्रकार तीन वार सवन स्नान करके जो विधिपूर्वक मन्त्रादि का उच्चारण कर अच्छी तरह सदा पितरों की पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।१३।। अमावस्या तिथि को भूतल पर चार अंगुल के गड्ढे में श्राद्ध में उपयोगी वस्तुओं की स्थापना करनी चाहिये। वे त्रिसप्त (२१) यज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हैं, इन्हीं पर तीनों लोक स्थित हैं।।१४।।जो व्यक्ति इनका अनुष्ठान करता है, उसको क्रमशः पुष्टि, ऐश्वर्य, दीर्घायु, सन्तान, अपार लक्ष्मी तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।।१५।। ब्राह्मणों से सत्कारपूर्वक पूजित यह मन्त्र समस्त पापों को हरने वाला परम पत्रिव तथा अश्वमेधयज्ञ के फल को प्राप्त कराने वाला है, इसको मैं बतलाऊँगा। इस मन्त्र को ब्रह्मा जी ने रचा था।।१६-१६½।। यह अमृत मन्त्र है—"देवताभ्यः, पितृभ्यः महायोगिभ्य एव च। नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवत्युत।।" इसका अर्थ है कि सभी देवताओं, पितरों, महायोगियों, स्वाहा एवं स्वधा सबको हम नमस्कार करते हैं। ये सब नित्य और निरन्तर फल प्रदान करने वाले हैं। सदैव श्राद्ध के प्रारम्भ में और अन्त में तथा श्राद्ध में पिण्डदान के समय इस मन्त्र का समाहित चित्त होकर तीन वार पाठ करना चाहिये।।१६-१८।। इससे पितरगण शीघ्र वहाँ

पित्र्यं तु त्रिषु कालेषु मंत्रोऽयं तारयत्युत। पठ्यमानः सदा श्राद्धे नियतैर्ब्रह्मवादिभिः॥२०॥
राज्यकामो जपेदेतं सदा मंत्रमतंद्रितः। वीर्यशौर्यार्थसत्त्वाशीरायुर्बुद्धिविवर्द्धनम्॥२१॥
प्रीयंते पितरो येन जपेन नियमेन च। सप्तार्चिषं प्रवक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम्॥२२॥
अमूर्त्तीनां समूर्त्तीनां पितॄणां दीप्ततेजसाम्। नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां योगचक्षुषाम्॥२३॥
इंद्रादीनां च नेतारो भृगुमारीचयोस्तथा। सप्तर्षीणां पितॄणां च तान्नमस्यामि कामदान्॥२४॥
मन्वादीनां च नेतारः सूर्याचंद्रमसोस्तथा। तान्नमस्कृत्य सर्वान्वै पितृमत्सु विधिष्वपि॥२५॥

नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योश्च पितॄनथ।
द्यावापृथिव्योश्च सदा नमस्यामि कृतांजलिः॥२६॥

देवर्षीणां च नेतारः सर्वलोकनमस्कृताः। त्रातारः सर्वभूतानां नमस्यामि पितामहान्॥२७॥
प्रजापतेर्गवां वह्नेः सोमाय च यमाय च। योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृतांजलिः॥२८॥
पितृगणेभ्यः सप्तभ्यो नमो लोकेषु सप्तसु। स्वयंभुवे नमश्चैव ब्रह्मणे योगचक्षुषे॥२९॥

उपस्थित होते हैं तथा राक्षस तुरन्त दूर भाग जाते हैं।।१९।। ब्राह्मणों द्वारा श्राद्ध के समय पढ़े जाने पर यह मन्त्र तीनों लोकों में पितरों का उद्धार करता है, राज्य का प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला आलस्यरहित होकर इस मन्त्र का सदा पाठ करें। यह वीर्य, पवित्रता, धन, सात्त्विक बल, लक्ष्मी, लम्बी वायु, बल आदि की वृद्धि करने वाला मन्त्र है। जिसके नियमपूर्वक जपने से पितरगण प्रसन्न होते हैं। ऐसे सभी अभिलाषाओं का पूरा करने वाले मन्त्र को बतला रहा हूँ।।१९-२२।। वह मन्त्र है—

अमूर्त्तीनां समूर्त्तीनां पितॄणां दीप्ततेजसाम्। नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां योगचक्षुषाम्।।
इंद्रादीनां च नेतारो भृगुमारीचयोस्तथा। सप्तर्षीणां पितॄणां च तान्नमस्यामि कामदान्।।
मन्वादीनां च नेतारः सूर्याचंद्रमसोस्तथा। तान्नमस्कृत्य सर्वान्वै पितृमत्सु विधिष्वपि।।
नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योश्च पितॄनथ। द्यावापृथिव्योश्च सदा नमस्यामि कृतांजलिः।।
देवर्षीणां च नेतारः सर्वलोकनमस्कृताः। त्रातारः सर्वभूतानां नमस्यामि पितामहान्।।
प्रजापतेर्गवां वह्नेः सोमाय च यमाय च। योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृतांजलिः।।
पितृगणेभ्यः सप्तभ्यो नमो लोकेषु सप्तसु। स्वयंभुवे नमश्चैव ब्रह्मणे योगचक्षुषे।।
स्वयंभुवे नमश्चैव ब्रह्मणे योगचक्षुषे।।

इसका अर्थ भी तदनुकूल अभिलाषा पूर्वक है, अर्थ है—निराकार साकार सभी अमित तेजवाले योगनेत्र ध्यानपरायण योगियों, इन्द्र आदि देवों, भृगु मारीच आदि ऋषियों और पितरों का नेतृत्व करने वाले जो हैं, उनको मन की अभिलाषाओं को पूरा करने वाले हैं, उन मनु आदियों को और सुरेशों तथा सूर्य एवं चन्द्रमा वायु अग्नि आदि सभी पितरों को नमन कर नक्षत्रों, ग्रहों, पदार्थों एवं अकाश तथा पृथ्वी को उत्पन्न करने वाले पितामह पितरों को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।।२३-२६।। देवताओं और ऋषियों का नेतृत्व करने वाले सब लोकों के नमन करने योग्य सब प्राणियों की रक्षा करने वाले, पितरों को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।।२७।। प्रजापति सोम, गौ, अग्नि तथा योगयोगेश्वर पितरों को हाथ जोड़कर नमन करताहूँ।।२८।। सातों लोकों में निवास करने वाले पितरों के सातों गणों को योगचक्षु, स्वयम्भू ब्रह्मा को हमारा नमस्कार है।।२९।।

एतदुक्तं च सप्तार्चिर्ब्रह्मर्षिगणसेवितम्। पवित्रं परमं ह्येतच्छ्रीमद्रोगविनाशनम्॥३०॥
एतेन विधिना युक्तस्त्रीन्वराँल्लभते नरः। अन्नमायुः सुतांश्चैव ददते पितरो भुवि॥३१॥
भक्त्या परमया युक्तः श्रद्दधानो जितेंद्रियः। सप्तार्चिषं जपेद्यस्तु नित्यमेव समाहितः॥३२॥
सप्तद्वीपसमुद्रायां पृथिव्यामेकराड् भवेत्। यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव वा॥३३॥
अनिवेद्य न भोक्तव्यं तस्मिन्नायतने सदा। क्रमशः कीर्तयिष्यामि बलिपात्राण्यतः परम्॥३४॥
येषु यच्च फलं प्रोक्तं तन्मे निगदतः शृणु। पलाशे ब्रह्मवर्चस्त्वमश्वत्थे वसुभावना॥३५॥
सर्वभूताधिपत्यं च प्लक्षे नित्यमुदाहृतम्।
पुष्टिः प्रजाश्च न्यग्रोधे बुद्धिः प्रज्ञा धृतिः स्मृतिः॥३६॥
रक्षोघ्नं च यशस्यं च काश्मरीपात्रमुच्यते। सौभाग्यमुत्तमं लोके माधूके समुदाहृतम्॥३७॥
फल्गुपात्रेषु कुर्वाणः सर्वान्कामानवाप्नुयात्। परां द्युतिमथार्के तु प्राकाश्यं च विशेषतः॥३८॥
बैल्वे लक्ष्मीं तथा मेधां नित्यमायुस्तथैव च। क्षेत्रारामतडागेषु सर्वसस्येषु चैव ह॥३९॥
वर्षस्य जस्त्रं पर्जन्यो वेणुपात्रेषु कुर्वतः। एतेष्वेव सुपात्रेषु भोजनाग्रमशेषतः॥४०॥
सदा दद्यात्स यज्ञानां सर्वेषां फलमाप्नुयात्। पितृभ्यः पुष्पमाल्यानि सुगंधानि च तत्परः॥४१॥

तब सूतजी ने ऋषियों से कहा कि सातों ऋषियों एवं ब्रह्मर्षियों द्वारा पूजित लक्ष्मी से परिपूर्ण इस स्तोत्र को मैंने आप लोगों को सुनाया है। इस ऊपर कहे गये मन्त्र को विधिपूर्वक श्राद्ध करने वाला मनुष्य अन्न दीर्घायु एवं पुत्र तीन पदार्थों को भूतल पर वरदान के रूप में प्राप्त करता है।।३०-३१।। जो व्यक्ति अपारभक्ति एवं श्रद्धासहित इन्द्रियों को वश में करके एवं मन को लगाकर इस सप्तार्चिष नामक स्तोत्र का नित्य पाठ करता है, वह सातों द्वीपों एवं समुद्र सहित भूमण्डल का एकच्छत्र राजा होताहै।।३२-३२½।। अपने घर में मनुष्य भक्ष्य या भोज्य जो भी पदार्थ पकाता है, उसे पितरों को विना निवेदित किये कभी न खाना चाहिये। अब इसके बाद मैं बलिकर्म में उपयोगी पात्रों के विषय में वर्णन करूँगा, जिन जिन पात्रों में बलिकर्म करने से जो जो फल प्राप्त होते हैं, उन्हें बतला रहा हूँ, सुनिये।।३२½-३४½।। पलाश के पत्तों से बने हुए पात्र में बलिकर्म करने से ब्राह्मण तेज प्राप्त होता है। पीपल के पत्तों से बने हुए पात्र में राज्य की भावना होती है। इसी प्रकार पाकड़ के पत्तों से बने पात्र में सभी जीवों का आधिपत्य प्राप्त होना बतलाया जाता है, यह सदा का नियम है।।३४½-३५½।। पुष्टि, बुद्धि, प्रजा एवं स्मरण शक्ति की कामना से बरगद के पत्तों के पात्र में बलिकर्म करना चाहिये। काश्मीरी खम्भारी के पत्तों से बने हुए पात्र राक्षसों के विनाशक एवं यशोवर्धक कहे गये हैं।।३५½-३६½।।

मधूक (महुए) के पत्तों से बने हुए पात्र में किया गया बलिकर्म इस लोक में उत्तम सौभाग्य प्रदान करता है, एवं कटूमर के पत्तों से बने पात्र में श्राद्ध करने से सभी मनोरथ सफल होते हैं। एवं परमक्रान्ति तथा प्रकाश की प्राप्ति श्राद्धकर्त्ता को होती है।।३६½-३८।। बिल्व के पत्ते के पात्र में श्राद्ध करने से लक्ष्मी, धारणाशक्ति तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। खेत, उद्यान और तालाब पर श्राद्ध करने से तथा वेणु के पत्ते के पात्र में श्राद्ध करने से मेघ नित्य वर्षा करता है।।३९-३९½।। इन उपर्युक्त पात्रों में जो लोग श्राद्ध के समय पितरों को एक बार भी बलि (भोजन) देते हैं, वे सम्पूर्ण यज्ञों के फल को प्राप्त करते हैं।।३९½-४०½।। जो व्यक्ति पितरों को भक्तिपूर्वक सुन्दर पुष्प, माला, सुगन्धित द्रव्य आदि नित्य देता है, वह धन, दौलत से पूर्ण होकर सूर्य के समान तेजस्वी होकर शोभा पाता है।।४०½-

सदा दद्यात्क्रियायुक्तः स विभाति दिवाकरः।
गुग्गुलादींस्तथा धूपान्पितृभ्यो यः प्रयच्छति॥४२॥
संयुक्तान्मधुसर्पिर्भ्यां सोऽग्निष्टोमफलं लभेत्। धूपं गंधगुणोपेतं कृत्वा पितृपरायणः॥४३॥
लभते च सुशर्माणि इह चामुत्र चोभयोः। दद्यादेवं पितृभ्यस्तु नित्यमेव ह्यतंद्रितः॥४४॥
दीपं पितृभ्यः प्रयतः सदा यस्तु प्रयच्छति। गतिं चाप्रतिमं चक्षुस्तस्मात्स लभते शुभम्॥४५॥
तेजसा यशसा चैव कांत्या चापि बलेन च। भुवि प्रकाशो भवति भ्राजते च त्रिविष्टपे॥४६॥
अप्सरोभिः परिवृतो विमानाग्रे च मोदते। गंधपुष्पैश्च धूपैश्च जपाहुतिभिरेव च॥४७॥
फलमूलनमस्कारैः पितॄणां प्रयतः शुचिः। पूजां कृत्वा द्विजान्पश्चात्पूजयेदन्नसंपदा॥४८॥
श्राद्धकालेषु नियतं वायुभूताः पितामहाः। आविशंति द्विजाञ्छ्रेष्ठांस्तस्मादेतद्ब्रवीमि ते॥४९॥
वस्त्रै रत्नप्रदानैश्च भक्ष्यैः पेयैस्तथैव च। गोभिरश्वैस्तथा ग्रामैः पूजयेद्विजसत्तमान्॥५०॥
भवंति पितरः प्रीताः पूजितेषु द्विजातिषु। तस्माद्यत्नेन विधिवत्पूजयेत द्विजान्सदा॥५१॥
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां कुर्यादुल्लेखनं द्विजः।
प्रोक्षणं च ततः कुर्याच्छ्राद्धकर्मण्यतंद्रितः॥५२॥
दर्भान्पिण्डांस्तथा भक्ष्यान्पुष्पाणि विविधानि च। गंधदानमलंकारमेकैकं निर्वपेद् बुधः॥५३॥
पेषयित्वांजनं सम्यग्विश्वेषामुत्तरोत्तरम्। अभ्यंगं दर्भपिञ्जूलैस्त्रिभिः कुर्याद्यथाविधि॥५४॥

४१½।। गुग्गुल आदि धूप द्रव्यों का मधु और घृत के साथ जो पितरों के उद्देश्य से समर्पित करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।४१½-४२½।। पितरो के उद्देश्य से जो मनोहर सुगन्धितयुक्त धूपदान करता है, वह अपनी स्त्री मे इस लोक तथा परलोक में उत्तम सन्तान प्राप्त करता है।।४२½-४३½।। अतः आलस्य को छोड़कर नित्य पितरो को धूपदान करना चाहिये।।४४।। जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक सदा पितरों के उद्देश्य से दीपदान करता है, वह लोक में बहुत अधिक सुन्दर नेत्र प्राप्त करता है।।४५।।

अपने तेज, यश, कान्ति और बल से पृथ्वीतल में विख्यात होता है और अन्तकाल तक स्वर्ग में शोभा पाता है। वहाँ अप्सराओं से घिरा हुआ विमान पर चढ़ा हुआ आनन्द का अनुभव करता है।।४६-४६½।। मनुष्य को सदैव गन्ध, पुष्प, धूप, घृत, आहुति, फलमूल एवं नमस्कारों द्वारा पितरों की पूजा में प्रयत्नशील होकर उनकी पूजा करके अन्न सम्पदा से ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये।।४६½-४८।। श्राद्ध के समय सर्वदा पितृगण वायुरूप धारण करके उनको देखकर उन्हीं में प्रविष्ट हो जाते हैं।।४९।। इसलिये वस्त्र और रत्नों को प्रदान करके तथा भक्ष्य एवं पेय पदार्थों और गौ अश्वों तथा ग्रामों का दान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये।।५०।।

ऐसा करने से ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य इन द्विजातियों पर पितर लोग प्रसन्न होते हैं, इसलिये यत्नपूर्वक ब्राह्मणों की सदा पूजा करनी चाहिये।।५१।। विद्वान् ब्राह्मण सबसे पहले श्राद्धकर्म में निरालस्य हो बांये और दांये हाथ से उल्लेख न करे और फिर उसी प्रकार जल का छिड़काव करे।।५२।। विद्वान् ब्राह्मण प्रोक्षण करके कुशों, पिण्डों अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों और पुष्पों तथा गन्ध एवं दान तथा अलंकार आदि क्रमशः एक एक करके निर्वपन करे।।५३।। श्राद्धकर्म मे ब्राह्मण को चाहिये कि यथाविधि उपस्थित ब्राह्मणों को प्रसन्न करके विश्वेदेव के कर्म के बाद तैल मर्दन, कुश एवं पिञ्जल (कुश का तृण) इन तीनों से विधिवत् क्रियायें सम्पन्न करे।।५४।।

अपसव्यं पितृभ्यश्च दद्यादंजनमुत्तमम्। निपात्य जानु सर्वेषां वस्त्रार्थं सूत्रमेव वा॥५५॥
खंडनं प्रोक्षणं चैव तथैवोल्लेखनं द्विजः। सकृद्देवपितॄणां स्यात्पितॄणां त्रिभिरुच्यते॥५६॥
एकं पवित्रं हस्तेन पितॄन्सर्वान्सकृत्सकृत्। चैलमन्त्रेण पिंडेभ्यो दत्त्वादर्शाजिने हि तम्॥५७॥
सदा सर्पिस्तिलैर्युक्तांस्त्रीन्पिण्डान्निर्वपेद्भुवि। जानु कृत्वा तथा सव्यं भूमौ पितृपरायणः॥५८॥
पितॄन्पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्। आहूय च पितॄन्प्राञ्चः पितृतीर्थेन यत्नतः॥५९॥
पिंडान्परिक्षिपेत्सम्यगपसव्यमतंद्रितः। अन्नाद्यैरेव मुख्यैश्च भक्ष्यैश्चैव पृग्विधैः॥६०॥
पृथङ्मातामहानां तु केचिदिच्छंति मानवाः। त्रीन्पिण्डानानुपूर्व्येण सांगुष्ठान्पुष्टिवर्द्धनान्॥६१॥

जान्वंतराभ्यां यत्नेन पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम्।
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां धारार्थं मन्त्रमुच्चरन्॥६२॥

नमो वः पितरः शोषा येति सर्वमतंद्रितः। दक्षिणस्यां तु पाणिभ्यां प्रथमं पिंडमुत्सृजेत्॥६३॥
नमो वः पितरः सौम्यः पठन्नेवमतंद्रितः। सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां धर्मेऽर्ध समतंद्रितः॥६४॥
उलूखलस्य लेखायामुदपात्रावसेचनम्। क्षौमं सूत्रं नवं दद्याच्छाणं कार्पासकं तथा॥६५॥
पत्रोर्णं पट्टसूत्रं च कौशेयं परिवर्जयेत्। वर्जयेद्यक्षणं यज्ञे यद्यप्यहतवस्त्रजाम्॥६६॥
न प्रीणन्ति तथैतानि दातुश्चाप्यहितं भवेत्। श्रेष्ठमाहुस्त्रिकुदमंजनं नित्यमेव च॥६७॥

उसके बाद अपसव्य[1] होकर पितरों के उद्देश्य से अंजनदान करें तथा फिर अपने घुटनों पर स्थित हो नम्र विनम्रतापूर्वक पहनने के लिए वस्त्र प्रदान करे।।५५।। खण्डन, प्रोक्षण और उल्लेखन का देवताओं के लिए एक बार का विधान है; परन्तु पितरों को तीन बार का विधान बताया गया है।।५६।। हाथ से एक पवित्र वस्त्र लेकर सभी पितरों को अलग वस्त्र दान के मन्त्र से पिण्डों को देकर (पिण्डों पर रखकर) फिर उसका दर्शन करने से महान् कल्याण होता है।।५७।। सदैव सरसों और तिल के तेल से युक्त तीन पिण्डों को पृथ्वी पर रखे फिर घुटनों के बल भूमि पर दक्षिण में बैठकर पूरी तरह पितरों के प्रति आस्था रखते हुए अपने पिता, पितामह, उसी प्रकार प्रपितामह का बुलाकर पितृतीर्थ के पूर्व में यत्नपूर्वक आलस्यरहित होकर दांये हाथ से पिण्डों का परिक्षेपण करे अर्थात् गिराये।।५८-५९½।। कुछ लोग अन्न, जल, पुष्प, अनेकों प्रकार के भक्ष्य आदि पदार्थों से नाना आदि मातृपक्ष के पितरों को भिन्न प्रकारों से पिण्डदान मानते हैं।।५९½-६०½।।

क्रमशः अंगूठे समेत पुष्टिवर्धक तीन पिण्डों को घुटनों के बल बैठकर दांये और बायेहाथ से मन्त्रोच्चार करते हुए पिण्डदान करें।।६०½-६२।। तब सबसे पहले "नमोवः पितरः शोषाय" इस मन्त्र को आलस्यरहित हो, उच्चारण करता हुआ, दक्षिण दिशा में दोनों हाथों से पहला पिण्ड छोड़े।।६३।। उसके बाद दांये और बांये दोनों हाथों से आलस्य छोड़कर 'नमो वः पितरः शोषाय' इस मन्त्र को बोलता हुआ ओखली में कूटे हुए चावल, जलपात्र से जल, नया रेशमी सूत्र तथा कपास दान करे।।६४-६५।। पितृकर्म में पत्ते, ऊन और रेशमी वस्त्र पितरों के उद्देश्य से नहीं देना चाहिए तथ पितृयज्ञ में पहने हुए वस्त्र से बना कपड़ा ी नहीं देना चाहिये।।६६।। इनसे पितर लोग

१. अपसव्य—दांये कन्धे से बायें शरीर पर यज्ञोपवीत रखने की स्थिति अपसव्य कही जाती है। अर्थात् विपरीत दशा में यज्ञोपवीत पहन कर ही पितरों को श्राद्ध करना चाहिये।

कृष्णेभ्यश्च तिलैस्तैलं यत्नात्सुपरिरक्षितम्। चन्दनागुरुणी चोभे तमालोशीरपद्मकम्॥६८॥
धूपश्च गुग्गलः श्रेष्ठस्तुरुष्कः श्वेत एव च। शुक्लाः सुमनसः श्रेष्ठास्तथा पद्मोत्पलानि च॥६९॥
गंधरूपोपपन्नानि चारण्यानि च कृत्स्नशः। तथा हि सुमना नाडीरूपिकास्मकुरंडिका॥७०॥
पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः। यथा गंधादपेतानि चोग्रगन्धानि यानि च॥७१॥
वर्जनीयानि पुष्पाणि पुष्टिमन्विच्छता सदा।
द्विजातयो यथोद्दिष्टा नियताः स्युरुदङ्मुखाः॥७२॥
पूजयेद्यजमानस्तु विधिवद्दक्षिणामुखः। तेषामभिमुखो दद्याद्दर्भात्पिंडांश्च यत्नतः॥७३॥
अनेन विधिना साक्षादर्चिताः स्युः पितामहाः।
हरिता वै स पिंजालाः पुष्टाः स्निग्धाः समाहिताः॥७४॥
रत्निमात्राः प्रमाणेन पितृतीर्थेन संस्मृताः। उपमूले तथा नीला विष्टरार्थं कुशोत्तमाः॥७५॥
तथा श्यामाकनीवारा दूर्वा च समुदाहृता। पूर्वं कीर्त्तमतां श्रेष्ठो बभूवाश्वः प्रजापतिः॥७६॥
तस्य बाला निपतिता भूमौ काशत्वमागताः।
तस्माद्देयाः सदा काशाः श्राद्धकर्मसु पूजिताः॥७७॥
पिंडनिर्वपणं तेषु कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता। प्रजाः पुष्टिद्युतिप्रज्ञाकीर्त्तिकांतिसमन्विताः॥७८॥

प्रसन्न नहीं होते हैं तथा ऐसा करने से दाता का अहित भी हो जाना चाहिये अर्थात् अहित हो सकता है। पितृकर्म में त्रिककुद (तीन कन्धे वाले पशु अर्थात् गौ) और अंजन (सौन्दर्य वर्धकलेप) सबसे श्रेष्ठ माना गया है।।६७।। अच्छी तरह शुद्ध रूप से परिरक्षित काले तिलों का तेल चन्दन और अगरु ये दोनों, तमाल, उशीर और कमल ये सभी श्रेष्ठ हैं।।६८।। धूप और गुग्गुल, लोबान, श्वेतपुष्प, शुक्ल (चादी) और सुन्दर पद्म (लालकमल) और उत्पल (नीलकमल) श्राद्धकर्म में श्रेष्ठ हैं।।६९।। इस प्रकार सुन्दर गन्ध और सुन्दर रूप से युक्त सभी वस्तुएँ श्राद्धकर्म में श्रेष्ठ हैं।।६९½।। तथा खश, पत्थर या लोहा तथा पीला सदाबहार का फूल ये श्राद्धकर्म में नित्यशः वर्जित हैं। जैसे गंध से रहित और बहुत तीव्रगन्ध वाले जो पुष्प हैं, वे सब श्राद्धकर्म में अपनी पुष्टि चाहने वाले मनुष्य को नहीं प्रयोग करने चाहिये; क्योंकि उपर्युक्त में खश तीव्रगन्ध वाला पुष्प है, तो सदाबहार गन्धहीन हैं तथा पत्थर और लोहा भी गन्धहीनहै (रूपिका) से तात्पर्य सुन्दर दिखायी देने वाला; परन्तु गन्धहीन कोई पुष्प हो सकता है।।६९½-७०½।।

यजमानों को चाहिए कि वे नियमित होकर दक्षिण की ओर मुँह करके बैठे और उत्तर की ओर मुख करके बैठे हुए ब्राह्मणों की पूजा करें।। उनके सामने बैठकर कुश से पिण्डों को यत्नपूर्वक दान करें।।७१½-७३।। इस विधि से साक्षात् पितामह (ब्रह्मा) अर्चित होते हैं। हरे हरे जो कुश के तृण हैं, वे पितृतीर्थ से संयुक्त होने पर अर्थात् पितृतीर्थ में हरे हरे कुशों के तृणों के रहने पर तथा उनसे श्राद्धकर्म करने पर पितर सन्तुष्टि लाभ प्राप्त करते हैं। ऐसा स्मरण किया गया है।।७४-७४½।। मूल के पास में नीले वर्ण की पत्थर आदि के टुकड़ों से रहित साँवाँ और नीवार तथा दूभ घास श्राद्धकर्म में बतायी गयी है।।७४½-७५½।। ऐसा कहा जाता है कि पूर्वकाल में कीर्तिमानों में श्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्मा अश्व हो गये थे, उनके जो बाल भूमि पर गिरे, वे ही काश (कुश) के रूप मे पैदा हो गये। यही कारण है कि श्राद्धकर्मों में काश सदैव परमपूजित माने गये हैं। इसलिये ऐश्वर्य धन दौलत चाहने वाले मनुष्य को इन कुशों में ही पिण्ड निर्वपण करना चाहिये।।७५½-७७½।।

भवंति रुचिरा नित्यं विपाप्मानोऽघवर्जिताः। सकृदेवास्तरेद्दर्भान्पिंडार्थे दक्षिणामुखः॥७९॥
प्राग्दक्षिणाग्रान्नियतो विधिं चाप्यत्र वक्ष्यति। न दीनो नापि वा क्रुद्धो न चैवान्यमना नरः।

एकत्र चाधाय मनः श्राद्धं कुर्यात्समाहितः॥८०॥
निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्धवेद्धताश्च सर्वे सुरदानवा मया।
रक्षांसि यक्षाः सपिशाचसंघा हता मया यातुधानाश्च सर्वे॥८१॥
एतेन मन्त्रेण तु संयतात्मा तां वै वेदिं सकृदुल्लिख्य धीरः।
शिवां हि बुद्धिं ध्रुवमिच्छमानः क्षिपेद्द्विजातिर्दिशमुत्तरां गतः॥८२॥
एवं पित्र्यं दृष्टमन्त्रं हि यस्य तस्यासुरा वर्जयंतीह सर्वे।
यस्मिन्देशे पठ्यते मन्त्र एष तं वै देशं राक्षसा वर्जयंति॥८३॥
अन्नप्रकारानशुचीनसाधून्संवीक्षते नो स्पृसंश्चापि दद्यात्।
पवित्रपाणिश्च भवेन्न वा हि यः पुमान्न कार्यस्य फलं समश्नुते॥८४॥

अनेन विधिना नित्यं श्राद्धं कुर्याद्धि यः सदा। मनसा कांक्षते यद्यत्तत्तद्द्युः पितामहाः॥८५॥
पितरो हृष्टमनसो रक्षांसि विमनांसि च। भवंत्येवं कृते श्राद्धे नित्यमेव प्रयत्नतः॥८६॥

इस प्रकार जो श्राद्ध करते हैं, वे पुष्टि, द्युति, प्रजा (बुद्धि), यश (कीर्ति) और कान्ति से युक्त रुचिर और पापरहित सन्तानों को सदैव प्राप्त करते हैं।।७७½-७८½।। एक बार दक्षिणमुख होकर पिण्डदान करने के लिये कुशों को पृथ्वी पर बिछाये, फिर पूर्व दक्षिण की ओर अग्रभाग करके उस विधि का प्रयोग करें, जो बतायी जा रही है। यजमान कभी में दीन भाव रखकर, क्रोधित होते हुए अथवा अन्यत्र मन रखकर श्राद्ध न करे। सदा एकाग्रचित्त होकर श्राद्ध करना चाहिये।।७८½-८०।। वह मन में ऐसी भावना रखे कि जितनी भी अपवित्र के समान वर्ज्य वस्तुएँ हैं, मैं उन सबको हटाता हूँ तथा मैंने सब असुर और दानवों को मार दिया है तथा मैंने समस्त राक्षसो, यक्षों, पिशाचों और यातुधानों के समूहों को मार दिया है।।८१।। यह इस मन्त्र का भाव है मन्त्र है—

निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्धवेद्धताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया।
रक्षांसि यक्षाश्च पिशाचसंघा, हता मया यातुधानाश्च सर्वे।।

इस मन्त्र से सुसंयतात्मा, धीर, यजमान उस वेदी को कुश द्वारा एक बार लिखकर कल्याणदायिनी विभूति की इच्छा करता हुआ उत्तर दिशा में जाकर उस कुश को फेंक दे।।८२।। इस प्रकार की विधि से जो व्यक्ति श्राद्धकार्य में अन्नदान करे, उसके श्राद्धकार्य मे असुरगण छूट जाते हैं। जिस देश में यह मन्त्र पढ़ा जाता है, उस देश को राक्षस लोग छोड़ देते हैं।।८३।। अपवित्र व्यक्ति श्राद्धकार्य में अन्नदान तो दूर, वह किसी के दिये गये अन्न को न देखे और न उसका स्पर्श करे। जो अपने पवित्र हाथों से अन्नदान करता है, वह दान का हजार गुना अधिक फल प्राप्त करता है।।८४।। ब्राह्मण को सदैव इसी विधि से नित्य श्राद्धकर्म करना चाहिये, ऐसा करने से जो भी मनवाञ्छित इच्छायें होती हैं, पितामह उन सबको पूर्ण करते हैं।।८५।। इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्ध करने से पितर लोग हृदय से प्रसन्न होते हैं और राक्षस लोग दुःखी होते हैं। अतः नित्य प्रयत्नपूर्वक उपरिकथित विधि से श्राद्ध कर्म करना चाहिये।।८६।।

शूद्राः श्राद्धेष्वविक्षीरं बल्वजा उपलास्तथा।
वीरणाश्चोतुवालाश्च लड्वा वर्ज्याश्च नित्यशः॥८७॥

एवमादीन्यज्ञानि तृणानि परिवर्जयेत्। अंजनाभ्यजनं गंधान्सूत्रप्रणयनं तथा॥८८॥
काशैः पुनर्भवैः कार्यमश्वमेधफलं लभेत्। काशाः पुनर्भवा ये च बर्हिणो ह्युपबर्हिणः॥८९॥
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः। पुष्पगंधविभूषाणामेष मन्त्र उदाहृतः॥९०॥
आहृत्य दक्षिणाग्निं तु होमार्थं वै प्रयत्नतः। अन्यार्थे लौकिकं वापि जुहुयात्कर्मसिद्धये॥९१॥
अंतर्विधाय समिधस्ततो दीप्तो विधीयते। समाहितेन मनसा प्रणीयाग्निं समंततः॥९२॥
अग्नये कव्यवाहाय स्वधा अंगिरसे नमः। सोमाय वै पितृमते स्वधा अंगिरसे पुनः॥९३॥
यमाय वैवस्वतये स्वधा नम इति ध्रुवम्। इत्येते होममन्त्रास्तु त्रयाणामनुपूर्वशः॥९४॥
दक्षिणेनाग्नये नित्यं सोमायोत्तरतस्तथा। एतयोरंतरे नित्यं जुहुयाद्वै विवस्वते॥९५॥
उपहारः स्वधाकारस्तथैवोल्लेखनं च यत्। होमजप्ये नमस्कारः प्रोक्षणं च विशेषतः॥९६॥
बहुहव्येन्धने चाग्नौ सुसमिद्धे तथैव च। अंजनाभ्यंजनं चैव पिण्डनिर्वपणं तथा॥९७॥
अश्वमेधफलं चैतत्समिद्धे यत्कृतं द्विजैः। क्रिया सर्वा यथोद्दिष्टाः प्रयत्नेन समाचरेत्॥९८॥

श्राद्ध मे शूद्र, भेड़, बकरी का दूध, मोटी घास, पत्थर, वीरणा (उशीर) लड्वा, उतुवाल इनको तथा अन्य सजातीय तृणो को छोड़ देना चाहिये ये सब पितृकार्य में वर्ज्य हैं।।८७-८७½।। अंजन, अभ्यंजन, गंधसूत्र, प्रणयन तथा पुनः उत्पन्न होने वाले कांशों से सभी कार्यों को सम्पन्न करना चाहिये। इससे अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है।।८७½-८८½।। बर्हिण और उपबर्हिण (कुश की घास तथा छोटे छोटे कुश) कांश जो सब स्वयं उगे हुए हो, श्राद्धकर्म मे उपयोगी हैं।।८८½-८९।। इस प्रकार ये सब पितर देवता है तथा फिर देवता पितर हैं। पुष्पगन्ध और विभूषणो का यह मन्त्र कहा गया है।।९०।। हवन के लिये रखी गयी अग्नि की दक्षिण दिशा में खींचकर यत्नपूर्वक लौकिक अथवा किसी अन्य अर्थ की कर्म सिद्धि के लिये हवन करे।।९१।।

समिधा को भीतर रखकर हवन करना चाहिये। अग्नि की उपासना करने वाला यजमान प्रयत्नपूर्वक समाहितचित्त से हवन करे।।९२।। हवन में मन्त्र यह उच्चारण करें—"अग्नये कव्यवाहाय स्वधा, अङ्गिरसे नमः, सोमाय वै पितृमते स्वधा, अङ्गिरसे नमः, यमाय चैवाङ्गिरसे स्वधा नमः" जिसका अर्थ है—पितरों तक वस्तुओं को पहुँचाने वाले कव्यवाह अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है, पितृमान् सोम अङ्गिरा के लिये नमस्कार है, स्वधा है। यम अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है। इस प्रकार ये तीन होम मन्त्र हैं, इन तीनों को पूर्व से नित्य दक्षिण दिशासे अग्नि के लिये उसके बाद उत्तर दिशा से सोम के लिये और फिर इसके बाद इन दोनों के मध्यभाग मे विवस्वान् (यम) के उद्देश्य से हवन करें।।९३-९५।। उपहार देना, स्वधा करना, उल्लेखन (हवन-कुण्ड तथा भूमि पर पवित्र रेखाये आदि खींचना) हवन, जप फिर नमस्कार उसके बाद सब पर जल छिड़कना आदि विशेष रूप से करना है।।९६।। अग्नि में विशेषतः खूब प्रज्ज्वलित हो जाने पर अधिक हवि (सामग्री) डालनी चाहिये। इस प्रकार अंजन और अभ्यंजन और पिण्ड प्रदान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है, ऐसा कहा गया है।।९७-९७½।। जैसी विधि के साथ श्राद्ध क्रियायें बतायी गयी हैं, वैसे ही प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये।।९८।।

बहुहव्येंधने चाग्नौ सुसमिद्धे विशेषतः। विधूमे लेलिहाने च होतव्यं कर्मसिद्धये॥९९॥
अप्रबुद्धे समिद्धे वा जुहुयाद्यो हुताशने। यजमानो भवेदंधः सोऽमुत्रेति हि नः श्रुतम्॥१००॥
अल्पेंधनो वा रूक्षोऽग्निर्विस्फुलिंगश्च सर्वशः।
ज्वालाधूमापसव्यश्च स तु वह्निरसिद्धये॥१०१॥
दुर्गंधश्चैव नीलश्च कृष्णश्चैव विशेषतः। भूमिं वगहते यत्र तत्र विद्यात्पराभवत्॥१०२॥
अर्चिष्मान् पिंडितशिखः सर्पिकाञ्चनसन्निभः।
स्निग्धः प्रदक्षिणश्चैव वह्निः स्यात्कार्यसिद्धये॥१०३॥
नरनारीगणेभ्यश्च पूजां प्राप्नोति शाश्वतीम्। अक्षयं पूजितास्तेन भवंति पितरोऽग्नयः॥१०४॥
बिल्वोदुंबरपत्राणि फलानि समिधस्तथा। श्राद्धे महापवित्राणि मेध्यानि च विशेषतः॥१०५॥
पवित्रं च द्विजश्रेष्ठाः शुद्धये जन्मकर्ममाम्। पात्रेषु फलमुद्दिष्टं यन्मया श्राद्धकर्मणि॥१०६॥
तदेव कृत्स्नं विज्ञेयं समित्सु च यथाक्रमम्।
कृत्वा समाहितं चित्तमाग्नेयं वै करोम्यहम्॥१०७॥
अनुज्ञातः कुरुष्वेति तथैव द्विजसत्तमैः। घृतमादाय पात्रे च जुहुयाद्धव्यवाहने॥१०८॥
पलाशप्लक्षन्यग्रोधप्लक्षाश्वत्थविकंकताः। उदुंबरस्तथाबिल्वश्चंदनो यज्ञियाश्च ये॥१०९॥
सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा। समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः॥११०॥

अग्नि में विशेषतया खूब प्रज्वलित हो जाने पर अधिक हवि डालनी चाहिए, कर्मसिद्धि के लिये दहकती हुई विना धुएँ की आग में हवि डालनी चाहिये।।९९।। पूरी तरह समिधायें न जलने वाली अग्नि में जो यजमान यज्ञ करता है, वह अन्धा एवं पुत्रविहीन होता है, ऐसा हमने सुना है।।१००।। कम ईंधनों वाली रूखी, चारों ओर से चिनगारियों वाली ज्वालाओं और धुएँ से व्याप्त अग्नि सिद्धि (सफलता) के लिये नहीं है।।१०१।। दुर्गन्धयुक्त, नीली विशेषतः काली तथा जिसके जलने पर भूमि फट जाती है, वहाँ पर यज्ञ करने पर पराजय समझनी चाहिये।।१०२।। ऊँची उठी हुई लौ वाली, पिण्डित अर्थात् ऊपर मिलकर एक शिखा वाली, घी और स्वर्ण के समान पीले रंगवाली, स्निग्ध और परिक्रमा करती हुई सी अग्नि कार्यसिद्धि के लिये होती है।।१०३।। यह नर-नारी समूहों से सदा से प्रचलित पूजा को प्राप्त करती है। उसके द्वारा पूजित पितरगण अक्षय और अनन्त हो जाते हैं।।१०४।। श्राद्धकर्म मे बिल्व (वेल) और गूलर के पत्तों से बने हुए पात्र वेल और गूलरके फल और उसी की समिधा ये वस्तुएँ विशेष पवित्र एवं बुद्धि बढ़ाने वाली मानी गयी हैं।।१०५।।

हे द्विजश्रेष्ठ! श्राद्धकर्म में जिन जिन पात्रों में जो जो फल मैंने बतलाये हैं, वे सब जन्म के समय होने वाले कर्मों में भी पवित्र होते हैं।।१०६।। समिधा के लिये क्रमशः यही नियम जानना चाहिये। श्राद्ध करने वाला मन को एकाग्र कर ये कहे कि मैं यज्ञ कर रहा हूँ, श्रेष्ठ ब्राह्मण आज्ञा दें कि करो, तब ऐसी आज्ञा प्राप्त हो जाने पर पात्र में घृत लेकर अग्नि में हवन करें।।१०७-१०८।। पलाश (ढाक) पाकड़, वरगद, पीपल, विकंकत, गूलर, वेल, चन्दन, ये वृक्ष यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले हैं।।१०९।। सरल, देवदारु, शाल, खैर, समिधा के अर्थ में विशेषतः प्रयुक्त होने वाले वृक्ष हैं। अर्थात् उपर्युक्त वृक्षों की लकड़ी यज्ञ में समिधा के लिए प्रयुक्त होनी चाहिये।।११०।।

ग्राम्याः कण्टकिनश्चैव याज्ञिका ये च केचन।
पूजिताः समिदर्थं ते पितॄणां वचनं यथा॥१११॥
समिद्भिः षट्फलेयाभिर्जुहुयाद्यो हुताशनम्। फलं यत्कर्मणस्तस्य तन्मे निगदतः शृणु॥११२॥
अक्षयं सर्वकामीयमश्वमेधफलं हि तत्।
श्लेष्मांतको नक्तमालः कपित्थः शाल्मलिस्तथा॥११३॥
नीपो विभीतकश्चैव श्राद्धकर्मणि गर्हिताः।
चिरबिल्वस्तथा कोलस्तिंदुकः श्राद्धकर्मणि॥११४॥
बल्वजः कोविदारश्च वर्जनीयाः समंततः। शकुनानां निवासांश्च वर्जयेत महीरुहान्॥११५॥
अन्यांश्चैवंविधान्सर्वान्नयज्ञीयांश्च वर्जयेत्। स्वधेति चैव मंत्राणां पितॄमां वचनं यथा।
स्वाहेति चैव देवानां यज्ञकर्मण्युदाहृतम्॥११६॥

इति श्रीब्रह्माडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभाग तृतीये उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पे समिद्वर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥
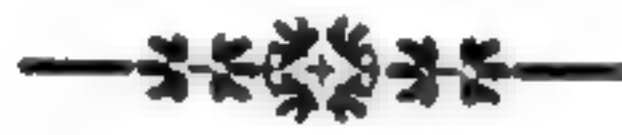
ग्रामों में पैदा होने वाले कण्टकी के वृक्ष भी यज्ञ में समिधा के लिए प्रयुक्त होते हैं, ऐसा पितरों का कहना है।।१११।। षट्फल[1] की समिधाओं द्वारा जो अग्नि में हवन किया जाता है। उस कर्म से जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनिये। अर्थात् इन उपर्युक्त वृक्षों की समिधाओं से किया गया हवन कभी नष्ट न होने वाले अश्वमेध यज्ञ के फल को देने वाला है।।११२½।।

श्लेष्मान्तक, नक्तमाल, कपित्य (कैथ), सेमर, कदम्ब, विभीतक (बहेड़ा) श्राद्धकर्म में निन्दनीय माने गये हैं।।११२½-११३½।। चिरबिल्व तथा कोल, तिन्दुक बल्वज, कोविदार तथा जिन पर पक्षियों का निवास हो, ऐसे वृक्षों की समिधा का यज्ञ में नहीं प्रयुक्त करनी चाहिये।।११३½-११५।। अन्य जो भी इस प्रकार के वृक्ष हैं, उन्हें यज्ञ कार्य में वर्जित मानना चाहिये। अर्थात् इनके अलावा अन्य जिन वृक्षों में दुर्गन्ध आती है। उन्हें भी यज्ञ में प्रयोग नहीं करना चाहिये। पितरों को पढ़े गये मन्त्रों के अन्त में स्वधा और देवों को पढ़े गये मन्त्रों के अन्त में स्वाहा का उच्चारण करना चाहिये। ऐसा नियम बतलाया गया है।।११६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ग्यारहवां अध्याय श्राद्धकल्प में समिधा वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

१. षट्फल का आशय यहाँ कोई छः फलों से है। अतः कोई छः फलदार पेड़ो की समिधा (लकड़ी) से ही हवन करना चाहिये। अतः वे छः फल वाले वृक्ष कौन हैं? इसके लिये नीचे जो वर्ज्य हैं, उनको छोड़कर चुन लेना चाहिये।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

श्राद्धकल्पे

द्वादशोऽध्यायः

सूत उवाच

देवाश्च पितरश्चैव अन्योन्यं नियताः स्मृताः। आथर्वणस्त्वेष विधिरित्युवाच बृहस्पतिः॥१॥
पूजयेत पितॄन्पूर्वं देवांस्च तदनन्तरम्। देवा अपि पितॄन्पूर्वमर्च्चयन्ति हि यत्नतः॥२॥
दक्षस्य दुहिता नाम्ना विश्वा नामेति विश्रुता। विश्वाख्यास्तु सुतास्तस्यां धर्मतो जज्ञिरे दश॥३॥
प्रख्याता स्त्रिषु लोकेषु सर्वलोकनमस्कृताः। समस्तास्ते महात्मानश्चेरुरुग्रं महत्तपः॥४॥
हिमवच्छिखरे रम्ये देवर्षिगणसेविते। शुद्धेन मनसा प्रीता ऊचुस्तान्पितरस्तदा॥५॥
वरं वृणीध्वं प्रीताः स्म कं कामं करवामहे। एवमुक्ते तु पितृभिस्तदा त्रैलोक्यभावनः॥६॥
ब्रह्मोवाच महातेजास्तपसा तैस्तु तोषितः। प्रीतोऽस्मि तपसानेन कं कामं करवाणि वः॥७॥
एवमुक्तास्तदा विश्वे ब्रह्मणा विश्वकर्मणा। ऊचुस्ते सहिताः सर्वे ब्रह्माणं लोकभावनम्॥८॥
श्राद्धेऽस्माकं भवेदंशो ह्येष नः कांक्षितो वरः। प्रत्युवाच ततो ब्रह्मा तान्वै त्रिदशपूजितः॥९॥
भविष्यत्वेवमेवं तु कांक्षितो वो वरस्तु यः। पितृभिश्च तथेत्युक्तमेवमेतन्न संशयः॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-१२

श्राद्धकल्प

सूत जी बाले—कि—हे ऋषियो! देवता और पितरगण जो परस्पर एक-दूसरे से नियत कहे गये हैं, उनकी पूजा के विषय में बृहस्पति जी ने अथर्ववेद के अनुसार यह विधि बतायी है कि पहले पितरों की उसके बाद देवताओं की पूजा करनी चाहिये; क्योंकि देवता भी पहले पितरों की ही यत्नपूर्वक पूजा करते हैं।।१-२।। प्राचीनकाल में दक्ष की एक विश्वा नाम की पुत्री थी। उसने धर्म से विश्वा नाम से प्रसिद्ध दश पुत्रों को उत्पन्न किया।।३।। वे सभी तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गये तथा सब लोकों में नमस्कृत हुए अर्थात् सब लोकों के लोग उन्हें नमन करते थे; क्योंकि उन सभी महात्माओं ने उग्र तप किया था।।४।।

तब देवों और ऋषियों से सेवित हिमालय के रम्य शिखर पर मन से प्रसन्न पितरों ने उन सभी महात्माओं से कहा।।५।। कि हे महापुरुषो तुम वर मांगो हम बहुत प्रसन्न हैं, हम आपकी किस इच्छा को पूर्ण करें, तब पितरों के ऐसा कहने पर तीनों लोकों को पैदा करने वाले विश्वकर्मा ब्रह्मा ने उन विश्वेदेवों से कहा।।६।। ब्रह्मा जी ने कहा कि हे महातेजस्वी! आपके तप से हम बहुत प्रसन्न हैं, अब हम आपके लिये क्या करें?।।७।। तब ब्रह्मा जी ने विश्वेदेवों से जब यह कहा, तब वे सभी एक होकर एक स्वर में ब्रह्मा जी से बोले कि श्राद्ध में हमारा अंश होना चाहिये। यही हमारा काञ्छित वर है, तब उसके बाद ब्रह्मा जी ने देवों द्वारा पूजित उन विश्वेदेवों से कहा।।८-९।।

ब्रह्मा जी ने कहा कि आपका जो काञ्छित वर है, वह ऐसा ही होगा, तुम लोग पहले पूजित होगे। इसमें

सहस्माभिस्तु भोक्तव्यं यत्किंचिदृश्यते त्विह।
अस्माकं कल्पिते श्राद्धे युष्मानप्राशनं हि वै॥११॥

भविष्यति मनुष्येषु सत्यमेतदब्रुवामहे। माल्यैर्गंधैस्तथान्नेन युष्मानग्रेऽर्च्चयिष्यति॥१२॥
अग्रे दत्त्वा तु युष्माकमस्माकं दास्यते ततः। विसर्जनमथास्माकं पूर्वं पश्चात्तु दैवतम्॥१३॥
रक्षणं चैव श्राद्धस्य आतिथ्यस्य विधिद्वयम्। भूतानां देवतानां च पितृणां चैव कर्मणि॥१४॥
एवं कृते सम्यगेतत्सर्वमेव भविष्यति। एवं दत्त्वा वरं तेषां ब्रह्मा पितृगणैः सह॥१५॥
क्षमानुग्रहकृद्देवः संचकार यथोदितम्। वेदं पंच महायज्ञा नराणां समुदाहृताः॥१६॥
एतान्पंच महायज्ञान्निर्वपेत्सततं नरः। यत्र स्थास्यंति दातारस्तत्स्थानं वै निबोधत॥१७॥

निर्भयं विरजस्कं च निःशोकं निर्व्यथक्लमम्।
ब्राह्मं स्थानमवाप्नोति सर्वलोकपुरस्कृतम्॥१८॥
शूद्रेणापि च कर्त्तव्याः पंचैते मन्त्रवर्जिताः।
अतोऽन्यथा तु यो भुंक्ते स ऋणं नित्यमश्नुते॥१९॥

ऋणं भुंक्ते स पापात्मा यः पचेदात्मकारणात्। तस्मान्निर्वर्तयेत्पंच महायज्ञान्सदा बुधः॥२०॥
उदक्पूर्वे बलिं कुर्यादुदकांते तथैव च। बलिं सुविहितं कुर्यादुच्चैरुच्चतरं क्षिपेत्॥२१॥

कोई सन्देह नहीं है।।१०।। ब्रह्मा जी ने कहा कि इस लोक में जो कुछ भी काम होता दिखायी देता है, उस सबमें आप लोग हमारे साथ भोग करेंगे। हमारे लिये कल्पित श्राद्ध में आप लोगों का आसन आगे होगा।।११।। मैं यह सत्य कहता हूँ कि मनुष्यों में मालागन्ध तथा अन्न से प्राप्त लोगों की पहले पूजा की जायेगी।।१२।। किसी भी कार्य में पहले आपको देकर बाद में हमको दिया जायेगा। अतः पहले विसर्जन हमारा बाद में देवों का होगा अर्थात् किसी पूजा यज्ञादि पवित्र कार्य में आप लोगों की पूजा होगी तथा पूजा के बाद जो देवों का विसर्जन (विदाई) की जाती है, उसमें पहले हमारे देवों का विसर्जन होगा तथा बाद में आप लोगो का होगा।।१३।।

भूतों, देवताओं और पितरों को किये जाने वाले श्राद्धकर्म में श्राद्ध की सब प्रकार रक्षा और अतिथियों का आदर ये दो विधान हैं। इन दोनों के भलीभाँति सम्पन्न हो जाने पर श्राद्ध को भलीभाँति सम्पन्न समझना चाहिये। ब्रह्मा जी ने कहा कि हमने जो आप लोगों से कहा है, वह सब सम्यक् प्रकार से होगा। इस प्रकार वर देकर पितरों के साथ सभी जीवों पर कृपा करने वाले देव ब्रह्मा अभीष्ट स्थान को चले गये।।१४-१५½।। वेद में मनुष्यों के पाँच यज्ञों का वर्णन किया गया है। इन पाँचों यज्ञों को मनुष्य को सदैव करना चाहिये। इन पाँचों महायज्ञों को करने वाले लोग जिस स्थान पर जाते हैं, उसे सुनिये।।१५½-१६½।। वे निर्भय और अहंकार से रहित शोकरहित, परिश्रम को दूर करने वाले, सब लोकों से आगे रहने वाले, ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।।१६½-१८।। ये पाँच महायज्ञ मन्त्रों को छोड़कर शूद्रों को भी करने चाहिये।। जो इन यज्ञों को छोड़कर भोजन करता है, वह पापात्मा नित्य ऋण का भोजन करता है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को इन पाँचों महायज्ञों का सदा अनुष्ठान करना चाहिये।।१९-२०।। उदक्पूर्वे ऊंचे से ऊंचे स्थान पर अथवा उत्तर पूर्व में बलिकर्म करना चाहिये, उसी प्रकार उत्तर के अन्त में बलिकर्म करना चाहिये तथा वलि को अच्छी तरह विधिपूर्वक करना चाहिये तथा ऊंचे से ऊंचे ऊपर को बलि को फेंकना चाहिये।।२१।।

परश्रृंगं गवां मूत्रं बलिं सूत्रं समुत्क्षिपेत्। तन्निवेद्यो भवेत्पिंडः पितृणां यस्तु जीवति॥२२॥
इष्टेनान्नेन भक्ष्यैश्च भोजयेच्च यथाविधि। निवेद्यं केचिदिच्छंति जीवंत्यपि हि यत्नतः॥२३॥
देवदेवा महात्मानो ह्येते पितर इत्युत। इच्छंति केचिदाचार्याः पश्चात्पिंडनिवेदनम्॥२४॥
पूजनं चैव विप्राणां पूर्वमेवेह नित्यशः। तद्धि धर्मार्थकुशलो नेत्युवाच बृहस्पतिः॥२५॥
पूर्वं निवेदयेत्पिण्डान्पश्चाद्विप्रांश्च भोजयेत्। योगात्मानो महात्मानः पितरो योगसंभवा;॥२६॥
सोममाप्याययंत्येते पितरो योगसंस्थिताः।
तस्माद्दद्याच्छुचिः पिण्डान्योगेभ्यस्तत्परायणः॥२७॥
पितॄणां हि भवेदेतत्साक्षादिव हुतं हविः। ब्राह्मणानां सहस्रस्य योगस्थं ग्रासयेद्यदि॥२८॥
यजमानं च भोक्तॄंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत्। असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैव विमानता॥२९॥
दंडो दैवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः। हित्वा मम सधर्माणं बालिशं यस्तु भोजयेत्॥३०॥
आदिकर्म समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति। पिंडमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी प्रथमं नरः॥३१॥
दद्यात्प्रजार्थी यत्नेन मध्यमं मंत्रपूर्वकम्। उत्तमां कान्तिमन्विच्छन्गोषु नित्यं प्रयच्छति॥३२॥

कम से कम मात्रा में वलि को लेकर सींगों वाली गौओं के ऊपर बलि छोड़नी चाहिये। वह पिण्डदान उसके लिये निवेद्य होता है, जो कि पितरों में जीवित है। इस श्लोक में संशोधन कर्ता ने विचार नहीं किया है। तन्निवेद्यो के स्थानपर यहाँ न निवेद्यो होना चाहिये था तथा यही है। तब यही अर्थ होगा कि जो जीवित है, उसका पिण्डदान नहीं करना चाहिये।।२२।। जो पितरगण जीवित हैं, उन्हें श्राद्ध में अभीष्ट अन्न और भक्ष्य पदार्थों से यथाविधि भोजन कराना चाहिये।।२३।। ये पितरगण देवों के देवता एवं परम महात्मा हैं, कुछ आचार्य लोग श्राद्धकर्म में सर्वप्रथम ब्राह्मणों का पूजन उसके बाद में पिण्डदान के विधान की इच्छा करते हैं।।२४।।

इस विषय में धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र में कुशल बृहस्पति ने कहा है कि इस लोक में पहले नित्य ब्राह्मणों को पूजन नहीं करना चाहिये। इस विषय में बृहस्पति का कहना है कि पहले पिण्डदान करना चाहिये और बाद में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।।२५-२५½।। योगात्मा महात्मा पितर योग से उत्पन्न हुए हैं। ये योग में सम्यक् प्रकार से स्थित ये पितर चन्द्रमा को सन्तुष्ट करते हैं। इसीलिये उन योगी महात्माओं को उनमें श्रद्धा रखने वाले पवित्र मनुष्यों द्वारा पिण्डदान किये जाने चाहिये। यह पिण्डदान ही पितरों के लिए साक्षात् अग्नि में आहूत हवि (हवन-सामग्री) के समान है।।२५½-२७½।। श्राद्ध के समय हजारों ब्राह्मणों में से एक भी योग का अभ्यास करने वाला आगे आसन पर बिठाया गया है, वह एक ही जल में नाव की तरह यजमान और भोक्ता सबको तार देता है। अर्थात् सबका उद्धारकर देता है।।२७½-२८½।। जहाँ पर दुष्ट पुरुषों का विशेष सम्मान और सज्जन पुरुषों का अपमान होता है, वहाँ पर दैवकृत अत्यन्त दारुणदण्ड शीघ्र ही गिरता है।।२८½-२९½।। जहाँ पर धर्मात्मा ब्राह्मण को छोड़कर किसी धूर्त या मूर्ख ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है, वहाँ पर दान देने वाला अथवा भोजन कराने वाला यजमान अपने पहले वाले अच्छे कर्मों को नष्ट करता हुआ भी पूरी तरह नष्ट हो जाता है। अर्थात् उसके पूर्वजन्म के पुण्यकर्म रहते हुए भी नष्ट हो जाता है।।२९½-३०½।। भोग का इच्छुक यजमान यत्नसहित सदा अग्नि में पिण्डदान करे। सन्तान को चाहने वाला व्यक्ति यत्नपूर्वक मध्यम पिण्डदान करे। उत्तम कान्ति चाहने वाला यजमान नित्य गौओं को पिण्डदान करता है।।३०½-३२।।

प्रज्ञां चैव यशः कीर्त्तिमप्सु वै संप्रयच्छति। प्रार्थयन्दीर्घामायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति॥३३॥
सौकुमार्यमथान्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति। एवमेतत्समुद्दिष्टं पिंडनिर्वपणे फलम्॥३४॥

आकाशे गमयेद्वापि अप्सु वा दक्षिणामुखः।
पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा चैव दिग्भवेत्॥३५॥

एके विप्राः पुनः प्राहुः पिंडोद्धरणमग्रतः। अनुज्ञातस्तु तैर्विप्रैः काममुद्धियतामिति॥३६॥
पुष्पाणां च फलानां च भक्ष्याणामन्नतस्तथा। अग्रमुद्धृत्य सर्वेषां जुहुयाद्धव्यवाहने॥३७॥
भक्ष्यमन्नं तथा पेयं मूलानि च फलानि च। हुत्वाऽग्नौ च ततः पिंडान्निर्वपेद्दक्षिणामुखः॥३८॥
वैवस्वताय सोमाय हुत्वा पिंडान्निवेद्य च। उदकान्नयनं कृत्वा पश्चाद्विप्रांश्च भोजयेत्॥३९॥
अनुपूर्वं ततो विप्रान्भक्ष्यैरन्नैश्च शक्तितः। स्निग्धैरुष्णैः सुगंधैश्च तर्पयेत्तान्रसैरपि॥४०॥
एकाग्रः पर्युपासीनः प्रयतः प्रांजलिः स्थितः। तत्परः श्रद्दधानश्च कामानाप्नोति मानवः॥४१॥
अक्षुद्रत्वं कृतज्ञत्वं दाक्षिण्यं संस्कृतं वचः। तपो यज्ञांश्च दानं च प्रयच्छंति पितामहाः॥४२॥
अतः परं विधिं सौम्यं भुक्तवत्सु द्विजातिषु। अनुपूर्व्येण विहितं तन्मे निगदतः शृणु॥४३॥
प्रोक्ष्य भूमिमथोद्धृत्य पूर्वं पितृपरायणः। ततोऽन्नविकिरं कुर्याद्विधिदृष्टेन कर्मणा॥४४॥
स्वधा वाच्या ततो विप्रान् विधिवद्भूरिदक्षिणान्। अन्नशेषमनुज्ञाप्य सत्कृत्य द्विजसत्तमान्॥४५॥

उसी प्रकार वृद्धि, यश और कीर्ति चाहने वाला भी नित्य जलों में पिण्डदान देता है, दीर्घायु चाहने वाला व्यक्ति नित्य कौओं को वलिदान करता है।।३३।। सुकुमारता का इच्छुक व्यक्ति मुर्गों को नित्य वलिदान करता है। इस प्रकार यह पिण्डदान (वलि देने) का वर्णन किया जा चुका है।।३४।। अव वलि की विधि बताते हुए कहते हैं कि जल में दक्षिण की ओर मुख करके आकाश की ओर वलि देनी चाहिये, क्योंकि पितरों का स्थान आकाश और दक्षिण दिशा मानी गयी है।।३५।। ब्राह्मण लोग श्राद्धकर्म मे एक पिण्ड को देकर पिण्डदान की प्रक्रिया वतला देते है, उसी तरह फिर ब्राह्मणों द्वारा वताने के अनुसार पिण्डदान करना चाहिये।।३६।। पुष्प, फल, भक्ष्य अन्न सवको आगे करके अथवा उनका अग्रभाग नोंच कर यज्ञ में आहूत कर देना चाहिये।।३७।।

खाने योग्य अन्न तथा पीने योग्य दुग्धादि, मूल और फलों को अग्नि में आहूत कर फिर पिण्डों को दक्षिण की ओर मुख कर अग्नि को निर्वाप करना चाहिये।।३८।। वैवस्वत (मनु) अर्थात् यमराज तथा सोम (चन्द्रमा) के लिये पिण्डों को निवेदन कर जल को लेकर अर्थात् जल से हाथ धोकर वाद में ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिये।।३९।। तथा घृतयुक्त चिकने और सुगन्धित खाद्यपदार्थों तथा अनेकों प्रकार के रसों द्वारा यथाशक्ति भोजन करा कर ब्राह्मणों को तृप्त करना चाहिये।।४०।।

उसके वाद अकेले एकाग्रचित्त होकर हाथ जोड़े हुए उनकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार इस पूजाकर्म में तत्पर मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है।।४१।। पितामहगण उस मनुष्य को अक्षुद्रता अर्थात् (महत्ता) कृतज्ञता, चतुरता, अच्छी तरह शुद्ध बोलना, तप (कठिनश्रम), यज्ञ, दान आदि करना प्रदान करते हैं।।४२।। तव इसके वाद सूत जी ने कहा कि ऋषिवृन्द! इसके वाद ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर जो जो प्रक्रियायें श्राद्धकर्म में होती हैं, उन्हें मैं आपको वतला रहा हूँ, उन्हें सुनिये।।४३।। सवसे पहले पितरों में भक्ति रखने वाले भूमि पर छींटे

प्रांजलिः प्रयतश्चैव अनुगम्य विसर्जयेत्॥४६॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीये उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पे द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

पुण्यदेशानुकीर्तनं नाम

त्रयोदशोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

सकृदभ्यर्चिताः प्रीता भवंति पितरोऽव्ययाः। योगात्मानो महात्मानो विपाप्मानो महौजसः॥१॥
प्रेत्य च स्वर्गलोकाय कामैश्च बहुलं भुवि। येषु वाप्यनुगृह्णति मोक्षप्राप्तिः क्रमेण तु॥२॥
तानि वक्ष्याम्यहं सौम्य सरांसि सरितस्तथा। तीर्थानि चैव पुण्यानि देशांश्छैलांस्तथाश्रमान्॥३॥
पुण्यो हि त्रिषु लोकेषु सदैवामरकंटकः। पर्वतप्रवरः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः॥४॥
यत्र वर्षसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। तपः सुदुश्चरं तेपे भगवानंगिराः पुरा॥५॥

लगाकर उसे शुद्ध करके नियम के अनुसार अन्न का विकरण करे।।४४।। उसके बाद ब्राह्मणों से स्वधावाचन कर विधिवत् दक्षिणा दिये गये ब्राह्मणों का आदर कर शेष अन्न की आज्ञा प्राप्त कर हाथ जोड़ते हुए दूर तक उन्हें विदा करने जाना चाहिये।।४५-४६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद बारहवां अध्याय श्राद्धकल्प वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-१३

श्राद्धकल्प में पुण्य देशों का वर्णन

बृहस्पति ने कहा कि हे सूत जी! ये पितर केवल एक बार पूजित होने पर परम प्रसन्न हो जाते हैं। ये पितर अव्यय हैं अर्थात् कभी भी नष्ट होने वाले नहीं हैं। ये पितर योगी हैं, महात्मा हैं, पापरहित हैं और महान् तेजस्वी हैं।।१।। अब मैं इस जन्म के बाद स्वर्ग प्राप्त कराने वाले, इच्छाओं द्वारा बहुत कुछ देने वाले तथा जिन कर्मों में मोक्ष की प्राप्ति क्रमशः प्राप्त होती है, उन सरोवरों, नदियों, पुण्यप्रदतीर्थों, देशों, पर्वतों मे श्रेष्ठ पर्वतों और आश्रमों का वर्णन करूँगा।।२-३।।

सदैव तीनों लोकों में पुण्यशाली सिद्धों और चारणों से सेवित अमरकण्टक नाम का पर्वतश्रेष्ठ है।।४।। जहाँ हजारों क्या करोड़ों अरबों वर्षों तक प्राचीनकाल में भगवान् अङ्गिरा ने परम कठोर तपस्या की थी।।५।।

यत्र मृत्योर्गतिर्न्नास्ति तथैवासुररक्षसाम्। न भयं नैव चालक्ष्मीर्यावद्भूमिर्द्धरिष्यति॥६॥
तपसा तेजसा तस्य भ्राजते स नगोत्तमः। शृङ्गे माल्यवतो नित्यं वह्निः संवर्त्तको यथा॥७॥
मृदवस्तु सुगंधाश्च हेमाभाः प्रियदर्शनाः शांताः कुशा इति ख्याताः परिदक्षिणनर्मदाम्॥८॥
दृष्टवान्स्वर्गसोपानं भगवानंगिराः पुरा। अग्निहोत्रे महातेजाः प्रस्तारार्थं कुशोत्तमान्॥९॥
तेषु दर्भेषु यः पिंडान्मरकंटकपर्वते। दद्यात्सकृदपि प्राज्ञस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम्॥१०॥
तद्भवत्यक्षयं श्राद्धं पितॄणां प्रीतिवर्धनम्। अन्तर्द्धानं च गच्छन्ति क्षेत्रमासाद्य तत्सदा॥११॥
तत्र ज्वालासरः पुण्यं दृश्यते चापि पर्वसु। सशल्यानां च सत्त्वानां विशल्यकरणी नदी॥१२॥
प्रागदक्षिणायतावर्त्ता वापी सा सुनगोत्तमे। कलिंगदेशपश्चार्द्धे शृङ्गे माल्यवतो विभोः॥१३॥
सिद्धिक्षेत्रमृषि श्रेष्ठा यदुक्तं परमं भुवि। संमतं देवदैत्यानां श्लोकं चाप्युशना जगौ॥१४॥
धन्यास्ते पुरुषा लोके ये प्राप्यामरकंटकम्। पितॄन्संतर्पयिष्यंतिश्राद्धे पितृपरायणाः॥१५॥
अल्पेन तपसा सिद्धिं गमिष्यंति न संशयः। सकृदेवार्चितास्तत्र स्वर्गञ्चामरकंटके॥१६॥
महेंद्रः पर्वतः पुण्यो रम्यः शक्रनिषेवितः। तत्रारुह्य भवेत्पूतः श्राद्धं चैव महाफलम्॥१७॥

जहाँ पर मृत्यु भी नहीं पहुँच सकती, उसी प्रकार असुरों और राक्षसों का भी भय नहीं तथा जहाँ जब तक भूमि रहेगी, तब तक लक्ष्मी का अभाव नहीं रहेगा।।६।। वह पर्वत श्रेष्ठ अमरकंटक तप से और तेज से सुशोभित होता है। माल्यवान् पर्वत के शिखर पर नित्य संवर्तक (प्रलयकालीन अग्नि) जलती रहती है।।७।। इस पर्वतराज पर उगने वाले कुश अत्यन्त मृदु सुगन्धित, सोने की चमक वाले, देखने में प्रिय तथा शान्त एवं प्रसिद्ध हैं, जो नर्मदा के दक्षिण में फैले हुए हैं।।८।। प्राचीनकाल में अंगिरा ऋषि ने अग्निहोत्र में पृथ्वी पर विछाने के लिये इन उत्तम कुशों का उपयोग किया था, जिस कारण उन्होंने स्वर्ग के लिये सीढ़ियों को देखा था।।९।। अमरकण्टक में उन कुशों पर जो बुद्धिमान् व्यक्ति एक बार भी पिण्डदान करता है, उसके फल को बतला रहा हूँ।।१०।। वहाँ पर जो श्राद्ध किया जाता है, वह अक्षय होता है और पितरों के प्रेम को बढ़ाने वाला होता है। सदा इस पवित्र क्षेत्र को पाकर वे पितर अन्तर्द्धान हो जाते हैं।।११।।

वहाँ पर पुण्यप्रद ज्वाला सरोवर पर्वों (अमावस्या पूर्णिमा) में दिखायी देता है। वहाँ हड्डी वाले रोगियों की चिकित्सा करने वाली विशल्यकरणी नामक नदी है अर्थात् जिस नदी में स्नान करने से हड्डियों के रोग दूर हो जाते हैं।।१२।। उस अमरकण्टक पर्वत के पीछे पूर्व दक्षिण दिशा में फैली हुई, वह पवित्र वावली है। कलिङ्गदेश (उड़ीसा) के पश्चार्द्ध में माल्यवान् पर्वत के शिखर पर हे ऋषिश्रेष्ठ! एक सिद्धिक्षेत्र है, जो पृथ्वी पर पर श्रेष्ठ माना गया है। देवों और दैत्यों दोनों ही के लिये यह सम्मान्य है। उसकी प्रशंसा में शुक्राचार्य ने यह श्लोक गाया है कि "धन्यास्ते पुरुषालोके ये प्राप्यामरकण्टकम्।" पितॄन्संतर्पिष्यन्ति श्राद्धे पितृपरायणाः। अल्पेन तपसा सिद्धिं गमिष्यन्ति न संशयः सकृदेवार्चितास्तत्र स्वर्गञ्चामरकंटके।। अर्थात् संसार में वे पुरुष धन्य हैं, जो श्राद्ध में अमरकण्टक पर्वत पर पहुँच कर पितरों के प्रति पूरी तरह समर्पित होकर पितरों का तर्पण करेंगे, वे कम तपस्या से ही सिद्धि (सफलता) प्राप्त करेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वहाँ इस अमरकंटक में एक बार ही पूजित होकर पितरगण स्वर्ग प्राप्त करते हैं।।१३-१६।। वहाँ पर इन्द्र द्वारा सेवित परमरम्य पुण्यप्रद महेन्द्र पर्वत है, जिस पर चढ़कर श्राद्धपरम पवित्र हो जाता है, जिसका कि महान् फल होता है।।१७।।

वैलाटशिखरे युक्त्वा दिव्यं चक्षुः प्रवर्तते। अधृश्यश्चैव भूतानां देववच्चरते महीम्॥१८॥
सप्तगोदावरे चैव गोकर्णे च तपोवने। अश्वमेधफलं स्नात्वा तत्र दत्त्वा भवेत्ततः॥१९॥
धूतपापस्थलं प्राप्य पूतः स्नात्वा भवेन्नरः। रुद्रस्तत्र तपस्तेपे देवदेवो महेश्वरः॥२०॥
गोकर्णे निहितं देवैर्नास्तिकानां निदर्शनम्। अब्राह्मणस्य सावित्रीं पठतस्तु प्रणश्यति॥२१॥
देवर्षिभवने शृंगे सिद्धचारणसेविते। आरुह्य तं नियमवांस्ततो याति त्रिविष्टपम्॥२२॥
दिव्यैश्चंदनवृक्षैश्च पादपैरुपशोभितम्। आपश्चंदनसंयुक्ताः स्पंदंति सततं ततः॥२३॥
नदी प्रवर्तते ताभ्यस्ताम्रपर्णीति नामतः। या चंदनमहाखंडाद्दक्षिणं याति सागरम्॥२४॥

नद्यास्तस्याश्च ताम्रायास्तूह्यमाना महोदधौ।
शंखा भवंति शुक्त्यश्च जायते यासु मौक्तिकम्॥२५॥

उदकानयनं कृत्वा शंखमौक्तिकसंयुतम्। आधिभिर्व्याधिभिश्चैव मुक्ता यांत्यमरावतीम्॥२६॥
चन्दनेभ्यः प्रसूतानां शंखानां मौक्तिकस्य वा। पापकर्तॄनपि पितॄंस्तारयंति यथाश्रुति॥२७॥
चंद्रतीर्थे कुमार्यां च कावेरीप्रभवे क्षये। श्रीपर्वतस्य तीर्थेषु वैकृते च तथा गिरौ॥२८॥

एकस्था यत्र दृश्यंते वृक्षा ह्यौशीरपर्वते।
पलाशाः खदिरा बिल्वाः प्लक्षाश्वत्थविकंकताः॥२९॥
एवं द्विमंडलाविद्धं विज्ञेयं द्विजसत्तमाः।
अस्मिंस्त्यक्त्वा जनोऽगानि क्षिप्रं यात्यमरावतीम्॥३०॥

वैलाटशिखर पर जाने से दिव्य नेत्र की प्राप्ति होती है। जहाँ मनुष्य प्राणियों से न हारने योग्य होकर पृथ्वी पर देवताओं के समान विचरण करता है।।१८।। सप्तगोदावर तथा गोकर्ण नामक तपोवन में स्नान कर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।१९।। धूतपाप नामक स्थान पर पहुँचकर वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य परम पवित्र हो जाता है, जहाँ पर देवाधिदेव महादेव रुद्र ने तप किया था।।२०।। वहाँ पर गोकर्ण नामक स्थान में देवों ने नास्तिकों के लिये एक उदाहरण पेश किया है कि वहाँ पर जो ब्राह्मण नहीं, वह यदि सावित्री का पाठ करता है, तो वह पढ़ते हुए ही नष्ट हो जाता है।।२१।। सिद्धों और चारणों से सेवित देवर्षि के भवन वाले शिखर पर नियम से चढ़ने वाले लोग स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।।२२।। क्योंकि उस परमरमणीय शिखर पर दिव्य चन्दनादि के वृक्ष बहुत अधिक शोभा बढ़ाते हैं तथा वहाँ चन्दन मिश्रित शीतल जल की धारा सदा बहती रहती है।।२३।।

उस धारा से ताम्रपर्णी नामक नदी प्रवर्तित होती है, जो चन्दन के खण्डो में बहती हुई दक्षिण सागर में जाकर गिरती है।।२४।। उस ताम्रा नदी के महासमुद्र में बहते हुए शंख पैदा होते हैं और शुक्तियों में मोती पैदा होते हैं।।२५।। जो मनुष्य शंख और मोती से युक्त जल को लाते हैं, वे आधि और व्याधि से मुक्त होकर अमरावती को प्राप्त करते हैं।।२६।। वहाँ पर चन्दन के वृक्षों से उत्पन्न शंख अथवा मोती को जो दान करते हैं, वे पाप करने वाले पितरों को भी तार देते हैं; ऐसा वेद में कहा गया है।।२७।। पुण्यात्मा पुरुषों द्वारा अच्छी तरह सेवित चन्द्र नामक पुण्यप्रदायक तीर्थ में, कुमारी में, कावेरी में, अक्षय प्रभाव में, श्रीपर्वत तीर्थ में, वैकृत पर्वत पर, औशिर पर्वत पर, भी जहाँ कि पलाश, खदिर, बेल, पाकड़, विकङ्कत आदि के पेड़ एक ही स्थान पर दिखायी देते हैं। ये सब दो मण्डलों से आविद्ध दिखाई देते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ इस स्थान पर जो लोग अपने अंगों का परित्याग करते हैं, वे इन्द्रपुरी अमरावती

श्रीपर्वतस्य तीर्थे तु वैकृते च तथा गिरौ। कर्माणि तु प्रयुक्तानि सिद्ध्यंति प्रभवाप्यये॥३१॥
दुष्प्रयुक्ता हि पितृषु सुप्रयोगा भवंत्युत। पितॄणां दुहिता पुण्या नर्मदा सरितां वरा॥३२॥
यत्र श्राद्धानि दत्तानि ह्यक्षयाणि भवंत्युत। माठरस्य वने पुण्ये सिद्धचारणसेविते॥३३॥
अंतर्द्धानेन गच्छंति युक्त्वा तस्मिन्महागिरौ। विंध्ये चैव गिरौ पुण्ये धर्माधर्मनिदर्शनीम्॥३४॥
धारां पापा न पश्यंति धारां पश्यंति साधवः। तत्र तदृश्यते पापं केषां चित्पापकर्मणाम्॥३५॥
कैलासे या मतंगस्य वापी पापनिषूदनी। स्नात्वा तस्यां दिवं यांति कामचारा विहंगमाः॥३६॥
शौर्पारके तथा तीर्थे पर्वते पालमंजरे। पांडुकूपे समुद्रांते पिंडरकतटे तथा॥३७॥
विमले च विपापे च संकल्पं प्राप्य चाक्षयम्। श्रीवृक्षे चित्रकूटे च जंबूमार्गे च नित्यशः॥३८॥
असितस्य गिरौ पुण्ये योगाचार्यस्य धीमतः। तत्रापि श्राद्धमानंत्यमसितायां च नित्यशः॥३९॥
पुष्करेष्वक्षयं श्राद्धं तपश्चैव महाफलम्। महोदधौ प्रभासे च तद्वदेव विनिर्दिशेत्॥४०॥
देविकायां वृषो नाम कूपः सिद्धनिषेवितः। समुत्पतंति तस्यापो गवां शब्देन नित्यशः॥४१॥
योगेश्वरैः सदा जुष्टः सर्वपापबहिष्कृतः।
दद्याच्छ्राद्धं तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम्॥४२॥

को प्राप्त करते हैं।।२८-३०।। श्रीपर्वत के तीर्थ पर और वैकृत पर्वत पर तो किये गये श्राद्धकर्मों के फल मनुष्य आने वाले जन्म में प्राप्त करते हैं।।३१।। वहाँ पर पितरों के प्रति बुरी तरह से अर्थात् विना नियम के प्रयुक्त श्राद्धकर्म भी अच्छी तरह प्रयोग वाले हो जाते हैं। वहाँ पर पितरों की पुत्री पुण्यशाली नर्मदा नदी बहती है।।३२।। जिसमें दिये गये श्राद्ध अक्षय हो जाते हैं।।३२-३२½।। सिद्धो और चारणो से सेवित माठर के पुण्यवन में उस महान् पर्वत पर विचरण करते हैं। अर्थात् उस पर्वत पर अन्धेरा रहता है, इसलिए लोग एक साथ मिलकर विचरण करते हैं, यह अर्थ होगा अथवा वहाँ पर पितरगण एक साथ अन्तर्धान होकर विचरण करते हैं, यह अर्थ सम्भव है।।३२½-३३½।।

पवित्र विन्ध्यपर्वत पर धर्मी और अधर्मी की पहचान के लिये यह देखा जाता है कि जो पापी है, वह धारा को नहीं देख पाता, केवल साधु पुरुष उस धारा का दर्शन करते हैं। वहाँ उस धारा में किन्हीं पापियों के पाप दिखायी देते हैं।।३३½-३५।। कैलास[१] पर मतङ्ग के पापों को दूर करने वाली पापनिषूदिनी नामक वावली है, जो पाप को नष्ट करने वाली है, उसमें स्नानकर स्वेच्छा से विचरण करने वाले पक्षी भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं।।३६।। शौर्पारक[२] तीर्थ में पालपञ्जर नामक पर्वत पर समुद्र के अन्त तक पाण्डुकूप नामक तीर्थ में पण्डारक नामक के तट पर विमल और निष्पाप अक्षय संकल्प प्राप्त कर श्रीवृक्ष पर चित्रकूट में और जम्बूनदी के मार्ग में बुद्धिमान् योगाचार्य के असित नामक पर्वत पर वहाँ भी श्राद्ध करके फिर असिता नदी में नित्यशः श्राद्ध करना चाहिये।।३७-३९।।

पुष्कर में किये गये श्राद्ध का फल कभी न नष्ट होने वाला तथा महाफल देने वाला है तथा प्रभास क्षेत्र के महासमुद्र में श्राद्ध उसी प्रकार अक्षय और महाफलदायक समझना चाहिये।।४०।। देविका में सिद्धों से सेवित वृष नामक कूप है। उसमें गौ का शब्द करता हुआ जल नित्य गिरता रहता है।।४१।। सब पापों से बहिष्कृत योगेश्वरों से सदा पूजित वह कूप है, जो व्यक्ति उस कूप में श्राद्ध दे, उसका फल बताता हूँ।।४२।।

१. वायु पुराण में कौशला, २. वायु पुराण में कुमार कौशला

अक्षयं सर्वकामीयं श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन्। जातवेदः शिला तत्र साक्षादग्नेः सनातनात्॥४३॥
श्राद्धानि चाग्निकार्यं च तत्र कुर्यात्सदा क्षयम्। यस्त्वग्निं प्रविशेत्तत्र नाकपृष्ठे स मोदते॥४४॥
अग्निः शांतः पुनर्जातस्तत्र दत्तं ततोऽक्षयम्। दशाश्वमेधिके तीर्थे तीर्थे पंचाश्वमेधिके॥४५॥
यथोद्दिष्टफलं तेषां क्रतूनां नात्र संशयः। ख्यातं हयशिरो नाम तीर्थं सद्यो वरप्रदम्॥४६॥
श्राद्धं तत्र सदाक्षय्यं दाता स्वर्गे च मोदते। श्राद्धं सुंदनिसुंदे च देयं पापनिषूदनम्॥४७॥
श्राद्धं तत्राक्षयं प्रोक्तं जपहोमतपांसि च। अजतुंगे शुभे तीर्थे तर्पयेत्सततं पितॄन्॥४८॥
दृश्यते पर्वसु च्छाया यत्र नित्यं दिवौकसाम्। पृथिव्यामक्षयं दत्तं विरजा यत्र पादपः॥४९॥

योगेश्वरैः सदा जुष्टः सर्वपापबहिष्कृतः।
दद्याच्छ्राद्धं तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम्॥५०॥
अर्चितास्तेन वै साक्षाद्भवंति पितरः सदा।
अस्मिँल्लोके वशी च स्यात्प्रेत्य स्वर्गे महीयते॥५१॥

प्रायशो मद्रवा पुण्या शिवो नाम ह्रदस्तथा। तत्र व्याससरः पुण्यं दिव्यो ब्रह्मह्रदस्तथा॥५२॥
ऊर्ज्जतः पर्वतः पुण्यो यत्र योगेश्वरालयः। अत्रैव चाश्रमः पुण्यो वसिष्ठस्य महात्मनः॥५३॥

उस पर किया गया श्राद्ध का फल कभी न नष्ट होने वाला और सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला होता है तथा वह श्राद्ध पितरों को प्रसन्न करता है। वहां पर जातवेद नाम की शिला है, वह साक्षात् अग्नि से सनातन काल से प्रतिष्ठित है।।४३।। वहाँ उस शिला पर श्राद्ध एवं हवन करना चाहिये। वहाँ उस अग्निशिला पर जो प्रवेश करता है, वह स्वर्ग मे भरपूर आनन्द प्राप्त करता है।।४४।। जब अग्नि शान्त होता है, तव उसका पुनर्जन्म होता है। उस पवित्र तीर्थ मे दिया गया श्राद्धादि दान का फल अक्षय होताहै। दशाश्वमेध नामक तीर्थ में एवं पंचाश्वमेध नामक तीर्थ मे श्राद्ध करने पर दश अथवा पांच अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।४५-४५½।।

हयशिर नामका भी शीघ्र वर प्रदान करने वाला विख्यात तीर्थ है। जहाँ दिया गया श्राद्ध सदा अक्षय होता है और श्राद्ध देने वाला स्वर्ग मे आनन्द प्राप्त करता है।।४५½-४६½।। सुन्द और निसुन्द में दिया गया श्राद्ध पाप को मारने वाला होता है। वहाँ पर दिया गया श्राद्ध और जप हवन और तप सब अक्षय कहा गया है।।४६½-४७½।। अजतुङ्ग नाम के शुभ तीर्थ में निरन्तर पितरों का तर्पण करना चाहिये। जहाँ कि पर्वो (त्योहारों होली दिवाली रक्षाबन्धन दशहरा आदि में) नित्य देवताओं की छाया दिखायी देती है, जहाँ पृथ्वी पर इस तीर्थ का श्राद्ध अक्षय बतलाया गया है। जहाँ कि वृक्ष रोग दूर करने वाले हैं। (वा. पु. जहाँ पर पाण्डव रोगहीन हुए थे)।।४७½-४९।।

सभी प्रकार के पाप कर्मो मे अलग रहने वाले योगेश्वरों द्वारा अच्छी तरह सेवित उस परम पवित्र तीर्थ में जो लोग श्राद्ध करते हैं, उसका फल बतला रहा हूँ।।५०।। उस परम पवित्र तीर्थ मे साक्षात् पूजित होकर पितरगण सदा प्रसन्न रहते हैं। इस लोक में जो इन्द्रियों को वश में रखने वाला है, वह मृत्यु के बाद स्वर्ग मे आनन्द का अनुभव करता है।।५१।। वहाँ पर प्रायः परम पवित्र शिव नाम का एक ह्रद (तालाब) है, वहीं पर दिव्यगुणयुक्त व्याससर एवं ब्रह्मसर नामक दो सरोवरों की स्थिति है।।५२।। अर्ज्जत नामक पर्वत भी वहीं पर है, जिस पर बड़े-बड़े योगीश्वर निवास करते हैं। महात्मा वशिष्ठ का पुण्य आश्रम भी वहीं पर है।।५३।।

ऋग्यजुःसामशिरसः कपोताः पुष्पसाह्वयाः।
आख्यान पंचमा वेदाः सृष्टा ह्येते स्वयंभुवा॥५४॥
गत्वैतान्मुच्यते पापाद्विजो वह्निं समाश्रयन्। श्राद्धं चानंत्यमेतेषु जपहोमतपांसि च॥५५॥
पुंडरीके महातीर्थे पुंडरीकसमं फलम्। ब्रह्मतीर्थे महाप्राज्ञ सर्वयज्ञसमं फलम्॥५६॥
सिंधुसागरसंभेदे तथा पंचनदे क्षयम्। विरजायां तथा पुण्यं मद्रवायां च पर्वते॥५७॥
देयं सप्तनदे श्राद्धं मानसे वा विशेषतः। महाकूटे ह्यनंते च गिरौ त्रिककुदे तथा॥५८॥
संध्यायां च महानद्यां दृश्यते मह्द्भुतम्। अश्रद्दधानं नाभ्येति सा चाभ्येति धृतव्रतम्॥५९॥
संश्रयित्वैकमेकेन सायाह्नं प्रति नित्यशः। तस्मिन्देयं सदा श्राद्धं पितॄणामक्षयार्थिनाम्॥६०॥
कृतात्मा वाकृतात्मा च यत्र विज्ञायते नरः। स्वर्गमार्गप्रदं नाम तीर्थं सद्यो वरप्रदम्॥६१॥
चीराण्युत्सृज्य यस्मिंस्तु दिवं सप्तर्षयो गताः।
अद्यापि तानि दृश्यंते चीराण्यंभोगतानि तु॥६२॥
स्नात्वा स्वर्गमवाप्नोति तस्मिंस्तीर्थोत्तमे नरः। ख्यातमायतनं तत्र नंदिनः सिद्धसेवितम्॥६३॥
नंदीश्वरस्य सा मूर्त्तिर्निराचारैर्न दृश्यते। दृश्यन्ते कांचना यूपास्त्वर्चिषो भास्करोदये॥६४॥
कृत्वा प्रदक्षिणं तांस्तु गच्छंत्यानंदिता दिवम्। सर्वतश्च कुरुक्षेत्रं सुतीर्थं तु विशेषतः॥६५॥

इन्ही तीर्थों के मध्यभाग में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद का सिर स्वरूप कपोत अथवा पुष्प नामक तीर्थ की रचना भगवान् ब्रह्मा ने की है, जो पाँचवें वेद के नाम से विख्यात है। इन पावन तीर्थों की यात्रा कर ब्राह्मण सनातन अग्नि की भाँति तेजस्वी होकर पाप से मुक्त हो जाता है। इसमें श्राद्ध का कभी न अन्त होने वाला माहात्म्य वर्णित किया गया है। जप हवन एवं तपस्या के लिये भी इसका अनन्त फल कहा गया है।।५४-५५।। पुण्डरीक महातीर्थ में पुण्डरीक (कमल) के समान फल है, ब्रह्मतीर्थ में हे महाप्रज्ञ! सभी प्रकार के यज्ञों का फल प्राप्त होता है।।५६।। सिन्धु सागर सम्भेद तथा पंचनद तीर्थ में अक्षय फल की प्राप्ति होती है। विरजा और मद्रवा भी पर्वत पर पुण्यतीर्थ हैं।।५७।। सप्तनद तीर्थ में और विशेषतः मानस तीर्थ में श्राद्ध करना चाहिये। महाकूट अनन्त एवं त्रिककुद पर्वत पर श्राद्ध करना चाहिये।।५८।।

सन्ध्या के समय महानदी में अद्‌भुत दृश्य दिखायी देता है। वह दृश्य श्रद्धा न रखने वालों को देखने में नहीं मिलता है तथा जिन्होंने व्रत को धारण कर लिया है, वे ही श्रद्धालु पुरुष उस अद्भुत दृश्य को देख पाते हैं।।५९।। वहाँ पर एक के द्वारा एक का सहारा लेकर दिन के सायङ्काल में नित्यप्रति पितरों से अक्षय फल की कामना रखने वाले को उस महानदी में श्राद्ध देना चाहिये।।६०।। यहाँ पर पुण्यात्मा और पापात्मा मनुष्य जान लिये जाते हैं। वहाँ पर स्वर्गमार्ग को प्रदान करने वाला तथा शीघ्र वर प्रदान करने वाला तीर्थ है।।६१।। जिस तीर्थ में सप्तर्षिगण अपने वस्त्र छोड़कर चले गये थे। आज भी उनके विना भोगगत वस्त्र दिखायी देते हैं।।६२।। उस उत्तमतीर्थ में स्नान करके मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है। वहाँ पर सिद्धगणों से सेवित, शिवभक्त नन्दिकेश्वर का प्रसिद्ध घर है।।६३।। नन्दिकेश्वर की वह मूर्ति दुराचार करने वालों को नहीं दिखायी देती। वहाँ पर सूर्योदय के समय सूर्य की किरणों से सोने के खम्भे दिखाई देते हैं।।६४।। उन खम्भों की परिक्रमा कर मनुष्य आनन्दित होकर स्वर्ग को चला जाता है। चारों ओर विशेषरूप से सबसे अच्छा तीर्थ कुरुक्षेत्र है।।६५।।

पुण्यं सनत्कुमारस्य योगेशस्य महात्मनः।
कीर्त्यंते च तिलान्दत्त्वा पितृभ्यो वै सदाक्षयम्॥६६॥
उक्तमेवाक्षयं श्राद्धं धर्मराजनिषेवितम्। श्राद्धं दत्तममावास्यां विधिना च यथाक्रमम्॥६७॥
पुंसः सन्निहितायां तु कुरुक्षेत्रे विशेषतः। अर्चयित्वा पितृंस्तत्र स पुत्रस्त्वनृणो भवेत्॥६८॥
सरस्वत्यां विनशने प्लक्षप्रश्रवणे तथा। व्यासतीर्थे दृषद्वत्यां त्रिप्लक्षे च विशेषतः॥६९॥
देवमोंकारपवने श्राद्धमक्षयमिच्छता। शक्रावतारे गंगायां मैकाने च नगोत्तमे॥७०॥
यमुनाप्रभवे चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते। अत्युष्णाश्चातिशीताश्च आपस्तस्मिन्त्रिदर्शनम्॥७१॥
यमस्य भगिनी पुण्या मार्त्तंडदुहिता शुभा। तत्राक्षयं सदा श्राद्धं पितृभिः पूर्वकीर्त्तितम्॥७२॥
ब्रह्मतुंडह्रदे स्नात्वा सद्यो भवति ब्राह्मणः। तस्मिंस्तु श्राद्धमानंत्यं जपहोमतपांसि च॥७३॥
स्थाणुभूतोऽचरत्तत्र वसिष्ठो वै महातपाः। अद्यापि तत्र दृश्यंते पादपा मणिबर्हणाः॥७४॥
तुला तु दृश्यते तत्र धर्माधर्मनिदर्शिनी। यथा वै तोलितं विप्रैस्तीर्थानां फलमुत्तमम्॥७५॥
पितृणां दुहिता योगा गंधकालीति विश्रुता। चतुर्थो ब्रह्मणस्त्वंशः पराशरकुलोद्भवः॥७६॥
व्यासिष्यति चतुर्द्धा वै वेदं धीमान्महामुनिः। महायोगं महात्मानं या व्यासं जनयिष्यति॥७७॥
अच्छोदकं नाम सरस्तत्राच्छोदासमुद्भवः। मत्स्ययोनौ पुनर्जाता नियोगात्कारणेन तु॥७८॥

जो कुरुक्षेत्र योगेश्वर महात्मा सनत्कुमार का पुण्यतीर्थ है, जहां पर तिलों का दान करके पितरो को सदा के लिये अक्षय तृप्ति दी जाती है।।६६।। वहाँ पर धर्मराज युधिष्ठिर से सेवित उस तीर्थ में किया गया श्राद्ध अक्षय फल देने वाला होता है। वह विधिपूर्वक और यथाक्रम दिया गया श्राद्ध फलदायी होता है।।६७।। विशेषतया कुरुक्षेत्र के समीप निवास करने वालो के लिये तो वह परमपवित्र है। सुपुत्र अपने पितरों की पूजा करके पितृऋण से मुक्त हो जाता है।।६८।। प्लक्ष प्रश्रवण तीर्थ पर विना भोजन किये हुएसरस्वती नदी के जल में व्यास तीर्थ में हषद्वती नदी के जल में तीन पाकड़ के पेड़ों मे अक्षय ओंकार पवन में श्राद्ध की इच्छा करने वाले श्राद्ध करे। शक्रावतार तीर्थ पर गङ्गा में और पर्वतो में उत्तम मैनाक पर्वत पर श्राद्ध के इच्छुक व्यक्तियों को श्राद्ध करना चाहिये।।६९-७०।। यमुना की उत्पत्ति स्थल पर (यमनोत्री) पर श्राद्ध करने वाला मनुष्य सव पापों से मुक्त हो जाता है। वहाँ का अत्यधिक उष्ण (गर्म) तथा अत्यधिक शीतल जल ही इसका प्रमाण है।।७१।।

यह परम पवित्र यमुना यम की भगिनी और मार्तण्ड की पुत्री हैं। उसमें किया गया श्राद्ध अक्षयफलदायी होता है। ऐसा पूर्वकालीन पितरों ने कहा है।।७२।। ब्रह्मतुण्ड नामक तालाव में स्नान करके मनुष्य शीघ्र ब्राह्मण हो जाता है। उसमें जप, तप, होम और श्राद्ध का फल अनन्त होता है।।७३।। महातपस्वी महर्षि वशिष्ठ स्थाणु रूप में वहां विचरण करते हैं और आज भी वहाँ मणियों से चित्रित वृक्षों की पंक्तियां दिखायी देती हैं।।७४।। वहाँ परधर्म और अधर्म को बताने वाली एक तुला दिखायी देती है। ब्राह्मणों के कथनानुसार जिस पर तुलकर तीर्थों के उत्तम फल की प्राप्ति होती है।।७५।। पितरों की योगपरायणा कन्या गन्धकाली इस नाम से विशेष प्रसिद्ध है। भगवान् ब्रह्मा चतुर्थ अंशस्वरूप महर्षिपराशर के कुल में पैदा हुए परम बुद्धिमान् महामुनि व्यासदेव हैं, जिन्होंने एक वेद का विस्तार कर उसके चार भाग कर दिये। वह गन्धकाली महायोगी महात्माव्यास को उत्पन्न करेगी।।७६-७७।। वहीं पर अच्छोदा नदी से उत्पन्न अच्छोदक नाम का सरोवर है। जहाँ कि वह गन्धकाली नियोग के कारण से मत्स्ययोनि में पुनः उत्पन्न

तस्यास्त्वाद्याश्रमे पुण्ये पुण्यकृद्भिर्निषेविते। दत्तं सकृदपि श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम्॥७९॥
नद्यां योगसमाधानं दत्तं युगपदुद्भवेत्। कुबेरतुंगे पापघ्ने व्यासतीर्थे तथैव च॥८०॥
पुण्यायां ब्रह्मणो वेद्यां श्राद्धमानंत्यमिष्यते।
सिद्धैस्तु सेविता नित्यं दृश्यते तु कृतात्मभिः॥८१॥
अनिवर्तनं तु नंदायां वेद्याः प्रागुत्तरादिशि। सिद्धिक्षेत्रं सुरैर्जुष्टं यत्प्राप्य न निवर्त्तते॥८२॥
महालये पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता। भूतानामनुकंपार्थं नास्तिकानां निदर्शनम्॥८३॥
विरजे त्वक्षयं श्राद्धं पूर्वमेव महालये। नंदायां विरजे चैव तथैव च महालये॥८४॥
आत्मानं तारयंतीह दशपूर्वान्दशापरान्। काकह्लदे जातिस्मर्यं सुवर्णमतितौजसम्॥८५॥
कौमारं च सरः पुण्यं नागभोगाभिरक्षितम्। कुमारतीर्थे स्नात्वा तु त्रिदिवं याति मानवः॥८६॥
देवालये तपस्तप्त्वा एकपादेन दुश्चरम्। निराहारो युगं दिव्यमुमातुंगे स्थितो ज्वलन्॥८७॥
उमातुंगे भृगोस्तुङ्गे ब्रह्मतुंगे महालये। तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यमक्षयमिच्छता॥८८॥
अक्षयं तु सदा श्राद्धं शालग्रामे समंततः। दुष्कृतं दृश्यते तत्र प्रत्यक्षमकृतात्मनाम्॥८९॥
प्रत्यादेशो ह्यशिष्टानां शिष्टानां च विशेषतः। तत्र देवह्लदः पुण्यो ब्रह्मणो नागराट् शुचिः॥९०॥

हुई।।७८।। उसके पुण्य आसन में वहाँ पर पुण्य करने वाले जन सदा निवास करते हैं। वहाँ पर एक बार भी दिया गया श्राद्ध अक्षय हो जाता है। ऐसा माना गया है।।७९।। उस नदी में श्राद्धदान करने से योग और समाधि की एक साथ उद्भावना होती है। कुबेरतुङ्ग और पाप को नष्ट करने वाले व्यासतीर्थ पर ब्रह्मा की पुण्य वेदी में किया गया श्राद्ध अनन्त और अक्षय फलदायी होता है। उस स्थान से पूर्वोत्तर दिशा में पुण्यात्मा सिद्धजनों से सेवित नन्दा नाम की नदी बहती है, जिसमें श्राद्धादि (पिण्डदान) करने से पुनर्जन्म नहीं होता। वह देवों से पूजित सिद्धि क्षेत्र है, जिसको प्राप्त कर मुनष्य फिर इस मर्त्यलोक में जन्म नहीं लेता।।८०-८२।। जहाँ पर उस महालय मे परम बुद्धिमान् महादेव ने अपना चरण रखा था। वह स्थान प्राणियों पर अनुकम्पा के लिये है और वेद को और ईश्वर को न मानने वाले लोगों के लिये वह एक निदर्शन है अर्थात् वहाँ का सौन्दर्य और चमत्कार देखकर नास्तिक भी भगवान् को मानने को विवश हो जाता है।।८३।।

विरज में श्राद्ध का फल अक्षय होता है, उसी तरह उस महालय मे किया गया श्राद्ध भी अक्षय होता है, जिस प्रकार नन्दा में और विरज में श्राद्ध का फल अक्षय अर्थात् अविनाशी होता है, उसी प्रकार महालय में किया गया श्राद्ध भी अक्षय होता है।।८४।। यहाँ श्राद्ध करने वाला मनुष्य अपने को तो तारता ही है, साथ ही अपनी पीढ़ी के दश पूर्व वालों और दश बाद वालों का भी उद्धार कर देता है। काकह्रद में जाति से स्मरण करने योग्य स्वर्ण के समान अमित तेजस्वी नागों और सर्पो से रक्षित कौमार नामक पुण्य सरोवर है, जहाँ कुमार तीर्थ में स्नान कर मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होता है।।८५-८६।। वहां देवालय में भगवान् महादेव ने एक चरण पर खड़े होकर कठोर तपस्या की थी, वहाँ उमातुङ्ग में नीहार (बर्फ) और जल एक देवयुग से स्थित हैं।।८७।। उस उमातुङ्ग, भृगुतुङ्ग, ब्रह्मतुङ्ग, महालय में अक्षय फल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को नित्यश्राद्ध कर्म करना चाहिये।।८८।। शालग्राम में सभी प्रकार से दिया गया श्राद्ध सदैव अक्षयफलदायक होता है। वहाँ पर पापियों को अपना पाप प्रत्यक्ष दिखायी देता है।।८९।। तथा वहाँ जो शिष्टाचार हीन मनुष्य हैं, उनको तथा जो शिष्ट (सभ्य सज्जन) हैं, उनको विशेष रूप से

पिंडं गृह्णाति हि सतां न गृह्णात्यसतां सदा। अतिप्रदीप्तैर्भुजगैर्भोक्तुमन्नं न शक्यते॥९१॥
प्रत्यक्षं दृश्यते धर्मस्तीर्थयोर्नतयोर्द्वयोः। कारवत्यां च शांडिल्यां गुहायां वामनस्य च॥९२॥

गत्वा चैतानि पूतः स्याच्छ्राद्धमक्षयमेव च।
जपो होमस्तपो ध्यानं यत्किंचित्सुकृतं भवेत्॥९३॥

ब्रह्मचर्यं च यो धत्ते गुरुभक्तिं शतं समाः। एवमाद्यास्सरिच्छ्रेष्ठा यत्स्नानादघमोक्षणम्।

कुमारधारा तत्रैव दृष्ट्वा पापं प्रणश्यति॥९४॥
ध्यानासनं तु तत्रैव व्यासस्याद्यापि दृश्यते।
शैलः कांतिपुराभ्याशे प्रागुदीच्यां दिशि स्थितः॥९५॥
पुण्या पुष्करिणी तत्र किरातगणरक्षिता।
यस्यां स्नात्वा सकृद्विप्रः कामानाप्नोति शाश्वतान्॥९६॥
अदृश्यः सर्वभूतानां देववच्चरते महीम्॥९७॥

काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुतम्। तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यमक्षयमिच्छता॥९८॥
देवदारुवने वाऽपि धारायास्तु निदर्शनम्। निर्धूतानि तु पापानि दृश्यंते सुकृतात्मनाम्॥९९॥
भागीरथ्यां प्रयागे तु नित्यमक्षयमुच्यते। कालंजरे दशार्णायां नैमिषे कुरुजांगले॥१००॥
वाराणस्यां नगर्यां च देयं श्राद्धं प्रयत्नतः। तत्र योगेश्वरो नित्यं तस्यां दत्तमथाक्षयम्॥१०१॥

प्रत्यादेश प्राप्त होता है। अर्थात् वहाँ शिष्टों को उत्साह और अशिष्टों को हताशा अवश्य होती है। वहाँ पर नागराज, ब्रह्मा का पवित्र एवं पुण्य देव नामक ह्रद (तालाब) है।।९०।। वह देव नामक ह्रद सज्जनो (धर्मात्माओं) के पिण्ड को सदा ग्रहण करता है तथा दुर्जनों (पापियों) के पिण्ड को नहीं ग्रहण करता। अत्यन्त प्रदीप्त सर्पो द्वारा वहाँ अन्न नहीं खाया जा सकता है।।९१।। उन दोनों झुके हुए तीर्थो में धर्म प्रत्यक्ष दिखायी देता है। वामनकी कारवती और शाण्डिली गुफा मे जाकर श्राद्ध पवित्र और अक्षय हो जाता है। वहाँ पर किया गया जप, होम, तप और ध्यान जो कुछ भी हो, वह सब सुकृत (शुभकर्म) हो जाता है।।९२-९३।। वहाँ पर ब्रह्मचर्य में रत रहने वाले गुरुभक्त, विद्यार्थीगण सैंकड़ों वर्षो तक यज्ञादि का अनुष्ठान करते रहते हैं। जहाँ पर नदियो में श्रेष्ठ नदियों की पहली धारा है, जिसमें स्नान करने से मनुष्य की पाप से मुक्ति हो जाती है। वहीं कुमारधारा है, जिसे देखते ही पाप नष्ट हो जाते हैं।।९४।। वहाँ पर महामुनि वेदव्यास के ध्यान लगाने का आसन आज भी दिखायी देता है।।९४½।।

शैल कान्ति नामक तीर्थ है, जो पूर्वोत्तर दिशा में स्थित है। वहाँ पुण्यशाली पुष्करिणी है, जो किरातगणों से रक्षित है, जिसमें एक वार स्नान करके ब्राह्मण निरन्तर मनोऽभिलाषाओं को पूर्णतः प्राप्त करते हैं। अर्थात् सदैव उनके मनोरथ पूर्ण होते हैं।।९४½-९६।। सब प्राणियो के अदृश्य रूप वहाँ पृथ्वी पर देवों के समान विचरण करते हैं।।९७।। वहाँ पर महर्षि काश्यप का महातीर्थ काल सर्पिष् है, ऐसा सुना गया है। वहाँ पर नित्य अक्षय फल चाहने वाले यजमान को श्राद्धकर्म करना चाहिये।।९८।। अथवा देवदारु वन में भी धारा का निदर्शन है अर्थात् देवदारुवन में भी नदी की धारा दिखायी देती है। जहाँ पर अच्छे कर्म करने वालों के पाप नष्ट होते देखे जाते हैं।।९९।। भागीरथी (गङ्गा) नदी में प्रयाग में श्राद्धकर्म नित्य अक्षय फल देने वाला कहा जाता है। उसी तरह कालंजर में दशार्णा में नैमिषारण्य मे कुरु जाङ्गल में और वाराणसी नगरी में प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध दान करना चाहिये। वहाँ पर योगेश्वर भगवान्

गत्वा चैतानि पूर्तः स्याच्छ्राद्धमक्षय्यमेव च।
जपो होमस्तथा ध्यानं यत्किंचित्सुकृतं भवेत्॥१०२॥

लौहित्ये वैतरण्यां च स्वर्गवेद्यां तथैव च। सा तु देवी समुद्रांते दृश्यते चैव नामभिः॥१०३॥
गयायां धर्मपृष्ठे तु सरसि ब्रह्मणस्तथा। गयां गृध्रवटे चैव श्राद्धं दत्तं महाफलम्॥१०४॥
हिमं च पतते तत्र समंतात्पंचयोजनम्। भरतस्याश्रमे पुण्येऽरण्यं पुण्यतमं स्मृतम्॥१०५॥
मंतगस्य वनं तत्र दृश्यते सर्वमानुषैः। स्थापितं धर्मसर्वस्वं लोकस्यास्य निदर्शनम्॥१०६॥
यद्दंडकवनं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्। यस्मिन्प्राहुर्विशल्येति तीर्थं सद्यो निदर्शनम्॥१०७॥

तुलामानैस्तथा चापि शास्त्रैश्च विविधैस्तथा।
उन्मज्जंति तथा लग्ना ये वै पापकृतो जनाः॥१०८॥
तृतीयायां तथा पादे निराधायां तु मण्डले।
महाह्रदे च कौशिक्यां दत्तं श्राद्धं महाफलम्॥१०९॥

मुंडपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता। बहुदेवयुगांस्तप्त्वा तपस्तीव्रं सुदुश्चरम्॥११०॥
अल्पेनाप्यत्र कालेन नरो धर्मपरायणः। पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः॥१११॥
सिद्धानां प्रीतिजननं पापानां च भयंकरम्। लेलिहानैर्महाघोरै रक्ष्यते सुमहोरगैः॥११२॥
नाम्ना कनकनंदीति तीर्थं जगति विश्रुतम्। उदीच्यां मुंडपृष्ठस्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥११३॥

शंकर नित्य अक्षय फल प्रदान करते हैं।।१००-१०१।। इन उपयुक्त तीर्थों में श्राद्ध करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है और उसे अक्षय फल प्राप्त होता है। वहाँ पर जप होम तथा ध्यान जो कुछ भी किया जाये वह अच्छा कर्म ही होता है। उसका फल अच्छा ही होता है। लौहित्य में और वैतरणी उसी प्रकार स्वर्गवेदी में वह गङ्गा भागीरथी देवी समुद्र के अन्त तक भागीरथी नाम से देखी जाती हैं।।१०२-१०३।। गया में धर्म की पीठ पर ब्रह्मसार में (फल्गू नदी) में तथा गया में गृध्रवट पर दिया गया श्राद्ध महाफलदायक होता है।।१०४।। जहाँ पर चारों ओर पांच योजन तक हिम (बर्फ गिरता है) वहाँ भरत के पुण्य आश्रम में एक पुण्यतम अरण्य स्मरण किया गया है। वहाँ पर मतंग का वन सब मनुष्यों द्वारा देखा जाता है। जो इस संसार के निदर्शन केरूप धर्मसर्वस्व को स्थापित करता है अर्थात् मुनि यहाँ पर धर्म का सब कुछ निदर्शन है। वास्तव में यही पर सब धर्म दिखायी देता है।।१०४-१०६।।

वहाँ पुण्य कर्म करने वालों द्वारा सेवित जो पुण्य दण्डक वन है, जिसमे विशल्य इस नाम का तीर्थ है, जो शीघ्र निदर्शन है अर्थात् शीघ्र धर्म का फल देने वाला है।।१०७।। जो पापी मनुष्य होते हैं, वे वहाँ तुलामान चाप और विविधशास्त्रों समेत लग्न आने पर डुबकी लगाते हैं।।१०८।। तृतीया में पाद में अथवा निराधा में, मण्डल में, महाह्रद (महातालाब) मे दिया गया श्राद्ध महाफलदायक होता है।।१०९।। परमबुद्धिमान् महादेव ने मुण्डपृष्ठ में अपना पदन्यास किया था, वहाँ पर उन्होंने बहुत दिव्य युगों तक सुदुश्चर और तीव्र तप किया था। जहाँ थोड़े ही समय में धर्मपरायण मनुष्य शीघ्र पाप को छोड़ देता है, जिस प्रकार कि सर्प पुरानी केंचुली को छोड़ देता है।।११०-१११।। जो सिद्धपुरुषों को प्रेम पैदा करने वाला है और पापियों के लिये भय पैदा करने वाला है तथा वह जीभ लपलपाते हुए महाघोर सर्पों द्वारा रक्षा किया जाता है।।११२।। कनकनन्दी इस नाम से संसार में तीर्थ विशेष रूप से सुना जाता है, जो मुण्डपृष्ठ के उत्तर मे ब्रह्मर्षिगणों से सेवित है।।११३।।

तत्र स्नात्वा दिवं यांति स्वशरीरेण मानवाः। दत्तं वापि सदा श्राद्धमक्षय्यं समुदाहृतम्॥११४॥
ऋणैस्त्रिभिस्ततः स्नात्वा निष्क्रीणाति नरस्तनुम्।
मानसे सरसि स्नात्वा श्राद्धं निर्वर्त्तयेत्तत;॥११५॥
तीरे तु सरसस्तस्य देवस्यायतनं महत्। आरुह्य तु जपंस्तत्र सिद्धो याति दिवं तत;॥११६॥
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्। स्नात्वा तस्मिन्सरश्रेष्ठे दृश्यते महदद्भुतम्॥११७॥
दिवश्च्युता महाभागा ह्यंतरिक्षे विराजते। गंगा त्रिपथगा देवी विष्णुपादाच्च्युता सती॥११८॥
आकाशे दृश्यते तत्र तोरणं सूर्यसन्निभम्। जांबूनदमयं पुण्यं स्वर्गद्वारमिवायतम्॥११९॥
ततः प्रवर्त्तते भूयः सर्वसागरमंडिका। पावनी सर्वभूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः॥१२०॥
चन्द्रभागा च सिंधुश्च शुभे मानससंभवे। सागरं पश्चिमं यातो दिव्यः सिंधु नदो वरः॥१२१॥
पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः। आयतो वै सहस्राणि योजनानां बहूनि तु॥१२२॥
सिद्धचारणसंकीर्णा देवर्षिगणसेविता। तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्णा नाम नामतः॥१२३॥
दशवर्षसहस्राणि तस्यां स्नातस्तु जीवति। श्राद्धं भवति चानंतं तत्र दत्तं महोदयम्॥१२४॥
तारयेच्च सदा श्राद्धे दशपूर्वान्दशापरान्। सर्वत्र हिमवान्पुण्यो गंगा पुण्या समंततः॥१२५॥
समुद्रगाः समुद्राश्च सर्वे पुण्याः समंततः। एवमादिषु चान्येषु श्राद्धं निर्वर्तयेद्बुधः॥१२६॥

वहाँ स्नान करके शरीर सहित मनुष्य स्वर्ग को चले जाते हैं। वहाँ पर दिया गया श्राद्ध सदा अक्षय फलदायक बताया गया है। उसके बाद तीनों ऋणो मातृऋण, पितृऋण और ऋषिऋण तीनो से मनुष्य उऋण हो जाता है और फिर मनुष्य का शरीर निष्क्रिय हो जाता है। मानसरोवर में स्नान करके उसके बाद श्राद्ध का निवर्तन करना चाहिये। उस मानसरोवर के तीर पर देवाधिदेव महादेव का महान् आयतन (घर) है, जिस पर चढ़कर जप करने वाला मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है।।११६।। मानसरोवर के उत्तर की ओर जाकर मनुष्य अत्यन्त उत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है। उस श्रेष्ठ सरोवर मे स्नान करके तो महान् अद्भुत आश्चर्य दिखायी देता है।।११७।। वहाँ स्वर्ग से गिरती हुई महाभागा त्रिपथगा गंगा विष्णुपद से निकलती हुई अन्तरिक्ष में शोभित होती हैं।।११८।। वहाँ आकाश में स्वर्ग के द्वार के समान फैला हुआ सूर्य की आभा के समान जाम्बूनद से युक्त पुण्यतोरण दिखायी देता है।।११९।।

उसके सब सागर को शोभित करने वाली विशेषतः सब धर्मज्ञ प्राणियों को पवित्र करने वाली।।१२०।। चन्द्रभागा नदी और सिन्धु नदी मानसरोवर से उत्पन्न होकर पश्चिम सागर में जाती है, दिव्य श्रेष्ठ सिन्धु भी पश्चिम सागर में गिरती है।।१२१।। हिमवान् नामक पर्वत अनेकों प्रकार की धातुओं से विभूषित है। वह बहुत से हजारों योजन लम्बा फैला हुआ है।।१२२।। वहाँ उस हिमालय के पास सिद्धों और चारणों से घिरी हुई देवताओं और ऋषियों से सेवित सुषुम्णा नाम की रमणीक पुष्करिणी (झरणी) है। जिसमे स्नान कर मनुष्य दश हजार वर्ष तक जीवित रहता है तथा वहीं पर दिया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक और महोदय (महान् उन्नति कराने वाला) होता है।।१२३-१२४।। उसमें श्राद्ध करने पर सदा दश पूर्व के और दश बाद के पुरुखो का उद्धार हो जाता है। सभी जगह हिमालय पुण्य है और सब ओर गंगा पुण्य है।।१२५।। सब समुद्र में जाने वाली नदियां और सब ओर समुद्र पुण्य है। इस प्रकार इन स्थानों में अन्य स्थानों में विद्वानों को श्राद्ध करने चाहिये। इन समुद्र की ओर जाने वाली नदियों और स्वयं

पूतो भवति वै स्नात्वा हुत्वा दत्त्वा तथैव च। शैलसानुषु शृंगेषु कंदरेषु गुहासु च॥१२७॥
उपह्वरनितंबेषु तथा प्रस्रवणेषु च। पुलिनेष्वापगानां च तथैव प्रभवेषु च॥१२८॥
महोदधौ गवां गोष्ठे संगमेषु वनेषु च। सुसंमृष्टोपलिप्तेषु ह्रद्येषु सुरभिष्वथ॥१२९॥
गोमयेनोपलिप्तेषु विविक्तेषु गृहेषु च। कुर्याच्छ्राद्धमथैतेषु नित्यमेव यथाविधि॥१३०॥
प्रागदक्षिणां दिशं गत्वा सर्वकामचिकीर्षया। एवमेतेषु सर्वेषु श्राद्धं कुर्यादतंद्रितः॥१३१॥
एतेष्वेव तु मेधावी ब्राह्मीं सिद्धिमवाप्नुयात्। त्रैवर्णविहितैः स्थाने धर्मे वर्णाश्रमे रतः॥१३२॥
कोपस्थानं च संत्यागात्प्राप्यते पितृपूजनम्। तीर्थान्यनुसरन्वीरः श्रद्दधानः समाहितः॥१३३॥

कृतपापोऽपि शुध्येत किं पुनः शुभकर्मकृत्।
तिर्यग्योनिं न गच्छेच्च कुदेशे च न जायते॥१३४॥
स्वर्गी भवति विप्रो वै मोक्षोपायं च विंदति।
अश्रद्दधानः पापायुर्नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः॥१३५॥

हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थे फलभागिनः। गुरुतीर्थे परा सिद्धिस्तीर्थानां परमं पदम्॥१३६॥

समुद्रों में स्नान करके वहाँ हवन करके और दान देकर मनुष्य पवित्र हो जाता है।।१२६-१२६½।। पर्वत की चोटियों पर, पर्वत की कन्दराओं में और पर्वत की गुफाओं में, पर्वतों की उपत्यकाओं में, झरनों के पास में, नदियों के पुलों पर, उसी प्रकार नदियों के उत्पत्ति स्थान पर, महासमुद्रों के तटों पर, गौओं की गोशालाओं मे, नदियों के संगम पर, वनो में लिपीपुती भूमियों पर, गोबर से लिपे हुए एकान्त घरो में, इन सब स्थानों पर विधिपूर्वक नित्य ही श्राद्ध करना चाहिये।।१२६½-१३०।। पूर्वदक्षिण की दिशा मे सब कामनाओं को पूर्ण करने की इच्छा से इस प्रकार उपर्युक्त सभी स्थानों में आलस्य न करके श्राद्ध करना चाहिये।।१३१।। इन सभी में ही श्राद्ध करके बुद्धिमान् मनुष्य ब्राह्मी सिद्धि को प्राप्त करे।।१३१½।। क्रोध आदि को सब प्रकार के छोड़ने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णाश्रम धर्म मे रत लोगों द्वारा पितरों का पूजन किया जाता है। अर्थात् जो वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले सवर्ण हैं, उन्हीं के द्वारा पितरों का पूजन किया जाना चाहिये।।।१३१½-१३२½।।

पापी मनुष्य भी उपर्युक्त पवित्र तीर्थों में जाकर श्रद्धा रखता हुआ समाहित चित्त होकर श्राद्ध करे, तो शुद्ध हो जाता है। तब शुभ कर्म करने वालो के लिये तो कुछ कहना ही नहीं है। इन तीर्थों में श्राद्ध करने वाला ब्राह्मण तिर्यक् योनि में कभी जन्म नहीं लेता है और न बुरे स्थानों में उसका जन्म होता है। वरन् वह स्वर्ग प्राप्त करता है तथा उसके मोक्ष के उपाय सरल हो जाते हैं।।१३२½-१३४½।। श्राद्धों मे श्रद्धा न रखने वाला पापात्मा, नास्तिक, जिसका सन्देह नहीं दूर हुआ है, यथार्थ सन्देह करने वाला तथा सभी कार्यों में कारण खोजने वाला व्यक्ति, ये पाँचों तीर्थों में फल प्राप्त करने के अधिकारी नहीं होते।।१३४½-१३५½।। गुरुतीर्थ में परासिद्धि प्राप्त होती है, वह सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है, उससे भी श्रेष्ठ तीर्थ ध्यान है, यह ध्यान साक्षात् ब्रह्मतीर्थ है, इसका कभी विनाश नहीं होता। यहाँ सब कुछ वर्णन करने के बाद पुराणकार ने यह कह दिया कि सबसे बड़ा गुरुतीर्थ है अर्थात् गुरु का आदर सत्कार करना परासिद्धि अर्थात् अलौकिक सफलता प्राप्त कराने वाला है। वास्तविकता है कि जिसने ज्ञान दिया, वही मानव को सब प्रकार से सफल बनाने वाला है तथा यह गुरुपूजा सब तीर्थों में परमश्रेष्ठ है।।१३४½-१३५½।। उससे आगे कहते हैं कि उस गुरुतीर्थ से भी बड़ा ध्यान लगाना तीर्थ है। अर्थात् गुरु से ज्ञान तो प्राप्त कर लिया; परन्तु उस पर

ध्यानं तीर्थं परं तस्माद्ब्रह्मतीर्थं सनातनम्। उपवासात्परं ध्यानमिंद्रियाणां निवर्त्तनम्॥१३७॥
उपवासनिबद्धैर्हि प्राणैरेव पुनः पुनः। प्राणापानौ वशे कृत्वा वशगानींद्रियाणि च॥१३८॥
बुद्धिं मनसि संयम्य सर्वेषां तु निवर्त्तनम्। प्रत्याहारं कृतं विद्धि मोक्षोपायमसंशयम्॥१३९॥
इंद्रियाणां मनो घोरं बुद्ध्यादीनां विवर्त्तनम्। अनाहारो क्षयं याति विद्यादनशनं तपः॥१४०॥
निग्रहे बुद्धिमनसोरन्यबुद्धिर्न जायते। क्षीणेषु सर्वदोषेषु क्षीणेष्वेवेंद्रियेषु च॥१४१॥
परिनिर्वाति शुद्धात्मा यथा वह्निरनिंधनः।
कारणेभ्यो गुणेभ्यश्च व्यक्ताव्यक्ताश्च कृत्स्नशः॥१४२॥

ध्यान नहीं दिया तो गुरु ज्ञान व्यर्थ है, उससे आगे कहते हैं कि उससे भी महान् ब्रह्मतीर्थ अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति है; क्योंकि ध्यान से ही ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। यहाँ ब्रह्म की प्राप्ति को मैं व्यावहारिक जगत् में किसी भी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति मानता हूँ; क्योंकि व्यक्ति को कुछ भी बनने के लिए पहले गुरु कृपा की तथा फिर ध्यान की आवश्यकता है। अर्थात् जिस विद्या या लक्ष्य को आप प्राप्त करना चाहते हैं, उसे पहले गुरु से सीखिये, पढ़िये फिर घर आकर उस पर ध्यान लगाइये, तब निश्चित ही ब्रह्म रूप लक्ष्य अवश्य प्राप्त हो जायेगा। तब तो वह चाहे वैज्ञानिक बनने का लक्ष्य हो अथवा अन्य प्रशासनिक सेवा का लक्ष्य हो, अवश्य प्राप्त होगा, यहाँ यही स्पष्ट प्रकाश डाला गया है। अतः यह पुराणकार का व्यावहारिक जगत् पर अप्रत्यक्ष प्रकाश है।।१३५½-१३६½।।

आगे कहते हैं कि यह ध्यान उपवास से भी बढ़कर है; क्योंकि यह ध्यान इन्द्रियों को लक्ष्य की ओर लगाने वाला है और व्यसनों से हटाने वाला है। उपवास मे निबद्ध प्राणों द्वारा अर्थात् उपवास में बार-बार प्राणवायु को रोकने से प्राणवायु और अपानवायु को वश मे करके और इन्द्रियों को वश में करके बुद्धि को मन में संयत कर मनुष्य सब विषयों.की निवृत्ति हो जातीहै। प्रत्याहार (इन्द्रियों को वश में करने वाले विना सन्देह के मोक्ष के उपाय को सुनिये।।१३६½-१३९।। सभी इन्द्रियों, मन बहुत ही चञ्चल और घोर है, बुद्धि तथा इन्द्रियों को यही परिचालित करता है। निराहार रहने से मन की चञ्चलता और कठोरता नष्ट हो जाती है। अतः अनशन को परम तप जानना चाहिये।।१४०।।

चञ्चल बुद्धि और मन इन दोनों को वश में रखने से अन्य बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है। अर्थात् मनुष्य अन्य बातों का न ध्यान करता और न अन्य कुछ सोचता है तथा जब अन्य बुराइयों के बारे में नहीं सोचता, तब अन्य सब दोषों के नष्ट हो जाने पर और सब इन्द्रियाँ क्षीण हो जाती हैं अर्थात् जब मनुष्य अपने लक्ष्य के अलावा न अन्य कुछ जानता है और सोचता है, तब सभी इन्द्रियां लक्ष्य पर केन्द्रित होकर अन्यत्र कर्म से विरत हो जाती हैं, यही इन्द्रियों का क्षीण होना है। जब सब दोष और जब इन्द्रियां क्षीण हो जाते हैं, तब जैसे विना ईंधन आग हो, उसी तरह शुद्ध आत्मा शेष रह जाता है और वह आत्मा निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

व्यावहारिक जगत् में मनुष्य अपने परमलक्ष्य, जिसको वह पाने को प्रयत्नशील है, प्राप्त कर ही लेता है। आध्यात्मिक जगत् में समस्त व्यक्त (बुद्धि मन, अहंकार, पंचतन्मात्राओं, महाभूतों इन्द्रियों) आदि और अव्यक्त (प्रकृति) के कारणों और गुणों से योगीजन योग द्वारा अपनी आत्मा को नियुक्त कर लेते हैं। परिणाम स्वरूप फिर उस आत्मा की न कोई गति रहती है, न कोई स्थान रहता है अर्थात् फिर वे योगीजन न व्यक्त

नियोजयति क्षेत्रज्ञं तेभ्यो योगेन योगवित्।
तस्य नास्ति गतिः स्थानं व्यक्ताव्यक्ते च सर्वशः।
न रुन्नासन्न सदसन्नैव किंचिदवस्थितः॥१४३॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पे पुण्यदेशानुकीर्तनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

श्राद्धे शौचविधिर्नाम

चतुर्दशोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वदानफलानि च। श्राद्धकर्मणि मेध्यानि वर्जनीयानि यानि च॥१॥
हिमप्रपतने कुर्यादा हरेद्वा हिमं ततः। अग्निहोत्रमुपायुष्यं पवित्रं परमं हितम्॥२॥

(बुद्धि, अहंकार, मन, भूत, इन्द्रियादि) में रहते हैं और इनका मूल कारण अव्यक्त प्रकृति में रहते हैं। फिर उन्हें न सत् कह सकते हैं और न असत् कह सकते हैं। अर्थात् नतो यह कहा जा सकता है कि वे हैं और न यह कहा जा सकता है कि नहीं है।।१४१-१४३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद १३वां अध्याय श्राद्धकल्प में पुण्य देशों का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध को तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद
अध्याय-१४
श्राद्ध में शौचविधि वर्णन

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग के तीसरे उपोद्घात पाद अध्याय १४
श्राद्ध में शौचविधि वर्णन

बृहस्पति ने कहा

हे सूत जी! श्राद्ध में पुण्यस्थानों का वर्णन करने के बाद अब मैं सब प्रकार दान के फलों का बताऊंगा तथा श्राद्धकर्म में जिनको ग्रहण करना चाहिये अथवा जिन्हें छोड़ देना चाहिये, उन कार्यों को भी बताऊंगा।।१।। बर्फ गिरते समय हेमन्त ऋतु में बर्फ को ग्रहण करना चाहिये अर्थात् बर्फ को खाना चाहिये। उसके बाद बसन्त में अग्निहोत्र (हवन)

नक्तं तु वर्जयेच्छ्राद्धं राहोरन्यत्र दर्शनात्। सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं क्षिप्रं वै राहुदर्शने॥३॥
उपरागे न कुर्याद्यः पंके गौरिव सीदति। कुर्वाणस्तत्तरेत्यापं सती नौरिव सागरे॥४॥
वैश्वदेवं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः। विषाणवर्जं खड्गस्य मात्सर्यान्नाशयामहे॥५॥
त्वष्ट्रा वै यजमानेन देवेशेन महात्मना। पिबञ्छचीपतिः सोमं पृथिव्यां मध्यगः पुरा॥६॥
श्यामाकास्तत्र उत्पन्नाः पित्रर्थमपराजिताः। विप्रुषस्तस्य नासाभ्यामासक्ताभ्यां तथेक्षवः॥७॥

श्लेष्मलाः शीतलाः स्निग्धा मधुराश्च तथेक्षवः।
श्यामाकैरिक्षुभिश्चैव पितॄणां सर्वकामिकम्॥८॥
कुर्यादाग्रयणं यस्तु स शीघ्रं सिद्धिमाप्नुयात्।
श्यामाकास्तु द्विनामानो विहिता यजने स्मृते॥९॥

यस्मात्ते देवसृष्टास्तु तस्मात्ते चाक्षयाः स्मृताः। प्रसातिकाः प्रियंगुश्च मुद्गाश्च हरितास्तथा॥१०॥

एतान्यपि समानानि श्यामाकानां गुणैस्तु तैः।
कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठास्तु यवशालयः॥११॥
महायवाश्च निष्पावास्तथैव च मधूलिकाः।
कृष्णाश्चैवान्नलोहाश्च गर्ह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि॥१२॥

राजमाषास्तथाऽन्ये वै वर्जनीयाः प्रयत्नतः। मसूराश्चैव पुण्याश्च कुसुंभं श्रीनिकेतनम्॥१३॥

करना चाहिये; क्योंकि अग्निहोत्र आयु को बढ़ाने वाला है, तथा पवित्र और परमहितकारी है।।२।। रात्रि में श्राद्धकर्म वर्जित रखना चाहिये, रात्रि को अन्य अवसर पर जब राहु सूर्य को ग्रस रहा हो अर्थात् सूर्यग्रहण के अवसरपर सर्वस्व व्यय करके राहु का दर्शन होने पर (सूर्यग्रहण जब तक रहे तब तक) श्राद्ध शीघ्र करना चाहिये।।३।। जो व्यक्ति ग्रहणके अवसर पर श्राद्ध नहीं करता है, वह कीचड़ मे फँसी गौ की तरह यातना सहता है तथा जो करता है, वह पापों के सागर को उसी तरह पार कर लेता है, जैसे नाव से सागर पार किया जाता है। अर्थात् उसका नाव से सागर से उद्धार होने की भाँति श्राद्ध से पापों से उद्धार हो जाता है।।४।। विश्वे देवता, सौम्य, खड्ग मास युक्त हवि (सामग्री) गेंडे का सींग, मात्सर्य (मत्सरता) को श्राद्ध मे वर्जित रखना चाहिये।।५।।

प्राचीनकाल में महात्मा देवेश के मना करने पर भी त्वष्टा विश्वकर्मा ने इन्द्र का सोमपान कर लिया था, जिसे पीते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, जो सांवां के रूप में पैदा हुआ। जो सांवा पितरों के लिए पूजित माना गया। उसी समय ओंछ लगने पर नाक से जो सोमरस पृथ्वी पर गिरा, उससे इक्षु ईख पैदा हो गयी; इसीलिये ईखे, शीतलता प्रदान करने वाली, रुचिकर, मधुर और कफ पैदा करने वाली होती है। इन ईखों और सांवा से पितरों की सारी कामनायें पूर्ण होती हैं, जो इन वस्तुओं को श्राद्धकर्म में निवेदित करता है, वह शीघ्र सिद्धि प्राप्त करताहै। सांवां तो दो नाम वाली है, इसकी यज्ञ में विधि बतायी गयी है।।६-८।। वे दोनों ही देवों द्वारा पैदा की गयी है इसी कारण वे अक्षय कही गयी हैं। प्रसातिका (छोटे दानों वाला चावल), प्रियंगु (केशर), मूंग हरिता (हीर मूंग) ये सभी गुणों में सांवां के ही समान हैं। काले उड़द और काले तिल और जौ तथा साठी के चावल ये सब श्राद्धकर्म में श्रेष्ठ हैं।।९-१२।। महायव (जौ), निष्पाव (छिले हुए) मधूलिका, कृष्णा अन्न और लौह श्राद्ध में वर्जित हैं। राजमाष (राजमा) तथा अन्यों को श्राद्ध में वर्जित रखना चाहिये। मसूर, कुंसुंभ (केशर) और श्रीनिकेतन (बेल) श्राद्ध में पुण्यप्रद

वर्षास्वतियवा नित्यं तथा वृषकवासकौ। बिल्वामलकमृद्वीकापनसाम्रातदाडिमाः॥१४॥
तवशोलंयताक्षौद्रखर्जूराम्रफलानि च। कशेरुकोविदार्यश्च तालकंदं तथा विसम्॥१५॥
तमालं शतकंदं च मद्वसचूचांतकांदिकी। कालेयं कालशाकं च भूरिपूर्णा सुवर्चला॥१६॥
मांसाक्षं दुविखासं च बुवुचेतां कुरस्तथा। कफालकं कणा द्राक्षा लकुचं चोचमेव च॥१७॥
अलाबुं ग्रीवकं वीरं कर्कंधूमधुसाह्वयम्। वैकंकतं नालिकेरशृंगाज पकरूपकम्॥१८॥
पिप्पली मरिचं चैव पटोलं बृहतीफलम्। सुगंधमांसपीवंति कषायाः सर्व एव च॥१९॥
एवमादीनि चान्यानि वराणि मधुराणि च। नागरं चात्र वै देयं दीर्घमूलकमेव च॥२०॥
वंशः करीरः सुरसः सर्जकं भूस्तृणानि च। वर्जनीयानि वक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि नित्यशः॥२१॥
लशुनं गृंजनं चैव पलांडुं पिंडमूलकम्। करंभाद्यानि चान्यानि हीनानि रसगंधतः॥२२॥
श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानि कारणं चात्र वक्ष्यते। पुरा देवासुरे युद्धे निर्जितस्य बलेः सुरैः॥२३॥
शरैस्तु विक्षतादंगात्पतिता रक्तबिंदवः। तत एतानि जातानि लशुनादीनि सर्वशः॥२४॥
तथैव रक्तनिर्यासा लवणान्यौपराणि च। श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानि याश्च नार्यो रजस्वलाः॥२५॥
दुर्गंधं फेनिलं चैव तथा वै पल्वलोदकम्। लभेद्यत्र न गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चैव गृह्यते॥२६॥
आविकं मार्गमैष्ट्रं च सर्वमेकशफं च यत्। माहिषं चामरं चैव पयो वर्ज्यं विजानता॥२७॥

हैं।।१३।। वर्षा ऋतुओं में अतियव (इन्द्र जौ) तथा वृषक (भिलावा), वासक, बिल्व, आमला, अंगूर, पनस (कटहल) आमड़ा, अनार, तवशोल, क्षौद्र (शहद), खजूर, आम के फल, कसेरु (दूब), कोविदार (कचनार), तालकंद (तालमखाना) तथा विस (कमल), तमाल, शकरकन्द, मद्वसूचांत, कांदिकी (कदम्ब पुष्प), कालेय (काले चन्दन की लकड़ी), कालशाक (काला शाक), भूरिपर्णा, सुवर्चला, मांसाक्ष, दुविशाक, बुबुचेत के अंकुर, कफालक, कणा अंगूर (काला अंगूर), लकुच चोच (नारियल), अलाबु (लौकी), ग्रीवक, वीर (उशीर की जड़), ककरोंधा, मधु, साह्वय, वैकंकत, नारियल शृगाजप (अगर), करूष, पीपल, मरिच, परवल, बृहतीफल (इलायची) सुगंध, असंपीवन्ति और सभी कषाय पदार्थ तथा अन्य जो भी द्रव्य श्रेष्ठ और मधुर है तथा श्राद्धकर्म में नागर और दीर्घमूलक भी देने चाहिये।।१३-२०।।

इसी प्रकार वांश करीर, सुरसा, सर्जक (शाल का वृक्ष) और भूस्तृण जो श्राद्धकर्म में नित्य वर्जनीय हैं, उनको बता रहा हूँ।।२१।। लहसुन, गाजर, प्याज, पिण्डमूलक, करंभ आदि जो अन्य वस्तुएँ रस और गंध से हीन हैं, ये सब श्राद्धकर्म में वर्ज्य हैं, अब यहाँ क्यों वर्जित है? इसका कारण बतलाऊँगा।।२२-२२½।। प्राचीनकाल में देवासुर संग्राम में देवताओं द्वारा पराजित बलि के शरीर (से बाणों द्वारा जो रक्त के बिन्दु पृथ्वी पर गिरे) से निकल कर जो बूंदें पृथ्वी पर गिरीं वे सब ही सब ओर लहसुन आदि के रूप में पैदा हो गयीं। उसी प्रकार रक्त से निकले हुए तथा लवण और औषर (सेंधानमक) श्राद्धकर्म में वर्जनीय हैं तथा जो नारियां रजस्वला हो रही हों, वे भी श्राद्धकर्म में न रखी जानी चाहिये।।२२-२५।। दुर्गन्धयुक्त, झागयुक्त तथा कीचड़युक्त जल तथा जिससे गोओं की तृप्ति नहीं होती, जो रात में ग्रहण किया जाता हो, भेड़, मृग, बकरी, ऊंट तथा अन्य खुर वाले पशुओं द्वारा पीकर दूषित किया गया जल तथा भैसों, चमर मृग आदि पशुओ द्वारा दूषित किया गया जल श्राद्धकर्म में विद्वान् पुरुषों द्वारा वर्जित रखना चाहिये।।२६-२७।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्ज्यान्देशान्प्रयत्नतः।
न द्रष्टव्यं च यैः श्राद्धं शौचाशौचं च कृत्स्नशः॥२८॥
वन्यमूलफलैर्भक्ष्यैः श्राद्धं कुर्यात्तु श्रद्धया। राजनिष्ठामवाप्नोति स्वर्गमक्षयमेव च॥२९॥
अनिष्टशब्दां संकीर्णां जंतुव्याप्तामथाविलाम्। पूतिगंधां तथा भूमिं वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि॥३०॥
नद्यः सागरपर्यंता द्वारं दक्षिणपूर्वतः। त्रिशंकोर्वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादश योजनम्॥३१॥
उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन च वैकटम्। देशास्त्रिशंकवो नाम वर्ज्या वै श्राद्धकर्मणि॥३२॥
कारस्कराः कलिंगाश्च सिंधोरुत्तरमेव च। प्रनष्टाश्रमधर्माश्च वर्ज्या देशाः प्रयत्नतः॥३३॥
नग्नादयो न पश्येयुः श्राद्धकर्म व्यवस्थितम्।
गच्छंत्येतैस्तु दृष्टानि न पितृंश्च पितामहान्॥३४॥

शंयुरुवाच

नग्नादीन्भगवन्सभ्यगाचक्ष्व परिपृच्छतः।

बृहस्पतिरुवाच

सर्वेषामेव भूतानां त्रयीसंवरणं स्मृतम्॥३५॥
तां ये त्यजंति संमोहात्ते वै नग्नादयो जनाः। प्रलीयते वृषो यस्मिन्निरालंबश्च यो वृषे॥३६॥
वृषं यस्तु परित्यज्य मोक्षमन्यत्र मार्गति। वृषो वेदाश्रमस्तस्मिन्यो वै सम्यङ् न पश्यति॥३७॥

बृहस्पति कहते हैं कि अब मैं इसके बाद श्राद्धकर्म में वर्जित स्थानों को प्रयत्नपूर्वक बताऊँगा तथा इसके अलावा उन लोगों को बताऊँगा जिनके द्वारा श्राद्ध देखना भी नहीं चाहिये तथा श्राद्ध में पवित्रता और अपवित्रता आदि भी सब बतलाऊँगा।।२८।। वन में पैदा होने वाले खाने योग्य कन्दमूल फलों से श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। इनसे किये गये श्राद्ध से मनुष्य राजा से निष्ठा प्राप्त करता है तथा अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है।।२९।। अनिष्टकारी शब्दों से तथा जीव जन्तुओं से व्याप्त दुर्गन्धयुक्त भूमि को श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहये।।३०।।

सागर तक जाने वाली समस्त नदियां जो दक्षिणपूर्व से निकलती हैं, उन्हें तथा त्रिशंकुदेश को बारह योजन तक छोड़ देना चाहिये।।३१।। यह त्रिशंकु देश महानदी के उत्तर तथा कैकट देश के दक्षिण में फैला हुआ है। यह त्रिशंकु नामक देश श्राद्धकर्म में वर्जित है।।३२।। कारस्कर, कलिङ्ग, सिन्धु नदी के उत्तरवर्ती देश तथा वे देश जहां कि वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो चुका है, वहाँ यत्नपूर्वक श्राद्धकर्म नहीं करना चाहिये।।३३।। नंगे आदि असभ्य लोग श्राद्ध को न देखें ऐसी व्यवस्था है। उन लोगों द्वारा देख लिये जाने पर श्राद्ध की वस्तुएँ पितामहादि पितरों को प्राप्त नहीं होतीं।।३४।। इसके बाद शंयु ने बृहस्पति से कहा कि हे भगवन्! वे नंगे कौन हैं? मैं यह आपसे जानना चाहता हूँ। इस प्रकार पूछते हुए शंयु से बृहस्पति ने कहा कि संसार के समस्त जीवों के लिए तीन वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ढकने वाले अर्थात् वस्त्र कहे गये हैं। जो लोग अज्ञानवश उन्हें छोड़ देते हैं, वे नंगे हैं। अथवा धर्म अर्थ और काम ये तीनों को जो नहीं मानते, वे भी नंगे हैं। मनुष्य जब वेद से पराङ्मुख हो जाता है, तब वेदरूप वृष निरालम्ब हो जाता है।।३५।।

अतः जो धर्म रूप वृष को छोड़ कर अन्यत्र मोक्ष का मार्ग खोजता है, उसका वेदादि के अध्ययन का श्रम व्यर्थ है; क्योंकि वह उन वेदों में दिये गये मोक्ष के स्वरूप को भलीभाँति नहीं देखता है। वह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो वृषलः स न संशयः। पुरा देवासुरे युद्धे निर्जितैरसुरैस्तथा॥३८॥
पाखंडा वै कृतास्तात तेषां सृष्टिः प्रजायते।
वृद्धश्रावकिनिर्ग्रंथाः शाक्या जीवककार्पटाः॥३९॥
ये धर्म नानुवर्त्तन्ते ते वै नग्नादया जनाः। वृथा जटी वृथा मुंडी नग्नश्च यो द्विजः॥४०॥
वृथा व्रती वृथा जापी ते वै नग्नादयो जनाः।
कुलधर्मातिगाः शश्वद् वृथा वृत्तिकलत्रकाः॥४१॥
कृतकर्मदिशस्त्वेते कुपथाः परिकीर्त्तिताः। एतेर्हि दत्तं दृष्टं वै श्राद्धं गच्छति दानवान्॥४२॥
ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च नास्तिको गुरुतल्पगः। दस्युश्चैव नृशंसश्च दर्शने तान्विसर्जयेत्॥४३॥
पतिताः क्रूरकर्माणः सर्वांस्तान्परिवर्जयेत्। देवतानामृषीणां च विवादे प्रवदंति ये॥४४॥
देवांश्च ब्राह्मणांश्चैव आम्नायं यस्तु निंदति। असुरान्यातुधानांश्च दृष्टमेभिर्व्रजत्युत॥४५॥
ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षत्रियं युगम्। वैश्यं द्वारमित्याहुः शूद्रं कलियुगं स्मृतम्॥४६॥
कृतेऽपूज्यंत पितरस्त्रेतायां तु सुरास्तथा। युद्धानि द्वापरे नित्यं पाखंडाश्च कलौ युगे॥४७॥
अपमानापविद्धश्च कुक्कुटो ग्रामसूकरः। श्वा चैव हन्ति श्राद्धानि दर्शनादेव सर्वशः॥४८॥
श्वसूकरोप संसृष्टं दीर्घरोगिभिरेव च। पतितैर्मलिनैश्चैव न द्रष्टव्यं कथंचन॥४९॥

भले ही हो; परन्तु वह शूद्र हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३६-३७½।। प्राचीन काल में देवताओं और असुरों के युद्ध में पराजित हुए असुरों द्वारा सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र पाखण्डी होकर पतित हो गये, अब वह ब्रह्मा की सृष्टि नहीं रह गयी, जो श्राद्धादि कार्यो के विरोधी तथा अच्छे ग्रन्थों के विरोधी अपनी इच्छा के अनुसार जीवन जीते हैं। जो धर्म का आचरण नहीं करते, वे नंगे लोग हैं। व्यर्थ जरा रखने वाले, व्यर्थ सिर मुड़ाने वाले, व्यर्थ में नंगे रहने वाले, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं, वे सब नंगे हैं।।३७½-४०।। व्यर्थ व्रत रखने वाले, व्यर्थ जप करने वाले, कुल को पीड़ा पहुंचाने वाले, पत्नी के साथ व्यर्थ कलत्रक[1] किये गये सत् कर्म पर आक्षेप करने वाले, कुमार्गी कहे गये हैं। इन लोगों के द्वारा दिया गया श्राद्ध दानवों को प्राप्त होता है।।४१-४२।।

ब्रह्महत्या करने वाले, अहसानफरामोश (कृतघ्न), वेद निन्दक (नास्तिक) और गुरुपत्नीगामी, डकैत, हत्यारा उन्हें देखने में ही वर्जित रखना चाहिये।।४३।। पतित (पापी) और क्रूरकर्म करने वाले उन सबको छोड़ देना चाहिये तथा जो देवताओं और ऋषियों के विवाद में जो बोलते हैं अर्थात् उनसे जो झगड़ा करते हों, उन सबको श्राद्धकर्म में छोड़ देना चाहिये।।४४।। जो मनुष्य देवताओं, ब्राह्मणों और आम्नाय (क्षत्रियों) की निन्दा करते हों तथा असुरों राक्षसों की श्राद्धकर्म पर दृष्टि भी नहीं पड़नी चाहिये।।४५।। ब्राह्मण सतयुग है, क्षत्रिय त्रेतायुग है, वैश्य द्वापरयुग है और शूद्र कलियुग है।।४६।। सतयुग में पितर पूजे जाते हैं, त्रेतायुग में देवता पूजे जाते हैं, द्वापर में नित्य युद्ध पूजे जाते हैं और कलियुग में पाखण्डी पूजे जाते हैं। अर्थात् सतयुग में पितरों के प्रति, त्रेता में देवों देवों के प्रति, द्वापर में युद्ध के प्रति तथा कलियुग में पाखण्ड के प्रति लोगों की रुचि रहती है।।४७।। अपमानित, अपवित्र लोग, मुर्गे, ग्रामीण सुअर, और कुत्ते इन सबके दर्शन से ही सब प्रकार श्राद्ध नष्ट हो जाता है।।४८।। कुत्ता और सूअर से सने

१. कलत्रक वे हैं, जो पत्नी के साथ पुत्रोत्पत्ति के अलावा व्यर्थ सम्भोग करते हैं।

अन्नं पश्येयुरेते यत्तन्नाहे हव्यकव्ययोः। उत्स्रष्टव्याः प्रधानार्थैः संस्कारस्त्वापदो भवेत्॥५०॥
हविषां संहतानां च पूर्वमेव विवर्जयेत्। मृष्टं युक्ताभिरद्भिश्च प्रोक्षणं च विधीयते॥५१॥
सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैः कार्यं वाप्यपवारणम्।
गुरुसूर्याग्निवास्त्राणां दर्शनं वापि यत्नतः॥५२॥
आसनारूढमन्नाद्यं पादोपहतमेव च। अमेध्यैर्जंगमैर्दृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत्॥५३॥
अस्विन्नं परिदग्धं च तथैवाग्नावलेहितम्। शर्कराकीटपाषाणैः केशैर्यच्चाप्युपाहतम्॥५४॥
पिण्याकं मथितं चैव तथा तिलयवादिषु। सिद्धीकृताश्च ये भक्ष्याः प्रत्यक्षलवणीकृताः॥५५॥
दृष्ट्वा चैव तथा दोषोपात्तश्चोपहतं तथा। वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि॥५६॥
संति वेदविरोधेन केचिद्विज्ञाभिमानिनः। अयज्ञय तयो नाम ते ध्वंसंति यथा रजः॥५७॥
दधिशाकं तथा भक्ष्यं तथा चौषधिवर्जितम्। वार्त्ताकं वर्जयेच्छ्राद्धे सर्वानभिषवानपि।
सैंधवं लवणं चैव तथा मानससंभवम्॥५८॥
पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षमपि वर्तिते। अग्नौ प्रक्षिप्य गृह्णीयाद्धस्तौ प्रक्षिप्य यत्नतः॥५९॥
गमयेन्मस्तकं चैव ब्रह्मतीर्थं हि तत्स्मृतम्। द्रव्याणां प्रोक्षणं कार्यं तथैवावपनं पुनः॥६०॥

हुए (छुये हुए) पुराने रोग से ग्रस्त रोगियो, पतित और गन्दे रहने वाले व्यक्तियों द्वारा कभी भी श्राद्ध नहीं देखा जाना चाहिये।।४९।। यदि ये लोग श्राद्ध के अन्न को भी देख लें तो वह अन्न हव्य-कव्य के लिए उपयुक्त नहीं है। इनके द्वारा स्पर्श किये गये श्राद्धादि संस्कार अपवित्र हो जाते हैं।।५०।। जमे हुए घी को पहले तो वर्जित रखना चाहिये श्राद्ध कर्म में मिट्टी से मिले हुए जल से सिंचन करना चाहिये।।५१।। पीली सरसों, अथवा काले तिल से पृथ्वी पर छींटन करना चाहिये। यत्नपूर्वक गुरु, सूर्य, अग्नि अथवा अस्त्रों का दर्शन करना चाहिये।।५२।। आसनारूढ, पैरों द्वारा मसले गये अपवित्र प्राणियो द्वारा देखे गये, सूखे वासी एवं किसी के जूठे अन्न, जीभ से चाटे हुए जले हुए उसी प्रकार अग्नि में गिरे हुए, शक्कर, कीड़े और पत्थर और केशों से दूषित वस्तुएँ श्राद्धकर्म में वर्जित हैं।।५३-५४।। तिल और जौ आदियो में तिल के और जो के टुकड़े या मथे हुए तिल और जौ, जो अक्षत के रूप में रखे गये हो तथा जिनमें नमक का अंशमिला हो अथवा देखकर जिन्हें दोषयुक्त कर दिया हो अथवा कुत्ते द्वारा जिन्हें अपवित्र कर दिया गया, हो इसी प्रकार जो अक्षत वस्त्र से दूषित कर दिया गया हो, ऐसे तिल और अक्षत श्राद्ध कर्म में वर्जित हैं।।५५-५६।।

कुछ विज्ञान के मानने वाले वेद का विरोध करते हैं। वे यज्ञ के अधिकारी नहीं हैं। वे श्राद्ध को धूल में मिला देते हैं।।५७।। दही, शाक तथा अभक्ष्य औषधि श्राद्ध में वर्जित है अर्थात् न खाने योग्य दही, शाक और औषधि श्राद्ध में वर्जित हैं। भाँटे को श्राद्ध में वर्जित रखे सभी प्रकार के अभिषवों (मद्य अथवा आसवों) को श्राद्ध में वर्जित रखना चाहिये। समुद्र से अथवा मानसरोवर से निकला हुआ लवण श्राद्ध में पवित्र माना गया है, वैसे लवण को श्राद्ध मे अपवित्र माना गया है; परन्तु उपर्युक्त दोनों लवण पवित्र हैं। उन्हें आग में छोड़कर पुनः दोनों हाथों से यत्नपूर्वक उठा लेना चाहिये और फिर उन्हें मस्तक पर लगा लें; क्योकि मस्तक ब्रह्मतीर्थ माना गया है। समस्त द्रव्यों को जल के छींटे मारकर पवित्र करना चाहिये। उसी प्राकर पुनः उसको अच्छी तरह धोना चाहिये।।५८-६०।।

निधाय चाद्भिः सिंचेत्तथा चासु निवेशनम्। अश्ममूलफलेक्षूणां रज्जूनां चर्मणामपि॥६१॥
वैदलानां च सर्वेषां पूर्ववच्छौचमिष्यते। तथा दंतास्थि दारूणां शृंगाणां चावलेखनम्॥६२॥
सर्वेषां मृन्मयानां च पुनर्दाहो विधीयते। मणिमुक्ताप्रवालानां जलजानां च सर्वशः॥६३॥
सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः।
स्याच्छौचं सर्वबालानामाविकानां च सर्वशः॥६४॥
द्विपदां चैव सर्वेषां मृद्भिरद्भिर्विधीयते। आद्यंतयोस्तु शौचानामद्भिः प्रक्षालनं विधिः॥६५॥
तथा कार्पासिकानां च भस्मना समुदाहृतम्। फलपुष्पपलाशानां प्लावनं चाद्भिरिष्यते॥६६॥
प्रोक्षणं ह्युपलेपश्च भूमेश्चैवावलेखनम्। निषेको गोक्रमो दाहः खननं शुद्धिरिष्यते॥६७॥
निष्क्रमोऽध्वगतो ग्रामाद्वायुपूता वसुंधरा। पुंसां चतुष्पदां चैव मृद्भिः शौचं विधीयते॥६८॥
एवमेव समुद्दिष्टः शौचानां विधिरुत्तमः। अनिर्दिष्टमतो यद्यत्तन्मे निगदतः शृणु॥६९॥
प्रातर्गृहाद्दक्षिणपश्चिमेन गत्वा चेषुक्षेपमात्रं पदं वै।
कुर्यात्पुरीषं हि शिरोऽगुंठ्य न वै स्पृशेज्जातु शिरः करेण॥७०॥
शुक्लैस्तृणैर्वा काष्ठैर्वा पर्णैर्वेणुदलेन च। सुसंवृत्ते प्रदेशे च अंतर्धाय वसुंधराम्॥७१॥

पत्थर, कन्दमूलफल, ईख और चमड़े की रस्सियो को तथा वैदलों को सब वस्तुओं तथा हाथी दांत की वस्तुओं हड्डियों की बनी वस्तुओं सींगों का पूर्ववत् जल से सिंचन कर कर साफ करना चाहिये।।६१-६२।। सभी मिट्टी के बने पात्रों को पुनः अच्छी तरह आग में गर्म कर लेना चाहिये, उसी प्रकार मणिमुक्तामूगों और कमलों को कल्क बनाकर तिल और कल्क बना कर शुद्ध कर लेना चाहिये।।६३-६३½।। सब प्रकार के बालों की तथा भेड़ के बालों की शुद्धि भी तथा दो पैर वाले मनुष्यों के बालों की शुद्धि जल और सिर धोने वाली मिट्टी से करनी चाहिये। आदि से अन्त तक जितने भी शौच हैं, उनकी जल से धोने की विधि है तथा कपास के बने वस्त्रों की शुद्धि भस्म से बतायी गयी है। फल-पुष्प और पत्तों की शुद्धि जल में डुबोने से बतायी गयी है।।६३½-६५।। भूमि का अवलेखन, जल से धोने, लीपने आदि से होता है। निषेक (जल से सींचना), गोबर से लीपना, आग से तपाना और खनन (मिट्टी से रगड़ना) आदि शुद्धि कही गयी है।।६६-६७।। ग्राम से बाहर की मिट्टी वायु द्वारा शुद्ध रहती है। पुरुषों और पशुओं की शुद्धि मिट्टी से की जाती है।।६८।।

इस प्रकार शुद्धि के लिये यह उत्तम क्रम बताया गया है, इसके बाद जिनका निर्देश नहीं किया गया, उनकी शुद्धि की विधि बतला रहा हूँ, सुनो।।६९।। प्रातःकाल अपने घर की घर के दक्षिण-पश्चिम में जाकर जहाँ तक बाण पहुंच सके उतनी दूर चलकर मलत्याग करना चाहिये। उस समय वस्त्र से सिर ढक लेना चाहिये तथा हाथ से शिर का स्पर्श नहीं करना चाहिये[1]।।७०।। मलत्याग करने के बाद मलप्रदेश पर सूखे तिनकों से, लकड़ियों से बांस

१. यहाँ पर विशेष रहस्य पर प्रकाश डाला गया है तथा मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि मलत्याग करते समय यदि हाथ, नाक, कान अथवा आँख पर पड़ जाये, तो अवश्य नाक में फुड़िया, आँख में, गुहेरी तथा कान में फुड़िया पैदा हो जाती है तथा ऐसा मैंने अनेकों बार अनुभव किया है तथा नाक की फुड़िया सुगन्धित पुष्प द्वारा तुरन्त बैठती है, यह भी मेरा निजी अनुभव है तथा इसकी परीक्षा की जा सकती है।

उद्‌धृत्योदकमादाय मृत्तिकां चैव वाग्यतः। दिवा उदङ्मुखः कुर्याद्रात्रौ वै दक्षिणामुखः॥७२॥
दक्षिणेन तु हस्तेन गृहीत्वाऽथ कमंडलुम्। शौचं वामने हस्तेन गुदे तिस्त्रस्तु मृत्तिकाः॥७३॥
दश चापि शनैर्दद्याद्वामहस्ते क्रमेण तु। उभाभ्यां वा पुनर्दद्याद्वाभ्यां सप्त तु मृत्तिकाः॥७४॥
मृदा प्रक्षाल्य पादौ तु आचम्य च यथाविधि।
आपस्त्वाद्यास्त्रयस्चैव सूर्याग्न्यनिलदेवताः॥७५॥
कुर्यात्संनिहितो नित्यमच्छिद्रे द्वे कमंडलू। असंवार्यवनैरेव यथावत्पादधावनम्॥७६॥
आचमनं द्वितीयं च देवकार्ये ततोऽपरम्। उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टमुक्ते ह्युदाहृतः॥७७॥
विप्रकृष्टेषु कृच्छ्रं च प्रायश्चित्तमुदाहृतम्। स्पृष्ट्वा श्वानं श्वपाकं च तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्॥७८॥
मानुषास्थीनि संस्पृश्य उपोष्यं शुचिकारणात्। त्रिरात्र मुक्तं सस्नेहान्येकरात्रमतोऽन्यथा॥७९॥
कारस्कराः कलिंगाश्च तथांधशबरादयः। पीत्वा चापोभूतिलपा गत्वा चापि युगंधरम्॥८०॥
सिंधोरुत्तरपर्यंतं तथोदीच्यंतरं नरः। पापदेशाश्च ये केचित्पापैरध्युषिता जनैः॥८१॥
शिष्टैस्तु वर्जिता ये वै ब्राह्मणैर्वेदापारगैः। गच्छतां रागसंमोहात्तेषां पापं न गच्छति॥८२॥

के पत्तों से अथवा मिट्टी के बर्तन से पृथ्वी को ढक देना चाहिये। यहाँ पर केवल मिट्टी से ढक देना ही आज के परिप्रेक्ष्य में सरल होगा।।७१।। फिर शौच से उठकर ऊपर को जल और मिट्टी उठाकर शौंचना चाहिये। अर्थात् जल से शौंचना चाहिये फिर मिट्टी हाथ पर लगाकर जल से हाथ धोना चाहिये। दिन में उत्तर की ओर मुख करके और रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके मल त्याग करना चाहिये।।७२।। यहाँ यह विधि सूर्य के सम्मुख होने मे निषेध करती है; क्योंकि दिन में उत्तर की तरफ सूर्य नहीं रहते हैं तथा रात में तो सूर्य रहते ही नहीं है, उनका दर्शन नहीं होता है। अतः भाव यही है कि सूर्य की ओर मुख करके मलत्याग नहीं करना चाहिये। शौंच के समय दक्षिण हाथ में कमण्डलु को धारण करना चाहिये और वांये हाथ में जल लेकर तीन बार मिट्टी लेकर गुदा को जल से साफ करना चाहिये।।७३।। और फिर बांयें हाथ में दश बार मिट्टी लगाकर जल से धोना चाहिये। फिर दोनों हाथों को १४ बार मिट्टी लगाकर जल से धोना चाहिये।।७४।। फिर मिट्टी से पैरों को धोकर फिर जल का यथाविधि आचमन करें, फिर सूर्य, अग्नि और वायु के नाम से तीन बार जल छोड़े।।७५।। बुद्धिमान् पुरुष को नित्य पास में विना छेद वाले दो कमण्डलु रखने चाहिये। उसी से जल डालकर यथावत् पैरों को धोना चाहिये।।७६।।

पैर धोने के बाद दूसरी बार आचमन अर्थात् जल पीना चाहिये, उसके बाद देवकार्य करना चाहिये। दुष्ट हाथ से आचमन या देवकार्य करने पर तीन रात का उपवास कर प्रायश्चित्त करना चाहिये अर्थात् विवाह पुत्रोत्पत्ति आदि के अवसर पर सभी यज्ञादि शुभ कार्य दांये हाथ से ही करना चाहिये; परन्तु यदि किसी तरह बांये हाथ से हो जाय, तो तीन रात का उपवास करना चाहये।।७७।। उपवास न करने पर बहुत अधिक कष्ट द्वारा प्रायश्चित्त का विधान कहा गया है। कुत्ते और चाण्डाल का स्पर्श करने पर तप्तकृच्छ नामक प्रायश्चित का विधान किया गया है।।७८।। मनुष्य की हड्डियों का स्पर्श करके उपवास करके शुद्धि की जाती है। प्रेमपूर्वक यह उपवास तीन रात अथवा एक रात का कहा गया है।।७९।। कारस्कर, कलिङ्ग, आन्ध्र, शबर आदि स्थानों का जल पीकर तथा युगन्धर नामक स्थान की यात्रा पर सिन्धु नदी के उत्तर पर्यन्त उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत जो कुछ पाप देश हैं, जो लोगों द्वारा पापों से बढ़े हुए हैं, जहां पर जाने से पाप बढ़ जाता है। जहां जाने के लिये वेदों के पारंगत ब्राह्मण एवं शिष्ट लोग निषेध करते हैं।

गत्वा देशानपुण्यांस्तु कृत्स्नं पापं समश्नुते। आरुह्य भृगु तुंगं तु गत्वा पुण्यां सरस्वतीम्॥८३॥
आपगां च नदीं रम्यां गंगां देवीं महानदीम्। हिमवत्प्रभवा नद्यो याश्चान्या ऋषिपूजिताः॥८४॥
सरस्तीर्थानि सर्वाणि नदीः प्रस्रवणानि च। गत्वैतान्मुच्यते पापैः स्वर्गे चात्यंतमश्नुते॥८५॥
दशरात्रम शौचं तु प्रोक्तं मृतकसूतके। ब्राह्मणस्य द्वादशाहं क्षत्रियस्य विधीयते॥८६॥
अर्द्धमासं तु वैश्यस्य मासं शूद्रस्य चैव ह। उदक्या सर्ववर्णानां चतूरात्रेण शुध्यति॥८७॥
उदक्यां सूतिकां चैव श्वानमंतावसायिनम्। नग्नादीन्मृतहारांश्च स्पृष्ट्वा शौचं विधीयते॥८८॥
स्नात्वा सचैलो मृद्भिस्तु शुद्धो द्वादशभिर्द्विजः। एतदेव भवेच्छौचं मैथुने वमने तथा॥८९॥

मृदा प्रक्षाल्य हस्तौ तु कुर्याच्छौचं च मानवः।
प्रक्षाल्य चाद्भिः स्नात्वा तु हस्तौ चैव पुनर्मृदा॥९०॥

त्रिः कृत्वा द्वादशान्तानि यथा लेपस्तथा भवेत्। एवं शौचविधिर्दृष्टः सर्वकृत्येषु नित्यदा॥९१॥
परिदद्यान्मृदस्तिस्रस्तिस्रः पादावसेचने। अरण्ये शौचमेतत्तु ग्राम्यं वक्ष्याम्यतः परम्॥९२॥
मृदः पंचदसामेध्या हस्तादीनां विशेषतः। अतिरिक्तमृदं दद्यान्मृदंते त्वद्भिरेव च॥९३॥

उन स्थानों में राग (आसक्ति) और सम्मोहन के कारण उन जाने वालों का पाप दूर नहीं होता है अर्थात् पाप और अधिक बढ़ जाता है तथा उन अपुण्य अर्थात् पाप प्रदेशों में जाकर समस्त पाप का भागी होना पड़ता है।।८०-८२½।। आगे भृगुतुङ्ग (भृगु चोटी) पर चढ़कर पुण्य सरस्वती नदी पर जाकर उसके बाद जलवाहिनी रम्य महानदी गङ्गादेवी में स्नान करे, जो सभी नदियां हिमवान् (हिमालय) पर्वत से उत्पन्न हुई हैं तथा ये सभी नदियां ऋषियों द्वारा पूजित हैं।।८२½-८४।। नदियों के किनारे के सभी तीर्थ नदियां और हिमालय से निकले हुए झरने सभी पवित्र हैं। इन तीर्थों में पहुँचकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है और फिर अत्यन्त काल तक स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है।।८५।।

जिस परिवार में कोई मर गया अथवा बच्चा पैदा हुआ हो, उस परिवार में दश रात्रि तक सूतक माना जाता है अर्थात् दशरात तक वह परिवार अपवित्र होता है। ब्राह्मण क्षत्रिय के परिवार में बारह दिन पर शौच का विधान किया गया है।आधा महीना वैश्य की शौच का विधान है और शूद्र के परिवार में एक माह बाद शौच किया जाना चाहिये। सब वर्णों की उदक्या (रजःस्वला स्त्री) चार रात्रि में शुद्धि हो जाती है।।८६-८७।। रजस्वला स्त्री और सूतिका (जिसको बच्चा पैदा हुआ हो) कुत्ते को मारने वाले को, नग्न व्यक्ति को, मरे हुए (शव) ले जाने वाले को छूकर जो शौच का विधान किया जाता है।।८८।। वह शौच इस प्रकार है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बारह बार वस्त्र सहित मिट्टी से स्नान करके शुद्ध होता है, यही शौच विधि मैथुन और वमन (उल्टी) आदि में करनी चाहिये।।८९।। मनुष्य को मिट्टी से दोनों हाथ पवित्र करना चाहिये। उसके बाद जलों से हाथ धोकर, तब जल से स्नान करे, फिर दोनों हाथों को मिट्टी से धोना चाहिये, फिर तीन बार मिट्टी से हाथ धोकर, बारह बार शरीर पर मिट्टि का लेप कर नहाना चाहिये।९०।।

इस प्रकार सब कृत्यों में शौचविधि बतायी गयी है।।९१।। तीन बार मिट्टी से हाथ धोने चाहिये तथा तीन बार पैरों को धोना चाहिये। यह शौचविधि वन में रहने वालों के लिए बतायी है, अब इसके बाद मैं ग्राम में रहने की शौच विधि बताऊँगा।।९२।। गाँववासियों को विशेषतः हाथों पर १५ बार मिट्टी लगानी चाहिये, इसके अलावा अधिक बार भी लगा सकते हैं, फिर मिट्टी लगाने के बाद जल से हाथ धो लेने चाहिये।।९३।। कण्ठ और शिर

अद्भिरव्यक्तके शौचमेतच्चैतेषु कृत्स्नशः। कंठं शिरो वा आवृत्य रथ्यापणगतोऽपि वा॥९४॥
अकृत्वा पादयोः शौचमाचांतोऽप्यशुचिर्भवेत्।
प्रक्षाल्य पात्रं निक्षिप्य आचम्याभ्युक्षणं ततः॥९५॥
द्रव्यस्यान्यस्य तु तथा कुर्यादभ्युक्षणं ततः। पुष्पादीनां तृणानां च प्रोक्षणं हविषां तथा॥९६॥
परादृतानां द्रव्याणां निधायाभ्युक्षणं तथा। नाप्रोक्षितं स्पृशेत्किंचिच्छ्राद्धे दैवेऽथवा पुनः॥९७॥
उत्तरेणाहरेद्रव्यं दक्षिणेन विसर्जयेत्। संवृते यजमानस्तु सर्वश्राद्धे समाहरेत्॥९८॥
उच्छिष्टे स्याद्विपर्यासो दैवे पित्र्ये तथैव च। दक्षिणेन तु हस्तेन दक्षिणां वेदिमालभेत्॥९९॥
कराभ्यामेव देवानां पितृणां विकरं तथा। क्षरणं स्वप्नयोश्चैव ततो मूत्रपुरीषयोः॥१००॥
निष्ठीविते तथाऽभ्यंगे भुक्त्वा विपरिधाय च।
उच्छिष्टानां च संस्पर्शे तथा पादावसेचने॥१०१॥
उच्छिष्टस्य च संभाषादशित्वा प्रयतस्य वा। संदेहेषु च सर्वेषु शिखां मुक्त्वा तथैव च॥१०२॥
विना यज्ञोपवीतेन मोघं तत्समुपस्पृशेत्। उष्ट्रस्यावेश्च संस्पर्शे दर्शनेऽवाच्यवाचिनाम्॥१०३॥
जिह्वया चैव संस्पृस्य दंतासक्तं तथैव च। सशब्दमंगुलीभिर्वा पतितं वा विलोकयन्॥१०४॥
स्थितो यश्चाचमेन्हादाचांतोऽप्यशुचिर्भवेत्। उपविश्य शुचौ देशे प्रयतः प्रागुदङ्मुखः॥१०५॥
पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च अंतर्जानु त्वपः स्पृसेत्। प्रसन्नस्त्रिः पिबेद्वारि प्रयतः सुसमाहितः॥१०६॥

को वस्त्र से ढककर बाहर गाँव, गली, बाजार में जाना चाहिये। यह विधान केवल उसके लिये है, जिसके घर मृत्यु हो गयी हो। पैरों को पवित्र न करके जो आचमन किया जाता है, वह अपवित्र होता है। पात्र को धोकर, उसमें जल डालकर, उसके बाद उस जल से आचमन करके, अन्य द्रव्य का उसी प्रकार अभ्युक्षण करे अर्थात् द्रव्य को छिड़ककर सजाये। तव वह फूल पत्तो आदि का और तृणों तथा हव्य सामग्री का प्रोक्षण करना चाहिये।।९६।। दूसरे लोगों द्वारा आदर स्वरूप लाये गये द्रव्यों को रखकर उनका प्रोक्षण करना चाहिये। जब तक उनका प्रोक्षण न हो जाये, तब तक पितरों के श्राद्ध अथवा देवों के यज्ञ कार्य में उस द्रव्य को छूना नहीं चाहिये।।९७।।

बांये हाथ से द्रव्य को लेना चाहिये और दांये हाथ से उसे विसर्जित करना चाहिये। सब श्राद्ध के संवृत हो जाने पर यजमान उस द्रव्य को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करे। उच्छिष्ट (जूठा या किसी के द्वारा छुआ) होने पर दैवकार्य यज्ञादि में तथा पितरों के श्राद्धकार्य मे इसके विपरीत कार्य करना चाहिये। दांये हाथ से वेदि की दक्षिणा को लेना चाहिये।।९८-९९।। दोनों हाथों से देवों तथा पितरों के जूठन के छू जाने पर तथा पैर से लग जाने पर जहां पर सन्देह हो कि कहीं मैं अपवित्र नहीं हूँ, तब वहां शिखा खोलकर बांधना चाहिये, यह भी शौच का विधान है।।१००-१०२।। यज्ञोपवीत के विना शिखा खोलकर बांधना तथा छूना व्यर्थ है। ऊँट और भेड़ के दर्शन होने पर अथवा छूने पर अथवा न कहने योग्य बात मुंह से निकल जाये तो जिह्वा और दांतों का स्पर्श करना चाहिये तथा यह सब बोलते हुए अंगुलि से देखते हुए करना चाहिये। पैरों को धोकर हाथों को घुटने पर जल से स्पर्श करे और प्रसन्न हो तीन बार प्रयत्नपूर्वक समाहित चित्त होकर तीन बार जल पीना चाहिये।।१०६।।

द्विरेव मार्जनं कुर्यात्सकृदभ्युक्षणं ततः। खानि मूर्द्धानमात्मानं हस्तौ पादौ तथैव च॥१०७॥
अभ्युक्षयेत्ततस्तस्य यद्यन्मीमांसितं भवेत्। एवमाचमतस्तस्य वेदा यज्ञास्तपांसि च॥१०८॥
दानानि व्रतचर्याश्च भवंति सफलानि वै। क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्येह नास्तिकः॥१०९॥
भवंति हि वृथा तस्य क्रिया ह्येता न संशयः।
वाक्कायबुद्धिपूतानि अस्पृष्टं वाप्यनिंदितम्॥११०॥
ज्ञेयान्येतानि मेध्यानि दुष्टमेध्यो विपर्यये। मनोवाक्कायमग्निश्च कालश्चैवोपलेखनम्॥१११॥
विख्यापनं च शौचानां नित्यमज्ञानमेव वा।
अतोऽन्यथा तु यः कुर्यान्मोहाच्छौचस्य संकरम्॥११२॥
पिशाचान्यातुधानांश्च फलं गच्छत्यसंशयम्।
शौचे चाश्रद्दधानो हि म्लेच्छजातिषु जायते॥११३॥
अयज्वा चैव पापश्च तिर्यग्योनिगतोऽपि च।
शौचेन मोक्षं कुर्वाणः स्वर्गवासी भवेन्नरः॥११४॥

दो बार मार्जन करना चाहिये, उसके बाद एक बार अभ्युक्षण (जल का छिड़काव) करना चाहिये।।१०६½।। अपने सिर को और हाथों तथा पैरों को उसी प्रकार जल से मीमांसा में बताये गये नियमानुसार अभ्युक्षण करना चाहिये। इस प्रकार आचमन करते हुए यजमान के वेद,यज्ञ और तप, दान, व्रतचर्या सब सफल होते हैं।।१०७½-१०८½।। जो यजमान मोहवश विना आचमन करके इन उपर्युक्त वेद, यज्ञ, तप, दान व्रत आदि क्रियाओं को करता है, वह नास्तिक है, उसकी सब क्रियायें निष्फल होती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१०८½-१०९½।। जो वाणी, शरीर और बुद्धि से पवित्र है और जिसे छुआ नहीं गया है अथवा जो अनिन्दित हैं, ऐसी सभी वस्तुयें श्राद्ध मे पवित्र और योग्य मानी जाती है, इसके विपरीत जो वस्तु वाणी, शरीर और बुद्धि से पवित्र नहीं है तथा दुर्गन्धादि से छुयी हुई है अथवा शास्त्रों में जिन्हें याज्ञिक और पितर कार्य में वर्जित बताया गया है, वे सब वस्तुएँ अमेध्य हैं, उन्हें देवकार्य और पितृकार्य मे प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये।।१०९½-११०½।।

मन, वाणी, शरीर और अग्नि तथा समय एवम् उपलेखन अथवा शौचों (शुद्धियों) का नित्य ज्ञान न होना इस सबको ध्यान में रखकर मोहवश अन्य प्रकार से श्राद्धादि कर्म करता है तथा शौच में संकरता करता है। अर्थात् श्राद्धादि क्रियाओं में यजमान को मन, से वाणी और शरीर से समाहित चित्त होकर श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध में शुद्ध अग्नि हो, काल का ध्यान रहे, श्राद्ध विधि सही रहे और श्राद्ध मे पवित्रता का ध्यान रहे, ये सब अवश्य करणीय है, इस सबको जो ध्यान न रखकर श्राद्धक्रिया में मिलावट करता है, उसका फल विपरीत होता है। वह श्राद्ध देवों और पितरों को न प्राप्त होकर पिशाचों और राक्षसों को प्राप्त होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।११०½-११२½।। श्राद्ध कार्य में जो व्यक्ति शौच (साफ-सफाई) में श्रद्धा नहीं रखता है अर्थात् श्राद्धकाल में जो शौचकार्य (पवित्र करने के उपाय) बताये हैं, उनका जो पालन नहीं करता वह व्यक्ति म्लेच्छ जातियों में जन्म ग्रहण करता है तथा मानो वह यज्ञ न करके पाप को प्राप्त करता है और पक्षी की योनि को प्राप्त करता है।।११२½-११३½।। शौच (पवित्रता) के साथ श्राद्ध करता हुआ यजमान मोक्ष प्राप्त करता है और वह स्वर्गवासी होता है; क्योंकि देवता लोग निश्चित ही पवित्रता के इच्छुक हैं तथा देवों ने ऐसा कहा है तथा जो बीभत्स (गन्दे मैले कुचैले) रहते हैं और अपवित्र हैं, उक्त

शुचिकामा हि देवा वै देवैश्चैतदुदाहृतम्। बीभत्सानशुचींश्चैव वर्जयंति सुराः सदा॥११५॥
त्रीणि शौचानि कुर्वंति न्यायतः शुभकर्मिणः।
ब्रह्मण्यायातिथेयाय शौचयुक्ताय धीमहे॥११६॥
पितृभक्ताय दान्ताय सानुक्रोशाय च द्विजाः।
तस्मै देवाः प्रयच्छंति पितरः श्रीविवर्द्धनाः। मनसाकांक्षितान्कामांस्त्रैलोक्यप्रवरानपि॥११७॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पेऽशौच-विधिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

श्राद्धकल्पे, ब्राह्मणपरीक्षानाम

पञ्चदशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

अहो धन्यस्त्वया सूत श्राद्धकल्पः प्रकीर्तितः।
श्रुता न श्राद्धकल्पास्तु ऋषिभिर्ये प्रकीर्त्तिताः॥१॥
अतीव विस्तरो ह्यस्य विशेषेण तु कीर्त्तितः। वेदाशेषं महाप्राज्ञ ऋषेस्तस्य मतं यथा॥२॥

शौचादि कार्यों को नही करते हैं, उन्हे सदा देवता लोग छोड़ देते हैं।।११३½-११५।। जो शुभ कर्म करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य तीन शौचों को नियमपूर्वक करते हैं, उन ब्रह्ममानी, अतिथि सत्कार करने वाले, शौचयुक्त, बुद्धिमान्, पितृभक्त, इन्द्रियों के दमन करने वाले, अनुक्रोशी व्यक्तियों के लिए देवता और पितर लक्ष्मी को बढ़ाने वाले होते हैं तथा तीनों लोकों में भी सर्वश्रेष्ठ मनवाञ्छित कामनाओ को प्रदान करते हैं।।११६-११७।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद १४वां अध्याय श्राद्ध मे शौचविधि वर्णन का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-१५

श्राद्धकल्प में ब्राह्मणपरीक्षा वर्णन

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी! आप धन्य हैं, जो कि आपने श्राद्धकल्प का वर्णन किया है। हमलोगों ने उस श्राद्ध कल्प को सुना, जिनको कि ऋषियों ने वर्णन किया है।।१।। हे महाप्राज्ञ सूत! आपने इस श्राद्ध कल्प का विस्तारपूर्वक विशेषरूप से वर्णन किया है, जिसको ऋषियों ने वेद का अशेष भाग माना है अर्थात् जो वेद का ही पूर्णभाग है।।२।।

सूत उवाच

कीर्त्तयिष्यामि वो विप्रा ऋषेस्तस्य मतं तु यत्।
श्राद्धं प्रति महाभागास्तन्मे शृणुत विस्तरात्॥३॥

उक्तं श्राद्धं मया पूर्वं विधिश्च श्राद्धकर्मणि। परिशिष्टं प्रवक्ष्यामि ब्राह्मणानां परीक्षणम्॥४॥
न मीमांस्याः सदा विप्राः पवित्रं ह्येतदुत्तमम्। दैवे पित्र्ये च नियतं श्रूयते वै परीक्षणम्॥५॥
यस्मिन्दोषाः प्रदृश्येरन्स हि कार्येषु वर्जितः। जानीयाद्वापि संवासाद्वर्जयेत्तं प्रयत्नतः॥६॥
अविज्ञातं द्विजं श्राद्धे न परीक्षेत पंडितः। सिद्धा हि विप्ररूपेण चरंति पृथिवीमिमाम्॥७॥
तस्मादतिथिमायान्तमभिगच्छेत्कृतांजलिः। पूजयेच्चार्घ्यपाद्याभ्यां तथाभ्यंजनभोजनैः॥८॥
उर्वी सागरपर्यंतां देवा योगेश्वराः सदा। नानारूपैश्चरंत्येते प्रजा धर्मेण योजयन्॥९॥
तस्माद्द्यात्सदा दांतः समभ्यर्च्यातिथिं नरः। व्यंजनानि तु वक्ष्यामि फलं तेषां तथैव च॥१०॥

अग्निष्टोमं पयसा प्राप्नुयाद्वै फलं तथोक्थस्य च पायसेन।
सषोडशी सत्रफलं घृतेन मध्वातिरात्रस्य फलं तथैव॥११॥
तथाप्नुयाच्छ्रद्धया नो नरो वै सर्वैः कामैर्भोजयेद्यस्तु विप्रान्।
सर्वार्थदं सर्वविप्रातिथेयं फलं च भुक्ते सर्वमेधस्य नित्यम्॥१२॥

इसके बाद सूतजी ने कहा कि हे विप्रो! अब मैं आपको "श्राद्ध के प्रति ऋषियो का जो मत है, उसका वर्णन करूँगा, उसे आप मुझसे विस्तारपूर्वक सुनिये।।३।। पूर्व अध्याय में मैंने श्राद्धकर्म में श्राद्ध की जो विधि है, उसका वर्णन किया है, अब मैं जो परिशिष्ट हैं ब्राह्मणों की परीक्षा उसका वर्णन करूँगा; क्योंकि श्राद्ध में दान का पात्र किस प्रकार का ब्राह्मण होना चाहिये, यह भी जानना आवश्यक है।।४।। ब्राह्मण सदैव मीमांस्य (जांच के पात्र) नहीं होते, वे पवित्र हों, यह उत्तम है, फिर दैवकार्य और पितृकार्य में परीक्षण नियत है।।५।।

जिस ब्राह्मण में दोष दिखायी दे, वह ब्राह्मण श्राद्ध कार्य में वर्जित हैं। यह सब अच्छी तरह साथ रहने से जानना चाहिये और जानकर उसको श्राद्धकर्म में नहीं लाना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्ति को विना जाने हुए ब्राह्मण की श्राद्ध में परीक्षा नहीं करनी चाहिये अर्थात् साथ रहने आदि से अच्छी तरह परखे हुए ब्राह्मण को ही श्राद्धकार्य में लाना चाहिये। श्राद्ध में अपरिचित को लाकर उसकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि फिर बुलाकर परीक्षा करना उचित नहीं। पहले ही परीक्षा उचित हैं; क्योंकि ब्राह्मण के रूप मे अनेक सिद्ध कहे जाने वाले इस पृथ्वी पर घूमते रहते हैं।।६-७।। इसीलिये आये हुए अतिथि का हाथ जोड़कर स्वागत करना चाहिये तथा सत्कार की सामग्रियों तथा पाद्यों, अर्थात् जलपान नाश्ता आजकल चाय आदि से तथा स्नान भोजनादि कराके उनका पूजन करना चाहिये।।८।। इस सागरपर्यन्त फैली हुई पृथ्वी पर योगेश्वर एवं देवता लोग प्रजा को धर्म में लगाते हुए अनेकों रूपों से विचरण करते हैं। इसीलिये जितेन्द्रिय मनुष्य को चाहिये कि सदैव अतिथि का सत्कार करके उसे दान देना चाहिये।।९-९½।।

सूत जी बोले! अब मैं उन्हें खिलाने वाले भोजनों और उसी प्रकार उनके फलों का वर्णन करूँगा। अतिथि को दुग्धपान कराने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है और खीर खिलाने से उक्थ (स्तुति) का फल प्राप्त होता है। उसे घृत दान करने से सोलह यज्ञफल प्राप्त होती है तथा उसी प्रकार मधु दान से अतिरात्र यज्ञ का फल होता है तथा जो श्रद्धावान् मनुष्य पूरी श्रद्धा के साथ सब कामनाओं से ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसकी सब कामनायें

यस्तु श्राद्धेऽतिथिं प्राप्तं दैवे चाप्यवमन्यते। तं वै देवा निरस्यंति हतो यद्वत्परावसुः॥१३॥
देवाश्च पितरश्चैव तमेवांतर्हिता द्विजम्। आविश्य विप्रं भोक्ष्यंति लोकानुग्रहकारणात्॥१४॥
अपूजितो दहत्येष दिशेत्कामांश्च पूजितः। सर्वस्वेनापि तस्माद्धि पूजयेदतिथिं सदा॥१५॥
वानप्रस्थो गृहस्थश्च सतामभ्यागतो यथा। वालखिल्यो यतिश्चैव विज्ञेयो ह्यतिथिः सदा॥१६॥

अभ्यागतः पाकचारादतिथिः स्यादपावकः।
अतिथेरतिथिः प्रोक्तः सोऽतिथिर्योग उच्यते॥१७॥

नाव्रती न च संकीर्णो नाविद्यो नाविशेषवित्। न च संतानसंबद्धो न देवी नागसेऽतिथिः॥१८॥
पिपासिताय श्रांताय भ्रांतायातिबुभुक्षते। तस्मै सत्कृत्य दातव्यं यज्ञस्य फलमिच्छता॥१९॥
न वक्तव्यं सदा विप्र क्षुधिते नास्ति किंचन। तस्मै सत्कृत्य दातव्यं सदापचितिरेव सः॥२०॥
अक्लिष्टमव्रणं युक्तं कृशवृत्तिमयाचकम्। एकांतशीलं धीमंतं सदा श्राद्धेषु भोजयेत्॥२१॥

नो ददामि तमित्येवं ब्रूयाद्यो वै दुरात्मवान्।
अपि जातिशतं गत्वा न स मुच्येत किल्बिषात्॥२२॥

पूर्ण होती हैं। अतः ब्राह्मण का अतिथि सत्कार सब प्रकार के धनों को देने वाला होता है तथा वह व्यक्ति सब यज्ञों के फल को प्राप्त करता है।।९½-१२।। जिस व्यक्ति ने श्राद्ध में अतिथि को प्राप्त कर लिया, वह दैव (भाग्य) में माना जाता है अर्थात् भाग्यवान् को ही अतिथि सत्कार का अवसर मिल पाता है। देवता और पितर उस ब्राह्मण को अन्तर्हित कर लेते हैं अर्थात् उस अतिथि ब्राह्मण में देवता और पितर समा जाते हैं तथा उस ब्राह्मण में पूरी तरह प्रवेश कर संसार का कल्याण करने के उद्देश्य से भोजन करेंगे।।१४।। जो अतिथि ब्राह्मण अपूजित होता है अर्थात् जिसकी पूजा नहीं की जाती है, वह जला देता है तथा जो पूजित होता है, वह सभी कामनाओं को प्रदान करता है। इसलिये सर्वस्व देकर के भी सदा अतिथि का सत्कार करना चाहिये।।१५।।

सज्जनों के पास अकस्मात् आया हुआ व्यक्ति वह चाहे वानप्रस्थी हो, गृहस्थ हो, बालखिल्य (तपस्वी, संन्यासी) हो अथवा संन्यासी हो, उसे अतिथि ही समझना चाहिये।।१६।। जो कोई विना किसी तिथि के अकस्मात् आ जाये, वह अतिथि विना अग्नि का अतिथि होता है, वह अतिथि का भी अतिथि कहा गया है, यही अतिथि योग कहा जाता है।।१७।। न तो अव्रती (व्रत न रखने वाला) अतिथि है, न संकीर्ण विचार वाला अतिथि होता है, न अविद्या वाला अतिथि है तथा न ही विशेष ज्ञान रखने वाला अतिथि है, न सन्तान से सम्बन्ध रखने वाला अतिथि है, न देवी अतिथि है और न अपराधी अतिथि होता है।।१८।।

जो प्यासा है, जो थका हुआ है, जो रास्ता भूला हुआ है तथा जो अत्यन्त भूखा है, उसको यज्ञ का फल चाहने वाले व्यक्ति द्वारा सत्कार करके दान देना चाहिये।।१९।। सदा कोई भूखा नहीं है, यह ब्राह्मण भूखा नहीं मर रहा है, इसे क्या दें? ऐसा नहीं बोलना चाहिये, जो भी भूखा हो, वह भले ही अपरिचि ही हो, सत्कार करके उसे दान देना चाहिये।।२०।। श्राद्धों में सदैव सरल स्वभाव वाले, घाव रहित, जिसकी जीविका बहुत कम हो, जो मांगने वाला न हो अर्थात् अयाचक ब्राह्मण हो, जो एकान्त में रहने वाला सदाचारी हो तथा बुद्धिमान् हो, ऐसे व्यक्ति को सदैव भोजन कराना चाहिये।।२१।।जो दुरात्मा व्यक्ति यह कहता है कि उसे नहीं देना चाहिये वह सैकड़ों जन्म लेकर भी पाप से मुक्त नहीं होता।।२२।।

समोदं भोजयेद्विप्रानेकपंक्त्यां तु यो नरः।
नियुक्तो ह्यनियुक्तो वा पंक्त्या हरति किल्विषम्॥२३॥
पाप्मानं गृह्यते क्षिप्रमिष्टापूर्त्तं च नश्यति। यतिस्तु सर्वविप्राणां सर्वेषामग्रतो भवेत्॥२४॥
पंच वेदान्सेतिहासान्यः पठेद्विजसत्तमः। योगादनंतरं सोऽथ नियोक्तव्यो विजानता॥२५॥
त्रिवेदोऽनंतरं तस्य द्विवेदस्तदनंतरम्। एकवेदस्ततः पश्चादुपाध्यायस्ततः परम्॥२६॥
पावना येऽत्र संख्यातास्तान्प्रवक्ष्ये निबोधत। ये ते पूर्वनिर्दिष्टाः सर्वे ते ह्यनुपूर्वशः॥२७॥
षडंगविद्ध्यानयोगौ सर्वतंत्रस्तथैव च। यायावरश्च पंचैते विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः॥२८॥
श्राद्धकल्पे भवेद्यस्तु सन्निपत्य तु पावनः। चतुर्दशानां विद्यानामेकस्यामपि पारगाः॥२९॥
यथावद्वर्त्तमानाश्च सर्वे ते पंक्तिपावनाः। असंदेहस्तु सौपर्णाः पंचाग्नेयाश्च सामगाः॥३०॥
यश्चरेद्विधिवद्विप्र समा द्वादश संततः। त्रिनाचिकेतस्त्रे विद्या यश्च धर्मान्द्विजः पठेत्॥३१॥
बार्हस्पत्ये महाशास्त्रे यश्च पारंगतो द्विजः। सर्वे ते पावना विप्राः पंक्तीनां समुदाहृताः॥३२॥
आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे योषितं सेवते द्विजः। पितरस्तस्य तन्मासं तस्मिन्रेतसि शेरते॥३३॥
ध्याननिष्ठाय दातव्यं सानुक्रोशाय धीमते।
यतिं वा वालखिल्यं वा भोजयेच्छ्राद्धकर्मणि॥३४॥

जो मनुष्य प्रसन्नता के साथ एकपंक्ति में ब्राह्मणों को भोजन कराता है, वह नियुक्त हो या अनियुक्त हो पंक्ति के द्वारा पाप को हर लेता है।।२३।। पापी शीघ्र अभीष्ट फल की अपूर्ति ग्रहण करता है और वह नष्ट हो जाता है, जो संन्यासी है, वह श्राद्ध में सभी ब्राह्मणों में आगे होना चाहिये।।२४।। जो इतिहास सहित पाँचों वेदों (अर्थात् चार वेद और पुराणों) को पढ़ता हो, उसे योगी के वाद श्राद्ध में जानकारों द्वारा नियुक्त करना चाहिये।।२५।। उसके बाद तीन वेदों के ज्ञाता त्रिवेदी को श्राद्ध में स्थान देना चाहिये, फिर उसके बाद दो वेद के ज्ञाता द्विवेदी ब्राह्मण का स्थान होना चाहिये, उसके बाद एक वेद के ज्ञाता का स्थान होना चाहिये।।२६।। फिर उसके वाद उपाध्याय का स्थान होना चाहिये।।२६।।अव यहाँ पर जो पवित्र संख्यायें बतायी गयी हैं, उनको मैं बताऊँगा, ध्यान पूर्वक सुनिये। जो ये पूर्व में पांच पंक्ति पावन बताये गये हैं, वे सब अनुपूर्वश (पीछे के) हैं।।२७।।

षडङ्ग वित् (शिक्षा कल्पव्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष के जानने वाले) ध्यान करने वाले, योगाभ्यास करने वाले, सब शास्त्रों (मतों) में समान विचार रखने वाले और यायावर (सर्वत्र घूमने वाले साधुसन्त) इन पाँचों को ब्राह्मगोष्ठी पंक्तिपावन समझना चाहिये।।२८।। श्राद्धकल्प में जो भी चौदह विद्याओं में किसी एक विद्या में भी पारङ्गत हैं तथा यथावत् उस विद्या का व्यवहार करते हैं, वे सब पंक्तिपावन है। निःसन्देह सौपर्ण पंचाग्नेय सामवेद का गान करने वाले भी पंक्तिपावन हैं।।२८-३०।। जो ब्राह्मण बारह वर्ष तक विधिवत् लगातार अध्ययन करे, वह भी पंक्तिपावन हैं। त्रिनाचिकेत (नचिकेता की तीन विद्याओं को जानने वाला) जो ब्राह्मण धर्मों का अध्ययन करे, वह भी पंक्ति पावन है।।३१।। बृहस्पति के महाशास्त्र अर्थात् अर्थशास्त्र का जिस ब्राह्मण ने अध्ययन किया हो, वह भी पंक्तिपावन है। इस प्रकार ये भी उपर्युक्त ब्राह्मण पंक्तिपावन कहे गये हैं। ये ही पंक्ति में बैठकर दैवकर्म (यज्ञ) और पितृकर्म श्राद्ध में भोजनदानादि ग्रहण करने के अधिकारी हैं।।३२।। जो श्राद्धकर्म में आमन्त्रित ब्राह्मण स्त्री का सेवन करता है, उसके मांस को खाकर पितरगण उसके उस वीर्य पर ही सोते हैं।।३३।। श्राद्धकर्म में अनुक्रोश सहित

वानप्रस्थाय कुर्वाणः पूजामात्रेण तुष्यते। गृहस्थं भोजयेद्यस्तु विश्वेदेवास्तु पूजिताः॥३५॥
वानप्रस्थेन ऋषयो वालखिल्यैः पुरंदरः। यतीनां तु कृता पूजा साक्षाद्ब्रह्मा तु पूजितः॥३६॥
आश्रमोऽपावनो यस्तु पंचमस्संकारात्मकः।
चत्वारस्त्वाश्रमाः पूज्याः श्राद्धे देवे तथैव च॥३७॥
चातुराश्रमबाह्येभ्यस्तेभ्यः श्राद्धे न दापयेत्। यस्तिष्ठेद्वायुभक्षश्च चातुराश्रमबाह्यतः॥३८॥
अनाश्रमी तपस्तेपे न तं तत्र निमंत्रयेत्। अयतिर्मोक्षवादी च श्रुतौ तौ पंक्तिदूषकौ॥३९॥
उग्रेण तपसा युक्ता बहुज्ञाश्चित्रवादिनः। निंदंति च द्विजातिभ्यः सर्वे ते पंक्तिदूषकाः॥४०॥
औपवस्तास्तथा सांख्या नास्तिका वेदनिंदकाः।
ध्यानं निंदंति ये केचित्सर्वे ते पंक्तिदूषकाः॥४१॥
वृथा मुंडाश्च जटिलाः सर्वे कार्पटिकास्तथा। निर्घृणान्भिन्नवृत्तांश्च सर्वभक्षांश्च वर्जयेत्॥४२॥
कारुकादीननाचारॉल्लोकवेदबहिष्कृतान्। गायनान्वेदवृत्तांश्च हव्यकव्ये न भोजयेत्॥४३॥

भगवान् के ध्यान में लगे हुए बुद्धिमान् ब्राह्मण को ही दान देना चाहिये तथा श्राद्धकर्म में संन्यासी अथवा बालखिल्य को ही भोजन कराना चाहिये।।३४।। वानप्रस्थी ब्राह्मण को जो भोजन कराता है, वह उसकी पूजा से ही सन्तुष्ट हो जाता है तथा जो गृहस्थ ब्राह्मण को भोजन कराये, उसने समझो कि विश्वेदेव देवताओं का ही पूजन कर लिया।।३५।। वानप्रस्थ ब्राह्मण को भोजन कराने से ऋषि लोग पूजित होते हैं तथा बालखिल्यों को भोजन कराने से इन्द्र पूजित होते हैं। तथा सन्यासियों की यदि पूजा की गयी तो समझो कि ब्रह्मा की पूजा कर दी गयी। अर्थात् संन्यासियों की पूजा ब्रह्मा की पूजा है।।३६।। पंचम संस्कारात्मक जो अपावन आश्रम है, उसे छोड़कर चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये आश्रम श्राद्धकर्म और यज्ञकर्म में पूज्य हैं। इन चार आश्रमों से जो वाह्य है अर्थात् जो ब्राह्मण इन चार आश्रमों का पालक नहीं है, उसको श्राद्ध में दान नहीं दिलाना चाहिये।।३७-३७½।।

इसके अनुसार तो २५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, ५० की आयु के बाद वन में रहकर वानप्रस्थ धर्म का पालन करने वाला तथा ७५ वर्ष की आयु में संन्यासी न बनने वाला ब्राह्मण दान का अधिकारी नहीं है। इसके अनुसार जो आजकल केवल २६ से ५० वर्ष तक के गृहस्थ ही दान एवं भोजन के अधिकारी हैं तथा जो वायु का भक्षण करने वाला हो; परन्तु चार आश्रमों का पालन करने वाला न हो तथा विना आश्रमधर्म का पालन किये हुए ही तपस्या कर रहा हो, उसको श्राद्ध मे नहीं बुलाना चाहिये तथा जो संन्यासी नहीं है और जो मोक्षवादी है, वे दोनों ही वेद में पंक्तिदूषक कहे गये हैं।।३७½-३९।।

जो उग्र तपस्या से युक्त हैं और ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्यों से निन्दा करते हैं। वे सब पंक्तिदूषक कहे गये।।४०।। औपव (पूरी लगन के साथ काम कर जीविका चलाने वाला) तथा सांख्यशास्त्र के ज्ञाता, नास्तिक अर्थात् ईश्वर को न मानने वाला और वेद निन्दक तथा जो कोई ध्यान की निन्दा करते हैं, वे सब पंक्तिदूषक हैं।।४१।। श्राद्धकर्म और यज्ञकर्म में व्यर्थ ही सिर मुड़ाकर साधु बने हुए, जटायें रखने वाले, सब कार्पटिक (तीर्थों का जल ढोने वाले), निर्घृण (गन्दे रहने वाले), भिन्न-भिन्न तरह का व्यवहार करने वाले तथा सबकुछ खाने वाले व्यक्तियों को श्राद्धकर्म में छोड़ देना चाहिये। वे पंक्ति पावन नहीं हैं।।४२।। श्राद्धकर्म मे कारुकादि (कारीगरी करने वाले) अनाचारी, लोक और वेद से बहिष्कृत, गायकों और वेदवृत्तों को हव्यकव्य अर्थात् यज्ञकर्म तथा श्राद्धकर्म में भोजन नही कराना चाहिये।।४३।।

एतैस्तु वर्त्तयेद्यस्तु कृष्णवर्णं स गच्छति। योऽश्नाति सह शूद्रेण सर्वे ते पंक्तिदूषणाः॥४४॥
व्याकर्षणं सत्त्वनिबर्हणं च कृषिर्वणिज्या पशुपालनं च।
शुश्रूषणं चाप्यगुरोररेर्याप्यकार्यमेतद्धि सदा द्विजानाम्॥४५॥
मिथ्यासंकल्पिनः सर्वानुदवृत्तांश्च विवर्जयेत्।
मिथ्याप्रवादी निंदाकृत्तथा सूचकदांभिकौ॥४६॥
उपपातकसंयुक्ताः पातकैश्च विशेषतः। वेदे नियोगदातारो लोभमोहफलार्थिनः॥४७॥
ब्रह्मविक्रयिणस्तान्वै श्राद्धकर्मणि वर्जयेत्।
न वियोगास्तु वेदानां यो नियुंक्ते स पापकृत्॥४८॥
वक्ता वेदफलाद्भ्रश्येद्दाता दानफलात्तथा। भृतकोऽध्यापयेद्यस्तु भृतकाध्यापितस्तु यः॥४९॥
नार्हतस्तावपि श्राद्धे ब्राह्मणः क्रयविक्रयी। क्रयश्च विक्रयश्चैवाजीवितार्थे विगर्हितौ॥५०॥
वृत्तिरेषा तु वैश्यस्य ब्राह्मणस्य तु पातकम्। आहरेद्भृतितो वेदान् वेदेभ्यश्चोपजीवति॥५१॥
उभौ तौ नार्हतः श्राद्धं पुत्रिकापतिरेव च। वृथा दारांश्च यो गच्छेद्यो यजेत वृथाऽध्वरैः॥५२॥
नार्हतस्तावपि श्राद्धं द्विजो यश्चैव वार्धुषी। स्त्रियो रक्तांतरा येषां परदारपराश्च ये॥५३॥

इन सबके साथ जो व्यवहार करता है, वह कृष्ण वर्ण को प्राप्त करता है तथा जो शूद्र के साथ भोजन करता है, इस प्रकार ये सभी पंक्तिदूषक कहे गये हैं।।४४।। विशेष आकर्षण रखने वाले जीवों की हिंसा करना, कृषि, व्यापार एवं पशुपालन, जो गुरु (महान् ज्ञाता) नहीं है, उसकी सेवा करना यह सदैव ब्राह्मणों के अकार्य कर्म हैं।।४५।। मिथ्या संकल्प करने वाले, सब व्यवहारों को करने वाले, मिथ्या प्रवादी, दूसरों की निन्दा करने वाले, चुगलखोर, दम्भी, छोटे-छोटे पाप कर्म मेंलगे रहने वाले तथा विशेष रूप से पाप करने वाले, वेद वाक्यों में अपनी समझ में अपनी अलग व्याख्या करने वाले, लोभ मोह युक्त फल की कामना करने वाले, ब्रह्मविद्या का विक्रय करने वाले (आजकल पैसों पर दूसरे का निबन्ध या शोध-प्रबन्ध लिखने वाले) ऐसे जो ब्राह्मण हैं, उन्हें श्राद्धकर्म में छोड़ देना चाहिये।।४५-४६½।। वेद में विशेष योग अर्थात् कोई विशेष बात जोड़ने का अधिकार किसी को नहीं है तथा जो उनमें अपनी आज्ञा लगाता है अर्थात् अपनी चलाता है, वह ब्राह्मण पापी होता है।।४६½-४८।। तथा वेद में कुछ जोड़कर बोलने वाला भी पापी होता है, ऐसे लोगों को जो दान करता है, उस दाता के दान का फल नष्ट हो जाता है तथा जो जीविका रुपया आदि लेकर किसी को पढ़ाता है और जो जीविका आदि लेकर पढ़ाने वाले अध्यापक से पढ़ता है, ये दोनों ही श्राद्धकर्म में प्रवेश पाने के अधिकारी नहीं हैं; क्योकि ये दोनों ही विद्या के क्रय और विक्रय रूप अपराध के अपराधी हैं। जीविका के लिये विद्या की खरीद फरोख्त करना गर्हित है।।४८-५०।।

क्रय-विक्रय करना यह तो वैश्य की जीविका है। ब्राह्मण के लिए तो यह पाप है।।५०½।। जो सामान्य कथाओं की भाँति वेदवाक्यों को कहता है। जो वेदों का ज्ञाता जीविका के लिये वेदों का पाठ आदि करता है। वे दोनों ही श्राद्धकर्म के योग्य नहीं हैं। भले ही वह पुत्री का पति जामाता ही क्यों न हो, श्राद्धकर्म में नियुक्त करने योग्य नहीं हैं।।५०½-५१½।। जो व्यर्थ में पुत्रोत्पत्ति की इच्छा के विना स्त्री के साथ सम्भोग करता है तथा जो यज्ञ में व्यर्थ ही हवन करता है, वे दोनों ही श्राद्ध के योग्य नहीं हैं।। और जो द्विज वार्धुषी हैं, वे तथा जिनकी स्त्रियां रजस्वला हो रही है तथा जिनकी पत्नियां दूसरे के पतियो का सेवन करने वाली हैं तथा पुरुष भी परस्त्री सेवन करने वाले हैं, ऐसे

अर्थकामरताश्चैव न ताञ्छ्राद्धेषु भोजयेत्। वर्णाश्रमाणां धर्मेषु विरुद्धाः सर्वकर्मणि॥५४॥
स्तेनश्च सर्वयाजी च सर्वे ते पंक्तिदूषकाः। यश्च सूकरवद्भुंक्ते यश्च पाणितले द्विजः॥५५॥
न तदश्नंति पितरो यश्च वाच्यं समश्नुते। स्त्रीशूद्रायान्नमेतद्वै श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत्॥५६॥
यो दद्याच्चानुसंमोहान्न तद्गच्छति वै पितृन्। तस्मान्न देयमन्नाद्यमुच्छिष्टं श्राद्धकर्मणि॥५७॥
अन्यच्च दधिसर्पिर्भ्यां शिष्टं पुत्राय नान्यथा। अवशेषं तु दातव्यमन्नाद्यं तु विशेषतः॥५८॥
पुष्पमूलफलैर्वापि तुष्टा गच्छेयुरंततः। यावन्न शापितं चान्नं यावदौष्ण्यं न मुंचति॥५९॥
तावदश्नंति पितरो यावदश्नंति वाग्यताः। दत्तं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च॥६०॥
सांगुष्ठेन तथा पाद्यं नासुरेभ्यो यथा भवेत्। तान्येव च सर्वाणि दानानि च विशेषतः॥६१॥
अंतर्जानूपविष्टेन तद्वदाचमनं भवेत्। मुंडाञ्जटिलकाषायाञ्श्राद्धकर्मणि वर्जयेत्॥६२॥
ये तु वृत्ते स्थिता नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिस्तथा। देवभक्ता महात्मानः पुनीयुर्दर्शनादपि॥६३॥
शिखिभ्यो धातुरक्तेभ्यस्त्रिदंडेभ्यः प्रदापयेत्। सर्वं योगेश्वरैर्व्याप्तं त्रैलोक्यं हि निरंतरम्॥६४॥
तस्मात्पश्यंति ते सर्वं यत्किंचिज्जगतीगतम्।
व्यक्ताव्यक्तं वशे कृत्वा सर्वस्यापि च यत्परम्॥६५॥

ब्राह्मण श्राद्धकर्म के अधिकारी नहीं हैं।।५१½-५३।। जो ब्राह्मण अर्थ और काम में रत हैं, उनको श्राद्ध में भोजन नहीं कराना चाहिये तथा जो वर्णाश्रम धर्मों और श्राद्धकर्म में विरोध करने वाले हैं, जो चोरी करने वाले हैं, चाहे जिससे यज्ञ कराने वाले, वे सब पंक्ति दूषक हैं।।५४-५४½।। जो ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य सूअर की तरह खाता है अथवा हाथ पर रख कर खाता है, उसका दिया हुआ भोजन पितरगण नहीं स्वीकार करते हैं।।५४½-५५½।। श्राद्ध से वचा हुआ अन्न स्त्री तथा शूद्र को नहीं देना चाहिये, जो अज्ञान और मोहवश देता है, वह भोजन पितरों को प्राप्त नहीं होता है। इसलिए श्राद्धकर्म में वचे हुए अन्न को किसी को नहीं देना चाहिये, अन्यथा दही और घृत को मिलाकर पुत्र अथवा शिष्ट को दे देना चाहिये, अन्यथा नहीं। विशेषतया श्राद्ध से बचे हुए जूठे अन्न को ही देना चाहिये।।५५½-५८।। पुष्प, मूल और फलों से जिस प्रकार पितरगण तृप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्न से भी तृप्त होते हैं। जब तक अन्न अपनी उष्णता नहीं छोड़ता है, तव तक वह पवित्र रहता है तथा शापित नहीं होता उष्णता छोड़ने पर अन्न शापित हो जाता है।।५९।। जव तक ब्राह्मण लोग चुपचाप इन्द्रियों को वश में करके भोजन करते हैं, तब तक पितरगण स्वीकार करते हैं।।५९-५९½।। दान को स्वीकार करना, हवन, भोजन, बलि इन सबको अंगूठे के साथ सम्पन्न करना चाहिये, जिससे वह असुरों के लिये न हो जाये। श्राद्धकर्म में विशेषतः ये उपर्युक्त दानादि करने चाहिये।।५९½-६१।।

यजमान को अपने घुटनों के नीचे करके उनके बल बैठकर आचमन करना चाहिये—श्राद्धकाल में मुड़े शिर वाले, जटा रखने वाले, गेरुआ वस्त्र पहनने वाले को दूर रखना चाहिये।।६२।। जो ब्राह्मण सदैव व्रत में लगे रहते हैं ज्ञान प्राप्त करने में लगे रहकर योग का अभ्यास करते रहते हैं, देवों के प्रति भक्ति भाव रखते हैं, आत्मा से महान् होते हैं, ऐसे शिखाधारी, गेरुधातु से रंगे वस्त्र वाले त्रिदण्डियों, (अर्थात् मन, वचन, कर्म से जो संन्यासी हों) उन्हें श्राद्धदान दिलवाना चाहिये।।६२-६३½।। यह समस्त जड़ चेतन जगत् योगपरायण महात्माओं से निरन्तर व्याप्त रहता है, इसीलिये इस जगतीतल पर जो कुछ होता है, वे उसे देखते हैं।।६३½-६४½।। व्यक्त (दिखायी देने वाले पंचभूतादि) तथा अव्यक्त (प्रकृति) आदि को वश में करके, जो उनसे परे पदार्थ (आत्मा परमात्मा) के विषय में ज्ञान

सत्यासत्यं च यद्दृष्टं सदसच्च महात्मभिः। सर्वज्ञानानि सृष्टानि मोक्षादीनि महात्मभिः॥६६॥
तस्मात्तेषां सदा भक्तः फलं प्राप्नोति चोत्तमम्॥६७॥
ऋचश्च यो वेद स वेद वेदान्यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम्।
सामानि यो वेद स वेद ब्रह्म यो मानसं वेद स वेद सर्वम्॥६८॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पे ब्राह्मणपरीक्षा नाम पंचदशोऽध्यायः॥१५॥

रखते हैं; क्योंकि आत्मतत्त्व का ज्ञान प्रकृति और उसके कार्यभूत बुद्धि, अहंकार, मन, ग्यारह इन्द्रियों पंच तन्मात्राओं और पंचमहाभूतों को वश में करके ही सम्भव है। अतः जो व्यक्ताव्यक्त को वश में करते हैं, वे ही उससे परे आत्मतत्त्व के विषय में जान पाते हैं अर्थात् ऐसे महापुरुष तथा सत्य और असत्य को जिन्होंने जान लिया है तथा इस संसार में क्या सत् (सदा रहने वाली वस्तु) है तथा क्या असत् (नाशशील) वस्तु है? यह सब जिन्होंने जान लिया है, उन महापुरुषों ने मोक्षादि प्राप्त करने वाले सब ज्ञानों को उत्पन्न किया है; इसलिए ऐसे महापुरुषों का भक्त ही सदा उत्तम फल को प्राप्त करता है।।६४½-६७।। जो ऋग्वेद को जानता है, वह सब वेदों को जानता है, जो यजुर्वेद को जानता है, वह यज्ञ को जानता है, जो सामवेद को जानता है, वह ब्रह्म को जानता है, जो मानस को जानता है, वह सबकुछ जानता है।।६८।।

यहाँ मानस से तात्पर्य यथासम्भव अथर्ववेद से है; क्योंकि अथर्ववेद में ही सामाजिक आर्थिक व्यावहारिक तथा अन्य जीवनोपयोगी समस्याओं का समाधान वर्णित है। इसीलिये सबकुछ जानने की बात कही गयी है।

।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद १५वां अध्याय श्राद्धकल्प में ब्राह्मण परीक्षा वर्णन का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

श्राद्धकल्पेदानप्रशंसानाम

षोडषोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानानि च फलानि च। तारणं सर्वभूतानां स्वर्गमार्गसुखावहम्॥१॥
लोके श्रेष्ठतमं सर्वमात्मनश्चैव यत्प्रियम्। सर्वं पितॄणां दातव्यं तेषामेवाज्ञयार्थिना॥२॥
जांबूनदमयं दिव्यं विमानं सूर्यसन्निभम्। दिव्याप्सरोभिः संपूर्णमन्नदो लभतेऽक्षयम्॥३॥
सव्यंजनं तु यो दद्यादहतं श्राद्धकर्मणि। आयुः प्राकाश्यमैश्वर्यं रूपं च लभते शुभम्॥४॥
यज्ञोपवीतं यो दद्याच्छ्राद्धकाले तु यज्ञवित्। पावनं सर्व विप्राणां ब्रह्मदानस्य तत्फलम्॥५॥
प्लुतं विप्रेषु यो दद्याच्छ्राद्धकाले कमंडलुम्। मधुक्षीराज्यदधिभिर्दातारमुपतिष्ठते॥६॥
चक्राविद्धं च यो दद्याच्छ्राद्धकाले कमंडलुम्। धेनुं स लभते दिव्यां पयोदां सुखदोहिनीम्॥७॥
तूलपूर्णे च यो दद्यात्पादुके श्राद्धकर्मणि। शोभनं लभते यानं पादयोः सुखमेधते॥८॥
व्यजनं तालवृंतं च दत्त्वा विप्राय सत्कृतम्। प्राप्नुयात्सर्वपुष्पाणि सुगंधीनि मृदूनि च॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-१६

श्राद्धकल्प में दान की प्रशंसा का वर्णन

बृहस्पति ने कहा—कि मैं अब इसके बाद पुनः दान और दान के फलों को बतला रहा हूँ। सभी जीवों को तारने वाले स्वर्ग के मार्ग में सुखपूर्वक ले जाने वाले, संसार में जो सबसे श्रेष्ठतम है तथा जो अपनी सबसे प्रिय वस्तु है, उसे अक्षय तृप्ति के लिए दान करना चाहिये।।१-२।। श्राद्ध में अन्न का दान करने वाला व्यक्ति सोने के बने हुए सूर्य के समान चमकते हुए, स्वर्ग की अप्सराओं से भरे हुए, कभी नष्ट न होने वाले, आनन्द को प्राप्त करता है।।३।। श्राद्धकर्म में भोजन कराने के साथ-साथ बिना फटा हुआ वस्त्र जो व्यक्ति दान करता है, वह आयु, शरीर में चमक, ऐश्वर्य और शुभ (सुन्दर) रूप को प्राप्त करता है।।४।। जो यज्ञ को जानने वाला यजमान, श्राद्ध के समय यज्ञोपवीत दान में देता है, वह सब ब्राह्मणों के ब्रह्मदान का फल है।।५।।

श्राद्धकाल में जो यजमान ब्राह्मण को भरे हुए प्लुत कमण्डलु को दान करता है, वह कमण्डलु दान दाता को मधु, दुग्ध, घृत और दही उपस्थित करता है।।६।। प्लुत का अर्थ यहाँ 'तीन' कमण्डलु हो सकता है अथवा ॐकार से चिह्नित कमण्डलु भी हो सकता है। जो यजमान श्राद्धकाल में चक्र के आकार से चिह्नित कमण्डलु दान करता है, वह आसानी से दुहने योग्य दूध देने वाली गाय को प्राप्त करता है।।७।। श्राद्धकर्म में जो व्यक्ति तूलपर्ण पादुक (ब्रुश सहित जूते) प्रदान करता है, वह शोभायमान (सवारी) (वाहन) को प्राप्त करता है, जो वाहन उसके पैरों को सुख प्रदान करता है।।८।। जो यजमान श्राद्धकर्म में ब्राह्मण के लिये सत्कार के साथ तालवृत्त व्यञ्जन (तालियों के साथ खुशी से भोजन) कराता है, वह मनुष्य सब सुगन्धित और कोमल पुष्पों को प्राप्त करता है।।९।।

श्राद्धे ह्युपानहौ दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः सदा बुधः।
दिव्यं स लभते यानं वाजियुक्तं नवं तथा॥१०॥
श्राद्धे छत्रं तु यो दद्यात्पुष्पमालान्वितं तथा। प्रासादो ह्युत्तमो भूत्वा गच्छंतमनुगच्छति॥११॥
शरणं रत्नसंपूर्णं सशय्याभोजनं बुधः। श्राद्धे दत्त्वा यतिभ्यस्तु नाकपृष्ठे महीयते॥१२॥
मुक्तावैदूर्यवासांसि रत्नानि विविधानि च। वाहनानि च दिव्यानि प्रयुतान्यर्बुदानि च॥१३॥
सुमहद्व्योमगं पुण्यं सर्वकामसमन्वितम्। चन्द्रसूर्यनिभं दिव्यं विमानं लभतेऽक्षयम्॥१४॥
अप्सरोभिः परिवृतं कामगं सुमनोजवम्। वसेत्स तु विमानाग्रे स्तूयमानः समंततः॥१५॥
दिव्यैः पुष्पैश्चिश्चाहुर्दानानां परमं बुधाः। सुश्लक्ष्णानि सुवर्णानि श्राद्धे पात्राणि दापयेत्॥१६॥
रसास्तमुपतिष्ठंति भक्ष्यं सौभाग्यमेव च। तिलानिक्षूंस्तथा श्राद्धे द्विजेभ्यः संप्रयच्छति॥१७॥
मित्राणि लभते लोके स्त्रीषु सौभाग्यमेव च। यः पात्रं तैजसं दद्यान्मनोज्ञं श्राद्धभोजनैः॥१८॥
पात्रं भवति कामानां रूपस्य च धनस्य च। राजतं कांचनं वापि यो दद्याच्छ्राद्धकर्मणि॥१९॥
दानात्तु लभते कामान्प्राकाश्यं धनमेव च। धेनुं श्राद्धे तु यो दद्याद्दृष्टिं कुम्भापदोहनीम्॥२०॥
गावस्तमुपतिष्ठंति नरं पुष्टिस्तथैव च। दद्याद्यः शिशिरे चाग्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः॥२१॥
कायाग्निदीप्तिं प्राकाश्यं सौभाग्यं लभते नरः।
इन्धनानि तु यो दद्याद्विजेभ्यः शिशिरागमे॥२२॥

श्राद्ध में जो ज्ञानी पुरुष ब्राह्मण को जूते देकर उसे सम्मानित करता है, वह अश्वयुक्त नवीन वाहन को प्राप्त करता है।।१०।। श्राद्ध में जो पुष्प-माला सहित छत्र प्रदान करता है, वह छत्र उसका राजमहल बनकर उसके पीछे परलोक मे जाता है।।११।। श्राद्ध के अवसर संन्यासियों को रत्नादि से युक्त भवन एवम् शय्या सहित भोजन प्रदानकर विद्वान् पुरुष स्वर्ग में महान् पद प्राप्त करता है।।१२।। मोती, वैदूर्य, अनेक प्रकार के वस्त्र और रत्न और करोड़ों और अरबों दिव्य वाहन और अच्छा तथा बड़ा आकाश में जाने वाला समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रकाशमान अक्षय दिव्य विमान को प्राप्त करता है।।१३-१४।। और फिर वह दाता अप्सराओं से परिवृत कामनाओं को पूर्ण करने वाले सुन्दर और मन के समान वेग वाले विमान के अग्रभाग में सब ओर से स्तुति किया जाता हुआ निवास करता है।।१५।।

दिव्य पुष्पों द्वारा सजाये गये दान की देवता लोग परम प्रशंसा करते हैं। श्राद्ध में अच्छे लक्षण वाले सुवर्ण के पात्रों को दिलाना चाहिये, जो लोग श्राद्ध में ऐसे स्वर्णपात्रों का दान करते हैं, उन्हें अनेको प्रकार के रसों वाले खाद्य पदार्थ और सौभाग्य प्राप्त होता है।।१६-१६½।। तथा श्राद्ध में जो यजमान ब्राह्मणों को तिल और ईख (गन्ना) दान करता है, वह संसार में अच्छे मित्र प्राप्त करता है। स्त्रियों में सौभाग्य प्राप्त करता है।।१६½-१७½।। जो श्राद्धकाल में भोजन के अवसर पर योग्य ब्राह्मण को चांदी दान करता है। वह समस्त इच्छाओं, रूप और धन को प्राप्त करने का पात्र होता है।।१७½-१८½।। जो यजमान श्राद्धकर्म में चांदी और सोना दान करे, तो वह उस दान से समस्त इच्छाओं को सर्वत्र अपने यशरूप प्रकाश को और धन को प्राप्त करता है।।१८½-१९½।। जो श्राद्ध में दोहन पात्र के साथ पहली बार व्याही हुई धेनु (गौ) का दान करता है, उसे घड़े भरकर दूध देने वाली गायें प्राप्त होती हैं, जिससे उस मनुष्य की पुष्टि हो जाती है।।१९½-२०½।। जो यजमान शिशिर (जाड़े की ऋतु) में प्रयत्नपूर्वक

नित्यं जयति संग्रामे श्रिया जुष्टस्तु जायते। सुरभीणि च माल्यानि गंधवंति तथैव च॥२३॥

पूजयित्वा तु पात्रेभ्यः श्राद्धे सत्कृत्य दापयेत्।
गंधमाल्यं महात्मानं सुखानि विविधानि च॥२४॥

दातारमुपतिष्ठंति युवत्यश्च पतिव्रताः। शयनासनयानानि भूमयो वाहनानि च॥२५॥
श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यादश्वमेधफलं लभेत्। श्राद्धकाले गुणवति विप्रे वै समुपस्थिते॥२६॥

इष्टद्रव्यं च यो दद्यात्स्मृतिं मेधां च विंदति।
सर्पिःपूर्णानि पात्राणि श्राद्धे सत्कृत्य दापयेत्॥२७॥

कुम्भोपदोहगृष्टीनां वह्वीनां फलमश्नुते। श्राद्धे यथेप्सितं दत्त्वा पुंडरीकफलं लभेत्॥२८॥
वनं पुष्पफलोपेतं दत्त्वा गोसवमश्नुते। कूपारामतडागानि क्षेत्रगोष्ठगृहाणि च॥२९॥

दत्त्वा मोदंति ते स्वर्गे नित्यमाचन्द्रतारकम्।
सवास्तीर्णं शयनं दत्त्वा श्राद्धे रत्नविभूषितम्॥३०॥

पितरस्तस्य तुष्यंति स्वर्गलोकं समश्नुते। अस्मिँल्लोके च संपन्नं स्यंदनं च सुवाहनैः॥३१॥
अष्टाभिः पूज्यते चात्र धनधान्यैश्च वर्द्धते। पर्णकौशेयपट्टोर्णे तथा प्रावारकंबलौ॥३२॥
अजिनं कांचनं पट्टं प्रवेणीं मृगलोमकम्। दद्यादेतानि विप्राणां भोजयित्वा यथाविधि॥३३॥

बहुत लकड़ी अग्नि जलाने के लिये देता है अथवा भयंकर शीतकाल में आग जलाने की व्यवस्था करता है, उसको अग्नि की दीप्ति के समान प्रकाश वाला शरीर प्राप्त होता है।।२०½-२१½।। जो यजमान शिशिर ऋतु के आगमन पर ब्राह्मणों के लिये इंधन प्रदान करता है, वह संग्राम में नित्य विजय प्राप्त करता है तथा नित्य लक्ष्मी से पूजित होता है।।२१½-२२½।। श्राद्ध के समय जो यजमान सुगन्धित मालाओं अथवा गन्धादि को ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करके तथा आदर करके उन्हें दिलाता है, वह दान बाद में उस देने वाले महात्मा यजमान को नदियां गन्धमाला और अनेकों प्रकार के सुख पहुंचाती है तथा उस दाता के पास पतिव्रता युवतियां उपस्थित होती हैं।।२२½-२४½।।

जो श्राद्ध में ब्राह्मण को शयन आसनयान भूमि और वाहन दान करे, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।२४½-२५½।। श्राद्ध के समय गुणवान् विप्र के उपस्थित होने पर इच्छित द्रव्य (धन) को दान करता है, वह स्मृति और मेधा (बुद्धि) को प्राप्त करता है।।२५½-२६½।। घृत से भरे हुए पात्रों को श्राद्ध मे सत्कार करके दान कराना चाहिये, जो ऐसा करता है, वह दोहन कलश सहित पहली बार व्यायी हुई बहुत-सी गायों के दान का फल प्राप्त करता है।।२६½-२७½।। श्राद्ध में यथेच्छित वस्तु के देने से पुण्डरीक यज्ञ का फल प्राप्त होता है। श्राद्ध मे जो पुष्प और फल से युक्त वन का दान करे, वह गौ यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।२७½-२८½।। श्राद्ध में कूप, उद्यान, तालाब, खेत, गौशाला और घरों को देकर वे यजमान जब तक चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तब तक स्वर्ग में नित्य आनन्द प्राप्त करते हैं।।२८½-२९½।। जो यजमान ब्राह्मणों के लिये सुन्दर बिछावन के साथ रत्नविभूषित शय्या (पलंग) दान करता है, उसके पितर सन्तुष्ट होते हैं और वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है तथा इस लोक में आठ सुन्दर वाहनों से सम्पन्न रथ को प्राप्त करता है तथा वह पूजा जाता है और यहां धन और धान्यों से वृद्धि को प्राप्त करता है।।२९½-३१½।। श्राद्ध में सूती रेशमी और ऊनी वस्त्रों, उत्तरीय वस्त्र तथा कम्बल मृगचर्म, सोने से तन्तुओं से बना वस्त्र और मृगलोम ये सब ब्राह्मणों को भोजन कराकर विधिपूर्वक दान करने चाहिये।।३१½-३३।।

प्राप्नोति श्रद्दधानस्तु वाजपेयफलं नरः। बहुभार्याः सुरूपाश्च पुत्रा भृत्याश्च किंकराः॥३४॥
वशे तिष्ठंति भूतानि लोके चास्मिन्निरामयम्। कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलं गहनं तथा॥३५॥
श्राद्धे चैतानि यो दद्यात्कामानाप्नोत्यनुत्तमान्।
अलक्ष्मीं नाशयंत्येते तमः सूर्योदयो यथा॥३६॥
भ्राजते च विमानाग्रे नक्षत्रेष्विव चन्द्रमाः। वासो हि सर्वदैवत्ये सर्वदेवैरभिष्टुतम्॥३७॥
वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञदानतपांसि च।
तस्माद्वस्त्राणि देयानि श्राद्धकाले तु नित्यशः॥३८॥
तानि सर्वाण्यवाप्नोति श्राद्धे दत्त्वा तु मानवः।
नित्यश्राद्धे तु यो दद्यात्प्रयतस्तत्परायणः॥३९॥
सर्वकामानवाप्नोति राज्यं स्वर्गं तथैव च। सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते॥४०॥
भक्ष्यजातं तु सुकृतं स्वस्तिकाद्यं सशर्करम्। कृसरं मधुसर्पिश्च पयः पायसमेव च॥४१॥
स्निग्धप्रायाश्च यो दद्यादग्निष्टोमफलं लभेत्। दधिगव्यमसंसृष्टं भक्ष्यान्नानाविधांस्तथा॥४२॥
दत्त्वा न शोचते श्राद्धे वर्षासु च मघासु च। घृतेन भोजयेद्विप्रान्घृतं भूमौ समुत्सृजेत्॥४३॥
छायायां हस्तिनश्चैव दत्त्वा श्राद्धे न शोचते। ओदनं पायसं सर्पिर्मधुमूलफलानि च॥४४॥
भक्ष्यांश्च विविधान्दत्त्वा परत्रेह च मोदते। शर्कराक्षीरसंयुक्ताः पृथुका नित्यमक्षयाः॥४५॥

ऐसा दान करने से श्रद्धावान् मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त करता है, उसे इस लोक में बहुत-सी सुन्दर रूप वाली पत्नियां सुन्दर रूप वाले पुत्र, सेवक और किंकर (नौकर) प्राप्त होते हैं और वह इस लोक में सदा निरोग रहता है।।३४-३४½।। श्राद्ध में जो मनुष्य नया रेशमी वस्त्र, पतला सूती वस्त्र और सुन्दर साड़ियाँ और गहने दान करता है, वह अपनी सभी उत्तम कामनाओं की पूर्ति प्राप्त करता है। उसकी सारी दरिद्रता उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे कि सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है।।३४½-३६।। तथा वह विमान के अग्रभाग में उसी तरह सुशोभित होता है, जिस प्रकार नक्षत्रों में चन्द्रमा। वस्त्र सभी देवों से प्रशंसित और सर्वदेवमय हैं, अतः उन वस्त्रों के अभाव में यज्ञ दान और तप क्रिया सम्पन्न नहीं होती, इसलिये श्राद्ध काल में वस्त्रों को नित्य और अवश्य दान करना चाहिये।।३७-३८।।

श्राद्ध में वस्त्रों का दान करके मनुष्य उन सब वस्त्रों को प्राप्त करता है, जो व्यक्ति नित्यश्राद्ध में प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध में पूरी तरह श्रद्धा रखकर वस्त्रों को दान करे और व्यक्ति राज और सुख आदि सभी कामनाओं को प्राप्त करता है तथा सभी मनोरथों को पूर्ण करने में समृद्ध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।३९-४०।। अनेकों प्रकार के खाद्य पदार्थ जो अच्छी तरह शक्कर आदि से बनाये गये हों, उनको तथा खिचड़ी, मधु, घी, दूध और खीर आदि खाने में रुचिर पदार्थों को जो यजमान दान करता है, वह अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।४१-४१½।। श्राद्ध के असवर पर वर्षा ऋतु में विशेष रूप से मघा नक्षत्र में दही, शुद्ध गोरस, तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों का दान करके दाता शोक से ग्रस्त नहीं होता है।।४१½-४२½।। जो यजमान ब्राह्मणों को घृत के साथ भोजन कराये तथा घृत को भूमि पर सम्यक् प्रकार से उत्सर्जन करे तथा गया तीर्थ में हाथियों का दान करे, तो वह चिन्तामुक्त हो जाता है।।४२½-४३½।। भात, दूध से बने पदार्थ खोआ के पेड़ा, खीर, दही आदि पदार्थ घी, मधु, एवं कन्दमूलफल आदि अनेक

स्यात्तु संवत्सरं प्रीतिः शाकैर्मांसरसेन च। सक्तुलाजास्तथाऽपूषाः कुल्माषा व्यंजनैः सह॥४६॥
सर्पिःस्निग्धानि सर्वाणि दध्ना संस्कृत्य भोजयेत्।
श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्पद्मं स लभते निधिम्॥४७॥
नवसस्यानि यो दद्याच्छ्राद्धे सत्कृत्य यत्नतः। सर्वभोगानवाप्नोति पूज्यते च दिवं गतः॥४८॥
भक्ष्यभोज्यानि पेयानि चोष्यलेह्यवराणि च।
भोजनाग्रासनं दत्त्वा अतिथिभ्यः कृतांजलिः॥४९॥
सर्वयज्ञक्रतूनां हि फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम्। क्षिप्रमत्युष्णमक्लिष्टं दद्यादन्नं बुभुक्षते॥५०॥
सव्यं जनं तथा स्निग्धं भक्त्या सत्कृत्य यत्नतः।
तरुणादित्यसंकाशं विमानं हंसवाहनम्॥५१॥
अन्नदो लभते नित्यं कन्याकोटीस्तथैव च। अन्नदानात्परं दानं नान्यत्किंचित्तु विद्यते॥५२॥
अन्नाद्भूतानि जायंते जीवंति प्रभवन्ति च। जीवदानात्परं दानं नान्यत्किंचन विद्यते॥५३॥
अन्नाल्लोकाः प्रतिष्ठंति लोकदानस्य तत्फलम्। अन्नं प्रजापतिः साक्षात्तेन सर्वमिदं ततम्॥५४॥
तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति। यानि रत्नानि मेदिन्यां वाहनानि स्त्रियस्तथा॥५५॥

खाद्य पदार्थों को श्राद्ध में देकर मनुष्य इस लोक और परलोक में आनन्द को प्राप्त करता है।।४३½-४४½।। शक्करमिश्रित दूध और चिउड़ा का दान कभी नष्ट होने वाला नहीं है। मसूर और खिचड़ी के दान से पितरगण एकवर्ष तक प्रसन्न रहते हैं। उसी प्रकार सत्तू, धान के लावे, पुआ और कुल्माष (कुलथी के बने भोजनों) से भी एक वर्ष तक पितरगण खुश रहते हैं। घी, मनोहर और हृदय को लुभाने वाले अन्यान्य खाद्य पदार्थ तथा दही के साथ सत्तू का भोजन शुद्ध करके श्राद्ध के अवसर पर देना चाहिये। श्राद्ध में जो इन सब पदार्थों को दान करता है, वह कई पद्म का खजाना प्राप्त करता है।।४४½-४७।। जो श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मण को सत्कार करके यत्नपूर्वक नये अन्न का दान करे, वह समस्त भोगों को प्राप्त करता है तथा स्वर्ग जाने पर पूजित होता है।।४८।।

जो मनुष्य विभिन्न प्रकार के भक्ष्यपदार्थ, भक्ष्य समाग्रियां तथा पीने और चाटने की विविध वस्तुएं भोजन में आगे आसन पर बिठाकर हाथ जोड़कर अतिथियों के लिए प्रदान करता है, उन्हें आदर के साथ खिलाता है, वह मनुष्य सभी यज्ञों और सत्क्रियाओं का अनुत्तम फल प्राप्त करता है। भूंखे अतिथि के लिए शीघ्रतापूर्वक खूब पका हुआ गरम भोजन कराना चाहिये। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह तरुण सूर्य के समान चमकने वाले हंसों द्वारा वहन करने वाले विमान को प्राप्त करता है।।४९-५१।। श्राद्धकर्म में अन्नदान करने वाला व्यक्ति तीन करोड़ सुन्दरी कन्याओं को प्राप्त करता है। अन्नदान से बड़ा दान अन्य कोई नहीं है।।५२।। अन्न से संसार के सभी प्राणी पैदा होते हैं और अपना जीवन जीते हैं। अतः जीवनदान से बढ़कर अन्य कोई दान नहीं है।।५३।। अन्न से लोक प्रतिष्ठित होते हैं। अतः अन्नदान का फल लोकदान का फल है अर्थात् जो अन्नदान करता है, वह संसार का दान करता है। लोगों को जीवन दान देता है तथा लोगों को जीवन दान देने से बढ़कर कोई दान नहीं है। अन्न से ही यहां तीनों लोक जीवित हैं। यह सारा विश्वप्रपंच अन्न का ही परिणाम है। अन्न मे ही समस्त लोकों की प्रतिष्ठा है। अतः अन्न ही साक्षात् प्रजापति है। उसी से यह सारा त्रैलोक्य व्याप्त है।।५४।। इसी कारण अन्न के समान कोई दान न हुआ और न होगा।।५४½।। इस पृथ्वी पर जितने भी रत्न हैं, वाहन हैं और सुन्दर स्त्रियां हैं, पितरों में भक्ति रखने वाला व्यक्ति उन सबको शीघ्र

क्षिप्रं प्राप्नोति तत्सर्वं पितृभक्तस्तु यो नरः। प्रतिश्रयं च यो दद्यादतिथिभ्यः कृताञ्जलिः॥५६॥
देवास्तं संप्रतीच्छंति दिव्यातिथ्यैः सहस्रशः।
सर्वाण्येतानि यो दद्यात्पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥५७॥
त्रिभिर्द्वाभ्यामथैकेन दानेन तु सुखी भवेत्। दानानि परमो धर्मः सद्भिः सत्कृत्य पूजितः॥५८॥
त्रैलोक्यस्याधिपत्यं हि दानेनैव ध्रुवं स्थितम्। अराजा लभते राज्यमधनश्चोत्तमं धनम्।
क्षीणायुर्लभते चायुः पितृभक्तः सदा नरः॥५९॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीये उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पे दानप्रशंसा नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

प्राप्त करताहै।।५४½-५५½।। जो व्यक्ति अतिथियों के लिए हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक दान करे, उस व्यक्ति की हजारों देवता लोग आतिथ्य सत्कार करने की सम्यक् प्रतीक्षा करते हैं।।५५½-५६½।। ऊपर कही गयी सभी वस्तुओं से जो विद्वान् ब्राह्मणों को दान करता है, वह इस पृथ्वी पर एक राजा होना चाहिये तथा तीन वस्तुएँ, दो वस्तुएँ तथा एक वस्तु देने से तो केवल सुखी ही होना चाहिये। अतः दान ही परमधर्म है तथा यह सज्जन पुरुषों द्वारा सत्कार करके पूजित है।।५६½-५८।। दान से ही तीनों लोकों का आधिपत्य निश्चित ही स्थित है। पितरों में भक्ति रखने वाला मनुष्य सदैव दान से ही जो राजा नहीं है, वह राज्य को प्राप्त करता है तथा जो निर्धन है, वह उत्तम धन प्राप्त करता है, जिसकी आयु क्षीण हो चुकी है, वह आयु को प्राप्त करता है।।५९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद १६वां अध्याय श्राद्धकल्प में दान की प्रशंसा का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

श्राद्धकल्पे नक्षत्रतिथिश्राद्धं नाम

सप्तदशोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि पूजितम्।
काम्यं नैमित्तिकाजस्त्रं श्राद्धकर्मणि नित्यशः॥१॥
पुत्रदारनिमित्ताः स्युरष्टकास्तिस्त्र एव तु। कृष्णपक्षे वरिष्ठा हि पूर्वाखम्डलदेवता॥२॥
प्राजापत्या द्वितीया स्यात्तृतीया वैश्वदेविका।
आद्याऽपूपैः सदाकार्या मांसैरन्या सदा भवेत्॥३॥
शाकैः कार्या तृतीया स्यादेवं द्रव्यगतो विधिः। अत्रापीष्टं पितृणां वै नित्यमेव विधीयते॥४॥
या चाप्यन्या चतुर्थी स्यात्तां च कुर्याद्विशेषतः।
आसु श्राद्धं बुधः कुर्वन्सर्वस्वेनापि नित्यशः॥५॥
क्षिप्रमाप्नोति हि श्रेयः परत्रेह च मोदते। पितरः पर्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः॥६॥
सर्वेषु पुरुषा यांति निपातमिव धेनवः। मासांते प्रतिगच्छेयुरष्टकासु ह्यपूजिताः॥७॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-१७

श्राद्धकल्प में नक्षत्र तिथि श्राद्ध का फल

बृहस्पति ने कहा—कि इसके बाद मैं नित्य नैमित्तिक और काम्य श्राद्धों का वर्णन कर रहा हूँ तथा श्राद्धकर्म इन सब की प्राप्ति के लिये किस प्रकार पूजन किया जाता है।।१।। तीनों ही अष्टकायें[1] पुत्र और पत्नी आदि की कारणीभूत है, इस श्राद्धकर्म में कृष्णपक्ष श्रेष्ठ माना गया है। तीनों अष्टकाओं में पहली, इन्द्र देवता की मानी गयी है। दूसरी प्राजापत्य और तीसरी विश्व देवता की है।।२-२½।।

पहली इन्द्र की अष्टका की पूजा सदैव पुओं से करनी चाहिये, दूसरी की पूजा मांस से करनी चाहिये तथा तीसरी अष्टका की शाकों द्वारा पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार ही अष्टकाओं में द्रव्य की विधि है। यहाँ भी अष्टका को पितरों की इच्छापूर्ति होती है, वे प्रसन्न होते हैं; इसलिये पितरों के लिये श्राद्ध की विधि बतायी जाती है।।४।। यदि कोई अन्य चौथी अष्टका मिले तो विधिपूर्वक सम्पन्न करे। बुद्धिमान् पुरुष को सर्वस्व व्यय करके भी अष्टका में शीघ्र श्राद्ध करना चाहिये।।५।। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह शीघ्र श्रेय (कल्याण) को प्राप्त करता है और फिर परलोक और इहलोक में आनन्द प्राप्त करता है।।५½।। पितरगण पर्व के अवसर पर और देवता विशेष तिथियों पर पितरों का श्राद्ध एवं देवों की यज्ञ पूजा आदि करने वालों के पास उसी प्रकार उपस्थित होते हैं, जिस प्रकार जलाशय के

---

१. पितरपक्ष अश्विन (क्वार) कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से अष्टमी तक के काल को अष्टका कहा जाता है।

मोघास्तस्य भवंत्याशाः परत्रेह च सर्वशः। पूजकानां समुत्कर्षो नास्तिकानामधोगतिः॥८॥
देवांस्तु दायिनो यांति तिर्यग्गच्छंत्यदायिनः। पुष्टिं प्रजां स्मृतिं मेधां पुत्रानैश्वर्यमेव च॥९॥
कुर्वाणः पूजनं चासु सर्वं पूर्णं समश्नुते। प्रतिपद्धनलाभाय लब्धं चास्य न नश्यति॥१०॥
द्वितीयायां तु यः कुर्याद्द्विपदाधिपतिर्भवेत्। वरार्थिनां तृतीया तु शत्रुघ्नी पापनाशिनी॥११॥

चतुर्थ्यां तु प्रकुर्वाणः शत्रुच्छिद्राणि पश्यति।
पंचम्यां चापि कुर्वाणः प्राप्नोति महतीं श्रियम्॥१२॥
षष्ठ्यां श्राद्धानि कुर्वाणः संपूज्यः स्यात्प्रयत्नतः।
कुरुते यस्तु सप्तम्यां श्राद्धानि सततं नरः॥१३॥
महीशत्वमवाप्नोति गणानां चाधिपो भवेत्।
सम्पूर्णामृद्धिमाप्नोति योऽष्टम्यां कुरुते नरः॥१४॥
श्राद्धं नवम्यां कर्त्तव्यमैश्वर्यं स्त्रीश्च कांक्षता।
कुर्वन्दशम्यां तु नरो ब्राह्मीं श्रियमवाप्नुयात्॥१५॥

वेदांश्चैवाप्नुयात्सर्वान्विप्राणां समतां व्रजेत्। एकादश्यां परं दानमैश्वर्यं सततं तथा॥१६॥

पास गौएं उपस्थित होती हैं।।५½-६½।। वे पितरगण माह के अन्त में विना पूजित हुए ही लौट जाते हैं। अर्थात् पितृपक्ष में पितरगण १५ दिनों तक अपने पुत्र पौत्रादि से पूजा की प्रतीक्षा करते हैं तथा जब १५ दिन तक कोई नहीं आता है, तब वे पितरगण माह के अन्त में अपूजित ही लौट जाते हैं। जो व्यक्ति इन अष्टकाओं में पितरों की पूजा आदि नहीं करते, उनकी यह लोक और परलोक में सब प्रकार की आशायें नष्ट हो जाती हैं तथा पूजा करने वालों की उन्नति होती है और जो पूजा नहीं करते, उनकी अधोगति होती है।।६½-८।। इन अष्टकाओं में पूजा करने वाले देवों के पास स्वर्ग को जाते हैं और पूजा न करने वालो की तिर्यक गति होती है अर्थात् पक्षियों की योनि को प्राप्त करते हैं। जो पूजा करते हैं, उनके शरीर की पुष्टि होती है, उन्हें सन्तान की प्राप्ति होती है, वे स्मृति, बुद्धि, पुत्रों और ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं।।९।।

पूजा करते हुए मनुष्य शीघ्र ही सब कुछ पूर्णरूप से प्राप्त करता है। अब तिथियों में श्राद्ध का फल बता रहे हैं। प्रतिपद् को पूजा करने से धन का लाभ होता है और उसका प्राप्त किया हुआ नष्ट नहीं होता है।।१०।। द्वितीया तिथि को जो पूजा करता है, वह दो पैरों वाले मनुष्यों का राजा होता है। उत्तम वर प्राप्त करने वालों के लिये तृतीया की पूजा करना अच्छा होता है तथा तृतीया तिथि की पूजा शत्रु को मारने वाली और पाप को नष्ट करने वाली होती है।।११।। चतुर्थी तिथि को पूजा करने वाला शत्रु के छिद्रों अर्थात् शत्रु की कमजोरियों को देखता है तथा पञ्चमी तिथि को पूजा करने वाला उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त करता है।।१२।। षष्ठी तिथि को श्राद्ध करता हुआ व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक सम्यक् प्रकार से पूज्य होता है तथा जो सप्तमी तिथि को निरन्तर श्राद्ध करे, वह महीशत्व (राजत्व) को प्राप्त करता है तथा गणों का अधिपति होता है तथा जो मनुष्य अष्टमी को पूजा करे, तो वह सम्पूर्ण ऋद्धि (धनदौलत) को प्राप्त करता है।।१३-१४।। ऐश्वर्य और सुन्दर स्त्री की कामना रखने वाले व्यक्ति को नवमी में श्राद्ध करना चाहिये तथा यदि दशमी को मनुष्य श्राद्ध करे, तो वह ब्राह्मी श्री (विद्या) को प्राप्त करेगा।।१५।। तथा एकादशी को श्राद्ध करने

द्वादश्यां जयलाभं च राज्यमायुर्वसूनि च। प्रजावृद्धिं पशून्मेधां स्वातंत्र्यं पुष्टिमुत्तमाम्॥१७॥
दीर्घमायुरथैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम्। युवानश्च गृहे यस्य मृतास्तेभ्यः प्रदापयेत्॥१८॥
शस्त्रेण वा हता ये च तेषां दद्याच्चतुर्दशीम्।
अमावास्यां प्रयत्नेन श्राद्धं कुर्यात्सदा शुचिः॥१९॥
सर्वकामानवाप्नोति स्वर्गं चानंतमश्नुते। तथा विषमजातानां यमलानां च सर्वशः॥२०॥
श्राद्धं दद्यादमावास्यां सर्वकामानवाप्नुयात्।
मघासु कुर्वञ्छ्राद्धानि सर्वकामानवाप्नुयात्॥२१॥
प्रत्यक्षमर्चितास्तेन भवंति पितरस्तदा। पितृदेवा मघा यस्मात्तस्मात्तास्वक्षयं स्मृतम्॥२२॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पे तिथिश्राद्धवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

वाला व्यक्ति समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है और सभी ब्राह्मणों की समानता को प्राप्त करता है तथा एकादशी का परमदान ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला होता है।।१६।। द्वादशी को किया गया श्राद्ध विजयलाभ, राज्य, आयु, तथा विविध प्रकार के धनों को प्राप्त कराता है। त्रयोदशी तिथि को दान सन्तान की वृद्धि और पशुओं, बुद्धि, स्वतन्त्रता और उत्तम पुष्टि प्रदान करता है तथा त्रयोदशी को दान करना दीर्घ आयु और ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है।।१७-१७½।। जिसके घर में जवान मर गये हों तथा किसी शस्त्र से मर गये हों, उनको चतुर्दशी को श्राद्ध दान करना चाहिये।।१७½-१८½।। तथा अमावस्या को प्रयत्नपूर्वक सदैव श्राद्ध करना चाहिये। अमावस्या को श्राद्ध करने वाला सब कामनाओं को प्राप्त करता है और अनन्तकाल तक स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा जिनको विषम सन्तान उत्पन्न होती है, जैसे कि तीन कन्याओं के बाद पुत्र तथा तीन पुत्रों के बाद एक कन्या उत्पन्न हुई हों, उन्हें भी अमावस्या को ही श्राद्ध करना चाहिये। इस प्रकार अमावस्या को दिया गया श्राद्ध सब कामनाओं को प्राप्त कराता है।।१८½-२०½।। मघा नक्षत्र में श्राद्ध देने वाला सब मन की इच्छाओं को प्राप्त करता है। अतः उक्त नक्षत्र को दिया गया श्राद्ध पितरों को अभीष्ट है, उससे पितर प्रत्यक्ष रूप से पूजित होते हैं। अतः उक्त नक्षत्र में दिया गया श्राद्ध अक्षय कहा जाता है। अतः मघा नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिये।।२०½-२२।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद १७वां अध्याय श्राद्धकल्प में नक्षत्र तिथि श्राद्ध का फल का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

नक्षत्रश्राद्धं नाम

अष्टादशोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

यमस्तु तानि श्राद्धानि प्रोवाच शशबिंदवे। तानि मे शृणु कार्याणि नक्षत्रेषु पृथक् पृथक्॥१॥
श्राद्धं यः कृत्तिकायोगं कुरुते सततं नरः अग्नीनाधाय स स्वर्गे राजते सुदृढव्रतः॥२॥

अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये तेजस्विना भवेत्।
प्रायशः क्रूरकर्माणि आर्द्रायां श्राद्धमाचरन्॥३॥

क्षेत्रभागी भवेत्पुत्री श्राद्धं कृत्वा पुनर्वसौ। पुष्टिकामः पुनस्तिष्ये श्राद्धं कुर्वीत मानवः॥४॥
आश्लेषासु पितॄनर्चन्वीरान्पुत्रानवाप्नुयात्। जातीनां भवति श्रेष्ठो मघासु श्राद्धमाचरनम्॥५॥
फाल्गुनीषु पितॄनर्चन्सौभाग्यं लभते नरः। प्रदानशीलः सापत्य उत्तरासु करोति यः॥६॥

संसत्सु मुख्यो भवति हस्तेऽभ्यर्च्य पितॄनपि।
चित्रायां चैव यः कुर्यात्प श्येद्रूपवतः सुतान्॥७॥
स्वातिनां चैव यः कुर्याद्वाणिज्ये लाभमाप्नुयात्।
पुत्रार्थी तु विशाखासु श्राद्धमीहेत मानवः॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–१८

नक्षत्रों में श्राद्ध करने के फल का वर्णन

बृहस्पति ने कहा—कि विशेष नक्षत्रों में अलग अलग श्राद्ध करने से क्या फल होते हैं, यह यमराज ने शश बिन्दु के लिये जिन श्राद्धों को बनाया, उनको मुझसे सुनिये।।१।। जो मनुष्य कृत्तिका नक्षत्र के योग में अग्नियों को धरन कर अर्थात् अग्निहोत्र करके निरन्तर श्राद्ध करता है, वह सुदृढ़वृत मनुष्य सदा स्वर्ग में सुशोभित होता है।।२।।

सन्तान को चाहने वाले मनुष्य को रोहिणी मे श्राद्ध करना चाहिये। मृगशिरानक्षत्र में श्राद्ध करने से मनुष्य तेजस्वी हो जाता है। क्रूरकर्म करने वाले मनुष्य प्रायः आर्द्रानक्षत्र में श्राद्ध करते हैं।।३।। पुनर्वसुनक्षत्र में श्राद्ध करके मनुष्य क्षेत्र का अधिकारी और पुत्रवाला बनता है, फिर अपने शरीर की पुष्टि चाहने वाला मनुष्य तिष्य (पुष्य) नक्षत्र में श्राद्ध करे।।४।। आश्लेषानक्षत्र में पितरों की पूजा करता हुआ मनुष्य वीर पुत्रों को प्राप्त करता है। मघा नक्षत्रों में श्राद्ध का आचरण करता हुआ व्यक्ति अपनी जातियों में श्रेष्ठ होता है।।५।। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों में पितरों की पूजा करता हुआ मनुष्य सौभाग्य को प्राप्त करता है तथा जो उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में श्राद्ध करता है, वह साधिकार प्रदानशील (दान करने वाला स्वामी) होता है।।६।। हस्तनक्षत्र में पितरों की पूजा करके मनुष्य सभाओं में मुख्य वक्ता होता है। चित्रा नक्षत्र में श्राद्ध करके वह सुन्दर रूप वाले पुत्रों को देखे।।७।। स्वाति नक्षत्र में जो श्राद्ध करता है, वह व्यापार

अनुराधासु कुर्वाणो नरश्चक्रं प्रवर्त्तयेत्। आधिपत्यं भवेच्छ्रेष्ठं ज्येष्ठायां सततं तु यः॥९॥
मूलेनारोग्यमिच्छंति ह्याषाढासु महद्यशः। उत्तरासु तु कुर्वाणो वीतशोको भवेन्नरः॥१०॥
श्रवणेन तु लोकेषु प्राप्नुयात्परमां गतिम्। राज्यभागी धनिष्ठासु प्राप्नुयाद्विपुलं धनम्॥११॥
श्राद्धनिर्जितलोकश्च वेदान् सांगानवाप्नुयात्।
नक्षत्रैर्वारुणैः कुर्वन्भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात्॥१२॥
पूर्वप्रौष्ठपदे कुर्वन्विंदेताजीविकान्बहून्। उत्तरास्वनतिक्रम्य विंदेद्गा वै सहस्त्रशः॥१३॥
बहुकुप्यकृतं द्रव्यं विंदेत्कुर्वन्सुरेवतीम्। अश्वानश्वयुजा भक्तो भरण्यां साधुसत्तम;॥१४॥
इमं श्राद्धविधिं कुर्वञ्छशबिंदुर्महीमिमान्।
कृत्स्नां बलेन सोऽक्लिष्टो लब्ध्वा च प्रशशास ह॥१५॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पे नक्षत्रश्राद्धं नाम अष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

में लाभ प्राप्त करता है तथा पुत्र की कामना रखने वाले पुरुष को विशाखा नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिये।।८।। अनुराधा नक्षत्रों में श्राद्ध करने वाला मनुष्य संसारचक्र मे परिवर्तन कर देता है तथा जो मनुष्य ज्येष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करता है, उसका श्रेष्ठ आधिपत्य होना चाहिये अर्थात् वह श्रेष्ठ अधिकारी बनता है।।९।। मूलनक्षत्र में श्राद्ध करने से आरोग्य प्राप्त होता है और आषाढ़ नक्षत्र में श्राद्ध करने से महान् यश की प्राप्ति होती है। उत्तरानक्षत्रों मे श्राद्ध करने वाला मनुष्य शोकविहीन होता है अर्थात् उसे कोई शोक नही होता।।१०।।

श्रवण नक्षत्र में श्राद्ध करने से लोकों में परमगति को प्राप्त करता है। धनिष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करने से मनुष्य राज्य का अधिकारी होता है और विपुल धन को प्राप्त करता है।।११।। अभिजित् नक्षत्र के श्राद्ध से मनुष्य समस्त वेदों का उसके अंगों सहित ज्ञान प्राप्त करता है। वारुण (शतभिष्) नक्षत्रों में श्राद्ध करने से और पितरों की पूजा करने वाला मनुष्य भिषक् (वैद्य) बनने की सफलता प्राप्त करता है।।१२।।

पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र में श्राद्ध करने वाला मनुष्य बहुत सी आजीविकाओं का फल प्राप्त करता है तथा उत्तरा भाद्रपद में श्राद्धकर्ता हजारों गायों को प्राप्त करता है।।१३।। रेवती नक्षत्रों में श्राद्ध करने वाला मनुष्य बहुत चांदी से वना हुआ द्रव्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार अश्विनी नक्षत्र में अश्व और भरणी नक्षत्र में श्राद्ध करने से आयु प्राप्त करता है।।१४।। इस प्रकार श्राद्धविधि का पालन करने वाले उस विनम्र शशविन्दु ने अपने वल से समस्त भूमण्डल को प्राप्त करके शासन किया था।।१५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद १८वां अध्याय नक्षत्रो मे श्राद्ध करने के फल का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे

श्राद्धकल्पे ब्राह्मणपरीक्षा नाम

एकोनविंशोऽध्यायः

शंयुरुवाच

किं स्विद्दत्तं पितॄणां तु तृप्तिदं वदतां वर। किंस्वित्स्याच्चिररात्राय किं वानंत्याय कल्पते॥१॥

बृहस्पतिरुवाच

हवींषि श्राद्धकल्पे तु यानि श्राद्धविदो विदुः। तानि मे शृणु सर्वाणि फलं चैषां यथातथम्॥२॥
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलैस्तथा। दत्तेन मासं प्रीयंते श्राद्धेन हि पितामहाः॥३॥
मत्स्यैः प्रीणंति द्वौ मासौ त्रीन्मासान्हारिणेन तु। शाशेन चतुरो मासान्पंच प्रीणाति शाकुनैः॥४॥
वाराहेण तु षण्मासाञ्छागलं सप्तमासिकम्। अष्टमासिकमित्युक्तं यच्च पार्वतकं भवेत्॥५॥
रौरवेण तु प्रीयंते नव मासान्पितामहाः। गवयस्य तु मांसेन तृप्तिः स्याद्दशमासिकी॥६॥
औरभ्रेण च मांसेन मासानेकादशैव तु। श्राद्धे च तृप्तिदं गव्यं पयः संवत्सरं द्विजाः॥७॥
आनंत्याय भवेत्तद्वत्खड्गमांसं पितृक्षये। पायसं मधुसर्पिर्भ्यां छायायां कुञ्जरस्य च॥८॥
कृष्णच्छागस्य मांसेन तृप्तिर्भवति शाश्वती। अत्र गाथाः पितृगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद

अध्याय-१९

श्राद्धकल्प में ब्राह्मणों की परीक्षा

शंयु ने कहा कि हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ऋषिवर! पितरों को श्राद्ध में दी गयी कौंन-सी वस्तु तृप्ति प्रदान करने वाली होता है तथा कौंन सी चिर रात्रि के लिये तृप्तिदा होती है अथवा कौंन-सी वस्तु अनन्तकाल के लिये फलदायी होती है।।१।। तब बृहस्पति ने कहा कि श्राद्धकल्प में जितनी हवि सामग्रियां श्राद्ध वेत्ताओं ने बतायीं हैं, उनको मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, उन सबको सुनिये तथा उनके दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे भी याथातथ्य रूप से सुनिये।।२।। तिलों, धानों, उड़दों, जल,, कन्दमूलफलों को दिये श्राद्ध से पितामह एक माह तक प्रसन्न होते हैं।।३।। मछलियों के दान से दो माह तक सन्तुष्ट रहते हैं। हरिण के मांस से तीन माह तक प्रसन्न रहते हैं। खरगोश के मांस से चार माह तक तथा पक्षियों के मांस से पाँच माह तक सन्तुष्ट रहते हैं।।४।।

सूअर के मांस से छ महीने, बकरे के मांस से सात महीने तथा चित्तीवाले हिरन के मांस से आठ माह तक सन्तुष्ट रहते हैं।।५।। रुरु नामक एक विशेष हरिण के मांस से पितामहगण नौ महीने तक सन्तुष्ट रहते हैं तथा नीलगाय के मांस से पितामहगणों की दश माह तक तृप्ति रहती है।।६।। औरभ्र (कछुए) के मांस से ग्यारह माह की तृप्ति होती है, तो श्राद्ध में गौ के दूध से एक वर्ष की तृप्ति होती है।।७।। श्राद्ध में गेंडे का मांस अनन्तकाल तक पितरों को तृप्त करता है तथा काले बकरे के मांस से पितामहगण की सदा के लिए तृप्ति होती है।।८।। यहां पुराण इतिहास

तास्तेऽहं कीर्त्तयिष्यामि यथावत्सन्निबोध मे।
अपि नः स कुले यायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्॥१०॥
आजेन सर्वलोहेन वर्षासु च मघासु च। एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
गौरीं वाप्युद्वहेद्भार्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥११॥

शंयुरुवाच

गयादीनां फलं तात ब्रूहि मे परिपृच्छतः। दातॄणां चैव यत्पुण्यं निखिलेन ब्रवीहि मे॥१२॥

बृहस्पतिरुवाच

गयायामक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च। पितृक्षये हि तत्पुत्र तस्मात्तत्राक्षयं स्मृतम्॥१३॥
पूर्णायामेकविंशं तु गौर्यामुत्पादितः सुतः। महामहांश्च जुहुयादिति तस्य फलं स्मृतम्।
फलं वृषस्य वक्ष्यामि गदतो मे निबोधत॥१४॥
वृषोत्स्रष्टा पुनात्येव दशातीतान्दशा वरान्॥१५॥
यत्किंचित्स्पृशते तोयमवतीर्णो नदीजले। वृषोत्सर्गात्पितॄणां तु ह्यक्षयं समुदाहृतम्॥१६॥
येनयेन स्पृशेत्तोयं लांगूलादिभिरंगशः। सर्वं तदक्षयं तस्य पितॄणां नात्र संशयः॥१७॥

के जानने वाले लोग पितरों द्वारा गायी हुई गाथाओं का जो वर्णन करते हैं, उन्हें आप लोगों से बता रहा हूँ, ध्यान पूर्वक सुनिये।।९।। पितरगण ऐसा कहते हैं कि हमारे वंश में कोई ऐसा सुपुत्र पैदा हो, जो हाथी की छाया में त्रयोदशी तिथि को मधु, घृत तथा दूध में बनाये गये व्यञ्जनों तथा अन्नों का दान करे।।१०।। तथा वर्षा-ऋतु में विशेषतः मघा नक्षत्र में जिसका समस्त शरीर लाल रंग का हो, ऐसे अज (बकरा) का मांस दे तो बहुत पुत्रों की कामना करनी चाहिये तथा एक भी पुत्र यदि गया चला जायेगा और एक भी सुकुमारी कन्या का विवाह कर देगा अर्थात् कन्यादान कर देगा[1] अथवा एक भी नीले बैल हम पितरों के उद्देश्य से त्याग करेगा तो हम पितरों की मनोकामनायें पूर्ण हो जायेंगी।।११।।

इसके बाद शयुं ने कहा कि हे तात बृहस्पति जी! हमें गया आदियों के फल को बताइये गया में दान करने वालों का जो पुण्य होता है, उसे हमें बताइये।।१२।।

हे पुत्र! गया तीर्थ में माता-पिता की मृत्यु की तिथि पर श्राद्ध का अक्षयफल होता है तथा गया में जप होम और तपों का भी अक्षयफल कहा जाता है। गौरी पत्नी में पैदा हुआ पुत्र इक्कीस पीढ़ी को पवित्र करता है। इसके अलावा मामा के परिवार में छः को पवित्र करता है। ऐसा फल कहा गया है।।१३-१४।। अब वृषदान का फल बता रहा हूँ सुनिये—वृष का दान करने वाला मनुष्य दश पूर्वजों और बाद में उत्पन्न होने दश पुरुषों को पवित्र करता है।।१५।। जल से तैर कर पृथ्वी पर आने वाले वृष की पूंछ से गिरने वाली जल की बूंदों द्वारा वृषदान क्रम में जो वस्तुएं स्पर्श की जाती हैं। वे पितरों के लिये अवश्य फलदायिनी कही जाती हैं।।१६।। इस प्रकार अन्ततः वृष की पूंछ आदि

---

१. यहाँ पर यह अर्थ अधिक उचित होगा कि एक भी पुत्र यदि गया मे जाकर विवाह करे, तो पितरो की मनोकामनायें पूर्ण होगी। कन्यादान करना अर्थ अनुचित है; क्योंकि कन्यादान यदि ब्राह्मण को माना जाये, तब तो बिल्कुल ही अनुचित है तथा यदि वहाँ पर किसी वर की खोज कर उसके साथ विवाह करे, तो फिर तो सब गया ही वर खोजते रहे। अतः वहाँ पर विवाह क्रिया सम्पन्न करना ही अधिक उचित अर्थ है।

शृंगैः खुरैर्वा भूमिं यामुल्लिखत्यनिशं वृषः।
मधुकुल्याः पितृंस्तस्य ह्यक्षयाश्च भवंति वै॥१८॥
सहस्रनल्वमात्रेण तडागेन यथाश्रुतिः। तृप्तिस्तु या पितृणां वै सा वृषेहेण कल्पते॥१९॥
यो ददाति गुडोन्मिश्रतिलानि श्राद्धकर्माणि। मधु वामधुमिश्रं वा सर्वमेवाक्षयं भवेत्॥२०॥
न ब्राह्मणं परीक्षेत सदा देयं हि मानवैः। दैवे कर्मणि पित्र्ये च श्रूयते वै परीक्षणम्॥२१॥
सर्ववेदव्रतस्नाताः पंक्तीनां पावना द्विजाः। ये च भाषाविदः केचिद्ये च व्याकरणे रताः॥२२॥
अधीयते पुराणं वै धर्मशास्त्रमथापि च। त्रिणाचिकेतः पंचाग्निः स सौपर्णः षडंगवित्॥२३॥
ब्रह्मदेवसुतश्चैव च्छंदोगो ज्येष्ठसामगः। पुण्येषु यश्च तीर्थेषु कृतस्नानः कृतव्रतः॥२४॥
मखेषु ये च सर्वेषु भवंत्यवभृथप्लुताः। ये च सत्यव्रता नित्यं स्वधर्मनिरताश्च ये॥२५॥
अक्रोधना लोभपरास्ताञ्छ्राद्धेषु निमंत्रयेत्। एतेभ्यो दत्तमक्षय्यमेते वै पंक्तिपावनाः॥२६॥
श्राद्धीया ब्राह्मणा ये तु योगव्रतसुनिष्ठिताः। त्रयोऽपि पूजितास्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥२७॥
पितृभिः सह लोकाश्च यो ह्येतान्पूजयेन्नरः। पवित्राणां पवित्रं च मंगलानां च मंगलम्॥२८॥
प्रथमः सर्वधर्माणां योगधर्मो निगद्यते। अपांक्तेयान्प्रवक्ष्यामि गदतो मे निबोधत॥२९॥
कितवो मद्यपो यश्च पशुपालो निराकृतः। ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको ह्यापणो वणिजस्तथा॥३०॥

से गिरने वाला जल जिन जिन वस्तुओं को छू लेता है, वे सब वस्तुएँ पितरों का अक्षय तृप्ति प्रदान करती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१७।। वह वृष अपने सींगों और खुरों से जो भूमि खोदता है, वह भूमि अक्षय मधु की नहर बनकर उसके दाता के पितरों को प्राप्त होती है।।१८।। एक हजार नल्व (चार सौ हाथ) विस्तृत तालाब बनाने से पितरों की जो तृप्ति सुनी जाती है, उससे अधिक तृप्ति वृष के दान से होती है।।१९।। जो गुड़ मिश्रित तिलों और मधुमिश्रित तिलों अथवा मधु को श्राद्धकर्म में दान करता है, वह अक्षय फलदायी होता है।।२०।।

मनुष्यों को सदैव दानकर्म ब्राह्मणों की परीक्षा नहीं करनी चाहिये, यज्ञकर्म और पितरों के कर्म में परीक्षा सुनी जाती है।।२१।। समस्त वेदों के व्रती अर्थात् वेदाभ्यास परायण, वेदों के ज्ञाता, पंक्तिपावन, ब्राह्मण और जो भाषा को जानने वाले हैं तथा जो कोई व्याकरण में अध्ययनरत है, जो पुराण का अध्ययन करता हैं तथा धर्मशास्त्र का भी अध्ययन करते हैं, तथा नचिकेता, पंचाग्नि के उपासक, सुपर्ण, वेदों के छः अंगों के जानने वाले, ब्रह्मज्ञानियों का पुत्र, छन्दों के गाने वाले, ज्येष्ठ सामवेद के गाने वाले,'जितने भी पुण्यतीर्थ हैं, उनमें व्रत के बाद अभिषेक करने वाले, सब यज्ञों में अवभृथ स्नान करने वाले, शीघ्र ही किसी व्रत से निवृत्त होने वाले,अपने अपने कर्मों में लगे रहने वाले तथा क्रोधहीन एवं शान्तिपरायण जो ब्राह्मण हों, उन्हें श्राद्ध में निमन्त्रण देना चाहिए। इन सत्पात्रों को दिया गया दान अक्षय फलदायी होता है। ये सभी निश्चय ही पंक्तिपावन ब्राह्मण हैं।।२२-२६।। जो ब्राह्मण और योगधर्म और व्रत में श्रद्धा रखने वाले हैं। जिसने इन ब्राह्मणों की पूजा की उसने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीनों की पूजा की है तथा जो मनुष्य इन ब्राह्मणों की पूजा करे, वह पितरों के साथ समस्त लोकों की पूजा करता है। योगधर्म सभी पवित्र पदार्थों से अधिक पवित्र एवं सभी मंगलदायी वस्तुओं से अधिक मंगलदायी है।।२७-२८।। सभी धर्मों में वह योगधर्म प्रथम कहा गया है। अब इसके बाद जो अपंक्ति पावन ब्राह्मण हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ सुनिये।।२९।। धूर्त, शराबी,

अगारदाही गरदो वृषलो ग्रामयाजकः। कांडपृष्ठोऽथ कुंडाशी मधुपः सोमविक्रयी॥३१॥
समुद्रांतरितो भृत्यः पिशुनः कूटसाक्षिकः। पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे॥३२॥
अभिस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति। स्तवकः सूपकारश्च यश्च मित्राणि निंदति॥३३॥
काणश्च खंजकश्चैव नास्तिको वेदवर्जितः। उन्मत्तोऽप्यथ षंढश्च भ्रूणहा गुरुतल्पगः॥३४॥
भिषग्जीवी प्राशनिकः परस्त्रीं यश्च सेवते। विक्रीणाति च यो ब्रह्मव्रतानि नियमांस्तथा॥३५॥
नष्टं स्यान्नास्तिके दत्तं व्रतघ्ने चापवर्जितम्। यच्च वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र संभवेत्॥३६॥
निक्षेपहारके चैव कृतघ्ने वेदवर्जिते। तथा पाणविके वै च कारुके धर्मवर्जिते॥३७॥

क्रीणाति यो ह्यपण्यानि विक्रीणाति प्रशंसति।
अन्यत्रास्य समाधानं न वणिक्छ्राद्धमर्हति॥३८॥

भस्मनीव हुतं हव्यं दत्तं पौनर्भवे द्विजः। षष्टिं काणः शतं षंढः श्वित्री पंचशतान्यपि॥३९॥
पापरोगी सहस्त्रं वै दातुर्नाशयते फलम्। भ्रश्येद्धि स फलात्तस्मात्प्रदाता यस्तु बालिशः॥४०॥
यद्वेष्टितशिरा भुंक्ते यद्भुंक्ते दक्षिणामुखः। सोपानत्कश्च यद्भुंक्ते यच्च दत्तमसत्कृतम्॥४१॥

पशुपालक, कुरूप, गाँव में दूत का काम करने वाला, व्याज से जीविका चलाने वाला, दुकानदान, व्यापारी, आग लगाने वाला, विष देने वाला शूद्र, गाँव में यज्ञ करने वाला, काण्डपृष्ठ (कुम्हणा) कुण्डाशी (हरामी व्यक्ति का अन्न खाने वाला अर्थात् जो छिनाल औरत के वेटे के अन्न को खाता ही) मधुपान करने वाला, सोमरस को बेचने वाला, समुद्रयात्रा करने वाला भृत्य, पिशुन, मिथ्यागवाही देने वाला, पिता से विवाद करने वाला तथा जिसके घर में पति के अतिरिक्त कोई उपपति हो, अभिशप्त, चोर, शिल्पकार, स्तवक (चापलूस) रसोइया तथा जो मित्रों की निन्दा करता है। काना, खञ्जक (गंजा), नास्तिक (ईश्वर को न मानने वाला), वेद को न मानने वाला, पागल, हिजड़ा, भ्रूण हत्या करने वाला, गुरुपत्नीगामी, वैद्यक से जीविका चलाने वाला अर्थात् वैद्य, वहुत अधिक खाने वाला, तथा जो परस्त्री का सेवन करता है। जो ब्रह्मव्रत और नियमों को बेचता हो इन सबको दान देने से दान का समस्त फल नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार नास्तिक, कृतघ्न को दिये गये दान का फल नष्ट हो जाता है। वाणिज्य या व्यापार करने वाले ब्राह्मण का जो दूसरे से गिरवी रखे हुए धन को जो ले लेता है, उसे नहीं लौटाता है तथा कृतघ्न एवं वेदवर्जित, पाविक (धूर्त चालाक) धर्मवर्जित कारीगर जो वस्तुओं को खरीदता है और फिर बेचता हो और प्रशंसा करता हो। इन सभी को दान देने का भी यही फल होता है अर्थात् जो व्यवसायी है, वह यदि वस्तु खरीदकर खराब वस्तु की भी प्रशंसा कर बेचता है, ऐसा ब्राह्मण भी श्राद्ध में दान के योग्य नहीं है।।३०-३८।।

पौनर्भव अर्थात् जिससे पुनर्विवाह किया हो, ऐसे ब्राह्मण को दिया गया दान राख पर आहुति दिये जाने के समान है। काना व्यक्ति साठ, नपुंसक सौ, श्वेतकुष्टग्रसित पाँच सौ, तथा पाप के कारण रोगी हजार दानदाताओं के फल को नष्ट कर देता है तथा मूर्ख व्यक्ति को दान देने वाला भी शुभकर्मफल से वञ्चित हो जाता है। भाव यह है कि १०० को दान करने वाला व्यक्ति यदि एक काना को दान दे या उसे दान देते समय देख ले तो दाता के १०० दान निष्फल हो जाते हैं। उसी प्रकार नपुंसक को देने देखने से ५०० लोगों के दान का फल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार श्वेतकुष्ट वाले को देने और देखने से एकहजार दानों का फल निष्फल हो जाता है, यहाँ पाप रोगी से अर्थ संक्रामक रोगी से हो सकता है।।३९-४०।। जो व्यक्ति सिर ढककर भोजन करता है, जो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके

सर्वं तदसुरेंद्राय ब्रह्मा भागमकल्पयत्। श्वा चैव ब्रह्महा चैव नावेक्षेत कथंचन॥४२॥
तस्मात्परिवृतैर्दद्यात्तिलैश्चान्नं विकीर्य च। राक्षसानां तिलाः प्रोक्ताः शुनां परिवृतास्तथा॥४३॥
दर्शनात्सूकरो हंति पक्षवातेन कुक्कुटः। रजस्वलायाः स्पर्शेन क्रुद्धो यश्च प्रयच्छति॥४४॥
नदीतीरेषु रम्येषु सरित्सु च सरस्सु च। विविक्तेषु च प्रीयंते दत्तेनेह पितामहाः॥४५॥
नासव्यं पातयेज्जानु न युक्तो वाचमीरयेत्। तस्मातरिवृतेनेह विधिवद्दर्भपाणिना॥४६॥
पित्रोराराधनं कार्यमेवं प्रीणयते पितॄन्। अनुमान्य द्विजान्पूर्वमग्नौ कुर्याद्यथाविधि॥४७॥
पितॄणां निर्वपेद्भूमौ सूर्ये वा दर्भसंस्तरे। शुक्लपक्षे च पूर्वाह्ने श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि॥४८॥
कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रौहिणं वै न लंघयेत्। एवमेते महात्मानो महायोगा महौजसः॥४९॥

सदा वै पितरः पूज्याः संप्राप्तो देशकालयोः।
पितृभक्त्यैव तु नरो योगं प्राप्नोति दुर्ल्लभम्॥५०॥

ध्यानेन मोक्षं गच्छेद्धि हित्वा कर्म शुभाशुभम्। यज्ञ हेतोस्तदुद्धृत्य मोहयित्वा जगत्तथा॥५१॥
गुहायां निहितं ब्रह्म कश्यपेन महात्मना। अमृतं गुह्यमुद्धृत्य योगो योगविदां वराः॥५२॥
प्रोक्तः सनत्कुमारेण महतो ब्रह्मणः पदम्। देवानां परमं गुह्यमृषीणां च परायणम्॥५३॥

भोजन करता है, जो जूता पहनकर भोजन करता है, जो असत्कृत का दान करता है, उन सबके समस्त कर्मों को ब्रह्मा असुरों के राजाओं के लिये कल्पित करते हैं।।४०-४१½।। श्राद्ध के समय कुत्ता और ब्रह्महत्यारा किसी भी प्रकार न देख पावे इसके लिये चारों तरफ ओर करने के लिये परदा लगा देना चाहिये और चारों ओर तिलों को बखेर देना चाहिये। राक्षसों के हटाने के लिये तिल बताये गये हैं तथा कुत्तों को हटाने के लिए परदे बताये हैं। शूकर केवल देखने मात्र से ही श्राद्ध के फल नष्ट कर देता है। मुर्गा अपने पंख हिलाने मात्र से श्राद्ध के फल को नष्ट कर देता है। रजस्वला स्त्री के स्पर्श मात्र श्राद्ध का फल नष्ट होता तथा क्रोधी व्यक्ति जो कुछ देता है, वह सब निष्फल है।।४१½-४४।।

रम्य नदियों के किनारों पर, छोटी-छोटी नदियों के पास तालाबों के पास एवं एकान्त स्थानों पर श्राद्ध में दान करने से पितामह ब्रह्मा (अथवा दादा) प्रसन्न होते हैं।।४५।। श्राद्ध करते समय दांये घुटने को भूमि पर नहीं गिराना चाहिये, न बीच में किसी से बात करनी चाहिये, इसलिये पूरी तरह सब ओर से परिवृत होकर अर्थात् ओट करके विधिवत् कुशा को हाथ में लेकर एकाग्रचित्त होकर पितरों की आराधना करनी चाहिये। इस प्रकार पितर लोग प्रसन्न होते हैं। सर्वप्रथम गुरुजनों की अनुमति प्राप्त कर अग्नि में विधिवत् आहुति करें। पितरों के उद्देश्य से दिया गया पदार्थ पृथ्वी पर कुश पर सूर्य पर निर्वपन करे। अब श्राद्ध का समय बताते हुए कहते हैं कि शुक्लपक्ष में दिन के पूर्वभाग (१२ बजे से पहले) यथाविधि श्राद्ध करना चाहिये।।४६-४८।।

कृष्णपक्ष और दिन के १२ बजे के बाद) भी करे; परन्तु रोहिणी नक्षत्र का लंघन नहीं करना चाहिये अर्थात् रोहिणी नक्षत्र से पहले ही श्राद्ध कर देना चाहिये। इस प्रकार ये महात्मा, महायोगी, महाओजस्वी, पितरगण सदा ही पूज्य हैं। उनकी देशकाल की सम्यक् प्राप्ति पर अवश्य पूजा करनी चाहिये। इन पितरों की पूजा (भक्ति) से मनुष्य दुर्लभ योग को प्राप्त करता है।।४९-५०।। पितरों के ध्यान से मनुष्य शुभ और अशुभ कर्मों को छोड़कर मोक्ष को प्राप्त करता है। महात्मा कश्यप ने संसार को मोहित करने यज्ञ के लिये जिस योग का उद्धारकर गुफा में सुरक्षित रखा था। हे योगवेत्ताओं में प्रवीण उस अमरत्वपूर्ण परमगोपनीय चिरन्तन एव परम महान् योगधर्म को उद्धृत करके सनत्कुमार ने

पितृभक्त्या प्रयत्नेन प्राप्यते तन्मनीषिभिः। पितृभक्तः समासेन पितृपूर्वपरश्च यः॥५४॥
अयत्नात्प्राप्नुयादेव सर्वमेतन्न संशयः॥५५॥

बृहस्पतिरुवाच

यस्मै श्राद्धानि देयानि यच्च दत्तं महत्फलम्। येषु चाप्यक्षयं श्राद्धं तीर्थेषु च गुहासु च॥५६॥
येषु स्वर्गमवाप्नोति तत्ते प्रोक्तं ससंग्रहम्। श्रुत्वेमं श्राद्धकल्पं च न कुर्याद्यस्तु मानवः॥५७॥
स मज्जेन्नरके घोरे नास्तिकस्तमसावृते। परिवादो न कर्त्तव्यो योगिनां तु विशेषतः॥५८॥
परिवदात्क्रिमिर्भूत्वा तत्रैव परिवर्त्तते। योगान्परिवदेद्यस्तु ध्यानिनो मोक्षकांक्षिणः॥५९॥
स गच्छेन्नरकं घोरं श्रोताप्यस्य न संशयः। आवृतं तमसः सर्वं नरकं घोरदर्शनम्।
योगीश्वरपरीवादान्न स्वर्गं याति मानवः॥६०॥
योगेश्वराणामाक्रोशं शृणुयाद्यो यतात्मनाम्। सहि कालं चिरं मज्जेन्नरके नात्र संशयः।
कुंभीपाकेषु पच्यंते जिह्वाच्छेदे पुनःपुनः॥६१॥
समुद्रे च यथा लोष्टस्तद्वत्सीदंति ते नराः। मनसा कर्मणा वाचा द्वेषं योगेषु वर्जयेत्।
प्रेत्यानंतं फलं भुंक्त इह वापि न संशयः॥६२॥
न पारगो विंदति पारमात्मनस्त्रिलोकमध्ये चरति स्वकर्मभिः।
ऋचो यजुः साम तदंगपारगोऽविकारमेतं ह्यनवाप्य सीदति॥६३॥

कहा है कि।।५०-५३।। उस योगधर्म को मनीषी लोग पितृभक्ति द्वारा बहुत प्रयत्न से प्राप्त करते हैं, उसे पितरों में पूर्ण भक्ति रखने वाला, देवताओं की परमगोपनीय, ऋषियों की सब कुछ योग सम्पत्ति को पितरों में भक्ति पितृभक्त पितृपूर्वक और पितृपरक विना किसी यत्न के ही पितृभक्ति से सब कुछ प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१५५।।

तब बृहस्पति ने कहा—जिसे श्राद्ध देना चाहिये, जिस वस्तु के देने से महान् फल की प्राप्ति होती है, जिन तीर्थों अथवा नदियों मे किये गये श्राद्ध का अक्षय फल होता है, जिन तीर्थों के करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, उन सबको मैं तुम्हें संग्रहपूर्वक बता चुका।।५६-५६½।। अब श्राद्ध में अश्रद्धा रखने वालों के फल को बृहस्पति बताते हैं कि इस प्रकार श्राद्ध के विषय में चर्चा एवं उसकी विधियों को सुनकर जो मनुष्य दोषदृष्टि रखकर उनमें अश्रद्धा करता है, वह नास्तिक अन्धकार से चारों ओर से घिरकर घोर नरक में गिरता है।।५६½-५७½।। इसलिये श्राद्ध के विषय में मनुष्य को परिवाद नहीं करना चाहिये, परिवाद करने से मनुष्य कीट बनकर वहीं उसी नरक में गिरता है।।५७½-५८½।। जो मनुष्य आत्मा को वश में करके ध्यान करने वाले एवं मोक्ष चाहने वाले योगियों की निन्दा करता है, वह तथा उस निन्दा को सुनने वाला भी घोर नरक में जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५८½-५९½।। तथा वह नरक सब ओर से अन्धकार से घिरा हुआ है तथा घोर दिखायी देने वाला है। योगीश्वरों की निन्दा करने से मनुष्य स्वर्ग नहीं जाता है।।६०।। आत्मा को वश मे रखने वाले योगीश्वरों से जो आक्रोश करता है, वह मनुष्य चिरकाल तक नरक में डूबा रहता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वह मनुष्य कुम्भीपाक नामक नरक में पकाया जाता है तथा वहाँ पर उसकी जिह्वा में बार-बार छेद किये जाते हैं।।६१।। जिस प्रकार समुद्र में मिट्टी का ढेला फूट-फूट कर बिखर जाता है, उसी प्रकार वह मनुष्य कष्ट उठाता है। इसलिये मन, कर्म और वचन से योग के प्रति द्वेष छोड़ देना चाहिये। अतः इस योग को स्वीकार कर अनन्त फल को भोगो, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।६२।। जो योग

विकारपारं प्रकृतेश्च प्रागस्त्रयीगुणानां त्रिगुणस्य पारगः।
यः स्याच्चतुर्विंशतितत्त्वपारगः स पारगो नाध्ययनस्य पारगः॥६४॥
कृत्स्नं यथावत्समुपैति तत्परस्तथैव भूयः प्रलयत्वमात्मनः।
प्रत्याहरेद्योगपथं न यो द्विजो न सर्वपारक्रमपारगोचरः॥६५॥
वेदस्य वेदितव्यं च वेद्यं विंदति योगवित्। तं वै वेदविदः प्राहुस्तमाहुर्वेदपारगम्॥६६॥
वेदं च वेदितव्यं च विदित्वा वै यथास्थितः। एवं वेदविदः प्राहुरन्यं वै वेदपारगम्॥६७॥
यज्ञान्वेदांस्तथा कामांस्तपासि विविधानि च।
प्रानोत्यायुः प्रजाश्चैव पितृभक्तो न संशयः॥६८॥
श्रद्धया श्राद्धकल्पं तु यस्त्विमं नियतः पठेत्।
सर्वाण्ये तानि वाप्नोति तीर्थदानफलानि च॥६९॥

के मार्ग मे पारङ्गत होता है, वह परम आत्मा को पार नहीं करता। अपने कर्म के अनुसार वह तीनों लोकों में विचरण करता है। ऋक्, यजु, और सामवेद तथा इनके सभी अंगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) में पारंगत व्यक्ति इस प्रकार विकारों को न प्राप्त होकर आनन्द का अनुभव करता है।।६३।। समस्त विकारों को पार करने वाला सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों में पारंगत वास्तव में तीनों गुणों के पार जाता है। अर्थात् वह प्रकृति केतीनों गुणों से रहित होकर पुरुष स्वरूप में स्थित हो मुक्त हो जाता है अर्थात् परमात्म तत्त्व में विलीन हो जाता है। जो योगमार्ग तथा चौबीस तत्त्वों में पारंगत हैं, वही पारंगत हैं, केवल अध्ययन करने वाला पारगामी नहीं हैं। यहाँ पर भाव स्पष्ट है कि जो मनुष्य इस शरीर के कारण प्रकृति के चौबीस तत्त्वों को जान लेता है, वही इस शरीर की नश्वरता समझ कर मुक्ति के लिये योग के मार्ग का अवलम्बन करता है; क्योंकि जब पुरुष (आत्मा) यह समझ लेता है कि यह प्रकृति उसे सांसारिक भोगविलासों में फंसाये हुए है। यह प्रकृति अपनी अपनी इन्द्रियों द्वारा सुन्दर शब्दों, सुकोमल स्पर्शों, शोभनीय दर्शनों, मनभावन स्वादों, मनमोहन गन्धों में फंसाकर संयोग वियोग के सुख दुःखों में पीड़ित कर रही है, तब उसे ज्ञान होता है और फिर पुरुष मुक्ति का प्रयास करता है और मुक्त होता है। अतः यह सत्य है कि जो प्रकृति को जानता है, वही योगी है और वही मुक्त होता है। केवल पढ़ने से कोई योगी नहीं बनता और न युक्त होता है।।६४।।

जिस प्रकार योगी पुरुष जो योग में तत्पर रहता है, जीवन के वह समस्त फल को यथावत् प्राप्त करता है और फिर सब कुछ पाने के बाद अपने प्रलय को प्राप्त करता है। इस प्रकार जो ब्राह्मण योग के मार्ग का अवलम्बन नहीं करता वह सब जितने भी दुःखों को पार करने के साधन हैं, उनके क्रम को जानने वाला नहीं होता अर्थात् योगमार्गवेत्ता ही सबकुछ में पारंगत माना जाता है।।६५।। योग को जानने वाला मनुष्य वेद का जो वेदितव्य है तथा जो वास्तव में जानने योग्य है—आत्मतत्त्व और परमात्मतत्त्व, उसको जानता है तथा जो उस तत्त्व को जानता है, उसे ही वेदवित् (वेद को जानने वाला) कहा जाता है तथा उसी को लोग वेद पारग अर्थात् वेद में पारंगत कहते हैं।।६६।। जो मनुष्य जानने योग्य तथा वेद द्वारा जानने योग्य उस परमपुरुष को भलीभाँति जानकर यथास्थित रहता है, वही सच्चा वेदों का ज्ञाता कहा जाता है, अन्य तो वेद के पार जाने वाले हैं अर्थात् वेद को मात्र पढ़ लेने वाले कहे गये हैं।।६७।।

पितरों में भक्ति रखने वाला मनुष्य यज्ञों, वेदों और समस्त कामनाओं और अनेकों प्रकार की तपस्याओं तथा आयु एवं सन्ताओं को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।६८।। इस श्राद्ध कल्प को श्रद्धापूर्वक नियमित

स पंक्तिपावनश्चैव द्विजानामग्रभुग्भवेत्।
आश्राव्य च द्विजान्सोऽथ सर्वकामानवाप्नुयात्॥७०॥
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यम न्यांश्च श्रावयेद्विजः। अनसूयुर्जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः॥७१॥
तीर्थादीनां फलं प्राप्य दानादीनां च सर्वशः। मोक्षोपायं लभेच्छ्रेष्ठं स्वर्गोपायं न संशयः।
इह चापि परा पुष्टिस्तस्मात्कुर्वीत नित्यशः॥७२॥
इमं विधिं यो हि पठेदतंद्रितः समाहितः संसदि पर्वसंधिषु।
अपत्यभागी च परेण तेजसा दिवौकसां स व्रजते सलोकताम्॥७३॥
येन प्रोक्तस्त्वयं कल्पो नमस्तस्मै स्वयंभुवे। महायोगेश्वरेभ्यश्च सदा च प्रणतोऽस्म्यहम्॥७४॥
इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीये उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पे
ब्राह्मणपरीक्षा नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

—※—

रूप से पढ़ता है, वह सभी तीर्थों तथा दानो के फलों को प्राप्त करता है।।६९।। वही व्यक्ति पंक्ति-पावन है तथा ब्राह्मणों में सबसे आगे बैठकर खाने का अधिकारी है, वही समस्त ब्राह्मण को सब कुछ सुनाकर समझाकर, इसके बाद सब मनोरथों को प्राप्त करे।।७०।। असूयारहित, क्रोध को जीतने वाला, लोभमोह को छोड़ने वाला जो ब्राह्मण इस श्राद्धकल्प को नित्य सुने तथा अन्यों को सुनाये, वह तीर्थ आदि का फल प्राप्त करके तथा सब प्रकार के दानादि का फल प्राप्त कर श्रेष्ठ मोक्ष के उपाय को और श्रेष्ठ स्वर्ग के उपाय को प्राप्त करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है तथा वह इस लोक में और परलोक में पुष्टि प्राप्त करेगा; इसलिये ब्राह्मण को यह श्राद्धकल्प सुनना चाहिये और दूसरे को सुनाना चाहिये।।७१-७२।। जो मनुष्य आलस्य छोड़कर और समाहित चित्त होकर इस श्राद्धकर्म की विधि को सभा में और पर्वसन्धियों में पढेगा, वह सन्तान का अधिकारी होकर परमात्म तेज देवताओं के साथ रहने वाले देवलोक को प्राप्त करेगा।।७३।। अतः जिस स्वायम्भुव ने इस श्राद्धकल्प का प्रवचन किया, उन स्वयम्भुव ब्रह्मा के लिए मेरा नमस्कार है तथा महायोगेश्वरों के लिए मैं सदैव पूर्णतः नतमस्तक हूँ।।७४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद १९वां अध्याय श्राद्धकल्प में ब्राह्मणो की परीक्षा का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

श्राद्धकल्पोनाम

विंशतितमोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

इत्येते पितरो देवा देवानामपि देवताः। सप्तस्वेते स्थिता नित्यं स्थानेषु पितरोऽव्ययाः॥१॥
प्रजापतिसुता ह्येते सर्वेषां तु महात्मनाम्। आद्यो गणस्तु योगानामनुयोगविवर्द्धनः॥२॥
द्वितीयो देवतानां तु तृतीयो दानवादिनाम्। शेषास्तु वर्णिनां ज्ञेया इति सर्वे प्रकीर्त्तिताः॥३॥
देवाश्चैतान्यजंते वै सर्वज्ञानेष्ववस्थितान्। आश्रमाश्च यजंत्येनांश्चत्वारस्तु यथाक्रमम्॥४॥
सर्वे वर्णा यजंत्येनांश्चत्वारस्तु यथागमम्। तथा संकरजात्यश्च म्लेच्छाश्चापि यजंति वै॥५॥
पितॄंस्तु यो यजेद्भक्त्या पितरः प्रीणयंति ते। पितरः पुष्टिकामस्य प्रजाकामस्य वा पुनः॥६॥
पुष्टिं प्रजां तु स्वर्गं च प्रयच्छंति पितामहाः। देवकार्यादपि तथा पितृकार्यं विशिष्यते॥७॥
देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृताः। न हि योगगतिः सूक्ष्मा पितॄणां ज्ञायते नरैः॥८॥
तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा। सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम्॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-२०

श्राद्धकल्पवर्णन

बृहस्पति ने कहा कि हे तात! ये जितने भी पितरगण हैं, वे देवों के भी देवता हैं। ये नाशहीन पितरगण सात स्थानों में नित्य निवास करते हैं।।१।। वे सब परम महात्मा तथा प्रजापति के पुत्र हैं, इनका सर्वप्रथमगण योगियों का है। अतः वे नित्य योगवर्धन के नाम से विख्यात है।।२।। दूसरागण देवताओं का है और तीसरा गण दानव आदियों का है, शेष अन्य वर्णियों के नाम जानने योग्य बताये गये हैं।।३।। इन सब लोकों में अवस्थित रहकर देवगण इन सबों की पूजा करते हैं। चारों आश्रमों में निवास करने वाले क्रमपूर्वक इनकी पूजा करते हैं।।४।। चारों वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र भी इनकी पूजा करते हैं तथा वर्ण संकर जातियां और म्लेच्छ भी इनकी पूजा करते हैं।।५।।

जो मनुष्य पितरों की भक्ति से पूजा करते हैं, पितर उन पर प्रसन्न हो जाते हैं, तब पितर मनुष्य की पुष्टि करते हैं, उसे धन-दौलत से सम्पन्न करते हैं अथवा उनकी सन्तान की इच्छा को पूर्ण करते हैं।।६।। पितरों की पूजा करने से पितर पुष्टि और पुत्र की कामना पूर्ण करते हुये मनुष्य को स्वर्ग प्रदान करते हैं। देवकार्य (यज्ञकार्य) से पितृकार्य (श्राद्धकर्म) विशेष महत्त्व रखता है।।७।। देवताओं से पहले पितरों को सन्तुष्ट करने की बात कही गयी है। पितरों की परम सूक्ष्म गति वाली बहुत ऊंची तपस्या मांस की आंखों से नहीं देखी जा सकती है। अतः पितरों की सूक्ष्म गति को देखने के लिये बहुत ऊँची तपस्या की आवश्यकता है।।८-८½।। समस्त देवताओं और पितरों के लिए चांदी का पात्र विहित है, अथवा वह तो चांदी से मढ़ा हुआ होना चाहिये। ऐसे पात्र पितर कार्यों के साथ देव कार्य में पवित्र माने

पावनं ह्युत्तमं प्रोक्तं देवानां पितृभिः सह। येषां दास्यंति पिंडांस्त्रीन्बांधवा नामगोत्रतः॥१०॥
भूमौ कुशोत्तरायां च अपसव्यविधानतः। सर्वत्र वर्त्तमानास्ते पिंडाः प्रीणंति वै पितॄन्॥११॥
यदाहारो भवेज्जंतुराहारः सोऽस्य जायते। यथा गोष्ठे प्रनष्टां वै वत्सो विंदति मातरम्॥१२॥
तथा तं नयते मंत्रो जंतुर्यत्रावतिष्ठति। नामगोत्रं च मंत्रं च दत्तमन्नं नयंति तम्॥१३॥
अपि योनिशतं प्राप्तांस्तृप्तिस्ताननुगच्छति। एवमेषा स्थिता सत्ता ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥१४॥
पितृणामादिसर्गे तु लोकानामक्षयार्थिनाम्। इत्येते पितरश्चैव लोका दुहितरस्तथा॥१५॥
दौहित्रा यजमानाश्च प्रोक्ताश्चैव मयाऽनघ। कीर्त्तिताः पितरस्ते वै तव पुत्र यथाक्रमम्॥१६॥

शंयुरुवाच

अहो दिव्यस्त्वया तात पितृसर्गस्तु कीर्तितः। लोका दुहितरश्चैव दौहित्राश्च श्रुतास्तथा॥१७॥
दानानि सह शौचेन कीर्त्तितानि फलानि च। अक्षय्यत्वं द्विजांश्चैव सर्वमेतदुदाहृतम्।
अद्यप्रभृति कर्त्ताऽस्मि सर्वमेतद्यथातथम्॥१८॥

बृहस्पतिरुवाच

इत्येतदंगिराः पूर्वमृषीणामुक्तवान्प्रभुः। पृष्टश्च संशयान्सर्वानृषीनाह नरसंसादि॥१९॥

गये हैं।।८½-९½।। जिनके बन्धन नाम और गोत्र का उच्चारण करते हुए अपसव्य (उल्टा यज्ञोपवीत डालकर) होकर भूमि पर कुशा बिछाकर तीन पिण्डों का दान करेंगे, उनके वे तीन पिण्ड सर्वत्र वर्तमान रहते हुए पितरों को प्रसन्न करते हैं।।९½-११।। जन्तु (मनुष्य) जो आहार करता है, वही आहार उनके पितरों का होना चाहिये, जिस प्रकार गायों के रहने के स्थान में सैकड़ों गायों में छिपी हुई गाय अपनी माता को वछड़ा खोजता है और पा जाता है। उसी प्रकार श्राद्ध कर्म में दिये गये पदार्थों को मन्त्र वहाँ पहुँचा देता है, जहाँ वह जीव अवस्थित होता है।।१२-१२½।।

नाम और गोत्र के उच्चारण के साथ जो मन्त्र बोला जाता है, वह मन्त्र दिये गये अन्न को उन पितरों तक ले जाता है, चाहे वे सैकड़ों योनियों में क्यों न गये हों, उनको सैकड़ों यानियों में से प्राप्तकर उस अन्न से उन्हें तृप्त करता है। इस प्रकार यह मर्यादा परमेष्ठी ब्रह्मा द्वारा स्थापित की गयी है। लोगों को अक्षय लाभ दिलाने की दृष्टि से पितरों की यह आदि सृष्टि हुई।।१२½-१४½।। इसके बाद बृहस्पति ने अपने पुत्र शंयु से कहा कि हे निष्पाप पुत्र! मैंने अभी तुमको पितरों, बेटियों, नातियों, यजमानों के बारे में बता दिया है तथा मैंने यथाक्रम जो पितर हैं, उनका वर्णन भी कर दिया है।।१४½-१६।।

इसके बाद शंयु बोले—कि हे तात आपने इस दिव्य पितृसर्ग का वर्णन कर दिया है, इस क्रम में मैंने आपसे लोकों, बेटियों और नातियों (धेवतों) के बारे में सुना।।१७।। इस क्रम में आपने शौचकर्म (पवित्र होने के कर्म) के साथ-साथ समस्त दानों और उन दानों के फलों का वर्णन कर दिया है तथा कौन-कौन दानों के फलों का अक्षय्यत्व है अर्थात् कौन-कौन से दानों के फल कभी नष्ट नहीं होते तथा किन-किन ब्राह्मणों को दान देना चाहिये, यह सब भी वर्णन कर दिया है। अतः आज से ही मैं इस सबको जैसे आपने बताया है, ठीक उसी प्रकार करूँगा।।१८।।

तब बृहस्पति ने कहा कि यह सब जो मैंने तुम्हें बताया है, उसे पहले ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर प्रभु महर्षि अंगिरा ने पितरों के विषय में सभी संदेहास्पद बातों की चर्चा एक मनुष्यों की सभा में की थी।।१९।।

सत्रे तु वितते पूर्वं तथा वर्षसहस्त्रके। यस्मिन्सदस्पतिस्त्रातो ब्रह्मासीद्देवताप्रभु;॥२०॥
गतानि तत्र वर्षाणां पंचाशच्च शतानि वै। श्लोकाश्चात्र पुरा गीता ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥२१॥
दीक्षितस्य पुरा सत्रे ब्रह्मणः परमात्मनः। तत्रैव दत्तमन्नाग्रं पितृमामक्षयार्थिनाम्।
लोकानां च हितार्थाय ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥२२॥

सूत उवाच

एवं बृहस्पतिः पूवरं पृष्टः पुत्रेण धीमता। प्रोवाच पितृसर्गं तु यश्चैव समुदाहत॥२३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्तं मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पो नाम विंशतितमोऽध्यायः॥२०॥

॥समाप्तश्चायं श्राद्धकल्पः॥

ऐसा सुना जाता है कि प्राचीनकाल में हजारों वर्षों तक एक यज्ञ हुआ था, उस यज्ञ में सज्जनों के स्वामी ब्रह्मा पूरी तरह शिक्षित होकर बैठे थे तथा वे सभी देवताओं के स्वामी पाँच सौ वर्ष तक बने रहे तथा उन्होंने पाँच सौ वर्ष तक देवताओं को शिक्षा प्रदान की। ब्रह्मवेत्तागण इस विषय में एक श्लोक गाते हैं॥२०-२१॥ जिसका निम्न आशय है। प्राचीन काल में उस महान् यज्ञ में परमात्मा ब्रह्मा के दीक्षित होने पर उन्हीं से सब लोकों की भलाई के लिए प्रार्थी पितरों को सबसे आगे उत्तम अन्न दिया गया था॥२२॥ तब सूत जी ने कहा कि अपने बुद्धिमान् पुत्र शंयु के पूछने पर प्राचीन काल में बृहस्पति ने पितृवंश का जो वर्णन किया था, वह सब मैंने आप लोगों को बता दिया है॥२३॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद २०वां अध्याय श्राद्धकल्पवर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।

॥अब यह श्राद्ध कल्प समाप्त हुआ।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

परशुरामकथारम्भ नाम

एकविंशतितमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

इत्थं प्रवर्त्तमानस्य जमदग्नेर्महात्मनः। वर्षाणि कतिचिद्राजन्व्यतीयुरमितौजसः॥१॥
रामोऽपि नृपशार्दूल सर्वधर्मभृतां वरः। वेदवेदांगतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः॥२॥
पित्रोश्चकार शुश्रूषां विनीतात्मा महामतिः। प्रीतिं च निजचेष्टाभिरन्वहं पर्यवर्त्तयत्॥३॥
इत्थं प्रवर्त्तमानस्य वर्षाणि कातिचिन्नृपः। पित्रोः शुश्रूषयानैषीद्रामो मतिमतां वरः॥४॥
स कदाचिन्महातेजाः पितामहः गृहं प्रति। गन्तुं व्यवसितो राजन्दैवेन च नियोजितः॥५॥
निपीड्य शिरसा पित्रोश्चरणौ भृगुपुंगवः। उवाच प्रांजलिर्भूत्वा सप्रश्रयमिदं वचः॥६॥
कंचिदर्थमहं तात मातरं त्वां च साम्प्रतम्। विज्ञापयितुमिच्छामि मम तच्छ्रोतुमर्हथः॥७॥
पितामहमहं द्रष्टुमुत्कंठितमनाश्चिरम्। तस्मात्तत्पार्श्वमधुना गमिष्ये वामनुज्ञया॥८॥
आहूतश्चासकृत्तात सोत्कंठं प्रीयमाणया। पितामह्या बहुमुखैरिच्छंत्या मम दर्शनम्॥९॥
पितॄन्पितामहस्यापि प्रियमेव प्रदर्शनम्। मदीयं तेन तत्पार्श्वं गन्तुं मामनुजानत॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-२१

परशुरामकथारम्भ

वशिष्ठ ने कहा—कि हे राजन्! इस प्रकार असीमित तेजस्वी महात्मा जमदग्नि को तपस्या करते हुए कुछ वर्ष बीत गये।।१।। राजाओं में शार्दूल, सब धर्मों को धारण करने में श्रेष्ठ, वेदों और वेदांगो के तत्त्व को जानने वाले, सभी शास्त्रों के ज्ञाता, विनीत आत्मा और महाबुद्धिमान् परशुराम ने भी पिता की सेवा की तथा इतनी सेवा की अपनी चेष्टाओं से उनकी परमप्रीति को अपनी ओर बदल लिया।।२-३।। इस प्रकार हे राजन्! पिता की सेवा में लगे हुए बुद्धिमानों में श्रेष्ठ परशुराम ने कुछ वर्षों तक सेवा की, फिर हे राजन्! उन महातेजस्वी राम ने कभी अपने पितामह के घरकी ओर जाने का प्रयास किया, जो दैवयोग से पहले से ही नियोजित था।।५।। तब भृगुकुल शिरोमणि परशुराम ने पिता के चरणों में शिर रखकर हाथ जोड़ते हुए आधारयुक्त इन वचनों को कहा।।६।।

हे तात! मैं कुछ अपनी माता के विषय में जो वे चाहती हैं, उस आशय वाले अर्थ को इस समय आपके समक्ष निवेदन करना चाहता हूँ, जिसे कृपया आप सुनिये।।७।। मैं अपने पितामह को बहुत समय पहले से देखने को उत्कण्ठित था। इसलिए आप की अनुमति से अब उनके पास जाऊँगा।८।। हे तात! प्रेम से उत्कण्ठित मेरी पितामही (दादी) ने अपने अनेकों मुखों से मुझे देखने की इच्छा से अनेकों बार मुझे बुलाया है।।९।। पितामह के पितरों का दर्शन करना भी प्रिय ही होता है, इसलिये मुझे उनके पास जाने की अनुमति दीजिये।।१०।।

वसिष्ठ उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा संभ्रांतं समुदीरितम्। हर्षेण महता युक्तौ साश्रुनेत्रौ बभूवतुः॥११॥
तमालिंग्य महाभागं मूर्ध्न्युपाघ्राय सादरम्। अभिनंद्याशिषा तात ह्युभौ वाविदमाहतुः॥१२॥
पितामहगृहं तात प्रयाहि त्वं यथासुखम्। पितामहपितामह्योः प्रीतये दर्शनाय च॥१३॥
तत्र गत्वा यथान्यायं तं शुश्रूषा परायणः। कंचित्कालं तयोर्वत्स प्रीतये वस तद्गृहे॥१४॥
स्थित्वा नातिचिरं कालं तयोर्भूयोऽप्यनुज्ञया। अत्रागच्छ महाभाग क्षेमेणास्मद्दिदृक्षया॥१५॥
क्षणार्द्धमपि शक्ताः स्थो न विना पुत्रदर्शनम्। तस्मात्पितामह गृहे न चिरात्स्थातुमर्हसि॥१६॥
तदाज्ञयाथवा पुत्र प्रपितामहसन्निधिम्। गतोऽपि शीघ्रमागच्छ क्रमेण तदनुज्ञया॥१७॥

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्तस्तौ परिक्रम्य प्रणम्य च महामतिः। पितरावप्यनुज्ञाप्य पितामहगृहं ततः॥१८॥
स गत्वा भृगुवर्यस्य ऋचीकस्य महात्मनः। प्रविवेशाश्रमं रामो मुनिशिष्योपशोभितम्॥१९॥
स्वाध्यायघोषैर्विपुलैः सर्वतः प्रतिनादितम्। प्रशांतवैर सत्त्वाढ्यं सर्वसत्त्वमनोहरम्॥२०॥
स प्रविश्याश्रमं रम्यमृचीकं स्थितमासने। ददर्श रामो राजेंद्र स पितामहमग्रतः॥२१॥
जाज्वल्यमानं तपसा धिष्ण्यस्थमिव पावकम्।
उपासितं सत्यवत्या यथा दक्षिमयाऽध्वरम्॥२२॥

वशिष्ठ ने कहा—कि जब परशुराम के बहुत ही शिष्टाचारयुक्त तथा अच्छी प्रकार सोच-समझकर बोले हुए इन वचनों को सुना तो महात्मा जमदग्नि महान् हर्ष से युक्त हुए। इतना कि खुशी से उनकी आँखें आँसुओं से भर गयीं।।११।। फिर उन्होंने महाभाग परशुराम का प्रसन्नता से आलिंगन कर आदरसहित उनके मस्तक का चुम्बन कर लिया और आशीष देते हुए अभिनन्दन किया। इस प्रकार वे दोनों ही प्रसन्न हुए, तब उन्होंने कहा कि हे तात! तुम पितामह और पितामही को प्रीतिपूर्वक देखने के लिए आनन्द के साथ जाओ।।१२-१३।। और वहाँ जाकर नियमपूर्वक उनकी सेवा में पूरी तरह संलग्न रहते हुए उन दोनों के प्रेम के लिये कुछ समय तक उनके घर में निवास करो।।१४।। फिर वहाँ पर हे महाभाग! अधिक समय न रहते हुए कुछ समय बिताकर फिर उन दोनों पितामह और पितामही की अनुमति से हमको दर्शन देने की कृपा के साथ यहाँ पर आगमन करो।।१५।। हम आधे क्षण भी पुत्र को विना देखे नहीं रह सकते; इसलिए पितामह के घर तुम्हें अधिक दिनों तक नहीं रहना है।।१६।। इसके बाद क्रमशः हे पुत्र! पितामह की आज्ञा से प्रपितामह के पास भी जाकर उनकी अनुमति से शीघ्र लौट कर आ जाओ।।१७।।

वशिष्ठ ने कहा—कि इस प्रकार इसके बाद उन दोनों अपने पिता और माता की परिक्रमा करके और उन्हें प्रणाम करके महामति परशुराम माता पिता की अनुमति प्राप्त कर पितामह के घर गये।।१८।। उसके बाद परशुराम वहाँ से चलकर मुनि और शिष्यों से उपशोभित भृगुवर्य महात्मा ऋचीक के आश्रम में प्रविष्ट हुए।।१९।। वह आश्रम चारों ओर स्वाध्यायरत छात्रों के घोर शब्दों से शब्दायमान था। विद्यार्थी जोर-जोर से पढ़ रहे थे। उस आश्रम में परस्पर वैर रखने वाले प्राणियों यथा सिंह, हरिण, सर्प, नेवला आदि भी वैर रहित थे, जिसके कारण वह आश्रम बहुत शान्त और मनोहर था।।२०।। तब हे राजेन्द्र! जब परशुराम ने उस ऋचीक मुनि के रम्य आश्रम में प्रवेश किया तो उन्होंने पितामह के आगे तपस्या से हवनकुण्ड में अग्नि के समान जाज्वल्यमान सत्यवती के दक्षिण यज्ञ स्थित उपासना करते

स्वसमीपमुपायांतं राममालोक्य तौ नृप। सुचिरं तं विमर्शेतां समाज्ञापूर्वदर्शनौ॥२३॥
कोऽयमेष तपोराशिः सर्वलक्षणपूजितः। बालोऽयं बलवान्भाति गांभीर्यात्प्रश्रयेण च॥२४॥
एवं तयोश्चिंतयतोः सहर्षं हृदि कौतुकात्। आससाद शनै रामः समीपे विनयान्वितः॥२५॥

स्वनामगोत्रे मतिमानुक्त्वा पित्रोर्मुदान्वितः।
संस्पृशंश्चरणौ मूर्ध्ना हस्ताभ्यां चाभ्यवादयत्॥२६॥

ततस्तौ प्रीतमनसौ समुथाप्य च सत्तमम्। आशीर्भिरभिनन्देतां पृथक् पृथगुभावपि॥२७॥
तमाश्लिष्यांकमारोप्य हर्षाश्रुप्लुतलोचनौ। वीक्षंतौ तन्मुखांभोजं परं हर्षमवापतुः॥२८॥
ततः सुखोपविष्टं तमात्मवंशसमुद्वहम्। अनामयमपृच्छेतां तावुभौ दंपती तदा॥२९॥
पितरौ ते कुशलिनो वत्स किंभ्रातरस्तथा। अनायासेन ते वृत्तिर्वर्तते चाथ कर्हिचित्॥३०॥
समस्ताभ्यां ततो राजन्नाचचक्षे यथोदितः। तथा स्वानुगतं पित्रोर्भ्रातॄणां चैव चेष्टितम्॥३१॥
एवं तयोर्महाराज सत्प्रीतिजनितैगुणैः। प्रीयमाणोऽवसद्रामः पितुः पित्रोर्न्निवेशने॥३२॥
स तस्मिन्सर्वभूतानां मनोनयननन्दनः। उवास कतिचिन्मासांस्तच्छुश्रूषापरायणः॥३३॥
अथानुज्ञाप्य तौ राजन्भृगुवर्यो महामनाः। पितामहगुरोर्गंतुमियेषाश्रयमाश्रमम्॥३४॥
स ताभ्यां प्रीतियुक्ताभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः। यथा चाभ्यां प्रदिष्टेन यया वौर्वाश्रमं प्रति॥३५॥

हुए पितामह को देखा।।२१-२२।।अपने पास में आये हुए परशुराम को देखकर हे राजन्! उन दोनों सत्यवती और ऋचीक ऋषि ने अच्छी तरह से विचार-विमर्श किया कि यह कौंन हो सकता है?।।२३।। फिर सोचने लगे कि ये तपो राशि कौंन हैं? जो समस्त अच्छे लक्षणों से युक्त है तथा वे सोचने लगे कि ये बालक अवश्य ही गम्भीरता और विनम्रता से युक्त प्रतीत होता है।।२४।।

ऐसा वे दोनों पितामह ऋचीक और पितामही सत्यवती हृदय में उत्कंठा के साथ सोच ही रहे थे कि विनयान्वित परशुराम शीघ्र ही उनके पास आ गये।।२५।। उसके बाद उन बुद्धिमान् परशुराम ने अपना नाम और गोत्र तथा पिता का नाम बताकर प्रसन्नता से युक्त होकर अपने हाथों से उनके चरणों को स्पर्श कर हाथों को शिर को स्पर्श करते हुए अभिवादन किया।।२६।। उसके बाद उन दोनों ने प्रसन्नचित्त होकर सज्जनश्रेष्ठ परशुराम को उठाकर अलग अलग आशीर्वादों से अभिनन्दित किया।।२७।।

फिर उनको छाती से चिपकाकर तथा गोद में बैठाकर हर्ष से अश्रुपूरितनेत्रों से परशुराम के मुखकमल को देखते हुए, अपार हर्ष को प्राप्त किया।।२८।। उसके बाद अपने ही वंश में समुत्पन्न परशुराम को सुखपूर्वक बैठे हुए स्वस्थ परशुराम से उन दोनों ऋचीक एवं सत्यवती ने पूछा।।२९।। हे वत्स! तुम्हारे माता-पिता कुशल हैं तथा तुम्हारे भाई सब कैसे हैं? अचानक तुम्हारी वृति कहीं अन्य तो नहीं हो गयी है।।३०।। उसके बाद हे राजन्! परशुराम ने उन दोनों के साथ बैठकर जो उन्होंने पूछा था, पिता तथा भाइयों की कुशलता सब कुछ बता दिया।।३१।। इस प्रकार हे महाराज! सच्चे प्रेम से उत्पन्न गुणों द्वारा प्रसन्न परशुराम ने पिता के पिता माता (दादा) के घर में निवास किया।।३२।। इसके बाद हे राजन! उन दोनों की आज्ञा प्राप्त कर भृगुकुल श्रेष्ठ महामना परशुराम ने पितामह के गुरु के आश्रम में जाने की इच्छा प्रकट की।।३४।। फिर उन दोनों के प्रीतियुक्त आशीर्वादों से अभिनन्दित वह

तं नमस्कृत्य विधिवच्च्यवनं च महातपाः। सप्रहर्षं तदाज्ञातः प्रययावाश्रमं भृगोः॥३६॥
स गत्वा मुनिमुख्यस्य भृगोराश्रममंडलम्। ददर्श शांतचेतोभिर्मुनिभिः सर्वतो वृतम्॥३७॥
सुस्निग्धशीतलच्छायैः सर्वर्तुकगुणान्वितैः। तरुभिः संवृतं प्रीतः फलपुष्पोत्तरान्वितैः॥३८॥
नानाखगकुलारावैर्मनः श्रोत्रसुखावहैः। ब्रह्मघोषैश्च विविधैः सर्वतः प्रतिनादितम्॥३९॥
समंत्राहुतिमोहोत्थधूमगंधेन सर्वतः। निरस्तनिखिलाघौघं वनांतरविसर्पिणा॥४०॥
समित्कुशाहरैर्दण्डमेखलाजिनमंडितैः। अभितः शोभितं राजन्नम्यैर्मुनिकुमारकैः॥४१॥
प्रसूनजलसंपूर्णपात्रहस्ताभिरंतरा। शोभितं मुनिकन्याभिश्चरंतीभिरितस्ततः॥४२॥
सपोतहरिणीयूथैर्विश्रंभादविशंकिभिः। उटजांगणपर्यन्ततरुच्छायास्वधिष्ठितम्॥४३॥
रोमंथतः परामृष्टियूथ साक्षिकमुत्प्रदैः। प्रारब्धतांडवं केकीमयूरैर्मधुरस्वरैः॥४४॥
प्रविकीर्णकणोद्देशं मृगशब्दैः समीपगैः। अनालीढातपच्छायाशुष्यन्नीवारराशिभिः॥४५॥
हूयमानानलं काले पूज्यमानातिथिव्रजम्। अभ्यस्यमानच्छंदौघं चिंत्यमानागमोदितम्॥४६॥

परशुराम उन दोनों दादा दादी के दिये गये निर्देश के अनुसार महर्षि और्व[1] के आश्रम की ओर गये।।३५।। तब उन महर्षि और्व को नमस्कार और विधिवत् च्यवन ऋषि को नमस्कार कर महातपस्वी परशुराम बहुत हर्ष के साथ उनकी आज्ञा से भृगु के आश्रम की ओर चले गये।।३६।। वहाँ जाकर उन्होंने मुनिमुख्य भृगु का आश्रम मण्डल देखा। जो आश्रम शान्तचित्त वाले मुनियों के द्वारा सब ओर से घिरा हुआ था अर्थात् सर्वत्र शान्तचित्त वाले मुनि लोग ही स्थित थे।।३७।। वह आश्रम सुस्निग्ध और शीतल छायाओं वाले सब ऋतुओं के गुणों से युक्त वृक्षों से घिरा हुआ था, जो वृक्ष फलों और पुष्पों से लदे हुए बहुत आनन्ददायक थे।।३८।। वह आश्रम अनेकों पक्षियों के चहचहाहटों, मन और को सुख प्रदान करने वाले अनेकों प्रकार के ब्रह्मनादों से परिपूर्ण था।।३९।। चारों ओर मन्त्र सहित आहुति के धुंये की गन्ध से तथा घी की सुगन्ध से सारा वनमण्डल निष्पाप हो गया था।।४०।।

हे राजन्! वह आश्रम चारों ओर हाथ में समिधा और कुश लिये दण्ड और मेखला मृगचर्म मण्डित नम्य मुनि कुमारों से सुशोभित था।।४१।। फूल और जल से भरे घड़े हाथों में लिये हुए तथा इधर उधर घूमती हुई मुनि कन्याओं से भी शोभित था।।४२।। कोई भी सिंह आदि उन्हें नहीं मारेगा इस विश्वास से अपने बाल-बच्चों के साथ घूमते हुए निडर झोपड़ियों के पास पेड़ों की छाया में निर्भीक हरिण बैठे हुए थे।।४३।। जुगाली करता हुआ उनका झुण्ड आंखों को आनन्द प्रदान कर रहा था। उधर मयूरी और मयूर की मधुर बोलियों से ताण्डव (नाच) प्रारम्भ हो गया था।।४४।। समीप में जाने वाले मृग के शब्दों से उस आश्रम का कण-कण व्याप्त था। कहीं पर धूप-छाया में सूखते हुए नीवार नामक धान्य विशेष के ढेर थे।।४५।। कहीं यज्ञ का समय हो गया है, ऐसा कहकर पूज्यमान अतिथिसमूह को बुलाया जा रहा था। कहीं-कहीं छन्दों को पाठ करने का अभ्यास किया जा रहा था, शिष्यगण

१. और्व का अर्थ है—जंघा से उत्पन्न। महाभारत में वर्णन मिलता है कि भृगु के वंशजों का नाश करने की इच्छा से कार्तवीर्य के पुत्रों ने गर्भस्थित बालकों को भी मार दिया। उस वंश की एक स्त्री ने अपने गर्भ को बचाने के लिए उस गर्भ को अपनी जंघा में छिपा लिया था; इसीलिए जंघा से जन्मे होने के कारण और्व कहलाये। उन्हें देखकर कार्तवीर्य के पुत्र अन्धे हो गये। उसके क्रोध से उठी ज्वाला ने सारे संसार को भस्म करना चाहा; परन्तु अपने पितरों की इच्छा से उन्होंने उस क्रोध को समुद्र में फेंक दिया, जिससे समुद्र में वडवाग्नि पैदा हो गयी।

पठ्यमानाखिलस्मार्त्तं श्रोतार्थप्रविचारणम्। प्रारब्धपितृदेवेज्यं सर्वभूतमनोहरम्॥४७॥
तपस्विजनभूयिष्ठमकापुरुषसेवितम्। तपोवृद्धिकरं पुण्यं सर्वसत्त्वसुखास्पदम्॥४८॥
तपोधनानन्दकरं ब्रह्मलोकमिवापरम्। प्रसूनसौरभभ्राम्यन्मधुपारावनादितम्॥४९॥
सर्वतो वीज्यमानेन विविधेन नभस्वता। एवंविधगुणोपेतं पश्यन्नाश्रममुत्तमम्॥५०॥
प्रविवेश विनीतात्मा सुकृतीवामरालयम्। संप्रविश्याश्रमोषांतं रामः स्वप्रपितामहम्॥५१॥
ददर्श परितो राजन्मुनिशिष्यशतावृतम्। व्याख्यानवेदिकामध्ये निविष्टं कुशविष्टरे।

सितश्मश्रुजटाकूर्चब्रह्मसूत्रोपशोभितम् ॥५२॥
वामेतरोरुमध्यास्त वामजंघेन जानुना॥५३॥

योगपट्टेन संवीतस्वदेहमृषिपुंगवम्। व्याख्यानमुद्राविलसत्सव्यपाणितलांबुजम्॥५४॥
योगपट्टोपरिन्यस्तविभ्राजद्वामपाणिकम्। सम्यगारण्यवाक्यानां सूक्ष्मतत्त्वार्थसंहतिम्॥५५॥
विवृत्य मुनिमुख्येभ्यः श्रावयतं तपोनिधिम्। पितुः पितामहं दृष्ट्वा रामस्तस्य महात्मनः॥५६॥
शनैरिव महाराज समीपं समुपागमत्। तमागतमुपालक्ष्य तत्प्रभावप्रधर्षिताः॥५७॥
शंकामवापुर्मुनयो दूरादेवाखिला नृप। तावद्भृगुरमेयात्मा तदागमनतोषितः॥५८॥
निवृत्तान्यकथालापस्तं पश्यन्नास पार्थिव। रामोऽपि तमुपागम्य विनयावनताननः॥५९॥

मधुरस्वरों में छन्दो का गान कर रहे थे तथा कहीं आगमशास्त्र का चिन्तन किया जा रहा था।।४६।। कहीं समस्त स्मृतियों का अध्ययन किया जा रहा था, तो कहीं वेदों के अर्थ पर गूढ़विचार हो रहे थे। कहीं पर सब प्राणियों के मन को हरने वाले पितृयज्ञ और देवयज्ञ प्रारम्भ हो रहे थे।।४७।। समस्त आश्रम तपस्विजनों से भरा हुआ था और वीर पुरुषों से सेवित था। वह आश्रम तपस्या की वृद्धि करने वाला पुण्यशाली और सभी प्राणियों को सुख प्रदान करने वाला स्थान था।।४८।। वह तपोवन तपस्वियों को आनन्द प्रदान करने वाला, दूसरे ब्रह्मलोक के समान था। वह आश्रम फूलों की सुगन्ध के कारण चारों और घूमते हुए भौंरों की ध्वनियों से गुञ्जायमान था।।४९।।

वह आश्रम चारों ओर अनेकों प्रकार की मेघाच्छत्र ठंडी हवा से युक्त था। इस प्रकार गुणों से युक्त उत्तम आश्रम को देखते हुए विनीतात्मा परशुराम ने उसी प्रकार उस आश्रम में प्रवेश किया, जिस प्रकार कि अच्छे कर्म करने वाला व्यक्ति देवलोक में प्रवेश करता है।।५०-५०½।। फिर उस आश्रम के प्रान्त भाग में प्रवेश कर उन्होंने सैकड़ों मुनि शिष्यों से घिरे हुए व्याख्यावेदिका के मध्य कुश के विस्तर पर बैठे हुए अपने पितामह को देखा। जो श्वेत दाड़ी, जटाजूट और ब्रह्मसूत्र से सुशोभित थे तथा वे दांयी जंघा के बीच में बांयी जंघा रखकर पद्मासन में बैठे हुए थे।।५०½-५३।। वे ऋषि श्रेष्ठ योगवस्त्र से अपने शरीर को ढके हुए थे, वे उस समय व्याख्यान देने की मुद्रा में थे, इसलिये उनके बांये हाथ में कमल सुशोभित था।।५४।। तब योगवस्त्र से परिन्यस्त बांये हाथ में कमल से शोभित सम्यक् प्रकार से आरण्यक वाक्यों के सूक्ष्म तत्त्वार्थ से संहति रखने वाले मुनि के मुखों से निकले हुए वचनों को तपस्वियों को सुनाते हुए अपने पिता के पितामह को देखकर शीघ्र ही परशुराम उन महात्मा के समीप पहुँच गये।।५५-५६½।। तब हे राजन् आये हुए उनको देखकर उनके प्रभाव से पराभूत दूर बैठे हुए सब मुनियों को शंका हो गयी तथा निरोगात्मा भृगु परशुराम के आगमन से प्रसन्न हो गये। फिर हे राजन्! सब काम, कथा, आलाप आदि को छोड़कर उन्होंने

अवंदत यथान्यायमुपेन्द्र इव वेधसम्। अभिवाद्य यथान्यायं ख्यातिं च विनयान्वितः॥६०॥
तांश्च संभावयामास मुनीन्रामो यथावयः। तैश्च सर्वैर्मुदोपेतैराशीर्भिभिवर्द्धितः॥६१॥
उपाविवेश मेधावी भूमौ तेषामनुज्ञा। उपविष्टं ततो राममाशीर्भिरभिनंदितम्॥६२॥
पप्रच्छ कुशलप्रश्नं तमालोक्य भृगुस्तदा। कुशलं खलु ते वत्स पित्रोश्च किमनामयम्॥६३॥
भ्रातॄणां चैव भवतः पितुः पित्रोस्तथैव च। किमर्थमागतोऽत्र त्वमधुना मम सन्निधिम्॥६४॥
केनापि वा त्वमादिष्टः स्वयमेवाथवागतः। ततो रामो यथान्यायं तस्मै सर्वमशेषतः॥६५॥
कथयामास यत्पृष्टं तदा तेन महात्मना। पितुर्मातुश्च वृत्तांतं भ्रातॄणां च महात्मनाम्॥६६॥
पितुः पित्रोश्च कौशल्यं दर्शनं च तयोर्नृप। एतदन्यच्च सकलं भृगोः सप्रश्रयं मुदा॥६७॥
न्यवेदयद्यथान्यायमात्मनश्च समीहितम्। श्रुत्वैतदखिलं राजन्रामेण समुदीरितम्॥६८॥
तं च दृष्ट्वा विशेषेण भृगुः प्रीतोऽभ्यनन्दत। एवं तस्य प्रियं कुर्वन्नुत्कृष्टैरात्मकर्मभिः॥६९॥
तत्राश्रमेऽवसद्रामो दिनानि कतिचिन्नृपः। ततः कदाचिदेकांते रामं मुनिवरोत्तमः॥७०॥
वत्सागच्छेति तं राजन्नुपाह्वयदुपह्वरे। सोऽभिगम्य तमासीनमभिवाद्य कृतांजलिः॥७१॥
तस्थौ तत्पुरतो रामः सुप्रीतेनांतरात्मना। आशीर्भिरभिनंद्याथ भृगुस्तं प्रीत मानसः॥७२॥

परशुराम को देखा।।५६½-५८½।। परशुराम भी उनके पास जाकर विनयपूर्वक शिर झुकाये हुए नियमपूर्वक उसी प्रकार बोले, जिस प्रकार ब्रह्मा जी के पास इन्द्र जाकर बोलते हैं, फिर जैसी उन मुनि की ख्याति थी, तदनुसार विनय से युक्त परशुराम ने नियमपूर्वक अभिवादन किया।।५८½-६०।। फिर प्रपितामह भृगु को अभिवादन करके सब मुनियों को उनकी आयु के अनुसार अभिवादन किया, फिर उन सब मुनियों ने आनन्द एवं प्रसन्नतायुक्त आशीर्वादों से परशुराम का अभिवर्धन किया। अर्थात् आगे बढ़ो, बहुत उन्नति करो, ऐसे आशीर्वादों से उनको अभिवर्धित किया।।६१।। उसके बाद उन सब मुनियों की अनुमति से वे मेधावी परशुराम वहाँ भूमि पर बैठे। उसके बाद बैठे हुए परशुराम का महर्षि भृगु ने अभिनन्दन किया।।६२।। तब उनकी ओर देखकर महात्मा भृगु ने कुशल प्रश्न पूछा कि हे पुत्र! तुम कुशल हो तथा तुम्हारे माता-पिता स्वस्थ हैं।।६३।। तथा तुम्हारे भाइयों और पिता के पिता (दादा) की कुशलता है। इस समय तुम यहाँ मेरे पास किसलिये आये हो।।६४।। तुमको यहाँ आने के लिए किसी ने आदेश दिया है अथवा तुम स्वयं ही आये हो। उसके बाद परशुराम ने महात्मा भृगु द्वारा पिता-माता और महात्मा भाइयों का पूछा हुआ सब कुछ वृत्तान्त यथोपाय पूरी तरह महात्मा भृगु के लिये बता दिया।।६५-६६।।

परशुराम न पिता के पिता माता की कुशलता और उन दोनों का दर्शन और यह जो कुछ अन्यथा वह सब कुछ विनयपूर्वक सानन्द हो यथान्याय तथा अपनी इच्छापूर्वक निवेदन कर दिया।।६७-६७½।। तब हे राजन् परशुराम द्वारा उस समस्त कुशलक्षेम वृत्तान्त को सुनकर तथा सब वृत्तान्त को कहते हुए परशुराम को देखकर महात्मा भृगु विशेषरूप से प्रसन्न हो गये।।६७½-६८½।। हे राजन्! इस प्रकार अपने उत्कृष्ट कर्मों से प्रिय करते हुए वहाँ आश्रम में कुछ दिनों तक परशुराम ने निवास किया।।६८½-६९½।। उसके बाद कभी एकान्त में उन मुनि वरोत्तम भृगु ने वत्स! इधर आओ ऐसा कहकर अपने पास बुलाया।।६९½-७०½।। परशुराम वहाँ उनके पास जाकर बैठे हुए उनको प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनके सामने प्रसन्नचित्त होकर बैठ गये।।७०½-७१½।। इसके बाद

प्राह नाधिगताशंकं राममालोक्य सादरम्।
शृणु वत्स वचो मह्यं यत्त्वां वक्ष्यामि सांप्रतम्॥७३॥
हितार्थं सर्वलोकानां तव चास्माकमेव च। गच्छ पुत्र ममादेशाद्धिमवंतं महागिरिम्॥७४॥
अधुनैवाश्रमादस्मात्तपसे धृतमानसः। तत्र गत्वा महाभाग कृत्वाऽश्रमपदं शुभम्॥७५॥
आराधय महादेवं तपसा नियमेन च। प्रीतिमुत्पाद्य तस्य त्वं भक्त्यानन्यगयाचिरात्॥७६॥
श्रेयो महदवाप्नोषि नात्र कार्या विचारणा। तरसा तव भक्त्या च प्रीतो भवति शंकरः॥७७॥
करिष्यति च ते सर्वं मनसा यद्यदिच्छसि। तुष्टे तस्मिञ्जगन्नाथे शंकरे भक्तवत्सले॥७८॥
अस्त्रग्राममशेषं त्वं वृणु पुत्र यथेप्सितम्। त्वया हितार्थं देवानां करणीयं सुदुष्करम्॥७९॥
विद्यतेऽभ्यधिकं कर्म शस्त्रसाध्यमनेकशः। तस्मात्त्वं देवदेवेशं समाराधय शंकरम्॥८०॥
भक्त्या परमया युक्तस्ततोऽभीष्टमवाप्स्यसि॥८१॥

॥इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे एकविंशतितमोऽध्यायः॥२१॥

आशीर्वचनों से अभिनन्दन करके प्रसन्न चित्त भृगु ने निःशंक परशुराम को देखकर कहा।।११½-७२½।। कि हे वत्स मैं तुम्हें इस समय समस्त लोकों, तुम्हारे और हमारे कल्याण के लिये जो तुम्हें बता रहा हूँ, उसे सुनो।।७२½-७३½।। वह यह कि मेरे आदेश से अभी तपस्या करने का मन में निश्चय करके हिमालय पर्वत पर चले जाओ।।७३½-७४½।। वहाँ जाकर हे महाभाग! अपना शुभ आश्रम स्थान बनाकर नियमपूर्वक तप से महादेव की आराधना करो।।७४½-७५½।। उनके प्रति अनन्य भक्ति से प्रीति पैदा करके शीघ्र ही महादेव से कल्याण प्राप्त करोगे, इस विषय में विचार नहीं करना है अर्थात् तुमको तप करना ही है, इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।।७५½-७६½।। वेगयुक्त तुम्हारी भक्ति से भगवान् शंकर प्रसन्न होंगे और फिर तुम जो जो मन से चाहते हो, वह सब वे तुम्हें प्रदान करेंगे।।७६½-७७½।। उन भक्तवत्सल जगन्नाथ भगवान् शंकर के सन्तुष्टहो जानेपर हे पुत्र! तुम जैसे चाहते हो वैसे समस्त अस्त्र समूह को वरण करो।।७७½-७८½।। हे पुत्र! तुम्हारे द्वारा देवताओं के हित के लिए बहुत से कठिन कार्य किये जाने हैं, जो अनेकों प्रकार शस्त्रों से सिद्ध किये जा सकते हैं। इसलिये तुम देवदेवेश महादेव शंकर की सम्यक् प्रकार से आराधना करो।।७८½-८०।। अतः तुम परमभक्ति से युक्त होकर अभीष्ट वर को प्राप्त करोगे।।८१।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद २१वां अध्याय परशुरामकथारम्भ का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरसंवादे अर्जुनोपाख्याने

जामदग्नेयतपश्चरणम् नाम

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

इत्येवमुक्तो भृगुणा तथेत्युक्त्वा प्रणम्य तम्। रामस्तेनाभ्यनुज्ञातश्चकार गमने मनः॥१॥
भृगुं ख्यातिं च विधिवत्परिक्रम्य प्रणम्य च। परिष्वक्तस्तथा ताभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः॥२॥
मुनींश्च तान्नमस्कृत्य तैः सर्वैरनुमोदितः। निश्चक्रामाश्रमात्तस्मात्तपसे कृतनिश्चयः॥३॥
ततो गुरुनियोगेन तदुक्तनैव वर्त्मना। हिमवंतं गिरिवरं ययौ रामो महामनाः॥४॥
सोऽतीत्य विविधान्देशान्पर्वतान्सरितस्तथा। वनानि मुनिमुख्यानामावासांश्चात्यागच्छनैः॥५॥
तत्रतत्र निवासेषु मुनीनां निवसन्पथि। तीर्थेषु क्षेत्रमुख्येषु निवसन्वा ययौ शनैः॥६॥
अतीत्य सुबहून्देशान्पश्यन्नपि मनोरमान्। आससादाचलश्रेष्ठं हिमवंतमनुत्तमम्॥७॥
स गत्वा पर्वतवरं नानाद्रुमलतास्थितम्। ददर्श विपुलैः शृंगैरुल्लिखंतमिवांबरम्॥८॥
नाना धातुविचित्रैश्च प्रदेशैरुपशोभितम्। रत्नौषधीभिरभितः स्फुरद्भिरभिशोभितम्॥९॥
मरुत्संघट्टनाधृष्टनीरसांध्रिपजन्मना। सानिलेनानलेनोच्चैर्दह्यमानं नवं क्वचित्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सगर संवाद अर्जुन उपाख्यान में

अध्याय- २२

परशुराम की तपस्या का वर्णन

वशिष्ठ ने कहा कि इस प्रकार जब महर्षि भृगु ने परशुराम को भगवान् शंकर का तप करने को कहा, तब परशुराम अपने दादा महर्षि भृगु को प्रणाम करके उनकी अनुमति से हिमालय पर तपस्या करने का मन बनाने लगे।।१।। इसके बाद ख्यातिप्राप्त महर्षि भृगु की विधिवत् परिक्रमा करके, उन्हें प्रणाम कर, भृगु और भृगुपत्नी द्वारा आलिंगित एवं उनके आशीर्वचनों से अभिनन्दित परशुराम तपस्या के लिये निश्चय कर सब मुनियों को नमस्कार कर तथा अनुमति प्राप्त कर उस आश्रम से तपस्या करने के लिए निकल पड़े।।२-३।। उसके बाद अपने दादा भृगु की आज्ञा से उनके द्वारा बताये गये मार्ग से महामना परशुराम पर्वतश्रेष्ठ हिमालय पर चले।।४।। तब वे अनेकों देशों, पर्वतों, नदियों तथा वनों और मुख्य मुनियों के आवासों को पार करके धीरे-धीरे चलने लगे।।५।।

जहाँ तहाँ मार्ग में मुनियों के निवासों पर रहते हुए क्षेत्रमुख्य तीर्थों पर निवास करते हुए धीरे-धीरे जा रहे थे।।६।। तब मार्ग में बहुत से मनोरम देशों को देखते हुए, वे अत्यन्त उत्तम पर्वतश्रेष्ठ हिमालय पर पहुँचे।।७।। तब चलकर उन्होंने पर्वतों, अनेकों वृक्षों और लताओं से स्थित पर्वत श्रेष्ठ हिमालय को देखा, जिसकी अनेकों चोटियां मानो आकाश को छू रही थीं।।८।। जो हिमालय अनकों प्रकार की विचित्र धातुओं वाले प्रदेशों से उपशोभित था तथा उसके चारों ओर रत्न और औषधियां चमक रही थीं।।९।। कहीं सूर्य की प्रखर किरणों की रगड़ से जलते हुए

क्वचिद्रविकरामर्शज्वलदर्कोपलाग्निभिः। द्रवद्धिमशिलाजातुजलशांतदवानलम्॥११॥
स्फटिकांजनदुर्वर्णस्वर्णराशिप्रभाकरैः। स्फुरत्परस्परच्छायाशरैर्दीप्तवनं क्वचित्॥१२॥
उपत्यकशिलापृष्ठबालातपनिषेविभिः। तुषारक्लिन्नसिद्धौघैरुद्भासितवनं क्वचित्॥१३॥
क्वचिदर्कांशुसंभिन्नश्चामीकरशिलाश्रितैः। यक्षौघैर्भासितोपांतं विशद्भिरिव पावकम्॥१४॥
दरीमुखविनिष्क्रांततरक्षूत्पतनाकुलैः। मृगयूथार्त्तसन्नादैरापूरितगुहं क्वचित्॥१५॥
युद्ध्यद्वराहशार्दूलयूथपैरितस्तेरम्। प्रसभोन्मृष्टकांतोरुशिलातरुतटं क्वचित्॥१६॥
कलभोन्मेषणाकृष्टकरिणीभिरनुद्रुतैः। गवयैः खुरसंक्षुण्णशिलाप्रस्थतटं क्वचित्॥१७॥
वासितार्थेऽभिसंवृद्धमदोन्मत्तमतंगजैः। युद्ध्यद्भिश्चूर्णितानेकगंडशैलवनं क्वचित्॥१८॥
बृंहितश्रवणामर्षान्मातंगानभिधावताम्। सिंहानां चरणक्षुण्णनखभिन्नोपलं क्वचित्॥१९॥
सहसा निपतत्सिंहनखानिर्भिन्नमस्तकैः। गजैराक्रंदनादेन पूर्यमाणं वनं क्वचित्॥२०॥
अष्टपादबलाकृष्टकेसरा दारुणारवैः। भेद्यमानाखिलशिलागंभीरकुहरं क्वचित्॥२१॥

सूर्य की पत्थर पर गिरने वाली अग्नियों से पिघलती हुई बर्फ की शिलाओं के जल से वन की अग्नि शान्त हो गयी थी।।१०।। कहीं वायु की रगड़ से सूखकर नीरस हुए वृक्षों में पैदा होने वाली वायुयुक्त अग्नि से (दावानल) से जलते हुए वन दिखाई दे रहे थे।।११।। कहीं संगमरमर पत्थर, कुछ काजल से दुर्वर्ण हुए स्वर्णराशि रूप चन्द्रमा की किरणों से चमकते हुए परस्पर छाया शरों से चमकता हुआ वन दिखायी दे रहा है। कहीं पत्थर की तलहटी में शिला पृष्ठ पर गिरती हुई बालसूर्य की धूप का सेवन करने वाले तुषार (वर्फ) से ठिठुरे हुए सिद्धगणों से उद्भासित वन दिखायी दे रहा था अर्थात् प्रातःकाल रात भर ठंड से ठिठुरे हुये सिद्ध पुरुष पत्थर की तलहटी में शिला की पीठ पर बैठकर बाल सूर्य की धूप सेक रहे थे।।१२-१३।। कहीं सूर्य की किरणों से संभिन्न स्वर्णशिला पर आश्रित यक्षसमूहों से भासित हैं, उपान्त (किनारे) जिसके, ऐसी आगें जल रही थीं अर्थात् प्रातःकालीन सूर्य की किरणों से पत्थर की शिलायें प्रातःकालीन सूर्य के रंग की अर्थात् सुनहरी हो गयी थी, जहाँ यक्षगण बैठकर ठंड के कारण आगें जला रहे थे।।१४।। कहीं गुफाओं के मुख से निकले हुए लकड़बग्घों के पतन से व्याकुल हरिणों के मरने की चिल्लाहटों से गुफायें आपूरित थी अर्थात् कहीं गुफाओं से निकल कर लकड़बग्घे हिरनों का पकड़कर गुफाओं में खा रहे थे, जिन्हीं से चीखने की आवाजें आ रही थीं।।१५।।

कहीं वाराह और शार्दूल (सिंहों) के युद्ध करते हुए इधर उधर दिखायी दे रहे थे तथा वे सब वाराह और शार्दूल बलपूर्वक शिलाओं पर और वृक्षों से अपनी जंघाओं को रगड़ रहे थे।।१६।। कहीं पर जिन हथिनियों के जो बच्चे जन्मे थे, उनकी अभी थोड़ी-थोड़ी आँखें खुली थीं। अतः उनको नीलगाय अपने खुरों से न कुचल दें, इसलिये उन नीलगायों का हथिनियाँ पीछा कर रही थीं। अतः उन नीलगायों के खुरों से संक्षुण्ण पत्थर के शिलाप्रस्थ दिखायी दे रहे थे।।१७।। कहीं हथिनी के साथ संभोग करने के लिये बहुत अधिक मद बढ़े हुए मदमत्त हाथियों द्वारा आपस में युद्ध करने से चूर-चूर हुए अनेक टुकड़े हुए शैलवन दिखायी दे रहे थे।।१८।। कहीं हाथी की चिंघाड़ को न सह सकने के कारण हाथियों के पीछे दौड़ते हुए सिंहों के चरणों से इतर वितर हुए तथा नखों से टूटे हुए पत्थर दिखायी दे रहे थे।।१९।। कहीं-कहीं अचानक गिरे हुए सिंह के नाखूनों से भिन्न मस्तक वाले हाथियों के चिल्लाने से वन गूंज रहा था।।२०।। कहीं पर आठ पैरों वाले शरभ द्वारा बलपूर्वक खींचे गये सिंहों की अति पीड़ाकर आवाजों के

संरब्धानेकशबरप्रसक्तैर्ऋक्षयूथपैः। इतरेतरसंमर्दं विप्रभग्नदृषत्क्वचित्॥२२॥
गिरिकुंजेषु संक्रीडत्करिणीमद्द्विपं क्वचित्। करेणुमाद्रवन्मत्तगजाकलितकाननम्॥२३॥
स्वपत्सिंहमुखश्वासमरुत्पूर्णदरीशतम्। गहनेषु गुरुत्रासससाशंकविहरन्मृगम्॥२४॥
कंटकश्लिष्टलांगूललोमत्रुटनकातरैः। क्रीडितं चमरीयूथैर्मंदमंदविचारिभिः॥२५॥
गिरिकंदरसंसक्तकिन्नरीसमुदीरितैः। सतालनादैरुदितैर्भृताशेषदिशामुखम्॥२६॥
अरण्यदेवतानां च चरंतीनामितस्ततः। अलक्तकरसक्लिन्नचरणांकितभूतलम्॥२७॥
मयूरकेकिनीवृंदैः संगीत मधुरस्वरैः। प्रवृत्तनृत्तं परितो विततोदग्रबर्हिभिः॥२८॥
जलस्थलरुहानेककुसुमोत्करवर्षिभिः। गात्राह्लादकरैर्मंदं वीज्यमानं वनानिलैः॥२९॥
भूतार्त्तवरसास्वादमाद्यत्पुंस्कोकिलारवैः। आकुलीकृतपर्यंतसहकारवनांतरम्॥३०॥
नानापुष्पासवोन्माद्यद्भृंगसंगीतनादितम्। अनेकविहगारावबधिरीकृतकाननम्॥३१॥
मधुद्रवार्द्राविरलप्रत्यग्रकुसुमोत्करैः। वनांतमारुताकीर्णैरलंकृतमहीतलम्॥३२॥
उपरिष्टान्निपततां विषमोपलसंकटे। निर्झराणां महारावैः समंताद्बधिरीकृतम्॥३३॥
विततानेकसंसक्तशाखाग्राविरलच्छदैः। पाटलैर्विटपच्छायैरुपशल्यसमुत्थितैः॥३४॥

द्वारा समस्त शिलाओं को पार करता गम्भीर कुहराम मचा हुआ था।।२१।। कहीं संरब्ध (क्षुब्ध) अनेक भीलों से प्रसक्त ऋक्षों के समूहपतियों द्वारा इधर-उधर दौड़ने से टूटे हुए पत्थर के टुकड़े दिखायी दे रहे थे।।२२।। कहीं पर्वत के घने कुञ्जों में (झाड़ियों) में हथिनियों के साथ हाथी काम-क्रीड़ा कर रहे थे। अतः हथिनियों को संभोग के लिए पटाते हुए हाथियों से आकुलित वन दिखायी दे रहा था।।२३।। कहीं सोये हुए सिंह के मुख की श्वास की वायु से सैकड़ों गुफायें भरी हुई थीं, कहीं गहन वन में भारी डरसे डरे हुए सशंकित मृग घूम रहे थे।।२४।। कहीं काँटों में फँसी हुई अपनी पूंछ को अलग करने में कातर (वेचैन) चमरी जाति के मृगों के झुण्ड मंद मंद विचरण करते हुए क्रीड़ा कर रहे थे।।२५।। कहीं पर्वत की कन्दराओं में रहने वाली किन्नरियों के तालियों युक्त नाद सुनायी दे रहे थे तो कहीं रोने की आवाजें आ रही थीं। इस प्रकार समस्त दिशामुख गुंजित था।।२६।। कहीं इधर-उधर घूमती हुई अरण्य देवियों के महावर के रस से सने हुए चरणों से अंकित भूतल दिखायी दे रहा था।।२७।।

मोर मोरनी समूहों के संगीतरूपी मधुर स्वरों से प्रवृत्त नृत्त से चारों ओर मोरो से वह वन व्याप्त था।।२८।। जल और स्थल पर उगने वाले फूलों को वर्षाने वाली शरीर को आनन्द देने वाली धीरे-धीरे चलती हुई वन की हवाओं से युक्त वह पर्वत था।।२९।। विरह पीडित प्राणियों को रसास्वाद से मदमत्त बनाने वाले पुरुष कोयलों से वहाँ का समस्त आम्रवन आकुलीकृत था अर्थात् आम्र के वनों में नर कोयल बोल रहे थे, जो पत्नी वियुक्त विरह पीड़ित व्यक्तियों को व्याकुल कर रहे थे।।३०।। अनेकों प्रकार के पुष्पों रूपी मद्य से उन्मत्त हुए भौंरों के संगीत से वन गूंज रहा था तथा अनेकों पक्षियों की बोलियों की चहचहाहट से बहरा बनाता हुआ, वह कानन था।।३१।। लताओं पर मधुद्रव (शहद) से गीले आर्द्र (गीले) अर्थात् पूरी तरह मधु भरे हुए घने ताजे फूलों से युक्त वनप्रदेश से बहने वाली वायु से समस्त भूतल अलंकृत है।।३२।। उधर ऊपर से गिरे हुए विषम पत्थरों के संकट आपस में टकराने से झरनों के महान् शब्दों से चारों ओर वन वहरा कर दिया गया था।।३३।। विशेष रूप से फैले हुए अनेक आपस में सटी हुई ऊपरी शाखाओं वाले घने पत्तों वाले पाटल (लोंध के पेड़ों अथवा केसर के) वृक्षों की छायाओं से उपशल्य समुत्थित

कदंबनिंबहिंतालसर्जबंधूकतिंदुकैः। कपित्थपनसाशोकसहकारंगुदाशनैः॥३५॥
नागचंपकपुन्नागकोविदारप्रियंगुभिः। प्रियालनीपबकुलबंधूकाक्षतमालकैः॥३६॥
द्राक्षामधूकामलकजंबूकंकोलजातिभिः। बिल्वार्जुनकरंजाम्रबीजपूरांध्रिपैरपि॥३७॥
पिचुलांबष्ठकनकवैकंकतशमीधवैः। पुत्रजीवाभयारिष्टलोहोदुंबरपिप्पलैः॥३८॥
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः समंतादुपशोभितम्। निरंतरतरुच्छायासुदूरविनिवारितैः॥३९॥
समंतादर्ककिरणैरनासादितभूतलम्। नानापक्वफलास्वादबलपुष्टैः प्लवंगमैः॥४०॥
आक्रांतचकितानेकवनपंक्तिशताकुलम्। तत्र तत्रातिरभ्यैश्च शिलाकुहरनिर्गतैः॥४१॥
प्रतापविषमै राजन्ह्रास्यमानं सरिच्छतैः। सरोवरैश्च विपुलैः कुमुदोत्पलमंडितैः॥४२॥
नानाविहगसंघुष्टैः समंतादुपशोभितम्। समासाद्याथ शैलेंद्रं तुषारशिशिरं गिरिम्॥४३॥
आरुरोह भृगुश्रेष्ठस्तरसा तं मुदान्वितः। तस्य प्रविश्य गहनं वनं रामो महामनाः॥४४॥
विचचार शनै राजन्नुपशल्यमहीरुहम्। स तत्र विचरन्दिक्षु हारिणीभिः समंततः॥४५॥
वीक्ष्यमाणो मुदं लेभे साशंकं मुग्धदृष्टिभिः। स तत्र कुसुमामोदगंधिभिर्वनवायुभिः॥४६॥
वीज्यमानो जहर्षे स वीक्ष्योदारां वनश्रियम्।
विविधाश्च स्थलीः सूक्ष्ममुपरिक्रम्य भार्गवः॥४७॥

अर्थात् ऐसी छोटी-छोटी पत्थर की शिलाओं से उठा हुआ, वह वन प्रदेश था, जहाँ कि लोध्र वृक्ष ऊपर एक दूसरे से मिले हुए थे। जिनकी सघन छाया से युक्त वह वन प्रदेश था।।३४।। कदंब, नीम, हिंताल, सर्ज, बन्धूक, तिन्दुक, कपित्थ, पनस (कटहल), अशोक, आम, इंगुद (मेंहदी), अशन, नाग, चम्पक, पुन्नाग, कोविदार, प्रियंगु, प्रियाल, कदम्ब, बकुल (मौलसिरी), बन्धूक, अक्षतमाल, द्राक्षा, मधूक (महुआ), आमलक (आमला), जंबू (जामुन), कंकोल, बिल्व (वेल), अर्जुन, करंज, आम्र, बीजपूर (बड़ा नीबू) वृक्षों से युक्त वह वन था।।३५-३७।। इसके आलावा पिचुल, अम्बष्ठ (आवड़ा), कनक (धतूरा), बैकंकत, शमी, धव, पुत्रजीव, अभयारिष्ट, लौह, उदुम्बुर (गूलर), पीपल, तथा अन्य अनेकों प्रकार के वृक्षों से वह वन चारों ओर से सुशोभित था।।३८-३८½।। लगातार वृक्षों की छाया से चारों ओर दूर-दूर तक सूर्य की किरणें भूतल तक नहीं आ पाती थीं।।३८½-३९½।।

अनेकों प्रकार के पके हुए फलों के स्वाद से बल में पुष्ट बन्दरों द्वारा आश्चर्यचकित बनाने वाली सैकड़ों वन पंक्तियां थीं।।३९½-४०½।। हे राजन्! वहाँ पर जहाँ तहाँ अत्यन्त रमणीक पत्थरों की गुफाओं से निकले हुए विषम प्रताप वाली सैकड़ों नदियों से बहुत से कुमुद और उत्पलोंसे मण्डित सरोवरों से अनेकों पक्षियों के समूहों से वह वन चारों ओर से उपशोभित था।।४०½-४२½।। इसके उस शिर पर बर्फ से ढके हुए उस पर्वतराज हिमालय पर पहुँचकर वे भृगुकुल श्रेष्ठ परशुराम तीव्रता से आनन्दित होते हुए हिमालय पर चढ़ गये।।४२½-४३½।। हे राजन्! तब उस गहन वन में प्रवेश कर महामना परशुराम वृक्षों वाले नगर से बाहर नगर रहित खुले स्थान में धीरे-धीरे विचरण करने लगे।।४३½-४४½।। वहाँ चारों ओर वे विचरण करते हुए हिरणियों द्वारा सशंकित मुग्ध दृष्टियों से देखे जाते हुए आनन्द प्राप्त करने लगे।।४४½-४५½।। वहाँ वे फूलों की आनन्ददायक सुगन्धों से युक्त वन की वायुओं से हवा किये जाते हुए उदार वन की शोभा को देख कर अत्यन्त हर्षित हुए।।४५½-४६½।। वहाँ अनेकों प्रकार की स्थलियों

दृष्ट्वांश्च धातून्विविधान्पश्यन्नेवमतर्कयत्। अहोऽयं सर्वशैलानामाधिपत्येऽभिषेचितः॥४८॥
ब्रह्मणा यज्ञभाक्चैव स्थाने संप्रतिपादितः। अस्य शैलाधिराजत्वं सुव्यक्तमभिलक्ष्यते॥४९॥
रवैः कीचकवेणूनां मधुरीकृतकाननः। नितंबस्थलसंसक्ततुषारनिचयैरयम्॥५०॥
विभातीवाहितस्वच्छपरीतधवलांशुकः। निबिडश्रितनीहारनिकरेण तथोपरि॥५१॥
नानावर्णोत्तरासंगावृत्तांग इव लक्ष्यते। चंदनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुंकुमादिभिः॥५२॥
अलंकृतांगः सुव्यक्तं दृश्यतेऽहो विलासिवत्। मृगेंद्राहतदंतीन्द्रकुंभस्थलपपरिच्युतैः॥५३॥
स्थूलमुक्तोत्करैरेष विभाति परितो गिरिः। नानावृक्षलतावल्लीपुष्पालंकृतमूर्द्धजः॥५४॥
नीरंधांचितमेघौघवितानसमलंकृतः। नानाधातुविचित्रांगः सर्वरत्नविभूषितः॥५५॥
कैलासव्याजविलसत्सितच्छत्रविराजितः। गजाश्वमुखयूथैश्च समंतात्परिवारितः॥५६॥
रत्नद्वीपमहाद्वारशिलाकंदरमंदिरः। विविक्तगह्वरास्थानमध्यसिंहासनाश्रयः॥५७॥
समंतात्प्रतिसंसक्ततरुवेत्रवतां शनैः। दृष्ट्वा जनैरनासाद्यो महाराजाधिराजवत्॥५८॥
दोधूयमानो विचरच्चमरीचारुचामरैः। मयूरैरुपनृत्यद्भिर्गायद्भिश्चैव किन्नरैः॥५९॥

को सूक्ष्म रूप से परिक्रमा कर वहाँ पर अनेकों प्रकार की धातुओ को देखते हुए दुविधा में पड़कर तर्क करने लगे कि आश्चर्य है।।४६½-४७½।। कि इस पर्वत को सब पर्वतों के राजा के पद पर अभिषिक्त गया है। यज्ञ के अधिकारी ब्रह्मा ने इसे इस स्थान पर प्रतिपादित किया है।।४७½-४८½।। इस हिमालय का सब पर्वतों का राजा होना स्पष्ट अभिलक्षित होता है अर्थात् वास्तव में यह हिमालय पर्वतों का राजा बनने योग्य ही है। बांसो की बांसुरी के मधुर स्वरों से यह वन मधुर ध्वनि कर दिया गया है।।४८½-४९½।। इसके नितम्बस्थल पर चिपकी हुई बर्फ समूहों से यह सफेद रंग धोती पहने हुए व्यक्ति के समान शोभित हो रहा है।।४९½-५०½।। इसके ऊपर घना तुषार छाया हुआ है। अनेकों रंगों के उत्तरांचलों से उसका अंग ढका हुआ सा दिखायी दे रहा है।।५०½-५१½।। अहो! चन्दन, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी, कुंकुमादियों से अलंकृत शरीर वाला यह हिमालय विलासी पुरुष की भाँति दिखायी दे रहा है।।५१½-५२½।।

मृगराज (सिंहों के राजा) से आहत गजराज के गण्डस्थल से गिरे हुए स्थूलयुक्त मलवा से चारों तरफ व्याप्त यह पर्वत शोभित हो रहा है।।५२½-५३½।। अनेकों प्रकार के वृक्षों लताओं, बेलों, पुष्पों से उसका शीश अलंकृत है। नीरंध्र से शोभित मेघमालाओं के वितान से यह सुशोभित है अर्थात् जल से भरे बादलों ने उस हिमालय पर, राजा पर छत्र के समान छत्र धारण कर दिया है।।५३½-५४½।। अनेकों धातुओं वाला उसका शरीर राजा के समान सब रत्नों से विभूषित है। कैलास पर्वत के बहाने उसके ऊपर श्वेत छत्र सुशोभित है। जैसे राजा के ऊपर छत्र होता है, उसी प्रकार कैलास पर्वत के रूप में इसके सिर पर श्वेत छत्र विराजित है।।५४½-५६½।।

जैसे राजा घोड़ों और हाथियों के झुण्डों से घिरा रहता है, उसी प्रकार यह पर्वत भी हाथी और राजाओं के रत्नों की द्वीप से चमत्कृत हैं तथा जैसे उन राजाओं के घर (किले) पत्थरों की शिलाओं से बने हुए होते हैं तथा उनका सिंहासन अन्दर होता है, ठीक उसी प्रकार इस हिमालय का द्वार भी रत्न रूपी दीपकों से चमत्कृत है तथा शिलाओं की कन्दराओं में इसका घर है तथा बहुत गंभीर गुफाओं के बीच इसका सिंहासन है। राजाओं का घर चारों ओर वृक्षों और वेतों की वाड़ से घिरा हुआ होता है, सो यह हिमालय चारों ओर वृक्षों और वेतों के वनों से घिरा हुआ है।।५६½-५८।। जिस प्रकार राजा पर चंवर ढुलाये जाते हैं, उसी प्रकार यह हिमालय चमरीमृग के सुन्दर चामरों से दोधूयमान है अर्थात्

सत्त्वजातैरनेकैश्च सेव्यमानो विराजते। व्यक्तमेवाचलेंद्राणामधि राज्यपदे स्थितः॥६०॥
भुनक्त्याक्रम्य वसुधां समग्रां श्रियमोजसा। एवं संचिंतयानः स हिमाद्रिवनगह्वरे॥६१॥
विचचार चिरं रामो मुदा परमया युतः। आससाद वने तस्मिन्विपुले भृगुपुंगवः॥६२॥
सरोवरं महाराज विपुलं विमलोदकम्। कुमुदोत्पलकह्लारनिकरैरुपशोभितम्॥६३॥
पंकजैरुत्पलैश्चैव रक्तपीतैः सितासितैः। अन्यैश्च जलजैर्वृक्षैः सर्वतः समलंकृतम्॥६४॥
हंससारसदात्यूहकारंडवशतैरपि। जीवजीवकचक्राह्वकुररभ्रमरोत्करैः॥६५॥
संघुष्यमाणं परितः सेवितं मंदवायुना। शफरीमत्स्यसंघैश्च विचरद्भिरितस्ततः॥६६॥
अंतर्जनितकल्लोलैर्नृत्यमानभिवाभितः। आससाद भृगुश्रेष्ठस्तत्सरोवरमुत्तमम्॥६७॥
नानापतत्रिविरुतैर्मधुरीकृतदिक्तटम्। स तस्य तीरे विपुलं कृत्वाऽश्रमपदं शुभम्॥६८॥
रामो मतिमतां श्रेष्ठस्तपसे च मनो दधे। शाकमूलफलाहारो नियतं नियतेंद्रियः॥६९॥
तपश्चार देवेशं विनिवेश्यात्ममानसे। भृगूपदिष्टमार्गेण भक्त्या परमया युतः॥७०॥
पूजयामास देवेशमेकाग्रमनसा नृप। अनिकेतः स वर्षासु शिशिरे जलसंश्रयः॥७१॥
ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थश्चचारैवं तपश्चिरम्। रिपून्निर्जित्य कामादीनूर्मिषट्कं विधूय च॥७२॥

चमरी मृगों से ढका हुआ है। जैसे राजा की सभा में किन्नर गान करते हैं, उसी प्रकार यह हिमालय नाचते हुए मोरों और गाते हुए किन्नरों से युक्त है।।५९।। यह हिमालय अनेको प्रकार के जीवों की जातियों से सेवा प्राप्त करता हुआ (विराजमान) है, शोभित होता है। अतः निश्चय ही यह हिमालय पर्वतों के राजाओं के भी अधिराज अर्थात् सम्राट पद पर स्थित है।।६०।। तथा यह हिमालय अपने पराक्रम से आक्रमण कर समग्र पृथ्वी की शोभा का भोग करता है।।६०½।। इस प्रकार विचार करते हुए वे परशुराम हिमालय पर्वत के गहन वन में परम आह्लाद से युक्त होकर बहुत समय तक घूमते रहे।।६०½-६१½।। फिर उसके बाद वे भृगु कुल श्रेष्ठ परशुराम उस विशाल एवं सुन्दर वन में स्वच्छ जल वाले विशाल सरोवर के पास पहुँचे।।६१½-६२½।। वह सरोवर कमल की अनेकों जातियों, कुमुद, उत्पल, कह्लारक के समूहों से उपशोभित था।।६३।।

वह सरोवर लाल-पीले श्वेत और कृष्ण वर्ण के कमलों और उत्पलों से सुशोभित था तथा जल में पैदा होने वाले अन्य वृक्षों द्वारा सब ओर से अलंकृत था।।६४।। वह सरोवर सैकड़ों हंस, सारस, दात्यूह, कारण्डव, जीव, जीवक चक्राह्व, कुरट और भौरों के समूहों से अलंकृत था।।६५।। वह सरोवर चारों तरफ मंद-मंद चलने वाले वायु के मधुर घोष से युक्त था तथा वह सरोवर इधर-उधर घूमती हुई शफरी जाति की मछलियों के समूहों द्वारा अन्दर मचते हुए कल्लोलों से चारों ओर नृत्य करता हुआ-सा लग रहा था। उस उत्तम सरोवर पर भृगुश्रेष्ठ परशुराम पहुंचे। उस सरोवर का किनारा अनेकों प्रकार के मधुर कलरव करते हुए पक्षियों से युक्त था। परशुराम ने उस तट पर शुभ आश्रम स्थान बनाकर श्रेष्ठ तपस्या करने के लिये मन बनाया।।६७½-६८½।। और उन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में करके शाकमूल और फलों का आहार करते हुए अपने मन में समस्त देवों के स्वामी भगवान् शंकर को धारण करके तप किया।।६८½-६९½।। और फिर हे राजन्! उन्होंने अपने पितामह महर्षि भृगु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग द्वारा परमभक्ति से युक्त होकर एकाग्रचित्त से भगवान् शंकर की पूजा की।।६९½-७०½।। उन्होंने वर्षाओं में बिना घर के खुले स्थान में, घोर शीतकाल में जल में बैठकर या खड़े रहकर तथा ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि (चारों तरफ आग जलाकर

द्वंद्वैरनुद्वेजितधीस्तापदोषैरनाकुलः। यमैः सनियमयमैश्चैव शुद्धदेहः समाहितः॥७३॥
वशी चकार पवनं प्राणायामेन देहगम्। जितपद्मासनो मौनी स्थिरचित्तो महामुनिः॥७४॥
वशी चकार चाक्षाणि प्रत्याहारपरायणः। धारणाभिः स्थिरीचक्रे मनश्चंचलमात्मवान्॥७५॥
ध्यानेन देवदेवेशं ददर्श परमेश्वरम्। स्वस्थांतःकरणो मैत्रः सर्वबाधाविवर्जितः॥७६॥
चिंतयामास देवेशं ध्याने दृष्ट्वा जगद्गुरुम्। ध्येयावस्थितचित्तात्मा निश्चलेंद्रियदेहवान्॥७७॥
आकालावधि सोऽतिष्ठन्निवातस्थप्रदीपवत्। जपंश्च देवदेवेशं ध्यायंश्च स्वमनीषया॥७८॥
आराधयदमेयात्मा सर्वभावस्थमीश्वरम्। ततः स निष्फलं रूपमैश्वरं यन्निरंजनम्॥७९॥

तथा ऊपर सूर्य) के मध्य स्थित होकर इस प्रकार बहुत समय तक तप किया।।७०½-७१½।। मनुष्य के शत्रु जो उसके मन को विचलित कर लक्ष्य से डिगा देते हैं, उन काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार पाँचों शत्रुओं को जीतकर तथा में उठने वाली शोकादि की लहरों को रोकर तथा अपनी बुद्धि को द्वन्द्वों (विवादों और दुविधाओं) को हटाकर एवं ताप दोषों से बेचैन आकुल न होते हुए (अहिंसा, सत्य, अस्तयेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) यमों द्वारा तथा (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान) इन नियमों द्वारा देह को शुद्ध कर समाहित चित्त होकर प्राणायाम से देह में गमन करने वाले वायु को वश में कर लिया।।७१½-७३½।। पद्मासन पर स्थित स्थिरचित्त मौनी उन महामुनि प्रत्याहारपरायण परशुराम ने इन्द्रियों को वश में कर लिया।।७३½-७४½।।

अब तक परशुराम ने अष्टाङ्गयोग की चार अवस्थाओं को पार कर लिया यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार इसके बाद अष्टांग योग पाँचवें साधन धारणाओं से उन आत्मवान् परशुराम ने चञ्चल मन को स्थिर कर लिया तथा योग के छठें साधन ध्यान से देवदेवेश (महादेव) परमेश्वर शंकर का दर्शन कर लिया।।७४½-७५½।। तब उनका समस्त बाधाओं से रहित स्वस्थ अन्तःकरण हो गया, तब उन्होंने ध्यान में जगद्गुरु देवों के देव महादेव भूतभावन शंकर को देखकर उनके विषय में चिन्तन किया।।७५½-७६½।।

उसके बाद योग के सातवें सोपान ध्येय इष्ट भगवान् शंकर में अपने चित्त और आत्मा को स्थित कर वे निश्चल इन्द्रिय और देहवाले हो गये। अर्थात् उनका शरीर और इन्द्रियां सब निश्चल हो गयीं।।७६½-७७।। तथा एक समय की अवधि तक वे वायु से न हिलते हुए (वायुरहित) दीपक के समान स्थित हो गये तथा अपने मन की इच्छा से देवेश महादेव शंकर का जप करते हुए और उनका ध्यान करते हुए स्वस्थ आत्मा इन परशुराम ने समस्तभाव जिनमें स्थित है, उन ईश्वर महादेव की आराधना की।।७८-७८½।।

उसके बाद जहाँ कोई फल की इच्छा नहीं रह गयी, ऐसे निरंजन निष्पाप स्वरूप ईश्वर परम ज्योतिस्वरूप अचिन्त्य जिसका योगी लोग ध्यान करते हैं तथा जिससे उत्तम कोई नहीं है, जो नित्य शुद्ध हैं, सदा शान्त हैं, जिनको इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता, जिनकी कहीं उपमा नहीं है, जो आनन्दमात्र हैं, अचल हैं, जो समस्त चराचर (जड़चेतन) जगत् में व्याप्त हैं अथवा समस्त चराचर जगत् उनमें व्याप्त है, ऐसे भगवान् शंकर के उस रूप का वे परशुराम चिन्तन करने लगे और हे राजन्! बहुत दीर्घकाल तक वे सोऽहं भाव से समन्वित रहे। यह योग का अन्तिम सोपान है—समाधि। इस प्रकार उन्होंने अष्टांग योग 'सोऽहमस्मि' इस स्थिति को प्राप्त किया। यह समाधि अवस्था

परं ज्योतिरचिंत्यं यद्योगिध्येयमनुत्तमम्। नित्यं शुद्धं सदा शांतमतींद्रियमनौपमम्।
आनंदमात्रमचलं व्याप्ताशेषचराचरम्॥८०॥
चिंतयामास तद्रूपं देवदेवस्य भार्गवः। सुचिरं राजशार्दूल सोऽहंभावसमन्वितः॥८१॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीये उपोद्घातपादे वसिष्ठसगरसंवादे अर्जुनोपाख्याने जामदूयतपश्चरणं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥२२॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

परशुरामशंकरसंवादात्मक

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

तपस्विनं तदा राममेकाग्रमनसं भवे। रहस्येकांतनिरतं नियतं शंसितव्रतम्॥१॥
श्रुत्वा तमृषयः सर्वे तपोनिर्धूतकल्मषाः। ज्ञानकर्मवयोवृद्धा महांतः शंसित व्रताः॥२॥
दिदृक्षवः समाजग्मुः कुतूहलसमन्विताः। ख्यापयंतस्तपः श्रेष्ठं तस्य राजन्महात्मनः॥३॥

है, जिसमें (वह मैं हूँ) यह स्थिति पैदा हो जाती है अर्थात् आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं रहता, आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।।७८½-८१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद २२वां अध्याय सगर संवाद में अर्जुन उपाख्यान मे परशुराम की तपस्या का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-२३

परशुराम शंकर संवाद

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! जब उन तपस्वी परशुराम की तपस्या के बारे में ऋषियो ने सुना कि तपस्वी परशुराम भगवान् शंकर में एकाग्रमन से एकान्त का सहारा लेकर दृढ़प्रतिज्ञ होकर नियत रूप से लीन हो गये हैं, तब यह समाचार सुनकर तपस्या द्वारा जिनके पाप धुल चुके हैं, ज्ञान, कर्म और आयु में जो वृद्ध हैं तथा महान् और व्रत करने में प्रशंसित हैं, एसे महान् ऋषि लोग कुतूहलयुक्त (आश्चर्यचकित) होकर उस महात्मा परशुराम के विख्यात एवं श्रेष्ठ तप को देखने की इच्छा से उनके पास आये।।१-३।।

भृग्वत्रिक्रतुजाबालिवामदेवमृकंडवः। संभावयंतस्ते रामं मुनयो वृद्धसंमताः॥४॥
आजग्मुराश्रमं तस्य रामस्य तपसस्तपः। दूरादेव महांतस्ते पुण्यक्षेत्रनिवासिनः॥५॥
गरीयः सर्वलोकेषु तपोऽग्र्यं ज्ञानमेव च। प्रशस्य तस्य ते सर्वे प्रययुः स्वं स्वमाश्रमम्॥६॥
एवं प्रवर्त्ततस्तस्य रामस्य भगवाञ्छिवः। प्रसन्नचेता नितरां बभूव नृपसत्तम॥७॥
जिज्ञासुस्तस्य भगवान् भक्तिमात्मनि शंकरः। मृगव्याधवपुर्भूत्वा ययौ राजंस्तदंतिकम्॥८॥
भिन्नांजनचयप्रख्यो रक्तांतायतलोचनः। शरचापधरः प्रांशुर्वज्रसंहननो युवा॥९॥
तुंगहनुबाह्वंसः पिंगलश्मश्रु मूर्द्धजः। मांसविस्त्रवसागंधी सर्वप्राणिविहिंसकः॥१०॥
सकंटकुलतास्पर्शक्षतारूषितविग्रहः। सासृक्संचर्वमाणश्च मांसखंडमनेकशः॥११॥
मांसभारद्वयालंबिविधानानतकंधरः। आरुजंस्तरसा वृक्षानूरुवेगेन संघशः॥१२॥
अभ्यवर्त्तत तं देशं पादचारीव पर्वतः। आसाद्य सरसस्तस्य तीरं कुसुमितद्रुमम्॥१३॥
न्यदधान्यमांसभारं च स मूले कस्यचित्तरोः। निषसाद क्षणं तत्र तरुच्छायामुपाश्रितः॥१४॥
तिष्ठंतं सरसस्तीरे सोऽपश्यद्भृगुनंदनम्। ततः स शीघ्रमुत्थाय समीपमुपसृत्य च॥१५॥
रामाय सेषुचापाभ्यां कराभ्यां विदधेंऽजलिम्। सजलांभोदसन्नादगंभीरेण स्वरेण च॥१६॥

भृगु, अत्रि, क्रतु, जाबालि, वामदेव और मृकण्डु वे सभी वृद्धसंमत मुनि परशुराम के प्रति अच्छी भावना रखने वाले उन तपरत परशुराम के आश्रम में आये। निवास करने वाले वे महापुरुष, समस्त लोकों में सबसे महान् वे मुनि लोग तप और ज्ञान में अग्रगण्य उन परशुराम की प्रशंसा कर अपने अपने आश्रम को चले गये।।४-६।। हे राजन्! इस प्रकार तपस्या में लगे हुए उन परशुराम की तपस्या से भगवान् बहुत अधिक प्रसन्न हुए।।७।। अतः हे राजन्! उनकी तपस्या को अपनी भक्ति में जानने की इच्छा वाले भगवान् शंकर मृग व्याध का शरीर धारण कर उनके पास गये।।८।। उस समय भगवान् शंकर का जो रूप था, उसे बताते हैं—वे भिन्न काजल के समान स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। अर्थात् चितकबरे रंग के थे, उनकी आँखें लाल और लम्बी थीं। वे बाण और धनुष धारण किये थे, उनका युवा शरीर बहुत लम्बा और वज्र के समान था।।९।। उनकी ठोड़ी, भुजायें और कन्धे बहुत उठे हुए विशाल थे, उनकी दाड़ी और शिर के बाल पिंगल (सफेद) थे। उनके शरीर से मांस कच्चे मांस और चर्बी की गंध आ रही थी। वे सब प्रकार के प्राणियों की हत्या करने वाले लग रहे थे।।१०।। उनका समस्त शरीर काँटों की तरह स्पर्श करने वाला लग रहा था तथा घावयुक्त एवं रूखा था। वे अनेकों मांस के टुकड़ों का खून पीते हुए शरीर वाले थे। अर्थात् उनके मुंह पर मांस टुकड़ों का खून लगा हुआ था।।११।।

उनके दोनों ओर मांस लटक रहा था, जिससे उनके कन्धे झुके हुए थे। वे अपनी जंघाओं के वेग से वृक्षों को गिराते आ रहे थे।।१२।। वे पादचारी पर्वत के समान उस स्थान पर उपस्थित हुए। उस फूलयुक्त वृक्षों वाली नदी के किनारे पर आकर उन्होंने अपने मांस के भार को किसी वृक्ष के नीचे रख दिया और थोड़ी देर तक उस वृक्ष की छाया में बैठ गये।।१४।। वहाँ उन्होंने उन नदी के किनारे भृगुकुल नन्दन परशुराम को देखा उसके बाद वे शीघ्र ही उठकर और परशुराम के पास जाकर परशुराम को बाण और धनुषयुक्त हाथों से अंजलि सहित नमस्कार किया।।१५-१५½।। और जल से भरे हुए बादल (मेघ) के समान गम्भीरनाद वाले स्वर से और वामी में बैठे सर्प

जगाद भृगुशार्दूलं गुहांतरविसर्पिणा। तोषप्रवर्षव्याधोऽहं वसाम्यस्मिन्महावने॥१७॥
ईशोऽहमस्य देशस्य सप्राणितरुवीरुधः। चरामि समचित्तात्मा नानासत्त्वा मिषाशनः॥१८॥
समश्च सर्वभूतेषु न च पित्रादयोऽपि मे। अभक्ष्यागम्यपेयादिच्छंदवस्तुषु कुत्रचित्॥१९॥
कृत्याकृत्यविधौ चैव न विशेषितधीरहम्। प्रपन्नो नाभिगमनं निवासमपि कस्यचित्॥२०॥
शक्रस्यापि बलेनाहमनुमन्ये न संशयः। जानते तद्यथा सर्वे देशोऽयं मदुपाश्रयः॥२१॥
तस्मान्न कश्चिदायाति ममात्रानुमतिं विना। इत्येष मम वृत्तान्तः कात्स्र्न्येन कथितस्तव॥२२॥
त्वं च मे ब्रूहि तत्त्वेन निजवृत्तमशेषतः। कस्त्वं कस्मादिहायातः किमर्थमिह धिष्ठितः।
उद्यतोऽन्यत्र वा गंतुं किं वा तव चिकीर्षितम्॥२३॥

वसिष्ठ उवाच

इत्येवमुक्तः प्रहसंस्तेन रामो महाद्युतिः।
तूष्णीं क्षणमिव स्थित्वा दध्यौ किंचिदवाङ्मुखः॥२४॥
कोऽयमेव दुराधर्षः सजलांभोदनिस्वनः। ब्रवीति च गिरोऽत्यर्थं विस्पष्टार्थपदाक्षराः॥२५॥
किं तु मे महतीं शंका तनुरस्य तनोति वै। विजातिसंश्रयत्वेन रमणीया यथा शराः॥२६॥
एवं चिंतयतस्तस्य निमित्तानि शुभानि वै। बभूवुर्भुवि देहे च स्वाभिप्रेतार्थदान्यलम्॥२७॥
ततो विमृश्य बहुशो मनसा भृगुपुंगवः। उवाच शनकैर्व्याधं वचनं सूनृताक्षरम्॥२८॥

के समान स्वर से भृगुकुलसिंह परशुराम से बोले—कि मैं तोषप्रवर्ष नाम का शिकारी हूँ तथा इस वन में रहता हूँ और मैं प्राणिवृक्ष और लताओं सहित इस देश (स्थान) का ईश (स्वामी) हूँ। मैं इन देश में समान मन आत्मा से अनेकों प्राणियों के मांस को खाता हुआ घूमता हूँ।।१५½-१८।। मैं सभी प्राणियों में समान भाव रखता हूँ और मेरे पिता माता आदि नहीं हैं। मेरे लिये सब वस्तुओं में कोई भी वस्तु अभक्ष्य, अगम्य और अपेय नहीं है।।१९।। मुझे क्या करना चाहिये? क्या नहीं करना चाहिये? इस प्रकार सोचने वाली विशेषित बुद्धि मैं नहीं रखता है। मेरा किसी के साथ रहना किसी के पास आना जाना या सम्भोग आदि करना भी नहीं है।।२०।। मैं इन्द्र के भी बल से युक्त हूँ, ऐसा मैं अनुमान करता हूँ। इसमे कोई सन्देह नहीं है, सभी लोग मुझे उसी तरह जानते हैं, यह समस्त देश मेरे अधीन है।।२१।। उसी वजह से कोई मेरी अनुमति के विना यहाँ नहीं आता है। इस प्रकार यही मेरा परिचय है, जो मैंने तुम्हे बता दिया है।।२२।। अव तुम मुझे अपना पूरा परिचय सही सही बताओ। तुम कौन हो? कहाँ से यहाँ आये हो? और किसलिये यहाँ पर साधिकार स्थित हो? क्या तुम अन्यत्र जाना चाहते हो? जहाँ तुम्हारी जाने की इच्छा है।।२३।।

वशिष्ठ ने कहा कि इस प्रकार उस व्याध ने महाकान्तिवाले परशुराम से हँसते हुए कहा, तब महाकान्तिमान् थोड़ी देर चुप रहकर विना बोले हुए कुछ उनकी तरफ मुख कर स्थित हुए।।२४।। वे परशुराम सोचने लगे कि यह कौन धूर्त है, जिसकी कि जल से भरे हुए मेघ के समान गम्भीर आवाज है तथा यह विशेष स्पष्ट पदों और अक्षरों वाली वाणी बोल रहा है।।२५।। किन्तु मेरी यह पहली शंका है कि इसका शरीर निश्चित रूप से विस्तृत हो रहा है। जिस प्रकार विशेष जाति के आश्रय बाण रमणीय हो जाते हैं।।२६।। इस प्रकार उनके विषय में शुभ कारणों पर विचार करते हुए कि इस पृथ्वी पर उस देह में अपने अभिप्रेत अर्थ का देने वाला ही हो।।२७।। उसके बाद अपने मन में अनेकों बार विचार करके भृगुकुल श्रेष्ठ परशुराम उस व्याध से धीरे से सुन्दर अक्षरों वाली वाणी बोले।।२८।।

जामदग्न्योऽस्मि भद्रं ते रामो नाम्ना तु भार्गवः। तपश्चर्तुमिहायातः सांप्रतं गुरुशासनात्॥२९॥
तपसा सर्वलोकेशं भक्त्या च नियमेन च। आराधयितुमस्मिंस्तु चिरायाहं समुद्यतः॥३०॥
तस्मात्सर्वेश्वरं सर्वशरण्यमभयप्रदम्। त्रिनेत्रं पापदमनं शंकरं भक्तवत्सलम्॥३१॥
तपसा तोषयिष्यामि सर्वज्ञं त्रिपुरांतकम्। आश्रमेऽस्मिन्सरस्तीरे नियमं समुपाश्रितः॥३२॥
भक्तानुकंपी भगवान्यावत्प्रत्यक्षतां हरः। उपैति तावदत्रैव स्थास्यामीति मतिर्मम॥३३॥
तस्मादितस्त्वयाद्यैव गन्तुमन्यत्र युज्यते। न चेद्भवति मे हानिः स्वकृतेर्नियमस्य च॥३४॥
माननीयोऽथ वाहं ते भक्त्या देशांतरातिथिः। स्वनिवासमुपायातस्तपस्वी च तथा मुनिः॥३५॥
त्वत्संन्निधौ निवासो मे भवेत्पापाय केवलम्। तव चाप्यसुखोदर्कं मत्समीपनिषेवणम्॥३६॥
स त्वं मदाश्रमोपांते परिचंक्रमणादिकम्। परित्यज्य सुखी भूया लोकयोरुभयोरपि॥३७॥

वसिष्ठ उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा स भूयो भृगुपुंगवम्। उवाच रोषताम्राक्षस्ताम्राक्षमिदमुत्तरम्॥३८॥
ब्रह्मन् किमिदमत्यर्थं समीपे वसतिं मम। परिगर्हयसे येन कृतघ्नस्येव सांप्रतम्॥३९॥
किं मयापकृतं लोके भवतोऽन्यस्य वा क्वचित्।
अनागस्कारिणं दांतं कोऽवमन्येत नामतः॥४०॥

हे भद्रपुरुष! मैं जमदग्नि का पुत्र हूँ, मेरा नाम परशुराम है तथा मैं भार्गव भृगुऋषि का वंशज हूँ तथा यहाँ इस समय मैं अपने दादा भृगु की आज्ञा से तपस्या करने आया हूँ।।२९।। तथा समस्त लोकों के रचयिता भगवान् शंकर की नियमपूर्वक तप से और भक्ति से आराधना करने के लिये बहुत समय पहले से इस वन में सम्यक् प्रकार से तैयार होकर आया हूँ।।३०।। इसलिये सबको शरण देने वाले सबको अभय प्रदान करने वाले, तीन नेत्र वाले, पाप का दमन करने वाले, भक्तवत्सल, सब कुछ जानने वाले, त्रिपुरासुर का वध करने वाले, भगवान् शंकर को तप से सन्तुष्ट करूंगा। इसलिये सरोवर के किनारे इस आश्रम में उस तप के नियम के लिये मैं आया हूँ।।३१-३२।।

अतः भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान् शंकर जब तक प्रत्यक्ष होकर मेरे पास नहीं आते, तब तक यहीं पर मैं स्थित रहूँगा, यह मेरा विचार है।।३३।। इसलिये तुम आज ही यहाँ से अन्यत्र चले जाइये, ताकि मेरे इस तप कार्य और नियम की कोई हानि न हो जाये।।३४।। मैं आपका आदर करता हूँ, आप किसी दूसरे देश के अतिथि बनिये। तपस्वी और मुनि सफलता के बाद अपने-अपने निवास पर चले जाते हैं।।३५।। तुम्हारे पास में मेरा निवास केवल पाप के लिये होगा और तुम्हारा मेरे पास में रहना धनात्मक फल वाला होगा।।३६।। वह तुम मेरे आश्रम के पास में घूमना करना आदि छोड़कर चले जाओ और दोनों लोकों, इस लोक और परलोक में सुखी हो जाओ।।३७।।

वशिष्ठ ने कहा—इस प्रकार जब परशुराम ने कहा, तब उन परशुराम के वचन को सुनकर क्रोध से ताम्रवर्ण की आंखों वाला वह व्याध क्रोध से ताम्रवर्ण की आँखों वाले भृगुपुंगव परशुराम से इस उत्तर को बोला।।३८।। हे ब्रह्मन्! क्या मेरे समीप में आपका रहना अत्यर्थ (बहुत बुरा) होगा, जिस कारण से आप इस समय मेरी कृतघ्न के समान घृणा कर रहे हैं।।३९।। मैंने संसार में आपका अथवा किसी दूसरे का कहीं क्या अपकार किया है।। इन्द्रियों का दमन करने वाले निष्पाप मुझे आप कौन नाम से मानते हैं।।४०।।

सन्निधिः परिहर्त्तव्यो यदि मे विप्रपुंगव। दर्शनं सह संवासः संभाषणमथापि च॥४१॥
आयुष्मताऽधुनैवास्मादपसर्त्तव्यमाश्रमात्। स्वसंश्रयं परित्यज्य क्वाहं यास्ये बुभुक्षितः॥४२॥
स्वाधिवासं परित्यज्य भवता चोदितः कथम्।
इतोऽन्यस्मिन् गमिष्यामि दूरे नाहं विशेषतः॥४३॥
गम्यतां भवताऽन्यत्र स्थीयतामत्र वेच्छया।
नाहं चालयितुं शक्यः स्थानादस्मात्कथंचन॥४४॥

वसिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य किंचित्कोपसमन्वितः। तमुवाच पुनर्वाक्यमिदं राजन्भृगूद्वहः॥४५॥
व्याधजातिरियं क्रूरा सर्वसत्त्वभयावहा। खलकर्मरता नित्यं धिक्कृता सर्वजंतुभिः॥४६॥
तस्यां जातोऽसि पापीयान्सर्वप्राणिविहिंसकः।
स कथं न परित्याज्यः सुजनैः स्यात्तु दुर्मते॥४७॥
तस्माद्विहीनजातीयं विदित्वात्मानमप्यथ। शीघ्रमस्माद्व्रजान्यत्र नात्र कार्या विचारणा॥४८॥
शरीरत्राणकारुण्यात्समीपं नोपसर्पसि। यथा त्वं कंटकादीनामसहिष्णुतया व्यथाम्॥४९॥
तथाऽवेहि समस्तानां प्रियाः प्राणाः शरीरिणाम्।
व्यथा चाभिहतानां तु विद्यते भवतोऽन्यथा॥५०॥
अहिंसा सर्वभूतानामिति धर्मः सनातनः। एतद्विरुद्धाचरणान्नित्यं सद्भिर्विगर्हितः॥५१॥

हे विप्रवर! यदि मेरा पास में रहना, मेरा दर्शन, मेरा संवास (मेरे साथ रहना), तथा मेरा सम्भाषण अर्थात् मेरे साथ बात करना परिहर्तव्य है, तो हे आयुष्मान् आपको अभी इस आश्रम से दूर चले जाना चाहये। अपने आश्रम स्थान को छोड़कर मैं भूखा कहाँ जाऊँगा।।४१-४२।। अपने रहने वाले स्थान को छोड़कर चले जाओ, आपने यह क्यों कहा? विशेषतः इस स्थान से मैं दूर नहीं जाऊँगा। आप यहाँ से अन्यत्र चले जाइये अथवा अपनी इच्छा से यहाँ ठहरो मैं किसी भी प्रकार इस स्थान से नहीं हटाया जा सकता।।४३-४४।।

वशिष्ठ ने कहा—हे राजन्! उस व्याध के इस उपर्युक्त वचन को सुनकर कुछ क्रोध समन्वित भृगकुल शिरोमणि परशुराम पुनः उससे इस वाक्य को बोले।।४५।। कि यह व्याध की जाति अत्यन्त क्रूर होती है, सभी जीवों के लिये भयावह होती है, दुष्टकर्म करने वाली होती है तथा नित्य सभी प्राणियों द्वारा धिक् कृत होती है अर्थात् सभी प्राणी उसे धिक्कार करते हैं, उसे बुरी कहते हैं।।४६।। उस व्याधजाति में तुम पैदा हुए हो, पापी हो, तथा सभी प्राणियों के हत्यारे हो, अतः हे दुर्बुद्धि वाले! ऐसा व्यक्ति अच्छे लोगों द्वारा कैसे परित्याज्य नहीं होगा।।४७।। उसी कारण से अपने को नीच जाति वाला जानकर शीघ्र यहाँ से कहीं दूसरे स्थान पर चले जाओ, यहाँ इस कार्य में विचार करने की आवश्यकता नहीं है।।४८।। शरीर की रक्षा के कारण से तुम पास में भी नहीं आते हो, तुम तो समस्त जीवों को दुःख ही देते हो। जैसे तुम कोई कांटा आदि लग जाये तो उसे न सहन करते हुए व्यथा (दुःख) का अनुभव करते हो, उसी प्रकार सब प्राणियों को अपने प्राण प्रिय होते हैं, यह जान लो, जिनको तुम मारते हो, उनकी व्यथा को तुम अन्यथा समझते हो, क्या उससे तुम्हें कोई दुःख नहीं होता?।।४९-५०।। यह जान लो कि सब प्राणियों की अहिंसा (हत्या न करना) यह सनातन धर्म है, इसके विरुद्ध आचरण करने से नित्य मनुष्य सज्जन पुरुषों द्वारा निन्दित और

आत्मप्राणाभिरक्षार्थं त्वमशेषशरीरिणः। हनिष्यसि कथं सत्सु नाप्नोषि वचनीयताम्॥५२॥
तस्माच्छीघ्रं तु भो गच्छ त्वमेव पुरुषाधम्। त्वया मे कृत्यदोषस्य हानिश्च न भविष्यति॥५३॥
न चेत्स्वयमितो गच्छेस्ततस्तव बलादपि। अवसर्पणताबुद्धिमहमुत्पादये स्फुटम्॥५४॥
क्षणार्द्धमपि ते पाप श्रेयसी नेह संस्थितिः।
विरुद्धाचरणो नित्यं धर्मद्विट् को लभेच्च शम्॥५५॥

वसिष्ठ उवाच

रामस्य वचनं श्रुत्वा प्रीतोऽपि तमिदं वचः। उवाच संक्रुद्ध इव व्याधरूपी पिनाकधृक्॥५६॥
सर्वमेतदहं मन्ये व्यर्थं व्यवसितं तव। कुतस्त्वं प्रथमो ज्ञानी कुतः शंभुः कुतस्तपः॥५७॥
कुतस्त्वं क्लिश्यसे मूढ तपसा तेन तेऽधुना। ध्रुवं मिथ्याप्रवृत्तस्य न हि तुष्यति शंकरः॥५८॥
विरुद्धो लोकाचरणः शंभुस्तस्य वितुष्टये। प्रतपत्यबुधो मर्त्यस्त्वां विना कः सुदुर्मते॥५९॥
अथ वा च गतं मेऽद्य युक्तमेतदसंशयम्। संपूज्य पूजकविधौ शंभोस्तव च संगमः॥६०॥
त्वया पूजयितुं युक्तः स एव भुवने रतः। संपूजकोऽपि तस्य त्वं योग्यो नात्र विचारणा॥६१॥
पितामहस्य लोकानां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। शिरश्छित्त्वा पुनः शंभुर्ब्रह्महत्यामवाप्तवान्॥६२॥
ब्रह्महत्याभिभूतेन प्रायस्त्वं शंभुना द्विजः। उपदिष्टोऽसि तत्कर्तुं नोचेदेवं कथं कृथाः॥६३॥
तादात्म्यगुणसंयोगान्मन्ये रुद्रस्य तेऽधुना। तपः सिद्धिरनुप्राप्ता कालेनाल्पीयसा मुनेः॥६४॥

घृणित होता है।।५१।। अपने प्राणों की रक्षा के लिये तुम सभी प्राणियों की हत्या करोगे तो सज्जनों में कैसे नहीं बुरे कहे जाने योग्य बनोगे।।५२।। इसलिये तुम शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ; क्योंकि तुम नीच पुरुष हो, तुम्हारे द्वारा मेरे कृत्य दोष की हानि नहीं होगी।।५३।। अन्यथा तुम्हारे बल से मुझे ही यहाँ से चले जाना चाहिये। अतः मैं ही अब यहाँ से हटने का स्पष्ट विचार कर रहा हूँ।।५४।। अतः आधे क्षण के लिये तुम पापी के साथ रहना कल्याणकारी नहीं है। धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला तथा धर्म से द्वेष करने वाला भला कोई शान्ति प्राप्त कर सकता है अर्थात् नहीं कर सकता।।५।।

वशिष्ठ बोले—परशुराम के वचन का सुनकर प्रसन्न हुए व्याध का रूप धारण करने वाले पिनाकधारी भगवान् शंकर क्रोधित होकर वाले कि मैं मानता हूँ कि तुम्हारा यह व्यवसाय व्यर्थ है; क्योंकि कहाँ तुम प्रथमज्ञानी? कहाँ शम्भु और कहाँ तप?।।५७।। कि अरे मूर्ख तुम क्यों कष्ट उठा रहे हो? अब तुम्हारी मिथ्या प्रवृत्त इस तपस्या से शंकर प्रसन्न नहीं होंगे।।५८।। वह शम्भु शंकर भी लोक के विरुद्ध आचरण करने वाला है और उसको प्रसन्न करने के लिए जो तुम तपस्या कर रहे हो, अतः हे मूर्ख! तुम्हारे अलावा ऐसा कौन मूर्ख है।।५९।। अतः मैं जो आज तुमसे बात कह रहा हूँ, वह बिल्कुल उचित है। अतः तुम पूजा करने वाली विधि से उसकी पूजा करो; क्योंकि तुम्हारा उनका संगम है, जैसे वे हैं, वैसे ही तुम हो।।६०।। अतः तुम्हारे द्वारा ही वह शंकर जो भुवन में रत है, पूजा करने के योग्य है तथा तुम उन्हीं की सम्यक् प्रकार पूजा करने वाले भी हो, इसमें विचार नहीं करना चाहिये।।६१।। लोकों के पितामह परमेष्ठि ब्रह्मा के शिर को काटकर शम्भु ब्रह्महत्या को प्राप्त हुए थे।।६२।। ब्रह्महत्या से अभिभूत शम्भु थे और तुम भी हो, अतः उनकी उपासना करने का तुम्हें उपदेश दिया है।।६३।। तुममें और रुद्र (शिव) में समान गुण है। अतः शंभु और तुममें समान गुण होने के कारण अब तुम कम समय में सिद्धि

प्रायोऽद्य मातरं हत्वा सर्वैर्लोकैर्निराकृतः। तपोव्याजेन गहने निर्जने संप्रवर्त्तसे॥६५॥
गुरुस्त्रीब्रह्महत्योत्थपातकक्षपणाय च। तपश्चरसि नानेन तपसा तत्प्रणश्यति॥६६॥
पातकानां किलान्येषां प्रायश्चित्तानि संत्यपि।
मातृद्रुहामवेहि त्वं न क्वचित्किल निष्कृतिः॥६७॥
अहिंसालक्षणो धर्मो लोकेषु यदि ते मतः। स्वहस्तेन कथं राम मातरं कृत्तवानसि॥६८॥
कृत्वा मातृवधं घोरं सर्वलोकविगर्हितम्। त्वं पुनर्धार्मिको भूत्वा कामतोऽन्यान्विनिंदसि॥६९॥
पश्यता हसतामोघं आत्मदोषमजानता। अपर्याप्तमहं मन्ये परं दोषविमर्शनाम्॥७०॥
स्वधर्मं यद्यहं त्यक्त्वा वर्त्तेयमकुतोभयम्। तर्हि गर्हय मां कामं निरूप्य मनसा स्वयम्॥७१॥
मातापितृसुतादीनां भरणायैव केवलम्। क्रियते प्राणिहननं निजधर्मतया मया॥७२॥
स्वधर्मादामिषेणाहं सकुटुम्बो दिनेदिने। वर्त्तामि साऽपि मे वृत्तिर्विधात्रा विहिता पुरा॥७३॥
मांसेन यावता मे स्यान्नित्यं पित्रादि पोषणम्। हनिष्ये चेत्तदधिकं तर्हि युज्येयमेनसा॥७४॥
यावत्पोषणघातेन न वयं स्याम निंदिताः। तदेतत्संप्रधार्य त्वं निंद वा मां प्रशंस वा॥७५॥
साधु वाऽसाधु वा कर्म यस्य यद्विहितं पुरा। तदेव तेन कर्त्तव्यमापद्यपि कथंचन॥७६॥
निरूपय स्वबुद्ध्या त्वमात्मनो मम चांतरम्। अहं तु सर्वभावेन मित्रादिभरणे रतः॥७७॥

प्राप्त कर लोगे।।६४।। प्रायः तुम अपनी माता को मारकर सब लोकों से अनादृत होकर तप के बहाने से इस गहन निर्जन वन में रह रहे हो।।६५।। गुरु, स्त्री और ब्रह्म हत्या से पैदा हुए पाप के नाश के लिये तुम तपस्या कर रहे हो, अतः तुम्हारे इस तप से वह पाप नष्ट नहीं होगा।।६६।। दूसरे प्रकार के पापों के निश्चय ही प्रायश्चित्त होते हुए भी माता को मारने के पाप का कोई निराकरण नहीं, उसका प्रायश्चित्त भी नहीं बताया गया है।।६७।। अहिंसा जिसका लक्षण है, वही धर्म है, यदि तुम ऐसा मानते हो, तो फिर बताओ तुमने अपने हाथ से अपनी माता को क्यों काट दिया।।६८।। सर्वलोक विगर्हित (जिसकी सारा संसार निन्दा करता है) ऐसे माता का वध रूप घोर पाप करके पुनः धार्मिक होकर अपने मन से दूसरों की निन्दा कर रहे हो।।६९।।

जो व्यक्ति अपने दोष को न जानते हुए दूसरों को देखता है, दूसरों पर हँसता है, मैं ऐसे दूसरों के दोष को देखने वाले को तुच्छ मानता हूँ।।७०।। यदि मैं अपने धर्म को छोड़कर यदि कहीं दूसरा काम करूँ तो मेरा मन मुझे स्वयं धिक्कारेगा।।७१।। मैं अपने माता-पिता पुत्रादिओं के भरण-पोषण के लिये मेरे द्वारा अपना धर्म मानते हुए प्राणियों की हत्या की जाती है।।७२।। मैं अपने धर्म के अनुसार मांस से प्रतिदिन अपने परिवार का पालन करता हूँ; क्योंकि विधाता ने पहले से ही मेरी यह जीविका बना दी है।।७३।। जितने मांस से मेरे माता पिता का नित्य पोषण होगा, उससे अधिक यदि मैं हत्या करूँगा, तब वह पाप होगा।।७४।। जब तक परिवार का भरण-पोषण तब तक हत्या करने से हम निन्दित नहीं हैं। इसलिये यह अच्छी तरह अपनी बुद्धि में धारण करके तुम मेरी निन्दा करो या प्रशंसा करो।।७५।। जिस मनुष्य का पहले से जो कार्य विहित है, वह अच्छा हो अथवा बुरा हो, वह करना चाहिये। आपत्ति में भी वही काम आता है। उसे आपत्ति में भी नहीं छोड़ना चाहिये।।७६।।

हे ब्राह्मण! स्वयं में मुझमें क्या अन्तर है, यह तुम अपनी बुद्धि से ही निर्णय करो; क्योंकि मैं तो माता-

संत्यज्य पितरं वृद्धं विनिहत्य च मातरम्। भूत्वा तु धार्मिकस्त्वं तु तपश्चर्तुमिहागतः॥७८॥

ये तु मूलविदस्तेषां विस्पष्टं यत्र दर्शनम्।
यथाजिह्वं भवेन्नात्र वचसापि समीहितुम्॥७९॥

अहं तु सम्यग्जानामि तव वृत्तमशेषतः। तस्मादलं ते तपसा निष्फलेन भृगूद्वह॥८०॥

सुखमिच्छसि चेत्त्यक्त्वा कायक्लेशकरं तपः।
याहि राम त्वमन्यत्र यत्र वा न विदुर्जनाः॥८१॥

॥इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥२३॥

पिता, मित्रादि सबको पालन करने के भाव से सबका भरण-पोषण करने में लगा हुआ हूँ तथा तुम अपने बूढ़े पिता को छोड़ कर तथा माता को मारकर तथा धार्मिक बनकर यहाँ तप करने को आ गये हो।।७७-७८।। जो किसी के मूल को जानते हों, जिनको विशेष रूप से देखा हो, उनके सामने वहाँ पर बढ़-चढ़कर बातें नहीं करनी चाहिये।।७९।। मैं तो अच्छी प्रकार से तुम्हारे सारे हाल तुम्हारे व्यवहार को अच्छी तरह जानता हूँ। इसलिए अरे भृगुकुल शिरोमणि परशुराम! तुम ये निष्फल तप करना बन्द करो।।८०।। यदि तुम सुख चाहते हो, तो इस शरीर को कष्ट देने वाले तप को छोड़कर कहीं ऐसी जगह चले जाओ, जहाँ तुम्हें लोग न जानते हों।।८१।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद २३वां अध्याय परशुराम शंकर संवाद नामक का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे अर्जुनोपाख्याने

शिवेनायुधदानम्

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्तस्तेन भूपाल रामो मतिमतां वरः। निरूप्य मनसा भूयस्तमुवाचाभिविस्मितम्॥१॥

राम उवाच

कस्त्वं ब्रूहि महाभाग न वै प्राकृतपूरुषः। इन्द्रस्येवानुभावेन वपुरालक्ष्यते तव॥२॥
विचित्रार्थपदौदार्यगुणगांभीर्यजातिभिः। सर्वज्ञस्यैव ते वाणी श्रूयतेऽतिमनोहरा॥३॥
इन्द्रो वह्निर्यमो धाता वरुणो वा धनाधिपः। ईशानस्तपनो ब्रह्मा वायुः सोमो गुरुर्गुहः॥४॥
एषामन्यतमः प्रायो भवान्भवितुमर्हति। अनुभावेन जातिस्ते हृदि शंका तनोति मे॥५॥
मायावी भगवान्विष्णुः श्रूयते पुरुषोत्तमः। को वा त्वं वपुषानेन ब्रूहि मां समुपागतः॥६॥
अथ वा जगतां नाथः सर्वज्ञः परमेश्वरः। परमात्मात्मसंभूतिरात्मारामः सनातनः॥७॥
स्वच्छंदचारी भगवाञ्छिवः सर्वजगन्मयः। वपुषानेन संयुक्तो भवान्भवितुमर्हति॥८॥
नान्यस्येदृग्भवेल्लोके प्रभावानुगतं वपुः। जात्यर्थसौष्ठवोपेता वाणी चौदार्यशालिनी॥९॥
मन्येऽहं भक्तवात्सल्याद्वानेन वपुषाहरः। प्रत्यक्षतामुपगतो सदेहोऽस्मत्परीक्षया॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद अर्जुनोपाख्यान में

अध्याय-२४

शिव द्वारा परशुराम को आयुध देना

वशिष्ठ बोले—हे राजन्! जब उस व्याध ने परशुराम से इस प्रकार कहा, तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ परशुराम अत्यधिक विस्मित उस व्याध से बोले।।१।।

राम ने कहा—कि हे महाभाग! तुम कौंन हो? तुम निश्चित ही साधारण पुरुष नहीं हो।।२।। तुम इन्द्र हो, अग्नि हो, यम हो, ब्रह्मा हो, वरुण हो अथवा कुबेर हो, तुम ईशान (शिव) हो, ब्रह्मा हो, सोम हो, बृहस्पति हो अथवा गुह हो।।३-४।। इनमें से भी काई अन्य आप हो सकते हैं। तुम्हारी चमक दमक वैभवशक्ति हाव-भाव से तुम्हारी जाति के विषय में मेरे हृदय में शंका हो रही हैं।।५।। पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु मायायी सुने जाते हैं, अतः तुम वही तो नहीं हो?। अतः इस शरीर से तुम कौंन हो? जो मेरे पास आये हो मुझे बताओ।।६।। तुम सर्वजगन्मय स्वेच्छन्दचारी भगवान् शंकर हो। इस शरीर से संयुक्त तुम स्वच्छाचारी जगन्मय भगवान् शंकर हो सकते हो।।७।। अथवा संसार के नाथ सर्वज्ञ, परमेश्वर, परम आत्मा से उत्पन्न हुए आत्माराम सनातन सर्वजगन्मय स्वच्छन्द विचरण करने वाले इस शरीर से भगवान् शिव हो सकते हो।।८।। इस संसार में ऐसा प्रभावशाली शरीर जाति के अर्थ को बताने वाली सोष्ठव और उदारगुणयुक्त वाणी किसी दूसरे की नहीं हो सकती। मैं समझता हूं, आप अपनी वेषभूषा से और शरीर से भगवान् शंकर हो तथा मेरी परीक्षा लेने के लिए सदेह यहाँ उपस्थित हुए हो।।९-१०।।

न केवलं भवान् व्याधस्तेषां नेदृग्विधाकृतिः। तस्मात्तुभ्यं नमस्तस्मै सुरूपं संप्रदर्शय॥११॥
आविष्कुर्वन्प्रसीदात्ममहिमानुगुणं वपुः। ममानेकविधा शंकामुच्येत येन मानसी॥१२॥
प्रसीद सर्वभावेन बुद्धिमोहौ ममाधुना। प्रणाशय स्वरूपस्य ग्रहणादेव केवलम्॥१३॥
प्रार्थयेत्वां महाभाग प्रणम्य शिरसासकृत्।
कस्त्वं मे दर्शयात्मानं बद्धोऽयं ते मयाञ्जलिः॥१४॥
इत्युक्त्वा तं महाभाग ज्ञातुमिच्छन्भृगूद्वहः। उपविश्य ततो भूमौ ध्यानमास्ते समाहितः॥१५॥
बद्धपद्मासनो मौनी यतवाक्कायमानसः। निरुद्धप्राणसंचारो दध्यौ चिरमुदारधीः॥१६॥
सन्नियम्येंद्रियग्रामं मनो हृदि निरुध्य च। चिंतयामास देवेशं ध्यानदृष्ट्या जगद्गुरुम्॥१७॥
अपश्यच्च जगन्नाथमात्मसंधानचक्षुषा। स्वभक्तानुग्रहकरं मृगव्याधस्वरूपिणम्॥१८॥
तत उन्मील्य नयने शीघ्रमुत्थाय भार्गवः। ददर्श देवं तेनैव वपुषा पुरतः स्थितम्॥१९॥
आत्मनोऽनुग्रहार्थाय शरण्यं भक्तवत्सलम्। आविर्भूतं महाराज दृष्ट्वा रामःससंभ्रमम्॥२०॥
रोमाञ्चोद्भिन्नसर्वांगो हर्षाश्रुप्लुतलोचनः। पपात पादयोर्भूमौ भक्त्या तस्य महामतिः॥२१॥
स गद्गदमुवाचैनं संभ्रमा कुलया गिरा। शरणं भव शर्वेति शंकरेत्यसकृन्नृप॥२२॥
ततः स्वरूपधृक् शंभुस्तद्भक्तिपरितोषितः। राममुत्थापयामास प्रणामावनतं भुवि॥२३॥

आपकी जिस प्रकार की आकृति है, उससे आप केवल व्याध नहीं है। इसलिए आपको नमस्कार है, कृपया अपना स्वरूप प्रकट कीजिये।।११।। हे आविष्कार करते हुए भगवान् शिव! आप प्रसन्न हो जाइये और अपनी महिमा के अनुसार गुण वाले शरीर में आ जाइये। मुझे अनेकों प्रकार की शंकायें हो रही हैं। उनसे मेरे मन को मुक्त कीजिये।।१२।। हे प्रभो! आप अपने सर्वभाव से प्रसन्न हो जाओ, अब जो मेरी बुद्धि में मोह हो गया है, केवल स्वरूप के ग्रहण से ही उसे नष्ट कर दो।।१३।। हे महाभाग! मैं अनेकों बार सिर झुकाकर प्रणाम करके कह रहा हूं कि आप कौन हैं? मुझे अपना दर्शन दीजिये, मैं आपके हाथ जोड़ रहा हूँ।।१४।। ऐसा कहकर उनको जानने की इच्छा रखने वाले भृगुकुल का वहन करने वाले परशुराम भूमि पर बैठकर समाहित चित्त होकर ध्यान करने लगे।।१५।।

तब पद्मासन लगाकर मौन धारण कर वाणी, शरीर और मन को नियन्त्रित कर अपने प्राणों की गति को रोककर उदार बुद्धि वाले वे परशुराम ध्यान करने लगे।।१६।। तब समस्त इन्द्रिय समूह को रोककर और मन को हृदय में रोककर अपने ध्यान की दृष्टि से जगद्गुरु भगवान् शंकर का चिन्तन करने लगे।।१७।। तब उन्होंने अपने आत्मा में रखे हुए नेत्र से अपने भक्त पर कृपा करने वाले, मृग व्याध के रूप वाले, सारे संसार के स्वामी भगवान् शंकर को देखा।।१८।। उसके बाद आँखें खोलकर, शीघ्र उठकर, भार्गव राम ने उसी शरीर से सामने खड़े हुए भगवान् शंकर को देखा।।१९।। तब हे महाराज! जब परशुराम ने शिव जी को पहचान लिया, तब अपने पर कृपा करने के लिये शरणागत की रक्षा करने वाले भक्तों के प्रिय भगवान् शंकर को प्रकट हुआ देखकर भ्रम में पड़ गये तथा प्रसन्नता से उनके समस्त शरीर में रोमांच पैदा हो गया तथा हर्ष से आँखों में आँसू भर गये तथा वे महामति भक्ति से उन भगवान् शंकर के पैरों में भूमि पर गिर गये।।२०-२१।। उसके बाद हे राजन्! हर्ष से गद्गद् वाणी से भ्रम के साथ उन्होंने शंकर भगवान् से कहा कि हे भगवान् शङ्कर मैं बार-बार आपकी शरण में हूँ।।२२।। इसके बाद अपने वास्तविक रूप को धारण करने वाले भगवान् शंकर ने पूरी तरह प्रसन्न होकर प्रणाम करने के लिये भूमि पर

उत्थापितो जगद्धात्रा स्वहस्ताभ्यां भृगूद्वहः। तुष्टाव देवदेवेशं पुरः स्थित्वा कृतांजलिः॥२४॥

राम उवाच

नमस्ते देवदेवाय शंकरायादिमूर्त्तये। नमः शर्वाय शांताय शाश्वताय नमोनमः॥२५॥
नमस्ते नीलकण्ठाय नीललोहितमूर्त्तये। नमस्ते भूतनाथाय भूतवासाय ते नमः॥२६॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय महादेवाय मीढुषे। शिवाय बहुरूपाय त्रिनेत्राय नमोनमः॥२७॥
शरणं भव मे शर्व त्वद्भक्तस्य जगत्पते। भूयोऽनन्याश्रयाणां तु त्वमेव हि परायणम्॥२८॥
यन्मयाऽपकृतं देव दुरुक्तं वापि शंकर!। अजाता त्वां भगवन्मम तत्क्षंतुमर्हसि॥२९॥
अनन्यवेद्यरूपस्य सद्भावमिह कः पुमान्। त्वामृते तव सर्वेश सम्यक् शक्नोति वेदितुम॥३०॥
तस्मात्त्वं सर्वभावेन प्रसीद मम शंकर। नयास्ति मे गतिस्तुभ्यं नमो भूयो नमो नमः॥३१॥

वसिष्ठ उवाच

इति संस्तूयमानस्तु कृतांजलिपुटं पुरः। तिष्ठंतमाह भगवान्प्रसन्नात्मा जगन्मयः॥३२॥

भगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि भवते तात तपसाऽनेन सांप्रतम्। भक्त्या चैवानपायिन्या ह्यपि भार्गवसत्तम॥३३॥
दास्ये चाभिमतं सर्वं भक्तेऽहं त्वया वृतम्। भक्तो हि मे त्वमत्यर्थं नात्र कार्या विचारणा॥३४॥

गिरे हुए परशुराम को उठा लिया।।२३।। संसार को धारण करने वाले भगवान् शंकर के द्वारा अपने दोनों हाथों से उठाये गये भृगु कुल के वाहक परशुराम सन्तुष्ट हो गये और उन भगवान् शंकर के आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये।।२४।।

उसके बाद परशुराम ने भगवान् शंकर से कहा कि हे देवों के देव महादेव! आदिमूर्ति! सबका कल्याण करने वाले शंकर! शर्व! शान्त! और शास्वत! आपको नमस्कार है।।२५।। हे नीलकण्ठ! हे नीललोहित मूर्ति! आपको नमस्कार है। हे भूतनाथ! हे भूतवास महादेव! आपको नमस्कार है।।२६।। हे व्यक्त अव्यक्त स्वरूप वाले महादेव! आपको नमस्कार है, सबका शिव (कल्याण करने वाले शिव! आपको नमस्कार है, हे बहुत रूप धारण करने त्रिनेत्रधारी! आपको नमस्कार है।।२७।। हे संसार के स्वामी! अपने भक्त की शरण में हो जाओ। अनन्य आश्रगों के फिर तुम्हीं परायण हो अर्थात् जिनका कोई आश्रय नहीं, उनके आप ही आश्रय हो।।२८।। हे देव! जो मैंने आपका अपकार किया अथवा जो कुछ बुरा कहा, वह न जानते हुए कहा था; इसलिए आप मुझे क्षमा कीजिये।।२९।। हे सब के स्वामी सबकी रचना करने वाले शंकर! इस संसार में जिसके रूप को कोई नहीं जान सकता, उन आपके सद्भाव को कौंन मनुष्य जान सकता है?।।३०।। इसीलिये हे शंकर! आप सब प्रकार के भाव से मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। आपके विना मेरी कोई गति नहीं है, अतः तुम्हें नमस्कार है तथा बार-बार नमस्कार है।।३१।।

वशिष्ठ ने कहा—कि इस प्रकार सम्यक् प्रकार से स्तुति करते हुए सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए परशुराम से प्रसन्नात्मा जगन्मय भगवान् शंकर ने कहा—हे भार्गवश्रेष्ठ! पुत्र! मैं इस समय तुम्हारी इस दृढ़भक्ति से युक्त तपस्या से प्रसन्न हूँ।।३३।। अतः जो कुछ तुम चाहते हो, वह सब कुछ मैं तुम्हें प्रदान करूँगा। तुम मेरे भक्त हो, अतः अब कुछ अत्यर्थ विचार नहीं करना है।।३४।।

मयैवावगतं सर्वं हृदि यत्तेऽद्य वर्तते। तस्माद्ब्रवीमि यत्त्वाहं तत्कुरुष्वाविशंकितम्॥३५॥
नास्त्राणां धारणे वत्स विद्यते शक्तिरद्य ते। रौद्राणां तेन भूयोऽपि तपो घोरं समाचर॥३६॥
परीत्य पृथिवीं सर्वां सर्वतीर्थेषु च क्रमात्।
स्नात्वा पवित्रदेहस्त्वं सर्वाण्यस्त्राण्यवाप्स्यसि॥३७॥
इत्युक्त्वांतर्दधे देवस्तेनैव वपुषा विभुः। रामस्य पश्यतो राजन्क्षणेन भवभागकृत्॥३८॥
अंतर्हिते जगन्नाथे रामो नत्वा तु शंकरम्। परीत्य वसुधां सर्वां तीर्थस्नानेऽकरोन्मनः॥३९॥
ततः स पृथिवीं सर्वां परिक्रम्य यथाक्रमम्। चकार सर्वतीर्थेषु स्नानं विधिवदात्मवान्॥४०॥
तीर्थेषु क्षेत्रमुख्येषु तथा देवालयेषु च। पितॄन्देवांश्च विधिवदतर्पयदतंद्रितः॥४१॥
उपवासतपोहोमजपस्नानादिसुक्रियाः। तीर्थेषु विधिवत्कुर्वन्परिचक्राम मेदिनीम्॥४२॥
एवं क्रमेण तीर्थेषु स्नात्वा चैव वसुंधराम्। प्रदक्षिणीकृत्य शनैः शुद्ध देहोऽभवन्नृप॥४३॥
परीत्यैवं वसुमतीं भार्गवः शंभुशासनात्। जगाम भूयस्तं देशं यत्र पूर्वमुवास सः॥४४॥
गत्वा राजन्स तत्रैव स्थित्वा देवमुमापतिम्। भक्त्या संपूजयामास तपोभिर्नियमैरपि॥४५॥
एतस्मिन्नेव काले तु देवानामसुरैः सह। बभूव सुचिरं राजन्संग्रामो रोमहर्षणः॥४६॥
ततो देवान्पराजित्य युद्धेऽतिबलिनोऽसुराः। अवापुरमरैश्वर्यमशेषमकुतोभयाः॥४७॥
युद्धे पराजिता देवाः सकला वासवादयः। शंकरं शरणं जग्मुर्हतैश्वर्या ह्यरातिभिः॥४८॥

तुम्हारे हृदय में जो कुछ है, वह सब मैंने जान लिया है। इसलिये मैं कहता हूँ कि तुम जो चाहो, वह विना किसी शंका के करो।।३५।। हे पुत्र! आज तुम्हारे अन्दर अस्त्रों को धारण करने की शक्ति नहीं है। इसलिए भगवान् रुद्र का घोर तप करो।।३६।। सब तीर्थों में यथा समस्त पृथ्वी की परिक्रमा करके फिर स्नानकर पवित्र शरीर वाले तुम सब अस्त्रों को प्राप्त कर लोगे।।३७।। इसके बाद वशिष्ठ ने शंयु से कहा कि हे राजन्! इस प्रकार कह कर वे विभु (सर्वसमर्थ) महादेव उसी शरीर से परशुराम के देखते देखते ही अन्तर्धान हो गये।।३८।।

उसके बाद उन जगन्नाथ शंकर के अन्तर्धान हो जाने पर उनको नमनकर राम ने समस्त पृथ्वी की परिक्रमा करके तीर्थस्थान करने का मन बनाया।।३९।। उसके बाद क्रमानुसार समस्त पृथ्वी की परिक्रमा करके आत्मवान् उन परशुराम ने सब तीर्थों में विधिवत् स्नान किया।।४०।। तब उन्होंने आलस्यरहित होकर तीर्थों में मुख्य क्षेत्रों में तथा देवालयों में विधिवत् पितरों और देवों का तर्पण किया।।४१।। अतः तीर्थों मे उपवास, हवन, तप, जप स्नान आद में विधिवत् क्रियायें करते हुए उन्होंने समस्त पृथ्वी की परिक्रमा कर दी।।४२।। इस प्रकार क्रमशः हे राजन्! तीर्थों में स्नान करके और समस्त भूमंडल की परिक्रमा करके धीरे-धीरे वे शुद्ध शरीर वाले हो गये।।४३।। इस प्रकार भगवान् शंकर की आज्ञा से पृथ्वी की परिक्रमा कर समस्त पृथ्वी पर घूमकर फिर उस देश मे गये जहाँ कि वे पहले रहते थे।।४४।। तब हे राजन् वहीं जाकर और वहाँ पर ही ठहरकर उन्होने भक्तिपूर्वक तपस्याओं से और नियमों से उमापति महादेव की पूजा की।।४५।। इसी समय हे राजन्! देवताओं का असुरों के साथ रोमांच खड़े कर देने वाला बहुत समय तक चलने वाला संग्राम हुआ था।।४६।। तब वहाँ युद्ध में देवताओं को हराकर अत्यधिक बलवान् तथा निडर असुरों ने देवताओं के समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त कर लिया।।४७।। अतः जिन देवों का समस्त ऐश्वर्य शत्रुओं द्वारा नष्ट कर दिया गया है, वे सभी इन्द्रादि देवगण भगवान् शंकर की शरण में गये।।४८।।

तोषयित्वा जगन्नाथं प्रणामजय संस्तवैः। प्रार्थयामासुरसुरान्हन्तुं देवाः पिनाकिनम्॥४९॥
ततस्तेषां प्रतिश्रुत्य दानवानां वधं नृप। देवानां वरदः शंभुर्महो दरमुवाच ह॥५०॥
हिमाद्रेर्दक्षिणे भागे रामो नाम महातपः। मुनिपुत्रोऽतितेजस्वी मामुद्दिश्य तपस्यति॥५१॥
तत्र गत्वात्वमद्यैव निवेद्य मम शासनम्। महोदर तपस्यंतं तमिहानय माचिरम्॥५२॥
इत्याज्ञप्तस्तथेत्युक्त्वा प्रणम्येशं महोदरः। जगाम वायुवेगेन यत्र रामो व्यवस्थितः॥५३॥
समासाद्य स तं देशं दृष्ट्वा रामं महामुनिम्। तपस्यंतमिदं वाक्यमुवाच विनयान्वितः॥५४॥
द्रष्टुमिच्छति शम्भुस्त्वां भृगुवर्यं तदाज्ञया। आगतोऽहं तदागच्छ तत्पादांबुजसन्निधिम्॥५५॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शीघ्रमुत्थाय भार्गवः। तदाज्ञां शिरसानन्द्य ततेति प्रत्यभाषत॥५६॥
ततो रामं त्वरोपेतः शंभुपार्श्वं महोदरः। प्रापयामास सहसा कैलासे नागसत्तमे॥५७॥
सहितं सकलैर्भूतैरिंद्राद्यैश्च सहामरैः। ददर्श भार्गवश्रेष्ठः शंकरं भक्तवत्सलम्॥५८॥
संस्तूयमानं मुनिभिर्नारदाद्यैस्तपोधनैः गंधर्वैरुपगायद्भिर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः॥५९॥
उपास्यमानं देवेशं गजचर्मधृताम्बरम्। भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्॥६०॥
धृतपिंगजटाधारं नागाभरणभूषितम्। प्रलम्बोष्ठभुजं सौम्यं प्रसन्नमुखपङ्कजम्॥६१॥
आस्थितं काञ्चने पट्टे गीर्वाणसमितौ नृप। उपासर्पत्तु देवेशं भृगुवर्यः कृतांजलिः॥६२॥

तब उनकी प्रणाम जय-जयकार के साथ स्तुति करते हुए, उन्हें प्रसन्न करके देवता लोग भगवान् शंकर से असुरों का मारने की प्रार्थना करने लगे।।४९।। उसके बाद हे राजन्! उन दानवों के वध को सुनकर देवों को वर देने वाले शम्भु महोदर (इन्द्र) से बोले।।५०।। कि हिमालय के दक्षिण भाग में परशुराम नाम के महातपस्वी अत्यन्त तेजस्वी मुनिपुत्र मुझे उद्देश्य करके तपस्या कर रहे हैं।।५१।। हे इन्द्र! वहाँ जाकर तुम आज ही मेरा आदेश बताकर तपस्या करते हुए उनको अतिशीघ्र यहाँ ले आओ।।५२।। इस प्रकार जब इन्द्र को भगवान् शंकर ने आज्ञा दी तो इन्द्र ऐसा ही होगा, महाराज! ऐसा कहकर भगवान् शंकर को प्रणाम करके वायु के समान वेग से वहाँ गये जहाँ कि परशुराम तपस्या कर रहे थे।।५३।। इसके बाद उस स्थान पर पहुँचकर जहाँ कि परशुराम तप कर रहे थे तथा उन तपरत महामुनि परशुराम को देखकर विनम्रता से नतमस्तक इन्द्र ने यह वाक्य कहा।।५४।। कि हे भृगुश्रेष्ठ! भगवान् शंकर की आज्ञा है कि वे आपको देखना चाहते हैं। मैं इसीलिये यह आपको बताने आया हूँ कि आप उन भगवान् शंकर के चरणकमलों में जाओ।।५५।। इस प्रकार इन्द्र के उस वचन को सुनकर भार्गव परशुराम शीघ्र उठकर भोलेनाथ की आज्ञा को शिरोधार्य कर, वैसे ही होगा, इस प्रकार बोले।।५६।। उसके बाद शीघ्र गये हुए इन्द्र ने परशुराम को अचानक पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर्वत पर भगवान् शंकर केपास पाया।।५७।। भार्गवश्रेष्ठ परशुराम ने समस्त भूतों के सहित इन्द्रादि सकल देवताओं के साथ भक्तवत्सल शंकर को देखा।।५८।। जिन भगवान् शंकर की नारदादि तपस्वी लोग स्तुति कर रहे थे, गन्धर्व लोग स्तुति गाना गा रहे थे और अप्सरायें नृत्य कर रही थीं।।५९।। जो भगवान् शंकर गजचर्म वस्त्र को पहने हुए थे, जिनके समस्त शरीर पर श्मशान की भस्म लगी हुई थी, जिनके तीन नेत्र थे, शिखर में चन्द्रमा सुशोभित था।।६०।। पीली-पीली जटाओं को धारण किये हुए थे, नाग जिनके आभूषण थे, जो लम्बे ओष्ठ और लम्बी भुजाओं वाले थे, बहुत ही सौम्य एवं प्रसन्न मुखकमल वाले थे।।६१।। वे वाणीरूप वाण वाले सोने के आसन पर बैठे हुए थे। ऐसे उन महादेव के पास हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुये भृगुश्रेष्ठ परशुराम पहुँचे।।६२।।

श्रीकण्ठदर्शनोद्वृत्तरोमांचांचितविग्रहः। वाष्पात्तु सिक्त कायेन स तु गत्वा हरांतिकम्॥६३॥
भक्त्या ससंभ्रमं वाचा हर्षगद्गदयासकृत्। नमस्ते देवदेवेति व्यालपन्नाकुलाक्षरम्॥६४॥
पपात संस्पृशन्मूर्ध्ना चरणौ पुरविद्विपः। पश्यतां देववृन्दानां मध्ये भृगुकुलोद्वहम्॥६५॥
तमुत्थाप्य शिवः प्रीतः प्रसन्नमुखपंकजम्। रामं मधुरया वाचा प्रहसन्नाह सादरम्॥६६॥
इमे दैत्यगणैः क्रांताः स्वाधिष्ठानात्परिच्युताः। अशक्नुवंतस्तान्हंतुं गीर्वाणा मामुपागताः॥६७॥
तस्मान्ममाज्ञया राम देवानां च प्रियेप्सया। जहि दैत्यगणान्सर्वान्समर्थस्त्वं हि मे मतः॥६८॥
ततो रामोऽब्रवीच्छर्वं प्रणिपत्य कृतांजलिः। शृण्वतां सर्वदेवानां सप्रश्रयमिदं वचः॥६९॥
स्वामिन्न विदितं किं ते सर्वज्ञस्याखिलात्मनः। तथापि विज्ञापयतो वचनं मेऽवधारय॥७०॥
यदि शक्रादिभिर्देवैरखिलैरमरारयः। न शक्या हंतुमेकस्य शक्याः स्युस्ते कथं मम॥७१॥
अनस्त्रज्ञोऽस्मि देवेश युद्धानामप्यकोविदः। कथं हनिष्ये सकलान्सुरशत्रूननायुधः॥७२॥
इत्युक्तस्तेन देवेशः सितं कालाग्निसप्रभम्। शैवमस्त्रमयं तेजो ददौ तस्मै महात्मने॥७३॥
आत्मीयं परशुं दत्त्वा सर्वशस्त्राभिभावकम्। राम माह प्रसन्नात्मा गीर्वाणानां तु शृण्वताम्॥७४॥
मत्प्रसादेन सकलान्सुरशत्रून्विनिघ्नतः। शक्तिर्भवतु ते सौम्य समस्तारिदुरासदा॥७५॥
अनेनैवायुधेन त्वं गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः। स्वयमेव च वेत्सि त्वं यथावद्युद्धकौशलम्॥७६॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्तस्ततो रामः शंभुना तं प्रणम्य च। जग्राह परशुं शैवं विबुधारिवधोद्यतः॥७७॥

उस समय भगवान् शंकर के दर्शन से परशुराम के शरीर पर रोमांच खड़े हो गये तथा पसीने सिक्त शरीर से युक्त उन्होंने भगवान् के पास जाकर भक्ति के कारण लड़खड़ाती तथा हर्ष के कारण अनेकों बार गद्गद् वाणी से अनेकों बार नमस्ते महादेव! नमस्ते महादेव! यह लटकते सर्पों के कारण कुछ आकुल अक्षरों वाली बोलते हुए त्रिपुरारि शंकर के चरणों में शिर रखकर गिर गये।।६३-६४½।। उन समस्त देवों के मध्य में भृगुकुल को वहन करने वाले उन परशुराम को उठाकर प्रसन्न मुखकमल परशुराम से प्रसन्न शिव ने मुधर वाणी से आदरसहित हँसते हुए कहा।।६४½-६६।। भगवान् शंकर ने परशुराम से कहा कि ये सब दैत्यों के सताये हुए उनके द्वारा इनके स्थान देवलोक से भगाये हुए, उनको मारने में असमर्थ देवता लोग मेरे पास आये हैं।।६७।। इसलिये हे राम! मेरी आज्ञा से और देवों का प्रिय करने की इच्छा से समस्त दैत्यों को वधकर दो तथा तुम इस कार्य में समर्थ हो, यह मुझे विश्वास है।।६८।।

उसके बाद परशुराम ने हाथ जोड़कर प्रणाम करके सब देवों के सुनते हुए भगवान् शंकर से यह आधारयुक्त वचन कहा।।६९।। हे स्वामी! आप मेरे मन की सब बातें जानते हैं, फिर भी मैं आपको बताते हुए कह रहा हूँ, अतः मेरी बात सुनें।।७०।। यदि समस्त देवों द्वारा एक भी शत्रु नहीं मारा जा सका तो मैं कैसे उन सबको मार पाऊँगा?।।७१।। हे देवाधिदेव महादेव! मैं अस्त्र चलाना भी नहीं जानता हूँ तथा युद्धों की कला भी नहीं जानता, अतः मैं विना अस्त्र वाला व्यक्ति कैसे समस्त असुरों के शत्रुओं को मार सकूँगा?।।७२।। जब परशुराम ने ऐसा कहा, तब देवेश शंकर ने उन महात्मा को कालाग्नि के समान शैव अस्त्रमय तेज को प्रदान कर दिया।।७३।। तथा अपने परशु को प्रदान करके प्रसन्नात्मा शिव ने सब देवों के सुनते हुए सब शस्त्रों के संरक्षक परशुराम से कहा।।७४।। कि मेरी कृपा से हे सौम्य! समस्त शत्रुओं को मारने की तथा समस्त शत्रुओं से रहित करने वाली तुम्हारे पास शक्ति होगी।।७५।। इस आयुध को लेकर तुम जाओ और शत्रुओं से युद्ध करो। तुम स्वयं ही यथावत् युद्ध-कौशल जानते हो।।७६।। वशिष्ठ ने कहा कि

ततः स शुशुभे रामो विष्णुतेजोंऽशसंभवः। रुद्रभक्त्या समायुक्तो द्युत्येव सवितुर्महः॥७८॥
सोऽनुज्ञातस्त्रिनेत्रेण देवैः सर्वैः समन्वितः। जगाम हंतुमसुरान्युद्धाय कृतनिश्चयः॥७९॥
ततोऽभवत्पुनर्युद्धं देवानामसुरैः सह। त्रैलोक्यविजयोद्युक्तै राजन्नतिभयंकरम्॥८०॥
अथ रामो महाबाहुस्तस्मिन्युद्धे सुदारुणे। क्रुद्धः परशुना तेन निजघान महासुरान्॥८१॥
प्रहारैरशनिप्रख्यैर्निघ्नन्दैत्यान्सहस्रशः। चचार समरे रामः क्रुद्धः काल इवापरः॥८२॥
हत्वा तु सकलान्दैत्यान्देवान्सर्वानहर्षयत्। क्षणेन नाशयामास रामः प्रहरतां वरः॥८३॥
रामेण हन्यमानास्तु समस्ता दैत्यदानवाः। ददृशुः सर्वतो रामं हतशेषा भयान्विता;॥८४॥
हतेष्वसुरसंघेषु विद्रुतेषु च कृत्स्नशः। राममामंत्र्य विबुधाः प्रययुस्त्रिदिवं पुनः॥८५॥
रामोऽपि हत्वा दितिजानभ्यनुज्ञाप्य चामरान्। स्वमाश्रमं समापेदे तपस्यासक्तमानसः॥८६॥
मृगव्याधप्रतिकृतिं कृत्वा शम्भोर्महामतिः। भक्त्या संपूजयामास स तस्मिन्नाश्रमे वशी॥८७॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा हृद्यैर्नैवेद्यैरभिवन्दनैः। स्तोत्रैश्च विधिवद्भक्त्या परां प्रीतिमुपानयत्॥८८॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादेऽर्जुनोपाख्याने चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥२४॥

उसके बाद जब शंकर भगवान् ने परशुराम से इस प्रकार कहा, तब शंभु को प्रणाम कर, देवों के शत्रुओं को मारने के लिये उद्यत परशुराम ने परशु को ग्रहण कर लिया॥७७॥ उसके बाद वे राम विष्णु के तेज के अंश से उत्पन्न रुद्र की भक्ति से समायुक्त हो सूर्य की महान् कान्ति ही हो गये॥७८॥ तब वे त्रिनेत्र भगवान् शंकर की अनुमति प्राप्त कर सब देवों से समन्वित सब असुरों को मारने को युद्ध का निश्चय कर चल दिये॥७९॥ उसके बाद हे राजन्! तीनों लोकों की विजय के लिये उद्यत असुरों के साथ देवताओं का पुनः अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ॥८०॥ अतः उस भयंकर युद्ध में महाबाहु परशुराम ने क्रोधित होकर फरसा से महान् असुरों को मार दिया॥८१॥ वज्र मुख्य अस्त्रों से हजारों शत्रुओं को मारते हुए क्रुद्ध परशुराम दूसरे काल के समान युद्ध में विचरण करने लगे॥८२॥ श्रेष्ठ परशुराम ने समस्त दैत्यों को मारकर सब देवों को प्रसन्न कर दिया और क्षण भर में प्रहार करने वालों का नाशकर दिया॥८३॥ परशुराम द्वारा सब दैत्य और दानव मार दिये गये तथा जो मरने से शेष बचे थे, वे भय के कारण सर्वत्र परशुराम को देख रहे थे॥८४॥ असुरों के मर जाने पर और भाग जाने पर सब देवता परशुराम को आमन्त्रण देकर स्वर्ग को चले गये॥८५॥ उसके बाद परशुराम उन सब दैत्यों को मारकर तथा देवताओं की अनुमति लेकर अपने आश्रम में आ गये और फिर तपस्या करने लगे॥८६॥ और फिर उस आश्रम में जितेन्द्रिय महामति परशुराम भगवान् शिव की वही मृग व्याध की मूर्ति बनाकर उसकी भक्ति से पूजा करने लगे॥८७॥ तथा गन्ध, पुष्प तथा हृद्य नैवेद्यों से अभिवन्दना करते हुए स्तोत्रपाठ करते हुए विधिवत् भक्ति द्वारा पराप्रीति को प्राप्त हुए॥८८॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद २४वां अध्याय शिव द्वारा परशुराम को आयुध देना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे अर्जुनोपाख्याने भार्गवचरिते

जामदग्नेयकृतशिवस्तुति ब्राह्मणबालकरक्षणञ्च

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

ततस्तद्भक्तियोगेन स प्रीतात्मा जगत्पतिः। प्रत्यक्षमगमत्तस्य सर्वैः सह मरुद्गणैः॥१॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं त्रिनेत्रं चंद्रशेखरम्। वृषेंद्रवाहनं शंभुं भूतकोटिसमन्वितम्॥२॥
ससंभ्रमं समुत्थाय हर्षेणाकुललोचनः। प्रणाममकरोद्भक्त्या शर्वाय भुवि भार्गवः॥३॥
उत्थायोत्थाय देवेशं प्रणम्य शिरसासकृत्। कृतांजलिपुटो रामस्तुष्टाव च जगत्पतिम्॥४॥

राम उवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते परमेश्वर। नमस्ते जगतो नाथ नमस्ते त्रिपुरांतकः॥५॥
नमस्ते सकलाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल। नमस्ते सर्वभूतेश नमस्ते वृषभध्वज॥६॥
नमस्ते सकलाधीश नमस्ते करुणाकर। नमस्ते सकलावास नमस्ते नीललोहित॥७॥
नमः सकलदेवारिगणनाशाय शूलिने। कपालिने नमस्तुभ्यं सर्वलोकैकपालिने॥८॥
श्मशानवासिने नित्यं नमः कैलासवासिने। नमोऽस्तु पाशिने तुभ्यं कालकूटविपाशिने॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद अर्जुन के उपाख्यान में

अध्याय-२५

परशुराम द्वारा शिव की स्तुति और ब्राह्मण बालक की रक्षा

वशिष्ठ ने कहा कि उसके बाद उस भक्तियोग से वह प्रसन्नात्मा जगत्पति भगवान् शंकर सब मरुद्गणों के साथ परशुराम के सामने प्रत्यक्ष अपने वास्तविक रूप में उपस्थित हुए।।१।। तब देवों के देव महादेव, तीन नेत्रवाले, शिखा में चन्द्र धारण करने वाले, वैल के वाहन वाले, करोड़ों भूतों से युक्त उन भगवान् शिव को देखकर हड़बड़ाहट के साथ उठकर हर्ष से व्याकुल नेत्र परशुराम ने भूमि पर शिर रखकर भक्तिपूर्वक भगवान् शिव को प्रणाम किया।।२-३।। तथा परशुराम ने उन देवेश्वर भगवान् शिव को अनेकों बार उठ उठ कर शिर से प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए राम ने जगत्पति शंकर को प्रसन्न कर लिया।।४।।

राम ने कहा कि हे देवों के देव! हे परमेश्वर! तुम्हें नमस्कार है। हे संसार के स्वामी! हे त्रिपुरासुर! राक्षस का अन्त करने वाले, तुम्हें नमस्कार है।।५।। हे समस्त प्रपंच के अध्यक्ष! हे भक्तवत्सल शंकर! तुम्हें नमस्कार है। हे सब भूतों के स्वामी! सब प्राणियों को पैदा करने वाले, वृषभ की ध्वजा वाले शिव! तुम्हें नमस्कार है।।६।। हे सकलाधीश! हे सब पर करुणा करने वाले! तुम्हें नमस्कार है, हे समस्तकलाओं के आवास! हे नीललोहित! आपको नमन है।।७।। हे समस्त देवों के शत्रु समूहों का नाश करने वाले! शूल धारण करने वाले! आपको नमस्कार है। हे नरमुण्डधारण करने वाले! तुम्हें नमस्कार है, हे सभी लोकों का पालन करने वाले! आपको नमस्कार है।।८।। हे नित्य श्मशान में रहने वाले! आपको नमस्कार है। हे कैलासवासी! आपको नमस्कार है। हे पाशधारण करने वाले!

विभवेऽमरवंद्याय प्रभवे ते स्वयंभुवे। नमोऽखिलजगत्कर्मसाक्षिभूताय शंभवे॥१०॥
नमस्त्रिपथगाफेनभासिगार्द्धेंदुमौलिने। महाभोगींद्रहाराय शिवाय परमात्मने॥११॥
भस्मसंच्छन्नदेहाय नमोऽर्काग्नींदुचक्षुषे। कपर्दिने नमस्तुभ्यमंधकारसुरमर्द्दिने॥१२॥
त्रिपुरध्वंसिने दक्षयज्ञविध्वंसिने नमः। गिरिजाकुचकाश्मीरविरंजितमहोरसे॥१३॥
महादेवाय महते नमस्ते कृत्तिवाससे। योगिध्येयस्वरूपाय शिवायाचिंत्यतेजसे॥१४॥
स्वभक्तहृदयांभोजकर्णिकामध्यवर्त्तिने। सकलागमसिद्धांतसाररूपाय ते नमः॥१५॥
नमो निखिलयोगेंद्रबोधनायामृतात्मने। शंकरायाखिलव्याप्तमहिम्ने परमात्मने॥१६॥
नमः शर्वाय शांताय ब्रह्मणे विश्वरूपिणे। आदिमध्यांतहीनाय नित्यायाव्यक्तमूर्तये॥१७॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः। नमो वेदांतवेद्याय विश्वविज्ञानरूपिणे॥१८॥
नमः सुरासुरश्रेणिमौलिपुष्पार्चितांघ्रये। श्रीकंठाय जगद्धात्रे लोककर्त्रे नमोनमः॥१९॥
रजोगुणात्मने तुभ्यं विश्वसृष्टिविधायिने। हिरण्यगर्भरूपाय हराय जगदादये॥२०॥
नमो विश्वात्मने लोकस्थितिव्यापारकारिणे। सत्त्वविज्ञानरूपाय पराय प्रत्यगात्मने॥२१॥

हे कालकूट नामक प्राणनाशक विष को खाने वाले! आपको नमस्कार है।।९।। हे विभव (ऐश्वर्य) में देवों के वन्दनीय तथा संसार को पैदा करने वाले! स्वयंभू आपको नमस्कार है। हे समस्त संसार के प्राणियों के कर्मों को साक्षात् देखने वाले शम्भु आपको नमस्कार है।।१०।। हे मस्तक पर गंगा नदी फेन और अर्धचन्द्र को धारण करने वाले! आपको नमस्कार है, हे महान् सर्पराज के हार को धारण करने वाले परमात्मा शिव! आपको नमस्कार है।।११।। हे भस्म से ढके हुए शरीर वाले! हे सूर्य, अग्नि और चन्द्र तीन नेत्रों को धारण करने वाले! आपको नमस्कार है। अन्धकासुर का मर्दन करने वाले कपर्दी! आपको नमस्कार है।।१२।। हे त्रिपुरासुर का नाश करने वाले! हे दक्षयज्ञ का विध्वंस करने वाले! हे केशर द्रव से लिप्त पार्वती के कुचकलशों को महान् हृदय में रखने वाले! तुम्हें नमस्कार है।।१३।। हे सामान्य जनासम्भव, परन्तु योगियों द्वारा ध्यान करने योग्य स्वरूप वाले! तथा अचिन्तनीय तेज वाले शिव! आपको नमस्कार है। हे महान् महादेव! चर्मवस्त्र धारण करने वाले! आपको नमस्कार है।।१४।।

हे अपने भक्तों के हृदयकमलकर्णिका के मध्य वर्तमान रहने वाले! तुम्हें समस्त आगमशास्त्र के सिद्धान्तों के साररूप आपको नमस्कार है।।१५।। हे समस्त योगेन्द्रों को बोध कराने के लिए अमृतात्मा समस्त संसार में व्याप्त महिमा वाले परमात्मा शंकर! आपको नमस्कार है।।१६।। हे सबका संहार करने वाले (शर्व)! हे शान्त! विश्वरूपी ब्रह्म! आपको नमस्कार है। जिनका आदि मध्य और अन्त ही नहीं है तथा जो सदा रहने वाले हैं; परन्तु अव्यक्त (न दिखायी देने वाले) हैं, ऐसे महादेव! आपको नमस्कार है।।१७।। हे देवताओं और असुरों के मस्तकों में लगे हुए पुष्पों से अर्चित पैरों वाले! आपको नमस्कार है। हे श्रीण्ठ! हे संसार को धारण करने वाले! हे संसार को बनाने वाले! तुम्हें नमस्कार है।।१८।। हे व्यक्त अव्यक्त स्वरूपवाले, हे स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले, आपको नमस्कार है। हे वेदान्तवेद्य! हे विश्वज्ञानरूपी! आपको नमस्कार है।।१९।। हे रजोगुण आत्मा वाले! हे विश्व की सृष्टि करने वाले! हिरण्यगर्भ रूप! संसार के प्राणियों के दुःख हरने वाले! हे संसार के आदि शिव! आपको नमस्कार है।।२०।। हे विश्व की आत्मा संसार की स्थिति सम्बन्धी समस्त कार्य करने वाले! सत्त्व के विज्ञान रूप सबसे परे, परन्तु आत्मा में प्रत्यक्ष रहने वाले, आपको नमस्कार है।।२१।।

तमोगुणविकाराय जगत्संहारकारिणे। कल्पान्ते रुद्ररूपाय परापर विदे नमः॥२२॥
अविकाराय नित्याय नमः सदसदात्मने। बुद्धिबुद्धिप्रबोधाय बुद्धींद्रियविकारिणे॥२३॥
वस्वादित्यमरुद्भिश्च साध्यरुद्राश्विभेदतः। यन्मायाभिन्नमतयो देवास्तस्मै नमोनमः॥२४॥
अविकारमजं नित्यं सूक्ष्मरूपमनौपमम्। तव यत्तन्न जानंति योगिनोऽपि सदाऽमलाः॥२५॥
त्वामविज्ञाय दुर्ज्ञेयं सम्यग्ब्रह्मादयोऽपि हि। संसरंति भवे नूनं न तत्कर्मात्मकाश्चिरम्॥२६॥
यावन्नोपैति चरणौ तवाज्ञानविघातिनः। तावद्भ्रमति संसारे पंडितोऽचेतनोऽपि वा॥२७॥
स एव दक्षः स कृती स मुनिः स च पंडितः। भवतश्चरणांभोजे येन बुद्धिः स्थिरीकृता॥२८॥
सुसूक्ष्मत्वेन गहनः सद्भावस्ते त्रयीमयः। विदुषमपि मूढेन स मया ज्ञायते कथम्॥२९॥
अशब्दगोचरत्त्वेन महिम्नस्तव सांप्रतम्। स्तोतुमप्यनलं सम्यक्त्वा महं जडधीर्यतः॥३०॥
तस्मादज्ञानतो वापि मया भक्त्यैव संस्तुतः। प्रीतश्च भव देवेश ननु त्वं भक्तवत्सलः॥३१॥

हे संसार का संहार करने के लिए तमोगुण के विकार! आपको नमस्कार है। हे कल्प के अन्त में रुद्र रूप धारण करने वाले! पर अपर और पार को जानने वाले! आपको नमस्कार[1] है।।२२।। जिनमें कभी विकार नहीं होता जो न कभी घटते हैं और न बढ़ते हैं, जो नित्य समान रहते हैं ऐसे सत् और असत् आत्मा वाले अर्थात् जो हैं और नहीं भी हैं, ऐसे रूप वाले, आपको नमस्कार है। हे बुद्धि में बुद्धि का बोध कराने वाले बुद्धीन्द्रिय विकार वाले शिव आपको नमस्कार है।।२३।। जो वसु, आदित्य और मरुद्गणों साध्यरुद्र और अश्विभेद से जो माया से भिन्न मत वाले देवता हैं, उनको नमस्कार है।।२४।। जिनमें कोई विकार नहीं होता जो अजन्मा नित्य सूक्ष्म और अनुपम हैं, जिनको सदा निर्मल हृदय वाले योगी भी नहीं जानते, ऐसे आपको नमस्कार है।।२५।। कनिठाई से जानने योग्य आपको ब्रह्मा आदि भी सम्यक् प्रकार से न जानकर निश्चय ही संसार में भ्रमण करते हैं, फिर भी चिरकाल तक तुम्हारा कर्मात्मक व्यवहार को नहीं जान पाते हैं।।२६।।

अज्ञान में पड़े हुए लोग जब तक आपके चरणों में नहीं आते हैं, तब तक वे संसार में भ्रमण करते हैं, फिर वे चाहे पण्डित हों अथवा मूर्ख हों।।२७।। वह मुनष्य दक्ष (कुशल) है, वही कृती (धन्य) है, वही मुनि है और वही पण्डित है, जिसने आपके चरणकमलों में बुद्धि को स्थित कर दिया है।।२८।। जो शिव विद्वानों को बहुत ही सूक्ष्म होने से गहन है और सद्भाव से सत्त्वरज और तम तीन गुणों वाला है, वह मुझ मूर्ख द्वारा कैसे जाना जा सकता है।।२९।। राम ने कहा कि हे शिव! आपकी महिमा को न शब्द से पुकारा जा सकता है, न इन्द्रियों से समझा सोचा सुना हुआ देखा चखा अथवा सूंघा जा सकता है। इस समय ऐसे आपकी मैं जड़मति स्तुति कैसे कर सकता हूँ।।३०।। इसलिये हे महादेव! न जानते हुए मेरी भक्ति से स्तुति किये जाते हुए आप प्रसन्न हो जाओ; क्योंकि आप निश्चय भक्तों पर प्रेम करने वाले हैं।।३१।।

---

१. यहाँ इस वैज्ञानिक रहस्य पर प्रकाश डाला गया है कि जब रजोगुण का उद्रेक होता है तब सृष्टि की रचना होती है तथा सृष्टि का पालन सत्त्वगुण की अधिकता होने पर होता है तथा जब तमोगुण की अधिकता होती है, तब समस्त सृष्टि का विनाश तथा तीनों की सम अवस्था प्रलय का स्वरूप है अर्थात् सृष्टिकाल में जब सत्त्व और रज का दबाकर तमोगुण की अधिकता हो जाती है, तब प्रलय हो जाता है और फिर प्रलयकाल में तीनों गुण समान रहते हैं। यहाँ तीनों का कर्ता शिव को माना गया है।

वसिष्ठ उवाच

इति स्तुतस्तदा तेन भक्त्या रामेण शंकरः। मेघगंभीरया वाचा तमुवाच हसन्निव॥३२॥

भगवानुवाच

रामाहं सुप्रसन्नोऽस्मि शौर्यशालितया तव। तपसा मयि भक्त्या च स्तोत्रेण च विशेषतः॥३३॥

वरं वरय तस्मात्त्वं यद्यदिच्छसि चेतसा। तुभ्यं तत्तदशेषेण दास्याम्यहमशेषतः॥३४॥

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्तो देवदेवेन तं प्रणम्य भृगूद्वहः। कृतांजलिपुटो भूत्वा राजन्निदमुवाच ह॥३५॥

यदि देव प्रसन्नस्त्वं वरार्होऽस्मि च यद्यहम्। भवतस्तदभीप्सामि हेतुमस्त्राण्यशेषतः॥३६॥

अस्त्रे शस्त्रे च शास्त्रे च न मत्तोऽभ्यधिको भवेत्।
लोकेषु मां रणे जेता न भवेत्त्वत्प्रसादतः॥३७॥

वसिष्ठ उवाच

तथेत्युक्त्वा ततः शंभुरस्त्रशस्त्राण्य शेषतः। ददौ रामाय सुप्रीतः समंत्राणि क्रमान्नृप॥३८॥

सप्रयोगं ससंहारमस्त्रग्रामं चतुर्विधम्। प्रसादाभिमुखो रामं ग्राहयामास शंकरः॥३९॥

इस प्रकार परशुराम ने शंकर जी की स्तुति की। अब वशिष्ठ ने कहा कि इसके बाद हे राजन् इस प्रकार जब भक्तिपूर्वक परशुराम ने शंकर की स्तुति की, तब शंकर जी मेघ के समान गम्भीर वाणी से हँसते हुए के समान उनसे बोले।।३२।।

भगवान् शिव ने कहा कि हे परशुराम! तुम्हारे शौर्य की शालीनता प्रशंसनीय है, तुम इतने शूर होते हुए भी शालीन हो। अतः मैं प्रसन्न हूँ तथा यही नहीं, विशेषतः तुम्हारी तपस्या, तुम्हारी भक्ति और स्तुति से भी प्रसन्न हूँ।।३३।। इसलिये हे राम! जिसको तुम अपने मन से चाहते हो, ऐसे वर का वरण करो। अर्थात् मनवांछित वर माँगो। मैं तुम्हें तुम जितने भी वर माँगोगे समस्त वर दूँगा।।३४।।

वशिष्ठ ने कहा— हे राजन्! जब भगवान् शंकर ने ऐसा कहा तब भृगु कुलोद्भव परशुराम ने उनको प्रणाम करके, अपने दोनों हाथों को जोड़कर यह कहा।।३५।। हे देव! यदि आप प्रसन्न हैं तथा यदि मैं वर देने के योग्य हूँ तो मैं आपसे समस्त अस्त्रों को चाहता हूँ।।३६।। अस्त्र-शस्त्र और शास्त्र ज्ञान में कोई भी मुझसे अधिक न होवे तथा हे भगवन्! आपकी कृपा से तीनों लोकों में मुझे जीतने वाला कोई व्यक्ति न होवे।।३७।।

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! इसके बाद शंकर जी ने वैसा ही होगा, ऐसा कहकर शम्भु ने समस्त अस्त्र-शस्त्रों को क्रमशः मन्त्रसहित (उनको बनाने की थ्यौरी सहित) क्रमशः एक एक करके प्रसन्न होकर परशुराम को दे दिया।।३८।। तथा सम्प्रयोग अर्थात् अस्त्रों को सम्यक् प्रकार से प्रयोग करना तथा उनका संहार करना अर्थात् उन्हें नष्ट करना, यह सब चारों प्रकार भी उन्होंने परशुराम को बता दिये[1]। इस प्रकार प्रसन्न मुख शिव ने परशुराम को सब शस्त्र ग्रहण करा दिये।।३९।।

---

१. किसी अस्त्र, शस्त्र, यन्त्र, मशीन आदि में चार ही प्रकार होते है—१. मन्त्र—उसको बनाने की थ्यौरी अर्थात् विचार फिर उसका बनाना अर्थात् तन्त्र जिसे आजकल प्रैक्टिकल कहा जाता है। फिर उसे सम्यक् प्रयोग की बात आती है तथा अन्त में उस अस्त्र शस्त्र के विनाश की बात आती है; क्योंकि जिस अस्त्र शस्त्र से विनाश किया जा सकता है, उसको नष्ट करने की कला भी जाननी चाहिये। तभी कल्याण है, अन्यथा संसार नष्ट हो जायेगा।

असंगवेगं शुभ्राश्वं सुध्वजं च रथोत्तमम्। इषुधी चाक्षयशरौ ददौ रामाय शंकरः॥४०॥
अभेद्यमजरं दिव्यं दृढज्यं विजयं धनुः। सर्वशस्त्रसहं चित्रं कवचं च महाधनम्॥४१॥
अजेयत्वं च युद्धेषु शौर्यं चाप्रतिमं भुवि। स्वेच्छया धारणे शक्तिं प्राणानां च नराधिप॥४२॥
ख्यातिं च बीजमंत्रेण तन्नाम्ना सर्वलौकिकीम्। तपःप्रभावं च महत्प्रददौ भार्गवाय सः॥४३॥
भक्तिं चात्मनि रामाय दत्वा राजन्यथोचिताम्। सहितः सकलैर्भूतैश्चामरैश्चंद्रशेखरः॥४४॥
तेनैव वपुषा शंभुः क्षिप्रमंतरधाद्धरः। कृतकृत्यस्ततो रामो लब्ध्वा सर्वमभीप्सितम्॥४५॥
अदृश्यतां गते शर्वे महोदरमुवाच ह। महोदर मदर्थे त्वमिदं सर्वमेशषतः॥४६॥
रथचापादिकं तावत्परिरक्षितुमर्हसि। यदा कृत्यं ममैतेन तदानीं त्वं मया स्मृतः।
रथचापादिकं सर्वं प्रहिणु त्वं मदंतिकम्॥४७॥

वसिष्ठ उवाच

तथेत्युक्त्वा गते तस्मिन्भृगुवर्यो महोदरे। कृतकृत्यो गुरुजनं द्रष्टुं गंतुमियेष सः॥४८॥
गच्छन्नथ तदासौ तु हिमाद्रिवनगह्वरे। विवेश कंदरं रामो भाविकर्मप्रचोदितः॥४९॥
स तत्र ददृशे बालं धृतप्राणमनुद्रुतम्। व्याघ्रेण विप्रतनयं रुदंतं भीतभीतवत्॥५०॥
दृष्ट्वानुकंपहृदयस्तत्परित्राणकातरः। तिष्ठतिष्ठेति तं व्याघ्रं वदन्नुच्चैरथान्वयात्॥५१॥
तमनुद्रुत्य वेगेन चिरादिव भृगूद्वहः। आससाद वने घोरं शार्दूलमतिभीषणम्॥५२॥

असंगवेग, शुभ्राश्व, सुध्वज और रथोत्तम बाण को धारण करने वाला तरकश और दो अक्षय बाण शंकर जी ने परशुराम को दिये।।४०।। तथा अभेद्य अजर दिव्य दृढ़-प्रत्यञ्चावाला विजयधनुष दिया तथा सब शस्त्रों को सहन करने वाला रंग-बिरंगा महाधन नामक कवच प्रदान किया।।४१।। हे राजन्! युद्ध में जिसे पृथ्वी पर कोई न जीत सके ऐसा अनुपम शौर्य तथा अपनी इच्छा से प्राणों को धारण करने की शान्ति भी प्रदान की।।४२।। बीजमन्त्र द्वारा उनके नाम से समस्त संसार में होने वाली ख्याति और तप का महान् प्रभाव यह सब कुछ शंकर ने परशुराम के लिए प्रदान किया।।४३।। इसके बाद हे राजन्! अपने लिये यथोचित अपार भक्ति प्रदान कर समस्त भूतों और देवों सहित चन्द्रशेखर उसी शरीर से अन्तर्धान हो गये। उसके बाद परशुराम सब मनवांछित वरों को पाकर कृत्य-कृत्य हो गये।।४४।। भगवान् शंकर के अदृश्य हो जाने पर परशुराम ने इन्द्र से कहा कि हे इन्द्र! मेरे लिये तुम यह सब रथ चापादिक की तब तक रक्षा करनी है, जब तक मेरा कृत्य इसके द्वारा हो, तब मैं तुम्हें स्मरण करूँगा। तब रथ चापादिक को मेरे पास ले आना।।४६-४७।।

वशिष्ठ ने कहा हे राजन्! वैसा ही होगा। यह कहकर जब इन्द्र चले गये तब महोदर (इन्द्र) के चले जाने पर कृतकृत्य हुए भृगुश्रेष्ठ परशुराम ने अपने गुरुजनों, दादा, दादी, पिता आदि को देखने की इच्छा प्रकट की।।४८।। तब इसके बाद जाते हुए भाविकर्म से प्रेरित (होनहार के कारण) उन्होंने हिमालय के गहन वन में प्रवेश किया।।४९।। वहाँ उन्होंने सिंह द्वारा पीछा किये जाते हुए प्राण बचाने के लिए भय से कांपते हुए एक ब्राह्मण के पुत्र को देखा।।५०।। यह देखकर उस बच्चे के प्राण बचाने के लिये व्याकुल उनका हृदय काँपने लगा, तब उन्होंने उस व्याघ्र से उच्च स्वर से कहा कि ठहरो ठहरो।।५१।। तब बहुत वेग से उस सिंह का पीछा करके भृगुश्रेष्ठ परशुराम

व्याघ्रेणानुद्रुतः सोऽपि पलायन्वनगह्वरे। निपपात द्विजसुतस्त्रस्तः प्राणभयातुरः॥५३॥
रामोऽपि क्रोधरक्ताक्षो विप्रपुत्रपरीप्सया। तृणमूलं समादाय कुशास्त्रेणाभ्यमंत्रयत्॥५४॥
तावत्तरक्षुर्बलवानाद्रवत्पतितं द्विजम्। दृष्ट्वा ननाद सुभृशं रोदसी कम्पयन्निव॥५५॥
दग्ध्वा त्वस्त्राग्निना व्याघ्रं प्रहरन्तं नखांकुरैः। अकृतव्रणमेवाशु मोक्षयामास तं द्विजम्॥५६॥
सोऽपि ह्याग्निनिर्दग्धदेहः पाप्मा नभस्तले। गान्धर्वं वपुरास्थाय राममाहेति सादरम्॥५७॥
विप्रशापेन भो पूर्वमहं प्राप्तस्तरक्षुताम्। गच्छामि मोचितः शापात्त्वयाऽहमधुना दिवम्॥५८॥
इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन्रामो वेगेन विस्मितः। पतितं द्विजपुत्रं तं कृपया व्यवपद्यत॥५९॥
माभैरेवं वदन्वाणीमारादेव द्विजात्मजम्। परामृशत्तदंगानि शनैरुज्जीवयन्नृप॥६०॥
राणेणोत्थापितश्चैवं स तदोन्मील्य लोचने। विलोकयन्ददर्शाग्रे भृगुश्रेष्ठमवस्थितम्॥६१॥
भस्मीकृतं च शार्दूलं दृष्ट्वा विस्मयमागतः। गतभीराह कस्त्वं भोः कथं वेह समागतः॥६२॥
केन वायं निहंतुं मामुद्यतो भस्मसात्कृतः। तरक्षुर्भीषणाकारः साक्षान्मृत्युरिवापरः॥६३॥
भयसंमूढमनसो ममाद्यापि महामते। हतेऽपि तस्मिन्निखिला भान्ति वै तन्मया दिशः॥६४॥
त्वामेव मन्ये सकलं पिता माता सुहृद्गुरुः। परमापदमापन्नं त्वं मां समुपजीवयन्॥६५॥
आसीन्मुनिवरः कश्चिच्छांतो नाम महातपाः। पुत्रस्तस्यास्मि तीर्थार्थी शालग्राममयासिषम्॥६६॥

वन में अतिभीषण घोर शार्दूल के पास पहुंचे।।५२।। व्याघ्र द्वारा पीछा किया जाता हुआ, भागता हुआ, गहन वन में प्राण भय से आतुर ब्राह्मण पुत्र डरा हुआ गिर गया।।५३।। विप्र तनय के प्राण बचाने की इच्छा से परशुराम की उस समय क्रोध से आँखें लाल हो गयीं। तब उन्होंने तृण की मूल (घास का तिनका) हाथ में लेकर उसे कुश के अस्त्र से अभिमन्त्रित किया।।५४।। तब तक बलवान् लकड़बग्घा ने उस गिरे हुए ब्राह्मण सुत पर आक्रमण कर दिया, देखकर वह शिशु चिल्लाने लगा और कांपते हुए बहुत अधिक रोने लगा।।५५।। नाखूनों के अंकूरों से आक्रमण करते हुए व्याघ्र को परशुराम ने अस्त्र की अग्नि से जलाकर मार दिया तथा जिसके शरीर पर अभीघाव नहीं हुए थे, ऐसे उस द्विज को मुक्त करा दिया।।५६।। वह ब्रह्माग्निशस्त्र से जले हुए शरीर वाला पापात्मा आकाश में गान्धर्व के शरीर को धारण करके आदरसहित परशुराम से बोला।।५७।।

वह बोला कि हे परशुराम! एक ब्राह्मण के शाप से पूर्वकाल में मैं भेड़िया बन गया था। अब मैं आपके द्वारा शाप से मुक्त होकर स्वर्ग को जा रहा हूँ।।५८।। ऐसा कहकर उसके चले जाने पर आश्चर्यचकित परशुराम वेग से गिरे हुए द्विजपुत्र के पास गये और उसे अपनी कृपा से उपकृत किया।।५९।। तथा कहा कि हे पुत्र! तुम डरो मत, इस प्रकार बोलते हुए उस ब्राह्मणपुत्र के पास पहुंचे और फिर हे नृप! उन्होंने उस विप्रशिशु के अंगों को शीघ्र पुनरुज्जीवित किया।।६०।। परशुराम द्वारा उठाये गये उस विप्रशिशु ने तब आँखें खोलकर देखते हुए आगे भृगुश्रेष्ठ परशुराम को खड़े हुए देखा।।६१।। जलकर राख हुए शार्दूल को देखकर उस शिशु को आश्चर्य हुआ, तब भयरहित होकर उसने कहा कि तुम कौन हो और कहाँ से यहाँ आये हो?।।६२।। अथवा किसके द्वारा अर्थात् किस कारण से मुझे मारने को उद्यत सिंह को आपने भस्मसात् किया गया तथा वह भीषण आकारवाला भेड़िया साक्षात् दूसरी मृत्यु के समान था।।६३।। हे महाबुद्धिमान्! अभी भी भय से मेरा मन विचलित हो रहा है। उसके मर जाने पर भी मुझे सब दिशाओं में वही दिखायी दे रहा है।।६४।। अतः मैं आपको ही अपने माता-पिता, मित्र और गुरु मानता हूँ; क्योंकि परम आपत्ति में गिरते हुए मुझे आपने ही बचाया है।।६५।। उस विप्र सुत ने अपना परिचय बताते हुए

तस्मात्संप्रस्थितश्शैलं दिदृक्षुर्गंधमादनम्। नानामुनिगणैर्जुष्टं पुण्यं बदरिकाश्रमम्॥६७॥
गंतुकामोऽपहायाहं पंथानं तु हिमाचले। प्राविशन्गहनं रम्यं प्रदेशालोकनाकुलम्॥६८॥
दिशं प्राचीं समुद्दिस्य क्रोशमात्रमयासिषम्॥ ततो दिष्टवशेनाहं प्राद्रवं भयपीडितः॥६९॥
पतितश्च त्वया भूयो भूमेरुत्थापितोऽधुना। पित्रेव नितरां पुत्रः प्रेम्णात्यर्थं दयालुना।
इत्येष मम वृत्तांतः साकल्येनोदितस्तव॥७०॥

वसिष्ठ उवाच

इति पृष्टस्तदा तेन स्ववृत्तांतमशेषतः। कथयामास राजेन्द्र रामस्तस्मै यथाक्रमम्॥७१॥
ततस्तौ प्रीतिसंयुक्तौ कथयंतौ परस्परम्। स्थित्वा नाति चिरं कालमथ गंतुमियेष सः॥७२॥
अन्वीयमानस्तेनाथ रामस्तस्माद्गुहामुखात्। निष्क्रम्यावसथं पित्रोः संप्रतस्थे मुदान्वितः॥७३॥
अकृतव्रण एवासौ व्याघ्रेण भुवि पातितः। रामेण रक्षितश्चाभूद्यस्माद्व्याघ्रं विनिघ्नता॥७४॥
तस्मात्तदेव नामास्य बभूव प्रथितं भुवि। विप्रपुत्रस्य राजेंद्र तदेतत्सोऽकृतव्रणः॥७५॥
तदा प्रभृति रामस्य च्छायेवातपगता भुवि। बभूव मित्रमत्यर्थं सर्वावस्थासु पार्थिव॥७६॥
स तेनानुगतो राजन्भृगोरासाद्य सन्निधिम्। दृष्ट्वा ख्यातिं च सोऽभ्येत्व विनयेनाभ्यवादयत्॥७७॥
स ताभ्यां प्रियमाणयामाशीर्भिरभिनंदितः। दिनानि कतिचित्तत्र न्यवसत्तत्प्रियेप्सया॥७८॥
ततस्तयोरनुमते च्यवनस्य महामुने। आश्रमं प्रतिचक्राम शिष्यसंघैः समावृतम्॥७९॥

कहा कि शान्त नाम के कोई महातपस्वी मुनिवर थे, मैं उनका पुत्र हूँ और मैं शालिग्राम जाने की इच्छा से तीर्थार्थी था।।६६।। वहाँ से गन्धमादनपर्वत को देखने का इच्छुक मैं यहाँ आ गया, फिर अनेकों मुनियों द्वारा पूजनीय पुण्य बदरिकाश्रम को जाना चाहता था कि हिमालय पर्वत पर मार्ग भूलकर मैं रम्य प्रदेशों को देखने से प्रसन्न होकर इस गहन वन में घुस गया।।६७-६८।। तथा यहाँ मैं व्याघ्र और भेड़िया से भयभीत हो, यहाँ पर गिर गया तथा यहाँ पर अब आपने मुझे उठा लिया।। दयालु पिता के द्वारा जो पुत्र को प्रेम दिया जाता है, वही प्रेम आपने मुझे दिया है। यही मेरा समस्त वृत्तान्त है, जिस सबको मैंने आपको बता दिया।।७०।।

तब वशिष्ठ ने कहा—इस प्रकार जब उस बालक ने अपना सब वृत्तान्त बता दिया, तब हे राजन् परशुराम ने भी उसके द्वारा पूछा गया समस्त वृत्तान्त क्रमानुसार बता दिया।।७१।। इसके बाद वे दोनों एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक कहते हुए थोड़ी देर ठहर कर वह जाने की इच्छा करने लगा।।७२।। फिर उस बालक के द्वारा अनुसरण किया जाते हुए वे परशुराम उस गुफा के मुख से निकलकर प्रसन्नचित्त होकर अपने पिता के आश्रम की ओर चल पड़े।।७३।। शरीर पर विना किसी घाव वाला वह बालक, जिसे व्याघ्र ने भूमि पर गिरा दिया था तथा परशुराम ने जिसे बचाया था और व्याघ्र को मार दिया था।।७४।। इसलिये हे राजेन्द्र! उस विप्रपुत्र का वही नाम अकृतव्रण इस पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ।।७५।। उस समय से वह राम की छाया के समान पृथ्वी पर छाता बन गया अर्थात् वह उनका परम भक्त बन गया और हे राजन्! वह फिर परशुराम का सब अवस्थाओं मे अच्छा मित्र बन गया।।७६।। वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! उस बालक द्वारा अनुगत परशुराम अपने दादा भृगु के पास पहुंचे, वहाँ वे दोनों प्रेम करने वाले परदादा, परदादी के आशीर्वादों से अभिनन्दित हुए। वहाँ पर कुछ दिन उनका प्रिय करने की इच्छा से परशुराम ने और अकृतव्रण ने निवास किया। ।।७७-७८।। उसके बाद उन परदादा और परदादी भृगु और भृगुपत्नी दोनों की अनुमति से महामुनि च्यवन के आश्रम में जाकर उनके शिष्यों में सम्मिलित हो गये।।७९।।तब अपने अन्तःकरण

नियंत्रितातःकरणं तं च संशांतमानसम्। सुकन्या चापि तद्भार्यामवंदत महामनाः॥८०॥
ताभ्यां च प्रीतियुक्ताभ्यां रामः समभिनंदितः। और्वाश्रमं समापेदे द्रष्टुकामस्तपोनिधिम्॥८१॥
तं चाभिवाद्य मेधावी तेन च प्रतिनंदितः। उवास तत्र तत्प्रीत्या दिनानि कतिचिन्नृप॥८२॥
विसृष्टस्तेन शनकैर्ऋचीकभवनं मुदा। प्रतस्थे भार्गवः श्रीमानकृतव्रणसंयुतः॥८३॥
अवंदत पितुः पित्रोर्नत्वा पादौ पृथक् पृथक्। तौ च तं नृप संहर्षाच्चाशिषा प्रत्यनन्दताम्॥८४॥
पृष्टश्च ताभ्यामखिलं निजवृत्तमुदारधीः। कथयामास राजेन्द्र यथावृत्तमनुक्रमात्॥८५॥
स्थित्वा दिनानि कतिचित्तत्रापि तदनुज्ञया। जगामावसतं पित्रोर्मुदा परमया युतः॥८६॥
अभ्येत्य पितरौ राजन्नासीनावाश्रमोत्तमे। अवंदत तयोः पादौ यथावद्भृगुनंदन॥८७॥
पादप्रणामानवनतं समुत्थाप्य च सादरम्। आश्लिष्य नेत्रसलिलैर्नंदंतौपर्यषिंचताम्॥८८॥
आशीर्भिरभिनन्द्यांके समारोप्य मुहुर्मुकम्। वीक्षंतौ तस्य चांगानि परिस्पृस्यापतुर्मुदम्॥८९॥
अपृच्छतां च तौ रामं कालेनैतावता त्वया। किं कृतं पुत्र को वायं कुत्र वा त्वमुपस्थितः॥९०॥
कथं सह सकाशे त्वमास्थितो वात्र वागतः। त्वयैतदखिलं वत्स कथ्यतां तथ्यमावयोः॥९१॥

।इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादेऽर्जुनोपाख्याने भार्गवचरिते पञ्चविंशतितमोऽध्यायः॥२५॥

(मन) को वश में करने वाले, शान्तचित्त वाले च्यवन ऋषि तथा उनकी पत्नी सुकन्या से वे महामना परशुराम बोले।।८०।। उन दोनों च्यवन ऋषि और सुकन्या की प्रीतियुक्त वचनों से सम्यक् प्रकार से अभिनन्दित परशुराम तपोनिधि महर्षि और्व को देखने की इच्छा से महर्षि और्व के आश्रम में पहुंचे।।८१।। हे राजन्! उन महर्षि और्व को अभिवादन करके और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया और फिर उनके प्रेम से उन परशुराम ने वहाँ कुछ दिन निवास किया।।८२।। वहाँ उन महर्षि और्व द्वारा विदा किये गये परशुराम ने श्रीमान् अकृतव्रण के साथ महर्षि ऋचीक के भवन को आनन्द के साथ प्रस्थान किया।।८३।। पिता के पिता दादा के चरणों में अलग-अलग दोनों ने विना बोले नमन किया, तब हे नृप! उन दोनों का हर्ष और आशीर्वाद के साथ अभिनन्दन किया।।८४।। उन दोनों ने उनका कुशल क्षेम व्यवहार आदि के बारे में पूछा, तो वह क्रमशः जो भी हुआ और उन्होंने किया, सब अपना समाचार बता दिया।।८५।। अतः वहाँ भी कुछ दिन रहकर उनकी अनुमति से परम प्रसन्नता के साथ पिता के निवास स्थान पर पहुंचे।।८६।। हे राजन् वहाँ पिता-माता के पास पहुंचकर भृगुनन्दन परशुराम ने उत्तम आश्रम में आसीन उन दोनों के पैरों में गिरकर यथावत् उनकी वन्दना की।।८७।। वहाँ पैरों में गिरकर प्रणाम करने के लिये झुके हुए परशुराम को सादर उठाकर तथा उन्हें छाती से लगाकार खुशी के कारण आये हुए आँसुओं से प्रसन्न होकर उनका परिसिंचन किया।।८८।। तथा आशीर्वादों से अभिनन्दन करके गोद में बैठाकर बार-बार मुख को देखते हुए, उनके अंगों को छूकर आनन्द प्राप्त किया।।८९।। उन दोनों ने परशुराम से पूछा कि इतना समय कहाँ बिताया। हे पुत्र! इतने दिन तक क्या किया? अथवा तुम्हारे साथ यह कौन है? तथा तुम कहाँ थे?।।९०।। तथा कैसे तुम यहाँ हमारे पास आ गये? यह सब पुत्र सही-सही हमलोगों को बताओ।।९१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद २५वां अध्याय अर्जुनोपाख्यान मे परशुराम द्वारा शिव की स्तुति और ब्राह्मण बालक की रक्षा का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे अर्जुनोपाख्याने

जमदग्नेराश्रमे कार्तवीर्यगमनं नाम

षड्विंशतितमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

इति पृष्टस्तदा ताभ्यां रामो राजन्कृतांजलिः। तयोरकथयत्सर्वमात्मना यदनुष्ठितम्॥१॥
निदेशाद्वै कुलगुरोस्तपश्चरणमात्मनः शंभोर्निदेशात्तीर्थानामटनं च यथाक्रमम्॥२॥
तदाज्ञयैव दैत्यानां वधं चामरकारणात्। हरप्रसादादत्रापि ह्यकृतव्रणदर्शनम्॥३॥
एतत्सर्वमशेषेण यदन्यच्चात्मना कृतम्। कथयामास तद्रामः पित्रोः संप्रीयमाणयोः॥४॥
तौ च तेनोदितं सर्वं श्रुत्वा तत्कर्म विस्तरम्। हृष्टौ हर्षांतरं भूयो राजन्नाप्नुवतावुभौ॥५॥
एवं पित्रोर्महाराज शुश्रूषां भृगुपुंगवः। प्रकुर्वंस्तद्विधेयात्मा भ्रातृणां चाविशेषतः॥६॥
एतस्मिन्नेव काले तु कदाचिद्धैहयेश्वरः। इत्येष मृगयां गंतुं चतुरंगबलान्वितः॥७॥
संरज्यमाने गगने बंधूककुसुमारुणैः। ताराजलद्युतिहरैः समंतादरुणांशुभिः॥८॥
मंद वीजति प्रोद्धूतकेतकीवनराजिभिः। प्राभातिके गंधवहे कुमुदाकरसंस्पृशि॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद अर्जुनोपाख्यान में

अध्याय-२६

जमदग्नि के आश्रम में कार्तवीर्य का आना

वशिष्ठ ने कहाकि हे राजन्! जब उन दोनों माता-पिता ने परशु से पूछा तो परशुराम ने अपना हाथ जोड़कर सारा समाचार जो उन्होंने किया था, बता दिया।।१।। उन्होंने बताया कि अपने कुलगुरु महर्षिभृगु के निर्देश से मैंने अपना तप किया तथा भगवान् शिव के निर्देश से क्रमशः तीर्थाटन कर रहा हूँ।।२।। उनकी आज्ञा से ही मैंने देवताओं के कारण से दैत्यों का वध किया। भगवान् शंकर की कृपा से इस अकृतव्रण के दर्शन हुए।।३।। इस प्रकार अन्य जो कुछ परशुराम ने किया, वह सब उन्होंने अपने प्रसन्नचित्त माता-पिता को बता दिया।।४।। उन दोनों माता-पिता ने परशुराम द्वारा विस्तारपूर्वक कहे गये सब क्रम को सुनकर वे दोनों बहुत अधिक प्रसन्न हुए।।५।।

वशिष्ठ ने कहा कि हे महाराज इस प्रकार भृगुश्रेष्ठ परशुराम पिता-माता तथा भाइयो की विशेषतःसेवा कर रहे थे कि इसी समय कभी हैहयवंश के स्वामी हैहयेश्वर ने अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ शिकार करने की इच्छा की।।६।। तब बन्धूक कुसुम के समान लालिमा से आकाश के रंग जाने पर, तारागणों की कान्ति को हरने वाले चारों ओर सूर्य की अरुण (प्रातःकालीन लाल) किरणों के फैल जाने पर, केवड़ा की वन पंक्तियों से उठी हुई सुगन्धित वायु के मंद मंद चलने पर, कमलों के स्पर्श से सुगन्धित हवा के चलने पर, नर्मदा नदी के किनारे घोंसलों में पक्षी बाहर जाने के लिये व्याकुल हो चहचहाने लगे थे, जिनकी बोलियां मन और कानों को सुख पैदा करने वाली थीं।

वयांसि नर्मदातीरतरुनीडाश्रयेषु च। व्याहरन्स्वाकुला वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः॥१०॥
नर्मदातीरतीर्थं तदवतीर्याघहारिणि। तत्तोये मुनिवृंदेषु गृणत्सु ब्रह्म शाश्वतम्॥११॥
विधिवत्कृतमैत्रेषु सन्निवृत्य सरित्तटात्। आश्रमं प्रति गच्छत्सु मुनिमुख्येषु कर्मिषु॥१२॥
प्रत्येकं वीरपत्नीषु व्यग्रासु गृहकर्मसु। होमार्थं मुनिकल्पाभिर्दुह्यमानासु धेनुषु॥१३॥
स्थाने मुनिकुमारेषु तं दोहं हि नयत्सु च। अग्निहोत्राकुले जाते सर्वभूतसुखावहे॥१४॥
विकसत्सु सरोजेषु गायत्सु भ्रमरेषु च। वाशत्सु नीडान्निष्पत्य पतत्रिषु समंततः॥१५॥
अनतिव्यग्रमत्तेभतुरंगरथगामिनाम्। गात्राल्हादविवर्द्धन्यां वेलायां मंदवायुना॥१६॥
गच्छत्सु चाश्रमोपांतं प्रसूनजलहारिषु। स्वाध्यायदक्षैर्बहुभिरजिनांबरधारिभिः॥१७॥
सम्यक् प्रयोज्यमानेषु मंत्रेषूच्चावचेषु च। प्रैषेषूच्चार्यमाणेषु हूयमानेषु वह्निषु॥१८॥
यथावन्मंत्रतंत्रोक्तक्रियासु विततासु च। ज्वलदग्निशिखाकारे तमस्तपनतेजसि॥१९॥
प्रतिहत्य दिशः सर्वा विवृण्वाने च मेदिनीम्। सवितर्युदयं याति नैशे तमसि नश्यति॥२०॥
तारकासु विलीनासु काष्ठासु विमलासु च। कृतमैत्रादिको राजा मृगयां हैहयेश्वरः॥२१॥
निर्ययौ नगरात्तस्मात्पुरोहितसमन्वितः। बलैः सर्वैः समुदितैः सवाजिरथकुंजरैः॥२२॥
सचिवः सहितः श्रीमान्सवयोभिश्च राजभिः। महता बलभारेण नमयन्वसुधातलम्॥२३॥
नादयन्रथघोषेण ककुभः सर्वतो नृपः। स्वबलौघपदक्षेपप्रक्षुण्णावनिरेणुभिः॥२४॥
ययौ संच्छादयन्व्योम विमानशतसंकुलम्। संप्रविश्य वनं घोरं विंध्याद्रेर्बलसंचयैः॥२५॥

नर्मदा नंदी के किनारे पर उतर उसके पापनाशक जल में मुनियों द्वारा स्नान प्रारम्भ कर दिया था बया ब्रह्म शास्वत फिर विधिवत् आपस में मित्र भाव से बातचीत कर नदी तट से लौटकर मुख्य मुनियों के आश्रम की ओर चले जाने पर, प्रत्येक वीर पत्नियों के घर के कार्यों में लग जाने पर, हवन के लिये मुनि कल्पाओं गायों को दुह लिये जाने पर, मुनिकुमारों द्वारा उस दूध को स्थान पर ले जाने पर, अग्निहोत्र में पढ़े जाने वाले मन्त्रों की ध्वनि तथा सुगन्ध से सब प्राणियों से सुखी हो जाने पर, कमलों के खिल जाने पर और भ्रमरों के गुंजार करने पर, घोंसले से गिरकर चारों ओर पक्षियों के चिल्लाने पर, मदमत्त हाथी और घोड़े और रथ चलाने वालों के शरीरों को मन्द वायु आनन्द बढ़ाने वाली प्रातःकाल की बेला में, आश्रम प्रान्त में फूल और जल लेने वालों के निकलने पर, स्वाध्याय कुशल बहुत से मृगचर्मधारण करने वाले शिष्यों द्वारा सम्यक् प्रकार से ऊँचे और नीचे स्वरों में मन्त्रों के उच्चारण किये जाने पर, यज्ञ प्रारम्भ हो गया है, इस प्रकार बुलाने वालों द्वारा बुलाये जाने पर, यथावत् मन्त्र तन्त्र क्रियाओं के प्रारम्भ हो जाने पर, जलती हुई अग्नि की शिखा के आकार में अंधकार का नाश करने वाले तेज में सब दिशाओं में पृथ्वी पर प्रकाश हो जाने पर, सूर्य का उदय हो जाने पर और रात्रि के अन्धकार के नष्ट हो जाने पर, तारों के छिप जाने पर और सब दिशाओं के विमल हो जाने पर, कृतमैत्रादिक नाम का राजा हैहयवंश का स्वामी उस नगर से पुरोहित के साथ निकला।।७-२०½।। उस राजा के साथ सब बलवान् घोड़े रथ हाथी थे। उस लक्ष्मीपति राजा के साथ सचिव और समान अवस्था वाले राजा थे। वह अपने महान् बल के भार से पृथ्वी तल को दबा दे रहा था।।२०½-२३।। उस राजा के रथ के शब्द से चारों ओर सभी दिशायें शब्दायमान थीं। अपने बल समूह के पदक्षेप से समस्त पृथ्वी धूल से भर गयी थी। वह राजा सैकड़ों विमानों से आकाश को ढकता हुआ चल रहा था।।२४-२४½।। विन्ध्यपर्वत के

भृशं विलोलयामास समंताद्राजसत्तमः। परिवार्य वनं तत्तु स राजा निजसैनिकैः॥२६॥
मृगान्नानाविधान्हिस्त्रान्निजघान शितैः शरैः। आकर्ण कृष्टकोदंडयोधमुक्तैः शितेषुभिः॥२७॥
निकृत्तगात्राः शार्दूला न्यपतन्भुवि केचन। उदग्रवेगपादातखड्गखंडितविग्रहाः॥२८॥
वराहयूथपाः केचिद्रुधिरार्द्रा धरामगुः। प्रचंडशक्तिकोन्मुक्तशक्तिनिर्भिन्नमस्तकाः॥२९॥
मृगौघाः प्रत्यपद्यंत पर्वता इव मेदिनीम्। नाराचा विद्धसर्वांगाः सिंहर्क्षशरभादयः॥३०॥
वसुधामन्वकीर्यंत शोणितार्द्राः समंततः। एवं सवागुरैः कैश्चित्पतद्भिः पतितैरपि॥३१॥
श्वभिश्चानुद्रुतैः कैश्चिद्धावमानैस्तथा मृगैः। आर्त्तैर्विक्रोशमानैश्च भीतैः प्राणभयातुरैः॥३२॥
युगापाये यथात्यर्थं वनमाकुलमाबभौ। वराहसिंहशार्दूलश्वाविच्छशकुलानि च॥३३॥
चमरीरुरुगोमायुगवयर्क्षवृकबहून्। कृष्णसारान्द्वीपिमृगान्रक्तखड्गमृगानपि॥३४॥

विचित्रांगान्मृगानन्यान्न्यंकूनपि च सर्वशः।
बालान्स्तनंधयान्यूनः स्थविरान्मिथुनान्गणान्॥३५॥
निजघ्नुर्निशितैः शस्त्रैः शस्त्रवध्यान्हि सैनिकाः।
एवं हत्वा मृगान् घोरान्हिंस्त्रप्रायानशेषतः॥३६॥

श्रमेण महता युक्ता बभूवुर्नृपसैनिकाः। मध्ये दिनकरे प्राप्ते ससैन्यः स तदा नृपः॥३७॥
नर्मदां धर्मसंतप्तः पिपासुरगमच्छनैः। अवतीर्य ततस्तस्यास्तोये सबलवाहनः॥३८॥

घोर वन में प्रवेशकर उस राजश्रेष्ठ राजा सहस्रार्जुन ने अपने सेना से समस्त वन को चारों ओर कंपकंपा दिया। उस राजा ने समस्त वन को घेरकर अपने सैनिकों द्वारा मृगों को तथा अनेकों प्रकार के हिंसक जीवों को तीक्ष्णवाणों से मार डाला।।२४½-२६½।। कान तक खींची गयी धनुष की प्रत्यञ्चा से छोड़े गये बाणों द्वारा कुछ शार्दूल (शेर) चर्महीन शरीर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। बहुत वेग के साथ चलती हुई तलवार से उनके शरीर काट दिये गये।।२६½-२८।। वराहों के झुण्ड खून से लथपथ होकर भूमि पर गिर गये। प्रचण्ड शक्ति रखने वालों से छोड़ी गयी शक्ति से मृग समूहों के मस्तक फोड़ दिये गये तथा वे पृथ्वी पर पड़े पर्वत के समान हो गये।।२८-२९½।। सिंह, भालू और शरभ[1] आदि सभी के शरीर लोहे के बाणों से बींध दिये गये। समस्त पृथ्वी चारों ओर रक्त से गीली कर दी गयी। इस प्रकार कुछ पिंजड़ों से गिर गये।।३१।।

कुछ कुत्तों से पीछा किये जाते हुये दौड़ते हुए चिल्लाते हुए कोशते हुए, भयभीत, प्राण जाने के भय से व्याकुल हिरनों द्वारा प्रलय आने के समान समस्त वन व्याकुल हो गया।।३२-३२½।। वाराह सिंह शार्दूल, कुत्ते, आवि (पेड़), खरगोश, चमरी और रुरुमृग, गोमायु (गीदड़), नीलगाय, रीछ, भेड़िया, कृष्णसारमृग, हाथी, लाल तलवार के समान मृगों को भी, विचित्र अंगों वाले मृगों तथा अन्य न्यंकु (वारहसिंहा) को भी उनमें बच्चे स्तनपान करने वाले जवान और बूढ़े मिथुन (जोड़ों) को सब जो शास्त्र से वध्य थे, उन सबको सैनिकों ने तीक्ष्ण वाणों से मार दिया।।३२½-३५½।। इस प्रकार मृगों और घोर हिंसक प्राय समस्त जीवों को मार कर राजा के सैनिक बहुत अधिक थक गये।।३५½-३६½।। तब सूर्य के मध्यस्थ हो जाने पर (दोपहर में) सेना सहित वह राजा घाम से संतप्त हो धीरे से जल पीने की इच्छा से नर्मदा नदी पर गया।।३६½-३७½।। उसके बाद उस नदी के जल में उतरकर अपनी

१. शरभ—आठ पैरों वाला, शेर से भी भयंकर जंगली जीव, जो आज अनुपलब्ध है।

विजगाह शुभे राजा क्षुत्तृष्णापरिपीडितः।
स्नात्वा पीत्वा च सलिलं स तस्याः सुखशीतलम्॥३९॥
बिसांकुराणि शुभ्राणि स्वादूनि प्रजाघास च। विक्रीड्य तोये सुचिरमुत्तीर्य सबलो नृपः॥४०॥
विशश्राम व तत्तीरे तरुखंडोपंडिते। आलंबपाने तिग्मांशौ ससैन्यः सानुगो नृपः॥४१॥
निश्चक्राम पुरं गंतुं विध्याद्रिवनगह्वरात्। सगच्छन्नेव ददृशे नर्मदा तीरमाश्रितम्॥४२॥
आश्रमं पुण्यशीलस्य जमदग्नेर्महात्मनः। ततो निवृत्य सैन्यानि दूरेऽवस्थाप्य पार्थिवः॥४३॥
परिचारैः कतिपयैः सहितोऽयात्तदाश्रमम्। गत्वा तदाश्रमं रम्यं पुरोहितसमन्वितः॥४४॥
उपेत्य मुनिशार्दूलं ननाम शिरसा नृपः। अभिनंद्याशिषा तं वै जमदग्निर्नृपोत्तमम्॥४५॥
पूजयामास विधिवदर्घपाद्यासनादिभिः। संभावयित्वा तां पूजां विहितां मुनिना तदा॥४६॥
निषसादासने शुभ्रे पुरस्तस्य महामुनेः। तमासीनं नृपवरं कुशासनगतो मुनिः॥४७॥
पप्रच्छ कुशलप्रश्नं पुत्रमित्रादिबंधुषु। सह संकथयंस्तेन राज्ञा मुनिवरोत्तमः॥४८॥
स्थित्वा नातिचिरं कालमातिथ्यार्थं न्यमंत्रयत्। ततः स राजा सुप्रीतो जमदग्निमभाषत॥४९॥
महर्षे देहि मेऽनुज्ञां गमिष्यामि स्वकं पुरम्। समग्रवाहनबलो ह्यहं तस्मान्महामुने॥५०॥
कर्तुं न शक्यमातिथ्यं त्वया वन्याशिना वने।
अथवा त्वं तपःशक्त्या कर्त्तुमातिथ्यमद्य मे॥५१॥

सेना और वाहनों सहित भूख और प्यास से पीड़ित वह राजा नदी में स्नान करने लगा।।३७½-३८½।। स्नान करके तथा, उस नदी का सुखद और शीतल जल पीकर स्वादुयुक्त और शुभ कमल के अंकुरों को खाने लगा।।३८½-३९½।। उस नदी के जल में बहुत देर तक विशेष क्रीड़ा करके वहाँ से निकलकर राजा उस नदी के किनारे वृक्षों के नीचे मण्डप में विश्राम करने लगा।।३९½-४०½।। जब सूर्य तिरछे होकर नीचे हो गये अर्थात् सायंकाल से कुछ पहले सेना द्वारा अनुगत वह राजा विन्ध्यपर्वत के गहन वन से अपने नगर की ओर जाने को निकल पड़ा।।४०½-४१½।। तब जाते हुए ही उस राजा ने नर्मदा नदी के पास में पुण्यशील महात्मा जमदग्नि का आश्रम देखा।।४१½-४२½।। उसके बाद समस्त सेना को लौटाकर तथा सेना को दूर ही ठहराकर (रोककर) कुछ खास सेवकों संरक्षकों के साथ वह राजा उस आश्रम में गया।।४२½-४३½।। पुरोहित के साथ उस रम्य आश्रम में जाकर उस राजा ने उन मुनि शार्दूल को शिर झुकाकर प्रणाम किया।।४३½-४४½।।

जमदग्नि ऋषि ने उस नृपश्रेष्ठ को आशीर्वाद से अभिनन्दित किया तथा सत्कारयोग्य भोजन, पान, आसन आदि से विधिवत् सत्कार किया।।४४½-४५½।। तब मुनि द्वारा की गयी विधिवत् पूजा को प्राप्त कर भाव-विभोर होकर महामुनि के सामने पड़े हुए शुभ्र आसन पर वह राजा बैठ गया।।४५½-४६½।। सामने आसन पर आसीन उस राजा से कुश के आसन पर बैठे हुए मुनि ने पुत्रमित्र और बन्धुओं के बारे में कुशल प्रश्न पूछा कि आपके सब भाई-बन्धु परिवार कुशल है, न।।४६½-४७½।। तब उस राजा ने यह कहते हुए कि हे मुनिश्रेष्ठ यहाँ अधिक समय तक नहीं ठहरा जा सकता, यह कहते हुए उसने आतिथ्य के लिए निमन्त्रित किया।।४७½-४८½।। उसके बाद वह राजा प्रसन्न होकर जमदग्नि से बोला कि हे महर्षि! मुझे अपने नगर जाने की अनुमति दीजिये।।४८½-४९½।। क्योंकि मैं अपने समग्र वाहन और समस्त सेना के साथ हूँ। आप वन्य वस्तुओं का भोजन करने वाले इस वन में मेरा आथित्य सत्कार (भोजनादि प्रबन्ध)

शक्नोष्यपि पुरीं गंतुं मामनुज्ञातुर्हसि। अन्यथा चेत्खलैः सैन्यैरत्यर्थं मुनिसत्तमम्॥५२॥
तपस्विनां भवेत्पीडा नियमक्षयकारिका।

वसिष्ठ उवाच

इत्येवमुक्तः स मुनिस्तं प्राहस्थीयतां क्षणम्॥५३॥
सर्वं संपादयिष्येऽहमातिथ्यं सानुगस्य ते। इत्युक्त्वाहूयं तां दोग्धीमुवाचायं ममातिथिः॥५४॥
उपागतस्त्वया तस्मात्क्रियतामद्य सत्कृभिः। इत्युक्त्वाहूय मुनिना दोग्धी सातिथेयमशेषतः।
दुदोह नृपतेराशु यद्योग्यं मुनिगौरवात्॥५५॥
अथाश्रमं तत्सुरराजसद्मनिकाशमासीद्भृगुपंगवस्य।
विभूतिभेदैरविचिन्त्यरूपमनन्यसाध्यं सुरभिप्रभावात्॥५६॥
अनेकरत्नोज्ज्वलचित्रहमेमप्रकाशमालापरिवीतमुच्चैः।
पूर्णेन्दुशुभ्राभ्रविषक्तशृंगैः प्रासादसंघैः परिवीतमंतः॥५७॥
कांस्यारकूटारसताग्रहेमदुर्वर्मसौधोपलदारुमृद्भिः ।
पृथग्विमिश्रैर्भवनैरनेकैः सद्भासितं नेत्रमनोभिरामैः॥५८॥
महार्हरत्नोज्ज्वलहेमवेदिकानिष्कूटसोपानकुटीविटंककैः।
तुलाकपाटार्गलकुड्यदेहलीनिशांतशालाजिरशोभितैर्भृशम्॥५९॥

नहीं कर सकते।।४९½-५०½।। अथवा आप अपनी तप की शक्ति से आज केवल मेरा आथित्य (मेहमानी) कर सकते हैं, फिर भी मुझे अपनी नगरी में जाने की अनुमति दीजिये।।५०½-५१½।। अन्यथा यदि इस दुष्ट स्वभाव की भूखी सेना द्वारा अत्यर्थ विद्रोह हुआ तो तपस्वियों के नियम तोड़ने वाला कष्ट होगा।।५१½-५२½।।

वशिष्ठ ने कहा— कि जब राजा ने मुनि से ऐसा कहा, तब जमदग्नि मुनि ने उस राजा से कहा कि क्षणभर के लिये ठहरिये। मैं आपके अतिथि सत्कार के लिये जो भी चाहिये, सब कुछ पूरा कर दूंगा। ऐसा कहकर मुनि ने उस दूध देने वाली कामधेनु से कहा कि ये महानुभाव मेरे अतिथि हैं, ये मेरे पास आये हैं। अतः आज इनका सत्कार करो।।५२½-५४।। मुनि के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस दूध देने वाली गौ ने समस्त अतिथि सत्कार योग आसन, खाद्य पेय वस्तुओं को जो कि अतिथि सत्कार में उपयुक्त थी मुनि गौरव के कारण सबको पैदा कर दिया।।५५।। इसके बाद कामधेनु के प्रभाव से उन भृगुश्रेष्ठ जमदग्नि का आश्रम इन्द्र की सभा के समान प्रकाशयुक्त हो गया तथा अनेकों प्रकार के ऐश्वर्यों से शोचनीय हो गया तथा उसका रूप अन्य किसी साधन से इतना सुन्दर नहीं हो सकता था, ऐसा विचित्र हो गया।।५६।। वह आश्रम अनेक रत्नों से उज्ज्वल स्वर्ण के प्रकाश वाली मालाओं द्वारा ऊपर से ढक दिया गया तथा पूर्ण चन्द्रमा के समान मेघ शुभ्र शिखरों वाले महलों द्वारा चारों ओर से घिर गया।।५७।। कांसा, पीतल, लोहा, तांवा, सोना और चाँदी जड़े हुए महल के पत्थर लकड़ी और मिट्टियों से अलग अलग मिलाकर वने हुए, आँखों और मन को सुन्दर लगने वाले अनेकों भवनों से चमकने लगा।।५८।। बहुमूल्य रत्नों से उज्ज्वल (चमकती हुई) स्वर्ण वेदियां, प्रमदवन, अन्तःपुर, सीढ़ियां, कमरों के कंगूरे (सबसे ऊँचे सिरों) तुला, कपाट, सांकलें-कुंडियां, देहली, आवास घर, आंगनों से वह आश्रम बहुत अधिक शोभित हो गया।।५९।।

वलभ्यलिंदांगणचारुतोरणैरदभ्रपर्यंतचतुष्किकादिभिः।
स्तंभेषु कुड्येषु च दिव्यरत्नविचित्रचित्रैः परिशोभमानैः॥६०॥
उच्चावचै रत्नवरैर्विचित्रसुवर्णसिंहासनपीठिकाद्यैः।
स भक्ष्यभोज्यादिभि रन्नपानैरुपेतभांडोपगतैकदेशैः॥६१॥
गृहैरमर्त्योचितसर्वसंपत्समन्वितैर्नेत्रमनोऽभिरामैः।
तस्याश्रमं सन्नगरोपमानं बभौ वधूभिश्च मनोहराभिः॥६२॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादेऽर्जुनोपाख्याने षड्विंशतितमोऽध्यायः॥२६॥

यही नही छतों का सबसे ऊँचाभाग, घरों के आगे का चबूतरा, आंगन, घर का बाहरी द्वार, चौकियों आदि से अत्यन्त सुशोभित हो गया, दीवारों पर दिव्य रत्न तथा विचित्र चित्र लगे हुए थे, जिससे वे बहुत ही शोभायमान थीं।।६०।। तथा ऊँचे-नीचे, श्रेष्ठ रत्नों से विचित्र सुवर्ण के सिंहासन की पीठिकाओं आदि से सुशोभित हो गया तथा भक्ष्य भोज्यादि अन्न पानों तथा जिनमें खिलाया जाये, उन सभी प्रकार के बर्तनों से उस आश्रम का एक स्थान पर गया, अर्थपूर्ण समृद्ध रसोईघर भी बन गया।।६१।। तथा मनुष्यों के लिये जो सभी सम्पत्तियों और समस्त सुविधाओं से युक्त जो घर होना चाहिये, उन सबसे युक्त हुआ, वह आश्रम आंखों और मन को अति सुन्दर लगने लगा। इस प्रकार उन मुनि का वह आश्रम मनोहर बधुओं द्वारा सजे हुए एक अच्छे नगर के समान सुशोभित होने लगा।।६२।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद २६वां अध्याय अर्जुन.के उपाख्यान में जमदग्नि के आश्रम में कार्तवीर्य का आना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे अर्जुनोपाख्याने

कार्तवीर्यार्जुनस्यजमदग्निकृतातिथिसत्कारो नाम

सप्तविंशातितमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

तस्मिन्पुरे सन्तुलितामरेन्द्रपुरीप्रभावे मुनिवर्यधेनुः।
विनिर्ममे तेषु गृहेषु पश्चात्तद्योग्यनारीनरवृंदजातम्॥१॥
विचित्रवेषाभरणप्रसूनगन्धांशुकालंकृतविग्रहाभिः ।
सहावभावाभिरुदारचेष्टाश्रीकांतिसौन्दर्यगुणान्विताभिः ॥२॥
मंदस्फुरद्दन्तमरीचिजालविद्योतितानसरोजजितेंदुभाभिः ।
प्रत्यग्रयौवनभरासवल्गुगीर्भिः स प्रेममंथरकटाक्षनिरीक्षणाभिः॥३॥
प्रीतिप्रसन्नहृदयाभिरतिप्रभाभिः शृंगारकल्पतरुपुष्पविभूषिताभिः।
देवांगनातुलितसौभगसौकुमार्यरूपाभिलाषमधुराकृतिरंजनाभिः ॥४॥
उत्तप्तहेमकलशोपमचारुपीनवक्षोरुहद्वयभरानतमध्यमाभिः ।
श्रोणीभराक्रमणकेदपरिश्रितासृगारक्तपावकरसारुणितांघ्रिभूभिः ॥५॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद अर्जुन उपाख्यान में अध्याय–२७

कार्तवीर्य अर्जुन का जमदग्नि द्वारा किया गया अतिथि सत्कार

जब महर्षि जमदग्नि के तप के प्रभाव से उनका आश्रम एक मनोहर वधू के समान सुन्दर नगर बन गया, तब उस नगर में मुनिश्रेष्ठ की कामधेनु के प्रभाव में इन्द्र की पुरी अमरावती के समान सुन्दर घर बन गये, उसके बाद उन घरों में जैसे सुन्दर वे घर थे, वैसे ही सुन्दर उनमें रहने योग्य नर-नारी समूह पैदा हो गये।।१।।

वे नर-नारी विचित्र वस्त्र एवं आभूषण पहने हुए एवं फूलों की गन्ध रूप किरणों से अलंकृत शरीर वाले थे,उनकी परस्पर मित्रता थी, उनके अपने-अपने अनुचर थे तथा वे मित्र और अनुचर सब उदार चेष्टा एवं लक्ष्मी की कान्ति की सुन्दरता के गुणों से युक्त थे। अर्थात् वे गृहस्वामी ही नहीं, उनके सेवक भी सभी उदारमना एवं लक्ष्मी की सुन्दरता से शोभायमान थे।।२।। उनके धीरे धीरे चमकते हुए दाँतों की किरणों से चमकता हुआ मुखकमल चन्द्रमा की शोभा को जीत रहा था। वे सब नव-यौवन से भरे हुए मदमत्त सुन्दर वाणियों से प्रेम में मन्द-मन्द (हल्की-हल्की) कटाक्षों से देखने वाले थे। भाव यही है कि जैसे कोई नवयुक मद्यपान कर मधुर बोली में प्रेमपूर्वक मन्द-मन्द कटाक्ष (प्रेमभरी निगाहों) से देखता है, वे सब उसी तरह देखते थे।।३।। उन घरों में रहने वाले नर-नारी प्रीति से प्रसन्न हृदय वाले तथा हर्षातिरेक की प्रभाओं से युक्त थे तथा शृङ्गार रूप कल्पवृक्ष के पुष्पों से विभूषित शरीरों वाले थे। वहाँ की नारियों के शरीर देवाङ्गनाओं के समान सुन्दर भग वाले अर्थात् सुन्दर योनि वाले एवं सुकोमल रूप वाले, अभिलाषा एवं मधुर आकृतियों से रंजित थे।।४।। उन घरों में मध्यम आयु की स्त्रियां थीं, जिनके उच्च ताप पर तपे

केयूरहारमणिकंकणहेमकंठसूत्रामलश्रवणमण्डलमंडिताभिः ।
स्रग्दामचुम्बितसकुन्तलकेशपाशकांचीकलापपारिशिंजितनूपुराभिः ॥६॥
आमृष्टरोषपरिसां त्वननर्महासकेलीप्रियालपनभत्सनरोपणेषु।
भावेषु पार्थिवनिजप्रियधैर्यबन्धसर्वापहारचतुरेषु कृतांतराभिः॥७॥
तन्त्रीस्वनोपमितमं जुलसौम्यगेयगंधर्वतारमधुराखभाषिणीभिः।
वीणाप्रवीणतरपाणितलांगुलीभिर्गंभीरचक्रचटुवादरोत्सुकाभिः ॥८॥
स्त्रीभिर्मदालस तराभिरतिप्रगल्भभावाभिराकुलितकामुकमानसाभिः।
कामप्रयोगनिपुणाभिरहीनसंपदौदार्यरूपगुणशीलसमन्विताभिः॥९॥
संख्यातिगाभिरनिशं गृहकृत्यकर्मव्यग्रात्मकाभिरपि तत्परिचारिकाभिः।
पुंभिश्च तद्गुणगणोचितरूपशोभैरुद्भासितैर्गृहचरैः परितः परीतम्॥१०॥
सराजमार्गापणसौधसद्मसोपानदेवालयचत्वरेषु ।
पौरैरशेषार्थगुणैः समंतादध्यास्यमानं परिपूर्णकामैः॥११॥

हुए सोने के रंग वाले कलशों के समान सुन्दर मोटे-मोटे स्तन थे, जिनके भार से वे कुछ अवनत शरीर वाली थीं। उनके नितम्ब भार के आक्रमण (आने) से पैदा थकान से रखे गये खून के समान लाल महावर के रस से लाल रंग में रंगी हुई पदभूमि थी। अर्थात् उनके पैरों में लगी हुई खून के समान लाल महावर वाले पैर जब नितम्ब भार द्वारा भूमि पर रखे जाते थे, तब वह भूमि रंग जाती थी। यहाँ वहाँ की स्त्रियों के नितम्ब भार की विशेषता अभिव्यञ्जित है।।५।। वे सब स्त्रियां बाजूबंध हार मणिजटित कंगन, सोने का गले में मंगलसूत्र और कानों में निर्मल कुण्डलों से सजे हुए शरीर वाली थी। उनके मालाओं से बँधे हुए घुँघराले केशपाश थे। ऊनकी कमर में घुंघरुओं युक्त कर्धनी तथा पैरों में नुपूर झनझना रहे थे।।६।।

वे स्त्रियां कभी-कभी क्रोधित हुए पतियों के क्रोध को शान्त करती हुई हँसते हुए खिलकारियां प्रिय बोल द्वारा पतियों के क्रोध को हर लेती थीं तथा राजाओं के उनके प्रिय करने और उन्हें धैर्य बँधाने तथा सब चिन्तायें दूर करने में चतुर भावों को रखने वाली रानियां थीं।।७।। वे स्त्रियां वीणा के तार के समान मधुर (मंजुल) गाने योग्य गन्धर्व तार के समान मधुरध्वनि के समान बोलने वाली थीं। वीणा में प्रवीणतर हाथ की अंगुलियों से गम्भीर और चक्र की तरह घुमाते हुए सुन्दर शब्द से बजाने में रत उत्सुक स्त्रियों से युक्त वे घर थे अर्थात् घर-घर में स्त्रियाँ वीणा बजा रही थीं।।८।। तथा मद के आलस में एक से एक बढ़कर अत्यन्त प्रगल्भभावों से व्याकुल कामुक मन वाली स्त्रियों से युक्त वे घर थे। अर्थात् उन स्त्रियों में इतना अधिक जवानी का मद था कि चाहती थी कि अत्यन्त धृष्टतापूर्वक आकुल बनाते हुए उनसे कोई संभोग करे तथा वहाँ की स्त्रियाँ मैथुन में तरह तरह की विधियों का प्रयोग करने में निपुण थीं तथा वे सब सम्पत्ति उदारता रूप गुण और शील समन्वित थीं।।९।। अधिकांश स्त्रियां गृहकर्म में स्वयं व्यग्र रहने वाली तथा अपनी सेविकाओं को भी रखने वाली थीं तथा वे घर उन स्त्रियों के गुणों के उचित रूप शोभा से उद्भासित घर का काम करने वाले पुरुषों से चारों ओर से भरे हुए रहते थे।।१०।। सड़क, दुकान, महल, घर, सीढ़ियां, देवालय और चबूतरों पर समस्त गुण वाले, पूर्णकामनाओं वाले, नगरवासी चारों ओर बैठे रहते थे।।११।।

अनेकरत्नोज्ज्वलितैर्विचित्रैः प्रासादसंघैरतुलैरसंख्यैः ।
रथाश्वमातंगखरोष्ट्रगोजायोग्यैरनेकैरपि मंदिरैश्च॥१२॥
नरेन्द्रसामंतनिषादिसादिपदातिसेनापतिनायकानाम् ।
विप्रादिकानां रथिसारथीनां गृहैस्तथा मागधबंदिनां च॥१३॥
विविक्तरथ्यापणचित्रचत्वैररनेकवस्तुक्रयविक्रयैश्च ।
महाधनोपस्करसाधुनिर्मितैर्गृहैश्च शुभ्रैर्गणिकाजनानाम्॥१४॥
महार्हरत्नजोज्वलतुंगगोपुरैः सह श्वगृधव्रजनर्तनालयैः।
चित्रैर्ध्वजैश्चापि पताकिकाभिः शुभ्रैः पटैर्मण्डपिकाभिरुन्नतैः॥१५॥
कह्लारकंजकुमुदोत्पलरेणुवासितैश्चक्राह्वहंसकुररीबकसारसानाम्।
नानारवाढ्यरमणीयतटाकवापीसरोवरैश्चापि जलोपपन्नैः॥१६॥
चूतप्रियालपनसाम्रमधूकजंबूप्लक्षैर्नवैश्च तरुभिश्च कृतालवालैः।
पर्यंतरोपितमनोरमनागकेतकपुन्नागचंपकवनैश्च पतत्रिजुष्टैः॥१७॥
मंदारकुंदकरवीरमनोज्ञयूथिकाजात्यादिकैर्विविधपुष्पफलैश्चवृक्षैः।
संलक्ष्यमाणपरितोपवनालिभिश्च संशोभितं जगति विस्मयनीयरूपैः॥१८॥
सर्वर्त्तुकप्रवरसौरभवायुमंदमंदप्रचारिभिर्त्सित धर्मकालम्।
इत्थं सुरासुरमनोरमबोगसंपद्विस्पष्टमानविभवं नगरं नरेंद्रः॥१९॥

अनेक रत्नों से उज्ज्वल और विचित्र और अतुल और असंख्य महलों सेयुक्त वह नगर था। रथ, अश्व, हाथी, गधे, ऊँट, बैलों के रहने योग्य अनेकों मन्दिरों (घरों) राजा, मन्त्री, निषादि, सादि, पैदल, सेनापति, नायकों, ब्राह्मणादिकों, रथ सारथियों और मागध बन्दना करने वालों के घरों से युक्त वह नगर था। अर्थात् उस नगर में राजभवन मन्त्री भवन राजाओं के सेनापतियों सेनानायकों व सारथियों और राजा को बन्दना कर जगाने वाले मागधवन्दियों के अलग-अलग आवास बने हुए थे।।१३।। बड़े-बड़े राजमार्गों पर वनी दुकानों तथा चौराहों पर दुकानों में अनेकों वस्तुओं की खरीददारी और बिकवाली हो रही थी तथा बहुत कीमती सामानों से अच्छी तरह बने हुए शुभ्र गणिका जनों के घरों से युक्त वह नगर था। अर्थात् वेश्याओं के सुन्दर घर भी उस नगर में थे।।१४।। बहुमूल्य रत्नों से उज्ज्वल अश्वशालाओं और गोशालाओं के साथ-साथ कुत्ते, गिद्ध, गोशाला और नृत्यालयों, तरह तरह के रंगीन ध्वजाओं, पताकाओं, शुभ्रवस्त्र के ऊँचे-ऊँचे मण्डपों से वह नगर सुशोभित था।।१५।। कह्लारक, कंज, उत्पल, कुमुद इन चारों प्रकार के कमलों के पराग से सुवासित (सुगन्धित) चक्रवाक, हंस, कुररी, बगुल, सारस तथा अनेकों प्रकार के स्वरों वाले रमणीय जल से भरे हुए तालाब, वापी और सरोवरों से युक्त था।।१६।। यही नहीं, वह नगर के चारों ओर नवीन पत्तों और फलों से लदे हुए आम, प्रियाल (चिरौंजी) कटहल, आम, महुआ, जामुन, पाखर आदि वृक्षों से युक्त था तथा उस नगर के चारों ओर लगाये गये मनोरम नागफनी, केवड़ों, पुन्नाग, चम्पक का वन था, जिन पर पक्षियों का कोलाहल हो रहा था।।१७।।मंदार (अर्क), चमेली, कनेर की मनोहर झाड़ियों आदि से तथा अनेकों प्रकार के पुष्पफलों और वृक्षों से तथा उन वृक्षों में दिखायी देने वाले सन्तुष्ट वन के भ्रमरों से सम्यक् रूप से शोभित संसार में आश्चर्य पैदा करने वाले रूपों से युक्त वह नगर था।।१८।। सब ऋतु के मेल वाली सुगन्धित वायु के

सौभाग्यभोगमभितं मुनिहोमधेनुः सद्यो विधाय विनिवेदयदाशु तस्मै।
ज्ञात्वा ततो मुनिवरो मुनिहोमधेन्वा संपादितं नरपते रुचिरातिथेयम्॥२०॥
आहूय कंचन तदंतिकमात्मशिष्यं प्रास्थापयत्सगुणशालिनमाशु राजन्।
गत्वा विशामधिपतेस्तरसा समीपं संप्रश्रयं मुनिसुतस्तमिदं बभाषे॥२१॥
आतिथ्यमस्मदुपपादितमाशु राज्ञा संभावनीयमिति नः कुलदेशिकाज्ञा।
राजा ततो मुनिवरेण कृताभ्यनुज्ञः संप्राविशत्पुरवरं स्वकृते कृतं तत्॥२२॥
सर्वोपभोग्यनिलयं मुनिहोमधेनुसामर्थ्यसूचकमशेषबलैः समेतः।
अन्तः प्रविश्य नगरर्द्धिमशेषलोकसंमोहिनीमभिसमीक्ष्य स राजवर्यः॥२३॥
प्रीतिप्रसन्नवदनः सबलस्तु दानी धीरोऽपि विस्मयमवाप भृशं तदानीम्।
गच्छन्सुरस्त्रीनयना लियूथपानैकपात्रोचितचारुमूर्त्तिः॥२४॥
रेमे स हैहयपतिः पुरराजमार्गे शक्रः कुबेरवसताविव सामरौघः।
तं प्रस्थितं राजपथात्समंतात्पौरांगनाश्चन्दनवारिसिक्तः॥२५॥
प्रसूनकालाजाप्रकैरजस्त्रमवीवृषन्सौधगताः सुहृद्यैः।
अभ्यागतार्हणसमुत्सुकपौरकांता हस्तारविंदगलितामललाजवर्षैः॥२६॥

मन्द-मन्द चलने से घर्मकाल (धूप का समय) प्रभावहीन हो गया था अर्थात् सब ऋतुओं का मिला हुआ आनन्द उस नगर में मिल रहा था। धूप भी अधिक कष्ट नहीं प्रदान करने वाली थी। इस प्रकार हे नरेन्द्र! सुर और असुर सबके मन को आनन्दित कर देने वाले भोगों और सम्पत्तियों से विशेष स्पष्ट वैभव वाला वह नगरथा।।१९।। अतः सौभाग्यशाली पुरुषों के भोग के लिए असीमित वस्तुओं को शीघ्र पैदाकर मुनि के लिये शीघ्र ही ग्रहण करने का निवेदन कर दिया। उसके मुनिहोम धेनु द्वारा मुनिवर ने जानकर उन राजा का अतिथि सत्कार सम्पन्न किया।।२०।। तब हे राजन्! किसी अपने गुण और शालीनतायुक्त शिष्य को बुलाकर उन राजा के पास शीघ्र प्रस्थापित किया। तब शीघ्र ही मुनिपुत्र प्रजाओं के अधिपति उन राजा के पास सादर यह कहा।।२१।। हे राजन् आप हमारे द्वारा संभावित (प्रस्तुत) आतिथ्य सत्कार को स्वीकार कीजिये, यह हमारे कुलदेशिक गुरुदेव की आज्ञा है। इसके बाद मुनिवर की अनुमति प्राप्त कर राजा ने अपने लिये बनाये गये, उस श्रेष्ठ नगर में प्रवेश दिया।।२२।।

मुनि होमधेनु की सामर्थ्य के सूचक सब प्रकार की उपभोग योग्य वस्तुओं वाले राजभवन में समस्त सैन्यबल के साथ राजा ने प्रवेश करके सम्पूर्ण संसार को संमोहन करने वाली उस नगर की समृद्धि का जब उस श्रेष्ठ राजा ने अवलोकन किया, तो उस समय बलवान् दानी और धीर वह राजा बहुत अधिक आश्चर्यचकित हो गया।।२३-२३½।। जब राजा उस नगर के राजमार्ग पर जा रहे थे, तब देवाङ्गनाओं की भौंरे जैसी आँखों से पिये जाने योग्य सुन्दर शरीर वाले युद्ध कुशल हैहयपति राजा उस राजमार्ग पर इन्द्र और कुबेर के समान आनन्द लेने लगे।।२३½-२४½।। राजमार्ग से जाते हुए उस राजा पर सब महल की छतों पर स्थित नगर की स्त्रियाँ चारों ओर से प्रेमपूर्वक चन्दन के जल में भींगे हुए फूल और खीलों की वर्षा करने लगीं।।२४½-२५½।। अतिथि सत्कार के लिए अत्यधिक उत्सुक उस नगर की स्त्रियों ने अपने करकमलों द्वारा निर्मल खीलों (लावा) की वर्षाओं से, केसर चन्दन की बनी

कालेयपंकसुरभीकृतनन्दनोत्थशुभ्रप्रसूननिकरैरलिवृन्दगीतैः ।
तत्रत्यपौरवनितांजनरत्नसार मुक्ताभिरप्यनुपपदं प्रविकीर्यमाणः॥२७॥
व्यभ्राजतावनिपतिर्विशदैः समंताच्छीतांशुरश्मिनिकरैरिव मंदराद्रिः।
ब्राह्मीं तपःश्रिय मुदारगणामचिंत्यां लोकेषु दुर्लभतरां स्पृहणीयशोभाम्॥२८॥
पश्यन्विशामधिपतिः पुरसंपदं तामुच्चैः शशंस मनसा वचसेव राजन्।
मेने च हैहयपतिर्भुवि दुर्लभेयं क्षात्री मनोहरतरा सहिता हि संपत्॥२९॥
अस्याः शतांशतुलनामपि नोपगंतुं विप्रश्रियं प्रभवतीति सुरार्चितायाः।
मध्येपुरं पुरजनोपचितां विभूतिमालोकयन्सह पुरोहितमंत्रिसार्थैः॥३०॥
गच्छत्स्वपार्श्वचर दर्शितवर्णसौधो लेभे मुदं पुरजनैः परिपूज्यमानः।
राजा ततो मुनिवरोपचितां सपर्यामात्मानुरूपमिह सानुचरो लभस्व॥३१॥
इत्यश्रमेण नृपतिर्विनिवर्त्तयित्वा स्वार्थं प्रकल्पितगृहाभिखो जगाम्।
पौरैः समेत्य विविधार्हणपाणिभिश्च मार्गे मुदा विरचितांजलिभिः समंतात॥३२॥

क्रीम की सुगन्ध से, आनन्द से उठे हुए शुभ्र फूलों पर भ्रमरों के गीतों से वहाँ के नगर की स्त्रियों के अंजन रत्न के सार मोतियों के पैर पैर पर बिखरते हुए मोतियों से, वह राजा उसी प्रकार सुशोभित हुआ, जिस प्रकार कि चारों ओर चन्द्रमा की शीतल किरणों के समूह से मन्दराचल पर्वत सुशोभित होता है।।२५½-२७½।। यह सब देखकर आश्चर्यचकित राजा तपस्या की शक्ति की सराहना करते हुए बोला—संसार में ब्रह्मा की तपस्या सम्बन्धी जो शक्ति है, वह बहुत ही उदारगुण वाली होती है, वह लोकों में अचिन्त्य होती है, अर्थात् वह शक्ति जिसके बारे में हम सोच भी नहीं सकते, उसे भी प्राप्त कराती हैं तथा लोकों में दुर्लभतर होती है अर्थात् लोकों में कहीं ऐसी शक्ति नहीं प्राप्त हो सकती तथा स्पृहणीय शोभावाली अर्थात् जैसी शोभा चाहते हैं, वैसी शोभा वाली होती है। हे राजन्! उस अनुपम शोभा को देखते हुए प्रजाओं का अधिपति वह राजा उस शोभा की मन और वाणी से प्रशंसा करने लगा।।२७½-२८½।।

तथा उस हैहयवंश के अधिपति उस राजा ने मान लिया कि यह ब्राह्मतपःश्री (ब्रह्मा की तपस्या की शक्ति) पृथ्वी पर दुर्लभ, मनोहरतरा, हितकारिणी और क्षात्री (युद्ध विद्या से प्राप्त) सम्पत्ति है तथा इसके सौवां अंश भी देवों की पूजा की गयी विप्रश्री नहीं हो सकती। अर्थात् ब्राह्मी तपश्री के सौवें भाग की तुलना विपश्री (ब्राह्मण की शक्ति) नहीं कर सकती।।२८½-२९½।। उस मायायी नगर मे मध्य पुरजनों द्वारा उपचित (पैदा की गयी) विभूति को अपने पुराहित और मन्त्रियों के साथ देखते हुए अपने पास चलने वाले नौकरों द्वारा देखे गये रंगी महलों को देखते हुए तथा उस नगर के लोगों द्वारा आदर सत्कार प्राप्त करते हुए उस राजा ने आनन्द प्राप्त किया। उसके बाद राजा ने यहाँ मुनिवर जमदग्नि द्वारा अपने अनुरूप प्रस्तुत सपर्या पूजा(अतिथिस्वागत) को अपने अनुचरों सहित प्राप्त किया।।२९½-३१।। इस प्रकार विना श्रम के राजा पूरी तरह निवृत्त होकर अपने अर्थ के लिये प्रकल्पित घर की ओर चले गये।।३१½।। फिर नागरिकों के साथ चलकर अनेकों सत्कारयोग्य हाथों से मार्ग में आनन्दपूर्वक चारों ओर हाथ जोड़ते हुए, पद-पद पर जय-जयकार के घोष शब्दों द्वारा तथा तुरही की ध्वनियों से समस्त दिशाओं को बधिर बनाते हुए, वे राजा कमरों के अन्दर घूमने लगे और फिर घूमते हुए, शीघ्र ही निकलकर क्रम से शोभा से भोंचक्की हुई तीन कंचुकियों के साथ में चारों ओर दूर हटाये जा रहे लोगों से संकुल घर में सचिव के द्वारा आदर देने वाले हाथ के साथ प्रविष्ट

संभावितोभ्यनुपदं जयशब्दघोषैस्तूर्यानैश्च बधिरीकृतदिग्विभागैः।
कक्षांतराणि नृपतिः शनकैरनीत्य त्रीणि क्रमेण च ससंभ्रमकंचुकीनि॥३३॥
दूरप्रसारितपृथग्जनसंकुलितानि सद्मोविवेश सचिवादरदत्तहस्तः।
तत्र प्रदीपदधिदर्पणगन्धपुष्पदूर्वाक्षतादिभिरलं पुरकमिनीभिः॥३४॥
निर्याय राजभवनांतरतः सलीलमानंदितो नरपतिर्बहुमानपूर्वकम्।
ताभिः समाभिविनिवेशितमाशु नानारत्नप्रवेकरुचिजालविराजमानः॥३५॥
सूक्ष्मोत्तच्छमुदारयशा मनोज्ञमध्यारुरोह कनकोत्तरविष्टरं तम्।
तस्मिन्गृहे नृप तदीयपुरंधिवर्गः स्वासीनमाशु नृपतिर्विविधार्हणाभिः॥३६॥
वाद्यादिभिस्तदनु भूषणगंधपुष्पवस्त्राद्यलंकृतिभिरग्र्यमुदं ततान।
तस्मिन्नशेषदिवसोचितकर्म सर्वं निर्वर्त्य हैहयपतिः स्वमतानुसारम्॥३७॥
नाना विधालयननर्मविचित्रकेलीसंप्रेक्षितैर्दिनमशेषमलं निनाय।
कृत्वा दिनांतसमयोचितकर्म चैव राजा स्वमंत्रिसचिवानुगतः समंतात्॥३८॥
आसन्नभृत्यकरसंस्थितदीपकौघसंशांतसंतमसमाशु सदः प्रपेदे।
तत्रासने समुपविश्य पुरोधमंत्रिसामंतनायकशतैः समुपास्यमानः॥३९॥
अन्वास्त राजसमितौ विविधैर्विनोदैर्हृष्टः सुरेंद्र इव देवगणैरुपेतः।
ततश्चिरं विविधवाद्यविनोदनृत्तप्रेक्षाप्रवृत्तहसनादिकथाप्रसंग॥४०॥

हुए, वहाँ पर दीपक, दही, दर्पण, गन्ध, पुष्प, दूर्वघास, अक्षत आदि से नगरांगना द्वारा पर्याप्त पूजा प्राप्त की। वहाँ पूरी तरह पूजित होकर राजा राजभवन के अन्दर से लीलापूर्वक आनन्दित होते हुए बहुत मानपूर्वक निकले।।३२-३४½।। वहाँ उन नगराङ्गनाओं द्वारा शीघ्र बिछाये गये अनेकों रत्नों से अत्यन्त श्रेष्ठ और रुचिकर जाल से विराजमान सूक्ष्म (बहुत पतले वस्त्र) पड़े हुए स्वर्ण पीठ वाले उस आसन पर प्रसन्नचित्त और उदारयश वाले राजा चढ़े।।३४½-३५½।। वशिष्ठ ने कहा हे राजन्! उस घर में उन राजा हैहयाधिपति के साथ सुहागिन स्त्रियां बैठी हुई थीं। उस समय वहाँ अनेकों प्रकार की पूजाओं द्वारा तथा बाजे आदि द्वारा तथा उसी के अनुसार आभूषण, गन्ध, पुष्प, वस्त्र आदि अलंकारों से राजा ने अपने आमोद को बहुत अधिक प्राप्त किया।।३५½-३६½।।

उस महल में समस्त दिन का जो उचित कर्म था, उस सबसे निवृत्त होकर हैहयपति राजा ने अपने मत के अनुसार अनेक प्रकार के घरों में आमोद-प्रमोद, हंसी-मजाक, तरह-तरह की काम-क्रीडाओं को सम्यक् प्रकार से देखते हुए समस्त दिन बिता दिया। उसके बाद दिन बिताकर सायंकाल में उचित कर्म करके अपने मन्त्री और सचिवों से अनुगत उन राजा ने सब ओर से पास में उपस्थित सेवकों के हाथों में रखे गये दीपकों द्वारा सम्यक् रूप से शान्त, घोर अन्धकार वाले सदन में प्रस्थान किया। वहाँ आसन पर बैठकर पुरोहितों, मन्त्रियों, सामन्तों और सैकड़ों सेनानायकों के पास में बैठा हुआ, वह राजा राजसभा में अनेकों प्रकार के मनोरंजनों से हर्षित होता हुआ देवताओं से युक्त सुरेन्द्र के समान शोभित हुआ।।३६½-३९½।। उसके बाद बहुत देर तक अनेक प्रकार के बाजों से मनोरंजन करता हुआ तथा नृत्त देखने में लगे हुए हंसने वाली कहानियों में आनन्द लेता हुआ, वेश्याओं के साथ काम-क्रीडा,

आसांचकार गणिकाजननर्महासक्रीडाविलासपरितोपितचित्तवृत्तिः।
इत्थं विशामधिपतिर्भृशमा निशार्द्धं नानाविहारविभवानुभवैरनेकैः॥४१॥
स्थित्वानुगान्नरपतीनपि तन्निवासं प्रस्थाप्य वासभवनं स्वयमप्ययासीत्।
तद्राजसैन्यमखिलं निजवीर्यशौर्यसंपत्प्रभावमहिमानुगुणं गृहेषु॥४२॥
आत्मानुरूपविभवेषु महार्हवस्त्रस्त्रग्भूषणादिभिरलं मुदितं बभूव।
सैन्यानि तानि नृपतेर्विविधान्नपानसद्भक्ष्यभोज्यमधुमांसपयोघृताद्यैः॥४३॥
तृप्तान्यवात्सुरखिलानि सुखोपभौगैस्तस्यां नरेंद्रपुरि देवगणा दिवीव।
एवं तदा नरपतेरनुयायिनस्ते नानाविधोचितसुखानुभवप्रतीताः॥४४॥
अन्योन्यमूचुरिति गेहधनादिभिर्वा किं साध्यते वयमिहैव वसाम सर्वे।
राजापि शार्वरविधानमथो विधाय निर्वर्त्य वासभवने शयनीयमग्र्यम्।
अध्यास्य रत्ननिकरैरति शोभि भद्रं निद्रामसेवत नरेन्द्र चिरं प्रतीतः॥४५॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादेऽर्जुनोपाख्याने सप्तविंशतितमोऽध्यायः॥२७॥

हँसी-मजाक, सम्भोग-क्रीडा से सन्तुष्ट चित्तवृत्ति वह राजा वहाँ बैठा।।३९½-४०½।। इस प्रकार प्रजाओं का स्वामी वह राजा बहुत अधिक अनेकों प्रकार के विहार विभव के अनेकों अनुभवों के साथ आधी रात तक वहाँ ठहरकर अपने अनुयायी राजाओं को उन गणिकाओं के निवास पर प्रस्थापित कर स्वयं भी अपने वासभवन की ओर चला गया।।४०½-४१½।। उस राजा की समस्त सेना भी अपने पराक्रम और शूरता सम्पत्ति और प्रभाव की महिमा के अनुसार घरों में अपने अनुरूप विभवों में बहुमूल्य वस्त्र मालायें आभूषण आदि से पर्याप्त आनन्दित हुए।।४१½-४२½।। वे सब सेनायें, राजा के अनेकों प्रकार के खाद्य, पेय, अच्छे भक्ष्य और भोज्य पदार्थों यथा मधु (मद्य और शहद दोनों) मांस, दूध और घृत आदि सुख उपभोग पदार्थों से उस नगरी में उसी प्रकार पूर्णरूप से तृप्त हो गयीं, जिस प्रकार स्वर्ग स्थित इन्द्र की नगरी अमरावती में देवतालोग तृप्त हो जाते हैं।।४२½-४३½।।

इस प्रकार तब उस राजा के उन सब अनुयायियों ने अनेकों प्रकार के उचित सुखों को अनुभव को अनुभव कर आपस में यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि अपने घर और धन से लाभ वह सब व्यर्थ है, अब तो हम सब यहीं पर रहते हैं। राजा ने भी रात्रि का समस्त कार्यक्रम करके अपने वासभवन में लौटकर शय्या पर चढ़कर रत्नसमूहों से अत्यन्तशोभित सुन्दर शय्या पर सोकर चिरकाल तक आनन्दपूर्ण निद्रा का सेवन किया।।४३½-४५।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद २७वां अध्याय अर्जुन उपाख्यान कार्तवीर्य अर्जुन का जमदग्नि द्वारा किया गया अतिथि सत्कार हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे अर्जुनोपाख्याने

कार्तवीर्यमन्त्रिणा गोहरणसमारम्भो नाम

अष्टविंशतितमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

स्वपंतमेत्य राजानं सूतमागधबंदिनः। प्रबोधयितुमव्यग्रा जगुरुच्चैर्निशात्यये॥१॥
वीणावेणुरवोन्मिश्रकलतालततानुगम्। समस्तश्रुतिसुश्राव्यप्रशस्तमधुरस्वरम्॥२॥
स्निग्धकंठाः सुविस्पष्टमूर्च्छना ग्रामसूचितम्। जगुर्गेयं मनोहारि तारमंद्रलयान्वितम्॥३॥
ऊचुश्च तं महात्मानं राजानं सूतमागधाः। स्वपंतं विविधा वाचो वुबोधयिषवः शनैः॥४॥
पश्यायमस्तमभ्येति राजेंद्रेन्दुः पराजितः। विवर्द्धमानया नूनं तव वक्रांबुजश्रिया॥५॥
द्रष्टुं त्वदाननांभोजं समुत्सुक इवाधुना। तमांसि भिंदन्नादित्यः संप्राप्तो ह्युदयं विभो॥६॥
राजन्नखिलशीतांशुवंशमौलिशिखामणे। निद्रयालं महाबुद्धे प्रतिबुध्यस्व सांप्रतम्॥७॥
इति तेषां वचः श्रृण्वन्नबुध्यत महीपतिः। क्षीराब्धौ शेषशयनाद्यथापंकजलोचनः॥८॥
विनिद्राक्षः समुत्थाय कर्म नैत्यकमादरात्। चकारावहितः सम्यग्जयादिकमशेषतः॥९॥
देवतामभिवंद्येष्टां गां दिव्य स्त्रग्गंधभूषणः। कृत्वा दूर्वांजनादर्शमंगल्यालम्बनानि च॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद अर्जुनोपाख्यान में

अध्याय-२८

कार्तवीर्य के मन्त्री द्वारा गोहरण समारम्भ

वशिष्ठ ने कहा कि जब राजा महर्षि जमदग्नि के तपोबल से निर्मित नगर में स्थित अपने महल में सो गये, तब सोये हुए राजा के पास जाकर सूत और मागध बन्दिगण जो कि सुन्दरवाद्यगान द्वारा राजाओं को जगाते हैं, आराम से रात्रि के बीतने पर सब राजा को जगाने के लिये गये।।१।। मधुरकण्ठ वाले उन सब बन्दिगणों ने वीणा वांसुरी की ध्वनि मिश्रित धीरे-धीरे तालियां बजाते हुए तथा तार वाला बाजा बजाते हुए समस्त कानों के सुनने योग्य और बहुत धीरे से बोले गये मधुर स्वर से, सरगम के जो स्वर हैं, उनमें मूर्च्छित करने वाले स्वरों से मनोहर तार मन्द्रलय से युक्त गाने योग्य स्वर से राजा को जगाया।।२-३।। फिर वे सूत मागध बन्दीगण अनेकों प्रकार की वाणियों से राजा को जगाने की इच्छा से धीरे धीरे उन महान् आत्मा राजा से बोले।।४।।

हे राजन्! देखो, आपके मुखकमल की शोभा के बढ़ जाने से पराजित हुआ, यह चन्द्रमा अस्त होने के लिये जा रहा है।।५।। और तुम्हारे मुखकमल को देखने को समुत्सक (उतावला) सूर्य अंधकारों को फोड़ता हुआ उदय हो रहा है।।६।। समस्त चन्द्रवंश के मूल शिरोमणि महाबुद्धिमान् राजन्! निद्रा को छोड़कर इस समय जागो।।७।। इस प्रकार बन्दियों के वचनों को सुनकर वे राजा उसी प्रकार जग गये, जिस प्रकार कि क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर सोये हुए शयन से भगवान् विष्णु जागते हैं।।८।। फिर आँखों को निद्राविहीन करते हुए उठकर सावधान होकर आदर से नित्यकर्म सम्पूर्ण जय आदि नित्यकर्म करने लगे।।९।। फिर दिव्यमाला और सुगन्धित द्रव्यों से सजे हुए

दत्त्वा दानानि चार्थिभ्यो नत्वा गोब्राह्मणानपि।
निष्क्रम्य च पुरात्तस्मादुपतस्थे च भास्करम्॥११॥
तावदभ्यययुः सर्वे मंत्रिसामंतनायकाः रचितांजलयो राजन्नेमुश्च नृपसत्तमम्॥१२॥
ततः स तैः परिवृतः समुपेत्य तपोनिधिम्। ननाम पादयोस्तस्य किरीटेनार्कवर्चसा॥१३॥
आशीर्भिरभिनंद्याथ राजानं मुनिपुंगवः। प्रश्रयावनतं साम्ना तमुवाचास्यतामिति॥१४॥
तमासीनं नरपतिं महर्षिः प्रीतमानसः। उवाच रजनी व्युष्टा सुखेन तव किं नृपः॥१५॥
अस्माकमेव राजेन्द्र वने वन्येन जीवताम्। शक्यं मृगसधर्माणां येन केनापि वर्त्तितुम्॥१६॥
अरण्ये नागराणां तु स्थितिरत्यंतदुःसहा। अनभ्यस्तं हि राजेंद्र ननु सर्वं हि दुष्करम्॥१७॥
वनवासपरिक्लेशं भवान्यत्सानुगोऽसकृत्। आप्तस्तु भवतो नूनं सा गौरवसमुन्नतिः॥१८॥
इत्युक्तस्तेन मुनिना स राजा प्रीतिपूर्वकम्। प्रहसन्निव तं भूयो वचनं प्रत्यभाषत॥१९॥
ब्रह्मन्किमनया ह्युक्त्या दृष्टस्ते यादृशो महान्।
अस्माभिर्महिमा येन विस्मितं सकलं जगत्॥२०॥
भवत्प्रभावसं जातविभवाहतचेतसः। इतो न गंतुमिच्छंति सैनिका मे महामुने॥२१॥
त्वादृशानां जगंतीह प्रभावैस्तपसां विभो। ध्रियंते सर्वदा नूनमचिंत्यं ब्रह्मवर्चसम्॥२२॥

वे राजा दूर्वांजन आदर्श मांगल्य आलम्बन करके, याचकों को दान देकर गौ और ब्राह्मणों को भी नमस्कार करके उस नगर से निकल कर सूर्य के प्रकाश में उपस्थित हुए।।१०-११।। तब तक सब मन्त्रिगण सामन्तगण और सेनानायक गण उस श्रेष्ठ राजा के पास हाथ जोड़े हुए उपस्थित हुए।।१२।। उसके बाद उस राजा ने उन सबको साथ लेकर सूर्य के पराक्रम वाले मुकुट के साथ उन तपस्वी मुनि के पैरों में सिर झुकाते हुए प्रणाम किया।।१३।। इसके बाद उनमुनि श्रेष्ठ जमदग्नि ने अपने आशीर्वादों से अभिनन्दित कर आदर से झुके हुए उस राजा से शान्ति से कहा कि बैठिये।।१४।। इस प्रकार बैठे हुए उस राजा से प्रसन्नचित्त महर्षि ने पूछा कि कहो राजन्! तुम्हारी रात सुख से बीती।।१५।।

हे राजेन्द्र! हम वन में रहने वाले जीवों का जंगली जानवरों के साथ रहते हुए, जिस किसी प्रकार जीना हो जाता है।।१६।। तथा वन में नगर के रहने वालों की स्थिति अत्यन्त कष्टपूर्ण हो जाती है तथा हे राजन् आप लोगों को तो वन में रहने का अभ्यास नहीं होता। अतः वह तो सब और भी कठिन है।।१७।। यहाँ पर रहकर आपने अपने अनुयायियों के साथ अनेकों बार वनवास का कष्ट अवश्य पाया होगा। वह निश्चय आपकी महानता है कि आप प्रसन्न हैं।।१८।। इस प्रकार जब उन मुनि ने प्रीतिपूर्वक कहा, तब वह राजा हंसता हुआ पुनः वचन बोला।।१९।। राजा बोला कि हे ब्रह्मन्! कहने से क्या लाभ? आप जैसे महान् है, यह हमने देख लिया, आपकी जो महिमा है, उससे सारा संसार आश्चर्यचकित है।।२०।।

हे महामुनि! आपके प्रभाव से उत्पन्न वैभव से आहत चित्त वाले ये मेरे सैनिक यहाँ से जाना नहीं चाहते हैं।।२१।। राजा ने कहा कि हे सर्वसमर्थ मुनि देव! आप जैसे लोगों की तपस्या के प्रभावों से यहाँ इस संसार में सर्वदा निश्चय ही अचिन्त्य ब्रह्मशक्ति धारण की जा रही है।।२२।।

नैव चित्रं तव विभो शक्नोति तपसा भवान्। ध्रुवं कर्त्तुं हि लोकानामवस्थात्रितयं क्रमात्॥२३॥
सुदृष्टा ते तपःसिद्धिर्महती लोकपूजिता। गमिष्यामि पुरीं ब्रह्मन्ननुजानातु मां भवान्॥२४॥

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्तस्तेन स मुनिः कार्त्तवीर्येण सादरम्। संभावयित्वा नितरां तथेति प्रत्यभाषत॥२५॥
मुनिना समनुज्ञातो विनिष्क्रम्य तदाश्रमात्। सैन्यैः परिवृतः सर्वैः संप्रतस्थे पुरीं प्रति॥२६॥
स गच्छंश्चिंतयामास मनसा पथि पार्थिवः। अहोऽस्य तपसः सिद्धिर्लोकविस्मयदायिनी॥२७॥
यया लब्धेदृशी धेनुः सर्वकामदुहां वरा। किं मे सकलराज्येन योगर्द्धया वाप्यनल्पया॥२८॥
गोरत्नभूता यदियं धेनुर्मुनिवरे स्थिता। अनयोत्पादिता नूनं संपत्स्वर्गसदामपि॥२९॥
ऋद्धमैंद्रमपि व्यंक्तं पदं त्रैलोक्यपूजितम्। अस्या धेनोरहं मन्ये कलां नार्हति षोडशीम्॥३०॥
इत्येवं चिंतयानं तं पश्चादभ्येत्य पार्थिवम्। चन्द्रगुप्तोऽब्रवीन्मंत्री कृतांजलि पुटस्तदा॥३१॥
किमर्थं राजशार्दूल पुरीं प्रतिगमिष्यसि। रक्षितेन च राज्येन पुर्या वा किं फलं तव॥३२॥
गोरत्नभूता नृपतेर्यावद्धेनुर्न चालये। वर्त्तते नार्द्धमपि ते राज्यं शून्यं तव प्रभो॥३३॥
अन्यच्च दृष्टमाश्चर्यं मया राजञ्छृणुष्व तत्। भवनानि मनोज्ञानि मनोज्ञाश्च तथा स्त्रियः॥३४॥
प्रासादा विविधाकारा धनं चादृष्टसंक्षयम्। धेनो तस्यां क्षणेनैव विलीनं पश्यतो मम॥३५॥

हे विभो! इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आप निश्चित ही अपनी तपस्या से क्रम से लोकों की तीन अवस्थायें, सृष्टि, स्थिति और प्रलय कर सकते हैं।।२३।। मैंने आपकी लोक पूजित महती तपसिद्धि को अच्छी तरह देख लिया। अब हे ब्रह्मन् मैं अपनी नगरी को जाना चाहता हूँ। अतः आप मुझे अनुमति प्रदान कीजिये।।२४।।

वशिष्ठ ने कहा कि जब उस राजा कार्तवीर्य ने आदरपूर्वक उन मुनि से कहा, तब बहुत तब अधिक सुन्दर भाव से प्रसन्न होकर उन मुनि ने कहा कि जाओ।।२५।। तब मुनि से अनुमति प्राप्त कर समस्त सेना से घिरे हुए, उस राजा ने उस आश्रम से निकलकर अपनी नगरी की तरफ प्रस्थान कर दिया।।२६।। मार्ग में जाते हुए वह राजा यह सोचने लगा कि आश्चर्य है, यह तप की शक्ति, यह शक्ति तो संसार को विस्मय प्रदान करने वाली है।।२७।। जिस शक्ति के द्वारा इन्होंने यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली श्रेष्ठ धेनु प्राप्त की है, जिसने निश्चय ही स्वर्ग की सम्पत्ति को भी उत्पन्न करा दिया। इस इतने विशाल मेरे राज्य से क्या लाभ है?।।२८।। गोरत्नभूत (गाय रूपी रत्न) के रूप में यदि यह मुनिवर के पास है, तब तो निश्चय ही इसके द्वारा ही स्वर्ग की सम्पतियाँ द्वारा उत्पन्न की गयी हैं।।२९।। इन्द्र की व्यक्त समृद्धि जो कि तीनों लोकों में पूजित है, वह सब इस कामधेनु की ही है, यह मैं मानता हूँ। सोलह कलायें भी इससे अधिक नहीं हैं।।३०।।

इस प्रकार सोचते हुए उस राजा के पास जाकर चन्द्रगुप्त मन्त्री ने हाथ जोड़ते हुए राजा से कहा।।३१।। हे राजशार्दूल! किसलिये आप अपनी नगरी को लौट रहे हैं। रक्षित राज्य अथवा नगरी से क्या? अर्थात् राज्य और नगर तो पूरी तरह रक्षित है। अतः वहाँ जाने से आपको क्या फायदा? गौ रूपी रत्न बनी हुई राजा की धेनु जब तक घर में नहीं है, तब तक आपका राज्य आधा भी नहीं है। अतः इसके सामने आपका राज्य शून्य है।।३३।। हे राजन्! अन्य भी आश्चर्य मैंने देखा, उसको आप सुनिये। वह यह कि मन को सुन्दर लगने वाली स्त्रियां थीं तथा अनेकों आकार के जो महल थे तथा ऐसा कभी नहीं देखा, वैसा जो न नष्ट होने वाला धन था, वह सब उस धेनु के अन्दर मेरे देखते

तत्तपोवनमेवासीदिदानीं राजसत्तम। एवंप्रभावा सा यस्य तस्य किं दुर्लभं भवेत्॥३६॥
तस्माद्रत्नार्हसत्त्वेन स्वीकर्त्तव्या हि गौस्त्वया।
यदि तेऽनुमतं कृत्यमाख्येयमनुजीविभिः॥३७॥

राजोवाच

एवमेवाहमप्येनां न जानामीत्यसांप्रतम्। ब्रह्मस्वं नापहर्तव्यमिति मे शङ्कते मनः॥३८॥
एवं ब्रुवंतं राजनमिदमाह पुरोहितः। गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो गर्हयन्निव भूपते॥३९॥
ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यमापद्यपि कथंचन। ब्रह्मस्वसदृसं लोके दुर्जरं नेह विद्यते॥४०॥
विषं हंत्युपयोक्तारं लक्ष्यभूतं तु हैहय। कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः॥४१॥
अनिवार्यमिदं लोके ब्रह्मस्वं दुर्जरं विषम्। पुत्रपौत्रान्तफलदं विपाककटु पार्थिव॥४२॥
ऐश्वर्यमूढं हि मनः प्रभूणामसदात्मनाम्। किन्नामासन्न कुरुते नेत्रासद्विप्रलोभितम्॥४३॥
वेदान्यस्त्वामृते कोऽन्यो विना दानान्नृपोत्तम।
आदानं चिंतयानो हि ब्राह्मणेष्वभिवाञ्छति॥४४॥
ईदृशस्त्वं महाबाहो कर्म सज्जननिंदितम्। मा कृथास्तद्धि लोकेषु यशोहानिकरं तव॥४५॥
वंशे महति जातस्त्वं वदान्यानां मही भुजाम्। यशांसि कर्मणानेन सांप्रतं माव्यनीवशः॥४६॥

देखते ही क्षण भर में समा गया। हे राजसत्तम! इस समय वह तपोवन तपोवन ही है। इस प्रकार का प्रभाव जिसका है, उसको इस संसार में क्या दुर्लभ है?॥३४-३६॥ इसलिये रत्नप्राप्ति की दृष्टि से आपको इस धेनु को स्वीकार करना चाहिये। यदि आपकी अनुमति हो, तो हम अनुगामियों को करना चाहिये॥३७॥

उसके बाद राजा ने कहा—इस प्रकार मैं भी इस गौ को असाम्प्रत नहीं जानता हूँ, परन्तु ब्राह्मण का धन नहीं अपहरण करना चाहिये। इस प्रकार सोचकर मेरे मन में शंका हो रही है॥३८॥ इस प्रकार बोलते हुए राजा से पुरोहित ने यह कहा कि हे राजन्! बुद्धिमानों में श्रेष्ठ गर्ग ने भर्त्सना करते हुए यह कहा है कि किसी भी प्रकार की आपत्ति में भी ब्राह्मण के धन को नहीं चुराना चाहिये; क्योंकि ब्रह्मधन के समान संसार में कोई भी दुर्जर धन नही है॥३९-४०॥ हे हैहयकुल शिरोमणि राजन्! विष तो उपयोक्ता (पीने वाले) को ही लक्ष्य बनाकर मारता है; परन्तु ब्रह्मधन रूप अरणि से पैदा होने वाली आग समस्त कुल को जला देती है॥४१॥

इस संसार में ब्रह्मधन दुर्जर विष है, उसका प्रभाव अनिवार्य होता है अर्थात् किसी तरह दूर नहीं किया जा सकता और हे राजन्! यह विष पचने में बहुत कटु होता है अर्थात् यह धन कभी किसी को पचता नहीं है तथा बहुत कड़ुवा होता है तथा वह पुत्र और पौत्र के अन्त तक फल देने वाला होता है अर्थात् उसका फल पुत्र और पौत्रों तक भोगना पड़ता है॥४१-४२॥ हे राजन्! दुष्टात्मा राजाओं का मन ऐश्वर्यपरक होता है अर्थात् दुष्ट पुरुष सदैव ऐश्वर्य के विषय में ही सोचते रहते हैं। यह सेनापति द्वारा यह क्या बुरा और विप्रलोभित कार्य कराया जा रहा है॥४३॥ वेदों के अनुसार विना दान के कोई अन्य राजा नही है तथा जो लेना ही सोचने वाला होता है, वह ब्राह्मण से भी लेना चाहता है॥४४॥ हे राजन्! आप उदार एवं वाक्पटु राजाओं के महान् वंश में उत्पन्न हुए हैं। इस समय इस कर्म द्वारा अपने यशों को बर्बाद मत कीजिये॥४६॥

अहोऽनुजीविनः किंचिद्भर्त्तारं व्यसनार्णवे। तत्प्रसादसमुन्नद्धा मज्जयंत्यनयोन्मुखाः॥४७॥
श्रिया विकुर्वन्पुरुषकृत्यचिंत्ये विचेतनः। तन्मतानुप्रवृत्तिश्च राजा सद्यो विषीदति॥४८॥
अज्ञातमुनयो मंत्री राजानमनयांबुधौ। आत्मना सह दुर्बुद्धिर्लोहनौरिव मज्जयेत्॥४९॥
तस्मात्त्वं राजशार्दूल मूढस्य नयवर्त्मनि। मतमस्य सुदुर्बुद्धेर्नानुवर्त्तितुमर्हसि॥५०॥
एवं हि वदतस्तस्य स्वामिश्रेयस्करं वचः। आक्षिप्य मन्त्री राजानमिदं भूयो ह्यभाषत॥५१॥
ब्राह्मणोऽयं स्वजातीयहितमेव समीक्षते। महांति राजकार्याणि द्विजैर्वेत्तुं न शक्यते॥५२॥
राज्ञैव राजकार्याणि वेद्यानि स्वमनीषया। विना वै भोजनादाने कार्यं विप्रो न विंदति॥५३॥
ब्राह्मणो नावमंतव्यो वंदनीयश्च नित्यशः। प्रतिसंग्राहयणीयश्च नाधिकं साधितं क्वचित्॥५४॥
तस्मात्स्वीकृत्य तां धेनुं प्रयाहि स्वपुरं नृप। नोचेद्राज्यं परित्यज्य गच्छस्व तपसे वनम्॥५५॥
क्षमावत्त्वं ब्राह्मणानां दण्डः क्षत्रस्य पार्थिव। प्रसह्य हरणे वापि नाधर्मस्ते भविष्यति॥५६॥
प्रसह्य हरणे दोषं यदि संपश्यसे नृप। दत्त्वा मूल्यं गवाश्वाद्यमृषेर्धेनुः प्रगृह्यताम्॥५७॥
स्वीकर्तव्या हि सा धेनुस्त्वयात्वं रत्नभाग्यतः। तपोधनानां हि कुतो रत्नसंग्रहणादरः॥५८॥
तपोधन बलः शांतः प्रीतिमान्स नृप त्वयि। तस्मात्ते सर्वथा धेनुं याचितः संप्रदास्यति॥५९॥

अहो! आश्चर्य है कि उनकी कृपा से ही आगे बढ़े हुए अनुजीवी (मंत्री सेनापति आदि) तो विना आंख और मुख वाले अपने स्वामी को बुरी आदतों के सागर में डुबो देते हैं। अतः ऐसे सलाहकारों से राजा को बचना चाहिये।।४७।। ये सब राजा के अनुजीवी मन्त्री सेनापति आदि चाटुकार राजाको कहते हैं कि हे राजन्! लक्ष्मी धन-दौलत से ही सब विशेष कार्य होते हैं। अतः वे सब राजाओं को धन दौलत पाने के विषय में विशेष चिन्तन करने को विवश कर देते हैं तया जब उनके मत में राजा की प्रवृत्ति होती है, तब राजा शीघ्र ही दुःखी होता है।।४८।। यह दुर्बुद्धिवाला मन्त्री मुनि के प्रभाव को नहीं जानता है। अतः यह मूर्ख मंत्री अपने साथ-साथ लोहे की नाव के समान राजा को अनीति के समुद्र में डुबोना चाहता है।।४९।। इसलिये हे राजन्! इस मूर्खमंत्री के न्यायमार्ग में जाकर इसके मत का अनुसरण मत कीजिये।।५०।। इस प्रकार पुरोहित द्वारा कहे गये अपने स्वामी का कल्याणकरने वाले वचन को काटकर वह मन्त्री राजा से फिर इस प्रकार बोला।।५१।।

हे राजन्! यह पुरोहित ब्राह्मणजाति का है, इसलिए अपनी जाति की भलाई को देख रहा है। हे राजन्! महान राजकार्यों को ब्राह्मण नहीं जान सकते हैं।।५२।। राजकार्यों को अपनी मन की इच्छा द्वारा राजा को स्वयं जानना चाहिये। ब्राह्मण तो भोजन अथवा दान के विना कोई कार्य नहीं करता है।।५३।। ब्राह्मण को हर कार्य में नित्य वन्दनीय नहीं मानना चाहिये। ब्राह्मण कहीं भी अधिक धन समृद्धि प्रति संग्रह करने को नहीं कहेगा।।५४।। इसलिये हे राजन्! उस कामधेनु को अपने घर को लेकर चलिये। अन्यथा इस राज्य को छोड़कर तपस्या करने के लिये वन में चले जाइये।।५५।। हे राजन्! ब्राह्मणों को क्षमावान् होना चाहिये और क्षत्रियों को दण्ड देने वाला होना चाहिये। बलपूर्वक हरण करने में तो आपको कोई अधर्म नहीं होगा।।५६।। यदि हे राजन्! आप बलपूर्वक उस धेनु को लेने में अधर्म समझते हैं, तो हे राजन्! उसका मूल्य देकर (चुकाकर) उस धेनु को ग्रहण कर लीजिये।।५७।। इसलिये राजन्! आपको वह धेनु स्वीकार करनी चाहिये अपनी बनानी चाहिये; क्योंकि आप रत्नभाग्य वाले हैं, तपस्वी को रत्नों का संग्रह कहाँ आदर करने वाला है अर्थात् नहीं है।।५८।। हे राजन्! तपस्वियों का बल तो शान्त है, उनका तो शान्ति ही बल है तथा हे राजन् वे आप पर प्रसन्न भी हैं। इसलिये आप यदि उनसे उस धेनु को मागेंगे तो वे अवश्य

अथ वा गोहिरण्याद्यं यदन्यदभिवाञ्छितम्। संगृह्य वित्तं विपुलं धेनुं तां प्रति दास्यति॥६०॥
अनुपेक्ष्यं महद्रत्नं राज्ञा वै भूतिमिच्छता। इति मे वर्त्तते बुद्धिः कथं वा मन्यते भवान्॥६१॥

राजोवाच

गत्वा त्वमेव तं विप्रं प्रसाद्य च विशेषतः। दत्त्वा चाभीप्सितं तस्मै तां गामानय मंत्रिक॥६२॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्तस्ततो राज्ञा स मंत्री विधिचोदितः। निवृत्य प्रययौ शीघ्रं जमदग्नेरथाश्रमम्॥६३॥
गते तु नृपतौ तस्मिन्नकृतव्रणसंयुतः। समिदानयनार्थाय रामोऽपि प्रययौ वनम्॥६४॥
ततः स मंत्री सबलः समासाद्य तदाश्रमम्। प्रणम्य मुनिशार्दूलमिदं वचनमब्रवीत्॥६५॥

चंद्रगुप्त उवाच

ब्रह्मन्नृपतिनाऽज्ञप्तं राजा तु भुवि रत्नभाक्। रत्नभूता च धेनुः सा भुवि दोग्धीष्वनुत्तमा॥६६॥
तस्माद्रत्नं सुवर्णं वा मूल्यमुक्त्वा यथोचितम्। आदाय गोरत्नभूतां धेनुं मे दातुमर्हसि॥६७॥

जमदग्निरुवाच

होमधेनुरियं मह्यं न दातव्या हि कस्यचित्। राजा वदान्यः स कथं ब्रह्मस्वमभिवाञ्छति॥६८॥

मंत्र्युवाच

रत्नभाक्त्वेन नृपतिर्धेनुं ते प्रतिकांक्षति। गवायुतेन तस्मात्त्वं तस्मै तां दातुमर्हसि॥६९॥

दे देंगे।।५९।। अथवा यदि वे उसके बदले में अन्य गौ सोना आदि जो कुछ भी चाहें उस सब विपुल धन को लेकर के उस गौ को आपको दे देंगे।।६०।। ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले राजा को महान् रत्न की उपेक्षा नहीं करना चाहिये। इस प्रकार ऐसा मेरी बुद्धि मानती है, अब आप किस प्रकार कैसा मानते हैं?।।६१।।

तब राजा ने मंत्री से कहा कि मन्त्री जी आप जाकर उन जमदग्नि मुनि को वे जितना चाहे उतना धन देकर उन्हें प्रसन्न करके उस धेनु को ले आओ।।६२।।

अब कथा कहने के क्रम में वशिष्ठ अपने श्रोता राजा से कहते हैं कि राजा ने मंत्री से यह कहा कि तुम वे जितना धन चाहें उन्हें देकर धेनु को ले आओ, ऐसा कहने पर वह मन्त्री राजा द्वारा प्रेरित होकर महर्षि जमदग्नि के आश्रम मे गया।।६३।। उधर जब राजा कार्तवीर्य चले गये थे, तब उनके चले जाने पर समिधा लाने के लिये अकृतव्रण के साथ परशुराम भी उस वन में आ गये।।६४।। इससे वह मन्त्री सेना के साथ उस आश्रम में पहुंचकर मुनि को प्रणाम करके यह वचन बोला।।६५।।

चन्द्रगुप्त मन्त्री ने कहा—कि हे मुनिवर! राजा ने मुझे आज्ञा दी है कि पृथ्वी पर राजा ही रत्नों का भोक्ता होता है तथा यह धेनु रत्न रूप है तथा समस्त दुहने वाली गायों में अनुत्तम है अर्थात् कहीं भी इससे उत्तम अन्य कोई धेनु नहीं है।।६६।। इसलिये हे मुनिवर! रत्न अथवा सोना जो कुछ भी इसका यथोचित मूल्य हो, उसे लेकर इस गौ के रूप में रत्नभूत इस गौ को हमें आप दे सकते हैं।।६७।।

जमदग्नि ने कहा कि यह हमारी होम धेनु है, इससे हमारा यज्ञकार्य सम्पन्न होता है तथा वह राजा तो बहुत ही उदार एवं महान् है, वह कैसे ब्रह्म धन को लेना चाहता है?।।६८।।

मन्त्री ने कहा कि रत्नों का अधिकारी राजा होता है, इसलिये राजा तुम्हारी धेनु को चाहता है; क्योंकि तुम्हारी यह धेनु रत्न है। अतः गौ के बदले गौ देकर आप इस गौ को राजा को दे दीजिये।।६९।।

जमदग्निरुवाच

क्रयविक्रययोर्नाहं कर्त्ता जातु कथंचन। हविधानीं च वै तस्मान्नोत्सहे दातुमंजसा॥७०॥

मंत्र्युवाच

राज्यार्धेनाथ वा ब्रह्मन्सकलेनापि भूभृतः। देहि धेनुमिमामेकां तत्ते श्रेयो भविष्यति॥७१॥

जमदग्निरुवाच

जीवन्नाहं तु दास्यामि वासवस्यापि दुर्मते। गुरुणा याचितं किं ते वचसा नृपतेः पुनः॥७२॥

मंत्र्युवाच

त्वमेव स्वेच्छया राज्ञे देहि धनुं सुहृत्तया। यथा बलेन नीतायां तस्यां त्वं किं करिष्यसि॥७३॥

जमदग्निरुवाच

दाता द्विजानां नृपतिः स यद्यप्याहरिष्यति।
विप्रोऽहं किं करिष्यामि स्वेच्छावितरणं विना॥७४॥

वसिष्ठ उवाच

इत्येवमुक्तः संक्रुद्धः स मंत्री पापचेतनः। प्रसह्य नेतुमारेभे मुनेस्तस्य पयस्विनीम्॥७५॥

॥इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥२८॥
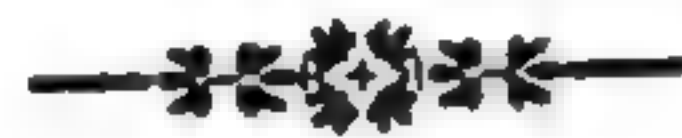
जमदग्नि ने कहा कि मैं क्रय और विक्रय्य करने वाला किसी भी प्रकार का नहीं हूँ। यह गौ मेरे यज्ञकार्य को पूर्ण करने वाली है, इसलिए मैं आपसे सीधी तरह कह दे रहा हूँ कि मैं आपको इस धेनु को नहीं दे सकता हूँ।।७०।।

मन्त्री ने कहा—हे मुनिवर! राजा का आधा राज्य अथवा समस्त राज्य लेकर भी इस धेनु को राजा को दे दीजिये वह आपके लिए हितकर होगा।।७१।।

जमदग्नि ने कहा—अरे दुष्ट बुद्धि वाले मन्त्री! मैं अपने जीते जी इन्द्र को भी इस धेनु को नहीं दूँगा। फिर तुम्हारे स्वामी राजा द्वारा मांगने की तो बात ही क्या है?।।७२।।

मन्त्री ने कहा कि अरे मुनि महाशय तुम ही अपनी इच्छा से मित्रता के रूप में इस धेनु को राजा को दे दीजिये; परन्तु जब वे बलपूर्वक ले जायेंगे, तब तुम क्या करोगे?।।७३।।

जमदग्नि ने कहा कि ब्राह्मणों को दान देने वाला तो राजा होता है, यदि राजा ही मेरी धेनुको आकर ले जायेगा, तब मैं ब्राह्मण स्वेच्छा से देने के अलावा क्या करूँगा।।७४।।

वशिष्ठ ने कहा कि इस प्रकार मुनि के कहने पर वह पापी क्रुद्ध मन्त्री मुनि की उस धेनु को जबरदस्ती बलपूर्वक लेना आरम्भ करने लगा।।७५।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद २८वां अध्याय अर्जुनोपाख्यान कार्तवीर्य के मन्त्री द्वारा गोहरण समारम्भ का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे अर्जुनोपाख्याने

जमदग्निहननं नाम

एकोनविंशतितमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

जमदग्निस्ततो भूयस्तमुवाच रुषान्वितः। ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यं पुरुषेण विजानता॥१॥
प्रसह्य गां मे हरतो पापमाप्स्यसि दुर्मते। आयुर्ज्ञाने परिक्षीणं न चेदेतत्करिष्यति॥२॥
बलादिच्छसि यन्नेतुं तन्न शक्यं कथंचन। स्वयं वा यदि सायुज्येद्विनशिष्यति पार्थिवः॥३॥
दानं विनापहरणं ब्राह्मणानां तपस्विनाम्। शतायुषोऽर्जुनादन्यः को न्विच्छति जिजीविषुः॥४॥
इत्युक्तस्तेन संक्रुद्धः स मंत्री कालचोदितः। बद्ध्वा तां गां दृढैः पाशैर्विचकर्ष बलान्वितः॥५॥
जमदग्निरथ क्रोधाद्द्राविकर्मप्रचोदितः। रुरोध तं यथाशक्ति विकर्षंत पयस्विनीम्॥६॥
जीवन्न प्रतिमोक्ष्यामि गामेनामित्यमर्पितः। जग्राह सुदृढं कंठे बाहुभ्यां तां महामुनिः॥७॥
ततः क्रोधपरीतात्मा चंद्रगुप्तोऽतिनिर्घृणः। उत्सारयध्वमित्येनमादिदेश स्वसैनिकान्॥८॥
अप्रधृष्यतमं लोके तमृषिं राजकिंकराः। भर्त्राज्ञया प्रसह्यैनं परिवब्रुः समंततः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद अर्जुनोपाख्यान में

अध्याय–२९

जमदग्नि हनन

वशिष्ठ ने कहा कि जब उस मन्त्री ने बलपूर्वक धेनु को लेना प्रारम्भ किया, तब क्रोध से युक्त जमदग्नि ने कहा कि जानते हुए भी तुम्हें ब्राह्मण धन को नहीं लेना चाहिये।।१।। हे नीच मन्त्री! तुम बलपूर्वक मेरे इस धन को लेकर पाप को प्राप्त करोगे। तुम्हारी आयु और ज्ञान दोनों नष्ट हो जायेंगे, अतः यह मत करो।।२।। तुम इस धेनु को बलपूर्वक ले जाना चाहते हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता है, वह स्वयं अथवा अपने समस्त साथियों और मन्त्रियों के साथ वह राजा नष्ट हो जायेगा।।३।।

ब्राहाणों उनमें भी तपस्वियों को दान न देकर अपहरण करना सौ वर्ष जीने की इच्छा रखने वाले अर्जुन के अलावा कौन अन्य चाहता है।।४।। ऐसा जब मुनि ने कहा, तब वह मृत्यु प्रेरित मन्त्री क्रोधित होकर धेनु को मजबूत रस्से में बाँधकर बलपूर्वक खींचने लगा।।५।। इसके बाद जमदग्नि भी उसके उस दुष्कर्म से प्रेरित होकर क्रोधपूर्वक उस धेनु को खींचते हुए मन्त्री को रोकने लगे।।६।। मैं इस गौ को जीवित रहते हुए नहीं छोड़ूंगा। इस प्रकार चिल्लाते हुए उन महामुनि ने उस धेनु के कण्ठ को दोनों बाहों से जकड़ लिया।।७।। उसके बाद क्रोध से अभिभूत आत्मा वाले उस अति नीच मन्त्री चन्द्रगुप्त ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि इस मुनि को हटाओ।।८।। संसार में जो सबसे अधिक अधृष्यमाण हैं, अर्थात् घसीटने योग्य नहीं है, अर्थात् जिन्हें किसी भी प्रकार क्षति चोट नहीं पहुंचानी चाहिये यही नहीं बुरी बोली तक नहीं बोलनी चाहिये, उन मुनि जमदग्नि को राजा के नौकरों ने बलपूर्वक चारों ओर

दंडैः कशाभिर्लकुडैर्विनिघ्नंतश्च मुष्टिभिः। ते समुत्सारयन् धेनोः सुदूरतरमंतिकात्॥१०॥
स तथा हन्यमानोऽपि व्यथितः क्षमयान्वितः। न चुक्रोधाक्रोधनत्वं सतो हि परमं धनम्॥११॥
स च शक्तः स्वतपसा संहर्त्तुमपि रक्षितुम्। जगत्सर्वं क्षयं तस्य चिन्तयन्न प्रचुक्रुधे॥१२॥
स पूर्वं क्रोधनोऽत्यर्थं मातुरर्थे प्रसादितः। रामेणाभूत्ततो नित्यं शांत एव महातपाः॥१३॥
स हन्यमानः सुभृशं चूर्णितांगास्थिबंधनः। निपपात महातेजा धरण्यां गतचेतनः॥१४॥
तस्मिन्मुनौ निपतिते स दुरात्मा विशंकितः। किंकरानादिशच्छीघ्रं धेनोरानयने बलात्॥१५॥
ततः सवत्सां तां धेनुं बद्धा पाशैर्दृढैर्नृपः। कशाभिरभिहन्यंत चकृषुश्च निनीषया॥१६॥
आकृष्यमाणा बहुभिः कशाभिर्लगुडैरपि। हन्यमाना भृशं तैश्च चुक्रुधे च पयस्विनी॥१७॥
व्यथितातिकशापातैः क्रोधेन महतान्विता।
आकृष्य पाशान् सुदृढान् कृत्वाऽत्मानमोचयत्॥१८॥
विमुक्तपाशबंधा सा सर्वतोऽभिवृता बलैः। हुंहारवं प्रकुर्वाणा सर्वतोऽह्यपतद्रुषा॥१९॥
विषाणखुरपुच्छाग्रैरभिहत्य समंततः। राजमंत्रिबलं सर्वं व्यद्रावयदमर्षिता॥२०॥
विद्राव्य किंकरान्सर्वांस्तरसैव पयस्विनी। पश्यतां सर्वभूतानां गगनं प्रत्यपद्यत॥२१॥
ततस्ते भग्नसंकल्पाः संभग्नक्षतविग्रहाः। प्रसह्य बद्ध्वा तद्वत्सं जग्मुरेवातिनिर्घृणाः॥२२॥

से गालियां दी।।९।। तथा डण्डों से, कोड़ों से, मुट्ठियों और सोटों (लाठियों) से मारते हुए, उन्हें,छोड़ते हुए उस धेनु को उनके पास से बहुत दूर ले गये।।१०।। वे जमदग्नि मारे जाते हुए भी क्षमा से युक्त होने के कारण दुःखी हुए तथा वे क्रोधित नहीं हुए; क्योंकि वे जानते थे कि क्रोध न करना तपस्वियों का परमधन है।।११।। वे महामुनि अपने तप से अपनी रक्षा कर सकते थे तथा सबका संहार भी कर सकते थे; परन्तु ऐसा करने से सारे संसार का नाश हो सकता था, यही सोचते हुए उन्होंने क्रोध नहीं किया।।१२।। वे पहले जब अत्यन्त क्रोधित हुए थे, तब परशुराम की माता के लिये परशुराम द्वारा प्रसन्न कर दिये गये थे, तब से वे महातपस्वी शान्त स्वभाव ही हो गये थे। उनको जब राजा के नौकरों द्वारा बहुत बेरहमी से मारा गया, तब उनके शरीर की हड्डियों के बंधन चूर-चूर कर दिये थे। अतः वे निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर गये।।१४।।

उन मुनि के भूमि पर गिर जाने पर उस दुष्ट आत्मा मन्त्री ने निडर होकर धेनु को बलपूर्वक लाने का आदेश दिया।।१५।। उसके बाद बछड़े सहित उस धेनु को मजबूत रस्सों से बाँधकर राजा के नौकरों ने कोड़ों से मारते हुए ले जाने की इच्छा से उस धेनु को खींचा।।१६।। इस प्रकार मजबूत रस्सों से खींची जाती हुई बहुत से कोड़ों और लाठियों से पीटी जाती हुई वह धेनु क्रोधित हो गयी।।१७।। अत्यधिक कोड़ों की मार से बहुत अधिक क्रोधित होकर उस धेनु ने अत्यन्त मजबूत रस्सियों को खींचकर अपने को छुड़ा लिया।।१८।। जब वह धेनु पाशबन्धन से मुक्त हो गयी, तब अपने बल से चारों ओर अभिवृत्त हो गयी तथा हुंकार शब्द करती हुई चारों ओर क्रोध से दौड़ने लगी।।१८।। अपने सींग खुर और पूँछ के अग्रभागों से सबको चारों ओर घायल करके राजा मन्त्री और समस्त सेना को क्रोध से खदेड़ने लगी।।१९-२०।। शीघ्र ही उस धेनु ने समस्त राजसेवकों को खदेड़कर सब प्राणियों के देखते देखते ही आकाश में उड़ना आरम्भ कर दिया।।२१।। उसके बाद जिनकी इच्छायें पूरी नहीं हुई तथा जिनके शरीर

पयस्विनीं विना वत्सं गृहीत्वा किंकरैः सह। स पापस्तरसा राज्ञः सन्निधिं समुपागमत्॥२३॥
गत्वा समीपं नृपतेः प्रणम्यास्मै प्रशंसकृत्। तद्वृत्तांतमशेषेण व्याचचक्षे ससाध्वसः॥२४॥

॥इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादेऽर्जुनोपाख्याने एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥२९॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे अजुर्नपाख्याने

जमदग्नेः पुनर्जीवनं नाम

त्रिंशतितमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

श्रुत्वैतत्सकलं राजा जमदग्निवधादिकम्। उद्विग्नचेताः सुभृशं चिन्तयामास नैकधा॥१॥
अहो मे सुनृशंसस्य लोकयोरुभयोरपि। ब्रह्मस्वहरणे वाञ्छा तद्धत्या चातिगर्हिता॥२॥
अहो नाश्रौषमस्याहं ब्राह्मणस्य विजानतः। वचनं तर्हि तां जह्यां विमूढात्मा गतत्रपः॥३॥
इति संचितयन्नेव हृदयेन विदूयता। स्वपुरं प्रतिचक्राम सबलः सानुगस्ततः॥४॥

घायल और तोड़ दिय गये थे, उन अतिनीच राजा मन्त्री और उनके अनुयायियों ने उस धेनु के बछड़े को बाँध लिया और फिर चलने लगे।।२२।। उस धेनु के विना बछड़े को पकड़कर नौकरों केसाथ वह पापी मन्त्री तीव्रता से राजाके पास पहुँचा।।२३।। राजा के पास जाकर उस राजा को प्रणाम करके प्रशंसा करते हुए मन्त्री ने उस समस्त समाचार को राजा को बताया।।२४।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यमाग तृतीय उपोद्घात पाद २९वां अध्याय अर्जुनोपाख्यान जमदग्नि हनन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद अर्जुनोपाख्यान में

अध्याय–३०

जमदग्नि का पुनः जीवित होना

वशिष्ठ ने कहा कि जब राजा ने जमदग्नि के वध आदि वृत्तान्त को सुना, तब समस्त वृत्तान्त को सुनकर राजा व्याकुल हो गया और फिर एक बार गहराई से सोचने लगा।।१।। अरे मुझ हत्यारे की दोनों लोकों में ब्रह्मधन के अपहरण में इच्छा और फिर ब्राह्मण की हत्या अत्यन्त निन्दनीय है।।२।। मैंने जानते हुए भी इस ब्राह्मण अपने पुरोहित के वचन को नहीं सुना और उसके वचन को छोड़कर मैं विमूढात्मा आज लज्जाहीन हो गया हूँ ।।३।। इस प्रकार विचार कर हृदय से अपने को कोसते हुए वह राजा अपनी समस्त सेना के साथ अपने नगर को चल दिया।।४।।

पुरीं प्रतिगते राज्ञि तस्मिन्सपरिवारके। आश्रमात्सहसा राजन्विनिश्चक्राम रेणुका॥५॥
अथ सक्षतसर्वांगं रुधिरेण परिप्लुतम्। निश्चेष्टं पतितं भूमौ ददर्श पतिमात्मनः॥६॥
ततः सा विहतं मत्वा भर्त्तारं गतचेतनम्। अन्वाहतेवाशनिना मूर्छितान्यपतद्भुवि॥७॥
चिरादिव पुनर्भूमेरुत्थायातीव दुःखिता। पतित्वोत्थाय सा भूयः सुस्वरं प्ररुरोद ह॥८॥
विललाप च सात्यर्थं धरणीधूलिधूसरा। अश्रुपूर्णमुखी दीना पतिता शोकसागरे॥९॥
हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ दाक्षिण्यामृतसागर। हा धिगत्यंतशांतत्वं नैव कांक्षेत चेदृशम्॥१०॥

आश्रमादभिनिष्क्रांतः सहसा व्यसनार्णवे।
क्षिप्त्वानाथामगाधे मां क्व च यातोऽसि मानद॥११॥

सतां साप्तपदे मैत्रे मुषिताऽहं त्वया सह। यासि यत्र त्वमेकाकी तत्र मां नेतुमर्हसि॥१२॥
दृष्ट्वा त्वामीदृशावस्थमचिराद्धृदयं मम। न दीर्यते महाभाग कठिनाः खलु योषितः॥१३॥
इत्येवं विलपंती सा रुदती च मुहुर्मुहुः। चुक्रोश रामरामेति भृशं दुःखपरिप्लुता॥१४॥
तावद्रामोऽपि स वनात्समिद्धारसमन्वितः। अकृतव्रणसंयुक्तः स्वाश्रमाय न्यवर्त्तत॥१५॥
अपश्यद्भयशंसीनि निमित्तानि बहूनि सः। पश्यन्नुद्विग्नहृदयस्तूर्णं प्रापाश्रमं विभुः॥१६॥
तमायांतमभिप्रेक्ष्य रुदती सा भृशातुरा। नवीभूतेन शोकेन प्रारुदद्रेणुका पुनः॥१७॥
रामस्य पुरतो राजन्भर्तृव्यसनपीडिता। उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामुदरं समताडयत्॥१८॥

राजा के अपने नगर में अपने परिवार में पहुंचने पर उधर आश्रम में आश्रम से अचानक जमदग्निमुनि की पत्नी रेणुका निकली।।५।। इसके बाद उन रेणुका ने क्षत-विक्षत खून से लथपथ शरीर निश्चेष्ट भूमि पर गिरे हुए अपने पति को देखा।।६।। उसके बाद चेतनाहीन अपने पति को मरा हुआ समझकर वज्र से मारी हुई के समान मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी।।७।। फिर थोड़ी देर के बाद भूमि से उठकर बहुत अधिक दुःखी हो गयी और गिर-गिरकर उठ-उठकर विलख-विलख कर रोने लगी।।८।। और पृथ्वी पर धूल-धूसरित होकर घोर विलाप करने लगी और अश्रुपूर्णमुखी और दुःखी होकर शोक-सागर में डूब गयी।।९।। वह रोते हुए कह रही थीं कि हे नाथ! हे धर्मज्ञ! हे उदारतारूपी अमृत के सागर! अरे धिक्कार है, उस नींच राजा को इतने अत्यन्त शान्त आपके साथ ऐसा नहीं करना चाहिये था।।१०।। हे नाथ! हे मुझे मान देने वाले! इस आश्रम से अचानक निकलकर मुझे अनाथ बनाकर तथा इस आपत्तियों के अथाह सागरमें गिराकर कहाँ जा रहे हो?।।११।।

हे नाथ! सज्जनों की जो सप्तपदी (सात वचनों के साथ सात फेरे) होते हैं, उनके द्वारा आपने मुझसे विवाह किया है, आज तुम जहाँ अकेले जा रहे हो, वहाँ मुझे भी ले चलो।।१२।। हे महाभाग! आपकी इस दशा को देखकर शीघ्र ही मेरा हृदय फट क्यों नहीं रहा है? निश्चय ही स्त्रियाँ कठोर होती हैं।।१३।। इस प्रकार विलाप करती हुई और बार-बार रोती हुई बहुत अधिक दुःखी होकर राम! राम! यह कहकर चिल्लाने लगी।।१४।। तब तक वह परशुराम भी वन से समिधायें लेकर अकृतव्रण के साथ अपने आश्रम पर लौटे।।१५।। तब उन सर्वसमर्थ परशुराम ने भयभीत करने वाले अनेकों अपशकुनों को देखा, उन अपशकुनों को देखते हुए उद्विग्न हृदय परशुराम उस आश्रम में पहुंचे।।१६।। उनको आया हुआ देखकर उनकी माता रेणुका बहुत आतुर होकर फिर नये पैदा हुए शोक की भाँति विलख-विलख कर रोने लगी।।१७।। वशिष्ठ राजा से उस शोकावस्था के हृदय द्रावक दृश्य को बताते हुए कहते

मार्गे विदितवृत्तांतः सभ्यग्रामोऽपि मातरम्। कुररीमिव शोकार्त्तां दृष्ट्वा दुःखमुपेयिवान्॥१९॥
धैर्यमारोप्य मेधावी दुःखशोकपरिप्लुतः। नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां तस्थौ भूमावधोमुखः॥२०॥
तं तथागतमालोक्य रामं प्राहाकृतव्रणः। किमिदं भृगुशार्दूल नैतत्त्वय्युपपद्यते॥२१॥
न त्वादृशा महाभाग भृशं शोचंति कुत्रचित्। धृतिमंतो महांतस्तु दुःखं कुर्वंति न व्यये॥२२॥
शोकः सर्वेन्द्रियाणां हि परिशोषप्रदायकः। त्यज शोकं महाबाहो न तत्पात्रं भवादृशाः॥२३॥
ऐहिकामुष्मिकार्थानां नूनमेकांतरोधकः। शोकस्तस्यावकाशं त्वं कथं हृदि नियच्छसि॥२४॥
तत्त्वं धैर्यधनो भूत्वा परिसांत्वय मातरम्। रुदतीं बत वैधव्यशंकापहतचेतनाम्॥२५॥
नैवागमनमस्तीह व्यतिक्रांतस्य वस्तुनः। तस्मादतीतमखिलं त्यक्त्वा कृत्यं विचिंतय॥२६॥
इत्येवं सांत्वमानश्च तेन दुःखसमन्वितः। रामः संस्तंभयामास शनैरात्मानमात्मना॥२७॥
दुःखशोकपरीता हि रेणुका त्वरुदन्मुहुः। त्रिःसप्तकृत्वो हस्ताभ्यामुदरं समताडयत्॥२८॥
तावत्तदंतिकं रामः समभ्येत्याश्रुलोचनः। रुदतीमलमंबेति सांत्वयामास मातरम्॥२९॥
उवाचापनयन्दुःखाद्भर्तृशोकपरायणाम्। त्रिःसप्तकृत्वो यदिदं त्वया वक्षः समाहतम्॥३०॥
तापत्संख्यमहं तस्मात्क्षत्रजातमशेषतः। हनिष्ये भुवि सर्वत्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते॥३१॥

हैं कि हे राजन्! जव परशुराम आ गये, तब उनके आगे उनकी माता अपने दोनों हाथों से अपनी छाती पीटने लगीं।।१८।। मार्ग में ही वृत्तान्त जानकर परशुराम माता को कुररी पक्षी के समान शोकार्त देखकर बहुत दुःखी हो गये।।१९।। तब वे बुद्धिमान् परशुराम दुःख और शोक से परिप्लुत हो अश्रुपूर्ण नेत्रों (आंसू भरी आँखों) से भूमि पर नीचे को मुँह करके बैठ गये।२०।। तब उस दशा में राम को देख अकृतव्रण ने राम से कहा कि हे भृगुकुल के सिंह! यह क्या कर रहे हैं? यह रुदन आपके लिये उचित नहीं है।।२१।। हे महाभाग! आप जैसे महापुरुष कहीं इतना अधिक शोक करते हैं। धैर्यशाली महान् पुरुष तो किसी के मरने पर दुःख नहीं करते हैं।।२२।।

हे महानुभाव! यह शोक इन्द्रियों को परिशोष प्रदान कराने वाला है, इसलिए हे महाबाहो! आप शोक को छोड़ दीजिये। आप जैसे लोग उस शोक के पात्र नहीं हैं। अर्थात् आप जैसे बुद्धिमानों को शोक नहीं करना चाहिये।।२३।। ऐसे शोक से निश्चय ही आपइस लोक और परलोक के कार्यों में विकास नहीं कर सकते; क्योंकि कोई मनुष्य कभी भी मरता नहीं है, वह केवल रूप बदलता है, उसकी आत्मा, जो मूल तत्त्व है, वह कभी नहीं मरता। अतः जो मरा ही नहीं, उस आत्मा के लिए तुम शोक करने का हृदय में अवकाश क्यों दे रहे हो।।२४।। इसलिये आप धैर्य धारण कर वैधव्य की शंका से चेतनाहीन हुई, रोती हुई, अपनी माता को सान्त्वना दीजिये।।२५।। इस संसार में जो वस्तु समाप्त हो गयी, उसका फिर आगमन नहीं होता है। इसलिए समस्त अतीत को छोड़कर आगे करने योग्य कार्य पर विचार कीजिये।।२५।।

इस प्रकार जब अकृतव्रण ने परशुराम को सान्त्वना दी, तब सान्त्वना प्राप्त दुःखी परशुराम ने धीरे-धीरे स्वयं अपनी आत्मा को सम्यक् रूप से स्तम्भित कर लिया। अर्थात् अपने दुःख को रोका।।२७।; परन्तु दुःख और शोक में डूबी हुई, उनकी मां रेणुका तो बार-बार रो रही थीं। वे अनेकों बार हाथों से छाती पीट-पीट कर रो रही थीं।।२८।। तब तक आँखों में आँसू भरे हुए परशुराम ने माता के पास जाकर रोती हुई मां को सहारा दिया और इस प्रकार उनको शान्त किया।।२९।। तथा पति की मृत्यु के शोक से सन्तप्त मां का दुःख दूर करते हुए मां से बेले

तस्मात्त्वं शोकमुत्सृज्य धैर्यमातिष्ठ सांप्रतम्। नास्त्येव नूनमायातमतिक्रांतस्य वस्तुनः॥३२॥
इत्युक्ता रेणुका तेन भृशं दुःखान्विताऽपि सा। कृच्छ्राद्धैर्यं समालंब्य तथेति प्रत्यभाषत॥३३॥
ततो रामो महाबाहुः पितुः सह सहोदरैः। अग्नौ सत्कर्त्तुमारेभे देहं राजन्यथाविधि॥३४॥
भर्तृशोकपरीतांगी रेणुकापि दृढव्रता। पुत्रान्सर्वान्समाहूय त्विदं वचनमब्रवीत्॥३५॥

रेणुकोवाच

अहं वः पितरं पुत्राः स्वर्गतं पुण्यशीलिनम्। अनुगंतुमिहेच्छामि तन्मेऽनुज्ञातुमर्हथ॥३६॥
असह्यदुःखं वैधव्यं सहमाना कथं पुनः। भर्त्रा विरहिता तेन प्रवर्त्तिष्ये विनिंदिता॥३७॥
तस्मादनुगमिष्यामि भर्त्तारं दयितं मम। यथा तेन प्रवर्त्तिष्ये परत्रापि सहानिशम्॥३८॥
ज्वलंतमिममेवाग्निं संप्रविश्य चिरादिव। भर्तुर्मम भविष्यामि पितृलोकप्रियातिथिः॥३९॥
अनुवादमृते पुत्रा भवद्भिस्तत्र कर्मणि। प्रतिभूय न वक्तव्यं यदि मत्प्रियमिच्छथ॥४०॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं रेणुका दृढनिश्चया। अग्निं प्रविश्य भर्त्तारमनुगंतुं मनोदधे॥४१॥
एतस्मिन्नेव काले तु रेणुकां तनयैः सह। समाभाष्याऽतिगंभीरा वागुवाचाशरीरिणी॥४२॥
हे रेणुके स्वतनयैर्गिरं मेऽवहिता शृणु। मा कार्षीः साहसं भद्रे प्रवक्ष्यामि प्रियं तव॥४३॥

कि यदि मां तुमने अपने इस वक्षःस्थल को २१ बार पीटा (समाहत किया) तब तक संख्या पूरी होने तक मैं इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए सर्वत्र समस्त क्षत्रियों को मार डालूँगा या मैं उनका वध कर दूँगा यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।।३१।। इसलिये हे मातः! तुम इस समय शोक को त्यागकर धैर्य धारण करो, निश्चय ही जो वस्तु चली गयी, उसका फिर आगमन नहीं होता है अर्थात् जो चला गया, वह फिर लौटकर नहीं आता है 'दुनियां से जाने वाले जाने चले जाते हैं कहाँ, कहाँ उनको कहाँ ढूढ़े फिर भी नहीं पाते हैं निशां?।।३२।। परशुराम द्वारा इस प्रकार कही गयी मां रेणुका बहुत अधिक दुःखित होते हुए भी शीघ्र धैर्य धारण कर, ठीक है, ऐसा बोलीं।।३३।। उसके बाद हे राजन्! महाबाहु परशुराम ने अपने भाइयों के साथ पिता के शरीर का यथाविधि अग्नि संस्कार करना आरम्भ कर दिया।।३४।। अपने पति के शोक से व्याप्त शरीर वाली कठोर प्रतिज्ञावाली रेणुका ने भी अपने सभी पुत्रों को बुलाकर यह वचन कहा।।३५।।

रेणुका ने कहा—हे पुत्रो! मैं स्वर्ग गये हुए पुण्यात्मा तुम्हारे पिता का अनुगमन करना चाहती हूँ, अतः आप लोग मुझे अनुमति दीजिये।।३६।। मैं यहाँ इस असहनीय वैधव्य (विधवा होने) के दुःख कैसे सहूँगी तथा यहाँ अपने पति से विरहित होकर बहुत ही निन्दित होऊँगी।।३७।। इसलिए मैं अपने प्रिय पति का अनुगमन करूँगी जिससे कि मैं परलोक में रात-दिन उनके साथ हर कार्य में प्रवृत्त हो सकूँगी।।३८।। इस जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर चिरकाल के लिये मैं अपने पति की पितृलोक की प्रिय अतिथि होऊँगी।।३९।। अतः हे मेरे पुत्रो! अप लोगों को मेरे इस कर्म में कुछ नहीं बोलना है। अतः आप यदि मेरा प्रिय चाहते हैं, तो इसके विपरीत मत बोलिये।।४०।। इस प्रकार का वचन कहकर दृढ़ निश्चय करने वाली रेणुका ने अग्नि में प्रवेश कर पति का अनुसरण करने का मन बनाया।।४१।। इसी समय तो अपने पुत्रों के साथ स्थित रेणुका को समान भाषा वाली अशरीरिणी (विना शरीर वाली) अत्यन्त गम्भीर वाणी ने रेणुका से कहा।।४२।। हे रेणुके! तुम अपने पुत्रों के साथ सावधान होकर सुनो। अतः हे भद्रे! तुम अग्निदाह करने का साहस मत करो। मैं तुम्हें तुम्हारी प्रिय बात बता रही हूँ।।४३।।

साहसो नैव कर्त्तव्यः केनाप्यात्महितैषिणा।
न मर्त्तव्यं त्वया सर्वो जीवन्भद्राणि पश्यति॥४४॥
तस्माद्धैर्यधना भूत्वा भव त्वं कालकांक्षिणी। निमित्तमंतरीकृत्य किंचिदेव शुचिस्मिते॥४५॥
अचिरेणैव भर्त्ता ते भविष्यति सचेतनः। उत्पन्नजीवितेन त्वं कामं प्राप्स्यसि शोभने।
भवित्री चिररात्राय बहुकल्याणभाजनम्॥४६॥

वसिष्ठ उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा धृतिमालंब्य रेणुका। तद्वाक्यगौरवाद्धर्षमवापुस्तनयाश्च ते॥४७॥
ततो नीत्वा पितुर्देहमाश्रमाभ्यंतरं मुनेः। शाययित्वा निवाते तु परितः समुपाविशन्॥४८॥
तेषां तत्रोपविष्टानामप्रहृष्टात्मचेतसाम्। निमत्तानि शुभान्यासन्ननेकानि महांति च॥४९॥
तेन ते किंचिदाश्वस्तचेतसो मुनिपुंगवाः। निषेदुः सहिता मात्रा कांक्षतो जीवितं पितुः॥५०॥
एतस्मिन्नंतरे राजन्भृगुवंशधरो मुनिः। विधेर्बलेन मतिमांस्तत्रागच्छद्यदृच्छया॥५१॥
अथर्वणां विधिः साक्षाद्वेदवेदांगपारगः। सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञः सकलासुरवंदितः॥५२॥
मृतसंजीविनीं विद्यां यो वेद मुनिदुर्लभाम्। यथाहतान्मृतान्देवैरुत्थापयति दानवान्॥५३॥
शास्त्रमौशनसं येन राज्ञां राज्यफलप्रदम्। प्रणीतमुजीवंति सर्वेऽद्यापीह पार्थिवाः॥५४॥

अपनी आत्मा का हित चाहने वाले किसी के द्वारा भी आत्महत्या का साहस नहीं करना चाहिये। अतः तुम्हें मरना नहीं चाहिये; क्योंकि जीता हुआ ही भलाई देखता है, जियेगा, तब न किसी का कल्याण कर सकेगा। अतः जीने में ही भलाई है।।४३।। इसलिये पवित्र मुस्कान वाली रेणुके! धैर्यधारण करने वाली बनकर कुछ निमित्त को अपने ह्रदय के अन्दर रखकर समय की प्रतीक्षा करो।।४५।। बहुत कम समय में ही तुम्हारे पति जीवित हो जायेंगे। उत्पन्न होकर जब जीवित हो जायें, तब तुम शोभने! अपनी इच्छा को प्राप्त करोगी और चिररात के लिये तुम बहुत कल्याण की पात्र बनोगी।।४६।।

वशिष्ठ ने कहा—इस प्रकार अशरीरी अपने पति के बचन को सुनकर रेणुका ने धैर्य का सहारा लेकर और उसके वाक्य के गौरव से उनके पुत्रों ने अपार हर्ष प्राप्त किया।।४७।। उसके बाद अपने पिता जमदग्नि मुनि के शरीर को आश्रम के अन्दर वायुरहित स्थान में सुलाकर उनके चारों ओर सब बैठ गये।।४८।। वहाँ पर उन बैठे हुए प्रसन्नचित्त वाले मुनिपुत्रों के अनेकों शुभ और महान् निमित्त थे अर्थात् शुभ शकुन हो रहे थे।।४९।। इसलिये वे कुछ मन में आशा रखते हुए पिता का जीवित होना चाहते हुए, अपनी माता के साथ बैठे हुए थे।।५०।। वशिष्ठ बोले कि इसी बीच में हे राजन्! भृगुवंश को धारण करने वाले बुद्धिमान् भृगुमुनि विधि बल से (दैवयोग से) अपनी इच्छा से वहाँ आ गये।।५१।।

वे अथर्ववेद की विधि को साक्षात् जानते थे, वेदों और वेदांगों में पारंगत थे, सब शास्त्रों के ज्ञाता, बुद्धिमान् तया समस्त देवों द्वारा वन्दित थे।।५२।। मुनियों के लिए दुर्लभ सञ्जीवनी विद्या को जानते थे; क्योंकि उस विद्या से वे देवों द्वारा मारे गये दानवों को जीवित कर देते थे।।५३।। जिन महाभाग ने राजाओं को राज्य फल प्रदान करने वाले औशनसशास्त्र की रचना की थी। आज भी सब राजा लोग उसके अनुसार जीवन यापन करते हैं, राज्य चलाते हैं, प्रजापालन करते हैं।।५४।।

स तदाश्रममासाद्य प्रविष्टोऽतर्महामुनिः। ददर्श तदवस्थांस्तान्सर्वान्दुःखपरिप्लुतान्॥५५॥
अथ ते तु भृगुं दृष्ट्वा वंशस्य पितरं मुदा। उत्थायास्मै ददुश्चापि सत्कृत्य परमासनम्॥५६॥
स चाशीर्भिस्तु तान्सर्वानभिनंद्य महामुनिः। पप्रच्छ किमिदं वृत्तं तत्सर्वं तेन्यवेदयन् ॥५७॥

तच्छ्रुत्वा स भृगुः शीघ्रं जलमादाय मंत्रवित्।
संजीविन्या विद्यया तं सिषेच प्रोच्चरन्निदम्॥५८॥

यज्ञस्य तपसो वीर्य ममापि शुभमस्ति चेत्। तेनासौ जीवताच्छीघ्रं प्रसुप्त इव चोत्थितः॥५९॥
एवमुक्ते शुभे वाक्ये भृगुणा साधुकारिणा। समुत्तस्थावथार्चीकः साक्षाद्गुरुरिवापरः॥६०॥
दृष्ट्वा तत्र स्थितं वंद्यं भृगुं स्वस्य पितामहम्। ननाम भक्त्या नृपते कृतांजलिरुवाच ह॥६१॥

जमदग्निरुवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं च मे॥६२॥

यत्पश्ये चरणौ तेऽद्य सुरासुरनमस्कृतौ। भगवन्किं करोम्यद्य शुश्रूषां तव मानद॥६३॥
पुनीह्यात्मकुलं स्वस्य चरमांबुकणैर्विभो। इत्युक्त्वा सहसाऽऽनीतं रामेणार्घ्यं मुदान्वितः॥६४॥
प्रददौ पादयोस्तस्य भक्त्यान सितकंधरः। तज्ज्वलं शिरसाऽधत्त सकुटुंबो महामनाः॥६५॥
अथ सत्कृत्य स भृगुं पप्रच्छ विनयान्वितः। भगवन् किं कृतं तेन राज्ञा दुष्टेन पातकम्॥६६॥

यस्यातिथ्यं हि कृतवानहं सम्यग्विधानतः।
साधुबुद्ध्या स दुष्टात्मा किं चकार महामते॥६७॥

तब उन महामुनि ने उस आश्रम में पहुँचकर जब आश्रम के अन्तर्गत प्रवेश किया, तब उस अवस्था में सभी को दुःख में पूरी तरह डूबा हुआ देखा।।५५।। इसके बाद उन सबने जब अपने वंश के पितर भृगु को देखा, तो आनन्दपूर्वक उठकर उनका आदर करके उन्हें परमासन प्रदान किया।।५६।। उन महामुनि ने सभी का आशीर्वादों से अभिनन्दन करके महामुनि ने पूछा कि यह सब क्या हुआ? यहाँ जो कुछ हुआ, वह सब आप लोग मुझे बताओ।।५७।। उसको सुनकर उन मन्त्र जानने वाले भृगु ने शीघ्र जल लाकर संजीविनी विद्या से उनका सिंचन किया और यह कहा कि।।५८।। उन्होंने कहा कि यज्ञ और तप का पराक्रम यदि मेरा शुभ है अर्थात् यदि मेरे यज्ञ और तप में शक्ति है, तो यह सोकर उठे हुए के समान शीघ्र उठकर खड़ा हो जायें।।५९।। इस प्रकार साधु करने वाले भृगु द्वारा शुभ वाक्य के कहने पर वे ऋचीक पुत्र जमदग्नि दूसरे गुरु के समान साक्षात् उठ खड़े हुए।।६०।। तब वहाँ पर अपने वन्दनीय पितामह भृगु को खड़ा हुआ देखकर जमदग्नि ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया।।६१।।

जमदग्नि ने कहा कि मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, आज आपको देखकर मेरा जीवन सफल हो गया है।।६२।। जो कि मैं आज देवों और असुरों द्वारा नमस्कार किये जाने वाले आपके चरणों को देख रहा हूँ। हे भगवन्! हे मानद! आज मैं आपकी क्या सेवा करूँ?।।६३।। हे सर्वसमर्थ (विभो!) आपने अपने चरण कमलों के जल से अपने परिवार को पुनर्जीवित कर दिया है, ऐसा कहकर सहसा परशुराम द्वारा लाये गये पूजा के सामान को आनन्द से युक्त जमदग्नि ने भक्ति से कंधों को झुकाकर उनके पैरों पर उस जल को डालकर उनके पैरों का प्रक्षालन किया और उस जल को समस्त परिवार ने अपने शिरों पर धारण किया अर्थात् पितामह भृगु के पैरों का प्रक्षालन कर उस जल को सभी परिवार के सदस्यों पर छिड़क दिया।।६४-६५।। इसके बाद उन जमदग्नि ने सत्कार करके विनयावनत हो भृगु से पूछा कि भगवन् मैंने उस दुष्ट राजा के साथ क्या पाप किया था?।।६६।। जिसका मैंने सम्यक् प्रकार से

वसिष्ठ उवाच

एवं स पृष्टो मतिमान्भृगुः सर्वविदीश्वरः। चिरं ध्यात्वा समालोच्य कारणं प्राह भूपते॥६८॥

भृगुरुवाच

शृणु तात महाभाग बीजमस्य हि कर्मणः। यश्च वै कृतवान्पापं सर्वज्ञस्य तवानघ॥६९॥
शप्तः पुरा वसिष्ठेन नाशार्थं स महीपतिः। द्विजापराधतो मूढ वीर्यं ते विनशिष्यते॥७०॥
तत्कथं वचनं तस्य भविष्यत्यन्यथा मुनेः। अयं रामो महावीर्यं प्रसह्य नृपपुंगवम्॥७१॥
हनिष्यति महाबाहो प्रतिज्ञां कृतवान्पुरा। यस्मादुरः प्रतिहतं त्वया मातुर्ममाग्रतः॥७२॥
एकविंशतिवारं हि भृशं दुःखपरीतया। त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां करिष्ये पृथिवीमिमाम्॥७३॥
अतोऽयं वार्यमाणोऽपि त्वया पित्रा निरंतरम्।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्करिष्यत्येव मानद॥७४॥
स तु राजा महाभागो वृद्धानां पर्युपासिता। दत्तात्रेयाद्धरेरंशाल्लब्धबोधो महामतिः॥७५॥
साक्षाद्भक्तो महात्मा च तद्वधे पातकं भवेत्। एवमुक्त्वा महाराज स भृगुर्ब्रह्मणः सुतः।
यथागतं ययौ विद्वान्भविष्यत्कालपर्ययात्॥७६॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३०॥

विधानपूर्वक साधु बुद्धि से अतिथि सत्कार किया था; परन्तु हे महामते! उस दुष्टात्मा ने मेरे साथ क्या किया? यह तो आप जान ही रहे हैं तथा उसने ऐसा क्यों किया?॥६७॥

वशिष्ठ ने कहा—कि इस प्रकार जब भृगुपुत्र जमदग्नि से भृगु ने पूछा तब सब कुछ जानने वाले ईश्वर बुद्धिमान् भृगु ने देर तक ध्यान करके तथा पूरी तरह समालोचना करके राजा द्वारा जमदग्नि को मारने का कारण कहा॥६८॥ भृगु ने कहा कि हे पुत्र! इस कर्म का कारण सुनो, जो कि आप सर्वज्ञ के साथ जो उसने पाप किया॥६९॥ प्राचीनकाल में उस राजा को उसका नाश करने के लिये शाप दिया था कि हे मूर्ख! तुमने ब्राह्मण के साथ अपराध किया है, इसलिए तुम्हारा पराक्रम नष्ट हो जायेगा॥७०॥ तब उन मुनि का वचन अन्यथा कैसे हो सकता था? परशुराम उस महापराक्रमी नृपश्रेष्ठ को मारेगा। हे महाबाहो! यह पहले ही प्रतिज्ञा कर चुका है, जिस कारण से तुमने माता का हृदय मेरे आगे ही चीर दिया था॥७१-७२॥ २१ बार वे बहुत अधिक दुःख से व्याप्त हुई हैं। अतः २१बार मैं इस पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर दूँगा॥७३॥ इसलिये यह तुम पिता द्वारा निरन्तर रोका जाता हुआ भी हे मानद! होनहार बलवान् होती है। भवितव्यता बलवती होती है, हर कोई इसके वश में होकर यह करेगा ही॥७४॥ वह महाभाग राजा वृद्धों का पर्युपासित है अर्थात् उस राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने वृद्धों की उपासना भी की है और दत्तात्रेय हरि के अंश से उसने ज्ञान प्राप्त किया था, वह उनका साक्षाद्भक्त है॥७५॥ हे महाराज! इस प्रकार कहकर वे ब्रह्मा के पुत्र विद्वान् भृगु भविष्यकालपर्यन्त तक जहाँ से आये थे, वहाँ चले गये॥७६॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ३०वां अध्याय अर्जुनोपाख्यान जमदग्नि का पुनः जीवित होना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

भृगोरुपदेशनामै

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सगर उवाच

ब्रह्मपुत्र महाभाग वद भार्गवचेष्टितम्। यच्चकार महावीर्य्यो राज्ञः क्रुद्धो हि कर्मणा॥१॥

वसिष्ठ उवाच

गते तस्मिन्महाभागे भृगौ पितृपरायणः। रामः प्रोवाच संक्रुद्धो मुंचञ्छ्वासान्मुहुर्मुहुः॥२॥

परशुराम उवाच

अहो पश्यत मूढत्वं राज्ञो ह्युत्पथगामिनः। कार्त्तवीर्यस्य यो विद्वांश्चक्रे ब्रह्मवधोद्यमम्॥३॥
दैवं हि बलवन्मन्ये यत्प्रभावाच्छरीरिणः। शुभं वाप्य शुभं सर्वे प्रकुर्वंति विमोहिताः॥४॥
शृण्वंतु ऋषयः सर्वे प्रतिज्ञा क्रियते मया। कार्त्तवीर्यं निहत्याजौ पितुर्वैरं प्रसाधये॥५॥
यदि राजा सुरैः सर्वैरिंद्राद्यैर्दानवैस्तथा। रक्षिष्यते तथाप्येनं संहरिष्यामि नान्यथा॥६॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य रामेण समुहात्मना। जमदग्निरुवाचेदं पुत्रं साहसभाषिणम्॥७॥

जमदग्निरुवाच

शृणु राम प्रवक्ष्यामि सतां धर्मं सनातनम्। यच्छ्रुत्वा मानवाः सर्वे जायंते धर्मकारिणः॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय–३१

भृगु का परशुराम को उपदेश

सगर ने कहा हे ब्रह्मा के पुत्र! वशिष्ठ जी! बताइये जो भार्गव परशुराम ने इच्छा की तथा जो उन महापराक्रमी क्रुद्ध परशुराम ने कर्म द्वारा राजा का किया सो बताइये।।१।।

तब वशिष्ठ ने कहा हे राजन्! उन महाभाग भृगु के चले जाने पर पितृपरायण परशुराम क्रोधित हो बार-बार श्वासों को छोड़ते हुए बोले—।।२।।

परशुराम बोले—अरे इस कुमार्गगामी राजा कार्तवीर्य की मूर्खता तो देखिये जो कि एक विद्वान् ने ब्रह्मवध का उद्यम किया।।३।। अतः मैं दैवभाग्य बलवान् मानता हूँ, जिससे विमोहित होकर सब मनुष्य शुभ अथवा अशुभ कार्यों को करते हैं।।४।। आप सभी ऋषिगण सुनिये! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कार्तवीर्य को मारकर पिता के वैर का बदला लूँगा।।५।।यदि उस राजा की सब देवता इन्द्र आदि तथा सब दानव रक्षा करेंगे, फिर भी मैं उसका संहार करूँगा। यह मेरी प्रतिज्ञा अन्यथा नहीं होगी।।६।। इस प्रकार महात्मा परशुराम के द्वारा कहे हुए वचन को सुनकर उस साहस पूर्णवचन कहने वाले पुत्र परशुराम से जमदग्नि ने कहा।।७।।

जमदग्नि ने कहा हे पुत्र राम! तुम सुनो, मैं तुमसे सज्जन पुरुषों का सनातन धर्म बता रहा हूँ, जिसको सुनकर

साधवो ये महाभागाः संसारान्मोक्षकांक्षिणः।
न कस्मैचित्प्रकुप्यंति निंदितास्ताडिता अपि॥९॥
क्षमाधना महाभागा ये च दांतास्तपस्विनः।
तेषां चैवाक्षया लोकाः सततं साधुकारिणाम्॥१०॥
यस्तु दुष्टैस्तु दंडाद्यैर्वचसाऽपि च ताडितः। न च क्षोभमवाप्नोति स साधुः परिकीर्त्यते॥११॥
ताडयेत्ताडयंतं यो न च साधुः स पापभाक्।
क्षमयाऽर्हणतां प्राप्ताः साधवो ब्राह्मणा वयम्॥१२॥
नरनाथवधे तात पातकं सुमहद्भवेत्। तस्मान्निवारये त्वाद्य क्षमां कुरु तपश्चर॥१३॥

वसिष्ठ उवाच

एवं पित्रा समादिष्टं विज्ञाय नृपनंदन। रामः प्रोवाच पितरं क्षमाशीलमरिंदमम्॥१४॥

परशुराम उवाच

शृणु तात महाप्राज्ञ विज्ञप्तिं मम सांप्रतम्। भवता शम उद्दिष्टः साधूनां सुमहात्मनाम्॥१५॥
स शमः साधुदीनेषु गुरुष्वीश्वरभावनैः। कर्त्तव्यो दुष्टचेष्टेषु न शमः सुखदो भवेत्॥१६॥
तस्मादस्य वधः कार्यः कार्त्तवीर्यस्य वै मया। देह्याज्ञां माननीयाद्य साधये वैरमात्मनः॥१७॥

सभी मनुष्य धर्म करने वाले हो जाते हैं।।८।। जो महाभाग साधु पुरुष संसार से मोक्ष चाहने वाले होते हैं, वे किसी के द्वारा निन्दित अथवा ताड़ित होने पर भी किसी पर क्रोध नहीं करते हैं।।९।। जो महाभाग क्षमा को ही धन मानने वाले होते हैं तथा इन्द्रियों का दमन करने वाले तपस्वी हैं, उन साधु (शुभ) कर्म करने वालों के समस्त लोक सदैव अक्षय होते हैं अर्थात् उनका यश संसार में कभी नहीं नष्ट होता।।१०।।

जो दुष्टों के डण्डे आदि द्वारा अथवा वचन से ताडित होता है, फिर भी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता अर्थात् क्रोध नहीं करता, वह व्यक्ति साधु (सज्जन) कहा जाता है।।११।। जो पीटने वाले को पीटता है, वह साधु नहीं होता, पापी होता है। हे पुत्र! हम ब्राह्मणों ने क्षमा द्वारा ही समर्थता (योग्यता) को प्राप्त किया है, हम साधु ब्राह्मण हैं।।१२।। राजा का वध करने पर पुत्र को बहुत बड़ा पाप हो जायेगा। इसलिये मैं तुम्हें रोक रहा हूं, इसलिए तुम क्षमा करो और तप करो।।१३।।

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! इस प्रकार पिता द्वारा दिये आदेश को जानकर शत्रु को क्षमा करने वाले पिता से परशुराम ने कहा।।१४।।

परशुराम बोले—हे महान् विद्वान् पिता जी! इस समय आप मेरी विज्ञप्ति (विशेष जानकारी) को सुनिये, आपने जो महापुरुषों और साधुजनों का धर्म शम (शान्ति) उद्दिष्ट किया है, वह शम (शान्ति), साधु पुरुषों, दीन जनों और गुरुओं के प्रति ईश्वर भावनाओं से व्यवहार करना चाहिये अर्थात् सज्जन पुरुषों, दीन दुःखियों और गुरुओं को ईश्वर मानते हुए शान्तिपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। दुष्ट चेष्टा रखने वाले पुरुषो के प्रति शम का व्यवहार सुखद नहीं होता है।।१५-१६।। इसलिए हे पिताश्री! इस कार्तवीर्य का मुझे अवश्य वध करना होगा। अतः हे माननीय! आप मुझे आज्ञा दीजिये, ताकि मैं अपने वैर को सिद्ध करूँ। अर्थात् उससे बदला ले सकूँ।।१७।।

जमदग्निरुवाच

शृणु राम महाभाग वचो मम समाहितः।
करिष्यसि यथा भावि तथा नैवान्यथा भवेत्॥१८॥

इतो व्रज त्वं ब्रह्माणं पृच्छ तात हिताहितम्। स यद्वदिष्यति विभुस्तत्कर्त्ता नात्र संशयः॥१९॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्तः स पितरं नमस्कृत्य महामतिः। जगाम ब्रह्मणो लोकमगम्यं प्राकृतैर्जनैः॥२०॥
ददर्श ब्रह्मणो लोकं शातकौंभविनिर्मितम्। स्वर्णप्राकारसंयुक्तं मणिस्तंभैर्विभूषितम्॥२१॥
तत्रापश्यत्समासीनं ब्रह्माणममितौजसम्। रत्नसिंहासने रम्ये रत्नभूषणभूषितम्॥२२॥
सिद्धेंद्रैश्च मुनींद्रैश्च वेष्टितं ध्यानतत्परैः। विद्याधरीणां नृत्यं च पश्यंतं सस्मितं मुदा॥२३॥
तपसां फलदातारं कर्त्तारं जगतां विभुम्। परिपूर्णतमं ब्रह्म ध्यायंतं यतमानसम्॥२४॥
गुह्ययोगं प्रवोचंतं भक्तवृंदेषु संततम्। दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगूद्वहः॥२५॥
स दृष्ट्वा विनतं राममाशीभिरभिनंद्य च। पप्रच्छ कुशलं वत्स कथमागमनं कृथाः॥२६॥
संपृष्टो विधिना रामः प्रोवाचाखिलमादितः। वृत्तांतं कार्त्तवीर्यस्य पितुः स्वस्य महात्मनः॥२७॥
तच्छ्रुत्वा सकलं ब्रह्मा विज्ञातार्थोऽपि मानद। उवाच रामं धर्मिष्ठं परिणामसुखावहम्॥२८॥
प्रतिज्ञा दुर्लभा वत्स यां भवान्कृतवान्रुषा। सृष्टिरेषा भगवतः संभवेत्कृपया बटो॥२९॥

जमदग्नि ने कहा कि हे महाभाग राम! तुम ध्यान देकर समाहित चित्त होकर मेरी बात सुनो। तुम जो होनहार है, उसे करोगे, वह तो अन्यथा नहीं हो सकता, फिर भी तुम यहाँ से ब्रह्मा जी के पास जाओ और हे पुत्र! उनसे हिताहित के बारे में पूछो कि बदला लेने में हित है अथवा अहित है। वे सर्वसमर्थ ब्रह्मा जी जो कहें, उस काम को तुम करो, तब इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१८-१९।।

वशिष्ठ ने कहा—ऐसा जब पिता जमदग्नि ने उनसे कहा, तब वे महामति परशुराम पिता को नमस्कार करके सामान्य मनुष्यों द्वारा न पहुँचने योग्य ब्रह्मा जी के पास पहुँचे।।२०।। और उन्होंने स्वर्ण विनिर्मित ब्रह्मा जी के लोक को देखा। जिसका प्राकार (परकोटा) स्वर्ण निर्मत था तथा खम्मों पर मणियां जड़ी हुई थीं।।२१।। वहाँ पर रम्य रत्नसिंहासन पर रत्नों के आभूषणों से भूषित असीमित तेजवाले ब्रह्मा जी को बैठा हुआ देखा।।२२।। वहाँ वे ब्रह्म ध्यान में तत्पर सिद्ध पुरुषों, इन्द्रों और मुनीन्द्रों से घिरेहुए विद्याधारियों के नृत्य को देखते हुए और आनन्द से मुस्कराते हुए तपस्याओं का फल देने वाले, संसार को बनाने वाले, सर्वसमर्थ, परिपूर्ण तम स्वरूप वाले, ब्रह्म का ध्यान करते हुए, मन को वश में रखने वाले, भक्तों को निरन्तर गुह्ययोग का प्रवचन करने वाले, उन कभी न व्यय (नष्ट) होने वाले ब्रह्मा जी को देखकर भृगुकुलोद्वह परशुराम ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।।२३-२५।। तब ब्रह्मा जी ने परशुराम को देखकर और आशीर्वादों से उनका अभिनन्दन करके कुशल पूछा कि हे वत्स! तुम यहां किसलिये आये हो।।२६।। जब ब्रह्मा जी ने पूछा तो परशुराम ने कार्तवीर्य और अपने महात्मा पिता के मध्य जो कुछ घटित हुआ, वह सब वृत्तान्त विधिपूर्वक कह दिया।।२७।। उसको सुनकर समस्त रहस्य को जानने वाले ब्रह्मा जी ने परिणाम सुख को वहन करने वाले धर्मात्मा परशुराम से कहा कि वत्स तुमने जो क्रोध से प्रतिज्ञा की है, वह दुर्लभ है; क्योंकि हे वटु! यह सृष्टि भगवान् की कृपा से हुई है।।२८-२९।।

जगत्सृष्टं मया तात संक्लेशेन तदाज्ञया। तन्नाशकारिणी चैव प्रतिज्ञा भवता कृता॥३०॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूषां कर्तुमिच्छसि मेदिनीम्। एकस्य राज्ञो दोषेण पितुः परिभवेन च॥३१॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैः सृष्टिरेषा सनातनी। आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनःपुनः॥३२॥
अव्यर्था त्वत्प्रतिज्ञा तु भवित्री प्राक्तनेन च। यद्वायासेन ते कार्यसिद्धिर्भवितुमर्हति॥३३॥
शिवलोकं प्रयाहि त्वं शिवस्याज्ञामवाप्नुहि। पृथिव्यां बहवो भूपाः संति शंकरकिंकराः॥३४॥
विनैवाज्ञां महेशस्य को वा तन्हंतुमीश्वरः। बिभ्रतः कवचान्यंगे शक्तीश्चापि दुरासदाः॥३५॥
उपायं कुरु यत्नेन जयबीजं शुभावहम्। उपाये तु समारब्धे सर्वे सिध्यंत्युपक्रमाः॥३६॥
श्रीकृष्णमंत्रं कवचं गृह्ण वत्स गुरोर्हरात्। दुर्ल्लंघ्यं वैष्णवं तेजः शिवशक्तिर्विजेष्यति॥३७॥
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्। यथाकथं च विज्ञाप्य शंकरं लभ दुर्लभम्॥३८॥
प्रसन्नः स गुणैस्तुभ्यं कृपालुर्दीनवत्सलः। दिव्यपाशुपतं चापि दास्यत्येव न संशयः॥३९॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३१॥

हे पुत्र! मैंने भगवान् की आज्ञा से बहुत कष्ट द्वारा इस ब्रह्माण्ड की रचना की है तथा उस सृष्टि को नष्ट करने वाली तुमने प्रतिज्ञा कर डाली।।३०।। तुम एक राजा के दोष के कारण और अपने पिता की पराजय के कारण, इक्कीस बार समस्त पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर देना चाहते हो।।३१।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के द्वारा यह बहुत पुरानी सृष्टि है, यह भगवान् की सृष्टि है, जिसको वे बार-बार प्रकट करते हैं और उसका विलय करते हैं।।३२।। तुम्हारी प्रतिज्ञा व्यर्थ नहीं है तथा वह पूर्वजन्म के कारण होने वाली है अथवा विना प्रयास के ही तुम्हारे कार्य की सिद्धि हो सकती है; इसलिये हे पुत्र! तुम शिवलोक को जाओ और शिव की आज्ञा का प्राप्त करो, पृथिवी पर बहुत से राजा हैं, जो शंकर भगवान् के सेवक हैं।।३३-३४।। उन महेश्वर की आज्ञा के विना उन राजाओं को कौन मारने में समर्थ हो सकता है; क्योंकि वे राजा लोग अपने शरीर पर कवचों को, जहाँ तक कोई न पहुँच सके ऐसी शक्तियों को धारण करते हैं।।३५।। अतः यत्नपूर्वक ऐसा उपाय करो, जिससे कि तुम्हारी शुभ विजय हो सके; क्योंकि उपायों के सम्यक् प्रकार से आरम्भ करने पर ही सब कार्य सफल होते हैं।।३६।। हे वत्स! तुम अपने गुरु भगवान् शंकर से श्रीकृष्ण मंत्र कवच को ग्रहण करो दुर्ल्लंघ्य वैष्णव तेज को शिवशक्ति विजय करेगी।।३७।। उन भगवान् शंकर के पास त्रैलोक्य विजय नामक परम अद्भुत कवच है, अतः जैसा कहा जा रहा है, तदनुसार जानकर तुम भगवान् शंकर के पास जाओ और उस कवच को प्राप्त करो।।३८।। वे कृपालु दीनवत्सल तुम्हारे गुणों से प्रसन्न होकर दिव्य पाशुपत अस्त्र को भी दे देंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३९।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ३१वां अध्याय भार्गवचरित भृगु का परशुराम को उपदेश का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली-गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

परशुरामस्य शिवप्रसादनं नाम

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स प्रणम्य जगद्गुरुम्। प्रसन्नचेताः सुभृशं शिवलोकं जगाम ह॥१॥
लक्षयोजनमूर्द्ध्वं च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम्। अथ निर्वचनीयं च योगिगम्यं परात्परम्॥२॥
वैकुंठो दक्षिणे यस्म्द्गौरीलोकश्च वामतः। यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकपरस्तु सः॥३॥
तपोवीर्यगती रामः शिवलोकं ददर्श च। उपमानेन रहितं नानाकौतुकसंयुतम्॥४॥
वसंति यत्र योगींद्राः सिद्धाः पाशुपताः शुभाः।
कोटिकल्पतपःपुण्याः शांता निर्मत्सरा जनाः॥५॥
पारिजातमुखैर्वृक्षैः शोभितं कामधेनुभिः। योगेन योगिना सृष्टं स्वेच्छया शंकरेण हि॥६॥
शिल्पिनां गुरुणा स्वप्ने न दृष्टं विश्वकर्मणा। सरोवरशतैर्दिव्यैः पद्मरागविराजितैः॥७॥
शोभितं चातिरम्यं च संयुक्तं मणिवेदिभिः। सुवर्णरत्नरचितप्राकारेण समावृतम्॥८॥
अत्यूर्द्धमंबरस्पर्शि स्वच्छं क्षीरनिभं परम्। चतुर्द्वारसमायुक्तं शोभितं मणिवेदिभिः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय–३२

परशुराम का तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न करना

वशिष्ठ ने कहा कि जब ब्रह्मा जी परशुराम से कहा कि तुम भगवान् शिव के पास जाओ, तब ब्रह्मा जी के इस वचन को सुनकर और फिर जगद्गुरु ब्रह्मा जी को प्रणाम करके अत्यधिक प्रसन्नचित्त वे परशुराम शिवलोक को चले गये।।१।। वह शिव लोक एक लाख योजन ऊपर था तथा ब्रह्मलोक से विलक्षण था, वह लोक पर से भी पर था तथा अगम्य था। वहाँ केवल योगी लोग ही जा सकते थे।।२।। जिसके दक्षिण में वैकुण्ठ था तथा उसके वायें तरफ गौरीलोक था। जिसके नीचे ध्रुव लोक था, जो सब लोकों से परे है।।३।। शिवलोक अनुपेय है, जिसका कहीं भी उपमान नहीं है तथा अनेकों प्रकार के कौतुकों (आश्चर्यो) से युक्त है, ऐसे शिवलोक को तप और पराक्रम की गति वाले परशुराम ने देखा।।४।। जहाँ कि योगीन्द्र, सिद्धगण और शुभ या पाशुपतगण तथा करोड़ों कल्पों तक की तपस्या से पुण्यशील, शान्त और निष्कलंक मनुष्य रहते हैं।।५।।

वह शिवलोक, कल्पवृक्षों और कामधेनुओं से शोभित है। उस लोक को योगी शंकर ने स्वेच्छा से अपने योग द्वारा उत्पन्न किया है।।६।। शिल्पकारियों के गुरु विश्वकर्मा ने भी जिसे स्वप्न में भी नहीं देखा, ऐसा वह शिवलोक है।।६१/२।। वह लोक पद्मराग से सुशोभित सैकड़ों दिव्य सरोवरों से युक्त था, मणिजटित वेदियों से संयुक्त वह अत्यन्त रम्य और शोभित था। स्वर्ण और रत्नों से जटित परकोटे से घिरा हुआ था।।६१/२-८।। बहुत अधिक ऊंचे आकाश को स्पर्श करने वाले दूध के समान श्वेत चार द्वारों पर मणिवेदियां थीं।।९।।

रक्तसोपानयुक्तैश्च रत्नस्तंभकपाटकैः। नानाचित्रविचित्रैश्च शोभितैः सुमनोहरैः॥१०॥
तन्मध्ये भवनं रम्यं सिंहद्वारोपशोभितम्। ददर्श रामो धर्मात्मा विचित्रमिव संगतः॥११॥
तत्र स्थितौ द्वारपालौ ददर्शातिभयंकरौ। महाकरालदंतास्यौ विकृतारक्तलोचनौ॥१२॥
दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ। विभूतिभूषितांगौ च व्याघ्रचर्मांबरौ च तौ॥१३॥
त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलंतौ ब्रह्मतेजसा। तौ दृष्ट्वा मनसा भीतः किंचिदाह विनीतवत्॥१४॥
नमस्करोमि वामीशौ शंकरं द्रष्टुमागतः। ईश्वराज्ञां समादाय मामथाज्ञप्तुमर्हथ॥१५॥
तौ तु तद्वचनं श्रुत्वा गृहीत्वाऽज्ञां शिवस्य च। प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ च तौ॥१६॥
स तदाज्ञानुप्राप्य विवेशांतःपुरं मुदा। तत्रातिरभ्यां सिद्धौघैः समाकीर्णां सभां द्विजः॥१७॥
दृष्ट्वा विस्मयमापेदे सुगंधबहुलां विभोः। तत्रापश्यच्छिवं शांतं त्रिनेत्रं चंद्रशेखरम्॥१८॥
त्रिशूलशोभितकरं व्याघ्रचर्मांबरम्। विभूतिभूषितांगं च नागयज्ञोपवीतिनम्॥१९॥
आत्मारामं पूर्णकामं कोटिसूर्यसमप्रभम्। पंचाननं दशभुजं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥२०॥
योगज्ञाने प्रब्रुवंतं सिद्धेभ्यस्तर्कमुद्रया। स्तूयमानं च योगींद्रैः प्रमथप्रकरैर्मुदा॥२१॥
भैरवैर्योगिनीभिश्च वृतं रुद्रगणैस्तथा। मूर्ध्ना नमाम तं दृष्ट्वा रामः परमया मुदा॥२२॥

उस लोक में लाल सीढ़ियों से युक्त था तथा रत्नजड़ित किवाड़ों से युक्त था। अनेकों प्रकार के मनोहर चित्रों तथा विशेष चित्रों से शोभित था।।१०।। उस लोक के मध्य में सिंहद्वार से उपशोभित एक रम्य भवन को धर्मात्मा परशुराम ने विचित्र के समान देखा।।११।। वहाँ द्वार पर अत्यन्त भयंकर दो द्वारपालों को देखा, जिनके महाकराल भयंकर दाँत और मुख थे, देखने में बहुत भयंकर विकृत काली भूरी आँखें थीं।।१२।। उनके कंधे जले हुए पर्वत के समान थे, वे दोनों महाबली और महापराक्रमी थे। वे दोनों शरीर पर भस्म लगाये हुए थे तथा व्याघ्रचर्म के वस्त्र पहने हुए थे।।१३।। वे दोनों अपने हाथों में त्रिशूल और तेजधार की बर्छी लिये हुए थे तथा ब्रह्मतेज से जलते हुए के समान थे। उनको देखकर मन से भयभीत होकर विनीतवान् परशु बोले।।१४।। परशुराम ने कहा कि मैं आप दोनों को नमस्कार करता हूँ, मैं भगवान् शंकर को देखने आया हूँ। अतःआप लोग भगवान् शंकर की आज्ञा लेकर मुझे उनके दर्शन का अवसर दे सकते हैं।।१५।। उन दोनों द्वारपालों ने राम के वचन को सुनकर, तथा भगवान् शंकर की आज्ञा लेकर परशुराम को प्रवेश करने की आज्ञा दे दी।।१६।। तब उस आज्ञा को प्राप्त कर परशुराम सानन्द अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए।।१६½।। वहाँ पर अत्यन्त रमणीय सिद्धगणों से भरी हुई भगवान् शंकर की बहुत अधिक सुगन्धित सभा को देखकर ब्राह्मण राम आश्चर्यचकित हो गये। वहाँ पर उन्होंने तीन नेत्र वाले शान्त भगवान् चन्द्रशेखर को देखा।।१८।।

वे भगवान् शिव हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए थे तथा व्याघ्रचर्म का वस्त्र पहने हुए थे और नाग का कण्ठ में यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे अर्थात् उनका जनेऊ सर्पों का था तथा उनका समस्त शरीर श्मशान की भस्म से भूषित था।।१९।। वे अपनी ही आत्मा में आनन्द लेने वाले सबकी कामना पूर्ण करने वाले, करोड़ों सूर्य की सूर्यों की प्रभा के समान,पाँच मुखवाले, दश भुजाओं वाले और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले शरीर से युक्त थे।।२०।। वे तर्क की मुद्रा से सिद्ध पुरुषों को योगज्ञान के विषय में बोल रहे थे। योगीन्द्रों द्वारा उनकी स्तुति की जा रही थी तथा सानन्द भूतगणों से सेवित थे।।२१।। वे भगवान् भैरवों योगिनियों और रुद्रगणों से घिरे हुए थे। ऐसे उन सभा

वामभागे कार्त्तिकेयं दक्षिणे च गणेश्वरम्। नंदीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः॥२३॥
क्रोडे दुर्गां शतभुजां दृष्ट्वा नत्वाथ तामपि। स्तोतुं प्रचक्रमे विद्वान्गिरा गद्गदया विभुम्॥२४॥
नमस्ये शिवमीशानं विभुं व्यापकमव्ययम्। भुजंगभूषणं चोग्रं नृकपालस्त्रगुज्ज्वलम्॥२५॥

यो विभुः सर्वलोकानां सृष्टिस्थितिविनाशकृत्।
ब्रह्मादिरूपधृग्ज्येष्ठस्तं त्वां वेद कृपार्वणम्॥२६॥

वेदा न शक्ता यं स्तोतु मवाङ्मनसगोचरम्। ज्ञानबुद्ध्योरसाध्यं च निराकारं नमाम्यहम्॥२७॥
शक्रादयः सुरगणा ऋषयो मनवोऽसुराः। न यं विदुर्यथातत्त्वं तं नमामि परात्परम्॥२८॥
यस्यांशांशेन सृज्यंते लोकाः सर्वे चराचराः। लीयंते च पुनर्यस्मिंस्तं नमामि जगन्मयम्॥२९॥
यस्येषत्कोपसंभूतो हुताशो दहतेऽखिलम्। सोर्द्धलोकं सपातालं तं नमामि हरं परम्॥३०॥
पृथ्वीपवनवह्न्यम्भोनभोयज्वेंदुभास्कराः। मूर्त्तयोऽष्टौ जगत्पूज्यास्तं यज्ञं प्रणमाम्यहम्॥३१॥

यः कालरूपो जगदादिकर्त्ता पाता पृथग्रूपधरो जगन्मयः।
हर्त्ता पुना रुद्रवपुस्तथांते तं कालरूपं शरणं प्रपद्ये॥३२॥
इत्येवमुक्त्वा स तु भार्गवो मुदा पषात तस्यांघ्रि समीप आतुरः।
उत्थाप्य तं वामकरेण लीलया दधे तदा मूर्ध्नि करं कृपार्णवः॥३३॥

में बैठे हुए भगवान् भूतभावन को देखकर परशुराम ने शिर झुकाकर परम प्रसन्नता के साथ नमस्कार किया।।२२।। उन शिव के बांये भाग में कार्तिकिय और दांयेभाग में गणेश्वर स्थित थे तथा उनके आगे नन्दीश्वर महाकाल और वीरभद्र थे।।२३।। उनकी गोद में शतभुजा दुर्गा जी को देख कर राम ने उनको प्रणाम किया। दुर्गा जी को प्रणाम करके विद्वान् परशुराम ने गद्गद् वाणी से शिव की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया।।२४।। राम ने कहा कि मैं उन शिव रूप ईश्वर को नमस्कार करता हूं, जो सर्वसमर्थ, सर्वत्रव्यापक, कभी न घटने-बढ़ने तथा न नष्ट होने वाले, सर्पों के आभूषण वाले, उग्ररूप, नरमुण्डों की माला धारण करने वाले हैं।।२५।। जो सभी लोकों को उत्पन्न करने वाले, पालन करने वाले और नाश करने वाले हैं, जो ब्रह्मा आदि कारूप धारण करने वाले, सब ज्येष्ठ कृपा के सागर जाने जाते हैं।।२६।। जिनकी स्तुति करने में वेद भी समर्थ नहीं है, ऐसे वाणी मन और इन्द्रियों से न जानने योग्य, ज्ञान और बुद्धि से भी असाध्य अर्थात् ज्ञान और बुद्धि से भी उन्हें सिद्ध नहीं किया जा सकता। ऐसे निराकार शिव को मैं नमन करता हूँ।।२७।। इन्द्र आदि देवता, ऋषिगण, मनु, असुरगण जिनको यथातत्त्व नहीं जानते, उन परे से भी परे शिव को मैं नमस्कार करता हूँ।।२८।।

जिनके अंश से सब चर-अचर (जड़-चेतन) लोक उत्पन्न किये जाते हैं तथा फिर उनमें ही सब विलीन हो जाते हैं, ऐसे उन जगन्मय शिव को मैं नमस्कार करता हूँ।।२९।। जिसके थोड़े से क्रोध से उत्पन्न अग्नि से पातालसहित समस्त ऊर्ध्वलोक जल जाता है, ऐसे आप शिव को मैं नमस्कार करता हूँ।।३०।। पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल, आकाश, यज्वा, चन्द्रमा और सूर्य ये आठ मूर्तियां हैं अर्थात् जिनके आठ अंग हैं, उन यज्ञस्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ।।३१।। जो कालरूप हैं, संसार के आदिकर्ता हैं, संसार की रक्षा करने वाले हैं तथा जगन्मय पृथक् पृथक् रूप धारण करने वाले हैं तथा अन्त में रुद्र रूपसे संसार का संहार करने वाले हैं, उन काल रूप मैं आपकी शरण में आ पड़ा हूँ।।३२।। ऐसा इस प्रकार कहकर वे परशुराम परम आमोद के साथ भगवान् शिव के चरणों

आशीर्भिरेनं ह्यभिनंद्य सादरं निवेशयामास गणेशपूर्वतः।
उवाच वामामभिवीक्ष्य चाप्युमां कृपार्द्रदृष्ट्याऽखिलकामपूरकः॥३४॥

शिव उवाच

कस्त्वं वटो कस्य कुले प्रसूतः किं कार्यमुद्दिश्य भवानिहागतः।
विनिर्दिशाहं तव भक्तिभावतः प्रीतः प्रदद्यां भवतो मनोगतम्॥३५॥
इत्येवमुक्तः स भृगुर्महात्मना हरेण विश्वार्त्तिहरेण सादरम्।
पुनश्च नत्वा विबुधां पतिं गुरुं कृपासमुद्रं समुवाच सत्वरम्॥३६॥

परशुराम उवाच

भृगोश्चाहं कुले जातो जमदग्निसुतौ विभो। रामो नाम जगद्वंद्यं त्वामहं शरणं गतः॥३७॥
यत्कार्यार्थमहं नाथ तव सांनिध्यमागतः। तं प्रसाधय विश्वेश वांछितं काममेव मे॥३८॥
मृगयामागतस्यापि कार्त्तवीर्यस्य भूपतेः। आतिथ्यं कृतवान् देव जमदग्निः पिता मम॥३९॥
राजा तं स बलाल्लोभात्पातयामास मन्दधीः।
सा धेनुस्तं मृतं दृष्ट्वा गवां लोकं जगाम ह॥४०॥
राजा न शोचन्मरणं पितुर्मम निरागसः। जगाम स्वपुरं पश्चान्माता मे प्रारुदद्भृशम्॥४१॥
तज्ज्ञात्वा लोकवृत्तज्ञो भृगुर्नः प्रपितामहः। आजगाम महादेव ह्यहमप्यागतो वनात्॥४२॥

के समीप आतुर होकर गिर गये। तब उनको बांये हाथ से उठाकर कृपा सागर शिव ने लीलापूर्वक परशुराम के शिर पर हाथ रखा।।३३।। फिर राम को आशीर्वाद से अभिनन्दित कर आदर के साथ गणेश के पूर्व की ओर बैठाया। उसके बाद जिनकी कृपार्द्र दृष्टि से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं, वे भगवान् शिव वाम भाग में बैठी हुई उमा की ओर देखकर बोले—।।३४।।

शिव ने कहा कि हे ब्रह्मचारी तुम कौन हो? किसके कुल में उत्पन्न हुए हो? किस कार्य को उद्देश्य बनाकर यहाँ आये हो? मैं तुम्हारे भक्तिभाव से बहुत प्रसन्न हूँ, तुम अपने मन की बात बताओ।।३५।। विश्व के दुःखों को हरने वाले महात्मा हर (भगवान्) शंकर ने जब इस प्रकार कहा, तो परशुराम आदर सहित पुनः नमन करके देवों के स्वामी कृपा के सागर भगवान् शंकर से शीघ्र बोले।।३६।।

परशुराम ने कहा कि हे विभो! मैं भृगुकुल में उत्पन्न हुआ हूँ, महर्षि जमदग्नि का पुत्र हूँ तथा मेरा नाम राम है। अतः मैं संसार के वन्दनीय आपकी शरण में आया हूँ।।३७।। हे नाथ! जिस कार्य के लिये मैं आपके पास आया हूँ। हे विश्वेश! उस मेरे वाञ्छित काम को सिद्ध कीजिये।।३८।। हे प्रभो! महाराजा कार्तवीर्य मृग या विहार (शिकार) से लौट रहे थे, वे आश्रम में आये और फिर मेरे पिता जमदग्नि ने उनका आथित्य स्वीकार किया।।३९।। आतिथ्य सत्कार धेनु द्वारा प्राप्त देखकर राजा को लोभ हो गया। अतः उस राजा ने लोभ से बलपूर्वक धेनु को लेना चाहा। पिता के विरोध करने पर पिता को मार दिया, तब वह धेनु उनको मरा हुआ देखकर गोलोक चली गयी।।४०।। राजा ने मेरे निरपराध पिता की मृत्यु पर कोई शोक नहीं किया। बाद में वह अपने नगर को चला गया, उसके बाद मेरी मां बहुत विलख-विलख कर रोने लगी।।४१।। संसार के समस्त वृत्त की क्षण क्षण जानकारी रखने वाले मेरे

मया सह सुदुःखार्त्तान्भ्रातृन्मात्रा सहैव मे। सांत्वयित्वा स मंत्रज्ञोऽजीवयत्पितरं मम॥४३॥
अनागते भृगौ मातुर्दुःखेनाहं प्रकोपितः। प्रतिज्ञां कृतवान्देव सात्वयन्मातरं स्वकाम्॥४४॥
त्रिःसप्तकृत्वो यदुरस्ताडितं मातुरात्मनः। तावत्संख्यमहं पृथ्वीं करिष्ये क्षत्रवर्जितम्॥४५॥
इत्येवं परिपूर्णा मे कर्त्ता देवो जगत्पतिः। महादेवो ह्यतो नाथ त्वत्सकाशमिहागतः॥४६॥

वसिष्ठ उवाच

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः। बभूवानम्रवदनश्चिंतयानः क्षणं तदा॥४७॥
एतस्मिन्नंतरे दुर्गा विस्मिता प्राहसद्भृशम्। उवाच च महाराज भार्गवं वैरसाधकम्॥४८॥
तपस्विन्द्विजपुत्र क्ष्मां निर्भूपां कर्त्तुमिच्छसि। त्रिःसप्तकृत्वः कोपेन साहसस्ते महान्बटो॥४९॥
हंतुमिच्छसि निःशस्त्रः सहस्त्रार्जुनमीश्वरम्। भ्रूभंगलीलया येन रावणोऽपि निराकृतः॥५०॥
तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरेः कवचं पुरा। शक्तिरत्यर्थवीर्या च तं कथं हंतुमिच्छसि॥५१॥
शंकरः करुणासिद्धः कर्त्तुं चाप्यन्यथा विभुः।
न चान्यः शंकरात्पुत्र सत्कार्यं कर्त्तुमीश्वरः॥५१॥
अथ देव्या अनुमतिं प्राप्य शंभुर्दयार्णवः। अभ्यधाद्भद्रया वाचा जमदग्निसुतं विभुः॥५३॥

शिव उवाच

अद्यप्रभृति विप्र त्वं मम स्कंदसमो भव। दास्यामि मंत्रं दिव्यं ते कवचं च महामते॥५४॥

पितामह भृगु वहाँ आ गये तथा वन से लौटकर मैं भी आ गया।।४२।। उस समय मेरे साथ मेरे भाई और मेरी माता सभी अत्यन्त दुःख में रो रहे थे। तब उन मंत्र को जानने वाले मेरे पितामह भृगु ने सबको सान्त्वना देते हुए मेरे पिता को जीवित कर दिया।।४३।। लेकिन हे देव! जब तक मेरे पितामह नहीं आये थे, उसी समय माता के दुःख से अत्यन्त क्रोधित मैंने अपनी माता को सान्त्वना देते हुए यह प्रतिज्ञा की।।४४।। कि मेरी माता इक्कीस बार जब तक अपने वक्षस्थल को पीटेगी तो उतनीही बार मैं पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दूँगा।।४५।। लेकिन मेरे इस कार्य को पूर्ण करने वाले जगत्पति देवाधिदेव महादेव हैं। इसलिए हे नाथ! मैं यहाँ आपके पास आया हूँ।।४६।।

वशिष्ठ ने कहा—इस प्रकार राम के वचन को सुनकर तथा दुर्गा के मुख को देखकर तब भगवान् क्षण भर के लिए नीचे को मुख करके सोचने लगे।।४७।। हे राजन्! इसी बीच में दुर्गा जी विस्मित होकर बहुत जोर से हँसने लगीं और उन वैर का बदला लेने वाले परशुराम से बोलीं कि अरे तपस्विन्! द्विजपुत्र! तुम क्रोध से २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित करना चाहते हो, अतः हे वटो! तुम्हारा साहस महान् है, जो कि निःशस्त्र तुम सहस्रार्जुन राजा को मारना चाहते हो, जिसकी टेढ़ी भौंहें करने मात्र से रावण भी भाग गया था।।४८-५०।। उसको भगवान् दत्तात्रेय ने पूर्वकाल में श्री हरि का कवच दिया था। उसके पास अपारशक्ति और पराक्रम है, उसको कैसे मारना चाहते हो।।५१।। ये शंकर तो करुणा से सिद्ध होने वाले हैं, ये कुछ अन्यथा करने में समर्थ हैं। शंकर के अलावा इस सत्कार्य को कोई नहीं कर सकता है।।५२।। इसके बाद देवी दुर्गा की अनुमति प्राप्त करके दया के सागर शम्भु भद्र भाषा से जमदग्नि पुत्र राम से बोले।।५३।।

शिव जी ने कहा—कि आज से विप्र! तुम मेरे पुत्र कार्तिकेय के समान हो। हे महामते! मैं तुम्हें दिव्य मन्त्र

लीलया यत्प्रसादेन कार्त्तवीर्यं हनिष्यसि। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां महीं चापि करिष्यसि॥५५॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ मंत्रं सुदुर्लभम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्धुतम्॥५६॥
नागपासं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रं च सुदुर्ल्लभम्। नारायणास्त्रमाग्नेयं वायव्यं वारुणं तथा॥५७॥
गांधर्वं गारुडं चैव जृंभणास्त्रं महाद्धुतम्। गदां शक्तिं च परशुं शूलं दण्डमनुत्तमम्॥५८॥
शस्त्रास्त्रग्राममखिलं प्रहृष्टः संबभूव ह। नमस्कृत्य शिवं शांतं दुर्गां स्कंदं गणेश्वरम्॥५९॥
परिक्रम्य ययौ रामः पुष्करं तीर्थमुत्तमम्। सिद्धं कृत्वा शिवोक्तं तु मन्त्रं कवचमुत्तमम्।६०॥
साधयामास निखिलं स्वकार्यं भृगुनंदनः। निहत्य कार्त्तवीर्यं तं ससैन्यं सकुलं मुदा।
विनिवृत्तो गृहं प्रागात्पितुः स्वस्य भृगूद्वहः॥६१॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३२॥

और कवच प्रदान करूँगा।।५४।। अतः मेरी कृपा से तुम कार्तवीर्य को खेल-खेल में आसानी से मार सकोगे और २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन कर सकोगे।।५५।। यह कहकर शंकर ने उन्हें दुर्लभ दिव्य मन्त्र प्रदान कर दिया और त्रैलोक्य विजय नामक परम अद्भुत कवच दिया।।५६।। गान्धर्व, गरुड़ और महा अद्भुत जृम्भणास्त्र, नारायणास्त्र, आग्नेयास्त्र, वायव्य, वारुण्य, नागपाश, पाशुपत और दुर्लभ ब्रह्मास्त्र, गदा शक्ति, परशु, शूल और अनुत्तम दण्ड प्रदान कर दिये। समस्त शास्त्रास्त्रों को प्राप्त कर परशुराम बहुत प्रसन्न हुए। फिर शान्त शिव, दुर्गा, कार्तिकेय और गणेश को नमस्कार करके और उनकी परिक्रमा कर परशुराम उत्तम पुष्कर तीर्थ को चले गये।।५६-५९½।। शिव द्वारा कहे गये उत्तम कवच मंत्र को सिद्ध करके भृगुनन्दन परशुराम ने समस्त अपना कार्य सिद्ध कर लिया।।५९½-६०½।। फिर उस कार्तवीर्य को उसकी सेना के साथ मारकर भृगुकुल श्रेष्ठ परशुराम सानन्द अपने घर लौटे।।६०-६१½।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ३२वां अध्याय भार्गवचरित में परशुराम का तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न करना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

त्रैलोक्यकवचवर्णनं नाम

त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

सगर उवाच

श्रुतं सर्वं मुनिश्रेष्ठ कीर्त्यमानं त्वया विभो। कवचं वद सर्वत्र त्रैलोक्यविजयप्रदम्॥१॥

वसिष्ठ उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम्। मंत्रं च सिद्धिदं शश्वत्साधकानां सुखावहम्॥२॥
गोपीजनपदस्यांते वल्लभाय समुच्चरेत्। स्वाहांतोऽयं महामंत्रो दशार्णो भुक्तिमुक्तिदः॥३॥
सदाशिवस्त्वस्य ऋषिः पंक्तिश्छंद उदाहृतम्। देवता कृष्ण उदितो विनियोगोऽखिलाप्तये॥४॥
त्रैलोक्यविजयस्याथ कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छंदश्च जगती देवो राजेश्वरः स्वयम्॥५॥
त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्त्तितः। प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा॥६॥
पायात्कपालं कृष्णाय स्वाहेति सततं मम। कृष्णेति पातु नेत्रे मे कृष्णस्वाहेति तारकाम्॥७॥
हरये नम इत्येष भ्रूलतां पातु मे सदा। ॐ गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु संततम्॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय-३ ३

त्रैलोक्य कवच वर्णन

सगर ने कहा—इसके बाद राजा सगर ने वशिष्ठ से कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ मैंने आप द्वारा वर्णन किये गये समस्त वृत्तान्त को सुना, अब हे मुनिश्रेष्ठ सर्वत्र तीनों लोकों में विजय प्रदान करने वाले कवच के विषय में बताओ।।१।।

वशिष्ठ ने कहा कि वत्स सुनो मैं तुम्हें परम अद्भुत कवच के तथा सिद्धि देने वाले और साधकों के लिये निरन्तर सुख देने वाले मंत्र के बारे में बतला रहा हूँ।।२।। गोपी जनपद के अन्त में वल्लभ के लिये इसे उच्चारण करना चाहिये। स्वाहा अन्त वाला यह मन्त्र दशार्ण सब प्रकार के भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है।।३।। इस मन्त्र के ऋषि सदाशिव हैं तथा इसमें पंक्तिछन्द है, इसके देवता कृष्ण हैं, इसका विनियोग अखिल (सब कुछ) प्राप्ति के लिये है।।४।। इस त्रैलोक्य विजय कवच के प्रजापति ऋषि है, जगती छन्द है, इसके देवता स्वयं राजेश्वर हैं।।५।। तथा तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने के लिये इसका विनियोग (विशेष प्रयोग) बताता हूँ।।५½।। मन्त्र है—**प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा, पायात्कपालं कृष्णाय स्वाहा इति सततं मम॥** इस मंत्र को ऊपर संस्कृत श्लोकों में देखें। श्लोक संख्या ५½ से २६ तक यह कवच है, इसका पाठ करने से सब कुछ प्राप्त होता है जिसका अर्थ है—हे ओंकार स्वरूप प्रभो! आप मेरे शिर की रक्षा करो, श्रीकृष्ण के लिये मेरा सदा नमस्कार है।।६।। आप मेरे कपाल की रक्षा करो, अतः कृष्ण के लिये मेरा निरन्तर स्वाहा है। हे कृष्ण! आप मेरे नेत्रों के तारे की रक्षा करो, अतः मेरा कृष्ण के लिये स्वाहा है।।७।। मेरा हरि के लिये नमस्कार है, हे हरे! आप मेरी भ्रूलता (भौंओं) की सर्वदा

गोपालाय नमो गण्डं पातु मे सततं मनुः। क्लीं कृष्णाय नमः कर्णौ पातु कल्पतरुर्मम॥९॥
श्रीं कृष्णाय नमः पातु नित्यं मेऽधरयुग्मकम्।
ॐ गोपीशाय स्वाहेति दन्तपंक्तिं ममावतु॥१०॥
श्रीकृष्णेति रदच्छिद्रं पातु मे त्र्यक्षरो मनुः।
ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातु मे सदा॥११॥
रामेश्वराय स्वाहेति तालुकं पातु मे सदा। राधिकेशाय स्वाहेति कंठं मे पातु सर्वदा॥१२॥
नमो गोपीगणेशाय ग्रीवां मे पातु सर्वदा। ॐ गोपेशाय स्वाहेति स्कंधौ पातु सदा मम॥१३॥
नमः किशोरवेषाय स्वाहा पृष्ठं ममावतु। उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय नमो मनुः॥१४॥
ह्रीं श्रींक्लींकृष्णाय स्वाहा करौ पातु सदा मम।
ॐ विष्णवे नमः स्वाहा बाहुयुग्मं ममावतु॥१५॥
ॐ ह्रींभगवते स्वाहा नखपंक्तिं ममावतु। नमो नारायणायेति नखरंध्रं ममावतु॥१६॥
ॐ ह्रींश्रींपद्मनाभाय नाभिं पातु सदा मम। ॐ सर्वेशाय स्वाहेति केशान्मम सदाऽवतु॥१७॥
नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरंध्रं सदाऽवतु। ॐ माधवाय स्वाहेति भालं मे सर्वदाऽवतु॥१८॥
ॐ ह्रींश्रींरसिकेशाय कटिं मम सदाऽवतु। नमो गोपीजनेशाय उरू पातु सदा मम॥१९॥
ॐ नमो दैत्यनाशाय स्वाहेत्यवतु जानुनी। यशोदानन्दनायेति नमोंतो जंघकेऽवतु॥२०॥

रक्षा करो। मैं गोविन्द के लिए स्वाहा करता हूँ। हे गोविन्द! मेरी नासिका की निरन्तर रक्षा करो।।८।। गोपाल के लिये मेरा नमस्कार है। हे मनु! आप मेरे गण्डस्थल की निरन्तर रक्षा करो। क्लीं कृष्ण के लिये नमस्कार है। हे कल्पतरु! मेरे कानों की रक्षा करो।।९।। श्रीकृष्ण के लिये नमस्कार है, आप मेरे दोनों अधरों की नित्य रक्षा करो ॐ गोपीश के लिये स्वाहा है, आप मेरे दन्तपंक्ति की रक्षा करें।।१०।। हे श्रीकृष्ण! त्र्यक्षर मनु आप मेरे दाँतों के छिद्रों की रक्षा करो। ॐ श्रीकृष्ण के लिये स्वाहा है, आप मेरी जिह्वा की सदा रक्षा करो।।११।। रामेश्वर के लिये स्वाहा है, आप मेरे तालु की सदा रक्षा करो। राधिका के स्वामी को स्वाहा है, आप मेरे कण्ठ की सर्वदा रक्षा करो।।१२।। गोपी गणेश के लिए नमस्कार है, आप मेरी गर्दन की सदा रक्षा करो। ॐ गोपेश के लिये स्वाहा है, आप मेरे कंधों की सदा रक्षा करो।।१३।।

किशोरवेश के लिये स्वाहा है, आप मेरी पीठ की रक्षा करें।। मुकुन्द के लिये मेरा नमस्कार है, आप मेरे पीठ की रक्षा करें। मुकुन्द के लिये मेरा नमस्कार है, आप मेरे उदर की नित्य रक्षा करें।।१४।। ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्ण के लिये स्वाहा है, आप मेरे दोनों हाथों की सदा रक्षा करें। ॐ विष्णु के लिये नमस्कार और स्वाहा है, आप मेरे दोनों भुजाओं की रक्षा करें।।१५।। ॐ ह्रीं भगवान् के लिए स्वाहा है, आप मेरी नखपंक्ति की रक्षा करें। नारायण के लिये नमस्कार है, आप मेरे नाखूनों के छिद्रों की रक्षा करें।।१६।। ॐ ह्रीं श्रीं पद्मनाभ के लिए नमस्कार है, आप मेरे नाभि की सदा रक्षा करो। ॐ सर्वेश के लिये स्वाहा है, आप मेरे केशों की रक्षा करो।।१७।। कृष्ण के लिये नमस्कार और स्वाहा है, आप मेरे ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा करें। ॐ माधव के लिये स्वाहा है, आप मेरे मस्तक की सदा रक्षा करो।।१८।। श्री ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेश के लिये नमन है, आप मेरी कमर की सदा रक्षा करें। गोपीजनेश के लिए नमस्कार है, आप मेरी जंघाओं की सदा रक्षा करो।।१९।। दैत्यों का नाश करने वाले के लिये स्वाहा है,

रासारंभप्रियायेति स्वाहांतो ह्रीं ममावतु। वृंदाप्रियाय स्वाहेति सकलांगानि मेऽवतु॥२१॥
परिपूर्णमनाः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदाऽवतु।
स्वयं गोलोकनाथो मामाग्नेय्यां दिशि रक्षतु॥२२॥
पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदाऽवतु। नैर्ऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातु मां हरिः॥२३॥
गोविन्दः पातु वायव्यामुत्तरे रसिकेश्वरः। ऐशान्यां मे सदा पातु वृन्दावनविहारकृत्॥२४॥
वृंदाप्राणेश्वरः शश्वत्पातु मामूर्द्ध्वदेशतः। सदैव मामधः पातु बलिध्वंसी महाबलः॥२५॥
जले स्थले चांतरिक्षे नृसिंहः पातु मां सदा। स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां माधवः स्वयम्॥२६॥
सर्वान्तरात्मा निर्लिप्तः पातु मां सर्वतो विभुः। इति ते कथितं भूप सर्वाघौघविनाशनम्॥२७॥
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमेशितुः। मया श्रुतं शिवमुखात्प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥२८॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः॥२९॥
स साधकोऽवसद्यत्र तत्र वाणीरमे स्थिते। यदि स्यात्सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो न संशयः॥३०॥
निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात्। राजसूयसहस्राणि वाजपेयशतानि च॥३१॥
महादानानि यान्येव भुवश्चापि प्रदक्षिणा।
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हंति षोडशीम्॥३२॥
व्रतोपवासनियमाः स्वाध्यायाध्ययने तथा। स्नानं च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हति कलामपि॥३३॥

जो मेरे घुटनों की रक्षा करें। यशोदा को आनन्द देने वाले के लिये नमस्कार है, आप मेरी जंघाओं के अन्तभाग की रक्षा करो।।२०।। रास के आरम्भ को प्रिय मानने वाले के लिये स्वाहा है, आप मेरी रक्षा करो। वृन्दा के प्रिय के लिये स्वाहा है, वह मेरे सकल अंग की रक्षा करें।।२१।। परिपूर्ण मन वाले कृष्ण! पूर्व दिशा में मेरी सर्वदा रक्षा करें। स्वयं गोलोकनाथ कृष्ण मेरी आग्नेय दिशा में रक्षा करें।।२२।। पूर्ण ब्रह्मस्वरूप कृष्ण आप मेरी दक्षिण दिशा में रक्षा करें। नैर्ऋत्य में मेरी कृष्ण रक्षा करें और पश्चिम में हरि रक्षा करें।।२३।। गोविन्द वायव्य दिशा में और उत्तर में रसिकेश्वर तथा ऐशान दिशा में वृन्दा वन विहारी सदा रक्षा करें।।२४।। वृन्दाप्राणेश्वर कृष्ण! मेरी ऊपर से रक्षा करें तथा नीचे से बलि का नाश करने वाले महाबली कृष्ण रक्षा करें।।२५।।

जल, स्थल और अन्तरिक्ष में मेरी नृसिंह सदा रक्षा करें तथा स्वप्न में और जागरण में सदैव स्वयं माधव मेरी रक्षाकरें।।२६।। सबकी आत्मा में समाये हुए विभु मेरी सब ओर से रक्षा करें। इस प्रकार हे राजन्! समस्त पाप समूहों का नाश करने वाला यह त्रैलोक्यविजय नामक कवच है, इसको मैंने शिव के मुख से सुना है, इसे किसी को नहीं बताना चाहिये।।२८।। जो मनुष्य विधिपूर्वक गुरु की अर्चना कर विधिपूर्वक इस कवच को कण्ठ में अथवा दक्षिण भुजा में धारण करें, वह भी विष्णु है, इसमें कोई संशय नहीं है।।२९।। वह साधक जहाँ भी रहे, वहाँ वह अपनी वाणी में इसे रटता रहे तथा यदि सिद्ध कवच याद रहे तो जीते हुए मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं है तथा वह निश्चित ही करोड़ों वर्षों की पूजा का फल प्राप्त करेगा। हजारों राजसूय यज्ञों और सैकड़ों वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त करेगा।।३१।। जितने भी महादान हैं, जितने भी भुवनों की परिक्रमा हैं, इस त्रैलोक्य विजय मंत्र की षोडशी कला को कोई नहीं पार करता है, सब कुछ इससे कम ही है।।३२।। व्रत, उपवास, नियम, स्वाध्याय,

सिद्धत्वममरत्वं च दासत्वं श्रीहरेरपि। यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वं प्राप्नोति निश्चितम्॥३४॥
स भवेत्सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः। यो भवेत्सिद्धकवचो विजयी स भवेद् ध्रुवम्॥३५॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च भूपते। एतत्तु कवचं वत्स न देयं संकटेऽपि च॥३६॥
मया प्रकाशितं यत्ते चैतेषां त्राणकारणात्। ममाज्ञाकरणाच्चैव तद्विद्धि कुलभास्कर।
इदं धृत्वा तु कवचं चक्रवर्ती भवान्भव॥३७॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे भार्गवचरिते त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३३॥

अध्ययन तथा सब तीर्थों में स्नान ये सब फल प्रदान के विषय में इस त्रैलोक्य विजय मंत्र की एक कला के बराबर नहीं है।।३३।। सिद्धत्व, अमरत्व तथा श्रीहरि का दासत्व भी इस त्रैलोक्य विजय मन्त्र की एक कला के बराबर नहीं है। यदि सिद्धकवच है, तो मनुष्य सब कुछ निश्चय ही प्राप्त कर लेता है।।३४।।

यह सिद्ध कवच उसी को सिद्ध होता है, जो इसको दश लाख बार जप लेता है। तब वह व्यक्ति सिद्धकवची हो जाता है तथा फिर निश्चित ही विजयी होता है।।३५।।

तब वशिष्ठ ने राजा सगरसे कहा कि हे राजन्! यदि कोई मांगे तो राज्य दे देना चाहिये, शिर दे देना चाहिये और प्राणों को भी दे देना चाहिये; परन्तु इस कवच को हे वत्स! संकट में भी नहीं देना चाहिये।।३६।। मैंने जो इस कवच को तुम्हें बताया है, वह उन सबकी रक्षा के लिये है, जिन अंगों को इसमें कहा गया है। अतः हे कुलभास्कर! मेरी आज्ञा है, आप इसे अच्छी तरह जानो, अतः इस कवच को धारण करके तुम चक्रवर्ती हो जाओ।।३७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद ३३वां अध्याय भार्गवचरित में त्रैलोक्य कवच वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

मृगमग्योः संवादो नाम

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

सगर उवाच

ब्रह्मपुत्र महाभाग महान्मेऽनुग्रहः कृतः। यदिदं कवचं मह्यं प्रकाशितमनामयम्॥१॥
और्वेणानु गृहीतोऽहं कृतास्त्रो यदनुग्रहात्। भवतस्तु कृपापात्रं जातोऽहमधुना विभो॥२॥
रामेण भार्गवेंद्रेण कार्त्तवीर्यो नृपो गुरो। यथा समापितो वीरस्तन्मे विस्तरतो वद॥३॥
कृपापात्रं स दत्तस्य राजा रामः शिवस्य च। उभौ तौ समरे वीरौ जघटाते कथं गुरो॥४॥

वसिष्ठ उवाच

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि चरितं पापनाशनम्। कार्त्तवीर्यस्य भूपस्य रामस्य च महात्मनः॥५॥
स रामः कवचं लब्ध्वा मंत्रं चैव गुरोर्मुखात्। चकार साधनं तस्य भक्त्या परमया युतः॥६॥
भूमिशायी त्रिषवणं स्नानसंध्यापरायणः। उवास पुष्करे राम शतवर्षमतंद्रितः॥७॥
समित्पुष्पकुशादीनि द्रव्याण्यहरहर्भृगोः। आनीय काननाद्भूप प्रायच्छदकृतव्रणः॥८॥
सततं ध्यानसंयुक्तो रामो मतिमतां वरः। आराधयामास विभुं कृष्णं कल्मषनाशनम्॥९॥
तस्यैवं यजमानस्य रामस्य जगतीपते। गतं वर्षशतं तत्र ध्यानयुक्तस्य नित्यदा॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय-३४

मृगमृगी संवाद

सगर ने कहा—हे महाभाग ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ जी आपने मुझ पर बहुत कृपा की है, जो कि आपने इस व्याधिरहित कवच को मुझे सुनाया है।।१।। इस कवच को देकर और्वऋषि ने मुझ पर अनुग्रह किया था, उन्होंने ही मुझे कृतास्त्र किया। अब मैं विभो! आपका कृपापात्र बन गया हूँ।।२।। हे गुरु! भार्गव परशुराम ने वीर राजा कार्तवीर्य को कैसे समाप्त किया? यह मुझे विस्तार से बताइये।।३।। क्योंकि वे राजा कार्तवीर्य भगवान् दत्तात्रेय के कृपा पात्र थे तथा परशुराम भगवान् शिव के कृपापात्र थे। वे दोनों वीर युद्ध में कैसे लड़ रहे थे।

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! सुनो मैं तुम्हें महाराजा कार्तवीर्य और महात्मा परशुराम का पापनाशक चरित्र बता रहा हूँ।।५।। उन परशुराम ने भगवान् शंकर से कवच प्राप्त करके तथा गुरु भगवान् शंकर के मुख से मन्त्र को प्राप्त करके परम भक्ति से उसका साधन किया।।६।। वे भूमि पर सोते थे, तीन बार स्नान करते थे तथा सन्ध्या परायण थे, इस प्रकार सब साधन करते हुये उन्होंने आलस्यरहित हो सौ वर्ष तक पुष्कर में निवास किया।।७।। उस समय समिधा, कुश, पुष्प आदि द्रव्यों को अकृतव्रण वन से लाकर देते थे।।८।। निरन्तर भगवान् शिव के ध्यान में लीन रहकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ परशुराम ने पाप को नष्ट करने वाले विभु (भगवान्) कृष्ण की आराधना की।।९।। इस प्रकार जगती पति यजमान परशुराम को नित्य ध्यान लगाते हुए वहाँ सौ वर्ष बीत गये।।१०।।

एकदा तु महाराज रामः स्नातुं गतो महान्। मध्यमं पुष्करं तत्र ददर्शाश्चर्यमुत्तमम्॥११॥

मृग एकः समायातो मृग्या युक्तः पलायितः।
व्याधस्य मृगयां प्राप्तो घर्मतप्तोऽतिपीडितः॥१२॥

पिपासितो महाभाग जलपानसमुत्सुकः। रामस्य पश्यतस्तत्र सरसस्तटमागतः॥१३॥
पश्चान्मृगी समायाता भीता सा चकितेक्षणा। उभौ तौ पिबतस्तत्र जलं शंकितमानसौ॥१४॥
तावत्समागतो व्याधो बाणपाणिर्धनुर्द्धरः। स दृष्ट्वा तत्र संविष्टं रामं भार्गवनन्दनम्॥१५॥
अकृतव्रणसंयुक्तं तस्थौ दूरकृतेक्षणः। स चिन्तयामास तदा शंकितो भृगुनन्दनात्॥१६॥
अयं रमो महावीरो दुष्टानामंतकारकः। कथमेतस्य हन्म्येतौ पस्यतो मृगयामृगौ॥१७॥
इति चिन्ता समाविष्टो व्याधो राजन्यसत्तम। तस्थौ तत्रैव रामस्य भयात्संत्रस्तमानसः॥१८॥
रामस्तु तौ मृगौ दृष्ट्वा पिबंतौ सभयं जलम्। तर्कयामास मेधावी किमत्र भयकारणम्॥१९॥
नैवात्र व्याघ्रसंनादो न च व्याधो हि दृश्यते। केनैतौ कारणेनाहो शंकितौ चकितेक्षणौ॥२०॥
अथ वा मृगजातिर्हि निसर्गाच्चकितेक्षणा। येनैतौ जलपानेऽपि पश्यतश्चकितेक्षणौ॥२१॥
नैतावत्कारणं चात्र किं तु केदभयातुरौ। लक्ष्येते खिन्नसर्वांगौ कम्पयुक्तौ यतस्त्विमौ॥२२॥

एवं संचित्य मतिमान्स तस्थौ मध्यपुष्करे।
शिष्येण संयुतो रामो यावत्तौ चापि संस्थितौ॥२३॥

एक बार हे महाराज! महान् परशुराम स्नान करने को गये, वहाँ पुष्कर के मध्य उन्होंने एक उत्तम आश्चर्य देखा।।११।। वह यह कि एक मृग मृगी के साथ भागता हुआ, वहाँ आया। उसको एक शिकारी ने शिकार के लिये पीछा किया था। वह मृग और मृगी दोनों घाम से तप्त और अत्यन्त पीड़ित थे।।१२।। हे महाभाग! वह मृग बहुत प्यासा था। अतः जल पीना चाहता था। वहाँ राम को देखते हुए, उस पुष्कर सरोवर के पास आ गया।।१३।। बाद में डरी हुई मृगी भी आ गयी, जो भय से चकित आँखों वाली थी। वहाँ उस सरोवर में वे दोनों डरे हुए मन से जल पी रहे थे कि तब तक शिकारी हाथ में वाण और धनुष लेकर वहाँ आ गया। वह वहाँ अकृतव्रण के साथ भृगुनन्दन परशुराम को बैठा हुआ देखकर दूरसे ही देखता हुआ ठहर गया। तब वह भृगुनन्दन परशुराम से डरता हुआ सोचने लगा।।१४-१६।। कि ये दुष्टों का अन्त कर देने वाले महावीर राम हैं, मैं इनके देखते हुए इन मृगों को कैसे मार सकता हूं।।१७।।

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्य सत्तम! इस प्रकार चिन्ता से युक्त होकर वह व्याध परशुराम के भय से भयभीत मन होकर वहीं पर ठहर गया।।१८।। मेधावी परशुराम उन दोनों मृगों को भययुक्त होकर जल पीते हुए देखकर यह तर्क करने लगे कि यहां पर भय का क्या कारण है?।।१९।। क्योंकि न तो यहां सिंह की गर्जना है और न यहां पर कहीं व्याध दिखायी दे रहा है, फिर किस कारण से ये दोनों मृग भययुक्त नेत्रों से इधर-उधर देख रहे हैं।।२०।। अथवा मृगों की जाति ही स्वभाव से चकितेक्षणा (चकित आँखों) वाली होती ही है। जिसके कारण ये दोनों मृग पानी पीते हुए चकित आँखों से देख रहे हैं।।२१।। परशुराम ने सोचा कि यहां इतना कारण भी नहीं है; क्योंकि ये दोनों दुःखी अंगों वाले भय से काँपते हुए दिखायी दे रहे हैं।।२२।। इस प्रकार अच्छी तरह विचार करके वे मतिमान् परशुराम शिष्य के साथ उस पुष्कर के मध्य में तब तक खड़े रहे, जब तक कि वे दोनों मृग वहाँ पर खड़े थे।।२३।।

पीत्वा जलं ततस्तौ तु वृक्षच्छायासमाश्रितौ। रामं दृष्ट्वा महात्मानं कथां तौ चक्रतुर्मुदा॥२४॥

मृग्युवाच

कांत चात्रैव तिष्ठावो यावद्रामोऽत्र संस्थितः।
अस्य वीरस्य सांनिध्ये भयं नैवावयोर्भवेत्॥२५॥

अत्राप्यागत्य चेद्व्याधो ह्यावयोः प्रहरिष्यति। दृष्टमात्रो हि मुनिना भस्मीभूतो भविष्यति॥२६॥
इत्युक्ते वचने मृग्या राम दर्शनतुष्टया। मृगश्चोवाच हर्षेण समाविष्टः प्रियां स्वकाम्॥२७॥
एवमेव महाभागे यद्वै वदसि भामिनि। जानेऽहमपि रामस्य प्रभावं सुमहात्मनः॥२८॥

योऽयं संदृश्यते चास्य पार्श्वे शिष्योऽकृतव्रणः।
सचानेन महाभागस्त्रातो व्याघ्रभयातुरः॥२९॥

अयं रामो महाभागे जमदग्निसुतोऽनुजः। पितरं कार्त्तवीर्येण दृष्ट्वा चैव तिरस्कृतम्॥३०॥
चकारातितरां क्रुद्धः प्रतिज्ञां नृपघातिनीम्। तत्पूर्तिकामो ह्यगमद्ब्रह्मलोकं पुरा ह्ययम्॥३१॥
स ब्रह्मा दिष्टवांश्चैनं शिवलोकं व्रजेति ह। तस्य त्वाज्ञां समादाय गतोऽसौ शिवसन्निधिम्॥३२॥
प्रोवाचाखिलवृत्तांतं राज्ञश्चाप्यात्मनः पितुः। स कृपालुर्महादेवः सभाज्य भृगुनंदनः॥३३॥
ददौ कृष्णस्य सन्मंत्रमभेद्यं कवचं तथा। स्वीयं पाशुपतं चास्त्रमन्यास्त्रग्राममेव च॥३४॥
विसर्जयामास मुदा दत्त्वा शस्त्राणि चादरात्। सोऽयमत्रागतो भद्रे मंत्रसाधनतत्परः॥३५॥

उसके बाद उन दोनों मृगों ने जल पीकर वृक्ष की छाया का आश्रय लिया। महात्मा परशुराम को देखकर उन दोनों ने कथा कहना शुरू किया।।२४।। मृगी ने कहा—हे प्रियतम! यहाँ हम लोग तब तक ठहरें, जब तक राम यहाँ उपस्थित हैं। इस वीर के सान्निध्य में हमें कोई भय नहीं होना चाहिये।।२५।। यहाँ भी आकर यदि व्याध हम पर प्रहार करेगा तो मुनि के द्वारा देखने मात्र से भस्मीभूत हो जायेगा।।२६।। रामदर्शन से सन्तुष्ट मृगी के इस प्रकार वचन बोलने पर हर्ष से प्रफुल्लित मृग अपनी प्रिया से इस प्रकार बोला।।२७।। कि इसी प्रकार हे महाभागे! हे भामिनि! जैसा तुम बोलती हो वैसा ही मैं महान् आत्मा राम के प्रभाव को जानता हूँ।।२८।। जो यह इनके पास इनका शिष्य अकृतव्रण दिखायी दे रहा है, वह भी सिंह के भय से व्याकुल इन्हीं महाभाग ने बचाया था।।२९।। हे महाभागे! ये राम महर्षि जमदग्नि के सबसे छोटे पुत्र हैं, राजा कार्तवीर्य द्वारा पिता को तिरस्कृत देखकर क्रोधित हुए इन्होंने राजा कार्तवीर्य को मारने की प्रतिज्ञा कर ली है, उसकी पूर्ति की इच्छा से ये पहले ब्रह्मलोक को गये थे।।३०-३१।।

उन ब्रह्मा ने इन्हें समझाकर कहा कि तुम शिवलोक जाओ। उन ब्रह्मा जी की आज्ञा लेकर वे शिवजी के पास गये।।३२।। और वहाँ इन्होंने राजा और अपने पिता के बीच घटित समस्त वृत्तान्त को शिव जी को बता दिया। तब उन दयालु महादेव ने इन्हें कृपापात्र बनाकर कृष्णका अच्छा मन्त्र और अभेद्य कवच प्रदान कर दिया तथा अपना पाशुपत अस्त्र तथा अन्य अस्त्रसमूहों को प्रदान कर दिया।।३३-३४।। भगवान् शंकर ने इन्हें सानन्द और सादर अस्त्रों को देकर सानन्द और सादर विदा कर दिया। अतः भद्रे! वह यहाँ आकर मन्त्र की साधना करने में लगे हुए हैं।।३५।।

नित्यं जपति धर्मात्मा कृष्णस्य कवचं सुधीः।
शतवर्षाणि चाप्यस्य गतानि सुमहात्मनः॥३६॥
मंत्र साधयतो भद्रे न च तत्सिद्धिरेति हि।
अत्रास्ति कारणं भक्तिः सा च वै त्रिविधा मता॥३७॥
उत्तमा मध्यमा चैव कनिष्ठा तरलेक्षणे। शिवस्य नारदस्यापि शुकस्य च महात्मनः॥३८॥
अंबरीषस्य राजर्षे रंतिदेवस्य मारुतेः। बलेर्विभीषणस्यापि प्रह्लादस्य महात्मनः॥३९॥
उत्तमा भक्तिरेवास्ति गोपीनाथमुद्धवस्य च। वसिष्ठादिमुनीशानां मन्वादीनां शुभेक्षणे॥४०॥
मध्या च भक्तिरेवास्ति प्राकृतान्यजनेषु सा। मध्यभक्तिरयं रामो नित्यं यमपरायणः॥४१॥
सेवते गोपिकाधीशं तेन सिद्धिं न चागतः।

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्ता त्वरितं कांतं सा मृगी हृष्टमानसा॥४२॥
पुनः पप्रच्छ भक्तेस्तु लक्षणं प्रेमदायकम्।

मृग्युवाच

साधु कांत महाभाग वचस्तेऽलौकिकं। प्रियमपीदृग् ज्ञानं तव कथं संजातं तद्वदाधुना॥४३॥

मृग उवाच

श्रृणु प्रिये महाभागे ज्ञानं पुण्येन जायते॥४४॥
तत्पुण्यमद्य संजातं भार्गवस्यास्य दर्शनात्।
पुण्यात्मा भार्गवश्चायं कृष्णभक्तो जितेंद्रियः॥४५॥

अतः ये सुमति धर्मात्मा नित्य कृष्ण के कवच का जाप करते हैं, इस प्रकार जप करते हुए इन महापुरुष के सौ वर्ष बीत चुके हैं।।३६।। मृग ने मृगी से कहा कि हे भद्रे! केवल मन्त्र का जप करने से सिद्धि नहीं प्राप्त होती है, इसमें कारण भक्ति है, जो तीन प्रकार की मानी गयी है।।३७।। हे कथाश्रवण कर भीगे नेत्र वाली प्रिये! उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा इन तीन प्रकारों की भक्ति है।।३७½।। शिव की, नारद की, महात्मा शुक की, अम्बरीष की, राजर्षि रन्तिदेव की, मारुति (हनुमान) की, बलि की, विभीषण की और महात्मा प्रह्लाद की, गोपियों की और उद्धव की भक्ति उत्तम भक्ति है।।३७½-३९½।। वशिष्ठादि मुनीशों तथा मनु आदि की भक्ति हे शुभेक्षणे! मध्यमा भक्ति है, जो भक्ति अन्य सामान्यजनों में भी है, ये परशुराम मध्यम भक्ति वाले हैं, जो नित्य यमों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) के पालन में लगे रहते हैं।।३९½-४१।। केवल गोपिकाधीश भगवान् कृष्ण की जो सेवा करता है, उससे सिद्धि नहीं प्राप्त होती है।।४१½।।

वशिष्ठ ने कहा कि इस प्रकार जब मृगी को कहा गया, तब मृगी ने प्रसन्न मन से शीघ्र अपने पति से भक्ति का प्रेमदायक लक्षण फिर पूछा।।४१½-४२½।।

मृगी ने कहा—ठीक है प्रिय! महाभाग! आपका वचन अलौकिक है, ऐसा ज्ञान आपको कैसे हुआ? अब यह बताइये।।४२½-४३½।।

मृग ने कहा प्रिये! सुनो अरे महाभागे! ज्ञान तो पुण्य से पैदा होता है, वह पुण्य आज उन भार्गव राम के दर्शन से हुआ है; क्योंकि ये भार्गव राम पुण्यात्मा, जितेन्द्रिय भगवान् कृष्ण के भक्त हैं।।४३½-४५।।

गुरुशुश्रूषको नित्यं नित्यनैमित्तिकादरः। अतोऽस्य दर्शनाज्जातं ज्ञानं मेऽद्यैव भामिनि॥४६॥
त्रैलोक्यस्थितसत्त्वानां शुभाशुभनिदर्शकम्। अद्यैव विदितं मेऽभूद्रामस्यास्य महात्मनः॥४७॥
चरितं पुण्यदं चैव पापघ्नं शृण्वतामिदम्। यद्यत्करिष्यते चैव तदपि ज्ञानगोचरम्॥४८॥
योत्तमा भक्तिराख्याता तां विना नैव सिद्ध्यति। कवचं मंत्रसहितं ह्यपि वर्षायुतायुतैः॥४९॥
यद्ययं भार्गवो भद्रे ह्यगस्त्यानुग्रहं लभेत्। कृष्णप्रेमामृतं नाम स्तोत्रमुत्तमभक्तिदम्॥५०॥
ज्ञात्वा च लप्स्यते सिद्धिं मंत्रस्य कवचस्य च। स मुनिर्ज्ञाततत्त्वार्थः सानुकंपोऽभयप्रदः॥५१॥
उपदेक्ष्यति चैवैनं तत्त्वज्ञानं मुदावहम्। श्रीकृष्णचरितं सर्वं नामभिर्ग्रथितं यतः॥५२॥
कृष्णप्रेमामृतस्तोत्राज्ज्ञास्यतेऽस्य महामतिः। ततः संसिद्ध कवचो राजानं हैहयाधिपम्॥५३॥
हत्वा सपुत्रामात्यं च ससुहृद्बलवाहनम्। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यत्यवनीं प्रियः॥५४॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्त्वा मृगो राजन्विरराम मृगीं ततः। आत्मनो मृगभावस्य कारणं ज्ञातवांश्च ह॥५५॥

।इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते चतुस्त्रिंशतमोऽध्यायः।।३४।।

ये भार्गव राम नित्य नैमित्तिक कर्म करने वाले तथा नित्य गुरु की सेवा करने वाले हैं। इसलिये मेरे भामिनि! इनके दर्शनसे आज ही मुझे ज्ञान हो गया है।।४६।। इन महामना राम के दर्शन के प्रभाव से आज ही तीनों लोकों में स्थित प्राणियों के शुभ और अशुभ बताने वाले रहस्य का ज्ञान हो गया है।।४७।। मृग ने कहा कि हे प्रिये! पुण्य प्रदान करने वाले पापनाशक इस चरित्र को सुनने वालों के जो जो करेंगे, वह भी ज्ञान गोचर ही होगा।।४८।। यह सब उत्तम भक्ति कही गयी है, उसके विना सिद्धि नहीं होती है अर्थात् उत्तम भक्ति विना पुण्यदायक पापनाशक महापुरुषों के चरित्रों को सुनने के विना नहीं होती है। अतः महान् पुरुषों के चरित्र को पढ़ना चाहिये अथवा उनका सत्संग करना चाहिये, यह स्पष्ट भाव यहाँ परिलक्षित है तथा एक अच्छी शिक्षा प्राप्त हो रही है।

अतः विना महान् पुरुषों के सत्संग के लाखों वर्षतक मन्त्रसहित कवच का जाप करने से सिद्धि नहीं होगी।।४९।।

मृग ने कहा कि हे भद्रे! यदि ये भार्गव राम महर्षि अगस्त्य की कृपा को प्राप्त करें, तो कृष्ण प्रेमामृत नामक उत्तम भक्ति प्रदान करने वाले स्तोत्र को जानकर मन्त्र और कवच की सिद्धि को प्राप्त कर लेंगे।।४९½-५०½।। वे मुनि अगस्त्य तत्त्वार्थ को जान चुके हैं, दयावान् एवं अभय प्रदान करने वाले हैं। अतः वे इन्हें आनन्द को वहन करने तत्त्वज्ञान का उपदेश देंगे; क्योंकि समस्त श्रीकृष्णचरित उन्होंने नामों के साथ रचा है और उसे ग्रन्थ रूप में, ग्रथित किया है।।५०½-५२।। अतः कृष्णप्रेमामृत स्तोत्र से इन महामति को ज्ञान हो जायेगा। उसके बाद पूरी तरह सिद्ध हुआ कवच हैहयाधिपति राजा कार्तवीर्य को उसके पुत्रों, अमात्यों, मित्रों, सेना तथा वाहनों को मारकर २१ बार पृथ्वी को राजाओं से रहित कर देगा।।५३-५४।।

वशिष्ठ ने कहा—कि इस प्रकार मृग मृगी से कहकर रुक गया, तब महर्षि परशुराम ने अपने और मृग के भाव को जान लिया, तदनुसार वे अगस्त्य मुनि के पास गये तथा उनसे श्रीकृष्णप्रेमामृत स्तोत्र का ज्ञान प्राप्त किया।।५५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ३४वां अध्याय भार्गवचरित में मृगमृगी संवाद का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

मृगमृग्योः कथा परशुरामस्यागत्स्याश्रमगमनञ्च नाम

पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सगर उवाच

मुने परमतत्त्वज्ञ ध्यानज्ञानार्थकोविद। भगवद्भक्तिसंलीनमानसानुग्रहः कृतः॥१॥
त्वयापि हि महाभाग यतः शंससि सत्कथाः। श्रुत्वा मृगमुखात्सर्वं भार्गवस्य विचेष्टितम्॥२॥
भूतं भवद्भविष्यं च नारायणकथान्वितम्। पुनः पपृच्छ किं नाथ तन्मे वद सविस्तरम्॥३॥

वसिष्ठ उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि मृगस्य चरितं महत्। यथा पृष्टं तथा सोऽस्यै वर्णयामास तत्त्ववित्॥४॥
श्रुत्वा तु चरितं तस्य भार्गवस्य महात्मनः। भूयः प्रपच्छ तं कांतं ज्ञानतत्त्वार्थमादराम्॥५॥

मृग्युवाच

साधुसाधु महाभाग कृतार्थस्त्वं न संशयः। यदस्य दर्शनात्तेऽद्य जातं ज्ञानमतींद्रियम्॥६॥
अथातश्चात्मनः सर्वं ममापि वद कारणम्। कर्मणा येन संप्राप्तावावां तिर्यग्जनिं प्रभो॥७॥

इति वाक्यं समाकर्ण्य प्रियायाः स मृगः स्वयम्।
वर्णयामास चरितं मृग्याश्चैवात्मनस्तदा॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय- ३५

मृग और मृगी की कथा, परशुराम का अगरत्त्याश्रम में जाना

राजा सगर ने कहा कि हे गुरुदेव मुनि वशिष्ठ! परमतत्त्व जानने वाले तथा ध्यान और ज्ञान के अर्थ को जानने वाले भगवान् की भक्ति में संलीन मन से अनुग्रह करने वाले आपके द्वारा भी हे महाभाग! मैंने अच्छी कथा को सुना। आप संयत चित्त होकर अच्छी कथायें कहते हैं। आप द्वारा कही गयी मृगी ने मृग के मुंह से भार्गव राम द्वारा किये गये कार्य की भूत, वर्तमान तथा भविष्य की कथाओं और नारायण की कथा युक्त समस्त कार्यों की कथा को हमने सुना; परन्तु हे नाथ इस कथा को हमें विस्तार से बताओ।।२-३।।

वशिष्ठ ने कहा— कि हे राजन्! सुनो मैं तुम्हें मृग के महान् चरित्र को बता रहा हूँ। जैसे उस मृगी ने पूछा वैसा ही तत्त्व को जानने वाले मृग ने उसको वर्णन किया।।४।। उन महात्मा भार्गवराम का चरित सुनकर उस मृगी ने उस अपने पति से पुनः ज्ञान तत्त्व के अर्थ को जानने के लिये आदर से पूछा।।५।।

मृगी ने कहा—साधु साधु महाभाग! आपने हमें कृतार्थ कर दिया, इसमें कोई सन्देह नहीं है, जो कि इन महानुभाव भार्गवराम को देखने से आज आपको इन्द्रियातीत ज्ञान हो गया है।।६।। अतः श्रीमान् आप मुझे इसका कारण बताइये कि इनको देखकर ही आपको यह इन्द्रियातीत ज्ञान क्यों हुआ तथा यह भी बताइये कि किस कर्म के द्वारा हम दोनों को यह तिर्यक् (पशु) योनि प्राप्त हुई है।।७।। तब प्रिया के इस प्रकार के वाक्य को सुनकर मृग स्वयं मृगी और अपने चरित्र को वर्णन करने लगा।।८।।

मृग उवाच

शृणु प्रिये महाभागे यथाऽऽवां मृगतां गतौ। संसारेऽस्मिन्महाभागे भावोऽस्य भवकारणम्॥९॥
जीवस्य सदसद्भ्यां हि कर्मभ्यामागतः स्मृतिम्। पुरा द्रविडदेशे तु नानाऋद्धिसमाकुले॥१०॥
ब्राह्मणानां कुले वाऽहं जातः कौशिकगोत्रिणाम्।
पिता मे शिवदत्तोऽभून्नाम्ना शास्त्रविदारतः॥११॥
तस्य पुत्रा वयं जाताश्चत्वारो द्विजसत्तमाः।
ज्येष्ठो रामोऽनुजस्तस्य धर्मस्तस्यानुजः पृथुः॥१२॥
चतुर्थोऽहं प्रिये जातो सूरिरित्यभिविश्रुतः। उपनीय क्रमात्सर्वाञ्छिवदत्तो महायशाः॥१३॥
वेदानध्यापयामास सांगांश्च सरहस्यकान्। चत्वारोऽपि वयं तत्र वेदाध्ययनतत्पराः॥१४॥
गुरुशुश्रूषणे युक्ता जाता ज्ञानपरायणाः। गत्वाऽरण्यं फलान्यंबुसमित्कुशमृदोऽन्वहम्॥१५॥
आनीय पित्रे दत्त्वाथ कुर्मोऽध्ययनमेव हि। एकदा तु वयं सर्वे संप्राप्ता पर्वत वने॥१६॥
औद्भिदं नाम लोलाक्षि कृतमालातटे स्थितम्। सर्वे स्नात्वा महानद्यामुषसि प्रीतमानसाः॥१७॥
दत्तार्घाः कृतजप्याश्च समारूढा नगोत्तमम्।
शालस्तमालैः प्रियकैः पनसैः कोविदारकैः॥१८॥
सरलार्जुनपूगैश्च खर्जूरनारिकेलकैः। जंबूभिः सहकारैश्च कट्फलैर्बृहतीद्रुमैः॥१९॥
अन्यैर्नानाविधैर्वृक्षैः परार्थप्रतिपादकैः। स्निग्धच्छायैः समाहृष्टनापक्षिनिनादितैः॥२०॥

मृग ने कहा—हे महाभागे! प्रिये! जिस प्रकार हम मृगता को प्राप्त हुये अर्थात् जिस कारण से हम मृग बने उस कारण को सुनिये, हे महाभागे इस संसार में होने का कारण अर्थात् किसी भी योनि में जन्म लेने के कारण उस जीव का भाव होता है। जीव की अच्छे और बुरे कर्मों से स्मृति होती है। प्राचीन काल में द्रविड़देश में अनेकों प्रकार की समृद्धियों से भरे हुए कौशिक गोत्रीय ब्राह्मणों के कुल में मैं पैदा हुआ था।।९½-१०½।। मेरे पिता शिवदत्त नाम से शास्त्र विशारद हुए, उनके हम चार द्विजश्रेष्ठ ब्राह्मण पुत्र हुए।।१०½-११½।। उनमें सबसे बड़े राम से छोटे धर्म और उनसे छोटे पृथु थे। चौथा पुत्र मैं था, जो सूरि इस नाम से जाना गया।।११½-१२½।।

मेरे पिता महाशय शिवदत्त ने क्रमशः सबका यज्ञोपवीत (वेदारम्भ) संस्कार कराकर, रहस्यों सहित सांगोपांग वेदों का अध्ययन कराया। हम चारों ही वहाँ वेदों के अध्ययन में तत्पर रहे तथा गुरु की सेवा में लगे रहने के कारण हम सब ज्ञानपरायण हो गये।।१२½-१४½।। वन में जाकर फलों, जल, समिदा, कुश, मिट्टी आदि यज्ञ-सामग्रियों को लाकर पिता को देकर हम अपना अध्ययन ही करते थे।।१४½-१५½।। एक बार हम सब पर्वतवन में पहुंच गये, वहाँ कृतमाला नदी के तट पर चंचल झरना स्थित था।।१५½-१६½।। प्रातःकाल में सबने प्रसन्नचित्त हो महानदी में स्नान किया, वहाँ अर्घ्य देकर जप करके उस उत्तमपर्वत पर हम चढ़ गये।।१६½-१७½।। वह पर्वत अनेकों प्रकार के वृक्षों से भरा हुआ था, जैसे कि शाल, तमाल, प्रियक, कटहल, कचनार, सरल, अर्जुन, कण्टकि (पूग), खजूर, नारियल, जामुन, आम, तथा अन्य स्निग्ध छायादार परोपकार करने वाले वृक्षों से घिरा हुआ था, जिन वृक्षों पर पूर्ण हर्ष से पक्षी शब्द करते रहते थे।।१७½-२०।।

शार्दूल हरिभिर्भल्लैर्गंडकैर्मृगनाभिभिः। गजेन्द्रैः शरभाद्यैश्च सेवितं कन्दरागतैः॥२१॥
मल्लिकापाटलाकुंदकर्णिकारकदंबकैः सुगंधिभिर्वृतं चान्यैर्वातोद्धूतपरागिभिः॥२२॥
नानामणिगणाकीर्णैर्नीलपीतसितारुणैः। शृगैः समुल्लिखितं च व्योम कौतुकसंयुतम्॥२३॥
अत्युच्चपातध्वनिभिर्निर्झरैः कंदरोद्गतैः। गर्ज्जंतमिव संसक्तं व्यालाद्यैर्मृगपक्षिभिः॥२४॥
तत्रातिकौतुकाहृष्टदृष्टयो भ्रातरो वयम्। नास्मार्ष्म चात्मनाऽत्मानं वियुक्ताश्च परस्परम्॥२५॥
एतस्मिन्नंतरे चैका मृगी ह्यागात्पिपासिता। निर्झरापात शिरसि पातुकामा जलं प्रिये॥२६॥

तस्याः पिबंत्यास्तु जलं शार्दूलोऽतिभयंकरः।
तत्र प्राप्तो यदृच्छातो जगृहे तां भयार्दिताम्॥२७॥

अहं तद्ग्रहणं पश्यन्भयेन प्रपलायितः। अत्युच्चवत्त्वात्पतितो मृतश्चैणीमनुस्मरन्॥२८॥

सा मृता त्वं मृगी जाता मृगस्त्वाहमनुस्मरन्।
जातो भद्रे न जाने वै क्व गता भ्रातरोऽग्रजाः॥२९॥

एतन्मे स्मृतिमापन्नं चरितं तव चात्मनः। भूतं भविष्यं च तथा शृणु भद्रे वदाम्यहम्॥३०॥

योऽयं वा पृष्ठसंलग्नो व्याधो दूरस्थितोऽभवत्।
रामस्यास्य भयात्सोऽपि भक्षितो हरिणाधुना॥३१॥
प्राणांस्त्यक्त्वा विधानेन स्वर्गलोकं गमिष्यति।
अवाभ्यां तु जलं पीतं मध्यमे पुष्करे त्विह॥३२॥

तथा उस पर्वत की कन्दराओं में शार्दूल, सिंह, भालू, गेंडे, मृग, गजराज, शरभ आदि रहते थे।।२१।। तथा वह पर्वत मल्लिकागुलाब, कुंद, कर्णिकार, कदम्ब आदि सुगन्धित वृक्षों से युक्त था तथा अन्य वायु द्वारा लेकर गयी सुगन्धियों से भरा हुआ था।।२२।। अनेकों प्रकार की मणियों से युक्त नीले, पीले, श्वेत और लाल रंग की चोटियों से आकाश को चित्रित कर देखने के लिये उत्सुक बन रहा था।।२३।। अत्यन्त ऊंचाई से गिरने से ध्वनि करते हुए झरनों और कन्दराओं में सिंह आदि जंगली जानवरों और पक्षियों बोलियों से गर्जना करते हुए के समान लग रहा था।।२४।। वहाँ पर अत्यन्त कौतुक से प्रसन्न होकर इधर-उधर देखते हुए हम और हमारे भाई सब एक-दूसरे से नहीं मिल सके तथा सब एक-दूसरे से अलग हो गये। हे प्रिये! इसी बीच में एक प्यासी मृगी वहाँ पर आ गयी, वह झरने से जल पीना चाहती थी।।२५-२६।।

वह जल पी ही रही थी कि एक अति भयंकर शार्दूल वहाँ आया और उसने भय से काँपती हुई मृगी को पकड़ लिया।।२७।। मैं उस पकड़ को देखकर भय से भागने लगा, तब बहुत ऊँचाई से गिरने के कारण मैं मृगी को याद करता हुआ मर गया।।२८।। वह जो मृगी मरी, वह तू मृगी हो गयी तथा मृगी का अनुस्मरण करते हुए, मैं मृग हो गया। अतः भद्रे! अब मैं नहीं जानता हूँ कि मेरे अग्रज भ्राता सब कहाँ गये।।२९।। यह मुझे अपना और तुम्हारा चरित्र स्मरण हुआ है। यह भूत है, अब भविष्य की बात कहता हूँ। भद्रे तुम सुनो!।।३०।। जो यह पीठ पर तीरों को बाँधे हुए राम के भय से दूर स्थित व्याघ है, अब वह भी सिंह द्वारा खा लिया जायेगा।।३१।। प्राणों को त्याग कर वह व्याघ भी विधान से स्वर्गलोक को चला जायेगा। हम दोनों ने इस पुष्कर सर के मध्य आकर जल

संदृष्टो भार्गवश्चायं साक्षाद्विष्णुस्वरूपधृक्। तेनानेकभवोत्पन्नं पातकं नाशमागतम्॥३३॥

अगस्त्यदर्शनं लब्ध्वा श्रुत्वा स्तोत्रं गतिप्रदम्।
गमिष्यावः शुभाँल्लोकान्येषु गत्वा न शोचति॥३४॥

इत्येवमुक्त्वा स मृगः प्रियायै प्रियदर्शनः। विरराम प्रसन्नात्मा पश्यन्राममातुरः॥३५॥

भार्गवः श्रुतवांश्चैव मृगोक्तं शिष्यसंयुतः। विस्मितोऽभूच्च राजेन्द्र गन्तुं कृतमतिस्तथा॥३६॥

अकृतव्रणसंयुक्तो ह्यगस्त्यस्याश्रमं प्रति।
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा प्रतस्थे हर्षितो भृशम्॥३७॥

रामेण गच्छता मार्गे दृष्टो व्याधो मृतस्तदा। सिंहस्य संप्रहारेण विस्मितेन महात्मना॥३८॥

अध्यर्द्धयोजनं गत्वा कनिष्ठं पुष्करं प्रति।
स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यां चकारातिमुदान्वितः॥३९॥

हितं तदात्मनः प्रोक्तं मृगेण स विचारयन्। तापत्तत्पृष्ठसंलग्नं मृगयुग्ममुपागतम्॥४०॥

पुष्करे तु जलं पीत्वाभिषिच्यात्मतनुं जलैः। पश्यतो भार्गवस्यागादगस्त्याश्रमसंमुखम्॥४१॥

रामोऽपि सन्ध्यां निर्वर्त्त्य कुंभजस्याश्रमं ययौ। विपद्गतं पुष्करं तु पश्यमानो महामनाः॥४२॥

विष्णोः पदानि नागानां कुण्डं सप्तर्षिसंस्थितम्।
गत्वोपस्पृश्य शुच्यंभो जगामागस्त्यसंश्रयम्॥४३॥

पी लिया।।३२।। तथा हमने साक्षाद् विष्णु के रूप को धारण करने वाले भार्गव परशुराम को देंख लिया। अतः उस दर्शन से हमारे अनेक जन्मों से उत्पन्न पापों का नाश हो गया।।३३।। महर्षि अगस्त्य का दर्शन प्राप्त कर गति प्रदान करने वाले स्तोत्र को सुनकर हम दोनों भी शुभ लोकों को चले जायेंगे। जिनमें जाकर कोई शोक नहीं होता है।।३४।। ऐसा कहकर प्रिया के लिये प्रिय दिखायी देने वाला प्रसन्नात्मा परशुराम में मन लगाता हुआ उनको देखने में आतुर वह मृग आराम करने लगा (चुप हो गया)।।३५।। परन्तु वहाँ उन दोनों की बातों को परशुराम शिष्य के साथ सुनकर आश्चर्य चकित हो गये तथा हे राजेन्द्र! उन्होंने उस मृग के मुख से जो अगस्त्याश्रम में जाने की बात सुनी थी, तदनुसार परशुराम ने अगस्त्याश्रम जाने की बुद्धि बनायी।।३६।। फिर उसके बाद परशुराम अकृतव्रण के साथ स्नान और नित्य क्रिया करके हर्षित होते हुए अगस्त्याश्रम की ओर चल दिये।।३७।।

तब मार्ग में जाते हुए सिंह के प्रहार से विस्मित महात्मा परशुराम ने व्याघ को मरा हुआ देखा, तो उन्हें आश्चर्य हो गया।।३८।। कुछ आधे योजन चलकर छोटे पुष्कर के पास जाकर वहाँ स्नान करके उन्होंने अत्यन्त आनन्द से युक्त होकर सायंकाल की सन्ध्या सम्पन्न की।।३९।। तब मृग के द्वारा कहे गये अपने हित के कथन को विचार कर रहे थे, तब तक उनके पीछे आते हुए मृग मृगी भी वहाँ आ गये।।४०।। तब वहाँ पुष्कर में जल पीकर तथा जल से अपने शरीर का अभिसिंचन कर भार्गव राम के देखते देखते, वे अगस्त्याश्रम के सामने पहुँच गये।।४१।। राम भी सन्ध्या से निवृत्त होकर अगस्त्याश्रम की ओर चले गये। वहाँ विपत्तिग्रस्त पुष्कर को देखते हुये महामना विष्णु के पद, नागों के कुण्ड पर जहाँ कि सप्तर्षि स्थित हैं, वहाँ जाकर तथा पवित्र जल का स्पर्श कर अगस्त्याश्रम को गये।।४२-४३।।

यच्च ब्रह्मसुता राजन्समायाता सरस्वती। त्रीन्संपूरयितुं कुण्डानग्निहोत्रस्य वै विधेः॥४४॥
तत्र तीरे शुभं पुण्यं नानामुनिनिषेवितम्। ददर्श महदाश्चर्यं भार्गवः कुंभजाश्रमम्॥४५॥
मृगैः सिंहैः सहगतैः सेवितं शांतमानसैः। कुटरैरर्जुनैर्निंबैः पारिभद्रधवेंगुदैः॥४६॥
खदिरासनखर्जूरैः संकुलं बदरीद्रुमैः। तत्र प्रविश्य वै रामो ह्यकृतव्रणसंयुतः॥४७॥
ददर्श मुनिमासीनं कुम्भजं शांतमानसम्। स्तिमितोदरःप्रख्यं ध्यायन्तं ब्रह्म शाश्वतम्॥४८॥
कौश्यां वृष्यां मार्गकृत्तिं वसानं पल्लवोटजे। ननाम च महाराज स्वाभिधानं समुच्चरन्॥४९॥
रामोऽस्मि जागमदग्न्योऽहं भवंतं द्रष्टुमागतः। तद्विद्धि प्रणिपातेन नमस्ते लोकभावन॥५०॥
इत्युक्तवन्तं रामं तु उन्मील्य नयने शनैः। दृष्ट्वा स्वागतमुच्चार्य तस्मायासनमादिशत्॥५१॥
मधुपर्कं समानीय शिष्येण मुनिपुंगवः। ददौ पप्रच्छ कुशलं तपसश्च कुलस्य च॥५२॥
स पृष्टस्तेन वै रामो घटोद्भवमुवाच ह। भवत्संदर्शनादीश कुशलं मम सर्वतः॥५३॥
किं त्वेकं संशयं जातं छिंधि स्ववचनामृतैः। मृगश्चैको मया दृष्टो मध्यमे पुष्करे विभो॥५४॥
तेनोक्तमखिलं वृत्तं मम भूतमनागतम्। तच्छ्रुत्वा विस्मयाविष्टो भवच्छरणमागतः॥५५॥
पाहि मां कृपया नाथ साधयंत महामनुम्। शिवेन दत्तं कवचं मम साधयतो गुरो॥५६॥

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! वह आश्रम ऐसा था कि जहाँ ब्रह्मसुता सरस्वती अग्निहोत्र के तीन कुण्डों को भरने के लिये आयी थीं।।४४।। उसके शुभ तट पर अनेकों मुनियों से सेवित महद् आश्चर्य पैदा करने वाला शुभ और पुण्य अगस्त्य का आश्रम देखा।।४५।।वह आश्रम मृगों, सिंहों के द्वारा शान्त मनों से साथ साथ रहने के साथ सेवित था अर्थात् उस आश्रम में हिरन और सिंह शान्त मन से एक साथ रहते चलते-फिरते थे। वह आश्रम कुटर, अर्जुन, पारिभद्र, धव, इंगुद, खदिर, असन, खजूर और बेर के वृक्षों से घिरा हुआ था। वहाँ पर अकृतव्रण के साथ परशुराम ने प्रवेश करके शान्त मन वाले निरन्तर ब्रह्म का ध्यान करते हुए अगस्त्य मुनि को बैठा हुआ देखा।।४६-४८।।

तब उन्होंने अपना नाम और पता बताते हुए उन मुनि को प्रणाम किया। राम ने कहा कि मैं मार्ग में बनी हुई कांसों की कुटिया में रहने वाला जमदग्नि का पुत्र राम हूँ, यहाँ मैं आपके दर्शन करने आया हूँ। अतः हे लोकभावन मैं आपको आपके चरणों में नतमस्तक हो नमस्ते करता हूँ। अतः मेरे अभिवादन को जानिये।।४९-५०।। जब परशुराम ने ऐसा कहा, तब धीरे से अपनी आँखें खोलकर और परशुराम को देखकर अगस्त्य मुनि ने कहा कि तुम्हारा स्वागत है, ऐसा कहकर उनके लिये आसन लाने का आदेश दिया। शिष्यों द्वारा आसन लाया गया, तब बैठाकर शिष्य के द्वारा मधुपर्क लाकर उन्हें दिया गया, तब मुनि ने उनसे तप तथा कुल की कुशलता पूछी।।५१-५२।। उनके द्वारा पूछने पर भगवान् राम ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे ईश! आपके दर्शन हो जाने से ही मेरी सब प्रकार से कुशलता है।।५३।। किन्तु हे विभो! एक संशय मुझे हो गया है, आप अपने वचनामृतों से उसका खण्डन कीजिये। वह यह कि मैंने पुष्कर के मध्य में एक मृग देखा, उसने मेरे भूत और भविष्य का समस्त वृत्तान्त कह दिया, उसको सुनकर आश्चर्यचकित होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ।।५४-५५।। आप मेरी रक्षा कीजिये। कृपया नाथ शिव के द्वारा दिये गये मेरे साधनरूप महामुनि कवच को मुझे सिद्ध कराइये।।५६।।

कृष्णस्य समतीतं तु साधिकं हि शरच्छतम्।
न च सिद्धिमवाप्तोऽहं तन्मे त्वं कृपया वद॥५७॥

वसिष्ठ उवाच

एवं प्रश्नं समाकर्ण्य रामस्य सुमहात्मनः। क्षणं ध्यात्वा महाराज मृगोक्तं ज्ञातवान् हृदा॥५८॥
मृगं चापि समायातं मृग्या सह निजाश्रमे। श्रोतुं कृष्णामृतं स्तोत्रं सर्वं तत्कारणं मुनिः।
विचार्याश्वासयामास भार्गवः स्ववचोमृतैः॥५९॥

॥इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते पञ्चत्रिंशतमोऽध्यायः॥३५॥

उस कृष्ण नामक कवच का साधन करते हुए मुझे सैकड़ों वर्ष बीत गये; परन्तु फिर भी मैंने सिद्धि नहीं प्राप्त की, अतः आप कृपा करके बताइये कि वह कवच कैसे सिद्ध होगा?॥५७॥

वशिष्ठ ने कहा—हे महाराज! सुमहात्मा परशुराम के प्रश्न को सुनकर क्षणभर ध्यान करके मृग द्वारा कहे गये कथन कि मृग भी मृगी के साथ अपने आश्रम में कृष्णामृत स्तोत्र को सुनने के लिये आया था। उस सब कारण को मुनि ने हृदय से जान लिया और विचार करके परशुराम को अपने वचनामृतों से आश्वासन दिया॥५९॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ३५वां अध्याय भार्गवचरित में मृग और मृगी की कथा, परशुराम का अगस्त्याश्रम में जाना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

अगस्त्येन कृष्णप्रेमामृतस्तोत्रकथनं नाम

षड्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

अवगत्य स वै सर्वं कारणं प्रीतमानसः। उवाच भार्गवं राममगस्त्यः कुंभसंभवः॥१॥

अगस्त्य उवाच

शृणु राम महाभाग कथयामि हितं तव। मन्त्रस्य सिद्धिं येन त्वं शीघ्रमेव समाप्नुयाः॥२॥

भक्तेस्तु लक्षणं ज्ञात्वा त्रिविधाया महामते। यो यतेत नरस्तस्य सिद्धिर्भवति सत्वरम्॥३॥

एकदाऽहमनुप्राप्तोऽनन्तदर्शनकांक्षया। पातालं नागराजेंद्रैः शोभितं परया मुदा॥४॥

तत्र दृष्टा महाभाग मया सिद्धाः समंततः। सनकाद्या नारदश्च गौतमो जाजलिः क्रतुः॥५॥

ऋभुर्हंसोऽरुणिश्चैव वाल्मीकिः शक्तिरासुरिः।
एतेऽन्ये च महासिद्धा वात्स्यायनमुखा द्विज॥६॥

उपासत ह्युपासीना ज्ञानार्थं फणिनायकम्। तं नमस्कृत्य नागेंद्रैः सह सिद्धैर्महात्मभिः॥७॥

उपविष्टः कथास्तत्र शृण्वानो वैष्णवीर्मुदा। येयं भूमिर्महाभाग भूतधात्री स्वरूपिणी॥८॥

निविष्टा पुरतस्तस्य शृण्वंती ताः कथाः सदा। यद्यत्पृच्छति सा भूमिः शेषं साक्षान्महीधरम्॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय–३६

अगस्त्य द्वारा कृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र का कथन

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! प्रसन्नचित्त मुनि कुम्भज (अगस्त्य) ने सब कारण जानकर भार्गव राम से कहा।।१।।

अगस्त्य ने कहा कि हे राम! सुनो मैं तुम्हारे हित की बात कह रहा हूँ। जिसके द्वारा तुम शीघ्र ही मन्त्र की सिद्धि प्राप्त कर सकोगे।।२।। अगस्त्य मुनि बता रहे हैं कि महामते! तीन प्रकार की भक्ति के लक्षण को जानकर जो मनुष्य प्रयत्न करता है, उसकी सिद्धि शीघ्र होती है।।३।। एक बार मैं परम आनन्द से अनन्त दर्शन की इच्छा से नागराजेन्द्रों से शोभित पाताल लोक में चला गया।।४।। वहाँ पर हे महाभाग! मैंने चारों ओर सनकादि, नारद, गौतम, जाजलि, क्रतु, ऋभु, हंस, अरुणि, वाल्मीकि, शक्ति, आसुरि आदि को तथा अन्य वात्स्यायन आदि प्रमुख महासिद्धों को देखा।।५-६।। वे सब वहाँ बैठे हुए ज्ञान के लिये फणिनायक वासुकि की उपासना कर रहे थे। उनको नमस्कार कर नागेन्द्रों और सिद्धमहापुरुषों के साथ वहाँ आनन्द से वैष्णवी कथा सुनता हुआ मैं भी बैठ गया।।७-७½।। हे महाभाग! जो यह भूमि है, वह प्राणियों को धारण करने वाली और स्वरूप वाली (साकार) है।।७½-८।। उन फणि नामक शेषनाग के सामने बैठी हुई सदा उन सब कथाओं को सुनती रहती है, वह भूमि उन पृथ्वी को धारण

शृण्वंति ऋषयः सर्वे तत्रस्था तदनुग्रहात्। मया तत्र श्रुतं वत्स कृष्णप्रेमामृतं शुभम्॥१०॥
स्तोत्रं तत्ते प्रवक्ष्यामि यस्यार्थं त्वमिहागतः वाराहाद्यवताराणां चरितं पापनाशनम्॥११॥
सुखदं मोक्षदं चैव ज्ञानविज्ञानकारणम्। श्रुत्वा सर्वं धरा वत्स प्रहृष्टा तं धराधरम्॥१२॥
उवाच प्रणता भूयो ज्ञातुं कृष्णविचेष्टितम्।

धरण्युवाच

अलंकृतं जन्म पुंसामपि नंदव्रजौकसाम्॥१३॥
तस्य देवस्य कृष्णस्य लीलाविग्रहधारिणः। जयोपाधिनियुक्तानि संति नामान्यनेकशः॥१४॥
तेषु नामानि मुख्यानि श्रोतुकामा चितादहम्। तत्तानि ब्रूहि नामानि वासुदेवस्य वासुके॥१५॥
नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते।

शेष उवाच

वसुंधरे वरारोहे जनानामस्ति मुक्तिदम्॥१६॥
सर्वमंगलमूर्द्धन्यमणिमाद्यष्टसिद्धिदम्। महापातककोटिघ्नं सर्वतीर्थफलप्रदम्॥१७॥
समस्तजपयज्ञानां फलदं पापनाशनम्। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम्॥१८॥
सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति॥१९॥
तस्मात्पुण्यतरं चैतत्स्तोत्रं पातकनाशनम्। नाम्नामष्टोत्तरशतस्याहमेव ऋषिः प्रिये॥२०॥

करने वाले शेषनाग से पूछती है, वे बताते हैं।।९।। वहाँ पर उन शेषनाग की कृपा से वहाँ बैठे हुए सब ऋषिगण कथाओं को सुनते हैं। मैंने वहीं पुत्र! शुभकृष्ण प्रेम मृत को सुना था।।१०।। उस स्तोत्र को मैं तुम्हें बताऊँगा, जिसके लिये तुम यहाँ आये हो, वह वाराह आदि अवतारों पापनाशक चरित है।।११।। वह चरित सुख प्रदान करने वाला मोक्ष प्रदान करने वाला और ज्ञान विज्ञान का कारण है। हे वत्स! उस सब चरित को सुनकर प्रमुदित धरा प्रणाम करती हुई कृष्ण द्वारा कहे गये चरित को पुनः जानने के लिये धराधर शेषनाग से बोली।।१२-१२½।।

धरणी ने कहा—कि नन्दगाँव और व्रज में रहने वाले पुरुषों का जन्म अलंकृत है।।१३।। अनेकों लीलारूपी शरीर को धारण करने वाले उन देव कृष्ण के उनकी जय और उपाधि के आधार पर रखे गये अनेकों नाम हैं।।१४।। उन नामों में जो मुख्य नाम हैं, उनको मैं शीघ्र सुनना चाहता हूँ, इसलिए वे वासुकि (शेषनाग) आप वासुदेव के उन नामों को बताइये।।१५।। क्योंकि इससे बढ़कर पुण्य तीनों लोकों में नहीं है।।१५½।।

शेषनाग ने कहा—हे वरारोहे! वसुन्धरे! वासुदेव के नामों का कीर्तन लोगों के लिये मुक्ति प्रदान करने वाला है।।१६।। यह नामों का कीर्तन सब प्रकार का मंगल करने वाला है, सबसे ऊँचा है तथा अणिमा आदि सिद्धियों को प्रदान करने वाला है तथा करोड़ों महापातकों को नष्ट करने वाला तथा सब तीर्थों के फल को प्रदान करने वाला है।।१७।। वह समस्त जप और यज्ञों के फल को देने वाला और पाप को नाश करने वाला है। हे पृथ्वि! देवि! सुनो मैं तुम्हें उनके १०८ नामों को बताऊँगा।।१८।। पुण्यों के हजार नामों को तीन बार जपने पर जो फल होता है, वहाँ कृष्ण का एक नाम एक बार में फल प्रदान करता है।।१९।। इसलिए हे प्रिये! धरणि! इसीलिये यह पुण्यतर

छंदोऽनुष्टुब्देवता तु योगः कृष्णप्रियावहः। श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः॥२१॥
वसुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः। श्रीवत्सकौस्तभधरो यशोदावत्सलो हरिः॥२२॥
चतुर्भुजात्तचक्रासिगदाशंखाद्युदायुधः। देवकीनंदनः श्रीशो नंदगोपप्रियात्मजः॥२३॥
यमुनावेगसंहारी बलभद्रप्रियानुजः। पूतनाजीवितहरः शकटासुरभंजनः॥२४॥
नंदव्रजजनानंदी सच्चिदानंदविग्रहः। नवनीतविलिप्तांगो नवनीतनटोऽनघः॥२५॥
नवनीतलवाहारी मुचकुंदप्रसादकृत्। षोडशीस्त्रीसहस्त्रेशस्त्रिभंगी मधुराकृतिः॥२६॥
शुकवागमृताब्धींदुर्गोविंदो गोविदांपतिः। वत्सपालनसंचारी धेनुकासुरमर्द्दनः॥२७॥
तृणीकृततृणावर्त्तो यमलार्जुनभंजनः। उत्तालतालभेत्ता च तमालश्यामलाकृतिः॥२८॥
गोपगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः। इलापतिः परंज्योतिर्यादवेंद्रो यदूद्वहः॥२९॥
वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः। गोवर्द्धनाचलोद्धर्त्ता गोपालः सर्वपालकः॥३०॥
अजो निरंजनः कामजनकः कंजलोचनः। मधुहा मथुरानाथो द्वारकानाथको बली॥३१॥
वृंदावनांतसंचारी तुलसीदामभूषणः। स्यमंतकमणेर्हर्त्ता नरनारायणात्मकः॥३२॥
कुब्जाकृष्टांबरधरो मायी परमपूरुषः। मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदः॥३३॥

स्तोत्र पाप को नष्ट करने वाला है। अतः हे प्रिये! इस १०८ नामों का ऋषि (मन्त्रों का रचयिता) मैं (शेषनाग) ही हूँ॥२०॥ इस स्तोत्र का छन्द अनुष्टुप् है, देवता तो श्रीकृष्ण प्रियावह ही हैं। ये १०८ नाम इस प्रकार है—१. श्रीकृष्ण, २. कमलानाथ, ३. वासुदेव, ४. सनातन, ५. वसुदेवात्मज, ६. पुण्य, ७. लीलामानुषविग्रह, ८. श्रीवत्सकौस्तभधर, ९. यशोदावत्सल, १०. हरि, ११. चतुर्भुजात्तचक्रासिगदाशंखाद्युदायुध (चारों हाथ में चक्र, तलवार, गदा और शंख धारण करने वाले), १२. देवकीनंदन, १३. श्रीश, १४. नंदगोपप्रियात्मज, १५. यमुनावेगसंहारी (यमुना के वेग को रोक देने वाले), १६. बलभद्रप्रियानुज (बलदेव के छोटे भाई), १७. पूतनाजीवितहर (पूतना के प्राण लेने वाले), शकटासुरभंजन (शकटासुर को मारने वाले), १९. नंदव्रजजनानंदी, २०. सच्चिदानंदविग्रह, २१. नवनीतविलिप्ताङ्ग (मक्खन से लिपटे मुख वाले), २२. नवनीतनट, २३. नवनीतलवाहारी, २४. मुचकुंदप्रसादकृत्, २५. षोडशीस्त्री सहस्त्रेश (सोलह हजार स्त्रियों के स्वामी), २६. २७. त्रिभंगी, २७. मधुराकृति, २८. शुकवागमृताब्धीन्दु, २९. गोविंदो, ३०. गोविदांपति, ३१. वत्सपालनसंचारी, ३२. धेनुकासुरमर्द्दन (धेनुकासुर को मारने वाले), ३३. तृणीकृत भंजन तृणवर्त्त भंजन, ३४. यमलार्जुनभंजन, ३५. उत्तालतालभेत्ता (उत्ताल ताल का भेदन करने वाले), ३६. श्यामलाकृति, ३७. गोपगोपीश्वर, ३८. योगी, ३९. सूर्यकोटिसमप्रभ (करोड़ों सूर्य की कान्ति वाले), ४०. इलापति, ४१. परंज्योति, ४२. यादवेन्द्र, ४३. यदूद्वह, ४४. वनमाली, ४५. पीतवासा (पीतवस्त्र धारी), ४६. पारिजातापहारक, ४७. गोवर्द्धनाचलोद्धर्त्ता (गोवर्द्धन पर्वत को उठाने वाले), ४८. गोपाल, ४९. सर्वपालक, ५०. अज, ५१. निरंजन, ५२. कामजनक, ५३. कंजलोचनः, ५४. मधुहा, ५५. मथुरानाथ, ५६. द्वारकानाथ, ५७. बली, ५८. वृंदावनांतसंचारी (वृन्दावनविहारी), ५९. तुलसीदामभूषण, ६०. स्यमंतकमणेर्हत्ता (स्यमन्तकमणि को चुराने वाले), ६१. नरनारायणात्मक, ६२. कुब्जाकृष्टांबरधर, ६३. मायी, ६४. परमपुरुष, ६५. मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारद (मुष्टिकासुर और चाणूर के साथ युद्ध करने में कुशल), ६६.

संसारवैरी कंसारिर्मुरारिर्नरकांतकः। अनादि ब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः॥३४॥
शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलांतकृत्। विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः॥३५॥
सत्यवाक्यसत्यसंकल्पः सत्यभामारतो जयी। सुभद्रापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः॥३६॥
जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुवाद्यविशारदः। वृषभासुरविध्वंसी बकारिर्बाणबाहुकृत्॥३७॥
युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः। पार्थसारथिरव्यक्तो गीता मृतमहोदधिः॥३८॥
कालीयफणिमाणिक्यरंजितः श्रीपदांबुजः। दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेंद्रविनाशनः॥३९॥
नारायणः परं ब्रह्म पन्नगाशनवाहनः। जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्रापहारकः॥४०॥
पुण्यश्लोकस्तीर्थपादो वेदवेद्यो दयानिधिः। सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः॥४१॥
इत्येवं कृष्णदेवस्य नामामष्टोत्तरं शतम्। कृष्णेन कृष्णभक्तेन श्रुत्वा गीतामृतं पुरा॥४२॥
स्तोत्रं कृष्णप्रियकरं कृतं तस्मान्मया श्रुतम्। कृष्णप्रेमामृतं नाम परमानंददायकम्॥४३॥
अत्युपद्रवदुःखघ्नं परमायुष्य वर्द्धनम्। दानं व्रतं तपस्तीर्थं यत्कृतं त्विह जन्मनि॥४४॥
पठतां शृण्वतां चैव कोटिकोटिगुणं भवेत्। पुत्रप्रदमपुत्राणामगतीनां गतिप्रदम्॥४५॥
धनवानहं दरिद्राणां ज्येच्छूनां जयावहम्। शिशूनां गोकुलानां च पुष्टिदं पुण्यवर्द्धनम्॥४६॥
बालरोगग्रहादीनां शमनं शांतिकारकम्। अंते कृष्णस्मरणदं भवतापत्रयापहम्॥४७॥

संसारवैरी, ६७. कंसारि, ६८. मुरारि, ६९. नरकांतक, ७०. अनादिब्रह्मचारी, ७१. कृष्णाव्यसनकर्षक, ७२. शिशुपालशिरश्छेत्ता, ७३. दुर्योधनकुलांतकृत् (दुर्योधन के कुल का अन्त करने वाले), ७४. विदुराक्रूरवरद, ७५. विश्वरूपप्रदर्शक, ७६. सत्यवाक्यसत्यसंकल्प, ७७. सत्यभामारतो, ७८. जयी, ७९. सुभद्रापूर्वज, ८०. विष्णु, ८१. भीष्ममुक्तिप्रदायक, ८२. जगद्गुरु, ८३. जगन्नाथ, ८४. वेणुवाद्यविशारद, ८५. वृषभासुरविध्वंसी (वृषभासुर का नाश करने वाले), ८६. बकारि, ८७. बाणबाहुकृत्, ८८. युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता (युधिष्ठिर के प्रतिष्ठाता), ८९. बर्हिबर्हावतंसक, ९०. पार्थसारथि, ९१. अव्यक्त, ९२. गीतामृतमहोदधि, ९३. कालीयफणिमाणिक्यरंजित (कालियनाग के फणरूपी माणिक्य से सुशोभित, ९४. श्रीपदांबुजः, ९५. दामोदर, ९६. यज्ञभोक्ता, ९७. दानवेंद्रविनाशन, ९८. नारायण, ९९. परब्रह्म, १००. पन्नगाशनवाहन, १०१. जलक्रीडासमासक्त, १०२. गोपीवस्त्रापहारक (गोपियों के वस्त्रों को चुराने वाला), १०३. पुण्यश्लोकस्तीर्थपाद, १०४.वेदवेद्य, १०५. दयानिधि, १०६. सर्वतीर्थात्मक, १०७. सर्वग्रहरूपी, १०८. परात्पर।।२१-४१।।

इस प्रकार ये कृष्णदेव नाम से १०८ नाम हैं,जिनको पूर्वकाल में कृष्ण अथवा कृष्णभक्त के द्वारा गीतामृत का सुनकर कृष्णप्रिय स्तोत्र को मैंने बनाया है; क्योंकि मैंने सुना है कि, कृष्णप्रेमामृत स्तोत्र परमानन्ददायक है।।४२-४३।। यह अत्यन्त उपद्रव और दुःख को नष्ट करने वाला है तथा बहुत अधिक आयु बढ़ाने वाला है। इस जन्म में दान, व्रत, जप, तीर्थ जो कुछ किया है, उस सबका फल कृष्णनामस्तोत्र को पढ़ने वालों और सुनने वालों का करोड़ों गुना हो जाता है। यह स्तोत्र पुत्रहीनों को पुत्र प्रदान करने वाला है तथा गतिहीनों को गति प्रदान करने वाला है।।४४-४५।। यह स्तोत्र दरिद्रों को धन देने वाला है और जय की इच्छा रखने वालों को जय प्रदान करने वाला है। गोकुल के शिशुओं को पुष्टि देने वाला तथा पुण्य बढ़ाने वाला है।।४६।। यह बालकों के रोग और ग्रह आदि प्रकोपों को

असिद्धसाधकं भद्रे जपादिकरमात्मनाम्। कृष्णाय यादवेंद्राय ज्ञानमुद्राय योगिने॥४८॥
नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदांतवेदिने। इमं मंत्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम्॥४९॥
सर्वग्रहानुग्रहभाक्सर्वप्रियतमो भवेत्। पुत्रपौत्रैः परिवृतः सर्वसिद्धिसमृद्धिमान्॥५०॥
निषेव्य भोगानंतेऽपि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात्।

अगस्त्य उवाच

एतावदुक्तो भगवाननंतो मूर्त्तिस्तु संकर्षणसंज्ञिता विभो॥५१॥
धराधरोऽलं जगतां धरायै निर्दिश्य भूयो विरराम मानदः।
ततस्तु सर्वे सनकादयो ये समास्थितास्तत्परितः कथादृताः।
आनंद पूर्णांबुनिधौ निमग्नाः सभाजयामासुरहीश्वरं तम्॥५२॥

ऋषय ऊचुः

नमो नमस्तेऽखिलविश्वभावन प्रपन्नभक्तार्त्तिहराव्ययात्मन्।
धरादरायापि कृपार्णवाय शेषाय विश्वप्रभवे नमस्ते॥५३॥
कृष्णामृतं नः परिपायितं विभो विधूतपापा भवता कृता वयम्।
भवादृशा दीनदयालवो विभो समुद्धरंत्येव निजान्हि संनतान्॥५४॥

शान्त करने वाला है तथा अन्त में कृष्ण का स्मरण दिलाने वाला है तथा संसार में होने वाले तीनों प्रकार के तापों (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक) को दूर करने वाला है।।४७।। शेषनाग ने धरणी से कहा कि हे भद्रे! जो आत्माओं के जपादिकर हैं, वे असिद्ध साधक हैं।।४७½।।

अतः मैं कृष्ण के लिये यादवेन्द्र के लिये ज्ञानमुद्रा वाले योगीके लिये संसार के नाथ के लिये रुक्मिणी के स्वामी के लिये वेदान्त ज्ञानी के लिये नमस्कार करता हूँ।।

कृष्णाय यादवेन्द्राय ज्ञानमुद्राय योगिने।
नाथाय रुक्मिणीशाय नमोवेदान्तवेदिने।।

यह मन्त्र है, इस मन्त्र को हे महादेवि! यदि रात-दिन जप करे, तो वह व्यक्ति सब ग्रहों के अनुग्रह का अधिकारी होगा और सबका प्रिय होगा तथा फिर वह पुत्र और पौत्रों से घिरा हुआ होकर सब सिद्धियों और समृद्धियों वाला हो जायेगा तथा वह सब भोगों का सेवन कर अन्त में भी श्रीकृष्ण का सायुज्य प्राप्त करेगा।।४८½-५०½।।

अगस्त्य ने कहा कि इस प्रकार इतना सब अनन्त भगवान् कृष्ण के बारे में कहा गया, जिनकी मूर्ति तो संकर्षण नाम की है। इस प्रकार वे मानद धराधर (शेषनाग) ने संसार को धारण करने वाली धरा को निर्देश करके कथा का विराम कर दिया।५१-५१½।। अगस्त्य मुनि ने भार्गव राम से कहा कि इसके बाद जब शेषनाग ने कथा समाप्त कर दी, तब जो सब सनकादि ऋषि जो समाधिस्थ होकर कथा को सुन रहे थे, वे आनन्द के पूर्ण सागर में डूब गये और अहीश्वर शेषनाग को वे सब भजने लगे।।५२।।

ऋषियों ने कहा—हे समस्त विश्व को भावना प्रदान करने वाले, शरण में आये हुए के दुःखों को हरने वाले! अव्यय आत्मा वाले! शेषनाग आपको नमस्कार है। आप पृथ्वी को धारण करने वाले कृपा के सागर है! विश्व को पैदा करने वाले आप शेषनाग को नमस्कार है।।५३।। ऋषियों ने कहा कि हे विभो! आपने हमें कृष्णामृत पिलाया

एवं नमस्कृत्य फणीश पादयोर्मनो विधायाखिलकामपूरयोः।
प्रदक्षिणीकृत्य धराधराधरं सर्वे वयं स्वावस्थानुपागताः॥५५॥
इति तेऽभिहितं राम स्तोत्रं प्रेमामृताभिधम्। कृष्णस्य परिपूर्णस्य राधाकांतस्य सिद्धिदम्॥५६॥
इदं राम महाभाग स्तोत्रं परमदुर्लभम्। श्रुतं साक्षाद्भगवतः शेषात्कथयतः कथाः॥५७॥
यावंति मंत्रजालानि स्तोत्राणि कवचानि च॥५८॥
त्रैलोक्ये तानि सर्वाणि सिद्ध्यंत्येवास्य शीलनात्।

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्त्वा महाराज कृष्णप्रेमामृतं स्तवम्। यावद्व्यरंसीत्स मुनिस्तावत्स्वर्यानमागतम्॥५९॥
चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैः कामरूपैर्मनोजवैः। अनुयातमथोत्प्लुत्य स्त्रीपुंसौ हरिणौ तदा।
अगस्त्यचरणौ नत्वा समारुरुहतुर्मुदा॥६०॥
दिव्यदेहधरौ भूत्वा शंखचक्रादिचिह्नितौ। तौ च वैष्णवं लोकं सर्व देवनमस्कृतम्।
पश्यतां सर्वभूतानां भार्गवागस्त्ययोस्तथा॥६१॥

।इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३६।।

है, जिसने हमारे सबके पापों को धो दिया है। हे विभो! आप जैसे ही दीनों पर दया करने वाले, अपने संनतों (भक्तों) का उद्धार कर देते हैं।।५४।। इस प्रकार शेषनाग के समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले चरणों में मन को लगाकर धराधर शेष की परिक्रमा करके हम सब अपने आवास पर चले गये।।५५।।इस प्रकार हे राम! हमने तुम्हें कृष्ण प्रेमाकृत नामक स्तोत्र को कहा है, यह राधाकान्त परिपूर्ण कृष्ण का स्तोत्र है, जो सिद्धि प्रदान करने वाला है।।५६।। अतः हे परशुराम महाभाग! यह स्तोत्र परम दुर्लभ है तथा इसको कथा कहते हुए साक्षात् भगवान् शेषनाग से सुना है।।५७।। जितने भी मन्त्रजाल हैं स्तोत्र हैं और कवच हैं, वे सब त्रैलोक्य में इसके अनुशीलन से सिद्ध हो जाते हैं।।५८।।

वशिष्ठ ने कहा—कि हे महाराज! इस प्रकार जब तक कृष्णाप्रेमामृतस्तव को कहकर मुनि रुके थे, तब स्वर्ग से यान आ गया।।५९।। यह यान चार मन के समान वेग वाले, अद्भुत सिद्धों से इच्छानुसार चलने वाला था, उस यान में बैठकर स्त्री-पुरुष और हरिण तब अगस्त्य के चरणों में नमन कर उस यान पर सानन्द चढ़ गये।।६०।। तथा दिव्य देह धारण कर शंख चक्र आदि से चिह्नित वे दोनों भार्गव और अगस्त्य सब प्राणियों के देखते देखते सब देवों द्वारा नमस्कृत वैष्णव लोक को चले गये।।६१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ३६वां अध्याय भार्गवचरित में अगस्त्य द्वारा कृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र का कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

परशुरामस्य कृते कृष्णवरदानं नाम

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

दृष्ट्वा परशुरामस्तु तदाश्चर्यं महाद्भुतम्। जगाद सर्ववृत्तांतं मृगयोस्तु यथाश्रुतम्॥१॥
तच्छ्रुत्वा भगवान्साक्षादगस्त्यः कुंभसंभवः। मोदमान उवाचेदं भार्गवं पुरतः स्थितम्॥२॥

अगस्त्य उवाच

शृणु राम महाभाग कार्याकार्यविशारद। हितं वदामि यत्तेऽद्य तत्कुरुष्व समाहितः॥३॥
इतो विदूरं सुमहत्स्थानं विष्णोः सुदुर्लभम्। पदानि यत्र दृश्यंते न्यस्तानि सुमहात्मना॥४॥
यत्र गंगा समुद्भूता वामनस्य महात्मनः। पदाग्रात्क्रमतो लोकांस्तद्बलेस्तु विनिग्रहे॥५॥
तत्र गत्वा स्तवं चेदं मासमेकमनन्यधीः। पठस्व नियमेनैव नियतो नियताशनः॥६॥
यत्त्वया कवचं पूर्वमभ्यस्तं सिद्धिमिच्छता।
शत्रूणां निग्रहार्थाय तच्च ते सिद्धिदं भवेत्॥७॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्तो ह्यगस्त्येन रामः शत्रुनिबर्हणः। नमस्कृत्य मुनिं शांतं निर्जगामाश्रमाद्बहिः॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय-३७

परशुराम को कृष्ण का वरदान

वशिष्ठ ने कहा पूर्व अध्याय में जो वर्णित हुआ कि विमान में सब वैष्णव लोक चले गये, तब इस महान् अद्भुत आश्चर्य को देखकर परशुराम ने उन दोनों का सब वृत्तान्त जैसा सुना था, वह अगस्त्य मुनि को बताया।।१।। उसको सुनकर घड़े से उत्पन्न हुए साक्षात् भगवान् अगस्त्य प्रसन्न होते हुए आगे स्थित परशुराम से बोले।।२।।

अगस्त्य ने कहा—हे कार्य और अकार्य को जानने वाले महाभाग परशुराम सुनो! मैं तुम्हें तुम्हारे हित की बात बताता हूँ, उसे तुम मन लगाकर करो।।३।। यहाँ से थोड़ी दूर पर भगवान् विष्णु का एक बहुत अच्छा महान् स्थान है, जहाँ पर उन महात्मा विष्णु के रखे हुए पदचिह्न दिखाई देते हैं।।४।। जहाँ से गंगा उत्पन्न हुई है तथा महात्मा वामन ने राक्षस बलि को वश में करने के लिये पृथ्वी को तीन कदम में नाप लिया था तथा चरणाग्र भाग से जल निकालकर लोगों को पवित्र किया था, वहाँ उस स्थान पर जाकर अन्यत्र ध्यान न लगाते हुए एकाग्रचित्त होकर नियमित रूप से निश्चित आसन लगाकर इस स्तोत्र को पढ़ो।।५-६।। अतः तुमने जो इस कवच को सिद्ध करने की इच्छा से पहले अभ्यास किया है, वह कवच शत्रुओं का नाश करने के लिये सिद्धि देने वाला होगा।।७।

वशिष्ठ ने कहा—इस प्रकार जब अगस्त्य मुनि ने कहा, तब शत्रु का नाश करने वाले परशुराम शान्तमुनि

पुनस्तेनैव मार्गेण संप्राप्तस्तत्र सत्वरम्। यत्रोत्तरात्पदन्यासान्निर्गता स्वर्णदी नृप॥९॥
तत्र वासं प्रकल्प्यासावकृतव्रणसंयुतः। समभ्यस्यत्स्तवं दिव्यं कृष्णप्रेमामृताभिधम्॥१०॥
नित्यं व्रजपतेस्तस्य स्तोत्रं तुष्टोऽभवद्धरिः। जगाम दर्शनं तस्य जामदग्न्यस्य भूपते॥११॥
चतुर्व्यूहाधिपः साक्षात्कृष्णः कमललोचनः। किरीटेनार्कवर्णेन कुंडलाभ्यां च राजितः॥१२॥
कौस्तुभोद्भासितोरस्कः पीतवासा घनप्रभः। मुरलीवादनपरः साक्षान्मोहनरूपधृक्॥१३॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जामदग्न्यो मुदान्वितः। प्रणम्य दंडवद्भूमौ तुष्टाव प्रयतो विभुम्॥१४॥

परशुराम उवाच

नमो नमः कारणविग्रहाय प्रपन्नपालाय सुरार्त्तिहारिणे।
ब्रह्मेशविष्णिंद्रमुखस्तुताय नतोऽस्मि नित्यं परमेश्वराय॥१५॥
यं वेदवादैर्विविधप्रकारैर्निर्णेतुमीशानमुखा न शक्नुयुः।
तं त्वामनिर्देश्यमजं पुराणमनंतमीडे भव मे दयापरः॥१६॥
यस्त्वेक ईशो निजवांछितप्रदो धत्ते तनूर्लोकविहाररक्षणे।
नानाविधा देवमनुष्यतिर्यग्यादःसु भूमेर्भरवारणाय॥१७॥
तं त्वामहं भक्तजनानुरक्तं विरक्तमत्यंतमपींदिरादिषु।
स्वयं समक्षं व्यभिचारदुष्टचित्तास्वपि प्रेमनिबद्धमानसम्॥१८॥

को नमस्कार कर आश्रम से बाहर निकल गये।।८।। फिर हे नृप! उसी मार्ग से वे शीघ्र वहाँ पहुँचे जहाँ उत्तर पद के रखने से स्वर्नदी गंगा निर्गत हुई थीं।।९।। वहाँ पर अकृतव्रण के साथ वास करके उन्होंने कृष्णप्रेमामृत नामक दिव्य स्तव का अभ्यास किया।।१०।। उस व्रजपति भगवान् कृष्ण के स्तोत्र का जाप करने से हरि सन्तुष्ट (प्रसन्न) हो गये। वशिष्ठ कहते हैं कि तब हे राजन्! तब वे हरि (विष्णु) जमदग्नि पुत्र राम को दर्शन देने गये।।११।। उस समय चतुर्व्यह के अधिपति साक्षात् कमललोचन भगवान् कृष्ण स्वर्णवर्ण के मुकुट और कानों में कुण्डलों से सुशोभित हो रहे थे।।१२।। उनका वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि से उद्भासित पीले वस्त्र मेघ के समान थे। साक्षात् मोहनरूप धारण करने वाले वे मुरली बजाने में तत्पर थे।।१३।। उनको देखकर अचानक उठकर परशुराम आनन्दित हो गये तथा भूमि पर दण्डवत् करते हुए उन्होंने विभु कृष्ण को प्रसन्न कर लिया।।१४।।

परशुराम ने कहा कि शरीर के कारण; शरणागत का पालन करने वाले, देवों के दुःख को दूर करने वाले, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र के मुख से स्तुति किये जाने वाले नित्य परमेश्वर! आपको मैं नमस्कार करता हूँ।।१५।। जिन परमेश्वर को वेदपुराण आदि ग्रन्थ अनेकों प्रकारों से वर्णन करते हैं, फिर भी वे कैसे हैं, यह निर्णय करने में समर्थ नहीं हैं। ऐसे वे जिनको बताया नहीं जा सकता कि वे कहाँ रहते हैं? कैसे हैं? जो अजन्मा हैं, पुराण पुरुष हैं तथा जिनका कोई अन्त नहीं है, ऐसे उन तुम्हारी मैं स्तुति करता हूँ। हे नाथ! मुझ पर दया करो।।१६।। जो एक ईश अपने वाञ्छित को प्रदान करने वाले संसार में विहार करने तथा संसार की रक्षा करने के लिए शरीर को धारण करते हैं। अनेकों प्रकार के देव, मनुष्य, पशु-पक्षी, जल-जीवों आदि सबमें भूमि के दुःखों को दूर करने के लिये शरीर धारण करते हैं।।१७।। ऐसे आप भक्तजनों के प्रति अनुराग करने वाले तथा लक्ष्मी आदि के प्रति विशेष आसक्ति

यं वै प्रसन्नाः असुराः सुरा नराः सकिन्नरास्तिर्यगयोनयोऽपि हि।
गता स्वरूपं निखलं विहाय ते देहस्त्र्यपत्यार्थममत्वमीश्वरम्॥१९॥
तं देवदेवं भजतामभीप्सितप्रदं निरीहं गुणवर्जितं च।
अचिंत्यमव्यक्तमघौघनाशनं प्राप्तोऽरणं प्रेमनिधानमादरात्॥२०॥
तपंति तापैर्विविधैः स्वदेहमन्ये तु यज्ञैर्विविधैर्यजंति।
स्वप्नेऽपि ते रूपमलौकिकं विभो पश्यंति नैवार्थनिबद्धवासनाः॥२१॥
ये वै त्वदीयं चरणं भवाश्रमान्निर्विण्णचित्ता विधिवत्स्मरंति।
नमंति भक्त्याऽथ समर्चयंति वै परस्परं संसदि वर्णयंति॥२२॥
तेनैकजन्मोद्भवपंकभेदनप्रसक्तचित्ता भवतोंऽध्रिपद्मे।
तरंति चान्यानपि तारयंति हि भवोषधं नाम सुधा तवेश॥२३॥
अहं प्रभो कामनिबद्धचित्तो भवंतमार्यं विविधप्रयत्नैः।
आराधयं नाथ भवानभिज्ञः किं ते ह विज्ञाप्यमिहास्ति लोके॥२४॥

वसिष्ठ उवाच

इत्येवं जामदग्न्यं तु स्तुवंतं प्रणतं पुरः। उवाचागाधया वाचा मोहयन्निव मायया॥२५॥

कृष्ण उवाच

हंत राम महाभाग सिद्धं ते कार्यमुत्तमम्। कवचस्य स्तवस्यापि प्रभावादवधारय॥२६॥

रखने वाले, स्वयं ही व्यभिचारी और दुष्ट पुरुषों के चित्तों में भी प्रेमनिबद्ध मन वाले, आपको मैं नमस्कार करता हूं।।१८।। जिससे असुर, सुर, नर, किन्नर, पशु-पक्षी आदि योनियों वाले भी प्रसन्न हैं, वे सब उन देवों के देव! अभीष्ट वस्तु को प्रदान करने वाले, निरीह; गुणों से रहित अर्थात्, अचिन्त्य, अव्यक्त, समस्त पापों को नष्ट करने वाले, प्राप्तोऽरण तथा प्रेम के निधान को अनेकों प्रकार के तापों से अपने शरीर को तपाते हैं अर्थात् चारों ओर जलती हुई आग तथा पांचवी सूर्य की अग्नि इस प्रकार पंचाग्नि के मध्य तपते हैं तथा अन्य लोग अनेकों प्रकार के यज्ञों से उनकी पूजा करते हैं। हे विभो! वे स्वप्न में भी तुम्हारे अलौकिक रूप को किसी भी स्वार्थ से प्रेरित वासना से नहीं देखते हैं।।१९-२१।। जो भवसागर के श्रम से दुःखी (खिन्न) चित्त वाले, तुम्हारे चरणों को विधिवत् स्मरण करते हैं तथा भक्तिपूर्वक चरणों में सिर झुकाते हैं, सम्यक् प्रकार से चरणों की पूजा करते हैं अथवा सभा में परस्पर वर्णन करते हैं, वे आपके चरण कमलों में अनेक जन्मों के पापों को नष्ट करने में मन लगाने वाले स्वयं तर जाते हैं तथा दूसरों को भी तार देते हैं, ऐसा भवसागर को पार करने वाली औषधि नाम का अमृत तुम्हारे पास है।।२२-२३।। हे प्रभो! मैं काम में चित्त रखने वाला कामी पुरुष अनेकों प्रयत्नों से आपकी आराधना करता हूँ, हे नाथ! आप सब कुछ जानते हैं। आपके लिये इस संसार में क्या विज्ञाप्य (बताने योग्य) है?।।२४।।

वशिष्ठ ने कहा—इस प्रकार स्तुति करते हुए सामने ही अवनत परशुराम से गम्भीर वाणी से माया से मोहित करते हुए के समान कृष्ण बोले!।।२५।।

कृष्ण ने कहा—अरे महाभाग! परशुराम सुनो, कवच की स्तुति करने के प्रभाव से तुम्हारा उत्तम कार्य सिद्ध

हत्वा तं कार्त्तवीर्यं हि राजानं दृप्तमानसम्। साधयित्वा पितुर्वैरं कुरु निःक्षत्रियां महीम्॥२७॥
मम चक्रावतारो हि कार्त्तवीर्यो धरातले। कृतकार्यो द्विजश्रेष्ठ तं समापय मानद॥२८॥
अद्य प्रभृति लोकेऽस्मिन्नंशावेशेन मे भवान्।
चरिष्यति यथा कालं कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः॥२९॥
चतुर्विंशे युगे वत्स त्रेतायां रघुवंशजः। रामो नाम भविष्यामि चतुर्व्यूहः सनातनः॥३०॥
कौसल्यानंदजनको राज्ञो दशरथादहम्। तदा कौशिकयज्ञं तु साधयित्वा सलक्ष्मणः॥३१॥
गमिष्यामि महाभाग जनकस्य पुरं महत्। तत्रेशचापं निर्भज्य परिणीय विदेहजाम्॥३२॥
तदा यास्यन्नयोध्यां ते हरिष्ये तेज उन्मदम्।

वसिष्ठ उवाच

कृष्ण एवं समादिश्य जामदग्न्यं तपोनिधिम्। पश्यतोंऽतर्दधे तत्र रामस्य सुमहात्मनः॥३३॥

।।इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३७।।

हो गया। अतः अब तुम उस घमंडी राजा कार्तवीर्य को मारकर अपने पिता का वैर साध कर पृथ्वी को क्षत्रिय रहित करो।।२६-२७।। इस धरातल पर यह कार्तवीर्य मेरा ही चक्रावतार है, हे द्विजश्रेष्ठ! उसका कार्य पूरा हो चुका है। अतः हे मानद! तुम अपना कार्य सम्पन्न करो। आज से लेके इस संसार में आप मेरे अंश के आवेश से युक्त हो गये हो, अव यथाकाल तक कर्ता, हर्ता और स्वयं प्रभु होकर विचरण करोगे।।२८-२९।। तथा हे वत्स! २४वें त्रेतायुग में मैं रघुवंश में जन्म लूंगा और मेरा नाम राम होगा तथा मैं चार प्रकार के सेनाओं से युक्त हूँगा।।३०।। उस समय राजा दशरथ से कौशल्या के गर्भ में पैदा होकर कौशल्या को आनन्द पैदा करने वाला बनूँगा। तब ऋषि विश्वामित्र की यज्ञों की रक्षा कर लक्ष्मण के साथ महाराजा जनक के महान् नगर में जाऊँगा। वहाँ भगवान् शंकर के धनुष को तोड़कर विदेहराज जनक की पुत्री सीता से विवाह करूँगा। तब उस समय धनुष तोड़कर अयोध्या जाते हुए तुम्हारे अहंकार युक्त तेज को दूर करूँगा।।३१-३२½।।

वशिष्ठ ने कहा—हे राजन् इस प्रकार महात्मा परशुराम को आदेश देकर परशुराम के देखते ही देखते कृष्ण अन्तर्धान हो गये।।३३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ३७वां अध्याय भार्गवचरित में परशुराम को कृष्ण का वरदान का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे भार्गवचरिते

कार्तवीर्यर्जुनपरशुरामयोर्युद्धवर्णन-मत्स्यराजवधवर्णनञ्च

अष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

अंतर्द्धानं गते कृष्णे रामस्तु सुमहायशाः। समुद्रिक्तमथात्मानं मेने कृष्णानुभावतः॥१॥
अकृतव्रणसंयुक्तः प्रदीप्ताग्निरिव ज्वलन्। समायातो भार्गवोऽसौ पुरीं माहिष्मतीं प्रति॥२॥
यत्र पापहरा पुण्या नर्मदा सरितां वरा। पुनाति दर्शनादेव प्राणिनः पापिनो ह्यपि॥३॥
पुरा त्रय हरेणापि निविष्टेन महात्मना। त्रिपुरस्य विनाशाय कृतो यत्नो महीपते॥४॥
तत्र किं वर्ण्यते पुण्यं नृणां देवस्वरूपिणाम्। स दृष्ट्वा नर्मदां भूप भार्गवः कुलनंदनः॥५॥
नमश्चकार सुप्रीतः शत्रुसाधनतत्परः। नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं हरदेहसमुद्भवे॥६॥
क्षिप्रं नाशय शत्रून्मे वरदा भव शोभने। इत्येवं स नमस्कृत्य नर्मदां पापनाशिनीम्॥७॥
दूतं प्रस्थापयामास कार्त्तवीर्यार्जुनं प्रति। दूत राजा त्वया वाच्यो यदहं वच्मि तेऽनघ॥८॥
न संदेहस्त्वया कार्यो दूतः क्वापि न बध्यते। यद्बलं तु समाश्रित्य जमदग्निमुनिं नृपः॥९॥
नितरस्त्वं कृतवान्मूढ तत्पुत्रो योद्धुमागतः। शीघ्रं निर्गच्छ मंदात्मन्युद्धं रामाय देहि तत्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय-३८

कार्तवीर्य अर्जुन के साथ परशुराम युद्ध, राजा मत्स्य का वध

वशिष्ठ ने कहा कि भगवान् कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर महान् यशस्वी राम ने कृष्ण की कृपा से अपनी आत्मा को उनसे युक्त मान लिया।।१।। फिर उसके बाद अकृतव्रण के साथ वे परशुराम जलती हुई अग्नि के समान जलते हुए माहिष्मती नगरी की ओर चले।।२।। जहाँ कि नदियों में श्रेष्ठ पापों को हरने वाली पुण्य नर्मदा नदी है, जो पापी प्राणियों को दर्शन से ही पवित्र कर देती है।।३।। प्राचीनकाल में जहाँ महात्मा भगवान् शंकर ने त्रिपुरासुर का वध करने के लिये प्रयत्न किया था।।४।। वहाँ देवताओं के स्वरूपवाले मनुष्यों के पुण्य का क्या वर्णन किया जावे? हे राजन् उस नर्मदा नदी को देखकर सुप्रसन्न शत्रुसाधन में तत्पर भार्गवकुलनन्दन, परशुराम ने नमस्कार किया।।५-५½।। उन्होंने कहा कि हे भगवान् शंकर के शरीर से उत्पन्न नर्मदे! तुमको मेरा नमस्कार है। हे शोभने! शीघ्र मेरे शत्रुओं का नाश करो तथा मुझे वर देने वाली बनो।।५½-६½।।

इस प्रकार पापनाशिनी नर्मदा को नमस्कार कर कार्तवीर्य अर्जुन के पास दूत को भेजा तथा दूत से कहा कि हे निष्पाप दूतराज! तुम्हें वह कहना है, जो मैं कह रहा हूँ।।६½-८।। और कहा कि हे दूत! तुम्हें सन्देह नहीं करना है; क्योंकि दूत कहीं भी वध्य नहीं होता है। अतः तुम्हें निडर होकर कहना है कि जिस बल का आश्रय लेकर आपने हे नृप! जमदग्नि मुनि का तिरस्कार किया था, अतः हे मूर्ख! उनका पुत्र युद्ध करने आ गया है। हे मन्द आत्मा वाले

भार्गवं त्वं समासाद्य गच्छ लोकांतरं त्वरा। इत्येवमुक्त्वा राजानं श्रुत्वा तस्य वचस्तथा॥११॥
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते विलंबो नेह शस्यते। तेनैवमुक्तो दूतस्तु गतो हैहयभूपतिम्॥१२॥
रामोदितं तत्सकलं श्रावयामास संसदि। स राजात्रेयभक्तस्तु महाबलपराक्रमः॥१३॥
चुक्रोध श्रुत्वा वाच्यं तद्दूतमुत्तरमावहत्।

कार्त्तवीर्य उवाच

मया भुजबलेनैव दत्तदत्तेन मेदिनी॥१४॥
जिता प्रसह्य भूपालान्बद्ध्वानीय निजं पुरम्। तद्बलं मयि वर्त्तेत युद्धं दास्ये तवाधुना॥१५॥
इत्युक्त्वा विससर्ज्जाशु दूतं हैहयभूपतिः। सेनाध्यक्षं समाहूय प्रोवाच वदतां वरः॥१६॥
सज्जं कुरु महाभाग सैन्यं मे वीरसंमतः। योत्स्ये रामेण भृगुणा विलंबो मा भवत्विति॥१७॥
एवमुक्तो महावीरः सेनाध्यक्षः प्रतापनः। सैन्यं सज्जं विधायाशु चतुरंगं न्यवेदयत्॥१८॥
सैन्यं सज्जं समाकर्ण्य कार्त्तवीर्यो नृपो मुदा। सूतोपनीतं स्वरथमारुरोह विशांपते॥१९॥
तस्य राज्ञः समंतात्तु सामंता मंडलेश्वराः। अनेकाक्षौहिणीयुक्ताः परिवार्योपतस्थिरे॥२०॥
नागास्तु कोटिशस्तत्र हयस्यंदनपत्तयः। असंख्याता महाराज सैन्ये सागरसन्निभे॥२१॥
दृश्यंते तत्र भूपाला नानावंशसमुद्भवाः। महावीरा महाकाया नानायुद्धविशारदाः॥२२॥
नानाशस्त्रास्त्रकुशला नानावाहगता नृपाः। नानालंकारसंयुक्ता मत्ता दानविभूषिताः॥२३॥

कार्त्तवीर्य! शीघ्र निकलो और परशुराम से युद्ध करो। भार्गव परशुराम तुमको मारकर शीघ्र दूसरे लोक को चले जायेंगे। इस प्रकार उस राजा से कहकर फिर उस राजा का वचन सुनकर शीघ्र मेरे पास आओ। अतः हे भद्र तुम्हें विलम्ब नहीं करना है।।९-११½।। परशुराम के द्वारा इस प्रकार कहा गया वह दूत हैहयपति कार्तवीर्य के पास गया और उसने परशुराम द्वारा कहे गये समस्त कथन को कार्तवीर्य की सभा में सुना दिया।।११½-१२½।। वह भगवान् दत्तात्रेय का भक्त महा बलवान् और पराक्रमी राजा सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो गया और फिर उस दूत से परशुराम को कहने योग्य उत्तर देने लगा।।१२½-१३½।।

कार्तवीर्य ने कहा—मैंने अपनी भुजाओं के बल से ही दत्तात्रेय द्वारा दी गयी समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त की और फिर बलपूर्वक राजाओं को बाँधकर अपने नगर में लाया, वह बल मेरे में मौजूद है, अब तुम्हें मैं युद्ध में देखूंगा।।१३½-१५।। इस प्रकार कहकर हैहयाधिपति कार्तवीर्य ने दूत को लौटा दिया और फिर बोलने वालों में श्रेष्ठ उस राजा ने सेनाध्यक्ष को बुलाकर उससे कहा।।१६।। हे महाभाग! हे वीरश्रेष्ठ सेनापति! मेरे सेना को तैय्यार करो अब मैं भार्गवराम से युद्ध करूँगा देर मत करो।।१७।। इस प्रकार कहने पर महावीर, प्रतापी सेनापति ने चतुरंग सेना को सजाकर राजा से बता दिया।।१८।। वशिष्ठ ने कहा कि तब हे राजन्! सेना को सजा हुआ देखकर, हैहयाधिपति राजा कार्तवीर्य प्रसन्नता से सारथि द्वारा लाये गये रथ पर सवार हुए।।१९।। उन राजा के चारों ओर सामंत, मण्डलेश्वर तथा अनेक अक्षौहिणी सेना थी, उन सबसे युक्त तथा सबसे घिरा हुआ, वह राजा उपस्थित हुआ।।२०।। उस सागर के समान सेना में करोड़ों हाथी थे तथा असंख्य घोड़े और रथ थे। उस सेना में अनेको वंशों में पैदा हुए भूपाल दिखायी दे रहे थे तथा महावीर, विशालकाय अनेकों प्रकार के युद्धों में कुशल, अनेकों शस्त्रों और अस्त्रों में कुशल अनेकों वाहनों पर सवार राजा दिखायी दे रहे थे।।२१-२२।। तथा अनेकों अलंकारों से युक्त मदमत,

महामात्रकृतोद्देशा भांति नागा ह्यनेकशः। नानाज्ञातिसमुत्पन्ना हयाः पवनरंहसः॥२४॥
प्लवंतो भांति भूपाल सादिभिः कृतशिक्षणाः। स्यंदनानि सुदीर्घाणि जवनाश्वयुतानि च॥२५॥
चक्रनिर्घोषयुक्तानि प्रावृण्मेघोषमानि च। पदातयस्तु राजंते खड्गचर्मधरा नृप॥२६॥
अहंपूर्वमहंपूर्वमित्यहंपूर्वकान्विताः। यदा प्रचलितं सैन्यं कार्त्तवीर्यार्जुनस्य वै॥२७॥
तदा प्राच्छादितं व्योम रजसा च दिशो दश। नानावादित्रनिर्घोषैर्हयानां ह्रेषितैस्तथा॥२८॥
गजानां बृंहितै राजन्व्याप्तं गगनमंडलम्। मार्गे ददर्श राजेंद्रो विपरीतानि भूपते॥२९॥
शकुनानि रणे तस्य मृत्युदौत्यकराणि च। मुक्तकेशां छिन्ननासां रुदतीं च दिगंबराम्॥३०॥
कृष्णवस्त्रपरीधानां वनितां स ददर्श ह। कुचैलं पतितं भग्नं नग्नं काषायवाससम्॥३१॥
अंगहीनं ददर्शासी नरं दुःखितमानसम्। गोधां च शशकं शल्यं रिक्तकुम्भं सरीसृपम्॥३२॥
कार्पासं कच्छपं तैलं लवणं चास्थिखंडकम्। स्वदक्षिणे शृगालं च कुर्वंतं भैरवं रवम्॥३३॥

रोगिणं पुल्कसं चैव वृषं च श्येनभल्लुकौ।
दृष्ट्वापि प्रययौ योद्धुं कालपाशावृतो हठात्॥३४॥

नर्मदोत्तरतीरस्थो ह्यकृतव्रणसंयुतः। वटच्छायासमासनो रामोऽपश्यदुपागतम्॥३५॥

गण्डस्थल से बहते हुए मद से विभूषित किसी महान् लक्ष्य अर्थात् युद्ध में जीतने के लक्ष्य को लेकर चलने वाले, अनेको प्रकार के हाथी दिखायी दे रहे थे।।२३।। तथा अनेकों प्रकार के युद्धों की जानकारी रखने वाले अनेकों जातियों से उत्पन्न पवन की गति वाले घोड़े दिखायी दे रहे थे।।२४।। हे राजन्! वहाँ अच्छी तरह शिक्षित सारथियों द्वारा कुदाते हुए बड़े बड़े तेज और दौड़ने वाले घोड़ों से युक्त रथ दिखायी दे रहे थे।।२५।। तथा हे राजन्! चक्र और निर्घोषयुक्त बरसाती मेघों के समान तलवार और चर्म की ढाल युक्त पैदल सेना दिखायी दे रही थी।।२६।। तथा जब कार्यवीर्य अर्जुन की सेना चली, तब मैं पहले, मैं पहले इस प्रकार अहंपूर्विका से युक्त सब सेना दिखायी दे रही थी अर्थात् सैनिकों में यह होड़ मची हुई थी कि वे पहिले मैं जाऊँ और युद्ध करूँ, इस प्रकार सब युद्ध के लिये उत्तेजित थे।।२७।।

उस समय जब कि कार्तवीर्य की सेना चल रही थी, तब समस्त आकाश और दशों दिशायें धूल से भर गयी थीं। अनेक प्रकारों के वाजों के निर्घोषों से, घोड़ों की हिनहिनाहटों से तथा हाथियों की चिंघाड़ों से, हे राजन्! समस्त आकाशमंडल भर गया था।।२८-२८½।। वशिष्ठ ने सगर से कहा कि हे राजन्! जब राजा युद्ध के लिये जा रहे थे, तब उन्होंने मार्ग में मृत्यु का दौत्यकर्म करने वाले विपरीत शकुनों को देखा अर्थात् मौत को सूचित करने वाले अपशकुनों को देखा।।२८½-२९½।। उस समय बाल खुली हुई, नासिका कटी हुई, रोती हुई, नंगी स्त्री को देखा।।३०।। और काले वस्त्र पहने हुई स्त्री को देखा, तथा मैले वस्त्र देखे कहीं फटे वस्त्र देखे, कहीं गेरुआ वस्त्र पहने हुए मनुष्य को देखा।।३१।। कहीं अंगहीन और कहीं दुःखी मन वाले आदमी को देखा। कहीं गोह, खरगोश, शल्य, खाली घड़ा, सर्प को देखा।।३२।। कहीं कपास, कच्छप, तेल, नमक, हड्डी का टुकड़ा देखा तथा उस राजा ने अपने दाँयें हाथ पर भयंकर आवाज करते हुए सियार को देखा।।३३।। मार्ग में रोगी, पुल्कस, बाज और भालू को देखा यह सब देख करके भी वह राजा काल के पाश में बँधा हुआ हठपूर्वक युद्ध करने को चल रहा था।।३४।। तब उसने नर्मदा नदी के किनारे पर स्थित अकृतव्रण के साथ वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए परशुराम को देखा।।३५।।

कार्त्तवीर्यं नृपवरं शतकोटिनृपान्वितम्। सहस्राक्षौहिणीयुक्तं दृष्ट्वा हृष्टो बभूव ह॥३६॥
अद्य मे सिद्धिमायातं कार्यं चिरसमीहितम्। यद्दृष्टिगोचरो जातः कार्त्तवीर्यो नृपाधमः॥३७॥
इत्येवमुक्त्वा चोत्थाय धृत्वा परशुमायुधम्।
व्यजृम्भतारिनाशाय सिंहः क्रुद्धो यथा तथा॥३८॥
दृष्ट्वा समुद्यतं रामं सैनिकानां वधाय च। चकंपिरे भृशं सर्वे मृत्योरिव शरीरिणः॥३९॥
स यत्र यत्रानिलरंहसं भृगुश्चिक्षेप रोषेण युतः परश्वधम्।
ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा नागा हयाः शूरनरा निषेतुः॥४०॥
यथा गजेंद्रो मदयुक्तसमंततो नालं वनं मर्दयति प्रधावन्।
तथैव रामोऽपि मनोनिलौजा विमर्दयामास नृपस्य सेनाम्॥४१॥
दृष्ट्वा तमित्थं प्रहरंतभोजसा रामं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठम्।
उद्यम्य चापं महदास्थितोरथं सृज्यं च कृत्वा किल मत्स्यराजः॥४२॥
आकृष्य बाणाननलोग्रतेजसः समाकिरन्भार्गवमाससाद।
दृष्ट्वा तमायांतमथो महात्मा रामो गृहीत्वा धनुषं महोग्रम्॥४३॥
वायव्यमस्त्रं विदधे रुषाप्लुतो निवारयन्मंगलबाणवर्षम्।
स चापि राजाऽतिबलो मनस्वी ससर्ज रामाय तु पर्वतास्त्रम्॥४४॥

तब सैकड़ों, करोड़ों राजाओं से युक्त सहस्र अक्षौहिणी सेना से युक्त नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्य को देखकर राम बहुत प्रसन्न हुए।।३६।। और बोले कि आज बहुत प्राचीनकाल से चाहा हुआ कार्य सिद्ध होने को आ गया है। जो कि आज नींच राजा कार्तवीर्य दृष्टिगोचर हो गया।।३७।। इस प्रकार ऐसा कहकर और उठकर परशु आयुध को धारण करके उसी प्रकार क्रोधित हो गये, जिस प्रकार कि शत्रु के नाश के लिए जम्हाई लेता हुआ सिंह क्रुद्ध होता है।।३८।। युद्ध के लिये तथा सैनिकों के वध के लिए तैयार परशुराम को देखकर सब उसी प्रकार कांपने लगे, जिस प्रकार शरीरधारी प्राणी मृत्यु से कांपते हैं।।३९।।

जहाँ उन परशुराम ने वायु के समान वेग वाले बाण को क्रोध से युक्त होकर छोड़ा। उसके बाद अनेकों हाथियों, घोड़ों और शूरवीरों की भुजायें और कंधे कट गये और फिर वे सब भूमि पर गिर गये।।४०।। जिस प्रकार मदयुक्त गजराज दौड़ता हुआ कमल के वन को उजाड़ देता है, उसी प्रकार मन और वायु के समान ओज वाले, परशुराम ने राजा कार्तवीर्य की सेना को रौंद डाला।।४१।। इस प्रकार शस्त्र धारण करने वालों में वरिष्ठ, रण में पराक्रम के साथ प्रहार करते हुए उन परशु को देखकर मत्स्यराज धनुष उठाकर महान् रथ पर बैठकर युद्ध क्षेत्र में आ गया और फिर अग्नि के समान उग्र तेज वाले बाणों को छोड़ता हुआ भार्गव परशुराम के पास आया।।४२-४२½।। उसको आया हुआ देखकर क्रोध से युक्त महात्मा परशुराम ने महान् उग्र धनुष को ग्रहण करके अग्निबाण के प्रभाव को नष्ट करने वाले मंगलवाण वर्षा करने वाले वायव्य अस्त्र को धारण किया।।४२½-४३½।। तथा जब अग्निबाण के प्रभाव को वायव्यास्त्र ने शान्त कर दिया, तब उस अतिबलवान् और विचारशील राजा ने परशुराम के लिये पर्वतास्त्र का प्रयोग किया।।४४।।

तस्तंभ तेनातिबलं तदस्त्रं वायव्यमिष्वस्त्रविधानदक्षः।
रामोऽपि तत्रातिबलं विदित्वा तं मत्स्यराजं विविधास्त्रपूगैः॥४५॥
किरंतमाजौ प्रसभं मुमोच नारायणास्त्रं विधिमन्त्रयुक्तम्।
नारायणास्त्रे भृगुणा प्रयुक्ते रामेण राजन्नृपतेर्वधाय॥४६॥
दिशस्तु सर्वाः सुभृशं हि तेजसा प्रजज्वलुर्मत्स्यपतिश्चकंपे।
रामस्तु तस्याथ विलक्ष्य कम्पं बाणैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान्॥४७॥
शरेण चैकेन ध्वजं महात्मा चिच्छेद चापं च शरद्वयेन।
बाणेन चैकेन प्रसह्य सारथिं निपात्य भूमौ रथमार्द्दयत्त्रिभिः॥४८॥
त्यक्त्वा रथं भूमिगतं च मंगलं परश्वधेनाशु जघान मूर्द्धनि।
स भिन्नशीर्षो रुधिरं वमन्मुहुर्मूर्च्छामवाप्याथ ममार च क्षणात्॥४९॥
तत्सैन्यमस्त्रेण च संप्रदग्धं विनाशमायादथ भस्मसात्क्षणात्।
तस्मिन्निपतिते राज्ञि चंद्रवंशसमुद्भवे॥५०॥
मंगले नृपतिश्रेष्ठे रामो हर्षमुपागतः॥५१॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते अष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३८॥

अतः वायव्य बाण के प्रभाव को कम करने में दक्ष उस पर्वतास्त्र ने वायव्य अस्त्र के प्रभाव को रोक दिया। तब राम ने भी वायव्य से पर्वत अस्त्र के अतिबल को जानकर उस मत्स्यराज को अनेकों अस्त्रों के समूहों को युद्ध में गिराते हुए विधिमन्त्रयुक्त नारायणास्त्र को बलपूर्वक छोड़ा॥ ४५-४५½॥ हे राजन् राजा कार्तवीर्य को मारने के लिये भार्गव परशुराम द्वारा नारायण अस्त्र के प्रयोग किये जाने पर समस्त दिशायें बहुत अधिक तेज से जलने लगीं, तब मत्स्यपति कार्तवीर्य कांपने लगा॥४५½-४६½॥ इसके बाद राम ने उसके कांपने को देखकर चार वाणों से उसके वाहनों (रथों) के घोड़ों को मार दिया। एक बाण से महात्मा परशुराम ने कार्तवीर्य के रथ की ध्वजा को छेद डाला और दो बाणों से उसके धनुष को तोड़ दिया। एक बाण से बलपूर्वक सारथि को मारकर तीन बाणों से राजा के रथ को भूमि पर गिरा दिया॥४६½-४८॥ तब वह रथ को छोड़कर भूमि पर आ गया, तब परशुराम ने उसके शिर पर फरसे से शीघ्र प्रहार किया। तब उस राजा का सिर फट गया और फिर उसके मुँह से रक्त बहने लगा और फिर वह मूर्च्छित हो गया था फिर क्षणभर में मर गया। उसकी सेना अस्त्र द्वारा जल गयी, अतः क्षणमें भस्मसात् होकर विनाश को प्राप्त हो गयी॥४९½॥ उस चन्द्रवंश में उत्पन्न मत्स्यराज नृपतिश्रेष्ठ मंगल के भूमि पर गिरने पर परशुराम हर्ष को प्राप्त हुए। परशुराम बहुत प्रसन्न हुए॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ३८वां अध्याय भार्गवचरित में कार्तवीर्य अर्जुन के साथ परशुराम युद्ध, राजा मत्स्य का वध का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे भार्गवचरिते

परशुरामभद्रकालीस्तुतिर्नाम

नवत्रिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः राजेन्द्रप्रेरयामास कार्त्तवीर्यो महाबलः॥१॥
बृहद्बलः सोमदत्तो विदर्भो मिथिलेश्वरः। निषदाधिपतिश्चैव मगधाधिपतिस्तथा॥२॥
आययुः समरे योद्धुं भार्गवेंद्रेण भूपते। वर्षंतः शरजालानि नानायुद्धविशारदाः॥३॥
वीराभिमानिनः सर्वे हैहयस्याज्ञया तदा। पिनाकहस्तः स भृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः॥४॥
चिक्षेप नागपाशं च अभिमंत्र्य शरोत्तमम्। तदस्त्रं भार्गवेंद्रेण क्षिप्तं संग्राममूर्द्धनि॥५॥
चकर्त्त गारुडास्त्रेण सोमदत्तो महाबलः। ततः क्रुद्धो महाभागो रामः शत्रुविदारणः॥६॥
रुद्रदत्तेन शूलेन सोमदत्तं जघान ह। बृहद्बलं च गदया विदर्भं मुष्टिना तथा॥७॥

मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या च निषधाधिपम्।
मागधं चरणाघातैरस्त्रजालेन सैनिकान्॥८॥
निहत्य निखिलां सेनां संहाराग्निसमीरणे।
दुद्राव कार्त्तवीर्यं च जामदग्न्यो महाबलः॥९॥

दृष्ट्वा तं योद्धुमायांते राजानोऽन्ये महारथाः। कार्य्याकार्यविधानज्ञाः पृष्ठे कृत्वा च हैहयम्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय-३९

परशुरामकृत भद्रकाली स्तुति

वशिष्ठ ने कहा कि राजा मत्स्यराज मंगल के गिरने पर युद्ध विशारद महाबली राजा कार्तवीर्य ने अपने मित्र अन्य राजेन्द्रों को प्रेरित किया।।१।। तब राजन्! बृहद्बल, सोमदत्त, विदर्भ, मिथिलेश्वर, निषधाधिपति तथा मगध नरेश सब अनेक प्रकार में युद्धों में कुशल, वीर एवं अभिमानी राजा लोग हैहयाधिपति कार्तवीर्य की आज्ञा से परशुराम से युद्धक्षेत्र में युद्ध करने के लिये आ गये।।२-३½।। हाथ में पिनाक धारण करने वाले परशुराम ने अग्निशिखा के समान बाणों में उत्तम नागपाश को अभिमन्त्रित करके फेंका।।३½-४½।। उस अस्त्र को भार्गव ने संग्राम के मुख्य भाग पर फेंका था; परन्तु महाबली सोमदत्त ने उसे गारुड अस्त्र से खींच लिया।।४½-५½।। उसके बाद शत्रु को मारने वाले क्रुद्ध महाभाग राम ने भगवान् रुद्र द्वारा दिये शूल से सोमदत्त को मार डाला।।५½-६½।। और फिर बृहद्बल को गदा से और राजा विदर्भ को मुट्ठी से मिथिलेश्वर को मुद्‌गर से तथा निषधाधिपति को शक्ति से मगधाधिपति को चरणाघात से तथा सैनिकों को अस्त्रसमूहों से मारकर संहाराग्नि की आँधी में समस्त सेना को मारकर महाबली परशुराम ने कार्तवीर्य पर आक्रमण कर दिया।।६½-९।। परशुराम को युद्ध करने को आता हुआ देखकर युद्ध में क्या करना

रामेण युयुधुश्चैव दर्शयंतश्च सौहृदम्। कान्यकुब्जाश्च शतशः सौराष्ट्राऽवंतयस्तथा॥११॥
चक्रुश्च शरजालानि रामस्य च समंततः। शरजालावृतस्तेषां रामः संग्राममूर्द्धनि॥१२॥
न चादृश्यत राजेंद्र तदा स त्वकृतव्रणः। सस्मार रामचरितं यदुक्तं हरिणेन वै॥१३॥
कुशलं भार्गवेंद्रस्य याचमानो हरिं मुनिः। एतस्मिन्नेव काले तु रामः शस्त्रास्त्रकोविदः॥१४॥
विधूय शरजालानि वायव्यास्त्रेण मंत्रवित्। उदतिष्ठद्रणाकांक्षी नीहारादिव भास्करः॥१५॥
त्रिरात्रं समरे रामस्तैः सार्द्धं युयुधे बली। द्वादशाक्षौहिणीस्तत्र चिच्छेद लघुविक्रमः॥१६॥
रम्भास्तम्भवनं यद्वत् परश्वधवरायुधः। सर्वांस्तान्भूपवर्गांश्च तदीयाश्च महाचमूः॥१७॥
दृष्ट्वा विनिहतां तेन रामेण सुमहात्मना। आजगाम महावीर्यः सुचंद्रः सूर्यवंशजः॥१८॥
लक्षराजन्यसंयुक्तः सप्ताक्षौहिणीसंयुतः। तत्रानेकमहावीरा गर्जंतस्तोयदा इव॥१९॥
कंपयंतो भुवं राजन् युयुधुर्भार्गवेण च। तैः प्रयुक्तानि शस्त्राणि महास्त्राणि च भूपते॥२०॥
क्षणेन नाशयामास भार्गवेन्द्रः प्रतापवान्। गृहीत्वा परशुं दिव्यं कालांतकयमोपमम्॥२१॥
कालयन्सकलां सेनां चिच्छेद भृगुनंदनः। कर्षकस्तु यथा क्षेत्रे पक्वं धान्यं तथा तृणम्॥२२॥
निःशेषयति दात्रेण तथा रामेण तत्कृतम्। लक्षराजन्यसैन्यं तद्दृष्ट्वा रामेण दारितम्॥२३॥
सुचन्द्रः पृथिवीपालो युयुधे संगरे नृप। तावुभौ तत्र संक्षुब्धौ नानाशस्त्रास्त्रकोविदौ॥२४॥

चाहिये? क्या नहीं करना चाहिये? इस नियम को जानने वाले अन्य महारथी राजा लोग कार्तवीर्य को पीछे करके कार्तवीर्य को मित्रता दिखाते हुए परशुराम से युद्ध करने लगे।।१०-१०½।। कान्यकुब्ज, सौराष्ट्र और अवन्ती के सैकड़ों राजा लोग चारों ओर से परशुराम पर बाणों की बौछार करने लगे।।१०-११½।। उन राजाओं के बाणसमूहों से ढके हुए राम संग्राम क्षेत्र में दिखायी नहीं दिये। तब हे राजन्! अकृतव्रण ने रामचरित को स्मरण किया, जिसको कि हिरण ने कहा था। उस रामचरित में मुनि अकृतव्रण ने भार्गवेन्द्र परशुराम की हरि से कुशलता की याचना की।।११½-१३½।। इसी समय शस्त्र और अस्त्र के संचालनज्ञ (चलाना जानने वाले) तथा मंत्रज्ञ रणाकांक्षी परशुराम वायव्यास्त्र से समस्त वाण समूहों को काटकर उसी प्रकार उठे, जिस प्रकार सूर्य कुहरा से उठते हैं।।१३½-१५।। बली राम ने तीन रात तक उनके साथ समर में युद्ध किया और बारह अक्षौहिणी सेना को काट डाला।।१६।।

जिस प्रकार दुर्गा ने फरस, धव, आयुधों, सबका स्तम्भन कर दिया, उसी प्रकार उन सब राजाओं तथा उनकी महासेनाओं को महात्मा परशुराम द्वारा मरा हुआ देखकर सूर्यवंश में उत्पन्न महापराक्रमी राजा सुचन्द्र आ गया। लाखों क्षत्रियों से युक्त, सात अक्षौहिणी सेना के साथ वहाँ अनेक महावीरों ने मेघ के समान गर्जना करते हुए तथा पृथ्वी को कंपाते हुए परशुराम से युद्ध किया।।१७-१९½।। हे राजन्! उनके द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों और महाशस्त्रों को प्रतापवान् परशुराम ने क्षणभर में नष्ट कर दिया।।१९½-२०।। तब कालान्तक यम के समान दिव्य परशु को लेकर सकल सेना मारने का को समय तय करते हुए सकल सेना को काट डाला।।२०½-२१½।। जिस प्रकार खेत में किसान पके हुए धान तथा तृण को दराती से काट डालता है, उसी तरह परशुराम ने समस्त सेना को फरसे से काट डाला।।२१½-२२½।। एक लाख क्षत्रियों की सेना को परशुराम द्वारा काटा हुआ देखकर हे राजन्! सुचन्द्र नाम का राजा समर में युद्ध करने लगा।।२२½-२३½।। वहाँ अनेक प्रकार के शस्त्र अस्त्र चलाना जानने वाले वे दोनों

युयुधाते महावीरौ मुनीशनृपतीश्वरौ। रामोऽस्मै यानि शस्त्राणि चिक्षेपास्त्राणि चापि हि॥२५॥
तानि सर्वाणि चिच्छेद सुचंद्रो युद्धपंडितः। ततः क्रुद्धो रणे रामः सुचंद्रं पृथिवीश्वरम्॥२६॥
कृतप्रतिकृताभिज्ञं ज्ञात्वोपस्पृश्य वार्यथ। नारायणास्त्रं विशिखे संदधे चानिवारितम्॥२७॥
तदस्त्रं शतसूर्याभं क्षिप्तं रामेण धीमता। हृष्टात्तीर्य रथात्सद्यः सुचंद्रः प्रणनाम ह॥२८॥
सर्वास्त्रपूज्यं तच्चापि नारायणविनिर्मितम्। तमेवं प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणांतिकम्॥२९॥
विस्मितोऽभूत्तदा रामः समरे शत्रुसूदनः। दृष्ट्वा व्यर्थं महास्त्रं तद्भूपं स्वस्थं विलोक्य च॥३०॥
रामःशक्तिं च मुसलं तोमरं पट्टिशं तथा। गदां च परशुं कोपाच्चिक्षेप नृपमूर्द्धनि॥३१॥
जग्राह तानि सर्वाणि सुचंद्रो लीलयैव हि। चिक्षेप शिवशूलं च रामो नृपतये यदा॥३२॥
बभूप पुष्पमालां च तच्छूलं नृपतेर्गले। ददर्श च पुरस्तस्य भद्रकालीं जगत्प्रसूम्॥३३॥
वहंतीं मुंडमालां च विकटास्यां भयंकरीम्। सिंहस्थां च त्रिनेत्रां च त्रिशूलवरधारिणीम्॥३४॥

दृष्ट्वा विहाय शस्त्रास्त्रं नमस्कृत्य समैडत।

राम उवाच

नमोस्तु ते शंकरवल्लभायै जगत्सवित्र्यै समलंकृतायै॥३५॥
नानाविभूषाभिरिभारिगायै प्रपन्नरक्षाविहितोद्यमायै।
दक्षप्रसूत्यै हिमवद्भवायै महेश्वरार्द्धांगसमास्थितायै॥३६॥

'संक्षुब्ध होकर मुनीश और नृपतीश युद्ध करने लगे।।२३½-२४½।। परशुराम ने इस सुचन्द्र पर जितने भी अस्त्रों को फेंका, उनको युद्धकुशल सुचन्द्र ने काट दिया।।२४½-२५½।। उसके वाद क्रोधित परशुराम ने रणमें क्रिया प्रतिक्रिया जानने वाले राजा सुचन्द्र को जानकर नारायण अस्त्र को स्पर्शकर धनुष पर धारण किया, जिस अस्त्र का प्रभाव अनिवारित था।।२५½-२७।। उस सैकड़ों सूर्य आभा के समान उस नारायणस्त्र को बुद्धिमान् परशुराम ने फेंका तो शीघ्र प्रसन्न हो रथ से उतरकर राजा सुचन्द्र ने उस अस्त्र को प्रणाम किया।।२८।। नारायण द्वारा विशेष रूप से बनाया गया सब अस्त्रों में पूज्य वह अस्त्र भी उस नतमस्तक राजा को छोड़कर नारायण के पास चला गया।।२९।।

तव युद्ध में शत्रु का मर्दन करने वाले परशुराम उस महास्त्र को व्यर्थ देखकर तथा उस राजा सुचन्द्र को स्वस्थ देखकर आश्चर्यचकित हो गये।।३०।। तब परशुराम ने, शक्ति, मुशल, तोमर, पट्टिश, गदा और परशु को राजा सुचन्द्र के शिर पर क्रोध से फेंका।।३१।। राजा सुचन्द्र ने उन सबको खेल-खेल में ग्रहण कर लिया।।३१½-३२½।। तथा जव राम ने उस राजा पर शिव के त्रिशूल को फेंका, वह त्रिशूल राजा के गले में फूल माला बन गया।।३२½-३३½।। तब परशुराम ने उस राजा के सामने, संसार को पैदा करने वाली, नरमुंडों की माला को धारण करने वाली, विकट मुखवाली, भय, पैदा करने वाली, सिंह पर सवार, तीन नेत्र वाली और श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करने वाली भद्रकाली को खड़े हुये देखा।।३३½-३४।। यह देखकर शस्त्रास्त्र छोड़कर राम उनकी स्तुति करने लगे।।३४½।।

परशुराम ने कहा—हे शंकरप्रिये! संसार को पैदा करने वाली! समलंकृत अंगों वाली! आपको नमस्कारहै।।३५।। अनेकों आभूषणों से युक्त सिंह पर चलने वाली! हे शरणागत की रक्षा में तत्पर रहने वाली! दक्ष की सन्तान हिमालय से उत्पन्न होने वाली! महेश्वर के अर्धाङ्ग के समान स्थित रहने वाली मां! तुम्हें मैं नमन करता हूँ।।३६।।

काल्यै कलानाथकलाधरायै भक्तप्रियायै भुवनाधिपायै।
ताराभिधायै शिवतत्परायै गणेश्वराराधितपादुकायै॥३७॥
परात्परायै परमेष्ठिदायै तापत्रयोन्मूलनचिंतनायै।
जगद्धितायास्तपुरत्रयायै बालादिकायै त्रिपुराभिधायै॥३८॥
समस्तविद्यासु विलासदायै जगज्जनन्यै निहिताहितायै।
बकाननायै बहुसौख्यदायै विध्वस्तनानासुरदानवायै॥३९॥
वराभयालंकृतदोर्लतायै समस्तगीर्वाणनमस्कृतायै।
पीतांबरायै पवनाशुगायै शुभप्रदायै शिवसंस्तुतायै॥४०॥
नागारिगायै नवखण्डपायै नीलाचलाभांगलसत्प्रभायै।
लघुक्रमायै ललिताभिधायै लेखाधिपायै लवणाकरायै॥४१॥
लोलक्षणायै लयवर्जितायै लांक्षारसालंकृतपंकजायै।
रमाभिधायै रतिसुप्रियायै रोगापहायै रचिताखिलायै॥४२॥
राज्यप्रदायै रमणोत्सुकायै रत्नप्रभायै रुचिरांबरायै।
नमो नमस्ते परतः पुरस्तात् पार्श्वाधरोर्ध्वं च नमो नमस्ते॥४३॥
सदा च सर्वत्र नमो नमस्ते नमो नमस्तेऽखिलविग्रहायै।
प्रसीद देवेशि मम प्रतिज्ञांपुरा कृतां पालय भद्रकालि॥४४॥

हे काली! हे कलानाथ की कला को धारण करने वाली, हे भक्तों से प्रेम करने वाली, भुवनों की अधिपा, तारा नाम वाली,शिवतत्परा गणेश द्वारा आराधित चरणों वाली, भद्रकाली! तुम्हें नमस्कार है।।३७।। हे परात्परे! परम इष्ट को देने वाली, दैहिक दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के तापों के उन्मूलन के लिये चिन्तन करने वाली, संसार के कल्याण के लिये अस्तपुरत्रये बालादिकाये! त्रिपुरसुन्दरी नाम वाली तुमको मेरा नमस्कार है।।३८।। सगस्त विद्याओं में विलास (भोगविलास आनन्द समृद्धि) देने वाली जगज्जननी, निहितहिता (निहित हित करने वाली) बकानना, बहुत सौख्य प्रदान करने वाली, अनेकों प्रकार के असुरों और दानवों का विध्वंस करने वाली, भद्रकाली! तुम्हें नमस्कार है।।३९।। अभयवर प्रदान करने वाले भुजाओं वाली, समस्त वाणियों से नमस्कृत, पीतवस्त्रवाली, वायु की भाँति, शीघ्र गमन करने वाली, शुभ वर प्रदान करने वाली, शिव जी द्वारा स्तुति की गयी हे भद्रकाली! तुम्हें नमस्कार है।।४०।।

गरुड पर गमन करने वाली, भारत के नवखण्डों का पालन करने वाली, नील पर्वत की आभा वाले अंगों से सुशोभित प्रभावाली, लघु क्रमे, ललिता नाम वाली, लेखाधिपे! लवण समुद्र वाली, दुर्गे तुम्हें नमस्कार है।।४१।। चञ्चल नेत्र वाली, न नष्ट होने वाली, लाक्षारस (महावर) से अलंकृत चरण कमलों वाली, रमा नाम वाली, कामदेव पत्नी रति से प्रेम करने वाली, रोगों को नष्ट करने वाली, अखिल प्रपञ्च की रचना करने वाली देवि! तुम्हें मेरा नमस्कार है।।४२।। हे राज्य प्रदान करने वाली, रमण के लिये उत्सुक रहने वाली, रुचिर वस्त्रों वाली हे महादेवि! तुम्हें पीछे से, सामने से, पास से, नीचे से और ऊपर सब ओर से बार-बार नमस्कार है।।४३।। हे भद्रकालि! तुम्हें सदा और सर्वत्र नमस्कार है। हे अखिलसंसार रूपी शरीर वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है। हे भद्रकालि! हे देवेशि! तुम प्रसन्न

त्वमेव माता च पिता त्वमेव जगत्रयस्यापि नमो नमस्ते।

वसिष्ठ उवाच

एवं स्तुता तदा देवी भद्रकाली तरस्विनी॥४५॥
उवाच भार्गवं प्रीता वरदानकृतोत्सवा।

भद्रकाल्युवाच

वत्स राम महाभाग प्रीतास्मि तव सांप्रतम्॥४६॥
वरं वरय मत्तो यस्त्वया चाभ्यर्थिता हृदि।

राम उवाच

मातर्यदि वरो देवस्त्वया मे भक्तवत्सले॥४७॥
तत्सुचंद्रं जये युद्धे तवानुग्रहभाजनम्। इति मेऽभिहितं देवि कुरु प्रीतेन चेतसा॥४८॥
येन केनाप्युपायेन जगन्मातर्नमोऽस्तु ते।

भद्रकाल्युवाच

आग्नेयास्त्रेण राजेन्द्रं सुचंद्रं नय मद्गृहम्॥४९॥
ममातिप्रियमद्यैव पार्षदो मे भवत्वयम्।

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्तमाकर्ण्य स भार्गवेंद्रो देव्याः प्रियं कर्तुमथोद्यतोऽभूत्॥५०॥
प्राणान्नियम्याचमनं च कृत्वा सुचंद्रमुद्दिश्य च तत्समादधे।
अस्त्रं प्रयुक्तं नृपतेर्वधाय रामेण राजन् प्रसभं तदा तत्॥५१॥

हो जाओ तथा मैंने जो पहले प्रतिज्ञा की है, उसका पालन करो मां।।४३-४४।। हे भद्रकालि! तुम ही तीनों लोकों की माता हो तथा तुम्हीं पिता हो। अतः तुम्हें मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूं।४४½।।

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! जब भद्रकालि की परशुराम ने स्तुति की, तब तरल हृदयवाली भद्रकाली प्रसन्न हो गयी और वरदान देने के लिये उद्यत होकर बोली।।४४½-४५½।।

भद्रकालीने कहा कि हे वत्स! राम! महाभाग! मैं इस समय तुम पर प्रसन्न हूं। वर मांगों जो तुमने अपने हृदय में सोच लिया है।।४५½-४६½।।

परशुराम ने कहा कि हे मां भक्तवत्सले! यदि तुम मुझे वर देना चाहती हो, तो जो यह सुचन्द्र है, वह युद्ध में आपकी कृपा का पात्र है, अतः मेरा कहना है कि हे देवि! किसी न किसी उपाय से तुम मेरे मन को प्रसन्न करो, अतः हे मां! तुम्हें नमस्कार है।।४६½-४८½।।

भद्रकाली ने कहा कि आग्नेयास्त्र ने राजेन्द्र सुचन्द्र को मेरे घर ले जाओ, यह मेरा अतिप्रिय है, जो यह आज ही मेरा पार्षद हो जायेगा।।४८½-४९½।।

वशिष्ठ ने कहा कि इस प्रकार सुनकर वे भार्गवेन्द्र परशुराम देवी का हित करने के लिये तैयार हो गये।।५०।। तब उन्होंने प्राणों को रोककर (प्राणायाम करके) आचमन करके, सुचन्द्र को लक्ष्य बनाकर समाधि धारण कर ली। तब हे राजन्! परशुराम ने राजा सुचन्द्र को मारने केलिये बलपूर्वक उस अस्त्र का प्रयोग

दग्ध्वा वपुर्भूतमयं तदीयं निनाय लोकं परदेवतायाः।
ततस्तु रामेण कृतप्रणामा सा भद्रकाली जगदादिकर्त्री॥५२॥
अंतर्हिताभूदथ जामदग्न्यस्तस्थौ रणे भूपवधाभिकांक्षी॥५३॥

।।इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।३९।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

कार्तवीर्यार्जुनवधो नाम

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

सुचंद्रे पतिते राजन् राजेंद्राणां शिरोमणौ। तत्पुत्रः पुष्कराक्षस्तु रामं योद्धुमथागतः॥१॥
स रथस्थो महावीर्यः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः। अभिवीक्ष्य रणेत्युग्रं रामं कालांतकोपमम्॥२॥
चकार शरजालं च भार्गवेंद्रस्य सर्वतः। मुहूर्त्तं जामदग्न्योऽपि बाणैः संछादितोऽभवत्॥३॥
ततो निष्क्रम्य सहसा भार्गवेंद्रो महाबलः। शरबंधान्महाराज समुदैक्षत सर्वतः॥४॥

किया।।५१।। तब वह अस्त्र उस राजा के पंचभूतमय शरीर को जलाकर परदेवता के लोक को चला गया। उसके बाद परशुराम के द्वारा प्रणाम की गयी वे संसार की आदिकर्त्री भद्रकाली अन्तर्धान हो गयीं, फिर राजाओं के वध की इच्छा रखने वाले जमदग्निसुत परशुराम युद्ध में स्थित हो गये।।५२-५३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ३९वां अध्याय भार्गवचरित में परशुराम-कृत भद्रकाली स्तुति का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगला-सरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गव चरित में

अध्याय-४०

कार्तवीर्य अर्जुन वध

वशिष्ठ ने कहा सूत जी द्वारा ऋषियों को सुनाये जा रहे कथा प्रसंग में राजा सगर को भार्गवचरित बताने के क्रम में मुनि वशिष्ठ ने महाराज सगर से कहा कि राजन्! राजेन्द्रों के शिरोमणि सुचन्द्र जी जब भूमि कर गिर गये, तब उनका पुत्र पुष्कराक्ष राम से युद्ध करने आ गया।।१।। सब प्रकार शस्त्रास्त्रों का ज्ञाता महापराक्रमी वह रथ पर सवार हो रण में अत्यन्त उग्र यमराज के समान परशुराम को देखकर परशुराम पर सब ओर से वाणों की वर्षा करने लगा। थोड़ी देर के लिये परशुराम भी बाणों से पूरी तरह ढक दिये गये।।२-३।। उसके बाद हे महाराज! अचानक

दृष्ट्वा तं पुष्कराक्षं तु सुचंद्रतनयं तदा। क्रोधमाहारयामास दिधक्षन्निव पावकः॥५॥
स क्रोधेन समाविष्टो वारुणं समवासृजत्। ततो मेघाः समुत्पन्ना गर्जंतो भैरवान्रवान्॥६॥
ववृषुर्जलधाराभिः प्लावयंतो धरां नृप। पुष्कराक्षो महावीर्यो वायव्यास्त्रमवासृजत्॥७॥
तेन तेऽदर्शनं नीताः सद्य एव बलाहकाः। अथ रामो भृशं क्रुद्धो ब्राह्मं तत्राभिसंदधे॥८॥
पुष्कराक्षोऽपि तेनैव विचकर्ष महाबलः। ब्राह्मं सोऽप्याहितं दृष्ट्वा दंडाहत इवोरगः॥९॥
घोरं परशुमादाय निःश्वसंस्तमधावत। रामस्याधावतस्तत्र पुष्कराक्षो धनुर्धरः॥१०॥
संदधे पंचविशिखान्दीप्तास्यानुरगानिव। एकैकेन च बाणेन हृदि शीर्षे भुजद्वये॥११॥
शिखायां च क्रमाद्भित्त्वा तस्तंभ भृशमातुरम्। स चैवं पीडितो रामः पुष्कराक्षेण संयुगे॥१२॥

क्षणं स्थित्वा भृशं धावन्परशुं मूर्ध्न्यपातयत्।
शिखामारभ्य पादांतं पुष्कराक्षं द्विधाऽकरोत्॥१३॥
पतिते शकले भूमौ तत्कालं पश्यतां नृणाम्।
आश्चर्यं सुमहज्जातं दिवि चैव दिवौकसाम्॥१४॥

विदार्य रामस्तं क्रोधात्पुष्कराक्षं महाबलम्। तत्सैन्यमदहत्क्रुद्धः पावको विपिनं यथा॥१५॥

यतो यतो धावति भार्गवेंद्रो मनोऽनिलौजाः प्रहरन्परश्वधम्।
ततस्ततो वाजिरथेभमानवा निकृत्तगात्राः शतशो निपेतुः॥१६॥

महाबली परशुराम ने सब ओर बाण के बन्धन को काट दिया।।४।। तब सुचन्द्र के पुत्र उस पुष्कराक्ष को देखकर जलाने की इच्छा वाले अग्नि के समान क्रोध को धारण कर लिया।।५।। तब क्रोध से समाविष्ट उन ने वारुण अस्त्र का प्रहार कर दिया। उससे भैरवनाद करने वाले गर्जते हुए मेघ उत्पन्न हो गये। तब हे राजन्! मेघ जलधाराओं से वर्षने लगे और पृथ्वी को जलप्लावित कर दिया, तब महापराक्रमी पुष्कराक्ष ने वायव्य अस्त्र का प्रहार किया।।६-७।। उस वायव्य अस्त्र द्वारा सभी ओर बादल (मेघ) दिखाई भी नहीं देने लगे। इसके बाद क्रुद्ध परशुराम ने ब्राह्म अस्त्र का संधान कर दिया।।८।। महाबली पुष्कराक्ष ने उस ब्राह्मास्त्र को उसी से खींच लिया। तब ब्राह्म अस्त्र को आहत देखकर डंडे से आहत सर्प की भाँति घोर परशु को लेकर विना श्वास लिये परशुराम दौड़े।।९-९½।। वहाँ राम जैसे ही दौड़े तव पुरष्कराक्ष धनुर्धर ने जीभ लपलपाते हुए सर्प की भाँति पांच शिखाओं वाले चमकते हुए बाणों का संधान कर दिया।।९½-१०½।।

तब वहाँ एक बाण ने परशुराम के हृदय में, शिर में, दोनों भुजाओं में और शिखाओं में क्रमशः फोड़कर बहुत आतुर परशुराम को जहाँ के तहाँ रोक दिया।।१०½-११½।। इस प्रकार उस युद्ध में पुष्कराक्ष द्वारा पीड़ित राम ने क्षण भर ठहरकर तेजी से दौड़ते हुए परशु को उसके सिर पर मारा।।११½-१२½।। तब उन्होंने पुष्कराक्ष की शिखा को पकड़कर पैरों से दबाकर उसको चीरकर दो टुकड़े कर दिय। जैसे ही पुष्कराक्ष भूमि पर गिरा वैसे ही उसी समय लोगों के देखते ही देखते स्वर्ग में देवताओं को बहुत अधिक आश्चर्य हो गया।।१२½-१४।। परशुराम ने उस महाबल पुष्कराक्ष को चीरकर क्रोधित होकर उसकी समस्त सेना को उसी प्रकार जला दिया, जिस प्रकार वन को अग्नि जला देती है।।१५।। जिधर जिधर मन और वायु के समान पराक्रम वाले भार्गवेन्द्र परशुराम परशु लेकर प्रहारकरते हुए दौड़ते थे, उधर-उधर घोड़े, रथ, हाथी मनुष्य कटे हुए शरीर वाले होकर गिर जाते थे।।१६।।

रामेण तत्रातिबलेन संगरे निहन्यमानास्तु परश्वधेन।
हा तात मातस्त्विति जल्पमाना भस्मीबभूवुः सुविचूर्णितास्तदा॥१७॥
मुहूर्त्तमात्रेण च भार्गवेण तत्पुष्कराक्षस्य बलं समग्रम्।
अनेकराजन्यकुलं हतेश्वरं हतं नवाक्षौहिणिकं भृशातुरम्॥१८॥

पतिते पुष्कराक्षे तु कार्त्तवीर्यार्जुनः स्वयम्। आजगाम महावीर्यः सुवर्णरथमास्थितः॥१९॥
नानाशस्त्रसमाकीर्णं नानारत्नपरिच्छदम्। दशनल्वप्रमाणं च शतवाजियुतं नृपः॥२०॥
युते बाहुसहस्त्रेण नानायुधधरेण च। बभौ स्वर्लोकमारोक्ष्यन्देहांते सुकृती यथा॥२१॥
पुत्रास्तस्य महावीर्याः शतं युद्धविशारदाः। सेनाः संव्यूह्य संतस्थुः संग्रामे पितुराज्ञया॥२२॥
कार्तवीर्यस्तु बलवान्रामं दृष्ट्वा रणाजिरे। कालांतकयमप्रख्यं योद्धुं समुपचक्रमे॥२३॥
दक्षे पंचशतं बाणान्वामे पंचशतं धनुः। जग्राह भार्गवेंद्रस्य समरे जेतुमुद्यतः॥२४॥
बाणवर्षं चकाराथ रामस्योपरि भूपते। यथा बलाहको वीर पर्वतोपरि वर्षति॥२५॥
बाणवर्षेण तेनाजौ सत्कृतो भृगुनंदनः। जग्राह स्वधनुर्दिव्यं बाणवर्षं तथाऽकरोत्॥२६॥
तावुभौ रणसंदृप्तौ तदा भार्गवहैहयौ। चक्रतुर्युद्धमतुलं तुमुलं लोमहर्षणम्॥२७॥
ब्रह्मास्त्रं च स भूपालः संदधे रणमूर्द्धनि। वधाय भार्गवेंद्रस्य सर्वशस्त्रास्त्रधृग्बली॥२८॥

रामोऽपि वार्युपस्पृश्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे।
ततो व्योम्नि सदा सक्ते द्वे चाप्यस्त्रे नराधिप॥२९॥

अतिबल वाले परशुराम के द्वारा युद्ध में फरसे से मारे गये लोग हा तात! हा मातः! कहते हुए भस्म हो रहे थे और चूर-चूर हो रहे थे।।१७।। अतः मुहूर्तमात्र में ही भार्गव ने पुष्कराक्ष की समस्त सेना को तथा अनेक क्षत्रियों के समूहों को, मारने वाले को तथा बहुत अधिक आतुर नौ अक्षौहिणी सेना को मार डाला।।१८।। पुष्कराक्ष के भूमि पर गिरने पर महापराक्रमी कार्तवीर्यार्जुन सोने के रथ पर सवार होकर स्वयं आ गया।।१९।। अनेकों प्रकार के शस्त्रों से युक्त अनेकों प्रकार के रत्नों से ढके हुये ४००० हाथ प्रमाण वाले सैकड़ों घोड़े सहित राजा, हजार भुजाओं से युक्त अनेक प्रकार के आयुध धारण करने वाले राजा कार्तवीर्य द्वारा स्वर्गलोक सुशोभित होने लगा जैसे कि कोई पुण्यशील पुरुष देहान्त के बाद स्वर्ग में आता है।।२०-२१।। उस राजा, कार्तवीर्य के महापराक्रमी और युद्धविशारद सौ पुत्र थे। वे सब पिताकी आज्ञा से अपनी अपनी सेना को लेकर संग्राम में स्थित हो गये।।२२।।

बलवान् कार्तवीर्य ने युद्ध क्षेत्र में राम को देखकर यमराज के समान प्रख्य युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया।।२३।। सब शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाली अपने दाँये हाथ पर पाँच सौ बाणों तथा बाँयें तरफ पाँच सौ धनुषों को समर में परशुराम को जीतने के लिये कार्तवीर्य ने ग्रहण किया।।२४।। फिर हे राजन्! उन कार्तवीर्य ने परशुराम के ऊपर उसी प्रकार बाणों की वर्षा की, जिस प्रकार कि मेघ पर्वत के ऊपर बरसता है।।२५।। उस बाणों की वर्षा से युद्ध में सत्कृत भृगुनन्दन परशुराम ने अपने दिव्य धनुष को ग्रहण किया और उसी प्रकार बाण वर्षा की।।२६।। तब वे दोनों रणसंदृप्त योद्धा भार्गव और हैहय ने अतुल तुमुल रोमांच पैदा करने वाला युद्ध किया।।२७।। राजा कार्तवीर्य ने युद्ध में परशुराम के वध के लिए ब्रह्मास्त्र का संधान कर दिया।।२८।। राम ने भी जल का स्पर्श करके ब्राह्म अस्त्र का संधान कर दिया। उसके बाद आकाश में सदा आपसे चिपके हुए दो अस्त्र दिखाई दे रहे थे।।२९।।

ववृधाते जगत्प्रांते तेजसा ज्वलनार्कवत्। त्रयो लोकाः सपाताला दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम्॥३०॥
ज्वलदस्त्रयुगं तप्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम्।
रामस्तदा वीक्ष्य जगत्प्रणाशं जगन्निवासोक्तमथास्मरत्तदा॥३१॥
रक्षा विधेयाऽद्य मयाऽस्य संयमो निवारणीयः परमांशधारिणा।
इति व्यवस्य प्रभुरुग्रतेजा नेत्रद्वयेनाथ तदस्त्रयुग्मम्॥३२॥
पीत्वातिरामं जगदाकलय्य तस्थौ क्षणं ध्यानगतो महात्मा।
ध्यानप्रभावेण ततस्तु तस्य ब्रह्मास्त्रयुग्मं विगतप्रभावम्॥३३॥
पपात भूमौ सहसाऽथतत्क्षणं सर्वं जगत्स्वास्थ्यमुपाजगाम्।
स जामदग्न्यो महतां महीयान्स्त्रष्टुं तथा पालयितुं निहंतुम्॥३४॥
विभुस्तथापीह निजं प्रभावं गोपायितुं लोकविधिं चकार।
धनुर्द्धरः शूरतमो महस्वान्सदग्रणीः संसदि तथ्यवक्ता॥३५॥
कलाकलापेषु कृतप्रयत्नो विद्यासु शास्त्रेषु बुधो विधिज्ञः।
एवं नृलोके प्रथयन्स्वभावं सर्वाणि कल्यानि करोति नित्यम्॥३६॥
सर्वे तु लोका विजितास्तु तेन रामेण राजन्यनिषूदनेन।
एवं स रामः प्रथितप्रभावः प्रशामयित्वा तु तदस्त्रयुग्मम्॥३७॥
पुनः प्रवृत्तो निधनं प्रकर्तुं रणांगणे हैहयवंशकेतोः।
तूणीरतः पत्रियुगं गृहीत्वा पुंखे निधानाथ धनुर्ज्यकायाम्॥३८॥

वे जलते हुए सूर्य के समान तेज से लगातार आकाश में बढ़ रहे थे। पातालसहित तीनों लोक उस महान् आश्चर्य को देखकर जलते हुए दोनों अस्त्रों ने परशुराम के उपसंयम को मान लिया। तब परशुराम ने संसार का पूर्ण विनाश देखकर, जगन्निवास भगवान् शंकर को स्मरण किया।।३०-३१।। परशुराम ने कहा कि आज मुझे इस संसार की रक्षा करनी चाहिये, अतः हे परम अंश को धारण करने वाले आप द्वारा इस ब्रह्मास्त्र का संयम निवारणीय है। इस प्रकार उग्रतेज वाले प्रभु परशुराम ने दोनों नेत्रों से उन दोनों अस्त्रों को पी लिया और संसार को बचाने के लिये महात्मा राम ध्यान लगाकर स्थित हो गये, तब उनके उस ध्यान के प्रभाव से उनका ब्रह्मास्त्र प्रभावहीन हो गया।।३२-३३।। इसके बाद अचानक उसी क्षण ब्रह्मास्त्र भूमि पर गिर पड़ा और संसार ने स्वास्थ्य को प्राप्त किया। वे जामदग्न्य (जमदग्निसुत) परशुराम महानों में महानों को उत्पन्न करने को पालन करने को और संहार करने को समर्थ थे, फिर भी उन्होंने इस संसार में अपने प्रभाव को छिपाने के लिये लोकविधि को स्वीकार किया।।३४-३४½।।

अतः धनु को धारण करने वाले सबसे बड़े शूरवीर, सज्जनों में अग्रणी, यह स्वान् (प्रभावशाली) सभाओं में तथ्य की बात बोलने वाले, समस्त प्रकार की कलाओं में कृतप्रयत्न, विद्याओं और शास्त्रों में विद्वान् पुरुष, विधि के जाने वाले, इस प्रकार के लोग मनुष्य लोक में अपने स्वभाव को फैलाते हुए नित्य सबको स्वस्थ करते हैं।।३६।। क्षत्रियों का संहार करने वाले उन परशुराम ने समस्त लोकों को जीत लिया था। इस प्रकार प्रसिद्ध प्रभाव वाले उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को प्रशान्त करके वे परशुराम युद्धक्षेत्र हैहयवंश के कार्तवीर्यार्जुन को मारने के लिए पुनः प्रवृत्त हुये।।३७-३७½।। तूणीर से बाणों को निकालकर उनकी पुंख को धनुष की प्रत्यञ्चा पर रख कर राजा के दोनों कानों

आलक्ष्य लक्ष्यं नृपकर्णयुग्मं चकर्त्त चूडामणिहर्तुकामः।
स कृत्तकर्णो नृपतिर्महात्मा विनिर्जिताशेषजगत्प्रवीरः॥३९॥
मेने निजं वीर्यमिह प्रणष्टं रामेण भूमीश तिरस्कृतात्मा।
क्षणं धराधीशतनुर्विवर्णा गतानुभावा नृपतेर्बभूव॥४०॥
लेख्येव सच्चित्रकरप्रयुक्ता सुदीनचित्तस्य विलक्ष्यतेंऽगः।
ततः स राजा निजवीर्यवैभवं समस्तलोकाधिकतां प्रयातम्॥४१॥
विचिंत्य पौलस्त्यजयादिलब्धं शोचन्निवासीत्स जयाभिकांक्षी।
दध्यौ पुनर्मीलितलोचनो नृपो दत्तं तमात्रेयकुलप्रदीपम्॥४२॥
यस्य प्रभावानुगृहीत ओजसा तिरश्चकाराखिललोकपालकान्।
यदास्य हृद्येष महानुभावो दत्तः प्रयातो न हि दर्शनं तदा॥४३॥
खिन्नोऽतिमात्रं धरणीपतिस्तदा पुनः पुनर्ध्यानपथं जगाम।
स ध्यायमानोऽपि न चाजगाम दत्तो मनोगोचरमस्य राजन्॥४४॥
तपस्विनो दांततमस्य साधोरनागसो दुष्कृतिकारिणो विभुः।
एवं यदात्रेस्तनयो महात्मा दृष्टो न च ध्यानपथे नृपेण॥४५॥
तदाऽतिदुःखेन विदूयमानः शोकेन मोहेन युतो बभूव।
तं शोकमग्नं नृपतिं महात्मा रामो जगादाखिलचित्तदर्शी॥४६॥

का लक्ष्य बनाकर चूड़ामणि को हरण करने की इच्छा से बाण को चलाया।।३७½-३८½।। वह राजा जिसने कि समस्त संसार को जीत लिया था, वह अब कटे हुए कान वाला होकर इस संसार में राम के द्वारा नष्ट हुये पराक्रम वाला तथा तिरस्कृत आत्मा वाला बन गया।।३८½-३९½।। क्षण भर में वे धराधीश अंग-भंग शरीर होकर गतानुभाव हो गये। अब उनका वहुत दीन-हीन शरीर ऐसा लग रहा था, मानो कि किसी ने चित्र में किसी बहुत दीन व्यक्ति का चित्र बना दिया हो।।३९½-४०½।। उसके बाद वह राजा जो अपने पराक्रम वैभव एवं समस्त लोकों में सबसे अधिकता से युक्त था अर्थात् संसार में उसके समान पराक्रमी और वैभव वाला अन्य कोई नहीं था, वह राजा अब सबसे अधिक हीन हो गया। तब फिर उस राजा ने सोचा कि मैंने पौलस्त्य कुल पर विजय प्राप्त की, जिसमें कि रावण को भी हराया था, वह आज मैं हुआ हूँ? यह विचार कर शोक करता हुआ, वह फिर युद्ध जीतने की इच्छा करने लगा।।४०½-४१½।। तब फिर उसने अपनी आँखें बन्द करके आत्रेय कुल प्रदीप भगवान् दत्तात्रेय का ध्यान किया। जिनके प्रभाव से तथा जिनकी कृपा से प्राप्त पराक्रम से उस राजा कार्तवीर्य ने समस्त लोकपालों को जीत लिया था।।४१½-४२½।। जब इस राजा के हृदय में महानुभाव दत्तात्रेय ने दर्शन नहीं दिया, तब खिन्न होकर राजा कार्तवीर्य ने बार-बार ध्यान लगाया।।४२½-४३½।।

हे राजन्! बार बार ध्यान करते हुये भी वे दत्तात्रेय उस राजा के मन में दृष्टिगोचर नहीं हुए, अनेकों बार ध्यान से भी राजा के ध्यान पथ में उपस्थित नहीं हुए; क्योंकि तपस्वी लोग दांततमस् अर्थात् अहंकार को दमन करने वाले पापी और दुष्कर्म करने वालों के कार्यों को करने वाले नहीं होते।।४३½-४४½।। इस प्रकार जब अत्रि के पुत्र महात्मा दत्तात्रेय को राजा कार्तवीर्य ने अपने ध्यान पथ में नहीं देखा, तब अत्यन्त दुःख से छटपटाता हुआ राजशोक

मा शोकभावं नृपते प्रयाहि नैवानुशोचंति महानुभावाः।
यस्ते वरायाभवमादिसर्गे स एव चाहं तव सादनाय॥४७॥
समागतस्त्वं भव धीरचित्तः संग्रामकाले न विषादचर्चा।
सर्वो हि लोकः स्वकृतं भुनक्ति शुभाशुभं दैवकृतं विपाके॥४८॥
अन्योनकोऽप्यस्य शुभाशुभस्य विपर्ययं कर्तुमलं नरेश।
यत्ते सुपुण्यं बहुजन्मसंचितं तेनेह दत्तस्य वरार्हपात्रम्॥४९॥
जातो भवानद्य तु दुष्कृतस्य फलं प्रभुंक्ष्व त्वमिहार्जितस्य।
गुरुर्विमत्यापकृतस्त्वया मे यतस्ततः कर्णनिकृन्तनं ते॥५०॥
कृतं मया पस्य हरंतमोजसा चूडामणिं मामपहृत्य ते यशः।
इत्येवमुक्त्वा स भृगुर्महात्मा नियोज्य बाणं च विकृष्य चापम्॥५१॥
चिक्षेप राज्ञः स तु लाघवेन च्छित्त्वामणिं राममुपाजगाम।
तद्वीक्ष्य कर्मास्य मुनेः सुतस्य स चार्जुनो हैहयवंशधर्त्ता॥५२॥
समुद्यतोऽभूत्पुनरप्युदायुधस्तं हंतुमाजौ द्विजमात्मशत्रुम्।
शूलशक्तिगदाचक्रखड्गपट्टिशतोमरैः ॥५३॥
नानाप्रहरणैश्चान्यैराजघान द्विजात्मजम्। स रामो लाघवेनैव संप्रक्षिप्तान्यनेन च॥५४॥
शूलादीनि चकर्त्ताशु मध्य एव निजाशुगैः। स राजा वार्युपस्पृश्य ससर्जाग्नेयमुत्तमम्॥५५॥

और मोह से युक्त हो गया।।४४½-४५½।। तब उस शोकमग्न राजा से चित्त की समस्त दशाओं को देखने वाले महात्मा परशुराम ने कहा कि हे राजन्! तुम शोकभाव में मत जाओ; क्योंकि महानुभाव कभी शोक नहीं करते हैं।।४५½-४६½।। जो तुम्हारे वर के लिये आदिसर्ग में मैं हुआ था, वही मैं तुम्हारा नाश करने के लिये यहाँ आया हूँ, इसलिए तुम अपने मन में धैर्य धारण करो। संग्राम के समय दुःख की चर्चा नहीं करनी चाहिये।।४६½-४७½।। परशुराम ने कहा हे राजन्! सभी मनुष्य अपने किये हुए शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल दैवकृत विपाक में भोगते हैं। अन्य कोई भी मनुष्य राजन्! इस शुभाशुभ कर्मों के फल भोगने के विपरीत नहीं होता अर्थात् कोई भी मनुष्य शुभ कर्म का अशुभ फल तथा अशुभ कर्म का शुभफल प्राप्त नहीं करता।।४७½-४८½।।

जब तक तुम्हारे बहुत से जन्मों से संचित सुपुण्य थे, तब तक तुम दत्तात्रेय के योग्य पात्र रहे। आज तो तुम यहाँ अर्जित दुष्कर्मों के फलों को भोगो।।४८½-४९½।। अरे दुर्बुद्धि! तुमने मेरे पिता का अपमान किया, जिस कारण से तुम्हारे कान काट दिये गये तथा देखो, मैंने तुम्हारे कानों की चूड़ामणि को हरते हुए तुम्हारे यश को भी नष्ट कर दिया।।४९½-५०½।। इस प्रकार कहकर महात्मा परशुराम ने धनुष पर बाण रखकर प्रत्यञ्चा खींचकर लाघव के साथ राजा कार्तवीर्य पर बाण को मारा, तब उसकी मणि कटकर परशुराम के पास पहुंच गयी।।५०½-५१½।। तब मुनि जमदग्नि सुत परशुराम के इस कर्म को देखकर उस हैहय वंश को धारण करने वाले कार्तवीर्य अर्जुन युद्ध में ब्राह्मण शत्रु परशुराम को मारने के लिये पुनः आयुध लेकर लड़ने को तैयार हो गया।।५१½-५२½।। तब वह शूल, शक्ति, गदा, चक्र, खड्ग, पट्टिश, तोमर आदि अनेकों प्रहारों से परशुराम को मारने लगा; परन्तु उन परशुराम ने फेंके हुए उसके समस्त शूल आदि को अपने शीघ्र चलने वाले बाणों से मध्य में ही खींच लिया।।५२½-५४½।।

अस्त्रं रामो वारुणेन समयामास सत्वरम्। गांधर्वं विदधे राजा वायव्येनाहनद्विभुम्।।५६।।
नागास्त्रं गारुडेनापि रामश्चिच्छेद भूपते। दत्तेन दत्तं यच्छूलमव्यर्थं मंत्रपूर्वकम्।।५७।।
जग्राह समरे राजा भार्गवस्य वधाय च। तच्छूलं शतसूर्याभमनिवार्यं सुरासुरैः।।५८।।
चिक्षेप रामुद्दिश्य समग्रेण बलेन सः। मूर्ध्नि तद्भार्गवस्याथ निपपात महीपते।।५९।।
तेन शूलप्रहारेण व्यथितो भार्गवस्तदा। मूर्च्छामवाप राजेन्द्र पपात च हरिं स्मरन्।।६०।।
पतिते भार्गवे तत्र सर्वे देवा भयाकुलाः। समाजग्मुः पुरस्कृत्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।।६१।।
शंकरस्तु महाज्ञानी साक्षान्मृत्युंजयः प्रभुः। भार्गवं जीवयामास संजीवन्या स विद्यया।।६२।।
रामस्तु चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान्। प्रणनाम च राजेंद्र भक्त्या ब्रह्मादिकांस्तु तान्।।६३।।
ते स्तुता भार्गवेंद्रेण सद्योऽदर्शनमागताः। स रामो वार्युस्पृश्य जजाप कवचं तु तत्।।६४।।
उत्थितश्य सुसंरब्धो निर्दहन्निव चक्षुषा। स्मृत्वा पाशुपतं चास्त्रं शिवदत्तं स भार्गवः।।६५।।
सद्यः संहतवांस्तत्तु कार्त्तवीर्यं महाबलम्। स राजा दत्तभक्तस्तु विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम्।
प्रविष्टो भस्मसाज्जातं शरीरं बाहुनंदन।।६६।।

।।इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्तं मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते कार्त्तवीर्यवधो नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४०।।

तब उस राजा ने जल का स्पर्श कर आग्नेयास्त्र का प्रहार किया, तो परशुराम ने वारुणास्त्र से उसको शीघ्र शान्त कर दिया।।५४½-५५½।। उसके बाद कार्तवीर्य ने गान्धर्व अस्त्र का प्रयोग किया, जिसको परशुराम ने वायव्य अस्त्र से नष्ट कर दिया, उसके बाद राजा कार्तवीर्य ने नागास्त्र का प्रहार किया, तब राजा के नागास्त्र को परशुराम ने गारुडास्त्र से काट दिया।।५५½-५६½।। उसके बाद युद्ध में राजा ने भार्गव के वध के लिये दत्तात्रेय द्वारा दिये गये न व्यर्थ होने वाले शूल को मन्त्रपूर्वक ग्रहण किया।।५६½-५७½।। वह शूल देवों और असुरों के द्वारा सैकड़ों सूर्य की आभा से भी न हटाने वाले प्रभाव वाले उस शूल को कार्तवीर्य ने समग्र बल से राम को लक्ष्य करके फेंका।।५७½-५८½।। वह शूल परशुराम के शिर में लगा, तब उसके प्रहार से परशुराम बहुत व्यथित हो गये।।५८½-५९½।। उसके बाद परशुराम मूर्च्छित हो गये और हरि का स्मरण करते हुए गिर गये।।६०।। परशुराम के गिरने पर सब देवता भय से व्याकुल होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के पास गये।।६१।। शंकर तो महाज्ञानी हैं, वे तो साक्षात् मृत्यु को जीतने वाले तथा सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने संजीवनी विद्या से परशुराम को जीवित कर दिया।।६२।। जब परशुराम ने चेतना प्राप्त कर सामने देवताओं को देखा, तब परशुराम ने उन ब्रह्मा आदि को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।।६३।। परशुराम द्वारा स्तुति की जाने के बाद वे सब देवता शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये। तब उन राम ने जल का स्पर्श कर उस कवच का जाप किया।।६४।। उठे हुए और अच्छी तरह रखे गये, उस आंख से जलते हुए के समान शिव द्वारा दिये गये पाशुपत अस्त्र का स्मरण करके परशुराम ने प्रहार कर दिया।।६५।। उसके बाद उस पाशुपतास्त्र ने उस महाबलवान् कार्तवीर्य का संहार कर दिया। दत्तात्रेय के भक्त उस राजा ने भी विष्णु के सुदर्शन चक्र को चलाया था, जो परशुराम के शरीर में जाकर भस्मसात् हो गया।।६६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४०वां अध्याय भार्गवचरित में कार्तवीर्य अर्जुन वध का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे भार्गवचरिते

परशुरामस्य कैलासगमनं नाम

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

दृष्ट्वा पितुर्वधं घोरं तत्पुत्रास्ते शतं त्वरा। वारयामासुरत्युग्रं भार्गवं स्वबलेः पृथक्॥१॥
एकैकाक्षौहिणीयुक्ताः सर्वे ते युद्धदुर्मदाः। संग्रामं तुमुलं चक्रुः संरब्धास्तु पितुर्वधात्॥२॥
रामस्तु दृष्ट्वा तत्पुत्राञ्छूरान्रणविशारदान्। परश्वधं समादाय युयुधे तैश्च संगरे॥३॥
तां सेनां भगवान्रामः शताक्षौहिणिसंमिताम्। निजघान त्वरायुक्तो मुहूर्त्तद्वयमात्रतः॥४॥
निःशेषितं स्वसैन्यं तु कुठारेणैव लीलया। दृष्ट्वा रामेण ते सर्वे युयुधुर्वीर्यसंमता;॥५॥
नानाविधानि दिव्यानि प्रहरंतो महौजसः। परितो मंडलं चक्रुर्भार्गवस्य महात्मनः॥६॥
अथ रामोऽपि बलवांस्तेषां मंडलमध्यगः। विरेजे भगवान्साक्षाद्यथा नाभिस्तु चक्रगा॥७॥

नृत्यन्निवाजौ विरराज रामः शतं पुनस्ते परितो भ्रमंतः।
रेजुश्च गोपीगणमध्यसंस्थः कृष्णो यथा ताः परितो भ्रमंत्यः॥८॥
तदा तु सर्वे द्रुहिणप्रधानाः समागताः स्वस्वविमानसंस्थाः।
समाकिरन्नंदनमाल्यवर्षैः समंततो राममहीनवीर्यम्॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय–४१

परशुराम का कैलास जाना

वशिष्ठ ने कहा कि जब परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन का वध कर दिया, तब अपने पिता के घोर वध को देखकर उसके सौ पुत्रों ने शीघ्र ही अत्युग्र परशुराम को अपने पिता की बलि से अलग हटा दिया।।१।। वे सब युद्धदुर्मद प्रत्येक एक एक अक्षौहिणी सेना से युक्त थे तथा अपने पिता के वध से विक्षुब्ध उन सबने भीषण संग्राम किया।।२।। परशुराम उनके रण विशारद शूरवीर पुत्रों को देखकर परशु लेकर युद्ध में उनके साथ युद्ध करने लगे।।३।। भगवान् राम ने उनकी सौ अक्षौहिणी सेना को शीघ्र आते ही दो मुहूर्त मात्र में मार दिया।।४।। शेष बची अपनी सेना को परशुराम द्वारा कुठार से ही मारा जाता हुआ देखकर वे सब पराक्रमी राम के साथ युद्ध करने लगे।।५।।

इसके बाद बलवान् राम भी उन सबके मंडल के मध्य गमन करते हुए ऐसे लग रहे थे, जैसे चलते हुए पहिया के बीच नाभि चलती है।।६।। उस समय उन सौ पुत्रों के बीच घूमते हुए परशुराम युद्ध नृत्य करते हुए के समान सुशोभित हुए और वे गोपियों के मध्यस्थ उनके चारों ओर घूमते हुए कृष्ण की तरह सुशोभित हुए।।७।। तब सभी कार्यवीर्य के प्रधान द्रोही देवता लोग अपने-अपने विमानों पर चढ़कर वहाँ आ गये और सब पराक्रमी परशुराम के चारों ओर आनन्द से मालाओं की वर्षाएं करने लगे।।८।। जो शस्त्र के गिरने से जो हुंकार गर्भध्वनि उठती थी,

यः शस्त्रपादादुततिष्ठत ध्वनिर्हुंकारगर्भो दिवमस्पृशन्स वै।
तौर्यत्रिकस्येव शरक्षतानि भ्रांतीव यद्वन्नखदंतपाताः॥१०॥
क्रंदंति शस्त्रैः क्षतविक्षतांगा गायंति यद्वत्किल गीतविज्ञाः।
एवं प्रवृत्तं नृपयुद्धमण्डलं पश्यंति देवा भृशविस्मिताक्षाः॥११॥
ततस्तु रामोऽवनिपालपुत्राञ्जिघांसुराजौ विविधास्त्रपूगैः।
पृथक्चकारातिबलांस्तु मंडलाद्विच्छिद्य पंक्तिं प्रभुरात्तचापः॥१२॥
एकैकशस्तान्निजघान वीराञ्छतं तदा पंच ततः पलायिताः।
शूरो वृषास्या वृषशूरसेनौ जयध्वजश्चापि विभिन्नधैर्याः॥१३॥
महाभयेनाथ परीतचित्ता हिमाद्रिपादांतरकाननं च।
पृथग्गतास्ते सुपरीप्सवो नृपा न कोऽपि कांस्विद्ददृशे भृशार्त्तः॥१४॥
रामोऽपि हत्वा नृपचक्रमाजौ राज्ञः सहायार्थमुपागतं च।
समन्वितोऽसावकृतव्रणेन सस्नौ मुदाऽगत्य च नर्मदायाम्॥१५॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा संपूज्य वृषभध्वजम्।
प्रतस्थे द्रष्टुमुर्वीश शिव कैलासवासिनम्॥१६॥
गुरुपत्नीमुमां चापि सुतौ स्कन्दविनायकौ। मनोयायी महात्माऽसावकृतव्रणसंयुतः॥१७॥
कृतकार्यो मुदा युक्तः कैलासं प्राप्य तत्क्षणम्। ददर्श तत्र नगरीं महतीमलकाभिधाम्॥१८॥
नानामणिगणाकीर्णभवनैरुपशोभिताम्। नानारूपधरैर्यक्षैः शोभितां चित्रभूषणैः॥१९॥

वह ध्वनि स्वर्ग को स्पर्श करती हुई नांच, गाना, वजाना अर्थात् नृत्य, गान और वाद्य तीनों की मिली हुई ध्वनि के समान थी तथा बाण से क्षत नाखून दांत और पैर ऐसे लगते थे, मानों घूम रहे हैं।।९-१०।। शस्त्रों से क्षत-विक्षत अंग वाले सैनिक क्रन्दन कर रहे थे (अर्थात् कराह रहे थे) तो वे ऐसे लगते थे, मानो कि गीत गाने वाले गीत गा रहे हों। इस प्रकार नृपयुद्धमंडल को देवता लोग अत्यन्त आश्चर्ययुक्त आँखों से देख रहे थे।।११।। इसके बाद युद्ध में अनेकों प्रकार के शस्त्र समूहों से राजपुत्रों को मारने की इच्छा वाले परशुराम ने अत्यन्त बलवानों को मंडल से अलग करके धनुष हाथ में लेकर उनकी पंक्ति को फोड़कर एक एक करके सैकड़ों वीरों को मार डाला तब उनमें पांच भाग गये, वे थे शूर, वृषास्य, वृष, शूरसेन और विजयध्वज ये पाँच धैर्यशाली राजा थे।।१२-१३।।

वे सब महाभय से घिरे हुए चित्त वाले थे, हिमालय पर्वत के पैरों में जो अन्तर्गत वन थे, उनमें अलग अलग चले गये। वे सब अच्छी तरह छिपने के इच्छुक राजा इतने अधिक भयभीत थे कि ऐसे छिप गये कि कोई किसी को न देख सके।।१४।। युद्ध में राजा कार्तवीर्य की सहायता के लिये आये हुए समस्त राजाओं को मारकर परशुराम भी अकृतव्रण के साथ सानन्द आकर नर्मदा में स्नान करने लगे।।१५।। स्नान करके और नित्यक्रिया करके वृषभध्वज भगवान् शंकर की भलीभाँति पूजा करके वे मनोयायी महात्मा परशुराम अकृतव्रण के साथ पृथ्वी की रचना करने वाले कैलासवासी शिव को गुरुपत्नी उमा को भी कार्तिकेय और गणेश जी दोनों पुत्रों को देखने के लिये चल दिये।।१६-१७।। कार्य पूरा करने वाले आनन्दयुक्त परशुराम ने उस क्षण कैलास पर पहुंच कर वहाँ महती अलकापुरी को देखा।।१८।। वह नगरी अनेकों प्रकार की मणियों से जड़े हुए भवनों से उपशोभित थी तथा अनेकों

नानावृक्षसमाकीर्णैर्वनैश्चोपवनैर्युताम्। दीर्घिकाभिः सुदीर्घाभिस्तडागैश्चोपशोभिताम्॥२०॥
सर्वतोऽप्यावृतां बाह्ये सीतयालकनंदया। तत्र देवांगनास्नानमुक्तकुंकुमपिंजरम्॥२१॥
तृषाविरहिताश्चांभः पिबंति करिणो मुदा। यत्र संगीतसंनादा श्रूयन्ते तत्रतत्र ह॥२२॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सततं सहकारिभिः। तां दृष्ट्वा भार्गवो राजन्मुदा परमया युतः॥२३॥
ययौ तदूर्ध्वं शिखरं यत्र शैवपरं गृहम्। ततो ददर्श राजेंद्र स्निग्धच्छायं महावटम्॥२४॥
तस्याधस्ताद्वरावासं सुसेव्यं सिद्धसंयुतम्। ददर्श तत्र प्राकारं शतयोजनमंडलम्॥२५॥
नानारत्नाचितं रम्यं चतुर्द्वारं गणावृतम्। नन्दीश्वरं महाकालं रक्ताक्षं विकटोदरम्॥२६॥
पिंगलाक्षं विशालाक्षं विरूपाक्षं घटोदरम्। मंदारं भैरवं बाणं रुरुं भैरवमेव च॥२७॥
वीरकं वीरभद्रं च चंडं भृंगिं रिटिं मुखम्। सिद्धेंद्रनाथरुद्रांश्च विद्याधरमहोरगान्॥२८॥
भूतप्रेतपिशाचांश्च कूष्मांडान्ब्रह्मराक्षसान्। वेतालान्दानवेंद्रांश्च योगीन्द्रांश्च जटाधरान्॥२९॥
यक्षकिंपुरुषाश्चैव डाकिनीयोगिनीस्तथा। दृष्ट्वा नंद्याज्ञया तत्र प्रविष्टोऽतर्मुदान्वितः॥३०॥
ददर्श तत्र भुवनैरावृतं शिवमंदिरम्। चतुर्योजनविस्तीर्णं तत्र प्राग्द्वारसंस्थितौ॥३१॥
दृष्ट्वा वामे कार्त्तिकेय दक्ष चैव विनायकम्। नाम भार्गवस्तौ द्वौ शिवतुल्यपराक्रमौ॥३२॥
पार्षदप्रवरास्तत्र क्षेत्रपालाश्च संस्थिताः। रत्नसिंहासनस्थाश्च रत्नभूषणभूषिताः॥३३॥
भार्गवं प्रविशन्तं तु ह्यपृच्छञ्शिवमंदिरम्। विनायको महाराज क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह॥३४॥

प्रकार के रूप धारण करने वाले विचित्र आभूषणों से शोभित थी।।१९।। वह नगरी अनेकों प्रकार के वृक्षों से भरे हुए वनों और उपवनों से युक्त थी। वह नगरी बहुत लम्बे लम्बे सरोवरों और तालाबों से सुशोभित थी।।२०।। उसके बाहरी भाग में चारों और सीता और अलकनन्दा नदियों से घिरी हुई थी। वहाँ पर देवाङ्गनाओं के स्नान के लिये खुला केसर का पिंजर था।।२१।। वहाँ प्यास को दूर करने वाले जल को हाथी पीते हैं।।२१½।। जहाँ गन्धर्वों और अप्सराओं द्वारा साथ-साथ बजाये हुए संगीत के संनाद जहाँ तहाँ सुने जाते हैं।।२१½-२२½।। हे राजन्! उस नगरी को देखकर परम आनन्द से युक्त परशुराम उससे भी ऊँचे शिखर पर गये, जहाँ कि शिव जी का घर है।।२२½-२३½।। उसके बाद हे राजेन्द्र! उन्होंने स्निग्ध छाया वाले महान् वट वृक्ष को देखा, उसके नीचे सुसेव्य सिद्ध से युक्त श्रेष्ठ आवास को देखा, वहाँ उस आवास में सौ योजन लम्बा तो उसका परकोटा था।।२३½-२५।। वहाँ अनेकों प्रकार के रत्नों से गणों से घिरे हुए चार द्वार थे। जिन पर नन्दीश्वर, महाकाल, रक्ताक्ष, विकटोदर विराजमान थे।।२६।। वहाँ पिंगलाक्ष, विशालाक्ष, विरूपाक्ष, घटोदर, भैरव भी थे।।२७।। तथा वाण, रुरु, भैरव, वीरक, वीरभद्र, चण्ड, भृंगि, रिटि, मुख, सिद्ध इन्द्रनाथ,रुद्र, विद्याधर, महान् सर्प विराजमान थे।।२८।। और भूत-पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, दानवेन्द्र, योगीन्द्र, जटाधर विद्यमान थे।।२९।। तथा यक्ष, किंपुरुष, डाकिनी तथा योगिनी विराजमान थे। उनको देखकर वहाँ नन्दी की आज्ञा से परशुराम सानन्द प्रविष्ट हुए।।३०।। वहाँ पर परशुराम ने भुवनों से घिरे हुए शिव मन्दिर को देखा जो चार योजन विस्तीर्ण था, जिनके द्वारों पर वाम द्वार पर कार्तिकेय और दक्षिण द्वार पर गणेश जी को देखकर परशुराम ने शिव तुल्य पराक्रम वाले उन दोनों को प्रणाम किया।।३१-३२।। रत्नों से जड़े हुए सिंहासनों पर रत्नाभूषणों से भूषित मुख्य सभासद क्षेत्रपाल बैठे हुए थे।।३३।। वहाँ शिव मन्दिर में प्रवेश करते हुए परशुराम को गणेश जी महाराज ने उनसे परिचय पूछा और फिर जानकर कहा

निद्रितो ह्युमया युक्तो महादेवोऽधुनेति च। ईश्वराज्ञां गृहीत्वाहमत्रागत्य क्षणांतरे॥३५॥
त्वया सार्द्धं प्रवेक्ष्यामि भ्रातस्तिष्ठात्र सांप्रतम्। विनायकवचश्चैवं श्रुत्वा भार्गवनंदनः॥३६॥
प्रवक्तुमुपचक्राम गणेशं त्वरयान्वितः।

राम उवाच

गत्वा ह्यतःपुरं भ्रातः प्रणम्य जगदीश्वरौ॥३७॥
पार्वतीशंकरौ सद्यो यास्यामि निजमंदिरम्। कार्त्तवीर्यः सुचन्द्रश्च सपुत्रबलबांधवः॥३८॥
अन्ये सहस्रशो भूपाः कांबोजाः पह्लवाः शकाः।
कान्यकुब्जाः कोशलेशा मायावन्तो महाबलाः॥३९॥
निहताः समरे सर्वे मया शंभुप्रसादतः। तमिमं प्रणिपत्यैयव यास्यामि स्वगृहं प्रति॥४०॥
इत्युक्त्वा भार्गवस्तत्र तस्थौ गणपतेः पुरः। प्रोवाच मधुरं वाक्यं भार्गवे स गणाधिपः॥४१॥

विनायक उवाच

क्षणं तिष्ठ महाभाग दर्शनं ते भविष्यति। अद्य विश्वेश्वरो भ्रातर्भवान्या सह वर्त्तते॥४२॥
स्त्रीपुंसोर्युक्तयोस्तात सहैकासनसंस्थयोः। करोति सुखभंगं यो नरकं स व्रजेद्ध्रुवम्॥४३॥
विशेषतस्तु पितरं गुरुं वा भूपतिं द्विजः। रहस्यं समुपासीनं न पश्येदिति निश्चयः॥४४॥
कामतोऽकामतो वापि पश्येद्यः सुरतोन्मुखम्।
स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु॥४५॥

कि अभी ठहरो; क्योंकि भगवान् शिव इस समय उमा के साथ सोये हुए हैं। अतः मैं स्वामी की आज्ञा प्राप्त कर यहाँ क्षणभर में आकर तुम्हारे साथ प्रवेश करूँगा, अतः हे भाई इस समय तुम यहाँ ठहरो।।३४-३५½।। गणेश जी के वचन को सुनकर शीघ्रता करने वाले भृगुनन्दन परशुराम गणेश जी से बोलने लगे।।३५½-३६½।।

परशुराम ने गणेश जी से कहा कि हे भाई मैं अन्तःपुर में जाकर जगदीश्वर पार्वती और परमेश्वर को प्रणाम करके शीघ्र ही अपने घर चला जाऊँगा।।३६½-३७½।। शंभु की कृपा से मैंने कार्तवीर्य सहस्रार्जुन उसके पुत्र सुचन्द्र को पुत्र सेना और बंधुओं सहित अन्य हजारों भूपालों यथा काम्वोज, पह्लव, शक, कान्यकुब्ज, कौशलेश आदि मायावी महाबलियों सभी को युद्ध में मार दिया है; इसलिए यह बताकर तथा प्रणाम करके अपने घर चला जाऊँगा।।३६½-४०।। इस प्रकार कहकर परशुराम गणेश जी के सामने खड़े हो गये, तब वे गणों के अधिपति भगवान् गणेश परशुराम जी से मधुर वाक्य बोले।।४१।।

विनायक ने कहा—हे महाभाग! क्षण भर के लिये ठहरो, तुमको दर्शन होगा। आज भ्रातः! विश्वेश्वर भगवान् शंकर भवानी के साथ हैं।।४२।। अतः हे तात! जब दो स्त्री और पुरुष एक साथ एक आसन पर हों, उस समय जो जो व्यक्ति उनका सुखभंग करता है, वह निश्चित ही नरक को जाता है।।४३।। विशेषरूप से तो ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को माता, पिता, गुरु और राजा को एकान्त में एक आसन पर सोया हुआ निश्चित ही नहीं देखना चाहिये। जो व्यक्ति काम भाव से अथवा अकाम भाव से उनको रमणोन्मुख देखेगा, उस मनुष्य का सात जन्मों तक निश्चित ही स्त्री वियोग होगा अर्थात् सात जन्मों तक उसका विवाह नहीं होगा। यहाँ पर यह दोनों के लिये है, स्त्री देखे तो उसे पति नहीं मिलेगा, पुरुष देखेगा तो उसे पत्नी सात जन्मों तक नहीं मिलेगी।।४४-४५।।

श्रोणिं वक्षःस्थलं वक्रं यः पश्यति परस्त्रियः।
मातुर्वापि भगिन्या वा दुहितुः स नराधमः॥४६॥

भार्गव उवाच

अहो श्रुतमपूर्वं किं वचनं तव वक्रतः। भ्रांत्या विनिर्गतं वापि हास्यार्थमथवोदितम्॥४७॥
कामिनां सविकाराणामेतच्छास्त्रनिदर्शनम्। निर्विकारस्य च शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि॥४८॥
यास्याम्यंतःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक। यथादृष्टं करिष्यामि तत्र यत्समयोचितम्॥४९॥
तत्रैव माता तातश्च त्वया नाम निरूपितौ। जगतां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ॥५०॥
इत्युक्त्वा भार्गवो राजन्नंतर्गंतुं समुद्यतः। विनायकस्तदोत्थाय वारयामास सत्वरम्॥५१॥

वाग्युद्धं च तयोरासीन्मिथो हस्तविकर्षणम्।
दृष्ट्वा स्कंदस्तु संभ्रातो बोधयामास तौ तदा॥५२॥

बाहुभ्यां द्वौ समुद्गृह्य पृथगुत्सारितौ तथा। अथ क्रुद्धो गणेशाय भार्गवः परवीरहा।

परश्वधं समादाय संप्रक्षेप्तुं समुद्यतः॥५३॥
तं दृष्ट्वा गजानो भृगुवरं क्रोधात्क्षिपंतं त्वरा
स्वात्मार्थं परशुं तदा निजकरेणोद्धृत्य वेगेन तु।
भूर्लोकं भुवः स्वरपि तस्योर्ध्वं महर्वैजनं
लोकं चापि तपोऽथ सत्यमपरं वैकुंठमप्यानयत्॥५४॥

जो व्यक्ति पराई स्त्री माता, बहिन अथवा बेटी (पुत्री) की कमर, वक्षःस्थल (छाती) अथवा मुख को देखता है, वह नीच व्यक्ति है।।४६।।

परशुराम ने कहा—अरे मैंने आपके मुख से क्या अपूर्व वचन सुना। यह वचन आपने भ्रान्ति से कहा है अथवा हंसी-मजाक में कहा है; क्योंकि यह जो कहा, वह सब तो कामी पुरुषों तथा बुरे विचारों वालों के लिये है, निर्विकार व्यक्ति तथा शिशु के लिये यहाँ कोई दोष नहीं है।।४७-४८।। इसलिये हे भ्रातः! मैं तो अन्तःपुर में जाऊँगा। तुम्हारा यह क्या कहना कि ठहरो। हे बालक! जैसा मुझे दिखाई देगा, उस समय जो उचित होगा मैं करूँगा। वहाँ जो माता पिता हैं, क्या वे तुम्हारे ही नाम से निरूपित है? क्या वे तुम्हारे ही माता-पिता हैं? वे पार्वती और परमेश्वर तो समस्त संसार के माता-पिता हैं।।४९-५०।।

तब वशिष्ठ ने राजा सगर से कहा कि हे राजन्! ऐसा कहकर वे परशुराम अन्दर जाने के लिये तैयार हुए तो उन्हें गणेश जी ने उठकर रोक दिया।।५१।। तप उन दोनों में परस्पर वाग्युद्ध और हाथापायी होने लगी। परशुराम घुसने लगे, गणेश जी उनको हाथ पकड़कर खींचने लगे। यह देखकर कार्तिकेय तो आश्चर्यचकित हो गये, तब उन्होंने उन दोनों को अपनी भुजाओं में पकड़कर अलग-अलग कर दिया। इसके बाद शत्रु को मारने वाले क्रोधित परशुराम परशु को लेकर मारने को तैयार हुए।।५२-५३।। तब क्रोध से परशु फेंकने वाले परशुराम को तथा अपनी ओर आये हुए परशु को देखकर गणेश जी ने वेग पूर्वक उस परशु को पकड़कर वेगपूर्वक ऐसा फेंका कि वह परशु भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक को पार कर बैकुण्ठ में जा पहुँचा।।५४।।

तस्योर्ध्वं च विदर्शयन्भृगुवरं गोलोकमीशात्मजो
निष्पात्याधरलोकसप्तकमपीत्थं दर्शयामास च।
उद्धृत्याथ ततो हि गर्भसलिले प्रक्षिप्तमात्रं
त्वरा भीतं प्राणपरिप्सुमानयदथो तत्रैव यत्रास्थितः॥५५॥

।।इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४१।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

परशुरामगणेशयोर्युद्धवर्णनं नाम

द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

एवं संभ्रामितो रामो गणाधीशेन भूपते। हर्षशोकसमाविष्टो विंचिंत्यात्मपराभवम्॥१॥
गणेशं चाभितो वीक्ष्य निर्विकारमवस्थितम्। क्रोधाविष्टो भृशं भूत्वा प्राक्षिपत्स्वपरश्वधम्॥२॥
गणेशस्त्वभिवीक्ष्याथ पित्रा दत्तं परश्वधम्। अमोघं कर्त्तुकामस्तु वामे तं दशनेऽग्रहीत्॥३॥

उसके भी ऊपर गोलोक में परशुराम को पहुंचा दिया, वहाँ पर गोलोक के स्वामी कृष्ण ने जब अपने पुत्र को सात अधर लोकों में देखा, तब उनको निकालकर गर्भ के जल में गिरे हुए को शीघ्र भयभीत और प्राण बचाने की इच्छा वाले परशुराम को वहीं पर जहाँ थे, स्थित कर दिया।।५५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४१वां अध्याय भार्गवचरित में परशुराम का कैलास जाना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय-४२

परशुराम गणेश युद्ध वर्णन

वशिष्ठ बोले अब सूत जी तथा ऋषियों के कथा-प्रसंग में सगर और वशिष्ठ के संवाद में वशिष्ठ जी ने राजा सगर से कहा कि हे राजन्! जब गणपति ने परशुराम को परशु के साथ फेंक दिया, तब वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। तब हर्ष और शोक से युक्त होकर तथा अपनी पराजय को विचारकर तथा निर्विकार रूप से अवस्थित गणेश जी को चारों ओर देखकर बहुत अधिक क्रोध से युक्त हो गये तथा क्रोधाविष्ट परशुराम ने अपने परशु को फेंका।।१-२।। गणेश जी ने अपने पिता शिवजी द्वारा दिये गये परशु को देखकर अमोघ करने की इच्छा से बांयें दाँत में ग्रहण

स तु दंतः कुठारेण विच्छिन्नो भूतलेऽपतत्। भुवि शोणितसंदिग्धो वज्राहत इवाचलः॥४॥
दंतपातेन विध्वस्ता साब्धिद्वीपधरा धरा। चकंपे पृथिवीपाल लोकास्त्रासमुपागताः॥५॥
हाहाकारो महानासीद्देवानां दिवि पश्यताम्। कार्त्तिकेयादयस्तत्र चुक्रुशुर्भृशमातुराः॥६॥
अथ कोलाहलं श्रुत्वा दंतपातध्वनिं तथा। पार्वतीशंकरौ तत्र समाजग्मतुरीश्वरौ॥७॥
हेरम्बं पुरतो दृष्ट्वा वक्रतुंडैकदंतिनम्। पप्रच्छ स्कन्दं पार्वती किमेतदिति कारणम्॥८॥
स तु पृष्टस्तदा मात्रा सेनानीः सर्वमादितः। वृत्तांतं कथयामास मात्रे रामस्य शृण्वतः॥९॥
सा श्रुत्वोदंतमखिलं जगतां जननी नृप। उवाच शंकरं रुष्टा पार्वती प्राणनायकम्॥१०॥

पार्वत्युवाच

अयं ते भार्गवः शंभो शिष्यः पुत्रः समोऽभवत्।
त्वत्तो लब्ध्वा परं तेजो वर्म त्रैलोक्यजिद्विभो॥११॥
कार्त्तवीर्यार्जुनं संख्ये जितवानूर्जितं नृपम्।
स्वकार्यं साधयित्वा तु प्रादात्तुभ्यं च दक्षिणाम्॥१२॥

यत्ते सुतस्य दशन कुठारेण न्यपातयत्। अनेनैव कृतार्थस्त्वं भविष्यसि न संशयः॥१३॥
त्वमिमं भार्गवं शम्भो रक्षांतेवासिसत्तमम्। तव कार्याणि सर्वाणि साधयिष्यति सद्गुरोः॥१४॥

अहं नैवात्र तिष्ठामि यत्त्वया विमता विभो।
पुत्राभ्यां सहिता यास्ये पितुः स्वस्य निकेतनम्॥१५॥

कर लिया।।३।। वह दाँत तो कुठार से टूटकर भूमि पर गिर गया। भूमि पर वह खून से सना हुआ दाँत इन्द्र के वज्र से आहत पर्वत के समान था।।४।। हे राजन्! उस दाँत के गिरने से समुद्रों सहित सात द्वीपों वाली पृथ्वी कांपने लगी और सभी लोक भयभीत हो गये।।५।। स्वर्ग में देवताओं में हाहाकार था, वहाँ पर कार्तिकेय आदि सभी बहुत अधिक व्याकुल हो कोसने लगे।।६।।

इसके बाद कोलाहल तथा दाँत गिरने की ध्वनि को सुनकर वहाँ पार्वती परमेश्वर दोनों वहाँ आ गये।।७।। सामने ही गणेश जी के एक दाँत को टूटा हुआ देखकर पार्वती ने कुमार कार्तिकेय से पूछा कि इसका क्या कारण है?।।८।। माता के द्वारा पूछे गये कुमार कार्तिकेय ने परशुराम के सुनते हुए सारा वृत्तान्त मां को कह सुनाया।।९।। उन संसार की जननी ने दाँत गिरने की सारी कहानी सुनकर उन संसार की जननी पार्वती ने प्राणनायक शंकर जी से कहा।।१०।।

पार्वती ने कहा कि शम्भो! यह भार्गव परशुराम आपका पुत्र तुल्य शिष्य हो गया था, हे विभो! इसने आपसे परम तेज प्राप्त कर तीनों लोकों को जीत लिया था।।११।। युद्ध में ऊर्जा प्राप्त कार्तवीर्यार्जुन को जीत लिया और अपना कार्य सिद्ध करके आपको यह दक्षिणा दी कि तुम्हारे पुत्र के दाँत को कुठार से गिरा दिया, इससे ही आपके उपकार को चुका दिया। इसी से आप कृतार्थ हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।।१२-१३।। हे शिव! तुम अपने इस शिष्य परशुराम को अपने साथ रखकर रक्षा करो, आप अच्छे गुरु के सब कार्यों को यह सिद्ध कर देगा।।१४।। हे विभो! आप द्वारा अपमानित मैं अब आपके पास नहीं रहूँगी, मैं अपने दोनों पुत्रों के साथ अपने पिता के घर चली जाऊँगी।।१५।।

संतो भुजिष्यातनयं सत्कुर्वंत्यात्मपुत्रवत्। भवता तु कृतो नैव सत्कारो वचसाऽपि हि॥१६॥
आत्मनस्तनयस्यास्य ततो यास्यामि दुःखिता।

वसिष्ठ उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं पार्वत्या भगवान्भवः॥१७॥
नोवाच किंचिद्वनं साधु वासाधु भूपते। सस्मार मनसा कृष्णं प्रणतक्लेशनाशनम्॥१८॥
गोलोकनाथं गोपीशं नानानुनयकोविदम्। स्मृतमात्रोऽथ भगवान् केशवः प्रणतार्त्तिहा।
आजगाम दयासिंधुर्भक्तवश्योऽखिलेश्वरः॥१९॥
मेघश्यामो विशदवदनो रत्नकेयूरहारो विद्युद्वासा मकरसदृशे कुंडले संदधानः।
बर्हापीडं मणिगणयुतं बिभ्रदीषत्स्मितास्यो
गोपीनाथो गदितसुयशाः कौस्तुभोद्भासिवक्षाः॥२०॥
राधया सहितः श्रीमान् श्रीदाम्ना चापराजितः॥२१॥
मुष्णांस्तेजांसि सर्वेषां स्वरुचा ज्ञानवारिधिः। अथैनमागतं दृष्ट्वा शिवः संहृष्टमानसः॥२२॥
प्रणिपत्य यथान्यायं पूजयामास चागतम्। प्रवेश्याभ्यंतरे वेश्मराधया सहितं विभुम्॥२३॥
रत्नसिंहासने रम्ये सदारं स न्यवेशयत्। अथ तत्र गता देवी पार्वती तनयान्विता॥२४॥
ननाम चरणान्प्रभ्वोः पुत्राभ्यां सहिता मुदा। अथ रामोऽपि तत्रैव गत्वा नमितकंधरः॥२५॥

सन्त पुरुष को अपने शिष्य को पुत्र के समान सत्कार करना चाहिये। आपने तो वाणी से भी सत्कार नहीं किया है।।१६।। इसके बाद पार्वती ने कहा कि मैं अपने इस पुत्र को मैं दुःखित होकर ले जाऊँगी।।१६½।।

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! इस प्रकार पार्वती के वचनों को सुनकर भगवान् शंकर ने अच्छे या बुरे (साधु अथवा असाधु) कोई वचन नहीं कहा और फिर उन्होंने शरण में आये हुए की क्लेश को नष्ट करने वाले गोलोक के स्वामी, गोपीश, अनेकों प्रकार के अनुनयों को जानने वाले भगवान् कृष्ण को मन-से स्मरण किया। इसके बाद स्मरण करने मात्र से शरणागत के दुःख को हरने वाले, दयासिन्धु भक्तों के वश में रहने वाले अखिलेश्वर भगवान् कृष्ण आ गये।।१६½-१९।।

वे मेघ के समान श्याम और विशाल वदन से युक्त थे, रत्नजटित बाजूबन्द और हार पहने हुये थे, चमकते हुए वस्त्र पहने हुए थे और कानों में मकर के समान कुण्डल पहने हुये थे। मणियों से युक्त मोरपंखी का मुकुट धारण किये हुए थे। कुछ मुस्कराते हुए गोपीनाथ, कथित सुन्दर यशवाले कौस्तुभमणि जिनके वक्षःस्थल पर चमक रही थी।।२०।। वे राधा के साथ थे, श्रीमान् और श्री कान्तियुक्त, किसी से भी न पराजित होने वाले, सबके तेजों को छिपाये हुए, अपनी रुचि से ज्ञान के सागर थे।।१९-२१½।। इसके बाद इन भगवान् को आया हुआ देखकर प्रसन्न चित्त शिव ने प्रणाम कर यथाविधि उनका पूजन किया।।२१½-२२½।। फिर राधा के सहित उनको अपने घर में प्रवेश कराकर रम्य रत्न के सिंहासन पर पत्नी सहित बैठाया।।२२½-२३½।। इसके बाद वहाँ पर पार्वती देवी अपने पुत्रों के साथ आ गयीं, तब उन्होंने अपने दोनों पुत्रों के सहित उनके चरणों को स्पर्श किया।।२३½-२४½।। इसके बाद नतमस्तक होते हुए परशुराम भी वहाँ पहुँच गये। वे परशुराम व्याकुल मन होकर पार्वती जी के चरणों में गिर

पार्वत्याश्चरणोपांते पपाताकुलमानसः। सा यदा नाभ्यनंदत्तं भार्गवं प्रणतं पुरः॥२६॥
तदोवाच जगन्नाथः पार्वतीं प्रीणयन्गिरा॥२७॥

श्रीकृष्ण उवाच

अयि नगनंदिनि निंदितचंद्रमुखि त्वमिमं जमदग्निसुतम्।
नय निजहस्तसरोजसमर्पितमस्तकमंकमनंतगुणे॥२८॥
भवभयहारिणि शंभुविहारिणि कल्मषनाशिनि कुंभिगते।
तव चरणे पतितं सततं कृतकिल्विषमप्यवदेहि वरम्॥२९॥
शृणु देवि महाभागे वेदोक्तं वचनं मम। यच्छ्रुत्वा हर्षिता नूनं भविष्यसि न संशयः।
विनायकस्ते तनयो महात्मा महतां महान्॥३०॥
यं कामः क्रोध उद्वेगो भयं नाविशते कदा। वेदस्मृतिपुराणेषु संहितासु च भामिनि॥३१॥
नामान्यस्योपदिष्टानि सुपुण्यानि महात्मभिः।
यानि तानि प्रवक्ष्यामि निखिलाघहराणि च॥३२॥
प्रमथानां गणा ये च नानारूपा महाबलाः। तेषामीशस्त्वयं यस्माद्गणेशस्तेन कीर्त्तितः॥३३॥
भूतानि च भविष्याणि वर्त्तमानानि यानि च।
ब्रह्मांडान्यखिलान्येव यस्मिँल्लंबोदरः स तु॥३४॥
यः स्थिरो देवयोगेनच्छिन्नं संयोजितं पुनः। गजस्य शिरसा देवि तेन प्रोक्तो गजाननः॥३५॥
चतुर्थ्यामुदितश्चंद्रो दर्भिणा शप्त आतुरः। अनेन विधृतो भाले भालचंद्रस्ततः स्मृतः॥३६॥

पड़े।।२४½-२५½।। जब पार्वती ने उन पैरों में गिरे हुए परशुराम का अभिनन्दन नहीं किया, तब जगन्नाथ भगवान् कृष्ण ने पार्वती को प्रसन्न करती हुई वाणी से कहा।।२५½-२६½।।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पर्वतपुत्रि! निन्दित मुख वाली पार्वती अपने करकमलों में समर्पित मस्तक को अपने गोद में उठा लो।।२८।। हे संसार रूपी सागर के भय को हरने वाली, शम्भु के साथ विहार करने वाली, नरक में जाने पर पापों को नष्ट करने वाली, अपने चरणों में गिरे हुए इस अपराधी को वर प्रदान करो।।२९।। हे देवि! हे महाभागे! मेरे वेदोक्त वचन को सुनो, जिसको सुनकर तुम अवश्य हर्षित हो जाओगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। ये विनायक गणेश तुम्हारे पुत्र महानों में महान् हैं, जिसमें काम, क्रोध, उद्वेग और भय कभी भी प्रवेश नहीं करता है।।३०-३०½।। वेदों, स्मृतियों, पुराणों और संहिताओं में हे भामिनि! महात्मा पुरुषों ने बहुत अच्छे पुण्य करने वालों के नाम उपदिष्ट किये हैं, जिनके नाम उपदिष्ट किये उन समस्त पापों को नाश करने वालों के नाम मैं बताऊँगा।।३०½-३२।। ये कामदेव को जीतने वाले शिवजी के ये गण जो अनेकों रूपों वाले और महाबलशाली हैं। उन सबके स्वामी तो ये गणेश जी हैं तथा इसीलिये गणों की ईश होने के कारण उन्हें गणेश कहा गया है।।३३।।

भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल तथा जितने भी अखिल ब्रह्माण्ड हैं, उन सबमें ये लम्बोदर गणेश जी हैं।।३४।। जो ये गणेश जी दैवयोग से कटे हुए शिर वाले होते हुए भी पुनः गज के शिर को जोड़ने के कारण हे देवि! गजानन कहे गये।।३५।। हिरण द्वारा शप्त चतुर्थी तिथि को उदेत आतुर चन्द्रमा इन्होंने अपने मस्तक पर

शप्तः पुरा सप्तभिस्तु मुनिभिः संक्षयं गतः जातवेदा दीपितोऽभूद्येनासौ शूर्पकर्णक;॥३७॥
पुरा देवासुरे युद्धो पूजितो दिविषद्गणैः। विघ्नं निवारयामास विघ्ननाशस्ततः स्मृतः॥३८॥
अद्यायं देवि रामेण कुठारेण निपात्य च। दशनं दैवतो भद्रे ह्येकदंतः कृतोऽमुना॥३९॥
भविष्यत्यथ पर्याये ब्रह्मणो हरवल्लभे। वक्रीभविष्यत्तुंडत्वाद्वक्रतुंडः स्मृतो बुधैः॥४०॥
एवं तवास्य पुत्रस्य संति नामानि पार्वति। स्मरणात्पापहारीणि त्रिकालानुगतान्यपि॥४१॥
अस्मात्त्रयोदशीकल्पात्पूर्वस्मिन्दशमीभवे। मयास्मै तु वरो दत्तः सर्गदेवाग्रपूजने॥४२॥
जातकर्मादिसंस्कारे गर्भाधानादिकेऽपि च। यात्रायां च वणिज्यादौ युद्धे देवार्चने शुभे॥४३॥

संकष्टे काम्यसिद्ध्यर्थं पूजयेद्यो गजाननम्।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यंत्येव न संशयः॥४४॥

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्तं तु समाकर्ण्य कृष्णेन सुमहात्मना। पार्वती जगतां नाथा विस्मिताऽसीच्छुभानना॥४५॥
यदा नैवोत्तरं प्रादात्पार्वती शिवसन्निधौ। तदा राधाऽब्रवीद्देवीं शिवरूपा सनातनी॥४६॥

श्रीराधोवाच

प्रकृतिः पुरुषश्चोभाव्योन्याश्रयविग्रहौ। द्विधा भिन्नौ प्रकाशेते प्रपंचेऽस्मिन् यथा तथा॥४७॥
त्वं चाहमावयोर्देवि भेदो नैवास्ति कश्चन। विष्णुस्त्वमहमेवास्मि शिवो द्विगुणतां गतः॥४८॥

धारण कर लिया, तब से इन्हें भालचन्द्र कहा गया।।३६।। प्राचीनकाल में सात मुनियों द्वारा शाप दिये गये ये पूर्ण नाश को प्राप्त हो गये थे, उस समय अग्नि-देवता बहुत दीपित हो गये थे, जिसके कारण वह शूर्प कर्णक (सूप के समान कान वाले) हो गये।।३७।। प्राचीन काल में देवासुर संग्राम में स्वर्ग में देवों द्वारा पूजित होने के कारण इन्होंने उनके विघ्नों का निवारण कर दिया, इसलिए ये विघ्न नाश (विघ्नविनायक) कहे गये।।३८।। हे देवि! आज परशुराम ने इनका एक दाँत गिरा दिया। अतः अब ये एकदन्त कहे जायेंगे।।३९।। इसके बाद ब्रह्मा और शंकर के प्रिय तथा अपनी टेढ़ी सूँड़ होने के कारण अन्य नाम के रूप में वक्रतुण्ड कहे जायेंगे। अर्थात् उनकी टेढ़ी सूँड़ के कारण प्रेम में ब्रह्मा जी तथा शंकर जी इनका नाम वक्रतुण्ड रख लेंगे।।४०।। इस प्रकार हे पार्वति! तुम्हारे इस पुत्र के तीनों कालों में अनुगत स्मरणमात्र से पाप को हरने वाले नाम हैं।।४१।। इस त्रयोदशी कल्प में पूर्व दशमी को मेरे द्वारा इन्हें यह वर दिया जाता है कि सब देवों के पूजन में, जातकर्म आदि संस्कार में, यात्रा में, वाणिज्य आदि में, युद्ध में, शुभ देवार्चन में और सम्यक् कष्ट होने पर काम्य सिद्धि के लिये जो गजानन की पूजा करेगा, उसके सब कार्य सिद्ध होंगे, इसमें संशय नहीं है।।४२-४४।।

वशिष्ठ ने सगर से कहा कि हे राजन्! इस प्रकार सुमहात्मा कृष्ण के वचनों को सुनकर संसार की स्वामिनी शुभानना पार्वती आश्चर्यचकित हो गयीं।।४५।। जब पार्वती ने शिव के पास में कोई उत्तर नहीं दिया, तब शिवरूप सनातनी देवी पार्वती से राधा बोलीं।।४६।।

राधा ने कहा कि प्रकृति और पुरुष दोनों परस्पर में एक-दूसरे पर आश्रित शरीर वाले हैं। ये दोनों इस प्रपंच में भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं।।४७।। तुम और मैं तथा हम दोनों में हे देवि कोई भेद नहीं है। तुम विष्णु हो और

शिवस्य हृदये विष्णुर्भवत्या रूपमास्थितः। मम रूपं समास्थाय विष्णोश्च हृदये शिवः॥४९॥
एष रामो महाभागे वैष्णवः शैवतां गतः। गणेशोऽयं शिवः साक्षाद्वैष्णवत्वं समास्थितः॥५०॥
तयोरावयोः प्रभ्वोश्चापि भेदो न दृश्यते। एवमुक्त्वा तु सा राधा क्रोडे कृत्वा गजाननम्॥५१॥
मूर्ध्न्युपाघ्राय पस्पर्श स्वहस्तेन कपोलके। स्पृष्टमात्रे कपोले तु क्षतं पूर्त्तिमुदागतम्॥५२॥
पार्वती सुप्रसन्नाभूदनुनीताऽथ राधया। पादयोः पतितं राममुत्थाप्य निजपाणिना॥५३॥
क्रोडीचकार सुप्रीता मूर्ध्न्युपाघ्राय पार्वती। एवं तयोस्तु सत्कारं दृष्ट्वा रामगणेशयोः॥५४॥

कृष्णः स्कंदमुपाकृष्य स्वांके प्रेम्णा न्यवेशयत्।
अथ शंभुरपि प्रीतः श्रीदामानमुपस्थितम्॥५५॥
स्वोत्संगे स्थापयामास प्रेम्णा सत्कृत्य मानदः॥५६॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४२॥

मैं शिव हूँ, हम दोनों दुगुने हो गये हैं।।४८।। शिव के हृदय में विष्णु आपके द्वारा पूर्णरूप से स्थित हैं तथा मेरे रूप को हृदय में धारण कर विष्णु के हृदय में शिवपूर्णतः स्थित हैं। इन दोनों हमारे स्वामियों में भी कोई नहीं दिखायी देता है। ऐसा कहकर राधा ने गजानन को गोद में रखकर उनके शिर का चुम्बन कर अपने हाथ से मस्तक पर स्पर्श किया छूने मात्र से ही कपोल पर हुआ घाव भर गया।।४९-५२।।

इसके बाद राधा के द्वारा अनुनय की गयी पार्वती बहुत प्रसन्न हो गयीं, तब पैरों पर पड़े हुए परशुराम को अपने हाथों से उठाकर उनके मस्तक को चूमकर प्रसन्न पार्वती ने उन्हें गोदी में बैठा लिया।।५३-५३½।। इस प्रकार उन दोनों परशुराम और गणेश का सत्कार देखकर कृष्ण ने कार्तिकेय को पकड़कर प्रेम से अपनी गोद में बैठा लिया। इसके बाद मान देने वाले शम्भु ने भी उपस्थित कृष्ण पुत्र श्रीदामा को प्रेम से आदर करके अपनी गोद में बैठा लिया।।५३½-५६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४२वां अध्याय भार्गवचरित में परशुराम गणेश युद्ध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

परशुरामकृतपार्वतीस्तुतिर्नाम

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

एवं सुस्निग्धचित्तेषु तेषु तिष्ठत्सु भूपते। भवान्युत्संगतो रामः समुत्थाय कृतांजलिः॥१॥
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा निर्विशेषं विशेषवत्। अद्वयं द्वैतमापन्नं निर्गुणं सगुणात्मकम्॥२॥

राम उवाच

प्रकृतिविकृतिजातं विश्वमेतद्विधातुं मम कियदनुभातं वैभवं तत्प्रमातुम्।
अविदिततनुनामाऽभीष्टवस्त्वेक धामाऽभवदथ भव भामा पातु मां पूर्णकामा॥३॥
प्रकटितगुणभानं कालसंख्याविधानं सकलभवनिदानं कीर्त्यते यत्प्रधानम्।
तदिह निखिलतातः संबभूवोक्षपातः कृतकृतकनिपातः पातु मामद्य मातः॥४॥
दनुकुलविनाशी लेखपाताविनाशी प्रथमकुलविनाशी सर्वविद्याप्रकाशी।
प्रसभरचितकाशी भक्तदत्ताखिलाशीरवतु विजितपाशी मांसदा षण्मुखाशी॥५॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय-४३

परशुरामकृत पार्वती स्तुति

वशिष्ठ ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार जब सभी लोग प्रेमपूर्ण प्रसन्न मन से बैठे थे, तभी परशुराम ने पार्वती की गोद से उठकर हाथ जोड़कर प्रयत्नशील होते हुए उन निर्विशेष और विशेष वाले अद्वैत और द्वैत गुण वाले निर्गुण और सगुण को पूर्णतः प्रसन्न किया।।१-२।। इन निम्न श्लोकों में परशुराम ने सबकी वन्दना की।

परशुराम ने कहा—इस प्रकृति और विकृति से उत्पन्न हुए विश्व को बनाने के लिये मेरे चमकते हुए वैभव को बनाने के लिये आप अविदित शरीर और नाम वाली हैं। अभीष्ट वस्तु के एक धाम आप भगवान् शंकर की सुन्दर पत्नी हैं, सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं। अतः आप मेरी रक्षा कीजिये।।३।। आप में समस्त गुण प्रतीत होते हैं, अर्थात् प्रकृति सगुण है, उसमें ही सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुण हैं। समय और संख्या का विधान आप मां प्रकृति में है, समस्त संसार रूपी प्रपंच का आप ही निदान हैं, इसीलिये आपको ही प्रधान (तत्त्वप्रकृति) कहा जाता है। इस संसार की रक्षा करने वाली इस संसार की निखिलता आप से ही है तथा यहसंसार तुम्हारे अनुग्रह का फल है। यह एक तुम्हारी उक्षपात है अर्थात् तुम्हारी वर्षा द्वारा ही पैदा हुआ है तथा यह सब प्रपंच तुम्हारा ही बनाया हुआ है जो कि मिथ्या रूप है तथा तुम्हीं द्वारा उसका निपात भी है।उसका विनाश भी तुम ही करती हो।।४।।

हे दानवकुल का विनाश करने वाले! लेखपाता विनाशी! ब्रह्माण्ड में प्रथम कुल का विकास करने वाले! सब विद्याओं का प्रकाश करने वाले! बलपूर्वक काशी की रचना करने वाले, भक्तों का समस्त आशीर्वाद देने वाले!

हरनिकट निवासी कृष्णसेवाविलासी प्रणतजनविभासी गोपकन्याप्रहासी।
हरकृतबहुमानो गोपिकेशैकतानो विदितबहुविधानो जायतां कीर्तिहा नो।।६।।
प्रभुनियमना यो नुन्नभक्तांतरायो हृतदुनिरतनिकायो ज्ञानदातारायोः।
सकलगुणगरिष्ठो राधिकांके निविष्टो मम कृतमपराधं क्षंतुमर्हत्वगाधम्।।७।।

या राधा जगदुद्भवस्थितिलयेष्वाराध्यते वा जनैः
शब्दं बोधयतीशवक्रविगलत्प्रेमामृतास्वादनम्।
रासेशी रसिकेश्वरी रमणदृन्निष्ठानिजानंदिनी नेत्री
सा परिपातु मामवनतं राधेति या कीर्त्यते।।८।।
यस्या गर्भसमुद्भवो ह्यतिविराड्यस्यांशभूतो विराट्
यन्नाभ्यंवुरुहोद्भवेन विधिनैकांतोपदिष्टेन वै सृष्टं
सर्वमिदं चराचरमयं विश्वं च यद्रोमसु ब्रह्मांडानि
विभांति तस्य जननी शश्वत्प्रसन्नाऽस्तु सा।।९।।
पायाद्यः स चराचरस्य जगतो व्यापी विभुः सच्चिदा-
नंदाब्धिः प्रकटस्थितो विलसति प्रेमांधया राधया।
कृष्णः पूर्णतमो ममोपरि दयाक्लिन्नांतरः स्तात्सदा
येनाहं सुकृती भवामि च भवाम्यानंदलीनांतरः।।१०।।

पाश को जीतने वाले, छः मुखों से खाने वाले कार्तिकेय आप मेरी सदा रक्षा करो।।५।। हे भगवान् शंकर के निकट रहने वाले, कृष्ण की सेवा में विलास करने वाले, नतमस्तक लोगों को विशेष चमत्कृत करने वाले, गोपियों के साथ प्रहास करने वाले! भगवान् शंकर द्वारा बहुत मान किये गये, गोपिकाओं के एक मात्र स्वामी, बहुत प्रकार के विधानों को जानने वाले! हमको कीर्ति बढ़ाने वाले हो जाओ।।६।। जो प्रभु में मन को नियन्त्रित करने वाले, प्रोत्साहित भक्तों के अन्तःकरण में रहने वाले, पाप समूह को हरने वाले, ज्ञानदातापरायण, समस्त गुणों में सबसे बड़े गुण वाले, राधिका की गोद में बैठे हुए हे गणेश जी आप मुझ अगाध अपराधी को क्षमा करें।।७।।

जो राधा संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयों में लोगों द्वारा आराधना की जाती हैं तथा राधा शब्द ईश्वर के मुख से निकले हुए प्रेमामृत के स्वाद का बोध कराता है। वे रासलीला की स्वामिनी, रसिकेश्वरी, रमण में हरि में निष्ठा से स्वयं को आनन्द देने वाले नेत्रों वाली मुझ अवनत की रक्षा करें, जो राधा इस नाम से पुकारी जाती हैं।।८-९।। जिसके गर्भ से अतिविराड्य के अंशभूत विराट् उत्पन्न हुए, जिनकी नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा को एकान्त में उपदेश दिया कि सृष्टि की रचना करो, तदनुसार ब्रह्मा ने इस चराचर जगत् को पैदा किया तथा जिन ब्रह्मा के रोमों में ब्रह्माण्ड सुशोभित है, उन ब्रह्मा की जननी, जो सदा प्रसन्न रहती हैं, वे राधा मेरी रक्षा करें तथा वे चराचर जगत् के व्यापी विभु, सत्, चित् और आनन्द के समुद्र होते हुए अर्थात् निराकार होते हुए, प्रकट और स्थित होकर प्रेम में अंधी हुई राधा से विलास करते हैं, वे कृष्ण पूर्णतया ब्रह्म मेरे ऊपर सदा दया से आर्द्र हृदय वाले हो जायें, जिससे मैं पुण्यात्मा हो जाऊँ और आनन्द को छिपाये हुए हृदय वाला हो जाऊं अर्थात् मेरा हृदय आनन्द में लीन हो जाये।।१०।।

वसिष्ठ उवाच

स्तुत्वैवं जामदग्न्यस्तु विरराम ह तत्परम्। विज्ञाताखिलतत्त्वार्थो हृष्टरोमा कृतार्थवत्॥११॥

अथोवाच प्रसन्नात्मा कृष्णः कमललोचनः।
भार्गवं प्रणतं भक्त्या कृपापात्रं पुरस्थितम्॥१२॥

कृष्ण उवाच

सिद्धोऽसि भार्गवेंद्र त्वं प्रसादान्मम सांप्रतम्। अद्य प्रभृति वत्सास्मिँल्लोके श्रेष्ठतमो भव॥१३॥
तुभ्यं वरो मया दत्तः पुरा विष्णुपदाश्रमे। तत्सर्वं क्रमतो भाव्यं समा बह्वीस्त्वया विभो॥१४॥
दया विधेया दीनेषु श्रेय उत्तममिच्छता। योगश्च साधनीयो वै शत्रूणां निग्रहस्तथा॥१५॥

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिंस्तेजसा च बलेन च।
ज्ञानेन यशसा वापि सर्वश्रेष्ठतमो भवान्॥१६॥

अथ स्वगृहमासाद्य पित्रोः शुश्रूषणं कुरु। तपश्चर यथाकालं तेन सिद्धिः करस्थिता॥१७॥
राधोत्संगात्समुत्थाप्य गणेशं राधिकेश्वरः। आलिंग्य गाढं रासेण मैत्रीं तस्य चकार ह॥१८॥
अथोभावपि संप्रीतौ तदा रामगणेश्वरौ। कृष्णाज्ञया महाभागौ बभूवतुररिंदम॥१९॥
एतस्मिन्नंतरे देवी राधा कृष्णप्रिया सती। उभाभ्यां च वरं प्रादात्प्रसन्नास्या मुदान्विता॥२०॥

राधोवाच

सर्वस्य जगतो वंद्यौ दुराधर्षौ प्रियावहौ। मद्भक्तौ च विशेषेण भवंतौ भवतां सुतौ॥२१॥

इस प्रकार परशुराम ने वहाँ उपस्थित सबकी वन्दना की। वशिष्ठ ने कहा कि इस प्रकार स्तुति करके तत्त्वार्थ को जानने वाले, प्रसन्नता से रोमांचित, दर्शन से कृतार्थ परशुराम चुप हो गये।।११।। इसके बाद कमललोचन प्रसन्नात्मा भगवान् कृष्ण सामने स्थित भक्ति से अवनत कृपा के पात्र परशुराम से बोले।।१२।।

कृष्ण ने कहा—हे भार्गवेन्द्र! परशुराम! तुम इस समय मेरी कृपा से सिद्ध पुरुष हो गये हो। आज से वत्स! तुम इस लोक में श्रेष्ठतम हो जाओ।।१३।। मैंने तुम्हें पहले ही विष्णुपद के आश्रम में ही वर दे दिया था, वह सब क्रम से होना है, हे विभो! तुम बहुत वर्ष के हो गये हो।।१४।। अतः उत्तम श्रेय (कल्याण) चाहते हुए तुम्हें दीनों पर दया करनी चाहिये। योग की साधना करनी चाहिये और शत्रुओं का नाश करना चाहिये।।१५।। इस संसार में तेज बल, ज्ञान और यश में आपके समान कोई नहीं है, आप इस संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं।।१६।। इसलिये अपने घर जाकर तुम अपने पिता की सेवा करो और यथा समय तपस्या करो, उससे सफलता हाथ में स्थित हो जायेगी।।१७।। इस प्रकार कहकर राधा की गोद से गणेश जी को उठाकर राधिकेश्वर भगवान् कृष्ण ने परशुराम से उनकी मित्रता करा दी।।१८।। इसके बाद परशुराम और गणेश जी वे दोनों ही महाभाग शत्रुओं का दमन करने वाले हो गये।।१९।। इसी बीच में कृष्ण की प्रिया देवी राधा और सती दोनों ने प्रसन्न मुख और आनन्द के साथ उन्हें वर प्रदान कर दिया।।२०।।

राधा ने कहा—हे सती जी! आपके ये दोनों पुत्र सब संसार के वन्दनीय होंगे, ये किसी से मारे नहीं जा सकेंगे तथा सबके प्रिय होंगे।।२१।।

भवतोर्नाम चोच्चार्य यत्कार्यं यः समारभेत्।
सिद्धिं प्रयातु तत्सर्वं मत्प्रसादाद्धि तस्य तु॥२२॥
अथोवाच जगन्माता भवानी भववल्लभा। वत्स राम प्रसन्नाऽहं तुभ्यं कं प्रददे वरम्।
तं प्रब्रूहि महाभाग भयं त्यक्त्वा सुदूरतः।

राम उवाच

जन्मांत रसहस्रेषु येषुयेषु व्रजाम्यहम्॥२३॥
कृष्णयोर्भवयोर्भक्तो भविष्यामीति देहि मे।
अभेदेन च पश्यामि कृष्णौ चापि भवौ तथा॥२४॥

पार्वत्युवाच

एवमस्तु महाभाग भक्तोऽसि भवकृष्णयोः। चिरंजीवी भवाशु त्वं प्रसादान्मम सुव्रत॥२५॥
अथोवाच धराधीशः प्रसन्नस्तमुमापतिः। प्रणतं भार्गवेंद्रं तु वरार्हं जगदीश्वरः॥२६॥

शिव उवाच

रामभक्तोऽसि मे वत्स यस्ते दत्तो वरो मया।
स भविष्यति कार्त्स्न्येन सत्यमुक्तं न चान्यथा॥२७॥
अद्यप्रभृति लोकेऽस्मिन् भवतो बलवत्तरः। न कोऽपि भवताद्वत्स तेजस्वी च भवत्परः॥२८॥

वसिष्ठ उवाच

अथ कृष्णऽप्यनुज्ञाप्य शिवं च नगनंदिनीम्।
गोलोकं प्रययौ युक्तः श्रीदाम्ना चापि राधया॥२९॥

आपके इन पुत्रों के नाम को उच्चारण करके संसार में कोई मनुष्य किसी कार्य को प्रारम्भ करेगा। मेरे प्रसाद से उसके उस काम में अवश्य सफलता प्राप्त होगी।।२२।। इसके बाद शम्भुप्रिया जगन्माता भवानी ने कहा कि हे पुत्र परशुराम मैं प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें कौंन-सा वर दूँ। हे महाभाग! बहुत दूर तक भय को त्याग कर उस वर को माँगो।।२२½।।

परशुराम ने कहा कि हजारों जन्मों में जहाँ जहाँ मैं जाऊँ (जन्म लूँ) आपका और शंकर जी का भक्त बनूँ यह वर दीजिये तथा मैं कृष्ण और भगवान् शंकर को अभेद से देखूँ।।२४।।

पार्वती ने कहा—हे महाभाग! ऐसा ही होगा। तुम भगवान् शिव और भगवान् कृष्ण के भक्त हो, हे सुन्दर प्रतिज्ञा वाले तुम मेरे प्रसाद से शीघ्र चिरंजीवी होओ।।२५।। उसके बाद धराधीश उमापति शंकर तथा जगदीश्वर भगवान् कृष्ण दोनों उन वर के योग्य नतमस्तक परशुराम से बोले।।२६।।

शिव जी ने कहा— हे वत्स! राम! तुम मेरे भक्त हो, अतः मैंने जो तुम्हें वर दिया है, वह समस्त रूप से सत्य होगा, अन्यथा नहीं होगा।।२७।। आज से इस संसार में हे वत्स! तुमसे अधिक तेजस्वी कोई नहीं होगा।।२८।।

वशिष्ठ ने कहा—इसके बाद कृष्ण शिव जी को पर्वत पुत्री पार्वती को अनुमति प्रदान कर अपने पुत्र श्रीदामा और पत्नी राधा के साथ गोलोक को चले गये।।२९।।

अथ रामोऽपि धर्मात्मा भवानीं च भवं तथा। संपूज्य चाभिवाद्याथ प्रदक्षिणमुपाक्रमीत्॥३०॥
गणेशं कार्त्तिकेयं च नत्वापृच्छ्य च भूपते। अकृतव्रणसंयुक्तो निश्चक्राम गृहांतरातम्॥३१॥
निष्क्रम्यमामो रामस्तु नंदीश्वरमुखैर्गणैः। नमस्कृतो ययौ राजन्स्वगृहं परया मुदा॥३२॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४३॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

परशुरामेणकार्तवीर्यवंशाविनाशवर्णनं नाम

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

राजन्नेवं भृगुर्विद्वान्पश्यञ्जनपदान्बहून्। समाजगाम धर्मात्माऽकृतव्रणसमन्वितः॥१॥
निलिल्युः क्षत्रियाः सर्वे यत्र तत्र निरीक्ष्य तम्। व्रजंतं भार्गवं मार्गे प्राणरक्षणतत्पराः॥२॥
अथाससाद राजेंद्र रामः स्वपितुराश्रमम्। शांतसत्त्वसमाकीर्णं वेदध्वनिनिनादितम्॥३॥
यत्र सिंहा मृगा गावो नागमार्ज्जारमूषकाः। समं चरंति संहृष्टा भयं त्यक्त्वा सुदूरतः॥४॥

इसके बाद धर्मात्मा परशुराम ने भी भवानी तथा शंकर की सम्यक् प्रकार से पूजा कर, अभिवादन कर उनकी परिक्रमा की।।३०।। इसके बाद हे राजन्! गणेश और कार्तिकेय को नमस्कार कर और पूंछकर वे परशुराम अकृतव्रणके साथ निकल गये।।३१।। निकलते समय राम नन्दीश्वर तथा अन्य गणों को नमस्कार करते हुए परम प्रसन्नता से अपने घर चले गये।।३२।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४३वां अध्याय भार्गवचरित में परशुरामकृत पार्वती स्तुति का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगला-सरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गवचरित में

अध्याय–४४

कार्तवीर्यवंश विनाश वर्णन

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! इस प्रकार बहुत से जनपदों को देखते हुए धर्मात्मा विद्वान् परशुराम अकृतव्रण के साथ अपने घर आ गये।।१।। मार्ग में जाते हुए परशुराम को देखकर प्राणों की रक्षा करने में तत्पर क्षत्रिय लोग जहां तहां छिप गये।।२।। हे राजेन्द्र! इसके बाद वे शान्त जीवों से भरे हुए वेद की ध्वनि से निनादित पिता के आश्रम में पहुंचे।।३।। जहां कि सिंह, मृग, गौएं, सर्प, बिलाव, चूहे, भय छोड़कर प्रसन्नचित्त होकर दूर-दूर तक रमण करते

यत्र धूमं समीक्ष्यैव ह्यग्निहोत्रसमुद्भवम्। उन्नदंति मयूराश्च नृत्यंति च महीपते॥५॥
यत्र सायंतने काले सूर्यस्याभिमुखं द्विजैः। जलांजलीन्प्रक्षिपद्भिः क्रियते भूर्जलाविला॥६॥
यत्रांतेवासिभिर्नित्यं वेदाः शास्त्राणि संहिताः। अभ्यस्यंते मुदा युक्तैर्ब्रह्मचर्यव्रते स्थितैः॥७॥
अथ रामः प्रसन्नात्मा पश्यन्नाश्रमसंपदम्। प्रविवेश शनैः राजन्नकृतव्रणसंयुतः॥८॥
जयशब्दं नमःशब्दं प्रोच्चरद्भिर्द्विजात्मजैः। द्विजैश्च सत्कृतो रामः परं हर्षमुपागतः॥९॥
आश्रमाभ्यंतरे तत्र संप्रविश्य निजं गृहम्। ददर्श पितरं रामो जमदग्निं तपोनिधिम्॥१०॥
साक्षाद्भृगुमिवासीनं निग्रहानुग्रहक्षमम्। पपात चरणोपान्ते ह्यष्टांगालिंगितावनिः॥११॥
रामोऽहं तव दासोऽस्मि प्रोच्चरन्निति भूपते। जग्राह चरणौ चापि विधिवत्सज्जनाग्रणीः॥१२॥

अथ मातुश्च चरणावभिवाद्य कृतंजालिः।
उवाच प्रणतो वाक्यं तयोः संहर्षकारणम्॥१३॥

राम उवाच

पितस्तव प्रभावेण तपसोऽतिदुरासदः। कार्त्तवीर्यो हतो युद्धे सपुत्रबलवाहनः॥१४॥
यस्तेऽपराधं कृतवान्दुष्टमंत्रिप्रचोदितः। तस्य दण्डो मया दत्तः प्रसह्य मुनिपुंगव॥१५॥

भवन्तं तु नमस्कृत्य गतोऽहं ब्रह्मणोऽऽतिकम्।
तं नमस्कृत्य विधिवत्स्वकार्यं प्रत्यवेदयम्॥१६॥

हैं।।४।। हे राजन्! जहाँ अग्निहोत्र (हवन) से उठे हुए धुएं को देखकर मोर चिल्लाते हैं और नाचते हैं। अर्थात् हवन का धुंआ उनको बादल प्रतीत होता है, इसलिए वे मधुर ध्वनि करने और नाचने लगते हैं।।५।। जहाँ पर सायंकाल में सूर्य के सम्मुख खड़े होकर ब्राह्मण सब जलांजलि फेंकते हुए पृथ्वी को जल से तर करते हैं।।६।। जहाँ कि अन्दर रहने वाले, ब्रह्मचर्यव्रत में स्थित छात्रों द्वारा मोद के साथ साथ नित्य वेदशास्त्र और संहिताओं का अभ्यास किया जाता है।।७।। इसके बाद हे राजन्! प्रसन्नात्मा परशुराम आश्रम की शोभा को देखते हुए अकृतव्रण के साथ धीरे से आश्रम में पहुँचे। जय शब्द और नमस्ते शब्द उच्चारण करते हुए ब्राह्मणों और ब्राह्मण पुत्रों द्वारा सत्कृत राम परम हर्ष को प्राप्त हुए।।८-९।। वहाँ आश्रम के अन्दर प्रवेश करके परशुराम ने अपने घर में तपस्वी पिता जमदग्नि को देखा।।१०।। हे राजन्! तब वहाँ मैं राम हूँ, इस प्रकार कहते हुए उन सज्जनों में अग्रणी परशुराम ने विधिवत् पिता के चरणों को स्पर्श किया।।११।। दण्ड देने और कृपा करने में समर्थ साक्षात् भृगु के समान जमदग्नि को बैठा हुआ देखकर प्रसन्न चित्तहो अंगों से पृथ्वी का आलिंगन करते हुए परशुराम उनके चरणों के पास में गिर गये। अर्थात् उन्हें दण्डवत् किया।।१२।। इसके बाद माता के चरणों को स्पर्श करके हाथ जोड़ते हुए नतमस्तक हो, उन दोनों को प्रसन्न करने वाला वाक्य बोले।।१३।।

परशुराम बोले—कि हे पितः! आपकी तपस्या के प्रभाव से मैंने अत्यन्त दुर्जेय कार्तवीर्य को युद्ध में उसके पुत्र और सेनाओं के साथ मार दिया।।१४।। दुष्ट मन्त्री से प्रेरित होकर उसने जो आपका अपराध किया था, हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने बलपूर्वक उसे दण्ड दे दिया।।१५।। आपको नमस्कार करके मैं ब्रह्मा जी के पास गया, उनको विधिवत् नमस्कार करके मैंने उन्हें अपना कार्य बताया।।१६।।

स मामुवाच भगवाञ्छ्रुत्वा वृत्तांतमादितः। व्रज स्वकार्यसिद्ध्यर्थं शिवलोकं सनातनम्॥१७॥
श्रुत्वाऽहं तद्वचस्तात नमस्कृत्य पितामहम्। गतवाञ्छिवलोकं वै हरदर्शनकांक्षया॥१८॥
प्रविश्य तत्र भगवन्नुमया सहितः शिवः। नमस्कृतो मया देवो वांछितार्थ प्रदायकः॥१९॥
तदग्रे निखिलः स्वीयो वृत्तांतो विनिवेदितः। मया समाहितधिया स सर्वं श्रुतवानपि॥२०॥
श्रुत्वा विचार्य तत्सर्वं ददौ मह्यं कृपान्वितः। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं सर्वसिद्धिदम्॥२१॥
तल्लब्ध्वा तं नमस्कृत्य पुष्करं समुपागतः। तत्राहं साधयित्वा तु कवचं हृष्टमानसः॥२२॥
कार्त्तवीर्यं निहत्याजौ शिवलोकं पुनर्गतः। तत्र तौ तु मया दृष्टौ द्वारे स्कन्दविनायकौ॥२३॥
तौ नमस्कृत्य धर्मज्ञ प्रवेष्टुं चोद्यतोऽभवम्। स ममवेक्ष्य गणपो विशन्तं त्वग्यान्वितम्॥२४॥
वारयामास सहसा नाद्यावसर इत्यथ। मम तेन पितस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षणम्॥२५॥
सञ्जातपरशुक्षेममतोऽभूद्भृगुनन्दन। स तज्ज्ञात्वा समुद्वह्य मामधश्चोर्द्धमेव च॥२६॥
करेण भ्रामयामास पुनश्चानीतवांस्ततः। तं दृष्ट्वातिक्रुधा क्षिप्तः कुठारो हि मया ततः॥२७॥
दंतो निपतितस्तस्य ततो देव उपागतः। पार्वती तत्र रुष्टाऽभूत्तदा कृष्णः समागतः॥२८॥
राधया सहितस्तेन सानुनीता वरं ददौ। मह्यं कृष्णो जगामाथ तेन मैत्रीं विधाय च॥२९॥
ततः प्रणम्य देवेशौ पार्वतीपरमेश्वरौ। आगतस्तव सान्निध्यमकृतव्रणसंयुतः॥३०॥

उन भगवान् ब्रह्मा ने मेरा आदि से लेकर अन्त तक का सारा वृत्तान्त सुनकर कहा कि तुम अपने कार्य की सफलता के लिये सनातन शिवलोक चले जाओ।।१७।। हे तात! उनके वचन को सुनकर पितामह ब्रह्मा को नमन कर मैं भगवान् शिव के दर्शन की आकांक्षासे शिवलोक को चला गया।।१८।। वहाँ प्रवेश करके भगवन्! उमा के साथ वांछित अर्थ को प्रदान करने वाले शिवजी को नमस्कार किया।।१९।। उनके आगे मैंने अपना समस्त वृत्तान्त बता दिया। मेरे द्वारा कहे गये समस्त वृत्तान्त को ध्यानपूर्वक उन्होंने सुना भी।।२०।। समस्त वृत्तान्त को सुनकर और विचारकर कृपा से युक्त हो, उन्होंने मुझे सब सिद्धियों को देने वाले त्रैलोक्य विजय नामक कवच को दिया।।२१।। उस कवच को प्राप्त करके उनको नमस्कार करके मैं पुष्कर पहुँचा, वहाँ मैंने उस कवच को सिद्ध करके युद्ध में कार्तवीर्य को मारकर पुनः शिवलोक चला गया। वहाँ पर मैंने द्वार पर कार्तिकेय और गणेश जी को देखा।।२२-२३।।

उन दोनों को नमस्कार करके हे धर्मज्ञपिता श्री मैं प्रवेश करने के लिये तैयार हुआ। तब उन गणपति ने प्रवेश करते हुए मुझे देखकर शीघ्रता के साथ सहसा रोक दिया और कहा कि अन्दर जाने का अवसर नहीं है। उसके बाद हे पिता जी मेरा और उनका हस्तकर्षण (बाताबाती और हाथापायी) होने लगा, मैं जा रहा था, वे हाथ खींचकर रोक रहे थे।।२४-२५।। उसके बाद हे भृगुनन्दन पिताश्री! मुझसे परशु का प्रहार हो गया। उन गणेश ने यह जानकर मुझको पकड़कर नीचे और ऊपर हाथ से घुमाया, उसके बाद फिर वहीं पर लाये। उसके बाद उसको देखकर मैंने कुठार को उन पर फेंक दिया।।२६-२७।। उस कुठार से उन गणेश जी का दाँत टूटकर गिर गया। तब तक महादेव आ गये। वहाँ पर पार्वती जी बहुत नाराज हो गयीं, तब तक कृष्ण आ गये।।२८।। राधा के साथ उन कृष्ण ने मुझे सानुनीत वर प्रदान कर दिया। इसके बाद मुझसे और गणेश जी से मित्रता करा कर भगवान् श्रीकृष्ण चले गये।।२९।। उसके बाद उन पार्वती और परमेश्वर शिव को प्रणाम करके मैं अकृतव्रण के साथ आपके पास आया हूँ।।३०।।

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्त्वा भार्गवो रामो विरराम च भूपते। जमदग्निरुवाचेदं रामं शत्रुनिवर्हणम्॥३१॥

जमदग्निरुवाच

क्षत्रहत्याविभूतस्त्वं तावद्दोषोपशांतये। प्रायश्चित्तं ततस्तावद्यथावत्कर्तुमर्हसि॥३२॥
इत्युक्तः प्राह पितरं रामो मतिमतां वरः। प्रायश्चित्तं तु तद्योग्यं त्वं मे निर्देष्टुमर्हसि॥३३॥

जमदग्निरुवाच

व्रतैश्च नियमैश्चैव कर्षयन्देहमात्मनः। शाकमूलफलाहारो द्वादशाब्दं तपश्चर॥३४॥

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं मातरं च भृगूद्वहः। प्रययौ तपसे राजन्नकृतव्रणसंयुतः॥३५॥
स गत्वा पर्वतवरं महेंद्रमरिकर्षणः। कृत्वाऽऽश्रमपदं तस्मिंस्तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥३६॥
व्रतैस्तपोभिर्नियमैर्देवताराधनैरपि। निन्ये वर्षाणि कति चिद्रामस्तस्मिन्महामनाः॥३७॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीये उपोद्घातपादे सगरोपाख्याने भार्गवचरिते चतुश्चत्वारिंशतमोऽध्यायः॥४४॥
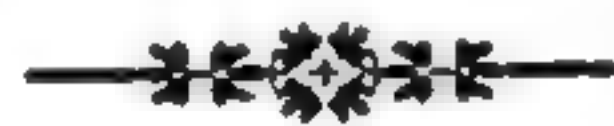
वशिष्ठ ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार पिता से कहकर भार्गव परशुराम रुक गये, उसके बाद जमदग्नि ने शत्रु को मारने वाले परशुराम से कहा।।३१।।

जमदग्नि ने कहा कि हे पुत्र! तुम क्षत्रहन्ता (क्षत्रियों के हत्यारे हो), अतः तुमको यह क्षत्रहत्या का पाप लग गया है। अतः तुम्हें उसका यथावत् प्रायश्चित करना चाहिये।।३२।। इसके बाद पिता जी से मतिमानों में श्रेष्ठ परशुराम ने कहा कि उस पाप के योग्य प्रायश्चित्त क्या है? कृपाकर हमें बतलाइये।।३३।।

जमदग्नि ने कहा कि हे पुत्र! तुम व्रतों और नियमों से अपने शरीर को दुर्बल बनाते हुए बारह वर्ष तक तप करो।।३४।।

वशिष्ठ ने कहा कि हे राजन्! पिता द्वारा इस प्रकार कहे हुए वे परशुराम इनको तथामाता को प्रणाम करके अकृतव्रण के साथ तपस्या करने के लिये चल दिये।।३५।। तब वे शत्रु को मारने वाले परशुराम पर्वतों में श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर पहुँचकर वहाँ आश्रम बनाकर उस आश्रम में बहुत ही कठिन तप करने लगे।।३६।। वहाँ उस पर्वत पर महामना राम ने व्रत, तपस्या, नियम और आराधना में कितने ही वर्ष बिता दिये।।३७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४४वां अध्याय भार्गवचरित में कार्तवीर्यवंश विनाश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्छित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे सागरोपाख्याने भार्गवचरिते

जमदग्नेर्वधो नाम

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

ततः कदाचिद्विपिने चतुरंगबलान्वितः। मृगयामगमच्छूरः शूरसेनादिभिः सह॥१॥
ते प्रविश्य महारण्यां हत्वा बहुविदान्मृगान्। जग्मुस्तृपार्त्ता मध्याह्ने सरितं नर्मदामनु॥२॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वारि नद्या गतश्रमाः गच्छंतो ददृशुर्मार्गो जमदग्नेरथाश्रमम्॥३॥
दृष्ट्वाश्रमपदं रम्यं मुनीनागच्छतः पथि। कस्येदमिति पप्रच्छुर्भाविकर्मप्रचोदिताः॥४॥
ते प्रोचुरतिशांतात्मा जगमदग्नेर्महातपाः वसत्यस्मिन्सुतो यस्य रामः शस्त्रभृतां वरः॥५॥
तच्छुत्वा भीरभूत्तेषां रामनामानुकीर्त्तनात्। क्रोधं प्रसह्यानृशंस्यं पूर्ववैरमनुस्मरन्॥६॥
अथ ते प्रोचुरन्योन्यं पितृहंतुर्वधात्पितुः। वैरनिर्यातनं किं तु करिष्यामो दिशाधुना॥७॥
इत्युक्त्वा खड्गहस्तास्ते संप्रविश्य तदाश्रमम्। प्रजघ्निरे प्रयातेषु मुनिवीरेषु सर्वतः॥८॥
तं हत्वाऽस्य शिरो हृत्वा निषादा इव निर्दयाः। प्रययुस्ते दुरात्मानः सबलाः स्वपुरीं प्रति॥९॥
पुत्रास्तस्य महात्मानो दृष्ट्वा स्वपितरं हतम्। परिवार्य महाराज रुरुदुः शोककर्शिताः॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सगरोपाख्यान भार्गवचरित में

अध्याय-४५

जमदग्नि वध

वशिष्ठ ने कहा कि उसके बाद कभी चतुरंगिणी सेना सहित शूर-शूर सेना आदि के साथ वन में आ गया।।१।। उस महावन में प्रवेश करके अनेकों प्रकार के मृगों को मारकर मध्याह्न में प्यास से व्याकुल हो वह नर्मदा नदी के तट पर आ गया।।२।। वहाँ स्नान करके तथा उस नदी का जल पीकर थकान मिटाने लगा। इसके बाद चलते हुए जमदग्नि ऋषि का आश्रम देखने लगा।।३।। रास्ते में मुनियों को आते हुए उस रम्य आश्रम को देखकर होनहार के कर्म से प्रेरित वे सब अत्यन्त शान्त आत्मा जमदग्नि से पूछने लगे कि इस आश्रम में ही शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आपका पुत्र परशुराम रहता है।।४-५।। उसको सुनकर तथा परशुराम का नाम लेने पर वे महर्षि भयभीत हो गये। क्रोध और बलपूर्वक नृशंस्य कार्य करने वाले पूर्व वैर को सोचकर भयभीत हो गये।।६।।

इसके बाद वे सब पिता को मारने वाले से पिता का वैर निकालने के लिये अब हम क्या करेंगे? यह परस्पर एक-दूसरे से कहने लगे। अर्थात् पिता के मारने का बदला कैसे लिया जाये, इस विषय में वे सब आपस में विचार करने लगे।।७।। आपस में कहकर वे सब तलवार हाथ में लेकर उस आश्रम में घुस गये और चारों ओर घूमने वाले मुनिवीरों को मारने लगे।।८।। उन जमदग्नि को मारकर और उनका निषाद के समान शिर चुराकर वे निर्दयी दुराचारी दुष्ट आत्मा, बलवान् सभी अपनी नगरी की ओर चले गये।।९।। उन महात्मा जमदग्नि के पुत्र मरे हुए अपने पिता

भर्त्तारं निहतं भूमौ पतितं वीक्ष्य रेणुका। पपात मूर्च्छिता सद्यो लतेवाशनिताडिता॥११॥
सा स्वचेतसि संमूच्छ्य शोकपावकदीपिताः। दूरप्रनष्टसंज्ञेव सद्यः प्राणैर्व्ययुज्यत॥१२॥
अनालपंत्यां तस्यां तु संज्ञां याता हि ते पुनः।
न्यपतन्मूर्च्छिता भूमौ निमग्नाः शोकसागरे॥१३॥
ततस्तपोधना येऽन्ये तत्तपोवनवासिनः। समेत्याश्वासयामासुस्तुल्यदुःखाः सुतान्मुने॥१४॥
सांत्व्यमाना मुनिगणैर्जामदग्न्या यथाविधि। आधक्षुर्वचसा तेषामग्नौ पित्रोः कलेवरे॥१५॥
चक्रुरेव तदूर्ध्वं वै यत्कर्त्तव्यमनंतरम्। पित्रोर्मरणदुःखेन पीड्यमाना दिवानिशम्॥१६॥
ततः काले गते रामः समानां द्वादशावधौ। निवृत्तस्तपसः सख्या सहादागाश्रमं पितुः॥१७॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे सगरोपाख्याने भार्गवचरिते पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४५॥
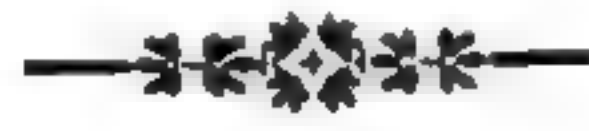
से दूर हटकर शोक से कर्शित होकर रोने लगे।।१०।। अपने पति जमदग्नि को भूमि पर गिरा हुआ देखकर उनकी पत्नी रेणुका वज्र से काटी गयी लता के समान भूमि पर गिर गयी।।११।। वे अपने चित्त में शोकाग्नि से दीपित हो, मूर्च्छित होकर चेतनाहीन होने के समान शीघ्र प्राणों से विहीन हो गयीं।।१२।। जब वे कुछ नहीं बोल रही थीं, उस समय उन्हें पुनः चेतना आयी और फिर वे मूर्च्छित होकर शोक सागर में निमग्न हो गयीं।।१३।। उसके बाद जो उस तपोवन के अन्य तपस्वी थे, वे वहाँ आकर वे सब समान दुःख वाले पुत्रों को आश्वासन देने लगे।।१४।। मुनियों द्वारा सान्त्वना दिये गये जमदग्नि के पुत्रों ने मुनियों के कहने के अनुसार पिता के शरीर को अग्नि में समर्पित कर दिया, फिर उसके बाद-बाद के कार्यों को किया; परन्तु पिता के मरण के दुःख से वे सब रात-दिन दुःखी होने लगे।।१५-१६।। उसके बाद बारह वर्ष बीत जाने पर तपस्या से निवृत्त होकर परशुराम मित्र अकृतव्रण के साथ पिता के आश्रम में गये।।१७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४५वां अध्याय सगरोपाख्यान के भार्गव-चरित में जमदग्नि वध का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगला-सरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरोपाख्याने भार्गवचरिते

परशुरामेण एकविंशति कृत्वा क्षत्रियहननं नाम

षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

स गच्छन्पथि शुश्राव मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः। राजपुत्रव्यवसितं पित्रोः स्वर्गतिमेव च॥१॥
पितुस्तु जीवहरणं शिरोहरणमेव च। तन्मृतेरेव मरणं श्रुत्वा मातुश्च केवलम्॥२॥
विललाप महाबाहुर्दुःखशोकसमन्वितः। तमथाश्वासयामास तुल्यदुःखोऽकृतव्रणः॥३॥
हेतुभिः शास्त्रनिर्दिष्टै वीर्यसामर्थ्यसूचकैः। युक्तिलौकिकदृष्टान्तैस्तच्छोकं संव्यशामयत्॥४॥
सांत्वितस्तेन मेधावी धृतिमालंब्य भार्गवः। प्रययौ सहितः सख्या भ्रातॄणां तु दिदृक्षया॥५॥
स तान्दृष्ट्वाभिवाद्यैतान्दुःखितान्दुःखकर्शितः। शोकामर्षयुतस्तैश्च सह तस्थौ दिनत्रयम्॥६॥
ततोऽस्य सुमहान्क्रोधः स्मरतो निधनं पितुः। बभूव सहसा सर्वलोकसंहरणक्षमः॥७॥
मातुरर्थे कृतां पूर्वप्रतिज्ञां सत्यसंगरः। दृढीचकार हृदये सर्वक्षत्रवधोद्यतः॥८॥
क्षत्रवंश्यानशेषण हत्वा तद्देहलोहितैः। करिष्ये तर्पणं पित्रोरिति निश्चित्य भार्गवः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सगरोपाख्यान के भार्गवचरित में

अध्याय-४६

परशुराम द्वारा २१ बार क्षत्रिय वध वर्णन

वशिष्ठ ने कहा कि जब बारह वर्ष तपस्या करने के बाद परशु राम घर लौटे तो उन्होंने मार्ग में जाते हुए मुनियों से आदि से लेकर अन्त तक सारा वृत्तान्त सुना कि राजपुत्रों ने तुम्हारे पिता को स्वर्ग पहुँचाने का व्यवसाय किया।।१।। तुम्हारे पिता जी का जीवहरण ही नहीं, उनका शिरहरण भी हो गया अर्थात् उनका निर्दयता से शिर काटकर ले गये। पिता और माता के मरण को सुनकर महाबाहु परशुराम दुःख और शोक से समन्वित होकर विलाप करने लगे, तब उनको उन्हीं के समान दुःखी अकृतव्रण ने उन्हें आश्वस्त किया।।२-३।।

शास्त्रनिर्दिष्ट कारणों तथा पराक्रम सामर्थ्यसूचक युक्ति लौकिक दृष्टान्तों द्वारा उनका शोक शान्त हुआ। अर्थात् अकृतव्रण ने कहा कि शास्त्रों के अनुसार केवल शरीर मरता है, आत्मा नहीं मरती तथा आप पराक्रमी हैं, आप में पूरी तरह बदला लेने की सामर्थ्य है तथा लोक में जो भी जन्मा है, उसे अन्त में मरना ही है, ये मरा वो मरा तथा अन्त में सबको मरना है, इस प्रकार की बातों द्वारा अकृतव्रण ने परशुराम को समझाया तथा उनका शोक कम किया।।४।। इस प्रकार अकृतव्रण के उस कथन से मेधावी परशुराम शान्त हो गये और फिर धैर्य का अवलम्बन कर अकृतव्रण के साथ भाइयों को देखने की इच्छा से चल दिये।।५।। तब दुःखी वह परशुराम उन दुःखी भाइयों को देखकर उन्हें अभिवादन कर उन सबके साथ तीन दिन तक रहकर शोक मनाते हुए ठहरे।।६। उसके बाद अपने पिता की मृत्यु को स्मरण करते हुए संसार का संहार करने में समर्थ सहसा अत्यन्त क्रोधित हुए। माता के लिये की गयी पूर्व प्रतिज्ञा को उन्होंने अपने हृदय में दृढ़ कर लिया तथा सभी क्षत्रियों का वध करने के लिये तैयार हो गये।।८।। तब परशुराम ने यह प्रतिज्ञा की कि क्षत्रियों के वंशों को पूरी तरह मारकर उनके शरीर के खूनों से पिता का तर्पण

भ्रातॄणां चैव सर्वेषामाख्यायात्मसमीहितम्। प्रययौ तदनुज्ञातः कृत्वा संस्थां पितुः क्रियाम्॥१०॥
अकृतव्रणसंयुक्तः प्राप्य माहिष्मतीं ततः तद्वाह्योपवने स्थित्वा सस्मार स महोदरम्॥११॥
स तस्मै रथचापाद्यं सहसा श्वसमन्वितम्। प्रेषयामास रामाय सर्वसंहनननानि च॥१२॥
रामोऽपि रथमारुह्य सन्नद्धः सशरं धनुः। गृहीत्वापूरयच्छंखं रुद्रदत्तममित्रजित्॥१३॥
ज्याघोषं च चकारोच्चै रोदसी कंपयन्निव। सहसाहोथ सारथ्यं चक्रे सारथिनां वरः॥१४॥
रथज्याशंखनादैस्तु वधात्पित्रोरमर्षिणः। तस्याभून्नगरी सर्वा संक्षुब्धाश्च नरद्विपाः॥१५॥
रामं त्वागतमाज्ञाय सर्वक्षत्रकुलांतकम्। संक्षुब्धाश्चक्रुरुद्योगं संग्रामाय नृपात्मजाः॥१६।
अथ पंचरथाः शूराः शूरसेनादयो नृप। रामेण योद्धुं सहिता राजभिश्चक्रुरुद्यमम्॥१७॥
चतुरंगबलोपेतास्ततस्ते क्षत्रियर्षभाः। राममासादयामासुः पतंगा इव पावकम्॥१८॥
निवार्य तानापततो रथेनैकेन भार्गवः। युयुधे पार्थिवैः सर्वैः समरेऽमितविक्रमः॥१९॥
ततः पुनरभूद्युद्धं रामस्य सह राजभिः। जघान यत्र संक्रुद्धो राज्ञां शतमुदारधीः॥२०॥
ततः स शूरसेनादीन्हत्वा सबलवाहनान्। क्षणेन पातयामास क्षितौ क्षत्रियमंडलम्॥२१॥
ततस्ते भग्नसंकल्पा हतस्वबलवाहनाः। हतशिष्टा नृपतयो दुद्रुवुः सर्वतोदिशम्॥२२॥
एवं विद्राव्य सैन्यानि हत्वाजित्वाथ संयुगे। जघान शतशो राज्ञः शूराञ्छरवराग्निना॥२३॥
ततः क्रोधपरीतात्मा दग्धुकामोऽखिलां पुरीम्। उदैरयभार्गवोस्त्रं कालाग्निसदृशप्रभम्॥२४॥

करूँगा, ऐसा निश्चय करके परशुराम अपने सभी भाइयों को अपनी प्रतिज्ञा बताकर उनकी अनुमति से पिता की अन्त्येष्टि संस्कार क्रिया करके चलने लगे।।१०।। उसके बाद अकृतव्रण के साथ माहिष्मतीपुरी को प्राप्त करके उसके बाहरी उपवन में ठहरकर उन्होंने महोदर (गणेश जी) को याद किया। उन परशुराम के लिये रथ धनुष और घोड़ों सहित सब मारक अस्त्रोंको भेज दिया।।१२।। परशुराम ने रथ पर चढ़कर तैयार हो हाथ में धनुष बाण लेकर शत्रु को जीतने वाले रुद्रदत्त को पूर्ण किया।।१३।। रुद्रदत्त ने पृथ्वी को कंपाते हुए के समान प्रत्यंचा को घोष किया, अचानक सारथियों में श्रेष्ठ रुद्रदत्त ने सारथी का कार्य संभाल लिया।।१४।। रथ की प्रत्यञ्चा के शंखनादों से पिता के वध से असहनशील परशुराम के उस राजा की वह सब नगरी संक्षुब्ध राजाओं से युक्त हो गयी।।१५।।

परशुराम को पूरी तरह आया हुआ जानकर समस्त क्षत्रिय कुल का अन्त करने वाले, राजा के पुत्र व्याकुल होकर संग्राम के उद्योग करने लगे।।१६।। उसके बाद पंचरथ, शूर और शूरसेन आदि परशुराम से युद्ध करने के लिये एक होकर उद्यम करने लगे।।१७।। चार प्रकार की रथारोही, गजारोही, अश्वारोही और पैदल सेना से युक्त वे सब क्षत्रिय श्रेष्ठ राजा लोग परशुराम के पास आग के पास पतंगें के समान आ गये। उन अतिपराक्रमी परशुराम ने युद्ध में उन सब राजाओं से एक रथ से ही युद्ध किया।।१८-१९।। उसके बाद परशुराम का राजाओं के साथ पुनः युद्ध हुआ, जहाँ कि उदार बुद्धि वाले क्रोधित परशुराम ने सैकड़ों राजाओं को मार डाला।।२०।। उसके बाद शूरसेन आदि राजाओं को उनकी सेना और वाहनों को मार कर क्षण भर में क्षत्रिय मण्डल को भूमि पर गिरा दिया।।२१।। उसके बाद जिनके संकल्प भंग हो गये तथा सेना और वाहन जिनके नष्ट हो गये हैं, ऐसे मरने से बचे हुए राजा सब दिशाओं की ओर भागने लगे।।२२।। इस प्रकार सेनाओं को भगाकर और युद्ध में सेनाओं को मारकर राजा के सैकड़ों शूरों को श्रेष्ठ अग्नि बाण से मार डाला।।२३।। उसके क्रोध से व्याप्त आत्मा वाले समस्तपुरी को जलाने की इच्छा वाले परशुराम ने कालाग्नि के समान अस्त्र को चला दिया।।२४।।

ज्वालाकवलिताशेषपुरप्राकारालिनीम्। पुरीं सहस्त्यश्वनरां स ददाहास्त्रपावकः॥२५॥
दह्यमानां पुरीं दृष्ट्वा प्राणत्राणपरायणः। जीवनाय जगामाशु वीतिहोत्रो भयातुरः॥२६॥
अस्त्राग्निना पुरीं सर्वां दग्ध्वा हत्वा च शात्रवान्। प्राशयानोऽखिलान् लोकान् साक्षात्काल इवांतकः॥२७॥
अकृतव्रणसंयुक्तः सहसाहेन चान्वितः। जगाम रथघोषेण कंपयन्निव मेदिनीम्॥२८॥
विनिघ्नन् क्षत्रियान्सर्वा् संशाम्य पृथिवीतले। महेंद्राद्रिं ययौ रामस्तपसे धृतमानसः॥२९॥
तस्मिन्नष्टचतुष्कं च यावत्क्षत्रसमुद्गमम्। प्रत्येत्य भूयस्तद्धत्यै बद्धदीक्षो धृतव्रतः॥३०॥
क्षत्रक्षेत्रेषु भूयश्च क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः। निजघान पुनर्भूमौ राज्ञः शतसहस्रशः॥३१॥
वर्षद्वयेन भूयोऽपि कृत्वा निःक्षत्रियां महीम्। षट्चतुष्टयवर्षांतं तपस्तेपे पुनश्च सः॥३२॥
भूयोऽपि राजन् संबुद्धं क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः। जघान भूमौ निःशेषं साक्षात्काल इवांतकः॥३३॥
कालेन तावता भूयः समुत्पन्नं नृपात्त्वयम्। निघ्नंश्चचार पृथिवीं वर्षद्वयमनारतम्॥३४॥
अलं रामंण राजेंद्र स्मरता निधनं पितुः। त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता॥३५॥
त्रिःसप्तकृत्वस्तन्माता यदुरः स्वमताडयत्। तावद्रामेण तस्मात्तुक्षत्रमुत्सादितं भुवि॥३६॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४६॥

उस अग्न्यस्त्र ने समस्त नगर के चारों ओर की चहारदीवार को आग ने अपना ग्रास बना लिया अर्थात् समस्त नगरी को आग ने खा लिया तथा उस आग ने नगरी के सब हाथी घोड़े और मनुष्यों को जला दिया।।२५-२६।। अब अग्नि अस्त्र (अग्निवाण) से समस्त नगरी को जलाकर सब शत्रुओं को मारकर, अखिललोकों को खाने वाले काल यमराज के समान परशुराम अकृतव्रण के साथ पूरे साहस के साथ रथ के घोष से पृथ्वी को कंपाते हुए चले गये।।२७-२८।। सभी क्षत्रियों को मारकर पृथ्वी तल पर शान्ति स्थापित कर धैर्य धारण करने वाले परशुराम तप के लिये महेन्द्र पर्वत पर चले गये।।२९।। वहाँ पर उन्होंने बारह वर्ष तक व्रत धारण किया तथा वह इसलिये कि जब तक क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी मैं उनकी पुनः पुनः जाकर हत्या करूँगा।।३०।।

क्षत्रियों के क्षेत्रों में अर्थात् क्षत्रियों की विधवाओं में जो ब्राह्मणों ने (अथवा सवर्णों ने) जो क्षत्रिय उत्पन्न किये, उन सब हजारों राजाओं को परशुराम ने पुनः भूमि पर मार डाला।।३१।। तथा फिर दो वर्ष में पृथ्वी को क्षत्रियविहीन कर चौबीस वर्ष तक पुनः तप किया।।३२।। हे राजन्! पुनः ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को पैदा किया, फिर उन सबको साक्षात् काल यमराज के समान भूमि पर गिराकर मार डाला।।३३।। उतने समय से जब जब क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई, परशुराम ने लगातार दो वर्ष तक पृथ्वी पर क्षत्रियों को मारते हुए विचरण किया।।३४।। अब वशिष्ठ जी कहते हैं कि हे राजन्! अधिक क्या? पिता के वध को स्मरण करने वाले उन परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन कर दिया।।३५।। जब २१वीं बार उनकी माता ने जो अपने वक्षःस्थल को पीटना शुरू कर दिया, तब परशुराम ने पृथ्वी पर क्षत्रियों को छोड़ दिया।।३६।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४६वां अध्याय सगरोपाख्यान के भार्गवचरित में परशुराम द्वारा २१ बार क्षत्रिय वध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे सागरोपाख्याने भार्गवचरिते

परशुरामस्य तपश्चर्यार्थं महेन्द्रपर्वतगमनं नाम

सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

वसिष्ठ उवाच

ततो मूर्द्धाभिषिक्तानां राज्ञाममिततेजसाम्। षट्सहस्रद्वयं रामो जीवग्राहं गृहीतवान्॥१॥
ततो राजसहस्राणि गृहीत्वा मुनिभिः सह। स जगाम महातेजाः कुरुक्षेत्रं तपोमयम्॥२॥
सरसां पंचकं तत्र खानयित्वा भृगूद्वहः। सुखावगाहतीर्थानि तानि चक्रे समंततः॥३॥
जघान तत्र वै राज्ञः शरीरप्रभवासृजा। सरांसि तानि वै पंच पूरयामास भार्गवः॥४॥
स्नात्वा तेषु यथान्यायं जामदग्न्यः प्रतापवान्। पितॄन्संतर्पयामास यथाशास्त्रमतंद्रितः॥५॥
पितुः प्रेतस्य राजेंद्रश्राद्धादिकमशेषतः। ब्राह्मणैः सह मातुश्च तत्र चक्रे यथोदितम्॥६॥
एवं तीर्णप्रतीकः स कुरुक्षेत्रे तपोमये। उवासातंद्रितः सम्यक् पितृपूजापरायणः॥७॥
ततः प्रभृत्यभूद्राजंस्तीर्थानामुत्तमोत्तमम्। विहितं जामदग्न्येन कुरुक्षेत्रे तपोवने॥८॥
सस्यमंतपंचकमिति स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम्। यत्र चक्रे भृगुश्रेष्ठः पितॄणं तृप्तिमक्षयाम्॥९॥
स्नानदानतपोहोमद्विजभोजनतर्पणैः। भृशमाप्यायितास्तेन यत्र ते पितरोऽखिलाः॥१०॥
अवापुरक्षयां तृप्तिं पितृलोकं च शाश्वतम्। समंतपंचकं नाम तीर्थं लोके परिश्रुतम्॥११॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सगरोपाख्यान के भार्गवचरित में

अध्याय-४७

परशुराम का तपस्या के लिये महेन्द्र पर्वत पर जाना

वशिष्ठ ने कहा उसके बाद मूर्द्धाभिषिक्त असीमित तेजस्वी राजाओं के १२ हजार जीवित पकड़े हुए क्षत्रियों को ग्रहण कर लिया।।१।। उसके बाद हजारों राजाओं को लेकर मुनियों केसाथ वह महापराक्रमी परशुराम तपोमय कुरुक्षेत्र को चले गये।।२।। वहाँ पाँच नदियों के मेल पंजाब में सब क्षत्रियों को गाढ़कर भार्गव परशुराम ने चारों ओर सबको सुखपूर्वक नहाने के लिये तीर्थस्थान बनाया।।३।। वहाँ पर परशुराम ने जिन राजाओं को मारा उनके शरीर से उत्पन्न खून से पाँचों नदियों को भर दिया।।४।। वहाँ उन नदियों में नियमपूर्वक स्नान करके आलस्यहीन प्रतापी परशुराम ने शास्त्रविधि से पितरों का तर्पण किया।।५।। हे राजेन्द्र! पिता और प्रेत का समस्त ब्राह्मणों के साथ माता का यथाविधि से श्राद्ध आदि किया।।६।। इस प्रकार सबको तारने के प्रतीक वे परशुराम आलस्यहीन और पिता की पूजा में संलग्न रहते हुए तपोमय तीर्थ में रहने लगे।।७।। उसी समय से हे राजन्! वह तीर्थ तीर्थों में उत्तम से उत्तम तीर्थ हो गया।।७½।। उस तपोवन कुरुक्षेत्र में परशुराम ने स्यमन्तक पंचक सहित तीनों लोकों में प्रसिद्ध स्थान बनाया। जहाँ कि भृगुश्रेष्ठ परशुराम ने पितरों का अक्षय तर्पण किया।।७½-९।। स्नान, दान, तप, हवन, ब्राह्मण भोजनादि तर्पणों द्वारा वे परशुराम के सभी पितर उन परशुराम से बहुत ही प्रसन्न हुए।।१०।। तथा वहाँ उनके पितरों ने अक्षय तृप्ति प्राप्त कर शास्वत पितृलोक प्राप्त किया। इसीलिये सब पापों को नष्ट करने वाला महापुण्यों से बढ़ा

सर्वपापक्षयकरं महापुण्योपबृंहितम्। मर्त्यानां यत्र यातानामेनांसि निखिलानि तु॥१२॥
दूरादेवापयास्यंति प्रवाते शुष्कपर्वणत्। तत्क्षेत्रचर्यागमनं मर्त्यानामसतामिह॥१३॥
न लभ्यते महाराज जातु जन्मशतैरपि। समंतपंचकं तीर्थं कुरुक्षेत्रेऽतिपावनम्॥१४॥
यत्र स्नातः सर्वतीर्थैः स्नातो भवति मानवः। कृतकृत्यस्ततो रामः सम्यक् पूर्णमनोरथः॥१५॥
उवास तत्र नियतः कंचित्कालं महामतिः। ततः संवत्सरस्यति ब्राह्मणैः सहितो वशी॥१६॥
पितृपिंडप्रदानाय जामदग्न्योऽगमद्गयाम्। ततो गत्वा ततः श्राद्धे यथाशास्त्रमरिंदमः॥१७॥
ब्राह्मणांस्तर्पयामास पितृनुद्दिश्य सत्कृतान्। शैवं तत्र परं स्थानं चन्द्रपादमिति स्मृतम्॥१८॥
पितृतृप्तिकरं क्षेत्रं तादृग्लोके न विद्यते। यत्रार्चिताः स्वकुलजैर्यथाशक्ति मनागपि॥१९॥
पितरः पिंडदानाद्यैः प्राप्स्यंति गतिमक्षयाम्। पितृनुद्दिस्य तत्रासौ तर्प्पितेषु द्विजातिषु॥२०॥
ददौ च विधिवत्पिंडं पितृभक्तिसमन्वितः। ततस्तत्पितरतरः सर्वे पितृलोकादुपागताः॥२१॥
जगृहुस्तत्कृतां पूजां जमदग्निपरोगमाः। अथ संप्रीतमनसः समेत्य भृगुनंदनम्॥२२॥
ऊचुस्तत्पितरः सर्वेऽदृश्या भूत्वांतरिक्षगाः।

पितर ऊचुः

महत्कर्म कृतं वीर भवतान्यैः सुदुष्करम्।२३॥

हुआ समंतपंचक नामक तीर्थ लोक में प्रसिद्ध हुआ।।११-११½।। जहाँ जाने वाले मनुष्यों के समस्त पाप, हवा में सूखे पत्ते के समान दूर से ही दूर भाग जाते हैं।।११½-१२½।। हे महाराज! उस क्षेत्र में असज्जन पुरुषों का विचरण और आगमन (आना) सौ जन्मों में भी कभी नहीं प्राप्त होता है। अर्थात् वहाँ सज्जन पुरुषों का ही जाना और घूमना होता है। दुष्ट पुरुषों की वहाँ जाने की इच्छा ही नहीं हो सकती।।१२½-१३½।। कुरुक्षेत्र में समंतक नामक तीर्थ अत्यन्त पवित्र है, जिसमें स्नान कर मनुष्य सब तीर्थों में स्नान किया हुआ हो जाता है।।१३½-१४½।। उसके बाद वहाँ परशुराम धन्य हो गये, उनका मनोरथ सम्यक् प्रकार से पूर्ण हो गया। वहाँ पर महामति परशुराम ने कुछ समय निवास किया।।१४½-१५½।। उसके बाद संवत्सर के अन्त में वे जितेन्द्रिय परशुराम ब्राह्मणों के साथ पितरों को पिण्ड प्रदान कर परशुराम गया नगरी को चले गये।।१५½-१६½।।

उसके बाद वहाँ जाकर शत्रुओं का दमन करने वाले परशुराम ने श्राद्ध में शास्त्रविधि से पितरों को उद्देश्य करके सत्कृत ब्राह्मणों का तर्पण किया।।१६½-१७½।। वहाँ गया में शिव जी का परम स्थान है, जो चन्द्रपाद इस नाम से विख्यात है। पितरों को तृप्त करने वाला वैसा क्षेत्र संसार में नहीं है।।१७½-१८½।। जहाँ कि अपने वंशजों के द्वारा यथाशक्ति पिण्ड आदि देने से अर्चित पितरगण अक्षयगति को प्राप्त करेंगे।।१८½-१९½।। पितरों को उद्देश्य करके वहाँ ब्राह्मणों का तर्पण करने पर पितरों के प्रति भक्ति से युक्त उन परशुराम ने विधिवत् पिण्डदान किया। उसके बाद उनके सब पितर पितृलोक से उनके पास आ गये। तब जमदग्नि आदि पूर्वज पितरों ने भार्गव परशुराम द्वारा की गयी पूजा को ग्रहण किया।।१९½-२१½।। इसके बाद प्रसन्न मन वाले अन्तरिक्ष में जाने वाले सब पितरगण अदृश्य होकर परशुराम से बोले।।२१½-२२½।।

पितरों ने कहा—हे वीर! तुमने अन्य लोगों द्वारा बहुत ही कठिनाई से किये जाने योग्य महान् कर्म को किया

अस्मानपि यथान्यायं सम्यक् तर्पितवानसि।
अस्माकमक्षयां प्रीतिं तथापि त्वं न यच्छसि॥२४॥
क्षत्रहत्यां हि कृत्वा तु कृतकर्माभवद्यतः। क्षेत्रस्यास्य प्रभावेण भक्त्या च तव दर्शनम्॥२५॥
प्राप्ताः स्म पूजिताः किं तु नाक्षय्यफलभागिनः।
तस्मात्त्वं वीरहत्यादिपापप्रशमनाय हि॥२६॥
प्रायश्चित्तं यथान्यायं कुरु धर्मं च शाश्वतम्। वधाच्च विनिवर्तस्व क्षत्रियाणामतः परम्॥२७॥
पितुर्न्न तेऽपराध्यंते न स्वतंत्रं यतो जगत्। तन्निमित्तं तु मरणं पितुस्ते विहितं पुरा॥२८॥
हंतुं कं कः समर्थः स्याल्लोके रक्षितुमेव वा। निमित्तमात्रमेवेह सर्वः सर्वस्य चैतयोः॥२९॥
ध्रुवं कर्मानुरूपं ते चेष्टंते सर्व एव हि। कालानुवृत्तं बलवान्नृलोको नात्र संशयः॥३०॥
बाधितुं भुवि भूतानि भूतानां न विधिं विना
शक्यते वत्स सर्वोऽपि यतः शक्त्या स्वकर्मकृत्॥३१॥
क्षत्रं प्रति ततो रोषं विमुच्यास्मत्प्रियेप्सया। शममाप्नुहि भद्रं ते ह्यस्माकं परं बलम्॥३२॥

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्त्वांतर्दधुः सर्वे पितरो भृगुनन्दनम्। स चापि तद्वचः सर्वं प्रतिजग्राह सादरम्॥३३॥

है। हमको भी आपने नियमपूर्वक सम्यक् प्रकार से तृप्त कर दिया है, तथापि तुम हमारी अक्षय प्रीति को प्रदान नहीं कर रहे हो।।२४।। क्षत्रियों की हत्या करके तो तुम अपने कर्म से निवृत्त हो गये हो, अतः इस गया क्षेत्र के प्रभाव से और तुम्हारी भक्ति से हमें तुम्हारा दर्शन हुआ है।।२५।। हमने तुम्हारी पूजा को प्राप्त किया तथा हम तुम्हारे द्वारा पूजित हुए; किन्तु हम अक्षयफल के अधिकारी नहीं हैं। इसलिये तुम वीरों की हत्या आदि पापों को शान्त करने के लिये यथाविधि प्रायश्चित्त करो। वही शास्वत धर्म है, जिसका प्रभाव अक्षय है। अतः क्षत्रियों के वध से निवृत्त हो जाओ।।२६-२७।। इसके बाद तुम्हारे पिता को वे अपराधी नहीं बनायेंगे; क्योंकि यह संसार स्वतन्त्र नहीं है। इसी कारण तुम्हारे पिता का पहले मरण हुआ था।।२८।। इस संसार में कौंन किसको मारने में समर्थ है अथवा कौंन किसकी रक्षा करता है। यहाँ इस लोक में इन दोनों मारने और रक्षा करने में सब सबके निमित्त मात्र हैं अर्थात् सबका कोई कारण है तथा वह कारण उसके कृतकर्मों के फल का है, जैसा जिसने कर्म किया है, वह कर्म ही उसके मरने मारने का कारण है।।२९।। निश्चय की कर्म के अनुरूप वे सभी चेष्टा करते हैं। यह मनुष्य काल की आज्ञा का पालन करता है, इस मनुष्य लोक में समय ही बलवान् है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, व्यर्थ ही मनुष्य कहता है कि यह मैंने किया या नहीं किया कोई कुछ नहीं करता, सब समय की आज्ञानुसार होता है।।३०।।

विधि के विना (ईश्वर की कृपा के विना) अथवा विधि ब्रह्मा के लिखे हुए के विना अथवा सीधे कहिये भाग्य के विना तथा कर्मवादियों के पक्ष में विधि (नियम कर्म) के विना पृथ्वी पर प्राणियों को रोक नहीं सकते। हे वत्स! सब कुछ अपने किये गये कर्म की शक्ति से होता है।।३१।। इसलिये क्षत्रियों के प्रति क्रोध को छोड़कर हमारा प्रिय करने की इच्छा से शान्ति को प्राप्त करो, इसी में तुम्हारा कल्याण है, वही हमारा परबल है।।३२।।

वशिष्ठ ने कहा— कि हे राजन्! इस प्रकार परशुराम से कहकर वे सभी पितर अन्तर्धान हो गये। परशुराम

अकृतव्रणसंयुक्तो मुदा परमया युतः। प्रययौ च तदा रामस्तस्मात्सिद्धवनाश्रमम्।।३४।।
तस्मिन्स्थित्वा भृगुश्रेष्ठो ब्राह्मणैः सहितो नृप। तपसे धृतसंकल्पो बभूव स महामनाः।।३५।।
सरथं सहसाहं च धनुःसंहननानि च। पुनरागमसंकेतं कृत्वा प्रास्थापयत्तदा।।३६।।
ततः स सर्वतीर्थेषु चक्रे स्नानमतंद्रितः। परीत्य पृथिवीं सर्वां पितृदेवादिपूजकः।।३७।।
एवं क्रमेण पृथिवीं त्रिवारं भृगुनन्दनः। परिचक्राम राजेंद्र लोकवृत्तमनुव्रतः।।३८।।
ततः स पर्वतस्त्रेष्ठं महेन्द्रं पुनरप्यथ। जगाम तपसे राजन्ब्राह्मणैरभिसंवृतः।।३९।।
स तस्मिंश्चिररात्राय मुनि सिद्धनिषेविते। निवासमात्मनो राजन्कल्पयामास धर्मवित्।।४०।।
मुनयस्तं तपस्यंतं सर्वक्षेत्रनिवासिनः। द्रष्टुकामाः समाजग्मुर्नयता ब्रह्मवादिनः।।४१।।
ददृशुस्ते मुनिगणास्तपस्यासक्तमानसम्। क्षात्रं कक्षमशेषेण दग्ध्वा शांतमिवाननम्।।४२।।
अथ तानागतान्दृष्ट्वा मुनीन्द्विांस्तपोमयान्। अर्घ्यादिसमुदाचारैः पूजयामास भार्गवः।।४३।।
कृतकौशलसंप्रश्नपूर्वकाः सुमहोदयाः। तेषां तस्य च संवृत्ताः कथाः पुण्या मनोहराः।।४४।।
ततस्तेषामनुमते मुनीनां भावितात्मनाम्। हयमेधं महायज्ञमाहर्तुमुपचक्रमे।।४५।।
संभृत्य सर्वसंभारानौर्वाद्यैः सहितो नृप। विश्वामित्रभरद्वाजमार्कंडेयादिभिस्तथा।।४६।।
तेषामनुमते कृत्वा काश्यपं गुरुमात्मनः। वाजिमेधं ततो राजन्नाजहार महाक्रतुम्।।४७।।

ने भी उनके समस्त वचन को आदर सहित स्वीकार किया।।३३।। तब अकृतव्रण के साथ परम आनन्द से युक्त परशुराम उस स्थान से सिद्धवन आश्रम को चले गये।।३४।। हे राजन्! उस सिद्धवन आश्रम में रहकर वे महामना भृगुश्रेष्ठ परशुराम ब्राह्मणों के साथ तपस्या करने के लिये धृत संकल्प हो गये।।३५।। तब वे रथ और सारथि के साथ धनु को दृढ़ करके पुनः आगमन का संकेत करके वहाँ से चल दिये।।३६।। तब पितर और देवताओं की पूजा करने वाले उन परशुराम ने समस्त पृथ्वी की परिक्रमा करके सब तीर्थों में स्नान किया।।३७।। इस प्रकार हे राजन्! उन परशुराम ने लोकव्यवहार का अनुसरण करते हुए पृथ्वी की क्रमशः तीन बार परिक्रमा की।।३८।। उसके बाद हे राजन्! वे परशुराम ब्राह्मणों से घिरे हुए रहकर पर्वतों में श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने के लिये चले गये।।३९।। तब उन धर्मज्ञ परशुराम ने उस मुनियों और सिद्धपुरुषों से सेवित महेन्द्र पर्वत पर बहुत रातों तक अपना निवास बनाया।।४०।। तपस्या करते हुए उन परशुराम को देखने की इच्छा रखने वाले इन्द्रियों को वश में रखने वाले ब्रह्मवादी सब क्षेत्र के निवासी मुनि लोग उन परशुराम को देखने की इच्छा से उनके पास आये।।४१।।

उन मुनियों ने समस्त क्षत्रियों को जलाकर शान्त अग्निस्वरूप तपस्या में आसक्त मन वाले परशुराम को देखा।।४२।। इसके बाद उन दिव्य तपोमय मुनियों को आया हुआ देखकर परशुराम ने उन सबका पूजा करने योग्य सभी व्यवहारों द्वारा उनका पूजन किया।।४३।। पहले परशुराम ने उन मुनियों से उनकी कुशलता को पूछा और फिर उन महाशयों के साथ सुन्दर और पुण्य कथाओं का संवाद किया।।४४।। उसके बाद उन मुनियों की अनुमति से अश्वमेध यज्ञ करने का उपक्रम किया।।४५।। फिर हे नृप! यज्ञ की समस्त सामग्रियों को एकत्रकर जुटाकर और्व, विश्वामित्र, भरद्वाज, मार्कण्डेय आदि ऋषियों के साथ उनकी अनुमति से गुरु कश्यप को अपना कर गुरु अश्वमेध नामक महान् यज्ञ किया।।४६-४७।।

तस्याभूत्काश्यपोऽध्वर्युरुद्गाता गौतमो मुनिः।
विश्वामित्रोऽभवद्धोता रामस्य विदितात्मनः॥४८॥
ब्रह्मत्वमकरोत्तस्य मार्कंडेयो महामुनिः। भरद्वाजाग्निवेश्याद्या वेदवेदांगपारगाः॥४९॥
मुनयश्चक्रुरन्यानि कर्माण्यन्ये यथाक्रमम्। पुत्रैः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च संहितो भगवान्भृगु;॥५०॥
सादस्यमकरोद्राजन्नन्यैश्च मुनिभिः सह। स तैः सहाखिलं कर्म समाप्य भृगुपुंगवः॥५१॥
ब्रह्माणं पूजयामास यथावद्गुरुणा सह। अलंकृत्य यथान्यायं कन्यां रूपवतीं महीम्॥५२॥
पुरग्रामशतोपेतां समुद्रांबरमालिनीम्। आहूय भृगुशार्दूलः सशैलवनकाननाम्॥५३।
काश्यपाय ददौ सर्वामृते तं शैलमुत्तमम्। आत्मनः सन्निवासार्थं तं रामः पर्यकल्पयत्॥५४॥
ततः प्रभृति राजेंद्र पूजयामास शास्त्रतः। हिरण्यरत्नवस्त्राश्वगोगजान्नादिभिस्तथा॥५५॥
पुरा समाप्य यज्ञांते तथा चावभृथाप्लुतः। चक्रे द्रव्यपरित्यागं तेषामनुमते तदा॥५६॥
दत्त्वा च सर्वभूतानामभयं भृगुनंदनः। तत्रापि पर्वतवरे तपश्चर्तुं समारभत्॥५७॥
ततस्तं समनुज्ञाय सदस्या ऋत्विजस्तथा। ययुर्यथागतं सर्वे मुनयः शंसितव्रताः॥५८॥
गतेषु तेषु भगवानकृतव्रणसंयुतः। तपो महत्समास्थाय तत्रैव न्यवसत्सुखी॥५९॥
काश्यपी तु ततो भूमिर्जननाथा ह्यनेकशः। सर्वदुःखप्रशांत्यर्थं मारीचानुमतेन तु॥६०॥

उन आत्मज्ञ राम की उस यज्ञ के अध्वर्यु काश्यप हुए और उद्गाता गौतम मुनि हुए तथा विश्वामित्र होता हुए।।४८।। उनकी उस यज्ञ के ब्रह्मा, मार्कण्डेय मुनि को बनाया गया अर्थात् उन्हें ब्रह्मा का पद दिया गया तथा वेद और वेदांगों में पारंगत भरद्वाज अग्निवेशी आदि अन्य मुनियों ने क्रमानुसार अन्य कर्मों को किया।।४९-४९½।। हे राजन्! पुत्रों, शिष्यों और प्रशिष्यों तथा अन्य मुनियों सहित भगवान् भृगु ने सादस्य (सदस्यता) की।।४९½-५०½।। उन सबके साथ समस्त कर्मोंको समाप्त करके परशुराम ने गुरु के साथ ब्रह्मा जी का पूजन किया।।५०½-५१½।। और फिर यथाविधि नगर, ग्राम, विद्युत् से युक्त समुद्र, आकाश माला रूपवाली, पर्वत वन और कानन वाली, रूपवती कन्या पृथ्वी को बुलाकर उसे नियमानुसार अलंकृत करके केवल उस उत्तम पर्वत महेन्द्र पर्वत को छोड़कर सारी पृथ्वी को कश्यप को दान कर दिया; क्योंकि राजा तो थे ही नहीं, समस्त पृथ्वी उनके ही अधीन थी तथा उन्होंने अपने निवास के लिये उस महेन्द्र पर्वत को ही अच्छा समझा।।५१½-५४।।

उसके बाद हे राजेन्द्र! शास्त्र के अनुसार स्वर्ण रत्न वस्त्र, गौ, हाथी आदि दान में देकर उन कश्यप ऋषि की पूजा की।।५५।। पहले उस मुख्य अश्वमेध यज्ञको समाप्त किया, जो शेष कम या अधिक दोष की शान्ति के लिये अवभृथ यज्ञ किया जाता है, उसको करके, स्नान करके उन ऋषियों की अनुमति से समस्त द्रव्य धन दौलत का परित्याग कर दिया।।५६।। फिर परशुराम ने सब प्राणियों को अभय दान देकर वहीं उस पर्वत पर तप करना प्रारम्भ कर दिया।।५७।। उसके बाद उस यज्ञ के सदस्य ऋत्विज तथा सभी व्रत धारण करने वाले मुनि लोग अपने अपने स्थान को चले गये।।५८।। उन सबके चले जाने पर अकृतव्रण के साथ भगवान् परशुराम महान् तप में सम्यक् प्रकार से स्थित होकर वहीं पर सुखपूर्वक रहने लगे।।५९।। उसके बाद काश्यप को सौंपने के कारण यह भूमि काश्यपी कही गयी। सबके दुःखों को शान्त करने के लिये मरीच की अनुमति से अनेकों बार अनेकों राजा हुए अर्थात् पृथ्वी पर प्रजातंत्र स्थापित हो गया।।६०।।

तत्र दीपप्रतिष्ठाख्यव्रतं विष्णुमुखोदितम्। चचार धरणी सम्यक् दुःखैर्मुक्ताऽभवच्च सा॥६१॥
इत्येष जामदग्न्यस्य प्रादुर्भाव उदाहृतः। यस्मिञ्छ्रुते नरः सर्वपातकैर्विप्रमुच्यते॥६२॥
प्रभावः कार्त्तवीर्यस्य लोके प्रथिततेजसः। प्रसंगात्कथितः सम्यङ्नातिसंक्षेपविस्तरः॥६३॥
एवंप्रभावः स नृपः कार्त्तवीर्योऽभवद्भुवि। न तादृशः पुमात्कश्चिद्भावी भूतोऽथवा श्रुतः॥६४॥
दत्तात्रेयाद्वरं वव्रे मृतिमुत्तमपूरुषात्। यत्पुरा सोऽगमन्मुक्तिं रणे रामेण घातितः॥६५॥
तस्यासीत्पंचमः पुत्रः प्रख्यातो यो जयध्वजः। पुत्रस्य महाबाहुस्तालजंघोऽभवन्नृप॥६६॥
अभूत्तस्यापि पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। तालजंघाभिधा येषां वीतिहोत्रोऽग्रजोऽभवत्॥६७॥
पुत्रैः सवीतिहोत्राद्यैर्हैहयाद्यैश्च राजभिः। कालं महांतमवसद्धिमाद्रिवनगह्वरे॥६८॥
यः पूर्वं रामबाणेन द्रवन्पृष्ठेऽभिताडितः। तालजंघोऽपतद्भूमौ मूर्छितो गाढवेदनः॥६९॥
ददर्श वीतिहोत्रस्तं द्रवन्दैववशादिव। रथमारोप्य वेगेन पलायनपरोऽभवत्॥७०॥
ते तत्र न्यवसन्सर्वे हिमाद्रौ भयपीडिताः। कृच्छ्रं महांतमासाद्य शाकमूलफलाशनः॥७१॥
ततः शांतिं गते रामे तपस्यासक्तमानसे। तालजंघः स्वकं राज्यं सपुत्रः प्रत्यपद्यत॥७२॥
सन्निवेश्य पुरीं भूयः पूर्ववन्नृपसत्तमः। वसंस्तदा निजं राज्यमपालयदरिंदमः॥७३॥

वहाँ पर विष्णु के मुख से कथित दीपप्रतिष्ठा नाम का व्रत है, तब पृथ्वी सम्यक् प्रकार से चलने लगी और वह दुःखों से मुक्त हो गयी। भाव यह है कि परशुराम ने पृथ्वी को काश्यप ऋषि को सौंप दिया तथा राजाओं का विनाश तो हो ही चुका था, अतः राजतन्त्र समाप्त हो गया और फिर मारीच की अनुमति से प्रजातन्त्र की स्थापना हो गयी, तब यह भूमि सब दुःखों से मुक्त हो गयी।।६१।। इस प्रकार यहाँ यह जमदग्नि पुत्र परशुराम की उत्पत्ति बतायी गयी है, जिसके सुनने पर मुनष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।।६२।। तथा संसार प्रसिद्ध तेज वाले कार्तवीर्य के प्रभाव को प्रसंगतः कहा गया है, उसे न अत्यन्त संक्षेप में कहा गया है और न अत्यधिक विस्तार से कहा गया है।।६३।। वह कार्तवीर्य ऐसे प्रभाव वाला राजा हुआ था कि वैसा राजा न कभी होगा तथा न हुआ सुना गया है।।६४।।

जिस राजा ने उत्तम पुरुष भगवान् दत्तात्रेय से वर प्राप्त किया था, जिसको कि युद्ध में परशुराम द्वारा मारे जाने पर मुक्ति प्राप्त हुई।।६५।। उसका पाँचवां पुत्र जयध्वज बहुत प्रसिद्ध हुआ। हे नृप! उस जयध्वज का पुत्र तालजंघ हुआ।।६६।। उस तालजंघ के सौ धनुर्धारी पुत्रों को तालजंघा कहा गया, उनमें जो सबसे अग्रज पुत्र था, उसका नाम वीतिहोत्र हुआ।।६७।। ये सभी वीतिहोत्र आदि हैहय कुल के राजाओं के साथ तालजंघ राज्यविहीन होकर महान् समय तक हिमालय पर्वत के घने वन में रह रहा था।।६८।। जो तालजंघ पहले परशुराम के बाण से पीठ पर घायल हो गया था तथा गहरी वेदना से मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया था।।६९।। दैववश वीतिहोत्र ने उसे चिल्लाते हुए देखा तो उसे रथ पर बैठाकर वेगपूर्वक लेकर भाग गया और फिर सभी क्षत्रिय भाग खड़े हुये।।७०।। फिर उसके बाद वे सभी भय पीड़ित महान् कष्ट पूर्ण जीवन को प्राप्त कर शाक मूल और फलों को खाते हुए वहाँ हिमालय पर्वत के घने जंगल में जाकर छिपकर रहने लगे।।७१।। उसके बाद तपस्या में मन लगाने के कारण परशुराम के शान्त हो जाने पर तालजंघ ने अपना राज्य पुत्र के साथ फिर संभाल लिया।।७२।। फिर वह शत्रु नाशक श्रेष्ठ राजा पहले की तरह पुरी बनाकर रहता हुआ राज्य का पालन करनेलगा।।७३।।

सुपुत्रः सानुगबलः पूर्ववैरमनुस्मरन्। अभ्याययौ महाराज तालजंघः पुरं तव॥७४॥
चतुरंगबलोपेतः कंपयन्निव मेदिनीम्। रुरोदाभ्येत्य नगरीमयोध्यां स महीपतिः॥७५॥
ततो निष्क्रम्य नगरात्फल्गुतंत्रोऽपि ते पिता। युयुधे तैर्नृपैः सर्वैर्वृद्धोऽपि तरुणो यथा॥७६॥
निहतानेकमातंगतुरंगरथसैनिकः। शत्रुभिर्निर्जितो वृद्धः पलायनपरोऽभवत्॥७७॥
त्यक्त्वा स नगरं राज्यं सकोशबलवाहनम्। अंतर्वत्न्या च ते मात्रा सहितो वनमाविशत्॥७८॥
तत्र चौर्वाश्रमोपांते निवसन्नचिरादिव। शोकामर्षसमाविष्टो वृद्धभावेन च स्वयम्॥७९॥
विलोक्यमानो मात्रा ते बाष्पगद्गदकंठया। अनाथ इव राजेन्द्र स्वर्गलोकमितो गतः॥८०॥
ततस्ते जननी राजन्दुःखशोकसमन्विता। चितामारोपयद्भर्तुः रुदती सा कलेवरम्॥८१॥
अनशनादिदुःखेन भर्त्तुर्व्यसनकर्शिता। चकाराग्निप्रवेशाय सुदृढां मतिमात्मनः॥८२॥
और्वस्तदखिलं श्रुत्वा स्वयमेव महामुनिः। निर्गत्य चाश्रमात्तां च वारयन्निदमब्रवीत्॥८३॥
न मर्त्तव्यं त्वया राज्ञि सांप्रतं जठरे तव। पुत्रस्तिष्ठति सर्वेषां प्रवरश्चक्रवर्त्तिनाम्॥८४॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा माता तव मनस्विनी। विरराम मृतेस्तां तु मुनिः स्वाश्रममानयत्।
ततः सा सर्वदुःखानि नियम्य त्वन्मुखांबुजम्॥८५॥
दिदृक्षुराश्रमोपांते तस्यैव न्यवसत्सुखम्। सुषाव च ततः काले सा त्वामौर्वाश्रमे तदा॥८६॥

अब ऋषि वशिष्ठ राजा सगर से कहते हैं कि हे महाराज! उस हैहयवंशीय राजा कार्तिकेय का पुत्र तालजंघ अपने पुत्रों के साथ पूर्व वैर को स्मरण करता हुआ आपके (सगर) के सामने आ गया।।७४।। रथारोही, गजारोही, अश्वरोही और पैदल सैनिकों वाला चतुरंगिणी सेना के साथ वह राजा पृथ्वी को कंपाता हुआ सा अयोध्या नगरी में आ गया और फिर उसने अयोध्या नगरीको रौंद डाला।।७५।। उसके बाद विफलतंत्र (निरुपाय) तुम्हारे पिता ने नगर से निकलकर उनसब राजाओं के साथ वृद्ध होते हुए भी तरुण की तरह युद्ध किया।।७६।। उनके अनेक हाथी घोड़े रथ और पैदल सैनिक मारे गये और शत्रुओं से हारकर वे वृद्ध राजा तुम्हारे पिता नगर से भाग गये।।७७।। कोश सेना और वाहन युक्त राज्य और नगर को छोड़कर वे राजा साथ में रहने वाली तुम्हारी माता के साथ वन में प्रवेश कर गये।।७८।। वहाँ पर और्व ऋषि के आश्रम के पास बहुत समय तक निवास करते रहे, वहाँ वे स्वयं वृद्ध होने के कारण शोक और अमर्ष से पीड़ित थे; क्योंकि अब उनमें अपना राज्य वापस लेने की क्षमता नहीं थी, वे बहुत दुःखी थे तथा तुम्हारी माता उन्हें अपनी आँसू भरी हुई आँखों से देखती थीं। अन्त में अनाथ की तरह वे इस संसार से स्वर्ग लोक को चले गये।।७९-८०।। उसके बाद हे राजन्! आपकी माता दुःखी और शोकमग्न हो गयीं और रोती हुई उन्होंने पति के शरीर को चिता में समर्पित कर दिया।।८१।। पति पर आयी हुई आपत्तियों से तथा न खाने, पीने, पहने आदि से दुःखी तुम्हारी मां ने अग्नि में प्रवेश करने के लिये अपनी बुद्धि को सुदृढ़ बना लिया।।८२।। महर्षि और्व ने उस समस्त को सुनकर उन स्वयं ही वे महामनि ने आश्रम से निकलकर उनको रोकते हुए यह कहा।।८३।। कि हे रानी! तुम्हें मरना नहीं चाहिये; क्योंकि इस तुम्हारे गर्भ में समस्त चक्रवर्तियों में श्रेष्ठ पुत्र स्थित है।।८४।। इस प्रकार उनके उस वचन को सुनकर तुम्हारी मनस्विनी मां रुक गयीं, फिर और्वमुनि उनको अपने आश्रम में ले आये।।८५।। उसके बाद सब दुःखों को रोककर तुम्हारे कमल रूपी मुख को देखने की इच्छा रखने

जातकर्मादिकं सर्वं भवतः सोऽकरोन्मुनिः। और्वाश्रमे विवृद्धश्च भवांस्तेनानुकंपितः॥८७॥
त्वयैव विदितं सर्वमतः परमरिंदम। एवं प्रभावो नृपतिः कार्त्तवीर्योऽभवद्भुवि॥८८॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकेषु विश्रुतः। यद्वंशजैर्जितो युद्धे पिता ते वनमादिशत्॥८९॥
तद्वृत्तांतमशेषेण मया ते समुदीरितम्। एतच्च सर्वमाख्यातं व्रतानामुत्तमं तव॥९०॥
समन्त्रतन्त्रं लोकेषु सर्वलोकफलप्रदम्। न ह्यस्य कर्त्तुर्नृपतेः पुरुषार्थचतुष्टये॥९१॥
भवत्यभीप्सितं किंचिद्दुर्ल्लभ भुवनत्रये। संक्षेपेण मयाख्यातं व्रतं हैहयभूभुजः।
जामदग्न्यस्य च मुने किमन्यत्कथयामि ते॥९२॥

जैमिनिरुवाच

ततः स सगरो राजा कृतांजलिपुटो मुनिम्॥९३॥
उवाच भगवन्नेतत्कर्तुमिच्छाम्यहं व्रतम्। सम्यक्तमुपदेशेन तत्रानुज्ञां प्रयच्छ मे॥९४॥
कर्मणानेन विप्रर्षे कृतार्थोऽस्मि न संशयः। इत्युक्तस्तेन राज्ञा तु तथेत्युक्त्वा महामुनिः॥९५॥
दीक्षयामास राजानं शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना। स दीक्षितो वसिष्ठेन सगरो राजसत्तमः॥९६॥
द्रव्याण्यानीय विधिवत्प्रचचार शुभव्रतम्। पूजयित्वा जगन्नाथं विधिना तेन पार्थिवः॥९७॥
समाप्य च यथायोग्यमनुज्ञाय गुरुं ततः। प्रतिज्ञामकरोद्राजा व्रतमेतदनुत्तमम्॥९८॥

वाली तुम्हारी मां उस आश्रम में सुखपूर्वक रहने लगीं। तब उसके बाद उन्होंने समय पर उस और्व आश्रम में तुमको पैदा किया।।८६।। तब उन मुनि ने तुम्हारे जातकर्म आदि संस्कार किये। उस और्व आश्रम में उनकी कृपा से तुम पलकर बड़े हुए, युवक हुए।।८७।। शत्रुओं का नाश करने वाले हे राजन्! इस प्रकार तुमने सब जान लिया है कि ऐसे प्रभाव वाला राजा कार्त्तवीर्य इस पृथ्वी पर हुआ था।।८८।। इस व्रत के प्रभाव से वह सब लोकों में प्रसिद्ध हुआ। जिसके वंश में उत्पन्न होने तालजंघ ने तुम्हारे पिता को युद्ध में जीत लिया, जो वन में रहने लगे थे।।८९।। उस समस्त वृत्तान्त को मैंने तुम्हें सुना दिया है तथा यह तुमसे कहा गया, उत्तम वृत्तान्त मन्त्र और तन्त्र सहित समस्त लोकों में फल प्रदान करने वाला है। इसको पढ़ने सुनने वाला राजा को पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के विषय में तीनों लोकों में कोई दुर्लभ वस्तु अभीप्सित हो जाती है अर्थात् इस कथा को सुनने वाले राजा के लिये संसार में कोई इच्छित वस्तु दुलर्भ नहीं है, वह जो चाहेगा वह मिल जायेगा। वशिष्ठ ने राजा सगर से कहा कि इस प्रकार मैंने संक्षेप से हैहय वंशीय कार्त्तवीर्य और परशुराम मुनि के व्रत को तुम्हें सुना दिया है और अधिक तुमसे क्या कहूँ।।९०-९२।।

जैमिनि ने कहा—उसके बाद उस राजा सगर ने हाथ जोड़कर उन वशिष्ठ मुनि से कहा कि हे भगवन्! मैं इस व्रत को करना चाहता हूँ। सम्यक् प्रकार से उपदेश द्वारा मुझे अनुमति प्रदान की कीजिये।।९३-९४।। उस उपदेश कर्म द्वारा में कृतार्थ हो गया हूँ, इसमें सन्देह नहीं है।।९४½।। ऐसा जब उस राजा ने कहा तो मुनि ने कहा कि ठीक है, मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा। तब उन मुनि ने शास्त्रोक्त रीति से राजा को दीक्षा दी।।९४½-९५½।। उसके बाद वशिष्ठ द्वारा दीक्षित होकर उस नृपश्रेष्ठ सगर ने द्रव्यों को लाकर विधिवत् इस शुभव्रत का प्रचार किया।।९५½-९६½।। तब उस राजा ने उस विधि से जगन्नाथ की पूजा करके और पूजा समाप्त कर यथायोग्य गुरु की अनुमति लेकर इस अनुत्तम व्रत को करने की प्रतिज्ञा की।।९६½-९८।।

आजीवांतं धरिष्यामि यत्नेनेति महामतिः। अथानुज्ञाप्य राजानं वसिष्ठो भगवानृषिः॥९९॥
सन्निवर्त्यानुगच्छंतं प्रजगाम निजाश्रमम्॥१००॥

।इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरोपाख्याने वसिष्ठगमनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४७।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरोपाख्याने

सगर प्रतिज्ञापालनं नाम

अष्टचत्वारिंशत्तमोध्यायः

जैमिनिरुवाच

गते तस्मिन्मुनिवरे सगरो राजसत्तमः। अयोध्यायामधिवसन्पालयामास मेदिनीम्॥१॥
सर्वसंपद्गणोपेतः सर्वधर्मार्थतत्त्ववित्। वयसैव स बालोऽभूत्कर्मणा वृद्धसंमतः॥२॥
तथापि न दिवा भुंक्ते शेते वा निशि संस्मरन्। सुदीर्घं निःश्वसित्युष्णमुद्विग्नहृदयोऽनिशम्॥३॥
श्रुत्वा राजा स्वराज्यं निजगुरुमवजित्यारिभिः संगृहीतं
मात्रा सार्द्धं प्रयांतं वनमतिगहनंस्वर्गतं तं च तस्मिन्।

हे महामति! मैं इस व्रत को आजीवन धारण करूँगा इसके बाद राजा को अनुमति देकर पीछे आते हुए राजा को लौटाकर भगवान् ऋषि वशिष्ठ अपने आश्रम को चले गये।।९९-१००।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४७वां अध्याय सगरोपाख्यान के भार्गवचरित में परशुराम का तपस्या के लिये महेन्द्र पर्वत पर जाना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सगर उपाख्यान में

अध्याय–४८

सगर प्रतिज्ञापालन

जैमिनि ने कहा कि जब मुनि वशिष्ठ चले गये, तब उस श्रेष्ठ राजा सगर ने अयोध्या में रहते हुए पृथ्वी का पालन किया।।१।। सब सम्पत्तियों और गुणों से युक्त सब धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानने वाला वह राजा आयु से बालक था; परन्तु कर्म से वृद्धों द्वारा भी मान्य था।।२।। वह बालक था, फिर भी वह दिन में नहीं खाता था और रात में सोता था तो उस अपने पिता की बीती हुई कहानी को स्मरण करता हुआ सोता था। वह उस प्राचीन घटना को स्मरण करता हुआ लम्बी और गर्म श्वासें लेता हुआ हर समय उद्विग्न हृदय से रहता था।।३।। उस राजा ने जब अपने गुरु वशिष्ठ से सुना था कि तुम्हारे पिता से तुम्हारा राज्य तुम्हारे शत्रुओं ने छीन लिया था तथा तुम्हारी माता

शोकाविष्टः सरोषं सकलरिपुकुलोच्छित्तये सत्प्रतिज्ञश्चक्रे
सद्यः प्रतिज्ञां परिभवमनलं सोढुमिक्ष्वाकुवंश्यः।।४।।
स कदाचिन्महीपालः कृतकौतुकमंगलः। रिपुं जेतुं मनश्चक्रे दिशश्च सकलाः क्रमात्।।५।।
अनेकरथसाहस्त्रैर्गजाश्वरथसैनिकैः;। सर्वतः संवृतो राजा निश्चक्राम पुरोत्तमात्।।६।।
शत्रून्हंतुं प्रतस्थे निजबलनिवहेनोत्पतद्भिस्तुरंगै,
र्नासत्त्वोर्मिज्जलाक्रान्तजलनिधिनिभेनाथ षाडंगिकेन।
मत्तैर्मातंगयूथैः सकुलगिरिकुलेनैव भूमंडलेन,
श्वेतच्छत्रध्वजौघैरपि शशिसुकराभातखेनैव सार्द्धम्।।७।।
तस्याग्रेसरसैन्ययूथचरणप्रक्षुण्णशैलोच्चय,
क्षोदापूरितनिम्नभागमवनीपालस्य संयास्यतः।
प्रत्येकं चतुरंगसैन्यनिकरप्रक्षोदसंभूतभू,
रेणुप्रावृतिरुत्स्थली समभवद्भूमिस्तु तत्रानिशम्।।८।।
निघ्नन्दृप्ताननेकाद्विपतुरगरथव्यूहसंभिन्नवीरान्,
सद्यः शोभां दधानोऽसुरनिकरचमूर्निघ्नतश्चन्द्रमौलिः।

के साथ तुम्हारे पिता अत्यन्त गहन वन में दुःखी रहते हुए स्वर्ग को चले गये तथा कैसे कैसे भयानक कष्टों से तुम्हारा पालन-पोषण हुआ? इस सबसे शोकाकुल और क्रोधित उस सत्यप्रतिज्ञ सूर्यवंशी राजा सगर ने समस्त शत्रुकुल का नाश करने के लिये उस पराजय रूपी अग्नि को सहन करने की प्रतिज्ञा की।।४।। उसके बाद कभी कुछ मंगल करने की इच्छा रखने वाले उस राजा सगर ने सकल दिशाओं के क्रम से शत्रुओं को जीतने का मन बनाया।।५।। अनेकों रथों हजारों हाथियों घोड़ों रथों और सैनिकों से सब ओर से घिरा हुआ, वह राजा उत्तम नगरी आयोध्या से युद्ध के लिये निकल पड़ा।।६।। और फिर अपने सैन्यसमूह के दौड़ते हुए घोड़ों के द्वारा उठती हुई धूलि से ऐसा लगता था, मानो कि विष्णु द्वारा प्रलय काल में समुद्र के जल में लहरों को पैदा कर दिया गया हो। मदमत्त हाथियों के झुण्डों से समस्त पर्वत ही भूमण्डल बन गये हों। श्वेत छत्र की ध्वजाओं से भी चन्द्रमा की सुन्दर किरणों से चमकते हुए आकाश के साथ ही समस्त पर्वतों से युक्त भूमण्डल भी श्वेत सा लगता था। ऐसे सैन्यसमूह से युक्त उस राजा सगर ने शत्रुओं को मारने के लिये प्रस्थान कर दिया।।७।।

उस राजा की आगे चलने वाली सेना के झुण्ड के चरणों से घसीटे गये पर्वतसमूहों की धूलि से पृथ्वी का निम्न भाग भर गया था, ऐसी भूमि पर राजा के जाते हुए प्रत्येक चतुरंगिणी सेनाओं द्वारा उठायी गयी धूलि से ऊँची-नीची भूमि भी समतल भूमि हो गयी थी। भाव यह है कि उसकी चतुरंगिणी सेना में हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सैनिको के चलने से इतनी धूलि उड़ रही थी कि वहाँ की जमीन पर जितनी नीचीं भूमि थी, उस पर धूल जमने से सारी भूमि समतल हो गयी है, यहाँ पर अतिश्योक्ति की सुन्दर छटा है।८।। तब युद्ध भूमि में अनेक मत वाले हाथियों, घोड़ों, रथों तथा उनके सवार सैनिकों तथा पैदल सैनिकों तथा युद्ध के व्यूह बनाये हुए वीरों को मारता हुआ, वह राजा असुरों की सेना को मारते हुए भगवान् शिव की शोभा को धारण कर रहा था। जैसे ही वह नगरों में प्रवेश करता

दूरादेवाभिशंसन्नरिनगरनिरोधेषु कर्माभिषंगे,
तेषां शीघ्रापयानक्षणमभिदिशति प्राणिधैर्यं विधत्ते॥९॥
विजिगीषुर्दिशो राजा राज्ञो यस्याभियास्यति॥१०॥
विषयं स नृपस्तस्य सद्यः प्रणतिमेष्यति। विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च स्वपदानुगान्॥११॥
संकेतगामिनः कांश्चित्कृत्वा राज्ये न्यवर्त्तत। एवं स विसरन्दिक्षु दक्षिणाभिमुखो नृपः॥१२॥
स्मरन्पूर्वकृतं वैरं हैहयानभ्यवर्त्तत। ततस्तस्य नृपैः सार्द्धं समग्ररथकुंजरैः॥१३॥
बभूव हैहयैर्वीरैः संग्रामो रोमहर्षणः। राज्ञां यत्र सहस्त्राणि स बलानि महाहवे॥१४॥
निजघान महाबाहुः संक्रुद्धः कोसलेश्वरः।
जित्वा हैहयभूपालान्भक्त्वा दग्ध्वा च तत्पुरीम्॥१५॥
निःशेषशून्यामकरोद्वैरांतकरणो नृपः। समग्रबलसंमर्द्दप्रमृष्टाशेषभूतलः॥१६॥
हैहयानामशेषं तु चक्रे राज्यं रजःसमम्। राज्यं पुरीं चापहाय भ्रष्टैश्वर्या हतत्विषः॥१७॥
राजानो हतभूयिष्ठा व्यद्रवंत समंततः। अभिद्रुत्य नृपांस्तांस्तु द्रवमाणान्महीपतिः॥१८॥
जघान सानुगान्मत्तः प्रजाः क्रुद्ध इवांतकः। ततस्तान्प्रति सक्रोधः सगरः समरेऽरिहा॥१९॥
मुमोचास्त्रं महारौद्रं भार्गवं रिपुभीषणम्।
तेनोत्सृष्टातिरौद्रत्रिभुवनभयदप्रस्फुरद्भार्गवास्त्र,

था, तो दूसरे से ही निन्दा करते हुए पराजय समझकर उनका शीघ्र ही नगर से भाग जाना ही प्राणियों को धैर्य धारण का उपाय था अर्थात् भाग जाने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं था।।९।।

दिशाओं को जीतने की इच्छा रखने वाला वह राजा सगर जिस राजा के देश पर अभियान (आक्रमण) करता था, वह राजा शीघ्र ही उसके सामने नतमस्तक हो जाता था।।१०-१०½।। इस प्रकार अपने पदों का अनुसरण करने वाले सभी राजाओं को जीतकर उस राज्य में किन्हीं को संकेतगामी बनाकर अपने राज्य में लौट आया।।१०½-११½।। इस प्रकार सभी दिशाओं में अपने राज्य का विस्तार करता हुआ दक्षिण की ओर अभिमुख होकर हैहयाधिपति तालजंघ द्वारा किये गये पूर्व वैर को याद करता हुआ, हैहयवंशीय राजाओं की ओर चल पड़ा।।११½-१२½।। उसके बाद उसका समग्र रथों और हाथियों वाले हैहयवंश के वीर राजाओं के साथ रोमांचकारी संग्राम हुआ।।१२½-१३½।। जहां महाबाहु क्रोधित कौशलेश्वर राजा सगर ने युद्ध में हैहय राजाओं की हजारों सेनाओं को मार डाला।।१३½-१४½।। तब वैर का अन्त करने वाले राजा ने हैहयवंश के राजाओं को जीतकर उनकी नगरी को भंग करके तथा जलाकर उस नगरी को पूरी तरह शून्य कर दिया।।१४½-१५½।। उस राजा ने समस्त सेना का मर्दन करते हुए और समस्त भूतल को रौंदते हुए हैहय राजाओं का सम्पूर्ण राज्य धूलि के समान कर दिया।।१५½-१६½।।

युद्ध में भ्रष्ट ऐश्वर्य वाले कान्तिहीन मरने से बचे हुए राजा अपने राज्य और नगरी को छोड़कर चारों ओर भाग गये।।१६½-१७½।। उन भागते हुए राजाओं को और उनका अनुसरण करते हुए राजाओं को राजा सगर ने उसी तरह मार डाला, जिस प्रकार कि क्रुद्ध यमराज प्रजाओं को मार डालता है।।१७½-१८½।। उसके बाद जो इधर उधर भाग गये, उन राजाओं के प्रति क्रोधित शत्रुहन्ता राजा सगर ने शत्रुभीषण महाभयंकर भार्गव अस्त्र को छोड़ दिया।।१८½-१९½।।

ज्वालादंदह्यमानावशतनुततयस्ते नृपाः सद्य एव।
वाय्वस्त्रावृत्तधूमोद्गमपटलतमोमुष्टदृष्टिप्रसारा,
भ्रेमुर्भूपृष्ठलोठद्बहुलतमग्जोगूढमात्रा मुहूर्त्तम्॥२०॥
आग्नेयास्त्रप्रतापप्रतिहतगतयोऽदृष्टमार्गाः समंता,
द्भूपाला नष्टसंघाः परवशतनवो व्याकुलीभूतचित्ताः।
भीताः संत्युक्तवस्त्रायुधकवचविभूषादिका मुक्तकेशा,
विस्पष्टोन्मत्तभावान्भृशतरमनुकुर्वंत्यग्रतः शात्रवाणाम्॥२१॥
विजित्य हैहयान्सर्वान्समरे सगरो बली। संक्षुब्धसागराकारः कांबोजानभ्यवर्त्तत॥२२॥
नानावादित्रघोषाहतपटहरवाकर्णनध्वस्तधैर्याः,
सद्यःसंत्यक्तराज्यस्वबलपुरपुरंध्रीसमूहा विमूढाः।
कांबोजास्तालजंघाः शकयवनकिरातादयः साकमेते,
भ्रेमुर्भूर्यस्त्रभीत्या दिशि दिशि रिपवो यस्य पूर्वापराधाः॥२३॥
भीतास्तस्य नरेश्वरस्य रिपवः केचित्प्रतापानल,
ज्वालामुष्टदृशो विसृज्य वसतिं राज्यं च पुत्रादिभिः।

उस छोड़े गये अत्यन्त रौद्र तीनों लोकों को भयभीत करने वाले चमकते हुए भार्गव अस्त्र की ज्वालाओं से जलते हुए वेवश शरीरों वाले राजा लोग शीघ्र ही वायव्य अस्त्र से आवृत हो गये, तब धूम निकलने से जिनकी दृष्टि अवरुद्ध हो गयी है, वे सब भूमि पर लोटते हुए बहुत अधिक अंधकार के कारण थोड़ी देर पृथ्वी पर घूमने लगे। भाव यह है कि राजा सगर ने जब भार्गव अस्त्र का प्रहार किया, तो वह भार्गव अस्त्र इतना रौद्र और तीनों लोकों को भयभीत करने वाला था कि उसकी चमकती हुई ज्वालाओं से वेवश राजाओं के शरीर जलने लगे, उनके शरीर जल ही रहे थे, तब तक राजा सगर ने वायव्य अस्त्र का प्रयोग कर दिया, तब उस वायव्यास्त्र से सर्वत्र धुंआ छा गया, जिस धुंये के कारण उन राजाओं की दृष्टि का प्रसार अवरुद्ध हो गया और फिर सभी राजा लोग भूमि पर लोटते हुए धुंये से उत्पन्न अंधकार की अधिक मात्रा के कारण वहीं चक्कर काटने लगे।।२०।।

उसके बाद उस आग्नेयास्त्र के प्रताप से राजाओं के भागने की शक्ति समाप्तहो गयी तथा मार्ग भी नहीं दिखायी दे रहे थे, तब चारों ओर राजा लोग चेतनाहीन हो गये तथा उनका शरीर परवश हो गया और फिर उन सबका मन व्याकुल हो गया। अतः व्याकुल चित्तवाले तथा बहुत अधिक डरे हुए राजा वस्त्र, अस्त्र, कवच और भूषणादि से भी रहित हो गये और बिखरे हुए बालों वाले सब पागलों की तरह शत्रु भावों का अधिकतर अनुकरण कर रहे थे।।२१।। प्रलयकाल में संक्षुब्ध सागर के आकार वाले उस बली राजा सगर ने युद्ध में समस्त हैहयवंशीय राजाओं को जीतकर, कम्बोज के राजाओं पर आक्रमण कर दिया।।२२।। अनेक प्रकार बाजों की घोषध्वनि से आहत तथा नगाड़ों की ध्वनि के सुनने से जिनके धैर्य नष्ट हो गये, ऐसे राजागण शीघ्र ही अपने राज्य, सेना, अपने नगर और अपनी स्त्रियों को छोड़कर विमूढ़ हो गये। वे नहीं समझ पा रहे थे कि क्या करें और क्या न करें। इस प्रकार वे सब काम्बोज, तालजंघ, शक, यवन, किरात आदि तथा उनके साथ वाले ये सभी शत्रु राजा जिनके पूर्व अपराध थे, वे सभी अस्त्रों के भय से सब दिशाओं में घूमने लगे। अर्थात् सब राजा अपने अपने राज्यों को छोड़कर भाग गये।।२३।। उस राजा सगर

द्विट्सैन्यैः समभिद्रुता वनभुवं संप्राप्य तत्रापि ते,
ऽस्तैमित्यं समुपागता गिरिगुहासुप्तोत्थितेन द्विषः॥२४॥
तालजंघान्निहत्याजौ राजा स बलवाहनान्। क्रमेण नाशयामास तद्राज्यमरिकर्षणः॥२५॥
ततो यवनकांबोजकिरातादीननेकशः। निजघान रूपाविष्टः पल्हवान्पारदानपि॥२६॥
हन्यमानास्तु ते सर्वे राजानस्तेन संयुगे। दुद्रुवुः संघशो भीता हतशिष्टाः समंततः॥२७॥
युष्माभिर्यस्य राज्यं बहुभिरपहृतं तस्य पुत्रोऽधुनाऽहं,
हन्तुं वः सप्रतिज्ञं प्रसभमुपगतो वैरनिर्यातनैषी।
इत्युच्चैः श्रावयाणो युधि निजचरितं वैरिभिर्नागवीर्यः,
क्षत्रैर्विध्वंसितेजाः सगरनरपतिः स्मारयामास भूपः॥२८॥
तं दृष्ट्वा राजवर्यं सकलरिपुकुलप्रक्षयोपात्तदीक्षं,
भीताः स्त्रीबालपूर्वं शरणमभिययुः स्वासुसंरक्षणाय।
इक्ष्वाकूणां वसिष्ठं कुलगुरुमभितः सप्त राज्ञां कलेषु,
प्रख्याताः संप्रसूता नृपवररिपवः पारदाः पल्हवाद्याः॥२९॥
वसिष्ठमाश्रमोपांते वसंतमृषिभिर्वृतम्। उपगम्याब्रुवन्सर्वे कृतांजलिपुटा नृपाः॥३०॥
शरणं भव नो ब्रह्मान्नार्त्तानामभयैषिणाम्। सगरास्त्राग्निनिर्दग्धशरीरणां मुमूर्षताम्॥३१॥
स हंत्यस्मानशेषेण वैरांतकरणोन्मुखः। तस्माद्भयाद्धि निष्क्रांता वयं जीवितकांक्षिणः॥३२॥

की प्रतापाग्नि की ज्वालाओं से दृष्टिहीन और भयभीत कुछ शत्रु राजा लोग अपने वासस्थान और राज्यों को छोड़कर पुत्रादिओं और सेनाओं के साथ भाग गये तथा वहाँ भी वन में पहुँचकर पर्वतों की गुफाओं में सोते हुए उन्हें हाथियों ने मार डाला।।२४।। अपने प्रधान शत्रु तालजंघ राजाओं को तथा उनकी सेना और वाहनों को युद्ध में मारकर शत्रुनाशक उस राजा ने क्रमशः उनके राज्य को नष्ट कर दिया।।२५।। उसके बाद यवन, काम्बोज, किरात, पल्हव, पारद आदि राजाओं को भी उस क्रोधी राजा सगर ने मार दिया।।२६।। उस राजा द्वारा युद्ध में सभी राजा मार दिये गये तथा जो मरने से वचे हुए थे, वे सब डरे हुए टुकड़ियां बनाकर चारों ओर भाग गये।।२७।।

तुम बहुत लोगों ने जिसका राज्य छीन लिया, अब उसका पुत्र मैं आप लोगों को मारने की प्रतिज्ञा का वैर का वदला चुकाने का इच्छुक बलपूर्वक तुम्हारे पास आ गया हूँ। इस प्रकार उच्च स्वर से युद्ध में सुनाता हुआ, वैरी क्षत्रियों द्वारा नष्ट तेज वाला नाग के समान पराक्रमी वह राजा सगर अपने चरित अर्थात् अपनी पहली कहानी को याद करने लगा।।२८।। स्त्री बालकों के साथ समस्त शत्रुकुल को नाश तक पहुँचाने में दीक्षा प्राप्त उस श्रेष्ठ राजा सगर को देखकर डरे हुए सात राजाओं के कुलों में उत्पन्न हुए प्रख्यात (प्रसिद्ध) राजाओं में श्रेष्ठ पारद, पल्हव आदि शत्रु राजा इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं के कुलगुरु वशिष्ठ के पास चारों ओर से आकर अपने प्राणों की रक्षा के लिये गये।।२९।। वशिष्ठ आश्रम के पास रहते हुए ऋषियों से घिरे हुए वशिष्ठ के पास पहुँचकर हाथ जोड़कर खड़े हुए सब राजाओं ने कहा कि हे ब्रह्मन्! अभय चाहने वाले हम पीड़ितों को शरण में लीजिये तथा राजा सगर के अस्त्रों की अग्नि से जले हुए शरीरों वाले हम सबकी रक्षा कीजिये।।३०-३१।। राजा लोग बोले कि वे राजा सगर पुराने वैर को अपने अन्तःकरण में रखे हुए हम सबको पूर्णरूप से मार रहे हैं, वे हममें से एक को भी शेष छोड़ना नहीं

विभिन्नराज्यभोगर्द्धिस्वदारापत्यबांधवाः। केवलं प्राणरक्षार्थं त्वां त्वयं शरणं गतः॥३३॥

न ह्यन्योऽस्ति पुमाँल्लोके सौहृदेन बलेन वा।
यस्तं निवर्त्तयित्वास्मान्पालयेन्महतो भयात्॥३४॥

त्वं किलार्कान्वयभुवां राज्ञां कुलगुरुर्वृतः। तद्वंशपूर्वजैर्भूपैस्त्वत्प्रभावश्च तादृशः॥३५॥

तेनायं सगरोऽप्यद्य गुरुगौरवयंत्रितः। भवन्निदेशं नात्येति वालामिव महोदधिः॥३६॥

त्वं नः सुहृत्पिता माता लोकानां च गुरर्विभो। तस्मादस्मान्महाभाग परित्रातुं त्वमर्हसि॥३७॥

जैमिनिरुवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः। शनैर्विलोकयामास शरणं समुपागतान्॥३८॥

वृद्धस्त्रीबालभूयिष्ठान्हतशेषान्नृपान्वयान्। दृष्ट्वा त्वतप्यद्भगवान्सर्वभूतानुकंपकः॥३९॥

चिरं निरूप्य मनसा तान्विलोक्य च सादरम्।
उज्जीवयञ्छनैर्वाचा मा भैष्टेति महामतिः॥४०॥

अथावोचन्महाभागः कृपया परयान्वितः। समये स्थापयामास राज्ञस्ताञ्जीवितार्थिनः॥४१॥

भूपव्या कोपदग्धं नृपकुलविहिताशेषधर्मादपेतं
कृत्वा तेषां वसिष्ठः समयमवनिपालप्रतिज्ञानिवृत्त्यै।
गत्वा तं राजवर्यं स्वयमथ शनकैः सांत्वयित्वा यथावत्,
सप्राणानामरीणामपगमनविधावभ्यनुज्ञां ययाचे॥४२॥

चाहते हैं। हम लोग किसी तरह भय से उनसे बचकर निकल आये हैं; क्योंकि हम जीना चाहते हैं।।३२।। अनेकों राज्यों का भोग, समृद्धि अपनी पत्नी सन्तान और बान्धवों वाले हम राजा लोग अब केवल प्राणों की रक्षा के लिये आपकी शरण में आये हैं अर्थात् सब कुछ तो हमारा समाप्त हो गया, अब हम केवल जीना चाहते हैं।।३३।। हे महर्षि! इस संसार में अन्य कोई मनुष्य नहीं है, जो मित्रता से अथवा बल से उन राजा सगर को हराकर हमारी महान् भय से रक्षा कर सके।।३४।। आप मुनिवर! निश्चय ही सूर्यवंश में पैदा हुए राजाओं के कुलगुरु हैं तथा उन पूर्वज राजाओं पर जैसा आपका प्रभाव था, वैसा ही इन पर है।।३६।। हे विभो! आप हमारे मित्र माता-पिता और लोकों के गुरु हैं, इसलिए हे महाभाग! आप हमारी रक्षा कर सकते हैं।।३७।।

जैमिनि ने कहा कि इस प्रकार के वचन सुनकर भगवान् ऋषि वशिष्ठ ने शरण में आये हुए उनको धीरे से देखा।।३८।। वृद्ध, स्त्री, बालक असंख्य मरने से बचे हुए सेवकों को देखकर तो सब प्राणियों पर दया करने वाले महामति भगवान् वशिष्ठ ने बहुत देर तक मन से विचार कर और फिर उन्हें आदर से देखकर उनको जीवन प्रदान करती हुई वाणी से, डरो मत ऐसा कहा।।३९-४०।। इसके बाद उन महाभाग वशिष्ठ ने उन पर दया की और उन जीवन चाहने वाले राजाओं से समझौता स्थापित किया।।४१।। "समस्त वचे हुए शत्रु राजाओं के कुल में एक भी नहीं बचे" बहुत अधिक क्रोध से जलते हुए राजा सगर की इस प्रतिज्ञा से राजा को निवृत्त करने के लिये वशिष्ठ स्वयं ही गये और शीघ्र ही उस श्रेष्ठ राजा के पास जाकर उसे सान्त्वना देकर शत्रुओं के प्राणों को लौटाने की विधि में विशेष अनुमति माँगी।।४२।।

सक्रोधोऽपि महीपतिर्गुरुवचः संभावयंस्तानरीन्धर्मस्य स्वकुलोचितस्य च तथा वषस्य संत्यागतः।
श्रोतस्मार्त्तविभिन्नकर्मनिरतान्विप्रैश्च दूरोज्झितान्सासून्केवलमत्यजन्मृतसमानेकेकशः पार्थिवान्॥४३॥

अर्द्धमुण्डाञ्छक्रांश्चक्रे पल्हवान् शमश्रुधारिणः।
यवनान्विगतश्मश्रून्कांबोजांश्चबुकान्वितान्॥४४॥

एवं विरूपानन्यांश्च स चकार नृपान्वया्। वेदोक्तकर्मनिर्मुक्तान्विप्रैश्च परिवर्जितान्॥४५॥

कृत्वा संस्थाप्य समये जीवतस्तान्व्य सर्जयत्।
ततस्ते रिपवस्तस्य त्यक्तस्वाचारलक्षणाः॥४६॥

व्रात्यतां समनुप्राप्ताः सर्ववर्णविनिंदिताः। धिक्कृताः सततं सर्वे नृशंसा निरपत्रपाः॥४७॥

क्रूराश्च संघशो लोके बभूवुर्म्लेछजातयः॥४८॥
मुक्तास्तेनाथ राज्ञा शकयवनकिरातादयः सद्य एव,
त्यक्तस्वाचारवेषा गिरिगहनगुहाद्याश्रयाः संबभूवुः।
एता अद्यापि सद्भिः सततमवमता जातयोऽसत्प्रवृत्त्या,
वर्त्तन्ते दुष्टचेष्टा जगति नरपतेः पालयंतः प्रतिज्ञाम्॥४९॥

।इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरोपाख्याने सगरप्रतिज्ञापालनं नामाष्टाचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४८।।

क्रोध युक्त उस राजा सगर ने गुरु वशिष्ठ के वचन को मान तो लिया; परन्तु इस शर्त के साथ कि ये सभी शत्रु राजा लोग अपने कुल के उचित धर्म और आचार का सम्यक् प्रकार से त्याग करेंगे, वेद स्मृति आदि विभिन्न कर्मों से ये सब अलग रहेंगे। अर्थात् इन्हें वेदों स्मृतियों के अध्यापन तथा उनमें विहित संस्कार यज्ञादि कर्मों का कोई अधिकार नहीं होगा तथा वे सब भागे हुए राजा लोग केवल प्राणों का न त्याग करते हुए भी मृत (मरे हुए) के समान रहेंगे।।४३।। तब उन राजाओं में से शकवंशीय राजाओं के आधे सिर का मुण्डन करा दिया, पल्हव वंशीय राजाओं को दाढ़ी धारण करने वाला बना दिया अर्थात् उन्हें दाढ़ी रखनी होगी। यवनों की दाढ़ियाँ कटवा दीं, इस प्रकार काम्बोजों और चबुकों को भी दाढ़ी रहित कर दिया।।४४।। इस प्रकार अन्य नृपकुलों को वेदोक्त कर्म से वियुक्त और ब्राह्मणों से परिवर्जित कर दिया। इस प्रकार के समझौते में उन्हें जीवित रहने का अधिकार दिया।।४५-४५½।। उसके बाद उस राजा के वे सब शत्रु अपने आचार के लक्षणों से रहित होकर शूद्रता को प्राप्त हो गये और सब वर्णों द्वारा विशेष निन्दित हो गये अर्थात् वे सब राजा उनके कुल सेवकादि सभी शूद्र हो गये।।४५½-४६½।। इस प्रकार वे सब कुल संसार में धिक् कृत, नृशंस, निर्लज्ज, क्रूर मजदूर म्लेच्छ जातियां हो गये।।४६½-४८।। इसके बाद उस राजा सगर द्वारा छोड़े गये, वे सभी शक, यवन, किरातादि ने अपने आचरण व्यवहार और वेशभूषा को त्याग कर पर्वतों की गहन गुफाओं को अपना आश्रय बनाया। आज भी सज्जनों द्वारा ये जातियां असत् कार्यों में प्रवृत्त मानी गयी हैं, आज भी ये जाति दुष्ट चित्त वाली हो महाराज सगरकी प्रतिज्ञा का पालन कर रही हैं।।४९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यमभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४८वां अध्याय सगर उपाख्यान में सगर प्रतिज्ञापालन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

सगरदिग्विजयो नाम

एकोपंचाशत्तमोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच

अथानुज्ञाय सगरो वसिष्ठमृषिसत्तमम्। बलेन महता युक्तो विदर्भानभ्यवर्त्तत॥१॥
ततो विदर्भराट् तस्मै स्वसुतां प्रीतिपूर्वकम्। केशिन्याख्यामनुपमामनुरूपां न्यवेदयत्॥२॥
स तस्या राजशार्दूलो विधिवद्वह्निसाक्षिकम्। शुभे मुहूर्ते केशिन्याः पाणिं जग्राह भूमिपः॥३॥
स्थित्वा दिनानि कतिचिद्गृहे तस्यातिसत्कृतः। विदर्भराज्ञा संमंत्र्य ततो गंतुं प्रचक्रमे॥४॥
अनुज्ञातस्ततस्तेन पारिबर्हैश्च सत्कृतः। निष्क्रम्य तत्पुराद्राजा शूरसेनानुपेयिवान्॥५॥
संभावितस्ततश्चैव यादवैर्मातृसोदरैः ॐ धनौघैस्तर्पितस्तैश्च मधुराया विनिर्ययौ॥६॥
एवं स सगरो राजा विजित्य वसुधामिमाम्। करैश्च स नृपान्सर्वांश्चक्रे संकेतगानपि॥७॥
ततोऽनुमान्य नृपतीन्निजराज्याय सानुगान्। अनुजज्ञे नरपतिः समस्ताननुयायिनः॥८॥
ततो बलेन महता स्कंधावारसमन्वितः। शनैरपीडयन्देशान्स्वराज्यमुपजग्मिवान्॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-४९

सगर दिग्विजय

जैमिनि ने कहा कि इस प्रकार ऋषि श्रेष्ठ वशिष्ठ की अनुमति प्राप्त कर उस राजा सगर ने महान् सेना को लेकर विदर्भों पर आक्रमण कर दिया अर्थात् विदर्भ राज्य पर आक्रमण कर दिया।।१।। उसके बाद विदर्भराज ने केशिकी नाम की अनुपम और राजा सगर के अनुरूप अपनी पुत्री को राजा सगर के लिये निवेदन कर दिया।।२।। उस राजशार्दूल भूमिपालक सगर ने विधिवत् अग्नि को साक्षी बनाकर शुभ मुहूर्त में केशिनी का पाणिग्रहण कर लिया।।३।। कुछ दिनों तक उसके घर में रहकर उस विदर्भराज से अत्यन्त आदर प्राप्त कर वह राजा सगर विदर्भराज से मन्त्रणा लेकर वहाँ से जाने का उपक्रम करने लगे।।४।। जब वहाँ से अनुमति लेकर राजा चलने को तैयार हुए, तो विदर्भ राज ने उन्हें वैवाहिक दान दहेज द्वारा आदर के साथ विदा किया। फिर उस नगर से निकलकर शूरसेनों के पास गये।।५।। उसके बाद वे राजा सगर अपने ममेरे भाई यादवों द्वारा अपार धनों से संतृप्त होकर मथुरा नगरी से निकल गये।।६।। इस प्रकार उन राजा सगर ने इस पृथ्वी को जीतकर, उन सब देश के राजाओं को करों द्वारा संकेतग बना दिया अर्थात् सभी विजित राज्यों के राजा, राजा सगर को कर देते थे। राजा सगर ने उनका राज्य नहीं छीना; परन्तु प्रशासन छीन लिया। तुम राज्य करो हमें कर दो।।६।। उसके अपने सानुग राजाओं को अपने अपने राज्य जाने का अनुमान कर अनुसरण करने वाले राजाओं को जाने की अनुमति दे दी। उसके बाद महान् बल से सेना की टुकड़ियों से घिरे हुए वे राजा धीरे धीरे सभी देशों में घूमते हुए अपने राज्य के निकट पहुँच गये। मार्ग में

संभाव्यमानश्च मुहुरुपदाभिरनेकशः। नानाजनपदैस्तूर्णमयोध्यां समुपागमत्॥१०॥
तदागमनमाज्ञाय नागरः सकलो जनः। नगरीं तामलंचक्रे महोत्सवसमुत्सुकः॥११॥
ततः सा नगरी सर्वा कृतकौतुकमंगला। सिक्तसंमृष्टभूभागा पूर्णकुम्भशतावृता॥१२॥
समुच्छ्रितध्वजशता पताकाभिरलंकृता। सर्वत्रागरुधूपाढ्या विचित्रकुसुमोज्ज्वला॥१३॥
सद्रत्नतोरणोत्तुंगगोपुराट्टलभूषिता। प्रसूनलाजवर्षैश्च स्वलंकृतमहापथा॥१४॥
महोत्सवसमायुक्ता प्रतिगेहमभूत्पुरी। संपूजिताशेषवास्तुदेवतागृहमालिनी॥१५॥
दिक्चक्रजयिनो राज्ञः संदर्शनमुदान्वितैः : पौरजानपदैर्हृष्टैः सर्वतः समलंकृता॥१६॥
ततः प्रकृतयः सर्वे तांथःपुरवासिनः। वारकांताकदंबैश्च नगरीभिश्च संवृताः॥१७॥
अभ्याययुस्ततः सर्वे समेत्य पुरवासिनः। स तैः समेत्य नृपतिर्लब्धाशीर्वाद सत्क्रियः॥१८॥
बधिरीकृतदिक्चक्रो जयशब्देन भूरिणा। नानावादित्रसंघोषमिश्रेण मधुरेण च॥१९॥
सत्कृत्य तान्यथा योगं सहितस्तैर्मुदान्वितैः। आनंदयन्प्रजाः सर्वाः प्रविवेश पुरोत्तमम्॥२०॥
वेदघोषैः सुमधुरैर्ब्राह्मणैरभिनन्दितः। संस्तूयमानः सुभृशं सूतमागधवंदिभिः॥२१॥
जयशब्दैश्च परितो नानाजनपदैरितैः। कलतालरवोन्मिश्रवीणावेणुतलस्वनैः॥२२॥

अनेकों उपपद राजाओं द्वारा सत्कृत होता हुआ अनेकों जनपदों से घूमते हुए शीघ्र अयोध्यानगरी में आ पहुँचे।।७-१०।। तब उन महाराज सगर के आगमन को जानकर महोत्सव मनाने के लिए समुत्सुक नागरिकों ने नगरी को अलंकृत कर दिया।।११।। उसके बाद वह समस्त नगरी कौतुक और मंगलकारी सींची हुई और समतल भू-भाग वाली हो गयी अर्थात् चारों ओर जल का छिड़काव हो गया और उसे पूरीतरह साफ-सुथरा कर सुन्दर बना दिया गया तथा सैकड़ों भरे हुए घड़े चारों तरफ रख दिये गये।।१२।। ऊँची-ऊँची ध्वजाओं और पताकाओं से उसे सजा दिया गया, सर्वत्र अगरु की धूप से युक्त होकर अनेकों रंग के फूलों से उज्ज्वल बना दी गयी।।१३।। सच्चे रत्नों से सिंहद्वार तथा नगरद्वार और महल भूषित थे तथा फूलों और खीलों की वर्षाओं से महापथ सजा दिये गये।।१४।। उस नगरी का प्रत्येक घर महान् उत्सव से समायुक्त हो गया। अर्थात् प्रत्येक घर में महान् उत्सव मनाया जा रहा था। प्रत्येक घर में शेषनाग वास्तुदेवता और गृहमालिनी की पूजायें हो रही थीं।।१५।। समस्त दिशाओं को जीतने वाले राजा सगर का सम्यक् दर्शन करने के लिये आनन्दित और हर्ष से प्रफुल्लित नगरनिवासियों ने नगरी को चारों ओर सजा दिया था।।१६।। उसके बाद अन्तःपुर में रहने वाली सभी प्रजायें गणिकाओं से युक्त नगरियों से संवृत हो गयी।।१७।। उसके बाद सभी नगरनिवासी एकत्र होकर राजा के पास आये, तब सबके द्वारा राजा ने आशीर्वाद और सत्कार प्राप्त किया।।१८।। समस्त दिशाओं बधिर (वहरा) बनाने वाले घोर जय जयकार शब्द से तथा अनेकों वाद्यों के संघोष से मिले हुए मधुर शब्द से आहत होकर तथा आनन्द से युक्त उनके साथ समस्त प्रजा को आनन्दित करते हुये वे राजा उत्तमपुर अयोध्या में प्रविष्ट हुये।।१९-२०।। जब वे अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए उस समय वेद मन्त्रों के सुन्दर और मधुर घोष ध्वनि करते हुये ब्राह्मणों ने उनका अभिनन्दन किया। उस समय सूत मागध और वन्दिजन उनकी स्तुति कर रहे थे।।२१।। चारों ओर अनेकों जनपदों से आये हुए लोग जय-जयकार कर रहे थे। कहीं कलताल के स्वर से मिश्रित वीणा और बांसुरी की ध्वनियों के साथ गायक जन गाने गा रहे थे तथा गणिकायें नृत्य कर रही

गायद्भिर्गायकजनैर्नृत्यद्भिर्गणिकाजनैः अन्वीयमानो विलसच्छ्वेतच्छत्रविराजितः।।२३।।
विकीर्यमाणः परितः सल्लाजकुसुमोत्करैः। पुरीमयोध्यामविशत्स्वपुरीमिव वासवः।।२४।।
दृष्टिपूतेन गंधेन ब्राह्मणानां च वर्त्मना। जगाम मध्येनगरं गृहं श्रीमदलंकृतम्।।२५।।
अवरुह्य ततो यानाद्भार्याभ्यां सहितो मुदा। प्रविवेश गृहं मातुर्हृष्टपुष्टजनायुतम्।।२६।।
पर्यंकस्थामुपागम्य मातरं विनयान्वितः। तत्पादौ संस्पृशन्मूर्ध्ना प्रणाममकरोत्तदा।।२७।।
साभिनंद्य तमाशीर्भिर्हर्षगद्गदया गिरा। ससंभ्रमं समुत्थाय पर्यष्वजत चात्मजम्।।२८।।
सहर्षं बहुधाशीर्भिरभ्यनंददुभे स्नुषे। स तां संभाव्य कथया तत्र स्थित्वा चिरादिव।।२९।।
अनुज्ञातस्तया राजा निश्चक्राम तदालयात्। ततः सानुचरो राजा श्वेतव्यजनवीजितः।।३०।।
सुरराज इव श्रीमान्सभां समगमच्छनैः। संप्रविश्य सभां दिव्यामनोकनृपसेविताम्।।३१।।
नत्वा गुरुजनं सर्वमाशीर्भिश्चाभिनंदितः। सिंहासने शुभे दिव्ये निषसाद नरेश्वरः।।३२।।
संसेव्यमानश्च नृपैर्नानाजनपदेश्वरैः। नानाविधाः कथाः कुर्वन्स तत्र नृपसत्तमः।।३३।।
संप्रीयमाणः सुतरामुवास सह बंधुभिः। प्रतिज्ञां पालयित्वैवं जितदिङ्मंडलो नृपः।।३४।।
अन्वतिष्ठद्यथान्यायमर्थत्रयमुदारधीः। स्वप्रभावजिताशेषवैरिर्दिङ्मंडलाधिपः।।३५।।

थीं। इन सबसे सुशोभित श्वेत छत्र से विराजित वे राजा शोभा पा रहे थे।।२२-२३।। उनके चारों ओर खीलें और फूलों के पराग फेंके जा रहे थे। ऐसी अपनी अयोध्या नगरी में महाराजा सगर ने उसी प्रकार प्रवेश किया, जिस प्रकार कि इन्द्र ने इन्द्रपुरी में प्रवेश किया था।।२४।। फिर दृष्टिमात्र से पवित्र गन्ध वाले ब्राह्मणों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से राजा नगर के मध्य में समस्त प्रकार की सम्पत्तियों से अलंकृत घर में गये।।२५।। उसके बाद आनन्द सहित अपनी पत्नी के साथ यान से हृष्ट पुष्ट लोगों से रक्षित माता के घर में प्रविष्ट हुए।।२६।। तब पलंग पर बैठी हुई मां के पास जाकर विनयावनत हो, उनके चरणों को स्पर्श करके सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया।।२७।। उन माता श्री ने भी हर्ष से गद्गद् वाणी से उनका अभिनन्दन कर हर्ष से उतावली हो, उठकर पुत्र को गले से लगाकर चुम्बन कर लिया।।२८।। तथा बहुत आशीर्वादों से उन दोनों पुत्र एवं पुत्रवधू का अभिनन्दन किया। वहाँ बैठकर राजा ने अपनी समस्त घटित कथा को देर तक सुनाया।।२९।। उन अपनी माता से अनुमति प्राप्त कर, वे राजा उनके घर से निकल गये।।२९½।। उसके बाद वे राजा श्वेत व्यजनों (पंखों) से हवा किये जाते हुए अनुचरों सहित धीरे से देवों की सभा में इन्द्र के समान श्रीमानों की सभा में चले गये।।२९½-३०½।।

उस अनेक राजाओं से सेवित दिव्य सभा में प्रवेश करके सब गुरुजनों को नमस्कार कर उनके आशीर्वादों से अभिनन्दित हुए।।३०½-३१½।। अनेकों जनपदों के स्वामी राजाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से सेवित दिव्य शुभ सिंहासन पर बैठे।।३१½-३२½।। वहाँ पर वे राजश्रेष्ठ प्रसन्न रहते हुए अनेकों कथायें करते हुए बन्धुओं के साथ बहुत दिन तक रहे।।३२½-३३½।। अनेकों प्रकार की कथायें करते हुए वे राजश्रेष्ठ वहाँ प्रेमपूर्वक बन्धुओं के साथ बहुत दिन रहे।।३२½-३३½।। इस प्रकार प्रतिज्ञा का पालन करके समस्त दिशाओं को जीतने वाले अर्थत्रय उदार बुद्धि वाले उन राजा ने यथान्याय अनुष्ठान किया।।३३½-३४½।। अपने प्रभाव से समस्त वैरी राजाओं को जीतकर वैरी विहीन समस्त दिशामण्डल के अधिपति उन राजा ने एक छत्र पृथ्वी का भगवान् शंकर के समान शासन

एकातपत्रां पृथिवीमन्वशासन्नहुषो यथा। स्वर्यातस्य पितुः पूर्वं परिभावममर्षितः॥३६॥
स यां प्रतिज्ञामारूढस्तां सम्यक्परिपूर्य च। सप्तद्वीपाब्धिनगरग्रामायतनमालिनीम्॥३७॥
जित्वा शत्रूनशेषेण पालयामास मेदिनीम्। एवं गच्छति काले च वसिष्ठो भगवानृषिः॥३८॥
अभ्याजगाम तं भूयो द्रष्टुकामोजरेश्वरम्। तमायांतमतिप्रेक्ष्य मुनिवर्यं ससंभ्रमः॥३९॥
प्रत्युज्जगामार्घहस्तः सहितस्तैर्नृपैर्नृपः। अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामतिः॥४०॥
प्रणाममकरोत्तस्मै गुरुभक्तिसमन्वितः। आशीर्भिर्वर्द्धयित्वा तं वसिष्ठः सगरं तदा॥४१॥
आस्यतामिति होवाच सह सर्वैर्नरेश्वरैः। उपाविशत्ततो राजा कांचने परमासने॥४२॥
मुनिना समनुज्ञातः सभार्यः सह राजभिः। आ पवस्तुनृपश्रेष्ठमुपासीनमुपह्वरे॥४३॥
उवाच शृण्वतां राज्ञां शनैर्मृद्वक्षरं वचः।

वसिष्ठ उवाच

कुशलं ननु ते राजन्बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च॥४४॥
मंत्रिष्वमात्यवर्गेषु राज्ये वा सकलेऽधुना। दिष्ट्या च विजिताः सर्वे समग्रबलवाहनाः॥४५॥
अयत्नेनैव युद्धेषु भवता रिपवो हि यत्। दिष्ट्यारूढप्रतिज्ञेन मम मानयता वचः॥४६॥
अरयस्त्यक्तधर्माणस्त्वया जीवविसर्जितः। तान्विजित्येतराज्ञेतुं पुनर्दिग्विजयेच्छया॥४७॥

किया।।३४½-३५½।। अपने स्वर्गीय पिता के पूर्व परिभव (पराजय, अपमान) को न सहने वाले उन राजा ने जो प्रतिज्ञा की, उसे पूर्ण करके सात द्वीपों और सात समुद्रों, नगर, ग्राम और घरों वाली मालारूपिणी पृथ्वी को जीतकर शत्रुविहीन रूप से वे राजा उसका पालन करने लगे।।३५½-३७½।। इसके बाद समय बीतने पर भगवान् ऋषि वशिष्ठ उन अनश्वर राजा को पुनः देखने की इच्छा से आये।।३७½-३८½।। उन मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी को आया हुआ देखकर अत्यन्त उत्कण्ठित पूजा का सामान हाथ में लेकर उन राजाओं के साथ महामति राजा सगर ने अर्घ्यपाद्यादियों से सम्यक् प्रकार से पूजा कर गुरुभक्ति से समन्वित हो, उनको प्रणाम किया।।३९½-४०½।। तब वशिष्ठ ने सगर को आगे बढ़ने का आशीर्वाद देकर बैठो, इस प्रकार कहा, तब मुनि के द्वारा अनुमति प्राप्त वह श्रेष्ठ राजा अपनी पत्नी और राजाओं के साथ स्वर्ण परमासन पर बैठ गये।।४०½-४२½।। जिसने वस्तु को प्राप्त कर लिया है, उस पास में बैठे हुए नृप श्रेष्ठ सगर से एकान्त में राजाओं के सुनते हुए धीरे से मृदुगुण युक्त अक्षरों वाले वचन को धीरे से कहा।।४२½-४३½।।

वशिष्ठ ने कहा हे राजन्! आप वाह्य और आन्तरिक रूप से कुशल हैं न। अर्थात् आपको बाहरी शत्रु राजाओं से कोई खतरा नहीं है न, तथा राज्य के अन्दर किसी तरह का उपद्रव आदि नहीं है न। सकल राज्य में मन्त्रियों अमात्यवर्गों में इस समय में सब प्रकार से सब कुछ ठीक है। वहाँ कोई विवाद नहीं है।।४३½-४४½।। हे राजन्! आपने भाग्य से विना यत्न के ही आसानी से समस्त सेना और वाहनों सहित शत्रुओं को युद्ध में जीत लिया है।।४४½-४५½।। हे राजन्! आपने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने मुख्य शत्रु हैहयवंश में किसी को भी जीवित नहीं छोड़ूँगा; परन्तु जब वे मेरे पास आये तो आपने मेरा वचन मानकर उन सब शत्रुओं को उनका धर्म छुड़वाकर तुमने उन्हें जीवित छोड़ दिया।।४५½-४६½।। उन राजाओं को जीतकर फिर तुम दूसरे राजाओं तथा समस्त दिशाओं को जीतने की

गतस्सवाहनबलस्त्वमित्यश्रृणवं वचः। जितदिङ्मंडलं भूयः श्रुत्वा त्वां नगरस्थितम्॥४८॥
प्रीत्याहमागतो द्रष्टुमिदानीं राजसत्तम।

जैमिनिरुवाच

वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु सगरस्तालजंघजित्॥४९॥
कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रत्युवाच महामुनिम्।

सगर उवाच

कुशलं ननु सर्वत्र महर्षे नात्र संशयः॥५०॥
कल्याणाभिमुखाः सर्वे देवताश्च मुनेऽनिशम्।
भवान्ध्यायति कल्याणं मनसा यस्य संततम्॥५१॥
तस्य मे चोपसर्गाश्च संभवंति कथं मुने। भवताऽनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थश्चाधुनाः कृतः॥५२॥
यन्मां द्रष्टुमिहायातः स्वयमेव भवान्गुरो। यन्मह्यमाह भगवान्विपक्षविजयादिकम्॥५३॥
तत्तथाऽनुष्ठितं किं तु सर्वं भवदनुग्रहात्। भवत्प्रसादतः सर्वं मन्ये प्राप्तं महीक्षिताम्॥५४॥
अन्यथा मम का शक्तिः शत्रून्हंतु तथाविधान्। अनल्पी कुरुते फल्यं यन्मे व्यवसितं भवान्॥५५॥
फलमल्पमपिप्रीत्यैस्यादगस्याधिरोपितुः ।

जैमिनिरुवाच

एवं सम्भावितः सम्यक्सगरेण महामुनिः॥५६॥
अभ्यनुज्ञाय तं भूयः प्रजगाम निजाश्रमम्। वसिष्ठे तु गते राजा सगरः प्रीतमानसः॥५७॥

इच्छा से अपने वाहनों और सेनाओं के साथ गये तथा समस्त दिशाओं के मण्डलों को जीतकर तुम अपने नगर आ गये, यह सुनकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, इसीलिये हे राजश्रेष्ठ इस समय मैं तुम्हें देखने को आया हूँ।।४६½-४८½।।

कहने के प्रसंग में जैमिनि ने ऋषियों से कहा कि जब वशिष्ठ मुनि ने ऐसा कहा तब तालजंघ को जीतने वाले राजा सगर हाथ जोड़कर महामुनि वशिष्ठ से बोले।।४८½-४९½।।

राजा सगर ने कहा—हे महर्षि! निश्चय ही सर्वत्र कुशलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस समय हे मुने! सभी देवता निरन्तर कल्याण कर रहे हैं।।४९½-५०½।। हे मुने! आप जिसका मन से निरन्तर कल्याण का ध्यान करते हैं, उस मुझ व्यक्ति को भला कोई किसी प्रकार की विपत्ति कैसे हो सकती है।।५०½-५१½।। हे गुरुदेव! अब इस समय मैं आपका कृपापात्र हूँ तथा आप द्वारा कृतार्थ हो गया हूँ, इसके लिये मैं आपका विशेष आभारी हूँ, जो कि आप यहाँ मुझे देखने को स्वयं आये हैं।।५१½-५२½।। हे गुरुदेव! जो आपने शत्रुओं को जीतने की बात कही है, वह सब आपकी कृपा से ही हुआ है।।५२½-५३½।। हे गुरुदेव! आपकी कृपा से ही मैं राजाओं पर विजय मानता हूँ अन्यथा वैसे शत्रुओं को मैं कैसे मार सकता था?।।५३½-५४½।। हे गुरुदेव! आपने जो मेरे लिये किया है, वह बहुत ही फल देने योग्य है; क्योंकि वृक्ष लगाने का फल कम नहीं होता, बहुत अधिक होता है।।५४½-५५½।।

जैमिनि ने कहा—इस प्रकार महाराजा सगर के द्वारा सम्मानित महामुनि वशिष्ठ राजा की अनुमति लेकर फिर अपने आश्रम को चले गये।।५५½-५६½।। वशिष्ठ मुनि के चले जाने पर प्रसन्नचित्त राजा सगर समस्त लोकों

अयोध्यायामभिवसन्प्रशशासाखिलां भुवम्। भार्याभ्यां समुपेताभ्यां रूपशीलगुणादिभिः॥५८॥
बुभुजे विषयान्रम्यान्यथाकामं यथासुखम्। सुमतिः केशिनी चोभे विकसद्वदनांबुजे॥५९॥
रूपौदार्यगुणोपेते पीनवृत्तपयोधरे। नीलकुंचितकशाढ्ये सर्वाभरणभूषिते॥६०॥
सर्वलक्षणसंपन्ने नवयौवनगोचरे। प्रिये सन्निहिते तस्य नित्यं प्रियहिते रते॥६१॥
स्वाचारभावचेष्टाभिर्जह्रतुस्तन्मनोऽनिशम्। स चापि भरणोत्कर्षप्रतीतात्मा महीपतिः॥६२॥
रममाणो यथाकां सह ताभ्यां पुरेऽवसत्। अन्येषां भुवि राज्ञां तु राजशब्दो न चाप्यभूत्॥६३॥
गुणेन चाभवत्तस्य सगरस्य महात्मनः। अल्पोऽपि धर्मः स ततं यथा भवति मानसे॥६४॥
राज्ञस्तस्यार्थकामौ तु न तथा विपुलावपि। अलुब्धमानसोऽर्थं च भेजे धर्मपीडयन्॥६५॥
तदर्थमेव राजेंद्र कामं चापीडयंस्तयोः॥६६॥

।।इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरदिग्विजयो नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

में प्रसिद्ध अयोध्या नगरी में निवास करने लगे।।५६½-५७½।। और फिर रूपशील गुण आदि से युक्त दो पत्नियों के साथ यथाकाम और यथासुख रम्य विषयों का भोग करने लगे।।५७½-५८½।। उनकी दो पत्नियां सुमति और केशिनी दोनों ही खिले हुए कमल के समान मुख वाली थीं।।५९।। वे दोनों रूप और उदार गुण वाली थीं तथा उनके मोटे और गोल स्तन थे। उनके केश नीले और घुंघराले थे तथा वे सब आभूषणों से भूषित थीं।।६०।।

वे सभी लक्षणों से सम्पन्न थीं और नवयौवन उनके शरीरों में छाया हुआ था। उस राजा के पास वे नित्य रहती थीं, राजा भी नित्य उनमें ही रत रहता था।।६१।। अपने आचरण विचार भाव चेष्टाओं से उस राजा का मन निरन्तर चुरा लेती थीं और वह राजा भी उनकी अच्छी भरण-पोषण करने की पूरी पूरी कोशिश करता था, वह जानता था कि कैसे उनका बहुत अच्छी तरह भरण-पोषण हो सकता है, वही करता था, तभी वह जैसे चाहता था, वैसे उन दोनों के साथ रमण करता हुआ, उस अयोध्या नगरी में निवास करता था।।६२-६२½।। इस भूमण्ड पर अन्य राजाओं को राजशब्द नहीं शोभित हुआ पर उन महात्मा सगर के गुण से राजशब्द उनको शोभित हुआ।।६२½-६३½।। थोड़ा भी धर्म राजा के मन में होता था अर्थात् राज्य में कोई मामूली सा भी विकास आदि कल्याणकारी कार्य मन में आता था, राजा तुरन्त उसे अर्थ और काम का रूप प्रदान करता था अर्थात् प्रत्येक धर्म कार्य को वह परिणत करता था। उस राजा के अर्थ और काम वैसे विशाल नहीं थे।।६३½-६४½।। वह राजा धर्म को न पीड़ित करता हुआ विना लोभयुक्त अर्थ के काम का सेवन करता था अर्थात् अर्थ के लालच में धर्म कार्य को बाधित नहीं करता था तथा अपनी पत्नियों के काम को न पीड़ित करता हुआ भी अर्थ का सेवन करता था। अर्थात् न तो वह अर्थ के कारण धर्मकार्य को रोकता था तथा न अर्थ के कारण पत्नियों को ही कामपीड़ित करता था अर्थात् उस राजा का कोई धर्म कार्य अर्थ अथवा काम के कारण नहीं रुकता था। धर्म कार्य में अर्थ (धन) की आवश्यकता होती थी, तो वह अर्थ की व्यवस्था करता था तथा पत्नियों के प्रति काम भावना भी उसे धर्म कार्य में बाधा नहीं पहुंचाती थी तथा न धर्म और अर्थ के चलते वह अपनी पत्नियों को कामपीड़ा पहुंचाता था।।६४½-६६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ४९वां अध्याय सगर दिग्विजय का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे

सगरस्यौर्वाश्रमगमनं नाम

पंचाशत्तमोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच

एवं स राजा विधिवत्पालयामास मेदिनीम्। सप्तद्वीपवतीं सम्यक्साक्षाद्धर्म इवापरः॥१॥

ब्राह्मणादीनस्तथा वर्णान्स्वेस्वे धर्मे पृथक्पृथक्।

स्थापयित्वा यथान्यायं ररक्षाव्याहतेंद्रियः॥२॥

प्रजाश्च सर्ववर्णेषु यथाश्रेष्ठानुवर्त्तिनः। वर्णाश्चैवानुलोम्येन तद्वदर्थेषु च क्रमात्॥३॥

न सति स्थविरे बालं मृत्युरभ्युपगच्छति। सर्ववर्णेषु भूपाले महीं तस्मिन्प्रशासति॥४॥

स्फीतान्यपेतबाधानि तदा राष्ट्राणि कृत्स्नशः। तेष्वसंख्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यजनावृताः॥५॥

ते चासंख्यगृहग्रामशतोपेता विभागशः। देशाश्चावासभूयिष्ठा नृपे तस्मिन्प्रशासति॥६॥

अनाश्रमी द्विजः कश्चिन्न बभूव तदा भुवि। प्रजानां सर्ववर्णेषु प्रारंभाः फलदायिनः॥७॥

स्वोचितान्येव कर्माणि प्रारभंते च मानवाः। पुरुषार्थोपपन्नानि कर्माणि च तदा नृणाम्॥८॥

महोत्सवसमुद्युक्ताः पुरग्रामव्रजाकराः। अन्योन्यप्रियकामाश्च राजभक्तिसमन्विताः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद

अध्याय–५०

सगर का औौर्व ऋषि के आश्रम गमन

जैमिन ने कहा इस प्रकार वह राजा साक्षात् दूसरे धर्म के समान पृथ्वी का विधिवत् पालन करने लगा।।१।। स्वस्थ इन्द्रियों वाले उस राजा ने ब्राह्मण आदि को तथा सभी वर्णों को अपने अपने धर्म में स्थापित करके न्यायपूर्वक सबकी रक्षा की।।२।। सब वर्णों में प्रजायें यथा श्रेष्ठ व्यवहार करती थीं। सभी वर्ण अनुलोम रीति से उनके समान अर्थों में क्रमशः प्रयुक्त होते थे अर्थात् विवाह एवं व्यवहार अनुलोम रीति से प्रचलित था। अर्थात् उच्चवर्ण निम्नवर्ण की लड़की से ही विवाह कर सकता था तथा निम्नवर्ण उच्च वर्ण का सत्कार करते थे।।३।। उस राजा द्वारा पृथ्वी का शासन करते समय वृद्ध पुरुष के रहने पर बालक की मृत्यु नहीं होती थी।।४।।

उस राजा के शासन करते समय तब राष्ट्र समस्त प्रकार की बाधाओं से रहित थे। उन राष्ट्रों में चारों वर्णों के लोगों से आवृत अनेकों जनपद थे तथा वे जनपद असंख्य घरों गाँवों तथा सैकड़ों विभागों से युक्त थे और देश अधिक से अधिक आवासों से युक्त थे।।५-६।। उस समय पृथ्वी पर कोई भी अनाश्रमी सवर्ण (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) नहीं हुआ अर्थात् सभी सवर्ण लोग आश्रम धर्मों का पालन करते थे। प्रजाओं के सब वर्णों में किसी भी कार्य का प्रारम्भ फलदायी होता था। अर्थात् जो कार्य प्रारम्भ किया जाता था, वह बीच में ही समाप्त नहीं होता था, उससे अवश्य फल प्राप्त होता था।।७।। सब मनुष्य अपने उचित कर्मों को ही प्रारम्भ करते थे, उस समय मनुष्य पुरुषार्थों से युक्त कर्म ही किया करते थे। अर्थात् धर्म से ही अर्थ पैदा करते थे तथा धर्मानुसार ही अर्थ से काम में प्रवृत्त होते थे। अतः उस

न निंदितोऽभिशप्तो वा दरिद्रो व्याधितोऽपि वा।
प्रजासु कश्चिल्लुब्धो वा कृपणो वाऽपि नाभवत्॥१०॥
जनाः परगुणप्रीताः स्वसंपर्काभिकांक्षिणः। गुरुषु प्रणता नित्यं सद्विद्याव्यसनादृताः॥११॥
परापवादभीताश्च स्वदाररतयोऽनिशम्। निसर्गात्खलसंसर्गविरता धर्मतत्पराः॥१२॥
आस्तिकाः सर्वशोऽभूवन् प्रजास्तस्मिन्प्रशासति।
एवं सुबाहुतनये स्वप्रतापार्जितां महीम्॥१३॥
ऋतवश्च महाभाग यथाकालानुवर्त्तिनः। शालिभूयिष्ठसस्याढ्या सदैव सकला मही॥१४॥
बभूव नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यानि शासति॥१५॥
यस्माष्टादशमंडलाधिपतिभिः सेवार्थमभ्यागतैः,
प्रख्यातोरुपराक्रमैर्नृपशतैर्मूर्द्धाभिषिक्तैः पृथक्।
संविष्टैर्मणिविष्टरेषु नितरामध्यास्यमानाऽमरैः,
शक्रस्येव विराजते दिवि सभा रत्नप्रभोद्भासिता॥१६॥
संकेताविषयांतराभ्युपगमाः सर्वेऽपि सोपायनाः,
कृत्वा सैन्यनिवेशनानि परितः पुर्याः पृथक् पार्थिवाः।

समय सबके धर्म अर्थ काम, मोक्षपरक थे।।८।। उसके राज्य में नगर ग्राम व्रज सब महान् उत्सवों से युक्त रहते थे। प्रजा के सभी लोग एक-दूसरे के प्रिय होने की कामना करते थे तथा सभी लोग राजभक्ति से युक्त थे।।९।। उस राजा के राज्य में कोई भी मनुष्य निन्दित, अभिशप्त, दरिद्र अथवा रोगी नहीं था। प्रजाओं में कोई लोभी अथवा कृपण नहीं था।।१०।। सभी मनुष्य दूसरों के गुणों से प्रेम करने वाले थे तथा सदा यह चाहते रहते थे कि उनसे कोई सम्पर्क करे तथा सभी अच्छी विद्या और अच्छी आदतों का आदर करने वाले थे और नित्य गुरुओं को (अपने से बड़ों को) प्रणाम करने वाले थे।।११।। सभी लोग पर निन्दा से डरते थे तथा सभी नित्य अपनी पत्नी में ही रमण करते थे। पर नारी भोगी नहीं थे। स्वभाव से ही वे दुष्टों के सम्पर्क से दूर रहते थे तथा धर्म में तत्पर रहते थे।।१२।। उस राजा के प्रशासन करते समय सब प्रकार से लोग आस्तिक थे। इस प्रकार उन राजा सगर ने अपनी भुजाओं के बल पर अपने प्रताप से पृथ्वी को अर्जित किया था।।१३।। अतः उनके राज्य में ऋतुएं भी समय का अनुसरण करने वाली थीं। वर्षा के समय वर्षा, सर्दी में सर्दी तथा गर्मी में समय में गर्मी पड़ती थी अर्थात् ऋतुओं में विकार नहीं तथा पृथ्वी सदैव धान तथा अधिक से अधिक अन्न से भरी रहती थी।।१४।। अतः इस उपर्युक्त प्रकार की स्थिति उस राजा के शासनकाल में थी।।१५।।

जिस राजा की सभा सदैव इन्द्र की सभा की तरह अठारह मण्डलों के अधिपतियों से तथा सेवा के लिये आये हुए अतिथियों प्रसिद्ध पराक्रमों वाले सैकड़ों मूर्धाभिषक्त राजाओं से तथा मणिजटित आसनों पर बैठे हुए राजाओं के रत्नों की प्रभा से चमकती सभा उसी तरह सुशोभित होती थी, जिस प्रकार कि देवों से घिरी हुई इन्द्र की सभा सुशोभित होती है।।१६।।

उस राजा के राज्य में संकेत के अनुसार करार या संविदा करने वाले सभी उपहार लेकर आने वाले राजा लोग तो राजा से मिलने आते थे, वे सब सैनिकों की टुकड़िया बनाकर नगर के बाहर चारों ओर पड़े रहते थे तथा

द्रष्टुं कांक्षितराजकाः सतनया विज्ञापयंतो मुहु,
द्वार्स्थैरेव नरेश्वराय सुचिरं वत्स्यन्तमंतःपुरे॥१७॥

नमन्नरेंद्रमुकुटश्रेणीनामतिघर्षणात्। किणीकृतौ विराजेते चरणौ तस्य भूभुजः॥१८॥
सेवागतनरेंद्रौघविनिकीर्णैः समंततः। रत्नैर्भाति सभा तस्य गुहा सोमे रवी यथा॥१९॥
एवं स राजा धर्मेण भानुवंशशिखामणिः। अनन्यशासनामुर्वीमन्वशासदरिंदमः॥२०॥
इत्थं पालयतः पृथ्वीं सगरस्य महीपतेः। न चापपात मुत् पुत्रमुखालोकनजृंभिता॥२१॥
विना तां दुःखितोऽत्यर्थं चिंतयामास नैकधा। अहो कष्टमपुत्रोऽहमस्मिन्वंशे ध्रुवं तु यत्॥२२॥
प्रयांति नूनमस्माकं पितरः पिंडविप्लवम्। निरयादपि सत्पुत्रे संजाते पितरः किल॥२३॥
प्रीत्या प्रयांति तद्गेहं जातकर्मक्रियोत्सुकाः। महता सुकृतेनापि संप्राप्तस्य दिवं किल॥२४॥
अपुत्रस्यामराः स्वर्गे द्वारं नोद्धाटयंति हि। पिता तु लोकमुभयोः स्वर्लोकं तत्पितामहाः॥२५॥
जेष्यंति किल सत्पुत्रे जाते वंशद्वयेऽपि च। अनपत्यतयाऽहं तु पुत्रिणां या भवेद्गतिः॥२६॥
न तां प्राप्स्यामि वै नूनं सुदुर्लभतरा हि सा। पदादैंद्रात्किलाभिन्नमृद्धं राज्यमखंडितम्॥२७॥
मम यत्तदपुण्यस्य याति निष्फलतामिह। इदं मत्पूर्वजैरेव सिंहासनमधिष्ठितम्॥२८॥

राजा को देखने के लिये पहले उन्हें द्वार पर स्थित लोगों को भेजकर राजा को सूचित करना होता था, तब कहीं राजा लोग उनके दर्शन कर पाते थे।।१७।। उस राजा के दोनों चरण झुके हुए सिर वाले राजाओं के मुकुटों के घर्षण से घायल हुए सुशोभित होते थे।।१८।। उस राजा की सभा सेवा में आये हुए राजाओं द्वारा चारों ओर रत्नों के गिराने पर सदैव उसी तरह सुशोभित होती थी जैसे कि चन्द्रमा और सूर्य से गुहा शोभित होती है।।१९।। इस प्रकार वे सूर्यवंश के शिरोमणि शत्रुओं का दमन करने वाले राजा सगर जिस पर अन्य किसी का शासन नहीं था, ऐसी पृथ्वी पर शासन कर रहे थे।।२०।। इस प्रकार पृथ्वी का पालन करते हुए राजा को पुत्र का मुख देखने का आनन्द नहीं मिला।।२१।। उस पुत्र मुख के अवलोकन विना वे राजा अनेकों बार चिन्ताग्रस्त होने लगे और कहने लगे कि हाय कष्ट है कि मैं इस वंश में निश्चय ही पुत्ररहित हूँ।।२२।। निश्चय ही हमारे पितर पिण्ड की आपत्ति को प्राप्त होंगे, उनका पिण्डदान करने पर वे दुःखी हो जायेंगे; क्योंकि सत्पुत्र के पैदा होने पर पितर निश्चित ही नरक से निकल कर जिस घर में पुत्र जन्म लेता है, उस घर में प्रसन्न होकर उस पुत्र के जातकर्म[1] क्रिया को देखने के लिये उस घर में जाते हैं।।२३-२३½।।

महान् पुण्य करने से जो स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, तो वहाँ देवता लोग पुत्रहीन के लिए स्वर्ण के द्वार को नहीं खोलते हैं।।२३½-२४½।। पिता दोनों का लोक है तथा पितामह स्वर्गलोक है, सत्पुत्र के पैदा होने पर राजा ने कहा कि मैं सन्तानहीन हूँ अतः जो पुत्रवालों की गति होती है, उसको मैं प्राप्त नहीं कर पाऊँगा; क्योंकि वह गति मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ है।।२५½-२६½।। पद में मेरा यह राज्य इन्द्र के राज्य से भी अभिन्न है अर्थात् उसके समान है, उससे कम नहीं, उसके समान समृद्ध तथा अखण्डित मेरा राज्य है। मैंने जिस पुण्य से इस राज्य को प्राप्त किया, वह अब इस लोक में निष्फलता को प्राप्त कर रहा है, पुत्र के विना यह सब वेकार है।२६½-२७½।। यह सिंहासन

१.जातकर्म संस्कार में पुत्र के पैदा होने पर पिता उसको गोद में लेकर उसकी जिह्वा पर शहद और घी से सोने के शलाका द्वारा ओ३म् लिखता है और कान में 'वेदोऽसि' कहता है।

अपुत्रत्वेन राज्यं च पराधीनत्वमेष्यति। तस्मादौर्वाश्रममहं गत्वा तं मुनिपुंगवम्॥२९॥
प्रसादयिष्ये पुत्रार्थं भार्याभ्यां सहितोऽधुना। गत्वा तस्मै त्वपुत्रत्वं विनिवेद्य महात्मने:॥३०॥
स यद्वक्ष्यति तत्सर्वं करिष्ये नात्र संशयः। इति सञ्चिंत्य मनसा सगरो राजसत्तमः॥३१॥
इत्येष कृत्यविद्राजन्गंतुमौर्वाश्रमं प्रति। स मन्त्रिप्रवरे राज्यं प्रतिष्ठाप्य ततो वनम्॥३२॥
प्रययौ रथमारुह्य भार्याभ्यां सहितो मुदा। जगाम रथघोषेण मेघनादातिशंकिभिः॥३३॥
स्तब्धेक्षणैर्लक्ष्यमाणो मार्गोपांते शिखंडिभिः।
प्रियाभ्यां दर्शयन्राजन्सारंगांस्तिमितेक्षणान्॥३४॥
क्षणमूर्ध्वमुखान्सद्यः पलायनपरान्पुनः। वृक्षान्पुष्पफलोपेतान्विलोक्य मुदितोऽभवत्॥३५॥
अम्लानकुसुमैः स्वादुफलैः शाद्वलभूमिकैः। सुस्निग्धपल्लवच्छायैरभितः संभृतं नगैः॥३६॥
चूताग्रपल्लवास्वादस्निग्धकंठपिकारवैः। श्रोत्राभिरामजनकैस्संघुष्टं सर्वतोदिशम्॥३७॥
सर्वर्तुकुसुमोपेतं भ्रमद्भ्रमरमंडितम्। प्रसूनस्तबकानम्रवल्लरीवेल्लितद्रुमम्॥३८॥
कपियूथसमाक्रांतवनस्पतिशतावृतम्। उन्मत्तशिखिसारंगकूजत्पक्षिगणान्वितम्॥३९॥
गायद्विद्याधरवधूगीतिकासुमनोहरम्। संचरत्किन्नरीद्वंद्व विराजद्वनगह्वरम्॥४०॥
हंससारसचक्राह्वकारण्डवशुकादिभिः। सुस्वरैरावृतोपांतैः सरोभिः परिवारितम्॥४१॥

जो मेरे पूर्वजों ने अधिष्ठित किया है। पुत्र न होने से यह सिंहासन यह राज्य सब कुछ पराधीनता को प्राप्त हो जायेगा।।२७½-२८½।। इसलिये महर्षि और्व के आश्रम में पुत्र के लिये पत्नी सहित जाकर मैं अब उन्हें प्रसन्न करूँगा।।२८½-२९½।। वहाँ जाकर उनको यह बताकर कि मैं पुत्रहीन हूँ, उनसे कहूँगा कि हे महामुने! मैं आप जो कहेंगे, वह करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। अतः मुझे पुत्र प्राप्ति का उपाय बताइये।।२९½-३०½।। इस प्रकार मन में विचार कर ये कृत्य के जानने वाले राजा सगर और्वाश्रम की ओर जाने को तैयार हुए।।३०½-३१½।। उसके बाद श्रेष्ठ मन्त्रियों को राज्य-व्यवस्था को सौंपकर भार्या के साथ रथ पर चढ़कर आनन्द के साथ चल दिये।।३१½-३२½।। फिर मेघ के नाद का सन्देह पैदा करने वाले रथ के घोष के साथ मार्ग में चकित आंखों वाले शिखण्डियों द्वारा देखे जाते हुए चलने लगे।।३२½-३३½।। मार्ग में वे अपनी दोनों पत्नियों को टकटकी लगाकर देखते हुए तथा थोड़ी देर में ऊपर को मुख करके उड़े जा रहे मोरों को दिखाते हुए जा रहे थे। मार्ग में पुष्प और फलों से लदे हुए वृक्षों को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए।।३३½-३५।।

फिर वे उस तपोवन में पहुँचे, जो तपोवन कोमल पुष्पों, स्वादिष्ट फलों, हरी घास से युक्त मैदानों, बहुत चिकने पत्तों वाले छायादार वृक्षों से युक्त पर्वतों से चारों ओर से ढका हुआ था।।३६।। वहाँ आम के आगे वाले पत्तों के स्वाद से मधुर कण्ठ से बोलती हुई कोयलों की ध्वनियों से कानों को आनन्द पैदा करने वाली ध्वनियों से समस्त दिशायें गूंज रही थीं।।३७।। वह तपोवन सब ऋतुओं के पुष्पों से युक्त भ्रमरों से मण्डित था। वहाँ फूलों के गुच्छों से झुकी हुई शाखाओं वाले वृक्ष थे।।३८।। बन्दरों के झुण्डों से सैकड़ों वृक्ष लदे हुये थे। वह तपोवन उन्मत्त होकर नृत्य करते हुए मोरों, पपीहों और कूंजते पक्षियों से युक्त था।।३९।। वह तपोवन गाती हुई विद्याधर वधुओं के गीतों से सुन्दर और मन को हर लेने वाला था, उस वन की गुफायें संचरण करती हुई किन्नर युगलों से सुशोभित थीं।।४०।। वह तपोवन हंस, सारस, चक्रवाक (चकवा चकवी), कारण्डव (बत्तख) तोते आदि के सुन्दर स्वरों से

सरःस्वंबुज कह्लारकुमुदोत्पलराशिषु। शनैः परिवहन्मंदमारुतापूर्णदिङ्मुखम्।।४२।।
एवंविधगुणोपेतमधिगाह्य तपोवनम्। गच्छन्रथेनाथ नृपः प्रहर्षं परमं ययौ।।४३।।
उपशांताशयः सोऽथ संप्राप्याश्रममंडलम्। भार्याभ्यां सहितः श्रीमान्वाहादवरुरोह वै।।४४।।
धुर्यान्विश्रामयेत्युक्त्वा यंतारमवनीपतिः। आससादाश्रमोपांतं महर्षेर्भावितात्मनः।।४५।।
स श्रुत्वा मुनिशिष्येभ्यः कृतानत्यक्रियादरम्। मुनिं द्रष्टुं विनीतात्मा प्रविशेशाश्रमं तदा।।४६।।
मुनिमध्ये समासीनमृषिंवृंदैः समन्वितम्। ननाम शिरसा राजा भार्याभ्यां सहितो मुदा।।४७।।
कृतप्रणामं नृपतिमृषिरौर्वः प्रतापवान्। उपविशेति प्रेम्णा वै सह ताभ्यां समादिशत्।।४८।।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामुनिः। आतिथ्येन च वन्येन सभार्यं तमतोषयत्।।४९।।
अथातिथ्योपविश्रांतं प्रणम्या सीनमग्रतः। राजानमब्रवीदौर्वः शनैर्मृद्वक्षरं वचः।।५०।।
कुशलं ननु ते राज्ये बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च। अपि धर्मेण सकलाः प्रजास्त्वं परिरक्षसि।।५१।।

अपि जेतुं त्रिवर्गं त्वमुपायैः सम्यगीहसे।
फलंति हि गुणास्तुभ्यं त्वया सम्यक्प्रचोदिताः।।५२।।

दिष्ट्या त्वया जिताः सर्वे रिपवो नृपसत्तम। दिष्ट्या च सकलं राज्यं त्वया धर्मेण रक्ष्यते।।५३।।
धर्म एव स्थितिर्येषां तेषां नास्त्यत्र विप्लवः। न तं रक्षति किं धर्मः स्वयं येनाभिरक्षितः।।५४।।

आवृत सरोवरों से घिरा हुआ था।।४१।। उन सरोवरों में कमल, कह्लार, कुमुद और उत्पल सब प्रकार के कमल थे, जिनको स्पर्श कर चलती हुई मन्द मन्द हवाओं से समस्त दिशायें सुगन्धित थीं।।४२।। इस प्रकार के गुणों से युक्त तपोवन को प्राप्त कर रथ से चलते हुए राजा ने अपार हर्ष को प्राप्त किया।।४३।। इसके बाद उपशान्ताशय श्रीमान् राजा सगर उस आश्रम मण्डल में पहुँचकर दोनों पत्नियों के साथ रथ से उतरे।।४४।। उसके बाद भावित आत्मा वाले पृथ्वीपति वे राजा सगर ले जाने वाले भृत्यगण विश्राम करें, ले जाने वालों को ऐसा कहकर आश्रम में पहुंचे।।४५।। तब उन राजा ने शिष्यों से सुना कि महर्षि नित्य क्रिया कर रहे हैं, तब विनीतात्मा वे राजा सगर मुनि को देखने को आश्रम में प्रविष्ट हुए।।४६।। ऋषियों से घिरे हुए मुनियों के मध्य में बैठे हुए और्व मुनि को राजा ने अपनी पत्नियों सहित प्रसन्नता के साथ प्रणाम किया।।४७।। प्रणाम किये हुए राजा को प्रतापवान् ऋषि और्व ने "बैठो" इस प्रकार यह प्रेम के साथ आदेश दिया।।४८।।

फिर महामुनि अर्घ्यपाद्यादि पूजा की सामग्रियों से विधिवत् सत्कार करके वन्य वस्तु फल फूल कन्द मूल आदि से पत्नियों सहित राजा का अतिथि सत्कार कर उनको प्रसन्न किया।।४९।। इसके बाद आथित्य सत्कार के बाद प्रणाम करके आगे बैठे हुए राजा से महर्षि और्व कोमल अक्षरों वाली वाणी बोले।।५०।। हे राजन् तुम्हारे राज्य की बाहर से और अन्दर से सब प्रकार कुशलता है न तथा समस्त प्रजा की धर्मपूर्वक तुम रक्षा करते हो न।।५१।। क्या तुम राजनीति के साम, दाम, दण्ड और भेद इन उपायों से धर्म, अर्थ और काम इन तीनों वर्गों को जीतने की सम्यक् इच्छा रखते हो? क्योंकि आपके द्वारा सम्यक् प्रकार से प्रेरित धर्म, अर्थ और काम ये तीनों गुण फल प्रदान करते हैं।।५२।। हे नृपश्रेष्ठ! सौभाग्य से तुमने समस्त शत्रुओं को जीत लिया है और सौभाग्य से तुम समस्त राज्य की धर्म द्वारा रक्षा कर रहे हो।।५३।। जिनकी धर्म में स्थिति होती है, उनको यहाँ इस संसार में कोई आपत्ति नहीं होती। उसकी धर्म क्या रक्षा करता है, जिसने धर्म की रक्षा नहीं की है।।५४।।

पूर्वमेवाहमश्रौपं विजित्य सकलां महीम्। सबलो नगरीं प्राप्तः कृतदारो भवानिति॥५५॥
राज्ञां तु प्रवरो धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्। भवंति सुखिनो नूनं तेनैवेह परत्र च॥५६॥
स भवान्राज्य भरणं परित्यज्य मदंतिकम्। भार्याभ्यां सहितो राजन्समायातोऽसि मे वद॥५७॥

जैमिनिरुवाच

एवमुक्तस्तु मुनिना सगरो राजसत्तमः। कृतांजलिपुटो भूत्वा प्राह तं मधुरं वचः॥५८॥

।इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरस्यौर्वाश्रमगमनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरचरिते

असमंजसत्यागो नाम

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सगर उवाच

कुशलं मम सर्वत्र महर्षे नात्र संशयः। यस्य मे त्वमनुध्याता शमं भार्गवसत्तमः॥१॥
यस्तथा शिक्षितः पूर्वमस्त्रे शस्त्रे च सांप्रतम्। सोऽहं कथमशक्तः स्यां सकलारिविनिग्रहे॥२॥

पहले मैंने सुना था कि सकल पृथ्वी को जीतकर बलवान् आपने विवाह कर अयोध्या नगरी को प्राप्त किया।।५५।। हे राजन्! राजा का तो यही परम धर्म है कि वह प्रजा का पालन करे तथा प्रजा पालन करने से ही राजा लोग इस लोक और परलोक में सुखी होते हैं।।५६।। सो वह आप हे राजन्! राज्य का भरण पोषण छोड़कर पत्नियों सहित मेरे पास आये हो। मुझे बताओ?।

जैमिनि ने कहा—इस प्रकार मुनि के द्वारा कहे पर वे श्रेष्ठ राजा सगर हाथ जोड़कर उन मुनि से बोले।।।५८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५०वां अध्याय सगर का और्व ऋषि के आश्रम गमन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सगर चरित में

अध्याय–५१

असमंजस त्याग

महाराज सगर ने ऋषि और्व से कहा कि हे महर्षि! मेरी सर्वत्र सब प्रकार से कुशलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिस मेरे आप अनुध्याता है अर्थात् जिस मेरा आप पूरी तरह ध्यान रखते हैं, उसकी कुशलता क्यों नहीं होगी।।१।। जिसने मुझे पूर्वकाल में अस्त्र शस्त्र में शिक्षित किया, वह मैं इस समय समस्त शत्रुओं का नाश करने

त्वं मे गुरुः सुहृद्दैवं बंधुर्मित्रं च केवलम्। न ह्यन्यमभिजानामि त्वामृते पितरं च मे॥३॥
त्वयोपदिष्टेनास्त्रेण सकला भूभृतो मया। विजिता यदनुस्मृत्या शक्तिः सा तपसस्तव॥४॥
तपसा त्वं जगत्सर्वं पुनासि परिपासि च। स्रष्टुं संहर्त्तुमपि च शक्नोष्येव न संशयः॥५॥
महाननन्यसामान्यप्रभावस्तपसश्च ते। इह तस्यैकदेशोऽपि दृश्यते विस्मयप्रदः॥६॥
पश्य सिंहासने बाल्यादुपेत्य मृगपोतकः। पिबत्यंभः शनैर्ब्रह्मन्निःशंकं ते तपोवने॥७॥
धयत्यत्रातिविस्रंभात् कृशाऽपि हरिणी स्तनम्। करोति मृगशृंगाग्रे गंडकंडूयनं रुरुः॥८॥
नवप्रसूतां हरिणीं हत्वा वृत्त्यै वनांतरे। व्याघ्री त्वत्तपसावासे सैव पुष्णाति तच्छिशून्॥९॥
गजं द्रुतमनुद्रुत्य सिंहो यस्मादिदं वनम्। प्रविष्टोऽनुसरंतौ त्वद्भयादेकत्र तिष्ठतः॥१०॥
नकुलस्त्वाखुमार्जारमयूरशशपन्नगाः। वृकसूकरशार्दूलशरभर्क्षप्लवंगमाः॥११॥
सृगाला गवया गावो हरिणा महिषास्तथा। वनेऽत्र सहजं वैरं हित्वा मैत्रीमुपागताः॥१२॥
एवंविधा तपःशक्तिर्लोकविस्मयदायिनी। न क्वापि दृश्यते ब्रह्मंस्त्वामृते भुवि दुर्लभा॥१३॥
अहं तु त्वत्प्रसादेन विजित्य वसुधामिमाम्। रिपुभिः सह विप्रर्षे स्वराज्यं समुपागतः॥१४॥
वश्यामात्यस्त्रिवर्गेऽपि यथायोग्यकृतादरः। त्वयोपदिष्टमार्गेण सम्यग्राज्यमपालयम्॥१५॥
एवं प्रवर्त्तमानस्य मम राज्येऽवतिष्ठतः। भवद्दिदृक्षा संजाता सापेक्षा भृगुपुंगव॥१६॥

में कैसे अशक्त हो सकता हूँ।।२।। केवल आप ही मेरे गुरु, मित्र, दैव (भाग्य) बन्धु और मित्र हैं, मैं आपके विना अन्य को अपना पिता नहीं जानता हूँ।।३।। हे महर्षि! आप के द्वारा दिये गये उपदिष्ट अस्त्र से मैंने समस्त राजाओं को जीत लिया। अतः जो अनुस्मरणीय शक्ति है, वह सब आपके तप की शक्ति है।।४।। हे महामुनि! आप ही अपनी तपस्या से समस्त संसार को पवित्र करते हो और पालन करते हो तथा आप संसार की रचना तथा संसार का संहार भी कर सकते हो, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५।। हे महामुनि! आपकी तपस्या का प्रभाव अनन्य सामान्य है, उस प्रभाव का एक अंश भी आश्चर्य प्रद दिखायी देता है।।६।। देखिये ब्रह्मन्! आपके तपोवन में सिंह के बैठने के स्थान पर यह बाल्यावस्था वाला मृगशावक निडर होकर जल पी रहा है।।७।।

यह सद्यः प्रसूत दुर्बल मृगशावक अत्यन्त विश्वास से हरिणी के स्तन को पकड़ रहा है। यह रुरु नामक मृगी मृग के सींग के अग्रभाग पर अपने गण्डस्थल को खुजला रही है।।८।। इस वन के बीच में अपने जीवन व्यवहार के लिये व्याघ्री नवप्रसूता हरिणी को मारकर आपके आवास पर अपने बच्चों को पुष्ट कर रही है।।९।। सिंह ने शीघ्रता से हाथी को भगा दिया, फिर इस वन में वे दोनों आपके भय से एक ही स्थान पर बैठे हैं।।१०।। नेवला, चूहा, बिल्ली, मोर, खरगोश और सर्प, भेड़िया, सूअर, शार्दूल, शरभ, रीछ और बन्दर, जम्बुक (सियार), नीलगाय, गाय, हिरण, भैंसे ये सभी इस तपोवन में स्वाभाविक वैर को छोड़कर मित्रता को प्राप्त हो गये हैं।।११-१२।। इस प्रकार ये तपस्या की शक्ति बहुत ही आश्चर्य प्रदान करने वाली है हे ब्रहमन् आप जैसा कोई भी पृथ्वी पर प्राप्त नहीं हो सकता।।१३।। हे विप्रर्षि! मैं तो आपकी कृपा से समस्त पृथ्वी को जीतकर शत्रुओं के साथ अपने राज्य में पहुँच गया था।।१४।। वह मैं इन्द्रियों को वश में करके धर्म अर्थ काम तीनों के अनुसार राज्य का पालन कर रहा था।।१५।। हे भुगुश्रेष्ठ इस प्रकार राजकार्य प्रवृत्त रहने वाले मेरी आपको देखने की इच्छा हुई तथा उसकी अपेक्षा

किं त्वद्य मयि पर्याप्तमनपत्यतयैव मे। पितृपिंडप्रदानेन सह संरक्षणं भुवः॥१७॥
तदिदं दुःखमत्यर्थमनिवार्यं मनोगतम्। नान्योऽपहर्त्ता लोकेऽस्मिन् ममेति त्वमुपागतः॥१८॥
इत्युक्तः सगरेणाथ स्थित्वा सोंऽतर्मनाः क्षणम्। उवाच भगवानौर्वः सनिदेशमिदं वचः॥१९॥
नियम्य सह भार्याभ्यां किंचित्कालमिहावस।
अवाप्स्यति ततोऽभीष्टं भवान्नात्र विचारणा॥२०॥
स च तत्रावसत्प्रीतस्तच्छुश्रूषापरायणः। पत्नीभ्यां सह धर्मात्मा भक्तियुक्तश्चिरं तदा॥२१॥
राजपत्न्यौ च ते तस्य सर्वकालमतंद्रिते। मुनेरतनुतां प्रीतिं विनयाचारभक्तिभिः॥२२॥
भक्त्या शुश्रूषया चैव तयोस्तुष्टो महामुनिः। राजपत्न्यौ समाहूय इदं वचनम् ब्रवीत्॥२३॥
भवत्यौ वरमस्मत्तो व्रियतां काममीप्सितम्।
दास्यामि तं न संदेहो यद्यपि स्यात्सुदुर्ल्लभम्॥२४॥
ततः प्रणम्य शिरसा तेऽप्युभे तं महामुनिम्। ऊचतुर्भगवान्पुत्रान्कामयावेति सादरम्॥२५॥
ततस्ते भगवानाह भवतीभ्यां मया पुनः। राज्ञश्च प्रियकामेन वरो दत्तोऽयमीप्सितः॥२६॥
पुत्रवत्यौ महाभागे भवत्यौ मत्प्रसादतः। भवेतां ध्रुवमन्यच्च श्रूयतां वचनं मम॥२७॥
पुत्रो भविष्यत्येकस्यामेकः सोऽनतिधार्मिकः।
तथापि तस्य कल्पांते संभूतिश्च भविष्यति॥२८॥
षष्टिः पुत्रसहस्त्राणमपरस्यां च जायते। अकृतार्थाश्च ते सर्वे विनंक्ष्यंत्यचिरादिव॥२९॥

भी थी।।१६।। क्या आज सन्तानविहीन होते हुए पिण्ड प्रदान के साथ पृथ्वी का संरक्षण पर्याप्त है।।१७।। इसलिये यह अत्यन्त अनिवार्य दुःख मेरे मन में है तथा इस लोक में मेरे इस दुःख को दूर करने वाला आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है, इसलिये मैं आपके पास आया हूँ।।१८।। जब राजा सगर ने ऐसा कहा तो कुछ देर अन्तर्मन स्थित होकर भगवान् और्व कुछ निदेशयुक्त यह वचन बोले।।१९।। कि राजन्! अपनी दोनों पत्नियों को लेकर कुछ समय तक यहाँ निवास करो, तब आप अवश्य अपने अभीष्ट वर (पुत्र) को प्राप्त करोगे, इस विषय में आप को विचार करने की आवश्यकता नहीं है।।२०।। तब उन धर्मात्मा, भक्तियुक्त, राजा सगर ने प्रसन्नतापूर्वक गुरु की सेवा में तत्पर रहते हुए पत्नियों सहित चिरकाल तक वहाँ उस आश्रम में निवास किया।।२१।। राजा की पत्नियों ने निरालस्य होकर सब समय विनय और व्यवहार की भक्ति से उन मुनि के प्रति प्रेमको बहुत अधिक बढ़ा दिया।।२२।।

तब उन दोनों पत्नीं की भक्ति और सेवा से महामुनि सन्तुष्ट हो गये, तब उन्होंने राजा की पत्नियों को बुलाकर यह वचन कहे।।२३।। रानियो! आप लोग मुझसे अपना इच्छित वर माँगों, मैं उस वर को अवश्य प्रदान करूँगा। यद्यपि यह अत्यन्त दुर्लभ है।।२४।। उसके बाद शिर से प्रणाम करके उन दोनों शुभ रानियों ने महामुनि से सादर कहा कि भगवन्! हम पुत्रों की कामना करते हैं।।२५।। उसके बाद भगवान् और्व ने कहा कि आप दोनों के लिये राजा की प्रियकामना से मेरे द्वारा यह इच्छित वर दिया जाता है कि हे महाभागे मेरे प्रसाद से तु निश्चय ही पुत्रवती होओ और भी मेरा वचन सुनो।।२६-२७।। आपको एक में एक पुत्र होगा अर्थात् एक रानी को एक पुत्र होगा, जो बहुत अधिक धार्मिक होगा, तथापि उसकी कल्प के अन्त तक सब प्रकार समृद्धि रहेगी। दूसरी रानी से साठ हजार

एवंविधगुणेपेतो वरौ दत्तौ मया युवाम्।
अभीप्सितं तु यद्यस्याः स्वेच्छया तत्प्रकीर्त्यताम्॥३०॥

एवमुक्ते तु मुनिना वैदर्भ्यान्वियवर्द्धनम्। वरयामास तनयं पुत्रानन्यांस्तथा परा॥३१॥
इति दत्त्वा वरं राज्ञे सगराय महामुनिः। सभार्यामनुमान्यैनं विससर्ज पुरीं प्रति॥३२॥
मुनिना समनुज्ञातः कृतकृत्यो महीपतिः। रथमारुह्य वेगेन सप्रियः प्रययौ पुरीम्॥३३॥
स प्रविश्य पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनावृताम्। आनंदितः पौरजनै रे परमया मुदा॥३४॥
एतस्मिन्नेव काले तु राजपत्न्यावुभे नृप। राज्ञे प्रावोचतां गर्भं मुदा परमया युते॥३५॥
ववृधे च तयोर्गर्भः शुक्लपक्षे यथोडुराट्। सह संतोषसंपत्त्या पित्रोः पौरजनस्य च॥३६॥
संपूर्णे तु ततः काले मुहूर्त्ते केशिनी शुभे। असूयताग्निगर्भाभं कुमारममितद्युतिम्॥३७॥
जातकर्मादिकं तस्य कृत्वा चैव यथाविधि। असमंजस इत्येव नाम तस्या करोन्नृपः॥३८॥
सुमतिश्चापि तत्काले गर्भालाबुमसूयत। संप्रसूतं तु तं त्यक्तुं दृष्ट्वा राजाऽकरोन्मनः॥३९॥

तज्ज्ञात्वा भगवानौर्वस्तत्रागच्छद्यदृच्छया।
सम्यक् संभावितो राज्ञा तमुवाच त्वरान्वितः॥४०॥

गर्भालावुरयं राजन्न त्यक्तुं भवतार्हति। पुत्राणां षष्टिसाहस्रबीजभूतो यतस्तव॥४१॥
तस्मात्तत्सकलीकृत्य घृतकुंभेषु यत्नतः। निःक्षिप्य सपिधानेषु रक्षणीयं पृथक्पृथक्।४२॥

पुत्र होंगे। वे सभी पुत्र अकृतार्थ (वेकार) होंगे और शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे।।२८-२९।। इस प्रकार के गुणों से युक्त तुम दोनों को पुत्र होंगे यह वर मैंने तुम्हें दिया है। जो जिसको अभीप्सित है, उसको स्वेच्छा से स्वीकार करो।।३०।। मुनि के द्वारा ऐसा कहने पर वैदर्भी रानी विदर्भ राजपुत्री ने वंश बढ़ाने वाले पुत्र का वर प्राप्त किया तथा दूसरी रानी ने अन्य साठ हजार पुत्रों का वर प्राप्त किया।।३१।। इस प्रकार महामुनि और्व ने राजा सगर को वर प्रदान कर पत्नी सहित अनुमति देकर अयोध्या नगरी की ओर विदा किया।।३२।। मुनि द्वारा कृतकृत्य हुए महाराजा सगर रथ पर सवार होकर प्रेमपूर्वक अपनी नगरी अयोध्या में चले गये।।३३।। तब आनन्दित उन राजा ने हृष्ट-पुष्ट जनों से घिरी हुई रम्य नगरी में प्रवेश कर पौरजनों के साथ परम आनन्द से रमण किया।।३४।। इसी समय दोनों रानियों ने परम मोद के साथ राजा को गर्भ होने के बारे में बताया।।३५।। तब उन दोनों रानियों के गर्भ शुक्ल पक्ष में बने वाले चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगे, जिससे पिता को और नगर निवासियों को बहुत प्रसन्नता हुई।।३६।।

उसके गर्भ का समय पूरा हो जाने पर महारानी केशिनी ने शुभ मुहूर्त में सूर्य की आभा वाले असीमित कान्तियुक्त कुमार को जन्म दिया।।३७।। तब राजा ने उसका यथाविधि जातकर्म आदि संस्कारों का करके असमंजस नाम रखा।।३८।। उसी समय राजा की दूसरी रानी सुमति ने एक गर्भ के लोंदा (अनेकों शिशुओं का गोला) को पैदा किया। पैदा हुए उस लोंदा को राजा ने त्यागने का मन बनाया।।३९।। उसको जानकर भगवान् और्व वहाँ संयोगवश आ गये। तब राजा ने उन्हें बताया तो शीघ्र ही और्व मुनि राजा से बोले।।४०।। हे राजन्! तुम इस गर्भ के आलाबु (पिण्ड) को छोड़ नहीं सकते हो; क्योंकि यह आलावु (मांस का लोथड़ा) साठ हजार पुत्रों का बीजभूत है अर्थात् इसमें साठ हजार शिशु स्थित हैं।।४१।। अतः इन सबको एकत्र कर घी भरे हुए घड़े में रखकर ढक्कन

सम्यगेवं कृते राजन्भवतो मत्प्रसादतः। यथोक्तसंख्या पात्राणां भविष्यति न संशयः॥४३॥
काले पूर्णे ततः कुम्भान्भित्त्वा निर्यांति ते पृथक्। एवं ते षष्टिसाहस्त्रं पुत्राणां जायते नृप॥४४॥
इत्युक्त्वा भगवानौर्वस्तत्रैवांतरधाद्विभुः। राजा च तत्तथा चक्रे यथौर्वेण समीरितम्॥४५॥
ततः संवत्सरे पूर्णे घृतकुंभात्क्रमेण ते। भित्त्वाभित्त्वा पुनर्जज्ञुः सहसैवानुवासरम्॥४६॥
एवं क्रमेण संजातास्तनयास्ते महीपते। ववृधुः संघशो राजन्षष्टिसाहस्त्रसंख्यया॥४७॥
अपृथग्धर्मचरणा महाबलपराक्रमाः। बभूवुस्ते दुराधर्षाः क्रूरात्मानो विशेषतः॥४८॥
स नातिप्रीतिमांस्तेषु राजा मतिमतां वरः। केशिनीतनयं त्वेकं बहुमानसुतं प्रियम्॥४९॥
विवाहं विधिवत्तस्मै कारयामास पार्थिवः। सचाप्यानन्दयामास स्वगुणैः सुहृतोऽखिलान्॥५०॥
एवं प्रवर्तमानस्य केशिनीतनयस्य तु। अजायत सुतः श्रीमानंशुमानिति विश्रुतः॥५१॥
स बाल्य एव मतिमानुदारैः स्वगुणैर्भृशम्। प्रीणयामास सुहृदः स्वपितामहमेव च॥५२॥
एतस्मिन्नंतरे राज्ञस्तस्य पुत्रोऽसमंजसः। आविष्टो नष्टचेष्टोऽभूत्स पिशाचेन केनचित्॥५३॥
स तु कश्चिदभूद्वैश्यः पूर्वजन्मनि धर्मवित्। कस्यचिद्विषये राज्ञः प्रभूतधनधान्यवान्॥५४॥
स कदाचिदरण्येषु विचरन्निधिमुत्तमम्। दृष्ट्वा ग्रहीतुमारेभे वणिग्लोभपरिप्लुतः॥५५॥
ततस्तद्रक्षकोऽभ्येत्य पिशाचः प्राह तं तदा। क्षुधितोऽहं चिरादस्मिन्निवसन्निधिपालकः॥५६॥
तस्मात्तत्परिहाराय मम दत्त्वा गवामिषम्। कामतः प्रतिगृह्णीष्व निधिमेनं ममाज्ञया॥५७॥

लगाकर अलग अलग रख देना है।।४२।। यदि हे राजन् आप सम्यक् प्रकार से ऐसा कर देंगे तो मेरे प्रसाद से जो मैंने आपको पुत्रों की संख्या बतायी है, वह हो जायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।४३।। उसके समय पूरा होने जाने पर हे राजन्! जब आप इन घड़ों को फोड़कर हे नृप! साठ हजार पुत्र हो जायेंगे।।४४।। ऐसा कह कर विभु भगवान् औंर्व अन्तर्धान हो गये तथा पिता राजा ने वही किया, जो महर्षि औंर्व ने कहा था।।४५।। उसके बाद संवत्सर (एक वर्ष) पूरा हो जाने पर घी के घड़े से क्रमशः फोड़-फोड़कर अचानक प्रतिदिन पुनः जन्म लेने लगे।।४६।। इस प्रकार क्रमशः उस राजा के वे पुत्र पैदा होने लगे और साठ हजार की संख्या द्वारा संघशः बढ़ते गये।।४७।।

वे सब के सब समान आचरण वाले और महाबली और पराक्रमी थे तथा विशेषतः किसी से भी न हारने वाले और क्रूरात्मा थे।।४८।। वे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजा सगर उन पुत्रों के प्रति अधिक प्रेम नहीं करते थे, वे केशिनी के एकमात्र पुत्र को बहुत प्रिय मानते थे।।४९।। महाराजा सगर ने उसका विधिवत् विवाह कर दिया और उसने भी अपने अच्छे गुणों से समस्त मित्रों को आनन्दित किया।।५०।। इस प्रकार प्रवर्तमान केशिनी का पुत्र तो अंशुमान् प्रसिद्ध पुत्र हुआ।।५१।। वाल्यकाल से ही उस मतिमान् अंशुमान ने अपने उदारगुणों से मित्रों तथा अपने पितामह को प्रसन्न कर लिया था।।५२।। इसी बीच उन राजा का पुत्र असमंजस किसी पिशाच के द्वारा आविष्ट करने के कारण चेतनाशून्य हो गया (मूर्च्छित) हो गया।।५३।। क्योंकि वह तो पूर्वजन्म में किसी राजा के देश में बहुत अधिक धनवान् और धर्मज्ञ वैश्य था।।५४।। उन्होंने पूर्वजन्म में कभी वन में घूमते हुए उत्तम निधि को देखकर वनिया के लोभयुक्त आचरण के कारण उस खजाने को ग्रहण करना आरम्भ कर दिया।।५५।। तब उसके बाद उस निधि (खजाने) के रक्षक पिशाच ने वहाँ आकर कहा कि मैं भूखा पिशाच चिरकाल से इस निधि की रक्षा करने के लिये इस निधि में रह रहा हूँ।।५६।। इसलिये तुम इस धन को छोड़कर मुझे गौ का मांस देकर मेरी आज्ञा से अपनी इच्छा से इस धन को ग्रहण करो।।५७।।

स तस्मै तत्परिश्रुत्य दास्यामीति गवामिषतम्। आदत्त च निधिं तं तु पिशाचेनानुमोदितः॥५८॥
न प्रादाच्च ततो मौढ्यात्तस्मै यत्तत्प्रतिश्रुतम्। प्रतिश्रुताप्रदानोत्थरोषं न श्रद्दधे नृप॥५९॥
तमेवं सुचिरं कालं प्रतीक्ष्याशनकांक्षया। अपनीतधनः सोऽपि ममार व्यथितः क्षुधा॥६०॥
वैश्योऽपि बालो मरणं संप्राप्य सगरस्य तु। बभूव काले केशिन्यां तनयोऽन्वयवर्द्धनः॥६१॥
अशरीरः पिशाचेऽपि पूर्ववैरमनुस्मरन्। वायुभूतोऽविशद्देहं राजपुत्रस्य भूपते॥६२॥
तेनाविष्टस्ततः सोऽपि क्रूरचित्तोऽभवत्तदा। मतिविभ्रंशमासाद्य मुहुस्तेन बलात्कृतः॥६३॥
असमंजसत्वं नगरे चक्रे सोऽपि नृशंसवत्। बालांश्च यूनः स्थविरान्योषितश्च सदा खलः॥६४॥
हत्वाहत्वा प्रचिक्षेप सरय्वामतिनिर्दयः। ततः पौरजनाः सर्वे दृष्ट्वा तस्य कदर्यताम्॥६५॥
बहुशो निकृतास्तेन गत्वा राज्ञे व्यजिज्ञपन्। राजा च तदुपश्रुत्य तमाहूय प्रयत्नतः॥६६॥
वारया मास बहुधा दुःखेन महतान्वितः। बहुशः प्रतिषिद्धोऽपि पित्रा तेन महात्मना॥६७॥
जले तप्ते च संतप्ताः संबभूवुर्यथा यवाः। नाशकत्तं यदा पापाद्विनिवर्त्तयितुं नृपः॥६८॥
लोकापवादभीरुत्वाद्विषयानत्यजत्तदा॥६९॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरचरितेऽसमंजसत्यागो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

उस वणिक् ने यह कहकर कि मैं गौ का मांस तुमको दूंगा, पिशाच द्वारा अनुमोदित धन को ले लिया।।५८।। लेकिन उस वणिक् ने जो प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार गौ का मांस नहीं दिया। अतः हे राजन्! जो वणिक् ने वायदा किया था उसको पूरा न करने पर वह पिशाच अपने क्रोध को नहीं रोक सका।।५९।। उसके बाद वह धन खोया हुआ पिशाच बहुत समय तथा गोमांस खाने की इच्छा से भूख से व्याकुल होकर मर गया।।६०।। वह वैश्य भी यथासमय मृत्यु को प्राप्त कर, बालक बनकर, सगर की पत्नी केशिनी का वंश बढ़ाने वाला पुत्र हुआ।।६१।। विना शरीर वाला पिशाच भी पूर्व वैर को स्मरण करता हुआ, हे राजन्! वायु के रूप में उस राजपुत्र की देह में प्रविष्ट कर गया।।६२।। तब उस पिशाच के राजपुत्र के देह में घुस जाने से वह राजपुत्र क्रूरचित्त वाला हो गया। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और फिर वह बलात्कार करने लगा।।६३।। उसका नाम तो असमंजस था ही, अतः उसने अयोध्या नगरी में हत्यारे के समान असमंजस पैदा कर दिया।।६३½।। सदा बालक, युवक, वृद्ध और स्त्रियों को मारमार कर निर्दयी वह दुष्ट, सरयू नदी में फेंकने लगा।।६३½-६४½।। उसके बाद उसकी इस निर्दयता का देखकर सब नगरवासी तथा जो इसके आघात से बचे हुए थे, उन बहुत से लोगों ने जाकर राजा से निवेदन किया।।६४½-६५½।। राजा ने इस बात को सुनकर प्रयत्नपूर्वक उसे बुलाकर महान् दुःख से युक्त होकर उसे उस सब हत्या कार्यों को करने को मना किया।।६५½-६६½।। पिता के द्वारा अनेकों बार रोके जाने पर उन महात्मा पिता ने उसको खौलते हुए जल में डाल दिया जैसे कि जल में जौ डाल दिये जाते हैं।।६६½-६७½।। जब उसका नाश हो गया, तब राजा सगर ने पाप से निवृत्त होने के लिये लोकापवाद से भयभीत होने के कारण उस देश को छोड़ दिया।।६७½-६९।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५१वां अध्याय सगर चरित में असमंजस त्याग का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

सगरचरितेऽश्वमोचनं नाम

द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच

त्यक्त्वा पुत्रं स धर्मात्मा सगरः प्रेम तद्गतम्। धर्मशीले तदा बाले चकारांशुमति प्रभुः॥१॥
एतस्मिन्नेव काले तु सुमत्यास्तनया नृप। ववृधुः संघशः सर्वे परस्परमनुव्रताः॥२॥
वज्रसंहननाः क्रूरा निर्दया निरपत्रपाः। अधर्मशीला नितरामेकधर्माण एव च॥३॥
एकाकार्याभिनिरताः क्रोधना मूढचेतसः। अधृष्टाः सर्वभूतानां जनोपद्रवकारिणः॥४॥
विनयाचा रसन्मार्गनिरपेक्षाः समंततः। बबाधिरे जगत्सर्वमसुरा इव कामतः॥५॥
विध्वस्तयज्ञसन्मार्गं भुवनं तैरुपद्रुतम्। निःस्वाध्याय वषट्कारं बभूवार्तं विशेषतः॥६॥
विध्वस्यमाने सुभृशं सागरैर्वरदर्पितैः। प्रक्षोभं परमं जग्मुर्देवासुरमहोरगाः॥७॥
धरा सा सागराक्रांता न चलापि तदा चला। तपः समाधिभंगश्च प्रबभूव तपस्विनाम्॥८॥
हव्यकव्यपरिभ्रष्टास्त्रिदशाः पितृभिः सह। दुःखेन महताविष्टा विरिञ्चभवनं ययुः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सगर चरित्र में

अध्याय–५२

अश्वमोचन

जैमिनि ने कहा कि वे धर्मात्मा प्रभु सगर उस पुत्र को छोड़कर तथा उसके प्रति प्रेम को छोड़कर अपने पुत्र अंशुमान से प्रेम करने लगे।।१।। इसी समय हे राजन्! सुमति के पुत्र सब एक-दूसरे का अनुसरण करते हुए बढ़ने लगे।।२।। वे सब वज्र के समान कठोर शरीर वाले, क्रूर, निर्दयी और निर्लज्ज, अधर्मशील और सबके सब एक धर्म को मानने वाले थे।।३।। वे सब एक कार्य में ही लगे रहने वाले, क्रोधी, मूढ़चित्त वाले, सब प्राणियों में किसी से न हारने वाले और मनुष्यों में उपद्रव पैदा करने वाले थे।।४।। वे सबके सब विनम्रता के व्यवहार और सन्मार्ग की कोई अपेक्षा नहीं रखते थे तथा समस्त संसार को काम से असुरों के समान बाधा पहुँचाते थे। अर्थात् बलात्कारादि भी करते थे।।५।।

यज्ञ के सन्मार्ग को विध्वस्त कर उन्होंने समस्त लोक को उपद्रवयुक्त कर दिया था। उस समय निश्चित स्वाध्याय और वषट्कार (मन्त्रों द्वारा हवन करना) विशेष रूप से पीडायुक्त हो गया था।।६।। वरदर्पित सगर पुत्रों द्वारा बहुत अधिक विश्वंस कर दिये जाने पर देवताओं, असुरों और महान् सर्पराज बहुत अधिक क्षोभ (दुःख) को प्राप्त हो गये।।७।। तब जो पृथ्वी सागरों से घिरी हुई है, वह अचला होते हुए भी चला हो गयी। अर्थात् उनके अत्याचारों से पृथ्वी की कांपने लगी थी। अतः तपस्वियों के तप की समाधि भंग होने लगी।।८।। पितरों के साथ देवता भी हव्य-कव्य से परिभ्रष्ट हो गये अर्थात् न कोई देवताओं के लिये यज्ञाग्नि में हव्य (सामग्री) प्रदान करता था तथा

तत्र गत्वा यथान्यायं देवाः शर्वपुरोगमाः। शशंसुः सकलं तस्मै सागराणां विचेष्टितम्॥१०॥
तच्छुत्वा वचनं तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः। क्षणमंतर्मना भूत्वा जगाद सुरसत्तमः॥११॥
देवाः शृणुत भद्रं वो वाणीमवहिता मम। विनंक्ष्यंत्यचिरेणैव सागरा नात्र संशयः॥१२॥
कालं कंचित्प्रतीक्षध्वं तेन सर्वं नियम्यते। निमित्तमात्रमन्यत्तु स एव सकलेशिता॥१३॥
तस्माद्युष्मद्धितार्थाय यद्वक्ष्यामि सुरोत्तमाः। सर्वैर्भवद्भिरधुना तत्कर्त्तव्यमतंद्रितैः॥१४॥
विष्णोरंसेन भगवान्कपिलो जयतां वरः। जातो जगद्धितार्थाय योगीन्द्रप्रवरो भुवि॥१५॥
अगस्त्यपीतसलिले दिव्यवर्षशतावधि। ध्यायन्नास्तेऽधुनांऽभोधावेकांते तत्र कुत्र चित्॥१६॥
गत्वा यूयं ममादेशात्कपिलं मुनिपुंगवम्। ध्यानावसानमिच्छंतस्तिष्ठध्वं तदुपह्वरे॥१७॥
समाधिविरतौ तस्य स्वाभिप्रायमशेषतः।
नत्वा तस्मै वदिष्यध्वं स वः श्रेयो विधास्यति॥१८॥
समाधिभंगश्च मुनेर्यथा स्यात्सागरैः कृतः। कुरुध्वं च तथा यूयं प्रवृत्तिं विबुधोत्तमाः॥१९॥

जैमिनिरुवाच

इत्युक्तास्तेन विबुधास्तं प्रणम्य पितामहम्। गत्वा तं विबुधश्रेष्ठं ते कृतांजलयोऽब्रुवन्॥२०॥

देवा ऊचुः

प्रसीद नो मुनिश्रेष्ठ वयं त्वां शरणं गताः। उपद्रुतं जगत्सर्वं सागरैः संप्रणश्यति॥२१॥

न पितरों के लिए श्राद्ध दिये जाते थे। अतः देवता सब पितरों के साथ महान् दुःख से दुःखी होकर ब्रह्मा जी के भवन पर गये।।९।। वहाँ जाकर सब देवताओं ने नियमानुसार शंकर जी को आगे करके ब्रह्मा जी को, सागपुत्रों के दुःख की सारी कहानी कह दी।।१०।। उनके उस वचन को सुनकर संसार के पितामह सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा जी क्षण भर के लिये मौन होकर बोले।।११।। हे देवो! आप सावधान होकर मेरी बात सुनो। समस्त सागर (सगर पुत्र) शीघ्र ही विनष्ट हो जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१२।। अतः कुछ समय तक प्रतीक्षा करो, सब समय के साथ नियमित हो जायेगा और सब तो निमित्त मात्र है, वह समय (काल) ही सब कुछ है तथा उसी की सर्वोपरिता है, अतः काल ही सर्वोपरि है।।१३।। इसलिए हे उत्तम देवो! मैं आपके हित के लिये जो कहूँगा, उसे आप सभी को आलस्यहीन होकर करना चाहिये।।१४।। जीतने वालों में श्रेष्ठ योगीन्द्र प्रवर भगवान् कपिल संसार के कल्याण के लिये पृथ्वी पर विष्णु के अंश से पैदा हुए हैं।।१५।। अगस्त्य मुनि द्वारा पिये गये समुद्र के जल में सौ दिव्य वर्षों तक ध्यान करते हुए, वे वहाँ कहीं समुद्र में आपको मिल जायेंगे।।१६।। मेरे आदेश से आप लोग वहाँ जाकर मुनिश्रेष्ठ कपिल को ध्यानावस्थित बैठे हुए देखकर वहाँ पर उनके आश्रम में उनके ध्यान का अवसान चाहते हुए ठहर जाना।।१७।। तथा जब उनकी समाधि समाप्त हो जाये, तब आप उनको अपना समस्त अभिप्राय नमस्कार करके बता देना, तब वे अवश्य आपका कल्याण करेंगे।।१८।। सगरपुत्रों द्वारा किया गया समाधि भंग जैसे ही उनका हो जाये, वैसी ही प्रवृत्ति आप देवता लोग वहाँ पर प्रयोग करना। अर्थात् उनके अनुकूल व्यवहार करना।।१९।।

जैमिनि ने कहा—जब ब्रह्मा जी ने देवों से इस प्रकार कहा तो सब देवता लोग पितामह को प्रणाम कर देवश्रेष्ठ उन कपिलमुनि के पास जाकर हाथ जोड़कर बोले।।२०।।

देवताओं ने कहा हे मुनिश्रेष्ठ! प्रसन्न हो जाइये, हम सब आपकी शरण में आये हैं। सगर पुत्रों द्वारा

त्वं किलाखिललोकानां स्थितिसंहारकारणः। विष्णोरंशेन योगीन्द्रस्वरूपी भुवि संस्थितः॥२२॥
पुंसां तापत्रयार्त्तानामार्त्तिनाशाय केवलम्। स्वेच्छया ते धृतो देहो न तु त्वं तपतां वरः॥२३॥
मनसैव जगत्सर्वं स्त्रष्टुं संहर्तुमेव च। विधातुं स्वेच्छया ब्रह्मन्भवाञ्छक्तोत्यसंशयम्॥२४॥
त्वं नो धाता विधाता च त्वं गुरुस्त्वं परायणम्।
परित्राता त्वमस्माकं विनिवर्त्तय चापदम्॥२५॥
शरणं भव विप्रेंद्र विप्रेंद्राणां विशेषतः। सागरैर्दह्यमानानां लोकत्रयनिवासिनाम्॥२६॥
ननु वै सात्त्विकी चेष्टा भवतीह भवादृशाम्। त्रातुमर्हसि तस्मात्त्वं लोकानस्मांश्च सुव्रत॥२७॥
न चेदकाले भगवन्विनंक्ष्यत्यखिलं जगत्।

जैमिनिरुवाच

इत्युक्तः सकलैर्देवैरुन्मील्य नयने शनैः॥२८॥
विलोक्य तानुवाचेदं कपिलः सूनृतं वचः। स्वकर्मणैव निर्दग्धाः प्रविनङ्क्ष्यंति सागराः॥२९॥
काले प्राप्ते तु युष्माभिः स तावत्परिपाल्यताम्।
अहं तु कारणं तेषां विनाशाय दुरात्मनाम्॥३०॥
भविष्यामि सुरश्रेष्ठा भवतामर्थसिद्धये। मम क्रोधाग्निविप्लुष्टाः सागराः पापचेतसः॥३१॥
भविष्यन्ति चिरेणैव कालोपहतबुद्धयः। तस्माद्गतज्वरा देवा लोकाश्चैवाकुतोभयाः॥३२॥
भवंतु ते दुराचाराः क्षिप्रं यास्यंति संक्षयम्। तद्यूयं निर्भया भूत्वा व्रजध्वं स्वां पुरीं प्रति॥३३॥

उपद्रवयुक्त समस्त संसार नष्ट हो जायेगा।।२१।। हे मुनिश्रेष्ठ! आप समस्त लोकों के पालन करने वाले और संहार करने वाले हैं तथा आप विष्णु के अंश से योगीन्द्र के रूप में इस पृथ्वी पर स्थित हैं।।२२।। हे तपस्या करने वालों में श्रेष्ठ मुनिवर! आपने मनुष्यों के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के तापों के नाश के लिये केवल अवतार लिया है। आपने अपनी इच्छा से देह को धारण नहीं किया है।।२३।। हे भगवन्! आप मन से ही अपनी इच्छा से समस्त संसार की रचना और संहार कर सकते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२४।। आप ही धाता (संसार को धारण करने वाले) और विधाता हैं। आप ही गुरु हैं। आप ही परायण हैं। आप ही हमारा परित्राण करने वाले हैं। अतः आप हमारी आपत्ति समाप्त कीजिये।।२५।। हे विप्रेन्द्र! सगर के पुत्रों से जलते हुए तीनों लोकों के निवासियों विशेषतः विप्रेन्द्रों (ब्राह्मणों) की रक्षा कीजिये।।२६।। हे सुव्रत! आप जैसे महान् पुरुषों की चेष्टा अवश्य सात्त्विकी होती है, इसलिए आप हम लोगों की रक्षा कर सकते हो।।२७।। हे भगवन् आप यदि रक्षा नहीं करेंगे तो इस असमय समस्त संसार नष्ट हो जायेगा।।२७½।।

जैमिनि ने कहा— कि ऐसा जब सब देवों ने कहा, तब धीरे से नेत्रों को बन्दकर फिर उनको देखकर कपिल मुनि उन देवताओं से सत्य और सुखद वचन बोले।।२७½-२८½।। कपिल मुनि ने कहा कि अपने कर्म के द्वारा जला दिये गये ये सगर पुत्र समय आने पर पूरी तरह नष्ट हो जायेंगे। आप लोग समय की प्रतीक्षा कीजिये।।२८½-२९½।। हे श्रेष्ठ देवो! आपके अर्थ की सिद्धि के लिये मैं तो सगर के उन पुत्रों के विनाश का कारण बनूँगा।।२९½-३०½।। मेरी क्रोधाग्नि से विशेष रूप से जला दिये गये पापी सगर पुत्र बहुत समय के बाद काल से उपहत बुद्धि वाले हो जायेंगे अर्थात् उनकी बुद्धि नष्ट हो जायेगी। उससे देवता लोग आपत्तिहीन हो जायेंगे, फिर लोकों को कोई भय नहीं रहेगा। वे दुराचारी शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जायेंगे।।३०½-३२½।। अतः आप लोग निर्भय होकर अपनी

कालं कंचित्प्रतीक्षध्वं ततोऽभीष्टमवाप्स्यथ। कपिलेनैवमुक्तास्ते देवाः सर्वे सवासवाः॥३४॥
तं प्रणम्य ततो जग्मुः प्रतीताग्निदिवं प्रति। एतस्मिन्नंतरे राजा सगरः पृथिवीपतिः॥३५॥
वाजिमेधं महायज्ञं कर्तुं चक्रे मनोरथम्। आहृत्य सर्वसंभारान्वसिष्ठानुमते तदा॥३६॥
और्वाद्यैः सहितो विप्रैर्यथावद्दीक्षितोऽभवत्। दीक्षां प्रविष्टो नृपतिर्हयसंचारणाय वै॥३७॥
पुत्रान्सर्वान्समाहूय संदिदेश महायशाः। संचारयित्वा तुरगं परीत्य पृथिवीतले॥३८॥
क्षिप्रं ममांतिकं पुत्राः पुनराहर्तुमर्हथ।

जैमिनिरुवाच

ततस्ते पितुरादेशात्तमादाय तुरंगमम्॥३९॥
परिचंक्रमयामासुः सकले क्षितिमंडले। विधिचोदनयैवाश्वः स भूमौ परिवर्त्तितः॥४०॥
न तु दिग्विजयार्थाय करादानार्थमेव च। पृथिवीभूभुजा तेन पूर्वमेव विनिर्जिता॥४१॥
नृपाश्वोदारवीर्येण करदाः समरे कृताः। ततस्ते राजतनया निस्तोये लवणांबुधौ॥४२॥
भूतले विविशुर्हृष्टाः परिवार्य तुरंगमम्॥४३॥

॥इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरचरितेऽश्वमोचनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

पुरी को चले जाइये। कुछ समय तक प्रतीक्षा करो, उसके बाद अभीष्ट को प्राप्त करोगे।।३२½-३३½।। कपिल मुनि द्वारा इस प्रकार कहे गये वे सब देवता इन्द्र के साथ उन मुनि को प्रणाम करके प्रतीताग्नि स्वर्ग लोक को चले गये।।३३½-३४½।। इसी बीच में पृथ्वीपति राजा सगर ने अश्वमेध नामक महायज्ञ करने की इच्छा की।।३४½-३५½।। तब उन राजा सगर ने गुरु वशिष्ठ की अनुमति से यज्ञ की समस्त सामग्रियों को लाकर और्व आदि के सहित ब्राह्मणों द्वारा वे दीक्षित हो गये।।३५½-३६½।। दीक्षा प्राप्त कर महापराक्रमी राजा सगर ने अश्व के संचरण के लिये अपने पुत्रों को सम्यक् प्रकार से बुलाकर सम्यक् आदेश दिया।।३६½-३७½।। अश्व को समस्त पृथ्वी तल पर घुमाकर शीघ्र मेरे पास पुनः लेकर के आओ।।३७½-३८½।।

जैमिनि ने कहा कि इसके बाद वे सब सगर पुत्र पिता के आदेश से अश्व को लेकर समस्त पृथ्वी मण्डल घुमाने लगे।।३८½-३९½।। दैव योग से प्रेरित होने के कारण वह अश्व भूमि पर परवर्तित हो गया अर्थात् वह अश्व दिग्विजय के लिये नहीं, अपितु कर लेने के लिये था। अतः संसार के सभी राजा लोगों ने उन सगर पुत्रों के आधिपत्य को स्वीकार किया।।३९½-४०½।। पृथ्वी का भोग करने वाले उस राजा सगर ने पहले ही सब राजाओं को जीत लिया था। राजा के उदार पराक्रम से सब राजा युद्ध में कर देने वाले बना दिये गये।।४०½-४१½।। उसके बाद वे सब राजपुत्र आनन्दित होकर जलरहित लवण समुद्र में भूतल में अश्व को छोड़कर घुस गये।।४१½-४३।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५२वां अध्याय सगर चरित्र में अश्वमोचन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरचरिते

सागराणांविनाशोनाम

त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच

तेषु तत्र निविष्टेषु वासवेन प्रचोदितः। जहारं तुरगं वायुस्तत्क्षणेन रसातलम्॥१॥
अदृष्टमश्वं तैः सर्वैरपहृत्य सदागतिः। अनयत्तत्पथा राजन्कपिलस्यांतिकं मुनेः॥२॥
ततः समाकुलाः सर्वे विनष्टेऽश्वे नृपात्मजाः। परीत्य वसुधां सर्वां प्रमार्गतस्तुरंगमम्॥३॥
विचित्य पृथिवीं ते तु स पुराचलकाननाम्। अपश्यंतो यज्ञपशुं दुःखं महदवाप्नुवन्॥४॥
ततोऽयोध्यां समासाद्य ऋषिभिः परिवारिताम्। दृष्ट्वा प्रणम्य पितरं तस्मै सर्वं न्यवेदयन्॥५॥
परीत्य पृथ्वीमस्माभिर्निविष्टे वरुणालये। रक्ष्यमाणोऽपि पश्यद्भिः केनापि तुरगो हृतः॥६॥
इत्युक्तस्तै रुषाविष्टस्तान्नुवाच नृपोत्तमः। प्रयास्यध्वमधर्मिष्ठाः सर्वेऽनावृत्तये पुनः॥७॥
कथं भवद्भिर्जीवद्भिर्विनष्टो वै दुरात्मभिः। तुरगेण विना सत्यं नेहागमनमस्ति वः॥८॥
ततः समेत्य तस्मात्ते संप्रयाताः। ऊचुर्न दृस्यतेऽद्यापि तुरगः किं प्रकुर्महे॥९॥
वसुधा विचिताऽस्माभिः सशैलवनकानना।
न चापि दृश्यते वाजी तद्वार्त्तापि न कुत्रचित्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सगर चरित में

अध्याय–५३

सगर पुत्रों का विनाश

जैमिनि ने कहा कि जब वे सब सगर पुत्र पाताल लोक चले गये, तब इन्द्र द्वारा प्रेरित वायु ने घोड़े को चुरा लिया और फिर रसातल लेकर चले गये।।१।। अश्व को विना देखे हुए देवता लोग चुराकर सदागति से मार्ग पर चलते हुए कपिल मुनि के पास में ले गये।।२।। उसके बाद अश्व के विनष्ट होने पर सब राजपुत्र बहुत व्याकुल हो गये और समस्त पृथ्वी पर अश्व को खोजते हुए पृथ्वी को पूरा छानकर तथा नगर पर्वत और वनों में खोजते हुए यज्ञपशु को न देखते हुए महान् दुःख को प्राप्त हो गये।।३-४।। उसके बाद अयोध्या में पहुँचकर ऋषियों से घिरे हुए पिता को देखकर और प्रणाम करके वह सब उनको बता दिया।।५।। उन्होंने कहा कि समस्त पृथ्वी पर घूम कर हमने अश्व को वरुणालय में बाँध दिया था। हम लोगों से रक्षा करते हुए किसने घोड़े को चुरा लिया।।६।।

जब सगर के पुत्रों ने पिता से कहा तो क्रोध से आविष्ट नृपश्रेष्ठ सगर उनसे बोले कि आप लोग पुनः अश्व को खोजने के लिये जाओ।।७।। आप लोगों ने जीवित रहते हुए अश्व को कैसे खो दिया? घोड़े के विना तुम्हारा यहाँ आना उचित नहीं था।।८।। उसके बाद वे सब एक होकर आपस में सब जगह गये और बोले कि आज भी अश्व नहीं दिखाई दे रहा है, अब हम क्या करें?।।९।। हम लोगों ने पर्वत वन काननों वाला समस्त पृथ्वी को छान डाला; परन्तु अश्व दिखाई नहीं देता है तथा उसकी कहीं बात भी नहीं है।।१०।।

तस्मादब्धेः समारभ्य पातालावधि मेदिनीम्।
विभज्य खात्वा पातालं विविशाम तुरंगमम्॥११॥
इति कृत्वा मतिं सर्वे सागराः क्रूरनिश्चयाः। निचख्नुर्भूमिबंबोधेस्तटादारभ्य सर्वतः॥१२॥
तैः खन्यमाना वसुधा ररास भृशविह्वला। चक्रुशुश्चापि भूतानि दृष्ट्वा तेषां विचेष्टितम्॥१३॥
ततस्ते भारतं खंडं खात्वा संक्षिप्य भूतले। भूमेर्योजनसाहस्रं योजनामासुरंबुधौ॥१४॥
आपातालतलं ते तु खनंतो मेदिनीतलम्। चरंतमश्वं पाताले ददृशुर्नृपनंदनाः॥१५॥
संप्रहृष्टास्ततः सर्वे समेत्य च समंततः। संतोषाज्जहसुः केचिन्ननृतुश्च मुदान्विताः॥१६॥
ददृशुश्च महात्मानं कपिलं दीप्ततेजसम्। वृद्धं पद्मासनासीनं नासाग्रन्यस्तलोचनम्॥१७॥
ऋज्वायतशिरोग्रीवं पुरोविष्टब्धवक्षसम्। स्वतेजसाऽभिसरता परिपूर्णेन सर्वतः॥१८॥
प्रकाश्यमानं परितो निवातस्थप्रदीपवत्। स्वांतप्रकाशिताशेषविज्ञानमयविग्रहम्॥१९॥
समाधिगत चित्तं तु निभृतांभोधिसन्निभं। आरूढयोगं विधिवद्ध्येयसंलीनमानसम्॥२०॥
योगींद्रप्रवरं शांतं ज्वालामालमिवानलम्। विलोक्य तत्र तिष्ठंतं विमृशंतः परस्परम्॥२१॥
मुहूर्त्तमिव ते राजन्साध्वसं परमं गताः। ततोऽयमश्वहर्त्तेति सागराः कालचोदिताः॥२२॥

इसलिए अब हम समुद्र से आरम्भ करके पाताल तक पृथ्वी को खोदकर घोड़े को खोजने के लिये, पाताल में घुसते हैं।।११।। इस प्रकार विचार करके सब क्रूर निश्चय करने वाले सगर पुत्र समुद्र के तट से आरम्भ कर चारों ओर भूमि को खोदने लगे।।१२।। उनके द्वारा खोदी गयी पृथ्वी बहुत अधिक व्याकुल होकर झनझनाने लगी अर्थात् चीखकर रोने लगी तथा उनकी बुरी चेष्टा को देखकर पृथ्वी के ऊपर रहने वाले सभी प्राणी भी चिल्लाने लगे तथा पंचमहाभूत दुःखी होकर रोने लगे। यहाँ यह भी अर्थ हो सकता है।।१३।। उसके बाद वे भारतखण्ड को खोदकर भूतल पर संक्षिप्त करके एक हजार योजनभूमि को समुद्र में मिला दिया।।१४।। पाताल तक पृथ्वी तल को खोदते हुए उन राजपुत्रों ने अश्व को पाताल में चरते हुए देखा।।१५।। तब सभी बहुत प्रसन्न हुए और सब चारों ओर से एकत्रित होकर खुशी से हंसने लगे, कुछ अत्यन्त प्रसन्न होकर नाचने लगे।।१६।। वहाँ पर उन्होंने चमकते हुए तेज वाले, नासिका के अग्रभाग पर आंखे लगाकर ध्यान[1] मग्न पद्मासन पर बैठे हुए वृद्ध कपिलमुनि को देखा।।१७।।

उस समय उनका शिर और गर्दन बिल्कुल सीधी और ऊपर को थी वक्षस्थल आगे की ओर सीधा निकला हुआ था, अपने परिपूर्ण तेज से वे सब ओर से घिर हुए थे तथा वायुरहित स्थान में रखे हुए दीपक के समान प्रकाशित हो रहे थे, चमक रहे थे। उनका शरीर अपने अन्तरात्मा में प्रकाशित सम्पूर्ण विज्ञानमय था अर्थात् उनकी अन्तरात्मा में सम्पूर्ण विज्ञान प्रकाशित हो रहा था।।१८-१९।। उनका समाधिगतचित्त समुद्र के समान भरा हुआ था, विधिवत् ध्येय (ध्यान करने योग्य ब्रह्म) में मन लगाकर योगारूढ़ थे।।२०।। वहाँ ज्वालामालाओं वाली अग्नि के समान शान्त योगीन्द्रप्रवर को बैठा हुआ देखकर वे राजपुत्र परस्पर विचार विमर्श करते हुए थोड़ी देर में ही परम जड़ता को प्राप्त हो गये। अर्थात् विचारभूत हो गये, उनमें समझने, सोचने तथा उचित निर्णय लेने की शक्ति नहीं रह गयी।२१-

१. यहाँ पर ध्यान की विशेष विधि पर प्रकाश डाला गया है। ध्यान में किसी देवी, देवता ईश्वर आदि की प्रतिमा के ध्यान की बात नहीं कही गयी है। अतः यहाँ निराकार एवं निर्गुण ब्रह्म का समर्थन है। इसीलिये नासिका के अग्रभाग पर दृष्टिरखते हुए ध्यान की विधि बतायी गयी है॥

परिव्रुर्दुरात्मानः कपिलं मुनिसत्तमम्। ततस्तं परिवार्योचुश्चोरोऽयं नात्र संशयः॥२३॥
अश्वहर्त्ता ततोऽह्येष वध्योऽस्माभिर्दुराशयः। तं प्राकृतवदासीनं ते सर्वे हतबुद्धयः॥२४॥
आसन्नमरणाश्चक्रुर्धर्षितं मुनिमंजसा।

जैमिनिरुवाच

ततो मुनिरदीनात्मा ध्यानभंगप्रधर्षितः॥२५॥
क्रोधेन महताऽऽविष्टश्चुक्षुभे कपिलस्तदा। प्रचचाल दुराधर्षो धर्षितस्तैर्दुरात्मभिः॥२६॥
व्यजृंभत च कल्पांते मरुद्भिरिव चानलः। तस्य चार्णवगंभीराद्वपुषः कोपपावकः॥२७॥
दिधक्षुरिव पाता लाँल्लोकान्सांकर्षणोऽनलः। शुशुभे धर्षणक्रोधपरामर्शविदीपितः॥२८॥
उन्मीलयत्तदा नेत्रे वह्निचक्रसमद्युतिः। तदाऽक्षिणी क्षणं राजन्राजेतां सुभृशारुणे॥२९॥
पूर्वसंध्यासमुदितौ पुष्पवंताविवांबरे। ततोऽप्युद्वर्त्तमानाभ्यां नेत्राभ्यां नृपनंदनान्॥३०॥
अवैक्षत च गंभीरः कृतांतः कालपर्यये। क्रुद्धस्य तस्य नेत्राभ्यां सहसा पावकार्चिषः॥३१॥
निश्चेरुरभितो दिक्षु कालाग्नेरिव संततः। सधूमकवलोदग्राः स्फुलिंगौघमुचो मुहुः॥३२॥
मुनिक्रोधानलज्वालाः समंताव्द्यानशुर्दिशः। व्यालोदरौग्रकुहरा ज्वालास्तन्नेत्रनिर्गताः॥३३॥
विरेजुर्निभृतांभोधेर्वडवाग्नेरिवार्चिषः। क्रोधाग्निः सुमहाराज ज्वालाव्याप्तदिगंतरः॥३४॥

२१½।। उसके बाद 'यही अश्व को चुराने वाला है', इस प्रकार समय (काल) प्रेरित वे दुरात्मा सगर पुत्र मुनिश्रेष्ठ कपिल से परिवाद करने लगे।।२१½-२२½।। उसके बाद उन कपिल मुनि को घेर कर कहने लगे कि यही चोर है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसीलिए इसी दुष्ट को हमें मार देना चाहिये। इस प्रकार उन अपने समस्त २३ तत्त्वों को प्रधान प्रकृति में लीन करने वाले कपिल मुनि को मारने की बुद्धि वाले उन सगर पुत्रों ने घसीट कर मरणासन्न कर दिया।।२२½-२४½।।

जैमिनि ने कहा कि उसके बाद महान् आत्मा ध्यान भयंकर घसीटे हुए कपिल मुनि महान् क्रोध के आवेश में देखने लगे।।२४½-२५½।। तब वे किसी से भी न हराये जाने वाले उन दुष्टात्माओं से घसीटे गये (पकड़कर खींचे गये) क्रोध से कांपने लगे।।२६।। तथा जिस प्रकार कल्प के अन्त में (प्रलय काल के समय) हवाओं द्वारा अग्नि हुंकार भरता है, उसी तरह हुंकार भरने लगे। तब उनके घर्षण के क्रोध और अपमान से विशेष रूप से प्रज्वलित उनके समुद्र रूपी गंभीर शरीर से निकली क्रोधाग्नि लोकों को जलाने की इच्छा रखने वाली प्रलय कालीन अग्नि के समान सुशोभित हुयी।।२७-२८।। तब अग्नि के चक्र के समान कान्ति वाले मुनि ने नेत्रों को खोला, तब हे राजन्! उनकी दोनों आंखें पूर्व सन्ध्या में उदित सूर्य की लालिमा के समान बहुत अधिक लाल शोभित होने लगीं।।२९-२९½।। उसके बाद उन लाल-लाल आँखों से उन राज पुत्रों को उसी तरह देखा, जिस प्रकार गंभीर यमराज प्रलयकाल में देखते हैं।।२९½-३०½।। उन क्रुद्ध मुनि के नेत्रों से सहसा प्रलयकालीन अग्नि के समान चारों ओर दिशाओं में निरन्तर आग की चिन्गारियां निकलने लगीं।।३०½-३१½।। धुएँ के गोलों के समान ऊपर को उग्र चिनगारियां अनेकों बार ऊपर को उठ रही थीं, इस प्रकार मुनि क्रोधाग्नि की ज्वालाओं ने चारों ओर दिशाओं को व्याप्त कर दिया।।३१½-३२½।। सर्प (शेषनाग) के उदर की उग्रतापूर्ण प्रलयकालीन ज्वाला उनके नेत्र से निकलने लगी, जो ज्वालायें समुद्र में पैदा हुई वडवानल की चिन्गारियों के समान विराजमान थी।।३२½-३३½।। हे महाराज कपिल मुनि क्रोधाग्नि की

दग्धांश्चकार तान्सर्वानावृण्वानो नभस्तलम्॥३५॥
सशब्दमुद्भ्रांतमरुत्प्रकोपविवर्त्तमानानलधूमजालैः ।
महीरजोभिश्च नितांतमुद्धतैः समावृतं लोकमभूद्धशातुरम्॥३६॥
ततः स वह्निर्विलिखन्निवाभितः समीरवेगाभिहताभिरंबरम्।
शिखाभिरुर्वीशसुतानसेषतो ददाह सद्यः सुर विद्विषस्तान्॥३७॥
मिषतः सर्वलोकस्य क्रोधाग्निस्तमृते हयम्। सागरांस्तानशेषेण भस्मसादकरोत्स तान्॥३८॥
एवं क्रोधाग्निना तेन सागराः पापचेतसः। जज्वलुः सहसा दावे तरवो नीरसा इव॥३९॥
दृष्ट्वा तेषां तु निधनं सागराणां दुरात्मनाम्। अयोन्यमब्रुवन्देवा विस्मिता ऋषिभिः सह॥४०॥
अहोदारुणपापानां विपाको न चिरायितः। दुरंतः खलु लोकेऽस्मिन्नराणामसदात्मनाम्॥४१॥
यदि मे पर्वताकारा नृशंसाः क्रूरबुद्धयः। युगपद्विलयं प्राप्ताः सहसैव तृणाग्निवत्॥४२॥
उद्वेजनीया भूतानां सद्भिरत्यंगर्हिताः। आजीवांतमिमे हर्तुं दिष्ट्या संक्षयमागताः॥४३॥
परोपतापि नितरां सर्वलोकजुगुप्सितम्। इह कृत्वाऽशुभं कर्म कः पुमान्विंदते सुखम्॥४४॥
विक्रोश्य सर्वभूतानि संप्रयाताः स्वकर्मभिः। ब्रह्मदंडहताः पापा निरयं शाश्वती समाः॥४५॥
तस्मात्सदैव कर्त्तव्यं कर्म पुंसां मनीषिणाम्। दूरतश्च परित्याज्यमितरल्लोकनिंदितम्॥४६॥
कर्त्तव्यः श्रेयसे यत्नो यावज्जीवं विजानता। नाचरेत्कस्यचिद्द्रोहमनित्यं जीवनं यतः॥४७॥

ज्वालाओं से समस्त दिशायें व्याप्त हो गयीं। उस ज्वाला ने समस्त आकाश तल को आवृत कर जला दिया।।३३½-३५।। चारों ओर भयंकर शब्द करती हुई हवाओं के प्रकोप से चक्कर काटते हुए, अग्नि के धूम समूहों से तथा बहुत अधिक उठती हुई पृथ्वी की धूलि से समावृत (पूरी तरह ढका हुआ) संसार अत्यन्त व्याकुल हो गया।३६।। उसके बाद उस अग्नि से कुरेदते हुए के समान चारों ओर वायु के वेग ने समस्त आकाश को अभिभूत कर दिया, ऐसी उन अग्नि की शिखाओं ने देवताओं के शत्रु उन सब राजपुत्रों को पूरी तरह शीघ्र ही जला दिया।।३७।। सब संसार को नष्ट करने वाली उन मुनि की क्रोधाग्नि ने उस अश्व के अतिरिक्त समस्त उन सगरपुत्रों को भस्मासत् कर दिया।।३८।। इस प्रकार उस क्रोधाग्नि ने पापी सगर पुत्रों को उसी प्रकार जला दिया, जिस प्रकार वन में पैदा हुई अग्नि वृक्षों को नीरस (सूखे) के समान जला देती है।।३९।। उन दुष्टात्मा सगर पुत्रों का निधन देखकर ऋषियों के साथ आश्चर्यचकित देवता लोग भी एक दूसरे से बोलने लगे।।४०।।

अहो दारुण पापों का परिणाम देर में नहीं मिलता, इस संसार में निश्चित ही दुष्टात्मा मनुष्यों का अन्त बहुत बुरा होता है।।४१।। जो कि ये पर्वतों के समान आकार वाले, नृशंस (हत्यारे) क्रूरबुद्धि वाले एक साथ आग में तिनका के समान नाश को प्राप्त हो गये।।४२।। प्राणियों को पीड़ा पहुंचाने वाले ये सब सज्जन पुरुषों द्वारा निन्दित हुये तथा दूसरों की जीविका को अन्त करने वाले ये सब पूर्णरूप से नाश को प्राप्त हुए।।४३।। दूसरों को पीड़ा देना बहुत अधिक लोक घृणित कार्य है। इस संसार में अशुभ कर्म करके कौन पुरुष सुख को प्राप्त करता है?।।४४।। अपने कर्मों से सब प्राणियों को कष्ट देकर, विशेष पीड़ा पहुँचाकर ब्रह्म के दण्ड से मारे हुए पापी सदा के लिये नरक चले जाते हैं।।४५।। इसलिये मनीषी (विचारशील) पुरुषों को लोकनिन्दित कर्मों को दूर से ही छोड़कर सदैव सत्कर्म करना चाहिये।।४६।। मनुष्य को जब तक जीवित रहे, तब तक अच्छी तरह जानते हुए कल्याण करने वाले कार्य करने

अनित्योऽयं सदा देहः संपदश्चातिचंचलाः। संसारश्चातिनिस्सारस्तत्कथं विश्वसेद्बुधः॥४८॥
एवं सुरमुनीन्द्रेषु कथयत्सु परस्परम्। मुनिक्रोधेंधनीभूता विनेशुः सगरात्मजाः॥४९॥
निर्दग्धदेहाः सहसा भुवं विष्टभ्य भस्मना। अवापुर्निरयं सद्यः सागरास्ते स्वकर्मभिः॥५०॥
सागरांस्तानशेषेण दग्ध्वा तत्क्रोधजोऽनलः। क्षणेन लोकानखिलानुद्यतो दग्धुमंजसा॥५१॥
भयभीतास्ततो देवाः समेत्य दिवि संस्थिताः। तुष्टुवुस्ते महात्मानं क्रोधाग्निशमनार्थिनः॥५२॥

।।इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरचरिते सागरविनाशो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

का प्रयत्न करना चाहिये। किसी के साथ द्रोह (वैर) नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह जीवन अनित्य (क्षणभंगुर) है।।४७।। यह शरीर सदैव अनित्य है अर्थात् नित्य (प्रतिदिन) रहने वाला नहीं है तथा समस्त सम्पत्तियाँ अत्यन्त चंचल हैं,वे कभी भी नष्ट हो सकती हैं। यह संसार अत्यन्त निःसार है, फिर भी विद्वान् लोक इस पर क्यों विश्वास करें।।४८।। इस प्रकार देवता और मुनि लोग कह ही रहे थे कि वे सब सगरपुत्र कपिल मुनि के क्रोध से ईंधन बनकर विनष्ट हो गये।।४९।। तथा अचानक ही जले हुए शरीर वाले वे सब सगरपुत्र भूलोक को छोड़कर भस्म (राख) बनकर शीघ्र ही अपने कर्मों से नरक को प्राप्त हो गये।।५०।। उन समस्त सगर पुत्रों को जलाकर उनके क्रोध से उत्पन्न अग्नि क्षण भर में तुरन्त समस्त लोकों को जलाने के लिये उद्यत हो गयी। उसके बाद क्रोधाग्नि की शान्ति चाहने वाले स्वर्ग में स्थित सभी देवता लोग एकत्र होकर महात्मा कपिल मुनि की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न करने लगे।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५३वां अध्याय सगर चरित में सगर पुत्रों का विनाश का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖
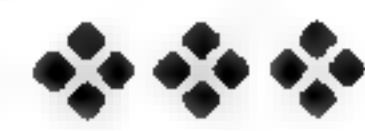
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

कपिलाश्रमस्थाश्वनपर्व नाम

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच।

क्रोधाग्निमेनं विप्रेन्द्र सद्यः संहर्त्तुमर्हसि। नो चेदकाले लोकोऽयं सकलस्तेन दह्यते॥१॥
दृष्टस्ते महिमानेन व्याप्तमासीच्चराचरम्। क्षमस्व संहर क्रोधं नमस्ते विप्रपुंगव॥२॥
एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्कपिलो मुनिः। तूर्णमेव क्षयं निन्ये क्रोधाग्निमतिभैरवम्॥३॥
ततः प्रशांतमभवज्जगत्सर्वं चराचरम्। देवास्तपस्विनश्चैव बभूवुर्विगतज्वराः॥४॥
एतस्मिन्नेव काले तु भगवान्नारदो मुनिः। अयोध्यामगमद्राजन्देवलोकाद्यदृच्छया॥५॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य नारदं सगरस्तदा। अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयामास शास्त्रतः॥६॥
परिगृह्य च तत्पूजामासीनः परमासने। नारदो राजशार्दूलमिदं वचनमब्रवीत्॥७॥

नारद उवाच

हयसंचारणार्थाय संप्रयातास्तवात्मजाः। ब्रह्मदंडहताः सर्वे विनष्टा नृपसत्तम॥८॥
संरक्ष्यमाणस्तैः सर्वैर्हयस्ते यज्ञियो नृप। केनाप्य लक्षितः क्वापि नीतो विधिवशाद्दिवि॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–५४

कपिल आश्रम में स्थित अश्व को लाना

जैमिनि ने कहा कि देवताओं ने कपिल मुनि से कहा कि हे विप्रेन्द्र! आप शीघ्र ही इस क्रोधाग्नि को समेट लीजिये अन्यथा यह समस्त संसार उस अग्नि से जला जा रहा है।।१।। आप महात्मा के तेज द्वारा यह समस्त चराचर जगत् व्याप्त हो गया है। हे विप्रश्रेष्ठ! अब क्षमा कीजिये और अपने क्रोध का संहार कीजिये। हे विप्रश्रेष्ठ! हम आपको नमन करते हैं।।२।। जब देवताओं ने इस प्रकार स्तुति की तो भगवान् कपिल मुनि ने अत्यन्त भयंकर क्रोधाग्नि को क्षण भर में शीघ्र ही नष्ट कर दिया।।३।। उसके बाद समस्त चराचर जगत् शान्त हो गया। देवता लोग और तपस्वी सभी ज्वररहित (स्वस्थ) हो गये।।४।।

इसी समय हे राजन्! नारद मुनि अपनी इच्छा से घूमते हुए अयोध्या नगरी में गये।।५।। तब उनको आया हुआ देखकर राजा सगर ने उनकी शास्त्रविधि के अनुसार अर्घ्यपाद्यादि से सम्यक् पूजा की।।६।। नृपकृत पूजा को स्वीकार करके परम आसन पर बैठे हुए मुनि नारद राजशार्दूल सगर से यह वचन बोले।।७।। नारद जी ने कहा कि हे राजन! घोड़े को घुमाने के लिये जो आपके पुत्र गये थे, वे सब ब्रह्मदण्ड से मारे जाकर विनष्ट हो गये।।८।। हे राजन्! आपके पुत्रों द्वारा रक्षित अश्व विधिवशात् किसी के द्वारा न देखा जाता हुआ कहीं स्वर्ग में ले जाया गया।९।।

ततो विनष्टं तुरगं विचिन्वंतो महीतले। प्रालभंत न ते क्वापि तत्प्रवृत्तिं चिरान्नृप॥१०॥
ततोऽवनेरधस्तेऽश्वं विचेतुं कृतनिश्चयाः। सागरास्ते समारभ्य प्रचख्नुर्वसुधातलम्॥११॥
खनंतो वसुधामश्वं पाताले ददृशुर्नृप। समीपे तस्य योगींद्रं कपिलं च महामुनिम्॥१२॥
तं दृष्ट्वा पापकर्माणस्ते सर्वे कालचोदिताः। कपिलं कोपयामासुरश्वहर्त्ताऽयमित्यलम्॥१३॥
ततस्तत्क्रोधसंभूतनेत्राग्नेर्दहतो दिशः। इंधनीभूतदेहास्ते पुत्राः संक्षयमागताः॥१४॥
क्रूराः पापसमाचाराः सर्वलोकोपरोधकाः। यतस्ते तेन राजेन्द्र न शोकं कर्तुमर्हसि॥१५॥
स त्वं धैर्यधनो भूत्वा भवितव्यतयात्मनः। नष्टं मृतमतीतं च नानुशोचंति पंडिताः॥१६॥
तस्मात्पौत्रमिमं बालमंशुमंतं महामतिम्। तुरगानयनार्थाय नियुंक्ष्व नृपसत्तम॥१७॥
इत्युक्त्वा राजशार्दूलं सदस्यर्त्विक्समन्वितम्। क्षणेन पश्यतां तेषां नारदोंऽतर्दधे मुनिः॥१८॥
तच्छ्रुत्वा वचनं नारदस्य नृपोत्तमः। दुःखशोकपरीतात्मा दध्यौ चिरमुदारधीः॥१९॥
तं ध्यानयुक्तं सदसि समासीनमवाङ्मुखम्। वसिष्ठः प्राह राजानं सांत्वयन्देशकालवित्॥२०॥
किमिदं धैर्यसाराणामवकाशं भवादृशाम्। लभते हृदि चेच्छोकः प्राप्तं घोरतया फलम्॥२१॥
दौर्मनस्यं शिथिलयन्सर्वं दिष्टवशानुगम्। मन्वानोऽनंतरं कृत्यं कर्तुमर्हस्यसंशयम्॥२२॥

उसके बाद हे राजन्! खोये हुए घोड़े को पृथ्वी तल पर बहुत अधिक लगकर खोजते हुए कहीं भी घोड़े को नहीं प्राप्त कर सके।।१०।। उसके बाद उन सब आपके पुत्रों ने पृथ्वी के नीचे पाताल लोक में खोजने का निश्चय करके पाताल को खोदना प्रारम्भ कर दिया।।११।। हे राजन्! पृथ्वी को खोदते हुए उस अश्व को उन्होंने पाताल में देखा तथा उसी के पास में योगीन्द्र महामुनि कपिल को देखा।।१२।। उनको देखकर वे सभी काल प्रेरित पापकर्म करने वाले राजपुत्र कपिल मुनि पर क्रोध करने लगे और कहने लगे कि यही अश्व को चुराने वाला है।।१३।। उसके बाद उनके क्रोध से संभूत नेत्र की अग्नि ने दिशाओं को जलाते हुए उन सभी के शरीरों को जला दिया, फिर वे विनाश को प्राप्त हो गये।।१४।। हे राजन्! क्योंकि वे आपके पुत्र क्रूर और पूरी तरह पाप का आचरण करने वाले और समस्त लोक को बाधा पहुँचाने वाले थे; इसलिए आपको शोक नहीं करना चाहिये।।१५।।

इसलिये हे राजन् आप धैर्य धारण करके, जो होना है, सो होता है, ऐसा भाव धारण कीजिये; क्योंकि नष्ट हुए, मरे हुए और बीते हुए इस सबके बारे में विद्वान् लोक चिन्ता नहीं करते हैं।।१६।। इसलिये हे राजन्! इस अपने पौत्र महामति बालक अंशुमान् को घोड़े को लाने के लिये नियुक्त कीजिये।।१७।। सभासदों की आभा से युक्त महाराजा सगरं इस प्रकार कहकर देखते देखते ही क्षण भर में नारद मुनि अन्तर्धान हो गये।।१८।। नारद जी के उस वचन को सुनकर दुःख और शोक से घिरी हुई आत्मा वाले उदारबुद्धि वे राजा सगर ध्यान करने लगे।।१९।। सभा में उनको ध्यानयुक्त तथा न बोलते हुये राजा को सान्त्वना देते हुए देश और काल को जानने वाले वशिष्ठ मुनि ने कहा।।२०।। हे राजन्! यह क्या है? तुम दुःखी क्यों हो? हे राजन्! आप जैसे धैर्य को ही सार समझने वाले लोगों के हृदय में यदि शोक को अवकाश मिलता है, तो उसका धैर्य से फल प्राप्त होता है।।२१।। हे राजन्! मन की मलिनता को शिथिल करते हुए सब कुछ भाग्यवश होता है, यह अपने मन में रखकर निःसन्देह आप धैर्य धारण कर सकते हैं।।२२।।

वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा कार्यार्थतत्त्ववित्। धृतिं सत्त्वं समालंब्य तथेति प्रत्यभाषत॥२३॥
अंशुमंतं समाहूय पौत्रं विनयशालिनम्। ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शनैरिदमभाषत॥२४॥
ब्रह्मदंडहताः सर्वे पितरस्तव पुत्रक। पतिताः पापकर्माणो निरये शाश्वतीः समाः॥२५॥
त्वमेव संततिर्मह्यं राज्यस्यास्य च रक्षिता। त्वदायत्तमशेषं मे श्रेयोऽमुत्र परत्र च॥२६॥
स त्वं गच्छ ममादेशात्पाताले कपिलांतिकम्। तुरगानयनार्थाय यत्नेन महतान्वितः॥२७॥
तं प्रार्थयित्वा विधिवत्प्रसाद्य च विशेषतः। आदाय तुरगं वत्स शीघ्रमागंतुमर्हसि॥२८॥

जैमिनिरुवाच।

एवमुक्तोंऽशुमांस्तेन प्रणम्य पितरं पितुः। तथेत्युक्त्वा महाबुद्धिः प्रययौ कपिलांतिकम्॥२९॥
तमुपागम्य विधिवन्नमस्कृत्य यथामति। प्रश्रयावनतो भूत्वा शनैरिदमुवाच ह॥३०॥
प्रसीद विप्रशार्दूल त्वामहं शरणं गतः। कोपं च संहर क्षिप्रं लोकप्रक्षयकारकम्॥३१॥
त्वयि क्रुद्धे जगत्सर्वं प्रणाशमुपयास्यति। प्रशांतिमुपयाह्याशु लोकाः संतु गतव्यथाः॥३२॥
प्रसन्नोऽस्मान्महाभाग पश्य सौम्येन चक्षुषा।
ये त्वत्क्रोधाग्निनिर्दग्धास्तत्संततिमवेहि माम्॥३३॥
नाम्नांशुमंतं नप्तारं सगरस्य महीपतेः। सोऽहं तस्य नियोगेन त्वत्प्रसादाभिकांक्षया॥३४॥
प्राप्तो दास्यसि चेद्ब्रह्मंस्तुरगानयनाय च।

वशिष्ठ द्वारा इस प्रकार कहने पर तो कार्य और अर्थ के तत्त्व को जानने वाले राजा सगर ने धैर्य और सत्त्व का अवलम्बन कर वैसा ही होगा, इस प्रकार कहा।।२३।। इसके बाद विनयशील पौत्र अंशुमान को बुलाकर ब्राह्मण और क्षत्रियों की सभा के मध्य धीरे से यह कहा।।२४।। हे पुत्र! तुम्हारे सब पाप कर्म करने वाले पितर ब्रह्म दण्ड से मरे हुए होकर सदा के नरक में गिर गये हैं।।२५।। हे पुत्र! अब तुम ही मेरी संतति इस राज्य की रक्षा करने वाले हो। तुम्हारे अधीन मेरा इस लोक और परलोक दोनों में कल्याण है।।२६।। वह तुम पुत्र मेरे आदेश से महान् यत्न के साथ घोड़े को लेने के लिए पाताल में कपिल मुनि के पास जाओ।।२७।। विशेषतः उन कपिल मुनि की प्रार्थना करके विधिवत् प्रसन्न कर घोड़े को लेकर शीघ्र पुत्र आओ।।२८।।

जैमिनि ने कहा—जब राजा सगर ने अंशुमान् से इस प्रकार कहा तो पिता और पितरों को प्रणाम कर ठीक है, मैं जा रहा हूँ, ऐसा कहकर वह महाबुद्धि अंशुमान् कपिल मुनि के पास गया।।२९।। उन महामुनि के पास जाकर उन्हें विधिवत् प्रणाम करके अपनी बुद्धि के अनुसार नतमस्तक होकर धीरे से यह कहा।।३०।। हे विप्रशार्दूल! प्रसन्न हो जाओ, मैं आपकी शरण में आया हूँ। इस संसार को नष्ट करने वाले क्रोध को शीघ्र समेट लीजिये।।३१।। हे महामुने! आपके क्रुद्ध होने पर समस्त संसार नाश को प्राप्त हो जायेगा। आप शीघ्र शान्त हो जाइये, ताकि समस्त लोक दुःखरहित होवें।।३२।। हे महाभाग! प्रसन्न होकर हमको सौम्य नेत्र से देखिये। जो आपके क्रोध की अग्नि से जले हुए हैं, उनकी सन्तान मुझे समझिये।।३३।। हे राजन्! मेरा नाम अंशुमान् है तथा मैं राजा सगर का नाती हूँ। सो वह मैं उनके आदेश आप की कृपा की आकांक्षा से आपके पास घोड़ा लेने को आया हूँ, यदि आप दे देंगे तो अतिकृपा होगी।।३४-३४½।।

जैमिनिरुवाच।

इति तद्वचनं श्रुत्वा योगींद्रप्रवरो मुनिः॥३५॥

अंशुमंतं समालोक्य प्रसन्न इदमब्रवीत्। स्वागतं भवतो वत्स दिष्ट्या च त्वमिहागतः॥३६॥

गच्छ शीघ्रं हयश्चायं नीयतां सगरांतिकम्।

अधिक्षिप्तोऽस्य यज्ञोऽपि प्रागतः संप्रवर्त्तताम्॥३७॥

व्रियतां च वरो मत्तस्त्वया यस्ते मनोगतः। दास्ये सुदुर्लभमपि त्वद्भक्तिपरितोषितः॥३८॥

एषां तु संप्रणाशं हि गत्वा वद पितामहम्। पापानां मरणं त्वेषां न च शोचितुमर्हसि॥३९॥

ततः प्रणम्य योगींद्रमंशुमानिदमब्रवीत्। वरं ददासि चेन्मह्यं वरये त्वां महामुने॥४०॥

वरमर्हामि चेत्त्वत्तः प्रसन्नो दातुमर्हसि। त्वद्रोषपावकप्लुष्टाः पितरो ये ममाखिलाः॥४१॥

संप्रयास्यंति ते ब्रह्मन्निरयं शाश्वती समाः। ब्रह्मदंडहतानां तु न हि पिंडोदकक्रियाः॥४२॥

पिंडोदकविहीनानामिह लोके महामुने। विद्यते पितृसालोक्यं न खलु श्रुतिचोदितम्॥४३॥

अक्षयः स्वर्गवासोऽस्तु तेषां तु त्वत्प्रसादतः। वरेणानेन भगवन्कृतकृत्यो भवाम्यहम्॥४४॥

तत्प्रसीद त्वमेवैषां स्वर्गतेर्वद कारणम्। येनोद्धारणमेतेषां वह्नेः कोपस्य वै भवेत्॥४५॥

ततस्तमाह योगींद्रः सुप्रसन्नेन चेतसा। निरयोद्धारणं तेषां त्वया वत्स न शक्यते॥४६॥

जैमिनि ने कहा कि इस प्रकार के वचन को सुनकर योगिराजों में श्रेष्ठ कपिल मुनि अंशुमान को देखकर प्रसन्न होकर यह बोले।।३४½-३५½।। हे वत्स! तुम्हारा स्वागत है, सौभाग्य से तुम यहाँ आ गये हो। शीघ्र इस घोड़े को लेकर सगर के पास जाओ।।३५½-३६½।। यह अश्व यज्ञ में छोड़ा गया है, इसे यथास्थान प्रयुक्त करो। तुम मुझसे वर मांगो, जो तुम्हारे मन में हो, मैं तुम्हें जो माँगोगे सो वर प्रदान करूँगा; क्योंकि मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ।।३६½-३८।। इनके नाश होने की कहानी जाकर अपने पितामह को बता दो तथा उनको मेरी ओर से कह देना कि इन पापियों के मरण का शोक न करें।।३९।। उसके बाद योगिराज कपिलमुनि को प्रणाम करके अंशुमान यह बोला कि हे महामुने! यदि तुम मुझे वर देते हो, तो मैं आपसे वर माँगता हूँ।।४०।।

मैं आपसे वर माँग रहा हूँ, आप प्रसन्न होकर मुझे वर दीजिये कि आपके क्रोध की अग्नि से जले हुए, जो मेरे सब पितर हैं, वे सब हे ब्रह्मन् सदा के लिए नरक को चले जायेंगे।।४१-४१½।। तथा जो ब्रह्म के दण्ड से मरते हैं, उनकी तो पिण्डोदक क्रिया भी नहीं होती है अर्थात् उन्हें तो न पिण्ड दिया जाता है और न जल दिया जाता है तथा जिनकी पिण्डोदक क्रिया नहीं होती, हे महामुने! उन्हें पितरलोक नहीं प्राप्त होता है, ऐसा वेदों में कहा गया है।।४१½-४३।। हे महामुने! मेरे उन पितरों का आपकी कृपा से कभी न नष्ट होने वाला स्वर्गवास होवे, यह वर दीजिये। इस वर से भगवन्! मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा।।४४।। इसलिए भगवन् आप प्रसन्न हो जाइये और इन मेरे पितरों को स्वर्ग जाने का कारण बताइये, जिससे कि इन आपके क्रोध की अग्नि से जले हुये मेरे पितरों का उद्धार हो सके।।४५।। उसके बाद योगिराज कपिल ने बहुत प्रसन्नचित्त से उस अंशुमान से कहा कि हे वत्स! अब तुम्हारे द्वारा उनका नरक से उद्धार नहीं हो सकता है।।४६।।

तैश्चापि नरके तावद्वस्तव्यं पापकर्मभिः। कालः प्रतीक्ष्यतां तावद्यावत्त्वत्पौत्रसंभवः॥४७॥
कालांते भविता वत्स पौत्रस्तव महामतिः। राजा भगीरथो नाम सर्वधर्मार्थतत्त्ववित्॥४८॥
स तु यत्नेन महता पितृगौरवयंत्रितः। आनेष्यति दिवो गंगां तपस्तप्त्वा महद्ध्रुवम्॥४९॥
तदंभसा पावितेषु तेषां गात्रास्थिभस्मसु। प्राप्नुवंति गतिं स्वर्गे भवतः पितरोऽखिलाः॥५०॥
तथेति तस्या माहात्म्यं गंगाया नृपनंदन। भागीरथीति लोकेऽस्मिन्सा विख्यातिमुपैष्यति॥५१॥
यत्तोयप्लावितेष्वस्थिभस्मलोमनखेष्वपि। निरयादपि संयाति देही स्वर्लोकमक्षयम्॥५२॥
तस्मात्त्वं गच्छ भद्रं ते न शोकं कर्त्तुमर्हसि। पितामहाय चैवैनमश्वं संप्रतिपादय॥५३॥

जैमिनिरुवाच।

ततः प्रणम्य तं भक्त्या तथेत्युक्त्वा महामतिः। ययौ तेनाभ्यनुज्ञातः साकेतनगरं प्रति॥५४॥
सगरं स समासाद्य तं प्रणम्य यथाक्रमम्। न्यवेदयच्च वृत्तांतं मुनेस्तेषां तथात्मनः॥५५॥
प्रददौ तुरगं चापि समानीतं प्रयत्नतः। अतः परमुष्ठेयमब्रवीत्किं मयेति च॥५६॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे कपिलाश्रमस्थाश्वानयनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

उन पाप कर्म करने वाले तुम्हारे पितरों को नरक में तब तक रहना है, जब तक कि तुम्हारा पौत्र पैदा न हो जाये; इसलिए उस काल की प्रतीक्षा करो।।४७।। कुछ समय के अन्त में वत्स! तुम्हारा महाबुद्धिमान् राजा भगीरथ नाम का पौत्र होगा, जो सब धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानने वाला होगा।।४८।। पितरों के गौरव से यन्त्रित वह महान् तपस्या करके महान् यत्न से निश्चित ही स्वर्ग से गङ्गा को लायेगा।।४९।। उस जल से उनके शरीरों की अस्थि और भस्मों के पवित्र हो जाने पर आपके समस्त पितर स्वर्ग में गति प्राप्त करेंगे।।५०।। उस कारण से हे राजपुत्र! उस गङ्गा का माहात्म्य होगा कि वह इस लोक में भागीरथी इस नाम से विख्यात हो जायेंगी।।५१।। उस भागीरथी के जल में उनकी अस्थियां, भस्म, लोम, नाखूनों के जल से आप्लावित हो जाने पर उनकी आत्मा नरक से अक्षय स्वर्ग लोग चली जायेंगी।।५२।। इसलिए आप जाएं, आप जैसे भद्र व्यक्ति को शोक नहीं करना चाहिये तथा आप अपने पितामह को इस अश्व को दे दीजिये।।५३।।

जैमिनि ने कहा—उसके बाद महामति अंशुमान् उन कपिल मुनि को प्रणाम करके तथा 'भक्तिपूर्वक ऐसा ही होगा' यह कहकर उनकी अनुमति लेकर साकेत नगर की ओर चल दिये।।५४।। फिर महाराजा सगर के पास पहुंचकर उनके यथाक्रम प्रणाम करके मुनि का अपने पितरों का तथा अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया।।५५।। और प्रयत्नपूर्वक लाये हुए अश्व को भी प्रदान कर दिया। उसके बाद आगे किये जाने वाले कार्य को करने को कहा।५६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५४वां अध्याय कपिल मुनि के आश्रम में स्थित अश्व को लाना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे सागरोपाख्याने

अंशुमतो राज्यप्राप्तिर्नाम

पञ्चपञ्चाशत्तोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच

ततः पौत्रं परिष्वज्य सगरः प्रेमविह्वलः। अभिनंद्याशिषात्यर्थं लालयन्प्रशशंस ह॥१॥
अथ ऋत्विक्सदस्यैश्च सहितो राजसत्तमः। उपाक्रमत तं यज्ञं विधिवद्वेदपारगैः॥२॥
ततः प्रववृते यज्ञः सर्वसंपद्गुणान्वितः। सम्यगौर्ववसिष्ठाद्यैर्मुनिभिः संप्रवर्त्तितः॥३॥
हिरणमयमयी वेदिः पात्राण्युच्चावचानि च। सुसमृद्धं यथाशास्त्रं यज्ञे सर्वं बभूव ह॥४॥
एवं प्रवर्त्तितं यज्ञमृत्विजः सर्व एव ते। क्रमात्समापयामासुर्यजमानपुरस्सराः॥५॥
समापयित्वा तं यज्ञं राजा विधिविदां वरः। यधावद्दक्षिणां चैव ऋत्विजां प्रददौ तदा॥६॥
अथ ऋत्विक्सदस्यानां ब्राह्मणानां तथार्थिनाम्। तत्कांक्षितादभ्यधिकं प्रददौ वसु सर्वशः॥७॥
एवं संतर्प्य विप्रादीन्दक्षिणाभिर्यथाक्रम्। क्षमापयामास गुरून्सदस्यान्प्रणिपत्य च॥८॥
ब्राह्मणाद्यैस्ततो वर्णैर्ऋत्विग्भिश्च समन्वितः। वारकीयाकंदबैस्च सूतमागधवंदिभिः॥९॥
अन्वीयमानः सस्त्रीकः श्वेतच्छत्रविराजितः। दोधूयमानचमरो वालव्यजनराजितः॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद सगर के उपाख्यान में

अध्याय–५५

अंशुमान द्वारा राज्य प्राप्ति

जैमिनि ने कहा—उसके बाद प्रेम से उत्कण्ठित सगर ने अपने पौत्र को गले से लगाकर उसका अभिनन्दन करके आशीर्वाद दिया और लाढ़ (लालन) करते हुए प्रशंसा की।।१।। इसके बाद उन श्रेष्ठ राजा सगर ने यज्ञकर्ता सदस्यों के साथ वेदों में पारंगत विद्वानों द्वारा विधिवत् यज्ञ का उपक्रम किया।।२।। उसके बाद और्व वशिष्ठ आदि मुनियों द्वारा सम्यक् रूप से प्रवर्तित सब सम्पत्तियों के गुणों से युक्त यज्ञ होने लगा।।३।। उस यज्ञ की वेदी स्वर्ण से बनायी गयी थी तथा ऊँचे-नीचे पात्र थे। शास्त्रों के अनुसार जो भी बहुत अधिक समृद्ध हो सकता है, वह सब उस यज्ञ में था।।४।। इस प्रकार हो रहे उस यज्ञ का सभी ऋत्विजों ने यजमान राजा सगर को आगे करके समापन किया।।५।। तब उस यज्ञ को समाप्त करके विधि को जानने वालों में श्रेष्ठ राजा ने ऋत्विजों को यथावत् दक्षिणा प्रदान की।।६।। इसके बाद यज्ञकर्ता सदस्यों, ब्राह्मणों तथा याचकों को जो चाहते थे, उससे अधिक सब प्रकार के धन दौलत प्रदान किये।।७।। इस प्रकार क्रमानुसार ब्राह्मणादियों को दक्षिणाओं से तृप्त करके गुरुओं, यज्ञ के सदस्यो को प्रणाम करके क्षमा मांगी।।८।। उसके बाद ब्राह्मणादि वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) से युक्त अंगरक्षकों, सूतों मागधों के द्वारा अनुगत (अनुसरण किया जाता हुए) पत्नी सहित श्वेत छत्र से सुशोभित, चंवर ढुलाया जाते हुए, पंखों से हवा किया जाते हुए, अनेकों प्रकार के वाद्यों की निर्घोष ध्वानि से दिशाओं को वहरा

नानावादित्रनिर्घोषैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः। स गत्वा सरयूतीरं यथाशास्त्रं यथाविधि॥११॥
चकारावभृथस्नानं मुदितः सहबन्धुभिः। एवं स्नात्वा सपत्नीकः सुहृद्भिर्ब्राह्मणैः सह॥१२॥
वीणावेणुमृदंगादिनानावादित्रनिःस्वनैः। मंगल्यैर्वेदघोषैश्च सह विप्रजनेरितैः॥१३॥
संस्तूयमानः परितः सूतमागधबंदिभिः। प्रविवेश पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनायुताम्॥१४॥
श्वेतव्यजन सच्छत्रपताकाध्वजमालिनीम्। सिक्तसंमृष्टभूभागापणशोभासमन्विताम्॥१५॥
कैलासाद्रिप्रकाशाभिरुज्ज्वलां सौधपंक्तिभिः। स तत्रागरुधूपोत्थगंधामोदितदिङ्मुखम्॥१६॥
विकीर्यमाणः परितः पौरनारीजनैर्मुहुः लाजवर्षेण सानंदं वीक्षमाणश्च नागरैः॥१७॥
पदाभिरनेकाभिस्तत्रतत्र वणिग्जनैः। संभाव्यमानः शनकैर्जगाम स्वपुरं प्रति॥१८॥
स प्रविश्य गृहं रम्यं सर्व मंडलमंडितम्। सम्यक्संभावयामास सुहृतो ब्राह्मणानपि॥१९॥
संसेव्यमानश्च तदा नानादेशेश्वरैर्नृपैः। सभायां राजशार्दूलो रेमे शक्र इवापरः॥२०॥
एवं सुहृद्भिः सहितः पूरयित्वा मनोरथम्। सगरः सह भार्याभ्यां रेमे नृपवरोत्तमः॥२१॥
अंशुमन्तं ततः पौत्रं मुदा विनयशालिनम्। वसिष्ठानुमते राजा यौवराज्येऽभ्यषेचयत्॥२२॥

बनाते हुए, उस राजा ने सरयू नदी पर जाकर शास्त्रविधि से प्रसन्नचित्त हो अपने बन्धुओं के साथ यज्ञ की समाप्ति पर होने वाला स्नान किया। अर्थात् उस समय जबकि महाराजा सगर ने यज्ञ के समाप्त होने पर जो स्नान किया, उस स्नानार्थ जाते समय उनके पीछे ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य तथा उनके अंगरक्षक सूत और मागध (प्रशंसक) चल रहे थे और वे राजा पत्नी सहित श्वेत छत्र से सुशोभित थे। उनके ऊपर चंवर ढुलाये जा रहे थे तथा चारों ओर बहरा बना देने वाले बाजे बज रहे थे।।९-११½।। इस प्रकार अपनी पत्नी, मित्रों और ब्राह्मणों के साथ, वीणा वांसुरी मृदंग (नगाड़े) आदि अनेकों प्रकार के वाद्यों की ध्वनियों तथा मंगलकारी वेदमन्त्रों के घोषों से युक्त विप्रजनों से घिरे हुए तथा सूतमागध और बन्दजनों द्वारा स्तुति किये जाते हुए, वे राजा हृष्ट-पुष्ट जनों से युक्त रम्य नगरी में प्रविष्ट हुए। जो नगरी श्वेत पंखों वाली छत्रसहित पताका और ध्वजों की मालों से युक्त थी, नगर के समस्त भूभाग पर जल का छिड़काव किया हुआ था तथा वह सब भूभाग दुकानों की शोभा से युक्त था। महलों की पंक्तियों से वह नगरी कैलास पर्वत के प्रकाश की आभाओं के समान उज्ज्वल थी।।११½-१५½।।

वहाँ वे राजा अगरु की धूप की गन्ध से प्रसन्न मुख थे अर्थात् सब दिशायें अगरू की धूप की गन्ध से सुगन्धित थीं, जिससे राजा बहुत प्रसन्न थे। चारों ओर नगर की नर नारियाँ खीलां की वर्षा कर रही थीं। उसको देखते हुए राजा वहुत आनन्दित थे।।१५½-१७।। तथा वहाँ व्यापारियों द्वारा अनेकों प्रकार की भेंटें दी जा रही थीं। इस प्रकार आदर प्राप्त करते हुए राजा अपने नगर की ओर चले गये।।१८।। उसके बाद सब मण्डलों से मण्डित अपने रम्य घर में प्रवेश करके उन्होंने अपने प्रेमियों, मित्रों और ब्राह्मणों का भी सम्यक् सत्कार किया।।१९।। तब अनेकों देशों के स्वामी राजाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से सेवा किये जाते हुए, वे राजशार्दूल सभा में दूसरे इन्द्र के समान सुशोभित हुए।।२०।। इस प्रकार अपने भाई बन्धुओं और मित्रों के साथ मनोरथ पूर्ण करके उत्तम राजा उन सगर ने पत्नियों के साथ रमण किया। उसके बाद उन राजा सगर ने गुरु वशिषठ की अनुमति से विनयशाली पौत्र अंशुमान् को आनन्द के साथ यौवराज्य पद पर अभिषिक्त किया।।२२।।

पौरजानपदानां तु बंधूनां सुहृदामपि। प्रियोऽभवदत्यर्थमुदारैश्च गुणैर्नृपः॥२३॥
प्रजास्तमन्वरज्यंत बालमप्यमितौजसम्। नवं च शुक्लपक्षादौ शीतांशुमचिरोदितम्॥२४॥
स तेन सहितः श्रीमान्सुहृद्भिश्च नृपोत्तमः। भार्याभ्यामनुरूपाभ्यां रममाणोऽवसच्चिरम्॥२५॥
युवैव राजशार्दूलः साक्षाद्धर्म इवापरः। पालयामास वसुधां सशैलवनकाननाम्॥२६॥
एवं महानहिमदीधितिवंशमौलिरत्नायमानवपुरुत्तरकोसलेशः।
पूर्णेन्दुवत्सकललोकमनोऽभिरामः सार्द्धं प्रजाभिरखिलाभिरलं जहर्ष॥२७॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सगरोपाख्यानेंशुमतो राज्यप्राप्तिर्नाम पञ्चपञ्चाशतमोऽध्यायः॥५५॥

वे राजा अपने उदार गुणों से पुरवासियों, बन्धुओं और मित्रों के अत्यन्त प्रिय हो गये।।२३।। बालक होते हुए भी असीमित तेजस्वी उस युवराज अंशुमान् को प्रजा उसी प्रकार बहुत प्यार करती थी जैसे कि शुक्लपक्ष के प्रारम्भ में शीघ्र उदित नवीन चन्द्रमा को सब प्यार करते हैं।।२४।। वे श्रीमान् नृपोत्तम राजा सगर (युवराज अंशुमान् के साथ) तथा अपने मित्रों के साथ रहते हुए तथा अपने अनुरूप पत्नियों से रमण करते हुए बहुत समय तक रहे।।२५।। युवा ही वे राजशार्दूल अंशुमान साक्षाद् दूसरे धर्म के समान थे। उन्होंने पर्वतवन काननों सहित समस्त वसुधा का पालन किया।।२६।। इस प्रकार महान् सूर्यवंश के मूल रत्न बने हुए शरीर वाले उत्तर कौशलेश पूर्ण चन्द्रमा के समान समस्त संसार के मन को सुन्दर लगने वाले राजा समस्त प्रजाओं के साथ पर्याप्त प्रसन्न हुए।।२७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५५वां अध्याय सगर के उपाख्यान में अंशुमान द्वारा राज्य प्राप्ति का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

गङ्गानयनं नाम

षड्पञ्चाशत्तोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच।

एतत्ते चरितं सर्वं सगरस्य महात्मनः। संक्षेपविस्तराभ्यां तु कथितं पापनाशनम्॥१॥
खंडोऽयं भारतो नाम दक्षिणोत्तरमायतः नवयोजनसाहस्रं विस्तारपरिमंडलम्॥२॥
पुत्रैस्तस्य नरेन्द्रस्य मृगयद्भिस्तुरंगमम्। योजनानां सहस्रं तु खात्वाष्टौ विनिपातिताः॥३॥
सागरस्य सुतैर्यस्माद्वर्द्धितो मकरालयः। ततः प्रभृति लोकेषु सागराख्यामवाप्तवान्॥४॥
ब्रह्मपादावधि महीं सतीर्थक्षेत्रकाननाम्। अब्धिः संक्रमयामास परिक्षिप्य निजांभसा॥५॥
ततस्तन्निलयाः सर्वे सदेवासुरमानवाः। इतस्ततश्च संजाता दुःखेन महतान्विताः॥६॥
गोकर्णं नाम विख्यातं क्षेत्रं सर्वसुरार्चितम्। सार्द्धयोजनविस्तारं तीरे पश्चिम वारिधेः॥७॥
तत्रासंख्यानि तीर्थानि मुनिदेवालयाश्च वै। वसंति सिद्धसंघाश्च क्षेत्रे तस्मिन्पुरा नृप॥८॥
क्षेत्रं तल्लोकविख्यातं सर्वपापहरं शुभम्। तत्तीर्थमब्धेरपतद्भागे दक्षिणपश्चिमे॥९॥
यत्र सर्वे तपस्तप्त्वा मुनयः संशितव्रताः। निर्वाणं परमं प्राप्ताः पुनरावृत्तिवर्जितम्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–५६

गंगा का लाना

जैमिनि ने कहा—इस प्रकार मैंने महात्मा राजा सगर का पापनाशक चरित्र संक्षेप और विस्तार से बता दिया है।।१।। यह भारत नामक खण्ड दक्षिण से उत्तर तक आयताकार नौ हजार योजन विस्तार परिमण्डल वाला है अर्थात् इस भारत का क्षेत्रफल नौ हजार योजन है।।२।। उन राजा सगर के पुत्रों ने अश्व को खोजते हुए हजारों योजन तो खोदकर समुद्र में गिरा दिया था।।३।। राजा सगर के पुत्रों ने इस मकरालय (समुद्र) को बढ़ाया था; इसलिए उसी समय से लोकों में इस समुद्र ने सागर नाम प्राप्त किया।।४।। तीर्थक्षेत्र और काननों वाली ब्रह्मपाद तक की पृथ्वी को समुद्र ने अपने जल से ढक कर संक्रमित कर दिया है।।५।। उसी समय से वे सब निलय देव असुर और मानव महान् दुःख से युक्त होकर इधर-उधर चले गये।।६।। गोकर्ण नामक सब देवों से अर्चित विख्यात क्षेत्र है, जो आधे योजन विस्तार वाला समुद्र के पश्चिम तीर पर स्थित है।।७।। हे राजन्! वहाँ पर असंख्य तीर्थ और मुनि देवालय हैं, प्राचीन काल में उस क्षेत्र में सिद्धों के समूह रहते थे।।८।। वह क्षेत्र लोकविख्यात सब पापों को हरने वाला और शुभ है। समुद्र के दक्षिण पश्चिम भाग में वह तीर्थ पड़ता है।।९।। जहाँ कि व्रतधारण करने वाले सब मुनि लोगों ने तपस्या करके पुनः न जन्म लेने वाले निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त किया है।।१०।।

तत्क्षेत्रस्य प्रभावेण प्रीत्या भूतगणैः सह। देव्या च सकलैर्देवैर्नित्यं वसति शंकरः॥११॥
एनांसि यत्समुद्दिश्य तीर्थयात्रां प्रकुर्वताम्। नृणामाशु प्रणश्यंति प्रवाते शुष्कपर्णवत्॥१२॥
तत्क्षेत्रसेवनरतिर्नैव जात्वभिजायते। समीपे वसमानानामपि पुंसां दुरात्मनाम्॥१३॥
महता सुकृतेनैव तत्क्षेत्रगमने रतिः। नृणां संजायते राजन्नान्यथा तु कथंचन॥१४॥
निर्बंधेन तु ये तस्मिन्प्राणिनः स्थिरजंगमाः। म्रियंते नृप सद्यस्ते स्वर्गं प्राप्स्यंति शाश्वतम्॥१५॥
स्मृत्याऽपि सकलैः पापैर्यस्य मुच्येत मानवः। क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं सर्वतीर्थनिकेतनम्॥१६॥
स्नात्वा चैतेषु तीर्थेषु यजंतश्च सदाशिवम्। सिद्धिकामा वसंति स्म मुनयस्तत्र केचन॥१७॥
कामक्रोधविनिर्मुक्ता ये तस्मिन्वीतमत्सराः। निवसंत्यचिरेणैव तत्सिद्धिं प्राप्नुवंति हि॥१८॥
जपहोमरताः शांता नियता ब्रह्मचारिणः। वसंति तस्मिन्ये ते हि सिद्धिं प्राप्स्यंत्यभीप्सिताम्॥१९॥
दानहोमजपाद्यं वै पितृदेवद्विजार्चनम्। अन्यस्मात्कोटिगुणितं भवेत्तस्मिन्फलं नृप॥२०॥
अंभोधिसलिले मग्ने तस्मिन् क्षेत्रेऽतिपावने। महता तपसा युक्ता मुनयस्तन्निवासिनः॥२१॥
सह्यं शिखरिणं श्रेष्ठं निलयार्थं समारुहन्। वसंतस्तत्र ते सर्वे संप्रधार्य परस्परम्॥२२॥
महेंद्राद्रौ तपस्यंतं रामं गंतुं प्रचक्रमुः।

राजोवाच।

अगस्त्यपीततोयेऽब्धौ परितो राजनंदनैः॥२३॥

उस क्षेत्र के प्रभाव से प्रीतिपूर्वक भूतगणों एवं देवी पार्वती तथा समस्त देवों के साथ नित्य भगवान् शंकर रहते हैं।।११।। जो मनुष्य पापों को नष्ट करने का उद्देश्य करके वहाँ तीर्थयात्रा करे, तो मनुष्यों के पाप शीघ्र ही तेज हवा में सूखे पत्ते के समान शीघ्र नष्ट हो जायेंगे।।१२।। उस क्षेत्र के सेवन के प्रति प्रेम उसके समीप रहने वाले दुष्ट पुरुषों का कभी नहीं होता; क्योंकि उन्होंने पुण्य नहीं किये हैं। अतः हे राजन्! महान् पुण्य कर्म से ही उस क्षेत्र में जाने की इच्छा होती है। अगर महान् पुण्य नहीं किये हैं, तो कभी नहीं होती है।।१३-१४।। जो प्राणी अतः जड़ चेतन उस क्षेत्र में निर्बन्ध से मरते हैं, वे शीघ्र और सदा के लिए स्वर्ग को प्राप्त करेंगे।।१५।। जिसके स्मरणमात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, वह क्षेत्र सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है तथा सब तीर्थों का निकेतन (घर) है।।१६।। इन तीर्थों में स्नान करके जो सदाशिव की यज्ञ करते हुए सिद्ध कामनाओं वाले कुछ मुनि वहाँ रहते थे।।१७।। काम क्रोध रहित तथा ईर्ष्या घमण्ड क्रोधादि से रहित जो मनुष्य वहाँ रहते हैं, वे शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त करते हैं।।१८।। जो जप और होम में लगे हुए शान्त और इन्द्रियों को वश में रखने वाले ब्रह्मचारी उस क्षेत्र में बसते हैं, वे मनचाही सफलता प्राप्त करते हैं।।१९।। हे राजन्! दान देना, हवन करना, जप करना आदि तथा पितरों देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करना आदि का उस क्षेत्र में रहने से अन्य क्षेत्र से दुगुना फल होता है।।२०।। उस क्षेत्र में अतिपावन समुद्र के जल में मग्न हो महान् तप से युक्त वहाँ के निवासी मुनिलोग श्रेष्ठ सह्य पर्वत के शिखर पर रहने के लिए चढ़ जाते हैं। वहाँ रहते हुए वे सब परस्पर विचार कर महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करते हुए परशुराम के पास जाते हैं।।२१-२२½।।

राजा ने कहा कि हे जैमिनि! अगस्त्य मुनि द्वारा पी लिया गया था जल जिसका उस समुद्र में चारों ओर राजपुत्रों

खात्वाधः पातिते क्षेत्रे सतीर्थाश्रमकानने। भूभागेषु तथान्येषु पुरग्रामाकरादिषु॥२४॥
विनाशितेषु देशेषु समुद्रोपांतवर्त्तिषु। किमकार्षुर्मुनिश्रेष्ठ जनास्तन्निलयास्ततः॥२५॥
तत्रैव चावसन्कृच्छ्रात्प्रस्थितान्यत्र वा ततः। कियता चैव कालेन संपूर्णोऽभूदपां निधिः।
केन वापि प्रकारेण ब्रह्मन्नेतद्वदस्व मे॥२६॥

जैमिनिरुवाच।

अनूपेषु प्रदेशेषु नाशितेषु दुरात्मभिः॥२७॥
जनास्तन्निलयाः सर्वे संप्रयाता इतस्ततः। तत्रैव चावसन्कृच्छ्रात्केचित्क्षेत्रनिवासिनः॥२८॥
एतस्मिन्नेव काले तु राजन्नंशुमतः सुतः। बभूव भुवि धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुतः॥२९॥
राज्येऽभिषिच्य तं सम्यग्भुक्तभोगोंऽशुमान्नृपः। वनं जगाम मेधावी तपसे धृतमानसः॥३०॥
दिलीपस्तु ततः श्रीमानशेषां पृथिवीमिमाम्। पालयामास धर्मेण विजित्य सकलानरीन्॥३१॥
भगीरथो नाम सुतस्तस्यासील्लोकविश्रुतः। सर्वधर्मार्थकुशलः श्रीनमितविक्रमः॥३२॥
राज्येऽभिषिच्य तं राजा दिलीपोऽपि वनं ययौ। स चापि पालयन्नुर्वी सम्यग्विहतकंटकाम्॥३३॥
मुमुदे विविधैर्भोगैर्दिवि देवपतिर्यथा। स शुश्रावात्मनः पूर्व पूर्वजानां महीपतिः॥३४॥
निरये पतनं घोरं विप्रकोपसमुद्भवम्। ब्रह्मदंडहतान्सर्वान्पितॄञ्छ्रुत्वाऽतिदुःखितः॥३५॥
राज्ये बंधुषु भोगे वा निर्वेदं परमं ययौ। स मंत्रिप्रवरे राज्यं विन्यस्य तपसे वनम्॥३६॥

के द्वारा खोदकर नीचे गिराये गये क्षेत्र में तीर्थ आश्रम और कानन में तथा अन्य भू-भागों में, पुर ग्राम और गृह आदियों में, समुद्र के किनारे निकटवर्ती सगरपुत्रों द्वारा नष्ट किये गये देशों में, वहाँ के निवासी लोगों ने क्या किया? हे मुनिश्रेष्ठ! बताइये कि वे वहीं पर रहने लगे अथवा कहीं दूसरे स्थानों पर चले गये तथा फिर कितने समय में वह नष्ट किया हुआ समुद्र सम्पूर्ण हुआ तथा किस प्रकार से पूर्ण हुआ, हे भगवन्! कृपाकर मुझे बताइये।।२२½-२६।।

जैमिनि ने कहा—उन दुरात्मा सगरपुत्रों द्वारा नाश किये गये जल से भरे हुए दलदल वाले प्रदेशों में जो लोग घर बनाकर रहते थे, वे सब इधर-उधर चले गये।।२७-२७½।। वहीं पर कष्टपूर्ण जीवन बिताते हुए कुछ क्षेत्र के निवासी रहते थे। इसी समय हे राजन्! पृथ्वी पर राजा अंशुमान का पुत्र धर्मात्मा दिलीप बहुत प्रसिद्ध राजा हुए।।२७½-२९।। उन सम्यक् प्रकार से भोगों को भोगने वाले, धैर्य धारण करने वाले बुद्धिमान् राजा अंशुमान ने अपने पुत्र दिलीप को राज्यपद पर अभिषिक्त कर तपस्या के लिए वनगमन किया।।३०।। इसके बाद श्रीमान् दिलीप ने समस्त शत्रुओं को जीतकर इस समस्त पृथ्वी का धर्म से पालन किया।।३१।। उन दिलीप का पुत्र भगीरथ नामक लोक प्रसिद्ध राजा हुआ, जो सब धर्म और अर्थ में कुशल, लक्ष्मीवान् और असीमित पराक्रमी था।।३२।। उसको राज्य में अभिषिक्त कर दिलीप भी वन को चले गये। उन भगीरथ ने भी विशेष कण्टकाकीर्ण राज्य का सम्यक् पालन करते हुए अनेकों प्रकार के भोगों से आनन्द प्राप्त किया, जिस प्रकार कि स्वर्ग में देवपति इन्द्र प्राप्त करते हैं।।३३-३३½।। उन्होंने सुना कि अपने से पूर्व पूर्वजों के महीपति विप्रकोप से उत्पन्न अग्नि से जलकर घोर नरक में गिरे हुए हैं।।३३½-३४½।। ब्रह्मदण्ड से हत उन सब पितरों के बारें में सुनकर दुःखित वे राजा भगीरथ राज्य करते समय बन्धुओं में बात करने में तथा भोग में अत्यन्त परम निर्वेद (दुःख की चिन्ता) को प्राप्त हो जाते थे।।३४½-३५½।। अतः अपने पितरों को स्वर्ग ले जाने का इच्छुक वे नृपश्रेष्ठ श्रेष्ठ मन्त्रियों पर राज्य को सौंपकर तपस्या

**प्रययौ स्वपितॄन्नाकं निनीषुर्नृपसत्तमः। तपसा महता पूर्वमायुषे कमलोद्भवम्॥३७॥
आराध्य तस्माल्लोभे च यावदायुर्निजेप्सितम्। ततो गंगां महाराज समाराध्य प्रसाद्य च॥३८॥
वरमागमनं वव्रे दिवस्तस्या महीं प्रति। ततस्तां शिरसा धर्त्तुं तपसाऽऽराधयच्छिवम्॥३९॥
स चापि तद्वरं तस्मै प्रददौ भक्तवत्सलः। मेरोर्मूर्ध्नस्ततो गंगां पतंतीं शिरसात्मनः॥४०॥
सग्राहनक्रमकरां जग्राह जगतां पतिः। सा तच्छिरः समासाद्य महावेगप्रवाहिनी॥४१॥
तज्जटामंडले शुभ्रे विलिल्ये साऽतिगह्वरे। चुलकोदकवच्छंभोर्विलीनां शिरसि प्रभोः॥४२॥
विलोक्य तत्प्रमोक्षाय पुनराराधयद्धरम्। स तां शर्वप्रसादेन लब्ध्वा तु भुवमागताम्॥४३॥
आनिन्ये सागरा दग्धा यत्र तां वै दिशं प्रति। सऽनुव्रजंती राजानं राजर्षेर्यजतः पथि॥४४॥
तद्यज्ञवाटमखिलं प्लावयामास सर्वतः। स तु राजऋषिः क्रुद्धो यज्ञवाटेऽखिले तथा॥४५॥
मग्ने गंडूषजलत्वस पपौ तामशेषतः। अतंद्रितो वर्षशतं शूश्रुषित्वा स तं पुनः॥४६॥
तस्मात्प्रसन्नान्नृपतिर्लेभे गंगां महात्मनः। उषित्वा सुचिरं तस्य निसृता जठराद्यतः॥४७॥
प्रथितं जाह्नवीत्यस्यास्ततो नामाभवद्भुवि। भगीरथानुगा भूत्वा तत्पितॄणामशेषतः॥४८॥
निजांभसाऽस्थिभस्मानि सिषेच सुरनिम्नगा। ततस्तदंभसा सिक्तेष्वस्थिभस्मसु तत्क्षणात्॥४९॥**

के लिए वन में चले गये।।३५½-३६½।। पूर्व आयु के लिए महती तपस्या से कमल से उत्पन्न ब्रह्मा जी की आराधना करके उन्होंने जब तक चाहूँ तब तक जीऊँ, यह आवश्यक वर मांगा, उसके बाद हे महाराज! गंगा की सम्यक् प्रकार से आराधना करके और प्रसन्न करके उन्होंने गंगा का स्वर्ग से पृथ्वी पर आने का वर माँगा।।३७½-३८½।। उसके बाद उन गंगा महादेवी को शिर पर धारण करने की शिव से आराधना की (क्योंकि गङ्गा को सीधे पृथ्वी पर रोकना बहुत कठिन और विप्लवकारी था) भक्तों के प्रिय (भक्तवत्सल) भगवान् शंकर ने उन्हें वह वर प्रदान कर दिया।।३८½-३९½।। उसके बाद सुमेरुपर्वत के मूर्धा (शिर) से गिरती हुई ग्रहण करने के क्रम वाली गंगा को संसार के स्वामी भगवान् शिव ने अपने शिर के द्वारा ग्रहण कर लिया।।३९½-४०½।। महान् वेग से बहने वाली वे गंगा शिवजी के शिर को प्राप्त कर उनके अत्यन्त गहरे घने और शुभ्र जटामण्डल में विलीन हो गयीं।।४०½-४१½।। प्रभु शंकर की जटाओं में चुल्लू भर पानी के समान विलीन हुई गंगा को देखकर उनको मुक्त कराने के लिये पुनः भगवान् शंकर की आराधना की।।४१½-४२½।। फिर भगवान् शंकर की कृपा से वे भगीरथ पृथ्वी पर आयी हुई, उन गंगा को लेकर जहाँ कि कपिल मुनि द्वारा सगर के पुत्र जला दिये गये थे, उस दिशा की ओर लेकर चल दिये।।४२½-४३½।। राजा भगीरथ के पीछे चलती हुई गङ्गा ने मार्ग में यज्ञ करते हुए राजर्षि जह्नु की यज्ञशाला को चारों ओर से जलमग्न कर दिया।।४३½-४४½।। जब गंगा ने उनके यज्ञवाट को बहा दिया, तब वो ऋषि क्रोधित हो गये और क्रोधित उन ऋषि ने उस सम्पूर्ण गंगा को उसी तरह पी लिया जैसे कि कोई मुट्ठीभर जल को पी लेता है।।४४½-४५½।। फिर उसके बाद सौ वर्षों तक निरालस्य होकर राजा भगीरथ ने उन महर्षि महात्मा जह्नु की सेवा की। उस सेवा से प्रसन्न राजा ने पुनः गंगा को प्राप्त किया। तब बहुत समय तक उन ऋषि के पेट में रहकर गंगा उनके पेट से निकली।।४५½-४७।। क्योंकि वे जह्नु के उदर से निकलीं थी, इसलिए इनका नाम जाह्नवी प्रसिद्ध हो गया[१]। उसके बाद भगीरथ का अनुसरण करती हुई, उन गंगा ने भगीरथ के समस्त पितरों की अस्थियों को अपने जल से सींच दिया।।४८-४८½।। उसके बाद उसके जल से अस्थियों और भस्मों के सिंचित हो जाने

निरयात्सागराः सर्वे नष्टपापा दिवं ययुः। एवं सा सागरान्सर्वान्दिवं नीत्वा महानदी॥५०॥
तेनैव मार्गेण जवात्प्रयाता पूर्वसागरम्। मेरोर्मूर्ध्नश्चतुर्भेदा भूत्वा याता चतुर्दिशम्॥५१॥
चतुर्भेदतया चाभूत्तस्या नाम्नां चतुष्टयम्। सीता चालकनंदा च सुचक्षुर्भद्रवत्यपि॥५२॥
अगस्त्यपीतसलिलाच्चिरं शुष्कोदपा अपि। गंगांभसा पुनः पूर्णश्चत्वारोऽबुधयोऽभवन्॥५३॥
पूर्यमाणे समुद्रे तु सागरैः परिवर्द्धिते। अंतर्हिताऽभवन्देशा बहवस्तत्समीपगाः॥५४॥
समुद्रोपांतवर्त्तीनि क्षेत्राणि च समंततः। इतस्ततः प्रयाताश्च जनास्तन्निलया नृप॥५५॥
गोकर्णमिति च क्षेत्रं पूर्वं प्रोक्तं तु यत्तव। अर्णवोपात्तवर्त्तित्वात्समुद्रेंऽतर्द्धिमागमत्॥५६॥
ततस्तन्निलयाः सर्वे तदुद्धाराभिकांक्षिणः। सह्याद्रेर्भृगुशार्दूलं द्रष्टुकामा ययुर्नृप॥५७॥

॥इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे गंगानयनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

पर उसी क्षण सभी सगर पुत्र पापरहित होकर स्वर्ग को चले गये।।४८½-४९½।। इस प्रकार समस्त सगर पुत्रों को स्वर्ग में ले जाकर वह महानदी उसी मार्ग से तेजी से पूर्व समुद्र में चली गयी।।४९½-५०½।। अतः यह गंगा सुमेरु पर्वत की मूर्धा (सबसे ऊँचे शिखर) से निकलकर चार भेद होकर चारों दिशाओं की ओर चली गयी है। चार भेद होने के कारण इसके सीता, अलकनंदा, सुचक्षु और भद्रवती ये चार नाम हो गये।।५०½-५२।। जब अगस्त्य मुनि ने समुद्र के समस्त जल को पी लिया था, तब समुद्र सूख गया था, अतः वह सूखे जल वाला भी समुद्र गंगा के जल से पुनः जलमग्र हो गया तथा वहाँ चार समुद्र हो गये।।५३।।

जहाँ सगर के पुत्रों ने पृथ्वी को खोद कर गहरी खाइयाँ बना दी थीं; परन्तु वहाँ पानी नहीं था, अतः गंगा ने उनको भरकर पूर्ण समुद्र बना दिया तथा समुद्रों के पूर्ण हो जाने पर उसके समीप अनेकों देश हो गये।।५४।। तब समुद्र के चारों ओर जो तटवर्ती क्षेत्र थे, जहाँ के लोग इधर-उधर चले गये थे तथा पूर्वकाल में जिसे गोकर्ण क्षेत्र कहा गया था तथा समुद्र के किनारे पर रहने के कारण जो समुद्र के अन्दर समा गये थे तथा जो घर आवास आदि समुद्र में डूब गये, उनके उद्धार के लिये उद्धार चाहने वाले लोग सह्य पर्वत पर भृगुश्रेष्ठ परशुराम को देखने के लिए गये।।५५-५७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५६वां अध्याय गंगा को लाना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

---

१. व्याकरण के अनुसार अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय लगता है, जो उसकी सन्तान को बताता है। अतः जह्नु शब्द में अण् प्रत्यय लगा, तब जाह्नव शब्द बना जो पुल्लिंग है, जिसका अर्थ हुआ जह्नु की सन्तान (पुत्र) परन्तु गंगा तो स्त्रीलिङ्ग है, इसलिए 'ङीप्' स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय लगाकर 'जाह्नवी' शब्द बना, जिसका अर्थ हुआ 'जह्नु की पुत्री' अर्थात् जह्नु से पैदा होने वाली।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

वरुणागमनं नाम

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच

ततः शुष्कसुमित्राद्या मुनयः शंसितव्रताः। ययुर्दिदृक्षवो रामं महेंद्रमचलं प्रति॥१॥
अतीत्य सुबहून्देशान्वनानि सरितस्तथा। आसेदुरचलश्रेष्ठं क्रमेण मुनिपुंगवाः॥२॥
तमारुह्य शनैस्तस्य ख्यातमाश्रममंडलम्। प्रशांतक्रूरसत्त्वाढ्यं शुभं मध्ये तपोवनम्॥३॥
सर्वर्त्तुफलपुष्पाढ्यतरुखण्डमनोहरम्। स्निग्धच्छायमनौपम्यं स्वामोदिसुखमारुतम्॥४॥
तं तदाश्रममासाद्य ब्रह्मघोषेण नादितम्। विविशुर्हृष्टमनसो यथावृद्धपुरस्सरम्॥५॥
ब्रह्मासने सुखासीनं मृदुकृष्णाजिनोत्तरे। शिष्यैः परिवृतं शांतं ददृशुस्ते तपोधनाः॥६॥
कालाग्निमिव लोकांस्त्रीन्दग्ध्वा पूर्वं निजेच्छया। तद्दोषशान्त्यै तपसि प्रवृत्तमिव देहिनम्॥७॥
ते समेत्य भृगुश्रेष्ठं विनयाचारशालिनः। ववंदिरे महामौनं भक्तिप्रणतकंधराः॥८॥
ततस्तानागतान्दृष्ट्वा मुनीन्भृगुकुलोद्वहः। अर्घपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयामास सादरम्॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-५७

वरुण का आगमन वर्णन

जैमिनि ने कहा—उसके बाद शुष्क और सुमित्र आदि व्रत धारण करने वाले परशुराम को देखने की इच्छा रखने वाले मुनि लोग महेन्द्र पर्वत की ओर चल दिये।।१।। बहुत से देशों, वनों और नदियों को पारकर वे मुनिश्रेष्ठ क्रम से पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर पहुँचे।।२।। उस पर्वत पर चढ़कर वे उस विख्यात आश्रम में पहुँचे। वह आश्रम बहुत ही प्रसिद्ध आश्रम था। वह तपोवन ऐसा था कि वहाँ परस्पर वैर रखने वाले जो हिंसक जीव थे, वे सब भी शान्त होकर परस्पर प्रेम करते हुए रह रहे थे। शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। वह तपोवन सभी ऋतुओं में फलों पुष्पों से लदे वृक्षों से मनोहर बना हुआ था। वहाँ वृक्षों की शीतल और सुगन्धित वृक्षों की छाया से आत्मा को आनन्दित करने वाला वायु था।।३-४।। तब उस आश्रम मे पहुंचकर प्रसन्न मन वाले मुनियों ने वृद्धों से पुरस्सर आश्रम में प्रवेश किया।।५।। वहाँ पर उन तपस्वियों ने ब्रह्मासन पर सुखपूर्वक बैठे हुए कोमल काले हिरन के चर्म रूप वस्त्र पर शिष्यों से घिरे हुए शान्त मुनि परशुराम को देखा।।६।। जो महर्षि तीनों लोकों को जलाकर अपनी प्रलयकालीन अग्नि के समान इच्छा से उस दोष की शान्ति के लिए तपस्या में लगे हुए शरीर वाले लग रहे थे।।७।।

विनम्र और आचारशील उन सब ऋषियों ने भक्ति से अपने कन्धे झुकाकर महामौन व्रत धारण किये हुए भृगुश्रेष्ठ परशुराम की वन्दना की।।८।। उसके बाद उन मुनियों को आया हुआ देखकर भृगुकुल शिरोमणि परशुराम ने अर्घ्यपाद्यादि पूजन सामग्रियों से उन सबकी आदरसहित पूजा की (सत्कार किया)।।९।।

तानासीनान्कृतातिथ्यानृषीन्देशांतरागतान्। उवाच भृगुशार्दूलः स्मितपूर्वमिदं वचः॥१०॥
स्वागतं वो महाभागा यूयं सर्वे समागताः। करणीयं किमस्माभिर्वदध्वमविचारितम्॥११॥
ततस्ते मुनयो रामं प्रणम्येदमथाब्रुवन्। अवेह्यस्मान्मुनिश्रेष्ठ गोकर्णनिलयान्मुनीन्॥१२॥
खनद्भिः सागरैर्भूमिं कस्मिंश्चित्कारणांतरे। सतीर्थं तन्महाक्षेत्रं पतितं सागरांभसि॥१३॥
उत्सारितार्णवजलं क्षेत्रं तत्सर्वपावनम्। उपलब्धुमभीप्सामो भवतस्तु न संशयः॥१४॥
विष्णोरंशेन संजातो भवान्भृगुकुले किल। तस्मात्कर्त्तुमशक्यं ते त्रैलोक्येऽपि न किंचन॥१५॥
वांछितार्थप्रदो लोके त्वमेवेत्यनुशुश्रुम्। वयं त्वामागताः सर्वे रामैतदभियाचितुम्॥१६॥
स त्वमात्मप्रभावेण क्षेत्रप्रवरमद्य तत्। दातुमर्हसि विप्रेंद्र समुत्सार्यार्णवोदकम्॥१७॥

राम उवाच

एतत्सर्वमशेषेण विदितं मे तपोधनाः। करणीयं च वः कृत्यं मया नात्र विचारणा॥१८॥
किं तु युष्मदभिप्रेतं कर्म लोके सुदारुणम्। शस्त्रसंग्रहणाच्छक्यं मयाऽपि न तदन्यथा॥१९॥
दत्तसर्वाभयोऽहं वै न्यस्तशस्त्रः शमान्वितः। तपः समास्थितश्चर्तुं प्रागेव पितृशासनात्॥२०॥
न जातु शस्त्रग्रहणं करिष्यामीत्यहं पुरा। प्रतिश्रुत्य सतां मध्ये तपः कर्त्तुमिहानघाः॥२१॥
शस्त्रग्रहणसाध्यत्वाद्युष्मदीप्सितवस्तुनः। किं कर्त्तव्यं मयात्रेति मम डोलायते मनः॥२२॥

दूसरे-दूसरे देशों से आये हुए उन ऋषियों का आतिथ्य सत्कार करके परशुराम ने मुस्कराते हुए यह वचन कहा।।१०।। कि हे महाभागो! आप लोग जो सब मेरे पास आये हैं, उनका सबका स्वागत है। मुझे आपके लिए क्या करना है? वह आप विना विचार किये हुए कहिये।।११।। उसके बाद उन मुनियों ने परशुराम को प्रणाम करके यह वचन कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! गोकर्ण में रहने वाले गृहविहीन मुनियों की रक्षा कीजिये।।१२।। हे महामुनि! जब सगर पुत्रों ने घोड़ा खोजने के लिए भूमि को खोदना शुरू किया था तथा किसी कारण के अन्तर्गत तीर्थसहित वह महाक्षेत्र समुद्र के जल में चला गया।।१३।। अतः उसके ऊपर आये हुए जल को हटाकर उस समस्त पवित्र क्षेत्र को प्राप्त करने में आप ही समर्थ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१४।। हे मुनिश्रेष्ठ आप विष्णु के अंश से भृगुकुल में पैदा हुए हैं। इसलिए आपको तीनों लोकों में कोई भी कार्य करना अशक्य नहीं, आप सब कुछ कर सकते हैं।।१५।। इस संसार में इच्छित अर्थ को देने वाले आप ही हैं, ऐसा सुना गया है। हम सब यह बहुत बड़ी याचना (माँग) लेकर आपके पास आये हैं।।१६।। इसलिए हे विप्रेन्द्र! आप अपने प्रभाव से समुद्र के जल को हटाकर आज उस श्रेष्ठ क्षेत्र को देने में समर्थ हैं।।१७।।

परशुराम ने कहा कि हे तपस्वियो! यह सब मुझे पूर्णरूप से विदित है, मुझे आपका कार्य करना है, इसमें कोई विचार नहीं करना।।१८।। किन्तु आपका जो अभिप्रेत कर्म है, वह संसार में बहुत कठिन है; परन्तु वह मेरे द्वारा भी शस्त्र उठाने से ही संभव है, अन्य किसी प्रकार नहीं।।१९।। तथा मैंने तो पहले ही पिताजी के आदेश से सबको अभय दान देकर शस्त्र का परित्याग कर दिया है तथा शान्तियुक्त होकर यहाँ तप करने चला आया हूँ।।२०।। अब मैं कभी शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा, यह पहले ही प्रतिज्ञा करके निष्पाप होकर यहाँ तपस्या करने सज्जन पुरुषों के मध्य आ गया हूँ।।२१।। आपकी जो इच्छित वस्तु है अर्थात् आप जिस कार्य को करवाना चाहते हैं, वह

शुष्क उवाच

सतां संरक्षणार्थाय शस्त्रसंग्रहणं तु यत्। तन्नच्यावयते सत्याद्यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा॥२३॥
तस्मादस्तमद्धितार्थाय भवता ग्राह्यमायुधम्। धर्म एव महांस्तेन चरितस्ते भविष्यति॥२४॥

जैमिनिरुवाच।

एवं संप्रार्थ्यमानस्तु मुनिभिर्भृगुपुंगवः। तमनुद्धत्य मेधावी धर्ममुद्दिश्य केवलम्॥२५॥
स तैः सह मुनिश्रेष्ठो दिशं दक्षिणपश्चिमाम्। समुद्दिश्य ययौ राजन्द्रष्टुकामः सरित्पतिम्॥२६॥
स सह्यमचलश्रेष्ठमवतीर्य भृगूद्वहः। तत्परं सरितां पत्युस्तीरं प्राप महामनाः॥२७॥
स ददर्श महाभागः परितो मारुताकुलम्। आकरं सर्वरत्नानां पूर्यमाणमनारतम्॥२८॥
अपरिज्ञेयगांभीर्यं महतामिव मानसम्। दुष्पारपारं सर्वस्य विविधग्राहसंहतिम्॥२९॥
अप्रधृष्यतमं लोके धातारमिव केवलम्। आत्मानमिव चात्मत्वे न्यक्कृताखिलमुद्धतम्॥३०॥
आश्रयं सर्वसत्त्वानामापगानां च पार्थिवः। अत्यर्थचपलोत्तुंगतरंगशतमालिनम्॥३१॥
उपांतोपलसंघातकुहरांतरसंश्रयात्। विशीर्यमाणलहरीशतफेनौघशोभितम्॥३२॥

शस्त्र से सम्भव है। अब मैं यहाँ क्या करूँ? इस विषय में मेरा मन डोल रहा है।।२२।।

शुष्क मुनि ने कहा—हे महामुने! सज्जन पुरुषों की रक्षा के लिये जो शस्त्र ग्रहण किया है, वह सत्य से च्युत नहीं कराता है, जैसा कि पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने कहा है।।२३।। इसलिए हमारे हित के लिए आप को आयुध ग्रहण करना चाहिये। धर्म अर्थात् कर्म ही महान् है, वह आपको करना होगा।।२४।।

जैमिनि ने कहा—हे राजन्! जब मुनियों ने भृगुकुल शिरोमणि परशुराम से इस प्रकार कहा, तब मेधावी परशुराम उन सबको लौटाकर (विदा कर) केवल "इनकी रक्षा करना मेरा धर्म है" यह उद्देश्य बनाकर उनके साथ दक्षिण पश्चिम दिशा को लक्ष्य करके समुद्र को देखने की इच्छा से चल दिये।।२५-२६।। वे महामना परशुराम पर्वतश्रेष्ठ सह्य पर्वत को पारकर उस स्थान के पास नदियों के पति (समुद्र) के किनारे पहुँचे।।२७।। वहाँ उन महाभाग ने सब रत्नों के भण्डार समुद्र को चारों ओर हवाओं से व्याकुल तथा पूरा भरा हुआ उफनता हुआ देखा।।२८।।

उस समुद्र की गम्भीरता (गहराई) महान् पुरुषों के मन की गम्भीरता के समान न जानने योग्य है अर्थात् जिस प्रकार महान् पुरुषों के मन की गहराई को नहीं जाना जा सकता, उसी प्रकार उस समुद्र की गहराई को भी कोई नहीं जान सकता था। वह समुद्र अनेकों प्रकार के मकरों (ग्राहों) से भरा हुआ था।।२९।। तथा उसका पार होना बहुत कठिन था। संसार में केवल धाता (धारण करने वाले) ब्रह्मा के समान वह समुद्र किसी के द्वारा भी जीतने योग्य नहीं था, वह अप्रधृष्यतम था, उस पर कोई अपना बल प्रयोग नहीं कर सकता था। आत्मतत्त्व में आत्मा के समान समस्त ऊँचे को नीचा किये हुए था।।३०।। वह समुद्र सब जल जीवों का आश्रय तथा समस्त नदियों का राजा था। बहुत अधिक चलायमान और ऊपर उठी हुई सैकड़ों तरङ्गों (लहरों) के मालाओं वाला था। ऐसा लगता था कि उठी हुई तेज और ऊँची लहरें उसकी मालायें हों।।३१।। किनारों पर जो लहरें आती थीं, उनसे परस्पर टकराने वाले पत्थर की आवाजें ऐसी लगती थीं, मानों गुफाओं की दीवारों से टकराती हुई ध्वनि आ रही है। वह समुद्र फैलायी हुई सैकड़ों लहरों के फेन समूह से सुशोभित था।।३२।।

गंभीरघोषं जलधिं पश्यन्मुनिगणैः सह। संसेव्यमानस्तरलैर्लहरीकणशीतलैः॥३३॥
मुहूर्त्तमिव राजेंद्र तीरे नदनदीपतेः। विशश्रमे महाबाहुर्द्रष्टुकामः प्रचेतसम्॥३४॥
ततो रामः समुत्थाय दक्षिणाभिमुखः स्थितः। मेघगंभीरया वाचा वरुणं वाक्यमब्रवीत्॥३५॥
अहं मुनिगणैः सार्द्धमागतस्त्वद्दिदृक्षया। तस्मात्स्वरूपधृङ्मह्यं प्रचेतो देहि दर्शनम्॥३६॥
इति श्रुत्वाऽपि तद्वाक्यं वरुणो यादसां पतिः। न चचाल निजस्थानान्नृप धीरतरस्त्वयम्॥३७॥
पुनःपुनश्च रामेण समाहूतोऽपि तोयराट्। न ददौ दर्शनं तस्मै प्रतिवाच्यं च नाभ्यधात्॥३८॥
अलंघनीयं तद्वाक्यं वरुणेनावधीरितम्। अत्यंतमिति कार्यार्थी विदुषा समुपेक्षितम्॥३९॥
ततः प्रचेतसा वाक्यं मन्यमानोऽवधीरितम्। चुकोप तमभिप्रेक्ष्य रामः शस्त्रभृतां वरः॥४०॥
संक्षुब्धसागराकारः स तदा स्वबलाश्रयात्। निस्तोयमर्णवं कर्तुमियेष रुषितो भृशम्॥४१॥
ततो जलमुपस्पृश्य समीपे विजयं धनुः। ततः प्रणम्य मनसा शर्वं रामो महद्धनुः॥४२॥
गृहीत्वारोपयामास क्रोधसंरक्तलोचनः। अभिमृश्य धनुःश्रेष्ठं सगुणं भृगुसत्तमः॥४३॥
पश्यतां सर्वभूतानां ज्याघोषमकरोत्तदा। ज्याघोषः शुश्रुवे तस्य दिविस्पृगतिनिष्ठुरः॥४४॥
चचाल निखिला येन सप्तद्वीपार्णवा मही। ततः सरभसं रामश्चापे कालानलोपमम्॥४५॥
सुवर्णपुंखं विशिखं संदधे शरसत्तमम्। तस्मिन्नस्त्रं महाघोरं भार्गवं वह्निदैवतम्॥४६॥

इस प्रकार गम्भीर घोष करने वाले समुद्र को देखते हुए मुनियों के साथ समुद्र की तरल लहरों वाले शीतल कणों से सेवित होते हुए थोड़ी देर के लिये उस नद और नदीपति समुद्र के स्वामी वरुण को देखने की इच्छा से महाबाहु परशुराम वहाँ विश्राम करने लगे।।३३-३४।। उसके बाद परशुराम उठकर दक्षिण की ओर मुख करके खड़े होकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से वरुण से यह वाक्य बोले।।३५।। मैं मुनिगणों के साथ आपको देखने की इच्छा से यहाँ आया हूँ; इसलिए हे वरुण! अपना रूप धारण कर मुझे दर्शन दीजिये।।३६।। इस प्रकार परशुराम के वाक्य को सुनकर भी वरुण अपने स्थान से बिल्कुल भी नहीं चलायमान हुए। इतने वे धीरतर थे कि परशुराम के कथन का उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। परशुराम के पुनः पुनः बुलाने पर भी जलपति वरुण देव ने सम्यक् प्रकार से परशुराम की उपेक्षा कर दी।।३९।।

उसके बाद परशुराम ने देखा कि वरुण उनके वाक्य पर कोई ध्यान नहीं दे रहे हैं, तब इस बात को देखकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुराम वरुण पर क्रोधित हो गये।।४०।। तब अपने बल के सहारे उथल-पुथल पैदा करने वाले समुद्र के आकार वाले क्रोधित परशुराम ने शीघ्र ही समुद्र को जलविहीन करना चाहा।।४१।। उसके बाद जल का स्पर्श कर पास में स्थित विजय धनुष को मन से प्रणाम करके क्रोध से लाल लाल आँखों वाले परशुराम ने उस महान शिव धनुष को ग्रहण कर, उस पर बाण रखकर, उसकी उस श्रेष्ठ धनुष को खींच लिया। उसके बाद समस्त प्राणियों के देखते हुए प्रत्यञ्चा का घोष कर दिया। उस स्वर्ग को स्पर्श करने वाले अत्यन्त निष्ठुर प्रत्यञ्चा के घोष को सुना।।४४।। उस घोषध्वनि से सात द्वीपों और सात समुद्रों वाली पृथ्वी हिलने लगी।।४४½।। उसके बाद परशुराम ने उत्साह के साथ प्रलय काल की अग्नि के समान, सुवर्ण के पुंख वाले विशेष शिख वाले उत्तम बाण को धनुष पर रखा।।४४½-४५½।। फिर उस महाघोर अग्निबाण को परशुराम ने मन्त्रोचारण करके छोड़ने की योजना बनायी।।४५½-

यथोज भृगुशार्दूलः समंत्राभ्यासमोक्षणम्। ततश्चचाल वसुधा सशैलवनकानना॥४७॥
प्रक्षोभं परमं जग्मुर्देवासुरमहोरगाः संधितास्त्रं भृगुश्रेष्ठं क्रोधसंरक्तलोचनम्॥४८॥
दृष्ट्वा संभ्रांतमनसो बभूवुः सचराचराः। सदिग्दाहाभ्रपटलैरभवन्संवृता दिशः॥४९॥
ववुश्च परुषा वाता रजोव्याप्ता महारवाः। मंदरश्मिरशीतांशुरभूत्संरक्तमंडलः॥५०॥
सोल्कापाताशनिर्वृष्टिर्बभूव रुधिरोदका। किमेतदिति संभ्रांता धूमोद्गारातिभीषणम्॥५१॥
अधिरोपितदिव्यास्त्रं प्रचकर्ष महाशरम्। धनुर्विकर्षमाणं तं स्फुरज्ज्वालाग्रसायकम्॥५२॥
ददृशुर्मुनयो रामं कल्पांतानलसन्निभम्। आकर्णाकृष्टकोदंडमण्डलाभ्यंतरस्थितम्॥५३॥
तस्य प्रतिभयाकारं दुष्प्रापमभवद्वपुः। विकृष्टधनुषस्तस्य रूपमुग्रं रवेरिव॥५४॥
कल्पांतेऽभ्युदितस्येव मंडलं परिवेषितम्। कल्पांताग्निसमज्वालाभीषणं स्फुरतो वपुः॥५५॥
तस्यालक्ष्यत चक्रस्य हरेरिव च मंडलम्। स्फुरत्क्रोधानलज्वालापरीतस्यातिरौद्रताम्॥५६॥
अवाप विष्णोः स तदा नरसिंहाकृतेरिव। वपुर्विकृष्टचापस्य भृकुटीकुटिलाननम्॥५७॥
रामस्याभूद्भवस्येव दिधक्षोस्त्रिपुरं पुरा। जाज्वल्यमनवपुषं तं दृष्ट्वा सहसा भयात्॥५८॥
प्रसीद जय रामेति तुष्टुवुर्मुनयोऽखिलाः। ततोऽस्त्राग्निस्फुरद्धूमपटलैः शकलीकृतम्॥५९॥

४६½।। उसके बाद पर्वत- वनकाननों सहित पृथ्वी हिलने लगी और देवता, असुर महासर्प सब में भारी प्रक्षोभ पैदा हो गया। सर्वत्र कोलाहल मच गया।।४६½-४७½।। धनुष पर बाण रखे हुए क्रोध से लाल-लाल आँखों वाले परशुराम को देखकर समस्त चर अचर (जड़ और चेतन) सम्भ्रान्त मन वाले (किंकर्तव्यविमूढ़) हो गये और समस्त दिशायें बिजली से युक्त मेघों से ढक दी गयीं।।४७½-४९।। धूम से व्याप्त महाघोर शब्द करती हुई भीषण हवायें चलनी लगीं, सूर्य की किरणें मन्द हो गयीं और उनका मण्डल बिल्कुल लाल हो गया।।५०।। उल्कापात के साथ वज्र (पत्थरों) की वर्षा रुधिरोदक हो गयी। चारों तरफ धुँए के अम्बार उठने लगे, जिसे देखकर लोग सम्भ्रान्त हो गये और कहने लगे कि यह क्या हो रहा है?।।५१।। धनुष पर रखे हुए दिव्य अस्त्र महान् बाण को जैसे ही खींचा, उस समय जिसके अग्र भाग में आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं, ऐसे बाण वाले धनुष को खींचते हुए प्रलयकालीन अग्नि के समान परशुराम को मुनियों ने देखा।।५२½-५२½।। उस समय कानों तक खींची हुई प्रत्यञ्चा वाले धनुषमण्डल के अन्तर्गत स्थित उनका शरीर प्रतिभयाकार और दुर्लभ हो गया था।।५२½-५३½।।

धनुष खींचे हुए उनका रूप प्रलयकालीन उदित सूर्य के मण्डल के समान उग्र हो गया था।।५३½-५४½।। प्रलयकाल के समय जब भगवान् विष्णु ने चक्रसुदर्शन चलाया था, उस समय उसके मण्डल से प्रलयकालीन अग्नि की जो ज्वालायें निकलती हैं, उस समय के उस चक्रमण्डल के समान उनका शरीर दिखायी दे रहा था।।५४½-५५½।। तथा जब भगवान् विष्णु ने नरसिंह का रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध किया था, उस समय उनके क्रोध की अग्नि की ज्वाला से युक्त अत्यन्त रौद्रता (भयंकरता) को जो उनके शरीर ने प्राप्त कर लिया था, उन नरसिंह के आकृति के समान परशुराम की आकृति हो गयी थी।।५५½-५६½।। धनुष खींचे हुए परशुराम का शरीर पहले प्रलयकाल में तीनों लोकों को जलाने की इच्छा वाले भगवान् शिव के शरीर के समान हो गया।।५६½-५७½।। अचानक जलते हुए शरीर वाले उन परशुराम को देखकर भय से "हे परशुराम आपकी जय हो, "प्रसन्न हो जाइये"

बभूवच्छन्नमंभोधेरंतःपुरमशेषतः। ज्वलदस्त्रानलज्वालापरितापपराहतः॥६०॥
अत्यरिच्यत संभ्रांतसलिलौघ उदन्वतः। तिमिंगिलतिमिग्राहनक्रमत्स्याहिकच्छपाः॥६१॥
प्रजग्मुः परमामार्त्तिं प्राणिनः सलिलेशयाः। उत्पतन्निपतत्ताम्यन्नानासत्त्वोद्धतोर्मिभिः॥६२॥
प्रक्षोभं भृशमंभोधिः सहसा समुपागमत्। त्रासरासं च विपुलमंभसा प्लवता सह॥६३॥

उद्वेलतामितस्तप्ताः सलिलांतरचारिणः।
ततस्तस्माच्छराज्ज्वालाः फूत्कृताशेष भीषणाः॥६४॥

निरूपितमिव व्यक्तं निश्श्रेरुः सर्वतो दिशम्। ततः प्रचंडपवनैः सर्वतः परिवर्त्तितम्॥६५॥
अग्निज्वालामयं रक्तवितानाभमलक्ष्यत। प्रयाब्धेरिवयर्थमस्त्राग्निव्याकुलांभसः॥६६॥
समुद्रिक्ततया तस्य तरंगास्तीरमभ्ययुः। अस्त्राग्निविद्धाकुलितजलघोषेण भूयसा॥६७॥
ककुभो बधिरीकुर्वन्नलक्ष्यत पयोनिधिः। परितोऽस्त्रानलज्वालापरिवीतजलाविलः॥६८॥
जगाम परमामार्त्तिं सह्यः सद्यस्तदाश्रयः। आकर्णाकृष्टकोदंडं दृष्ट्वा रामं पयोनिधिः॥६९॥
विषाममगमत्तीव्रं यमं दृष्ट्वेव पातकी। भयकंपितसर्वांगस्ततो नदनदीपतिः॥७०॥
विहाय सहजं धैर्यं भीरुत्वं समुपागमत्। ततः स्वरूपमास्थाय सर्वाभरणभूषितः॥७१॥
उत्तीर्यमाणः स्वजलं वरुणः प्रत्यदृश्यत। कृतांजलिः सार्वहस्तः प्रचेता भार्गवांतिकम्॥७२॥

इस प्रकार समस्त मुनि लोग उनकी स्तुति करने लगे।।५७½-५८½।। उसके बाद अस्त्राग्नि से निकलते हुए धूम समूह से छन्न समुद्र का समस्त अन्तःपुर खण्ड-खण्ड हो गया।।५८½-५९½।। जलते हुए अस्त्र के अग्नि की ज्वाला के अत्यन्त ताप से तापित समुद्र का जल बहुत अधिक ऊँचाई तक खौलने लगा (उबलने लगा)।।५९½-६०½।। समुद्र के जल के खौलने से समुद्र के जल में रहने वाले प्राणी मगरमच्छ बड़ी-बड़ी ह्वेल मछलियां, ग्राह, नाके, अन्य तरह की मछलियां, सर्प, कच्छप अत्यन्त दुःखी हो गये।।६०½-६१½।। तब उछलते हुए गिरते हुए तड़पते हुए समुद्री जीवों द्वारा उठायी गयी लहरों से समुद्र अचानक विशेष क्षोभ (व्याकुलता) को प्राप्त हो गया।।६१½-६२½।। जल के अन्दर रहने वाले जीवन तप्त होकर उद्वेलित हो गये तथा जल से कूदते हुए भय से भारी कोलाहल मच गया।।६२½-६३½।। उसके बाद उस बाण से फूत्कार करती हुई भीषण ज्वालायें निकलने लगीं, जिससे सभी ओर दिशायें साफ-साफ दिखाई देने के समान हो गयीं।।६३½-६४½।।

उसके बाद प्रचण्ड पवनों से चारों ओर परिवर्तित अग्नि का ज्वालामय वितान दिखायी दे रहा था।।६४½-६५½।। प्रलयकालीन समुद्र की भाँति अत्यन्त घोर अस्त्राग्नि से व्याकुल जल की तरङ्गें सम्यक् प्रकार से उठकर किनारों पर आ गयीं।।६५½-६६½।। अस्त्राग्नि से विद्ध और आकुलित जल की घोष ध्वनि से सब दिशायें बहरी करते हुए जब समुद्र ने देखा।।६६½-६७½।। तो अपने चारों ओर अस्त्राग्नि की ज्वाला से परिवीत पंकिल जल वाला समुद्र शीघ्र ही उनके आश्रम में चला गया।।६७½-६८½।। तब कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा खींचे हुए परशुराम को देखकर तीव्रविषाद को उसी प्रकार प्राप्त हो गया, जिस प्रकार यम को देखकर पापी हो जाता है।।६८½-६९½।। उसके बाद नद और नदियों का स्वामी समुद्र भय से काँपता हुआ स्वाभाविक धैर्य को छोड़ कर कायरता को प्राप्त हो गया।। तब अपने स्वरूप को धारण कर सब आभूषणों से भूषित अपने जल से निकलते हुए वरुण दिखायी दिये।।७०½-

त्वरयाऽभ्याययौ शीघ्रसायकाद्भीतभीतवत्।
अभ्येत्याकृष्टधनुषः स तस्य चरणाब्जयोः॥७३॥
अब्रवीच्च भृशं भीतः संभ्रमाकुलिताक्षरम्। रक्ष मां भृगुशार्दूल कृपया शरणागतम्॥७४॥
अपराधमिमां राम मया कृतमजानता। स्थितोऽस्मि तव निर्देशे शाधि किं करवाणि वै॥७५॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवं प्रति वरुणागमनं नाम सप्तपञ्चाशतमोऽध्यायः॥५७॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

गोकर्णक्षेत्रसमुद्धरणं नाम

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच।

एवं ब्रुवाणं वरुणं विलोक्य पतितं भुवि। संजहार पुनर्धीमानस्त्रं भृगुकुलोद्वहः॥१॥
संहृतास्त्रस्ततो रामो वरुणं पुरतः स्थिरम्। विलोक्य विगतक्रोधस्तमुवाच हसन्निव॥२॥
गोकर्णनिलयाः पूर्वमिमे मां मुनिपुङ्गवाः। समायाता महेंद्राद्रौ निवसंतं सरित्पते॥३॥

७१½।। तब कुहनी तक हाथ जोड़ते हुए वरुण शीघ्र बाण से डरते हुए के समान शीघ्र ही परशुराम के पास आ गये।।७१½-७२½।। धनुष खींचे हुए परशुराम के चरणकमलों में आकर बहुत अधिक डरे हुये वरुण डर के मारे अस्पष्ट अक्षरों वाली वाणी बोले।।७२½-७३½।। हे भृगु शार्दूल! कृपया आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण में हूँ। हे राम! मैंने न जानते हुए यह अपराध किया है। अब मैं आपके निर्देश में स्थित हूँ। बताइये क्या करूँ।।७३½-७५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५७वां अध्याय वरुण का आगमन वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-५८

राम द्वारा गोकर्ण क्षेत्र का समुद्धार

जैमिनि ने कहा कि इस प्रकार कहते हुए पृथ्वी पर गिरे हुए वरुण को देखकर बुद्धिमान् भृगुकुलशिरोमणि परशुराम ने अपने अस्त्र को समेट लिया।।१।। उसके बाद अस्त्र को तरकस में रख लेने वाले परशुराम सामने खड़े हुए वरुण को देखकर, क्रोध छोड़कर, हँसते हुए से उनसे बोले।।२।। हे नदियों के स्वामी वरुण! पूर्वकाल में इनका

त्वत्तोये मेदिनीं पूर्वं खनद्भिः सगरात्मजैः। अधो निपातितं क्षेत्रं गोकर्णमृषिसेवितम्॥४॥
उपलब्धुमिमे भूयः क्षेत्रं तद्भववल्लभम्। अधावन्मामुपागम्य मुनयस्तीर्थवासिनः॥५॥
एषामर्थे ततः सोऽहं महेन्द्रादचलोत्तमात्। भवंतमागतो द्रष्टुं सहैभिर्मुनिपुंगवैः॥६॥
तस्मान्मदर्थे सलिलं समुत्सार्यात्मनो भवान्। दातुमर्हति तत्क्षेत्रमेषां तोये च पूर्ववत्॥७॥

जैमिनिरुवाच।

इति तस्य वचः श्रुत्वा वरुणो यादसां पतिः। निरूप्य मनसा राममिदं भूयोऽब्रवीद्वचः॥८॥

वरुण उवाच

न शक्यमुत्सारयितुं मदंभः केनचिद्भवेत्। तथा हि मे वरो दत्तः पुरानेन विरंचिना॥९॥
सोऽहं त्वत्तेजसेदानीं विहाय सहजां धृतिम्। कातरं समुपायातो वशतां तव भार्गव॥१०॥
एषामर्थे विशेषेण भवता परिचोदितः। कथं न कुर्यां कर्मेदमहं क्षत्रकुलांतक॥११॥
तस्माद्यावत्प्रमाणं मे भवसंकल्पयिष्यति। तावत्संधारयिष्यामि भूमौ सलिलमात्मनः॥१२॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स सायकम्। यथागतं प्रचिक्षेप धनुर्निर्भिद्य भार्गवः॥१३॥
ततो निरूप्य सीमानं दर्शयानो महीपते। स्रुवं जग्राह मतिमान्क्षेप्तुकामो जलाशये॥१४॥
प्रसन्नचेतसं रामं गतरोषमथात्मनि। अन्तर्हिते सरिन्नाथे रामः स्रुवमुदङ्मुखः॥१५॥

जो गोकर्ण तीर्थ निलय हो गया (समुद्र में डूब गया) इसलिए ये सब मुनि लोग महेन्द्र पर्वत पर रहने वाले मेरे पास आये।।३।। पूर्वकाल में सगर के पुत्रों ने पृथ्वी को खोदते हुए ऋषियों द्वारा सेवित गोकर्ण क्षेत्र को तुम्हारे जल में गिरा दिया था।।४।। उस शंकर जी के प्रिय क्षेत्र को पुनः प्राप्त करने के लिये उस तीर्थी के वासी मुनिलोग मेरे पास दौड़ते हुए आये।।५।। उसके बाद वह मैं इनके उद्देश्य में उस महेन्द्र पर्वत से श्रेष्ठ मुनियों के साथ आपके दर्शन के लिये आया हूँ।।६।। इसलिये मेरे लिये अपने जलको हटाकर आप उस क्षेत्र जल में पूर्ववत् दे दीजिये।।७।।

जैमिनि ने कहा—इस प्रकार परशुराम के इन वचनों को सुनकर नदियों के पति वरुण ने परशुराम को मन से अच्छी तरह देखकर, फिर इस प्रकार वचन कहा।।८।।

वरुण ने कहा—हे राम! मेरा जल किसी के भी द्वारा हटाया नहीं जा सकता है। उस प्रकार का वरदान मुझे पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने दिया है।।९।। वह मैं हे राम! आपके तेज के द्वारा अपने स्वाभाविक धैर्य को छोड़कर कायर होकर आपके वश में होकर आया हूँ।।१०।। क्षत्रिय कुल का नाश करने वाले इनके काम के लिये विशेष रूप से आप द्वारा प्रेरित मैं क्यों न इस कर्म को करूँ।।११।। इसलिये जितने क्षेत्रफल के प्रमाण की भूमि आप मुझसे संकल्प करेंगे (मुझसे चाहेंगे) उतनी ही भूमि पर मैं अपने जल को धारण करूँगा।।१२।। इस प्रकार उन वरुण के वचन को सुनकर, ठीक है, वैसा ही करते हैं, यह कहकर उन परशुराम ने धनुष को तोड़कर बाण को फेंक दिया।।१३।। उसके बाद हे राजन् सीमाओं को दिखाते हुए फेंकने की इच्छा वाले मतिमान् राम ने जलाशय में यज्ञपात्र को ग्रहण किया। अर्थात् जहाँ तक बाण गया वहाँ पर समुद्र के स्थान पर तालाब में झरने बन गये।।१४।। जब परशुराम क्रोध को छोड़कर प्रसन्नचित्त हो गये, तब वरुण अन्तर्धान हो गये। तब यज्ञपात्र की ओर मुख किये हुए

भ्रामयित्वातिवेगेन चिक्षेप लवणार्णवे। क्षिप्तत्वेन समुद्रे तु दिशमुत्तरपश्चिमाम्॥१६॥
गत्वा स्त्रुवोपतद्राजन्योजनानां शतद्वयम्। तीर्थं शूर्पारकं नाम सर्वपापविमोचनम्॥१७॥
विश्रुतं यत्त्रिलोकेषु तीरे नदनदीपतेः। तीर्थं तदंतरीकृत्य स्त्रुवो रामकराच्युतः॥१८॥
निपपात महाराज सूचयन्रामविक्रमम्। यत्राभूद्रामसृष्टाया भुवो निष्ठाऽथ पार्थिव॥१९॥
तीर्थं शूर्पारकं तत्तु श्रीमल्लोकपरिश्रुतम्। उत्सारयित्वा सलिलं समुद्रस्तावदात्मनः॥२०॥
अतिष्ठदपसृत्योर्वीं दत्त्वा रामाय पार्थिव। अनतिक्रांतमर्यादो यथाकालं भृगूद्वहः॥२१॥
समयं स्वापयामास तस्यैवानुमते भुवि। विज्ञाय पूर्वसीमान्तां भुवमभ्युत्ससर्ज ह॥२२॥

व्यस्मयन्त सुराः सर्वे दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम्।
नगरग्रामसीमानः किंचित्किंत्क्वचित्क्वचित्॥२३॥

सह्ये तु पूर्ववत्तस्मिन्नब्धेरपसृतेंऽभसि। तत्र दैवात्तथा स्थानान्निम्नत्वात्स प्रलक्ष्य तु॥२४॥
ततस्तेषां भृगुश्रेष्ठो मुनीनां भावितात्मनाम्। यथाभिलषितं स्थानं प्रददौ प्रीतिपूर्वकम्॥२५॥
ततस्ते मुनयः सर्वे हर्षेण महतान्विताः। कृतकृत्या भृशं राममाशिषा समपूजयन्॥२६॥
अथैतैरभ्यनुज्ञातो ययौ प्राप्तमनोरथः। गते मुनिवरे रामे देशात्तस्मान्निजाश्रमम्॥२७॥
संभूय मुनयः सर्वे प्रजग्मुस्तीरमंबुधेः। परिचंक्रम्य तां भूमिं यत्नेन महतान्विताः॥२८॥
ददृशुः सर्वतो राजन्ह्यर्णवांतः स्थितां महीम्। नित्यत्वात्सर्वदेवानामधिष्ठानतया तथा॥२९॥

परशुराम ने अत्यन्त वेग से घुमाकर लवण सागर में यज्ञपात्र को फेंका। हे राजन्! समुद्र में फेंकते ही उत्तर पश्चिम दिशा में २०० सौ योजन दूर वह स्त्रुव (यज्ञपात्र) जाकर गिरा, जहाँ शूर्पारक नाम का सब पापों से मुक्त करने वाला तीर्थ हो गया।।१५-१७।। जो समुद्र के किनारे पर तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उस तीर्थ के अन्दर जाकर परशुराम के हाथ से गिरा हुआ यज्ञपात्र परशुराम के पराक्रम को सूचित करता हुआ वहाँ गिर गया, जहाँ कि हे राजन्! परशुराम द्वारा उत्पन्न की गयी पृथ्वी का स्थान है, वही श्रीमत् लोकप्रसिद्ध शूर्पारक तीर्थ है।।१८-१९½।। तब समुद्र अपने जल को हटाकर पृथ्वी को परशुराम को देकर वहाँ से प्रस्थान कर अपनी सीमा में स्थित हो गया।।१९½-२०½।। कभी भी मर्यादा का अतिक्रमण न करने वाले परशुराम ने उन वरुण की अनुमति से यथाकाल उस भूमि पर शयन किया।।२०½-२१½।। तब पूर्व सीमा के अन्त को जानकर उन्होंने पृथ्वी को छोड़ा। सब देवता परशुराम के पराक्रम को देखकर आश्चर्यचकित हो गये।।२१½-२२½।। उस समुद्र के हट जाने पर नगर और ग्राम की सीमायें कोई कोई कहीं कहीं सह्य पर्वत पर जैसे पहले थी, वैसी ही हो गयी।।२२½-२३½।।

वहाँ दैवयोग से तथा उस स्थान की निम्नता से उन्होंने अच्छी तरह देखकर सोचा समझा और उसके बाद भृगुश्रेष्ठ परशुराम ने उन भावयुक्त आत्मा वाले मुनियों को प्रीतिपूर्वक मनवाञ्छित स्थान दिया।।२३½-२५।। उसके बाद वे सब मुनिलोग महान् हर्ष से युक्त हो गये और बहुत अधिक कृतकृत्य (आभारी) होकर परशुराम को आशीर्वाद से पूजने लगे।।२६।। इसके बाद इन सब मुनियों की अनुमति प्राप्तकर पूर्ण मनोरथ परशुराम चले गये। तब मुनिश्रेष्ठ परशुराम के चले जाने पर उस देश से अपने आश्रम में होकर सब मुनि लोग समुद्र के किनारे पर पहुँचे।।२७-२७½॥ महान् यत्न से उस भूमि की परिक्रमा करके हे राजन्! उन्होंने चारों ओर जलों के मध्य में पृथ्वी को स्थित देखा।।२७½-

खातमब्धौ निपतितं नष्टतोयं चिरोषितम्। अपि रुद्रप्रभावेण प्रायान्नात्यंतविप्लवम्॥३०॥
तत्तोयनिःसृतं क्षेत्रमभूत्पूर्ववदेव हि। एतद्धि देवसामर्थ्यमचिंत्यं नृपसत्तम॥३१॥
एवं रामेण जलधेः पुनः सृष्टा वसुंधरा। दक्षिणोत्तरतो राजन्योजनानां चतुःशतम्॥३२॥
नातिक्रामति सोऽद्यापि सीमानं पयसां निधिः। कृतं रामेण महता न तु सज्जं महद्धनुः॥३३॥
एवंप्रभावो रामोऽसौ सगरश्च महीपतिः। यस्य पुत्रैरयं खंडो भारतोऽब्धौ निपातितः॥३४॥
योजनानां सहस्रं तु वर्द्धितश्च महोदधिः। रामेणाभूत्पुनः सृष्टं योजनानां तु षट्शतम्॥३५॥
सगरस्य सुतैर्यस्माद्वर्द्धितो मकरालयः। ततः प्रभृति लोकेषु सागराख्यामवाप्तवान्॥३६॥
एतत्तेऽभिहितं सम्यङ्महतश्चरितं मया। रामस्य कार्त्तवीर्यस्य सगरस्य महीपतेः॥३७॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपाद्घातपादेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥

२८½॥ सब देवताओं के नित्य (अमर) होने के कारण तथा वहाँ उनका अधिष्ठान होने के कारण चिरकाल से जले हुए नष्ट जल वाली खाई समुद्र में गिर गयी। अर्थात् सगर पुत्रों द्वारा बनायी गयी जो भूमि में गहरे गड्ढे थे, जिनका जल कपिलमुनि की क्रोधाग्नि में जल गया था, उनमें समुद्र का पानी भर गया॥२८½-२९½॥ रुद्र के प्रभाव से वहाँ अत्यन्त विप्लव (कोलाहल) नहीं हुआ, वह जल निःसृत क्षेत्र पूर्व के समान ही हो गया। हे राजन्! यही देव की अचिन्त्य सामर्थ्य है॥२९½-३१॥ इस प्रकार परशुराम ने समुद्र से पृथ्वी की पुनः रचना की। वह रचना राजन्! चार सौ योजन दक्षिण से उत्तर तक है॥३२॥ आज भी समुद्र उसकी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करता है। वह स्थान महान् परशुराम के द्वारा बनाया हुआ है। उन्होंने इसके लिये अपने महान् धनुष को नहीं सजाया था॥३३॥ ऐसे प्रभाव वाले परशुराम और राजा सगर थे। जिस राजा सगर के पुत्रों ने इस भारतखण्ड को समुद्र में गिरा दिया॥३४॥ फिर हजारों योजन समुद्र बढ़ता गया। छः योजन समुद्र को परशुराम ने पुनः पैदा किया॥३५॥ सगर के पुत्रों द्वारा जो समुद्र बढ़ाया गया था, उसी समय समुद्र का नाम सागर विख्यात हो गया॥३६॥ इस प्रकार यह आपको मैंने परशुराम, कार्तवीर्य अर्जुन का और राजा सगर का चरित्र सुनाया है॥३५॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५८वां अध्याय राम द्वारा गोकर्ण क्षेत्र का समुद्धार का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे

वैवस्वतोत्पत्तिनाम

एकोनषष्ठितमोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

ऋषयस्त्वेव मुक्तास्तु परं हर्षमुपागताः। परं शुश्रूषया भूयः पप्रच्छुस्तदनंतरम्॥१॥

ऋषय उचुः

वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञां चामिततेजसाम्। स्थितिं चैषां प्रभावं च ब्रूहि न परिपृच्छताम्॥२॥

एवमुक्तस्ततस्तैस्तु तदाऽसौ लोमहर्षणः। श्रृण्वतामुत्तराख्याने ऋषीणां वाक्यकोविदः॥३॥

आख्यानकुशलो भूयः परं वाक्यमुवाच ह। ब्रुवतो मे निबोधंश्च ऋषिराह यथा मम॥४॥

वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञां चामिततेजसाम्। स्थतिं चैषां प्रभावं च क्रमतो मे निबोधत॥५॥

वरुणस्य सपत्नीकान् स्तुता देवी उदाहृता। तस्याः पुत्रौ कलिर्वैद्यः स्तुता च सुरसुंदरी॥६॥

कलिपुत्रौ महावीर्यौ जयश्च विजयश्च ह। वैद्यपुत्रौ घृणिश्चैव मुनिश्चैव महाबलौ॥७॥

प्रत्तानामनुकामाामन्योन्यस्य प्रभक्षिणौ। भक्षयित्वा तावन्योऽन्यं विनाशं समवाप्नुतः॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद

अध्याय-५९

वैवस्वत मनु की उत्पत्ति

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यम भाग तीसरा उपोद्‌घातपाद

वैवस्वत मनु की उत्पत्ति अध्याय ५९

बृहस्पति ने कहा—बृहस्पति ने कहा कि जब ऋषियों से जब यह उपर्युक्त उपाख्यान कहा गया तो वे बहुत अधिक प्रसन्न हुए। उसके बाद बहुत अधिक सेवा के द्वारा पुनः उन्होंने पूँछा।।१।।

ऋषियों ने कहा कि—उन असीमित तेज वाले राजाओं वंशों का प्रारम्भ से लेकर चरित्र, स्थिति तथा उनका प्रभाव हम पूँछने वालों को बताओ।।२-३।। उन ऋषियों के द्वारा इस प्रकार ऋषियों के वाक्य को जानने वाले व्याख्यानकुशल उन महर्षि लोमहर्षण ने ऋषियों उत्तराख्यान में पुनः परम वाक्य कहा कि जो ऋषि ने कहा है, वही मुझ बोलने वाले को बताइये।।४।। असीमित तेज वाले राजाओं का वंशों का प्रारम्भ से लेकर उनकी स्थिति तथा उनका प्रभाव क्रमशः हमें बताइये।।५।। वरुण की पत्नी स्तुता देवी कही गयी। उसके दो पुत्र कलि और वैद्य हुए और स्तुता देवों में भी सुन्दरी स्त्री थी।।६।। कलि के दो जय और विजय महापराक्रमी पुत्र हुए, वैद्य के घृणि और मुनि दो महाबली पुत्र हुए।।७।। वे दोनों अपनी इच्छा के अनुसार काम करने वाले तथा परस्पर एक-दूसरे को खाने वाले थे। तब एक-दूसरे को खाकर वे विनाश को प्राप्त हुए।।८।।

कलिः सुरायाः संज्ञेयस्तस्य पुत्रो मदः स्मृतः।
स्मृता हिंसा कलेर्भार्या श्रेष्ठा या निकृतिस्मृतिः॥९॥
प्रसूतान्ये कलेः पुत्राश्चत्वारः पुरुषादकाः। नाको विघ्नश्च विख्यातो भद्रमो विधमस्तथा॥१०॥
अशिरस्कतया विघ्नो नाकश्चैवाशरीरवान्। भद्रमश्चैकहस्तोऽभूद्विधमश्चैकपात्स्मृतः॥११॥
भद्रमस्य तथा पत्नी तामसी पूतना तथा। रेवती विधमस्यापि तयोः पुत्राः सहस्रशः॥१२॥
नाकस्य शकुनिः पत्नी विघ्नस्य च अयोमुखी।
राक्षसास्तु महावीर्याः संध्याद्व्यभिचारिणः॥१३॥
रेवतीपूतनापुत्र नैर्ऋता नामतः स्मृताः। ग्रहास्ते राक्षसाः सर्वे बालानां तु विशेषतः॥१४॥
स्कंदस्तेषामधिपतिर्ब्रह्मणोऽनुमतः प्रभुः। बृहस्पतेर्या भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी॥१५॥
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता चरते सदा। प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य च॥१६॥
विश्वकर्मा सुरस्तस्या जातः शिल्पिप्रजापतिः। त्वष्टा विराजो रूपाणि धर्मपौत्र उदारधीः॥१७॥
कर्त्ता शिल्पिसहस्त्राणां त्रिदशानां तु योगतः। यः सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह॥१८॥
मानुषाश्चोपजीवंति यस्य शिल्पं महात्मनः। प्रह्लादी विश्रुता तस्य पत्नी त्वष्टुर्विरोचना॥१९॥
विरोचनस्य भगिनी माता त्रिशिरसस्तथा। देवाचार्यस्य महतो विश्वरूपस्य धीमतः॥२०॥
विश्वकर्मात्मजश्चैव विश्वकर्मा मयः स्मृतः। सुरेणुरिति विख्याता स्वसा तस्य यवीयसी॥२१॥

कलि सुरा का संज्ञेय था, उसका पुत्र मद सुना गया। स्मृता, हिंसा, निकृति और स्मृति कलि की पत्नियां थीं।।९।। उनसे कलि के अन्य चार पुत्र हुए, जिनका नाम है—नाक, विघ्न, विख्यात भद्रम और विधम।।१०।। विघ्न विना शिर वाला था और नाक विना शरीर वाला था। भद्रम एक हाथ वाला तथा विधम एक पैर वाला था।।११।। भद्रम की पत्नी तामसी और पूतना थी। विधम की पत्नी रेवती थी, फिर भद्रम और विधम के हजारों पुत्र थे।।१२।। नाक की पत्नी शकुनि थी और विघ्न की अयोमुखी थी। राक्षस तो महान् पराक्रमी थे तथा विना विचार कर कार्य करने वाले थे। सन्ध्या से ही व्यभिचार करने वाले थे।।१३।। रेवती और पूतना के पुत्र नैर्ऋत नाम से स्मरण किये गये, वे सब राक्षस विशेषतः बालकों को पकड़ने वाले थे।।१४।। ब्रह्मा के द्वारा अनुमति प्राप्त कार्तिकेय उन सबके अधिपति थे। बृहस्पति की जो बहिन "वरस्त्री" ब्रह्मचारिणी थी।।१५।।

वह वरस्त्री योगसिद्ध थी तथा समस्त संसार में असक्त (विना आसक्ति) के विचरण करती थी। अष्टम वसु प्रभास की वह पत्नी थी।।१६।। उन बृहस्पति की बहिन प्रभास की पत्नी वरस्त्री से विश्वकर्मा नामक पुत्र पैदा हुआ, जो शिल्पि प्रजापति हुआ। त्वष्टा (विश्वकर्मा) विराज के उदार बुद्धि वाले धर्म पौत्र हुए।।१७।। वह विश्वकर्मा देवताओं की हजारों शिल्पियों का कर्ता था, जिसने सब देवताओं के विमान बनाये थे।।१८।। जिस महान् आत्मा के शिल्प पर मनुष्य जीविकोपार्जन करते हैं, उस विश्वकर्मा की पत्नी विरोचना प्रसन्न रहने वाली सुनी गयी।।१९।। वह विरोचन की बहिन तथा त्रिशिरा की माता थी। देवाचार्य बृहस्पति महान् विश्वरूप बुद्धिमान् का यह वंश है।।२०।। विश्वकर्मा के पुत्र विश्वकर्मामय स्मरण किये गये, उनकी छोटी सबसे कम आयु वाली पुत्री विख्यात सुरेणु थी।।२१।।

त्वाष्ट्री या सवितुर्भार्या पुनः संज्ञेति विश्रुता। प्रासूत सा महाभागं मनुं ज्येष्ठं विवस्वतः॥२२॥
यमौ प्रासूत च पुनर्यमं च यमुनां च ह। सा तु गत्वा कुरून्देवी वडवा रूपधारिणी॥२३॥
सवितुश्चास्य रूपस्य नासिकाभ्यां तु तौ स्मृतौ।
प्रासूत सा महाभाग त्वंतरिक्षेऽश्विनौ किल॥२४॥
नासत्यं चैव दस्त्रं च मार्त्तंडस्यात्मजावुभौ।

ऋषय ऊचुः

कस्मान्मार्त्तंड इत्येष विवस्वानुदितो बुधैः॥२५॥
किमर्थं सा सुरूपा वै नासिकाभ्यामसूयत। एतद्वेदितुमिच्छामो सर्वं नो ब्रूहि पृच्छताम्॥२६॥

सूत उवाच

चिरोत्पन्नमतिर्भिन्नमंडं त्वष्ट्रा विदारितम्। गर्भवधं भ्रांतः कश्यपो विद्रुतो भवेत्॥२७॥
अंडे द्विधाकृते त्वंडं दृष्ट्वा त्वष्टेदमब्रवीत्। नैतन्न्यूनं भवादंडं मार्त्तंडस्त्वं भवानघ॥२८॥
न खल्वयं मृतोंऽडस्थ इति स्नेहात्पिताऽब्रवीत्। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नामान्वर्थमुदाहरन्॥२९॥
यन्मार्त्तंडो भवेत्युक्तस्त्वंडात्सोंडे द्विधाकृते। तस्माद्विवस्वान्मार्त्तंडः पुराणज्ञैर्विभाव्यते॥३०॥
ततः प्रजाः प्रवक्ष्यामि मार्त्तंडस्य विवस्वतः। विजज्ञे सवितुर्भार्या संज्ञा पुत्रांस्तु त्रीन्पुनः॥३१॥

त्वाष्ट्री जो सविता की पत्नी थी, जो फिर संज्ञा नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसने महाभाग ज्येष्ठ पुत्र विवस्वान् मनु को उत्पन्न किया।।२२।। तथा युगल यम को पैदा किया। फिर यम और यमुना के साथ दो यम को पैदा किया। वही देवी कुरुक्षेत्र में जाकर घोड़ी का रूप धारण करने वाली थी।।२३।। सविता के इस रूप का नासिकाओं से पैदा होना स्मरण किया गया है। उस महाभाग ने अन्तरिक्ष में अश्विनी कुमारों को जन्म दिया, जो दोनों घोड़ी बनी हुई संज्ञा की नासिका से पैदा हुए थे[१]।।२४।। नासत्य (नासदीय) और दस्त्र दोनों मार्त्तण्ड के पुत्र हैं।।२४½।।

ऋषियों ने कहा कि मार्तण्ड को विद्वानों ने विवस्वान् किस कारण से कहा तथा किसलिये उस सुन्दर रूप वाली संज्ञा ने घोड़ी बनकर नासिका से पैदा किया।।२४½-२५½।। यह सब मैं पूँछना चाहता हूँ, आप यह सब हमें बताइये।।२५½-२६।।

सूतजी ने कहा—चिरकाल से उत्पन्न मतिभिन्न अण्ड को त्वष्टा ने तोड़ दिया, जब गर्भ का वध हुआ तब कश्यप मुनि भ्रान्त होकर भाग गये।।२७।। तथा अण्ड को दो भागों में काट दिया, तब अण्डों को देखकर त्वष्टा ने कहा कि यह अण्ड कम नहीं होवे, हे निष्पाप अण्ड! तुम मार्तण्ड हो जाओ।।२८।। यह निश्चय ही मरा हुआ अण्ड नहीं है, ऐसा स्नेह से पिता ने कहा, उनके उस वचन को सुनकर नाम अन्वर्थ उदाहृत हो गया अर्थात् अर्थ का अनुसरण करने के कारण मार्तण्ड नाम पड़ गया।।२९।। जिससे मार्तण्ड पैदा होवे ऐसा कहा गया तो उस अण्ड के दो टुकड़े करने पर उससे विवस्वान् (सूर्य) मार्तण्ड पैदा हुए, ऐसा पुराणों द्वारा होना बताया गया है।।३०।। उसके

१. यहाँ यह स्पष्ट होता है कि सविता की पत्नी संज्ञा से ही वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए थे तथा उसी सविता की पत्नी संज्ञा ने घोड़ी बनकर नासिका के दोनों छिद्रों से दोनों अश्विनी कुमारों को उत्पन्न किया।

मनुं यमीं यमं चैव छाया सा तपती तथा। शनैश्चरं तथैवैते मार्त्तंडस्यात्मजाः स्मृताः॥३२॥

विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायिण्यां महायशाः।
तस्य संज्ञाऽभवद्भार्या त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः॥३३॥

सुरेणुरिति विख्याता पुनः संज्ञेति विश्रुता। सा तु भार्या भगवतो मार्त्तंडस्यातितेजसः॥३४॥

न खल्वयं मृतो ह्यंडे इति स्नेहात्तमब्रवीत्। अजानन्कश्यपः स्नेहात् मार्त्तंड इति चोच्यते॥३५॥

तेजस्त्वभ्यधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वतः।
येनापि तापयामास त्रील्लौकान्कश्यपात्मजः॥३६॥

त्रीण्यपत्यानि संज्ञायां जनयामास वै रविः। द्वौ सुतौ तु महावीर्यौ कन्यैका विदितैव च॥३७॥

मनुर्वैवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः। ततो यमो यमी चैव यमजौ संबभूवतुः॥३८॥

असह्यतेजस्तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः। असहंती स्वकां छायां सवर्णां निर्ममे पुनः॥३९॥

महाभागा तु सा नारी तस्याश्छायासमुद्गता। प्रांजलिः प्रयता भूत्वा पुनः संज्ञामभाषत॥४०॥

वदस्व किं मया कार्यं सा संज्ञा तामथाब्रवीत्।
अहं यास्यापि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः॥४१॥

त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विशंकया। इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी॥४२॥

बाद मार्तण्ड विवस्वान् की सन्तान को बताऊँगा। पुनः सविता की पत्नी संज्ञा ने तीन पुत्रों को पैदा किया।।३१।। मनु, यमी, यम और छाया तथा शनैश्चर मार्तण्ड के पुत्र कहे गये हैं।।३२।। कश्यप ऋषि से दाक्षायणी में महायशा विवस्वान् का जन्म हुआ। उन विवस्वान् की पत्नी संज्ञा (त्वाष्ट्री) देवी हुईं[1]।।३३।।

पहले वह संज्ञा सुरेणु इस नाम की थी, फिर वह 'संज्ञा' इस नाम से प्रसिद्ध हुई, वह संज्ञा अतितेजस्वी भगवान् मार्तण्ड की पत्नी थी।।३४।। इनको मृतअण्ड नहीं कहा गया, नहीं जानते हुए कश्यप ने इन्हें प्रेम से मार्तण्ड कहा। अतः इन्हें मार्तण्ड कहा जाता है।।३५।। इन विवस्वान् का तेज बहुत अधिक है और नित्य ही है, जिस तेज के द्वारा इन कश्यप पुत्र मार्तण्ड ने तीनों लोकों को तापित किया।।३६।। उन मार्तण्ड (सूर्य) ने संज्ञा में तीन सन्तानों को पैदा किया जिनमें दो महापराक्रमी पुत्र हैं और एक कन्या विदित है।।३७।। जिनमें वैवस्वत मनु सबसे ज्येष्ठ पुत्र हैं, जो श्राद्धदेव और प्रजापति हैं। उसके बाद यम और यमी दो जुड़वा पुत्र हुए।।३८।। विवस्वान् का असह्य तेज वाला रूप देखकर उसे सहन न करती हुई संज्ञा ने पुनः अपनी सवर्णा छाया का निर्माण कर लिया।।३९।। महाभागा वह संज्ञा नारी उसकी छाया प्रकट हो गयी। अर्थात् संज्ञा ने छाया को पैदा किया। वह छाया नारी हाथ जोड़कर संज्ञा से बोली।।४०।। छाया ने संज्ञा से कहा कि बोलो मुझे क्या करना है? तब उस संज्ञा ने उससे कहा कि मैं स्वयं ही पिता के घर चली जाऊँगी, तुम्हारा कल्याण होवे, तुम्हें यहाँ विना किसी भय संकोच के मेरे लिये इस भवन में रहना है।।४१-४१½।। ये दोनों बालक और वरवर्णिनी कन्या इन दोनों का तुम्हें पालन करना है और भगवान्

---

१. संज्ञा को ही त्वाष्टी कहा गया है; क्योंकि वह त्वष्टा की पुत्री थीं इसीलिये उसे त्वाष्टी कहा गया। त्वष्टा विश्वकर्मा को कहा गया है।

भर्त्तव्या नैवमाख्येयमिदं भगवते त्वया। इमौ च बालकौ मह्यं तथेत्युक्ता तथा च सा॥४३॥
त्वष्टुः समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्विनी। पिता तामागतां दृष्ट्वा क्रुद्धः संज्ञामथाब्रवीत्॥४४॥
भर्त्तुः समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनःपुनः। अगमद्वडवा भूत्वाच्छाद्य रूपमनिंदिता॥४५॥
उत्तरान्सा कुरून्गत्वा तृणान्यथ चचार सा।
द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिंत्य ताम्॥४६॥
आदित्यो जनयामास पुत्रावादित्यवर्चसौ। पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ सादृश्येन तु तौ प्रभू॥४७॥
श्रुतश्रवा मनुस्ताभ्यां सावर्णिर्वै भविष्यति॥४८॥
श्रुतकर्मा तु विज्ञेयो ग्रहो वै यः शनैश्चरः। मनुरेवाभवत्सोऽपि सावर्णिरिति चोच्यते॥४९॥
संज्ञा तु पार्थिवी सा वै स्वस्य पुत्रस्य वै तदा। चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै॥५०॥
मनुस्तच्चाक्षमत्सर्वं यमस्तद्वै न चाक्षमत्। बहुशो जल्पमानस्तु सापत्न्यादतिदुःखितः॥५१॥
तां वै रोषाच्च बालाच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्।
यदा संतर्जयामास च्छायां वैवस्वतो यमः॥५२॥
सा शशाप ततः क्रोधात्सावर्णिजननी यमम्।
यदा तर्जयसेऽकस्मात्पितृभार्यां यशस्विनीम्॥५३॥
तस्मात्तवैषश्चरणः पतिष्यति न संशयः। यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः॥५४॥
मनुना सह धर्मात्मा पितुः सर्वं न्यवेदयत्। भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यैर्विनिर्जितः॥५५॥

सूर्य से नहीं कहना है।।४१½-४२½।। ये दोनों बालक मुझे पालने हैं, ठीक है, ऐसा ही होगा, इस प्रकार कहकर वह तपस्विनी लजाती हुई के समान त्वष्टा (विश्वकर्मा) के पास गयी।।४२½-४३½।। पिता त्वष्टा ने उसको आयी हुई देखकर क्रुद्ध होकर इस प्रकार कहा कि तुम अपने पति के पास जाओ। इस प्रकार तुम्हें पुनः पुनः नियुक्त किया है।।४३½-४४½।। वह तब अपने अनिन्दित रूप को ढककर घोड़ी बनकर गयी और उत्तरकुरु देश में जाकर वह घास के तिनकों को चरने लगी।।४४½-४५½।। दूसरी पत्नी संज्ञा में यह संज्ञा है, ऐसा विचार कर आदित्य ने आदित्य और वर्चस दोनों को जन्म दिया।।४५½-४६½।। समानता से वे दोनों प्रभु अपने पूर्वज मनु के समान थे। श्रुतश्रवा और सावर्णि मनु उन दोनों से होगा।।४६½-४७½।। श्रुतकर्मा तो जो शनैश्चर ग्रह है, उसे ही जानना चाहिये। वे भी मनु ही हुए, जिन्हें सावर्णि कहा जाता है।।४९।। संज्ञा तो निश्चित ही तब अपने पुत्र की माता है, उसने बहुत अधिक स्नेह किया, वैसा उसके पूर्वजों में किसी ने नहीं किया।।५०।।

मनु ने इस सबको सहन किया; परन्तु यम ने इस सबको नहीं सहन किया। बहुत कहते हुए वे सौतेले भाव से अत्यन्त दुःखित हुए।।५१।। और भावी अर्थ के बल से उस बाला का परित्याग कर दिया।।५१½।। जब सूर्य पुत्र यम ने छाया का परित्याग कर दिया, तब क्रोध से सावर्णि की माता ने उन यम को शाप दे दिया कि जब तुम यशस्विनी पितृभार्या (पिता की पत्नी) मेरी माता को अकस्मात् छोड़ रहे हो, उस कारण से तुम्हारा एक चरण गिर जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५१½-५३½।। यम तो उस शाप से बहुत अधिक दुःखी हुए, उनका मन खिन्न हो गया। तब उन धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता विवस्वान् (सूर्य) को सब कुछ बता दिया।।५३½-५४½।। शाप

तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः। बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान्क्षंतुमर्हति॥५६॥
शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपतां वर। तव प्रसादो नस्त्रातुमेतस्मान्महतो भयात्॥५७॥
विवस्वानेवमुक्तस्तु यमं प्रोवाच वै प्रभुः। असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम्॥५८॥
येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम्। न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं मातुर्वचस्तव॥५९॥
कृमयो मांसमादाय यास्यंति च महीं तव। ततः पादं महाप्राज्ञ पुनः सांप्राप्स्यसे सुखम्॥६०॥
कृतमेवं वचः सत्यं मातुस्तव भविष्यति। शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि॥६१॥
आदित्यस्त्वब्रवीत्संज्ञां किमर्थं तनयेषु तु। तुल्येष्वभ्यधिकस्नेह एकस्मिन्क्रियते त्वया॥६२॥
सा तत्परिहरंती वै नाचचक्षे विवस्वतः। आत्मना स समाधाय योगात्तत्त्वमपश्यत॥६३॥
तां शप्तुकामो भगवान्नाशाय कुपितः प्रभुः। सा तत्सर्वं यथा तत्त्वमाचचक्षे विवस्वतः॥६४॥

विवस्वांस्तु यथा श्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्ययात्।
त्वष्टा तु तं यथान्यायमर्चयित्वा विभावसुम्॥६५॥

निर्दग्धुकामं रोषेण सांत्वयामास वै शनैः। तवातितेजसा युक्तमिदं रूपं न शोभते॥६६॥
असहंती तु तत्संज्ञा वने चरति शाद्वले। द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम्॥६७॥
श्लाघ्ययौवनसंपन्नां योगमास्थाय गोपते। अनुकूलं भवेदेवं यदि स्यात्समयो मतः॥६८॥

के भय से बहुत अधिक बेचैन संज्ञा के वाक्यों से विनिर्जित (सावधान) मेरा उठा हुआ पैर उस पर उसके शरीर पर नहीं गिरे।।५४½-५५½।। बाल्यकाल के प्रभाव से (लड़कपन से) अथवा मोह से आप मुझे क्षमा कीजिये। हे संसार के स्वामी तप करने में श्रेष्ठ! माता ने मुझे शाप दिया है।।५५½-५६½।। आपकी कृपा ही हमें इस महान् भय से बचा सकती है, जब इस प्रकार विवस्वान् से यम ने कहा तो विवस्वान् प्रभु यम से इस प्रकार बोले कि हे पुत्र! निश्चय ही यहाँ महान् कारण होगा। जिसके कारण तुम धर्मज्ञ को क्रोध हो गया।।५६½-५८½।। तुम्हारी माता का यह वचन मिथ्या नहीं कहा जा सकता है। कीड़े तुम्हारे मांस को लेकर पृथ्वी पर जायेंगे, उसके बाद हे महाप्राज्ञ! पाद को पुनः सुख प्राप्त करोगे।।५८½-६०।। ऐसा करोगे, तब तुम्हारी माता का वचन सत्य होगा तथा शाप का परिहार होने से तुम रक्षित हो जाओगे।।६१।। उसके बाद आदित्य ने संज्ञा से कहा कि तुम किसलिये अपने सब पुत्रों में एक से ही अधिक स्नेह करती हो।।६२।। उस संज्ञा ने उनकी बात ध्यान देते हुए विवस्वान् को नहीं देखा, तब विवस्वान् ने समाधि लगाकर योग से तत्त्व को देखा।।६३।।

तब उसको शाप देने चाहते हुए भगवान् विवस्वान् कुपित होकर नाश करने के लिए शाप देना चाहने लगे। उसने विवस्वान् के उस सबको यथातत्त्व देखा।।६४।। तो तत्त्व की बात जानकर विवस्वान् जैसा सुनकर, क्रुद्ध होकर त्वष्टा के पास आये, त्वष्टा ने यथाविधि विधिवत उनकी पूजा की और उन विभावसु (भगवान् सूर्य) की पूजा करके क्रोध से जलाने वाले उनको धीरे-धीरे शान्त किया तथा कहा कि अत्यन्त तेज से युक्त यह रूप आपको शोभित नहीं होता है।।६५-६६।। आपके इस उग्र तेज को न सहन करती हुई संज्ञा नयी-नयी घास उगे हुए शाद्वल वन में विचरण कर रही है। आज आप अपनी शुभ आचरण करने वाली (चरित्रवत) पत्नी को देखोगे।।६७।। वह प्रशंसनीय यौवन से सम्पन्न योग का सहारा लेकर घूम रही है। यह आपके अनुकूल होगा। यदि आपके पास समय हो, तो उसको जाकर

रूपं निवर्त्तयेयं ते ह्याद्यं श्रेष्ठमरिंदम। रूपं विवस्वतस्त्वासीत्तिर्यगूर्द्धमधस्तथा॥६९॥
तेनासौ पीडिता देवी रूपेण तु दिवस्पतेः। तस्मात्ते समचक्रं तु वर्तते रूपमद्भुतम्॥७०॥
अनुज्ञातस्ततस्त्वष्ट्रा रूपनिर्वर्त्तनाय वै। ततोऽभ्युपागमत्त्वष्टा मार्त्तंडस्य विवस्वतः॥७१॥
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास तस्य वै। तं निर्मूलित तेजस्कं तेजसापहृतेन तु॥७२॥
कांतां प्रभाकरो द्रष्टुमियेष शुभदर्शनः। ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां तथा॥७३॥
अदृश्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च। अश्वरूपेण मार्त्तंडस्तां मुखे समभावयत्॥७४॥
मैथुनान्तनिविष्टा च परपुंसोऽभिशंकया। सा तं निःसारयामास नोभ्यां शुक्रं विवस्वतः॥७५॥
देवौ तस्मादजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ। नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वादशमूर्तितः॥७६॥
मार्त्तंडस्य सुतावेतावष्टमस्य प्रजापतेः। तां तु रूपेण कांतेन दर्शयामास भास्करः॥७७॥
स तां दृष्ट्वा तदा भार्यां तुतोषैतामुवाच ह। यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः॥७८॥
धर्मेण रंजयामास धर्मराजस्ततस्तु सः। सोऽलभत्कर्मणा तेन शुभेन परमां द्युतिम्॥७९॥
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च। मनुः प्रजापतिस्त्वेष सावर्णिः स महायशाः॥८०॥

देखिये।।६८।। हे श्रेष्ठ! शत्रु का दमन करने वाले! आप अपने पहले रूप को निवृत्त (समाप्त) कीजिये। विवस्वान् (सूर्य) का रूप तो तिर्यक् ऊपर की और नीचे की ओर है।।६९।। उस आप स्वर्ग के स्वामी के रूप से देवी दुःखी हो गयीं, इसलिये आपका समचक्र तो अद्भुत रूप वाला है।।७०।। उसके बाद त्वष्टा (विश्वकर्मा) को अनुमति दे दी गयी कि वह विवस्वान् के उस रूप को समाप्त करे।।७०-७०½।। उसके बाद त्वष्टा मार्तण्ड विवस्वान् के पास आया और उनमें भ्रमि को आरोपित कर उनके तेज को काट छांट कर सही किया अर्थात् सूर्य का जो रूप या तेज तिरछा ऊँचा-नीचा था, उसको विश्वकर्मा ने काट-छांटकर सब ओर समान कर दिया और बीच में एक घूमने वाली धुरी लगा दी और फिर उनको तेज से हटाकर विना तेज वाला बना दिया।।७२।। तव उन शुभ दिखाई देने वाले सूर्य ने अपनी पत्नी को देखना चाहा और फिर योग के द्वारा समाधि धारण कर अपनी पत्नी घोड़ी वनी हुई संज्ञा को देखा।।७३।। सब प्राणियों के न देखते हुए तेज और नियम से सूर्य ने अश्व का रूप धारण कर उस घोड़ी बनी हुई संज्ञा के मुख से मुख मिलाया।।७४।। उसके बाद अश्व बने हुए सूर्य ने घोड़ी बनी हुई अपनी पत्नी संज्ञा से सम्भोग किया; परन्तु उसको यह शंका हो गयी कि यह पर पुरुष है, जो रूप बदलकर आया है तथा मुझसे मैथुन किया है, यह शंका करके उसने वीर्य को नासिका के छिद्रों से निकाल दिया।।७५।।

उस वीर्य से वैद्यों में श्रेष्ठ दो देव अश्विनी उत्पन्न हुए, जिनको अश्विनी कुमार कहा गया। नासत्य और दस्र ये दोनों वारहमूर्ति से युक्त स्मरण किये गये।।७६।। अष्टम प्रजापति मार्तण्ड (सूर्य) के ये दोनों पुत्र थे। उसके बाद उस घोड़ी रूपी संज्ञा को सुन्दर रूप वाले सूर्य ने देखा।।७७।। तब उन सूर्य ने अपनी उस पत्नी को देखकर उसे सन्तुष्ट किया (प्रसन्न किया) और फिर इससे कहा। यमराज तो उस शाप से वहुत अधिक दुःखी मन वाले हो गये।।७८।। तब धर्मराज ने उन्हें धर्म से अनुरंजित किया (खुश) किया। उन्होंने उस कर्म से धर्मराज नाम को प्राप्त किया तथा परमकान्ति प्राप्त की।।७९।। केवल यही नहीं उन्हें तीनों लोकों का पालकत्व तथा पितरों के लोकों का आधिपत्य भी प्राप्त हुआ।।७९½।। यही मनु प्रजापति मन्त्र महान् यशस्वी सावर्णि होंगे, जो आने वाले उस सावर्णिक

भाव्यः सोऽनागते तस्मिन्मनुः सावर्णिकेंतरे। मेरुपृष्ठे तपो गोरमद्यापि चरते प्रभुः॥८१॥
भ्राता शनैश्चरस्तत्र ग्रहत्वं स तु लब्धवान्। त्वष्टा तु तेन रूपेण विष्णोश्चक्रमकल्पयत्॥८२॥
महामहोऽप्रतिहतं दानवान्प्रतिवारणम्। यवीयसी तयोर्या तु यमुना च यशस्विनी॥८३॥
अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी। यस्तु ज्येष्ठो महातेजाः सर्गो यस्येति सांप्रतम्॥८४॥
विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह। इदं तु जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेच्च वा॥८५॥
वैवस्वतस्य पुत्राणां सप्तानां तु महौजसाम्। आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः॥८६॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते तृतीय उपोद्घातपादे वैवस्वतोत्पत्तिर्नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः॥५९॥

मन्वन्तर में प्रजापति के रूप में प्रतिष्ठित होंगे।।७९½-८०½।। वे प्रभु सुन्दर सुमेरु पर्वत के पृष्ठभाग पर आज भी घोर तपस्या कर रहे हैं। उसी स्थान पर उनके भ्राता शनि ग्रह रूप में स्थित हैं।।८०½-८१½।। विश्वकर्मा ने जो उस विकृत रूप वाले सूर्य को खराद कर सही किया था, उस खरादे हुए तेजयुक्त रूप से विष्णु के उस चक्र का निर्माण किया, जो युद्ध में दानवों को रोकने में समर्थ तथा महान् शक्तिशाली है।।८१½-८२½।। उन दोनों की छोटी बहिन थी, जो नदियों में श्रेष्ठ यशस्विनी यमुना नाम की नदी हुई।।८२½-८३½।। सूर्य के जो सबसे बड़े और महातेजस्वी पुत्र थे, उनका नाम मनु था। जिनका वंश आज भी पृथ्वीतल पर विद्यमान है। उन वैवस्व मनु के वंश का विस्तार मैं बताऊँगा।।८३½-८४½।। सूर्य के इन सातों देवरूप महातेजस्वी पुत्रों के जन्म विषयक वृत्तान्त को जो मनुष्य सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह आपत्तियों को प्राप्त करके भी छुटकारा पायेगा और महान् यश को प्राप्त करेगा।।८४½-८६।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ५९वां अध्याय वैवस्वत मनु की उत्पत्तिका हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

वैवस्तमनोः सृष्टिर्नाम

षष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

ततो मन्वंतरेऽतीते चाक्षुषे दैवतैः सह। वैवस्वताय महते पृथिवीराज्यमादिशत्॥१॥
तस्माद्वैवस्वतात्पुत्रा जज्ञिरे दश तत्समाः। इक्ष्वाकुश्च नृगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेवच॥२॥
नरिष्यंतस्तथा प्रांशुर्नाभागो दिष्ट एव च। करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः॥३॥
ब्रह्मणा तु मनुः पूर्वं चोदितस्तु प्रबोधितम्। यष्टुं प्रचक्रमे कामं हयमेधेन भूपतिः॥४॥
अथाकरोत्पुत्रकामः परामिष्टिं प्रजापतिः। मित्रावरुणयोरंशे अनलाहुतिमेव यत्॥५॥
तत्र दिव्यांबरधरा दिव्याभरणभूषिता। दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुतम्॥६॥
तामिलेत्यथ होवाच मनुर्दंडधरस्ततः। अनुगच्छस्व भद्रं ते तमिला प्रत्युवाच ह॥७॥
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम्। मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदतां वर॥८॥
तयोः सकाशं यास्यामि माऽतो धर्मो हतो वधीत्। एवमुक्त्वा पुनर्देवी तयोरन्तिकमागमत्॥९॥
गत्वांतिकं वरारोहा प्राजंलिर्वाक्यमब्रवीत्।
अंशेऽस्मिन्युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम्॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-६०

वैवस्वतमनु की सृष्टि वर्णन

सूत ने कहा—हे विप्रवर! उसके बाद चाक्षुष मन्वन्तर के बीत जाने पर, जब देवगण भी व्यतीत हो गये, तब वैवस्वत मनु जो विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र थे, वे ही समस्त पृथ्वी के सम्राट् बने।।१।। उसके बाद उन वैवस्वत मनु से उन्हीं के समान दश पुत्र उत्पन्न हुए, वे थे—१. इक्ष्वाकु, २. नृग, ३. धृष्ट, ४. शर्याति, ५. नरिष्यन्त, ६. प्रांशु, ७. नाभाग, ८. दिष्ट, ९. करूष और १०. पृषध्र ये दश मनु पुत्र कहे गये।।३।। पुत्रों से पहले जब मनु को पुत्र नहीं था, अतः ब्रह्मा ने उन्हें अश्वमेध यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया।।४।। इसके बाद पुत्र की कामना से मनु ने यज्ञ किया। उस यज्ञ में मित्रावरुण के नाम से उस यज्ञ में आहुति दी गयी।।५।। तब वहाँ दिव्य वस्त्रों को धारण की हुई दिव्य आभूषणों से भूषित, दिव्य सुगठित शरीर वाली इला उत्पन्न हो गयी, ऐसा सुना गया है।।६।। उसके बाद दण्ड धारण करने वाले मनु ने उस इला से कहा कि तुम मेरा अनुसरण करो।।७।। तब इला से पुत्र की कामना करने वाले प्रजापति मनु को इला ने इस प्रकार कहा कि हे बोलने वालों में श्रेष्ठ प्रजापति मैं मित्रावरुण के अंश से उत्पन्न हुई हूँ। उन्हीं के पास चली जाऊँगी ताकि मेरा धर्म नष्ट न होवें। ऐसा कहकर वह उन मित्रावरुण के पास चली गयी।।८-९।। मित्रावरुण के पास जाकर उस सुन्दर अंगवाली ने हाथ जोड़कर यह वाक्य कहा कि

मनुनैवाहमुक्ताऽस्मि अनुगच्छस्व मामिति। तथा तु ब्रुवतीं साध्वीमिडामाश्रित्य तावुभौ॥११॥
देवौ च मित्रावरुणाविदं वचनमूचतुः। अनेन तव धर्मज्ञे प्रश्रयेण दमेन च॥१२॥
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वौ वरवर्णिनि।
आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्ये प्रयास्यसि॥१३॥
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु पूजितः। जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्द्धनः॥१४॥
मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत्प्रभुः। सा तु देवी वरं लब्ध्वा निवृत्ता पितरं प्रति॥१५॥
बुधेनोत्तरमासाद्य मैथुनायोपमंत्रिता। सोमपुत्राद्‌बुधाच्चास्यामैलो जज्ञे पुरूरवाः॥१६॥
बुधात्सा जनयित्वा तु सुद्युम्नत्वं पुनर्गताः। सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः॥१७॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनतश्च तथैव च। उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनतस्यापि पश्चिमम्॥१८॥
दिक्पूर्वा तस्य राजर्षेर्गयस्य तु गया पुरी। प्रविष्टे तु मनौ तस्मिन्प्रजाः सृष्टा दिवाकरम्॥१९॥
दशधा तदधात्क्षत्रमकरोत्पृथिवीमिमाम्। इक्ष्वाकुरेव दायादो भागं दशममाप्तवान्॥२०॥
कन्याभावात्तु सुद्युम्नो नैव भागमवाप्तवान्। वसिष्ठवचनाच्चासीत्प्रतिष्ठाने महाद्युतिः॥२१॥
प्रतिष्ठां धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य महात्मनः। एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयः पप्रच्छुः सूतजं प्रति।
मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत्कथम्॥२२॥

मैं आप दोनों के अंश से पैदा हुई हूँ, अब आप लोग बताओ मैं क्या करूँ।।१०।। मनु ने मुझसे कहा है कि तुम मेरा अनुसरण करो। "अर्थात् तुम मेरे साथ पुत्र पैदा करो।" इस प्रकार कहती हुई युवती साध्वी इडा को आश्रय प्रदान कर उन दोनों मित्रावरुण ने कहा।।११।। वे दोनों देव मित्रावरुण इस प्रकार वचन बोले कि धर्म को जानने वाली सुन्दर कमर वाली, श्रेष्ठ वर्ण वाली तुम्हारे इस प्रश्रय सत्य आचरण तथा इन्द्रियों दमन करने वाले व्यवहार से हम दोनों बहुत प्रसन्न हैं। हे महाभागे कन्ये! तुम संसार में ख्याति प्राप्त करोगी।।१२-१३।। तुम सुद्युम्न नाम से तीनों लोकों में पूजित होगी तथा फिर संसार को प्रिय होगी, धर्मशील होगी और मनु के वंश को बढ़ाने वाली बनोगी।।१४।। इस प्रकार वह इला मानव तो बन गयी, वह सुद्युम्न के रूप में बदल गयी थी; परन्तु मानव होते हुए भी वह स्त्रीभाव को प्राप्त हुई। तब वह देवी ने वर प्राप्त करके पिता से निवृत्त हुई।।१५।। उसके बाद यह सुद्युम्न पुनः स्त्री बनी और फिर बुध ने इनको प्राप्त कर मैथुन किया, जिससे चन्द्रमा का जन्म हुआ तथा फिर चन्द्रमा से पुरुरवा का जन्म हुआ।।१६।। बुध से चन्द्रमा को जन्म देकर वह पुनः सुद्युम्न हो गयी और फिर सुद्युम्न के तीन परम धार्मिक पुत्र हुए।।१७।। वे हैं—उत्कल, गय और विनत। उत्कल का उत्कल राष्ट्र हुआ, जिसको आज उड़ीसा कहा जाता है तथा विनत का पश्चिम भारत हुआ। पूर्व दिशा का राजा गय को बनाया गया, जिसकी राजधानी को गया नगरी कहा गया अर्थात् गया नगरी के राजा गय हुए। उस मन्वन्तर में मनु पुत्र सूर्य ने इस प्रकार सृष्टि का विस्तार किया और फिर समस्त पृथ्वी को दश भागों में विभक्त किया। इक्ष्वाकु को पृथ्वी का दशवां भाग प्रदान किया।।१८-२०।। क्योंकि सुद्युम्न इला से सुद्युम्न बने थे; इसलिए कन्या भाव के कारण सुद्युम्न ने भाग को नहीं प्राप्त किया। वशिष्ठ के वचन से उन महाकान्तिमान् एक प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित किये गये।।२१।। धर्मराज सुद्युम्न की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठान में सुनकर ऋषियों ने सूत से पूँछा कि मानव बने हुए सुद्युम्न स्त्रीभाव को कैसे प्राप्त हुए।।२२।।

सूत उवाच

पुरा महेश्वरं द्रष्टुं कुमारास्सनकादयः। इलावृतं समाजग्मुर्ददृशुर्वृषभध्वजम्॥२३॥
उमया रममाणं तं विलोक्य पिहितेस्थले। प्रतिजग्मुस्ततः सर्वे व्रीडिताभूच्छिवाप्यथ॥२४॥
प्रोवाच वचनं देवी प्रियहेतोः प्रियं प्रिया। इमं ममाश्रमं देव यः पुमान्सं प्रवेक्ष्यति॥२५॥
भविष्यति ध्रुवं नारी स तुल्याप्सरसां शुभा। तत्र सर्वाणि भूतानि पिशाचाः पशवश्च ये॥२६॥
स्त्रीभूताः सह रुद्रेण क्रोडंत्यप्सरसो यथा। उमावनं प्रविष्टस्तु स राजा मृगयां गतः॥२७॥
पिशाचैः सह भूतैस्तु रुद्रे स्त्रीभावमास्थिते।
तस्मात्स राजा सुद्युम्नः स्त्रीभावं लब्धवान्पुनः।
महादेवप्रसादाच्च मानवत्वमवाप्तवान्॥२८॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे मध्यमभागे वायुप्रोक्ते वैवस्वतमनोः सृष्टिर्नाम षष्टितमोऽध्यायः॥६०॥

सूत जी ने कहा—प्राचीन काल में भगवान् शंकर को देखने के लिये सनत्कुमार सनक आदि इलावृत पर्वत पर पहुँचे और भगवान् शंकर को देखा।।२३।। उस समय उस एकान्त स्थल पर उमा के साथ रमण करते हुए शंकर को देखकर वे सब वापस उस एकान्त स्थान पर उमा के साथ रमण करते हुए शंकर को देखकर वे सब वापस लौट गये, उसके बाद वे सब लज्जित हो गये तथा भगवान् शंकर भी लज्जित हुए।।२४।। इसके बाद उनकी प्रिया देवी उमा ने प्रिय शंकर से यह वचन कहा कि हे देव इस हमारे आश्रम में जो पुरुष प्रवेश करेगा, वह निश्चित ही अप्सराओं के समान नारी हो जायेगा।।२५-२५½।। अतः वहाँ पर जितने भी भूत, पिशाच, पशु थे, वे सब अप्सरायें बनकर रुद्र के साथ क्रीडा कर रहे थे।।२५½-२६½।। एक दिन वह राजा सुद्युम्न शिकार खेलता हुआ, उस उमावन में प्रविष्ट हो गया, वहाँ पर स्त्रीभाव को प्राप्त रुद्र के साथ साथ भूतों और पिशाचों को क्रीड़ा करते हुए देखकर राजा सुद्युम्न भी फिर स्त्री भाव को प्राप्त हो गये। अर्थात् वे स्त्री बन गये थे और महादेव शंकर जी के प्रभाव से वे पुनः मनुष्य बने।।२६½-२८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६०वां अध्याय वैवस्वतमनु की सृष्टि वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

गान्धर्वमूर्च्छनालक्षणवर्णनं नाम

एकषष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

विसर्गं मनुपुत्राणां विस्तरेण निबोधत। पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां निशि तत्क्षये॥१॥
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्य महात्मनः। करूषस्य तु कारुषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः॥२॥
सहस्रं क्षत्रियगणो विक्रांतः संबभूव ह। नाभागो दिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीद्भलंदनः॥३॥
भलंदनस्य पुत्रोऽभूत्प्रांशुर्नाम महाबलः। प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिसमो नृपः॥४॥
संवर्तेन दिवं नीतः ससुहृत्सहबांधवः। विवादोऽत्र महानासीत्संवर्त्तस्य बृहस्पतेः॥५॥
ऋद्धिं दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य बृहस्पतिः। संवर्त्तेन तते यज्ञे चुकोप स भृशं तदा॥६॥
लोकानां स हि नाशाय दैवत्तैर्हि प्रसादितः। मरुत्तश्चक्रवर्त्ती त नरिष्यंतमवासवान्॥७॥
नरिष्यंतस्य दायादो राजा दंडधरो दमः। तस्य पुत्रस्तु विज्ञातो राजाऽसीद्राष्ट्रवर्द्धनः॥८॥
सुधृतिस्तस्य पुत्रस्य नरः सुधृतितः पुनः। केवलस्य पुत्रस्तु बंधुमकेवलात्मजः॥९॥
अथ बंधुमतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान्नृप। बुधो वेगवतः पुत्रस्तृणबिंदुर्बुधात्मजः॥१०॥
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह। कन्या तु तस्येडविडामाता विश्रवसो हि सा॥११॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–६१

गान्धर्वमूर्च्छनालक्षण वर्णन

सूत जी ने कहा—सूतजी ने कहा कि अब मनु के पुत्रों की विशेष सृष्टि ध्यानपूर्वक सुनिये। मनुपुत्र पृषध्र अपने गुरु महर्षि च्यवन की गौ को मारकर खा गये, जिसके कारण शापवश शूद्रवर्ण को प्राप्त हुए। करुष के कारुष नामक पुत्र संग्राम मे किसी से हारने वाले नहीं थे। नाभाग का दिष्ट पुत्र भलन्दन बहुत विद्वान् हुआ।।१-३।। तथा भलन्दन का प्रांशु नामक पुत्र महान् बलवान् हुआ तथा प्रांशु का एक पुत्र प्रजापति के समान राजा हुआ।।४।। संवर्त ने अपने मित्र बन्धुओं के साथ स्वर्ग को प्राप्त किया, यहाँ संवर्त का बृहस्पति के साथ महान् विवाद था।।५।।

संवर्त ने यज्ञ किया था, जिस यज्ञ की समृद्धि को देखकर बृहस्पति क्रुद्ध हो गये थे, तब यज्ञ के पूर्ण होने पर वे संवर्त बहुत अधिक क्रोधित हो गये।।६।। तब लोकों के नाश की सम्भावना देखकर संवर्त ने बृहस्पति को प्रसन्न किया। चक्रवर्ती राजा मरुत्त ने नरिष्यन्त को प्राप्त किया।।७।। नरिष्यन्त का दायाद (पुत्र) दण्ड को धारण करने वाला राजा दम हुआ, उसका पुत्र राष्ट्रवर्धन बहुत विख्यात राजा था।।१८।। राष्ट्रवर्धन का पुत्र सुधृति, फिर सुधृति से नर हुआ। उसकापुत्र केवल हुआ। केवल का पुत्र बन्धुमान् हुआ। बन्धुमान् का पुत्र परम धर्मात्मा राजा वेगवान् हुआ। वेगवान् का पुत्र बुध और बुध का पुत्र तृणबिन्दु हुआ।।९-१०।। यह राजा तृणविन्दु त्रेयायुग के प्रारम्भ में

पुत्रो योऽस्य विशालोऽभूद्राजा परमधार्मिकः।
दाश्वान्प्रख्यातवीर्य्यौजा विशाला येन निर्मिता॥१२॥
विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबलः। सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरः॥१३॥
सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः। धूाश्वतनयो विद्वान्सृंजयः समपद्यत॥१४॥
सृञ्जस्य सुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवान्। कृशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः॥१५॥
कृसाश्वस्य महातेजा सोमदत्तः प्रतापवान्। सोमदत्तस्य राजर्षेः सुतोऽभूज्जनमेजयः॥१६॥
जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुतः। तृणबिंदुप्रभावेण सर्वे वैशालका नृपाः॥१७॥
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः। शर्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः॥१८॥
पुत्रः सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य च।
आनर्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम सुवीर्यवान्॥१९॥
आनर्त्तविषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली। रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः॥२०॥
ज्येष्ठो भ्रातृशतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्।
कन्या सह श्रुत्वा च गांधर्वं ब्रह्मणोऽतिके॥२१॥
मुहर्त्तं देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुगं विभो। आजगाम युवा चैव स्वां पुरीं यादवैर्वृताम्॥२२॥
कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम्। भोजवृष्ण्यंधकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः॥२३॥

विद्यमान् था।।१०½।। उस तृणबिन्दु की कन्या इडविडा थी, जो विश्रवा की माता थी, जिसका पुत्र परम धार्मिक राजा विशाल हुआ। इसी राजा विशाल ने विशाला नामक पुरी को बनवाया।।१०½-११।। राजा विशाल के महाबलवान् राजा हेमचन्द्र हुए। हेमचन्द्र के बाद उनके पुत्र राजा सुचन्द्र विख्यात हुए। राजा सुचन्द्र का पुत्र धूमश्व नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा धूमश्व के पुत्र परम विद्वान् राजा सृञ्जय उत्पन्न हुए।।१३-१४।। सृञ्जय के पुत्र श्रीमान् परम पराक्रमी सहदेव हुए। सहदेव के पुत्र कृशाश्व हुए, जो परम धार्मिक राजा थे। प्रताप के पुत्र महान् तेजस्वी राजा सोमदत्त हुए। राजर्षि सोमदत्त के पुत्र जन्मेजय हुए।।१५-१६।। राजा जन्मेजय के पुत्र प्रमति नाम के सुने गये। राजा तृणविन्दु की कृपा से ये सभी विशाला नगरी के राजा दीर्घायु वाले, परम पराक्रमी, परम धार्मिक एवं महात्मा हुए। शर्याति की दो सन्तानें हुईं, उनके पुत्र का नाम आनर्त और कन्या का नाम सुकन्या था। सुकन्या कन्या च्यवन की पत्नी हुई। राजा आनर्त का उत्तराधिकारी परम पराक्रमी रेव नामक राजा हुआ।।१७-१९।।

आनर्त का समस्त राज्य और कुशस्थली पुरी पर उसका आधिपत्य था। रेव का पुत्र परम धार्मिक रैवत हुआ, जो ककुद्मी नाम का धार्मिक राजा था।।२०।। अपने भाइयों में सबसे बड़े भाई ककुद्मी ने कुशस्थली पुरी में राज्य किया। एक बार ये ब्रह्माके पास अपनी कन्या के साथ गाने सुनने के लिये गये थे। वहाँ पर ब्रह्मा जी के पास केवल एक मुहूर्त (दो घड़ी) भर तक ये रहे; किन्तु ब्रह्मा का वह एक मुहूर्त मनुष्य वर्ष के अनुसार अनेक युगों का थी। वहाँ से युवावस्था में ही जब राजा अपनी पुरी में वापस लौटे तो उनकी वह पुरी यदुवंशियों के अधिकार में थी।।२०-२२।। उसका नाम कुशस्थली नहीं था; परन्तु द्वारवती हो गया था। उसके चारों ओर सुन्दर द्वार बने हुए थे। वसुदेव

तां कथां रेवतः श्रुत्वा यथातत्त्वमरिंदमः। कन्यां तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम्।
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः॥२४॥
रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहितः किल। तां कथामृषयः श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनंतरम्॥२५॥

ऋषय ऊचुः

कथं बहुयुगे काले समतीते महामते। न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं वा ककुद्मिनम्।
एतच्छुश्रूषमाणनो गान्धर्वं वद चैव हि॥२६॥

सूत उवाच

न जरा क्षुत्पिपासे वा न च मृत्युभयं ततः। न च रोगः प्रभवति ब्रह्मलोकं गतस्य ह॥२७॥
गांधर्व प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमाः। ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः॥२८॥
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः। तानाश्चैकोपनपंचाशदित्येतत्स्वरमंडलम्॥२९॥
षड्जषभौ च गांधारो मध्यमः पंचमस्तथा। धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादकः॥३०॥
सौवीरा मध्यमा ग्रामा हरिणाश्च तथैव च॥३१॥
तस्याः कलोपबलोपेताश्चतुर्थीशुद्धमध्यमाः।
शार्ङ्गी पौषाच वै देव दृष्टाकाच यथाक्रमः॥३२॥
मध्यमग्रामिकाख्याता षड्जग्रामा निबोधत्। उत्तर मंद्रा रजनी तथा वाचोत्तरायताः॥३३॥
मध्यषड्जा तथा चैव तथान्या चाभिमुद्रणा।
गांधारग्रामिका श्यामा कीर्तिमाना निबोधत॥३४॥

आदि प्रमुख भोज वृष्णि एवं अन्धक वंशीय लोग उसकी रक्षा कर रहे थे। शत्रुओं को वश में करने वाले रैवत ने इस घटना को जानकर अपनी साध्वी व्रत परायण कन्या रेवती को बलदेव को समर्पित कर दिया और स्वयं सुमेरु पर्वत की चोटी पर जाकर तपस्या में लग गये।।२३-२४।। धर्मात्मा बलराम ने रेवती के साथ रमण किया। जब सूत से ऐसी कथा सुनी तो ऋषियों ने पूंछा।।२५।।

ऋषियों ने कहा कि इतना समय बीत जाने पर भी रेवती रैवत और ककुद्मी को वृद्धावस्था ने क्यों नहीं प्राप्त किया। यह सब हम सुनना चाहते हैं। अतः आप ऐसी उस गान्धर्व विद्या (संगीतशास्त्र) को बतलाइये।

सूत ने कहा— हे ऋषियो! ब्रह्मलोक में जाने वाले प्राणी में न वृद्धावस्था आती है, न उन्हें भूख प्यास सताती है, न ही उनको मृत्यु का भय होता है तथा न ही उनको कोई रोग होता है।।२६-२७।। हे सुन्दर व्रत परायण श्रेष्ठ मुनियो! उस गान्धर्व विद्या (संगीतशास्त्र) के विषय में आप लोगों ने जो कुछ मुझसे पूंछा है, उसे अपनी जानकारी के अनुसार बताता हूँ।।२८।।

संगीतशास्त्र में सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनायें तथा उनचास ताल होते हैं, यही स्वरमण्डल कहा जाता है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ये सात स्वर हैं (ष र ग म प ध नि) इनका संक्षिप्त रूप है।।२९-३०।। सौवीरा, हरिणास्या, कपोलबला, चौथी शुद्धमध्यमा, शार्ङ्गी, पौषा (पावनी) और दृष्टाका ये मध्यम ग्राम के नाम से विख्यात हैं। उत्तरमन्द्रा, जननी, उत्तरायता, शुद्धषड्जा, आदि मध्य षड्जग्राम में

अग्निष्टोमं तु माद्यं तु द्वितीयं वाजपेयिकम्। यवरातसूयस्तु षष्ठवत्तु सुवर्णकम्॥३५॥
सप्त गौसवना नाम महावृष्टिकताष्टमाम्। ब्रह्मदानं च नवमं प्राजापत्यमनंतरम्।
नागपक्षाश्रयं विद्वान् तद्गोत्तरतथैव च॥३६॥
पदक्रांतमृगक्रांतं विष्णुक्रांतमनोहरा। सूर्यकांतधरेण्यैव मत्तकोकिलविश्रुतः॥३७॥
तेनवानित्यपवशपिशाचातीवनह्यपि। सावित्रमर्धसावित्रं सर्वतोभद्रमेव च॥३८॥
मनोहरमधात्र्यं च गन्धर्वानुपतश्च यः। अलंबुषेसेष्टमथो विष्णुवैणवरावुभौ॥३९॥
सागराविजयं चैव सर्वभूतमनोहरः। हतोत्सृष्टो विजानीत स्कंधं तु प्रियमेव च॥४०॥
मनोहरमधात्र्यं गन्धर्वानुपतश्च यः। अलंबुसेष्टस्य तथा नारदप्रिय एव च॥४१॥
कथितो भीमसेनेन नगरातानयप्रियः। विकलोपनीतविनताश्रीराख्यो भार्गवप्रियः॥४२॥
चतुर्दश तथा पंचदशेच्छंतीह नारदः। ससौवीरां सुसोवीरा ब्रह्मणो ह्युपगीयते॥४३॥
उत्तरादिस्वरश्चैव ब्रह्मा वै देवतास्त्रयः। हरिदेशसमुत्पन्ना हरिणस्याव्यजायत॥४४॥
मूर्छना हरिणा ते वै चन्द्रस्यास्याधिदैवतम्। करोपनीता विवृतावनुद्रिः स्वरमंडले॥४५॥
साक लोकपनतातस्मान्मनुतस्याधिदैवतः। मरुदेशाः समुत्पन्ना मूर्च्छनाशुद्धमात्मना॥४६॥
तस्मात्तस्मान्मृगामार्गीमृगेंद्रोस्याधिदैवता। सावाश्रमसमाद्युम्ना अनेकापौरुषानखान्॥४७॥
मूर्च्छनायोजाह्येषास्याद्रजसारजनीततः। तानि उत्तर मद्रांसपद्मदैवतकं विदुः॥४८॥

कहे गये हैं, इसे सातवां जानना चाहिये।।३१-३३½।। अन्य गान्धार ग्राम के बारे में बतला रहा हूँ, सुनिये। प्रथम—आग्निष्टोमिक, द्वितीय—वाजपेयिक, तृतीय—पौण्ड्रक, चतुर्थ—आश्वमेधिक, पञ्चम—राजसूय, षष्ठ—चक्रसुवर्ण, सप्तम—गोसव, अष्टम—महावृष्टिक, नवम—ब्रह्मदान, उसके बाद प्राजापत्य नागपक्षाश्रय, गोतर, पदक्रान्त, मृगक्रान्त, मनोहर, विष्णुक्रान्त, सर्वश्रेष्ठ सूर्यकान्त, मत्तकोकिल आदि विशेषसुने गये हैं।।३३½-३६।। उसके द्वारा अनित्य वज्र के समान पिशाच की ध्वनि वाले सावित्र, अर्धसावित्र, सर्वतोभद्र, सुवर्ण, सुतन्द्र, विष्णु, वैष्णुवर, सागर, सभी जीवों के मन को हरने वाला विजय, हंस को सर्वश्रेष्ठ हमलोग जानते हैं। हतोत्सृष्टा तो जाना जाता है, स्कन्ध तो सर्वप्रिय स्वर है।।३७-४०।। मनोहर अधात्र्य तथा गन्धर्वानुपत जो अलम्बुष तथा नारद को विशेष प्रिय है।।४१।। नगरातान नामक स्वर भीमसेन को प्रिय था, ऐसा कहा जाता है। विकल उपनीत विनता और श्री स्वर परशुराम को प्रिय था।।४२।। पञ्चदश और चतुर्दश स्वर नारद जी को पसन्द थे। ससौवीर सुसौवीर ब्रह्मा का प्रिय स्वर है, जो ब्रह्मा द्वारा गाया जाता है। उत्तरादि स्वरों के अधिदेवता ब्रह्मा ही माने गये हैं।।४३-४३½।।

हरिदेश में उत्पन्न मूर्च्छना हरिणास्या के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अधिदेवता चन्द्र हैं।।४३½-४४½।। समस्त स्वरमण्डलों में मरुतों द्वारा प्रसारणपूर्वक ग्रहण किये जाने से कलोपनता के अधिदेवता मारुत माने गये हैं।।४४½-४५½।। मरुदेश में उत्पन्न हुई मूर्च्छना शुद्ध मध्यमा कही जाती है। इसमें मध्यम शुद्ध स्वर है। सिद्धों के मार्ग को दिखलाते समय मृगों के साथ विचरण करने के कारण मूर्च्छना मार्गी नाम से प्रसिद्ध है। इसके अधिदेवत मृगेन्द्र हैं।।४५-४६½।। यह मूर्च्छना अनेकों स्वरों की आधारभूत है; इसलिए अनेकों पुरों में गाये जाने वाले स्वरों में प्रयुक्त होती है। इस रजनी नामक मूर्च्छना को रजो गुण से मिलाना चाहिये।।४६½-४७½।। उत्तर मन्द्रांश ताल

तस्मादुत्तरतायावत्प्रथमं स्वयामं विदुः। तमोदुत्तरमैद्रोयदेवतास्याधुवेन च॥४९॥
अपामदुत्तरत्वावधैवतस्योत्तरायणः। स्यादिजमूर्छनयेच पितरः श्राद्धदेवताः॥५०॥
शुद्धषड्जस्वरं कृत्वा यस्मादग्निमहर्षयः। उपैति तस्मान्नजानीयाच्छुद्धयच्छिकरासभा॥५१॥
इत्येता मूर्छनाः कृत्वा यस्यामीदृशभावनः।
यक्षिणां मूर्छनाः श्रुत्वा यक्षोक्ता मूर्छनाः स्मृताः॥५२॥
नागादृष्टिविषागीतानोपसर्पतिमूर्छनाः। नानासाधारणाश्चैववडवात्रिविदस्तथा॥५३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे गांधर्वमूर्छनालक्षणवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

का अधिदेवता षड्ज है, उसका उत्तरवर्ती ताल भी प्रथम का अनुयायी माना जाता है; इसलिए उसका नाम भी उत्तरमन्द्र कहा जाता है। उसके अधिदेवता ध्रुव हैं।।४७½-४९।। बहुत विस्तृत और उत्तरवर्ती होने के कारण धैवत की मूर्च्छना उत्तरायण है। इसके अधिदेवता श्राद्ध देवता पितर हैं।।५०।। ऋषियों ने जिस शुद्धषड्ज स्वर को पैदा करके अग्नि को पूजा था; इसलिए वह शुद्ध स्वर षड्जिक नाम से जाना जाता है।।५१।। इस प्रकार इन मूर्च्छनाओं को करके जिसमें जिसकी भावना होती है, वह मूर्च्छित होता है। यक्ष नारियों की मूर्च्छना को सुनकर यक्ष मूर्च्छित होते हैं, इसलिये वह यक्षों का मूर्च्छना कही जाती है।।५२।। नागों की दृष्टि से जो विष बिखेर देती है, नागगण जिसे सुनकर मूर्च्छित हो जाते हैं और सुनकर पास आ जाते हैं, इस प्रकार अनेकों साधारण और भी मूर्च्छना हैं मैंने सातों स्वरों समस्त मूर्च्छनाओं एवं उसके छः साधारण भेदों का वर्णन कर दिया।।५३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६१वां अध्याय गान्धर्वमूर्च्छना लक्षण वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे

भार्गवचरिते गांधर्वलक्षणं नाम

द्विषष्टितमोऽध्यायः

अथ श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते गांधर्वलक्षणं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः

पूर्वाचार्यमतं बुद्ध्वा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः। विख्यातान्वै अलंकारांस्तन्मे निगदतः श्रृणु॥१॥
अलंकारास्तु वक्तव्याः स्वैः स्वैर्वर्णैः प्रहेतवः। संस्थानयोगैश्च तथा सदा नाट्याद्यवेक्षया॥२॥
वाक्यार्थपदयोगार्थैलंकारैश्च पूरणम्। पदानि गीतकस्याहुः पुरस्तात्पृष्ठतोऽथ वा॥३॥
स्थातोनित्रीनरो नीड्डीमनःकंठशिरस्थया। एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तमः॥४॥
चत्त्वारः प्रकृतौ वर्णाः प्रविचारश्चनुर्विधा। विकल्पमष्टधा चैव देवाः षोडशधा विदुः॥५॥
सृष्टो वर्णः प्रसंचारी तृतीयमवरोहणम्। आरोहणं चतुर्थं तु वर्णं वर्णविदो विदुः॥६॥
तत्रैकः संचरस्थायी संचरस्तु चरोऽभवत्। अवरोहणवर्णानामवरोहं विनिर्दिशेत्॥७॥
आरोहणेन वारोहान्वर्णान्वर्णविदो विदुः। एतेषामेव वर्णानामलंकारान्निबोधत॥८॥
अलंकारास्तु चत्वारस्थापनी क्रमरंजनः। प्रमादस्याप्रमादश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद

अध्याय-६२

भार्गवचरित में गान्धर्व लक्षण

अब इसके बाद मैं प्राचीन आचार्यों के मतानुसार क्रम से विख्यात अलंकारों का वर्णन करूँगा; आप लोग सुनिये।।१।। अपने अपने वर्णों के विशेष संयोग से संगठित होने को ही अलंकार कहना चाहिये। वर्णों को सम्यक् स्थान पर रखने और नाट्य आदि देखने से वाक्य के अर्थों एवं पद के मिले हुए अर्थों से अलंकारों की पूर्ति होती है। गीत के आगे अथवा पीछे पद होते हैं, ऐसा लोग कहते हैं।।२-३।। गीत के तीन स्थान होते हैं—वक्षःस्थल, कण्ठ और शिर। इन्हीं तीन स्थानों में प्रारम्भ किया स्वर उत्तम होता है।।४।।

प्रकृति में चार वर्ण होते हैं तथा चार ही प्रकार का इनका विचार है। विकल्प आठ प्रकार के हैं तथा सोलह प्रकार के इनके देवता हैं।।५।। वर्णों के तत्त्व को जानने वाले सृष्ट प्रसंचारी, तीसरा अवरोहण और चौथा आरोहण वर्ण मानते हैं।।६।। तब इनमें एक ही प्रकार के भाववर्ण में जिसका संचरण होता है, वह स्थायी, अनेकों भावों में जिसका संचरण होता है, वह संचारी, जिसकी गति नीचे की ओर होती है, वह अवरोहण तथा ऊपर और गति वाला वह आरोह वर्ण कहा जाता है। अब इन वर्णों के अलंकारों को सुनिये।।८।। मुख्य रूप से अलंकार चार प्रकार के ही होते हैं। स्थापनी, क्रमरंजित, प्रमाद और अप्रमाद। अब इनके लक्षण बताऊंगा।।९।।

विस्वरोष्ट्रकलाश्चैव स्थानं द्वयेकतरागतः।
आवर्त्तस्याक्रमो त्वाक्षी वेकार्या परिमाणतः॥१०॥
कुमारं संपरं विद्धि द्विस्तरं वामनं गतः। एष वै एष चैवस्यकुलारेकः कुलाधिकः॥११॥
श्येन स्वेकांतरे जातकलामात्रान्ते स्थितः:। तस्मिंश्चैव स्वरे वृद्धिर्निष्टप्ते तद्विचक्षणः॥१२॥
श्येनस्तु अवरो हस्तु उत्तरः परिकीर्तितः। प्रमाणघसबिंदुर्ना जायते विदुरे पुनः॥१३॥
कला कार्या तु वर्णानां तदा नुः स्थापितो भवेत्।
विपर्ययस्वरोऽपिस्याद्यस्य प्रादुर्घटी मम॥१४॥
एकोन्तरः स्वरस्तु स्यात्षड्जतः परमः स्वरः।
आक्षेपस्कंदनाकार्यं काकस्येवोच्चपुष्कलम्॥१५॥
संतारौ तौनुसर्वाप्यौ कार्यं वा कारणं तथा। आक्षिप्तमवरोह्यासीत्प्रोक्षमद्यस्तथैव च॥१६॥
द्वादशे च कलास्थानामेकांतरगतस्तथा। प्रेखोल्लिखितमलंकारमेवस्वरसमन्विता॥१७॥
स्वरस्वरबहुग्रामकाप्रयोष्टनुपत्कला। प्रक्षिप्तमेव कलयाचोपादानारयो भवेत्॥१८॥
द्विकलंवायथाभूतयत्रभाषितमुच्यते। उच्चराद्विश्चरारूढातथायाष्टस्वरातथा॥१९॥
वापः स्यादवरोहेण तारतो भवति ध्रुवम्। एकातरं च ह्येते वै तमेवस्वरसत्तमः॥२०॥
मणिप्रच्छेदनामाचचतुष्कलगणः स्मृतः। अलंकारा भवंत्येते त्रिंशद्देवैः प्रकीर्त्तिताः॥२१॥

उष्ट्रकल नामक विकृत स्वर एक स्थान से उत्पन्न होकर दूसरे स्थान में समाप्त होते हैं। उस घुमाव की उत्पत्ति परिमाण के अनुसार करनी चाहिये।।१०।। कुमार नामक स्वर को संपर अल्प विस्तार वाला और वामन को अधिक विस्तार वाला जानिये। दूसरा अपाङ्ग नामक अधिक मात्राओं वाला कुलारेक नामक अलंकार होता है।।११।। श्येन नामक स्वर एक ही स्थान में उत्पन्न होता है तथा कलामात्र के अन्तर में स्थित होता है, उसी स्वर में विलक्षण वृद्धि स्थित होती है।।१२।। श्येन नामक स्वर तो उत्तर अवरोह स्वर होता है। सविन्दु नामक स्वर कला कला के परिणाम में उत्पन्न होता है। विन्दु को एक कला ही करना चाहिये, यह एक ही वर्ण में स्थिर रहने वाली है। स्वरों का उलटफेर भी हो जाता है।।१३-१४।। षड्ज से एक स्वर का अन्तर देकर एकोन्तरा वाद्य करने से उत्कृष्ट स्वर होता है, इसमें काक के समान स्वर का आक्षेप करने से उच्च पुष्कल स्वर होता है।।१५।।

कार्य और कारण रूप से दोनों संतारों का संचारण करना चाहिये। इस प्रकार शीघ्र गति तक अवरोह स्वर का संचार करने से उसी प्रकार का प्रोक्षमद्य अलंकार होता है।।१६।। उसके बाद एकान्तरगत द्वादश कला का स्थान है, इस प्रकार के स्वर से मिला हुआ एक प्रेंखोलित अलंकार होता है।।१७।। पुनः कुछ अधिक स्वरों के संक्रमण के कारण वह पुष्कल कहा जाता है। मात्रा के प्रक्षेप और पाद संक्रमण होने से जो दो कलाओं वाला अलंकार होता है, वह भाषित कहा जाता है। स्वर के उच्चारण उच्चरित स्वर से दो स्वर आरूढ़ कर उसके संयोग से आठ स्वर का योग हो जाता है। तार और मन्दर के क्रम में जो स्वरावरोह होते हैं, वे अन्त में उसी स्वर के एक अन्तरा के बाद उपयुक्त माने जाते हैं। मणिप्रच्छेदन नामक गण चार कलाओं वाला कहा जाता है। इस प्रकार कहे गये तीस अलंकारों का वर्णन किया जा चुका है।।१८-२१।।

वर्णस्थानप्रयोगेण कलामात्राप्रमाणतः। संस्थानं च प्रमाणं च विकारो लक्षणस्तथा॥२२॥
चतुर्विधमिदं ज्ञेयमलंकारप्रयोजनम्। यथात्मनो ह्यलंकारो विपर्यस्तो विगर्हितः॥२३॥
वर्णमेवाप्यलंकर्त्तुं विषमा ह्यात्मसंभवाः। नानाभरणसंयोगा यथा नार्या विभूषणम्॥२४॥
वर्णस्य चैवालंकारो विभूषा ह्यात्मसंभवः। न पादे कुंडलं दृष्टं न कंठे रसना तथा॥२५॥
एवमेवाद्यलंकारे विपर्यस्तो विगर्हितः। क्रियमाणोऽप्यलंकारो रागं यश्चैव दर्शयत्॥२६॥
यथादृष्टस्य मार्गस्यकर्त्तव्यस्यविधीयते। लक्षणंपर्ययस्यापिवर्त्तिकामपिवर्त्तते॥२७॥
याथातथ्येन वक्ष्यामि मासोद्भवमुखोद्भव। त्रयोविंशतिशीतिस्तु विज्ञातपवदैवतम्॥२८॥
नगोनातुपुरस्तानुमध्यमांशस्तु पर्ययः। तयोर्विभागो देवाणां लावण्ये मार्गसंस्थितः॥२९॥
अनुषंगमयो दृष्टं स्वसारं वस्वरातर। विपर्ययः संवर्त्ते च सप्तस्वरपदक्रमम्॥३०॥
गांधारसेतुगीयन्ते वरोमद्रगवानिच। पंचममध्यमंचैवधैवतं तु निषादतः॥३१॥
षड्जर्षभश्चजानीमोमद्र केष्वेवनांतरे। द्वेव्यपरतुकिंविद्याद्वयमुष्णांतिकस्यतु॥३२॥
प्राकृते वैकृते चैव गांधारः स प्रयुज्यते। पदस्यास्त्र यरूपंतुसप्तरूपंतुकैशिकीम्॥३३॥
गांधारस्येनकार्त्स्न्येन चायं यस्यविधिः स्मृतः। एषचैवक्रमोदिष्टोमध्यमांशस्य मध्यमः॥३४॥
यानि प्रोक्तानि गीतानिवतुरूपं विशेषतः। ततः सप्तस्वरंकार्यसप्तरूपंचकौशिकी॥३५॥

वर्ण और स्थान के प्रयोग से और कलामात्र के प्रभाव से संस्थान प्रमाण विकार और लक्षण ये चार अलंकारों के प्रयोजन जानने चाहिये।।२२-२२½।। जब अपना अलंकार उलटा पुलटा विगर्हित हो जाये, तो फिर वर्ण भी अलंकृत करने में समर्थ नहीं होते।।२२½-२३½।। अनेकों आभूषणों के संयोग से जिस प्रकार नारी सुन्दर होती है, उसी प्रकार वर्ण की शोभा को ये अलंकार बढ़ाते हैं।।२३½-२४½।। पैर में कुण्डल नहीं सुशोभित होता तथा कण्ठ में कर्धनी नहीं शोभित होती, उसी प्रकार ये अलंकार उलटे पुलटे होकर शोभित नहीं होते तथा विपरीत रूप से प्रयुक्त होने पर संगीत को विशेष घृषित कर देते हैं।।२४½-२५½।।

जो गायक अलंकारों को यथास्थान धारण कर राग का प्रदर्शन करते हैं, वे संगीत के समुचित प्रयोग का पालन करते हैं।।२५½-२६½।। अब पर्यय का लक्षण वर्तिका को प्रवर्त करता है, अब मैं मासोद्भव और मुखोद्भव को यथार्थ रूप में बतला रहा हूँ।।२६½-२७½।। षड्ज स्वर के तेईस प्रकार के अलंकार विपर्यय द्वारा अस्सी प्रकार के हो जाते हैं। षड्ज पक्ष भी तत्त्व के आदि में और हीन स्वर हो जाता है। गोरूपों के आगे मध्यमांश का स्थापन ही पर्यय है। इन दोनों का विभाग गीतों की सौन्दर्यवृद्धि में सहायक होता है।।२७½-२९।। स्वसार और स्वरान्तर का वर्णन किया गया। सप्तस्वर और पदक्रम के अनुसार पर्यय का प्रयोग होता है। चारों मद्रक गान्धारों से गाये जाते हैं। पंचम धैवत में निषादज का प्रयोग होता है। मद्रकों में षड्ज और ऋषभ का ही प्रयोग होता है, दूसरे का नहीं।।२७½-३१½।। उष्णान्तिक के अन्तिम दो भेद होते हैं। प्राकृत में और वैकृत में गान्धार स्वर प्रयोग किया जाता है। पद के तीन रूप होते हैं और कैशिकी के सात समस्त गान्धार के अंश से पर्यय विधि सम्पन्न की जाती है। इसी प्रकार मध्यमांश मध्यम पद के भी क्रमशः विधान का निर्देश किया गया है।।३१½-३४।। जितने भी गीत वस्तु रूप से वर्णित हुए हैं, उनको सप्तस्वरों से युक्त करना चाहिये तथा सात रूपों में कैषिकी का प्रयोग होना चाहिये।।३५।।

अंगदर्शनमित्याहुर्मानेद्वैसमकेतथा। द्वितीयामासमात्राणाभिः सर्वाः प्रतिष्ठिताः॥३६॥
उत्तरेचप्रकृत्येवंमाताब्राह्मतलायत। तथाहंतारोपिडकेयत्रमायांनिवर्त्तते॥३७॥
पादेनैकेनमायात्रा पादोमतिवीरिण। संख्यापनोपहूतांवैतत्रयानमिति स्मृतम्॥३८॥
द्वितीयपादभंगंचग्रहेनामप्रतिष्ठितम्। पूर्वमष्टतृतीये तुद्वितीयं चापरान्तिमम्॥३९॥
पादभागसपादं तु प्रकृत्यामपि संस्थितम्। चतुर्थमुत्तरं चैवमद्रवत्याचमद्रकौ॥४०॥
मद्रकोदक्षिणस्यापि यथोक्ता वर्त्तते कला। सर्वमेवानुयोगं तु द्वितीयं बुद्धिमिष्यते॥४१॥
पादौवाहरणं चास्यात्पारं नात्र विधीयते। एकत्वं मनुयोगस्य द्वयोर्यद्यद्विजोत्तम॥४२॥
अनेकसमवायस्तु पातका हरिणा स्मृताः। तिसृणां चैव वृत्तीनां वृत्तौ वृत्ते च दक्षिणः॥४३॥
अष्टौ तु समवायस्तु वीरा संमूर्छना तथा। कस्यनासुतराचैव स्वरशाखा प्रकीर्त्तिता॥४४॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते गांधर्वलक्षणं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

तथा अंगदर्शन मान और द्वैसमक में किया जाता है। द्वितीय भावाचरण मात्रा ठीक नहीं होती वह स्वभावतः उत्तर मद्र मे मात्रालीन हो जाती है तथा जहाँ हन्तार पीडक मात्रा से अधिक नहीं होता तथा जिस एक चरण या १ ³/४ चरण होते हैं। अर्थात् पौने दो चरण की मात्रा को अतिवीरण कहा जाता है। उसमें संख्या के संघर्ष होने पर यान नामक अलंकार पैदा होता है।।३६-३८।। दूसरे पाद मे हुए भंग को ग्रहनाम से पुकारा गया है। पहला, आठवां, तीसरा और दूसरा तथा अपर और अन्तिम पद जिनके आधे भाग की समानता के साथ पाँचों में पदभाग और सपादपाद भाग प्रकृति में स्थिर होते हैं। चौथी कला उत्तर में मद्रवती और मद्रक तथा दक्षिण में मद्रक कला ही रहती है। यह सब अनुयोग में द्वितीय बुद्धि अभीष्ट रहती है।।३९-४१।। इसके दो पादों और कलाओं का आकलन का विधान नहीं बताया गया है। हे द्विजोत्तम! दोनों के उपयोग की एकता और अनेक कलाओं का समवाय पताकाहरण कहा जाता है।।४२-४२½।। वृत्त में तीन वृत्तियों की आवृति दक्षिणा कही जाती है। आठ समवाय तथा वीरा मूर्च्छना ये भी आवृत होते हैं। इस प्रकार कस्यना और सुतरा की स्वरशाखा बतायी गयी है।।४२½-४४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६२वां अध्याय भार्गवचरित में गान्धर्व लक्षण का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

भार्गवचरिते इक्ष्वाकुवंशकीर्तनं नाम

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

कुकुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह। हता पुण्यजनैः सर्वा राक्षसैः सा कुशस्थली॥१॥
तद्वै भ्रातृशतं तस्य धार्मिकस्य महात्मनः। निबध्यमानं नाराचैर्विदिशः प्राद्रवद्भयात्॥२॥
तेषां तु तद्भयक्रांतक्षत्रियाणां च विद्रुताम्। अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः॥३॥
शार्याता इति विख्याता दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः। धृष्टस्य धार्ष्टिकं सर्वं रणधृष्टं बभूव ह॥४॥

त्रिसाहस्त्रं तु स गणः क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीर्यवान्॥५॥

अंबरीषस्तु नाभागिर्विरूपस्तस्य चात्मजः। पृषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतरः॥६॥
एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चांगिरसः स्मृताः। रथीतराणां प्रवराः क्षेत्रोपेता द्विजातयः॥७॥
क्षुवतस्तु मनोः पूर्वमिक्ष्वाकुरभिनिःसृतः। तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्॥८॥
तेषां श्रेष्ठो विकुक्षिस्तु निमिर्दंडश्च ते त्रयः। शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पंचाशतस्तु ते॥९॥
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षितः। चत्वारिंशत्तथाष्टौ च दक्षिणस्यां तु वै दिशि॥१०॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-६३

इक्ष्वाकुवंश वर्णन

सूत जी ने कहा—हे ऋषियो! महाराज रैवत (कुकुद्मी) के मेरु शिखर पर चले जाने पर यक्षों और राक्षसों ने कुशस्थली को ध्वस्त कर दिया।।१।। उस धार्मिक महात्मा रैवत के सौ भाइयों को नाराचों द्वारा भगा दिया गया।।२।। उस भय से आक्रान्त होकर भागे हुए क्षत्रियों के वंशज इधर-उधर तितर-बितर हो गये।।३।।

उस समय सभी दिशाओं में शर्यात पुत्र धार्मिक राजा शार्यात विख्यात थे। इसी वंश में धृष्ट के धार्ष्टिक रणधृष्ट नामक पुत्र हुए।।४।। वहाँ क्षत्रिय महात्माओं के तीन हजार गण थे। राजा नभग के पुत्र नाभाग नामक पराक्रमी राजा हुए। नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए, उनके पुत्र विरूप हुये, विरूप के पृषदश्व और पृषदश्व के रथीतर हुए।।५-६।। ये सभी राजागण क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए और इनका गोत्र अंगिरा कहा गया। रतीथर के वंशज ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों हैं।।७।। प्राचीनकाल में मनु द्वारा नाक से छींकने पर इक्ष्वाकु निकल पड़े थे, वे परमदानशील थे, उनके एक सौ पुत्र हुए।।८।। उनमें सबसे बड़े विकुक्षि थे और निमि तथा दण्ड ये तीन थे। विकुक्षि के शकुनि आदि (पचास) पुत्र हुए। वे सभी उत्तराखण्ड के देशों के स्वामी हुए। अड़तालीस दक्षिण में दक्षिण प्रान्तों के अधिपति हुए।।९-१०।।

विराटप्रमुखास्ते च दक्षिणापथरक्षिणः। इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशत्॥११॥

राजोवाच।

मांसमानय श्राद्धे त्वं मृगान्हत्वा महाबल। श्राद्धं मम तु कर्त्तव्यमष्टकानां न संशयः॥१२॥
स गतो मृगयां चैव वचनात्तस्य धीमतः। मृगान्सहस्रकान्हत्वा परिश्रांतश्च वीर्यवान्॥१३॥
भक्षयच्छशकं तत्र विकुक्षिर्मृगयां गतः। आगते हि विकुक्षौ तु समांसे सहसैनिके॥१४॥
वसिष्ठं चोदयामास मांसं प्रोक्षयतामिति। तथेति चोदितो राज्ञा विधिवत्तदुपस्थितम्॥१५॥
स दृष्ट्वोपहतं मांसं क्रुद्धो राजानमब्रवीत्। अनेनोपहतं मांसं पुत्रेण तव पार्थिव॥१६॥
शशभक्षाददुष्टं वै नैव मांसं महाद्युते। शशो दुरात्मना पूर्वममना भक्षितोऽनघ॥१७॥
तेन मांसमिदं दुष्टं पितॄणां नृपसत्तम। इक्ष्वाकुस्तु ततः क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत्॥१८॥
पितृकर्मणि निर्दिष्टो मया च मृगयां गतः। शशं भक्षयसेऽरण्ये निर्घृणः पूर्वमद्य तु॥१९॥

तस्मात्परित्यजामि त्वां गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा।
एवमिक्ष्वाकुणा त्यक्तो वसिष्ठवचनात्सुतः॥२०॥
इक्ष्वाकौ संस्थिते तस्मिञ्छशाद पृथिवीमिमाम्।
प्राप्तः परमधर्मात्मा स चायोध्याधिपोऽभवत्॥२१॥

तदाऽकरोत्स राज्यं वै वसिष्ठपरिनादितः। ततस्तेनैनसा पूर्णो राज्यावस्थो महीपतिः॥२२॥

विराट् प्रमुख राजा दक्षिण प्रान्तों के रक्षक हुए। एक बार अष्टका तिथि के अवसर पर इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को आदेश दिया।।११।।

राजा ने कहा—हे महाबली! तुम मृगों को मार कर मांस लाओ आज अष्टका तिथि है। आज मुझे अष्टकों का श्राद्ध करना है, इसमें कोई संशय नहीं है।।१२।। बुद्धिमान् राजा इक्ष्वाकु की आज्ञा से विकुक्षि मृगों का वध करने के लिए वन को गये। वहाँ वे पराक्रमी राजा हजारों मृगों को मार कर थक गये।।१३।। और मृगया करते समय थके हुए उन्होंने एक खरगोश को खा लिया। सैनिकों के साथ मांस लेकर जब विकुक्षि राजधानी को वापस लौटे, तब राजा ने महर्षि वशिष्ठ से मांस का मन्त्रोच्चारण पूर्वक सिंचन संस्कार कर दीजिये, इस प्रकार कहा।।१४-१४½।। राजा के ऐसा कहने पर वशिष्ठ तथास्तु कहकर यथाविधि सिंचन संस्कार करने के लिये जब वहाँ गये, तब उस अपवित्र हुए मांस को देखकर क्रोधित हो राजा से बोले।।१४½-१५½।। हे राजन्! आपके पुत्र ने इस मांस को दूषित कर दिया, इसने पहले ही खरगोश का मांस खा लिया था, उसी के कारण यह सारा मांस पितरों के लिये दूषित हो गया।।१५½-१६½।। उसके बाद क्रोधित होकर इक्ष्वाकु ने विकुक्षि से यह कहा कि मैंने तुम्हें पितृतर्पण के लिये मांस हेतु मृगया के लिये भेजा था, फिर तुमने वन में आज खरगोश को खा लिया, इसलिए मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ। तुम अपने कर्म के द्वारा कहीं भी जाओ।।१६½-१९½।। उसके बाद महाराजा इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को त्याग दिया, तब बहुत वर्षों बाद राजा इक्ष्वाकु के न रहने पर वशिष्ठ के कहने पर विकुक्षि ने समस्त पृथ्वी का शासन किया तथा फिर वह परमधर्मात्मा अयोध्या का अधिपति बना, तब उसने वशिष्ठ द्वारा प्रेरित होकर राज्य किया।।१९½-२०½।। उसके बाद उसी पाप से पूर्ण राज्य की अवस्था गिरती गयी और समय आने पर एक बार वह राजा मूत्रतरंगित हो

कालेन गतवान्सोऽथ शकृन्मूत्रतरंगितम्। ज्ञात्वैवमेतदाख्यानं ना विधिर्भक्षयेद्बुधः॥२३॥
मांसभक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्। एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः॥२४॥
शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान्।
इंद्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जायते पुरा॥२५॥
पूर्वमाडीबके युद्धे ककुत्स्थस्तेन संस्मृतः। अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुश्चानेन स स्मृतः॥२६॥
दृषदश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादंधस्तु वीर्यवान्। अंधात्तु युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चात्मजः॥२७॥
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता। श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः॥२८॥
बृहदश्वसुतश्चापि कुवलाश्व इति श्रुतः। यस्तु धुन्धुवधाद्राजा धुंधुमारत्वमागतः॥२९॥

ऋषय ऊचुः

धुंधोर्वधं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम विस्तरात्। यदर्थं कुवलाश्वस्य धुंधुमारत्वमागतम्॥३०॥

सूत उवाच

कुवलाश्वस्य पुत्राणां सहस्राण्येकविंशतिः। सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवंतो दुरासदाः॥३१॥
बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः। कुवलाश्वं महावीर्यं शूरमुत्तमधार्मिकम्॥३२॥
बृहदश्वो ह्यभ्यर्षिचत्तस्मिन्राज्ये नराधिपः। पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह॥३३॥
बृहदश्वं महाराजं शूरमुत्तमधार्मिकम्। प्रयास्यंतमुतंकस्तु ब्रह्मर्षिः प्रत्यवारयत्॥३४॥

गया।।२१½-२२½।। इस आख्यान को जानकर विद्वानों ने इस रहस्य को जान लिया कि विना विधि के मांस को नहीं खाना चाहिये; क्योंकि विना विधि मांस खाने वाले इसकी यह दशा हो गयी। विचारशील लोग इस मांस को खाने के विषय में कहा करते हैं कि हमने जिसका मांस इस लोक में खाया है, वह परलोक में मेरे मांस को खायेगा। यही मांस खाने का फल मनीषी लोग वताते हैं।।२२½-२४।। खरगोश खाने वाले उन राजा विकुक्षि का उत्तराधिकारी वलवान् राजा ककुत्स्थ हुआ। प्राचीनकाल में इन्द्र के वैल का रूप धारण करने पर वह राजा उनके ककुद पर सवार हो गया था। यह घटना पहले आडीवक नामक युद्ध में घटित हुई थी इसी कारण इसका नाम ककुत्स्थ हुआ। ककुत्स्थ के पुत्र अनेना हुए और अनेना के पुत्र पृथु हुए।।२५-२६।। पृथु के पुत्र पृषदश्व हुए फिर उन पृषदश्व के पराक्रमी पुत्र अन्ध्र हुए।। अन्ध्र से युवनाश्व का जन्म हुआ और युवनाश्व के पुत्र श्राव हुए।।२७।। राजा श्रावस्तक ने श्रावस्ती नगरी का निर्माण किया। श्रावस्त के उत्तराधिकारी महान् पराक्रमी बृहदश्व हुए।।२८।। बृहदश्व के पुत्र कुवलाश्व हुए, ऐसा सुना गया है, जो धुन्धु राक्षस का वध करने वाले राजा धुन्धुमार कहलाये।।२९।।

ऋषियों ने कहा—हे महामते! सूत जी हम सब धुन्धु के वध का वृतान्त विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं, जिस कारणवश राजा कुवलाश्व को धुन्धुभार की उपाधि मिली।।३०।।

सूत जी ने कहा—हे ऋषियो! राजा बृहदश्व के पुत्रों की संख्या इक्कीस हजार थी। वे सभी विद्याओं में पारंगत परम वलवान् दुर्दमनीय बहुत अधिक दक्षिणा देने वाले, यज्ञ करने वाले तथा धार्मिक विचारों वाले थे।।३१-३१½।। महाराजा बृहदश्व ने सभी में परम धार्मिक शूरवीर एवं साहसी कुवलाश्व को अपने राज्य के उत्तराधिकारी पद पर अभिषिक्त किया तथा पुत्र पर राज्यलक्ष्मी को समर्पित कर वन को चले गये।।३१½-३३।। तब शूरवीर उतम और

उत्तंक उवाच

भवता रक्षणं कार्यं तत्तावत्कर्त्तुमर्हति। निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोऽपि पार्थिवाः॥३५॥
ममाश्रमसमीपेषु मेरोर्हि परितस्तु वै। समुद्रो बालुकापूर्णस्तत्रातिष्ठति भूपते॥३६॥
देवतानामवध्यस्तु महाकायो महाबलः। अंतर्भूमिगतस्तत्र बालुकांतर्हितो महान्॥३७॥
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुंधुर्नाम महासुरः। शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम्॥३८॥
संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं विमुंचति। यदा तदा मही तत्र चलति स्म सकानना॥३९॥
तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत्। आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकंपनम्॥४०॥
सविस्फुलिंगं सज्वालं सधूममतिदारुणम्। तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन्स्थातुं स्व आश्रमे॥४१॥
तं वारय महाबाहो लोकानां हितकाम्यया। तेजस्ते सुमहद्विष्णुस्तेजसाप्याययिष्यति॥४२॥
लोकाः स्वस्था भवंत्वद्य तस्मिन्विनिहते सुरे। त्वं हि तस्य वधार्थाय समर्थः पृथिवीपते॥४३॥
विष्णुना च वरो दत्तो मम पूर्वं यतोऽनघ। न हि धुंधुर्महावीर्यस्तेजसाल्पेन शक्यते॥४४॥
निर्दग्धुं पृथिवीपालैरपि वर्षशतैरपि। वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम्॥४५॥
एवमुक्तस्तु राजर्षिरुत्तंकेन महात्मना। कुवलाश्वं तु तं प्रादात्तस्मिन् धुंधुनिवारणे॥४६॥
भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम। भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुंधुमारो न संशयः॥४७॥

धार्मिक महाराज बृहदश्व को जाते हुए ब्रह्मर्षि उतंक ने रोका।।३४।। उतंक ने कहा—हे राजन् आपको हमलोगों की रक्षा करनी चाहिये; इसलिए आप हमारी रक्षा कीजिये। भयभीत चित्त होने के कारण हम तपस्या नहीं कर पा रहे हैं।।३५।। राजन्! मेरे ही आश्रम के पास मेरु के चारों ओर इस समान मरुस्थल में बालू के समुद्र में निवास बना कर विकराल शरीर वाला महाबलवान् धुन्धु रहता है, उसे देवता भी नहीं मार सकते।।३६-३७।। वह धुन्धु मधु[1] का पुत्र है। फिर भी बहुत क्रूर और कठोर चित्त वाला है। लोकों का विनाश करने के लिए वह सौ वर्षों से तप कर रहा है।।३८।। एक वर्ष के बाद वह अपनी श्वास छोड़ता है। उस समय पृथ्वी वनकानन सहित हिलने लगती है।।३९।। उसकी श्वास की वायु जो धूलि महान् उड़ती है, वह सूर्य के मार्ग को रोककर सात दिन तक भूमि को कंपाती है।।४०।। हे राजन् यहां पर आग की चिन्गारियां धुएं सहित उठती रहती हैं; इसलिये मैं इस आश्रम में नहीं रह सकता हूँ।।४१।। हे महाबाहो! संसार की भलाई की कामना से आप उसे रोकिये। आपका तेज महान् तथा विष्णु के तेज से आपको सहायता प्राप्त होगी।।४२।। आप उसे मारने में समर्थ हैं, उसके मरने पर समस्त लोक स्वस्थ हो जायेंगे।।४३।। हे निष्पाप राजन्! मुझे पहले विष्णु ने वर दिया था कि वह बलवान् धुन्धु किसी अल्प बल वाले के द्वारा अधीन नहीं किया जा सकता।।४४।। सैकड़ों वर्षों से राजा लोगों ने उसे मारने का प्रयास किया, फिर भी नहीं मार सके। उस अत्यन्त बलवान् राक्षस का पराक्रम देवों से भी पराजित करने योग्य नहीं है।।४५।। इस प्रकार जब महर्षि उतंक ने उन राजा बृहदश्व से कहा, तब बृहदश्व ने अपने पुत्र कुवलाश्व को इस धुन्धु को मारने का दायित्व सौंप दिया।।४६।। तथा ऋषि से कहा कि हे भगवन्! हमने तो अब शस्त्र का परित्याग कर दिया है, यह मेरा पुत्र

१. वायुपुराण में इस मधु का नाम मनु दिया है जो उचित नहीं प्रतीत होता है।

स तमादिश्य तनयं धुंधुमारणमच्युतम्। जगाम स वनायैव तपसे शंसितव्रतः॥४८॥
कुवलाश्वस्तु धर्मात्मा पितुर्वचनमाश्रितः। सहस्रैरेकविंशत्या पुत्राणां सह पार्थिवः॥४९॥
प्रायादुत्तंकसहितो धुंधोस्तस्य निवारणे। तमाविशत्ततो विष्णुर्भगवान्स्वेन तेजसा॥५०॥
उत्तंकस्य नियोगात्तु लोकानां हितकाम्यया। तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत्॥५१॥
अद्य प्रभृत्येष नृपो धुन्धुमारो भविष्यति। दिव्यैः पुष्पैश्च तं देवा; संमतात्समवाकिरन्॥५२॥
देवदुंदुभयश्चैव प्रणेदुर्हि तदा भृशम्। स गत्वा पुरुषव्याघ्रस्तनयैः सह वीर्यवान्॥५३॥
समुद्रं खानयामास बालुकापूर्णमव्ययम्। तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुकांतर्हितस्तदा॥५४॥
धुंधुरासादितस्तत्र दिशमाश्रित्य पश्चिमाम्। मुखजेनाग्निना क्रुद्धो लोकानुद्वर्तयन्निव॥५५॥
वारि सुस्राव योगेन महोदधिरिवोदये। सोमस्य सोऽसुरश्रेष्ठो धारोर्मिकलिलो महान्॥५६॥
तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धास्त्रय उर्वरिता मृधे। ततः स राजातिबलो राक्षसं तं महाबलम्॥५७॥
आससाद महातेजा धुन्धुं बंधुनिबर्हणम्। तस्य वारिमयं वेगमपि वत्स नराधिपः॥५८॥
योगी योगेन वह्निं च शमयामास वारिणा। निरस्यंतं महाकायं बलेनोदकराक्षसम्॥५९॥
उत्तंकं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः। उत्तंकश्च वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने॥६०॥
ददतश्चाक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चाप्य धृष्यताम्। धर्मे रतिं च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम्॥६१॥

कुवलाश्व निश्चित धुन्धुमार का हन्ता होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।४७।। उसके बाद अपने पुत्र कुवलाश्व को धुन्धुमार को मारने का दायित्व देकर महाराजा बृहदश्व वन में तपस्या करने चले गये।।४८।। धर्मात्मा राजा कुवलाश्व पिता के वचन के अनुसार अपने २१ हजार पुत्रों के साथ उत्तुंक ऋषि के साथ उस धुन्धु को मारने के लिए चल दिये। उसके बाद भगवान् विष्णु ने अपने तेज से उनको व्याप्त कर दिया।।४९-५०।। लोकों के कल्याण की कामना से उत्तुंग के नियोग के कारण उसके धुन्धुमार को मारने के लिए राजा को चल देने पर स्वर्ग में महान् शब्द हुआ।।५१।। कि आज से यह राजा धुन्धुमार कहे जायेंगे तथा देवताओं ने चारों ओर से उन राजा के ऊपर दिव्य पुष्पों की वर्षा कर दी।।५२।। देवताओं ने दुन्दुभियां बजाना प्रारम्भ कर दिया।।५२½।। फिर उस पुरुष व्याघ्र पराक्रमी राजा कुवलाश्व अपने पुत्रों के साथ बालूकापूर्ण अपार समुद्र को खोदने लगे।।५२½-५३½।।

तब समुद्र को खोदते हुए, उनके पुत्रों ने बालू के अन्तर्गत छिपे हुए धुन्धु राक्षस को पश्चिम दिशा में प्राप्त कर लिया।।५३½-५४½।। मुख से उत्पन्न अग्नि से लोकों को जलाते हुए के समान क्रुद्ध उसने योगबल का सहारा लेकर इतना जल बरसाया कि चारों ओर भीषण समुद्र उमड़ पड़ा।।५४½-५५½।। उस समय वह जलराशि एवं तरंगें इस प्रकार ऊपर की ओर उमड़ने लगीं, मानों चन्द्रमा का उदय हुआ हो। इसके बाद उस धुन्धु ने राजा के तीन पुत्रों को छोड़कर सबको जला दिया।।५५½-५६½।। उसके बाद अत्यन्त बलवान् महापराक्रमी वे राजा बन्धुओं को मारने वाले राक्षस धुन्धु के पास पहुँचे।।५६½-५७½।। तब राजा योगी कुवलाश्व ने अपने योगबल से जल की वर्षा कर अग्नि को शान्त कर दिया।।५७½-५८½।। तब राजा ने अपने बल से उस महाकाय जल राक्षस को निरस्त कर दिया, तब उस राक्षस को मारकर उन राजा ने उत्तुंक मुनि को दिखा दिया।।५८½-५९½।। फिर उत्तुंक मुनि ने उस महात्मा राजा को वर दिया। उसे कभी न नष्ट होने वाली अक्षय सम्पत्ति प्रदान की। शत्रुओं से कभी न पराजित होने का

पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान्स्वर्गे ये रक्षसा हताः।
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते॥६२॥

भद्राश्वः कपिलाश्वश्च कनीयांसौ तु तौ स्मृतौ। धौंधुमारिर्दृढाश्वश्च हर्यस्वस्तस्य चात्मजः॥६३॥
हर्यश्वस्य निकुंभोऽभूत्क्षात्रधर्मरतः सदा। संहताश्वो निकुंभस्य सुतो रणविशारदः॥६४॥
कृशाश्वश्चाकृताश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ। तस्य पत्नी हैमवती सती माता दृषद्वती॥६५।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्य प्रसेनजित्। युवनाश्वसुतस्तस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥६६॥

अत्यन्तधार्मिका गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता।
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता॥६७॥

तस्यास्तु गौरिकः पुत्रश्चक्रवर्ती बभूव ह। मांधाता यौवनाश्वो वै त्रैलोक्यविजयी नृपः॥६८॥
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिका द्विजाः। यावत्सूर्य उदयते यावच्च प्रतितिष्ठति॥६९॥
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते। तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत्॥७०॥
साध्वी बिंदुमती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि। पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातॄणामयुतस्य सा॥७१॥
तस्यामुत्पादयामास मांधाता त्रीन्सुतान्प्रभुः। पुरुकुत्समंबरीषं मुचकुन्दं च विश्रुतम्॥७२॥

आशीर्वाद दिया। धर्म में प्रेमभावना रहे, स्वर्ग में अक्षयवास हो, यह वरदान दिया।।५९½-६१।। इसके बाद जितने पुत्र युद्ध में मर गये थे, उन्हें अक्षय स्वर्ग प्रदान किया। उस राजा कुवलाश्व के जो तीन पुत्र शेष रह गये थे, उनमें सबसे बड़े का नाम दृढाश्व कहा जाता है।।६२।। भद्राश्व कपिलाश्व ये दोनों दृढाश्व के अनुज हैं। धुन्धुमार के ज्येष्ठ पुत्र दृढाश्व का जो पुत्र हुआ, उसका नाम हर्यश्व था।।६३।। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सदा क्षत्रिय धर्म में लगा रहने वाला था। निकुम्भ का पुत्र संहताश्व रणभूमि में परम निपुण सुना जाता है।।६४।। उसके कृशाश्व और अक्षयाश्व नामक दो पुत्र हुए। संहताश्व की एक पत्नी का नाम हेमवती था, जो सत्पुरुषों से सम्माननीय थी।।६५।। उसका अन्य नाम माता दृषद्वती था। तीनों लोकों में वह प्रसिद्ध थी। उसका पुत्र प्रसेनजित् हुआ। प्रसेनजित् का पुत्र युवनाश्व तीनों लोकों में प्रसिद्ध सुना गया।।६६।।

उसकी परम धार्मिक पतिव्रता पत्नी गौरी थी। पति ने एक बार उसे शाप दे दिया, जिसके कारण वह बाहुदा नदी के रूप में बदल गयी।।६७।। उसका पुत्र गौरिक अपने समय का चक्रवर्ती राजा हुआ। युवनाश्व पुत्र मान्धाता त्रैलोक्य विजयी राजा था, उसके विषय में आज भी यहाँ यह पौराणिक ब्राह्मण लोग यह श्लोक उच्चारण करते हैं कि—"यावत्सूर्य उदयते यावच्च प्रतितिष्ठति। सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते।।" अर्थात् जहाँ सूर्य उदित होते हैं, जहाँ तक उनका प्रकाश पहुँचता है, वह सब राजा मान्धाता का क्षेत्र कहा जाता है।।६८-६९½।। उनकी चैत्ररथी नाम की पत्नी थी, जो राजा शशबिन्दु की पुत्री थी।।७०।। उसका अन्य नाम बिन्दुमती था, वह साध्वी और पृथ्वी पर सुन्दरता में अप्रतिम थी अर्थात् उसके समान सुन्दरी पृथ्वी पर,अन्य कोई नहीं थी। अपने दश हजार भाइयों में वह सबसे वड़ी थी। उसका पतिव्रत धर्म प्रशंसनीय था।।७१।। उसके गर्भ से मान्धाता ने तीन पुत्रों को पैदा किया, जो पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकन्द नाम से विशेष रूप से सुने गये।।७२।। अम्बरीष के उत्तराधिकारी पुत्र युवनाश्व हुए, जो नर्मदा नामक रानी से उत्पन्न थे तथा सम्भूत नामक उनका पुत्र हुआ।।७३।।

अंबरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः। नर्मदायां समुत्पन्नः संभूतस्तस्य चात्मजः॥७३॥
संभूतस्यात्मजः पुत्रो ह्यनरण्यः प्रतापवान्। रावणेन हतो येन त्रैलोक्यं विजितं पुरा॥७४॥
तेन दृषदोनरण्यस्य हर्यश्वस्तस्य चात्मजः। हर्यश्वात्तुदृषद्वत्यां जज्ञे च सुमतिर्नृपः॥७५॥

तस्य पुत्रोऽभवद्राजा त्रिधन्वा नाम धार्मिकः।
आसीत्त्रिधन्वनश्चापि विद्वांस्त्रय्यारुणिः प्रभुः॥७६॥

तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः तेन भार्या विदर्भस्य हृता हत्वा दिवौकसः॥७७॥
पाणिग्रहणमंत्रेषु निष्ठानं प्रापितेष्विह। कामाद्बलाच्च मोहाच्च संहर्षेण बलेन च॥७८॥
भाविनोऽर्थस्य च बलात्तत्कृतं तेन धीमता। तमधर्मेण संयुक्तं पिता त्रय्यारुणोऽत्यजत्॥७९॥
अपध्वंसेति बहुशो वदन्क्रोधसमन्वितः। पितरं सोऽब्रवीदेकः क्व गच्छामीति वै मुहुः॥८०॥
पिता चैनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्त्तय। नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन॥८१॥
इत्युक्तः स निराक्रमामन्नगराद्वचनाद्विभोः। न चैनं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः॥८२॥

स तु सत्यव्रतो धीमाञ्श्वपाकावसथांतिके।
पित्रा त्यक्तोऽवसद्धीरः पिता चास्यं वनं ययौ॥८३॥

तस्मिंस्तु विषये तस्य नावर्षत्पाकशासनः। समा द्वादश संपूर्णास्तेनधर्मे वै तदा॥८४॥
दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः। संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः॥८५॥
तस्य पत्नी गले बद्धा मध्यमे पुत्रमौरसम्। शिष्टानां भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतैन वै॥८६॥

सम्भूत का पुत्र अनरण्य प्रतीप राजा हुए, जो रावण के द्वारा मारा गया तथा जिसने पूर्वकाल में तीनों लोकों को जीत लिया था।।७४।। उन अनरण्य के पुत्र राजा दृषदश्व हुए फिर दृषदश्व के पुत्र हर्यश्व हुए। हर्यश्व ने रानी दृषद्वती में राजा सुमति को जन्म दिया।।७५।। उन सुमति का पुत्र राजा त्रिधन्वा नामक धार्मिक राजा हुआ। त्रिधन्वा के भी पुत्र विद्वान् प्रभु त्रयारुणि हुए।।७६।। उन त्रयारुणि के सत्यव्रत नामक महाबली कुमार हुए। उन्होंने विदर्भराज की पत्नी का विवाह के मन्त्रों के उच्चारण करते समय जब सारी क्रियायें समाप्त हो गयी समस्त देवों को हराकर हरण किया था।।७७-७८।। परम बुद्धिमान् राजा सत्यव्रत ने काम से, बल से और संघर्ष से तथा बलवान् हो होनहार के वश में होकर विदर्भपत्नी हरण का दुराचरण किया था; इसलिये उनके दुराचरण से क्रुद्ध राजा त्रयारुणि ने उनका परित्याग कर दिया।।७९।। और क्रोधित होकर उनसे कहा कि घर से निकल जाओ। अपने पिता के इकलौते पुत्र ने पिता से अनेक बार पूँछा कि मैं कहाँ जाऊँ तो पिता ने कह दिया तुम चाण्डालों के साथ जाकर निवास करो। हे कुल को कलंकित करने वाले मैं तुम जैसे पुत्र से पुत्रवान् नहीं होना चाहता हूँ।।८०-८१।।

पिता के इस प्रकार अनादरपूर्ण वचनों के कहे जाने पर सत्यव्रत नगर से बाहर निकल गये। उस समय परमप्रभावशाली महर्षि वशिष्ठ ने भी उन्हें नहीं रोका।।८२।। इधर बुद्धिमान् एवं वीर सत्यव्रत पिता के त्यागने पर चाण्डालों की बस्ती के पास जाकर बस गये और उधर उनके पिता वन को चले गये।।८३।। इस अधर्म से उस प्रान्त में इन्द्र ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की।।८४।। उसी प्रान्त में महर्षि विश्वामित्र अपने स्त्री पुत्रों को निराधार छोड़कर सागर के तटवर्ती प्रान्त में घोर तप कर रहे थे।।८५।। उनकी पत्नी ने अपने अपने बीच वाले पुत्र को गले

तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नरोत्तमः। महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास सुव्रतः॥८७॥
सत्यव्रतो महाबुद्धिर्भरणं तस्य चाकरोत्। विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकंपार्थमेव च॥८८॥
सोऽभवद्गालवो नाम गले बद्धो महातपाः। महर्षिः कौशिकस्तात तेन वीरेण मोक्षितः॥८९॥
तस्य व्रतेन भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया विश्वामित्रकलत्रं च बभार विनये स्थितः॥९०॥
हत्वा मृगान्वराहांश्च महिषांश्च जलेचरान्। विश्वामित्राश्रमाभ्यासे तन्मांसमनयत्ततः॥९१॥
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्। पितुर्नियोगादभजन्नृपे तु वनमास्थिते॥९२॥
अयोध्यां चैव राष्ट्रं च तथैवांतःपुरं मुनिः। याज्योत्थान्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्यरक्षत॥९३॥

सत्यव्रतः सुबाल्यात्तु भविनोऽर्थस्य वै बलात्।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास मन्युना॥९४॥

पित्रा तु तं तदा राष्ट्रात्परित्यक्तं स्वमात्मजम्। न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन वै॥९५॥
पाणिग्रहणमंत्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे। एवं सत्यव्रतस्तां वै हृतवान्सप्तमे पदे॥९६॥
जानन्धर्मान्वसिष्ठस्तु नवमंत्रानिहेच्छति। इति सत्यव्रतो रोषं वसिष्ठे मनसाऽकरोत्॥९७॥
गुरुबुद्ध्या तु भगवान्वसिष्ठः कृतवांस्ततः। न तु सत्यव्रतोऽबुध्यदुपांशुव्रतमस्य वै॥९८॥
तस्मिंस्तु परमो रोषः पितुरासीन्महात्मनः। तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत्पाकशासनः॥९९॥

में बाँधकर शेष पुत्रों को भरण-पोषण के लिए सौ गौओं के बदले में बेच दिया।।८६।। व्रती धर्मात्मा सत्यव्रत ने महर्षि विश्वामित्र के मँझले पुत्र को इस प्रकार गले में बँधा विक्रीत देखकर उस संकट से छुड़ाया।।८७।। उसके बाद महान् बुद्धिमान् सत्यव्रत ने विश्वामित्र को प्रसन्न करने के लिये तथा उनकी कृपा के लिये उस उनकी पत्नी का भरण-पोषण किया।।८८।। वह पुत्र जो गले में बाँधकर बेचा जा रहा था, वह गालव नाम के महान् तपस्वी हुआ। महर्षि कौशिक (विश्वामित्र) को उसी वीर ने मुक्त किया अर्थात् उनके पुत्र को उसी सत्यव्रत ने बचाया।।८९।। उसने अपनी व्रतपरायणा भक्ति, कृपा, सत्य प्रतिज्ञा और विनय से विश्वामित्र की पत्नी का भरण-पोषण किया।।९०।। वह मृगों, शूकरों, भैसों और जलेचर जीवों को मारकर विश्वामित्र के आश्रम के पास में उस मांस को लाता था और फिर पकाता था।।९१।।

इस प्रकार उपांशुव्रत (मौनव्रत) को धारणकर पिता की आज्ञा से बारह वर्ष तक वन में चाण्डालों के पास निवास करने की दीक्षा ग्रहण कर वह निवास करता रहा।।९२।। इधर पिता और पुत्र दोनों की अनुपस्थिति में महर्षि वशिष्ठ अपने साथी उपाध्यायादि द्वारा अन्तःपुर की रक्षा करते रहे।।९३।। सत्यव्रत वचपन से ही दैववश अथवा बलपूर्वक (हठ से) वशिष्ठ पर अधिक क्रोध को धारण कर चुके थे।।९४।। उसका कारण था कि जब सत्यव्रत का पिता ने परित्याग किया था, उस समय मुनि वशिष्ठ ने उसी कारणवश नहीं रोका था।।९५।। कारण था कि जब विदर्भराज की पत्नीकी विदर्भराज के साथ विवाह हो रहा था, उस समय विवाह के मन्त्रों के उच्चारण के बाद जब सात वचन हो रहे थे, उस समय सातवें वचन के वोले जाते समय ही उनकी पत्नी का हरण कर लिया गया था।।९६।। महर्षि वशिष्ठ इस नवमन्त्रों वाले धर्म की मर्यादा को जानते थे; इसलिए उन्होंने उनके इस कार्य का अनुमोदन नहीं किया। इसी कारण सत्यव्रत ने वशिष्ठ के प्रति मन से क्रोध किया था।।९७।। उसके गुरु होने की बुद्धि के कारण भगवान् वशिष्ठ उस अपांशुव्रत धारण करने वाले राजा सत्यव्रत के बारे में सोचा कि इस पर महात्मा पिता का बहुत

तेन त्विदानीं वहता दीक्षां तां दुर्वहां भुवि।
कुलस्य निष्कृतिः स्वस्य कृतेयं च भवेदिति॥१००॥
ततो वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्तं न वारयत्। अभिषेक्ष्याम्यहं नष्टे पश्चादेनमिति प्रभुः॥१०१॥
स तु द्वादशवर्षाणि दीक्षां तामुद्वहन्बली। अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः॥१०२॥
सर्वकामदुधां धेनुं स ददर्श नृपात्मजः।
तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः॥१०३॥
दस्युधर्मगतो दृष्ट्वा जघान बलिनां वरः।
सतु मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान्॥१०४॥
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्तं तदाऽत्यजत्। प्रोवाच चैव भगवान्वसिष्ठं नृपात्मजम्॥१०५॥
पातयेयमहं क्रूर तव शंकुमपोह्य वै। यदि ते त्रीणि शंकूनि न स्युर्हि पुरुषाधम्॥१०६॥
पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च। अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः॥१०७॥
एवं स त्रीणि शंकूनि दृष्ट्वा तस्य महातपाः।
त्रिशंकुरिति होवाच त्रिशंकुस्तेन स स्मृतः॥१०८॥
विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते। ततस्तस्मै वरं प्रादात्तदा प्रीतस्त्रिशंकवे॥१०९॥

अधिक क्रोध था; क्योंकि इसने दुराचरण किया था, जिसके कारण इन्द्र ने बारह वर्ष तक वर्षा नहीं की।।९८-९९।। इधर सत्यव्रत भी पिता के आदेश से बारह वर्ष तक वन में दीक्षा ग्रहण कर रहा है। पृथ्वी पर जनजीवन बहुत कठिन हो गया है। सत्यव्रत के आने पर सब कुछ ठीक हो जायेगा।।१००।। ऐसा विचार कर महर्षि वशिष्ठ ने पिता द्वारा छोड़े गये सत्यव्रत को निवारित किया और कहा कि तुम्हें मैं इसके बाद राज्यपद पर अभिषिक्त करूँगा।।१०१।। उन वशिष्ठ के क्रोधित होने का अन्य भी कारण था कि वह बलवान् राजा जब बारह वर्ष का मौनव्रत कर रहा था, प्रतिदिन मांस लाकर विश्वामित्र के बच्चों का भरण-पोषण करता था। एक दिन किसी तरह मांस नहीं प्राप्त हो सका, तब उसने मांस के अभाव में महात्मा वशिष्ठ की कामधेनु को उस राजपुत्र ने देखा।।१०१-१०२½।। उस कामधेनु को क्रोध से, थकान के कारण तथा अधिक क्षुधा से पीड़ित होने कारण चोर के कर्म की गति को देखकर गौ को मार डाला और फिर उसका मांस स्वयं खाया था, विश्वामित्र के पुत्रों को भी खिलाया। उसको सुनकर वशिष्ठ ने उस राजा को छोड़ दिया।।१०२½-१०४½।।

तब भगवान् वशिष्ठ ने उस राजपुत्र से कहा कि अरे क्रूर दुष्ट! मैं तुम्हें शंकु का अपोह कर गिरा रहा हूँ।।१०४½-१०५½।। हे पुरुषाधम! तुम्हारे तीन शंकु (महान् पाप) हैं, पहला है कि तुमने विदर्भराज की पत्नी का हरण कर पिता को दुःखी किया, दूसरा यह कि तुमने गुरु की गौ का मांस खाया तथा तीसरा कि तुमने संस्कार आदि किये मांस का भक्षण किया। ये तीन तुमने धार्मिक पाप किये हैं। यही तीन शंकु हैं।।१०५½-१०७।। इन तीन शंकुओं को देखकर ही महातपस्वी वशिष्ठ ने उनका नाम त्रिशंकु रख दिया, तब से उनका नाम त्रिशंकु स्मरण किया गया।।१०८।। इधर जब महर्षि विश्वामित्र तपस्या के बाद आश्रम को लौटे और यह सुना कि उनके परिवार का भरण पोषण सत्यव्रत ने किया है, तो उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर सत्यव्रत (त्रिशंकु) को वर प्रदान किया तथा उसको राज्यपद

छंद्यमानो वरेणाथ गुरुं वव्रे नृपात्मजः। सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो वरः॥११०॥

अनावृष्टिभये तस्मिञ्जाते द्वादशवार्षिके।
अभिषिच्य राज्ये पित्र्ये योजयामास तं मुनिः॥१११॥

मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः। सशरीरं तदा तं वै दिवमारोपयत्प्रभुः॥११२॥
मिषतस्तु वसिष्ठस्य तदद्भुतमिवाभवत्। अत्राप्युदाहरंतीमं श्लोकं पौराणिका जनाः॥११३॥
विश्वामित्रप्रसादेन त्रिशंकुर्दिविराजते। देवैः सार्द्धं महातेजाऽनुग्रहात्तस्य धीमतः॥११४॥
तस्य सत्यरता नाम भार्या कैकयवंशजा। कुमारं जनयामास हरिश्चंद्रमकल्पमषम्॥११५॥
स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशंकव इति श्रुतः। आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति परिश्रुतः॥११६॥
हरिश्चन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्यवान्। हरितो रोहितस्थाय चंचुर्हारीत उच्यते॥११७॥
विनयश्य सुदेवश्च चंचुपुत्रौ बभूवतुः। जेता सर्वस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृतः॥११८॥
रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्मार्थकोविदः। रुरुकात्तु वृकः पुत्रस्तस्माद्बाहुर्विजज्ञिवान्॥११९॥
हैहयैस्तालजंघैश्च निरस्तो व्यसनी नृपः। शकैर्यवनकांबोजैः पारदैः पह्लवैस्तथा॥१२०॥
नात्यर्थं धार्मिकोऽभूत्स धर्म्ये सति युगे तथा। सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण वै॥१२१॥
भृगोराश्रममासाद्य ह्यौर्वेण परिरक्षितः। आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा तु भार्गवात्सगरो नृपः॥१२२॥

पर पुनः अभिषिक्त किया।।१०९।। जिस समय विश्वामित्र ने वर देने को कहा तो उस राजपुत्र ने गुरु से यह वर माँगा कि मैं सशरीर स्वर्ग को चला जाऊं।।११०।। कौशिक (विश्वामित्र) ने उस बारह वर्ष के अनावृष्टि वाले अकाल के बीत जाने पर सत्यव्रत को राज्यपद पर अभिषिक्त किया और राज्य पर अभिषिक्त कर उन मुनि ने यज्ञादि कार्य शुरू कराये।।१११।। वशिष्ठ तथा सभी देवताओं के देखते रहने पर ही प्रभु विश्वामित्र ने राजा को सशरीर स्वर्ग में आरोपित कर दिया।।११२।। महर्षि वशिष्ठ के देखते ही यह अद्भुत सा कार्य हो गया। यहाँ भी पौराणिक लोग इस श्लोक का उदाहरण देते हैं कि।।११३।। विश्वामित्रप्रसादेन त्रिशंकुः दिविराजते। देवैः सार्धं महातेजानुग्रहात्तस्य धीमतः।। अर्थात् महामुनि विश्वामित्र की कृपा से त्रिशंकु स्वर्ग में विराजमान हैं। उस परम बुद्धिमान् की कृपा से वह तेजस्वी होकर देवताओं के साथ शोभा पाता है।।११४।।

उस राजा त्रिशंकु की पत्नी केकयवंशज सत्यरता ने निष्पाप कुमार हरिश्चन्द्र को जन्म दिया।।११५।। वे राजा हरिश्चन्द्र त्रैशंकव कहे गये, जो कि राजसूय यज्ञ को करने वाले थे तथा सम्राट् हुए थे, ऐसा सुना गया है।।११६।। हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित हुए, फिर उनका पुत्र हरित हुआ, हरित का पुत्र चंचु नाम से प्रसिद्ध हुआ।।११७।। विनय और सुदेव चंचु के पुत्र हुए। विजय सभी क्षत्रियों का विजेता था इसी लिये उसका नाम विजय हुआ।।११८।। विजय के पुत्र राजा रुरुक हुए, जो राजा धर्म और अर्थ को जानने वाले थे। रुरुक के पुत्र वृक हुए, उस वृक से बाहु का जन्म हुआ।।११९।। वह राजा बाहु बहुत ही व्यसनी था, अतः हैहयवंशीय राजाओं तथा तालजंघ राजाओं द्वारा वह परास्त कर दिया गया। उन राजाओं के साथ शक, यवन, कम्बोज, पारद तथा पह्लव वंश के राजा भी थे। सबने मिलकर उस राजा बाहू को हराया था।।१२०।। धर्मप्रधान सतयुग के होने पर भी वह राजा अत्यधिक धार्मिक नहीं था। उसका पुत्र विष के साथ गर्भ से पैदा हुआ था; इसलिए उसका नाम सगर हुआ।।१२१।। भृगु

जघान पृथिवीं गत्वा तालजंघान्सहैहयान्। शकानां पह्लवानां च धर्मं निरसदच्युतः॥१२३॥
क्षत्रियाणां तथा तेषां पारदानां च धर्मवित्।

ऋषय ऊचुः

कथं स सगरो राजा गरेण सह जज्ञिवान्॥१२४॥
किमर्थं वा शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम्।
धर्मान्कुलोचितान्क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः॥१२५॥

सूत उवाच

बाहोर्व्यसनिनस्तस्य हृतं राज्यं पुरा किल। हैहयैस्तालजंघैश्च शकैः सार्द्धं समागतैः॥१२६॥
यवनाः पारदाश्चैव कांबोजाः पह्लवास्तथा। हैहयार्थं पराक्रांता एते पंच गणास्तदा॥१२७॥
हृतराज्यस्तदाबाहुः सन्यस्य स तदा गृहम्।
वनं प्रविश्य धर्मात्मा सह पत्न्या तपोऽचरत्॥१२८॥
कदाचिदप्यकल्पः स तोयार्थं प्रस्थितो नृपः।
वृद्धत्वाद्दुर्बलत्वाच्च ह्यन्तरा स ममार च॥१२९॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽप्यगात्। सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया॥१३०॥
सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वह्निं तं समरोहयत्।
और्वस्तं भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्याद्विन्र्यवर्त्तयत्॥१३१॥

के आश्रम में पहुंचकर उसकी और्व ऋषि ने रक्षा की थी। उसके बाद उस राजा ने परशुराम से आग्नेय अस्त्र को प्राप्त कर पृथ्वी पर जाकर तालजंघ और हैहयवंश के राजाओं को मार डाला। उस बली राजा सगर ने शकों पह्लवों, पारदों एवम् अन्य क्षत्तियों को भी उनके पूर्वजों के अधिकारों एवं धर्म से वंचित कर दिया।।१२२-१२३½।।

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी वह राजा सगर गर (विष) के साथ पैदा हुआ और किसलिए उस महातेजस्वी राजा ने महान् तेजस्वी शकों एवं क्षत्रियों को भी अपने पूर्वजों के अधिकार और धर्म से वंचित कर दिया।।१२३½-१२५।।

सूत जी बोले—कि सगर के पिता बाहु बहुत व्यसनी थे। अतः व्यसनी बाहु का राज्य पूर्वकाल में हैहय, तालजंघ और शाकों के साथ यवन, पारद, कांबोज तथा पह्लवों ने आक्रमण करके राजा बाहु का सारा राज्य छीन लिया। उस समय इन पाँचों गणों ने हैहय के लिये आक्रमण किया।।१२६-१२७।।

जब उस राजा बाहु का राज्य छिन गया, तब वे घर छोड़कर पत्नी के साथ वन में जाकर तपस्या करने लगे।।१२८।। एक दिन राजा जल लेने के लिये गये और अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल होने के कारण वे मर गये।।१२९।। उनकी पत्नी यादव वंश की कन्या थी, जो गर्भवती थी, जो पीछे रह गयी थी, उसकी सौत (राजा की दूसरी पत्नी) थी, उसके गर्भ को मारने की इच्छा से उसको जहर दे दिया।।१३०।। राजा के मरने पर वह गर्भवती यादवी पति की चिता बनाकर पति के साथ आग में जलने के लिए चिता पर चढ़ गयी। भृगुवंशी महर्षि और्व ने देखकर उस पर दया आ जाने के कारण उसे चिता से हटा लिया।।१३१।।

तस्याश्रमे तु गर्भं सा गरेण च तदा सह। व्यजायत महाबाहुं सगरं नाम धार्मिकम्॥१३२॥

औौर्वस्तु जातकर्मादीन्कृत्वा तस्य महात्मनः।
अध्याप्य वेदाञ्छास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत्॥१३३॥

ततः शकान्स यवनान्कांबोजान्पारदांस्तथा। पह्लवांश्चैव निःशेषान्कर्तुं व्यवसितो नृपः॥१३४॥

ते हन्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना। वसिष्ठं शरणं सर्वे संप्राप्ताः शरणैषिणः॥१३५॥

वसिष्ठो वीक्ष्य तान्युक्तान्विनयेन महामुनिः। सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाऽभयं तथा॥१३६॥

सगरं स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च। जघान धर्मं वै तेषां वेषान्यत्वं चकार ह॥१३७॥

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत।
यवनानां शिरः सर्वं कांबोजनानां तथैव च॥१३८॥

पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः।
निःस्वाध्यायवषट्कारा: कृतास्तेन महात्मना॥१३९॥

शका यवनकांबोजाः पह्लवाः पारदैः सह।
कलिस्पर्शा माहिषिका दार्वाश्चोलाः खशास्तथा॥१४०॥

सर्वे ते क्षत्रियगणा धर्मस्तेषां निराकृतः। वसिष्ठवचनात्पूर्वं सगरेण महात्मना॥१४१॥

स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्।
अश्वं वै चारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः॥१४२॥

उन महर्षि के आश्रम पर रहते हुए, उसने गर (विष) के साथ महाबाहु धार्मिक सगर नाम के राजा को जन्म दिया; क्योंकि वह गर (जहर/विष) के साथ पैदा हुए थे, इसलिये उन राजा का नाम सगर हुआ; क्योंकि "गरेण सहित इति सगरः" (गर के साथ) पैदा हुआ इसलिए सगर हुआ।।१३२।। महर्षि और्व ने उन महापुरुष के जातकर्म आदि संस्कार करके वेदशास्त्रों को पढ़ाकर उसके बाद अस्त्र संचालन सिखाया।।१३३।। अस्त्र विद्या प्राप्त उस राजा सगर ने यवन, काम्बोज, पारद तथा पह्लवों को पूरी तरह समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया।।१३४।। महात्मा वीर राजा सगर के द्वारा मारे जाते हुए वे सब शरण चाहते हुए मुनि वशिष्ठ की शरण में गये।।१३५।। यहाँ मुनि वशिष्ठ ने विनय करते हुए सब राजाओं को देखकर उनको अभयदान देकर महाराजा सगर को रोक दिया।।१३६।। राजा सगर ने उनको समूल नाश करने की अपनी प्रतिज्ञा तथा गुरु के वचन को सुनकर सोच-समझकर उनके धर्म को मार दिया और उनके वेशभूषा को अन्य-अन्य प्रकार का बना दिया।।१३७।। शकों को आधे शिर का मुण्डन कर छोड़ दिया। उसी प्रकार काम्बोजों और यवनों का किया, उनका भी आधा सिर मुण्ड दिया।।१३८।। तथा उन महात्मा ने पारदों के सिर दाढ़ी मूँछ सब बाल कटवा दिये तथा पह्लवों का दाढ़ी मूँछ रखने वाला बना दिया तथा वे न कोई पूजा-पाठ यज्ञ कर सकते थे और न उन्हें स्वाध्याय करने का अधिकार था।।१३९।। उस राजा सगर ने वशिष्ठ के वचन से शक, यवन, काम्बोज पह्लव और पारदों के साथ कलियुग को स्पर्श करने वाले माहषिक, दर्भ, चोल तथा खश वंशज सब क्षत्रियों को उनके धर्म से अलग कर दिया।।१४०-१४१।। समस्त पृथ्वी को जीतकर अश्वमेधयज्ञ की दीक्षा

तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे। बेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः॥१४३॥
स तं देशं सुतैः सर्वैं खानयामास पार्थिवः। आसेदुश्च ततस्तस्मिन्खनन्तस्ते महार्णवे॥१४४॥
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम्। विष्णुं कपिलरूपेण हंसं नारायणं प्रभुम्॥१४५॥
तस्य चक्षुः समासाद्य तेजस्तत्प्रतिपद्यते। दग्धाः पुत्रास्तदा सर्वे चत्वारस्त्ववशेषिताः॥१४६॥
बर्हिकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथश्च यः। शूरः पंचजनश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः॥१४७॥
प्रादाच्चत्तस्य भगवान्हरिर्नारायणो वरान्। अक्षयत्वं स्ववंशस्य वाजिमेधशतं तथा॥१४८॥
विभुः पुत्रं समुद्रं च स्वर्गे वासं तथाऽक्षतम्। तं समुद्रोऽश्वमादाय ववंदे सरितांपतिः॥१४९॥
सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै। तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रात्प्राप्य पार्थिवः॥१५०॥
आजहाराश्वमेधानां शतं चैव पुनःपुनः। षष्टिं पुत्रसहस्राणि दग्ध्यान्यस्य रूपा विभो॥१५१॥
तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानि महात्मनाम्। पुत्राणां तु सहस्राणि षष्टिस्तु इति नः श्रुतम्॥१५२॥

ऋषय ऊचुः

सगरस्यात्मजा नाना कथं जाता महाबलाः।
विक्रांताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद॥१५३॥

लेकर उस धर्म विजयी राजा ने अश्व को विचरण करने के लिये छोड़ दिया।।१४२।। (अश्व को घुमाने का उद्देश्य होता है कि जहाँ जहाँ अश्व जाये वहाँ वहाँ अपने राज्य कायम करना तथा जो राजा अश्व को रोके उसे पराजित करना)। उस अश्व को सगर पुत्र घुमाते हुए पूर्वदक्षिण समुद्र पर ले गये वहाँ वेला के समीप उस अश्व को चुरा लिया गया और भूमि में प्रवेश करा दिया अर्थात् भूमि में छिपा दिया।।१४३।। उस स्थान को राजा सगर ने अपने पुत्रों द्वारा खुदवाया, उसके बाद वहाँ खोदते हुए, उस महासमुद्र में उन आदिपुरुष, विष्णु के अवतार प्रजापति कपिलदेव को जो कि साक्षात् कपिल के रूप में विष्णु ही थे। हंस नारायण प्रभु कपिल मुनि को देखा।।१४४-१४५।।

उनके नेत्रों के तेज को प्राप्त कर सगर के समस्त पुत्र भस्म हो गये, उनमें केवल चार पुत्र ही शेष रह गये।।१४६।। वे चार पुत्र थे—बर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और शूर पंचजन जो कि चारों सगरके वंश को आगे बढ़ाने वाले थे।।१४७।। उसके बाद भगवान् नारायण हरि ने उन्हें वर प्रदान किये, जो वर थे कि पहला—उन्हें अपने वंश का अक्षयत्व (कभी नाश न होना) तथा दूसरा सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्रदान करना।।१४८।। उन विभु ने सगर पुत्रों को नित्य स्वर्ग में वास का वर दिया। उसके बाद नदियों के स्वामी समुद्र ने अश्व को लाकर सगर को दिया और उनकी वन्दना की।।१४९।। सगर पुत्रों ने अपने उस कर्म से सागर की, उपाधि प्राप्त की जिसको सागर (समुद्र) ने उन्हें स्वयं प्रदान किया।।१४९½।। उसके बाद समुद्र से उस अश्वमेध यज्ञ के अश्व को प्राप्त करके राजा सगर ने सौ अश्वमेध यज्ञों को पुनः पुनः पूरा किया।।१४९½-१५०½।। उन भगवान् कपिल मुनि के क्रोध से साठ हजार पुत्र भस्म कर दिये गये। उन महात्माओं में नारायण तेज प्रवेश कर गया; क्योंकि विष्णु के अवतार साक्षात् विष्णु ने ही उन्हें भस्म किया था; इसलिये विष्णु का तेज उन सगर पुत्रों में समा गया था। सगर के साठ हजार ही पुत्र थे यह तो हमने सुना है।।१५०½-१५२।।

ऋषियों ने कहा—कि हे सूथ जी हमें बताइये कि सगर के अनेकों प्रकार के साठ हजार पुत्र कैसे और किस विधि से विशेष पराक्रमी और महान् बलशाली हुए।।१५३।।

सूत उवाच

द्वे पत्न्यौ सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे। ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः॥१५४॥
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परधर्मिणी। अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि॥१५५॥
और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तपसाऽराधितः प्रभुः। एकाजनिष्ये पुत्रं वंशकर्त्तारमीप्सितम्॥१५६॥
षष्टिं पुत्रसहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति। मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी पुत्रमेककम्॥१५७॥
वंशस्य कारणं श्रेष्ठं जग्राह नृप संसदि। षष्टिं पुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तथा॥१५८॥
महाभागा प्रमुदिता जग्राह सुमतिस्तथा। अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठं पुत्रं व्यजायत॥१५९॥
असमंज इति ख्यातं काकुत्स्थं सगरात्मजम्। सुमतिस्त्वपि जज्ञे वै गर्भतुंबं यशस्विनी॥१६०॥
षष्टिः पुत्रसहस्राणां तुंबमध्याद्विनिस्सृताः। घृतपूर्णेषु कुंभेषु तान्गर्भान्यदधात्ततः॥१६१॥
धात्रीश्चैकैकशः प्रादत्तावतीः पोषणे नृपः। ततो नवसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम्॥१६२॥
कुमारास्ते महाभागाः सगरप्रीतिवर्द्धनाः कालेन महता चैव यौवनं समुपाश्रिताः॥१६३॥
केशन्यास्तनयो योऽन्यः सगरस्यात्मसंभवः। असमंज इति ख्यातो बर्हिकेतुर्महाबलः॥१६४॥

सूत जी ने कहा—राजा सगर ने तप से निष्पाप दो पत्नियों को प्राप्त किया था अर्थात् उसकी दो पत्नियाँ थीं, बड़ी पत्नी का नाम केशिनी था, जो विदर्भराज की पुत्री थी।।१५४।। तथा जो छोटी पत्नी थी, वह राजा अरिष्टनेमि की पुत्री परमधर्मिणी थी, जिसके समान पृथ्वी पर अन्य कोई सुन्दरी नहीं थी।।१५५।। उस राजा सगर ने प्रभु महामुनि और्व की तप से आराधना की थी इसलिए उन्होंने उसे वर प्रदान कियाथा कि बड़ी पत्नी वंश बढ़ाने वाले मनवाञ्छित एक ही पुत्र को जन्म देगी।।१५६।। तथा दूसरी पत्नी सुमति साठ हजार पुत्रों को जन्म देगी।।१५६½।। और्व मुनि के वचन को सुनकर केशिनी ने एक ही श्रेष्ठ पुत्र को जो वंश का कारण था अर्थात् उसी से आगे वंश चला। उसका वर भी राजा ने ग्रहण किया था तथा सुपर्ण की भगिनी प्रमुदिता महाभागा सुमति साठ हजार पुत्रों का वर ग्रहण किया।।१५७½-१५८½।। इसके बाद समय बीतने पर ज्येष्ठा (बड़ी) पत्नी केशिनी ने ज्येष्ठ पुत्र को जन्म दिया। इस प्रकार उसका नाम असमंजस प्रसिद्ध हुआ तथा सगरपुत्र को काकुत्स्थ भी कहा गया।।१५८½-१५९½।। उधर यशस्विनी सुमति ने भी गर्भ का लोथड़ा (घड़ाकार) को जन्म दिया[1] तथा उस तुम्ब (जार) के मध्य से साठ हजार पुत्र निकले तथा फिर उन गर्भों को घृतपूर्ण घड़ों में रख दिया गया[2]।।१५९½-१६१।।

महाराजा सगर ने एक एक करके अलग धात्रियों (धाओं) को पुत्र पोषण करने के लिये दे दिये। उसके बाद नौ महीने में आसानी से सभी पुत्र सम्यक् प्रकार उठ खड़े हुए।।१६२।। वे सभी महाभाग्यशाली पुत्र राजा सगर की प्रीति को बढ़ाने वाले थे, राजा उन सब पर बहुत अधिक प्यार करते थे। बड़े समय के बाद उन्होंने सम्यक् प्रकार से यौवन को प्राप्त किया।।१६३।। तथा ज्येष्ठा पत्नी केशिनी का जो अन्य सगर का पुत्र था, उसका नाम असमंजस

---

१. जैसे मछली के पेट से एक जार के अन्तर्गत असंख्य अण्डे होते हैं, उसी प्रकार का कुछ असंख्य सूक्ष्म शरीरों का पुंज रहा होगा, यह सम्भव है, इस पर सन्देह नहीं किया जाना चाहिये

२. जिस प्रकार तेल में डूबा हुआ आम अथवा कोई फल का अचार सड़ता नहीं, उसी तरह उस समय घी के घड़े में रखकर उनके पोषण की व्यवस्था रही होगी, जो अवश्य वैज्ञानिक पद्धति है।

पौराणामहिते युक्तः पित्रा निर्वासितः पुरात्।
तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम असमंजस्य वीर्यवान्॥१६५॥
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुतः। दिलीपात्तु महातेजा वीरो जातो भगीरथः॥१६६॥
येन गंगा सरिच्छ्रेष्ठा विमानैरुपशोभिता। इहानीता सुरेशाद्वै दुहितृत्वे च कल्पिता॥१६७॥
अत्राप्युदाहरंतीमं श्लोकं पौराणिका जनाः। भगीरथस्तु तां गंगामानयामास कर्मभिः॥१६८॥
तस्माद्भागीरथी गंगा कथ्यते वंशवित्तमैः। भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह॥१६९॥
नाभागस्तस्य दायादो नित्यं धर्मपरायणः। अम्बरीषः सुतस्तस्य सिंधुद्वीपस्ततोऽभवत्॥१७०॥
पूर्वे वंशपुराणज्ञा गायंतीति परिश्रुतम्। नाभागस्यांबरीषस्य भुजाभ्यां परिपालिता॥१७१॥
बभूव वसुधात्यर्थं तापत्रयविवर्जिता। अयुतायुः सुतस्तस्य सिंधुद्वीपस्य वीर्यवान्॥१७२॥
अयुतायोस्तु दायाद ऋतुपर्णो महायशाः। दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा नलसखो बली॥१७३॥
नलौ द्वाविति विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ। वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः॥१७४॥
ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत्सर्वकामो जनेश्वरः। सुदासस्तस्य तनयो राजा इंद्रसखोऽभवत्॥१७५॥
सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः।
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च सः॥१७६॥

प्रसिद्ध हुआ, उसका नाम महाबली बर्हिकेतु भी था।।१६४।। वह असमंजस पुरवासियों के अहित करने में संलग्न हो गया। नगर में उसने हिंसा बलात्कार आदि द्वारा आतंक मचा दिया था। इसलिए पिता ने उसे नगर से निकाल दिया था। बाद में उस असमंजस का पुत्र अंशुमान् बहुत पराक्रमी हुआ।।१६५।। उस अंशुमान् के पुत्र महाराजा दिलीप हुए। ऐसा सुना जाता है तथा दिलीप से महातेजस्वी वीर भगीरथ हुए।।१६६।। जो विमानों से शोभित श्रेष्ठ नदी गंगा को स्वर्ग से यहाँ लाये। वह गंगा इन्द्र के द्वारा उनकी पुत्री के रूप कल्पित की गयी।।१६७।। यहाँ भी पौराणिक लोग इस श्लोक का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि भगीरथ ही तो अपने कर्म से गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाये थे।।१६८।।

इसी कारण तो श्रेष्ठ कुलवालों द्वारा गंगा भागीरथी कही जाती हैं। भगीरथ के पुत्र का नाम भी प्रसिद्ध ही था। उनके पुत्र नाभाग भी नित्यधर्मपरायण और प्रसिद्ध राजा हुए। उन नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए फिर अम्बरीष के पुत्र सिन्धुद्वीप हुए।।१६९-१७०।। प्राचीन काल में प्राचीन वंशों के जानने वाले यह गाते हुए सुने जाते हैं कि नाभाग और अम्बरीष की भुजाओं से परिपालित पृथ्वी बहुत अधिक तापत्रय रहित थी। अर्थात् उनके राज्य में प्रजा को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक किसी तरह का दुःख नहीं था।।१७०-१७१½।। उसके बाद अम्बरीष के पुत्र सिन्धुद्वीप के पुत्र अयुत हुए। अयुत के महायशस्वी राजा ऋतुपर्ण हुए। दिव्य नेत्र और हृदय के ज्ञाता वे बली राजा नल के मित्र थे।।१७१½-१७३।। पुराण के इतिहास में दृढ़व्रत को धारण करने वाले दो प्रसिद्ध नल हुए हैं। एक वीरसेन के पुत्र नल हुए थे तथा दूसरे नल इक्ष्वाकु कुल को ऊँचा उठाने वाले नल हुए।।१७४।। ऋतुपर्ण के पुत्र नरेश्वर सर्वकाम राजा सुदास हुए, सुदास के पुत्र इन्द्रसख (इन्द्र के मित्र) थे। सुदास के पुत्र होने के कारण उनका नाम सौदास हुआ, जो कल्माषपाद नाम से प्रसिद्ध हुये थे तथा वे मित्र सह भी थे।।१७५-१७६।।

वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके। अश्मकं जनयामास त्विक्ष्वाकुकुलवृद्धये॥१७७॥
अश्मकस्यौरसो यस्तु मूलकस्तत्सुतोऽभवत्। अत्राप्युदाहरंतीमं मूलकं वै नृपं प्रति॥१७८॥

स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतोऽवसत्।
विवस्त्रस्त्राणमिच्छन्वै नारीकवच ईश्वरः॥१७९॥
मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथः स्मृतः।
तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा त्विडविडो बली॥१८०॥

आसीत्त्वैडविडः श्रीमान्कृशशर्मा प्रापवान्। पुत्रो विश्वसहस्त्रस्य पुत्रीकस्या व्यजायत॥१८१॥

दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत्खट्वांग इति विश्रुतः।
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम्॥१८२॥
त्रयोऽभिसंहिता लोका बुद्ध्या सत्येन चैव हि।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत॥१८३॥

अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान्। राजा दशरथो नाम इक्ष्वाकुकुलनंदनः॥१८४॥
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः। भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः॥१८५॥
माधवं लवणं हत्वा गत्वा मधुवनं च तत्। शत्रुघ्नेन पुरी तत्र मथुरा विनिवेशिता॥१८६॥
सुबाहुः शूरसे नश्च शत्रुघ्नस्य सुतावुभौ। पालयामासतुस्तौ तु वैदेह्यौ मथुरां पुरीम्॥१८७॥

महातेजस्वी वशिष्ठ ने इक्ष्वाकु कुल की वृद्धि के लिये कल्माषपाद के क्षेत्र में अर्थात् उनकी पत्नी के साथ सम्भोग से अश्मक को पैदा किया था।।१७७।। अश्मक जो औरस पुत्र थे, उनके पुत्र मूलक हुए। आज भी राजा मूलक के प्रति यह श्लोक उदाहृत करते हैं।।१७८।। जिसका भाव है कि परशुराम के भय से वह राजा स्त्रियों से घेर लिया गया था। वस्त्रविहीन उस राजा ने नारीरूपी कवच को धारण कर लिया था। अर्थात् जब परशुराम ने उसे मारना चाहा होगा, उस समय उसे स्त्रियों ने घेर लिया होगा। अतः स्त्रियों पर प्रहार करना युद्ध नियम के विपरीत मानकर परशुराम ने उसे छोड़ दिया होगा। इस प्रकार स्त्रीरूपी कवच को पहनकर वह राजा बच गया था।।१७९।।

मूलक के भी धर्मात्मा पुत्र राजा शतरथ स्मरण किये गये हैं। उस शतरथ के बली राजा इडविड उत्पन्न हुए।।१८०।। इडविड के पुत्र प्रतापी राजा कृशशर्मा हुए। उनके विश्वसहस्र हुए। विश्वसहस्र के पुत्रीक हुए।।१८१।। उनके पुत्र राजा दिलीप हुए, जो खट्वाङ्ग इस नाम से विशेष प्रसिद्ध हुए।।१८१-१८१½।। जिस खट्वाङ्ग दिलीप ने स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर थोड़ा-सा जीवन प्राप्त कर तीनों लोगों को बुद्धि और सत्य से युक्त कर दिया।।१८१½-१८२½।। उन खट्वाङ्ग दिलीप के पुत्र विशाल भुजाओं वाले महाराजा रघु उत्पन्न हुए।।१८३।। उन रघु से पराक्रमी पुत्र राजा अज हुए। उनके पुत्र राजा दशरथ हुये, जो इक्ष्वाकु कुल को आनन्दित करने वाले परम बलशाली थे।।१८४।। दशरथ के पुत्र राम हुए, जो लोकप्रसिद्ध धर्मज्ञ और वीर पुरुष थे तथा उन राजा दशरथ के लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक तीन पुत्र और थे।।१८५।। मधु के पुत्र लवणासुर का वध करके और मधुवन में प्रवेश कर शत्रुघ्न ने वहीं पर मथुरा नामक नगरी बसायी थी।।१८६।। सुबाहु और शूरसेन शत्रुघ्न के दो पुत्र हुए। वे सुबाहु

अंगदश्चंद्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजावुभौ। हिमवत्पर्वतस्यान्ते स्फीतौ जनपदौ तयोः॥१८८॥
अंगदस्यांगदाख्याता देशे कारयते पुरी। चंद्रकेतोस्तु विख्याता चंद्रवक्त्रा पुरी शुभा॥१८९॥
भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कर एव च। गांधारविषये सिद्धे तयोः पुर्यो महात्मनोः॥१९०॥

तक्षस्य दिक्षु विख्याता नाम्ना तक्षशिला पुरी।
पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती॥१९१॥
गाथां चैवात्र गायंति ये पुराणविदो जनाः।
रामेण बद्धां सत्यार्थां माहात्म्यात्तस्य धीमतः॥१९२॥
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः।
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कंधो महाभुजः॥१९३॥

दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत्। ऋक्सामयजुषां घोषो यो घोषश्च महास्वनः॥१९४॥

अव्युच्छिन्नोऽभवद्राज्ये दीयतां भुज्यतामिति।
जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशानां चकार सः॥१९५॥

तमागस्कारिणं पूर्वं पौलस्त्यं मनुजर्षभः। सीतायाः पदमन्विच्छनिजघान महायशाः॥१९६॥
सत्त्ववान्गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा। अतिसूर्यं च वह्निः च रामो दाशरथिर्बभौ॥१९७॥

और शूरसेन वैदेह्य अर्थात् विदेह की राजकुमारी से उत्पन्न थे। उन्होंने अपने पिता शत्रुघ्न के साथ मथुरा नगरी का शासन तथा वहाँ की प्रजा का पालन-पोषण किया।।१८७।। लक्ष्मण के अङ्गद और चन्द्रकेतु दो पुत्र थे। उन दोनों के राज्य हिमालय पर्वत के सीमावर्ती प्रान्तों में फैले हुए थे।।१८८।। लक्ष्मण के बड़े पुत्र अंगद की राजधानी कारपथ देश में अंगदीया नाम से प्रसिद्ध पुरी थी तथा चन्द्रकेतु की चन्द्रवक्त्रा नामक बहुत अधिक शोभायमान पुरी थी।।१८९।। भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कल दोनों बड़े बीर थे। उन दोनों महाबलशालियों की राजधानी गान्धार नामक सिद्ध देश में थी।।१९०।। राजा तक्ष की समस्त दिशाओं में विख्यात नगरी तक्षशिला थी तथा वीर पुष्कर की भी विख्यात नगरी पुष्करावती थी।।१९१।।

पुराणों के जानने वाले लोग परम बुद्धिमान् राम के विषय में उनकी महत्ता को प्रकट करने वाली तत्त्वपूर्ण यशोगाथायें गाते हैं। वे ऐसा कहते हैं कि श्यामवर्ण वाले, लाल नेत्रों वाले, तेज से दीप्त मुखमण्डल वाले, कम बालने वाले, युवा घुटनों से नीचे तक जाने वाली भुजाओं वाले, सुन्दर मुखवाले, सिंह के समान कन्धो वाले, राजा राम ने दश हजार वर्षों तक राज्य किया। उनके राज्य में चारों ओर ऋग्वेद, युजर्वेद एवं सामवेद की सुन्दर मनोहारिणी ध्वनि सुनायी देती थीं। उनके धनुष की प्रत्यंचा की ध्वनि वहुत कठोर थी।।१९२-१९४।। उनके राष्ट्र में किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। लोगों में खूब दान करो, खूब खाओ, पीओ की धूम मची थी। उन राम ने वनवास में रहकर देवों का एक परमावशयक कार्य सिद्ध किया था।।१९५।। उन मनुज शिरामणि महायशस्वी राम ने पुलस्त्य मुनि के वंश में उत्पन्न होने वाले पापी रावण का संहार सीता को खोजते समय किया था।।१९६।। दशरथ पुत्र राम, पराक्रमी, सर्वगुणसम्पन्न, अपने तेज से चमकते हुए, अत्यधिक सूर्य की प्रतिभा तथा अग्नितुल्य तेज वाले थे।।१९७।।

एवमेष महाबाहोस्तस्य पुत्रौ बभूवतुः। कुशो लव इति ख्यातौ तयोर्देशो निबोधत॥१९८॥
कुशस्य कोशला राज्यं पुरी चापि कुशस्थली। रम्या निवेशिता तेन विंध्यपर्वतसानुषु॥१९९॥
राज्यं वस्य च महात्मनः। श्रावस्तिर्लोकविख्याता कुशवंशं निबोधत॥२००॥

कुशस्य पुत्रो धर्मात्मा ह्यतिथिः सुप्रियातिथिः।
अतिथेरपि विख्यातो निषधो नाम पार्थिवः॥२०१॥
निषधस्य नलः पुत्रो नलस्य तु नभोः सुतः।
नभसः पुण्डरीकस्तु क्षेम धन्वा ततः स्मृतः॥२०२॥

क्षेमधन्वसुतो राजा देवानीकः प्रतापवान्। आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः॥२०३॥

अहीनगोस्तु दायादः पारियात्रो महायशाः।
दलस्तस्यात्मजश्चापि तस्माज्जज्ञे बलो नृपः॥२०४॥

उलूको नाम धर्मात्मा बलपुत्रो बभूव ह। वज्रनाभः सुतस्तस्य शंखणस्तस्य चात्मजः॥२०५॥

शंखणस्य सुतो विद्वान् व्युषिताश्व इति श्रुतः।
व्यषिताश्वसुतश्चापि राजा विश्वसहः किल॥२०६॥
हिरण्यनाभः कौशल्यो वरिष्ठस्तत्सुतोऽभवत्।
पौष्यंजेश्च स वै शिष्यः स्मृतः प्राच्येषु सामसु॥२०७॥
शतानि संहितानि तु पंच योऽधीतवांस्ततः।
तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता॥२०८॥

इस प्रकार इन महाबाहु राम के लव और कुश दो विख्यात पुत्र हुए। अब उनके देशों को सुनिये।।१९८।। कुश का कौशल नाम का राज्य था और उनकी नगरी कुशस्थली थी। उन कुश की विन्ध्य पर्वत के पास बहुत ही रम्य नगरी थी।।१९९।। उत्तर कौशल में महात्मा लव का राज्य था। लोक विख्यात श्रावस्ती नगरी लव की राजधानी थी। अब कुश वंश को सुनिये।।२००।। कुश का पुत्र धर्मात्मा अतिथि सप्रिय अतिथि हुए, अतिथि के भी विख्यात निषध नाम के राजा हुए। ये कुश पुत्र अतिथि के पुत्र थे।।२०१।। निषध के पुत्र नल, तथा नल के पुत्र नभा हुए तथा नभा के पुत्र पुण्डरीक, पुण्डरीक के क्षेमधन्वा हुए, ऐसा स्मरण किया गया है।।२०२।। उसके क्षेमधन्वा के पुत्र राजा देवानीक हुए, फिर देवानीक के पुत्र अहीनगु नाम के राजा हुए।।२०३।।

अहीनगु के उत्तराधिकारी महान् यशस्वी राजा पारियात्र हुए, उन पारियात्र के पुत्र राजा दल हुए, उन दल से राजा बल का जन्म हुआ।।२०४।। बल के पुत्र धर्मात्मा उलूक नाम के राजा हुए। फिर उलूक के पुत्र वज्रनाभ हुए, उनके पुत्र शंखण हुए।।२०५।। शंखण के विद्वान् पुत्र व्युषिताश्व सुने गये हैं और व्युषिताश्व के पुत्र भी राजा विश्वसह हुए।।२०६।। विश्वसह के पुत्र राजा हिरण्यनाभ कौशल्य हुए, उनके सबसे बड़े पुत्र हुए, जो प्राचीन सामवेद के गीतों में पौष्यंजि के शिष्य थे ऐसा स्मरण किया जाता है।।२०७।। इन्होंने एक सौ पाँच १०५ संहिताओं का अध्ययन किया था। उन हिरण्यनाभ से ही बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य ने योग की शिक्षा प्राप्त की थी।।२०८।।

पुष्यस्तस्य सुतो विद्वान्ध्रुवसंधिश्च तत्सुतः। सुदर्शनस्तस्य सुतो ह्यग्निवर्णः सुदर्शनात्॥२०९॥

अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रकस्य मरुः स्मृतः।
मरुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थितः॥२१०॥

एकोनविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावर्त्तकः प्रभुः। प्रभुसुतो मरोः पुत्रः सुसंधिस्तस्य चात्मजः॥२११॥

सुसंधेश्च तथा मर्षः सहस्वान्नाम नामतः। आसीत्सहस्वतः पुत्रो राजा विश्रुतवानिति॥२१२॥

तस्यासीद्विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः। एते हीक्ष्याकुदायादा राजानः शतशः स्मृताः॥२१३॥

वंशे प्रधाना ये तस्मिन्प्राधान्येन तु कीर्त्तिताः।
पठन्सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः॥२१४॥

प्रजावानेति सायुज्यं मनोर्वैवस्वतस्य सः। श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजनां पुष्टिदस्य च॥२१५॥

विपाप्मा विरजाश्चैव आयुष्माञ्जायतेऽच्युतः॥२१६॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे भार्गवचरिते इक्ष्वाकुवंशकीर्तनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥

उनके पुत्र पुष्य हुए, पुष्य के पुत्र विद्वान् ध्रुवसन्धि हुए, उनके पुत्र राजा सुदर्शन हुए, सुदर्शन से अग्निवर्ण पैदा हुए।।२०९।। अग्निवर्ण के शीघ्रक हुए, शीघ्रक के मरु स्मरण किये गये हैं। मरु ने तो योग का आश्रय लेकर लोक कलाप ग्राम में अपना आश्रम बनाया।।२१०।। उसके १९वें युग में क्षत्रप्रावर्तक प्रभु हुए, प्रभु मरु के पुत्र थे। उनके पुत्र सुसन्धि हुए।।२११।। सुसन्धि के पुत्र मर्ष हुए, जिनका नाम सहस्वान् था। सहस्वान् के पुत्र राजा विश्रुतवान् हुए।।२१२।। उसके बाद उन विश्रुतवान् के पुत्र राजा बृहद्बल हुए। इस प्रकार ये इक्ष्वाकु वंश के उत्तराधिकारी राजा सैकड़ों कहे गये हैं।।२१३।। जो ये वर्णन किये गये हैं, वे वंश के प्रधान प्रधान राजाओं के नाम हैं। अदिति के पुत्र विवस्वान् सूर्य की इस सृष्टि विवरण को जो भलीभाँति पढ़ता है, वह सन्तान वाला होता है तथा वैवस्वत मनु के सान्निध्य को प्राप्त करता है।।२१४।। प्रजाओं को पुष्टि देने वाले श्राद्धों में पूजनीय पितरगण एवं देवगण का इतिहास जो पढ़ता है।।२१५।। वह पापरहित, रजोगुणहीन, नाशरहित एवं दीर्घायु होता है। यदि उसके कोई सन्तान नहीं है, तो वह पुत्र प्राप्त करता है और अन्त में जीवन-मरण से मुक्त हो जाता है।।२१६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६३वां अध्याय इक्ष्वाकुवंश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

निमिवंश कीर्तनं नाम

चतुष्षष्टितमोऽध्यायः

चतुष्षष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

अनुजस्य विकुक्षेस्तु निमेर्वंशं निबोधत। योऽसौ नवेशयामास पुरं देवपुरोपमम्॥१॥
जयंतमिति विख्यातं गौतमस्याश्रमान्तिकम्। यस्यान्ववाये जज्ञे वै जनको नृपसत्तमः॥२॥
निमिर्नाम सुधर्मात्मा सर्वसत्त्वनमस्कृतः। आसीत्पुत्रो महाराज चेक्ष्वाकोर्भूरितेजसः॥३॥
स शापेन वसिष्ठस्य विदेहः समपद्यत। तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनितः पर्वभिस्त्रिभिः॥४॥
अरण्यां मध्यमानाया प्रादुर्भूतो महायशाः। नाम्ना मिथिरिति ख्यातो जननजनकोऽभवत्॥५॥
मिथिर्नाम महावीर्यो येनासौ मिथिलाऽभवत्।
राजाऽसौ नाम जनको जनकाच्चाप्युदावसुः॥६॥
उदावसोस्तु धर्मात्मा जातोऽसौ नंदिवर्द्धनः। नंदिवर्द्धनतः शूरः सुकेतुर्नाम धार्मिकः॥७॥
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः। देवरातस्य धर्मात्मा बृहदुक्थ इति श्रुतः॥८॥
बृहदुक्थस्य तनयो महावीर्यः प्रतापवान्। महावीर्यस्य धृतिमान् सुधृतिस्तस्य चात्मजः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–६४

निमिवंश वर्णन

सूत जी ने कहा कि अब निकुक्षि के राजा निमि के वंश का वर्णन सुनिये। जिन उन राजा निमि ने गौतम ऋषि के आश्रम के पार जयन्त नामक अनुपम नगर को बसाया था।।१-१½।। उन्हीं राजा निमि के वंश में ऋषिश्रेष्ठ जनक से नेमि नामक धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुआ।।१½-२½।। परम तेजस्वी इक्ष्वाकु से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह महर्षि वशिष्ठ के शाप से विदेह (शरीररहित) हो गया।।२½-३½।। अरणी का मन्थन लगातार तीन पर्वों द्वारा करने से विदेह को मिथि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।।३½-४½।। मंथन से पैदा होने के कारण उसका नाम 'मिथि' प्रसिद्ध हुआ तथा इस प्रकार से जन्म होने के कारण उनका नाम 'जनक' प्रसिद्ध हुआ। 'मिथि' परम यशस्वी राजा थे, उन्हीं के नाम पर मिथिलापुरी की ख्याति हुई।।४½-५½।। इसी राजा जनक से उदावसु की उत्पत्ति हुई। उदावसु से धर्मात्मा राजा नन्दिवर्धन की उत्पत्ति हुई। नन्दिवर्धन से वीर एवं धार्मिक राजा सुकेतु हुए।।५½-७।। सुकेतु के भी धर्मात्मा महाबलशाली देवरात हुए। देवरात के पुत्र धर्मात्मा बृहदुक्थ सुने गये।।८।। राजा बृहदुक्थ के पुत्र परम प्रतापी राजा महावीर्य नाम से विख्यात हुए। महावीर्य के पुत्र धृतिमान् थे और धृतिमान् के सुधृति हुए।।९।।

सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः परंतपः। धृष्टकेतुसुतश्चापि हर्यश्वो नाम विश्रुतः॥१०॥
हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतिंबकः।
प्रतिंबकस्य धर्मात्मा राजा कीर्त्तिरथः स्मृतः॥११॥
पुत्रः कीर्त्तिरथस्यापि देवमीढ इति श्रुतः। देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महाधृतिः॥१२॥
महाधृतिसुतो राजा कीर्त्तिरातः प्रतापवान्। कीर्तिरातात्मजो विद्वान् महारोमेति विश्रुतः॥१३॥
महारोम्णस्तु विख्यातः स्वर्णरोमा व्यजायत। स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरोमाऽभवन्नृपः॥१४॥
ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान् सीरध्वज इति श्रुतः। उद्भिन्ना कर्षता येन सीता राज्ञा यशस्विनी॥१५॥
रामस्य महिषी साध्वी सुव्रता नियतव्रता।

वैशंपायन उवाच

कथं सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणा यशस्विनी॥१६॥
किमर्थं वाऽकृषद्राजा क्षेत्रं यस्मिन् बभूव ह।

सूत उवाच

अग्निक्षेत्रे कृष्यमाणे अश्वमेधे महात्मनः॥१७॥
विधिना सुप्रयत्नेन तस्मात्सा तु समुत्थिता। सीरध्वजानुजातस्तु भानुभान्नाम मैथिलः॥१८॥
भ्राता कुशध्वजस्तस्य स काश्यधिपतिर्नृपः। तस्य भानुमतः पुत्रः प्रद्युम्नश्च प्रतापवान्॥१९॥
मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्जवहः स्मृतः। ऊर्जवहात्सनद्वाजः शकुनिस्तस्य चात्मजः॥२०॥

सुधृति के पुत्र धर्मात्मा धृष्टकेतु बहुत तपस्वी पैदा हुए। धृष्टकेतु के भी पुत्र हर्यश्व नाम के राजा सुने गये।।१०।। हर्यश्व के मरु नामक पुत्र हुए तथा मरु के पुत्र प्रतिबंक हुए तथा प्रतिबंक के पुत्र धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ स्मरण किये गये हैं।।११।। कीर्तिरथ के भी पुत्र देवमीढ सुने गये। देवमीढ के बिबुध हुए और बिबुध मे महाधृति हुए।।१२।। महाधृति के पुत्र प्रतापी राजा कीर्तिरात हुए। कीर्तिरात के पुत्र विद्वान् राजा महारोम इस प्रकार विशेष रूप से सुने गये।।१३।। महारोम के विख्यात स्वर्णरोमा उत्पन्न हुए। स्वर्णरोमा के भी पुत्र ह्रस्वरोमा नामक राजा हुए।।१४।। ह्रस्व के पुत्र विद्वान् राजा सीरध्वज सुने गये। वे ही राजा सीरध्वज जब भूमि जोत रहे थे, उस समय परम यशस्विनी सीता देवी का प्रादुर्भाव हुआ।।१५।। जो साध्वी, सुन्दर व्रत वाली और नियमित व्रत करने वाली थी, जो दशरथ पुत्र राम की रानी हुई।।१५½।।

वैशम्पायन ने कहा कि हे सूत जी यह बताइये हल जोतने पर यशस्विनी सीता कैसे उत्पन्न हुई तथा राजा ने किसलिये क्षेत्र को जोता?।।१५½-१६½।। सूत जी ने कहा—अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर महाराज सीरध्वज ने जिस अग्निक्षेत्र का कर्षण किया, उसी से सीता का जन्म हुआ। उस सीरध्वज से भानुमान् नाम मैथिल राजा का जन्म हुआ।।१६½-१८।। उसका भाई कुशध्वज था, जो काशी का राजा हुआ। उस भानुमान् का पुत्र प्रतापी राजा प्रद्युम्न हुए।।१९।। उसके पुत्र मुनि हुए, मुनि के पुत्र ऊर्जवह स्मरण किये गये। ऊर्जवह से सनद्वाज उत्पन्न हुए, उन सनद्वाज के पुत्र शकुनि हुए।।२०।।

स्वागतः शकुनेः पुत्रः सुवर्चास्तत्सुतः स्मृतः।
सुतोयस्तस्य दायादः सुश्रुतस्तस्य चात्मजः॥२१॥
सुश्रुतस्य जयः पुत्रो जयस्य विजयः सुतः।
विजयस्य क्रतुः पुत्रः क्रतोश्च सुनयः स्मृतः॥२२॥
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृतिः। धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद्बहुलाश्वसुतः कृतिः॥२३॥
तस्मिन्संतिष्ठते वंशो जनकानां महात्मनाम्।
इत्येते मैथिलाः प्रोक्ताः सोमस्यापि निबोधत॥२४॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीये उपोद्घातपादे निमिवंशंकीर्तनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

शकुनि के पुत्र राजा स्वागत हुए, स्वागत के पुत्र सुवर्चा हुए। सुवर्चा के पुत्र श्रुत तथा श्रुत के पुत्र सुश्रुत हुए।।२१।। सुश्रुत के पुत्र जय हुए और फिर जय के पुत्र विजय हुए। विजय के पुत्र क्रतु हुए और क्रतु के सुनय स्मरण किये गये।।२२।। सुनय से वीतहव्य उत्पन्न हुए और वीतहव्य के पुत्र धृति हुए। धृति से बहुलाश्व का जन्म हुआ और बहुलाश्व के पुत्र कृति हुए।।२३।। इस प्रकार यह राजा जनक के पुत्रों का वंश सम्यक् प्रकार से स्थित है। इस प्रकार ये मैथिल राजाओं का वंशवर्णन हुआ। अब चन्द्रवंश के राजाओं का वर्णन जानिये।।२४।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६४वां अध्याय निमिवंश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

यदुवंशवर्णनम्

पंचषष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

पिता सोमस्य वै विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः। तत्रात्रिः सर्वलोकानां तस्थौ स्वेनौजसा वृतः॥१॥
कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येवमाचरन्। काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्द्ध्वबाहुर्महाद्युतिः॥२॥
सुदुश्चरं नाम तपो येन तप्तं महत्पुरा। त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम्॥३॥
तस्योर्द्ध्वरेतसस्तत्र स्थितस्यानिमिषस्य ह। सोमत्वं तनुरापेदे महाबुद्धिः स वै द्विजः॥४॥
उर्द्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः। नेत्राभ्यामस्रवत्सोमो दशधा द्योतयन् दिशः॥५॥
तं गर्भं विधिना हृष्टा दश देव्यो दधुस्तदा। समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन्॥६॥
स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रसाधितः।
पपात भासयँल्लोकाञ्छीतांशुः सर्वभावनः॥७॥
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ताः स्त्रियः। ततः सहाभिः शीतांशुर्निपपात वसुंधराम्॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–६५

यदुवंश वर्णन

सूत जी ने कहा—हे ऋषियो! चन्द्रमा के पिता परम तेजस्वी ऋषि भगवान् अत्रि थे। वे समस्त लोकों के कल्याण के लिए तपस्या में लगे रहते थे।।१।। कर्म से, मन से और वाणी से सदैव शुभ कार्यों में ही तत्पर रहते हुए काष्ठभीति अथवा पत्थर की चट्टान की भाँति सदा ऊपर को भुजायें किये हुए वे तेजस्वी तपस्वी दुश्चर नाम की तपस्या में निरत थे तथा उस दुश्चर नामक तपस्या में वे महर्षि तीन हजार वर्षों तक निरत रहे, ऐसा सुना गया है।।१-३।। वे महर्षि विना पलक मारे ही तपस्या में लीन रहे, इस प्रकार उन महाबुद्धि ने चन्द्रत्व प्राप्त किया अर्थात् उनका शरीर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हो गया। आत्मा को वश में करने वाले उन भगवान् अत्रि के ऊर्ध्वभाग पर चन्द्रमा होने का प्रभाव हुआ अर्थात् उनके ऊपर वाले शरीर अर्थात् सिर की चमक वहुत अधिक बढ़ गयी। उसी समय दशों दिशाओं को प्रकाशित करते समय उनके दोनों नेत्रों से सोम नीचे चू गया।।४-५।।

उस गर्भ को ब्रह्मा के आदेश से दशों दिशाओं ने धारण कर लिया। मिलकर के भी धारण करने की इच्छा वाली वे उन गर्भों को धारण नहीं कर सकीं। तब वह उन दिशाओं द्वारा धारण किया हुआ गर्भ अचानक ही शीत किरणों वाला सबका मन भावन होकर तीनों को प्रकाशित करता हुआ गिर गया।।६-७।। जब वे दिशा रूपी स्त्रियां उस गर्भ को धारण करने में समर्थ नहीं हुई, तब वह अपनी शीतल किरणों के साथ भूमि पर गिर पड़ा।।८।।

पतंतं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः। रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया॥९॥
स हि वेदमयो विप्रा धर्मात्मा सत्यसंगरः। युक्ते वाजिसहस्रेण रथेऽध्यास्तेति नः श्रुतम्॥१०॥
तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनः। तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्त विश्रुताः॥११॥
तत्रैवांगिरसास्तस्य भृगोश्चैवात्मजास्तथा। ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुभिरथर्वांगिरसैरपि॥१२॥
ततः संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः।
आप्यायमानं लोकांस्त्रीन्भावयामास सर्वशः॥१३॥
स तेन रथमुख्येन सागरांतां वसुंधराम्। त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणम्॥१४॥
तस्य यद्वर्द्धितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत। ओषध्यस्ताः समुद्भूतास्तेजसा खं ज्वलत्युत॥१५॥
ताभिः पुण्यात्ययं लोकान्प्रजाश्चापि चतुर्विधाः।
पोष्टा हि भगवान्सोमो जगतो हि द्विजोत्तमाः॥१६॥
स लब्धतेजास्तपसा संस्तवैस्तैः स्वकर्मभिः। तपस्तेपे महाभागः समानां नवतीर्दश॥१७॥
हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयंत्यात्मना जगत्।
विभुस्तासां मुदा सोमः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा॥१८॥

उस सोम (चन्द्र) को गिरता हुआ देखकर लोकपितामह ब्रह्मा ने लोक-कल्याण की कामना के लिये उस सोम को अपने रथ पर बैठा लिया।।९।।

सूत जी बोले—हे विप्रो! वे चन्द्रमा वेदमय धर्मात्मा एवं सत्य प्रतिज्ञ हैं। वे हजार घोड़े जुते हुए रथ पर बैठते हैं, ऐसा हमने सुना है।।१०।। अत्रि के पुत्र परम तेजस्वी चन्द्रमा के इस प्रकार पृथ्वी पर गिरने पर देवों एवं ब्रह्मा के परम विख्यात सातों मानस पुत्रों ने उनकी स्तुति की।।११।। तब अंगिरा एवं भृगु के पुत्रों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा आंगिरस के मन्त्रों से उनकी विधिवत् स्तुति की।।१२।। उसके बाद इन सबके द्वारा स्तुति द्वारा अति तेजस्वी चन्द्रमा के तेज ने तीनों लोकों को संतुष्ट कर दिया।। सबको शान्त स्निग्ध प्रकाश से आप्यायित कर दिया।।१३।। फिर उन चन्द्रमा ने ब्रह्मा जी के मुख्य रथ से सागरपर्यन्त समस्त पृथ्वी की इक्कीस बार परिक्रमा की।।१४।। चन्द्रमा का जो तेज पृथ्वी पर गिर पड़ा था, उस तेज से औषधियाँ उत्पन्न हो गयीं तथा उस तेज से आकाश जाज्वल्यमान रहता है।।१५।। चन्द्रमा उन्हीं औषधियों द्वारा समस्त लोकों और चार प्रकार की प्रजाओं का पालन करता है। हे द्विजश्रेष्ठो! इस संसार को पुष्टि प्रदान करने वाले भगवान् चन्द्रमा ही हैं।।१६।। अत्रि के उस परम तपोबल से देवताओं और स्तुतियों से तथा अपने शुभ कर्मों द्वारा परम तेजोबल प्राप्त कर महाभाग्यशाली चन्द्रमा ९० दश १०० वर्षों तक घोर तपस्या में लगे रहे।।१७।। इस पुराण में "सामानां भवतीर्दश" शब्द आया है तथा वायु पुराण में 'पद्मानां दशतीर्दश" अतः समानां को यदि वर्ष अर्थ में ग्रहण किया जाय तो नवतीः=नब्बे तया दश=१०० वर्ष तक तप किया, यह अर्थ हुआ। अतः चन्द्रमा को व्यक्ति माना जाये, तब भी १०० वर्ष बहुत हैं; परन्तु चन्द्रमा यदि देव हैं, तो १०० वर्ष सृष्टि के प्रारम्भ से अन्त तक माना जा सकता है तथा वायुपुराण की दृष्टि मे दशती=दशक तथा दश दशक १०० वर्ष फिर पद्मानां अर्थात् १०० पद्म वर्षों तक। अतः यह तो अनन्त काल ही हुआ। अतः जब तक सृष्टि रहे तब तक। इस प्रकार ये चन्द्रमा सृष्टि के प्रारम्भ से अन्त तक तप में लीन है तथा रहेंगे, यही भाव

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्माब्रह्मविदां वरः। बीजौषधीनां विप्राणामपां च द्विजसत्तमाः॥१९॥

सोऽभिषिक्तो महातेजा महाराज्येन राजराट्।
लोकान्वै भावयामास तेजस्वी तपतां वरः॥२०॥

सप्तविंशतिरिंदोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रताः। ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या विदुः॥२१॥
स तत्प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवतां प्रभुः। समारेभे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम्॥२२॥
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमीयिवान्। सदस्यस्तत्र भगवान्हरिर्नारायणः प्रभु॥२३॥

सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥२४॥
दक्षिणामददात्सोमस्त्रील्लोकानिति नः श्रुतम्।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च वै द्विजाः॥२५॥

तं सिनी च कुहूश्चैव वपुः पुष्टिः प्रभा वसुः। कीर्त्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे॥२६॥
प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः। अतिरेजे हि राजेंद्रो दशधा भासयन्दिशः॥२७॥
तस्य तत्प्राप्य दुष्प्रापमैश्वर्यमृषिसंस्तुतम्। विभ्रभाममतिर्विप्रा विनयादनयावृता॥२८॥
बृहस्पतेः सवै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम्। जहार सहसा सर्वानवमत्यांगिरःसुतान्॥२९॥
स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिश्च ह। नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मा अंगिरसे तदा॥३०॥

है। स्वर्ण के समान शुभ्रवर्णवाली देवियां अपने में इस समस्त संसार को धारण करती हैं। उन्हीं के गर्भ से परम तेजस्वी चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। वे चन्द्रमा अपने कर्मों द्वारा विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए।।१८।।

सूत जी ने कहा कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को वीजों, औषधियों, ब्राह्मणों एवं जलजगत् राज्य भार दिया।।१९।। इस महान् दायित्व वाले राज्य के पद पर अधिष्ठित हो जाने से चन्द्रमा का प्रताप बहुत अधिक बढ़ गया।।२०।। उसके बाद दक्षप्रजापति ब्रह्मा जी द्वारा उन चन्द्रमा को २७ दाक्षायणी कन्यायें प्रदान की गयीं, जन्हें नक्षत्र की संज्ञा दी गयी।।२१।। ब्राह्मणों के स्वामी चन्द्रमा ने इतने बड़े राज्याधिकार की प्राप्ति के बाद एक विराट् राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसमें लाखों की दक्षिणा प्रदान की।।२२।। उस विशाल राजसूय यज्ञ में हिरण्यगर्भ उद्‌गाता बने ब्रह्मा के पद पर स्वयं प्रभु भगवान् नारायण हरि वहाँ सदस्य के पद पर प्रतिष्ठापित रहते हुए सनत्कुमार आदि ऋषियों के साथ विराजमान थे।।२३-२४।। हे विप्रो! उस यज्ञ में चन्द्रमा ने उन प्रमुख ब्रह्मर्षियों तथा सदस्यों को दक्षिणा के रूप में तीनों लोकों को प्रदान कर दिया। ऐसा हमने सुना है।।२५।।

उस चन्द्रमा की सिनी, कुहू, वपु, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी ये नौ देवियो ने सेवा की।।२६।। उस राजसूय यज्ञ में अवभृथ स्नान करने के बाद सभी देवता के और ऋषियों से सत्कार प्राप्त कर निश्चित हुए। अपने विशाल साम्राज्य के सिंहासन पर समासीन चन्द्रमा राजाधिराज बनकर दशों दिशाओं के दश प्रकार से चमकाने लगे (प्रकाशित करनेलगे)।।२७।। हे विप्रो! ऋषियों द्वारा स्तुत चन्द्रमा की दुष्प्राप्य ऐश्वर्य की प्राप्ति कर लेने के बाद बुद्धि नष्ट हो गयी। उनकी विनम्रता पर कठोरता ने अधिकार कर लिया। अर्थात् अब वे बहुत घमण्डी और क्रूर हो गये।।२८।। बृहस्पति की जो यशस्विनी पत्नी थीं, जिनका कि तारा नाम था, उसको अंगिरा के पुत्रों की परवाह न कर चन्द्रमा हर कर ले गया।।२९।। देवताओं और देवर्षियों के द्वारा याचना करने पर भी उन्होंने तारा को नहीं

उशनास्तस्य जग्राह पर्ष्णिग्राहोऽभवद्देवः प्रगृह्याजगवं धनुः।३२॥
तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना। उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः॥३३॥
तत्र तद्युद्धमभवत्प्रख्यातं तारकामयम्। देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत्॥३४॥
तत्र शिष्टास्तु ये देवास्तुषिताश्चैव ते स्मृताः। ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं पितामहम्॥३५॥
ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठं च शंकरम्। ददावांगिरसे तारां स्वयमेत्य पितामहः॥३६॥
अन्तर्वर्त्नीं च तां दृष्ट्वा तारां ताराधिपाननाम्। गर्भमुत्सृज सद्यस्त्वं विप्रः प्राह बृहस्पतिः॥३७॥
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथंचन। अथो ताराऽसृजद्गर्भं ज्वलंतमिव पावकम्॥३८॥
जातमात्रोऽथ भगवान्देवानामाक्षिपद्वपुः। ततः संशयमापन्नास्तारामकथयन्सुराः॥३९॥

सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याऽथ बृहस्पतेः।
ह्रीयमाणा यदा देवान्नाह सा साध्वसाधु वा॥४०॥

तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहंतमः। तं निवार्य तदा ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम्॥४१॥
यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम्। सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं प्रभुम्॥४२॥
सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहंतमम्। ततः सुतमुपाघ्राय सोमो राजा प्रजापतिः॥४३॥
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः। प्रतिघस्त्रं च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः॥४४॥

छोड़ा।।३०।। तब अंगिरा के पुत्र शुक्र उसके अनुयायी (पीछे चलने वोले) बने थे।।३०½।। महान् तेजस्वी उशना पहले बृहस्पति के पिता का पुत्र था, उसी स्नेह के कारण भगवान् रुद्रदेव अजगव धनुष लेकर बृहस्पति की पृष्ठवर्ती (अनुयायिनी) सेना के सेनापति बने।।३०½-३२।। महाबली रुद्रदेव ने उन मुख्य ब्रह्मर्षियों तथा देवताओं के उद्देश्य से उस महान् ब्रह्मशिर नामक अस्त्र का संधान किया, जिससे उसका यश नष्ट हो गया।।३३।। तब वहाँ प्रत्यक्ष रूप से सुप्रसिद्ध तारकामय युद्ध मच गया, जो युद्ध देवों और दानवों का महान् लोक क्षयकारी हुआ।।३४।। उस युद्ध में तुषित नाम के देवता बचे रह गये थे, वे सब आदिदेव ब्रह्मा जी के पास गये।।३५।। उसके बाद लोक पितामह ब्रह्मा ने शंकर के ज्येष्ठ पुत्र रुद्र को और शुक्र को इस विनाश कर्म लगने से निवारित किया और फिर पितामह ने स्वयं जाकर तारा को बृहस्पति को प्रदान कर दिया।।३६।।

विप्र बृहस्पति ने उस चन्द्रमा के समान मुखवाली तारा को गर्भवती देखकर कहा कि तुम शीघ्र ही इस गर्भ को गिरा दो।।३७।। तुम मेरी इस योनि में किसी अन्य का गर्भ धारण नहीं कर सकती। इसके बाद तारा ने अग्नि के समान तेज से जलते हुए, उस गर्भ को गिरा दिया।।३८।। इसके बाद वह गर्भ पैदा होते ही सुन्दर देवों के शरीर वाला हो गया। अर्थात् उस शरीर देवों के समान था।।३८½।। उसके बाद संशय को प्राप्त देवताओं ने तारा से पूँछा कि सत्य बताओ, यह पुत्र किसका है? बृहस्पति का है अथवा चन्द्रमा का है?।।३८½-३९½।। जब लजाती हुई, उस तारा ने अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं बताया, तब दस्यु हन्ताकुमार उसे शाप देने को तैयार हो गया।।३९½-४०½।। तब उसे रोककर ब्रह्मा जी ने सन्देह के साथ तारा से पूँछा कि अरी तारे! सही सही बताओ, यह पुत्र किसका है?।।४०½-४१½।। वह हाथ जोड़कर ब्रह्मा जी से बोली कि यह महान् दस्युहन्ता कुमार चन्द्रमा का है।।४१½-४२½।। तब प्रजापति राजा सोम ने पुत्र का माथा चूमकर उस बुद्धिमान् पुत्र का नाम बुध रख दिया।।४२½-४३½।।

उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिका। तस्य पुत्रो महातेजा बभूवैलः पुरूरवाः॥४५॥
उर्वश्यां जज्ञिरे तस्य पुत्राः षट् सुमहौजसः। प्रसह्य धर्षिरतस्तत्र विवशो राजयक्ष्मणा॥४६॥
ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमंडलः। जगाम शरणायाथ पितरं सोऽत्रिमेव तु॥४७॥
तस्य तत्पापशमनं चकारात्रिर्महायशाः। स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वशः॥४८॥
एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्त्तितं द्विजसत्तमाः। वंशं तस्य द्विजश्रेष्ठा कीर्त्यमानं निबोधत॥४९॥
धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्यं कल्मषशोधनम्। सौम्यस्य जन्म श्रुत्वैवं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥५०॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सौमसौम्ययोर्जन्मकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥६५॥

उस समय बुध पूर्व दिशा में जाने के लिये उठ खड़े हुए। राजपुत्री इला के गर्भ से उन्होंने एक पुत्र को उत्पन्न किया।।४३½-४४½।। उसका पुत्र महातेजस्वी पुरुरवा पैदा हुए। वह इला पुत्र होने के कारण ऐल नाम से भी प्रसिद्ध हैं।।४५।। फिर उर्वशी के गर्भ से पुरुरवा के छः पुत्र हुए। उसके बाद चन्द्रमा बलवान् राजयक्ष्मा (टी. वी.) रोग से ग्रस्त हो गये, जिससे उनका समस्त मण्डल पूरी तरह प्रतिभाहीन हो गया। उसके बाद वे चन्द्रमा अपने पिता अत्रि की शरण में गये।।४६-४७।। तब महायशा अत्रि ने उनके राजयक्ष्मा रोग को शान्त कर दिया, तब राजयक्ष्मा से मुक्त होकर वे सब प्रकार से पूर्ण कान्तियुक्त हो गये।।४८।।

सूत ती बोले कि हे ब्राह्मणो! यह चन्द्रमा के जन्म का वृत्तान्त है, जिसे मैंने आपको बताया है, अव उनके वंश के बारे में सुनिये।।४९।। इस वंश वृत्तान्त को सुनकर मनुष्य को निर्धन को धन प्राप्त होता है, रोगी निरोग हो जाता है तथा मनुष्य दीर्घायु हो जाता है। यह वृत्तान्त पाप का शोधन करने वाला है तथा मनुष्य सोम के जन्म को सुनकर ही सब पापों से मुक्त हो जाता है।।५०।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६५वां अध्याय यदुवंश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

अमावसुवंशानुकीर्तनं नाम

षट्षष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

सोमस्य तु बुधः पुत्रो बुधस्य तु पुरूरवाः। तेजस्वी दानशीलश्च यज्वां विपुलदक्षिणः॥१॥
ब्रह्मवादी पराक्रांतः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः। आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानां च महीपतिः॥२॥
सत्यवाग्धर्मबुद्धिश्च कांतः संवृत्तमैथुनः। अतीव त्रिषु लोकेषु रूपेणाप्रतिमोऽभवत्॥३॥
तं ब्रह्मवादिनं दांतं धर्मज्ञं सत्यवादिनम्। उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी॥४॥
तया सहाव सद्राजा दश वर्षाणि चाष्ट च। सप्त षट्सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान्॥५॥
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मंदाकिनीतटे। अलकायां विशालायां नंदने च वनोत्तमे॥६॥
गन्धमादनपादेषु मेरुश्रृंगे नगोत्तमे। उत्तरांश्च कुरून्प्राप्य कलापग्राममेव च॥७॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-६६

चन्द्र वंश का वर्णन

सूत जी बोले कि सोम (चन्द्रमा) के पुत्र बुध हुए और बुध के पुत्र पुरूरवा हुए। वे राजा पुरूरवा तेजस्वी दानशील यज्ञ करने वाले और बहुत अधिक दक्षिणा देने वाले थे।।१।। यही नहीं वे राजा ब्रह्मवादी, शत्रुओं को आक्रान्त करने वाले तथा युद्ध में शत्रुओं द्वारा कठिनाई से जीतने वाले थे तथा वे यज्ञहोत्र करने वाले और यज्ञों के करने वाले थे।।२।। वे सत्य बोलने वाले, धर्म की बुद्धि वाले, बहुत ही सुन्दर और गुप्त मैथुन करने वाले थे। वे तीनों लोकों में अतीव रूप से अप्रतिम थे अर्थात् तीनों लोकों में उनसे सुन्दर अन्य कोई नहीं था।।३।।

उन ब्रह्मवादी, इन्द्रियों का दमन करने वाले, धर्मज्ञ, सत्यवादी राजा पुरुरवा को यशस्विनी उर्वशी ने अपना मान छोड़कर वरण किया अर्थात् अपना पति बनाया।।४।। उर्वशी के साथ उस पराक्रमी राजा ने दश, आठ, सात, छः, सात, आठ, दश और आठ कुल मिलाकर चौसठ वर्ष तक सहवास किया। यहाँ अलग अलग संख्या से तात्पर्य है कि उर्वशी ने एक साथ ६४ वर्ष तक राजा के साथ सहवास नहीं किया। वह आयी थी पहले १० वर्ष के लिये फिर इतनी सन्तुष्ट हो गयी कि फिर आठ वर्ष के लिये रह गयी परन्तु; राजा के साथ सम्भोग में इतनी सन्तुष्ट हो गयी कि बार-बार अब इतने दिन ही रहूँगी, यह प्रतिज्ञा करते हुए ६४ वर्ष तक रह गयी। अनेकों ऋषियों के तप को अपने अप्रतिम सौन्दर्य से भंग करने वाली उर्वशी मैथुन सन्तुष्टि के अभाव में इतनी देर कहीं न रुक सकी; परन्तु पुरुरवा से पूर्णतः सन्तुष्ट होकर ६४ वर्षों तक रह गयी। कभी रमणीक चैत्ररथ वन में तथा गङ्गा नदी के किनारे पर, कभी उत्तम वन नन्दन वन में, कभी विशाल अलकापुरी में, कभी गन्धमादन पर्वत के पाद प्रदेश में, कभी पर्वतों में उत्तम

एतेषु वन मुख्येषु सुरैरांचरितेषु च। उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा॥८॥

ऋषय ऊचुः

गन्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम्। उत्सृज्य तं च संप्राप्ता तन्नो ब्रूहि च दुष्कृतम्॥९॥

सूत उवाच

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समुपस्थिता। आत्मनः शापमोक्षार्थं नियमं सा चकार तु॥१०॥
अनग्नदर्शनं चैव अकामात्सह मैथुनम्। द्वौ मेषो शयनाभ्याशे सा तावद्धयवतिष्ठते॥११॥
घृतमात्रं तथाऽऽहारः कालमेकं तु पार्थिव। यद्येष समयो राजन्यावत्कालश्च ते दृढः॥१२॥
तावत्कालं तु वत्स्यामि एष नः समयः कृतः। तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा पर्यपालयत्॥१३॥
एवं सा चावसत्तेन सहैलेनाभिगामिनी। वर्षाण्यथ चतुःषष्टिं तद्भक्त्या शापमोहिता॥१४॥
उर्वशी मानुं प्राप्ता गंधर्वाश्चिंतयान्विताः।

गन्धर्वा ऊचुः

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वरांगना॥१५॥
आगच्छेत्तु पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणम्। ततो विश्वावसुर्नाम गन्धर्वः सुमहामतिः॥१६॥
जहारोरणकौ तस्यास्तपश्चात्सा दिवं गता। तस्यास्तु विरहेणासौ भ्रममाणस्त्वथोर्वशीम्॥१७॥

सुमेरु पर्वत की चोटी पर, कभी उत्तर कुरु प्रदेशों को प्राप्त कर कलाप ग्राम में, कभी देवों द्वारा घूमने वाले मुख्य वनों में में राजा पुरुरवा परमानन्द से उर्वशी के साथ साथ विहार करता था।।६-८।।

ऋषियों ने पूँछा—बहुश्रुत सूत जी! गन्धर्वराज पुत्री दिव्यगुणसम्पन्न उर्वशी ने सब देवों को छोड़कर मनुष्य पुत्र राजा पुरूरवा को पतिरूप में क्यों वरण किया? यह हमें बताइये।।९।।

सूत जी ने कहा कि ब्रह्म शाप से अभिभूत होकर उर्वशी ने मनुष्य को वरण किया था। उसने शाप से छुटकारा पाने के लिये इस नियम का पालन किया था।।१०।। उसने राजा से यह शर्त रखी थी कि हे राजन् ! मैथुन के अवसर के अतिरिक्त मैं कभी भी अकामावस्था में आपको नग्न नहीं देखूँगी। हमारी शय्या के पास में दो भेड़ें सदैव बंधे रहेंगे।।११।। तथा मैं केवल एक समय घृत का आहार करूँगी। हे राजन्! जब तक आप मेरी इन शर्तों का पालन करेंगे, तब तक मैं आपके पास रहूँगी, यह मैंने प्रतिज्ञा की है। इस प्रकार उसकी सब प्रतिज्ञा का पालन राजा पुरुरवा ने किया।।१२-१३।। इस प्रकार उस राजा पुरुरवा ने उसकी उस प्रतिज्ञा का जब तक अक्षरशः पालन किया, तब तक वह राजा के साथ रही। इस प्रकार ब्रह्मशाप से मोहित वह उर्वशी ६४ वर्षों तक भक्तिपूर्वक राजा पुरुरवा के साथ रही।।१४।। उधर उर्वशी ने मनुष्य को प्राप्त कर लिया, यह सोचकर गन्धर्व लोग चिन्तित हो गये।।१४½।।

गन्धर्वों ने कहा हे महाभागो! स्वर्ग की भूषण वह उर्वशी पुनः देवताओं को प्राप्त हो जाये, उनके पास आ जाये, यह आप लोग सोचिये।।१४½-१५½।। उसके बाद अच्छी और महती बुद्धि वाले विश्वावसु नामक गन्धर्व ने उपाय सोचकर उस उर्वशी के दोनों भेड़ों को चुरा लिया। तब क्योंकि वह उर्वशी उन भेड़ों को पुत्र के समान मानती थी, इसलिये वह राजा को छोड़कर स्वर्ग चली गयी।।१५½-१६½।। उस उर्वशी के विरह के कारण उस उर्वशी

ददर्श च कुरुक्षेत्रे तया संभाषितोऽप्ययम्। गन्धर्वानुपधावेति स चच्चक्रेऽथ ते ददुः॥१८॥

अग्निस्थालीं तया राजा गतः स्वर्गं महारथः।
एकोऽग्निः पूर्वमासीद्वै ऐलस्तं त्रीनक्लपयत्॥१९॥

एवंप्रभावो राजासीदैलस्तु द्विजसत्तमाः। देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरलंकृते॥२०॥
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः। उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः॥२१॥
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिंद्रोपमतेजसः। गन्धर्वलोके विदिता आयुर्द्धीमानमावसुः॥२२॥

विश्वावसुः श्रतायुश्च घृतायुश्चोर्वशीसुताः।
अमावसोस्तु वै जातो भीमो राजाऽथ विश्वजित्॥२३॥
श्रीमान्भीमस्य दायादो राजाऽसीत्कांचनप्रभः।
विद्वांस्तु कांचनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबल॥२४॥

सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः केशिनीगर्भसंभवः। प्रतिगत्य ततो गंगा वितते यज्ञकर्मणि॥२५॥
सादयामास तं देशं भाविनोऽर्थस्य दर्शनात्। गंगया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समंततः॥२६॥
सौहोत्रिरपि संक्रुद्धो गंगां राजा द्विजोत्तमाः। तदा राजर्षिणा पीतां गंगा दृष्ट्वा सुरर्षयः॥२७॥
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम्। यौवनाश्वस्य पौत्रीं तु कांवरी जह्नुरावहत्॥२८॥

को खोजते हुए, उन राजा पुरुरवा ने उस उर्वशी को कुरुक्षेत्र में पाया। वहाँ पर प्लक्षद्वीप में गन्धर्व कन्याओं के साथ स्नान कर रही थी, राजा उसको पाने के लिए बेचैन हो गये। उसने राजा से कहा कि अब मेरे साथ रहना चाहते हो, तो आप गन्धर्वों का अनुसरण करें। तब उसने जो कहा सो किया और गन्धर्वों ने उन्हें अग्नि की थाली दिया।।१६½-१८।। उस अग्निस्थाली के साथ महारथी राजा स्वर्ग में गये, उस समय पूर्व काल में एक ही प्रकार की अग्नि थी। अतः उस अग्नि को पुरुरवा ने तीन भागों में विभक्त कर दिया। हे ब्राह्मणो! इस प्रकार का प्रभाव राजा पुरूरवा का था।।१९-१९½।। इस प्रकार महर्षियों से अलंकृत पुण्यतम देश प्रयाग में राजा पुरूरवा ने राज्य किया।।१९½-२०½।। उस महायशस्वी राजा पुरूरवा की राजधानी उत्तर यमुना के किनारे प्रतिष्ठान पुर में थी।।२०½-२१।। उस राजा को इन्द्र के समान महापराक्रमी छः पुत्र हुए। गन्धर्वलोक में आयु, धीमान् अमावसु, विश्वायु, शतायु तथा घृतायु[१] ये उर्वशी के पुत्रों के नाम हैं।।२२।। अमावसु के पुत्र राजा भीम हुए, जो विश्व विजयी राजा हुए।।२३।। उस भीम के उत्तराधिकारी परम यशस्वी राजा काञ्चनप्रभ हुए। काञ्चनप्रभ के पुत्र महान् बलवान् विद्वान् राजा सुहोत्र हुए।।२४।। सुहोत्र के पुत्र जह्नु हुए। जो केशिनी[२] के गर्भ से पैदा हुए थे। जह्नु ने एक बार यज्ञ का अनुष्ठान किया था। तब वहाँ गंगा ने आकर उनके यज्ञकर्म में विस्तृत रूप से फैलकर उस समस्त प्रदेश को जल से आप्लावित कर दिया, तब गंगा के द्वारा यज्ञ वाटिका को चारों ओर से डूबा हुआ देखकर सुहोत्र पुत्र जह्नु बहुत क्रोधित हुए और क्रुद्ध जह्नु ने गंगा को पी लिया, तब देवों और ऋषियों ने गंगा को पिया हुआ देखकर गंगा को उनकी कन्या के रूप में अर्पित

---

१. वायुपुराण में गतायु नाम है।
२. वायुपुराण में कौशिका नाम है।

युवनाश्वस्य शापेन गंगार्द्धेन विनिर्ममे। कावेरीं सरितां श्रेष्ठ जह्नुभार्यामनिंदिताम्॥२९॥
जह्नुस्तु दयितं पुत्रं सुनहं नाम धार्मिकम्। कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः॥३०॥
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वा महायशाः।
बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजः स्मृतः॥३१॥
कुशपुत्रा बभूवुश्च चत्वारो देववर्चसः। कुशांवः कुशनामश्च अमृर्तरयसो वसुः॥३२॥

कर दिया। तभी से गङ्गा का नाम जाह्नवी पड़ गया।।२४-२७½।। राजा यौवनाश्व के पोती कावेरी को जह्नु ने पत्नी के रूप में स्वीकार किया था। युवनाश्व के शाप से उसने गङ्गा का निर्माण किया था। जह्नु की भार्या काबेरी नदियों में श्रेष्ठ एवं प्रशंसा करने योग्य गुणों वाली है।।२७½-२९।। जह्नु ने काबेरी में परम धार्मिक सुनह[१] नामक पुत्र को उत्पन्न किया। जह्नु ने कावेरी में अजक को जन्म दिया।।३०।। अजक का पुत्र महायशस्वी राजा बलाकाश्व हुए। बलाकाश्व के मृगयाशील (शिकार खेलने में कुशल) राजा कुश हुए[२]।।३१।। कुश के कुशाश्व, कुशनाभ अमूर्तरयस

१. वायुपुराण में सुहोत्र नाम है।
२. वायुपुराण में गय, शील, कुश तीन पुत्र बताये गये हैं।

विशेष—इस पुराण में राजा पुरूरवा की कहानी को संक्षिप्त कर दिया गया है। वा. पु. तथा अन्य पुराणों के अनुसार उर्वशी जब राजा पुरुरवा के पास आयी थी, तब उनसे यह शर्त थी कि जब मैं आपको सम्भोग के अतिरिक्त नंगा देखूँगी, उसी समय छोड़ के चली जाऊँगी। उधर वह दो भेड़ें लेकर आयी थी, जिनसे वह पुत्र के समान प्यार करती थी। गन्धर्वो ने चाहा था कि किसी तरह इसे राजा से अलग किया जाये तो उन गान्धर्वो ने उर्वशी के दोनों भेड़ें चुरा लीं। जब दूसरा भेड़ा चुराया तब उसने कहा कि तुम्हारे रहते मेरे भेड़े चुरा लिये, इस पर राजा उत्तेजित होकर अस्त्र के साथ नंगे ही चल पड़े। उधर गन्धर्वो ने प्रकाश कर दिया, जिससे राजा को उर्वशी ने नग्न अवस्था में देख लिया। अतः वह अपनी शर्त के अनुसार छोड़कर चली गयी। तब विरह पीड़ित राजा के बहुत खोजने पर प्लक्ष द्वीप में सखियों के साथ स्नान करती हुई मिली। तब राजा ने उससे चलने को कहा तो उर्वशी ने पुरूरवा से कहा प्रभो! मैं आपके संभोग से गर्भवती हूँ। एक वर्ष में तुम्हारा पुत्र मुझसे उत्पन्न होगा। राजा ने एक बार फिर उर्वशी के साथ निवास किया, फिर घर आया। एक वर्ष बाद फिर उसके पास गया और कामार्त होकर बोला कि तुम मेरे साथ सदा रहो। तब उर्वशी ने कहा कि गन्धर्वो से ही यह याचना करो। आप इन गन्धर्वो के साथ रहने का इनसे वरदान माँगिये। तब राजा ने गन्धर्वो से गन्धर्व लोक में रहने की याचना की। गन्धर्वो ने उसे स्वीकार कर और थाली में आग भर कर कहा कि हे राजन्! इस आग से हवन करने पर तुम्हें गन्धर्व लोक की प्राप्ति होगी। तब राजा अपने पुत्र को लेकर अपने नगर को चला तथा उस अग्नि को अरणि में रखकर अपने घर को प्रस्थान किया। वहाँ पर उन्होंने उस अग्नि को देखा, बाद में उन्हें पीपल का पेड़ दिखायी दिया। पीपल के पेड़ को देखकर राजा को आश्चर्य हुआ, तब उसने गन्धर्वो से कहा। गन्धर्वो ने बताया कि इस पीपल की लकड़ी से आपस में मंथन कर अग्नि पैदा कर यज्ञ करो, तब तुम हम लोगों के लोक को पाओगे। राजा ने वैसा ही किया। तब उस अग्नि से यज्ञ करके राजा ने गन्धर्व लोक को प्राप्त किया और उर्वशी के साथ जीवन बिताया। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि अग्नि केवल एक ही प्रकार की थी। राजा पुरूरवा ने अरणि मन्थन से अग्नि को उत्पन्न कर नया अनुसन्धान किया। तब उन्होंने अग्नि के तीन रूपों का शोध किया, जो तीन रूप हैं—१-समुद्र की अग्नि, २-वनाग्नि, जो लकड़ियों के घर्षण से पैदा होती है तथा तीसरी जठराग्नि जो खाना पचाती है। अतः अग्नि तो थी ही; परन्तु लकड़ी को मथकर (रगड़ कर) घर्षण द्वारा पैदा करने का अनुसन्धान राजा पुरूरवा ने किया। अतः अग्नि के प्रथम शोधकर्ता राजा पुरूरवा है।

कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रार्थी राजसत्तमः। पूर्णे वर्षसहस्रे वै शतक्रतुरपश्यत॥३३॥
तमुग्रतपंस दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरंदरः। समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः॥३४॥
पुत्रत्वं कल्पयामास स्वयमेव पुरंदरः। गाधिनीमाऽभवत्पुत्रः कौशिकः पाकशासनः॥३५॥
पौरुकुत्स्यभवद्भार्या गाधेस्तस्यामजायत। पूर्वं कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा॥३६॥
तां गाधिः पुत्रकामाय ऋषीकाय ददौ प्रभुः। तस्याः प्रीतस्तु वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनंदनः॥३७॥
पुत्रार्थे साधयामासचरुं गाधेस्तथैव च। अथावोचत्प्रियां तत्र ऋचीको भार्गवस्तदा॥३८॥
उपभोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा च ते शुभा। तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः॥३९॥
अजेयः क्षत्रियैर्युद्धे क्षत्रियर्षभसूदनः। तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमंतं तपोधनम्॥४०॥
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति। एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगुनन्दनः॥४१॥
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह। गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात्॥४२॥
तीर्थयात्राप्रसंगेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वरः। चरुद्वयं गृहीत्वा तु ऋषेः सत्यवती तदा॥४३॥
भर्तुर्वचनमव्यग्रा हृष्टा मात्रे न्यवेदयत्। माता तस्यै तु दैवेन दुहित्रे स्वचरुं ददौ॥४४॥

और वसु वेदज्ञान से परम यश प्राप्त करने वाले चार पुत्र हुए।।३२।। राजश्रेष्ठ कुशिक (कुशाश्व) ने पुत्र के लिए तप किया। एक हजार वर्ष पूरे हो जाने पर इन्द्र ने देखा।।३३।। तब हजार नेत्र वाले इन्द्र उस उग्र तप को देखकर स्वयं ही को नित्य एवं जनन में समर्थ समझकर उस राजा का पुत्रत्व स्वीकार किया। यहाँ पर यह भी ध्वनित होता है कि इन्द्र द्वारा ही उसको पुत्र प्राप्त हुआ। यहाँ इन्द्र द्वारा उसकी पत्नी के साथ सम्भोग की गन्ध झलकती है।।३४-३४½।। फिर उन राजा कुशिक के गाधि नामक पवित्र शासन करने वाले राजा हुए, जो कुशिक के पुत्र होने के कारण कौशिक कहे गये।।३५।। पुरुकुत्स की पुत्री उन राजा गाधि की पत्नी बनी। उस पत्नी के गर्भ से पहले सत्यवती नामक महाभाग्यशाली शुभ पुत्री पैदा हुई।।३६।। उस सत्यवती नामक कन्या को राजा गाधि ने स्वयं पुत्र को प्राप्त करने के लिए ऋचीक ऋषि को दे दिया, ताकि वे राजा को पुत्र होने का आशीर्वाद दें। तब उस सत्यवती के प्रिय पति भरद्वाज वंश के ऋषि ऋचीक हुए।।३७।। गाधि को पुत्र पैदा करने के लिए ऋचीक ऋषि चरु सिद्ध किये, उसके बाद वहाँ ऋचीक ऋषि ने अपनी पत्नी सत्यवती को कहा।।३८।। कि इन चरु को तुम और तुम्हारी माता द्वारा भोग किया जाना है अर्थात् तुम और तुम्हारी मां इन चरुओं का भोग करे। तब तुम्हारी माता इस चरु को खाकर कान्तिमान् श्रेष्ठ क्षत्रिय पुत्र को जन्म देगी।।३९।।

जो युद्ध में क्षत्रियों द्वारा अजेय होगा और क्षत्रिय शत्रुओं को जीतने वाला होगा। फिर उन्होंने अपनी पत्नी सत्यवती को भी कहा कि हे प्रिये! कल्याणि! तुम भी इस चरु का भोगकर धैर्यवान् तपस्वी पुत्र को प्राप्त करोगी तथा तुमको दिया गया ये चरु शान्ति प्रधान श्रेष्ठ ब्राह्मण को पैदा करने वाला होगा।।४०-४०½।। अपनी पत्नी सत्यवती से ऐसा कहकर भृगुनन्दन ऋचीक ऋषि तपस्या में अभिरत होकर वन में चले गये।।४०½-४१½।। उसके बाद राजा गाधि तीर्थयात्रा करने के क्रम में पुत्री को देखने अपनी पत्नी के साथ महर्षि ऋचीक के आश्रम में गये।।४१½-४२½।। तब ऋषि पत्नी सत्यवती ने दोनों चरुओं को ग्रहण कर पति के वचन से व्यग्र और प्रसन्न होकर माता से निवेदन किया और माता को एक चरु दिया। माता ने भी उस अपनी पुत्री को चरु दिया। इसके बाद प्रसन्नता की हड़बड़ी में सत्यवती

तस्याश्चरुमथा ज्ञानादात्मनः सा चकार ह। अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियांतकरं शुभम्॥४५॥
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना। तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यवमृश्य च॥४६॥
तदाऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम्। मात्रासि वंचिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना॥४७॥
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः। माता जनिष्यते चापि तथा भूतं तपोधनम्॥४८॥
विश्वं हि ब्रह्मतपसा मया तत्र समर्पितम्। एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा॥४९॥
प्रसादयामास पतिं सुतो मे नेदृशो भवेत्। ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिब्रवीत्॥५०॥
नैव संकल्पितः कामो मया भद्रे तथा त्वया। उग्रकर्मा भवेत्पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात्॥५१॥

पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्ताऽब्रवीदिदम्।
इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम्॥५२॥

शमात्मकमृजुं भर्त्तः पुत्रं मे दातुमर्हसि। काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव सुव्रत॥५३॥
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेवं द्विजोत्तमे। ततः प्रसादमकरोत्स तस्यास्तपसो बलात्॥५४॥
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि। त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति॥५५॥
तस्मात्सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम्। तपस्यभिरतं दातं जमदग्निं शमात्मकम्॥५६॥

ने अपना चरु मां को दे दिया और मां का चरु स्वयं ले लिया।।४२½-४४½।। इसके बाद सत्यवती ने क्षत्रियों का नाश करने वाले प्रकाशमान शरीर वाले तथा घोर दिखायी देने वाले शुभ गर्भ को धारण किया।।४४½-४५½।। उसके बाद ऋचीक ऋषि ने अपनी योगविद्या से देखकर और यह जानकर कि इसके गर्भ में ब्राह्मण का अंश पल रहा है, तब विचार करके उन द्विजश्रेष्ठ ऋषि ने अपनी वरवर्णिनी पत्नी से कहा कि हे भद्रे! तुमने चरुओं का परिवर्तन कर दिया है। अतः तुम अत्यन्त कठोर तथा क्रूर कर्म करने वाले पुत्र को जन्म दोगी तथा तुम्हारी माता तपस्वी पुत्र को जन्म देगी; क्योंकि मैंने यह समझ कर यह मेरा पुत्र होगा, उसमें समस्त ब्रह्म तप का समर्पण कर दिया है।।४५½-४८½।। तब जब पति ऋचीक ऋषि ने सत्यवती से ऐसा कहा तो उन्होंने अपने पति को अनुनय विनय कर प्रसन्न किया और कहा कि महाराज ऐसा कीजिये, मुझे क्रूर पुत्र मत दीजिये। उस सत्यवती ने पति से कहा कि आपसे मुझे ब्राह्मण पुत्र ही चाहिये था। इस प्रकार वह मुनि से बोली।।४८½-५०।।

तब ऋषि ने कहा कि हे भद्रे! मैंने कभी भी ऐसा नहीं सोचा था; परन्तु पिता और माता के कारण से पुत्र उग्र कर्म करने वाले होते हैं।।५१।। सत्यवती ने फिर ऋचीक ऋषि से यह वाक्य कहा कि तब मैं तो उग्र स्वभाव वाली नहीं हूँ तथा न मेरी उग्र स्वभाव वाले पुत्र की इच्छा है, फिर मुझे क्यों उग्र स्वभाव का पुत्र मिलेगा।।५२।। सत्यवती ने कहा कि इसलिये हे पतिदेव! आप मुझे शान्तिप्रिय सीधा साधा पुत्र दीजिये।।५२½।। अतः हे सुव्रत! मेरा पौत्र इस प्रकार हो, तो कोई बात नहीं। हे द्विजोत्तम! यदि आपका वचन अन्यथा नहीं हो सकता, तो मुझे पौत्र इस प्रकार उग्र दीजियेगा। उसके बाद उन महर्षि ऋचीक ने तप के बल से उस सत्यवती को प्रसन्न कर दिया और कहा कि हे वर्णिनि पुत्र अथवा पौत्र में कोई मेरा विशेष कथन नहीं है। अतः हे भद्रे! तुमने जो कहा कि पुत्र क्रूर न हो; परन्तु पौत्र हो जाये, तो कोई बात नहीं; अतः तुमने जो यह वचन मांगा है, वही होगा।।५३-५५।। उसी कारण से सत्यवती ने तपस्या में लगे रहने वाले, इन्द्रियों पर दमन करने वाले, शान्त स्वभाव वाले भार्गव पुत्र जमदग्नि को

भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा। जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत॥५७॥
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः। प्राप्य ब्रहर्षिसमतां जगाम ब्रह्मणा वृतः॥५८॥
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यव्रतपरायणा। कौशिकी तु समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी॥५९॥
परिस्रुता महाभागा कौशिकी सरितां वरा। इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुको नाम पार्थिवः॥६०॥
तस्य कन्या महाभागा कमली नाम रेणुका। रेणुकायां कमल्यां तु तपोधृतिसमाधिना॥६१॥
आर्चीको जनयामाम जमदग्निः सुदारुणम्। सर्वविद्यांतगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम्॥६२॥
रामं क्षत्रियहंतारं प्रदीप्तमिव पावकम्। और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महामनाः॥६३॥
जमदग्निस्तपोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः। मध्यमश्च शुनःशेफः शुनः पुच्छः कनिष्ठकः॥६४॥
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः। जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकान्वयवर्द्धनः॥६५॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनः शेफोऽभवन्मुनिः। हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियतः स वै॥६६॥
देवैर्दत्तः शुनःशेफो विश्वामित्राय वै पुनः। देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत्॥६७॥
विश्वामित्रस्य पुत्राणां शुनःशेफोऽग्रजः स्मृतः। मधुच्छंदादयश्चैव कृतदेवौ ध्रुवाष्टकौ॥६८॥
कच्छपः पूरणश्चैव विश्वामित्रसुतास्तु वै। तेषां गोत्राणि बहुधा कौशिकानां महात्मनाम्॥६९॥

जन्म दिया।।५६।। भृगु ऋषि के दिये गये चरु के बदल जाने से प्राचीन काल में रौद्र और वैष्णव के मेल से वैष्णव अग्नि के जमने से जमदग्नि उत्पन्न हुए; क्योंकि वे चरु के उग्र स्वभाव तथा माता के शान्त स्वभाव से मिलकर पैदा हुए।।५७।। उधर गाधि की पुत्रि सत्यवती की मां से ब्रह्मव्रती कुशिक सुत गाधि ब्रह्मर्षि की समता वाले विश्वामित्र को प्राप्त कर चले गये।।५८।। वह सत्यव्रत परायण पुण्यशालिनी सत्यवती कौशिकी इस नाम से विख्यात हुई और यह महानदी में प्रवृत्त हो गयी।।५९।। वह महाभागा कौशिकी नाम की नदियों में श्रेष्ठ महानदी कही गयी।।५९½।। उधर इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न रेणुक नामक राजा हुए; उनकी कमली नाम की कन्या थी, जिसे रेणुक की पुत्री होने के कारण रेणुका कहा गया।।५९½-६०½।। रेणुक पुत्री रेणुका (कमली) में ऋचीक पुत्र जमदग्नि ऋषि ने समस्त विद्याओं के अन्त तक जाने, वाले धनुर्वेद में पारङ्गत, जलती हुई अग्नि के समान क्षत्रियों को मारने वाले, बहुत उग्र स्वभाव वाले पुत्र परशुराम को जन्म दिया।।६०½-६२½।।

और्व जिनको भृगु कहा गया है, उनके पुत्र ऋचीक ऋषि ने अपनी तपस्या के पराक्रम से सत्यवती में ब्रह्मविद्या जानने वालों में श्रेष्ठ जमदग्नि को जन्म दिया और फिर उनके मध्यम पुत्र शुनःशेफ हुए तथा सबसे छोटे पुत्र शुनःपुच्छ हुए। इस प्रकार जमदग्नि के तीन पुत्र हुए।।६२½-६४।। उधर कुशिक पुत्र कौशिक गाधि ने महात्मा भृगु ऋचीक के प्रसाद से कौशिक वंश की वृद्धि करने वाले विश्वरथ नाम वाले महात्मा विश्वामित्र को जन्म दिया।।६५।। विश्वामित्र के पुत्र तो शुनःशेफ मुनि हुए, राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में वे शुनः शेफ पशुत्व को प्राप्त हुए अर्थात् पशु (कुत्ता) बन गये।।६६।। उसके बाद वे शुनःशेफ देवताओं द्वारा विश्वामित्र के लिये दे दिये गये। फिर देवताओं द्वारा दिये गये वे शुनः शेफ देवों द्वारा दिये जाने के कारण देवरात हो गये। इससे सिद्ध होता है कि वे पुत्र तो ऋचीक के ही थे; परन्तु विश्वामित्र को दिये जाने के कारण विश्वामित्र के पुत्र माने गये।।६७।। अब विश्वामित्र के पुत्रों में शुनःशेफ सबसे बड़ेपुत्र स्मरण किये गये। मधुच्छंद आदि कृत, देव और ध्रुव और अष्टक आदि भी हुए।।६८।। कच्छप और पूरण

पार्थिवा देवराताश्च याज्ञवल्क्याः समर्पणाः। उदुंबराश्च वातड्यास्तलकायनचांद्रवाः॥७०॥
लोहिण्यो रेणवश्चैव तथा कारीषवः स्मृताः। बभ्रवः पणिनश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च॥७१॥
श्यामायना हिरण्याक्षाः सांकृता गालवाः स्मृताः।
देवला यामदूताश्च शालंकायनबाष्कलाः॥७२॥
लालाट्या बादराश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः।
ऋष्यन्तरविवाह्यास्ते बहवः कौशिकाः स्मृताः॥७३॥
कौशिकाः सौश्रुताश्चैव तथान्ये सैंधवायनाः। योगेश्वरस्य पुण्यस्य ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य वै।
विश्वामित्रस्य पुत्राणां शुनःशेफोऽग्रजः स्मृतः॥७४॥
दृषद्वती सुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टकः। अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया॥७५॥

ऋषय ऊचुः

किंलक्षणेन धर्मेण तपसेह श्रुतेन वा॥७६॥
ब्राह्मण्यं समनुप्राप्तं विश्वामित्रादिभिर्नृपैः। येनयेनाभिधानेन ब्राह्मण्यं क्षत्रिया गताः॥७७॥
विशेष ज्ञातुमिच्छामि तपसो दानतस्तथा। एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत्॥७८॥
अन्यायोपगतैर्द्रव्यैराहूय द्विजसत्तमान्। धर्माभिकांक्षी यजते न धर्मफलमश्नुते॥७९॥
जपं कृत्वा तथा तीव्रं धनलोभान्निरंकुशः। रागमोहान्वितो ह्यंते पावनार्थं ददाति यः॥८०॥
तेन दत्तानि दानानि ह्यफलानि भवंत्युत। तस्य धर्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मनः॥८१॥

आदि विश्वामित्र के पुत्र थे। इस प्रकार कौशिक महात्मा विश्वामित्र के अनेकों गोत्र हैं।।६९।। पार्थिव, देवरात, याज्ञवल्क्य समर्पण, उदुम्बर, वातड्य तलकायन, चान्द्रव, लोहिणी, रेणु, कारीषु, वभ्रु, पणिन, ध्यान, श्यामायन, हिरण्याक्ष, सांकृत, गालव, देवल, यामदूत, शालंकायन, वाष्कल, ललाट्य, बादर तथा अन्य भी सव बुद्धिमान् विश्वामित्र के वंशगण हैं तथा परस्पर एक दूसरे ऋषियों के अन्त विवाहों से अनेकों प्रकार के कौशिक वंशीय वंश स्मरण किये गये हैं।।७०-७३।। इसके अतिरिक्त कौशिक, सौश्रुत तथा सैन्धवायन पुण्य योगेश्वर ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के गोत्र हैं। विश्वामित्र से दृषद्वती में उत्पन्न होने वाले एक पुत्र का नाम अष्टक था, वह सबसे बड़ा पुत्र था। अष्टक के पुत्र जह्नुगण हुए, जिनका वर्णन मैंने पहले कर दिया है।।७४-७५।।

ऋषियों ने सूत जी से कहा—इस लोक में उत्पन्न होकर विश्वामित्र आदि क्षत्रिय राजाओं ने किस प्रकार के धर्म तप अथवा ज्ञान द्वारा ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया, जिन-जिन सत्कर्मों द्वारा अथवा दान द्वारा वे क्षत्रिय लोग ब्राह्मण हुए, उसको विशेषरूप से हम लोग जानना चाहते हैं।।७६-७७½।। ऋषियों ने जब इस प्रकार पूंछा, तब सूत जी यह सार्थक वाणी बोले कि अन्याय से इकट्ठा किये गये धन द्वारा धर्म की आकांक्षा से अच्छे-अच्छे विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर जो यज्ञादि सत्कार्य करते हैं, वे धर्म का फल नहीं प्राप्त करते।।७७½-७९।। जो धन के लोभ से निरंकुश व्यक्ति तीव्र जप करके आसक्ति और मोह से युक्त होकर पावन अर्थ के लिये अर्थात् ख्याति प्राप्त करने के लिये दान करता है, उसके द्वारा दिये गये दान निष्फल हो जाते हैं।।८०-८०½।। नीचात्मा वाले व्यक्ति वास्तव में हिंसभाव

एवं लब्ध्वा धनं मोहाद्ददतो यजतश्च ह। संक्लिष्टं कर्मणा दानं त तिष्ठति दुरात्मनः॥८२॥
न्यायागतानां द्रव्याणां तीर्थं संप्रतिपादनम्। कामाननभि संधाय यजते च ददाति च॥८३॥
स दानफलमाप्नोति तच्च दानं सुखोदयम। दानेन भोगानाप्नोति स्वर्गं सत्येन गच्छति॥८४॥
तपसा तु सुतप्तेन लोकान्विष्टभ्य तिष्ठति। सत्यं तु तपसः श्रेयस्तस्माज्ज्ञानं गुरु स्मृतम्॥८५॥
श्रूयते हि तपस्सिद्धाः क्षत्रोपेता द्विजातयः। विश्वामित्रो नरपतिर्मांधाता संकृतिः कपिः॥८६॥
काश्यश्च पुरुकुत्सश्च शलोगृत्समदः प्रभुः। आर्ष्टिषेणोऽजमीढश्च भार्गव्योमस्तथैव च॥८७॥
कक्षीवांश्चैवौशिजश्च नृपश्च शिशिरस्तथा। रथान्तरः शौनकश्च विष्णुवृद्धादयो नृपाः॥८८॥
क्षत्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषितां गताः। एते राजर्षयः सर्वे सिद्धिं तु महतीं गताः॥८९॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आयोर्वंशं महात्मनः॥९०॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते अमावसुवंशानुकीर्तनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥६६॥

से धर्म में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार अन्याय द्वारा अथवा मोह से धन प्राप्त कर जो दान करता है अथवा यज्ञ करता है, वह नष्ट हो जाता है अथवा वह धन ठहरता नहीं है।।८०½-८२।। इसलिए न्याय से प्राप्त धनों का जो तीर्थों में सम्प्रतिपादन करते हैं अर्थात् जो पात्र को दान देते हैं तथा अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए किसी प्रकार का षड्यन्त्र नहीं रचते अर्थात् किसी भी कार्य में उनका उद्देश्य स्वार्थपरक होता है, परार्थ हानिपरक नहीं होता, ऐसे व्यक्ति जो यज्ञ करते हैं और दान देते हैं, वे ही दान के वास्तविक फल को प्राप्त करते हैं तथा वही दान सुख समृद्धि और शान्ति प्रदान करने वाला होता है।।८३-८३½।। दान से मनुष्य भोगों को प्राप्त करता है तथा सत्य के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा अच्छी प्रकार कठिनता पूर्वक की गयी तपस्या से मनुष्य समस्त लोकों का अतिक्रमण कर स्थित होता है। अर्थात् समस्त लोकों को पार कर उनसे भी ऊपर हो जाता है।।८३½-८४½।। इसलिए तपस्या से सत्य श्रेयष्कर है, उस सत्य से बड़ा ज्ञान कहा गया है। सुना जाता है कि सवर्ण क्षत्रियों ने तप से सफलता प्राप्त की। नरपति विश्वामित्र, मान्धाता, संकृति, कपि, काश्य, पुरुकुत्स, शल, राजा गृत्समद, आर्ष्टिषेण, अजमीढ, भार्गव्य, उम, कक्षीव, औशिज, शिशिर, स्थान्तर, शौनक, विष्णु वृद्ध आदि ये सभी राजा क्षत्रिय थे; परन्तु अपने तप के प्रभाव से ऋषिता को प्राप्त हुए अर्थात् ऋषि हो गये। इन सभी राजर्षियों ने महती सिद्धि को प्राप्त किया।।८४½-८९।। अब इसके बाद मैं आयु के वंश का वर्णन करूँगा।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यमभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६६वां अध्याय चन्द्र वंश का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्‌घातपादे

धन्वन्तरिसम्भवादि नाम

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

आयोः पुत्रा महात्मानः पंचैवासन्महाबलाः। स्वर्भानुतनयायां ते प्रभायां जज्ञिरे नृपाः॥१॥
नहुषः प्रथमस्तेषां क्षत्रवृद्धस्ततः स्मृतः। रंभो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥२॥
क्षत्रवृद्धात्मजश्चैव सुनहोत्रो महायशाः। सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः॥३॥
काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः। पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः॥४॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च। एतस्य वंशे संभूता विचित्रैः कर्मभिर्द्विजाः॥५॥
शलात्मजो ह्यार्ष्टिषेणः शिशिरस्तस्य चात्मजः। शौनकाश्चार्ष्टिषेणाश्च क्षत्रोपेता द्विजातयः॥६॥
काश्यस्य काशिपो राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा। धन्वश्च दीर्घतपसो विद्वान्धन्वन्तरिस्ततः॥७॥
तपसोऽन्ते महतेजा जातो वृद्धस्य धीमतः। अथैनमृषयः प्रोचुः सूतं वाक्यमिदं पुनः॥८॥

ऋषय ऊचुः

कश्च धन्वंतरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान्। एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो ब्रूहि परंतप॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्‌घात पाद

अध्याय-६७

धन्वन्तरि की उत्पत्ति वर्णन

सूत जी ने कहा कि महात्मा आयु के महाबलवान् पाँच ही पुत्र थे। राजा स्वर्भानु की पुत्री से आयु ने वे पुत्र पैदा किये थे। वे सब राजा थे।।१।। उन सबमें प्रथम राजा नहुष हुए, उनके बाद क्षत्रवृद्ध स्मरण किये गये हैं। उसके पुत्र रम्भ, रजि, अनेन, नामक राजा तीनों लोकों में विख्यात सुने गये हैं।।२।। क्षत्रवृद्ध के पुत्र महायशस्वी राजा सुनहोत्र हुए। सुनहोत्र के उत्तराधिकारी तीन परम धार्मिक राजा हुए।।३।। काश और शल ये दो तथा गृत्समद तीसरे राजा हुए। गृत्समद के पुत्र शुनक हुए तथा शुनक के पुत्र शौनक हुए।।४।। इस वंश में पैदा होने वाली सन्तानें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों वर्णों में अपने विचित्र कर्मों द्वारा होने वाली सन्तानें हैं।।५।। शल के पुत्र राजा आर्ष्टिषेण हुए आर्ष्टिषेण के पुत्र शिशिर हुए। शौनक और आर्ष्टिषेण ये क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों दोनों वर्णों के राजा हैं।।६।। काश्य के पुत्र राजा काशिप तथा दीर्घतपा पुत्र हुए, दीर्घतया के पुत्र धन्व हुए, उसके बाद धन्व के पुत्र धन्वन्तरि हुए।।७।। परमतपस्वी बुद्धिमान् राजा धन्व की वृद्धावस्था में, उनकी तपस्या के अन्त में, महातेजस्वी धन्वन्तरि का जन्म हुआ था। इसके बाद ऋषियों ने सूत जी से यह वाक्य कहा।।८।।

ऋषियों ने पूँछा—कि हे सूत जी! हमें यह बताइये कि धन्वन्तरि किस प्रकार मत्युलोक में उत्पन्न हुए इस रहस्य को हम जानना चाहते हैं। हमें यह बतलाइये।।९।।

सूत उवाच

धन्वंतरेः संभवोऽयं श्रूयतामिह वै द्विजाः। स संभूतः समुद्रान्ते मथ्यमानेऽमृते पुरा॥१०॥
उत्पन्नः कलशात्पूर्वं सर्वतश्च श्रिया वृतः। सद्यःसंसिद्धकार्यं तं दृष्ट्वा विष्णुखस्थितः॥११॥
अब्जस्त्वमिति होवाच तस्मादब्जस्तु स स्मृतः।
अब्जः प्रोवाच विष्णुं तं तनयोऽस्मि तव प्रभो॥१२॥
विधत्स्व भागं स्थानं च मम लोके सुरोत्तम। एवमुक्तः स दृष्ट्वा तु तथ्यं प्रोवाच स प्रभुः॥१३॥
कृतो यज्ञविभागस्तु दैतेयैर्हि सुरैस्तथा। वेदेषु विधियुक्तं च विधिहोत्रं महर्षिभिः॥१४॥
न शक्यमिह होमं वै तुभ्यं कर्तुं कदाचन। अर्वाक्सूतोऽसि हे देव तव मंत्रो न वै प्रभो॥१५॥
द्वितीयायां तु संभूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि।
अणिमादियुतां सिद्धिं गतस्तत्र भविष्यसि॥१६॥
एतेनैव शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसि प्रभो। चा (च) तुर्मन्त्रैर्घृतैर्गव्यैर्यक्ष्यन्ते त्वां द्विजातयः॥१७॥
अथ वा त्वं पुनश्चैव ह्यायुर्वेदं विधास्यसि।
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं प्राग्दृष्टस्त्वब्जयोनिना॥१८॥
द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशयः। तस्मात्तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरंतर्दधे ततः॥१९॥

सूत जी बोले—हे ब्राह्मणो! धन्वन्तरि का जीवन सुनिये। प्राचीन काल में समुद्र मन्थन के अवसर पर देव धन्वन्तरि प्रकट हुए थे।।१०।। वे सर्वप्रथम सभी प्रकार की शोभाओं से सम्पन्न उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार वे सब प्रकार की सिद्धियों से सम्पन्न थे, अतः सब संसिद्धियों से सम्पन्न पैदा हुए उनको देखकर देवतालोग आश्चर्य चकित हो गये।।११।। और देवता लोग बोल उठे कि तुम जल से पैदा होने के कारण अब्ज हो। इस प्रकार वे अब्ज नाम से ही स्मरण किये गये हैं। उसके बाद अब्ज ने विष्णु से कहा कि भगवन्! मैं आपका पुत्र हूँ।।१२।। प्रभो! सुरोत्तम! मेरे लिये इस लोक में स्थान तथा यज्ञ में हमारे भाग की व्यवस्था कीजिये। अब्ज के ऐसा कहने पर प्रभु विष्णु ने अब्ज की ओर देखकर ये तथ्यपूर्ण बातें कहीं।।१३।। विष्णु ने कहा कि हे देव! यज्ञों की विधि व्यवस्था करने वाले देवताओं ने यज्ञादि में भाग लेने की व्यवस्था पहले से ही बना दी है। महर्षियों ने वेदों में उनके लिये विधिपूर्वक हवन करने की प्रक्रिया आदि भी निर्धारित कर दी है।।१४।। तुम बाद में पैदा हुए पुत्र हो, इसलिये हवनादि में उन देवों के साथ जिनके कि भाग तय हो चुके हैं, उसमें तुम्हें समानता नहीं प्राप्त करायी जा सकती।।१५।। दूसरे जन्म में तुम लोकों में ख्याति प्राप्त करोगे। जन्म से ही तुम्हें अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होगी।।१६।।

प्रभु विष्णु ने कहा कि प्रभो! धन्वन्तरि! तुम इसी शरीर से देवत्व को प्राप्त करोगे। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यगण चरु, मन्त्र, घृत, गन्ध आदि द्रव्यों से मन्त्रों के साथ तुम्हारी पूजा करेंगे।।१७।। उसके बाद तुम पुनः आयुर्वेद का उद्धार करोगे, यह सब अवश्य होकर रहेगा। इसीलिये ब्रह्मा जी ने तुम्हारी सृष्टि पूर्वकाल में की है।।१८।। दूसरे द्वापर युग को प्राप्त करके तुम वहाँ पैदा होगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस प्रकार उन धन्वन्तरि को वर देकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये।।१९।।

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रः स काशिराट्। पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा॥२०॥
अब्जं देवं तु पुत्रार्थे ह्यारिराधयिषुर्नृपः। वरेण च्छंदयामास ततो धन्वन्तरिर्नृपम्॥२१॥

नृप उवाच

भगवन्यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे गतिमान्भवेः। तथेति समनुज्ञाय तत्रैवांतरधात्प्रभुः॥२२॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वंतरिस्तदा। काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः॥२३॥
आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्येह सभिषक्क्रियम्। तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥२४॥
धन्वंतरिसुतश्चापि केतुमानिति विश्रुतः। अथ केतुमतः पुत्रो जज्ञे भीमरथो नृपः॥२५॥
पुत्रो भीमरथस्यापि जातो धीमान्प्रजेश्वरः। दिवोदास इति ख्यातो वाराणस्यधिपोऽभवत्॥२६॥
एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं पुरा। शून्यां निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः॥२७॥
शप्ता हि सा पुरी पूर्वं निकुंभेन महात्मना। शून्या वर्षसहस्त्रं वै भवित्रीति पुनःपुनः॥२८॥
तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः। विषयांते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत्॥२९॥

ऋषय ऊचुः

वाराणसीं किमर्थं तां निकुंभः शप्तवान्पुरा। निकुंभश्चापि धर्मात्मा सिद्धक्षेत्रं शशाप यः॥३०॥

दूसरे द्वापर युग के प्राप्त होने पर काशीराज सुनहोत्र के वंश में पैदा होने वाले राजा दीर्घतपा ने पुत्र की कामना से तपस्या की थी।।२०।। उस तपस्या में उस राजा दीर्घतपा ने उन्हीं अब्ज (धन्वन्तरि) से उनको ही पुत्र के रूप में प्राप्त करने की आराधना की थी। प्रसन्न होकर धन्वन्तरि ने राजा दीर्घतपा को वर देने को कहा।।२१।। राजा ने कहा कि भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं, तो फिर आप मेरे गतिमान् पुत्र हो जाओ अर्थात् आप ही मेरे पुत्र के रूप में जन्म धारण करो। अब्ज (धन्वन्तरि) ऐसा ही होगा। ऐसा कहकर वे अब्ज (धन्वन्तरि) अन्तर्धान हो गये।।२२।। उसके बाद उस वरदान के अनुसार दूसरे द्वापर युग में देव धन्वन्तरि राजा दीर्घतपा के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। वे ही काशिराज थे तथा बाद में चलकर वे काशिराज धन्वन्तरि सब रोगों के विनाश करने वाले हुए।।२३।।

भरद्वाज ऋषि ने औषधियों की समस्त प्रक्रियाओं के साथ आयुर्वेद का प्रणयन किया था। काशिराज धन्वन्तरि ने उन्हीं से प्राप्त कर आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त कर शिष्यों को उसकी शिक्षा प्रदान की।।२४।। धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान् विशेष रूप से सुने गये हैं। इसके बाद केतुमान् दिवोदास हुए, जो वाराणसी के प्रसिद्ध राजा हुए थे।।२६।। प्राचीन काल में इसी राजा के समय में वाराणसी बिल्कुल सूनी हो गयी थी; क्योंकि वाराणसी में क्षेमक नामक राक्षस घुस गया था।।२७।। इसका कारण था कि प्राचीन काल में महापराक्रमी निकुम्भ ने वाराणसी नगरी को यह शाप दिया था कि यह वाराणसी एक हजार वर्ष तक बार-बार सूनी हो जायेगी।।२८।। उसके इस प्रकार के शाप देने पर उस राजा दिवोदास ने इस वाराणसी नगरी को छोड़कर अपनी रम्य नगरी को गोमती के किनारे पर बसाया था (वही आज लखनऊ है)।।२९।।

ऋषियों ने पूँछा कि सूत जी! प्राचीन काल में निकुम्भ ने वाराणसी को क्यों शाप दिया था। परम धर्मात्मा होकर भी उसने सिद्ध क्षेत्र वाराणसी को ऐसा शाप क्यों दिया।।३०।।

सूत उवाच

दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः। वसते स महातेजाः स्फीतायां वै नराधिपः॥३१॥
एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः। देव्याः स प्रियकामस्तु वसन्वै श्वशुरांतिके॥३२॥
देवाज्ञया पारिषदा विश्वरूपास्तपोधनाः। पूर्वोक्तरूपसंवेषैस्तोषयंति महेश्वरीम्॥३३॥
हृष्यते तैर्महादेवो मेना नैव तु तुष्यति। जुगुप्सते सा नित्यं वै देवं देवीं तथैव च॥३४॥
मम पार्श्वेत्वनाचारस्तव भर्त्ता महेश्वरः। दरिद्रः सर्वथैवेह हा कष्टं लज्जते न वै॥३५॥
मात्रा तथोक्ता वचसा स्त्रीस्वभावान्न चक्षमे। स्मितं कृत्वा तु वरदा हरपार्श्वमथागमत्॥३६॥
विषण्णवदना देवी महादेवमभाषत। नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निवेशनम्॥३७॥
तथोक्तस्तु महादेवः सर्वाल्लौकान्निरीक्ष्य ह।
वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां तु द्विजोत्तमाः॥३८॥
वाराणसीं महातेजाः सिद्धक्षेत्रं महेश्वरः। दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टां नगरीं भवः॥३९॥
पार्श्वस्थं स समाहूय गणेशं क्षममब्रवीत्। गणेश्वर पुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु॥४०॥
मृदुना चाभ्युपायेन अतिवीर्यः स पार्थिवः। ततो गत्वा निकुंभस्तु पुरीं वाराणसीं पुरा॥४१॥
स्वप्ने संदर्शयामास मंकनं नामतो द्विजम्। श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानं मे रोचयानघ॥४२॥

सूत जी बोले कि राजा राजर्षि दिवोदास तो उस नगरी को प्राप्त कर निवास करते थे। वे महान् तेजस्वी राजा थे।।३१।। इसी समय महेश्वर शिव ने पार्वती के साथ पत्नी सम्बन्ध स्थापित किया था तथा देवी पार्वती को प्रसन्न करने की दृष्टि से अपने श्वसुर हिमालय के घर में ही निवास करते थे।।३२।। देवाधिदेव महादेव जी की आज्ञा से उनके अनेकों रूप धारण करने वाले महान् तेजस्वी पार्षदगण विचित्र विचित्र रूप धारण कर देवी पार्वती को प्रसन्न किया करते थे।।३३।। उनके इस कार्य से भगवान् शंकर तो प्रसन्न होते थे; परन्तु पार्वती की माता मेना को इससे प्रसन्नता नहीं होती थी। महादेव और पार्वती की नित्य अपने मन से घृणा किया करती थीं।।३४।। और वे पार्वती से कहती थीं कि मेरे पास में तुम्हारा ये पति दरिद्र महेश्वर सब प्रकार से यहाँ अनाचार किया करता है। इसको जरा भी लज्जा नहीं आती है।।३५।।

माता ने जब इस प्रकार की वाणी में कहा तो स्त्री स्वभाव के कारण पार्वती सहन न कर सकीं और वर देने वाली पार्वती मुस्करा कर चुप हो गयीं और फिर महादेव जी के पास आयीं।।३६।। उसके बाद खिन्न मुख पार्वती महादेव जी से बोली! हे देव! अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी, आप मुझे अपने निवास-स्थान पर ले चलिये।।३७।। जब पार्वती ने ऐसा कहा तो महादेव कहाँ ले जाते, उनके पास तो घर नहीं था, अतः हे विप्रो! समस्त लोकों में अपनी गहरी दृष्टि डालकर उन महातेजस्वी महेश्वर ने रहने के लिये पृथिवी पर सिद्धक्षेत्र वाराणसी नगरी को ही पसन्द किया।।३८-३८½।। भगवान् शंकर ने दिवोदास द्वारा शासित नगरी को जानकर गणेश्वर क्षेम को पास में बुलाकर कहा कि अरे गणेश्वर! तुम वाराणसी नगरी में जाकर वाराणसी को शून्य (जनरहित) कर दो।।३८½-४०।। तथा शंकर जी ने कहा कि बहुत मधुर उपायों से समझा-बुझाकर खाली करवाना; क्योंकि वहाँ का राजा अत्यन्त पराक्रमी है।।४०½।। उसके बाद शिव की आज्ञा से निकुम्भ वाराणसी पुरी को प्रस्थित हुआ और वहाँ जाकर उसने अपने

मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यंते निवेशय। तथा स्वप्ने यथा दृष्टं सर्वं कारितवान्द्विजः॥४३॥
नगरीद्वार्यनुज्ञाप्य राजानं तु यथाविधि। पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते॥४४॥
गंधैर्धूपैश्च बाल्यैश्च प्रेक्षणीयैस्तथैव च। अन्नप्रदानयुक्तैश्च ह्यत्यद्भुतमिवाभवत्॥४५॥
एवं संपूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः। ततो वरसहस्राणि नागराणां प्रयच्छति॥४६॥
पुत्रान्हिरण्यमायूंषि सर्वकामांस्तथैव च। राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता॥४७॥
पुत्रार्थमागता साध्वी राज्ञा देवी प्रचोदिता। पूजां तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रानयाचत॥४८॥
पुनःपुनरथागत्य बहुशः पुत्रकारणात्। न प्रयच्छति पुत्रांस्तु निकुंभः कारणेन तु॥४९॥
क्रुध्यते यदि राजा तु ततः किंचित्प्रवर्त्तते। अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत्॥५०॥
भूतं त्विदं महद्द्वारि नागराणां प्रयच्छति। प्रीत्या वरांश्च शतशो न किंचिन्नः प्रयच्छति॥५१॥
मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मम चैव तु। स याचितश्च बहुशो देव्या मे पुत्रकारणात्॥५२॥
न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नो बहुभोजनः। अतो नार्हति पूजा तु मत्सकाशात्कथंचन॥५३॥

तस्मात्तु नाशयिष्यामि तस्य स्थानं दुरात्मनः।
एवं तु स विनिश्चित्य दुरात्मा राजकिल्बिषी॥५४॥

को मङ्कन नामक नापित को स्वप्न में दिखाया और उससे कहा कि मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा। हे निष्पाप! तुम मुझे रहने का स्थान दो।।४०½-४२।। मेरे रूप की प्रतिमा बनाकर तुम नगरी के अन्त में स्थापित कर दो, तब उसने जैसे स्वप्न में देखा, उसी के अनुसार उस गणेश्वर की मूर्ति बनवाकर स्थापित कर दी।।४३।। राजा की अनुमति लेकर नगर द्वार पर उसकी प्रतिमा यथाविधि स्थापित की गयी, तब नित्य प्रति उस प्रतिमा की पूजा होने लगी।।४४।। नित्य गन्ध, धूप, वाल्य (खीलों) और फेंकने योग्य सुगन्धित द्रव्यों, अन्न दानादि द्वारा उनकी अद्भुत पूजा होने लगी।।४५।। इस प्रकार वहाँ नित्य गणेश्वर पूजे जाने लगे। उसके बाद जो पूजा करते थे, उन नगर निवासियों को वे गणेश्वर हजारों वर प्रदान करते थे।।४६।। वे किसी को पुत्रों को प्रदान करते थे। किसी को स्वर्ण, किसी को आयु आदि प्रदान कर सबकी सब कामनाओं को पूरा करते थे। राजा भी श्रेष्ठ रानी सुयशा नाम की विशेष रूप से प्रसिद्ध थी। वह साध्वी रानी भी लोगों द्वारा प्रेरित होकर पुत्र की कामना से वहाँ आयीं और बहुत अधिक पूजा करके देवी सुयशा ने उन गणेश्वर से पुत्र की याचना की।।४७-४८।। इस प्रकार बार-बार आकर सुयशा ने गणेश्वर की पूजा की और पुत्र प्राप्ति का वर माँगा; परन्तु निकुम्भ ने पुत्रों के प्राप्त होने का वर प्रदान नहीं किया।।४९।।

उसने सोचा कि यदि मैं रानी को वर नहीं दूंगा, तो राजा क्रोधित हो जायेगा, तो मेरा नगर खाली कराने वाला कार्य सिद्ध हो जायेगा। इसके बाद बहुत समय के बाद अन्त में राजा क्रोधित हो ही गये।।५०।। और राजा ने कहा कि यह भूत हमारे नगर के द्वार पर रहकर सब नगरवासियों को वर प्रदान करता है, प्रसन्न होकर उन्हें सैकड़ों वरदान देता है; परन्तु हमें कोई भी वर नहीं देता है।।५१।। मेरे द्वारा मेरी नगरी में इसकी नित्य पूजा की जा रही है। मेरी पत्नी ने पुत्र हेतु इसकी अनेकों बार पूजा की है।।५२।। फिर भी यह कृतघ्न (अहसान फरामोश) खद्दू मुझे एक पुत्र नहीं दे रहा है। अतः मेरे पास इसकी कोई किसी भी प्रकार पूजा नहीं की जा सकती।।५३।। उसी कारण से मैं अब इस दुष्टात्मा का स्थान नष्ट कर दूंगा। ऐसा निश्चय कर उस दुरात्मा और कुटिल राजा ने दुर्बुद्धिवश होकर

स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मतिः। भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमशपत्प्रभुः॥५५॥
यस्माद्विनापराधं मे त्वया स्थानं विनाशितम्। अकस्मात्तु पुरी शून्या भवित्री ते नराधिप॥५६॥
ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तदा। शप्त्वा पुरीं निकुंभस्तु महादेवमथानयत्॥५७॥
शून्यां पुरीं महादेवो निर्ममे पदमात्मनः। तुल्यां देवविभूत्या तु देव्याश्चैव महामनाः॥५८॥
रमते तत्र वै देवी ह्यैश्वर्यात्सा तु विस्मिता। देव्या क्रीडार्थमीशानो देवो वाक्यमथाब्रवीत्॥५९॥
नाहं वेश्म विमोक्ष्यमि ह्यविमुक्तं हि मे गृहम्। प्रहस्यैनामथोवाच ह्यविमुक्तं हि मे गृहम्।
नाहं देवि गमिष्यामि त्वन्यत्रेदं विहाय वै॥६०॥
मया सह रमस्वेह क्षेतरे भामिन्यनुत्तमे। तस्मात्तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम्॥६१॥
एवं वाराणसी शप्ता ह्यविमुक्तं च कीर्त्तिता। यस्मिन्वसेद्भवो देवः सर्वदेवनमस्कृतः॥६२॥
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः। अंतर्द्धानं कलौ याति तत्पुरं तु महात्मनः॥६३॥
अंतर्हिते पुरे तस्मिन्पुरी सा वसते पुनः। एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता॥६४॥
भद्रसेनस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः॥६५॥
भद्रसेनस्य राज्यं तु हतं तेन बलीयसा। भद्रसेनस्य पुत्रस्तु दुर्मदो नाम नामतः॥६६॥
दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः। दिवोदासादृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्द्दनः॥६७॥

गणेशवर निकुम्भ का स्थान नष्ट करा दिया। अपना स्थान नष्ट देखकर प्रभु निकुम्भ ने राजा को शाप दिया कि जिस विना किसी मेरे अपराध के तुमने मेरे स्थान को नष्ट कर दिया। अतः तुम्हारे इस अपराध से तुम्हारी यह नगरी अचानक सूनी हो जायेगी।।५४-५६।। उसके बाद उसके उस शाप से, तब वह वाराणसी नगरी सूनी हो गयी। उस नगरी को शाप देकर निकुम्भ भगवान् शंकर को उस नगरी लेकर आया।।५७।। देवाधिदेव महादेव ने उस नगरी को दैविक विभूतियों द्वारा निर्माण किया।।५८।। तब फिर उस नगरी में देवी पार्वती भगवान् शंकर के साथ रमण करते रहे। अपने भवन को देखकर देवी पार्वती को नित्य आश्चर्य होता था। जब वहाँ उस भवन में देवी पार्वती को रमण में सन्तुष्टि नहीं होती थी, तो उन्होंने शंकर जी को अन्यत्र चलने को कहा तो शंकर जी ने कहा।।५९।। कि हे देवि पार्वति! मैं अपने इस घर को नहीं छोड़ूंगा; क्योंकि यह मेरा घर अविमुक्त (न छोड़ने वाला है)। इस प्रकार उन्होंने हँसकर यह कहा कि यह मेरा अविमुक्त घर है, अतः इसको छोड़कर मैं दूसरी जगह कहीं नहीं जाऊँगा।।६०।।

शंकर जी ने पार्वती से कहा कि हे भामिनि! तुम यहीं इस अत्यन्त उत्तम क्षेत्र में मेरे साथ रमण करो। इस प्रकार जब शंकर जी ने उस नगरी को महादेव ने अविमुक्त कहा।।६१।। इस प्रकार तब से उस वाराणसी को शप्त और अविमुक्त कहा गया। उस नगरी में सब देवों के नमस्कृत देवाधिदेव धर्मात्मा महादेव ने देवी पार्वती के साथ तीनों युगों तक निवास किया।।६२-६२½।। केवल कलियुग में महात्मा शंकर की वह नगरी अन्तर्धान हो जाती है। उसके अन्तर्धान हो जाने पर वाराणसी पुरी वहां पुनः प्रतिष्ठित होती है।।६२½-६३½।। इस प्रकार निकुम्भ के शाप द्वारा शापित वाराणसी पुनः बसायी गयी।।६४।। प्राचीन काल में राजा दिवोदास ने राजा भद्रसेन के भारी धनुर्धारी सौ पुत्रों को मारकर उसके नगर में निवास किया।।६५।। उस बलवान् राजा दिवोदास ने भद्रसेन का राज्य छीन लिया था। भद्रसेन का एक पुत्र दुर्मद नाम का था।।६६।। दिवोदास ने उसे बालक समझकर उसे जीतने में अपना कोई

तेन पुत्रेण बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः। वैरस्यांतं महाराज तदा तेन विधित्सता॥६८॥
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो गर्गश्च विश्रुतौ। वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः॥६९॥
अलर्कं प्रति राजर्षि श्लोको गीतः पुरातनैः। षष्टिवर्षसहस्त्राणि षष्टिवर्षशतानि च॥७०॥
युवा रूपेण संपन्नो ह्यलर्कः काशिसत्तमः। लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तवान्॥७१॥
शापस्यांते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम्। रस्यामावासयामास पुरीं वाराणसीं नृपः॥७२॥
सन्नतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः। सुनीथस्य तु दायादः क्षेमाख्यो नाम धार्मिकः॥७३॥
क्षेमस्य केतुमान्पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः। सुकेतुतनयश्चापि धर्मकेतुरिति श्रुतः॥७४॥
धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः। सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः॥७५॥
सुविभुस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततः स्मृतः। सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः॥७६॥
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः। वेणुहोत्रसुतश्चापि गार्ग्यो वै नाम विश्रुतः॥७७॥

गार्ग्यस्य गर्गभूमिस्तु वंशो वत्सस्य धीमतः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव तयोः पुत्राः सुधार्मिकाः॥७८॥

विक्रांता बलवंतश्च सिंहतुल्यपराक्रमाः। इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता रजेरपि निबोधत॥७९॥
रजेः पुत्रशतान्यासन्पंच वीर्यवतो भुवि। राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिंद्रभयावहम्॥८०॥

महत्त्व न समझकर घृणा से छोड़ दिया था। राजा दिवोदास से दृषद्वती नामक पत्नी में प्रतर्दन नामक वीर पुत्र हुआ। भद्रसेन के उस पुत्र ने राजा दिवोदास के पुत्र से अपना छीना हुआ राज्य पुनः छीन लिया। उस राजा ने अपने पूर्व वैर का बदला चुका लिया।।६७-६८।। प्रतर्दन के दो पुत्र वत्स और गर्ग विशेष रूप से सुने गये हैं। वत्स के पुत्र अलर्क हुए, जिनके पुत्र का नाम सन्नति हुआ।।६९।। राजर्षि अलर्क के विषय में प्राचीन लोगों द्वारा दो श्लोक गाये जाते हैं, जिनका अर्थ इस प्रकार है—छियासठ हजार वर्षों तक काशिराज अलर्क युवा था। लोपामुद्रा की कृपा से उसे इतनी बड़ी आयु प्राप्त हुई।।७०-७१।। एक हजार वर्ष के शाप के बीत जाने पर महाबाहु राजा अलर्क ने क्षेमक नामक राक्षस को मारकर पुनः मनोहर वाराणसी नगरी को बसाया।।७२।।

राजा सन्नति के उत्तराधिकारी धार्मिक राजा सुनीथ हुए। सुनीथ के भी उत्तराधिकारी क्षेमाख्य नामक धार्मिक राजा हुए।।७३।। सुनीथ का उत्तराधिकारी सुकेतु नामक धार्मिक विचारों वाला राजा हुआ। सुकेतु के पुत्र धर्मकेतु नामक सुने जाते हैं।।७४।। धर्मकेतु के उत्तराधिकारी महारथी राजा सत्यकेतु हुए, सत्यकेतु के पुत्र विभु नामक प्रजापालक राजा हुए।।७५।। विभु के पुत्र सुविभु हुए, उसके बाद उन सुविभु के पुत्र सुकुमार स्मरण किये गये हैं। सुकुमार के पुत्र तो सुधार्मिक धृष्टकेतु हुए।।७६।। धृष्टकेतु के उत्तराधिकारी प्रजापालक राजा वेणुहोत्र हुए और वेणुहोत्र के पुत्र भी गार्ग्य नामक राजा विशेष रूप से सुने गये हैं।।७७।। गार्ग्य के पुत्र गर्गभूमि और बुद्धिमान् वत्स के पुत्र वात्स्य हुए इन दोनों राजाओं के पुत्र ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वंशों के सञ्चालक हुए।।७८।। ये सब राजा गण बहुत उत्साही, बलवान् और सिंह के समान पराक्रमी थे। यह मैंने काशी के राजाओं का वर्णन कर दिया है, अब रजि के पुत्रों का वर्णन सुनिये।।७९।। महाराज रजि के सौ पुत्र थे, जिनमें पाँच पृथ्वी पर बहुत पराक्रमी थे। वे राजेय नाम से विख्यात थे। इन्द्र भी उनके बल से डरते थे।।८०।।

तदा देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे। देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन्॥८१॥
आवयोर्भगवन्युद्धे विजेता को भविष्यति। ब्रूहि नः सर्वलोकेश श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥८२॥

ब्रह्मोवाच।

येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः। योत्स्यते ते विजष्यंते त्रींल्लोकान्नात्र संशयः॥८३॥
रजिर्यतस्ततो लक्ष्मीर्यतो लक्ष्मीस्ततो धृतिः। यतो धृतिस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः॥८४॥
ते देवा दानवाः सर्वे ततः श्रुत्वा रजेर्जयम्। अभ्ययुर्जयमिच्छंतः स्तुवंतो राजसत्तमम्॥८५॥
ते हृष्ट मनः सर्वे राजानं देवदानवाः। ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम्॥८६॥

रजिरुवाच।

अहं जेष्यामि भो दैत्या देवाञ्छक्रपुरोगमान्।
इंद्रो भवामि धर्मात्मा ततो योत्स्ये रणाजिरे॥८७॥

दानवा ऊचुः

अस्माकमिंद्रः प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे। अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेथा देवनोदिते॥८८॥
स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिनोदितः। भविष्यसींद्रो जित्वेति देवैरपि निमंत्रितः॥८९॥
जघान दानवान्सर्वान्येऽवध्या वज्रपाणयः। स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी॥९०॥

उस समय जब देवताओं और असुरों में भीषण युद्ध हुआ था, उस समय देवों और असुरों ने मिलकर ब्रह्मा जी से पूँछा कि भगवन् हम दोनों के इस युद्ध में विजेता कौंन होगा? हे सब लोकों के स्वामी! हम यह आपसे सुनना चाहते हैं।।८१-८२।।

ब्रह्मा जी ने कहा— कि जिनके लिये महाराज रजि युद्ध में आयुध धारण करेंगे, वे ही तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।८३।। उसके बाद ब्रह्मा जी ने कहा कि जहाँ पर राजा रजि हैं, वहीं पर लक्ष्मी हैं, जहाँ पर लक्ष्मी हैं, वहीं पर धृति (धैर्य) है तथा जहाँ धृति है, वहीं पर धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं पर जीत है।।८४।। उसके बाद उन देवों और दानवों ने रजि की जीत की बात को सुनकर अपनी अपनी जीत की इच्छा से स्तुति करते हुए महाराज रजि के पास गमन किया और अत्यन्त प्रसन्न मन से उन देवों और दानवों ने राजा रजि से निवेदन किया कि आप हमें जीत का वरदान दीजिये। देवों ने कहा कि आप हमारे लिए धनुष धारण कीजिये। दानवों ने कहा कि आप हमारे लिए धनुष धारण कीजिये।।८६।।

महाराजा रजि ने कहा कि हम तुम सबको युद्ध में पराजित कर देंगे परन्तु हम ही धर्मात्मा इन्द्र होंगे। तभी हम युद्ध में धनुष धारण करेंगे।।८७।।

दानवों ने कहा कि हम लोगों के इन्द्र प्रह्लाद हैं, उन्हीं की विजय हम सब चाहते हैं; परन्तु हे राजन्! इस समय आप देवों द्वारा प्रेरित कथन पर स्थित रहिये अर्थात् हम आपको इन्द्र पद दे सकते हैं। आप हमारे साथ रहिये।।८८।। यह दानव कह ही रहे थे, तब तक देवताओं ने आप ही विजयोपरान्त हमारे इन्द्र होंगे यह कहकर देवों ने भी उन्हें निमन्त्रण दे दिया। राजा ने देवताओं का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।।८९।। देवताओं के इस निमन्त्रण को स्वीकार कर वज्रपाणि देवराज इन्द्र के देखते देखते ही सभी दानवों का संहार कर डाला। इस प्रकार

निहत्य दानवान्सर्वानाजहार रजिः प्रभुः। तं तथाह रजिं तत्र देवैः सह शतक्रतुः॥९१॥
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः। इंद्रोऽसि राजन्देवानां सर्वेषां नात्र संशयः॥९२॥
यस्याहमिद्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि शत्रुहन्।
स तु शक्रवचः श्रुत्वा वंचितस्तेन मायया॥९३॥
तथेत्येवाह वै राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम्। तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ॥९४॥
दायाद्यमिंद्रादा जह्रुराचार्यतनया रजेः। तानि पुत्रशतान्यस्य तच्च स्थानं शचीपतेः॥९५॥
समाक्रामंत बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम्। ततः काले बहुतिथे समतीते महाबलः॥९६॥
हतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हतभागो बृहस्पतिम्। बदरी फलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे॥९७॥
ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाप्यायितस्ततः। ब्रह्मन्कृशोऽहं विमना त्दृतराज्यो हृतासनः॥९८॥
हतौजा दुर्बलो युद्धे रजिपुत्रैः प्रसीद मे।
बृहस्पतिरुवाच।
यद्येवं चोदितः शक्र त्वयास्यां पूर्वमेव हि॥९९॥
नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थमकर्त्तव्यं ममानघ। प्रयतिष्यामि देवेन्द्र त्वद्धितार्थं महाद्युते॥१००॥
यज्ञभागं च राज्यं च अचिरात्प्रतिपत्स्यसे।
तथा शक्र गमिष्यामि मा भूत्ते विक्लवं नः॥१०१॥

उस जितेन्द्रिय प्रभावशाली महाराजा रजि ने समस्त दानवों को मारकर देवों की नष्ट हुयी राजलक्ष्मी का उद्धार किया। उसके बाद देवताओं के साथ राजा इन्द्र उन महाराज रजि से इस प्रकार बोले।।९०-९१।। हे महाराज! मैं आपका पुत्र हूँ, इसके बाद फिर इन्द्र ने कहा कि हे राजन्! आप सब देवताओं के इन्द्र हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।९२।। हे शत्रुहन्ता राजन्! मैं इन्द्र आपके पुत्र के रूप में प्रसिद्ध होऊँगा, ऐसी बात सुनकर और उसकी माया से ठगे जाकर प्रसन्न महाराजा रजि ने कहा ठीक है।।९३-९३½।। उसके बाद देवसदृश उन राजा रजि के स्वर्ग सिधारने पर उनके पुत्रों ने इन्द्र से उसका सारा अधिकार छीन लिया। इस प्रकार इन्द्र के स्थान पर महाराज रजि के १०० पुत्रों ने अपना अधिकार जमा लिया और एक साथ अनेकों प्रकार से समस्त स्वर्ग को आक्रान्त कर दिया।।९३½-९५½।। इसके बहुत समय बीत जाने पर महाबलशाली हतभाग्य राजा इन्द्र समस्त राज्य छिन जाने पर अपने गुरु बृहस्पति के पास गये।।९५½-९६½।। और बोले हे गुरुदेव! आप बैर के फल के बराबर पुरोडाश (चरु) का अंश मेरे लिये बनाइये, जिससे मैं युद्ध में ठहर सकूँ, उसी के तेज से मैं सन्तुष्ट हो सकूँगा।।९६½-९७½।। इन्द्र ने कहा कि भगवन्! मैं राज्य और राज्य सिंहासन छिन जाने से अत्यन्त दुर्वल हो गया हूँ तथा मेरा मन कहीं नहीं लगता है। अतः हे गुरुदेव! पराक्रमहीन और दुर्वल मेरी रजि पुत्रों से रक्षा कीजिये।।९७½-९८½।।

बृहस्पति ने कहा कि हे इन्द्र तुम यदि पहले ही अपनी यह स्थिति बता देते तो तुम्हारी यह दशा नहीं हुई होती। तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ होता। हे निष्पाप! मैं तुम्हारे लिये कुछ भी अकरणीय कार्य कर सकता हूँ।।९८½-९९½।। हे देवेन्द्र! मैं तुम्हारे हित के लिये प्रयास करूँगा, ताकि तुम्हारा यज्ञभाग और राज्य शीघ्र लौटाया जा सके। अतः तुम अपने मन में दुःखी मत होओ।।९९½-१०१।।

ततः कर्म चकारास्य तेजःसंवर्द्धनं महत्। तेषां च बुद्धिसंमोहमकरोद्बुद्धिसत्तमः॥१०२॥
ते यदा तु सुसंमूढा रागान्मत्तो विधर्मिणः। ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः॥१०३॥
ततो लेभेऽसुरैश्वर्यमैंद्रस्थानं तथोत्तमम्। हत्वा रजिसुतान्सर्वान्कामक्रोधपरायणान्॥१०४॥

य इदं च्यवनं स्थानात्प्रतिष्ठां च शतक्रतोः।
श्रृणुयाच्छ्रावयेद्वापि न स दौरात्म्यमाप्नुयात्॥१०५॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे धन्वतरिसंभवादिवर्णनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥

इस प्रकार इन्द्र को सान्त्वना देकर बृहस्पति ने इन्द्र के पराक्रम को बढ़ाने के लिए कार्यक्रम किया। परम बुद्धिमान् बृहस्पति ने उन रजिपुत्रों की बुद्धि को सम्मोहित कर दिया।।१०२।। जिसके कारण उन सबकी बुद्धि नष्ट हो गयी और सब राग में मस्त होकर विधर्मी हो गये। वे ब्रह्म से तथा ब्राह्मणों से द्वेष करने लगे और पराक्रम विहीन हो गये।।१०३।। उसके बाद इन्द्र ने काम, क्रोध में लिप्त सब रजिपुत्रों को मारकर अपना उत्तम देवताओं का स्वामित्व पुनः प्राप्त कर लिया।।१०४।। जो व्यक्ति शतक्रतु इन्द्र की पुनः प्रतिष्ठा प्राप्ति तथा महाराजा रजि के वृत्तान्त को सुनता है, वह कभी भी दुरात्मत्व (नींचता) को प्राप्त नहीं होता।।१०५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६७वां अध्याय धन्वन्तरि की उत्पत्ति वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

ययातिचरितवर्णनं नाम

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

मरुतेन कथं कन्या राज्ञे दत्ता महात्मना। किंवीर्याश्च महात्मानो जाता मरुतकन्यया॥१॥

सूत उवाच

आहरत्स मरुत्सोममन्नकामः प्रजेश्वरः। मासिमासि महातेजाः षष्टिसंवत्सरान्नृप॥२॥
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोषिताः। अक्षय्यान्नं ददुः प्रीताः सर्वकामपरिच्छदम्॥३॥
अन्नं तस्य सकृद्भुक्तमहोरात्रं न क्षीयते। कोटिशो दीयमानं च सूर्यस्योदयनादपि॥४॥
मित्रज्योतेस्तु कन्याया मरुतस्य च धीमतः। तस्माज्जाता महासत्त्वा धर्मज्ञा मोक्षदर्शिनः॥५॥
संन्यस्य गृहधर्माणि वैराग्यं समुपस्थिताः। यतिधर्ममवाप्येह ब्रह्मभूयाय ते गताः॥६॥
अनेनसः सुतो जातः क्षत्रधर्मः प्रतापवान्। क्षत्रधर्मसुतो जातः प्रतिपक्षो महातपाः॥७॥
प्रतिपक्षसुतश्चापि सृंजयो नाम विश्रुतः। सृंजयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य जज्ञिवान्॥८॥
विजयस्य जयः पुत्रस्तस्य हर्यश्वकः स्मृतः। हर्यश्वस्य सुतो राजा सहदेवः प्रतापवान्॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-६८

ययातिचरित वर्णन

ऋषियों ने सूत जी से कहा कि महात्मा मरुत् ने अपनी कन्या राजा को क्यों प्रदान की थी तथा उस कन्या से महाबलशाली पुत्र कितने पराक्रमी हुए।।१।।

सूत जी बोले—गहातेजस्वी राजा ने अन्न की कामना से प्रत्येक महीने में साठ वर्षों तक प्रजापति मरुत् एवं सोम का यज्ञ किया था।।२।। उसके वाद मरुत्सोमयज्ञ से परम प्रसन्न होकर मरुतों ने अक्षय अन्न प्रदान किये, जो सभी मनोरथों के पूरक थे।।३।। जो उसका एक बार पकाया हुआ अन्न सूर्योदय से करोड़ों बार दिया जाता हुआ भी ब्रह्माण्ड में युक्त दिन रात में नहीं नष्ट होता था।।४।। परम बुद्धिमान् मरुत् की कन्या में मित्रज्योति का जन्म हुआ, उससे महापराक्रमी, धर्मज्ञ, मोक्षदर्शी पुत्रों की उत्पत्ति हुई।।५।। जिन्होंने गृहस्थ धर्म को छोड़कर वैराग्य के मार्ग का अनुसरण किया तथा अन्त में वे संन्यासियों का धर्म ग्रहण कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए।।६।। उसके बाद अनेना की उत्पत्ति तथा अनेना से प्रतापी पुत्र क्षत्रधर्म उत्पन्न हुआ। ऊनपाय की उत्पत्ति हुईउससे क्षत्रधर्म पुत्र की उत्पत्ति हुई। क्षत्रधर्म से महान् तपस्वी प्रतिपक्ष की उत्पत्ति हुई।।७।। प्रतिपक्ष के पुत्र सृंजय नाम से विश्रुत हुए। सृंजय के पुत्र जय हुए और फिर जय से विजय नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई।।८।। विजय का पुत्र भी जय नाम से विख्यात हुआ। जय का पुत्र हर्यश्वक नाम से प्रसिद्ध हुआ। हर्यश्व के पुत्र प्रतापी राजा सहदेव हुए।।९।।

सहदेवस्य धर्मात्मा अहीन इति विश्रुतः। अहीनस्य जयत्सेनस्तस्य पुत्रोऽथ संकृतिः॥१०॥
संकृतेरपि धर्मात्मा कृतधर्मा महायशाः। इत्येते क्षत्रधर्माणो नहुषस्य निबोधत॥११॥
नहुषस्य तु दायादाः षडिंद्रोपमतेजसः। यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः॥१२॥
यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवरः।
काकुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे पत्नीं यतिस्तदा॥१३॥
स यतिर्मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः। तेषां मध्ये तु पंचानां ययातिः पृथिवीपतिः॥१४॥
देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप ह। शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः॥१५॥
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत। द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी॥१६॥
अजीजनन्महावीर्यान्सुतान्देवसुतोपमान्। रथं तस्मै ददौ शक्रः प्रीतः परमभास्वरम्॥१७॥
असंगं कांचनं दिव्यमक्षयौ च महेषुधी। युक्तं मनोजवैरश्वैर्येन कन्यां समुद्वहत्॥१८॥
स तेन रथमुख्येन जिगाय सततं महीम्। ययातिर्युधि दुर्द्धर्षो देवदानवमानवैः॥१९॥
पौरवाणां नृपाणां च सर्वेषां सोऽभवद्रथी। यावत्सुदेशप्रभवः कौरवो जनमेजयः॥२०॥
कुरोः पौत्रस्य राज्ञस्तु राज्ञः पारीक्षितस्य ह। जगाम सरथो नाशं शाप्दाग्र्यस्य धीमतः॥२१॥
गार्ग्यस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः। दुर्बुद्धिर्हिंसयामास लोहगंधी नराधिपः॥२२॥

सहदेव के पुत्र धर्मात्मा अहीन इस प्रकार विशेषतः सुने गये। अहीन के पुत्र जयत्सेन हुए, उसके बाद उन जयत्सेन के पुत्र संकृति हुए।।१०।। संकृति के भी महापराक्रमी धर्मात्मा कृतधर्मा हुए। वे सभी राजागण क्षत्रियों के गुणकर्म और स्वभाव वाले थे।।११।। राजा नहुष के उत्तराधिकारी इन्द्र के समान पराक्रमी यति, ययाति, संपाति, आयति, वियति और कृति छः राजा हुए।।१२।। इनमें यति सबसे बड़े थे, उनसे छोटे राजा ययाति थे। यति ने राजा काकुत्स्थ की कन्या गौ को पत्नी रूप में वरण किया था।।१३।। वे यति मोक्ष का आश्रय लेकर ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए। उन पाँचों के मध्य सबसे बड़े ययाति ही थे, जो राजा हुए।।१४।। ययाति ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को पत्नी के रूप में प्राप्त किया।।१५।। देवयानी यदु और तुर्वसु को देवयानी ने जन्म दिया और दुह्यु, अनु और पुरु को वृषपर्वा पुत्री शमिष्ठा ने जन्म दिया।।१६।। इस प्रकार राजा ययाति ने इन देवताओं के समान सुन्दर एवं पराक्रमी पुत्रों को उत्पन्न किया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर उन राजा ययाति को बहुत अधिक चमकता हुआ रथ प्रदान किया।।१७।।

इसके अतिरिक्त कभी न नष्ट होने वाले तरकश भी दिये थे। उस सुन्दर रथ में मन के समान वेगशाली घोड़े जुते हुए थे, उसी रथ से शुक्र की पत्नी देवयानी को साथ लेकर राजा ययाति ने समस्त पृथ्वी को जीत लिया था। वह राजा ययाति युद्धभूमि में देवों, दानवों, मनुष्यों में सबसे दुर्दमनीय था।।१८-१९।। समस्त पुरुवंशी राजाओं में इन्द्र का दिया हुआ वह महान् रथ व्यवहार में लाया जाता था। जब कुरुवंश के राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय शासनारूढ हुए, उस समय भी वह सुन्दर रथ उनके अधीन था। बुद्धिमान् गार्ग्य के शाप से वह रथ नष्ट हुआ।।२०-२१।। राजा जनमेजय ने गार्ग्य के पुत्र को मार दिया था, जिसके कारण गार्ग्य ने राजा को लोहे की गन्ध वाला हो जाने का शाप दे दिया। अतः वह राजा लोहगन्ध वाला हो गया।।२२।।

स लोहगंधी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः। पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित्॥२३॥
ततः स दुःखसंतप्तो नालभत्संविदं क्वचित्। स प्रायाच्छौनकमृषिं शरणं व्यथितस्तदा॥२४॥
इंद्रोतोनाम विख्यातौ योऽसौ मुनि रुदारधीः। योजयामास चेंद्रोतः शौनको जनमेजयम्॥२५॥
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः। स लोहगंधो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह॥२६॥
स वै दिव्यो रथस्तस्माद्वसोश्चेदिपतेस्तथा। दत्तः शक्रेन तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः॥२७॥
ततो हत्वा जरासंधं भीमस्तं रथमुत्तमम्। प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनंदनः॥२८॥
स जरां प्राप्य राजर्षिर्ययातिर्नहुषात्मजः। पुत्रं श्रेष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद्वचः॥२९॥

जरावली च मां तात पलितानि च पर्ययुः।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने॥३०॥

त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। जरां मे प्रतिगृह्णीष्व तं यदुः प्रत्युवाच ह॥३१॥

अनिर्दिष्टा हि मे भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता।
सा तु व्यायामसाध्या वै न ग्रहीष्यामि ते जराम्॥३२॥

जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः। तस्माज्ज्वरां न ते राजन्ग्रहीतुमहमुत्सहे॥३३॥
सितश्मश्रुधरो दीनो जरया शिथिलीकृतः। वलीसंततगात्रश्च निराशो दुर्बलाकृतिः॥३४॥

जब वह राजा लोह गन्धी हो गया तो इधर-उधर घूमने लगा। नगर के निवासियों ने दुर्गन्ध के कारण त्याग दिया। कोई भी उसके पास नहीं आता था। सब लोग उससे घृणा करने लगे।।२३।। उसके बाद उस दुःख से दुःखी उस राजा को कहीं भी पनाह नहीं मिली, तब दुःखी होकर वह महर्षि शौनक की शरण में गया।।२४।। वे उदार बुद्धि वाले मुनि इन्द्रोत नाम से विख्यात थे। उन शुनक पुत्र शौनक मुनि इन्द्रोत ने सुगन्धयुक्त बनाने के लिए अश्वमेध यज्ञ की योजना बनायी और अश्वमेध यज्ञ द्वारा उन्हीं के निवास-स्थान राजा का लोहगन्धत्व समाप्त हुआ।।२५-२६।। वह दिव्य रथ सबसे पहले चेदिपति राजा वसु के अधीन हुआ था। वसु से इन्द्र ने प्राप्त किया। इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर वह वृहद्रथ को दिया था।।२७।। उसके बाद बृहद्रथ से जरासन्ध ने प्राप्त किया। फिर पाण्डव नन्दन भीम ने जरासंध को युद्ध में मारकर वह रथ वासुदेव श्रीकृष्ण को प्रदान किया।।२८।। यह रथ की पूर्व कहानी है, उसके बाद वह रथ परीक्षित को तथा उसके पुत्र जन्मेजय को प्राप्त हुआ, जो पहले ही बता दिया गया है।

अब राजा ययाति का वृत्तान्त बताते हैं कि उस नहुष पुत्र राजर्षि ययाति ने जब वृद्धावस्था को प्राप्त किया, तब उन्होंने अपने सबसे बड़े श्रेष्ठ पुत्र यदु को इस प्रकार वचन कहे।।२९।। हे पुत्र! शुक्राचार्य के शाप के कारण मुझे वृद्धावस्था ने पूरी तरह घेर लिया है। मेरे सब बाल पक गये हैं। मैं अपने यौवन में तृप्त नहीं हुआ हूँ। तुम मेरी वृद्धता और पाप को ग्रहण कर लो। राजा ययाति ने जब ऐसा कहा तो यदु ने उत्तर दिया।।३०-३१।। यदु ने कहा कि हे पिता जी! मैंने आजीवन ब्राह्मणों को भिक्षा देने की प्रतिज्ञा कर ली है। वह भिक्षा श्रमसाध्य है तथा वृद्धावस्था में मनुष्य परिश्रम कर नहीं सकता; इसलिए मैं आपकी वृद्धता नहीं ले सकता हूँ।।३२।। वृद्धता में पीने खाने सम्बन्धी अनेकों दोष होते हैं अर्थात् वृद्धावस्था में भोजन अच्छी तरह नहीं पचता है, पानी भी सोच-समझकर पीना पड़ता है; इसलिए मैं आपकी वृद्धता लेने का उत्साह नहीं कर रहा हूँ।।३३।।

अशक्तः कार्यकरणे परिभूतस्तु यौवने। सहोपवीतिभिश्चैव तां जरां नाभिकामये॥३५॥
संति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप। प्रतिगृह्णंतु धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै॥३६॥
स एवमुक्तो यदुना तीव्रकोपसमन्वितः। उवाच वदतां श्रेष्ठो ज्येष्ठं तं गर्हयन्सुतम्॥३७॥
आश्रमः कस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मविधिस्तव। मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदहं तव देशिकः॥३८॥

एवमुक्त्वा यदुं राजा शशापैनं स मन्युमान्।
यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि॥३९॥

तस्मान्न राज्यभाङ्मूढ प्रजा ते वै भविष्यति। तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह॥४०॥

तुर्वसुरुवाच।

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम्। जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः॥४१॥

तस्माज्ज्वरां न ते राजन्ग्रहीतुमहमुत्सहे।

ययातिरुवाच।

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि॥४२॥

तस्मात्प्रजा नु विच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति। संकीर्णेषु च धर्मेण प्रतिलोमनरेषु च॥४३॥

वृद्धता में बाल सफेद हो जाते हैं और श्वेत बाल धारण करने वालों को यह बृद्धता एकदम शिथिल कर देती है। शरीर सिकुड़ जाता है। शरीर पर झुर्रियां पड़ जाती हैं। मुख की आकृति देखने में बहुत खराब हो जाती है।।३४।। वृद्धता आने पर मनुष्य किसी भी कार्य को करने में असमर्थ हो जाता है तथा यौवन में जो सुख भोगे हैं, वे सब नहीं मिल पाते, अतः ऐसी वृद्धता को मैं नहीं चाहता हूं।।३५।। हे राजन्! मुझसे भी प्रिय आपके बहुत से पुत्र हैं। हे धर्मज्ञ! आप उन्हीं को यह वृद्धता स्वीकार कराइये तथा उन्हीं से वृद्धता लेने की याचना कीजिये।।३६।। यदु की ऐसी बात सुनकर बोलने वालों में प्रवीण राजा ययाति बहुत क्रोधित होकर अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु की भारी निन्दा करते हुए बोले दुर्बुद्धे! मेरा अनादर करके तुम्हारा कौंन सा आश्रम है। गृहस्थाश्रम के अलावा क्या तुम्हारा कोई अन्य आश्रम धर्म है। तुम्हारे धर्म का क्या विधान है।।३७-३८।। इस प्रकार यदु से कहकर क्रोधी राजा ययाति ने यदु को यह शाप दे दिया कि जो तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी यौवन अवस्था नहीं दे रहे हो, सो हे मूढ़! तुम्हारी सन्तान अथवा तुम हमारे राज्य के उत्तराधिकारी न होंगे। इस प्रकार शाप देकर राजा ययाति ने तुर्वसु नामक अपने पुत्र से कहा कि मेरी वृद्धता और मेरे पाप को तुम ग्रहण कर लो पुत्र अपनी युवावस्था मुझे दे दो।।३९-४०।।

तुर्वसु ने कहा कि हे पिताजी मैं काम और भोग को नष्ट कर देने वाली वृद्धता (बुढ़ापे) को मैं नहीं चाहता हूं। पान और भोजन सम्बन्धी बहुत दोष है। भोजन पचता नहीं, पानी भी देखकर पीना पड़ता है, इसलिये हे राजन्! मैं आपकी वृद्धता को लेने का उत्साह नहीं कर रहा हूं।।४१-४१½।।

ययाति ने कहा—जो तुम मेरे हृदय से उत्पन्न हुए हो फिर भी अपनी जवानी मुझे नहीं दे रहे हो, इसी कारण हे पुत्र तुर्वसु! तुम्हारी सन्तानें नाश को प्राप्त होंगी तथा प्रतिलोम विवाह की रीति से वे वर्णसंकर हो जायेंगी अर्थात् तुम्हारी पुत्रियां नीच वर्णों में विवाह करेंगी, उनकी सब सन्तानें नीच वर्ण की हो जायेंगी।।४१½-४३।।

पिशिताशिषु चान्येषु मूढ राजा भविष्यसि। गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु वा।
वत्सस्ते पाप म्लेच्छेषु भविष्यति न संशयः॥४४॥

सूत उवाच

एवं तु तुर्वसुं शप्त्वा ययातिःसुतमात्मनः॥४५॥
शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत्। द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम्॥४६॥
जरां वर्षसहस्रं वै यौवनं स्वं ददस्व मे। पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम्॥४७॥
स्वं चादास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह।

द्रुह्युउवाच

नारोहेत रथं नाश्वं जीर्णो भुंक्ते न च स्त्रियम्। न सुखं चास्य भवति न जरां तेन कामये॥४८॥

ययातिरुवाच।

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि॥४९॥
तस्माद्द्रुह्यो प्रियः कामो न ते संपत्स्यते क्वचित्।
नौप्लवोत्तरसंचारस्तव नित्यं भविष्यति॥५०॥
अराजा राजवंशस्त्वं तत्र नित्यं वसिष्यसि। अनो त्वं प्रतिपाद्यस्व पाप्मानं जरया सह॥५१॥
एवं वर्षसहस्रं तु चरेयं यौवनेन ते।

धर्म से च्युत मांसाहारी और अन्य दुराचारों में रहने वाली प्रजाओं के तुम राजा होगे। गुरुपत्नी के साथ गमन करने वाले, नीच योनियों में जन्म लेने वालों पशुओं के समान विवेकशून्य म्लेच्छों के देश के तुम राजा बनोगे। इसमें सन्देह नहीं है।।४४।।

सूत जी बोले—इस प्रकार अपने दूसरे पुत्र तुर्वसु को शाप देकर राजा ययाति अपने शर्मिष्ठा से उत्पन्न पुत्र द्रुह्यु से यह वचन बोले कि हे पुत्र! द्रुहु! तुम वर्ण और रूप को नष्ट करने वाली मेरी इस वृद्धता को स्वीकार कर लो तथा एक हजार वर्ष के लिए अपनी युवावस्था मुझे प्रदान करो। एक हजार वर्ष बीत जाने पर मैं तुम्हें तुम्हारी युवावस्था लौटा दूँगा और अपनी वृद्धावस्था पुनः वापस ले लूँगा।।४५-४७½।।

द्रुह्यु ने कहा कि हे पिताजी! वृद्ध पुरुष न तो रथ पर चढ़ सकता है, न घोड़े पर चढ़ सकता है, न ही बूढ़ा व्यक्ति स्त्री को भोग सकता है तथा न ही इस वृद्ध मनुष्य को कोई सुख ही होता है। इन कारणों से मैं आपकी वृद्धता को नहीं लेना चाहता हूँ।।४८।।

तब राजा ययाति ने कहा कि द्रुह्यु तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी अवस्था नहीं दे रहे हो। इसी कारण से तुम्हारी कोई प्रिय कामना पूर्ण नहीं होगी। तुम्हारा रोज का आना जाना नाव पर ही होगा, जहाँ जिस देश में कोई राजा या राजवंश नहीं होगा, उसी देश में तुम्हारा निवास होगा।।४९-५०½।। इस प्रकार द्रुह्यु को शाप देकर राजा ययाति ने अनु से कहा कि हे पुत्र! तुम मेरी वृद्धावस्था के साथ मेरे पाप को स्वीकार करो। इस प्रकार एक हजार वर्ष तक तुम्हारे यौवन से मैं आचरण करूँगा।।५०½-५१½।।

अनुरुवाच।

जीर्णः शिशुरिवाशक्तो जरया ह्यशुचिः सदा।
न जुहोति स कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये॥५२॥

ययातिरुवाच।

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि॥५३॥
जरादोषस्त्वयोक्तोऽयं तस्मात्त्वं प्रतिपत्स्यसे। प्रजा च यौवनं प्राप्ता विनष्यत्यनो तव॥५४॥
अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्वं वाप्येवं भविष्यसि। पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह॥५५॥
जरावली च मां तात पलितानि च पर्ययुः।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने॥५६॥
कंचित्कालं चरेयं वै विषयान्वयसा तव। पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम्॥५७॥
स्वं चैव प्रतिपत्स्येऽहं पाप्मानं जरया सह।

सूत उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच पुत्रः पितरमंजसा॥५८॥
यथा तु मन्यसे तात करिष्यामि तथैव च। प्रतिपत्स्ये च ते राजन्पाप्मानं जरया सह॥५९॥
गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान्यथेप्सितान्। जरयाहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव॥६०॥
यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथार्थवत्।

अनु ने कहा कि हे पिता जी! आप बहुत वृद्ध हो चुके हैं तथा मैं अभी बालक हूँ। आपकी वृद्धता लेकर मैं वृद्ध हो जाऊँगा, जिससे मैं सदा अपवित्र बना रहूँगा। समय पर अग्निहोत्र नहीं कर पाऊँगा इसलिए ऐसी वृद्धता मैं नहीं चाहता हूँ।।५२।।

राजा ययाति ने कहा कि जो तुम मेरे हृदय से उत्पन्न हुए हो फिर भी अपनी अवस्था मुझे नहीं दे रहे हो, तो तुमने जो वृद्धता का दोष बताया है, वह सब तुम प्राप्त करोगे तथा तुम्हारी सन्तानें जवानी में ही नष्ट हो जायेंगी। अर्थात् तुम्हारे पुत्र जवानी में ही मर जायेंगे।।५३-५४।। तथा तुम भी अग्नि में गिरकर भस्म हो जाओगे।।५४½।।

अनु को इस प्रकार शाप देकर राजा ययाति ने अपने पाँचवें पुत्र पुरु से कहा कि हे पुरु! तुम मेरी वृद्धता के साथ मेरे पाप को स्वीकार कर लो; क्योंकि हे पुत्र! वृद्धता की झुर्रियों ने मुझे घेर लिया है, मेरे सब बाल पक गये हैं। शुक्राचार्य के शाप के कारण मैं यौवन में तृप्त नहीं हो पाया हूँ।।५४½-५६।। कुछ समय तक मैं तुम्हारी इस अवस्था से विषयों का भोग करूँगा उसके बाद एक हजार वर्ष पूरे हो जाने पर मैं तुम्हारा यौवन लौटा दूँगा।।५७।। और फिर मैं अपनी वृद्धता के साथ अपने पाप को भी वापस ले लूँगा।।५७½।।

सूत जी बोले—जब इस प्रकार राजा ययाति ने कहा तो हाथ जोड़कर पुरु पिता से बोले—कि हे पिताजी आप जैसा कह रहे हैं मैं वैसा ही करूँगा।।५७½-५८½।। हे राजन्! मैं आपकी वृद्धता के साथ आपके पाप को स्वीकार करूँगा। अतः आप मुझसे यौवन को ग्रहण कीजिये और इच्छित कामों का भोग कीजिये। मैं आपकी वृद्धता से युक्त होकर आपका रूप धारण कर रहा हूँ। आप युवावस्था को धारण कीजिये। आपको यौवन देकर मैं यथार्थ के समान आचरण करूँगा; क्योंकि जवानी अनेकों दोषों की खान होती है।।५८½-६०½।।

ययातिरुवाच।

पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते प्रीतश्चेदं ददामि ते॥६१॥

सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति।

सूत उवाच

पूरोरनुमतो राजा ययातिः स्वजरां ततः॥६२॥

संक्रामयामास तदा प्रासादाद्भार्गवस्य तु। गौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः॥६३॥

प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चचार विषयान्स्वकान्। यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम्॥६४॥

धर्माविरोधी राजेंद्रो यथाशक्ति स एव हि। देवानतर्पयद्यज्ञैः पितॄञ्श्राद्धैस्तथैव च॥६५॥

दाराननुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान्। अतिथीनन्नपानैश्च वैश्यांश्च परिपालनैः॥६६॥

आनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून्संनिग्रहेण च। धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरंजयत्॥६७॥

ययातिः पालयामास साक्षादिंद्र इवापरः। स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः॥६८॥

अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम्। स मार्गमाणः कामानामतद्दोषनिदर्शनात्॥६९॥

विश्वाच्या सहितो रेमे वैभ्राजे नन्दने वने। अपश्यत्स यदा तान्वै वर्द्धमानान्नृपस्तदा॥७०॥

ययाति ने कहा कि हे पुत्र! पुरु! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो और प्रसन्न हुआ मैं तुम्हें यह वर प्रदान करता हूँ कि तुम्हारे राज्य में तुम्हारी प्रजा अथवा सन्तानें सब इच्छाओं को प्राप्त करने में समृद्ध होंगी।।६०½-६१½।।

सूत जी ने कहा कि उसके बाद पुरु की अनुमति प्राप्त कर राजा ययाति ने शुक्राचार्य की कृपा से (अर्थात् शुक्राचार्य की शल्य चिकित्सा से) अपनी वृद्धता को पुरु के शरीर में संक्रमित करा दिया और उनकी युवावस्था को अपने शरीर में संक्रमित करा दिया।।६१½-६२½।। इसके बाद नहुष पुत्र महाराजा ययाति ने अपनी गौरवयुक्त अवस्था प्रसन्नचित्त होकर अपनी इच्छा के अनुसार अपने उत्साह के अनुसार, समय के अनुसार अधिक से अधिक सुख प्राप्त होने के उद्देश्य से अपने समस्त विषयों का भोग किया।।६२½-६४।। धर्म का विरोध न करने वाले उन राजा ययाति ने अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञों द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया और श्राद्धों द्वारा पितरों को पूर्ण तृप्त किया।।६५।। तथा उन्होंने गरीबों को उन पर कृपा करके अर्थात् उन्हें धन प्रदान कर, ब्राह्मणों को इच्छानुसार दान देकर, अतिथियों को भोजन पानी देकर तथा वैश्यों को उनके व्यवसाय में सहायता देकर सन्तुष्ट किया।।६६।। तथा अपनी दया से शूद्रों को सन्तुष्ट किया और दण्ड-व्यवस्था द्वारा चारों पर नियन्त्रण किया। इस प्रकार उन्होंने धर्म के द्वारा प्रजा का यथावत् अनुरंजन किया।।६७।।

साक्षात् दूसरे इन्द्र के समान तथा सिंह के समान पराक्रमी उस राजा ने युवावस्था के विषयों का भोग किया। सिंह के समान पराक्रमी उस राजा ने युवावस्था के सम्पूर्ण विषयों का भरपूर भोग किया।।६८।। धर्म का विरोध करते हुए उस राजा ने कामों में उन दोषों को देखते हुए दोषरहित भोगों को भोगते हुए प्रजा में उत्तम सुख का आचरण किया तथा विश्वाची और घृताची अप्सराओं के साथ वैभ्राज और नन्दन वन में रमण किया।।६९-६९½।। जब उस राजा ने विषय भोगों में विशेष बढ़ती हुई प्रवृत्ति को देखकर उसमें दोष समझा, तब वह राजा पुरु के पास गया और उसने

गत्वा पूरोः सकाशं वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत।
संप्राप्य स तु तान्कामांस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः॥७१॥
कालं वर्षसहस्रं वै सस्मार मनुजाधिपः। परिसंख्याय काले च कलाः काष्ठास्तथैव च॥७२॥
पूर्णं मत्वा ततः कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह। यथासुखं यथोत्साहं यथाकालमरिंदम॥७३॥
सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव। पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाण त्वं स्वयौवनम्॥७४॥
राज्यं च त्वं गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत्सुतः। प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नहुषात्मजः॥७५॥
यौवनं प्रतिपेदे च पूरुःस्वं पुनरात्मनः अभिषेक्तुकामं च नृपं पूरुं पुत्रं कनीयसम्॥७६॥
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन्। कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो॥७७॥
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं दास्यति पूरवे। यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनुदतुर्वसुः॥७८॥
शर्मिष्ठायाः सुतो द्रुह्युस्ततोऽनुः पूरुरेव च कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति।
सुतः संबोधयामस्त्वां धर्मं समनुपालय॥७९॥

ययातिरुवाच।

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे श्रृण्वंतु मे वचः॥८०॥
ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथंचन। मातापित्रोर्वचनकृद्धीरः पुत्रः प्रशस्यते॥८१॥

अपनी वृद्धावस्था को पुरु से ग्रहण किया। अर्थात् जिसकी अवधि पूरी हो चुकी थी, उस अवस्था को उसने पुरु को दे दिया और फिर अपनी वृद्धावस्था को उससे ग्रहण कर लिया।।६९½-७०½।। युवावस्था में अनुभव किये गये आनन्दों और विषयों से राजा को तृप्ति तो अवश्य हुई थी, किन्तु खेद भी हुआ था। विषयासक्त उस राजा ययाति को जब एक हजार वर्ष के समय का स्मरण हुआ तो फिर उसने घड़ी पल तक की गणना की और देखा कि वास्तव में वह अवधि समाप्त हो चुकी है, तो पुत्र पुरु से कहा।।७०½-७२½।। हे शत्रुओं का दमन करने वाले पुत्र पुरु! मैंने तुम्हारे यौवन से जितना चाहा, उतने सुख के साथ तथा जितने उत्साह के साथ चाहा, उतने उत्साह के साथ समस्त विषयों का भोग किया।।७२½-७३½।। अब मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, अतः अब तुम अपने यौवन ग्रहण करो तथा तुम इस राज्य को भी ग्रहण करो; क्योंकि तुम मेरा प्रिय करने वाले आज्ञाकारी पुत्र हो।।७३½-७४½।। इसके बाद नहुषपुत्र राजा ययाति ने अपनी पुरानी वृद्धावस्था को ग्रहण किया और पुरु ने पुनः युवावस्था को ग्रहण कर लिया।।७४½-७५½।। जब राजा ययाति ने अपने उस सबसे छोटे पुत्र पुरु को राजपद पर अभिषिक्त करना चाहा तो ब्राह्मण प्रमुख वर्णों ने यह वचन कहा।।७५½-७६½।। कि हे राजन् क्यों आप शुक्राचार्य के नाती देवयानी के पुत्र तथा अपने सबसे बड़े पुत्र का उल्लंघन कर सबसे छोटे पुत्र पुरु को राज्य दे रहे हो? क्योंकि आपके सबसे बड़े पुत्र यदु हैं, उसके बाद तुर्वसु हैं, उसके बाद शर्मिष्ठा के पुत्र द्रुह्यु हैं, उसके बाद अनु हैं, तब सबसे छोटे पुत्र पुरु हैं। अतः कैसे बड़े पुत्रों को छोड़कर सबसे छोटे को राज्य दिया जा सकता है। अतः हम आपको बतला रहे हैं कि आपको धर्म का पालन करना चाहिये।।७६½-७९।।

ययाति ने कहा हे प्रमुख ब्राह्मणो! आप लोग मेरे वचन को सुनिये।।८०।। ज्येष्ठ पुत्र को तो मैं किसी भी प्रकार राज्य नहीं दे सकता हूँ; क्योंकि माता-पिता के वचन का पालन करने वाला अर्थात् माता पिता की आज्ञा मानने

मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः। प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः॥८२॥
स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्त्तते पितृमातृषु। यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च॥८३॥
द्रुह्युना चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम्। पूरुणा तु कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः॥८४॥
कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम। सर्वे कामा मम कृताः पूरुणा पुण्यकारिणा॥८५॥
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम्। पुत्रो यस्त्वानुवर्त्तेत स राजा तु महामते॥८६॥

प्रजा ऊचुः

भवतोऽनुमतोऽप्येवं पूरू राज्येऽभिषिच्यताम्। यः पुत्रो गुणसंपन्नो मातापित्रोर्हितः सदा॥८७॥
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः।
अर्होऽस्य पूरू राज्यस्य यः प्रियः प्रियकृत्तव॥८८॥
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम्। पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्ते नाहुषस्तदा॥८९॥
अभिषिच्य ततः पूरुं स राज्ये सुतमात्मनः। दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं तु न्यवेशयत्॥९०॥
दक्षिणापरतो राजा यदुं ज्येष्ठं न्यवेशयत्। प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानुं च तावुभौ॥९१॥
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम्। व्यभजत्पंचधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा॥९२॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। यथाप्रदेशं धर्मज्ञैर्धर्मेण प्रतिपाल्यते॥९३॥

वाला धीर पुत्र ही प्रशंसनीय होता है।।८१।। मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया। अतः जो पुत्र पिता के प्रतिकूल रहने वाला हो, वह पुत्र सज्जनों की दृष्टि में पुत्र नहीं माना जाता है।।८२।। वही पुत्र होता है, जो माता और पिता के प्रति पुत्रवत् व्यवहार करता है। यदु ने मेरी अवज्ञा की है, उसी प्रकार तुर्वसु ने भी मेरी अवज्ञा की है।।८३।। यही नहीं, द्रुह्यु और अनु ने भी मेरी अवज्ञा की है तथा पुरु ने विशेष रूप से मेरे वचन का पालन किया है, उसने मुझे सम्मान दिया है।।८४।। अतः मेरा उत्तराधिकारी मेरा सबसे छोटा पुत्र ही होगा, जिसने कि मेरी वृद्धता को धारण किया था तथा मेरी समस्त इच्छायें पुण्य कर्म करने वाले मेरे पुत्र पुरु ने पुर्ण की है।।८५।। स्वयं शुक्राचार्य ने मुझे यह पहले ही वरदान दे रखा है कि हे महामति राजन्! जो पुत्र तुम्हारा अनुसरण करे, तुम्हारी आज्ञा का पालन करे, उसी को राजा बनाना।।८६।।

उसके बाद प्रजा ने कहा कि हे राजन्! आपने यह अनुमति प्रदान की है कि पुरु को राज्य पद पर अभिषिक्त कीजिये; क्योंकि जो पुत्र गुण सम्पत्र हो तथा सदा माता-पिता का हित करता हो, वह राजा सबसे छोटा पुत्र होते हुए भी सबका कल्याण कर सकता है। अतः महाराज आपका प्रिय करने वाला यह सबसे छोटा पुत्र पुरु राजा होने के योग्य है।।८७-८८।। तथा हे महाराज! यह तो शुक्राचार्य का वरदान है। इससे अलग आप नहीं जा सकते।।८८½।। पुरुवासियों के ऐसा कहने पर तब नहुष पुत्र ययाति ने अपने पुत्र पुरु को मुख्य राज्यपद पर अभिषक्ति कर दक्षिण और पूर्व दिशा में तुर्वसु को अधिकारी बनाया। दक्षिणकी दूसरी ओर यदु को अधिकारी बनाया तथा पश्चिम और उत्तर दिशा में द्रुह्यु और अनु दोनों को अधिकारी बनाया।।८८½-९१।। राजा ययाति ने सात सागरों सहित सात द्वीपों वाली पृथ्वी को जीतकर पाँच भागों में विभक्त कर दिया तथा सब पुत्रों का राज्य प्रदान कर दिया।।९२।। उन धर्मज्ञ राजाओं द्वारा वह सात सागरों वाली सप्तद्वीपा पृथ्वी धर्म द्वारा पालित की जा रही थी।।९३।।

एवं विभज्य पृथिवीं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा। पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु प्रीतिमानभवन्नृपः॥९४॥
धनुन्यस्य पृषत्कांश्च राज्यं चैव सुतेषु तु। प्रीतिमानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु॥९५॥
अत्र गाथा महाराज्ञा पुरा गीता ययातिना। याभिःप्रत्याहरेत्कामात्कूर्मोऽगानीव सर्वशः॥९६॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥९७॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति॥९८॥
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमंगलम्। कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा॥९९॥
यदा परान्न बिभेति यदान्यस्मान्न बिभ्यति। यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा॥१००॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
यैषा प्राणांतिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥१०१॥
जीर्यंति जीर्यतः केशा दंता जीर्यंति जीर्यतः।
जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥१०२॥
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
कृष्णाक्षयसुखस्यैतत्कलां नार्हंति षोडशीम्॥१०३॥

इस प्रकार अपने पुत्रों में राज्य को बांट कर तथा अपनी सम्पत्ति तथा राज्यलक्ष्मी को पुत्रों पर समर्पित कर राजा ययाति बहुत प्रसन्न हुए।।९४।। अपने धनुष बाण और राज्याधिकार को पुत्रों को सौंपकर तथा समस्त कार्य भार बन्धुओं को सौंपकर राजा ययाति परम प्रसन्न हुए।।९५।। प्राचीन काल में उन महाराजा ययाति ने जो गाथा गायी थी, उसे बता रहा हूँ, उनका अपने निजी अनुभव के आधार पर यह कहना था कि जैसे कछुआ अपने समस्त अंगों को अपने अन्दर समेट लेता है, उसी प्रकार मनुष्य को अपनी समस्त कामनायें अपने अन्दर समेट लेनी चाहिये।।९६।। क्योंकि कभी भी काम, काम से शान्त नहीं होता अर्थात् कभी भी इच्छायें इच्छाओं का उपभोग करने से शान्त नहीं होती, अपितु अग्नि में घृत डालने की तरह इच्छायें और अधिक बढ़ती चली जाती हैं।।९७।। पृथ्वी पर धान, जौ, सोना, पशु, स्त्रियां हैं, वे सब एक व्यक्ति के लिये पर्याप्त नहीं है, ऐसा जो देखता है, वह व्यक्ति अज्ञान में नहीं पड़ता।।९८।। जब मनुष्य सभी जीवों के प्रति कर्म से मन से और वचन से अमंगल (अशुभ) का भाव नहीं रखता है अर्थात् सबके कल्याण का भाव रखते हैं, वह ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है अर्थात् वह ब्रह्म ही हो जाता है।।९९।।

जब मनुष्य दूसरों को नहीं डराता है और न दूसरों से डरता है तथा जब न किसी को अधिक चाहता तथा न किसी से द्वेष करता है, तब वह ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है।।१००।। जो दुर्बुद्धियों से नहीं छोड़ी जा सकती, जो वृद्ध होने पर भी वृद्ध होती, जो प्राणों का अन्त करने वाले रोग की तरह भयानक है, उस तृष्णा को छोड़ देने पर ही सुख प्राप्त होता है।।१०१।। वृद्ध होने पर केश जीर्ण हो जाते हैं अर्थात् केश पक जाते हैं, झड़ जाते हैं। बूढ़े होने पर दाँत भी टूट जाते हैं; परन्तु जीवित रहने की आशा और धन प्राप्त करने की आशा बूढ़े हो जाने पर बूढ़ी नहीं होती।।१०२।। संसार में सम्भोग सुख है अथवा इच्छाओं के पूर्ण होने पर जो सुख मिलता है तथा जो दिव्य पदार्थों के प्राप्त होने पर सुख मिलता है, वह सब तृष्णा के नाश होने पर मिलने वाले सुख का सोलहवां अंश भी नहीं है। अथवा यों कहिये कि संसार में जो दिव्य सम्भोग सुख है, वह तृष्णा के नाश होने पर प्राप्त सुख का सोलहवाँ

एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्रस्थितो वनम्। भृगुतुंगे तपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशः॥१०४॥
पालयित्वा व्रतं चार्षं तत्रैव स्वर्ग माप्तवान्। तस्य वंशास्तु पंचैते पुण्या देवर्षिसत्कृताः॥१०५॥
यैर्व्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव गभस्तिभिः।
धन्यः प्रजावानायुष्मान्कीर्त्तिमांश्च भवेन्नरः॥१०६॥
ययातेश्चरितं सर्वं पठञ्छृण्वन्द्विजोत्तमाः॥१०७॥

इति ब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे अष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते

कार्तवीर्य सम्भवो नाम

नवषष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः। विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत॥१॥
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पंच देवसुतोपमाः। सहस्त्रजिदथ श्रेष्ठः क्रोष्टुर्नीलोंजिको लघुः॥२॥

अंश भी नहीं है।।१०३।। इस प्रकार कहकर वे राजर्षि ययाति पत्नी के साथ वन को चले गये।।१०३½।। तथा वहीं भृगु नामक चोटी पर तपस्या करके उन महायशस्वी राजा ने ऋषियों के व्रत का पालन करते हुए वहीं पर स्वर्ग को प्राप्त किया। उस राजा के ये पांच वंश पुण्य और देवर्षियों द्वारा सत्कृत हैं।।१०५।। जिस प्रकार सूर्य की किरणों से समस्त पृथ्वी व्याप्त है, उसी प्रकार उन राजवंशों से समस्त पृथ्वी व्याप्त थी अर्थात् समस्त भूमण्डल पर इन पाँच वंशों का ही राज्य था।।१०५½।। हे विप्रश्रेष्ठो! जो मनुष्य राजा ययाति के इस चरित्र को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, वह मनुष्य दीर्घायु और कीर्तिमान् बनेगा अर्थात् उसका यश सर्वत्र फैल जायेगा।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६८वां अध्याय ययातिचरित वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद भार्गव चरित में

अध्याय-६९

कार्तवीर्य सम्भव वर्णन

सूत जी बोले कि अब मैं ययाति के ज्येष्ठ पुत्र उत्तम तेजवाले यदु के वंश का प्रारम्भ से लेकर विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा आप लोग ध्यान पूर्वक सुनिये।।१।। महाराज यदु के देवताओं के समान पांच पुत्र हुए, जिनमें सहस्रजित् सबसे बड़े थे, उसके अतिरिक्त क्रोष्टु, नील, जिक और लघु अन्य चार थे।।२।।

सहस्त्रजित्सुतः श्रीमाञ्छतजिन्नाम पार्थिवः। शतजित्तनयाः ख्यातास्त्रयः परमधार्मिकाः॥३॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणु हयस्तथा। हैहयस्य तु दायादो धर्मनेत्र इति श्रुतः॥४॥
धर्मनेत्रस्य कुंतिस्तु संज्ञेयस्तस्य चात्मजः। संज्ञेयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः॥५॥
आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रसेनः प्रतापवान्। वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्व एव हि॥६॥
भद्रसेनस्य दायादो दुर्मदो नाम पार्थिवः। दुर्मदस्य सुतो धीमान्कनको नाम विश्रुतः॥७॥
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः। कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च॥८॥
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्मजोऽर्जुनः। जज्ञे बाहुसहस्त्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः॥९॥
स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्। दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्योऽत्रिसंभवम्॥१०॥
तस्मै दत्तो वरान्नदाच्चतुरो भूरितेजसः। पूर्वं बाहुसहस्त्रं तु स वव्रे प्रथमं वरम्॥११॥
अधर्मं ध्यायमानस्य सहसास्मान्निवारणम्। धर्मेण पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम्॥१२॥
संग्रामांस्तु बहूञ्जित्वा हत्वा चारीन्सहस्त्रशः। संग्रामे युध्यमानस्य वधः स्यात्प्रधने मम॥१३॥
तेनेयं पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपत्तना। सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता॥१४॥
तस्य बाहुसहस्त्रं तु युध्यतः किल योगतः। योगो योगेश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया॥१५॥

सहस्रजित् के पुत्र श्रीमान् राजा शतजित् थे। शतजित् के तीन परम धार्मिक और प्रसिद्ध तीन पुत्र हुए।।३।। वे थे—हैहय, हय और राजा वेणुहय। हैहय के उत्तराधिकारी राजा धर्मनेत्र हुए ऐसा सुना गया है।।४।। राजा धर्मनेत्र के पुत्र कुन्ति और कुन्ति के पुत्र संज्ञेय[1] हुए, राजा संज्ञेय के उत्तराधिकारी महिष्मान् नाम के राजा हुए।।५।।

१. वायुपुराण में संज्ञेय को कान्ति कहा गया है।

महिष्मान् के पुत्र प्रतापी राजा भद्रसेन हुए, जो भद्रसेन पहले ही वाराणसी के राजा कहे गये हैं।।६।। भद्रसेन के उत्तराधिकारी दुर्मद नाम के राजा हुए, महराजा दुर्मद के पुत्र बुद्धिमान् कनक नाम के राजा सुने गये।।७।। राजा कनक के उत्तराधिकारी चार लोक प्रसिद्ध राजा सुने गये हैं, वे हैं—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और उसी प्रकार चौथे कृतौज नामक राजा हुए। कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन हुए, जो अपनी हजार भुजाओं से सात द्वीपों वाली पृथ्वी के राजा हुए।।८-९।।

उन राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने दश हजार वर्ष तक बहुत ही कठोर तप करके महर्षि अत्रि से उत्पन्न दत्तात्रेय की आराधना की थी।।१०।। बहुत अधिक तेजस्वी भगवान् दत्तात्रेय ने उस सहस्रबाहु कार्तवीर्य अर्जुन को चार वर प्रदान किये, जिनमें प्रथम वर हजार भुजायें होने का प्रदान किया।।११।। अधर्म की ओर ध्यान करते हुए लोगोंको सहसा अधर्म से दूर करना यह दूसरा वर प्रदान किया। तीसरे वरदान के अनुसार समस्त पृथिवी को जीत कर उसका धर्मानुसार परिपालन करना तथा चौथे वरदान के अनुसार बहुत से सङ्ग्रामों को जीतकर हजारों योद्धाओं को मारकर अपने से अधिक बलवान् के द्वारा मृत्यु को प्राप्त करना, ये चार वर प्राप्त किये थे।।१२-१३।। चार वरों को प्राप्त कर उस राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने क्षात्र विधि से सात समुद्रों से घिरीहुई इस सात द्वीपों वाली पृथ्वी को जीत लिया था।।१४।। जब वह राजा युद्ध करता था, तब उसकी हजार भुजायें योग से योगेश्वर के योग के समान माया से पैदा हो जाया करती थीं।।१५।।

तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्तयज्ञशतानि वै। कृतानि विधिना राज्ञा श्रूयते मुनिसत्तमाः॥१६॥
सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन्भूरितेजसः। सर्वे कांचनवेदीकाः सर्वे यूपैश्च कांचनैः॥१७॥
सर्वैर्देवैर्महाभागैर्विमानस्थैरलंकृताः। गंधर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः॥१८॥
तस्य राज्ञो जगौ गाथां गंधर्वो नारदस्तदा। चरितं तस्य राजर्षेर्महिमानं निरीक्ष्य च॥१९॥
न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यंति मानवाः। यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च॥२०॥
द्वीपेषु सप्तसु स वै धन्वी खड्गी शरासनी। रथी राजा सानुचरो योगाच्चैवानुदृश्यते॥२१॥
अनष्टद्रव्यता चासीन्न क्लेशो न च विभ्रमः। प्रभावेण महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षितः॥२२॥
पंचाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः। स सर्वरत्नभाक्सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह॥२३॥
स एष पशुपालोऽभूत्क्षेत्रपालस्तथै व च। स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत्॥२४॥
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनेन च। भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनैव भास्करः॥२५॥
स हि नागसहस्रेण माहिष्मत्यां नराधिपः। कर्कोटकसभां जित्वा पुरीं तत्र न्यवेशयत्॥२६॥
स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेंबुजेक्षणः। क्रीडन्नेवसुखोद्विग्नः प्रावृट्कालं चकार ह॥२७॥
लुलिता क्रीडता तेन हेमस्रग्दाममालिनी। ऊर्मिमुक्तार्त्तसन्नादा शंकिताभ्येति नर्मदा॥२८॥

सूत जी ने ऋषियों ने कहा कि हे श्रेष्ठ मुनियो! ऐसा सुना जाता है कि उस राजा कार्तवीर्य ने सातों द्वीपों पर विधिपूर्वक सात सौ यज्ञ किये थे।।१६।। उस अपार तेजस्वी महाबाहु राजा सहस्रार्जुन के सब यज्ञ स्वर्ण के वेदी वाले तथा स्वर्ण के खम्भों वाले थे। अर्थात् सब यज्ञों में यज्ञ की वेदी और खम्भे स्वर्ण के बनाये गये थे।।१७।।

जब उनके यज्ञ होते थे, तब सब महाभाग देवता लोग अपने अपने विमानों से अलंकृत होकर उपस्थित होते थे तथा गन्धर्व और अप्सराओं से नित्य उसका दरबार उपशोभित रहता था।।१८।। उस राजा की गाथा उस समय गन्धर्व और नारद गाया करते थे।।१८½।। उस राजर्षि कार्तवीर्य के महिमामंडित चरित का निरीक्षण कर मनुष्यगण कभी भी यज्ञ, दान, तप और पराक्रमों में उसकी गति को प्राप्त नहीं होंगे। अर्थात् आगे कभी भी मनुष्य यज्ञ, दान, तप और पराक्रम उसके समान नहीं हो सकेंगे।।१८½-१९½।। सातों द्वीपों में वह राजा तलवार और सुन्दर धनुष बाण धारण किये हुए रथ पर सवार होकर भी योग के प्रभाव से पीछे-पीछे चलने वाला देखा जाता था। अर्थात् रथ पर सवार होते हुए भी ऐसा लगता कि वह सबके पीछे चल रहा है।।२१।। उसके राज्य में किसी का धन नष्ट नहीं होता था। प्रजा में किसी को किसी भी प्रकार का कोई क्लेश नहीं था, न ही किसी को किसी प्रकार विशेष भ्रम ही था। उन महाराज के प्रभाव से प्रजा धर्मानुसार रक्षित थी।।२२।। पचास हजार वर्षों तक वह राजा सब रत्नों का भोग करने वाला चक्रवर्ती सम्राट् हुआ।।२३।। अपने राज्य में वह स्वयं पशुओं का पालन करने वाला था, स्वयं खेती की देखभाल करता था। योगाभ्यास परायण होने के कारण समय समय पर वह कार्तवीर्य वर्षा करके मेघों का भी कार्य करता था।।२४।। धनुष की प्रत्यञ्चा खींचने से हजार कठोर हाथों वाला वह राजा हजार किरणों वाले सूर्य की भाँति सुशोभित होता था।।२५।। उस महाराजा कार्तवीर्य ने नागों की माहिष्मती नगरी में एक हजार नागों सहित कर्कोटक नागराज की सभा को जीतकर वहाँ पर अपनी पुरी बसायी थी।।२६।। कमल के समान नेत्र वाले राज राजा कार्तवीर्य ने खेल ही खेल में समुद्र का वेग रोककर असमय में ही वर्षाकाल ला दिया था।।२७।। एक बार नर्मदा नदी में

पुरा भुजसहस्रेण स जगाहे महार्णवम्। चकारोद्वृत्तवेलं तमकाले मारुतोद्धतम्॥२९॥
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ। भवंति लीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः॥३०॥
चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहाविषम्। पतिताविद्धफेनौघमावर्त्तक्षिप्तदुस्सहम्॥३१॥
चकार क्षोभयन्राजा दोःसहस्रेण सागरम्। देवासुरपरिक्षिप्तं क्षीरोदमिव सागरम्॥३२॥
मंदरक्षोभणभ्रान्तममृतोत्पत्तिहेतवे। सहसा विद्रुता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम्॥३३॥
निश्चितं नतमूर्द्धानो बभुवुश्च महोरगाः। सायाह्ने कदलीखंडा निवातेस्तमिता इव॥३४॥

ज्यामारोप्य दृढे चापे सायकैः पंचभिः शतैः।
लंकेशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्॥३५॥

निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबंध तम्। ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुनं च प्रसाधयत्॥३६॥
मुमोच राजा पौलस्त्यं पुलस्त्येनानुयाचितः। तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः॥३७॥
युगांतेबुदवृंदस्य स्फुटितस्याशनेरिव। अहो मृधे महावीर्यो भार्गवस्तस्य योऽच्छिनत्॥३८॥
मृधे सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा। तृषितेन कदाचित्स भिक्षितश्चित्रभानुना॥३९॥

नहाते समय नदी में लोटते पोटते और क्रीडा करते समय उस राजा की सोने की माला नदी में गिर गयी थी; इसलिये अपनी लहरों को शान्त कर आर्तनाद करती हुई नर्मदा उसके सामने शंकित होकर बहती थीं।।२८।। पूर्वकाल में अपनी हजार भुजाओं से जब वह समुद्र में अवगाहन (स्नान) कर रहा था, तब उस महासमुद्र में उसी प्रकार भयंकर लहरें तथा जलों के बबण्डर पैदा हो गये थे, जिस प्रकार कि प्रलय काल में अति तीव्र वायु द्वारा महार्णव में लहरें और भारी बबण्डर पैदा हो जाते हैं।।२९।। जब उसने अपनी हजार भुजाओं से महासमुद्र के जल को आलोडित किया, उस समय पाताल में स्थित महान् असुर चेष्टाहीन होकर छिप गये थे।।३०।।

उसकी हजार भुजाओं के आलोडन से समुद्र की समस्त लहरें चूर्ण-चूर्ण हो गयीं थीं तथा बड़ी-बड़ी मछलियां और महाविषधारी सर्प आदि समुद्र में विलीन हो गये थे, समुद्र में जल राशि के फेन ऊपर उठने लगे थे तथा समुद्र में असहनीय लहरें और फेन (झाग) पैदा हो गये थे।।३१।। उस समय अपनी हजार भुजाओं से राजा ने सागर इस प्रकार क्षोभित कर दिया था, जिस प्रकार कि समुद्र मन्थन के समय देवों और असुरों ने सागर को क्षोभित किया था।।३२।। समुद्र में विद्यमान भयंकर उस उत्तम राजा कार्तवीर्य को देखकर सहसा समुद्री जीवों को मन्दराचल द्वारा समुद्र मन्थन की आशंका हो गयी। अतः वे अतिशीघ्र भयभीत एवम् आतंकित हो गये।।३३।। समुद्र में रहने वाले भीषण विषधर सर्प उस महापराक्रमी अर्जुन को देखकर इस प्रकार नतमस्तक और निश्चल बन गये, जिस प्रकार सायंकाल की हवा के बन्द हो जाने पर केलों के पेड़ निश्चल और स्तमित हो जाते हैं।।३४।। उस राजा सहस्रार्जुन ने अपने धनुष पर पाँच सौ बाण रखकर प्रत्यञ्चा को खींचकर बलपूर्वक बलवान् लंकेश्वर रावण को मूर्च्छित कर जीतकर तथा वश में करके माहिष्मती पुरी में उसको बाँध दिया था। उसके बाद पुलस्त्य मुनि ने उसके पास जाकर उस को प्रसन्न किया था।।३५-३६।। इस प्रकार जब पुलस्त्य मुनि ने अर्जुन से याचना की, तब उसने पौलस्त्य (रावण) को बन्धन मुक्त किया।।३६½।। उसकी हजार बाहुओं से उत्पन्न होने वाली प्रत्यञ्चा की टंकार ध्वनि प्रलयकाल के समय बिजली गिरने और प्रलयकालीन बादलों के समान होती थी।।३६½-३७½।। आश्चर्य है,

सप्तद्वीपांश्चित्रभानोः प्राददभिक्षां विशांपतिः। पुराणि गोषान्ग्रामांश्च पत्तनानि च सर्वशः॥४०॥
जज्वाल तस्य बाणेषु चित्राभानुर्दिधक्षया। स तस्य पुरुषेंद्रस्य प्रतापेन महायशाः॥४१॥
ददाह कार्त्तवीर्यस्य शैलांश्चापि वनानि च। स शून्यमाश्रमं सर्वं वरुणस्यात्मजस्य वै॥४२॥
ददाह सवनाटोपं चित्रभानुः स हैहयः। यं लेभे वरुणः पुत्रं पुराभास्वंतमुत्तमम्॥४३॥
वसिष्ठनामा स मुनिः ख्यात आपव इत्युत। तत्रापवस्तदा क्रोधादर्जुनं शप्तवान्विभुः॥४४॥
यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय। तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति॥४५॥
अर्जुनो नाम कौंतेयः स च राजा भविष्यति। अर्जुनं च महावीर्यो रामः प्रहरतां वरः॥४६॥
छित्त्वा बाहुसहस्त्रं वै प्रमथ्य तरसा बली। तपस्वी ब्राह्मणश्चैव वधिष्यति महाबलः॥४७॥
तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युः शापेन धीमतः। राज्ञा तेन वरश्चैवस्वयमेव वृतः पुरा॥४८॥
तस्य पुत्र शतं त्वासीत्पंच तत्र महारथाः। कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः॥४९॥
शूरश्च शूरसेनश्च वृषास्यो वृष एव च। जयध्वजो वंशकर्त्ता अवंतिषु विशांपतिः॥५०॥

महापराक्रमी भार्गव परशुराम ने ऐसे महाबली सहस्त्रबाहु की हजार भुजाओं को हेमताल के वन की भाँति काट डाला।।३७½-३८½।। एक बार कभी तृषित सूर्य ने उससे भिक्षा मांगी, तब उस प्रजापति राजा ने सूर्य को सात द्वीपों की भिक्षा दे दी।।३८½-३९½।। तथा जब सूर्य को उसके बाणों का सहयोग मिल गया, तब जलाने की इच्छा रखने वाले सूर्य ने उसके बाणों की प्रज्वलित अग्नि से नगरों, बस्तियों, ग्रामों, समुद्रों को सब ओर जलाना प्रारम्भ कर दिया।।३९½-४०½।। तब उस पुरुषेन्द्र कार्तवीर्य के प्रभाव से सूर्य ने पर्वतों और वनों को भी जला डाला।।४०½-४१½।। तब तो सूर्य ने वरुण के पुत्र आपव मुनि के शून्य आश्रम, जो कि वृक्षों से ढका हुआ था को भी भस्म कर दिया।।४१½-४२½।। जिस अपने उत्तम प्रकाशित पुत्र को प्राचीन काल में प्राप्त किया था, उनका वह पुत्र आपव तथा वशिष्ठ नाम प्रसिद्ध हुआ अर्थात् ये वशिष्ठ ही आपव थे।।४२½-४३½।।

तब जब उन आपव (मुनि वशिष्ठ) का आश्रम भस्म हो गया, तब उन्होंने क्रोधित होकर शाप दे दिया।।४४।। कि अरे हैहय अर्जुन! जिस कारण से तूने मेरा यह आश्रम भस्म कर दिया है, उस तेरे दुष्कर्म को कोई दूसरा नष्ट करेगा, वह तेरे ही नाम वाला कुन्ती पुत्र अर्जुन होगा, जो राजा नहीं होगा, वही तेरे द्वारा विनष्ट इस वन को पुनः हरा-भरा करेगा। तब तेरा दुष्कर्म नष्ट होगा[१]।।४५।। और फिर आपव मुनि ने यह भी शाप दिया कि अरे सहस्त्रबाहु अर्जुन! प्रहार करने में श्रेष्ठ महापराक्रमी महाबली तपस्वी ब्राह्मण परशुराम तुम्हारी इन भुजाओं को काटकर मथकर तुम्हारा वध करेंगे।।४६-४७।। इस शाप के अनुसार तब समय पूरा होने पर उसी शाप से परशुराम द्वारा उस बुद्धिमान् की मृत्यु हुई। प्राचीन काल में उस राजा ने भगवान् दत्तात्रेय से यह वर भी माँगा था कि मेरी मृत्यु मुझसे बलवान् के द्वारा होनी चाहिये, वही हुआ।।४८।। उस राजा कार्तवीर्य के सौ पुत्र थे, उनमें पाँच पुत्र बहुत ही महारथी, अस्त्रज्ञ, बली, शूरवीर, धर्मात्मा और प्रतापी थे।।४९।। जिनके नाम थे—शूर, शूरसेन, वृषास्य, वृष और जयध्वज। राजा जयध्वज ने अवन्ती में राज्य किया था। वह उस वंश का कर्ता था।।५०।।

१. उस शाप के अनुसार अज्ञातवास में रह रहे अर्जुन के द्वारा ही उनका आश्रम पुनः हरा भरा हुआ था।

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजंघः प्रतापवान्। तस्य पुत्रशतं त्वेवं तालजंघा इति श्रुतम्॥५१॥
तेषां पंच गणाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम्।
वीतिहोत्राश्च संजाता भोजाश्चावंतयस्तथा॥५२॥
तुंडिकेराश्च विक्रांतास्तालजंघास्तथैव च। वीतिहोत्रसुतश्चापि अनंतो नाम पार्थिवः॥५३॥
दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शनः। अनष्ट द्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह॥५४॥
प्रभावेण महाराजः प्रजास्ताः पर्यपालयत्।
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः॥५५॥
कार्त्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः। वर्द्धते विभवाश्शश्वद्धर्मश्चास्य विवर्द्धते॥५६॥
यथा यष्टा यथा दाता तथा स्वर्गे महीपते॥५७॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे भार्गवचरिते कार्त्तवीर्यसंभवो नाम एकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥६९॥

जयध्वज के पुत्र प्रतापी राजा तालजंघ हुए। उनके सौ पुत्र थे, जो सब तालजंघ ही कहे जाते थे।।५१।। उन महात्मा हैहय राजाओं के पाँच गण प्रसिद्ध हैं, जो हैं—१. वीतिहोत्र, २. भोजगण, ३. अवन्तिगण, ४. तुण्डिकेरगण तथा ५. विक्रान्त तालजंघ। वीतिहोत्र के पुत्र राजा अनन्त हुए।।५३।। उन राजा अनन्त के पुत्र दुर्जय हुए तथा दुर्जय के पुत्र मित्रकर्षण हुए। उन राजा को अनष्ट द्रव्यता प्राप्त हुई थी अर्थात् उस वंश के राजाओं का धन कभी नष्ट नहीं होता था। वे राजा मित्रकर्षण अपने प्रभाव से ही प्रजा का पालन करते थे।।५४-५४½।। जो बुद्धिमान् कार्तवीर्य अर्जुन के वृत्तान्त इस लोक में कहेगा, उसका धन कभी नष्ट नहीं होगा तथा यदि नष्ट हो गया है, तो वह पुनः प्राप्त हो जायेगा। जिस प्रकार यज्ञ करने वाले और दान देने वाले लोग स्वर्ग में पूजित होते हैं, उसी प्रकार इस राजा कार्तवीर्य के वृत्तान्त को कहने वाला मनुष्य स्वर्ग में पूजित होगा।।५४½-५७।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ६९वां अध्याय कार्तवीर्य अर्जुन की उत्पत्ति का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

तपोवनदग्धवणर्नं नाम

सप्तितमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

किमर्थं तु वनं दग्धमापवस्य महात्मनः। कार्त्तवीर्येण विक्रम्य तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्॥१॥

रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम्। कथं स रक्षिता भूत्वा नाशयेत तपोवनम्॥२॥

सूत उवाच

आदित्यो विप्ररूपेण कार्त्तवीर्यमुपस्थितः। तृप्तिकामः प्रयच्छान्नमादित्योऽहं न संशयः॥३॥

राजोवाच

भगवन्केन ते तृप्तिर्भवेद् ब्रूहि दिवाकर। कीदृशं भोजनं दद्मि श्रुत्वा च विदधाम्यहम्॥४॥

सूर्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर। तेन तृप्तो भवेयं वै न तृप्येऽन्येन पार्थिव॥५॥

राजोवाच

न शक्यः स्थावरः सर्वस्तेजसा मानुषेण तु। निर्दग्धुं तपसां श्रेष्ठ त्वामेव प्रणमाम्यहम्॥६॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–७०

तपोवन दग्ध वर्णन

ऋषियों ने कहा कि हे सूत जी! कार्तवीर्य अर्जुन ने अपना पराक्रम दिखाकर महात्मा आपव (वशिष्ठ) का आश्रम क्यों जला दिया?।।१।। वह राजर्षि कार्तवीर्य तो प्रजा का रक्षक था, ऐसा विशेषतः सुना जाता है, फिर भी उसने ब्रह्मर्षि आपव के तपोवन को क्यों जला दिया?।।२।।

सूत जी बोले कि उन राजा कार्तवीर्य के पास विप्ररूप से आदित्य उपस्थित हुये और बोले हे राजन्! मैं भूँखा हूँ, अपनी भूँख मिटाने की इच्छा से आपके पास आया हूँ, मुझे अन्न दीजिये। मैं आदित्य हूँ, इसमें सन्देह नहीं है।।३।।

राजा ने कहा—हे भगवन् सूर्य! आपकी तृप्ति किसके द्वारा होगी? यह मुझे बताइये, मैं आपको कैसा भोजन दूँ? यह सुनकर मैं व्यवस्था करता हूँ।।४।।

सूर्य ने कहा हे दानियों में श्रेष्ठ राजन्! मुझे आप समस्त स्थावर जड़पदार्थ, नदी, पर्वत, वन, समुद्रादि को प्रदान कीजिये। उससे ही मेरी तृप्ति होगी, अन्य किसी पदार्थ से नहीं।।५।।

राजा ने कहा—हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ! मैं मानव तेज द्वारा समस्त जड़ जगत् को जलाने में असमर्थ हूँ; इसलिये आपको ही प्रणाम करता हूँ।।६।।

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहं शरान्दद्मि अक्षयान्सर्वतोमुखान्। ये क्षिप्ताः प्रज्वलिष्यंति मम तेजः समन्विताः॥७॥
आविद्धं तेजसा मेऽद्य स्थावरं शोषमेष्यति। शुष्कं भस्म करिष्यामि क्षणेनैव नराधिपः॥८॥
ततः शरानथादित्यस्त्वर्जुनायाददात्प्रभुः। ततः संप्राप्य स शरान्स्थावरं सर्वमेव हि॥९॥
आश्रमानथ ग्रामांश्च घोषांश्च नगराणि च। तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च॥१०॥
तच्चापक्षिप्तबाणौघा अदहन्स्थावरान्नृप। निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्दग्धा सौरेण तेजसा॥११॥
एतस्मिन्नेव काले तु आपवोऽनलमाश्रितः। दशवर्षसहस्राणि जलवासान्महानृषिः॥१२॥
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः। सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महानृषिः॥१३॥
क्रोधाच्छशाप राजर्षि कीर्त्तितं वो यथा मया। क्रोष्टोः शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपूरुषम्॥१४॥
यस्यान्ववाये संभूते वृष्णिर्वृष्णिकुलोद्वहः। क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः॥१५॥
वार्जिनीवतमिच्छंति स्वाहिं स्वाहावतां वरम्। स्वाहेः पुत्रोऽभवद्राजा रुशेकुर्ददतां वरः॥१६॥
सुतप्रसूतिमिच्छंस्तु रुशेकुः प्रयतात्मवान्। महाक्रतुभिरीजे स विविधैराप्तदक्षिणैः॥१७॥
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः। जज्ञे चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुल दक्षिणः॥१८॥
शशबिंदुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः। चक्रवर्त्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजः॥१९॥

आदित्य बोले राजन्! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें सब ओर मुख वाले अक्षय बाणों को दे रहा हूँ, जो मेरे तेज से युक्त बाण फेंकते ही जलने लगेंगे।।७।। मेरे तेज से आविद्ध ये बाण आज समस्त स्थावर जगत् को सोख लेंगे और सूखे हुए को राजन्! मैं क्षणभर में भस्म कर दूँगा।।८।। उसके बाद उन भगवान् आदित्य ने राजा कार्तवीर्य के लिये बाणों को दे दिया, उसके बाद उन बाणों को प्राप्तकर राजा ने अपने धनुष पर रखे हुए बाणों से समस्त स्थावर जगत् आश्रम, ग्राम, बस्तियां, नगर, तपोवन, रम्य वन और उपवनों को जला डाला। उस समय सूर्य के तेज से भूमि वृक्षरहित और घासरहित होकर पूरी तरह जल गयी।।९-११।। उसी समय आपव मुनि आग के आश्रित होने के कारण आग से बचने के लिए दश हजार वर्षों तक जल में निवास करते रहे।।१२।। जब उन महातेजस्वी आपव मुनि का व्रत पूर्ण हो गया, तब वे तपस्वी उठे तो उन महान् ऋषि ने अपने आश्रम को कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा जला हुआ देखा।।१३।। आश्रम को जला हुआ देखकर क्रोधित राजर्षि ने अर्जुन को जो शाप दे दिया, वह मैं आप लोगों को बता रहा हूँ।।१३½।।

सूत जी ने कहा—अब आप राजर्षि क्रोष्टु के उत्तम पुरुष वाले वंश का वर्णन सुनिये, जिसके वंश में वृष्टिवंश के प्रवर्तक वृष्णि का जन्म हुआ था।।१३½-१४½।। राजर्षि क्रोष्टा के एक महायशस्वी पुत्र वृजिनीवान् हुए, वृजिनीवान् के पुत्र स्वाहि हुये, जो स्वाहा करने वालों में श्रेष्ठ थे, उन्हें लोग बहुत चाहते थे। स्वाहि के पुत्र दानियों में श्रेष्ठ राजा रुशेकु हुए।।१४½-१६½।। रुशेकु के बड़े पुत्र प्रसूत को प्रजायें बहुत चाहती थीं; क्योंकि उन्होंने ऐसे महान् यज्ञों का अनुष्ठान किया था, जिसमें प्रचुर दक्षिणायें दी थीं।।१७।। उनको अनेकों प्रकार के पुत्र प्राप्ति के कर्मों द्वारा चित्ररथ नाम का विख्यात पुत्र पैदा हुआ। उस चैत्ररथ ने भी अनेकों प्रकार की दक्षिणायें देने वाला यज्ञ किया था।।१८।। उसके बाद राजर्षियों द्वारा सम्मानित शशबिन्दु नामक राजा राज्यका अधिकारी हुआ। वह महावीर्य,

तत्रानुवंशश्लोकोऽयं यस्मिन्गीतः पुरातनैः। शशबिंदोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम्॥२०॥
श्रीमतामनुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम्। तेषां षट् वै प्रधानास्तु पृथुस्वाहा महाबलाः॥२१॥
पृथुःश्रवाः पृथुयशाः पृथुकर्मा पृथुंजयः। पृथुकीर्त्तिः पृथुर्दांतो राजानः शशबिंदवः॥२२॥
शंसंति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमंतरम्। अक्षरस्य सुयज्ञस्तु उशनास्तत्सुतोऽभवत्॥२३॥
उशनाः स तु धर्मात्मा अवाप्य पृथिवीमिमाम्। आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमदक्षिणम्॥२४॥
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुव्रतः। वीरकंबलबर्हिस्तु मरुत्ततनयः स्मृतः॥२५॥
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कंबलबर्हिषः। निहत्य रुक्मकवचः पुरा कवचिनो रणे॥२६॥
धन्विनो निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम्। ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्वमेधे महायशाः॥२७॥
राज्ञस्तु रुक्मकवचात्परावित्परवीरहा। जज्ञिरे पंच पुत्रास्तु महासत्त्वा महाबलाः॥२८॥
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः। परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत्पिता॥२९॥
रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः। तेभ्यः पराजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे॥३०॥
प्रशांतस्तु वने घोरे ब्राह्मणेन विरोधितः। जगाम धनुरादाय देशमन्यं रथी ध्वजी॥३१॥
नर्मदां नृप एकाकीमेकलान्मिरिकावनम्। ऋक्षवंतं गिरिं गत्वा मुक्तिमंतमथाविशत्॥३२॥

महापराक्रमी तथा बहुत प्रजाओं वाला चक्रवर्ती राजा था।।१९।। प्राचीन पुरुषों द्वारा उनके विषय में यह श्लोक गाया जाता है, जिसका आशय है कि राजा शशबिन्दु के एक सौ बहुत अधिक धनी बुद्धिमान् और तेजस्वी पुत्र थे, जिनमें छः मुख्य थे, जो पृथुगण के नाम से विख्यात थे। वे छः पुत्र महान् बलशाली थे, उनके नाम थे—पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुंजय, पृथुकीर्ति और पृथुदांता। ये सभी शशबिन्दु के पुत्र के नाम से विख्यात थे।।२०-२२।। सभी पुराण पृथुश्रवा के पुत्र अन्तर की बड़ी प्रशंसा करते हैं। यही अन्तर प्राचीनकाल में यज्ञ का पुत्र था। उसी धर्मात्मा ने उशना नाम से इस पृथ्वी को प्राप्त किया।।२३।। परम धार्मिक विचारों वाले उशना ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये।।२४।। उसका पुत्र मरुत् हुआ, जिसे राजर्षियों ने बहुत अधिक आदर प्रदान किया। मरुत् का पुत्र वीर कम्वलबर्हि कहा जाता है।।२५।। कम्बल बर्हि का पुत्र परमविद्वान् राजा रुक्म कवच हुए, पूर्वकाल में इस प्रकार राजा रुक्मकवच ने अनेकों धनुष-बाण और कवचधारी योद्धाओं को युद्ध क्षेत्र में तीक्ष्ण बाणों से मारकर उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त किया था और अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों को बहुत अधिक दान किया था।।२६-२७।।

उस राजा रुक्मकवच से शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले महाबली, महापराक्रमी पाँच वीर पुत्र पैदा हुए, जिनके नाम थे—रुक्मेषु, पृथुरुक्म,ज्यामघ, परिघ और हरि। परिघ और हरि नामक पुत्रों को पिता ने विदेश देश में स्थापित किया।।२८-२९।। रुक्मेषु अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी हुआ, पृथुरुक्म उसके अधीन था, उन सभी भाइयों ने मिलकर ज्यामघ को देश निकाला दे दिया, जिससे वन में उसने अपना आश्रम बनाया।।३०।। जब वह घोर वन्य प्रदेश में रह रहा था, उस समय मुनि की जीविका जीने वाले ज्यामघ को एक ब्राह्मण प्रेरित किया, जिससे प्रभावित हो रथ पर चढ़कर वह ज्यामघ मध्य देश में पहुंचा।।३१।। वहाँ नर्मदा के तट के किनारे वाले प्रदेश में एकान्त विचरण करता हुआ वह मेकल पर्वत की चोटियों से ऋक्षवान् नामक पर्वत पर पहुँचा और वहाँ से मुक्तिमान् पर्वत में प्रविष्ट हो गया।।३२।।

ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या बलवती भृशम्।
अपुत्रोऽपि स वै राजा भार्यामन्यां न विंदति॥३३॥
तस्यासीद्विजयो युद्धे ततः कन्यामवाप सः भार्यामुवाच भीतः सन्स्नुषेति तु नरेश्वरः॥३४॥
एवमुक्ताऽब्रवीदेवं कस्येयं ते स्नुषेति सा। यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति॥३५॥
तस्याः सा तपसोग्रेण शैब्या चैव ह्यसूयत। पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती॥३६॥
राजपुत्रस्तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकैशिकौ। पुत्रौ विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ॥३७॥
लोमपादं तृतीयं तु पश्चाज्जज्ञे सुधार्मिकम्। लोमपादसुतो बभ्रुराकृतिस्तस्य चात्मजः॥३८॥
कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुंतिस्तस्यात्मजोऽभवत्॥३९॥
कुंतेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणे धृष्टः प्रतापवान्। धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा॥४०॥
तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रमः। दशार्हस्य सुतो व्योमस्ततो जीमूत उच्यते॥४१॥
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः। अथ भीमरथस्यासीत्पुत्रो रथवरः किल॥४२॥
दानधर्मरतो नित्यं शीलश्रुतपरायणः। तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथः स्मृतः॥४३॥
तस्य चैकादशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः। तस्मात्करंभको धन्वी देवरातोऽभवत्ततः॥४४॥

ज्यामघ की पत्नी शैव्या परमशक्तिशालिनी और साहस वाली थी। यद्यपि उसका कोई पुत्र नहीं था, फिर भी राजा होते हुए भी उसने दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया था।।३३।। एक युद्ध में राजा ज्यामघ की विजय हुई, उस विजय में उसने एक कन्या प्राप्त की। राजा ने उस कन्या को लाकर अपने पत्नी से यह कहा कि तुम्हारी पुत्रवधू है।।३४।। राजा के ऐसा कहने पर शैब्या ने कहा कि यह किसकी वधू होगी, तब राजा ने कहा कि तुमको जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसकी यह पत्नी होगी अर्थात् तुम्हारी पुत्रवधू होगी।।३५।।

राजा के इस वचन से शैव्या ने कठोर तपस्या की जिससे उसको एक पुत्र हुआ सुन्दरी साध्वी शैव्या ने वृद्धावस्था में इस प्रकार विदर्भ नामक पुत्र को जन्म दिया।।३६।। उसकी पुत्र वधू में विदर्भ से क्रथ और कौशिक नामक दो विद्वान् राजपुत्र पैदा हुए, जो दोनों पुत्र शूरवीर और युद्ध में कुशल थे।।३७।। बाद में उस पुत्रवधू ने विदर्भ से तृतीय अत्यन्त धार्मिक पुत्र लोमपाद को जन्म दिया। लोमपाद के पुत्र बभ्रु हुए तथा उन बभ्रु के पुत्र आकृति हुए।।३८।। उधर विदर्भ पुत्र कौशिक के पुत्र चिदि हुए और उनसे पैदा होने वाले राजागण चैद्य कहे गये। उधर क्रथ जो विदर्भ के पुत्र थे, उनके पुत्र कुन्ति हुए।।३९।। कुन्ति के पुत्र धृष्ट हुए, जो युद्ध में धृष्ट और प्रतापी राजा थे। धृष्ट के पुत्र शत्रुवीरों को मारने वाले धर्मात्मा राजा निवृति हुए।।४०।। उनके महाबली और महापराक्रमी राजा दशार्ह हुए। दशार्ह के पुत्र राजा व्योम हुए, उसके बाद उनके पुत्र जीमूत कहे जाते हैं।।४१।। जीमूत के पुत्र विकृति हुए। उन विकृति के पुत्र भीमरथ स्मरण किये गये हैं। इसके बाद भीमरथ के पुत्र रथवर थे।।४२।। वे राजा रथवर दान और धर्म में लगे रहते थे तथा अच्छे आचरण वाले तथा वेदों का अध्ययन करने वाले थे। उनके पुत्र नवरथ हुए, उसके बाद उनके पुत्र दशरथ स्मरण किये गये हैं।।४३।। उन दशरथ के पुत्र एकादश रथ हुए, उनके पुत्र शकुनि हुए। उनसे धनुष को धारण करने वाले राजा करंभक हुए। फिर करंभक के पुत्र देवरात हुए।।४४।।

देवक्षत्रोऽभवद्राजा दैवरातिर्महायशाः। देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवनः क्षत्रनंदनः॥४५॥
देवनात्स मधुर्जज्ञे यस्य मेधार्थसंभवः। नंदनश्च महातेजा मधोः पुरुवसुस्तथा॥४६॥
आसीत्पुरुवसोः पुत्रः पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः। जज्ञे पुरुद्वतः पुत्रो भद्रवत्यां पुरूद्वहः॥४७॥
ऐक्ष्वाकी त्वभवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत।
तस्मात्सत्त्वगुणोपेतः सात्त्वतः कीर्त्तिवर्द्धनः॥४८॥
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः। प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः॥४९॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे सप्ततितमोऽध्यायः॥७०॥

देवरात के पुत्र राजा देवक्षत्र हुए, जो महापराक्रमी दैवराति कहे गये। अर्थात् देवरात के पुत्र दैवराति (अपत्यार्थक) में हुए। देवक्षत्र के पुत्र क्षत्रनन्दन देवन हुए।।४५।। देवन से मधु का जन्म हुआ फिर उसके पुत्र मेधार्थ सम्भव हुए। उन मधु के महातेजस्वी नन्दन तथा पुरुवसु हुए।।४६।। पुरुवसु के पुत्र पुरुषोत्तम पुरुद्वान् हुए। राजा पुरुद्वान् की पत्नी भद्रवती थी। अतः पुरुद्वान् से भद्रवती में परूद्वह पुत्र जन्म हुआ।।४७।।

उनकी पत्नी इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुई थी। उनसे सत्त्व गुणों से युक्त पुत्र सात्त्वत कीर्तिवर्धन हुए।।४८।। महाराजा महात्मा ज्यामघ की इस विशेष सृष्टि को विशेष रूप से जानकर मनुष्य सन्तान वाला होगा और परम बुद्धिमान् राजा सोम के सान्निध्य को प्राप्त होगा।।४९।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ७०वां अध्याय तपोवन दग्ध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

वृष्णिवंशवर्णनं नाम

एकसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

सात्त्वताज्जज्ञिरे पुत्राः कौशल्यायां महाबलाः। भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः॥१॥
महाभोजश्च विख्यातो ब्रह्मण्यस्सत्यसंगरः। तेषां हि सर्गाश्चत्वारः शृणुध्वं विस्तरेण वै॥२॥
भजमानस्य सृंजय्यो बाह्यका चोपबाह्यका। सृंजयस्य सुते द्वे तु बाह्यके ते उदावहत्॥३॥
तस्य भार्ये भगिन्यौ ते प्रसूते तु सुतान्बहून्। निम्लोचिः किंकणश्चैव धृष्टिः पर पुरंजयः॥४॥
ते बाह्यकायां सृंजय्या भजमानाद्विजज्ञिरे। अयुताजित्सहस्राजिच्छताजिदिति नामतः॥५॥
बाह्यकायां भगिन्यां ते भजमानाद्विजज्ञिरे। तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्म ह॥६॥
संयोज्यात्मानमेवं स पर्णाशजलमस्पृशत्॥७॥
सा चोपस्पर्शनात्तस्य चकार प्रियमापगा। कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा॥८॥
चिंतयाभिपरीतांगी जगामाथ विनिश्चयम्। नाभिगच्छामि तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-७१

वृष्णि वंश वर्णन

सूत जी बोले—हे ऋषियो! कीर्तिवर्धन सात्वत से पत्नी कौशल्या में महाबली भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज नामक पुत्रों का जन्म हुआ, जो सभी ब्रह्मज्ञानी और सत्यप्रतिज्ञ थे। उनके चार वंशों का विवरण विस्तार पूर्वक सुनिये।।१-२।। भजमान की सृञ्जयी नामक पत्नी ने वाह्यक और उपवाह्यक दो पुत्रों को जन्म दिया। सृञ्जय की दो पुत्रियां थीं, जिनका विवाह वाह्यक के साथ हुआ था।।३।। वाह्यक की पत्नी उन दोनों बहनों ने बहुत से पुत्र पैदा किये, जिनके नाम हैं—निम्लोचि, किंकण, शत्रु के नगरों को जीतने वाले धृष्टि[१] प्रमुख हुए।।४।।भजमान के पुत्रवाह्यक ने अपनी ज्येष्ठ रानी में इन पुत्रों को उत्पन्न किया। इसी प्रकार छोटी रानी में अयुतजित् सहस्रजित् शताजित् नामक पुत्र हुए। उन सबों में देववृध नामक राजा ने परम तप किया तथा उन्होंने इस उद्देश्य से तप किया था कि मुझे एक सर्वगुण सम्पन्न पुत्र हो।।५-६।। इस प्रकार संकल्प कर राजा ने पर्णाशा नामक नदी के जल का स्पर्श किया।।७।। स्पर्श करते ही नदियों में उत्तम पर्णाशा नदी ने राजा के कल्याण की चिन्ता से आतुर होकर यह विचार किया कि मेरी जानकारी में कोई ऐसी स्त्री नहीं है, जो राजा देववृध के संकल्प के अनुसार

---

१. वायुपुराण में वृष्णि।

भवेत्सर्वगुणोपेतो राज्ञो देवावृधस्य हि। तस्मादस्य स्वयं चाहं भवाम्यद्य सहव्रता॥१०॥
जज्ञे तस्याः स्वयं हृत्स्थो भावस्तस्य यथेरितः।
अथ भूत्वा कुमारी तु सा चिंतापरमेव च॥११॥
वरयामास राजानं तामियेष स पार्थिवः। तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः॥१२॥
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा। पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधत्तदा॥१३॥
तत्र वंशे पुराणज्ञा गाथां गायंति वै द्विजाः। गुणान्देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः॥१४॥
यथैव शृणुमो दूरात्सपंश्यामस्तथांतिकात्। बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः॥१५॥
पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च सहस्राणि च सप्ततिः। येमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि॥१६॥
यज्वा दानपतिर्धीरो ब्रह्मण्यः सत्यवाग्बुधः।
कीर्त्तिमांश्च महाभोजः सात्त्वतानां महारथः॥१७॥
तस्यान्ववा॒यः सुमहान्भोजा ये भुवि विश्रुताः। गांधारी चैव माद्री च धृष्टैर्भार्ये बभूवतुः॥१८॥
गांधारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम्। माद्री युधाजितं पुत्रं ततो मीढ्वांसमेव च॥१९॥
अनमित्रं शिनं चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ। अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः॥२०॥
प्रसेनश्च महाभागः सत्राजिच्च सुतावुभौ। तस्य सत्राजितः सूर्यःसखा प्राणसमोऽभवत्॥२१॥

सर्वगुणसम्पन्न पुत्र हो, इसलिए मैं स्वयं ही इसकी धर्मपत्नी बन रही हूँ।।८-१०।। राजा के हृदय में स्थित जिस प्रकार की भावना थी, उसी भावना से प्रेरित उस नदी ने कुमारी बनकर चिन्तापरक राजा को वर दिया, तब उस राजा ने उससे पुत्र की इच्छा की, उसके बाद राजा ने उसके गर्भ में तेजस्वी और उदार बुद्धिवाले गर्भ को धारण कर दिया।।११-१२।। इसके नवें मास में उस नदियों में श्रेष्ठ कुमारी पर्णाशा ने देववृध से सब गुणों से युक्त पुत्र बभ्रु को उत्पन्न किया।।१३।। वहाँ पुराण के ब्राह्मण लोग महात्मा देववृध के गुणों का वर्णन करते हुए गाथायें गाते हैं।।१४।। कि राजा देववृध जैसे दूर से सुने जाते हैं, वैसे ही पास में जाने पर प्रत्यक्ष दिखायी पड़ते हैं। वे राजा देववृध देवों के समान गुणवाले थे। राजा बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा अपने पिता देववृध के समान ही देवों के गुणों से युक्त थे।।१५।। इस वंश में पैंसठ हजार सत्तर पुरुषों ने अमरता की प्राप्ति की। बभ्रु गुणों में देववृध से बढ़कर थे।।१६।। वह राजा बभ्रु यज्ञ करने वाला, दानियों का स्वामी, धीर, ब्रह्मज्ञानी, सत्य बोलने वाला, विद्वान्, कीर्तिमान् तथा सात्त्वत वंश में उत्पन्न होने वालों में महारथी था।।१७।।

उसके वंशज श्रेष्ठ और महान् भोज वंश के राजा हुये, जो पृथ्वी पर विशेष प्रसिद्ध हुए थे। गान्धारी और माद्री जो धृष्टि की पत्नियां हुईं।।१८।। गान्धारी ने सुमित्र और मित्रनन्दन दो पुत्रों को पैदा किया और उसके बाद माद्री ने युधाजित् और मीढ्वांस[1] दो पुत्रों को जन्म दिया।।१९।। अनमित्र और शिन ये दो पुरुषोत्तम भी पैदा किये। अनमित्र के पुत्र निघ्न हुए और निघ्न के दो पुत्र हुए।।२०।। उनके नाम हैं—प्रसेनजित् और महाभाग सत्राजित्। उन सत्राजित् के सूर्य प्राणों के समान मित्र हो गये थे।।२१।।

१. वायुपुरण—देवमीढुष।

स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः। तोयं कूलात्समुद्धर्तुमुपस्थातुं ययौ रविम्॥२२॥
तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः। सुस्पष्टमूर्त्तिर्भगवांस्तेजोमंडलवान्विभुः॥२३॥
अथ राजा विवस्वंतमुवाच स्थितमग्रतः। यथैव व्योम्नि पश्यामि त्वामहं ज्योतिषां पते॥२४॥
तेजोमंडलिनं चैव तथैवाप्यग्रतः स्थितम्। को विशेषो विवस्वंस्ते सख्येनोपगतस्य वै॥२५॥
एतच्छ्रुत्वा स भगवान्मणिरत्नं स्यमंतकम्। स्वकंठादवमुच्याथ बबंध नृपतेस्तदा॥२६॥
ततो विग्रहवंतं तं ददर्श नृपतिस्तदा। प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्त्तं कृतवान्कथाम्॥२७॥
तमभिप्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स सत्रजित्। प्रोवाचाग्निसवर्णं त्वां येन लोकः प्रपश्यति॥२८॥
तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन्दातुमर्हसि। स्यमंतकं नाममणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः॥२९॥
स तमामुच्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः। विस्मापयित्वाऽथ ततः पुरीमंतःपुरं ययौ॥३०॥
स प्रसेनाय तद्दिव्यं मणिरत्नं स्यमंतकम्। ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम्॥३१॥

स्यमंतको नाम मणिर्यस्मिन्राष्ट्रे स्थितो भवेत्।
कामवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं तथा॥३२॥

लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्नं स्यमन्तकम्। गोविंदो न च तं लेभे शक्तोऽपि न जहार च॥३३॥
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। स्यमंतककृते सिंहाद्वधं प्राप सुदारुणम्॥३४॥

एक दिन रात्रि के समाप्त होने पर रथारोहियों में श्रेष्ठ राजा सत्राजित् सूर्य की उपासना करने के लिये अपने लिये रथ पर सवार होकर जल का स्पर्श करने के लिये निकला, जिस समय वह उपासना कर रहा था, उस समय अस्पष्ट रूप धारण कर अपने तेजोमण्डल से युक्त होकर भगवान् सूर्य उसके आगे आकर खड़े हो गये।।२२-२३।। इसके बाद अपने आगे सूर्य भगवान् को खड़ा देखकर भगवान् सूर्य से राजा ने कहा, हे ज्योतियों के स्वामी! मैं जिस प्रकार आपको आकाश में तेज से युक्त देखता हूँ, वैसा ही यहाँ अपने आगे देख रहा हूँ, तो फिर आपके मित्र रूप में होने की क्या विशेषता है?।।२४-२५।। यह सुनकर भगवान् सूर्य ने स्यमन्तक मणि को अपने कण्ठ से उतारकर राजा के कण्ठ में बाँध दिया।।२६।। तब उस राजा ने सूर्य को शरीर वाले रूप में देखा तब शरीर रूपमें उन सूर्य को देखकर थोड़ी देर के लिये कथा कही।।२७।। उसके बाद सूर्य को जाने के लिये तैयार देखकर सत्राजित् ने कहा कि भगवन्! आप अग्नि के समान तेजयुक्त हैं, जिस चमकती हुई प्रकाशमान इस स्यमन्तक मणि से प्रकाशमान् होकर आप समस्त लोकों में भ्रमण करते हैं, उस स्यमन्तक मणि को मुझे प्रदान कर दीजिये। तब सूर्य ने स्यमन्तक मणि रत्न को राजा सत्राजित् को प्रदान कर दिया।।२८-२९।। उस राजा ने उस स्यमन्तक मणिरत्न को बाँध कर अपने नगर में प्रवेश किया, तो इसके बाद नगर के लोग उन्हें सूर्य समझकर उनके पीछे दौड़ने लगे कि सूर्य जा रहे हैं।।३०।। उसके बाद उन सत्राजित् ने अपने उस उत्तम स्यमन्तक मणि को अपने प्रिय भाई प्रसेनजित् को प्रेम के कारण प्रदान कर दिया।।३१।। उस स्यमन्तक मणिरत्न की यह विशेषता है कि वह जिस राष्ट्र में रहेगी, वहाँ पर इच्छानुसार वर्षा होगी तथा उस राष्ट्र में बीमारी का कोई भयनहीं रहेगा।।३२।। गोविन्द ने उस स्यमन्तक मणिरत्न को राजा प्रसेनजित् से लेने की इच्छा की; परन्तु लेने की शक्ति रहते हुए भी उन्होंने उनसे छीना नहीं।।३३।। कभी

जांबवानृक्षराजस्तु तं सिंहं निजघान वै। आदाय च मणिं दिव्यं स्वबिलं प्रविवेश ह॥३५॥
तत्कर्म कृष्णस्य ततो वृष्ण्यंधकमहत्तराः। मणिं गृध्नोस्तु मन्वानास्तमेव विशशंकिरे॥३६॥
मिथ्यापवादं तेभ्यस्तं बलवानरिसूदनः। अमृष्यमाणो भगवान्वनं स विचचार ह॥३७॥
स तु प्रसेनो मृगयामचरद्यत्र चाप्यथ। प्रसेनस्य पदं ग्राह्यं पुरं पौराप्तकारिभिः॥३८॥
ऋक्षवंतं गिरिवरं विंध्यं च नगमुत्तमम्। अन्वेषयन्परिश्रांतः स ददर्श महामनाः॥३९॥
साश्वं हतं प्रसेनं तं नाविंदत्तत्र वै मणिम्। अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः॥४०॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदैर्ऋक्षस्य सूचितः। पदैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य यादवः॥४१॥
महत्यन्तर्बिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम्। धात्र्या कुमारमादाय सुतं जांबवतो द्विजाः।
क्रीडयंत्याथ मणिमा मारोदीरित्युदीरितम्॥४२॥

धात्र्यउवाच

प्रसेनमवधीत्सिंहः सिंहो जांबवता हतः॥४३॥
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमंतकः। व्यक्तीकृतश्च शब्दः स तूर्णं चापि ययौ बिलम्॥४४॥
अपश्यच्च बिलाभ्याशे प्रसेनमवदारितम्। प्रविश्य चापि भगवान्स ऋक्षबिलमंजसा॥४५॥

राजा प्रसेनजित् स्यमन्तक मणि से भूषित होकर शिकार के लिए गये, वहाँ स्यमन्तक मणि के लिये सिंह से बहुत कठोर वध को प्राप्त हुये अर्थात् राजा सिंह द्वारा मार दिये गये।।३४।। वहाँ पर जाम्बवान् ऋक्षराज ने उस सिंह को मार डाला और वे ऋक्षराज उस स्यमन्तक मणि रत्न को लेकर अपने बिल में घुस गये।।३५।। राजा प्रसेनजित् जो सिंह द्वारा मार दिये गये थे, इस हत्या कर्म की शंका और अंधक वंश के महान् व्यक्तियों ने कृष्ण पर की कि प्रसेनजित् को स्यमन्तक मणि के लालच में कृष्ण ने ही मार दिया होगा।।३६।।

शत्रुओं को नाश करने वाले भगवान् कृष्णने इस मिथ्या अपवाह को सुनकर सहन न करते हुए उस स्यमन्तक मणि को वन में खोजने का विचार किया।।३७।। इसके बाद वे कृष्ण जहाँ जहाँ प्रसेनजित् शिकार खेलने गये, वहाँ वहाँ उनके पदचिह्नों पर लोगों से पता लगाते हुए चलने लगे।।३८।। पर्वतश्रेष्ठ ऋक्षवान् और उत्तम पर्वत विन्ध्य पर खोजते हुए वे बहुत थक गये, तब उन्होंने अश्वसहित प्रसेनजित् को देखा; परन्तु वहाँ उससे स्यमन्तक मणि को नहीं प्राप्त किया।।३९।। इसके बाद प्रसेनजित् के मृत शरीर के थोड़ी दूर पर ही रीछ द्वारा मारे हुए सिंह को देखा तथा यह रीछ से पदचिह्नों से जाना कि सिंह को रीछ ने ही मारा है। तब उन भगवान् कृष्ण ने पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए रीछ की गुफा को खोज लिया।।४०-४१।।

सूत जी बोले कि हे विप्रो! भगवान् कृष्ण ने उसके विशाल बिल में स्त्री द्वारा उसको प्रेरित करने वाली वाणी सुनी, वहाँ धाय कुमार को गोद में लेकर कह रही थी कि बेटा मत रोओ, चलो इस मणि से खेलते हैं। इसके अलावा वह कह रही थी।४२।।

धाय बोली कि प्रसेनजित् को सिंह ने मारा, सिंह को जाम्बवान् ने मार दिया है, मेरे सुन्दर कुमार तुम मत रोओ यह मणि तुम्हारा है। तब जब यह शब्द कृष्ण ने सुना तो वे बिल के अन्दर चले गये।।४३-४४।। तब उन्होंने बिल के समीप तो प्रसेनजित् को मरा हुआ देखा ही था फिर बलपूर्वक बिल के अन्दर घुसकर उदार बुद्धि कृष्ण ने

ददर्श ऋक्षराजानं जांबवंतमुदारधीः। युयुधे वासुदेवस्तु बिलेजांबवता सह॥४६॥
बाहुभ्यामेव गोविंदो दिवासनेकविंशतिम्। प्रविष्टे च बिलं कृष्णे वसुदेवपुरस्सराः॥४७॥
पुनर्द्वारवतीं चैत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन्। वासुदेवस्तु निर्जित्य जांबवंतं महाबलम्॥४८॥
लेभे जांबवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम्। भगवत्तेजसा ग्रस्तो जांबवान्प्रसभं मणिम्॥४९॥
सुतां जांबवतीमाशु विष्वक्सेनाय दत्तवान्। मणिं स्यमंतकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये॥५०॥
अनुनीयर्क्षराजं तं निर्ययौ च तदा बिलात्। एवं स मणिमाहृत्य विशोध्यात्मानमात्मना॥५१॥
ददौ सत्राजिते रत्नं मणिं सात्त्वतसन्निधौ। कन्यां पुनर्जांबवतीमुवाह मधुसूदनः॥५२॥

तस्मान्मिथ्याभिशापात्तु व्यशुध्यन्मधुसूदनः।
इमां मिथ्याभिशप्तिं यः कृष्णस्येह व्यपोहिताम्॥५३॥
वेद मिथ्याभिशप्तिं स नाभिस्पृशति कर्हिचित्।
दश त्वासन्सत्रजितो भार्यास्तस्यायुतं सुताः॥५४॥

ख्यातिमंतस्त्रयस्तेषां भंगकारस्तु पूर्वजः। वीरो वातपतिश्चैव तपस्वी च बहुप्रियः॥५५॥
अथ वीरमती नाम भंगकारस्य तु प्रसूः। सुषुवे सा कुमारीस्तु तिस्रो रूपगुणान्विताः॥५६॥

ऋक्षराज जाम्बवन्त को देखा। तब उस बिल में ही वासुदेव श्रीकृष्ण ने जाम्ववन्त के साथ युद्ध किया।।४५-४६।। वहाँ भुजाओं द्वारा ही कृष्ण ने इक्कीस दिन तक युद्ध किया, जब कृष्ण को उस बिल में प्रविष्ट होने पर अधिक समय लग गया, तब उनके साथियों ने द्वारकापुरी में यह सूचित कर दिया कि कृषण तो जाम्बवान् द्वारा मारे गये।।४७-४७½।। उधर भगवान् कृष्ण ने तो महाबलवान् जाम्बवान् को जीतकर उसी की सम्मति से ऋक्षराज जाम्ववान् की पुत्री जाम्बवती को प्राप्त कर लिया।।४७½-४८½।। भगवान् के तेज से ग्रस्त (प्रभावित) उस जाम्बवान् ने जबरदस्ती उस मणि को और अपनी पुत्री जाम्ववती को विश्वक्सेन भगवान् कृष्ण को दे दिया।।४८½-४९½।।

तब श्रीकृष्ण ने उस स्यमन्तक मणि को आत्म विशुद्धि के लिये ग्रहण कर लिया, तब ऋक्षराज जाम्बवन्त को अनुनय विनय करके वे बिल से बाहर निकल आये।।४९½-५०½।। इस प्रकार उस मणि को लेकर अपनी आत्मा को शुद्ध करने के लिये अर्थात् अपने ऊपर चोरी का मिथ्या कलंक दूर करने के लिये उस मणि को सात्त्वत वंशियों के समक्ष सत्राजित्[1] को दे दिया।।५०½-५१½।। उसके बाद जाम्बवती कन्या का मधुसूदन ने अपने साथ विवाह कर लिया। इस प्रकार उस मिथ्या, अभिशाप से भगवान् कृष्ण मुक्त हो गये।।५१½-५२½।। भगवान् कृष्ण के ऊपर फैलायी गयी इस मिथ्या अपकीर्ति को जो मनुष्य जानता है, उसे कभी भी किसी भी प्रकार की मिथ्या अपकीर्ति का पात्र नहीं बनना पड़ता।।५२½-५३½।। उस सत्राजित् की दश पत्नियां थीं और दश हजार पुत्र थे। उनमें तीन पुत्र विख्यात हुए, जिनके पूर्वज राजा भंगकार थे, जो राजा वीर वातपति तपस्वी और बहुत लोगों के प्रिय थे।।५२½-५४।। इधर भंगकार की प्रसूता पत्नी ने रूपगुणसम्पन्न तीन कन्याओं को पैदा किया।।५५।। उन स्त्रियों में सत्यभामा उत्तम स्त्री थी, जो व्रत करने वाली और कठोर व्रत करने वाली तथा तपस्विनी थी। जिसे उसके पिता ने श्रीकृष्ण को दे

१. वायुपुराण में शुक्रजित्।

सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता। तथा तपस्विनी चैव पिता कृष्णाय तां ददौ॥५७॥
न च सत्राजितः कृष्णो मणिरत्नं स्यमंतकम्। आदत्त तदुपश्रुत्य भोजेन शतधन्वना॥५८॥
तदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिंदिताम्। अक्रूरो धनमन्विच्छन्मणिं चैव स्यमंतकम्॥५९॥
सत्राजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः। रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान्॥६०॥
अक्रूरस्तु तदा रत्नमादाय स नरर्षभः। समयं कारयांचक्रे बोध्यो नान्यस्य चेत्युत॥६१॥
वयमभ्युपयोत्स्यामः कृष्णेन त्वां प्रधर्षितम्। मम वै द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्य संशयम्॥६२॥
हते पितरि दुःखार्त्ता सत्यभामा यशस्विनी। प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम्॥६३॥
सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः। भर्तुर्निवेद्य दुःखार्त्ता पार्श्वस्याश्रूण्यवर्त्तयत्॥६४॥

पांडवानां तु दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम्।
कल्यार्थे चैव भ्रातृणां न्ययोजयत सात्यकिम्॥६५॥

ततस्त्वरितमागत्य द्वारकां मधुसूदनः। पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्॥६६॥
हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना। स्यमंतको मार्गणीयस्तस्य प्रभुरहं प्रभो॥६७॥
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महाबलम्। स्यमंतकं महाबाहो सामान्यो वो भविष्यति॥६८॥
ततः प्रवृत्ते युद्धे तु तुमुले भोजकृष्णयोः। शतधन्वा तमक्रूरमवैक्षत्सर्वतो दिशम्॥६९॥

दिया।।५६-५७।। कृष्ण ने जिस स्यमन्तक मणिको सत्राजित् को दिया था, उसे भोज शतधन्वा ने धारण किया था।।५८।। उसके बाद तब रूपगुण में प्रशंसनीय सत्यभामा को पाने के लिये धन की इच्छा रखने वाले अक्रूर ने मणि को प्राप्त करना चाहा।।५९।। उसके बाद महाबली शतधन्वा ने सत्राजित् को मारकर रात्रि में उस मणि को लेकर अक्रूर को दे दिया।।६०।। तब उस नरपति अक्रूर ने उस रत्न को लेकर यह प्रतिज्ञा करवायी कि इस रहस्य को तुम किसी को नहीं जानने दोगे। जब कृष्ण तुम्हें पीड़ित करेंगे, तब हम आपकी सहायता करेंगे; क्योंकि इस समस्त द्वारका नगरी हमारे वंश में स्थित है।।६१-६२।। अपने पिता के मर जाने पर यशस्विनी सत्यभामा पितृमरण दुःख से दुःखी होकर रथ पर चढ़कर वाराणावत को चली गयी।।६३।। दुःखी सत्यभामा ने शतधन्वा भोज के उस वृत्तान्त को पति श्रीकृष्ण से निवेदन किया है और पास में बैठकर आँसू गिराती रही।।६४।।

वारणावत में जब पाण्डवों को जला दिया गया था, तब भगवान् कृष्ण ने वहाँ जलदान क्रिया को सम्पन्न किया था और उस समय भाइयों के स्थान पर सात्यकि को रखा था।।६५।। उसके बाद मधुसूदन भगवान् कृष्ण ने तुरन्त ही द्वारका में आकर अपने बड़े भाई हलधर बलराम से यह वचन कहा।।६६।। हे सर्वसमर्थ बलराम जी! जिस स्यमन्तक के लिये सिंह ने प्रसेनजित् को मार दिया, उसी के लिये शतधन्वा ने सत्राजित् को मार दिया है, अतः मैं उस स्यमन्तक मणि को खोजना चाहता हूँ; क्योंकि मैं ही उसको रखनेका अधिकारी हूँ।।६७।। तब आप शीघ्र ही रथ पर चढ़ जाइये और शीघ्र महाबली शतधन्वा भोज को मारकर हे महाबाहो! आप उस स्यमन्तक मणि को प्राप्त करें। तब सब सामान्य हो जायेगा।।६८।। उसके बाद शतधन्वा भोज और श्रीकृष्ण के बीच युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर शतधन्वा ने सभी ओर सभी दिशाओं में अक्रूर को खोजा।।६९।। उस समय श्रीकृष्ण और शतधन्वा दोनों ने

अनालब्धावहारौ तु कृत्वा भोजजनार्द्दनौ।
शक्तोऽपि शाठ्याद्धार्दिक्यो नाक्रूरोऽभ्युपपद्यत॥७०॥
अपयाते ततो बुद्धिं भूयश्चक्रे भयान्वितः। योजनानां शतं साग्रं हृदया प्रत्यपद्यत॥७१॥
विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी। भोजस्य वडवा दिव्या यया कृष्णमयोधयत्॥७२॥
क्षीणां जवेन हृदयामध्वनः शतयोजने। दृष्ट्वा रथस्य तां वृद्धिं शतधन्वा समुद्रवत्॥७३॥
ततस्तस्या हयायास्तु श्रमात्खेदाच्च वै द्विजाः।
खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत्॥७४॥
तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा मया हयी। पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमंतकम्॥७५॥
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः। मिथिलोपवने तं वै जघान परमास्त्रवित्॥७६॥
स्यमंतकं न चापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम्। निवृत्तं चाब्रवीत्कृष्णं रत्नं देहीति लांगली॥७७॥
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्विताः। धिक्छब्दपूर्वमसकृत्प्रत्युवाच जनार्द्दनम्॥७८॥
भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्।
कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः॥७९॥
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द्दनः। सर्वकामैरुपहृतैर्मैथिलेनैव पूजितः॥८०॥

उस अक्रूर को नहीं पाया। उस समय समर्थ होते हुए भी वे अक्रूर शठता के कारण शतधन्वा की सहायता के लिये नहीं आये।।७०।। उसके बाद उस शतधन्वा को भागने की बुद्धि पैदा हुई और फिर भयभीत होकर भागने लगा तथा अपनी हृदया नामक घोड़ी से सैकड़ों योजन भागता रहा।।७१।। वह हृदया नाम की घोड़ी सौ योजन चलने वाली के नाम से विख्यात थी। उसी दिव्य गुणों वाली घोड़ी पर चढ़कर शतधन्वा भोज ने श्रीकृष्ण से युद्ध किया।।७२।। जब मार्ग में सौ योजन वेगपूर्वक दौड़ते हुए वह घोड़ी क्षीण हो गयी, समुद्र के समान बढ़ते हुए कृष्ण के रथ को शतधन्वा ने देखा।।७३।। उसके बाद बहुत अधिक थकान के कारण पसीना बहुत अधिक बह जाने से शतधन्वा की घोड़ी के जव प्राण निकल गये, तव श्रीकृष्ण ने वलराम से कहा।।७४।। कि हे महावाहो! आप यहीं पर ठहरिये, मैंने अव इस घोड़ी के दोष को देख लिया है। इसमें १०० योजन दौड़ने की ही क्षमता है, अतः यह मर गयी। अव मैं पैदल ही दौड़कर इस शतधन्वा को पकड़कर स्यमन्तक मणि को उससे छीन कर ले आऊंगा।।७५।।

उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने पैदल ही जाकर शतधन्वा को पकड़ लिया और फिर परम अस्त्र को जानने वाले उन कृष्ण ने मिथिला के उपवन में उसको मार डाला।।७६।। श्रीकृष्ण ने महावली भोज को तो मार दिया; परन्तु स्यमन्तक रत्न को नहीं देखा, तब सब कुछ समाप्त हो जाने पर बलराम ने श्रीकृष्ण से कहा कि हे कृष्ण! वह रत्न दीजिये।।७७।। जव कृष्ण ने कहा कि रत्न तो नहीं है, तो इतना सुनते ही वलराम क्रोधित हो गये और उन्हें धिक्कारते हुए कृष्ण से इस प्रकार वोले।।७८।। यहाँ भाई होने के नाते मैं तुम्हें क्षमा कर रहा हूँ। हे कृष्ण! तुम्हारा कल्याण हो, अव मैं जा रहा हूँ। अव मुझे इस द्वारका से, तुमसे तथा इन वृष्णिवंशियों से कोई मतलव नहीं है।।७९।। उसके बाद शत्रुओं का दमन करने वाले वे बलराम मिथिला नगरी में प्रविष्ट हुए तो सभी कामनाओं से युक्त उपहारों से वे मिथिला नरेश द्वारा सम्मानित किये गये।।८०।।

एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः। नानारूपान्क्रतून्सर्वा नाजहार निरर्गलाम्॥८१॥
दीक्षामयं सकवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह। स्यमंतककृते प्राज्ञो गांदिनीजो महामनाः॥८२॥
अक्रूर यज्ञा इति ते ख्यातास्तभ्य महात्मनः। बह्वन्नदक्षिणाः सर्वे सर्वकामप्रदायिनः॥८३॥

अथ दुर्योधनो राजा गत्वाऽथ मिथिलां प्रभुः।
गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलभद्रादवाप्तवान्॥८४॥

प्रसाद्य तु ततो रामो वृष्ण्यंधकमहारथैः। आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना॥८५॥
अक्रूरश्चांधकैः सार्द्धमथायात्मपुरुषर्षभः। युद्धे हत्वा तु शत्रुघ्नं सह बंधुमता बली॥८६॥
सुयज्ञतनयायां तु नरायां नरसत्तमौ। भंगकारस्य तनयौ विश्रुतौ सुमहाबलौ॥८७॥
जज्ञातेंऽधकमुख्यस्य शक्रघ्नो बंधुमांश्च तौ। वधे च भंगकारस्य कृष्णो न प्रीतिमानभूत्॥८८॥
ज्ञातिभेयभयाद्धीतस्तमुपेक्षितवानथ। अपयाते ततोऽक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः॥८९॥
अनावृष्ट्या हतं राष्ट्रमभवद्बहुधा यतः। ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरांधकाः॥९०॥
पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तदा दानपतौ तथा। प्रववर्ष सहस्राक्षः कुक्षौ जलनिधेस्ततः॥९१॥
कन्यां वै वासुदेवाय स्वसारं शीलसंमताम्। अक्रूरः प्रददौ श्रीमान्प्रीत्यर्थं मुनिपुंगवाः॥९२॥
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम्। सभामध्ये तदा प्राह तमक्रूरं जनार्दनः॥९३॥

इसी समय बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वभ्रु ने अनेकों प्रकार के प्रभाव नष्ट न होने वाले यज्ञों के अनुष्ठान किये तथा उन्हें किसी भी विघ्न वाधा के विना सम्पन्न किया।।८१।। महामना एवं प्राज्ञ गान्दिनी पुत्र ने इस स्यमन्तकमणि हेतु अपनी रक्षा के लिये दीक्षामय कवच भी पहन रखा था।।८२।। इस अवधि में उसने अपने इन यज्ञों में अनेकों प्रकार के वहुमूल्य रत्न एवं द्रव्यादि दान किये गये थे। उस परम वुद्धिमान् महात्मा के ये यज्ञ अक्रूर के यज्ञों के नाम से विख्यात हो गये।।८३।। इसके वाद प्रभु राजा दुर्योधन ने मिथिला में जाकर वलराम से दिव्य गदा की शिक्षा प्राप्त की थी।।८४।। उसके वाद नाराज वलराम को मनाने के लिए सभी वृष्णि और अन्धक महारथी गये और उन्हें प्रसन्न कर महात्मा कृष्ण द्वारकापुरी में लाये।।८५।। पुरुष श्रेष्ठ अक्रूर युद्ध में वन्धुमान के साथ वली शत्रुघ्न का संहार कर अंधकों के साथ द्वारकापुरी से वाहर चले गये।।८६।। ये दोनों महावलवान् पुत्र भृङ्गारक के थे—स्वफल्क की पुत्री नरा में इन दोनों प्रख्यात पुरुष रत्नों का जन्म हुआ था।।८७।।

अन्धक मुख्य के ये दोनों पुत्र शक्रघ्न और वन्धुमान् थे। भृङ्गकार का वध होने से कृष्ण को प्रसन्नता नहीं हुई।।८८।। तब ज्ञातिभेद से भयभीत कृष्ण ने अक्रूर को उपेक्षित कर दिया और फिर वे द्वारकापुरी के वाहर चले गये। द्वारकापुरी से वाहर चले जाने पर इन्द्र ने वर्षा नहीं की।।८९।। वर्षा न होने के कारण राष्ट्र वहुत प्रकार से विनाश को प्राप्त हो गया, उसके वाद कुकुर और अन्धकों ने जाकर अक्रूर जी को मनाया और प्रसन्न किया।।९०।। तथा जव दानपति अक्रूर ने द्वारकापुरी में प्रवेशकिया तो हजार नेत्रों वाले इन्द्र ने समुद्र की कोख द्वारकापुरी में वर्षा कर दी।।९१।। उसके वाद श्रीमान् अक्रूर ने भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए उन्हें अपनी शीलसम्मत अपनी सार स्वरूप कन्या को प्रदान कर दिया।।९२।। उसके वाद जब श्रीकृष्ण ने योग से यह जान लिया कि मणि वभ्रु (अक्रूर) के पास है, तव सभा के मध्य जनार्दन श्रीकृष्ण से उन अक्रूर से कहा।।९३।।

यत्तद्रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं प्रभो। तत्प्रयच्छ स्वमानार्हं मयि मानार्यकं कृथाः॥९४॥
षष्टिवर्षगते काले यद्रोषोऽभूत्तदा मम। सुसंरूढोऽसकृत्प्राप्तस्तदा कालात्ययो महान्॥९५॥
ततः कृष्णस्य वचनात्सर्वसात्त्वतसंसदि। प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः॥९६॥
ततस्तमार्जवप्राप्तं बभ्रोर्हस्तादरिंदमः। ततौ हृष्टमनास्तुष्टस्तं मणिं बभ्रवे पुनः॥९७॥
स कृष्णहस्तात्संप्राप्य मणिरत्नं स्यमंतकम्। आबध्य गांदिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव॥९८॥

इमां मिथ्याभिशप्तिं यो विशुद्धिमपि चोत्तमाम्।
वेद मिथ्याभिशप्तिं स न लभेत कथंचन॥९९॥
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनंदनात्।
सत्यवान्सत्यसंपन्नः सत्यकस्तस्य चात्मजः॥१००॥

सात्यकिर्युयुधानश्च तस्य भूतिः सुतोऽभवत्। भूतेर्युगंधरः पुत्र इति भौत्यः प्रकीर्त्तितः॥१०१॥

माद्र्याः सुतस्य जज्ञे तु सुतो वृष्णिर्युधाजितः।
जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकश्च यः॥१०२॥

श्वफल्कस्तु महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्तते। नास्ति व्याधिभयं तत्र न चावृष्टिभयं तथा॥१०३॥

कदाचित्काशिराजस्य विभोस्तु द्विजसत्तमाः।
त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासनः॥१०४॥

श्रीकृष्ण ने कहा कि जो वह स्यमन्तकमणि आपके हाथ पड़ गयी है, उस मणि को अपने मान मर्यादा को बचाने के लिये हमें दे दीजिये। इसमें ना मत कहिये।।९४।। श्रीकृष्ण ने कहा कि जिसके लिये साठ वर्ष से हमारा क्रोध आप पर हुआ है, उस क्रोध को बताने का अवसर मुझे आज प्राप्त हुआ है, अतः समयानुसार मणि को मांग कर मैं अपने क्रोध को शान्त करना चाहता हूँ।।९५।। उसके बाद जब सभा में श्रीकृष्ण ने इन वचनों को कहा तब महामति बभ्रु (अक्रूर) ने उस स्यमन्तक मणि को विना किसी क्लेश के श्रीकृष्ण को दे दिया।।९६।। उसके बाद शत्रुनाशक भगवान् श्रीकृष्ण को दया उत्पन्न हो गयी। अतः प्रसन्नचित्त श्रीकृष्ण उस स्यमन्तक मणि को पुनः उन्हीं अक्रूर जी को दे दिया।।९७।। तब उस स्यमन्तक मणिको प्राप्त कर वे अपने कण्ठ में बाँधकर गान्दिनी पुत्र बभ्रु (अक्रूर) जी सूर्य के समान सुशोभित हुए।।९८।। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के प्रति इस मिथ्या कलंक को जानता है, वह संसार में कभी भी मिथ्या कलंक का पात्र नहीं होगा।।९९।।

अब आगे के वंश बताते हैं—कनिष्ठ वृष्णि पुत्र अनमित्र से शिनि का जन्म हुआ। उनके पुत्र सत्य बोलने वाले सत्य से सम्पन्न सत्यक हुए।।१००।। सत्यक के पुत्र सात्यकि हुए सात्यकि के पुत्र युयुधान हुए, उनके पुत्र भूति हुए भूति के पुत्र युगन्धर हुये, जो भौत्य कहे गये।।१०१।।

अब माद्री के वंश को बताते हैं—माद्री केपुत्र युधाजित् हुए, जो वृष्णि[1] नाम से विख्यात हुए। वृष्णि के श्वफल्क और चित्रक दो पुत्रों ने जन्म लिया।।१०२।। जहाँ पर धर्मात्मा महाराज श्वफल्क वर्तमान रहते थे। वहाँ पर किसी भी प्रकार के रोग का तथा अनावृष्टि का भय नहीं रहता है।।१०३।। सूत जी ने कहा कि हे द्विजश्रेष्ठो! कभी

---

१. वायुपुराण—पृश्नि।

स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम्। श्वफल्कपरिवासेन प्रावर्षत्पाकशासनः॥१०५॥

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविंदत।
गांदिनींनाम गां सा हि ददौ विप्राय नित्यशः॥१०६॥

सा मातुरुदरस्था वै बहून्वर्षशतान्किल। निवसंती न वै जज्ञे गर्भस्थां तां पिताऽब्रवीत्॥१०७॥

जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थं वापि तिष्ठसि।
प्रोवाच चैनं गर्भस्था सा कन्या गां दिने दिने॥१०८॥

यदि दद्यास्ततो गर्भाद्बहिः स्यां हायनैस्त्रिभिः।
तथेत्युवाच तां तस्याः पिता काममपूरयत्॥१०९॥

दाता यज्वा च शूरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः।
तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः श्वाफल्को भूरिदक्षिणः॥११०॥

उपमंगुस्तथा मंगुर्मृदुरश्चारिमेजयः। गिरिरक्षस्ततो यक्षः शत्रुघ्नोऽथारिमर्दनः॥१११॥

धर्मवृद्धः सुकर्मा च गंधमादस्तथापरः। आवाहप्रतिवाहौ च वसुदेवा वरांगना॥११२॥

अक्रूरादौग्रसेन्यां तु सुतौ द्वौ कुलनंदिनौ। देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंनिभौ॥११३॥

चित्रकस्याभवन्पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च अश्वग्रीवोऽश्ववाहश्च सुपार्श्वकगवेषणौ॥११४॥

अरिष्टनेमिरश्वास्यः सुवर्णा वर्मभृत्तथा। अभूमिर्बहुभूमिश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ॥११५॥

विभु काशिराज के देश में इन्द्र ने तीन वर्षों तक वर्षा नहीं की।।१०४।। तब काशिराज श्वफल्क से अपने देश में रहने की याचना की, तब वहाँ काशीमें श्वफल्क ने निवास किया और श्वफल्क के काशीवास करने से वहाँ इन्द्र ने वर्षा कर दी।।१०५।। श्वफल्क ने काशिराज की पुत्री गान्दिनी को अपनी पत्नी बनाया, वह गान्दिनी ब्राह्मण के लिये नित्य गौ दान में दिया करती थी।।१०६।। उस गान्दिनी की कहानी है कि वह गान्दिनी सौ वर्ष तक माता के गर्भ में स्थिर रही; परन्तु जब उत्पन्न नहीं हुई तब गर्भ में स्थित उससे पिता ने कहा कि हे भद्रे! तुम शीघ्र जन्म ग्रहण करो। पेट में किस कारण से स्थित हो। तब उस गर्भस्थ कन्या ने राजा से कहा कि यदि आप प्रतिदिन एक गौ ब्राह्मण के लिये दान में दें, तो मैं तीन वर्षों में गर्भ से बाहर आ जाऊँगी, वैसा ही होगा, ऐसा कहकर उसके पिता ने उसकी इच्छा को पूर्ण किया।।१०७-१०९।।

फिर श्वफल्क के पुत्र अक्रूर उत्पन्न हुए, जो दानदाता, यज्ञकर्ता, शूरवीर, वेदज्ञ और अतिथियों का सत्कार करने वाले थे तथा राजा श्वफल्क भी बहुत दानी थे।।११०।। फिरउन राजा श्वफल्क के उपमंगु, मंगु, मृदुर, अरिमेजय, गिरिरक्ष, उसके बाद यक्ष और अरिमर्दन, शत्रुघ्न, धर्मवृद्ध, सुकर्मा और गन्धमान तथा आवाह और प्रतिवाह नामक अनेक पुत्र हुए और वसुदेवा नाम की सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई।।१११-११२।। अक्रूर से उग्रसेन की पुत्री में कुल को आनन्दित करने वाले देववान् और उपदेव नाम के देवों के समान दो पुत्र उत्पन्न हुए।।११३।। उधर चित्रक के भी अनेकों पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम हैं—पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्ववाह, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्वास्य, सुवर्मा, वर्मभृत्, अभूमि और बहुभूमि तथा उनकी श्रविष्ठा और श्रवण दो स्त्रियां भी थीं।।११४-११५।।

सत्यकात्काशिदुहिता लेभे या चतुरः सुतान्।
कुक्कुरं भजमानं च शुचिं कंबल बर्हिषम्॥११६॥
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयोऽभवत्।
कपोतरोमा तस्याथ विलोमाऽभवदात्मजः॥११७॥
तस्यासीत्तुंबुरुसखा विद्वान्पुत्रोंऽधकः किल।
ख्यायते यस्य नामान्यच्चंदनोदकदुंदुभिः॥११८॥
तस्याभिजित्ततः पुत्र उत्पन्नस्तु पुनर्वसुः। अश्वमेधं तु पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः॥११९॥
तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सदोमध्यात्समुच्छ्रितः।
ततस्तु विद्वान्धर्मज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसुः॥१२०॥
तस्याथ पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल। आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ मतिमतां वरौ॥१२१॥
इमांश्चोदा हरंत्यत्र श्लोकान्प्रति तमाहुकम्।
सोपासांगानुकर्षाणां सध्वजानां वरूथिनाम्॥१२२॥
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु। नासत्यवादी चासीत्तु नायज्ञो नासहस्रदः॥१२३॥
नाशुचिर्नाप्यधर्मात्मा नाविद्वान्न कृशोऽभवत्। आर्द्रकस्य धृतिः पुत्र इत्येवमनुशुश्रुम्॥१२४॥
स तेन परिवारेण किशोरप्रतिमान्हयान्। अशीतिमश्वनियुतान्याहुकोऽप्रतिमो व्रजन्॥१२५॥
पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य त्वतिभावयन्।
रूप्यकांचनकक्षाणां सहस्राण्येकविंशतिः॥१२६॥

उधर सत्यक से काशिराज की पुत्री ने कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बल बर्हिष चार पुत्रों को प्राप्त किया।।११६।। कुकुर के पुत्र वृष्णि हुए और वृष्णि के पुत्र कपोतरोमा हुए, उनके पुत्र विलोमा हुए।।११७।। उनके पुत्र तुंबुरुसखा हुए, फिर उनके पुत्र विद्वान् अन्धक हुए, जो चन्दनोदक दुन्दुभि नाम से भी विख्यात हुए।।११८।। उनके पुत्र अभिजित् हुए, उसके बाद उनके पुनर्वसु पुत्र उत्पन्न हुए। जिसे नरश्रेष्ठ ने पुत्र प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ की वेदी के मध्य भाग से पुनर्वसु का प्रादुर्भाव हुआ था, इसलिये वे राजा पुनर्वसु धर्मज्ञ, दानदाता, विद्वान् और यज्ञ करने वाले हुए थे।।११९-१२०।। इसके बाद उन अभिजित् राजा पुनर्वसु को दो जुड़वा पुत्र हुए, जो दोनों आहुक और बाहुक बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हुए।।१२१।। उन आहुक के विषय इन श्लोकों को उदाहृत किया जाता है, जिनका आशय है कि वे महाराजा आहुक अपने प्रत्येक अंग से सुगठित शरीर वाले ध्वजाओं और कवचों से युक्त मेघों के समान गर्जना करने वाले दश हजार रथों से सदैव घिरे हुए रहते थे। वे न असत्य बोलने वाले थे, न ही यज्ञों को करने वाले थे, न अपवित्र रहने वाले थे, न अधर्म करने वाले थे, न अविद्वान् थे और न ही दुर्बल थे। आहुक के पुत्र धृति हुए, ऐसा सुनते हैं।।१२२-१२४।। उस राजा आहुक को दश हजार अस्सी किशोरावस्था के अनुपम अश्व सदा घेरे हुए रहते थे। उनके बीच वह राजा गमन करता था।।१२५।। उस राजा आहुक ने पूर्व दिशा में सोने और चाँदी से सजे हुए इक्कीस हजार हाथियों की बलवान् सेना लेकर भोजराज की समानता की थी।

तावंत्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि।
भूमिपालस्य भोजस्य उत्तिष्ठेत्किंकणी किल॥१२७॥

आहुकश्चाप्यवंतीषु स्वसारं त्वाहुकीं ददौ। आहुकात्काश्यदुहितुर्द्वौपुत्रौ संबभूवतुः॥१२८॥
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ। देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः॥१२९॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः। तेषां स्वसारः सप्तासन्वसुदेवाय ता ददौ॥१३०॥
धृतदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता। श्रीदेवा शांतिदेवा च सहदेवा तथाऽपरा॥१३१॥
सप्तमी देवकी तासां सानुजा चारुदर्शना। नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः॥१३२॥
न्यग्रोधश्च सुनामा च कंकशंकुसुभूमयः। सुतनू राष्ट्रपालश्च युद्धतुष्टश्च तुष्टिमान्॥१३३॥
तेषां स्वसारः पंचैव कंसा कंसवती तथा। सुतनू राष्ट्रपाली च कंका चैव वरागंना॥१३४॥
उग्रसेनो महापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः। कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम्॥१३५॥
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावांश्च भवेन्नरः। भजमानस्य पुत्रस्तु रथिमुख्यो विदूरथः॥१३६॥
राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत्। तस्य शूरस्य तु सुता जज्ञिरे बलवत्तराः॥१३७॥

वातश्चैव निवातश्च शोणितः श्वेतवाहनः।
शमी च गदा वर्मा च निदांतः खलु शत्रुजित्॥१३८॥

शमीपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः। स्वयंभोजः स्वयंभोजाद्धृदिकः संबभूव ह॥१३९॥

इसी प्रकार उत्तर दिशा में इतनी ही सेना लेकर राजा भोज पर आक्रमण किया था, जिनमें उसकी किंकिणी (पैर की घुंघरू) गिर पड़ी थी, ऐसा प्रसिद्धि है।।१२६-१२७।। उस आहुक ने अपने बहिन आहुकी को अवन्ती[1] प्रदान किया था। आहुक से काशीराज की पुत्री से दो पुत्र हुए।।१२८।।

उन दोनों पुत्रों का नाम देवक और उग्रसेन था, जो दोनों देवों के गर्भ (बच्चों) के समान सुन्दर थे। देवक के देवताओं के समान पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव, देवरक्षित। उनकी सात बेटियाँ थीं, जिनको उन्होंने वासुदेव को प्रदान कर दिया था।।१३०।। उनके नाम थे—धृतदेवा उपदेवा तथा दूसरी देवरक्षिता, श्री देवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और सातवीं देवकी थी। उस देवकी की सभी छोटी बहिनें देखने में बहुत सुन्दर थीं। उग्रसेन के नौ पुत्र थे, उनमें कंस सबसे बड़े पुत्र थे।।१३१-१३२।। उन उग्रसेन के पुत्रों के नाम हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कंक, शंकु, सुभूमि, सुतनु, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्ट और तुष्टिमान्।।१३३।। उनकी कंशा, कंशवती, सुतनू, राष्ट्रपाली और कका, पाँच सन्दर शरीर वाली बेटियां थीं।।१३४।। उग्रसेन महान् सन्ततियों वाले विख्यात कुकुरवंशीय राजा था। इन परम तेजस्वी कुकुरवंशीय राजाओं के वृत्तान्त को जो मनुष्य धारण करता है, अर्थात् याद रखता है, वह अपने विपुल वंश का पालक तथा उत्तम सन्तानों वाला होता है।।१३५-१३५½।। भजमान के पुत्र तो मुख्य रथी विदूरथ हुये। उनके राजाधिदेव शूर और विदूरथ पुत्र हुए, इनमें से शूर के महाबली पुत्र वात, निवात, शोणित, श्वेतवाहन, शमी, गदवर्मा, निदांत और शक्रजित् थे।।१३५½-१३८।। इनमें शमी के पुत्र प्रतिक्षत हुये,

---

१. वायुपुराण—आहुकान्ध

हृदिकस्य सुतास्त्वासन्दश भीमपराक्रमाः। कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः॥१४०॥
देवबाहुस्सुबाहुश्च भिषक्श्वेतरथश्च यः। सुदांतश्चाधिदांतश्च कनकः कनकोद्भवः॥१४१॥
देवबाहोस्सुतो विद्वाञ्जज्ञे कंबलबर्हिषः। असमौजाः सुतस्तस्य सुसमौजाश्च विश्रुतः॥१४२॥
अजातपुत्राय ततः प्रददावसमौजसे। सुचंद्रं वसुरूपं च कृष्ण इत्यंधकाः स्मृताः॥१४३॥
अंधकानामिमं वंशं कीर्त्तयेद्यस्तु नित्यशः। आत्मनो विपुलं वंशं लभते नात्र संशयः॥१४४॥
अश्मक्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषम्। मारिष्यां जज्ञिरे शूराद्भोजायां पुरुषा दश॥१४५॥
वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुंदुभिः। जज्ञे तस्य प्रसूतस्य दुंदुभिः प्राणदद्दिवि॥१४६॥
आनकानां च संह्लादः सुमहानभवद्दिवि। पपात पुष्पवर्षं च शरस्य भवने महत्॥१४७॥

मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि।
यस्यासीत्पुरुषाग्र्यस्य कांतिश्चंद्रमसो यथा॥१४८॥

देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः। अनाधृष्टिवृकश्चैव नंदनश्चैव सृंजयः॥१४९॥

श्यामः शमीको गंडूषः स्वसारस्तु वरांगनाः।
पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः॥१५०॥

राजाधिदेवी च तथा पंचैता वीरमातरः। पृथां दुहितरं शूरः कुंतिभोजाय वै ददौ॥१५१॥

प्रतिक्षत के पुत्र स्वयंभोज और स्वयंभोज के पुत्र हृदिक् हुए।।१३९।। हृदिक के दश भयानक पराक्रमशाली पुत्र हुए, उनमें कृतवर्मा सबसे बड़े पुत्र थे और शतधन्वा मध्यम पुत्र थे।।१४०।। देववाहु, सुबाहु, भिषक्, श्वेतरथ, सुदांत, अधिदांत, कनक और कनकोद्भव ये अन्य पुत्र थे।।१४१।। देवबाहु के पुत्र परम विद्वान् कम्बलवर्हिष उत्पन्न हुए। उन कम्बलवर्हिष के असमौजा हुए और असमौजा के पुत्र सुसमौजा विशेष रूप से सुने गये।।१४२।। इनमें असमौजा को कोई पुत्र नहीं पैदा हुआ। कृष्णने उसे सुचन्द्र और वसुरूप नामक दो पुत्र दिये थे। इस प्रकार ये सब अन्धक वंशज स्मरण किये गये।।१४३।। अंधकों के इस वंश के वर्णन को नित्य कीर्तन करने वाला मनुष्य इस लोक में अपने वंश को बहुत अधिक बढ़ाता है, इसमें सन्देह नहीं है।।१४४।।

राजा शूरसेन ने अश्मकी में देवमीढुष को जन्म दिया तथा उन्हीं शूरसेन ने भोजा मारिषा नामक पत्नी में दश पुत्रों को पैदा किया।।१४५।। इनमें वसुदेव महाबाहु पूर्व में आनकदुन्दुभि नाम से विख्यात हुए; क्योंकि जब वे पैदा हुए थे, उस समय आकाश में दुन्दुभि की ध्वनि हुई थी।।१४६।। तथा आकाश में मृदंगों की घोर ध्वनि भी हुई थी। इसलिए उनका नाम आनकदुन्दुभि (आनक = मृदंग) रखा गया। यही नहीं उनके जन्म के समय आकाश से पुष्पों की वर्षा भी हुई थी।।१४७।। मनुष्यलोक में वसुदेव के समान कोई दूसरा रूप में नहीं था। जिस अग्र पुरुष के शरीर की कान्ति साक्षात् चन्द्रमा की थी।।१४८।। वसुदेव के बाद शूर सेन देवभाग पुत्र का जन्म हुआ, उसके बाद फिर देवश्रवा उत्पन्न हुए, फिर अनाधृष्टि, वृक, नन्दन, सृञ्जय, श्याम और शमीक पुत्र उत्पन्न हुए तथा पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा तथा राजाधिदेवी ये पाँच बेटियां भी उत्पन्न हुयीं, जो पाँचों बेटियां वीर मातायें थीं। अपने सबसे बड़ी बेटी पृथा को शूरसेन राजा कुन्तिभोज के लिए पाणिग्रहण कर दिया।।१४९-१५१।।

तस्मात्सा तु स्मृता कुन्ती कुंतिभोजात्मजा पृथा।
कुरुवीरः पांडुमुख्यस्तस्माद्भार्यामविंदत॥१५२॥

पृथा जज्ञे ततः पुत्रांस्त्रीनग्निसमतेजसः। लोके प्रतिरथान्वीराञ्छक्रतुल्यपराक्रमान्॥१५३॥
धर्माद्युधिष्ठिरं पुत्रं मारुताच्च वृकोदरम्। इंद्राद्धनंजयं चैव पृथा पुत्रानजीजनत्॥१५४॥
माद्रवत्या तु जनितावश्विनाविति विश्रुतम्। नकुलः सहदेवश्च रूपसत्त्वगुणान्वितौ॥१५५॥
जज्ञे तु श्रुतदेवायां तनयो वृद्धशर्मणः। करूषाधिपतेर्वीरो दंतवक्रो महाबलः॥१५६॥
कैकयाच्छ्रुतिकीर्त्यां तु जज्ञे संतर्दनो बली। चेकितानबृहत्क्षत्रौ तथैवान्यौ महाबलौ॥१५७॥
विंदानुविंदावावंत्यौ भ्रातरौ सुमहाबलौ। श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु शिशुपालो बभूव ह॥१५८॥
दमघोषस्य राजर्षेः पुत्रो विख्यातपौरुषः। यः पुरा स दशग्रीवः संबभूवारिमर्दनः॥१५९॥
वैश्रवणानुजस्तस्य कुंभकर्णोऽनुजस्तथा पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वरांगनाः॥१६०॥
पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा। तथैव भद्रवैशाखी सुनाम्नी पञ्चमी तथा॥१६१॥
सहदेवा शांतिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता। धृतदेवोपदेवा च देवकी सप्तमी तथा॥१६२॥
सुगंधा वनराजी च द्वे चान्ये परिचारिके। रोहिणी पौरवी चैव बाह्लीकस्यानुजाऽभवत्॥१६३॥
ज्येष्ठा पत्नी महाभागदयिताऽऽनकदुंदुभेः। ज्येष्ठं लेभे सुतं रामं सारणं हि शठं तथा॥१६४॥

राजा कुन्तिभोज को देने के कारण वह पृथा कुन्ती नाम से प्रसिद्ध हो गयीं। कुरु वंश के वीर राजा पाण्डु मुख्य ने उस पृथा (कुन्ती) को अपनी पत्नी बनाया।।१५२।। उसके बाद पृथा ने अग्नि के समान तेजस्वी लोक में इन्द्र के पराक्रम के समान महारथी तीन वीर पुत्रों को जन्म दिया।।१५३।। जिनमें युधिष्ठिर को धर्मराज से, भीम को वायुदेव से तथा अर्जुन को इन्द्र से पृथा ने पैदा किया।।१५४।। उसके बाद पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्रवती ने अश्विनी कुमारों से रूप और सत्त्वगुण से युक्त नकुल और सहदेव को जन्म दिया, ऐसा विशेष रूप से सुना गया है।।१५५।। वृद्धशर्मा ने श्रुतदेवा में करूष देश के अधिपति वीर महाबलशाली दन्तवक्र को पैदा किया।।१५६।। केकेयदेश की रानी श्रुतकीर्ति में संतदर्न नामक बली पुत्र का जन्म हुआ, इसके अतिरिक्त चेकितान और वृहच्छत्र नामक दो अन्य महाबली पुत्र भी उसको पैदा हुए।।१५७।। अवन्ति देश के राजा विन्द और अनुविन्द ये दोनों भाई भी उसी के पुत्र थे। श्रुतश्रवा से चेदि देश के स्वामी शिशुपाल का जन्म हुआ।।१५८।। वह शिशु राजर्षि दमघोष का पुत्र था। उसका पौरुष बहुत अधिक था। पूर्वजन्म में वह दशग्रीव रावण के रूप में पैदा हुआ था। जो रावण कुबेर का छोटा भाई था और कुम्भकर्ण का बड़ा भाई थी।।१५९-१५९½।।

उन वसुदेव की सुन्दर शरीर वाली तेरह पत्नियां थीं, वे हैं—पौरवी, रोहिणी, मदिरा, भद्रवैशाखी और पाँचवीं सुनाम्नी इसके बाद धृतदेवा और उपदेवा तथा सातवीं देवकी फिर सहदेवा, शान्ति देवी, श्री देवा और देवरक्षिता। सुगन्धा और वनराजी ये दो परिचारिकायें थीं। रोहिणी और पौरवी राजा वाह्लीक की छोटी बहिनें थीं।।१५९½-१६३।। सबसे बड़ी पत्नी रोहिणी महाभाग्यशाली आनक दुन्दभि वसुदेव की परम प्रिया थी, जिसने सबसे बड़े पुत्र बलराम को जन्म दिया, उसके बाद सारण और शठ को पैदा किया, तब दुर्दम, दमन, शुभ्र और

दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिंडारककुशीतकौ। चित्रां नाम कुमारीं च रोहिण्यष्टौ व्यजायत॥१६५॥

पुत्रौ रामस्य जज्ञाते विज्ञातौ निशठोल्मुकौ।
पार्श्वी च पार्श्वमर्दी च शिशुः सत्यधृतिस्तथा॥१६६॥

मन्दबाह्योऽथ रामाणां गिरीको गिरिरेव च। शुल्कगुल्मोऽतिगुल्मश्च दरिद्रांतक एव च॥१६७॥
कुमार्यश्चापि पंचान्या नामतस्ता निबोधत। अर्चिष्मती सुनंदा च सुरसा सुवचास्तथा॥१६८॥
तथा शतबला चैव सारणस्य सुतास्त्विमाः। भद्राश्वो भद्रगुप्तिश्च भद्रविष्टस्तथैव च॥१६९॥
भद्रबाहुर्भद्ररथो भद्रकल्पस्तथैव च। सुपार्श्वकः कीर्त्तिमांश्च रोहिताश्वः शठात्मजाः॥१७०॥

दुर्मदस्याभिभूतश्च रोहिण्याः कुलजाः स्मृताः।
नंदोपनंदौ मित्रश्च कुक्षिमित्रस्तथा बलः॥१७१॥

चित्रोपचित्रौ कृतकस्तुष्टिः पुष्टिरथापरः। मदिरायाः सुता एते वसुदेवाद्विजज्ञिरे॥१७२॥
उपबिंबोऽथ बिंबश्च सत्त्वदंतमहौजसौ। चत्वार एते विख्याता भद्रापुत्रा महाबलाः॥१७३॥

वैशाल्यामदधाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमुत्तमम्।
देवक्यां जज्ञिरे सौरेः सुषेणः कीर्त्तिमानपि॥१७४॥

उदर्षिर्भद्रसेनश्च ऋजुदायश्च पंचमः। षष्ठो हि भद्रदेवश्च कंसः सर्वाञ्जघान तान्॥१७५॥

अथ तस्यामवस्थायां आयुष्मान्संबभूव ह।
लोकनाथः पुनर्विष्णुः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः॥१७६॥
अनुजाताऽभवत्कृष्णात्सुभद्रा भद्रभाषिणी।
कृष्णा सुभद्रेति पुनर्व्याख्याता वृष्णिनंदिनी॥१७७॥

पिण्डारक और कुशीत को जन्म दिया और चित्रानामक कुमारी को भी रोहिणी ने जन्म दिया। इस प्रकार रोहिणी नेआठ सन्तानों को पैदा किया।।१६४-१६५।। बलराम के निशठ और उत्मक दो विज्ञात पुत्र उत्पन्न हुए इसके अतिरिक्त पार्श्वी, पार्श्वमर्दी, शिशु सत्यधृति, मन्दबाह्य, गिरिक, गिरि, शुल्क, गुल्म, अतिगुल्म और दरिद्रांतक भी बलराम के ही पुत्र थे।।१६६-१६७।। उन बलराम की अन्य पाँच कन्यायें भी थीं, उनके नाम सुनिये। वे थीं—अर्चिष्मती, सुनन्दा, सुरसा, सुवचा तथा शतबला। ये पाँचों बलराम के भाई सारण की पुत्रियां थीं।।१६८-१६८½।।

भद्राश्व, भद्रगुप्ति, भद्रविष्ट, भद्रबाहु, भद्ररथ, भद्रकल्प, सुपार्श्वक, कीर्तिमान्, रोहिताश्व तथा दुर्मद से युक्त ये सब रोहिणी के कुल से उत्पन्न पुत्र स्मरण किये गये हैं।।१६८½-१७०½।। नन्द उपनन्द मित्र, कुक्षिमित्र तथा बल, चित्र, उपचित्र, कृतक, तुष्टि और पुष्टि ये सब मदिरा के पुत्र थे, जो वसुदेव से उत्पन्न हुए।।१७०½-१७२।। उपबिम्ब, बिम्ब, सत्त्वदन्त और महोजस् ये महाबलवान् चार पुत्र वसुदेव से पत्नी भद्रा से उत्पन्न हुए थे।।१७३।। वैसाली में वसुदेव ने उत्तम पुत्र कौशिक को पैदा किया तथा देवकी में सुषेण, कीर्तिमान्, उदर्षि, भद्रसेन, ऋजुदाय, भद्रदेव नामक छः पुत्रों को पैदा किया। इन सबको कंस ने मार डाला।।१७४-१७५।। इसके बाद उसी अवस्था में संसार के स्वामी प्रजापति भगवान् विष्णु कृष्ण के रूप में सातवीं बार अवतरित हुए, उसके सुन्दर बोलने वाली सुभद्रा पैदा हुई, वह सुभद्रा ही पुनः वृष्णिनन्दिनी कृष्णा नाम से विख्यात हुई।।१७६-१७७।।

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत। वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु॥१७८॥
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोधत। पूर्वाद्याः सहदेवायां शूराद्वै जज्ञिरे सुताः॥१७९॥
शांतिदेवा जनस्तम्बं शौरेर्जज्ञे कुलोद्वहम्। आगावहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत॥१८०॥
श्रीदेवायां स्वयं जज्ञे मंदको नाम नामतः। उपासंगं वसुं चापि तनयौ देवरक्षिता॥१८१॥
एवं दश सुतास्तस्य कंसस्तानप्यघातयत्। विजयं रोजनं चैव वर्द्धमानं च देवलम्॥१८२॥
एतान्महात्मनः पुत्रान्सुषाव शिशिरावती। सप्तमी देवकी पुत्रं सुनामानमसूयत॥१८३॥
गवेषणं महाभागं संग्रामे चित्रयोधिनम्। श्राद्धदेव्यां पुरोद्याने वने तु विचरद्विजाः॥१८४॥
वैश्यायामदधाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमव्ययम्। सुगंधी वनराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ॥१८५॥
पुड्रश्च कपिलश्चैव सुगंध्याश्चात्मजौ तु तौ। तयो राजाऽभवत्पुंड्रः कपिलस्तु वनं ययौ॥१८६॥
अन्यस्यामभवद्वीरो वसुदेवात्मजो बली। जरा नाम निषादोऽसौ प्रथमः स धनुर्द्धरः॥१८७॥
विख्यातो देवभाग्यस्य महाभागः सुतोऽभवत्। पंडितानां मतं प्राहुर्देवश्रवसमुद्धवम्॥१८८॥
अश्मक्यां लभते पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम्। निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं श्राद्धदेवं महाबलम्॥१८९॥
व्यजायत श्राद्धदेवो नैषादिर्यः परिश्रुतः। एकलव्यो महाभागो निषादैः परिवर्द्धितः॥१९०॥

उस कृष्णा (सुभद्रा) के गर्भ से अर्जुन ने महान् वीर अभिमन्यु को उत्पन्न किया। वसुदेव की भाग्यशालिनी सातों पत्नियों में जो शूर पुत्र हुए, उनके नाम सुनिये—।।१७८-१७८½।। सहदेवा में वसुदेव के संयोग से अनेकों परमवीर पुत्र पैदा हुए। शान्तिदेवा ने वसुदेव से जनस्तम्ब तथा शौरि से कुलोद्वह पुत्रको उत्पन्न किया। महात्मा आगावह को वसुदेव ने वृकदेवी में उत्पन्न किया।।१७८½-१८०।। श्रीदेवी में वसुदेव ने स्वयं ही मन्दक पुत्र को पैदा किया। उपासंग और वसु ये दोनों तथा देवरक्षिता के पुत्र थे। इस प्रकार उस देवरक्षिता के दश पुत्र थे, जिनको कंस ने मार डाला था।।१८१-१८१½।। विजय, रोचन, बर्द्धमान्, देवल, इन महात्मा पुत्रों को शिशिरावती ने उत्पन्न किया था।।१८१½-१८२½।। सातवीं देवकी ने पुत्र सुनामान को उत्पन्न किया तथा संग्राम भूमि में विचित्रयुद्ध करने वाले गवेषण नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो उनके सातवें पुत्र विख्यात हुए।।१८२½-१८३½।।

सूत जी ने कहा कि विप्रो! वसुदेव ने नगर के उद्यान में विचरण करते हुए श्राद्धदेवी नाम वैश्या पत्नी में कौशिक को उत्पन्न किया।।१८३½-१८४½।। सुगन्धी और वन और वनराजी का भी वसुदेव ने परिग्रह किया, तब पुण्ड्र और कपिल दो पुत्र सुगन्धी ने पैदा किये। उन दोनों में पुण्ड्र राजा हुए और कपिल वन को चले गये।।१८४½-१८६।। अन्य पत्नियों में भी वसुदेव के बली पुत्र हुए, जिनमें निषाद नामक पुत्र था, जो प्रथम धनुर्धारी राजा हुआ।।१८७।। विख्यात देवभाग्य[1] का महाभाग नामक पुत्र हुआ, जिसे पण्डित लोग देवश्रवा से उत्पन्न मानते हैं।।१८८।। अश्मकी में यशस्वी अनादृष्टि ने निवृत्तशत्रु शत्रुघ्न श्राद्धेव और महाबल पुत्रों को पैदा किया। यही श्राद्धेव नैषाद निषाद के पुत्र कहे गये। महाभाग्यशाली एकलव्य निषादों द्वारा ही पालन-पोषण कर बढ़ाये गये थे।।१८९-१९०।।

१. वायुपुराण—देवरात।

गंडूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टोऽददात्सुतौ।
चारुदेष्णं च सांबं च कृतास्त्रौ शस्तलक्षणौ॥१९१॥
रंतिश्च रन्तिपालश्च द्वौ पुत्रौ नंदनस्य च। वृकाय वै त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्॥१९२॥
सौमिं ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमेव च। सृंजस्य धनुश्चैव विरजाश्च सुताविमौ॥१९३॥
अनपत्योऽभवच्छ्यामः शमीकस्तु वनं ययौ।
जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्तवान्॥१९४॥
य इदं जन्म कृष्णस्य पठते नियतव्रतः।
श्रावयेद्ब्राह्मणं वाऽपि स महत्सुखमवाप्नुयात्॥१९५॥
देवदेवो महातेजाः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः। विहारार्थं मनुष्येषु जज्ञे नारायणः प्रभुः॥१९६॥
देवक्यां वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणः। चतुर्बाहुस्तु संजज्ञे दिव्यरूपश्रियान्वितः॥१९७॥
प्रकाश्यो भगवान्योगी कृष्णो मानुषतां गतः।
अव्यक्तो व्यक्तलिंगश्च स एव भगवान्प्रभुः॥१९८॥
नारायणो यतश्चक्रे व्ययं चैवाव्ययं हि यत्। देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातनः॥१९९॥
योऽबुंजाच्चादिपुरुषं पुरा चक्रे प्रजापतिम्। अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनंदनः॥२००॥

भगवान् कृष्ण ने प्रसन्न होकर सन्तानहीन गण्डूषा को चारुदेष्ण और शाम्ब नामक दो पुत्र प्रदान किये। जो शस्त्र अस्त्र विद्या को जानने वाले और प्रशंसनीय गुण वाले थे।।१९१।। रन्ति और रन्तिपाल ये दो पुत्र नन्दन के हुए, उन दोनों पुत्रों को प्रतापवान् वसुदेव ने पुत्रहीन वृक को दे दिया।।१९२।। अपने पुत्र वीर को उन्होंने सौमि को दे दिया तथा कौशिक को शौणि को दे दिया, विरजा और संजय ये दोनों सृञ्जय के पुत्र हुये। श्याम सन्तानहीन हो गये और शमीक वन को चले गये। वह भोजत्व की निन्दा करता था, इसलिए उसे राजर्षि की उपाधि प्राप्त हुई।।१९३-१९४।। जो मनुष्य इस कृष्ण के जन्म वृत्तान्त को निश्चित रूप से पढ़ता है अथवा दूसरों को सुनाता है, वह महान् सुख को प्राप्त करता है।।१९५।। प्रजापति महान् तेजस्वी देवदेव प्रभु भगवान् नारायण विहार करने के लिये मनुष्य योनि में कृष्ण के रूप में जन्म ग्रहण करते हैं। वे कमलों के समान नेत्र वाले दिव्य स्वरूप चतुर्भुज भगवान् अपनी समस्त कान्ति से युक्त होकर वसुदेव की परम तपस्या के फलस्वरूप देवकी के गर्भ में पैदा होते हैं।।१९६-१९७।।

वे भगवान् जो प्रकाश स्वरूप हैं, जो योगी हैं, वे ही कृष्ण के रूप में मनुष्यता को प्राप्त हुए हैं। वे ही प्रभु अर्थात् सर्वसमर्थ हैं तथा अव्यक्त स्वरूप वाले हैं अर्थात् उनको मन बुद्धि तथा इन्द्रियों से जाना नहीं जा सकता है। अर्थात् उनका कोई आधार नहीं, बिल्कुल निराकार और निर्गुण है तथा वे ही भगवान् व्यक्त लिङ्ग भी हैं अर्थात् साकार भी हैं, जब वे मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं, तब वे साकार हैं, सगुण हैं, साधार हैं।।१९८।। वे भगवान् कृष्ण ही अव्यय आत्मा हैं अर्थात् कभी न घटने बढ़ने अथवा नष्ट न होने वाली आत्मा है तथा वे ही नारायण होकर सनातन हरि थे, जिन्होंने इस संसार को पैदा किया।।१९९।। इन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण ने सबसे पहले सृष्टि की रचना करने के लिये अपनी नाभि से कमल को पैदा किया, जिससे प्रजापति ब्रह्मा को उत्पन्न किया था, अतः ये ही आदिपुरुष हैं।

देवो विष्णुरिति ख्यातः शक्रादवरजोऽभवत्।
प्रासादयन्यं च विभुं ह्यादित्याः पुत्रकारणे॥२०१॥
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम्। ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः॥२०२॥
कुलं पुण्यं यतो जन्म भेजे नारायणः प्रभुः। सागराः समकंपंत चेलुश्च धरणीधराः॥२०३॥
जज्वलुस्त्वग्निहोत्राणि जायमाने जनार्द्दने। शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशांतमभवद्रजः॥२०४॥
ज्योतींष्यभ्यधिकंरेजुर्जायमाने जनार्द्दने। अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयंती नाम शर्वरी॥२०५॥
मुहूर्त्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्द्दनः।
अव्यक्तः शाश्वतः कृष्णो हरिर्नारायणः प्रभुः॥२०६॥
जज्ञे तथैव भगवान्मायया मोहयन्प्रजाः। आकाशात्पुष्पवृष्टिं च ववर्ष त्रिदशेश्वरः॥२०७॥
गीर्भिर्मंगलयुक्ताभिस्तुवंतो मधुसूदनम्। महर्षयः संगधर्वा उपतस्थुः सहस्रशः॥२०८॥
वसुदेवस्तु तं रात्रौ जातं पुत्रमधोक्षजम्। श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा हृदि दिव्यैः स्वलक्षणैः॥२०९॥
उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो। भीतोऽहं कंसतस्तात तस्मादेवं ब्रवीम्यहम्॥२१०॥
मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदर्शनाः। वसुदेववचःश्रुत्वा रूपं संहतवान्प्रभुः॥२११॥
अनुज्ञातः पिता त्वेनं नंदगोपगृहं नयत्। उग्रसेनगृहेऽतिष्ठद्यशोदायै तदा ददौ॥२१२॥

इन्हीं यादवनन्दन भगवान् कृष्ण ने अदिति के पुत्रत्व को प्राप्त कर आदित्य के रूप में तीनों लोकों को प्रकाशित किया है।।२००।। ये ही भगवान् इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र के नाम से विख्यात हैं। वे ही शक्तिमान् अपनी कृपा से देवों के शत्रु दैत्यों दानवों राक्षसों के विनाश के लिये आदित्य के रूप में प्रादुर्भूत होते हैं। राजा ययाति के वंशज बुद्धिमान् वसुदेव के पुण्य कुल में प्रभु नारायण विष्णु ने जब जन्म धारण किया था, उस समय सागर काँपने लगे थे। धरणी धर (शेषनाग) भी हिलने लगे अथवा पर्वत भी हिलने लगे थे। अग्निहोत्र स्वयं ही प्रज्वलित हो उठे थे; परन्तु जब उन्होंने जन्म ले लिया, तब उनके पैदा हो जाने पर मंगलकारी शीतल मंद सुगन्धित वायु चलने लगी थी। धूल का उड़ना शान्त हो गया था।।२०१-२०४।। भगवान् जनार्दन कृष्ण के जन्म लेने पर सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिष्पुंजों का प्रताप बहुत अधिक निखर उठा था, जिस शुभ घड़ी में भगवान् कृष्ण का जन्म हुआ, उस समय अभिजित् नामक नक्षत्र था, जयन्ती नामक रात्रि थी और विजय नामक मुहूर्त था।।२०५-२०५½।। अव्यक्त, शास्वत, कृष्ण हरि नारायण प्रभु अपने सुन्दर नेत्रों द्वारा अपनी माया से समस्त प्रजाओं को मोहित करते हुए, जब पैदा हुए थे, उस समय देवों के राजा इन्द्र ने पुष्पों की वर्षा की थी।।२०५½-२०७।। मंगलयुक्त गीतों से मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए हजारों महर्षिगण और गन्धर्वगण उपस्थित हुए थे।।२०८।। वसुदेव ने रात्रि के समय श्रीवत्स के चिह्न से विभूषित तथा दिव्य लक्षणों से युक्त इन्द्रियों से देखे जाने योग्य उन भगवान् को उत्पन्न हुआ देखकर वसुदेव ने उनसे कहा कि हे प्रभो! आप अपने इस रूप को समेट लीजिये; क्योंकि हे तात! मैं कंस से भयभीत हूँ; इसलिये ऐसा कह रहा हूँ।।२०९-२१०।। मेरे अद्भुत दिखायी देने वाले सब पुत्रों को उस कंस ने मार दिया है। वसुदेव के वचन को सुनकर जनार्दन भगवान् ने अपने रूप को समेट लिया।।२११।। पिता तो यह जानते थे कि

तुल्यकालं तु गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा। यशोदा नंदगोपस्य पत्नी सा नंदगोपतेः॥२१३॥
यामेव रजनीं कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुले प्रभुः। तामेव रजनीं कन्या यशोदायां व्यजायत॥२१४॥
तं जातं रक्षणामस्तु वसुदेवे महायशाः। प्रादात्पुत्रं यशोदायै कन्या तु जगृहे स्वयम्॥२१५॥
दत्त्वेमं नंदगोपस्य रक्षेममिति चाब्रवीत्। सुतस्ते सर्वकल्याणो यादवानां भविष्यति॥२१६॥
अयं स गर्भो देवक्या मम क्लेशान्हरिष्यति। उग्रसेनात्मजायाथ कन्यामानकदुंदुभिः॥२१७॥
निवेदयामास तदा कन्येति शुभलक्षणा। स्वसुस्तु तनयं कंसो जातं नैवावधारयत्॥२१८॥
अथ तामपि दुष्टात्मा ह्युत्ससर्ज मुदान्वितः। तवैषा हि यथा कन्या तथा मम न संशयः।
न हन्मीमां महाबाहो व्रजत्वेषा यथारुचि॥२१९॥
कन्या सा ववृधे तत्र वृष्णिसद्मनिपूजिता। पुत्रवत्पालयामास देवी देवीं मुदा तदा॥२२०॥
तमेवं विधिनोत्पन्नमाहुः कृष्णं प्रजातिम्। एकादशा तु जज्ञे वै रक्षार्थं केशवस्य ह॥२२१॥
एतां चैकाग्रमनसः पूजयिष्यंति यादवाः। देवदेवो दिव्यवपुः कृष्णः संरक्षितोऽनया॥२२२॥

ऋषयः ऊचुः

किमर्थं वसुदेवस्य भोजः कंसो नराधिपः।
जघान पुत्रान्बालान्वै तन्नो व्याख्यातुमर्हसि॥२२३॥

इनको कंस मार देगा तथा उसने पहले वाले पुत्रों को मार दिया था, अतः इस पिछली घटना को जानते हुए पिता वसुदेव नन्दगोप के घर ले गये तथा वहाँ उग्रसेन के घर में ठहरे और उस पुत्र को यशोदा को दे दिया।।२१२।। यशोदा और देवकी दोनों ही एक ही दिन गर्भवती हुई थीं। यशोदा नन्दगोप की पत्नी थीं।।२१३।। जिस रात को वृष्टि कुल में प्रभु कृष्ण का जन्म हुआ, उसी रात में यशोदा ने एक कन्या को जन्म दिया था।।२१४।। महायशस्वी वसुदेव ने उन उत्पन्न हुये पुत्र कृष्ण की रक्षा करते हुए ले जाकर यशोदा को दे दिया और उनकी पुत्री को स्वयं ग्रहण कर लिया।।२१५।। उस पुत्र को नन्दगोप को देकर वसुदेव ने नन्दगोप से कहा कि इसकी रक्षा करो, यह आपका पुत्र यादवों का सब प्रकार से कल्याण करने वाला होगा।।२१६।। यह वह देवकी का गर्भ मेरे समस्त क्लेशों को हरेगा। इसके बाद उग्रसेन की पुत्री को आनकदुन्दुभि (वसुदेव) कंस के हाथों में समर्पित करते हुए कहा कि यही शुभलक्षण कन्या उत्पन्न हुई है। अपनी बहिन देवकी में कन्या की उत्पत्ति सुनकर दुष्टात्मा कंस ने कुछ भी ध्यान नहीं किया और प्रसन्न होकर छोड़ दिया। उस मूर्ख ने यह कहा कि कन्या ही पैदा हुई है, वह क्या करेगी? उसे तो मरी ही समझना चाहिये। अतः इससे मेरे मन में कोई संशय नहीं है। अतः मैं इसे नहीं मारता हूँ, यह जहाँ चाहे वहाँ विचरण करे।।२१७-२१९।। वह कन्या वहाँ वृष्णि के घर में पूजित होकर बढ़ने लगी तथा देवी देवकी ने उस देवी का पुत्र के समान प्रसन्नता के साथ पालन-पोषण किया।।२२०।। इस प्रकार विधिपूर्वक उत्पन्न हुए देवकी के उस पुत्र को प्रजापति कृष्ण कहते हैं तथा वह एकादशा पुत्री जो जन्मी है, वह केशव भगवान् श्रीकृष्ण की रक्षा के लिए उत्पन्न हुई है।।२२१।। इसकी एकाग्र मन से यादव लोग पूजा करेंगे। देवों के देव दिव्य शरीर वाले श्रीकृष्ण इस देवी के द्वारा पूरी तरह रक्षित होंगे।।२२२।।

ऋषियों ने कहा किहे सूत जी! भोजवंशीय राजा कंस ने वसुदेव के छोटे-छोटे पुत्रों का वध किया इसे विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये वह वध क्यों किया?।।२२३।।

सूत उवाच

शृणुध्वं वै यथा कंसः पुत्रानानकदुंदुभेः। जाताञ्जातांस्तु तान्सर्वान्निष्पिपेष वृथामतिः॥२२४॥

भयाद्यथा महाबाहो जातः कृष्णो विवासितः।
यथा च गोषु गोविंदः संवृद्धः पुरुषोत्तमः॥२२५॥

उद्वाहे किल देवक्या वसुदेवस्य धीमतः। सारथ्यं कृतवान्कंसो युवराजस्तदाऽभवत्॥२२६॥

ततोंऽतरिक्षे वागासीद्दिव्याऽभूद्यस्य कस्यचित्।
कंसस्य नाममात्रेण पुष्कला लोकसाक्षिणी॥२२७॥

यामेतं वहसे कंस रथेन प्रियकारणात्। तस्या यश्चाष्टमो गर्भः स ते मृत्युर्भविष्यति॥२२८॥

तां श्रुत्वा व्यथितो वाणीं तदा कंसो वृथामतिः।
निष्कृष्य खड्गं तां कन्यां हंतुकामोऽभवत्तदा॥२२९॥

तमुवाच महाबाहुर्वसुदेवः प्रतापवान्। उग्रसेनात्मजं कंसं सौहृदात्प्रणयेन वा॥२३०॥

न स्त्रियं क्षत्रियो जातु हंतुमर्हसि कश्चन। उपायः परिदृष्टोऽत्र मया यादवनन्दन॥२३१॥

योऽस्याः संजायते गर्भो ह्यष्टमः पृथिवीपते। तमहं ते प्रयच्छामि तत्र कुर्या यथाक्रमम्॥२३२॥

न त्विदानीं यथेष्टं त्वं वर्त्तेथा भूरिदक्षिण। सर्वानप्यथ वा गर्भान्पृथङ्नेष्यामि ते वसम्॥२३३॥

एवं मिथ्या नरश्रेष्ठ वागेषा न भविष्यति। एवमुक्तोऽनुनीतः स जग्राह वचनं तदा॥२३४॥

वसुदेवश्च तां भार्यामवाप्य मुदितोऽभवत्। कंसस्तस्यावधीत्पुत्रान्पापकर्मा वृथामतिः॥२३५॥

सूत जी बोले—हे ऋषियो! जिस कारण से मूढ कंस आनक दुन्दुभि (वसुदेव) के पैदा होने वाले समस्त पुत्रों का संहार कर देता था तथा जिस कारण भय से भगवान् श्रीकृष्ण पैदा होते ही दूसरी जगह पहुँचाये गये तथा, जिस कारण पुरुषोत्तम गोविन्द का गौओं के बीच पालन-पोषण हुआ।।२२४-२२५।। उसकी कहानी है कि जब देवकी के साथ महाराजा वसुदेव का विवाह हुआ था, उस विवाह में कंस ने सारथी का काम किया था; क्योंकि उस समय कंस युवराज था।।२२६।। उस समय आकाश में जिस किसी की दिव्य वाणी हुई, वह वाणी कंस के नाम मात्र से बड़ी कठिन एवं लोकसाक्षिणी थी अर्थात् सभी लोगों ने उसे सुना था।।२२७।। उस वाणी में कहा गया था कि अरे कंस जिस इस अपनी बहिन को रथ में बैठाकर तुम प्रेमपूर्वक ले जा रहे हो, उसी का आठवां गर्भ तुम्हारी मृत्यु होगा। अर्थात् उसी के हाथों तुम्हारी मृत्युहोगी।।२२८।। तब उस वाणी को सुनकर व्यथित हुए वृथाबुद्धि कंस ने म्यान से तलवार खींचकर कन्या देवकी को मारना चाहा।।२२९।। तब महाबाहु प्रतापी वसुदेव ने मित्रता अथवा प्रेम से उग्रसेन पुत्र कंस से कहा।।२३०।। कि किसी भी क्षत्रिय को कभी भी स्त्री को नहीं मारना चाहिये, अतः हे यादवनन्दन! मैं यहाँ एक उपाय देख रहा हूँ।।२३१।। वह यह कि जो इसका आठवा गर्भ होगा, उसे हे पृथ्वीपति! मैं उसे यथाक्रम आठवें गर्भ को तुम्हें दे दूँगा।।२३२।। यदि तुम्हें इस पर भी कोई सन्देह है, तो मैं सभी गर्भों को तुम्हें दे दूँगा।।२३३।। इस प्रकार हे नरश्रेष्ठ! मेरी यह वाणी कभी मिथ्या नहीं होगी। इस प्रकार जब वसुदेव ने अनुनय विनय की, तब उसने उनके बचन को स्वीकार कर लिया।।२३४।। तब वसुदेव अपनी पत्नी देवकी को प्राप्त कर परम प्रसन्न हुए। इसी कारण से पापी कंस देवकी के सभी पुत्रों का संहार करता था।।२३५।।

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी। नंदगोपस्तु कस्त्वेष यशोदा च महायशाः॥२३६॥

यो विष्णुं जनयामास यं च तातेत्यभाषत।
या गर्भं जनयामास या वैनं चाभ्यवर्द्धयत्॥२३७॥

सूत उवाच

पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तत्प्रिया तथा।
कश्यपो ब्रह्मणोंऽशश्च पृथिव्या अदितिस्तथा॥२३८॥
नंदो द्रोणः समाख्यातो यशोदा च धराऽभवत्।
अथ कामान्महाबाहुर्देवक्याः संप्रवर्द्धयन्॥२३९॥

अचरत्स महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम्। मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया॥२४०॥
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले स्वयम्। कर्त्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्॥२४१॥

वैदर्भी रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा।
सत्राजितः सत्यभामा जांबवत्यपि रोहिणी॥२४२॥
शैव्या धन्यानि देवीनां सहस्राणि च षोडश।
चतुर्दश तु ये प्रोक्ता गणास्त्वप्सरसां दिवि॥२४३॥

विचार्य देवैः शक्रेण विशिष्टास्त्विह प्रेषिताः। पत्न्यर्थं वासुदेवस्य उत्पन्ना राजवेश्मसु॥२४४॥

ऋषियों ने पूँछा कि हे सूत जी! हमें बताइये कि ये वसुदेव कौंन थे? ये यशस्विनी देवकी कौंन थीं? ये नन्दगोप कौंन थे और ये महायशा यशोदा कौंन थीं? जिन्होंने भगवान् विष्णु को जन्म दिया, जिनको उन्होंने पिता कहा, जिसने गर्भ को जन्म दिया तथा जिसने उनका पालन-पोषण किया।।२३६-२३७।।

सूत जी बोले कि हे ऋषिगण! पुरुष तो कश्यप थे और अदिति उनकी प्रिय पत्नी थी। कश्यप ब्रह्मा के अंश थे तथा अदिति प्रथिवी की अंश थीं।।२३८।। यहाँ यह स्पष्ट है—पुरुष (आत्मा) और अदिति (पृथ्वीरूप) प्रकृति से मिलकर विष्णु रूप पुरुष की उत्पत्ति है, वही यहाँ पर है। इधर नन्द द्रोण कहे गये तथा यशोदा धारण करने वाली—धरा (पृथ्वी) हैं। अर्थात् नन्द मेघ हुए और यशोदा पृथ्वी हुईं। मेघ बरसता है, तब पृथ्वी पर वृक्षादि पैदा होते हैं। इस प्रकार महाबाहु विष्णु ने देवकी की कामनाओं को बढ़ा दिया।।२३९।। उधर वे देव विष्णु मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हो विचरण करने लगे तथा जब उन्होंने विचरण किया, तब योगात्मा विष्णु ने अपनी योगमाया से सब प्राणियों को मोहित कर दिया और फिर पृथ्वी पर धर्म के नष्ट होने पर धर्म की स्थापना और असुरों का नाश करने के लिये स्वयं ही विष्णु ने वृष्णिकुल में जन्म ग्रहण किया।।२४०-२४१।। तब विदर्भ देश के राजा की कन्या रुक्मिणी को उन्होंने अपनी मुख्य रानी बनाया, फिर नग्नजित् की कन्या सत्या, सत्राजित् की सत्यभामा, जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवती भी तथा रोहिणी शैव्या आदि देवियों सहित सोलह हजार धन्य उनकी रानियां थीं। चौदह तो स्वर्ग में अप्सराओं के समूह की कही गयी हैं।।२४२-२४३।। इन्द्र और देवताओं ने अच्छी तरह विचार कर उन विशिष्ट

एताः पत्न्यो महाभागा विष्वक्सेनस्य विश्रुताः। प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च सुदेवः शरभस्तथा॥२४५॥
चारुश्च चारुभद्रश्च भद्रचारुस्तथापरः। चारुविद्यश्च रुक्मिण्यां कन्या चारुमती तथा॥२४६॥
सानुर्भानुस्तथाक्षश्च रोहितो मंत्रवित्तथा। जरोंऽधकस्ताम्रचक्रौ सौभरिश्च जरंधरः॥२४७॥
चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो जरुडध्वजात्। भानुः सौभरिका चैव ताम्रपर्णी जरंधरः॥२४८॥
सत्यभामासुता एते जांबवत्याः प्रजाः शृणु। भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रचित्रस्तथैव च॥२४९॥

भद्रबाहुश्च विख्यातः कन्या भद्रवती तथा।
संबोधनी च विख्याता ज्ञेया जांबवतीसुताः॥२५०॥
संग्रामजिच्च शतजित्तथैव च सहस्रजित्।
एते पुत्राः सुदेव्यां च विष्वक्सेनस्य कीर्त्तिताः॥२५१॥

वृको वृकाश्वो वृकजिद्वृजिनी च वरांगना। मित्रबाहुः सुनीथश्च नागजित्या प्रजास्त्विह॥२५२॥
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत। प्रयुतं तु समाख्यातं वासुदेवस्य ये सुताः॥२५३॥
अयुतानि यथाष्टौ च शूरा रणविशारदाः। जनार्दनस्य वंशो वः कीर्तितोऽयं यथातथम्॥२५४॥
बृहती पुरुभार्यासीत्सुमध्या सुगतिस्तथा। कन्या सा बृहदुक्थस्य शैनेयस्य महात्मनः॥२५५॥

तस्याः पुत्रास्तु विख्यातास्त्रयः समितिशोभनाः।
आनंदः कनकः श्वेतः कन्या श्वेता तथैव च॥२५६॥

अप्सराओं को वहाँ कृष्ण की पत्नी बनाने के लिए उनके घर में भेजा था।।२४४।। ये सब विश्वक्सेन भगवान् कृष्ण की पत्नियां विशेषरूप से सुनी गयी हैं।।२४४½।। अब उनके पुत्री पुत्रों के नाम सुनिये, रुक्मिणी में प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेव, शरभ, चारु, चारुभद्र नामक पुत्र और चारुमती कन्या उत्पन्न हुईं।।२४५½-२४६।। सानु, भानु, अक्ष, रोहित, मन्त्रवित् जर, अन्धक, ताम्रचक्र, सौभरि, जरंधर ये पुत्र तथा भानु, सौभरिका, ताम्रपणी, जरन्धरा चार पुत्रियों गरुडध्वज भगवान् श्रीकृष्ण के संयोग से सत्यभामा के गर्भ से पैदा हुईं।।२४७-२४८।। ये सब सत्यभागा मे पुत्र हैं, अब जम्बवती के पुत्र पुत्रियों को सुनिये। ये थे—भद्र, भद्रगुप्त, भद्रचित्र, भद्रबाहु ये पुत्र तथा भद्रवती और सम्बन्धिनी पुत्रियां जाम्बवती और श्रीकृष्ण के संयोग से उत्पन्न हुईं, विख्यात हैं।।२४९-२५०।। संग्रामजित्, शतजित्, उसी प्रकार सहस्रजित् ये पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण के सुदेवी में उत्पन्न कहे गये हैं।।२५१।। वृक, वृकाश्व, वृकजित्, वृजिनी, सुराङ्गना और सुवीथ ये नग्नजित् की पुत्री सत्या की सन्तानें हैं।।२५१-२५२।। इसी प्रकार भगवान् वासुदेव के पुत्रों की संख्या सहस्रों तक समझनी चाहिये। कुछ लोग इनकी सन्तानों की संख्या लाखों बताते हैं।।२५३।। इनमें दश हजार और आठ शूरवीर और युद्ध विद्या में कुशल थे।।२५३½।।

सूत जी बोले कि इस प्रकार मैंने जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण के वंश को आप लोगों को जैसा था, वैसा वर्णन कर दिया है।।२५३½-२५४।।

अब मैं शिनिपुत्र वृहदुक्थ के विषय में वता रहा हूँ। महापराक्रमी राजा बृहदुक्थ की कन्या वृहती, जो पुरु की पत्नी थी, जो सुन्दर कटिभाग वाली और सुन्दर गति वाली थी, उसकी सभाओं में सुशोभित होने वाले आनन्द, कनक और श्वेत तीन पुत्र थे और श्वेता नाम की एक कन्या थी।।२५५-२५६।।

अगावहस्य चित्रश्च शूरश्चित्ररथश्च यः। चित्रसेनः स्मृतश्चास्य कन्या चित्रवती तथा॥२५७॥
तुम्बश्च तुम्बवर्चाश्च जातौ तुम्बस्य तावुभौ। उपासंगसुतौ द्वौ तु वज्रारः क्षिप्र एव च॥२५८॥
भूरींद्रसेनो भूरिश्च गवेषणसुतावुभौ। युधिष्ठिरस्य कन्यायां सुधनुस्तस्य चात्मजः॥२५९॥

काश्यां तु पंच तनयाँल्लेभे सांबात्तरस्विनः।
सत्यप्रकृतयो देवाः पंच वीराः प्रकीर्त्तिताः॥२६०॥
तिस्रः कोट्यस्तु पौत्राणां यादवानां महात्मनाम्।
सर्वमेव कुलं यच्च वर्त्तंते चैव ये कुले॥२६१॥
विष्णुस्तेषां प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः।
निदेशस्थायिभिस्तस्य बध्यन्ते सुरमानुषाः॥२६२॥

देवासुराहवहता असुरा ये महाबलाः। इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधंते ते तु मानवान्॥२६३॥
तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्ना यादवे कुले। समुत्पन्नं कुलशतं यादवानां महात्मनाम्॥२६४॥

इति प्रसूतिर्वृष्णीनां समासव्यासयोगतः।
कीर्त्तिता कीर्त्तनीया स कीर्त्तिसिद्धिमभीप्सता॥२६५॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे वृष्टिवंशानुकीर्त्तनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

राजा अवगाह के चित्र, शूर, चित्ररथ, चित्रसेन ये चार पुत्र और चित्रवती नामक एक पुत्री स्मरण की गयी है।।२५७।। राजा जनस्तुम्ब के तुम्ब और तुम्बवर्चा दो पुत्र हुए। उपासंग के वज्रार और क्षिप्र दो पुत्र थे।।२५८।। भूरीन्द्र सेन और भूरि ये दो गवेषण के पुत्र थे तथा युधिष्ठिर की कन्या में गवेषण का सुद्यनु नामक एक और पुत्र था।।२५९।। काशी में साम्बा ने पाँच पुत्रों को पैदा किया, जो सब सत्य प्रकृति वाले तथा बहादुर पुत्र बताये गये हैं।।२६०।। महात्मा यादवों की संख्या तीन करोड़ है, ये सभी यादवों के कुल की ही संख्या है।।२६१।। इस सब संख्या में भगवान् विष्णु अपने प्रभुत्व के रूप में स्थित थे। अर्थात् ये सबके सब भगवान् विष्णु के अंशभूत थे। उस कुल के सभी पुत्र पुत्री उन भगवान् विष्णु निदेश स्थायियों से बँधे हुए थे अर्थात् उन्होंने उन भगवान् विष्णु के निदेश पर ही जन्म लिया और कार्य करते रहे।।२६२।। देवासुर संग्राम में जो महाबलवान् असुर मारे गये थे, उन्होंने इस मनुष्य लोक में मनुष्यों के रूपों में जन्म लिया था, जो मनुष्यों को बाधा पहुँचाते थे, पीड़ित करते थे।।२६३।। उन सबके नाश के लिये ये लोग यादव कुल में उत्पन्न हुए इस प्रकार महात्मा यादवों के १०० कुल उत्पन्न हुए थे।।२६४।।

सूत जी ने कहा—इस प्रकार मैंने वृष्णिवंशों की उत्पत्ति की कथा संक्षेप और विस्तार दोनों को मिलाकर कही है तथा इस कथा को कहा जाना चाहिये और कथा समस्त इच्छित कामनाओं को पूर्ण करने वाली है।।२६५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ७१वां अध्याय वृष्णि वंश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

स्तवसमाप्तिर्नाम

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

मनुष्यप्रकृतीन्देवान्कीर्त्यमानान्निबोधत। संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नः सांब एव च॥१॥
अनिरुद्धश्च पंचैते वंशवीराः प्रकीर्त्तिताः। सप्तर्षयः कुबेरश्च यज्ञो मणिवरस्तथा॥२॥
शालूकिर्नारदश्चैव विद्वान्धन्वंतरिस्तथा। नन्दिनश्च महादेवः सालाकायन एव च।
आदिदेवस्तदा विष्णुरेभिश्च सह दैवतैः॥३॥

ऋषय ऊचुः

विष्णुः किमर्थं संभूतः स्मृताः संभूतयः कति।
भविष्याः कति चान्ये च प्रादुर्भावा महात्मनः॥४॥
ब्रह्मक्षत्रेषु शस्तेषु किमर्थमिह जायते। पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्॥५॥
विस्तरेणैव सर्वाणि कर्माणि रिपुघातिनः॥६॥
श्रोतुमिच्छामहे सम्यग्वद कृष्णस्य धीमतः। कर्मणामानुपूर्वी च प्रादुर्भावाश्च ये प्रभो॥७॥
या वाऽस्य प्रकृतिस्तात तां चास्मान्वक्तुमर्हसि। कथं स भगवान्विष्णुः सुरेष्वरिनिषूदनः॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-७२

स्तव समाप्ति वर्णन

सूत जी बोले—ऋषियो! मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले देवताओं का वर्णन कर रहा हूँ आप लोग ध्यान दीजिये। संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, साम्ब और अनिरुद्ध ये पाँच यदुवंश के प्रधान वीर कहे गये हैं। सप्तऋषि, कुबेर, यज्ञ, मणिबर, शालूकि, नारद तथा विद्वान् धन्वन्तरि, नन्दिन, महादेव और सालंकायन आदि सब देवताओं के साथ आदिदेव विष्णु ये सब देवता हैं।।१-३।।

ऋषियों ने कहा—सूत जी भगवान् विष्णु पृथ्वी पर किसलिये अवतरित होते हैं तथा उनके कितने अवतार तथा भविष्य कितने अन्य होंगे।।४।। ये सब युग युगों में ब्राह्मण और क्षत्रियों में ही क्यों पैदा होते हैं तथा मनुष्य की योनि में क्यों बार-बार जन्म लेते हैं? इसे हम लोग जानना चाहते हैं।।५।। उन परम बुद्धिमान् शत्रुओं का संहार करने वाले भगवान् के शरीरों से जो जो कर्म पूरे किये जाते हैं, उन सबको हम विस्तार से सुनना चाहते हैं। हे सूत जी! आप में बता सकते हैं अथवा जो इन भगवान् की प्रकृति है, स्वभाव है, आप हमें बता सकते हैं।।६-७½।। अतः हमें बताइये कि वे बुद्धिमान् भगवान् विष्णु देवताओं में शत्रुओं का नाश करने वाले वसुदेव के कुल में वसुदेवत्व

वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागतः। अमरैरावृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलंकृतम्॥९॥
देवलोकं किमुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतः। देवतामानुषयोर्नेता धातुर्यः प्रसवो हरिः॥१०॥
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुष्ये समवेशयत्। यश्चक्रं वर्त्तयत्येको मनुष्याणां मनोमयम्॥११॥
मानुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः। गोपायनं यः कुरुते जगतः सर्वकालिकम्॥१२॥
स कथं गां गतो विष्णुर्गोपत्वमकरोत्प्रभुः। महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार ह॥१३॥

श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया वृतः।
येन लोकान्क्रमैर्जित्वा सश्रीकास्त्रिदशाः कृताः॥१४॥

स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिक्रमं वपुराहतम्। ददौ जितां वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः॥१५॥
येन सैंहं वपुः कृत्वा द्विधाकृत्वा च तत्पुनः। पूर्वदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः॥१६॥

यः पुरा ह्यनलो भूत्वा त्वौर्वः संवर्त्तको विभुः।
पातालस्थोऽर्णवगतः पपौ तोयमयं हविः॥१७॥

सहस्रचरणं देवं सहस्रांशु सहस्रशः। सहस्रशिरसं देवं यमाहुर्वै युगे युगे॥१८॥
नाभ्यरण्यां समुद्भूतं यस्य पैतामहं गृहम्। एकार्णवगते लोके तत्पंकजमपंकजम्॥१९॥
येन ते निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये। सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः॥२०॥

को कैसे प्राप्त हुए?।।७½-८½।। हे सूत जी! सदैव पुण्यकर्मों को करने वाले देवताओं ने ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया? जिसके कारण देवलोक को छोड़कर मृत्युलोक में आना पड़ा।।८½-९½।। देवों और मनुष्यों को सन्मार्ग पर ले जाने वाले भूलोक और स्वर्गलोक की उत्पत्ति करने वाले भगवान् हरि किसलिये दिव्य गुण सम्पन्न अपनी आत्मा को मनुष्य योनि में प्रवेश करते हैं।।९½-१०½।। चक्र धारण करने वालों में श्रेष्ठ जो भगवान् संसार मनुष्यों के मनरूपी चक्र को सदैव चलाते रहते हैं, उनको इस मुनष्य योनि में पैदा होने की इच्छा क्यों हुई?।।१०½-११½।। जो भगवान् समस्त संसार की रक्षा करते हैं, वे किसलिये पृथ्वी पर जाकर गौओं की रक्षा करते हैं।।११½-१२½।। जिन भूतात्मा भगवान् संसार समस्त महाभूतों, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का धारण किया तथा उत्पन्न किया था, वे मृर्त्युलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ में क्यों स्थित हुए?।।१२½-१३½।। जिन भगवान् ने देवों की इच्छा से अपने तीन कदमों में ही तीनों लोकों को जीतकर संसार में तीनों वर्गों धर्म, अर्थ और काम की स्थापना की थी तथा समस्त पृथ्वी को देवताओं को दिया था।।१३½-१५।।

जिस प्रभु ने सिंह का रूप धारण कर तथा शरीर के दो भाग कर आधा शेर का और आधा मनुष्य का रूप बनाकर हिरण्यकशिपु का संहार किया था।।१६।। जिन भगवान् ने प्राचीन काल में ऊर्व ऋषि के क्रोध से समुत्पन्न होकर औंर्व संवर्तक अग्नि का स्वरूप धारण करके पाताल में स्थित होकर जलमय हवि का पान किया था।।१७।। जिन प्रभु को युगयुगों में हजार चरणों वाला, हजार नेत्रों वाला, हजार सिरों वाला एवं दिव्यगुण सम्पन्न कहा गया है।।१८।। सृष्टि के आदि में जब सारा संसार एक समुद्र के रूप से परिणत हो गया था, उस समय जिनकी नाभि में ब्रह्माजी का घर रूपी जो कमल पैदा हुआ, वह वास्तव में कमल नहीं था।।१९।। तारकामय संग्राम में जिन प्रभु ने सर्वदेवमय औरसब अस्त्र शस्त्रों को धारण करने वाला शरीर धारण कर अत्याचारी दानवों का संहार किया

महाबलेन वोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः। उत्तरांशे समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधेः।
यः शेते शाश्वतं योगमाच्छाद्य तिमिरं महत्॥२१॥
सुरारणीगर्भमधत्त दिव्यं तपःप्रकर्षाददितिः पुरायम्।
शक्रं च यो दैत्यगणं च रुद्धं गर्भावमानेन भृशं चकार ह॥२२॥
पदानि यो लोकपदानि कृत्वा चकार दैत्यान्सलिलेशयांस्तान्।
कृत्वा च देवांस्त्रिदिवस्य देवांश्चक्रे सुरेशं पुरहूतमेव॥२३॥
गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा॥२४॥
अग्निमाहवनीयं च वेदीं चैव कुशं स्रुवम्। प्रोक्षणीयं श्रुतं चैव आवभृथ्यं तथैव च॥२५॥
अथर्षीश्चैव यश्चक्रे हव्यभागप्रदान्मखे। हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे कव्यादांश्च पितॄनपि।
भोगार्थं यज्ञविधिना यो यज्ञो यज्ञकर्मणि॥२६॥
यूपान्समित्स्रुवं सोमं पवित्रं परिधीनपि। यज्ञियानि च द्रव्यानि यज्ञियांश्च तथाऽनलान्॥२७॥
सदस्यान्यजमानांश्च ह्यश्वमेधान्क्रतूत्तमान्। विचित्रान्राजसूयादीन्पारमेष्ठ्येन कर्मणा॥२८॥
उद्गात्रादींश्च यः कृत्वा यज्ञांल्लोकाननुक्रमम्।
क्षणा निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च॥२९॥
मुहूर्त्तास्तिथयो मासा दिनं संवत्सरं तथा। ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं त्रिषु॥३०॥

था।।२०।। महाबल से युक्त जिन प्रभु ने कालनेमि का संहार किया था, जो शास्वत योग का आश्रय लेकर महान् अन्धकार को ढककर अमृत के समुद्र क्षीर सागर के उत्तरांश पर शयन करते हैं।।२१।। प्राचीन काल में जिन दिव्य गुणों वाले भगवान् देवों की माता अदिति ने गर्भ में धारण किया था और दैत्यगणों से घिरे हुए इन्द्र की रक्षा की थी।।२२।। जब वायु ने अत्यन्त उग्र रूप धारण कर समस्त लोकों को अपने वश में कर उद्दण्ड दानवों को जल में सुला दिया था, उस समय आदि भगवान् विष्णु ने स्वर्ग का राज्य इन्द्र को दे दिया था।।२३।। जो आदिदेव गार्हपत्यविधि से अन्वाहार्य कर्मद्वारा, आहवनीय अग्नि को, वेदि को, कुशाओं को, स्रुवको, प्रोक्षणीपात्र को, स्रुवा को तथा यज्ञ समाप्ति पर होने वाले स्नान के लिये मंगायी गयी समस्त वस्तुओं को बनाने वाले हैं।।२४-२५।।

जो यज्ञादि कर्मों में हव्यभाग देने के लिए तीन अधिकारियों की व्यवस्था करते हैं, जिन्होंने देवों को हव्य लेने वाला, पितरों का श्राद्ध का भोग करने वाला बनाया जो यज्ञकर्म में यज्ञ विधि से उत्तम अश्वमेध यज्ञों को स्वयं भोग करने के लिये यज्ञ रूप से प्रतिष्ठित होते हैं।।२६।। जिन्होंने प्राचीन काल में अपने वास्तविक रूप में स्थित होकर भी यज्ञ के स्तम्भों, समिधा, स्रुत, सोमरस, पवित्र, परिधि, यज्ञोपयोगी अन्यान्य सामग्रियों, यज्ञ की अग्नि, यज्ञ के सदस्य, यजमान विचित्र राजसूयादि प्रमुख यज्ञों को सुशोभित किया।।२७-२८।। जिन्होंने सामवेद के गान वाली यज्ञों को क्रमशः करके क्षणः, निमेष, काष्ठा, कला, भूत, भविष्यत् और वर्तमान ये तीन काल मुहूर्त, तिथि, मास, दिन, संवत्सर, ऋतु, काल, योग, मनुष्यों में प्रचलित तीन प्रकार के प्रमाण आयु, क्षेत्र, बल, लक्षण, रूप, सौन्दर्य, बुद्धि, वित्त, शूरता, शास्त्र के पाठ, तीन वर्ण, तीन लोक, तीन विद्यायें, तीन अग्नियां, तीन काल, तीनों

आयुः क्षेत्राण्यथ बलं क्षणं यद्रूपसौष्ठवम्।
मेधावित्तं च शौर्यं च शास्त्रस्यैव च पारणम्॥३१॥
त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः।
त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि तिस्रो मात्रा गुणास्त्रयः॥३२॥
सृष्टा लोकेश्वराश्चैव येन येन च कर्मणा। सर्वभूतगणाः सृष्टाः सर्वभूतगणात्मना॥३३॥
क्षणं संधाय पूर्वेण योगेन रमते च यः। गतागतानां यो नेता सर्वत्र विविधेश्वरः॥३४॥
यो गतिर्द्धर्मयुक्तानामगतिः पापकर्मणाम्। चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता॥३५॥
चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चुताराश्रम्यसंश्रयः। दिगंतरं नमो भूमिरापो वायुर्विभावसुः॥३६॥
चंद्रसूर्यद्वयं ज्योतिर्युगेशाः क्षणदाचराः। यः परं श्रूयते देवो यः परं श्रूयते तपः॥३७॥
यः परं तमसः प्राहुर्यः परं परमात्मवान्। आदित्यादिस्तु यो देवो यश्च दैत्यांतको विभुः॥३८॥
युगांतेष्वंतको यश्च यश्च लोकांतकांतकः। सेतुर्यो लोकसेतूनां मेधो यो मध्यकर्मणाम्॥३९॥
वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभवात्मनाम्। सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम्॥४०॥
मनुष्याणां मनुर्भूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम्। विनयो नयतृप्तानां तेजस्तेजस्विनामपि॥४१॥

कर्म, तीन मात्रायें, तीन गुण, इन सबको तथा लोकेश्वरों की उस परमेश्वर ने जिस जिस कर्म द्वारा रचना की है तथा सब प्राणियों की आत्मा में स्थित रहकर भी समस्त भूतगणों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि की रचना की है।।२९-३३।। जो मनुष्य की इन्द्रियों में योगरूप से रमण करता है, जो गत और आगत दोनों के नेता हैं तथा वे सर्वत्र संसार के अनेकों प्रकार नियमों के अधीश्वर हैं।।३४।। जो धर्म करने वालों की अच्छी गति देने वाले है तथा पापियों का गति देने वाले हैं अर्थात् जो प्रभु विष्णु धर्म करने वालों को अच्छा फल प्रदान करते हैं तथा पापियों को उनके पाप की सजा देते हैं। जो चारों वर्णों को उत्पन्न करने वाले हैं और चारों वर्णों की रक्षा करने वाले हैं।।३५।। जो चारों विद्याओं के जानने वाले हैं तथा चारों आश्रमों के आश्रयस्थान हैं। दिगन्तरों में अर्थात् सभी दिशाओं के अन्त तक आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि में व्याप्त हैं।।३६।।

चन्द्रमा और सूर्य ये दो ही प्रकाश हैं, जो ही युगों के रचयिता तथा स्वामी हैं तथा वही रात्रि में सर्वत्र विचरण करने वाले हैं। जो परम देवता सुने जाते हैं तथा जो सबसे बड़ा तप सुने जाते हैं।।३७।। विष्णु ही घोर तमोरूप है, जो परम आत्मा वाले हैं। जो देव आदित्य (सूर्य) आदि देवता हैं और जो दैत्यों का विनाश करने वाले विष्णु हैं।।३८।। जो सृष्टि के अन्त में प्रलय काल के समय युगों का अन्त करने वाले यमराज हैं तथा जो लोकों का अन्त (नाश) करने वाले यमराज का भी अन्त करने वाले यमराज हैं। जो भगवान् विष्णु लोकों का उद्धार करने वाले सेतुओं के भी उद्धार करने वाले सेतु हैं। अर्थात् जो लोक सेतुओं के भी सेतु हैं। जो समस्त पवित्र कर्म करने से भी पवित्र हैं।।३९।। जो प्रभु वेद का ज्ञान रखने वाले लोगों के लिये भी जानने योग्य हैं। यो संसार के जितने भी ऐश्वर्यशाली लोग हैं, उनमें भी सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली हैं। जो समस्त प्राणियों के मध्य में सोमस्वरूप हैं, जो समस्त अग्नियों की भी अग्नि है अर्थात् जिनसे बड़ी अग्नि कोई नहीं है।।४०।। जो प्रभु मनुष्यों के आदि मनु हैं, जो तपस्वियों के तप हैं नीतिनिपुण प्राणियों के जो नीतिस्वरूपहैं, तेजस्वियों के जो तेज स्वरूप हैं।।४१।।

विग्रहो विग्रहाणां यो गतिर्गतिमतामपि। आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणो हुताशनः॥४२॥
देवा हुताशनप्राणाः प्राणोऽग्नेर्मधुसूदनः। रसाच्छोणितसंभूतिः शोणितान्मासमुच्यते॥४३॥
मांसात्त मेदसो जन्म मेदसोऽस्थि निरुच्यते।
अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रसंभवः॥४४॥
शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा। तत्रापां प्रथमावापः स सौम्यो राशिरुच्यते॥४५॥
गर्भोऽश्मसंभवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते।
शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्त्तवं पावकात्मकम्॥४६॥
भावौ रसानुगावेतौ वीर्ये च शशिपावकौ। कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम्॥४७॥
कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम्।
देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तु मनसः स्मृतम्॥४८॥
नाभिश्चोदर संस्था तु तत्र देवो हुताशनः। मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते॥४९॥
पित्तमग्निः स्मृतो ह्येतदग्नीषेमात्मकं जगत्। एवं प्रवर्त्तिते गर्भे वृत्ते कर्कंधुसंनिभे॥५०॥

जो प्रभु संसार के समस्त शरीरों के शरीर हैं अर्थात् संसार के समस्त शरीर उन्हीं के शरीर हैं, सारे शरीर उन्हीं का रूप है तथा जो गतिमान् प्राणियों की गति हैं अर्थात् संसार में जो प्राणी चल रहे हैं, उन्हें वे ही चला रहे हैं। वे खुद नहीं चल रहे, उन्हें चलाने वाले प्रभु विष्णु ही हैं। आकाश वायु का उत्पत्ति स्थान है तथा वायु ही प्राण है, जो संसार को जीवन देता है तथा यह वायु ही अग्नि का उत्पत्ति स्थान है।।४२।। देवगणों का प्राणस्वरूप अग्नि है अर्थात् देवों का प्राण अग्निहोत्र है तथा अग्नि के प्राण मधुसूदन भगवान् विष्णु हैं। प्राणी जो भोजन करते हैं, उसके रस से रक्त बनता है और फिर रक्त से मांस की उत्पत्ति होती है, ऐसा कहा जाता है।।४३।। मांस से मेदों की उत्पत्तिहोती है तथा मेदा (चर्बी) से अस्थि की उत्पत्ति बतायी जाती है। अस्थियों (हड्डियों) से मज्जा पैदा हुआ है तथा मज्जा से वीर्य पैदा होता है।।४४।। रसमूलकर्म द्वारा अर्थात् स्त्री पुरुष की योनि शिश्न के निकलने वाले जल के द्वारा शुक्र (वीर्य) से गर्भ की उत्पत्ति होती है। गर्भ की उत्पत्ति में जलों का प्रथम आवाप है अर्थात् पहले दोनों के जलों से बीज बोया जाता है। अर्थात् संभोगकाल में पुरुष और स्त्री दोनों जलों से बीजारोपण करते हैं, यह प्रथम प्रक्रिया है और इसे सौम्य राशि कहा जाता है।।४५।।

गर्भ को अश्म (पत्थर) से उत्पन्न जानना चाहिये, यह गर्भ का पत्थर रूप में कड़ा होना अर्थात् उसमें हड्डियों की उत्पत्ति होना यह द्वितीय राशि कही जाती है। शुक्र (वीर्य) को सोमात्मक जानना चाहिये तथा आर्तव (स्त्री के रज) को पावकात्मक (अग्निस्वरूप) समझना चाहिये।।४६।। ये दोनों भाव अर्थात् दोनों क्रियायें रस से अनुगत होती हैं। रस का अर्थ यहाँ प्रेम तथा जल दोनों हैं और वीर्य में शशि (चन्द्रमा, जल) और अग्नि दोनों हैं। कफ वर्ग में शुक्र तथा पित्तवर्ग में रक्त की स्थिति होती है।।४७।। कफ का स्थान हृदय है और नाभि में पित्त प्रतिष्ठित है। शरीर के मध्य में हृदय है, जो मन का स्थान कहा गया है।।४८।। नाभि उदर (पेट) में स्थित है, वहीं पर अग्निदेव का स्थान है, जो भोजन पचाते हैं। मन को प्रजापति समझना चाहिये तथा कफ को चन्द्रमा कहा जाना उचित है।।४९।। पित्त को अग्नि स्मरण किया गया है, इस प्रकार यह समस्त संसार अग्नि सोम स्वरूप है। अर्थात् अग्नि और जल स्वरूप

वायुः प्रवेशनं चक्रे संगतः परमात्मना। स पंचधा शरीरस्थो विद्यते वर्द्धयेत्पुनः॥५१॥
प्राणापानौ समानश्च ह्युदानो व्यान एव च। प्राणोऽस्य परमात्मानं वर्द्धयन्परिवर्त्तते॥५२॥
अपानः पश्चिमं कायमुदानोऽर्द्धं शरीरिणः। व्यानो व्यानीयते येन समानः सर्वसंधिषु॥५३॥
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेंद्रियगोचरा। पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पंचमम्॥५४॥
सर्वेंद्रियनिविष्टास्ते स्वस्वयोगं प्रचक्रिरे। पार्थिवं देहमाहुस्तु प्राणात्मानं च मारुतम्॥५५॥
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलात्स्रावः प्रवर्त्तते।
ज्योतिश्चक्षुषि कोष्ठोऽस्मात्तेषां यन्नामतः स्मृतम्॥५६॥
संग्राह्य विषयांश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्तिताः। इत्येतान्पुरुषः सर्वान्सृजत्येकः सनातनः॥५७॥
नैधनेऽस्मिन्कथं लोके नरत्वं विष्णुरागतः। एष नः संशयो धीमन्नेष वै विस्मयो महान्॥५८॥
कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम्। श्रोतुमिच्छामहे विष्णोः कर्माणि च यथाक्रमम्॥५९॥

है, या यों कहिये कि सूर्य और चन्द्रमा स्वरूप है। इस प्रकार गर्भ में कर्कन्धु (ककरोंधा) के समान गर्भ बनता है तथा उस गर्भ के बन जाने पर परमात्मा से मिला हुआ वायु (प्राण) प्रवेश करता है। वह वायु पांच प्रकार का होकर शरीर में स्थित रहता है और फिर शरीर की वृद्धि करता है।।५०-५१।। वे वायु हैं—१. प्राण, २. अपान, ३. समान, ४. उदान और ५. व्यान प्राण इस परमात्मा (जीव) की वृद्धि करता हुआ परिवर्तित होता है।।५२।।

अपान वायु शरीर के पश्चिम (निचले) भाग में स्थित रहता है, जो गुदा मार्ग से निकलता है, जिसे हवा शुद्ध होना कहते हैं तथा उदानवायु शरीर के ऊपरी भाग में स्थित होता है, जो डकार आने के रूप में मुखादि से बाहर निकलता है। व्यानवायु समस्त शरीर में व्याप्त रहता है तथा समान वायु समास रूप में शरीर की सभी सन्धियों में स्थित रहता है।।५३।। अतः जब उस गर्भस्थ कर्कन्धु जैसे पिण्ड में सब वायु प्रवेश कर जाते हैं, तब वह जो पञ्चभूतों का निर्मित पिण्ड है, जिसमें पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि स्थित हैं।।५४।। उनमें जब इन्द्रियां भी उत्पन्न हो जाती हैं, तब वह पञ्चभूत शरीर इन्द्रियगोचर हो जाता है। उस इन्द्रियसमूह से निर्मित वे सब पंचभूत इस शरीर को बनाते हैं। इसमें पृथ्वी तत्त्व शरीर है, वायु तत्त्व प्राण है, जिसे आत्मा भी कहा जाता है।।५५।। शरीर में स्थित जो छिद्र (खाली) स्थान हैं, वे आकाश से उत्पन्न होते हैं, जिनको योनि कहा जाता है, जिनमें जल से स्राव होता है, जैसे कि आँख, कान, गुदा और उपस्थ ये सब आकाश हैं, इनमें जल का स्राव होता है। आँख में ज्योति (प्रकाश) का कोष्ठ है। इस प्रकार ये सब इन्द्रियां नाम से कही गयी हैं।।५६।। ये सब इन्द्रियां वीर्य से प्रवर्तित अर्थात् मनुष्य के वीर्य में ही सब इन्द्रियां रहती हैं अर्थात् सारा सूक्ष्म ढाँचा रहता है, स्त्री का रज तो उसकी रचना करता है, उसका विकास करता है। इस प्रकार इन सब जीवों की एक सनातन पुरुष ही रचना करता है।।५६।।

अब ऋषियों ने पूँछा कि सूत जी! यह बताइये कि इस मर्त्यशील अर्थात् मरने वाले संसार में मनुष्य बन करके विष्णु क्यों आ गये? हे बुद्धिमान् सूत जी! हमें इस विषय में संशय ही नहीं महान् आश्चर्य है।।५८।। क्योंकि जो स्वयं ही सद्गति पाने वालों की गति हैं। अर्थात् जो बहुत सत्कर्म करते हैं, वे जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो उनमें समा जाते हैं अर्थात् सद्गति की प्राप्ति के बाद भी वे फिर भी क्यों इस मनुष्य शरीर को प्राप्त करते हैं? अतः सूत जी! हम लोग उन विष्णु के कर्मों को क्रमानुसार सुनना चाहते हैं।।५९।।

आश्चर्यं परमं विष्णुर्वेदैर्देवैश्च कथ्यते। विष्णोरुत्पत्तिमाश्चय कथयस्व महामते॥६०॥
एतदाश्चर्यमाख्यातां कथ्यतां वै सुखावहम्। प्रख्यातबलवीर्यस्य प्रादुर्भावान्महात्मनः।
कर्मणाऽश्चर्यभूतस्य विष्णोः सत्त्वमिहोच्यते॥६१॥

सूत उवाच

अहं वः कीर्त्तयिष्यामि प्रादुर्भावं महात्मनः॥६२॥
यथा बभूव भगवान्मानुषेषु महातपाः। भृगुस्त्रीवधदोषेण भृगुशापेन मानुषे॥६३॥
जायते च युगांतेषु देवकार्यार्थसिद्धये। तस्य दिव्यां तनुं विष्णोर्गदतो मे निबोधत॥६४॥
युगधर्मे परावृत्ते काले च शिथिले प्रभुः। कर्त्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह।
भृगोः शापनिमित्तेन देवासुरकृतेन च॥६५॥

ऋषय ऊचुः

कथं देवासुरकृते तद्व्याहारमवाप्तवान्। एतद्वेदितुमिच्छामो वृत्तं देवासुरं कथम्॥६६॥

सूत उवाच

देवासुरं यथावृत्तं ब्रुवतस्तन्निबोधत॥६७॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्यं प्राक्प्रशासति। बलिनाऽधिष्ठितं राज्यं पुनर्लोकत्रये क्रमात्॥६८॥

वेद और देवता लोग उन भगवान् विष्णु को परम आश्चर्य मय बताते हैं। हे महामते! उन भगवान् विष्णु की आश्चर्ययुक्त उत्पत्ति को हमें बताइये।।६०।। उनका यह कथानक आश्चर्य से भरा हुआ है तथा कथन करने वालों को सुख प्रदान करने वाला है। बल और पराक्रम में पूरी तरह प्रसिद्ध अपने कर्म द्वारा आश्चर्य पैदा करने वाले उन महात्मा विष्णु का पराक्रम इस लोक में कहा जाता है।।६१।।

सूत जी बोले—अब मैं महात्मा विष्णु के अवतार का वर्णन करूँगा।।६२।। अर्थात् जिस प्रकार से वे महातपस्वी भगवान् विष्णु मनुष्य की योनि में अवतरित हुए, उसे मैं आप लोगों को बता रहा हूँ कि वे भगवान् विष्णु महर्षि भृगु की स्त्री के वध के कारण भृगु ऋषि के शाप से मनुष्य योनि में अवतरित हुए थे।।६३।। एक युग के अन्त होने के अवसर पर देवताओं के कार्यों को पूर्ण करने के लिए वे उत्पन्न होते हैं। उन भगवान् विष्णु के दिव्य शरीर का मैं वर्णन करने जा रहा हूँ, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिये।।६४।। युगधर्म के परावर्तन होने पर अर्थात् युगधर्म के समाप्त हो जाने पर तथा उसका प्रभाव शिथिल हो जाने पर महर्षि भृगु के शाप के कारण से अच्छे और बुरे लोगों के बीच धर्म की पुनः व्यवस्था स्थापित करने के लिये वे प्रभु इस लोक में मनुष्य के रूपोंमें अवतरित होते हैं।।६५।।

ऋषियों ने कहा कि हे सूत जी! भगवान् विष्णु ने देवासुर संग्राम में कैसे अवतार ग्रहण किया था तथा वह देवासुर संग्राम कैसे हुआ? यह हम सुनना चाहते हैं।।६६।।

सूत जी बोले, हे ऋषियो! देवासुर संग्राम जैसे हुआ मैं आप लोगों को बता रहा हूँ, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिये।।६७।। हिरण्यकशिपु नामक दैत्य था, जो प्राचीन काल में तीनों लोकों पर शासन करता था। उसके बाद तीनों लोकों का राजा दैत्यराजा बलि द्वारा अधिष्ठित किया गया था।।६८।।

सख्यमासीत्परं तेषां देवानामसुरैः सह। युगाख्या दश संपूर्णा ह्यासीदव्याहतं जगत्॥६९॥
निदेशस्थायिनश्चैव तयोर्देवासुराभवन्। बद्धे बलौ विवादोऽथ संप्रवृत्तः सुदारुणः॥७०॥
देवासुराणां च तदा घोरः क्षयकरो महान्। तेषां द्वीपनिमित्तं वै संग्रामा बहवोऽभवन्॥७१॥
वराहेऽस्मिन्दश द्वौ च षंडामर्कांतगाः स्मृताः। नामतस्तु समासेन शृणुध्वं तान्विवक्षतः॥७२॥
प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः। तृतीयः स तु वाराहश्चतुर्थोऽमृतमंथनः॥७३॥
संग्रामः पंचमश्चैव सुघोरस्तारकामयः। षष्ठो ह्याडीबकस्तेषां सप्तमस्त्रैपुरः स्मृतः॥७४॥
अंधकारोऽष्टमस्तेषां ध्वजश्च नवमः स्मृतः। वार्त्रश्च दशमो घोरस्ततो हालाहलः स्मृतः॥७५॥
स्मृतो द्वादशकस्तेषां घोरः कोलाहलोऽपरः। हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नरसिंहेन सूदितः॥७६॥
वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे कृते। हिरण्याक्षो हतो द्वंद्वे प्रतिवादे च दैवते॥७७॥
महाबलो महासत्त्वः संग्रामेष्वपराजितः। दंष्ट्रया तु वराहेण स दैत्यस्तु द्विधाकृतः॥७८॥
प्रह्लादो निर्जितो युद्धे इंद्रेणामृतमंथने। विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिंद्रवधोद्यतः॥७९॥
इंद्रेणैव स विक्रम्य निहतस्तारकामये भवादवध्यतां प्राप्य विशेषास्त्रादिभिस्तु यः॥८०॥

उस समय जब दैत्यराज बलिशासन कर रहे थे, तब देवताओं का असुरों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार था। उस समय दश युगों तक यह जगत् निरुपद्रव रहा, सर्वत्र शान्ति रही।।६९।। उस बलि की आज्ञा दोनों ही मानते थे। उसके बाद राजा बलि के बांध लिये जाने पर देवों और दानवों में घोर विनाशकारी विवाद प्रारम्भ हो गया।।७०।। उस समय उन देवों और दानवों में द्वीपों को प्राप्त करने के लिये महान् विनाशकारी घोर संग्राम हुए।।७१।। इस प्रकार वाराह कल्प में बारह युद्ध हुए, जिन सभी युद्धों में षण्ढ (नपुंसक) और अमर्क भी सम्मिलित हुए थे। उन युद्धों का वर्णन मैं संक्षेप में नाम से कर रहा हूँ, आप लोग सुनिये।।७२।। प्रथम युद्ध नरसिंह का हुआ था, जो नरसिंह और हिरण्यकशिपु के मध्य हुआ, दूसरा युद्ध वामन वलि का है, तीसरा युद्ध वाराह का है तथा चौथा युद्ध समुद्रमंथन का है।।७३।। पाँचवाँ अत्यन्त घोर संग्राम तारकासुर वाला है, छठा आडीवक और सातवां त्रिपुरदहन का है।।७४।। आठवां अन्धकार युद्ध एवं नवां ध्वजयुद्ध कहा जाता है। वार्त्र दशवां युद्ध हुआ, उसके बाद हालाहल ग्यारहवाँ युद्ध स्मरण किया गया।।७५।। उनमें बारहवां युद्ध घोर कोलाहल वाला युद्ध कहा गया है।।७५½।। प्रथम युद्ध में भगवान् नरसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु मारा गया था।।७६।।

दूसरे युद्ध में जब बलि ने त्रिलोकी पर आक्रमण किया था, तब वह भगवान् वामन द्वारा बाँध लिया गया था। देवताओं के साथ संघर्ष पैदा हो जाने पर उस युद्ध में हिरण्याक्ष का वध हुआ, वह महादैत्य हिरण्याक्ष महाबली महापराक्रमी था और संग्राम में किसी से भी हारने वाला नहीं था। वह समस्त पृथ्वी को ही समुद्र में खींच कर ले गया था, तब तीसरे अवतार वाराह ने अपनी दाढ़ों से समुद्र में से निकाल कर उसका संहार कर पृथ्वी का उद्धार किया तथा उस दैत्य के दो टुकड़े कर दिये।।७७-७८।। इन्द्र के द्वारा अमृत मन्थन के अवसर पर दैत्यराज प्रह्लाद पराजित हुए थे। इसीलिये प्रह्लाद का पुत्र विरोचन हर समय इन्द्र का वध करने के लिए तैयार रहता था।।७९।। अन्त में इन्द्र ने अपना पराक्रम दिखाकर तारकामय युद्ध में उसका वध किया था। उस दैत्य ने भगवान् शंकर की आराधना करके किसी से न मारे जाने का वरदान विशेष अस्त्र शास्त्रादि से युद्ध किया था।।८०।।

स जंभो निहतः षष्ठे शक्राविष्टेन विष्णुना। अशक्नुवत्सु देवेषु परं सोढुमदैवतम्॥८१॥
निहता दानवाः सर्वे त्रिपुरे त्र्यंबकेण तु। अथ दैत्याः सुराश्चैव राक्षसास्त्वंधकारिके॥८२॥
जिता देवमनुष्यैस्ते पितृभिश्चैव संगताः। सवृत्रान्दानवांश्चैव संगतान्कृत्स्नशश्च तान्॥८३॥
जघ्ने विष्णुसहायेन महेन्द्रस्तेन वर्द्धितः। हतो ध्वजे महेन्द्रेण मायाछत्रश्च योगवित्॥८४॥
ध्वजलक्षं समाविश्य विप्रचित्तिः सहानुजः। दैत्यांश्च दानवांश्चैव संहतान्कृत्स्नशश्च तान्॥८५॥
जयद्धालाहले सर्वैर्देवैः परिवृतो वृषा। रजिः कोलाहले सर्वान्दैत्यान्परिवृतोऽजयत्॥८६॥
यज्ञस्यावभृथे जित्वा षंडामर्कौ तु दैवतैः। एते देवासुरा वृत्ताः संग्रामा द्वादशैव तु॥८७॥
सुरासुरक्षयकराः प्रजानामशिवश्च ह। हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ॥८८॥
तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः। अशीतिश्च सहस्राणि त्रैलोक्यस्येश्वरोभवत्॥८९॥
पारंपर्येण राजा तु बलिर्वर्षार्बुदं पुनः। षष्टिश्चैव सहस्राणि त्रिंशच्च नियुतानि च॥९०॥
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह। प्रह्लादो निर्जितोऽभूच्च तावत्कालं सहासुरैः॥९१॥
इंद्रास्त्रयस्ते विख्याता ह्यसुराणां महौजसः। दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद्दशयुगं किल॥९२॥
अशपत्तु ततः शक्रो राष्ट्रं दशयुगं पुनः। त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेंद्रोह्यभ्ययाद्बलेः॥९३॥

उस समय छठे अवतार में इन्द्र के शरीर में स्वयं प्रविष्ट होकर भगवान् विष्णु ने उसका वध किया था।।८०½।। एक बहुत ही सुरक्षित दुर्ग में रहने के कारण देवताओं की इज्जत करने वाले दानवों को तथा उनके स्वामी त्रिपुरासुर को भगवान् शिव ने मारा था।।८०½-८१½।। आठवें देवासुर संग्राम में अन्धकार स्वरूप असुरों एवं राक्षसों के साथ देवों का संग्राम हुआ था, उस युद्ध में देवों और मानवों को परास्त करने वाले पितरगण भी उनकी सहायता कर रहे थे।।८१½-८२½।। इन्द्र शत्रु वृत्र के साथ सभी दानवों का इन्द्र के साथ घोर संग्राम हुआ था, जिस युद्ध में विष्णु की सहायता से महेन्द्र की शक्ति बढ़ा दी गयी थी। उस ध्वज युद्ध में महेन्द्र ने उस माया छत्र वाले योगविद् असुर वृत्त को इन्द्र ने मार गिराया था।।८२½-८४।। उसके वाद ध्वज युद्ध हुआ, जिसमें वृत्र का छोटा भाई मायावी विप्रचित्त युद्ध कर रहा था, तव महेन्द्र ने उसके ध्वज का लक्ष्यकर उसे काट दिया और उसके साथ युद्ध करने वाले सभी उन दैत्यों और दानवों को मार दिया।।८५।।

महान् कोलाहल युद्ध में रजि ने समस्त देवों सहित असुरों को पराजित किया था। उस समय यज्ञ की समाप्ति यज्ञ स्नान कर लेने पर देवताओं द्वारा पुरोहित षण्ढ और अमर्क को जीत लिया था।।८६-८६½।। इस प्रकार देवों और असुरों के बीच ये बारह संग्राम हुये थे।।८६½-८७।। ये सभी युद्ध देवों और असुरों दोनों का नाश करने वाले तथा प्रजाओं के लिए अकल्याणकारी थे। दैत्यराज हिरण्यकशिपु एक अरव बहत्तर लाख अस्सी हजार वर्षों तक समस्त तीनों लोकों का स्वामी हुआ।।८८-८९।। उसके बाद परम्परानुसार बलि दैत्यों का राजा हुआ तब एक अरव तीस लाख साठ हजार वर्ष तक राजा वलि राज्यपद का अधिकारी हुआ, जितने वर्षों राज्यपद का अधिकारी बलि रहा, उतने ही समय तक प्रह्लाद ने असुरों के साथ राज्य भार ग्रहण कियाथा।।९०-९१।। उस समय असुरों के इन्द्र ये तीन राजा हिरण्यकशिपु, वलि और प्रह्लाद प्रख्यात थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि यह समस्त संसार दैत्यों द्वारा लगभग दश युगों तक आक्रान्त था। उसके वाद दश युगों तक समस्त राष्ट्र इन्द्र के आधिपत्य में रहा। महेन्द्र ने ही दशयुगों तक

प्रह्लादस्य हते तस्मिंस्त्रैलोक्ये कालपर्ययात्। पर्यायेणैव संप्राप्तं त्रैलोक्यं पाकशासनम्॥९४॥
ततोऽसुरान्परित्यज्य यज्ञो देवानुपागमत्। यज्ञे देवानथ गते काव्यं ते ह्यसुरां ब्रुवन्॥९५॥
किं तन्नो मिषतां राष्ट्रं त्यक्त्वा यज्ञः सुरान्गतः।
स्थातुं न शक्नुमो ह्यद्य प्रविशाम रसातलम्॥९६॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेतान्विषण्णः सांत्वयन्गिरा। माभैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन वः सुराः॥९७॥
वृष्टिरोषधयश्चैव रसा वस्तु च यत्परम्। कृत्स्नानि ह्यपि तिष्ठंतु पादस्तेषां सुरेषु वै॥९८॥
युष्मदर्थं प्रदास्यामि तत्सर्वं धार्यते मया। ततो देवासुरान्दृष्ट्वा धृतान्काव्येन धीमता॥९९॥
अमंत्रयंस्तदा ते वै संविग विजिगीषया। एष काव्य इदं सर्वं व्यावर्त्तयति नो बलात्॥१००॥
साधु गच्छामहे तूर्णं यावन्नाप्याययेत्तु तान्। प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे॥१०१॥
ततो देवास्तु संरब्धा दानवानभिसृत्य वै। जघ्नुस्तैर्वध्यमानास्ते काव्यमेवाभिदुद्रुवुः॥१०२॥
ततः काव्यस्तु तान्दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान्। समरक्षत संत्रस्तान्देवेभ्यस्तान्दितेः सुतान्॥१०३॥
काव्यो दृष्ट्वा स्थितान्देवांस्तत्र दैवमचिंतयत्। तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन्॥१०४॥
त्रैलोक्यं विजितं सर्वं वामनेन त्रिभिःक्रमैः। बलिर्बद्धो हतं जंभो निहतश्च विरोचनः॥१०५॥

राष्ट्र की रक्षा की तथा यह राज्य इन्द्र ने बलि से प्राप्त किया था।।९२-९३।। काल परम्परानुसार वह त्रिलोकी का शासन प्रह्लाद के अधिकार में आया, फिर प्रह्लाद द्वारा त्रिलोकी को हरण करने पर त्रैलोक्य शासन को इन्द्र ने प्राप्त किया।।९४।। उस समय यक्ष गण असुरों को छोड़कर देवताओं के पास आये। यक्षों के देवताओं के पास चले जाने पर शुक्राचार्य से असुरों ने जाकर कहा।।९५।। कि आचार्य जी! हम लोगों के देखते-देखते ही हमारा समस्त राष्ट्र नष्ट हो गया। यज्ञादि शुभ कर्म हमें छोड़कर देवताओं के पास चले गये। इसलिये अब हम लोग यहाँ नहीं रह सकते।हम लोग रसातल को जा रहे हैं।।९६।। असुरों ने जब ऐसा कहा तो दैत्य गुरु शुक्राचार्य को बहुत दुःख हुआ, तब वे मधुरवाणी में उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले कि असुरगण! आप लोग भयभीत न हों, मैं अपने तेज से आप असुरों की रक्षा करूँगा।।९७।। वर्षा, औषधियां, रस तथा अन्य जो भी वस्तुएँ हैं, वे सब मेरे अधिकार में हैं, इसका चौथाई अंश ही देवों के अधिकार में हैं।।९८।। अतः जो कुछ मैं धारण करता हूँ अर्थात् मेरे अधिकार में, जो भी है, वह सब मैं तुम्हें प्रदान कर दूँगा। उसके बाद शुक्राचार्य द्वारा असुरों को धैर्य बँधाता हुआ देखकर देवता लोग बहुत व्याकुल हो गये तथा वे असुरों को जीतने की इच्छा से आतुर हो गये और विचार करने लगे कि ये शुक्राचार्य बलपूर्वक सब कुछ उल्टा पुल्टा कर दे रहे हैं।।९९-१००।। अतः हम लोग शीघ्र ही असुरों पर आक्रमण करेंगे, जब तक शुक्राचार्य कुछ उपाय कर पायें, तब तक हम उनको बलपूर्वक मारकर शेष बचे हुए को रसातल में पहुँचा देंगे।।१०१।। उसके बाद देवताओं ने तैयार होकर दानवों पर आक्रमण करके उन्हें मार डाला, तब देवों द्वारा मारे जाते हुए दैत्य लोग शुक्राचार्य के पास भागकर पहुँचे।।१०२।। उसके बाद देवताओं द्वारा आक्रमण कर शीघ्र भगाये हुए तथा देवताओं से डरे हुए उन दिति के पुत्र दैत्यों को देखकर शुक्राचार्य ने उनकी रक्षा की।।१०३।। तब शुक्राचार्य वहाँ दीनहीन दशा में दैत्यों को तथा समीप में खड़े निष्ठुर देवों को देखा तो सोचने लगे और फिर योग द्वारा ध्यान करके पूर्व व्यवहार को स्मरण करते हुए दैत्यों से कहने लगे।।१०४।। कि पहले जब कि वलि का राज्य था, जो

महासुरा द्वादशसु संग्रामेषु सुरैर्हताः। तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठा निहता ये प्रधानतः॥१०६॥
किंचिच्छिष्टास्तु वै यूयं युद्धे स्वल्पे तु वै स्वयम्।
नीतिं वो हि विधास्यामि कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम्॥१०७॥
यास्याम्यहं महादेवं मंत्रार्थे विजयाय च। अग्निमाप्याययेद्धोता मंत्रैरेष दहिष्यति॥१०८॥
ततो यास्याम्यहं देवं मंत्रार्थे नीललोहितम्। युष्माननुग्रहीष्यामि पुनः पश्चादिहागतः॥१०९॥
यूयं तपश्चरध्वं वै संवृता वल्कलैर्वने। न वै देवा वधिष्यंति यावदागमनं मम॥११०॥
अप्रतीपांस्ततो मंत्रान्देवात्प्राप्य महेश्वरात्। योत्स्यामहे पुनर्देवांस्ततः प्राप्स्यथ वै जयम्॥१११॥
ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्ततोऽसुराः। न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे लोकान्यूयं क्रमंतु वै॥११२॥
वयं तपश्चरिष्यामः संवृत्ता वल्कलैर्वने। प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्यानुव्याहृतं तु तत्॥११३॥
ततो देवा न्यवर्त्तंत विज्वरा मुदिताश्च ह। न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु स्वान्वै जग्मुर्यथागतान्॥११४॥
ततस्तानब्रवीत्काव्यः कंचित्कालं प्रतीक्ष्यताम्।
निरुत्सुकास्तपोयुक्ताः कालः कार्यार्थसाधकः॥११५॥

वामन ने धोखा देकर तीन कदम में पृथ्वी को नाप लिया और फिर वलि को बाँध लिया, उसके पुत्र जंभ को मार दिया और विरोचन को मार दिया।।१०५।। महान् असुर देवताओं द्वारा संग्रामों में मारे गये हैं तथा वे सब बेचारे प्रधानतः उन उन छल-कपट पूर्ण उपायों द्वारा मारे गये हैं। आप लोग बहुत कम बचे हुए हैं, सभी लोग युद्ध में मारे जा चुके हैं। अतः मैं आप लोगों के लिए कोई नीति निर्धारित करूँगा। आप लोग कुछ समय तक प्रतीक्षा कीजिये।।१०६-१०७।। शुक्राचार्य ने कहा कि मैं विजय हेतु मन्त्रों को सीखने के लिये महादेव के पास जाऊँगा। उधर देवों के गुरु यह बृहस्पति देवों की विजय के लिये यज्ञ कर रहे हैं। मन्त्रों से असुरों को भस्म कर देंगे।।१०८।। इसलिये मैं भी नीललोहित भगवान् शंकर के पास मन्त्र प्राप्त करने के लिये जाऊँगा। उसके बाद पुनः वहाँ से लौटकर आपके पास आऊँगा।।१०९।। आप लोग तब तक वल्कल वस्त्रों को धारण कर वन में तपस्या कीजिये। तब ऐसे वेश में देवता लोग निश्चित ही मेरे आने तक तुम लोगों को नहीं मारेंगे।।११०।। देवाधिदेव महादेव से मन्त्रों को प्राप्त कर जब मैं आ जाऊँगा, तब हम देवताओं से युद्ध करेंगे और आप लोग उस युद्ध में निश्चित विजय प्राप्त करोगे।।१११।।

उसके बाद शुक्राचार्य के कथनानुसार सब असुरों ने देवताओं से कहा कि हे देवो! अब हम आप लोगों से हार मानते हैं तथा अब हम सब शस्त्रों का परित्याग करते हैं, अतः आप अब समस्त लोकों पर विचरण कीजिये और शासन कीजिये।।११२।। हम सभी असुरगण वल्कल वस्त्र पहन कर वन में तपस्या करेंगे। ये वचन प्रह्लाद ने कहे, तब प्रह्लाद के इस सत्य की भाँति कहे गये उस वचन को सुन करके देवता लोग निश्चिन्त और प्रसन्न होकर लौट गये। दैत्यों के शस्त्र त्याग कर देने पर वे सब जहाँ जहाँ से आये थे, वहाँ-वहाँ अपने-अपने स्थान को चले गये।।११३-११४।। उसके बाद उन असुरों से शुक्राचार्य ने कहा कि कुछ समय तक प्रतीक्षा करो और सब इच्छाओं को छोड़कर तप में लगे रहो; क्योंकि समय कार्य के अर्थ को सिद्ध करने वाला होता है। समय आने पर सब कुछ ठीक हो जायेगा।।११५।।

पितुर्ममाश्रमस्था वै संप्रतीक्षत दानवाः। स संदिश्यासुरान्काव्यो महादेवं प्रपद्य च॥११६॥
प्रणम्यैवमुवाचायं जगत्प्रभवमीश्वरम्। मंत्रानिच्छामि हे देव ये न संति बृहस्पतौ॥११७॥
पराभवाय देवानामसुरेष्वभयावहान्। एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो मंत्रानिच्छसि वै द्विज॥११८॥
व्रतं चर मयोद्दिष्टं ब्रह्मचारी समाहितः। पूर्णं वर्षसहस्त्रं वै कुंडधूममवाक्शिराः॥११९॥
यदि पास्यति भद्रं ते मत्तो मंत्रमवाप्स्यसि। तथोक्तो देवदेवेन स शुक्रस्तु महातपाः॥१२०॥
पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यभाषत। व्रतं चराम्यहं देव यथोद्दिष्टोऽस्मि वै प्रभो॥१२१॥
ततो नियुक्तो देवेन कुंडधारोऽस्य धूमकृत्। असुराणां हितार्थाय तस्मिञ्छुक्रे गते तदा॥१२२॥
मंत्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे। तद्बुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राष्ट्रं न्यस्तं तदासुरैः॥१२३॥
तस्मिंश्छिद्रे तदामर्षाद्देवास्तान्समभिद्रवन्। प्रगृहीतायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः॥१२४॥
दृष्ट्वाऽसुरगणा देवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः। उत्पेतुः सहसा सर्वे संत्रस्तास्ते ततोऽभवन्॥१२५॥
न्यस्ते शस्त्रेऽभये दत्ते ह्याचार्ये व्रतमास्थिते। संत्यज्य समयं देवास्ते सपत्नजिघांसवः॥१२६॥

अनाचार्यास्तु भद्रं वो विश्वस्तास्तपसे स्थिताः।
चीरवल्काजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥१२७॥

अतः आप सभी दानव मेरे पिता श्री भृगु के आश्रम में स्थित होकर प्रतीक्षा करो। इस प्रकार असुरों को सन्देश देकर शुक्राचार्य महादेव के पास पहुँचे।।११६।। महादेव के पास पहुँचकर संसार के उत्पत्तिकर्ता संसार के स्वामी उन महादेव को प्रणाम करके उनसे इस प्रकार बोले कि हे देव! मैं आपसे देवों की पराजय करने के लिये और असुरों को भय रहित करने के लिये ऐसे मन्त्र चाहता हूँ, जो बृहस्पति के पास नहीं हैं। जब शुक्राचार्य ने ऐसा कहा तो महादेव ने कहा कि यदि हे द्विज! ऐसे मन्त्रों को चाहते हो, तो मैं जो कहता हूँ उसके अनुसार ब्रह्मचर्य रूप में स्थित रहते हुए पूरे एक हजार वर्ष तक सिर को नीचे करके कुण्ड के धुंये का पान करो।।११७-११९।। यदि तुम इस तरह धूम्र का पान करोगे तो मुझसे मन्त्र को प्राप्त कर लोगे। जब देवाधिदेव महादेव ने ऐसा कहा तो उन महा तपस्वी शुक्राचार्य ने महादेव के चरणों को स्पर्श करके ठीक है प्रभो! जो आपने मुझे निर्देश दिया है, उस व्रत का मैं अवश्य पालन करूँगा।।१२०-१२१।। उसके बाद महादेव द्वारा नियुक्त धूम वाले कुण्ड को आधार को बनाकर असुरों के हित के लिए शुक्राचार्य व्रत करने लगे तथा जब वह शुक्राचार्य मन्त्रों के लिये महादेव के पास रह रहे हैं, यह रहस्य देवताओं को ज्ञात हो गया, तब दैत्यों के इस तप करना एवं राज्य को छोड़ना एक चाल समझकर देवताओं को बड़ा क्रोध हुआ। तब वे सब तीक्ष्ण तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र लेकर बृहस्पति को आगे कर दैत्यों पर टूट पड़े।।१२२-१२४।। उसके बाद पुनः हाथों में अस्त्र शस्त्रों को लिये हुए देवों को देखकर असुरगण अचानक बहुत भयभीत हो गयेऔर सब भाग खड़े हुए।।१२५।। उस समय वे सब असुरगण शस्त्रों का भी परित्याग कर चुके थे तथा उन्हें अभय प्रदान कर उनके आचार्य के व्रत में स्थित हो जाने पर देवताओं ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी है और युद्ध के नियमों को तोड़कर सब देवता लोग अपने सौतेले भाइयों को मारना चाहते हैं।।१२६।। हमारे आचार्य भी यहाँ नहीं हैं तथा आचार्य विहीन हम लोग वल्कल वस्त्र और मृगचर्म धारण कर क्रियाविहीन एवं गृहत्याग कर तपस्या में स्थित हैं; इसलिये देवों को युद्ध हम किसी प्रकार भी नहीं जीत सकेंगे। अतः हमें विना युद्ध किये ही गुरु शुक्राचार्य की माता जी की शरण में

रणे विजेतुं देवान्वै न शक्ष्यामः कथंचन। अयुद्धेन प्रपद्यामः शरणं काव्यमातरम्॥१२८॥
प्रापद्यंत ततो भीतास्तया चैव तदाऽभयम्। दत्त तेषां तु भीतानां दैत्यानामभयार्थिनाम्॥१२९॥
तया चाभ्युपपन्नांस्तान्दृष्ट्वा देवास्तदाऽसुरान्।
अभिजघ्नुः प्रसह्यैतान्विचार्य च बलाबलम्॥१३०॥
ततस्तान्वध्यमानांस्तु देवैर्दृष्ट्वाऽसुरांस्तता। देवी क्रुद्धाब्रवीदेनाननिंद्रत्वं करोम्यहम्॥१३१॥
संस्तभ्य शीघ्रं संरंभादिंद्रं साभ्यचरत्तः। ततः संस्तंभितं दृष्ट्वा शक्रं देवास्तु मूढवत्॥१३२॥
व्यद्रवंत ततो भीता दृष्ट्वा शक्रं वशीकृतम्। गतेषु सुरसंघेषु विष्णुरिंद्रमभाषत॥१३३॥
मां त्वं प्रविश भद्रं ते नेष्यामि त्वां सुरेश्वर। एवमुक्तस्ततो विष्णुः प्रविवेश पुरंदरः॥१३४॥
विष्णुना रक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽवदत्।
एषां त्वां विष्णुना सार्द्धं दहामि मघवन्बलात्॥१३५॥
मिषता सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम्। तयाऽभिभूतौ तौ देवाविंद्राविष्णू जजल्पतुः॥१३६॥
कथं मुच्येव सहितौ विष्णुरिंद्रमभाषत। इंद्रोऽब्रवीज्जहि ह्येनां यावन्नो न दहेद्विभो॥१३७॥
विशेषेणाभिभूतोऽहमिमां तज्जहि माचिरम्।
ततः समीक्ष्य तां विष्णुः स्त्रीवधं कर्त्तुमास्थितः॥१३८॥

चले जाना चाहिये, ऐसी संकट की स्थिति में यही उचित है। जब गुरुदेव आ जायेंगे, तब उनको यह सब वृत्तान्त बता देंगे। अपने गुरु शुक्राचार्य के व्रतोपरान्त उनके लौटने पर हम लोग फिर देवों से युद्ध करेंगे।।१२७-१२८।। ऐसा विचार कर भयभीत सभी असुरगण शुक्राचार्य की माता के शरण में चले गये। उन्होंने उन अभय चाहने वाले भयभीत देवों को अभय प्रदान किया।।१२९।। तब जब देवताओं को पता चला कि सब असुर शुक्राचार्य की मां की शरण में चले गये हैं तथा उन्होंने उन्हें अभय प्रदान किया है, तब वे देवता लोग क्रोधित हो बलाबल का प्रयोग कर बलपूर्वक निहत्थे असुरों को मारने लगे।।१३०।। उसके बाद देवों द्वारा उन असुरों को मारा जाता हुआ देखकर क्रोधित हुई शुक्राचार्य की माता ने कहा कि अब मैं इन देवताओं को इन्द्र से विहीन कर देती हूँ।।१३१।। उन्होंने शीघ्र ही बड़े क्रोध से उन देवी ने इन्द्र को स्तम्भित कर दिया और स्वयं इधर-उधर घूमने लगी। उसके बाद इन्द्र को खम्भे की तरह खड़ा देखकर सभी देवता मूढ़ के समान किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये।।१३२।। उसके बाद इन्द्र को वशीभूत हुआ देखकर सभी देवता डरकर भागने लगे। देवताओं के भाग जाने पर विष्णु ने इन्द्र से कहा।।१३३।।

विष्णु बोले कि हे इन्द्र! तुम अपने शरीर में मुझे प्रविष्ट करो, तब मैं हे सुरेश्वर! तुम्हें ले जाऊँगा। ऐसा कहकर विष्णु इन्द्र के शरीर में प्रविष्ट हो गये।।१३४।। इन्द्र को विष्णु से रक्षित देखकर देवी क्रोधित होकर वचन बोलीं कि अब यह मैं विष्णु के साथ इस इन्द्र को बलपूर्वक जला देती हूँ।।१३५।। मेरे तपोबल को देखो! अब उन शुक्राचार्य की माता से पराजित उन दोनों ने सम्मति की।।१३६।। विष्णु ने इन्द्र से कहा कि अब इससे कैसे बचें? तब इन्द्र ने कहा कि जब तक यह हम लोगों को मारे उससे पहले ही इसको मार दीजिये।।१३७।। इन्द्र ने कहा कि इसलिये विशेषण से अभिभूत मैं शीघ्र ही इसको मारता हूँ। उसके बाद अच्छी तरह समीक्षा करके विष्णु उस स्त्रीवध को करने को तैयार हो गये।।१३८।।

अभिध्याय ततश्शक्रमापन्नं सत्वरं प्रभुः। तस्याः संत्वरमाणायाः शीघ्रंकारी सुरारिहा॥१३९॥
त्रिधा विष्णुस्ततो देवः क्रूरं बुद्धा चिकीर्षितम्।
क्रुद्धस्तदस्त्रमाविध्य शिरश्चिच्छेद माधवः॥१४०॥
तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुकोप भृगुरीश्वरः। ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे तदा॥१४१॥
यस्मात्ते जानता धर्मवध्या स्त्री निषूदिता। तस्मात्त्वं सप्तकृत्वो वै मनुष्येषु प्रपद्यसे॥१४२॥
ततस्तनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनःपुनः। सर्वलोकहितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥१४३॥
अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरः स्वयम्।
समानीय ततः काये समायोज्येदमब्रवीत्॥१४४॥
एतां त्वां विष्णुनां सत्यं हतां संजीवयाम्यहम्।
यदि कृत्स्नो मया धर्मश्चरितो ज्ञायतेऽपि वा॥१४५॥
तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं ब्रवीम्यहम्।
सत्याभिव्याहृतात्तस्य देवी संजीविता तदा॥१४६॥
तदा तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत्।
ततस्तां सर्वभूतानां दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव॥१४७॥
साधुसाध्वित्यदृश्यानां वाचस्ताः सस्वनुर्दिशः।
दृष्ट्वा संजीवितामेवं देवीं तां भृगुणा तदा॥१४८॥

विष्णु ने उस आपत्तिपूर्ण दशा में अपने सुदर्शन-चक्र का ध्यान किया, जिससे असुरों को मारने वाला, शीघ्र ही अपने लक्ष्य को नष्ट करने वाला, वह चक्र जलाने में समर्थ शुक्राचार्य की माता के सामने शीघ्र उपस्थित हो गया और तब देवों के देव भगवान् विष्णु ने स्त्री शुक्राचार्य की मां को जलाने के लिये क्रूर जानकर उस चक्र से शुक्राचार्य की माता का शिर काट दिया।।१३९-१४०।। शुक्राचार्य की माता; क्योंकि भृगु की पत्नी थीं। अतः अपनी पत्नी तथा एक स्त्री के घोर वध को देखकर परम ऐश्वर्यशाली महर्षि भृगु बहुत क्रोधित हो गये और उस समय अपनी पत्नी का निधन हो जाने पर उन विष्णु को यह शाप दिया कि धर्म का महत्त्व जानते हुए भी तुमने एक अबला की हत्या की है, अतः तुम सात बार मनुष्य लोक में जन्म धारण कर निवास करोगे।।१४१-१४२।।

इसलिये उस अभिशाप के द्वारा संसार में धर्म के नष्ट हो जाने पर संसार के समस्त प्राणियों के कल्याण के लिये वे विष्णु इस लोक में पुनः पुनः मनुष्य के रूप में जन्म ग्रहण करते हैं।।१४३।। उसके बाद भृगु ने भगवान् विष्णु को इस प्रकार शाप देकर स्वयं ही देवी का सिर लेकर उसे शरीर से संयुक्त कर जल लेकर इस वाक्य का उच्चारण किया कि हे सत्ये! विष्णु द्वारा मारी गयी तुमको मैं पुनः जीवित कर रहा हूँ। यदि मैं धर्म के समस्त चरित को जानता हूँ, उस सत्य के द्वारा तुम जीवित हो जाओ, यदि मैं जीवन भर सदैव सत्य बोलता रहा हूँ, तो तुम उस सत्य के प्रभाव से जीवित हो जाओ। तब इस प्रकार उनके वचनों के उच्चारण करने से वे देवी भृगु पत्नी शुक्रजननी जीवित हो गयीं।।१४३-१४६।। उसके बाद उनके ऊपर शीतल जल छिड़क कर कहा कि जीवित हो जाओ, उसके बाद सभी जीवों ने देवी को सोते से उठते हुए के समान देखा।।१४७।। सभी दिशाओं से साधु साधु की ध्वनि सुनायी

मिषतां सर्वभूतानां तदद्भुतमिवाभवत्। असंभ्रांतेन भृगुणा पत्नीं संजीवितां ततः॥१४९॥
दृष्ट्वा शक्रो न लेभेऽथ शर्म काव्यभयात्ततः। प्रजागरे ततश्चेंद्रो जयंतीमात्मनः सुताम्॥१५०॥
प्रोवाच मतिमान्वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः।
एष काव्यो ह्यनिंद्राय चरते दारुणं तपः॥१५१॥
तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो धृतिमना दृढम्। गच्छ संभावयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभे॥१५२॥
तैस्तैर्मनोऽनुकूलैश्च ह्युपचारैरतंद्रिता। देवी साहींद्रदुहिता जयन्ती शुभचारिणी॥१५३॥
सुस्वरूपधराऽगार्त्तं दुर्वहं व्रतमास्थितम्।
पित्रा यथोक्तं वाक्यं सा काव्ये कृतवती तदा॥१५४॥
गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवन्ती वल्गुभाषिणी।
गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना त्वचासुखैः॥१५५॥
शुश्रूषंत्यनुकूला च उवास बहुलाः समाः। पूर्णं धूमव्रते चापि घोरे वर्षसहस्रके॥१५६॥
वरेण च्छंदयामास काव्यं प्रीतोऽभवस्तदा। एवं व्रतं त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित्॥१५७॥
तस्मात्त्वं तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च। तेजसा वापि विबुधान्सर्वानभिभविष्यसि॥१५८॥
यच्च किंचिन्मम ब्रह्म विद्यते भृगुनंदन। सांगं च सरहस्यं च यज्ञोपनिषदस्तथा॥१५९॥

दी। सभी लोगों के सामने देवी का जी उठना एक आश्चर्यजनक घटना के समान हुआ। इस प्रकार सावधान चित्त वाले महर्षि भृगु ने अपनी पत्नी को जीवित कर दिया।।१४८-१४९।। उसके बाद उन शुक्राचार्य के भय से इन्द्र को रात भर नींद नहीं आयी। उसके बाद प्रातःकाल जगने पर बुद्धिमान् इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती से विशेष रूप से कहा कि पुत्रि! ये शुक्राचार्य देवों को इन्द्र विहीन करने के लिए दारुण तप कर रहे हैं। उन धैर्यशाली शुक्राचार्य द्वारा पुत्रि! मैं बहुत अधिक व्याकुल हूँ। इसलिए हे शुभे! तुम जाओ और उनकी थकान को दूर करने वाले अपने श्रेष्ठ और मंगलकारी कार्यों से उन्हें प्रसन्न कर उनके मन की बात समझते हुए अनेकों प्रकार की सेवाओं द्वारा उन्हें बहुत ही सावधानी पूर्वक प्रसन्न करने की चेष्टा करो।।१५०-१५२½।। वह इन्द्र की पुत्री जयन्ती शुभ कर्म करने वाली और स्वभाव से देवी थी। वह सुन्दर स्वरूप वाली जयन्ती जब गयी तो उसने देखा कि शुक्राचार्य अपने दुर्वहव्रत में स्थित थे, वे ध्यान मग्न थे। तब पिता इन्द्र ने जो कहा था, तदनुसार उस जयन्ती ने किया।।१५२½-१५४।।

कर्णप्रिय मधुर वाणियों से उसने शुक्राचार्य की स्तुति की। समय समय उनकी त्वचा को सुख पहुँचाने वाले शरीर संवाहनों (हाथ, पैर, शरीर आदि को दबाने) से अत्यन्त मनोऽनुकूल आचरण करती हुई सेवा में मन लगाकर उसने अनेकों वर्षों तक उपवास रखा।।१५५-१५५½।। इस प्रकार जब शुक्राचार्य का वह कठोर धूम्रव्रत समाप्त हो गया, तब भगवान् शिव शुक्राचार्य पर परम प्रसन्न हो गये और उन्होंने शुक्राचार्य को यह वरदान दिया और कहा कि इस प्रकार का यह कठोर व्रत तुम्हीं ने किया, अन्य किसी ने नहीं किया अतः तुम अपने इस व्रत से समस्त देवताओं को तप से, बल से, बुद्धि से, वेदज्ञान से, बल से और तेज से नीचा कर दोगे, सभी तुम्हारे इस व्रत से पराजित हो जायेंगे।।१५५½-१५८।। भगवान् शिव ने कहा हे भृगुनन्दन! जो कुछ मेरे पास वे यज्ञ उपनिषद् तथा उनके

प्रतिभाति ते सर्वं तद्वाच्यं तु न कस्यचित्। सर्वाभिभावी तेन त्वं द्विजश्रेष्ठो भविष्यसि॥१६०॥
एवं दत्त्वा वरं तस्यै भार्गवाय भवः पुनः। प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ॥१६१॥
एतांल्लब्ध्वा वरान्काव्यः संप्रहृष्टतनूरुहः। हर्षात्प्रादुर्बभौ तस्य दिव्यं स्तोत्रं महेशितुः॥१६२॥
तदा तिर्यक्स्थितस्त्वेवं तुष्टुवे नीललोहितम्। नमोऽस्तु शितिकण्ठाय सुराद्याय सुवर्चसे॥१६३॥
लेलिहानाय लेह्याय वत्सराय जगत्पते। कपर्दिने ह्यूर्ध्वरोम्णे हर्यक्षवरदाय च॥१६४॥
संस्तुताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे। उष्णीषिणे सुवक्राय सहस्त्राक्षाय मीढुषे॥१६५॥
वसुरेताय रुद्राय तपसे चीरवाससे। निस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च॥१६६॥
कवये राजवृद्धाय तक्षक क्रीडनाय च। गिरीशायार्कनेत्राय यतये चाज्यपाय च॥१६७॥
सुवृत्त्या सुहस्ताय धन्विने भार्गवाय च। सहस्त्रबाहवे चैव सहस्त्रामलचक्षुषे॥१६८॥
सहस्त्रकुक्षये चैव सहस्त्रचरणाय च। सहस्त्रशिरसे चैव बहुरूपाय वेधसे॥१६९॥
भवाय विश्वरूपाय श्वेताय पुरुषाय च। निषंगिणे कवचिने सूक्ष्माय क्षपणाय च॥१७०॥
ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च। महादेवाय सर्वाय विश्वरूपशिवाय च॥१७१॥
हिरण्याय वसिष्ठाय वर्षाय मध्यमाय च। धाम्ने चैव पिशंगाय पिंगलायारुणाय च॥१७२॥

उपांगों की मन्त्र शक्ति विद्यमान हैं, वे सब तुम्हें सर्वांशतः विदित होंगी। किसी दूसरे को प्राप्त नहीं होंगी। इस प्रकार तुम सबको पराजित करने वाले द्विजश्रेष्ठ होंगे।।१५९-१६०।। इस प्रकार उन भृगु पुत्र शुक्राचार्य को वर प्रदान कर पुनः उनको प्रजा का स्वामित्व, धन का स्वामित्व और अवध्यत्व (किसी के द्वारा न मारा जाना) प्रदान किया।।१६१।। तब इन वरों को प्राप्त करके शुक्राचार्य परम प्रसन्न हुए और उस परम प्रसन्नता से उनके शरीर में रोमांच हो गया। तब उत्कट उत्कण्ठा से उनके मुख से सहसा महेश के लिये यह स्तोत्र प्रादुर्भूत हो गया।।१६२।। तब नतमस्तक होकर वे नीललोहित भगवान् शिव की स्तुति करनेलगे। शितिकण्ठ को मेरा नमस्कार है, हे सुराधा (प्रथम देवता) हे सुवर्चस् (सुन्दर कान्ति वाले), हे लेलिहान (सर्प धारण करने वाले), हे लेहय! वे वत्सर! हे जगत्पति, हे कपर्दी, हे ऊर्ध्वरोमा, हे हर्यक्षवर आपको नमस्कार है।।१६४।। हे संस्तुत, हे सुतीर्थ, हे देवों के देव! हे रंहस्! हे उष्णीषिन्! हे सुवक्र! हे सहस्त्राक्ष! हे मीढुष्! आपको प्रणाम है।।१६५।। हे वसुरेत! हे रुद्र! हे तपस्वरूप! हे चीर वस्त्र पहनने वाले, हे निस्व, हे मुक्तकेश! हे सेनानी, और हे रोहित! आपको नमस्कार है।।१६६।।

हे कवि! हे राजाओं में सबसे वृद्ध! हे तक्षक! हे क्रीडन (साक्षात् क्रीडारूपी), हे गिरीश, हे अर्कनेत्र (सूर्य नेत्र वाले), हे यति (संन्यासी), हे आज्यप (यज्ञ में घृत का पान करने वाले) आपको नमस्कार है।।१६७।। हे सुवृत्त! सुन्दर वृत्तस्वरूप! हे सुहस्त! हे धन्वी (धनुष धारण करने वाले), हे भार्गव! हे सहस्त्रबाहु, हे सहस्त्रामल चक्षु (हजार निर्मल नेत्र वाले) आपको प्रणाम है।।१६८।। हे सहस्त्रकुक्षि! हे सहस्त्र चरण वाले! हे सहस्त्र शिखाले, हे बहुत रूपों वाले, हे वेध करने वाले! आपको नमस्कार है।।१६९।। हे भव (होने वाले), हे विश्वरूप! श्वेत! पुरुष! निषङ्गी! कवची! सूक्ष्म! क्षपण आपको प्रणाम है।।१७०।। हे ताम्र! भीम! उग्र शिव महादेव! शर्व विश्वरूप शिव आपको नमस्कार है।।१७१।। हे हिरण्य! वसिष्ठ! वर्ष! मध्यम! धामन्! पिशंग! पिंगल! अरुण के लिए नमस्कार है।।१७२।।

पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च। दुंदुभ्यायैकपादाय अर्हाय बुद्धये तथा।
मृगव्याधाय सर्वाय स्थाणवे भीषणाय च॥१७३॥
बहुरूपाय चोग्राय त्रिनेत्रायेश्वराय च। कपिलायैकवीराय मृत्यवे त्र्यंबकाय च॥१७४॥
वास्तोष्पते पिनाकाय शंकराय शिवाय च। आरण्याय गृहस्थाय यतिने ब्रह्मचारिणे॥१७५॥
सांख्याय चैव योगाय ध्यानिने दीक्षिताय च। अन्तर्हिताय सर्वाय तप्याय व्यापिने तथा॥१७६॥
बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्ताय केवलाय च। रोधसे चैकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये॥१७७॥
चतुष्पादाय मेध्याय वर्मिणे शीघ्रगाय च। शिखंडिने कपालाय दंडिने विश्वमेधसे॥१७८॥
अप्रतीताय दीप्ताय भास्कराय सुमेधसे। क्रूराय विकृतायैय बीभत्साय शिवाय च॥१७९॥
शुचये परिधानाय सद्योजाताय मृत्यवे। पिशिता शाय शर्वाय मेघाय वैद्युताय च॥१८०॥
दक्षाय च जघन्याय लोकानामीश्वराय च। अनामयाय चेध्माय हिरण्यायैकचक्षुषे॥१८१॥
श्रेष्ठाय वामदेवाय ईशानाय च धीमते। महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हसाय च॥१८२॥
दृढधन्विने कवचिने रथिने च वरूथिने। भृगुनाथाय शुक्राय गह्वरिष्ठाय धीमते॥१८३॥
अमोघाय प्रशांताय सदा विप्रप्रियाय च। दिग्वासः कृत्तिवासाय भगघ्नाय नमोऽस्तु ते॥१८४॥
पशूनां पतये चैव भूतानां पतये नमः। प्रभवे ऋग्यजुःसाम्ने स्वाहायै च स्वधायै च॥१८५॥
वषट्कारतमायैव तुभ्यं मंत्रात्मने नमः। स्त्रष्ट्रे धात्रे तथा कर्त्रे हर्त्रे च क्षपणाय च॥१८६॥
भूतभव्यभवेशाय तुभ्यं कर्मात्मने नमः। वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्याश्विनाय च॥१८७॥

हे पिनाकी! चेषुमत्! चित्ररोहित! दुन्दुभ्य! एकपाद! अर्ह! मृगव्याध! सर्व! स्थाणु! भीषण! आपको नमस्कार है।।१७३।। हे बहुरूप! उग्र स्वरूप! तीन नेत्र वाले! ईश्वर! कपिल! एकवीर! मृत्युरूप! त्र्यम्बक! आपको प्रणाम है।।१७४।। हे वास्तोषपति! पिनाक! शंकर शिव! आरण्य! गृहस्थ! यतिन्! ब्रह्मचारी! आपको प्रणाम है।।१७५।। हे सांख्य स्वरूप! योगस्वरूप! ध्यान करने वाले! दीक्षित! अन्तर्हित! सर्व! तप्य! तथा व्यापी! आपको नमस्कार है।।१७६।। हे बुद्ध! शुद्ध! मुक्त! केवल! रोधस्(रोधा)! एकितान! ब्रह्मिष्ठ! महर्षि आपको नमस्कार है।।१७७।। हे चतुष्पाद! मेध्य! वर्मी! शीघ्र जाने वाले! शिखण्डि! कपाल! दण्डी! विश्वमेधा! आपको प्रणाम है।।१७८।। हे अप्रतीत! दीप्त! भास्कर! सुमेधा! क्रूर! विक्रत रूपवाले! वीभत्स रूपवाले शिव! आपको नमस्कार है।।१७९।। हे शुचि! परिधान! सद्योजात! मृत्यु! मांस खाने वाले! शर्व! मेघ! वैद्युत! आपको नमस्कार है।।१८०।। हे दक्ष! जघन्य लोकों के स्वामी! अनामय (रोगरहित)! इध्म! हिरण्यैक चक्षुः! आपको नमस्कार है।।८१।। हे श्रेष्ठ! वामदेव! ईशान! धीमान्! महाकल्प! दीप्त! रोदन रूपी! हसने रूपी! दृढधन्वी! दृढ़ धनुष करने वाले! कवच धारण करने वाले! रथ वाले! वरूथ वाले! भृगुनाथ! शुक्र! गह्वरिष्ठ! धीमान् आपको नमस्कार है।।१८३।। हे अमोघ! प्रशान्त सदा ब्राह्मणों के प्रिय! दिग्वास! दिगम्बर! कृत्तिवास! भगघ्न! आपको नमस्कार है।।१८४।। तथा हे पशुओं के स्वामी! तथा हे समस्त प्राणियों के स्वामी! आपको नमस्कार है। सबके स्वामी ऋग्वेद! यजुर्वेद और सामवेद स्वरूप आपको नमस्कार है। स्वाहा और स्वधा स्वरूप आपको नमस्कार है।।१८५।। हे वषट्कार स्वरूप! मन्त्रात्मा आपको नमस्कार है। हे सृष्टि करने वाले! सृष्टि को धारण करने वाले! सब कार्य करने वाले! सबके प्राण हरने वाले अथवा सबके दुःख हरने वाले और क्षपण (भिक्षु)! आपको नमस्कार है।।१८६।। हे भूत! भविष्य और वर्तमान तीनों कालों के स्वामी, कर्मात्मा! तुमको

विश्वाय मरुते चैव तुभ्यं देवात्मने नमः। अग्नीषोमविधिज्ञाय पशुमंत्रौषधाय च॥१८८॥
दक्षिणावभृथायैव तुभ्यं यज्ञात्मने नमः। तपसे चैव सत्याय त्यागाय च शमाय च॥१८९॥
अहिंसायाथ लोभाय सुवेषायानिशाय च। सर्वभूतात्मभूताय तुभ्यं योगात्मने नमः॥१९०॥
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय महसे त्रिदिवाय च। जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः॥१९१॥
अव्यक्तायाथ महते भातायैवेंद्रियाय च। तन्मात्रायाथ महते तुभ्यं तत्त्वात्मने नमः॥१९२॥

नित्याय चाप्यलिंगाय सूक्ष्माय चेतराय च।
शुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं नित्यात्मने नमः॥१९३॥

नमस्ते त्रिषु लोकेषु स्वरंतेषु भुवादिषु। सत्यांतमहराद्येषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते॥१९४॥
नामस्तोत्रे मया ह्यस्मिन्यदशब्द्याहतं प्रभो मद्भक्त इतिब्रह्मण्य सर्वं तत्क्षंतुमर्हसि॥१९५॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे स्तवसमाप्तिर्नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥७२॥

नमस्कार है। वसु, साध्य, रुद्र, आदित्य, अश्विनी सब आप ही हैं। अतः ऐसे आपको नमस्कार है।।१८७।। हे विश्वरूप! वायुरूप देवात्मन्! आपको नमस्कार है। हे अग्निहोत्र और सोमविधि को जानने वाले! पशु मन्त्रौषध रूप शिव! आपको नमस्कार है।।१८८।। हे दक्षिणावभृथ (यज्ञ समाप्त होने स्नान के बाद जो दक्षिणा दी जाती है, उसके स्वरूप वाले) तुम यज्ञ की आत्मा को नमस्कार है। तपरूप! सत्यरूप! त्यागरूप! और शान्ति स्वरूप! आपको नमस्कार है।।१८९।। अहिंसारूप! अलोमरूप! सुन्दर वेश वाले! सर्वभूतात्मभूत (समस्त प्राणियों की आत्मरूपी) योगात्मा भगवन्! आपको नमस्कार है।।१९०।। हे पृथिवी, अन्तरिक्ष, महर्लोक, त्रिदिव, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक स्वरूप समस्त लोकों की आत्मा! आपको नमस्कार है।।१९१।। हे अव्यक्त प्रधान प्रकृतिरूप! हे महत्तत्त्व (बुद्धिरूप)! हे पञ्चमहाभूत रूप (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी रूपी)! हे मन, श्रोत्र, त्वक्, आँख, जिह्वा, नासिका, हस्त, पाद, मुख, गुदा, उपस्थ, ग्यारह इन्द्रिय रूपी! हे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, तन्मात्रा स्वरूप! तथा समस्त तत्त्वरूप भगवान् शिव! आपको नमस्कार है।।१९२।। हे नित्य, रहने वाले, अलिङ्गरूप! सूक्ष्म! इतर, शुद्ध, और विभु नित्यात्मा! आपको नमस्कार है।।१९३।। हे तीनों लोकों में रहने वाले तथा स्वर्ग के अन्त में भुव आदि लोकों में सत्य लोक के अन्त तक मह आदि चार लोकों में सदा सर्वत्र रहने वाले भगवन् आपको नमस्कार है।।१९४।। अन्त में शुक्राचार्य कहते हैं कि हे भगवन्! मैंने इस आपके नाम से स्तुति किये जाने वाले स्तोत्र में यदि कहीं कुछ अशुद्धि हो गयी हो अथवा बोलने में त्रुटि हुई हो, तो मुझे अपना भक्त समझकर क्षमा कर दीजिये, प्रभो!।।१९५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ७२वां अध्याय स्तव शंकर समाप्ति वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

विष्णु माहात्म्यवर्णनं नाम

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

एवमाराध्य देवेशमीशानं नीललोहितम्। प्रह्वोऽतिप्रणतस्तस्मै प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत्॥१॥
काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान्भवः। निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवांतरधाद्धरः॥२॥
ततः सोऽतर्हिते तस्मिन्देवे सानुचरे तदा। तिष्ठंतीं प्रांजलिर्भूत्वा जयंतीमिदमब्रवीत्॥३॥
कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता। महता तपसा युक्तं किमर्थं मां जिगीषसि॥४॥
अनया सततं भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च। स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि॥५॥
किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृद्ध्यताम्। तं ते संपूरयाम्यद्य यद्यपि स्यात्सुदुर्लभः॥६॥
एवमुक्ताऽब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि। चिकीर्षितं मे ब्रह्मिष्ठ त्वं हि वेत्थ यथातथम्॥७॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा। माहेंद्री त्वं वरारोहे मद्धितार्थमिहागता॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय–७३

विष्णु माहात्म्य वर्णन

सूत जी बोले—इस प्रकार देवाधिदेव नीललोहित ईशान भगवान् शिव की आराधना कर उन्हें पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़कर नमस्कार वाक्य बोले।।१।। उसके बाद शुक्राचार्य के शरीर को हाथ से स्पर्श करके परम प्रसन्न पूरी तरह दर्शन देकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये।।२।। उसके बाद जब भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये, तब महामुनि शुक्राचार्य की सेवा में लगी हुई जो इन्द्र पुत्री जयन्ती शुक्राचार्य के सामने हाथ जोड़कर खड़ी थी, उससे शुक्राचार्य इस प्रकार बोले—।।३।। हे सुभगे![१] (सुन्दर ऐश्वर्य वाली) इसका एक यह अर्थ भी होगा हे सुन्दर भगवाली तथा यहाँ यही अर्थ उचित है। तुम किसकी पुत्री हो? कौंन हो? तथा मेरे दुःखित रहने पर तुम क्यों दुःखित हुई हो! ऐसी कठोर तपस्या में लगे हुए मेरी सेवा एवं सुरक्षा में तुम क्यों मन लगा रही हो।।४।। तुमने जो अपनी इन्द्रियों का दमनकर तथा अथक परिश्रम करते हुए भक्तिपूर्वक, प्रेम से, लगातार जो सेवा की है, उससे हे वरवर्णिनि! हे सुन्दर कटि भाग वाली! मैं बहुत प्रसन्न हूँ।।५।। अतः हे वरारोहे! तुम क्या चाहती हो? तुम्हारी क्या कामना है? मुझे बताओ। आज मैं तुम्हारी उस इच्छा को पूर्ण करूँगा, भले ही वह तुम्हारी माँग दुर्लभ ही क्यों न हो।।६।। ऐसा जब शुक्राचार्य ने कहा, तब उस इन्द्रपुत्री जयन्ती ने उनसे कहा कि हे भगवन्! मेरी इच्छा को आप तप से जान सकते हैं, क्योंकि आप तो सबके मन की जैसी बात होती है, उसको जान ही लेते हैं।।७।। इस प्रकार जब जयन्ती ने कहा,

---

१. यहाँ सुभगे के दो अर्थ होंगे एक सुन्दर ऐश्वर्य वाली और दूसरा सुन्दर भग (योनि) वाली।

मया सह त्वं सुश्रोणि दशवर्षाणि भामिनि। अदृश्यं सर्वभूतैस्तु संप्रयोगमिहेच्छसि॥९॥
देवींद्रनीलवर्णाभे वरारोहे सुलोचने। इमं वृमीष्व कामं त्वं मत्तो वै वल्गुभाषिणि॥१०॥
एवं भवतु गच्छावो गृहान्मत्तेभगामिनि। ततः स्वगृहमागम्य जयंत्या सहितः प्रभुः॥११॥
स तया चावसद्देव्या दश वर्षाणि भार्गवः। अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतस्तदा॥१२॥
कृतार्थमामतं ज्ञात्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः। अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्तं दिदृक्षवः॥१३॥
गता यदा न पश्यंति जयंत्या संवृतं गुरुम्। लक्षणं तस्य तद् बुद्धा प्रतिजग्मुर्यथागतम्॥१४॥
बृहस्पतिस्तु संरुद्धं ज्ञात्वा काव्यं वरेण ह। प्रीत्यर्थे दशवर्षाणि जयंत्या हितकाम्यया॥१५॥
बुद्धा तदंतरं सोऽथ देवानां मंत्रचोदितः। काव्यस्य रूपमास्थाय सोऽसुरान्समभाषत॥१६॥

ततः सोऽभ्यागतान्दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच तान्।
स्वागतं मम याज्यानां संप्राप्तोऽस्मि हिताय च॥१७॥

अहं वोऽध्यापयिष्यामि प्राप्ता विद्या मया हि याः। ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे॥१८॥
पूर्णे काव्यस्तदा तस्मिन्समये दशवार्षिके। समयांते देवयानी सद्यो जातमतिस्तदा॥१९॥

तब शुक्राचार्य ने दिव्य नेत्र से जानकर उससे कहा कि अरी सुन्दर अंगों वाली तुम इन्द्र की पुत्री हो और मेरे लिये यहाँ आयी हो।।८।। अरे सुन्दर कमरवाली भामिनि! तुम मेरे साथ समस्त प्राणियों से अदृश्य होकर दश वर्ष तक सम्भोग करना चाहती हो।।९।। हे देवेन्द्र पुत्रि! इन्द्र नीलमणि के समान आभा वाली! हे सुन्दर शरीर वाली! हे सुन्दर नेत्रों वाली! हे मधुरभाषिणी! तुम्हारी इस इच्छा की पूर्ति होगी, तुम मुझसे अपनी इच्छा की पूर्णता प्राप्त करोगी।।१०।। अतः ठीक है, हे मदमत्त गज की भाँति चाल चलने वाली चलो! अब दोनों घरों को चलते हैं। उसके बाद अपने घर आकर प्रभु शुक्राचार्य ने उस जयन्ती के साथ माया से मुक्त हो सब प्राणियों से अदृश्य रहकर १० वर्ष तक निवास किया।।११-१२।। जब समस्त दितिपुत्र दैत्यों को यह पता चल गया कि उनके गुरुदेव शुक्राचार्य अपना कार्य पूर्ण कर आ गये हैं, तब यह जानकर वे प्रसन्नचित्त होकर उन्हें देखने के लिए उनके घर गये।।१३।।

जब वे सब दैत्य लोग उनके घर गये और वहाँ जयन्ती के साथ गुरुजी को नहीं देखा, तब वे सब लक्षण जानकर वापस लौट आये।।१४।। उधर देव गुरु बृहस्पति ने जब यह सुना कि देवताओं का हित करने वाली जयन्ती अपने पिता के कल्याण की कामना से दश वर्षों के लिए शुक्राचार्य के साथ गयी है और जब इन्होंने यह सुना कि वह जयन्ती शुक्राचार्य के साथ अज्ञातवास कर रही है, वे अदृश्य होकर उसके साथ सम्भोगरत हैं, तब उन्होंने यह अच्छा अवसर जाना इसके बाद; क्योंकि वे देवों के गुरु थे। इसलिए देवों की प्रेरणा से शुक्राचार्य का रूप धारण कर असुरों को सम्यक् प्रकार भाषण देने लगे।।१५-१६।। उसके बाद उन शुक्राचार्यधारी बृहस्पति के पास अतिथि स्वरूप आये हुए असुरों को देखकर शुक्राचार्य रूपधारी बृहस्पति उनसे बोले। मेरे यज्ञकर्म के योग्य आप अतिथियों का स्वागत है। मैं आपके हित के लिये शिवजी से मन्त्र प्राप्त कर आ गया हूँ।।१७।। अब आप लोग को उस विद्या को पढ़ाऊँगा, जिस विद्या को मैंने शिव जी से प्राप्त किया है। उसके बाद वे सब दैत्यगण पूर्ण प्रमुदित होकर विद्या के अर्थ को प्राप्त करने लगे।।१८।। तब दश वर्ष के पूर्ण हो जाने पर शुक्राचार्य का मोह नष्ट हुआ और उन्हें सद्बुद्धि हुई और समय के अन्त में उनको जयन्ती से देवयानी उत्पन्न हुई।।१९।।

बुद्धिं चक्रे ततश्चापि याज्यानां प्रत्यवेक्षणे।

शुक्र उवाच

देवि गच्छाम्यहं द्रष्टुं तव याज्याञ्छुचिस्मिते॥२०॥
विभ्रान्तप्रेक्षिते साध्वि त्रिवर्णायतलोचने। एवमुक्ताऽब्रवीद्देवी भज भक्तां महाव्रत।
एष ब्रह्मन्सतां धर्मो न धर्मं लोपयामि ते॥२१॥

सूत उवाच

ततो गत्वा सुरान्दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता॥२२॥
वंचितान्काव्यरूपेण वचसा पुनरब्रवीत्। काव्यं मामनुजानीध्वमेष ह्यांगिरसो मुनिः॥२३॥
वंचिता बत यूयं वै मयि सक्ते तु दानवाः। श्रुत्वा तथा ब्रुवाणं तं संभ्रांता दितिजास्ततः॥२४॥
संप्रैक्षंताबुभौ तत्र स्थिरासीनौ शुचिस्मितौ। संप्रमूढाः स्थिताः सर्वे प्रापद्यंत न किंचन॥२५॥
ततस्तेषु प्रमूढेषु काव्यस्तान्पुनरब्रवीत्। आचार्यो यो ह्ययं काव्यो देवाचार्योऽयमंगिराः॥२६॥
अनुगच्छत मां सर्वे त्यजतैनं बृहस्पतिम्। एवमुक्ते तु ते सर्वे तावुभौ समवेक्ष्य च॥२७॥
तदाऽसुरा विशेषं तु न व्यजानंस्तयोर्द्वयोः। बृहस्पतिरुवाचैनामं भ्रांतोऽयमंगिराः॥२८॥
काव्योऽहं वो गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः। संमोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः॥२९॥
श्रुत्वा तस्य वचस्ते वै संमंत्र्याथ वचोऽब्रुवन्। अयं नो दशवर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः॥३०॥

तब उन्होंने अपने यजमानों दैत्यों की देखभाल करने की बुद्धि बनायी।।१९½।। शुक्र ने देवी जयन्ती से कहा कि हे देवि! हे पवित्र मुस्कान वाली, मटकती हुई आँखों वाली, सुन्दर प्रेक्षणे मैं अब तुम्हारे यजमानों को देखने के लिये जाना चाहता हूँ। शुक्राचार्य ने जब यह कहा, तब जयन्ती ने कहा कि हे महाव्रत! आप अपने भक्तों की सेवा कीजिये। हे ब्रह्मन्! यह सज्जनों का धर्म है, मैं आपके इस धर्म को नष्ट नहीं करूँगी।।१९½-२१।।

सूत जी बोले—कि जब शुक्राचार्य ने असुरों के पास जाकर देखा कि बुद्धिमान् देवगुरु वृहस्पति ने शुक्राचार्य का रूप धारण कर असुरों को धोखा दिया है, तब उन्होंने असुरों से कहा कि ये अंगिरा के पुत्र बृहस्पति हैं, आपको धोखा दे रहे हैं। तुम लोगों का आचार्य शुक्राचार्य मैं हूँ, मुझे पहचानो।।२३।। मेरे अन्यक्त आसक्त हो जाने पर तुम लोग निश्चित ही ठगे गये हो।।२३½।। शुक्राचार्य के ऐसा कहने पर असुर लोग किंकर्तव्यविमूढ हो गये।।२४।। जब उन दैत्यों ने वहाँ सामने खड़े हुए पवित्र मुस्कराते हुए उन दोनों गुरुओं को अच्छी तरह से देखा, तो उसी तरह से इस भ्रम में पड़ गये कि ये शुक्राचार्य हैं अथवा ये हैं। इस प्रकार वे दैत्यगण निश्चय पर नहीं पहुँच सके।।२५।। उसके बाद भ्रम में पड़े हुये उन दैत्यों से शुक्राचार्य पुनः बोले कि अरे दैत्यो! आपका आचार्य तो यह मैं शुक्राचार्य हूँ। यह तो देवताओं के आचार्य वृहस्पति हैं।।२६।। आप लोग मेरा अनुसरण करो और इस बृहस्पति को छोड़ो। शुक्राचार्य के ऐसा कहने पर वे सब असुर उन दोनों को अच्छी तरह देखकर उन दोनों के विषय में कोई विशेष जानकारीनहीं प्राप्त कर सके। बृहस्पति से उनसे कहा कि यह पूरी तरह से बृहस्पति हैं, मैं ही दैत्यों का गुरु बृहस्पति हूँ। यह मेरे रूप में बृहस्पति हैं। अरे असुरो! यह मेरे रूप से तुम लोगों को सम्मोहित कर रहा है।।२७-२९।। इस प्रकार शुक्राचार्य रूपधारी उन बृहस्पति के वचन को सुनकर आपस में विचार करके वे असुर असली शुक्राचार्य से

एष वै गुरुरस्माकमंतरेप्सुरयं द्विजः। ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिवाद्य च॥३१॥
वचनं जगृहुस्तस्य विद्याभ्यासेन मोहिताः। ऊचुस्तमसुराः सर्वे क्रुद्धाः संरक्तलोचनाः॥३२॥

अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः।
भार्गवोंऽगिरसो वाऽयं भवत्वेषैव नो गुरुः॥३३॥
स्थता वयं निदेशेऽस्य गच्छ त्वं साधु मा चिरम्।
एवमुक्त्वा सुराः सर्वे प्रापद्यंत बृहस्पतिम्॥३४॥

यदा न प्रतिपद्यंते तेनोक्तं तन्महद्धितम्। चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन वै तदा॥३५॥
बोधिताऽपि मया यस्मान्न मां भजत दानवाः। तस्मात्प्रणष्टसंज्ञा वै पराभवमवाप्स्यथ॥३६॥

इति व्याहृत्य तान्काव्यो जगामाथ यथागतम्।
शप्तांस्तानसुराञ्ज्ञात्वा काव्येन तु बृहस्पतिः॥३७॥

कृतार्थः स तदा हृष्टः स्वरूपं प्रत्यपद्यत। बुद्ध्वाऽसुरांस्तदा भ्रष्टान्कृतार्थोऽतर्द्धिमागमत्॥३८॥
ततः प्रनष्टे तस्मिंस्ते विभ्रांता दानवास्तदा। अहो धिग्वंचिताः स्नेहात्परस्परमथाब्रुवन्॥३९॥
धर्मतोऽविमुखाश्चैव कारिता वेधसा वयम्। दग्धाश्चैवोपधायोगात्स्वेस्वे कार्ये तु मायया॥४०॥
ततोऽसुराः परित्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययुः। प्रह्लादमग्रतः कृत्वा काव्यस्यानुगमं पुनः॥४१॥

बोले कि ये प्रभु हमें दश वर्षों तक लगातार शिक्षा दे रहे हैं। यह ही निश्चय रूप से हमारे गुरु हैं।।३०-३०½।। यह ब्राह्मण हमारे अन्दरूनी भेदों को जानने के लिये यहाँ आया है। उसके बाद उन नकली गुरु विद्याभ्यास से मोहित उन सब दानवों ने उनको प्रणाम और अभिवादन कर उनके वचन को स्वीकार कर लिया और फिर वे सब असुर क्रोध से लाल लाल आँखें करके उन शुक्राचार्य से बोले।।३०½-३२।।ये ही हमारे गुरु हैं, तुम जाओ, तुम हमारे गुरु नहीं हो। ये चाहे शुक्राचार्य हों अथवा बृहस्पति हों, जो भी हों, अब तो यही हमारे गुरु हैं।।३३।। अब हम इन्हीं के आदेश में स्थित हैं, तुम यहाँ से चले जाओ। देर मत करो। इस प्रकार कहकर सब असुर बृहस्पति के पास चले आये।।३४।। जब शुक्राचार्य की हितकारिणी बातों को सुनकर तथा उनकी अवज्ञा कर जब असुरगण नहीं गये, तब शुक्राचार्य उनके घमण्ड पर बहुत क्रोधित हो गये।।३५।। और बोले कि अरे दानवो! मेरे समझाने पर भी तुम लोगों ने मेरी बात को नहीं माना। अतः तुम लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगी और फिर तुम सब पराजय को प्राप्त होगे।।३६।।

इसके बाद उन दानवों को यह बात कहकर शुक्राचार्य अपने आश्रय स्थान को चले गये। उधर शुक्राचार्य द्वारा दानवों को शापित जानकर अपने उद्देश्य में सफल बृहस्पति बहुत प्रसन्न हुए और फिर अपने वास्तविक स्वरूप में आ गये। जब उन्होंने समझ लिया कि असुरगण अपने कार्यसिद्धि में विफल हो चुके हैं, तब वे अपने को कृतकार्य में सफल समझकर अन्तर्धान हो गये।।३७-३८।। उसके बाद उन शुक्राचार्य बने हुए बृहस्पति के अन्तर्धान हो जाने पर सब असुर बहुत व्याकुल हो गये तथा स्वयं को धिक्कारने लगे धिक् करते हुए यह परस्पर बोलने लगे कि हम लोग से प्रेम के कारण ठगे गये हैं।।३९।। वे कहने लगे कि हमलोग अपने धर्म से विमुख हो गये। इसलिये यह ब्रह्मा ने हमें दण्ड दिया है। अपने कार्य की सफलता के लिए देवगुरु ने हमें माया द्वारा छल लिया, हमलोग मारे गये।।४०।। उसके बाद देवताओं से परित्रस्त होकर असुरगण शीघ्र ही भाग खड़े हुए, तब प्रह्लाद को आगे करके

ततः काव्यं समासाद्य ह्यभितस्थुरवाङ्मुखाः।
तानागतान्पुनर्द्रष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह॥४२॥
मया संबोधिताः काले यतो मां नाभ्यनंदथ। ततस्तेनावलेपेन गता यूयं पराभवम्॥४३॥
प्रह्लादस्तमथोवाच मा नस्त्वं त्यज भार्गव।
स्वान्याज्यान्भजमानांश्च भक्तांश्चैव विशेषतः॥४४॥
त्वय्यदृष्टे वयं तेन देवाचार्येण मोहिताः। भक्तानर्हसि नस्त्रातुं ज्ञात्वा दीर्घेण चक्षुषा॥४५॥
यदि नस्त्वं न कुरुषे प्रसादं भृगुनन्दन। अपध्याताःस्त्वया ह्यद्य प्रवेक्ष्यामो रसातलम्॥४६॥

सूत उवाच

ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्येन महीयसा।
एवं शुक्रोऽनुनीतः संस्ततः कोपं न्यवर्त्तयत्॥४७॥
उवाचेदं न भेतव्यं गंतव्यं न रसातलम्। अवश्यंभावी ह्यर्थोऽयं प्राप्तो वो मयि जाग्रति॥४८॥
न शक्यमन्यथाकर्त्तुं दिष्टं हि बलवत्तरम्। संज्ञा प्रनष्टा या चेयं कामं तां प्रतिलप्स्यथ॥४९॥
प्राप्तः पर्यायकालो वा इति ब्रह्माभ्यभाषत।
मत्प्रसादाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्ज्जितम्॥५०॥
युगाख्या दश संपूर्णा देवानाक्रम्य मूर्द्धनि। तावंतमेव कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत॥५१॥
सावर्णिके पुनस्तुभ्यं राज्यं किल भविष्यति। लोकानामीश्वरो भावी पौत्रस्तव पुनर्बलिः॥५२॥

पुनः शुक्राचार्य के पास गये।।४१।। और अधोमुख हो खड़े हो गये। शुक्राचार्य ने अपने यजमानों को पुनः अपनी शरण में आया देखकर कहा।।४२।। दैत्यो! ठीक समय पर मैंने तुम लोगों को समझाया वुझाया था; परन्तु तुम लोगों ने मेरी एक नहीं सुनी। इसलिये अपने घमण्ड के कारण तुम पराभव को प्राप्त हो रहे हो।।४३।। उसके बाद प्रह्लाद ने शुक्राचार्य से कहा कि शुक्रदेव! अब आप क्रोध को छोड़ दीजिये। ये अपने यजमानों विशेषतः भक्तों की रक्षा कीजिये। हे भृगुनन्दन यदि आप हम लोगों की रक्षा नहीं करेंगे, तो हम सब अपमानित होकर फिर रसातल को जा रहे हैं।।४४-४६।।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! दैत्यों ने जब इस प्रकार निवेदन किया तो शुक्राचार्य को सब बातें सही सही ज्ञात हो गयीं और फिर उनका क्रोध शान्त हो गया और असुरों पर उन्हें दया आ गयी।।४७।। तब उन्होंने असुरों से कहा कि डरो मत, रसातल मत जाओ; किन्तु यह जो हुआ, वह तो अवश्यम्भावी है तथा यह तो मेरे प्रयत्नशील होने पर भी होना ही था।।४८।। अदृष्ट बलवान् होता है, उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता। तुम लोगों की बुद्धि भ्रष्ट होने का जो मैंने शाप दिया है, उसे तो अवश्य ही भोगना होगा।।४९।। आप लोगों के समाप्त होने का समय आ गया है, यह ब्रह्मा ने कहा है अर्थात् यह विधि का विधान है। मेरी कृपा से तुम लोगों ने त्रैलोक्य की सभी समृद्धियों को उपभोग किया है।।५०।। देवों के सिरपर आक्रमण कर राज्य प्राप्त किये हुए तुम लोगों के दश युग बीत चुके। उतने ही समय तक का राज्य ब्रह्मा ने तुम लोगों के लिये कहा है।।५१।। सावर्णिक मन्वन्तर में पुनः तुम्हें निश्चय

एवं कालमयं प्रोक्तः पौत्रस्ते ब्रह्मणा स्वयम्।
तथाहृतेषु लोकेषु न शोको न किलाभवत्॥५३॥
यस्मात्प्रवृत्तयश्चास्य न कामैरभिसंधिताः। तस्मादजेन प्रीतेन दत्तं सावर्णिकेंतरे॥५४॥
देवराज्यं बलेर्भाव्यमिति मामीश्वरोऽब्रवीत्।
तस्माददृश्यो भूतानां कालाकांक्षी स तिष्ठति॥५५॥
प्रीतेन चामरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयंभुवा। तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायं सहसाकुलः॥५६॥
न च शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद्वै विसर्पितुम्।
ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽस्मि भविष्यं जानता प्रभो॥५७॥
इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं तुल्यावेतौ बृहस्पतेः दैवतैः सह संरब्धान्सर्वान्वो धारयिष्यतः॥५८॥

सूत उवाच

एवमुक्तास्तु दैतेया काव्येनाक्लिष्टकर्मणा। ततस्ताभ्यां ययुः सार्द्धं प्रह्लादप्रमुखास्तदा॥५९॥
अवश्यभाव्यमर्थं तं श्रुत्वा दैतेयदानवाः। सहसा शंसमानास्ते जयं काव्येन भाषितम्॥६०॥
दंशिताः सायुधाः सर्वे ततो दोवान्समाह्वयन्।
अथ देवासुरान्दृष्ट्वा संग्रामे समुपस्थितान्॥६१॥

ही राज्य की प्राप्ति होगी। उस समय तुम्हारा पौत्र बलि समस्त लोकोंका स्वामी होगा।।५२।। ये सब बातें कि 'तुम्हारा पौत्र होगा' स्वयं ब्रह्मा जी ने तुम्हारे पौत्र से कही है, इसलिये मैं जो कह रहा हूँ, वह अवश्य होकर रहेगा। तुम्हारे पुत्र बलि से समस्त लोक छिन जायेंगे, उसे उसमें कोई शोक नहीं होगा; परन्तु जिस कारण से उनकी प्रवृत्तियां सब कामनाओं से रहित एवं परार्थपूर्ण होंगी, इसलिए अजन्मा ब्रह्मा प्रसन्न होकर उन्हें सावर्णिक मन्वन्तर में अमरत्व प्रदान करेंगे।।५३-५४।। देवताओं का समस्त राज्य बलि का होगा, ऐसा मुझसे ब्रह्मा जी ने कहा है, इसलिये सब प्राणियों से अदृश्य होकर वह काल का आकांक्षा करने वाला वह बलि प्रतीक्षा कर रहा है, अतः इस समय तुम समय की प्रतीक्षा करो।।५५।। प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने तुम्हें अमरत्व प्रदान किया है; इसलिये तुम लोग विना किसी इच्छा के समय की प्रतीक्षा करो और व्याकुल होकर अपने पराभव को सहन करो।।५६।। मैं तुम्हारी समय से पहले किसी प्रकार की रक्षा नहीं कर सकता; क्योंकि भविष्य की घटनाओं को जानने वाले प्रभु ब्रह्मा जी ने इस विषय में मुझे कुछ कहने से रोका है।।५७।। बृहस्पति के शिष्य देवता लोग और हमारे शिष्य तुम लोग दोनों ही हमारे लिये यद्यपि समान हो, फिर भी युद्धभूमि में देवताओं के लड़ने में हम आप लोगों की सहायता करेंगे।।५८।।

सूत जी बोले—अपने यजमानों के कठोर कर्मों को आसान बनाने वाले शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर प्रह्लाद प्रमुख दैत्यगण उन दोनों दानवोंऔर देवताओं के पास गये।।५९।। 'होनी तो होकर रहे मेट सके ना कोय' ऐसा अच्छी तरह सोच-विचार कर दैत्य और दानवों ने सोचा कि शुक्राचार्य ने तो हमलोगों को एक बार विजय की बात कही ही है, अतः युद्ध ही क्यों न किया जाये, ऐसा निश्चय कर उन सबने अस्त्र शस्त्र धारण कर युद्ध के लिए देवों को ललकारा। इसके बाद जब देवताओं ने असुरों को युद्ध के लिए तैयार देखा, उसके बाद देवता भी अस्त्र शस्त्रादि से पूरी तरह तैयार होकर युद्ध करने के लिये आ गये और घोर युद्ध करने लगे। उसके बाद वह देवों और

ततः संवृतसन्नाहा देवास्तान्समयोधयन्। देवासुरे ततस्तस्मिन्वर्त्तमाने शतं समाः।
अजयंतासुरा देवान्नग्ना देवा अमंत्रयन्॥६२॥

देवा ऊचुः

षंडामर्कप्रभावेण जिताः स्मस्त्वसुरैर्वयम्।
तस्माद्यज्ञं समुद्दिश्य कार्यं चात्महितं च यत्॥६३॥
यज्ञेनोपाह्वयिष्यामस्ततो जेष्यामहेऽसुरान्। अथोपामन्त्रयन्देवाः षंडामर्कौ तु तावुभौ॥६४॥
यज्ञे चाहूय तौ प्रोक्तौ त्यजंतामसुरा द्विजौ॥६५॥
ग्रहं तु वां ग्रहीष्यामो ह्यनुजित्य तु दानवान्। एवं तत्यजतुस्तौ तु षंडामर्कौ तदा सुरान्॥६६॥
ततो देवा जयं प्राप्ता दानवाश्च पराभवम्। देवासुरान्पराभाव्य षंडामर्कावुपागमन्॥६७॥
काव्यशापाभिभूताश्च अनाधाराश्च ते पुनः। बाध्यमानास्तदा देवैर्विविशुस्ते रसातलम्॥६८॥
एवं निरुद्यमानास्ते वै कृता शक्रेण दानवाः। ततः प्रभृति शापेन भृगुनैमित्तिकेन च॥६९॥
यज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्यज्ञेऽथ शिथिले प्रभुः। कर्तुं धर्मव्यवस्थानमधर्मस्य प्रणाशनम्॥७०॥
प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽसुरा न व्यवस्थिताः। मनुष्यवध्यांस्तान्सर्वान्ब्रह्मा व्याहरत प्रभुः॥७१॥
धर्मान्नारायणस्तस्मात्संभूतश्चाक्षुषंतरे। यज्ञं प्रवर्त्तयामास वैन्यो वैवस्वतेंतरे॥७२॥
प्रादुर्भावे तु वैन्यस्य ब्रह्मैवासीत्पुरोहितः। चतुर्थ्यां तु युगाख्यायामापन्नेषु सुरेष्वथ॥७३॥

असुर के बीच होने वाला वह भीषण युद्ध सौ वर्ष तक चला। अन्त में असुरों ने देवताओं पर विजय प्राप्त की, तब हारे हुए देवों ने आपस में मंत्रणा (विचार-विमर्श) किया।।६०-६२।।

देवों ने कहा कि हम लोग असुरों की सहायता करने वाले षण्ड और अमर्क के प्रभाव से असुरों ने जीत लिये हैं। इसलिये यज्ञ करके हम लोग अपने उद्देश्य को पूरा करें और अपना कल्याण करें।।६३।। यज्ञ के द्वारा हम इन असुरों को बहकाकर हम असुरों को जीत लेंगे। देवों ने इस प्रकार विचार कर उन दोनों षण्ड और अमर्क को आमन्त्रित किया।।६४।। यज्ञ में आने पर देवों ने उन दोनों से अनुरोध किया कि हे द्विजवर्य आप असुरों को छोड़ दीजिये।।६५।। हम लोग दानवों को जीतकर हम उन्हें फिर ग्रहण कर सकते हैं। देवों ने जब इस प्रकार कहा तो षण्ड और अमर्क ने असुरों को छोड़ दिया।।६६।। फलस्वरूप देवता लोग जीत गये। दानवों की पराजय हो गयी। देवता लोग असुरों को पराजित करने के बाद देवों के पास आये।।६७।। शुक्राचार्य के शाप से अभिभूत वे सब दानव तब देवताओं द्वारा पीड़ित होकर रसातल को चले गये। इन्द्र ने इस प्रकार उन दानवों को अपनी बुद्धिमत्ता से अकर्मण्य बना दिया।।६८-६८½।। उसी समय से लेकर भृगु के उसी शाप के कारण जब जब यज्ञों का ह्रास होने लगता है तथा धर्म की शिथिलता होने लगती है, तब तब भगवान् विष्णु धर्म की व्यवस्था एवं अधर्म के नाश के लिये जन्म धारण करते हैं।।६८½-६९।। चाक्षुष मन्वन्तर में जो असुर प्रह्लाद की आज्ञा में स्थित नहीं थे, मनुष्यों द्वारा मारे जा सकते थे, उन सबका विनाश करने के लिये भगवान् ब्रह्मा ने इस प्रकार बतलाया है कि उनके विनाश के लिये भगवान् नारायण का जन्म हो जाता है। वैवस्वत मन्वन्तर में वैन्य (राजा वेन पुत्र पृथु) ने इसी प्रकार यज्ञों का प्रवर्तन किया।।७०-७२।। पृथु के उस यज्ञ में स्वयं ब्रह्मा पुरोहित थे। चतुर्थ युग में देवताओं के आपत्तिग्रस्त हो

संभूतः स समुद्रांतर्हिरण्यकशिपोर्वधे। द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रौद्रः सुतपुरस्सरः॥७४॥
यजमानं तु दैत्येंद्रमदित्याः कुलनंदनः। द्विजो भूत्वा शुभे काले बलिं वैरोचनं जगौ॥७५॥
त्रैलोक्यस्य भवान्राजा त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। दातुमर्हसि मे राजन्विक्रमांस्त्रीनिति प्रभुः॥७६॥
ददामीत्येव तं राजा बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत्। वामनं तं च विज्ञाय ततोऽदान्मुदितः स्वयम्॥७७॥
स वामनो दिवं खं च पृथिवीं च द्विजोत्तमाः। त्रिभिः क्रमैर्विश्वमिदं जगदाक्रामत प्रभुः॥७८॥
अत्यरिच्यत भूतात्मा भास्करं स्वेन तेजसा। प्रकाशयन्दिशः सर्वाः प्रदिशश्च महायशाः॥७९॥
शुशुभे स महाबाहुः सर्वलोकान्काशयन्। आसुरीं श्रियमाहृत्य त्रींल्लोकांश्च जनार्द्दनः॥८०॥
स पुत्रपौत्रानसुरान्पातालतलमानयन्। नमुचिः शंबरश्चैव प्रह्लादश्चैव विष्णुना॥८१॥
क्रूरा हता विनिर्धूता दिशः संप्रतिपेदिरे। महाभूतानि भूतात्मा सविशेषाणि माधवः॥८२॥
बलिं च सबलं विप्रास्तत्राद्भुतमदर्शयत्। तस्य गात्रे जगत्सर्वमात्मानमनुपश्यति॥८३॥
न किंचिदस्ति लोकेषु यदव्याप्तं महात्मना। तद्वै रूपमुपेन्द्रस्य देवदानवमानवाः॥८४॥
दृष्ट्वा संमुमुहुः सर्वे विष्णुतेजोविमोहिताः। बलिः सितो महापाशैः सबंधुः ससुहृद्गणः॥८५॥

जाने पर वे नारायण विष्णु हिरण्यकशिपु को मारने के लिये समुद्र के मध्यभाग में उत्पन्न हुए, उसके बाद हिरण्यकशिु के वध के लिये हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद के आगे भीषण नरसिंह रूप धारण कर उन्होंने दूसरा अवतार लिया।।७३-७४।। उसके बाद अदिति के कुलनन्दन भगवान् विष्णु यज्ञ के शुभकाल में ब्राह्मण का वेष धारण करके दैत्यों के राजा विरोचन पुत्र बलि के पास गये।।७५।। तब उन्होंने राजा बलि से कहा कि आप तीनों लोकों के राजा हैं, त्रिलोकी का सब कुछ तुम पर प्रतिष्ठित है। सुना है, तुम बहुत बड़े दानी हो, अतः हे राजन्! आप मुझे तीन कदम राज्य दे सकते हो।।७६।। इस पर राजा बलि ने कहा, मैं आपको अवश्य दूँगा। उस राजा बलि ने उन वामन रूपधारी विष्णु को आकृति में छोटा जानकर कहा था तथा प्रसन्न होकर राजा बलि ने तीन पग भूमि देने की स्वयं प्रतिज्ञा कर दी।।७७।। उस वामन ने तीन कदमों में स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी तीनों लोकों को नाप लिया। सर्वसमर्थ प्रभु ने तीन पगों में ही इस समस्त जगत् को आक्रान्त कर लिया।।७८।।

समस्त प्राणियों की आत्मा प्रभु ने अपने तेज से समस्त दिशाओं उपदिशाओं को प्रकाशित करते हुए सूर्य को भी नींचा कर दिया।।७९।। उस समय वे महाबाहु जनार्दन असुरों की तीनों लोकों की राज्यलक्ष्मी को छीनकर समस्त लोकों को प्रकाशित करते हुए सुशोभित हुए थे।।८०।। फिर उन महात्मा विष्णु ने नमुचि, शंबर और प्रह्लाद को उनके पुत्र पौत्रों सहित सभी असुरों को रसातल में पहुँचा दिया।।८१।। उस समय क्रूर दैत्यों को उन विष्णु ने मार डाला और कितने को भय से कम्पित कर दिशाओं में भगा दिया था। समस्त प्राणिवर्ग की आत्मा उन प्रभु ने इस प्रकार समस्त जीवों को सुखी कर दिया।।८२।। सबल बलि को छलकर उन्होंने समस्त ब्राह्मणों का अपने अद्भुत रूप दिखाया था। उस समय समस्त ब्राह्मणों ने उनके शरीर में समस्त चराचर जगत् को तथा स्वयं को भी देखा था।।८३।। उन महात्मा विष्णु से तीन लोकों में कुछ भी अव्याप्त नहीं अर्थात् उन भगवान् का रूप देव दानव सभी में व्याप्त है तथा सभी उनमें व्याप्त हैं। उन भगवान् विष्णु के तेज से देव दानव सभी मोहित हो गये। तब उन्होंने राजा बलि को उसके बन्धुओं और मित्रगणों के साथ समस्त विरोचन कुल को महापाशों से बाँधकर पाताल में पहुँचा

विरोचनकुलं सवरं पाताले सन्निवेशितम्। ततः सर्वामरैश्वयं दत्त्वेंद्राय महात्मने॥८६॥
मानुषेषु महाबाहुः प्रादुरास जनार्द्दनः। एतास्तिस्त्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः संभूतयः शुभाः॥८७॥
मानुष्यः सप्त यास्तस्य साग्रगास्ता निबोधत। त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह॥८८॥
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कंडेयपुरःसरः। पंचमः पंचदश्यां तु त्रेतायां संबभूव ह॥८९॥
मांधाता चक्रवर्त्तित्वे तस्योतथ्यः पुरस्सरः। एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रांतकृद्विभुः॥९०॥
जामदग्न्यस्तदा षष्ठे विश्वामित्रपुरस्सरः। चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा॥९१॥
सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः। अष्टमो द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात्॥९२॥
वेदव्यासस्ततो जज्ञे जातूकर्ण्यपुरस्सरः। तथैव नवमे विष्णुरदित्याः कश्यपात्मजः॥९३॥
देवक्यां वसुदेवात्तु जातो गार्ग्यपुरस्सरः। अप्रमेयोऽनियोगश्च यतकामचरो वशी॥९४॥
क्रीडते भगवाँल्लोके बालः क्रीडनकैरिव। न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽसौ मधुसूदनः॥९५॥
परं ह्यवरमेतस्माद्विश्वरूपान्न विद्यते। अष्टाविंशतिके तद्वद्द्वापरस्याथ संक्षये॥९६॥
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः। कर्त्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्।
मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया॥९७॥

दिया। उसके बाद समस्त ऐश्वर्य महात्मा इन्द्र को प्रदान कर दिया।।८४-८६।। वे जनार्दन महाबाहु विष्णु मनुष्य योनियों में भी अवतरित हुए थे। उनकी ये उपर्युक्त तीन दिव्य एवं शुभ उत्पत्तियां देवयोनि स्मरण की गयी हैं।।८७।। मनुष्य योनि में उन महात्मा प्रभु विष्णु की सात सम्भूतियां समझिये। दशवें त्रेतायुग में वे दत्तात्रेय के रूप में अवतरित हुए थे।।८८।। संसार में धर्म के नष्ट हो जाने पर मार्कण्डेय के साथ उनका दत्तात्रेय के रूप में चौथा अवतार था। पन्द्रहवें त्रेतायुग में उनका पाँचवा अवतार हुआ। उस समय चक्रवर्ती राजा मान्धाता को आगे करके उनका वह अवतार हुआ था।।८९½।। उन्नीसवें त्रेतायुग के छठे अवतार जमदग्नि के पुत्र परशुराम के रूप में उनका सब क्षत्रियों का नाश करने वाले के रूप में अवतार हुआ। चौबीसवें त्रेतायुग में विश्वामित्र को आगे कर वशिष्ठ को पुरोहित बनाकर रावण का अन्त करने के लिये राजा दशरथ के पुत्र राम के रूप में उन विष्णु का सातवां अवतार हुआ।।८९½-९१½।। इसी प्रकार अट्ठाईसवें द्वापर युग में भगवान् विष्णु ने जातुकर्ण के साथ महर्षि पाराशर के संयोग से महामुनि वेदव्यास के रूप में आठवां अवतार धारण किया था।।९१½-९२½।। इसी प्रकार नवीं बार देवकी के गर्भ में कश्यप स्वरूप वसुदेव के पुत्र होकर ब्रह्मा और गार्ग्य के साथ भगवान् विष्णु ने अवतार धारण किया था।।९२½-९३½।। इस प्रकार वे भगवान् अप्रमेय अर्थात् वे किसी प्रमाण से नहीं जाने जा सकते तथा अनियोग है, अर्थात् किसी स्त्री पुरुष के योग से उत्पन्न नहीं होते तथा वे इच्छानुसार यत्र-तत्र सर्वत्र विचरण करने वाले हैं तथा वे भगवान् इस लोक में बालकों के खेलों के समान अनेकों प्रकार की क्रीडायें करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार बालक खिलौनों से खेलते हैं, उसी प्रकार क्रीड़ा करते हैं।।९३½-९४½।। उन मधुसूदन भगवान् किसी भी प्रकार यथार्थ अनुभव नहीं किये जा सकते। अर्थात् उनके यथार्थ रूप को किसी भी प्रकार नहीं जाना जा सकता।।९४½-९५½।। यह समस्त विश्व उन्हीं से व्याप्त है तथा वे इससे भी परे हैं। स्वरूप में इनके समान कोई नहीं है।।९५½-९६½।। अट्ठाईसवें द्वापर युग के अन्त में जब धर्म नष्ट हो गया था, तब प्रभु विष्णु ने धर्म व्यवस्था करने के लिये तथा असुरों का नाश करने के लिये वृष्णि

प्रविष्टो मानुषीं योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम्॥९८॥
विहारार्थं मनुष्येषु सांदीपनिपुरस्सरः। यत्र कंसं च शाल्वं च द्विविदं च महासुरम्॥९९॥
अरिष्टं वृषभं चैव पूतनां केशिनं हयम्। नागं कुवलयापीडं मल्लं राजगृहाधिपम्॥१००॥
दैत्यान्मानुषदेहस्थान्सूदयामास वीर्यवान्। छिन्नं बाहुसहस्त्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणा॥१०१॥
नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः। हतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा॥१०२॥
कुरुवीराश्च निहताः पार्थिवा ये रसातले। एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः॥१०३॥
अस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याशिष्टे भविष्यति।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान्॥१०४॥
दशमो भाव्यसंभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः। अनुकर्षन्स वै सेनां हस्त्यश्वरथसंकुलाम्॥१०५॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्त्रशः। नात्यर्थं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विषः क्वचित्॥१०६॥
उदीच्यान्मध्यदेशांश्च तथा विंध्या परांतिकान्।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह॥१०७॥
गांधारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनाञ्छकान्। तुबराञ्छबरांश्चैव पुलिंदान्बरदान् वसान्॥१०८॥
लंपाकानांधकान्रुंड्रान्किरातांश्चैव स प्रभुः। प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामन्तकृद्बली॥१०९॥
अदृश्यः सर्वभूतानां पृथिवीं विचरिष्यति। मानवः स तु संजज्ञे देवसेनस्य धीमतः॥११०॥

कुल में जन्म ग्रहण किया था।।९६½-९७।। उस समय वे योगात्मा अपनी योग माया से सभी प्राणियों को मोहित करते हुए मनुष्य योनि में प्रविष्ट हुये और स्वतन्त्र होकर पृथ्वी पर विचरण कर रहे थे। उस समय मनुष्यों में विहार करने के लिये सांदीपनि को साथ में लेकर जहाँ उन्होंने कंस, शाल्व, द्विविद, महासुर, अरिष्ट, वृषभ, पूतना, केशी, हयासुर, नाग, कुबलयापीड, मल्ल, राजगृहाधिपति, जरासंध आदि मानुष देह में उत्पन्न पराक्रमी दैत्यों को मारा था। उसी अवतार में उन्होंने महाबली बाणासुर की हजार भुजाओं को काट डाला था।।९८-१०१।। तथा युद्ध में महान् पराक्रमी कालयवन का वध किया था तथा बड़े-बड़े राजाओं के सब रत्नों को अपने तेज से हर लिया था।।१०२।। इसी अवतार में उन्होंने समस्त कुरुवंश के वीर राजाओं दुर्योधनादि को मारकर रसातल में पहुँचा दिया था। महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् के ये अवतार लोकरक्षा के लिये हुये थे।।१०३।। इसी युग में सन्ध्यांश में अर्थात् द्वापर और कलियुग मेल होने पर जबकि द्वापर युग का अन्त होगा और कलियुग का प्रारम्भ होगा पाराशर पुत्र प्रतापशाली विष्णुयशा याज्ञवल्क्य के साथ कल्कि नामक अवतार धारण करेंगे।।१०४।। उनका यह दशवां अवतार होगा। ये हाथी घोड़े और रथों से युक्त अनेकों प्रकार की शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित लाखों की संख्या में सेना लेकर ब्राह्मणों से संयुक्त होकर एक महान् विनाश उस समय वे जहाँ कहीं भी जो धार्मिक नहीं है अथवा जो धर्म से द्वेष करते हैं, उन सबको चाहे वे उत्तर दिशाओं में रहने वाले हों, मध्य पर्वत विन्ध्य के उस पार के रहने वाले हों अथवा बहुत दूर दक्षिण देश, द्रविणादि, सिंहल, गान्धार, पारद, पह्लव, यवन, शक, तुबर, शबर, बर्बर, पुलिन्द, खस, लम्बक, अन्ध्रक, रुद्र, किरात आदि हों, सब म्लेच्छों को वे भगवान् नष्ट कर देंगे और समस्त जीवों में अदृश्य होकर समस्त पृथ्वी तल पर विचरण करेंगे।।१०५-१०९½।। पूर्वजन्म में वे विष्णु पराक्रमी प्रमति के नाम से वर्तमान रहते हैं,

पूर्वजन्मनि विष्णुर्यः प्रमितिर्नाम वीर्यवान्। गोत्रेण वै चंद्रमसः पूर्णे कलियुगेऽभवत्॥१११॥
इत्येतास्तस्य देवस्य दक्षसंभूतयः स्मृताः। ततं कालं च कायं च तत्तदुद्दिश्य कारणम्॥११२॥

अंशेन त्रिषु लोकेषु तास्ता योनीः प्रपत्स्यते।
पंचविंशे स्थितः कल्पे पंचविंशत्स वै समाः॥११३॥

विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः। कृत्वा बीजावशेषां तु महीं क्रूरेण कर्मणा॥११४॥

शांतयित्वा तु वृषलान्प्रायशस्तान धार्मिकान्।
ततः स वै तदा कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः॥११५॥
कर्मणा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुनः स्वयम्।
अकस्मात्कुपितान्योन्यं भविष्यंति च मोहिताः॥११६॥

क्षपयित्वा तु तान्सर्वान्भाविनार्थेन चोदितः। गंगायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः॥११७॥
ततो व्यतीते कल्पे तु समाप्ते सहसैनिके। नृपेष्वथ विनिष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः॥११८॥
रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योन्यमाहवे। परस्परत्दृतस्वाश्च निरानंदाः सुदुःखिताः॥११९॥
पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यास्ता निष्परिग्रहाः। प्रनष्टश्रुतिधर्माश्च नष्टधर्माश्रमास्तथा॥१२०॥
ह्रस्वा अल्पायुषश्चैव भविष्यंति वनौकसः। सरित्पर्वतसेविन्यः पत्रमूलफलाशनाः॥१२१॥
चीरपत्राजिनधराः संकरं घोरमास्थिताः। अल्पायुषौ नष्टवार्ता बह्वबाधाः सुदुःखिताः॥१२२॥

वे ही देवताओं के अंश के रूप में मनुष्य योनि में अवतरित होते हैं। कलियुग के पूर्ण हो जाने पर चन्द्रमा के समान शरीर धारण कर वे ही भगवान् पैदा हुये थे। इस प्रकार उन भगवान् विष्णु के दश अवतार कहे गयेहैं। उस उस काल में जो जो कार्य करना है, उसके कारण को उद्देश्य बनाकर उनकी परिस्थितियों के अनुसार अंशावतार प्रभु विष्णु उन उन योनियों में जन्म लेंगे।।१०९½-११२½।। पच्चीसवें कल्प में पच्चीस वर्ष बीतने पर भगवान् समस्त प्राणियों जीवों का विनाश करते हुए मनुष्यों को पूर्णतः नष्ट करते हुए अपने क्रूर कर्म द्वारा पृथ्वी को बीजावशेष करके प्रायः उन अधार्मिक शूद्रों को शान्त कराकर सैनिकों सहित अपने कल्कि अवतार को चरितार्थ करेंगे।।११२½-११५।। उस समय की जो प्रजायें अपने कर्म द्वारा ही मर जाती हैं, फिर वे स्वयं पुनः सिद्ध होती हैं। अतः ये प्रवृत्ति उनमें स्वयं पैदा होगी, उसके बाद वे अकस्मात् मोहवश एक-दूसरे पर क्रोधित हो जायेंगी। भवितव्यता वश (होनहार) भावी प्रबल से वे भगवान् गृह कलह में निरत उन सब प्रजाओं का विनाश कर गंगा यमुना के मध्य में अनुचरों के साथ अपने इस घोर कर्म की समाप्ति करेंगे।।११६-११७।। उसके बाद उस पच्चीसवें कल्प के बीत जाने पर और सैनिकों के साथ सब राजाओं के नष्ट हो जाने पर प्रजायें गृहविहीन हो जायेंगी और अपनी रक्षा करने में भी असमर्थ हो जाने पर युद्ध में एक दूसरे को मारकर एक दूसरे का धन छीनकर आनन्दविहीन और बहुत अधिक दुःखित हो जायेंगी।।११८-११९।। तब वे नगरों और ग्रामों को छोड़कर गृहविहीन हो, वैदिक धर्म से च्युत हो जायेंगी तथा उनके वर्णाश्रम धर्म को नष्ट हो जायेंगे।।१२०।। तब मनुष्य बहुत छोटे और अल्पायु वाले होकर जंगलों में भाग जायेंगे और फिर नदियों पर्वतों में रहते हुए पत्ते मूल फल खाकर जीवन यापन करेंगे।।१२१।। वहाँ जंगलों में चीर,

एवं काष्ठामनुप्राप्ताः कलिसंध्यांशके तदा। प्रजाः क्षयं प्रयास्यंति सार्द्धं कलियुगेन तु॥१२३॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्प्रवृत्ते च कृते पुनः।
प्रपत्स्यन्ते यथान्यायं स्वभावादेव नान्यथा॥१२४॥
इत्येतत्कीर्त्तितं सर्वं देवासुरविचेष्टितम्। यदुवंशप्रसंगेन महद्वो वैष्णवं यशः॥१२५॥
तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्रुह्योरनोस्तथा॥१२६॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे विष्णुमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥७३॥

पत्र एवं मृगचर्म धारण करने वाली प्रजायें घोर संकर वर्ण की हो जायेंगीं। उनकी आयु बहुत कम हो जायेगी। उनके जीवन में अनेकों बाधाएँ पैदा हो जायेंगी तथा वे बहुत दुःखी हो जायेंगीं।।१२२।। इस प्रकार तब उस कलियुग के सन्ध्यांश में कलियुग के साथ प्रजायें नाश को प्राप्त होंगीं।।१२३।। फिर कलियुग के क्षीण होने पर तथा सतयुग के पुनः प्रवृत्त होने पर सारी वस्तुएँ स्वाभाविक रूप से अपनी अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त कर लेंगीं। अन्य किसी उपाय से यह नहीं होगा। जो जैसा कर्म किया है, उसका फल भोगना होगा, उसका अन्त किसी उपाय द्वारा नहीं होगा।।१२४।। इस प्रकार यह देवों और असुरों के संघर्ष का वर्णन किया जा चुका है। यदुवंश वर्णन के प्रसंग में भगवान् विष्णु का भी यश वर्णन किया गया।।१२५।। अब इसके बाद तुर्वसु, अनु द्रुह्यु और पुरुवंश का वर्णन किया जायेगा।।१२६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ७३वां अध्याय विष्णु माहात्म्य वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे मध्यभागे तृतीय उपोद्घातपादे

तुर्वस्वादिवंशवर्णनं नाम

चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः। गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसानुरपराजितः॥१॥
करंधमस्तु त्रैसानो मरुत्तस्तस्य चात्मजः। अन्यस्त्वाविज्ञितो राजा मरुत्तः कथितः पुरा॥२॥
अनपत्यो मरुत्तस्तु स राजाऽसीदिति श्रुतम्। दुष्कंतं पौरवं चापि स वै पुत्रमकल्पयत्॥३॥
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे पुरा। तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल॥४॥
दुष्कंतस्य तु दायादः सरूप्यो नाम पार्थिवः। सरूप्यात्तु तथांडीरश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः॥५॥

पांड्यश्च केरलश्चैव चोलः कुल्यस्तथैव च।
तेषां जनपदाः कुल्याः पांड्याश्चोलाः सकेरलाः॥६॥

द्रुह्योश्च तनयौ वीरो बभ्रुः सेतुश्च विश्रुतौ। अरुद्धः सेतुपुत्रस्तु बाभ्रवो रिपुरुच्यते॥७॥
यौवनाश्वेन समितौ कृच्छ्रेण निहतो बली। युद्धं सुमहदासीत्तु मासान्परिचतुर्दश॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद

अध्याय-७४

तुर्वसु आदि का वंश वर्णन

सूत जी बोले— कि राजा ययाति के पुत्र तुर्वसु, तुर्वसु के पुत्र वह्नि हुए, वह्नि के पुत्र गोभानु हुए, गोभानु के पुत्र किसी से पराजित न होने वाले त्रिसानु थे।।१।। त्रिसानु के पुत्र करन्धम थे और करन्धम के पुत्र मरुत् हुए। अन्य मरुत् नामक राजा भी प्राचीन काल में सुना जाता है, जिसके विषय में पूरी जानकारी नहीं है।।२।। वे करन्धम पुत्र राजा मरुत् सन्तानहीन थे। इसलिए दुष्कंत नामक पुरुवंशी को उनका पुत्र बनाया गया।।३।। जब तुर्वसु से राजा ययाति ने वृद्धावस्था आने पर आयु मांगी थी, आयु न देने के कारण उन्होंने तुर्वसु को सन्तानहीन होने का शाप दिया था। अतः राजा ययाति के शाप से तुर्वसु का वंश नष्ट हो गया और उनका वंश पौरव वंश में प्रविष्ट हो गया।।४।। दुष्कंत के उत्तराधिकारी सरूप्य नाम के राजा हुए। सरूप्य[1] से अण्डीर[2] राजा पैदा हुए। उनके चार पुत्र हुए।।५।।

उनके नाम हैं—पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य तथा उनके जनपद भी उन्हीं के नाम पर पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य थे।।६।। ययाति पुत्र द्रुह्यु के दो वीर पुत्र हुए, जिनके पुत्र बभ्रु और सेतु सुने गये हैं। सेतु के पुत्र अरुद्ध हुआ और बभ्रु के पुत्र रिपु हुये। युद्ध में बलशाली रिपु को यौवनाश्व ने मार डाला। वह युद्ध लगातार चौदह माह तक चला।।७-८।।

---

१. वायुपुराण सरूथ, २. वायुपुराण जनापीड

अरुद्धस्य तु दायादो गांधारो नाम पार्थिवः।
ख्यायते यस्य नाम्ना तु गांधारविषयो महान्॥९॥
गांधारदेशजाश्चापि तुरगा वाजिनां वराः। गांधारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्य सुतोऽभवत्॥१०॥
धृतस्य दुर्दमो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः। प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते॥११॥
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमास्थिताः।
अनोश्चैव सुता वीरास्त्रयः परमधार्मिकाः॥१२॥
सभानरः कालचक्षुः पराक्षश्चेति विश्रुताः। सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान्कालानलो नृपः॥१३॥
कालानलस्य धर्मात्मा सृंजयो नाम विश्रुतः। सृंजयस्याभवत्पुत्रो वीरो नाम्ना पुरंजयः॥१४॥
आसीदिंद्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशादिवि। महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः॥१५॥
सप्तद्वीपेश्वरो राजा चक्रवर्त्ती महायशाः। महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ॥१६॥
उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव धार्मिकम्। उशीनरस्य पत्न्यस्तु पंच राजर्षिवंशजाः॥१७॥
नृगा कृमी नवा दर्वा पंचमी च दृषद्वती। उशीनरस्य पुत्र्यस्तु पंच तासु कुलोद्वहाः॥१८॥
तपस्यतः सुमहतो जाता वृद्धस्य धार्मिकाः। नृगायास्तु नृगः पुत्रो नवाया नव एव तु॥१९॥
कृम्याः कृमिस्तु दर्वायाः सुव्रतो नाम धार्मिकः। दृषद्वती सुतश्चापि शिबिरौशीनरो द्विजाः॥२०॥
शिबे शिवपुरं ख्यातं यौधेयं तु नृगस्य च। नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिलापुरी॥२१॥

अरुद्ध के उत्तराधिकारी राजा गान्धार हुए, जिनके नाम से महान् गान्धार नामक देश प्रसिद्ध हो गया।।९।। गान्धार देश में उत्पन्न होने वाले घोड़े घोड़ों में बहुत ही श्रेष्ठ माने जाते हैं। गान्धार के पुत्र धर्म नामक राजा हुए तथा उनके पुत्र धृत हुए।।१०।। धृत के पुत्र दुर्दम उत्पन्न हुए, दुर्दम के पुत्र प्रचेता हुए तथा प्रचेता के सौ पुत्र हुए, जो सबके सब राजा थे।।११।। वे सभी उत्तर दिशा में म्लेच्छ राष्ट्रों के अधिपति थे। उधर अनु के तीन धार्मिक पुत्र हुए।।१२।। जिनके सभानर, कालचक्षु और पराक्ष ये नाम विशेषतः सुने गये हैं। सभानर के पुत्र विद्वान् राजा कालानल हुए।।१३।। कालानल के पुत्र धर्मात्मा सृञ्जय नाम के विशेष रूप से सुने गये हैं। सृञ्जय के वीर पुत्र पुरञ्जय नाम से हुए।।१४।।

पुरञ्जय के पुत्र राजा जनमेजय हुए। राजर्षि जनमेजय के पुत्र राजा महाशाल हुए। वे महाशाल राजा इन्द्र के समान स्वर्ग में भी प्रतिष्ठित यश वाले थे। उन महाशाल के पुत्र धार्मिक महामना हुए।।१५।। वे राजा महामना सात द्वीपों के स्वामी चक्रवर्ती सम्राट् हुए।।१५½।। उन राजा महामना ने धर्मज्ञ उशीनर और धार्मिक तितिक्षु दो प्रसिद्ध पुत्रों को उत्पन्न किया।।१५½-१६½।। उस राजा उशीनर की राजर्षि वंश में उत्पन्न पाँच पत्नियां थीं। उनके नाम थे— नृगा, कृमी, नवा, दर्वा और दृषद्वती।।१६½-१७½।। उन पाँचों पत्नियों के संयोग से राजा को पाँच कुल का उद्धार करने वाले पुत्र पैदा हुए। वे सभी के सभी परम तपस्वी, महात्मा एवं परम धार्मिक थे।।१७½-१८½।। नृगा का पुत्र नृग हुआ तथा नवा का पुत्र नव था।।१९।। कृमी का पुत्र कृमी था तथा दर्वा का पुत्र धार्मिक सुव्रत था। हे ऋषियों! पाँचवी दृषद्वती के पुत्र महाराजा शिवि थे। जो औशीनर शिवि के नाम से प्रसिद्ध थे।।२०।। उन महाराज

सुव्रतस्य तथांबष्ठा शिबिपुत्रान्निबोधत। शिबेस्तु शिबयः पुत्राश्चत्वारो लोकसंमताः॥२२॥
वृषदर्भः सुवीरस्तु केकयो मद्रकस्तथा। तेषां जनपदाः स्फीताः केकया मद्रकास्तथा॥२३॥
वृषदर्भाः सुवीराश्च तितिक्षो शृणुत प्रजाः। तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः॥२४॥
उशद्रथो महाबाहुस्तस्य हेमः सुतोऽभवत्। हेमस्य सुतपा जज्ञे सुतः सुतपसो बलिः॥२५॥
जातो मनुष्ययोन्यां वै क्षीणे वंशे प्रजेप्सया। महायोगी स तु बलिर्बद्धो यः स महामनाः॥२६॥
पुत्रानुत्पादयामास चातुर्वर्ण्यकरान्भुवि। अंगं स जनयामास वंगं सुह्यु तथैव च॥२७॥
युद्धं कलिंगं च तथा वालेयं क्षत्रमुच्यते। वालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः॥२८॥
बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन धीमतः। महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम्॥२९॥
संग्रामे वाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रभावतः। त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा॥३०॥
बलेश्चा प्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम्। चतुरो नियातन्वर्णांस्त्वं वै स्थापयितेति वै॥३१॥
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शांतिं परां ययौ। कालेन महता विद्वांन्स्वं च स्थानमुपागतः॥३२॥
तेषां जनपदाः स्फीता अंगवंगाश्च सुह्मकाः। पुंड्राः कलिंगाश्च तथा तेषां वंशं निबोधत॥३३॥
तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिसंभवाः। संभूता दीर्घतमसः सुदेष्णायां महौजसः॥३४॥

शिवि का पुर शिवपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ, नृग का पुर यौधेय कहा जाता है तथा राजा नव के नौ राष्ट्र थे और कृमि का राष्ट्र कृमिलापुरी था।।२१।। सुव्रत का राष्ट्र अम्बष्ट था, अब शिवि के पुत्रों को सुनिये।।२१½।। राजा शिवि के लोक सम्मत चार पुत्र हुए, वृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक। उनमें से केकय और मद्रक के जनपद उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुए।।२१½-२३।। तथा वृषदर्भ के नाम से वृषदर्भ और सुवीर के नाम से सौवीर राष्ट्र प्रसिद्ध हुए। अब राजा तितिक्षु की सन्तानों को सुनिये। तितिक्षु पूर्व दिशा में प्रसिद्ध राजा हुए।।२४।। उशद्रथ महापराक्रमी राजा के पुत्र राजा हेम हुए। राजा हेम के पुत्र महातपस्वी राजा बलि हुए।।२५।। ये राजा बलि क्षीण वंश होने पर सन्तान की इच्छा से मनुष्य योनि में पैदा हुए थे। ये महायोगी बलि, वही बलि थे, जिनको कि छल से वामन ने बाँध लिया था।।२६।। इस राजा बलि ने पृथ्वी पर चारों वर्णों की सृष्टि करने वाले पुत्रों को उत्पन्न किया था। उन्होंने अङ्ग, बङ्ग, सुह्न, नामक पुत्रों को जन्म दिया था, जिनके नाम पर ही प्रदेशों के नाम भी अंग, बंग, सुह्यु, पुण्ड्र और कलिङ्ग हुए।।२७।। उन महाराज बलि के वंशज क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों प्रकार के हैं, जिनमें युद्ध कलिङ्ग क्षत्रिय कहे जाते हैं और वालेय ब्राह्मण, उन प्रभु बालि के वंश को बढ़ाने वाले हैं।।२८।। बुद्धिमान् राजा बलि के धार्मिक कार्यों पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उनको महायोगी एक कल्प की दीर्घायुवाला, संग्राम में अजेय तथा धर्म में निष्ठा रखने वाला होने का वरदान दिया था।।२९।। इसके अलावा ब्रह्मा ने उन्हें समस्त त्रैलोक्य का दर्शन, सन्तानोत्पत्ति में प्रधानता, और संसार में उनके समान किसी का न होना तथा धर्मतत्त्व के अर्थ का चिन्तन करने वाला होने का वरदान दिया था तथा ब्रह्माजी ने कहा था कि तुम संसार में चारों वर्णों की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की स्थापना करने वाले होगे।।३०-३१।। इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा वर प्राप्त राजा बलि परम शान्ति को प्राप्त हुए। वरदान के अनुसार दीर्घकाल के बाद वे परम विद्वान् राजा बलि पुनः अपने स्थान को प्राप्त हुए।।३२।। बलि के उन पुत्रों के परम रमणीय देश उन्हीं के नाम पर अङ्ग, बङ्ग, सुह्नक, पुण्ड्र तथा कलिङ्ग हुए, अब उनके वंशजों को सुनिये।।३३।। उन राजा बलि

ऋषय ऊचुः

कथं बलेः सुताः पंच जनिताः क्षेत्रजाः प्रभो।
ऋषिणा दीर्घतमसा ह्येतत्प्रब्रूहि पृच्छताम्।।३५।।

सूत उवाच

उशिजो नाम विख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा।
भार्या वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः।।३६।।

उशिजस्य कनीयांस्तु पुरोधायो दिवौकसाम्। बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममतां सोऽभ्यपद्यत।।३७।।
उवाच ममता तं तु बृहस्पतिमनिच्छति। अतंर्वत्स्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्यास्य च भामिनी।।३८।।
अयं हि मे महान्गार्भो रोरवीति बृहस्पते। अजस्त्रं ब्रह्म चाभ्यस्य षडंगं वेदमुद्गिरन्।।३९।।
अमोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि। अस्मिन्नेव यथाकाले यथा वा मन्यसे विभो।।४०।।

एवमुक्तस्तया सम्यग्बृहत्तेजा बृहस्पतिः।
कामात्मानं महात्माऽपि नात्मानं सोऽभ्यधारयत्।।४१।।

संबभूवैव धर्मात्मा तथा सार्द्धं बृहस्पतिः। उत्सृजंतं तदा रेतो गर्भस्थः सोऽस्य भाषत।।४२।।
शुक्रं त्याक्षीश्च मा जीव द्वयोर्नेहास्ति संभवः। अमोघरेतास्त्वं वापि पूर्वं चाहमिहागतः।।४३।।

के ये पुत्र उनके क्षेत्रज पुत्र थे अर्थात् उनके वीर्य से उत्पन्न नहीं थे। उनके क्षेत्र अर्थात् उनकी पत्नी से उत्पन्न थे; परन्तु उन सबमें मुनियों का अंश था। जो तेजस्वी दीर्घतमा ऋषि के संयोग से बलिपत्नी सुदेष्णा में उत्पन्न हुए थे; क्योंकि उस समय विद्वान् और महान् पुरुषों के अंश से पुत्र को प्राप्त करने की परम्परा थी तथा ऐसे पुत्र स्त्री के पति के क्षेत्रज पुत्र माने जाते थे।।३४।।

ऋषियों ने पूँछा—प्रभो सूत जी राजा बलि के ये महापराक्रमी पाँचों पुत्र सुदेष्णा में दीर्घात्मा ऋषि से कैसे पैदा हुए और कैसे उनके क्षेत्रज पुत्र कहे गये? यह हम पूंछने वालों को बताइये।।३५।।

सूत जी बोले—कि ऋषियो! प्राचीनकाल में उशिज नाम के प्रसिद्ध बुद्धिमान् ऋषि थे। इन महात्मा ऋषि की ममता नाम की पत्नी थी।।३६।। उशिज के छोटे भाई परमतेजस्वी देव पुरोहित बृहस्पति थे, कामासक्त हो एक बार वे बृहस्पति ममता के पास गये।।३७।। उनके साथ रमण न करना चाहती हुई ममता ने उनसे कहा कि मैं तुम्हारे बड़े भाई उशिज के संयोग से गर्भवती हूँ।।३८।। हे बृहस्पते! यह हमारा महान् गर्भ लगातार ब्रह्मतेज से प्रकाशितहो रहा है तथा उस तेज से छः अंगों सहित वेदों का उच्चारण गर्भ में ही कर रहा है।।३९।। तुम अमोघ वीर्य वाले हो अतः ऐसी दशा में मेरे साथ सम्भोग नहीं कर सकते। इस समय के बीत जाने पर हे विभो! जैसे चाहो, वैसे रमण करना।।४०।। जब बृहस्पति से ममता ने इस प्रकार कहा तो कामान्ध बृहस्पति अपने को सम्भोग करने से नहीं रोक सके।।४१।। और उन्होंने ममता के साथ सम्भोग करना प्रारम्भ कर दिया। तब गर्भस्थ शिशु ने गर्भ के अन्दर से उनसे कहा कि आप वीर्य को मत छोड़िये; क्योंकि मैं यहाँ एक जीव पहले से ही हूँ तथा यहाँ पर दो जीव का रहना सम्भव नहीं है। आप अमोघ वीर्य वाले हैं अर्थात् आप का वीर्य भी निश्चित सन्तान पैदा करने वाला है तथा मैं यहाँ पर पहले से ही आया हुआ हूँ।।४२-४३।।

शशाप तं तदा क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः। उशिजस्य सुतं भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः॥४४॥
यस्मात्त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति। मामेवमुक्तवान्मोहात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि॥४५॥
ततो दीर्घतमा नाम शापादृष्टिरजायत। अथौशिजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा॥४६॥
उर्द्धरेतास्ततश्चापि न्यवसद्भ्रातुराश्रमे। गोधर्मं सौरमेयात्तु वृषभाच्छुतवान्प्रभोः॥४७॥
तस्य भ्राता पितृव्यस्तु चकार भवनं तदा। तस्मिन्हि तत्र वसति यदृच्छाभ्यागतो वृषः॥४८॥
दशार्थमासस्तृतान्दर्भाञ्चचार सुरभीसुतः। जग्राह तं दीर्घतमा विस्फुरंतं तु शृंगयोः॥४९॥
स तेन निगृहीतस्तु न चचाल पदात्पदम्। ततोऽब्रवीद् वृषस्तं वै मुंच मां बलिनां वर॥५०॥
न मया सादितस्तात बलवांस्तद्विधः क्वचित्।
त्र्यंबकं वहता देवं यतो जातोऽस्मि भूतले॥५१॥
मुंच मां बलिष्ठं श्रेष्ठ प्रतिस्नेहं वरं वृणु। एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवंस्त्वं मे क्व यास्यसि॥५२॥
तेन त्वाहं न मोक्ष्यामि परस्वादं चतुष्पदम्। ततस्तं दीर्घतमसं स वृषः प्रत्युवाच॥५३॥
नास्माकं विद्यते तात पातकं स्तेयमेव च। भक्ष्याभक्ष्यं न जानीमः पेयापेयं च सर्वशः॥५४॥
कार्याकार्यं च वै विप्र गम्यागम्यं तथैव च। न पाप्मानो वयं विप्र धर्मो ह्येष गवां श्रुतः॥५५॥

गर्भस्थ शिशु के इस वाक्य को सुनकर वीर्याधान में बाधित ऋषि पर बृहस्पति ने नाराज होकर अपने बड़े भाई उशिज के संयोग से गर्भस्थ शिशु को शाप दिया कि सभी प्राणियों के अभीप्सित समय पर तुमने मुझे बाधा पहुँचायी है। इसलिये तुम महान् अंधकार में प्रवेश करोगे।।४४-४५।। उसके बाद उस शाप से वे ऋषि दीर्घतमा नाम से ऋषि प्रसिद्ध हो गये तथा वे दीर्घतमा (अन्धे) भी थे। ऋषि श्रेष्ठ उशिज बृहस्पति के समान तेजस्वी एवं परम यशस्वी थे।।४६।। उसके बाद भी वे परम ब्रह्मचारी ऋषि अपने भाई के आश्रम में निवास करते थे। कामधेनु गाय के एक पुत्र वृषभ (बैल) से उन्होंने एक बार गोधर्म को सुना था।।४७।।

उशिज के भाई तथा दीर्घतमा के चाचा बृहस्पति ने उनके रहने के लिए एक भवन बनवाया था। उसी में निवास कर रहे थे। कहीं से घूमता हुआ वृषभ वहाँ आ गया।।४८।। गौओं के साथ घूमते हुए उस वृषभ ने वहाँ श्राद्ध हेतु लाये गये कुशों को खाना शुरू कर दिया। ऋषिवर दीर्घतमा ने फड़कते हुए उस वृषभ के दोनों सींगों को बलपूर्वक पकड़ लिया।।४९।। उनके पकड़े जाने पर वह वृषभ एक पग से दूसरा पग नहीं रख सका। उसके बाद वृषभ ने दीर्घतमा से कहा कि बलवानों में श्रेष्ठ मुझे छोड़ दो।।५०।। वृषभ ने कहा कि हे तात! मैंने इस भूतल पर भगवान् शंकर को वहन करते हुए भ्रमण किया है; परन्तु आदि से आज तक पृथ्वी पर तुम जैसा बलवान् व्यक्ति दूसरा कोई नहीं देखा है।।५१।। अतः हे बलवानों में श्रेष्ठ! अब तुम मुझे छोड़ दो और मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अतः वर माँगो। जब वृषभ ने ऐसा कहा तो दीर्घतमा ने उससे कहा कि मेरे जीवित रहते हुए तुम कहा जाओगे।।५२।। इसलिए मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा; क्योंकि तुम दूसरे की वस्तु का स्वादु लेने वाले चार पैर वाले चोर हो। उसके बाद दीर्घतमा से वह वृषभ बोला।।५३।। कि हे तात! हम वृषभ को 'चोरी करना पाप नहीं है; क्योंकि हम यह नहीं जानते हैं कि कौन सी वस्तु खाने योग्य अथवा कौन सी नहीं खाने योग्य है? तथा कौन सी पीने योग्य है, कौन सी नहीं पीने योग्य है?।।५४।। उसी तरह से हे विप्र! क्या करना चाहिये? क्या नहीं करना चाहिये? कहाँ जाना चाहिये? कहाँ नहीं

गवां नाम स वै श्रुत्वा संभ्रांतस्त मुंचत। भक्त्या चानुश्रविकया गोसुतं वै प्रसादयन्॥५६॥
प्रसादतो वृषेंद्रस्य गोधर्मं जगृहेऽथ सः। मनसैव तदा दधे तद्विधस्तत्परायणः॥५७॥
ततो यवीयसः पत्नीमौतथ्यस्याभ्यमन्यत। विचेष्टमानां रुदतीं दैवात्संमूढचेतनः॥५८॥
अवलेपं तु तं मत्वा सुरद्वांस्तस्य नाक्षमत्। गोधर्मं वै बलं कृत्वा स्नुषां स ह्यभ्यमन्यत॥५९॥
विपर्ययं तु तं दृष्ट्वा शरद्वान्प्रविचिंत्य च। भविष्यमर्थंर ज्ञात्वा च महात्मा त्ववमत्य तम्॥६०॥
प्रोवाच दीर्घतमसं क्रोधात्संरक्तलोचनः गम्यागम्यं न जानीषे गोधर्मात्प्रार्थयन्स्नुषाम्॥६१॥
दुर्वृत्तं त्वां त्यजाम्येष गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा। यस्मात्त्वमंधो वृद्धश्च भर्त्तव्यो दुरनुष्ठितः॥६२॥
तेनासि ्वं परित्यक्तो दुराचारोऽस मे मतः।

सूत उवाच

कर्मण्यस्मिंस्ततः क्रूरो तक्य बुद्धिरजायत॥६३॥
निर्भत्स्यं चैव बहुशो बाहुभ्यां परिगृह्य च। कोष्ठे समुद्रे प्रक्षिप्य गंगांभसि समुत्सृजत्॥६४॥
उह्यमानः समुद्रस्तु सप्ताहं श्रोतसा तदा। सस्त्रीको बलिर्नाम राजा धर्मार्थतत्त्ववित्॥६५॥

जाना चाहिये? हम नहीं जानते। अतः हे विप्र! हम वृषभ (पशु) पापी नहीं हैं, यह इधर-उधर घास खेत आदि खाना तो गौओं का तो धर्म ही कहा गया है।।५५।। जैसे ही दीर्घतमा ने गौओं का नाम सुना वैसे ही वे दीर्घतमा हिचकिचा गये और उस वृषभ को छोड़ दिया और भक्ति तथा चापलूसीपूर्ण बातों से उस वृषभ को प्रसन्न किया।।५६।। उसके बाद उस वृषभराज को प्रसन्न करते हुए उन्होंने गोधर्म को ग्रहण कर लिया, तब मन से ही उसे ग्रहण कर उसमें निष्ठा रखते हुए उसके पालन में तत्पर हो गये।।५७।। उसके बाद दैववश (भाग्यवश) अपने छोटे भाई औतथ्य पत्नी को कामासक्त हो, छेड़ने का प्रयास किया। रोने पर और नहीं चाहते हुए भी वे नहीं माने। वह रो रही थी, फिर भी उसके साथ सम्भोग कर दिया; क्योंकि कामावेश उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी।५८।। दीर्घतमा का यह अपराध ऋषि शरद्वान् ने सहन नहीं किया; क्योंकि गोधर्म (पशुधर्म) को बल करके अपनी पुत्रवधू के साथ बलात्कार करना उचित माना।।५९।। इस महान् विपरीतता को देखकर शरद्वान् को भारी चिन्ता हुई; क्योंकि छोटे भाई की पत्नी पुत्रवधू के समान होती है। अतः भविष्य के अर्थ को जानकर महात्मा शरद्वान् ने क्रोध से लाल-लाल आँखें कर दीर्घतमा से कहा कि गोधर्म (पशुधर्म) का पालन करते हुए पुत्रवधू के साथ सम्भोग करना चाहिये या नहीं करना चाहिये। इसको तुम नहीं जानते हो। इसलिये अब मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ। अपने इस नीच कर्म का फल भोगो। अन्धे, वृद्ध और जीविका चलाने में असमर्थ होकर भी तुम इतनी नीच कार्य कर रहे हो, इसलिए मैंने तुम्हें छोड़ दिया है, तुम दुराचारी हो यह मेरा मत है।।६०-६२½।।

सूत जी बोले—ऋषियो! यह सब कहने के बाद भी दीर्घतमा की प्रवृत्ति क्रूरकर्म में हो गयी। तब शरद्वान् ने उनकी बहुत निन्दा करके अपनी दोनों भुजाओं से पकड़कर एक बक्से में बन्द करके समुद्र में फेंकने के लिए गङ्गा के जल में बहा दिया।।६२½-६४।। तब बहाना तो समुद्र में था; परन्तु वह बक्सा सात दिन तक नदी के प्रवाह द्वारा बहाया जाता रहा। तब धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानने वाले सस्त्रीक राजा बलि ने नदियों के भंवरों में फँसे हुये

अपश्यन्मज्जमानं तु स्त्रोतसोभ्यासमागतम्। तं गृहीत्वा स धर्मात्मा बलिर्वैरोचनस्तदा॥६६॥
अंतःपुरे जुगोपेनं भक्ष्यैर्भोज्यैश्च तर्पयन्। प्रीतः स वै वरेणाथ च्छंदयामास वै बलिम्॥६७॥
स च तस्माद्वरं वव्रे पुत्रार्थी दानवर्षभः।

बलिरुवाच।

संतानार्थं महाभाग भार्यायां मम मानदः॥६८॥
पुत्रान्धर्मार्थसंयुक्तानुत्पादयितुमर्हसि। अवमुक्तस्तु तेनर्षिस्तथास्त्वित्युक्तवान्हितम्॥६९॥
सुदेष्णां नाम भार्यां स्वां राजाऽस्मै प्राहिणोत्तदा।
अंधं वृद्धं च तं दृष्ट्वा न सा देवी जगाम ह॥७०॥
स्वां च धात्रेयिकां तस्मै भूषयित्वा व्यसर्जयत्।
कक्षीवच्चक्षुषतौ तस्यां शूद्रयोन्मायामृषिर्वशी॥७१॥
जनयामास धर्मात्मा पुत्रोवतौ महौजसौ। कक्षीवच्चक्षुषौ तौ तु दृष्ट्वा राजा बलिस्तदा॥७२॥
अधीतौ विधिवत्सम्यगीश्वरौ ब्रह्मवादिनौ। सिद्धौ प्रत्यक्षधर्माणौ बुद्धौ श्रेष्ठतमावपि॥७३॥
ममैताविति होवाच बलिर्वैरोचनस्त्वृषिम्। नेत्युवाच ततस्तं तु ममैताविति चाब्रवीत्॥७४॥
उत्पन्नौ शूद्रयोनौ तु भवतः क्ष्मासुरोत्तमौ। अंधं वृद्धं च मां मत्वा सुदेष्णा महिषी तव॥७५॥
प्राहिणोदवमानीय शूद्रीं धात्रेयिकं मम। ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम्॥७६॥

प्रेमी उन दीर्घतमा को डूबते हुए देखा अर्थात् जब राजा बलि ने देखा तब राजा बलि के साथ उनकी पत्नी भी थी। तब विरोचन पुत्र धर्मात्मा बलि ने उनको जल से निकाल कर भक्ष्य और भोज्य पदार्थों से पूरी तरह तृप्त करते हुये अपने अन्तःपुर में रानी के पास छिपा दिया। अन्तःपुर में भोग सम्भोग आदि से पूरी तरह प्रसन्न होकर दीर्घतमा ने राजा बलि को वर देना चाहा। तब दानव पति राजा बलि ने पुत्र के लिये दीर्घतमा से वर माँगने की याचना की।।६४-६७½।।

बलि ने कहा हे महाभाग! हे मान देने वाले! मैं अपनी पत्नी में धर्म और अर्थ से संयुक्त पुत्रों को उत्पन्न करना चाहता हूँ। राजा के ऐसा कहते ही उन ऋषि दीर्घतमा ने 'वैसा ही होगा' ऐसा हितकर वचन कहा।।६७½-६९।। तब राजा ने अपनी पत्नी सुदेष्णा को इस दीर्घतमा के पास जाने को प्रेरित किया; परन्तु उन दीर्घतमा को अन्धा और वृद्ध देखकर वह देवी सुदेष्णा उनके पास नहीं गयी।।७०।। और उसने अपनी धाय को अच्छी तरह सजाकर उस दीर्घतमा के पास भेज दिया। उस शूद्रा धाय में उन जितेन्द्रिय ऋषि ने कक्षीवान् और चाक्षुष दो धर्मात्मा और महान् ओजस्वी इन दोनों पुत्रों को उत्पन्न किया।।७१-७१½।। तब कक्षीवान् और चाक्षु को सम्यक् प्रकार से विधिवत पढ़े हुए, ईश्वर, ब्रह्मवादी, सिद्ध, प्रत्यक्ष धर्मरूपी, सब कुछ जानने वाले श्रेष्ठतम देखकर राजा वलि ने दीर्घतमा ऋषि से कहा कि ये दोनों पुत्र मेरे हैं। तब दीर्घतमा ऋषि ने विरोचन पुत्र राजा बलि से कहा कि नहीं ये दोनों पुत्र आपके नहीं हैं, मेरे हैं।।७१½-७४।। क्योंकि तुम्हारे छद्म से ये शूद्र योनि में उत्पन्न हुए हैं। मुझे अन्धा और वृद्ध मानकर तुम्हारी रानी सुदेष्णा ने मेरे पास शूद्रा धाय को भेज दिया था।।७५-७५½।। उसके बाद प्रभु राजा बलि ने दीर्घतमा ऋषि को पुनः प्रसन्न किया और उन राजा बलि ने अपनी पत्नी सुदेष्णा की भर्त्सना की कि तुमने ऐसा क्यों किया?

बलिर्भार्यां सुदेष्णा च भर्त्सयामास वै प्रभुः। पुनश्चैनामलंकृत्य ऋषये प्रत्यपादयत्॥७७॥
तं स दीर्घतमा देवीमब्रवीद्यदि मां शुभे। दध्ना लवणमिश्रेण स्वभ्यक्तं नग्नकं तथा॥७८॥
लेहिष्यस्यजुगुप्सन्ती ह्यापादतलमस्तकम्। ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रांश्च मनसेप्सितान्॥७९॥
तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तथा। अपानं च समासाद्य जुगुप्संती ह्यवर्जयत्॥८०॥
तमुवाच ततः सर्पिर्यस्ते परिहृतं शुभे। विनाऽपानं कुमारं त्वं जनयिष्यसि पूर्वजम्॥८१॥
ततस्तं दीर्घतमसं सा देवी प्रत्युवाच ह। नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं दातुं ममेदृशम्॥८२॥

ऋषिरुवाच।

तवापराधो देव्येष नान्यथा भविता तु वै। देवीदृशं च ते पौत्रमहं दास्यामि सुव्रते॥८३॥
तस्यापानं विना चैव योग्यभावो भविष्यति। तां स दीर्घतमाश्चैव कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत्॥८४॥
प्राशितं दधियत्तेऽद्य ममांगाद्वै शुचिस्मिते। तेन ते पूरितो गर्भः पौर्णमास्यामिवोदधिः॥८५॥
भविष्यंति कुमारास्ते पंच देवसुतोपमाः। तेजस्विनः पराक्रांता यज्वानो धार्मिकास्तथा॥८६॥
ततोऽगस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठपुत्रो व्यजायत। वंगस्तस्मात्कलिंगस्तु पुंड्रः सुह्मस्तथैव च॥८७॥
वंशभाजस्तु पंचैते बलेः क्षेत्रेऽभवंस्तदा। इत्येते दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुताः पुरा॥८८॥
प्रजा ह्युपहतास्तस्य ब्रह्मणा कारणं प्रति। अपत्यमस्य दारेषु स्वेषु माभून्महात्मनः॥८९॥

अतः राजा ने पुनः रानी को अलंकृत करके ऋषि के लिए प्रस्तुत किया।।७५½-७७।। उन देवी सुदेष्णा से दीर्घतमा ऋषि ने कहा कि यदि देवी तुम मेरे समस्त नग्न शरीर पर दही और नमक का लेप कर पूरे शरीर को अपनी जीभ से चाटोगी तो तुम मनवांछित पुत्र को प्राप्त करोगी।।७८-७९।। तब सुदेष्णा ने उनके कथनानुसार सब कुछ किया, उसने उनके नग्न शरीर पर दही और नमक का लेप कर चाटना शुरू किया, सारा चाट लिया; परन्तु उनके मलद्वार को छोड़ दिया।।८०।। तब ऋषि ने रानी से कहा कि हे सुन्दरि! तुमने मेरे अपानद्वार (गुदाद्वार) को छोड़ दिया। अतः तुम अपान द्वार विहीन पुत्र को प्राप्त करोगी।।८१।। उसके बाद उस दीर्घतमा ऋषि से देवी सुदेष्णा ने कहा कि हे महाभाग! आप ऐसा नहीं कर सकते, आप मुझे ऐसा पुत्र मत दीजिये।।८२।।

ऋषि ने कहा कि हे देवि! तुमने तो अपराध किया, वह अब अन्यथा नहीं हो सकता, उस अपराध पर मैंने जो कह दिया, वह तो अवश्य होकर रहेगा। अतः हे देवि! हे सुव्रते! मैं तुम्हें ऐसा पुत्र प्रदान करूंगा कि विना अपानद्वार के ही उसके सारे काम होते रहेंगे।।८३-८३½।। उसके बाद उन दीर्घतमाऋषि उस सुदेष्णा की कोख को स्पर्श कर यह कहा कि पवित्र मुस्कान वाली देवि! तुमने जो मेरे शरीर से लगे हुए दही को खाया है, उसके द्वारा पूरित तुम्हारा गर्भ पूर्णमासी में समुद्र के समान बढ़ता जायेगा और तुम्हारे गर्भ से देवपुत्रों के समान पाँच पुत्र उत्पन्न होंगे जो तेजस्वी, शत्रुओं को आक्रान्त करने वाले, यज्ञकर्ता और धार्मिक होंगे।।८३½-८६।। उसके बाद सुदेष्णा के गर्भ से सबसे बड़े पुत्र अंग पैदा हुए, उसके बाद बंग, फिर कलिंग और फिर पुण्ड्र और सुह्म पैदा हुए।।८७।। तब राजा बलि के क्षेत्र में बलि के वंश को बढ़ाने वाले ये पाँच पुत्र पैदा हुए, ये सब बलि के क्षेत्रज पुत्र थे। अर्थात् पत्नी द्वारा लाये गये थे। इस प्रकार प्रचीन काल में ये सब दीर्घतमा ऋषि द्वारा बलि को दिये गये पुत्र थे।।८८।। प्रभु ब्रह्मा जी द्वारा किसी कारणवश इस महात्मा दीर्घतमा को "तुम्हें अपनी पत्नी में सन्तान नहीं होगी" ऐसा शाप

ततो मनुष्ययोन्यां वै जनयामास स प्रजाः। सुरभिर्दीर्घत मसमय प्रीतो वचोऽब्रवीत्॥९०॥
विचार्य यस्माद्गोधर्मं त्वमेवं कृतवानसि। भक्त्या चानन्ययाऽस्मासु मुने प्रीताऽस्मि तेन ते॥९१॥
तस्मात्तव तमो दीर्घं निस्तुदाम्यद्य पश्य वै। बार्हस्पत्यं च यत्तेऽन्यत्पापं सातष्ठते तनौ॥९२॥
जरामृत्युभयं चैव ह्याघ्राय प्रणुदामि ते। आघ्रातमात्रोऽसौ पश्यत्सद्यस्तमसि नाशिते॥९३॥
आयुष्मांश्च युवा चैव चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत्। गवा हततमाः सोऽथ गौतमः समपद्यत॥९४॥
कक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिव्रजम्। यथोद्दिष्टं हि पित्राऽथ चचार विपुलं तपः॥९५॥
ततः कालेन महता तपसा भावितः स वै। विधूय सानुजो दोषान्ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्प्रभुः॥९६॥
ततोऽब्रवीत्पिता त्वेनं पुत्रवानस्म्यहं प्रभो। सुपुत्रेण त्वया तात कृतार्थश्च यशस्विना॥९७॥

युक्तात्मानं ततः सोऽथ प्राप्तवान्ब्रह्मणः क्षयम्।
ब्राह्मण्यं प्राप्य कक्षीवान्स हस्त्रमसृजत्सुतान्॥९८॥

कूष्मांडा गौतमास्ते वै स्मृताः कक्षीवतः सुताः। इत्येष दीर्घतमसो बलेर्वैरोचनस्य वै॥९९॥

समागमः समाख्यातः संतानश्चोभयोस्तथा।
बलिस्तानभिषिच्येह पंच पुत्रानकल्मषान्॥१००॥

दिया था। इसी कारण से उनको कोई सन्तान नहीं हुई थी।।८९।। उसके बाद उन्होंने मनुष्य योनि में सन्तान उत्पन्न की। वृषभ ने प्रसन्न होकर दीर्घतमा से यह वचन कहा।।९०।। कि तुमने गोधर्म को पूरी तरह समझकर उसका पालन किया है। इसलिये हे मुनि! दीर्घतमा! इस गोधर्म केप्रति अनन्य भक्ति से मैं तुम से प्रसन्न हूँ।।९१।। देखो आज महान् अन्धकार से मैं तुम्हें मुक्त कर रहा हूँ। बृहस्पति के शाप के कारण तुम्हारे शरीर में जो पाप लगा हुआ था, उसे भी मैं हटा दे रहा हूँ।।९२।। अपनी नासिका से सूँघकर मैं तुम्हारी वृद्धता और मृत्यु के शाप को भी दूर कर दे रहा हूँ, ऐसा कह कर वृषभ के सूँघते ही दीर्घतमा का वहुत समय पहले से हुआ अन्धापन दूर हो गया और वे देखने लगे।।९३।। आशीर्वाद के फलस्वरूप वे दीर्घायु सम्पन्न युवा एवं नेत्रवान् हो गये। इस प्रकार गौ के आशीर्वाद से वे दीर्घतमा 'गौतम' इस नवीन नाम से विख्यात हुए।।९४।। उसके बाद शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न कक्षीवान् ने पिता के साथ पर्वतीय प्रदेश को प्रस्थान किया और पिता के कल्याण के लिये ऐसी घोर तपस्या की जैसी कि पिता ने आदेश दिया था।।९५।। उसके बाद अपनी कठोर तपस्या के बल पर परम ऐश्वर्यशाली कक्षीवान् ने बहुत दिनों के बाद सिद्धि प्राप्त की और अपने तथा अपने छोटे भाई चाक्षुष के भी पापों को नष्ट कर ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया।।९६।। अर्थात् अब शूद्रा धाय से उत्पन्न वे दोनों कर्म से ब्राह्मण हो गये। यह यहाँ कर्मणा वर्ण व्यवस्था का उदाहरण है। कक्षीवान् के इस कर्म से पिता दीर्घतमा अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले कि तुम जैसे पुत्र को प्राप्त कर मैं पुत्रवान् हूँ, तुम यशस्वी और सत्पुत्र के द्वारा मैं कृतार्थ हो गया हूँ।।९७।। उसके बाद महात्मा गौतम ने योग की साधना की और ब्रह्मपद को प्राप्त किया। इधर कक्षीवान् ने ब्राह्मणत्व प्राप्त कर हजार पुत्रों को उत्पन्न किया।।९८।। कक्षीवान् के पुत्र काले शरीर वाले गौतम गोत्रीय कहे जाते हैं।।९८½।।

अब सूत जी ने ऋषियों से कहा कि—अब मैं विरोचन पुत्र वलि की एवं दीर्घतमाकी सन्तानों का परस्पर समागम जिस प्रकार हुआ, उसे मैं आप लोगों को बता चुका हूँ। अब आगे बता रहा हूँ कि महाराज बलि अपने उन

कृतार्थः सोऽपि योगात्मा योगमाश्रित्य च प्रभुः।
अदृश्यः सर्वभूतानां कालाकांक्षी चरत्युत॥१०१॥

तत्रांगस्य तु राजर्षे राजासीद्दधिवाहनः। सोऽपराधात्सुदेष्णाया अनपानोऽभवन्नृपः॥१०२॥
अनपानस्य पुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः। पुत्रो दिविरथस्यासीद्विद्वान्धर्मरथो नृपः॥१०३॥
एते ऐक्ष्वाकवः प्रोक्ता भवितारः कलौ युगे। बृहद्बलान्वये जाता महावीर्यपराक्रमाः॥१०४॥
शूराश्च कृतविद्याश्च सत्यसंधा जितेन्द्रियाः। अत्रानुवंशश्लोकोऽयं भविष्यज्ञैरुदाहृतः॥१०५॥

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रांतो भविष्यति।
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥१०६॥

इत्येतन्मानवं क्षत्रमैलं च समुदाहृतम्। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मगधो यो बृहद्रथः॥१०७॥
जरासंधस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपाः। अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्याश्च तथा पुनः॥१०८॥
प्राधान्यतः प्रवक्ष्यामि गदतो मे निबोधत। संग्रामे भारते तस्मिन्सहदेवो निपातितः॥१०९॥
सोमापिस्तस्य तनयो राजर्षिः स गिरिव्रजे। पंचाशतं तथाऽष्टौ च समा राज्यमकारयत्॥११०॥
श्रुतश्रवाः सप्तषष्टिः समास्तस्य सुतोऽभवत्। अयुतायुस्तु षड्विंशद्राज्यं वर्षाण्यकारयत्॥१११॥

समाः शतं निरामित्रो महीं भुक्त्वा दिवं गतः।
पंचाशतं समाः षट् च सुक्षत्रः प्राप्तवान्महीम्॥११२॥

पाँचों पुत्रों का राज्याभिषेक करने के उपरान्त कृतार्थ हो गया और सब प्राणियों से अदृश्य होकर काल की प्रतीक्षा करता हुआ तपस्या में अपना समय व्यतीत करने लगा।।९८½-१०१।। बलि के उन पाँचों पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र अंगद का पुत्र दधिवाहन हुआ। देवी सुदेष्णा के अपराध के कारण दीर्घतमा के शाप के अनुसार उसके शरीर में मलमार्ग नहीं था। उसका दूसरा नाम अनपान भी था, जिसका अर्थ ही है—अपानरहित (मलद्वाररहित)।।१०२।। अनपान के पुत्र राजा दिविरथ हुए। दिविरथ के पुत्र विद्वान् राजा धर्मरथ हुए।।१०३।। ये कलियुग में होने वाले इक्ष्वाकु वंशीय राजा कहे गये हैं। ये महाप्रतापी राजा बृहद्बला के वंश में उत्पन्न हुए हैं।।१०४।। ये सभी राजा लोग शूरवीर, समस्त विद्याओं में पारंगत, सत्य-प्रतिज्ञा करने वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले थे।।१०५।। भविष्य को जानने वाले ने यहाँ एक श्लोक उदाहृत किया है कि इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं का यह वंश राजा सुमित्र के अन्त तक होगा। कलियुग में राजा सुमित्र को प्राप्त करके राजतन्त्र संस्था को प्राप्त होगा अर्थात् फिर कोई राजा नहीं रहेगा। एक संस्था (सभी की मिली हुई सरकार) राज्य करेगी।।१०६।। इस प्रकार मैंने मानव क्षत्रिय राजा ऐल (पुरुरवा) के वंश का वर्णन किया। अब इसके आगे में मगध राज्य का जो राजा बृहद्रथ है, उसका वर्णन करूँगा।।१०७।। सहदेव जरासंध के वंश में जो राजा हो चुके हैं तथा होंगे, उन सबका मैं वर्णन करूँगा आप ऋषि लोग ध्यान से सुनिये। उस महाभारत के युद्ध में राजा सहदेव मारे गये थे।।१०८-१०९।। सोमापि उन राजा सहदेव के पुत्र थे, जो गिरिव्रज (राजगिरि) में राजर्षि थे। अट्ठावन वर्ष उन राजा ने वहाँ राजगिरि में राज्य किया।।११०।। श्रुतश्रवा सोमापि के पुत्र थे, जिन्होंने सरसठ वर्ष राज्य किया। राजा अयुतायु ने तो छब्बीस वर्ष किया।।१११।। राजा निरामित्र सौ वर्ष तक पृथ्वी का

त्रयोविंशद्बृहत्कर्मा राज्यं वर्षाण्यकारयत्।
सेनाजित्सांप्रतं चापि एता वै भोक्ष्यते समाः॥११३॥
श्रुतंजयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति। रिपुंजयो महाबाहुर्महाबुद्धिपराक्रमः॥११४॥
पंचत्रिंशत्तु वर्षाणि महीं पालयिता नृपः।
अष्टपंचाशतं चाब्दान्राज्ये स्थास्यति वै शुचिः॥११५॥
अष्टाविंशत्समाः पूर्णाः क्षेमो राजा भविष्यति।
सुव्रतस्तु चतुःषष्टिं राज्यं प्राप्स्यति वीर्यवान्॥११६॥
पंच वर्षाणि पूर्णानि धर्मनेत्रो भविष्यति। भोक्ष्यते नृपतिश्चेमा अष्टपंचाशतं समाः॥११७॥
अष्टत्रिंशत्समा राष्ट्रं सुश्रमस्य भविष्यति। चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति॥११८॥
त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि सुमतिः प्राप्स्यते ततः।
चत्वारिंशत्समा राजा सुनेत्रो भोक्ष्यते ततः॥११९॥
सत्यजित्पृथिवी राष्ट्रं त्र्यशीतिं भोक्ष्यते समाः।
प्राप्येमं विश्वजिच्चापि पंचविंशद्भविष्यति॥१२०॥
अरिंजयस्तु वर्षाणां पंचाशत्प्राप्यते महीम्। द्वाविंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः॥१२१॥
पूर्णं वर्षसहस्त्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति। बृहद्रथेष्वतीतेषु वीरहंतृष्ववर्त्तिषु॥१२२॥
शुनकः स्वामिने हत्वां पुत्रं समभिषेक्ष्यति।
मिषतां क्षत्रियाणां हि प्रद्योतिं नृपतिं बलात्॥१२३॥

भोगकर स्वर्ग को गये थे तथा राजा सुक्षत्र ने पचास वर्ष तक इस पृथ्वी को प्राप्त किया।।११२।। तेईस वर्ष तक बृहत्कर्मा ने राज्य किया। इस समय सेनाजित् तथा ये अन्य भी पृथ्वी का भोग करेंगे।।११३।। उसके बाद श्रुतंजय राजा चालीस वर्ष तक राजा होंगे। उसके बाद महाबाहु, महाबुद्धिमान् और पराक्रमीराजा रिपुंजय पैतीस वर्ष तक राज्य का पालन करके वे पवित्र राजा अट्ठावन वर्ष तक राज्य पर स्थित रहेंगे।।११४-११५।। फिर पूरे अट्ठाईस वर्ष तक राजा क्षेम होंगे। पराक्रमी राजा सुव्रत चौसठ वर्ष तक राज्य करेंगे।।११६।। पूरे पाँच वर्ष धर्म नेत्र राजा होंगे। ये राजा इस पृथ्वी का अट्ठावन वर्ष तक भोग करेंगे।।११७।। अड़तीस वर्ष तक यह राष्ट्र राजा सुश्रम का होगा और अट्ठावन वर्ष तक दृढसेन राजा होंगे।।११८।। उसके बाद तैंतीस वर्ष तक राजा सुमति पृथ्वी को प्राप्त करेंगे। उसके बाद चालीस वर्ष तक राजा सुनेत्र पृथ्वी का भोग करेंगे।।११९।। राजा सत्यजित् इस पृथ्वी और राष्ट्र को तिरासी वर्ष तक भोग करेगा। इस राजा से राजा विश्वजित् राज्य प्राप्त कर पच्चीस वर्ष तक राज्य करेगा।।१२०।। राजा अरिंजय तो पचास वर्ष तक पृथ्वी को प्राप्त करेगा। इस प्रकार ये कुल बाईस बृहद्रथ राजा होंगे। ये ही बृहद्रथ के वंशज राजा हैं।।१२१।। पूरे एक हजार वर्ष तक इन बृहद्रथ राजाओं का राज्य रहेगा, बृहद्रथों के व्यतीत हो जाने पर किसी वीरहन्ता राजा के न रहने पर शुनक अपने स्वामी राजा को मारकर क्षत्रियों के साथ धोखा देकर अपने पुत्र राजा प्रद्योत को राज्य पद पर बलपूर्वक अभिषिक्त करेगा।।१२२-१२३।।

स वै प्रणतसामंतो भविष्येण प्रवर्त्तितः। त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः॥१२४॥
चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः। विशाखयूपो भविता नृपः पंचाशतं समाः॥१२५॥
एकविंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति। भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो नंदिवर्द्धनः॥१२६॥
अष्टत्रिंशच्छतं भाव्याः प्राद्योताः पंच ते नृपाः।
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति॥१२७॥
वाराणस्यां सुतस्तस्य संयास्यति गिरिब्रजम्।
शिशुनागश्च वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति॥१२८॥
काकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशच्च भविष्यति।
ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमधर्मा भविष्यति॥१२९॥
चत्वारिंशत्समाराष्ट्रं क्षत्रौजाः प्राप्स्यते ततः।
अष्टत्रिंशत्समा राजा विधिसारो भविष्यति॥१३०॥
अजातशत्रुर्भविता पंचविंशत्समा नृपः। पंचत्रिंशत्समा राजा दर्भकस्तु भविष्यति॥१३१॥
उदयी भविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः। स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्॥१३२॥
गंगाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽह्नि करिष्यति।
चत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नंदिवर्द्धनः॥१३३॥
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव महानंदिर्भविष्यति। भविष्यंति च वर्षाणि षष्ट्युत्तरशतत्रयम्॥१३४॥
शिशुनागा दशैवैते राजानः क्षत्रबंधवः। एतैः सार्द्धं भविष्यंति तावत्कालं नृपाः परे॥१३५॥

वह नित्य नतमस्तक रहने वाला सामन्त भविष्य से प्रेरित होकर तेईस वर्ष तक मनुष्यों में उत्तम राजा होगा।।१२४।। उसके बाद चौबीस वर्ष तक पालक नामक राजा होगा। उसके बाद विशाखयूप राजा पचास वर्ष तक राज्य करेगा, जिसे इतिहास में विशाखदत्त कहा गया है।।१२५।। इक्कीस वर्ष तक मजक का राज्य होगा, फिर बीस वर्ष तक मजक के पुत्र राजा नन्दिवर्धन का राज्य होगा।।१२६।। एक सौ अड़तीस वर्ष तक ये प्रद्योत से उत्पन्न प्रद्योत वंशीय राजा राज्य करेंगे उन सब प्रद्योत वंशीय राजाओं के समस्त यश को मारकर शिशुनाग राजा होगा।।१२७।। उसका पुत्र वाराणसी में गिरिव्रज को संयान करेगा। शिशुनाग का राज्य चालीस वर्ष तक रहेगा।।१२८।।

उस शिशुनाग का पुत्र काक वर्ण होगा, उसका राज्य छत्तीस वर्ष तक रहेगा। उसके बाद बीस वर्ष तक क्षेमधर्मा राजा होगा।।१२९।। उसके बाद चालीस वर्ष तक इस राष्ट्र को पराक्रमी क्षत्रिय राजा प्राप्त करेगा, वह क्षत्रिय राजा विधिसार (विन्दुसार) अड़तीस वर्ष तक राजा होगा।।१३०।। पच्चीस वर्ष तक अजातशत्रु राजा होगा। फिर पच्चीस वर्ष तक दर्भक राजा होगा।।१३१।। उसके बाद राजा उदयी तेईस वर्ष तक राज्य करेगा, वह राजा पृथ्वी पर फूलों से सजे हुए अपने श्रेष्ठ नगर को गंगा के दक्षिण किनारे पर चौथे दिन बनायेगा। चालीस वर्ष तक नन्दिवर्धन का राज्य होगा।।१३२-१३३।। और तैतालीस वर्ष तक महानन्दि का राज्य होगा। इस प्रकार ये सब राजा लोग तीन सौ साठ वर्ष तक राज करेंगे।।१३४।। ये दश शिशुनाग राजा ही क्षत्रिय बन्धु राजा हैं, इनके साथ

ऐक्ष्वाकवश्चतुर्विंशत्पंचालाः पंचविंशतिः। कालकास्तु चतुर्विंशच्चतुर्विंशत्तु हैहयाः॥१३६॥
द्वात्रिंशदेकलिंगास्तु पंचविंशत्तथा शकाः। कुरवश्चापि षट्त्रिंशदष्टाविंशति मैथिलाः॥१३७॥
शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः। तुल्यकालं भविष्यंति सर्व एव महीक्षितः॥१३८॥
महानंदिसुतश्चापि शूद्रायाः कालसंवृतः। उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रांतकृन्नृपः॥१३९॥
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः। एकराट् स महापद्म एकच्छत्रो भविष्यति॥१४०॥

अष्टाशीति तु वर्षाणि पृथिवीं पालयिष्यति।
सर्वक्षत्रं समुद्धृत्य भाविनोऽर्थस्य वै बलात्॥१४१॥

तत्पश्चात्तत्सुता ह्यष्टौ समाद्वादश ते नृपाः। महापद्मस्य पर्याये भविष्यंति नृपाः क्रमात्॥१४२॥

उद्धारयिष्यति तान्सर्वान्कौटिल्यो वै द्विपर्षभः।
भुक्त्वा महींवर्षशतं नरेन्द्रः स भविष्यति॥१४३॥

चंद्रगुप्तं नृपं राज्ये कौटिल्यः स्थापयिष्यति। चतुर्विंशत्समा राजा चंद्रगुप्तो भविष्यति॥१४४॥
भविता भद्रसारस्तु पंचविंशत्समा नृपः। षट्त्रिंशत्तु समा राजा अशोकानां च तृप्तिदः॥१४५॥
तस्य पुत्रः कुलालस्तु वर्षाण्यष्टौ भविष्यति। कुशालसूनुरष्टौ च भोक्ता वै बंधुपालितः॥१४६॥
बन्धुपालितदायादो भविता चेंद्रपालितः। भविता सप्त वर्षाणि देववर्मा नराधिपः॥१४७॥

तब तक दूसरे राजा भी होंगे अर्थात् देश में इन क्षत्रिय राजाओं के साथ दूसरे राजाओं का भी राज्य होगा।।१३५।। इक्ष्वाकुवंशीय पच्चीस राजा, पच्चीस राजा पंचाल, चौबीस कालक वंशीय राजा और चौबीस हैहयवंश के राजा होंगे।।१३६।। तथा बत्तीस एकलिङ्ग, पच्चीस शकवंशीय, छत्तीस कुरुवंशीय, अट्ठाईस मैथिल राजा होंगे।।१३७।। फिर शूरसेन वंशीय राजा तेईस और बीस वीतिहोत्र के वंश के राजा होंगे। ये सब राजा पूरे देश के प्रदेश के अधिपति के रूप में समान समय में होंगे।।१३८।। राजा महानन्दि का पुत्र महापद्मनन्द शूद्रा से समागम कर सभी क्षत्रियों का अन्त करने वाला राजा होगा।।१३९।। उसके बाद उस समय से लेकर शूद्र योनि से उत्पन्न होने वाले राजा होंगे। एक राजा महापद्मनन्द राजा होगा, जिसका समस्त भूमण्डल पर एकच्छत्र राज्य होगा।।१४०।।

वह राजा महापद्मनन्द भावी अर्थ के लिये भूमण्डल के समस्त राजाओं के राज्यों को बलपूर्वक छीनकर (जीतकर) अट्ठासी वर्ष तक समस्त पृथ्वी का पालन करेगा।।१४१।। उसके बाद उसके आठ पुत्र बारह वर्ष तक महापद्म के पर्याय में अर्थात् भिन्न-भिन्न देशों में महापद्म के ही रूप में राजा होंगे।।१४२।। उन सब राजाओं को कौटिल्य नाम का श्रेष्ठ ब्राह्मण उखाड़ फेंकेगा। वह पृथ्वी का भोगकर सौ वर्ष तक राजा होगा।।१४३।। वह ब्राह्मण कौटिल्य चन्द्रगुप्त को राज्य पद पर स्थापित करेगा। तब चौबीस वर्ष तक चन्द्रगुप्त राजा होगा।।१४४।। फिर पच्चीस वर्ष तक भद्रसार राजा होगा। उसके बाद छत्तीस वर्ष अशोकों का राजा तृप्ति देने वाला होगा अर्थात् अशोक नामक राजा होगा।।१४५।। उसका पुत्र कुलाल (कुणाल) आठ वर्ष तक राजा होगा। उस कुलाल (कुशाल) (कुणाल) के आठ पुत्रों में बन्धुपालित इस पृथ्वी का भोग करने वाला होगा।।१४६।। बन्धुपालित का उत्तराधिकारी इन्द्रपालित होगा। उसके बाद सात वर्ष तक देववर्मा राजा होंगे।।१४७।।

राजा शतधनुश्चापि तस्य पुत्रो भविष्यति। बृहद्रथश्च वर्षाणि सप्त वै भविता नृपः॥१४८॥
इत्येते नव मौर्या वै भोक्ष्यंति च वसुंधराम्। सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुंगो गमिष्यति॥१४९॥
पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धत्य तु बृहद्रथम्। कारयिष्यति वै राज्यं समाः षष्टिं स चैव तु॥१५०॥

अग्निमित्रो नृपश्चाष्टौ भविष्यति समा नृपः।
भविता चाऽपि सुज्येष्ठः सप्त वर्षामि वै ततः॥१५१॥

वसुमित्रस्ततो भाव्यो दशवर्षाणि पार्थिवः। ततो भद्रः समे द्वे तु भविष्यति नृपश्च वै॥१५२॥

भविष्यति समास्तस्मात्तिस्त्र एव पुलिंदकः।
राजा घोषस्ततश्चापि वर्षाणि भविता त्रयः॥१५३॥

सप्त वै वज्रमित्रस्तु समा राजा ततः पुनः। द्वात्रिंशद्भविता वाऽपि समा भागवतो नृपः॥१५४॥
भविष्यति सुतस्तस्य देवभूमिः समा दश। दशैते शुंगराजानो भोक्ष्यंतीमां वसुंधराम्॥१५५॥

शतं पूर्णं दश द्वे च तेभ्यः कण्वं गमिष्यति।
अमात्यो वसुदेवस्तु बाल्याद्व्यसनिनं नृपम्॥१५६॥

देवभूमिं ततो हत्वा शुंगेषु भविता नृपः। भविष्यति समा राजा पंच कण्वायनस्तु सः॥१५७॥
भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्विंशद्भविष्यति। भविता द्वादश समास्तस्मान्नारयणो नृपः॥१५८॥
सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति चतुःसमाः। कण्वायनास्तु चत्वारश्चत्वारिंशच्च पंच च॥१५९॥
समा भोक्ष्यंति पृथिवीं पुनरंधान्गमिष्यति। कण्वायनमथोद्धत्य सुशर्माणं प्रसह्य तम्॥१६०॥

राजा शतधनु उस देववर्मा का पुत्र होगा, फिर वृहद्रथ सात वर्ष तक राजा होगा।।१४८।। इस प्रकार ये नौ मौर्यवंशी राजा पृथ्वी का भोग करेंगे। एक सौ सैंतीस वर्ष तक मौर्यवंश का राज्य उनसे वह राज्य शुंग को प्राप्त होगा।।१४९।। सेनापति पुष्यमित्र राजा बृहद्रथ को मारकर साठ वर्ष राज्य करायेगा।।१५०।। उसके बाद राजा अग्निमित्र आठ वर्ष तक राज्य करेगा, फिर सात वर्ष राजा सुज्येष्ठ राज्य करेगा।।१५१।। उसके बाद दशवर्ष तक वसुमित्र राजा होगा। उसके बाद दो वर्ष तक राजा भद्र राज्य करेंगे।।१५२।। उससे राज्य प्राप्त कर राजा पुलिन्दक तीन वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद राजा घोष तीन वर्ष तक राजा होगा।।१५३।। तदनन्तर राजा वज्रमित्र सात वर्ष तक राजा होगा, फिर वत्तीस वर्ष राजा भागवत होंगे।।१५४।। उन राजा भागवत के देवभूमि दश वर्ष तक राजा होंगे। इस प्रकार ये दश शुंगवंशीय राजा इस पृथ्वी का भोग करेंगे।।१५५।।

पूरे एक सौ बारह वर्ष तक उन राजाओं से राज्य कण्व के पास जायेगा। वसुदेव नामक मन्त्री बचपन से ही व्यभिचारी व्यसनी राजा देवभूमि को मारकर शुंगों में राजा होगा और वह कण्व राजा पाँच वर्ष तक राजा होगा।।१५६-१५७।। फिर उसका पुत्र भूमिमित्र चौवीस वर्ष तक राजा होगा। उसके बाद बारह वर्ष तक नारायण राजा होंगे।।१५८।। उन नारायण का पुत्र सुशर्मा चार वर्ष तक राजा होगा।।१५८½।। इस प्रकार कण्व वंश के चार राजा पैतालीस वर्ष तक इस पृथ्वी का भोग करेंगे, फिर यह पृथ्वी अन्ध्र राजाओं के पास चली जायेगी।।१५८½-१५९½।। कण्व वंश उस सुशर्मा को बलपूर्वक खदेड़कर (मारकर) उखाड़कर अन्ध्रजातीय राजा सिन्धुक इस पृथ्वी

सिंधुको ह्यंधजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुंधराम्।
त्रयोविंशत्समा राजा सिंधुको भविता त्वथ॥१६१॥
कृष्णो भ्राताऽस्य वर्षाणि सोऽस्माद्दश भविष्यति।
श्रीशांतकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै महान्॥१६२॥
पंचाशत्तु समाः षट् च शांतकर्णिर्भविष्यति।
आपोलवो द्वादश वै तस्य पुत्रो भविष्यति॥१६३॥
चतुर्विंशत्तु वर्षाणि पटुमांश्च भविष्यति। भवितानिष्टकर्मा तु वर्षाणां पंचविंशतिम्॥१६४॥
ततः संवत्सरं पूर्ण हालो राजा भविष्यति। पंचपत्तल्लको नाम भविष्यति महाबलः॥१६५॥
भाव्यः पुरीषभीरुस्तु समाः सोऽप्येकविंशतिम्।
शातकर्णिर्वर्षमेकं भविष्यति नराधिपः॥१६६॥
अष्टविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति। राजा च गौतमी पुत्र एकविंशत्समा नृपः॥१६७॥
एकोनविंशतिं राजा यज्ञः श्रीशतकर्ण्यथ। षडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृपः॥१६८॥
दंडश्रीशातकर्णी च तस्य पुत्रः समास्त्रयः। पुलोमारिः समाः सप्त ततश्चैषां भविष्यति॥१६९॥
इत्येते वै नृपास्त्रिं शदंध्रा भोक्ष्यंति वै महीम्।
समाः शतानि चत्वारि पंचाशत्षट् तथैव च॥१७०॥
अंध्राणां संस्थिताः पंच तेषां वंश्याश्च ये पुनः।
सप्तैव तु भविष्यंति दशाभीरास्ततो नृपाः॥१७१॥
सप्त गर्दभिनश्चापि ततोऽथ दश वै शकाः। यवनाष्टौ भविष्यंति तुषारास्तु चतुर्दश॥१७२॥

को प्राप्त करेगा। इसके बाद तेईस वर्ष तक सिन्धुक राजा होगा।।१५९½-१६१।। फिर उस राजा सिन्धुक का भाई कृष्ण दश वर्ष तक राज्य करेगा, फिर उसका पुत्र महान् श्रीशांतकर्णि राजा होगा।।१६२।। वह शान्तकर्णि छप्पन वर्ष तक राजा रहेगा, फिर उसके पुत्र अनिष्टकर्मा पच्चीस वर्ष तक राजा होंगे।।१६४।। उसके बाद पूरे सौ वर्ष तक हाल राजा होंगे। पंचपत्तल्लक नाम का महाबलवान् राजा होगा।।१६५।।

उसके इक्कीस वर्ष तक पुरीषभीरु नाम के राजा होंगे और शातकर्णि एक वर्ष तक राजा होंगे।।१६६।। अट्ठाईस वर्ष तक शिवस्वाति राजा होंगे। इक्कीस वर्ष तक गौतमीपुत्र राजा होंगे।।१६७।। उसके बाद उन्नीस वर्ष तक श्रीशतकर्णि राजा होंगे। उसके बाद छः वर्ष तक विजय राजा होंगे।।१६८।। उसके बाद उनके पुत्र दण्डश्रीशतकर्णी तीन वर्ष तक राजा होंगे, उसके बाद इनमें पुलोमारि सात वर्ष तक राजा होंगे।।१६९।। इस प्रकार ये तीस अन्ध्रक वंशीय राजा पृथ्वी का भोग करेंगे। उसी प्रकार वे सब चार सौ छप्पन वर्ष तक अन्ध्रक वंशीय राजा राज्य करेंगे।।१७०।। उन अन्ध्रों के पाँच राजा संस्थित होंगे और सात उनके वंश वाले राजा होंगे। उसके बाद दश आभीर वंशीय राजा होंगे।।१७१।। सात राजा गर्दभी होंगे, उसके बाद दश शक राजा होंगे तथा आठ यवन राजा होंगे और चौदह राजा तुषार होंगे।।१७२।।

त्रयोदश गुरुंडाश्च मौना ह्येकादशैव तु। अंधा भोक्ष्यंति वसुधां शते द्वे च शतञ्च वै॥१७३॥
सप्तषष्टिं च वर्षाणि दशाभीरास्ततो नृपाः। सप्त गर्दभिनश्चैव भोक्ष्यंतीमां द्विसप्ततिम्॥१७४॥
शतानि त्रीण्यशीतिं च भोक्ष्यंति वसुधां शकाः।
आशीती द्वे च वर्षाणि भोक्तारो यवना महीम्॥१७५॥
पंचवर्षशतानीह तुषाराणां मही स्मृता। शतान्यर्द्धचतुर्थानि भवितारस्त्रयोदश॥१७६॥
गुरुंडा वृषलैः सार्द्धं भोक्ष्यंते म्लेच्छजातयः।
शतानि त्रीणि भोक्ष्यंते मौना एकादशैव तु॥१७७॥
तेषु च्छिन्नेषु कालेन ततः किलकिलो नृपः।
ततः किलकिलेभ्यश्च विंध्यशक्तिर्भविष्यति॥१७८॥
समाः षण्णवतिं चैव पृथिवीं तु समेष्यति। नृपान्वैदिशकांश्चाथ भविष्यांस्तु निबोधत॥१७९॥
शेषस्य नागराजस्य पुत्रः सुरपुरंजयः। भोगी भविष्यते राजा नृपो नागकुलोद्वहः॥१८०॥
सदाचंद्रस्तु चंद्राशुर्द्वितीयो नखवांस्तथा। धनधर्मा ततश्चापि चतुर्थो वंशजः स्मृतः॥१८१॥
भूतिनंदस्ततश्चापि वैदिशे तु भविष्यति। तस्य भ्राता यवीयांस्तु नाम्ना नंदियशाः किल॥१८२॥
तस्यान्वये भविष्यंति राजानस्ते त्रयस्तु वै।
दौहित्रः शिशिको नाम पूरिकायां नृपोऽभवत्॥१८३॥
विंध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान्।
भोक्ष्यते च समाः षष्टिं पुरी कांचनकां च वै॥१८४॥
यक्ष्यते वाजपेयैश्च समाप्तवरदक्षिणैः। तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यंति नराधिपाः॥१८५॥

तेरह राजा गुरुण्ड होंगे और ग्यारह मौना होंगे। अन्ध्रवंशीय राजा इस पृथ्वी को तीन सौ वर्ष तक भोग करेंगे।।१७३।। उनमें सरसठ वर्षों तक दश आभीर राजा राज्य करेंगे और सात गर्दभी राजा बहत्तर वर्ष तक इस पृथ्वी को भोगेंगे।।१७४।। तीन सौ अस्सी वर्ष तक शक राजा इस वसुधा का भोग करेंगे। बयासी वर्ष तक यवन (मुसलमान) इस पृथ्वी को भोगने वाले होंगे।।१७५।। पाँच सौ वर्ष तक यह पृथ्वी तुषार राजाओ की होगी।।१७६।।

वे तरह गुरुण्डा शूद्रों के साथ म्लेच्छ जातियां साढ़े चार सौ वर्षों तक राज्य करेंगी। तीन सौ वर्ष तक इस पृथ्वी का भोग ग्यारह मौना करेंगे।।१७७।। फिर समय आने पर उन राजाओं के राज्यों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर किलकल राजा राज्य करेगा, उसके बाद किलकिल राजाओं से विन्ध्य की शक्ति होगी।।१७८।। छियानवें वर्ष तक पृथ्वी तो समता को प्राप्त होगी। अब भविष्य में होने वाले विदेशी राजाओं को सुनिये।।१७९।। नागराज शेष के पुत्र सुरपुरञ्जय वे नागकुल को वहन करने वाले राजा पृथ्वी का भोग करने वाले होंगे।।१८०।। पहले सदाचन्द्र चन्द्रांशु द्वितीय तथा नखवान् फिर धनधर्मा उसके बाद चौथा वंश स्मरण किया गया है।।१८१।। उसके बाद विदिशा में राजा भूतिनन्दन होंगे, उनका छोटा भाई नन्दियशा नाम का राजा होगा।।१८२।। उन राजा के वंश में तीन राजा होंगे। पूरिका नाम की रानी में शिशिक नामक राजा नन्दियशा का नाती होगा।।१८३।। विन्ध्यशक्ति का पुत्र प्रवीर नामक पराक्रमी राजा होगा। वह राजा काञ्चनका पुरी (लंकापुरी) को छः वर्ष तक भोग करेगा।।१८४।। यज्ञ की

विंध्यकानां कुलानां ते नृपा वैवाहिकास्त्रयः।
सुप्रतीको गभीरश्च समा भोक्ष्यति विंशतिम्॥१८६॥
शंकमानोऽभवद्राजा महिषीणां महीपतिः। पुष्पमित्रा भविष्यंति षट् त्रिमित्रास्त्रयोदश॥१८७॥
मेकलायां नृपाः सप्त भविष्यंति च सप्ततिः।
कोमलायां तु राजानो भविष्यंति महाबलाः॥१८८॥
मेघा इति समाख्याता बुद्धिमंतो नवैव तु। नैषधाः पार्थिवाः सर्वे भविष्यंत्यामनुक्षयात्॥१८९॥
नलवंशप्रसूतास्ते वीर्यवंतो महाबलाः। मगधानां महावीर्यो विश्वस्फाणिर्भविष्यति॥१९०॥
उत्साद्य पार्थिवान्सर्वान्सोऽन्यान्वर्णान्करिष्यति।
कैवर्त्तान्मद्रकांश्चैव पुलिंदान्ब्राह्मणांस्तथा॥१९१॥
स्थापयिष्यंति राजानो नानादेशेषु ते जनान्।
विश्वस्फाणिर्महासत्त्वो युद्धे विष्णुसमप्रभः॥१९२॥
विश्वस्फाणिर्नरपतिः क्लीबाकृतिरिवोच्यते। उत्सादयित्वा क्षत्रं तु क्षत्रमन्यत्करिष्यति॥१९३॥
नव नागास्तु भोक्ष्यंति पुरीं चंपावतीं नृपाः। मथुरां च पुरीं रम्यां नागा भोक्ष्यंति सप्त वै॥१९४॥
अनुगंगाप्रयागं च साकेतं मगधांस्तथा। एताञ्जनपदान्सवान्भोक्ष्यंते सप्तवंशजाः॥१९५॥
नैषधान्यदुकांस्चैव शैशीतान् कालतोयकान्।
एताञ्जनपदान्सर्वान्भोक्ष्यंते मणिधान्यजान्॥१९६॥
कोशलांश्चांध्रपौंड्रांश्च ताम्रलिप्तान्ससागरान्। चंपां चैव पुरीं रम्यां भोक्ष्यंते देवरक्षिताः॥१९७॥

समाप्ति पर दक्षिणा देने वाले वाजपेयों द्वारा यज्ञ किये जायेंगे, तब उस राजा प्रवीर को चार पुत्र राजा होंगे।।१८५।। विन्ध्यक कुलों के वे तीन वैवाहिक राजा सुप्रतीक और गभीर बीस वर्ष तक पृथ्वी का भोग करेंगे।।१८६।। और शंकमान राजा माहिषी वंशजों का पृथ्वी का स्वामी होगा। फिर पुष्पमित्र राजा छः वर्ष और त्रिमित्र तेरह वर्ष तक होंगे।।१८७।। मेकला में सात राजा होंगे और कोमला में सत्तर महाबलवान् राजा होंगे।।१८८।। मेघ नामक वंश के नौ राजा होंगे, सब नैषध राजा अपने अपने अनुक्षय से होंगे।।१८९।। वे सब नैषध राजा नल के वंश में उत्पन्न हुए थे और पराक्रमी तथा महाबलवान् राजा होंगे। मगधों का महाप्रराक्रमी राजा विश्वस्फाणि होगा, वह राजा अन्य वर्णो के सभी राजाओं का नाश करके राज्य करेगा।।१९१-१९१½।। वे राजा कैवर्तों, मन्द्रकों, पुलिन्दों और ब्राह्मणों को अनेकों देशों में स्थापित करायेगा। विश्वस्फाणि राजा युद्ध में विष्णु के समान महापराक्रमी होगा।।१९२।।

विश्वस्फाणि राजा नपुंसक की आकृति के समान कहा जाता है। वह राजा क्षत्र का नाश कराकर अन्य क्षत्र को बनायेगा।।१९३।। नौ वर्ष तक नाग राजा चम्पावती पुरी का भोग करेंगे। रम्य मथुरा नगरी का सात वर्ष तक नाग राजा भोग करेंगे।।१९४।। गंगा के किनारे के जनपदों, प्रयाग, साकेत (अयोध्या) तथा मगध इन सभी जनपदों का सात वंशों में उत्पन्न राजा भोग करेंगे।।१९५।। नैषध, यदुक, शैशीत, कालतोयक, मणिधान्यज, कौशल, आन्ध्र सागर सहित ताम्रलिप्त प्रदेशों और रम्य चम्पापुरी का भोग देवरक्षित राजा करेंगे।।१९६-१९७।।

कलिंगा महिषाश्चैव महेन्द्रनिलयाश्च ये। एताञ्जनपदान्सर्वान् पालयिष्यति वै गुहः॥१९८॥
स्त्रीराष्ट्रभोजकांश्चैव भोक्ष्यते कनकाह्वयः। तुल्यकालं भविष्यंति सर्वे ह्येते महीक्षितः॥१९९॥
अल्पप्रसादाह्यनृता महाक्रोधा ह्यधार्मिकाः। भविष्यंतीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः॥२००॥
नैव मूर्द्धाभिषिक्तास्ते भविष्यंति नराधिपाः। युगदोषदुराचारा भविष्यंति नृपास्तु ते॥२०१॥
भविष्यंतीह पर्याये कालेन पृथिवीक्षितः। विहीनास्तु भविष्यंति धर्मतः कामतोऽर्थतः॥२०२॥
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाचाराश्च सर्वशः। विपर्ययेण वर्तंते नाशयिष्यंति वै प्रजाः॥२०३॥
लुब्धा अनृतवाचश्च भवितारस्तदा नृपाः। तेषां वर्त्तंति पर्याय बहुस्त्रीके युगे तदा॥२०४॥
लवाल्लवं भ्रश्यमाना आयूरूपबलश्रुतैः। तथागतासु वै काष्ठं प्रजासु जगतीश्वराः॥२०५॥

राजानः संप्रणश्यति कालेनोपहतास्तदा।
कलिना व्याहताः सर्वे म्लेच्छा यास्यंति संक्षयम्॥२०६॥
अधार्मिकाश्च येऽत्यर्थं पाखंडाश्चैव सर्वशः।
प्रनष्टे नृपशब्देः च संध्याशिष्टे कलौ युगे॥२०७॥
किंचिच्छिष्टाः प्रजास्ता वै धर्मे नष्टे परिग्रहाः।
असाधना हतस्वाश्च व्याधिशोकनिपीडिताः॥२०८॥
अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेन च॥२०९॥

कलिङ्ग, महिष, महेन्द्र, निलय जो जनपद हैं, इन सब का पालन राजा गुह करेंगे।।१९८।। स्त्री राष्ट्रभोजक जनपदों का भोग कनकाह्वय राजा करेंगे। ये सभी राजा लोग समान समय में होंगे।।१९९।। उस समय यवन राजा कम प्रसन्न होने वाले, झूठ बोलने वाले, महाक्रोधी, धर्म से, अर्थ से और काम से अधार्मिक होंगे। वे राजा लोग कभी राजतिलक करके राजा नहीं बनाये जायेंगे। वे राजा लोग कलियुग के दोष से दुराचारी हो जायेंगे।।२००-२०१।। कलिकाल के द्वारा यहाँ के राजा लोग धर्म, अर्थ और काम से विहीन होंगे।।२०२।। उन राजाओं द्वारा सभीजनपद मिलकर सब ओर म्लेच्छ के आचरण वाले हो जायेंगे और विपरीत रूप से व्यवहार करते हुए समस्त प्रजाओं को नष्ट कर देंगे।।२०३।।

तब राजा लोग लोभी, मिथ्यावादी होंगे, तब उस पर्याय में राजा लोग बहुत स्त्रियों के भोगी हो जायेंगे।।२०४।। राजा लोग आयु, रूप, बल और शास्त्र ज्ञान से क्षण-क्षण भ्रष्ट होते हुए, तब सब राजा लोग कलिकाल से उपहत होकर नष्ट हो जायेंगे तथा कल्कि द्वारा विशेष आहत सब राजा नाश को प्राप्त होंगे।।२०५-२०६।। कलियुग के सन्ध्या के शेष रहने पर राजाओं का नृप शब्द नष्ट हो जायेगा अर्थात् तब राजा नृप अर्थात् मनुष्यों के पालन करने वाले नहीं रह जायेंगे तथा सभी राजा अधार्मिक और अत्यन्त पाखण्डी हो जायेंगे।।२०७।। कलि के अन्त तक कुछ ही प्रजा बचेंगी, उनके धर्म नष्ट हो जायेंगे, घर नष्ट हो जायेंगे, वे साधन होंगे, धनहीन और व्याधि और शोक से पीड़ित हो जायेंगे।।२०८।। उस समय राजा अनावृष्टि से पीड़ित प्रजा आपस में एक दूसरे का वध करके अनाधार, परित्रस्त हो जायेगी और वार्ता को छोड़कर दुःखित लोग गाँव और नगरों को छोड़कर वन में

अनाधाराः परित्रस्ता वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः।
त्यक्त्वा पुराणि ग्रामांश्च भविष्यति वनौकसः॥२१०॥
एवंरूपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा गृहाणि तु। नष्टे स्नेहे दुरापन्ना भ्रष्टस्नेहाः सुहृज्जनः॥२११॥
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः। सरित्पर्वतसेविन्यो भविष्यंति प्रजास्तदा॥२१२॥
सरितः सागरानूपान्सेवंते पर्वतानय। अंगान्कलिंगान्वंगांश्च काश्मीरान्काशिकोशलान्॥२१३॥
ऋषिकांतागिरिद्रोणीः संश्रयिष्यंति मानवाः।
कृत्स्नं हिमवतः पृष्ठं कूलं च लवणांभसः॥२१४॥
अरण्यमभिषत्स्यंते आर्या म्लेच्छजनैः सह। मृगैर्मीनैर्विहंगैश्च श्वापदैश्चेक्षुभिस्तथा॥२१५॥
मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यंति मानवाः। चीरं पर्णं च विविधं वल्कलान्यजिनानि च॥२१६॥
स्वयं कृत्वा विधास्यंति यथा मुनिजनस्तथा।
बीजान्नानि तथा निम्नेष्वीहंतः काष्ठशंकुभिः॥२१७॥
अजैडकं खरोष्ट्रं च पालयिष्यंति यत्नतः। नदीर्वत्स्यंति तोयार्थे नूनमाश्रित्व मानवाः॥२१८॥
पार्थिवा व्यवहारेण विवाधंते परस्परम्। बहुमन्याः प्रजाहीनाः शौचाचारविवर्जिताः॥२१९॥
एवं भविष्यंति नरास्तदाधर्म व्यवस्थिताः। हीनान्दीनांस्तथाधर्मान्प्रजा समनुवर्त्स्यंति॥२२०॥

निवास करने वाले होंगे।।२०९-२१०।। इस प्रकार मनुष्य कलियुग के सन्ध्या से पूर्व ही कलि के प्रभाव से मनुष्य कुरूप हो जायेंगे तथा मनुष्यों के रूपों के नष्ट हो जाने पर प्रजायें घरों को छोड़कर वनों में रहने लगेंगी। परस्पर प्रेम नष्ट हो जायेंगे तथा प्रेम के नष्ट हो जाने पर बुरी बुरी आपत्तियों से ग्रस्त होंगे। मित्रगण भ्रष्ट प्रेमयुक्त होंगे, प्रजायें वर्ण और आश्रमों के धर्म का पालन करना छोड़ देंगी और सभी लोग वर्णसंकर हो जायेंगे अर्थात् सवर्णों की स्त्रियां एवं पुरुष शूद्रों के पुरुषों और स्त्रियों से संयोग कर वर्णसंकर सन्तान पैदा करेंगे। अतः समाज में घोर वर्णसंकरता व्याप्त हो जायेगी और तब समस्त प्रजायें नदियों और पर्वतों का सेवन करने वाली हो जायेंगी।।२११-२१२।। और फिर सब प्रजा नदियों, सागरों और पर्वतों के पास शरण लेंगी। अंग देश कलिङ्ग, बंगाल, काश्मीर, काशी और कौशल, ऋषिकेश और द्रोण गिरि पर्वतों पर मनुष्य आश्रय ग्रहण करेंगे। समस्त हिमालय की पीठ लवण समुद्र के किनारों पर मनुष्य आश्रय ग्रहण करेंगे।।२१३-२१४।।

आर्य लोग मृग, मीन, पक्षियों, जंगली जानवरों और म्लेच्छ लोगों के साथ वनों में रहेंगे।।२१५।। मानव मधु शाक फल और मूलों से अपना जीवन यापन करेंगे। मुनि जन चीर पत्ते और अनेकों प्रकार के वृक्षों की छाल के कपड़े स्वयं बनाकर पहनेंगे। बीज और अन्न नीचे गहराई पर नुकीली कील से बोये जायेंगे।।२१६-२१७।। सब मनुष्य, बकरी, भेड़, गदहे और ऊँटों का यत्नपूर्वक पालन करेंगे, मानव निश्चय ही नदियों का आश्रय लेंगे, वे नदियों का व्यवहार जल के लिये करेंगे।।२१८।। राजा लोग अपने व्यवहार से एक दूसरे को विशेष बाधायें पहुँचायेंगे तथा वे राजा लोग अपने को ही बहुत मानने वाले, सन्तानहीन तथा पवित्रता और आचरणहीन हो जायेंगे।।२१९।। इस प्रकार तब मनुष्य अधर्म में व्यवस्थित हो जायेंगे तथा प्रजा हीन, दीन और अधर्मियों के समान व्यवहार करेगी।।२२०।।

आयुस्तदा त्रयोविंशन्न कश्चिदतिवर्तते। दुर्बला विषय ग्लाना जरया संपरिप्लुताः॥२२१॥
पत्रमूलफलाहाराश्चीरकृष्णाजिनांबराः वृत्त्यर्थमभिलिप्स्यंतश्चरिष्यंति वसुंधराम्॥२२२॥
एतत्कालमनुप्राप्ताः प्रजाः कलियुगांतके। क्षीणे कलियुगे तस्मिन्दिव्ये वर्षसहस्रके॥२२३॥
निःशेषास्तु भविष्यंति सार्द्धं कलियुगेन तु। स संध्यांशे तु निःशेषे कृतं वै प्रतिपत्स्यते॥२२४॥
यदा चंद्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती। एकराशौ भविष्यंति तदा कृतयुगं भवेत्॥२२५॥
एष वंशक्रमः कृत्स्नः कीर्तितो वो यथाक्रमम्। अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये॥२२६॥
महानन्दाभिषेकांतं जन्म यावत्परीक्षितः। एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पंचाशदुत्तरम्॥२२७॥

प्रमाणं वै तथा वक्तुं महापद्मोत्तरं च यत्।
अंतरं च शतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः॥२२८॥
एतत्कालांतरं भाव्यमंधांताद्याः प्रकीर्तिताः।
भविष्यैस्तत्र संख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः॥२२९॥
सप्तर्षयस्तदा प्राप्ताः पित्र्ये पारीक्षिते शतम्।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणां तेऽन्वयाः पुनः॥२३०॥

सप्तविंशतिपर्यंते कृत्स्ने नक्षत्रमंडले। सप्तर्षयस्तु तिष्ठंति पर्यायेण शतंशतम्॥२३१॥

उस समय मनुष्य की आयु तेईस वर्ष की हो जायेगी। तेईस वर्ष की आयु को कोई पार नहीं कर पायेगा। मनुष्य दुर्बल हो जायेंगे। विषयभोगों से ग्लान (शर्मसार) हो जायेंगे और वृद्धावस्था से पूरी तरह व्याप्त हो जायेंगे।।२२१।। मनुष्य पत्र मूल फल का आहार करेंगे तथा चीर (वस्त्र) काले मृग की खाल के कपड़े पहनेंगे तथा सब अपनी जीविका को चाहते हुए समस्त पृथ्वी पर घूमेंगे।।२२२।। इस प्रकार की स्थिति, प्रजा कलियुग के अन्त में एक हजार दिव्य वर्ष में कलियुग के क्षीण हो जाने पर प्राप्त करेगी।।२२३।। कलियुग के साथ मनुष्य निःशेष होंगे। कलियुग के सन्ध्या के अंश में जो मनुष्य शेष रहेंगे, वे ही सतयुग का प्रतिपादन करेंगे। कलियुग के अन्त होने पर कलि और सतयुग के मिलने के समय बहुत कम मनुष्य शेष रह जायेंगे तथा जो शेष रह जायेंगे, वे ही सतयुग का निर्माण करेंगे।।२२४।। जब चन्द्रमा, सूर्य, पुष्य नक्षत्र तथा बृहस्पति एक राशि में होंगे, तब सतयुग होगा।।२२५।।

सूत जी ने कहा कि ऋषियो! यह मैंने समस्त वंशक्रम क्रमानुसार भूत, वर्तमान और भविष्य के राजाओं का वर्णन कर दिया है।।२२६।। जब राजा परीक्षित का जन्म हुआ था, उस समय से लेकर महाराज नन्द के अभिषेक के अन्त तक एक हजार पचास वर्ष समझना चाहिये।।२२७।। राजा परीक्षित के राज्यकाल से महापद्मनन्द के राजा होने के अन्त तक आठ सौ छत्तीस वर्ष स्मरण किये गये हैं। इस प्रकार छः सौ चौसठ वर्ष तक नन्द वंश का राज्य रहा।।२२८।। इस समय के बाद आन्ध्र आदि राजाओं का राज्य रहा, यह वर्णन किया गया है। उसके बाद पुराण ज्ञाताओं तथा वेदशास्त्रों के जानने वाले ऋषियों ने भविष्य में होने वाले राजाओं का वर्णन किया है।।२२९।। उस समय परीक्षित के काल में सप्तर्षि ने मघा नक्षत्र (माघ) में १०० वर्ष पूरे किये थे। तब सत्ताईस सौ वर्ष अन्ध्रों के वंश का शासन रहा।।२३०।। समस्त नक्षत्र मण्डल में सप्तर्षि सौ सौ वर्ष के क्रम से सत्ताईस सौ वर्ष रहते

सप्तर्षीणां युगं त्वेतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम्।
मासा दिव्याः स्मृताः षट्च दिव्याब्दाश्चैव सप्त हि॥२३२॥
तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु तैः।
सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उत्तरादिशि॥२३३॥
तयोर्मध्ये च नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि। तेन सप्तर्षयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि शतं समाः॥२३४॥
नक्षत्राणामृषीमां च भोगस्यैतन्निदर्शनम्।
सप्तर्षयो ह्यथायुक्ताः काले पारीक्षिते शतम्॥२३५॥
अन्धांते सचतुर्विंशे भविष्यंति शतं समाः।
इमास्तदा तु प्रकृतिर्व्यापत्स्यन्ते प्रजा भृशम्॥२३६॥
अनृतोपहताः सर्वा धर्मतः कामतोऽर्थतः। श्रौतस्मार्त्ते प्रशिथिले धर्मे वर्णाश्रमे तदा॥२३७॥
संकरं दुर्बलात्मानः प्रतियास्यंति मोहिताः।
संसक्ताश्च भविष्यंति शूद्राः सार्द्धं द्विजातिभिः॥२३८॥
ब्राह्मणाः शूद्रयष्टारः शूद्रा वै मंत्रयोनयः।
उपस्थास्यंति तान्विप्रांस्तदा दौर्वृत्त्यलिप्सवः॥२३९॥
लवाल्लवं भ्रश्यमानाः प्रजाः सर्वाः क्रमेण तु। क्षयमेव गमिष्यंति क्षीणशेषा युगक्षये॥२४०॥

हैं।।२३१।। सप्त ऋषियों का युग (काल) दिव्य वर्ष की संख्या द्वारा स्मरण किया गया है। छः दिव्यमास तथा सात दिव्य वर्ष अर्थात् साढ़े सात दिव्य वर्ष तक ऋषि लोगों का सौ वर्ष होता है। सप्तर्षिगणों के इस प्रकार के गतिक्रम में दिव्यकाल का प्रवर्तन होता है।।२३२-२३२½।। सप्तर्षिगण प्रथमतः नक्षत्र मण्डल के पूर्व दिशा में रहते हैं, फिर उसके बाद उत्तर दिशा की ओर दिखायी पड़ते हैं। उसके बाद आकाशमणडल के मध्यभाग में जो नक्षत्र दिखायी पड़ता है, उसके समानान्तर दिखायी पड़ते हैं। उसके साथ आकाश में सप्तर्षियों को सौ वर्षों तक स्थित समझना चाहिये। नक्षत्रों और सप्तर्षियों के योग का यही निदर्शन है।।२३२½-२३४½।।

इस प्रकार राजा परीक्षित के शासनकाल में सप्तर्षिगण एक सौ वर्ष तक मघा नक्षत्र में स्थित होंगे। अन्ध्रवंशीय राजा की स्थिति के बाद वे चौबीसवें नक्षत्र शतभिषा में स्थित होंगे।।२३४½-२३५½।। उस समय पृथ्वी पर सभी प्रजायें प्राकृतिक विपत्तियों में फँस जायेंगी। समस्त प्रजायें मिथ्याचरण परायण होकर धर्म, अर्थ और काम से विहीन हो जायेंगी। वेदों और स्मृति में वर्णित कर्म पूरी तरह शिथिल हो जायेंगे, वर्णाश्रम धर्म का ह्रास हो जायेगा।।२३५½-२३७।। दुर्बल आत्मा वाले मनुष्य मोहित होकर वर्णसंकर हो जायेंगे तथा ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य (द्विजातिवर्ण) शूद्रों के साथ मिल जायेंगे।।२३८।। ब्राह्मण लोग शूद्रों के घर जाकर यज्ञ करने वाले हो जायेंगे तथा शूद्र लोग मन्त्रों के रचयिता बनेंगे (जैसे कि अम्बेडर) जीविका प्राप्त करने के लोभ से ब्राह्मण लोग शूद्रों की उपासना करने लगेंगे।।२३९।। इस प्रकार धीरे-धीरे समस्त प्रजा क्रमशः भ्रष्ट होने लगेगी तथा युग के नष्ट होने पर जो क्षीण होने से बचे हुए हैं, वे भी नाश को प्राप्त हो जायेंगे।।२४०।।

यस्मिन्कृष्णो दिव्यं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने।
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत॥२४१॥
सहस्राणां शतानीह त्रीणि मानुषसंख्यया।
षष्टिं चैव सहस्राणि वर्षाणां तूच्यते कलिः॥२४२॥
दिव्यं वर्षसहस्रं तु तत्संध्यांशे हि कीर्त्तिते। निःशेषे च तदा तस्मिन्कृतं वै प्रतिपत्स्यते॥२४३॥
ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सह भेदैः प्रकीर्तितौ। इक्ष्वाकोस्तु स्मृतं क्षत्रं सुमित्रांतं विवस्वतः॥२४४॥
ऐलं क्षत्रं क्षेमकांतं सोमवंशविदो विदुः। एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्त्तिवर्द्धनाः॥२४५॥
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवात्र ये स्मृताः॥२४६॥
युगेयुगे महात्मानः समतीताः सहस्रशः। बहुत्वान्नामधेयानां परिसंख्या कुलेकुले॥२४७॥
पुनरुक्तिबहुत्वाच्च न मया परिकीर्तिता। वैवस्वंऽतरे ह्यस्मिन् निमिवंशः समाप्यते॥२४८॥
एतस्यां तु युगाख्यायां यतः क्षत्रं प्रपत्स्यते। तथा हि कथयिष्यामि गदतो मे निबोधत॥२४९॥
देवापिः पौरवो राजा ऐक्ष्वाकुश्चैव यो मरुः। महायोगबलोपेतौ कलापग्राममास्थितौ॥२५०॥
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ चतुर्विंशे चतुर्युगे। सुवर्चा नाम पुत्रस्तु इक्ष्वाकोस्तु भविष्यति॥२५१॥

अब सूत जी! कलियुग के प्रवर्त होने का समय बताते हुए कहते हैं कि जिस दिन भगवान् कृष्ण स्वर्गवासी हुए थे, उसी दिन से कलियुग की प्रवृत्ति हुई थी, उसकी अवधि की संख्या सुनिये।।२४१।।

कलियुग की अवधि मानव वर्ष के अनुसार तीन लाख साठ हजार वर्ष की होती है।।२४२।। उसका सन्ध्यंश देवमान के अनुसार एक हजार दिव्य वर्षों का होता है। कलियुग की समाप्ति हो जाने पर सतयुग का प्रारम्भ होता है।।२४३।।

सूत जी ने कहा कि यहाँ तक हमने ऐल और इक्ष्वाकु वंश के राजाओं का वर्णन कर दिया तथा उनके भेदों को भी बता दिया है। इक्ष्वाकु के वंश में जिन क्षत्रियों का आविर्भाव हुआ, वे सब रात्र सुमित्र पर्यन्त रहे। उसके बाद सूर्य पुत्र इक्ष्वाकु के वंश का अवसान हो जाता है।।२४४।। चन्द्रवंश के इतिहासज्ञ इला के वंश को राजा क्षेमक के अन्त तक जानते हैं। ये सब कीर्ति को बढ़ाने वाले सूर्य के पुत्रों का वर्णन किया है।।२४५।। इसके अतिरिक्त उन सबके वंश में भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्य काल के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों का भी वर्णन किया गया।।२४६।। युग युग में प्रत्येक कुल में हजारों की संख्या में महान् पुरुष हो चुके हैं। बहुत अधिक हो जाने के कारण तथा पुनरुक्तिवश मैंने उनकी संख्या नहीं बतायी है। इस वैवस्वत मन्वन्तर में निमि वंश उसी समय समाप्त हो जाता है।।२४७-२४८।।

अब इस वर्तमान युग में जिस प्रकार क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी, उसको मैं बतला रहा हूँ। ध्यानपूर्वक सुनिये।।२४९।। इस युग में पुरुवंशीय राजा देवापि होंगे तथा इक्ष्वाकु वंशीय राजा (सुवर्चा) होंगे। ये दोनों ही महान् योगाभ्यासी होंगे और कलाप ग्राम में निवास करेंगे।।२५०।। ये दोनों चौबीसवें चतुर्युग में क्षत्रिय धर्म के प्रणेता होंगे। इक्ष्वाकु के पुत्र सुवर्चा नाम के राजा होंगे, जिन्हें ऐक्ष्वाकु माना गया है।।२५१।।

नवविंशे युगे सोऽथ वंशस्यादिर्भविष्यति। देवापेश्च सपौलस्तु ऐलादिर्भविता नृपः॥२५२॥
क्षत्रप्रवर्त्तकौ ह्येतौ भविष्येते चतुर्युगे। एवं सर्वत्र विज्ञेय संतानार्थे तु लक्षणम्॥२५३॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्भविष्ये त कृते युगे। सप्तर्षिभिस्तु तै सार्द्धमाद्ये त्रेतायुगे पुनः॥२५४॥
गोत्राणां क्षत्रियाणां च भविष्येते प्रवर्त्तकौ। द्वापरांशे न तिष्ठंति क्षत्रिया ऋषिभिः सह॥२५५॥
भविष्ये तु ततः सर्गे काले कृतयुगे पुनः। बीजार्थं ते भविष्यंति ब्रह्मक्षत्रस्य वै पुनः॥२५६॥
एवमेव तु सर्वेषु तिष्ठन्तीहासुरेषु वै। सप्तर्षयो नृपैः सार्द्धं संतानार्थं युगेयुगे॥२५७॥
क्षत्रस्यैव समुच्छेदसंबंधो वै द्विजैः स्मृतः। मन्वंतराणां सप्तानां संतानश्च श्रुतश्च ते॥२५८॥
परस्पराद्युगानां च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः। यथा प्रवृत्तिस्तेषां वै प्रवृत्तानां तथा क्षयः॥२५९॥
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्ट्वाद्भवाभवौ। एतेन क्रमयोगेन ऐलेक्ष्वाक्वन्वया द्विजाः॥२६०॥
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणाः कलौ पुनः। अनुयांति युगाख्यां तु यावन्मन्वंतरक्षयः॥२६१॥
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते। कृतेयं संकुला सर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः॥२६२॥
द्विवंशकारणञ्चैव कीर्तयिष्ये निबोधत। ऐलस्येक्ष्वाकुनन्दस्य प्रकृतिः परिवर्त्तते॥२६३॥

इस प्रकार वीसवें युग में सोम वंश का आदि राजा कोई नहीं होगा। देवापि विना किसी प्रतिद्वन्द्विता के तथा वैर-भावना के ऐल वंश का राजा होगा।।२५२।। ये दोनों राजा चतुर्युग में क्षत्रिय धर्म के प्रवर्तक होंगे। इस प्रकार क्षत्रिय धर्म की सन्तान के लक्षण के रूप में इन्हीं दोनों राजाओं को जाना चाहिये। अर्थात् क्षत्रियों की सन्तानों को इन्हीं दोनों राजाओं को क्षात्र धर्म का प्रवर्तक समझना चाहिये।।२५३।। कलियुग के क्षीण हो जाने पर जब पुनः सतयुग का प्रारम्भ होगा, तब विख्यात सप्तर्षियों के साथ दोनों क्षत्रिय गोत्र के प्रवर्तक के रूप में जन्म धारण करेंगे। इसी प्रकार त्रेता युग के आदिकाल में पुनः जन्म धारण करेंगे तथा क्षत्रियों के गोत्रों के प्रवर्तक होंगे। द्वापर के अंश में क्षत्रिय ऋषियों के साथ नहीं रहेंगे।।२५४-२५५।। भविष्य में जब पुनः सतयुग का प्रवर्तन होगा, तब ब्राह्मण और क्षत्रियों के वंशों के बीज रूप में पुनः उत्पन्न होंगे।।२५६।।

इस प्रकार सभी मन्वन्तरों में सप्तर्षिगण क्षत्रिय राजाओं के साथ स्थित रहते हैं तथा प्रत्येक युग में इसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति के लिये राजाओं के साथ अवतीर्ण होते हैं।।२५७।। क्षत्रियों का समूल विनाश, ब्राह्मणों (सवर्णों) के साथ सम्बन्ध सातों मन्वन्तर की सन्तानें अर्थात् सातों मन्वन्तरों की वंशपरम्परायें उस युग के ग्रन्थ परम्परा से युगों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों की उत्पत्ति जैसी उस समय के राजाओं की प्रवृत्ति थी, तदनुसार प्रवृत्त होने वाले का विनाश, दीर्घायु प्राप्ति आदि समस्त बातों को ऋषिगण जानते हैं। इस क्रम के अनुसार ऐल तथा ऐक्ष्वाकु वंश त्रेता में उत्पन्न होने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यगण वर्ण की जातियाँ कलियुग के विनाशपर्यन्त युग का अनुवर्तन तब तक करती रहती हैं। जब तक मन्वन्तर का क्षय नहीं उपस्थित होता है। अतः सदैव ये जातियाँ रही हैं और अनन्त काल तक रहेंगी, भाव यही है।२५८-२६१।। जमदग्नि पुत्र परशुराम ने जब क्षत्रिय राजाओं के साथ समस्त क्षत्रियों के कुलों का नाश कर दिया, तब चन्द्र और सूर्य वंश के क्षत्रियों की पुनः उत्पत्ति हुई, उनका वर्णन कर रहा हूँ। सुनिये।२६२-२६२½।। क्षत्रियों के संहार के बाद इला और इक्ष्वाकु वंश के क्षत्रियों की पुनः प्रकृति परिवर्तित हुई अर्थात् उनकी

राजानः श्रेणिबद्धास्तु तथान्ये क्षत्रिया नृपाः।
ऐलवंशस्य ये ख्यातास्तथैवेक्ष्वाकवो नृपाः॥२६४॥
तेषामेक शतं पूर्णं कुलानामभिषेकितम्। तावदेव तु भोजानां विस्तरो द्विगुणः स्मृतः॥२६५॥
भजते त्र्यंशकं क्षत्रं चतुर्थात्तद्यथा दिशम्। तेष्वतीताः समाना ये ब्रुवतस्तान्निबोधत॥२६६॥
शतं वै प्रतिविंध्यानां शतं नागाः सहैहयाः। धृतराष्ट्रश्चैकशतमशीतिर्जनमेजयाः॥२६७॥
शतं च ब्रह्मदत्तानां शारिणां वीरिणां शतम्।
ततः शतं तु पौलानां श्वेतकाश्य कुशादयः॥२६८॥
ततोऽपरे सहस्त्रं वै येऽतीताः शशबिंदवः। ईजिरे चाश्वमेधैस्ते सर्वे नियुतदक्षिणैः॥२६९॥
एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्त्रशः। मनोर्वैवस्वतस्यास्मिन्वर्त्तमानेंऽतरे तु ये॥२७०॥
तेषां निबोधतोत्पन्ना लोके संततयः स्मृताः।
न शक्यो विस्तरस्तासां संततीनां परस्परम्॥२७१॥
तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि। अष्टाविंशद्युगाख्यास्तु गता वैवस्वतेंतरे॥२७२॥
एते राजर्षिभिः सार्द्धं शिष्टायास्ता निबोधत। चत्वारिंशत्त्रयश्चैव भविष्याः सह राजभिः॥२७३॥
युगाख्यानावशिष्टास्तु ततो वैवस्वतक्षयः। एतद्वः कथितं सर्वं समासव्यासयोगतः॥२७४॥
पुनरुक्तिबहुत्वाच्च न शक्यं तु युगैः सह। एते ययातिपुत्राणां पंच वंशा विशां हिताः॥२७५॥

पुनः उत्पत्ति हुई।।२६२½-२६३।। फिर क्रमशः क्षत्रिय पुन राजा हुए, उनके साथ-साथ अन्यान्य क्षत्रिय भी राजा हुए। ऐल और इक्ष्वाकु वंश में परम विख्यात अभिषिक्त राजाओं के एक सौ कुल हुए। भोजवंशीय राजाओं के कुल की संख्या उनसे दुगुनी कही जाती है।।२६४-२६५।। इस प्रकार ऐसे कुलों की संख्या तीन सौ हो जाती है। उनमें समान नाम वाले राजा भी व्यतीत हुए। अब मैं उन सबको बतला रहा हूँ, सुनिए।।२६६।।

ऐसे राजाओं में प्रतिविन्ध्यों की संख्या एक सौ, नगों की एक सौ, हयों की एक सौ, धृतराष्ट्रों की एक सौ, जनमेजयों की अस्सी, ब्रह्मदत्तों की एक सौ, शीरी और वीरियों की एक सौ, पौलों की एक सौ तथा श्वेत और काशी, कुश आदियों की एक सौ की है तथा शतविन्दु नामक एक हजार राजा हो चुके हैं। ये सभी राजा लोग करोड़ों की दक्षिणाओं से अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले थे।।२६७-२६९।। इस प्रकार सैकड़ों और हजारों की संख्या में ऐसे उदारमना राजा लोग हो चुके हैं। इसी मन्वन्तर में इन्हीं मनु के अधिकार काल में जो राजा हुए हैं तथा उनकी जितनी सन्तानें हुई हैं तथा उनकी सन्तानों का जो परस्पर विस्तार है, उनका पूर्व पर के योग से वर्णन सौ वर्ष में भी नहीं किया जा सकता है।।२७०-२७१½।। वैवस्वत मन्वन्तर का अट्ठाईसवां युग समाप्त होने जा रहा है। इस समय राजर्षियों के साथ जो सन्तानें शेष हैं, उनको सुनिये। इस मन्वन्तर में चालीस राजा लोग अभी राज्य करेंगे। तब पूरी तरह वैवस्वत मन्वन्तर का अवसान होगा।।२७१½-२७३½।। प्रसंग सहित संक्षेप और विस्तार से मैं समस्त राजाओं का वृत्तान्त आप लोगों को बता चुका। अब युग युग में होने वाले राजाओं का वंशक्रम बहुत अधिक होने के कारण तथा पुनरुक्ति हो जाने के कारण नहीं बता सकता हूँ।।२७३½-२७४½।। राजा ययाति के ये पाँच वंश बताये गये

कीर्त्तिताश्च व्यतीता ये ये लोकान्धारयंत्युत।
लभते च वरान्पञ्च दुर्लभा निह लौकिकान्॥२७६॥
आयुः कीर्त्तिं धनं पुत्रान्स्वर्गं चानंत्यमश्नुते।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पंचवंशस्य धीमतः॥२७७॥
इत्येथ वो मया पादस्तृतीयः कथितो द्विजाः।
विस्तरेणानुपूर्व्या च किं भूयो वर्णयाम्यहम्॥२७८॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते मध्यमभागे तृतीय उपोद्घातपादे वंशानुवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।।७४।।

समाप्तश्चायं तृतीयः पादः

—※—

हैं। वे सब राजा लोग प्रजाओं के कल्याण में लगे रहते थे। जो यह इन सब राजाओं का वर्णन किया गया वे सब राजा लोग लोकों को धारण करते थे।।२७४½-२७५½।। जो इन राजाओं के वृत्तान्त को धारण करता है अथवा सुनता है, वह आयु कीर्ति धन पुत्रों और स्वर्ग को प्राप्त करता है।।२७५½-२७७।।

सूत जी ने कहा कि हे विप्रो! इस प्रकार मैंने इस पुराण के तीसरे पाद का पूर्व से लेकर विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। अब आगे मैं क्या वर्णन करूँ।।२७८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त मध्यभाग तृतीय उपोद्घात पाद ७४वां अध्याय तुर्वसु आदि का वंश वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

।।तृतीय पाद समाप्त हुआ।।

❖❖❖

चौखम्बा संस्कृत सीरीज १५१

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्माण्डमहापुराणम्

'निर्मला' हिन्दी व्याख्या, वैज्ञानिक विमर्श एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक
प्रो. दलवीर सिंह चौहान

उत्तरार्द्धम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१५३
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्माण्डमहापुराणम्

'निर्मला' हिन्दी व्याख्या, वैज्ञानिक विमर्श एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक
प्रो. दलवीर सिंह चौहान
एम. ए., पी-एच.डी. (पुराणेतिहासाचार्य)
भू. पू. अध्यक्ष : संस्कृत विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

उत्तरार्द्धम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : संस्करण : तृतीय, वि.सं. २०७६, सन् २०१९

ISBN : 978-81-7080-423-9 (उत्तरार्द्ध)
978-81-7080-424-6 (सेट)

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
153
*****

BRAHMĀṆḌAMAHĀPURĀṆAM

OF

MAHARSHI VYASA

With

'Nirmala' Hindi Commentary, Scientific Notes and Sloka Index etc.

BY

Prof. Dalvir Singh Chauhan

M.A., Ph. D. (Puranetihas)
Ex. Head, Sanskrit Department,
Magadh University, Bodhgaya, (Bihar)

Vol. II

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

।।श्रीब्रह्माण्डमहापुराणउत्तरभागप्रारम्भः।।

अथोत्तरभागप्रारम्भः

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे

आभूतसंप्लवाख्यवर्णनं नाम

प्रथमोऽध्यायः

श्रुत्वा पादं तृतीयं तु क्रांतं सूतेन धीमता। ततश्चतुर्थं पप्रच्छुः पादं वै ऋषिसत्तमाः॥१॥

ऋषय ऊचुः

पादः क्रांतस्तृतीयोऽयमनुषंगेण नस्त्वया। चतुर्थं विस्तरात्पादं संहारं परिकीर्त्तय॥२॥
मन्वंतराणि सर्वाणि पूर्वाण्येवापरैः सह। सप्तर्षीणामथैतेषां सांप्रतस्यांतरे मनोः॥३॥
विस्तरावयवं चैव निसर्गस्य महात्मनः। विस्तरेणानुपूर्व्या च सर्वमेव ब्रवीहि नः॥४॥

सूत उवाच

भवतां कथयिष्यामि सर्वमेतद्यथातथम्। पादं त्विमं ससंहारं चतुर्थं मुनिसत्तमाः॥५॥
मनोर्वैवस्वतस्येमं संप्रतस्य महात्मनः। विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्गं शृणुत द्विजाः॥६॥
मन्वंतराणां संक्षेपं भविष्यैः सह सप्तभिः। प्रलयं चैव लोकानां ब्रुवतो मे निबोधत॥७॥
एतान्युक्तानि वै सम्यक्सप्तसप्तसु वै प्रजाः। मन्वंतराणि संक्षेपाच्छृणुता नागतानि मे॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग चतुर्थ उपसंहार पाद

अध्याय-१

प्रलय का आख्यान

परम बुद्धिमान् सूत द्वारा तृतीय पाद को सुनकर ऋषियों ने चतुर्थपाद को पूँछा।।१।।

ऋषियों ने कहा—सूत जी आप प्रसङ्ग सहित तृतीय पाद को हमें सुना चुके हैं, अब चौथे उपसंहार नामक पाद का विस्तार से वर्णन कीजिये।।२।। पूर्व मन्वन्तरों के साथ साथ जो अन्य मन्वन्तर हैं तथा इन मन्वन्तरों के जो जो सप्तर्षि हैं, उन सबका तथा महात्मा मनु की सृष्टि की उत्पत्ति और विस्तार सब पूर्व से लेकर विस्तार सहित बतलाइये।।३-४।।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! मैं आप सबको जो आप लोगों ने पूँछा है, उस सबको यथा तथा रूप में बतला रहा हूँ। आप लोग इस चतुर्थ उपसंहारपाद का वर्णन सुनिये।।५।। साथ ही इस समय वैवस्वत मनु के इस सृष्टि विस्तार का भी विस्तारपूर्वक क्रमशः वर्णन कर रहा हूँ। आप लोग सुनिये।।६।। बीते हुए सातों मन्वन्तरों का भी भविष्य काल के सातों मन्वन्तरों के साथ संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। लोकों का प्रलय किस प्रकार होता है, यह मैं बता रहा हूँ। अतः आप लोग बताने वाले मुझसे जानिये।।७।। वैसे तो मैं पूर्व में भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों का विशद वर्णन कर चुका हूँ, पर यहाँ प्रसंगवश भविष्यकालीन मन्वन्तरों का वर्णन संक्षेप से पुनः कर रहा हूँ।।८।।

सावर्णस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह। भविष्यस्य भविष्यं तु समासात्तन्निबोधत॥९॥
अनागताश्च सप्तैव स्मृतास्त्विह महर्षयः। कौशिको गालवश्चैव जामदग्न्यश्च भार्गवः॥१०॥
द्वैपायनो वशिष्ठश्च कृपः शारद्वतस्तथा। आत्रेयो दीप्तिमांश्चैव ऋष्यशृंगस्तु काश्यपः॥११॥
भरद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महायशाः। एते सप्त महात्मानो भविष्याः परमर्षयः।
सुतपाश्चामिताभाश्च सुखाश्चैव गणास्त्रयः॥१२॥
तेषां गणस्तु देवानामेकैको विंशकः स्मृतः। नामतस्तु प्रवक्ष्यामि निबोधध्वं समाहिताः॥१३॥
ऋतुस्तपश्च शुक्रश्च कृतिर्नेमिः प्रभाकरः। प्रभासो मासकृद्धर्मस्तेजोरश्मिः क्रतुर्विराट्॥१४॥
अर्चिष्मान् द्योतनो भानुर्यशःकीर्त्तिर्बुधो धृतिः॥१५॥
विंशतिः सुतपा ह्येते नामभिः परिकीर्त्तिताः। प्रभुर्विभुर्विभासश्च जेता हंता रिहा ऋतुः॥१६॥
सुमतिः प्रमतिर्दीप्तिः समाख्यातो महो महान्।
देही मुनिरिनः पोष्टा समः सत्यश्च विश्रुतः॥१७॥
इत्येते ह्यमिताभास्तु विंशतिः परिकीर्त्तिताः।
दामो दानी ऋतः सोमो वित्तं वैद्यो यमो निधिः॥१८॥
होमो हव्यं हुतं दानं देयं दाता तपः शमः। ध्रुवं स्थानं विधानं च नियमश्चेति विंशतिः॥१९॥
सुखा ह्येते समाख्याताः सावर्ण्ये प्रथमेंतरे। मारीचस्यैव ते पुत्राः कश्यपस्य महात्मनः॥२०॥

इस समय सावर्ण मनु और वैवस्वत मनु के मन्वन्तरों का जो कि भविष्य में होने योग्य हैं तथा जो होंगे, उनका संक्षेप से वर्णन कर रहा हूँ। आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिये।।९।। जो मन्वन्तर अभी नहीं आये हैं, उन मन्वन्तरों में सात ही ऋषि होंगे, उनके नाम हैं—कुशिकगोत्रीय गालिव, जमदग्नि पुत्र परशुराम, द्वैपायन वशिष्ठ, शारद्वतवंश में उत्पन्न कृपाचार्य, अत्रिवंशोत्पन्न दीप्तिमान्, कश्यपगोत्रीय ऋष्यशृंग एवं भरद्वाज गोत्रीय द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ये सात परम प्रभावशाली महात्मागण आने वाले मन्वन्तर में परम ऋषि नाम से प्रसिद्ध होंगे।।१०-१२।। तथा आने वाले मन्वन्तर में सुतपा, अमिताभ और सुख ये तीन देवगण होंगे। इनमें एक एक गण में बीस-बीस देवता विराजमान होंगे। उन सबके नाम बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये।।१३।। वे हैं—१. ऋतु, २. तप, ३. शुक्र, ४. कृति, ५. नेमि, ६. प्रभाकर, ७. प्रभास, ८. मासकृत्, ९. धर्म, १०. तेजस्, ११. रश्मि, १२. क्रतु, १३. विराट्, १४. अर्चिष्मान्, १५. द्योतन, १६. भानु, १७. यश, १८. कीर्ति, १९. बुध, २०. धृति, ये बीस देवगण सुतपा नामक गण में आते हैं। इसलिये सुतपा नामक गण कहे जाते हैं।।१३-१५½।। १. प्रभु, २. विभु, ३. विभास, ४. जेता, ५. हन्ता, ६. रिहा, ७. ऋतु, ८. सुमति, ९. प्रमति, १०. दीप्ति, ११. समाख्यात, १२. मह, १३. महान्, १४. देह, १५. मुनि, १६. नय, १७. ज्येष्ठ, १८. सम, १९. सत्य और २०. विश्रुत ये बीस अमिताभदेव गण हैं।।१५½-१७½।। १. दाम, २. दानी, ३. ऋत, ४. सोम, ५. वित, ६. वैद्य, ७. यम, ८. निधि, ९. होम, १०. हव्य, ११. हुत, १२. दान, १३. देय, १४. दाता, १५. तप, १६. शम, १७. ध्रुव, १८. स्थान, १९. विधान और २०. नियम बीस सुख नामक देवगण हैं। ये सब सावर्ण मन्वन्तर की प्रथम अवस्था के देवगण हैं।।१७½-१९½।। ये सब देवगण मरीचि पुत्र महात्मा कश्यप के ही पुत्र हैं। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के उपरान्त

सांप्रतस्य भविष्यति षष्टिर्देवास्तदंतरे। सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्यंति नवैव तु॥२१॥
विरजाश्चार्वरीवांश्च निर्मोकाद्यास्तथा परे। नव चान्येषु वक्ष्यामि सावर्णेष्वंतरेषु वै॥२२॥
सावर्णमनवश्चान्ये भविष्याः ब्रह्मणः सुताः। मेरुसावर्णितस्ते वै चत्वारो दिव्यदृष्टयः॥२३॥
दक्षस्य ते हि दौहित्राः क्रियाया दुहितुः सुताः। महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः॥२४॥
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता। महर्लोकं गता वृत्ता भविष्या मेरुमाश्रिताः॥२५॥
महानुभावास्ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेंतरे। जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतांतरे॥२६॥
प्राचेतसस्य दक्षस्य दौहित्रा मनवस्तु ये। सावर्णा नामतः पंच चत्वारः परमर्षिजाः॥२७॥
संज्ञापुत्रस्तु सावर्णिरेको वैवस्वतस्तथा। ज्येष्ठः संज्ञासुतो नाम मनुर्वैवस्वतः प्रभुः॥२८॥
वैवस्वतेंऽतरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभाः। चतुर्दशैते मनवः कीर्त्तिता कीर्तिवर्द्धनाः॥२९॥
वेदे स्मृतौ पुराणे च सर्वे ते प्रभविष्णवः। प्रजानां पतयः सर्वे भूतानां पतयः स्थिताः॥३०॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः॥३१॥
प्रजाभिस्तपसा चैव विस्तरस्तेषु वक्ष्यते। चतुर्दशैते विज्ञेयाः सर्गाः स्वायंभुवादयः॥३२॥
मन्वंतराधिकारेषु वर्त्तंतेऽत्र सकृत्सकृत्। विनिवृत्ताधिकारास्ते महर्लोकं समाश्रिताः॥३३॥
समतीतास्तु ये तेषामष्टौ षट् च तथाऽपरे। पूर्वेषु सांप्रतश्चायं शास्ति वैवस्वतः प्रभुः॥३४॥

सावर्ण के मन्वन्तर में ये ही सृष्टि देवगणों के स्थान पर प्रतिष्ठित होंगे। सावर्ण मनु के पुत्र नौ ही होंगे।।१९½-२१।। वे हैं—विरज, आर्वरीवान्, निर्मोक आदि तथा अन्य। इसके अतिरिक्त अन्य सावर्ण मन्वन्तरीय नव मनुपुत्रों के नाम से प्रसिद्ध होंगे जिनका वर्णन सावर्ण मन्वन्तर वर्णन क्रम में करूँगा।।२२।। सावर्ण मन्वन्तर में भविष्य के अन्य मनु ब्रह्मा के पुत्र होंगे। दिव्य दृष्टि वाले लोग उन सबको मेरु सावर्णि के नाम से देखते हैं।।२३।। वे सब प्रजापति दक्ष के नाती हैं तथा दक्ष पुत्री कृता के पुत्र हैं। वे सब महान् तप से युक्त हैं और सुमेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर निवास करते हैं।।२४।। वे ब्रह्मादि देवों द्वारा और बुद्धिमान् दक्ष द्वारा उत्पन्न हुए हैं। वे महर्लोकवासी की उत्पत्ति पूर्व चाक्षुष मन्वन्तर में हुई थी। उसी समय उन भविष्यत्कालीन मनुओं की उत्पत्ति होती है।।२६।। उनमें से सावर्ण मनुगण प्रचेता पुत्र दक्ष प्रजापति के नाती (धेवते) तथा चार मनुगण पम ऋषियों द्वारा उत्पन्न है तथा एक विवस्वान् मनु के संयोग से संज्ञा के पुत्र हैं। संज्ञा के पुत्र परम ऐश्वर्यशाली वैवस्वत मनु इन सावर्ण मनु से ज्येष्ठ हैं।।२७-२८।।

वैवस्वत मन्वन्तर जब आता है, तब उन दोनों मनुओं की शुभ उत्पत्ति होती है। इन कीर्तिवर्धन मनुओं की संख्या चौदह कही गयी है।।२९।। वेदों, स्मृतियों और पुराणों में ये सब ऐश्वर्यशाली प्रजाओं के स्वामी तथा समस्त प्राणियों के अधीश्वर के रूप में वर्णित हैं।।३०।। उन सब महात्मा नरपतियों द्वारा यह समस्त सात द्वीपों वाली पृथ्वी पूरे हजार युगों तक पालन की जाती है।।३१।। अब मैं उन मन्वन्तरों में होने वाली प्रजा तपस्या एवं सृष्टि विस्तार का वर्णन कर रहा हूँ। स्वायम्भुव आदि मनुओं की वह सृष्टि चौदह ही जाननी चाहिये।।३२।। सभी मनु अपने अपने मन्वन्तर के अधिकार में एक एक बार उपस्थित रहते हैं। जब उनका अधिकार समाप्त हो जाता है, तब वे महर्लोक का आश्रय ग्रहण करते हैं।।३३।। उन चौदह मनुओं में से आठ मनुओं के अधिकार बीत चुके हैं, अभी शेष छः

ये शिष्टास्तान्प्रवक्ष्यामि सह देवर्षिदानवैः। सह प्रजा निसर्गेण सर्वांस्तेऽनागतान्द्विजः॥३५॥
वैवस्वत निसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः। अनूना नातिरिक्तास्ते यस्मात्सर्वे विवस्वतः॥३६॥
पुनरुक्तबहुत्वात्तु न वक्ष्ये तेषु विस्तरम्। मन्वंतरेषु भाव्येषु भूतेष्वपि तथैव च॥३७॥
कुलेकुले निसर्गास्तु तस्माज्ज्ञेया विभागशः। तेषामेव हि सिद्ध्यर्थं विस्तरेण क्रमेण च॥३८॥
दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा सुव्रता नाम विश्रुता। सर्वकन्यावरिष्ठा तु ज्येष्ठा या वीरिणीसुता॥३९॥
गृहीत्वा तां पिता कन्यां जगाम ब्रह्मणोऽतिके। वैराजस्थमुपासीनं धर्मेण च भवेन च॥४०॥
भवधर्मसमीपस्थं दक्षं ब्रह्माऽभ्यभाषत। दक्ष कन्या तवेयं वै जनयिष्यति सुव्रता॥४१॥
चतुरो वै मनून्पुत्रांश्चातुर्वर्ण्यकराञ्छुभान्। ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा दक्षो धर्मो भवस्तदा॥४२॥

तां कन्यां मनसा जग्मुस्त्रयस्ते ब्रह्मणा सह।
सत्याभिध्यायिनां तेषां सद्यः कन्या व्यजायत॥४३॥

सदृशानूपतस्तेषां चतुरो वै कुमारकान्। संसिद्धाः कार्यकरणे संभूतास्ते श्रियान्विताः॥४४॥
उपभोगासमर्थैश्च सद्योजातैः शरीरकैः। ते दृष्ट्वा तान्स्वयंभूतान्ब्रह्मव्याहारिणस्तदा॥४५॥
सरंब्धा वै व्यकर्षंत मम पुत्रो ममेत्युत। अभिध्यायात्मनोत्पन्नानूचुर्वै ते परस्परम्॥४६॥

मनुओं का अधिकार काल शेष है। पूर्व मनुष्यों का अधिकार काल बीत जाने पर इस समय वैवस्वत मनु का अधिकार काल चल रहा है।।३४।। अब जो शेष मनुगण हैं, उनके अधिकार काल का वर्णन तत्कालीन देवों, ऋषियों, दानवों एवं ब्राह्मणादि द्विजातियों की सृष्टि परम्परानुसार बता रहा हूँ।।३५।। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि विस्तार के अनुसार ही उन भावी मन्वन्तरों का सृष्टि विस्तार समझना चाहिये। वे सब वैवस्वत मन्वन्तर के विस्तार से न कम होते हैं और न उसके अतिरिक्त ही होते हैं।।३६।। बीते हुए और आने वाले मन्वन्तरों में प्रत्येक वंश में जो सृष्टि होती है, उसका वर्णन पुनरुक्ति और आधिक्य के कारण नहीं कर रहा हूँ। केवल उनका सविभाग विस्तार एवं क्रम बतला रहा हूँ।।३७।। दक्ष प्रजापति की एक सुव्रता नामक धर्म में निष्ठा रखने वाली, सब कन्याओं में वरिष्ठ एवं सबसे बड़ी वीर कन्या थी।।३८।। पिता दक्ष एक बार अपनी उस कन्या को साथ लेकर ब्रह्मा के पास गये। उस समय ब्रह्मा जी धर्म और भगवान् शंकर के साथ वैराज नामक लोक में विराजमान थे।३९।।

भगवान् शंकर और धर्मराज के समीप स्थित दक्ष से ब्रह्मा जी ने कहा कि हे दक्ष! तुम्हारी यह कन्या सुव्रता चार कल्याणकारी पुत्रों को उत्पन्न करेगी, जो भविष्य चारों में वर्णों की स्थापना करने वाले मनु होंगे।।४०-४१½।। ब्रह्माजी के वचन को सुनकर दक्ष प्रजापति, धर्मराज और भगवान् शंकर ने ब्रह्माजी के साथ ही उस कन्या के साथ मन से समागम (सम्भोग) किया।।४१½-४२½।। सत्य का ध्यान करने वाले उन चारों को शीघ्र ही उस कन्या ने उन्हीं चारों के समान रूप गुण वाले चार कुमारों को जन्म दिया।।४२½-४३½।। वे कुमार सभी कार्यों के पूर्ण करने वाले परम बुद्धिमान्, श्रीमान् तथा अपने उसी शीघ्र उत्पन्न शरीर से अनेकों प्रकार के भोगों में सामर्थ्य रखने वाले थे।।४३½-४४½।। तब उन स्वयं उत्पन्न हुए चारों कुमारों को देखकर इन सभी ब्रह्म का व्यवहार करने वाले देवताओं में यह पुत्र मेरा है, यह मेरा है, ऐसी बातें कह कहकर छीना-झपटी होने लगी।।४४½-४५½।। वे चारों पुत्र उन चारों

यो यस्य वपुषा तुल्यो भजतां सततं सुतम्। यस्य यः सदृशश्चापि रूपे वीर्ये च मानतः॥४७॥
तं गृह्णातु स भद्रं वो वर्णतो यस्य यः समः। ध्रुवं रूपं पितुः पुत्रः सोऽनुरुध्यति सर्वदा॥४८॥
तस्मादात्मसमः पुत्रः पितुर्मातुश्च वीर्यतः। एवं ते समयं कृत्वा सर्वेषां जगृहुः सुतान्॥४९॥
चाक्षुषस्यांतरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य ह। रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः॥५०॥
भूत्यामुत्पादितो यस्तु भौत्यो नाम कवेः सुतः। वैवस्वतेंऽतरे जातौ द्वौ मनू तु विवस्वतः॥५१॥
वैवस्वतो मनुर्यश्च सावर्णो यश्च वै श्रुतः। ज्ञेयः संज्ञासुतो विद्वान्मनुर्वैवस्वतः प्रभुः॥५२॥
सवर्णायाः सुतश्चान्यः स्मृतो वैवस्वतो मनुः। सावर्णमनवो ये च चत्वारस्तु महर्षिजाः॥५३॥
तपसा संभृतात्मानः स्वेषु मन्वन्तरेषु वै। भविष्येषु भविष्यंति सर्वकार्यार्थसाधकाः॥५४॥
प्रथमे मेरुसावर्णेर्दक्षपुत्रस्य वै मनोः। परामरीचिगर्भाश्च सुधर्माणश्च ते त्रयः।
संभूताश्च महात्मानः सर्वे वैवस्वतेंतरे॥५५॥
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः। भविष्यंति भविष्यास्तु एकैको द्वादशो गणः॥५६॥
ऐश्वरश्च ग्रहो राहुर्वाकुर्वंशस्तथैव च। पारा द्वादश विज्ञेया उत्तरांस्तु निबोधत॥५७॥
वाजिपो वाजिजिच्चैव प्रभूतिश्च ककुद्यथ। दधिक्रावा विपक्वश्च प्रणीतो विजयो मधुः॥५८॥
उतथ्योत्तमकौ द्वौ तु द्वादशैते मरीचयः। सुधर्माणस्तु वक्ष्यामि नामतस्तान्निबोधत॥५९॥

महान् देवों के मानसिक ध्यान से पैदा हुए थे, अतः उन्होंने आपस में यह कहा कि जो पुत्र जिसके शरीर के समान हो, वह उस पुत्र को अपना पुत्र माने।।४५½-४६½।। रूप, पराक्रम और नाम और वर्ण से जिसके अपने समान हों, वह उस पुत्र को ग्रहण करे; क्योंकि निश्चित ही पुत्र सदैव पिता के स्वरूप का अनुकरण करता है। पराक्रम में भी पुत्र माता-पिता समान होता है।।४६½-४८½।। इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवों ने आपस में सहमति करके जो जिसके वर्ण के थे, उसके अनुसार अपने अपने पुत्रों को ग्रहण किया।।४८½-४९।।

चाक्षुष मन्वन्तर के बीत जाने पर वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में प्रजापति रुचि को रौच्य नामक पुत्र हुआ।।५०।। भूति नामक माता में उत्पन्न होने के कारण वह पुत्र भौत्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैवस्वत मन्वन्तर में विवस्वान के मनु नामक दो पुत्र राजा हुए, जिनमें एक वैवस्वत मनु और दूसरे सावर्ण मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमें एक विद्वान् वैवस्वत मनु संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र कहे जाते हैं और दूसरे वैवस्वत मनुष्य सवर्णा छायारूपिणी संज्ञा के पुत्र कहे जाते हैं। सवर्ण जो चार मनुगण हुए, वे महर्षियों से उत्पन्न थे।।५१-५३।। ये सभी मनुगण बहुत बड़े तपस्वी थे। ये सभी भविष्य में होने वाले मन्वन्तरों में सभी कार्यों में समर्थ होकर विराजमान होंगे।।५४।। प्रथम मनु दक्षपुत्र मेरु सावर्णि थे, उनका दूसरा नाम प्रजापति रोहित था। ये आगे आने वाले मन्वन्तर के भावी मनु होंगे। इनके मन्वन्तर में परा, मरीचि और गर्भा ये तीन धर्मात्मा पुत्र हुए। ये सभी महात्मा वैवस्वत मन्वन्तर में हुए थे।।५५।।

ये सभी दक्ष पुत्र प्रजापति रोहित के पुत्र थे। ये भविष्य में होने वाले एक एक के बारह गण होंगे।।५६।। जिनके नाम हैं—१. ऐश्वर, २. ग्रह, ३. राहु, ४. वाकु ५. वंश तथा अन्य सात और हैं, इन सबको पारागण समझना चाहिये। अन्यान्य का विवरण सुनिये।।५७।। १. वाजिप, २. वाजिजित्, ३. प्रभूति, ४. ककुदी, ५. दधिक्रावा, ६. विपक्व, ७. प्रणीत, ८. विजय, ९. मधु, १०. उतथ्य, ११. उत्तमक, १२. दूसरे उत्तमक ये बारह मरीचिगण

वर्णस्तथाथगर्विश्च भुरण्यो व्रजनोऽमितः। अमितो द्रवकेतुश्च जंभोऽथाजस्तु शक्रकः॥६०॥
सुनेमिर्द्युतयश्चैव सुधर्माणः प्रकीर्तिताः। तेषामिंद्रस्तदा भाव्यो ह्यद्भुतो नाम नामतः॥६१॥
स्कंदोऽसौ पार्वतीयो वै कार्तिकेयस्तु पावकिः।
मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च॥६२॥
ज्योतिष्मान्भार्गवाश्चैव द्युतिमानंगिरास्तथा। वसिनश्चैव वासिष्ठ हव्यवाहनः॥६३॥
सुतपाः पौलहश्चैव सप्तैते रोहितेतरे। धृतिकेतुर्दीप्तिकेतुः शाहपहस्तनिरामयाः॥६४॥
पृथुश्रवास्तथाऽनीको भूरिद्युम्नो बृहद्यशः। प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्राः प्रकीर्तिताः॥६५॥
दशमे त्वथ पर्याये धर्मपुत्रस्य वै मनोः। द्वितीयस्य तु सावर्णेर्भाव्यस्यैवांतरे मनोः॥६६॥
सुधामानो विरुद्धाश्च द्वावेव तु गणौ स्मृतौ। दीप्तिमन्तश्च ते सर्वे शतसख्याश्च ते समाः॥६७॥
प्राणानां यच्छतं प्रोक्तं ऋषिभिः पुरुषेति वै। देवास्ते वै भविष्यन्ति धर्मपुत्रस्य वै मनोः॥६८॥
तेषामिंद्रस्तथा विद्वान्भविष्यः शांतिरुच्यते। हविष्मान्पौलहः श्रीमान्सुकीर्तिश्चाथ भार्गवः॥६९॥
आपोमूर्तिस्तथात्रेयो वसिष्ठश्चापवः स्मृतः।
पौलस्त्योऽग्रतिमश्चापि नाभागश्चैव काश्यपः॥७०॥
अभिमन्युश्चांगिरसः सप्तैते परमर्षयः। सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिसेनश्च वीर्यवान्॥७१॥

के अधीन थे। सुशर्मा का विवरण बताता हूँ, सुनिये।।५८-५९।। ये भी बारह हैं—१. वर्ण २. अंग, ३. गर्वि, ४. मुख्य, ५. व्रजन, ६. अमित, ७. द्रवकेतु, ८. जम्भ, ९. अजस्र, १०. शक्रक, ११. सुनेमि और १२. द्युति ये बारह सुधर्मा नाम के देवगण कहे गये हैं। भविष्यकाल में अद्भुत नामक देव इन सबका इन्द्र होगा।।६०-६१।। अग्नि के समय पार्वती पुत्र स्कन्द, जिन्हें कार्तिकेय कहा जाता है। १. पुलस्त्य गोत्रीय मेधातिथि, २. कश्यप गोत्रीय वसु, ३. भृगुवंशोत्पन्न ज्योतिष्मान्, ४. अंगिरा पुत्र द्युतिमान्, ५. वशिष्ठ गोत्रोत्पन्न वसिन, ६. अत्रिकूलभूषण हव्यवाहन, ७. पौलहवंशीय सुतपा ये सात रोहित मन्वन्तर के ऋषि कहे गये हैं।।६२-६३½।। १. धृतिकेतु, २. दीप्तिकेतु, ३. शाप, ४. हस्त, ५. निरामय, ६. पृथुश्रवा, ७. अनीक, ८. भूरिद्युम्न और ९. वृहद्यश ये प्रथम सावर्णिमनुके नौ पुत्र कहे गये हैं।।६३½-६५।।

दशम पर्याय में धर्म के पुत्र द्वितीय मनु का नाम भाव्य होगा, इन भाव्य मनु के मन्वन्तर में सुधामान[1] और विरुद्ध नामक दो देवों के गण कहे जाते हैं। ये सभी देवगण दीप्तिमान् हैं तथा संख्या में सौ तथा समान धर्म वाले हैं।।६६-६७।।

ऋषियों ने इन्हें पुरुषों का प्राणायाम बताया है। वे सब देवगण धर्मपुत्र मनु के मन्वन्तर में स्थित होंगे।।६८।। उन देवताओं के सात गोत्र हैं और सात ही इन्द्र हैं, जो क्रमशः इन्द्र परम विद्वान् शान्ति कहे जाते हैं। १. हविष्मान् पुलह गोत्र वाले, २. भार्गववंशीय शोभासम्पन्न सुकीर्ति अर्थात् सुन्दर यश वाले, ३. अत्रिवंशज-आपोमूर्ति, ४. वशिष्ठ वंशज-आपव, ५. पुलस्त्य कुलभूषण प्रतिप, ६. कश्यपगोत्रीय-नाभाग, ७. अंगिरागोत्रोत्पन्न-अभिमन्यु, ये सात उस

१. वायुपुराण सुखमना।

शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः। भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दशैते मानवाः स्मृताः॥७२॥
एकादशे तु पर्याये सावर्णे वै तृतीयके। निर्वाणरतयो देवाः कामगा वै मनोजवाः॥७३॥
गणास्त्वेते त्रयः ख्याता देवतानां महात्मनाम्।
एकैकस्त्रिंशतस्तेषां गणस्तु त्रिदिवौकसाम्॥७४॥
मासस्याहानि त्रिंशत्तु यानि वै कवयो विदुः। निर्वाणरतयो देवा रात्रयस्तु विहंगमाः॥७५॥
गणस्तृतीयो यः प्रोक्ते देवतानां भविष्यति। मनोजवा मूहूर्त्तास्तु इति देवाः प्रकीर्तिताः॥७६॥
एते हि ब्रह्मणः पुत्रा भविष्या मानवाः स्मृताः।
तेषामिंद्रो वृषा नाम भविष्यः सुरराट् ततः॥७७॥
तेषां सप्तऋर्षींश्चापि कीर्त्यमानान्निबोधत। हविष्मान्काश्यपश्चापि वपुष्मांश्चैव भार्गवः॥७८॥
आरुणिश्च तथात्रेयो वसिष्ठो नग एव च। पुष्टिरांगिरसो ज्ञेयः पौलस्त्यो निश्चरस्तथा॥७९॥
पौलहो ह्यतितेजाश्च देवा ह्येकादशेंतरे। सर्ववेगः सुधर्मा च देवानीकः पुरोवहः॥८०॥
क्षेमधर्मा ग्रहेषुश्च आदर्शः पौंड्रको मरुः। सावर्णस्य तु ते पुत्राः प्राजापत्यस्य वै नव॥८१॥
द्वादशे त्वथ पर्याये रुद्रपुत्रस्य वै मनोः। चतुर्थो रुद्रसावर्णो देवांस्तस्यांतरे शृणु॥८२॥
पंचैव तु गणाः प्रोक्ता देवतानामनागताः। हरिता रोहिताश्चैव देवाः सुमनसस्तथा॥८३॥
सुकर्माणः सुतारश्च विद्वांश्चैव सहस्त्रदः। पर्वतोऽनुचरश्चैव अपाशुश्च मनोजवः॥८४॥

मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं तथा दश मन्वतन्त के मनु हैं—जो १. सुक्षेत्र, २. उत्तमौजा, ३. वीर्यवान्, ४. पराक्रमी, ४. भूरिसेन, ५. शतानीक, ६. निरामित्र, ७. वृषसेन, ८. जयद्रथ, ९. भूरिद्युम्न और १०. सुवर्चा ये दश दशवें मन्वन्तर के मनुगण हैं।।६९-७२।। ग्यारहवें (मन्वन्तर) में तीसरे सावर्णि मनु का जब अधिकार काल होगा, तब निर्वाणरत, कामग और मनोजव ये तीन विख्यात महात्माओं के देवगण होंगे। उन स्वर्गवासी देवताओं के एक एक के तीस गण होंगे।।७३-७४।। विद्वान् लोग मास में जिन तीन दिनों की गणना करते हैं, वे ही निर्माणरति देवगण हैं। रात्रि और विहंगमात्मक देवगण, कामग और मुहूर्तगण मनोजव देव कहे गये हैं।।७५-७६।। इस प्रकार भविष्यत्काल के ये ब्रह्मा के पुत्र मानव कहे गये हैं। उनका इन्द्र वृषा नाम का भविष्यत्कालीन देवताओं का राजा होगा।।७७।। उस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम वर्णन करने वाले मुझसे ध्यानपूर्वक सुनिये, वे हैं—१. कश्यप गोत्रोत्पन्न हविष्मान्, २. भार्गवगोत्रीय वपुष्मान्, ३. अत्रिकुलोद्भव आरुणि, ४. वशिष्ठगोत्रोत्पन्न नग, ५. अंगिरावंशज पुष्टि, ६. पुलस्त्य वंशज निश्चर, ७. पुलहगोत्रोत्पन्न अतितेज, ये सात ऋषिगण ग्यारहवें पर्याय (मन्वन्तर) के ऋषिगण हैं तथा १. सर्ववेग, २. सुधर्मा, ३. देवानीक, ४. पुरोवह, ५. क्षेमधर्मा, ६. ग्रहेषु, ७. आदर्श, ८. पौण्ड्रक और ९. मरु ये सावर्णि प्रजापति के नौ पुत्र हैं।।७८-८१।।

अब बारहवें मन्वन्तर में शिवपुत्र ऋत सावर्णि का अधिकारकाल होगा, उस काल में रहने वाले देवगणों के पाँच विशेष गण कहे जाते हैं, उनको सुनिये।।८२।। वहाँ आने वाले देवताओं के पाँच ही गण कहे गये हैं—वे हैं—१. हरित, २. रोहित, ३. सुमना, ४. सुकर्मा, ५. सुतार, ६. विद्वान्, ७. पर्वतानुचर, ८. अपाशु, ९.

ऊर्जा स्वाहा स्वधा तारा दशैते हरिताः स्मृताः।
तपो ज्ञानी मृतिश्चैव वर्चा बंधुश्च यः स्मृतः॥८५॥
रजश्चैव तु राजश्च स्वर्णपादस्तथैव च। पुष्टिर्विधिश्च वै देवा दशैत रोहिताः स्मृताः॥८६॥
तुषिताद्यास्तु ये देवास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः। ते वै सुमनसो वेद्यान्निबोधत सुकर्मणः॥८७॥
सुपर्वा वृषभः पृष्टा कपिद्युम्नविपश्चितः। विक्रमश्च क्रमश्चैव विभृतः कांत एव च॥८८॥
एते देवाः सुकर्माणः सुतरांश्च निबोधत। वर्षो दिव्यस्तथांजिष्ठो वर्चस्वी द्युतिमान्कविः॥८९॥
शुभो हविः कृतप्राप्तिर्व्यापृतो दशमस्तथा। सुतारा नामतस्त्वेते देवा वै संप्रकीर्तिताः॥९०॥
तेषामिंद्रस्तु विज्ञेयो ऋतधामा महायशाः। द्युतिर्वसिष्ठपुत्रस्तु आत्रेयः सुतपास्तथा॥९१॥
तपोमूर्तिस्त्वांगिरसस्तपस्वी काश्यपस्तथा। तपोधनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपोरतिः॥९२॥
भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तु तपोधृतिः। एते सप्तर्षयः सिद्धा अन्त्ये सावर्णिकेंऽतरे॥९३॥
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः। मित्रवान् मित्रसेनोऽथ चित्रसेनो ह्यमित्रहा॥९४॥
मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशस्य मनोः सुताः। त्रयोदशे तु पर्याये भाव्ये रौच्येंतरे पुनः॥९५॥
त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवानां तु स्वयंभुवा। ब्रह्मणो मानसाः पुत्रास्ते हि सर्वे महात्मनः॥९६॥
सुत्रामाणः सुधर्माणः सुकर्माणश्च ते त्रयः।
त्रिदशानां गणाः प्रोक्ता भविष्याः सोमपायिनाम्॥९७॥
त्रयस्त्रिंशद्देवता याः पृथगिज्यास्तु याज्ञिकैः। आज्येन पृषदाज्येन ग्रहश्रेष्ठेन चैव ह॥९८॥

मनोजव, १०. ऊर्जा, ११. स्वाहा, स्वधा और तारा ये दश हरितगण कहे गये हैं तथा १. तपः २. ज्ञानी, ३. मृति, ४. वर्चा, ५. बंधु, ६. रज, ७. राज, ८. स्वर्णपाद, ९. पुष्टि और १०. विधि ये दश रोहितगण कहे गये हैं।।८२-८६।। तुषित आदि जो देवता स्मरण किये गये हैं, वे तेंतीस कहे गये हैं। उन्हें सुमनागण देवों के अन्तर्गत जानिये।।८७।। वे हैं—१. सुपर्वा, २. वृषभ, ३. पृष्ठ, ४. कपिद्युम्न, ५. विपश्चित, ६. विक्रम, ७. क्रम, ८. विभ्रत और ९. कान्त, १०. सुकर्मा, ये दश सुकर्मा देवगण के अधीन हैं। अब उनके पुत्रों को सुनिये। १. वर्ष, २. दिव्य, ३. अंजिष्ठ, ४. वर्चस्वी, ५. द्युतिमान्, ६. कवि, ७. शुभ, ८. हवि, ९. कृतप्राप्ति और दशमें १०. व्यापृत ये सुतारा नाम से देवगण कहे गये हैं।।८८-९०।। महान् यशस्वी, ऋतुधामा उन देवगणों के इन्द्र जानना चाहिये तथा १. वशिष्ठ पुत्र द्युति, २. अत्रि पुत्र सुतपा, ३. अंगिरा पुत्र तपोमूर्ति, ४. कश्यपसुत तपस्वी, ५. पुलस्त्य वंशोत्पत्र तपोधन, ६. पुलह कुलशिरोमणि तपोरति तथा ७. सातवें भृगुवंशीय तपोधृति। ये सप्तर्षिगण उक्त सावर्णि के अन्तर्गत जानने चाहिये।।९१-९३।। १. देववान्, २. उपदेव, ३. देवश्रेष्ठ, ४. विदूरथ, ५. मित्रवान्, ६. मित्रसेन, ७. चित्रसेन, ८. अमित्रहा, ९. मित्रबाहु, १०. सुवर्चा, ये दश बारहवें मनु के पुत्र हैं।।९४-९४½।।

तेरहवें रौच्य नामक मन्वन्तर में देवताओं के तीन ही गणों के होने की बात स्वयंभू ब्रह्मा ने बतलायी है। वे सब परम महात्मा एवं ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे जाते हैं।।९४½-९६।। उनके नाम हैं—१. सुत्रामा, २. सुधर्मा, ३. सुकर्मा, ये तीनों हैं, जो भविष्यत्कालीन सोमपान करने वाले देवताओं के गण कहे गये हैं।।९७।। यज्ञकर्ताओं

ये वै देवास्त्रयस्त्रिंशत्पृथक्त्वेन निबोधत।
सुत्रामाणः प्रयाज्यास्तु आज्याशा ये तु सांप्रतम्॥९९॥
सुकर्माणोऽनुयाज्याख्याः पृषदाज्याशिनस्तु ये।
उपयाज्याः सुधर्माण इति देवाः प्रकीर्त्तिताः॥१००॥
दिवस्पतिर्महासत्वस्तेषामिंद्रो भविष्यति। पुलहात्मजपुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुताः॥१०१॥
अंगिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्योऽप्यव्ययसतु।
सः पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सुकः॥१०२॥
निष्प्रकंप्यस्तथाऽत्रेयो निर्मोहः काश्यपस्तथा। सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु त्रयोदश॥१०३॥
चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मो धृतो भवः। अनेकः क्षत्रविद्धश्च सुरसो निर्भयो दश॥१०४॥
रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा ह्यंतरे तु त्रयोदशे। चतुर्दशे तु पर्याये भौत्यस्याप्यंतरे मनोः॥१०५॥
देवतानां गणाः पंच प्रोक्ता ये तु भविष्यति।
चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजितास्तथा॥१०६॥
वाचावृद्धाश्च इत्येते पंच देवगणाः स्मृताः।
निषादाद्याः स्वराः सप्त सप्त तान्विद्धि चाक्षुषान्॥१०७॥
बृहदाद्यानि सामानिकनिष्ठान्सप्त तान्विदुः।
सप्त लोकाः पवित्रास्ते भ्राजिताः सप्तसिंधवः॥१०८॥
वाचावृद्धानृषीन्विद्धि मनोः स्वायंभुवस्य ये। सर्वे मन्वंतरेंद्राश्च विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः॥१०९॥

सहित ये तैंतीस देवता हैं—१. आज्य, २. पृषदाज्य, ३. गृहश्रेष्ठ एवम् अन्यान्य देवगणों को मिलाकर भी वह संख्या तैंतीस ही होती है। इनका अलग अलग वर्णन कर रहा हूं, सुनिये—इस समय प्रयाज और आज्य नाम से प्रसिद्ध सभी देवगण सुत्रामा नामक गण के अधीन हैं तथा अनुयाज्य पृषद् आज्य के योग करने वाले देवगण सुकर्मा नामक गण के अन्तर्गत हैं।।९८-१००।। उस काल देवताओं के इन्द्र महापराक्रमी दिवस्पति होंगे। रुचि के इन पुत्रों को पुलह के पौत्र जानना चाहिये।।१०१।। १. अंगिरा पुत्र धृतिमान्, २. पुलस्त्य गोत्रोत्पन्न अव्यय (पथ्यवान् वा.) ३. पुलहसुत तत्त्वदर्शी, ४. भृगुनन्दन निरुत्सुक, ५. अत्रिवंशज निष्प्रकम्प्य, ६. कश्यमगोत्रीय निर्मोह और ७. वशिष्ठगोत्रोद्भव सुतपा ये सात ऋषिगण तेरहवें मन्वतर के सप्तर्षि होंगे।।१०२-१०३।।

१. चित्रसेन, २. विचित्र, ३. नय, ४. धर्म, ५. धृत, ६. भव, ७. अनेक, ८. क्षत्रविद्ध, ९. सुरस और १०. निर्भय ये तेरहवें रौच्य मन्वन्तर में मनुपुत्र कहे जायेंगे।।१०४-१०४½।। भविष्यकाल में होने वाले भौत्य नामक चौदहवें मन्वन्तर में मनु के पाँच देवता जो कहे गये हैं, वे होंगे—१. चाक्षुष, २. पवित्र, ३. कनिष्ठ, ४. भ्राजित और ५. वाचावृद्ध इस प्रकार ये पाँच देवगण स्मरण किये गये हैं, जो चौदहवें मन्वन्तर के देवगण होंगे। निषाद आदि सात देवगण और सात चाक्षुष देवगण जानिये।।१०४½-१०७।। वृहद् आदि साम समूहों को ही सात कनिष्ठ देवगण बतलाते हैं। सातों लोक पवित्र (परित्रस्त) एवं सातों समुद्र भाजर (भाजित) नाम से जाने जाते हैं।।१०८।। स्वायम्भुव

तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः। त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमंति ध्रुवाणि च॥११०॥
सर्वशः स्वैर्गुणैस्तानि इंद्रास्तेऽभिभवंति वै। भूतापवादिनो हृष्टा मध्यस्था भूतवादिनः॥१११॥
भूताभवादिनः शक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम्।
आग्नीधः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो मागधश्च यः॥११२॥
भार्गवो ह्यग्निबाहुश्च शुचिरांगिरसस्तथा। शुक्रश्चैव तु वासिष्ठः पौलहो मुक्त एव च॥११३॥
आत्रेयः श्वाजितः प्रोक्तो मनुपुत्रानतः शृणु।
उरुर्गुरुश्च गंभीरो बुद्धः शुद्धः शुचिः कृती॥११४॥
ऊर्जस्वी सुबलश्चैव भौत्स्यैते मनोः सुताः। सावर्णा मनवो ह्येते चत्वारो ब्रह्मणः सुताः॥११५॥
एको वैवस्वतश्चैव सावर्णो मनुरुच्यते। रौच्यो भौत्यश्च यौ तो तु मतौ पौलहभार्गवौ।
भौत्यस्यैवाधिपत्ये तु तूर्णं कल्पस्तु पूर्वते॥११६॥

सूत उवाच

निःशेषेतु तु सर्वेषु तदा मन्वंतरेष्विह॥११७॥
अंतेऽनेकयुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते। सप्तैते भार्गवा देवा अंते मन्वंतरे तदा॥११८॥

मनु के वाचावृद्ध ऋषियों को इस मन्वन्तर के सप्तर्षि जानो तथा स्वायम्भुव मन्वन्तर से लेकर सभी मनुओं के अधिकार काल में जितने भी इन्द्र हो चुके हैं, उन सबकी एक ही मर्यादा, एक ही स्वभाव और प्रभाव समझना चाहिये।।१०९।। अपने तेज, तपस्या, बुद्धि, बल, वेदज्ञान और पराक्रमों से त्रिलोकी के समस्त प्राणियों का वे इन्द्र अतिक्रमण करते हैं अर्थात् त्रिलोकी के समस्त प्राणियों से बढ़कर उनके समान कोई नहीं है।।११०-११०½।। भूतों का अपवाद करने वाले अर्थात् प्राणिजगत् को मिथ्या मानने वाले ''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'' कहने वाले संसार में प्रसन्न रहते हैं। भूतवादी मध्यस्थ हैं अर्थात् संसार प्राणिजगत् को ही सबकुछ समझते हैं, वे न प्रसन्न हैं और न दुःखी हैं तथा प्रसन्न भी हैं और दुःखी भी हैं। उन्हें धन पुत्रादि की प्राप्ति में प्रसन्नता और हानि में दुःख होता है। संसार की सभी वस्तुएँ नित्य एवं अविनाशी हैं। ऐसा समझकर जो सांसारिक मोहमाया में लिप्त हैं, वे भूताभिवादी हैं, वे दुःखी ही रहेंगे, इस प्रकार वेदों में प्रवादियों की तीन व्याख्यायें की गयी हैं।।११०½-१११½।।

१. कश्यप गोत्रीय अग्नीध्र, २. पुलस्त्य-गोत्रज, मागध, ३. भृगुगोत्रीय-अग्निबाहु, ४. अंगिरा पुत्र शुचि, ५. वशिष्ठ गोत्रोत्पन्न शुक्र, ६. पुलह गोत्रीय मुक्त और ७. अत्रिगोत्रजश्वाजित ये सात ऋषि चौदहवें भौत्य मन्वन्तर के सप्तर्षिगण हैं। अब मनु पुत्रों को सुनिये।।१११½-११३½।। वे मनु पुत्र हैं— १. उरु, २. गुरु, ३. गंभीर, ४. बुद्ध, ५. शुद्ध, ६. शुचि, ७. कृती, ८. ऊर्जस्वी और ९. सुबल ये सब भौत्य मनु के पुत्र होंगे, ये जो चार मनु हैं, जो सावर्ण मनु के नामसे विख्यात हैं, वे ब्रह्मादि चारों देवताओं के पुत्र हैं।।११३½-११५।। एक सूर्य के पुत्र वैवस्वत भी सावर्ण मनु कहे जाते हैं। रुचि पुत्र रौच्य तथा भूतिपुत्र भौत्य जो दो पुलहगोत्रज और भृगुगोत्रज माने गये हैं, इन्हीं भौत्य मनु के अधिकार काल में कल्प पूर्ण हो जाता है।।११६।।

सूत जी बोले हे ऋषिवृन्द! सभी मन्वन्तरों के समाप्त हो जाने पर तथा उनके अनेक युगों के वीत जाने पर सृष्टि का संहार होता है। ऐसा कहा जाता है। ये सात भृगुवंशीय देवगण अन्तिम मन्वन्तर में इकहत्तर युगों तक समस्त

भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगाख्या ह्येकसप्ततीः।
पितृभिर्मनुभिः सार्द्धं क्षीणे मन्वंतरे तदा॥११९॥
अनाधारमिदं सर्वं त्रैलेयं वै भविष्यति। ततः स्थानानि शुभ्राणि स्थानिनां तानि वै तदा॥१२०॥
प्रभ्रश्यंते विमुक्तानि तारा ऋक्षग्रहैस्तथा। ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह॥१२१॥
संप्राप्तेषु महर्लोकं यस्मिंस्ते कल्पवासिनः। अजिताद्या गणा यत्र आयुष्मंतश्चतुर्दश॥१२२॥
मन्वंतरेषु सर्वेषु देवास्ते वै चतुर्द्दशः। सशरीराश्च श्रूयंते जनलोके सहानुगाः॥१२३॥
एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं प्रति। भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरां तेषु तेषु वै॥१२४॥
शून्येषु लोकस्थानेषु महांतेषु भुवादिषु। देवेषु च गतेष्वूर्द्धं सायुज्यं कल्पवासिनाम्॥१२५॥
संहृत्य तास्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान्। संस्थापयति वै सर्गमहर्दृष्ट्वा युगक्षये॥१२६॥
चतुर्युगसहस्रांतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥१२७॥
नैमित्तिकः प्राकृतिको यश्चैवात्यंतिकोऽर्थतः। त्रिविधिः सर्वभूतानामित्येष प्रतिसंचरः॥१२८॥
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाहः प्रसंयमः। प्रतिसर्गे तु भूतानां प्राकृतः करणक्षयः॥१२९॥
ज्ञानाच्चात्यंतिकः प्रोक्तः कारणानामसंभवः।
ततः संहृत्य तान्ब्रह्मा देवांस्त्रैलोक्यवासिनः॥१३०॥

त्रिलोकी में विराजमान रहकर सभी भागों का उपभोग करेंगे और फिर भोग करके पितरों, मुनियों, सप्तर्षियों, अन्यान्य यज्ञपरायण यजमानों एवं भक्तों के साथ तीनों लोकों को छोड़कर वे सर्वसमर्थ देवगण महर्लोक को चले जायेंगे।।११७-११९।। उसके बाद उन सबके छोड़कर चले जाने पर यह त्रैलोक्य निराधार हो जायेगा। विप्रो! उस समय सब स्थान शून्य हो जायेगा। स्थानी देवता भी अपने अपने स्थान छोड़देंगे। तारा, नक्षत्र, ग्रह आदि निराधार होकर नष्ट हो जायेंगे। जब त्रैलोक्य की समस्त सामर्थ्ययुक्त शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, तब चौदहों इन्द्रादि प्रमुख देवता, 'चाक्षुष आदि सभी मनु तथा अजित आदि सभी देवगण महर्लोक में जाकर वहाँ कल्पपर्यन्त स्थिर निवास करने वाले देवताओं के साथ मिल कर रहते हैं तथा जब प्रलय का जोर अधिक बढ़ जाता है, तब वे चौदहों मनुगण अपने अनुगामियों के साथ शरीर सहित जनलोक चले जाते हैं, सुने जाते हैं।।११९-१२३।।

इस प्रकार देवताओं के महर्लोक से जनलोक चले जाने पर तब केवल पञ्चभूतादि स्थावर समूहों के शेष रह जाने पर उन उन शून्य लोकों के शून्य स्थानों में देवगण कल्पपर्यन्त निवास करने वाले अन्य अन्य देवों के समान स्थान प्राप्त कर ऊपर चले जाते हैं। उस समय देवों, दानवों, ऋषियों और पितरों सब का संहार कर युग के नष्ट होनेपर भारी वर्षा द्वारा सृष्टि की पुनः स्थापना करते हैं।।१२४-१२६।। एक हजार बार चार युगों सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है और इसी प्रकार एक हजार बार चारों युगों के बीतने पर उनकी एक रात्रि होती है। दिन और रात को जानने वाले ज्योतिषी लोग यह जानते हैं।।१२७।। नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक तीन प्रकार के अर्थानुसार सब प्राणियों के प्रलय होते हैं।।१२८।। इनमें ब्रह्मा द्वारा किया गया। कल्प का दाह प्रकृष्ट रूप से तथा सम्यक् रूप से नियन्त्रित है तथा वही नैमित्तिक है। जिस प्रलय में पञ्चमहाभूतों के कारणों (प्रकृति) का क्षय हो जाता है, उसे प्राकृतिक प्रलय कहते हैं।।१२९।। अच्छी तरह जानबूझकर किये गये

प्रहरांते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलयं पुनः। सुषुप्सुर्भगवान्ब्रह्मा प्रजाः संहरते तदा॥१३१॥
ततो युगसहस्त्रांते संप्राप्ते च युगक्षये। तत्रात्मस्थाः प्रजाः कर्तुं प्रपेदे स प्रजापतिः॥१३२॥
तदा भवत्यनावृष्टिः संतता शतवार्षिकी। तया यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले॥१३३॥
तान्येवात्र प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च। सप्तरश्मिरथो भूत्वा उदत्तिष्ठद्विभावसुः॥१३४॥
असह्यरश्मिर्भगवान्पिबत्यंभो गभस्तिभिः। हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्ततिः॥१३५॥
भूय एव विवर्त्तंते व्याप्नुवंतोंबरं शनैः। भौमं काष्ठेंधनं तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते॥१३६॥
तस्मादुदकभृत्सूर्यस्तपतीति हि कथ्यते। नावृष्ट्या तपते सूर्य्यो नावृष्ट्या परिषिच्यते॥१३७॥
नावृष्ट्या परिविश्येत वारिणा दीप्यते रविः। तस्मादपः पिबन्यो वै दीप्यते रविरंबरे॥१३८॥
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबंत्यंभो महार्णवात्। तेनाहारेण संदीप्ताः सूर्याः सप्त भवंत्युत॥१३९॥

उस महाप्रलय को जिसमें कि कारणों के कारण का उत्पन्न होना ही समाप्त हो जाता है, उनका अस्तित्व ही नहीं रहता, उसको आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। उस प्रलय में ब्रह्मा त्रैलोक्यवासी देवताओं का संहार कर अपने एक दिन सृष्टि के बाद प्रलय करते हैं। अर्थात् एक दिन सृष्टि पर सब जीवों, देवों, पितरों, ऋषियों, दानवों आदि की सृष्टि स्थिति करते हुए जान-बूझकर दिन के पूरे हो जाने पर प्रहार कर तीनों लोकों के सभी देवादिकों को मारकर प्रलय कर देते हैं। उस समय जैसे दिन भर कार्य करने के बाद मनुष्य को रात में सोने की इच्छा होती है, उसी तरह उन ब्रह्मा को भी दिन भर सृष्टि का पालन करते हुए थकान हो जाती है और वे सोने की इच्छा से प्रजा का संहार कर देते हैं।।१३०-१३१।। उसके बाद हजार बार चारों यगुों के बीत जाने पर जब युगों के नाश का समय समाप्त हो जाता है, तब वे प्रजापति अपनी आत्मा में स्थित समस्त प्रजाओं का पुनः विस्तार करते हैं। भाव यह है कि सृष्टि और प्रलय अथवा यों कहिये ब्रह्मा का दिन और रात बराबर समय के होते हैं। सृष्टि के समय ब्रह्मा प्रजाओं को सृष्टि पर विस्तृत कर देते हैं तथा प्रलय के समय वे सब प्रजाओं (प्राणियों) की आत्माओं को अपनी आत्मा में स्थित कर लेते हैं। सृष्टि करते समय उन्हें फिर विस्तृत करते हैं।।१३३।।

अब प्रलय की स्थिति को बताते हैं कि जब प्रलयकाल आता है, तो सबसे पहले सौ वर्ष तक लगातार घोर अनावृष्टि होती है अर्थात् वर्षा ही नहीं होती तथा पृथ्वी पर जो अल्पसार प्राणी हैं, वे सब विलीन हो जाते हैं और भूमित्व को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जलकर राख होकर मिट्टी बन जाते हैं। सूर्य की सात किरणें अलग-अलग हो जाती हैं और भगवान् सूर्य सात किरणों वाले होकर उठते हैं और फिर भगवान् असह्य किरणों वाले होकर अपने किरणों से भूमण्डल पर स्थित नदियों, पर्वतों और समुद्रों के जल को पीते हैं। उन सूर्य की हरित वर्ण वाली किरणें बहुत ही तीक्ष्ण हो जाती हैं। वे सत्तर गुनी अधिक तीव्र हो जाती हैं।।१३४-१३५।। वे हरितवर्ण की किरणें धीरे-धीरे समस्त आकाश में व्याप्त होकर सब कुछ बदल देती हैं। भूमि पर होने वाले समस्त पदार्थ, काष्ठ, ईंधन, तेज आदि में पुनः पुनः प्रवृत्त होकर वे रश्मियां जल से और अधिक प्रदीप्त हो उठती हैं। इसीलिये जल से भरा हुआ सूर्य और अधिक तपता है, ऐसा कहा जाता है। नावृष्ट्या (अनावृष्टि) वर्षा न होने से सूर्य तप्त नहीं होते और न वर्षा न होने से उनके मण्डल में कोई विशेष दीप्ति होती है। यही नहीं वर्षा न होने से उनकी किरणें पृथ्वी के पदार्थों नदी, वन, समुद्र, पर्वतादि से जल का संचयन नहीं कर पातीं। केवल जल से ही सूर्य पूरी तरह दीप्त होते हैं। उसी कारण जल पीते

ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम्। चतुर्लोकमिमं सर्वं दहंति शिखिनस्तदा॥१४०॥

प्राप्नुवंति च ताभिस्तु ह्यूर्द्ध्वं चाधश्च रश्मिभिः।
दीप्यंते भास्कराः सप्त युगांताग्निप्रतापिनः॥१४१॥

ते वारिणा प्रदीप्ताश्च बहुसाहस्त्ररस्मयः। स्वयं समावृत्य तिष्ठंति निर्दहंतो वसुंधराम्॥१४२॥

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुंधरा। साद्रिनद्यर्णवा पृथ्वी निस्नेहा समपद्यत॥१४३॥

दीप्ताभिः संतताभिश्च चित्राभिश्च समंततः।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च संरुद्धा सूर्यरश्मिभिः॥१४४॥

सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां संसृष्टानां परस्परम्। एकत्वमुपयातानामेकज्वाला भवत्युत॥१४५॥

सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वाऽनुमंडली। चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशु तेजसा॥१४६॥

ततः प्रलीने सर्वस्मिञ्जंगमे स्थावरे तथा। निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठसमा भवेत्॥१४७॥

अंबरीषमिवाभाति सर्वमप्यखिलं जगत्। सर्वमेव तदर्चिभिः पूर्णं जाज्वल्यते घनः॥१४८॥

भूतले यानि सत्त्वानि महोदधिगतानि च। ततसनि प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च॥१४९॥

द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधिः। सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मा पावकस्तु सः॥१५०॥

समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वशः।
पिबत्यपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन्॥१५१॥

हुए सूर्य आकाश में प्रदीप्त होते हैं। उन सूर्य की वे सात किरणें, जो सात रंगों की हैं, महासमुद्र से जल का पान करती हैं। अतः महासमुद्रों से जल के आहार से सन्दीप्त सूर्य सात हो जाते हैं।।१३५-१३९।। उसके बाद वे सात किरणें सात सूर्य होकर चारों दिशाओं में व्याप्त हो जाती हैं और तब वे सूर्य की किरणें अग्नि बनकर इन चारों लोकों को जला देती हैं।।१४०।। नीचे ऊपर नीचे सर्वत्र उन प्रखर किरणों द्वारा प्रलयकालीन अग्नि के समान बहुत अधिक जलते हुए वे सातों सूर्य बहुत अधिक तप्त हो उठते हैं।।१४१।। वे सूर्य जल से प्रदीप्त अनेकों हजार किरणों वाले हो जाते हैं और उन किरणों से स्वयं को आवृत कर समस्त भूमण्डल को पूरी तरह जलाते हुए स्थित रहते हैं।।१४२।।

उसके बाद उनके अपरिमित प्रताप से समस्त जलती हुई पृथ्वी पर्वतों, नदियों और समुद्रों सहित जलरहित हो जायेंगी।।१४३।। आग की तरह जलती हुई बहुत अधिक तापयुक्त चित्र-विचित्र रंग-बिरंगी सूर्य की किरणों से चारों ओर ऊपर नीचे तिरछे इधर-उधर भूमण्डल के चिह्न भी नहीं रहेंगे।।१४४।। बहुत अधिक बढ़ी हुई सूर्य की अग्नियों के परस्पर मिल जाने से एक होकर एक ज्वाला के रूप में हो जाने पर एक मण्डलाकार रूप धारण कर वह प्रचण्ड सूर्य की अग्नि शीघ्र ही अपने तेज से चारों लोकों को जलाकर भस्म कर देगी।।१४५-१४६।। तब समस्त लोकों के स्थावर और जङ्गम पूरी तरह विलीन हो जायेंगे और यह पृथ्वी वृक्षोंरहित, घासरहित होकर कछुए की पीठ के समान हो जायेगी।।१४७।। उस समय समस्त संसार एक भाड़ की भाँति प्रतीत होता है। सारा आकाशमण्डल ज्वालाओं पूर्णरूप से जलने लगता है।।१४८।। भूतल पर और समुद्र में जितने भी जीव रहते हैं, वे सभी नष्ट होकर खाक होकर पृथ्वी के रूप में बदल जाते हैं।।१४९।। भूमण्डल पर जितने द्वीप हैं, पर्वत हैं, देश हैं तथा महासमुद्र है, उन सबको वे सर्वात्मा अग्नि भस्म कर देते हैं।।१५०।। उस समय पृथ्वी पर प्रचण्ड रूप से जलते हुए अग्निदेव

ततः संवर्द्धितः शैलानतिक्रम्य ग्रहांस्तथा। लोकान्संहरते दीप्तो घोरः संवर्त्तकोऽनलः॥१५२॥
ततः स पृथिवीं भित्त्वा रसातलमशोषयत्। निर्दह्यांते तु पातालं वायुलोकमथादहत्॥१५३॥

अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा तूर्द्ध्वं स दहतो दिवम्।
योजनानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च॥१५४॥

उदतिष्ठञ्छिखास्तस्य बह्व्यः संवर्त्तकस्य तु। गंधर्वांश्च पिशाचांश्च समहोरगराक्षसान्॥१५५॥
तदा दहति संदीप्तो गोलकं चैव सर्वशः। भूर्लोकं च भुवर्ल्लोकं स्वर्लोकं च महस्तथा॥१५६॥
घोरो दहति कालाग्निरेवं लोकचतुष्टयाम्। व्याप्तेषु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्ध्वमथाग्निना॥१५७॥
तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः। अयोगुडनिभं सर्वं तदा ह्येवं प्रकाशते॥१५८॥

ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलंकृताः।
उत्तिष्ठंति तदा घोरा व्योम्नि संवर्तका घनाः॥१५९॥

केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः। केचिद्वैडूर्यसंकाशा इंद्रनीलनिभाः परे॥१६०॥

शंखकुंदनिभाश्चान्ये जात्यंजननिभास्तथा।
धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः॥१६१॥

केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षरसनिभास्तथा। मनशिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथांबुदाः॥१६२॥

समुद्रों, नदियों और पातालों से चारों ओर से जल को पीते हैं।।१५१।। उसके बाद वह प्रलय की अग्नि इतनी बढ़ जाती है कि पर्वतों का अतिक्रमण करता हुआ समस्त लोकों का संहार कर देता है।।१५२।। और फिर प्रलयाग्नि पृथ्वी का भेदन करके रसातल को भी सोख लेता है और पाताल को जलाता हुआ वायुलोक को जला देता है।।१५३।। वह प्रचण्ड अग्नि नीचे पृथ्वी को जलाकर ऊपर आकाश को जलाती हुई प्रलयाग्नि की ज्वालायें हजारों-लाखों-अरबों योजनों तक ऊपर को उठती हैं और वे प्रचण्ड ज्वालायें गन्धर्वों, पिसाचों, महान् सर्पों, राक्षसों तथा पृथ्वी एवं आकाश के समस्त पिण्डों को जलाती हुई भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक और महर्लोक को जला देती हैं।।१५४-१५६।। इस प्रकार वह घोर कालाग्नि चारों लोकों को जला डालती है तथा समस्त लोकों में अग्नि ही अग्नि व्याप्त हो जाती है तथा चारों लोक अग्नि में व्याप्त हो जाते हैं। सर्वत्र ऊपर-नीचे इधर-उधर चारों ओर अग्नि ही अग्नि होती है।।१५७।। सर्वत्र अग्नि के फैल जाने पर वह अग्नि का तेज शीघ्र ही इस समस्त जगत् को जलाकर जलते हुए लाल-लाल लोहे के पिण्ड की भाँति चमकने लगता है।।१५८।।

जब सब कुछ जलकर एक पिण्ड के रूप में तपाये हुए लोहे की भाँति हो जाता है, तब उसके बाद आकाश में हाथियों के आकार वाले विद्युत् से युक्त संवर्तक नाम के घोर मेघ उठते हैं। ये संवर्तक नामक मेघ केवल प्रलयकाल में ही उठते हैं।।१५९।। उन मेघों में कुछ नीलकमल की भाँति श्याम वर्ण वाले काले-काले भयंकर होते हैं, कुछ कुमुद के समान श्वेत वर्ण के, कुछ वैदूर्यमणि के समान लाल वर्ण के, कुछ इन्द्रनीलमणि के समान नीले, कुछ शंख और कुन्द के समान बहुत श्वेत तथा दूसरे मेघ काजल के समान बहुत काले, कुछ धुएँ के रंग के तथा पीले रंग के बादल (मेघ) होते हैं।।१६०-१६१।। वे बादल कुछ गधे के वर्ण की आभा वाले, कुछ मेंहदी के रंग के, कुछ मनसिल के वर्ण वाले, कुछ कबूतर के रंग वाले होते हैं।।१६२।।

इंद्रगोपनिभाः केचिद्धरितालनिभास्तथा। चाषपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठंति घना दिवि॥१६३॥
केचित्पुरवराकाराः केचिद्गजकुलोपमाः।
केचित्पर्वतसंकाशाः केचित्स्थलनिभा घनाः॥१६४॥
क्रीडागारनिभाः केचित्केचिन्मीनकुलोपमाः। बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः॥१६५॥
तदा जलधरा; सर्वे पूरयंति नभस्तलम्। ततस्ते जलदा घोरराविणो भास्करात्मकाः॥१६६॥
सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयंत्युत। ततस्ते जलदा वर्षं मुंचंति च महौघवत्॥१६७॥
सुघोरमशिवं सर्वं नाशयंति च पावकम्। प्रवृष्टैस्च तथात्यर्थं वारिणा पूर्यते जगत्॥१६८॥
अद्भिस्तेजोभिभूतं च तदाग्निः प्रविशत्यपः।
नष्टे चाग्नौ वर्षगते पयोदाः पावकोद्भवाः॥१६९॥
प्लावयंतो जगत्सर्वं बृहज्ज्वलपरिस्त्रवैः। धाराभिः पूरयंतीमं चोद्यमानाः स्वयंभुवा॥१७०॥
अन्ये तु सलिलौघैस्तु वेलामभिभवंत्यपि। साद्रिद्वीपांतरं पीतं जलमन्नेषु तिष्ठति॥१७१॥
पुनः पतति भूमौ तत्पयोधरस्तान्नभस्तले। संवेष्टयति घोरात्मा दिवि वायुः समंततः॥१७२॥
तस्मिन्नेकार्णवे घोरो नष्टे स्थावरजंगमे। पूर्णे युगसहस्त्रे वै निःशेषः कल्प उच्यते॥१७३॥

कुछ बादल बरसात के बाद जमीन से निकलने वाली लाल रंग की सुन्दर राम की गुड़िया की भाँति होते हैं। कुछ हरिताल की आभा वाले होते हैं तथा कुछ नीलकंठ पक्षी के पंखों की भाँति नीली आभा वाले होते हैं।।१६३।। जो बादल आकाश में उठते हैं, वे कुछ ग्रामों और पृथ्वी के खण्डों के समान आकार वाले होते हैं, तो कुछ हाथियों के समान होते हैं, कुछ पर्वतों के समान होते हैं, तो कुछ पृथ्वी के आकार के होते हैं। कुछ खेल के मैदान जैसे होते हैं, तो कुछ मछलियों के आकार के होते हैं। इस प्रकार वे मेघ अनेकों प्रकार के रूप वाले, भयंकर रूप वाले और घोर स्वर करने वाले (भयंकर गर्जना करने वाले) होते हैं।।१६४-१६५।। उस समय वे सब मेघ समस्त आकाशतल को घेर लेते हैं और सूर्य की आत्मा वाले बन कर घोर गर्जना करते हैं।।१६६।। और फिर सूर्यात्मक वे मेघ सात भागों में विभक्त होकर अग्नि को शान्त कर देते हैं और उसके बाद वेमेघ महानदी के समान बरसते हैं।।१६७।। इस प्रकार बरसते हुए वे मेघ बहुत अधिक भयंकर सर्व विनाशक अग्नि को नष्ट कर देते हैं। घनघोर वर्षा द्वारा समस्त संसार जल से पूर्ण हो जाता है।।१६८।।

उस समय जलों से अग्नि का तेज शान्त हो जाता है और अग्नि जल में प्रविष्ट हो जाती है। वर्षा होने पर और अग्नि के नष्ट हो जाने पर मेघ अग्नि के द्वारा उत्पन्न होने वाले हो जाते हैं। अर्थात् वह प्रलयाग्नि जब जल में समा जाती है, तब मेघ अग्नि से पैदा होने वाले हो जाते हैं, भाव यह है कि जब गर्मी पड़ती है, तब ही मेघ पैदा होते हैं। यह यहाँ वैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन है।।१६९।। उस समय इतना जल बरसता है कि सारा संसार जलप्लावित हो जाता है। स्वायम्भुव ब्रह्मा निरन्तर जल की वर्षा करती हुई विशाल जलधाराओं से सारे संसार को जलमग्न कर देते हैं।।१७०।। अन्य मेघ तो बरसते हुए अपनी मर्यादा का भी उल्लंघन कर देते हैं।।१७०½।। तब पर्वत द्वीप समुद्रों से पिया हुआ जल मेघों में स्थित रहता है और फिर आकाश तल में स्थित होकर उस जल को नीचे भूमि पर गिराते हैं और घोर आत्मा वाला वायु उस जल को आकाश में चारों ओर से घेर लेता है। उस महान्

अथांभसाऽऽवृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधाः। अथ भूमिर्जलं खं च वायुश्चैकार्णवे तदा॥१७४॥
नष्टेऽनलेऽन्धभूतेतु प्राज्ञायत न किंचन। पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो दैव्याश्च सर्वशः॥१७५॥
असरन्त्यो ब्रजंत्यैक्यं सलिलाख्यां भजन्त्युत।
आगतिागतिके चैव तदा तत्सलिलं स्मृतम्॥१७६॥
प्रच्छाद्यति महीमेतार्मणवाख्यं तु तज्जवलम्।
आभाति यस्मात्तद्धामिभो शब्दो व्याप्तिदीप्तिषु॥१७७॥
भस्म सर्वमनुप्राप्य तस्मादंभो निरुच्यते। नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वे अर उच्यते॥१७८॥
एकार्णवे तदा ह्यो वै न शीघ्रस्तेन ता नराः। तस्मिन्युगसहस्त्रांते दिवसे ब्रह्मणो गते॥१७९॥
तावंतं कालमेवं तु भवत्येकार्णवं जगत्। तदा तु सर्वे व्यापारा निवर्त्तंते प्रजापतेः॥१८०॥

भीषण एक समुद्र के रूप में परिणत जगत् के सारे जड़-चेतन जीव समूह नष्ट हो जाते हैं और इस प्रकार पूरे एक हजार चतुर्युग बीत जाते हैं, अर्थात् एक हजार चतुर्युग तक सृष्टि रही, तब उतने ही समय तक प्रलय की स्थिति बनी रहती है। इसे ही कल्प कहा जाता है।।१७०½-१७३।। जब सारा संसार जल से आवृत हो जाता है, उसे विद्वान् लोग एकार्णव कहते हैं, अर्थात् सारा प्रपंच, सभी समुद्र, वन, पर्वत, नदियाँ, विलीन होकर एक समुद्र बन जाती हैं, जिसे एकार्णव कहा जाता है। तब भूमि, जल, आकाश, वायु एकार्णव में समा जाते हैं।।१७४।। उस समय अग्नि नष्ट हो जाती है। चारों ओर घोर अन्धकार छा जाता है। वहाँ कौन कहाँ है? कहाँ क्या है? यह सब कुछ कहीं भी पता नहीं चलता। पृथ्वी सम्बन्धी, समुद्र सम्बन्धी, तैजस् सम्बन्धी जलराशि चारों ओर प्रवाहित होती हुई, उस समय केवल एक सलिल जल का रूप धारण कर लेती है। नहीं चलते हुए, जो एकता को प्राप्त करते हैं, वे ही सलिल की प्रसिद्धि को प्राप्त करते हैं। वह जलराशि इधर-उधर आती-जाती रहती है, इसीलिए यह जल सलिल कहा जाता है। अर्थात् उनकी अपनी अलग-अलग कोई पहचान नहीं रह जाती।।१७५-१७६।।

वह प्रलयकालीन जल समस्त पृथ्वी को एक अर्णव के रूप में ढंक लेता है। "आभाति यस्मात्" प्रकाशित करता है और व्याप्त करता है। इस अर्थ में 'भा' धातु आती है, अतः 'भा' का अर्थ है, जो प्रकाशित करता है और व्याप्त करता है। इस समय समस्त संसार समूह के नष्ट हो जाने पर यह जल ही चारों ओर व्याप्त रहता है, प्रकाशित होता है, अर्थात् सर्वत्र जल ही जल दिखाई देता है। इसीलिए यह जल अम्भ कहा गया है। अतः यह 'अम्भ' शब्द सार्थक है। प्रलयकालीन दृश्य के आधार सर्वत्र व्याप्त और प्रकाशित होने के कारण इस जल को अम्भ कहा गया है। यही नहीं प्रलयकालीन प्रचण्ड अग्नि से जलकर भस्म बने हुए सब प्रपंच को यह जल पुनः प्राप्त करता है, इसलिए भी यह अम्भ कहलाता है। 'अर्' धातु अनेकत्व तथा शीघ्रत्व को प्रकट करता है तथा अर् धातु से (अच्) प्रत्यय से अर शब्द हुआ, जिसका अर्थ है—अनेक होना और शीघ्रता करना; परन्तु न + अर से नार शब्द बना, तब अर्थ हुआ, अनेक न होने वाला तथा शीघ्रता न करने वाला, अर्थात् एक रूप और शान्त निश्चल अर्थ हुआ। अतः वह जलराशि एक रूप में एकार्णव में शीघ्रता से नहीं चलती, इसलिए नार कही जाती है।।१७७-१७८½।। एक हजार युग के समाप्त होने पर ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होता है, ठीक उतने ही समय तक समस्त जगत् एकार्णव के रूप में परिणत रहता है। उस समय ब्रह्मा सब प्रकार के कार्यों से निवृत्त हो जाते हैं।।१७८½-१८०।।

एकमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे। तदा स भवति ब्रह्मा सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्॥१८१॥

सहस्त्रशीर्षा सुमनाः सहस्त्रपात्सहस्त्रचक्षुर्वदनः सहस्त्रवाक्।
सहस्त्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रियीमयो यः पुरुषो निरुच्यते॥१८२॥
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः प्रथमस्तुराषाट्।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महान्वैसंपठ्यते वै रजसः परस्तात्॥१८३॥

चतुर्युगसहस्त्रान्ते सर्वतः सलिलाप्लुते। सुषुप्सुरप्रकाशेप्सुः स रात्रिं कुरुते प्रभुः॥१८४॥
चतुर्विधा यदा शेते प्रजाः सर्वा लयं गताः। पश्यंति तं महात्मानं कालं सप्त महर्षयः॥

जनलोकं विवर्त्तास्ते तपसा लब्धचक्षुषः॥१८५॥
भृग्वादयो महात्मानः पूर्वे व्याख्यातलक्षणाः॥१८६॥
सत्यादीन्सप्तलोकान्वै ते हि पश्यंति चक्षुषा।
ब्रह्माणं ते तु पश्यंति सदा ब्राह्मीषु रात्रिषु॥१८७॥
सप्तर्षयः प्रपश्यंति स्वप्नं कालं स्वरात्रिषु।
कल्यानां परमेष्ठित्त्वात्तस्मादाद्यः स पठ्यते॥१८८॥

स स्त्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनःपुनः। एवमेशयित्वा तु ह्यात्मन्येव प्रजापतिः॥१८९॥
अथात्मनि महातेजाः सर्वमादाय सर्वकृत्। ततः स वसते रात्रिं तमस्येकार्णवे जले॥१९०॥

इस प्रकार उस महान् एकार्णव में जबकि समस्त जड़-चेतन संसार नष्ट हो चुका होता है, तब सहस्त्र नेत्र, सहस्त्र चरण, सहस्त्र शीर्षा, सुन्दर मन वाले सहस्त्रचक्षु, सहस्त्रमुख, सहस्त्रवाक्, सहस्त्रबाहु प्रथम प्रजापति, जो त्रयीमय (वेदत्रय वर्णित) पुरुष कहे जाते हैं। सूर्य के समान प्रखर हो जाते हैं। समस्त लोकों के रक्षक, अपूर्व, अद्वितीय, अपने तेज से सभी को अभिभूत करने वाले महान् अन्धकार रूप अज्ञान से परे हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा स्थित रहते हैं। एक हजार बार चारों युगों के बीत जाने पर जब समस्त संसार मण्डल एकार्णव में डूब जाता है, तब महिमामय भगवान् शयन करने की इच्छा से महान् अन्धकारपूर्ण अपनी महारात्रि की कल्पना करते हैं।।१८१-१८४।।

जिस समय चारों प्रकार की प्रजाओं को उस विशाल अण्डकोष में परिणत करके सर्वसमर्थ प्रभु शयन करते हैं, उस समय उनको केवल सात महर्षिगण देखते रहते हैं। वे भृगु आदि महात्मा, जिन्होंने अपनी तपस्या से दिव्य चक्षुओं को प्राप्त कर लिया है, जिनके विशेष लक्षण पूर्व में बताये जा चुके हैं। वे उस समय जनलोक में निवास करते हैं। वे अपने ज्ञानचक्षुओं से भू, भुव, स्व, मह, जन, तप और सत्य सातों लोकों को देखते रहते हैं। लोकसृष्टा पितामह ब्रह्मा को वे सदैव ब्राह्मी रात्रियों में देखते रहते हैं।।१८५-१८७।। लोकसृष्टा ब्रह्मा जब रात्रि में सो रहे होते हैं, तब सप्तर्षिगण उन्हें देखते हैं। समस्त कल्पान्त में एक ब्रह्मा ही परमेष्ठि (परम शेष) हैं तथा वे ही आद्य (प्रथम) पुरुष हैं।।१८८।। कल्पों के आदि में पुनः पुनः समस्त पञ्चभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) तथा समस्त प्राणियों की रचना करने वाले वे प्रजापति ब्रह्मा समस्त प्रपञ्च को अपने अधिकार में करके स्थित हैं।।१८९।। इसलिए वे सब कुछ करने वाले महा तेजस्वी ब्रह्मा समस्त जड़-चेतन पदार्थों को अपनी आत्मा में समेट कर अन्धकाराच्छन्न एकार्णव के जल में रात्रि में निवास करते हैं।।१९०।।

ततो रात्रिक्षये प्राप्ते प्रतिबुद्धः प्रजापतिः। मनः सिसृक्षया युक्तः सर्गाय निदधे पुनः॥१९१॥
एवं स लोके निर्वृत्त उपशांते प्रजापतौ। ब्राह्मे नैमित्तिके तस्मिन्कल्पिते वै प्रसंयमे॥१९२॥
देहैर्वियोगः सत्त्वानां तस्मिन्वै कृत्स्नशः स्मृतः।
ततो दग्धेषु भूतेषु सर्वेष्वादित्यरश्मिभिः॥१९३॥
देवर्षिमनुवर्येषु तस्मिन्नंबुप्लवे तदा। गंधर्वादीनि सत्त्वानि पिशाचांतानि सर्वशः॥१९४॥
कल्पादावप्रतप्तानि जनमेवाश्रयंति वै। तिर्यग्योनीनि नरके यानि यानि गतान्यपि॥१९५॥
तदा तान्यापि दग्धानि धूतपापानि सर्वशः। जले तान्युपपद्यंते यावत्संप्लवते जगत्॥१९६॥
व्युष्टायां च रजन्यां तु ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनितः।
जायंते हि पुनस्तानि सर्वभूतानि कृत्स्नशः॥१९७॥
ऋषयो मनवो देवाः प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः। तेषामपि च सिद्धानां निधनोत्पत्तिरुच्यते॥१९८॥
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमने स्मृते। तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते॥१९९॥
आभूतसंप्लवात्तस्माद्भवः संसार उच्यते। यथा सर्वाणि भूतानां जायंते वर्षणेष्विह॥२००॥
स्थावरादीनि नियमात्कल्पे कल्पे तथा प्रजाः।
यथार्त्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये॥२०१॥
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मद्युरात्रिषु। प्रत्याहारे विसर्गे च गतिमंति ध्रुवाणि च॥२०२॥

उसके बाद प्रलयरूपी रात्रि के नष्ट हो जाने पर प्रजापति ब्रह्मा सृष्टि करने की इच्छा से पुनः मन को सृष्टि करने में लगाते हैं।।१९१।। इसी प्रकार ब्रह्मा के नैमित्तिक प्रलय में लोकों के विनष्ट हो जाने पर तथा प्रजापति ब्रह्मा के उपशान्त हो जाने पर सभी प्राणी समूह अपने-अपने शरीरों से रहित हो जाते हैं।।१९२-१९२½।। तब उस प्रलय में भगवान् भास्कर की प्रखर किरणों से सभी जीव तो क्या ऋषि-महर्षि, देवताओं और मनुश्रेष्ठों के भस्म हो जाने पर गन्धर्व आदि प्राणी पिशाचादि सब ओर प्रलय के आदि में प्रलयाग्नि से तप्त होकर जनलोक का आश्रय लेते हैं।।१९२½-१९४½।। उस समय जो तिर्यक् योनि में पैदा होने वाले प्राणी रहते हैं, अथवा जिनका घोर नरकादि में निवास रहता है, वे भी पूरी तरह जल कर पापरहित हो जाते हैं और जनलोक में तब तक विद्यमान रहते हैं, जब तक कि समस्त जगत् जल में आप्लावित रहता है।।१९४½-१९६।। ब्रह्मा की उस महारात्रि के समाप्त हो जाने पर वे सब जीव ब्रह्मा की अव्यक्त योनि से पुनः उत्पन्न होते हैं।।१९७।।

ऋषिगण, मनुगण, देवगण और प्रजा, ये सब चारों प्रकार भी पुनः उत्पन्न होते हैं। अतः उन सब सिद्ध पुरुषों की मृत्यु और उत्पत्ति कही जाती है।।१९८।। जिस प्रकार इस संसार में सूर्य का उदय और अस्त होता है, उसी प्रकार इस संसार के प्राणियों का जन्म लेना और मृत्यु होना देखा जाता है।।१९९।। समस्त जीवों के इस महान् विनाश के बाद पुनः उत्पत्ति होती है, इसीलिये इस लोक को संसार कहा जाता है, जिस प्रकार पृथ्वी पर सभी वनस्पतियाँ वर्षा ऋतु में स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं। उसी प्रकार प्रलय के प्रत्येक कल्प में जिन-जिन जीवों का जो-जो स्वरूप होता है तथा जैसा आकार-प्रकार रहता है, ब्राह्मरात्रि के समाप्त हो जाने पर पुनः नवीन कल्प के आरम्भ होने पर वे उसी प्रकार के रूप एवं आकार-प्रकार के उत्पन्न हुए देखे जाते हैं। संसार की प्रलय और सृष्टि में गतिशील

निष्क्रमन्ते विशंते च प्रजाः काले प्रजापतिम्।
ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोगं महेश्वरम्॥२०३॥
स स्त्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः।
व्यक्तोऽव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥२०४॥
येनैव सृष्टाः प्रथमं प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन्।
पूर्वं प्रयातेन यथात्वथापस्तेनैव तेनैव तु स्वर्व्रजंति॥२०५॥
यथा शुभेन त्वशुभेन चैव तत्रैव तत्रैव विवर्त्तमानाः।
मर्त्यास्तु देहांतरभावितत्वाद्रवेर्वशादूर्ध्वमधश्चरंति॥२०६॥
ये चापि देवा मनवः प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धाः।
तद्भाविताः ख्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनर्विसर्गेण भवंति सत्त्वाः॥२०७॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसंप्लवम्।
मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्याख्यातानि मया द्विजाः॥२०८॥
सह प्रजानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश। सा युगाख्या सहस्त्रं तु सर्वाण्येवांतराणि वै॥२०९॥

और निश्चल जितनी भी प्रजाएं हैं, वे सब और समस्त भूत तत्त्व महायोगेश्वर उन महेश्वर ब्रह्मा के शरीर से निकलती हैं और उनमें ही प्रवेश करती हैं।।२००-२०३।। कल्पों के आदि में वो महेश्वर ब्रह्मा व्यक्त और अव्यक्त समस्त चराचर प्राणियों की पुनः पुनः उत्पत्ति करके इस सारे संसार का पालन करते हैं। वे व्यक्त भी हैं और अव्यक्त भी हैं, अर्थात् इस संसार में जो कुछ इन्द्रियों से जानने योग्य पदार्थ हैं, वे सब भी उन्हीं के रूप हैं तथा जो इन्द्रियों से भी परे पदार्थ यथा आत्मा आदि हैं, वे सब भी उन्हीं के रूप हैं।।२०४।। जिन्होंने ही सबसे पहले प्रयाण करने वाले जल को इस महीतल पर उत्पन्न किया, अतः सबसे पहले पैदा की गयी जलराशियाँ जिस मार्ग से गमन करती हैं, उसी मार्ग से अन्यान्य जलराशियाँ भी गमन करती हैं। भाव यह है कि उन जगत्सृष्टा ब्रह्मा ने समस्त पदार्थों के विषय में उनके क्रियाकलापों के नियम बना दिये हैं, उन्हीं के नियमों पर संसार के पंचभूतादि सभी तत्त्व कार्य करते हैं। पृथ्वी का कार्य गमन करना है, सूर्य का ऊर्जा प्रदान करना है, सभी ग्रह-नक्षत्रों का कार्य अपने नियम में गमन करना है, पानी-हवा को बहना है, अग्नि को जलाना है, ये सब यथा निर्धारित हैं। सब अपने-अपने मार्ग का अनुसरण करते रहते हैं।।२०५।।

मनुष्यों ने जो शुभ अथवा अशुभ कर्म किये हैं, तदनुसार उनको वहाँ-वहाँ घूमते हुए, जन्म ग्रहण करते हुए, दूसरे शरीर में जाना ही है, इस भवितव्यता के कारण सूर्य की किरणों के वशीभूत होकर ऊपर और नीचे विचरण करते रहते हैं।।२०६।। और ये जितने भी देवता, मनुगण, प्रजापति एवं अन्यान्य सिद्ध पुरुष हैं, वे सभी भी भवितव्यतावश अपने-अपने धर्म की मर्यादा के अनुरूप स्वभावतः जन्म धारण करते हैं।।२०७।।

सूतजी ने कहा कि ऋषियों! इसके बाद अब मैं प्रलय काल के विषय में बतला रहा हूँ। मन्वन्तर जितने होते हैं, उनको मैं बता चुका हूँ।।२०८।। देवों के साथ और प्रजा के निसर्ग के साथ कुल चौदह मन्वन्तर होते हैं। वे सभी मन्वन्तर एक हजार युगों के होते हैं।।२०९।।

अस्याः सहस्रे द्वे पूर्णे विशेषः कल्प उच्यते। एतद्ब्राह्ममहर्ज्ञेयं तस्य संख्या निबोधत॥२१०॥
निमेषतुल्यमात्रा हि कृता लब्धक्षणेन तु। मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पंचदश स्मृताः॥२११॥
नव क्षणस्तु पंचैव विंशत्काष्ठा तु ते त्रयः।
प्रस्था सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लवः स्मृतः॥२१२॥
लवास्त्रिंशत्कला ज्ञेया मुहूर्त्तस्त्रिंशतः कलाः। मुहूर्त्तास्तु पुनस्त्रिंशदहोरात्रमिति स्थितिः॥२१३॥
अहोरात्रं कलानां तु अधिकानि शतानि षट्। ताश्चैव संख्यया ज्ञेयाश्चंद्रादित्यगतिर्यथा॥२१४॥
निमेषा दश पंचैवं काष्ठास्तास्त्रिंशतः कला।
त्रिंशत्कला मुहूर्त्तं तु दशभागं कला स्मृतम्॥२१५॥
चत्वारिंशत्कलाः पंच मुहूर्त्त इति संज्ञितः। मुहूर्त्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञैः प्रकल्पिताः॥२१६॥
तथानेनांभसश्चापि पलान्यथ त्रयोदश। मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयते॥२१७॥
एते वागप्लुतप्रस्थाश्चत्वारो नालिकोच्चयः। हेममार्षैः कृतच्छिद्रश्चतुर्भिश्चतुरंगुलैः॥२१८॥
समाहनि च रात्रौ च मुहूर्त्ता वै द्विनालिकाः। रगेर्वतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषु नित्यशः॥२१९॥
अधिकं षट्शतं यच्च कलानां प्रविधीयते। तदहर्मानुषं ज्ञेयं नाक्षत्रं तु दशाधिकम्॥२२०॥
सावनेन तु मानेन अब्दोऽयं मानुषः स्मृतः। एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चयः॥२२१॥
अह्नानेन तु या संख्या मासर्त्वयनवार्षिकी। तदा बद्धमिदं ज्ञानं संज्ञया ह्युपलक्षितम्॥२२२॥

इसी प्रकार दो हजार युगों के बीत जाने पर एक कल्प की समाप्ति होती कही जाती है।यह अवधि ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है, उसकी संख्या सुनिये।।२१०।। समय की माप बताते हुए कहते हैं कि एक लघु अक्षर के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं। मनुष्य के पलक मारने में जो समय लगता है, उसे भी निमेष कहते हैं। पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है।।२११।। पांच क्षण का एक लव होता है, बीस काष्ठा का तीन लव होता है। साढ़े सात प्रस्थ का एक लव होता है।।२१२।। तीस लव की एक कला और तीस कलाओं का एक मुहूर्त जानना चाहिए, पुनः तीस मुहूर्तों का एक दिन-रात होता है।।२१३।। इस प्रकार दिन और रात छः सौ दो कलाओं का होता है, इन्हीं कलाओं से चन्द्र-सूर्य की गति जाननी चाहिए।।२१४।। पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला तथा तीस कला का एक मुहूर्त होता है। मुहूर्त के दशवे भाग की कला होती है।।२१५।।

कुछ लोग चालीस कला का मुहूर्त बताते हैं। समय का प्रमाण जानने वालों ने यही समय की माप निश्चित की है।।२१६।। जल द्वारा भी एक प्रकार से परिमाण का निश्चय होता है। मागध मान के अनुसार तेरह पल जल का एक प्रस्थ होता है, ऐसे चार प्रस्थों का एक नालिक घट होता है।।२१७।। एक कलश में चार अंगुल पर चार सुवर्णमाष के समान दो छिद्रों द्वारा दिन और रात में प्रतिमुहूर्त दो नलिका जल निकलता है। सूर्य की गति की न्यूनता के रहते हुए भी सभी ऋतुओं में एक दिन-रात छः सौ से अधिक कलाओं वाला होता है, यह दिन मनुष्यों का है। नाक्षत्रिक दिन-रात का परिमाण छः सौ दश कलाओं का होता है। यही एक सावन का भी मान है। इस मान से बारह मास का एक मानव वर्ष होता है। उतना ही एक दिव्य वर्ष का मान है। ऐसा शास्त्रों का निश्चय है।।२१८-२२१।। इसी दिनमान से मास, अयन एवं वर्ष आदि की गणना होती है। ये संज्ञाएं ब्रह्मा के एक दिन की उपलक्षण मात्र हैं।।२२२।।

कलानां तु परीमाणं कला इत्यभिधीयते। यदहो ब्रह्मणः प्रोक्तं दिव्या कोटी तु सा स्मृता॥२२३॥
शतानां च सहस्राणि दशद्विगुणितानि च। नवतिं च सहस्राणि तथैवान्यानि यानि तु॥२२४॥
एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मयं परमाद्भुतम्। संख्यासंभजनं ज्ञानमपृच्छन्सुतरां तदा॥२२५॥

ऋषय ऊचुः

संप्रकालनमानं तु मानुषेणैव सम्मतम्। मानेन श्रोतुमिच्छामः संक्षेपार्थपदाक्षरम्॥२२६॥
तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रतः। संक्षेपाद्दिव्यचक्षुष्ट्वात्प्रोवाच वचनं प्रभुः॥२२७॥
एते रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह लौकिके। तासां संख्याथ वर्षाग्रं ब्राह्मे वक्ष्याम्यहः क्षये॥२२८॥
कोटीशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु।
द्वात्रिंशच्च तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः॥२२९॥
तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः। अशीतिश्च सहस्राणि एष कालः प्लवस्य तु॥२३०॥
मानुषाख्येन संख्यातः कालो ह्याभूतसंप्लव। सप्तसूर्यप्रदग्धेषु तदा लोकेषु तेषु वै।
महाभूतेषु लीयंते प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः॥२३१॥
सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजंगमे॥२३२॥
विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ। निरालोके प्रदग्धे तु नैशेन तमसा वृते॥२३३॥
ईश्वराधिष्ठिते त्वस्मिंस्तदा ह्येकार्णवे किल। तावदेकार्णवे ज्ञेयं यावदासीदहः प्रभोः॥२३४॥

कलाओं द्वारा गिना जाने के कारण समय काल नाम से पुकारा जाता है। ब्रह्मा का एक दिन एक करोड़ बीस लाख नौ हजार से अधिक दिव्य वर्षों का होता है।।२२३-२२४।। यह सुन कर के ऋषिगण परम विस्मित हो गये, तब काल की संख्या को जान कर ऋषि लोगों ने पुनः पूँछा।।२२५।।

ऋषियों ने कहा कि हे सूत जी! हम लोग मानव मान से सम्मत संख्या द्वारा प्रलय का परिमाण सुनना चाहते हैं। आप संक्षेप से छोटे-छोटे शब्दों में हमें समझाइए।।२२६।। उन ऋषियों की बात सुनकर लोककल्याण में निरन्तर लगे हुए प्रभु वायुदेव दिव्य चक्षु से ज्ञेय वस्तु को जानकर संक्षेप में यह वचन बोले।।२२७।। कि लौकिक दिन-रात का प्रमाण तो बताया जा चुका है, उन्हीं के माध्यम से ब्रह्मा के उस पूर्व दिवस का मान मैं आपको बता रहा हूँ, जो कि पहले नष्ट हो चुका।।२२८।। मनुष्यों के चार सौ बत्तीस करोड़ नवासी (उन्यासी) लाख अस्सी हजार वर्षों में प्रलय होता है। (४३२,८९,८००००) मनुष्य कालमान के अनुसार उतने ही वर्ष में प्रलय की अवधि होती है[१]।।२२९-२३०½।। जब प्रलय के अवसर पर सात सूर्य उदित होते हैं। सभी लोकों में जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज चारों प्रकार की प्रजायें महाभूतों में विलीन हो जाती हैं। समस्त लोक जलमग्न हो जाता है। जब जड़-चेतन निकाय पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। जब संहार कार्य समाप्त कर प्रजापति ब्रह्मा उपशान्त हो जाते हैं, जब पूरी तरह जलकर भस्म हुए लोकों में प्रकाश के समाप्त होने पर अन्धकार छा जाता है। जब प्रजापति ब्रह्मा अपने घर एकार्णव (महासमुद्र) में अधिष्ठित हो जाते हैं, तब तक प्रभु प्रजापति ब्रह्मा का एक दिन उस एकार्णव में जानना चाहिए। उसके

---

१. पृथ्वी की आयु का यह समय विज्ञान सम्मत है। आधुनिक वैज्ञानिक भी पृथ्वी की आयु लगभग ४ अरब वर्ष ही बताते हैं, जो डिस्कवरी चेनल पर अनेकों बार बताया जा चुका है।

रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ वाप्यहः स्मृतम्। अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्तते॥२३५॥
आभूतसंप्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभोः। त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमंति ध्रुवाणि च॥२३६॥
आभूतेभ्यः प्रलीयंते तस्मादाभूतसंप्लवः। अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताः प्रजाः॥२३७॥
दिव्यसंख्या प्रसंख्याता अपरार्धगुणीकृताः। परार्द्धं द्विगुणं चापि परमायुः प्रकीर्तितम्॥२३८॥
एतावान्स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापतेः। स्थित्यंतं प्रतिसर्गश्च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥२३९॥
यथा वायुप्रवेगेन दीपार्चिरुपशाम्यति। तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति॥२४०॥
तथा स्वप्रतिसंसृष्टे महदादौ महेश्वरे। महत्प्रलीयते व्यक्ते गुणसाम्यं ततो भवेत्॥२४१॥
इत्येष वः समाख्यातो मया ह्याभूतसंप्लवः। ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष संप्रक्षालनसंयमः।
समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्णयामि वः॥२४२॥
य इदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः। कीर्त्तयेद्वर्णयेद्वापि महतीं सिद्धिमाप्नुयात्॥२४३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे आभूतसंप्लवाख्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

बाद जब तक वे उस एकार्णव जल में वे ब्रह्मा शयन करते हैं, तब तक उनकी एक रात्रि होती है। इसके बाद दिन कहा जाता है। इसी क्रम से ब्रह्मा के दिन-रात बदलते रहते हैं।।२३०½-२३५।। इस प्रकार सृष्टिकाल से लेकर प्रलय की समाप्ति तक ब्रह्मा का दिन-रात कहा गया है। तीनों लोकों में जितने भी गतिशील एवं निश्चल पदार्थ हैं, वे सभी जब पंचभूतों तक विलीन हो जाते हैं, इसीलिये इस प्रलय को आभूत संप्लव कहा जाता है, अर्थात् इस प्रलय में आभूत-पंचभूतों तक सम्-सम्यक् प्रकार से, प्लव = डूब जाना। इस प्रकार जिसमें समस्त पंचभूतात्मक जगत् पूरी तरह जल में विलीन हो जाये, उसे प्रलय कहा जाता है। समस्त प्रजाओं में सबसे पहले भूत (उत्पन्न) हुए थे, इसलिए प्रजापति भूत हैं, उन्हीं से यह समस्त जगत् भूत (बीता हुआ) अर्थात् नाश हो जाता है, इसलिए भी उस प्रलय को आभूत संप्लव कहा जाता है।।२३६-२३६½।। अतीत, वर्तमान और भविष्य की प्रजाओं के तीन कालों का आयु प्रमाण दिव्य संख्या में अपरार्द्ध कहा जाता है।।२३६½-२३७½।। प्रजापति ब्रह्मा की आयु दो परार्द्ध काल है, यही प्रजापति ब्रह्मा का स्थितिकाल है। इसके उपरान्त उन ब्रह्मा का प्रतिसर्ग (प्रलय) काल होता है।।२३६½-२३९।। जिस प्रकार वायु के वेग से दीपक की ज्योति शान्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रलय द्वारा ब्रह्मा शान्त हो जाते हैं।।२४०।। उस समय जब अव्यक्त (प्रधान) (प्रकृति) में महत्तत्त्व (बुद्धि) विलीन हो जाती है और प्रकृति सहित महत्तत्त्वादि जब उन महेश्वर में विलीन हो जाते हैं, तब प्रकृति में गुणसाम्य हो जाता है, अर्थात् प्रकृति के तीनों गुण समान हो जाते हैं।।२४१।। इस प्रकार मैं आप लोगों का आभूत संप्लव (भूततत्त्वों का प्रलय) बता चुका हूँ। यही ब्रह्मा का नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है। मैंने इसे संक्षेप में बता दिया है, अब इसके आगे क्या बताना है।।२४२।। जो व्यक्ति इस वृत्तान्त को सुनेगा, धारण करेगा अथवा वर्णन कर दूसरों को सुनायेगा, वह महती सिद्धि को प्राप्त करेगा।।२४३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त उत्तर भाग चतुर्थ उपोद्घात पाद प्रथम अध्याय प्रलय का आख्यान का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे

शिवपुरवर्णनम्

द्वितीयोध्यायः

वायुरुवाच।

असाधारणवृत्तैस्तु हुतशेषादिभिर्जनैः। धर्मा वैशेषिकाश्चैव आचीर्णाः सूक्ष्मदर्शिभिः॥१॥
ते देवैः सह तिष्ठंति महर्लोकनिवासिनः। चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्द्धनात्॥२॥
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये। देवाश्च ऋषयश्चैव मनवः पितरस्तथा॥३॥
सर्वे ह्युक्ता मयातीता महर्लोकं समाश्रिताः। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्धार्मिकैः सहितैः सरैः॥४॥
तैस्तथाकारिभिर्युक्तैः श्रद्धावद्भिरदर्पितैः। वर्णाश्रमाणां धर्मेषु श्रौतस्मार्त्तेषु संस्थितैः।
विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वंतरक्षयः॥५॥

ऋषय ऊचुः

महर्ल्लोकेति यत्प्रोक्तं मातरिश्वंस्त्वया विभोः॥६॥
प्रतिलोके तु कर्त्तव्यं तत्र किं समधिष्ठितम्। प्रोवाच मधुरं वाक्यं यथा तत्त्वेन तत्त्ववित्॥७॥

वायुरुवाच।

चतुर्दशैव स्थानानि निर्मितानि महर्षिभिः। लोकाख्यानि तु यानि स्युर्येषां तिष्ठंति मानवाः॥८॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग चतुर्थ उपसंहार पाद

अध्याय-२

शिवपुर वर्णन

वायुदेव ने कहा कि महर्षियों! जो असाधारण व्यवहारों से युक्त यज्ञादि अनुष्ठान कर शास्त्रोक्त वैशेषिक धर्म का पालन करते हैं, वे सब मनुष्य देवों के साथ महर्लोक के निवासी बन कर प्रतिष्ठित रहते हैं। पूर्व प्रसंग में जिन अतीत, वर्तमान और भविष्यत्कालीन परम यशस्वी चौदह मनुओं का जो वर्णन किया गया है, वे सब सप्तर्षियों, देवों, गन्धर्वों के साथ प्रत्येक मन्वन्तर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों, धार्मिकों और उन शुभ कर्म करने वालों से युक्त श्रद्धावानों, निरभिमानों के साथ वेद और स्मृतियों के धर्मों में स्थित रहने वालों के साथ समस्त अधिकार और कर्तव्यों से रहित होकर जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है, तब तक महर्लोक में आश्रय ग्रहण करते हैं।।१-५।।

ऋषियों ने कहा कि हे वायुदेव! आपने जिस महर्लोक की चर्चा की है, वह किस प्रकार का है? वहाँ प्रत्येक लोक में जो कर्तव्य है, वह वहाँ क्या है? जब ऋषियों ने यह पूँछा, तब तत्त्ववेत्ता वायुदेव उनसे मधुर वाक्य बोले।।६-७।।

वायुदेव ने कहा—महर्षियों ने चौदह स्थानों को बताया है, जिन्हें लोक कहा जाता है, जिनमें कि मनुष्य रहते हैं।।८।।

सप्त तेषु कृतान्याहुरकृतानि तु सप्त वै। भूरादयस्तु सत्यान्ताः सप्त लोकाः कृतास्त्विह॥९॥

अकृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै।
स्थानानि स्थानिभिः सार्द्धं कृतानि तु निबंधनम्॥१०॥
पृथिवी चांतरिक्षं च दिव्यं यच्च महः स्मृतम्।
स्थानान्येतानि चत्वारि स्मृतान्यावर्णकानि च॥११॥

क्षयातिशययुक्तानि तथायुक्तानि चक्षते। यानि नैमित्तिकानि स्युस्तिष्ठंत्याभूतसंप्लवात्॥१२॥

जनस्तपश्च सत्यं च स्थानान्येतानि त्रीणि तु।
एकांतिक्रानि तानि स्युस्तिष्ठंतीहाप्रसंयमात्॥१३॥
व्यक्तानि तु प्रवक्ष्यामि स्थानान्येतानि सप्त वै।
भूर्लोकः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु भुवः स्मृतः॥१४॥

स्वस्तृतीयस्तु विज्ञेयश्चतुर्थो वै महः स्मृतः। जनस्तु पंचमो लोकस्तपः षष्ठो विभाव्यते॥१५॥

सत्यस्तु सप्तमो लोको निरालोकस्ततः परम्।
भूरिति व्याहृतेः पूर्वं भूर्लोकश्च ततोऽभवत्॥१६॥

द्वितीयो भुव इत्युक्त अंतरिक्षं ततोऽभवत्। तृतीयं स्वरितीत्युक्तो दिवं प्रादुर्बभूव ह॥१७॥

व्याहारैस्त्रिभिरेतैस्तु ब्रह्मा लोकमकल्पयत्।
ततो भूः पार्थिवो लोको ह्यंतरिक्षं भुवः स्मृतम्॥१८॥

स्वर्लोकं वै दिवं ह्येष पुराणे निश्चयो गतः। भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपतिः स्मृतः॥१९॥

उनमें सात लोक कृत कहे जाते हैं और अन्य सात अकृत कहे जाते हैं। भू, भुव, स्व, मह, जन, तप और सत्य ये सात लोक कृत लोक हैं।।९।। तथा सात ही अकृत लोक हैं, जिन्हें प्राकृत भी कहा जाता है। स्थानाभिमानी देवों के साथ कृत लोकों की स्थिति है।।१०।। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव्य और मह ये चारों लोक आर्णविक कहे जाते हैं, अर्थात् ये अर्णव (जल) से सम्बन्धित हैं।।११।। ये लोक क्षय और अतिशय वाले लोक हैं, अर्थात् इनमें लोगों का घटना-बढ़ना, नाश होना आदि लगा रहता है। अब क्षय-वृद्धि से रहित लोकों को बता रहा हूँ। जितने भी नैमित्तिक लोक हैं, वे प्रलय काल तक स्थिर रहने वाले हैं।।१२।। जन, तप और सत्य लोक ऐकान्तिक और सत्त्वगुण वाले लोक हैं। ये सब कल्प पर्यन्त स्थिर रहते हैं।।१३।। अब व्यक्त कहे जाने वाले अर्थात् जो सात प्रकट हैं, उन लोकों को बता रहा हूँ। उन सब में प्रथम भूर्लोक है, दूसरा भुवः, तीसरा स्वः, चौथा महः, पांचवां जनः, छठा तपः और सातवां सत्यलोक है। उसके बाद अन्धकार ही अन्धकार है।।१३-१५½।।

पूर्वकाल में प्रजापति ब्रह्मा ने जब 'भूः' शब्द का उच्चारण किया तो भूर्लोक पैदा हो गया, उसके बाद 'भुवः' इस प्रकार उच्चारण किया तो अन्तरिक्ष उत्पन्न हो गया। तीसरी बार 'स्वः' कहने पर दिव (स्वर्ग) उत्पन्न हो गया।।१६-१७।। इस प्रकार 'भूर्भुवः स्वः' इन तीनों उच्चारणों से उक्त तीनों की ब्रह्मा ने प्रकल्पना की। उसके वाद भूः पृथ्वी लोक हुआ, अन्तरिक्ष भुवः कहा गया और स्वः स्वर्गलोक नाम से प्रसिद्ध हुआ। ऐसा पुराण में निश्चय किया

वायुर्भुवश्चाधिपतिस्तेन वायुर्भुवस्पतिः। दिवस्य सूर्योऽधिपतिस्तेन सूर्यो दिवस्पतिः॥२०॥
महेति व्याहृतेनैव महर्लोकस्ततोऽभवत्। विनिवृत्ताधिकाराणां देवानां तत्र वै क्षयः॥२१॥
जनस्तु पंचमो लोकस्तस्माज्जायंति वै जनाः।
तासां स्वायंभुवाद्यानां प्रजानां जननाज्जनः॥२२॥
ये त स्वायंभुवाद्या हि पुरस्तत्परिकीर्त्तिताः। कल्प एते यदा लोके प्रतिष्ठंति तदा तपः॥२३॥
ऋभुः सनत्कुमाराद्या यत्रासन्नूर्द्ध्वरेतसः। तपसा भावितात्मानस्तत्र संतीति वा तपः॥२४॥
सत्येति ब्रह्मणः शब्दः सत्तामात्रस्तु स स्मृतः।
ब्रह्मलोकस्ततः सत्यः सप्तमः स तु भास्वरः॥२५॥
गंधर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षसाः। सर्वभूतपिशाचाश्च नागाश्च सह मानुषैः॥२६॥
स्वर्लोकवासिनः सर्वे देवा भुवि निवासिनः। मरुतो मातरिश्वानो रुद्रा देवास्तथाश्विनौ॥२७॥
अनिकेतांतरिक्षास्ते भुवर्लोका दिवौकसः।
आदित्या ऋभवो विश्वे साध्याश्च पितरस्तथा॥२८॥
ऋषयोंगिरसश्चैव भुवर्लोकं समाश्रिताः। एते वैमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिनः॥२९॥
आरंभंते तु तन्मात्रैः शुद्धास्तेषां परस्परम्। शुक्राद्याश्चाक्षुषांताश्च ये व्यतीता भुवं श्रिताः॥३०॥

गया है।।१८-१८½।। अग्नि भूतों अर्थात् पृथ्वी पर उपस्थित समस्त प्राणियों के स्वामी हैं, इसलिए अग्नि को भूतपति कहा गया है। वायु अन्तरिक्ष के अधिपति हैं, उसी कारण वायु को भुवः पति कहा गया है। दिव लोक (स्वर्ग) के अधिपति सूर्य हैं, इसीलिए सूर्य को दिवस्पति कहा गया है।।१८½-२०।। ब्रह्माजी ने महः शब्द का उच्चारण किया, उसके बाद महर्लोक उत्पन्न हो गया। उस महर्लोक में अपने-अपने अधिकारों से विशेष रूप से पूरी तरह निवृत्त होने के बाद देवताओं का वहाँ प्रलयकाल में निवास रहता है।।२१।। जनः पाँचवाँ लोक है, उससे मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इसी लोक से स्वायम्भुव मनु आदि की प्रजाओं का जनन होता है, इसीलिए उसको जनलोक कहा गया है।।२२।। वे जो स्वायम्भुव आदि मनुगण जिनका कि विस्तार से वर्णन किया जा चुका है, वे सब कल्प की समाप्ति में समस्त लोकों के भस्म हो जाने पर तपोलोक में आश्रय प्राप्त करते हैं, क्योंकि यह तपोलोक नष्ट नहीं होता।।२३।।

भृगु, सनत्कुमार आदि जितने भी ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी, तपस्वीगण हैं तथा जिन्होंने तपस्या से अपनी आत्मा को वश में कर लिया है, वे सब वहाँ तपोलोक में ही निवास करते हैं, क्योंकि वहाँ पर तपस्वी रहते हैं, इसीलिये उसे तपोलोक कहा जाता है।।२४।। सत्य यह एक ब्रह्म का शब्द है, जो सत्ता मात्र के अर्थ में स्मरण किया गया है। इसीलिये ब्रह्मलोक सत्यलोक के नाम से प्रसिद्ध है, वह परम प्रकाशमय लोक सभी लोकों में अन्तिम अर्थात् सातवाँ है।।२५।। गन्धर्व, अप्सरायें, यक्षगण, गुह्यक, राक्षस, सब भूत-पिशाच, नाग और सभी स्वर्गवासी देवगण मनुष्यों के साथ पृथ्वी तल के निवासी हैं।।२६।। मरुद्गण, वायुगण, रुद्रगण, कुछ देवगण, दोनों अश्विनीकुमार, ये यद्यपि किसी घर में रहने वाले नहीं हैं, तदपि इनका प्रमुख निवास स्थान भुवर्लोक ही है।।२६½।। स्वर्गलोक में निवास करने वाले आदित्यगण, ऋभुगण, विश्वेदेवगण, साध्यगण, पितरगण एवं अंगिरा वंश में उत्पन्न ऋषिगण भी भुवर्लोक में आश्रय प्राप्त करते हैं।।२६½-२८½।। ये सभी वैमानिक देवतागण जो तारों को घर बनाकर रहने वाले हैं, अर्थात्

महर्लोकश्चतुर्थस्तु तस्मिंस्ते कल्पवासिनः। इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसंभवाः॥३१॥
भूर्लोकप्रथमा लोका महरंताश्च ते स्मृताः। तान्सर्वान्सप्तसूर्यास्ते अर्चिभिर्निर्दहंति वै॥३२॥
मारीचिः कश्यपो दक्षस्तथा स्वायंभुवोंगिराः। भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुरित्येवमादयः॥३३॥
प्रजानां पतयः सर्वे वर्त्तंते तत्र तैः सह। निःसत्त्वा निर्ममाश्चैव तत्र ते ह्यूर्द्धरेतसः॥३४॥
ऋभुः सनत्कुमाराद्या वैराजास्ते तपोधनाः। मन्वंतराणां सर्वेषां सावर्णानां ततः स्मृताः॥३५॥
चतुर्दशानां सर्वेषां पुनरावृत्तिहेतवः। योगं तपश्च सत्त्वं च समाधाय तदात्मनि॥३६॥
षष्ठे काले निवर्त्तंते तदा प्राहुर्विपर्ययात्। सत्यस्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मार्गगामिनाम्॥३७॥
ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः। पर्यासपरिमाणेन भूर्लोकः समभिस्मृतः॥३८॥
भूम्यंतरं यदादित्यादंतरिक्षं भुवः स्मृतम्। सूर्यधुवांतरं यच्च स्वर्गलोको दिवः स्मृतः॥३९॥

धुवाज्जनांतरं यच्च महर्लोकः सुच्यते।
व्याख्याताः सप्त लोकास्तु तेषां वक्ष्यामि सिद्धयः॥४०॥
भूर्लोकवासिनः सर्वे अन्नादास्तु रसात्मकाः।
भुवि स्वर्गे च ये सवेर सोमपा आज्यपाश्च ते॥४१॥

जो तारों के रूप में आकाश में दिखाई पड़ते हैं, ये भी भुवर्लोक में ही निवास करते हैं। इस प्रकार जिन लोकों की चर्चा यहाँ की गयी है, वे सब तन्मात्राओं से आरम्भ किये गये हैं, वे परस्पर शुद्ध हैं, एक-दूसरे से मिले हुए नहीं हैं। शुक्र से लेकर चाक्षुष मनु तक पृथ्वी लोकवासी जो व्यतीत हो चुके हैं, वे भी कल्पान्त में उस चौथे महर्लोक में जाकर निवास करते हैं। इस प्रकार इन ब्रह्मा के शब्दोच्चारण के आधार पर नाम रखे गये सभी लोकों का मैं वर्णन कर चुका हूँ।।२८½-३१।। अब आगे बताते हैं कि भूर्लोक प्रथम लोक है। उससे लेकर अन्तिम लोक महर्लोक पर्यन्त उन सबको वे सात सूर्य अपनी किरणों से जलते हैं, उस समय मरीचि, कश्यप, दक्ष, स्वायम्भुव, अंगिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि और प्रजाओं के सभी स्वामी एक साथ जनलोक में निवास करते हैं।।३२-३३½।। निःसत्त्व, निर्मम, ऊर्ध्वरेता संसार से विरक्त ऋषिगण तपोलोक में निवास करते हैं। सावर्णादि चौदह मनुओं के अधिकार काल की पुनरावृत्ति इसी तपोलोक से की जाती है। जब उस महान् लोक के विनाश का अवसर आता है, उस समय जनलोक आदि निम्न श्रेणी के लोकों में निवास करने वाले प्राणी अपने-अपने योग, सत्य और तप के बल से उस तपोलोक में आश्रय ग्रहण करते हैं।।३३½-३६।।

यह तपोलोक छठा लोक है, इसमें जब सब निवृत्त हो जाते हैं, तब सत्यलोक जाते हैं। सत्यलोक सातवाँ लोक है, वहाँ जाकर तो पुनः लौटकर जन्म ग्रहण नहीं किया जाता।।३७।। इस सत्य लोक का तो कभी नाश ही नहीं होता। इसे ही ब्रह्मलोक कहा जाता है। परिमाण के अनुसार भूर्लोक मध्यवर्ती माना जाता है।।३८।। पृथ्वीतल से लेकर सूर्य तक अन्तरिक्ष में भुवर्लोक स्थित माना जाता है। सूर्य से ध्रुव पर्यन्त स्वर्ग लोक स्थित है, इसे दिव लोक कहा गया है।।३९।। ध्रुव से लेकर जनलोक पर्यन्त महर्लोक है, इसी प्रकार अन्य-अन्य लोकों की स्थिति है, यहाँ तक सातों लोकों की व्याख्या कर दी गयी है। अब मैं उनकी सिद्धियाँ बताऊँगा।।४०।। भूलोक में रहने वाले सभी अन्न खाने वाले हैं, वे छः रसों का स्वाद लेने वाले हैं। भुवर्लोक में निवास करने वाले सब सोमरस का पान करने वाले

चतुर्थे येऽपि वर्त्तते महर्लोकं समाश्रिताः। विज्ञेया मानसी तेषां सिद्धिर्वै पंचलक्षणा॥४२॥
सद्यश्चोत्पद्यते तेषां मनसा सर्वमीप्सितम्। एते देवा यजंते वै यज्ञैः सर्वैः परस्परम्॥४३॥
अतीता वर्त्तमानाश्च तथा ये चाप्यनागताः। प्रथमानंतरोद्दिष्टा अंतराः सांप्रतैः पुनः॥४४॥
निवर्त्तते हि संबंधोऽतीते देवगणे तपः। विनिवृत्ताधिकाराणां सिद्धिस्तेषां तु मानसी॥४५॥

तेषां तु मानसी ज्ञेया शुद्धा सिद्धिः परस्परात्।
उक्ता लोकास्तु चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा।
समासेन मया विप्रा भूयस्तं वर्णयामि वः॥४६॥

वायुरुवाच

मरीचिः कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चांगिरा भृगुः॥४७॥

पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरित्येवमादयः। पूर्वं ते संप्रसूयंते ब्रह्मणो मानसा इह॥४८॥
ततः प्रजाः प्रतिष्ठाप्य जनमेवाश्रयंति ते। कल्पदाहेषु तु सदा तथा कालेषु तेषु वै॥४९॥
भूरादिषु महान्तेषु भृशं व्याप्ते यथाग्निना। शिखाः संवर्त्तकाग्नेर्याः प्राप्नुवंति सवासनाः॥५०॥
यामादयो गणाः सर्वे महर्लोकनिवासिनः। महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाश्रयंति ते॥५१॥
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थाश्च भवंति ते। तेषां ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्तिधरास्तता॥५२॥

हैं तथा स्वर्लोक के आदित्यादि देवगण आज्यपा अर्थात् घी का पान करने वाले हैं।।४१।। जो चतुर्थ लोक महर्लोक में निवास करने वाले हैं। उनकी मानसिक सिद्धियाँ पाँच होती हैं। मन में सोचने मात्र से उनको समस्त मनोवांछित सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।४२-४२½।। सभी देवता लोग सभी प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान से परस्पर सन्तुष्टि लाभ करते हैं। वर्तमान देवगण अतीत काल के देवों के लिये भविष्यत्कालीन देवगण वर्तमान देवताओं के लिए यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। इस प्रकार बाद में उत्पन्न हुए देवगण अपने से पहले उत्पन्न देवगणों की सन्तुष्टि के लिए इन यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं।।४२½-४४।। देवगणों के व्यतीत हो जाने पर उनका सम्बन्ध निवृत्त (समाप्त) हो जाता है। सम्बन्ध समाप्त होने पर जब उनका अधिकार काल समाप्त हो जाता है, तब भी उनमें परम विशुद्ध मानसी सिद्धियों की परम्परा विद्यमान जाननी चाहिए। वायुदेव ने कहा कि हे ऋषियों! मैंने आप लोगों को जनलोक तथा उससे नीचे स्थित लोकों की चर्चा संक्षेप में सुना दी है, अब फिर उसी का सविस्तार वर्णन कर रहा हूँ।।४५-४६।।

वायु ने कहा कि—ऋषिगण! मरीचि, कश्यप, दक्ष, वशिष्ठ, अंगिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि ऋषिगण सबसे पहले ब्रह्मा के मानस पुत्रों के रूप में पैदा होते हैं।।४७-४८।। और उसके बाद अपनी-अपनी प्रजाओं का विस्तार करके पुनः जनलोक का आश्रय लेते हैं तथा सदैव उन-उन कल्पदाह के कालों में जबकि पृथ्वी लोक तथा महत्तत्त्वादि भूत तत्त्वों में अग्नि पूरी तरह व्याप्त हो जाती है तथा जब प्रलयाग्नि की जो शिखाएँ सर्वत्र सब कुछ को भस्म करने लग जाती हैं, तब यम आदि सभी गण जो महर्लोक में निवास करते हैं, वे सब महर्लोक के जलने पर जनलोक का आश्रय ग्रहण करते हैं।।४९-५१।। उस समय वहाँ वे सब सूक्ष्म शरीरस्थ हो जाते हैं और फिर वहीं उसी जनलोक में स्थित हो जाते हैं। उस समय वहाँ वे सब समान शक्ति वाले और समान मूर्ति धारण करने वाले

जनलोके विवर्त्तते संवर्त्तः प्लवते जगत्। व्युष्टायां तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनितः॥५३॥
अहरादौ प्रसूयंते पूर्ववत्क्रमशस्त्विह। स्वायंभुवादयः सर्वे मरीच्यंतास्तु साधकाः॥५४॥
देवास्ते वै पुनस्तेषां जायंते निधनेष्विह। यामादयः क्रमेणैव कनिष्ठाद्याः प्रजापतेः॥५५॥
पूर्वं पूर्वे प्रसूयंते पश्चिमे पश्चिमास्तथा। देवान्वये देवता हि सप्त संभूतयः स्मृताः॥५६॥
व्यतीताः कल्पजास्तेषां तिस्रः शिष्टास्तथापरे। आवर्त्तमाना देवास्ते क्रमेणैतेन सर्वशः॥५७॥
गत्वा जवजवीभावं दशकृत्वः पुनःपुनः। ततस्ते वै गणाः सर्वे दृष्ट्वा भावेष्वनित्यताम्॥५८॥
भाविनोऽर्थस्य च बलात्पुण्यख्यातिबलेन च। निवृत्तवृत्तयः सर्वेऽत्रस्थाः सुमनस्तथा॥५९॥
वैराजमुपपद्यंते लोकानुत्सृज्य तं गताः। ततोऽनेनैव कालेन नित्ययुक्तास्तपस्विनः॥६०॥
कथनाच्चैव धर्मस्य तेषां ते जज्ञिरेऽन्वये। इहोत्पन्नास्ततस्ते वै स्थानान्यापूरयंत्युत॥६१॥
देवत्वे च ऋषित्वे च मनुष्यत्वे च सर्वशः। एवं देवगणाः सर्वे दशकृत्वो निवर्त्य वै॥६२॥
वैराजेषूपपन्नास्ते दश तिष्ठंत्युपप्लवान्। पूर्णेपूर्णे ततः कल्पे स्थित्वा वैराजके पुनः॥६३॥
ब्रह्मलोके विवर्त्तंते पूर्वपूर्वक्रमेण तु। एतस्मिन्ब्रह्मलोके तु कल्पे वैराजके गते॥६४॥
वैराजः पुनरव्यक्ते कल्पस्थानमकल्पयत्। एवं पूर्वानुपूर्व्येण ब्रह्मलोकगतेन वै॥६५॥

हो जाते हैं और फिर तब तक उस जनलोक में निवास करते हैं, जब तक कि प्रलय संसार का विनाश करती है, अर्थात् महान् विनाशकाल तक वे वहीं जनलोक में रहते हैं।।५२-५२½।। अव्यक्त योनि ब्रह्माजी की महारात्रि (प्रलय) के बीत जाने पर जब पुनः उनका दिन आरम्भ होता है, तब वे स्वायंभुव आदि मनु, मरीचि आदि सब साधक-ऋषिगण अपने-अपने पूर्व में पैदा हुए पुरुषों की मृत्यु के बाद पूर्वक्रम से पुनः-पुनः जन्म लेते हैं।।५२½-५५½।। देववंश में देवताओं की जिन सात विभूतियों का स्मरण किया जाता है, उनमें से चार कल्पज देवल व्यतीत हो चुके हैं तथा दूसरे तीन शेष हैं।।५५½-५६½।। इस प्रकार वे देवता लोग क्रमशः अनेकों बार जन्म ग्रहण करते हुए शीघ्रातिशीघ्र पुनः-पुनः मरण और जन्म भाव को प्राप्त होकर दश बार मरण-जन्म के क्रम से जन्म-मरण से गुजरते हुए इस संसार के सभी पदार्थों एवं भावों में अनित्यता का दर्शन करते हैं।।५६½-५८।। उसके बाद भवितव्यतावश तथा अपने पुण्यकर्मों के प्रभाव से प्रशान्तचित्त हो जाते हैं और सभी कार्यों से निवृत्त होकर स्वस्थ मन से इस जनलोक को छोड़कर वैराजलोक को चले जाते हैं।।५९-५९½।। उसके बाद इसी समय से लेकर नित्य तपस्या में लगे रहकर वे लोग धर्म का कथन करने (धर्मोपदेश देने) के प्रभाव से उन परम धार्मिकों के वंश में जन्म ग्रहण करते हैं।।५९½-६०½।।

उसके बाद वे उत्पन्न होकर देव, ऋषि और मनुष्यों के जन्म ग्रहण कर उन-उन स्थानों की पूर्ति करते हैं। सभी देवगण इस प्रकार दश बार जन्म ग्रहण करने के बाद वैराज नामक लोकों में आश्रय प्राप्त कर दश कल्प तक निवास करते हैं।।६०½-६२½।। एक कल्प के पूर्ण होने पर वैराज में स्थित होकर वे देवगण पूर्व-पूर्व क्रम से ब्रह्मलोक में स्थित होते हैं।।६२½-६३½।। इस ब्रह्मलोक में तो वे वैराज कल्पों के व्यतीत हो जाने पर निवास करते हैं। कुछ लोग वैराजलोक को कल्प पर्यन्त स्थायी मानते हैं। इसी पूर्व में कहे गये के अनुसार ब्रह्मलोक जाने के द्वारा अपने-अपने तप के प्रभाव से वैराज लोक में जा-जाकर वहाँ दस कल्प तक निवास करते हैं, अर्थात् ब्रह्मलोक जाने से पहले दश बार वैराज लोक का चक्कर काटते हैं। जब ब्रह्मलोक जाने के योग्य पुण्य कार्य पूर्ण हो जाते हैं, तब ब्रह्मलोक

वैराजेषूपपद्यंते दशकृत्वे विवर्त्यत। एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्त्रशः॥६६॥
निधनं ब्रह्मलोके तु गतानामृषिभिः सह। न शक्यमानुपूर्व्येण तेषां वक्तुं प्रविस्तरम्॥६७॥
अनादित्वाच्च कालस्य ह्यसंख्यानाच्च सर्वशः। एवमेव न संदेहो यथावत्कथितं मया॥६८॥
तदुपश्रुत्य वाक्यार्थमृषयः संशयान्विताः। सूतमाहुः पुराणज्ञं व्यासशिष्यं महामतिम्॥६९॥

ऋषय ऊचुः

वैराजास्ते यदाहारा यत्सत्त्वाश्च यदाश्रयाः। तिष्ठंति चैव यत्कालं तन्नो ब्रूहि यथातथम्॥७०॥
तदुक्तमृषिभिर्वाक्यं श्रुत्वा लोकार्थतत्त्ववित्।
सूतः पौराणिको वाक्यं विनयेनेदमब्रवीत्॥७१॥
ततः प्राप्य तु सर्वेशं शुद्धबुद्धिं तमाश्रयत्। आभूतसंप्लवास्तत्र दश तिष्ठंति तेऽज्वराः॥७२॥
सर्वे सूक्ष्म शरीरास्ते विद्वांसो घनमूर्तयः। स्थितलोकस्थितत्वाच्च तेषां भूतं न विद्यते॥७३॥
ऊचुः सनत्कुमाराद्याः सिद्धास्ते योगधर्मिणः। एवमेव महाभागाः प्रणवं संप्रविश्य ह॥७४॥
ब्रह्मलोके प्रवर्त्तामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति। एवमुक्त्वा तदा सर्वे ब्रह्मांडाऽध्यवसायिनः॥७५॥

को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वैराज नामक लोक में जो लोग जाते हैं, वे दश बार जन्म लेकर निवृत्त होते हैं। इसी प्रकार देवों के हजारों युग बीत चुके हैं। ऋषियों के मृत्यु प्राप्त करके वे देवगण वैराज में निवास करने के बाद ब्रह्मलोक चले जाते हैं।।६३½-६६½।।

सूतजी बोले—हे ऋषिवृन्द! उन देवताओं की सृष्टि और प्रलय को पूर्व से लेकर अन्त तक विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि काल अनादि है, वह आदि रहित है तथा संख्या की कोई इयत्ता नहीं। अर्थात् संख्या इतनी है, यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए अब तक जो मैंने आप लोगों को बताया है, उसमें आपको सन्देह नहीं करना चाहिए। यह सब वैसा ही हुआ है, जैसा मैंने कहा है।।६६½-६८।। सूत की इन बातों को सुनकर ऋषियों को बहुत सन्देह हो गया, तब वे पुराण को जानने वाले महर्षि वेदव्यास के शिष्य महामति सूतजी से बोले।।६९।।

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! हमें यह बतलाइये कि वैराज लोक में रहने वाले वे देवता क्या आहार करते हैं? क्या उनके पराक्रम हैं? किन वस्तुओं का उन्हें आश्रय प्राप्त है तथा कितने समय तक वे वहाँ स्थित रहते हैं? इन सब बातों को हम यथार्थतः सुनना चाहेंगे। कृपया हमें बताइए।।७०।।

ऋषियों द्वारा उस कथित वाक्य को सुनकर लौकिक अर्थ के तत्त्व को जानने वाले पुराण ज्ञाता सूत जी विनम्रतापूर्वक यह बोले।।७१।। ऋषिवृन्द! धर्म का आचरण करने के बाद जो परम शुद्ध और विकार रहित हो जाते हैं, वे लोग उस वैराज नामक लोक में दश कल्प तक निवास करते हैं।।७२।। वे सब विद्वान् सूक्ष्म शरीर से युक्त होते हैं तथा मेघों की आकृति में रहते हैं तथा उस लोक में अनन्त तक स्थित रहने से उनके शरीर में भूतों पञ्चभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) का सम्पर्क नहीं रहता।।७३।। इस कल्प के बाद वैराज लोक में निवास करने वाले योगधर्म परायण सिद्ध सनत्कुमारादि महर्षिगण आपस में कहते हैं कि इस प्रकार ही महाभाग्यशाली हम सब प्रणव ॐकार रूप ब्रह्म में प्रवेश करके ब्रह्मलोक में प्रवर्त हों, वही हमारा कल्याण होगा। ऐसा कहकर तब वे सब ब्रह्माण्ड में जाने का प्रयास करने वाले ऋषीगण अपनी आत्मा को ऊपर ब्रह्म में लगाकर योगधर्म में प्रवृत्त होते

याजयित्वा तदाऽत्मानो वर्त्तंते योगधर्मिणः। तत्रैव संप्रलीयंते शांता दीपार्चिषो यथा॥७६॥
ब्रह्मकायमवर्त्तंत पुनरावृत्तिदुर्लभम्। लोकं तं समनुप्राप्य सर्वे ते भावनामयम्॥७७॥
आनंदं ब्रह्मणः प्राप्य अमृतत्वाय ते गताः। वैराजेभ्यस्तथैवोर्द्धमंतरे षड्गुणे ततः॥७८॥
ब्रह्मलोकः समाख्यातो यत्र ब्रह्मा पुरोहितः।
ते सर्वे प्रणवात्मानो बुद्धिशुद्धतया स्थिताः॥७९॥
आनंदं ब्रह्मणः प्राप्य ह्यमृतत्वं भजंत्युत। द्वंद्वैस्ते नाभिभूयंते भावत्रयविवर्जिताः॥८०॥
आधिपत्यं विना तुल्या ब्रह्मणस्ते महौजसः। प्रभावविजयैश्वर्यस्थितिवैराग्यदर्शनः॥८१॥
ते ब्रह्मलौकिकाः सर्वे गतिं प्राप्यानिवर्त्तिनीम्। ब्रह्मणा सहदेवैश्च संप्राप्ते प्रतिसंचरे॥८२॥
तपसोंऽते क्रियात्मानो बुद्धावस्था मनीषिणः। अव्यक्ते संप्रलीयन्ते सर्वे ते क्षणदर्शिनः॥८३॥
इत्येतदमृतं शुक्रं नित्यमक्षयमव्ययम्। देवर्षयो ब्रह्मसत्रं सनातनमुपासते॥८४॥
अपुनर्मारकादीनां तेषां चैवोर्द्धरेतसाम्। कर्माभ्यासकृतां श्रद्धां वेदांतेषूपलक्ष्यते॥८५॥
तत्र तेऽभ्यासिनो युक्ताः परां काष्ठामुपासते। हित्वा शरीरं पाप्मानममृतत्वाय ते गताः॥८६॥

हैं। जैसे ही वे योगधर्म में प्रवृत्त होते हैं, तब वे उस सम्यक् प्रकार से उसी स्थान पर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।।७४-७६।। उस समय ब्रह्म के शरीर में स्थित हो जाते हैं, तब उनकी पुनरावृत्ति समाप्त हो जाती है। अर्थात् जन्म-मरण से रहित हो जाते हैं और वे सब उस भावनामय लोक को सम्यक् प्रकार से प्राप्त कर ब्रह्म में लीन होकर ब्रह्म के अलौकिक आनन्द को प्राप्त कर वे अमृतत्व को प्राप्त कर लेते हैं, अर्थात् अमर हो जाते हैं। वैराज लोक से वह लोक छः गुना अधिक ऊपर है। उसको ब्रह्मलोक के रूप में ख्याति प्राप्त है, जहाँ कि ब्रह्मा पुरोहित हैं।।७७-७८½।। वहाँ के सभी निवासी परम शुद्ध बुद्ध एवं तपोनिष्ठ हैं। प्रणव ॐ कार ही उनकी आत्मा होती है। ब्रह्मानन्द में स्थित होकर वे अमृत का उपभोग करते हैं।।७८½-७९½।।

उनके सुख और दुःख दोनों की दुविधा समाप्त हो जाती है, अर्थात् हमें सुख प्राप्त होगा अथवा दुःख यह सब द्वन्द्व भाव नहीं रहता तथा वे तीनों भावों से रहित हो जाते हैं। जब भाव रहते ही नहीं तब सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भावों के उदय होने का सवाल ही कहाँ है।।७९½-८०।। भले ही उनका किसी पर आधिपत्य नहीं रहता, वे महा ओजस्वी आधिपत्य के बिना भी सभी बातों में ब्रह्म के समान प्रभावशाली हो जाते हैं। भला उसको किसी के आधिपत्य की क्या आवश्यकता है, जो सबका अधिपति ब्रह्म ही बन चुका हो। वे प्रभाव, स्थिति, वैराग्य, ज्ञानादि में ब्रह्मा ही के समान होते हैं।।८१।। वे ब्रह्म में निवास करने वाले ऋषिगण कभी न बदलने वाली गति को प्राप्त कर ब्रह्मा और देवों के साथ प्रलय के प्राप्त होने पर तपस्या के अन्त में क्रियाशील ज्ञान की अवस्था वाले वे क्षणदर्शी मनीषी लोक अव्यक्त (ब्रह्म प्रकृति) में विलीन हो जाते हैं।।८२-८३।। यही नित्य शुद्ध, अक्षय, अव्यय और परमशुद्ध अमृतपद है। इसी जन्म-मरण रहित सनातन परम पद की प्राप्ति के लिये ऊर्ध्वरेता एवं ऋषिगण वेदान्तों में उपलक्षित मङ्गलमय कर्मों में नित्य लगे रहकर शुद्धि प्राप्त करते हैं और लगातार योगाभ्यास में मन लगाकर उसकी अन्तिम सीमा तक उपासना करते हैं और अन्त में इस पापमय शरीर को त्याग कर अमृतत्व को प्राप्त कर लेते हैं।।८४-८६।।

वीतरागा जितक्रोधा निर्मोहाः सत्यवादिनः।
शांताः प्रणिहितात्मानो दयावंतो जितेंद्रियाः॥८७॥
निःसंगाः शुचयश्चैव ब्रह्मसायुज्यगाः स्मृताः।
अकामयुक्तैर्ये वीरास्तपोभिर्दग्धकिल्बिषाः॥८८॥
तेषामभ्रंशिनो लोका अप्रमेयसुखाः स्मृताः। एतद्ब्रह्मपदं दिव्यं परमे व्योम्नि भास्वरम्।
यत्र गत्वा न शोचंति ह्यमरा ब्रह्मणा सह॥८९॥

ऋषय ऊचुः

कस्मादेषु परार्द्धश्चकश्चैव पर उच्यते। एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम॥९०॥

सूत उवाच

शृणुध्वं मे परार्द्धस्य परिसंख्यां परस्य च॥९१॥
एकं दशशतं चैव सहस्त्रं चैव संख्यया। विज्ञेयमासहस्त्रं तु सहस्त्राणि दशायुतम्॥९२॥
एकं शतसहस्त्रं तु नियुतं प्रोच्यते बुधैः। तथा शतसहस्त्राणां दशप्रयुतमुच्यते॥९३॥
तथा दशसहस्त्राणामयुतं कोटिरुच्यते। अर्बुदं दशकोट्यस्तु ह्यब्जं कोटिशतं विदुः॥९४॥
सहस्त्रमपि कोटीनां खर्वमाहुर्मनीषिणः। दशकोटिसहस्त्राणि निखर्वमिति तं विदुः॥९५॥

इस ब्रह्मलोक की प्राप्ति इतनी सरल नहीं, यह अमृतत्त्व उन्हीं लोगों को प्राप्त होता है, जिनकी कि आसक्ति समाप्त हो गयी है, जिन्होंने क्रोध को जीत लिया है, जिनको किसी के प्रति मोह नहीं रह गया है, जो सत्यवादी हैं, जो आत्मा को वश में रखने वाले हैं, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है तथा जो दयावान् एवं संग विरहित हैं, ऐसे पवित्रात्मा जन ही उस ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करते सुने जाते हैं। जो वीरात्मा, कामना रहित, योगपरायण, तपस्या द्वारा पापों को नष्ट कर देने वाला है, वही उस अनश्वर लोक को प्राप्त करता है, उनके वे लोक कभी भी नष्ट नहीं होने वाले हैं तथा वहाँ ऐसे सुख हैं, जो अप्रमेय हैं। अर्थात् वे सुख यथार्थ अनुभव के भी विषय नहीं, उन सुखों की कोई सीमा नहीं, न ही उनकी कोई इयत्ता है। यह दिव्य पद परम व्योम में प्रकाशमान है, यह ऐसा पद है कि जहाँ देवता लोग ब्रह्मा के साथ रहकर अथवा धर्मात्मा मनुष्य अमर होकर ब्रह्मा के साथ रहकर किसी प्रकार का शोक नहीं करते हैं।।८७-८९।।

ऋषियों ने पूँछा कि परमादरणीय सूतजी! यह परार्द्ध क्या है? पर किसे कहते हैं? यह हम जानना चाहते हैं, वह हमें कृपा करके बतलाइये।।९०।।

सूतजी बोले कि अब आप लोग मुझसे परार्द्ध और पर की परि संख्या (गणना) सुनिये।।९१।। एक, दश, सौ और हजार, इन हजार तक की संख्याओं को तो आप जानते ही हैं। अब आगे दश हजार का एक अयुत होता है।।९२।। सौ हजार (एक लाख) का एक नियुत होता है, यह विद्वानों द्वारा कहा जाता है तथा सौ हजार (एक लाख) का दश प्रयुत कहा जाता है।।९३।। तथा दश हजार अयुत १०,०००×१०,००० = १०,००,००,०००का दस करोड़ होता है, दस करोड़ का एक अर्बुद होता है। सौ करोड़ १००,००००००० एक अरब का एक अब्ज होता है।।९४।। एक हजार करोड़ (१०००,००००००० दस अरब) का एक खर्ब और दश करोड़ हजार (१००००००००००० एक खर्ब) का एक निखर्ब होता है।।९५।। १००,०००००००००० सौ करोड़

शतं कोटि सहस्त्राणां शंकुरित्यभिधीयते। सहस्त्रं तु सहस्त्राणां कोटीनां पद्ममुच्यते॥९६॥

सहस्त्राणि सहस्त्राणां कोटीनां दशधा पुनः।
गुणितानि समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदो जनाः॥९७॥

कोटीसहस्त्रनियुतमंत्यमित्यभिधीयते। कोटीसहस्त्रप्रयुतं मध्यमित्यभिसंज्ञितम्॥९८॥
कोटिकोटिसहस्त्रं तु परार्द्ध इति कीर्त्यते। परार्द्धं द्विगुणं चापि परमाहुर्मनीषिणः॥९९॥
शतमाहुः परिवृढं सहस्त्रं परिपद्मकम्। विज्ञेयमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः॥१००॥
अर्बुदं न्यर्बुदं चैव खर्बुदं च ततः स्मृतम्। खर्वं चैव निखर्वं च शंकुः पद्मं तथैव च॥१०१॥
समुद्रमंत्यं मध्यं च परार्द्धं च परं ततः। एवमष्टादशैतानि स्थानानि गणनाविधौ॥१०२॥

शतादीनि विजानीयात्संज्ञितानि महर्षिभिः।
कल्पसंख्याप्रवृत्तस्य परार्द्धो ब्रह्मणः स्मृतः॥१०३॥
तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यांते प्रतितिष्ठते।
पर एव परार्द्धश्च संख्यातः संख्यया मया॥१०४॥

यस्मादस्य परं वीर्यं परमायुः परं तपः। परा शक्तिः परो धर्मः परा विद्या परा धृतिः॥१०५॥
परं ब्रह्म परं ज्ञानं परमैश्वर्यमेव च। तस्मात्परतरं भूतं ब्रह्मणो यत्र विद्यते॥१०६॥

हजार (दश खरब) का एक शंकु होता है। हजारों हजार करोड़ का १०००,०००,००००००० एक नील का एक पद्म कहा जाता है।।९६।। हजारों के हजार करोड़ १०००,०००,०००००००० उसके बाद उसका दश गुना को संख्या जानने वाले विद्वान् समुद्र कहते हैं।।९७।। हजार करोड़ नियुत १०००,००००००,००००० को अत्यन्त कहा जाता है और हजार करोड़ प्रयुत १०००,०००००००००००० (दस पद्म) को मध्यम संख्या कहा जाता है।।९८।। तथा करोड़ करोड़ हजार १००००००,००००००,००० एक शंख की संख्या परार्द्ध कहलाती है। परार्द्ध की दूनी संख्या को मनीषी लोग परा संख्या कहते हैं।।९९।। सौ को परिवृट कहा जाता है। हजार को परिपद्मक कहा जाता है, उसके बाद अयुत, फिर नियुत, फिर प्रयुत अर्बुद फिर निर्बुद उसके बाद खर्बुद, फिर खर्ब, निखर्ब, शंकु, फिर पद्म, उसके बाद समुद्र तब अन्त्य, मध्य, फिर परार्द्ध और अन्त में पर, ये अठारह प्रकार की संख्याएँ हैं, जो गणना में प्रयुक्त होती हैं।।१००-१०२।।

ये संख्याएँ आपस में गुणित होने पर सौ सौ की संख्या में बदल जाती हैं। महर्षियों ने बताया है कि ब्रह्मा के एक कल्प समय की परिमाण संख्या सृष्टि प्रारम्भ होने के काल से लेकर एक परार्द्ध होती है। उसके बाद एक परार्द्ध काल ही सृष्टि रहित अवस्था अर्थात् प्रलय की स्थिति में व्यतीत होता है। उसके बाद फिर सृष्टि का आरम्भ होता है। इस प्रकार एक सृष्टि के आरम्भ काल से दूसरी सृष्टि के आरम्भ काल तक दो परार्द्ध का समय बीत जाता है, जिसे पर काल कहते हैं। पर तथा परार्द्धकाल की संख्या मेरे द्वारा बतायी जा चुकी है।।१०३-१०४।। उन प्रजापति भगवान् ब्रह्मा का पराक्रम परम है, उनकी आयु एवं तप भी पर है, उनकी शक्ति परा है, उनका धर्म पर है, उनकी विद्या परा है, उनका धैर्य भी पर। अतः वे ब्रह्मा पर हैं तथा उनका ज्ञान एवं ऐश्वर्य भी पर हैं, अर्थात् उनका पराक्रम, उनकी

परे स्थितो ह्येष परः सर्वार्थेवु ततः परम्। संख्यातस्तु परो ब्रह्मा तस्यार्द्धस्य परार्द्धता॥१०७॥
संख्येयं चाप्यसंख्येयं सततं चापि तांत्रिकम्।
संख्येयं संख्यया दृष्टमपरार्द्धाद्विभाष्यते॥१०८॥
राशौ दृष्टे न संख्याऽस्ति तदसंख्यास्तु लक्षणम्।
आनंत्यं सिकताद्येषु हृष्टं चान्यं त्वलक्षणम्॥१०९॥
ईश्वरैस्तत्प्रसंख्यानं शुद्धत्त्वाद्दिव्यदृष्टिभिः। एवं ज्ञानप्रतिष्ठत्वात्सर्वं ब्रह्मानुपश्यति॥११०॥
एतच्छुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विनः। बाष्पपर्याकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद्गद्गदस्वराः॥१११॥
पप्रच्छुर्मातरिश्वानं सर्वे ते ब्रह्मवादिनः। ब्रह्मलोकस्तु भगवन्यावन्मात्रान्तरे प्रभो॥११२॥
योजनाग्रेण संख्यातः साधनं योजनस्य तु।
क्रोशस्य च परीमाणं श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥११३॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवत्। उवाच मधुरं वाक्यं यथादृष्टं यथाक्रमम्॥११४॥

आयु, ज्ञान एवं उनका ऐश्वर्य किसी सीमा में अवस्थित नहीं है, उनका सब कुछ सीमातीत है। संक्षेप में निष्कर्षतः यही कहना उचित होता कि उस ब्रह्म से परे अन्य कुछ भी नहीं है।।१०५-१०६।। वही एकमात्र सभी अर्थों में उनकी सीमा में पर रूप से स्थित है। अर्थात् वह सबसे आगे है। इसी कारण समस्त सांसारिक अर्थों में उन्हें ही पर पद से विशिष्ट समझना चाहिए। इसीलिए उनके इस महान् अधिकार काल (सृष्टि काल) को परार्द्ध कहा जाता है, क्योंकि वह उन पर स्वरूप ब्रह्मा का आधा काल है। उनका पर काल सृष्टि और प्रलय दोनों मिलाकर होगा।।१०७।। वे तीनों ही पुरुष प्रकृति और ब्रह्मा संख्याओं द्वारा असंख्य हैं, अर्थात् संख्याओं द्वारा उनकी गणना नहीं की जा सकती; परन्तु अनुमान किया जा सकता है, इसलिए अनुमान के आधार पर गणना करके इन्हें संख्येय भी कह दिया गया है। यह संख्या की गणना व्यावहारिक रूप से दिखायी गयी है; परन्तु यह सब अपरार्द्ध से विभाषित होती है, अर्थात् इस संख्या को असंख्य ही कहना चाहिए।।१०८।। जैसे कि किसी वस्तु का ढेर पड़ा हो, जैसे कि सरसों का गेहूँ की राशि (ढेर) है, उसकी गिनती नहीं की जाती है, उसे असंख्य कह दिया जाता है तथा यही उसका लक्षण है तथा जैसे बालू की राशि की गिनती सम्भव नहीं, वहाँ तो उसकी अनन्तता ही कही जायेगी तथा अनन्त या असंख्य कहा जाना ही उसका लक्षण है। इसलिए उस ब्रह्म को तथा उसके परार्द्ध का अनन्त या असंख्य ही कहा जायेगा। उनकी गणना करने में सारी संख्याएँ समाप्त हो जाती हैं, फिर भी अन्त नहीं प्राप्त होता, इसलिए उन्हें असंख्य और अनन्त कहना ही उनका लक्षण है।।१०९।। फिर भी शुद्धबुद्धि, दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगाभ्यास परायण लोग ही अपने ज्ञान की प्रतिष्ठा से तत्त्वनिर्णय में समर्थ होते हैं। इस सब को वे ब्रह्मा ज्ञानप्रतिष्ठता के कारण यथार्थतः देखते हैं।।११०।।

वायुदेवता की इस बात को सुनकर ब्रह्मवेत्ता नैमिषारण्य निवासी तपस्वीगण अत्यन्त हर्ष से उत्कण्ठित होकर आँसू बहाने लगे।।१११।। तब उन सभी ब्रह्मवादी तपस्वियों ने वायुदेव से पूँछा कि हे प्रभो! भगवान् वायुदेव! यह ब्रह्मलोक कितनी मात्रा की दूरी पर है।।११२।। तथा इनकी दूरी कितने योजनों पर है तथा उन योजनों की माप क्या है? इन सब बातों को जानने की हमारी इच्छा होती है, इसकी यथोचित जानकारी हमें कराइये। क्रोश का परिमाण भी हम तत्त्वतः जानना चाहते हैं।।११३।। उन ब्रह्मवादी तपस्वियों के उस वचन को सुनकर वायुदेव ने विनम्रतापूर्वक जो कुछ देखा था, तदनुसार क्रमशः मधुर वचनों को कहा।।११४।।

वायुरुवाच।

एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मे विवक्षितम्।
अव्यक्ताव्यक्तभागो वै महान्स्थूलो विभाष्यते॥११५॥

दशैव महतो भागा भूतादिः स्थूल उच्यते। दशभागाधिकं चापि भूतादिपरिमाणकम्॥११६॥
परमाणुः सुसूक्ष्मस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा। यदभेद्यतमं लोके विज्ञेयं परमाणुवत्॥११७॥
जालांतरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः। प्रथमं तत्प्रमाणानां परमाणुं प्रचक्षते॥११८॥
अष्टानां परमाणूनां समवायो यदा भवेत्। त्रसरेणुः समाख्यातस्तत्पद्मरज उच्यते॥११९॥

त्रसरेणवोऽथ येऽप्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः।
तेऽप्यष्टौ समवायस्था बालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः॥१२०॥
बालाग्राण्यष्टलिक्षा स्याद्यूकालिक्षाष्टकं भवेत्।
यूकाष्टकं यवं प्राहुरंगुलं तु यवाष्टकम्॥१२१॥

द्वादशांगुलपर्वाणि वितस्तिस्थानमुच्यते। रत्निश्चांगुलिपर्वाणि विज्ञेयो ह्येकविंशतिः॥१२२॥
चत्वारो विंशतिश्चैव हस्तः स्यादंगुलानि तु। किष्कुर्द्विरत्निर्विज्ञेयो द्विचत्वारिंशदंगुलः॥१२३॥

वायु बोले कि हे ऋषिवृन्द! मैं आप लोगों को यह बताऊँगा। आप लोग जो मैं कहना चाहता हूँ, उसे सुनिये। अव्यक्त प्रकृति से पैदा होने वाला भाग महान् (महत्तत्त्व) स्थूल तत्त्व कहा जाता है।।११५।। तथा महत्तत्त्व बुद्धि के दशभाग अर्थात् श्रोत्र, त्वक्, आँख, जिह्वा और नासिका तथा हस्त, पाद, मुख, गुदा और उपस्थ, ये दश इन्द्रियाँ तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पञ्च महाभूत, ये सब स्थूल कहे जाते हैं तथा उन दश इन्द्रियों के भाग से अधिक भूतादि का परिमाण है।।११६।। परमाणु तो बहुत ही सूक्ष्म है, उसका होना आँख से ग्राह्य नहीं है, अर्थात् वह आँख से नहीं देखा जा सकता। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म कण, जो तोड़ा नहीं जा सके, वह परमाणु के समान समझना चाहिए।।११७।। परमाणु की व्याख्या करते हुए वायु देव कहते हैं कि किसी खिड़की के छेद में से होकर जो सूर्य की किरणें अन्दर आती हैं, उनमें जो उड़ते हुए धूलि के कण दिखाई देते हैं, वे ही प्रमाणों में प्रथम परमाणु कहे जाते हैं[१]।।११८।।

आठ परमाणुओं का जब योग किया जाता है, तब वह त्रसरेणु होता है। इसे पद्मरज भी कहते हैं।।११९।। इस प्रकार आठ त्रसरेणु के योग से एक रथरेणु बनता है, अर्थात् आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु होता है। वे आठ रथरेणु जब मिलते हैं, तब एक बालाग्र बुद्धिमान् लोगों द्वारा बताया जाता है।।१२०।। आठ बालाग्र की एक लिक्षा होती है तथा आठ लिक्षा की एक यूका होती है। आठ यूका का एक यव (जौ) होता है और आठ यव का एक अंगुल होता है।।१२१।। बारह अंगुल परिमाण का एक वितस्ति (विलांद) स्थान कहा जाता है। कानी अंगुलि से अंगूठा की नाप वितस्ति (विलांद) होती है। इसी प्रकार इक्कीस अंगुल की एक रत्नि होती है।।१२२।। चौबीस अंगुल अर्थात् दो

१. यह यहाँ इस वैज्ञानिक तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि जिस परमाणु का आज अनुसन्धान हो चुका है, उसका प्रथम विचार पुराणों में किया जा चुका था अर्थात् यह परमाणु चर्चा में आ चुका था, जिसे परमाणुवाद के प्रथम अनुसन्धाता महामना डाल्टन महोदय ने भी अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही स्वीकार किया है, देखें—Daltan's theory of Atoms. Page-1

षण्णवत्यंगुलं चैव धनुराहुर्मनीषिणः। एतद्गव्यूतिसंख्यायामादनं धनुषः स्मृतम्॥१२४॥
धनुर्दंडयुगं नाली तुल्यान्यस्तैस्तथांगुलैः। धनुषां त्रिशतं नल्वमाहुः संख्याविदो जनाः॥१२५॥
धनुःसहस्त्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते। अष्टौ धनुःसहस्त्राणि योजनं तु विधीयते॥१२६॥
एतेन धनुषा चैव योजनं तु समाप्यते। एतत्सहस्त्रं विज्ञेयं शक्रकोशांतरं तथा॥१२७॥
योजनानां च संख्यातं संख्याज्ञानविशारदैः। एतेन योजनाग्रेण श्रृणुध्वं ब्रह्मणोऽतरे॥१२८॥
महीतलात्सहस्त्राणां शतदूर्ध्वं दिवाकरः। दिवाकरात्सहस्त्रे तु शते चौर्द्ध्वं निशाकरः॥१२९॥
पूर्णं शतसहस्त्रं तु योजनानां निशाकरात्। नक्षत्रमंडलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशत॥१३०॥
शतं सहस्त्रं संख्यातमेतद्विगुणितं पुनः। ग्रहांतरमर्थकैकमूर्द्ध्वं नक्षत्रमंडलात्॥१३१॥
ताराग्रहाणां सर्वेषामधस्ताच्चरते बुधः। तस्योर्द्ध्वंचरते शुक्रस्तस्मादूर्द्ध्वं च लोहितः॥१३२॥
ततो बृहस्पतिस्छोर्द्ध्वं तस्मादूर्द्ध्वं शनैश्चरः। उद्ध्वं शतसहस्त्रं तु योजनानां शनैश्चरात्॥१३३॥
सप्तर्षिमंडलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते। ऋषिभ्यस्तु सहस्त्राणां शतादूद्ध्वं विभाष्यते॥१३४॥
योऽसौ तारामथे दिव्येविमाने ह्रस्वरूपके। उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि॥१३५॥

त्रैलोक्यस्यैष उत्सेधो व्याख्यातो योजनैर्मया।
मन्वंतरेषु देवानामिज्या यत्रैव लौकिकी॥१३६॥

वितस्ति का एक हाथ होता है। दो रत्नि का अथवा यों कहिये कि बयालीस अंगुल का एक किष्कु होता है।।१२३।। छियानवे अंगुल का एक धनु मनीषी लोग कहते हैं। यह धनुष गव्यूति की संख्या अर्थात् दो कोश नापने में एक साधन माना जाता है।।१२४।। संख्या के तत्त्वों के जानकार लोग धनुष, दण्ड, युग और नाली को अंगुलों द्वारा एक समान बतलाते हैं। अर्थात् ये चारों नाप छियानवे अंगुल के कहे जाते हैं। संख्या को जानने वाले लोग तीन सौ धनुष परिमाण को एक नल्व कहते हैं।।१२५।। दो हजार धनुष की एक गव्यूति होती है तथा आठ हजार धनुष का एक योजन होता है।आठ हजार धनुष को यदि गजों में बदलें तो ९६ अंगुल अर्थात् २४ अंगुल का एक हाथ तथा ४ हाथ का एक धनु हुआ। ४ हाथ = २ गज का एक धनु तथा ८०००० धनु में १६ हजारा गज हुए। इस प्रकार १६ हजार गज का एक योजन हुआ, तब लगभग १५ कि. मी. का एक योजन हुआ।१२६।। इस धनुष के द्वारा योजन तो समाप्त हो जाता है। इस प्रकार योजन हजार कोश का अन्त समझना चाहिए।।१२७।। संख्या ज्ञान विशारद लोगों ने इस योजन की संख्या को ही अपनाया है, अब इस योजन के परिमाण द्वारा ब्रह्मलोक की दूरी सुनिये।।१२८।। पृथ्वी तल से सौ हजार योजन दूरी पर सूर्य की स्थिति है अर्थात् एक लाख योजन दूरी पर सूर्य स्थित हैं, सूर्य से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा हैं।।१२९।। पूरे एक लाख योजन चन्द्रमा से दूर समस्त नक्षत्रमण्डल चारों ओर ऊपर प्रकाशित है।।१३०।। एक लाख संख्या का दुगुना नक्षत्र में एक-एक ग्रह की दूरी है।।१३१।। सभी ताराग्रहों में बुध निम्न प्रदेश में विचरण करते हैं। उनके ऊपर शुक्र का लोक है। उससे ऊपर मंगल ग्रह है।।१३२।। उसके ऊपर बृहस्पति ग्रह है और बृहस्पति से भी ऊपर शनैश्चर है। ये सब एक लाख योजन दूरी पर हैं। शनैश्चर ग्रह से एक लाख योजन ऊपर समस्त सप्तर्षि मण्डल प्रकाशित हो रहा है। सप्तर्षियों से भी एक लाख योजन ऊपर तारामय दिव्य लघु विमान पर उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव स्वर्ग के प्रमुख चिह्न रूप होकर विराजमान हैं।।१३३-१३५।। मैंने

वर्णाश्रमेभ्य इष्टा तु लोकेऽस्मिन्संप्रवर्त्तते। सर्वासां देवयोनीनां स्थितिहेतुः स वै स्मृतः॥१३७॥

त्रैलोक्यमेतव्द्याख्यातमत ऊर्द्धं निबोधत।
ध्रुवादूर्द्ध्वं महर्लोको यस्मिंस्ते कल्पवासिनः॥१३८॥
एकायोजनकोटीशा इत्येवं निश्चयो गतः।
द्विकोट्यां तु महर्लोकाज्जनलोको व्यवस्थितः॥१३९॥
यत्र ते ब्रह्मणः पुत्रा दक्षाद्याः साधकाः स्मृताः॥१४०॥

वै राजा यत्र ते देवा भूतदाहविवर्जिताः। षड्गुणं तु तपोलोकात्सत्यलोकांतरं स्मृतम्॥१४१॥
अपुनर्मारको नाम ब्रह्मलोकः स उच्यते। यस्मिन्न च्यवते भूयो ब्रह्माणं य उपासते॥१४२॥

एककोटिर्योजनानां पंचाशन्नियुतानि तु।
ऊर्द्ध्वभागस्ततोऽडस्य ब्रह्मलोकात्परः स्मृतः॥१४३॥

चतुर्दशैव कोट्यस्तु नियुतानि च पंच षट्। स चोर्द्ध्वं संप्रचारोऽस्य गत्यंतश्चापरः स्मृतः॥१४४॥

ध्रुवाग्रमेतव्द्याख्यातं योजनाग्राद्यथाश्रुतम्।
अधोगतीनां वक्ष्यामि भूतानां स्थानकल्पनाम्॥१४५॥

गच्छंति घोरकर्माणः प्राणिनो यत्र कर्मभिः। नरको रौरवो घोरः शूकरस्ताल एव च॥१४६॥

योजनों द्वारा त्रैलोक्य की ऊँचाई बता दी है। सभी मन्वन्तरों में देवताओं की यज्ञादि प्रक्रिया एवं लौकिक अनुष्ठान इस लोक में होते रहते हैं।।१३६।। इस लोक में वर्ण और आश्रमों के लिए यज्ञादि कार्य होते रहते हैं। सब देवयोनियों की स्थिति का कारण स्मरण किया गया है।।१३७।। यह त्रैलोक्य का वर्णन कर दिया गया, अब इससे ऊपर सुनिये। ध्रुवलोक से ऊपर महर्लोक है, जिसमें प्रलयकाल में अत्यन्त शुभ कर्म करने वाले महात्माओं का निवास रहता है।।१३८।। इसकी ध्रुव से दूरी एक करोड़ योजन है, ऐसा निश्चय किया गया है और फिर महर्लोक से दो करोड़ योजन की दूरी पर जनःलोक स्थित है।।१३९।। जहाँ कि वे ब्रह्मा के पुत्र दक्ष आदि जो साधक स्मरण किये गये हैं। जनलोक से चार करोड़ योजन दूरी पर तपोलोक स्थित है। इस लोक में कल्प पर्यन्त (प्रलय काल पर्यन्त) देवता लोग भूत और तापों (दुःखत्रयों) से रहित होकर निवास करते हैं, वे ही वैराज कहे जाते हैं। तपोलोक से छः गुनी अर्थात् छः करोड़ योजन दूरी पर सत्यलोक स्थित स्मरण किया गया है। वही पुनरावृत्ति रहित (जन्म-मरण से रहित) सिद्धों का ब्रह्मलोक कहा जाता है।।१४०-१४१½।।

उस ब्रह्मलोक को प्राप्त कर उन देव, ऋषियों, तपस्वियों का फिर पतन नहीं होता, वे ब्रह्मा की उपासना में लगे रहते हैं। इस ब्रह्मलोक (ब्रह्माण्ड के ऊपर के भाग का परिमाण) एक करोड़ पचास नियुत (एक करोड़ पचास लाख) योजन और नीचे के भाग का परिमाण चार करोड़ पैंसठ नियुत (चार करोड़ पैंसठ लाख) योजन कहा जाता है। इस ब्रह्मलोक के ऊपर किसी ग्रह की गति नहीं है, नीचे सभी ग्रहादि गतिशील हैं।।१४१½-१४४।। वायुदेव ऋषियों से कहते हैं कि मैंने ध्रुवलोक के ऊपर स्थित उपर्युक्त लोकों की स्थिति योजनों द्वारा जैसी सुनी थी, मैंने आपलोगों को बता दी है। अब इसके बाद अधोगति को प्राप्त होने वाले जीवों के निवासस्थलों का वर्णन करूँगा, जहाँ पर घोर पाप करने वाले पापी अपने कर्मों के अनुसार पहुँचते हैं।१४५-१४५½।। वे नरक हैं—रौरव, घोर, शूकर, ताल,

तप्तकुम्भो महाज्वालः शबलोऽथ विमोहनः।
कृमी च कृमिभक्षश्च लालाभक्षो विशंसनः॥१४७॥
अधःशिराः पूयवहो रुधिरांधुस्तथैवच। विष्टाकीर्णश्च नरको मूत्राकीर्णस्तथैव च॥१४८॥
तथा वैतरणी कृष्णमसिपत्रवनं तथा। अग्निज्वालो महाघोरः संदंशोऽथाश्वभोजनः॥१४९॥
तमश्च कृष्णसूत्रश्च लोहश्चाप्यभिजस्तथा। अप्रतिष्ठोऽथ वीचिश्च नरका ह्येवमादयः॥१५०॥
तामसा नरकाः सर्वे यमस्य विषये स्थिताः। येषु दुष्कृतकर्माणः पतंतीह पृथक्पृथक्॥१५१॥
भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्याः प्रकीर्त्तिताः। रौरवे कूटसाक्षे तु मिथ्या यश्चाभिशंसति॥१५२॥
क्रूरग्रहे पक्षवादी ह्यसक्तः पतते नरः। रोधो गोघ्नो भ्रूणहा च ह्यग्निदाता पुरस्य च॥१५३॥
शूकरे ब्रह्महा मज्जेत्सुरापः स्वर्णतस्करः। ताले पतेत्क्षत्रियहा हत्वा वैश्यं च मज्जति॥१५४॥
ब्रह्महत्या च यः कुर्याद्यश्च स्याद्गुरुतल्पगः।
तप्तकुम्भेष्वसौ गामी तथा राजभटश्च यः॥१५५॥
संताप्यते वाऽश्ववणिक्तथाच धनरक्षिता। साध्वीविक्रयकर्त्ता च यस्तु भक्तं परित्यजेत्॥१५६॥
महाज्वाले दुहितरं स्नुषां गच्छति यस्तु वै। वेदं विक्रीणते ये च वेदं वै दूषयंति ये॥१५७॥
गुरूँश्चैवावमन्यन्ते वाक्शरैस्ताडयंति च। अगम्यगामी च नरो नरकं शबलं व्रजेत्॥१५८॥

तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शबल, विमोहन, कृमी, कृमीभक्ष, लालाभक्ष, विशंसन, अधःशिरा, पूयवह, रुधिरान्धु, विष्टाकीर्ण, मूत्राकीर्ण, वैतरणी, कृष्ण, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, संदंश, अश्वभोजन, तमः, कृष्णसूत्र, लौह, अभिज, अप्रतिष्ठ, वीचि, नरक आदि हैं।।१४५-१५०।। ये सब नरक तामस नरक हैं और यमराज के देश में स्थित हैं। जिन नरकों में दुष्कर्म करने वाले जैसे जिस प्रकार के उनके दुष्कर्म होते, तदनुसार उस-उस अलग-अलग नरक में गिरते हैं।।१५१।।

भूमि के नीचे सभी रौरव आदि नरक कहे गये हैं। कूट साक्ष में जो झूठी गवाही देता है, क्रूर पक्ष का जो समर्थन करता है, वह मनुष्य रौरव नरक में गिरता है। गोहत्या करने वाला, भ्रूण हत्या करने वाला (गर्भ गिराने वाला) और नगर अथवा गाँव में आग लगाने वाला रोध नामक नरक में गिरता है।।१५२-१५३।। ब्रह्म हत्या करने वाला, शराबी और स्वर्ण की तस्करी करने वाला शूकर नामक नरक में गिरता है। क्षत्रिय को मारने वाला, जो वैश्य को मारता है और ब्राह्मण की हत्या करता है तथा गुरुपत्नी के साथ सम्भोग करता है, वह ताल नामक नरक में गिरता है। जो अपनी बहिन के साथ पापाचार करता है तथा राजा का वध करता है, वह तप्तकुम्भ नामक नरक में गिरता है।।१५४-१५५।। दूसरे के घोड़े को चुराकर बेचने वाला और अपनी साध्वी पत्नी को बेचने वाला तथा अपने अनुचर भक्त को जो छोड़ दे, अपनी पुत्री अथवा पुत्रवधू के साथ सम्भोग करने वाला पापी नर महाज्वाल नामक नरक में गिरता है।।१५६-१५६½।। जो पापी वेद का विक्रय करता है अथवा जो वेद को दूषित करते हैं, जो अपने गुरु का अपमान करता है, उन्हें गाली देता है या मारता-पीटता है अथवा जिनके साथ सम्भोग नहीं करना चाहिए, ऐसी स्त्रियों माता, बहिन, पुत्री, पुत्रवधू, अनुजवधू आदि के साथ जो सम्भोग करता है, वह नीच पापी शबल नामक

विमोहे पतते घोरे मर्यादां यो भिनत्ति वै। दुरिष्टं कुरुते यस्तु कीटलोहं प्रपद्यते॥१५९॥
देवब्राह्मणविद्वेष्टा गुरूणां वाप्यपूजकः। रत्नं दूषयते यस्तु कृमिभक्षे प्रपद्यते॥१६०॥
पर्यश्नाति य एकोऽन्नं ब्राह्मणान्सुहृतो विना। लालाभक्षे स तिष्ठेत्तु दुर्गंधे नरके गतः॥१६१॥

कांडकर्त्ता कुलालश्च निष्कहर्ता चिकित्सकः।
आरामेऽप्यग्निदाता यः पतते स विशंसने॥१६२॥

असत्प्रतिग्रही यश्च तथैवायाज्ययाजकः। नक्षत्रैर्जीवते यश्च नरो गच्छत्यधोमुखम्॥१६३॥
क्षीरं सुरां च लवणं लाक्षां गंधं रसं तिलान् एवमादीनि विक्रीणन्घोरे पूयवहे पतेत्॥१६४॥

यः कुक्कुटान्निबध्नाति मार्जारान्सूकरांस्तथा।
पक्षिणश्च मृगाञ्छागान्सोऽप्येनं नरकं व्रजेत्॥१६५॥
अजाविको माहिषिकस्तथा चक्रध्वजी च यः।
रंगोपजीवको विप्रः साकनिर्ग्रामयाजकः॥१६६॥

अगारदाही गरदः कुंडाशी सोम विक्रयी। सुरापो मासभक्षश्च तथा च पशुघातकः॥१६७॥
विशस्ता महिषादीनां मृगहन्ता तथैव च। पर्वकारश्च सूची च यश्चस्यान्मित्रघातकः॥१६८॥
रुधिरांधौ पतंत्येते ह्येवमाहुर्मनीषिणः। उपविष्टं भोक्तुमथ पंक्त्यां वै वंचयंति ये॥१६९॥

घोर नरक में गिरता है।।१५६½-१५८।। जो दूसरे के धन का अपहरण करने वाला है, पापी चोर किसी की चहारदीवारी को लाँघ कर अथवा सेंध लगाकर चोरी करता है, वह विमोह नामक नरक में गिरता है, जो किसी का अनिष्ट साधन है, वह पापी कीट लौह नामक नरक में निवास करता है।।१५९।। जो देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुओं के साथ विशेष द्वेष (वैर) करता है तथा जो रत्न को दूषित करता है, वह कृमिभक्ष नामक घोर नरक में गिरता है।।१६०।। जो मनुष्य ब्राह्मण अथवा मित्र को खिलाये बिना एक अन्न का दाना भी खाता है, वह लालाभक्ष नामक दुर्गन्धयुक्त नरक में गिरता है।।१६१।। अपने व्यवसाय को बुरा कहने वाला नमकहराम, कुलाल, स्वर्णमुद्रा लेने वाला चिकित्सक अर्थात् अधिक पैसे लेकर इलाज करने वाला चिकित्सक, किसी के बाग अथवा उपवन में आग लगाने वाला, ये सब विशंसन नामक नरक में गिरते हैं।।१६२।। असत् कर्मों द्वारा धन इकट्ठा करने वाला अथवा नीच लोगों से धन लेने वाला, जो यज्ञ कराने योग्य नहीं हो, उससे यज्ञ कराने वाले तथा नक्षत्रों से अपनी जीविका चलाने वाला अर्थात् हस्तरेखा अथवा ग्रह-नक्षत्र देखकर भविष्य बताने वाला ज्योतिषी ये सब मनुष्य अधोमुख नामक नरक में गिरते हैं।।१६३।। दूध, शराब, नमक, लाक्षा (महावर) गन्ध, रस और तिल आदि बेचने वाला घोर पूयवह नामक नरक में गिरता है। यहाँ यह जानना चाहिए कि इन सबमें मिलावट करने वालों को ही पूयवह नरक में जाना होगा।।१६४।। जो मुर्गों, बिलावों, सूअरों, पक्षियों, हिरनों, बकरे-बकरियों को मारता है, वह भी इस पूयवह नामक नरक में गिरता है।।१६५।।

जो ब्राह्मण होकर भी भेड़ों-भैंसों का पालन करता है, चक्र एवं ध्वज ग्रहण करता है, रंगरेज का काम करता है, गाँवों में इधर-उधर यज्ञ करता फिरता है, किसी के घर में आग लगाता है, किसी को विष देता है, वर्णसंकर लोगों के घर खाना खाता है, सोमरस विक्रय करता है तथा सुरा पान करता है, मांस खाता है तथा पशुओं को मारता है।

पतन्ति नरके घोरे विड्भुजे नात्र संशयः। मृषावादी नरो यश्च तथा प्राक्रोशकोऽशुभः॥१७०॥
पतते नरके घोरे मूत्राकीर्णे स पाप कृत्। मधुग्राहाभिहंतारो यांति वैतरणीं नराः॥१७१॥
उन्मत्ताश्चित्तभगाश्च शौचाचारविवर्जिताः।
क्रोधना दुःखदा ये च कुहकाः कृष्णगामिनः॥१७२॥
असिपत्रे वनच्छेदकृतो ह्यौरभ्रिकाश्च ये। कर्त्तनेषु विकृत्यन्ते मृगव्याधैः सुदारुणैः॥१७३॥
आश्रम प्रत्यवसिता ह्यग्निज्वाले पतंति वै। भक्ष्यंते श्यामशबलैरयस्तुडश्च वायसैः॥१७४॥
इष्टापूर्तव्रतालोपात्संदंशे नरके पतेत्। स्कंदंते ये दिवास्वप्ने व्रतिनो ब्रह्मचारिणः॥१७५॥
पुत्रैरध्यापिता ये च पुत्रैराज्ञापिताश्च ये। तेन सर्वं नरकं यांति नियतं तु श्वभोजनम्॥१७६॥
वर्णाश्रमविरुद्धा ये क्रोधहर्षसमन्विताः। कर्माणि ये तु कुर्वंति सर्वे निरयवासिनः॥१७७॥
उपरिष्टात्स्थितो घोर उष्णात्मा रौरवो महान्।
सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपः स्मृतः॥१७८॥
एवमादिक्रमेणैव वर्ण्यमानान्निबोधत। भूमेरधस्तात्सप्तैव नरकाः प्रकीर्त्तिताः॥१७९॥
अधर्मसूतयस्ते स्युरंधतामिस्त्रकादयः। रौरवः प्रथमस्तेषां महारौरव एव च॥१८०॥

भैंसों की बलि चढ़ाता है तथा मृगों को मारता है, गाँठें बनाता है, सिलाई करता है तथा मित्रों की हत्या करता है, वह रुधिरान्ध नामक नरक में गिरता है। ऐसा मनीषी लोग कहते हैं।।१६५-१६८½।। जो एक पंक्ति में बैठाये हुए व्यक्तियों को भोजन कराने में भेद करता है, वह पापी विड्भुज नामक नरक में गिरते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।।१६८½-१६९½।। जो मनुष्य मिथ्यावादी है तथा जो सदैव दूसरों को कोसता रहता है, वह पापी घोर मूत्राकीर्ण नामक नरक में गिरता है।।१६९½-१७०½।। जो पापी मधु ग्रहण करने वाले को मारता है अथवा जो अपना भला करने वाले को मारते हैं, वे मनुष्य वैतरणी नामक नरक में वास करते हैं। जो मनुष्य उन्मत्त है, जिनका चित्त भग्न है तथा जो शौचाचार से रहित है, जो अकारण क्रोध करता है, दूसरों को दुःख देने वाला है, जो जादू-टोना करके दूसरों को अपने वश में रखकर उनके साथ अत्याचार करते हैं, वे पापी असिपत्रवन नामक घोर नरक में क्रूर स्वभाव वाले हिंसक जन्तुओं द्वारा काट-काट कर इधर-उधर खींचे जाते हैं।।१६९½-१७३।।

जो आश्रमधर्म का पालन नहीं करते तथा उसकी मर्यादा को भूल जाते हैं, वे पापी अग्निज्वाल नामक घोर नरक में जाते हैं। वहीं लोहे के समान चोंच वाले तथा श्यामवर्ण एवं चितकबरे पक्षी उनका शरीर नोंच-नोंच कर खाते हैं।।१७४।। यज्ञ को पूरा न कर व्रत का लोप करने से मनुष्य संदंश नामक नरक में गिरता है। जो यति, संन्यासी या ब्रह्मचारी दिन के स्वप्न में समागम करने से स्खलित हो जाता है अथवा जो पुत्रों द्वारा पढ़ाये जाते, पुत्रों द्वारा अनुशासित किये जाते हैं, वे सब निश्चित ही श्वभोजन नामक नरक में गिरते हैं।।१७६।। जो व्यक्ति वर्ण और आश्रम धर्मों के विरुद्ध क्रोध और हर्ष से युक्त कर्म किया करते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं।।१७७।। अब वायुदेव द्वारा कथित उपदेश को बताते हुए सूतजी नरकों की स्थिति बताते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त रौरव नामक नरक बहुत विस्तृत और घोर है। वह ऊपर से शीतल और नीचे की ओर अत्यन्त ही उष्ण है।।१७८।। इस प्रकार आदि वर्णन किये जाते हुए नरकों को सुनिये। भूमि के नीचे सात नरक बताये गये हैं।।१७९।। उन अधर्म से पैदा हुए नरकों के नाम

अस्याधः पुनरप्यन्यः शीतस्तप इति स्मृतः।
तृतीयः कालसूत्रः स्यान्महाहिर्विविधः स्मृतः॥१८१॥
अप्रतिष्ठश्चतुर्थः स्यादवीचिः पंचमः स्मृतः। लोहः षष्ठः स्मृतस्तेषामविधेयस्तु सप्तमः॥१८२॥
गोरत्वाद्रौरवः प्रोक्तः सोष्णको दहनः स्मृतः।
सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपोऽधमः॥१८३॥
सर्पो निकृंतनः प्रोक्तो कालसूत्रोऽतिदारुणः।
अप्रतिष्ठे स्थितिर्नास्ति भ्रमस्तस्मिन्सदा स्मृतः॥१८४॥
अवीचिर्दारुणः प्रोक्तो यंत्रसंपीडनाच्च सः।
तस्मात्सुदारुणो लोहः कर्माणां श्रयणाच्च सः॥१८५॥
तथाभूतशरीत्वादविधेयस्तु स स्मृतः। पीडाबंधवधासंगादप्रतीकारलक्षणः॥१८६॥
ऊद्र्ध्वाधः संगतास्ते तु निरालोकाश्च ते स्मृताः।
दुःखोत्कर्षस्तु सर्वेषु ह्यधर्मस्य निमित्ततः॥१८७॥
ऊद्र्ध्वलोकैः समावेतौ निरालोकौ च तावुभौ। कूटागारप्रमाणैश्च शरीरैस्तत्र नारकाः॥१८८॥

अन्धतामिस्र आदि हैं। उनमें रौरव नामक नरक सबसे पहला है, जो महान् कष्टपूर्ण है।।१८०।। इस नरक के नीचे एक दूसरा शीत और तप नामक नरक कहा जाता है। जहाँ शीतल और उष्ण दोनों ही कष्टपूर्ण हैं। तीसरा कालसूत्र नामक नरक है, जो अनेकों प्रकार के महासर्पों से युक्त स्मरण किया गया है।।१८१।। अप्रतिष्ठ नामक चौथा नरक है तथा पाँचवाँ अवीचि नामक नरक है। उनमें लोहपृष्ठ नामक छठा नरक है और उनमें सातवाँ नरक अविधेय नरक है।।१८२।। घोर होने के कारण अर्थात् सबसे अधिक कष्टपूर्ण होने के कारण उस नरक को घोर कहा गया है तथा उष्णक नामक नरक जलाने वाला कहा गया है। वहाँ बहुत अधिक गर्मी पड़ती है। शीत नामक अत्यन्त शीतलता युक्त है। वहाँ दारुण शीत से मनुष्य को भारी कष्ट होता है। उसके नीचे आतप वाला नरक है, जो अत्युष्ण है तथा अधम नरक है।।१८३।। कालसूत्र नरक अत्यन्त कठोर कष्ट वाला नरक है, वह सर्पों के काटने वाला नरक कहा गया है, अर्थात् वहाँ पर सर्प ही सर्प हैं, जो मनुष्यों को भारी कष्ट देते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक में कोई स्थिति नहीं है। उस नरक में मनुष्य ठहर नहीं सकता, क्योंकि उसमें मनुष्य सदा घूमता रहता है, अतः वह भंवर के समान है।।१८४।। अवीचि नामक नरक तो बहुत ही दारुण है, क्योंकि उसमें मनुष्य को यन्त्र द्वारा पीड़ित किया जाता है। उससे भी अधिक दारुण लौहपृष्ठ नामक नरक है, उसमें मनुष्यों के कर्मों का फल मिलता है।।१८५।।

सातवें अविधेय नामक नरक में भूतशरीर वाला अर्थात् जिसका शरीर नहीं है, ऐसे व्यक्ति को भी पीड़ा, बन्धन, वध और असंग आदि इतने कठोर दण्ड दिये जाते हैं, जिनका कि कोई उपाय नहीं है।।१८६।। ये लोक ऊपर और नीचे स्थित हैं और सर्वथा प्रकाश से रहित हैं, उन सब में घोर अन्धकार व्याप्त है। उन सभी नरकों में मनुष्यों को अधर्म करने के कारण दुःखों का उत्कर्ष है अर्थात् अधर्म करने वाले मनुष्यों को इतना कष्ट दिया जाता है कि उसकी कोई सीमा नहीं है।।१८७।। विशेष रूप से ऊपर के दो लोक अन्य लोकों के समान होते हुए भी बहुत ही दारुण अन्धकार से आवृत होते हैं। जैसे किसी घर में किसी वस्तु के ढेर भर दिये जाते हैं, वस्तुएँ कबाड़े के रूप

उपभोगसमर्थैस्तु सद्यो जायंति कर्मभिः। दुःखप्रकर्षश्चोग्रस्तु तेषु सर्वेषु वै स्मृतः॥१८९॥
यातनाश्चाप्यसंख्येया नारकाणां तथा स्मृताः।
तत्रानुभूयते दुःखं क्षीणे कर्मणि वै पुनः॥१९०॥
तिर्यग्योनौ प्रसूयते कर्मशेषेण तेऽततः। देवांश्च तारकाश्चैव ह्यूर्द्धं चाधश्च संस्थिताः॥१९१॥
धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो [1]जायंति मूर्त्तयः। उपभोगार्थमुत्पत्तिरौपपत्तिककर्मतः॥१९२॥
पश्यंति नारकान्देवा ह्यधोवक्रा ह्यधोगतान्।
नारकांश्च तथा देवान्सर्वान्पश्यंत्यधोमुखान्॥१९३॥
अनयोस्तुल्यता यस्माद्धारणाश्च स्वभावतः।
तस्मादूद्ध्र्वमधोभावो लोकालोके न विद्यते॥१९४॥
एषा स्वाभाविक संज्ञा लोकालोके प्रवर्त्तते। अथाब्रुवन्पुनर्वायुं ब्राह्मणाः सत्रिणस्तदा॥१९५॥

ऋषय ऊचुः

सर्वेषामेव भूतानां लोकालोकनिवासिनाम्। संसारे संसरंतीह यावंतः प्राणिनश्च ते॥१९६॥
संख्यया परिसंख्याय तान्नः प्रब्रूहि कृत्स्नशः।
ऋषीणां तद्वचः श्रुत्वा मरुतो वाक्यमब्रवीत्॥१९७॥

में भर दी जाती हैं, उसी तरह से नरकों में लोगों को ठेल दिया जाता है।।१८८।। इन नरकों में अपने-अपने कर्मों के द्वारा शीघ्र ही पहुँचते हैं और कर्मों के भोग भोगते हैं तथा उन नरकों में दुःखों की पराकाष्ठा होती है, कठोर से कठोर दुःख दिये जाते हैं।।१८९।। उन नरकों में व्यक्तियों को असंख्य यातनाएँ दी जाती हैं। वहाँ उन नरकों में मनुष्य अपने दुष्कर्मों के फल का अनुभव करते हैं और कर्मों के क्षीण हो जाने पर कर्मों के शेष रह जाने पर अन्ततः पुनः तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होते हैं।।१९०-१९०½।। ऊपर रहने वाले देवता और नीचे रहने वाले नारकीय मानव सभी अपने किये गये धर्म और अधर्म के कारण शीघ्र ही शरीर धारण करते हैं। इस शरीर धारण के लिए वे स्वयं जिम्मेवार हैं, उन्होंने जो कर्म किये हैं, उसके अनुसार फल भोगने के लिए ही वे शरीर धारण करते हैं।।१९०½-१९२।। देवता लोग अधोभाग में नीचे को मुख करके लटकते हुए प्राणियों को देखते हैं, इसी प्रकार वे नरकवासी नारकीय भी सभी देवताों को नीचे को मुख कर लटकते हुए देखते हैं।।१९३।। उन दोनों लोकों में अग्र भाग निम्न भाग का कोई भेद नहीं है। उनकी धारणा स्थिति स्वभावतः समान है। इसलिए उन लोक और अलोक में ऊर्ध्व भाव और अधोभाव नहीं है।।१९४।। इस प्रकार लोकालोक की यह स्वाभाविक संज्ञा प्रवृत्त होती है। इसके बाद वायु की इन बातों को सुनकर यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों ने फिर पूँछा।।१९५।।

ऋषियों ने कहा कि हे वायुदेव! लोक और अलोक में निवास करने वाले जितने प्राणी इस संसार में संसरण करते हैं, उनकी संख्या और परिसंख्या क्या है? यह सब हमें कृपया बतायें। ऋषियों के उस वचन को सुनकर वायुदेव ये वार्क्य बोले।।१९६-१९७।।

---

१. परस्मैपदमार्षम्। यहाँ आत्मने पद होना चाहये था; परन्तु छन्द भंग न होने के लिये परस्मै पद किया गया है।

वायुरुवाच।

न शक्यं दिव्यया दृष्ट्या ज्ञातुं ज्ञानेन वा पुनः।
चक्षुषा वै प्रसंख्यातुमतो ह्यंते न च द्विजाः॥१९८॥

अनाध्यानादमेयत्वान्नैव प्रश्नो विधीयते। ब्रह्मणा संज्ञितं यत्तु संख्यया तन्निबोधत॥१९९॥
यः सहस्रतमो भागः स्थावराणां भवेदिह। पार्थिवाः कृमयस्तावत्संसेकाद्येषु संभवः॥२००॥
संसेकजानां भागेन सहस्रेणैव संमिताः। औदका जंतवः सर्वे निश्चयात्तन्निधार्यतम्॥२०१॥

सहस्रेणैव भागेन सत्त्वानां सलिलौकसाम्।
विहंगमास्तु विज्ञेया लौकिकास्ते च सर्वशः॥२०२॥
यः सहस्रतमो भागस्तेषां वै पक्षिणां भवेत्।
पसवस्तत्समा ज्ञेया लौकिकास्तु चतुष्पदाः॥२०३॥

चतुष्पदानां सर्वेषां सहस्रेणैव संमिताः। द्विपदास्तत्सहस्रेण संमिता धार्मिकाः पुनः॥२०४॥

सहस्रेणैव भागेन धार्मिकेभ्यो दिवं गताः।
यः सहस्रतमो भागो धार्मिकाणां भवेद्दिवि॥२०५॥

संमितास्तेन भागेन मोक्षिणस्तावदेव हि। स्वर्गो पपादकैस्तुल्या यातनास्थानवासिनः॥२०६॥
पतिता धर्मविद्वेषाहुरात्मानो म्रियंति ये। रौरवे तमसि ह्यते शीतोष्णं प्राप्नुवंति त॥२०७॥

वायु ने कहा कि हे ऋषियों! उन सबकी संख्या दिव्य ज्ञान दृष्टि से नहीं जानी जा सकती। उनकी संख्या अनाध्याय अर्थात् ध्यान नहीं की जा सकती तथा अगण्य है। आँख से गिनती करके भी विद्वान् लोग अन्त तक नहीं जा सकते। अतः ध्यान करने से भी न जानने योग्य और यथार्थ अनुभव न करने योग्य यह प्रश्न है, जिसका उत्तर समान नहीं है। ब्रह्मा ने इस विषय में संख्या द्वारा जो जाना है, उसे सुनिये।।१९८-१९९।।

इस संसार में स्थावरों मिट्टी, पत्थर आदि की जो संख्या है, उसके हजारवें भाग पृथ्वी पर पैदा होने वाले कीड़े-मकोड़े, मच्छर-मक्खी आदि हैं। जो संसेक (जड़ छिड़काव वर्षा आदि) से पैदा होते हैं।।२००।। उन वर्षा आदि के जल छिड़काव से पैदा होने वाले जीवों के हजारवें भाग के जल में रहने वाले मत्स्य मकरादि अनेकों प्रकार के जीव हैं। इस बात को निश्चित रूप से सही मानना चाहिए।।२०१।। फिर जलजन्तुओं के हजारवें भाग पक्षियों को समझना चाहिए, वे लोक में सब ओर व्याप्त हैं।।२०२।। उन पक्षियों के हजारवें भाग पशुओं को जानना चाहिए, जो कि चार पैर वाले हैं तथा लोक में सभी जगह पाये जाते हैं।।२०३।। चार पैर वाले पशुओं के हजारवें भाग दो पैर वाले मनुष्य हैं तथा उन मनुष्यों में भी हजारवें भाग धार्मिक मनुष्य हैं।।२०४।। उन धार्मिक मनुष्यों के हजारवें भाग के मनुष्य ही स्वर्ग को जाने वाले हैं, जो स्वर्ग में धार्मिकों का हजारवाँ भाग है।।२०५।। तथा उन स्वर्गगामी पुरुषों के हजारवें भाग के लोग ही मोक्ष प्राप्त करते हैं, अर्थात् स्वर्ग में जाने वाले एक हजार में से केवल एक व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त करता है। वे स्वर्ग में जा चुके हैं, वहाँ भी कुछ असत् कार्य करते हैं, तब पुनः निम्न लोकों में आते; परन्तु यदि स्वर्ग में भी धार्मिक कार्य करते हैं, तब उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है, वह मोक्ष भी एक हजार स्वर्गवासियों में से एक को ही मिल पाता है।।२०६।। जो पापात्मा मनुष्य धर्म से विशेष द्वेष रखने के कारण मर जाते हैं, वे

वेदनाः कटुकाः स्तब्धा यातनास्थानमागताः। उष्णास्तु रौरवो ज्ञेयस्तेजोघोररसात्मकः॥२०८॥

ततोऽधनामकश्चापि शीतात्मा सततं तपः।
एवं सुदुर्लभाः संतः स्वर्गे वा धार्मिका नराः॥२०९॥
एषा संज्ञीकृता संख्या चेश्वरेण स्वयंभुवा।
गणना दिनिवृत्तैषा संख्या ब्राह्मी त्वमानुषी॥२१०॥

ऋषय ऊचुः

महाञ्जनस्तपः सत्यो भूतो भव्यो भवस्तथा।
उक्ता ह्येते त्वया लोका लोकानामंतरेण च॥२११॥

लोकांतरं च यादृक् च तन्नो ब्रूहि यथा तथा। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम्।

स वायुर्दृष्टतत्त्वार्थ इदं तत्वमुवाच ह॥२१२॥

वायुरुवाच।

व्यक्तं तर्केण पश्यंति योगात्प्रत्यक्षदर्शिनः॥२१३॥

प्रत्याहारेण ध्यानेन तपसा क्षयमात्मनः। ऋभुः सनत्कुमाराद्याः संबुद्धाः शुद्धबुद्धयः॥२१४॥

व्यपेतकोशा विरजाः संतो ब्रह्मैव सत्तमाः।
अक्षयाः प्रीतिसंयुक्ता ब्राह्मे तिष्ठंति योगिनः॥२१५॥

घोर अन्धकारपूर्ण रौरव नरक में गिरते हैं और वहाँ वे जमा देने वाली ठण्डक (शीत) और जला देने वाली गर्मी को प्राप्त करते हैं।।२०७।। उन यातनाओं के स्थानों में पहुँचकर वे असहनीय वेदना की कटुता को चुपचाप स्तब्ध होकर सहन करते हैं। रौरव नरक बहुत ही उष्ण तेजोमय और घोर रसात्मक समझना चाहिए।।२०८।। उसके बाद अन्धतामिस्र नामक नरक उससे भी अधिक शीतता युक्त है। इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहना होगा कि बहुत कम ही ऐसे धार्मिक लोग होते हैं, जो स्वर्ग में जा पाते हैं।।२०९।। इस प्रकार यह संख्या ईश्वर स्वायम्भुव ब्रह्मा ने निश्चित की है, यह संख्या मनुष्य द्वारा गणना आदि द्वारा नहीं बतायी जा सकती। अतः यह ब्राह्मी संख्या है, मानुषी नहीं है।।२१०।।

ऋषियों ने कहा कि हे भगवान् वायुदेव! आपने मह, जन, तप, सत्य, भूत (भू) भाव्य (भुव) इन सातों लोकों की स्थिति एक के बाद एक बतलायी है। उन सब लोकों में एक के बाद दूसरे में क्या अन्तर है? यह हमको आप वतलाइए।।२११-२११½।। उन ऊर्ध्वरेता ऋषियों के वचनों को सुनकर तत्त्वार्थद्रष्टा वायुदेव यह तत्त्व की बात बोले—

वायुदेव ने कहा— ऋषियों! प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले योगी लोग योग से और तर्क द्वारा व्यक्त उस व्यक्त को देखते हैं। वे सब अपनी इन्द्रियों को वश में करके ध्यान द्वारा, तपस्या द्वारा अपने विनाश को भी देखते हैं।।२११½-२१२½।। ऋभु, सनत्कुमार आदि प्रत्येक वस्तु का ज्ञान रखने वाले, शुद्ध बुद्धि वाले, शोक विहीन, रजोगुण रहित श्रेष्ठ सन्त, जो कि ब्रह्मा ही हैं तथा जो विनाश रहित प्रीतिसंयुक्त योगी ब्रह्म में ही स्थित हैं, वे तथा बालखिल्यादि महान् ऐश्वर्यशाली महर्षिगण जो यह कहते हैं कि मैंने यहीं वहाँ उन ब्रह्म का सान्निध्य करते हुए, उसे

ऋषीणां बालखिल्यानां तैर्यथाकृतमीश्वरैः। यथाऽत्रैव मया दृष्टं सांनिध्यं तत्र कुर्वता॥२१६॥
अग्राह्यमकृतार्थानामालयं चेश्वरस्य यत। ईश्वरः परमाणुत्वाद्भावग्राह्यो मनीषिणाम्॥२१७॥
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः। द्रष्टृत्वमात्मसंबंधमधिष्ठातृत्वमेव च॥२१८॥
अव्ययानि दशैतानि तस्मिंस्तिष्ठंति शंकरे। विभुत्वात्खलु योगाढ्यो ब्रह्मणोऽनुग्रहे रतः॥२१९॥
स लोकविग्रहो भूत्वा साहाय्यमुपतिष्ठते। अक्षरं ध्रुवमव्यग्रमष्टमं त्वौपसर्गिकम्॥२२०॥
तस्येश्वरस्य चिन्मात्रं स्थानं मायामयं परम्। मायया कृतमाचष्टे मायी देवो महेश्वरः॥२२१॥
देवानामुपसंहारस्तत्प्रमाणं हि कीर्त्यते। विस्तरेणानुपूर्व्या च ब्रुवतो मे निबोधत॥२२२॥
त्रयोदशैव कोट्यस्तु नियुतानि दशेषवः। भूलौकादब्रह्मलोको वै योजनैः संप्रकीर्त्यते॥२२३॥
एका योजनकोटी तु पंचाशन्नियुतानि च। ऊद्र्ध्वं भगवतोंऽडं तु ब्रह्मलोकात्परं स्मृतम्॥२२४॥
एषोद्र्ध्वगः प्रचारस्तु गत्यंतश्च ततः स्मृतः। नित्या ह्यपरिसंज्ञाताः परस्परगुणाश्रयात्॥२२५॥

सूक्ष्माः प्रसवधर्मिण्यस्ततः प्रकृतयः स्मृताः।
येभ्योऽधिकर्त्ता संजज्ञे क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः॥२२६॥

मैंने देखा है। अतः वे कहते हैं कि वह ईश्वर का घर सत्पुरुषों को कृतार्थ न करने वालों के लिये ग्रहण करने योग्य नहीं है, वह ईश्वर परमाणु के समान अति सूक्ष्म होने से केवल मनीषी पुरुषों की भावनाओं द्वारा ग्रहण किया जा सकता है।।२१२½-२१७।। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धैर्य, देखने वाला गुण, आत्मा में अधिष्ठित होने वाला गुण तथा कभी नाश अथवा ह्रास न होने वाला गुण उस शंकर में स्थित है। विभुत्वात् अर्थात् विभु होने के कारण वह शंकर सर्वसमर्थ है, अतः उनकी सर्वसमर्थता के कारण उन ब्रह्म की कृपा में योगी लोग सदैव रत रहते हैं। वह प्रभु परम ब्रह्म लौकिक शरीर धारण कर सामान्य पुरुषों की सहायता के लिए उपस्थित होता है।।२१८½-२१९½।। उस शंकर का स्थान चिन्मात्र है, अर्थात् उसमें जीव (आत्मा) ही रह कते हैं, उनका स्थान मायामय है और सबसे परे है, वह स्थान कभी घटने-बढ़ने वाला तथा नष्ट होने वाला नहीं है तथा अक्षुब्ध निश्चल एवं समस्त विपत्तियों का सामना करने योग्य है। उसके घर में पहुँचकर मनुष्य को कोई विपत्ति नहीं हो सकती। स्वयं माया पैदा करने वाले महेश्वर माया से आवृत्त होकर स्थित रहते हैं, उसी स्थान पर देवताओं का उपसंहार होता है, यही उनके घर का प्रभाव है। वायुदेव ऋषियों से बोले कि अब वर्णन करते हुए मुझसे उनके घर का प्रमाण पूर्व से लेकर विस्तारपूर्वक सुनिये।।२१९½-२२२।।

इस भूलोक से ब्रह्मलोक का अन्तर तेरह करोड़ पन्द्रह लाख योजन कहा जाता है। उस ब्रह्मलोक से भी ऊपर जहाँ तक ब्रह्माण्ड का अंश है, वह एक करोड़ पचास लाख योजन सुना जाता है। इसके ऊपर किसी की गति नहीं है।।२२३-२२४½।। उस महेश्वर की प्रकृति है कि वह नित्य (सदा रहने वाला अर्थात् अपरिसंज्ञात है, अर्थात् उसे सब ओर से अच्छी तरह कोई जान नहीं सकता है कि वह कितना लम्बा, कितना चौड़ा, कितना मोटा है, क्योंकि वह परस्पर गुणों पर आश्रित है तथा प्रसवधर्मी है, अर्थात् उससे सब कुछ पैदा हुआ है, ये सब उसकी प्रकृतियाँ कहीं गयी हैं। जिन प्रकृतियों से ब्रह्म नामधारी संसार को बनाने वाले क्षेत्रज्ञ (आत्मा) का प्रादुर्भाव होता है। इस क्षेत्रज्ञ को ही ब्रह्म नाम दिया गया है, जिसे आत्मा कहा जाता है।।२२४½-२२६।।

तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्ममधिष्ठातृत्वमव्ययम्। अनुत्पाद्यं परं धाम परमाणु परेशयम्॥२२७॥
अक्षयश्चाप्यनूह्यश्च त्वमूर्त्तिर्मूर्त्तिमानसौ। प्रादुर्भावस्तिरोभावः स्थितिश्चैवाप्यनुग्रहः॥२२८॥
विधिरन्यैरनौपम्यः परमाणुमहेश्वरः। सतेजा एष तमसो यः पुरस्तात्प्रकाशकः॥२२९॥
यदंडमासीत्सौवर्णं प्रथमं त्वौपसर्गिकम्। बृहत्तु सर्वतो वृत्तमीश्वरात्तद्व्यजायते॥२३०॥
ईश्वराद्बीजनिर्भेदः क्षेत्रज्ञो बीजमिष्यते। योनिं प्रकृतिमाचष्टे सा च नारायणात्मिका॥२३१॥
विभुर्लोकस्य सृष्ट्यर्थं लोकसंस्थानमेव च। सन्निसर्गः सतत्त्वाच्च लोकधातुर्महात्मनः॥२३२॥

पुरस्ताद्ब्रह्मलोकस्य ह्यंडादर्वाक् च ब्रह्मणः।
तयोर्मध्ये पुरं दिव्यं मनोमयमनायमयम्॥२३३॥

तद्विग्रहवतः स्थानमीश्वरस्यामितौजसः। शिवं नाम पुरं तत्र शरणं जन्मभीरुणाम्॥२३४॥
सहस्राणां शतं पूर्वं योजनानां द्विजोत्तमाः। अभ्यंतरं तु विस्तीर्णं महीमंडलसंस्थितम्॥२३५॥
मध्याह्नार्कप्रकाशेन परतेजोऽभिमर्दिना। शातकौंबेन महता प्राकारेणार्कवर्चसा॥२३६॥
द्वारैश्चतुर्भिः सौवर्णैर्मुक्तादामविभूषितैः। तपनीयनिभैः शुभ्रैर्गाढं सुकृतवेष्टनम्॥२३७॥
तच्चाकाशे पुरे रम्यं दिव्यं घंटादिनादितम्। रम्ये पुरवरश्रेष्ठे तस्मिन्वैहायभूमिषु॥२३८॥

उन्हीं में प्रकृतिमय, सूक्ष्म, अधिष्ठानात्मक, अनश्वर, अनुत्पाद्य, परमाणुस्वरूप, अक्षय, अतर्क्य, परेशय, अमूर्तिस्वरूप, मूर्तिमान परमधाम परमेश्वर विराजमान रहते हैं।।२२७-२२७½।।

वह प्रादुर्भाव, तिरोभाव, स्थिति और अनुग्रह स्वरूप परमाणु परमेश्वर विधि अन्य किसी से तुलना करने योग्य नहीं है, अर्थात् वह परमेश्वर सृष्टि की रचना करता है, प्रलय करता है और पालन करता है तथा प्रलय के बाद अनुग्रह कर पुनः सृष्टि करता है, अतः वह प्रादुर्भाव, तिरोभाव, स्थिति और अनुग्रह चारों स्वरूप वाला है।।२२७½-२२८½।। वह अपने तेजबल से सामने स्थित तमोराशि को प्रकाशित करने वाला है। जो वह स्वर्णमय अण्ड था, वही तो सर्वप्रथम सृष्टि को उत्पन्न करने वाला सब ओर से वृत्ताकार और विशाल है, जो उसी ईश्वर से उत्पन्न होता है।।२२८½-२३०।। उस परमेश्वर से अभेद्य बीज पैदा हुआ है, जो बीज क्षेत्रज्ञ कहा जाता है, योनि को प्रकृति कहा जाता है, जो नारायणात्मिका है।।२३१।। सभी लोकों को बनाने वाला वह सर्वसमर्थ परमात्मा लोक की सृष्टि और उसकी स्थिति के लिए प्रकृति के सहयोग से ब्रह्मलोक और ब्रह्मा के अण्ड का निर्माण करता है। उन दोनों के मध्य में एक दिव्य पुर है, जो मनोमय नाम से विख्यात है, जो सभी व्याधियों से रहित है। वह परम तेजस्वी ईश्वर का शिव नामक पुर है, जो पुनः जन्म लेने के भीषण कष्टों से डरे हुए मनुष्यों का शरण-स्थल है।।२३२-२३४।। हे द्विजश्रेष्ठों! वह शिव नामक पुर सौ हजार योजन विस्तार वाला है। अन्दर में वह पृथ्वी मण्डल की भाँति विस्तृत है।।२३५।। इस महापुरी के चारों ओर एक अन्य चहारदीवारी है, जो मध्यकालीन सूर्य की भाँति परम तेजस्वी है तथा जो दूसरे पदार्थों के तेज को मलिन कर देने वाली स्वर्ण निर्मित है।।२३६।। उस महापुरी में मोतियों की माला से विभूषित परम शुभ्र और शोभासम्पन्न, स्वर्णनिर्मित सजे हुए चार द्वार हैं। उस पुरी के चारों ओर एक परम पुष्ट रक्षा दीवाल भी खड़ी है। आकाश में वह परम सुशोभित पुरी घण्टाओं के मनोहर नादों से कूजित रहती है। अब उस

नानारत्नविचित्रेषु पाताकाबहुलेषु च सर्वकामसमृद्धेषु वनोपवनशोभिषु॥२३९॥
राजतेषु गृहांतेषु शातकौंभमयेषु च। संध्याभ्रसन्निकाशेषु कैलासप्रतिमेषु च॥२४०॥
हृष्टैः शब्दादिभिर्भोगैर्ये भविष्यानुसारिणः। प्रासादवरपृष्ठेषु तेषु मोदंति सुव्रताः॥२४१॥
ब्रह्मघोषैरविरताः कथाश्च विविधाः शुभाः। गीतवादित्रघोषाश्च संस्रवाश्च समंततः॥२४२॥
संहताश्चैवमतुला जनाश्रयकृतस्तथा। एवमादीनि वर्तंते तेषां प्रासादमूर्द्धनि॥२४३॥
सहस्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः। अनौपम्यैर्वरैः रत्नैः सर्वतः संविभूषितः॥२४४॥
स्फाटिकैश्चंद्रसंकाशैर्वैडूर्यमणि सप्रभैः। बाल[१]सूर्यमयैश्चापि सौवर्णैश्चाग्निसप्रभैः॥२४५॥
चुक्रुशुर्मुनयः श्रुत्वा नैमिषेयास्तपस्विनः। आपन्नसंशयाश्चेमं वाक्यमूचुः समीरणम्॥२४६॥

ऋषय ऊचुः

के तु तत्र महात्मानो ये भवस्यानुसारिणः। अनुग्राह्यतमाः सम्यक्प्रमोदंते पुरोत्तमे॥२४७॥
ऋषीणां वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यमुदैरयत्।

वायुरुवाच।

श्रूयतां देवदेवस्य भक्तिर्यैरनुकल्पिता॥२४८॥

पुर में रहने वालों का वर्णन किया जायेगा।।२३७-२३७½।। अन्तरिक्ष में स्थित उस परम रमणीक शिवपुरी में अनेक सुन्दर-सुन्दर महल बने हुए हैं, जिनमें अनेकों प्रकार के रंग-बिरंगे रत्न जड़े हुए हैं। असंख्य पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही हैं। सभी मनोरथों को ये पूर्ण करने वाले हैं। सुन्दर वन और उपवन से सुशोभित हैं।।२३७½-२३९।।

उनमें से कितने विशाल महल चाँदी के हैं और कितने स्वच्छ सोने के हैं। उनमें से अनेकों महलों की शोभा संध्याकालीन मेघों के समान लाल वर्ण की है और कितने ही कैलाश पर्वत के समान श्वेत वर्ण के हैं। वे महल ऐसे हैं कि उनमें भगवान् शंकर के सद्व्रत परायण सेवकगण संगीत आदि भोग के उपयुक्त सामग्री से आनंद का अनुभव करते हैं।।२४०-२४१।। उन भवनों में चारों ओर ब्रह्म की चर्चा का सुन्दर स्वर गूँजता रहता है तथा अनेकों प्रकार की शुद्ध कथाएँ होती रहती हैं। गीत-संगीत से युक्त स्तोत्र सभी ओर चलते रहते हैं।।२४२।। इस प्रकार अनेकों प्रकार के स्वरों से एक विचित्र मनोहारी जैसी वाहकी हो जाती है। वहाँ के सभी महलों के ऊपर मांगलिक कथाओं, स्तोत्रों, गायन-वादनादि मनोरंजक साधन एवं कार्यक्रम चलता रहता है। इस प्रकार सुन्दर महलों में सर्वश्रेष्ठ महल है। जहाँ कि हजार पैरों वाले पुरुष से सुशोभित एवं स्वर्णमय है। वह सभी ओर से अनुपम रत्नों से विभूषित है।।२४३-२४४।। वे रत्न चन्द्रमा के समान संगमरमर की चमक वाले हैं तथा उदय होते हुए सूर्य के समान मनोहर तथा अग्नि एवं स्वर्ण के समान सुन्दर हैं।।२४५।। वायुदेव के इस वर्णन को सुनकर नैमिषारण्य निवासी तपस्वी ऋषिगण संशय को प्राप्त होकर वायु से इस प्रकार बोले।।२४६।।

ऋषियों ने कहा कि हे वायुदेव! यह बताइये कि वहाँ पर कौंन महात्मागण भगवान् शंकर के सेवक हैं, जो वहाँ सभी सुखों का अनुभव करते हैं।।२४७।। ऋषियों के इस वचन को सुनकर वायुदेव ने यह वाक्य कहा—कि

१. बालसूर्यो मणिविशेषः। बालसूर्यमय का अर्थ है बालसूर्य्यमणियुक्त अर्थात् बालसूर्य्य नामक एक विशेष मणि से युक्त उन भगवान् शंकर को कहा गया है।

ह्रीमंतस्फूर्जिता दांताः शौर्ययुक्ता ह्यलोलुपाः।
कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनांतरात्मना॥२४९॥
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम्। तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम्॥२५०॥
भवस्य रूपसादृश्यं गताश्चैव ह्यनुत्तमम्। वैश्वानरमुखाः सर्वे विश्वरूपाः कपर्दिनः॥२५१॥
नीलकंठाः शितग्रीवास्तीक्ष्णदंष्ट्रास्त्रिलोचनाः।
अर्द्धचंद्रकृतोष्णीषा जटामुकुटधारिणः॥२२५॥
सर्वे दशभुजा वीराः पद्मांतरसुगंधिनः। तरुणादित्यसंकाशाः सर्वे ते पीतवाससः॥२५३॥
पिनाकपाणयः सर्वे श्वेत गोवृषवाहनाः। श्रियान्विताः कुंडलिनो मुक्ताहारविभूषिताः॥२५४॥
तेजसाभ्यधिकैर्देहैः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः। विभज्य बहुधात्मानं जरामृत्युविवर्जिताः॥२५५॥
क्रीडंते विविधैर्भावैर्भोगान्प्राप्य सुदुर्लभान्।
स्वच्छंदगतयः सिद्धाः सिद्धैश्चान्यैर्विबोधिताः॥२५६॥
एकादशानां रुद्राणां कोट्यो नैका महात्मनाम्। एभिः सह महात्मा वै देवदेवो महेश्वरः॥२५७॥
भक्तानुकंपी भगवान्मोदते पार्वतीप्रियः। नाहं तेषां तु रुद्राणां भवस्य च महात्मनः॥२५८॥

भगवान् शिव की शरण में वे ही लोग रहते हैं, जो कि देवाधिदेव भगवान् शंकर की भक्ति करते हैं।।२४८।। जो बुरे कार्य से लजाते हैं, जिनमें स्फूर्ति होती है, जो इन्द्रियों का दमन करते हैं, जो शौर्य युक्त हैं, जो लोभी, लालची नहीं हैं तथा जो कर्म से, मन से और वाणी से विशुद्ध अन्तरात्मा वाले हैं, वे ही लोग भव की शरण में जाते हैं।।२४९।। तथा जिन्होंने अनन्य मन से भगवान् शिव की सेवा की है, उन्होंने ही भगवान् रुद्र के अव्यय और शाश्वत् सालोक्य पद को प्राप्त किया है। अर्थात् भगवान् रुद्र की अनन्य मन से सेवा करने वाले मनुष्य उनके कभी नष्ट न होने वाले, सदा रहने वाले लोक में स्थान प्राप्त करते हैं।।२५०।। तथा वे ही भगवान् शिव के अत्यन्त उत्तम रूप की समानता प्राप्त करते हैं, अर्थात् भगवान् शिव के भक्त साक्षात् शिव ही बन जाते हैं। वे सभी कपर्दी शिव के स्वरूप वाले, अग्नि के समान मुखवाले होते हैं।।२५१।।

नीलकण्ठ, श्वेत कण्ठ वाले, तीक्ष्ण दन्त वाले, तीन नेत्र वाले, अर्धचन्द्र को शिर में धारण करने वाले, जटाओं के मुकुट से विभूषित होते हैं।।२५२।। दश भुजाओं वाले वीर, लाल कमल की सुगन्ध वाले, तरुण सूर्य के समान वे सब पीले वस्त्र पहनने वाले होते हैं।।२५३।। वे सब भगवान् शिव के भक्त, शिव की तरह पिनाक नामक धनुष को हाथ में धारण करने वाले होते हैं। श्वेत गो, वृषभ के वाहन वाले होते हैं। वे कानों में कुण्डल धारण करने वाले शोभायुक्त एवं मोतियों के हारों से विभूषित होते हैं।।२५४।। वे सब तेज से प्रकाशित शरीरों से सर्वज्ञ और सर्वत्र समान देखने वाले होते हैं। वे सब अपनी आत्मा से अनेकों प्रकारों में बाँट कर वृद्धावस्था और मृत्यु से रहित होते हैं।।२५५।। वे सब अनेकों प्रकार के भावों से अत्यन्त दुर्लभ भोगों को प्राप्त करके स्वतन्त्र गति से चलने वाले सिद्ध पुरुष होते हैं, वे अन्य सिद्ध गणों से प्रबुद्ध रहते हैं।।२५६।। ऐसे परम ऐश्वर्यशाली एकादश रुद्रगणों की संख्या शिवपुर में अनेकों करोड़ हैं, इनके साथ वे महात्मा देवदेवेश्वर भक्तों पर कृपा करने वाले, पार्वती के प्रिय, भगवान् शिव आनन्द का अनुभव करते हैं।।२५७-२५७½।। वायुदेव कहते हैं कि हे ऋषियों! मैं उन ग्यारह रुद्रों

नानात्वमनुपश्यामि सत्यमेतद्‌ब्रवीमि वः। मातरिश्वाब्रवीत्पुण्यामित्येतामीश्वराच्छुताम्॥२५९॥
अथ ते ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः। श्रुत्वेमां परमां पुण्यां कथां त्रैयंबकीं ततः॥२६०॥
भृशं चानुग्रहं प्राप्य हर्षं चैवाप्यनुत्तमम्। संभाजयित्वा चाप्येनं वायुमूचुर्महाबलम्॥२६१॥

ऋषय ऊचुः

समीरण महाभाग त्वस्माकं च त्वया विभो। ईश्वरस्योत्तमं पुण्यमष्टमं त्वौपसर्गिकम्॥२६२॥
तस्य स्थानं प्रमाणं च यथावत्परिकीर्तितम्। योगधर्मसमृद्धं वै परमं परमात्मनः॥२६३॥
महादेवस्य माहात्म्यं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि। स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्रस्यामितौजसः॥२६४॥
यस्य भक्तेषु संमोहो ह्यनुकंपार्थमेव च। ब्राह्मी लक्ष्म्या स्वयं जुष्टा या साऽप्रतिमशालिनी॥२६५॥
व्याप्य ज्योत्स्नेव चंद्रस्य विन्यस्ता विश्वरूपिणः। विभूतिर्भ्राजतेऽत्यर्थं देवदेवस्य वेश्मनि॥२६६॥
महादेवस्य तुल्यानां रुद्राणां तु महात्मनाम्। तत्सर्वं निखिलेनेदं वक्त्रादमृतनिस्त्रवः॥२६७॥
आपीतं खलु शर्वस्य भक्त्यास्माभिस्तु सुव्रत। नास्ति किंचिदविज्ञेय मन्यच्चैवानुगामिनः।
प्रश्नं देववरप्राण यथावद्वक्तुमर्हसि॥२६८॥

सूत उवाच

स खलूवाच भगवान्किं भूयो वर्त्तयाम्यहम्।
यन्मया चैव वक्तव्यं तद्वदिष्यामि सुव्रताः॥२६९॥

को और महात्मा भगवान् शिव के अनेक रूपों को देख नहीं पाता, यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ।।२५७½-२५८½।। वे सब अभिन्न हैं, सब एक समान उनको पहचानना असम्भव है। स्वयं भगवान् के मुख से सुनी हुई त्र्यम्बक की इस पुण्य कथा को वायु ने जब उन सूर्य की प्रभा के समान तेजस्वी ऋषियों के मुख से सुना तो वे बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं को वहुत ही धन्य माना, फिर इस कथा की प्रशंसा करके वे महा बलवान् वायु से बोले।।२५८½-२६१।।

ऋषियों ने कहा कि हे महाभाग वायुदेव! हे महाप्रभो! आपने हमें उन ईश्वर भगवान् शिव के परम पुण्यमय सर्वश्रेष्ठ अष्टम औपसर्गिक स्थान का प्रमाण एवं परिचयात्मक वर्णन सुनाया। जो परमात्मा के योगधर्म से सर्वथा समृद्ध है।।२६२-२६३।। महादेव का माहात्म्य देवताओं द्वारा भी कठिनाई से जानने योग्य है। वे अपने ही पराक्रम से असीमित तेज वाले, अनेकों अनुचरों को पैदा करने वाले हैं।।२६४।।

जिनके भक्तों में सम्मोह अनुकम्पा के लिये ही है। लक्ष्मी के साथ वह अनुपम शक्तिशालिनी ब्राह्मी स्वयं ही उनके द्वारा उपमुक्त होती है।।२६५।। उन देवाधिदेव महादेव के घर में समस्त आकाश एवं चन्द्रमा में रहने वाली चन्द्रिका चाँदनी सर्वदा सर्वत्र व्याप्त रहती है।।२६६।। ऐसे सर्वशक्तिशाली महादेव के समान ही पराक्रमी महात्मा रुद्रों की शक्ति है। वह समस्त कथा आपके मुख से अमृत की धारा के समान हम सबने भक्तिपूर्वक पान की है।।२६७।। उससे हम सब पूर्ण तृप्त हो गये हैं। अब हम सब अनुगामियों को कुछ भी जानने योग्य नहीं है। हे श्रेष्ठ देवों के प्राण! अब हम लोगों का एक प्रश्न है, उसका यथावत् उत्तर देने की कृपा करें।।२६८।।

सूत जी बोले कि नैमिषारण्यवासी ऋषियों की बात सुनकर भगवान् वायु ने कहा कि फिर अब मैं आप लोगों को क्या बताऊँ? हे सुव्रत ऋषिगण! अब मुझे जो कहना है, वह आप लोगों को बताऊँगा।।२६९।।

ऋषय ऊचुः

आदित्याः परिपार्श्वे ये सिंहा वै क्रोधविक्रमाः।
वैश्वानरा भूतगणा व्याघ्रश्चैवानुगामिनः॥२७०॥
आभूतसंप्लवे घोरे सर्वप्राणिभृतां क्षये। किमवस्था भवंत्येते तन्नो ब्रूहि यथार्थवत्॥२७१॥
विज्ञायेश्वरसद्भावमव्यक्तं प्रभवं तथा।

वायुरुवाच।

यत्र पूर्वं गतास्ते तु कुमारा ब्रह्मणः सुताः॥२७२॥
सनंदनश्च सनकस्तृतीयश्च सनातनः। वोढुश्च कपिलस्तेषामासुरिश्च महायशाः॥२७३॥
मुनिः पंचशिखश्चैव ये चान्येऽप्येवमादयः। ततः काले व्यतिक्रांते कल्पानां पर्यये गते॥२७४॥
महाभूतविनाशांते प्रलये प्रत्युपस्थिते। अनेकरुद्रकोट्यस्तु या प्रसन्ना महेश्वरीम्॥२७५॥
शब्दादीन्विषयान्भोगान्संत्यज्याष्टविधाश्रयात्।
प्रविश्य सर्वभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा॥२७६॥
विहाय पदमव्यग्रं भूतानामनुकंपया। तत्र यांति महात्मानः परमाणुं महेश्वरम्॥२७७॥
तरंति सुमहावर्त्तां जन्ममृत्यूदकां नदीम्। ततः पश्यंत्यपर्वाणं परं ब्रह्माणमेव च॥२७८॥
देव्या वै सहिताः सप्त या देव्यः परिकीर्त्तिताः।
यत्तत्सहस्रं सिंहानामादित्यानां तथैव च॥२७९॥

ऋषियों ने कहा— हे भगवन् वायुदेव! भगवान् शंकर के पास में आदित्यगण क्रोधी और पराक्रमी सिंह, वैश्वानर, भूतगण और व्याघ्रगण उनके सेवक के रूप में रहते हैं, उन सबकी घोर प्रलयकाल में सब प्राणियों का नाश हो जाने पर क्या दशा होती है? उन भगवान् शिव की उत्पत्ति को और उनकी शक्ति को विशेष रूप से जानकर हमें यथावत् रूप से बतलाइए।।२७०-२७१।।

वायुदेव ने कहा—हे ऋषिवृन्द! मैं तुम्हें परम गुह्य तत्त्व बता रहा हूँ, जो पहले ही ब्रह्मा के पुत्र कुमार सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, बोढु, कपिल, आसुरि एवं महायशस्वी मुनिवर पंचशिख ऋषि हैं तथा इनके अतिरिक्त जो अन्य भी आदि ऋषिगण हैं, वे सब बहुत समय बीत जाने पर कल्पों की समाप्ति के अवसर पर पंच महाभूतों के विनाश के अन्त में प्रलय के उपस्थित होने पर करोड़ रुद्रगण प्रसन्न चित्त हो सत्य का आश्रय लेकर शब्दादि विषयों और भोगों से विरक्त होकर अर्थात् इन्द्रिय सम्बन्धी विषय भोगों को त्याग कर अपने ज्ञानयुक्त तेज से समस्त प्राणियों पर अनुग्रह करने की दृष्टि से समस्त जीवधारियों में आत्मा के रूप में प्रविष्ट होकर वैहायस (अव्यग्र) पद को प्राप्त करते हैं और फिर वे सब परमाणु स्वरूप महेश्वर को प्राप्त हो जाते हैं।।२७२-२७७।। तब उन परमाणु स्वरूप महेश्वर को प्राप्त करके वे जन्म-मृत्युरूपी भयंकर भँवरों वाली जलपूर्ण नदी को पार करते हैं। उसके बाद वहाँ वे सर्वव्यापी परंब्रह्म का दर्शन करते हैं।।२७८।। ऊपर जिन सात देवियों को बताया गया है, उन्हीं के साथ वे वहाँ पर उपस्थित होते हैं।।२७८½।। एक हजार सिंहों और आदित्यों को तथा वैश्वानर, भूतगणों, भव्य, व्याघ्र एवं

वैश्वानरा भूतगणा व्याघ्राश्चैवानुगामिनः।
आवेश्यात्मनि तान्सर्वान् संख्यायोग्यभवांस्तथा॥२८०॥

लोकान्सप्त इमान्भूयो महाभूतानि पंच च। विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च॥२८१॥
स रुद्रो यः साममयस्तथैव च यजुर्मयः। स एष ओतःप्रोतश्च बहिरंतश्च निश्चयात्॥२८२॥
एको हि भगवान्नाथः प्रभवश्चांतकृद्द्विजाः। ततस्ते ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः॥२८३॥
सुसत्यं श्रवसः सम्यगारोप्याग्निं तथात्मनि। कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनांतरात्मना॥२८४॥
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपद्यते महेश्वरम्। व्रतोपवासनिरताः सर्वभूतदयापराः॥२८५॥
योगं त्वनुपमं दिव्यं प्राप्तं तैश्छिन्नसंशयैः। प्रपद्य परया भक्त्या ज्ञानयुक्तेन तेजसा॥२८६॥

तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम्।
यः पठेत्तपसा युक्तो वायुप्रोक्तामिमां श्रुतिम्॥२८७॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा स्वक्रियापरः।
लभते रुद्रलोकं वै कारणं लोककारणम्॥२८८॥

विनिवृत्ते तदा सर्गे प्रकृत्यावस्थितेन वै। तदात्यंतपरोक्षत्वाददृष्टत्वाच्च कस्यचित्॥२८९॥
अनाख्यानादबोध्यत्वादज्ञानाज्ज्ञानिनामपि। आगतागतिकत्वाच्च ग्रहणं तत्र विद्यते॥२९०॥

अनुगामी रुद्रगण, इस सबको अपनी आत्मा में लीन करके इन सातों लोकों को और पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश पञ्च महाभूतों को भी शिव अपने में समविष्ट कर लेते हैं। इस प्रकार विष्णु के साथ वे इस संसार को पैदा करते हैं और विनष्ट करते हैं।।२७८½-१८१।। वह रुद्र, जो साममय (सामवेद में वर्णित) हैं, यजुर्मय (यजुर्वेद में वर्णित) हैं। वे बाहर और भीतर निश्चय से ओत-प्रोत हैं। हे ब्राह्मणों! व्रत और उपवास में संलग्न और सब प्राणियों के प्रति दया करने वाले होकर एक ही भगवान् शिव सबके स्वामी हैं। वे ही सबको उत्पन्न करने वाले हैं और वे ही सबका अन्त करने वाले हैं।।२८२-२८२½।। उसके बाद सूर्य के समान कान्ति वाले वे सब नैमिषारण्यवासी ऋषिगण अपने आश्रम में अग्नि का आधान कर कर्म, मन और वाणी से विशुद्ध अन्तरात्मा से अपनी आत्मा में अनन्य मन होकर भगवान् शिव की आराधना करने लगे।।२८२½-२८४½।।

वे सब व्रत और उपवास में निरत हो गये, सभी जीवों पर दया करने लगे, उनके समस्त सन्देह छिन्न-भिन्न हो गये और फिर सन्देह हीन उन सबने यम के पश्चात् दिव्य भोग को प्राप्त किया।।२८४½-२८५½।। उसके बाद उन्होंने कभी न नष्ट होने वाले शाश्वत रुद्र सालोक्य पद को प्राप्त किया।।२८५½-२८६½।। अब सूतजी इस कथा श्रवण के लाभ को बताते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति तपस्या से युक्त हो, इस वायु द्वारा कही गयी कथा को पढ़ेगा, वह ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो अथवा वैश्य, अपने-अपने कार्य करते हुए सभी लोकों के कारण के कारण रुद्रलोक को प्राप्त करता है।।२८६½-२८८।। जब सृष्टि समाप्त हो जाती है और सृष्टि के महत्तत्त्व, अहंकार, एकादश इन्द्रिय, पंच तन्मात्राएँ और पंच महाभूत प्रकृति में अवस्थित हो जाते हैं। तब आदि अन्त किसी का कुछ पता नहीं चलता, सब कुछ अदृष्ट हो जाता है, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, किसी का कुछ नाम रूप स्थान आदि का आख्यान नहीं किया जा सकने के कारण ज्ञानियों को भी कुछ ज्ञात नहीं हो पाता तथा उस समय कौन गया, कौन आया, इसका

भावग्राह्यानुमानाच्च चिंतयित्वेदमुच्यते। स्थिते तु कारणे तस्मिन्नित्ये सदसदात्मके॥२९१॥
अनिर्देश्ये प्रवृत्तिर्वै स्वात्मिकाकारणेन तु। एवं सप्तद्भिरभ्यस्ताः क्रमात्प्रकृतयस्तु वै॥२९२॥
प्रत्याहारे तदा सर्गे प्रविशंति परस्परम्। येनेदमावृतं सर्वमंडलमप्सु प्रलीयते॥२९३॥
सप्तद्वीपसमुद्रांतं सप्तलोकं सपर्वतम्। उदकावरणं यच्च ज्योतिष्यालीयते तु यत्॥२९४॥
यत्तेजसं चावरणं मारुतो [1]ग्रसते नु यत्। यद्वायव्यं चावरणमाकाशं ग्रसते तु तत्॥२९५॥
आकाशावरणं यच्च भूतादिर्ग्रसते तु तत्। भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः॥२९६॥

महांतं ग्रसते[2]ऽव्यक्तं गुणसाम्यं ततः परम्।
एतौ संहारविस्तारौ ब्रह्मा व्यक्तौ ततः पुनः॥२९७॥

सृजते ग्रसते चैव विकारात्सर्गसंयमे। संसिद्धकार्यकारणाः संसिद्धा ज्ञानिनस्तु ये॥२९८॥
गत्वा जवं जवीभावे स्थाने स्वेषु प्रसंयमात्। प्रत्याहारेऽधिषुज्यंते क्षेत्रज्ञाः करणैः पुनः॥२९९॥

भी बोध नहीं होता।।२८९-२९०।। ऐसी स्थिति में भावनाओं से ग्रहण करके और अनुमान से विचार करके यह कहा जाता है कि उस समय वे सब पदार्थ सद् और असद् आत्मक नित्य कारण प्रकृति में स्थित रहते हैं। यह स्वतन्त्र प्रकृति कारण द्वारा अनिर्देश्य है, अर्थात् इस प्रकृति का कोई कारण नहीं, यही सबका कारण है। प्रकृति के जो सात उपादान हैं, वे क्रमशः प्रकृति में विलीन कहे जाते हैं, वे सात हैं—महत्तत्त्व, अहंकार तथा पंच तन्मात्राएँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इस प्रकार गन्ध रस में, रस रूप में, रूप स्पर्श में, स्पर्श शब्द में, शब्द अहंकार में, अहंकार महत्तत्त्व (बुद्धि) में और फिर महत्तत्त्व प्रकृति में लीन हो जाता है।।२९१-२९२।। प्रत्याहार काल में इसी प्रकार इनका आपस में एक-दूसरे में क्रमशः प्रवेश होता है। जिसने सब पदार्थों, सातों द्वीप, सातों सागरों, समस्त नदियों, पर्वतों को आवृत किया है, वह विशाल ब्रह्माण्ड सबसे पहले जलों में विलीन होता है।।२९३।। उसके बाद वह समस्त जलराशि ज्योति पदार्थ अग्नि में विलीन होता है।।२९४।। उसके बाद उस अग्नि तत्त्व को वायु तत्त्व ग्रस लेता है, अर्थात् अग्नि तत्त्व वायु तत्त्व में विलीन हो जाता है। फिर उस वायु तत्त्व को आकाश ग्रस लेता है।।२९५।।

उस आकाश तत्त्व को जो पञ्चमहाभूतों के आदि में है, वह अहंकार ग्रस लेता है तथा भूतादि अहंकार को महत्तत्त्व, जिसका लक्षण बुद्धि है, वह ग्रस लेता है।।२९६।। अन्त में उस महत्तत्त्व बुद्धि को अव्यक्त ग्रस लेता है, यह अव्यक्त ही प्रकृतितत्त्व है। जो कि प्रधान तत्त्व है, किसी भी इन्द्रिय द्वारा न व्यक्त होने के कारण ही इस प्रकृति को अव्यक्त कहा गया है। सृष्टि का यह संहार और विस्तार प्रकृति से होता है तथा वह प्रकृति ब्रह्म में स्थित है।।२९७।।

सृष्टि और प्रलय करने के लिये ही यह प्रकृति समस्त विकारों को उत्पन्न करती है और ग्रस लेती है। सर्ग में क्रमशः उत्पन्न करती है, तो प्रतिसर्ग में क्रमशः ग्रस लेती है।।२९७½।। इस प्रकार यह समस्त संसार कार्य और कारण पर आधारित है। सभी तत्त्व एक-दूसरे के कारण और कार्य हैं; परन्तु प्रकृति किसी का कारण नहीं है, अर्थात् प्रकृति से क्रमशः सभी उत्पन्न हुए हैं, प्रकृति किसी से उत्पन्न नहीं है। इस रहस्य को जो जानते हैं, वे परम ज्ञानी सिद्ध लोग हैं। वे सिद्ध पुरुष इस संहार काल में अपने पूर्ण संयम से स्वयं तीव्र गति से आकृष्ट होकर क्षेत्रज्ञ करणों से वियुक्त हो जाते हैं।।२९७½-२९९।।

---

१. आत्मनेपदमार्षम्। २. आत्मनेपदमार्षम्।

अव्यक्तं क्षेत्रमित्याहुर्ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते। सधर्म्यवैधर्म्यकृतः संयोगो नादिमांस्तयोः॥३००॥
एवं सर्गेषु विज्ञेयः क्षेत्रज्ञेष्विह ब्राह्मणाः। ब्रह्मविच्चैव विज्ञेयः क्षेत्रज्ञानात्पृथक्पृथक्॥३०१॥
विषयाविषयत्वं च क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोः स्मृतम्। ब्रह्मा त्वविषयो ज्ञेयो विषयः क्षेत्रमुच्यते॥३०२॥
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं क्षेत्रं क्षेत्रज्ञार्थं प्रचक्षते। बहुत्वाच्च शरीराणां शरीरी बहुधा स्मृतः॥३०३॥
अव्यूहाशंकराच्चैव ज्योतिर्यच्च व्यवस्थितम्।
यस्मात्प्रतिशरीरं हि सुखदुःखोपलब्धिता॥३०४॥
तस्मात्पुरुषनानात्वं विज्ञेयं तु विजानता। यदा प्रवर्त्तते चैषां भेदानां चैव संयमः॥३०५॥
स्वभावकारिताः सर्वे कालेन महता तदा। निवर्त्तन्ते तदा तस्मिन्स्थितरागाः स्वयंभुवः॥३०६॥

अव्यक्त (प्रकृति) क्षेत्र कही जाती है तथा ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं। समानता और विषमता के आधार पर उन दोनों का संयोग अनादिकाल से चला आ रहा है।।३००।। क्षेत्र का अर्थ खेत है, क्षेत्रज्ञ का अर्थ है खेतवाला अर्थात् खेत में बीज बोने वाला। अतः प्रकृति खेत है तथा वह ब्रह्म कहें अथवा आत्मा कहें, वह क्षेत्रज्ञ है, यह क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) (आत्मा) जब प्रकृतिरूपी खेत में बीज डालता है, तब वह उगता है। अब रही समानता और विषमता की बात, वह यों कि क्षेत्रज्ञ (आत्मा) और प्रकृति दोनों ही अव्यक्त हैं, अतः समान हैं; परन्तु प्रकृति अन्य तत्त्वों का कारण है; परन्तु वह क्षेत्रज्ञ किसी का कारण नहीं है। यही दोनों में विषमता है। प्रकृति ब्रह्म का विषय है; परन्तु ब्रह्म किसी का विषय नहीं। सूतजी ने कहा कि हे ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों! सृष्टि की रचना में क्षेत्रज्ञ के विषय में यही क्रम जानना चाहिए। जो अलग-अलग रूप से इस क्षेत्र (प्रकृति) का ज्ञान तत्त्व जानता है, उसी को ब्रह्मज्ञानी समझना चाहिए।।३०१।। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विषय और अविषय होना स्मरण किया गया है। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का विषय और क्षेत्रज्ञ किसी का विषय नहीं है। ब्रह्म ही अविषय है तथा विषय क्षेत्र कहा जाता है।।३०२।।

क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) में ही क्षेत्र अधिष्ठित है तथा क्षेत्रज्ञ (ब्रह्मा) के उपभोग के लिये क्षेत्र (प्रकृति) को बनाया गया है। शरीरों (प्रकृति)के बहुत होने के कारण शरीरी (क्षेत्रज्ञ) (आत्मा) भी बहुत स्मरण किये जाते हैं। ब्रह्मा आत्मा, जीव, पुरुष—ये प्रायः एक ही हैं। कुछ लोग ब्रह्म और आत्मा को एक नहीं मानते; परन्तु आत्मा और परमात्मा तो एक ही है तथा क्षेत्र, प्रकृति, माया, चण्डी, पार्वती आदि हैं। सब एक ही है। किन्तु ये ज्योति की भाँति बिना घिरे हुए और बिना मिले हुए रहते हैं। अर्थात् जैसे कि प्रकाश एक ही है; परन्तु स्थान भेद से अलग प्रतीत होता है, जहाँ नहीं पहुँचता है, वहाँ अंधेरा रहता है, कहीं कम कहीं अधिक प्रकाश होता है। उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ की क्षेत्र में यही दशा है, कहीं क्षेत्रज्ञ पूर्ण प्रकाशित है, तो कहीं बिल्कुल नहीं, तो कहीं कम है। इसी के कारण प्रत्येक शरीर में सुख और दुःख की प्राप्ति होती है। अर्थात् जहाँ पर क्षेत्रज्ञ का अधिक प्रकाश है, वहाँ सुख, जहाँ कम है, वहाँ दुःख है।।३०३-३०४।। इसलिए विज्ञ विज्ञानता विशेष ज्ञान रखने वाले लोग क्षेत्रज्ञ (आत्मा, पुरुष, ब्रह्मा) का अनेक होना मानते हैं। यहाँ विज्ञानता का अर्थ नहीं जानने वाले भी हो सकता है; क्योंकि 'वि' उपसर्ग दो अर्थों में लगता है। विशेष और विना। अतः विज्ञानता का विशेष ज्ञान से और विना ज्ञान से भी हो सकता है। तब यहाँ अर्थ होगा कि अज्ञानी लोग क्षेत्रज्ञ (पुरुष) को अनेक होना मानते हैं; परन्तु वह एक है। जैसे कि एक प्रकाश स्थान भेद से अनेक लगता है, उसी प्रकार वह क्षेत्रज्ञ (पुरुष) क्षेत्र (प्रकृति) में स्थित होने के भेद से अनेक प्रतीत होता है।।३०५-३०६।।

सह सायुज्यकैः सर्वैर्ब्रह्मलोकनिवासिभिः।
विनिवृत्तेस्तदा तेषां स्थितेरात्मनिवासिनाम्॥३०७॥
तत्कालवासिनां तेषां तत्र वै दोषदर्शिनाम्। उत्पद्यतेऽथ वैराग्यमात्म[1]वाद प्रणाशनम्॥३०८॥
भोज्यभोक्तृत्वनानास्तैस्तेषां तद्भावदर्शिनाम्।
पृथग्ज्ञानेन क्षेत्रज्ञास्ततस्ते ब्रह्मलौकिकाः॥३०९॥
प्रकृतौ कारणातीताः सर्वे नानाप्रदर्शिनः। स्वात्मन्येवावतिष्ठंते प्रशांतादर्शनात्मकाः॥३१०॥
शुद्धा निरंजनाः सर्वे चेतनाचेतनास्तथा। तत्रैव परिनिर्वार्णाः स्मृता[2]नागामिनस्तु ते॥३११॥
निर्गुणत्वाग्निरात्मानः प्रकृत्यंते व्यतिक्रमात्।
इत्येवं प्राकृतः प्रोक्तः प्रतिसर्गः स्वयंभुवा॥३१२॥
वर्णाश्रमाचारयुतः प्रतिसर्गं शृणोति यः। स व्रजेच्छिवसालोक्यं भक्तिमान्विगतज्वरः॥३१३॥
अमद्यपश्च यः शूद्रो भवभक्तो जितेंद्रियः। आभूतसंप्लवस्थायी अप्रतीघातलक्षणः॥३१४॥

बहुत समय बीतने पर जब पुरुष और प्रकृति के भेद का ज्ञान तथा प्रकृति तथा पुरुष के स्वभाव का ज्ञान हो जाता है, तब ब्रह्म क्षेत्रज्ञ (पुरुष) की बुद्धि प्रकृति से निवृत्त हो जाती है और उस समय ब्रह्मलोक निवासी सहसा अपनी-अपनी स्थिति के व्यवहार में दोष देखकर विरक्त हो जाते हैं, अर्थात् उनमें वैराग्य पैदा हो जाता है और आत्मवाद (अहंकार) का नाश हो जाता है, उस समय बुद्धि अहंकार से अलग होकर प्रकृतिस्थ हो जाती है, तब स्वार्थपरक अहंकार का सर्वथा नाश हो जाता है।।३०७-३०८।। तब पुरुष का यह भाव कि मैं भोक्ता हूँ तथा यह प्रकृति भोग्य है, मैं क्यों न इसका भोग करूँ, यह भाव समाप्त हो जाता है। तब वे अनेकत्व के भाव से निवृत्त होकर आत्मस्थ हो जाते हैं। वे समस्त ब्रह्मलोक निवासी अलग-अलग क्षेत्र का ज्ञान होने के कारण ही क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं, क्योंकि उन्हें क्षेत्र प्रकृति का ज्ञान हो चुका है कि यह प्रकृति आत्मा को अनेकों प्रकार के भोगों, विषयों में फँसाती है, यह जानकर वे इस प्रकृति से अलग हो जाते हैं। अतः वे सब प्रकृतिगत सभी कारणों से परे हैं और प्रकृति के अनेक होने को देखते हैं तथा देखकर उनसे अलग होकर प्रशान्त भाव से अपनी आत्मा में ही अवस्थित हो जाते हैं।।३०९-३१०।। वे चेतन-अचेतन, शुद्ध बुद्ध चैतन्य वहीं पर मोक्ष प्राप्त करने वाले हैं। वे फिर इस लोक में लौटकर आने वाले नहीं हैं। फिर वे जव आत्मस्थ हो जाते हैं, तो निर्गुण हो जाते हैं और उनमें स्वार्थभाव मिट जाता है। तब उनको पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़ता।।३११-३११½।।

इस प्रकार यही ब्रह्मा द्वारा प्रकृति का प्राकृत प्रतिसर्ग कहा गया है। वर्ण और आश्रमों के आचरण का पालन करता हुआ, जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इस ब्रह्मा के प्रतिसर्ग का श्रवण करता है, वह समस्त व्याधियों से रहित होकर शिव के सालोक्य को प्राप्त होता है।।३११½-३१३।। मद्यपान न करने वाले जितेन्द्रिय भगवान् शिव का भक्त शूद्र इसको पढ़ता है, वह प्रलयकाल तक जन्म-मरण के लक्षणों से रहित होकर सार्वकालिक गणपति के स्थान को प्राप्त करता

१. आत्मात्राहंकार (यहाँ आत्मा का अर्थ अहंकार)
२. स्मृतमनागमनमेषामिति भावः

गाणपत्यं स लभते स्थानं वा सार्वकालिकम्। मद्यपो मद्यपैः सार्द्धं भूतसंघैश्च मोदते॥३१५॥
सेव्यमानो महीपृष्ठे मर्त्यानां वरदो भवः। इति होवाच। भगवान्वायुर्वाक्यमिदं वरम्॥३१६॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे शिवपुरवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे

प्रतिसर्गोनाम

तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच

प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि परस्यांते स्वयंभुवः। ब्रह्मणः स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिंस्तदा प्रभोः॥१॥
यथेदं कुरुते व्यक्तं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः। अव्यक्तं ग्रसते व्यक्तं प्रत्याहारे च कृत्स्नशः॥२॥
पुरांतव्यणुकाद्यानां संपूर्णे कल्पसंक्षये। उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्यचित्॥३॥
अंते द्रुमस्य संप्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा। अंते कलियुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते॥४॥

है और फिर जो मद्यपान करने वाला है, वह मद्यपान करने वाले भूतों के साथ आनन्द प्राप्त करता है।।३१४-३१५।। वह पृथ्वी पर सेवा किया जाता हुआ मृत्युलोक में वर देने वाला शिव है। इस प्रकार भगवान् वायु ने यह वाक्य कहा।।३१६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त उत्तर भाग चतुर्थ उपोद्घात पाद द्वितीय अध्याय शिवपुर वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग चतुर्थ उपसंहार पाद

अध्याय-३

प्रतिसर्ग वर्णन

सूतजी बोले—अब इसके बाद मैं परब्रह्म स्वयम्भू भगवान् के प्रत्याहार (प्रलय) का वर्णन करूँगा। परंभू ब्रह्मा के स्थितिकाल के समाप्त होने पर जिस प्रकार ये अत्यन्त सूक्ष्म ईश्वर अपने में समस्त व्यक्त संसार को स्थिर कर लेते हैं, वह बताऊँगा। प्रलयकाल में अव्यक्त (प्रकृति) समस्त व्यक्त (महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्राएँ, एकादश इन्द्रियों, पञ्च महाभूतों) को ग्रस लेती है।।१-२।। पुराने सभी अणुओं के क्षीण एवं सम्पूर्ण कल्प के समाप्त हो जाने पर महाघोर संकट काल उपस्थित होता है, जो पूर्णतः परोक्ष है, उसकी जानकारी किसी को नहीं होती है। तब सबसे अन्तिम मनु द्रुम का अन्त प्राप्त होने पर उस अन्तिम कलियुग के क्षीण (समाप्त) होने पर (संहार) प्रलय कहा जाता है।।३-४।।

संप्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते। प्रत्याहारे तदा तस्मिन्भूततन्मात्रसंक्षये॥५॥
महदादिविकारस्य विशेषांतस्य संक्षये। स्वभावकारिते तस्मिन्प्रवृष्टे प्रतिसंचरे॥६॥
आपो ग्रसंति वै पूर्वं भूमेर्गंधात्मकं गुणम्। आत्तगंधा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते॥७॥
प्रणष्टे गंधतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत्। आपस्तदा प्रविष्टास्तु वेगवत्यो महास्वनाः॥८॥
सर्वमापूरयित्वेदं तिष्ठंति विचरंति च। आपामपि गणो यस्तु ज्योतिःष्वालीयते रसः॥९॥
नश्यंत्यापस्तदा तत्र रसतन्मात्रसंक्षयात्। तीव्रतेजोहृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवंत्युत॥१०॥
ग्रस्ते च सलिले तेजः सर्वतोमुखमीक्षते। अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलं तदा॥११॥
सर्वमापूर्यतेऽर्चिर्भिस्तदा जगदिदं शनैः। अर्चिभिः संतते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्ततः॥१२॥
ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुरत्ति प्रकाशकम्। प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते॥१३॥
प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः। उपशाम्यति तेजो हि वायुराधूयते महान्॥१४॥
निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि। ततस्तु मूलमासाद्य वायुः संबंधमात्मनः॥१५॥

जब समस्त प्रपञ्च का जल में डूबने का समय प्रवृत्त होता है, तब उस प्रलयकाल के उपस्थित होने पर उस प्रलय में समस्त पञ्चमहाभूत और उनकी तन्मात्राओं का पूर्णतः विनाश हो जाता है।।५।। उस समय महदादि समस्त विकारों का भी विनाश हो जाता है। यह सब स्वाभाविक प्रलय है, इसका होना स्वाभाविक है तथा यथासमय अवश्यम्भावी है।।६।। जब यह प्रलय होने को होती है, तब जल पृथ्वी के गन्धात्मक गुण को ग्रस लेता है। गन्धरहित पृथ्वी प्रलय करने की कल्पना करती है। स्वाभाविक है कि जब पृथ्वी का गुण गन्ध ही नहीं, तव पृथ्वी कैसे रह सकती है?।।७।। अतः गन्ध तन्मात्रा के नष्ट हो जाने पर पृथ्वी की जलावस्था हो जाती है, तब सर्वत्र जल ही जल हो जाता है और वह जलराशि समस्त संसार में व्याप्त होकर वेगवती हो सर्वत्र विचरण करने लगती है, उसके बाद जलों का भी जो गुण रस है, वह ज्योति (तेज) में विलीन हो जाता है।।८-९।।

तब जब कि जल का गुण रस ही अग्नि के तेज तत्त्व में विलीन हो गया, तब जल का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। तीव्र तेज द्वारा जिस जल का रस ग्रास कर लिया गया है, वह रस अब तेज में परिणत हो जाता है। अर्थात् रस ज्योतित्व को प्राप्त कर लेते हैं, अर्थात् रस तेज बन जाते हैं।।१०।। जब तेज जल को ग्रस्त कर लेता है, तब सर्वत्र सामने तेज ही तेज दिखाई देता है और अग्नि सर्वत्र व्याप्त होकर उस जल को पूरी तरह ग्रस लेती है।।११।। तब यह संसार धीरे-धीरे अग्नि की ज्वालाओं से सर्वत्र भर जाता है। उस समय अग्नि की लपटें इधर-उधर, ऊपर-नीचे सर्वत्र फैल जाती हैं।।१२।। अग्नि के गुण तेज (रूप) को जो कि प्रकाश करने वाला है। रूप का प्रकाशक होने के कारण ही तो उसका गुण रूप कहा जाता है, अतः अग्नि के गुण को रूप तेज या ज्योति कहा जाता है। अतः अग्नि के गुण रूप के प्रकाशक तेज को भी वायु ग्रस लेता है। तब उस वायु में अग्नि की वह तेजोराशि उसी प्रकार विलीन हो जाती है, जैसे कि वायु से दीपक की शिखा बुझ जाती है।।१३।। अग्नि की तन्मात्रा रूप (तेज) के नष्ट हो जाने पर अग्नि रूपरहित हो जाती है, तब तेज (ज्वाला) शान्त हो जाती है और महान् वायु तेजी से बहने लगता है।।१४।। उस समय समस्त जगत् प्रकाशविहीन हो जाता है, क्योंकि तेज भी उस समय वायु बन जाता है। उसके बाद वह वायु अपने मूल उत्पत्ति स्थान आकाश को प्राप्त करके समस्त आकाश में ऊपर-नीचे, तिरछे, इधर-

ऊध्वरं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश।
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते च तत्॥१६॥

प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम्। अरूपमरसस्पर्शमगंधं न च मूर्तिमत्॥१७॥
सर्वमापूरयच्छब्दैः सुमहत्तत्प्रकाशते। तस्मिँल्लीने तदा शिष्टमाकाशं शब्दलक्षणम्॥१८॥
शब्दमात्रं तदाऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति। तत्र शब्दं गुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः॥१९॥
भूतेंद्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै। अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः॥२०॥
भूतादिर्ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः। महानात्मा तु विज्ञेयः संकल्पो व्यवसायकः॥२१॥
बुद्धिर्मनश्च लिंगं च महानक्षर एव च। पर्यायवाचकैः शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिंतकाः॥२२॥
संप्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये ततो महान्। लीयंते गुणसाम्यं तु स्वात्मन्येवावतिष्ठते॥२३॥
लीयंते सर्वभूतानां कारणानि प्रसंगमे। इत्येष संयमश्चैव तत्त्वानां कारणैः सह॥२४॥
तत्त्वप्रसंयमो ह्येष स्मृतो ह्यावर्तको द्विजाः। धर्माधर्मौ तपो ज्ञानं शुभं सत्यानृते तथा॥२५॥
ऊर्ध्वभागो ह्यधोभावः सुखदुःखे प्रियाप्रिये। सर्वमेतत्प्रपंचस्थं गुणमात्रात्मकं स्मृतम्॥२६॥

उधर सर्वत्र दशों दिशाओं को बार-बार कम्पित करता है। उसके वायु के भी गुण स्पर्श को आकाश ग्रस लेता है।।१५-१६।। जब वायु के स्पर्श गुण को आकाश ग्रस लेता है, तब वायु शान्त हो जाता है और आकाश अनावृत होकर स्थित रहता है। वह आकाश उस समय रूप, रस, स्पर्श और गन्धरहित होता है तथा वह मूर्तिमान् नहीं, उस समय आकाश आकृति विहीन होता है।।१७।। उस समय आकाश का गुण शब्द ही होता है, वह आकाश अपने शब्द गुण से समस्त जगत् को निनादित करता हुआ महान् मण्डलाकार आकाश प्रकाशित होता है, वह आकाश केवल शब्दात्मक है, क्योंकि शब्द ही तो आकाश का लक्षण है।।१८।। तब शब्द मात्रा वाला आकाश सब जगत् को आवृत कर स्थित होता है।।१८½।। उसके बाद उस आकाश के गुण शब्द को पञ्चभूतों के आदि में रहने वाला अहंकार (अहंतत्त्व) ग्रस लेता है।।१९।। पञ्चभूतों से युक्त जो इन्द्रियाँ हैं, उनमें पंचमहाभूत आदि भी स्थित हैं तथा अहंकार तत्त्व से इन्द्रियों की उत्पत्ति है। अतः समस्त भूतों को और उन पर आश्रित इन्द्रियों को वह अहङ्कार तत्त्व ग्रस लेता है तथा यह भूतों का आदि रूप अहंकार अभिमानात्मक भूतादि तामस कहा गया है।।२०।।

अब भूतादि तामस, जिसे अहंकार कहा गया है, उसे महत्तत्त्व ग्रस लेता है, जिसे महान् कहा जाता है, जिसका लक्षण बुद्धि है। यह महान् आत्मा बुद्धि संकल्प और विकल्प करने वाला कहा गया है। अध्यवसाय जिसका लक्षण है, अर्थात् यह बुद्धि किसी कार्य को करने न करने का निर्णय लेने वाली है। तत्त्व का चिन्तन करने वाले विद्वान् इसी को बुद्धि, मन, लिङ्ग, महान् एवं अक्षर आदि पर्यायवाची शब्दों से पुकारते हैं।।२१-२२।। फिर जब बुद्धि तत्त्व प्रकृति में लीन हो जाता है, तब समस्त भूतों के विलीन हो जाने पर प्रकृति में महान् गुणसाम्य हो जाता है। समस्त जगत् तमोमय हो जाता है। गुणसाम्य होकर आत्मा में स्थित हो जाते हैं, जो जिसका कारण है, उसमें वह लीन होता चला जाता है। इस प्रकार यही तत्त्वों का कारणों के साथ संयम है।।२३-२४।। सूतजी बोले कि हे द्विजवृन्द! यह तत्त्वसंयम ही आवर्तक स्मरण किया गया है,, अर्थात् तत्त्वों का परस्पर अपने कारणों में विलीन होने का जो नियम है, वही प्रलय करनेवाला है।।२४½।। धर्म, अधर्म, तप, ज्ञान, शुभ, सत्य, असत्य, ऊर्ध्व भाव, अधोभाव, सुख,

निरिद्रियाणां च तदा ज्ञानिनां यच्छुभाशुभम्। प्रकृत्यां चैव तत्सर्वं पुण्यं पापं प्रतिष्ठति॥२७॥
यात्यवस्था तु सा चैव देहिनां तु निरुच्यते। जंतूनां पापपुण्यं तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम्॥२८॥
अवस्थास्थानि तान्येव पुण्यपापानि जंतवः। योजयंति पुनर्देहान्परत्वेन तथैव च॥२९॥
धर्माधर्मौ तु जंतूनां गुणमात्रात्मकावुभौ। कारणैः स्वैः प्रचीयेते कायत्वेनेह जंतुभिः॥३०॥
सचेतनाः प्रलीयंते ज्ञेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणाः। सर्गे च प्रतिसर्गे च संसारे चैव जंतवः॥३१॥
संयुज्यंते वियुज्यंते कारणैः संचरंति च। राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव वृत्तयः॥३२॥
गुणमात्राः प्रवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा। उद्धर्वदेशात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तमः॥३३॥
तयोः प्रवर्त्तकं मध्ये इहैवावर्त्तकं रजः। इत्येवं परिवर्तंते त्रयश्चेतोगुणात्मकाः॥३४॥
लोकेषु सर्वभूतानां तन्न कार्यं विजानता। अविद्याप्रत्ययारंभा आरभ्यन्ते हि मानवैः॥३५॥
एतास्तु गतयस्तिस्रः शुभात्पापात्मिकाः स्मृताः।
तमसोऽभिभवाज्जंतुर्याथातथ्यं न विंदति॥३६॥

दुःख, प्रिय, अप्रिय यह सब पंचभूतात्मक प्रपञ्च में स्थित हैं, अर्थात् ये सब तो पंचभूतात्मक संसार में तथा पंचभूत निर्मित इस शरीर में स्थित हैं तथा इन पञ्चभूतों को गुणमात्रात्मक कहा है, क्योंकि इन सबके गुण हैं।।२४½-२६।। इन्द्रियों से परे अर्थात् जितेन्द्रिय ज्ञानसम्पन्न व्यक्तियों के जो कुछ भी शुभ-अशुभ पुण्य तथा पापात्मक कर्म हैं, वे सब प्रकृतिवश अवस्थित हैं।।२७।। जो अत्यवस्था प्राणियों की कही जाती है, जो प्राणियों का स्वभाव है, जैसी उनकी अवस्था है, वह सब उसकी प्रकृति में प्रतिष्ठित है। प्राणियों के पाप और पुण्य उसकी प्रकृति में प्रतिष्ठित रहते हैं। जैसी जिसकी प्रकृति होती है, तदनुसार वह अच्छे-बुरे कर्म करता है।।२८।। सभी प्राणी अपनी-अपनी अवस्था (प्रकृति) में स्थित अपने उन पुण्य और पापों को पुनः दूसरे शरीरों में ले जाता है।।२९।। प्राणियों के धर्म और अधर्म दो गुण और मात्रात्मक हैं। कार्य की दशा में अपने-अपने कारणों द्वारा प्राणियों के स्वभाव में वृद्धि करते हैं।।३०।।

इस संसार में क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सचेतन गुण समुदाय सृष्टि और प्रलयावस्था में अपने-अपने कारणों द्वारा संयुक्त-वियुक्त और संचरणशील होते हैं। अर्थात् जब प्रकृति और पुरुष का मेल होता है, तभी सृष्टि होती है तथा जब क्षेत्रज्ञ (पुरुष) प्रकृति में मिलता है, वे जड़ पदार्थ पंचतत्त्व सचेतन होते हैं। अतः ये सचेतन पदार्थ अपने-अपने कार्य उत्पन्न करते चले जाते हैं। तब इनके संयुक्त होने से सृष्टि की स्थिति होती है तथा जब ये अपने कारणों में विलीन होते चले जाते हैं, तव संहार की स्थिति है, यही भाव है। इस प्रकार ये सभी पंचभूतादि अपने-अपने कारणों से संयुक्त होते हैं और वियुक्त होते हैं और संचरण करते रहते हैं। जब ये संयुक्त होते हैं, तब सृष्टि होती है और जब वियुक्त होते हैं, तब प्रलय होती है तथा जब ये परस्पर संचरण करते हैं, तब संसार की स्थिति होती है।।३१-३१½।।

इस प्रकृति की राजसी, तामसी और सात्त्विकी तीन वृत्तियाँ होती हैं। ये प्रकृति की तीनों प्रकार की वृत्तियाँ गुण और मात्रा रूप से पुरुष में अधिष्ठित होती हैं।।३१½-३२½।। सत्त्व ऊर्ध्व भागात्मक होता है, तम अधोभागात्मक होता है और उन दोनों का प्रवर्तक मध्य में स्थित रज होता है, जो उन दोनों का प्रवर्तक है, अर्थात् उन सत्त्व और तम को गतिशील बनाता है।।३२½-३३½।। समस्त त्रिलोकी में सब जीवों में ये ही तीन भाव परिवर्तित होते रहते हैं। तमोगुण से अभिभूत होकर मनुष्य इस सबको यथातथ्य रूप से अर्थात् वास्तविक रूप से नहीं जानता है और इस प्रकार

अतत्त्वदर्शनात्सोऽथ विविधं वध्यते ततः। प्राकृतेन च बन्धेन तथ्यावैकारिकेण च॥३७॥
दक्षिणाभिस्तृतीयेन बद्धोऽत्यंतं विवर्त्तते। इत्येते वै त्रयः प्रोक्ता बंधा ह्यज्ञानहेतुकाः॥३८॥
अनित्ये नित्यसंज्ञा च दुःखे च सुखदर्शनम्।
अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः॥३९॥
येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्ययात्। रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञानं समुदाहृतम्॥४०॥
अज्ञानं तमसो मूलं कर्मद्वयफलं रजः। कर्मजस्तु पुनर्देहो महादुःखं प्रवर्त्तते॥४१॥
श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणजा तथा। पुनर्भवकरी दुःखात्कर्मणा जायते तृषा॥४२॥
सतृष्णोऽभिहितो बालः स्वकृतैः कर्मणाः फलैः। तैलपीडकवज्जीवस्तत्रैव परिवर्त्तते॥४३॥
तस्मान्मूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते। तं शत्रुमवधार्यैकं ज्ञाने यत्नं समाचरेत्॥४४॥
ज्ञानाद्धि त्यजते सर्वं त्यागाद्बुद्धिर्विरज्यते।
वैराग्याच्छुध्यते चापि शुद्धः सत्त्वेन मुच्यते॥४५॥

तत्त्वों को अच्छी तरह न जानने और न देखने के कारण तीन प्रकार के बन्धनों से आवद्ध होते हैं। प्रथम प्राकृत बन्धन, द्वितीय वैकारिक बन्धन और तृतीय दक्षिणात्मक बन्धन। इन तीनों से बहुत अधिक बंधकर प्राणीगण दुःख का अनुभव करते हैं। इन तीनों ही बंधनों का कारण अज्ञान है, इसलिए ये अज्ञानहेतुक कहे गये हैं।।३८।। अनित्य पदार्थों को नित्य का नाम देना, दुःख में सुख देखना, जो अपना नहीं उसे अपना मानना, जो अपवित्र है, उसे पवित्र समझना, ये सब इन अज्ञानी प्राणियों के उल्टे क्रम से मन के दोष तथा ज्ञान के दोष हैं तथा जब किसी विशेष व्यक्ति, वस्तु, स्थान के प्रति आसक्ति तथा किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान के प्रति द्वेष भाव की निवृत्ति (समाप्ति) हो जाती है, वही ज्ञान कहा गया है।।३९-४०।। तमोगुण का मूल अज्ञान है, शुभ और अशुभ कर्मों का मूल रजोगुण है अर्थात् रजोगुण शुभ और अशुभ कर्म करने की प्रेरणा देता है। कर्म से उत्पन्न पुनर्देह है, अर्थात् कर्मों से पुनर्जन्म लेना पड़ता है, जिससे महादुःख की प्राप्ति होती है।।४१।।

कान से, आँख से, त्वचा से, जिह्वा से और नाक से कर्म उत्पन्न होते हैं, अर्थात् कान से शब्द को सुनकर उसके प्रति आसक्ति अनासक्ति होना कर्म का कारण है। आँख से किसी सुन्दर, असुन्दर वस्तु को देखकर उसके प्रति आसक्त होना कर्म का कारण है, त्वचा से सुन्दर असुन्दर स्पर्श से सुख दुःख का अनुभव कर आसक्त अनासक्त होना कर्म का कारण है, स्वादिष्ट अस्वादिष्ट रस का स्वादु लेकर उसके प्रति आसक्ति अनासक्ति तथा किसी सुगन्धित असुगन्धित द्रव्य को सूंघकर उसके प्रति आसक्त अनासक्त होना कर्म का कारण है। इस प्रकार ये ज्ञानेन्द्रियाँ ही सब कर्मों का कारण हैं। जो कर्म पुनर्जन्म के कारण होते हैं। कर्म से तृष्णा पैदा होती है और दुःख से भी तृष्णा पैदा होती है।।४२।। अपने-अपने किये गये कर्मों के फलों के द्वारा ही तृष्णा युक्त अज्ञ जीव को तेली के बैल की तरह कर्मों के बन्धन में फँसकर उन्हीं इन्द्रियों के विषयों में बार-बार चक्कर काटना पड़ता है।।४३।। उसी कारण से अनर्थों के मूल अज्ञान से बचने का उपदेश दिया जाता है तथा उस अज्ञान नामक शत्रु को समझकर ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।।४४।। ज्ञानसे इन्द्रियों के विषयों के प्रति पैदा हुए अज्ञान का त्याग किया जाता है तथा ज्ञान पैदा होने पर मनुष्य सब कुछ छोड़ देता है। तब त्याग से बुद्धि सब विषयों से विरक्त हो जाती है, अर्थात् बुद्धि में

अत ऊद्‌र्ध्वं प्रवक्ष्यामि रागं भूतापहारिणम्। अभिष्वंगाय योगः स्याद्विषयेष्ववशात्मनः।।४६।।
अनिष्टमिष्टमप्रीतिप्रीतितापविषादनम्। दुःखलाभे न तापश्च सुखानुस्मरणं तथा।।४७।।
इत्येष वैषयो रागः संभूत्याः कारणं स्मृतः। ब्रह्मादौ स्थावरांते वै संसारे ह्यादिभौतिके।।४८।।
अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानं तु विवर्जयेत्। यस्य चार्षे न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च।।४९।।
वर्णाश्रमविरुद्धो यः शिष्टशास्त्रविरोधकः। एष मार्गो हि निरये तिर्य्यग्योनौ च कारणम्।।५०।।
तिर्य्यग्योनिगतं चैव कारणं तन्निरुच्यते। त्रिविधो यातनास्थाने तिर्य्यग्योनौ च षड्विधे।।५१।।
कारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वशः। अनैश्वर्यं तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम्।।५२।।
इत्येषा तामसी वृत्तिर्भूतादीनां चतुर्विधा। सत्त्वस्थमात्रकं चित्तं यथासत्त्वं प्रदर्शनात्।।५३।।
तत्त्वानां च यथातत्त्वं दृष्ट्वा वै तत्त्वदर्शनात्। सत्त्वक्षेत्रज्ञनानात्वमेतन्नानार्थदर्शनम्।।५४।।

वैराग्य पैदा हो जाता है और वैराग्य से मन शुद्ध हो जाता है। शुद्ध मन से सात्त्विक प्रवृत्ति पैदा हो जाती है और सात्त्विक प्रवृत्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है, अर्थात् जीवात्मा कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाता है।।४५।। सूतजी ने कहा कि अब इसके आगे मैं प्राणियों के ज्ञान का अपहरण करने वाले राग का वर्णन करूँगा। यह राग ही अज्ञान का कारण है। राग का अर्थ है—आसक्ति, किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान के प्रति बहुत अधिक प्रेम या लगाव पैदा होना राग है। इसी राग के कारण प्राणिसमूह लाचार होकर विषय वासनाओं, सांसारिक भोग-विलासों में फँस जाते हैं।।४६।।

राग से अनिष्ट, इष्ट, अप्रीति, प्रीति, ताप, विषाद का जन्म होता है। दुःख प्राप्त होने से ताप पैदा होता है और इच्छित वस्तु के प्राप्त न होने पर दुःख होता है तथा उसका स्मरण करने से सुख होता है।।४७।। इस प्रकार यह सांसारिक भोगविलासों से सम्बन्धित विषयगत राग है, जो सब दुःखों की उत्पत्ति का कारण है। ब्रह्मा से लेकर सभी स्थावर जंगम समूह के सभी आधिभौतिक जगत् में पैदा हुए राग के कारण अज्ञान से आवृत होकर जन्म ग्रहण करते हैं। इसलिए इस अज्ञान से सर्वथा बचे रहना चाहिए। जिस अज्ञान का शास्त्र में कोई प्रमाण नहीं है तथा न ही यह शिष्टाचार है, अर्थात् अज्ञान से सांसारिक भोगों में फँसे रहना कोई शिष्ट पुरुषों का आचरण नहीं है। यह अज्ञान वर्णों और आश्रमों के विरुद्ध है तथा ज्ञान की शिक्षा देने वाले शिष्ट शास्त्रों का विरोध करने वाला है। यह अज्ञान पथ ही नरक में तिर्यक् योनि (जानवरों की योनि) में जन्म लेने का कारण है।।४८-५०।।

पशु-पक्षी की योनियों में गये हुए जीवों के दुःख का कारण यह अज्ञान कहा जाता है। उस तिर्यक् योनि में जन्म लेने से मनुष्य को अनेकों प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।। ६ प्रकार के कारणों एवं विषयों में जो भी कष्ट जीव को भोगने होते हैं, वे सब इच्छाओं को दबाने से होते हैं। अज्ञान के विषयभोगों में तो प्रतिघात (एक-दूसरे को धोखा देना, मारना, बदला लेना) सभी ओर है। अतः संसार में असफलता और ऐश्वर्य का अभाव अर्थात् समाज में प्रतिष्ठा, वह सब प्रतिघातात्मक ही स्मरण किये गये हैं। अर्थात् प्रतिघात करने से मनुष्य में ईश्वरत्व समाप्त हो जाता है। वह सर्वत्र निन्दा का पात्र बनता है।।५१-५२।। इस प्रकार पञ्च महाभूत निर्मित प्राणियों की चार प्रकार की तामसी वृत्तियाँ होती हैं। सात्त्विक भावना का यदि मन प्रदर्शन करता है, तो उस मन को सत्त्वस्थ मन कहा जायेगा।।५३।। जब बुद्धि में सत्त्व स्थित होता है, तब तत्त्वों में यथातत्त्व को देखकर पूरी तरह उस तत्त्व में औचित्यानौचित्य का निर्णय करने में बुद्धि समर्थ हो जाती है। सत्त्वयुक्त मन वाली बुद्धि क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के अनेक होने का दर्शन करती है। यह

नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद्वै योग उच्यते। तेन बद्धस्य वै बंधो मोक्षो मुक्तस्य तेन च॥५५॥
संसारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिंगेन मुच्यते। निःसंबंधो ह्यचैतन्यः स्वात्मन्येवावतिष्ठते॥५६॥

स्वात्मन्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिख्यते।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं समासाज्ज्ञानमोक्षयोः॥५७॥
स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मोक्षो वै तत्त्वदर्शिभिः।
पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीये रागसंक्षयात्॥५८॥
तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षकारणम्।
लिंगाभावात्तु कैवल्यं कैवल्यात्तु निरंजनम्॥५९॥

निरंजनात्वाच्छुद्धस्तु नेताऽन्यो नैव विद्यते। अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि वैराग्यं दोषदर्शनात्॥६०॥
दिव्ये च मानुषे चैव विषये पंचलक्षणे। अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः कर्त्तव्यो दोषदर्शनात्॥६१॥

आत्माओं का अनेक होना देखना ही सच्चा ज्ञान है। आत्माओं के अनेकत्व को जान लेने पर सत्त्वस्थ बुद्धि उसके एकत्व रूप परब्रह्म के सान्निध्य में जाने के लिये प्रयत्नशील होती है। अतः आत्माओं के अनेक होने का दर्शन ही ज्ञान है और उस ज्ञान से ही योग की उत्पत्ति होती है, ऐसा कहा जाता है। मनुष्य सांसारिक विषयों में फँसे हुए अज्ञान के द्वारा बंधन में पड़े हुए व्यक्ति का बन्धन होता है और जब उस अज्ञान से मनुष्य मुक्त हो जाता है, तब उस मुक्त जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है।।५४-५५।। सांसारिक विषयों की समाप्ति हो जाने पर जब जीव को मुक्ति प्राप्त हो जाती है, तब वह शरीर से मुक्त हो जाता है। उस समय उस जीव का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, उसकी अचैतन्य अवस्था रहती है और अपनी आत्मा में ही स्थित रहता है।।५६।।

जीव की यह अवस्था जबकि वह अपनी आत्मा में ही स्थित होता है, विरूप नाम से लिखी जाती है। सूतजी बोले कि इस प्रकार मैंने संक्षेप से ज्ञान और मोक्ष का लक्षण बताया है।।५७।। तत्त्वदर्शियों ने वह मोक्ष भी तीन प्रकार का बताया है। उसमें पहला मोक्ष ज्ञान के बल से सांसारिक विषय-वासनाओं से वियोग होना कहा जाता है तथा दूसरा मोक्ष जीवों के प्रति राग-द्वेष का पूर्णतः समाप्त हो जाना है, अर्थात् न ही किसी से प्रेम अति, न ही किसी से वैर, यह भाव पैदा होना ही दूसरा मोक्ष है तथा तीसरा मोक्ष है, तृष्णा का क्षय। अतः इस प्रकार तीन प्रकार के मोक्ष हैं। मोक्ष क्या? ये सब उस कैवल्य मोक्ष के मार्ग हैं। पहले सांसारिक विषयों से वियोग होना तथा जब सांसारिक विषयों से जीव अलग होगा, तो उनके प्रति आसक्ति और द्वेष तो रह ही जायेगा। अतः दूसरा मोक्ष है—रागद्वेष की समाप्ति तथा जब सांसारिक विषयों एवं जीवों के प्रति रागद्वेष समाप्त हो जायेगा, तब उनके प्रति तृष्णा तो रह ही जायेगी, अतः यहाँ तृष्णा का भी नाश ही, परम मोक्ष का कारण है। इस प्रकार ये तीन ही मोक्ष के कारण बताये गये हैं। अतः जब मोक्ष प्राप्त हो जाता है, तब इस शरीर का अभाव हो जाता है और शरीर का अभाव होने पर कैवल्य हो जाता है, अर्थात् जीव केवल एक ही होता है तथा कैवल्य से जीव निरञ्जन हो जाता है। अर्थात् जब जीव केवल एक ही रह जाता है, तब वह निरंजन (निष्पाप) रूप हो जाता है और निरंजनत्व से जीव को शुद्धत्व प्राप्त होता है तथा जब जीव विशुद्ध हो जाता है, तब उसे मार्गदर्शक की कोई आवश्यकता नहीं रहती।।५८-५९½।। आगे सूतजी कहते हैं कि इसलिये अब मैं वैराग्य में दोष देखने वाले कारणों को बताऊँगा। पाँच प्रकार के दिव्य (देवों से सम्बन्धित) और मनुष्यों

तापप्रीतिविषादानां कार्यं तु परिवर्जनम्। एवं वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत्॥६२॥
अनित्यमशिवं दुःखमिति बुद्ध्यानुचिंत्य च। विशुद्धं कार्यकरणं सत्त्वस्यातिनिषेवया॥६३॥
परिपक्वकषायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति। ततः प्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा॥६४॥
ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः। स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोषान्नुणद्धि वै॥६५॥
प्राणस्थानानि भिंदन्हि छिंदन्मर्माण्यतीत्य च। शैत्यात्प्रकुपितो वायुरूर्द्ध्वं तूत्क्रमते ततः॥६६॥
स चायं सर्वभूतानां प्राणस्थानेष्ववस्थितः। समासात्संवृते ज्ञाने संवृत्तेषु च कर्मसु॥६७॥
स जीवो नाभ्यधिष्ठानः कर्मभिः स्वैः पुराकृतैः। अष्टांप्राणवृत्तिं वै स विच्यावयते पुनः॥६८॥
शरीरं प्रजहन्सोंऽते निरुच्छ्वासस्ततो भवेत्। एवं प्राणैः परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते॥६९॥
यथेह लोके स्वप्ने तं नीयमानमितस्ततः रंजनं तद्विधेयस्य ते तान्यो न च विद्यते॥७०॥
तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम्। शब्दाद्ये विषये दोषदृष्टिर्वै पंचलक्षणे॥७१॥
अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः प्रीतितापविवर्जनम्। वैराग्यकारणं ह्येते प्रकृतीनां लयस्य च॥७२॥

अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेयाः पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम्।
अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूतांताः प्रकृतेर्भवाः॥७३॥

से सम्बन्धित विषयों में अनासक्ति और द्वेषभाव का व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि उनमें दोष दिखायी देते हैं।।५९½-६१।। ताप, प्रीति, विषाद (दुःख) को छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार वैराग्य का आश्रय ग्रहण कर शरीरी (आत्मा) ममता रहित हो जाता है।।६२।। यह संसार अनित्य, अमंगलकारी है और दुःखपूर्ण है। इस प्रकार सत्त्वगुण से निविष्ट बुद्धि से विचार कर कार्य एवं कारण से विशुद्ध तत्त्व को जानकर ही परिपक्व कषाय चित्त होकर अर्थात् निःस्वादुचित्त होकर जीव को समस्त दोषों का दर्शन होता है।।६३-६३½।। उससे महाप्रयाण काल में नैमित्तिक दोषों के कारण शरीर में तीव्र वायु से युक्त ऊष्मा का प्रकोप होता है और वह शरीर में पैदा होनेवाले समस्त दोषों को रोकता है।।६३½-६५।। वह वायु प्राणों के स्थानों को भेदता हुआ तथा मर्मस्थलों का छेदन करता हुआ शीतलता से और अधिक क्रोधित होता हुआ वायु ऊपर की ओर उत्क्रमण करता है।।६६।।

वह यह प्राणवायु सब प्राणियों के स्थानों में अवस्थित है तथा अन्त समय में सबकी यही दशा होती है। संक्षेप से समस्त चेतना एवं किये हुए कर्मों के संकुचित हो जाने पर वह जीव अपने किये गये पूर्व कर्मों के साथ शीर से स्वयं को अलग कर लेता है। आठों अंगोंसे प्राणों के व्यापार को वह समेट लेता है। अतः आठों अंग अपना-अपना काम बन्द कर देते हैं।।६७-६८।। इस शरीर को छोड़ता हुआ जीवात्मा श्वासरहित हो जाता है। इस प्रकार प्राणों द्वारा छोड़ा हुआ व्यक्ति मृत ऐसा कह दिया जाता है।।६९।। जिस प्रकार इस संसार में स्वप्न में इधर-उधर ले जाते हुए जीव को आनन्द प्राप्त होता है, स्वप्न समाप्त होने पर कुछ भी नहीं रहता, वही दशा प्राणों की तथा शरीर की है।।७०।। तृष्णा का समाप्त होना ही तीसरे मोक्ष का लक्षण कहा गया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांच विषयों के प्रति द्वेष एवं बहुत अधिक आसक्ति (लगाव) का न रखना, प्रीति एवं ताप का त्याग ही वैराग्य एवं प्रकृति के लय के कारण कहे गये हैं।७१-७२।। आठ प्रकार की प्रकृतियां जाननी चाहिएँ, जो पहले ही क्रमानुसार कही

वर्णाश्रमाचारयुक्तः शिष्टः शास्त्राविरोधनः। वर्णाश्रमानां धर्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम्॥७४॥
ब्रह्मादीनि पिशाचांतान्यष्टौ स्थानानि देवता। ऐश्वर्यमणिमाद्यं हि कारणं ह्यष्टलक्षणम्॥७५॥
निमित्तमप्रतीघाते दृष्टे शब्दादिलक्षणे। अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम्॥७६॥
क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्जंते गुणमात्रात्मकानि तु। प्रावृट्काले पृथग्मेघं पश्यंतीव सचक्षुषः॥७७॥
पश्यंत्येवं विधाः सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा। खादतश्चान्नपानानि योनीः प्रविशस्तथा॥७८॥
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम्। जीवः प्राणस्तथा लिंगं करणं च चतुष्टयम्॥७९॥
पर्यायवाचकैः शब्दैरेकार्थैः सोऽभिलष्यते।
व्यक्ताव्यक्तप्रमाणोऽयं स वै भुंक्ते तु कृत्स्नशः॥८०॥
अव्यक्तानुग्रहांत च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं च यत्। एवं ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्वै विप्रमुच्यते॥८१॥

गयी हैं। जो अव्यक्त से लेकर पाँचों महाभूतों तक कही जाती हैं। यही आठ प्रकृति के लय हैं। शास्त्र से विरोध न करने वाले वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुयायी शिष्ट कहे जाते हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था के धर्म देवस्थानों की प्राप्ति के कारणभूत हैं। अर्थात् वर्ण और आश्रमों के धर्मों का पालन करने से देवताओं के स्थान प्राप्त होते हैं।।७३-७४।। ब्रह्मा से लेकर पिशाचों तक आठ देव स्थान कहे जाते हैं।[१] अणिमा आदि ईश्वरीय सिद्धियाँ भी आठ हैं।।७५।।

१. हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ, जिह्वा, मुख, नासिका, कान और आँखें, ये आठ अंग हैं। देवस्थानों में रहने पर प्रत्यक्ष रूप में शब्दादि लक्षण प्रतिघातजन्य दुःख नहीं होते। ये आठ रूप, जो क्रमानुसार प्राकृत हैं। वे क्षेत्रज्ञों (आत्माओं) में अनुसरण करते हुए स्थित रहते हैं। उनमें पाँच रूप कुछ गुणमात्रात्मक हैं, अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाँच ये हुए, जो प्रकृति भूत सेन्द्रिय शरीर में रहते हैं तथा तीन हैं—१. अप्रद्वेष अनभिष्वङ्ग (विषयों के प्रति राग-द्वेष का त्याग), २. प्रेम और ताप का त्याग, ३. तृष्णा का विनाश। इस प्रकार ये कुल आठ हुए। ये आठों जो प्रकृतिस्थ पञ्च महाभूत शरीर के गुण हैं, वे क्षेत्रज्ञ आत्मा में भी व्याप्त रहते हैं। जिस प्रकार वर्षाकाल में नेत्र वाले लोग मेघ को जल से पृथक् देखते हैं, उसी प्रकार इस प्रकार के सिद्ध पुरुष जीव को दिव्य चक्षु से देखते हैं। सामान्य लोग जीव को नहीं देख सकते। वह जीवात्मा खाने वाली और अन्न पान करने वाली योनियों में प्रवेश करता है। वे योनियाँ पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों अथवा मनुष्यों की होती हैं। अतः उन नीची-ऊँची सभी योनियों में प्रवेश करता है तथा वह क्रमानुसार उन निम्न और उच्च योनियों में दौड़ता रहा है।।७६-७८½।।

इस क्षेत्रज्ञ को जीव, प्राण, लिङ्ग और कारण आदि शब्दों द्वारा पुकारा जाता है, जिन सबका एक ही अर्थ है—जीवात्मा। व्यक्त (पञ्चभूतात्मक दृश्यमान पदार्थों), अव्यक्त (पंचभूतादि पदार्थों का मूल कारण प्रकृति) इन सबका प्रमाण यह जीवात्मा ही है। व्यक्त और पञ्चमहाभूत पञ्चतन्मात्राएं एकादश इन्द्रियों से अहंकार महत्तत्त्व (बुद्धि युक्त) अव्यक्त (प्रकृति) वाले इस शरीर में जब तक जीवात्मा का प्रवेश नहीं, तब तक उसकी कोई पहचान नहीं, कोई प्रमाण नहीं है। जीवात्मा के अभाव में न कोई खा सकता है, न पी सकता है। यह जीवात्मा ही प्रकृति (शरीर) के माध्यम से खाता-पीता एवं भोग करता है। अतः वह जीवात्मा ही समस्त का भोग करता है।।७८½-८०।। अव्यक्त (प्रधान प्रकृति) की कृपा पर ही क्षेत्रज्ञ (पुरुष) इस शरीर में रहता है। शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर इसको छोड़ना ही पड़ेगा। जब इस रहस्य को समस्त जगत् के इन समस्त कारणों को जो भलीभाँति जान ले, वह प्राणी पवित्र हो जाता है और

नष्टं चैव यथा तत्त्वं तत्त्वानां तत्त्वदर्शने। यथेष्टं परिनिर्याति भिन्ने देहे सुनिर्वृते॥८२॥
भिद्यते करणं चापि ह्यव्यक्तज्ञानिनस्ततः। मुक्तो गुण शरीरेण प्राणाद्येन तु सर्वशः॥८३॥
नान्यच्छरीरमादत्ते दग्धे बीजे यथांकुरः। ज्ञानी च सर्वसंसाराविज्ञशारीरमानसः॥८४॥
ज्ञनाच्चतुर्दशाबुद्धः प्रकृतिस्थो निवर्तते। प्रकृतिं सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते॥८५॥
असद्भावोऽनृतं ज्ञेयं सद्भावः सत्यमुच्यते। अनामरूपं क्षेत्रज्ञं नामरूपं प्रचक्षते॥८६॥
यस्मात्क्षेत्रं विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते। क्षेत्रं प्रत्ययते यस्मात्क्षेत्रज्ञः शुभ उच्यते॥८७॥
क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रं तज्ज्ञैर्विभाष्यते। क्षेत्रं त्वत्प्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञः प्रत्ययः सदा॥८८॥
क्षपणात्कारणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च। भोज्यत्वविषयत्वाच्च क्षेत्रं क्षेत्रविदो विदुः॥८९॥
महदाद्यं विशेषांतं सवैरूप्यं विलक्षणम्। विकारलक्षणं तद्वै सोऽक्षरः क्षरमेति॥९०॥

उसे लोग विप्र की संज्ञा देते हैं।।८१।। संसार के सभी कारणों एवं तत्त्वों का भलीभाँति दर्शन कर लेने पर जीवात्मा यथेष्ट रूप से शरीर छोड़कर बाहर निकलता है। अव्यक्त (प्रकृति) और उसके कार्यभूत व्यक्त (शरीर) का ज्ञान होने के कारण प्राणी के अन्य जन्मादि कारणों का विनाश हो जाता है। गुणों के परिणामों से वह मुक्त हो जाता है और इस प्रकार शान्तिपूर्वक प्राणादि छोड़ने के बाद वह शरीर एवं मानस कर्मसूत्रों के सर्वथा विनष्ट हो जाने पर बीज के भस्म हो जाने पर अंकुर न निकलने की भाँति वह अन्य शरीर को धारण नहीं करता।।८२-८३½।। समस्त संसार का ज्ञान रखने वाला वह शुद्ध जीवात्मा है। अर्थात् जीवात्मा ज्ञान स्वरूप है, वही ज्ञानी है तथा यह शरीरयुक्त जो मानस है, वह अविज्ञ है, इस आत्मा के संयोग से ही उसमें ज्ञान की उत्पत्ति होती है। चौदह प्रकार के ज्ञानों से अच्छी तरह परिचित होकर वह शुद्धात्मा प्रकृति से निवृत्त होता है।।८३½-८४½।। विद्वान् लोग प्रकृति को ही सत्य कहते हैं। प्रकृति के विकारों (महत्तत्त्व, अहंकार, मन सहित दशों इन्द्रियों, पंचतन्मात्राओं एवं पञ्चमहाभूतों) को असत्य कहते हैं, जिनका असद्भाव है, अर्थात् जो विनाशशील है, वे असत्य हैं तथा जो नित्य एवं जो सदा रहने वाला है, वह सत्य है। इस प्रकार प्रकृति सदा रहने वाली एवं अविनाशशील है। वह क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) जिसका न कोई नाम है, न कोई रूप है, वही जीवात्मा जब प्रकृति से मिल जाता है, तब वह नाम और रूप वाला है।।८४½-८६।।

क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) क्षेत्र (प्रकृति) को जानता है, इसलिए उसे क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। उस क्षेत्र को भलीभाँति जानने के कारण क्षेत्र क्षेत्रज्ञ शुभ कहा जाता है।।८७।। जीवगण इसीलिए शुभ क्षेत्रज्ञ का स्मरण करते हैं। क्षेत्र प्रत्यय (ज्ञान) है, तो क्षेत्रज्ञ सदैव प्रत्ययी (ज्ञानी) है।।८८।। क्षय, करण, क्षतत्राण, भोज्य एवं विषयत्व के कारण क्षेत्रज्ञ लोगों ने उसे क्षेत्र नाम दिया है तथा वह नाम उचित है; क्योंकि यह शरीर (क्षेत्र) क्षय = नाशशील, करण जीवात्मा है, क्षतत्राण है, क्योंकि जीवात्मा की क्षत से रक्षा करता है तथा यह जीवात्मा का यह शरीर भोज्य पदार्थ है, जीवात्मा भोक्ता है तथा यह शरीर उस आत्मा का विषय है। आत्मा विषयी है, अतः इस शरीर को उचित ही क्षेत्र नाम दिया गया है। जैसे किसान और उसका खेत किसान है, तो खेत है किसान, किसान नहीं तो खेत नहीं किसान ही खेत में बीज बोता है। अतः जीवात्मा किसान क्षेत्रज्ञ है और यह शरीर (प्रकृति) क्षेत्र (खेत) है।।८९।। रूपरहितता वाले महत्तत्त्व बुद्धि से लेकर विशेष तक सभी पदार्थ समूह विकार कहे जाते हैं। उन सभी विकारों, इन्द्रियों, पञ्चभूतों, तन्मात्राओं से बने शरीरों में पुनः क्षरण होता देखा गया है, इसीलिए उन्हें क्षर कहा जाता है।।९०।।

तमेवानुविकारं तु यस्माद्वै क्षरते पुनः। तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते॥९१॥
संसारे नरकेभ्यश्च त्रायते पुरुषं च यत्। दुःखत्राणात्पुनश्चापि क्षेत्रमित्यभिधीयते॥९२॥
सुखदुःखमहंभावाद्भोज्यमित्यभिधीयते। अचेतनत्वाद्विषयस्तद्विधर्मा विभुः स्मृतः॥९३॥
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतं तु तत्। अक्षरं तेन वाप्युक्तम क्षीणत्वात्तथैव च॥९४॥
यस्मात्पूर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते। पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते॥९५॥
पुरुषं कथय स्वाथ कथितोऽज्ञैर्विभाष्यते। शुद्धो निरंजनाभासो ज्ञाता ज्ञानविवर्जितः॥९६॥
अस्तिनास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गतः स्थितः।
नैर्हेतुकात्त्वनिर्देश्यादहस्तस्मिन्न विद्यते॥९७॥
शुद्धत्वान्न तु दृश्यो वै द्रष्टृत्वात्समदर्शनः। आत्मप्रत्ययकारित्वादन्यूनं वाप्यहेतुकम्॥९८॥
भावग्राह्यमनुमानच्चिंतयन्न प्रमुह्यते। यदा पश्यति ज्ञातारं शांतार्थं दर्शनात्मकम्॥९९॥

महत्तत्त्व (बुद्धि) विशेष पर्यन्त इनका कोई रूप नहीं, न ही इनका कोई विशेष लक्षण ही है। इनका लक्षण है विकार अर्थात् ये सब प्रकृति के विकार हैं। इसीलिये ये क्षर और अक्षर दोनों कहे जाते हैं। इनमें प्रकृति अक्षर है, क्योंकि उसका क्षरण नहीं होता तथा अन्य सभी महत्तत्त्व से लेकर पञ्चमहाभूतों तक सभी क्षर हैं, क्योंकि उनमें क्षरण होता रहता है।।९१।। संसार में जो जीवात्मा (पुरुष) की नरक से रक्षा करता है तथा जो जीवात्मा पुरुष की दुःख से, दुःखों से रक्षा करता है, इसलिए इस शरीर को क्षेत्र कहा जाता है।।९२।। सुख और दुःखों का अहंभाव से भोग करता है, अर्थात् मैं भोगता हूँ, इस भाव से सुख और दुःखों को भोग करता है, इसलिए क्षेत्र को भोग्य कहा जाता है। पुरुष अचेतन विषय होने के कारण वह सर्वव्यापी विभु नाम से पुकारा जाता है।।९३।।

अब पुरुष (जीवात्मा) के विषय में बताते हैं कि जो न कभी नष्ट होता है और न कभी घटता है। जो अपने विकारों से फैलता बढ़ता है, इसलिए अक्षर नाम से भी विख्यात है, अतः न क्षीण होने के कारण वह अक्षर कहा जाता है।।९४।। पुर में (शरीर में) सदा शयन करता (पुरिशेते) इस व्युत्पत्तिजन्य अर्थ के अनुसार उस जीवात्मा का नाम पुरुष पड़ा है। पुर का प्रत्ययी होने के कारण भी इस जीवात्मा को पुरुष कहा गया है।।९५।।

अब पुरुष के लक्षण क्या हैं? उसे किस रूप में जानते हैं? इसे बता रहे हैं, सुनिये। वह पुरुष शुद्ध, निष्पाप, प्रकाशस्वरूप और ज्ञान एवं अज्ञान से रहित है।।९६।। वह है, नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता, अतः है, नहीं है, इन विशेषणों से रहित है (उसके लिए, वह बँधा हुआ) है, मुक्त (छूटा हुआ है) चलता है, नहीं चलता है, ये कोई भी विशेषण लागू नहीं होते। वह हेतुवाद से रहित है, उसका कोई कारण नहीं, न ही वह किसी का कारण है। उस पुरुष में अहंभाव नहीं है।।९७।। वह परम शुद्ध है। अपनी परम शुद्धता के कारण वह देखने योग्य नहीं है, अर्थात् वह पुरुष इतना शुद्ध (सूक्ष्म) है कि देखा भी नहीं जा सकता है; परन्तु वह सबको देखने वाला है अर्थात् वह किसी को दिखायी नहीं देता; परन्तु वह सबको देखता है, सबको देखने वाला होने के कारण वह समदर्शन है, अर्थात् वह सर्वत्र समान देखता है। यहपुरुष स्वयं ही आत्मज्ञान करने वाला है। वह महान्, है, विशाल है, वह कम नहीं है तथा वह अहैतुक है, अर्थात् उसका कोई कारण नहीं है।।९८।। वह भावनाओं द्वारा ग्राह्य तथा अनुमानों और चिन्तनों द्वारा ज्ञेय है। इन उपायों द्वारा देखे जानने वाले मोह में नहीं फँसते।।९८½।। इस दृश्य एवं अदृश्य विश्व

दृश्यादृश्येषु निर्देश्यं तदा तद्दुर्द्धरं वरम्। विज्ञाता न च दृश्येत पृथक्त्वेनेह सर्वशः॥१००॥
स्वेनात्मना तथात्मानं कारणात्मा नियच्छति। प्रकृतौ कारणे तत्र स्वात्मन्येवोपतिष्ठति॥१०१॥
अस्तिनास्तीति सोऽन्यो वा इहामुत्रेति वा पुनः।
एकत्वं वा पृथक्त्वं वा क्षेत्रज्ञः पुरुषोऽपि वा॥१०२॥
आत्मा वा स निरात्मा वा चेतनोऽचेतनोऽपि वा।
कर्त्ता वा सोऽप्यकर्त्ता वा भोक्ता वा भोज्यमेव च॥१०३॥
यद्गत्वा न निवर्त्तते क्षेत्रज्ञं तु निरंजनम्। अवाच्यं तदनाख्यानादग्राह्यं वादहेतुभिः॥१०४॥
अप्रतर्क्यमचिंत्यत्वादवार्यत्वाच्च सर्वशः। नालप्यं वचसा तत्त्वमप्राप्यं मनसा सह॥१०५॥
क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शांते क्षीणे निरंजने। व्यपेतसुखदुःखे च निरुद्धे शांतिमागते॥१०६॥
निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यं न विद्यते।
एतौ संहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ ततः पुनः॥१०७॥
सृज्यते ग्रसते चैव व्यक्तौ पर्यवतिष्ठते। ज्ञेत्रज्ञाधिष्ठितं सर्वं पुनः सर्गे प्रवर्त्तते॥१०८॥
अधिष्ठानं प्रपद्येत तस्यांते बुद्धिपूर्वकम्। साधर्म्यवैधर्म्यकृतः संयोगो विदितस्तयोः।
अनादिमांश्च संयोगो महापुरुषजः स्मृतः॥१०९॥

प्रपंच में एकमात्र निर्देश्य परम श्रेष्ठ, ज्ञानमय, शान्तिमय, सर्वज्ञ पुरुष को जब प्राणी देखता है, तभी वह समस्त तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करता है तथा तभी उसे वास्तविक शान्ति उपलब्ध होती है। विशेष ज्ञान रखने वाला वह जीवात्मा इस संसार में सबको अलग-अलग रूप में नहीं देखता है।।१००।। आत्मा द्वारा वह कारणात्मा ब्रह्म से संयुक्त होता है। प्रकृति एवं कारण में वह सर्वत्र अपनी आत्मा में ही उपस्थित होता है।।१०१।। इस लोक अथवा परलोक में वह है और नहीं भी है, वह एक है, अथवा अनेक है, क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है।।१०२।। वह आत्मवान् है अथवा निरात्मा है, चेतन है अथवा अचेतन है, कर्ता है अथवा अकर्ता है, भोक्ता है अथवा भोज्य है।।१०३।। वह पुरुष (आत्मा) जो जाकर के फिर नहीं लौटता है, शरीर से निकलने के बाद कितने ही प्रयास करो, फिर नहीं लौटता है। वह क्षेत्रज्ञ निरंजन (निष्पाप) है। उसका कोई नाम नहीं है, इसलिए उसका कोई आख्यान (वर्णन) नहीं किया जा सकता, उसका कोई हेतु नहीं होने के कारण वह अग्राह्य है।।१०४।। सब प्रकार के चिन्तन का विषय न होने के कारण तथा कहीं न हटाया जाने के कारण वह जीवात्मा तर्क का भी विषय नहीं है, अतः वह ऐसा है, वैसा है, यह तर्क भी नहीं किया जा सकता है। वाणी से उसको बताया नहीं जा सकता। मन के साथ उसका तत्त्व प्राप्त करने योग्य नहीं है।।१०५।।

जब वह क्षेत्रज्ञ (पुरुष) निर्गुण है, शुद्ध है, शान्त है, क्षीण है, निर्दोष, सुख और दुःख से परे है, शक्ति आने पर निरुद्ध है तथा निरात्मक है, इसलिए वह बताने योग्य अथवा न बताने योग्य नहीं है।।१०६-१०६½। व्यक्त (पञ्चभूतादि तत्त्व) एवं अव्यक्त (प्रकृति) का संहार और विस्तार यह पुरुष ही करता है। क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित यह पुरुष ही सृष्टि की रचना करता है और उसे ग्रस लेता है। उसके बाद पुनः सृष्टि की रचना करता है। यह पुरुष ही व्यक्ति में पर्यवस्थित रहता है।।१०६½-१०८।। बुद्धिपूर्वक अहंकार तन्मात्राओं सेन्द्रिय पंच महाभूतों की सृष्टि एवं लय उसी के अधिष्ठान भूत होते हैं। प्रकृति और पुरुष की समानता और असमानता घटित होती है। उसका संयोग अनादि है।

यावच्च सर्गप्रतिसर्गकालस्तावज्जगत्तिष्ठति संनिरुध्य।
पूर्वं हि तस्यैव च बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तते तत्पुरुषार्थमेव॥११०॥
एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्वा प्राधानिकी चेश्वरकारिता वा।
अनाद्यनंता ह्यभिमानपूर्वकं वित्रासयन्ती जगदभ्युपैति॥१११॥
इत्येष प्राकृतः सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः। उक्तो ह्यस्मिंस्तदात्यंतं कालं ज्ञात्वा प्रमुच्यते॥११२॥
इत्येष प्रतिसर्गो वस्त्रिविधः कीर्त्तितो मया।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्त्तयाम्यहम्॥११३॥

इति श्रीब्रह्मांडे महापुराणे वायुप्रोक्ते उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे प्रतिसर्गो नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

वह कब हुआ, यह आदिकाल ज्ञात नहीं है, वह चिरकाल से तथा वह संयोग महापुरुष के द्वारा उत्पन्न किया हुआ स्मरण किया गया है।।१०९।। जब तक सृष्टि और प्रलय काल होता है, तब तक वह पुरुष जगत् को सम्यक् प्रकार से रोककर स्थित रहता है। उस अवस्था में पुरुष से अबुद्धिपूर्वक यह सृष्टि प्रवर्तित होती है, उसे पुरुष का पुरुषार्थ ही मानते हैं। संसार की इस सृष्टि एवं प्रलय की प्रक्रिया को कोई तो ईश्वरकृत मानता है, तो कोई प्रकृतिकृत। यह प्रकृतिकृत हो या ईश्वरकृत; परन्तु अनादि एवं अनन्त है। संसार को अभिमानपूर्वक विकसित करती हुई, यह प्रकृति ही संसार की प्रतिज्ञा करती हैं अर्थात् यह प्रकृति जब विशेष रूप से अपने सत्त्वगुण से विशेषतः त्रासित होती है, तब संसार की रचना (जीवन की उत्पत्ति) करती है।।१११।।

इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग तृतीय हेतु का लक्षण है, जिसका वर्णन किया गया है। इसमें अत्यन्त निष्ठा रखता हुआ व्यक्ति अत्यन्त काल को जानकर मुक्ति प्राप्त करता है। सूतजी ने कहा कि इस प्रकार मैं आप लोगों से तीन सर्गों की चर्चा विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुका, अब आगे क्या वर्णन करना है? आप लोग बताइए।।११२-११३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त उत्तर भाग चतुर्थ उपोद्घात पाद तृतीय अध्याय प्रतिसर्ग वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे

ब्रह्माण्डावर्तनाम

चतुर्थोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

श्रुतं समुहदाख्यानं भवता परिकीर्त्तितम्। प्रजानां मनुभिः सार्द्धं देवानामृषिभिः सह॥१॥
पितृगंधर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम्। दैत्यानां दानवानां च यक्षाणामेव पक्षिणाम्॥२॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि विविधा धर्मनिश्चयाः। विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम्॥३॥
तत्कथ्यमानमस्माकं भवता श्लक्ष्णया गिरा। मनः कर्णसुखं सौते प्रीणात्यमृतसन्निभम्॥४॥
एवमाराध्य ते सूतं सत्कृत्य च महर्षयः। पप्रच्छुः सात्रिणः सर्वे पुनः सर्गप्रवर्त्तनम्॥५॥
कथं सूत महाप्राज्ञ पुनःसर्गः प्रपत्स्यते। बन्धेषु संप्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये॥६॥
विकारेष्वविसृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते। अप्रवृत्ते ब्रह्मणा तु सहसा योज्यगैस्तदा॥७॥
कथं प्रपत्स्यते सर्गस्तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्। एवमुक्तस्ततः सूतस्तदाऽसौ लोमहर्षणः॥८॥
व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्गप्रवर्त्तनम्। अत्र वो वर्त्तयिष्यामि यथा सर्गः प्रपत्स्यते॥९॥

श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग चतुर्थ उपसंहार पाद

अध्याय-४

ब्रह्माण्डावर्त वर्णन

ऋषियों ने सूतजी से कहा—हे सूतजी! आप द्वारा वर्णित मनुओं और ऋषियों के साथ देवताओं और प्रजाओं के महान् आख्यान को हमने सुना।।१।। पितृगण, गन्धर्वों, भूतगणों, पिशाचों, सर्पगणों, राक्षसों, दैत्यों, दानवों, यक्षों, पक्षियों के अति अद्‌भुत कर्मों, उनके अनेकों प्रकार के धर्मनिश्चयों और उनकी विचित्र कथाओं को तथा उनके अग्रजन्मों के वर्णनों को आपने हमें मधुर वाणी से कहा है। जो कथाएँ मन के लिए सुखकर हैं तथा मन को अमृत के समान प्रसन्न करती हैं।।२-४।। इस प्रकार महात्मा सूतजी की आराधना करके और उनका सत्कार करके उन सब याज्ञिक महर्षियों ने सूतजी से पूँछा।।५।। कि हे महाप्राज्ञ सूतजी! प्रलयकाल में जब सब सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण समान हो जाते हैं, संसार अन्धकारमय हो जाता है, तब पुनः सृष्टि की रचना कैसे होगी।।६।। प्रलयकाल में प्रकृति के समस्त विकारों महत्तत्त्व, अहंकार, एकादशेन्द्रिय, पंचतन्मात्राओं, पञ्चमहाभूतों को जब अव्यक्त प्रकृति अपने में विलीन कर लेती है, तब ब्रह्मा के अप्रवृत्त रहने पर सहसा पदार्थों के योग से कैसे सृष्टि होगी? उस तथ्य को कृपया पूँछने वाले हमको बताइए।।७-७½।

ऋषियों ने जब इस प्रकार कहा, तब वे लोमहर्षण सूतजी प्रलय के बाद पुनः सृष्टि की रचना होने की व्याख्या करने का उपक्रम करने लगे।।७½-८½।। सूतजी बोले कि यहाँ अब मैं जिस प्रकार पुनः सृष्टि की रचना होती है,

पूर्ववत्स तु विज्ञेयः समात्तान्निबोधत। दृष्टेनैवानुमेयं च तर्कं वक्ष्यामि युक्तितः॥१०॥
यस्माद्वाचो निवर्त्तंते त्वप्राप्य मनसा सह। अव्यक्त वत्परोक्षत्वाद्गहनं तद्दुरासदम्॥११॥
विकारैः प्रतिसंसृष्टो गुणः साम्येन वर्त्तते। प्रधानं पुरुषाणां च साधर्म्येणैव तिष्ठति॥१२॥
धर्माधर्मो प्रलीयते ह्यव्यक्ते प्राणिनां सदा। सत्त्वमात्रात्मको धर्मो गुणे सत्त्वे प्रतिष्ठितः॥१३॥
तमोमात्रात्मको धर्मो गुणे तमसि तिष्ठति। अविभागेन तावेतौ गुणसाम्ये स्थितावुभौ॥१४॥
सर्वं कार्यं बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते। अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान्गुणान्॥१५॥
एवं तानभिमाने प्रपत्स्य[१]ति पुनस्तदा। यदा प्रवर्त्तितव्यं तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः॥१६॥

भोज्यभोक्तृत्वसंबंधाः प्रपत्स्यंते च तावुभौ।
तस्मादक्षरमव्यक्तं साम्ये स्थित्वा गुणात्मकम्॥१७॥

क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तत्र वैषम्यं भजते तु तत्। ततः प्रपत्स्यते व्यक्तं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः॥१८॥
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकारं जनयिष्यति। महदाद्यं विशेषांतं चतुर्विंशगुणात्मकम्॥१९॥

वह बताऊँगा। यह तो पूर्व में भी पूर्व प्रसंगों की भाँति वह भी जानने योग्य है। आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिये।।८½-९½।। प्रत्यक्ष प्रमाण से जो अनुमान करने योग्य है, जिसको मन से भी प्राप्त न करके वाणी भी नहीं बता सकती है। उसे युक्तिपूर्वक तर्क के साथ वर्णन करूँगा।।९½-१०½।।

यह प्रकृति परोक्ष होने के कारण अव्यक्त के समान है, किसी भी इन्द्रिय से इसे जाना नहीं जा सकता तथा किसी भी प्रकार से इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकृति के जितने भी महत्तत्व, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चतन्मात्राएँ तथा पाँच महाभूत, ये तेईस विकार हैं, उन सब विकारों से प्रकृति सदैव मिली हुई रहती है, अर्थात् जो गुण प्रकृति में हैं, वे ही गुण उसके विकारों में वर्तमान रहते हैं। प्रकृति और उसके विकारों के गुणों में समानता रहती है। पुरुषों की प्रकृति साधर्म्य से स्थित रहती है, अर्थात् जो-जो गुण प्रकृति में होते हैं, वे गुण पुरुष में समान रूप से समाविष्ट हो जाते हैं।।१०½-१२।। अव्यक्त (प्रकृति) में प्राणियों के धर्म और अधर्म सदा विलीन हो जाते हैं। प्रकृति के तीन गुण हैं, सत्त्व, रजस् और तमस्। सत्त्वमात्रात्मक धर्म सत्त्वगुण में स्थित रहता है। तमोमात्रात्मक धर्म तमोगुण में स्थित रहता है। बिना विभाग किये हुए ये दोनों गुण सत्त्वगुण और तमोगुण समानता से स्थित रहते हैं।।१३-१४।। सृष्टि में सब कार्य बुद्धि से पूर्व जो प्रकृति तत्त्व है, वही करता है। अबुद्धि पूर्व क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) उन गुणों को अपने में अधिष्ठित करता है, अर्थात् जो प्रकृति के गुण हैं, उन्हीं गुणों को आत्मा स्वीकार करता है।।१५।। इस प्रकार जब क्षेत्रज्ञ प्रकृति के साथ मिलता है, तो बुद्धि से संयुक्त है और फिर तब अभिमान (अहंकार) से भी मिलता है, जब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ (प्रकृति और पुरुष) दोनों का मिलन होता है, तब भोज्य और भोक्ता सम्बन्ध स्थापित होता है।।१५½।। इसलिए तीन गुणों वाला, कभी नष्ट न होने वाला अव्यक्त समानता में स्थित होकर जब पुरुष में अधिष्ठित होता है, तब उसमें विषमता पैदा हो जाती है। उसके बाद प्रकृति और पुरुष दोनों व्यक्त (सेन्द्रिय पञ्चतत्त्वभूत शरीर) में अधिष्ठित होंगे।।१५½-१८।। जब प्रधान तत्त्व (प्रकृति) क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित हो जाती है, तब यह प्रकृति महदादि से पञ्चभूत

---

१. आत्मनेपदंनार्षम्।

क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रवत्स्यंतः[1]। आदिदेवः प्रधानस्यानुग्रहाय प्रचक्षते॥२०॥
अनाद्यौ वरमुत्पादौ उभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ। अनादिसंयोगयुतौ सर्वं क्षेत्रज्ञमेव च॥२१॥
अबुद्धिपूर्वकं युक्तमशक्तौ तु वरौ तदा। अप्रत्ययममोघं च स्थितावुदकमत्स्यवत्॥२२॥
प्रवृत्तपूर्वर्तौ तौ पूर्वं पुनः सर्वं प्रपत्स्यते। अज्ञा गुणैः प्रवर्त्तते रजःसत्त्वतमोऽभिधैः॥२३॥
प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नो महत्त्वभूतादिविशेषतां च।
विशेषतां चेंद्रियतां च याति गुणावसानौषधिभिर्मनुष्यः॥२४॥

पर्यन्त समस्त व्यक्त शरीर में विकार पैदा करेगी। अर्थात् ये सब एक-दूसरे के विकार से पैदा होते हैं। भाव यह कि पुरुषाधिष्ठित प्रकृति में जब सत्त्व को उद्रेक हुआ, तब प्रकृति का विकार, जो त्रिगुणात्मक सत्त्व, रजस् और तमस् युक्त है, वह त्रिगुणात्मक होने के कारण पञ्चमहाभूतों और इन्द्रियों का कारण है। प्रकृति से जैसे महत्तत्त्व व्याप्त है, उसी तरह महत्तत्त्व से अहंकार व्याप्त है। भूतादि रूप तामस अहंकार ने विकृत होकर शब्द तन्मात्रात्मक आकाश को पैदा किया। शब्द तन्मात्रा में विकार पैदा हुआ तो स्पर्श तन्मात्रात्मक वायु की उत्पत्ति हुई, तब आकाश ने वायु को आवृत किया, फिर वायु विकृत हुआ, तब तेजमात्रात्मक अग्नि को उत्पन्न किया, जो वायु से आवृत रहा, फिर अग्नि विकृत हुआ तो उसने रसमात्रात्मक जल को उत्पन्न किया, जो अग्नि से आवृत रहा, फिर जब जल में विकृति पैदा हुई तो उसने गन्धतन्मात्रात्मक पृथ्वी को पैदा किया, जो पृथ्वी जल से आवृत रही। फिर उधर अहंकार राजसिय से मन और दश इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार से इन चौबीस तत्त्वों की उत्पत्ति वैकारिक है और सभी महदादि से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सभी चौबीस तत्त्व गुणात्मक हैं। ये सभी प्रकृति के विकार हैं, इसलिए प्रकृति के गुणों से युक्त हैं।।१९।। क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) प्रधान (प्रकृति) में वर्तमान रहता है तथा वह सबसे पहले उत्पन्न है, वह जीवात्मा आदिदेव है तथा वह सृष्टि रचना करने के लिए प्रकृति पर अनुग्रह करता है।।२०।।

ये दोनों ही अव्यक्त और क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्रकृति और पुरुष या यों कहिये कि सेन्द्रिय पञ्चभूतात्मक शरीर का मूल (प्रधान तत्त्व) (प्रकृति) और आत्मा ये दोनों ही अनादि हैं। इनका आदि काल नहीं है, दोनों संसार को पैदा करने वाले हैं और दोनों सूक्ष्म स्मरण किये गये हैं तथा इनका संयोग अनादिकाल से चला आ रहा है तथा सब कुछ क्षेत्रज्ञ पर ही निर्भर है। क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) के रहने पर ही प्रकृति का अस्तित्त्व है। जीवात्मा के रहने पर प्रकृति सक्रिय होती है, न रहने पर उसके कोई क्रिया नहीं होती।।२१।।

जब तक प्रकृति में क्षेत्रज्ञ की व्याप्ति नहीं होती, जब तक प्रकृति में क्षेत्रज्ञ अधिष्ठित नहीं होता, तब तक उस प्रकृति का विकृत तत्त्व बुद्धि भी कार्य नहीं करता अर्थात् प्रकृति अबुद्धिपूर्वक रहती है तथा प्रकृति अशक्त रहती है। क्षेत्रज्ञ के बिना अव्यक्त (प्रकृति) ज्ञानविहीन तथा अमोघ है तथा उसकी स्थिति जल और मछली के समान है, जैसे मछली जल के बिना जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार यह प्रकृति (अव्यक्त) क्षेत्रज्ञ के बिना नहीं रह सकती।।२२।। प्रवृत्ति से पूर्व अर्थात् सृष्टि करने से पहले दोनों पूरी तरह एक-दूसरे में व्याप्त होते हैं, वह ज्ञानहीन पुरुष प्रकृति के रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण से प्रवृत्त होता है।।२३।। प्रवृत्ति के समय महत्तत्त्व (बुद्धि) से लेकर पंचमहाभूतादि विशेषों तक सभी तत्त्व रजोगुण से आवृत होते हैं तथा रजोगुण आवृत महत्तत्त्व बुद्धि भूतादि विशेषता को प्राप्त होती

१. बुद्धिः स्यसनोरिति परस्मैपदम्।

सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम्।
रजःसत्त्वतमोव्यक्ता विधर्माणः परस्परम्॥२५॥
आद्यंतं वै प्रपत्स्यंते क्षेत्रमज्ञाम्बु सर्वशः। संसिद्धकार्यकरणा उत्पद्यंतेऽभिमानिनः॥२६॥
सर्वे सत्त्वाः प्रपद्यंते ह्यव्यक्तात्पूर्वमेव च।
प्राक्सृतौ ये त्वसुवहाः साधकाश्चाप्यसाधकाः॥२७॥
असंशांतास्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैः सह। कार्याणि प्रतिपत्स्यंते उत्पत्स्यन्ते पुनः पुनः॥२८॥
गुणमात्रात्मकावेव धर्माधर्मौ परस्परम्। आरप्स्यंते हि चान्योन्यं वरेणानुग्रहेण वा॥२९॥
शर्वस्तुल्यप्रसृष्ट्यर्थं सर्गादौ याति विक्रियाम्। गुणास्तं प्रतिधीयंते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥३०॥
गुणास्ते यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्या प्रतिपेदिरे। तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥३१॥

है, ठीक वैसे ही, और फिर वह भूतादि विशेषता इन्द्रियता को प्राप्त करती है, अर्थात् जब तन्मात्रात्मक पञ्चभूतों की उत्पत्ति हो जाती है, तब सबके संकल्प-विकल्पात्मक मन का अहंतत्त्व से प्रादुर्भाव होता है। फिर शब्द तन्मात्रा के ज्ञानार्थ श्रोत्रेन्द्रिय का रसतन्मात्रा के ज्ञानार्थ त्वगिन्द्रिय का फिर रूपतन्मात्रात्मक को देखने के लिए नेत्रों का इस तन्मात्रात्मक जल के स्वाद के लिए जिह्वा का तथा गन्धतन्मात्रात्मक पृथ्वी के ज्ञानार्थ घ्राणेन्द्रिय का प्रादुर्भाव हुआ। तदनुसार पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी पैदा हुईं, जो सब पुरुष से अधिष्ठित हैं तथा प्रकृति के गुणों से अभिभूत हैं तथा गुणों की समाप्ति की औषधियों से मनुष्य गमन करता है।।२४।। सत्य का मनन करने वाले ध्यानी लोग इस प्रकृति को सत्त्व, रजस् और तमस् युक्त विशेष धर्म वाली तथा एक-दूसरे की कारण मानते हैं।।२५।। ये क्षेत्र (प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (पुरुष) आदि से अन्त तक सब प्रकार से ये अभिमानी कार्य और कारण के क्रम से उत्पन्न होते चले जाते हैं तथा कार्यकारण ही इनकी सफलता का आधार है।।२६।। अव्यक्त से पूर्व ही सब सत्त्वगुण प्रपन्न हो जाते हैं, अर्थात् जब प्रकृति सृष्टि के लिए प्रवृत्त होती है, तब उसमें सत्त्वगुण का उद्रेक होता है। सृष्टि से पहले प्राणों को वहन करने वाले सत्त्वगुण साधक और असाधक दोनों होते हैं।।२७।। अर्थात् सत्त्वगुण प्राणों को देने वाले हैं, अर्थात् सत्त्वगुण का उद्रेक है, तो शरीर साधक होता है, नहीं होने पर असाधक होता है।।२७।।

ये सब अभिमानी महत्तत्त्व से लेकर पञ्चभूत पर्यन्त सभी स्थान और प्रकरणों के साथ पूर्णतः अशान्त निश्चेष्ट रहते हैं और फिर जब सत्त्वगुण से एक-दूसरे का कार्य कारण बनते हुए कार्य रूप में करण से निकलते हैं और कार्य को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार पुनः कार्यों को उत्पन्न करते हैं।।२८।। ये महदादि २४ तत्त्व कार्यकारण के रूप में गुणमात्रात्मक होते हैं। जो गुण कारण में होता है, वही गुण कार्य में आता है। यथा प्रकृति में जो गुण है, वही बुद्धि तत्त्व में होता है, फिर उसके कार्य, अहंतत्त्व में रहता है, उसके बाद उसके धर्म और अधर्म भी कार्यकारणात्मक होते हैं, जो धर्म या अधर्म कारण में है, वह कार्य में भी रहता है, यह तो प्रकृति का गुण ही है। इस प्रकार ये सभी तत्त्व परस्पर श्रेष्ठता और अनुग्रह के द्वारा सृष्टि का आरम्भ करते हैं।।२९।। भगवान् शर्व महादेव तुल्य सृष्टि करने के लिए सृष्टि के आदि में विशेष क्रिया को प्राप्त होते हैं, अर्थात् एक विशेष क्रिया करते हैं। वे उस व्यक्ति में उस गुण का प्रतिधान कर देते हैं, जो उनको अच्छा लगता है।।३०।। वे गुण तथा जो कर्म पूर्व सृष्टि में प्रतिपादित किये थे, वे ही गुण एवं कर्म पुनः पुनः सृष्टि करते हुए सिद्ध किये जाते हैं।।३१।।

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते। तद्भाविताः प्रपद्यंते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥३२॥
महाभूतेषु नानात्वमिंद्रियार्थेषु मूर्त्तिषु। विप्रयोगश्च भूतानां गुणेभ्यः संप्रवर्त्तते॥३३॥
इत्येष वो मया ख्यातः पुनः सर्गः समासतः।
समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम्॥३४॥
अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात्। प्रधानपुरुषाभ्यां तु जायते च महेश्वरः॥३५॥
स पुनः संभावयिता जायते ब्रह्मसंज्ञितः। सृजते स पुनर्लोकानभिमान गुणात्मकान्॥३६॥
अहंकारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि चात्मनः। युगपत्संप्रवर्त्तते भूतान्येवेंद्रियाणि च॥३७॥
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवर्त्तते। विस्तरावयवस्तेषां यथाप्राज्ञं यथाश्रुतम्।
कीर्त्त्यतो वो यथापूर्वं तथैवाप्युपधार्यताम्॥३८॥
एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्तिं सुस्थितिं चाप्ययं च।
तस्मिन्सत्रेऽवभृथं प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः प्राप्नुवंति॥३९॥
यथा यूयं विधिना देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृतं प्राप्य शुद्धाः।
त्यक्त्वा देहानायुषोंऽते कृतार्थाः पुण्यं लोकं प्राप्य मोदध्वमेवम्॥४०॥

हिंसक, अहिंसक, कोमल स्वभाव, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य और असत्य इन सब भावों से युक्त गुण उस व्यक्ति में भर दिये जाते हैं, जो जिसको अच्छे लगते हैं।।३२।। पञ्च महाभूतों में इन्द्रियों के विषय मूर्तियों में भूतों का वियोग गुणों से सम्यक् रूप से प्रवृत्त होता है।।३३।।

सूतजी ऋषियों से बोले कि इस प्रकार मैंने संक्षेप में पुनः सृष्टि की रचना को बताया है। अब मैं संक्षेप से ही ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन करूँगा।।३४।। उस अव्यक्त कारण प्रकृति (Nature) जो कि नित्य है, जिसका कभी नाश नहीं है। जो सद् और असद् आत्मक है, अर्थात् वह है अथवा नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। वही प्रकृति अव्यक्त अथवा प्रधान कही जाती है, अतः उस प्रकृति से तथा पुरुष से महेश्वर पैदा होते हैं।।३५।। फिर वे महेश्वर उत्पन्न होकर ब्रह्म की संज्ञा प्राप्त करते हैं, अर्थात् ब्रह्मा नाम से पुकारे जाते हैं। उसके बाद अभिमान गुण वाले लोकों की रचना करते हैं।।३६।।

तब वे अपने महत्तत्त्व (बुद्धि) से अहंकार को पैदा करते हैं और उसी महत्तत्त्व से अपने पञ्चमहाभूतों को एक साथ पञ्च भूतों और इन्द्रियों को पैदा करते हैं।।३७।। फिर उन पञ्चमहाभूतों अनेकों प्रकार के भूतभेद पैदा होते हैं, क्योंकि संसार के जितने भी पशु-पक्षी, मनुष्य, वृक्ष, पर्वत, नद-नदी, समुद्र सभी तो भूतभेद ही हैं। अतः उन महाभूतों से ये सभी अचेतन पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सृष्टि प्रवृत्त होती है, उन पंचमहाभूतों के अंगों का विस्तार, जो विद्वानों ने बताया है, उनको मैंने जो पूर्व में वर्णन किया है, वैसा ही समझें।।३८।। इस प्रकार नैमिषारण्य निवासी ऋषियों ने सूतजी द्वारा वर्णित लोकों की उत्पत्ति, उनकी सम्यक् स्थिति और प्रलय को सुनकर उस यज्ञ में यज्ञ की समाप्ति पर स्नान करके शुद्ध और पुण्य लोकों को प्राप्त किया।।३९।। जिस प्रकार तुम सब ने विधिपूर्वक देवताओं आदि का यज्ञ करके, स्नान करके शुद्ध हो गये हो। अतः तुम सब बहुत अधिक आयु वाले शरीरों को प्राप्त कर अन्त में कृतार्थ होकर पुण्यलोक को प्राप्त कर आनन्द करो।।४०।।

एते ते नैमिषेया वै दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च वै तदा।
जग्मुश्चावभृथस्नाताः स्वर्गं सर्वे तु सत्रिणः॥४१॥
विप्रास्तथा यूयमपि इष्ट्वा बहुविधैर्मखैः। आयुषोंऽते ततः स्वर्गं गंतारः स्थ द्विजोत्तमाः॥४२॥
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायास्तु परिग्रहः। अनुषंग उपोद्घात उपसंहार एव च॥४३॥
एवमेव चतुःपादं पुराणं लोकसम्मतम्। उवाच भगवान्साक्षाद्वायुर्लोकहिते रतः॥४४॥
नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तम। तत्प्रसादं च संसिद्धं भूतोत्पत्तिलयान्वितम्॥४५॥
प्राधानिकीमिमां सृष्टिं तथैवेश्वरकारिताम्। सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति॥४६॥
इदं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाध्यापयतेऽप च॥४७॥
स्थानेषु स महेंद्रस्य मोदते शाश्वतीः समाः। ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोदते॥४८॥
तेषां कीर्तिमतां कीर्तिं जेशानां महात्मनाम्। प्रथयन्पृथिवीशानां ब्रह्मभूयाय गच्छति॥४९॥
धन्यंयशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम्। कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना॥५०॥
मन्वंतरेश्वराणां च यः कीर्तिं प्रथयेदिमाम्। देवतानामृषीणां च भूरिद्रविणतेजसाम्॥५१॥
स सर्वैर्मुच्यते पापैः पुण्यं च महदाप्नुयात्। यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि॥५२॥
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते। यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमंततः॥५३॥

ये सब नैमिषारण्य निवासी यज्ञकर्त्ता ऋषिलोग इस यज्ञ को देखकर और स्पर्श करके तथा सभी याज्ञिक स्नान कर स्वर्ग को चले गये।।४१।। सूतजी सामने उपस्थित ऋषियों से बोले कि जिस प्रकार वायुप्रोक्त कथा को सुनकर वे ऋषिगण स्वर्ग चले गये, उसी प्रकार द्विजश्रेष्ठ! ब्राह्मणों! तुमने भी अनेकों प्रकार के मुख्य यज्ञ किये हैं, अतः सभी लोग स्वर्ग जाने वाले हो।।४२।। इस प्रकार इस ब्रह्माण्डपुराण में प्रथम प्रक्रियापाद है, जिसमें कथा का परिग्रह है। उसके बाद अनुषंग पाद है, फिर उपोद्घात पाद है और अन्त में उपसंहार पाद ही है। इस चार पाद वाले लोकसम्मत ब्रह्माण्ड महापुराण लोककल्याण में लगे हुए भगवान् वायुदेव ने साक्षात् मुझसे कहा था।।४४।। अतः हे मुनिश्रेष्ठ! नैमिषारण्य में यज्ञ को प्राप्त कर मुनियों से पञ्चमहाभूतों तथा सब प्राणियों की उत्पत्ति, उनका विनाश वाली प्रधान प्रकृति वाली इस ईश्वर द्वारा करायी गयी सृष्टि की कथा को जानकर बुद्धिमान् पुरुष मोह को प्राप्त नहीं होता।।४५-४६।। विद्वान् ब्राह्मण इस ब्रह्माण्डपुराण वर्णित पुरातन इतिहास को सुनेगा अथवा सुनायेगा अथवा पढ़ेगा, वह देवों के राजा इन्द्र के स्थानों में सदा-सर्वदा आनन्द भोगेगा और फिर वह ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त कर ब्रह्म के साथ परमानन्द प्राप्त करेगा।।४७-४८।।

इन प्रजा की सृष्टि करने वाले कीर्तिमान् महापुरुषों की तथा राजाओं की कथा कहता हुआ मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है।।४९।। इस धन, आयु, यश और पुण्य प्रदान करने वाली वेदसम्मत पुराण कथा को ब्रह्मवादी कृष्ण द्वैपायन ने कहा था।।५०।। जो व्यक्ति मन्वन्तरों के स्वामी मनुओं, देवताओं, ऋषियों की, शक्तिशाली तेजस्वियों की इस कीर्ति का वर्णन करे, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है और महान् पुण्य को प्राप्त करता है।।५१।। और जो विद्वान् सदैव पर्व में (त्यौहारों पर) इस कथा को सुनाये तो उसके सब पाप धुल जाते हैं और फिर वह स्वर्ग को जीत कर ब्रह्म होने की कल्पना करता है, अर्थात् ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है।।५१½-५२।। और जो व्यक्ति श्राद्ध में

अक्षेयं सर्वकामीयं पितॄंस्तच्चोपतिष्ठते। यस्मात्पुरा ह्य[1]णंतीदं पुराणं तेन चोच्यते॥५४॥
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते। तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्या अधीयते॥५५॥
इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे मतिम्। यावंत्यस्य शरीरेषु रोमकूपानि सर्वशः॥५६॥
तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणि दिवि मोदते। ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दैवतैः सह मोदते॥५७॥
सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च। ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरश्विने॥५८॥
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः। बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनंतरम्॥५९॥
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेंद्राय वै पुनः। इंद्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च॥६०॥
सारस्वतस्त्रिधाम्नेऽथ त्रिधामा च शरद्वते। शरद्वांस्तु त्रिविष्टाय सोंऽतरिक्षाय दत्तवान्॥६१॥
चर्षिणे चांतरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च। त्रय्यारुणाद्धनंजयः स वै प्रादात्कृतंजये॥६२॥
कृतंजयत्तृणंजयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ। गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्य्यंतरे पुनः॥६३॥
निर्य्यंतरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय वै। स ददौ सौमशुष्माय स चादात्तृणबिंदवे॥६४॥
तृणबिंदुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये। शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम्॥६५॥
पराशराज्जातुकर्ण्यस्तस्माद्द्वैपायनः प्रभुः। द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्तं द्विजोत्तम॥६५॥

इस पुराण की अक्षय और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली इस कथा को अन्त तक ब्राह्मणों को सुनाये, वह पितृलोकों को प्राप्त करता है।।५२½-५३½।। "यस्मात् पुरा भवति" तत्पुराणम् अर्थात् जो पहले हुआ है, उसको वर्णन करने वाला पुराण कहा जाता है। इस पुराण की निरुक्ति को जो जानता है, वह सब पापों से विमुक्त हो जाता है।।५३½-५४½।। उसी प्रकार तीनों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों में जो मनुष्य इस पुराण को पढ़ता है, वह तथा जो इस इतिहास को सुनकर धर्म में बुद्धि को धारण करे, तो जितने इस शरीर पर रोम कूप हैं, उतने हजारों करोड़ वर्षों तक स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करता है और फिर ब्रह्म की समानता प्राप्त कर देवताओं के साथ आनन्द भोगता है।।५४½-५७।। इस समस्त पापों को नष्ट करने वाले पुण्य, पवित्र और यशस्वी पुराण को ब्रह्मा जी ने वायुदेव को प्रदान किया था।।५८।। उन वायुदेव से शुक्राचार्य ने प्राप्त कर लिया और फिर शुक्राचार्य से बृहस्पति ने प्राप्त किया, उसके बाद बृहस्पति ने सविता को कहा।।५९।।

उसके बाद सविता ने मृत्यु को और मृत्यु ने इन्द्र को कहा। इन्द्र ने वसिष्ठ को कहा, वसिष्ठ ने सारस्वत को कहा।।६०।। फिर सारस्वत ने त्रिधामा को और त्रिधामा ने शरद्वत को, शरद्वत ने त्रिविष्टा को, त्रिविष्टा ने अन्तरिक्ष को प्रदान किया।।६१।। फिर अन्तरिक्ष ने चर्षी को, उन चर्षी ने त्रय्यारुण को, फिर त्रय्यारुण से धनञ्जय ने प्राप्त किया, तब उन धनञ्जय ने कृतञ्जय को कहा।।६२।। कृतञ्जय से तृणञ्जय ने प्राप्त किया और उसने भी भारद्वाज को प्रदान किया, भरद्वाज ने गौतम को दिया, गौतम ने फिर निर्य्यन्तर को कहा।।६३।। निर्य्यन्तर ने तो फिर वाजश्रवा के लिए कहा, उन वाजश्रवा ने सोमसुष्म के लिए, सोमसुष्म ने तृणबिन्दु को प्रदान किया।।६४।। तृणबिन्दु ने दक्ष को कहा और दक्ष ने शक्ति को कहा। शक्ति से गर्भस्थ पाराशर ने इस पुराण को सुना।।६५।।

---

१. अत्रर्षीणां कर्तृत्वम्।

मया चैतत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये। इत्येव वाक्यं ब्रह्मादिगुरूणां सुदाहृतम्॥६७॥
नमस्कार्याश्च गुरवः प्रयत्नेन मनीषिभिः। धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सर्वार्थसाधकम्॥६८॥
पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा। नाशुचौ नापि पापाय नाप्यसंवत्सरोषिते॥६९॥
नाश्रद्दधानेऽविदुषे नापुत्राय कथंचन। नाहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमम्॥७०॥

अव्यक्तं वै यस्य योनिं वदंति व्यक्तं देहं कालमेतं गतिं च।
वह्निर्वक्त्रं चंद्रसूर्यो च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च वायुम्॥७१॥
वाचो वेदा अंतरिक्षं शरीरं क्षितिः पादास्तारका रोमकूपाः।
सर्वाणि द्यौर्मस्तकानि त्वतो वै विद्याश्चैवोपनिषद्यस्य पुच्छम्॥७२॥
तं देवदेवं जननं जनानां यज्ञात्मकं सत्यलोकप्रतिष्ठम्।
वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये॥७३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे वायुप्रोक्ते द्वादशसाहस्र्यां संहितायां उत्तरभागे चतुर्थ उपसंहारपादे ब्रह्मांडावर्तं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

पाराशर ने जातुकर्ण्य ने प्राप्त किया और उन जातुकर्ण्य से प्रभु द्वैपायन ने प्राप्त किया, उसके बाद हे मुनिश्रेष्ठ! द्वैपायन से मैंने प्राप्त किया।।६६।। मैंने फिर इस पुराण को असीमित बुद्धिवाले अपने पुत्र को कहा। इस प्रकार यह पुराण ब्रह्मा आदि गुरुओं का कहा हुआ वाक्य है। यह कोई सामान्य नहीं है।।६७।। अतः मनस्वी पुरुषों द्वारा यत्न से गुरुओं को नमस्कार किया जाना चाहिए।।६७½।। ब्राह्मणों को सदैव इस धन देने वाले, यश देने वाले, आयु प्रदान करने वाले, पुण्यशाली, सब मनोरथों को सिद्ध करने वाले पापनाशक पुराण को नियमपूर्वक सुनना चाहिए।।६७½-६८½।। इस पुराण को कभी भी अपवित्र व्यक्ति को, पापी को, संवत्सर विहीन व्यक्ति को, अश्रद्धावान् व्यक्ति को, अविद्वान् को और पुत्रहीन व्यक्ति को और अहित करने वाले व्यक्ति को इस पुराण को कभी नहीं देना चाहिए।।६८½-७०।।

इसके बाद सूतजी स्तुति प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि जिनकी योनि अव्यक्त (प्रकृति) है, जिसको कि कोई व्यक्त कहता है, कोई देह कहता है, कोई काल कहता है, कोई गति कहता है, जिन ब्रह्म का मुख अग्नि है, चन्द्रमा और सूर्य जिनके दोनों नेत्र हैं। दिशायें जिनके कान हैं, वायु जिनकी नासिका है, वेद जिनकी वाणी है, अन्तरिक्ष जिनका शरीर है, पृथ्वी जिनके पैर हैं। तारगण जिनके रोमकूप हैं। सभी स्वर्ग जिनके मस्तक हैं, विद्या और उपनिषदें जिनकी पूँछ हैं, उन देवों के देव, उत्पन्न करने वालों को उत्पन्न करने वाले, यज्ञात्मक, सत्यलोक में प्रतिष्ठित, श्रेष्ठों में श्रेष्ठ, वर देने वाले महेश्वर आदि देव ब्रह्मा को प्रयत्नपूर्वक नमन करता हूँ।।७३।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण वायुप्रोक्त उत्तर भाग चतुर्थ उपोद्घात पाद चतुर्थ अध्याय ब्रह्माण्डावर्त वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

॥श्रीगणेशाय नमः॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

अगस्त्ययात्राजनार्दनाविर्भावोनाम

पञ्चमोऽध्यायः

अथ श्रीललितोपाख्यानं प्रारभ्यते

चतुर्भुजे चंद्रकलावतंसे कुचोन्नते कुङ्कुमरागशोणे।
पुंड्रेक्षुपाशाङ्कुशपुष्पबाणहस्ते नमस्ते जगदेकमातः॥१॥

अस्तु नः श्रेयसे नित्यं वस्तु वामाङ्गसुन्दरम्। यतस्तृतीयो विदुषां तृतीयस्तु परं महः॥२॥
अगस्त्यो नाम देवर्षिर्वेदवेदाङ्गपारगः। सर्वसिद्धान्तसारज्ञो ब्रह्मानन्दरसात्मकः॥३॥
चचाराद्भुतहेतूनि तीर्थान्यायतनानि च। शैलारण्यापगामुख्यान्सर्वाञ्जनपदानपि॥४॥
तेषु तेष्वखिलाञ्जंतूनज्ञानतिमिरावृतान्। शिश्नोदरपरान्दृष्ट्वा चिन्तयामास तान्प्रति॥५॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–५

अगस्त्ययात्राजनार्दन का आविर्भाव

सर्वप्रथम श्रीललिता देवी को नमस्कार प्रस्तुत किया जाता है। यही ललिता देवी महात्रिपुर सुन्दरी, दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती तथा प्रकृति कही जाती है। अतः माँ ललितेश्वरी को नमन करते हुए कहते हैं कि हे चार भुजाओं वाली, मस्तक पर चन्द्रकला को धारण करने वाली, उन्नत स्तनों वाली, कुङ्कुम (केसर) के रंग के समान वर्ण वाली, हाथों में पुण्ड्र नामक गन्ने, पाश, अंकुश और पुष्पबाण को रखने वाली, संसार की एकमात्र जननी! तुम्हें नमस्कार है।

उपर्युक्त श्लोक में ललितादेवी के रूप में प्रकृति का वर्णन किया गया है। ये जितने भी विशेषण प्रस्तुत किये गये हैं, वे प्रकृति के प्रतीक हैं। यथा माँ ललिता की चार भुजाओं में से प्रकृति की चारों दिशाओं में व्याप्तता सूचित होती है, मस्तक पर चन्द्रकला से समस्त ग्रह नक्षत्र, सूर्य-चन्द्रादि को वही धारण किये हुए हैं। माँ ललिता के उन्नत स्तन ऊँचे प्रकृति के पर्वतों के प्रतीक हैं। एक हाथ में गन्ना प्रकृति की मधुर वनस्पतियों, वृक्षादिकों का प्रतीक है, पाश और अंकुश पापियों को दण्ड के प्रतीक हैं और पुष्पबाण उसकी मोहन शक्ति कामभाव पैदा करने के प्रतीक हैं। संसार की एकमात्र जननी से तो पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। ये सभी देवियाँ लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, पार्वती, चण्डी कालिका, सब उस प्रकृति के ही नाम हैं, क्योंकि वही एकमात्र संसार की जननी हैं। अतः वे माँ ललितेश्वरी प्रकृति देवी हैं, जिन्हें विभिन्न नामों से पुकारा गया है, वे ही शिव परब्रह्म की शक्ति हैं। अतः उन माँ ललितेश्वरी को लेखक तथा अनुवादक दोनों का भूरि-भूरि नमन है। वेदों-वेदांगों में पारंगत, समस्त सिद्धान्तों के रहस्य के ज्ञाता, ब्रह्मानन्द के रस का आनन्द लेने वाले अगस्त्य नाम के देवर्षि थे, जिन्होंने अद्भुत कारणों वाले विशाल तीर्थों में, पर्वतों, वनों, नदियों, मुख्य जनपदों में भ्रमण किया था।।३-४।। तब उन स्थानों पर शिश्न और योनिपरायण समस्त प्राणियों को अज्ञानरूपी अन्धकार में घिरे हुए देखकर वे उनके प्रति विचार करने लगे।।५।।

तस्य चिन्तयमानस्य चरतो वसुधाभिमाम्। प्राप्तमासीन्महापुण्यं कांचीनगरमुत्तमम्॥६॥
तत्र वारणशैलेन्द्रमेकाम्रनिलयं शिवम्। कामाक्षीं कलिदोषघ्नीमपूजयदथात्मवान्॥७॥
लोकहेतोर्दयार्द्रस्य धीमतश्चिन्तनो मुहुः। चिरकाले तपसा तोषितोऽभूज्जनार्दनः॥८॥
हयग्रीवां तनुं कृत्वा साक्षाच्चिन्मात्रविग्रहाम्। शङ्खचक्राक्षवलयपुस्तकोज्ज्वलबाहुकाम्॥९॥
पूरयित्रीं जगत्कृत्स्नं प्रभया देहजातया। प्रादुर्बभूव पुरतो मुनेरमिततेजसा॥१०॥
तं दृष्ट्वानन्दभरितः प्रणम्य च मुहुर्मुहुः। विनयावनतो भूत्वा सन्तुष्टाव जगत्पतिम्॥११॥
अथो वाच जगन्नाथस्तुष्टोऽस्मि तपसा तव। वरं वरय भद्रं ते भविता भूसुरोत्तमः॥१२॥
इति पृष्टो भगवता प्रोवाच मुनिसत्तमः। यदि तुष्टोऽसि भगवन्निमे पामरजन्तवः॥१३॥
केनोपायेन मुक्ताः स्युरेतन्मे वक्तुमर्हसि। इति पृष्टो द्विजेनाथ देवदेवो जनार्दनः॥१४॥
एष एव पुरा प्रश्नः शिवेन चरितो मम। अयमेव कृतः प्रश्नो ब्रह्मणा तु ततः परम्॥१५॥
कृतो दुर्वाससा पश्चाद्भवता तु ततः परम्॥१६॥
भवद्भिः सर्वभूतानां गुरुभूतैर्महात्मभिः। ममोपदेशो लोकेषु प्रथितोऽस्तु वरो मम॥१७॥
अहमादिर्हि भूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः। सृष्टिस्थितिलयानां तु सर्वेषामपि कारकः॥१८॥

इस पृथ्वी पर विचार करते हुए विचरण करने वाले वे चलते-चलते एक महापुण्यशाली कांची नामक नगर में पहुंचे।।६।। इसके बाद वहाँ अमात्यवान् ने वारण नामक पर्वतराज पर एकाग्र भवन में रहने वाले भगवान् शिव और कलियुग के दोषों को मारने वाली देवी कामाक्षी का पूजन किया।।७।। संसार का कल्याण करने वाले दयालु, बुद्धिमान्, चिन्तनशील अनेकों बार की चिरकालीन तपस्या से जनार्दन भगवान् शिव प्रसन्न हो गये।।८।। तब उन्होंने हयग्रीव (घोड़े की गर्दन) वाला शरीर बनाकर साक्षात् चैतन्यमात्र शरीर वाले शङ्ख, चक्र, अक्षमाला, वलय, पुस्तक से उज्ज्वल हाथ वाली, अपने शरीर से उत्पन्न असीमित तेज वाली प्रभा से समस्त संसार को व्याप्त करती हुई देवी को उन अगस्त्य मुनि के सामने प्रकट कर दिया।।९-१०।। उसको देखकर आनन्द से भरे हुए उन्होंने विनयावनत होकर बार-बार प्रणाम करके संसार के स्वामी भगवान् शिव को सन्तुष्ट किया।।११।। इसके बाद संसार के स्वामी ने उनसे कहा कि मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ, इसलिए हे विप्रवर! आपका कल्याण हो, आप वर माँगिये।।१२।।

इस प्रकार जब भगवान् शिव ने कहा, तब मुनिश्रेष्ठ बोले कि हे भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो कृपया ये बताइए कि इस संसार में नीच पापी प्राणी किस उपाय से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इसके बाद उन ब्राह्मण अगस्त्य मुनि ने जब भगवान् शिव से पूंछा तो भगवान् शिव ने कहा कि यही प्रश्न प्राचीन काल में मुझसे घूमते हुए भगवान् शिव ने पूँछा था तथा उसके बाद मुझसे ब्रह्माजी ने पूँछा।।१३-१५।। उसके बाद यह प्रश्न दुर्वासा ऋषि ने पूँछा था, आपने तो उन दुर्वासा ऋषि के बाद पूँछा है।।१६।। समस्त संसार के प्राणियों के गुरु बने हुए आप महात्माओं द्वारा कहा गया मेरा उपदेश समस्त लोकों में प्रसिद्ध होवे, यह मेरा वरदान है।।१७।। मैं संसार के समस्त प्राणियों के आदि में था और समस्त प्राणियों का आदि कर्ता हूँ, अर्थात् सबसे पहले प्राणियों को मैंने ही पैदा किया है। मैं ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि (उत्पत्ति), स्थिति (पालन) और प्रलय लीला करता हूँ तथा संसार में जो कुछ भी है, उस सबको बनाने वाला मैं ही हूं। मैं ही सबको उत्पन्न करने वाला प्रभु हूँ।।१८।।

त्रिमूर्तिस्त्रिगुणातीतो गुणहीनो गुणाश्रयः॥१९॥
इच्छाविहारो भूतात्मा प्रधानपुरुषात्मकः। एवं भूतस्य मे ब्रह्मंस्त्रिजगद्रूपधारिणः॥२०॥
द्विधाकृतमभूद्रूपं प्रधानपुरुषात्मकम्। मम प्रधानं यद्रूपं सर्वलोकगुणात्मकम्॥२१॥
अपरं यद्गुणातीतं परात्परतरं महत्। एवमेव तयोर्ज्ञात्वा मुच्यते ते उभे किमु॥२२॥
तपोभिश्चिरकालोत्थैर्यमैश्च नियमैरपि। त्यागैर्दुष्कर्मनाशांते मुक्तिराश्वेव लभ्यते॥२३॥
यद्रूपं यद्गुणयुतं तद्गुण्यैक्येन लभ्यते। अन्यत्सर्वजगद्रूपं कर्मभोगपराक्रमम्॥२४॥
कर्मभिर्लभ्यते तच्च तत्त्यागेनापि लभ्यते। दुस्तरस्तु तयोस्त्यागः सकलैरपि तापस॥२५॥
अनपायं च सुगमं सदसत्कर्मगोचरम्॥२६॥

मैं ही त्रिमूर्ति हूँ, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश अथवा यों कहिये कि सृष्टि, स्थिति और प्रलयवाली तीनों मूर्ति मैं ही हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही विष्णु हूँ और मैं ही महेश्वर हूँ। मैं ही सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों गुणों से भी परे हूँ। मेरी स्थिति उनसे भी आगे है तथा मैं गुणहीन भी हूँ, अर्थात् मेरे अन्दर प्रकृति के तीनों गुण नहीं भी हैं तथा तीनों गुण ही क्या मेरे अन्दर तो कोई गुण ही नहीं है, मैं तो निर्गुण हूँ। अतः मुझे कोई नहीं बता सकता कि मैं छोटा हूँ, मोटा हूँ, लाल हूँ, पीला हूँ, उदार हूँ, अनुदार हूँ। अतः मैं गुणविहीन हूँ। यही नहीं, मैं गुणविहीन होते हुए भी गुणयुक्त हूँ, क्योंकि तीन गुणों वाली प्रकृति से युक्त होकर जब मैं सृष्टि, स्थिति और प्रलय की स्थिति में हूँ, तब मैं सगुण हूँ, इसलिए मैं गुणाश्रय हूँ। मैं ही अपनी इच्छा से सर्वत्र विहार करने वाला भूतात्मा (प्राणियों की आत्मा) हूँ। प्रधान और पुरुष कहा जाने वाला मैं हूँ, प्रधान प्रकृति को कहा जाता है तथा पुरुष (आत्मा (जीव) है, अतः ये दोनों अलग-अलग नहीं, दोनों मैं ही हूँ।।१९-१९½।। इस प्रकार हे ब्रह्मन्! तीनों लोकों को धारण करने वाले मेरे दो प्रकार के रूप बना दिये हैं, एक प्रधान और दूसरा पुरुष।।१९½-२०½।।

मेरा जो प्रधान रूप है, वह समस्त संसार रूपी गुण वाला है, अर्थात् यह जो सारा संसार दिखाई दे रहा है, वह मेरा गुणात्मक रूप है। अर्थात् संसार के जड़-चेतन जितने भी पदार्थ हैं, वे सब मेरा प्रधान रूप हैं, जिन्हें प्रकृति भी कहा जाता है। यह मेरा प्रधान रूप गुणात्मक रूप है तथा दूसरा जो मेरा गुणातीत रूप है, वह पर से भी पर है, अर्थात् अपार है, वह निर्गुण है, इतना ही कहा जा सकता है। निर्गुण कहना भी उसका एक गुण ही है, अतः उसे किसी भी प्रकार नहीं कहा जा सकता है, वह क्या है? कोई न जानता है, पर है कुछ यही मानता है।।२०½-२१½।। इस प्रकार ही उन दोनों रूपों प्रधान और पुरुष को जानकर वे दोनों मुक्त हो जाते हैं, अर्थात् जब पुरुष आत्मा यह समझ लेता है कि मैं प्रकृति के बन्धन में हूँ, तब वह समझकर मुक्त हो जाता है। तब फिर चिरकाल तक उठाये गये पक्षों और नियमों वाली तपस्याओं से वे दोनों प्रधान और पुरुष मुक्त हो जाते हैं और त्यागों द्वारा दुष्कर्मों का विनाश होने पर अन्त में शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त होती है।।२१½-२३।। जो रूप है तथा जो उस गुण वाला है, वह गुण रखने वाला एकता से प्राप्त होता है। अन्य जो समस्त संसार का रूप है, वह कर्म भोग का पराक्रम है, अर्थात् संसार में जो कुछ रूप या गुण मनुष्य को प्राप्त हुआ है, वह कर्म भोग के लिए प्राप्त हुआ है, उस सब में कर्म के भोग का ही पराक्रम है।।२४।। वह जो कर्मों से प्राप्त होता है, वह त्याग से भी प्राप्त हो सकता है, इसलिए हे तापस अगस्त्यजी! उन दोनों कर्म और त्याग में त्याग ही सबसे दुस्तर (कठिन) है तथा सदसत्कर्मगोचर अर्थात् शुभ-अशुभ कर्म के ज्ञान का मार्ग अनश्वर और सुगम है।।२५-२६।।

आत्मस्थेन गुणेनैव सता चाप्यसतापि वा। आत्मैक्येनैव यज्ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥२७॥
वर्णत्रयविहीनानां पापिष्ठानां नृणामपि। यद्रूपध्यानमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते॥२८॥
येऽर्चयंति परां शक्तिं विधिनाऽविधिनापि वा। न ते संसारिणो नूनं मुक्ता एव न संशयः॥२९॥
शिवो वा यां समाराध्य ध्यानयोगबलेन च। ईश्वरः सर्वसिद्धानामर्द्धनारीश्वरोऽभवत्॥३०॥
अन्येऽब्जप्रमुखा देवाः सिद्धास्तद्ध्यानवैभवात्। तस्मादशेषलोकानां त्रिपुराराधनं विना॥३१॥
न स्तो भोगापवर्गौ तु यौगपद्येन कुत्रचित्। तन्मनास्तद्गतप्राणस्तद्याजी तद्गहेतकः॥३२॥
तादात्म्येनैव कर्माणि कुर्वन्मुक्तिमवाप्स्यसि। एतद्रहस्यमाख्यातं सर्वेषां हितकाम्यया॥३३॥
सन्तुष्टेनैव तपसा भवतो मुनिसत्तम। देवाश्च मुनयः सिद्धा मानुषाश्च तथापरे।
त्वन्मुखांभोजतोऽवाप्यसिद्धिं यांतु परात्पराम्॥३४॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा हयग्रीवस्य शार्ङ्गिणः। प्रणिपत्य पुनर्वाक्यमुवाच मुधुसूदनम्॥३५॥
भगवन्कीदृसं रूपं भवता यत्पुरोदितम्। किंविहारं किंप्रभावमेतन्मे वक्तुमर्हसि॥३६॥

हयग्रीव उवाच

एषोंऽशभूतेषु देवर्षे हयग्रीवो ममापरः। श्रोतुमिच्छसि यद्यत्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि॥३७॥

आत्मा में स्थित गुण के भी होने अथवा न होने से आत्मा की एकता से जो ज्ञान पैदा होता है, वह ज्ञान सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला होता है।।२७।। आत्मा की एकता से जिस रूप का ध्यान करने मात्र से तीनों वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के कर्मों से हीन पापी मनुष्यों के भी दुष्कर्म सुकर्म वन जाते हैं।।२८।। जो मनुष्य उस पराशक्ति की विधि से अथवा बिना विधि से पूजा करते हैं, वे सांसारिक कर्म करने वाले व्यक्ति मुक्त न हों, ऐसा नहीं, अर्थात् वे अवश्य मुक्त होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२९।। ध्यान और योग के बल से जिसकी सम्यक् आराधना करके भगवान् शिव सब सिद्धों के ईश्वर अर्धनारीश्वर हो गये थे।।३०।। अन्य प्रमुख ब्रह्मा आदि देवता उसके वैभव के प्रभाव से ही सिद्ध सफल हुए हैं, उस तीनों लोकों के स्वामी त्रिपुरा की आराधना के बिना भोग और मोक्ष एक साथ कहीं भी नहीं हैं। उनमें मन लगाने वाला, उनमें ही अपने प्राणों को अर्पित करने वाला अर्थात् उनको ही ध्यान कर प्राणायाम करने वाला उनके लिये ही यज्ञ करने वाला, उनको जानने की इच्छा रखने वाला, उनमें एक रूप रहता हुआ सामान्य रूप में कर्मों को करता हुआ मुक्ति प्राप्त करेगा।।३१-३२½।।

हे मुनिश्रेष्ठ! आपकी तपस्या से सन्तुष्ट मैंने सब प्राणियों के कल्याण की कामना से इस रहस्य को बताया है।।३२½-३३½।। देवता, मुनिगण, मनुष्य, सिद्धगण तथा अन्य सभी तुम्हारे मुख से निकले हुए कथामृत का भोग कर पर से पर सिद्धि को प्राप्त करें, अर्थात् परा ज्ञान को प्राप्त करें।।३४।। इस प्रकार उन हयग्रीव विष्णु के वचनों को सुनकर उन्हें प्रणाम करके उन मधुसूदन भगवान् विष्णु से अगस्त्य मुनि बोले कि भगवान्! ये आपका कैसा रूप था, जो आपने पहले धारण किया था, क्या उसका विहार है तथा क्या उसका प्रभाव हैं, उसे हमें बताइए।।३५-३६।।

हयग्रीव ने कहा कि हे देवर्षि! यह हयग्रीव (घोड़े की गर्दन) वाला मेरा अंशभूत दूसरा रूप है। जो जो तुम सुनना चाहते हो, वह सब हमें बताओ।।३७।।

इत्यादिश्य जगन्नाथो हयग्रीवं तपोधनम्। पुरतः कुम्भजातस्य मुनेरंतरधाद्धरिः॥३८॥
ततस्तु विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा तपोधनः। हयग्रीवेण मुनिना स्वाश्रमं प्रपद्यत॥३९॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने अगस्त्ययात्राजनार्दनाविर्भावो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

हिंसाद्यरूप कथनंनाम

षष्ठोऽध्यायः

इन्द्र उवाच

अथोपवेश्य चैवैनमासने परमाद्भुते। हयाननमुपागत्यागस्त्यो वाक्यं समब्रवीत्॥१॥
भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वसिद्धान्तवित्तम। लोकाभ्युदयहेतुर्हि दर्शनं हि भवादृशाम्॥२॥
आविर्भावं महदेव्यास्तस्या रूपान्तराणि च। विहाराश्चैव मुख्या ये तान्नो विस्तरतो वद॥३॥

इस प्रकार जगन्नाथ भगवान् विष्णु कुम्भ से पैदा हुए अगस्त्य मुनि के सामने तपस्वी हयग्रीव को आदेश देकर अन्तर्धान हो गये।।३८।। इसके बाद आश्चर्ययुक्त प्रसन्नचित्त तपस्वी अगस्त्य मुनि हयग्रीव मुनि के साथ अपने आश्रम को चले गये।।३९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ५वाँ अध्याय अगस्त्ययात्राजनार्दन का आविर्भाव का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–६

हिंसादि रूप कथन

इन्द्र बोले—इसके बाद परम अद्भुत आसन पर बैठाकर हयग्रीव के पास आकर अगस्त्य मुनि इस प्रकार वाक्य बोले।।१।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि सब धर्मों को जानने वाले, सब सिद्धान्तों को जानने वाले भगवन्! आप जैसे लोगों का दर्शन संसार के कल्याण का कारण है, अतः हे भगवन्! आप महादेवी ललिता का आविर्भाव एवं उन महादेवी के अनेकों तथा उनके मुख्य विहारों को हमें विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।।२-३।।

हयग्रीव उवाच

अनादिरखिलाधारा सदसत्कर्मरूपिणी। ध्यानैकदृश्या ध्यानांगी विद्यांगी हृदयास्पदा॥४॥
आत्मैक्याव्द्यक्तिमायाति चिरानुष्ठानगौरवात्॥५॥
आदौ प्रादुरभूच्छक्तिर्ब्रह्मणो ध्यानयोगतः। प्रकृतिर्नाम सा ख्याता देवानामिष्टसिद्धिदा॥६॥
द्वितीयमुदभूद्रूपं प्रवृत्तेऽमृतमंथने। शर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम्॥७॥
यद्दर्शनादभूदीशः सर्वज्ञोऽपि विमोहितः। विसृज्य पार्वतीं शीघ्रं तया रुद्धोऽतनोद्रतम्॥८॥
तस्यां वै जनयामास शास्तारमसुरार्दनम्॥९॥

अगस्त्य उवाच

कथं वै सर्वभूतेशो वशी मन्मथ शासनः। अहो विमोहितो देव्या जनयामास चात्मजम्॥१०॥

हयग्रीव उवाच

पुरामरपुराधीशो विजयश्रीसमृद्धिमान्। त्रैलोक्यं पालयामास सदेवासुरमानुषम्॥११॥
कैलासशिखराकारं गजेन्द्रमधिरुह्य सः। चचाराखिललोकेषु पूज्यमानोऽखिलैरपि।
तं प्रमत्तं विदित्वाथ भवानीपतिरव्ययः॥१२॥
दुर्वाससमथाहूय प्रजिघाय तदंतिकम्। खण्डानिजधरो दंडी धूरिधूसरविग्रहः।
उन्मत्तरूपधारी च ययौ विद्याधराध्वना॥१३॥

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य मुने! जो अनादि, अखिल, विश्व की आधार, अच्छे और बुरे कर्म कराने वाली, एक ध्यान से दर्शनीय, ध्यान के अंग वाली, विद्या रूप शरीर वाली, हृदय में स्थान वाली है तथा जो अपनी आत्मा की एकता से बहुत अधिक अनुष्ठान, पूजा-पाठ करने से प्रकट होती है, दिखायी देती है।।४-५।। सृष्टि के आदि काल में ब्रह्माजी के ध्यानयोग से वह शक्ति उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम प्रकृति हुआ, जो देवताओं की इच्छा और उनको सिद्धि प्रदान करने वाली थी।।६।। उन महादेवी प्रकृति का दूसरा रूप समुद्र मन्थन के समय उत्पन्न हुआ, जो रूप भगवान् शंकर को मोह पैदा करने वाला और वाणी, मन और ज्ञानेन्द्रियो से नहीं जानने योग्य था।।७।। जिन महादेवी के दर्शन से सब कुछ जानने वाले जगदीश्वर भगवान् शिव विशेष मोहित हो गये और शीघ्र ही पार्वती को छोड़कर उस शक्ति रूप महादेवी से संयुक्त हो गये।।८।। तब भगवान् शंकर के द्वारा उससे संयुक्त हो जाने पर उस देवी में उन्होंने शासन करने वाले असुरार्दन को जन्म दिया।।९।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि सब प्राणियों को पैदा करने वाले इन्द्रियों को वश में करने वाले, कामदेव को शासित करने वाले भगवान् शंकर ने कैसे देवी से विमोहित होकर पुत्र को उत्पन्न किया?।।१०।।

भगवान् हयग्रीव ने कहा कि प्राचीन काल में विजयश्री से समृद्ध अमरपुरी शिव के अधीश्वर इन्द्र ने देवता, मनुष्य और असुरों सहित त्रैलोक्य का पालन किया।।११।। तब उन्होंने कैलासपर्वत के आकार वाले गजराज पर चढ़कर सभी लोगों से पूजित होते हुए समस्त लोकों में विचरण किया। अविनाशी भवानीपति शंकर ने उसे प्रमत्त देखकर इसके बाद दुर्वासा ऋषि को बुलाकर उनके पास में जाकर उन्हें प्रेरित किया।।१२-१२½।। तब फटे हुए मृगचर्म को धारण करने वाले दण्डी धूरि-धूसर शरीर वाले उन्मत्त रूपधारी शिव विद्याधर मार्ग से गये।।१३।।

एतस्मिन्नन्तरे काले काचिद्विद्याधरांगना। यदृच्छया गता तस्य पुरश्चारुतराकृतिः॥१४॥
चिरकालेन तपसा तोषयित्वा परांबिकाम्। तत्समर्पितमाल्यं च लब्ध्वा संतुष्टमानसा॥१५॥
तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीमुवाच मुनिपुंगवः। कुत्र वा गम्यते भीरु कुतो लब्धमिदं त्वया॥१६॥
प्रणम्य सा महात्मानमुवाच विनयान्विता। चिरेण तपसा ब्रह्मन्देव्या दत्तं प्रसन्नया॥१७॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः सोऽपृच्छन्माल्यमुत्तमम्। पृष्टमात्रेण सा तुष्टा ददौ तस्मै महात्मने॥१८॥

कराभ्यां तत्समादाय कृतार्थोऽस्मीति सत्वरम्।
दधौ स्वशिरसा भक्त्या तामुवाचातिर्षितः॥१९॥
ब्रह्मादीनामलभ्यं यत्तल्लब्धं भाग्यतो मया।
भक्तिरस्तु पदांभोजे देव्यास्तव समुज्ज्वला॥२०॥
भविष्यच्छोभनाकारे गच्छ सौम्ये यथासुखम्।
सा तं प्रणम्य शिरसा ययौ तुष्टा यथागतम्॥२१॥

प्रेषयित्वा स तां भूयो ययौ विद्याधराध्वना। विद्याधरवधूहस्तात्प्रतिजग्राह वल्लकीम्॥२२॥

दिव्यस्त्रगनुलेपांश्च दिव्यान्याभरणानि च।
क्वचिद्दधौ क्वचिदृह्णन्क्वचिद्गायन्क्वचिद्धसन्॥२३॥

स्वेच्छाविहारी स मुनिर्यत्रौ यत्र पुरंदरः। स्वकरस्थां ततो मालं शक्राय प्रददौ मुनिः॥२४॥

इसी समय कोई सुन्दरतर आकृति वाली विद्याधराङ्गना स्वेच्छा से उनके सामने गई।।१४।। चिरकाल की तपस्या द्वारा उन परा अम्बिका को सन्तुष्ट करके उनके द्वारा समर्पित की गयी माला को सन्तुष्ट मन से प्राप्त कर उसको देख कर मुनिश्रेष्ठ ने मृगछौने की आँखों के समान उस सुन्दरी से कहा कि हे डरने वाले स्वभाव वाली सुन्दरि! तुम कहाँ जा रही हो तथा तुमने इस माला को कहाँ से प्राप्त किया?।।१५-१६।। उसने प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक महात्मा मुनि से कहा कि ब्रह्मन्! चिरकाल की तपस्या द्वारा प्रसन्न देवी ने मुझे इस माला को दिया है।।१७।। उसके वचन को सुनकर उन्होंने उत्तम माल्य को पूँछा, पूंछने मात्र से प्रसन्न उसने वह माला उन महात्मा को दे दी।।१८।।

दोनों हाथों से माला को लेकर शीघ्र ही उन्होंने कहा कि मैं इस माला को लेकर आपका आभारी हूँ। उसके बाद उन्होंने भक्तिपूर्वक उस माला को सिर पर धारण किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे बोले।।१९।। कि जो ब्रह्मा आदि के लिए अलभ्य है, उस माला को आज मैंने भाग्य से प्राप्त कर लिया। हे कमलचरणे! तुम्हें देवी की समुज्ज्वल भक्ति होवे। हे सौम्य! तुम भविष्य में शोभन आकार में सुखपूर्वक जाओ। फिर वह उन मुनि को शिर झुकाकर प्रणाम करके जिस मार्ग से आयी थी, उसी मार्ग से चली गयी।।२०-२१।। फिर उसको पुनः भेजकर वे मुनि विद्याधर के मार्ग से चले गये और विद्याधर वधू के हाथ से माला को ग्रहण कर लिया।।२२।। तब दिव्य माला और सुगन्धित लेपों तथा दिव्य आभूषणों को कहीं से ग्रहण करते हुए, कहीं गाते हुए और कहीं रहते हुए कहीं धारण किया।।२३।। और इस प्रकार स्वेच्छा से विचरण करने वाले वे मुनि अगस्त्य वहाँ गये, जहाँ कि इन्द्र थे। उसके बाद उन मुनि ने अपने हाथ में स्थित माला को इन्द्र के लिये दे दिया।।२४।।

तां गृहीत्वा गजस्कंधे स्थापयामास देवराट्। गजस्तु तां गृहीत्वाथ प्रेषयामास भूतले॥२५॥
तां दृष्ट्वा प्रेषितां मालां तदा क्रोधेन तापसः। उवाच न धृता माला शिरसा तु मयार्पिता॥२६॥
त्रैलोक्यैश्वर्यमत्तेन भवता ह्यवमानिता। महादेव्या धृता या तु ब्रह्माद्यैः पूज्यते हि सा॥२७॥
त्वया यच्छासितो लोकः सदेवासुरमानुषः। अशोभनो ह्यतेजस्को मम शापाद्भविष्यति॥२८॥
इति शप्त्वा विनीतेन तेन संपूजितोऽपि सः। तूष्णीमेव ययौ ब्रह्मनाभाविकार्यमनुस्मरन्॥२९॥
विजयश्रीस्ततस्तस्य दैत्यं तु बलिमन्वगात्। नित्यश्रीर्नित्यपुरुषं वासुदेवमथान्वगात्॥३०॥
इन्द्रोऽपि स्वपुरं गत्वा सर्वदेवसमन्वितः। विषण्णचेता निःश्रीकश्चिन्तयामास देवराट्॥३१॥
अथामरपुरे दृष्ट्वा निमित्तान्यशुभानि च। बृहस्पतिं समाहूय वाक्यमेतदुवाच ह॥३२॥
भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानकोविद। दृश्यतेऽदृष्टपूर्वाणि निमित्तान्यशुभानि च॥३३॥
किंफलानि च तानि स्युरुपायो वाऽथ कीदृशः। इति तद्वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रस्य बृहस्पतिः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं धर्मार्थसहितं शुभम्॥३४॥
कृतस्य कर्मणो राजन्कल्पकोटिशतैरपि। प्रायश्चित्तोपभोगाभ्यां विनाशो न जायते॥३५॥

इंद्र उवाच

कर्म वा कीदृशं ब्रह्मन्प्रायश्चित्तं च कीदृशम्। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद॥३६॥

उस माला को लेकर इन्द्र ने अपने हाथी के कन्धे में डाल दिया। इसके बाद हाथी ने उस माला को लेकर पृथ्वी तल पर गिरा दिया।।२५।। तब उस माला को पृथ्वी पर गिरी हुई देखकर तपस्वी मुनि ने इन्द्र से कहा कि तुमने मेरी दी हुई माला को शिर पर धारण नहीं किया। जिस माला को महादेवी ने धारण किया था, ब्रह्मा आदि देवों द्वारा जिसकी पूजा की जाती है, उस माला का तुमने तीनों लोकों के राजा होने के मद (घमण्ड) से अपमान किया है, इसलिए तुम्हारे द्वारा शासित मनुष्यों, असुरों और देवताओं का यह लोक मेरे शाप से शोभाहीन और तेजहीन हो जायेगा।।२६-२८।। इस प्रकार शाप देकर विनम्र इस इन्द्र द्वारा पूजित वे मुनि आगे क्या करना है, यह याद करते हुए चुपचाप चले गये।।२९।। उसके बाद उन राजा इन्द्र की विजयश्री दैत्यराज बलि को प्राप्त हो गयी। अब त्रैलोक्य के राजा बलि हो गये। नित्यश्री नित्यपुरुष वासुदेव भगवान् का अनुसरण करने लगी।।३०।।

इन्द्र भी अपने नगर इन्द्रपुरी में जाकर सब देवों के साथ दुःखी मन और राज्यश्री रहित होकर चिन्ता करने लगे।।३१।। इसके बाद इन्द्रपुरी में जाकर अशुभ कारणों को देखकर देवगुरु बृहस्पति को बुलाकर यह वाक्य कहा।।३२।। कि भगवन्! आप धर्म को जानने वाले तथा भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों के ज्ञाता हैं। भविष्य में कुछ अशुभ होने की सूचना देने वाले अपशकुन दिखाई दे रहे हैं।।३३।। इन अपशकुनों के क्या परिणाम होंगे तथा उनका उपाय कैसा होना चाहिए? इस प्रकार देवेन्द्र के इस वचन को सुनकर देवगुरु बृहस्पति धर्म और अर्थयुक्त शुभ वाक्य बोले।।३४।। हे राजन्! जो किया हुआ कर्म है, उसका फल सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी प्रायश्चित्त अथवा उपभोग के बिना नाश नहीं होता है, अर्थात् अवश्य भोगना पड़ता है।।३५।।

इन्द्र बोले कि ब्रह्मन्! कैसा कर्म और उसका कैसा प्रायश्चित्त, मैं कुछ समझा नहीं, मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ, कृपया मुझे विस्तारपूर्वक समझाइए।।३६।।

बृहस्पतिरुवाच।

हननस्तेयहिंसाश्च पानमन्यांगनारतिः। कर्म पंचविधं प्राहुर्दुष्यकृतं धरणीपतेः॥३७॥
ब्रह्मक्षत्रियविद्शूद्रगोतुरगखरोष्ट्रकाः। चतुष्पदोऽण्डजाब्जाश्च तिर्यंचोऽनस्थिकास्तथा॥३८॥
अयुतं च सहस्रं च शतं दश तथा दश। दशपंचत्रिरेकार्धमानुपूर्व्यादिदं भवेत्॥३९॥
ब्रह्मक्षत्रविशां स्त्रीणामुक्तार्थे पापमादिशेत्। पितृमातृगुरुस्वामिपुत्राणां चैव निष्कृतिः॥४०॥
गुर्वाज्ञया कृतं पापं तदाज्ञालंघनेऽर्थकम्। दशब्राह्मणभृत्यर्थमेकं हन्याद्विजं नृपः॥४१॥
शत ब्राह्मणभृत्यर्थं ब्राह्मणो ब्राह्मणं तु वा। पंचब्रह्मविदामर्थे वैश्यमेकं तु दंडयेत्॥४२॥
वैश्यं दशविशामर्थे विशां वा दंडयेत्तथा। तथा शतविशामर्थे द्विजमेकं तु दंडयेत्॥४३॥
शूद्राणां तु सहस्राणां दंडयेद्ब्राह्मणं तु वा। तच्छतार्धं तु वा वैश्यं तद्दशार्द्धं तु शूद्रकम्॥४४॥
बंधूनां चैव मित्राणामिष्टार्थे तु त्रिपादकम्। अर्थं कलत्रपुत्रार्थे स्वात्मार्थे न तु किंचन॥४५॥
आत्मानं हन्तुमारब्धं ब्राह्मणं क्षत्रियं विशम्। गां वा तुरगमन्यं वा हत्वा दोषैर्न लिप्यते॥४६॥
आत्मदारात्मजभ्रातृबंधूनां च द्विजोत्तम। क्रमाद्दशगुणो दोषो रक्षणे च तथा फलम्॥४७॥

वृहस्पति ने कहा कि हे राजन्! हनन (किसी को आघात पहुंचाना), स्तेय (चोरी करना), हिंसा (हत्या करना), पान (शराब, धूम्रादि का का पान करना) और अपनी पत्नी के अलावा अन्य स्त्री के साथ सम्भोग करना, ये पाँच प्रकार के पापकर्म कहे गये हैं।।३७।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, गौ, अश्व, गधा, ऊँट, ये चार पैर वाले तथा अन्य चार पैर वाले तथा अण्डों से पैदा होने वाले पक्षी आदि तिर्यक् योनि वाले जीव तथा जो हड्डी रहित प्राणी हैं, वे सब लाखों, हजारों और सैकड़ों दश पाँच तीन अथवा एकाध ही हैं, जो पूर्वकृत कर्म को अवश्य भोगते हैं।।३८-३९।। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की स्त्रियों के हनन में पाप का आदेश देना चाहिए। पिता, माता, गुरु और स्वामी के पुत्रों का प्रायश्चित्त है, अर्थात् वे प्रायश्चित्त कर सकते हैं।।४०।।

गुरु की आज्ञा द्वारा किया गया पाप गुरु की आज्ञा के उल्लंघन से होता है। राजा को दश ब्राह्मणों का पालन करने के लिए एक द्विज को मारना चाहिए, अर्थात् सौ ब्राह्मणों की जीविका के लिए एक ब्राह्मण को दण्ड देना चाहिए। भाव स्पष्ट है कि यदि सौ ब्राह्मणों की जीविका एक बहुत धनी ब्राह्मण द्वारा हो सकती है, तो उस एक ब्राह्मण की दौलत को १०० में बाँट देना चाहिए। पाँच ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों के लिए एक वैश्य को दण्ड देना चाहिए।।४१-४२।। दश वैश्यों के लिए एक वैश्य को तथा वैश्यों को दण्ड देना चाहिए तथा सौ वैश्यों के लिए एक वैश्य को दण्ड देना चाहिए।।४३।। सौ अथवा हजार शूद्रों के लिए एक ब्राह्मण को दण्ड देना चाहिए। उसको सौ का आधा वैश्य को तथा दश का आधा पांच शूद्र को दण्ड देना चाहिए। भाई बन्धुओं और मित्रों की भलाई के लिये तीन चौथाई ३/४ धन देना चाहिये स्त्री और पुत्र के लिये भी तीन चौथाई धन देना चाहिए अपने लिये कुछ भी नहीं।।४५।।

यदि स्वयं को कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, गौ, अश्व अथवा अन्य कोई भी मारने को आये तो उन सबको मारने से कोई पाप नहीं होता है।।४६।। हे द्विजोत्तम! अपनी पत्नी, अपना पुत्र, अपने भाई-बन्धुओं को मारने पर दश गुना पाप होता है तथा उनकी रक्षा करने पर दश गुना फल (पुण्य) होता है।।४७।।

विशेष—यह दण्ड देने और मारने से तात्पर्य धनी से लेकर गरीब को देना है, ताकि समाज में समता बनी रहे।

भूपद्विजश्रोत्रियवेदाविद्व्रतीवेदान्तविद्वेदविदां विनाशे।
एकद्विपंचाशदथायुतं च स्यान्निष्कृतिश्चेति वदंति संतः॥४८॥
तेषां च रक्षणविधौ हि कृते च दाने, पूर्वोदितोत्तरगुणं प्रवदन्ति पुण्यम्।
तेषां च दर्शनविधौ नमने च कार्ये, शुश्रूषणेऽपि चरतां सदृशांश्च तेषाम्॥४९॥
सिंहव्याघ्रमृगादीनि लोकहिंसाकराणि तु। नृपो हन्याच्च सततं देवार्थे ब्राह्मणार्थके॥५०॥
आपत्स्वात्मार्थके चापि हत्वा मेध्यानि भक्षयेत्॥५१॥
नात्मार्थे पाचयेदन्नं नात्मार्थे पाचयेत्पशून्। देवार्थे ब्राह्मणार्थे वा पचमानो न लिप्यते॥५२॥
पुरा भगवती माया जगदुज्जीवनोन्मुखी। ससर्ज सर्वदेवांश्च तथैवासुरमानुषान्॥५३॥
तेषां संरक्षणार्थाय पशूनपि चतुर्दश। यज्ञाश्च तद्विधानानि कृत्वा चैनानुवाच ह॥५४॥
यजध्वं पशुभिर्देवान्विधिनानेन मानवाः। इष्टानि ये प्रदास्यंति पुष्टास्ते यज्ञभाविताः॥५५॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः। दरिद्रो नारकश्चैव भवेज्जन्मनि जन्मनि॥५६॥
देवतार्थे च पित्रर्थे तथैवाभ्यागते गुरौ। महदागमने चैव हन्यान्मेध्यान्पशून्द्विजः॥५७॥

राजा, ब्राह्मण, श्रोत्रिय (वेदपाठ करने वाले) वेदो का ज्ञान रखने वाले, वेदान्त को जानने वाले और वेदज्ञों का विनाश करने पर एक, दो, पचास या दश लाख का प्रायश्चित्त होना चाहिए, ऐसा सन्त लोग कहते हैं।।४८।। तथा यदि ब्राह्मण, श्रोत्रिय, व्रती, वेदज्ञों की रक्षा करने विधि में तथा उन्हें दान देने से पूर्व में जो दण्ड कहा गया है, उससे कई गुना पुण्य का फल होता है। यही नहीं उनका दर्शन करने पर, उनको नमन करने पर, उनकी सेवा करने पर तथा उनके साथ समान व्यवहार करने पर भी कई गुना पुण्य होता है।।४९।। सिंह, व्याघ्र, मृग आदि जो संसार में हिंसा करने वाले जीव हैं, उन सबको देवताओं और ब्राह्मणों के लिए राजा को मारना चाहिए।।५०।। यदि अपने ऊपर कोई आपत्ति आ रही हो, भूखे मरने की स्थिति हो, खाने की कोई वस्तु नहीं दिखाई दे, तब ऐसी स्थिति में किसी पशु आदि को मारकर उसका मांस खा लेना चाहिए।।५१।।

अपने लिये अन्न को नहीं पकाना चाहिए तथा अपने लिये पशुओं को भी नहीं पकाना चाहिए। देवताओं के अर्थात् यज्ञादि करने के लिए और ब्राह्मणों के लिए पकाने वाला व्यक्ति पाप से लिप्त नहीं होता है। भाव यह है कि यज्ञावशिष्ट अन्न तथा यज्ञ में दी गयी बलि से अवशिष्ट मांस खाना पाप नही है तथा ऐसे केवल अपने लिये खाना अथवा मांस पकाकर खाना पाप है।।५२।। प्राचीन काल में भगवती माया इस संसार को जीवन देने के लिये तैयार हुई। सब देवताओं ने उसी प्रकार मनुष्यों और असुरों को पैदा किया और उनके संरक्षण के लिए चौदह पशुओं को यज्ञों और उनके विधि-विधानों को करके उनसे कहा।।५३-५४।। कि हे मनुष्यो! पशुओं, देवताओं की इस विधि से यज्ञ करो। यज्ञ से भावित एवं पुष्ट वे देवता लोग तुम्हें तुम्हारी मनोकामनाओं को प्रदान करेंगे।।५५। इस प्रकार इस संसार में यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। दरिद्र एवं नारकी मनुष्य जन्म-जन्म में होने चाहिएँ।।५६।। देवताओं के लिए, पितरों के लिए, उसी प्रकार अतिथियों के लिए और गुरु के लिए अथवा किसी महान् पुरुष के आगमन पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्वारा उनके साकारार्थ भोजन के लिये पशुओं को मारना चाहिए।।५७।।

आपत्सु ब्राह्मणो मांसं मेध्यमश्नन्न दोषभाक्।
विहितानि तु कार्याणि प्रतिषिद्धानि वर्जयेत्॥५८॥
पुराभूद्युवनाश्वस्य देवतानां महाक्रतुः। ममायमिति देवानां कलहः समजायत॥५९॥
तदा विभज्य देवानां मानुषांश्च पशूनपि। विभज्यैकैकशः प्रादाद्ब्रह्मा लोकपितामहः॥६०॥
ततस्तु परमा शक्तिर्भूतसंघसहायिनी। कुपिताभूत्ततो ब्रह्मा तामुवाच नयान्वितः॥६१॥
प्रादुर्भूता समुद्वीक्ष्य भूतानंदभयान्वितः। प्राजंलिः प्रणतस्तुत्वा प्रसीदेति पुनः पुनः॥६२॥
प्रादुर्भूता यतोऽसि त्वं कृतार्थोऽस्मि पुरो मम।
त्वयैतदखिलं कर्म निर्मितं सुशुभाशुभम्॥६३॥
श्रुतयः स्मृतयश्चैव त्वयैव प्रतिपादिताः। त्वयैव कल्पिता यागा मन्मुखात्तु महाक्रतौ॥६४॥
ये विभक्तास्तु पशवो देवानां परमेश्वरि। ते सर्वे तावकाः संतु भूतानामपि तृप्तये॥६५॥
इत्युक्त्वांतर्दधे तेषां पुर एव पितामहः। तदुक्तेनैव विधिना चकार च महाक्रतून्॥६६॥
इयाज च परां शक्तिं हत्वा मेध्यान्पशूनपि। तत्तद्विभागो वेदेषु प्रोक्तत्वादिह नोदितः॥६७॥
स्त्रियः शूद्रास्तथा मांसमादद्युर्ब्राह्मणं विना। आपत्सु ब्राह्मणो वापि भक्षयेद्गुर्वनुज्ञया॥६८॥
शिवोद्भवमिद पिण्डमत्यथ शिवतां गतम्।
उद्बुध्यस्व पशो त्वं हि नाशिवः सञ्छिवो ह्यसि॥६९॥

आपत्तियों में ब्राह्मण को मांस खाना पाप नहीं है। आपत्ति का अर्थ है कि भूख से पीड़ित हों तथा कुछ भी न मिले, तब ऐसा करे; परन्तु अन्य जो कार्य नहीं करने योग्य हैं, जो शास्त्र द्वारा निषिद्ध हैं, उन्हें छोड़ देना चाहिए।।५८।। प्राचीन काल में युवनाश्व और देवताओं का महायज्ञ हुआ, तब यह यज्ञ मेरा है, यह दोनों ने आपस में कहा, जिससे परस्पर कलह पैदा हो गया।।५९।। तब वहाँ लोकपितामह ब्रह्माजी ने देवताओं, मनुष्यों और पशुओं को विभाजित करके एक-एक को एक-एक प्रदान कर दिया।।६०।।

उसके बाद भूतसंघ सहायिनी शक्ति कुपित हो गयी। उसके बाद नीतियुक्त ब्रह्माजी ने उनसे कहा। उन भूतों की सहायता करने वाली शक्ति को प्रकट हुई देखकर (भूतों) प्राणियों के आनन्द भय से युक्त ब्रह्माजी हाथ जोड़कर स्तुति करके बोले कि हे देवि! प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ। हे देवि! जिस कारण से तुम मेरे सामने प्रकट हुई हो, मैं धन्य हो गया हूँ। आप द्वारा ही इस संसार में शुभ और अशुभ कर्म बनाये गये हैं।।६१-६३।। हे देवि! वेद और स्मृतियाँ, ये सब तुम्हारे द्वारा ही प्रतिपादित हैं। तुम्हारे द्वारा महायज्ञो में मेरे मुख से याग (यज्ञमन्त्र) बनाये गये हैं।।६४।। हे परमेश्वरि! देवताओं के लिए जो पशु विभक्त किये गये हैं, वे सब आपके ही हैं तथा आपके भूतों की (प्राणियों की) तृप्ति के लिये हैं।।६५।। ऐसा कहकर उनके सामने ही पितामह अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार उस कहे गये विधि-विधान से ही महायज्ञों को किया गया।।६६। तब मेध्य (यज्ञ के योग्य) पशुओं को मारकर पराशक्ति की पूजा की, उन उनका विभाग वेदों में बताया गया है कि किस यज्ञ में कौन पशु वध्य है। यहाँ इसका वर्णन नहीं किया जा रहा है।।६७।। अतः स्त्री और शूद्रों को, ब्राह्मण को खिलाये बिना मांस नहीं खाना चाहिए। अथवा आपत्तिकाल में ब्राह्मण को भी गुरु की आज्ञा से मांस भक्षण करना चाहिए।।६८।। इसके बाद शिवजी से उत्पन्न

ईशः सर्वजगत्कर्ता प्रभवः प्रलयस्तथा। यतो विश्वाधिको रुद्रस्तेन रुद्रोऽसि वै पशो॥७०॥
अनेन तुरगं गा वा गजोष्ट्रमहिषादिकम्। आत्मार्थं वा परार्थं वा हत्वा दोषैर्न लिप्यते॥७१॥
गृहानिष्टकरान्वापि नागाखुबलिवृश्चिकान्। एतद्गृहाश्रमस्थानां क्रियाफलभीप्सताम्।
मनःसंकल्पसिद्धानां महतां शिववर्चसाम्॥७२॥
पशुयज्ञेन चान्येषामिष्टा पूर्तिकरं भवेत्। जपहोमार्चनाद्यैस्तु तेषामिष्टं च सिध्यति॥७३॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने
हिंसाद्यस्वरपकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

वह मांसपिण्ड शिवत्व को प्राप्त हो गया था। हे पशो! शिवजी तुम अशिव नहीं हो, तुम तो सच्चे शिव हो, अर्थात् तुम तो सबका कल्याण करने वाले हो।।६९।। आप ही समस्त विश्व को पैदा करने वाले, पालन करने वाले और प्रलय करने वाले हैं। इसलिए विश्व से अधिक रुद्र है और हे पशो! भगवान् शिव आप ही रुद्र हो।।७०।। इसी कारण से अश्व को हाथी, ऊँट, भैंसे आदि को अपने लिये अथवा दूसरों के लिए मारकर मनुष्य दोषों से लिप्त नहीं होता है।।७१।। अनिष्ट करने वाले गृहों, सर्प, चूहे, बिच्छू आदि के प्रकोपों से भी मनुष्य बच जाता है। यह गृह और आश्रम में स्थित यज्ञ क्रिया के फलों को चाहने वाले मन के सङ्कल्पों से सिद्ध महान् शिव के पराक्रम को चाहने वालों तथा अन्य इच्छा को रखने वालों की इच्छापूर्ति पशुयज्ञ से होनी चाहिए। इस प्रकार जप होम और पूजा-अर्चना आदि से उनकी मन की इच्छा सफल होती है।।७२-७३।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ६वाँ अध्याय हिंसादि रूप कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

स्तेयपान कथनंनाम

सप्तमोऽध्यायः

इंद्र उवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं हिंसाद्यस्य तु लक्षणम्। स्तेयस्य लक्षणं किं वा तन्मे विस्तरतो वद॥१॥

बृहस्पतिरुवाच।

पापानामधिकं पापं हननं जीवजातिनाम्। एतस्मादधिकं पापं विश्वस्ते शरणं गते॥२॥

विश्वस्य हत्वा पापिष्ठं शूद्रं वाप्यंत्यजातिजम्।

ब्रह्महत्याधिकं पापं तस्मान्नास्त्यस्य निष्कृतिः॥३॥

ब्रह्मज्ञस्य दरिद्रस्य कृच्छ्रार्जितधनस्य च। बहुपुत्रकलत्रस्य तेन जीवितुमिच्छतः।

तद्द्रव्यस्तेयदोषस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते॥४॥

विश्वस्तद्रव्यहरणं तस्याप्यधिकमुच्यते। विश्वस्ते वाप्यविश्वस्ते न दरिद्रधनं हरेत्॥५॥

ततो देवद्विजातीनां हेमरत्नापहारकम्। यो हन्यादविचारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥६॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–७

स्तेय पान कथन

इन्द्र ने कहा कि भगवान्! आपने जो हिंसा आदि का लक्षण कहा, वह हमने जान लिया, अब स्तेय (चोरी) करने का क्या लक्षण है, उसे हमें बताइए।।१।।

बृहस्पति ने कहा— पापों में सबसे बड़ा पाप जीवों की जातियों की हत्या करना है। इससे भी अधिक पाप है कि जो विश्वास करके तुम्हारी शरण में आया है, उसकी हत्या करना। विश्वस्त को मारकर पापी, शूद्र तथा अन्त्य जाति से उत्पन्न व्यक्ति को मारना भी पाप है; परन्तु ब्रह्महत्या से अधिक पाप कोई नहीं है, क्योंकि उसका कोई प्रायश्चित नहीं है।।२-३।। ब्रह्मज्ञानी का धन, दरिद्र का धन तथा कठिनाई से अर्जित किये हुए व्यक्ति का धन, बहुत पुत्र और स्त्रियों वाले का धन तथा जिस धन से जो जीवित रहने की इच्छा करता हो, उसका धन, ऐसे धन को जो चुराता है, उस चोरी का इतना बड़ा पाप है कि उसका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं है।।४।। जो किसी पर विश्वास करता हो तथा विश्वास करके अपना धन सौंप दे, अथवा अधिकार दे तो उसका धन हड़प लेना तो उपर्युक्त धन हरण से भी बढ़कर पाप है। इसलिए कोई यदि आप पर विश्वास करके धरोहर रख दे, उसका धन कभी हरण नहीं करना चाहिए। यदि कोई हरण करेगा तो उसका फल शीघ्र एवं अवश्य मिलता है। इसलिए विश्वस्त व्यक्ति का धन हरण नहीं करना चाहिए तथा विश्वस्त अथवा अविश्वस्त किसी का भी धन नहीं चुराना चाहिए।।५।। उसके बाद देवताओं तथा ब्राह्मण क्षत्रिय

गुरुदेवद्विजसुहृत्पुत्रस्वात्मसुखेषु च। स्तेयादधःक्रमेणैव दशोत्तरगुणं त्वधम्॥७॥
अंत्यजात्पादजाद्वैश्यात्क्षत्रियाद्ब्राह्मणादपि। दशोत्तरगुणैः पापैर्लिप्यते धनहारकः॥८॥
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्। रहस्यातिरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम्॥९॥
पुरा कांचीपुरे जातो वज्राख्यो नाम चोरकः। तस्मिन्पुरवरे रम्ये सर्वैश्वर्यसमन्विताः।
सर्वे नीरोगिणो दांताः सुखिनो दययांचिताः॥१०॥
सर्वैश्वर्यसमृद्धेऽस्मिन्नगरे स तु तस्करः। स्तोकास्तोकक्रमेणैव बहुद्रव्यमपाहरत्॥११॥
तदरण्येऽवटं कृत्वा स्थापयामास लोभतः। तद्गोपनं निशार्धायां तस्मिन्दूरं गते सति॥१२॥
किरातः कश्चिदागत्य तं दृष्ट्वा तु दशांशतः। जहाराविदितस्तेन काष्ठभारं वहन्ययौ॥१३॥
सोऽपि तच्छिलयाच्छाद्य मृद्भिरापूर्य यत्नतः। पुनश्च तत्पुरं प्रायाद्वज्रोऽपि धनतृष्णया॥१४॥
एवं बहुधनं त्हृत्वा निश्चिक्षेप महीतले। किरातोऽपि गृहं प्राप्य बभाषे मुदितः प्रियाम्॥१५॥
मया काष्ठं समाहर्तुं गच्छता पथि निर्जने। लब्धं धनमिदं भीरु समाधत्स्व धनार्थिनि॥१६॥
तच्छ्रुत्वा तत्समादाय निधायाभ्यंतरे ततः। चिंतयंती ततो वाक्यमिदं स्वपतिमब्रवीत्॥१७॥
नित्यं संचरते विप्रो मामकानां गृहेषु यः। मां विलोक्यैवमचिराद्बहुभाग्यवती भवेत्॥१८॥

एवं वैश्य के स्वर्ण और रत्नों को चुराने वाले को जो विना विचारे ही मार दे, वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है।।६।। जो गुरु, देवता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं मित्र, पुत्र तथा अपने सुखों के लिए धन चुराता है, वह नीचे के क्रम से अर्थात् पापो का दश गुना पापी ही तो है।।७।। नीची जातियों से उत्पन्न व्यक्ति से पादज शूद्र से, वैश्य से, क्षत्रियों से और ब्राह्मण से भी धन का हरण करता है, वह भी दशगुने पापों से लिप्त होता है।।८।। अब यहीं पर पुरातन इतिहास का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जो कि रहस्यों में भी अत्यन्त रहस्यमय एवं समस्त पापों का नाश करने वाला है।।९।। प्राचीन काल में कांचीपुर में वज्राख्य नामक चोर पैदा हुआ था। उस रम्य श्रेष्ठ नगर में सभी मनुष्य ऐश्वर्यसमन्वित थे तथा सभी निरोग, इन्द्रियों का दमन करने वाले, सुखी और दयावान् थे।।१०।। उस सभी ऐश्वर्यो से समृद्ध नगर में उस चोर ने एक चोरी के बाद दूसरी चोरी करने के क्रम से बहुत धन चुरा लिया।।११।।

फिर उसने वहाँ उस वन में गड्ढा बनाकर लोभ से उस धन को गाड़ दिया। उस धन को उसने उस गाँव से बहुत दूर आधी रात में गड्ढे में गाड़ा था।।१२।। किसी किरात ने आकर और उस धन को देखकर उसका दशवां भाग चुरा लिया, यह किसी को भी मालूम नहीं हो पाया और वह किरात लकड़ियों को ढोता हुआ चला गया।।१३।। उसने भी उस धन को एक शिला से ढंक कर मिट्टी से दबाकर यत्नपूर्वक उस धन को छिपा दिया, फिर वह वज्र नामक चोर भी धन की तृष्णा से उस नगर में गया।।१४।। इस प्रकार उस वज्र नामक चोर ने बहुत धन चुराकर जमीन में गाड़ दिया। किरात ने भी घर जाकर प्रसन्न होकर अपनी पत्नी से कहा।।१५।। कि मैं जब लकड़ी लेने के लिये जा रहा था तो सुनसान मार्ग में यह धन मिल गया, अतः हे धन चाहने वाली भीरु! अब इस धन को सम्हाल कर रखो।।१६।। पति की उस बात को सुनकर और उस धन को अन्दर रखकर चिन्ता करती हुई अपने पति से यह वाक्य बोली।।१७।। कि हमारे घरों में नित्य जो ब्राह्मण घूमता है, मुझे देख कर शीघ्र ही उसने कहा था कि शीघ्र ही तुम्हें भाग्यवती होना चाहिए।।१८।।

चातुर्वर्ण्यासु नारीषु स्थेयं चेद्राजवल्लभा। किं तु भिल्ले किराते च शैलूषे चांत्यजातिजे।
लक्ष्मीर्न तिष्ठति चिरं शापाद्वल्मीकजन्मनः॥१९॥
तथापि बहुभाग्यानां पुण्यानामपि पात्रिणे। दृष्टपूर्वं तु तद्वाक्यं न कदाचिद्वृथा भवेत्॥२०॥
अथ वात्मप्रयासेन कृच्छ्राद्यल्लभ्यते धनम्। तदेव तिष्ठति चिरादन्यद्गच्छति कालतः॥२१॥
स्वयमागतवित्तं तु धर्मार्थैर्विनियोजयेत्। कुरुष्वैतेन तस्मात्त्वं वापीकूपादिकाञ्छुभान्॥२२॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा भाविभाग्यप्रबोधितम्। बहूदकसमं देशं तत्र तत्र व्यलोकयत्॥२३॥
निर्ममेऽथ महेंद्रस्य दिग्भागे विमलोदकम्। सुबहुद्रव्यसं साध्यं तटाकं चाक्षयोदकम्॥२४॥
दत्तेषु कर्मकारिभ्यो निखिलेषु धनेषु च। असंपूर्णं तु तत्कर्म दृष्ट्वा चिंताकुलोऽभवत्॥२५॥
तं चोरं वज्रनामानमज्ञातोऽनुचराम्यहम्। तेनैव बहुधा क्षिप्तं धनं भूरि महीतले॥२६॥
स्तोकंस्तोकं हरिष्याभि तत्रतत्र धनं बहु। इति निश्चित्य मनसा तेनाज्ञातस्तमन्वगात्॥२७॥
तथैवाहृत्य तद्द्रव्यं तेन सेतुमपूरयत्। मध्ये जलावृतस्तेन प्रासादश्चापि शार्ङ्गिणः॥२८॥
तत्तटाकमभूद्दिव्यमशोषितजलं महत्। सेतुमध्ये चकारासौ शंकरायतनं महत्॥२९॥

चारों वर्णों की स्त्रियों में जो राजाओं की पत्नियाँ होती हैं, वहीं यह धन टिकता है, किन्तु भील जाति, किरात जाति और शूद्र जाति में पैदा होने वाले चाण्डाल आदि जातियों के पास लक्ष्मी अधिक समय तक नहीं ठहरती है। यह वल्मीक से पैदा होने ववाले वाल्मीकि मुनि का शाप है, उस शाप के कारण निम्न जातियों के घरों में लक्ष्मी नहीं ठहरती।।१९।। तथापि जो बहुत भाग्यशाली, पुण्यात्मा और पात्र (श्रेष्ठ) व्यक्ति होते हैं, उनके पास ही लक्ष्मी आती है। अतः जिन भविष्यज्ञाताओं ने यह कहा है, उनका वाक्य कभी व्यर्थ (विफल) नहीं होना चाहिए।।२०।। अथवा अपने प्रयत्न से, कर्म करने से, बहुत कठिनाई से जो धन प्राप्त किया जाता है, वह धन ही बहुत समय तक ठहरता है, अन्य धन तो थोड़े से समय में ही चला जाता है।।२१।। स्वयं आये हुए धन को तो धर्मार्थ के कार्यों में लगा देना चाहिए। इसलिए आप इस धन से बावड़ी, कूप आदि बनवाकर शुभ कार्यों को कीजिये।।२२।।

इस प्रकार भविष्य में भाग्य को जगाने वाले पत्नी के वचन को सुनकर उसने बहुत जल वाले समान देश को जहाँ-तहाँ देखा।।२३।। और फिर महेन्द्र पर्वत की दिशा की तरफ बहुत धन लगाकर साफ जल वाला ऐसा तालाब बनवाया कि जिसका जल कभी भी समाप्त नहीं होता था।।२४।। उस तालाब के बनवाने में सभी कारीगरों को धन देने पर जब धन समाप्त हो गया और कार्य सम्पूर्ण नहीं हुआ, तब वह चिन्ता से व्याकुल हो गया।।२५।। तब उसने सोचा कि मैं उस वज्रनाभ नामक चोर का जो धन है, उसको मैं जानता हूँ तथा वह वज्र चोर इस बात को नहीं जानता है कि मुझे उस चोर का गड़ा हुआ धन मालूम है, अतः मैं उस चोर के धन को लाता रहूँगा और इस कार्य को पूरा कर लूँगा। थोड़ा-थोड़ा धन लाता रहूँगा, क्योंकि वहाँ तो बहुत सारा धन है, ऐसा निश्चय करके वह किरात वहाँ गया।।२६-२७।। और वहाँ से उस धन को ला-लाकर उसने उस सेतु को पूर्ण कर दिया तथा उस जलाशय के मध्य में उसने भगवान् शंकर का एक मन्दिर भी बनवा दिया।।२८।। वह कभी न सूखने वाले जल से युक्त महान् दिव्य तालाब था तथा उसके बीच में एक सेतु के मध्य में उसने भगवान् शंकर का महान् मन्दिर बनवा दिया।।२९।।

काननं च क्षयं नीतं बहुसत्त्वसमाकुलम्। तेनाग्र्याणि महार्हाणि क्षेत्राण्यापि चकार सः॥३०॥
देवताभ्यो द्विजेभ्यश्च प्रदत्तानि विभज्य वै। ब्राह्मणांश्च समामंत्र्य देवव्रातमुखान्बहून्॥३१॥
संतोष्य हेमवस्त्राद्यैरिदं वचनम ब्रवीत्। क्व चाहं वीरदत्ताख्यः किरातः काष्ठविक्रयी॥३२॥
क्व वा महासेतुबंधः क्व देवालयकल्पना।
क्व वा क्षेत्राणि क्लृप्तानि ब्राह्मणायतनानि च॥३३॥
कृपयैव कृतं सर्वं भवतां भूसुरोत्तमाः। प्रतिगृह्य तथैवैतद्देवव्रातमुखा द्विजाः॥३४॥
द्विजवर्मेति नामास्मै तस्यै शीलवतीति च। चक्रुः संतुष्टमनसो महात्मानो महौजसः॥३५॥
तेषां संरक्षणार्थाय बंधुभिः सहितो वशी। तत्रैव वसतिं चक्रे मुदितो भार्यया सह॥३६॥
पुरोहिताभिधानेन देवरातपुरं त्विति। नाम चक्रे पुरस्यास्य तोषयन्नखिलाद्विजान्॥३७॥
ततः कालवशं प्राप्तो द्विजवर्मा मृतस्तदा। यमस्य ब्रह्मणो विष्णोर्दूता रुद्रस्य चागताः॥३८॥
अन्योऽन्यमभवत्तेषां युद्धं देवासुरोपमम्। अत्रांतरे समागत्य नारदो मुनिरब्रवीत्॥३९॥
मा कुर्वंतु मिथो युद्धं शृण्वंतु वचनं मम। अयं किरातश्चौर्येण सेतुबंधं पुराकरोत्॥४०॥
वायुभूतश्चरेदेको यावद्द्रव्यवतो मृतिः। स बहुभ्यो हरेद्द्रव्यं तेषां यावत्तथा मृतिः॥४१॥
गतेष्वखिलदूतेषु श्रुत्वा नारदभाषितम्। चचार द्वादशाब्दं तु वायुभूतोंऽतरिक्षगः॥४२॥

वह वन, जो बहुत से हिंसक जीवों से भरा हुआ था, उसको नष्ट कर दिया और वहाँ उसने उस धन से बहुत ही सुन्दर महल और क्षेत्र बनवा दिये।।३०।। फिर उसने देवताओं और ब्राह्मणों के दान दिये तथा देवताओं का व्रत रखने वाले बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर उन सबको स्वर्ण वस्त्र आदि से पूरी तरह सन्तुष्ट करके यह वचन कहा।।३१-३१½।। कि कहाँ तो मैं लकड़ी बेचने वाला वीरदत्त नामका किरात और कहाँ इतना विशाल सेतु बाँधना, जलाशय तथा सुन्दर क्षेत्र बनाना तथा कहाँ ब्राह्मणों के घर बनाना।।३१½-३३।। अतः हे पूज्य ब्राह्मणश्रेष्ठों! आपकी ही कृपा से मैंने यह सब किया है। तब इसके बाद बहुत ही प्रसन्न मन से महा तेजस्वी महात्मा उन देवव्रातमुख ब्राह्मणों ने उसी प्रकार उसके आदर को स्वीकार करके उसका नाम द्विजवर्मा रख दिया और उसकी पत्नी का नाम शीलवती रख दिया।।३४-३५।। अब उन ब्राह्मणों के संरक्षण के लिए अपने बन्धुओं सहित वह जितेन्द्रिय प्रमुदित होकर पत्नी के साथ वहीं पर रहने लगा।।३६।। क्योंकि उसने पुरोहितों का स्वागत किया था, इसलिए उस नगर का नाम देवरात पुर रखा गया तथा यह नाम समस्त ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हुए रखा गया था।।३७।।

उसके बाद कालवश वह द्विजवर्मा मर गया, तब उसे लेने के लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के दूत आ गये।।३८।। तब वे एक-दूसरे से कहने लगे कि हम ले जायेंगे, हम ले जायेंगे, इस प्रकार वहाँ उनमें देवासुर संग्राम की भाँति युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसी बीच नारद मुनि वहाँ आकर बोले।।३९।। नारदजी बोले कि आप लोग आपस में युद्ध मत करो, मेरी बात सुनो। इस किरात ने चोरी से इस सेतुबंध का निर्माण किया है।।४०।। अतः वायु बनकर तब तक विचरण करे, जब तक कि धनवान् होकर मरे, वह बहुतों से धन हरण करे, जब तक कि उसकी मृत्यु हो।।४१।। तब सभी दूतों के चले जाने पर नारद जी की बात को सुनकर बारह वर्षों तक वायु बनकर अन्तरिक्ष में गमन करने वाला बनकर वह द्विजवर्मा विचरण करता रहा।।४२।।

भार्यां तस्याह स मुनिस्तव दोषो न किंचन। त्वया कृतेन पुण्येन ब्रह्मलोकमितो व्रज॥४३॥
वायुभूतं पतिं दृष्ट्वा नेच्छति ब्रह्ममंदिरम्। निर्वेदं परमापन्ना मुनिमेवमभाषत॥४४॥
विना पतिमहं तेन न गच्छेयं पितामहम्। इहैवास्ते पतिर्यावत्स्वदेहं लभते तथा॥४५॥
ततस्तु या गतिस्तस्य तामेवानुचराम्यहम्। परिहारोऽथवा किं तु मया कार्यस्तु तेन वा॥४६॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा प्रीतः प्राह तपोधनः। भोगात्मकं शरीरं तु कर्म कार्यकरं तव॥४७॥
मम प्रभावाद्भविता परिहारं वदामि ते। निराहारो महातीर्थे स्नात्वा नित्यं हि सांबिकम्॥४८॥
पूजयित्वा शिवं भक्त्या कंदमूलफलाशनः। ध्यात्वा हृदि महेशानं शतरुद्रमनुं जपेत्॥४९॥
ब्रह्महा मुच्यते पापैरष्टोत्तरसहस्रतः। पापैरन्यैश्च सकलैर्मुच्यते नात्र संशय;॥५०॥
इत्यादिश्य ददौ तस्यै रुद्राध्यायं तपोधनः। अनुगृह्योति तां नारीं तत्रैवांतर्द्धिमागमत्॥५१॥
भर्तुः प्रियार्थे संकल्प्य जजाप परमं जपम्। विमुक्तस्तेयदोषेण स्वशरीरमवाप सः॥५२॥
ततो वज्राभिधश्चौरः कालधर्ममुपागतः। अन्ये तद्द्रव्यवंतोऽपि कालधर्ममुपागताः॥५३॥
यमस्तु तान्समाहूय वाक्यं चैतदुवाच ह॥५४॥
भवद्भिस्तु कृतं पापं दैवात्सुकृतमप्युत। किमिच्छथ फलं भोक्तुं दुष्कृतस्य शुभस्य वा॥५५॥

उसकी पत्नी से नारद मुनि ने कहा कि तुम्हारा तो कुछ भी दोष नहीं है, तुमने जो पुण्य किया है, उस पुण्य से तुम ब्रह्मलोक को जाओ।।४३।। उसकी पत्नी ने अपने पति को वायु बना हुआ देखकर ब्रह्मलोक को जाना नहीं चाहा और बहुत शोक व्यक्त करती हुई, मुनि नारद से इस प्रकार बोली।।४४।। कि हे पितामह! मैं उस पुण्य के द्वारा बिना पति के ब्रह्मलोक नहीं जाऊँगी। यहीं पर मैं रहती हूँ, जब तक मेरे पति अपने शरीर को नहीं प्राप्त होते हैं।।४५।। उसके बाद जो गति उनकी होगी, उनकी गति का मैं अनुसरण करती रहूँगी। जब मेरे पति का ही परिहार है, तब मुझे उस पुण्य से क्या कार्य है।।४६।। इस प्रकार उसके वचन को सुनकर प्रसन्न हुए तपस्वी नारद बोले कि तुम्हारा शरीर भोगात्मक है और तुम्हारा कर्म कारगर है।।४७।। मैं तुमसे कहता हूँ कि मेरे प्रभाव से तुम्हारा परिहार प्रायश्चित्त (पाप से छुटकारा) हो जायेगा, अतः निराहार रहकर महातीर्थ में स्नान करके अम्बिका सहित भगवान् शंकर को भक्ति से पूजकर कंदमूल फल खाते हुए ध्यान करके महा ईशान शतरुद्र का जप करो।।४८-४९।। क्योंकि ब्रह्महत्या करने वाला भी एक हजार आठ बार जप करने से पापों से मुक्त हो जाता है तथा वह अन्य सभी पापों से भी मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५०।।

इस प्रकार आदेश देकर उन तपस्वी नारद ने उस द्विजवर्मा की पत्नी को रुद्राध्याय प्रदान कर दिया। उस स्त्री पर कृपा करके वे महामुनि नारद वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।५१।। अपने प्रियतम की भलाई के लिए संकल्प करके द्विजवर्मा की पत्नी ने परम तप किया, तब उसकी तपस्या के प्रभाव से चोरी के दोष से विमुक्त होकर उसके पति ने अपने शरीर को प्राप्त कर लिया।।५२।। उसके बाद वज्र नाम का चोर कालधर्म को प्राप्त हुआ और उस चोरी के धन वाले भी कालधर्म को प्राप्त हो गये। अर्थात् वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गये।।५३।। तब यमराज ने उन सबको बुलाकर यह कहा।।५४।। कि आप लोगों ने तो जो पाप किया है, अर्थात् जो आपने पाप का धन एकत्र किया था, उस धन को मन्दिर, तालाब सेतुबन्ध बनाकर शुभ कार्य में लगा दिया गया। अतः आपका किया हुआ पाप था,

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वज्रादिकास्ततः।
सुकृतस्य फलं त्वादौ पश्चात्पापस्य भुज्यते॥५६॥

पुनराह यमो यूयं पुत्रमित्रकलत्रकैः। एतस्यैव बलात्सर्वे त्रिदिवं गच्छत द्रुतम्॥५७॥
तेऽधिरुह्य विमानाग्र्यं द्विजवर्माणमाश्रिताः। यथोचितफलोपेतास्त्रिदिवं जग्मुरंजसा॥५८॥
द्विजवर्माखिलाँल्लोकानतीत्य प्रमदासखः। गाणपत्यमनुप्राप्य कैलासेऽद्यापि मोदते॥५९॥

इंद्र उवाच

तारतम्याविभागं च कथय त्वं महामते। सेतुबंधादिकानां च पुण्यानां पुण्यवर्धनम्॥६०॥

बृहस्पतिरुवाच।

पुण्यस्यार्द्धफलं प्राप्य द्विजवर्मा महायशाः। वज्रः प्राप्य तदर्धं तु तदर्धेन युताः परे॥६१॥
मनोवाक्कायचेष्टाभिश्चतुर्धा क्रियते कृतिः। विनश्येत्तेन तेनैव कृतैस्तत्परिहारकैः॥६२॥

इंद्र उवाच

आसवस्य तु किं रूपं को दोषः कश्च वा गुणः। अन्नं दोषकरं किं तु तन्मे विस्तरतो वद॥६३॥

वह दैवयोग से शुभ कर्म में बदल गया। अब आप लोग दुष्कर्म कर्म का फल भोगना चाहते हैं, अथवा शुभ का।।५५।। उस यमराज के इस वचन को सुनकर वज्र आदि (वज्र नामक चोर) तथा जिनका धन चुराया गया था, वे सभी यमराज से बोले कि पहले शुभ कर्म का फल भोगेंगे, बाद में पाप का।।५६।। फिर यम ने कहा कि तुम सब अपने पुत्र, मित्र और पत्नियों सहित इसी के बल से शीघ्र स्वर्ग चले जाओ।।५७।। वे सब द्विजवर्मा पर आश्रित होकर विमान पर चढ़कर यथोचित फल से युक्त होकर तीव्रता से स्वर्ग को चले गये।।५८।। तथा द्विजवर्मा समस्त लोकों को पार करके अपनी पत्नी के साथ गाणपत्य को प्राप्त कर अर्थात् भगवान् शिव के गणों के स्वामी बनकर आज भी कैलास पर्वत पर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं।।५९।।

इन्द्र ने गुरु बृहस्पति से कहा कि हे गुरुदेव! हे महामते! सेतुबन्धादि पुण्यों का पुण्य बढ़ाने वाला तारतम्य विभाग हमें बताइए।।६०।।

बृहस्पति बोले कि पुण्य का आधा फल प्राप्त करके द्विजवर्मा गाणपत्य को प्राप्त हुए अर्थात् भगवान् शिव के गणों के स्वामी बन गये। उसका आधा फल वज्र नामक चोर को प्राप्त हुआ और उसका आधा फल अन्य लोगों ने लिया।।६१।। मन, वाणी, शरीर और चेष्टाओं से चार प्रकार के कार्य होते हैं, अर्थात् शुभ अथवा अशुभ कार्यों को मन से, वाणी से, शरीर से और चेष्टाओं के करने पर उनका तदनुसार फल मिलता है, अर्थात् मन से किसी का बुरा सोचना भी पाप है, वाणी से किसी को ऐसी बात को कहना, जिससे उसे दुःख हो, वह भी पाप है। शरीर से किसी को मारना-पीटना तो स्पष्ट पाप है, यही नहीं किसी को मारने की चेष्टा करना भी पाप है। इस प्रकार ये कार्य चार प्रकार के हैं। अतः जो कर्म जैसे हैं, जिससे पैदा हुए हैं, उनको ही परिहार कर नष्ट कर देना चाहिए, अर्थात् मन, वाणी, शरीर और चेष्टाओं से यदि कोई पाप पैदा हुआ है, तो उसको मन, वाणी, शरीर और चेष्टाओं से दूर करके विनष्ट कर देना चाहिए।।६२।।

इन्द्र ने कहा कि गुरुदेव! शराब (मद्य) पान का क्या रूप है तथा इसमें क्या दोष अथवा गुण है, उसको मुझे विस्तार से बताइए।।६३।।

बृहस्पतिरुवाच।

पैष्टिकं तालजं कैरं माधूकं गुडसंभवम्। क्रमान्न्यूनतरं पापं तदर्द्धार्द्धार्द्धतस्तथा॥६४॥
क्षत्रियादित्रिवर्णानामासवं पेयमुच्यते। स्त्रीणामपि तृतीयादि पेयं स्याद्ब्राह्मणीं विना॥६५॥
पतिहीना च कन्या च त्यजेदृतुमती तथा। अभर्तृसन्निधौ नारी मद्यं पिबति लोलुपा॥६६॥
उन्मादिनीति साख्याता तां त्यजेदन्त्यजामिव॥६७॥
दशाष्टषट्चतस्रस्तु द्विजातीनामयं भवेत्। स्त्रीणां मद्यं तदर्द्धं स्यात्पादंस्याद्भर्तृसङ्गमे॥६८॥
मद्यं पीत्वा द्विजो मोहात्कृच्छ्रचान्द्रायणं चरेत्। जपेच्चायुतगायत्रीं जातवेदसमेव वा॥६९॥
अम्बिका हृदयं वापि जपेच्छुद्धो भवेन्नरः।
क्षत्रियोऽपि त्रिवर्णानां द्विजादधोऽर्धतः क्रमात्॥७०॥
स्त्रीणामर्धार्धक्लृप्तिः स्यात्कारयेद्वाद्विजैरपि। अन्तर्जले सहस्रं वा जपेच्छुद्धिमवाप्नुयात्॥७१॥
लक्ष्मीः सरस्वती गौरी चंडिका त्रिपुरांबिका।
भैरवो भैरवी काली महाशास्त्री च मातरः॥७२॥

बृहस्पति ने कहा कि पाँच प्रकार की शराब (आसव) होती है, वह है— १. पैष्टिक—जो अन्न को सड़ाकर बनायी जाती है, २. तालज—जो ताड़ अथवा खजूर से बनाई जाती है, जिसे ताड़ी भी कहते हैं, ३. कैर—जो केर को सड़ा कर बनायी जाती है, ४. माधूक—महुआ की शराब तथा ५. गुड़ से पैदा होने वाली शराब। इस प्रकार ये पाँच प्रकार के आसव (मद्य) हैं, इनका पान करना पाप है तथा इनमें सबसे अधिक पाप सड़े अन्न से बनी शराब पीने से होता है, फिर क्रमशः आधा होता चला जाता है तथा सबसे कम पाप गुड़ से बनी शराब पीने से होता है।।६४।। क्षत्रियादि वर्णों का तो आसव पेय कहा जाता है। स्त्रियों को भी कैर नामक आसव को पीना चाहिए; परन्तु ब्राह्मणी को नहीं पीना चाहिए।।६५।। पतिहीन, विधवा नारी, कन्या और रजस्वला नारी को मद्यपान छोड़ देना चाहिए तथा अपने पति के पास न रहने वाली स्त्री लोलुप होकर मद्यपान करती है, वह उन्मादिनी कही गयी है, उस स्त्री को अन्त्यज (चाण्डाल नारी) की भाँति छोड़ देना चाहिए।।६६-६७।। दश, आठ, छः और चार यह द्विजातियों का होना चाहिए, स्त्रियों को उसका आधा मद्यपान तथा चौथायी पति के साथ समागम करने से होता है अर्थात् ब्राह्मण को शराब पीने से दश गुना, क्षत्रिय को आठ गुना, वैश्य को छः गुना और शूद्र को चार गुना पाप होता है और सब वर्ण की स्त्रियों को उस वर्ण का आधा तथा समागम करते समय पीने पर चौथाई पाप होता है।।६८।।

ब्राह्मण को मोहवश मद्यपान करके चान्द्रायण व्रत करना चाहिए तथा दश हजार बार गायत्री मन्त्र का अथवा जातवेद मन्त्र का जाप करना चाहिए।।६९।। अम्बिका को हृदय में रखकर यदि मनुष्य जप करे, तो शुद्ध हो जाना चाहिए तथा क्षत्रिय को ब्राह्मण से आधे बार अर्थात् पाँच हजार बार उपर्युक्त जाप करना चाहिए, फिर अन्य वर्णों को उसके आधे तथा फिर आधे के आधे बार जाप करना चाहिए, इस प्रकार वैश्य को पच्चीस सौ बार तथा शूद्र को बारह सौ पचास बार गायत्री अथवा जातवेद मन्त्र का जाप करना चाहिए।।७०।। स्त्रियों को उसके आधे के आधे बार जाप करना चाहिए; परन्तु वह जाप उन्हें जल के अन्दर खड़े होकर एक हजार बार करना होगा, तब वे शुद्धि प्राप्त करेंगीं तथा ऐसा ब्राह्मणों द्वारा भी किया जाना चाहिए।।७१।। लक्ष्मी, सरस्वती, गौरी, चण्डिका, त्रिपुराम्बिका,

अन्याश्च शक्तयस्तासां पूजने मधु शस्यते। ब्राह्मणस्तु विना तेन यजेद्वेदाङ्गपारगः॥७३॥
तन्निवेदितमश्नंतस्तदनन्यास्तदात्मकाः। तासां प्रवाहा गच्छन्ति निर्लेपास्ते परां गतिम्॥७४॥
कृतस्याखिलपापस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा। प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पराशक्तेः पदस्मृतिः॥७५॥
अनभ्यर्च्य परां शक्तिं पिबेन्मद्यं तु योऽधमः। रौरवे नरकेऽब्दं तु निवसेद्बिंदुसंख्यया॥७६॥
भोगेच्छया तु यो मद्यं पिबेत्स मानुषाधमः। प्रायश्चित्तं न चैवास्य शिलाग्निपतनादृते॥७७॥
द्विजो मोहान्न तु पिबेत्स्नेहाद्वा कामतोऽपि वा। अुग्रहाच्च महतामनुतापाच्च कर्मणः॥७८॥
अर्चनाच्च पराशक्तेर्यमैश्च नियमैरपि। चांद्रायणेन कृच्छ्रेण दिनसंख्याकृतेन च।
शुद्ध्येच्च ब्राह्मणो दोषाद्द्विगुणादबुद्धिपूर्वतः॥७९॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने स्तेयपानकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

भैरव, भैरवी, काली और महाशास्त्री ये सब माताएँ हैं।।७२।। अन्य भी शक्तियाँ हैं, उनके पूजन में मधु (आसव) के साथ बलि दी जाती है। वेद और (वेदाङ्गों में पारङ्गत ब्राह्मण को तो मधु के बिना ही यज्ञ पूजनादि करने चाहिएँ।।७३।। जो लोग निवेदन करने पर आसव का उपभोग नहीं करते हैं तथा उससे अन्य जो उसका सेवन करते हैं, अतः जो सेवन करते हैं, उनका किये गये समस्त पापों के जो कि जानते हुए हुए हों, अथवा अज्ञान से हुए हों, उसका प्रायश्चित्त यही है कि वह पराशक्ति के चरणों का स्मरण करे, अर्थात् पराशक्ति का ध्यान करे तथा उनका जाप करे।।७४-७५।। जो अधम व्यक्ति पराशक्ति की अर्चना न करके मद्यपान करता है, वह विन्दुओं की संख्या में असंख्य बार रौरव नरक में गिरता है।।७६।।

भोग करने की इच्छा से जो मनुष्य मद्यपान करता है, वह मनुष्य अधम (नीच) होता है तथा भोग की इच्छा से पिये गये मद्यपान के पाप का पत्थर की शिला पर शिर पटकने के अलावा कोई प्रायश्चित्त नहीं है।।७७।। ब्राह्मण को मोह से मद्य नहीं पीना चाहिए न किसी द्वारा प्रेमपूर्वक देने से पीना चाहिए और न ही काम (संभोग) की दृष्टि से मद्यपान करना चाहिए।।७७½।। तथा ब्राह्मण यदि पान कर ले तो उसे महान् पुरुषों के अनुग्रह से और कर्म के अनुपात से यम और नियमों द्वारा पराशक्ति की अर्चना से और चान्द्रायण व्रत से बुद्धिपूर्वक दुगुने दोषों से शुद्ध होना चाहिए।।७७½-७९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ७वाँ अध्याय स्तेय पान कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

अगम्यागमयोः प्राश्चित्त वर्णनं नाम

अष्टमोऽध्यायः

इन्द्र उवाच

अगम्यागमनं किं वा को दोषः का च निष्कृतिः। एतन्मे मुनिशार्दूल विस्तराद्वक्तुमर्हसि॥१॥

बृहस्पतिरुवाच।

अगम्यागमनं नाम मातृस्वसृगुरुस्त्रियः। मातुलस्य प्रिया चेति गत्वेमा नास्ति निष्कृतिः॥२॥

मातृसङ्गे तु यदघं तदेव स्वसृसङ्गमे। गुरुस्त्रीसंगमे तद्वद्गुरवो बहवः स्मृताः॥३॥

ब्रह्मोपदेशमारभ्य यावद्वेदांतदर्शनम्। एकेन वक्ष्यते येन स महागुरुरुच्यते॥४॥

ब्रह्मोपदेशमेकत्र वेदशास्त्राण्यथैकतः। आचार्यः स तु विज्ञेयस्तदेकैकास्तु देशिकाः॥५॥

गुरोरात्मांतमेव स्यादाचार्यस्य प्रियागमे। द्वादशाब्दं चरेत्कृच्छ्रमेकैकं तु षडब्दतः॥६॥

मातुलस्य प्रियां गत्वा षडब्दं कृच्छ्रमाचरेत्। ब्राह्मणस्तु सजातीयां प्रमदां यदि गच्छति॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-८

अगम्य और आगमादि और उनका प्रायश्चित्त वर्णन

इन्द्र ने कहा कि गुरुदेव! यह बतलाइए कि जिनके साथ समागम नहीं करना चाहिए तथा उनके साथ करने पर घोर पाप होता है, उनको बताइए। अर्थात् जो अगम्य है, जिनके साथ समागम नहीं करना चाहिए तथा उनके साथ करने में क्या दोष है तथा उससे बचने का उपाय क्या है, यह विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए।।१।।

बृहस्पति ने कहा कि अगम्यागमन का नाम है कि माता, बहिन और गुरुपत्नी और मामा की पत्नी अर्थात् मामी, इन सबके साथ समागम नहीं करना चाहिए तथा यदि किसी ने कर लिया है, तो उससे बचने का कोई उपाय नहीं, उस घोर पाप का फल भोगना ही पड़ेगा।।२।। माता के साथ समागम करने में जो पाप है, वही पाप बहिन के साथ सम्भोग करने में है। उसी प्रकार गुरुपत्नी के साथ भी उसके बराबर पाप है। तब गुरु तो बहुत स्मरण किये गये हैं, तो बताते हैं कि ब्रह्मज्ञान का उपदेश प्रारम्भ करके वेदान्त दर्शन का उपदेश जिस एक के द्वारा दिया जाता है, वह महागुरु कहा जाता है।।४।। ब्रह्म का उपदेश एक स्थान पर है और वेदशास्त्र एक तरफ, अतः वेदशास्त्रों को पढ़ाने वाला आचार्य समझना चाहिए और एक एक को पढ़ाने वाले को देशिक कहा जाता है।।५।। गुरु की पत्नी के साथ समागम से आत्मा का अन्त ही हो जाना चाहिए तथा आचार्य की प्रियतमा के साथ समागम करने में बारह वर्ष कृच्छ्र नामक नरक में अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता है तथा वह दोनों को स्त्री तथा पुरुष को छः-छः वर्ष नरक भोगना पड़ता है।।६।। मामा की पत्नी से समागम करने वाले को छः वर्ष तक अत्यन्त पीड़ादायक कृच्छ्र नामक नरक को भोगना चाहिए। ब्राह्मण यदि अपनी जाति की स्त्री से यदि समागम करता है, तो उसे घर से तीन रात तक बाहर रहकर

उपोषितस्त्रिरात्रं तु प्राणायामशतं चरेत्। कुलटां तु सजातीयां त्रिरात्रेण विशुध्यति॥८॥
पञ्चाहात्क्षत्रियां गत्वा सप्ताहाद्वैश्यजामपि। चक्रीकिरातकैवर्तकर्मकारादियोषितः॥९॥
शुद्धिः स्याद्द्वाहशाहेन धराशक्त्यर्चनेन च।
अन्त्यजां ब्राह्मणो गत्वा प्रमादादब्दतः शुचिः॥१०॥
देवदासी ब्रह्मदासी स्वतंत्रा शूद्रदासिका। दासी चतुर्विधा प्रोक्ता द्वे चाद्ये क्षत्रियासमे॥११॥
अन्या वेश्याङ्गनातुल्या तदन्या हीनजातिवत्।
आत्मदासीं द्विजो मोहादुक्तार्थे दोषमाप्नुयात्॥१२॥
स्वस्त्रीमृतुमतीं गत्वा प्राजापत्यं चरेद्व्रतम्। द्विगुणेन परां नारीं चतुर्भिः क्षत्रियांगनाम्॥१३॥
अष्टभिर्वैश्यनारीं च शूद्रां षोडशभिस्तथा। द्वात्रिंशता संकरजां वेश्यां शूद्रामिवाचरेत्॥१४॥
रजस्वलां तु यो भार्यां मोहतो गंतुमिच्छति। स्नात्वान्यवस्त्रसंयुक्तमुक्तार्थेनैव शुध्यति॥१५॥
उपोष्य तच्छेषदिनं स्नात्वा कर्म समाचरेत्। तथैवान्यांगनां गत्वा तदुक्तार्थं समाचरेत्॥१६॥
पित्रोरनुज्ञया कन्यां यो गच्छेद्विधिना विना। त्रिरात्रोपोषणाच्छुद्धिस्तामेवोद्वाहयेत्तदा॥१७॥

सौ प्राणायाम करने चाहिएँ। अपनी जाति की स्त्री यदि कुलटा है, तो वह ब्राह्मण तीन रात में शुद्ध होता है।।७-८।। यदि ब्राह्मण पराई क्षत्रिया स्त्री के साथ समागम करे, तो पाँच दिन तक तथा वैश्य की लड़की के साथ समागम करने पर सात दिन तक घर से बाहर रहकर सौ सौ बार प्राणायाम करना चाहिए, तब वह ब्राह्मण विशुद्ध होता है। चक्री, किरात, कैवर्त और कर्मकार आदि की स्त्री के साथ समागम करने पर ब्राह्मण की शुद्धि बारह दिन तक घर से बाहर रहकर सौ सौ प्राणायम करने से तथा पृथ्वी और पराशक्ति के पूजन से होती है। यदि चाण्डाल की पुत्री के साथ प्रमाद से ब्राह्मण समागम करे, तो उसकी एक वर्ष तक बाहर रहकर प्राणायाम तथा पृथ्वी और शक्ति का पूजन करने से शुद्धि होती है।।९-१०।। देवदासी, ब्रह्मदासी, स्वतन्त्रा और शूद्रदासी इस प्रकार दासियाँ चार प्रकार की होती हैं, इनमें प्रारम्भ की दो देवदासी और ब्रह्मदासी क्षत्रियों की दासियाँ होती हैं। अन्य दो दासियाँ, स्वतन्त्रा और शूद्रदासिका ये दासियाँ वैश्य की स्त्री के तुल्य उसके अन्य सब हीन जाति के समान होती हैं। अपनी दासी से यदि कोई ब्राह्मण समागम करे, तो वह दोष को प्राप्त करता है।।११-१२।।

अपनी रजस्वला स्त्री से यदि कोई ब्राह्मण समागम करे, तो उसे प्राजापत्य व्रत करना चाहिए तथा यदि पराई रजस्वला स्त्री से समागम करे, इससे दुगुना और चार गुना तक व्रत करना चाहिए।।१३।। तथा वहीं पर ब्राह्मण यदि वैश्य रजस्वला नारी से समागम करे, तो आठ बार, यदि शूद्रा के साथ करे, तो सोलह बार प्राजापत्य व्रत करना चाहिए तथा यदि वर्णसंकर जाति की रजस्वला हो, तो बत्तीस बार प्राजापत्य व्रत का आचरण करे। वैश्य और शूद्रा रजस्वला के साथ विप्र समागम से भी बत्तीस प्राजापत्य व्रत का विधान है।।१४।। जो अत्यधिक कामावेश में रजस्वला पत्नी के साथ समागम करना चाहता है, वह स्नान करके अन्य वस्त्र से संयुक्त हो, मुक्त अर्थ से शुद्ध होता है।।१५।। तथा वह घर से बाहर रहकर उस शेष दिन स्नान करके ही कोई कर्म करना चाहिए। उसी प्रकार अन्यों की रजस्वला स्त्रियों के साथ समागम करके शरीर शुद्धि करनी चाहिए।।१६।। कन्या के माता-पिता की अनुमति के बिना जो व्यक्ति बिना विधि के समागम करे, तो उसकी शुद्धि तीन रात घर से बाहर रहने से हो तथा तब उसका विवाह भी उसी के

कन्यां दत्त्वा तु योऽन्यस्मै दत्ता यश्चानुयच्छति। पित्रोरनुज्ञया पाददिनार्धेन विशुध्यति॥१८॥
ज्ञातः पितृभ्यां यो मासं कन्याभावे तु गच्छति। वृषलः स तु विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः॥१९॥
ज्ञातः पितृभ्यां यो गत्वा परोढां तद्विनाशने। विधवा जायते नेयं पूर्वगन्तारमाप्नुयात्॥२०॥
अनुग्रहाद्द्विजातीनामुद्वाहाविधिना तथा। त्यागकर्माणि कुर्वीत श्रौतस्मार्तादिकानि च॥२१॥
आदाबुद्वाहिता वापि तद्विनाशेऽन्यदः पिता।
भोगेच्छोः साधनं सा तु न योग्याखिलकर्मसु॥२२॥
ब्रह्मादिपिपीलकांतं जगत्स्थावरजंगमम्। पञ्चभूतात्मकं प्रोक्तं चतुर्वासनयान्वितम्॥२३॥
जन्माद्याहारमथननिद्राभीत्यश्च सर्वदा। आहारेण विना जंतुर्नाहारो मदनात्स्मृतः॥२४॥
दुस्तरो मदनस्तस्मात्सर्वेषां प्राणिनामपि। पुन्नारीरूपवत्कृत्वा मदननेनैव विश्वसृक्॥२५॥
प्रवृत्तिमकरोदादौ सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्। तत्प्रवृत्त्या प्रवर्तंते तन्निवृत्त्याक्षयां गतिम्॥२६॥

साथ होना चाहिए।।१७।। जो अपनी कन्या अन्य को देकर दी हुई कन्या को फिर वापस ले लेता है, वह माता-पिता की अनुमति से आधे दिन में शुद्ध होता है।।१८।। माता-पिता के जानते हुए, जो उसकी कन्या से एक मास तक समागम करे, तो उसे शूद्र समझना चाहिए तथा उसे सब कर्मों से बहिष्कृत कर देना चाहिए।।१९।। माता-पिता के जानते हुए, जो व्यक्ति पराई स्त्री से समागम करे और फिर वह मर जाये तो उसके मरने पर यह विधवा अपने पूर्व समागम कर्ता को न प्राप्त करे। अर्थात् उस समागमकर्ता की ही पत्नी मानी जानी चाहिए। यहाँ इसका यह अर्थ हो सकता है कि पिता-माता की जानकारी में कोई अन्य को विवाहित स्त्री से समागम करे, तो उसके मरने पर वह विधवा नहीं होती, वह पूर्व समागमकर्ता की पत्नी ही मानी जानी चाहिए।।२०।। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य द्विजातियों के अनुग्रह से विवाह विधि से विवाही गई पत्नी को वेद विहित एवं स्मृतियों में वर्णित त्याग कर्मों को करना चाहिए।।२१।। जो स्त्री पहले विवाहित हो और विवाहित होते ही उसका पति मर जाये तो पिता उसे अन्य पुरुष को देने वाला होता है, अर्थात् पिता अन्य पुरुष के साथ उसका विवाह कर सकता है; परन्तु वह गृहस्थी के सभी कर्म करने के योग्य नहीं होती, अर्थात् पूजा-पाठ आदि कार्यों में वह पत्नी के पद का निर्वाह नहीं कर सकती।।२२।।

ब्रह्म आदि से लेकर एक चींटी तक यह जड़-चेतन संसार पञ्चभूतात्मक कहा गया है। चार वासनाओं से युक्त है।।२३।। पहले जन्म आदि होता है, फिर आहार, मैथुन, निद्रा और भय सर्वदा सभी जीवों में रहता है। आहार के बिना कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। आहार ही मैथुन का कारण होता है।।२४।। आहार किया है, तो वीर्य बनेगा, जो मैथुन का कारण होगा। इसलिये इस मदन (कामदेव) को जीतना, उसको वश में करना बहुत कठिन है, क्योंकि यह मदन सब प्राणियों से दुस्तर है तथा सब प्राणियों का कारण भी है। यदि कामदेव (मैथुन) नहीं होता तो प्राणी नहीं होते। संसार के समस्त प्राणी मैथुन से ही उत्पन्न हुए हैं।।२४½।। विश्व की रचना करने वाले ब्रह्मा ने आदिकाल में पुरुष और नारी का रूप धारण करके मदन (मैथुन) से ही सृष्टि, स्थिति और लयात्मक प्रवृत्ति की थी।।२४½-२५½।। उस कामदेव (मैथुन) के प्रवृत्त होने अर्थात् मैथुन करने से संसार प्रवृत्त होता है, अर्थात् संसार में जीव की उत्पत्ति होती है और स्थिति भी होती है; क्योंकि बच्चा पैदा करने के बाद मैथुन की आसक्ति के कारण ही तो प्राणी एक-दूसरे मिले-जुले रहते हैं, जिससे यह संसार चलता रहता है। यदि यह मैथुन की आसक्ति नहीं होती

प्रवृत्त्यैव यथा मुक्तिं प्राप्नुयुर्ये न धीयुताः। तद्रहस्यं तदोपायं शृणु वक्ष्यामि सांप्रतम्॥२७॥
सर्वात्मको वासुदेवः पुरुषस्तु पुरातनः। इयं हि मूलप्रकृतिर्लक्ष्मीः सर्वजगत्प्रसूः॥२८॥
पंचापंचात्मतृप्त्यर्थं मथनं क्रियतेतराम्। एवं मंत्रानुभावात्स्यान्मथनं क्रियते यदि॥२९॥
तावुभौ मंत्रकर्माणौ न दोषो विद्यते तयोः॥३०॥
तपोबलवतामेतत्केवलानामधोगतिः। स्वस्त्रीविषय एवेदं तयोरपि विधेर्बलात्॥३१॥
परस्परात्म्यैक्यहृदोर्देव्या भक्त्यार्द्रचेतसोः। तयोरपि मनाक्चेन्न निषिद्धदिवसेष्वधम्॥३२॥
इयमंबा जगद्धात्री पुरुषोऽयं सदाशिवः। पंचविंशतितत्त्वानां प्रीतये मथ्यतेऽधुना॥३३॥
एतन्मंत्रानुभावाच्च मथनं क्रियते यदि। तावुभौ पुण्यकर्माणौ न दोषो विद्यते तयोः॥३४॥
इदं च शृणु देवेंद्र रहस्यं परमं महत्। सर्वेषामेव पापानां यौगपद्येन नाशनम्॥३५॥
भक्तिश्रद्धासमायुक्तः स्नात्वांतर्जलसंस्थितः। अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेत्पंचदशाक्षरीम्॥३६॥
आराध्य च परां शक्तिं मुच्यते सर्वकिल्विषैः। तेन नश्यंति पापानि कल्पकोटिकृतान्यपि।
सर्वापद्भ्यो विमुच्येत सर्वाभीष्टं च विंदति॥३७॥

तो बच्चा पैदा करने के एक बार सम्भोग के बाद वे एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रखते तथा जब इस कामदेव की समाप्ति हो जाती है, तब प्रलय होती है, जो अक्षय है, अवश्यम्भावी है, जिसे होना ही है।।२६।। इस मदन की प्रवृत्ति द्वारा जिन बुद्धिमानों ने मुक्ति प्राप्त की है, उस रहस्य को तथा उसके उपाय को सुनो, इस समय मैं तुमको बताऊँगा। यह बृहस्पति ने इन्द्र से कहा।।२७।। सबकी आत्मा वासुदेव हैं, जो कि सबसे पुरातन पुरुष हैं तथा यह मूल प्रकृति लक्ष्मी है, जो कि समस्त संसार को पैदा करने वाली है।।२८।। पाँचों तत्त्व अपनी तृप्ति के लिये मंथन करते रहते हैं, अर्थात् वे पाँचों तत्त्व पाँचों में परस्पर एक-दूसरे में मिलते हैं। इस प्रकार मन्त्रों का अनुभावन करने से यदि मन्थन किया जाता है, फिर वे मन्त्र और कर्म ही सब कुछ है। मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच तत्त्व हैं, जो मन्थन (सम्भोग) में एक हो जाते हैं; क्योंकि इन सबका अस्तित्व है। उन मन्त्र और कर्म ही सब कुछ है अर्थात् मन्त्र का अर्थ है—किसी कार्य को करने का विचार करना, फिर विचार करने के बाद उसे कार्य के रूप में बदलना। इस प्रकार मन्त्र और कार्य दो ही इस संसार के सार हैं। अतः इन मन्त्र और कर्म दोनों में कोई दोष नहीं है।।२९-३०।। जिनका केवल तपस्या का बल होता है, उनकी भी स्त्री के विषय में विधि के बल से अधोगति होती है।।३१।। आपस में दो आत्माओं की एकता और दो हृदयों को भक्ति से आर्द्र चित्त होकर निषिद्ध दिन में सम्भोग करते हैं, उनकी भी स्त्री के विषय में अधोगति होती है। ये आद्या प्रकृति संसार को धारण करने वाली हैं और ये सदाशिव पुरुष हैं। ये पच्चीस तत्त्वों की प्रीति के लिए अब भी मन्थन करते रहते हैं। यदि मन्त्र के अनुभाव से मन्थन किया जाता है, तो वे दोनों ही पुण्यकर्म करने वाले हैं। तब उन दोनों में कोई दोष नहीं है।।२२-३४।। बृहस्पति ने कहा कि हे देवेन्द्र! सभी पापों को एक साथ नाश करने वाले अब परम महान् रहस्य को सुनो। भक्ति और श्रद्धा समन्वित व्यक्ति स्नान करके, जल में स्थित होकर पन्द्रह अक्षरों वाले मन्त्र का एक हजार आठ बार पराशक्ति की आराधना करके जाप करे, तो मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। उस जाप से करोड़ों कल्पों के पाप नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य सब आपत्तियों से विमुक्त हो जाता है और सब मनवाञ्छित फल को प्राप्त करता है।।३५-३७।।

इंद्र उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वभूतहिते रत। संयोगजस्य पापस्य विशेषं वक्तुमर्हसि॥३८॥

बृहस्पतिरुवाच।

संयोगजं तु यत्पापं तच्चतुर्धा निगद्यते। कर्ता प्रधानः सहकृन्निमित्तोऽनुमतः क्रमात्॥३९॥

क्रमाद्दशांशतोऽधं स्याच्छुद्धिः पूर्वोक्तमार्गतः॥४०॥

मद्यं कलंजं निर्यासं छत्राकं गृंजनं तथा। लशुनं च कलिंगं च महाकोशातकीं तथा॥४१॥

बिंबीं च कवकं चैव हस्तिनीं शिशुलंबिकाम्।

औदुंबरं च वार्ताकं कतकं बिल्वमल्लिका॥४२॥

क्रमाद्दशगुणं न्यून मघमेषां विनिर्दिशेत्। पुरग्रामांगवैश्यांगवेश्योपायनविक्रयी॥४३॥

सेवकः पुरसंस्थश्च कुग्रामस्थोऽभिशस्तकः। वैद्यो वैखानसः शैवो नारीजीवोऽन्नविक्रयी॥४४॥

शस्त्रजीवी परिव्राट् च वैदिकाचारनिंदकः। क्रमाद्दशगुणान्न्यूनमेषामन्नादने भवेत्॥४५॥

स्वतंत्रं तैलक्लृप्तं तु ह्युक्तार्थं पापमादिशेत्। तैरेव दृष्टं तद्भुक्तमुक्तपापं विनिर्दिशेत्॥४६॥

इन्द्र ने कहा कि हे सर्व धर्मों के ज्ञाता, सब प्राणियों के हित में लगे हुए गुरुदेव! संयोग से उत्पन्न पाप के विशेष रहस्य को हमें बताइए।।३८।।

बृहस्पति ने कहा—संयोग से पैदा होने वाला जो पाप है, वह चार प्रकार का बताया जाता है। १. प्रधान कर्त्ता, २. सहकारी, ३. निमित्त और ४. अनुमत। उसका दश भाग का योग होता है, जैसे कि संयोगज पाप में करने वाला जो प्रधान है, वह जिस अंश का है, उसके दशवें अंश के पाप का भागी उस पाप में सहयोग करने वाला होता है तथा उसके दशवें भाग का भोक्ता वह होता है, जिसके लिये वह पाप किया गया तथा जिसने उस पाप को करने की अनुमति दी, वह निमित्त के दशवें पाप का भागी होता है। इस प्रकार क्रम से प्रत्येक क्रमशः एक के बाद दूसरे दश में अंश के पाप का भागी होता है अर्थात् इन कामों को करने वाला जितने पाप का भी भागी होता है, उसके दशवें भाग का भागी उस कार्य का सहयोगी होता है तथा जिसके लिये वह कार्य किया गया है, वह सहयोगी के दशवे भाग का भोगी होता है तथा जिसने उस काम की अनुमति दी है, वह भी सहयोगी के दशवे भाग का भोगी होता है तथा उस पाप से शुद्धि पूर्व मार्ग के अनुसार करनी चाहिए।।४०।।

मद्य, कलंज (मांस) निर्यास (पौधों का अर्क) छत्राक (कुकुरमुत्ता) गृञ्जन (गांजा) लशुन, कलिंग, महाकोशातकी, बिंबी (कुंदरू), कवक (कुकुरमुत्ता), हस्तिनी (गन्ध द्रव्य) शिशुलम्बिका (जल जन्तु), औदुम्बर (गूलर) वार्ताक (वैंगन), कतक (रीठा) बिल्वमल्लिका। इन सबको खाने से क्रमशः दश गुना कम पाप होता है।।४१-४२½।। नगर अथवा ग्राम के अंग को बेचने वाला, वैश्य के अंश और वेश्या के उपहारों को बेचने वाला, नगरस्थ सेवक, कुग्रामस्थ (असभ्य लोगों के गाँव में रहने वाला), अभिशस्तक (दूसरो को निन्दा करने वाला), वैद्य, तपस्वी, शैव, नारी, जीव और अन्न को बेचने वाला, शस्त्र बना कर जीविका चलाने वाला और सन्यासी, वैदिक आचार की निन्दा करने वाला, इनका अन्न खाने से क्रमशः दश गुना कम पाप होता है।।४२½-४५।। स्वतन्त्र और तेल से बना हुआ अन्न भी उपर्युक्त वाला पाप होता है। उनके द्वारा देखे गये तथा खाये गये अन्न में भी उक्त पाप का

ब्रह्मक्षत्रविशां चैव सशूद्राणां यथौदनम्। तैलपक्वमदृष्टं च भुंजन्पादमघं भवेत्॥४७॥
द्विजात्मदासीक्लृप्तं च तया दृष्टे तदर्धके। वेश्यायास्तु त्रिपादंस्यात्तथा दृष्टे तदोदने॥४८॥
शूद्रावत्स्यात्तु गोपान्नं विना गव्यचतुष्टयम्। तैलाज्यगुडसंयुक्तं पक्वं वैश्यान्न दुष्यति॥४९॥

वैश्यावद्ब्राह्मणी भ्रष्टा तया दृष्टेन किंचन॥५०॥
बुवस्यान्नं द्विजो भुक्त्वा प्राणायामशतं चरेत्।
अथवांतर्जले जप्त्वा द्रुपदां वा त्रिवारकम्॥५१॥

इदं विष्णुस्त्र्यंबकं वा तथैवांतर्जले जपेत्। उपोष्य रजनीमेकां ततः पापाद्विशुध्यति॥५२॥
अथवा प्रोक्षयेदन्नमब्लिंगैः पावमानिकैः। अन्नसूक्तं जपित्वा तु भृगुर्वै वारुणीति च॥५३॥

ब्रह्मार्पणमिति श्लोकं जप्त्वा नियममाश्रितः।
उपोष्य रजनीमेकां ततः शुद्धो भविष्यति॥५४॥
स्त्री भुक्त्वा तु बुवाद्यन्नमेकाद्यान्भोजयेद्द्विजान्।
आपदि ब्राह्मणो ह्येषामन्नं भुक्त्वा न दोषभाक्॥५५॥
इदं विष्णुरिति मंत्रेण सप्तवाराभिमंत्रितम्।
सोऽहंभावेन तद्ध्यात्वा भुक्त्वा दोषैर्न लिप्यते॥५६॥

अथवा शंकरं ध्यायञ्जप्त्वा त्रैय्यंबकं मनुम्। सोऽहंभावेन तज्ज्ञानान्न दोषैः प्रविलिप्यते॥५७॥

निर्देश करना चाहिए।।४६।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का भात और तेल से पका हुआ भोजन, जिसे पकते हुए नहीं देखा है, उसे खाते हुए चौथाई पाप होता है।।४७।। ब्राह्मण का अपनी दासी का पकाया हुआ तथा उसके द्वारा देखने पर आधा पाप होता है तथा वेश्या द्वारा पकाये हुए अथवा देखे हुए भात को खाने पर ३/४ पौना पाप होता है।।४८।। शूद्रा के अन्न के समान गोपा (गाय पालने वाली) ग्वालिनी का अन्न होता है। उस पाप को चार गव्य अर्थात् गोबर को छोड़कर दुग्ध, दही, घृत और मूत्र द्वारा दूर किया जा सकता है। तेल, घी, गुड़ से युक्त पकाया हुआ वैश्य स्त्री का अन्न दोष युक्त होता है। वैश्या के समान जो ब्राह्मणी भ्रष्ट है, उसके द्वारा देखा गया अन्न दूषित होता है।।४९-५०।। जिसकी जाति आदि का पता नहीं हो तथा अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य कहता हो, उसका अन्न ब्राह्मण खाकर सौ प्राणायाम करे। अथवा जल के अन्दर जाप करके दो बार अथवा तीन बार प्राणायाम करे तथा वह विष्णुस्त्र्यम्बक स्तोत्र को जल में खड़े होकर जाप करे तथा फिर एक रात तक घर से बाहर रहे, तब उसके बाद वह पाप से शुद्ध होता है।।५१-५२।। अथवा पावमानिक तथा अब्लिङ्ग नामक विशिष्ट वैदिक ऋचाओं द्वारा अन्न का प्रोक्षण करे अथवा भृगु ऋषि द्वारा लिखित अन्नसूक्त का जाप करके वारुणी के ब्रह्मार्पण नामक श्लोक का जाप करके नियम का पालन करता हुआ एक रात घर से बाहर रहकर शुद्ध होगा।।५३-५४।।

यदि स्त्री किसी बुव (किसी अज्ञात जाति वाले) का अन्न खाकर किसी अन्य ब्राह्मण को खिलाये तो आपत्ति काल में इसके अन्न को खाकर दोष (पाप) का भागी नहीं होता है।।५५।। तथा वह इदं विष्णु इस मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित 'सोऽहं' भाव से विष्णु का ध्यान करके खाये तो वह दोषों से लिप्त नहीं होता है।।५६।। अथवा भगवान्

इदं रहस्यं देवेन्द्र शृणुष्व वचनं मम। ध्यात्वा देवीं परां शक्तिं जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्॥५८॥
तन्निवेदितबुद्ध्यादौ योऽश्नाति प्रत्यहं द्विजः। नास्यान्नदोषजं किंचिन्न दारिद्र्यभयं तथा॥५९॥
न व्याधिजं भयं तस्य न च शत्रुभयं तथा। जपतो मुक्तिरेवास्य सदा सर्वत्र मंगलम्॥६०॥
एष ते कथितः शक्र पापानामपि विस्तरः। प्रायश्चित्तं तथा तेषां किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥६१॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

शंकर का ध्यान करते हुए त्र्यंबक मनु का जप करके 'सोऽहं' भाव से उसके ज्ञान से वह दोषों से लिप्त नहीं होता है।।५७।।

तब बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि हे देवेन्द्र! यह रहस्य है, अतः तुम मेरा वचन सुनो। वह यह कि पराशक्ति देवी का ध्यान करके 'पंचदशाक्षरी' का जाप करके बुद्धि आदि में उनको निवेदन करता हुआ, जो ब्राह्मण प्रतिदिन भोजन करता है, उसको कोई अन्न दोष नहीं होता और न उसको कोई दरिद्रता का भय होता है, अर्थात् वह कभी गरीब नहीं होता।।५८।। यही नहीं, उस व्यक्ति को व्याधि से उत्पन्न भय भी नहीं होता और न उसे शत्रु से कोई भय ही रहता है। इस प्रकार जप करते हुए उसकी मुक्ति होती है तथा सदा और सर्वत्र मंगल ही मंगल रहता है।।५९-६०।। इस प्रकार हे इन्द्र! मैंने पापों का विस्तार बताया है तथा उनका प्रायश्चित्त भी बता दिया है, अब आगे क्या सुनना चाहते हो?।।६१।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ८वाँ अध्याय अगम्य और आगमादि और उनका प्रायश्चित्त वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

देवासुरामृतमन्थनोनाम

नवमोऽध्यायः

इंद्र उवाच

भगवन्सर्व धर्मज्ञ त्रिकालज्ञानवित्तम। दुष्कृतं तत्प्रतीकारो भवता सम्यगीरितः॥१॥
केन कर्मविपाकेन ममापदि यमागता। प्रायश्चित्तं च किं तस्य गदस्व वदतां वर॥२॥

बृहस्पतिरुवाच।

काश्यपस्य ततो जज्ञे दित्यां दनुरिति स्मृतः। कन्या रूपवती नाम धात्रे तां प्रददौ पिता॥३॥
तस्याः पुत्रस्ततो जातो विश्वरूपो महाद्युतिः। नारायणपरो नित्यं वेदवेदांगपारगः॥४॥
ततो दैत्येश्वरो वव्रे भृगुपुत्रं पुरोहितम्। भवानधिकृतो राज्ये देवानामिव वासवः॥५॥
ततः पूर्वे च काले तु सुधर्मायां त्वयि स्थिते।
त्वया कश्चित्कृतः प्रश्न ऋषीणां सन्निधौ तदा॥६॥
संसारस्तीर्थयात्रा वा कोऽधिकोऽस्ति तयोर्गुणः। वदतु तद्विनिश्चित्य भवन्तो मदनुग्रहात्॥७॥
तत्प्रश्नस्योत्तरं वक्तुं ते सर्व उपचक्रिरे। तत्पूर्वमेव कथितं मया विधिबलेन वै॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-९

देवासुर अमृत मंथन

इन्द्र ने कहा कि सब धर्मों को जानने वाले, भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों को जानने वालों में श्रेष्ठ! भगवन्! आपने पाप और उससे बचने के उपाय सम्यक् प्रकार से बता दिये हैं; परन्तु यह बताइये कि मैंने कौन-सा पाप किया है? जिसके कारण मुझ पर यह आपत्ति आयी है तथा इस पाप से मुक्ति का प्रायश्चित्त क्या है? उसे हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! मुझे बताइए।।१-२।।

बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि मैं बता रहा हूँ कि पूर्वकाल में काश्यप मुनि ने दिति नामक अपनी पत्नी में दनु नामक पुत्र को जन्म दिया था और उन पिता ने दनु को रूपवती नाम की कन्या को प्रदान किया।।३।। उसके बाद उस कन्या का महा क्रान्तिकारी विश्वरूप नाम का पुत्र हुआ, जो नित्य नारायण की सेवा में लीन रहता था और वेदों और वेदाङ्गों में पारङ्गत था।।४।। उसके बाद उस दैत्यराज विश्वरूप ने भृगुपुत्र शुक्राचार्य से कहा कि आपके द्वारा राज्य पर अधिकार किया गया है तथा उस पर देवताओं के राजा इन्द्र राज्य कर रहे हैं।।५।। उस समय पूर्वकाल में जब आप (इन्द्र) ने अपने अच्छे धर्म पर स्थित थे, तब आपने ऋषियों के पास में कोई प्रश्न किया था।।६।। वह यह कि संसार रूपी तीर्थयात्रा में उन दोनों इन्द्र और विश्वरूप में कौन अधिक गुण वाला है। आप मेरे ऊपर कृपा करके बताइए।।७।। उस प्रश्न का उत्तर बताने के लिए वे सब उपक्रम करने लगे, तब मैंने पहले ही कहा था कि

तीर्थयात्रा समधिका संसारादिति च ह्रुतम्। तच्छ्रुत्वा ते प्रकुपिताः शेपुर्मामृषयोऽखिलाः॥९॥
कर्मभूमिं व्रजेः शीघ्रं दारिद्र्येण मितैः सुतैः।
एवं प्रकुपितैः शप्तः खिन्नः कांचीं समाविशम्॥१०॥
पुरीं पुरोधसा हीनां वीक्ष्य चिंताकुलात्मना। भवता सह देवैस्तु पौरोहित्यार्थमादरात्॥११॥
प्रार्थितो विश्वरूपस्तु बभूव तपतां वरः। स्वस्त्रीये दानवानां तु देवानां च पुरोहितः॥१२॥
नात्यर्थमकरोद्वैरं दैत्येष्वपि महातपाः। बभूवतुस्तुल्यबलौ तदा दैत्येन्द्रवासवौ॥१३॥
ततस्त्वं कुपितो राजन्स्वस्त्रीयं दानवेशितुः। हंतुमिच्छन्नगाश्चाशु तपसः साधनं वनम्॥१४॥
तमासनस्थं मुनिभिस्त्रिशृंगमिव पर्वतम्। त्रयी मुखरदिग्भागं ब्रह्मानंदैकनिष्ठितम्॥१५॥
सर्वभूतहितं तं तु मत्वा चेशानुकूलितः। शिरांसि यौगपद्येन छिन्नान्यासंस्त्वयैव तु॥१६॥
तेन पापेन संयुक्तः पीडितश्च मुहुर्मुहुः। ततो मेरुगुहां नीत्वा बहूनब्दान्हि संस्थितः॥१७॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा ज्ञात्वा तु मुनिवाक्यतः। पुत्रशोकेन संतप्तस्त्वां शशाप रुषान्वितः॥१८॥
निःश्रीको भवतु क्षिप्रं मम शापेन वासवः। अनाथकास्ततो देवा विषण्णा दैत्यपीडिताः॥१९॥
त्वया मया च रहिताः सर्वे देवाः पलायिताः। गत्वा तु ब्रह्मसदनं नत्वा तद्वृत्तमूचिरे॥२०॥
ततस्तु चिंतयामास तदघस्य प्रतिक्रियाम्। तस्य प्रतिक्रियां वेत्तुं न शशाकात्मभूस्तदा॥२१॥

विधि के बल से ही सब कुछ होता है। संसार से तीर्थ यात्रा बहुत अधिक है। इसका कोई अन्त नहीं है। उसको सुनकर सब ऋषियों ने मुझ बृहस्पति को शाप दे दिया था।।९।। कि तुम अपनी दरिद्रता और पुत्रों के साथ कर्मभूमि पर जाओ। तब इस प्रकार क्रोधित ऋषियों द्वारा शाप प्राप्त मैं खिन्न हो कांची नगर में आ गया था।।१०।। तब उस पुरी को पुरोहित हीन देख कर चिन्ता से व्याकुल हो गये, तब आपके साथ देवताओं द्वारा आदरपूर्वक पुरोहित बनाने को प्रार्थित विश्वरूप तो तप करने वालों में श्रेष्ठ हो गये थे।।११-११½।। तब दानवों के भगिना (भांजे) और देवों के पुरोहित बृहस्पति ने कहा कि हे महातपस्वी! दैत्यों के साथ अत्यधिक वैर नहीं करना चाहिए, क्योंकि तब दैत्येन्द्र और इन्द्र दोनों ही समान बल वाले हो गये थे।।११½-१३।। उसके बाद हे राजन्! तुमने क्रोधित होकर दानवों के स्वामी अपने भगिना विश्वरूप को मारने की इच्छा करते हुए शीघ्र ही वन को तपस्या का साधन बनाया था।।१४।।

तब आसन पर बैठे हुए उस तीन चोटियों वाले पर्वत के समान तीनों दिशाओं में मुखर होते हुए ब्रह्मानन्द में स्थित होकर तथा उनको सब प्राणियों की भलाई में लगा हुआ मानकर ईशानुकूलित होकर आपने ही तो उनके शिरों को काट दिया था।।१५-१६।। उस पाप से युक्त होकर बार-बार पीड़ित सुमेरु पर्वत की गुफा में जाकर बहुत वर्षों तक ठहरे थे।।१७।। उसके बाद उसके वचन को सुनकर और मुनि के वाक्य से जानकर पुत्रशोक से संतप्त क्रोधित उन्होंने शाप दिया था कि इन्द्र! तुम मेरे शाप से श्रीविहीन हो जाओ।।१८।। इसके बाद सब देवता अनाथ हो गये और दैत्यों से पीड़ित होकर दुःखी हो गये।।१९।। तुमसे और मुझसे रहित सभी देवता भाग गये और फिर ब्रह्माजी के घर जाकर उन्होंने सब वृत्तान्त कह दिया।।२०।। उसके बाद उस पाप की प्रतिक्रिया को सोचने लगे, तब उस पाप की प्रतिक्रिया को जानने में ब्रह्मा जी भी समर्थ नहीं हो सके।।२१।।

ततो देवैः परिवृतो नारायणमुपागमत्॥२२॥
नत्वा स्तुत्वा चतुर्वक्रस्तदवृत्तांतं व्यजिज्ञपत्।
विचिंत्य सोऽपि बहुधा कृपया लोकनायकः॥२३॥
तदघं तु त्रिधा भित्त्वा त्रिषु स्थानेष्वथार्पयत्। स्त्रीषु भूम्यां च वृक्षेषु तेषामपि वरं ददौ॥२४॥
तदा भर्त्तृसमायोगं पुत्रावाप्तिमृतुष्वपि। छेदे पुनर्भवत्वं तु सर्वेषामपि शाखिनाम्॥२५॥
खातपूर्तिं धरण्याश्च प्रददौ मधुसूदनः। तेष्वगं प्रबभूवाशु रजोनिर्यासमूषरम्॥२६॥
निर्गतो गह्वरात्तस्मात्त्वमिंद्रो देवनायकः। राज्यश्रियं च संप्राप्तः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥२७॥
तेनैव सांत्वितो धाता जगाद च जनार्दनम्। मम शापो वृथा न स्यादस्तु कालांतरे मुने॥२८॥
भगवांस्तद्वचः श्रुत्वा मुनेरमिततेजसः। प्रहृष्टो भाविकार्यज्ञस्तूष्णीमेव तदा ययौ॥२९॥
एतावंतमिमं कालं त्रिलोकीं पालयन्भवान्। ऐश्वर्यमदमत्तत्वात्कैलासाद्रिमपीडयत्॥३०॥
सर्वज्ञेन शिवेनाथ प्रेषितो भगवान्मुनिः। दुर्वासास्त्वन्मदभ्रंशं कर्त्तुकामः शशाप ह॥३१॥
एकमेव फलं जातमुभयोः शापयोरपि। अधुना पश्य निःश्रीकं त्रैलोक्यं समजायत॥३२॥
न यज्ञाः संप्रवर्त्तंते न दानानि च वासव। न यमा नापि नियमा न तपांसि च कुत्रचित्॥३३॥

तब उसके बाद देवों से घिरे हुए वे ब्रह्माजी नारायण भगवान् विष्णु के पास गये।।२२।। भगवान् विष्णु को नमस्कार करके और उनकी स्तुति करके चतुर्मुख ब्रह्मा ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन लोकनायक भगवान् ने अच्छी तरह विचार करके अपनी कृपा से उस पाप को तीन भागों में फोड़ कर तीन स्थानों में स्त्रियों में, भूमि में और वृक्षों में अर्पित कर दिया और उनको वर भी दिया।।२३-२४।। कि स्त्रियां ऋतुकाल में अपने पति से सम्भोग कर सन्तान प्राप्त करें, इसीलिये ही स्त्रियां जिस आयु में ऋतुमती होती हैं, तभी सन्तान पैदा करती हैं। दूसरा वर वृक्षों को दिया कि वृक्ष काटने पर पुनः पैदा हो जायें। यह सब वृक्षों को वर दिया तथा पृथ्वी को वर दिया कि उसका गड्ढा स्वतः भर जायेगा। तभी से पृथ्वी में धूलि का निकलना और ऊषर होना प्रारम्भ हो गया।।२५-२६।।

उसके बाद जब इन्द्र के पाप के तीन टुकड़े कर दिये, तब तुम इन्द्र उस गम्भीर पाप रूपी गर्त से बाहर निकले और उसके बाद तुमने उन परमेष्ठी भगवान् विष्णु के प्रसाद से राज्यश्री को प्राप्त किया।।२७।। तब शान्त हुए ब्रह्मा ने जनार्दन भगवान् विष्णु से कहा कि हे मुने! मेरा शाप कालान्तर में भी कभी व्यर्थ नहीं हो सकता।।२८।। अमित तेजस्वी मुनि के वचन को सुनकर भविष्य के कार्य को जानने वाले भगवान् प्रसन्न होकर शान्त भाव से चले गये।।२९।। बृहस्पति इन्द्र से बोले कि इतने समय तीनों लोकों का पालन करते हुए आपने ऐश्वर्य के मद में मत्त होकर कैलाश पर्वत को पीड़ित कर दिया।।३०।। इसके बाद सर्वज्ञ भगवान् शिव ने मुनि दुर्वासा को भेजा, तब दुर्वासा मुनि ने तुम्हारे घमण्ड को नष्ट करने की इच्छा से तुम्हें शाप दे दिया।।३१।। अतः दोनों पापों का एक ही फल हुआ कि अब देखो समस्त त्रैलोक्य निःश्रीक हो गया है, अर्थात् श्रीविहीन हो गया है।।३२।। इसीलिये हे इन्द्र! न कहीं यज्ञ होते हैं, न दानादि ही दिये जाते हैं, न कोई यमों का पालन करते हैं, न कहीं नियमों का पालन किया जा रहा है और न कहीं तप ही हैं।।३३।।

विप्राः सर्वेऽपि निःश्रीका लोभोपहतचेतसः।
निःसत्त्वा धैर्यहीनाश्च नास्तिकाः प्रायशोऽभवन्॥३४॥
निरौषधिरसा भूमिर्निर्वीर्या जायतेतराम्। भास्करो धूसराकारश्चंद्रमाः कांतिवर्जितः॥३५॥
निस्तेजस्को हविर्भोक्ता मरुद्धूलिकृताकृतिः।
न प्रसन्ना दिशां भागा नभो नैव च निर्मलम्॥३६॥
दुर्बला देवताः सर्वा विवांत्यन्यादृशा इव। विनष्टप्रायमेवास्ति त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३७॥

हयग्रीव उवाच

इत्थं कथयतोरेव बृहस्पतिमहेन्द्रयोः। मलकाद्या महादैत्याः स्वर्गलोकं बवाधिरे॥३८॥
नंदनोद्यानमखिलं चिच्छिदुर्बलगर्विताः। उद्यानपालकान्सर्वानायुधैः समताडयन्॥३९॥
प्राकारभवभिद्यैव प्रविश्य नगरांतरम्। मंदिरस्थसुरान्सर्वानत्यंतं पर्यपीडयन्॥४०॥
आजह्रुरप्सरोरत्नान्यशेषाणि विशेषतः। ततो देवाः समस्ताश्च चक्रुर्भृशमबाधिताः॥४१॥
तादृशं घोषमाकर्ण्य वासवः प्रोज्झितासनः सर्वैरनुगतो देवैः पलायनपरोऽभवत्॥४२॥
ब्राह्मं धाम समभ्येत्य विषण्णवदनो वृषा। यथावत्कथयामास निखिलं दैत्यचेष्टितम्॥४३॥
विधातापि तदाकर्ण्य सर्वदेवसमन्वितम्। हृतस्त्रीकं हरि[१]हयमालोक्येदमुवाच ह॥४४॥
इन्द्रत्वमखिलैर्देवैर्मुकुन्दं शरणं व्रज। दैत्यारातिर्जगत्कर्ता स ते श्रेयो विधास्यति॥४५॥

सभी ब्राह्मण प्रायः श्रीविहीन, लोभी, लालची, सत्त्वहीन, धैर्यहीन और नास्तिक हो गये हैं।।३४।। पृथ्वी औषधिरसों से हीन और बीजविहीन हो गयी, सूर्य धूसराकार हो गये, चन्द्रमा कान्तिविहीन हो गये।।३५।। हवि का भोग करने वाली अग्नि तेजहीन हो गयी, उसकी आकृति मरुस्थल की धूलि के समान हो गयी। उस समय दिशायें भी प्रसन्न नहीं रहीं और आकाश निर्मल नहीं रहा।।३६।। सभी देवता लोग दुर्बल होकर अन्य ही तरह के प्रतीत हो रहे थे। इस समय चराचर जगत् भी विनष्ट प्राय ही हो चुका था।।३७।।

हयग्रीव ने कहा—बृहस्पति और इन्द्र दोनों को कहते हुए अर्थात् वे इस प्रकार कह ही रहे थे, उसी समय मलक आदि महादैत्यों ने स्वर्गलोक को बाधित कर दिया।।३८।। बलगर्वित असुरों ने इन्द्र का समस्त नन्दन उद्यान छिन्न-भिन्न कर दिया और उद्यान के पालक माली आदि को अस्त्रों से पूरी तरह पीटा।।३९।। इन्द्रपुरी के प्राकार (परकोटा) को तोड़कर वह नगर के अन्तर्गत प्रविष्ट होकर उन्होंने मन्दिरों (घरों) में स्थित देवों को पूर्णतः पीड़ित कर दिया।।४०।। अप्सराओं के समस्त रत्नों को छीन लिया, उसके बाद सब देवता लोग वहुत अधिक बाधित कर दिये गये।।४१।। वैसे कोलाहल को सुनकर इन्द्र सिंहासन छोड़कर भागने लगे तथा उनके पीछे देवता लोग भी भागने लगे।।४२।। देवताओं के साथ ब्रह्मधाम में पहुँचकर इन्द्र ने दैत्यों द्वारा की गयी अपनी सारी व्यथा कथा को ब्रह्माजी को कहा।।४३।। सब देवों से युक्त ब्रह्माजी ने उन देवों की स्त्रियों के चुराने वाली व्यथा कथा को सुनकर इन्द्र को देखकर यह कहा।।४४।। हे इन्द्र! तुम समस्त देवताओं के साथ भगवान् विष्णु की शरण में जाओ। दैत्यों के शत्रु, संसार को बनाने वाले वे विष्णु तुम्हारा कल्याण करेंगे।।४५।।

१. हरि का अर्थ यहाँ शक्र (इन्द्र) है।

इत्युक्त्वा तेन सहितः स्वयं ब्रह्मा पितामहः। समस्तदेवसहितः क्षीरोदधिमुपाययौ॥४६॥
अथ ब्रह्मादयो देवा भगवंतं जनार्दनम्। तुष्टुवुर्वाग्वरिष्ठाभिः सर्वलोकमहेश्वरम्॥४७॥
अथ प्रसन्नो भगवान्वासुदेवः सनातनः। जगाद स कलान्देवाञ्जगद्रक्षणलंपटः॥४८॥

श्रीभगवानउवाच

भवतां सुविधास्यामि तेजसैवोपबृंहणम्। यदुच्यते मयेदानीं युष्माभिस्तद्विधीयताम्॥४९॥
ओषधिप्रवराः सर्वाः क्षिपत क्षीरसागरे। असुरैरपि संधाय सममेव च तैरिह॥५०॥
मंथानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्रं च वासुकिम्।मयि स्थिते सहाये तु मथ्यताममृतं सुराः॥५१॥
समस्तदानवाश्चापि वक्तव्याः सांत्वपूर्वकम्।
सामान्यमेव युष्माकमस्माकं च फलं त्विति॥५२॥
मथ्यमाने तु दुग्धाब्धौ या समुत्पद्यते सुधा। तत्पानाद्बलिनो यूयममर्त्याश्च भविष्यथ॥५३॥
यथा दैत्याश्च पीयूषं नैतत्प्राप्स्यंति किंचन। केवलं क्लेशवंतश्च करिष्यामि तदा ह्यहम्॥५४॥
इति श्रीवासुदेवेन कथिता निखिलाः सुराः। संधानं त्वतुलैर्दैत्यैः कृतवंतस्तदा सुराः।
नानाविधौषधिगणं समानीय सुरासुराः॥५५॥
क्षीराब्धिपयसि क्षिप्त्वा चंद्रोऽधिकनिर्मलम्। मंथानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्रं तु वासुकिम्।
प्रारेभिरे प्रयत्नेन मंथितुं यादसां पतिम्॥५६॥
वासुकेः पुच्छभागे तु सहिताः सर्वदेवताः। शिरोभागे तु दैतेया नियुक्तास्तत्र शौरिणा॥५७॥

इस प्रकार कह कर उस इन्द्र के साथ स्वयं पितामह ब्रह्मा समस्त देवताओं के साथ क्षीरसागर में पहुँचे।।४६।। इसके बाद ब्रह्मा आदि देवताओं ने समस्त लोकों के महेश्वर भगवान् जनार्दन विष्णु को सुन्दर-सुन्दर वाणियों से प्रसन्न किया।।४७।। उसके बाद प्रसन्न हुए संसार की रक्षा में लगे हुए सनातन पुरुष भगवान् वासुदेव ने कहा।।४८।।

श्रीभगवान् विष्णु ने कहा कि मैं आपको तेज से बढ़ाकर सुविधा प्रदान करूंगा। इस समय जो मैं कहूँ, वह सब तुम करो।।४९।। समस्त औषधियों को क्षीरसागर में फेंक दो और असुरों से सन्धि करके उनके साथ ही उनके यहाँ इस क्षीरसागर में इस मन्दराचल को मथानी बनाकर, वासुकि नाग को रस्सी बनाकर मेरी सहायता में स्थित रहकर अमृत का मन्थन करो।।५०-५१।। समस्त दानवों से शान्तिपूर्वक कहो कि समुद्रमन्थन से जो फल मिलेगा, उसमें हमारा-तुम्हारा समान भाग हो।।५२।। क्षीरसागर के मन्थन किये जाने पर जो अमृत उत्पन्न होता है, उसका पान करके तुम सब देवता लोग अमर हो जाओगे।।५३।। जैसा कि वहाँ यह होगा कि दैत्य लोग कुछ भी अमृत नहीं प्राप्त कर सकेंगे। मैं उन्हें केवल मन्थन करने में कष्ट सहन करने वाला ही बनाऊँगा।।५४।। इस प्रकार श्री वासुदेव भगवान् विष्णु ने देवताओं से कहा और सभी देवताओं ने असुरों से सन्धि कर ली और देवों और असुरों ने अनेकों प्रकार की औषधियों को लाकर उस क्षीरसागर के जल में फेंक कर चन्द्रमा के समान अत्यन्त निर्मल मन्दर पर्वत को मथानी बनाकर और वासुकी नाग की रस्सी (नेती) बनाकर प्रयत्नपूर्लक समुद्र का मन्थन आरम्भ कर दिया।।५५-५६।। वासुकि नाग की पूँछ वाले भाग में सब देवता लगे हुए थे और वासुकि के शीर्ष भाग की तरफ बहादुरी के साथ दैत्य

बलवंतोऽपि ते दैत्यास्तन्मुखोच्छ्वासपावकैः निर्दग्धवपुषः सर्वे निस्तेजस्कास्तदाभवन्॥५८॥
पुच्छदेशे तु कर्षंतो मुहुराप्यायिताः सुराः। अनुकूलेन वातेन विष्णुना प्रेरितेन तु॥५९॥
आदिकूर्माकृतिः श्रीमान्मध्ये क्षीरपयोनिधेः। भ्रमतो मंदराद्रेस्तु तस्याधिष्ठानतामगात्॥६०॥
मध्ये च सर्वदेवानां रूपेणान्येन माधवः। चकर्ष वासुकिं वेगाद्दैत्यमध्ये परेण च॥६१॥
ब्रह्मरूपेण तं शैलं विधार्याक्रांतवारिधिम्। अपरेण च देवर्षिर्महता तेजसा मुहुः॥६२॥
उपबृंहितवान्देवान्येन ते बलशालिनः। तेजसा पुनरन्येन बलात्कारसहेन सः॥६३॥
उपबृंहितवान्नागं सर्वशक्तिजनार्दनः। मथ्यमाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः॥६४॥
आविर्बभूव पुरतः सुरभिः सुरपूजिता। मुदं जग्मुस्तदा देवा दैतेयाश्च तपोधन॥६५॥
मथ्यमाने पुनस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवतानवैः। किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिंतयतां तदा॥६६॥
उत्थिता वारुणी देवी मदाल्लोलविलोचना। असुराणां पुरस्तात्सास्मयमाना व्यतिष्ठत॥६७॥
जगृहुर्नैव तां दैत्या असुराश्चाभवंस्ततः। सुरा न विद्यते येषां तेनैवासुरशब्दिताः॥६८॥
अथ सा सर्वदेवानामग्रतः समतिष्ठत। जगृहुस्तां मुदा देवाः सूचिताः परमेष्ठिना।
सुराग्रहणतोऽप्येते सुरशब्देन कीर्तिताः॥६९॥

लगे हुए थे।।५७।। दैत्य सभी बलवान् थे; परन्तु वासुकि के मुख की तरफ लगे होने के कारण वासुकि नाग के मुख की श्वासाग्नि से उन सब दैत्यों के शरीर जलकर काले हो गये और तब वे दैत्यगण निस्तेज हो गये।।५८।। वासुकि के पुच्छभाग को खींचते हुए देवगण आप्यायित (परेशान) हो गये। तब विष्णु ने अनुकूल हवा चलाकर उन्हें प्रेरित किया।।५९।। आदि कच्छप की आकृति वाले विष्णु क्षीरसागर के मध्य में घूमते हुए मन्दर पर्वत के अधिष्ठानता को प्राप्त हो गये अर्थात् वे कच्छप बनकर पर्वत का आधार बन गये।।६०।। सब देवताओं के मध्य में भगवान् विष्णु अन्य रूप द्वारा दैत्यों के मध्य के विपरीत दूसरी ओर खींचने लगे।।६१।। ब्रह्मरूप से समुद्र में हलचल मचा देने वाले उस पर्वत को दूसरी ओर देवर्षि महान् तेज से बार-बार खींचने लगे।।६२।। दूसरी ओर देवर्षि ने महान् तेज से देवताओं को बढ़ाया, जिससे वे बलशाली देवता और अधिक बढ़ गये, फिर अन्य बलात्कार के सहयोग से उन सर्वशक्तिशाली जनार्दन भगवान् विष्णु ने वासुकि नाग को और अधिक बढ़ा दिया। उसके बाद उस क्षीरसागर का देव-दानवों द्वारा मन्थन किया जाने पर सामने ही देवताओं द्वारा पूजित सुरभि (कामधेनु) प्रकट हो गयी, तब सभी देवता और दानव आनन्दमग्न हो गये।।६३-६५।।

उसके बाद देव-दानवों द्वारा पुनः क्षीरसागर में मन्थन किये जाने पर उस समय मद से चञ्चल नेत्रों वाली वारुणी देवी उठ कर खड़ी हो गयी, उसे देखकर स्वर्ग में सिद्ध लोग आश्चर्ययुक्त होकर सोचने लगे कि यह क्या है? प्रकट होकर वह वारुणी देवी (सुरा) असुरों के सामने मुस्कराती हुई बैठ गई।।६६-६७।। तब उसको दैत्यों ने नहीं ग्रहण किया, इसलिए वे दैत्य उसी समय से असुर हो गये; क्योंकि उस सुरा को उन्होंने नहीं ग्रहण किया, इसलिए 'सुरा न विद्यते येषां तेन ते सुरा' जिनके पास सुरा नहीं है, वे असुर कहलाये।।६८।। इसके बाद वह वारुणी (सुरा) देवताओं के आगे जाकर बैठ गयी, तब विष्णु द्वारा सूचित देवताओं ने उसे प्रसन्न होकर ग्रहण कर लिया। सुरा ग्रहण करने के कारण वे देवता सुर शब्द से प्रसिद्ध हो गये।।६९।।

मथ्यमाने ततो भूयः पारिजातो महाद्रुमः। आविरासीत्सुगंधेन परितो वासयञ्जगत्।।७०।।
अत्यर्थसुंदराकारा धीराश्चाप्सरसां गणाः। आविर्भूताश्च देवर्षे सर्वलोकमनोहरा;।।७१।।
ततः शीतांशुरुदभूत्तं जग्राह महेश्वरः। विषजातं तदुत्पन्नं जगृहुर्नागजातयः।।७२।।
कौस्तुभाख्यं ततो रत्नमाददे तज्जनार्दनः। ततः स्वपत्रगंधेन मदयंती महौषधीः।
विजया नाम संजज्ञे भैरवस्तामुपाददे।।७३।।
ततो दिव्यांबरधरो देवो धन्वंतरिः स्वयम्। उपस्थितः करे बिभ्रदमृताढ्यं कमंडलुम्।।७४।।
ततः प्रहृष्टमनसो देवा दैत्याश्च सर्वतः। मुनयश्चाभवंस्तुष्टास्तदानीं तपसां निधे।।७५।।
ततो विकसितांभोजवासिनी वरदायिनी। उत्थिता पद्महस्ता श्रीस्तस्मात्क्षीरमहार्णवात्।।७६।।
अथ तां मुनयः सर्वे श्रीसूक्तेन श्रियं पराम्। तुष्टुवुस्तुष्टहृदया गंधर्वाश्च जगुः परम्।।७७।।
विश्वाचीप्रमुखाः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः। गङ्गाद्याः पुण्यनद्यश्च स्नानार्थमुपतस्थिरे।।७८।।
अष्टौ दिग्दंतिनश्चैव मेध्यपात्रस्थितं जलम्। आदाय स्नापयांचक्रुस्तां श्रियं पद्मवासिनीम्।।७९।।
तुलसीं च समुत्पन्नां पराघ्यामैक्यजां हरेः। पद्ममालां ददौ तस्यै मूर्तिमान्क्षीरसागरः।।८०।।

उसके बाद देव-दानवों ने फिर समुद्र का मन्थन किया तो फिर कल्पवृक्ष नाम का महावृक्ष प्रकट हो गया, जिसने अपनी सुगन्ध से समस्त संसार को सुवासित कर दिया।।७०।। उसके बाद हे महर्षि! बहुत ही सुन्दर आकार वाले समस्त संसार के मनुष्यों के मन को हर लेने वाले अप्सराओं के समूह प्रकट हो गये।।७१।। उसके बाद मन्थन करने पर शीत किरणों वाले चन्द्रमा प्रादुर्भूत हुए, जिनको भगवान् शंकर ने ग्रहण कर लिया। उसके बाद उत्पन्न हुए विष को नाग जातियों (सर्पों) ने ग्रहण कर लिया।।७२।।

उसके बाद कौस्तुभ नामक रत्न प्रादुर्भूत हुआ, जिसे जनार्दन भगवान् विष्णु ने ले लिया। उसके बाद अपने पत्र की गन्ध से मदमस्त करती हुई विजया नामक महौषधि निकली, जिसको भैरव भगवान् ने ग्रहण कर लिया।।७३।। उसके बाद दिव्य आकाश को धारण करने वाले देवता स्वयं धन्वन्तरि प्रकट हुए, जो अपने हाथ में अमृत से भरा हुआ कमण्डलु लिये हुए थे।।७४।। हयग्रीव बोले, हे तपस्यानिधि! महर्षे! उसके बाद देवता और दानव सभी सब प्रकार से प्रसन्न हो उठे। उस समय सभी मुनि लोग सन्तुष्ट हो गये।।७५।। उसके बाद खिले हुए कमल में निवास करने वाली, वर प्रदान करने वाली, हाथ में कमल लिये हुए लक्ष्मी उस क्षीरसागर से प्रादुर्भूत हो गयीं।।७६।।

इसके बाद सब मुनियों ने उन परम श्री की श्रीसूक्त द्वारा स्तुति की और प्रसन्न हृदय होकर गन्धर्व लोग परमगान करने लगे।।७७।। विश्वाची नामक प्रमुख अप्सरायें नृत्य करने लगीं, गङ्गा आदि पुण्य नदियाँ उनके स्नान के लिए उपस्थित हो गयीं।।७८।। आठों दिशाओं के हाथियों ने पूजा के पात्र में स्थित जल को लेकर संसार में सबकी समानता को नष्ट करने वाली विष्णु के एकत्व से उत्पन्न, पूजनीय पराशक्ति कमलवासिनी लक्ष्मी को स्नान कराया। क्षीरसागर से साक्षात् मनुष्य रूप में उपस्थित होकर उन्हें पद्ममाला प्रदान की और विश्वकर्मा ने उन्हें दिव्य आभूषणों को समर्पित किया। तब दिव्यमाला और वस्त्रों को धारण करने वाली दिव्य आभूषणों से भूषित वे रमा (लक्ष्मी) सबके

भूषणानि च दिव्यानि विश्वकर्मा समर्पयत्। दिव्यमाल्यांबरधरा दिव्यभूषणभूषिता।
ययौ वक्षस्थलं विष्णोः सर्वेषां पश्यतां रमा॥८१॥
तुलसी तु धृता तेन विष्णुना प्रभविष्णुना। पश्यति स्म च सा देवी विष्णुवक्षस्थलालया।
देवान्दयार्द्रया दृष्ट्या सर्वलोकमहेश्वरी॥८२॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने अमृतमंथनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

—※※※—

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

मोहिनी प्रादुर्भाव मलकासुरवधनाम

दशमोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

अथ देवा महेन्द्राद्या विष्णुना प्रभविष्णुना। अङ्गीकृता महाधीराः प्रमोदं परमं ययुः॥१॥
मलकाद्यास्तु ते सर्वे दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः। संत्यक्ताश्च श्रिया देव्या भृशमुद्वेगमागताः॥२॥
ततो जगृहिरे दैत्या धन्वंतरिकरस्थितम्। परमामृतसाराढ्यं कलशं कनकोद्भवम्।
अथासुराणां देवानामन्योन्यं कलहोऽभवत्॥३॥

देखते हुए विष्णु के वक्षःस्थल को प्राप्त हुईं।।७९-८१।। और उन सबको उत्पन्न करने वाले विष्णु ने तुलसी को धारण किया। उसके बाद समस्त लोकों को पैदा करने वाली देवानन्द से आर्द्र दृष्टि से उन देवी ने विष्णु के वक्षःस्थल को देखा।।८२।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ९वाँ अध्याय देवासुर अमृत मंथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-१०

मोहिनी का प्रकट होना, मलकासुर वध

हयग्रीव ने कहा कि जब समुद्र मन्थन हो गया और लक्ष्मीजी को सर्वसमर्थ सबमें प्रविष्ट करने वाले भगवान् विष्णु ने प्राप्त कर लिया, तब महेन्द्र आदि महाधीर सभी देवता परमानन्द को प्राप्त हुए।।१। परन्तु मलक आदि जो विष्णु के विपरीत रहने वाले दैत्य थे, वे सब देवी द्वारा छोड़ दिये गये थे, इसलिए वे सब बहुत उद्विग्न हो गये।।२।। उसके बाद उन सब दैत्यों ने धन्वन्तरि के हाथ में स्थित परम अमृत से भरे हुए स्वर्ण कलश को ग्रहण

एतस्मिन्नंतरे विष्णुः सर्वलोकैकरक्षकः। सम्यगाराधयामास ललितां स्वैक्यरूपिणीम्॥४॥
सुराणामसुराणां च रणं वीक्ष्य सुदारुणम्। ब्रह्मा निजपदं प्राप शंभुः कैलासमास्थितः॥५॥
मलकं योधयामास दैत्यानामधिपं वृषा। असुरैश्च सुराः सर्वे सांपरायमकुर्वत॥६॥
भगवानपि योगीन्द्रः समाराध्य महेश्वरीम्। तदेकध्यानयोगेन तद्रूपः समजायत॥७॥
सर्वसंमोहिनी सा तु साक्षाच्छृङ्गारनायिका। सर्वशृंगारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता॥८॥
सुराणामसुराणां च निवार्य रणमुल्वणम्। मंदस्मितेन दैतेयान्मोहयंती जगाद ह॥९॥
अलं युद्धेन किं शस्त्रैर्मर्मस्थानविभेदिभिः। निष्ठुरैः किं वृथालापैः कंठशोषणहेतुभिः॥१०॥

अहमेवात्र मध्यस्था युष्माकं च दिवौकसाम्।
यूयं तथामी नितरामत्र हि क्लेशभागिनः॥११॥

सर्वेषां सममेवाद्य दास्याम्यमृतमद्भुतम्। मम हस्ते प्रदातव्यं सुधापात्रमनुत्तमम्॥१२॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा दैत्यास्तद्वाक्यमोहिताः। पीयूषकलशं तस्यै ददुस्ते मुग्धचेतसः॥१३॥
सा तत्पात्रं समादाय जगन्मोहनरूपिणी। सुराणामसुराणां च पृथक्पंक्तिं चकार ह॥१४॥

द्वयोः पंक्त्योश्च मध्यस्थास्तानुवाच सुरासुरान्।
तूष्णीं भवंतु सर्वेऽपि क्रमशो दीयते मया॥१५॥

कर लिया (छीन लिया)। इसके बाद देवताओं और दैत्यों में कलह पैदा हो गया।।२-३।। इसी बीच सभी लोकों के एकमात्र रक्षक भगवान् विष्णु ने अपने आत्मैक्य रूप वाली ललिता देवी की सम्यक् प्रकार से आराधना की।।४।। सुर और असुरों का अत्यन्त भीषण रण देखकर ब्रह्माजी अपने स्थान पर चले गये और भगवान् शंकर कैलाश पर्वत पर जाकर स्थित हो गये।।५।। उस मलक नामक दैत्याधिपति से सभी देवताओं ने मिलकर युद्ध किया।।६।। योगीन्द्र भगवान् विष्णु ने माहेश्वरी ललिता की सम्यक् प्रकार से आराधना करके एकमात्र उनके ही ध्यानयोग से उनके रूप को उत्पन्न कर दिया।।७।। वे सभी को सम्मोहित करने वाली, साक्षात् शृङ्गारनायिका थीं। वे सभी प्रकार के शृङ्गारवेषों से युक्त थीं और सभी प्रकार के भूषणों से भूषित थीं।।८।।

युद्धस्थल में लड़ रहे देवताओं और दैत्यों को हटाकर (अलग-अलग करके) वे महादेवी मन्द मुस्कान से दैत्यों को मोहित करती हुई बोलीं।।९।। युद्ध मत करो, इन मर्मस्थलों को विदीर्ण करने वाले शस्त्रों से क्या लाभ है? तथा युद्ध में अपने कण्ठों को सुखाने वाले व्यर्थ के वार्तालापों (गाली-गलौजों) से क्या लाभ है?।।१०।। मैं यहाँ आपके और इन देवताओं के मध्य स्थित हूँ। आप सब लोग तथा ये देवगण दोनों ही यहाँ बहुत ही कष्ट को भोग रहे हैं, आपस में खून बहा रहे हैं।।११।। मैं यह आप सबको समान रूप से इस अद्भुत अमृत को दे दूँगी। इसलिए आप दैत्य लोग इस अत्युत्तम अमृतपात्र को मेरे हाथ में दे दीजिए।।१२।। इस प्रकार उन देवी का वचन सुनकर उनके वाक्य से मोहित मुग्धचित्त दैत्यों ने उस अमृतकलश को उन ललितादेवी को दे दिया।।१३।। संसार को मोहित करने वाली उन देवी ने उस अमृत पात्र को लेकर देवताओं और दैत्यों की अलग-अलग पंक्ति बना दी तथा दोनों पंक्तियों के बीच में खड़ी होकर वे उन सुर और असुरों से बोलीं कि आप सभी लोग चुप हो जाइए, मैं क्रमशः सभी को दे रही हूँ। मेरे द्वारा सभी को क्रमशः दिया जा रहा है।।१४-१५।।

तद्वाक्यमुररीचक्रुस्ते सर्वे समवायिनः। सा तु संमोहिताश्लेषलोका दातुं प्रचक्रमे॥१६॥
क्वणत्कनकदर्वीका क्वणन्मंगलकंकणा। कमनीयविभूषाढ्या कला सा परमा बभौ॥१७॥
वामे वामे करांभोजे सुधाकलशमुज्ज्वलम्। सुधां तां देवतापंक्तौ पूर्वं दर्व्या तदादिशत्॥१८॥
दिशंती क्रमशस्तत्र चन्द्रभास्करसूचितम्। दर्वीकरेण विच्छेद सैंहिकेयं तु मध्यगम्।
पीतामृतशिरोमात्रं तस्य व्योम जगाम च॥१९॥
तं दृष्ट्वाऽप्यसुरास्तत्र तूष्णीमासन्विमोहिताः। एवं क्रमेण तत्सर्वं विबुधेभ्यो वितीर्य सा।
असुराणां पुरः पात्रं सा निनाय तिरोदधे॥२०॥
रिक्तपात्रं तु तं दृष्ट्वा सर्वे दैतेयदानवाः। उद्वेलं केवलं क्रोधं प्राप्ता युद्धचिकीर्षया॥२१॥
इंद्रादयः सुराः सर्वे सुधापानाद्बलोत्तराः। दुर्बलैरसुरैः सार्धं समयुद्ध्यन्त सायुधाः॥२२॥
ते विध्यमानाः शतशो दानवेन्द्राः सुरोत्तमैः।
दिगंतान्कतिचिज्जग्मुः पातालं कतिचिद्ययुः॥२३॥
दैत्यं मलकानामानं विजित्य विबुधेश्वरः। आत्मीयां श्रियमाजह्रे श्रीकटाक्ष समीक्षितः॥२४॥
पुनः सिंहासनं प्राप्य महेन्द्रः सुरसेवितः। त्रैलोक्यं पालयामास पूर्ववत्पूर्वदेवजित्॥२५॥
निर्भया निखिला देवास्त्रैलोक्ये सचराचरे। यथाकामं चरंति स्म सर्वदा हृष्टचेतसः॥२६॥
तदा तदखिलं दृष्ट्वा मोहिनीचरितं मुनिः। विस्मितः कामचारी तु कैलासं नारदो गतः॥२७॥

उन सभी ने मिलकर उन महादेवी के वचन को हृदयङ्गत किया। उन्होंने अपनी सम्मोहन शक्ति से भी मोहित करते हुए अमृत देना आरम्भ किया।।१६।। बाँटने में प्रयुक्त सोने का चमचा बजाती हुई और साथ ही हाथ में पहने हुए मंगल कंकण बजाती हुई, अत्यन्त ही आनन्द प्रदान करने वाली वेषभूषा से युक्त वे महादेवी अत्यन्त सुशोभित हुईं।।१७।। बायें करकमल में उज्ज्वल अमृत को लेते हुए और दायें हाथ से बाँटते हुए उन्होंने सबसे पहले देवताओं की पंक्ति में चम्मच से देना प्रारम्भ किया।।१८।। वे क्रमशः बाँट रही थीं कि वहाँ पर चन्द्रमा और सूर्य द्वारा सूचित सिंहिका पुत्र राहु ने बीच में चम्मच वाले हाथ को छेद दिया और उस अमृत को शिरमात्र में पीकर आकाश में चला गया।।१९।। उसको देखकर भी सभी असुर ललिता देवी के रूप पर मोहित होते हुए चुपचाप खड़े रहे। इस प्रकार क्रमशः वे सब अमृत को बाँटकर असुरों के सामने पात्र को खाली करके अन्तर्धान हो गयीं।।२०।।

उस खाली पात्र को देखकर सभी दितिपुत्र दानव युद्ध करने की इच्छा से उद्वेलित और क्रोधित हो गये।।२१।। इन्द्र आदि सभी देवता अमृत पान करके उनसे अधिक बलवान् हो गये थे, अतः उन्होंने दुर्बल असुरों के साथ आयुधों से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया।।२२।। उत्तम देवताओं द्वारा घायल हुए दानव राजागण कुछ इधर-उधर की दिशाओं में चले गये तथा कुछ पाताल लोक को भाग गये।।२३।। मलक नामक दैत्य को जीतकर देवेश्वर इन्द्र ने श्री ललिता देवी के कटाक्ष से समीहित अपनी राजलक्ष्मी को पुनः प्राप्त कर लिया।।२४।। फिर सुरसेवित इन्द्र ने पुनः सिंहासन को प्राप्त कर पूर्ववत् पूर्व देवों से जीती हुई त्रिलोकी का पालन किया।।२५।। उसके सभी देवता निर्भय होकर प्रसन्न चित्त से इस समस्त चराचर त्रैलोक्य में सर्वदा इच्छानुसार विचरण करने लगे।।२६।। तब उन

नंदिना च कृतानुज्ञः प्रणम्य परमेश्वरम्। तेन संभाव्यमानोऽसौ तुष्टो विष्टरमास्त सः॥२८॥
आसनस्थं महादेवो मुनिं स्वेच्छाविहारिणम्।
पप्रच्छ पार्वतीजानिः स्वच्छस्फटिकसन्निभिः॥२९॥
भगवन्सर्ववृत्तज्ञ पवित्रीकृतविष्टर। कलहप्रिय देवर्षे किं वृत्तं तत्र नाकिनाम्॥३०॥
सुराणामसुराणां वा विजयः समजायत। किं वाप्यमृतवृत्तांतं विष्णुना वापि किं कृतम्॥३१॥
इति पृष्टो महेशेन नारदो मुनिसत्तमः। उवाच विस्मयाविष्टः प्रसन्नवदनेक्षणः॥३२॥
सर्वं जानासि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतस्ततः। तथापि परिपृष्टेन मया तद्वक्ष्यतेऽधुना॥३३॥
तादृशे समरे घोरे सति दैत्यदिवौकसाम्। आदिनारायणः श्रीमान्मोहिनीरूपमादधे॥३४॥
तामुदारविभूषाढ्यां मूर्तां शृङ्गारदेवताम्। सुरासुराः समालोक्य विरताः समरोद्यमात्॥३५॥
तन्मायामोहिता दैत्याः सुधापात्रं च याचिताः। कृत्वा तामेव मध्यस्थामर्पयामासुरंजसा॥३६॥
तदा देवी तदादाय मंदस्मितमनोहरा। देवेभ्य एव पीयूषमशेषं विततार सा॥३७॥
तिरोहितामदृष्ट्वा तां दृष्ट्वा शून्यं च पात्रकम्।
ज्वलन्मन्युमुखा दैत्या युद्धाय पुनरुत्थिताः॥३८॥
अमरैरमृतास्वादादत्युल्वणपराक्रमैः। पराजिता महादैत्या नष्टाः पातालमभ्ययुः॥३९॥

मोहिनी के समस्त चरित्र को देखकर स्वेच्छा से विचरण करने वाले नारद मुनि कैलास पर्वत पर गये।।२७।। वहाँ भगवान् शंकर के द्वारपाल नन्दी से अनुमति लेकर परमेश्वर महादेव को प्रणाम करके भगवान् शंकर द्वारा स्वागत प्राप्त कर वे प्रसन्न हो गये और प्रसन्न होकर आसन पर बैठे।।२८।। तब स्वच्छ स्फटिक मणि (संगमरमर) के समान पार्वती पति महादेव ने स्वेच्छा से विहार करने वाले आसनस्थ नारद मुनि से पूँछा।।२९।। भूतभावन भगवान् शिव ने पूँछा कि हे सारे संसार का सब हाल जानने वाले इस आसन को पवित्र करने वाले कलहप्रिय भगवान् मुझे बताइये कि स्वर्ग का हाल क्या है?।।३०।। सुरों और असुरों में किनकी विजय हुई? अथवा अमृत का क्या वृत्तान्त है? वहाँ विष्णु ने क्या किया?।।३१।। ऐसा जब भगवान् शंकर ने पूँछा तो आश्चर्य से युक्त प्रसन्न मुख और नेत्र वाले नारद जी शंकरजी से बोले कि भगवान्! आप इधर-उधर, यहाँ-वहाँ का सब कुछ जानते हैं, फिर भी आप पूछ रहे हैं, तो मैं अब अवश्य कहूँगा।।३२-३३।।

वैसे उस घोर युद्ध के प्रारम्भ होने पर अर्थात् जब अमृत को लेकर देवों और दानवों में घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया, तब उन भगवान् आदिनारायण लक्ष्मीपति विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर लिया।।३४।। उन उदार और विशेष प्रकार के आभूषणों से भूषित साक्षात् शृङ्गार की मूर्त्ति उन देवी को देवता और असुर देखकर युद्ध से विरत हो गये। उन्होंने युद्ध करना बन्द कर दिया।।३५।। उनकी माया से मोहित दैत्यों ने उनसे अमृत के पात्र को माँगा। तब उन देवी को अध्यक्ष करके उन्हीं से शीघ्र अमृत की याचना की।।३६।। उन देवी ने उस अमृत कलश को लेकर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए देवताओं के लिए समस्त अमृत को बाँट दिया।।३७।। समस्त अमृत को देवों में बाँटकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं, तब क्रोध से जलते हुए दैत्य लोग युद्ध के लिए पुनः उठ खड़े हुए।।३८।। अमृत के स्वाद से अत्यन्त बढ़े हुए पराक्रम वाले देवताओं ने महादैत्यों को पराजित कर दिया और वे नष्ट हो गये, जो बचे

इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भवानीपतिरव्ययः। नारदं प्रेषयित्वाशु तदुक्तं सततं स्मरन्॥४०॥
अज्ञातः प्रमथैः सर्वैः स्कन्दनंदिविनायकैः। पार्वतीसहितो विष्णुमाजगाम सविस्मयः॥४१॥
क्षीरोदतीरगं दृष्ट्वा सस्त्रीकं वृषवाहनम्। भोगिभोगासनाद्विष्णुः समुत्थाय समागतः॥४२॥
वाहनादवरुह्येशः पार्वत्या सहितः स्थितम्। तं दृष्ट्वा शीघ्रमागत्य संपूज्यार्घ्यादितो मुदा॥४३॥
सस्नेहं गाढमालिङ्ग्य भवानीपतिमच्युतः। तदागमनकार्यं च पृष्टवान्विष्टरश्रवाः॥४४॥
तमुवाच महादेवो भगवन्पुरुषोत्तम। महायोगेश्वर श्रीमन्सर्वसौभाग्यसुन्दरम्॥४५॥
सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम्। यद्रूपं भवतोत्पात्तं तन्मह्यं संप्रदर्शय॥४६॥
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपं शृङ्गारस्याधिदैवतम्। अवश्यं दर्शनीयं मे त्वं हि प्रार्थितकामधृक्॥४७॥
इति संप्रार्थितः शश्वन्महादेवेन तेन सः। यद्ध्यानवैभवाल्लब्धं रूपमद्वैतमद्भुतम्॥४८॥
तदेवानन्यमनसा ध्यात्वा किंचिद्विहस्य सः। तथास्त्विति तिरोऽधत्त महायोगेश्वरो हरिः॥४९॥
शर्वोऽपि सर्वतश्चक्षुर्मुहुर्व्यापारयन्क्वचित्। अदृष्टपूर्वमाराममभिरामं यलोकयत्॥५०॥
विकसत्कुसुम श्रेणीविनोदिमधुपालिकम्। चंपकस्तवकामोदसुरभीकृतदिक्तटम्॥५१॥

थे, वे पाताल लोक चले गये।।३९।। इस वृत्तान्त को सुनकर अविनाशी भवानी पति शंकर ने नारद मुनि को विदा कर दिया और फिर नारद मुनि द्वारा कहे देवी के रूप का स्मरण करने लगे और अपने सब गणों एवं कार्तिकेय तथा गणेश जी को बिना जताये हुए ही आश्चर्ययुक्त हो पार्वती के साथ विष्णु के पास आ गये।।४०-४१।। क्षीरसागर के तट पर पत्नी सहित बैल पर सवार भगवान् शंकर को देखकर शेषनाग के आसन से उठकर भगवान् विष्णु उनके पास आ गये।।४२।। अपने बैल के वाहन से उतरकर, पार्वती के साथ भगवान् शंकर ने सामने खड़े हुए विष्णु को देखकर, शीघ्र आकर, उनका सत्कार किया और फिर स्नेह के साथ गाढ़ आलिंगन करके भगवान् विष्णु ने भवानीपति से उनके आगमन का कार्य पूँछा।।४३-४४।। उसके बाद पुरुषोत्तम महायोगेश्वर भगवान् महादेव ने लक्ष्मीपति सर्वसौभाग्यसुन्दर, सभी में सम्मोहन पैदा करने वाले, वाणी, मन और इन्द्रियों से न जानने योग्य भगवान् विष्णु से बोले कि जो रूप आपने अमृत मन्थन के समय धारण किया था, उस रूप को मुझे भी दिखाओ।।४५-४६।। शृङ्गार के अधिदेवता, आपके रूप को मैं देखना चाहता हूँ। अतः हे काम को धारण करने वाले भगवन्! आपको मुझे वह रूप अवश्य दिखाना है।।४७।। इस प्रकार महादेव के द्वारा अनेक बार प्रार्थना किये जाने पर ध्यान के वैभव से प्राप्त उस अद्भुत रूप को अनन्य मन से ध्यान करके कुछ हँसकर वे महायोगेश्वर भगवान् विष्णु 'ठीक है, ऐसा ही होगा' यह कहकर अन्तर्धान हो गये और मोहिनी रूप में प्रकट हो गये।।४८-४९।।

भगवान् शंकर भी चारों ओर घूमने वाले नेत्रों के व्यापार को रोककर, कहीं न देखते हुए, ऐसा कभी नहीं देखा था, ऐसे उस सुन्दर रूप को देखने लगे।।५०।। उन मोहिनी का ऐसा रूप था कि ऐसा सुन्दर रूप भगवान् शंकर ने पहले कभी नहीं देखा था। वह कैसा रूप था तथा किस प्रकार वह रूप दिखाई दिया, उसका वर्णन आगे किया जा रहा है। वह रूप खिले हुए फूलों की पंक्तियों के पराग से सुशोभित था। चम्पक पुष्प के गुच्छे की आनन्ददायक सुगन्ध से समस्त दिशाओं को सुगन्धित करते हुए उन मोहिनी को जब भगवान् शंकर ने देखा, तो उस समय प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त ही सुन्दर हो गया था। चारों ओर खिले हुए फूलों से आनन्ददायक मधु वाले

माकन्दवृन्दमाध्वीकमाद्यदुल्लोलकोकिलम्।
अशोकमण्डलीकांडसतांडवशिखण्डिकम्।।५२।।

भृङ्गालिनवझंकारजितवल्लकिनिस्वनम्। पाटलोदारसौरभ्यपाटलीकुसुमोज्ज्वलम्।।५३।।
तमाललताहिंतालकृतमालाविलासितम्। पर्यंतदीर्घिकादीर्घपङ्कजश्रीपरिष्कृतम्।।५४।।
वातपातचलच्चारुपल्लवोत्फुल्लपुष्पकम्। सन्तानप्रसवामोदसन्तानाधिकवासितम्।।५५।।
तत्र सर्वत्र पुष्पाठ्ये सर्वलोकमनोहरे। पारिजाततरोर्मूले कान्ता काचिददृश्यत।।५६।।
बालार्कपाटलाकार नवयौवनदर्पिता। आकृष्टपद्मरागाभा चरणाब्जनखच्छदा।।५७।।
यावकश्रीविनिक्षेपपादलौहित्यवाहिनी। कलनिःस्वनमञ्जीरपदपद्ममनोहरा।।५८।।
अनंगवीरतूणीरदर्पोन्मदनजंघिका। करिशुण्डाकदलिकाकांतितुल्योरुशोभिनी।।५९।।
अरुणेन दुकूलेन सुस्पर्शन तनीयसा। अलंकृतनितंबाढ्या जघनाभोगभासुरा।।६०।।
नवमाणिक्यसन्नद्धहेमकांचीविराजिता। नूतनाभिमहावर्त्तत्रिवल्यूर्मिप्रभाझरा।।६१।।
स्तनकुड्मलहिंदोलमुक्तादामशतावृता। अतिपीवरवक्षोजभारभंगुरमध्यभूः।।६२।।
शिरीषकोमलभुजा कंकणांगदशालिनी। सोर्मिकां गुलिमन्मृष्टशंखसुन्दरकंधरा।।६३।।

चम्पक के फूलों के गुच्छों की मन को आह्लादित कर देने वाली सुगन्ध ने समस्त क्षीरसागर को सुगन्धित कर दिया था।।५१।। मोर शोक रहित होकर अलग-अलग खण्डों में मण्डली बनाकर नृत्य कर रहे थे। उस समय पुष्प के पराग से मदमस्त भौंरे नवीन-नवीन तरह की गुंजार करते हुए लताओं पर झूम रहे थे। केसर की उदार सुगंध से लोध्र के पुष्पों से उज्ज्वल वह स्थान था।।५२।। तमाल, ताल और खजूर के वृक्ष चारों तरफ इस प्रकार पंक्ति बनाकर खड़े थे कि उससे वह क्षीरसागर मालाओं से विलास युक्त लग रहा था। चारों तरफ कमलों की शोभा से परिष्कृत वह स्थान था तथा वायु द्वारा गिरे हुए चञ्चल और सुन्दर पल्लवों और खिले हुए फूलों के विस्तार से उत्पन्न आमोद फूलों के बिछाने से और अधिक सुगन्धित हो गया था।।५३-५५।। वहाँ सर्वत्र पुष्पों से युक्त समस्त संसार के मन को हरने वाले कल्पवृक्ष के मूल में कोई सुन्दरी दिखाई दी।।५६।।

जो सुन्दरी प्रातःकालीन सूर्य की आभा के समान पाटल पुष्प (गुलाब) के समान वर्ण वाली थी। उसके चरणकमल की शोभा पद्म के राग को आकृष्ट कर रही थी।।५७।। पैरों में जो महावर लगाया था, उन पैरों को पृथ्वी पर रखने से वहाँ लालिमा हो जाती थी। उनके चरणकमलों में बँधे हुए मंजीरों का कलकल स्वर मन को हरण करने वाला था।।५८।। वीर कामदेव के तूणीर के दर्प से मदमस्त कर देने वाली हाथी की सूंड़ तथा कदली स्तम्भ की कान्ति के समान शोभिनी जंघायें थीं।।५९।। वे लाल रंग के स्पर्श करने में अत्यन्त सुन्दर दुपट्टे से शरीर को ढंके हुए थीं। उनके नितम्ब समृद्ध और अलंकृत थे तथा जंघाओं का विस्तार अत्यन्त भव्य था।।६०।। वे नवमाणिक्य से सन्नद्ध स्वर्ण करधनी से सुशोभित थीं, जैसे किसी नदी में महान भंवर पड़े हों, उसी तरह उनकी त्रिवली तीन धाराओं की प्रभा से सुशोभित थी।।६१।। उनका झूलता हुआ स्तन मण्डल सैकड़ों मोतियों की चमक से आवृत था। अत्यन्त स्थूल स्तनों के भार से वे पृथ्वी की ओर कुछ झुकी हुई सीधी थीं।।६२।। उनकी भुजाएँ शिरीष के फूल के समान कोमल थीं और कंकड़ांगद शालिनी थीं। प्रकाश युक्त सुगठित स्वच्छ शंख के समान सुन्दर उनकी गर्दन थी।।६३।।

मुखदर्पणवृताभचुबुकापाटलाधरा। शुचिभिः पंक्तिभिः शुद्धैर्विद्यारूपैर्विभास्वरैः॥६४॥
कुंदकुड्मलसच्छायैर्दंतैर्दर्शितचंद्रिका। स्थूलमौक्तिकसन्नद्धनासाभरणभासुरा॥६५॥
केतकांतर्दलद्रोणिदीर्घदीर्घविलोचना। अर्धेन्दुतुलिताफाले सम्यक्क्लृप्तालकच्छटा॥६६॥
पालीवतंसमाणिक्यकुंडलामंडितश्रुतिः। नवकर्पूरकस्तूरीरसामोदिवीटिका॥६७॥
शरच्चारुनिशानाथमंडलीमधुरानना। स्फुरत्कस्तूरितिलका नीलकुंतलसंहतिः॥६८॥
सीमंतरेखाविन्यस्तसिंदूरेणिभासुरा॥६९॥
स्फुरच्चंद्रकलोत्तंसमदलोलविलोचना। सर्वशृंगारवेषाढ्या सर्वाभरणमंडिता॥७०॥

तामिमां कंदुकक्रीडालोलामालोलभूषणाम्।
दृष्ट्वा क्षिप्रमुमां त्यक्त्वा सोऽन्वधावदथेश्वरः॥७१॥
उमापि तं समावेक्ष्य धावंतं चात्मनः प्रियम्।
स्वात्मानं स्वात्मसौन्दर्यं निंदंती चातिविस्मिता।
तस्थाववाङ्मुखी! तूष्णीं लज्जासूयासमन्विता॥७२॥

गृहीत्वा कथमप्येनामालिलिंग मुहुर्मुहुः। उद्धूयोद्धूय साप्येवं धावति स्म सुदूरतः॥७३॥
पुनर्गृहीत्वा तामीशः कामं कामवशीकृतः। आश्लिष्टं चातिवेगेन तद्वीर्यं प्रच्युतं तदा॥७४॥
ततः समुत्थितो देवो महाशास्ता महाबलः। अनेककोटिदैत्येंद्रगर्वनिर्वापणक्षमः॥७५॥

मुख दर्पण वृत्त की आभा वाली उनकी ठोड़ी थी तथा गुलाबी होंठ थे। श्वेत पंक्ति वाले शुद्ध सरस्वती रूपी विशेष चमकते हुए खिले हुए चमेली के फूल की कान्तियों वाले दाँतों से ऐसा लगता था, मानों चाँदनी दिखाई दे रही हो। स्थूल मोती लगी हुई, उनकी नासिका की नथुनी चमक रही थी।।६४-६५।। केवड़े के अन्तर्दल के समान बड़ी-बड़ी आँखें थीं। उनके सिर के बालों की मांग में अर्धचन्द्र से तुलित उत्पन्न बालों की छटा थी।।६६।। कान के छोर में माणिक्य जटित कर्णाभूषण से उनका कान सुशोभित था। नये कपूर और कस्तूरी के रस से आमोद युक्त पान खाये हुई थीं।।६७।। शरत्कालीन सुन्दर चन्द्रमा के मण्डल के समान मधुर उनका मुख था, सुगन्ध फैलाते हुए कस्तूरी के तिलक से युक्त नीलवर्ण का उनके केशों का जूड़ा था।।६८।। उनके सिर के बालों के बीच मांग में सिन्दूर की पंक्ति सुशोभित हो रही थी।।६९।। चमकती हुई चन्द्रकला (चाँदनी) के समान ऊँचे उठे हुए मदमस्त चञ्चल नेत्र थे। वे सब शृङ्गारयुक्त और समस्त आभरणों से सजी हुई थीं।।७०।। उन कन्दुक क्रीडामाला से भूषण वाली मोहिनी को देखकर शीघ्र ही उमा को छोड़कर वे महेश्वर भगवान् शंकर उन मोहिनी के पीछे दौड़ने लगे।।७१।।

उमा भी उन अपने प्रिय को दौड़ता हुआ देखकर अपने सौन्दर्य की निन्दा करती हुईं अत्यन्त विस्मित हो गयीं और लज्जा और असूया से युक्त वहीं पर चुपचाप नीचे को मुख करके खड़ी हो गयीं।।७२।। भगवान् शंकर ने किसी प्रकार उन विश्वमोहिनी को पकड़कर बार-बार आलिङ्गन किया; परन्तु वे उठ-उठ करके दूर-दूर तक दौड़ रही थीं।।७३।। फिर काम के द्वारा वश में किये गये उन भगवान् शंकर ने उन विश्वमोहिनी को पकड़कर अत्यन्त वेग से आलिङ्गन कर लिया। तब उनका वीर्य गिर गया।।७४।। उसके बाद अनेकों करोड़ दैत्येन्द्रों के बल को भी शान्त करने में समर्थ, महाबली, महान् शासक महादेव सम्यक् प्रकार से उठे।।७५।।

तद्वीर्यं बिंदुसंस्पर्शात्सा भूमिस्तत्रतत्र च। रजतस्वर्णवर्णाभूल्लक्षणाद्विंध्यमर्दन॥७६॥
तथैवांतर्दधे सापि देवता विश्वमोहिनी। निवृत्तः स गिरीशोऽपि गिरिं गौरीसखो ययौ॥७७॥
अथाद्भुतमिदं वक्ष्ये लोपामुद्रापते शृणु। यन्न कस्यचिदाख्यातं ममैव हृदयेस्थितम्॥७८॥
पुरा भंडासुरो नाम सर्वदैत्यशिखामणिः। पूर्वं देवान्बहुविधान्यः शास्ता स्वेच्छया पटुः॥७९॥
विशुक्रं नाम दैतेयं वर्गसंरक्षणक्षमम्। शुक्रतुल्यं विचारज्ञं दक्षांसेन ससर्ज सः॥८०॥
वामांसेन विषांगं च सृष्ट्वान्दुष्टशेखरम्। धूमिनीनामधेयां च भगिनीं भंडदानवः॥८१॥
भ्रातृभ्यामुग्रवीर्याभ्यां सहितो निहताहितः। ब्रह्मांडं खंडयामास शौर्यवीर्यसमुच्छ्रितः॥८२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च तं दृष्ट्वा दीप्ततेजसम्। पलायनपराः सद्यः स्वे स्वे धाम्नि सदावसन्॥८३॥
तदानीमेव तद्बाहुसंमर्दन विमूर्च्छिताः। श्वसितुं चापि पटवो नाभवन्नाकिनां गणाः॥८४॥
केचित्पातालगर्भेषु केचिदंबुधिवारिषु। केचिद्दिगंतकोणेषु केचित्कुंजेषु भूभृताम्॥८५॥
विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतस्त्रियः। भ्रष्टाधिकारा ऋभवो विचेरुश्छन्नवेषकाः॥८६॥
यक्षान्महोरगान्सिद्धान्साध्यान्समरदुर्मदान्। ब्रह्माणं पद्मनाभं च रुद्रं वज्रिणमेव च।
मत्वा तृणायितान्सर्वाँल्लोकान्भंडः शशास ह॥८७॥

तब उनका वीर्य इधर-उधर गिर गया। इस प्रकार उनके वीर्य के बिन्दु के गिरने पर जहाँ-जहाँ उस बिन्दु ने जमीन का स्पर्श किया, वहाँ-वहाँ पर चाँदी और सोने के वर्ण का विन्ध्य पर्वत खड़ा हो गया।।७६।। उसके बाद वह विश्वमोहिनी देवी अन्तर्धान हो गयीं और भगवान् शंकर भी पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर चले गये।।७७।।

इसके बाद हयग्रीव ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्य मुने! इस आश्चर्य को सुनिये, जिसको मैंने किसी से भी नहीं कहा है, जो मेरे हृदय में ही स्थित है।।७८।। वह यह कि प्राचीन काल में भण्डासुर नामक दैत्य सब दैत्यों का शिरोमणि था, जो पूर्व काल में अनेकों देवताओं के ऊपर अपनी इच्छा से चतुर शासन करने वाला था।।७९।। विशुक्र नामक दितिपुत्र जो दैत्यवर्ग का संरक्षण करने में समर्थ था तथा शुक्र के समान विचारों का ज्ञाता था, जिसे उस भण्डासुर दैत्य ने अपने दायें भाग से उत्पन्न किया था।।८०।। बायें भाग से दुष्ट शिरोमणि विषाङ्ग को उत्पन्न किया तथा धूमिनी नाम की भण्ड दानव की बहिन थी।।८१।।

शूरता और पराक्रम से बँटे हुए संसार के अहित में निहित उसने अपने उग्र एवं पराक्रमी भाइयों के साथ ब्रह्माण्ड को खण्डित कर दिया।।८२।। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर उसके दीप्त तेज वाले मुख को देखकर भागते हुए अपने-अपने धाम में जाकर रहने लगे।।८३।। उसी समय ही उसकी भुजाओं के दबाने से मूर्च्छित हुए देवतागण श्वास लेने में भी कुशल न हो सके थे।।८४।। तब उसके आतंक से कुछ पाताल लोक में चले गये थे, कुछ समुद्रों के जलों में छिप गये थे। कुछ दिशाओं के कोनों में तो कुछ पर्वतों की झाड़ियों में छिप गये थे।।८५।। इस प्रकार सभी देवगण बहुत अधिक एवं विशेष रूप से डरे हुए अपनी पत्नियों, पुत्रों और स्त्रियों को छोड़ कर विलीन हो गये तथा अपने-अपने अधिकारों से भ्रष्ट होकर गन्दे-मैले वस्त्र पहने हुए इधर-उधर विचरण करने लगे थे।।८६।। तब वहाँ भण्ड नामक दैत्य ने यक्षों, महासर्पों, सिद्धों, साध्यों, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और इन्द्र आदि सभी को तिनके के समान मानकर समस्त लोकों पर शासन किया।।८७।।

अथ भंडासुरं हंतुं त्रैलोक्यं चापि रक्षितुम्।
तृतीयमुदभूद्रूपं महायागानलान्मुने॥८८॥
यद्रूपशालिनीमाहुर्ललितां परदेवताम्। पाशांकुशधनुर्बाणपरिष्कृतचतुर्भुजाम्॥८९॥
सा देवी परमा शक्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी। जघान भंडदैत्येन्द्रं युद्धे युद्धविशारदा॥९०॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने मोहिनीप्रादुर्भावमलका-सुरवधो नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

।।समाप्तश्चोपोद्घातखंडः।।

इसके बाद भण्डासुर को मारने और तीनों लोकों की रक्षा करने के लिए भगवान् विष्णु ने महायज्ञ की अग्नि वाले तीसरे रूप को उत्पन्न किया, जिस रूप वाली पर देवी ललिता कही गयीं। जो अपने हाथों में पाश, कुश, धनुष-बाण लिये हुई थीं। इस प्रकार उनकी सुगठित चार भुजाएँ थीं।।८९।। वे महादेवी परब्रह्म स्वरूप वाली परमा शक्ति थीं, युद्ध में विशारद उन ललिता देवी ने युद्ध में भण्डासुर को मार डाला।।९०।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १०वाँ अध्याय मोहिनी का प्रकट होना, मलकासुर वध का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

।।उपोद्घात खण्ड समाप्त।।

❖❖❖
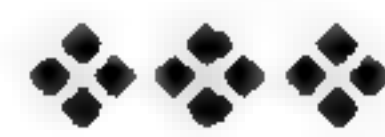
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

भण्डासुरप्रादुर्भावोनाम

एकादशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

कथं भंडासुरो जातः कथं वा त्रिपुरांबिका। कथं बभंज तं संख्ये तत्सर्वं वद विस्तरात्॥१॥

हयग्रीव उवाच

पुरा दाक्षायणीं त्यक्त्वा पितुर्यज्ञविनाशनम्॥२॥

आत्मानमात्मना पश्यञ्ज्ञानानंदरसात्मकः। उपास्यमानो मुनिभिरद्वंद्वगुणलक्षणः॥३॥

गंगाकूले हिमवतः पर्यन्ते प्रविवेश ह। सापि शंकरमाराध्य चिरकालं मनस्विनी॥४॥

योगेन स्वां तनुं त्यक्त्वा सुतासीद्धिमभूभृतः॥५॥

स शैलो नारदाच्छ्रुत्वा रुद्राणीति स्वकन्यकाम्।

तस्य शुश्रूषणार्थाय स्थापयामास चांतिके॥६॥

एतस्मिन्नंतरे देवास्तारकेण हि पीडिताः। ब्रह्मणोक्ताः समाहूय मदनं चेदमब्रुवन्॥७॥

सर्गादौ भगवान्ब्रह्मा सृजमानोऽखिलाः प्रजाः। न निर्वृतिरभूत्तस्य कदाचिदपि मानसे।

तपश्चचार सुचिरं मनोवाक्कायकर्मभिः॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-११

भण्डासुर की उत्पत्ति

अगस्त्य मुनि ने हयग्रीव से पूंछा कि हे मुने! भण्डासुर नाम का असुर कैसे उत्पन्न हुआ? और कैसे माँ त्रिपुरा उत्पन्न हुईं? तथा कैसे उन्होंने उस भण्डासुर का वध किया? इसे हमें विस्तार से बतलाइए।।१।।

हयग्रीव ने कहा कि प्राचीन काल में जो दक्ष के यज्ञ में उनकी पुत्री सती जी ने अपने शरीर को यज्ञ में आहूत कर यज्ञ को विध्वंस कर दिया था।।२।। उस समय अपने ज्ञान के आनन्द से रस लेने वाले द्वन्द्वगुण से रहित लक्षण वाले अर्थात् निर्गुण मुनियों द्वारा उपासना किये जाने योग्य अपनी आत्मा द्वारा आत्मा को देखते हुए भगवान् शंकर गंगा के किनारे हिमालय पर्वत में प्रवेश कर गये।।३-३½।। तथा वे मनस्विनी सती जी भी बहुत समय तक भगवान् शंकर की आराधना करके योग द्वारा अपने शरीर को त्याग कर हिमालय पर्वत की पुत्री हो गयीं।।३½-५।। उस पर्वत हिमाचल नारद से सुनक अपनी पुत्री रुद्राणी (पार्वती) को अपने पास अपने घर में ही रख लिया था।।६।। इसी बीच देवता लोग तारक नामक असुर से पीड़ित हो गये, ब्रह्माजी के कहने पर उन देवताओं ने कामदेव को बुलाकर कहा।।७।। कि हे कामदेव! सृष्टि के आदिकाल में समस्त प्रजाओं की रचना करते हुए भी ब्रह्माजी को अपने कार्य

ततः प्रसन्नो भगवान्सलक्ष्मीको जनार्दनः। वरेण च्छंदयामास वरदः सर्वदेहिनाम्॥९॥

ब्रह्मोवाच।

यदि तुष्टोऽसि भगवन्ननायासेन वै जगत्। चराचरयुतं चैतत्सृजामि त्वत्प्रसादतः॥१०॥
एवमुक्तो विधात्रा तु महालक्ष्मीमुदैक्षत। तदा प्रादुरभूस्त्वं हि जगन्मोहनरूपधृक्॥११॥
तवायुधार्थं दत्तं च पुष्पबाणेक्षुकार्मुकम्। विजयत्वमजेयत्वं प्रादात्प्रमुदितो हरिः॥१२॥
असौ सृजति भूतानि कारणेन स्वकर्मणा। साक्षिभूतः स्वजनतो भवान्भजतु निर्वृतिम्॥१३॥
एष दत्तवरो ब्रह्मा त्वयि विन्यस्य तद्वरम। मनसो निर्वृत्तिं प्राप्य वर्ततेऽद्यापि मन्मथ॥१४॥
अमोघं बलवीर्यं ते न ते मोघः पराक्रमः॥१५॥
सुकुमाराण्यमोघानि कुसुमास्त्राणि ते सदा। ब्रह्मदत्तवरोऽयं हि तारको नाम दानवः॥१६॥
बाधते सकलाँल्लोकानस्मानपि विशेषतः। शिवपुत्रादृतेऽन्यत्र न भयं तस्य विद्यते॥१७॥
त्वां विनास्मिन्महाकार्ये न कश्चित्प्रवदेदपि।
स्वकराच्च भवेत्कार्यं भवतो नान्यतः क्वचित्॥१८॥

की पूर्णता होने की सन्तुष्टि नहीं हुई, क्योंकि उस समय मानस सृष्टि थी, जिससे सृष्टि की सफल सम्पन्नता नहीं हो सकी थी, तब ब्रह्माजी ने मन, वचन, शरीर और कर्मों से बहुत समय तक तप किया।।८।। उसके बाद सब प्राणियों को वर देने वाले लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ने वर देने को कहा।।९।।

तब ब्रह्माजी ने कहा कि भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो अनायास (बिना प्रयत्न के) ही संसार की रचना होती रहे, तो मैं आपकी कृपा से इस चराचर जगत् की रचना करता रहूँ। यह कह कर विधाता (ब्रह्मा) ने महालक्ष्मी को प्रकट कर दिया। तब जब लक्ष्मी जी को प्रकट किया, उसी समय तुम कामदेव संसार को मोहित करने वाले रूप को धारण करके प्रकट हुए थे।।१०-११।। उस समय तुम्हारे आयुध के लिए पुष्प, बाण, इक्षु और धनुष दिये गये थे तथा उस समय प्रमुदित भगवान् विष्णु ने तुम्हें सब पर विजय प्राप्त करना और किसी के भी द्वारा न जीतना भी प्रदान किया था।।१२।। ब्रह्मा जी अपने कर्म रूप कारण से प्राणियों (भूत तत्त्वों) की रचना करते हैं; परन्तु स्वजन से साक्षीभूत होकर उनको उस कार्य की सम्पन्नता आप ही से है। इस प्रकार ब्रह्माजी अपने को विष्णु द्वारा दिये गये सृष्टि रचना सम्बन्धी वर को तुम्हारे द्वारा ही मानते हैं। मन से सम्पन्नता प्राप्त कर अभी आप मन्मथ बने हुए हैं, अर्थात् आपके सारे काम मन से ही होते हैं, आप सदैव मन में ही पैदा होते हैं, जब मन होता है तभी व्यक्ति समागम में प्रवृत्त होता है तथा जब समागम होगा तो सृष्टि होगी ही। आप मन को मथने वाले हैं, इसीलिए आपको मन्मथ कहा जाता है।।१३-१४।। आपका बल और वीरता अमोघ (अचूक) है। अर्थात् कहीं और कभी भी विफल नहीं होता है। तुम्हारा पराक्रम विफल नहीं है।।१५।। तुम्हारे जो कोमल पुष्पबाण हैं, वे सदा अचूक हैं।।१५½।।

ब्रह्माजी द्वारा वर दिया हुआ तारक नामक दानव समस्त लोकों को तथा हम देवताओं को भी बाधित कर रहा है। शिवपुत्र के बिना अन्य किसी के द्वारा उसको भय नहीं है। अर्थात् शिवपुत्र ही उसका वध कर सकते हैं।।१५½-१७।। तुम्हारे बिना इस कार्य में कोई कुछ भी नहीं बोल सकता है। तुम्हारे हाथ से ही यह कार्य होकर रहेगा। आपके अतिरिक्त अन्य द्वारा नहीं हो सकता।।१८।।

आत्म्यैक्यध्याननिरतः शिवो गौर्या समन्वितः। हिमाचलतले रम्ये वर्तते मुनिभिर्वृतः॥१९॥
तं नियोजय गौर्यां तु जनिष्य[1]ति च तत्सुतः। ईषत्कार्यमिदं कृत्वा त्रायस्वास्मान्महाबल॥२०॥
एवमभ्यर्थितो देवैः स्तूयमानो मुहुर्मुहुः। जगामात्मविनाशाय यतो हिमवतस्तटम्॥२१॥
किमप्याराधयंतं तु ध्यानसंमीलितेक्षणम्। ददर्शेशानमासीनं कुसुमेषुरुदायुधः॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र हिमवत्तनया शिवम्। आरिराधयिषुश्चागाद्बिभ्राणा रूपमद्भुतम्॥२३॥
समेत्य शम्भुं गिरिजां गंधपुष्पोपहारकैः। शुश्रूषणपरां तत्र ददर्शातिबलः स्मरः॥२४॥
अदृश्यः सर्वभूतानान्नातिदूरेऽस्य संस्थितः। सुमनोमार्गणैरग्र्यैस्स विव्याध महेश्वरम्॥२५॥
विस्मृत्य स हि कार्याणि बाणविद्धोंऽतिके स्थिताम्।
गौरीं विलोकयामास मन्मथाविष्टचेतनः॥२६॥
धृतिमालंब्य तु पुनः किमेतदिति चिंतयन्। ददर्शाग्रे तु सन्नद्धं मन्मथे कुसुमायुधम्॥२७॥
तं दृष्ट्वा कुपितः शूली त्रैलोक्यदहनक्षमः। तार्तीयं चक्षुरुन्मील्य ददाह मकरध्वजम्॥२८॥

अपनी आत्मा को एकत्र कर ध्यानमग्न शिव गौरी से युक्त होकर हिमालय पर्वत की रम्य तलहटी में मुनियों से घिरे हुए तपस्या कर रहे हैं।।१९।। तुम जाकर उनको पार्वती से मिला दो, तब गौरी में उनका पुत्र पैदा होगा। अतः हे महाबली! इतना सा हमारा कार्य करके आप हमारी रक्षा कीजिए।।२०।।

इस प्रकार देवताओं द्वारा बार-बार स्तुति किये जाने पर कामदेव अपने विनाश के लिए हिमालय के तट पर गये।।२१।। तब वहाँ कामदेव ने ध्यान में आँखें बन्द किये हुए, कुछ आराधना करते हुए आसनस्थ भगवान् शंकर को देखा।।२२।। इसी बीच में हिमालय पुत्री पार्वती ने शिव की आराधना करनी चाही, अतः उन्होंने अद्‌भुत रूप धारण कर लिया।।२३।। वहाँ पर शम्भु और गिरिजा के पास जाकर गन्ध पुष्पोपहारों द्वारा सेवा करते हुए अत्यधिक बलवान् कामदेव दिखाई दिये। अर्थात् वहाँ पर भगवान् शंकर पार्वती के प्रति प्रेम करने के लिये वशीभूत नहीं हो रहे थे, क्योंकि पूर्वजन्म में सतीजी उनके मना करने पर भी अपने पिता दक्ष के यज्ञ में चली गयी थीं। भगवान् शिव का कहना था कि बिना बुलाये नहीं जाना चाहिए, अतः फिर भी नहीं मानीं, फिर परिणाम जो हुआ। उसके बाद हिमालय पुत्री के रूप में उन्होंने जब पुनः पाने का प्रयास किया, तब वे उन्हें वश में करना चाहती थीं; परन्तु नहीं हुए, तब वहाँ पर कामदेव ने भगवान् शंकर के मन में काम भाव पैदा करने के लिये चारों ओर सुगन्धित वातावरण पैदा कर दिया, ताकि उनके मन में काम भाव जागृत होवे और वे पार्वती से पुनः विवाह करें।।२४।। वहाँ उस कामदेव ने सब प्राणियों से अति दूरी पर स्थित होकर पुष्पों के बाणों को आगे करके शंकरजी को विशेष बाधित किया।।२५।। तब शंकर जी ने कार्यों को भूलकर कारणों पर विचार किया, तो कामदेव के पुष्पबाण से विद्ध कामाविष्ट चित्त वाले शंकरजी ने पार्वती को पास में खड़ी हुई देखा।।२६।। धैर्य का सहारा लेकर शंकरजी ने ध्यान योग से देखा कि यह क्या है? क्यों अचानक मेरे मन में कुछ कुछ होने लगा है? इस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने अपने आगे धनुष बाण रखे हुए छोड़ने को उद्यत पुष्पायुध वाले कामदेव को देखा।।२७।। उसको देखकर त्रैलोक्य को जलाने की क्षमता रखने वाले शूलधारी भगवान् शंकर ने अपने

---

१. परस्मैपदमार्षम्।

शिवेनैवमवज्ञाता दुःखिता शैलकन्यका। अनुज्ञया ततः पित्रोस्तपः कर्तुमगाद्वनम्॥२९॥
अथ तद्भस्म संवीक्ष्य चित्रकर्मा गणेश्वरः। तद्भस्मना तु पुरुषं चित्राकारं चकार सः॥३०॥
तं विचित्रतनुं रुद्रो ददर्शाग्रे तु पूरुषम्। तत्क्षणाज्जात जीवोऽभून्मूर्तिमानिव मन्मथः।
महाबलोऽतितेजस्वी मध्याह्नार्कसमप्रभः॥३१॥
तं चित्रकर्मा बाहुभ्यां समालिंग्य मुदान्वितः। स्तुहि बाल महादेवं स तु सर्वार्थसिद्धिदः॥३२॥
इत्युक्त्वा शतरुद्रीयमुपादिशदमेयधीः। ननाम शतशो रुद्रं शतरुद्रियमाजपन्॥३३॥
ततः प्रसन्नो भगवान्महादेवो वृषध्वजः। वरेण च्छंदयामास वरं वव्रे स बालकः॥३४॥
प्रतिद्वंद्विबलार्थं तु मद्बलेनोपयोक्ष्यति। तदस्त्रशस्त्रमुख्यानि वृथा कुर्वंतु नो मम॥३५॥
तथेति तत्प्रतिश्रुत्य विचार्य किमपि प्रभुः। षष्टिवर्षसहस्राणि राज्यमस्मै ददौ पुनः॥३६॥
एतद्दृष्ट्वा तु चरितं धाता भंडिति बंडिति। यदुवाच ततो नाम्ना भंडो लेकेषु कथ्यते॥३७॥
इति दत्त्वा वरं तस्मै सर्वैर्मुनिगणैर्वृतः। दत्त्वाऽस्त्राणि च शस्त्राणि तत्रैवांतरधाच्च सः॥३८॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने भंडासुरप्रादुर्भावो नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

तृतीय नेत्र को खोलकर कामदेव को भस्म कर दिया।।२८।। इस प्रकार शिव द्वारा अपमानित होकर दुःखी शैलपुत्री पार्वती अपने पिता की अनुमति से तप करने के लिए वन को चली गयीं।।२९।। इसके बाद उस कामदेव को जला हुआ भस्म के रूप में देखकर चित्रकर्मा भगवान् शंकर ने उसकी भस्म से चित्राकार पुरुष बना दिया।।३०।। तब भगवान् रुद्र (शिव) ने विचित्र शरीर वाले उस पुरुष को सामने देखा। उसी क्षण से वह कामदेव मूर्तिमान् सा जीव बन गया तथा वह अब महाबलशाली अत्यधिक तेजस्वी और मध्याह्नकालीन सूर्य के समान प्रभा वाला हो गया।।३१।। चित्रकर्मा गणेश्वर ने प्रसन्न होकर उसका दोनों बाहों से आलिङ्गन करके उससे बोले कि हे बालक! तुम सब मनोरथों को सिद्ध करने वाले महादेव की स्तुति करो।।३२।। ऐसा कहकर असीमित बुद्धि वाले गणेश्वर ने शतरुद्रीय के जाप करने का उपदेश दिया और फिर उस बालक ने शतरुद्रीय का जाप करते हुए सौ बार भगवान् रुद्र को नमन किया।।३३।। उसके बाद उसकी उस आराधना से वृषभध्वज भगवान् महादेव बहुत प्रसन्न हुए और उसे वर द्वारा विभूषित किया। उस बालक ने वर माँगा।।३४।। प्रतिद्वन्द्वी के बल के लिये मेरे बल द्वारा उपयोग करेगा, उसके मुख्य अस्त्र-शस्त्र सब मेरे ऊपर व्यर्थ होवें।।३५।। वैसा ही होगा, ऐसा कहकर उन प्रभु ने कुछ विचार करके साठ वर्ष तक के लिए उसे राज्य प्रदान किया।।३६।। यह चरित्र देखकर ब्रह्माजी ने भण्ड भण्ड ऐसा जो कहा, उसके बाद समस्त लोकों में वह भण्ड नाम से कहा जाता है।।३७।। इस प्रकार उसे वर देकर समस्त मुनियों से घिरे हुए वे गणेश्वर उसे अस्त्र-शस्त्र प्रदान कर वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।३८।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ११वाँ अध्याय भण्डासुर की उत्पत्ति का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

ललिताप्रादुर्भावो नाम

द्वादशोऽध्यायः

रुद्रकोपानलाज्जातो यतो भण्डो महाबलः। तस्माद्रौद्रस्वभावो हि दानवश्चाभवत्ततः॥१॥
अथागच्छन्महातेजाः शुक्रो दैत्यपुरोहितः। समायाताश्च शतशो दैतेयाः सुमहाबलाः॥२॥
अथाहूय मयं भंडो दैत्यवंश्यादिशिल्पिनम्। नियुक्तो भृगुपुत्रेण निजगादार्थवद्वचः॥३॥
यत्र स्थित्वा तु दैत्येन्द्रैस्त्रैलोक्यं शासितं पुरा। तद्गत्वा शोणितपुरं कुरुष्व त्वं यथापुरम्॥४॥
तच्छ्रुत्वा वचनं शिल्पी स गत्वाथ पुरं महत्। चक्रेऽमरपुरप्रख्यं मनसैवेक्षणेन तु॥५॥
अथाभिषिक्तः शुक्रेण दैतेयैश्च महाबलैः। शुशुभे परया लक्ष्म्या तेजसा च समन्वितः॥६॥
हिरण्याय तु यद्दत्तं किरीटं ब्रह्मणा पुरा। सजीवमविनाश्यं च दैत्येन्द्रैरपि भूषितम्।
दधौ भृगुसुतोत्सृष्टं भंडो बालार्कसन्निभम्॥७॥
चामरे चंद्रसंकाशे सजीवे ब्रह्मनिर्मिते। न रोगो न च दुःखानि संदधौ यन्निषेवणात्॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-१२

ललिताप्रादुर्भाव

भगवान् रुद्र की क्रोधाग्नि से वह महाबली भण्डासुर उत्पन्न हुआ था, इसलिए वह दानव रौद्र स्वभाव वाला हुआ।।१।। इसके बाद महातेजस्वी दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य और सैकड़ों महाबलवान् दैत्यपुत्र उसके पास आये।।२।। इसके बाद भण्डासुर ने मय दानव को बुलाया और फिर भृगुपुत्र शुक्राचार्य ने मय दानव को दैत्यकुल का मुख्य शिल्पकार नियुक्त किया, तब उस मयदानव से भण्डासुर ने सार्थक वाणी को कहा।।३।। जहाँ स्थित होकर दैत्य राजाओं ने प्राचीन काल में तीनों पर शासन किया था, वहाँ जाकर शोणितपुर को जैसा वह नगर पहले था, वैसा कर दो।।४।। उस वचन को सुनकर उस मयनामक दानव शिल्पकार ने वहाँ जाकर उस महान् नगर को मन से देखते हुए अमरपुर नामक मुख्य नगर बना दिया, अर्थात् उस शोणितपुर को, जिसमें सर्वत्र खून ही खून था, उसे सजाकर अमरपुर बना दिया।।५।।

इसके बाद शुक्राचार्य तथा महाबली दैत्यों ने भण्डासुर का राज्याभिषेक कर दिया, तब परालक्ष्मी के तेज से समन्वित वह भण्डासुर सुशोभित हुआ।।६।। पूर्वकाल में जिस मुकुट को ब्रह्माजी ने हिरण्य को दिया था, उसी दैत्यराजाओं द्वारा सजाये गये सजीव और अविनाशी प्रातःकालीन सूर्य के समान, शुक्राचार्य द्वारा पहनाये गये मुकुट को भण्डासुर ने अपने मस्तक पर धारण किया।।७।। तथा ब्रह्मा द्वारा बनाये गये चन्द्रमा के समान सजीव दो चामरों को धारण किया, जिन चामरों के रहते न कोई रोग हो सकता था और न कोई दुःख ही होना सम्भव था।।८।।

तस्यातपत्रं प्रददौ ब्रह्मणैव पुरा कृतम्। यस्यच्छायानिषण्णास्तु बाध्यंते नास्त्रकोटिभिः॥९॥
धनुश्च विजयं नाम शंखं च रिपुघातिनम्। अन्यान्यपि महार्हाणि भूषणानि प्रदत्तवान्॥१०॥
तस्य सिंहासनं प्रादक्षय्यं सूर्यसन्निभम्। ततः सिंहासनासीनः सर्वाभरणभूषितः।
बभूवातीव तेजस्वी रत्नमुत्तेजितं यथा॥११॥
बभूवुरथ दैतेयास्तस्याष्टौ तु महाबलाः। इन्द्रशत्रुरमित्रघ्नो विद्युन्माली विभीषणः।
उग्रकर्मोग्रधन्वा च विजयश्रुति पारगः॥१२॥
सुमोहिनी कुमुदिनी चित्रांगी सुंदरी तथा। चतस्रो वनितास्तस्य बभूवुः प्रियदर्शनाः॥१३॥
तमसेवंत कालज्ञा देवाः सर्वे सवासवाः। स्यंदनास्तुरगा नागाः पादाताश्च सहस्रशः॥१४॥
संबभूवुर्महाकाया महांतो जितकाशिनः। बभूवुर्दानवाः सर्वे भृगुपुत्रमतानुगाः॥१५॥
अर्चयंतो महादेवमास्थिताः शिवशासने। बभूवुर्दानवास्तत्र पुत्रपौत्रधनान्विताः।
गृहेगृहे च यज्ञाश्च संबभूवुः समंततः॥१६॥
ऋचो यजूंषि सामानि मीमांसान्यायकादयः। प्रवर्तंते स्म दैत्यानां भूयः प्रतिगृहं तदा॥१७॥
यथाश्रमेषु मुख्येषु मुनीनां च द्विजन्मनाम्। तथा यज्ञेषु दैत्यानां बुभुजुर्हव्यभोजिनः॥१८॥
एवं कृतवतोऽप्यस्य भंडस्य जितकाशिनः। षष्टिवर्षसहस्राणि व्यतीतानि क्षणार्धवत्॥१९॥
वर्धमानमथो दैत्यं तपसा च बलेन च। हीयमानबलं चेन्द्रं संप्रेक्ष्य कमलापतिः॥२०॥

जिस छत्र को पहने ब्रह्माजी ने बनाया था, जिसकी छाया में बैठे हुए को हजारों करोड़ अस्त्रों से भी बाधा नहीं पहुँच सकती थी, उसी छत्र को भण्डासुर को दिया गया।।९।। उस भण्डासुर का विजय नामक धनुष था, जो एक शंख शत्रुओं को मारने वाला था। अन्य भी बेशकीमती आभूषण दिये गये थे।।१०।। उसको सूर्य के समान अक्षय सिंहासन दिया गया, तब उस सिंहासन पर आसीन हो सब आभूषणों से भूषित वह ऐसा अत्यन्त तेजस्वी हो गया, जैसा कि ऊँचे तेज वाला रत्न होता है।।११।। उस महाबली दैत्य के आठ पुत्र हुए, जिनके नाम हैं—१. इन्द्रशत्रु, २. अमित्रघ्न, ३. विद्युन्माली, ४. विभीषण, ५. उग्रकर्मा, ६. उग्रधन्वा, ७. विजय श्रुति और ८. पारग।।१२।। तथा १. सुमोहिनी, २. कुमुदिनी, ३. चित्रांगी और ४. सुन्दरी ये चार उसकी प्रिय दिखाई देने वाली पत्नियाँ हुईं।।१३।। काल को जानने वाले सब देवताओं ने इन्द्र के साथ हजारों रथारोही, अश्वारोही, गजारोही और पैदल सेनायें देकर उस भण्डासुर की सेवा की।।१४।। इस प्रकार वे भृगुपुत्र शुक्राचार्य के मत का अनुगमन करने वाले सभी दानव महाकाय, महान्त और प्रकाश को जीतने वाले हो गये।।१५।। शिव के शासन में महादेव में आस्था रखते हुए तथा महादेव की पूजा करते हुए सब दानव वहाँ पुत्र-पौत्र और धन-धान्य से समृद्ध हो गये। घर-घर में सर्वत्र चारों ओर यज्ञ होने लगे।।१६।। तब ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, मीमांसा, न्याय आदि दैत्यों के प्रत्येक घर में अध्ययन किये जाते थे।।१७।। जिस प्रकार मुनियों और ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों के मुख्य आश्रमों में यज्ञादि प्रक्रियाएँ चलती थीं, उसी प्रकार दैत्यों के यज्ञों में हवि का भोग करने वाले भोजन करने लगे। अर्थात् उसी प्रकार यज्ञादि होने लगे।।१८।। इस प्रकार पूर्ण धर्मपूर्वक राज्य करते हुए उस जितकाशी भण्डासुर के साठ हजार वर्ष आधे क्षण के समान बीत गये।।१९।। इस प्रकार तपस्या और बल से बढ़े हुए दैत्य को और इन्द्र के बल को घटता हुआ

ससर्ज सहसा कांचिन्मायां लोकविमोहिनीम्। तामुवाच ततो मायां देवदेवो जनार्दनः॥२१॥

त्वं हि सर्वाणि भूतानि मोहयंती निजौजसा।
विचरस्व यथाकामं त्वां न ज्ञास्यति कश्चन॥२२॥

त्वं तु शीघ्रमितो गत्वा भंडं दैतेयनायकम्। मोहयित्वाचिरेणैव विषयानुपभोक्ष्यसे॥२३॥

एवं लब्ध्वा वरं माया तं प्रणम्य जनार्दनम्।
ययाचेऽप्सरसो मुख्याः सहायार्थं तु काश्चन॥२४॥

तथा संप्रार्थितो भूयः प्रेषयामास काश्चन। ताभिर्विश्वाचि[1]मुख्याभिः सहिता सा मृगेक्षणा।

प्रययौ मानसस्याग्र्यं तटमुज्ज्वलभूरुहम्॥२५॥

यत्र क्रीडति दैत्येंद्रो निजनारीभिरन्वितः। तत्र सा मृगशावाक्षी मूले चंपकशाखिनः।

निवासमकरोद्रम्यं गायंती मधुरस्वरम्॥२६॥

अथागतस्तु दैत्येंद्रो बलिभिर्मंत्रिभिर्वृतः। श्रुत्वा तु वीणानिनदं ददर्श च वरांगनाम्॥२७॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वांगीं विद्युल्लेखामिवापराम्। मायामये महागर्ते पतितो मदना[2]भिधे॥२८॥

अथास्य मंत्रिणोऽभूवन्हृदये स्मरतापि ताः॥२९॥

तेन दैतेयनाथेन चिरं संप्रार्थिता सती। तैश्च संप्रार्थितास्ताश्च प्रतिशुश्रुवुरंजसा॥३०॥

यास्त्वलभ्या महायज्ञैरश्वमेधादिकैरपि। ता लब्ध्वा मोहिनीमुख्या निर्वृत्तिं परमां ययुः॥३१॥

देखकर कमलापति विष्णु ने अचानक किसी लोकविमोहिनी माया को उत्पन्न किया, उसके बाद देवों के देव जनार्दन भगवान् विष्णु ने उस माया से कहा कि हे माये! तुम अपने ओज से समस्त प्राणियों को मोहित करती हुई अपनी इच्छानुसार विचरण करो, तुमको कोई नहीं जानेगा।।२२। अतः हे माये! तुम शीघ्र ही यहाँ से जाकर दैत्यों के नायक भण्डासुर को मोहित करके उसके साथ शीघ्र विषयों का भोग करो।।२३।। इस प्रकार भगवान् विष्णु से वर प्राप्त कर और उन जनार्दन को प्रणाम करके उसने अपनी सहायता के लिए किन्हीं मुख्य अप्सराओं की याचना की।।२४।।

उस माया द्वारा प्रार्थना करने पर कुछ अप्सराओं के साथ में भेज दिया। उन विश्वाची आदि मुख्य अप्सराओं के साथ वह मृगनैनी माया मानसरोवर के अग्रभाग में उज्ज्वल तट पर उगे हुए वृक्षों वाले रम्य स्थान पर चली गयी। जहाँ कि वह दैत्यराज भण्डासुर अपनी नारियों सहित कामक्रीड़ा करता था।।२५-२५½।। वहाँ पर वह मृगछौने के समान नेत्र वाले चम्पक वृक्ष की शाखाओं के मूल में रमणीक मधुर स्वर में गाते हुए निवास करने लगी।।२६।। इसके बाद बलियों और नृत्यों से घिरा हुआ दैत्यराज वहाँ आया और वीणा के सुन्दर स्वर को सुनकर उस श्रेष्ठ अंग वाली माया को उसने देखा।।२७।। उस दूसरी विद्युत् रेखा की भाँति (बिजली की चमक की भाँति) सर्वाङ्गसुन्दरी को देख कर वह काम नामक मायामय महागर्त में गिर गया।।२८।। इसके बाद उसके मन्त्रियों के हृदय में भी वे अप्सरायें कामाग्नि पैदा करने लगीं।।२९।। उस दैत्यराज द्वारा चिरकाल तक प्रार्थना कर रमण की गयी तथा उन अप्सराओं ने भी उनके साथ पूरा-पूरा सहयोग किया।।३०।। अश्वमेधादिक महायज्ञों द्वारा जो परमानन्द नहीं प्राप्त

१. ह्रस्व आर्षः। २. अभूदिति शेष।

विसस्मरुस्तदा वेदांस्तथा देवमुमापतिम्। विजहुस्ते तथा यज्ञक्रियाश्चान्याः शुभावहाः॥३२॥
अवमानहतश्चासीत्तेषामपि पुरोहितः। मुहूर्त्तमिव तेषां तु ययावब्दायुतं तदा॥३३॥
मोहितेष्वथ दैत्येषु सर्वे देवाः सवासवाः। विमुक्तोपद्रवा ब्रह्मनामोदं परमं ययुः॥३४॥
कदाचिदथ देवेंद्र वीक्ष्य सिंहासने स्थितम्। सर्वदेवैः परिवृतं नारदौ मुनिरराययौ॥३५॥
प्रणम्य मुनिशार्दूलं ज्वलंतमिव पावकम्। कृतांजलिपुटो भूत्वा देवेशो वाक्यमब्रवीत्॥३६॥
गवन्सर्वधर्मज्ञ परापरविदां वर। तत्रैव गमनं ते स्याद्यं धन्यं कर्तुमिच्छसि॥३७॥
भविष्यच्छोभनाकारं तवागमनकारणम्। त्वद्वाक्यामृतमाकर्ण्य श्रवणानंदनिर्भरम्।
अशेषदुःखान्युत्तीर्य कृतार्थः स्यां मुनीश्वर॥३८॥

नारद उवाच

अथ संमोहितो भंडो दैत्येंद्रो विष्णुमायया। तया विमुक्तो लोकांस्त्रीन्दहेताग्नि[1]रिवापरः॥३९॥
अधिकस्तव तेजोभिरस्त्रैर्मायाबलेन च। तस्य तेजोऽपहारस्तु कर्तव्योऽतिबलस्य तु॥४०॥
विनाराधनतो देव्याः पराशक्तेस्तु वासव। अशक्योऽन्येन तपसा कल्पकोटिशतैरपि॥४१॥

हो सके, उन परमानन्दों को मोहिनी मुख्य अप्सराओं से प्राप्त दैत्यराज मन्त्रियों सहित परम सन्तुष्टि को प्राप्त हुआ।।३१।। तब वे सब दैत्य लोग वेदों को और उमापति महादेव को भूल गये तथा उनकी समस्त शुभ करने वाली याज्ञिक क्रियाएँ समाप्त हो गयीं।।३२।। उनके पुरोहित शुक्राचार्य अवमान हत हो गये। तब उनके दश हजार वर्ष मुहूर्त के समान चले गये।।३३।। जब वे दैत्य उस मोहिनी माया तथा अप्सराओं द्वारा मोहित कर लिये गये, तब इन्द्र सहित सभी देवता उपद्रव रहित होकर परम आमोद को प्राप्त हुए।।३४।। फिर जब असुरों का समय समाप्त हो गया और वे माया से आवृत होकर शक्तिहीन हो गये, तब देवताओं का राज्य हो गया और सिंहासन पर देवराज इन्द्र विराजमान हो गये। तब कभी सब देवों से घिरे हुए देवराज इन्द्र को सिंहासन पर बैठा हुआ देखकर नारद मुनि वहाँ आये।।३५।। तब जलती हुई अग्नि के समान उन मुनिशार्दूल नारद जी को प्रणाम करके हाथ जोड़ कर देवराज इन्द्र यह वाक्य बोले।।३६।। हे सब धर्मों को जानने वाले तथा पर और अपर को जानने वाले भगवन्! आपका गमन वहीं होता है, जहाँ आप उसको धन्य करना चाहते हैं।।३७।। हे महामुने! आपके आगमन का कारण भविष्य में शोभनाकार होता है, अर्थात् जहाँ कुछ शुभ होने को होता है, वहीं पर आप आते हैं। हे मुनीश्वर! कानों को आनन्द प्रदान करने वाले आपके वाक्यामृत को सुनकर समस्त दुःखों को उतार कर (दूर कर) हम लोग कृतार्थ होवें।।३८।।

नारदजी बोले—आप लोग समझिये कि उस दैत्यराज भण्डासुर को विष्णु की माया ने सम्मोहित कर दिया है। उसने जलती हुई अग्नि के समान तीनों लोकों को छोड़ दिया है।।३९।।

जबकि वह आपके तेजयुक्त अस्त्रों और आप लोगों के मायाबल से अधिक है। हे इन्द्र! उस अति बली के तेज का अपहरण पराशक्ति देवी की आराधना के बिना सम्भव नहीं था। अन्य तपादि उपाय द्वारा सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी उसके तेज का अपहरण अशक्य था।।४०-४१।।

१. *सम्भावनायां लिङ्।*

पुरैवोदयतः शत्रोराराधयत बालिशाः। आराधिता भगवती सा वः श्रेयो विधास्यति॥४२॥
एवं संबोधितस्तेन शक्रो देवगणेश्वरः। तं मुनिं पूजयामास सर्वदेवैः समन्वितः।
तपसे कृतसन्नाहो ययौ हैमवतं तटम्॥४३॥
तत्र भागीरथीतीरे सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वले। पराशक्तेर्महापूजां चक्रेऽखिलसुरैः समम्।
इन्द्रप्रस्थमभून्नाम्ना तदाद्यखिलसिद्धिदम्॥४४॥
ब्रह्मात्मजोपदिष्टेन कुर्वतां विधिना पराम्। देव्यास्तु महतीं पूजां जपध्यानरतात्मनाम्॥४५॥
उग्रे तपसि संस्थानामनन्यार्पितचेतसाम्। दशवर्षसहस्राणि दशाहानि च संययुः॥४६॥
मोहितानथ तान्दृष्ट्वा भृगुपुत्रो महामतिः। भंडासुरं समभ्येत्य निजगाद पुरोहितः॥४७॥
त्वामेवाश्रित्य राजेंद्र सदा दानवसत्तमाः। निर्भयास्त्रिषु लोकेषु चरंतीच्छाविहारिणः॥४८॥
जातिमात्रं हि भवतो हंति सर्वान्सदा हरिः। तेनैव निर्मिता माया यया संमोहितो भवान्॥४९॥
भवंतं मोहितं दृष्ट्वा रंध्रान्वेषण तत्परः। भवतां विजयार्थाय करोदींद्रो महत्तपः॥५०॥
यदि तुष्टा जगद्धात्री तस्यैव विजयो भवेत्।
इमां मायामयीं त्यक्त्वा मंत्रिभिः सहितो भवान्।
गत्वा हैमवतं शैलं परेषां विघ्नमाचर॥५१॥
एवमुक्तस्तु गुरुणा हित्वा पर्यंकमुत्तमम्। मंत्रिवृद्धानुपाहूय यथावृत्तांतमाह सः॥५२॥

अरे मूर्खो! यदि शत्रु के उदय होने से पहले उनकी तुम आराधना करो तो आराधित वह भगवती आप लोगों का कल्याण करेंगी।।४२।। जब नारद मुनि ने इन्द्र से इस प्रकार कहा तो सव देवों के साथ इन्द्र ने नारद मुनि की पूजा की। उसके बाद वे नारद मुनि तपस्या के लिए हैमवान् पर्वत के तट पर चले गये।।४३।। वहाँ ऋतुओं के उज्ज्वल पुष्पों वाले भागीरथी नदी के किनारे समस्त देवताओं के साथ उन्होंने महाशक्ति की पूजा की। फिर वह स्थान वह आदि और समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला इन्द्रप्रस्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ।।४४।। ब्रह्मा पुत्र नारद जी ने जो उपदेश दिया, उसके अनुसार उन सव देवों ने उन देवी की इतनी महती पूजा की कि वे उन्हीं के जप और ध्यान में लगे रहते थे तथा अन्यत्र कहीं नहीं मन लगाते थे। इस प्रकार उग्र तपस्या करते हुए उनके दश हजार वर्ष बीत गये।।४५-४६।। इस प्रकार भृगुपुत्र महामति पुरोहित शुक्राचार्य ने उन देवताओं को मोहित देखकर भण्डासुर को बुलाकर कहा।।४७।। कि राजेन्द्र भण्डासुर! तुम्हारा आश्रय लेकर ही समस्त दानवश्रेष्ठ सदैव निर्भय होकर तीनों लोकों में इच्छानुसार विहार करते हैं।।४८।।

आपकी जातिमात्र में सबको भगवान् विष्णु सदैव मारते हैं, उन विष्णु ने ही उस माया को उत्पन्न किया है, जिस माया ने आपको मोहित कर लिया है।।४९।। आपको मोहित देखकर कोई दोष (कमी) खोजने में लगे हुए इन्द्र आप पर विजय प्राप्त करने के लिए महान् तप कर रहे हैं।।५०।। यदि संसार को धारण करने वाली वे महामाया उनकी पूजा से सन्तुष्ट हो गयीं तो फिर उस इन्द्र की ही विजय होनी चाहिए। इसलिए इस मायामयी को छोड़कर मन्त्रियों के साथ आप हैमवान् पर्वत पर जाकर दूसरे के विघ्नों को दूर करो।।५१।। इस प्रकार जब गुरु शुक्राचार्य ने कहा तो भण्डासुर ने राज्यभोग के समस्त साधनों को त्याग दिया और मन्त्रियों को बुलाया और उनसे सब वृत्तान्त

तच्छ्रुत्वा नृपतिं प्राह श्रुतवर्मा विमृश्य च। षष्टिवर्षसहस्त्राणां राज्यं तव शिवार्पितम्॥५३॥
तस्मादप्यधिकं वीर गतमासीदनेकशः। अशक्यप्रतिकार्योऽयं यः कालः शिवचोदितः॥५४॥

अशक्यप्रतिकार्योऽयं तदभ्यर्चनतो विना।
काले तु भोगः कर्त्तव्यो दुःखस्य च सुखस्य वा॥५५॥
अथाह भीमकर्माख्यो नोपेक्ष्योऽरिर्यथाबलम्।
क्रियाविघ्ने कृतेऽस्माभिर्विजयस्ते भविष्यति॥५६॥

तव युद्धे महाराज परार्थ बलहारिणी। दत्ता विद्या शिवेनैव तस्मात्ते विजयः सदा॥५७॥
अनुमेने च तद्वाक्यं भंडो दानवनायकः। निर्गत्य सहसेनाभिर्ययौ हैमवतं तटम्॥५८॥
तपोविघ्नकरान्दृष्ट्वा दानवाञ्जगदंबिका। अलंघ्यमकरोदग्रे महाप्राकारमुज्ज्वलम्॥५९॥
तं दृष्ट्वा दानवेंद्रोऽपि किमेतदिति विस्मितः। संक्रुद्धो दानवास्त्रेण बभंजातिबलेन तु॥६०॥
पुनरेव तदग्रेऽभूदलंघ्यः सर्वदानवैः। वायव्यास्त्रेण तं धीरे बभंज च ननाद च॥६१॥
पौनःपुन्येन तद्भस्म प्राभूत्पुनरुपस्थितम्। एतदृष्ट्वा तु दैत्येंद्रो विषण्णः स्वपुरं ययौ॥६२॥

कहा।।५२।। उस समस्त समाचार को सुनकर मंत्री श्रुतवर्मा ने विचार कर राजा से कहा कि साठ हजार वर्षों तक भगवान् शिव द्वारा समर्पित राज्य तुम्हारा अब तक रहा है।।५३।। तथा उससे भी अधिक समय हो गया था।।५३½।। उन देवताओं ने जो कार्य किया कि वे उन महामाया की पूजा कर रहे हैं, अतः उसके प्रतिकार्य करना असम्मति है तथा यह कार्य तो काल प्रेरित है, अर्थात् समय के अनुसार होना ही था, समय को कोई नहीं जीत सकता। हम लोग उनसे अधिक महादेवी की पूजा नहीं कर सकते, अतः महामाया की पूजा के बिना यह प्रतिकार्य अशक्य है। समय आने पर तो जो कुछ सुख अथवा दुःख भोगना है, वह तो भोगना ही होगा।।५३½-५५।। इस प्रकार उस मन्त्री श्रुतवर्मा ने कहा कि हे राजन्! शत्रु जो महामाया की पूजा कर रहे हैं, वह कर्म बहुत ही भयंकर है, उससे वे जो चाहेंगे सो कर सकते हैं। अतः हमें अपने बल के अनुसार शत्रु के कार्यों की उपेक्षा नहीं करनी, उसका प्रतिकार करना चाहिए। इसलिए हमें उनके कार्य में विघ्न पैदा करना चाहिए, तभी आपकी विजय होगी।।५६।।

मन्त्री ने कहा कि हे महाराज! आपको तो भगवान् शंकर ने यह वरदान दिया है कि आपसे जो शत्रु युद्ध करेगा, उसका आप बल हरण कर लेंगे तथा जब बल हरण ही हो गया तो आपकी विजय सुनिश्चित है। इसलिए आप उनकी पूजा में विघ्न पैदा कीजिए।।५७।। तब दानव नायक भण्डासुर ने मन्त्री श्रुतवर्मा के वाक्य को मान लिया और फिर भण्डासुर जगदम्बिका के तप में लीन देवताओं के तप को भंग करने हेमवान् पर्वत के तट पर पहुँचा।।५८।। देवताओं के तप में विघ्न पैदा करने वाले दानवों को देखकर जगदम्बिका ललिता देवी ने आगे बढ़कर उन देवताओं के चारों ओर अलंघनीय महाप्राकार (चहारदीवारी) बना दी।।५९।। उस महाप्राकार को देखकर दानवराज भण्डासुर आश्चर्यचकित हो गया और बहुत क्रोधित होकर अत्यधिक बल से अस्त्रों द्वारा उस दानवराज ने प्राकार को तोड़ दिया।।६०।। उसके बाद फिर दानवों द्वारा न लांघने योग्य प्राकार बना दिया गया। उसको उस धैर्यशाली भण्डासुर ने वायव्य अस्त्र से तोड दिया और फिर घोर शब्द किया।।६१।। इस प्रकार जैसे दानवराज तोड़ता था, प्राकार पुनः बन जाता था, उसके सब अस्त्र भस्म हो जाते थे। यह देखकर वह दैत्यराज भण्डासुर तंग होकर अपने नगर को चला

तां च दृष्ट्वा जगद्धात्रीं दृष्ट्वा प्राकारमुज्ज्वलम्।
भयाद्विव्यथिरे देवा विमुक्तसकलक्रियाः॥६३॥
तानुवाच ततः शक्रो दैत्येन्द्रोऽयमिहागतः। अशक्यः समरे योद्धुमस्माभिरखिलैरपि॥६४॥
पलायितानामपि नो गतिरन्या न कुत्रचित्।
कुण्डं योजनविस्तारं सम्यक्कृत्वा तु शोभनम्॥६५॥
महायागविधानेन प्रणिधाय हुताशनम्। यजामः परमां शक्तिं महामासैर्वयं सुराः॥६६॥
ब्रह्मभूता भविष्यामो भोक्ष्यामो वा त्रिविष्टपम्। एवमुक्तास्तु ते सर्वे देवाः सेन्द्रपुरोगमाः॥६७॥
विधिवज्जुहुवुर्मांसान्युत्कृत्योत्कृत्य मंत्रतः। हुतेषु सर्वमांसेषु पादेषु च करेषु च॥६८॥
होतुमिच्छत्सु देवेषु कलेवरमशेषतः। प्रादुर्बभूव परमन्तेजःपुंजो ह्यनुत्तमः॥६९॥
तन्मध्यतः समुदभूच्चक्राकारमनुत्तमम्। तन्मध्ये तु महादेवीमुदयार्कसमप्रभाम्॥७०॥
जगदुज्जीवनकरीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्। सौन्दर्यसारसीमां तामानंदरससागराम्॥७१॥
जपाकुसुमसंकाशां दाडिमीकुसुमांबराम्। सर्वाभरणसंयुक्तां शृङ्गारैकरसालयाम्॥७२॥
कृपातरंगितापांगनयनालोककौमुदीम्। पाशांकुशेक्षुकोदंडपंचबाणलसत्कराम्॥७३॥
तां विलोक्य महादेवीं देवाः सर्वे सवासवाः।
प्रणेमुर्मुदितात्मानो भूयोभूयोऽखिलात्मिकाम्॥७४॥

गया।।६२।। उसके बाद संसार को धारण करने वाली उन महादेवी को तथा उनके द्वारा बनाये गये उज्ज्वल प्राकार को देखकर समस्त याज्ञिक क्रियाओं को छोड़कर देवता लोग भय से व्यथित हो गये।।६३।। तब इन्द्र ने उनसे कहा कि यहाँ पर दैत्यराज भण्डासुर आ गया, वह युद्ध में हम सबसे लड़ने में असमर्थ होकर चला गया।।६४।। वह यहाँ से भाग गया है, अतः भागने वाले की क्या गति है, अब वह क्या कर सकता है, उससे हमें कोई भय नहीं है। अब एक योजन विस्तार वाला सुन्दर कुण्ड अच्छी तरह बनाकर महायज्ञ के विधान से अच्छी तरह सब व्यवस्था कर हम सभी देवता लोग महामासों द्वारा उस परमाशक्ति का यज्ञ करते हैं, जिससे हम सभी ब्रह्मभूत हो जायेंगे अथवा स्वर्ग का भोग करेंगे।।६५½-६६½।। इस प्रकार वे सब देवता लोग इन्द्र के साथ इन्द्र को आगे करके उच्च उच्च मन्त्रों का उच्चारण करके मांसों को विधिवत् आहूत करने लगे। जब उस यज्ञ में अपने सब मांस को हाथों और पैरों को आहत कर दिया, तब समस्त शरीर को आहूत करने की इच्छा रखने वाले देवों को अत्यन्त उत्तम परम तेज प्रकट हो गया।।६६½-६९।। उस तेज के मध्य से अत्यन्त उत्तम चक्र का आकार बन गया, उस चक्र के बीच में सूर्य के समान प्रभा वाली महादेवी का उदय हो गया। जो देवी संसार को जीवन देने वाली, ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों की शक्ति वाली अर्थात् सृष्टि, स्थिति और प्रलय तीनों करने वाली थीं, वे सुन्दरता का जो भी सार (मुख्य) आधार है, उसकी सीमा को पार करने वाली थीं, वे आनन्द रूपी रस की सागर थीं। वे जपा कुसुम के समान श्वेत वर्ण वाली और अनार पुष्प के समान वस्त्र धारण किये हुए थीं, समस्त आभूषण पहने हुए थीं। शृङ्गार रस की मानों एकमात्र आलय थीं। वे अपनी कृपा से तरंगित पलकों के युक्त नेत्रों की चाँदनी थीं, उनके हाथों में पाश,.अंकुश, इक्षु, धनुष, पाँच बाण सुशोभित थे।।७०-७३।। उन महादेवी को देखकर सभी देवों ने इन्द्र के साथ पूर्ण आनन्दित होकर उन

तया विलोकिताः सद्यस्ते सर्वे विगतज्वराः। संपूर्णांगा दृढतरा वज्रदेहा महाबलाः।
तुष्टुवुश्च महादेवीमंबिकामखिलार्थदाम्॥७५॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने ललिताप्रादुर्भावो नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

ललितास्तवराजोनाम

त्रयोदशोऽध्यायः

देवा ऊचुः

जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे। जय कल्याणनिलये जय कामकलात्मिके॥१॥
जयकारि च वामाक्षि जय कामाक्षि सुन्दरि। जयाखिलसुराराध्ये जय कामेशि मानदे॥२॥
जय ब्रह्ममये देवि ब्रह्मात्मकरसात्मिके। जय नारायणि परे नंदिताशेषविष्टपे॥३॥

संसार की आत्मा रूप देवी को पुनः पुनः प्रणाम किया।।७४।। उस महादेवी के द्वारा देखे जाते हुए वे सभी विगतज्वर हो गये अर्थात् उनके सब दुःख दूर हो गये। उनके सम्पूर्ण अंग दृढ़तर हो गये तथा सबके शरीर वज्र हो गये और सभी महाबलशाली बन गये तब सभी ने उन देवी की स्तुति की।।७५।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १२वाँ अध्याय ललिताप्रादुर्भाव का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१३

ललिता देवी की स्तुति

इस प्रकार जब उस महायज्ञ से वे महादेवी ललितेश्वरी प्रकट हो गयीं, तब सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे। देवों ने कहा, हे समस्त संसार की माता! तुम्हारी जय हो, हे पर से पर देवि! तुम्हारी जय हो, हे कल्याण सदने! तुम्हारी जय हो, हे कामकला की आत्मारूप तुम्हारी जय हो।।१।। हे जय करने वाली देवि! तुम्हारी जाय हो, हे वामाक्षि! तुम्हारी जय हो, हे कामाक्षि! तुम्हारी जय हो, हे सुन्दरि! हे समस्त देवों द्वारा आराध्य देवि! तुम्हारी जय हो, हे कामेश्वरि! हे मान प्रदान करने वाली तुम्हारी जय हो।।२।। हे ब्रह्ममय देवि! हे ब्रह्मरूप आत्मा वाली, हे रस रूप आत्मा वाली देवि! तुम्हारी जय हो, हे नारायणि! तुम्हारी जय हो, हे परादेवि! हे नन्दिताशेषविष्टपे! तुम्हारी जय हो।।३।। हे श्रीकण्ठ दयिते! तुम्हारी

जय श्रीकंठदयिते जय श्रीललितेंबिके। जय श्रीविजये देवि विजय श्रीसमृद्धिदे॥४॥
जातस्य जायमानस्य इष्टापूर्तस्य हेतवे। नमस्तस्यै त्रिजगतां पालयित्र्यै परात्परे॥५॥
कलामुहूर्तकाष्ठाहर्मासर्तुशरदात्मने। नमः सहस्रशीर्षायै सहस्रमुखलोचने॥६॥
नमः सहस्रहस्ताब्जपादपंकजशोभिते। अमोरणुतरे देवि महतोऽपि महीयसि॥७॥
परात्परतरे मातस्तेजस्तेजीयसामपि। अतलं तु भवेत्पादौ वितलं जानुनी तव॥८॥
रसातलं कटीदेशः कुक्षिस्ते धरणी भवेत्। हृदयं तु भुवर्लोकः स्वस्ते मुखमुदाहृतम्॥९॥
दृशश्चंद्रार्कदहना दिशस्ते बाहवोऽम्बिके। मरुतस्तु तवोच्छ्वासा वाचस्ते श्रुतयोऽखिला॥१०॥

क्रीडा ते लोकरचना सखा ते चिन्मयः शिवः।
आहारस्ते सदानंदो वासस्ते हृदये सताम्॥११॥
दृश्यादृश्य स्वरूपाणि रूपाणि भुवनानि ते।
शिरोरुहा घनास्ते तु तारकाः कुसुमानि ते॥१२॥

धर्माद्या बाहवस्ते स्युरधर्माद्यायुधानि ते। यमाश्च नियमाश्चैव करपादरुहास्तथा॥१३॥

स्तनौ स्वाहास्वधाकारौ लोकोज्जीवनकारकौ।
प्राणायामस्तु ते नासा रसना ते सरस्वती॥१४॥

प्रत्याहारस्त्विंद्रियाणि ध्यानं ते धीस्तु सत्तमा। मनस्ते धारणाशक्तिर्हृदयं ते समाधिकः॥१५॥

जय हो। हे माँ ललितेश्वरी तुम्हारी जय हो, हे श्री विजये देवी! तुम्हारी जय हो, हे विजयश्री और समृद्धि प्रदान करने वाली देवी! तुम्हारी जय हो।।४।। हे जिनका जन्म हो चुका है, उनकी तथा जो जन्म लेने वाले हैं, उनकी तथा इष्ट की आपूर्ति की कारणरूप माँ तुम्हें नमस्कार है तथा हे पर से परे माँ! तुम्हें नमस्कार है।।५।। जितने भी समय हैं कला, मुहूर्त, काष्ठा, दिन, मास ऋतु शरदादि रूप, सहस्रशीर्ष और सहस्रमुख और नेत्रों वाली माँ, तुम्हें नमस्कार है।।६।। हे सहस्र करकमल और सहस्र चरणकमलों से सुशोभित माँ, तुम्हें नमस्कार है तथा हे अणु से अणु (सूक्ष्म रूप) एवं महानों से महान् माँ, तुम्हें नमस्कार है।।७।। हे पर से भी पर तथा तेजों में भी तेज स्वरूप माँ, तुम्हें नमस्कार है।।७½।। हे माँ सातों लोक तुम्हारे शरीर रूप हैं। तुम्हारे पैरों में अतल है, तुम्हारी जंघायें वितल हैं, तुम्हारे कटिदेश रसातल हैं तथा धरणी (पृथ्वी) तुम्हारी कुक्षि है। हृदय तुम्हारा भुवर्लोक है, तुम्हारा मुख स्वर्गलोक है। इस प्रकार सातों लोक तुम्हारे शरीर में विद्यमान हैं।।७½-९।। सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारे दोनों नेत्र हैं तथा हे अम्बिके! दिशा तुम्हारी भुजाएँ हैं, वायु तुम्हारी श्वास है, समस्त वेद तुम्हारी वाणियां हैं। संसार की रचना तुम्हारी क्रीडा है अर्थात् इस संसार की रचना तो तुम्हारा खेल है। चित् स्वरूप (आत्म तत्त्व) शिव तुम्हारे मित्र हैं, सदानन्द तुम्हारा आहार है तथा सज्जनों के हृदय में तुम्हारा वासस्थान है।।१०-११।। दृश्य और अदृश्य स्वरूप रूप तुम्हारे भुवन हैं, अर्थात् चौदहों भुवन तुम्हारे दृश्य और अदृश्य स्वरूप रूप, तुम्हारे भुवन हैं, बादल (घन) तुम्हारे शिर के केश हैं तथा तारे तुम्हारे शिर के केशों में लगे हुए पुष्प हैं।।१२।। धर्म आदि तुम्हारी भुजायें हैं और अधर्मादि तुम्हारे अस्त्र हैं। यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान) तुम्हारे हाथ और पैरों के नाखून हैं।।१३।। स्वाहा और स्वधा तुम्हारे दोनों स्तन हैं तथा लोकों को उज्जीवित करने वाले तुम्हारे दोनों हाथ हैं। प्राणायाम तुम्हारी नासिका है तथा सरस्वती तुम्हारी जिह्वा है।।१४।। प्रत्याहार तुम्हारी इन्द्रियां हैं, ध्यान तुम्हारी बुद्धि है, धारणाशक्ति तुम्हारा मन है तथा योग का आठवां अंग समाधि तुम्हारा हृदय है।।१५।।

महीरुहास्तेंगरुहाः प्रभातं वसनं तव। भूत भव्यं भविष्यच्च नित्यं च तव विग्रहः॥१६॥
यज्ञरूपा जगद्धात्री विश्वरूपा च पावनी। आदौ या तु दयाभूता ससर्ज निखिलाः प्रजाः॥१७॥
हृदयस्थापि लोकानामदृश्या मोहनात्मिका॥१८॥
नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया। तान्यधिष्ठाय तिष्ठन्त तेष्वसक्तार्थकामदा।
नमस्तस्यै महादेव्यै सर्वशक्त्यै नमोनमः॥१९॥
यदाज्ञया प्रवर्तंते वह्निसूर्येंदुमारुताः। पृथिव्यादीनि भूतानि तस्यै देव्यै नमोनमः॥२०॥
या ससर्जादिधातारं सर्गादावादिभूरिदम्। दधार स्वयमेवैका तस्यै देव्यै नमोनमः॥२१॥
यथा धृता तु धरिणी ययाकाशममेयया। यस्मामुदेति सविता तस्यै देव्यै नमोनमः॥२२॥
यत्रोदेति जगत्कृस्नं यत्र तिष्ठति निर्भरम्। यत्रांतमेति काले तु तस्यै देव्यै नमोनमः॥२३॥
नमोनमस्ते रजसे भवायै नमोनमः सात्त्विकसंस्थितायै।
नमोनमस्ते तमसे हरायै नमोनमो निर्गुणतः शिवायै॥२४॥
नमोनमस्ते जगदेकमात्रे नमोनमस्ते जगदेकपित्रे।

वृक्ष तुम्हारे शरीर के रोम हैं, प्रभात तुम्हारा वस्त्र है, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल तीनों काल रूप नित्यस्वरूप तुम्हारा शरीर है।।१६।। हे मां! तुम संसार को धारण करने वाली यज्ञरूप हो, तुम्ही विश्वरूपा पावनी हो। आदिकाल में दयाभूत होकर तुमने ही समस्त प्रजा की रचना की थी।।१७।। तुम हृदय में स्थित हो, फिर भी लोगों को दिखाई नहीं देती तथा लोगों को मोहित कर देती हो।।१८।। उन महाशक्ति मां का कोई नाम, रूप का विभाग नहीं है, फिर भी उनकी अपनी लीला अर्थात् उनके कार्यों के अनुसार नाम रूप और विभाग किया जाता है। जैसे कि वह सृष्टि की रचना करती हैं; इसलिए ब्राह्मी कही जाती हैं, बहुत ही सुन्दर हैं, इसलिए लक्ष्मी श्री तथा प्रलय में भयंकर रूप धारण करती है, इसलिये चण्डी कही जाती हैं। उसका कोई नाम रूप विभाग नहीं है, वे सब कार्यरूप हैं, फिर भी उन्हीं में वह अधिष्ठित हैं, उनको अधिष्ठान बना करके वे स्थित हैं; परन्तु अर्थ और काम प्रदान करने वाले, वे उन नामों में सक्त नहीं हैं। अतः उन शक्तिस्वरूप महादेवी के लिये नमस्कार है।।१९।। जिन देवी की आज्ञा से अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और वायु पृथिवी आदि भूततत्त्व अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं।।२०।। जिन्होंने सृष्टि आदि संसार को धारण करने वाले ब्रह्मा को उत्पन्न किया और इस भूलोक को पैदा किया तथा जिन्होंने स्वयं ही अकेले इस संसार को धारण किया, उन देवी को नमस्कार है।।२१।। जिस प्रकार जिन देवी ने पृथ्वी को धारण किया था, उसी प्रकार आकाश को भी धारण किया है, जिस देवी में ही सूर्य उदित होते हैं, उन देवी को नमस्कार है।।२२।। जहाँ जिस देवी में समस्त संसार उत्पन्न होता है तथा फिर जिस पर निर्भर रहता है तथा समय आने पर वे ही इस संसार का अन्त कर देती हैं, उन देवी को नमस्कार है।।२३।। हे रजोगुणरूपभवा तुमको नमस्कार है। हे सात्विक संस्था रूप तुमको नमस्कार है तथा तमोगुण हररूप तुमको नमस्कार है। हे निर्गुण रूप से शिवा तुमको नमस्कार है।।२४।।

विशेष—यहाँ वैज्ञानिक रहस्य पर प्रकाश डाला गया है कि रजस् आज के विज्ञान के अनुसार इलेक्ट्रॉन है; क्योंकि पदार्थ में रजस् का कार्य प्रवृत करना है। प्रोट्रान सत्त्व गुण जो पदार्थ को स्थिर रखता है तथा न्यूट्रॉन (तमस्) तत्त्व है जो भार स्वरूप है। रजोगुण इलेक्ट्रॉन का कार्य पदार्थ का निर्माण करना है, सत्त्वगुण प्रोटॉन का कार्य उसे स्थिर रखना है। अतः सत्त्व प्रोटॉन और रजस् इलेक्ट्रॉन दोनों ही समान स्थितियां पदार्थ को स्थिर रखती है। अतः यह वैज्ञानिक विचार प्रस्तुत किया गया है कि रजोगुण भवरूप उत्पन्न करने वाला रूप है, सत्त्वगुण संस्था अर्थात् सृष्टि को स्थित रखने वाला रूप है तथा तमोगुण हर नाश करने वाला रूप है।

नमोनमस्तेऽखिलरूपतंत्र नमोनमस्तेऽखिलयन्त्ररूपे॥२५॥
नमोनमो लोकगुरुप्रधाने नमोनमस्तेऽखिलवाग्विभूत्यै।
नमोऽस्तु लक्ष्म्यै जगदेकतुष्ट्यै नमोनमः शांभवि सर्वशक्त्यै॥२६॥
अनादिमध्यांतमपाञ्चभौतिकं ह्यवाङ्मनोगम्यमतर्क्यवैभवम्।
अरूपमद्वंद्वमदृष्टिगोचरं प्रभावमग्र्यं कथमेव वर्णये॥२७॥
प्रसीद विश्वेश्वरि विश्ववंदिते प्रसीद विद्येश्वरि वेदरूपिणी।
प्रसीद मायामयि मंत्रविग्रहे प्रसीद सर्वेश्वरि सर्वरूपिणी॥२८॥

इति स्तुत्वा महादेवीं देवाः सर्वे सवासवाः। भूयोभूयो नमस्कृत्य शरणं जग्मुरञ्जसा॥२९॥
ततः प्रसन्ना सा देवी प्रणतं वीक्ष्य वासवम्। वरेण च्छन्दयामास वरदाखिलदेहिनाम्॥३०॥

इन्द्र उवाच

यदि तुष्टासि कल्याणि वरं दैत्येंद्रपीडितः। दुर्धरं जीवितं देहि त्वां गताः शरणार्थिनः॥३१॥

श्रीदेव्युवाच

अहमेव विनिर्जित्य भंड दैत्यकुलोद्भवम्। अचिरात्तव दास्यामि त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३२॥

हे संसार की एक मात्र माता आपको नमस्कार है। हे संसार की एक मात्र पिता आपको नमस्कार है। माता का अर्थ बनाने वाली तथा पिता का अर्थ होता है—पालन करने वाला। अतः दोनों ही आप हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि वह आदिशक्ति में कोई लिङ्गभेद नहीं, वह शक्ति स्त्रीलिंग पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग तीनों हैं तथा समस्त तन्त्ररूप तथा यन्त्ररूपमां तुमको नमस्कार है।।२५।। हे प्रधानलोकगुरु तुम्हें नमस्कार है। हे अखिलवाणी की विभूति! आपको प्रणाम है। हे लक्ष्मी तुम्हें नमस्कार है। हे संसार की एक तुष्टिरूप! तुम्हें नमस्कार है।।२६।। हे मां! मैं तुम्हारे आदि मध्य और अन्तरहित, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँचों तत्त्वों से रहित शरीर वाले, वाणी मन और इन्द्रियों द्वारा न जानने योग्य तर्करहित वैभव वाले रूपरहित, द्वन्द्वरहित, न दिखायी देने वाले तथा अग्र प्रभाव वाले रूप को कैसे वर्णन कर सकता हूँ।।२७।। फिर देवों ने कहा हे विश्वेश्वरि! हे विश्ववन्दनीये! प्रसन्न हो जाओ! हे वेदरूप वाली विद्या की देवि! प्रसन्न हो जाओ, हे मायामयि! प्रसन्न हो जाओ, हे मन्त्ररूप शरीर वाली देवि! प्रसन्न हो जाओ, वे सर्वरूप वाली प्रसन्न हो जाओ, हे सर्वेश्वरि! प्रसन्न हो जाओ।।२८।।

इस प्रकार महादेवी की स्तुति करके देवताओं सहित इन्द्र बार-बार नमस्कार कर शीघ्र उनकी शरण में गये।।२९।। उसके बाद वे महादेवी इन्द्र पर प्रसन्न हो गयी और उन इन्द्र को नतमस्तक हुआ देखकर समस्त देहधारियों को वरदेने वाली उन देवी ने इन्द्र को वर मांगने का कहा।।३०।।

इन्द्र बोले! कि हे कल्याण करने वाली देवि! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो मैं दैत्यराज भण्ड से पीड़ित हूँ। अतः आप शरण में आये हुओं को जीवित रहने का वर प्रदान कीजिये।।३१।।

श्री देवी ने कहा कि—मैं शीघ्र दैत्य कुलोत्पन्न भण्डासुर को जीतकर शीघ्र तीनों लोकों का राज्य तुम्हें सौंप दूँगी।।३२।।

निर्भया मुदिताः सन्तु सर्वे देवगणास्तथा।
ये स्तोष्यंति च मां भक्त्या स्तवेनानेन मानवाः॥३३॥
भाजनं ते भविष्यंति धर्मश्रीयसां सदा। विद्याविनयसंपन्ना नीरोगा दीर्घजीविनः॥३४॥
पुत्रमित्रकलत्राढ्या भवन्तु मदनुग्रहात्। इति लब्धवरा देवा देवेन्द्रोऽपि महाबलः॥३५॥
आमोदं परमं जग्मुस्तां विलोक्य मुहुर्मुहुः॥३६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने ललितास्तवराजो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

चतुर्दशोऽध्यायः

मदनकामेश्वरप्रादुर्भावोनाम

हयग्रीव उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु ब्रह्मा लोकपितामहः। आजगामाथ देवेशीं द्रष्टुकामो महर्षिभिः॥१॥

उसके बाद सभी देवता निडर और प्रसन्न होवें।।३२½।। इसके बाद देवी ने कहा कि जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस उपर्युक्त स्तोत्र से मेरी स्तुति करेंगे। वे सदैव लक्ष्मी (धनदौलत) और यश के भागी होंगे।।३२½-३३½।। तथा वे सब विद्या और विनय से सम्पन्न नीरोग तथा दीर्घकाल तक आयु वाले होंगे।।३३½-३४½।। इस प्रकार वर प्राप्त कर देवता लोग तथा महाबली देवराज इन्द्र भी उन देवी को बार बार देखकर परम आमोद (आनन्द) को प्राप्त हुए।।३४½-३६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १३वाँ अध्याय ललिता देवी की स्तुति का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१४

मदनकामेश्वर प्रादुर्भाव

भगवान् हयग्रीव ने अगस्त्य मुनि से कहा जैसे ही उन देवी ने देवों को वरदान दिया तथा वे देवता इन्द्रसहित परमप्रसन्न हुए। इसी समय लोक पितामह ब्रह्मा जी उन देवी को देखने की इच्छा से महर्षियों के साथ आये।।१।।

आजगाम ततो विष्णुरारूढो विनतासुतम्। शिवोऽपि वृषमारूढः समायातोऽखिलेश्वरीम्॥२॥
देवर्षयो नारदाद्याः समाजग्मुर्महेश्वरीम्। आययुस्तां महादेवीं सर्वे चाप्सरसां गणाः॥३॥
विश्वावसुप्रभृतयो गंधर्वाश्चैव यक्षकाः। ब्रह्मणाथ समादिष्टो विश्वकर्मा विशां पतिः॥४॥
चकार नगरं दिव्यं यथामरपुरं तथा। ततो भगवती दुर्गा सर्वमंत्राधिदेवता॥५॥
विद्याधिदेवता श्यामा समाजग्मतुरंबिकाम्। ब्राह्म्याद्या मातरश्चैव स्वस्वभूतगणावृताः॥६॥

सिद्धयो ह्यणिमाद्याश्च योगिन्यश्चैव कोटिशः।
'भैरवाः क्षेत्रपालाश्च महाशास्ता गणाग्रणीः॥७॥

महागणेश्वरः स्कंदो बटुको वीरभद्रकः। आगत्य ते महादेवीं तुष्टुवुः प्रणतास्तदा॥८॥
तत्राथ नगरीं रम्यां साट्टप्राकारतोरणाम्। गजाश्वरथशालाढ्यां राजवीथिविराजिताम्॥९॥
सामंतानाममात्यानां सैनिकानां द्विजन्मनाम्। वेतालदासदासीनां गृहाणि रुचिरानि च॥१०॥
मध्यं राजगृहं दिव्यं द्वारगोपुरभूषितम्। शालाभिर्बहुभिर्युक्तं सभाभिरुपशोभितम्॥११॥
सिंहासनसभां चैव नवरत्नमयीं शुभाम्। मध्ये सिंहासनं दिव्यं चिंतामणिविनिर्मितम्॥१२॥
स्वयंप्रकाशमद्वंद्वमुदयादित्यसंनिभम्। विलोक्य चिंतयामास ब्रह्मा लोकपितामहः॥१३॥
यस्त्वेतत्समधिष्ठाय वर्तते बालिशोऽपि वा। पुरस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकाधिको भवेत्॥१४॥
न केवला स्त्री राज्यार्हा पुरुषोऽपि तया विना। मंगलाचार्यसंयुक्तं महापुरुषलक्षणम्।

उसके बाद भगवान् विष्णु विनातसुत गरुड़ पर सवार होकर आ गये। भगवान् शिव भी बूढ़े बैल पर सवार होकर आ गये।।२।। देवेश्वर नारद आदि उन महेश्वरी को देखने को आये तथा सभी अप्सराओं के समूह वहाँ आये।।३।। विश्वावसु आदि गन्धर्व और यक्षगण भी आये तथा ब्रह्मा के साथ प्रजापति विश्वकर्मा भी आये।।४।। उन विश्वकर्मा ने अमरपुर के समान दिव्य नगर बना दिया। तब मन्त्रों की देवी भगवती दुर्गा भी उनको देखने आयीं।।५।। विद्या देवी श्यामा उन अम्बिका को देखने आयीं। ब्राह्मी आदि मातायें अपने अपने गणों से आवृत उन देवी को देखने आयीं।।६।। अणिमा आदि आठ सिद्धियां और करोड़ों योगिनियां, भैरव क्षेत्रपाल, गणों के अग्रणी महाशिक्षक महागणेश्वर, कार्तिकेय, वीरभद्र बटुक आदि सबने वहाँ आकर महादेवी को प्रसन्न किया और प्रणाम किया।।७-८।। उसके बाद वहाँ अट्टालिकाओं सेयुक्त चहारदीवार से घिरी हुई दिव्य नगरी थी, जिसमें हाथी अश्व और रथों की शालायें बनी हुई थी तथा अनेकों राजमार्गों से सुशोभित थीं।।९।। उस नगरी में सामन्तों, अमात्यगणों, सैनिकों और ब्राह्मणों, वेताल दास और दासियों के सुन्दर सुन्दर घर थे।।१०।। उस नगर के मध्य में द्वार और गोपुर से सुशोभित दिव्य राजगृह था। उस राजगृह में अनेकों शालाओं वाले सभा भवनों से सुशोभित था।।११।।

वहाँ शुभरत्नमय एक शुभ सिंहासन सभा थी, उस सिंहासन सभा के मध्य एक दिव्य चिन्तामणि से निर्मित सिंहासन था, जो सिंहासन सूर्य के समान स्वयं प्रकाशित हो रहा था तथा वह ऐसा था कि उनकी कहीं उपमा नहीं थी।।१२-१२½।। उस सिंहासन को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा चिन्ता करने लगे कि जो यहाँ मूर्ख भी इस पर अधिष्ठित होकर इस नगर के प्रभाव से सब लोकों का स्वामी हो जायेगा। केवल स्त्री पुरुष के विना राज्य के योग्य नहीं हो सकती तथा पुरुष भी उसके विना राज्याधिकारी नहीं होना चाहिये।।१२½-१४½।। शास्त्रों के अनुसार

अनुकूलांगनायुक्तमभिषिंचेदिति श्रुतिः॥१५॥
विभातीयं वरारोहा मूर्ता श्रृंगारदेवता। वरोऽस्यास्त्रिषु लोकेषु न चान्यः शंकरादृते॥१६॥
जटिलो मुंडधारी च विरूपाक्षः कपालभृत।
कल्माषी भस्मदिग्धांगः श्मशानास्थिविभूषणः॥१७॥
अंगलास्पदं चैनं वरयेत्सा सुमंगला। इति चिंतयमानस्य ब्रह्मणोऽग्रे महेश्वरः॥१८॥
कोटिकंदर्पलावण्ययुक्तो दिव्य शरीरवान्। दिव्यांबरधरः स्त्रग्वी दिव्यगंधानुलेपनः॥१९॥
किरीटहारकेयूरकुण्डलाद्यैरलंकृतः। प्रादुर्बभूव पुरतो जगन्मोहन रूपधृक्॥२०॥
तं कुमारमथालिंग्य ब्रह्मा लोकपितामहः। चक्रे कामेश्वरं नाम्ना कमनीयवपुर्धरम्॥२१॥
तस्यास्तु परमाशक्तेरनुरूपो वरस्त्वयम्। इति निश्चित्य तेनैव सहितास्तामथाययुः॥२२॥
अस्तुवंस्ते परां शक्तिं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीं कुमारो नीललोहितः।
अभवन्मन्मथाविष्टो विस्मृत्य सकलाः क्रियाः॥२३॥
सापि तं वीक्ष्य तन्वंगो मूर्तिमंतमिव स्मरम्। मदनाविष्टसर्वांगी स्वात्मरूपममन्यत।
अन्योन्यालोकनासक्तौ तावुभौ मदनातुरौ॥२४॥
सर्वभावविशेषज्ञौ धृतिमंतौ मनस्विनौ। परैरज्ञातचारित्रौ मुहूर्तास्वस्थचेतनौ॥२५॥

मंगलाचार से संयुक्त महापुरुष के लक्षणों वाले तथा अनुकूल स्त्री वाले पुरुष का ही अभिषेक होना चाहिये।।१५।। यह विवाह के योग्य साक्षात् शृङ्गार की मूर्ति सुशोभित हो रही है। शंकर के अलावा तीनों लोकों में इसके अनुरूप कोई वर नहीं है।।१६।। वे जटाओं वाले, गले में नरमुण्डों की माला धारण करने वाले, विरूपाक्ष (तीन आँखों वाले) कपालधारी, कल्माषी, शरीर पर श्मशान की भस्म लगाने वाले, श्मशान की हड्डियों की माला का आभूषण धारण करने वाले हैं।।१७।। वह सुमंगला उन अमंगल के चिह्नों से युक्त शंकर का वरण करे, यह कैसे सम्भव है? ब्रह्मा जी इस प्रकार सोच ही रहे थे कि महेश्वर (भगवान् शंकर) ब्रह्मा के आगे ही करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता से युक्त शरीरवाले हो गये। वे दिव्य वस्त्र पहने हुए थे, माला धारण किये हुए थे, उनके शरीर पर दिव्य गन्ध का लेप लगा हुआ था तथा किसी हार केयूर कुण्डलादि से अलंकृत वे भगवान् शंकर संसार को मोहित करने वाला रूप धारण कर प्रकट हो गये।।१८-२०।।

इसके बाद उन कुमार का आलिङ्गन कर लोकपितामह ब्रह्मा जी ने उन कमनीय शरीर धारण करने वाले कुमार का कामेश्वर नाम रख दिया।।२१।। और फिर ब्रह्मा जी ने सोचा कि उस महादेवी का अनुरूप वर तो यह कुमार कामेश्वर ही है। ऐसा निश्चित करके उनके ही साथ उन महादेवी को कर दिया।।२२½।। इसकेबाद उस मृगशावक के समान नेत्रों वाली देवी को देखकर कुमार नीललोहित सब क्रियाओं को भूलकर कामाविष्ट हो गये।।२३।। वे भगवान् नील लोहित इस प्रकार लग रहे थे, मानो कि कामदेव ही साक्षात् शरीर धारण कर उपस्थित हो गये हों। अतः उनको देखकर उन महादेवी का अंग अंग कामाविष्ट हो गया तथा उन्होंने अपने रूप को कामाविष्ट समझ लिया। इस प्रकार वे दोनों एक-दूसरे को देखकर कामातुर हो गये।।२४।। समस्त भावों को जानने वाले धैर्यशाली मनस्वी, एक दूसरे का चरित्र न जानने वाले मुहूर्त भर के लिये अस्वस्थ चेतना हो गये। अर्थात् थोड़ी देर

अथोवाच महादेवीं ब्रह्मा लोकैकनायिकाम्। इमे देवाश्च ऋषयो गंधर्वाप्सरसां गणाः।
त्वामीशां द्रष्टुमिच्छन्ति सप्रियां परमाहवे॥२६॥
को वानुरूपस्ते देवि प्रियो धन्यतमः पुमान्। लोकसंरक्षणार्थाय भजस्व पुरुषं परम्॥२७॥
राज्ञी भव पुरस्यास्य स्थिता भव वरासने। अभिषिक्तां महाभागैर्देवार्षेभिरकल्मषैः॥२८॥
साम्राज्यचिह्नसंयुक्तां सर्वाभरणसंयुताम्। सप्रियामासनगतां द्रष्टुमिच्छामहे वयम्॥२९॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने मदनकामेश्वरप्रादुर्भावो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

के लिए कामावेग के कारण वे दोनों चेतनाहीन हो गये।।२५।। इसके बाद प्राजापति ब्रह्मा लोकों की एक मात्र नायिका उन महादेवी से बोले कि ये सभी देवता, ऋषिलोग, गन्धर्व और अप्सराओं के गण आपको और इन कुमार को इस परमयज्ञ में प्रिया सहित देखना चाहते हैं।।२६।। हे महादेवी! तुम्हारे अनुरूप इस संसार में प्रिय और धन्यतम कौन पुरुष हैं। इसलिए संसार के संरक्षण के लिये आप इस परमपुरुष कुमार को स्वीकार कीजिये।।२७।। अतः हे देवि! आपने सामने स्थित इस पुरुष की तुम रानी हो जाओ और इस श्रेष्ठ आसन पर बैठो। हम सब महाभाग निष्पाप देवर्षियों द्वारा अभिषिक्त आपको साम्राज्यचिह्न से संयुक्त सभी आभूषणों से युक्त अपने प्रिय सहित सिंहासन पर गयी हुई देखना चाहते हैं।।२८-२९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १४वाँ अध्याय मदनकामेश्वरप्रादुर्भावोनाम का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

वैवाहिकोत्सवनाम

पञ्चदशोऽध्यायः

तच्छ्रुत्वा वचनं देवी मंदस्मितमुखांबुजा। उवाच स ततो वाक्यं ब्रह्मविष्णुमुखान्सुरान्॥१॥
स्वतंत्राहं सदा देवाः स्वेच्छाचारविहारिणी। ममानुरूपचरितो भविता तु मम प्रियः॥२॥
तथेति तत्प्रतिश्रुत्य सर्वैर्देवैः पितामहः। उवाच च महादेवीं धर्मार्थसहितं वचः॥३॥
कालक्रीता क्रयक्रीता पितृदत्ता स्वयंयुता। नारीपुरुषयोरेवमुद्वाहस्तु चतुर्विधः॥४॥
कालक्रीता तु वेश्या स्यात्क्रयक्रीता तु दासिका।
गंधर्वोद्वाहिता युक्ता भार्या स्यात्पितृदत्तका॥५॥
समानधर्मिणी युक्ता भार्या पितृवसंवदा। यदद्वैतं परं ब्रह्म सदसद्भाववर्जितम्॥६॥
चिदानन्दात्मकं तस्मात्प्रकृतिः समजायत। त्वमेवासीच्च तद्ब्रह्म प्रकृतिः सा त्वमेव हि॥७॥
त्वमेवानादिरखिला कार्यकारणरूपिणी। त्वामेव हि विचिन्वंति योगिनः सनकादयः॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१५

महादेवी शंकर विवाहोत्सव वर्णन

जब ब्रह्मा जी ने उन महादेवी से कहा कि हम सब देवता आदि आपको नीललोहित भगवान् शंकर के साथ विवाहित देखना चाहते हैं, तब इस वाक्य को सुनकर मन्द मुस्कान युक्त कमलमुख वाली देवी ने ब्रह्मा विष्णु आदि प्रमुख देवताओं से कहा।।१।। कि हे देवो! मैं सदा स्वतन्त्र हूँ और अपनी इच्छा से आचरण करने वाली तथा विहार करने वाली हूँ। इसलिए मेरे अनुकूल आचरण करने वाला ही मेरा प्रिय होगा।।२।। उसके बाद सब देवताओं ने कहा कि वैसा ही होगा। तब पितामह ब्रह्मा महादेवी से धर्म और अर्थ वचन बोले।।३।। कि हे महादेवि! नारी और पुरुष में चार प्रकार के विवाह होते हैं—१. कालक्रीता, २. क्रयकीता, ३. पितृदत्ता और ४. स्वयंयुता। जिस माध्यम से पुरुष नारी से विवाह करता है, उसी प्रकार चार प्रकार की विवाहिता नारियां होती हैं। इन कालक्रीता नारी वेश्या होती हैं, जिसको किसी भी समय आवश्यकतानुसार पत्नी बनाया जा सकता है। क्रतक्रीता तो दासी होती है; क्योंकि पैसे से खरीदी हुई होती है। गन्धर्व विवाह से युक्त अर्थात् प्रेम विवाह से विवाहित पितृदत्ता होती है; क्योंकि प्रेम होने केबाद वह पिता द्वारा वर को प्रदान की जाती है।।५।।

पिता के वश में रहने वाली पुत्री जो अपने समान धर्म वाले वर का चयन करती है, वह स्वयंयुता होती है, जो अद्वैत परम् ब्रह्म है तथा सत् और असद् भाव से रहित है तथा उस ब्रह्मा से चिदानन्दात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई है तथा हे देवी! तुम वह ब्रह्म थी और तुम ही वह प्रकृति हो।।६-७।। तुम ही अनादि और अखिलरूप वाली हो! तुम्हीं कारण और कार्य रूप हो अर्थात् तुम ही संसार का मूल कारण (प्रकृति) हो और तुम ही कार्यरूप संसार हो। तुम्हारा

सदसत्कर्मरूपाँ च व्यक्ताव्यक्तो दयात्मिकाम्। त्वामेव हि प्रशंसंति पञ्चब्रह्मस्वरूपिणीम्॥९॥
त्वमेव हि सृजस्यादौ त्वमेव ह्यवसि क्षणात्। भजस्व पुरुषं कंचिल्लोकानुग्रहकाम्यया॥१०॥
इति विज्ञापिता देवी ब्रह्मणा सकलैः सुरैः। स्त्रजमुद्यम्य हस्तेन चिक्षेप गगनांतरे॥११॥
तयोत्सृष्टा हि सा माला शोभयंती नभस्थलम्।
पपात कण्ठदेशे हि तदा कामेश्वरस्य तु॥१२॥
ततो मुमुदिरे देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः। ववृषुः पुष्पवर्षाणि मंदवातेरिता घनाः॥१३॥
अथोवाच विधाता तु भगवंतं जनार्दनम्। कर्तव्यो विधिनोद्वाहस्त्वनयोः शिवयोर्हरे॥१४॥
मुहूर्तो देवसम्प्राप्तो जगन्मंगलकारकः। त्वद्रूपा हि महादेवी सहजश्च भवानपि॥१५॥
दातुमर्हसि कल्याणीमस्मै कामशिवाय तु। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवदेवस्त्रिविक्रम;॥१६॥
ददौ तस्यै विधानेन प्रीत्या तां शङ्कराय तु। देवर्षिपितृमुख्यानां सर्वेषां देवयोगिनाम्॥१७॥
कल्याणं कारयामास शिवयोरादिकेशवः। उपायनानि प्रददुः सर्वे ब्रह्मादयः सुराः॥१८॥
ददौ ब्रह्मेक्षुचापं तु वज्रसारमनश्वरम्। तयोः पुष्पायुधं प्रादादम्लानं हरिरव्ययम्॥१९॥

ही सनक आदि योगी लोग विशेष चिन्तन करते हैं।।८।। और सत् असत् कर्म रूपवाली व्यक्त और अव्यक्त दोनों स्वरूपों वाली, सृष्टि रचना की दया करने वाली, पञ्चब्रह्मस्वरूप वाली, तुम्हारी ही सनकादि ऋषिगण प्रशंसा करते हैं।।९।। तुम ही आदिकाल में सृष्टि की रचना करती हो और तुम ही क्षण भर में नष्ट कर देती हो। अतः हे देवि! तुम लोक पर कृपा करनी की इच्छा से (सृष्टि रचना करने की इच्छा) से किसी पुरुष की सेवा करो अर्थात् किसी पुरुष का साथ लो; क्योंकि अकेली प्रकृति तो सृष्टि रचना नहीं कर सकती। अतः पुरुष (चेतन तत्त्व) जीव के संयोग से ही प्रकृति रचना कर सकती है।।१०।। इस प्रकार समस्त देवताओं और ब्रह्मा जी के अनुरोध किये जाने पर उन देवी ने हाथ से माला को उठाकर आकाश में फेंक दिया।।११।।

तब उन महादेवी द्वारा फेंकी गयी वह माला आकाशतल को सुशोभित करती हुई भगवान् कामेश्वर शिव के गले में गिर गयी।।१२।। उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवगण अत्यन्त आनन्दित हो गये। पुष्पों की वर्षा होने लगी। मन्द वायु से प्रेरित बादल छा गये।।१३।। इसके बाद विधाता ब्रह्मा ने भगवान् जनार्दन हरि से कहा कि अब विधिपूर्वक इन दोनों शिव-शिवा का विवाह कर देना चाहिये। संसार में मंगल करने वाला मुहूर्त भी प्राप्त हो चुका है। ये महादेवी तुम्हारे (शंकर) के ही रूपवाली हैं और वे भी सहज अर्थात् स्वभावतः समान ही हैं।।१४-१५।। आप इन कल्याणी देवी को इन कामरूप शिव के लिये प्रदान कर सकते हैं अर्थात् इनका विवाह शिव के साथ कर सकते हैं।।१५-१५½।।

ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर देवों के देव भगवान् विष्णु ने विधानपूर्वक उन महादेवी का विवाह शंकर जी के साथ कर दिया।।१५½-१६½।। फिर उसके बाद मुख्य देवर्षियों और पितरों के साथ देवों और योगियों का शिव और शिवा का आदिकेशव भगवान् विष्णु ने कल्याण कर दिया।।१६½-१७½।। उसके बाद ब्रह्मा आदि सभी देवों ने उपहार दिये, तब ब्रह्मा जी ने इक्षु और चाप उनको प्रदान किया तथा उन दोनों को भगवान् विष्णु ने कभी न मुरझाने वाला (कभी भी अपना प्रभाव न छोड़ने वाला) पुष्पों का अस्त्र प्रदान किया।।१७½-१९।।

नागपाशं ददौ ताभ्यां वरुणो यादसांपतिः।
अङ्कुशं च ददौ ताभ्यां विश्वकर्मा विशांपतिः॥२०॥
किरीटमग्निः प्रायच्छत्ताटंकौ चन्द्रभास्करौ। नवरत्नमयीं भूषां प्रादाद्रत्नाकरः स्वयम्॥२१॥
ददौ सुराणामधिपो मधुपात्रमथाक्षयम्। चिन्तामणिमयीं मालां कुबेरः प्रददौ तदा॥२२॥
साम्राज्यसूचकं छत्रं ददौ लक्ष्मीपतिः स्वयम्। गङ्गा च यमुना ताभ्यां चामरे चन्द्रभास्वरे॥२३॥
अष्टौ च वसवो रुद्रा आदित्याश्चाश्विनौ तथा।
दिक्पाला मरुतः साध्या गन्धर्वाः प्रमथेश्वराः।
स्वानिस्वान्यायुधान्यस्यै प्रददुः परितोषिताः॥२४॥
रथांश्च तुरगान्नागान्महावेगान्महाबलान्। उष्ट्रानरोगानश्वांस्तान्क्षुत्तृष्णापरिवर्जितान्।
ददुर्वज्रोपमाकारान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥२५॥
अथाभिषेकमातेनुः साम्राज्ये शिवयोः शिवम्।
अथाकरोद्विमानं च नाम्ना तु कुसुमाकरम्॥२६॥
विधाताम्लानमालं वै नित्यं चाभेद्यमायुधैः। दिवि भुव्यंतरिक्षे च कामगं सुसमृद्धिमत्॥२७॥
यद्गंधघ्राणमात्रेण भ्रांतिरोगक्षुधार्तयः। तत्क्षणादेव नश्यंति मनोह्लादकरं शुभम्॥२८॥
तद्विमानमथारोप्य तावुभौ दिव्यदंपती। चामरव्यजनच्छत्रध्वजयष्टिमनोहरम्॥२९॥
वीणावेणुमृदंगादिविविधैस्तौर्यवादनैः। सेव्यमाना सुरगणैर्निर्गत्य नृपमंदिरात्॥३०॥

जलों के देवता वरुण ने उन दोनों को नागपाश प्रदान किया। प्रजापति विश्वकर्मा ने अङ्कुश प्रदान किया।।२०।। अग्नि देवता ने मुकुट तथा चन्द्रमा और सूर्य ने कान की बालियां प्रदान कीं। रत्नों के भण्डार समुद्र ने उनको रत्नमय आभूषण प्रदान किया।।२१।। तब देवाधिपत इन्द्र ने अक्षय मधुपात्र दिया और कुबेर ने चिन्तामणि मय माला प्रदान की।।२२।। साम्राज्यसूचक छत्र स्वयं लक्ष्मीपतिविष्णु ने प्रदान किया तथा गंगा और यमुना ने उन दोनों को चन्द्रमा के समान चमकते हुए दो चामर प्रदान किये।।२३।। आठ वसु (आठ सम्पत्तियां) रुद्र आदित्य तथा अश्विनी कुमारों ने प्रदान की। दिक्पाल, वायु, साध्य, गन्धर्व, प्रमथेश्वरों ने प्रसन्न होकर अपने अपने अस्त्र प्रदान किये तथा रथ, महावेग वाले और महाबलशाली घोड़े और हाथी, ऊँट, रोगरहित अश्व जो कि भूँख, प्यास से रहित थे तथा वज्र के समान सपरिच्छद आयुधों को प्रदान किया।।२४-२५।।

इसके बाद उन दोनों शिव और शिवा का साम्राज्य पद पर कल्याणमय अभिषेक हुआ तथा उनके विमान का कुसुमाकार नाम रखा गया।।२६।। विधाता ने उनको अस्त्रों से अभेद्य नित्य ही खिली रहने वाली कभी न मुरझाने वाली माला प्रदान की। जो माला स्वर्ग में पृथ्वी पर और अन्तरिक्ष में इच्छानुसार काम करने वाली और सुन्दर समृद्धि वाली थी।।२७।। जिस माला की गन्ध को सूँघने मात्र से भ्रान्तिरोग और क्षुधा से पीड़ित रोग उसी क्षण नष्ट हो जाते थे तथा जो माला मनको शुभ आनन्द प्रदान करती थी।।२८।। इस प्रकार की मालायुक्त विमान पर चढ़कर वे दोनों दिव्यदम्पती चामर द्वारा व्यजन किये जाते हुए छत्र और ध्वजा से बहुत ही मनोहर लग रहे थे।।२९।। वे उस समय

ययौ वीर्थी विहारेशा शोभयंती निजौजसा। प्रतिहर्म्याग्रसंस्थाभिरप्सरोभिः सहस्त्रशः॥३१॥
सलाजाक्षतहस्ताभिः पुरंधीभिश्च वर्षिता। गाथाभिर्मंगलार्थाभिर्वीणावेण्वादिनिस्वनैः।
तुष्यंती वीवीथिवीथीषु मंदमंदमथाययौ॥३२॥
प्रतिगृह्याप्सरोभिस्तु कृतं नीराजनाविधिम्। अवरुह्य विमानाग्रात्प्रविवेश महासभाम्॥३३॥
सिंहासनमधिष्ठाय सह देवेन शंभुना। यद्यद्वांछंति तत्रस्था मनसैव महाजनाः।
सर्वज्ञा साक्षिपातेन तत्तत्कामानपूरयत्॥३४॥
तद्दृष्ट्वा चरितं देव्या ब्रह्मा लोकपितामहः।
कामाक्षीति तदाभिख्यां ददौ कामेश्वरीति च॥३५॥
ववर्षाश्चर्यमेघोऽपि पुरे तस्मिंस्तदाज्ञया। महार्हाणि च वस्तूनि दिव्यान्याभरणानि च॥३६॥
चिंतामणिः कल्पवृक्षः कमला कामधेनवः।
प्रतिवेश्म ततस्तस्थुः पुरो देव्या जयाय ते॥३७॥
तां सेवैकरसाकारां विमुक्तान्यक्रियागुणः। सर्वकामार्थसंयुक्ता हृष्यंतः सार्वकालिकम्॥३८॥
पितामहो हरिश्चैव महादेवश्च वासवः। अन्ये दिशामधीशास्तु सकला देवतागणाः॥३९॥
देवर्षयो नारदाद्या; सनकाद्याश्च योगिनः। महर्षयश्च मन्वाद्या वशिष्ठाद्यास्तपोधनाः॥४०॥
गंधर्वाप्सरसो यक्षा याश्चान्या देवजातयः। दिवि भूम्यंतरिक्षेषु ससंबाधं वसंति ये॥४१॥

वीणा वेणु मृदंग आदि अनेकों प्रकार तूर्य बाजे बजाते हुये देवताओं द्वारा सेवा किये जा रहे थे।।३०।। उस समय राजमन्दिर से निकलकर अपने ओज से शोभित होती हुई विहार करने के लिये मार्ग में गयी। जब वे मार्ग में चल रही थीं, उस समय मार्ग में बने हुए प्रत्येक प्रासाद के सामने कुछ देर ठहरती थीं, तो वहाँ उन महलों में स्थित हजारों अप्सराओं द्वारा शोभा प्राप्त कर रही थीं।।३१।। तथा उनके ऊपर पति एवं पुत्रों वाली सुहागिनियों द्वारा खीलों और अक्षतों की वर्षा की जा रही थी तथा वे सुहागिनि स्त्रियां मंगलार्थक गाथाओं वाले गीतों के साथ वीणा वांसुरी आदि बजा रही थीं। इस प्रकार प्रत्येक गली मार्गों में उन्होंने धीरे धीरे गमन किया।।३२।।

उसके बाद अप्सराओं द्वारा दीपक आदि ग्रहण कर उनकी आरती की गयी। तब विमान के आगे वाले भाग से उतरकर उन दोनों ने सभा में प्रवेश किया।।३३।। देवों के साथ सिंहासन पर बैठकर उन शम्भु ने उन सभी सर्वज्ञ महापुरुषों को जो वहाँ पर स्थित थे, उन्होंने मन से भी जो-जो कामना की उस उस कामना को पलक मारने मात्र में पूर्ण कर दिया।।३४।। देवी के उस चमत्कार को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा ने उन्हें कामाक्षी तथा कामेश्वरी नाम प्रदान किये।।३५।। तब उस नगर पर उन महादेवी के आज्ञा से आश्चर्य मेघ ने वेशकीमती वस्तुओं और दिव्य आभूषणों की वर्षा की।।३६।। यही नहीं आश्चर्य मेघ ने चिन्तामणि, कल्पवृक्ष, कमलों और कामधेनुओं की वर्षा की, तब प्रत्येक घर में इन सबकी स्थिति हो गयी।।३७।। उन देवी की सेवा में अन्य क्रिया गुणों को छोड़कर जिन्होंने ध्यान लगाया, उनकी सभी समयों में सभी इच्छायें पूर्ण हुईं तथा धन-धान्य से सम्पन्न हुए।।३८।। उस नगर में पितामह ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्र अन्य दिशाओं के अधीश्वर (दिक्पाल) समस्त देवतागण देवर्षि नारद आदि तथा

ते सर्वे चाप्यसंबाधं निवसंति स्म तत्पुरे॥४२॥
एवं तद्वत्सला देवी नान्यत्रैत्यखिलाज्जनात्। तोषयामास सततमनुरागेण भूयसा॥४३॥
राज्ञो महति भूर्लोके विदुषः सकलेप्सिताम्। राज्ञी दुदोहाभीष्टानि सर्वभूतलवासिनाम्॥४४॥
त्रिलोकैकमहीपाले सांबिके कामशंकरे। दशवर्षसहस्राणि ययुः क्षण इवापरः॥४५॥
ततः कदाचिदागत्य नारदो भगवानृषिः। प्रणम्य परमां शक्तिं प्रोवाच विनयान्वितः॥४६॥
पर ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमेश्वरि। सदसद्भावसंकल्पविकल्पकलनात्मिका॥४७॥
जगदभ्युदयार्थाय व्यक्तभावमुपागता। असज्जनविनाशार्था सज्जनाभ्युदयार्थिनी।
प्रवृत्तिस्तव कल्याणि साधूनां रक्षणाय हि॥४८॥
अयं भंडोऽसुरो देवि बाधते जगतां त्रयम्। त्वयैकयैव जेतव्यो न शक्यस्त्वपरैः सुरैः॥४९॥
त्वत्सेवैकपरा देवाश्चिरकालमिहोषिता;। त्वदाज्ञया गमिष्यंति स्वानिस्वानि पुराणि तु॥५०॥
अमंगलानि शून्यानि समृद्धार्थानि संत्वतः। एवं विज्ञापिता देवी नारदेनाखिलेश्वरी।
स्वस्ववासनिवासाय प्रेषयामास चामरान्॥५१॥
ब्रह्माणं च हरिं शंभुं वासवादीन्दिशां पतीन्। यथार्हं पूजयित्वा तु प्रेषयामास चांबिका॥५२॥

सनकादि योगीगण महर्षिगण, मनु आदि वशिष्ठ आदि तपस्वी गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष और अन्य देव जातियां जो स्वर्ग में भूमि पर तथा अन्तरिक्ष में बाधाओं से घिरी हुई रहती थीं, वे सब उस नगर में विना किसी बाधा के रह रही थीं।।३९-४२।। इस सभी लोग यह कहते थे कि इस प्रकार जनता को मातृतुल्य प्रेम करने वाली देवी अन्यत्र कहीं भी नहीं। इस प्रकार लगातर बहुत अधिक अनुराग से सन्तुष्ट किया।।४३।। महान् भूलोक में विद्वान् राजा की जो भी सबकुछ चाहने वाले समस्त भूतलवासियों की जो भी इच्छायें होती हैं, उन सबको उन रानी महादेवी ने प्रजाओं को प्रदान किया।।४४।। तीनों लोकों के एकमात्र राजा के रूप में अम्बिका सहित कामशंकर के रहते हुए एक क्षण से दूसरे क्षण के समान दश हजार वर्ष बीत गये।।४५।। उसके बाद कभी भगवान् नारद ऋषि ने आकर और परमाशक्ति को प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक कहा।।४६।।

हे परमब्रह्म! हे परमधाम! पवित्र परमेश्वरि! हे सद् और असत् भाव वाली तथा संकल्प विकल्प आत्मिके! तुम तो अव्यक्त (निराकार) हो, तुम हो अथवा नहीं हो ऐसा संकल्प और विकल्प नहीं किया जा सकता है; वैसे तुम्हारा कोई आकार नहीं है, तुम किसी भी इन्द्रिय मन बुद्धि आदि द्वारा ज्ञेय नहीं है; परन्तु निर्गुण निराकार रूप आप संसार का कल्याण करने के लिए व्यक्त (साकार) रूप में उपस्थित हुई हों। अतः हे कल्याणि! दुष्टों के विनाश को चाहने वाली तथा सज्जनों की उन्नति चाहने वाली तुम्हारी प्रवृत्ति साधुओं की रक्षा के लिये है।।४७-४८।। हे देवि! यह भण्डासुर नामक दैत्य तीनों लोकों को बाधित कर रहा है। वह दैत्य एक तुम्हारे द्वारा ही जीता जा सकता है अन्य किन्हीं देवताओं द्वारा नहीं जीता जा सकता।।४९।। नारद जी ने कहा कि हे दवि! एकमात्र तुम्हारी सेवा करते हुए ये देवगण बहुत समय तक यहाँ रहते हुए तुम्हारी आज्ञा से अपने-अपने नगर को चले जायेंगे।।५०।। अतः ये देवगण अमंगलशून्य एवं समृद्ध होवें। इस प्रकार जब नारद जी ने जब त्रिलोकस्वामिनी देवी को बताया, तब उन महादेवी ने देवताओं को अपने अपने वास और निवास पर भेज दिया।।५१।। तथा ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, इन्द्र और दिशाओं

अपराधं ततस्त्यक्तुमपि संप्रेषिताः सुराः। स्वस्वांशैः शिवयोः सेवामादिपित्रोरकुर्वत॥५३॥
एतदाख्यानमायुष्यं सर्वमंगलकारणम्। आविर्भावं महादेव्यास्तस्या राज्याभिषेचनम्॥५४॥
यः प्रातरुत्थितो विद्वान्भक्तिश्रद्धासमन्वितः। जपेद्धनसमृद्धः स्यात्सुधासंमितवाग्भवेत्॥५५॥
नाशुभं विद्युते तस्य परत्रेह च धीमतः। यशः प्राप्नोति विपुलं समानोत्तमतामपि॥५६॥
अचला श्रीर्भवेत्तस्य श्रेयश्चैव पदेपदे। कदाचिन्नभयं तस्य तेजस्वी वीर्यवान्भवेत्॥५७॥
तापत्रयविहीनश्च पुरुषार्थैश्च पूर्यते। त्रिसंध्यं यो जपेन्नित्यं ध्यात्वा सिंहासनेश्वरीम्॥५८॥
षण्मासान्महतीं लक्ष्मीं प्राप्नुयाज्जापकोत्तमः॥५९॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने वैवाहिकोत्सवो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

के स्वामी (दिगीशों) का यथोचित आदर सत्कार करके अम्बिका ने उनके अपने अपने वास निवासों पर भेज दिया।।५२।। उसके बाद अपराध छोड़ने को भी देवों को सम्यक् प्रकार से भेजा। तब उन्होंने अपने अपने अंश से आदि पिता शिव की सेवा की।।५३।। इस प्रकार यह आख्यान जिसमें कि उन महादेवी कामेश्वरी (कामाक्षी) का आविर्भाव और राज्याभिषेक वर्णन किया गया है, वह आयु बढ़ाने वाला और सब प्रकार से घर में मङ्गल पैदा करने वाला है।।५४।। जो विद्वान् प्रातःकाल उठकर भक्ति और श्रद्धापूर्वक इन महादेवी का जप करेगा, वह धन से समृद्ध होगा और अमृत के समान वाणी वाला होगा।।५५।। उस बुद्धिमान् का इस लोक और परलोक में कुछ भी अशुभ नहीं होगा तथा वह अपने बराबर वालों में तथा अपने से उत्तम पुरुषों में बहुत यश प्राप्त करता है।।५६।। और उसकी लक्ष्मी (धनदौलत) अचल हो जाती है, वह कभी समाप्त नहीं होती एवं उसका पद पद पर कल्याण होता है। उसे कभी भी किसी का भय नहीं रहता तथा वह तेजस्वी और वीर्यवान् होता है।।५७।। जो पुरुष प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों सन्ध्याओं में सिंहासनासीन कामेश्वरी का ध्यान करके जप करेगा, वह तीनों तापों (आध्यात्मिक, अधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापों) से कभी भी पीड़ित नहीं होगा तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों से पूर्ण होगा।।५८।। तथा छः मास तक जाप करने वाला उत्तम पुरुष महती लक्ष्मी को प्राप्त करता है।।५९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १५वाँ अध्याय महादेवी शंकर विवाहोत्सव वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖
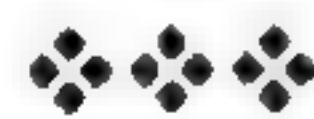
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

ससेनविजययात्रा नाम

षोडशोऽध्यायः

अथ श्री ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तर भागे हयग्रीवास्त्य संवादे
ललितोपाख्याने ससेनविजययात्रा नाम षोडशोऽध्यायः॥

अथ सा जगतां माता ललिता परमेश्वरी। त्रैलोक्यकंटकं भंडं दैत्यं जेतुं विनिर्ययौ॥१॥
चकार मर्दलाकारानंभोराशींस्तु सप्त ते। प्रभूतमर्द्दलध्वानैः पूरयामासुरंबरम्॥२॥
मृदंगमुरजाश्चैव पटहोऽतुकुलीगणाः। सेलुकाझल्लरीरांघाहुडुकाहुण्डुकाघटाः॥३॥
आनकाः पणवाश्चैव गोमुखाश्चार्धचंद्रिकाः। यवमध्या मुष्टिमध्या मर्द्दलाडिंडिमा अपि॥४॥
झर्झराश्च बरीताश्च इंग्यालिंग्यप्रभेदजाः। उद्धकाश्चैतुहुंडाश्च निःसाणा बर्बराः परे॥५॥
हुंकारा काकतुंडाश्च वाद्यभेदास्तथापरे। दध्वनुः शक्तिसेनाभिरहिताः समरोद्यमे॥६॥
ललितापरमेशान्या अंकुशास्त्रान्समुद्गता। संपत्करी नाम देवी चचाल सह शक्तिभिः॥७॥
अनेककोटिमातंगतुरंगरथपंक्तिभिः। सेविता तरुणादित्यपाटला संपदीश्वरी॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-१६

सेना सहित विजय यात्रा

जब नारद जी ने महादेवी ललिता को भण्डासुर दैत्य के अत्याचारों से पीड़ित संसार के बारे में बताया और उसका संहार करने की प्रार्थना की तब, इसके बाद उन संसार की माता ललिता परमेश्वरी तीनों लोकों के कण्टक भण्डासुर दैत्य को जीतने के लिए निकल पड़ीं।।१।। तब उन्होंने बाजे के आकार वाले सात मेघ बनाये और फिर अनेकों ढोलों की ध्वनियों से आकाश को भर दिया।।२।। तब वहाँ कोई मृदंग बजा रहा था, कहीं मुरज बजा रहा था, तो कहीं नगाड़े की घोर ध्वनि हो रही थी, जिससे सारा आकाश गूँज रहा था। उस समय उनकी सेना में सेलुका, झालर, रांधा, हुडुका और हुण्डुका नामक वाद्यों की ध्वनियां होने लगीं।।३।।

आनक नामक सेना का ढोल पणव नामक नगाड़ा गोमुख और अर्धचन्द्रिका नामक बाजे तथा यवमध्य, मुष्टिमध्य, मर्द्दल और डिण्डिम भी बजने लगे।।४।। मंँजीरे बरीत, इंग्य और अलिंग्य नाम के अनेकों प्रकार के बाजों की ध्वनि होने लगी तथा उद्धक नामक बहुत तेज ध्वनि वाले तथा अतुहुण्ड निःसाण और बर्बर नामक बाजे बजने लगे।।५।। यही नहीं हुंकार और काकतुण्ड नामक अनेकों प्रकार के दूसरे बाजे बजे, उस समर की तैयारी में शक्ति सेना ने वे सब बाजे बजाने प्रारम्भ कर दिये।।६।। तथा परमेशानी ललिता देवी अंकुश आदि अस्त्रों को लेकर तैयार हो गयीं और फिर सबको सम्पत्ति पैदा करने वाली देवी अपनी शक्तियों के साथ चलने लगीं।।७।। अनेक करोड़

मत्तमुद्दंडसंग्रामरसिकं शैलसन्निभम्। रणकोलाहलं नाम सारुरोह मतंगजम्॥९॥

तामन्वगा ययौ सेना महती घोररावि‍णी।
लोलाभिः केतुमालाभिरुल्लिखन्ती घनाघनात्॥१०॥

तस्याश्च संपन्नाथायाः पीनस्तनसुसंकटः। कंटको घनसंन्नाहो रुरुचे वक्षसि स्थितः॥११॥
कंपमाना खड्गलता व्यरुचत्तत्करे धृता। कुटिला कालनाथस्य भृकुटीव भयंकरा॥१२॥
उत्पातवातसंपाताच्चलिता इव पर्वता;। तामन्वगा ययुः कोटिसंख्याकाः कुंजरोत्तमाः॥१३॥
अथ श्रीललितादेव्या श्रीपाशायुधसंभवा। अतित्वरितविक्रांतिरश्वारूढाचलत्पुरः॥१४॥
तया सह हयप्रायं सैन्यं हेषातरंगितम्। व्यचरत्खुरकुद्दालविदारितमहीतलम्॥१५॥
वनायुजाश्च कांबोजाः पारदाः सिंधुदेशजाः। टंकणाः पर्वतीयाश्च पारसीकास्तथा परे॥१६॥
अजानेया घट्टधरा दरदाः कालवंदिजाः। वाल्मीकयावनोद्भूता गान्धर्वाश्चाय ये हयाः॥१७॥

प्राग्देशजाता; कैराता प्रांतदेशोद्भवास्तथा।
विनीताः साधु वोढारो वेगिनः स्थिरचेतसः॥१८॥

स्वामिचित्तविशेषज्ञा महायुद्धसहिष्णवः। लक्षणैर्बहुभिर्युक्ता जितक्रोधा जितश्रमाः॥१९॥

पञ्चधारासु शिक्षाढ्या विनीताश्च प्लान्विताः॥२०॥

हाथी, घोड़े और रथों की पंक्तियों से सेवित तरुण सूर्य के समान लाल वर्णवाली वे सब सम्पत्तियों की स्वामिनी महादेवी मत्त एवं उद्दण्ड, संग्रामरसिक पर्वत के समान रणकोलाहल नाम के हाथी पर सवार हो गयीं।।८-९।। उनके पीछे अपनी हिलती हुई ध्वजमालाओं से चमकती हुई महान् घोर शब्द करने वाली सेना चलने लगी।।१०।। उन सम्पत्तियों की स्वामिनी देवी के वक्षस्थल पर स्थूलस्तनों को कष्ट देने वाला कण्टकयुक्त घनसन्नाह (बादलों को पैदा करने वाला) अस्त्र अच्छा लग रहा था।।११।। हाथ में धारण की गयी कांपती हुई तलवार बहुत ही रुचिकर लग रही थी। जो भगवान् शंकर की टेड़ी भौंह के समान भयंकर थी।।१२।। उस समय उत्पात पैदा करने वाली वायु से पर्वत चलते हुए से प्रतीत हो रहे थे। उन देवी के पीछे करोड़ों उत्तम हाथी चल रहे थे।।१३।। इसके बाद श्री ललिता देवी द्वारा श्रीपाश आयुध से उत्पन्न अतिशीघ्र चलने वाले और विशेष क्रान्ति (हलचल) पैदा करने वाले अश्वों पर आरूढ़ सैनिक आगे चल रहे थे।।१४।। उनके साथ अश्वारोही सेना घोड़ों की हिनहिनाहट के साथ चल रही थी तथा वे घोड़े अपने खुरों से भूतल को खोदते हुए चल रहे थे।।१५।।

उनकी सेना में अनेकों प्रकार की नस्ल के तथा अनेकों देशों में उत्पन्न घोड़े थे, जैसे कि वनायुज, काम्बोज, पारद, सिन्धु देशज, टंकण, पर्वतीय, पारसीक तथा अन्य प्रकार के भी थे।।१६।। यही नहीं अन्य भी जैसे—अजानेय, घट्टधर, दरद कालवन्दिज, अनेकों यौवन से मतमत्त गान्धर्व नाम के घोड़े थे।।१७।। तथा पूर्व देशों में पैदा हुए कैरात प्रान्त में उत्पन्न हुए अनेकों घोड़े थे, जो विनम्र स्वभाव वाले, अच्छी तरह अपने ऊपर बैठाकर ले जाने वाले स्थिर चित्त से वेगपूर्वक चलने वाले थे।।१८।। वे घोड़े अपने स्वामी के मन की बात को अच्छी तरह जानने वाले थे तथा महायुद्ध में होने वाली कठिनाइयों आपत्तियों को सहन करने वाले थे। वे क्रोध को जीतने वाले तथा थकान को जीतने वाले घोड़े बहुत से लक्षणों से युक्त थे।।१९।। अब लक्षणों को बताते हैं—कुछ घोड़े शिखा

फलशुक्तिश्रिया युक्ताः श्वेतशुक्तिसमन्विताः। देवपद्मं देवमणिं देवस्वस्तिकमेव च॥२१॥
अथ स्वस्तिकशुक्तिश्च गड्डुरं पुष्पगंडिकाम्। एतानि शुभलक्ष्माणि जयराज्यप्रदानि च।
वहंतो वातजवना वाजिनस्तां समन्वयुः॥२२॥
अपराजितनामानमतितेजस्विनं चलम्। अत्यंतोत्तुंगवर्ष्माणं कविकाविलसन्मुखम्॥२३॥
पार्श्वद्वयेऽपि पतितस्फुरत्केसरमंडलम्। स्थूलबालधिविक्षेपक्षिप्यमाणपयोधरम्॥२४॥
जंघाकांडसमुन्नद्धमणिकिङ्किणिभासुरम्। वादयंतमिवोच्चण्डैः खुरनिष्ठुरकुट्टनैः॥२५॥
भूमंडलमहावाद्यं विजयस्य समृद्धये। घोषमाणं प्रति मुहुः संदर्शितगतिक्रमम्॥२६॥
आलोलचामरव्याजाद्वहंतं पक्षती इव। भांडैर्मनोहरैर्युक्तं घर्घरीजालमंडितम्॥२७॥
एषां घोषस्य कपटाद्धुंकुर्वाणमिवासुरान्। अश्वारूढा महादेवी समारूढा हयं ययौ॥२८॥
चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमंकुशं वेत्रमेव च। हयवल्गां च दधती बहुविक्रमशोभिनी॥२९॥
तरुणादित्यसङ्काशा ज्वलत्काञ्चीतरंगिणी। सञ्चचाल हयारूढा नर्तयन्तीव वाजिनम्॥३०॥
अथ श्रीदण्डनाथया निर्याणपटहध्वनिः। उद्दंडसिन्धुनिस्वानश्चकार बधिरं जगत्॥३१॥

पर पाँच धाराओं से युक्त थे, जो एक शुभ लक्षण माना गया है। अतः वे विनीत एवं छलांग लगाने वाले थे।।२०।। कुछ उनमें फल और शुक्ति (सीप) की शोभा से युक्त थे तथा कुछ श्वेत सीप से युक्त थे अर्थात् उनके मस्तक पर ये चिह्न थे तथा कुछ देवपद्म, देवमणि तथा देवस्वस्ति चिह्नों वाले थे।।२१।। यही नहीं कुछ घोड़े स्वास्तिक चिह्न और शुक्ति (सीप) दोनों चिह्नों वाले थे तथा कुछ गड्डुर और फूलों जैसी गण्डिका वाले थे। ये सभी शुभ लक्षण विजय और राज्य प्रदान कराने वाले हैं। इस प्रकार वायु के समान वेग से दौड़ने वाले घोड़े वहाँ उपस्थित थे।।२२।। वे घोड़े अपराजित नाम वाले थे अत्यन्त तेजस्वी तथा चञ्चल थे। उनके शरीर अत्यन्त ऊँचे और मुख लगाम की रस्सी से अत्यन्त सुशोभित थे।।२३।। उन घोड़ों की गर्दन के दोनों ओर गिरे हुए बाल फहरा रहे थे। मोटे मोटे काले काले बालों के बिखरने से ऐसा लगता था, मानों कि बादलों को बिखेर दिया गया हो।।२४।। उनकी जंघाओं के बीच की गांठों पर समुन्नत मणिकिङ्किणी चमक रही थी तथा खुरों में लगी हुई नाल से बाजे से बजते थे।।२५।। उस विजय की समृद्धि के लिये भूमण्डल महावाद्य बन चुका था। उन घोड़ों की चाल के क्रम से बार-बार युद्ध की घोषणा सी की जा रही थी।।२६।। उन महादेवी पर जो चंवर ढुलाया जा रहा था, उसके पंख की जड़ को पकड़ के ढुलाया जा रहा था तथा वह चंवर सुन्दर पात्रों और घुंघरुओं से सजा हुआ था।।२७।।

इस प्रकार की घोष ध्वनि करते हुए असुरों से युद्ध करने के लिए अश्व पर आरूढ़ महादेवी घोड़े पर सम्यक् प्रकार से सवार होकर चलीं।।२८।। वे महादेवी अपने चारों हाथों से एक हाथ में पाश, एक में अंकुश, एक में बेंत (कोड़ा) और एक हाथ में घोड़े की लगाम पकड़े हुई अत्यन्त पराक्रम से शोभित हो रही थीं।।२९।। तरुण सूर्य के समान प्रकाश वाली चमकती हुई कर्धनी वाली, वे देवी घोड़े पर सवार हो घोड़े को नचाती हुई के समान चलीं।।३०।। उसके बाद श्री दण्डनाथा ने अभियान (युद्ध को कूंच करने) का बिगुल बजा दिया, जिस पटह ध्वनि से उद्दण्ड समुद्र की भयंकर ध्वनि से अधिक भीषण उस ध्वनि ने समस्त संसार को बधिक (बहरा) कर दिया।।३१।।

वज्रबाणैः कठोरैश्च भिंदंत्यः ककुभो दश।
अत्युद्धतभुजाश्मानः शक्तयः काश्चिदुच्छ्रिताः॥३२॥
काश्चिच्छ्रीदंडनाथायाः सेनानासीरसङ्गताः। खड्गं फलकमादाय पुप्लुवुश्चंडशक्तयः॥३३॥
अत्यंतसैन्यसम्बाधं वेत्रसंताडनैः शतैः। निवारयंत्यो वेत्रिण्यो व्युच्चलंति स्म शक्तयः॥३४॥
अथ तुंगध्वजश्रेणीर्महिषांका मृगांकिकाम्।
सिंहांकाश्चैव बिभ्राणाः शक्त्यो व्यचलन्पुरा॥३५॥
ततः श्रीदण्डनाथायाः श्वेतच्छत्रं सहस्रशः।
स्फुरत्कराः प्रचलिताः शक्तयः काश्चिदादधुः॥३६॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने ससेनविजययात्रा नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

कठोरवज्र वाणों से समस्त दिशाओं को भेदते हुए अत्यन्त अद्भुत वज्र के समान भुजाओं वालीं कुछ शक्तियां उठ खड़ी हुईं।।३२।। कुछ श्री दण्डनाथा की आगे रहने वाली सेना सजी हुई थी तथा चण्ड (भयंकर) शक्तियां खड्ग और फलक लेकर कूद रही थीं।।३३।। सैकड़ों वेतों के सञ्चालन से सेना में अत्यन्त सम्बाध पैदा हो गया था। वेंतधारियों को दूर हटाती हुई शक्तियाँ घूम रही थीं।।३४।। इसके बाद महिष (भैंसे) मृग और सिंह चित्रित ऊँची ऊँची ध्वजायें धारण कर शक्तियाँ इधर उधर चलने लगीं।।३५।। इसके बाद श्री दण्डनाथा की हजारों श्वेत छत्रों को धारण किये हाथों को फड़काती हुई कुछ प्रचलित शक्तियां उपस्थित हो गयीं।।३६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १६वाँ अध्याय सेना सहित विजय यात्रा वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

दण्डकथाश्यामलसेना नाम

सप्तदशोऽध्यायः

दण्डनाथाविनिर्याणे संख्यातीतैः सितप्रभैः। छत्रैर्गगनमारेजे निःसंख्यशशिमण्डितम्॥१॥
अन्योन्यसक्तैर्धवलच्छत्रैरंतर्घनीभवत्। तिमिरं नुनुदे भूयस्तत्काण्डमणिरोचिषा॥२॥
वज्रप्रभान्धकारच्छायापूरितदिङ्मुखाः। तालवृन्ताः शतविधाः क्रोडमुख्या बलेऽचलन्॥३॥
चण्डो दण्डादयस्तीव्रा भैरवाः शूलपाणयः। ज्वलत्केशपिशङ्गाभास्तडिद्भासुरदिङ्मुखाः॥४॥
दहत्य इव दैत्यौघांस्तीक्ष्णैर्मार्गणवह्निभिः। प्रचेलुर्दंडनाथायास्सेना नासीरधाविताः॥५॥
अथ पोत्रीमुखीदेवीसमानाकृतिभूषणाः। तत्समायुधकरास्तत्समानस्ववाहनाः॥६॥
तीक्ष्णदंष्ट्रविनिष्ठ्यूतवह्निधूमामितांबराः। तमालश्यामलाकाराः कपिलाः क्रूरलोचनाः॥७॥
सहस्त्रमहिषारूढाः प्रचेलुः सूकराननाः। अथ श्रीदंडनाथा च करिचक्ररथोत्तमात्॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१७

दण्डिनाथाश्यामलसेना यात्रा

जब दण्डनाथा ने युद्ध के लिये प्रयाण कर दिया, तब उनके प्रयाण कर देने पर श्वेतप्रभा वाले छत्रों से आकाश असंख्य चन्द्रमाओं से मण्डित सा हो गया।।१।। वहाँ चारों ओर इतने धवल छत्र थे कि उनके आपस में सटकर घने होने से उनमें लगे हुए अनेकों मणियों की चमक से अन्धकार का बिल्कुल नाश हो गया।।२।। वज्र की प्रभा से पर्वतों की जो छाया थी, उस छाया से समस्त दिशायें पूर्ण कर दी गयी थीं। सौ प्रकार के तालवृन्ता[१] क्रोडमुख्य सेना में चलने लगे।।३।।

चण्ड दण्ड आदि तीव्र भैरव हाथ में शूल लिये हुए जलते हुए केशों की लाल आभा वाली विद्युत् से समस्त दिशायें प्रकाशित हो गयीं।।४।। खोजने वाली तीक्ष्ण अग्नियों से दैत्य समूहों को जलाते हुए के समान दण्डनाथा की आगे रहने वाली सेना दौड़ रही थी।।५।। इसके बाद यज्ञाग्नि की ज्वाला के मुखवाली देवी ने समान आकृति और समान आभूषण तथा उसी के समान आयुध हाथ में लिये और उसी के समान उसके वाहन भी थे।।६।। तीक्ष्ण दाँतों वाले, मुँह में रखी हुई आग से मानों धुंआ निकाल रहे हों। तमाल वृक्ष की श्यामल आकार वाले, कपिल वर्ण वाले, क्रूर नेत्रों वाले, हजारों भैंसों पर सवार सूअर के मुख वाले, भैरव घूमने लगे।।७-७½।। इसके बाद श्रीदण्डनाथा करिचक्र नामक रथ से उतरकर अपने वाहन महासिंह पर चढ़ गयी।।७½-८½।। उसका नाम वज्रघोष

---

१. तालवृन्त एक प्रकार बाजा भी है तथा तालवृन्त तलवारों को भी कहा जाता है। अत: दोनों अर्थ लिये जा सकते हैं। यहाँ स्पष्टीकरण का अभाव प्रतीत हो रहा है।

अवरुह्य महासिंहमारुरोह स्ववाहनम्। वज्रघोष इति ख्यातं धूतकेसरमंडलम्॥९॥
व्यक्तास्यं विकटाकारं विशंकटविलोचनम्। दंष्ट्राकटकटत्कारबधिरीकृतदिक्तटम्॥१०॥
आदिकूर्मकठोरास्थिखर्परप्रतिमैर्नखैः। पिबंतमिव भूचक्रमापातालं निमज्जिभिः॥११॥
योजनत्रयमुत्तुंगं वेगादुद्धूतवालधिम्। सिंहवाहनमारुह्य व्यचलद्दंडनायिका॥१२॥
तस्यामसुरसंहारे प्रवृत्तायां ज्वलत्क्रुधि। उद्वेगं बहुलं प्राप त्रैलोक्यं सचराचरम्॥१३॥
किमसौ धक्ष्यति रुषा विश्वमद्यैव पोत्रिणी। किं वा मुसलघातेन भूमिं द्वेधा करिष्यति॥१४॥
अथ वा हलनिर्घातैः क्षोभयिष्यति वारिधीन्। इति त्रस्तहृदः सर्वे गगने नाकिनां गणाः॥१५॥
दूराद्द्रुतं विमानैश्च सत्रासं ददृशुर्गताः। ववंदिरे च तां देवा बद्धांजलिपुटान्विताः।
मुहुर्द्वादशनामानि कीर्तयंतो नभस्तले॥१६॥

अगस्त्य उवाच

कानि द्वादशनामानि तस्या देव्या वद प्रभो। अश्वानन महाप्राज्ञ येषु मे कौतुकं महत्॥१७॥

हयग्रीव उवाच

शृणु द्वादशनामानि तस्या देव्या घटोद्भव। यदाकर्णनमात्रेण प्रसन्ना सा भविष्यति।
पंचमी दंडनाथा च संकेता समयेश्वरी॥१८॥
तथा समयसंकेता वाराही पोत्रिणी तथा। वार्ताली च महासेनाप्याज्ञा चक्रेश्वरी तथा॥१९॥

था, जिसका शरीर श्वेत केशों से युक्त था तथा उसका भयंकर आकार साफ-साफ दिखायी देता था, प्रचण्ड आकार का उसका नेत्र मण्डल था, उसके दाँतों की कटाकट की ध्वनि से समस्त दिशायें बहरी हो जाती थीं।।८½-१०।। आदि कच्छप भगवान् के समान जिसकी अस्थि खर्पर के समान जिसके नाखून थे। वह ऐसा लग रहा था मानों पृथ्वी को पाताल तक पी रहो तथा जो सिंह तीन योजन ऊँची छलांग लगाने वाला था, ऐसे सिंह पर सवार होकर वे दण्डनायिका चल रही थीं।।११-१२।। जब वे महादेवी क्रोध से जलती हुई, उस असुर के संहार के लिये तैयार हो गयीं, तब समस्त जड़-चेतन जगत् बहुत अधिक उद्वेग को प्राप्त हो गया। अर्थात् समस्त त्रैलोक्य दुःखी हो गया है।।१३।। क्या यह यज्ञाग्नि अभी ही विश्व को ध्वस्त कर देगी अथवा क्या मूसल की चोट से भूमि के टो टुकड़े कर देगी?।।१४।। अथवा हल के निर्घातों से समुद्रों को क्षोभित कर देगी? इस प्रकार स्वर्ग के सभी स्वर्गीयगण भयभीत हृदय वाले हो गये।।१५।। तब दूर से ही शीघ्र अपने अपने विमानों से उतरकर देवता लोग डरे हुए उन्हें देखने के लिये वहाँ आ गये और फिर हाथ जोड़कर उनकी वन्दना करने लगे। तब उन्होंने फिर उन महादेवी के बारह नामों का आकाशतल में कीर्तन किया।।१६।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि हे भगवान् हयग्रीव! उनके बारह नाम कौन-कौन से हैं, कृपया हमें बतलाइये। हे अश्व के समान मुख वाले महाप्राज्ञ! भगवान् हयग्रीव! इनको सुनने की हमें उत्कण्ठा हो रही है।।१७।।

हयग्रीव ने कहा कि घर से उत्पन्न अगस्त्य मुने! उन महादेवी के बारह नामों को सुनिये, जिन नामों को सुनने मात्र से वह प्रसन्न हो जायेंगी। वे नाम हैं—१-पञ्चमी, २-दण्डनाथा, ३-संकेता, ४-समयेश्वरी, ५-समयसंकेता, ६-वाराही, ७-पोत्रिणी, ८-वार्ताली, ९-महासेना, १०-आज्ञाचक्रेश्वरी, ११- और १२-अरिघ्नी। हे मुने! ये बारह

अरिघ्नी चेति सम्प्रोक्तं नामद्वादशकं मुने। नामद्वादशकाभिख्यवज्रपञ्जरमध्यगः।
संकटे दुःखमाप्नोति न कदाचन मानवः॥२०॥
एतैर्नामभिरभ्रस्थाः संकेतां बहु तुष्टुवुः। तेषामनुग्रहार्थाय प्रचचाल च सा पुनः॥२१॥
अथ संकेतयोगिन्या मंत्रनाथा पदस्पृशः। निर्याणसूचनकरी दिवि दध्वान काहली॥२२॥
श्रृंगारप्रायभूषाणां शार्दूलस्यामलत्विषाम्।
वीणासंयतपाणीनां शक्तीनां निर्ययौ बलम्॥२३॥
काश्चिद्गायंति नृत्यंति मत्तकोकिलनिःस्वनाः। वीणावेणुमृदंगाद्याः सविलासपदक्रमाः॥२४॥
प्रचेलुः शक्तयः श्यामा हर्षयंत्यो जगज्जनान्।
मयूरवाहनाः काश्चित्कतिचिद्धंसवाहनाः॥२५॥
कतिचिन्नकुलारूढाः कतिचित्कोकिलासनाः।
सर्वाश्च श्यामलाकाराः काश्चित्कर्णीरथस्थिताः॥२६॥
कादंबमधुमत्ताश्च काश्चिदारूढसैन्धवाः। मंत्रनाथां पुरस्कृत्य संप्रचेलुः पुरः पुरः॥२७॥
अथारुह्य समुत्तुंगध्वजचक्रं महारथम्। बालार्कवर्णकवचा मदालोलविलोचना॥२८॥
ईषत्प्रस्वेदकणिकामनोहरमुखांबुजा। प्रेक्षयंती कटाक्षौघैः किंचिद्भ्रूवल्लितांडवैः॥२९॥
समस्तमपि तत्सैन्यं शक्तीनामुद्धतोद्धतम्। पिच्छत्रिकोणच्छत्रेण विरुदेन महीयसा॥३०॥
आसां मध्ये न चान्यासां शक्तीनामुज्ज्वलोदया।
निर्जगाम घनश्यामश्यामला मंत्रनायिका॥३१॥

नाम कहे गये हैं। इन बारह नामों को कहने वाला व्यक्ति वज्र के समान कठोर पिंजड़े में बँधा हुआ भी निकल सकता है तथा इन नामों का आख्यान करने वाला व्यक्ति कभी भी संकट को प्राप्त नहीं होता है।।१८-२०।। जो इन नामों से उन महादेवी संकेता की स्तुति करेंगे उन पर कृपा करने के लिये वे देवी पुनः चली आयेंगी।।२१।।

इसके बाद उन संकेत योगिनी ने जब युद्ध के लिये कूच किया, तब आकाश में युद्ध के लिये प्रयाण करती हुई काहली दिखायी दी।।२२।। तब श्रृङ्गारप्राय आभूषणों वाली, सिंह के समान श्यामल शरीर वाली, वीणासंयत हाथों वाली शक्तियों का सैन्य बल निकल पड़ा।।२३।। कोई गा रही थी, कोई नांच रही थी, कोई मत्त कोयल की ध्वनि निकाल रही थी तथा उस समय वीणा, बांसुरी, मृदंग आदि बजाती हुई विलास भाव से एक एक पद बढ़ाती हुई संसार के लोगों को हर्षित करती हुईं श्यामा नामक शक्तियां इधर उधर चलने लगीं।।२४-२४½।। उनमें कुछ मयूर वाहन पर सवार थी, कुछ हंस वाहन पर सवार थीं कुछ नकुल वाहनों वालीं थी, तो कुछ कोयल वाहन पर सवार थीं। सभी शक्तियां श्याम आकार वाली थीं, उनमें कुछ कर्णीरथ पर स्थित थीं।।२४½-२६।। कुछ मद्य के नशे में मत्त होकर घोड़ों पर सवार थीं, जो मन्त्रनाथा को आगे करके आगे आगे चल रही थीं।।२७।। इसके बाद पिच्छ त्रिकोण छत्र से जोर जोर से युद्ध की घोषणा करती हुई इन शक्तियों के बीच में से अन्य शक्तियों से अधिक उज्ज्वल उत्पत्ति वाली काले बादलों के समान मन्त्रनायिका नामक शक्ति निकली। जो ध्वजा और चक्र लगे हुए ऊँचे

तां तुष्टुवुः षोडशभिर्नामभिर्नाकवासिनः। तानि षोडशनामानि शृणु कुंभसमुद्भव॥३२॥
संगीतयोगिनी श्यामा श्यामला मंत्रनायिका।
मंत्रिणी सचिवेशी च प्रधानेशी शुकप्रिया॥३३॥
वीणावती वैणिकी च मुद्रिणी प्रियकप्रिया। नीकप्रिया कदंबेशी कदंबवनवासिनी॥३४॥
सदामदा च नामानि षोडशैतानि कुंभज। एतैर्यः सचिवेशानीं सकृत्स्तौति शरीरवान्।
तस्य त्रैलोक्यमखिलं हस्ते तिष्ठत्यसंशयम्॥३५॥
मंत्रिनाथा यत्रयत्र कटाक्षं विकिरत्यसौ। तत्रतत्र गताशंकं शत्रुसैन्यं पतत्यलम्॥३६॥
ललितापरमेशान्या राज्यचर्चा तु यावती। शक्तीनामपि चचार या सा सर्वत्र जयप्रदा॥३७॥
अथ संगीतयोगिन्याः करस्थाच्छुकपोतकात्। निर्जगाम धनुर्वेदो वहन्सज्जं शरासनम्॥३८॥
चतुर्बाहुयुतो वीरस्त्रिशिरास्त्रिविलोचनः। नमस्कृत्य प्रधानेशीमिदमाह स भक्तिमान्॥३९॥
देवि बंडासुरेंद्रस्य युद्धाय त्वं प्रवर्त्तसे। अतस्तव मया साह्यं कर्तव्यं मंत्रिनायिके॥४०॥
चित्रजीवमिमं नाम कोदंडं सुमहत्तरम्। गृहाण जगतामंब दानवानां निबर्हणम्॥४१॥
इमौ चाक्षयबाणाढ्यौ तूणीरौ स्वर्णचित्रितौ। गृहाण दैत्यनाशाय ममानुग्रहहेतवे॥४२॥

महारथ पर सवार थी, जो प्रातःकालीन सूर्य के वर्ण के समान कवच पहने हुई थीं, जिनकी मद से चञ्चल आँखें थी तथा मुख कमल पर पसीनें की बूँदें थीं तथा जो अपनी भ्रूलता को घुमाती हुई शक्तियों द्वारा उठायी गयी उस समस्त सेना को कटाक्षों द्वारा देख रही थीं।।२८-३१।। उन मन्त्रनायिका को स्वर्गवासी देवताओं ने सोलह नामों से तुष्ट किया। अतः हे घटोत्पन्न अगस्त्य जी! उन सोलह नामों को सुनिये।।३२।। वे हैं—१-संगीत योगिनी, २-श्यामा, ३-श्यामला, ४-मन्त्रनायिका, ५-मन्त्रिणी, ६-सचिवेशी, ७-प्रधानेशी, ८-शुकप्रिया, ९-वीणावती, १०-वैणिकी, ११-मुद्रिणी, १२-प्रियकप्रिया, १३-नीपप्रिया, १४-कदम्बेशी, १५-कदम्बवासिनी और १६-सदामदा। अगस्त्य जी! इस प्रकार ये सोलह नाम हैं। इन नामों द्वारा उन सचिवेशियों की जो शरीर वाला व्यक्ति स्तुति करेगा, उसके हाथ में निश्चित ही समस्त त्रैलोक्य स्थित हो जायेगा। वह तीनों लोकों का स्वामी हो जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३३-३५।।

ये मन्त्रनाथा देवी जहाँ जहाँ अपनी दृष्टि घुमाती थीं, वहाँ वहाँ शत्रु की सेना भयभीत होकर गिर जाती थी।।३६।। जितनी राज्य चर्चा ललिता परमेश्वरी की जय प्रदान करने वाली होती है, उतनी ही सर्वत्र जय प्रदान करने वाली चर्चा शक्तियों की है। अर्थात् ललितापरमेश्वरी के साथ उनकी शक्तियों के स्मरण से ही सर्वत्र जय प्राप्त हो सकती है।।३७।। इसके बाद संगीतयोगिनी के हाथ में स्थित तोते के बच्चे से हाथ में बाण और धनुष लिये हुए धनुर्वेद निकला।।३८।। वह वीर धनुर्वेद चार भुजाओं वाला और तीन सिर तथा तीन आँखों वाला था। उसने प्रधानेशी (मन्त्रनायिका) देवी को नमस्कार करते हुए भक्तिपूर्वक इस प्रकार कहा।।३९।। हे देवि! दैत्यराज भण्डासुर के साथ युद्ध करने के लिए तुम तैयार हुई हो, इसलिए हे मन्त्रनायिके! तुम्हें मेरे साथ कार्य करना चाहिये।।४०।। अतः यह मेरा चित्रजीव नामक बहुत ही महान् यह धनुष है, जो दानवों का नाश करने वाला है, इसे आप ग्रहण कीजिये।।४१।। तथा अक्षय बाणों से भरे हुए दो स्वर्ण चित्रित तूणीर हैं, अतः मेरे ऊपर कृपा करती हुई इनको ग्रहण कीजिये तथा

इति प्रणम्य शिरसा धनुर्वेदिन भक्तितः। अर्पितांश्चापतूणीराञ्जग्राह प्रियकप्रिया॥४३॥
चित्रजीवं महाचापमादाय च शुक प्रिया। विस्फारं जनयामास मौर्वीमुद्वाद्य भूरिशः॥४४॥
संगीतयोगिनी चापध्वनिना पूरितं जगत्। नाकालयानां च मनोनयनानंदसंपदा॥४५॥
यंत्रिणी तंत्रिणी चेति द्वे तस्याः परिचारिके। शुकं वीणां च सहसा वहंत्यौ परिचेरतुः॥४६॥
आलोलवलयक्वाणवर्धिष्णुगुणनिस्वनम्। धारयंती घनश्यामा चकारातिमनोहरम्॥४७॥
चित्रजीवशरासेन भूषिता गीतयोगिनी। कदंबिनीव रुरुचे कदम्बच्छत्रकार्मुका॥४८॥

कालीकटाक्षवत्तीक्ष्णो नृत्यद्भुजगभीषणः।
उल्लसन्दक्षिणे पाणौ विललास शिलीमुखः॥४९॥

गेयचक्ररथारूढां तां पश्चाच्च सिषेविरे। तद्वच्छ्यामलशोभाढ्या देव्यो बाणधनुर्धराः॥५०॥

सहस्राक्षौहिणीसंख्यास्तीव्रवेगा मदालसाः।
आपूरयंत्यः ककुभं कलैः किलिकिलारवैः॥५१॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने दंडनाथाश्यामला-सेनायात्रा नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

इन्हें ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत कीजिये।।४२।। इस प्रकार धनुर्वेद ने शिर से प्रणाम करके भक्तिपूर्वक उन तरकशों को प्रदान कर दिया और प्रियक प्रिया ने उन्हें ग्रहण कर लिया।।४३।। चित्रजीव महाधनुष को लेकर शुक्रप्रिया ने उसकी प्रत्यञ्चा को अनेक बार बजाकर (धनुष की टंकार) से सर्वत्र विस्फार (धनुष की टंकार) पैदा कर दिया।।४४।। उन संगीतयोगिनी ने धनुष की टंकार से समस्त संसार को भर दिया और फिर स्वर्गवासी देवताओं के घरों को आनन्द से भर दिया। स्वर्ग में प्रसन्नता छा गयी।।४५।। उन मन्त्रनाथा देवी के दो परिचारक थे यन्त्रिणी और तन्त्रिणी तथा वे दोनों परिचारक शुक और वीणा को वहन करते हुए सेवा कर रहे थे।।४६।। वे घनश्यामा अत्यन्त मनोहर कंगन को धारण किये हुए थीं, जो हिलाने पर खनखनाहट की बहुत बढ़ी हुई ध्वनि कर रहा था।।४७।। चित्रजीव धनुष से वे गीतयोगिनी देवी सुशोभित थीं। कदम्ब का छत्र और धनुष से वे देवी कादम्बिनी के समान अच्छी लग रही थीं।।४८।। काली के कटाक्ष के समान उनकी तीक्ष्ण भीषण भुजा नृत्य सा कर रही थी तथा दक्षिण कर में बाण शोभित हो रहा था।।४९।। गेयचक्र वाले रथ पर आरूढ़ उन देवी की सेवा की जा रही थी तथा बाण और धनुष को धारण की हुई देवियां श्यामल शोभा से युक्त उन देवी की सेवा कर रही थीं।।५०।। तीव्र वेग वाली, युद्ध के मद में मत्त, एक हजार अक्षौहिणी संख्या वाली सेना की किल किल करने वाली ध्वनि समस्त दिशाओं में गूँज रही थी।।५१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १७वाँ अध्याय दण्डिनाथाश्यामलसेना यात्रा वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

ललितापरमेश्वरी सेना जय यात्रा नाम

अष्टादशोऽध्यायः

अथ राजनायिका श्रिताज्वलितांकुशा फणिसमानपाशभृत्।
कलनिक्वणद्वलयमैक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपंचका॥१॥
उदयत्सहस्त्रमहसा सहस्त्रतोऽप्यतिपाटलं निजवपुः प्रभाझरम्।
किरती दिशासु वदनस्य कांतिभिः सृजतीव चंद्रमयमभ्रमंडलम्॥२॥
दशयोजनायतिमता जगत्रयीमभिवृण्वता विशदमौक्तिकात्मना।
धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमंडलस्य सखितामुपेयुषा॥३॥
अभिवीजिता च मणिकांतशोभिना विजयादिमुख्यपरिचारिकागणैः।
नवचंद्रिकालहरिकांतिकंदलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च॥४॥
शक्त्यैकराज्यपदवीमभिसूचयंती साम्राज्यचिह्नशतमंडितसैन्यदेशा।
संगीतवाद्यरचनाभिरथामरीणां स्स्तूयमानविभवा विशदप्रकाशा॥५॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यांन

अध्याय-१८

ललितापरमेश्वरी सेना जययात्रा

इसके बाद राजनायिका पर आश्रित, जलते हुए अंकुश वाली, नाग के फन के समान पाश को धारण करने वाली, झनझन करते हुए कंगन वाले हाथ में इक्षु से बने धनुष को धारण करती हुई, प्रदीप्त फूलों रूपी पाँच बाणों को धारण करने वाली, पच्चीस नामरत्नों, प्रपंच और पापों को पूरी तरह शान्त करने में कुशल मरुद्गणों द्वारा सम्यक् प्रकार से स्तुति की जाती हुई, ललिता देवी ने संग्राम को लक्ष्य बनाकर प्रयाण कर दिया।।१।। उस समय वे महादेवी उदय होते हुए सूर्यों की कांति के समान ही नहीं हजारों से अत्यधिक गुलाबी लाल अपने शरीर की प्रभा को दिशाओं में बिखेर रही थीं तथा बदन की कान्ति से ऐसा लगता था मानों कि चन्द्रमा युक्त आकाश मण्डल को मित्र बना रहीं हों।।२।।

दशयोजन विस्तार वाले तीनों लोकों को अभिव्याप्त करने वाले अपने विशद मोती जैसे श्वेत छत्र के चमकते हुए घेरे द्वारा वे चन्द्रमण्डल की मित्रता को प्राप्त हो रही थीं अर्थात् मोती की कान्ति वाला उनका छत्र इतना प्रकाशित हो गया था कि वह चन्द्रमण्डल की समता प्राप्त कर रहा था।।३।। उन देवी के ऊपर मणि कान्त की शोभा वाली विजया आदि परिचारिकायें जो चमर ढुला रही थीं, उन चारों चामरों और चार ध्वजाओं की कान्ति नयी चाँदनी की लहराती कान्ति के समान थी।।४।। उन चामरों और झण्डियों की शक्ति द्वारा एक राज्य पदवी सूचित होती है अर्थात्

वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्तया न कलनीयमनन्यतुल्यम्॥६॥
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसंपदभिमानमभिस्पृशंती।
आबद्धभक्तिविपुलांजलिशेखराणामारादहंप्रथमिका कृतसेवनानाम्॥७॥
ब्रह्मेशविष्णुवृषमुख्यसुरोत्तमानां वक्त्राणि वर्षितनुतीनि कटाक्षयंती।
उद्दीप्तपुष्पशरपंचकतः समुत्थैर्ज्योतिर्मयं त्रिभुवनं सहसा दधाना॥८॥
विद्युत्समद्युतिभिरप्सरसां समूहैर्विक्षिप्यमाणजयमंगललाजवर्षा।
कामेश्वरीप्रभृतिभिः कमनीयमाभिः संग्रामवेषरचनासुमनोहराभिः॥९॥
दीप्तायुधद्युतितिरस्कृत भास्कराभिर्नित्याभिरंघ्रिसविधे समुपास्यमाना।
श्रीचक्रनामतिलकं दशयोजनातितुंगध्वजोल्लिखितमेघकदंबमुच्चैः॥१०॥
तीव्राभिरावणसुशक्तिपरंपराभिर्युक्तं रथं समरकर्मणि चालयंती।
प्रोद्यत्पिशंगरुचिभागमलांशुकेन वीतमनोहररुचिस्समरे व्यभासीत्॥११॥
पंचाधिकैर्विंशतिनामरत्नैः प्रपंचपापप्रशमातिदक्षैः।
संस्तूयमाना ललिता मरुद्भिः संग्राममुद्दिश्य समुच्चचाल॥१२॥

त्रैलोक्य एक ही राज्यपदवी हो ऐसा सूचित होता था तथा उससे साम्राज्यों के सैकड़ों चिह्नों से मण्डित सौन्दर्य दशा प्रतीत होती थी। वहाँ जो देवाङ्गनायें गाना बजाना और जो पद रचना कर उनकी स्तुति कर रही थीं, उससे उनका असीमित ऐश्वर्य तथा अत्युत्कट प्रकाश विदित हो रहा था।।५।। वे देवी वाणी से जानने योग्य नहीं थीं तथा न बुद्धि से उन्हें जाना जा सकता था, इस दृष्टि से उनकी किसी से तुलना भी नहीं की जा सकती है। अतः तीनों लोकों के गर्भ से परिपूरित चक्रवर्ती साम्राज्य की सम्पत्ति के अभिमान को स्पर्श करती हुई थी।।६। उन देवी की भक्ति में पंक्तिबद्ध अनेकों हाथ जोड़कर महान् से महान् व्यक्ति खड़े रहते थे, जो सब भक्ति में होड़ करते थे कि मैं सेवा करने में प्रथम हूँ।।७।। ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर आदि उत्तम देवताओं के द्वारा प्रशंसा करते हुए मुखों पर मुखों से कटाक्ष करती हुई चमकते हुए अपने पाँच पुष्प बाणों से उठे हुए ज्योतिर्मय त्रिभुवन को सहसा धारण करती हुई, बिजली के समान कान्ति वाली अप्सराओं द्वारा उनके ऊपर जय और मंगल की कामना से खीलों की वर्षा की जा रही थी।।८-८½।। अर्थात् अप्सरायें ब्रह्मा, विष्णु और महेश पर यह कटाक्ष कर रहीं थीं कि आप लोग कुछ नहीं कर पाये, अब ये स्त्री ही सब कुछ करेगी। उन महादेवी की कामेश्वरी आदि शक्तियां सुख प्रदान करने वाली आभाओं वाली संग्राम के अनुकूल वेषभूषा से मनोहर लगने वाली, चमकते हुए आयुधों की कान्ति से सूर्य के प्रकाश को तिरस्कृत करने वाली, नित्या (सर्वदा रहने वाली) कामेश्वरी आदि देवियों द्वारा चरणों के पास बैठकर उपासना की जा रही थीं।।८½-९½।। वे देवी समर कर्म में ऐसे रथ को चलवा रही थीं। जिसमें दशयोजन की अति ऊँचाई पर जहाँ मेघसमूहों की ऊँचाई होती है, उतनी ऊँचाई पर लगी हुई ध्वजा पर श्रीचक्र नामक तिलक खुदा हुआ था तथा जो रथ तीव्र आवरण और अधिक शक्ति की परम्पराओं से युक्त था। उठे हुए पीले रंग के रुचिकर भाग वाले मैले वस्त्र से युक्त होने पर भी अत्यन्त मनोहर कान्ति युद्ध में दिखायी दे रही थी।।९½-११।। इस प्रकार २५ नाम रत्नों

अगस्त्य उवाच

वाजिवक्र महाबुद्धे पंचविंशतिनामभिः। ललितापरमेशान्या देहि कर्णरसायनम्॥१३॥

हयग्रीव उवाच

सिंहासना श्रीललिता महाराज्ञी परांकुशा। चापिनी त्रिपुरा चैव महात्रिपुरसुन्दरी॥१४॥
सुन्दरी चक्रनाथा च साम्राज्ञी चक्रिणी तथा। चक्रेश्वरी महादेवी कामेशी परमेश्वरी॥१५॥
कामराजप्रिया कामकोटिगा चक्रवर्तिनी। महाविद्या शिवानंगवल्लभा सर्वपाटला॥१६॥
कुलनाथाम्नायनाथा सर्वाम्नायनिवासिनी। शृङ्गारनायिका चेति पंचविंशतिनामभिः॥१७॥
स्तुवंति ये महाभागां ललितां परमेश्वरीम्। ते प्राप्नुवंति सौभाग्यमष्टौ सिद्धीर्महद्यशः॥१८॥
इत्थं प्रचंडसंरभं चालयंती महद्बलम्। भंडासुरं प्रति क्रुद्धा चचाल ललितांबिका॥१९॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने ललितापरमेश्वरीसेनाजय यात्रानामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥
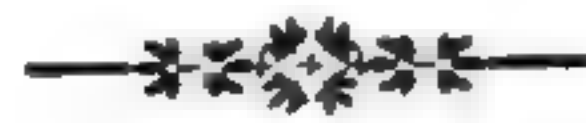
वाले प्रपंचों और पापों को शान्त करने वाले मरुद्गणों द्वारा स्तुति की जाती हुई, वे ललिता देवी संग्राम को उद्देश्य बना कर सम्यक् प्रकार से चल पड़ीं।।१२।।

अगस्त्य मुनि ने भगवान् हयग्रीव वसे कहा कि हे महामते! हयग्रीव! ललितापरमेशिनी के पच्चीस नामों द्वारा हमें कर्णामृत प्रदान कीजिये।।१३।।

हयग्रीव बोले कि उनके पच्चीस नाम सुनिये, वे हैं—१. सिंहासना, २. श्री ललिता, ३. महाराज्ञी, ४. परांकुशा, ५. चापिनी, ६. त्रिपुरा, ७. महात्रिपुरसुन्दरी, ८. सुन्दरी, ८. चक्रनाथा, १०. साम्राज्ञी, ११. चक्रिणी, १२. चक्रेश्वरी, १३. महादेवी, १४. कामेशी, १५. परमेश्वरी, १६. कामराजप्रिया, १७. कामकोटिगा, १८. चक्रवर्तिनी, १९. महाविद्या, २०. शिवानंगवल्लभा, २१. सर्वपाटला, २२. कुलनाथा, २३. आम्नायनाथा, २४. सर्वाम्नायनिवासिनी, २५. शृङ्गारनायिका। इन उपयुक्त पच्चीस नामों से जो महात्मा ललिता परमेश्वरी की स्तुति करते हैं, वे आठों सिद्धियां और महान् यश प्राप्त करते हैं।।१४-१८।। इस प्रकार महाबल और प्रचण्ड वेग से चलती हुई क्रुद्ध ललिता अम्बिका भण्डासुर दैत्य की तरफ चलने लगीं।।१९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १८वाँ अध्याय ललितापरमेश्वरी सेना जययात्रा वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

चक्रराजज्ञेयचक्ररथपर्वस्थ देवता नाम

एकोविंशातितमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

चक्रराजरथेंद्रस्य याः पर्वणि समाश्रिताः। देवता प्रकटाभिख्यास्तासामाख्यां निवेदय॥१॥
संख्याश्च तासामखिला वर्णभेदांश्च शोभनान्। आयुधानि च दिव्यानि कथयस्व हयानन॥२॥

हयग्रीव उवाच

नवमं पर्व दीप्तस्य रथस्य समुपस्थिताः। दश प्रोक्ता सिद्धिदेव्यस्तासां नामानि मच्छृणु॥३॥
अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा। ईशिता वशिता चैव प्राप्तिः सिद्धिश्च सप्तमी॥४॥
प्राकाम्यमुक्तिसिद्धिश्च सर्वकामाभिधापरा। एता देव्यश्चतुर्बाह्वयो जपाकुसुमसंनिभाः॥५॥
चिंतामणिकपालं च त्रिशूलं सिद्धिकज्जलम्। दधाना दयया पूर्णा योगिभिश्च निषेविताः॥६॥
तत्र पूर्वार्द्धभागे च ब्रह्माद्या अष्ट शक्तयः। ब्राह्मी माहेश्वरो चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही चैव माहेंद्री चामुंडा चैव सप्तमी॥७॥
महालक्ष्मीरष्टमी च द्विभुजाः शोणविग्रहाः। कपालमुत्पलं चैव बिभ्राणा रक्तवाससः॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–१९

श्रीचक्रराजरथ तथा ज्ञेयचक्रपर्वस्थ देवतानामों का प्रकाशन

अगस्त्य ऋषि ने कहा कि हे हयग्रीव! चक्रराज रथेन्द्र के पर्व में जो समाश्रित देवता हैं, उनकी अभिख्या (चमक दमक शोभा कान्ति और नाम) हमको बताइये।।१।। उनकी समस्त संख्या, शोभित होने वाले वर्णभेद तथा उनके अस्त्र शस्त्रों को बताइये।।२।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य जी! उस चमकते हुए रथ में नौ पर्व उपस्थित हैं और दश सिद्धि देवियां कही गयी हैं। उनके नामों को सुनिये।।३।। वे हैं—१. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिमा, ४. गरिमा, ५. ईशिता, ६. वशिता तथा सातवीं सिद्धि है—प्राप्ति तथा आठवी सिद्धि है—प्राकाम्य मुक्ति सिद्धि, जो सब कामनाओं को पूरी करने वाली है। ये सब देवियां चार भुजाओं वाली और जपा के पुष्प के समान हैं।।३-५।। जो सब देवियां चिन्तामणि, कपाल, और सिद्धि कज्जल धारण करती हुई, योगियों से सेवित और दया से पूर्ण हैं।।६।। उस रथ के पूर्वार्द्ध भाग में ब्रह्मा आदि आठ शक्तियां हैं। जो हैं—१. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. माहेन्द्री तथा ७. चामुण्डा सातवीं शक्ति हैं और आठवीं शक्ति महालक्ष्मी हैं। ये सभी शक्तियां दो भुजाओं वाली हैं तथा लाल रंग के शरीर वाली हैं। ये कपाल, कमल और लालवस्त्र को धारण करने वाली हैं।।७-८।।

अथवान्य प्रकारेण केचिद्ध्यानं प्रचक्षते। ब्रह्मादिसदृशाकारा ब्रह्मादिसदृशायुधाः॥९॥
ब्रह्मादीनां परं चिह्नं धारयन्त्यः प्रकीर्तिताः। तासामूर्ध्वस्थानगतां मुद्रा देव्यो महत्तराः॥१०॥
मुद्राविरचनायुक्तैर्हस्तैः कमलकांतिभिः। दाडिमीपुष्पसङ्काशाः पीतांबरमनोहराः॥११॥
चतुर्भुजा भुजद्वन्द्वधृतचर्मकृपाणका;। मदरक्तविलोलाक्ष्यस्तासां नामानि मच्छृणु॥१२॥
सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा। सर्वाकर्षणकृन्मुद्रा तथा सर्ववशङ्करी॥१३॥
सर्वोन्मादनमुद्रा च यष्टिः सर्वमहाङ्कुशा। सर्वखेचरिका मुद्रा सर्वबीजा तथापरा॥१४॥
सर्वयोनिश्च नवमी तथा सर्वत्रिखंडिका। सिद्धिब्राह्यादिमुद्रास्ता एताः प्रकटशक्तयः॥१५॥

भंडासुरस्य संहारं कर्तुं रक्तरथे स्थिताः।
या गुप्ताख्याः पूर्वमुक्तास्तासां नामानि मच्छृणु॥१६॥
कामाकर्षणिका चैव बुद्ध्याकर्षणिका कला।
अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षणिका कला॥१७॥
स्पर्शाकर्षणिका नित्या रूपाकर्षणिका कला।
रसाकर्षणिका नित्या गन्धकर्षणिका कला॥१८॥
चित्ताकर्षणिका नित्य धैर्याकर्षणिका कला।
स्मृत्या कर्षणिका नित्या नामाकर्षणिका कला॥१९॥

अथवा कुछ लोग अन्य प्रकार से उनका ध्यान करते हैं, वे सभी देवियां ब्रह्मा आदि के समान आकार वाली हैं और ब्रह्मा आदि के समान अस्त्रशस्त्रों को धारण करती हैं। जैसे ब्राह्मी ब्रह्मा के आकार की तथा उनके समान वस्त्र धारण करती हैं। उसी तरह माहेश्वरी महेश्वर के आकार वाली हैं तथा महेश्वर के समान वस्त्रों को धारण करती हैं।।९।। यही नहीं वे सब देवियां ब्रह्मा आदि के परम चिह्नों को भी धारण करती हुई बतायी गयी हैं। उनसे ऊँचे स्थान पर जाने पर महान् से महान् मुद्रा देवियां हैं।।१०।। वे देवियां कमल की कान्ति वाले मुद्रा बनाने में लगे हुए हाथों से अनार के पुष्प के समान पीले वस्त्रों से मन को हर लेने वाली हैं।।११।।

वे देवियां चार भुजाओं वाली हैं तथा दोनों भुजाओं में चर्म और कृपाण धारण किये हुए हैं तथा मद से लाल-लाल आँखों वाली हैं। अब उन मुद्रा देवियों के नामों को सुनिये।।१२।। उनके नाम हैं—१. सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा, २. सर्वविद्राविणीमुद्रा, ३. सर्वाकर्षणकृन्मुद्रा अर्थात् सबका आकर्षण करने वाली मुद्रा, ४. सर्ववशंकरीमुद्रा, ५. सर्वोन्मादनमुद्रा, ६. सर्वमहांकुशामुद्रा, ७. सर्वखेचरिकामुद्रा, ८. सर्वबीजामुद्रा, ९. सर्वयोनिमुद्रा तथा १०. सर्वत्रि खण्डिका। वे सब सिद्धि और ब्राह्मी आदि मुद्रा हैं और ये प्रकट शक्तियां हैं।।१३-१५।। ये सब मुद्रायें भण्डासुर दैत्य का संहार करने के लिये रक्तरथ पर स्थित हैं। जो गुप्त नाम वाली हैं, उनके नामों को सुनिये।।१६।। उनके नाम हैं—१. कामाकर्षणिका नित्या, २. बुद्ध्याकर्षणिका कला, ३. अहंकाराकर्षिणी नित्या, ४. शब्दाकर्षणिका कला, ५. स्पर्शाकर्षणिका नित्या, ६. रूपाकर्षणिका कला, ७. रसाकर्षणिका नित्या, ८. गन्धाकर्षणिका कला, ९. चित्ताकर्षिणिका नित्या, १०. धैर्याकर्षिणिका कला, ११. स्मृत्याकर्षणिका नित्या, १२.

बीजाकर्षणिका नित्या चात्मकर्षणिका कला।
अमृताकर्षणी नित्या शरीराकर्षिणी कला॥२०॥
एताः षोडश शीतांशुकलारूपाश्च शक्तयः।
अष्टमं पर्व सम्प्राप्ता गुप्ता नाम्ना प्रकीर्तिताः॥२१॥
विद्रुमद्रुमसङ्काशा मन्दस्मितमनोहरा;। चतुर्भुजास्त्रिनेत्राश्च चन्द्रार्कमुकुटोज्ज्वलाः॥२२॥
चापबाणी चर्मखड्गौ दधाना दिव्यकान्तयः। भण्डासुरवधार्थाय प्रवृत्ताः कुम्भसम्भव॥२३॥
सायंतनज्वलद्दीपप्रख्यचक्ररथस्य तु। सप्तमे पर्वणि कृतावासा गुप्ततराभिधाः॥२४॥
अनङ्गमदनानङ्गमदनातुरया सह। अनङ्गलेखा चानङ्गवेगानङ्गांकुशापि च॥२५॥
अनङ्गमालिंग्यपरा एते देव्यो जयात्विषः। इक्षुचापं पुष्पशरान्पुष्पकन्दुकमुत्पलम्॥२६॥
बिभ्रत्योऽदभ्रविक्रांतिशालिन्यो ललिताज्ञया।
भण्डासुरमभिक्रुद्धाः प्रज्वलंत्य इव स्थिता;॥२७॥
अथ चक्ररथेंद्रस्य षष्ठं पर्व समाश्रिताः। सर्वसंक्षोभिणीमुख्याः सम्प्रदायाख्यया युताः॥२८॥
वेणीकृतक चस्तोमाः सिंदूरतिलकोज्ज्वलाः।
अतितीव्रस्वभावाश्च कालानलसमत्विषः॥२९॥
वह्निबाणं वह्निचापं वह्निरूपमसिं तथा। वह्निचक्राख्यफलकं दधाना दीप्तविग्रहाः॥३०॥

नामाकर्षणिका कला, १३. बीजाकर्षणिका नित्या, १४. आत्मकर्षणिकाकला, १५. अमृताकर्षिणीनित्या, १६. शरीराकर्षिणीकला।।१७-२०।। ये सोलह कलायें चन्द्रमा की कलारूप शक्तियां हैं। आठवें पर्व की शक्तियां गुप्त नाम से कही गयी हैं।।२१।। वे शक्तियां मूँगे के वृक्ष के समान लाल वर्ण वाली और मन्द मुस्कान से मन को हर लेने वाली हैं। उनकी चार भुजायें और तीन नेत्र हैं तथा सूर्य और चन्द्रमा के समान चमकने वाले उज्ज्वल मुकुट को धारण करती हैं।।२२।। वे सब हाथ में धनुष बाण तथा चर्म और तलवार लिये हुए है तथा दिव्य कान्ति वाली हैं तथा हे अगस्त्य जी! वे सभी भण्डासुर दैत्य के वध के लिये प्रवृत्त हो चुकी हैं।।२३।। सायंकालीन जलते हुए दीपवाले साफ दिखाई देने वाले चक्ररथ के सातवें पर्व (भाग) में आवास करने वाली गुप्ततर नाम की शक्तियां हैं।।२४।।

वे हैं—१. अनङ्गमदना, २. अनङ्गमदनातुरा, ३. अनङ्गलेखा, ४. अनङ्गवेगा, ५. अनङ्गकुशा, ६. अनङ्गमालिङ्गय परा, ये देवियां जप के प्रकाश से युक्त हैं और वे इक्षु, धनुष, पुष्प का बाण, पुष्प की गेंद, कमल, धारण करती हुई, प्रचुर एवं विशेष प्रकार कान्ति कर देने वाली देवियां ललिता देवी की आज्ञा से अत्यन्त क्रोधित होकर भण्डासुर दैत्य को जलाती हुई के समान स्थित थी।।२५-२७।। इसके बाद चक्ररथेन्द्र के छठे भाग में सम्प्रदायनाम से युक्त सर्वसंक्षोभिणी आदि मुख्य शक्तियां समाश्रित हैं।।२८।। जिनके शीर्षकेश वेणीवद्ध थे तथा मस्तक पर सिन्दूर का उज्ज्वल तिलक लगा हुआ था तथा वे अत्यन्त तीव्र स्वभाव वाली और कालाग्नि के समान तेज वाली थीं।।२९।। वे अग्निबाण, अग्नि धनुष, अग्निरूप तलवार तथा अग्निचक्र नामक फलक वाले दीप्त

असुरेन्द्रं प्रति क्रुद्धाः कामभस्मसमुद्भवाः। आज्ञाशक्तय एवैता ललिताया महौजसः॥३१॥
सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा। सर्वाकर्षणिका शक्तिः सर्वाह्लादिनिका तथा॥३२॥
सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तम्भनशक्तिका। सर्वजृंभणशक्तिश्च सर्वोन्मादनशक्तिका॥३३॥
सर्वार्थसाधिका शक्तिः सर्वसम्पत्तिपूरणी। सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वंद्वक्षयङ्करी॥३४॥
एवं तु सम्प्रदायानां नामानि कथितानि वै। अथ पञ्चमपर्वस्थाः कुलोत्तीर्णा इति स्मृताः॥३५॥
ताश्च स्फटिकसङ्काशाः परशुं पाशमेव च। गदां घण्टां मणिं चैव दधाना दीप्तविग्रहाः॥३६॥
देवद्विषमति क्रुद्धा भ्रुकुटीकुटिलाननाः। एतासामपि नामानि समाकर्णय कुम्भज॥३७॥
सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसम्पत्प्रदा तथा। सर्व प्रियङ्करी देवी सर्वमङ्गलकारिणी॥३८॥
सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचिनी॥३९॥
सर्वमृत्युप्रशमिनी सर्वविघ्ननिवारिणी। सर्वांगसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी॥४०॥
दशैताः कथिता देव्यो दयया पूरिताशयाः। चक्रे तुरीयपर्वस्था मुक्ताहारसमत्विषः॥४१॥
निगर्भयोगिनीनाम्ना प्रथिता दश कीर्तिताः। सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदा तथा॥४२॥
सर्वज्ञानमयी देवो सर्वव्याधिविनाशिनी। सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा॥४३॥
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी। दशमी देवता ज्ञेया सर्वेप्सितफलप्रदा॥४४॥
एताश्चतुर्भुजा ज्ञेया वज्रं शक्तिं च तोमरम्। चक्रं चैवाभिबिभ्राणा भण्डासुरवधोद्यताः॥४५॥

शरीर को धारण करने वाली हैं।।३०।। वे सभी शक्तियां दैत्यराज भण्डासुर के प्रति अत्यन्त क्रोधित थीं तथा कामदेव के भस्म होने से उत्पन्न हुई ललिता देवी की महा पराक्रमी आज्ञा शक्तियां ही हैं। ये आज्ञा शक्तियां हैं—१. सर्वसंक्षोभिणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वाकर्षणिका, ४. सर्वाह्लादिनिका, ५. सर्वसम्मोहिनीशक्ति, ६. सर्वस्तम्भनशक्तिका, ७. सर्वजृम्भणशक्ति, ८. सर्वोन्मादनशक्तिका, ९. सर्वार्थसाधिकाशक्ति, १०. सर्वसम्पत्तिपूरणीशक्ति, ११. सर्वमन्त्रमयीशक्ति, १२. सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्ति।। इस प्रकार ये उपर्युक्त सम्प्रदायों के नाम कहे गये हैं।।३१-३४½।। इसके बाद पञ्चम पर्व में स्थित शक्तियाँ कुलोत्तीर्णा कही गयी हैं। वे शक्तियाँ संगमरमर के समान थीं और परशु, पाश, गदा, घण्टा और मणि धारण करने वाली तथा कान्तियुक्त शरीर वाली थीं।।३४½-३६।। वे देवों से द्वेष करने वाले दैत्यों के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध और कुटिल भ्रुकुटु रखने वाली थीं। अतः हे अगस्त्य जी अब उनके नाम भी सुनिये।।३७।।

१. सर्वसिद्धिप्रदा देवी, २. सर्वसम्पत्प्रदा, ३. सर्वप्रियंकरी देवी, ४. सर्वमङ्गलकारिणी, ५. सर्वकामप्रदा देवी, ६. सर्वदुःखविमोचिनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमनी, ८. सर्वविघ्ननिवारिणी, ९. सर्वाङ्गसुन्दरी देवी, १०. सर्वसौभाग्यदायिनी, इस प्रकार ये दश देवियां दया से युक्त एवम् आशा पूर्ण करने वाली कही गयी हैं।।३८-४०½।। अब चक्र के चौथे पर्व (भाग) में मोतियों के हार के समान कान्तिवाली देवियां हैं, जो निगर्भयोगिनी नाम से संख्या में दश कही गयी हैं। वे हैं—१. सर्वज्ञा, २. सर्वशक्ति, ३. सर्वैश्वर्यप्रदा, ४. सर्वज्ञानमयी, ५. सर्वव्याधिविनाशिनी, ६. सर्वाधारस्वरूपा, ७. सर्वपापहरा, ८. सर्वानन्दमयी देवी, ९. सर्वरक्षास्वरूपिणी तथा १०.

अथ चक्ररथेन्द्रस्य तृतीयं पर्वसंश्रिताः। रहस्ययोगिनीनाम्ना प्रख्याता वागधीश्वरा;॥४६॥
रक्ताशोकप्रसूनाभाबाणकार्मुकपाणयः। कवचच्छन्नसर्वांग्यो वीणापुस्तकशोभिताः॥४७॥
वशिनी चैव कामेशी भोगिनी विमला तथा।
अरुणा च जविन्याख्या सर्वेशी कौलिनी तथा॥४८॥
अष्टावेताः स्मृता देव्यो दैत्यसंहारहेतवः। अथ चक्ररथेन्द्रस्य द्वितीयं पर्व संश्रिताः॥४९॥
चापबाणौ पानपात्रं मातुलुंगं कृपाणिकाम्। तिस्रस्त्रिपीठनिलया अष्टबाहुसमन्विताः॥५०॥
पलकं नागपाशं च घंटां चैव महाध्वनिम्। बिभ्राणा मदिरामत्ता अतिगुप्तरहस्यकाः॥५१॥
कामेशी चैव वज्रेशी भगमालिन्यथापरा।
तिस्र एताः स्मृता देव्यो भण्डे कोपसमन्विताः॥५२॥
ललितासममाहात्म्या ललितासमतेजसः। एतास्तु नित्यं श्रीदेव्या अन्तरङ्गाः प्रकीर्तिताः॥५३॥
अथानन्दमहापीठे रथमध्यमपर्वणि। परितो रचितावासाः प्रोक्ताः पञ्चदशाक्षराः॥५४॥
तिथिनित्याः कालरूपा विश्वं व्याप्यैव संस्थिताः।
भण्डासुरादिदैत्येषु प्रक्षुब्धभ्रुकुटीतटाः॥५५॥
देवीसमनिजाकारा देवीसमनिजायुधाः। जगतामुपकाराय वर्तमाना युगेयुगे॥५६॥

दशमीदेवी सर्वेप्सितफलप्रदा हैं। ये सभी देवियां चार भुजाओं वाली जाननी चाहिये तथा वज्र, शक्ति, तोमर और चक्र धारण करके भण्डासुरसैन्य को मारने को उद्यत हैं।।४०½-४५।। अब श्रीचक्रराज के तृतीय पर्व में स्थित देवियां रहस्ययोगिनी नाम से प्रसिद्ध हैं तथा वे सब वाणी की अधीश्वर देवियां हैं।।४६।। वे लाल अशोक के लाल पुष्प के समान आभा वाली और हाथ में बाण और धनुष धारण किये हुए हैं तथा उनका सारा शरीर कवच से ढका हुआ है तथा हाथ में वीणा और पुस्तक सुशोभित है।।४७।। उनके नाम हैं—१. वशिनी, २. कामेशी, ३. भोगिनी, ४. विमला, ५. अरुणा, ६. जविनी, ७. सर्वेशी और ८. कौलिनी। इस प्रकार ये आठ देवियां दैत्यों का संहार करने वाली कही गयी हैं।।४८-४८½।। इसके बाद चक्ररथेन्द्र के दूसरे पर्व में रहने वाली देवियां धनुष बाण पानपात्र मातुलुंग (विजौरा नीबू) कृपाणिका तेंतीस पीठ के उनके निलय (घर) थे तथा वे सब आठ भुजाओं से युक्त थीं।।५०।। पलक, नाग, पाश, घण्टा की महाध्वनि का धारण करने वाली मदिरा से मत्त अत्यन्त गुप्त रहस्य वाली देवियां हैं।।५१।।

कामेशी और वज्रेशी तथा भगमालिनी, ये तीन देवियां भण्डासुर दैत्य पर क्रोध किये हुये थीं।।५२।। ये तीनों देवियां ललिता देवी के सामन माहात्म्ययुक्त थी तथा ललिता के समान तेज वाली थीं। ये सब नित्या और श्री ललितापरमेश्वरी की अन्तरङ्ग कही गयी हैं।।५३।। इसके बाद श्रीचक्र रूप रथ के मध्यम पर्व (भाग) में आनन्द महापीठ है तथा उस आनन्द महापीठ में चारों ओर आवास बने हुए हैं, जो पन्द्रह अक्षर वाले कहे गये हैं।।५४।। ये पन्द्रह अक्षर पन्द्रह तिथियां हैं, जो समय रूप हैं अर्थात् समय बताने वाली हैं तथा विश्व को अपने में व्याप्त कर स्थित हैं अर्थात् समय विश्व इन तिथियों में ही व्याप्त हैं। भण्डासुर आदि दैत्यों के प्रति विशेष क्षुब्ध होकर क्रोध से भौंहें टेढ़ी किये हुए हैं।।५५।। श्री ललिता देवी के समान ही इनके अपने आकार हैं और श्रीललिता देवी के ही

तासां नामानि मत्तस्त्वमवधारय कुम्भज।
कामेशी भगमाला च नित्यक्लिन्ना तथैव च॥५७॥
भेरुंडा वह्निवासिन्यो महावज्रेश्वरी तथा। दूती च त्वरिता देवी नवमी कुलसुन्दरी॥५८॥
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमंगला।
ज्वालामालिनिकाचित्रे दश पंच च कीर्तिताः॥५९॥
एताभिः संहिता देवी सदा सेवैकबुद्धिभिः। दुष्टं भंडासुरं जेतुं निर्ययौ परमेश्वरी॥६०॥
मंत्रिनाथा महाचक्रे गीतिं चक्रे रथोत्तमे। सप्तपर्वाणि चोक्तानि तत्र देव्याश्च ताः शृणु॥६१॥
गेयचक्ररथे पर्वमध्यपीठनिकेतना। संगीतयोगिनी प्रोक्ता श्रीदेव्या अतिवल्लभा॥६२॥
तदेव प्रथमं पर्व मंत्रिण्यास्तु निवासभूः। अथ द्वितीयपर्वस्था गेयचक्रे रथोत्तमे॥६३॥
रतिः प्रीतिर्मनोजा च वीणाकार्मुकपाणयः। तमालश्यामलाकारा दानवोन्मूलनक्षमाः॥६४॥
तृतीयपर्वसंरूढा मनोभूबाणदेवता। द्राविणी शोषिणी चैव बंधिनी मोहिनी तथा॥६५॥
उन्मादिनीति पंचैता दीप्तकार्मुकपाणयः। तत्र पर्वण्यधस्तात्तु वर्तमाना महौजसः॥६६॥
कामराजश्च कंदर्पो मन्मथो मकरध्वजः। मनोभवः पंचमः स्यादेते त्रैलोक्यमोहनाः॥६७॥
कस्तूरितिलकोल्लासिभालामुक्ताविराजिताः। कवचच्छन्नसर्वांगाः पलाशप्रसवत्विषः॥६८॥

समान उनके आयुध हैं। संसार के उपकार के लिये वे युग युग में वर्तमान रहती हैं।।५६।। हयग्रीव ने कहा कि अगस्त्य जी! अब उनके नाम मुझसे आप सुनिये। वे हैं—१. कामेशी, २. भगमाला, ३. नित्यक्लिन्ना, ४. भेरुण्डा, ५. वह्निवासिनी, ६. महावज्रेश्वरी, ७. दूती, ८. त्वरिता देवी, ९. नवमी कुलसुन्दरी, १०. नित्या, ११. नीलपताका, १२. विजया, १३. सर्वमङ्गला, १४. ज्वाला, १५. मालनिका ये पन्द्रह देवियां कही गयी हैं।।५७-५९।। इन एक बुद्धि वाली देवियों के सहित वही एक परमेश्वरी ललितादेवी दुष्ट भण्डासुर को जीतने के लिये निकल पड़ी।।६०।। उस रथोत्तम महाचक्र में मन्त्रिनाथा देवी ने गीत गाया। इस प्रकार सात पर्वों का वर्णन किया गया है, अब वहाँ रहने वाले उन देवताओं को सुनियो।।६१।। गेय चक्ररथ में पर्व के मध्य पीठनिकेतन है (पीठ निकेतन का अर्थ है—घर और उसमें बैठने का स्थान अर्थात् सिंहासन) श्री ललिता परमेश्वरी देवी की जो अत्यन्त प्रिय संगीतयोगिनी कही गयी हैं, वही प्रथम पर्व उसकी निवास भूमि है, जो कि श्री ललिता देवी की मन्त्रिणी है।।६२-६२½।। इसके बाद रथोत्तम गेयचक्र में द्वितीय पर्व में स्थित रति, प्रीति और मनोजा वीणा और धनुष हाथ में लिये हुए स्थित हैं और वे तीनों देवियां तमाल वृक्ष के समान श्यामल आकार की हैं तथा दानवों का नाश करने में समर्थ हैं।।६२½-६४।। तृतीय पर्व में बैठे हुए, मन में पैदा होने वाले अर्थात् कामदेव के बाण देवता हैं तथा द्राविणी, शोषिणी, बन्धिनी, मोहिनी और उन्मादिनी ये पाँच देवियां चमकता हुआ धनुष हाथ में लिये हुए हैं। वहाँ पर्व के नीचे महापराक्रमी-कामराज, कन्दर्प, मन्मथ, मकरध्वज और मनोभव ये पांच तीनों लोकों को मोहित करने वाले काम देवता हैं।।६५-६७।। इन पाँचों के मस्तक पर कस्तूरी का तिलक लगा हुआ है, जो बहुत अधिक उल्लास पैदा कर रहा है और कण्ठों में मुक्ता सुशोभित है। ये सभी देव कवच से ढकी हुए और पलाशपत्र के समान

पंचकामा इमे प्रोक्ता भंडासुरवधार्थिनः। जेयचक्ररथेंद्रस्य चतुर्थं पर्व संश्रिताः॥६९॥
ब्रह्मीमुख्यास्तु पूर्वोक्ताश्चंडिका त्वष्टमी परा। तत्र पर्वण्यधस्ताच्च लक्ष्मीश्चैव सरस्वती॥७०॥
रतिः प्रीतिः कीर्तिशांती पुष्टिस्तुष्टिश्च शक्तयः।
एताश्च क्रोधरक्ताक्ष्यो दैत्यं हंतुं महाबलम्॥७१॥
कुंतचक्रधराः प्रोक्ताः कुमार्यः कुंभसंभव। पंचमं पर्व संप्राप्ता वामाद्याः षोडशापराः॥७२॥
गीतिं चक्रू रथेंद्रस्य तासां नामानि मच्छृणु।
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च शांतिः श्रद्धा सरस्वती॥७३॥
श्रीभूशक्तिश्च लक्ष्मीश्च सृष्टिश्चैव तु मोहिनी।
तथा प्रमाथिनी चाश्वसिनी वीचिस्तथैव च॥७४॥
विद्युन्मालिन्यथ सुरानंदाथो नागबुद्धिका। एतास्तु कुरविंदाभा जगत्क्षोभणलंपटाः॥७५॥
महासरसमन्नाहमादधानाः पदेपदे। वज्रकंकटसंछन्ना अट्टहासोज्ज्वलाः परे।
वज्रदंडौ शतघ्नीं च संबिभ्राणा भुशुंडिकाः॥७६॥
अथ गीतिरथेन्द्रस्य षष्ठं पर्व समाश्रिताः। असितांगप्रभृतयो भैरवाः शस्त्रभीषण॥७७॥
त्रिशिखं पानपात्रं च बिभ्राणा नीलवर्चसः। असितांगो रुरुश्चंडः क्रोध उन्मत्तभैरवः॥७८॥
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्ट भैरवाः। अथ गीतिरथेंद्रस्य सप्तमं पर्व संश्रिताः॥७९॥

कान्तिवाले हैं। भण्डासुर का वध करने की इच्छा रखने वाली ये देव पञ्चकाम कहे जाते हैं अर्थात् ये पाँचों काम देवता हैं।।६८-६८½।। जेयचक्ररथेन्द्र के चौथे पर्व (भाग) में ब्राह्मीमुखी स्थित हैं। जो पूर्व में चण्डिका कही गयी हैं, वही अष्टमी परा हैं। उस पर्व के नीचे १. लक्ष्मी, २. सरस्वती, ३. रति, ४. प्रीति, ५. कीर्ति, ६. शान्ति, ७. पुष्टि और ८. तुष्टि शक्तियां स्थित हैं और ये सभी महाबलवान् दैत्य को मारने के लिये क्रोध से लाल-लाल आँखें किये हुई हैं। भगवान् हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य जी ये सब कुमारियां भाले और चक्र धारण करने वाली कही गयी हैं।।६८½-७१½।।

पाँचवे पर्व में वामा आदि सोलह अपरा देवियां सम्यक् रूप से प्राप्त हैं, जिन्होंने रथराज को गीति बनाया, उनके नामों को सुनिये, उनके नाम हैं—१. वामा, २. ज्येष्ठा, ३. रौद्री, ४. शान्ति, ५. श्रद्धा, ६. सरस्वती, ७. श्रीभूशक्ति, ८. लक्ष्मी, ९. सृष्टि, १०. मोहिनी, ११. प्रमाथिनी, १२. अश्विसिनी, १३. वीचि, १४. विद्यन्मालिनी, १५. सुरानन्दा और १६. नागबुद्धिका। ये सभी लालमणिके समान आभा वाली हैं और संसार में क्षोभ (हाहाकार) मचाने में लम्पट हैं। जो महान् सरोवर के समान पद पद पर जाल (फंदा) बनाये हुई हैं तथा सभी वज्रकवच पहने हुए हैं और अट्टहास कर रही हैं। वे अपने हाथों में वज्र और दण्ड और सौ को मारने वाली बन्दूक तथा घूम-घूम कर मारने वाली बन्दूक लिये हुए हैं।।७१½-७६।। इसके बाद गीतिरथराज के छठे पर्व में असिताङ्ग आदि भीषणशस्त्रधारी भैरव समाश्रित हैं। जो त्रिशिख (त्रिशूल) पानपात्र और नीलवस्त्र धारण किये हुए हैं, इनके नाम हैं—१. असिताङ्ग, २. रुरु, ३. चण्ड, ४. क्रोध, ५. उन्मत्त, ६. कपाली, ७. भीषण और ८. संहार, इस

मातंगी सिद्धलक्ष्मीश्च महामातंगिकापि च। महती सिद्धलक्ष्मीश्च शोणा बाणधनुधरा:॥८०॥
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्गणपः क्षेत्रपस्तथा। दुर्गांबा बटुकश्चैव सर्वे ते शस्त्रपाणय:॥८१॥
तत्रैव पर्वणोऽधस्ताल्लक्ष्मीश्चैव सरस्वती। शंखः पद्मो निधिश्चैव ते सर्वे शस्त्रपाणय:॥८२॥
लोकद्विषं प्रति क्रुद्धा भंडं चंडपराक्रमम्। शक्रादयश्च विष्ण्वंता दश दिक्चक्रनायका:॥८३॥
शक्तिरूपास्तत्र पर्वण्यधस्तात्कृतसंश्रया:। वज्रे शक्तिं कालदंडमसिं पाशं ध्वजं तथा॥८४॥
गदां त्रिशूलं दर्भास्त्रं वज्रं च दधतस्त्वमी। सेवंते मंत्रिनाथां तां नित्यं भक्तिसमन्विता:॥८५॥
भंडासुरान्दुर्दुरूढान्निहंतुं विश्वकंटकान्। मंत्रिनाथाश्रयद्वारा ललिताज्ञापनोत्सुका:॥८६॥
गीतिचक्ररथोपांते दिक्पाला: संश्रयं ददु:। सर्वेषां चैव देवानां मंत्रिणी द्वारतः कृता॥८७॥
विज्ञापना महादेव्याः कार्यसिद्धिं प्रयच्छति। राक्षी विज्ञापना चेति प्रधानद्वारतः कृता॥८८॥

यथा खलु फलप्राप्तिः सेवकानां हि जायते।
अन्यथा कथमेतेषां सामर्थ्यं ज्वलितौजस:॥८९॥

अपधृष्यप्रभावाया: श्रीदेव्या उपसर्पणे। सा हि संगीतविद्येति श्रीदेव्या अतिवल्लभा॥९०॥

नातिलंघंति च क्वापि तदुक्तं कार्यसिद्धिषु।
श्रीदेव्याः शक्तिसाम्राज्ये सर्वकर्माणि मंत्रिणी॥९१॥

प्रकार ये आठ भैरव हैं।।७७-७८½।। इसके बाद गीति रथराज के सातवें पर्व में मातंगी, सिद्धलक्ष्मी और महामातङ्गिका सम्यक् प्रकार से स्थित है। वे महती सिद्धलक्ष्मी हैं। लालवर्ण की है तथा बाण और धनुष धारण की हुई हैं।।७८½-८०।। उसी पर्व के नीचे गणपाल और क्षेत्रपाल स्थित हैं तथा दुर्गाम्बा और बटुक है तथा ये सभी हाथों में शस्त्र लिये हुये हैं।।८१।। उसी पर्व के नीचे लक्ष्मी और सरस्वती हैं। शंख, पद्म और निधि हैं, वे सभी हाथों में शस्त्र धारण किये हुए हैं।।८२।। वे सभी संसार से द्वेष करने वाला, भयंकर पराक्रमी भण्डासुर के प्रति क्रोधित हैं। इसके अतिरिक्त इन्द्र आदि देवता विष्णु तक दश दिशाओं के अधिपति शक्तिरूप से उस पर्व के नीचे अपना निवास बनाये हुए हैं तथा सभी वज्र, शक्ति, कालदण्ड, तलवार, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, दर्भास्त्र, वज्र को धारण किये नित्य भक्ति से युक्त होकर मन्त्रिनाथा की सेवा कर रहे हैं। वे सब अत्यन्त दुरूढ विश्व के लिय कांटा बने हुए भण्डासुर को मारने के लिये मन्त्रिनाथ द्वारा ललिता देवी की घोषणा सुनने के लिये उत्सुक थे।।८३-८६।। गीतिचक्ररथ के उपान्त में दिक्पाल आवास दे रहे हैं। सब देवताओं के द्वारा बनायी गयी मन्त्रिणी विज्ञापना महादेवी ललिता परमेश्वरी की कार्यसिद्धि प्रदान करती हैं। राक्षी और विज्ञापना प्रधानद्वार पर स्थित की गयीं।।८७-८८।। जिस प्रकार फल की प्राप्ति सेवकों की होती है अर्थात् सेवकों के बल पर ही सफलता मिलती है। सेवकों के विना सफलता मिल ही नहीं सकती। प्रदीप्त पराक्रम वाले की सामर्थ्य सेवक ही है।।८९।।

जिनका प्रभाव कभी नष्ट नहीं हो सकता ऐसी श्री ललिता देवी के पास जाने पर वह जो श्री ललिता देवी की अत्यन्त प्रिय संगीत विद्या है, वह उन देवी को कहे गये कार्य का किसी भी कार्य की सिद्ध में उल्लंघन नहीं करती थी। उन श्रीदेवी के शक्ति साम्राज्य में मन्त्रिणी विज्ञापना सर्वकामों को जो नहीं करने को होते थे। उनको कर

अकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं कर्त्तुं चैव प्रगल्भते। तस्मात्सर्वेऽपि दिक्पालाः श्रीदेव्या जयकांक्षिणः।
तस्याः प्रधानभूतायाः सेवामेव वितन्वते॥९२॥
इति श्रीललितादेव्याश्चक्रराजरथोत्तमे। पर्वस्थितानां देवीनां नामानि कथितान्यलम्॥९३॥
भंडासुरस्य संहारे तस्या दिव्ययुधान्यपि। प्रोक्तानि गेयचक्रस्य पर्वदेव्याश्च कीर्तिताः॥९४॥
इमानि सर्वदेवीनां नामान्याकर्णयंति ये। सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते स्युर्विजयिनो नराः॥९५॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने श्रीचक्रराजरथज्ञेयचक्ररथ-पर्वस्थदेवतानामप्रकाशनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

देती थी तथा जो करने को होते थे, उनको बहुत अच्छी तरह कुशलता पूर्वक करती थीं। अर्थात् जिस काम को करने के लिए नहीं कहा गया है तथा उसको करना है, उसे कर देती थी तथा करने को कहे गये कार्य को तो बहुत अच्छी तरह करती थी। उसी कारण से सभी दिक्पाल श्री ललिता देवी की जय की आकांक्षा रखते थे और उस प्रधानभूत देवी श्रीललिता परमेश्वरी की सेवा में ही लगे रहते थे।।९०-९२।। इस प्रकार श्री ललिता परमेश्वरी के श्री चक्रराज नाम उत्तम रथ में पर्वों में स्थित देवियों के समस्त नामों को कहा गया है।।९३।। भण्डासुर के संग्राम में उस देवी के दिव्य आयुधों को भी बता दिया गया है तथा गेय चक्र की पर्व देवियों की भो बता दिया गया है।।९४।। इन सब देवियों के नामों को जो सुनते हैं, वे मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर विजयी होते हैं।।९५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में १९वाँ अध्याय श्रीचक्रराजरथ तथा ज्ञेयचक्रपर्वस्थ देवतानामों का प्रकाशन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

किरिचक्ररथदेवताप्रकाशनं नाम

विंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

किरिचक्ररथेन्द्रस्य पंचपर्वसमाश्रिताः। देवताश्च शृणु प्राज्ञ नाम यच्छृण्वतां जयः॥१॥
प्रथमं पर्वबिंद्वाख्यं संप्राप्ता दंडनायिका। सा तत्र जगदुद्दंडकण्टकव्रातघस्मरी॥२॥
नानाविधाभिर्ज्वालाभिर्निर्तयंती जयश्रियम्॥३॥
उद्दण्डपोत्र निर्घातनिर्भिन्नोद्धतदानवाः। दंष्ट्राबालमृगांकांशुविभावनविभावरी॥४॥
प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहनीलवपुर्लता। किरिचक्ररथेंद्रस्य सालंकारायते सदा।
पोत्रिणी पुत्रिताशेषविश्वावर्तकदंबिका॥५॥
तस्यैव रथनाभस्य द्वितीयं पर्व संश्रिताः। जृंभिनी मोहिनी चैव स्तंभिनी तिस्र एव हि।
उत्फुल्लदाडिमीप्रख्यं सर्वदानवमर्दनाः॥६॥
मुसलं च हलं हालापात्रं मणिगणार्पितम्। ज्वलन्माणिक्यवलयैर्बिभ्राणाः पाणिपल्लवैः॥७॥
अतितीक्ष्णकरालाक्ष्यो ज्वालाभिर्दैत्यसैनिकान्। दहंत्य इव निःशंकं सेवंते सूकराननाम्॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२०

किरिचक्ररथ में देवियों के नामों का वर्णन

हयग्रीव ने कहा कि हे प्राज्ञ अगस्त्य जी! अब किरिचक्ररथराज के पंच पर्व में आश्रित सुनने वालों को जय प्रदान करने वाली देवियों के नाम सुनिये।।१।। प्रथम पर्व बिन्दु नामक है, जिसको दण्डनायिका ने प्राप्त कर लिया है। वहाँ पर वह संसारके उद्दण्ड कण्टकसमूह को नष्ट करने वाली है।।२।। वह अनेकों प्रकार की ज्वालाओं से विजय श्री के लिये नृत्य करती हुई स्थित हैं। जो वज्र के प्रहार से उद्वत दानवों को नष्ट करने वाली और बालचन्द्रमा की किरणों से सुन्दर रात्रि के समान दाँतों वाली हैं तथा जिसका शरीर वर्षाकालीन मेघों के घेरे के समान नीलवर्ण का है। वह किरिचक्ररथ राज की सदा शोभा बढ़ाती है। वह वज्र धारण करने वाले पुत्रिता शेष विश्व के आवर्त समूह वाली है।।३-५।।

उसी रथ की नाभ के द्वितीय भाग में जृम्भिनी, मोहिनी और स्तम्भिनी तीन देवियां स्थित हैं। जो खिले हुए अनार के समान चमकने वाली हैं तथा सब दानवों का मर्दन करने वाली हैं। वे देवियां चमकते माणिक्य जटित कंगल पहने हुये हाथों में मूसल हल, हालापात्र (मदिरा का प्याला) और मणियों को धारण किये हुए हैं।।६-७।। उन देवियों की अत्यन्त तीक्ष्ण और कराल आँखें हैं, जो अपनी ज्वालाओं से दैत्य सैनिकों को जलाती हुई के समान निःशंक

किरिचक्ररथेंद्रस्य तृतीयं पर्व संश्रिताः। अंधिन्याद्याः पञ्च देव्यो देवीयंत्रकृतास्पदाः॥९॥
कठोरेणाट्टहासेन भिंदंत्यो भुवनत्रयम्। ज्वाला इव तु कल्पाग्नेरंगनावेषमाश्रिताः॥१०॥
भंडासुरस्य सर्वेषां सैन्यानां रुधिरप्लुतिम्।
लिलिक्षमाणा जिह्वाभिर्लेलिहानाभिरुज्ज्वलाः॥११॥
सेवंते सततं दंडनाथामुद्दण्डविक्रमाम्। किरिचक्ररथेन्द्रस्य चतुर्थं पर्व संश्रिताः॥१२॥
ब्रह्माद्याः पञ्चमीवर्ज्या अष्टमीवर्जिता अपि।
षडेव देव्यः षट्चक्रज्वलज्ज्वालाकलेवराः॥१३॥
महता विक्रमौघेण पिबंत्य इव दानवान्। आज्ञया दंडनाथायास्तं प्रदेशमुपासते॥१४॥
तस्यैव पर्वणोऽधस्तात्त्वरिताः स्थानमाश्रिताः।
यक्षिणी शंखिनी चैव लाकिनी हाकिनी तथा॥१५॥
शाकिनी डाकिनी चैव तासामैक्यस्वरूपिणी। हाकिनी सप्तमीत्येताश्चंडदोर्दंडविक्रमाः॥१६॥
पिबंत्य इव भूतानि पिबंत्य इव मेदिनीम्।
त्वचं रक्तं तथा मांसे मेदोऽस्थि च विरोधिनाम्॥१७॥
मज्जानमथ शुक्रं च पिबन्त्यो विकटाननाः। निष्ठुरैः सिंहनदैश्च पूरयंत्यो दिशो दश॥१८॥
धातुनाथा इति प्रोक्ता अणिमाद्यष्टासिद्धिदाः। मोहने मारणे चैव स्तंभने ताडने तथा॥१९॥

होकर सूकरानना (वाराही) देवी की सेवा करती है।।८।। किरिचक्ररथराज के तीसरे पर्व पर अंधिनी आदि पाँच देवियां स्थित हैं, जो देवीयन्त्र के बने हुए स्थान वाली हैं।।९।। वे कठोर अट्टहास से तीनों लोकों का भेदन करती हुई प्रलयकाल की अग्नि की ज्वाला के समान शरीर का वेष बनाकर स्थित हैं।।१०।। वे भण्डासुर के समस्त सैनिकों के रुधिर को पीने की इच्छा करती हुई अपनी जीभ को लपलपाती हुई चमक रही हैं। जो सब निरन्तर दण्डनाथा देवी के उद्दण्ड पराक्रम की सेवा करती हैं।।११-११½।। किरिचक्ररथराज के चौथे पर्व में ब्रह्म आदि पञ्चमी को छोड़कर और अष्टमी को भी छोड़कर छः ही देवियाँ, षट्चक्र को जलती हुई ज्वाला के समान शरीर वाली हैं।।११½-१३।। वे अपने महान् पराक्रमों से दानवों का रुधिर पीती हुई दण्डनाथा देवी की आज्ञा से उस स्थान में रहती हैं।।१४।। उस पर्व के नीचे त्वरिता देवी का स्थान बनाया है। यक्षिणी, शंखिनी, लाकिनी, हाकिनी, शाकिनी और डाकिनी उन देवियों की एकता के स्वरूप वाली हैं अर्थात् सब त्वरिता देवी के ही रूप वाली हैं। हाकिनी सातवीं देवी हैं, ये सब भयंकर भुजाओं वाली पराक्रमयुक्त देवियां हैं।।१५-१६।।

ये सब देवियां ऐसी लगती हैं, मानों कि प्राणियों तथा पृथ्वी जल अग्नि वायु एवं आकाश समस्त भूततत्त्वों को पी रही हैं अथवा मानो कि पृथ्वी को ही पी रही हैं तथा ये मानों कि शत्रुओं की चमड़ी, रुधिर, मांस, चर्बी, हड्डियों, मज्जा और शुक्र को ही पी जा रही हैं। ये भयंकर मुखवाली देवियां निष्ठुर सिंहनादों से दशों दिशाओं को व्याप्त कर रही हैं।।१७-१८।। वे देवियां धातुनाथा कही गयी हैं तथा वे अणिमा आदि सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं। वे दुष्ट दैत्यों का मोहन करने, उनका मारण करने, उनको जहाँ के तहाँ रोकने, उनका ताडन करने तथा

भक्षणे दुष्टदैत्यानामामूलं च निकृन्तने। पंडिताः खंडिताशेषविपदो भक्तिशालिषु॥२०॥
धातुनाथा इति प्रोक्ताः सर्वधातुषु संस्थिताः। सप्तापि वारिधीनूर्मिमालासंचुंबितांबरान्॥२१॥
क्षणार्धेनैव निष्पातुं निष्पन्नबहुसाहसाः। शकटाकारदन्ताश्च भयंकरविलोचनाः॥२२॥
स्वस्वामिनीद्रोहकृतां स्वकीयसमयद्रुहाम्। वैदिकद्रोहणादेव द्रोहिणां वीरवैरिणाम्॥२३॥
यज्ञद्रोहकृतां दुष्टदैत्यानां भक्षणे समाः। नित्यमेव च सेवन्तो पोत्रिणीं दंडनायिकाम्॥२४॥
तस्यैव पर्वणः पार्श्वे द्वितीये दिव्यमंदिरे। क्रोधिनी स्तंभिनी ख्याते वर्तते देवते उभे॥२५॥
चामरे वीजयन्त्यौ च लोलकंकणदोर्लते। देवद्विषां चमू रक्तहालापानमहोद्धते॥२६॥
सदा विघूर्णमानाक्ष्यौ सदा प्रहसितानने। अथ तस्य रथेंद्रस्य किरिचक्राश्रितस्य च॥२७॥
पार्श्वद्वयकृतावासमायुधद्वंद्वमुत्तमम्। हलं च मुसलं चैव देवतारूपमास्थितम्॥२८॥
स्वकीयमुकुटस्थाने स्वकीयायुधविग्रहम्। आविभ्राणं जगद्वेषिधस्मरं विबुधैः स्मृतम्॥२९॥
एतदायुधयुग्मेन ललिता दंडनायिका। खण्डयिष्यति संग्रामं विषंगं नामदानहम्॥३०॥
तस्यैव पर्वणो दण्डनाथाया अग्रसीमनि। वर्त्तमानो महाभीमः सिंहो नादैर्ध्वनन्नमः॥३१॥
दंष्ट्राकटकटात्कार बधिरीकृतदिङ्मुखः। चंडोच्चंड इति ख्यातश्चतुर्हस्तस्त्रिलोचनः॥३२॥

दैत्यों का भक्षण करने में कुशल हैं। यहाँ तक कि दैत्यों का समूल विनाश करने में पण्डित (कुशल) हैं तथा भक्ति करने वाले लोगों की समस्त विपत्तियों को खण्डित करने वाली हैं।।२०।। इसीलिये ये देवियां धातुनाथा कही गयी हैं; क्योंकि ये सब धातुओं में स्थित हैं। प्राणियों के रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य इन सातों धातुओं में ये स्थित हैं; इसीलिये इनको धातुनाथा कहा गया है। ये सब सातों समुद्रों की लहरों की मालाओं से आकाश को चूमने वाली हैं और आधे क्षण में ही नीचे गिराने को पूर्ण और बहुत अधिक साहस रखने वाली हैं। वे सब शकट (गाड़ी) के समान आकार वाले दाँतों वाली और भयंकर आँखों वाली हैं।।२१-२२।। वे अपनी स्वामिनी से द्रोह करने वाले, अपने समय से द्रोह करने वाले, वैदिक नियमों से द्रोह करने वाले तथा वीरशत्रुओं और यज्ञ से द्रोह करने वाले दुष्ट दैत्यों का भक्षण करने में समर्थ नित्य ही वज्रधारण करने वाली दण्डनायिका की सेवा करती हैं।।२३-२४।।

उसी पर्व के पास में दूसरे दिव्य मन्दिर में क्रोधिनी और ख्यातिनी दो देवियां हैं।।२५।। जो हिलते हुये कंगन वाली भुजाओं से चामर ढुलाती हुई, देवता से द्वेष करने वाले दैत्यों के रक्तरूपी मद्य का पान कर महा उद्धत स्वभाव वाली हैं तथा जो सदा अपनी आँखों को इधर उधर घुमाती हुई तथा हँसती हुई अपने आसन पर विराजमान रहती हैं।।२६-२६½।। इसके बाद उस किरिचक्र पर आश्रित रथराज के दोनों पाश्व में (अगल-बगल में) रहने वाले दो उत्तम आयुध हल और मूसल देवता रूप में स्थित हैं।।२६½-२८।। अपने मुकुट के स्थान पर, संसार के शत्रुओं के दावानल अपने ही आयुध रूप शरीर को धारण करने वाला धस्मर आयुध देवताओं द्वारा स्मरण किया गया है।।२९।। इन दोनों आयुधों हल और मुसल से दण्डनायिका ललिता संग्राम में विषंग नामक दानव को खण्ड-खण्ड कर देगी।।३०।। उसी पर्व की आगे वाली सीमा में दण्डनाथा देवी का महाभीम सिंह वर्तमान हैं, जो अपनी दहाड़ से आकाश को व्याप्त कर रहा है, जो अपने दाँतों की कटकटाहट ध्वनि से दिशाओं को बहरा बना दे रहा

शूलखड्गप्रेतपाशान्दधानो दीप्तविग्रहः। सदा संसेवते देवीं पश्यन्नेव हि पोत्रिणीम्॥३३॥
किरिचक्ररथेंद्रस्य षष्ठं पर्वसमाश्रिताः। वार्त्ताल्याद्या अष्ट देव्यो दिक्ष्वष्टासूपविश्रुताः॥३४॥
अष्टपर्वतनिष्पातघोरनिर्घातनिःस्वनाः। अष्टनागस्फुरद्भूषा अनष्टबलतेजसः॥३५॥
प्रकृष्टदोषप्रकांडोष्महुतदानवकोटयः। सेवन्ते ललितां देव्यो दंडनाथामहर्निशम्॥३६॥
तासामाख्याश्च विख्याताः समाकर्णय कुंभज।
वार्ताली चैव वाराही सा वाराहमुखी परा॥३७॥
अंधिनी रोधिनी चैव जृंभिणी चैव मोहिनी। स्तंभिनीति रिपुक्षोभस्तंभनोच्चाटनक्षमाः॥३८॥
तासा च पर्वणो वामभागे सततसंस्थितिः। दंडाथोपवाह्यस्तु कासरो धूसराकृतिः॥३९॥
अर्धक्रोशायतः शृङ्गद्वितये क्रोशविग्रहः। खड्वन्निष्ठुरैर्लोमजातैः संवृतविग्रहः॥४०॥
कालदंडवदुच्चंडबालकांडभयंकरः। नीलांजनाचलप्रख्यो विकटोन्नतरुष्टभूः॥४१॥
महानीलागिरिश्रेष्ठगरिष्ठस्कंधमंडलः। प्रभूतोष्मलनिश्वासप्रसराकंपितांबुधिः॥४२॥
घर्घरध्वनिना कालमहिषं विहसन्निव। वर्त्तते खुरविक्षिप्तपुष्कलावर्तवारिदः॥४३॥
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताच्चित्रस्थानकृतालयाः। इन्द्रादयोऽनेकभेदा दिशामष्टकदेवताः॥४४॥

है। चार हाथ और तीन नेत्रों वाला अत्यन्त प्रचण्ड चण्डनाम का प्रेत, शूल, खड्ग, और प्रेतपाश को धारण करने वाला, सदा वज्र धारण करने वाली वाराही देवी को देखता हुआ, उनकी सेवा करता है।।३१-३३।। किरिचक्ररथ राज के छठे भाग में वार्ताली आदि आठ देवियां हैं, जो आठों दिशाओं में व्याप्त हैं तथा जो आठ पर्वतों के गिरने से घोर टकराने की ध्वनि वाली, फुत्कार मारते हुए आठ भयंकर नागों की वेश-भूषा वाली जिनका बल और तेज नष्ट नहीं हुआ है, ऐसी बहुत लम्बी भुजाओं की प्रचण्ड अग्नि में करोड़ों दानवों को आहूत करने वाली आठ देवियां दण्डनाथा ललिता देवी की रात-दिन सेवा करती हैं।।३४-३६।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य जी उन आठ विख्यात देवियों के नामों को सुनिये वे हैं—१. वार्ताली, २. वाराही, ३. वाराहमुखी, ४. अंधिनी, ५. रोधिनी, ६. जृम्भिणी, ७. मोहिनी, और ८. स्तमभिनी। ये सभी शत्रुओं में क्षोभ (हाहाकार) और उनका स्तम्भन तथा उच्चाटन करने में समर्थ हैं।।३७-३८।। पर्व के वामभाग में उन देवियों की नित्य स्थिति रहती है। दण्डनाथा के पास में बाहरी ओर धूसर (धुंधली) आकृति का एक भैंसा है।।३९।। उस भैंसे के सींग आधेकोश तक लम्बे हैं और उसका शरीर एक कोश लम्बा है। उसके शरीर के बाल लोहे के समान कठोर हैं।।४०।। वह कालदण्ड के समान है तथा उच्चण्डबाल जिसके अंग अंग पर हैं। जिसकी नीलाञ्जन पर्वत के समान विकट और उठी हुई क्रुद्ध भौंहें हैं।।४१।। महान् नीलगिरि के समान श्रेष्ठ और विशाल उसके कंधे हैं। बहुत अधिक शरीर की ऊष्मा से जो उसकी श्वास निकल रही है, वह फैलकर समुद्र को भी कम्पित कर रही है।।४२।। वह भैंसा अपने गले की घर्घर ध्वनि से यमराज के भैंसे को भी हँसी उड़ता हुआ सा दिखायी दे रहा है। वह जब अपने खुरों से जमीन खोदता है, तब वह पुष्कल और आवर्तक मेघों जैसा भयंकर लगता है।।४३।। उसी पर्व के नीचे से चित्रस्थान कृत (अनेकों प्रकार के चित्रों से युक्त) घर हैं, जिनमें इन्द्र आदि अनेक

ललितायां कार्यसिद्धिं विज्ञापयितुमागताः। इन्द्रश्चाप्सरसश्चैव स चतुष्षष्टिकोटयः॥४५॥
सिद्ध अग्निश्च साध्याश्च विश्वेदेवास्तथापरे। विश्वकर्मा मयश्चैव मातरश्च बलोन्नताः॥४६॥
रुद्राश्च परिचाराश्च रुद्रा वैव पिशाचकाः। क्रंदंति रक्षसां नाथा राक्षसा बहवस्तथा॥४७॥
मित्राश्च तत्र गंधर्वाः सदा गानविशारदाः। विश्वावसुप्रभृतयो विख्यातास्तत्पुरोगमाः॥४८॥
तथा भूतगणाश्चान्ये वरुणो वासवः परे। विद्याधराः किन्नराश्च मारुतेश्वर एव च॥४९॥
तथा चित्ररथश्चैव रथकारककारकाः । तुंबुरुर्नारदो यक्षः सोमो यक्षेश्वरस्तथा॥५०॥
देवैश्च भगवांस्तत्र गोविंदः कमलापतिः। ईशानश्च जगच्चक्रभक्षकः शूल भीषणः॥५१॥
ब्रह्मा चैवाश्विनीपुत्रो वैद्यविद्याविशारदौ। धन्वंतरिश्च भगवानथान्ये गणनायकाः॥५२॥
कटकाण्डगलह्वान संतर्पितमधुव्रताः। अनंतो वासुकिस्तक्षः कर्कोटः पद्म एव च॥५३॥
महापद्मः शंखपालो गुलिकः सुबलस्तथा। एते नागेश्वराश्चैव नागकोटिभिरावृताः॥५४॥
एवंप्रकारा बहवो देवतास्तत्र जाग्रति। पूर्वादिदिशमारभ्य परितः कृतमंदिराः॥५५॥
तत्रैव देवताश्चक्रे चक्राकार मरुद्विष्यः। आश्रित्य किल वर्तंते तदधिष्ठातृदेवताः॥५६॥

जृंभिणी स्तंभिनी चैव मोहिनी तिस्त्र एव च।
तस्यैव पर्वणः प्रांते किरिचक्रस्य भास्वतः॥५७॥

कपालं च गदां बिभ्रदूर्ध्वकेशो महावपुः। पातालतलजंबालबहुलाकारककालिमा॥५८॥

भेद वाले आठ दिशाओं के देवता हैं। जो सब ललिता देवी के कार्य की सिद्धि के बताने के लिये आये हैं।।४४-४४½।। वह इन्द्र और अप्सरायें, चौसठ करोड़ सिद्धगण।।४४½-४५।। तथा अग्नि देव साध्यगण विश्वेदेव, विश्वकर्मा, मयदानव, बलवती मातायें भी हैं।।४६।। रुद्रगण, परिचारकगण, रुद्रगण, पिशाच राक्षसों स्वामी तथा बहुत से राक्षस क्रन्दन कर रहे हैं।।४७।। तथा मित्रगण, वहाँ गान विद्या में विशारद गन्धर्व, विश्वावसु आदि विख्यात पुरोगम (पुरोहित) भी आये हुए हैं।।४८।। तथा भूतगण, वरुण, दूसरे इन्द्र, विद्याधर, किन्नर, मारुतेश्वर भी है, आये हुए हैं।।४९।। तथा चित्ररथ, रथकारक, तुम्बरु, नारदमुनि, यक्ष, सोम, यक्षेश्वर।।५०।। तथा देवताओं के साथ भगवान् गोविन्द कमलापति विष्णु, ईशान संसार चक्र के भक्षक भीषण शूल वाले शिव।।५१।। ब्रह्मा, वैद्य विशारद अश्विनी कुमार भगवान् धन्वन्तरि तथा अन्य गणनायक।।५२।।

हाथी के गण्डस्थल से बहने वाले मधु का पान करने वाले भौंरे, अनन्त नाग वासुकि, तक्षक, कर्कोट, पद्म नामक नाग, महापद्म, शंखपाल, गुलिक तथा सुबल ये सब नागों के स्वामी जो अनेकों नागों से घिरे हुए थे, इस प्रकार के बहुत से देवता, वहाँ पर जागते रहते हैं, जो पूर्व दिशा से आरम्भ करके चारों ओर अपने घर बनाये हुए हैं।।५३-५५।। वहीं पर मरुत् देवताओं ने दिशाओं को चक्राकार कर दिया है। उन चक्रों का आश्रय लेकर वहाँ की स्वामिनी तीन देवियां जृम्भिणी, स्तम्भिनी और मोहिनी वहाँ पर वर्तमान हैं।।५६-५६½।। चमकते हुए किरिचक्र से उसी पर्व के प्रान्त भाग में कपाल (नरमुण्डों) और गदा को धारण करने वाले, ऊपर के केशवाले, विशाल शरीर वाले, पाताल तल कीचड़ के बहुल आकार की कालिमा जैसे तथा अपने अट्टहास रूपी महाव्रज से

अट्टहासमहावज्रदीर्णब्रह्माण्डमंडलः। भिंदन्डमरुकध्वानै रोदसीकंदरोदरम्॥५९॥
फूत्कारीत्रिपुरायुक्तं फणिपाशं करे वहन्। क्षेत्रपालः सदा भाति सेवमानः किटीश्वरीम्॥६०॥
तस्यैव च समीपस्थस्तस्या वाहनकेसरी। यमारुह्य प्रववृते भंडासुरवधैषिणी॥६१॥
प्रागुक्तमेव देवेशीवाहसिंहस्य लक्षणम्। तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्दंडनाथासमत्विषः॥६२॥
दंडिनीसदृशाशेषभूषणायुधमंडिताः। शम्याः क्रोडाननाश्चंद्ररेखोत्तंसितकुंतलाः॥६३॥
हलं च मुसलं हस्ते घूर्णयंत्यो मुहुर्मुहुः। ललिताद्रोहिणां श्यामाद्रोहिणां स्वामिनीद्रुहाम्॥६४॥
रक्तस्त्रोतोभिरुत्कूलैः पूरयंत्यः कपालकम्। निजभक्तद्रोहकृता मंत्रमालाविभूषणाः॥६५॥
स्वगोष्ठीसमयाक्षेपकारिणां मुंडमंडलैः। अखंडरक्तविच्छर्दैर्बिभ्रत्यो वक्षसि स्त्रजः॥६६॥
सहस्त्रं देवताः प्रोक्ताः सेवमानाः किटीश्वरीम्॥६७॥
तासां नामानि सर्वासां दंडिन्या; कुंभसंभव। सहस्त्रनामाध्याये तु वक्ष्यंते नाधुना पुनः॥६८॥
अथ तासां देवतानां कोलास्यानां समीपतः।
वाहनं कृष्णसारंगो दंडिन्याः समये स्थितः॥६९॥
क्रोशार्धार्द्धायतः श्रृंगे तदर्धार्धायत्रो मुखे। क्रोशप्रमाणपादश्च सदा चोद्धतवालधिः॥७०॥
उदरे धवलच्छायो हुंकारेण महीयसा। हसन्मारुतवाहस्य हरिणस्य पराक्रमम्॥७१॥

ब्रह्माण्डमल को विदीर्ण कर देने वाले, जोर से बजाते हुए डमरू की ध्वनियों से आकाश और पृथ्वी को कन्दरा (गुफा) और उदर बनाने वाले, तीनों लोकों में फूत्कार करने वाले, नागपाश को हाथ में लिये हुए क्षेत्रपाल, उन किटीश्वरी देवी की सेवा करते हुए सदैव शोभित होते हैं।।५८½-६०।। उसी के पास उन ललिता देवी का वाहन सिंह स्थित है, जिस पर चढ़कर भण्डासुर के वध की इच्छा रखने वाली महादेवी अपने वधरूप कार्य में प्रवृत्त होती हैं।।६१।। उन देवेशी के वाहन सिंह का लक्षण तो पहले ही कह दिया गया है।।६१½।।

उसी पर्व के नीचे से दण्डनाथा के समान कान्तिवाली दण्डिनी के समान समस्त भूषण और आयुधों से सजी हुई शम्यायें, क्रोडानना, चन्द्ररेखा, ऊपर को उठे हुए केशों वाली देवियां, हाथों में हल, मुसल लेकर बार-बार इधर-उधर घूर-घूर कर देखती हुईं, ललिता देवी के द्रोहियों, श्यामा देवी के द्रोहियों और स्वामिनी के वैरियों के खींचे हुए रक्त स्रोतों से अपने कपालों को भरती हुई तथा अपने भक्तों से द्रोह करने वालों के द्वारा मन्त्रमाला विभूषण वाली अपनी गोष्ठी के समय का आक्षेप करने वालों अर्थात् अपनी सभा समाज की परम्पराओं की जो बुराई करते थे, उनके अखण्ड रक्त का विशेष छेदन कर वक्षस्थल पर मालायें धारण करने वाली देवियां, उन किटीश्वरी की सेवा करती हुई कही गयी हैं।।६१½-६७।। हे अगस्त्य मुनि! दण्डिनी की उन सब देवियों के नाम सहस्त्रनामाध्याय में बताये जायेंगे, अब यहाँ नहीं।।६८।। इसके बाद उन कौल सम्प्रदाय वाली देवियों के समीप से दण्डिनी देवी का कृष्ण सारंग नामक वाहन पास में स्थित है।।६९।। उसके सींग आधे कोश लम्बे हैं तथा उस आधे से आधे अर्थात् चौथाई कोश लम्बा उसका मुख है, एक कोश लम्बे उसके पैर हैं तथा उसका बालों को धारण करने वाला शिर सदा उठा हुआ रहता है।।७०।। उसके उदर पर श्वेत रंग की छाया है। उसकी अत्यन्त तीव्र हुंकार से हँसते हुए मारुत को वहन करने वाले हरिण का पराक्रम प्रकट होता है।।७१।।

तस्यैव पर्वणो देशे वर्त्तते वाहनोत्तमम्। किरिचक्ररथेन्द्रस्य स्थितस्तत्रैव पर्वणि॥७२॥
वर्तते मदिरासिंधुर्देवतारूपमास्थिता। माणिक्यगिरिवच्छोणं हस्ते पिशितपिंडकम्॥७३॥
दधाना घूर्णमानाक्षी हेमांभोजस्त्रगावृता। मदशक्त्या समाश्लिष्टा धृतरक्तसरोजया॥७४॥
यदा यदा भंडदैत्यः संग्रामे संप्रवर्तते। युद्धस्वेद मनुप्राप्ताः शक्तयः स्युः पिपासिताः॥७५॥
तदातदा सुरासिंधुरात्मानं बहुधा क्षिपन्। रणे खेदं देवतानामंजसापाकरिष्यति॥७६॥
तदप्यद्भुतमे वर्षे भविष्यति न संशयः। तदा श्रोष्यसि संग्रामे कथ्यमानं मया मुदा॥७७॥
तस्यैव पर्वणोऽधस्तादष्टदिक्ष्वध एव हि। उपर्यपि कृतावासा हेतुकाद्या दश स्मृताः॥७८॥
महांतो भैरवश्रेष्ठाः ख्याता विपुलविक्रमाः। उद्दीप्तायुत तेजोभिर्द्दिवा दीपितभानवः॥७९॥
कल्पांतकाले दंडिन्या आज्ञया विश्वघस्मराः। अत्युदग्रप्रकृतयो रददष्टौष्ठसंपुटाः॥८०॥
त्रिशूलाग्रविनिर्भिन्नमहावारिदमंडलाः। हेतुकस्त्रिपुरारिश्च तृतीयश्चाग्निभैरवः॥८१॥
यमजिह्वैकपादौ च तथा कालकरालकौ। भीमरूपो हाटकेशस्तथैवाचलनामवान्॥८२॥
एते दशैव विख्याता दशकोटिभटान्विताः। तस्यैव किरिचक्रस्य वर्तंते पर्वसीमनि॥८३॥

उसी पर्व स्थान में उत्तम वाहन है, जो किरिचक्ररथराज के पर्व में वहीं स्थित है।।७२।। वहाँ उस पर्व में अनेक शक्तियां हैं—जो मदिरा के समुद्र देवता के रूप में स्थित हैं। वे हाथ में माणिक्य पर्वत के समान रक्तवर्ण के मांसपिण्ड को धारण की हुई हैं तथा इधर-उधर को आँखें घुमाती हुई स्वर्णकमल की माला पहने हुई हैं तथा लाल कमल धारण किये हुए मद की शक्ति से पूरी तरह ओत-प्रोत हैं।।७३-७४।। जब जब भण्डासुर संग्राम में प्रवृत्त होता है, युद्ध में निकलने वाले पसीने से लथपथ वे शक्तियाँ प्यासी हो जाती हैं।।७५।। और फिर तब तब अपने सुरा के समुद्र को फेंकती हुई शीघ्र ही युद्ध में देवताओं की थकान को दूर कर देंगी। अर्थात् सब देवों को सुरा पिलाकर उनकी युद्ध थकान को दूर कर देंगी।।७६।। वह भी अद्भुत कार्य उस युद्ध में होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। अर्थात् वह उस वर्ष (युद्ध) में अद्भुत कार्य होगा। तब मेरे द्वारा कहे गये आख्यान को आप सानन्द सुनोगे। अर्थात् यहाँ पर हयग्रीव ने कहा कि यह सब उस समय सुनाया जायेगा, जबकि भण्डासुर से युद्ध होगा, जो वर्ष एक अद्भुत वर्ष होगा अर्थात् वह युद्ध एक अद्भुत होगा।।७७।।

उसी पर्व के नीचे आठ दिशाओं में नीचे भी और ऊपर भी आवास करने वाले अत्यन्त श्रेष्ठ और अपार पराक्रम वाले हेतुक आदि महान् और प्रसिद्ध दश भैरव हैं।।७८।। वे दश सहस्रा तेज वाले प्रकाश से प्रकाशित हैं अर्थात् व साक्षात् दिन में प्रकाशित होने वाले सूर्य हैं।।७९।। प्रलयकाल में वे दण्डिनाथा देवी की आज्ञा से विश्व को निगलने वाले हैं। वे सब अत्यन्त उग्र स्वभाव वाले तथा दांतों से ओठ काट कर बन्द मुखवाले अर्थात् वे क्रोध से दांतों से ओष्ठ काटने वाले तथा मुँह को बन्द रखने वाले हैं।।८०।। वे अपने त्रिशूल के अग्रभाग से मेघमण्डल का भी भेदन करने वाले हैं। वे हैं—१-हेतुक, २-त्रिपुरारि, ३-अग्निभैरव, ४-यमजिह्व, ५-एक पाद, ६-काल, ७-कराल, ८-भीमरूप, ९-हाटकेश और १०-अचल नाम वाले हैं।।८१-८२।। ये दश ही भैरव विख्यात भैरव हैं तथा ये सब करोड़ों अपने सैनिकों से युक्त हैं। उसी किरिचक्ररथराज के पर्व की सीमा में विद्यमान हैं।।८३।।

एवं हि दंडनाथायाः किरिचक्रस्य देवताः। जृंभिण्याद्यचलेंद्रांताः प्रोक्तास्त्रैलोक्यपावनाः॥८४॥
तत्र त्यैर्देवातवृंहैर्बहवस्तत्र संगरे। दानवा मारयिष्यंते पास्यंते रक्तवृष्टयः॥८५॥
इत्थं बहुविधत्राणं पर्वस्थैर्देवतागणैः। किरिचक्रं दंडनेत्र्या रथरत्नं चचाल ह॥८६॥
चक्रराजरथो यत्र तत्र गेयरथोत्तमः। यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्ररथोत्तमः॥८७॥
एतद्रथ त्रयं तत्र त्रैलोक्यमिव जंगमम्। शक्तिसेनासहस्रस्यांतश्चचार तदा शुभम्॥८८॥
मेरुमंदरविंध्यानां समवाय इवाभवत्। महाघोषः प्रववृते शक्तानां सैन्यमंडले।
चचाल वसुधा सर्वा तच्चक्रवदारिता॥८९॥
ललिता चक्रराजाख्या रथनाथस्य कीर्तिताः। षट्सारथय उद्दण्डपाशग्रहणकोविदाः॥९०॥
यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्ररथोत्तमम्। इति देवी प्रथमतस्तथा त्रिपुरभैरवी॥९१॥
संहारभैरवश्चान्यो रक्तयोगिनिवल्लभः। सारसः पंचमश्चैव चामुंडा च तथा परा॥९२॥
एतासु देवतास्तत्र रथसारथयः स्मृताः। गेयचक्ररथेन्द्रस्य सारथिस्तु हसंतिका॥९३॥
किरिचक्ररथेंद्रस्य स्तंभिनी सारथिः स्मृता। दशयोजनमुन्नम्रो ललितारथपुंगवः॥९४॥
सप्तयोजनमुच्छ्रायो गीतचक्ररथोत्तमः। षड्योजनसमुन्नम्रो किरिचक्ररथो मुने॥९५॥
महामुक्तातपत्रं तु दशयोजनविस्तृतम्। वर्तते ललितेशान्या रथ एव न चान्यतः॥९६॥

इस प्रकार दण्डनाथा देवी के किरिचक्र की देवियां जृम्भिणी आदि देवियां तथा अचल भैरव के अन्त तक जो कहे गये हैं, वे सब त्रैलोक्यपावन कहे गये हैं।।८४।। उन वहाँ पर उपस्थित देवीसमूहों द्वारा (शक्तियों द्वारा) बहुत से दानव मारे जायेंगे और उनके बरसते हुए रक्त पिये जायेंगे।।८५।। इस प्रकार पर्वों (भागों) में स्थित देवियों (शक्तियों) द्वारा अनेकों प्रकार से रक्षित दण्डनेत्री (दण्डनाथा) देवी का किरिचक्र नामक रथरत्न चलने लगा।।८६।। जहाँ पर चक्रराज रथ चल रहा था, वहाँ उत्तम गेयरथ भी चल रहा था तथा जहाँ गेयरथ चल रहा था, वहाँ पर उत्तम किरिचक्ररथ भी चल रहा था।।८७।। इस प्रकार जहाँ ये तीन रथ थे, वहाँ पर तीनों लोक ही चेतन रूप में उपस्थित थे, मानों वहाँ तीनों लोग साक्षात् सशरीर उपस्थित हो गये हों, ऐसा लगता था। तब हजारों की संख्या में शक्ति सेना ने शुभ अभियान किया।।८८।। जिस समय यह शुभ अभियान हुआ, उस समय सुमेरु पर्वत, मन्दर पर्वत और विन्ध्य पर्वत सब दूसरे से मिले हुए से हो गये। ऐसा लगता था कि पृथ्वी पर सर्वत्र पर्वत ही पर्वत हैं। जिस समय शक्तियों के सैन्यमण्डल में युद्ध का महाघोष हुआ, उस समय समस्त पृथ्वी उस चक्र से चलाने की भाँति चलने लगी।।८९।। रथनाथ चक्रराज की स्वामिनी ललिता देवी कही गयी हैं। उन उन रथों के छः सारथि कहे गये हैं, जो अत्यन्त उद्दण्ड और पाशग्रहण करने में विशारद कहे गये हैं।।९०।। जहाँ पर गेय रथ हैं, वहीं पर उत्तम किरिचक्ररथ है। इस प्रकार प्रथमतः ललिता देवी तथा त्रिपुरभैरवी दूसरे स्थान पर हैं।।९१।। संहारभैरव तीसरे तथा रक्त योगिनि वल्लभ चतुर्थ हैं, सारस पाँचवी देवी हैं तथा चामुण्डा अन्य हैं।।९२।। इनमें वहाँ जो रथ की सारथि देवियां स्मरण की गयी हैं, वे हैं—गेयरथचक्र की सारथि तो हंसतिका देवता है। किरिचक्ररथराज की सारथि स्तम्भिनी स्मरण की गयी हैं।।९२-९३½।। श्री ललिता परमेश्वरी के श्रेष्ठ रथ ऊपर से नीचे तक दशयोजन विस्तार वाला है तथा गीतचक्र नामक उत्तम रथ ऊपर से नीचे तक सात हजार योजन विस्तार वाला है। इसी प्रकार किरिचक्र रथ का ऊपर से नीचे तक का विस्तार छः योजन है।।९३½-९५।। उन देवी का महामुक्ता छत्र तो दशयोजन विस्तृत

तदेव शक्तिसाम्राज्यसूचकं परिकीर्तितम्। सामान्यमातपत्रं तु रथद्वंद्वेपि वर्तते॥९७॥
अथ सा ललितेशानी सर्वशक्तिमहेश्वरी। महासाम्राज्यपदवीमारूढा परमेश्वरी॥९८॥
चचाल भंडदैत्यस्य क्षयसिद्ध्यभिकांक्षिणी। शब्दायंते दिशः सर्वाः कंपते च वसुंधरा॥९९॥
क्षुभ्यंति सर्वभूतानि ललितेशाविनिर्गमे। देवदुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः॥१००॥
विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाः सुरगायकाः। तुम्बुरुर्नारदश्चैव साक्षादेव सरस्वती॥१०१॥
जयमंगलपद्यानि पठंतः पटुगीतिभिः। हर्षसंफुल्लवदनाः स्फुरत्पुलकभूषणाः।
मुहुर्जयजयेत्येवं स्तुवाना ललितेश्वरीम्॥१०२॥
हर्षेणाढ्या मदोन्मत्ताः प्रनृत्यंतः पदेपदे।
सप्तर्षयो वशिष्ठाद्या ऋग्यजुःसामरूपिभिः॥१०३॥
अथर्वरूपैर्मंत्रैश्च वर्धयंतो जयश्रियम्। हविषेव महावह्निशिखामत्यंतपाविनीम्॥१०४॥
आशीर्वादेन महता वर्धयमासुरुत्तमाः। तैः स्तूयमाना ललिता राजमाना रथोत्तमे॥१०५॥
भंडासुरं विनिर्जेतुमुद्दण्डैः सह सैनिकैः॥१०६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने किरिचक्ररथदेवता-प्रकाशनं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

है तथा वह छत्र केवल ललिता परमेश्वरी के रथ पर ही है अन्य के रथ पर नहीं है।।९६।। वह छत्र ही शक्ति के साम्राज्य का सूचक कहा गया है। सामान्य छत्र तो दोनों रथों पर भी विद्यमान हैं।।९७।। इस प्रकार वे श्री ललिता परमेशानी सब शक्तियों की परम स्वामिनी हैं। वे ललिता परमेश्वरी ही महासाम्राज्य की पदवी पर आरूढ़ हैं।।९८।। वे परमेश्वरी भण्डासुर के नाश की सफलता की इच्छा रखती हुई युद्ध के लिए निकल पड़ीं। उस समय सब दिशायें शब्दायमान हो रही थीं और पृथ्वी कांपने लगी थी।।९९।। ललितेशानी के युद्ध हेतु निकलने पर सब प्राणी क्षुब्ध हो गये अर्थात् सर्वत्र हाहाकार मच गया। देवताओं ने दुन्दुभियां बजाना प्रारम्भ कर दिया। फूलों की वर्षा होने लगी।।१००।। विश्वावसु आदि गन्धर्व जो देवताओं के गायक थे, उन्होंने तथा तुम्बरु नारद तथा साक्षात् ही सरस्वती देवी ने पटुगीतियों द्वारा पद्यों को पढ़ते हुए हर्ष से प्रफुल्लित मुखों से अपने सुन्दर आभूषणों को चमकाते हुए आपकी जय हो, इस प्रकार गान किया। इस प्रकार ललितेश्वरी की स्तुति करते हुए सभी मदमत्त होकर कदम-कदम पर नाचते हुए गाने लगे।।१०१-१०२½।। वशिष्ठ आदि सप्तर्षियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद रूपी तथा अथर्ववेदरूपी मन्त्रों से युक्त हवि से महा अग्नि को बढ़ाते हुए के समान ललिता देवीकी जयश्री को बढ़ाते हुए महान् आशीर्वाद द्वारा उनके साहस को और अधिक बढ़ा दिया। उन सबके द्वारा स्तुति की जाती हुई राजमाता ललितादेवी उत्तम रथ पर सवार होकर उद्दण्ड सैनिकों के साथ भण्ड दैत्य को जीतने केलिए चल पड़ीं।।१०२½-१०६।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २०वाँ अध्याय किरिचक्ररथ में देवियों के नामों का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

भंडासुराहंकारो नाम

एकविंशोऽध्यायः

आकर्ण्य ललितादेव्या यात्रानिर्गमनिस्वनम्। महांतं क्षोभमायाता भंडासुरपुरालयाः॥१॥
यत्र चास्ति दुराशस्य भंडदैत्यस्य दुर्धियः। महेन्द्रपवरतोपांते महार्णवतटे पुरम्॥२॥
तत्तु शून्यक नाम्नैव विख्यातं भुवनत्रये। विषंगाग्रजदैत्यस्य सदावासः किलाभवत्॥३॥
तस्मिन्नेव पुरे तस्य शतयोजनविस्तरे। वित्रेसुरसुराः सर्वे श्रीदेव्यागमसंभ्रमात्॥४॥
शतयोजनविस्तीर्णं तत्सर्वं पुरमासुरम्। धैमैरिवावृतमभूदुत्पातजनितैर्मुहुः॥५॥
अकाल एव निर्भिन्ना भित्तयो दैत्यपत्तने। घूर्णमाना पतंति स्म महोल्का गगनस्थलात्॥६॥
उत्पातानां प्राथमिको भूकंपः पर्यवर्तत। महीजज्वाल सकला तत्र शून्यकपत्तने॥७॥
अकाल एव हृत्कंपं भेजुर्दैत्यपुरौकसः। ध्वजाग्रवर्तिनः कंकगृध्राश्चैव बकाः खगाः॥८॥
आदित्यमंडले दृष्ट्वादृष्ट्वा चक्रंदुरुच्चकैः। क्रव्यादा बहवस्तत्र लोचनैर्नावलोकिताः॥९॥
मुहुराकाशवाणीभिः परुषाभिर्बभाषिरे। सर्वतो दिक्षु दृस्यंते केतवस्तु मलीमसाः॥१०॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–२१

भण्डासुर अहंकार

पूर्व अध्याय में ललिता देवी ने भण्डासुर दैत्य पर विजय प्राप्त करने हेतु युद्ध की घोषणा कर दी और युद्ध करने हेतु जब उन्होंने ससैन्य कूंच कर दिया, तब ललिता देवी द्वारा युद्ध यात्रा हेतु निकलने की सूचना मिलने पर भण्डासुर के समस्त नगरों के घरों में महान् क्षोभ पैदा हो गया।।१।। जहाँ कि दुर्बुद्धि एवं दुष्ट भण्डासुर का नगर था। वह नगर महेन्द्र पर्वत के पास महासमुद्र के तट पर था।।२।। वह नगर शून्यक नाम से तीनों लोकों में विख्यात था। विषंग के अग्रज दैत्य भण्डासुर का वहाँ सदैव आवास होता था।।३।। उसके सौ योजन विस्तार वाले उसी नगर में सभी असुर श्री ललितादेवी के आने के भय से भयभीत हो गये।।४।। सौ योजन विस्तीर्ण वह असुरों का समस्त नगर उत्पात से पैदा हुए धुंए के द्वारा पूरी तरह आवृत हो गया।५।। असमय ही उस दैत्य के नगर में मकानों की दीवारें फट गयीं। आकाश तल भूमण्डल को हिला देने वाले महान् उल्कापात होने लगे।।६।। उत्पातों में सबसे पहले भूकम्प हुआ, फिर वहाँ उस भण्डदैत्य के शून्यक नगर में पृथ्वी जलने लगी।।७।। असमय में ही उस दैत्य के नगर में हृदय को कंपाने वाला दृश्य हो गया। ध्वजा के आगे उड़ते हुए बगुले गृध्र आदि पक्षी उड़ते हुए देखे गये, जो आकाश मण्डल में देख-देखकर चिल्ला रहे थे।।८-८½।। वहाँ पर बहुत-सा कच्चा मांस खाने वाले सियार बाघ आदि को आँखों से देखा गया और फिर आकाशवाणियों से भी कठोर आवाजें बोली जाने

धूम्रायमानाः प्रक्षोभजनका दैत्यरक्षसाम्। दैत्यस्त्रीणां च विभ्रष्टा अकाले भूषणस्त्रजः॥११॥
हाहेति दूरं क्रंदंत्यः पर्यश्रु समरोदिषुः। दपणानां वर्मणां च ध्वजानां खड्गसंपदाम्॥१२॥
मणीनामंबराणां च मालिन्यमभवन्मुहुः। सौधेषु चन्द्रशालासु केलिवेश्मसु सर्वतः॥१३॥
अट्टालकेषु गोष्ठेषु विपणेषु सभासु च। चतुष्किकास्वलिंदेषु प्रग्रीवेषु वलेषु च॥१४॥
सर्वतोभद्रवासेषु नन्द्यावर्तेषु वेश्मसु। विच्छंदकेषु संक्षुब्धेष्ववरोधनपालिषु।
स्वस्तिकेषु च सर्वेषु गर्भागारपुटेषु च॥१५॥
गोपुरेषु कपाटेषु वलभीनां च सीमसु। वातायनेषु कक्ष्यासु धिष्ण्येषु च खलेषु च॥१६॥
सर्वत्र दैत्य नगरवासिभिर्जनमंडलैः अश्रूयन्त महाघोषाः परुषा भूतभाषिताः॥१७॥
शिथिली सवतो जाता घोरपर्णा भयानका। करटैः कटुकालापैरवलोकि दिवाकरः।
आराविषु करोटीनां कोटयश्चापतन्भुवि॥१८॥
अपतन्वेदिमध्येषु बिंदवः शोणितांभसाम्। केशौधकाश्च निष्पेतुः सर्वतो धूमधूसराः॥१९॥
भौमांतरिक्षदिव्यानामुत्पातानामिति व्रजम्। अवलोक्य भृशं त्रस्ताः सर्वे नगरवासिनः।
निवेदयामासुरमी भंडाय प्रथितौजसे॥२०॥
स च भंडः प्रचंडोत्थैस्तैरुत्पातकदंबकैः। असंजातधृतिभ्रंशो मंत्र स्थानमुपागमत्॥२१॥
मेरोरिव वपुर्भेदं बहुरत्नविचित्रतम्। अध्यासामास दैत्येंद्रः सिंहासनमनुत्तमम्॥२२॥

लगीं।।८½-९½।। चारों ओर सभी दिशाओं में उस दैत्य की ध्वजायें धुयें से धुंधली दिखायी दे रही थीं जो दैत्य राक्षसों में विशेष क्षोभ पैदा कर रही थीं।।९½-१०½।। असमय में ही विना किसी कारण के दैत्यों की स्त्रियों की आभूषण मालायें टूटकर गिरने लगी तथा हाहा करके आँसू बहाकर रोने लगी कि हाय ये क्या हो रह है?।।१०½-११½।। दर्पणों, कवचों, ध्वजों, खड्गों, मणियों और वस्त्रों में मलिनता हो गयी अर्थात् ये सब अचानक मैले हो गये, जो एक अपशकुन है।।११½-१२½।। महलों, चन्द्रशालाओं, क्रीडाग्रहों, अट्टालिकाओं, सभाओं, दुकानों चौकियों (चबूतरों) घर के दरवाजे के सामने के चबूतरों, घर के चारों ओर बांस की बाढ़ों, सैन्यालयों सर्व ओर अभ्रद वासस्थानों नदियों की लहरों, घरों, अनेकों कक्षों एवं खण्डों वाले विशाल भवनों, अन्तःपुर के कक्षों में, स्वस्तिक भवनों, गर्भागार कक्षों, गोपुरों, छप्परों की सीमाओं, झरोखों, कक्ष्यों, हवनकुण्डों और खलिहानों में सर्वत्र दैत्य नगर में रहने वाले लोग पहले से बोली जाने वाली कठोर भयंकर महाध्वनि सुन रहे थे।।१२½-१७।।

घोर पंखों वाले भयानक राक्षस सर्वत्र शिथिल हो गये। कौओं और कटु सर्पो से घिरे सूर्य दिखाई देने लगे। करोड़ों खोपड़ियाँ पृथ्वी पर गिरने लगीं।।१८।। वेदियों के मध्य में लाल जल की बूंदें गिरने लगीं। धूमधूसरति केश समूह चारों ओर गिरने लगे।।१९।। पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्ग में उत्पात फैल गया, जिस उत्पात को देखकर सब नगर निवासी बहुत अधिक भयभीत हो गये और फिर उन्होंने अत्यन्त पराक्रमी भण्डासुर से निवेदन किया।।२०।। और वह भण्डासुर प्रचण्ड उत्पातों के साथ उठता हुआ विना धैर्य त्यागे ही मन्त्रस्थान पर पहुँच गया। अर्थात् अपने मन्त्रियों के पास पहुंचा।।२१।। सुमेरु पर्वत के समान शरीर वाला वह दैत्यराज भण्डासुर बहुत से

स्फुरन्मुकुटलग्नानां रत्नानां किरणैर्घनैः। दीपयन्नखिलाशान्तानद्युतद्दानवेश्वरः॥२३॥
एकयोजनविस्तारे महत्यास्थानमंडपे। तुंगसिंहासनस्थं तं सिषेवाते तदानुजौ॥२४॥
विशुक्रश्च विषंगश्च महाबलपराक्रमौ। त्रैलोक्यकंटकीभूतभुजदंडभयंकरौ॥२५॥
अग्रजस्य सदैवाज्ञामविलंघ्य मुहुर्मुहुः। त्रैलोक्यविजये लब्धं वर्धयंतौ महद्यशः॥२६॥
नतेन शिरसा तस्य मृद्नंतौ पादपीठिकाम्। कृतांजलिप्रणामौ च समुपाविशतां भुवि॥२७॥
अथास्थाने स्थिते तस्मिन्नमरद्वेषिणां वरे। सर्वे सामंतदैत्येन्द्रास्तं द्रष्टुं समुपागताः॥२८॥
तेषामे कैकसैन्यानां गणना न हि विद्यते। स्वस्वं नाम समुच्चार्य प्रणेमुर्भंडकेश्वरम्॥२९॥
स च तानसुरान्सर्वानतिधीरकनीनकैः। संभावयन्समालोकैः कियंतं चित्क्षणं स्थितः॥३०॥
अवोचत विशुक्रस्तमग्रजं दानवेश्वरम्। मथ्यमानमहासिंधुसमानार्गलनिस्वनः॥३१॥
देवत्वदीयदोर्दंडविध्वस्तबलविक्रमाः। पापिनः पामराचारा दुरात्मानः सुराधमाः॥३२॥
शरण्यमन्यतः क्वापि नाप्नुवंतो विषादिनः।
ज्वलज्ज्वालाकुले वह्नौ पतित्वा नाशमागताः॥३३॥
तस्माद्देवात्समुत्पन्ना काचित्स्त्री बलगर्विता। स्वयमेव किलास्त्राक्षुस्तां देवा वासवादयः॥३४॥

रत्नों से जड़कर बनाये गये अत्यन्त उत्तम सिंहासन पर बैठा।।२२।। उस समय जबकि वह सिंहासन पर बैठा उस उमय उसके मुकुट में लगे हुए रत्नों की घनी किरणों से वह दानवेश्वर पूरी तरह अशान्त और कान्तिहीन चमक रहा था।।२३।। एक योजन विस्तार वाले महान् आस्थान मण्डप पर ऊँचे सिंहासन पर बैठे हुए उसके दोनों छोटे भाई विशुक्र और विषंग सेवा कर रहे थे, जो दोनों ही महापराक्रमी थे तथा अपने भयंकर भुजदण्डों से समस्त त्रिलोकी के लिये काँटा बने हुए थे।।२४-२५।। उन दोनों भाइयों ने सदैव अपने बड़े भाई भण्डासुर की आज्ञा का उल्लंघन न करके तीनों बार बार लोकों की विजय में अपने महान् यश को बढ़ाया था।।२६।। वे दोनों भाई उस भण्डासुर की पाद पीठिका पर नतमस्तक होकर हाथ जोड़कर भूमि पर बैठ गये।।२७।।

इसके बाद उस देवताओं के शत्रु भण्डासुर के राज सिंहासन पर बैठ जाने पर सब सामन्त दैत्यराज उसे देखने के लिये भण्डासुर के पास आये।।२८।। उनमें से एक एक सैनिक जिनकी गिनती नहीं है, अपने अपने नाम का उच्चारण कर सब भण्डकेश्वर को प्रणाम कर रहे थे।।२९।। वह भण्डासुर उन असुरों को अत्यन्त धीर सैनिकों द्वारा अच्छी तरह देखकर उनका स्वागत कराता हुआ, थोड़ी देर बैठा रहा। कथन का आशय है कि इतनी संख्या में सैनिकादि आकर प्रणाम कर रहे थे कि सबका स्वागत करना सम्भव नहीं था, इसलिये अपने धीर सैनिकों द्वारा वह सबका स्वागत कर रहा था। वे धीर सैनिक अच्छी तरह देखदेख कर सबको बैठा रहे थे।।३०।। फिर वह भण्डासुर का छोटा भाई विशुक्र अपने बड़े भाई भण्डासुर से बोला कि हे देव! महासमुद्र का मन्थन करने वाले नगरद्वार की अर्गला के तुम्हारी भुजाओं द्वारा विध्वस्त बल पराक्रम वाले पापी, नींच आचरण करने वाले, दुष्टात्मा, अधम देवतागण अन्य किसी से शरण न प्राप्त करते हुए दुःखी होकर जलती हुई ज्वाला से व्याकुल अग्नि में गिरकर नष्ट हो गये।।३१-३३।। उस देव विष्णु से उत्पन्न कोई स्त्री बल से गर्वित स्वयं ही उसके साथ इन्द्रादि देवता

तैः पुनः प्रबलोत्साहैः प्रोत्साहितपराक्रमाः। बहुस्त्रीपरिवाराश्च विविधायुधमंडिताः॥३५॥
अस्माञ्जेतुं किलायांति हा कष्टं विधिवैशसम्। अबलानां समूहश्चेद्वलिनोऽस्मान्विजेष्यते॥३६॥
तर्हि पल्लवभंगेन पाषाणस्य विदारणम्। ऊह्यमानमिदं हंतुं परिहासाय कल्प्यते॥३७॥
विडंबना न किमसौ लज्जाकरमिदं न किम्। अस्मत्सैनकनासीरभटेभ्योऽपि भवेद्भयम्॥३८॥
कातरत्वं समापन्नाः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः। ब्रह्मादयश्च निर्विण्णविग्रहा मद्बलायुधैः॥३९॥

विष्णोश्च का कथैवास्ते वित्रस्तः स महेश्वरः।
अन्येषामिह का वार्ता दिक्पालास्ते पलायिताः॥४०॥

अस्माकमिषुभिस्तीक्ष्णैरदृश्यैरंगपातिभिः। सर्वत्र विद्धवर्माणो दुर्मदा विबुधाः कृताः॥४१॥
तादृशानामपि महापराक्रमभुजोष्मणाम्। अस्माकं विजयायाद्य स्त्री काचिदभिधावति॥४२॥

यद्यपि स्त्री तथाप्येषा नावमान्या कदाचन।
अल्पोऽपि रिपुरात्मज्ञैर्नावमान्यो जिगीषुभिः॥४३॥

तस्मात्तदुत्सारणार्थं प्रेषणीयास्तु किङ्कराः। सकचग्रहमाकृष्य सानेतव्या मदोद्धता॥४४॥
देव त्वदीय शुद्धांतर्वर्तिनीनां मृगीदृशाम्। चिरेण चेटिकाभावं सा दुष्टा संश्रयिष्यति॥४५॥
एकैकस्माद्भटादस्मात्सैन्येषु परिपंथिनः। शङ्कते खलु वित्रस्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥४६॥
अन्यद्देवस्य चित्तं तु प्रमाणमिति दानव। निवेद्य भण्डदैत्यस्य क्रोधं तस्य व्यवीवृधत्॥४७॥

हैं।।३४।। पुनः उन्हीं प्रबल उत्साहों के साथ प्रोत्साहित पराक्रम वाले देवगण बहुत स्त्री परिवार तथा अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर हम लोगों को जीतने को आ रहे हैं। अरे ये बहुत दुःख की बात है कि स्त्रियों का समूह हमवीरों को जीत लेगा।।३५-३६।। तथा यदि जीत लेगा तो यह पत्ते से पत्थर को तोड़ने के समान होगा तथा आते हुए इनको मारना ही परिहास के लिये होगा अर्थात् इन स्त्रियों को मारना भी एक हँसी ही होगी कि वीर पुरुषों ने स्त्रियों को मारा।।३७।। क्या यह विडम्बना नहीं है? क्या यह लज्जाकर नहीं है? कि हम सैनिकों के आगे रहने वाले योद्धाओं के लिये भय होवे।।३८।। क्योंकि हम सबके सामने इन्द्र आदि देवता लोग कायरता को प्राप्त हो गये और बल और आयुध से ब्रह्मा आदि भय एवं शोक से खिन्न शरीर वाले हो गये।।३९।। विष्णु का क्या कहना? वह तो कुछ नहीं, यहाँ तक कि महेश्वर विशेष त्रस्त हो गये। दूसरों की क्या बात? वे दिक्पाल भी भाग गये।।४०।। हमारे अदृश्य तीक्ष्ण बाणों के शरीरों पर गिरने से विद्ध शरीर वाले देवता लोग मदविहीन हो गये।।४१।। वैसे महान् पराक्रम का भोग करने वाले हम पर विजय पाने के लिये आज कोई स्त्री आ रही है।।४२।।

यद्यपि वह स्त्री है, तथापि उसे कभी कम नहीं समझना चाहिये। आत्मज्ञानी पुरुषों को अल्प (बहुत कुम शक्ति वाले) शत्रु को भी कम नहीं मानना चाहिये।।४३।। इसलिये उसको पकड़ने के लिये नौकरों को भेजना चाहिये, जो उस घमण्डी स्त्री के बालों को पकड़ कर यहाँ लायें।।४४।। विशुक्र ने भण्डासुर से कहा कि हे महाराज! वह दुष्टा स्त्री आपके महल में रहने वाली मृगनयनियों की दासी बनकर बहुत समय तक रहेगी।।४५।। हमारी सेना में एक से बढ़कर एक शत्रु का संहार करने वाला योद्धा है, जिनसे निश्चय ही विशेषतः सकल चराचर जगत् शङ्कित रहता है।।४६।। यहाँ अन्य प्रमाण की क्या आवश्यकता देवों का भयभीत चित्त ही प्रमाण है। इस प्राकारउसके

विषङ्गस्तु महासत्त्वो विचारज्ञो विचक्षणः। इदमाह महादैत्यमग्रजन्मानमुद्धतम्॥४८॥
देव त्वमेव जानासि सर्वं कार्यमरिन्दम। न तु ते क्वापि वक्तव्यं नीतिवर्त्मनि वर्तते॥४९॥
सर्वं विचार्य कर्तव्यं विचारः परमा गतिः। अविचारेण चेत्कर्म समूलमवकृन्तति॥५०॥
परस्य कटके चाराः प्रेषणीयाः प्रयत्नतः। तेषां बलाबलं ज्ञेयं जयसंसिद्धिमिच्छता॥५१॥
चारचक्षुर्दृढप्रज्ञः सदाशंकितमानसः। अशंकिताकारवांश्च गुप्तमन्त्रः स्वमंत्रिषु॥५२॥
षडुपायान्प्रयुञ्जानः सर्वत्राभ्यर्हिते पदे। विजयं लभते राजा जाल्मो मक्षु विनश्यति॥५३॥

अविमृश्यैव यः कश्चिदारम्भः स विनाशकृत्।
विमृश्य तु कृतं कर्म विशेषाज्जयदायकम्॥५४॥
तिर्यगित्यपि नारीति क्षुद्रा चेत्यपि राजभिः।
नावज्ञा वैरिणां कार्या शक्तेः सर्वत्र सम्भवः॥५५॥

स्तंभोत्पन्नेन केनापि नरतिर्यग्वपुर्भृता। भूतेन सर्वभूतानां हिरण्यकशिपुर्हतः॥५६॥
पुरा हि चंडिका नाम नारी मायाविजृंभिणी। निशुम्भशुंभौ महिषं व्यापादितवती रणे॥५७॥

छोटे भाई विशङ्ग ने दैत्यराज भण्ड के क्रोध को बढ़ा दिया।।४७।। तथा यह महापराक्रमी, विचारज्ञ एवं कुशल विषङ्ग ने अपने ज्येष्ठ भ्राता भण्डासुर से कहा।।४८।। हे शत्रु का दमन करने वाले महाराज! तुम ही इस सब कार्य को जानते हो। आपको नीति मार्ग के बारे में कुछ भी नहीं बोलना चाहिये।।४९।। सब कुछ विचार कर करना चाहिये; क्योंकि विचार ही परमा गति है। विचार से ही मनुष्य को परम सफलता मिलती है। विना विचारे जो कार्य किया जाता है, वह समूल विनाश कर देता है।।५०।। अतः हे महाराज! शत्रु की सेना में पहले गुप्तचरों को प्रयत्नपूर्वक भेजना चाहिये। तब शत्रुओं में बल है अथवा नहीं है, जानकर जय या सन्धि करनी चाहिये।।५१।।

गुप्तचर रखने वाला, दृढ़बुद्धि वाला, सदा अशङ्कित मन वाला, अशंकित आकार वाला, गुप्त मन्त्र वाला (अर्थात् अपनी योजना को गुप्त रखने वाला) तथा अपने मन्त्रियों पर विश्वास करने वाला[1] इन छः उपायों को प्रयोग करने वाला राजा सब जगह योग्य पद पर विजय प्राप्त करता है। क्रूर अविवेकी राजा शीघ्र विनष्ट हो जाता है।।५२-५३।। विना विचार कर जो कोई किसी कार्य को प्रारम्भ करता है, वह कार्य विनाश करने वाला होता है तथा विचार कर जो कर्म किया जाता है, वह कार्य विशेष रूप से जय प्रदान करने वाला होता है।।५४।। नारी तिर्यक् अर्थात् नारी और टेढ़ा-मेड़ा आदमी ये सब क्षुद्र होते हैं। फिर भी राजाओं को अपने शत्रु की अवज्ञा (लापरवाही) नहीं करनी चाहिये; क्योंकि शक्ति तो सर्वत्र सम्भव है।।५५।। क्योंकि खम्भे से उत्पन्न किसी टेढ़े-मेढ़े शरीर वाले व्यक्ति ने सब प्राणियों का राजा हिरण्यकशिपु मार दिया गया।।५६।। प्राचीन काल में विशेष माया फैलाने वाली चण्डिका नाम की नारी थी, उसने रणक्षेत्र में शुम्भ, निशुम्भ और महिषासुर को मार दिया था।।५७।।

१. सदाशंकितमानसः अशंकिताकावान् का अर्थ यह भी हो सकता है कि सदा शंकित मन रहते हुए भी अपने को नि:शंक आकार वाला दिखाये तथा गुप्तमन्त्रः स्वमंत्रिषु का अर्थ है कि अपने मन्त्र (योजना) को गुप्त रखते हुए अपने मन्त्रियों पर विश्वास रखे। अर्थात् मन की बात मन्त्रियों को भी न बताये। इस प्रकार यहाँ विरोधाभास की झलक है तथा उच्चकोटि की राजनीति की प्रस्तुति है।

तत्प्रसंगेन बहवस्तया दैत्या विनाशिताः।
अतो वदामि नावज्ञा स्त्रीमात्रे क्रियतां क्वचित्॥५८॥
शक्तिरेव हि सर्वत्र कारणं विजयश्रियः। शक्तेराधारतां प्राप्तैः स्त्रीपुलिंगैर्न नो भयम्॥५९॥
शक्तिस्तु सर्वतो भाति संसारस्य स्वभावतः। तर्हि तस्या दुराशायाः प्रवृत्तिर्ज्ञायतां त्वया॥६०॥
केयं कस्मात्समुत्पन्ना किमाचारा किमाश्रया।
किंबला किंसहाया वा देव तत्प्रविचार्यताम्॥६१॥
इत्युक्तः स विषंगेण को विचारो महौजसाम्।
अस्मद्बले महासत्त्वा अक्षौहिण्यधिपाः शतम्॥६२॥
पातुं क्षमास्ते जलधीनं दग्धुं त्रिविष्टपम्। अरे पापसमाचार किं वृथा शङ्कसे स्त्रियः॥६३॥
तत्सर्वं हि मया पूर्वं चारद्वारावलोकितम्। अग्रे समुदिता काचिल्ललितानामधारिणी॥६४॥
यथार्थनामवत्येषा पुष्पवत्पेशलाकृतिः। न सत्त्वं न च वीर्यं वा न संग्रामेषु वा गतिः॥६५॥
सा चाविचारनिवहा किंतु मायापरायणा। तत्सत्त्वेनाविद्यमानं स्त्रीकदम्बकमात्मनः॥६६॥
उत्पादितवती किं ते न चैवं तु विचेष्टते। अथ वा भवदुक्तेन न्यायेनास्तु महद्बलम्॥६७॥
त्रैलोक्योल्लंघिमहिमा भण्डः केन विजीयते॥६८॥
इदानीमपि मद्बाहुबलसंमर्दमूर्च्छिताः। श्वसितुं चापि पटवो न कदाचन नाकिनः॥६९॥

उसके प्रसंग से उस चण्डिका ने अनेकों असुरों का नाश कर दिया था। इसलिये मैं कहता हूँ कि नारी मात्र के विषय में कहीं लापरवाही नहीं करनी चाहिये।।५८।। शक्ति ही सर्व विजयश्री का कारण होती है। शक्ति के आधारता को प्राप्त स्त्री और पुल्लिङ्गों से हमें कोई भय नहीं।।५९।। शक्ति तो संसारके स्वभाव से सब जगह प्रतीत हो जाती है; इसलिए उसमें शक्ति न होने की प्रवृत्ति तुम्हें जाननी चाहिये।।६०।। यह कौंन है? किससे उत्पन्न है? क्या उसका आचार, विचार है? तथा क्या उसका आधार है? क्या उसका बल? कौंन उसके सहायक हैं? हे देव! यह सब आपको अच्छी प्रकार विचार करना चाहिये।।६१।।

इस प्रकार जब विषंग ने कहा तब भण्डासुर ने कहा कि महापराक्रमी लोगों को क्या विचार करना है। हमारी सेना में महापराक्रमी अक्षौहिणी सेना रखने वाले सैकड़ों राजा समुद्रों को पीने में समर्थ हैं तथा स्वर्ग को जलाने के लिये पर्याप्त हैं। अरे पाप का आचरण करने वाले क्यों स्त्री से डरते हो।।६२-६३।। वह सब मैंने पहले ही गुप्तचरों द्वारा पता कर लिया है कि आगे आगे कोई ललिता नाम की स्त्री दिखाई दे रही है। सो वह यथा नाम तथा गुणवाली है; क्योंकि ललिता का अर्थ होता है—कोमल। अतः वह कोमल शरीर वाली है। उसमें न वीरता है, न पराक्रम है अथवा न ही संग्राम का कोई ज्ञान है।।६४-६५।। वह विना विचारों वाली है; परन्तु माया परायण है अर्थात् युद्ध कला का विशेष ज्ञान नहीं है; परन्तु माया करने वाली है। उसमें पराक्रम तो नहीं ही होगा; क्योंकि स्त्रियों में पराक्रम नहीं होता।।६६।। उसे किसने उत्पन्न किया है, यह तो अभी पता नहीं चला है अथवा तुम्हारे कथनानुसार न्याय से तो उसमें बहुत बल है।।६७।। परन्तु जिसकी महिमा तीनों लोकों में किसी के भी द्वारा लंघनीय नहीं है, वह भण्ड किसके द्वारा जीता जा सकता है।।६८।। क्या वह नहीं जानती है कि इस समय मेरे बाहुबल सम्मर्दन

केचित्पातालगर्भेषु केचिदम्बुधिवारिषु। केचिद्दिगंतकोणेषु केचित्कुञ्जेषु भूभृताम्॥७०॥
विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतश्रियः। भ्रष्टाधिकाराः पशवश्छन्नवेषाश्चरंति ते॥७१॥
एतादृशं न जानाति मम बाहुपराक्रमम्। अबला न चिरोत्पन्ना तेनैषा दर्पमश्नुते॥७२॥
न जानंति स्त्रियो मूढा वृथा कल्पितसाहसाः। विनाशमनुधावंति कार्याकार्यविमोहिताः॥७३॥

अथ वा तां पुरस्कृत्य यद्यागच्छंति नाकिनः।
यथा महोरगाः सिद्धाः साध्या वा युद्धदुर्मदाः॥७४॥

ब्रह्मा वा पद्मनाभो वा रुद्रो वापि सुराधिपः। अन्ये वा हरितां नाथास्तान्संपेष्टुमहं पटुः॥७५॥
अथ वा मम सेनासु सेनान्यो रणदुर्मदाः। पक्वकर्करिकापेषमवपेक्ष्यंति वैरिणः॥७६॥
कुटिलाक्षः कुरंडश्च करंकः कालवाशितः। वज्रदंतो वज्रमुखो वज्रलोमा बलाहकः॥७७॥
सूचीमुखः फलमुखो विकटो विकटाननः। करालाक्षः कर्कटको मदनो दीर्घजिह्वकः॥७८॥
हुंबको हलमुल्लुंचः कर्कशः कल्किवाहनः। पुल्कसः पुंड्रकेतुश्च चंडबाहुश्च कुक्कुरः॥७९॥
जंबुकाक्षो जृंभणश्च तीक्ष्णशृङ्गस्त्रिकंटकः। चतुर्गुप्तश्चतुर्बाहुश्चकाराक्षश्चतुःशिराः॥८०॥
वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महामायामहाहनुः। मखशत्रुर्मखास्कंदी सिंहघोषः शिरालकः॥८१॥
अंधकः सिंधुनेत्रश्च कूपकः कूपलोचनः। गुहाक्षो गंडगल्लश्च चंडधर्मो यमांतकः॥८२॥

से मूर्च्छित स्वर्गवासी देवता लोग कभी कहीं श्वास भी ले सकते हैं।।६९।। मेरे भय से उन राजाओं में से कुछ पाताल में चले गये हैं, कुछ समुद्र के जलों में छिपे हुए हैं, कुछ दिशाओं के कोणों में बसे हुए हैं तथा कुछ वन के कुञ्जों में छिपे हुए हैं। इस प्रकार अपनी पत्नियों और पुत्रों को छोड़कर विशेषत्रस्त राज्याधिकारविहीन वे फटे कपड़े पहने पशुओं की भाँति विचरण कर रहे हैं।।७०-७१।। वह स्त्री मेरे उस बाहु पराक्रम को नहीं जानती है। अतः वह स्त्री बहुत पहले उत्पन्न नहीं हुई है, अभी-अभी पैदा हुई है; इसलिये वह घमण्ड कर रही है।।७२।। वह मूर्ख स्त्री नहीं जानती है, इसलिये व्यर्थ कल्पित साहस दिखा रही है; क्योंकि क्या करना चाहिये क्या नहीं करना चाहिये, इसको न जानने वाले मूर्ख लोग अपने विनाश के लिये दौड़ते हैं।।७३।। अथवा उसको आगे करके यदि देवता लोग युद्ध में उतरते हैं, जिनमें कि सिद्धगण साध्यगण महासर्प, जो युद्ध में कुशल हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु अथवा रुद्र भी देवताओं के अधिपति तथा अपने देवताओं के स्वामी युद्ध में आते हैं, तो मैं उनको अच्छी तरह कुचलने में कुशल हूँ।।७४-७५।। अथवा मेरी सेना में किसी से भी न हारने वाले सेनानी है, जो जो शत्रुओं को पके बेर की तरह मसल देंगे।।७६।।

वे हैं—१. कुटिलाक्ष, २. कुरण्ड, ३. करङ्क, ४. कालवाशित, ५. वज्रदन्त, ६. वज्रमुख, ७. वज्रलोमा, ८. वलाहका, ९. सूचीमुख, १०. फलमुख, ११. विकट, १२. विकटानन, १३. करालाक्ष, १४. कर्कटक, १५. मदन, १६. दीर्घजिह्वक, १७. हुम्बक, १८. हलमुलुंच्च, १९. कर्कश, २०. कल्किवाहन, २१. पुल्कस, २२. पुण्ड्रकेतु, २३. चण्डबाहु, २४. कुक्कुर, २५. जम्बुकाक्ष, २६. जृम्भण, २७. तीक्ष्णशृङ्ग, २८. त्रिकंटक, २९. चन्द्रगुप्त, ३०. चतुर्बाहु, ३१. चकाराक्ष, ३२. चतुःशिरा, ३३. वज्रघोष, ३४. ऊर्ध्वकेश, ३५. महामाया, ३६. महाहनु, ३७. मखशत्रु, ३८. मखास्कन्दी, ३९. सिंहघोष, ४०. शिरालक, ४१. अन्धक, ४२.

लड्डुनः पट्टसेनश्च पूरजित्पूर्वमारकः। स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः॥८३॥
अतिमायो बृहन्माय उपमाय उलूकजित्। पुरुषेणो विषेणश्च कुंतिषेणः परूषकः॥८४॥
मलकश्च कशूरश्च मंगलो द्रघणस्तथा। कोल्लाटः कुजिलाश्वश्च दासेरो बभ्रुवाहनः॥८५॥
दृष्टहासो दृष्टकेतुः परिक्षेप्तापकंचुकः। महामहो महादंष्ट्रो दुर्गतिः स्वर्गमेजयः॥८६॥
षट्केतुः षड्वसुश्चैव षड्दंतः षट्प्रियस्तथा। दुःशटो दुर्विनीतश्च छिन्नकर्णश्च मूषकः॥८७॥
अट्टहासी महाशी च महीशीर्षो मदोत्कटः।
कुम्भोत्कचः कुम्भनासः कुम्भग्रीवो घटोदरः॥८८॥
अश्वमेढ्रो महांडश्च कुम्भांडः पूतिनासिकः। पूतिदन्तः पूतिचक्षुः पूत्यास्यः पूतिमेहनः॥८९॥
इत्येवमादयः शूरा हिरण्यकशिपोः समाः। हिरण्याक्ष समाश्चैव मम पुत्रा महाबलाः॥९०॥
एकैकस्य सुतास्तेषु जाताः शूराः परःशतम्। सेनान्यो मे मदोद्घृत्ता मम पुत्रैरनु द्रुताः॥९१॥
नाशयिष्यन्ति समरे प्रोद्धतानमराधमान्। ये केचित्कुपिता युद्धे सहस्राक्षौहिणी वराः।
भस्मशेषा भवेयुस्ते हा हन्त किमुताबला॥९२॥
मायाविलासाः सर्वेऽपि तस्याः समरसीमनि। महामायाविनोदाश्च कुप्युस्ते स्मसाद्बलम्॥९३॥
तद्वृथा शंकया खिन्नं मा ते भवतु मानसम्। इत्युक्त्वा भंडदैत्येंद्रः समुत्थाय नृपासनात्॥९४॥

सिन्धुनेत्र, ४३. कूपक, ४४. कूपलोचन, ४५. गुहाक्ष, ४६. गंडगल्ल, ४७. चण्डधर्म, ४८. यमान्तक, ४९. लड्डुन, ५०. पट्टसेन, ५१. पूरजित्, ५२. पूर्वमारक, ५३. स्वर्गशत्रु, ५४. स्वर्गबल, ५५. दुर्गाख्य, ५६. स्वर्गकंटक, ५७. अतिमाप, ५८. बृहन्माय, ५९. उपमाय, ६०. उलूकजित्, ६१. पुरुषेण, ६२. विषेण, ६३. कुंतिषेण, ६४. परूषक, ६५. मलक, ६६. कशूर, ६७. मंगल, ६८. द्रघण, ६९. कोल्लाट, ७०. कुजिल, ७१. दासेर, ७२. बभ्रुवाहन, ७३. दृष्टहास, ७४. दृष्टकेतु, ७५. परिक्षेप्त, ७६. अपकंचुक, ७७. महामहा, ७८. महादंष्ट्र, ७९. दुर्गति, ८०. स्वर्गमेजय, ८१. षट्केतु, ८२. षड्वसु, ८३. षड्दन्त, ८४. षड्प्रिय, ८५. दुःशठ, ८६. दुर्विनीत, ८७. छिन्नकर्ण, ८८. मूषक, ८९. अट्टहासी, ९०. महाशी, ९१. महाशीर्ष, ९२. मदोत्कट, ९३. कुम्भोत्कच, ९४. कुम्भनास, ९५. कुम्भग्रीव, ९६. घटोदरः, ९७. अश्वमेढ्र, ९८. महादण्ड, ९९. कुम्भाण्ड, १००. पूतिनासिक, १०१. पूतिदन्त, १०२. पतिचक्षु, १०३. पूत्यास्य और १०४. पूति मेहन।।७७-८९।।

भण्ड ने कहा कि इस प्रकार ये १०४ उपर्युक्त शूरवीर हिरण्यकशिपु के समान है। हिरण्याक्ष के समान मेरे पुत्र बलवान् हैं।।९०।। उनमें से एक-एक पुत्र सैकड़ों शूरों में शूर है। मेरे सेनानी भी महान् ऊँचे हैं, वे भी मेरे पुत्रों का अनुसरण करने वाले हैं अर्थात् वे भी मेरे पुत्रों के ही समान हैं। वे सब युद्ध में बड़े-बड़े वीर देवताओं का नाश कर देंगे। जो कोई युद्ध में क्रोधित सहस्र श्रेष्ठ अक्षौहिणी सेनायें हैं, वे सब भस्म हो जायेंगी फिर निर्बल देवताओं की तो बात ही क्या है?।।९१-९२।। उस ललिता के समरसीमा में वे सभी देवता मायाविलासी हैं। महामाया से विनोद करने वाले यदि ये क्रोध करें तो इनका बल भस्म हो जायेगा।।९३।। इसलिये हे मेरे भाइयो एवं वीर असुरो! तुम्हारी शंका व्यर्थ है। अतः तुम अपने मन को खिन्न मत करो।।९३½।। इस प्रकार कहकर वह

उवाच निजसेनान्यं कुटिलाक्षं महाबलम्। उत्तिष्ठ रे बलं सर्वं संनाहय समंततः॥९५॥
शून्यकस्य समंताच्च द्वारेषु बलमर्पय। दुर्गाणि संगृहाण त्वं कुरुक्षेपणिकाशतम्॥९६॥
दुष्टाभिचाराः कर्तव्या मंत्रिभिश्च पुरोहितैः। सज्जीकुरु त्वं शस्त्राणि युद्धमेतदुपस्थितम्॥९७॥
सेनापतिषु यं केचिदग्रे प्रस्थापयाधुना। अनेकबलसंघातसहितं घोरदर्शनम्॥९८॥
तेन संग्रामसमये सान्निपत्य विनिर्जितम्। केशेष्वाकृष्य तां मूढां देवसत्त्वे न दर्पिताम्॥९९॥
इत्याभाष्य चमूनाथं सहस्रत्रितयाधिपम्। कुटिलाक्षं महासत्त्वं स्वयं चान्तःपुरं ययौ॥१००॥

अथापत्त्याः श्रीदेव्या यात्रानिःसाणनिःस्वनाः।
अश्रूयंत च दैत्येन्द्रैरतिकर्णज्वरावहाः॥१०१॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने भंडासुराहंकारो नामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

भण्ड दैत्यराज अपने सिंहासन से उठा और अपने महाबली सेनापति कुटिलाक्ष से बोला। अरे उठो और समस्त सेना को बुलाकर शून्यक के साथ द्वार पर समस्त बल को लगा दो तथा दुर्गों को ग्रहण करो और तुम सौ जालियां वनाओं।।९३½-९७।। सेनापतियों में जो कोई हैं, उन्हें अब अनेक घोर दिखायी देने वाले अनेक सैन्य समूह के साथ आगे भेजो।।९८।। उस सेना के द्वारा विशेषरूप से जीती गयी देवताओं के पराक्रम से घमण्ड में भरी हुई, उस स्त्री को केश पकड़कर खींच कर यहाँ लाओ।।९९।। इस प्रकार तीन हजार सेनाओं के सेनापति महापराक्रमी कुटिलाक्ष से कहकर वह भण्डासुर स्वयं अन्तःपुर में चला गया।।१००।। इसके बाद आतीहुई, उन ललिता देवी की युद्ध यात्रा की भयंकर ध्वनि को दैत्यराजाओं ने सुना जो ध्वनि अनेक कानों को ज्वर पैदा करने वाली थीं।।१०१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २१वाँ अध्याय भण्डासुर अहंकार का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगला-सरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

दुर्मदकुरुण्डवधोनाम

द्वाविंशोऽध्यायः

अथ श्रीललितासेनानिस्साणप्रतिनिस्वनः। उच्चचालासुरेन्द्राणां योद्धतो दुन्दुभिध्वनिः॥१॥
तेनमर्दितदिक्केन क्षुभ्यद्गर्भपयोधिना। बधिरीकृतलोकेन चकम्पे जगतां त्रयी॥२॥
मर्दयन्ककुभां वृन्दं भिन्दन्भूधरकन्दराः। पुप्रोथे गगनाभोगे दैत्यनिःसाणनिस्वनः॥३॥
महानरहरिक्रुद्धहुंकारोद्धतिमद्ध्वनिः। विरसं विररासोच्चैर्विबुधद्वेषिझल्लरी॥४॥
ततः किलकिलारावमुखरा दैत्यकोटयः। समनह्यन्त संक्रुद्धाः प्रति तां परमेश्वरीम्॥५॥
कश्चिद्रत्नविचित्रेण वर्मणाच्छन्नविग्रहः। चकाशे जंगम इव प्रोत्तुंगो रोहणाचलः॥६॥
कालरात्रिमिवोदग्रां शस्त्रकारेण गोपिताम्। अधुनीत भटः कश्चिदतिधौतां कृपाणिकाम्॥७॥
उल्लासयन्कराग्रेण कुंतपल्लवमेकतः। आरूढतुरगो वीथ्यां चारिभेदं चकार ह॥८॥
केचिदारुरुहुर्योधा मातंगांस्तुंगवर्ष्मणः। उत्पात वातसंपातप्रेरितानिव पर्वतान्॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–२२

दुर्मदकुरुण्ड वध वर्णन

इसके बाद श्री ललिता देवी की सेना की अतितीव्रध्वनि की प्रतिध्वनि युद्ध करने को बढ़े हुए असुरेन्द्रों की दुन्दुभि की ध्वनि तीव्रता से होने लगी।।१।। असुरराज की उस सेना की दुन्दुभि ध्वनि ने सब दिशाओं को मर्दित कर दिया और समुद्र के अन्दर भी खलबली मचा दी थी तथा समस्त संसार को बहरा कर दिया तथा उस ध्वनि से तीनों लोक कांपने लगे।।२।। उस दैत्य सेना की असीम युद्ध की विगुल ध्वनि दिशाओं का मर्दन करती हुई और पर्वत कन्दराओं का भेदन करती हुई समस्त आकाश के विस्तार में श्री ललिता देवी के युद्ध ध्वनि का मुकावला करने लगी।।३।। वह ध्वनि क्रोधित हुए महान् नरसिंह के समान थी तथा हिरण्यकशिपु का वध करते समय अत्यन्त क्रोधित नरसिंह के हुंकार से उठी हुई ध्वनि के समान वह ध्वनि अत्यन्त नीरस और देवताओं से द्वेष करने वाली झांझ मजीरों वाली ध्वनि थी।।४।। उसके बाद क्रोधित करोड़ों मुखर दैत्यों के मुख से किल किल की ध्वनि उन ललिता परमेश्वरी के प्रति धमकी दे रही थी।।५।। उस सेना में कोई रत्नविचित्र से अपने ढके हुये शरीर वाला था, जिससे ऐसा लगता था कि मानो कि लंका का रोहणपर्वत ही चलने वाले व्यक्ति के समान उठकर चल पड़ा हो। कोई कोई योद्धा कालरात्रि के समान अत्यन्त श्वेत चमकती हुई, उग्र कृपाण को धारण किये हुए था, जो कि शस्त्रकार ने बहुत अच्छी तरह बनायी थी।।६-७।। उस समय कुछ योद्धा अपने हाथ के अग्रभाग से सैनिकों को उल्लासित करते हुए एक हाथ में माला लेकर घोड़े पर चढ़कर पंक्ति में चलने का भेद कर रहे थे। अर्थात्

पट्टिशैर्मुद्गरैश्चैव भिदुरैर्भिंडिपालकैः। द्रुहणैश्च भुशुण्डीभिः कुठारैर्मुसलैरपि॥१०॥
गदाभिश्च शतघ्नीभिस्त्रिशिखैर्वंशिखैरपि। अर्धचक्रैर्महाचक्रैर्वक्रांगैरुरगाननैः॥११॥
फणिशीर्षप्रभेदैश्च धनुर्भिः शार्ंगधन्विभिः। दंडैः क्षेपणिकाशस्त्रैर्वज्रबाणैर्दृषद्वरैः॥१२॥
यवमध्यैर्मुष्टिमध्यैर्वललतैः खंडलैरपि। कटारैः कोणध्यैश्च फणिदन्तैः परःशतैः॥१३॥
पाशायुधैः पाशतुण्डैः काकतुण्डैः सहस्रशः। एवमादिभिरत्युग्रैरायुधैर्जीवहारिभिः॥१४॥
परिकल्पितहस्ताग्रा वार्मेता दैत्य कोटयः। अश्वारोहा गजारोहा गर्दभारोहिणः परे॥१५॥
उष्ट्रारोहा वृकारोहा शुनकारोहिणः परे। काकादिरोहिणो गृध्रारोहाः कंकादिरोहिणः॥१६॥
व्याघ्रादिरोहिणश्चान्ये परे सिंहादिरोहिणः। शरभारोहिणश्चान्ये भेरुण्डारोहिणः परे॥१७॥
सूकररोहिणो व्यालारूढाः प्रेतादिरोहिणः। एवं नानाविधैर्वाहवाहिनो ललितां प्रति॥१८॥
प्रचेलुः प्रबलक्रोधसंमूर्च्छितनिजाशयाः। कुटिलं सैन्यभर्त्तारं दुर्मदं नाम दानवम्।
दशाक्षौहिणिकायुक्तं प्राहिणोल्ललितां प्रति॥१९॥
दिधक्षुभिरिवाशेषं विश्वं सह बलोत्कटैः। भटैर्युक्तः स सेनानी ललिताभिमुखे ययौ॥२०॥
भिंदन्पटहसंरावैश्चतुर्दश जगन्ति सः। अट्टहासान्वितन्वानो दुर्मदस्तन्मुखो ययौ॥२१॥
अथ भंडासुराज्ञप्तः कुटिलाक्षो महाबलः। शून्यकस्य पुरद्वारे प्राचीने समकल्पयत्।

पंक्तियां बनाकर चलने के लिये व्यवस्था कर रहे थे।।८।। कुछ योद्धागण उत्पात मचाने वाली वायु जिस प्रकार पर्वतों पर चढ़कर उनको हिला देती है, उसीप्रकार हाथियों और घोड़ों पर चढ़ गये।।९।। वे सभी असुर सैनिक मुद्गार, बर्छी, दो टुकड़े करने वाला शस्त्र, वज्र द्रुहण, बन्दूक, कुठार, मूसल, गदा, शतघ्नी (सौ को मारने वाला शस्त्र) तीन शिखाओं वाला फरसा तथा अनेकों शिखाओं वाला अस्त्र, अर्धचक्र, महाचक्र, वक्रांग, उरुगानन, (सर्पमुख जैसा अस्त्र) फणिशीर्ष नामक अस्त्र, अनेकों प्रकार के धनुषों शार्ङ्गधनुषों, दण्डों, फेंकने वाले शस्त्रों, वज्रवाणों, पत्थरों, यवमध्य अस्त्रों, मुट्ठी से फेंकने वाले अस्त्रों वलल खण्डल, कटार, कोणमध्य, फणिदन्त आदि सैकड़ों अस्त्रों तथा पाश अस्त्रों यथा पाशतुण्ड-काकतुण्ड आदि हजारों प्रकार के अत्यन्त उग्र तथा प्राणहरण करने वाले अस्त्रशस्त्रों से युक्त सेना थी।।१०-१४।।

उनकी संख्या को हाथ से नहीं गिना जा सकता था। करोड़ों की संख्या में दैत्य सेना थी। उस सेना में अश्वारोही, गजारोही, गर्दभारोही, उष्ट्रारोही, वृकारोही (भेड़िया पर चढ़े हुए) शुनकारोही (कुत्ते पर चढ़े हुए) (कौआ आदि पर चढ़े हुए), गृध्रारोही (गृध्र की सवारी करने वाले), बगुल पर चढ़े हुये, सिंह पर चढ़े हुए, ऊँट पर चढ़े हुए, कुत्तों पर सवार, सिंह पर सवार, शरभ पर सवार, मेरुण्ड पर सवार, सूअर पर सवार, सर्प पर सवार, प्रेतादि पर सवार सेनायें थीं। इस प्रकार अनेकों वाहनों पर सवार सैनिक श्री ललिता देवी की ओर चल पड़े, जो सैनिक जीत की आशा रखते हुए प्रचण्ड क्रोध से सम्मूर्च्छित हो गये थे तथा अपने कुटिल सेनापति दुर्मद नामक दानव को दश अक्षौहिणी सेना के साथ श्री ललिता की ओर आगे बढ़ा दिया।।१५-१९।। मानो कि उसने अपने बल से समस्त विश्व को धारण कर लिया है, उसके समान अपने अत्यन्त उत्कट सेना और योद्धाओं के साथ वह सेनापति दुर्मद श्री ललिता देवी के सामने गया।।२०।। तब अपने युद्धीय नगाड़े की ध्वनि से चौदह लोकों का भेद करता

रक्षणार्थं दशाक्षौहिण्युपेतं तालजंघकम्॥२२॥
अवाचीने पुरद्वारे दशाक्षौहिणिकायुतम्। नाम्ना तालभुजं दैत्यं रक्षणार्थमकल्पयत्॥२३॥
प्रतीचीने पुरद्वारे दशाक्षौहिणिकायुतम्। तालग्रीवं नाम दैत्यं रक्षार्थं समकल्पयत्॥२४॥
उत्तरे तु पुरद्वारे तालकेतुं महाबलम्। आदिदेश स रक्षार्थं दशाक्षौहिणिकायुतम्॥२५॥
पुरस्य सालवलये कपिशीर्षकवेश्मसु। मण्डलाकारतो वस्तुं दक्षाक्षौहिणिमादिशत्॥२६॥
एवं पञ्चाशता कृत्वाक्षौहिण्या पुररक्षणम्। शून्यकस्य पुरस्यैव तद्वृत्तं स्वामिनेऽवदत्॥२७॥

कुटिलाक्ष उवाच

देव त्वदाज्ञया दत्तं सैन्यं नगररक्षणे। दुर्मदः प्रेषितः पूर्वं दुष्टां तां ललितां प्रति॥२८॥
अस्मत्किंकरमात्रेण सुनिराशा हि सावला। तथापि राज्ञामाचारः कर्त्तव्यं पुररक्षणम्॥२९॥
इत्युक्त्वा बंडदैत्येंद्रं कुबिलाक्षोऽतिगर्वितः। स्वसैन्यं सज्जयामास सेनापतिभिरन्वितः॥३०॥
दूतस्तु प्रेषितः पूर्वं कुटिलाक्षेण दानवः। स ध्वनन्ध्वजिनीयुक्तो ललितासैन्य मावृणोत्॥३१॥
कृत्वा किलकिलारावं भटास्तत्र सहस्रशः। दोधूयमानैरसिभिर्निपेतुः शक्तिसैनिकैः॥३२॥
ताश्च शक्तय उद्दंडाः स्फुरिताट्टहसस्वनाः। देदीप्यमानशस्त्राभाः समयुध्यंत दानवैः॥३३॥
शक्तीनां दानवानां च संशोभितजगत्रयः। समवर्तत संग्रामो धूलिग्राममतताम्बरः॥३४॥

हुआ, अट्टहासयुक्त शरीर वाला वह दुर्मद असुरराज श्री ललिता दवी के सम्मुख उपस्थित हो गया।।२१।। इधर वह दुर्मद असुर देवी के सामने गया, उधर भण्डासुर की आज्ञा प्राप्त कर महाबली कुटिलाक्ष ने शून्यक के प्राचीन पुरद्वार पर रक्षार्थ दश अक्षौहिणी सेना केसाथ तालजंघ को तैनात कर दिया।।२२।। नवीनपुर द्वार पर दश अक्षौहिणी सेना के साथ तालभुज नामक दैत्य को रक्षा के लिये तैनात कर दिया था।।२३।। पश्चिमपुर द्वार पर दश अक्षौहिणी सेना के साथ तालग्रीव नामक दैत्य को रक्षा के लिये प्रतिनियुक्त कर दिया था।।२४।। उत्तर नगर द्वार पर तालकेतु नामक महावलवान् दैत्य को दश अक्षौहिणी सेना के साथ रक्षा करने के लिये आदेश दिया था।।२५।। नगर के चहार दीवार पर चारों ओर ऊँचे-ऊँचे महलों पर दश अक्षौहिणी सेना को मण्डलाकाररूप में रहने का आदेश दिया था।।२६।। इस प्रकार अक्षौहिणी सेना के पचास भाग करके नगर की रक्षा में लगाया था। तब शून्यक के नगर का वह वृत्तान्त कुटिलाक्ष ने अपने स्वामी भण्डासुर को बताया।।२७।।

कुटिलाक्ष ने कहा कि हे देव! मैंने अपनी आज्ञा से समस्त सेना को नगर की रक्षा में लगा दिया है तथा दुर्मद को पहले ही ललिता की ओर भेज दिया है।।२८।। हम किंकर मात्र से ही वह स्त्री अच्छी प्रकार से निराश हो गयी तथापि नगर की रक्षा करना राजाओं का आचार है।।२९।। इस प्रकार भण्डासुरराज से कहकर अत्यन्त गर्वित इस कुटिलाक्ष ने सेनापति के साथ सेना को सजाया।।३०।। पहले उस कुटिलाक्ष दानवने उन ललिता देवी के पास दूत भेजा। वह ध्वनि करता हुआ ध्वजायुक्त ललिता सेना में पहुँचा।।३१।। तब वहाँ किलकिल की ध्वनि करते हजारों योद्धाओं को शक्ति सैनिकों ने चमकती हुई तलवारों से उसे भूमि पर गिरा दिया।।३२।। ललिता देवी की उद्दण्ड शक्तियों ने अट्टहास करते हुए चमकते शस्त्रों से दानवों के साथ युद्ध किया।।३३।। शक्तियों और दानवों का वह संग्राम तीनों लोकों में सम्यक् प्रकार से शोभित हो गया था तथा उस संग्राम में उठी हुई धूलि से सारा

रथवंशेषु मूर्च्छंत्यः करिकंठैः प्रपञ्चिताः। अश्वनिःश्वासविक्षिप्ता धूलयः खं प्रपेदिरे॥३५॥
तमापतन्तमालोक्य दशाक्षौहिणीकावृतम्। संपत्सरस्वती क्रोधादिभिदुद्राव संगरे॥३६॥

सम्पत्करीसमानाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः।
अश्वाश्च दंतिनो मत्ता व्यमर्दन्दानवीं चमूम्॥३७॥

अन्योन्यतुमुले युद्धे जाते किलिकिलारवे। धूलीषु धूयमानासु ताड्यमानासु भेरिषु॥३८॥
इतस्ततः प्रववृधे रक्तसिन्धुर्महीयसी। शक्तिभिः पात्यमानानां दानवानां सहस्रशः॥३९॥

ध्वजानि लुठितान्यासन्विलूनानि शिलीमुखैः।
विस्रस्ततत्तच्चिह्नानि समं छत्रकदम्बकैः॥४०॥

रक्तारुणायां युद्धोर्व्यां पतितैश्छत्रमण्डलैः। आलंभि तुलना संध्यारक्ताभ्रहिमरोचिषा॥४१॥

ज्वालाकपालः कल्पाग्निरिव चारुपयोनिधौ।
दैत्यसैन्यानि निवहाः शक्तीनां पर्यवारयन्॥४२॥

शक्तिच्छन्दोज्ज्वलच्छस्त्रधारानिष्कृत्तकन्धराः। दानवानां रणतले निपेतुर्मुंडराशयः॥४३॥
दष्टौष्ठैर्भ्रुकुटीक्रूरैः क्रोसंरक्तलोचनैः। मुण्डैरखण्डमभवत्संग्रामधरणीतलम्॥४४॥
एवं प्रवृत्ते समये जगच्चक्रभयङ्करे। शक्तयो भृशसंक्रुद्धा दैत्यसेनाममर्दयन्॥४५॥
इतस्ततः शक्तिशस्त्रैस्ताडिता मूर्च्छिता इति। विनेशुर्दानवास्तत्र संपद्देवीबलाहताः॥४६॥

आकाशमण्डल धूल धूसरित हो गया।।३४।। रथों के संघातों में उठायी गयी हाथियों के कण्ठों से प्रपंचित और घोड़ों की श्वास से उठायी गयी धूलि आकाश में छा गयी।।३५।। उस दश अक्षौहिणी सेना से युक्त असुर को आता हुआ देखकर सम्पत्सरस्वती देवी क्रोध से समर में उपस्थित हो गयीं।।३६।। उन सम्पत्करी देवी के समान शक्तियों से समधिष्ठित अश्वों और हाथियों ने मत्त होकर दानवी सेना का मर्दन कर दिया।।३७।। जब वहाँ एक दूसरे में भीषण हाहाकार वाला युद्ध प्रारम्भ हो गया और चारों तरफ किलकिल की ध्वनि होने लगी, तब धूलियों के उठने पर और रणभेरियों के बजने पर शक्तियों द्वारा इधर-उधर मारकर गिराये गये हजारों दानवों के शरीरों से महीयसी रक्त की नदी बहने और बढ़ने लगी।।३८-३९।। बाणों द्वारा ध्वजायें जमीन पर गिरा दी गयी और फाड़ दी गयीं तथा छत्रसमूहों के साथ उनके चिह्न भी मिटा दिये गये।।४०।।

रक्त से लाल हुई युद्धभूमि पर छत्रमण्डलों के गिरने से सन्ध्या के समय हिमालय की कान्ति जो लाल हो जाती है, उस तरह की भूमि लाल हो गयी थी।।४१।। प्रलयकाल की अग्नि के समान सुन्दर समुद्र में देवी का ज्वाला कपाल (जलता हुआ कपाल) सैत्य सेनाओं के समूहों को रोक रहा था।।४२।। शक्ति ने इच्छा से ही उज्ज्वल शस्त्र की तीक्ष्ण धार से असुरों के कन्धे काट दिये गये और युद्धभूमि में दानवों के मुण्डों के ढेर गिरा दिये गये।।४३।। इस प्रकार काटे गये ओष्ठ भ्रकुटी क्रूर और लाल-लाल नेत्रों वाले मुण्डों (शिरों) से संग्राम पृथ्वी तल अखण्ड हो गया था। अर्थात् पूरा पट गया था।।४४।। इस प्रकार के समय के प्रवृत्त हो जाने पर उस भयंकर संसार चक्र में अत्यन्त क्रोधित शक्तियों ने दैत्य सेना का मर्दन कर दिया।।४५।। इधर-उधर शस्त्रों से ताडित और मूर्च्छित हुए संपत्करी देवी के बल से आहत दानव वहाँ विनष्ट हो गये।।४६।।

अथ भग्नं समाश्वास्य निजं बलमरिन्दमः। उष्ट्रमारुह्य सहसा दुर्मदोऽभ्यद्रवच्चमूम्।।४७।।
दीर्घग्रीवः समनुन्नद्धः पृष्ठे निष्ठुरतोदनः। अधिष्ठितो दुर्मदेन वाहनोष्ट्रश्चचाल ह।।४८।।
तमुष्ट्रवाहनं दुष्टमन्वीयुः क्रुद्धचेतसः। दानवानश्वसत्सर्वान्भीताञ्छक्तियुयुत्सया।।४९।।
अवाकिरद्दिशो भल्लैरुल्लसत्फलशालिभिः संपत्करीचमूचक्रं वनं वार्भिरिवांबुदः।।५०।।
तेन दुःसहसत्त्वेन ताडिता बहुभिः शरैः। स्तंभितेवाभवत्सेना संपत्कर्याः क्षणं रणे।।५१।।
अथ क्रोधारुणंचक्षुर्दधाना संपदंबिका। रणकोलाहलगजमारूढायुध्यतामुना।।५२।।
आलोलकंकणक्वाणरमणीयतरः करः। तस्याश्चाकृष्य कोदं डमौर्वीमाकर्णमाहवे।।५३।।
लघुहस्ततयापश्यन्नाकृष्टन्न च मोक्षणम्। ददृशे धनुषश्चक्रं केवलं शरधारणे।।५४।।
आश्चर्कांबरसंपर्कस्फुटप्रतिफलत्फलाः। शराः सम्पत्करीचापच्युताः समदहन्नरीन्।।५५।।
दुर्मदस्याथ तस्याश्च समभूद्युद्धमुद्धतम्। अभूदन्योन्यसंघट्टाद्विस्फुलिंगशिलीमुखैः।।५६।।
प्रथमं प्रसृतैर्बाणैः सम्पद्देवीसुरद्विषोः। अन्धकारः समभवत्तिरस्कुर्वन्नहस्करम्।।५७।।
तदंतरे च बाणानामतिसंघट्टयोनयः। विष्फुलिंगा विदधिरे दधिरे भ्रमचातुरीम्।।५८।।
तयाधिरूढः संश्रोण्या रणकोलाहलः करी। पराक्रमं बहुविधं दर्शयामास संगरे।।५९।।

इसके बाद शत्रुओं का दमन करने वाले दुर्मद को जब यह विश्वास हो गया कि उसका समस्त सैन्यबल भग्न कर दिया गया है, तब वह ऊँट पर सवार होकर अचानक सेना में भाग गया।।४७।। फिर दीर्घग्रीव तैयार होकर पीठ पर कठोर अंकुश बाँधे हुए ऊँट पर सवार होकर चल दिया, जिसे कि दुर्मद ने ही अधिष्ठित किया था।।४८।। उस ऊँट के वाहन का क्रुद्ध चेतस ने सब दानवों को नष्ट कर अनुसरण किया। चमकते हुए फाल वाले भालों से सारी दिशायें भर दी गयीं। संपत्करी देवी ने सेना चक्र को उस तरह ढक दिया जिस तरह बादल जलों से वन को ढक देते हैं।।५०।। उस असहनीय बल वाले दुर्मद ने अनेकों बाणों से ताडित संपत्करी देवी की सेना क्षण में रणस्थल में स्तम्भित सी हो गयी। जब संपत्करी की सेना स्तम्भित सी हो गयी, तब सम्पत्करी अम्बिका ने क्रोध से लाल-लाल आँखें करके युद्ध में कोलाहल पैदा कर देने वाले हाथी पर सवार होकर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया।।५१-५२।। तब उनका कंगन बजता हुआ, जो अत्यन्त सुन्दर हाथ था, उस हाथ से कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर युद्ध में इस प्रकार बाण को चलाया कि हाथ की सफाई के कारण न तो धनुष खींचते हुए दिखाई दिया और न बाण छोड़ते हुये दिखाई दिया, केवल बाण को धनुष पर धारण करने पर ही दिखाई दिया।।५३-५४।। शीघ्र सूर्य और आकाश के सम्पर्क से साफ-साफ फलीभूत होने वाले संपत्करी देवी के धनुष से गिराये गये बाणों ने शत्रुओं को सम्यक् रूप से जला डाला (भस्ममात्) कर दिया।।५५।। इसके बाद दुर्मद का और उन संपत्करी देवी का भयंकर युद्ध होने लगा। उस समय एक-दूसरे के बाणों के टकराने से आग की चिन्गारियां छूट रही थीं।।५६।। पहले ही पहले जब संपत्करी देवी और देवों के शत्रु दुर्मद का युद्ध प्रारम्भ हुआ, तो उन दोनों के द्वारा छोड़े गये बाणों से सूर्य को पूरी तरह तिरस्कृत करता हुआ अन्धकार छा गया।।५७।। उसी बीच में बाणों के अत्यन्त टकराने से उनकी संघटन योनि से अर्थात् बाणों के टकराने के केन्द्र बिन्दु से बिजली के समान चिन्गारियां निकलने लगीं, तब देवी ने भ्रम चातुरी हथिनी को धारण किया।।५८।। उस पर वे देवी चढ़ गयीं,

करेण कतिचिद्दैत्यान्पादघातेन कांश्चन। उदग्रदंतमुसलघातैरन्यांश्च दानवान्॥६०॥
बालकांडहतैरन्यान्फेत्कारैरपरान्रिपून्। गात्रव्यामर्द्दनैरन्यान्नखघातैस्तथापरान्॥६१॥
पृथुमानाभिघातेन कांश्चिद्दैत्यान्व्यमर्दयत्। चतुरं चरितं चक्रे संपद्देवीमतंगजः॥६२॥
सुदुर्मदः क्रुधा रक्तो दृढेनैकेन पत्रिणा। संपत्करीमुकुटगं मणिमेकमपाहरत्॥६३॥
अथ क्रोधारुणदृशा तया मुक्तैः शिलीमुखैः। विक्षतो वक्षसि क्षिप्रं दुर्मदो जीवितं जहौ॥६४॥
ततः किलकिला रावं कृत्वा शक्तिचमूवरैः। तत्सैनिकवरास्त्वन्ये निहता दानवोत्तमाः॥६५॥

हतावशिष्टा दैत्यास्तु शक्तिबाणैः खिलीकृताः।
पलायिता रणक्षोण्याः शून्यकं पुरमाश्रयन्॥६६॥
तद्वृत्तांतमथाकर्ण्य संक्रुद्धो दानवेश्वरः॥६७॥

प्रचंडेन प्रभावेण दीप्यमान इवात्मनि। स पस्पर्श नियुद्धाय खड्गमुग्रविलोचनः।

कुटिलाक्षं निकटगं बभाषे पृतनापतिम्॥६८॥

कथं सा दुष्टवनिता दुर्मदं बलशालिनम्। निपातितवती युद्धे कष्ट एव विधेः क्रमः॥६९॥
न सुरेषु न यक्षेषु नोरगेंद्रेषु यद्बलम्। अभूत्प्रतिहतं सोऽपि दुर्मदोऽबलया हतः॥७०॥
तां दुष्टवनितां जेतुमाक्रष्टुं च कचं हठात्। सेनापतिं कुरंडाख्यं प्रेषयाहवदुर्मदम्॥७१॥

तब रण में कोलाहल करने वाली उस संश्रोणी नामक हथिनी ने युद्ध में अनेकों प्रकार का पराक्रम दिखाया।।५९।। तब उस हथिनी से कुछ दैत्यों को सूँड़ से कुछ को पैर के आघात से कुछ दानवों आगे वाले दाँतों से, कुछ मुसल के आघातों से मार डाला।।६०।। किसी का बाल पकड़ घसीट कर मार डाला, अन्य शत्रुओं का घोर चीत्कार (चीख) से बेहोश कर दिया, दूसरे शत्रुओं के शरीरों को मसल डाला तथा दूसरों को नाखूनों के आघातों से मार दिया।।६१।। कुछ दैत्यों को उस हथिनी ने अपने विशाल शरीर के आघात से ही मार डाला। इस प्रकार संपत्करी देवी के उस हाथीने चतुर चरित किया।।६२।। तथा सुदुर्मद ने क्रोध से लाल होकर एक दृढ़ बाणसे संपत्करी देवी के मुकुट में लगे हुए एक मणि का अपहरण कर लिया।।६३।। इसके बाद क्रोध से लाल लाल आँखें करके उन देवी ने अपने अनेकों बाणों का उसके वक्षःस्थल पर प्रहार किया और शीघ्र ही उस दैत्य ने अपने प्राणों को त्याग दिया।।६४।। उसके बाद श्रेष्ठशक्ति सेना ने किलकिल की ध्वनि करके उसके श्रेष्ठ सैनिक तथा उत्तम दानवों को मार गिराया।।६५।। मरने से बचे हुए दैत्य तो शक्ति के बाणों से तितर-बितर किये गये रणभूमि छोड़कर भाग गये और फिर शून्यक के पास नगर में पहुँचे।।६६।। जब उन दैत्यों ने सारा वृत्तान्त उस शून्यक दैत्यराज को सुनाया तो वह दानवेश्वर अत्यन्त क्रोधित हो गया।।६७।।

तब प्रचण्ड प्रभाव से अपनी आत्मा में जलते हुये के समान उग्रनेत्र वाले उसने युद्ध के लिये उग्र खड्ग को स्पर्श किया और फिर सेनापति कुटिलाक्ष के निकट जाकर उससे बोला।।६८।। कि कैसे उस दुष्टा स्त्री ने बलशाली दुर्मद को युद्ध में मारकर गिरा दिया, अब विधि का क्रम कष्ट में ही है।।६९।। उस दुर्मद में इतना बल था कि उसके बल का मुकाबला करने की शक्ति न देवताओं में थी, न यक्षों में थी और न नागराजों में थी, उस दुर्मद को भी एक अबला ने मार डाला।।७०।। इसलिये अब उस दुष्ट स्त्री को जीतने को और जबरदस्ती उसके

इति संप्रेषितस्तेन कुटिलाक्षो महाबलम्। कुरंडं चंडदोर्दंडमाजुहाव प्रभो पुरः॥७२॥
स कुरंडः समागत्य प्रणामं स्वामिनेऽदिशत्।
उवाच कुटिलाक्षस्तं गच्छ सज्जय सैनिकान्॥७३॥
मायायां चतुरोऽसि त्वं चित्रयुद्धविशारद। कूटयुद्धे च निपुणस्तां स्त्रियं परिमर्दय॥७४॥
इति स्वामिपुरस्तेन कुटिलाक्षेण देशितः। निर्जगाम पुरात्तूर्णं कुरंडश्चंडविक्रमः॥७५॥
विंशत्यक्षौहिणीभिश्च समंतात्परिवारितः। मर्दयन्स महीगोलं हस्तिवाजिपदातिभिः।
दुर्मदास्याग्रजश्चंडः कुरंडः समरं ययौ॥७६॥
धूलीभिस्तुमुलीकुर्वन्दिगंतं धीरमानसः। शोकरोषग्रहग्रस्तो जवनाश्वगतो ययौ॥७७॥
शार्ङ्गं धनुः समादाय घोरटंकारमुत्स्वनम्। ववर्ष शरधाराभिः संपत्कर्या महाचमूम्॥७८॥
पापे मदनुजं हत्वा दुर्मदं युद्धदुर्मदम्। वृथा वहसि विक्रांतिलवलेशं महामदम्॥७९॥
इदानीं चैव भवतीमेतेर्नाराचमंडलैः। अंतकस्य पुरीमत्र प्रापयिष्यामि पश्यमाम्॥८०॥
अतिहृद्यमतिस्वादु त्वद्वपुर्बिलनिर्गतम्। अपूर्वमंगनारक्तं पिबन्तु रणपूतनाः॥८१॥
ममानुजवधोत्थस्य प्रत्यवायस्य तत्फलम्। अधुना भोक्ष्यसे दुष्टे पश्य मे भुजयोर्बलम्॥८२॥
इति संतर्जयन्संपत्करीं करिवरस्थिताम्। सैन्यं प्रोत्साहयामास शक्तिसेनाविमर्दने॥८३॥

केशों को पकड़कर लाने के लिये कुरण्ड नामक दुर्मद योद्धा को भेजिये।।७१।। इस प्रकार जब शून्यक ने कुटिलाक्ष से कहा, तब कुटिलाक्ष ने प्रचण्ड भुजाओं वाले महाबलवान् कुरण्ड को स्वामी के सामने आहूत किया।।७२।। उस कुरण्ड ने आकर स्वामी भण्ड को प्रणाम किया, तब कुटिलाक्ष ने कुरण्ड से कहा कि तुम जाओ और सैनिकों को युद्ध के लिये तैयार करो।।७३।। तुम माया में चतुर हो और चित्रयुद्ध में कुशल हो तथा कूटयुद्ध में भी निपुण हो। अतः जाओ उस स्त्री को पूरी तरह मर्दन कर दो (मसल डालो)।।७४।। इस प्रकार स्वामी भण्डासुर के समक्ष कुटिलाक्ष ने उसे आदेश दिया और आदेश प्राप्त कर वह प्रचण्ड पराक्रमी कुरण्ड नगर से युद्ध के लिये निकल पड़ा।।७५।। बीस अक्षौहिणी सेना द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ हाथी घोड़े और पैदल सैनिकों द्वारा भूगोल का मर्दन करता हुआ दुर्मद का बड़ा भाई भयंकर कुरण्ड युद्ध के लिए चल पड़ा।।७६।।

धूलियों से समस्त दिशाओं का धुन्धला बनाता हुआ वह धीर चित्त वाला शोक और रोष रूपी ग्रह से ग्रस्त होकर तीव्रगति से चलने वाले घोड़े से युद्धभूमि में गया।।७७।। फिर वह कुरण्ड नामक दैत्य शार्ङ्ग धनुष को लेकर प्रत्यञ्चा की घोर टंकार करता हुआ संपत्करी देवी की महा सेना पर बाणों की वर्षा करने लगा।।७८।। और फिर वह संपत्करी देवी से बोला कि अरे पापिनि! युद्ध में किसी से न हारने वाले मेरे छोटे भाई दुर्मद को मारकर विक्रान्ति के थोड़े से महामद को व्यर्थ वहन करती हो।।७९।। इस समय मैं यहां अपने लोहे के बाणों से आपको यमराज की पुरी में पहुँचाऊँगा अतः मुझे देखो।।८०।। अब तुम्हारे अत्यन्त हृदय प्रिय अत्यन्त स्वादिष्ट तुम्हारे शरीर के बिल से निकले अपूर्व नारीरक्त को रणपूतना पीयेंगी।।८१।। हे दुष्टे! अपने छोटे भाई के उठे हुए विरोध (वैर) के उस फल को अब मैं भोग करूँगा। अर्थात् अब मैं अपने भाई की मृत्यु का बदला लूँगा। हे दुष्टे! अब तुम मेरी भुजाओं का बल देखो।।८२।। इस प्रकार श्रेष्ठ हाथी पर स्थित उन संपत्करी देवी को उत्तेजित करते हुए उस दैत्य

अथ तां पृतनां चंडी कुरंडस्य महौजसः। विमर्दयितुमुद्युक्ता स्वसैन्यं प्रोदसीसहत्॥८४॥
अपूर्वाहवसंजातकौतुकाथ जगाद ताम्। अश्वारूढा समागत्य सस्नेहार्द्रमिदं वचः॥८५॥
सखि संपत्करि प्रीत्या मम वाणी निशम्यताम्। अस्य युद्धमिदं देहि मम कर्तुं गुणोत्तरम्॥८६॥
क्षणं सहस्व समरे मयैवैषं नियोत्स्यते। याचितासि सखित्वेन नात्र संशयमाचर॥८७॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा संपद्देव्या शुचिस्मिता।
निवर्तयामास चमूं कुरुंडाभिमुखोत्थिताम्॥८८॥
अथ बालार्कवर्णाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः।
तरंगा इव सैन्याब्धेस्तुरंगा वातरंहसः॥८९॥

खरैः खुरपुटैः क्षोणीमुल्लिखंतो मुहुर्मुहुः। पेतुरेकप्रवाहेण कुरंडस्य चमूमुखे॥९०॥
वल्गाविभागकृत्येषु संवर्तनविवर्तने। गतिभेदेषु चारेषु पंचधा खुरपातने॥९१॥
प्रोत्साहने च संज्ञाभिः करपादाग्रयोनिभिः। चतुराभिस्तुरंगस्य हृदयज्ञाभिराहवे॥९२॥
अश्वारूढांबिकासैन्यशक्तिभिः सह दानवाः। प्रोत्साहिताः कुरंडेन समयुध्यंत दुर्मदाः॥९३॥
एवं प्रवृत्ते समरे शक्तीनां च सुरद्विषाम्। अपराजितनामानं हयमारुह्य वेगिनम्।
अभ्यद्रवद्दुराचारमश्वारूढाः कुरंडकम्॥९४॥

ने शक्ति सेना का विशेष मर्दन करने के लिए अपनी सेना को प्रोत्साहित किया।।८३।। इसके बाद उस महापराक्रमी कुरण्ड की सेना को कुचलकर नष्ट करने के लिए चण्डी सम्पत्करी देवी ने तैयार सेना को प्रोत्साहित किया।।८४।। इसी बीच में युद्ध में एक अपूर्व कौतुका देवी उत्पन्न हो गयीं, जो अश्व पर आरूढ कौतुका देवी वहाँ आकर संपत्करी देवी से स्नेहसिक्त यह वचन बोलीं।।८५।। सखि! संपत्करि! प्रेमपूर्वक मेरी बात सुनो। वह यह कि कुछ अच्छे गुण (चमत्कार) दिखाने के लिये इस युद्ध को मुझे दे दो।।८६।। क्षण भर के लिये तुम सहन करो (ठहरो) युद्ध में मेरे साथ यह कुरण्ड युद्ध करेगा। हे सखि! संपत्करि! मैं यह तुमसे सखीभाव से माँग रही हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।८७।। इस प्रकार उसके वचन को सुनकर मन्द मुस्कराहट के साथ संपत्करी देवी ने कुरण्ड के सामने खड़ी हुई अपनी सेना को लौटा लिया।।८८।। इसके बाद प्रातःकालीन बालसूर्य की आत्मा वाली शक्तियों द्वारा समधिष्ठित सैन्य सागर में तरंगों के समान वायु की तरह तेज दौड़ने वाले घोड़े पैदा हो गये, जो अपने कठोर खुरों से पृथ्वी को बार-बार खोद दे रहे थे। वे एक प्रवाह के साथ कुरण्डा सुर की सेना के सामने आ गये।।८९-९०।।

वे सब घोड़े लगाम खींचने के प्रकारों से चलने वाले लगाम को खींचने और ढीला करने में लगाम खींचने छोड़ने के अनेक प्रकार के संकेतों को पहचान कर गति का प्रकार बदलने वाले थे तथा गतिभेद में पाँच प्रकार खुरों की ध्वनि करते थे।।९१।। जो घोड़े अपने सवार के संकेत को हाथ और पैर के अग्रभाग से ही समझ लेते थे। ऐसे हृदय की बात जानने वाले घोड़ों पर सवार अम्बिका की सैन्य शक्तियों के साथ कुरण्डासुर द्वारा प्रोत्साहित दुर्मद दानवों ने युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया।।९२-९३।। इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर असुरों की शक्तियों ने न पराजित होने वाले, तेज दौड़ने वाले, अश्व पर सवार होकर दुराचारी कुरण्ड पर आक्रमण कर दिया।।९४।।

प्रचलद्वेणिसुभगा शरच्चन्द्रकलोज्ज्वला। संध्यानुरक्तशीतांशुमंडलीसुंदरानना॥९५॥
स्मयमानेव समरे गृहीतमणिकार्मुका। अवाकिरच्छरासारैः कुरंडं तुरगानना॥९६॥
तुरगारूढयोत्क्षिप्ताः समाक्रामन्दिगंतरान्।
दिशो दश व्यानशिरे रुक्मपुङ्खाः शिलीमुखाः॥९७॥
दुर्मदस्याग्रजः क्रुद्धः कुरंडश्चंडविक्रमः। विशिखैः शार्ङ्गनिष्ठ्यूतैरश्वारूढामवाकिरत्॥९८॥
चंडैः खुरपुटैः सैन्यं खण्डयन्नतिवेगतः। अश्वारूढातुरंगोऽपि[1] मर्दयामास दानवान्॥९९॥
तस्य हेषारवाद्दूरमुत्पातांबुधिनिःस्वनः। अमूर्च्छयन्ननेकानि तस्यानीतानि वैरिणः॥१००॥
इतस्ततः प्रचलितैर्दैत्यचक्रे हयासना। निजं पाशायुधं दिव्यं मुमोच ज्वलिताकृति॥१०१॥
तस्मात्पाशात्कोटिशोऽन्ये पाशा भुजगभीषणाः।
समस्तमपि तत्सैन्यं बद्धाबद्धा व्यमूर्च्छयन्॥१०२॥
अथ सैनिकबंधेन क्रुद्धः स च कुरंडकः। शरणैकेन चिच्छेद तस्या मणिधनुर्गुणम्॥१०३॥
छिन्नमौर्विं धनुस्त्यक्त्वा भृशं क्रुद्धा हयासना। अंकुशं पातयामास तस्य वक्षसि दुर्मतेः॥१०४॥

तब सुन्दर केशपाश वाली, शरत्कालीन चन्द्रकला के समान उज्ज्वल, सन्ध्या से अनुरक्त चन्द्रमण्डल के समान सुन्दर मुखवाली, आश्चर्य के समान, कौतुका देवी ने युद्ध में मणिजटित धनुष धारण करने वाली अश्वमुखी कौतुकी देवी ने युद्ध में कुरण्ड पर बाणों की घनघोर वर्षा की।।९५-९६।। अश्व पर आरूढ़ उन देवी ने फेंके हुए बाणों से समस्त दिशाओं को उनके अन्त तक समाक्रान्त कर दिया और स्वर्ण पुंख वाले बाणों से दशों दिशायें व्याप्त हो गयीं।।९७।। यह देखकर प्रचण्ड पराक्रमी दुर्मद के बड़े भाई कुरण्ड ने अपने धनुष पर बाणों को रखकर अश्वारूढ़ देवी पर बाणों की बौछार कर दी।।९८।।

तब अपने प्रचण्ड खुरों से सेना को अत्यन्त वेग से खण्ड-खण्ड करते हुए अश्वारोढ़ अश्व ने भी दानवों को कुचल डाला।।९९।। उस अश्व की हिनहिनाहट ध्वनि से दूर समुद्र में भी खलबली मचला देने वाले घोर शब्द ने उस कुरण्ड के अनेकों लाये हुए वैरियों को मूर्च्छित कर दिया।।१००।। जब दैत्य सेना इधर उधर भागने लगी, तब अश्वारूढ़ आग की तरह जलती हुई आकृति वाली उन देवी ने अपने दिव्यं पाश नाम आयुध को छोड़ दिया।।१०१।। उस पाश से अन्य करोड़ों भयंकर सर्पों के पाश पैदा हो गये, उन नागपाशों ने सैकड़ों सैनिकों को बांध लिया, जो नहीं बंधे वे मूर्च्छित हो गये।।१०२।। इसके बाद जब सैनिक बांध लिये गये, तब वह कुरण्डकासुर अत्यन्त क्रोधित हो गया और फिर उसने एक ही बाण से उन कौतुका देवी के मणि धनुष की प्रत्यञ्चा को काट दिया।।१०३।। जब उन देवी के धनुष की प्रत्यञ्चा कट गयी, तब उन्होंने धनुष को छोड़ दिया और फिर हयासना देवी अत्यन्त क्रोधित हो गयीं और क्रुद्ध होकर उन देवी ने उस दुष्टबुद्धि के वक्षःस्थल पर अंकुश का प्रहार किया।।१०४।।

---

१. अश्वारूढातुरङ्गोऽपि—का अर्थ यहाँ यह हो सकता है कि जिस पर देवी सवार थीं उसके बाद भी उस अश्व ने दानवों को मसल डाला तथा अश्वारूढ़ + अतुरङ्गोऽपि का अर्थ होगा कि जो अश्व पर आरूढ़ होती थी, उन देवी ने तुरंग अश्व के न रहने पर अतुरङ्गोऽपि विना घोड़े के दानवों को मसल डाला।

तेनांकुशेन ज्वलता पीतजीवितशोणितः। कुरंडो न्यपतद्भूमौ वज्र रुग्ण इव द्रुमः॥१०५॥
तदंकुशविनिष्ठ्यूताः पूतनाः काश्चिदुद्भटाः। तत्सैन्यं पाशनिष्यंदं भक्षयित्वा क्षयं गताः॥१०६॥
इत्थं कुरुंडे निहते विंशत्यक्षौहिणीपतौ। हतावशिष्टास्ते दैत्याः प्रपलायंत वै द्रुतम्॥१०७॥
कुरंडं सानुजं युद्धे शक्तिसैन्यैर्निपातितम्। श्रुत्वा शून्यकनाथोऽपि निशश्वास भुजंगवत्॥१०८॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने दुर्मदकुरंडवधो नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

करकादि पञ्चसेनापतिवधोनाम

त्रयोविंशोऽध्यायः

अथाश्वारूढया क्षिप्ते कुरंडे भंडदानवः। कुटिलाक्षमिदं प्रोचे पुनरेव युयुत्सया॥१॥
स्वप्नेऽपि यन्न संभाव्यं यन्न श्रुतमितः पुरा। यच्च नो शंकितं चित्ते तदेतत्कष्टमागतम्॥२॥
कुरंडदुर्मदौ सत्त्वशालिनौ भ्रातरौ हि तौ। दुष्टदास्याः प्रभावोऽयं मायाविन्या महत्तरः॥३॥

उस जलते अंकुश द्वारा उस कुरण्ड का जीवन और रक्त पी लिया गया। तब वह कुरण्ड वज्र से काटे गये पेड़ की भाँति भूमि पर गिर गया।।१०५।। उस अंकुश द्वारा मारे गये कुछ उद्भट राक्षस पाश के निष्यन्द को खाकर नष्ट हो गये।।१०६।। इस प्रकार बीस अक्षौहिणी सेना के सेनापति कुरण्डासुर के मरने पर मरने से बचे हुए सैनिक शीघ्र ही भाग गये।।१०७।। अपने छोटे भाई दुर्मद सहित कुरण्ड को भी शक्ति सेना ने मार गिराया, इस वृत्तान्त को सुनकर शून्यक नाथ ने सर्प की भाँति गहरी साँस ली।।१०८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २२वाँ अध्याय दुर्मदकुरुण्ड वध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय- २३

करंकादि पाँच सेनापतिवध वर्णन

पूर्व अध्याय में संपत्करी देवी की कौतुका नामक शक्ति ने जब कुरण्डासुर को मार गिया, तब दैत्यराज भण्ड ने पुनः युद्ध करने की इच्छा से कुटिलाक्ष से कहा।।१।। कि स्वप्न में भी जो सम्भव नहीं था तथा इससे पहले कभी ऐसा सोचा ही था और जिसकी मन में कभी शंका ही नहीं थी, अचानक वह यह कष्ट आ गया है।।२।। वे कुरण्ड और दुर्मद दोनों भाई बहुत पराक्रमी थे, यह उस मायाविनी दुष्ट दासी का प्रभाव है।।३।।

इतः परं करंकादीन्यपंचसेनाधिनायकान्। शतमक्षौहिणीनां च प्रस्थापय रणांगणे॥४॥
ते युद्धदुर्मदाः शूराः संग्रामेषु तनुत्यजः। सर्वथैव विजेष्यंते दुर्विदग्धविलासिनीम्॥५॥
इति भंडवचः श्रुत्वा भृशं च त्वरयान्वितः। कुटिलाक्षः करंकादीनाजुहाव चमूपतीन्॥६॥
ते स्वामिनं नमस्कृत्य कुटिलाक्षेण देशिताः।
अग्नौ प्रविष्णाव इव क्रोधांधा निर्ययुः पुरात्॥७॥
तेषां प्रयाणनिःसाणरणितं भृशदुःसहम्। आकर्ण्य दिग्गजास्तूर्णं शीर्णकर्णा जुघूर्णिरे॥८॥
शतमक्षौहिणीनां च प्राचलत्केतुमालकम्। उत्तरंगतुरंगादि बभौ मत्तमतंगजम्॥९॥
हेषमाणहयाकीर्णं क्रंदद्भटकुलोद्भवम्। बृंहमाणगजं गर्जद्रथचक्रं चचाल तत्॥१०॥
चक्रनेमिहतक्षोणीरेणुक्षपितरोचिषा। बभूवे तुहिनासारच्छन्नेनेव विवस्वता॥११॥
धूलीमयमिवाशेषमभवद्विश्वमंडलम्। क्वचिच्छब्दमयं चैव निःसाणकठिनस्वनैः॥१२॥
उद्धूतैर्धूलिकाजालैराक्रांता दैत्यसैनिकाः। उयत्तयातः सेनायाः संख्यापि परिभाविता॥१३॥
ध्वजा बहुविधाकारा मीनव्यालादिचित्रिताः।
प्रचेलुर्धूलिकाजाले मत्स्या इव महोदधौ॥१४॥
तानापतत आलोक्य ललितासैनिकं प्रति। वित्रेसुरमराः सर्वे शक्तीनां भङ्गशङ्कया॥१५॥
त करङ्कमुखाः पञ्च सेनापतय उद्धताः। सर्पिणीं नाम समरे मायां चक्रुर्महीयसीम्॥१६॥

भण्डासुर ने कटिलाक्ष से कहा कि इसके बाद करंक आदि पाँच सेनापतियों को सौ अक्षौहिणी सेना को लेकर युद्ध क्षेत्र में प्रयाण कराओ।।४।। वे युद्धों में किसी से भी न हारने वाले शूरवीर योद्धा कठिनाई से जीती जाने वाली विलासिनी उस ललिता को सब प्रकार से जीत लेंगे।।५।। इस प्रकार भण्डासुर के वचन को सुनकर बहुत शीघ्रता से कुटिलाक्ष ने करंक आदि सेनापतियों को बुलाया।।६।। सेनापतियों ने आकर पहले स्वामी दैत्यराज भण्ड को नमस्कार किया और नमस्कार करके अग्नि प्रवेश करने के समान क्रोधान्ध होकर नगर से युद्ध के लिये निकल पड़े।।७।। युद्ध क्षेत्र में उनका प्रयाण अत्यन्त कठोर युद्ध वाला तथा अत्यन्त दुःसह था। उन सेनापतियों के प्रयाण को सुनकर दिग्गज (दिशाओं के हाथी) शीघ्र ही कानों को गिराकर घूरने लगे।।८।। सौ अक्षौहिणी सेनाओं की ध्वजायें चलने लगी, तब ऊँचे-ऊँचे अश्व तथा मदमत्त हाथी सुशोभित हुए।।९।। हिनहिनाते हुए घोड़ों से आकीर्ण योद्धाओं की चिल्लाने की ध्वनि से युक्त बढ़ते हुए हाथियों की गर्जना से युक्त वह रथचक्र चलने लगा।।१०।। तब रथ के पहिये की नेमि से खोदी गयी भूमि की धूलि की छाया हुई। आभाश से ऐसा लगता था मानो कि सूर्य को कुहरा ने ढक दिया हो।।११।। इस प्रकार समस्त विश्वसमूह धूलीमय के समान हो गया था। निःसाण (अनुपम) कठिन ध्वनियों से कहीं शब्द सुनायी नहीं देता था।।१२।। धूलि समूह के उठने से दैत्य सैनिक आक्रान्त हो गये। इतनी सेना आयी कि उसकी गिनती भी नहीं की जा सकती।।१३।। उस सेना में अनेकों प्रकार के आकार की ध्वजायें थी, किसी पर मछली तो किसी पर सर्प आदि चित्रित थे। वे सब सेनाएं धूलियों में उसी प्रकार चल रही थी जैसे कि समुद्र में मछलियां चलती हैं।।१४।। उन सैनिकों को श्री ललिता देवी की सेना की ओर आता हुआ देखकर देवताओं को यह भय हो गया कि कहीं शक्तियों की शक्ति भंग न हो जाये।।१५।। वे करङ्कादि पाँच

तैः समुत्पतिता दुष्टा सर्पिणी रणशांबरी। धूम्रवर्णा च धूम्रोष्ठी धूम्रवर्णपयोधरा॥१७॥
महोदधिरिवात्यंतं गंभीरकुहरोदरी। पुरश्चचाल शक्तीनां त्रासयंती मनो रणे॥१८॥
कद्रूरिवापरा दुष्टा बहुसर्पविभूषणा। सर्पाणामुद्भवस्थानं मायामयशरीरिणाम्॥१९॥
सेनापतीनां नासीरे वेल्लयंतीमहीतले। वेल्लितं बहुधा चक्रे घोरारावविराविणी॥२०॥
तथैव मायया पूर्वं तेऽसुरेन्द्रा व्यजीजयन्। करंकाद्या दुरात्मानः पञ्चपञ्चत्त्वकामुकाः॥२१॥
अथ प्रववृते युद्धं शक्तीनाममरद्रुहाम्। अन्योन्यवीरभाषाभिः प्रोत्साहित घनक्रुधाम्॥२२॥
अत्यंतसंकुलतया न विज्ञातपरस्पराः। शक्तयो दानवश्चैव प्रजहुः शस्त्रपाणयः॥२३॥
अन्योन्यशस्त्र संघट्टसमुत्थितहुताशने। प्रवृत्तविशिखस्त्रोतःप्रच्छन्नहरिदंतरे॥२४॥
बहुरक्तनदीपूरह्रियमाणमतंगजे। मांसकर्दमनिर्मग्ननिष्पंदरथमंडले॥२५॥
विकीर्णकेशशैवालविलसद्रक्तनिर्झरे। अतिनिष्ठुरविध्वंसि सिंहनादभयंकरे॥२६॥
रजोऽन्धकारतुमुले राक्षसीतृप्तिदायिनि। शस्त्रीशरणिविच्छिन्नदैत्यकंठोत्थितासृजि॥२७॥
प्रवृत्ते घोरसंग्रामे शक्तीनां च सुरद्विषाम्। अथ स्वबलमादाय पंचभिः प्रेरिता सती।

प्रमुख सेनापति बहुत ही अच्छे उद्धत सेनापति थे, उन्होंने समर में सर्पिणी नाम महती माया पैदा कर दी।।१६।। उन सेनापतियों द्वारा उड़ायी गयी दुष्टा सर्पिणी युद्ध में जादू पैदा करने वाली जादूगरनी थी, वह धुंआ के वर्ण की थी, उसके ओष्ठ भी धूम्रवर्ण के थे और धूम्रवर्ण के ही उसके स्तन थे।।१७।। महासागर की भाँति उसकी अत्यन्त गहरी नाभि थी। वह रण में शक्तियों के सामने शक्तियों के मन को डराती हुई चलने लगी।।१८।। वह दुष्टा सर्पों की आदि जननी कद्रू के समान बहुत से सर्पों से सजी हुई मायामय शरीर वाले सर्पों के उत्पत्ति स्थान थी अर्थात् अनेकों सर्पों को पैदा कर देती थी।।१९।। सेनापतियों के आगे पृथ्वीतल पर लोटती हुई अनेकों बार अनेक प्रकार के घोर शब्द करती थी।।२०।। उसी प्रकार पूर्वकाल में माया ने उन करंक आदि पाँच पाँच तत्त्वों के कामुक असुरेन्द्रों को पैदा किया था।।२१।। इसके बाद युद्ध के प्रवृत्त हो जाने पर शक्तियों और देवशत्रु असुरों के बीच अपनी अपनी सेनाओं को वीरतापूर्ण भाषाओं द्वारा युद्ध के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा था।।२२।।

वे सब शक्ति और असुर इतने अधिक थे कि संकुल हो जाने के कारण परस्पर एक दूसरे को जान भी नहीं रहे थे। सब शक्ति सेना और दानव सेना दोनों ही अपने अपने हाथों में शस्त्र लिये हुए थे।।२३।। तब वहाँ एक-दूसरे के शस्त्रों के आघात से घनी रगण के कारण आग उठने लगी थी। युद्ध होने पर बाणों की वर्षा ऐसे हो रही थी मानों की झरने झर रहे हों तथा उन बाणों की वर्षा से सभी दिशायें ढक दी गयी थीं।।२४।। चारों ओर इतना रक्त बह रहा था कि रक्त की नदी बन गयी थी तथा वह रक्त की नदी इतनी गहरी हो गयी कि हाथी भी शरमाने लगे थे। मांस की कीचड़ में रथ डूब गये थे; इसलिये उनकी गति नहीं हो रही थी।।२५।। जैसे कि किसी नदी में शिवार होता है, उसी प्रकार उस युद्धस्थल में रक्त का झरना बन गया था, जिसमें मरने वाले असुरों तथा शक्तियों के बाल रक्त के स्रोत में शिवार बने हुए थे। वहाँ अत्यन्त निष्ठुर विध्वंस उपस्थित हो गया तथा भयंकर सिंहनाद हो रहा था तथा धूलि के कारण भीषण अन्धकार छा गया था। शस्त्रधारी के शरण से विच्छिन्न हुये दैत्यों के कण्ठ से रुधिर निकल रहा था।।२६-२७।। इस उपर्युक्त प्रकार के असुरों और शक्तियों का घोर संग्राम प्रवृत्त होने पर

सर्पिणी बहुधा सर्पान्विससर्ज शरीरतः॥२८॥
तक्षककर्कोटकसमा वासुकिप्रमुखत्विषः। नानाविधवपुर्वर्णा नानादृष्टिभयंकराः॥२९॥
नानाविधविषज्वालानिर्दग्धभुवनत्रयाः। दारदं वत्सनाभं च कालकूटमथापरम्॥३०॥
सौराष्ट्रं च विषं घोरं ब्रह्मपुत्रमथापरम्। प्रतिपन्नं शौक्लिकेयम्यान्यपि विषाणि च॥३१॥
व्यालैः स्वकीयवदनैर्विलोलरसनाद्वयैः। विकिरंतः शक्तिसैन्ये विसस्रुः सर्पिणीतनोः॥३२॥
धूम्रवर्णा द्विवदना सर्पा अतिभयंकराः। सर्पिण्या नयनद्वंद्वा दुत्थिताः क्रोधदीपिताः॥३३॥
पीतवर्णास्त्रिफणका दंष्ट्राभिर्विकटाननाः। सर्पिण्याः कर्णकुहरादुत्थिताः सर्पकोटयः॥३४॥
अग्रे पुच्छे च वदनं धारयंतः फणान्वितम्।
आस्यादा नीलवपुषः सर्पिण्याः फणिनोऽभवन्॥३५॥
अन्यैश्च बलवर्णाश्च चतुर्वक्त्राश्चतुष्पदाः। नासिकाविवरात्तस्या उद्गता उग्ररोचिषः॥३६॥
लंबमानमहाचर्मावृत्तस्थूलपयोधरात्। नाभिकुंडाच्च बहवो रक्तवर्णा भयानकाः॥३७॥
हलाहलं वहंतश्च प्रोत्थिताः पन्नगाधिपाः। विदशंतः शक्तिसेनां दहंतो विषवह्निभिः॥३८॥
बध्नंतो भोगपाशैश्च निघ्नंतः फणमंडलैः। अत्यन्तमाकुलां चक्रुर्ललितेशीचमूममी॥३९॥
खंड्यमाना अपि मुहुः शक्तीनां शस्त्रकोटिभिः॥४०॥

अपने बल को लेकर पाँच सेनापतियों से प्रेरित होती हुई, उस सर्पिणी ने अपने शरीर से अनेकों प्रकार के सर्पों को उत्पन्न कर दिया।।२८।। वे हैं—तक्षक और कर्कोटक जो वासुकि प्रमुख की कान्ति वाले थे। वे सब सर्प अनेकों प्रकार के शरीर और वर्णों वाले थे तथा अनेकों प्रकार की भयंकर दृष्टि वाले थे।।२९।। वे सर्प अनेकों प्रकार के विषों की ज्वाला से तीनों लोकों को जलाने वाले थे।।२९½।। उन सर्पों में जो भीषण सद्यः प्राणनाशक विष थे, उनका नाम है—दारद, वत्सनाभ तथा उससे भी भीषण कालकूट, सौराष्ट्र और ब्रह्मपुत्र दूसरे प्रकार का विष है तथा शौक्लिकेय विष एवं अन्य प्रकार के विषों को सर्प अपनी लपलपाती दो जिह्वाओं से शक्ति सेनाओं पर गिराने वाले सर्प उस सर्पिणी के शरीर से पैदा हो गये।।२९½-३२।। सर्पिणी के दोनों नेत्रों से धूम्रवर्ण वाले, दो मुख वाले अत्यन्त भयंकर क्रोध से दीपित सर्प निकल रहे थे।।३३।। उस सर्पिणी के कर्ण कुहरों से पीले वर्ण वाले तीन फण वाले और बड़े-बड़े दाँतों से विकटमुख वाले करोड़ों सर्प निकल रहे थे।।३४।। वे सर्प आगे और पीछे दोनों तरफ फण से युक्त मुख धारण करते थे। इस प्रकार उस सर्पिणी के मुख से खाने वाले नीले शरीर केअनेकों फणधारी सांप हो गये।।३५।। अन्य बल और वर्ण दोनों में ही भयंकर तथा चार मुख वाले और चार पैरों वाले एवं उग्रकान्ति वाले सर्प उस सर्पिणी के नासिका छिद्रों से उत्पन्न हो गये।।३६।।

उस सर्पिणी के लम्बे तथा लटकते हुए महाचर्म वाले गोल एवं मोटे स्तनों से तथा नाभिकुण्ड से लाल रंग के बहुत से भयावह हलाहल (विष) को धारण करने वाले सर्पराज उठ खड़े हुए, जो शक्ति सेना को डस रहे थे और अपने विष की आग से जला रहे थे।।३७-३८।। वे सर्पगण अपने भोगपाशों से शक्ति सेना को बाँध रहे थे तथा अपने फणों से काटकर मार रहे थे। इस प्रकार इन सर्पों ने श्री ललितेश्वरी की सेना को अत्यन्त आकुल कर दिया।।३९।। वैसे तो शक्तियों के करोड़ों शस्त्रों द्वारा वे सब खण्डित भी किये जा रहे थे। शक्तियां अपने शस्त्रों

उपर्युपरि वर्धंते सपिण्डप्रविसर्पिणः। नश्यंति बहवः सर्पा जायंते चापरे पुनः॥४१॥
एकस्य नाशसमये बहवोऽन्ये समुत्थिताः। मूलभूता यतो दुष्टा सर्पिणी न विनश्यति॥४२॥
अतस्तत्कृतसर्पाणां नाशे सर्पांतरोद्भवः। ततश्च शक्तिसैन्यानां शरीराणि विषानलैः॥४३॥
दह्यमानानि दुःखेन विप्लुतान्यभवन्रणे। किंकर्तव्यविमूढेषु शक्तिचक्रेषु भोगिभिः॥४४॥
पराक्रमं बहुविधं चक्रुस्ते पंच दानवाः। करीन्द्री गर्दभशतैर्युक्तं स्यंदनमास्थितः॥४५॥
चक्रेण तीक्ष्णधारेण शक्तिसे नाममर्दयत्। वज्रदंताभिधश्चान्यो भंडदैत्यचमूपतिः॥४६॥
वज्रबाणाभिघातेन होष्ट्रतो हि रणं व्यधात्। अथ वज्रमुखैश्च चक्रिवंतं महत्तरम्॥४७॥
आरुह्य कुंतधाराभिः शक्तिचक्रममर्दयत्। वज्रदंताभिधानोऽन्यश्चमूनामधिपो बली॥४८॥
गृध्रयुग्म रथारूढः प्रजहार शिलीमुखैः। तैः सेनापतिभिर्दुष्टैः प्रोत्साहितमथाहवे॥४९॥
शतमक्षौहिणीनां च निपपातैकहेलया। सर्पिणी च दुराचारा बहुमायापरिग्रहाः॥५०॥
क्षणेक्षणे कोटिसंख्यान्विससर्ज फणाधरान्। तथा विकलितं सैन्यमवलोक्य रुषाकुला॥५१॥
नकुली गरुडारूढा सा पपात रणाजिरे। प्रतप्तकनकप्रख्या ललितातालुसम्भवा॥५२॥
समस्तवाङ्मयाकारा दंतैर्वज्रमयैर्युता। सर्पिण्यभिमुखं तत्र विससर्ज निजं बलम्॥५३॥

से उन्हें काट रही थी; परन्तु ऊपर ऊपर पिण्ड के पिण्ड सर्प बढ़ रहे थे। इस प्रकार बहुत से सर्प नष्ट हो जाते थे और फिर पुनः पैदा हो जाते थे।।४०-४१।। एक के नष्ट होने के समय में ही बहुत से अन्य उठ खड़े होते थे; परन्तु मूलभूत जो कि पैदा करने वाली दुष्टा सर्पिणी थी, वही नष्ट नहीं हो रही थी।।४२।। अतः उसके द्वारा पैदा किये गये सर्पों के नाश होने पर दूसरे सर्पों की उत्पत्ति हो जाती थी।।४२-४२½।। उसके बाद शक्ति सेना के सैनिकों के शरीर सर्पो के विष की अग्नि जला दिये गये थे, अतः युद्धस्थल में शक्ति सेना दुःख से पूरी तरह विलुप्त होने लगी।।४२½-४३½।। इस प्रकार उन सर्पों द्वारा शक्ति की सेना किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी थी। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें और क्या न करें? ऐसी स्थिति में उन पाँचों दानवों ने अनेकों प्रकार के पराक्रम किये।।४३½-४४½।। करीन्द्री, सौ गदहों से युक्त रथ पर बैठकर तीक्ष्ण धार वाले चक्र से शक्ति सेना मारने लगी।।४४½-४५½।। वज्रदन्त नाम का भण्डासुर का अन्य सेनापति ऊँट से ही वज्रबाण के अभिघात से ही रण में कोलाहल मचाये हुए था।।४५½-४६½।। इस प्रकार वज्रमुख जो महान् चक्र को धारण किये हुए था, उसने भालों की तेज धाराओं से शक्तियों के शक्तिचक्र पर चढ़कर शक्तिचक्र का मर्दन कर दिया।।४६½-४७½।।

वज्रदन्त नाम का एक अन्य असुर सेना का बलवान् सेनापति था, वह दो गृध्रों के रथ पर चढ़कर बाणों की वर्षा कर रहा था।।४७½-४८½।। इस प्रकार उन दुष्ट सेनापतियों द्वारा प्रोत्साहित सौ अक्षौहिणी सेना युद्ध में एक साथ ही टूट पड़ी थी।।४८½-४९½।। दुष्टा सर्पिणी बहुत सी माया करने वाली थी, वह क्षण क्षण में करोड़ों की संख्या में फणधारी सर्पो को पैदा कर रही थी।।४९½-५०½।। उसी प्रकार जब शक्ति सेना को अत्यन्त व्याकुल हो गयी, तब उस सेना को व्याकुल देखकर नकुली देवी गरुड़ पर सवार होकर रणक्षेत्र में कूद पड़ी।।५०½-५१½।। वह नकुली देवी आग में तपे हुए सोने के समान थी तथा उसे श्री ललिता देवी ने उत्पन्न किया था। वह समस्त वाङ्मय के आकार वाली वज्र के समान कठोर दाँतों वाली थी। वहाँ सर्पिणी के सम्मुख उस नकुली देवी ने अपना बल उत्पन्न

तयाधिष्ठिततुंगांसः पक्षविक्षिप्तभूधरः। गरुडः प्राचलद्युद्धे सुमेरुरिव जंगमः॥५४॥
सर्पिणीमायया जान्तसर्पान्दृष्ट्वा भयानकान्।
क्रोधरक्तेक्षणं व्यात्तं नकुली विदधे मुखम्॥५५॥
अथ श्रीनकुलीदेव्या द्वात्रिंशद्दंतकोटयः। द्वात्रिंशत्कोटयो जाता नकुलाः कनकप्रभाः॥५६॥
इतस्ततः खण्डयन्तः सर्पिणी सर्पमण्डलम्। निजदंष्ट्राविमदन नाशयन्तश्च तद्विषम्॥५७॥
उत्कर्णाः क्रोध सम्पर्काद्धूनिताशेषलोमकाः।
उत्फुल्ला नकुला व्यात्तवदना व्यदशन्नहीन्॥५८॥
एकैकमायासर्पस्य बभ्रुरेकैक उद्गतः। तीक्ष्णदंतनिपातेन खण्डयामास विग्रहम्॥५९॥
भोगिभोगसृतै रक्तैः सृक्किणी शोणतां गते। लिहंतो नकुला जिह्वापल्लवैः पुप्लुवुर्मृधे॥६०॥
नकुलैर्दश्यमानानामत्यन्तचटुलं वपुः। मुहुः कुण्डलितैर्भोगैः पन्नगानां व्यचेष्टत॥६१॥
नकुलावलिदष्टानां नष्टासूनां फणाभृताम्। फणाभरसमुत्कीर्णा मणयो व्यरुचन्रणे॥६२॥
नकुलाघातसंशीर्णफणाचक्रैर्विनिर्गतैः। फणयस्तन्महाद्रोहवह्निज्वाला इवाबभुः॥६३॥
एवंप्रकारतो बभ्रुमण्डलैरवखण्डिते। मायामये सर्पजाले सर्पिणी कोपमादधे॥६४॥
तया सह महद्युद्धं कृत्वा सा नकुलेश्वरी। गारुडास्त्रमतिक्रूरं समाधत्त शिलीमुखे॥६५॥

कर दिया।।५१½-५३।। वह देवी गरुड़ पर सवार थी, वह गरुड़ ऊँचे कन्धों वाला तथा पर्वत के समान पंखों वाला था। ऐसा वह गुरुड़ युद्ध में ऐसा लग रहा था कि मानों सुमेरु पर्वत ही चलने वाला होकर आ गया हो।।५४।। जब उस नकुली देवी नें सर्पिणी की माया से पैदा होने वाले भयानक सर्पों को देखा तो उन्हें देखकर नकुली ने क्रोध से लाल-लाल आँखें करके अपने मुख को खोला।।५५।। इसके बाद उस नकुली देवी के मुख से बत्तीस करोड़ दाँतों वाले सोने की आभा के समान बत्तीस करोड़ नेवले पैदा हो गये।।५६।। वे सब नेवले सर्पिणी के सर्पों को इधर-उध अपने दाँतों से काटकर फेंकने लगे और सर्पों के विष को नष्ट करने लगे। अब घोर रणक्षेत्र में विष को नष्ट करने वाले स्वर्णवर्ण के नेवले घूम रहे थे।।५७।। वे सब नेवले ऊपर को कान उठाये हुए तथा क्रोध के सम्पर्क से समस्त शरीर लोमों को उठाये हुए उत्फुल्ल होकर मुख खोलकर सर्पों को डसने लगे।।५८।।

सर्पिणी की माया से एक सर्प निकलता था तो उसी समय एक नेवला निकल रहा था। जो अपने तेज दाँत से सर्प के शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर दे रहा था।।५९।। तब सर्पों के निकलते रुधिर से नेवले के ओष्ठ और मुंह सब खून से रंग गये थे। उन सर्पों का खून पीते हुए नेवले बार-बार अपने ओठों को जीभ लपलपा कर चाट रहे थे।।६०।। नेवलों द्वारा डसे गये सर्पों के अत्यन्त काँपते हुए शरीर बार-बार कुण्डली मार रहे थे।।६१।। नेवलों द्वारा जिन फणधारी नागों को काट दिया गया था और फिर वे प्राणहीन हो गये थे, तब उनकी मणियां रणमें इधर उधर बिखरी पड़ी थीं।।६२।। नेवलों के आघात से जिन सर्पो के फन काट दिये गये थे, वे अपने चक्र से निकले हुए फन उसके प्रति महान् वैर की आग उगल रहे थे।।६३।। इस प्रकार से नेवलों द्वारा मायामय सर्पों को खण्ड-खण्ड कर देने पर सर्पिणी ने अत्यन्त क्रोध को धारण कर लिया।।६४।। तब फिर उस सर्पिणी के साथ नकुलेश्वरी देवी ने महान् युद्ध किया और फिर अत्यन्त क्रूर गारुड अस्त्र को अपने बाण के मुख पर लगाया और

तन्नारुडास्त्रमुद्दामज्वालादीपितदिङ्मुखम्। प्रविश्य सर्पिणीदेहं सर्पमायां व्यशोषयत्॥६६॥
मायाशक्तेर्विनाशेन सर्पिणी विलयं गता। क्रोधं च तद्विनाशेन प्राप्ताः पञ्च चमूवराः॥६७॥
यद्बलेन सुरान्सर्वान्सेनान्यस्तेऽमेनिरे। सा सर्पिणी कथाशेषं नीता नकुलवीर्यतः॥६८॥
अतः स्वबलनाशेन भृशं क्रुद्धाश्चमूचराः। एकोद्यमेन शस्त्रौघैर्नकुलीं तामवाकिरन्॥६९॥
एकैव सा तार्क्ष्यरथा पञ्चभिः पृतनेश्वरी। लघुहस्ततया युद्धं चक्रे वै शस्त्रवर्षिणी॥७०॥
पट्टिशैर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सहस्रशः। वज्रसारमयैर्दंतैर्व्यदशन्मर्म सीमसु॥७१॥
ततो हाहारुतं घोरं कुर्वाणा दैत्यकिङ्कराः। उदग्रदंशनकुलैर्नकुलैराकुलीकृताः॥७२॥
उत्पत्य गगनात्केचिद्घोरचीत्कारकारिणः। दंशंतस्तद्विषां सैन्यं सकुलाः प्रज्वलक्रुधः॥७३॥

कर्णेषु दष्ट्वा नासायामन्ये दष्टाः शिरस्तटे।
पृष्ठतो व्यदशन्केचिदागत्य व्याकृतक्रियाः॥७४॥

विकलाश्छिन्नवर्माणो भयविस्रस्तशस्त्रिकाः। नकुलैरभिभूतास्ते न्यपतन्नमरद्रुहः॥७५॥

केचित्प्रविश्यनकुला व्यात्तान्यास्यानि वैरिणाम्।
भोगिभोगानिवाकृष्य व्यदशन्रसनातलम्॥७६॥
अन्ये कर्णेषु नकुलाः प्राविशन्देववैरिणाम्।
सूक्ष्मरूपा विशंतिस्म नानारन्ध्राणि बभ्रवः॥७७॥

उस गारुडास्त्र का प्रयोग कर दिया, तब उस गारुणास्त्र से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करती हुई अत्यन्त तीव्र ज्वाला निकली, जिसने सर्पिणी के शरीर में घुसकर उसकी सर्पमाया को पूरी तरह सोख लिया।।६५-६६।। जब मायाशक्ति का विनाश हो गया, तब सर्पिणी विलीन हो गयी। उसके विनाश होने से पाँचों सेनापति अत्यन्त क्रोधित हो गये।।६७।। जिस सर्पिणी के बल से सब देवताओं की सेना को नीचा दिखाया जा रहा था, वह सर्पिणी नेवलों के पराक्रम से कथा शेष मात्र रह गयी अर्थात् उसका काम तमाम हो गया।।६८।। इसलिये अपने बल के नाश होने के कारण भण्डासुर के श्रेष्ठ सेनापति अत्यन्त क्रोधित हो गये। तब उन्होंने एक उद्यम रूप में नकुली देवी अनेकों शस्त्रों की बौछार कर दी।।६९।। उस अकेली सेना की स्वामिनी नकुलेश्वरी तार्क्ष्य रथा ने पाँचों के साथ लघु हस्ततया (हल्के हाथों से) शस्त्र वर्षा करते हुए युद्ध किया।।७०।। हजारों पट्टिश मूसल और भिन्दिपालों तथा वज्रसार (हीरा) के समान कठोर दाँतों से मर्मस्थलों पर प्रहार किया।।७१।।

उसके बाद दैत्य किङ्किर हाहाकार करते हुए तेज दाँतों वाले नेवलों द्वारा व्याकुल कर दिये गये।।७२।। कुछ नेवले उड़कर आकाश से घोर चीत्कार की ध्वनि करते हुए क्रोध से जलते हुए क्रोध स जलते हुए दैत्य सेना को दांतों से काट रहे थे।।७३।। कुछ नेवले दैत्यों के कानों में काटते थे, तो कुछ उनकी नाक को काटने लगते थे, तो दूसरे नेवले शिर पर कट रहे थे। कुछ पीठ पर काटते थे, तो इस प्रकार वे नेवले शत्रुओं में व्याकृत क्रिया कर रहे थे अर्थात् सब शत्रुओं की आकृति ही बिगाड़ दे रहे थे।।७४।। इस प्रकार जब नेवलों ने उन सब दैत्य सैनिकों के शरीर काट काट कर विकल कर दिये तब कटे हुए शरीर वाले देवशत्रु दैत्य सैनिक भयभीत होकर नेवलों से अभिभूत हो पृथ्वी पर गिर पड़े।।७५।। कुछ नेवले वैरियों के फैलाये हुए मुखों में घुसकर फणधारी सर्पों को रसातल से खींच कर खा रहे थे।।७६।। दूसरे नेवले देव शत्रुओं के कानों में घुस गये तथा कुछ नेवले बहुत सूक्ष्म

इति तैरभिभूतानि नकुलैरवलोकयन्। निजसैन्यानि दीनानि करङ्कः कोपमास्थितः॥७८॥
अन्येऽपि च चमूनाथा लघुहस्ता महाबलाः॥७९॥
प्रतिबभ्रु शरस्तोमान्ववृषुर्वारिदा इव। दैत्यसैन्यपतिप्रौढकोदंडोत्थाः शिलीमुखाः।
बभ्रूणां दंतकोटीषु कठोरघट्टनं व्यधुः॥८०॥
चमूपतिशरव्यूहैराहतेभ्यः परःशतैः। बभ्रूणां वज्रदंतेभ्यो निश्चक्राम हुताशनः।
पञ्चापि ते चमूनाथविसृष्टैरेकहेलया॥८१॥
स्फुरत्फलैः शरकुलैर्बभ्रुसेनां व्यमर्दयत्। इतस्ततश्चमूनाथविक्षिप्तशरकोटिभिः।
विशीर्णगात्रा नकुला नकुलीं पर्यवारयन्॥८२॥
अथ सा नकुली वाणी वाङ्मयस्यैकनायिका। नकुलानां परावृत्त्या महांतं रोषमाश्रिता॥८३॥
अक्षीणनकुलं नाम महास्त्रं सर्वतोमुखम्। वह्निज्वालापरीताग्रं संदधे शार्ङ्गधन्वनि॥८४॥
तदस्त्रतो विनिष्ठ्यूता नकुलाः कोटिसंख्यकाः।
वज्राङ्गा वज्रलोमानो वज्रदंष्ट्रा महाजवाः॥८५॥
वज्रसाराश्च निबिडा वज्रजाल भंयकराः। वज्राकारैर्नखैस्तूर्णं दारयंतो महीतलम्॥८६॥
वज्ररत्नप्रकाशेन लोचनेनापि शोभिताः। वज्रसंपातसदृशा नासाचीत्कारकारिणः॥८७॥
मर्दयंति सुरारातिसैन्यं दशनकोटिभिः। पराक्रमं बहुविधं तेनिरे ते निरेनसः॥८८॥
एवं नकुलकोटीभिर्वज्रघोरैर्महाबलैः। विनष्टा; प्रत्यवयवं विनेशुर्दानवाधमाः॥८९॥

रूप धारण करके शरीर के अनेकों छिद्रों में घुस रहे थे।।७७।। इस प्रकार उन नेवलों से अपनी सेना को अभिभूत देखते हुए अपनी सेना की दीन दशा पर करङ्क को अत्यन्त क्रोधित हुआ।।७८।। अन्य भी सेनापति अपने हाथों को हल्का कर शक्ति सेना पर बादल वर्षा की भाँति बाण वर्षा करने लगे।।७९।। दैत्य सेनापति ने प्रौढ़ धनुष को उठाया और बाणों को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया तथा जब वे बाण नेवलों के दन्त कोटियों से टकराने लगे तो कठोर घर्षण पैदा करने लगे।।८०।। सेनापति के हजारों बाणों के द्वारा नेवलों के आहत वज्रदन्तों से आग निकलने लगी थी।।८१।। इसके वे पाँचों सेनापति एक साथ ही नेवलों पर बाणों की वर्षा करने लगे और फिर फड़कते हुए फरवाले बाणों से नेवलों की सेना को नष्ट कर दिया (कुचल डाला)।।८२।। इस प्रकार सेनापति द्वारा इधर-उधर छोड़े गये करोड़ों बाणों से घायल शरीरों वाले नेवले नकुली देवी के पास पहुँचे।।८३।।

इसके बाद वाङ्मय की एक नायिका वाणी नकुली नकुलों से घिरी हुई होकर महान् क्रोधित हुई।।८४।। और अक्षीण नकुल नामक सब ओर मार करने वाले महास्त्र को जिसके कि अग्रभाग पर आग जल रही थी, को अपने शार्ङ्ग धनुष पर रखकर सन्धान कर दिया।।८५।। तब उस अस्त्र से वज्र के शरीर वाले, वज्र के समान लोमवाले, वज्र के समान दाँतों वाले बहुत तेज गति वाले, वज्रसार सघन वज्रजाल के समान भयंकर करोड़ों नेवले निकल पड़े। जो नेवले वज्र के समान नाखूनों से शीघ्र पृथ्वी तल को ही विदीर्ण करने लगे।।८६।। वे नेवले हीरा रत्न के प्रकाश वाली आँखों से सुशोभित थे। उन चीत्कार करने वाले नेवलों की चीत्कार वज्र के समान थी।।८७।। वे नेवले असुर सैनिकों को अपने करोड़ों दाँतों से काटकर मार रहे थे। इस प्रकार उन सब नेवलों ने बहुत ही पराक्रम किया।।८८।। इस प्रकार वज्र के समान घोर महाबलवान् करोड़ों नेवलों ने दुष्ट दानवों के समूह के समूह नष्ट कर

एवं वज्रमयैर्बभ्रुमंडलैः खंडिते बले॥९०॥
शताक्षौहिणिके संख्ये ते स्वमात्रावशेषिताः। अतित्रासेन रोषेण गृहीताश्च चमूवराः।
संग्राममधिकं तेनुः समाकृष्टशरासनाः॥९१॥
तैः समं बहुधा युद्धं तन्वाना नकुलेश्वरी। पट्टिशेन करंकस्य चिच्छेद कठिनं शिरः॥९२॥
काकवाशितमुख्यानां चतुर्णामपि वैरिणाम्।
उत्पत्योत्पत्य तार्क्ष्येण व्यलुनादसिना शिरः॥९३॥
तादृशं लाघवं दृष्ट्वा नकुल्या श्यामलांबिका॥९४॥
बहु मेने महासत्त्वां दुष्टासुरविनाशिनीम्। निजांगदेवतत्त्वं च तस्यै श्यामांबिका ददौ॥९५॥
लोकोत्तरे गुणे दृष्टे कस्य न प्रीतिसंभवः। हतशिष्टा भीतभीता नकुलीशरणं गताः॥९६॥
सापि तान्वीक्ष्य कृपया मा भैष्टेति विहस्य च। भवद्राज्ञे रणोदंतमशेषं च निबोधत॥९७॥
तयैवं प्रेषिताः शीघ्रं तदालोक्य रणक्षितिम्। मुदितास्ते पुनर्भीत्या शून्यकायां पलायिताः॥९८॥
तदुदंतं ततः श्रुत्वा भंडश्चंडो रुषाभवत्॥९९॥

इति ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे ललितोपाख्याने करंकादिपंचसेनापतिवधो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

डाले।।८९।। इस प्रकार वज्रमय नेवलों द्वारा समस्त सेना के खण्डित हो जाने पर सौ अक्षौहिणी सेना में जब वे पाँच सेनापति मात्र ही बच गये, तब अत्यन्त त्रास और क्रोध के साथ वे सब सेनापति अपने अपने धनुष खींचकर घोर युद्ध करने लगे।।९०-९१।। उनके साथ नकुलेश्वरी देवी ने बहुत प्रकार से युद्ध किया और फिर युद्ध करती हुई नकुलेश्वरी ने पट्टिश (अंकुश) से करंक का कठिन शिर काट दिया।।९२।। कौओं की तरह काँव-काँव करने वाले उन शेष चारों के नकुलेश्वरी देवी ने तेज तलवार से शिर काट दिये।।९३।। जब श्यामल अम्बिका ने यह देखा कि कितनी आसानी से नकुली देवी ने उनके शिर काट लिये तो उन दुष्ट असुरों का विनाश करने वाली महापराक्रमी नकुली देवी को श्यामल अम्बिका ने बहुत माना और उसको श्यामल अम्बिका ने अपने शरीर का देवतत्त्व प्रदान कर दिया।।९४-९५।। लोकोत्तर गुण के देखने पर किस व्यक्ति को प्रेम नहीं होता है, जो मरने से बच गये थे, सब असुर नकुलेश्वरी की शरण में चले गये।।९६।। उस देवी ने भी उनको देखकर और हँसकर कहा कि कृपया डरो मत और कहा कि आपके राज्य में अन्य कोई रणकुशल योद्धा शेष है, उसे जाकर बताओ।।९७।। तब उस नकुलेश्वरी द्वारा भेजे गये असुर सैनिकों ने उसे देखकर और रणभूमि को देखकर कुछ प्रसन्न होते हुए और फिर कुछ भय से डरते शून्यक के पास भगाकर पहुँचे।।९८।। उसके बाद उन हतावशेष सैनिकों से सब वृत्तान्त जानकर वह भण्डासुर अत्यन्त क्रोधित हुआ।।९९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २३वाँ अध्याय करंकादि पाँच सेनापतिवध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।
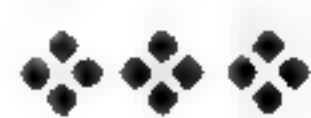
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

बलाहकादि सप्तसेनापतिवधो नाम

चतुर्विंशोऽध्यायः

हतेषु तेषु रोषांधो निश्वसञ्छून्यकेश्वरः।कुजलाशमिति प्रोचे युयुत्साव्याकुलाशयः॥१॥
भद्र सेनापतेऽस्माकमभद्रं समुपागतम्। करंकाद्याश्चमूनाथाः कंदलद्भुजविक्रमाः॥२॥
सर्पिणीमायया सर्वगीर्वाणमदभंजनाः। पापीयस्या तया गूढमायया विनिपातिताः॥३॥
बलाहकप्रभृतयः सप्त ये सैनिकाधिपाः। तानुदग्रभुजासत्त्वान्प्राहिणु प्रधनं प्रति॥४॥
त्रिशतं चाक्षौहिणीनां प्रस्थापय सहैव तैः। ते मर्दयित्वा ललितासैन्यं मायापरायणाः॥५॥
अये विजयमाहार्य संप्राप्स्यंति ममांतिकम्। कीकसागर्भसंजातास्ते प्रचंडपराक्रमाः॥६॥
बलाहकमुखाः सप्त भ्रातरो जयिनः सदा। तेषामवश्यं विजयो भविष्यति रणांगणे॥७॥
इति भंडासुरेणोक्तः कुटिलाक्षः समाह्वयत्। बलाहकमुखान्सप्त सेनानाथान्मदोत्कटान्॥८॥
बलाहकः प्रथमतस्तस्मात्सूचीमुखोऽपरः। अन्यः फालमुखश्चैव विकर्णो विकटाननः॥९॥
करालायुः करटकः सप्तैते वीर्यशालिनः। भंडासुरं नमस्कृत्य युद्धकौतूहलोल्वणाः॥१०॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२४

बलाहकआदि सात सेनापति वध वर्णन

जब करंक आदि पाँच सेनापतियों के नकुलेश्वरी ने युद्ध क्षेत्र में मार गिराया तब हतावशेष सैनिकों से इस वृत्तान्त को सुनकर युद्ध की इच्छा वाले व्याकुल आशय वाले क्रोधान्ध शून्यकेश्वर ने कुञ्जलाश से कहा कि भद्र सेनापति! अब हमारा अभद्र हो गया है करंक आदि जो सेनापति थे, अपनी भुजाओं का पराक्रम दिखा कर लड़ते हुये सर्पिणी की माया द्वारा जो युद्ध कर रहे थे, उनकी समस्त वाणी और बाण का मद भंग हो गया। वे सभी उस पापिनी नकुलेश्वरी की गूढ़ माया से मारकर गिरा दिये गये।।१-३।। अब बलाहक आदि जो सात सेनापति हैं, उन विशाल भुजाओं वाले सेनापतियों को महाराज भण्ड के पास भेजो।।४।। तथा तीन सौ अक्षौहिणी सेना को उनके साथ कूच कराओ। वे माया परायण सेनापति ललिता की सेना का मर्दन करके विजय प्राप्त कर मेरे पास उसको लेकर आयेंगे। वे प्रचण्ड पराक्रमी कीकसा के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं।।५-६।।

वे बलाहकमुख सात भाई सदा ही जयी रहे हैं। समराङ्गण में उनकी विजय अवश्य होगी।।७।। इस प्रकार शून्यक ने कुटिलाक्ष से कहा और कुटिलाक्ष ने भण्डासुर से कहा, तब भण्डासुर ने कुटिलाक्ष को आदेश दिया। तब भण्डासुर के कहने पर कुटिलाक्ष मन्त्री ने बलाहप्रमुख सात मदोत्कट सेनापतियों को बुलाया।।८।। उनमें बलाहक प्रथम था और सूचीमुख दूसरा था, उसके बाद तीसरा फालमुख था, उसके बाद विकर्ण और विकटानन था।।९।। उसकेबाद करालायु और करकट ये सातों कीकसा के पुत्र युद्धमें कौतूहल पैदा करने वाले पराक्रमी सेनापति भण्डासुर

कीकसासूनवः सर्वे भ्रातरोऽन्योन्यमावृताः। अन्योन्यसुसहायाश्च निर्जग्मुर्नगरांतरात्॥११॥
त्रिशताक्षौहिणीसेनासेनान्योऽन्वगमंस्तदा। उल्लिखंति केतुजालैरंबरे घनमंडलम्॥१२॥
घोरसंग्रामिणीपादा घातैर्मर्दितभूतला। पिबंति धूलिकाजालैरशेषानपि सागरान्॥१३॥
भेरीनिःसाणतंपोट्टपणवानकनिस्वनैः। नभोगुणमयं विश्वमादधानाः पदेपदे॥१४॥
त्रिशताक्षौहिणीसेनां तां गृहीत्वा मदोद्धताः। प्रवेष्टुमिव विश्वस्मिन्कैकसेयाः प्रतस्थिरे॥१५॥
धृतरोषारुणाः सूर्यमंडलोद्दीप्तकंकटाः। उद्दीप्तशस्त्रभरणाश्चेलुर्दीप्तोर्ध्वकेशिनः॥१६॥
सप्त लोकान्प्रमथितुं प्रेषिताः पूर्वमुद्धताः। भंडासुरेण महता जगद्विजयकारिणा॥१७॥
सप्तलोकविमर्देन तेन दृष्ट्वा महाबलाः। प्रेषिता ललितासैन्यं जेतुकामेन दुर्धिया॥१८॥
ते पतंतो रणतलमुच्चलच्छत्रपाणयः। शक्तिसेनामभिमुखं सक्रोधमभिदुद्रुवुः॥१९॥
मुहुः किलकिलारावैर्घोषयंतो दिशो दश। देव्यास्तु सैनिकं यत्र तत्र ते जग्मुरुद्धताः॥२०॥
सैन्यं च ललितादेव्याः सन्नद्धं शस्त्रभीषणम्। अभ्यमित्रीणमभवद्बद्धभ्रुकुटिनिष्ठुरम्॥२१॥
पाशिन्यो मुसलिन्यश्च चक्रिण्यश्चापरा मुने। मुद्गरिण्यः पट्टिशिन्यः कोदंडिन्यस्तथापराः॥२२॥

को नमस्कार करके, सब भाई एक-दूसरे से आवृत्त होकर, एक-दूसरे के अच्छे सहायक रहते हुये उस नगर से निकल पड़े।।१०-११।। उन सातों सेनापतियों के पीछे तीन सौ अक्षौहिणी सेना भी चलने लगी। उस समय ध्वजा समूहों से आकाश में घनमण्डल सा छा गया। ऐसा लगता था कि आकाश में घनघोर घटायें उठ रही हों।।१२।। घोर संग्राम करने वाली सेना के पैरों के आघात से मर्दित पृथ्वी अपनी धूलियों से समस्त सागरों को पी रही थी।।१३।। युद्धभेरी की घोर ध्वनि तंपो टप्पल वानक[1] ध्वनियों से आकाश के गुण वाला शब्द विश्व के पद पद पर होने लगा। अर्थात् समस्त विश्व में वह आकाशगत ध्वनि गूँज गयी।।१४।।

उस तीन सौ अक्षौहिणी सेना को लेकर मदोद्धत कीकसा पुत्र विश्व में प्रविष्ट होने की भाँति युद्ध में उपस्थित हुए।।१५।। वे क्रोध के कारण लाल सूर्यमण्डल के समान चमक रहे थे। इस चमकते हुए शस्त्रों को धारण कर ऊपर को केश किये हुए चलने लगे।।१६।। पूर्वकाल में ये सातों वीर भण्डासुर द्वारा सातों लोकों को जीतने के लिये भेजे गये थे और भण्डासुर ने इन सातों सेनापतियों द्वारा संसार पर विजय प्राप्त की थी; क्योंकि वे सातों वीर सातों लोकों का मर्दन करने वाले थे, इसीलिये उस दुर्बुद्धि भण्डासुर ने ललिता देवी की सेना को जीतने की इच्छा से इस महाबलियों को युद्ध क्षेत्र में भेजा।।१७-१८।। उस समय वे सातों सेनापति रणक्षेत्र में रणतल को उछालते हुए हाथों में शस्त्र धारण कर शक्ति सेना के सामने क्रोधसहित शक्ति सेना पर आक्रमण करने लगे।।१९।। वे बार-बार किल किल की ध्वनियों से सभी दिशाओं में घोषणा करते हुए वहाँ पहुँचे, जहाँ कि ललिता देवी के सैनिक थे।।२०।। फिर ललिता देवी भी युद्ध के लिये तैयार हो चुकी थीं। भीषण शस्त्रधारी सेना के साथ भ्रकुटि टेढ़ी कर करके निष्ठुरता पूर्वक युद्ध होने लगा।।२१।। ललिता देवी की सेना भी ऐसी वैसी नहीं थी, उनमें कुछ शक्तियां पाश धारण किये हुए थीं, कुछ मुसल वाली थीं, कुछ चक्र लिये हुए थीं तो अन्य शक्तियां मुद्गर पट्टिश, धनुष धारण किये हुये थीं।

---

१. एक प्रकार के बाजे की भयंकर ध्वनि जो युद्धकाल में बजाया जाता रहा होगा, जिसकी ध्वनि से शत्रु सेना में भय की स्थिति पैदा होती होगी।

अनेकाः शक्त्यस्तीव्रा ललितासैन्यसंगताः। पिबंत्य इव दैत्याब्धिं सन्निपेतुः सहस्रशः॥२३॥
आयातायात हे दुष्टाः पापिन्यो वनिताधमाः। मायापरिग्रहैर्दूरं मोहयंत्यो जडाशयान्॥२४॥
नेष्यामो भवतीरद्य प्रेतनाथनिकेतनम्। श्वसद्भुजगसंकाशैर्बाणैरत्यंतभीषणैः।
इति शक्तीर्भर्त्सयंतो दानवाश्चक्रुरावहम्॥२५॥
काचिच्चच्छेद दैत्येंद्रं कंठे पट्टिशपातनात्। तद्गलोद्गलितो रक्तपूर ऊर्ध्वमुखोऽभवत्॥२६॥
तत्र लग्ना बहुतरा गृध्रा मंडलतां गताः। तैरेव प्रेतनाथस्य च्छत्रच्छविरुदंचिता॥२७॥
काचिच्छक्तिः सुराराति मुक्तशक्त्यायुधं रणे। लूनतच्छक्तिनैकेन बाणेन व्यलुनीत च॥२८॥
एका तु गजमारूढा कस्यचिद्दैत्यदुर्मतेः। उरःस्थले स्वकरिणा वप्रघातमशिक्षयत्॥२९॥
काचित्प्रतिभटारूढं दंतिनं कुंभसीमनि। खड्गेन सहसा हत्वा गजस्य स्वप्रियं व्यधात्॥३०॥
करमुक्तेन चक्रेण कस्यचिद्देववैरिणः। धनुर्दंडं द्विधा कृत्वा स्वभ्रुवोः प्रतिमां तनोत्॥३१॥
शक्तिरन्या शरैः शातैः शातयित्वा विरोधिनः।
कृपाणपद्या रोमाल्यां स्वकीयायां मुदं व्यधात्॥३२॥
काचिन्मुद्गरपातेन चूर्णयित्वा विरोधिनः। रथचक्रनितंबस्य स्वस्य तेनातनोन्मुदम्॥३३॥
रथकूबरमुग्रेण कस्यचिद्दानवप्रभोः। खड्गेन छिंदती स्वस्य प्रियमुर्व्यास्ततान ह॥३४॥

इस प्रकार अनेकों तीव्र शक्तियां ललिता देवी की सेना के साथ थीं। वे हजारों शक्तियां दैत्य रूपी सागर को पीती हुई के समान युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ी थीं।।२३।। अब युद्ध शुरू हो गया तो बलाहकादि सेनापतियों ने ललिता देवी से कहा कि आओ, आओ अरी दुष्टा! पापिनियो! अधम स्त्रियो! तुम अपनी मायाओं से जडाशयों को मूर्खो को मोहित कर लेती हो।।२४।। हम आज तुम्हें सर्प के समान फुफकार मारते हुए अत्यन्त भीषण बाणों से अपने स्वामी भण्डासुर के पास ले जायेंगे। इस प्रकार शक्तियों को धमकियां देते हुए दानवों से युद्ध करना आरम्भ कर दिया।।२५।।

उसके बाद किसी शक्ति ने दैत्यराज के गले पर बर्छी मारकर काट दिया, उसके गले से निकलने वाले खून से उसका मुख भर गया और ऊपर को हो गया।।२६।। जैसे ही वह गिरा तो वहां लगे हुए अनेकों गृध्र मण्डल बनाकर आ गये, उन गृध्रों के द्वारा प्रेतनाथ की छत्र के छवि बिल्कुल बिगड़ गयी अर्थात् वह छत्र की शोभा रोने और चिल्लाने में बदल गयी।।२७।। कोई शक्ति असुर सेना को रण में मुक्तशक्ति अस्त्र से लड़ रही थी, जिस आयुध को शक्ति ने एक बाण से काट दिया।।२८।। एक शक्ति हाथी पर चढ़कर किसी दुर्बुद्धि दैत्य की छाती पर अपने हाथी के द्वारा वप्राघात कर रही थी अर्थात् जैसे हाथी अपने आगे वाले बड़े दाँतों से पहाड़ को उखाड़ने की क्रिया करते हैं, उसी क्रिया द्वारा कुछ दैत्यों को शक्ति के हाथियों ने उठा उठा कर फेंक दिया और कुचल दिया।।२९।। कोई कोई योद्धा हाथी पर बैठकर तलवार से सहसा शत्रु को मारकर हाथी का अपना प्रिय कर रहा था।।३०।। किसी किसी शक्ति ने हाथ से चलाये गये चक्र द्वारा किसी देवशत्रु के धनुष के दण्ड के दो टुकड़े करके अपनी भौंहों को टेढ़ीकर साहस दिखाया।।३१।। अपनी भौहों की आकृति को बढ़ाया अर्थात् क्रोध किया। अन्य शक्ति ने तीव्र बाणों से विरोधी को मारकर अपनी रोमावली को आनन्द प्रदान किया।।३२।। किसी शक्ति ने मुद्गर मारकर विरोधी को चूर्ण करके अपने रथ के पहिये के नितम्ब (कूल्हे) से कुचल कर अपना आनन्द प्राप्त किया।।३३।। किसी ने उग्र खड्ग से दानवराज के रथ कूबर को काटते हुए अपना प्रिय कार्य पृथ्वी पर फैलाया।।३४।।

अभ्यंतरं शक्तिसेना दैत्यानां प्रविवेश ह। प्रविवेश च दैत्यानां सेना शक्तिबलांतरम्॥३५॥
नीरक्षीरवदत्यंताश्लेषं शक्तिसुरद्विषाम्। संकुलाकारतां प्राप्तो युद्धकालेऽभवत्तदा॥३६॥
शक्तीनां खड्गपातेन लूनशुण्डारदद्वयाः। दैत्यानां करिणो मत्ता महाक्रोडा इवाभवन्॥३७॥
एवं प्रवृत्ते समरे वीराणां च भयंकरे। अशक्ये स्मर्तुमप्यंतं कातरत्ववतां नृणाम्।
भीषणानां भीषणे च शस्त्रव्यापारदुर्गमे॥३८॥
बलाहको महागृधं वज्रतीक्ष्णमुखादिकम्। कालदंडोपमं जंघाकांडे चंडपराक्रमम्॥३९॥
संहारगुप्तनामानं पूर्वमग्रे समुत्थितम्। धूमवद्धूसराकारं पक्षक्षेपभयंकरम्॥४०॥
आरुह्य विविधं युद्धं कृतवान्युद्धदुर्मदः। पक्षौ वितत्य क्रोशार्धं स स्थितो भीमनिःस्वनैः।
अंगारकुंडवच्चञ्चुं विदार्याभक्षयेच्चमूम्॥४१॥
संहारगुप्तं स महागृधः क्रूरविलोचनः। बलाहकमुवाहोच्चैराकृष्टधनुषं रणे॥४२॥
बलाहको वपुर्धुन्वन्गृधपृष्ठकृतस्थितिः। सपक्ष कूटशैलस्थो बलाहक इवाभवत्॥४३॥
सूचीमुखश्च दैत्येन्द्रः सूचीनिष्ठुरपक्षतिम्। काकवाहनमारुह्य कठिनं समरं व्यधात्॥४४॥
मत्तः पर्वतशृङ्गाभश्चंचूदण्डं समुद्वहन्। कालदण्डप्रमाणेन जंघाकाण्डेन भीषणः॥४५॥

शक्ति सेना दैत्यों के बीच में प्रवेश कर गयी थी और दैत्यों की सेना शक्ति सेना के बीच में प्रवेश कर गयी थी।।३५।। जैसे पानी और दूध एक दूसरे में अत्यन्त विलीन होकर एक हो जाते हैं, उसी तरह शक्तियों और दैत्यों की सेना आपस में मिल गयी थी। अतः युद्ध के समय दोनों सेनायें संकुलाकारता को प्राप्त हो गयीं।।३६।। शक्तियों के खड्गपात से दैत्यों के हाथी कटी हुई सूँड़ वाले, दोनों दाँतरहित मत्त महागेंडा के समान हो गये।।३७।। इस प्रकार वीरों का भयंकर समर होने पर वह समर ऐसा था कि मनुष्यों की दुनियां में कभी याद भी अन्त ही होगा। शस्त्रों के प्रयोग के विषय में वह युद्ध भीषण युद्धों में भी भीषण युद्ध था तथा मानव इतिहास में अन्तिम रूप से याद करने को होगा।।३८।। वे सात असुर सेनापति थे, उनमें पहला बलाहक था, वह बलाहक युद्ध में किसी से भी हारने वाला नहीं था तथा वह महागृद्ध पर सवार होकर युद्ध कर रहा था। वह जिस महागृध्र पर सवार था, वह महागृध्र वज्र के समान तीक्ष्ण मुख आदि वाला था तथा कालदण्ड के समान था। उसकी जंघायें अत्यन्त ही पराक्रम युक्त थीं।।३९।। उस महागृध्र का नाम संहारगुप्त था, वह पहले ही आगे उपस्थित हो जाता था, उसके पंख धुँयें के समान धूसर आकार के थे तथा जब वह अपने पंख फैलाता था तो बहुत ही भयंकर लगता था।।४०।।

उसके दोनों पंख आधे कोश तक फैलते थे तथा भयंकर ध्वनियां करते थे, उसकी चोंच अंगारकुण्ड के समान थी, जो सैनिकों को फाड़कर खा रही थी।।४१।। वह संहारगुप्त नाम का महागृध्र बहुत क्रूर आँखों वाला था। युद्धस्थल में धनुष खींचे हुए बलाहक को वह बहुत ऊँचाई तक ले जाता था।।४२।। ऐसे उस महागिद्ध की पीठ पर बलाहक अपने शरीर को धारण किये हुए था, तो वह ऐसा लग रहा था कि अपने पक्षों (चोटियों) वाले शैलकूट पर्वत पर बादल छा रहा हो। यहाँ पर गिद्ध को शैलकूट पर्वत और बलाहक को बादल माना गया है।४३।। दूसरा सेनापति सूचीमुख सुई के समान कठोर पंख वाले काकवाहन पर चढ़कर कठिन समर करने लगा।।४४।। वह सूचीमुख जिस काक पर सवार था, वह काक मदमत्त था और पर्वत की चोटी के समान आभा वाले चञ्चु (चोंच) दण्ड को धारण

पुष्कलावर्तकसमा जंबालसदृशद्युतिः। क्रोशमात्रायतौ पक्षावुभावपि समुद्वहन्॥४६॥
सूचीमुखादिग्धितोऽसौ करटः कटुवासितः। मर्दयञ्चञ्चुघातेन शक्तीनां मण्डलं महत्॥४७॥
अथो फलमुखः फालं गृहीत्वा निजमायुधम्। कंकमारुह्य समरे चकाशे गिरिसन्निभम्॥४८॥
विकर्णाख्यश्च दैत्येन्द्रश्चमूभर्ता महाबलः। भेरुण्डपतनारूढः प्रचण्डयुद्धमातनोत्॥४९॥
विकटाननामानं विलसत्पट्टिशायुधम्। उवाह समरे चण्डः कुक्कुटोऽतिभयङ्करः॥५०॥
गर्जन्कण्ठस्थरोमाणि हर्षयञ्ज्वलदीक्षणः। पश्यन्पुरः शक्तिसैन्यं चचाल चरणायुधः॥५१॥
करालाक्षश्च भूभर्ता षष्ठोऽत्यन्तगरिष्ठदः। वज्रनिष्ठुरघोषश्च प्राचलत्प्रेतवाहनः॥५२॥
श्मशानमन्त्रशूरेण तेन संसाधितः पुरा। प्रेतो भूतसमाविष्टस्तमुवाह रणाजिरे॥५३॥
अवाङ्मुखो दीर्घबाहुः प्रसारितपदद्वयः। प्रेतो वाहनतां प्राप्तः करालाक्षमथावहत्॥५४॥
अन्यः करटको नाम दैत्यसेनाशिखामणिः। मर्दयामास शक्तीनां सैन्यं वेतालवाहनः॥५५॥
योजनायतमूर्तिः सन्वेतालः क्रूरलोचनः। श्मशानभूमौ वेतालो मंत्रेणानेन साधितः॥५६॥
मर्दयामास पृतनां शक्तीनां तेन देशितः। तस्य वेतालवर्यस्य वर्तमानोंससीमनि।

किये हुए था अर्थात् उस कौआ की चोंच पर्वत की चोटी के समान चमक रही थीं। वह कालदण्ड के बराबर भयंकर जंघाकाण्ड वाला था अर्थात् उसकी जंघायें कालदण्ड की जंघाओं के समान भयंकर थी।।४५।। पुष्कल और आवर्तक नाम के जो प्रलयकालीन मेघ हैं, उन मेघों के समान था तथा कादो (कीचड़) सिवार के समान उसकी कान्ति थी। उसके पंख कोशभर लम्बे थे।।४६।। सुई के समान पैनी तेज धार वाली उसका मुख (चोंच) था तथा हाथी के गण्डस्थल के समान उसका गण्डस्थल था और उसमें बहुत तेज दुर्गन्ध थी। ऐसा वह काक अपनी तेज चोंच से शक्तियों के महान् समूह का मर्दन (विनाश) कर रहा था।।४७।। इसके बाद तीसरा सेनापति जिसका नाम फलमुख था, वह अपने आयुध फाल (हलका फारा) लेकर कंक (बगुला) पर चढ़कर युद्धक्षेत्र में पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था।।४८।। चौथा महाबल सेनापति विकर्ण नाम का दैत्यराज था, जो सियार (गीदड़) की पीठ पर चढ़ा हुआ प्रचण्ड युद्ध कर रहा था।।४९।। पाँचवां सेनापति विकटानन नाम का था, जो बर्छी लेकर युद्धक्षेत्र में विलास कर रहा था, वह युद्ध में अत्यन्त भयंकर मुर्गे पर सवार था।।५०।। वह मुर्गे अपने गले पर स्थित रोमों को उठाकर गर्जता हुआ अपनी जलती हुई आँखों से हर्षित होता हुआ सामने शक्ति सेना को देखता हुआ चल रहा था।।५१।।

छठा सेनापति करालाक्ष नामक राजा था, जो अत्यन्त विशाल और वज्र के समान निष्ठुर वाणी बोलने वाला था और वह प्रेतवाहन पर बैठकर चल रहा था।।५२।। उस प्रेत को करालाक्ष ने श्मशान मन्त्र द्वारा पूर्वकाल में सिद्ध किया था। अतः उसमें प्रेत और भूत समाविष्ट हो गया था। रणक्षेत्र में उसको करालाक्ष ने वाहन बनाया।।५३।। वह प्रेत जो करालाक्ष का वाहन था, वह वाणी और मुखरहित था; परन्तु विशाल भुजाओं वाला और फैले हुए दोनों पैरों वाला था। ऐसा वह प्रेत करालाक्ष की वाहनता को प्राप्त हुआ, जो करालाक्ष को वहन कर रहा था (ढो रहा था)।।५४।। छठा सेनापति करकट नाम का था, जो दैत्य सेना का शिखामणि था। वह वेताल वाहन शक्तियों की सेना का मर्दन कर रहा था।।५५।। करकट का वाहन वह वेताल नाम पिशाच एक योजन लम्बी आकृति वाला था तथा क्रूर नेत्र वाला था, श्मशान भूमि में वह वेताल इस मन्त्र से सिद्ध किया गया था।।५६।। अतः मन्त्र से साधित वह वेताल शक्तियों की सेना का मर्दन कर रहा था। उस श्रेष्ठ वेताल के कंधों पर तब अनेकों प्रकार के दानव शक्तियों के साथ

बहुधायुध्यत तदा शक्तिभिः सह दानवः॥५७॥

एवमेते खलात्मानः सप्त सप्तार्णवोपमाः। शक्तीनां सैनिकं तत्र व्याकुलीचक्रुरुद्धताः॥५८॥
ते सप्त पूर्वं तपसा सवितारमतोषयन्। तेन दत्तो वरस्तेषां तपस्तुष्टेन भास्वता॥५९॥
कैकसेया महाभागा भगवतां तपसाधुन। परितुष्टोऽस्मि भद्रं वो भवंतो वृणतां वरम्॥६०॥
इत्युक्ते दिननाथेन कैकसेयास्तपः कृशाः। प्रार्थयामासुरत्यर्थं दुर्दान्तं वरमीदृशम्॥६१॥
रणेषु सन्निघातव्यमस्माकं नेत्रकुक्षिषु। भवता घोरतेजोभिर्दहता प्रतिरोधिनः॥६२॥
त्वया यदा सन्निहितं तपनास्माकमक्षिषु। तदाक्षिविषयः सर्वो निश्चेष्टो भवतात्प्रभो॥६३॥

त्वत्सान्निध्यसमिद्धेन नेत्रेणास्माकमीक्षिताः।
स्तब्धशस्त्रा भविष्यंति प्रतिरोधकसैनिकाः॥६४॥

ततः स्तब्धेषु शस्त्रेषु वीक्षणादेव नः प्रभो। निश्चेष्टा रिपवोऽस्माभिर्हंतव्याः सुकरत्वतः॥६५॥
इति पूर्वं वरः प्राप्तः कैकसेयौर्दिवाकरात्। वरदानेन ते तत्र युद्धे चेरुर्मदोद्धताः॥६६॥

अथ सूर्यसमाविष्टनेत्रैस्तैस्तु निरीक्षिताः।
शक्तयः स्तब्धशस्त्रौघा विफलोत्साहतां गताः॥६७॥
कीकसातनयैस्तैस्तु सप्तभिः सत्त्वशालिभिः।
विष्टंभितास्त्रशस्त्राणां शक्तीनां नोद्यमोऽभवत्॥६८॥

उद्यमे क्रियमाणेऽपि शस्त्रस्तम्भेन भूयसा। अभिभूताः सनिश्वासं शक्तयो जोषमासत॥६९॥

युद्ध कर रहे थे।।५७।। इस पकार ये दुष्ट सेनापति सातों ही सात समुद्रों के समान थे। अतः वहाँ उस युद्ध में उन उद्दण्ड सातों ने शक्तियों के सैनिकों को व्याकुल कर दिया।।५८।।

उन सातों ने पूर्वकाल में अपनी तपस्या से सूर्य को प्रसन्न कर लिया था, तब भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उनको वर दियाथा।।५९।। भगवान् सूर्य देव ने उनसे कहा था कि हे कीकसी के पुत्रो! महाभागो! आप लोगों के तप साधना से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अतः आप लोग वर माँगो।।६०।। सूर्यदेव के ऐसा कहने पर उन कीकसी के सातों पुत्रों ने इस प्रकार के अत्यन्त दुर्दान्त वर को माँगा।।६१।। कि हमारी आँखों की पुतलियों के सामने जिसका शरीर आ जाये वह आपके घोर तेज द्वारा जला दिया जाना चाहिये। अर्थात् युद्ध में जो वैरी हम लोगों की आँखों के सामने आये, वह भस्म हो जाये।।६२।। जब तुम हमारी आँखों में सन्निहित रहो, तब हे प्रभो! जो भी हमारी आँखों के सामने आये वे सब चेतनाहीन हो जायें।।६३।। और हे सूर्यदेव! तुम हमारे पास सदा रहो तथा तुम्हारे सान्निध्य से मिले हुए नेत्र से हमारे देखने वाले सभी शत्रु सेना के सैनिक स्तब्ध शस्त्र हो जायें अर्थात् जिन शत्रुओं को देख लें, उनके सभी शस्त्र न चल सकें, वे स्तब्ध हो जायें।।६४।। उसके बाद हे सूर्यदेव जब उन शत्रुओं के शस्त्र स्तब्ध हो जायें, वे चल ही न सकें तब हमको देखते ही शत्रु सब हमारे द्वारा आसानी से मारे जा सकें।।६५।। इस प्रकार कीकसी के सातों पुत्रों ने सूर्यदेव से उपर्युक्त वर प्राप्त कर लिया था। इसलिये वे सब युद्ध में मदोद्धत होकर विचरण कर रहे थे।।६७।। कीकसा के उन पराक्रमी सात पुत्रों द्वारा शक्तियों के अस्त्र शस्त्रों को विशेष रूप से स्तम्भित कर दिया था, जिससे शक्तियाँ कुछ नहीं कर पा रही थीं, उनका कोई उद्यम नहीं चल रहा था।।६८।। शक्तियों के उद्यम करने

अथ ते वासरं प्राप्य नानाप्रहरणोद्यताः। व्यमर्दयञ्छक्तिसैन्यं दैत्याः स्वस्वामिदेशिताः॥७०॥
शक्तयस्तास्तु सैन्येन निर्व्यापारा निरायुधाः। अक्षुभ्यंत शरैस्तेषां वज्रकङ्कटभेदिभिः॥७१॥
शक्तयो दैत्यशस्त्रौघैर्विद्धगात्राः सृतासृजः। सुपल्लवा रणे रेजुः कङ्कोललतिका इव॥७२॥
हाहाकारं वितन्वत्यः प्रपन्ना ललितेश्वरीम्।
चुक्रुशुः शक्तयः सर्वास्तैः स्तंभितनिजायुधाः॥७३॥
अथ देव्याज्ञया दंडनाथा प्रत्यङ्गरक्षिणी। तिरस्करणिका देवी समुत्तस्थौ रणाजिरे॥७४॥
तमोलिप्ताह्वयं नाम विमानं सर्वतोमुखम्। महामाया समारुह्य शक्तीनामभयं व्यधात्॥७५॥
तमालश्यामलाकारा श्यामकंचुकधारिणी। श्यामच्छाये तमोलिप्ते श्यामयुक्ततुरङ्गमे॥७६॥
वास्ती मोहनाभिख्यं धनुरादाय सस्वनम्। सिंहनादं विनद्येषूनवर्षत्सर्पसन्निभान्॥७७॥
कृष्णारूपभुजङ्गाभानधोमुसलसंनिभान्। मोहनास्त्रविनिष्ठ्यूतान्बाणान्दैत्या न सेहिरे॥७८॥
इतिस्ततो मर्द्यमाना महामायाशिलीमुखैः। प्रकोपं परमं प्राप्ता बलाहकमुखाः खलाः॥७९॥
अथो तिरस्करण्यंबा दंडनाथानिदेशतः। अन्धाभिधं महास्त्रं सा मुमोच द्विषतां गणे॥८०॥
बलाहकाद्यास्ते सप्त दिननाथवरोद्धताः। अन्धास्त्रेण निजं नेत्रं दधिरे च्छादितं यथा॥८१॥

पर भी बार-बार शस्त्र-स्तम्भ हो जाने के कारण हारकर शक्तियां गहरी साँस लेकर चुप हो गयी थीं।।६९।। इसके बाद जब शक्तियों के अस्त्र-शस्त्र स्तम्भित हो गये, वे नहीं कुछ कर पा रहे थे, तब अवसर प्राप्त कर अनेकों प्रकार के प्रहार करने को तैयार दैत्यों ने अपने अपने स्वामियों के आदेश से शक्ति सेना का मर्दन कर दिया।।७०।। वे शक्तियां अपनी सैन्यशक्ति से कर्तव्यहीन अस्त्रहीन हो गयीं थीं, वे अब उन दैत्यों के सामने कुछ भी नहीं कर पा रही थीं। उन दैत्यों के वज्र के समान कवचों का भेदन करने वाले बाणों द्वारा शक्तियाँ क्षुब्ध हो गयी थीं।।७१।। दैत्यों के शस्त्रों से सब शक्तियाँ घायल होकर खून से लथपथ हो गयी थीं तथा सब शक्तियां कङ्कोल की लता के समान लाल रंग की हो गयी थीं।।७२।। हाहाकार करती हुई सब शक्तियाँ ललितेश्वरी के पास गयीं। उन दैत्यों द्वारा जिनके आयुध (अस्त्रशस्त्र) स्तम्भित कर दिये गये थे, वे सब शक्तियां ललितेश्वरी के पास जाकर आक्रोश करने लगीं।।७३।। इसके बाद ललिता देवी की आज्ञा से ललिता देवी की प्रत्यंगरक्षिणी दण्डनाथा और तिरस्करणिका ये दोनों देवियां रणक्षेत्र में उठ खड़ी हुईं।।७४।। तब तमोलिप्ताह्व नामक सब ओर मुख वाले विमान पर महामाया ने आरूढ होकर शक्तियों को भयहीन किया।।७५।।

तमालवृक्ष के समान श्यामल आकारवाली श्यामवर्ण की कंचुकी को धारण करने वाली वासन्ती देवी मोहन नामक धनुष को लेकर श्याम छाया वाले अन्धकार से लिपे हुए के समान काले रंग के घोड़े पर सर्प की फुफकार के समान सिंहनाद कर रही थीं।।७६-७७।। वे दण्डनाथा देवी काले सर्प की आभा वाले नीचे को मुखवाली गदा के समान, मोहनास्त्र से छोड़े गये बाणों को दैत्यों पर छोड़ रही थी।।७८।। जब दण्डनाथा देवी ने इधर-उधर बाणों को चलाकर दैत्यों को मारना प्रारम्भ कर दिया, तब बलाहक प्रमुख दुष्ट दैत्यों को बहुत क्रोध हुआ।।७९।। इसके बाद तिरस्करणी अम्बा ने दण्डनाथा देवी के निर्देश से अन्ध नामक महाअस्त्र को शत्रुओं के समूह पर छोड़ दिया।।८०।। अतः बलाहक आदि जो सात सेनापति थे, जो कि सूर्यदेव के वरदान के कारण मदोन्मत्त थे, उनकी आँखों को उस अन्धास्त्र ने आच्छादित कर दिया अर्थात् उनकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। अतः जब आँखों

तिरस्करणिकादेव्या महामोहनधन्वनः। उद्गतेनांधबाणेन चक्षुस्तेषां व्यधीयत॥८२॥
अन्धीकृताश्च ते सप्त न तु प्रैक्षन्त किञ्चन। तद्वीक्षणस्य विरहाच्छस्त्रस्तम्भः क्षयं गतः॥८३॥
पुनः ससिंहनादं ताः प्रोद्यतायुधपाणयः। चक्रुः समरसन्नाहं दैत्यानां प्रजिघांसया॥८४॥
तिरस्करणिकां देवीमग्रे कृत्वा महाबलाम्। सदुपायप्रसङ्गेन भृशं तुष्टा रणं व्यधुः॥८५॥
साधुसाधु महाभागे तिरस्करणिकांबिके। स्थाने कृततिरस्कारा द्विषामेषां दुरात्मनाम्॥८६॥
त्वं हि दुर्जननेत्राणां तिरस्कारमहौषधी। त्वया बद्धदृशानेन दैत्यचक्रेण भूयते॥८७॥
देवकार्यमिदं देवि त्वया सम्यगनुष्ठितम्। अस्मादृशामजय्येषु यदेषु व्यसनं कृतम्॥८८॥
तत्त्वयैव दुराचारानेतान्सप्त महासुरान्। निहताँल्ललिता श्रुत्वा सन्तोषं परमाप्स्यति॥८९॥
एवं त्वया विरचिते दंडिनीप्रीतिमाप्स्यति। मंत्रिण्यपि महाभागा यास्यत्येव परां मुदम्॥९०॥
तस्मात्त्वमेव सप्तैतान्निगृहाण रणाजिरे। एषां सैन्यं तु निखिलं नाशयाम उदायुधाः॥९१॥
इत्युक्त्वा प्रेरिता ताभिः शक्तिभिर्युद्धकौतुकान्। तमोलिप्तेन यानेन बलाहकबलं ययौ॥९२॥
तामायांतीं समावेक्ष्य ते सप्ताथ सुराधमाः। पुनरेव च सावित्रं वरं सस्मरुरंजसा॥९३॥
प्रविष्टमपि सावित्रं नासकं तन्निरोधने। तिरस्कृतं तु नेत्रस्थं तिरस्करणितेजसा॥९४॥

के सामने अँधेरा छा गया, तब जो भी उनके सामने आयेगा उसकी आकृति उनकी आँखों के सामने आयेगी ही नहीं तथा जब आयेगी नहीं तो फिर सामने वाले शत्रु के शस्त्रास्त्र भी स्तम्भित नहीं होंगे, अतः सूर्यदेव के वर का प्रभाव भी नहीं रहेगा। इसलिये तिरस्करणी देवी का यह उपाय सफल रहा।।८१।। इस प्रकार तिरस्करणी देवी ने महामोहन नामक धनुष पर छोड़े गये अंधबाण से उन सातों सेनापतियों की आँखों को अंधा कर दिया।।८२।। जब वे सब अन्धे हो गये, तब उनको कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा था, जब उनको कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था, तब उनका शस्त्र स्तम्भ वरदान भी विफल हो गया।।८३।। फिर सिंहनाद करते हुये उन शक्ति देवियों ने अपने हाथों से अस्त्र धारण करते हुए दैत्यों को मारने की इच्छा से घोर युद्ध किया।।८४।। तब शक्तियाँ महाबला तिरस्करणी देवी को आगे करके अच्छे उपाय से युद्ध में शक्तियां अत्यन्त सन्तुष्ट होकर युद्ध करने लगीं।।८५।। तब शक्तियों ने कहा कि हे तिरस्करणिकाम्बिके! महाभागे! तुम्हें धन्यवाद है, जो कि तुमने इन दुष्ट दैत्यों का इस स्थान पर तिरस्कार किया है।।८६।। हे अम्बे! तुम इन दुष्ट दैत्यों के नेत्रों को अन्धा बनाने वाली महाऔषधि हो। तुम्हारे द्वारा बाँधे गये नेत्रों से ये सभी दुष्ट अन्धे होकर चक्कर काट रहे हैं।।८७।।

हे देवि! तुमने ही देवों का यह सही कार्य किया है कि हम जैसे जो नहीं जीतने वाले थे, उनको जिताया है।।८८।। सो तुम्हारे द्वारा इन दुराचारी महासुर सात सेनापतियों को मारकर ललिता देवी परम सन्तोष प्राप्त करेंगी।।८९।। इस प्रकार तुम्होर इस बनायी गयी योजना से दण्डिनी देवी भी प्रसन्न होंगी। महाभाग मन्त्रीगण भी परम मोद को प्राप्त करेंगे।।९०।। इसलिए तुम ही इस रणक्षेत्र में इन सातों सेनापतियों का रणक्षेत्र में संहार करो। इसकी समस्त सेना को तो हम सब शस्त्रधारी शक्तियाँ नाश कर ही देंगे।।९१।। इस प्रकार कहकर उन शक्तियों द्वारा युद्ध कौतुक को प्रेरित वह तिरस्करणिका देवी अन्धकार से लिप्तयान से बलाहक की सेना की ओर गयीं।।९२।। उनको आया हुआ देखकर वे अधम सातों सेनापति पुनः ही सूर्य को अपने सात वरों की याद दिलाने लगे।।९३।। तब सूर्य उस अन्धकार में प्रविष्ट होकर भी उस अन्धकार को रोक नहीं सके; क्योंकि तिरष्करणी देवी के तेज से नेत्रस्थ

वरदानास्त्ररोषांधं महाबलपराक्रमम्। अस्त्रेण च रुषा चांधं बलाहकमहासुरम्।
आकृष्य केशेष्वसिना चकर्तांतर्धिदेवता॥९५॥
तस्य वाहनगृध्रस्य लुनाना पत्रिणा शिरः। सूचीमुखस्याभिमुखं तिरस्करणिका व्रजत्॥९६॥
तस्य पट्टिशपातेन विलूय कठिनं शिरः। अन्येषामपि पञ्चानां पञ्चत्वमकरोच्छनैः॥९७॥
तैः सप्तदैत्यमुण्डैश्च ग्रथितान्योन्यकेशकैः। हारदाम गले कृत्वा ननादांतर्धिदेवता॥९८॥
समस्तमपि तत्सैन्यं शक्तयः क्रोधमूर्च्छिताः। हत्वा तद्रक्तसलिलैर्बह्वीः प्रावाहयन्नदीः॥९९॥
तत्राश्चर्यमभूद्भूरि माहामायांबिकाकृतम्। बलाहकादिसेनान्यां दृष्टिरोधनवैभवात्॥१००॥
हतशिष्टाः कतिपया बहुवित्राससङ्कुलाः। शरणं जग्मुरत्यार्त्ताः क्रंदंतं शून्यकेश्वरम्॥१०१॥
दंडिनीं च महामायां प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः। प्रसादमपरं चक्षुस्तस्या आदाय पिप्रियुः॥१०२॥
साधुसाध्विति तत्रस्थाः शक्तयः कम्पमौलयः।
तिरस्करणिकां देवीमश्लाघंत पदेपदे॥१०३॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने बलाहकादिसप्तसेनापतिवधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

तेज तो तिरस्कृत हो चुका था, अतः वह सूर्य के प्रकाश को देख ही कैसे पाता।।९४।। अतः जो उन महासुरों को सूर्य के वरदान से दिया गया अस्त्र था, वह विफल हो गया। अतः उसके वरदान रूपी अस्त्र को अन्धास्त्र ने विफल कर दिया, तब महाबल पराक्रम वाले अन्धे हुए उस महासुर को तिरस्करिणी देवी ने खींचकर और तलवार से उसके शिर को काट दिया।।९५।। तथा उसका जो भीषण वाहन गृध्र था, उनका शिर बाण से बाट दिया। उसके बाद सूचीमुख के सामने तिरस्करणिका देवी आयीं।।९६।। सूचीमुख दानवेन्द्र के शिर को उन्होंने तेज धारवाली बर्छी से काट दिया, उसके बाद अन्यों पाँचों के शिर काट कर शीघ्र ही उनको भी पञ्चतत्त्व को प्राप्त करा दिया।।९७।। उसके बाद उन सातों दैत्यों के मुण्डों को काटकर उन्हीं केशों में एक-दूसरे को बाँधकर सातों मुण्डों की माला को गले में पहनकर अन्तर्धि देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं।।९८।। इस प्रकार उन सातों सेनापतियों की समस्त सेना को मारकर क्रोध से मूर्च्छित शक्तियों ने उन दैत्यों के शरीर से बहने वाले रक्त से बहुत बड़ी नदी बहा दी।।९९।। इस प्रकार वहाँ महामाया द्वारा बलाहकादि सेनापतियों की दृष्टि का अवरोध करने वाले वैभव से महान् आश्चर्य पैदा कर दिया।।१००।। कुछ जो दैत्य सैनिक मरने से बचे हुए थे, वे बहुत अधिक भयभीत तथा व्याकुल होकर करुण क्रन्दन करते हुए दानवराज शून्यक की शरण में पहुँचे।।१०१।। वे सब सैनिक उन दण्डनाथा महामाया की बारबार प्रशंसा कर रहे थे। अन्य दैत्य उनके नेत्र का प्रसाद प्राप्त कर प्रसन्न हुए थे। उसके बाद वहाँ शक्ति सेना में सब शक्तियों ने अपने शिरों को झुकाते हुए तिरस्करणिका देवी को बार-बार साधुवाद देते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।।१०३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २४वाँ अध्याय बलाहकआदि सात सेनापति वध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

विषंग पलायनं नाम

पञ्चविंशोध्यायः

ततः श्रुत्वा वधं तेषां तपोबलवतामपि। न्यश्वसत्कृष्णसर्पेन्द्र इव भंडो महासुरः॥१॥
कांते मंत्रयामास स आहूय महोदरौ। भण्डः प्रचंडशौंडीर्यः कांक्षमाणो रणे जयम्॥२॥
युवराजोऽपि सक्रोधो विषंगेण यवीयसा। भंडासुरं नमस्कृत्य मंत्रस्थानमुपागमत्॥३॥
अत्याप्तैर्मंत्रिभिर्युक्तः कुटिलाक्षपुरःसरैः। ललिताविजये मंत्रं चकार क्वथिताशयः॥४॥

भंड उवाच

अहो बत कुलभ्रंशः समायातः सुरद्विषाम्। उपेक्षामधुना कर्तुं प्रवृत्तो बलवान्विधिः॥५॥
मद्भृत्यनाममात्रेण विद्रवंति दिवौकसः। तादृशानामिहास्माकमागतोऽयं विपर्यतः॥६॥
करोति बलिनं क्लीबं धनिनं धनवर्जितम्। दीर्घायुषमनायुष्कं दुर्धाता भवितव्यता॥७॥
क्व सत्त्वमन्मद्वाहूनां केयं दुर्ल्ललिता वधूः। अकांड एव विधिना कृतोऽयं निष्ठुरो विधिः॥८॥
सर्पिणीमाययोदग्रास्तया दुर्घटशौर्यया। अधिसंग्रामभूचक्रे सेनान्यो विनिपातिताः॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–२५

विषंगपलायन वर्णन

जब बलाहकादि सेनापतियों का तिरस्करिका देवी ने वध कर दिया और इस सूचना को हतावशिष्ट सैनिकों ने शून्यक को सुनाया, तब शून्यक द्वारा उन तपोबल वाले सेनापतियों का वध सुनकर भण्डासुर काले सर्प की भाँति श्वास लेने लगा।।१।। उसके बाद युद्ध में जीत की इच्छा रखने वाले प्रचण्ड घमण्डी उस दैत्य ने अपने विशाल उदर वाले दोनों भाइयों को बुलाकर उनसे विचार विमर्श किया।।२।। युवराज भी क्रोधयुक्त होकर अपने छोटे भाई बिषंग के साथ आया और उसने भण्डासुर को नमस्कार करके जहाँ पर मन्त्री लोग थे, वहाँ पहुँचा।।३। वहाँ पर अनेकों मन्त्री लोग आये हुए थे, अतः कुटिलाक्ष आदि मन्त्रियों के सामने ललिता देवी को जीतने के विषय में गम्भीर आशय वाले उस भण्डासुर ने तथ्यपरक विचार-विमर्श किया।।४।।

भण्डासुर बोला कि अहो! दुःख है कि अब देवों के शत्रु असुरों के कुल का नाश आ चुका है। आज हम सबकी उपेक्षा करने के लिये बलवान् विधि भी प्रवृत्त हो चुका है।।५।। मेरे भृत्यों (सेवकों) के नाम लेने मात्र से सूर्य भी डर जाते थे, वैसे हम लोगों का आज यह विपरीत समय आ गया है।।६।। बुरा समय लाने वाली भवितव्यता (हौनी) बलवान् को नुपंसक (कायर), धनी को निर्धन, दीर्घायु वाले को कम आयु वाला बना देती है।।७।। कहाँ हमारी भुजाओं का पराक्रम और कहाँ यह दुष्ट ललिता बहू (स्त्री)।। असमय में ही विधि ने यह निष्ठुर विधि उपस्थित कर दी है।।८।। उस अवर्णनीय पराक्रम वाली सर्पिणी की माया से उत्पन्न हुए उदग्र सेनानी भी समरचक्र में मारकर गिरा दिये गये।।९।।

एवमुद्दामदर्पाढ्या वनिता कापि मायिनी। यदि संप्रहरत्यस्मान्धिग्बलं नो भुजार्जितम्॥१०॥
इमं प्रसंगं वक्तुं च जिह्वा जिह्वेति मामकी। वनिता किमु मत्सैन्यं मर्दयिष्यति दुर्मदा॥११॥
तदत्र मूलच्छेदाय तस्या यत्नो विधीयताम्। मया चारमुखाज्ज्ञाता तस्या वृत्तिर्महाबला॥१२॥
सर्वेषामपि सैन्यानां पश्चादेवावतिष्ठते। अग्रतश्चलितं सैन्यं हयहस्तिरथादिकम्॥१३॥
अस्मिन्नेव ह्यवसरे पार्ष्णिग्राहो विधीयताम्। पार्ष्णिग्राहमिमं कर्तुं विषंगश्चतुरो भवेत्॥१४॥
तेन प्रौढमदोन्मत्ता बहुसंग्रामदुर्मदाः। दश पंच च सेनान्यः सह यांतु युयुत्सया॥१५॥
पृष्ठतः परिवारास्तु न तथा संति ते पुनः। अल्पैस्तु रक्षिता वै स्यात्तेनैवासौ सुनिग्रहा॥१६॥
अतस्त्वं बहुसन्नाहमाविधाय मदोत्कटः। विषंग गुप्तरूपेण पार्ष्णिग्राहं समाचर॥१७॥

अल्पीयसी त्वया सार्द्धं सेना गच्छतु विक्रमात्।
सज्जाश्चलंतु सेनान्यो दिक्पालविजयोद्धताः॥१८॥

अक्षौहिण्यश्च सेनानां दश पंच चलंतु ते। त्वं गुप्तवेषस्तां दुष्टां सन्निपत्य दृढं जहि॥१९॥
सैव निःशेषशक्तीनां मूलभूता महीयसी। तस्याः समूलनाशेन शक्तिवृन्दं विनश्यति॥२०॥
कंदच्छेदे सरोजिन्या दलजालमिवांभसि। सर्वेषामेव पश्चाद्यो रथश्चलति भासुरः॥२१॥
दशयोजनसंपन्ननिजदेहसमुच्छ्रयः। महामुक्तातपत्रेण सर्वोद्ध परिशोभितः॥२२॥
वहन्मुहुर्वीज्यमानं चामराणां चतुष्टयम्। उत्तंगकेतुसंघातलिखितांबुदमंडलः॥२३॥

इस प्रकार बहुत अधिक घमण्ड से युक्त कोई मायावी स्त्री यदि हम लोगों पर सम्यक् प्रहार करती है, तो फिर हमारी भुजाओं द्वारा अर्जित बल को धिक्कार है।।१०।। इस प्रसङ्ग को बताने में मेरी जीभ भी लड़खड़ाती है कि क्या कोई दुर्मदा स्त्री मेरी सेना का मर्दन कर सकेगी?।।११।। तो अब यहाँ उसका समूल नाश करने के लिये आप लोग प्रयत्न कीजिये। मैंने अपने गुप्तचरों के मुख से यह जानकारी प्राप्त की है कि उसकी वृत्ति (उसका व्यवहार) अर्थात् सुरक्षा बहुत ही बलवान् है, वह सब सेनाओं के बाद ही स्थित रहती है। उसके आगे घोड़े, हाथी और रथ आदि की सेना चलती है।।१२-१३।। इसी अवसर पर पीछे से आक्रमण होना चाहिये। इस पीछे से किये जाने वाले आक्रमण में विषंग चतुर है।।१४।। उसके साथ युद्ध करने में पूर्ण कुशल मदोन्मत्त बहुत से संग्रामों में न हारने वाले दश पाँच सेनानी युद्ध करने की इच्छा से जायें।।१५।। पीछे से आक्रमण करने वाले सैनिक रहें, तब थोड़े से सैनिकों से रक्षा की जा सकती है।।१६।। इसलिये तुम यह विषंग को सूचना दे दो कि हम सब बहुत हैं।।१७।। तुम्हारे साथ इधर उधर घूमती हुई थोड़ी सी सेना जाये और सब दिक्पालोंपर भी विजय पाने वाले उद्धत सेनानी तैयार होकर चलें।।१८।। और फिर वे दश या पाँच अक्षौहिणी सेनाएं भी चलें। भण्ड ने विषंग से कहा कि तुम गुप्तवेष में उस दुष्टा को गिराकर दृढ़तापूर्वक पकड़ लेना।।१९।।

इस प्रकार वह सब शक्तियों को पैदा करने वाली मूलभूत महीयसी ललिता देवी जब नष्ट हो जायेंगी तो उसके समूल नाश होने से समस्त शक्ति समूह उसी प्रकार नष्ट हो जायेगा, जिस प्रकार जल में कमलिनी की कन्द (जड़) को काट देने पर उसके समस्त पत्तों सहित कमलिनी नष्ट हो जाती है।।२०-२०½।। अब भण्डासुर उन ललिता देवी को पहचान के लक्षण बताता है कि सबके पीछे जो चमकता हुआ रथ चलता है, वह पूरे दशयोजन तक फैला हुआ तथा ऊँचा है। वहाँ उनके ऊपर महामुक्ता जटित छत्र से सुशोभित वह ललिता देवी होंगी। उनके ऊपर चार चँवर डुलाये

तस्मिन्रथे समायाति सा दृष्टा हरिणेक्षणा। निभृतं संनिपत्य त्वं चिह्नेनानेन लक्षिताम्॥२४॥
तां विजित्य दुराचारां केशेष्वाकृष्य मर्दय। पुरतश्चलिते सैन्ये सत्त्वशालिनि सा वधूः॥२५॥
स्त्रीमात्ररक्षा भवतो वशमेष्यति सत्त्वरम्। भवत्सहायभूतायां सेनेन्द्राणामिहाभिधा॥२६॥
शृणु यैर्भवतो युद्धे साह्यकार्यमतंद्रितैः। आद्या मदनको नाम दीर्घजिह्वो द्वितीयकः॥२७॥
हुबको हुलुमुलुश्च कक्लसः कक्लिवाहन;। थुक्लसः पुंड्रकेतुश्च चंडबाहुश्च कुक्कुरः॥२८॥
जंबुकाक्षो चंभनश्च तीक्ष्णशृङ्गस्त्रिकंटकः। चंद्रगुप्तश्च पंचैते दश चोक्ताश्चमूवराः॥२९॥
एकैकाक्षौहिणीयुक्ताः प्रत्येकं भवता सह। आगमिष्यंति सेनान्यो दमनाद्या महाबलाः॥३०॥
परस्य कटकं नैव यथा जानाति ते गतिम्। तथा गुप्तसमाचारः पार्ष्णिग्राहं समाचर॥३१॥
अस्मिन्कार्ये सुमहतां प्रौढिमानं समुद्वहन्। निषंग त्वं हि लभसे जयसिद्धिमनुत्तमाम्॥३२॥
इति मंत्रितमंत्रोऽयं दुर्मंत्री भंडदानवः। विषंगं प्रेषयामास रक्षितं सैन्यपालकैः॥३३॥
अथ श्रीललितादेव्याः पार्ष्णिग्राहकृतोद्यमे। युवराजानुजे दैत्ये सूर्योऽस्तगिरिमाययौ॥३४॥
प्रथमे युद्धदिवसे व्यतीते लोकभीषणे। अंधकारः समभवत्तस्य बाह्य चिकीर्षया॥३५॥
महिषस्कंधधूम्राभं वनक्रोडवपुर्द्युति। नीलकंठनिभच्छायं निबिडं पप्रथे तम;॥३६॥
कुंजेषु पिंडितमिव प्रधावदिव संधिषु। उज्जिहानमिव क्षोणीविवरेभ्यः सहस्रशः॥३७॥

जा रहे होंगे। उस रथ पर आकाश से टकराने वाली ऊँची-ऊँची ध्वजायें फहरा रही होंगी, जिससे ऐसा लगता होगा मानों कि बादल घिर आये हों। उस रथ पर बैठी हुई, वह मृगलोचना दिखायी देगी। अतः अच्छी तरह देखकर तुम इस बताये चिह्न द्वारा उसको पहचान लेना।।२०½-२४।। फिर उस दुराचारिणी को जीतकर उसके केशों को खींचकर उसका मर्दन करना। आगे सत्त्वशालिनी सेना के चलने पर वह स्त्री तुमसे कहेगी कि मैं स्त्री हूँ, स्त्री की तुम्हें रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार वह शीघ्र तुम्हारे वश में हो जायेगी। यहाँ से तुम्हारी सहायता के लिये जो सेना जायेगी, उस तुमको सहायता देने वाली सेना के बारे में सुनो। उनमें पहला सेनापति मदनक होगा और दूसरा दीर्घजिह्व होगा, उसके बाद ३. हुबक, ४. हुगमुल, ५. कक्लस, ६. कल्किवाहन, ७. थुल्कस, ८. पुण्ड्रकेतु, ९. चण्डबाहु, १०. कुक्कुर, ११. जम्बुद्राक्ष, १२. जम्भन, १३. तीक्ष्णशृङ्ग, १४. त्रिकण्टक, १५. चन्द्रगुप्त, इस प्रकार ये पन्द्रह श्रेष्ठ सेनापति होंगे ये सब एक अक्षौहिणी सेना से युक्त महाबलवान् दमन आदि सेनापति तुम्हारे साथ आयेंगे।।२५-३०।। दूसरी सेना को तुम्हारी गति नहीं जाननी चाहिये, वह जो गुप्त समाचार है, वह पीछे से ग्रहण किया हुआ है, उसके अनुसार तुम पीछे से चलो।।३१।। इस कार्य में अत्यन्त महान् प्रौढ़ और योग्य सेनापति निषंग को मैं तुम्हारे साथ करता हूँ, जो जीत की सफलता प्राप्त करने वाला है।।३२।।

इस प्रकार पूरी तरह मन्त्रियों से मन्त्रणा किये गये भण्डासुर ने सैन्यपालकों से रक्षित विषंग को भेज दिया।।३३।। इसके बाद ललिता देवी के रथ को पीछे से ग्रहण करने के लिये युवराज के अनुज उस दैत्य विषंग के आने तक सूर्य अस्ताचल पर चले गये अर्थात् रात हो गयी।।३४।। प्रथम लोकभीषणयुद्ध के बीत जाने पर चारों ओर बाहर करने की इच्छा में घोर अन्धकार छा गया।।३५।। तब भैंसे के कन्धे के समान धूम्र की आभावाला समस्त वनांचल के शरीर की कांति वाला तथा नीलकंठ भगवान् शंकर के कण्ठ की शोभा वाला, घना अन्धकार चारों तरफ छा गया।।३६।। वह अन्धकार कुञ्जों में गोला बनाने के समान था। दिन रात की सन्धियों में दौड़ते हुए के समान

निर्गच्छदिव शैलानां भूरि कंदरमंदिरात्। क्वचिद्दीपप्रभाजाले कृतकातरचेष्टितम्॥३८॥
दत्तावलंबनमिव स्त्रीणां कर्णोत्पलत्विषि। एकीभूतमिव प्रौढदिङ्नागमिव कज्जले।
आबद्ध मैत्रकमिव स्फुरच्छाद्वलमंडले॥३९॥
कृतप्रियाश्लेषमिव स्फुरंतीष्वसियष्टिषु। गुप्तप्रविष्टमिव च श्यामासु वनपंक्तिषु॥४०॥
क्रमेण बहुलीभूतं प्रससार महत्तमः। त्रियामावामनयना नीलकंचुकरोचिषा॥४१॥
तिमिरेणावृतं विश्वं न किंचित्प्रत्यपद्यत। असुराणां प्रदुष्टानां रात्रिरेव बलावहा॥४२॥
तेषां मायाविलासोऽयं तस्यामेव हि वर्धते। अथ प्रचलितं सैन्यं विषंगेण महौजसा॥४३॥
धौतखड्गलताच्छायावर्धिष्णु तिमिरच्छटम्।
दमनाद्याश्च सेनान्यः श्मामकंकटधारिणः॥४४॥
श्यामोष्णीषधराः श्यामवर्णसर्वपरिच्छदाः। एकत्वमिव संप्राप्तास्तिमिरेणातिभूयसा॥४५॥
विषंगमनुसंचेलुः कृताग्रजनमस्कृतिम्। कूटेन युद्धकृत्येन विजिगीषुर्महेश्वरीम्॥४६॥
मेघडंबरकं नाम दधे वक्षसि कंकटम्। यथा तस्य निशायुद्धानुरूपो वेषसंग्रहः॥४७॥
तथा कृतवती सेना श्यामलं कंचुकादिकम्। न च दुंदुभिनिस्वानो न च मर्द्दलगर्जितम्॥४८॥

हजारों पृथ्वी के विवरों की गुफाओं से ऊपर उठते हुए के समान अन्धकार छाने लगा।।३७।। उस समय ऐसा लगता था कि कि मानो अन्धकार पर्वतों की गुफाओं से निकल रहा है। कहीं कहीं दीपक की रोशनी में कुछ व्याकुल चेष्टा वाला अंधेरे में कुछ सहायता देते हुए के समान स्त्रियों के कान के आभूषण की चमक में स्त्रियों के कर्णोत्पल की कान्ति में सहारा देते हुए के समान था। कालेपन में एक हुये दिशाओं के हाथियों के समान, काला चमकते हुए घास के मैदान से मित्रता कर लेने के समान; क्योंकि अन्धकार से सर्वत्र मैदान ही मैदान दिखाई दे रहा था। अतः उसने सबसे मानों मित्रता कर ली है, ऐसा अंधकार था।।३८-३९।। उस अन्धकार में प्रिया से आलिंगन करने की भांति तलवारें चमक रही थीं और वहाँ ऐसा लगता था, मानों श्यामवर्ण की वनपंक्तियों में गुप्त प्रवेश किया जा रहा है।।४०।। इस क्रम से बहुत अधिक बढ़ता हुआ महान् अन्धकार चारों तरफ छा गया। वह रात्रि ऐसी लग रही थी, मानों कि अर्धरात्रिरूपी स्त्री ने नीले रंग की साड़ी पहन ली हो।।४१।। ऐसी उस रात्रि के अन्धकार से युक्त विश्व में कुछ भी नहीं दिखाई देता था। वह रात्रि असुरों और बहुत बड़े दुष्टों का बल बढ़ाने वाली ही है।।४२।।

उस रात्रि में उन दुष्ट असुरों का ही माया विलास बढ़ता है।।४२-४२½।। इस प्रकार उस अंधेरे में उस महापराक्रमी विषंग की चलती हुई और सफेद रंग की तलवार की चमक में बढ़ती हुई सेना अन्धकार का छेदन करती चली जा रही थी।।४२½-४३।। तथा उसके जो दमन आदि सेनापति थे, वे काले रंग के कवच को धारण किये हुए, रात्रि के श्याम वर्ण से आवृत होकर चले जा रहे थे।।४४।। उस समय वे रात्रि के घोर अन्धकार से एकता प्राप्त करते हुए के समान थे अर्थात् रात्रि के अन्धकार के समान वे भी काले थे। अतः उनका और रात्रि के अन्धकार का रंग एक हो गया था।।४५।। विषंग नामक दैत्य अपने अग्रज भण्डासुर को नमस्कार कर (छलकपट के युद्ध द्वारा माहेश्वरी ललिता को जीतने की इच्छा से चल पड़ा।।४६।। उस विषंग ने मेघ डंबरक नामक कवच को वक्षःस्थल पर धारण कर लिया था। अतः जैसा रात्रि का अन्धकार था, वैसा ही काले रंग का उसका कवच था। उसका समस्त वेष संग्रह रात्रि के युद्ध के ही अनुरूप था तथा जैसी रात्रि युद्ध के अनुरूप उस विषंग की वेषभूषा थी, वैसी ही वेशभूषा

पणवानकभेरीणां न च घोषविजृंभणम्। गुप्ताचाराः प्रचलितास्तिमिरेण समावृताः॥४९॥
परैरदृश्यगतयो विष्कोशीकृतरिष्टयः। पश्चिमाभिमुखं यांति ललितायाः पताकिनीम्॥५०॥
आवृतोत्तरमार्गेण पूर्वभागमशिश्रियन्। निश्वासमपि सस्वानमकुर्वंतः पदेपदे॥५१॥
सावधानाः प्रचलिताः पार्ष्णिग्राहाय दानवाः।
भूयः पुरस्य दिग्भागं गत्वा मंदपराक्रमाः॥५२॥
ललितासैन्यमेव स्वान्सूचयंतः प्रपृच्छतः। आगत्य निभृतं पृष्ठे कवचच्छन्नविग्रहाः॥५३॥
चक्रराजरथं तुंगं मेरुमंदरसंनिभम्। अपश्यन्नतिदीप्ताभिः शक्तिभिः परिवारितम्॥५४॥
तत्र मुक्तातपत्रस्य वर्त्तमानामधःस्थले। सहस्रादित्यसंकाशां पश्चिमाभिमुखीं स्थिताम्॥५५॥
कामेश्वर्यादिनित्याभिः स्वसमानसमृद्धिभिः। नर्मालापविनोदेन सेव्यमानां रथोत्तमे॥५६॥
तां तथाभूतवृत्तांताम तादृशरणोद्यमाम्। पुरोगतं महत्सैन्यं वीक्षमाणं सकौतुकम्॥५७॥
मन्वानश्च हि तामेव विषंगः सुदुराशयः। पृष्ठवंशे रथेंद्रस्य घट्टयामास सैनिकैः॥५८॥
तत्राणिमादिशक्तीनां परिवारवरूथिनी। महाकलकलं चक्रुरणिमाद्याः परःशतम्॥५९॥
पट्टिशैर्द्रुघणैश्चैव भिंदिपालैर्भुशुण्डिभिः। कठोरवज्रनिर्घातनिष्ठुरैः शक्तिमंडलैः॥६०॥
मर्दयंतो महासत्त्वाः समरं बहुमेनिरे। आकस्मिकरणोत्साहविपर्याविष्टविग्रहम्॥६१॥

उसकी सेना की थी। सेना ने भी उसी तरह काले रंग की कंचुकी आदि को धारण कर लिया था।।४७-४७½।। न उस समय दुन्दुभिः की ध्वनि की जा रही थी और न ढोल ही बजाया जा रहा था। न पणवानक की ध्वनि की जा रही थी और न रणभेरी द्वारा युद्ध की घोषणा की जा रही थी। अन्धकार से आवृत सेना गुप्त रूप से जा रही थी।।४७½-४९।। वे सब दैत्य दूसरों से अदृश्य होकर तलवार को छिपाये हुए चल रहे थे तथा ललितेश्वरी की पताका के पश्चिम (पीछे) की ओर जा रहे थे।।५०।। सेना से घिरे हुए उत्तर मार्ग से पूर्वभाग का सहारा लेते हुए श्वास की भी आवाज न करते हुए धीरे धीरे पैर रखते हुए सावधान होकर चलते हुए सब दानव ललिता देवी के पीछे के भाग को ग्रहण करने के लिए जा रहे थे।।५१-५१½।।

पुनः पुर के दिग्भाग की ओर जाकर मन्द पराक्रम ललिता की सेना को ही अपने को सूचित करते हुए पूँछते हुये कवच से ढके हुए सब छिपकर आगे आये। फिर आकर उन्होंने सुमेरु पर्वत के समान ऊँचे चक्ररथराज को देखा जो कि अत्यन्त दीप्त शक्तियों से घिरा हुआ था, ढका हुआ था।।५१½-५४।। वहाँ मोती जटित छत्र के नीचे हजार सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाशवाली पश्चिमाभिमुखी (पश्चिम की ओर मुख किये हुए) देवी स्थित थी।।५५।। वे पश्चिमाभिमुखी देवी अपने समान समृद्धिवाली कामेश्वरी आदि नित्या देवियों के साथ धीरे-धीरे मनोरंजन पूर्ण बातें कर रही थीं तथा वे कामेश्वरी आदि देवियाँ उत्तम रथ पर उनकी सेवा कर रही थीं।।५६।। इस प्रकार वहाँ जो पश्चिमा देवी थीं, उनको देखकर तथा उनके आगे बहुत बड़ी सेना को देखकर उस दुष्ट आशय विषंग ने उन्हें ही ललितेश्वरी समझ लिया और पीछे से सैनिकों द्वारा उन पर आक्रमण करवा दिया।।५७-५८।। वहाँ पर उनकी अणिमा आदि शक्तियां जो कवच धारण किये हुए उनके चारों ओर बैठी हुई थीं। तब अणिमा आदि शक्तियों ने महाकलकल की सैकड़ों ध्वनियां कर दीं।।५९।। उसके बाद बर्छियों, द्रुघणों, भिन्दिपालों, बन्दूकों और कठोर वज्राघातों से निष्ठुर शक्ति समूहों द्वारा महायोद्धा समर करने लगे। अर्थात् असुरों और शक्तियों से युद्ध होने लगा।।६०-६०½।। परन्तु

अकांडक्षुभितं चासीद्रथस्थं शक्तिमंडलम्। विपाटैः पाटयामासुरदृश्यैरंधकारिणः॥६२॥
ततश्चक्ररथेंद्रस्य नवमे पर्वणि स्थिताः। अदृश्यमानशस्त्राणामदृश्यनिजवर्मणाम्॥६३॥
तिमिरच्छन्नरूपाणां दानवानां शिलीमुखैः। इतस्ततो बहु क्लिष्टं छन्नवर्मितमर्मवत्॥६४॥
शक्तीनां मंडलं तेने क्रंदनं ललितां प्रति। पूर्वानुक्रम तस्तत्र संप्राप्तं सुमहद्भयम्॥६५॥
कर्णाकर्णिकयाकर्ण्य ललिता कोपमादधे। एतस्मिन्नंतरे भंडश्चंडदुर्मंत्रिपंडितः॥६६॥

दशाऽक्षौहिहिणिकायुक्तं कुटिलाक्षं महौजसम्।
ललितासैन्यनाशाय युद्धाय प्रजिघाय सः॥६७॥

यथा पश्चात्कलकलं श्रुत्वाग्रे वर्तिनी चमूः। नागच्छति तथा चक्रे कुटिलाक्षो महारणम्॥६८॥
एवं चोभयतो युद्धं पश्चादग्रे तथाऽभवत्। अत्यंततुमुलं चासीच्छक्तीनां सैनिके महत्॥६९॥
नक्तसत्त्वाश्च दैत्येंद्रास्तिमिरेण समावृताः। इतस्ततः शिथिलतां कंटके निन्युरुद्धताः॥७०॥
निषंगेण दुराशेन धमनाद्यैश्चमूवरैः। चमूभिश्च प्रणहिता न्यपतञ्छत्रुकोटयः॥७१॥
ताभिर्दैत्यास्त्रमालाभिश्चक्रराजरथो वृतः। बकावलीनिबिडतः शैलराज इवाबभौ॥७२॥
आक्रांतपर्वणाधस्ताद्विषंगेण दुरात्मना। मुक्त एकः शरो देव्यास्तालवृंतमचूर्णयत्॥७३॥
अथ तेनाव्याहितेन संभ्रान्ते शक्तिमंडले। कामेश्वरीमुखा नित्या महांतं क्रोधमाययुः॥७४॥

आकस्मिक आक्रमण हुआ था, इसलिये सेना में युद्ध के विपरीत भाव था, उनमें युद्ध का उतना साहस नहीं था, अतः असमय में आक्रमण होने के कारण रथस्थ शक्तिसमूह बहुत क्षुभित हो गया और अन्धकार में आने वाले दैत्यों ने न दिखाई देने वाले पत्थर के खण्डों से रथ को तोड़-फोड़ दिया।।६०½-६२।। उसके बाद चक्ररथ राज के नवें पर्व में शक्तियां स्थित हो गयी। तब जिनके शस्त्र नहीं दिखाई दे रहे थे और न शरीर दिखाई दे रहे थे, उन अन्धकार से ढके हुए रूप वाले दानवों के बाणों से इधर उधर भागते हुए अपने शरीर को बचाते हुए शक्तियों के समूह का क्रन्दन (हाहाकार) करते हुए श्री ललिता देवी के पास तक पहुँचा।।६३-६४½।। पूर्वानुक्रम से वहाँ बहुत ही महान् भय उत्पन्न हो गया था और इस भयंकर करुण क्रन्दन को कानों कान सुनकर ललिता देवी अत्यन्त क्रोधित हो गयीं।।६४½-६५½।। इसी बीच में भण्ड और चण्ड दुर्मन्त्रि पण्डित ने दश अक्षौहिणी सेनायुक्त महापराक्रमी कुटिलाक्ष को ललिता देवी की सेना के नाश के लिये युद्ध हेतु भेज दिया था।।६५½-६७।। जैसे ही पीछे कलकल सुनकर वे आगे सेना तैय्यार नहीं होने पायी कि वैसे ही कुटिलाक्ष ने महारण प्रारम्भ कर दिया।।६८।।

इस प्रकार आगे और पीछे दोनों तरफ वैसा भयंकर युद्ध होने लगा। उस समय शक्तियों की सेना में अत्यन्त कोलाहल हाहाकार मच गया था।।६९।। रात्रि होने के कारण सब दैत्यराज अन्धकार से समावृत (घिरे हुए) थे। शक्ति सेना में इधर-उधर शिथिलता थी, ऐसी दशा में दुराश तरकश तथा अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाले धमनादि शस्त्रों से युक्त उद्दण्ड असुरों ने अवसर का लाभ उठाया। सेनाओं द्वारा जमा किये गये करोड़ों शत्रु गिर रहे थे।।७०-७१।। उन दैत्यों के अस्त्र मालाओं के द्वारा चक्रराजरथ को घेर लिया गया था। उस समय वह रथ बगुलों द्वारा घिरे हुए पर्वतराज की तरह अशोभित हो रहा था।।७२।। चक्ररथराज के पर्व के नीचे दुरात्मा विषंग ने उस रथ को आक्रान्त कर लिया, उस दुरात्मा विषंग ने एक बाण छोड़ा, जिससे कि देवी के एक तालवृन्त को चूर्ण-चूर्ण कर दिया।।७३।। इसके बाद तालवृन्त के चूर-चूर हो जाने से शक्ति समूह के अत्यन्त भयभीत हो जाने पर कामेश्वरी प्रमुख नित्या देवी अत्यन्त

ईषद्भृकुटिसंसक्तं श्रीदेव्या वदनांबुजम्। अवलोक्य भृशाद्विग्ना नित्या दधुरतिश्रमम्।।७५।।

नित्या कालस्वरूपिण्यः प्रत्येकं तिथिविग्रहाः।
क्रोधमुद्वीक्ष्य सम्राज्ञ्या युद्धाय दधुरुद्यमम्।।७६।।

प्रणिपत्य च तां देवीं महाराज्ञीं महोदयाम्। ऊचुर्वाचमकांडोत्थां युद्धकौतुकगद्गदाम्।।७७।।

तिथिनित्या उचुः

देवदेवी महाराज्ञी तवाग्रे प्रेक्षितां चमूम्। दंडिनीमंत्रनाथादिमहाशक्त्यभिपालितम्।।७८।।

धर्षितुं कातरा दुष्टा मायाच्छद्मपरायणाः। पार्ष्णिग्राहेण युद्धेन बाधंते रथपुंगवम्।।७९।।

तस्मात्तिमिरसंछन्नमूर्तीनां विबुधद्रुहाम्। शमयामो वयं दर्पं क्षणमात्रं विलोकय।।८०।।

या वह्निवासिनी नित्या या ज्वालामालिनी परा।
ताभ्यां प्रदीपिते युद्धे द्रष्टुं शक्ताः सुरद्विषः।।८१।।

प्रशमय्य महादर्पं पार्ष्णिग्राहप्रवर्तिनाम्। सहसैवागमिष्यामः सेवितुं श्रीपदांबुजम्।

राज्ञां देहि महाराज्ञि मर्दनार्थं दुरात्मनाम्।।८२।।
इत्युक्ते सति नित्याभिस्तथास्त्विति जगाद सा।
अथ कामेश्वरी नित्या प्रणम्य ललितेश्वरीम्।
तया संप्रेषिता ताभिः कुण्डलीकृतकार्मुका।।८३।।

क्रोधित हो गयीं।।७४।। श्री देवी के मुख कमल पर कुछ भ्रकुटी वक्र हो गयी अर्थात् श्री ललिता देवी की भौंहें क्रोध से कुछ टेढ़ी हो गयीं। उनको क्रोधित देखकर नित्या देवी अत्यन्त उद्विग्न (व्याकुल) हो गयी और फिर उन्होंने अत्यन्त श्रम (अत्यन्त थकान) को धारण किया।।७५।। तिथि रूपी शरीर वाली कालस्वरूपिणी नित्या देवियों ने क्रोध दिखाकर सम्राज्ञी श्री ललिता देवी के द्वारा आदेश प्राप्त कर युद्ध करने का उद्यम धारण किया।।७६।। और फिर उन देवी महा महाराज्ञी महोदया श्री ललिता देवी को उन नित्याओं ने प्रणाम किया और वे जो देवी असमय रात में अचानक उठी थीं और अचानक रात्रि में युद्ध का कौतुक देखकर आश्चर्य चकित थीं, उनसे इस प्रकार वचन कहा।।७७।।

तिथि नित्यायें बोलीं—हे देवों की देवी महाराज्ञी! आपके आगे ही दण्डिनाथा, मन्त्रिनाथा आदि महाशक्तियों से परिपालित सेना को माया और छलकपट करने में कुशल दुष्ट एवं कायर असुरों ने कुचल दिया तथा युद्ध के नियमों के विरुद्ध रात में पीछे से सोती हुई सेना पर आक्रमण करके छलकपट पूर्ण युद्ध द्वारा वे दुष्ट असुर हमारे रथ को बाधा पहुँचा रहे हैं।।७८-७९।। अतः हे महाराज्ञी अब देखिये, हम अन्धकार से ढके शरीर वाले असुरों के घमण्ड को क्षणमात्र में शान्त करती हैं।।८०।। जो वह्निवासिनी नित्या देवी हैं और जो दूसरी ज्वालामालिनी हैं, उन दोनों के साथ युद्ध करने में देखते हैं, कैसे असुर समर्थ होते हैं?।।८१।। अब हम उन पीठ पर वार करने वाले दुष्ट असुरों के महा घमण्ड को पूरी तरह शान्त कर शीघ्र श्री देवी के चरण कमलों की सेवा में उपस्थित होवेंगी। अतः हे महाराज्ञि! उन दुष्टों का नाश करने के लिये हमें आज्ञा दीजिये।।८२।। नित्याओं द्वारा ऐसा कहने पर महाराज्ञी श्री ललिता देवी ने कहा कि ठीक है, तुम जाओ, अपनी शक्ति दिखाओ। इसके बाद कामेश्वरी नित्या देवी ने ललितेश्वरी को प्रणाम किया, फिर उन ललितेश्वरी द्वारा वे युद्धक्षेत्र में भेज दी गयीं। उसके बाद उन सबने धनुषों

सा हंतुं तान्दुराचारान्कूटयुद्धकृतक्षणान्। बालारुणमिव क्रोधारुणं वक्रं वितन्वती॥८४॥
रे रे तिष्ठत पापिष्ठा मायानिष्ठाश्छिनद्मि वः। अन्धकारमनुप्राप्य कूटयुद्धपरायणाः॥८५॥
इति तान्भर्त्सयंती सा तूणीरोत्खातसायकात्। पर्वावरोहणं चक्रे क्रोधेन प्रस्खलद्गतिः॥८६॥
सज्जकार्मुकहस्ताश्च भगमालापुरःसराः। अन्याश्च चलिता नित्याः कृतपर्वावरोहणाः॥८७॥

ज्वालामालिनि नित्या च या नित्या वह्निवासिनी।
सज्जे युद्धे स्वतेजोभिः समदीपयतां रणे॥८८॥

अथ ते दुष्टदनुजाः प्रदीप्ते युद्धमंडले। प्रकाशवपुषस्तत्र महांतं क्रोधमाययुः॥८९॥
कामेश्वर्यादिका नित्यास्ताः पञ्चदश सायुधाः। ससिंहनादास्तान्दैत्यानमृद्नन्नेव हेलया॥९०॥
महाकलकलस्तत्र समभूद्युद्धसीमनि। मंदरक्षोभितांभोधिवेल्लत्कल्लोलमंडलः॥९१॥
ताश्च नित्यावलत्क्वाणकंकणैर्युधि पाणिभिः। आकृष्य प्राणकोदंडास्तेनिरे युद्धमुद्धतम्॥९२॥
यामत्रितयपर्यंतमेवं युद्धमवर्त्तत। नित्यानां निशितैर्बाणैरक्षौहिण्यश्च संहताः॥९३॥
जघान दमनं दुष्टं कामेशी प्रथमं शरैः। दीर्घजिह्वं चमूनाथं भगमाला व्यदारत्॥९४॥

नित्यक्लिन्ना च भेरुंडा हुम्बेकं हुलुमल्लकम्।
कक्लसं वह्निवासा च निजघान शरैः शतैः॥९५॥

को धारण कर लिया।।८३।। तब उस समय छलकपटपूर्ण क्रूर युद्ध करने वाले उन दुराचारियों को मारने के लिये क्रोध से प्रातःकालीन सूर्य के समान लाल मुख की हुई, उन कामेश्वरी नित्या देवी ने उन दैत्यों से कहा कि अरे अन्धकार का सहारा लेकर कूटयुद्ध करने वाले मायावी नींच पापियो! ठहरो, अब मैं तुम्हारा छेदन करती हूँ।।८४-८५।। इस प्रकार उन दैत्यों की घोर निन्दा करती है, तरकश में बाण रखकर क्रोध से लड़खड़ाती हुई, उन देवी ने भगमाला को पहनकर हाथ में धनुष लेकर रथ के पर्व में आरोहण किया तथा अन्य नित्या देवियाँ रथ के पर्व में चढ़ गयीं।।८६-८७।। तथा साथ ही उस रथ पर्व में ज्वालामालिनी नित्या और वह्निवासिनी नित्या भी सवार हो गयीं। वे सजे हुए उस युद्धस्थल में अपने तेजों से सन्दीपित हो रही थीं।।८८।।

इसके बाद वे ज्वालामालिनी और वह्निवासिनी अपने अपने तेज से उद्दीप्त होने लगीं, तो चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया, तब उस प्रदीप्त युद्धस्थल में वे सब दुष्ट दानव सशरीर दिखायी देने लगे और जब वे दिखाई देने लगे, तब अत्यन्त क्रोधित हो गये।।८९।। तब कामेश्वरी आदि उन पन्द्रह नित्याओं ने अस्त्र शस्त्र सहित सिंहनाद करते हुए उन दैत्यों को थोड़ी देर में ही मसल दिया।।९०।। तब युद्ध क्षेत्र में उसी तरह महा कलकल अर्थात् हाहाकार होने लगा जिस तरह समुद्र मन्थन के समय देवों और दानवों ने मन्दराचल द्वारा समुद्र के जल को विलोडित कर क्षोभित किया था।।९१।। जिनके हाथ में बँधे हुए कंगन खनखना रहे थे, उन हाथों से युद्ध में प्राणदण्डों को खींचकर उन्होंने उत्तम युद्ध किया।।९२।। इस प्रकार नित्याओं के तेजधार वाले बाणों से अक्षौहिणी सेनाओं के साथ तीन पहर तक युद्ध हुआ।।९३।। पहले कामेश्वरी देवी ने बाणों से दमन नामक दुष्ट दानवराज को मार डाला और दीर्घजिह्व सेनापति को भगमाला देवी ने फाड़ दिया।।९४।। नित्य क्लिन्ना और भेरुण्डा ने हुम्बेक और हुलुमल्लक को तथा वह्निवासा ने सैकड़ों बाणों से कक्लश को मार गिराया।।९५।।

महावज्रेश्वरी बाणैरभिनत्केकिवाहनम्। पुक्लसं शिवदूती च प्राहिणोद्यमसादनम्॥९६॥
पुंड्रकेतुं भुजोद्दंडं त्वरिता समदारयत्। कुलसुन्दरिका नित्या चंडबाहुं च कुक्कुरम्॥९७॥

अथ नीलपताका च विजया च जयोद्धते।
जंबुकाक्षं जृंभणं च व्यतन्वातां रणे बलिम्।
सर्वमंगलिका नित्या तीक्ष्णशृंगमखंडयत्।
ज्वालामालिनिका नित्या जघानोग्रं त्रिकर्णकम्॥९८॥

चंद्रगुप्तं च दुःशीलं चित्रं चित्रा व्यदारत्। सेनानाथेषु सर्वेषु निहतेषु दुरात्मसु॥९९॥
विषंगः परमः क्रुद्धश्चचाल पुरतो बली। अथ यामावशेषायां यामिन्यां घटिकाद्वयम्॥१००॥

नित्याभिः सह संग्रामं विधाय स दुराशयः।
अशक्यत्वं समुद्दिश्य चक्राम प्रपलायितुम्॥१०१॥

कामेश्वरीकराकृष्टचापोत्थैर्निशितैः शरैः। भिन्नवर्मा दृढतरं विषंगो विह्वलाशयः।

हतावशिष्टैर्योधैश्च सार्धमेव पलायितः॥१०२॥

ताभिर्न निहतो दुष्टो यस्माद्वध्यः स दानवः। दंडनाथाशरेणैव कालदंडसमत्विषा॥१०३॥
तस्मिन्पलायिते दुष्टे विषंगे भंडसोदरे। सा विभाता च रजनी प्रसन्नश्चाभवन्दिशः॥१०४॥
पलायितं रणे वीरमनुसर्त्तुमनौचिती। इति ताः समरान्नित्यास्तस्मिन्काले व्यरंसिषुः॥१०५॥
दैत्यशस्त्रव्रणस्यंदिशोणितप्लुतविग्रहाः। नित्याः श्रीललितां देवीं प्रमिपेतुजयोद्धताः॥१०६॥

महावज्रेश्वरी देवी ने बाणों से केकिवाहन को और शिवदूती ने पुल्कस को यमलोक पहुँचा दिया।।९६।। त्वरिता देवी ने पुंड्रकेतु और भुजदण्ड को पूरी तरह से विदीर्ण कर दिया और कुलसुन्दरिका नित्या ने चण्डबाहु और कुक्कुट को विदीर्ण कर दिया।।९७।। इसके बाद जीत के लिये उद्यत होने पर नील पताका और विजया ने जंबुकाक्ष और जृम्भण को मारकर पसार दिया, लम्बा लम्बा कर दिया। वहीं पर सर्वमंगलिका नित्या ने तीक्ष्णशृंग नामक दानव के टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा ज्वालामालनिका नित्या ने उग्र त्रिकर्णक को मार डाला।।९८।। चित्रादेवी ने चन्द्रगुप्त और दुराचारी चित्रदानव को बीच से फाड़ दिया। इस प्रकार सब दुरात्मा सेनापतियों के मर जाने पर बहुत अधिक क्रोधित होकर बली विषंग युद्ध के लिये चल पड़ा।।९९-९९½।।। इसके बाद जब एक पहर रात्रि शेष रह गयी थी, तब दो घड़ी रात्रि रहने पर नित्या देवियों के साथ दुष्ट आशय रखने वाला विषंग, जब उन्हें हराने में असमर्थ हो गया, तब अपनी अशक्यता समझकर युद्धक्षेत्र से भाग निकला।।९९½-१०१।।

उधर कामेश्वरी देवी के हाथ से खींचे धनुष पर रखे गये तीक्ष्ण बाणों से टूटे फूटे घायल शरीर वाला विषंग बहुत व्याकुल होकर मरने से बचे हुए सैनिकों के साथ ही भाग गया।।१०२।। उन देवियों द्वारा वह दुष्ट न मारा जा सका, जिससे वह दण्डनाथा देवी के कालदण्ड की कान्ति के समान बाण से ही मारा जाने योग्य था।।१०३।। भण्डासुर के सहोदर भ्राता उस दुष्ट विषंग के भाग जाने पर वह रात्रि अत्यधिक सुशोभित हो गयी और दिशायें प्रसन्न हो गयीं।।१०४।। उस वीर विषंग को भागा हुआ देखकर उसकी पीछा करने को अनुचित मानने वाली नित्या देवियों ने उस समय पर युद्ध से विश्राम किया।।१०५।। दैत्य के शस्त्रों से हुए घावों से रक्त बहने वाले शरीर वाली वे नित्य देवियां जीत से उद्धत (कूदती हुई) श्री ललिता देवी के पास पहुँची।।१०६।।

इत्थं रात्रौ महद्युद्धं तत्र जातं भयंकरम्। नित्यानां रूपजालं च शस्त्रक्षतमलोकयत्॥१०७॥
श्रुत्वोदंतं महाराज्ञी कृपापांगेन सैक्षत। तदालोकनमात्रेण व्रणो निर्व्रणतामगात्॥१०८॥
नित्यानां विक्रमैश्चापि ललिता प्रीतिमासदत्॥१०९॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने विषंगपलायनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने प्रथमयुद्धदिवसः

भंडपुत्रवधो नाम

षड्विंशतितमोऽध्यायः

दशाक्षौहिणिकायुक्तः कुटिलाक्षोऽपि वीर्यवान्।
दंडनाथाशरैस्तीक्ष्णै रणे भग्नःपलायितः।
दशाक्षौहिणिकं सैन्यं तया रात्रौ विनाशितम्॥१॥
इमं वृत्तांतमाःकर्ण्य भण्डः क्षोभमथाययौ। रात्रौ कपटसंग्रामं दुष्टानां निर्जरद्रुहाम्।
मंत्रिणी दण्डनाथा च श्रुत्वा निर्वेदमापतुः॥२॥

इस प्रकार वहाँ रात्रि में महान् भयंकर युद्ध हुआ था, अतः ललितादेवी ने नित्या देवियों के रूपों को शस्त्र से घायल देखा।।१०७।। समस्त वृत्तान्त को सुनकर उन महाराज्ञी श्री ललिता देवी ने कृपा करने वाली आँख से उन नित्याओं को देखा, अतः उस देखने मात्र से ही उनके घाव समाप्त हो गये।।१०८।। तब वहाँ नित्या देवियों के पराक्रमों से ललिता देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं।।१०९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २५वाँ अध्याय विषंगपलायन वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖
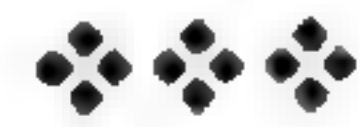
श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान प्रथमयुद्ध दिवस

अध्याय-२६

भण्डपुत्र वध

दश अक्षौहिणी सेना से युक्त पराक्रमी कुटिलाक्ष भी दण्डनाथा देवी के तीक्ष्ण बाणों से भग्न होकर भाग गया। दश अक्षौहिणी सेना का उसने रात्रि में विनाश करवा दिया।।१।। इस वृत्तान्त को सुनकर दैत्यराज भण्ड को अत्यन्त दुःख हुआ। उधर रात्रि में दुष्ट असुरों के कपट संग्राम के बारे में सुनकर ललितेश्वरी देवी की मन्त्रिणी दण्डनाथा भी शोक से प्राप्त हो गयी।।२।।

अहो वत महत्कष्टं दैत्यैर्देव्याः समागतम्। उत्तानबुद्धिभिर्दूरमस्माभिश्चलितं पुरः॥३॥
महाचक्ररथेंद्रस्य न जातं रक्षणं बलैः। एतं त्ववसरं प्राप्य रात्रौ दुष्टैः पराकृतम्॥४॥
को वृत्तांतोऽभवत्तत्र स्वामिन्या किं रणः कृतः। अन्या वा शक्तयस्तत्र चक्रुर्युद्धं महासुरैः॥५॥
विमृष्टव्यमिदं कार्यं प्रवृत्तिस्तत्र कीदृशी। महादेव्याश्च हृदये कः प्रसंगः प्रवर्तते॥६॥
इति शंकाकुलास्तत्र दण्डनाथापुरोगमाः। मंत्रिणीं पुरतः कृत्वा प्रचेलुर्ललितां प्रति॥७॥
शक्तिचक्रचमूनाथाः सर्वास्ताः पूजिता द्रुतम्। व्यतीतायां विभावर्यां रथेंद्र पर्यवारयन्॥८॥
अवरुह्य स्वयानाभ्यां मंत्रिणीदण्डनायिके। अधस्तात्सैन्यमावेश्य तदारुरुहतु रथम्॥९॥
क्रमेण नव पर्वाणि व्यतीत्य त्वरित क्रमैः। तत्तत्सर्वगतैः शक्तिचक्रैः सम्यङ् निवेदितैः॥१०॥
अजभजेतां महाराज्ञीं मंत्रिणीदण्डनायिके। ते व्यजिज्ञपतां देव्या अष्टांगस्पृष्टभूतले॥११॥
महाप्रमादः समभूदितिः न श्रुतमंबिके। कूटयुद्धप्रकारेण दैत्यैरपकृतं खलैः॥१२॥
स दुरात्मा दुराचारः प्रकाशसमरात्रसन्। कुहकव्यवहारेण जयसिद्धिं तु कांक्षति॥१३॥
दैवान्नः स्वामिनीगात्रे दुष्टानाममरद्रुहाम्। शरादिकपरामर्शो न जातस्तेन जीवति॥१४॥

वे कहने लगी कि अरे यह तो महान् कष्ट है कि दैत्यों ने देवियों को हरा दिया तथा हमारी ऊँची ऊँची बुद्धियों से बनाकर चलते हुये महाचक्ररथराज की भी सैनिकों द्वारा रक्षा नहीं हुई। इसी अवसर का लाभ उठाकर रात्रि में दुष्ट असुरों ने हमें पराजित कर दिया।।३-४।। तथा वहाँ पर क्या क्या घटना घटित हुई! स्वामिनी ललिता महोदया ने क्या युद्ध किया? अथवा अन्य शक्तियों ने वहाँ महा असुरों के साथ कैसे युद्ध किया?।।५।। इस कार्य पर विचार-विमर्श किया जाना चाहिये, वहाँ अब कैसी प्रवृत्ति है? वहाँ पर अब क्या किया जाय? इस विषय में विचार होना चाहिये तथा महादेवी श्री ललिता महोदया के हृदय में कौंन प्रसंग चल रहा है? वे क्या चाहती हैं?।।६।।

इस प्रकार की शंकाएं करती हुई, वहाँ पर सभी शक्तियाँ दण्डनाथा के सामने जाने के लिये उपस्थित हुईं, फिर मन्त्रिणी दण्डनाथा को आगे करके श्री ललिता देवी के पास चलने लगीं।।७।। उसके बाद मन्त्रिणी दण्डनाथा के साथ सभी शक्तियाँ जब श्री ललितेश्वरी के सामने पहुँची, तो वे शक्ति चक्र के साथ सभी सेनापतियों ने उनका आदर सत्कार किया और शीघ्र ही रात्रि के बीत जाने पर उस रथराज को हटा दिया।।८।। उसके बाद मन्त्रिणी और दण्डनाथा दोनों अपने अपने यानों से उतरकर नीचे खड़ी सेना में प्रवेश करके तब रथ पर दोनों सवार हुयीं।।९।। तब उन शक्तियों के साथ रथ के नौ पर्वों तक जो कुछ घटना हुई कि शक्तियों को रात में असुरों ने कूटयुद्ध से रथ को तोड़-फोड़ दिया, शक्तियों को तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दिया तथा फिर शक्तियों ने जो किया, वह सारा वृत्तान्त क्रमशः मन्त्रिणी और दण्डनाथा ने महाराज्ञीं ललितेश्वरी को बता दिया तथा उन दोनों ने यह भी बता दिया कि रथराजचक्र के आठ अंग भूतल का स्पर्श कर रहे हैं अर्थात् उस रथ के आठ पर्वों को तोड़कर भूमि पर डाल दिया है।।१०-११।। तथा उन्होंने कहा कि यह हम लोगों से महान् आलस्य हो गया है, हम नहीं जानते थे कि शत्रु इतनी कायरता के साथ रात में आक्रमण करेगा। अतः हे अम्बिके! कूटयुद्ध के प्रकारों से दुष्ट दैत्यों ने हमारा घोर अपकार किया है।।१२।। वह दुरात्मा दुराचारी भण्डासुर दिन के प्रकाश में होने वाले समर से डरता हुआ ऐन्द्रजालिक (छलकपटपूर्ण) व्यवहार से जीत की सफलता प्राप्त करना चाहता है।।१३।। दैवयोग से स्वामिनी के शरीर पर देवताओं के शत्रुओं के बाणों का असर नहीं होता है, उसी कारण आप जीवित हैं।।१४।।

एकावलंबनं कृत्वा महाराज्ञि भवत्पदम्। वयं सर्वा हि जीवामः साधयामः समीहितम्॥१५॥
अतोऽस्माभिः प्रकर्तव्यं श्रीमत्यंगस्य रक्षणम्। मायाविनश्च दैत्येंद्रास्तत्र मंत्रो विधीयताम्॥१६॥
आपत्कालेषु जेतव्या भंडाद्या दानवाधमाः। कूटयुद्धं न कुर्वंति न विशंति चमूमिमाम्॥१७॥
तथा महेंद्रसैलस्य कार्यं दक्षिणदेशतः। शिविरं बहुविस्तारं योजनानां शतावधि॥१८॥
वह्निप्राकारवलयं रक्षणार्थं विधीयताम्। अस्मत्सेनानिवेशस्य द्विषां दर्पशमाय च॥१९॥
शतयोजनमात्रस्तु मध्यदेशः प्रकल्प्यताम्। वह्निप्राकारचक्रस्य द्वारं दक्षिणतो भवेत्॥२०॥
यतो दक्षिणदेशस्थं शून्यकं विद्विषां पुरम्। द्वारे च बहवः कल्प्याः परिवारा उदायुधाः॥२१॥
निर्गच्छतां प्रविशतां जनानामुपरोधकाः। अनालस्या अनिद्राश्च विधेयाः सततोद्यताः॥२२॥
एवं च सति दुष्टानां कूटयुद्धं चिकीर्षितम्। अवेलासु च संध्यासु मध्यरात्रिषु च द्विषाम्।
अशक्यमेव भवति प्रौढमाक्रमणं हठात्॥२३॥
नो चेद्दुराशया दैत्या बहुमायापरिग्रहाः। पश्यतोहर[1]वत्सर्वं विलुठंति महद्बलम्॥२४॥
मंत्रिण्या दंडनाथाया इति श्रुत्वा वचस्तदा। शुचिदन्तरुचा मुक्ता वहंती ललिताब्रवीत्॥२५॥

हे महाराज्ञि! आपके चरणों का अवलम्बन कर हम सब जीवित रहते हैं और अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं को सिद्ध करते हैं।।१५।। इसलिये हमें श्रीमती ललितेश्वरी के अंग की रक्षा करनी चाहिये और इस समय सब दैत्यराज वहाँ अपने शिविरों में मन्त्रणा कर रहे हैं। इसलिये यह उचित समय है; क्योंकि आपत्तिकाल में भण्डासुर आदि दैत्यों को जीतना चाहिये। इस समय वे कूट युद्ध नहीं कर रहे हैं और न हमारी इस सेना में प्रवेश कर रहे हैं।।१६-१७।। जैसे वे युद्धनीति पर विचार कर रहे, वैसे ही हमें भी महेन्द्र पर्वत के दक्षिण की ओर सौ योजन बहुत विस्तार वाला शिविर बनाना चाहिये।।१८।। रक्षा के लिये उस शिविर का परकोटा (चारों ओर की दीवार) आग से जलता हुआ होना चाहिये अर्थात् जिसके चारों ओर परकोटे की दीवारें आग से जलती हुई बनी रहें, ताकि शत्रु का आक्रमण न हो सके। तथा हमारी सेना के निवेश (रहने) को तथा शत्रुओं के घमण्ड को शान्त करने के लिये सौ योजन मात्र विस्तृत मध्यदेश बनाओ, जिस मध्यदेश के दक्षिण की ओर अग्नि के परकोटे का द्वार होना चाहिये।।१९-२०।। क्योंकि दक्षिण की ओर शत्रु भण्डासुर के मन्त्री शून्यक का नगर है तथा उसके द्वार पर बहुत से अस्त्र-शस्त्रों से युक्त सैनिक घिरे हुए होने चाहिये।।२१।।

उन द्वारों से निकलने वाले और प्रवेश करने वाले लोगों की जाँच करने वाले द्वारों पर तैनात किये जायें जो आने-जाने वालों की तलाशी लें कि कोई शत्रुघात करने के लिये तो नहीं आ रहा है तथा वे पहरेदार (जाँच करने वाले) आलस्यहीन, निद्राहीन तथा लगातार युद्ध करने आदि परिस्थितियों के लिये उद्यत व्यक्ति होने चाहिये।।२२।। ऐसा होने पर असमयों में प्रातः और सायंकाल जबकि युद्ध नहीं होना चाहिये। उन समयों में तथा अर्धरात्रि में होने वाला शत्रुओं के भीषण आक्रमण अशक्य होगा। अर्थात् शत्रुगण आक्रमण नहीं कर सकेंगे।।२३।। अब बताइये बहुत से मायावी शरीर धारण कर दुष्ट आशा रखने वाले दैत्यगण उसी प्रकार हमारी महासेना को हमारे देखते हुए लूट लेते हैं। जिस प्रकार स्वर्णकार देखते हुए सामने सोना लूट लेता है।।२४।। तब मन्त्रिणी और दण्डनाथा के इस वचन को सुनकर दन्तकान्ति से पवित्र मुस्कान छोड़ती हुई श्री ललिता देवी बोली।।२५।।

१. पश्यतोहर = स्वर्णकार।

भवतीनामयं मंत्रश्चारुबुद्ध्या विचारितः। अयं कुशलधीमार्गो नीतिरेषा सनातनी॥२६॥
स्वचक्रस्य पुरो रक्षां विधाय दृढसाधनैः। परचक्राक्रमः कार्यो जिगीषद्भिर्महाजनैः॥२७॥
इत्युक्त्वा मंत्रिणीदंडनाथे सा ललितेश्वरी। ज्वालामालिनिकां नित्यामाहूयेदमुवाच ह॥२८॥
वत्से त्वं वह्निरूपासि ज्वालामालामयाकृतिः।
त्वया विधीयतां रक्षा बलस्यास्य महीयसः॥२९॥
शतयोजनविस्तारं परिवृत्य महीतलम्। त्रिंशद्योज्जनमुन्नद्धं ज्वालाकारत्वमाव्रज॥३०॥
द्वारयोजनमात्रं तु मुक्त्वान्यत्र ज्वलत्तनुः। वह्निज्वालात्वमापन्ना संरक्ष सकलं बलम्॥३१॥
ज्वालामालिनिकां नित्यामित्युक्त्वा ललितेश्वरी। महेन्द्रोत्तरभूभागं चलितुं चक्र उद्यमम्॥३२॥
सा च नित्यानित्यमयी ज्वलज्ज्वालामयाकृतिः।
चतुर्दशीतिथिमयी तथेति प्रणनाम ताम्॥३३॥
तयैव पूर्वनिर्दिष्टं महेन्द्रोत्तरभूतलम्। कुण्डलीकृत्य जज्वाल शालरूपेण सा पुनः॥३४॥
नभोवलयजंबालज्वालामालामयाकृतिः। बभासे दंडनाथाया मंत्रिनाथचमूरपि॥३५॥
अन्या सामपि शक्तीनां महतीनां महद्बलम्। विशंकटोदरं सालं प्रविवेश गतक्लमा॥३६॥
राजचक्ररथेन्द्रं तु मध्ये संस्थाप्य दंडिनी। वामपक्षे रतं स्वीयं दक्षिणे श्यामलारथम्॥३७॥
पश्चाद्भागे सम्पदेशीं पुरस्ताच्च हयासनाम्। एवं संवेश्य परितश्चक्रराजरथस्य च॥३८॥

आपका यह मन्त्र सुन्दर बुद्धि से विचार किया हुआ है। यह कुशल बुद्धि का मार्ग है तथा यह सनातनी नीति है।।२६।। वह है कि युद्ध को जीतने की इच्छा रखने वाले महापुरुषों को सबसे पहले दृढ़साधनों द्वारा अपने नगरचक्र की रक्षा करनी चाहिये। उसके बाद दूसरे के पुरचक्र पर आक्रमण करना चाहिये।।२७।। इस प्रकार मन्त्रिणी और दण्डनाथा से कहकर उन श्री ललितेश्वरी ने ज्वालामालनिका नित्या को बुलाकर यह कहा।।२८।। कि हे पुत्रि! तुम अग्नि रूप हो, अग्नि मालाओं की तुम्हारी आकृति है, अतः तुम इस बलवान् और सैन्यदल की रक्षा करो।।२९।। तुम सौ योजन विस्तार तक इस भूतल को घेर कर तीन सौ योजन ऊँचे जलती हुई अग्नि का आकार बनाओ।।३०।। शिविर के द्वार पर योजनमात्र छोड़कर अन्यत्र अपना जलता हुआ शरीर रखते हुए अग्नि की ज्वाला को प्राप्त करते हुए समस्त सेना की रक्षा करो।।३१।। ज्वालामालनिका से इस प्रकार कहकर ललितेश्वरी देवी ने महेन्द्र पर्वत के उत्तर भाग की ओर चलने का उद्यम किया।।३२।। तब उन नित्य और अनित्यमयी जलती हुई ज्वाला की आकृति वाली, चौदह तिथियों वाली, देवी ने उन ललितेश्वरी को प्रणाम किया।।३३।।

उसके द्वारा ही पूर्वनिर्देश के अनुसार महेन्द्रपर्वत का उत्तर भूतल को चारों ओर से घेरकर वह पुनः शालरूप से जलने लगी।।३४।। आकाशवलय में गारे के समान वह ज्वालामालामयाकृति वाली दण्डिनाथा और मन्त्रिनाथा की सेना सुशोभित हुई।।३५।। अन्य महीयशी शक्तियों की भी महासेना ने बहुत ही मजबूत बने हुए घर में निश्चिन्त होकर प्रवेश किया।।३६।। राजचक्ररथेन्द्र को मध्यभाग में स्थापित करके रथ के वामपक्ष में अपना रथ स्थापित करके दक्षिण में श्यामला देवी का रथ स्थापित किया।।३७।। उसके पीछे वाले भाग में सम्पत् देवी को तथा आगे वाले भाग में हयासना को स्थापित कर दिया। इस प्रकार राजचक्र रथेन्द्र के चारों ओर सुरक्षा व्यवस्था करके दण्डिनी देवी

द्वारे निवेशयामास विंशत्यक्षौहिणीयुताम्। ज्वलद्दंडायुधोदग्रां स्तम्भिनीं नाम देवताम्॥३९॥
या देवी दंडनाथाया विघ्नदेवीति विश्रुता। एवं सुरक्षितं कृत्वा शिबिरं योत्रिणी तथा।
पूषण्युदितभूयिष्ठे पुनर्युद्धमुपाश्रयत्॥४०॥
कृत्वा विलोकिलारावं ततः शक्तिमहाचमूः। अग्निप्राकारकद्वारान्निर्जगाम महारवा॥४१॥
इत्थं सुरक्षितं श्रुत्वा ललिताशिबिरोदरम्। भूयः संज्वरमापन्नः प्रचण्डो भण्डदानवः॥४२॥
मंत्रयित्वा पुनस्तत्र कुटिलाक्षपुरोगमैः। विषंगेण विशुक्रेणासममात्मसुतैरपि॥४३॥
एकौघस्य प्रसारेण युद्धं कर्तुं महाबलः। चतुर्बाहुमुखान्पुत्रांश्चतुर्जंधिसन्निभान्॥४४॥
चतुरान्युद्धकृत्येषु समाहूय स दानवः। प्रेषयामास युद्धाय भण्डश्चण्डक्रुधा ज्वलन्॥४५॥
त्रिंशत्संख्याश्च तत्पुत्रा महाकाया महाबलाः।
तेषां नामानि वक्ष्यामि समाकर्णय कुम्भज॥४६॥
चतुर्बाहुश्चकोराक्षस्तृतीयस्तु चतुःशिराः। वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महाकायो महाहनुः॥४७॥
मखशत्रुर्मखस्कन्दी सिंहघोषः सिरालकः। लडुनः पट्टसेनश्च पुराजित्पूर्वमारकः॥४८॥
स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः। अतिमायो बृहन्माय उपमायश्च वीर्यवान्॥४९॥
इत्येते दुर्मदाः पुत्रा भण्डदैत्यस्य दुर्द्धियः। पितुः सदृशदोर्वीर्याः पितुः सदृशविग्रहाः॥५०॥

ने शिविर के द्वार पर बीस अक्षौहिणी सेना के साथ जलते हुए दण्डायुध वाली अत्यन्त उग्र स्वभाववाली, स्तम्भिनी नाम की देवी को तैनात कर दिया (स्थापित कर दिया)। ।३८-३९।। जो देवी दण्डनाथा की विघ्न करने वाली देवी विशेष रूप से सुनी गयी हैं। इस प्रकार शिविर को सुरक्षित करके युद्ध करने वाली दण्डनाथा ने आकाश में बादलों के छाये जाने के समान पुनः युद्ध का आश्रय लिया।।४०।। उसके किलकिल की ध्वनि करके शक्ति महासेना अग्नि प्राकारक द्वार से महाशब्द करती हुई निकल पड़ी।।४१।। इस प्रकार जब भण्डासुर दैत्य ने सुना कि ललिता देवी के शिविर का द्वार अत्यन्त सुरक्षित हो गया है, तब यह सुनकर दैत्यराज भण्डासुर को भयंकर ज्वर चढ़ गया।।४२।।

तब उस भण्डासुर ने पुनः अपने कुटिलाक्ष आदि मन्त्रियों तथा विषंग एवं विशुक्र आदि अपने पुत्रों के साथ मन्त्रणा की।।४३।। मन्त्रिणा करके एक साथ मिलकर आक्रमण करने के लिये समुद्र के समान चतुर्बाहु आदि युद्ध में चतुर पुत्रों को बुलाकर क्रोध से जलते हुए प्रचण्ड भण्डासुर ने युद्ध के लिये भेज दिया।।४४-४५।। उसके विशालकाय महाबली तीस पुत्र थे। अतः हे अगस्त्य जी मैं उनके नाम बता रहा हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनिये।।४६।। वे हैं—१. चतुर्बाहु, २. चकोराक्ष, ३. चतुःशिरः, ४. वज्रघोष, ५. ऊर्ध्वकेश, ६. महाकाय, ७. महाहनु, ८. मखशत्रु, ९. मखस्कन्दी, १०. सिंहघोष, ११. सिरालक, १२. लडुन, १३. पट्टसेन, १४. पुराजित्, १५. पूर्वमारुक, १६. स्वर्गशत्रु, १७. स्वर्गबल, १८. दुर्गाख्य, १९. स्वर्गकण्टक, २०. अतिमाय, २१. बृहन्माय, २२. उपमाय, २३. वीर्यवान् इस प्रकार ये भण्डासुर दैत्य के दुर्मद और दुष्टबुद्धि पुत्र थे।[१] ये सभी पिता के समान भुजबल वाले पिता के समान पराक्रमी और पिता के समान शरीर वाले थे।।५०।।

१. संख्या तीस होनी चाहिये; परन्तु २३ ही हो रही है। अतः या तो यहाँ एक श्लोक पाण्डुलिपि में छूट रहा है अथवा पूर्व में सात असुर योद्धा मारे गये, वे भी इसी के पुत्र होंगे।

आगत्य भण्डचरणावभ्यवंदत भक्तितः।
तानुद्वीक्ष्य प्रसन्नाभ्यां लोचनाभ्यां स दानवः।
सगौरवमिदं वाक्यं बभषि कुलघातकः॥५१॥
भो भो मदीयास्तनया भवतां कः समो भुवि। भवतामेय सत्येन जितं विश्वं मया पुरा॥५२॥
शक्रस्याग्नेर्यमस्यापि निर्ऋतेः पाशिनस्तथा। कचेषु कर्षणं कोपात्कृतं युष्माभिराहवे॥५३॥
अस्त्राण्यपि च शस्त्राणि जानीथ निखिलान्यपि।
जाग्रत्स्वेव हि युष्मासु कुलभ्रंशोऽयमागतः॥५४॥
मायाविनी दुर्ललिता काचित्स्त्री युद्धदुर्मदा।
बहुभिः स्वसमानाभिः स्त्रीभिर्युक्ता हिनस्ति नः॥५५॥
तदेनां समरेऽवश्यमात्मवश्यां विधास्यथ। जीवग्राहं च सा ग्राह्या भवद्भिर्ज्वलदायुधैः॥५६॥
अप्रमेयप्रकोपांधान्युष्मानेकां स्त्रियं प्रति। सम्प्रेषणमनौचित्यं तथाप्येप विधेः क्रमः॥५७॥
इममेकं सहध्वं च शौर्यकीर्तिविपर्ययम्। इत्युक्त्वा भण्डदैत्येन्द्रस्तान्प्रहैषीद्रणं प्रति।
द्विशतं चाक्षौहिणीनां तत्सहायतयाऽहिनोत्॥५८॥
द्विशत्यक्षौहिणीसेना मुख्यस्य तिलकायिता। बद्धभ्रुकुटयः शस्त्रपाणयो निर्ययुर्गृहात्॥५९॥
निर्गमे भण्डपुत्राणां भूः प्रकम्पमलम्बत। उत्पाता विविधा जाता वित्रस्तं चाभवज्जगत्॥६०॥
तान्कुमारान्महासत्त्वांल्लाजवर्षैरवाकिरन्। वीथीषु यानैश्चलितान्पौरवृद्धपुरंध्रयः॥६१॥

उन सबने भक्तिपूर्वक पिता के पास आकर पिता के चरणों को स्पर्श कर अभिवादन किया। तब उस कुलघातक दानव ने उन अपने पुत्रों को प्रसन्न नेत्रों से देखकर गौरव सहित यह वाक्य कहा।।५१।। अरे अरे मेरे पुत्रो! तुम्हारे समान इस पृथ्वी पर कौंन है? आपके ही होने से मैंने पूर्वकाल में समस्त विश्व को जीत लिया था।।५२।। तुम लोगों ने ही युद्ध में क्रोध से इन्द्र, अग्नि, यम, मृत्यु की देवी निऋति तथा वरुण के केशों का कर्षण किया था।।५३।। आप लोग समस्त अस्त्र-शस्त्रों को चलाना जानते ही हैं, फिर आप लोगों के जागरूक रहने पर भी यहाँ कुल का नाश उपस्थित हो गया।।५४।। मायाविनी ललिता नाम की कोई युद्ध में न हारने वाली स्त्री है, जो अपने ही समान बहुत स्त्रियों के साथ हम असुरों को मार रही है।।५५।। तो इसको तुम अवश्य ही अपने वश में कर सकते हो तथा अपने जलते हुए अस्त्र-शस्त्रों से उसके प्राण ग्रहण कर सकते हो।।५६।। अप्रमेय क्रोध से क्रोधान्य आप सबको एक स्त्री से युद्ध करने भेजना अनुचित है, फिर भी यह विधि का विधान है।।५७।। अपनी शूरता कीर्ति के विपरीत इस एक को सहन करो।।५७½।।

इस प्रकार कहकर उस दैत्यराज भण्ड ने अपने पुत्रों को युद्ध के लिये भेज दिया तथा दो सौ अक्षौहिणी सेना उनके साथ भेज दी।।५८।। दो सौ अक्षौहिणी सेना के मुख्य अर्थात् सेनापति युद्ध का तिलक लगा कर अपनी भ्रकुटियां खेंचकर हाथों में शस्त्र धारण कर घर से निकल पड़े।।५९।। भण्डपुत्रों के निकल पड़ने पर पृथ्वी निराधार होकर काँपने लगी। अनेकों प्रकार के उत्पात होने लगे और सारा संसार विशेष भयभीत हो गया।।६०।। वे महाक्रमी पुत्र जब चल रहे थे, तब सड़कों पर महलों से ऊपर से पुरनारियां उनके ऊपर खीलों की वर्षा कर रही थीं।।६१।।

बंदिनो मागधाश्चैव कुमाराणां स्तुतिं व्यधुः। मङ्गलारार्तिकं चक्रुर्द्वारिद्वारे पुराङ्गनाः॥६२॥
भिद्यमानेव वसुधा कृष्यमाणमिवांबरम्। आसीत्तेषां विनिर्याणे घूर्णमान इवार्णवः॥६३॥
द्विशत्यक्षौहिणीसेनां गृहीत्वा भण्डसूनवः। क्रोधोद्यद्भ्रुकुटीक्रूरवदना निर्ययुः पुरात्॥६४॥
शक्तिसैन्यानि वर्णानि भक्षयामः क्षणाद्रणे।
तेषामायुधचक्राणि चूर्णयामः शितैः शरैः॥६५॥
अग्निप्राकारवलयं शमयामश्च रंहसा। दुर्विदग्धां तां ललितां बन्दीकुर्मश्च सत्वरम्॥६६॥
इत्यन्योन्यं प्रवल्गन्तो वीरभाषणघोषणैः। आसेदुरग्निप्राकारसमीपं भण्डसूनवः॥६७॥
यौवनेन मदेनान्धा भूयसा रुद्धदृष्टयः। भ्रुकुटीकुटिलाश्चक्रुः सिंहनादं महत्तरम्॥६८॥
विदीर्णमिव तेनासीद्ब्रह्मांडं चंडिमस्पृशा। उत्पातवारिदोत्सृष्टघोरनिर्घातरंहसा॥६९॥
एतस्याननुभूतस्य महाशब्दस्य डम्बरः। क्षोभयामास शक्तीनां श्रवांसि च मनांसि च॥७०॥
आगत्य ते कलकलं चक्रुः सार्धं स्वसैनिकैः। विविधायुधसम्पातमूर्च्छद्वैमानिकच्छटम्॥७१॥
चतुर्बाहुमुखान्भूत्वा भण्डदैत्यकुमारकान्। आगतान्युद्धकृत्याय बाला कौतूहलं दधे॥७२॥
कुमारी ललितादेव्यास्तस्या निकटवासिनी।
समस्तशक्तिचक्राणां पूज्या विक्रमशालिनी॥७३॥
ललितासदृशाकारा कुमारी कोपमादधे। या सदा नववर्षेव सर्वविद्यामहाखनिः॥७४।

मागध वन्दियों द्वारा कुमारों की स्तुति की जारही थी और पुराङ्गनाओं (नगरवधुओं) द्वारा द्वार-द्वार पर मांगलिक आरतियां उतारी जारही थीं।।६२।। उस समय मानो कि पृथ्वी ही फटने वाली है अथवा आकाश ही खिंचने वाला है, ऐसा समझता हुआ समुद्र ऊपर को देख रहा था।।६३।। दो सौ अक्षौहिणी सेना लेकर भण्डासुर के पुत्र क्रोध से भौंहे तानते हुए नगर से निकल गये।।६४।। उस समय वे कहते जा रहे थे कि हम लोग युद्ध क्षेत्र में क्षण भर में शक्ति सेना का भक्षण कर लेंगे और अपने बाणों से उनके अस्त्र-शस्त्रों को क्षण भर चूर्ण चूर्ण कर देंगे।।६५।। तथा उनका जो उनके नगर के चारों ओर अग्नि का परकोटा बना हुआ है, उसे भी क्षण भर में ठण्डा कर देंगे और शीघ्र ही उस कठिनाई से विदग्ध होने वाली ललिता को बन्दी बना लेंगे। इस प्रकार आपस में जोशपूर्ण भाषण करते हुए सब भण्डपुत्र अग्नि प्राकार (आग की चहारदीवार) के पास आ गये।।६६-६७।। यौवन और बहुत अधिक मद से अन्धे हुए वे क्रोध से अपनी भौंहें टेढ़ीकर बहुत तीव्र सिंहनाद करने लगे।।६८।। उस घोर नाद के तीव्र स्पर्शके द्वारा ब्रह्माण्ड विदीर्ण सा हो गया था, जैसे कि प्रलयकालीन मेघ में परस्पर टकराव से घोर शब्द होता है।।६९।। वह ऐसा महाशब्द था कि ऐसा शब्दाभास पहले कभी अनुभव नहीं किया गया था। वह सादृश्यहीन महाशब्द था। अतः उस घोर महाशब्द ने शक्तियों के कान और मन दोनों का क्षुब्ध कर दिये।।७०।। उन सबने अपने सैनिकों के साथ आकर कल कल करना प्रारम्भ कर दिया। उनके अनेकों प्रकार के अस्त्र शस्त्रों के सम्पात विमान की छटा फीकी पड़ गयी थी।।७१।। तब चतुर्बाहु आदि प्रमुख भण्डासुर के पुत्रों को युद्ध कृत्य के लिये आते हुए देखकर कुमारी बाला को युद्ध करने की उत्कण्ठा होने लगी।।७२।। वह कुमारी बाला उन महाराज्ञी ललिता देवी के पास रहने वाली थी और वह पराक्रमशालिनी कुमारी समस्त शक्ति चक्रों की पूजनीय देवी थी।।७३।। श्री ललिता देवी

बालारुणतनुः श्रोणीशोणवर्णवपुर्लता। महाराज्ञी पादपीठे नित्यमाहितसंनिधिः॥७५॥
तस्या बहिश्चराः प्राणाः या चतुर्थं विलोचनम्।
तानागतान्भण्डसुतान्संहरिष्यामि सत्वरम्॥७६॥
इति निश्चित्य बालांबा महाराज्ञ्यै व्यजिज्ञपत्। मातर्भंडमहादैत्यसूनवो योद्धुमागताः॥७७॥
तैः समं योद्धुमिच्छामि कुमारित्वात्सकौतुका। स्फुरन्ताविव मे बाहू युद्धकण्डूययानया॥७८॥
क्रीडा ममैषा हन्तव्या न भवत्या निवारणैः। अहं हि बालिका नित्यं क्रीडनेष्वनुरागिणी॥७९॥
क्षणं रणक्रीडया च प्रीतिं यास्यामि चेतसा। इति विज्ञापिता देवी प्रत्युवाच कुमारिकाम्॥८०॥
वत्से त्वमतिमृद्वंगी नववर्षा नवक्रमा। नवीनयुद्धशिक्षा च कुमारी त्वं ममैमिका॥८१॥
त्वां विना क्षणमात्रं मे न निश्वासः प्रवर्तते। ममोच्छ्वसितमेवासि न त्वं याहि महाहवम्॥८२॥
दंडिनी मंत्रिणी चैव शक्तयोऽन्याश्च कोटिशः।
संत्येव समरे कर्तुं वत्से त्वं किं प्रमाद्यसि॥८३॥
इति श्रीललितादेव्या निरुद्धापि कुमारिका। कौमारकौतुकाविष्टा पुनर्युद्धमयाचत॥८४॥
सुदृढं निश्चयं दृष्ट्वा तस्याः श्रीललितांबिका।
अनुज्ञां कृतवत्येव गाढमाश्लिष्य बाहुभिः॥८५॥

के समान आकार वाली उस कुमारी बाला ने क्रोध को धारण कर लिया। जो सदा नववर्ष के समान सब विद्याओं की खान थी।।७४।। उस कुमारी का शरीर बाल सूर्य के समान लाल था तथा उसके नितम्ब रक्त के वर्ण के थे। इस प्रकार उसकी शरीरलता बहुत सुन्दर थी। वह कुमारी ललिता देवी के पास ही उनकी रक्षा में नियुक्त थी। वह कुमारी ललिता देवी के बाहर घूमने वाले प्राण थी तथा जो उन देवी की चौथी आँख थी अर्थात् वह उनकी गुप्तचर थी।।७५-७५½।। उन आये हुए भण्डासुर के पुत्रों का मैं शीघ्र संहार करूँगी ऐसा निश्चय करके बालाम्बा ने महाराज्ञी ललितेश्वरी को विज्ञापित किया।।७५½-७६½।। कि हे मातः! दैत्यराज भण्ड के पुत्र महादैत्य युद्ध के लिये आये हुए हैं, मैं उनके साथ युद्ध करना चाहती हूँ। कुमारी होने के कारण मुझे युद्ध करने की अत्यन्त उत्सुकता हो रही है। इस समय मेरी भुजायें युद्ध करने के लिये फड़क रही हैं। उनमें युद्ध करने के लिये खुजली हो रही है।।७६½-७८।। युद्ध करना मेरी क्रीडा है, आपके रोकने से नहीं रुक सकती, मैं बालिका हूँ, अतः नित्य क्रीडा से अनुराग करने वाली; क्योंकि बच्चों को खेलना तो सबसे प्रिय कार्य है।।७९।। क्षण भर रण क्रीडा से मेरा मन प्रसन्न हो जायेगा। इस प्रकार उस बाला ने महाराज्ञी ललिता देवी को कहा, तब ललितेश्वरी ने उस कुमारी से कहा।।८०।।

हे पुत्री! तुम अभी कोमल शरीर वाली हो, नौ वर्ष की हो तथा नवीन क्रम भी तुम्हारा है तथा अभी तुम्हें नई-नई युद्ध की शिक्षा दी गयी है अर्थात् अभी तुम्हारी युद्ध की शिक्षा शुरू की गयी है। अतः अभी तुम युद्ध में प्रवीण भी नहीं हो तथा हे पुत्री तुम मेरी अकेली हो, तुम्हारे विना मेरी श्वास क्षण भर भी नहीं चल सकेगी, तुम मेरी श्वास हो, तुम मेरा प्राण हो; इसलिये तुम उस महायुद्ध में मत जाओ।।८१-८२।। युद्ध में जाने के लिए दण्डिनी, मन्त्रिणी आदि करोड़ों शक्तियां हैं, जो युद्ध क्षेत्र में युद्ध करने को पर्याप्त है। अतः पुत्रि! तुम क्यों व्यर्थ प्रमाद कर रही हो।।८३।। इस प्रकार श्री ललिता देवी के द्वारा रोकी गयी कुमारी अपनी कुमारी आयु के कौतुकवश पुनः युद्ध करने की याचना करनेलगी।।८४।। तब उस कुमारी के अत्यन्त दृढ़ निश्चय को देखकर श्री ललिता देवी ने उसको

स्वकीयकवचादेकमाच्छिद्य कवचं ददौ। स्वायुधेभ्यश्चायुधानि वितीर्य विससर्जताम्।।८६।।
कर्णीरथं महाराज्ञ्या चापदण्डात्समुद्धतम्। हंसयुग्यशतैर्युक्तमारुरोह कुमारिका।।८७।।
तस्यां रणे प्रवृत्तायां सर्वपर्वस्थदेवताः। बद्धांजलिपुटा नेमुः प्रधृतासिपरंपराः।।८८।।
ताभिः प्रणम्यमाना सा चक्रराजरथोत्तमात्। अवरुह्य तले सैन्यं वर्तमानमगाहत।।८९।।
तामायांतीमथो दृष्ट्वा कुमारीं कोपपाटलाम्। मंत्रिणीदंडनाथे च सभये वाचमूचतुः।।९०।।
किं भर्तृदारिके युद्धे व्यवसायः कृतस्त्वया। अकांडे किं महाराज्ञा प्रेषितासि रणं प्रति।।९१।।
तदेतदुचितं नैव वर्तमानेऽपि सैनिके। त्वं मूर्तं जीवितमसि श्रीदेव्या बालिके यतः।।९२।।
निवर्तस्व रणोत्साहात्प्रणामस्ते विधीयते। इति ताभ्यां प्रार्थितापि प्राचलदृढनिश्चया।।९३।।
अत्यन्तं विस्मयाविष्टे मंत्रिणीदंडनायिके। सहैव तस्या रक्षार्थं चेलतुः पार्श्वयोर्द्वयोः।।९४।।
अथाग्निवरणद्वारा ताभ्यामनुगता सती। प्रभूतसेनायुक्ताभ्यां निर्जगाम कुमारिका।।९५।।
सनाथशक्तिसेनानां सर्वासामनुगृह्णती। प्रणामांजलिजालानि कर्णीरथकृतासना।।९६।।
भंडस्य तनयान्दुष्टानभ्यद्रवदरिंदमा। तस्याः प्रादेशिकं सैन्यं कुमार्या न हि विद्यते।।९७।।
सर्वं हि ललितासैन्यं तत्सैन्यं समजायत। ततः प्रववृते युद्धमत्युद्धतपराक्रमम्।।९८।।

अपनी बाहों में आलिंगन कर युद्ध की अनुमति दे दी।।८५।। तथा अपने कवच में से एक कवच उस कुमारिका को दे दिया तथा अपने आयुधों में से आयुधों को मँगाकर उसे प्रदान कर दिया।।८६।। महाराज्ञी ललिता देवी ने उसे धनुष दण्ड से सन्नद्ध कर्णीरथ को प्रदान कर दिया, तब सैकड़ों हंसों के जोड़ों से युक्त रथ पर कुमारिका सवार हो गयीं।।८७।। उस कुमारिका देवी के रण में प्रवृत्त हो जाने पर अर्थात् जब वे कुमारिका रणस्थल में चलने लगीं, तब सभी पर्वों में स्थित देवता हाथ जोड़कर नमन करने लगे, जो कि परम्परा है, उसके अनुसार सबने नमन किया।।८८।। उन देवताओं द्वारा प्रणाम की जाती हुई कुमारिका देवी रथ से उतर कर सैन्यदल में उपस्थित हो गयी।।८९।। इसके बाद उन क्रोध से लाल लाल कुमारिका को आया हुआ देखकर मन्त्रिणी और दण्डनाथा दोनों देवियाँ भयसहित इस प्रकार वचन बोलीं कि क्या राजकुमारी तुमने युद्ध में कभी कोई कार्य किया है, तुमने तो कभी युद्ध नहीं किया, असमय में ही महाराज्ञी ने तुम्हें इस युद्ध में भेज दिया है।।९०-९१।। अतः सेनिके! बालिके! यहां यह युद्ध करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है; क्योंकि हे बाले! तुम श्री ललिता देवी का जीवन हो।।९२।। इसलिये तुम रण के प्रति उत्साह से लौट जाओ, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। इसके बाद भी उन दोनों देवियों के प्रार्थना करने पर भी वह दृढनिश्चया कुमारी नहीं मानी।।९३।। यह देखकर मन्त्रिनाथा और दण्डनाथा दोनों देवियां आश्चर्य चकित हो गयीं और फिर उसकी रक्षा के लिये उसके साथ ही चल पड़ीं।।९४।। इसके बाद अग्निवरण द्वार वाली उन दोनों मन्त्रनाथा और दण्डनाथा द्वारा अनुगत वह कुमारी बहुत अधिक सेना से युक्त युद्ध के लिये निकल पड़ी।।९५।। वह कुमारी शक्ति सेनाओं के सब सेनापति के साथ अनुग्रह करती हुई हाथ जोड़कर प्रणाम करती हुई कर्णीरथ पर सवार हुई और फिर उसने दैत्यराज भण्ड के पुत्रों पर आक्रमण कर दिया।।९६-९६½।। उस कुमारी की प्रादेशिक सेना नहीं थी, सब ललिता देवी की सेना ही उसकी सेना थी; क्योंकि अभी वह तो सेनापति नहीं थी, अतः उसकी सेना होने का मतलब ही नहीं, वह तो श्री ललिता देवी की पुत्री थी, अतः उनकी सेना ही उसकी सेना थी।।९६½-

ववर्ष शरजालानि दैत्येंद्रेषु कुमारिका। भण्डासुरकुमारैस्तैर्महाराज्ञीकुमारिका।
यद्युद्धमतनोत्तत्तु स्पृहणीयं सुरासुरैः॥९९॥
अत्यंतविस्मिता दैत्यकुमारा नववर्षिणीम्।
कर्णीरथस्थामालोक्य किरंती शरमंडलम्॥१००॥
क्षणेक्षणे बालिकया क्रियमाणं महारणम्।
व्यजिज्ञपन्महाराज्ञ्यैः भ्रमंत्यः परिचारिकाः॥१०१॥
मंत्रिणीदंडनाथे च न तां विजहतू रणे। प्रेक्षकत्व मनुप्राप्ते तृष्णीमेव बभूवतुः॥१०२॥
सर्वेषां दैत्यपुत्राणामेकरूपा कुमारिका। प्रत्येकभिन्ना ददृशे विंबमालेव भास्वतः॥१०३॥
सायकैरग्निचूडालैस्तेषां मर्माणि भिंदती। रक्तोत्पलमिव क्रोधसंरक्तं बिभ्रती मुखम्॥१०४॥
आश्चर्य ब्रुवतो व्योम्नि पश्यतं त्रिदिवौकसाम्। साधुवादैर्बहुविधैर्मंत्रिणीदंडनाथयोः॥१०५॥
अर्च्यमाना रणं चक्रे लघुहस्ता कुमारिका। द्वितीयं युद्धदिवसं समस्तमपि सा रणे॥१०६॥
प्रकाशयामास बलं ललितादुहिता निजम्। अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण तान्सर्वानपि भिंदती॥१०७॥
नारायणास्त्रमोक्षेण महराज्ञीकुमारिका। द्विशत्यंक्षौहिणीसैन्यं भस्मसादकरोत्क्षणात्॥१०८॥
अक्षौहिणीनां क्षयतः क्षणात्कोपमुागताः। आकृष्टगुरुधन्वानस्तेऽपतन्नेकहेलया॥१०९॥

९७½।। उसके बाद अत्यन्त उद्धत पराक्रम वाला युद्ध होने लगा। तब वहाँ कुमारिका ने उन दैत्यपुत्रों पर बाणों की वर्षा कर दी। भण्डासुर के कुमारों और महाराज्ञी ललितेश्वरी की कुमारी का यह जो युद्ध हुआ वह सुर और असुरों का एक अत्यन्त प्रशंसनीय युद्ध था।।९९।। वहाँ कर्णीरथ पर स्थित ९ वर्ष की कुमारी को बाणों की वर्षा करते हुए देखकर दैत्यकुमार आश्चर्यचकित हो गये।।१००।। वह कुमारी जो आश्चर्यजनक युद्ध कर रही थी, उसकी क्षण-क्षण की सूचना परिचायिकाओं द्वारा महाराज्ञी ललितेश्वरी को दी जा रही थी।।१०१।। जो मन्त्रिणी और दण्डनाथा उसे युद्ध के लिये नहीं भेज रही थीं, वे युद्ध की सूचना प्रेक्षक द्वारा प्राप्त कर आश्चर्यचकित होकर स्तब्ध हो गयीं।।१०२।। सब दैत्य पुत्रों में कुमारिका एक रूप वाली थी तथा बिम्बमाला के समान चमकती हुई, वह प्रत्येक को भिन्न दिखाई देती थी।।१०३।।

आग के गोले के समान बाणों से उन दैत्यपुत्रों को मर्मस्थलों का भेदन करती हुई तथा लाल कमल के समान क्रोध संरक्त मुख को धारण करती हुई, वह कुमारी युद्ध कर रही थी।।१०४।। इस आश्चर्य को आकाश में देवता लोग देखकर मन्त्रिणी और दण्डनाथा को बहुत प्रकारों से साधुवाद दे रहे थे कि वाह आपने ऐसी बहादुर कुमारिका को युद्ध क्षेत्र में भेजा, जो ९ वर्ष की कन्या इतना पौरुष दिखा रही है।।१०५।। इस प्रकार लघुकरकमला वह कुमारी साधुवाद प्राप्त मन्त्रिणी और दण्डनाथा देवियों द्वारा पूजा की जाती हुई युद्ध कर रही थीं। इस प्रकार उस कुमारिका ने युद्धस्थल समस्त दूसरा दिन भी बिता दिया।।१०६।। अस्त्र पर अस्त्र प्रहार करते हुए उन सब दैत्यों को मारती हुई, उस श्री ललिता पुत्री ने युद्ध में अपने बलको प्रकाशित कर दिया।।१०७।। और फिर महाराज्ञी श्रीललिता की पुत्री कुमारिका ने नारायण अस्त्र को छोड़कर क्षण भर में भण्डासुर पुत्रों की दो सौ अक्षौहिणी सेना को भस्म कर दिया।।१०८।। अक्षौहिणी सेना के नष्ट होते ही क्रोधित हुए उन दैत्य कुमारों ने क्षण भर एक साथ ही अपने अपने विशाल धनुषों के साथ प्रहार करते हुए कुमारी पर आक्रमण कर दिया।।१०९।।

ततः कलकले जाते शक्तीनां च दिवौकसाम्।
युगपत्त्रिंशतो बाणानसृजत्सा कुमारिका॥११०॥
हस्तलाघवमाश्रित्य मुक्तैश्चंद्रार्धकसायकैः। त्रिंशता त्रिंशतो भंडपुत्राणामाहतं शिरः॥१११॥
इति भंडस्य पुत्रेषु प्राप्तेषु यमसादनम्। अत्यंतविस्मयाविष्टा ववृषुः पुष्पमभ्रगाः॥११२॥
सा च पुत्री महाराज्ञ्याः विध्वस्तासुरसैनिका। मंत्रिणीदंडनाथाभ्यामालिंग्यत भृशं मुदा॥११३॥
तस्याः पराक्रमोन्मेषैर्नृत्यंत्योजयदायिभिः। शक्तयस्तुमुलं चक्रुः साधुवादैर्जगत्त्रयम्॥११४॥
सर्वाश्च शक्तिसेनान्यो दण्डनाथापुरःसरा। तदाश्चर्यं महाराज्ञ्यै निवेदयितुमुद्गताः॥११५॥
ताभिर्निवेद्यमानानि सा देवी ललितांबिका। पुत्रीभुजावदानानि श्रुत्वा प्रीतिं समाययौ॥११६॥
समस्तमपि तच्चक्रं शक्तीनां तत्पराक्रमैः। अदृष्टपूर्वैर्देवेषु विस्मयस्य वशं गतम्॥११७॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने भंडपुत्रवधो नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

—※—

उसके बाद चारों ओर हाहाकार मच गया और हाहाकार हो जाने पर देवताओं में बेचैनी फैल गयी, उन्हें यह शंका हो गयी कि कहीं ये सब कुमारी को मार न डालें, तब उन कुमारिका ने एक साथ तीस बाणों को उन दैत्यपुत्रों पर छोड़ दिया।।११०।। तब छोटे से हाथ का सहारा प्राप्त कर चलने वाले उन अर्धचन्द्रमा के समान तीस बाणों ने तीस दैत्य कुमारों के शिरों को काट दिया।।१११।। इस प्रकार दैत्यराज भण्ड के पुत्रों के यमलोक चले जाने पर अत्यन्त आश्चर्यचकित देवताओं ने आकाश से पुष्प वर्षा कर दी।।११२।। उसके बाद असुर सैनिकों का विध्वंस करने वाली महाराज्ञी ललिता पुत्री उस कुमारिका को परमानन्द के साथ मन्त्रिणी और दण्डनाथा ने आलिंगन किया।।११३।। उस कुमारी के जय प्रदान करने वाले पराक्रम पूर्ण उन्मेषों (पलक मारने वाली आँखों) से नृत्य करती हुई शक्तियों ने साधुवादों से तीनों लोकों में तुमुल ध्वनि पैदा कर दी। अर्थात् तीनों लोकों में उनको साधुवाद प्राप्त होने लगा।।११४।। उसके बाद सभी शक्ति सेनायें दण्डनाथा देवी को आगे करके उस आश्चर्य को महाराज्ञी ललिता देवी को बताने के लिए चल पड़ी।।११५।। उन सब शक्तियों द्वारा बतायी गयी उन देवी ललिताम्बिका ने अपनी पुत्री के भुजाओं के अवदानों (प्रशस्त सफलता) को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त किया।।११६।। शक्तियों के उस पराक्रमों से वह समस्त चक्र देवों ने पहले कभी ऐसा नहीं देखा था, इसलिये उनको आश्चर्य चकित कर गया।।११७।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २६वाँ अध्याय भण्डपुत्र वध का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

गणनाथपराक्रमो नाम

सप्तविंशतितमोऽध्यायः

अथ नष्टेषु पुत्रेषु शोकानलपरिप्लुतः। विललाप स दैत्येंद्रो मत्वा जातं कुलक्षयम्॥१॥
हा पुत्रा हा गुणोदारा हा मदेकपरायणाः। हा मन्नेत्रसुधापरा हा मत्कुलविवर्धनाः॥२॥
हा समस्तसुरश्रेष्ठमदभंजनतत्पराः। हा समस्तसुरस्त्रीणामंतर्मोहनमन्मथाः॥३॥
दिशत प्रीतिवाचं मे ममांके वल्गताधुना। किमिदानीमिमं तातमवमुच्य सुखं गताः॥४॥
युष्मान्विना न शोभंते मम राज्यानि पुत्रकाः।
रिक्तानि मम गेहानि रिक्ता राजसभापि मे॥५॥
कथमेवं विनिःशेषं हता यूयं दुराशयाः। अप्रधृष्यभुजासत्त्वान्भवतो मत्कुलांकुरान्।
कथमेकपदे दुष्टा वनिता संगरेऽवधीत्॥६॥
मम नष्टानि सौख्यानि मम नष्टाः कुलस्त्रियः।
इतः परं कुले क्षीणे साहसानि सुखानि च॥७॥
भवतः सुकृतैर्लब्ध्वा मम पूर्वजनुःकृतैः। नाशोऽयं भवतामद्य जातो नष्टस्ततोऽस्म्यहम्॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२७

गणनाथपराक्रम वर्णन

इसके बाद अपने पुत्रों को नष्ट हो जाने पर वह दैत्यराज भण्ड शोकाग्नि से युक्त होकर अपने कुल का समूल नाश मानकर विलाप करने लगा।।१।। वह विलाप करते हुए कह रहा था कि हाय मेरे उदार गुणों वाले, मेरी आज्ञा को मानने वाले, मेरी ही सेवा में रहने वाले, हाय मेरे नेत्रों को अमृत से भरने वाले, हाय मेरे कुल को बढ़ाने वाले, हाय समस्त श्रेष्ठ देवों के घमण्ड को चूर करने वाले, हाय समस्त देवाङ्गनाओं के अन्तर्हृदय एवं मन को वश में करने वाले, कामदेव मेरे पुत्रो! मेरी गोद में कूदकूद कर बातें करो कि क्यों इस समय इस अपने पिता को छोड़कर सुखपूर्वक चले गये।।२-४।। हे पुत्रो! तुम्हारे विना अब यह मेरा राज्य शोभित नहीं हो रहा है। आज मेरा घर खाली हो गया और मेरी राज्यसभा भी खाली हो गयी।।५।।

इस प्रकार कैसे एक साथ सभी के सभी दुराशय तुम सब मारे गये, जिनके भुजबल को कोई भी नहीं परास्त कर सकता था, उन मेरे कुल के अंकुर! तुम सबको युद्ध में एक दुष्ट स्त्री ने कैसे मार दिया?।।६।। अब तो मेरे समस्त सुख नष्ट हो गये तथा मेरी कुल की स्त्रियां भी पतिविहीन होकर नष्ट हो गयीं। यहाँ से आगे नष्ट कुल में साहस और सुख कहाँ है।।७।। आपके पुण्यकर्मों से तथा अपने पूर्वजन्म के कर्मों से हमने सब कुछ पाया, अब आपका नाश हो गया, तो फिर मैं भी नष्ट हो गया हूँ।।८।।

हा हतोऽस्मि विपन्नोऽस्मि मंदभाग्योऽस्मि पुत्रकाः।
इति शोकात्स पर्यस्यन्प्रलयन्मुक्तमूर्धजः।
मूर्च्छया लुप्तहृदयो निष्पपात नृपासनात्॥९॥
विशुक्रश्च विषंगश्च कुटिलाक्षश्च संसदि। भंडमाश्वासयामासुर्दैवस्य कुटिलक्रमैः॥१०॥

विशुक्र उवाच

देव किं प्राकृत इव प्राप्तः शोकस्य वश्यताम्। लपसि त्वं प्रति सुतान्प्राप्तमृत्यून्महाहवे॥११॥
धर्मवान्विहितः पंथा वीरणामेष शाश्वतः। अशोच्यमाहवे मृत्युं प्राप्नुवंति यदर्हितम्॥१२॥
एतदेव विनाशाय शल्यवद्बाधते मनः। यत्स्त्री समागत्य हठान्नि हंति सुभटान्रणे॥१३॥
इत्युक्ते तेन दैत्येन पुत्रशोको व्यमुच्यत। भंडेन चंडकालाग्निसदृशः क्रोध आदधे॥१४॥
स क्रोशात्क्षिप्रमुद्धृत्य खड्गमुग्रं यमोपमम्। विस्फारिताक्षियुगलो भृशं जज्वाल तेजसा॥१५॥
इदानीमेव तां दुष्टां खड्गेनानेन खंडशः। शकलीकृत्य समरे श्रमं प्राप्स्यामि बंधुभिः॥१६॥
इति रोषस्खलद्वर्णः श्वसन्निव भुजगमः। खड्गं विधुन्वन्नुत्थाय प्रचचालातिमत्तवत्॥१७॥
तं निरुध्य चं संभ्राताः सर्वे दानवपुंगवाः। वाचमूचुरतिक्रोधाज्ज्वलंतो ललितां प्रति॥१८॥
न तदर्थे त्वया कार्यः स्वामिन्संभ्रम ईदृशः। अस्माभिः स्वबलैर्युक्तै रणोत्साहो विधीयते॥१९॥

हाय पुत्रो! मैं मरा हुआ हूँ, मैं विशेष दुःखी हूँ, मैं मन्दभाग्य हूँ। इस प्रकार अत्यन्त शोकाकुल वह दैत्यराज भण्ड अपने केश बखेर कर विलाप करता हुआ मूर्च्छित होकर राजसिंहासन से नीचे गिर गया।।९।। तब विशुक्र, विषंग और कुटिलाक्ष ने संसद में भण्डासुर को समझाया कि हे राजन्! यह तो हम सबके भाग्य की कुटिल चाल है, अब हम लोगों के बुरे दिन आ गये हैं।।१०।।

विशुक्र ने कहा कि हे राजन्! प्रकृति से प्राप्त के समान शोक को वश में कीजिये। महायुद्ध में मृत्यु को प्राप्त पुत्रों से आप क्या विलाप कर रहे हैं? धर्मवालों ने वीरों का यही शास्वत मार्ग बताया है। वीर लोग युद्ध में सम्मानित और अशोचनीय मृत्यु प्राप्त करते हैं, उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये; अपितु गर्व करना चाहिये कि हमारे पुत्रों ने युद्ध में लड़ते हुए स्वर्ग को प्राप्त किया।।११-१२।। अतः हे राजन् यहाँ शोक नहीं करना, वरन् यह सोचना है कि इस विनाश के लिये हमारा मन बाण के समान बाधित हो रहा है कि एक स्त्री बलपूर्वक हमारे अत्यन्त बलशाली योद्धाओं को रण में मार रही है।।१३।। इस प्रकार उन मन्त्रियों के कहने पर भण्डासुर ने पुत्रशोक को छोड़ दिया और फिर उन दैत्यराज भण्ड ने क्रोध से प्रलयकाल की अग्नि के समान क्रोध को धारण कर लिया।।१४।। तब वह भण्डासुर क्रोधपूर्वक शीघ्र उठकर यमराज के समान खड्ग को हाथ में लेकर अपनी दोनों आँखों को फाड़कर अत्यधिक तेज से जलने लगे।।१५।। और कहने लगे कि इसी समय ही मैं उस दुष्टा को इस खड्ग से खण्ड-खण्ड करके युद्ध में बन्धुओं का बदला लूँगा।।१६।। इस प्रकार क्रोध से स्खलत् वर्ण वाला सर्प की भाँति साँस लेता हुआ वह भण्ड तलवार को चमकाते हुए उठाकर पागल की तरह चल पड़ा।।१७।। तब सभी सम्भ्रान्त दानव श्रेष्ठों ने ललिता देवी के प्रति अत्यन्त क्रोध से जलते हुए उस भण्डासुर को रोककर यह वचन कहा।।१८।। कि हे राजन्! उसके लिये आपको अभी ऐसा कुछ नहीं करना है, अभी तो हम सबका अपनी सेनाओं के साथ साहस दिखाया जाना

भवदाज्ञालवं प्राप्य समस्तभुवनं हठात्।
विमर्द्दयितुमीशाः स्मः किमु तां मुग्धभामिनीम्॥२०॥
किं चूषयामः सप्ताब्धीन्क्षोदयामोऽथ वा गिरीन्। अधरोत्तरमेवैतत्त्रैलोक्यं करवाम वा॥२१॥
छिनदाम सुरान्सर्वान्भिनदाम तदालयान्। पिनषाम हरित्पालानाज्ञां देहि महामते॥२२॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य महाहंकारगर्वितम्। उवाच वचनं क्रुद्धः प्रतिघारुणलोचनः॥२३॥
विशुक्र भवता गत्वा मायांतर्हितवर्ष्मणा। जयविघ्नं महायंत्रं कर्त्तव्यं कटके द्विषाम्॥२४॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा विशुक्रो रोपरूपितः। मायातिरोहितवपुर्जगाम ललिताबलम्॥२५॥
तस्मिन्प्रयातुमुद्युक्ते सूर्योऽस्तं समुपागतः। पर्यस्तकिरणस्तोमपाटलीकृतदिङ्मुखः॥२६॥
अनुरागवती संध्या प्रयांतं भानुमालिनम्। अनुवव्राज पातालकुंजे रंतुमिवोत्सुका॥२७॥
वेगात्प्रपततो भानोर्देहसंगात्समुत्थिताः। चरमाब्धेरिव पयःकणास्तारा विरेजिरे॥२८॥
अथाससाद बहुलं तमः कज्जलमेचकम्। सार्थं कर्त्तुमिवोद्युक्तं सवर्णस्यासिदुर्धिया॥२९॥
मायारथं समारूढो गूढशार्वरसंवृतः। अदृश्यवपुरापेदे ललिताकटकं खलः॥३०॥
तत्र गत्वा ज्वलज्ज्वालं वह्निप्राकारमंडलम्। शतयोजनविस्तारमालोकयत दुर्मतिः॥३१॥
परितो विभ्रमञ्शालमवकाशमवाप्नुवन्। दक्षिणं द्वारमासाद्य निदध्यौ क्षणमुद्धतः॥३२॥

है।।१९।। आपकी आज्ञा के लेशमात्र को प्राप्तकर अभी हम समस्त त्रिलोकी का मर्दन करने में समर्थ हैं। उस भोली भाली स्त्री के बारे में क्या सोचना।।२०।। आप कहें तो क्या हम सात समुद्रों को पी जायें अथवा पर्वतों को काट डालें। क्या त्रिलोकी को धरारहित कर डाले? क्या सब देवों को काट डालें? क्या उनके घरों को फोड़ डालें अथवा क्या दिशाओं का पालक दिक्पालों को पीस डाले? अतः हे महामते! हमें आज्ञा दीजिये, हम कुछ भी कर दिखा सकते हैं।।२१-२२।। अहंकार गर्वित इस वचन को सुनकर क्रोधित और प्रतिशोध की भावना से लाल लाल आँखों वाला वह भण्डासुर विशुक्र से बोला कि विशुक्र तुम माया से अपने शरीर को छिपाते हुए जाकर शत्रुओं की सेना में उनकी जीत में विघ्न डालने वाले महायन्त्र का प्रयोग करना।।२३-२४।। इस प्रकार भण्डासुर के वचन को सुनकर क्रोध से रूषित विशुक्र माया से अत्यन्त ढके हुए शरीर से ललिता देवी की सेना में पहुँचा।।२५।। जैसे कि वह जाने को तैयार हुआ कि तब तक सूर्यास्त भी समुपस्थित हो गया। चारों ओर सूर्य की किरणें छिप गयीं और समस्त दिग्मण्डल लाल हो गया।।२६।। प्रेम करने वाली सन्ध्या जाने वाले अपने प्रेमी सूर्य के साथ पाताल की झाड़ियों में रमण करने की बलवती इच्छा रखती हुई, उनके पीछे पीछे चली गयी।।२७।।

जैसे ही सूर्य वेगपूर्वक गिरे तो दिन में तारागण रूपी स्त्रियाँ उनके शरीर से लिपटी हुई थीं, वे चरम समुद्र में जल कण के समान आकाश में सुशोभित होने लगी।।२८।। इसके बाद काजल समूह के समान बहुत घना अन्धकार छा गया, वह ऐसा लगता था, मानों कि वह अंधकार उस दुर्बुद्धि विशुक्र दानव का साथ देने के लिये उसके ही वर्ण के रूप में आ गया हो।।२९।। वह दुष्ट दानव विशुक्र मायारथ पर सवार होकर गूढ रात्रि से ढका हुआ अदृश्य शरीर होकर ललिता देवी की सेना में आ गया।।३०।। वहाँ जाकर उस दुर्बुद्धि ने जलती हुई ज्वाला वाले सौ योजन विस्तार वाले वह्निप्राकारमण्डल (आग की चहारदीवार) को देखा।।३१।। चारों ओर घूमते हुए कहीं भी

तत्रापश्यन्महासत्त्वास्सावधाना धृतायुधाः। आरूढयानाः संनद्धवर्माणो द्वारदेशतः॥३३॥
स्तंभिनीप्रमुखाः शक्तीर्विंशत्यक्षौहिणीयुताः। सर्वदा द्वाररक्षार्थं निर्दिष्टा दंडनाथया॥३४॥
विलोक्य विस्मयाविष्टो विचार्य च चिरं तदा।
शालस्य बहिरेवासौ स्थित्वा यंत्र समातनोत्॥३५॥
गव्यूतिमात्रकायामे तत्समानप्रविस्तरे। शिलापट्टे सुमहति प्रालिखद्यंत्रमुत्तमम्॥३६॥
अष्टदिक्ष्वष्टशूलेन संहाराक्षरमौलिना। अष्टभिर्दैवतैश्चैव युक्तं यंत्रं समालिखत्॥३७॥
अलसा कृपणा दीना नितंद्राच प्रमीलिका।
क्लीबा च निरहंकारा चेत्यष्टो देवताः स्मृताः॥३८॥
देवताष्टकमेतच्च शूलाष्टकपुटोपरि। नियोज्य लिखितं यंत्रं मायावी सममंत्रयत्॥३९॥
पूजां विधाय मंत्रस्य बलिभिश्छागलादिभिः। तद्यन्त्रं चारिकटके प्राक्षिपत्समरेऽसुरः॥४०॥
प्राकारस्य बहिर्भागे वर्तिना तेन दुर्धिया। क्षिप्तमुल्लंघ्य च रणे पपात कटकांतरे॥४१॥
तद्यंत्रस्य विकारेण कटकस्थास्तु शक्तयः। विमुक्तशस्त्रसंन्यासमास्थिता दीनमानसाः॥४२॥
किं हतैरसुरैः कार्यं शस्त्राशस्त्रिक्रमैरलम्। जयसिद्धफलं किं वा प्राणिहिंसा च पापदा॥४३॥
अमराणां कृते कोऽयं किमस्माकं भविष्यति।
वृथा कलकलं कृत्वा न फलं युद्धकर्मणा॥४४॥

घुसने के लिये जब उसे स्थान नहीं मिला तो वह उद्धत विशुक्र दक्षिण द्वार को प्राप्त कर अन्दर घुस गया।।३२।। वहाँ पर उसने आयुध धारण किये अपने अपने यान पर चढ़ी हुई, शरीर पर कवच पहने हुए महापराक्रमवाली शक्तियों को द्वार पर खड़े हुए देखा।।३३।। क्योंकि दण्डनाथा देवी ने सर्वदा द्वार की रक्षा के लिये बीस अक्षौहिणी सेना से युक्त स्तम्भिनी प्रमुख शक्तियों को पहले ही तैनात कर दिया था।।३४।। यह देख करके विशुक्र को आश्चर्य हुआ और फिर उसने बहुत देर तक विचार करके चहारदीवार के बाहर ही स्थित होकर यन्त्र को चला दिया।।३५।। गव्यूति (चार कोश) आयाम (क्षेत्रफल) में उसके समान ही विस्तार वाले अत्यन्त महान् शिलापट्ट पर उस उत्तम यन्त्र को लिख दिया।।३६।। आठ दिशाओं में संहार करने वाले मूल अक्षरों वाले आठ शूल से तथा आठ देवताओं से युक्त यन्त्र को अच्छी तरह लिख दिया।।३७।। अलसा, कृपणा, दीना, नितन्द्रा, प्रभीलिका, क्लीबा और निरहंकारा ये आठ देवता कही गयी हैं।।३८।। और ये आठ देवता आठ शूलों के फाल (धार) के ऊपर नियोजित करके यन्त्र लिखकर मायावी ने सम्यक् प्रकार से अभिमन्त्रित कर दिया।।३९।। और फिर मन्त्र की पूजा करके बकरे आदि की बलियां देकर उस यन्त्र को उस असुर ने युद्ध में पहरा देने वाली सेना पर छोड़ दिया।।४०।।

उस आग की चहारदीवार के बाहरी भाग में उपस्थित दुर्बुद्धि ने युद्धस्थल में ऊँचा फेंककर शक्ति सेना के ठीक बीच में गिरा दिया।।४१।। उस यन्त्र के विकार से शक्ति सेना में स्थित जो शक्तियां थीं वे शस्त्र को छोड़कर दीन मन होकर बैठ गयीं।।४२।। अब वे शक्तियां कहने लगीं कि अब असुरों को मारने वाले शस्त्र-अस्त्रों को चलाने से क्या लाभ है? यह सब बन्द करो। जीत करके क्या फल मिलेगा; क्योंकि प्राणियों की हिंसा पाप देने वाली है।।४३।। देवताओं के लिये युद्ध करने से हमारा क्या लाभ होगा? व्यर्थ कलकल करके युद्ध करने से कोई फल

का स्वामिनी महाराज्ञी का वा सौ दण्डनायिका।
का वा सा मंत्रिणी श्यामा भृत्यत्वं नोऽथ कीदृशम्॥४५॥

इह सर्वाभिरस्माभिर्भृत्यभूताभिरेकिका। वनिता स्वामिनीकृत्ये किं फलं मोक्ष्यते परम्॥४६॥
परेषां मर्मभिदुरैरायुधैर्न प्रयोजनम्। युद्धं शाम्यतु चास्माकं देहशस्त्रक्षतिप्रदम्॥४७॥
युद्धे च मरणं भावि वृथा स्युर्जीवितानि नः। युद्धे मृत्युर्भवेदेव इति तत्र प्रमैवैका॥४८॥
उत्साहेन फलं नास्ति निद्रैवैका सुखावहा। आलस्यसदृशं नास्ति चित्तविश्रांतिदायकम्॥४९॥

एतादृशीश्च नो ज्ञात्वा सा राज्ञी किं करिष्यति।
तस्या राज्ञीत्वमपि नः समवायेन कल्पितम्॥५०॥
एवं चोपेक्षितास्माभिः सा विनष्टबला भवेत्।
नष्ट सत्त्वा च सा राज्ञी कान्नः शिक्षां करिष्यति॥५१॥

एवमेव रणरंभं विमुच्य विधुतायुधाः। शक्तयो निद्रया द्वारे घूर्णमाना इवाभवन्॥५२॥
सर्वत्र मांद्यं कार्येषु महदालस्यमागतम्। शिथिलं चाभवत्सर्वं शक्तीनां कटकं महत्॥५३॥

जयविघ्नं महायंत्रमितिकृत्वा स दानवः॥५४॥

निर्विंद्य तत्प्रभावेण कटकं प्रमिमंथिषुः। द्वितीययुद्धदिवसस्यार्धरात्रे गते सति॥५५॥
निस्सृत्य नगराद्भूयस्त्रिंदक्षौहिणीवृतः। आजगाम पुनर्दैत्यो विशुक्रः कटकं द्विषाम्॥५६॥

नहीं प्राप्त होगा।।४४।। वे स्वामिनी महाराज्ञी ललिता कौन हैं? अथवा वह दण्डनायिका कौन होती है अथवा वह मन्त्रिणी श्याम कौन होती है? वे हमारा क्या कर लेंगीं? अरे हमारा तो मृत्युत्व है? हमें क्या मिलेगा (कोई हो भूप हमें क्या हानी, चेरी से क्या हो जाय रानी)।।४५।। यहाँ तो हम सभी सेविका हैं, एक स्वामिनी के लिये हम मरें तो हमको क्या फल मिलेगा?।।४६।। दूसरों के शरीरों को विदीर्ण कर देने वाले शस्त्रास्त्रों से अब हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। अब हमारा यह शरीर और शस्त्र का नाश करने वाला युद्ध शान्त होवे।।४७।। जब युद्ध में मरना ही है, तब हमारा जीना ही व्यर्थ है तथा युद्ध में तो मृत्यु होगी ही। अतः इसमें प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है?।।४८।। अब उत्साह दिखाने से कोई फल नहीं मिलना है। अब तो एक नींद ही सुख देने वाली है। आलस्य के समान चित्त को विश्राम देने वाली अन्य कोई वस्तु नहीं है।।४९।। तब किसी ने कहा होगा कि ऐसा देखकर महाराज्ञी नाराज होंगी, इस पर शक्तियां कहती हैं कि हमको ऐसी अवस्था में देखकर महाराज्ञी क्या कर लेंगी? उनका महाराज्ञी होना तो हम सबके संगठन पर ही निर्भर है, हम सबने ही तो उनको महाराज्ञी बनाया है।।५०।।

इस प्रकार जब हम उस महाराज्ञी की उपेक्षा कर देगीं, तो वे नष्ट शक्ति हो जायेंगी तथा जब नष्ट सेना, नष्ट शक्ति वाली हो जायेंगी, तो फिर वे महाराज्ञी हम सबको क्या शिक्षा देंगी? वे क्या हमारे ऊपर शासन करेंगी?।।५१।। इस प्रकार अपने आयुधों को छोड़कर युद्ध आरम्भ करना छोड़कर शक्तियां द्वार पर निद्रा से झींकती हुई के समान हो गयीं।।५२।। और सर्वत्र कार्यों में मन्दता आ गयी और महान् आलस्य आ गया और इस प्रकार शक्तियों का समस्त सैन्यदल शिथिल हो गया।।५३।। जब विघ्न नामक इस महायन्त्र का प्रयोग करके उस दानव ने उस यन्त्र के प्रभाव से शक्ति सेना का प्रमथन कर दिया।।५४।। अब द्वितीय युद्ध दिवस की आधी रात बीत जाने पर तीस अक्षौहिणी सेना से घिरा हुआ वह दैत्य विशुक्र नगर से निकल कर शत्रुओं की सेना में आ गया।।५५-५६।।

अश्रूयंत ततस्तस्य रणनिःसाणनिस्वनाः।
तथापि ता निरुद्योगाः शक्तयः कटकेऽभवन्॥५७॥
तदा महानुभावत्वाद्विकारैर्विघ्नयंत्रजैः। अस्पृष्टे मंत्रिणीदंडनाथे चिंतामवापतुः॥५८॥
अहो बत महत्कष्टमिदमापतितं भयम्। कस्य वाथ विकारेण सैनिका निर्गतोद्यमाः॥५९॥
निरस्तायुधसंरंभा निद्रातंद्राविघूर्णिताः। न मानयंति वाक्यानि नार्चयंति महेश्वरीम्।
औदासीन्यं वितन्वंति शक्तयो निस्पृहा इमाः॥६०॥
इति ते मंत्रिणीदंडनाथे चिंतापरायणे। चक्रस्यंदनमारूढे महाराज्ञीं समूचतुः॥६१॥

मंत्रिण्युवाच

देवि कस्य विकारोऽयं शक्तयो विगतोद्यमाः।
न शृण्वंति महाराज्ञि तवाज्ञां विश्वपालिताम्॥६२॥
अन्योन्यं च विरक्तास्ताः पराच्यः सर्वकर्मसु। निद्रातन्द्रामुकुलिता दुर्वाक्यानि वितन्वते॥६३॥
का दंडनी मंत्रिणी का महाराज्ञीति का पुनः। युद्धं च कीदृशमिति क्षेपं भूमि वितन्वते॥६४॥
अस्मिन्नेवांतरे शत्रुरागच्छति महाबलः। उद्दंडभेरीनिस्वानैर्विभिदन्निव रोदसी॥६५॥
अत्र यत्प्राप्तरूपं तन्महाराज्ञि प्रपद्यताम्। इत्युक्त्वा सह दंडिन्या मंत्रिणी प्रणतिं व्यधात्॥६६॥
ततः सा ललिता देवी कामेश्वरमुखं प्रति। दत्तदृष्टिः समहसदतिरक्तरदावलिः॥६७॥

उसके बाद उस विशुक्र की सेना की युद्ध हेतु कूंच करने की घोर रणभेरी की घोर ध्वनि हुई और उस ध्वनि को शक्ति सेना ने सुना, फिर भी वे शक्तियां सेना में निरुद्योग हो गयी। उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।।५७।। जयविघ्न यन्त्र में विकार को प्राप्त हुई सेना को समझकर मन्त्रिणी और दण्डनाथा को घोर चिन्ता हुई।।५८।। वे कहने लगी कि अरे यह तो असमय में महाकष्ट और भय आ उपस्थित हुआ। किसके विकार से हमारे सैनिक निरुद्योग हो गये हैं।।५९।। उन्होंने अपने अपने आयुध छोड़ दिये हैं तथा निद्रा और आलस्य से ओंघ रहे हैं, वे आदेश के वाक्यों को नहीं मान रहे। माहेश्वरी की पूजा नहीं कर रहे हैं। इस समय शक्तियां निस्पृह और उदासीन हो गयी हैं।।६०।। इस प्रकार मन्त्रिणी और दण्डनाथा दोनों चिन्तायुक्त होकर चक्ररथ पर आरूढ होकर महाराज्ञी श्री ललिता के पास पहुँची और उनसे जाकर सब कह दिया।।६१।।

मन्त्रिणी देवी ने श्री ललितेश्वरी से कहा कि हे देवि! यह किसका विकार है कि सब शक्ति उद्यम विहीन हो गयी हैं। हे महाराज्ञी! इस समय वे विश्व को पालन करने वाली आपकी आज्ञा का भी पालन नहीं कर रही हैं।।६२।। इस समय वे एक दूसरे से अलग होकर सब कार्यों में दूसरे की अर्चना कर रही हैं तथा नींद और आलस्य से मुकुलित होकर बुरे बुरे वाक्य बोल रही हैं।।६३।। कि कौंन दण्डिनी है? कौंन मन्त्रिणी? और कौंन महाराज्ञी श्री ललिता? तथा वे हमारा क्या कर लेंगी? तथा कैसा युद्ध? किसके लिये? वे ऐसा कह रही थीं कि इसी बीच में महासेना लेकर शत्रु आ गया और वह उद्दण्ड समान रणभेरी की आकाश और पृथ्वी का भेदन करने के समय ध्वनि कर रहा है।।६४-६५।। हे महाराज्ञि! यहाँ पर जो हमने सेना का रूप पाया, सो हमने बता दिया। इस प्रकार कह कर मन्त्रिणी ने दण्डनाथा के साथ महाराज्ञी को प्रणाम किया।।६६।। उसके बाद कामेश्वर के मुख की ओर दृष्टि डालती हुई लाल अधरों से युक्त दन्तपंक्ति के साथ हँसने लगीं।।६७।।

तस्याः स्मितप्रभापुञ्जे कुंजराकृतिमान्मुखे। कटक्रोडगलद्दानः कश्चिदेव व्यजृंभत॥६८॥
जपापटलपाटल्यो बालचन्द्रवपुर्धरः। बीजपूरगदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम्॥६९॥
अब्जपाशोत्पलव्रीहिमंजरीवरदांकुशान्। रत्नकुंभं च दशभिः स्वकैर्हस्तैः समुद्वहन्॥७०॥
तुंदिलश्चन्द्रचूडालो मंद्रबृंहितनिस्वनः। सिद्धिलक्ष्मीसमाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीम्॥७१॥
तया कृताशीः स महान्गणनाथो गजाननः। जयविघ्नमहायंत्रं भेत्तुं वेगाद्विनिर्ययौ॥७२॥
अंतरेव हि शालस्य भ्रमद्दन्तावलाननः। निभृतं कुत्रचिल्लग्नं जयविघ्नं व्यलोकयत्॥७३॥
स देवो घोरानिर्घातैर्दुःसहैर्दंतपातनैः। क्षणाच्चूर्णीकरोति स्म जयविघ्नमहाशिलाम्॥७४॥
तत्र स्थिताभिर्दुष्टाभिर्देवताभिः सहैव सः। परागशेषतां नीत्वा तद्यंत्रं प्रक्षिपद्दिवि॥७५॥

ततः किलकिलारावं कृत्वाऽऽलस्यविवर्जिताः।
उद्यताः समरं कर्तुं शक्तयः शस्त्रपाणयः॥७६॥

स दंतिवदनः कंठकलिताकुण्ठनिस्वनः। जययंत्रं हि तत्सृष्टं तथा रात्रौ व्याशयत्॥७७॥
इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भंडः स क्षोभमाययौ। ससर्ज य बहूनात्मरूपान्दंतावलाननान्॥७८॥
ते कटक्रोडविगलन्मदसौरभचञ्चलैः। चञ्चरीककुलैरग्रे गीयमानमहोदयाः॥७९॥
स्फुरद्दाडिमकिंजल्कविक्षेपकररोचिषः। सदा रत्नाकरानेकहेलया पातुमुद्यताः॥८०॥

तब उनके मुस्कराहट की कान्तिसमूह वाला मुख में से जंभाई लेते समय हाथी के आकृति वाला कोई देव निकला, जिसके गण्डस्थल मध्य भाग से मद बह रहा था, जो जपा के पुष्प के समान लाल वर्ण वाला तथा बालचन्द्रमा के समान शरीर को धारण करने वाला था तथा वह दश हाथों वाला था तथा अपने दशों हाथों में बीजपूर (बिजौरा नीवू) गदा, इक्षु (ऊख), धनुष, शूल, सुदर्शन, कमल, पाश, नीलकमल, जौ की मंजरी, अंकुश और रत्नकुम्भ धारण किये हुए था।।६८-७०।। वह देव बड़े पेटवाला था तथा चोटी में चन्द्रमा धारण किये हुए था तथा उसकी आवाज हुंकार बहुत गम्भीर और बढ़ी हुई थी। वह सफलता रूपी लक्ष्मी उसका आलिंगन किये हुए थी इस प्रकार के गुणों से युक्त उस हाथी के मुख वाले देव ने महेश्वरी ललिता देवी को प्रणाम किया।।७१।।

तब उन ललितेश्वरी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त कर वे गणों के स्वामी (गणनाथ) गजानन जयविघ्ननामक महायन्त्र को काटने के लिये वेगपूर्वक चल पड़े।।७२।। उस शिविर के अन्दर घूमते हुए एकदन्त वाले गजानन ने कहीं पर लगे हुए जयविघ्न नामक यन्त्र को देखा।।७३।। तो उन देव ने घोर असहनीय चिंघाड़ से और दन्तपात से जयविघ्न नामक महाशिला को क्षण भर में चूर-चूर कर दिया।।७४।। वहीं पर स्थित दुष्ट देवताओं के साथ ही उन्होंने उस महाशिला यन्त्र की धूल बनाकर उसे आकाश में फेंक दिया।।७५।। उसके किल किल की ध्वनि करती हुई शक्तियां आलस्य को छोड़कर हाथों में शस्त्र धारण कर युद्ध करने को तैयार हो गयीं।।७६।। तब उस हाथी के वदन वाले देव (गणेश) जी ने कण्ठ के निकले हुए कुण्ठ शब्द से जिस जययन्त्र को बनाया था, उसको विनष्ट कर दिया।७७।। इस वृत्तान्त को सुनकर भण्डासुर अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हुआ और फिर गजानन ने बहुत से अपने रूप वाले हाथियों को उत्पन्न कर दिया।।७८।। वे सब हाथी भी उसी प्रकार के थे, उनके भी गण्डस्थल की बीच में मद बह रहा था, जिसकी सुगन्ध से चञ्चल भौंरे गीत गा रहे थे।।७९।। उनके शरीर से खिले हुए अनार के जल को फेंकने वाली किरणें निकल रही थीं। वे सब हाथी समुद्रों को एक घूंट में ही पीने को तैयार थे।।८०।।

आमोदप्रमुखा ऋद्धिमुख्यशक्तिनिषेविताः। आमोदश्च प्रमोदश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा॥८१॥
अरिघ्नो विघ्नकर्त्ता च षडेते विघ्ननायकाः। ते सप्तकोटिसंख्यानां हेरंबाणामधीश्वराः॥८२॥
ते पुरश्चलितास्तस्य महागणपते रणे। अग्निप्राकारवलयाद्विनिर्गत्य गजाननाः॥८३॥
क्रोधहुंकारतुमुलाः प्रत्यपद्यंत दानवान्। पुनः प्रचंडफूत्कारबधिरीकृतविष्टपाः॥८४॥
पपात दैत्यसैन्येषु गणचक्रचमूगणः। अच्छिदन्निशितैर्बाणैर्गणनाथः स दानवान्॥८५॥
गणनाथेन तस्याभूद्विशुक्रस्य महौजसः। युद्धमुद्धतहुंकारभिन्नकार्मुकनिःस्वनम्॥८६॥
भ्रुकुटी कुटिले चक्रे दष्टोष्ठमतिपाटलम्। विशुक्रो युधि बिभ्राणः समयुध्यत तेन सः॥८७॥
शस्त्राघट्टननिस्वानैर्हुंकारैश्च सुरद्विषाम्। दैत्यसप्तिखुरक्रीडत्कुद्दालीकूटनिस्वनैः॥८८॥
फेत्कारैश्च गजेंद्राणां भयेनाक्रंदनैरपि। हेषया च हयश्रेण्या रथचक्रस्वनैरपि॥८९॥
धनुषां गुणनिस्स्वानेश्चक्रचीत्करणैरपि॥९०॥
शरसात्कारघोषैश्च वीरभाषाकदंबकैः। अट्टहासैर्महेंद्राणां सिंहनादैश्चभूरिशः॥९१॥
क्षुभ्यद्दिगंतरं तत्र ववृधे युद्धमुद्धतम्। त्रिंशदक्षौहिणी सेना विशुक्रस्य दुरात्मनः॥९२॥
प्रत्येकं योधयामासुर्गणाथा महारथाः। दन्तैर्मर्म विभिंदतो वेष्टंयतश्च शुंडया॥९३॥
क्रोधयंतः कर्णतालैः पुष्कलावर्त्तकोपमैः। नासाश्वासैश्च परुषैर्विक्षिपंतः पताकिनीम्॥९४॥

वे सब आमोद प्रमुख ऋद्धि नामक मुख्य शक्ति से निषेवित थे। उनके नाम हैं—आमोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, अरिघ्न, विघ्नकर्ता। इस प्रकार ये छः विघ्ननायक हैं। वे सात करोड़ संख्या वाली हेरम्बाओं के अधीश्वर हैं।।८१-८२।। वे सभी गजानन महागणपति के साथ युद्ध में गणपति से आगे चलते हैं। अतः वे सभी गजानन आग की चहारदीवारी से निकलकर क्रोध से हुंकार वाली घोर ध्वनि कोलाहल मचाते हुए दानवों पर टूट पड़े। पुनः प्रचण्ड फूत्कार ध्वनि से दिशाओं को वधिर (वहरा) बनाते हुये गणचक्र का सैन्यसमूह दैत्य के सैन्यसमूह पर टूट पड़ा। उन गणनाथ ने अपने तीक्ष्ण बाणों से दानवों के शरीरों को छलनी कर दिया।।८३-८५।। गणनाथ के साथ उस महाक्रमी विशुक्र का उद्धत हुंकार भिन्न धनुष की ध्वनि वाला युद्ध हुआ।।८६।। टेढ़ी भौंहे किये हुये चक्र पर कटे हुए लाल ओष्ठ को धारण करता हुआ वह विशुक्र युद्ध में गणनाथ के साथ लड़ रहा था।।८७।।

शस्त्रों के आपस में टकराने से, असुरों की हुंकारों से, दैत्यों के घोड़ों के खुर में लगे नालों की आवाजों से, गजराजों (हाथियों) के फेत्कारों से, भय से चिल्लाते हुए असुरादियों की आवाजों से, घोड़ों की हिनहिनाहटों से, रथों की चरचर ध्वनियों से, धनुष की प्रत्यञ्चाओं की टंकारों से, चक्र की चीत्कारों से, बाणों के घोषों से, वीरों की भाषा बोलने वाले समूहों के अट्टहासों और महेन्द्रों के सिंहनादों से दिग् दिगन्तरों (दिशाओं) को क्षुब्ध करते हुए विशुक्र की तीस अक्षौहिणी सेना ने वहाँ भीषण युद्ध को बढ़ा दिया।।८८-९२।। उन गणनाथ महारथियों ने प्रत्येक असुर के साथ युद्ध किया, उस युद्ध में गजरूप महारथियों ने कुछ के शरीरों को दाँतों से फाड़ दिया, कुछ को अपनी सूँड़ से लपेट कर मार दिया, कुछ को क्रोध करते हुए प्रलय कालीन पुष्कर और आवर्तक मेघों के समान कर्णतालों (कानों के प्रहारों) द्वारा मार गिराया, अपनी सूड़ों के कठोर श्वासों से ध्वजाओं को फाड़ते हुए, पर्वतों को उखाड़ने की क्रिया (वप्रक्रिया) के समान असुरों की छातियों को फाड़ते हुए, कुछ को अपने मोटे मोटे पैरों के आघातों से मोटे पेट वाले

उरोभिर्मर्दयंतश्च शैलवप्रसमप्रभैः। पिपंतश्च पदाघातैः पीनैर्घ्नंतस्तथोदरैः॥९५॥
विभिंदतश्च शूलेन कृत्तंतश्चक्रपातनैः। शंखस्वनेन महता त्रासयंतो वरूथिनीम्॥९६॥
गणनाथमुखोद्भूता गजवक्त्राः सहस्त्रशः धूलीशेषं समस्तं तत्सैन्यं चक्रुर्महोद्यताः॥९७॥
अथ क्रोधसमाविष्टो निजसैन्यपुरोगमः। प्रेषयामास देवस्य गजासुरमसौ पुनः॥९८॥
प्रचंडसिंहनादेन गजदैत्येन दुर्धिया। सप्ताक्षौहिणीयुक्तेन युयुधे स गणेश्वरः॥९९॥
हीयमानं समालोक्य गजासुरभुजाबलम्। वर्धमानं च तद्वीर्यं विशुक्रः प्रपलायितः॥१००॥
स एक एव वीरेंद्रः प्रचलन्नासुवाहनः। सप्ताक्षौहिणीकायुक्तं गजासुरममर्दयत्॥१०१॥
गजासुरे च निहते विशुक्रे प्रपलायिते। ललितांतिकमापेदे महागणपतिर्मृधात्॥१०२॥

कालरात्रिश्च दैत्यानां सा रात्रिर्विरतिं गता।
ललिता चाति मुदिता बभूवास्य पराक्रमैः॥१०३॥

विततार महाराज्ञी प्रीयमाणा गणेशितुः। सर्वदैवतपूजायाः पूर्वपूज्यत्वमुत्तमम्॥१०४॥

इति श्रीब्रह्माण्ड महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने गणनाथपराक्रमो नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

असुरों को पीसते हुए तथा शूल से भेदन करते हुए चक्रों से काटते हुए एवं शंख की महान् ध्वनि से सेना को डराते हुए, गणनाथ महारथियों ने प्रत्येक असुर के साथ युद्ध किया।।९३-९६।। उस समय उन गणनाथ के मुख से हजारों हाथी के मुख वाले देव निकल रहे थे, उन महोद्यत गजाननों ने असुरों की समस्त सेना को धूल में मिला दिया।।९७।। इसके बाद क्रोध से समाविष्ट विशुक्र सेनापति ने पुनः उन गणनाथ के सामने गजासुर को भेजा।।९८।। तब गणेश्वर ने सात अक्षौहिणी सेना से युक्त उस दुर्बुद्धि गजदैत्य के साथ युद्ध किया।।९९।। गजासुर के भुज बल को कम होता हुआ देखकर और गणेश्वर की वीरता को बढ़ता हुआ देखकर विशुक्र सेनापति भाग गया।।१००।। वहाँ अकेले वीरों में इन्द्र गणेश्वर ने चूहे पर सवार होकर सात अक्षौहिणी सेना से युक्त गजासुर को मार डाला।।१०१।। गजासुर के मर जाने पर और विशुक्र के भाग जाने पर महागण पति महाराज्ञी ललिता के पास पहुँच गये।।१०२।। और दैत्यों की वह कालरात्रि थी, जो विना रति (प्रेम) के बीत गयी अर्थात् दुःख में बीत गयी और ललिता देवी अपने उस गणेश्वर के पराक्रम से बहुत प्रसन्न हुईं।।१०३।। और तब ललिता महाराज्ञी ने प्रसन्न होते हुए उन गणेश्वर को सब देवताओं की पूजा से पहले पूजा किये जाने का उत्तम वरदान दिया। इसीलिये सब देवों की पूजा से पहले गणेश की पूजा आज भी की जाती है।।१०४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २७वाँ अध्याय गणनाथपराक्रम वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।
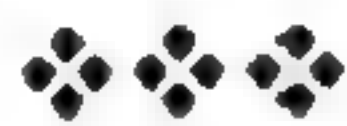
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

विशुक्र विषंगवधोनाम

अष्टाविंशोऽध्यायः

रणे भग्नं महादैत्यं भण्डदैत्यः सहोदरम्। सेनानां कदमं श्रुत्वा सन्तप्तो बहुचिन्तया॥१॥
उभावपि समेतौ तौ युक्तौ सर्वैश्च सैनिकैः। प्रेषयामास युद्धाय भण्डदैत्यः सहोदरौ॥२॥
तावुभौ परमक्रुद्धौ भण्डदैत्येन देशितौ। विषंगश्च विशुक्रश्च महोद्यमवापतुः॥३॥
कनिष्ठसहितं तत्र युवराजं महाबलम्। विशुक्रमनुवव्राज सेनत्रैलोक्यकम्पिनी॥४॥
अक्षौहिणीचतुःशत्या सेनानामवृतश्च सः। युवराजः प्रववृधे प्रतापेन महीयसा॥५॥
उलूकजित्प्रभृतयो भागिनेया दशोद्धताः। भण्डस्य च भगिन्यां तु धूमिन्यां जातयोनयः॥६॥
कृतास्त्रशिक्षा भण्डेन मातुलेन महीयसा। विक्रमेण बलन्तस्ते सेनानाथाः प्रतस्थिरे॥७॥
प्रौद्गतैश्चापनिर्घोषैर्घोषयंतो दिशो दश। द्वयोर्मातुलयोः प्रीतिं भागिनेया वितेनिरे॥८॥
आरूढयानाः प्रत्येकगाढाहंकारशालिनः। आकृष्टगुरुधन्वानो विशुक्रमुवव्रजुः॥९॥
यौवराज्यप्रभाचिह्नच्छत्रचामरशोभितः। आरूढवारणः प्राप विशुक्रो युद्धमेदिनीम्॥१०॥
ततः कलकलारावकारिण्या सेनया वृतः। विशुक्रः पटु दध्वान सिंहनादं भयंकरम्॥११॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२८

विशुक्र विषंगवध वर्णन

जब दैत्यराज भण्ड ने युद्ध में अपने सहोदर भाई विशुक्र को भग्न होना सुना तथा उसकी सेना का विनाश सुना, तो सुनकर वह चिन्ता से बहुत दुःखी हो गया।।१।। उसके बाद भण्डासुर अपने दोनों भाइयों विशुक्र और विषंग को सब सैनिकों के साथ युद्ध के लिये भेजा।।२।। दैत्यराज भण्ड का आदेश प्राप्त कर वे दोनों भाई विषंग और विशुक्र बहुत अधिक क्रोधित होकर महान् उद्यम को प्राप्त हुए।।३।। वहाँ विषंग ने तीनों लोकों को कँपा देने वाली सेना और अपने छोटे भाई महाबली युवराज विशुक्र का अनुसरण किया।।४।। जब चार सौ अक्षौहिणी सेनाओं से घिरा हुआ वह युवराज महान् प्रताप के साथ आगे बढ़ने लगा।।५।। उसके साथ उलूकजित् आदि दश बहुत ऊंचे लड़ाकू भानजे थे। वे सब भण्डराज की भगिनी धूमिनी की योनि से उत्पन्न हुए थे।।६।।

महान् मामा भण्ड ने ही उन सबको अस्त्र शिक्षा प्रदान की थी। पराक्रम और बल में वे सब सम्पन्न थे, इसलिए वे दशों सेनापति बनाये गये थे।।७।। वे सब अपने धनुषों की टंकार ध्वनियों से दशों दिशाओं को ध्वनित करते हुए चल रहे थे तथा विशुक्र और विषंग दोनों मामाओं के प्रेम को दश भागिनेय प्राप्त कर रहे थे।।८।। इस प्रकार वे प्रत्येक गाढ़ अहंकार वाले अपने अपने यानों पर चढ़कर धनुषों को खींचे युवराज विशुक्र के पीछे चल रहे थे।।९।। यौवराज्य की प्रभा के चिह्न क्षत्र और चामर से शोभित हाथी पर सवार विशुक्र ने युद्धभूमि को प्राप्त किया।।१०।। उसके बाद कलकल की ध्वनि करने वाली सेना से घिरे हुए विशुक्र ने रणभेरी का भयंकर सिंहनाद

तत्क्षोभात्क्षुभितस्वान्ताः शक्तयः संभ्रमोद्धताः।
आग्निप्राकारवलयान्निर्जग्मुर्बद्धपङ्क्तयः॥१२॥
तडिन्मयमिवाकाशं कुर्वत्यः स्वस्वरोचिषा। रक्ताम्बुजावृतमिव व्योमचक्रं रणोन्मुखाः॥१३॥
अथ भण्डकनीयांसावागतौ युद्धदुर्मदौ। निशम्य युगपद्योद्धुं मंत्रिणीदण्डनायके॥१४॥
किरिचक्रं ज्ञेयचक्रमारूढे रथशेखरम्। धृतातपत्रवलये चामराभ्यां च वीजिते॥१५॥
अप्सरोभिः प्रनृत्ताभिर्गीयिमानमहोदये। निर्जग्मतू रणं कर्तुमुभाभ्यां ललिताज्ञया॥१६॥
श्रीचक्ररथराजस्य रक्षणार्थं निवेशिते। शताक्षौहिणिकां सेनां वर्जयित्वास्त्रभीषणम्॥१७॥
अन्यत्सर्वं चमूजालं निर्जगाम रणोन्मुखी। पुरतः प्राचलद्दण्डनाथा रथनिषेदुषी॥१८॥
एकयैव कराङ्गुल्या घूर्णयन्ती हलायुधम्। मुसलं चान्यहस्तेन भ्रामयन्ती मुहुर्मुहुः॥१९॥
तरलेन्दुकलाचूडास्फुरत्पोत्रमुखाम्बुजा। पुरः प्रहर्त्री समरे सर्वदा विक्रमोद्धता।
अस्या अनुप्रचलिता गेयचक्ररथस्थिता॥२०॥
धनुषो ध्वनिनां विश्वं पूरयन्ती महोद्धता। वेणीकृतकचन्यस्तविलसच्चन्द्रपल्लवा॥२१॥
स्फुरत्त्रितयनेत्रेण स्दिूरतिलकत्विषा। पाणिना पद्मरम्येण मणिकंकणचारुणा॥२२॥
तूणीरमुखतः कृष्टं भ्रामयन्ती शिलीमुखम्। जय वर्धस्ववर्धस्वेत्यतिहर्षसमाकुले॥२३॥

किया।।११।। उस सिंहनाद को सुनकर उसके भय से भयभीत हृदय वाली शक्तियां संभ्रमित हो गयीं और फिर पंक्तिबद्ध होकर अग्नि प्राकारवलय (सेना के चारों ओर की बाउण्ड्री) से बाहर आने लगी।।१२।। वे शक्तियां अपनी अपनी कान्ति से आकाश में बिजली सी चमकाती हुई, लाल कमल से घिरे हुए आकाश चक्र के समान युद्ध के लिये उन्मुख हुईं।।१३।। इसके बाद दैत्यराज भण्ड के छोटे भाई 'युद्ध' दुर्मद युद्धक्षेत्र में आ गये। यह सुनकर दोनों के साथ युद्ध करने के लिये मन्त्रिणी और दण्डनायिका दोनों शक्तियां युद्ध क्षेत्र में आ गयीं।।१४।। वे दोनों देवियां किरिचक्ररथ तथा ज्ञेयचक्ररथ पर आरूढ थीं, उनके ऊपर छत्र सुशोभित था और दोनों परअलग अलग चंवर ढुलाये जा रहे थे।।१५।। उस समय अप्सरायें नृत्य करते हुए गीत गा रही तीं। उस शुभ वेला में श्री ललितेश्वरी की आज्ञा से वे दोनों देवियाँ रण करने को निकल पड़ीं।।१६।। तब श्रीचक्ररथराज की रक्षा के लिये सौ अक्षौहिणी सेना को और भीषण अस्त्र को छोड़कर अन्य सब सेना समूह को लेकर रण के लिये उन्मुख दण्डनाथा युद्ध के लिए निकल पड़ी। आगे-आगे रथ पर बैठी हुई दण्डनाथा चल रही थीं। वे एक ही हाथ की अंगुलि से हलायुध को घुमाती हुई तथा दूसरे हाथ से मूसल को बार बार घुमाती हुई चल रही थीं।।१७-१९।।

उन देवी के शिर के जूड़ा में तरल चन्द्रमा चमक रहे थे। ऐसी वह वाराही कमलमुखी समर में सदा आगे प्रहार करने वाली पराक्रम में सर्वोच्च थीं। इस देवी के पीछे गेयचक्र पर स्थित धनुष की ध्वनि से विश्व को पूर्ण करती हुई महोद्धता दण्डनाथा चल रही थी। जिनकी वेणी (शिर के जूड़े) में स्थित विलास करती हुई चन्द्र किरणें चमक रही थीं।।२०-२१।। उनके तीन नेत्रों के साथ भाल पर सिन्दूर के तिलक की कान्ति चमक रही थी। उनके कमल के समान रम्य हाथ में मणिजटित कंगन की सुन्दरता थी। वे अपने तरकश से खींचे हुए बाण को घुमाती हुई जय जयकार के नारों तथा आगे बढ़ो, आगे बढ़ों इस प्रकार के नारों का घोष करती हुई, अत्यन्त हर्षपूर्वक चल रही थीं।।२२-२३।।

नृत्यद्भिर्दिव्यमुनिभिर्वर्द्धिताशीर्वचोऽमृतैः। गेयचक्ररतेन्द्रस्य चक्रनेमिविघट्टनैः॥२४॥
दारयन्ती क्षितितलं दैत्यानां हृदयैः सह। लोकातिशायिता विश्वमनोमोहनकारिणा।
गीतिबन्धेनामरीभिर्बह्वीभिर्गीतवैभवा ॥२५॥
अक्षौहिणीसहस्राणामष्टकं समरोद्धतम्। कर्षती कल्पविश्लेषनिर्मर्यादाब्धिसंनिभम्॥२६॥
तस्याः शक्तिचमूचक्रे काश्चित्कनकरोचिषः।
काश्चिद्दाडिमसंकाशाः काश्चिज्जीमूतरोचिषः॥२७॥
अन्याः सिंदूररुचयः पराः पाटलपाटलाः।
काचाद्रिकाम्बराः काश्चित्पराः श्यामलकोमलाः॥२८॥
अन्यास्तु हीरकप्रख्याः परा गारुत्मतोपमाः।
विरुद्धैः पञ्चभिर्बाणैर्मिश्रितैः शतकोटिभिः॥२९॥
व्यञ्जयंत्यो देहरुचं कतिचिद्विविधायुधाः। असंख्याः शक्तयश्चेलुर्दंडिन्यास्सैनिके तथा॥३०॥
तथैव सैन्यसन्नाहो मंत्रिण्याः कुम्भसम्भव। यथा भूषणवेषादि यथा प्रभावलक्षणम्॥३१॥
यथा सद्‌गुणशालित्वं यथा चाश्रितलक्षणम्। यथा दैत्यौघसंहारो यथा सर्वैश्च पूजिता॥३२॥

इस प्रकार नांचते हुए दिव्य मुनियों द्वारा अभिवर्द्धित आशीर्वाद रूपी वचनामृतों से तथा गेयचक्ररथराज के पहिये की धुरी से घिसने की ध्वनियों से दैत्यों के हृदयों के साथ भूतल को विदीर्ण करती हुई, लोक की अतिशता वाले विश्व के मनों को मोहित करने वाली, बहुत सी देवाङ्गनाओं गीत बन्धों (कविताओं) से गाये गये वैभवशाली अर्थात् जिनके वैभव को कवितायें बनाकर देवाङ्गनायें गा रही थीं ऐसी वे देवी आठ हजार अक्षौहिणी समर करने में अत्यन्त प्रवीण सेनाओं को ले जाती हुई, प्रलयकाल में अपनी मर्यादा खोये हुए समुद्र की भाँति वे देवी युद्ध क्षेत्र में चली जा रही थीं।।२४-२६।। उस दण्डनाथा देवी की सेना चक्र में कोई शक्ति स्वर्ण की कान्ति वाली थी, कोई अनार की कान्ति के समान लाल वर्ण की थी, कोई मेघ की कान्तिवाली थी।।२७।।

दूसरी शक्तियां सिन्दूर की कान्ति की थीं, दूसरी गुलाब पुष्प के समान वर्ण एवं सुगन्ध वाली थीं, कुछ वज्र अथवा सूर्य के वस्त्र वाली थीं, दूसरी शक्तियां श्यामल और कोमल थीं।।२८।। दूसरी शक्ति हीरे की कान्ति वाली थी तथा कुछ गेरू के समान वर्णवाली थीं। कितनी ही शक्तियां सैकड़ो करोड़ कामदेव के पाँच वाणों से मिश्रित अपने शरीर की कान्ति को प्रकट करती हुई अनेकों प्रकार के अस्त्रों को लेकर चल रही थीं। इस प्रकार असंख्य शक्तियां दण्डनाथा के सैनिकों के रूप में चल रही थीं।।३०।।

हयग्रीव ने कहा कि इस प्रकार हे अगस्त्य जी उस दण्डनाथा का समस्त शरीर उसी प्रकार का था, जिस प्रकार का उन ललिता देवी का था। जैसा कि भूषण वेष आदि ललितेश्वरी की सेना के थे, वैसे ही दण्डनाथा की सेना के थे। जैसा प्रभाव तथा लक्षण श्री ललितेश्वरी के थे, वैसे ही दण्डनाथा देवी के थे। जैसे गुणवाली श्री ललिता देवी थीं, वैसी ही दण्डनाथा थी। जैसे आश्रित लक्षण श्री ललिता के थे, वैसे ही दण्डनाथा के थे। चन्द्रं जैसा दैत्य समूह संहारगुण तथा सबों के द्वारा पूजित होना श्री ललिता का था वैसा ही दण्डनाथा अर्थात् जितने दैत्यों का संहार श्री ललिता कर सकती थी, उतनी ही दण्डनाथ भी कर सकने में समर्थ हैं। जिस प्रकार सभी देवता श्री ललिता को पूजते थे, उसी प्रकार दण्डनाथा भी सब देवों में पूज्य थीं।।३१-३२।।

यथा शक्तिर्महाराज्ञ्या दंडिन्याश्च तथाखिलम्।
विशेषस्तु परं तस्याः साचिव्ये तत्करे स्थितम्।
महाराज्ञीवितीर्णं तदाज्ञामुद्रांगुलीयकम्॥३३॥
इत्थं प्रचलिते सैन्ये मंत्रिणीदंडनाथयोः तद्भारभंगुरा भूमिर्दोलालीलामलंबत॥३४॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्। उद्धूतधूलिजंबालीभूतसप्तार्णवीजलम्॥३५॥
हयस्थैर्हयसादिन्यो रथस्थै रथसंस्थिताः।
आधोरणैर्हस्तिपकाः खड्गैः पद्गाश्च सङ्गता;॥३६॥
दंडनाथाविषंगेण समयुध्यंत सङ्गरे। विशुक्रेण समं श्यामा विकृष्टमणिकार्मुका॥३७॥
अश्वारूढा चकारोच्चैः सहोलूकजिता रणम्। सम्पदीशा च जग्राह पुरुषेण युयुत्सया॥३८॥
विषेण नकुली देवी समाह्वास्त युयुत्सया। कुंतिषेणेन समरं महामाया तदाकरोत्॥३९॥
मलदेन समं चक्रे युद्धमुन्मत्तभैरवी। लघुश्यामा चकारोच्चैः कुशूरेण समं रणम्॥४०॥
स्वप्नेशी मंगलाख्येन दैत्येन्द्रेण रणं व्यधात्। वाग्वादिनी तु जघटे द्रुघणेन समं रणे॥४१॥
कोलाटेन च दुष्टेन चणडकाल्यकरोद्रणम्। अक्षौहिणीभिर्दैत्यानां शताक्षौहिणिकास्तथा।
महांतं समरं चक्रुरन्योन्यं क्रोधमूर्छिताः॥४२॥
प्रवर्तमाने समरे विशुक्रो दुष्टदानवः। वर्धमानां शक्तिचमूं हीयमानां निजां चमूम्॥४३॥

इस प्रकार जैसी शक्ति श्री ललितेश्वरी की थी, वैसी ही दण्डनाथा की थी। विशेषरूप से तो उन दण्डनाथा देवी के हाथ में मन्त्रित्व स्थित था अर्थात् श्री ललितेश्वरी देवी की प्रधान मन्त्रिणी थीं। महाराज्ञी से पार हुए किसी भी नियम पर दण्डनाथा देवी की आज्ञा की मुहर लगती थी।।३३।। इस प्रकार मन्थिनाथा और दण्डनाथा की सेना के चलने पर उनके भार से भंगुर भूमि झूला झूलने के समान हिलने लगी।।३४।। उसके बाद युद्ध प्रवृत्त होने पर रोमांच खड़े कर देने वाला कोलाहल होने लगा। युद्ध क्षेत्र में उठी हुई धूलि ने सात समुद्रों के जल को गारा बना दिया। अर्थात् इतनी धूलि उड़ी की सात समन्दर गारा बन गया।३५।। अश्वारोहियों के साथ अश्वारोही रथारोहिओं के साथ रथारोही तथा गजारोहियों के साथ गजारोही और पैदल चलने वाले पैदलों के साथ तलवारों से युद्ध करने लगे।।३६।। दण्डनाथा देवी विषंग के साथ रणक्षेत्र में युद्ध करने लगी तथा विशुक्र के साथ श्यामा देवी मणिकार्मुक (मणिधनुष) को खींचकर युद्ध करने लगीं।।३७।। उलूकजिता अश्वारूढा उच्च के साथ रण करने लगी। सम्पदीशा देवी युद्ध करने की इच्छा रखने वाले पुरुष के साथ युद्ध करने लगी।।३८।।

विष नामक असुर के साथ नकुली देवी युद्ध करने की इच्छा से लड़ने लगी और तब कुन्तिषेण के साथ महामाया ने युद्ध किया।।३९।। उन्मत्त भैरवी ने मलद नामक असुर के साथ युद्ध किया। लघुश्याम देवी ने कुशूर के साथ बहुत ऊँचा युद्ध किया।।४०।। स्वप्नेशी देवी ने मंगल नाम दैत्यराज के साथ युद्ध किया और वाग्वादिनी देवी द्रुघण दैत्य के साथ रणक्षेत्र में भिड़ गयीं।।४१।। दुष्ट कोलाट के साथ चण्डकाली देवी ने दैत्यों की अनेकों अक्षौहिणी सेनाओं के साथ क्रोध मूर्च्छित सौ अक्षौहिणी शक्ति सेनाओं ने परस्पर एक दूसरे से महान् समर किया।।४२।। उस होने वाले युद्ध में शक्ति सेना को बढ़ता हुआ और अपनी सेना को कम होता हुआ (नष्ट होता हुआ) देखकर दुष्ट दानव विशुक्र ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपने विशाल धनुष को खींचा और समस्त शक्ति सेना

अवलोक्य रुषाविष्टः स कृष्टगुरुकार्मुकः। शक्तिसैन्ये समस्तेऽपि तृषास्त्रं प्रमुमोच ह॥४४॥
तेन दावानलज्वालादीप्तेन मथितं बलम्। तृतीये युद्धदिवसे याममात्रं गते रवौ।
विशुक्रमुक्ततर्षास्त्रव्याकुलाः शक्तयोऽभवन्॥४५॥
क्षोभयन्निन्द्रियग्रामं तालुमूलं विशोषयन्। रूक्षयन्कर्णकुहरमंगदौर्बल्यमाहवन्॥४६॥
पातयन्पृथिवीपृष्ठे देहं विस्त्रंसितायुधम्। आविर्बभूव शक्तीनामतितीव्रस्तृषाज्वरः॥४७॥
युद्धेष्वनुद्यमकृता सर्वोत्साहविरोधिना।
तर्षेण तेन क्वथितं शक्तिसैन्यं विलोक्य सा।
मंत्रिणी सह पोत्रिण्या भृशं चिंतामवाप ह॥४८॥
उवाच तां दंडनाथामत्याहितविसंकिनीम्। रथस्थिता रथगता तत्प्रतीकारकर्मणे।
सखि पोत्रिणी दुष्टस्य तर्षास्त्रमिदमागतम्॥४९॥
शिथिलीकुरुते सैन्यमस्माकं हा विधेः क्रमः। विशुष्कतालुमूलानां विभ्रष्टायुधतेजसाम्।
शक्तीनां मंडलेनात्र समरे समुपेक्षितम्॥५०॥
न कापि कुरुते युद्धं न धारयति चायुधम्। विशुष्कतालुमूलत्वा द्वक्तुमप्यालि न क्षमाः॥५१॥
ईदृशीन्नो गतिं श्रुत्वा किं वक्ष्यति महेश्वरी। कृता चापकृतिर्दैत्यैरुपायः प्रविचिंत्यताम्॥५२॥
सर्वत्र व्यष्टसाहस्त्राक्षौहिण्यामत्र पोत्रिणि। एकापि शक्तिर्नैवास्ति या तर्षेण न पीडिता॥५३॥
अत्रैवावसरे दृष्ट्वा मुक्तशस्त्रां पताकिनीम्। रंध्रप्रहारिणो हंत बाणैर्निघ्नंति दानवाः॥५४॥

पर तृषास्त्र बाण का प्रहार कर दिया।।४३-४४।। उस बाण से दावाग्नि की ज्वाला से दीप्त होने से सेना को मथ डाला। तब तीसरे युद्ध दिवस पर रात्रिमात्र में सूर्य के चले जाने पर विशुक्र द्वारा छोड़े गये तृषास्त्र के कारण शक्तियां प्यास से व्याकुल हो गयीं।।४५।। उनकी इन्द्रियां शिथिल होने लगीं। प्यास से उनके तालु (हलक) सूखने लगे। कर्णकुहर रूखे होने लगे, जिससे सुनना कठिन हाने लगा तथा इस प्रकार उनका अंग अंग दुर्बलता को प्राप्त करने लगा।।४६।। अपने अपने अस्त्रों को छोड़कर वे पृथ्वी पर शरीर को गिराने लगीं, इसका कारण था कि शक्तियों को अत्यन्त तीव्र प्यास सताने लगी थी।।४७।। तब युद्धों में अनुद्यम (निष्क्रिय) करने वाली, सब उत्साह का विरोध करने वाली, उस प्यास से व्याकुल शक्ति सैन्य को देखकर वह मन्त्रिणी वाराही देवी के साथ अत्यधिक चिन्ता को प्राप्त हो गयी अर्थात् अत्यधिक चिन्तित हो गयी।।४८।। रथस्थ रथगत मन्त्रिणी प्रतीकार कर्म के लिये अत्यन्त विपत्तिग्रस्त और विशेष डरी हुई दण्डनाथा से बोली कि सखि वाराहि! दुष्ट दानव का यह तृषास्त्र आ गया है।।४९।। और कहने लगी कि हाय विधि (भाग्य) की गति हमारी सेना को शिथिल बना रही है। प्यास के तालुमूलों के सूख जाने के कारण शक्तियों ने अपने अपने आयुधों को छोड़ दिया है और व्याकुल शक्तिसमूह ने यहाँ युद्ध में उपेक्षा कर दी है।।५०।। इस समय न तो कोई युद्ध कर रही हैं और न ही अस्त्र-शस्त्रों को धारण कर रही हैं।।५१।। ऐसी हमारी गति सुनकर महेश्वरी क्या कहेंगी? उधर दैत्यों ने अपने अपने धनुषों को धारण कर लिया, अतः कोई उपाय सोचिये।।५२।। मन्दिराणी ने कहा कि हे वाराहि! सर्वत्र दश हजार अक्षौहिणी में एक भी शक्ति नहीं है, जो प्यास से पीड़ित न हो।।५३।। यही अवसर देखकर रन्द्र (छेद) देखकर प्रहार करने वाले दानव शस्त्रहीन सेना को बाणों

अत्रोपायस्त्वया कार्यो मया च समरोद्यमे। त्वदीयरथपर्वस्थो योऽस्ति शीतमहार्णवः॥५५॥
तमादिश समस्तानां शक्तीनां तर्षनुत्तये। नाल्पैः पानीयपानाद्यैरेतासां तर्षसंक्षयः॥५६॥
स एव मदिरासिंधुः शक्त्यौघं तर्पयिष्यति। तमादिश महात्मानं सरोत्साहकारिणम्।
सर्वतर्षप्रशमनं महाबलविवर्धनम्॥५७॥
इत्युक्ते दंडनाथा सा सदुपायेन हर्षिता। आजुहाव सुधासिंधुमाज्ञां चक्रेश्वरी रणे॥५८॥
स मादलसरक्ताक्षो हेमाभः स्रग्विभूषितः॥५९॥
प्रणम्य दंडनाथां ता तदाज्ञापरिपालकः॥६०॥
आत्मानं बहुधा कृत्वा तरुणादित्यपाटलम्।
क्वचित्तापिच्छवच्छ्यामं क्वचिच्च धवलद्युतिम्॥६१॥
कोटिशो मधुराधारा करिहस्तसमाकृतीः। ववर्ष सिंधुराजोऽयं वायुना बहुलीकृतः॥६२॥
पुष्कलावर्तकाद्यैस्तु कल्पक्षयबलाहकैः।
निषिच्यमानो मध्येऽब्धिः शक्तिसैन्ये पपात ह॥६३॥
यद्गन्धाघ्राणमात्रेण मृत उत्तिष्ठते स्फुटम्। दुर्बलः प्रबलश्च स्यात्तद्ववर्ष सुरांबुधिः॥६४॥
परार्द्धसंख्यातीतास्ता मधुधारापरंपराः। प्रपिबन्त्यः पिपासार्तैर्मुखैः शक्तय उत्थिताः॥६५॥
यथा सा मदिरासिंधुवृष्टिर्दैत्येषु नो पतेत्। तथा सैन्यस्य परितो महाप्राकारमंडलम्॥६६॥

से मार रहे हैं।।५४।। यहाँ पर अब तुम्हारे और मेरे द्वारा इस समरोद्योग में उपाय किया जाना चाहिये। तुम्हारे रथ में एक भाग ऐसा है, जो शीत का महासमुद्र है।।५५।। उस अपने पर्वस्थ शीतमहार्णव को आदेश दो, ताकि वे समस्त शक्तियों की प्यास को दूर करें, थोड़े से पीने योग्य पानी आदियों से इनकी प्यास नष्ट नहीं की जा सकती।।५६।। वह मदिरा का समुद्र ही उन शक्तियों को तृप्त करेगा।। उस युद्धक्षेत्र में उत्साह पैदा करने वाले सब प्रकार की प्यास को शान्त करने वाले तथा महाबल बढ़ाने वाले महात्मा को आदेश दीजिये।।५७।। ऐसा कहने पर वह दण्डनाथा अच्छे उपाय को सुनकर प्रसन्न हो गयी और चक्रेश्वरी ने रण में सुधासिन्धु को आज्ञा भेज दी।।५८।। तब वह मद के आलस लाल आँखों वाला, स्वर्ण का आभा वाला और माला से विभूषित उनकी आज्ञा का पालन करने वाला सुधा सिन्धु (मदिरा का समुद्र) दण्डनाथा देवी के पास आया और उन्हें प्रणाम किया।।५९-६०।। उसके बाद उस सुधासिन्धु (मदिरा के सागर) ने अपने को बहुत प्रकार का करके कहीं तरुण आदित्य के समान पाटल (गुलाब) के वर्ण का करके, कहीं तमाल के वृक्ष के समान श्यामवर्ण करके, कहीं श्वेतकान्ति का वर्ण करके हाथी की सूँड़ के समान आकृति वाली करोड़ों मधुर धारायें करके, वायु से बहुकृत सुधा (मदिरा) की वर्षा की।।६१-६२।। उस समय उस सुधासिन्धु ने प्रलयकालीन पुष्कर और आवर्तक आदि मेघों द्वारा सिंचन करते हुए समुद्र को सेना के मध्य गिरा दिया।।६३।।

जिसकी गन्ध सूंघने मात्र से मरा हुआ उठ खड़ा होता है, दुर्बल प्रबल हो जाता है। उस सुरा के समुद्र की वर्षा हुई।।६४।। वे मधु की धारायें शंख की संख्या भी पार कर चुकी थी, अतः असंख्य धारायें युद्धभूमि में गिरीं और अपने प्यासे मुखों से पीती हुई शक्तियां उठ खड़ी हुईं।।६५।। जिस प्रकार से वह मदिरा के समुद्र की वर्षा दैत्यों

लघुहस्ततया मुक्तैः शरजातैः सहस्रशः। चकार विस्मयकरी कदंबवनवासिनी॥६७॥
कर्मणा तेन सर्वेऽपि विस्मिता मरुतोऽभवन्।
अथ ताः शक्तयो भूरि पिबंति स्म रणांतरे॥६८॥
विविधा मदिराधारा बलोत्साहविवर्धिनीः।
यस्या यस्या मनःप्रीती रुचिः स्वादो यथायथा॥६९॥
तृतीये युद्धदिवसे प्रहरद्वितयावधि। संततं मद्यधाराभिः प्रववर्ष सुरांबुधिः॥७०॥
गौडी पैष्टी च माध्वी च वरा कादंबरी तथा।
हैताली लांगलेया च तालजातास्तथा सुराः॥७१॥
कल्पवृक्षोद्भवा दिव्या नानादेशसमुद्भवाः। सुस्वादुसौरभाढ्याश्च शुभगंधसुखप्रदाः॥७२॥
बकुलप्रसवामोदा ध्वनंत्यो बुद्बुदोज्ज्वलाः।
कटुकाश्च कषायाश्च मधुरास्तिक्ततास्पृशः॥७३॥
बहुवर्णसमाविष्टाश्छेदिनीः पिच्छलास्तथा।
ईषदम्लाश्च कट्वम्ला मधुराम्लास्तथा पराः॥७४॥
शस्त्रक्षतरुगाहंत्री चास्थिसंधानदायिनी। रणभ्रमहरा शीता लघ्व्यस्तद्वत्कवोष्ठकाः॥७५॥
संतापहारिणीश्चैव वारुणीस्ता जयप्रदाः। नानाविधाः सुराधारा ववर्ष मदिरार्णवः॥७६॥

पर न हो, वैसा उस कदम्बवासिनी विस्मय पैदा करने वाली, उन मदिरा देवी ने हल्के हाथों से छोड़े गये हजारों बाणों से सेना के चारों ओर प्राकार मण्डल (चहारदीवार) बना दिया था; क्योंकि यदि वह वर्षा सर्वत्र होती तो उसका लाभ दैत्य सेना को भी प्राप्त हो जाता।।६६-६७।। इस प्रकार उस विस्मय पैदा करने वाली कदम्बवासिनी देवी के उस कर्म से मरुद्गण आश्चर्यचकित हो गये। इसके बाद वे शक्तियां युद्धस्थल में बार बार पी रही थीं।।६८।। अनेकों प्रकार की मदिरा की धारायें वहाँ बह रही थीं, जो बल और उत्साह को बढ़ाने वाली थीं। जिस जिस शक्ति को जैसे जैसा स्वाद मन को अच्छा लगता था, वैसा वैसा स्वाद मिल रहा था।।६९।।

तीसरे युद्ध दिवस में दूसरे पहर तक सुरासमुद्र ने निरन्तर मद्य की धाराओं द्वारा वर्षा की।।७०।। तब वहाँ अनेकों प्रकार की सुरायें बरस रहीं थीं, वे हैं—गौडी (गुड़ से बनी हुई), पैष्टी (अनाज को सड़ाकर बनायी गयी), माध्वी (मधु से बनी हुई), कादम्बरी (कदम्ब के फल से बनायी गयी), ताली, लांगलेया, तालजाता (ताड़ी) तथा शराब, कल्पवृक्ष से उत्पन्न दिव्यमदिरा तथा अनेक देशों में उत्पन्न होने वाली, स्वादु और सुगन्ध वाली, शुभगन्ध से सुख प्रदान करने वाली मदिरायें थीं तथा वकुल वृक्ष से पैदा होने वाली मदिरायें थी, जो उज्ज्वल उज्ज्वल बुदबुदे दे रही थीं। जिनका स्वादु किसी को कटु (कड़ुआ) किसी का कषैला, किसी का मीठा (मधुर) तथा किसी का तीखा चरपरा मिर्च जैसा था।।७१-७३।। वे मदिरायें बहुत से रंगों से युक्त थीं, उनमें रूखड़ चिपचिपी, कुछ खट्टी, कुछ कटु और खट्टी, कुछ मीठी खट्टी थीं।।७४।। वे मदिरा शस्त्र से होने वाले घाव को नष्ट करने वाली और टूटी हड्डियों को जोड़ने वाली थीं। वे मदिरा युद्ध में होने वाले भय अथवा भ्रम को दूर करने वाली थीं (यह स्वाभाविक है कि मदिरा पीने के बाद मनुष्य में उत्साह पैदा हो जाता है तथा भय नष्ट हो जाता है) वे मदिरायें ठण्डी और कम गर्म (गुनगुनी) थीं।।७५।। वे मदिरायें दुःख और चिन्ताओं को दूर कर देने वाली और जय प्रदान करने वाली थीं। इस प्रकार अनेकों

अविच्छिन्नं याममात्रमकैका तत्र योगिनी। ऐरावतकर प्रख्यां सुराधारां मुदा पपौ।।७७।।
उत्तानं वदनं कृत्वा विलोलरसनाश्चलम्। शक्तयः प्रपपुः सीधु मुदा मीलितलोचनाः।।७८।।
इत्थं बहुविदं माध्वीधारापातैः सुधांबुधिः। आगतस्तर्पयित्वा तु दिव्यरूपं समास्थितः।।७९।।
पुनर्गत्वा दंडनाथां प्रणम्य स सुरांबुधिः। स्निग्धगंभीरघोषेण वाक्यं चेदमुवाच ताम्।।८०।।
देवि पश्य महाराज्ञि दंडमंडलनायिके। मया संतर्पिता मुग्धरूपा शक्तिवरूथिनी।।८१।।
काश्चिन्नृत्यंति गायंत्यो कलक्वणितमेखलाः। नृत्यंतीनां पुरः काश्चित्करतालं वितन्वते।।८२।।
काश्चिद्धसंति व्यावल्गद्वल्गुवक्षोजमंडलाः। पतंत्यन्योन्यमङ्गेषु काश्चिदानंदमंथराः।।८३।।
काश्चिद्वल्गंति च श्रोणिविगलन्मेखलांबराः। काश्चिदुत्थाय संनद्धा घूर्णयंति निरायुधाः।।८४।।
इत्थं निर्दिश्यमानास्ताः शक्ती मैरेय सिंधुना।
अवलोक्य भृशं तुष्टा दंडिनी तमुवाच ह।।८५।।
परितुष्टास्मि मद्याब्धे त्वया साह्यमनुष्ठितम्। देवकार्यमिदं किं च निर्विघ्नितमिदं कृतम्।।८६।।
अतः परं मत्प्रसादाद्द्वापरे याज्ञिकैर्मखे। सोमपानवदत्यंतमुपयोज्यो भविष्यसि।।८७।।
मंत्रेण पूतं त्वां यागे पास्यंत्यखिलदेवताः। यागेषु मंत्रपूतेन पीतेन भवता जनाः।।८८।।

सुरा की धाराओं की मदिरा के सागर ने शक्ति सेनाओं के मध्य वर्षा कर दी।।७६।। तब वहाँ लगातार एक पहर तक एक एक योगिनी ने ऐरावत प्रख्य सुरा धारा का आनन्द के साथ पान किया।[१] तथा ऐरावत हाथी की सूँड़ से साफ कर फेंकी गयी सुराधारा का आनन्द से पान किया।।७७।। इस प्रकार प्रत्येक योगिनी ने पान कर लिया, तब मुख को फाड़कर अपनी जीभ को लपलपाते हुए शक्तियों ने गुड़ या राव से बनी हुई सीधु नामक सुरा को आँख मींच कर पी लिया।।७८।। इस प्रकार आये हुए सुधा समुद्र ने अनेकों प्रकार की महुआ की मदिरा की धाराओं को गिराकर समस्त शक्ति सेना को तृप्त करके अपने दिव्यरूप को धारण कर लिया।।७९।। पुनः दिव्यरूप धारण किये हुए सुरासागर ने दण्डनाथा देवी को प्रणाम करके उन देवी से स्नेहसिक्त गम्भीर घोष के साथ इस वाक्य को कहा।।८०।। हे महाराज्ञि! हे देवि! हे दण्डमण्डल नायिके! देखो मैंने मुग्ध करने वाली, शक्ति को बढ़ाने वाली सुरा से सबको अच्छी प्रकार से तृप्त कर दिया है।।८१।। इसीलिये कुछ शक्तियां नाच रही हैं, कुछ अपनी कर्धनी को बजाती हुई गा रही हैं, नाचती हुई शक्तियों के सामने कुछ शक्तियां हाथ से ताली बजा रही हैं।।८२।। कुछ हँस रही हैं, कुछ एक-दूसरे को पकड़कर स्तनों को आपस में रगड़ रही हैं। कुछ शक्तियां आनन्द विभोर होकर एक दूसरे के शरीर पर गिर रही हैं। कुछ कमर से हटी हुई कर्धनी और वस्त्र वाली शक्तियाँ इधर उधर कूद रही हैं। कुछ तो अस्त्र विहीन हैं, वे उठकर तैयार होने के लिये आयुधों को घूर रही हैं।।८३-८४।। इस प्रकार सुरा समुद्र ने दण्डनाथा को बता दिया कि अब मदिरा सिन्धु से सभी शक्तियां सन्तुष्ट कर दी गयी हैं, तब उस सुरा समुद्र से पूर्ण सन्तुष्टा दण्डनाथा ने सुरा समुद्र से कहा।।८५।। कि हे मद्य के सागर! मैं अब पूर्ण सन्तुष्ट हूँ तथा मैं तुम्हारी अभारी हूँ कि तुमने मेरी सहायता की और इस देवताओं के इस कार्य को विघ्नरहित कर दिया।।८६।। इसलिये इसके बाद द्वापर युग में मेरे प्रसाद से यज्ञ में यज्ञ करने वालों के द्वारा सोमपान के समान तुम अत्यन्त उपयोगी (लाभदायक) होओगी।।८७।। द्वापर

१. यहाँ पर ऐरावत प्रख्या का अर्थ है—भोज्य पदार्थ से बनी हुई प्रख्या=स्वच्छ मदिरा)

सिद्धिमृद्धिं बलं स्वर्गमपवर्गञ्च बिभ्रतु। महेश्वरी महादेवो बलदेवश्च भार्गवः।
दत्तात्रेयो विधिर्विष्णुस्त्वां पास्यन्ति महाजनाः॥८९॥
यागे समर्चितस्त्वं तु सर्वसिद्धिं प्रदास्यसि॥९०॥
इत्थं वरप्रदानेन तोषयित्वा सुरांबुधिम्॥९१॥
मंत्रिणीं त्वरयामास पुनर्युद्धाय दंडिनी। पुनः प्रववृते युद्धं शक्तीनां दानवैः सह॥९२॥
मुदाट्टहासनिर्भिन्नदिगष्टकधरा धरम्। प्रत्यग्रमदिरामत्ताः पाटलीकृतलोचनाः।
शक्तयो दैत्यचक्रेषु न्यपतन्नेकहेलया॥९३॥
द्वयेन द्वयमारेजे शक्तीनां समदश्रियाम्। मदरागेण चक्षूंषि दैत्यरक्तेन शस्त्रिका॥९४॥
तथा बभूव तुमुलं युद्धं शक्तिसुरद्विषाम्। यथा मृत्युरवित्रस्तः प्रजाः संहरते स्वयम्॥९५॥
संस्खलत्पदविन्यासा मदेनारक्तदृष्टयः। स्खलदक्षरसंदर्भवीरभाषा रणोद्धताः॥९६॥
कदंबगोलकाकारा दृष्टसर्वांगदृष्टयः। युवराजस्य सैन्यानि शक्तयः समनाशयन्॥९७॥
अक्षौहिणीशतं तत्र दंडिनी सा व्यदारयत्। अक्षौहिणीसार्द्धशतं नाशयामास मंत्रिणी॥९८॥
अश्वारूढाप्रभृतयो मदारुणविलोचनाः। अक्षौहिणीसार्धशतं निन्युरंतकमंदिरम्॥९९॥
अंकुशेनातितीक्ष्णेन तुरगा रोहिणी रणे। उलूकजितमुन्मथ्य परलोकातिथिं व्यधात्॥१००॥

युग में मन्त्र द्वारा पवित्र की गयी तुमको यज्ञ में समस्त देवता पीयेंगे तथा यज्ञों में मन्त्र द्वारा पवित्र की गयी तुमको यज्ञ में समस्त देवता पीयेंगे तथा यज्ञों में मन्त्र द्वारा पवित्र तुमको पीने से लोग ऋद्धि, सिद्धि, बल, स्वर्ग और मोक्ष धारण करें, यह मेरा वरदान है। महेश्वरी (दुर्गा) महादेव, बलदेव, परशुराम, दत्रात्रेय, ब्रह्मा, विष्णु आदि महापुरुष तुम्हारा पान करेंगे तथा यज्ञ में अच्छी प्रकार से पूजा की गयी तुम सब प्रकार की सिद्धि (सफलता) प्रदान करोगी।।८८-९०।। इस प्रकार वर प्रदान द्वारा सुराम्बुधि को प्रसन्न करके दण्डिनी देवी ने मन्त्रिणी को पुनः युद्ध के लिये शीघ्रता करने को कहा।।९१।। अतः शक्तियों का दानवों के साथ पुनः आनन्द के साथ अट्टहास से आठों दिशाओं को शब्दायमान करने वाला युद्ध होने लगा।।९२।।

तब मदिरा के मद में मत्त लाल-लाल आँखों वाली शक्तियों दैत्यों की सेनाओं पर एक साथ टूट पड़ीं।।९३।। इस प्रकार मद की शोभा से युक्त शक्तियां के दोनों के द्वारा दोनों लाल हो गये अर्थात् मद के राग से उनकी आँखें लाल हो गयीं और दैत्यों के रक्त से उनके शस्त्र लाल हो गये।।९४।। वैसा शक्ति और असुरों का कोलाहल हाहाकार पूर्ण हुआ, जैसे कि मृत्यु से नहीं डरती हुई प्रजा स्वयं मृत्यु को प्राप्त होती है।।९५।। उस समय मदिरा के मद से लाल लाल आँखों वाली शक्तियां लड़खड़ाती हुई तथा आँखें घुमाती हुई वीर रस के अक्षरों वाली भाषा बोलती हुई, उच्चकोटि का युद्ध कर रही थीं।।९६।। कदम्ब के गोलक के समान जिनका सारा शरीर और आँखें दिखाई दे रही थीं, उन शक्तियों ने युवराज विशुक्र की सेमाओं को पूरी तरह नष्ट कर दिया।।९७।। सौ अक्षौहिणी सेना को दण्डनाथा देवी ने विदीर्ण कर दिया तथा पचास अक्षौहिणी सेना को मन्त्रिणी देवी ने नष्ट कर दिया।।९८।। अश्वारूढ शक्तियां जो मद से लाल लाल नेत्रों वाली थीं, उन्होंने पचास अक्षौहिणी सेना को यमलोक पहुँचा दिया।।९९।। युद्धस्थल में अश्व पर सवार रोहिणी ने अत्यन्त तीक्ष्ण अंकुश से उलूकजित् नामक असुर को मारकर परलोक का अतिथि बना दिया।।१००।।

सम्पत्करीप्रभृतयः शक्तिदंडाधिनायिकाः। परुषेण मुखान्यन्यान्यवरुद्धा व्यदारयन्॥१०१॥
अस्तं गते सवितरि ध्वस्तसर्वबलं ततः।
विशुक्रं योधयामास श्यामला कोपशालिनी॥१०२॥
अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण भीषणेन दिवौकसाम्। महता रणकृत्येन योधयामास मंत्रिणी॥१०३॥
आयुधानि सुतीक्ष्णानि विशुक्रस्य महौजसः।
क्रमशः खंडयंती सा केतनं रथसारथिम्॥१०४॥
धनुर्गुणं धनुर्दंडं खंडयंती शिलीमुखैः। अस्त्रेण ब्रह्मशिरसा ज्वलत्पावकरोचिषा॥१०५॥
विशुक्रं मर्दयामास सोऽपतच्चूर्णविग्रहः। विषंगं च महादैत्यं दंडनाथा मदोद्धता॥१०६॥
योधयामास चंडेन मुसलेन विनिघ्नती। सचापि दुष्टो दनुजः कालदण्डनिभां गदाम्।
उद्यम्य बाहुना युद्धं चकाराशेषभीषणम्॥१०७॥
अन्योन्यमंगं मृद्नंतौ गदायुद्धप्रवर्तिनौ। चण्डाट्टहासमुखरौ परिभ्रमणकारिणौ॥१०८॥
कुर्वाणौ विविधांश्चारान्घूर्णंतौ तूर्णवेष्टिनौ। अन्योन्यदंडहननैर्मोहयंतौ मुहुर्मुहुः॥१०९॥
अन्योन्यप्रहृतौ रंध्रमीक्षमाणौ महोद्धतौ। महामुसलदंडाग्रघट्टनक्षोभितांबरौ।
अयुध्येतां दुराधर्षौ दंडिनीदैत्यशेखरौ॥११०॥
अथार्द्धरात्रिसमयपर्यंतं कृतसंगरा। संक्रुद्धा हन्तुमारेभे विषंगं दण्डनायिका॥१११॥
तं मूर्धनि निमग्नेन हलेनाकृष्य वैरिणम्। कठोरं ताडनं चक्रे मुसलेनाथ पोत्रिणी॥११२॥

सम्पत्करी आदि शक्ति दण्डाधिनायिकाओं ने कठोर अस्त्र से अन्य प्रमुख दानवों को विदीर्ण कर दिया।।१०१।। जब सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहे थे, उस समय तक दानवों की समस्त सेना ध्वस्त हो गयी अर्थात् कुछ मर गये, कुछ भाग गये, उसके बाद क्रुद्ध श्यामला देवी विशुक्र के साथ युद्ध करने लगीं।।१०२।। उस समय उन श्यामला मन्त्रिणी ने भीषण स्वर्गीय अस्त्र शस्त्र छोड़ने के द्वारा महान् युद्ध कर्म के द्वारा युद्ध किया।।१०३।।

उस समय वे देवी अपने बाणों से महापराक्रमी विशुक्र के तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्रों को काटती हुई तथा रथ के सारथी और ध्वजा एवं उसके धनुष की डोरी एवं धनुर्दण्ड को खण्ड खण्ड कर रही थीं, उसके बाद जब उसके समस्त आयुधों को नष्ट कर दिया, तब जलती हुई आग के समान कान्तिवाले ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र से विशुक्र को मार डाला और फिर चूर्ण शरीर होकर वह भूमि पर गिर गया।।१०४-१०५½।। प्रचण्ड मूसल का प्रहार करती हुई महोद्धता दण्डनाथा देवी ने विषंग के साथ युद्ध किया। उस दुष्ट दानव ने भी कालदण्ड के समान गदा को उठाकर भुजा से जैसा भीषण युद्ध कभी नहीं हुआ होगा, वैसा भीषण युद्ध किया।।१०५½-१०७।। उस समय गदायुद्ध में लगे वे दोनों योद्धा एक दूसरे के अंगों का मर्दन करते हुए प्रचण्ड अट्टहास करते हुए घूम रहे थे।।१०८।। वे दोनों उस युद्ध में एक-दूसरे का छेद (कमी) देखकर प्रहार कर रहे थे। अर्थात् निगाह चूकना देखकर प्रहार करते थे। उन दोनों महामुसलदण्ड के अग्रभागों के टकराने के शब्द से आकाश क्षोभित हो रहा था, इस प्रकार दण्डिनी और विषंग दोनों ही कठिनाई से हारने वाले योद्धा युद्ध कर रहे थे।।१०९-११०।। इस प्रकार आधीरात तक घोर युद्ध होता रहा, तब दण्डनायिका विषंग को मारने के लिये अत्यन्त क्रोधित हो गयीं।।१११।। तब उस वाराही दण्डनाथा देवी

ततो मुसलघातेन त्यक्तप्राणो महासुरः। चूर्णितेन शतांगेन समं भूतलमाश्रयत्॥११३॥
इति कृत्वा महत्कर्म मंत्रिणीदण्डनायिके। तत्रैव तं निशा शेषं निन्यतुः शिबिरं प्रति॥११४॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने विशुक्रविषंगवधो नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

।।समाप्तं तृतीयदिवसयुद्धम् ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

भण्डासुरवधोनाम

नवविंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अश्वानन महाप्राज्ञ वर्णितं मंत्रिणीबलम्। विषंगस्य वधो युद्धे वर्णितो दण्डनाथया॥१॥
श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि रणचक्रे पराक्रमम्। सोदरस्यापदं दृष्ट्वा भण्डः किमकरोच्छुचा॥२॥
कथं तस्य रणोत्साह कैः समं समयुध्यत। सहायाः केऽभवंस्तस्य हतभ्रातृतनूभुवः॥३॥

ने उस शत्रु को हल से खींचकर उसके शिर मूसल से कठोर प्रहार किया।।११२।। उसके मूसलधात से उस महादानव प्राण त्याग दिये। उसके अंग के सौ टुकड़े हो गये और फिर वह भूतल पर गिर गया।।११३।। इस प्रकार यह महान् कर्म करके मन्त्रिणी और दण्डनायिका दोनों देवियाँ शिविर की ओर चली गयी।११४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २८वाँ अध्याय विशुक्र विषंगवध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

।।तीसरा युद्ध दिवस समाप्त हुआ।।

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-२९

भण्डासुर वध वर्णन

अगस्त्य मुनि हयग्रीव से बोले! हे महाप्राज्ञ! हयग्रीव जी! आपने मन्त्रिणी देवी के बल का वर्णन किया है तथा युद्ध में दण्डनाथा द्वारा विषंग का वध वर्णन कर दिया।।१।। हे हयग्रीव! अब मैं रणचक्र में श्री ललितेश्वरी देवी का पराक्रम सुनना चाहता हूँ। अपने भाई की मृत्यु देखकर भण्डासुर ने क्रोध से क्या किया? उसका रण में क्या उत्साह रहा? किन किन के साथ उसने युद्ध किया तथा जिसके भाई और पुत्र सब मर गये उस भण्डासुर के सहायक कौंन हुए?।।२-३।।

हयग्रीव उवाच

इदं शृणु महाप्राज्ञ सर्वपापनिकृंतनम्। ललिताचरितं पुण्यमणिमादिगुणप्रदम्॥४॥
वैषुवायनकालेषु पुण्येषु समयेषु च। सिद्धिदं सर्वपापघ्नं कीर्तिदं पञ्चपर्वसु॥५॥
तदा हतौ रणे तत्र श्रुत्वा निजसहोदरौ। शोकेन महताविष्टो भण्डः प्रविललाप सः॥६॥
विकीर्णकेशो धरणौ मूर्छितः पतितस्तदा। न लेभे किंचिदाश्वासं भ्रातृव्यसनकर्शितः॥७॥
पुनः पुनः प्रविलपन्कुटिलाक्षेण भूरिशः।
आश्वास्यमानः शोकेन युक्तः कोपमवाप सः॥८॥
फालं वहन्नतिक्रूरं भ्रमद्भ्रुकुटिभीषणम्। अंगारपाटलाक्षश्च निःश्वसन्कृष्णसर्पवत्॥९॥
उवाच कुटिलाक्षं द्राक्समस्तपृतनापतिम्।
क्षिप्रं मुहुर्मुहुः स्पृष्ट्वा धुन्वानः करवालिकाम्॥१०॥
क्रोधहुंकारमातन्वन्गार्जन्नुत्पातमेघवत् ॥११॥
ययैव दृष्टया मायाबलाद्युद्धे विनाशिताः। भ्रातरो मम पुत्राश्च सेनानाथाः सहस्रशः॥१२॥
तस्याः स्त्रियाः प्रमत्तायाः कण्ठोत्थैः शोणितद्रवैः।
भ्रातृपुत्रमहाशोकवह्निं निर्वापयाम्यहम्॥१३॥
गच्छ रे कुटिलाक्ष त्वं सज्जीकुरु पताकिनीम्। इत्युक्त्वा कठिनं वर्म वज्रपातसहं महत्॥१४॥
दधानो भुजमध्येन बध्नन्पृष्ठ तथेषुधी। उद्दाममौर्विनिःश्वासकठोरं भ्रामयन्धनुः॥१५॥

हयग्रीव बोले कि हे महाप्राज्ञ आगस्त्य जी अब सब पापों को नष्ट करने वाले अणिमा आदि गुणों को प्रदान करने वाले बुरे समयों में और पुण्य समयों में सिद्धि प्रदान करने वाले, पापों का नष्ट करने वाले, पाँच पर्वों में कीर्ति प्रदान करने वाले ललितेश्वरी देवी के इस पुण्य चरित को सुनिये।।४-५।। वह है कि जब रण में अपने दोनों भाइयों विशुक्र और विषंग का वध सुना, तब उनका वध सुनकर दैत्यराज भण्ड महान् शोक से युक्त होकर बहुत अधिक विलाप करने लगा।।६।। और तब वह अपने केशों को बिखेर कर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और अपने भाइयों की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी, वह कुछ श्वास भी न ले सका।।७।। पुनः पुनः उठ उठ कर बहुत अधिक विलाप करता हुआ अनेकों बार अपने मन्त्री कुटिलाक्ष द्वारा समझाया जाता हुआ, वह क्रोधित हो गया।।८।।

अपने समस्त परिवार के विनाश से क्रोधित फाल को वहन करता हुआ अंगार के समान लाल आँखें कर काले नाग की भाँति श्वास लेता हुआ शीघ्र बार-बार तलवार और धनुषों को छूकर, क्रोध से हुंकार भरता हुआ एवं प्रलयकालीन मेघ की तरह गरजता हुआ वह दैत्य राज भण्ड क्रोध से भौंहे घुमाने वाले अतिक्रूर सेनापति कुटिलाक्ष से बोला।।९-११।। जिस दुष्ट स्त्री ने युद्ध में माया बल से मेरे भाइयों और पुत्रों का विनाश कर दिया तथा हजारों सेनापतियों को उस प्रमत्त स्त्री के कण्ठ से निकले हुए रक्त से भ्राताओं और पुत्रों की महाशोकाग्नि को मैं शान्त करूँगा।।१२-१३।। इसलिये अरे कुटिलाक्ष तुम जाओ और सेना को तैयार करो। इस प्रकार कहकर वज्रपात को भी सहन करने वाले कठिन कवच को भुजाओं के मध्य छाती पर धारण करता हुआ तथा पीठ पर तरकश बाँधता हुआ तथा कठोर प्रत्यञ्चा वाले कठोर धनुष को धारण करता हुआ प्रलयकालीन अग्नि के समान क्रोधित होकर अपने

कालाग्निरिव संक्रुद्धो निर्जगाम निजात्पुरात्। तालजंघादिकैः सार्द्धं पूर्वद्वारे निवेशिते॥१६॥
चतुर्भिर्धृतशस्त्रौघैर्घृतवर्मभिरुद्धतैः। पञ्चत्रिंशच्चमूनाथैः कुटिलाक्षपुरःसरैः॥१७॥
सर्वसेनापतींद्रेण कुटिलाक्षेण स क्रुधा। मिलितेन च भण्डेन चत्वारिंशच्चमूवराः॥१८॥
दीप्तायुधा दीप्तकेशा निर्जग्मुर्दीप्तकंकटाः।
द्विसहस्राक्षौहिणीनां पञ्चाशीतिः परार्धिका॥१९॥
तदेनमन्वगादेकहेलया मथितुं द्विषः। भण्डासुरे विनिर्याते सर्वसैनिकसंकुले॥२०॥
शून्यके नगरे तत्र स्त्रीमात्रमवशेषितम्। आभिलो नाम दैत्येंद्रो रथवर्यो महारथः।
सहस्रयुग्यसिंहाढ्यमारुरोह रणोद्धतः॥२१॥
तत्वरे विज्वलज्ज्वालाकालाग्निरिव दीप्तिमान्।
घातको नाम वै खड्गश्चंद्रहाससमाकृतिः॥२२॥
इतस्ततश्चलंतीनां सेनानां धूलिरुत्थिता। वोढुं तासां भरं भूमिरक्षमेव दिवं ययौ॥२३॥
केचिद्भूमेरपर्याप्ताः प्रचेलुर्व्योमवर्त्मना। केषांचित्स्कंधमारूढाः केचिच्चेलुर्महारथाः॥२४॥
न दिक्षु न च भूचक्रे न व्योमनि च ते ममुः। दुःखदुखेन ते चेलुरन्योन्याश्लेषपीडिताः॥२५॥
अत्यंत सेनासंमर्दाद्रथचक्रैर्विचूर्णिताः। केचित्पादेन नागानां मर्दिता न्यपतन्भुवि॥२६॥

नगर से निकल पड़ा।।१४-१५½।। उस समय उसके साथ पूर्वद्वार पर नियुक्त तालजंघादिक थे तथा चार शस्त्रों को धारण करने वाले कवचों से युक्त पैंतीस सेनापति थे, जनके आगे प्रधान सेनापति कुरिलाक्ष थे।।१५½-१७।। इस प्रकार सब सेनापतियों कुटिलाक्ष और भण्डासुर का मिलाकर कुछ चालीस मुख्य श्रेष्ठ सेनापति थे।।१८।। दो सौ पिचासी अक्षौहिणी सेना चमकते हुए आयुधों, चमकते हुए केशों और चमकते हुए कवचों के साथ दैत्यराज भण्ड के साथ निकल पड़ी। यह सेना शत्रु को नष्ट करने के लिए एक बार ही पूरी शक्ति से आक्रमण करने वाली थी।।१९-१९½।। समस्त सेना के साथ भण्डासुर जब नगर से निकल गया, तब उस शूने नगर में केवल स्त्रियां ही रह गयीं थीं।।१९½-२०½।। तब वहाँ आमिल नामक दैत्यराज जो महारथी और युद्ध में उच्च श्रेणी की कुशलता रखता था, वह हजार सिंह जुड़े हुए रथ पर चढ़ गया।।२१।। उसके हाथ में विशेष जलती ज्वाला वाली प्रलयाग्नि के समान चमकती घातक नाम की चन्द्रहास के समान आकृति वाली तलवार थी।।२२।। इधर चलती हुई सेनाओं की उठी हुई धूलि, सेना के भार को सहने के लिए आकाश में चली गयीं। भाव यह कि उस सेना का इतना अधिक भार था कि अगर धूलि उठकर स्वर्ग को न जाती तो भूमि भी सेना के भार को सहन न कर पाती। धूलि का स्वर्ग को जाने से यह भी ध्वनित होता है कि इतनी अधिक धूलि उठी कि उसने पृथ्वी पर भार इतना कम कर दिया कि वह पृथ्वी सेना के भारको आसानी से सह सके। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार का भी प्रयोग है।।२३।। सेना में कुछ लोगों को तो भूमि ही कम पड़ गयी, इसलिये वे आकाशमार्ग से चले। यहाँ तक कि चलने में भूमि कम पड़ जाने के कारण कुछ सैनिकों के कंधों पर चढ़कर कुछ महारथी चले।।२४।। यहाँ तक न दिशाओं में जगह रही, न भूचक्र में जगह रही और न आकाश में ही जगह रह गयी, तब कुछ सैनिक दुःख दुःख के साथ एक-दूसरे से सटते हुए चले।।२५।। वहाँ कुछ लोग चलती हुई सेना के पैरों कुचल गये, कुछ रथ के पहिये के नीचे चूर्ण बन गये और कुछ हाथियों के

इत्थं प्रचलिता तेन समं सर्वैश्च सैनिकैः। वज्रानिष्पेषसदृशो मेघनादो व्यधीयत॥२७॥
तेनातीव कठोरेण सिंहनादेन भूयसा। भण्डदैत्यमुखोत्थेन विदीर्णमबवज्जगत्॥२८॥
सागराः शोषमापन्नाश्चंद्रार्कौ प्रपलायितौ। उडूनि न्यपतन्व्योम्नो भूमिर्दोलायिताभवत्॥२९॥
दिङ्नागाश्चाभवंस्त्रस्ता मूर्च्छिताश्च दिवौकसः।
शक्तीनां कटकं चासीदकाण्डत्रासविह्वलम्॥३०॥
प्राणान्संधारयामासुः कथंचिन्मध्य आहवे। शक्तयो भयविभ्रष्टान्यायुधानि पुनर्दधुः॥३१॥
वह्निप्राकारवलयं प्रशांतं पुनरुत्थितम्। दैत्येंद्रसिंहनादेन चमूनाथधनुःस्वनैः॥३२॥
क्रंदनैश्चापि योद्धृणामभूच्छब्दमयं जगत्। तेन नादेन महता भंडदैत्यविनिर्गमम्।
निश्चित्य ललिता देवी स्वयं योद्धुं प्रचक्रमे॥३३॥
अशक्यमन्यशक्तीनामाकलय्य महाहवम्। भण्डदैत्येन दुष्टेन स्वयमुद्योगमास्थिता॥३४॥
चक्रारजरथस्तस्याः प्रचचाल महोदयः। चतुर्वेदमहाचक्रपुरुषार्थमहाभयः॥३५॥
आनन्दध्वजसंयुक्तो नवभिः पर्वभिर्युतः। नवपर्वस्थदेवीभिराकृष्टगुरुधन्विभिः॥३६॥
परार्धाधिकसंख्यातपरिवारसमृद्धिभिः। पर्वस्थानेषु सर्वेषु पालितः सर्वतो दिशम्॥३७॥
दशयोजनमुन्नद्धश्चतुर्योजन विस्तृतः। महाराज्ञीचक्रराजो रथेंद्रः प्रचलन्बभौ॥३८॥
तस्मिन्प्रचलिते जुष्टे श्यामया दंडनाथया। गेयचक्रं तु बालाग्रे किरिचक्रं तु पृष्ठतः॥३९॥

पैरों के मसले हुए होकर भूमि पर गिर गये।।२६।। इस प्रकार समस्त सैनिकों के साथ चलते हुये उस दैत्यराज भण्ड ने वज्रपात होने के समान मेघनाद किया।।२७।। इस प्रकार वह बार-बार घोर सिंहनाद कर रहा था, अतः उस दैत्यराज भण्ड के मुख से उठे हुए घोर सिंहनाद से समस्त संसार विदीर्ण हो गया।।२८।। सागर सूखने लगे, चन्द्र और सूर्य भागने लगे तारागण (नक्षत्र) आकाश से नीचे गिरने लगे तथा पृथ्वी झूले की भाँति झूलने लगी।।२९।। दिशाओं के हाथी (दिग्गज) भयभीत हो गये, देवता लोग मूर्च्छित हो गये तथा असमय में उत्पन्न भय से व्याकुल शक्तियों की सेना हो गयी।।३०।। शक्तियां किसी भी प्रकार युद्ध के मध्य प्राण धारण कर रही थीं तथा वे भय से भ्रमित होकर आयुधों को पुनः धारण कर रही थीं। सेनापतियों के धनुष की टंकारों की ध्वनियों से तथा उस दैत्यराज भण्ड के नाद से, शक्ति सेना शिविर के चारों ओर आग का प्राकार (परकोटा) प्रशान्त होकर पुनः धधक उठा।।३१-३२।।

योद्धाओं के चिल्लाने से सारा संसार शब्दमय हो गया और भण्डासुर के उस नाद से श्री ललिता देवी ने समझ लिया कि अब भण्डासुर युद्ध क्षेत्र में आ गया, अतः वे भी स्वयं युद्ध करने चली आयीं।।३३।। अन्य शक्तियों की युद्ध में उसके साथ असमर्थता समझकर वे ललितादेवी भण्ड दैत्य के साथ युद्ध करने को स्वयं ही तैयार हो गयीं।।३४।। तब उन देवी का महोन्नत चक्रराजरथ चल दिया, जो रथ चार वेदों के महाचक्र पुरुषार्थ का महाभय रूप है।।३५।। तथा वह रथ आनन्द ध्वजा से संयुक्त था तथा नौ पर्वों से युक्त था। उस रथ के नवा पर्व (भाग) पर विशाल धनुषों को खींचे देवियां स्थित थीं। उन देवियों की संख्या परार्ध से अधिक थी, जो परिवार से समृद्ध थी।।३६-३६½।। सब पर्व स्थानों में सब दिशाओं में रक्षित पालित दशयोजन ऊँचा और चार योजन विस्तृत महाराज्ञी का चक्रराजरथ चलता हुआ सुशोभित हुआ।।३६½-३८।। महाराज्ञी ललितेश्वरी के उस रथ के चलने पर श्यामला देवी दण्डनाथा का गेयचक्र तो बाला के आगे और किरिचक्र उसके पीछे था।।३९।।

अन्यासामपि शक्तीनां वाहनानि परार्द्धशः। नृसिंहोष्ट्रनरव्यालमृगपक्षिहयास्तथा॥४०॥
गजभेरुण्डशरभ व्याघ्रवातमृगास्तथा। एतादृशश्च तिर्यंचोऽप्यन्ये वाहनतां गताः॥४१॥
मुहुरुच्चावचाः शक्तीर्भंडासुरवधोद्यताः। योजनायामविस्तारमपि तदद्वारमंडलम्।
वह्निप्राकारचक्रस्य न पर्याप्तं चमूपतेः॥४२॥
ज्वालामालिनिका नित्या द्वारस्यात्यंतविस्तृतिम्।
विततान समस्तानां सैन्यानां निर्गमैषिणी॥४३॥
अथ सा जगतां माता महाराज्ञी महोदया। निर्जगामाग्निपुरतो वरद्वारात्प्रतापिनी॥४४॥
देवदुंदुभयो नेदुः पतिताः पुष्पवृष्टयः। महामुक्तातपत्रं तद्दिवि दीप्तमदृश्यत॥४५॥
निमित्तानि प्रसन्नानि शंसकानि जयश्रियाः। अभवँल्ललितासैन्ये उत्पातास्तु द्विषां बले॥४६॥
ततः प्रववृते युद्धं सेनयोरुभयोरपि। प्रसर्पद्विशिखैः स्तोमबद्धान्धतमसच्छटम्॥४७॥
हन्यमानगजस्तोमसृतशोणितबिंदुभिः। ह्रीयमाणशिरश्छन्नदैत्यश्वेततातपत्रकम्॥४८॥
न दिशो न नभो नागा न भूमिर्न च किंचन। दृश्यते केवलं दृष्टं रजोमात्रं च मूर्च्छितम्॥४९॥
नृत्यत्कबंधनिवहाविर्भूततटपादपम्। दैत्यकेशसहस्त्रैस्तु शैवालांकुरकोमला॥५०॥
श्वेतातपत्रयवलयश्वेतपंकजभासुरा। चक्रकृत्तकरिग्रामपादकूर्मपरंपरा॥५१॥

अन्य शक्तियों के वाहनों की संख्या परार्द्ध (एकशंख) थी। नृसिंह, ऊँट नर, व्याल, मृग, पक्षि, घोड़ा, हाथी, भेरुण्ड (शृङ्गाल) शरभ, व्याघ्र तथा वातमृग ऐसे ही अन्य पक्षी भी उनके वाहन थे।।४१।। बार-बार ऊँची नींची शक्तियां भण्डासुर के वध के लिये उद्यत थीं। इसलिये शक्ति सेना के शिविर के जो द्वार थे, उनका क्षेत्रफल विस्तार तथा सुरक्षा की विशेष योजना की जा रही थी। सेनापति के लिये शिविर के चारों ओर बना हुआ अग्नि का प्राकार सुरक्षा के लिये पर्याप्त नहीं था।।४२।। अतः ज्वालामालनिका नित्या ने शिविर के द्वारों पर अत्यन्त विस्तृत सुरक्षा व्यवस्था कर दी थी। समस्त सैनिकों के निकलने की इच्छा का विस्तार कर दिया गया था। अर्थात् द्वारों पर ऐसी व्यवस्था कर दी गयी थी कि सेना आसानी से निकल सके।।४३।। इसके बाद वे संसार की माता महाराज्ञी महोदया श्री ललितेश्वरी पराक्रमशालिनी देवी अग्निपुर के वर द्वार से बाहर निकलीं।।४४।।

अतः उन महाराज्ञी के युद्धार्थ बाहर निकलने पर देवता लोग ढोल नगाड़े बजाने और फूलों की वर्षा करने लगे। महामोतियों का छत्र आकाश चमकता हुआ दिखाई देने लगा।।४५।। ललिता देवी की सेना में जयलक्ष्मी प्राप्त कराने वाले शुभ शकुन होने लगे तथा शत्रुओं की सेना में उत्पात रूप अपशकुन हो रहे थे।।४६।। उसके बाद दोनों दलों में युद्ध होने लगा। अतः उस समय अनेक बाणों के चलने से चारों ओर घोर अन्धकार छा गया।।४७।। बाणों से मारे गये हाथियों के बहुत अधिक बहते हुए खून की बूँदों को देखकर लज्जित हुए दैत्य अपने श्वेतछत्र से शिरको टेके हुए थे।।४८।। उस समय न दिशायें दिखाई दे रही थीं, न आकाश दिखाई दे रहा था, न पर्वत, न भूमि कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था। दिखायी दे रहा था तो केवल घोर अन्धकार।।४९।। उस समय में सिर कटे शरीर अर्थात् नाँचते ऐसे लग रहे थे मानों कि खून की नदी के किनारे वृक्ष खड़े हुए हैं तथा वहाँ मरे हुए दैत्यों के केश खून की नदी में शिवार के कोमल अंकुर की भाँति लग रहे थे।।५०।। दैत्यों के जो श्वेत छत्र थे, वे खून की नदी में श्वेत कमल की भाँति चमक रहे थे तथा शक्ति सेना के चक्रों से काटे गये हाथी नदी में कछुओं की परम्परा को सिद्ध कर

शक्तिध्वस्तमहादैत्यगलगंडशिलोच्चया। विलूनकांडैः पतितैः सफेना बल चामरैः॥५२॥
तीक्ष्णासिवल्लरीजालैर्निबिडीकृततीरभूः। दैत्यवीरेक्षणश्रेणिमुक्तिसंपुटभासुरा॥५३॥
दैत्यवाहनसंघातन क्रमीनशातुकाल। प्रावहच्छोणितनदी सेनयोर्युध्यमानयोः॥५४॥
इत्थं प्रववृते युद्धं मृत्योश्च त्रासदायकम्। चतुर्थयुद्धदिवसे प्रातरारभ्यभीषणम्।
प्रहरद्वयपर्यंतं सेनयोरुभयोरपि॥५५॥
ततः श्रीललितादेव्या भंडस्याथाभवद्रणः। अस्त्रप्रत्यस्त्रसंक्षोभैस्तुमुलीकृतदिक्तटः॥५६॥
धनुर्ज्यातलटंकारहुंकारैरतिभीषणः। तूणीरवदनात्कृष्टधनुर्वरविनिःसृतैः।
विमुक्तैर्विशिखैर्भीमैराहवे प्राणहारिभिः॥५७॥
हस्तलाघववेगेन न प्राज्ञायत किंचन। महाराज्ञीकरांभोजव्यापारं शरमोक्षणे।
शृणु सर्वं प्रवक्ष्यामि कुम्भसंभव सङ्गरे॥५८॥
संधाने त्वेकधा तस्य दशधा चापनिर्गमे। शतधा गगने दैत्यसैन्यप्राप्तौ सहस्त्रधा।
दैत्यांगसंगे संप्राप्ताः कोटिसंख्याः शिलीमुखाः॥५९॥

रहे थे; क्योंकि हाथी और कच्छप (कछुओं) का रंग एक समान ही होता है, अतः उस खून की नदी में कटकर पड़े हुए हाथी कछुओं की भाँति दिखायी दे रहे थे।।५१।। जैसे कि नदी में बाढ़ आती है, तो वह पहाड़ों को तोड़ती है तथा शिलाओं के गिरने से, जो उसमें फेन, बुदबुदे झाग उठता है, अतः वहाँ ठीक उसी प्रकार उस खून की बाढ़ वाली नदी में दैत्यों के गले और गण्डस्थलों के गिरने से तथा कटकर गिरे हुए शरीर के टुकड़ों से सेनापतियों पर ढुलने वाले चँवरों के टूट-फूट कर गिरने से ऐसा लगता था कि मानों वह फेनयुक्त खून की नदी हो; क्योंकि चँवरों का रंग सफेद होता है तथा फेन भी सफेद ही होता है। अतः बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव भी है।।५२।। तेज तलवारों रूपी लताओं के समूहों से खून की नदी के किनारों पर पक्षियों के घोंसले बने हुए के समान लग रहे थे, जो दैत्य वीरों के मुक्ति के क्षण को प्रकाशित कररहे थे।।५३।। उस समय में जो दैत्यों के वाहन टूट गये थे, वे उस खून की नदी में व्याकुल नाके (मगर) और मछलियों की भाँति प्रतीत हो रहे थे। ऐसी उस दोनों सेनाओं के युद्ध में खूनकी नदी बहने लगी।।५४।। इस प्रकार का भयावह युद्ध दोनों सेनाओं के बीच हो रहा था। वह युद्ध चौथे दिवस में भी प्रातःकाल दो पहर तक युद्ध चल ही रहा था।।५५।। तब दूसरे पहर श्री ललिता देवी और भण्डासुर का युद्ध प्रारम्भ हो गया, तब वहाँ दोनों ओर के अस्त्र-शस्त्रों के टकराने से धनुष की प्रत्यञ्चाओं के तलों की टंकार और हुंकार ध्वनियों से तरकश के मुख से खींचकर श्रेष्ठ धनुष पर रखकर छोड़े गये प्राणहरण करने वाले तीक्ष्ण बाणों से समस्त दिशायें भयंकर कोलाहल और हाहाकार की आवाजों से गूँज उठीं।।५६।। उस समय महाराज्ञी ललिता देवी के करकमल व्यापार से जो बाण छोड़े जा रहे थे, वे इतने हल्के हाथ से चलाये जा रहे थे कि पता ही नहीं चलता था कि कब धनुष पर रखा, कब चलाया? अर्थात् उस समय कुछ भी पता नहीं चल रहा था।।५७।।

अब हयग्रीव अगस्त्य मुनि से बोले कि हे अगस्त्य! अब सुनो, उस युद्ध में जो हुआ, वह सब मैं तुम्हें बताता हूँ कि वे देवी धनुष पर एक बाण रखती थी कि उस धनुष से दश बाण निकलते थे और फिर आकाश में सौ हो जाते थे तथा वे बाण जब सेना में पहुँचते थे तो तब एक हजार बाण हो जाते थे तथा जब शत्रु सेना के अंगों पर प्रहार करते थे, तब एक करोड़ हो जाते थे। इस प्रकार एक छोड़े गये बाण के एक करोड़ बाण बन जाते थे।।५८-५९।।

परांधकारं सृजती भिंदती रोदसी शरैः। मर्माभिनत्प्रचंडस्य महाराज्ञी महेषुभिः॥६०॥
वहत्कोपारुणं नेत्रं ततो भंडः स दानवः। ववर्ष शरजालेन महता ललतेश्वरीम्॥६१॥
अंधतामिस्रकं नाम महास्त्रं प्रमुमोच सः। महातरणिबाणेन तन्नुनोद महेश्वरी॥६२॥
पाखंडास्त्रं महावीरो भंडः प्रमुमुचे रणे। गायत्र्यस्त्रं तस्य नुत्यै ससर्ज जगदंबिका॥६३॥
अंधास्त्रमसृजद्भंडः शक्तिदृष्टिविनाशनम्। चाक्षुष्मतमहास्त्रेण शमयायास तत्प्रसूः॥६४॥
शक्तिनाशाभिधं भंडो मुमोचास्त्रं महारणे। विश्वावसोरथास्त्रेण तस्य दर्पमपाकरोत्॥६५॥
अन्तकास्त्रं ससर्जोच्चैः संक्रुद्धो भंडदानवः। महामृत्युंजयास्त्रेण नाशयामास तद्बलम्॥६६॥
सर्वास्त्रस्मृतिनाशाख्यमस्त्रं भंडो व्यमुंचत। धारणास्त्रेण चक्रेशी तद्बलं समनाशयत्॥६७॥
भयास्त्रमसृद्भंडः शक्तीनां भीतिदायकम्। अभयंकरमैंद्रास्त्रं मुमुचे जगदंबिका॥६८॥
महारोगास्त्रमसृजच्छक्तिसेनासु दानवः। राजयक्ष्मादयो रोगास्ततोऽभूवन्सहस्रशः॥६९॥
तन्निवारणसिद्ध्यर्थं ललिता परमेश्वरी। नामत्रयमहामंत्रमहास्त्रं सा मुमोच ह॥७०॥
अच्युतश्चाप्यनंतश्च गोविंदस्तु शरोत्थिताः। हुंकारमात्रतो दग्ध्वा रोगांस्ताननयन्मुदम्॥७१॥

नत्वा च तां महेशानीं तद्भक्तव्याधिमर्दनम्।
विधातुं त्रिषु लोकेषु नियुक्ताः स्वपदं ययुः॥७२॥

उस समय महाराज्ञी ललिता देवी बाणों से असीमित अन्धकार पैदा कर रही थीं, आकाश और पृथ्वी का भेदन कर रही थीं तथा महान् बाणों से प्रचण्ड दैत्य के मर्मस्थल का भेदन कर रही थीं।।६०।। यह सब देखकर क्रोध से लाल-लाल आँखे कर उस दानव ने ललितेश्वरी पर महान् बाणों को बरसाना प्रारम्भ कर दिया।।६१।। भण्डासुर ने उन पर अन्धतामिस्र नामक महास्त्र को छोड़ दिया। उसको महेश्वरी ने महातरणिबाण से बाट किया।।६२।। फिर उसके बाद उस दैत्य ने महेश्वरीपर पाखण्डास्त्र का प्रहार कर दिया, उसको काटने के लिये जगदम्बिका ने गायत्र्यस्त को छोड़ दिया।।६३।। उसके बाद भण्डासुर ललिता देवी की दृष्टि (देखने की शक्ति) को नष्ट करने के लिये अन्धास्त्र को उत्पन्न कर चला दिया, उसकी उत्पत्ति को देवी ने चाक्षुष्मत महा अस्त्र से शान्त कर दिया।।६४।। फिर भण्डासुर ने शक्तिनास नामक अस्त्र को उस महारण में छोड़ दिया, उसके दर्प को देवी ने विश्वावसु अस्त्र से दूर कर दिया।।६५।। फिर क्रोधित भण्डासुर ने सबसे उच्चस्तरीय, सबका अन्त करने वाले, अन्तकास्त्र को चला दिया तो महाराज्ञी ललितेश्वरी ने उस अन्तकास्त्र के बल को महामृत्युञ्जय अस्त्र से नष्ट कर दिया।।६६।। भण्डासुर ने फिर सर्वास्त्रस्मृतिनाश नामक अस्त्र को छोड़ा, अतः उसके बल को देवी ने धारणास्त्र से नष्ट कर दिया।।६७।। फिर भण्डासुर ने शक्तियों को भयभीत करने वाले भयास्त्र का प्रहार कर दिया, उसको काटने के लिये जगदम्बिका ने अभय कर देने वाले ऐन्द्रास्त्र को चला दिया।।६८।। तब दानव ने शक्ति सेनाओं पर महारोग नामक अस्त्र को उत्पन्न कर चला दिया, जिससे शक्ति सेना में हजारों को राजयक्ष्मा आदि रोग हो गये।।६९।। उनके निवारण के लिए ललिता परमेश्वरी देवी ने नामत्रय महामन्त्र नामक महान् अस्त्र को छोड़ दिया।।७०।। अच्युत, अनन्त और गोविन्द इन तीनों नामों वाले मन्त्र से अभिमन्त्रित मंत्र से निकले हुए बाण ने हुंकार मात्र से सब रोगों को नष्ट कर दिया। तब वे छोड़े गये बाण महेश्वरी ललिता देवी को नमस्कार करके समस्त रोगों का नाश करने के लिये तीनों लोकों में नियुक्त होकर अपने पद को प्राप्त हुये। अर्थात् वे तीन नामों से अभिमंत्रित बाण तीनों लोकों में रोग निवारक मन्त्र के रूप में स्थापित

आयुर्नाशनमस्त्रं तु मुक्तवान्भंडदानवः। कालसंकर्षणीरूपमस्त्रं राज्ञी व्यमुंचत॥७३॥
महासुरास्त्रमुद्दामं व्यसृजद्भंडदानवः। ततः सहस्रशो जाता महाकाया महाबलाः॥७४॥
मधुश्च कैटभश्चैव महिषासुर एव च। धूम्रलोचनदैत्यश्च चंडमुण्डादयोऽसुराः॥७५॥
चिक्षुभश्चामरश्चैव रक्तबीजोऽसुरस्तथा। शुम्भश्चैव निशुम्भश्च कालकेया महाबलाः॥७६॥
धूम्राभिधानाश्च परे तस्मादस्त्रात्समुत्थिताः। ते सर्वे दानवश्रेष्ठाः कठोरैः शस्त्रमंडलैः॥७॥
शक्तिसेनां मर्दयंतो नर्दन्तश्च भयंकरम्। हाहेति क्रन्दमानाश्च शक्तयो दैत्यमर्दिताः॥७८॥
ललितां शरणं प्राप्ताः पाहि पाहीति सत्वरम्। अथ देवी भृशं क्रुद्धा रुषाट्टहासमातनोत्॥७९॥
ततः समुत्थिता काचिद्दुर्गा नाम यशस्विनी। समस्तदेवतेजोभिर्निर्मिता विश्वरूपिणी॥८०॥
शूलं च शूलिना दत्तं चक्रं चक्रिसमर्पितम्। शंखं वरुणदत्तश्च शक्तिं दत्तां हविर्भुजा॥८१॥
चापमक्षयतूणीरौ मरुद्दत्तौ महामृधे। वज्रिदत्तं च कुलिशं चपकं धनदार्पितम्॥८२॥
कालदंडं महादंडं पाशं पाशधरार्पितम्। ब्रह्मदत्तां कुण्डिकां च घंटामैरावतार्पिताम्॥८३॥
मृत्युदत्तौ खड्गखेटौ हारं जलधिनार्पितम्। विश्वकर्मप्रदत्तानि भूषणानि च बिभ्रती॥८४॥
अङ्गैः सहस्रकिरणश्रेणिभासुररश्मिभिः। आयुधानि समस्तानि दीपयंति महोदयैः॥८५॥
अन्यदत्तैरथान्यैश्च शोभमाना परिच्छदैः। सिंहवाहनमारुह्य युद्धं नारायणी व्यधात्॥८६॥

हो गये।।७१-७२।। उसके बाद भण्डासुर ने आयुर्नाशन अस्त्र को छोड़ दिया। तब उसके काट के लिये महाराज्ञी ने कालकर्षणी रूप अस्त्र को छोड़ दिया।।७३।। फिर उस दानव ने महासुर नामक भीषण अस्त्र को चला दिया, उस अस्त्र के चलते ही विशाल शरीर वाले महाबली राक्षस पैदा हो गये।।७४।। उनमें मधु कैटभ और महिषासुर भी थे। धूम्रलोचन दैत्य चण्डमुण्ड आदि असुर भी थे।।७५।। चिक्षुभ, अमर, रक्तबीज असुर तथा शुम्भ निशुम्भ तथा महाबली कालकेय थे।।७६।। धूम्रासुर जैसे दैत्य उस अस्त्र से उठ खड़े हुए, वे सभी श्रेष्ठ दानव कठोर शस्त्र समूहों से युक्त थे।।७७।। वे सब शक्ति सेना का मर्दन कर रहे थे और भयंकर गर्जना कर रहे थे। तब उन दैत्यों द्वारा मर्दित शक्तियां चिल्लाने लगी शक्ति सेना में हाहाकार मच गया।।७८।। वे सब शक्तियाँ ललिता देवी की शरण में पहुँची और हमें बचाओ, हमें बचाओ यह चिल्लाने लगीं। इसके बाद श्री ललितेश्वरी अत्यन्त क्रोधित हो गयीं और क्रोध से उन्होंनें भारी अट्टहास किया।।७९।। उसके बाद उनके अट्टहास से समस्त देवताओं के तेज से निर्मित कोई दुर्गा नाम यशस्विनी देवी उठ खड़ी हुईं।।८०।। जिसको कि शूलधारी भगवान् शंकर ने शूल प्रदान किया था, विष्णु ने चक्र प्रदान किया था, वरुण ने शंख और अग्नि देवता ने शक्ति प्रदान की थी।।८१।।

उनको धनुष और कभी महायुद्ध में बाणों से रहित न होने वाला तरकश मरुत् देव ने प्रदान किया था, उनको इन्द्र द्वारा दिया हुआ कुलिश (वज्र) था और कुबेर द्वारा दिया गया मदिरा का प्याला था।।८२।। यमराज ने उन्हें कालदण्ड नामक महादण्ड दिया था और वरुण देवता ने पाश दिया था। ब्रह्मा द्वारा दी गयी कुण्डिका थी तथा ऐरावत का दिया हुआ घण्टा था।।८३।। मृत्यु के देवता ने उन्हें खड्ग और खेट दिये थे और समुद्र ने हार प्रदान किया था तथा विश्वकर्मा के दिये गये आभूषणों को वे धारण कर रही थीं।।८४।। सूर्य की रश्मियों से चमकने वाले अगों के महान् उदय से समस्त आयुध चमक रहे थे।।८५।। इसके बाद अन्य देवों द्वारा अन्य अन्य वस्त्र प्रदान किये गये वस्त्रों से सुशोभित सिंह वाहन पर आरूढ़ नारायणी युद्ध करने लगी।।८६।।

तदा ते महिषप्रख्या दानवा विनिपातिताः। चंडिकासप्तशत्यां तु यथा कर्म पुराकरोत्॥८७॥
तथैव समरं चक्रे महिषादिमदापहम्। तत्कृत्वा दुष्करं कर्म ललितां प्रणनाम सा॥८८॥
मूकास्त्रमसृजद्दुष्टः शक्तिसेनासु दानवः। महावाग्वादिनी नाम ससर्जास्त्रं जगत्प्रसूः॥८९॥
विद्यारूपस्य वेदस्य तस्करानसुराधमान्। ससर्ज तत्र समरे दुर्मदो भण्डदानवः॥९०॥
दक्षहस्ताङ्गुष्ठनखान्महाराज्ञ्या तिरस्कृतः। अर्णवास्त्रं महावीरो भण्डदैत्यो रणेऽसृजत्॥९१॥
तत्रोद्दामपयःपूरे शक्तिसैन्यं ममज्ज च। अथ श्रीललितादक्षहस्ततर्जनिकानखात्।
आदिकूर्मः समुत्पन्नो योजनायतविस्तरः॥९२॥
धृतास्तेन महाभोगखर्परेण प्रथीयसा। शक्तयो हर्षमापन्नाः सागरास्त्रभयं जहुः॥९३॥
तत्सामुद्रं च भगवान्सकलं सलिलं पपौ। हैरण्याक्षं महास्त्रं तु विजहौ दुष्टदानवः॥९४॥
तस्मात्सहस्त्रशो जाता हिरण्याक्षा गदायुधाः। तैर्हन्यमाने शक्तीनां सैन्ये संत्रासविह्वले।
इतस्ततः प्रचलिते शिथिले रणकर्मणि॥९५॥
अथ श्रीललितादक्षहस्तमध्याङ्गुलीनखात्। महावराहः समभूच्छ्वेतः कैलाससंनिभः॥९६॥
तेन वज्रसमानेन पोत्रिणाभिविदारिताः। कोटिशस्ते हिरण्यास्ता मर्द्यमानाः क्षयं गताः॥९७॥
अथ भण्डस्त्वतिक्रोधाद्भ्रुकुटीं विततान ह।
तस्य भ्रुकुटितो जाता हिरण्याः कोटिसंख्यकाः॥९८॥

तब उन नारायणी देवी ने महिषासुर आदि प्रमुख दानवों को मार कर गिरा दिया। चण्डिका ने सप्तशती में जो कार्य किया था, वही कार्य करके दिखा दिया।।८७।। तथा उन्होंने उसी प्रकार से युद्ध भी किया और महिषासुर के मद को नष्ट कर दिया, उस अत्यन्त कठिनतम कार्य को करने के बाद उन्होंने ललिता देवी को प्रणाम किया।।८८।। इसके बाद दुष्ट भण्ड दैत्य ने शक्ति सेनाओं पर मूक अस्त्र चलाया, तो श्री ललिता देवी ने महावाग् वादिनी नाम अस्त्र को उत्पन्न कर चला दिया।।८९।। पुनः दुर्मद भण्डासुर ने वहाँ युद्ध में विद्यारूपी वेद के तस्कर अधम असुरों को उत्पन्न कर दिया, उनको दाँये हाथ के अँगूठे के नाखून से महाराज्ञी ने बाहर कर दिया।।९०-९०½।। उसके बाद महावीर दैत्यराज भण्ड ने युद्ध में अर्णवास्त्र (समुद्र बनाने वाला अस्त्र) उत्पन्न कर चला दिया। उस बहुत अधिक बाढ़ पैदा करने वाले अस्त्र ने शक्ति सेना को डुबो दिया।।९०½-९१½।। इसके बाद श्री ललिता देवी ने दाँयें हाथ की तर्जनी अंगुली के नाखून से योजनायत विस्तार वाला आदिकूर्म (कच्छप) उत्पन्न कर दिया।।९१½-९२।। उस आदिकूर्म ने अपने अत्यन्त विशाल महाभोगखर्पर से उस अर्णवास्त्र को धर लिया। तव शक्तियां प्रसन्न हो गयीं; क्योंकि सागरास्त्र का भय नष्ट हो गया।।९३।।

उन भगवान् आदिकूर्म ने समस्त समुद्र के जल को पी लिया।।९३½।। फिर दुष्ट दानव हैरण्याक्ष नामक महास्त्र को प्रहार कर दिया। उस अस्त्र से गदा अस्त्र के साथ हजारों हिरण्याक्ष पैदा हो गये। उन हिरण्याक्षों द्वारा शक्तियों के मारे जाने से शक्ति सेना भय से व्याकुल हो गयी और शक्ति सेना रणकर्म में शिथिल होकर इधर उधर भागने लगी।।९३½-९५।। इसके बाद श्री ललिता ने दक्षिण हाथ की मध्य अंगुलि के नाखून से कैलास पर्वत के समान श्वेत महावाराह को उत्पन्न कर दिया।।९६।। उस वज्र के सामन दाँतों वाले महावाराह ने करोड़ों हिरण्याक्षों को फाड़कर मार डाला।।९७।। इसके बाद भण्डासुर ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपनी भौंहों का विस्तार किया, तव

ज्वलदादित्यवद्दीप्ता दीपप्रहरणाश्च ते। अमर्दयच्छक्तिसैन्यं प्रह्लादं चाप्यमर्दयन्।।९९।।
यः प्रह्लादोऽस्ति शक्तीनां परमानन्दलक्षणः।
स एव बालको भूत्वा हिरण्यपरिपीडितः॥१००॥
ललितां शरणं प्राप्तस्तेन राज्ञी कृपामगात्। अथ शक्त्या नन्दरूपं प्रह्लादं परिरक्षितुम्॥१०१॥
दक्षहस्तानामिकाग्रं धुनोति स्म महेश्वरी। तस्माद् धूतसटाजालः प्रज्वलल्लोचनत्रयः॥१०२॥
सिंहास्यः पुरुषाकारः कंठस्याधो जनार्दनः।
नखायुधः कालरुद्ररूपी गोराट्टहासवान्॥१०३॥
सहस्रसंख्यदोर्दण्डो ललिताज्ञानुपालकः। हिरण्यकशिपून्सर्वान्भंडभ्रुकुटिसंभवान्॥१०४॥
क्षणाद्विदारयामास नखैः कुलिशकर्कशैः। बलींद्रास्त्रं महाघोरं सर्वदैवतनाशनम्।
अमुंचल्ललिता देवी प्रतिभंडमहासुरम्॥१०५॥
तदस्त्रदर्पनाशाय वामनाः शतशोऽभवन्। महाराज्ञीदक्षहस्तकनिष्ठाग्रान्महौजसः॥१०६॥
क्षणेक्षणे वर्धमानाः पाशहस्ता महाबलाः। बलींद्रानस्त्रसंभूतान्बध्नंतः पाशबंधनैः॥१०७॥
दक्षहस्तकनिष्ठाग्राज्जाताः कामेशयोषितः।
महाकाया महोत्साहास्तदस्त्रं समनाशयन्॥१०८॥
हैहयास्त्रं समसृजद्भंडदैत्यो रणाजिरे। तस्मात्सहस्रशो जाताः सहस्रार्जुनकोटयः॥१०९॥

उसकी भौहों से करोड़ों हिरण्यकशिपु दैत्य पैदा हो गये।।९८।। जलते हुए सूर्य के समान दीप का प्रहार करने वाले थे, उन्होंने समस्त शक्ति सेना का मर्दन कर दिया और प्रह्लाद का भी मर्दन कर दिया।।९९।। शक्तियों के बीच में शक्तियों के परमानन्द लक्षण भी जो प्रह्लाद था, वह भी बालक होकर हिरण्यकशिपु द्वारा पीड़ित हुआ।।१००।। तब वह प्रह्लाद ललिता देवी की शरण में गया और इसके बाद उस नन्दरूप प्रह्लाद की रक्षा के लिये महाराज्ञी की कृपा हो गयी।।१०१।। तब देवी ने दाँये हाथ की अनामिका अंगुलि के नाखून को रगड़ा उससे श्वेत जटासमूह वाले आग के समान जलते हुए तीन नेत्र वाले नरसिंह भगवान् पैदा हो गये।।१०२।।

उनका मुख सिंह का था और शरीर का आकार पुरुष का था अर्थात् कण्ठ से ऊपर सिंह और नीचे वे पुरुष थे। नाखून ही उनके आयुध (अस्त्र-शस्त्र) थे और कालरुद्र रूप वाले वे घोर अट्टहास कर रहे थे।।१०३।। हजारों भुजदण्ड वाले वे ललितादेवी की आज्ञा का पालन करने वाले थे। उन्होंने भण्डासुर की भौहों से पैदा हुए समस्त हिरण्यकशिपुओं को अपने वज्र के समान कठोर नाखूनों से क्षणभर में फाड़कर फेंक दिया।।१०४-१०४½।। उसके बाद भण्ड ने बलीन्द्र नामक सब देवताओं का नाश करने वाला अस्त्र चला दिया, जिसको काटने के लिये ललिता देवी ने वामन अस्त्र को चला दिया, जिसने बलीन्द्र अस्त्र का दर्प नष्ट हो गया; क्योंकि वे सैकड़ों वामन हो गये।।१०४½-१०५½।। महाराज्ञी ने दाँये हाथ की कनिष्ठा अंगुलि से महापराक्रमी क्षण-क्षण बढ़ने वाले पाश हाथ में लिये महाबली वामनों ने अस्त्रधारी बलीन्द्रों को पाशबन्धनों से बाँध लिया।।१०५½-१०७।। उसके बाद देवी के दक्ष हाथ की कनिष्ठा अंगुलि से पैदा होने वाली महाकाया और महोत्साहा, कामेश स्त्रियों ने उस बलीन्द्र नामक अस्त्र को अच्छी तरह नष्ट कर दिया।।१०८।। फिर भण्डदैत्य ने रणक्षेत्र में हैहयास्त्र का प्रयोग कर दिया, जिससे करोड़ों सहस्रार्जुन पैदा हो गये।।१०९।।

अथ श्रीललितावामहस्तांगुष्ठनखादितः।
प्रज्वलन्भार्गवो रामः सक्रोधः सिंहनादवान्॥११०॥
धारया दारयन्नेतान्कुठारस्य कठोरया। सहस्रार्जुनसंख्यातान्क्षणादेव व्यनाशयन्॥१११॥
अथ क्रुद्धो भंडदैत्यः क्रोधाद्धुंकारमातनोत्। तस्माद्धुंकारतो जातश्चंद्रहासकृपाणवान्॥११२॥
सहस्राऽक्षौहिणीरक्षःसेनया परिवारितः। कनिष्ठं कुंभकर्णं च मेघनादं च नंदनम्।
गृहीत्वा शक्तिसैन्यं तदतिदूरममर्दयत्॥११३॥
अथ श्रीललितावामहस्ततर्जनिकानखात्। कोदंडरामः समभूल्लक्ष्मणेन समन्वितः॥११४॥
जटामुकुटवान्वल्लीबद्धतूणीरपृष्ठभूः। नीलोत्पलदलश्यामो धनुर्विस्फारयन्मुहुः॥११५॥
नाशयामास दिव्यास्त्रैः क्षणाद्राक्षससैनिकम्। मर्दयामास पौलस्त्यं कुंभकर्णं च सोदरम्।
लक्ष्मणो मेघनादं च महावीरमनाशयत्॥११६॥
द्विविदास्त्रं महाभीममसृजद्भंडदानवः। तस्मादनेकशो जाताः कपयः पिंगलोचना;॥११७॥
क्रोधेनात्यंतताम्रास्याः प्रत्येकं हनुमत्समाः।
व्यनाशयच्छक्तिसैन्यं क्रूरक्रेंकारकारिणः॥११८॥
अथ श्रीललितावामहस्तमध्यांगुलीनखात्।
आविर्बभूव तालांकः क्रोधमध्यारुणेक्षणः॥११९॥
नीलांबरपिनद्धांगः कैलासाचलनिर्मलः। द्विविदास्त्रसमुद्भूतान्कपीन्सर्वान्व्यनाशयत्॥१२०॥

इसके बाद श्री ललिता ने बाँये हाथ के अँगूठे के नाखून से क्रोध से जलते भार्गव परशुराम को पैदा कर दिया, जो सिंहनाद कर रहे थे।।११०।। जिस परशुराम ने कुठार की कठोर धार से सहस्रार्जुन की संख्याओं को क्षण भर में नष्ट कर दिया।।१११।। इससे क्रोधित होकर दैत्यराज भण्ड ने जोर से हुंकार पैदा की। उस हुंकार से चन्द्रहास तलवार वाला रावण पैदा हो गया, जो हजार अक्षौहिणी सेना से घिरा हुआ था, उसके साथ उसका भाई कुम्भकर्ण और उसका पुत्र मेघनाद पैदा हो गया। उन सबने शक्ति सेना को ग्रहण कर अत्यन्त दूर-दूर तक मर्दन किया।।११२-११३।। इसके बाद श्री ललिता देवी ने बाँये हाथ की तर्जनी अंगुलि के नाखून से लक्ष्मण सहित धनुषधारी राम को पैदा कर दिया।।११४।।

तब जटा और मुकुट वाले पीठ पर तरकश कसे हुए, नीलकमल पत्र के समान श्यामवर्ण राम ने बार बार धनुष को चलाते हुए अपने दिव्य अस्त्रों से क्षण भर में राक्षस सेना को रावण को और उसके सहोदर भ्राता कुम्भकर्ण को मार डाला और फिर लक्ष्मण ने महावीर मेघनाद को नष्ट कर दिया।।११५-११६।। उसके बाद भण्डासुर महाभयंकर द्विविदास्त्र को उत्पन्न कर दिया। उस द्विविदास्त्र ने अनेकों पीली आँखों वाले वानर पैदा हो गये।।११७।। क्रोध के कारण वे अत्यन्त लाल मुख वाले थे तथा सब हनुमान् के समान थे। उन क्रूर केंकार करने वाले वानरों ने शक्ति सेना का विनाश करना प्रारम्भ कर दिया।।११८।। इसके बाद श्री ललिता देवी के वामहस्त की अंगुलि के नाखून से क्रोध से लाल लाल आँखों वाला तालांक प्रकट हो गया। वह नील वस्त्र से युक्त अंग वाला, कैलास पर्वत के समान निर्मल वदन वाला था, उसने द्विविद अस्त्र से उत्पन्न हुए सब वानरों का विनाश कर दिया।।११९-१२०।।

राजासुरं नाम महत्ससर्जास्त्रं महाबलः। तस्मादस्त्रात्समुद्भूता बहवो नृपदानवाः॥१२१॥

शिशुपालो दंतवक्रः शाल्वः काशीपतिस्तथा।
पौंड्रको वासुदेवश्च रुक्मी डिंभकहंसकौ॥१२२॥

शंबरश्च प्रलंबश्च तथा बाणासुरोऽपि च। कंसश्चाणूरमल्लश्च मुष्टिकोत्पलशेखरौ॥१२३॥

अरिष्टो धेनुकः केशी कालियो यमलार्जुनौ। पूतना शकटश्चैव तृणावर्तादयोऽसुराः॥१२४॥

नरकाख्यो महावीरो विष्णुरूपी मुरासुरः।
अनेके सह सेनाभिरुत्थिताः शस्त्रपाणयः॥१२५॥

तान्विनाशयितुं सर्वान्वासुदेवः सनातनः। श्रीदेवीवामहस्ताब्जानामिकानखसंभवः॥१२६॥

चतुर्व्यूहं समातेने चत्वारस्ते ततोऽभवन्। वासुदेवो द्वितीयस्तु संकर्षण इति स्मृतः॥१२७॥

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च ते सर्वे प्रोद्यतायुधाः तानशेषान्दुराचारान्भूमेर्भारप्रवर्तकान्॥१२८॥

नाशयामासुरुर्वीशिवेषच्छन्नान्महासुरान्॥१२९॥

अथ तेषु विनष्टेषु संक्रुद्धो भंडदानवः। धर्मविप्लावकं घोरं कल्यस्त्रं सममुंचत॥१३०॥

ततः कल्यस्त्रतो जाता आंध्राः पुंड्राश्च भूमिपाः।
किराताः शबरा हूणा यवनाः पापवृत्तयः॥१३१॥

वेदविप्लावका धर्मद्रोहिणः प्राणहिंसकाः। वर्णाश्रमेषु सांकर्यकारिणो मलिनांगकाः।
ललिताशक्तिसैन्यानि भूयोभूयो व्यमर्दयन्॥१३२॥

फिर उस महाबली दैत्यराज भण्ड ने राजासुर नाम से अस्त्र को उत्पन्न कर दिया। उस अस्त्र से बहुत नृपदानव उत्पन्न हो गये।।१२१।। वे हैं—शिशुपाल, दन्तवक्र, शाल्व, काशीपति, पौण्ड्रक, वासुदेव, रुक्मी, डिंभक, हंसक, शंबर, प्रलंब तथा बाणासुर, कंश, चाणूर, मल्ल, मुष्टिक, उत्पल, शेखर, अरिष्ट, धेनुक, केशी, कालिय, यमलार्जुन, पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, आदि असुर। वे सब असुर राजासुर अस्त्र से उत्पन्न हो गये।।१२२-१२४।। इसके अलावा अनेकों नरक नामक महावीर विष्णुरूपी मुरासुर पैदा हो गये। वे सब अनेकों शस्त्र हाथों में लिये हुए सेनाओं के साथ उठ खड़े हुए।।१२५।। उन सबका विनाश करने को वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण श्री ललितादेवी के बाँयें हाथ के अनामिका अंगुलि के नाखून से उत्पन्न हो गये।।१२६।। उसके बाद चतुर्व्यूह के समान वे चार उत्पन्न हुए। वासुदेव उनमें प्रथम थे, दूसरे संकर्षण नाम से स्मरण किये गये।।१२७।। तीसरे प्रद्युम्न और चौथे अनिरुद्ध थे, वे सब अस्त्र-शस्त्र लेकर उत्पन्न हुये। उन चारों वीरों ने भूमि पर भार बने हुए तथा राजाओं के रूप में छिपे हुये दुराचारी महान् असुरों को नष्ट कर दिया।।१२८-१२९।।

इसके बाद उन सबके नष्ट हो जाने पर और अधिक क्रोधित हुए, उस दानवराज भण्ड ने धर्म में विप्लव पैदा करने वाले घोर कल्यस्त्र को छोड़ दिया।।१३०।। उसके बाद उस कल्यस्त्र से आन्ध्र, पुंड्र, किरात, शबर, हूण, यवन आदि पापी राजा लोग पैदा हो गये।।१३१।। जो सब वेद के नियमों में विप्लव पैदा करने (अर्थात् वेदों को न मानने वाले) धर्मद्रोही, प्राणहिंसक, वर्ण और आश्रमों में संकरता पैदा करने वाले और मलिन (गन्दे) शरीर वाले थे, जिन्होंने ललिता देवी की सेनाओं को पुनः पुनः मर्दन किया। अर्थात् वे शक्ति सेना का नाश करने लगे।।१३२।।

अथ श्रीललितावामहस्तपद्मस्य भास्वतः।
कनिष्ठिकानखोद्भूतः कल्किर्नाम जनार्दनः॥१३३॥
अश्वारूढः प्रदीप्त श्रीरट्टहासं चकार सः। तस्यैव ध्वनिना सर्वे वज्रनिष्पेषबंधुना॥१३४॥
किराता मूर्च्छिता नेशुः शक्त्यश्चापि हर्षिताः।
दशावतारनाथास्ते कृत्वेदं कर्म दुष्करम्॥१३५॥
ललितां तां नमस्कृत्य बद्धांजलिपुटाः स्थिताः।
प्रतिकल्पं धर्मरक्षां कर्तुं मत्स्यादिजन्मभिः।
ललितांबानियुक्तास्ते वैकुंठाय प्रतस्थिरे॥१३६॥
इत्थं समस्तेष्वेस्त्रेषु नाशितेषु दुराशयः। महामोहास्त्रमसृजच्छक्तयस्तेन मूर्छिताः॥१३७॥
शांभवास्त्रं विसृज्यांबा महामोहास्त्रमक्षिणोत्। अस्त्रप्रत्यस्त्रधाराभिरित्थं जाते महाहवे।
अस्तशैलं गभस्तीशो गंतुमारभतारुणः॥१३८॥
अथ नारायणास्त्रेण सा देवी ललितांबिका।
सर्वा अक्षौहिणीस्तस्य भस्मसादकरोद्रणे॥१३९॥
अथ पाशुपतास्त्रेण दीप्तकालानलत्विषा। चत्वारिंशच्चमूनाथान्महाराज्ञी व्यमर्दयत्॥१४०॥
अथैकशेषं तं दुष्टं निहताशेषबांधवम्। क्रोधेन प्रज्वलंतं च जगद्विप्लवकारिणम्॥१४१॥
महासुरं महासत्त्वं भंडं चंडपराक्रमम्। महाकामेश्वरास्त्रेण सहस्रादित्यवर्चसा।
गतासुमकरोन्माता ललिता परमेश्वरी॥१४२॥

इसके बाद श्री ललिता के चमकते हुए वामकर कमल की कनिष्ठिका अंगुलि से कल्कि नाम के जनार्दन पैदा हो गये।।१३३।। अश्व पर आरूढ उन्होंने अट्टहास किया, उनकी सब वज्र से पीसने के समान ध्वनि से सब किरात आदि मूर्च्छित हो गये और शक्तियाँ हर्षित हो गयीं। दश अवतारों के स्वामी वे यह दुष्कर कर्म कर ललिता देवी को नमस्कार करके ललिता देवी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। जो प्रत्येक कल्प में धर्म की रक्षा करने के लिये ललिता देवी द्वारा मत्स्यादि अवतारों के रूप में सदैव नियुक्त किये जाते थे, वे ललिता देवी की आज्ञा से वैकुण्ठ चले गये।।१३४-१३६।। इस प्रकार समस्त शस्त्रों के नष्ट हो जाने पर उस दुष्ट दैत्य ने महामोहास्त्र को उत्पन्न कर दिया, उससे सभी शक्तियां मूर्च्छित हो गयीं।।१३७।।

तब शाम्भव अस्त्र को उत्पन्न करके अम्बा ने महामोहास्त्र को नष्ट कर डाला। अस्त्र-शस्त्र की धाराओं से इस प्रकार हो रहे युद्ध में भगवान् सूर्य देव अस्ताचल की ओर चले गये और अरुण का प्रकाश होना प्रारम्भ हो गया।।१३८।। इसके बाद सायंकाल में उनदेवी ललिताम्बिका ने युद्ध क्षेत्र में नारायणास्त्र से उस दैत्य की समस्त अक्षौहिणी सेना को भस्मसात् कर दिया।।१३९।। इसके बाद दीप्तकालाग्नि के समान पाशुपत अस्त्र से महाराज्ञी ने भण्डासुर चालीस सेनापतियों को मार गिराया।।१४०।। इसके बाद जिसके सब भाई बन्धु मर चुके थे, जो केवल अकेला ही बच गया था, उस क्रोध से जलते हुए संसार में विप्लव (उत्पात) पैदा करने वाले प्रचण्ड पराक्रमी महासत्त्व महासुर भण्ड को सहस्र सूर्य के समान कान्ति वाले महाकामेश्वर अस्त्र से ललिता परमेश्वरी माता ने प्राणविहीन कर

तदस्त्रज्वालयाक्रान्तं शून्यकं तस्य पट्टनम्।
सस्त्रीकं च सबालं च सगोष्ठं धनधान्यकम्॥१४३॥
निर्दग्धमासीत्सहसा स्थलमात्रमशिष्यत। भंडस्य संक्षयेणासीत्त्रैलोक्यं हर्षनर्तितम्॥१४४॥
इत्थं विधाय सुरकार्यमनिंद्यशीला श्रीचक्रराजरथमंडलमंडनश्रीः।
कामेश्वरी त्रिजगतां जननी बभासे विद्योतमानविभवा विजयश्रियाढ्या॥१४५॥
सैन्यं समस्तमपि सङ्गरकर्मखिन्नं भंडासुरप्रबलबाणकृशानुतप्तम्।
अस्तं गते सवितरि प्रथितप्रभावा श्रीदेवता शिबिरमात्मन आनिनाय॥१४६॥
यो भंडदानववधं ललितांबयेमं क्लृप्तं सकृत्पठति तस्य तपोधनेन्द्र।
नाशं प्रयांति कदनानि धृताष्टसिद्धेर्भुक्तिश्च मुक्तिरपि वर्तत एव हस्ते॥१४७॥
इमं पवित्रं ललितापराक्रमं समस्तपापघ्नमशेषसिद्धिदम्।
पठंति पुण्येषु दिनेषु ये नरा भजंति ते भाग्यसमृद्धिमुत्तमाम्॥१४८॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने भंडासुरवधो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

॥समाप्तं च युद्धखंडम्॥

दिया॥१४१-१४२॥ उस शस्त्र की ज्वाला से आक्रान्त भण्डासुर के मन्त्री असुर शून्यक को, उसके नगर को स्त्रियों सहित, बालकों सहित, उनकी गोशालाओं को तथा उनके धनधान्य सहसा जला हुआ पाया गया, अतः अब वहाँ केवल स्थलमात्र शेष रह गया। तब दैत्यराज भण्ड के सपरिवार ससेन पूरी तरह नष्ट हो जाने पर तीनों लोक हर्ष से नाचने लगे॥१४३-१४४॥ इस प्रकार देवताओं के कार्य को करके अनिन्दनीय चरित्रवाली श्रीचक्रराजरथ मण्डल को सजाने वाली लक्ष्मी तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली कामेश्वरी विजयश्री से युक्त विशेष रूप से प्रकट होने वाले मान सम्मान से सुशोभित हुई॥१४५॥ उसके बाद भण्डासुर के प्रबल बाणों से दुर्बल और अत्यन्त सताये गये तथा युद्ध करने से थके हुए समस्त सैन्य समूह को सूर्य के अस्ताचल की ओर चले जाने पर अर्थात् दिन के छिपने पर श्री देवता ललितेश्वरी अपने शिविर में लेकर आ गयीं॥१४६॥ अब हयग्रीव अगस्त्य मुनि को इस पवित्र कथा श्रवण का महत्त्व एवं लाभ बताते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य श्री ललिता अम्बा के द्वारा इस दैत्यराज भण्ड के वध को एक बार पढ़ता है, हे तपोधनेन्द्र अगस्त्य जी! उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं तथा अष्टसिद्धियों का भोग और मुक्ति भी उसके हाथ में विद्यमान रहती है॥१४७॥ ललिता देवी के समस्त पापों को नष्ट करने वाले तथा सब कार्यों में सफलता देने वाले इस पवित्र ललिता देवी के पराक्रम को जो मनुष्य पढ़ते हैं तथा पुण्य दिनों में (विशेष पर्वों में) इनका भजन करते हैं, वे मनुष्य उत्तम भाग्य समृद्धि को प्राप्त करते हैं॥१४८॥

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में २९वाँ अध्याय भण्डासुर वध वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

॥युद्ध खण्ड समाप्त॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

मदनपुनर्भवो नाम

त्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अश्वानन महाप्राज्ञ श्रुतमाख्यानमुत्तमम्। विक्रमो ललितादेव्या विशिष्टो वर्णितस्त्वया॥१॥
चरितैरनघैर्देव्याः सुप्रीतोऽस्मि हयानन। श्रुता सा महती शक्तिर्मंत्रिणीदंडनाथयोः॥२॥
पश्चात्किमरोत्तत्र युद्धानंतरमंबिका। चतुर्थदिनशर्वर्यां विभातायां हयानन॥३॥

हयग्रीव उवाच

शृणु कुम्भज तत्प्राज्ञ यत्तया जगदंबया। पश्चादाचरितं कर्म निहते भंडदानवे॥४॥
शक्तीनामखिलं सैन्यं दैत्याधुधशतार्दितम्। मुहुराह्लादयामास लोचनैरमृताप्लुतैः॥५॥
ललितापरमेशान्याः कटाक्षामृतधारया। जहुर्युद्धपरिश्रांतिं शक्तयः प्रीतिमानसाः॥६॥
अस्मिन्नवसरे देवा भंडमर्दनतोषिताः। सर्वेऽपि सेवितुं प्राप्ता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः॥७॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्यास्त्रिदशास्तथा। आदित्या वसवो रुद्रा मरुतः साध्यदेवताः॥८॥
सिद्धाः किंपुरुषा यक्षा निर्ऋत्याद्या निशाचराः। प्रह्लादाद्या महादैत्याः सर्वेऽप्यंडनिवासिनः॥९॥
आगत्य तुष्टुवुः प्रीत्या सिंहासनमहेश्वरीम्॥१०॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३०

मदनपुनर्भव वर्णन

हयग्रीव अगस्त्य संवाद में भण्डासुरवधप्रसंग समाप्त होने के बाद अगस्त्य मुनि ने भगवान् हयग्रीव से कहा कि हे हयानन! महाप्राज्ञ! मैंने आप द्वारा वर्णित उत्तम आख्यान को सुना, जिसमें आपने ललिता देवी के पराक्रम का वर्णन किया है।।१।। हे हयानन! मैं श्रीललितेश्वरी देवी के पापरहित चरितों से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैंने मन्त्रिणी और दण्डनाथा देवियों की महती शक्ति को सुना।।२।। अतः अब हे हयानन! यह बताइये कि युद्ध के बाद चतुर्थ दिवस की रंगीन रात्रि में अम्बिका ललितेश्वरी ने क्या किया?।।३।।

हयग्रीव ने कहा—हे प्राज्ञ! (अगस्त्य जी) सुनिये कि उस जगदम्बाने दैत्यराज भण्ड के मरने पर बाद में जो आचरण किया।।४।। उसमें सबसे पहले उन्होंने दैत्यों के अस्त्र-शस्त्र से पीड़ित शक्ति सेना को अपने अमृतयुक्त नेत्रों से बार बार आह्लादित किया।।५।। ललितापरमेश्वरी के कटाक्ष की अमृत धारा से प्रसन्नचित्त वाली शक्ति सेना के युद्ध की थकान को दूर कराया।।६।। इस अवसर पर भण्डासुर के मरने से प्रसन्न हुए ब्रह्मा विष्णु आदि देवता तथा आदित्य (सूर्य), वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, साध्य देवता, सिद्धगण, किंपुरुष, यक्षगण, निर्ऋति आदि प्रह्लाद आदि महादैत्य सभी ब्रह्माण्डवासी ने आकर सिंहासीन महेश्वरी को प्रेमपूर्वक प्रसन्न किया।।७-१०।।

ब्रह्माद्या ऊचुः

नमोनमस्ते जगदेकनाथे नमोनमः श्रीत्रिपुराभिधाने।
नमोनमो भंडमहासुरघ्ने नमोऽस्तु कामेश्वरि वामकेशि॥११॥
चिंतामणे चिंतितदानदक्षेऽचिन्त्ये चिराकारतरंगमाले।
चित्राम्बरे चित्रजगत्प्रसूते चित्राख्यनित्ये सुखदे नमस्ते॥१२॥
मोक्षप्रदे मुग्धशशांकचूडेमुग्धस्मिते मोहनभेददक्षे।
मुद्रेश्वरीचर्चितराजतन्त्रे मुद्राप्रिये देवि नमोनमस्ते॥१३॥
क्रूरांतकध्वंसिनि कोमलांगे कोपेषु कालीं तनुमादधाने।
क्रोडानने पालितसैन्यचक्रे क्रोडीकृताशेषभये नमस्ते॥१४॥
षडंगदेवीपरिवारकृष्णे षडंगयुक्तश्रुतिवाक्यमृग्ये।
षट्चक्रसंस्थे च षडूर्मियुक्ते षड्भावरूपे ललिते नमस्ते॥१५॥
कामे शिवे मुख्यसमस्तनित्ये कांतासनांते कमलायताक्षि।
कामप्रदे कामिनि कामशंभोः काम्ये कलानामधिपे नमस्ते॥१६॥
दिव्यौषधाद्ये नगरौघरूपे दिव्ये दिनाधीशसहस्रकांते।
देदीप्यमाने दयया सनाथे देवाधिदेवप्रमदे नमस्ते॥१७॥

ब्रह्मा आदि ने कहा—कि हे संसार की एक मात्र स्वामिनी तुम को नमस्कार है। त्रिपुराभिधाना देवी तुम्हें नमस्कार है। हे भण्ड नामक महासुर को मारने वाली देवी तुम्हें नमस्कार है। हे कामेश्वरि! वामकेशि! तुम्हें नमस्कार है।।११।। हे चिन्तामणि! हे चिन्तित लोगों को दान देने में देवि! तुम्हें नमस्कार है। हे अचिन्त्ये! चिराकारतरंगमाले! हे चित्रवस्त्र वाली! हे इस जगत्‌रूपी चित्र को बनाने वाली, हे विचित्र नामक नित्य देवि! हे सुख देने वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१२।। हे मोक्ष प्रदान करने वाली, मुग्ध चन्द्रमा से युक्त शीश वाली, हे मुग्ध मुस्कान वाली, मोहनभेददक्षे! हे मुद्रा की स्वामिनी के रूप में राजतन्त्र व्यवस्था करने वाली, हे मुद्राप्रिये देवि तुम्हें नमस्कार है।।१३।। हे क्रूर आतंक को नष्ट करने वाली, हे कोमल अंग वाली, हे क्रोध में काली का शरीर धारण करने वाली, हे वराहमुखि! हे सैन्यचक्र को पालन करने वाली, भयहीन कर गले लगाने वाली देवी तुम्हें नमस्कार है।।१४।।

हे छः अंगों, दो जंघाएं, दो भुजाएं और दो आँखों से पूरी तरह पुष्ट देवि! हे वेदों के अंगों शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष के वाक्यों द्वारा खोजने योग्य देवि! हे शरीर के छः रहस्यमय चक्रों में स्थित देवि! तुम्हें नमस्कार है। (छः चक्र हैं—मूलाधार, अधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा) हे छः ऊर्मियुक्त! हे छः भावरूप ललिता देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१५।। हे इच्छा स्वरूपिणि! हे कल्याण करने वाली! हे मुख्य समस्त नित्ये! हे कान्तासन्ताने! हे कमल के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाली! हे शरीर काम पैदा करने वाली! हे कामिनि! हे कामशम्भो! हे कामना करने योग्य! हे कलाओं की स्वामिनि देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१६।। हे दिव्य औषधि आदि स्वरूप वाली देवि अर्थात् सभी औषधियाँ उस प्रकृति की रूप हैं। हे नगरसमूहे रूपे! हे दिव्ये! दिन के स्वामी सूर्य में सहस्र कान्ति वाली! अर्थात् सूर्य की कान्ति उन्हीं देवी प्रकृति (ललिता) का ही रूप है। हे देदीप्यमान देवि! हे दया

सदाणिमाद्यष्टकसेवनीये सदाशिवात्मोज्ज्वलमञ्चवासे।
सभ्ये सदेकालयपादपूज्ये सवित्रि लोकस्य नमोनमस्ते॥१८॥
ब्राह्मीमुखैर्मातृगणैर्निषेव्ये ब्रह्मप्रिये ब्रह्मणबंधभेत्रि।
ब्रह्मामृतस्त्रोतसि राजहंसि ब्रह्मेश्वरि श्रीललिते नमस्ते॥१९॥
संक्षोभिणीमुख्यसमस्तमुद्रासंसेविते संसरणप्रहंत्रि।
संसारलीलाकृतिसारसाक्षि सदा नमस्ते ललितेऽधिनाथे।
नित्ये कलाषोडशकेन नामाकर्षिण्यधीशि प्रमथेन सेव्ये॥२०॥
नित्ये निरांतकदयाप्रपंचे नीलालकश्रेणि नमोनमस्ते।
अनंगपुष्पादिभिरुन्नदाभिरनंगदेवीभिरजस्त्रसेव्ये ।
अभव्यहंत्र्यक्षरराशिरूपे हतारिवर्गे ललिते नमस्ते॥२१॥
संक्षोभिणीमुख्यचतुर्दशार्चिर्मालावृतोदारमहाप्रदीप्ते।
आत्मानमाबिभ्रति विभ्रमाढ्ये शुभ्राश्रये शुभ्रपदे नमस्ते॥२२॥
सशर्वसिद्धादिकशक्तिवन्द्ये सर्वज्ञविज्ञातपदारविंदे।
सर्वाधिके सर्वगते समस्तसिद्धिप्रदे श्रीललिते नमस्ते॥२३॥
सर्वज्ञजातप्रथमाभिरन्यदेवी भिरप्याश्रितचक्रभूमे।
सर्वामराकांक्षितपूरयित्रि सर्वस्य लोकस्य सवित्रि पाहि॥२४॥

से युक्त रहने वाली देवि! हे देवों के प्रकृष्ट मदवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१७।। हे सदैव अणिमा आदि आठ सिद्धियों से सेवनीये! सदैव शिव के साथ उज्ज्वल मंच पर वास करने वाली देवि! हे सत् रूप एक घर में निवास करने वाली तुम्हरो पाद पूजनीय हैं। हे संसार की सवितृ अर्थात् संसार को उत्पन्न करने वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१८।। हे ब्राह्मी आदि मुख्य मातृगणों से सेवनीय देवि! हे ब्रह्मप्रिये, हे ब्राह्मणों के बन्धनों को तोड़ने वाली (अर्थात् सामाजिक भेदभाव दूर करने वाली), हे ब्रह्मामृत विखेरने वाली, राजहंस पर सवार होने वाली ब्रह्मेश्वरि ललिते देवि! तुम्हें नमस्कार है।।१९।। हे संक्षोभिणी आदि मुख्य समस्त मुद्राओं से सेवित! हे संसरण प्रहन्त्रि! ललिते! हे अधिनाथे! हे संसार को नष्ट करने वाली! हे संसार में होने वाली लीलाओं, संसार के आकार और सार को देखने वाली देवि! तुम्हें सदा नमस्कार है। हे नामाकर्षिणी आदि सोलह कलाओं से युक्त देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२०।। हे आतंकरहित दयाप्रपंच वाली, नील आकाशरूप देवि! तुम्हें नमस्कार है। हे कामदेव के पाँच पुष्प बाणों से उन्नत कामदेव की रति द्वारा निरन्तर सेवनीय देवि! हे अभव्यहन्त्यक्षरराशिरूपे देवि! हतशत्रुवर्गे ललिते देवि तुम्हें नमस्कार है।।२१।। हे संक्षोभिणी आदि चौदह अर्चिमालाओं (श्रीचक्र के चौदह कोणों) से आवृत उदार एवं महाप्रकाशमान देवि! हे आत्मा को धारण करने वाली, हे विशेष भ्रम रूप देवि! हे शुभ्र आशय वाली, हे शुभ्र पद वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२२।। हे शर्व आदि सिद्धियों वाली वन्दनीय शक्ति देवि! हे सर्वज्ञविज्ञातपदारविन्दे! हे सर्वाधिके! हे सबमें रहने वाली देवि! हे समस्त सफलताओं को प्रदान करने वाली श्री ललितेश्वरि देवी तुम्हें नमस्कार है। सर्वज्ञजात प्रथमा आदि अन्य देवियों से श्रीचक्र भूमि वाली देवि! सब देवों की चाही हुई इच्छाओं की पूर्ति करने वाली, सब

वंदे वशिन्यादिकवाग्विभूते वर्द्धिष्णुचक्रद्युतिवाहवाहे।
बलाहकश्यामकचे वचोऽब्धे वरप्रदे सुंदरि पाहि विश्वम्॥२५॥
बाणादिदिव्यायुधसार्वभौमे भंडासुरानीकवनांतदावे।
अत्युग्रतेजोज्ज्वलितांबुराशे प्रसेव्यमाने परितो नमस्ते॥२६॥
कामेशि वज्रेशि भगेश्यरूपे कन्ये कले कालविलोपदक्षे।
कथाविशेषीकृतदैत्यसैन्ये कामेशयांते कमले नमस्ते॥२७॥
बिंदुस्थिते बिन्दुकलैकरूपे बिंद्वात्मिके बृंहितचित्प्रकाशे।
बृहत्कुचां भोजविलोलहारे बृहत्प्रभावे ललिते नमस्ते॥२८॥
कामेश्वरोत्संगसदानिवासे कालात्मिके देवि कृतानुकंपे।
कल्पावसानोत्थित कालिरूपे कामप्रदे कल्पलते नमस्ते॥२९॥
सवारुणे सांद्रसुधांशुशीते सारंगशावाक्षि सरोजवक्रे।
सारस्य सारस्य सदैकभूमे समस्तविद्येश्वरि संनतिस्ते॥३०॥
तव प्रभावेण चिदग्निजायां श्रीशंभुनाथप्रकटीकृतायाः।
भंडासुराद्याः समरे प्रचंडा हता जगत्कंटकतां प्रयाताः॥३१॥
नव्यानि सर्वाणि वपूंषि कृत्वा हि सांद्रकारुण्यसुधाप्लवैर्न्नः।
त्वया समस्तं भुवनं सहर्षं सुजीवितं सुंदरि सभ्यलभ्ये॥३२॥

संसार की उत्पादिका देवि! तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरी रक्षा करो।।२३-२४।। ब्रह्मा आदि देवों ने कहा कि हे वशिनी आदि वाग्विभूतियों वाली वर्द्धिष्णु चक्र की कान्ति को वहन करने वाली, बादल (मेघ) के समान काले केशवाली, वाणी की सागररूप! वर प्रदान करने वाली, सुन्दरि! विश्व की रक्षा करो।।२५।। हे बाण आदि दिव्य अस्त्रशस्त्रों! सार्वभूमि देवि! हे भण्डासुर की सेनारूपी वन के लिये दावाग्नि रूपवाली देवि! हे अत्यन्त उग्रतेज से जलते हुए वडवाग्नि रूप देवि! हे पूर्णरूप से सभी ओर से सेव्यमान देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२६।। हे कामेशि! वज्रेशि! ऐश्वर्यरूपे, हे कन्ये!, हे कले! हे कालविलोपदक्षे! अर्थात् हे बुरे समय को नष्ट करने में कुशल देवि! हे दैत्य सैन्य में विशेष कथा रूपिणि! (दैत्य की सेना की कहानी खत्म करने वाली), हे कामेशयान्ते! कमले! तुम्हें नमस्कार है।।२७।। हे श्रीचक्र के बिन्दु में स्थित, बिन्दुकला की एकरूपे! हे बिन्दु की आत्मा रूपे ललिते! बढ़े हुए चित् प्रकाश वाली, बड़े बड़े स्तनों पर भोजविलोलहार वाली! बृहत्प्रभाव वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२८।। हे कामेश्वर भगवान् शंकर के साथ सदा निवास करने वाली, कालात्मा रूप देवि! सब पर कृपा करने वाली देवि! हे कल्प के अन्त में (प्रलयकाल में) काली के रूप में उठने वाली देवि! काम (इच्छा) पूर्ण करने वाली, काम भाव पैदा करने वाली कल्पलता देवि! तुम्हें नमस्कार है।।२९।। हे सवारुणे! सान्द्र चन्द्रमा के शीतवाली, मृगशावक के समान नेत्रों वाली, कमल के समान मुख वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।।३०।। हे देवि! तुम्हारे प्रभाव से चित् रूप अग्निजा में श्री शम्भुनाथ से प्रकट किये गये संसार में लोगों के लिये कण्टक बने हुए भण्डासुर आदि प्रचण्ड राक्षसों को मार दिया गया।।३१।। नये नये सब शरीरों को बनाकर, विपुल करुणता रूपी अमृत बाढ़ से तुम्हारे द्वारा यह समस्त

श्रीशंभुनाथस्य महाशयस्य द्वितीयतेजःप्रसरात्मके यः।
स्थाण्वाश्रमे क्लृप्तया विरक्तः सतीवियोगेन विरस्तभोगः॥३३॥
तेनाद्रिवंशे धृतजन्मलाभां कन्यामुमां योजयितुं प्रवृत्ताः।
एवं स्मरं प्रेरितवंत एव तस्यांतिकं घोर तपःस्थितस्य॥३४॥
तेनाथ वैराग्यतपोविघातक्रोधेन लालाटकृशानुदग्धः।
भस्मावशेषो मदनस्ततोऽभूत्ततो हि भंडासुर एष जातः॥३५॥
ततो वधस्तस्य दुराशयस्य कृतो भवत्या रणदुर्मदस्य।
अथास्मदर्थे त्वतनुस्सजातस्त्वं कामसंजीवनमाशुकुर्याः॥३६॥
इयं रतिर्भर्तृवियोगखिन्ना वैधव्यमत्यंतमभव्यमाप।
पुनस्त्वदुत्पादितकामसंगाद्भविष्यति श्रीललिते सनाथा॥३७॥
तया तु दृष्टेन मनोभवेन संमोहितः पूर्ववदिंदुमौलिः।
चिरं कृतात्यंतमहासपर्यां तां पार्वतीं द्राक्परिणेष्यतीशः॥३८॥
तयोश्च संगाद्भविता कुमारः समस्तगीर्वाणचमूविनेता।
तेनैव वीरेण रणे निरस्य स तारको नाम सुरारिराजः॥३९॥

संसार सहर्ष और अच्छी प्रकार जीवित है। हे सुन्दरि! तुम सभ्यों द्वारा लभ्य हो, असभ्यों द्वारा नहीं।।३२।। जो देवी एक बार भगवान् शिव के दूसरे तेज के प्रकाश का प्रसार करने के समय जबकि उन्होंने दक्ष के यज्ञ को विध्वंस किया था, उस समय जो सती के रूप में थी, जिन्होंने यज्ञ में शरीर त्याग करने के बाद हिमालय के घर में जन्म लिया था, जो फिर पुनः शिव को प्राप्त करने के लिये भगवान् शिव के आश्रम में विरक्त रहकर हिमालय की पुत्री उमा के रूप में पुनः शंकर जी से युक्त होने के लिये प्रयासरत हुई, उनकी सहायता के लिये उन्हें शंकर जी से मिलाने के लिये कामदेव आया और उसने शंकर जी को पार्वती से मिलने के लिये प्रेरित किया। अतः उन घोर तपस्या करने वाले भगवान् शंकर ने वैराग्य युक्त तप में पैदा होने वाले विघ्न के क्रोध से अपने मस्तक में स्थित तृतीय नेत्र को खोलकर कामदेव को जला दिया। तब वह जो कामदेव भस्म हो गया, तो उसकी अवशिष्ट भस्म से यह भण्ड नामक असुर पैदा हो गया।।३३-३५।। उसके बाद उस युद्ध में किसी से भी न हारने वाले उस दुष्ट भण्डासुर का वध आपने कर दिया।।३५।।

अतः यह जो कामदेव का भस्म (राख) था, उससे भण्डासुर पैदा हुआ, जिसका हे देवि! तुमने संहार कर दिया, अतः अब यह जो कामदेव शरीररहित हो गया है, उस कामदेव को शीघ्र जीवित कर देना चाहिये, ऐसा ब्रह्मा आदि देवों ने कहा।।३६।। और यह कहा कि यह कामदेव की पत्नी रति पतिवियोग से दुःखी होकर बहुत समय से वैधव्य को प्राप्त हो गयी है, अतः हे श्री ललिते देवि! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न किये काम देव के संग से यह वेचारी सनाथा हो जायेगी।।३७।। उस कामदेव के देखने से पूर्वकाल के समान भगवान् शिव सम्मोहित हो गये थे, वे भगवान् शिव चिरकाल पर्यन्त अत्यन्त और महान् पूजा और सेवा करने वाली पार्वती को शीघ्र पत्नी रूप में स्वीकार कर लेंगे।।३८।। और फिर उन पार्वती और शंकर के संयोग से समस्त देवताओं की सेना का नायक कुमार कार्तिकेय का जन्म हो जायेगा। उसी वीर के द्वारा युद्ध में क्षेत्र वह तारक नामक देवताओं का शत्रुराजा निरस्त होगा (मारा

यो भंडदैत्यस्य दुराशयस्य मित्रं स लोकत्रयधूमकेतुः।
श्रीकंठपुत्रेण रणे हतश्चेत्प्राणप्रतिष्ठैव तदा भवेन्नः॥४०॥
तस्मात्त्वमंबत्रिपुरे जनानां मानापहं मन्मथवीरवर्यम्।
उत्पाद्यरत्या विधवात्वदुःखमपाकुरु व्याकुलकुंतलायाः॥४१॥
एषा त्वनाथा भवतीं प्रपन्ना भर्तृप्रणाशेन कृशांगयष्टिः।
नमस्करोति त्रिपुराभिधाने तदत्र कारुण्यकलां विधेहि॥४२॥

हयग्रीव उवाच

इति स्तुत्वा महेशानी ब्रह्माद्या विबुधोत्तमाः। तां रतिं दर्शयमासुर्मलिनां शोककर्शिताम्॥४३॥
सा पर्यश्रुमुखी कीर्णकुन्तला धूलिधूसरा। ननाम जगदंबां वै वैधव्यत्यक्तभूषणा॥४४॥
अथ तद्दर्शनोत्पन्नकारुण्या परमेश्वरी। ततः कटाक्षादुत्पन्नः स्मयमानमुखांबुजः॥४५॥
पूर्वदेहाधिकरुचिर्मन्मथो मदमेदुरः। द्विभुजः सर्वभूषाढ्यः पुष्पेषुः पुष्पकार्मुकः॥४६॥
आनंदयन्कटाक्षेण पूर्वजन्मप्रियां रतिम्। अथ सापि रतिर्देवी महत्यानंदसागरे।
मज्जनन्ती निजभर्तारमवलोक्य मुदं गता॥४७॥

जायेगा)।।३९।। जो दुष्ट दैत्यराज भण्ड का मित्र है और वह तीनों लोकों के लिए धूमकेतु[1] बना हुआ है। अतः हे देवि! भगवान् शिव के पुत्र कार्तिकेय द्वारा युद्ध में वह मार दिया जाये, अतः उस कामदेव की प्राणप्रतिष्ठा ही होनी चाहिये। तभी हमलोगों का कल्याण होगा। इसीलिये हे अम्बे! हे मां ललितेश्वरी तीनों लोकों में स्त्री-पुरुषों के आपस में होने वाले मान को दूर करने वाले श्रेष्ठ वीर कामदेव को पुनः जीवित करके उनकी पत्नी रति के वैधव्य के दुःख को दूर करो, जो विचारी चिरकाल से व्याकुल है।।४०-४१।। अतः हे देवि! यह अनाथा (पतिविहीन) रति तुम्हारी शरण में आयी है। अपने पति के नष्ट हो जाने से यह अत्यन्त दुर्बल शरीर वाली हो गयी है। अतः हे त्रिलोकस्वामिनि! यह रति तुमको नमन कर रही है। अतः यहाँ इस पर कृपा करो।।४२।।

हयग्रीव ने कहा कि इस प्रकार ब्रह्मा आदि उत्तम देवों ने महेश्वरी ललिता देवी की स्तुति करके पति की मृत्यु के दारुण दुःख से पीड़ित अत्यन्त मलिन कामभार्या रति को दिखाया।।४३।। तब आँसुओं से भींगे हुए मुखवाली, बिखरे हुए केशवाली और धूलिधूसरित एव विधवा होने के कारण भूषणविहीन उस रति ने जगदम्बा महेश्वरी को नमन किया।।४४।। तब इसके बाद उस रति को देखने से उन परमेश्वरी के मन में करुणा उत्पन्न हो गयी, उसके बाद उनके उस कारुण्य कटाक्ष से कमलमुख कामदेव उत्पन्न हो गये।।४५।। जो उत्पन्न हुए कामदेव पूर्वशरीर से अधिक कान्तियुक्त शरीरवाले तथा मद से भरे हुए थे। उनकी दो भुजायें थीं, उनका शरीर वस्त्राभूषणों से सजा हुआ था और पुष्प वाण और पुष्प धनुष लिये हुए थे।।४६।। वे अपने कटाक्ष (तिरछी नज़र) से पूर्व जन्म की प्रिया रति को आनन्दित कर रहे थे, इससे उनकी पत्नी रति देवी भी महान् आनन्द के सागर में डूब गयी थी। वे अपने पति को देखकर अत्यन्त मुदित हो गयीं।।४७।।

१. जब कोई ग्रह अपने आकर्षण सेरहित होकर गिरता है, तो वह आग का गोला बनकर जिस ग्रह पर गिरता है, तो विनाश ही विनाश करता है, उसे धूमकेतु कहा जाता है। इसे ही उल्कापात कहते हैं।

आनंदितांतरात्मानौ भक्तिनिर्भरमानसौ। ज्ञात्वाथ तौ महाराज्ञी मन्दस्मितमुखांबुजा॥
व्रीडाननां रतिं प्रेक्ष्य श्यामलामिदमब्रवीत्॥४८॥
श्यामले स्नापयित्वैनां वस्त्रकांच्यादिभूषणैः। अलंकृत्य यथापूर्वं शीघ्रमानीयतामिह॥४९॥
तदाज्ञां शिरसा धृत्वा श्यामा सर्वं तथाकरोत्। ब्रह्मर्षिभिर्वसिष्ठाद्यैर्वैवाहिकविधानतः॥५०॥
कारयामास दंपत्योः पाणिग्रहणमंगलम्। अप्सरोभिश्च सर्वाभिर्नृत्यगीतादिसंयुतम्॥५१॥
एतदृष्ट्वा महेन्द्राद्या ऋषयश्च तपोधनाः। साधुसाध्विति शंसंतस्तुष्टुवुर्ललितांबिकाम्॥५२॥
पुष्पवृष्टिं विमुंचंतः सर्वे सन्तुष्टमानसाः। बभूवुस्तौ महाभक्त्या प्रणम्य ललितेश्वरीम्॥५३॥
तत्पार्श्वे तु समागत्य बद्धांजलिपुटौ स्थितौ। अथ कंदर्पवीरोऽपि नमस्कृत्य महेश्वरीम्।
व्यज्ञापयदिदं वाक्यं भक्तिनिर्भरमानसः॥५४॥
यद्दग्धमीशनेत्रेण वपुर्मे ललितांबिके। तत्त्वदीयकटाक्षस्य प्रसादात्पुनरागतम्॥५५॥
तव पुत्रोऽस्मि दासोऽस्मि क्वापि कृत्ये नियुंक्ष्व माम्।
इत्युक्ता परमेशानी तमाह मकरध्वजम्॥५६॥

श्रीदेव्युवाच

वत्सागच्छ मनोजन्मन्न भयं तव विद्यते। मत्प्रसादाज्जगत्सर्वं मोहयाव्याहताशुग॥५७॥

इसके बाद जब महाराज्ञी श्री ललितेश्वरी ने यह जान लिया कि मेरी भक्ति पर निर्भर मन वाली इस रति तथा कामदेव की आत्मायें अत्यन्त आनन्दित हो गयी हैं, तब मन्द मुस्कानयुक्त कमलमुखी उन महाराज्ञी ने लज्जा से झुके हुए मस्तक वाली उस रति को देखकर श्यामला देवी से इस प्रकार कहा।।४८।। कि अरी श्यामले! तुम इस रति को ले जाओ और इन्हें स्नान कराके तथा वस्त्राभूषण काञ्ची आदि आभूषणों से पूर्व के समान सजाकर शीघ्र यहाँ लेकर आओ।।४९।। तब उन महाराज्ञी की आज्ञा को शिरोधार्य कर श्यामा देवी ने वैसा ही किया और फिर ब्रह्मा आदि देवों और वशिष्ठ आदि ऋषियों द्वारा वैवाहिक विधि-विधान से दोनों का पाणिग्रहण करवा दिया। उस वैवाहिक कार्यक्रम में सब अप्सराओं ने नृत्य एवं गीत आदि मांगलिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये।।५०-५१।। यह देखकर महेन्द्र आदि देवतागण और तपस्वी ऋषिगण साधु साधु कहकर ललिता देवी को प्रसन्न करने लगे।।५२।। तथा सभी देवगण फूलों की वर्षा करते हुए अत्यन्त प्रसन्न हुए। उधर रति और कामदेव दोनों महती भक्ति से ललितेश्वरी को प्रणाम करके उनके पास में आकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। इसके बाद वीर कामदेव ने भी महाराज्ञी को प्रणाम करके भक्ति पर मन को निर्भर करके महेश्वरी को यह बताया कि।।५३-५४।। कि हे महादेवि! ललिताम्बिके! जो मेरा शरीर भगवान् शिव के नेत्र से जल गया था, वह तुम्हारी कृपा से पुनः आ गया है।।५५।। अतः हे मातः! मैं आपका पुत्र हूँ, तुम्हारा सेवक हूँ, अतः कृपया मुझे किसी कार्य में नियुक्त कीजिये। ऐसा जब कामदेव ने कहा, तब परमेश्वरी ललिता देवी ने उस कामदेव से कहा।।५६।।

श्री देवी बोलीं—कि हे पुत्र कामदेव आओ, अब तुमको कोई भय नहीं है। अब तुम मेरी कृपासे समस्त संसार को विना किसी बाधा (रुकावट) के मोहित करो और तुम आशुग (शीघ्र गमन करने वाले) हो जाओ! अर्थात् तुम्हारे प्रभाव से नरनारी तुरन्त एक दूसरे को देखते ही मोहित हो जायें।।५७।।

तद्बाणपातनाज्जातधैर्यविप्लव ईश्वरः। पर्वतस्य सुतां गौरीं परिणेष्यति सत्वरम्॥५८॥
सहस्रकोटयः कामा मत्प्रसादात्त्वदुद्भवाः। सर्वेषां देहमाविश्य दास्यंति रतिमुत्तमाम्॥५९॥
मत्प्रसादेन वैराग्यात्संक्रुद्धोऽपि स ईश्वरः। देहदाहं विधातुं ते न समर्थो भविष्यति॥६०॥
अदृश्यमूर्तिः सर्वेषां प्राणिनां भवमोहनः। स्वभार्याविरहाशंकी देहस्यार्धं प्रदास्यति।
प्रयातोऽसौ कातरात्मा त्वद्बाणाहतमानसः॥६१॥
अद्य प्रभृति कंदर्प मत्प्रसादमहीयसः। त्वन्निंदां ये करिष्यंति त्वयि वा विमुखाशयाः।
अवश्यं क्लीबतैव स्यात्तेषां जन्मनिजन्मनि॥६२॥
ये पापिष्ठा दुरात्मानो मद्भक्तद्रोहिणश्च हि। तानगम्यासु नारीषु पातयित्वा विनाशय॥६३॥
येषां मदीय पूजासु मद्भक्तेष्वादृतं मनः। तेषां कामसुखं सर्वं संपादय समीप्सितम्॥६४॥
इति श्रीललितादेव्या कृताज्ञावचनं स्मरः। तथेति शिरसा बिभ्रत्सांजलिर्निर्ययौ ततः॥६५॥
तस्यानंगस्य सर्वेभ्यो रोमकूपेभ्य उत्थिताः। बहवः शोभनाकारा मदना विश्वमोहनाः॥६६॥
तैर्विमोह्य समस्तं च जगच्चक्रं मनोभवः। पुनः स्थाण्वाश्रमं प्राप चंद्रमौलेर्जिगीषया॥६७॥
वसंतेन च मित्रेण सेनान्या शीतरोचिषा। रागेण पीठमर्देन मंदानिलरयेण च॥६८॥

उसके बाण के गिराने से भगवान् शंकर का धैर्य टूट जायेगा और फिर वे पर्वत पुत्री पार्वती को शीघ्र पत्नीत्व प्रदान करेंगे।।५८।। तथा मेरे प्रसाद से हजारों करोड़ कामदेव (कामभाव) पैदा होंगे जो सबके शरीरों में प्रवेश करके उत्तम रति (सम्भोगेच्छा) उत्पन्न करेंगे।।५९।। मेरे प्रसाद से वैराग्य से संक्रुद्ध वे ईश्वर शिव भी तुम्हारे शरीर को जलाने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।।६०।। अतः हे कामदेव! तुम अदृश्य शरीर होकर समस्त वह कातरात्मा तुम्हारे बाण से आहत चित्त वाले शंकर प्राणियों के मन को मोहने वाले अपनी चिरकालीन विरह पीड़ित पत्नी को अपना आधा शरीर प्रदान करेगा। भाव यह है कि वे शंकर जिन्होंने कभी वैराग्यवश तुम्हें भस्म कर दिया था, वे ही अब तुम्हारे प्रभाव से अपनी पत्नी पार्वती के अपनी अर्धाङ्गिनी बनाकर आधा अधिकार प्रदान करेंगे। अतः आज से स्त्री पुरुष परस्पर इतने आकर्षण में बंध जायेंगे कि दोनों एक-दूसरे को आधा शरीर मान लेंगे। आज से हे कामदेव! मेरे प्रसाद से महान् यशस्वी तुम्हारी जो निन्दा करेगा अथवा जो तुम्हारे प्रति विमुख आशय वाला होगा (अर्थात् कामशास्त्र की चर्चा करने पर कान पकड़कर तोबा करेगा उसकी अवश्य जन्म-जन्मान्तरों में नपुंसकता होगी।।६१-६२।। तथा जो पापी दुष्टात्मा और मेरे भक्त तुमसे द्रोह करने वाले हैं, उनको अगम्य (सम्भोग न करने योग्य) नारियों में गिराकर नष्ट कर देना।।६३।। तथा जिनका मन मेरी पूजाओं में मेरे भक्तों में लगा हुआ है, उनकी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करना तथा उन्हें पूर्ण कामसुख प्रदान करना।।६४।।

इस प्रकार श्री ललिता देवी की आज्ञा को शिरोधार्य करने का वचन देकर कामदेव "मातः ऐसा ही होगा" कहकर नतमस्तक हो, हाथ जोड़कर वहाँ से निकल गया।।६५।। तब वह कामदेव जीवित तो हुआ था; परन्तु अंगरहित ही था। अतः अनंग कहा गया 'तब उस अनंग कामदेव के सब रोम कूपोंसे (रोम छिद्रों) से सुन्दर आकार वाले बहुत से विश्व को मोहित करने वाले कामदेव निकल गये। उसके समस्त संचारचक्र को विमोहित वाले कामदेव पुनः भगवान् शंकर को जीतने की इच्छा से भगवान् शंकर के आश्रम में पहुँचे।।६६-६७।। तब शीतकान्तिवाले सेनापति मित्र वसन्त को मन्द वेग वाले वायु सहचर को साथ लेकर तथा नरकोयल के कण्ठ की प्रिय वाणी से युक्त

पुंस्कोकिलगलत्स्वानकाहलीभिश्च संयुतः। शृंगारवीरसंपन्नोरत्यालिंगितविग्रहः॥६९॥
जैत्रं शरासनं धुन्वन्प्रवीराणां पुरोगमः। मदनारेरभिमुखं प्राप्य निर्भय आस्थितः॥७०॥
तपोनिष्ठं चंद्रचूडं ताडयामास सायकैः। अथ कंदर्पबाणौघैस्ताडितश्चंद्रशेखरः।
दूरीचकार वैराग्यं तपस्तत्त्याज दुष्करम्॥७१॥
नियमानखिलांस्त्यक्त्वा त्यक्तधैर्यः शिवः कृतः।
तामेव पार्वतीं ध्यात्वा भूयोभूयः स्मरातुरः॥७२॥
निशश्वास वहञ्शर्वः पांडुरं गण्डमंडलम्। बाष्पायमाणो विरही संतप्तो धैर्यविप्लवात्।
भूयोभूयो गिरिसुतां पूर्वदृष्टामनुस्मरन्॥७३॥
अनंगबाणदहनैस्तप्यमानस्य शूलिनः। न चंद्ररेखा नो गंगा देहतापच्छिदेऽभवत्॥७४॥
नंदिभृंगिमहाकालप्रमुखैर्गणमंडलैः। आहृते पुष्पशयने विलुलोठ मुहुर्मुहुः॥७५॥
नंदिनो हस्तमालंब्य पुष्पतल्पान्तरात्पुनः। पुष्पतल्पान्तरं गत्वा व्यचेष्टत मुहुर्मुहुः॥७६॥
न पुष्पशयनेनेन्दुखण्डनिर्गलितामृते। न हिमानीपयसि वा निवृत्तस्तद्वपुर्ज्वरः॥७७॥
स तनोरतनुज्वालां शमयिष्यन्मुहुर्मुहुः। शिलीभूतान्हिमपयःपट्टानध्यवसच्छिवः।
भूयः शैलसुतारूपं चित्रपट्टे नखैर्लिखत्॥७८॥

होकर शृंगार और वीररस से सम्पन्न रति के आलिंगन से युक्त शरीर वाले कामदेव तपरत भगवान् शिव के सामने उपस्थित हो गये। अर्थात् समस्त कामभावनोत्पादक साधनों के साथ वे कामदेव भगवान् शंकर के सामने पुनः स्थित हुए। बसन्त-ऋतु मन्दवायु और कोयल की मधुर बोली साथ ही रति से आलिंगित स्वयं कामदेव तब भला भगवान् शंकर का धैर्य कैसे स्थिर रहता।।६८-६९।। अतः ऐसे मादक वातावरण में भगवान् शंकर परकाम के बाण का प्रहार करते हुए कामशत्रु भगवान् शिव के सामने निर्भय होकर खड़े हो गये।।७०।। और फिर तप में लीन भगवान् शिव पर उन्होंने अपने बाणों का प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया, उसके बाद कामदेव के बाणों से ताडित चन्द्रशेखर ने वैराग्य को दूर कर दिया और दुष्कर तप को त्याग दिया।।७१।। तब समस्त नियमों को त्यागकर शिव ने अपने धैर्य को भी त्याग दिया। अब तो वे उन्हीं पार्वती का ध्यान करके बार बार कामभाव से व्याकुल होने लगे।।७२।। अब तो शिव कामपीड़ित होकर बहुत गहरी श्वासें लेने लगे, उनका कण्ठ पीला पड़ गया। अब तो वे पूर्व में देखी गयी पार्वती का स्मरण करते हुए गहरी श्वासें लेने लगे और विरह से संतप्त उनका अब धैर्य भी टूट गया।।७३।।

अब कामदेव के बाण से सन्तप्त उन भगवान् शिव के सन्ताप को न शिरस्थित चन्द्रमा की शीतलता शान्त कर सकीं और न शिर स्थित गङ्गा ही शान्त कर सकीं।।७४।। और नन्दी, भृङ्गी और महाकाल भैरव आदि प्रमुख गणों द्वारा लाये गये फूलों की शय्या से उठकर चलते थे और फिर पुष्प शय्या पर बार-बार लोटने लगे।।७५।। नन्दी का सहारा लेकर शय्या से उठकर चलते थे और पुष्प शय्या पर जाकर बार बार लोटते हुए बहुत अधिक कामचेष्टा कर रहे थे।।७६।। अब न तो फूलों की तेज पर न, चन्द्रमा से निकल हुए अमृत में अथवा न हिमालय के ठंडे जल में, उनके शरीर का ज्वर शान्त हो सका। वे अपने शरीर की कामाग्नि को शान्त करना चाहते हुए बार बार बर्फ जल से ढकी हुई पत्थर की शिलाओं पर जाकर बैठते थे और वहाँ पर पर्वत पुत्री के चित्र को नाखूनों से

तदालोकनतोऽदूरमनंगार्तिमर्धयत्। तामालिख्य ह्रिया नम्रां वीक्षमाणां कटाक्षतः॥७९॥
तच्चित्रपट्टमंगेषु रोमहर्षेषु चाक्षिपत्। चिन्तासंगेन महता महत्या रतिसंपदा।
भूयसा स्मरतापेन विव्यथे विषमेक्षणः॥८०॥
तामेव सर्वतः पश्यंस्तस्यामेव मनो दिशन्। तयैव संल्लपन्सार्धमुन्मादेनोपपन्नया॥८१॥
तन्मात्रभूतहृदयस्तच्चित्तस्तत्परायणः। तत्कथासुधया नीतसमस्तरजनीदिनः॥८२॥
तच्छीलवर्णनरतस्तद्रूपालोकनोत्सुकः। तच्चारुभोगसंकल्पमालाकरसुमालिकः।
तन्मयत्वमनुप्राप्तस्तताऽपातिततरां शिवः॥८३॥
इमां मनोभव रुजमचिकित्स्यां स धूर्जटिः। अवलोक्य विवाहाय भृशमुद्यमवानभूत्॥८४॥
इत्थं विमोह्य तं देवं कंदर्पो ललिताज्ञया। अथ तां पर्वतसुतामाशुगैरभ्यतापयत्॥८५॥
प्रभूतविरहज्वालामलिनैः श्वसितानलैः। शुष्यमाणाधरदलो भृशं पांडुकपोलभूः॥८६॥
नाहारे वा न शयने न स्वापे धृतिमिच्छति। सखीसहस्त्रैः सिषिचे नित्यं शीतोपचारकैः॥८७॥
पुनःपुनस्तप्यमाना पुनरेव च विह्वला। न जगाम रुजाशांतिं मन्मथाग्नेर्महीयसः॥८८॥
न निद्रां पार्वती भेजे विरहेणोपतापिता। स्वतनोस्तापनेनासौ पितुः खेदमवर्धयत्॥८९॥

लिखते थे।।७७-७८।। उनको देखता हुआ थोड़ी दूर पर ही स्थित कामदेव उनकी कामवेदना को और अधिक बढ़ा रहा था। उधर शंकर जी पार्वती का चित्र बनाकर फिर लज्जा से इधर उधर तिरछी निगाह से देखते थे।।७९।। उस चित्रपट्ट को अपने हर्ष से रोमांचित अंगों से लगाते थे और फिर बहुत अधिक चिन्ता से और महती रति संपदा से युक्त विरह ताप से वे भगवान् शंकर व्यथित होने लगते थे अर्थात् चित्रपट्ट को संभोग की इच्छा से अपने अंगों से लगाते थे; परन्तु जब इतने से सन्तुष्टि नहीं होती थी, तो फिर साक्षात् मैथुन हेतु अत्यन्त व्यथित होने लगते थे।।८०।। तब तो उनमें इतना कामोन्माद पैदा हो गया कि सब ओर पार्वती को ही देखते हुए, उनमें ही मन लगाते हुए, उनके साथ ही वात करते हुए रहते थे।।८१।। उनके समस्त दिन और रात केवल पार्वती को हृदय में रखकर उनमें मन लगाकर तथा उनके विषय में कथामतृ पान कर व्यतीत होते थे।।८२।।

अब भगवान् शिव उन पार्वती के ही शील वर्णन में रत और उनके ही रूप को देखने के उत्सुक हो उनके ही सुन्दर भोग संकल्प मालाकर को पहनने के लिए उत्सुक रहते थे। इसके बाद कामदेव से अत्यन्त तापित भगवान् शिव पार्वती के ध्यान में तन्मय हो गये थे।।८३।। तब भगवान् शंकर इस कामरोग की चिकित्सा विवाह को ही समझकर विवाह के लिये उद्यम करने लगे।।८४।। इस प्रकार ललिता देवी की आज्ञा से भगवान् शिव को पूरी तरह मोहित करके कामदेव ने शीघ्र ही पर्वतपुत्री पार्वती को भी काम भाव से सन्तप्त कर दिया।।८५।। कामदेव द्वारा सन्तप्त करते ही विरहाग्निसे मलिन श्वास वायुओं से उनके अधर सूखने लगे तथा कपोल पीले पड़ गये, अब तो वे न कुछ खा रही थीं, न सो रही थीं तथा न सोने में ही धैर्य धारण कर पा रही थीं। नित्य हजारों सखियां उनके सन्ताप को शीतल करने के लिये शीतोपचार करने वाली औषधियों को लगा रही थीं।।८६।। परन्तु वे पार्वती बार-बार सन्तप्त हो रही थीं, उनका विरह ज्वर उत्तर ही नहीं रहा था, वे विह्वल थीं, अतः उनको उस विरह रोग से शान्ति प्राप्त नहीं हुई।।८८।। विरह संतप्त पार्वती अब तो नींद भी नहीं ले पा रहीं थीं, उनकी नींद बिल्कुल समाप्त हो गयी थी। इस प्रकार अपने शरीर के सन्ताप से उन्होंने अपने पिता के दुःख को बढ़ा दिया।।८९।।

अप्रतीकारपुरुषं विरहं दुहितुः शिवे। अवलोक्य स शैलेन्द्रो महादुःखमवाप्तवान्॥९०॥
भद्रे त्वं तपसा देवं तोषयित्वा महेश्वरम्। भर्तारं तं समृच्छेति पित्रा सम्प्रेरिताथ सा॥९१॥
हिमवच्छैलशिखरे गौरीशिखरनामनि। चकार पतिलाभाय पार्वती दुष्करं तपः॥९२॥
शिशिरेषु जलावासा ग्रीष्मे दहनमध्यगा। अर्के निविष्टदृष्टिश्च सुघोरं तप आस्थिता॥९३॥
तेनैव तपसा तुष्टः सान्निध्यं दत्तवाञ्छिवः। अङ्गीचकार तां भार्यां वैवाहिकविधानतः॥९४॥
अथाद्रिपतिना दत्तां तनयां नलिनेक्षणाम्। सप्तर्षिद्वारतः पूर्वं प्रार्थितामुदवोढ सः॥९५॥
तया च रममाणोऽसौ बहुकालं महेश्वरः। ओषधीप्रस्थनगरे श्वशुरस्य गृहेऽवसत्॥९६॥
पुनः कैलासमागत्य समस्तैः प्रमथैः सह। पार्वतीमानिनायाद्रिनाथस्य प्रीतिमावहत्॥९७॥
रममाणस्तया सार्धं कैलासे मन्दरे तथा। विन्ध्याद्रौ हेमशैले च मलये पारियात्रके॥९८॥
नानाविधेषु स्थानेषु रतिं प्राप महेश्वरः। अथ तस्यां ससर्जोग्रं वीर्यं सा सोढुमक्षमा॥९९॥

भुव्यत्यजत्सापि वह्नौ कृत्तिकासु स चाक्षिपत्।
ताश्च गङ्गाजलेऽमुञ्चन्सा चैव शरकानने॥१००॥

तत्रोद्भूतो महावीरो महासेनः षडाननः। गङ्गायाश्चांतिकं नीतो धूर्जटिर्वृद्धिमागमत्॥१०१॥
स वर्धमानो दिवसेदिवसे तीव्रविक्रमः। शिक्षितो निजतातेन सर्वा विद्या अवाप्तवान्॥१०२॥

अपनी पुत्री पार्वती का शिव के प्रति प्रीतिपूर्ण पुरुष विरह को देखकर पर्वतराज हिमालय को अत्यन्त दुःख हुआ।।९०।। तब उनके पिता हिमालय ने उनसे कहा कि हे पुत्रि! तुम तपस्या से देवाधिदेव शंकर को प्रसन्न करके उनको अपना पति बनाओ। इसके बाद पिता द्वारा प्रेरित उन पार्वती ने हिमालय पर्वत के गौरी नामक शिखिर पर पति को प्राप्त करने के लिए दुष्कर तप किया।।९१-९२।। वहाँ शीत ऋतु में अत्यन्त शीतल जल में रहते, हुए ग्रीष्म ऋतु में अग्नियों के बीच में बैठे हुए, ऊपर सूर्य की ओर दृष्टि रखते हुए, अत्यन्त घोर तप में स्थित हो गयीं।।९३।। पार्वती के उसी तप से प्रसन्न होकर भगवान् शिव उनके पास आये और फिर उन्होंने वैवाहिक विधि विधान से अपनी पत्नी स्वीकार किया।।९४।। इसके बाद पर्वतराज हिमालय ने अपनी कमलनयना पुत्री को शिव के लिये प्रदान कर दिया, तब सप्तर्षियों के द्वारा शिव ने पूर्व प्रार्थित पार्वती के साथ विवाह कर लिया।।९५।।

उन पार्वती के साथ रमण करते हुए वे महेश्वर बहुत समय तक औषधीप्रस्थ नगर में स्थित अपने श्वसुर के घर में रहे।।९६।। फिर समस्त गणों के साथ कैलास पर्वत पर आकर पार्वती को लेकर पर्वतराज हिमालय की प्रीति का वहन किया।।९७।। वहाँ महेश्वर ने उनके साथ कैलास मन्दिर में, विन्ध्य पर्वत पर, हेमशैल पर, मलयपर्वत पर, पारियात्र पर्वत पर तथा अनेकों प्रकार के स्थानों पर रमण करते हुए सम्भोग सुख को प्राप्त किया।।९८-९८½।। इसके बाद उन्होंने उन पार्वती की योनि में वीर्य को गिरा दिया; परन्तु उस उग्रवीर्य को पार्वती सहन नहीं कर सकीं।।९९।। तब पार्वती ने पृथ्वी पर गिरा दिया, पृथ्वी ने अग्नि पर गिरा दिया और फिर अग्नि ने कृत्तिकाओं पर गिरा दिया और कृत्तिकाओं ने गङ्गा के जल में छोड़ दिया तथा कृत्तिकाओं ने शरकण्डों के जंगल में गिरा दिया।।१००।। तब शरकण्डों के वन में महावीर महासेन षडानन (छः मुखों वाले) कार्तिकेय उत्पन्न हो गये, फिर वहाँ से गङ्गा के पास लाये गये वे धूर्जटि (शिवपुत्र) वृद्धि प्राप्त करने लगे।।१०१।। वह तीव्र पराक्रमी कार्तिकेय

अथ तातकृतानुज्ञः सुरसैन्यपतिर्भवन्। तारकं मारयामास समस्तैः सह दानवैः॥१०३॥
ततस्तारकदैत्येंद्रवधसन्तोषशालिना। शक्रेण दत्तां स गुहो देवसेनामुपानयत्॥१०४॥
सा शक्रतनया देवसेना नाम यशस्विनी। आसाद्य रमणं स्कन्दमानन्दं भृशमादधौ॥१०५॥
इत्थं संमोहिताशेषविश्वचक्रो मनोभवः। देवकार्यं सुसम्पाद्य जगाम श्रीपुरं पुनः॥१०६॥
यत्र श्रीनगरे पुण्ये ललिता परमेश्वरी। वर्तते जगतामृद्धयै तत्र तां सेवितुं ययौ॥१०७॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने मदनपुनर्भवो नाम त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

—❖—

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

सप्तकक्ष्यामतंग कन्या प्रादुर्भावोनाम

एकत्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

किमिदं श्रीपुरं नाम केन रूपेण वर्तते। केन वा निर्मितं पूर्वं तत्सर्वं मे निवेदय॥१॥
कियत्प्रमाणं किं वर्णं कथयस्व मम प्रभो। त्वमेव सर्वसन्देहपङ्कशोषणभास्करः॥२॥

दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए अपने पिता शंकर द्वारा शिक्षित होकर सब विद्यायें प्राप्त कर लिये।।१०२।। इसके बाद अपने पिता भगवान् शंकर की अनुमति प्राप्त करके वे देवों की सेना के सेनापति हो गये और फिर उन्होंने समस्त दानवों के साथ तारकासुर को भी मार दिया।।१०३।। उसके बाद तारकासुर के वध से सन्तुष्ट इन्द्र द्वारा दी गयी, देवसेना के साथ कार्तिकिय ने विवाह कर लिया।।१०४।। वह इन्द्र की पुत्री देवसेना नाम की यशस्विनी सुराङ्गना थी, उसको प्राप्त कर उसके साथ रमण करके स्कन्द (कार्तिकेय) ने अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया।।१०५।। इस प्रकार समस्त विश्वचक्र को सम्मोहित करके कामदेव देवकार्य को अच्छी तरह सम्पन्न करके पुनः श्रीपुर को चले गये।।१०६।। जिस पुण्य श्री नगर में महाराज्ञी श्री ललिता परमेश्वरी लोकों की समृद्धि के लिये विद्यमान हैं, वहाँ उनकी सेवा करने के लिये कामदेव चले गये।।१०७।।

॥इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३०वाँ अध्याय मदनपुनर्भव वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ॥

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३१

सप्तकक्ष्या मतंगकन्या उत्पत्ति वर्णन

अगस्त्य बोले कि हे हयानन! यह श्रीपुर नाम क्या है? यह किस रूप से वर्तमान है तथा इसके पूर्वकाल में किसने बनाया था? यह सब मुझे बताइये।।१।। तथा हे प्रभो! हयानन! उस नगर का कितना प्रमाण है? तथा

हयग्रीव उवाच

यथा चक्ररथं प्राप्य पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम्। महायागानलोत्पन्ना ललिता परमेश्वरी॥३॥
कृत्वा वैवाहिकीं लीलां ब्रह्माद्यैः प्रार्थिता पुनः। व्यजेष्ट भण्डनामानमसुरं लोककण्टकम्॥४॥
तदा देवाः महेन्द्राद्याः सन्तोषं बहु भेजिरे। अथ कामेश्वरस्यापि ललितायाश्च शोभनम्।
नित्योपभोगसर्वार्थं मंदिरं कर्तुमुत्सुकाः॥५॥
कुमारा ललितादेव्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। वर्धकिं विश्वकर्माणं सुराणां शिल्पकोविदम्॥६॥
असुराणां शिल्पनं च मयं मायाविचक्षणम्। आहूय कृतसत्कारानूचिरे ललिताज्ञया॥७॥

अधिकारिपुरुषा ऊचुः

भो विश्वकर्मञ्छिल्पज्ञ भोभो मय महोदय। भवन्तौ सर्वशास्त्रज्ञौ घटनामार्गकोविदौ॥८॥
संकल्पमात्रेण महाशिल्पकल्पविशारदौ। युवाभ्यां ललितादेव्या नित्यज्ञानमहोदधेः॥९॥
षोडशीक्षेत्रमध्येषु तत्क्षेत्रसमसंख्यया। कर्तव्या श्रीनगर्यो हि नानारत्नैरलङ्कृताः॥१०॥
यत्र षोडशधा भिन्ना ललिता परमेश्वरी। विश्वत्राणाय सततं निवासं रचयिष्यति॥११॥
अस्माकं हि प्रियमिदं मरुतामपि च प्रियम्। सर्वलोकप्रियं चैतत्तन्नाम्नैव विरच्यताम्॥१२॥
इति कारणदेवानां वचनं सुनिशम्य तौ। विश्वकर्ममयौ नत्वा व्यभाषेतां तथास्त्विति॥१३॥
पुनर्नत्वा पृष्टवन्तौ तौ तान्कारण पूरुषान्। केषु क्षेत्रेषु कर्तव्याः श्रीनगर्यो महोदयाः॥१४॥

क्या वर्ण है? वह सब मुझसे कहो; क्योंकि आप ही समस्त सन्देहरूपी पंक (कीचड़) को सोखने वाले सूर्य हैं।।२।।

हयग्रीव बोले कि हे अगस्त्य जी! जैसा कि पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त चक्ररथ को प्राप्त करके महायाग से अग्नि उत्पन्न करने वाली उन ललिता परमेश्वरी ने ब्रह्मा आदि के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर वैवाहिकी लीला करके पुनः भण्डासुर नाम के लोककण्टक असुर पर विजय प्राप्त की।।४।। तब सब देवताओं ने बहुत अधिक सन्तोष प्राप्त किया।।४½।। इसके बाद कामेश्वर का भी और ललिता देवी का सुन्दर और नित्य उपभोग आदि सब उद्देश्यों के लिये मन्दिर बनवाने को उत्सुक ललिता देवी के पुत्र कुमार कार्तिकेय तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने ललिता देवी के मन्दिर बनवाने की अनुमति प्राप्त की और फिर अनुमति प्राप्त कर उनकी आज्ञा से उन्होंने देवताओं के शिल्पकर्मी (भवननिर्माण अभियन्ता विश्वकर्मा) तथा असुरों के शिल्पी मय महोदय को बुलाकर उनका सत्कार करके कहा।।५-७।।

अधिकारी पुरुषों ने कहा कि—हे विश्वकर्मा शिल्पज्ञ! तथा मयमहोदय! आप दोनों तो सब शास्त्रों को जानने वाले हैं। घटना मार्ग को भी जानने वाले हैं।।८।। आप दोनों तो संकल्प मात्र से महाशिल्पकला में विशारद हैं। आप लोगों द्वारा नित्यज्ञान की महासागर ललिता परमेश्वरी सोलह क्षेत्रों के मध्य में उस उस के क्षेत्रफल की संख्या के अनुसार अनेकों अलंकारों से अलंकृत श्रीनगर बना देना चाहिये।।९-१०।। जिस नगर में सोलह प्रकार की भिन्न ललिता परमेश्वरी (सोलह रूपों वाली परन्तु एक) विश्व की रक्षा के लिये निरन्तर निवास करेंगी।।११।। यह श्रीनगर यदि बन जायेगा तो इससे हमारी भलाई होगी तथा देवों का भी प्रिय होगा, तब सब लोकों का कल्याण हो, इस नाम से बनाइये।।१२।। इस प्रकार संसार के कारण रूप देवों के वचन को अच्छी प्रकार सुनकर वे दोनों विश्वकर्मा और मय नमस्कार करके "वैसा ही होगा" इस प्रकार बोले।।१३।। पुनः नमस्कार कर उन दोनों ने उन कारण पुरुषों से पूँछा कि महोदयो! किन क्षेत्रों में श्रीनगर बनाना है।।१४।।

ब्रह्माद्याः परिपृष्टास्ते प्रोचुस्तौ शिल्पिनौ पुनः।
क्षेत्राणां प्रविभागं तु कल्पयन्तौ यथाचितम्॥१५॥

कारणपुरुषा ऊचुः

प्रथमं मेरुपृष्ठे तु निषधे च महीधरे। हेमकूटे हिमगिरौ पञ्चमे गन्धमादने॥१६॥
नीले मेषे च शृङ्गारे महेन्द्रे च महागिरौ। क्षेत्राणि हि नवैतानि भौमानि विदितान्यथ॥१७॥
औदकानि तु सप्तैव प्रोक्तान्यखिलसिन्धुषु।
लवणोऽब्धीक्षुसाराब्धिः सुराब्धिर्घृतसागरः॥१८॥
दधिसिन्धुः क्षीरसिन्धुर्जलसिन्धुश्च सप्तमः।
पूर्वोक्ता नव शैलेन्द्राः पश्चात्सप्त च सिन्धवः॥१९॥
आहृत्य षोडश क्षेत्राण्यंबाश्रीपुरक्लृप्तये। येषु दिव्यानि वेश्मानि ललिताया महौजसः।
सृजतं दिव्यघटनापण्डितौ शिल्पिनौ युवाम्॥२०॥
येषु क्षेत्रेषु क्लृप्तानि घ्नन्त्या देव्या महासुरान्।
नामानि नित्यानाम्नैव प्रथितानि न संशयः॥२१॥
सा हि नित्यास्वरूपेण कालव्याप्तिकरी परा। सर्वं कलयते देवी कलनांकतया जगत्॥२२॥
नित्यानां च महाराज्ञी नित्या यत्र न तद्भिदा। अतस्तदीयनाम्ना तु सनामा प्रथिता पुरा॥२३॥
कामेश्वरीपुरी चैव भगमालापुरी तथा। नित्यक्लिन्नापुरीत्यादिनामानि प्रथितान्यलम्॥२४॥

जिन ब्रह्मा आदि से उन दोनों ने पूँछा तो ब्रह्मा आदि फिर उन दोनों से बोले कि क्षेत्रों का प्रविभाग तो यथोचित कल्पित कर लिया गया है।।१५।।

तब कारण पुरुषों ने कहा कि पहला मेरुपर्वत पर, और फिर निषध पर्वत पर उसके बाद हेमकूट पर फिर हिमगिरि पर पाँचवे गन्धमादन पर्वत पर, नील पर्वत पर, मेघ र्पत पर, शृङ्गार पर्वत, महेन्द्र पर्वत पर और महागिरि पर ये नौ भूमिक्षेत्र विदित ही हैं।।१६-१७।। जल वाले प्रदेश तो सात ही हैं, जो सब समस्त समुद्रों में हैं। वे सागर हैं—लवण सागर, इक्षुसागर, सुरा सागर, घृत सागर, दधि सागर, क्षीर सागर और सातवां जलसागर पूर्वोक्त ९ पर्वत हुए और बाद में सात समुद्र हुए।।१८-१९।।

अतः ललितेश्वरी अम्बा के श्रीपुर की रचना के लिए सोलह क्षेत्रों को लेकर निर्माण कीजिए, जिनमें महापराक्रमशालिनी ललिता दिव्य घरों की रचना करते हुए दिव्य घटनाओं को चित्रित करने में कुशल आप दोनों शिल्पी जिन-जिन क्षेत्रों में महासुरों को मारने वाली देवी ने कार्यस्थल बनाये, वे सब स्थान नित्या नाम से ही प्रसिद्ध हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२०-२१।। वह कालव्याप्तिकरी देवी सबसे परे है तथा नित्या स्वरूप से सब एक-एक की गिनती रखती हुई एक-एक के विषय में सोचती हुई सब संसार को धारण करती है, उसके विषय में, उसे चलाने के लिए सोचती है, उसके विषय में चिन्तित रहती है।।२२।। वह महाराज्ञी नित्यों की नित्या है। वह नित्य पदार्थों से भिन्न नहीं है। अतः वह पुरी उसके नाम से तो पूर्वकाल में नाम सहित प्रसिद्ध हुई थी।।२३।। वे नाम हैं—कामेश्वरी पुरी, भगमाला पुरी और नित्यक्लिन्ना पुरी इत्यादि प्रसिद्ध हुए थे।।२४।।

अतो नामानि वर्णेन योग्ये पुण्यतमे दिने। महाशिल्पप्रकारेण पुरीं रचयतां शुभाम्॥२५॥
इति कारणकृत्येंद्रैर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः। प्रोक्तौ तौ श्रीपुरीस्थेषु तेषु क्षेत्रेषु चक्रतुः॥२६॥
अथ श्रीपुरविस्तारं पुराधिष्ठातृदेवताः। कथयाम्यहमाधार्य लोपामुद्रापते शृणु॥२७॥
यो मेरुरखिलाधारस्तुंगश्चानंतयोजनः। चतुर्दशजगच्चक्रसंप्रोतनिजविग्रहः॥२८॥
तस्य चत्वारि शृंगाणि शक्रनैर्ऋतवायुषु। मध्यस्थलेषु जातानि प्रोच्छ्रायस्तेषु कथ्यते॥२९॥
पूर्वोक्तशृङ्गत्रितयं शतयोजनमुन्नतम्। शतयोजनविस्तारं तेषु लोकास्त्रयो मताः॥३०॥
ब्रह्मलोको विष्णुलोकः शिवलोकस्तथैव च। एतेषां गृहविन्यासान्वक्ष्याम्यवसरांतरे॥३१॥
मध्ये स्थितस्य शृङ्गस्य विस्तारं चोच्छ्रयं शृणु। चतुःशतं योजनानामुच्छ्रितं विस्तृतं तथा॥३२॥
तत्रैव शृंगे महति शिल्पिभ्यां श्रीपुरं कृतम्। चतुःशतं योजनानां विस्तृतं कुम्भसंभव॥३३॥
तत्रायं प्रविभागस्ते प्रविविच्य प्रदर्श्यते। प्राकारः प्रथमः प्रोक्तः कालायसविनिर्मितः॥३४॥
षट्दशाधिकसाहस्रयोजनायतवेष्टनः। चतुर्दिक्षु द्वार्युतश्च चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥३५॥

अतः वर्ण के द्वारा योग्य पुण्यतम दिन में महाशिल्प के प्रकार से उस शुभ पुरी की रचना कर दीजिए।।२५।। इस प्रकार कारण कृत्येन्द्र (निर्माणाधिकारी) ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने उन दोनों विश्वकर्मा और मय से कहा, तव उन दोनों ने उन क्षेत्रों में उन-उन पुरों को बना दिया।।२६।।

इसके बाद हयानन ने अगस्त्य जी से कहा कि अब मैं श्रीपुर का विस्तार और पुरों की अधिष्ठात्री देवियों का अच्छी प्रकार विचार कर कह रहा हूँ। हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्य जी सुनिये।।२७।। जो मेरु पर्वत है, वह उसका आधार है, जो कि अनन्त योजन ऊँचा है तथा चौदह जगच्चक्रों से अपने शरीर को अच्छी तरह से ढँके हुए है।।२८।। उस श्रीपुर के चार सींग हैं, जो शक्र[1], नैर्ऋत[2], वायु[3] और दिशाओं में है और एक मध्य स्थानों में हुआ है, उनमें जो ऊँचाई है, वह कही जाती है।।२९।।

पूर्वोक्त शृंग तीन सौ योजन ऊँचा है, उनमें सौ योजन विस्तार वाले तीनों लोक माने गये हैं।।३०।। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और उसी प्रकार का शिवलोक है, इनके घर के क्षेत्रफल को मैं दूसरे अवसर पर बताऊँगा।।३१।। अब मध्य में स्थित शृंग के विस्तार को और उस ऊँचाई को सुनिये। वह चार सौ योजन ऊँचा और उतना ही विस्तृत है।।३२।। वहीं महान् शृङ्ग पर शिल्पियों ने श्रीपुर को बनाया है। अतः हे अगस्त्य जी! वह श्रीपुर चार सौ योजन विस्तृत है।।३३।। उसमें यह जो प्रकृष्ट विभाग हैं, उनको प्रकृष्ट रूप से विशेषतः बता कर दिखाया जा रहा है।।३३½।। इसमें प्राकार (परकोटा/चारों तरफ का घेरा/ अथवा चहारदीवारी कहिए) अतः प्राकार प्रथम है। जो श्रीपुर का परकोटा है, जो लोहे से विशेष रूप से निर्मित किया गया है, जो सोलह हजार योजन श्रीपुर को चारों ओर से घेरे हुए है। अर्थात् श्रीपुर की चहारदीवारी की लम्बाई वृत्ताकार रूप से सोलह हजार योजन है।।३३½-३४½।। चारों दिशाओं में द्वार पर चार योजन ऊँचा द्वार है, जो शाल वृक्ष की मूल के समान वृत्ताकार है और वह दश हजार योजन

---

१. नैर्ऋत—दक्षिण और पश्चिम के बीच की दिशा।

२. वायु—पश्चिम और उत्तर के बीच की दिशा।

३. शक्र—उत्तर दिशा।

शालमूलपरीणाहो योजनायुतमब्धिप। शालाग्रस्य तु गव्यूतेर्नद्धवातायनं पृथक्॥३६॥
शालद्वारस्य चौन्नत्यमेकयोजनमाश्रितम्। द्वारेद्वारे कपाटे द्वे गव्यूत्यर्धप्रविस्तरे॥३७॥
एकयोजनमुन्नद्धे कालायस विनिर्मिते। उभयोरर्गला चेत्थमर्धक्रोशसमायता॥३८॥
एवं चतुर्षु द्वारेषु सदृशं परिकीर्तितम्। गोपुरस्य तु संस्थानं कथये कुंभसंभव॥३९॥
पूर्वोक्तस्य तु शालस्य मूले योजनसंमिते। पार्श्वद्वये योजने द्वे द्वे समादाय निर्मिते॥४०॥
विस्तारमपि तावंतं संप्राप्तं द्वारगर्भितम्। पार्श्वद्वयं योजने द्वे मध्ये शालस्य योजनम्॥४१॥
मेलयित्वा पञ्च मुने योजनानि प्रमाणतः। पार्श्वद्वयेन सार्धेन क्रोशयुग्मेन संयुतम्॥४२॥
मेलयित्वा पंचसंख्यायोजनान्यायतस्तथा। एवं प्राकारतस्तत्र गोपुरं रचितं मुने॥४३॥
तस्माद्गोपुरमूलस्य वेष्टो विंशतियोजनः। उपर्युपरि वेष्टस्य ह्रास एव प्रकीर्त्यते॥४४॥
गोपुरस्योन्नतिः प्रोक्ता पञ्चविंशतियोजना। योजनेयोजने द्वारं सकपाटं मनोहरम्॥४५॥

भूमिकाश्चापि तावन्त्यो यथोध्वरं ह्राससंयुताः।
गोपुराग्रस्य निस्तारो योजनं हि समाश्रियः॥४६॥
आयामोऽपि च तावान्वै तत्र त्रिमुकुटं स्मृतम्।
मुकुटस्य तु विस्तारः क्रोशमानो घटोद्भव॥४७॥

क्रोशद्वयं समुन्नद्धं ह्रासं गोपुरवन्मुने। मुकुटस्यांतरे क्षोणी क्रोशार्धेन च संमिता॥४८॥

लम्बा है।।३४½-३५½।। शाल के आगे का एक अलग वातायन है, जो दो कोश लम्बा है और शालद्वार की ऊँचाई एक योजन आश्रित है।।३५½-३६½।। द्वार-द्वार पर दो कपाट हैं, जो आधे गव्यूति (एक कोश) विस्तार वाले हैं तथा एक योजन ऊँचे हैं और वे लोहे के बने हुए हैं। दोनों कपाटों में आधे कोश लम्बी अर्गला है।।३६½-३८।। इस प्रकार चारों द्वारों पर समान रूप से बनाये गये गोपुर के संस्थान हैं, जिनको हे अगस्त्यजी! मैं बताता हूँ।।३९।। पूर्वोक्त शाल के मूल में योजन सम्मित दोनों पार्श्व में दो योजन पर दो शाल लाकर बनाये गये हैं।।४०।। उनका भी विस्तार द्वार के अन्दर उतना ही है, दोनों पार्श्व दो योजन है, जो दो शाल के मध्य की दूरी है।।४१।। कुल मिलाकर पाँच योजन प्रमाण होता है। दोनों पार्श्व के साथ दो कोश होता है।।४२।। सब मिलाकर पाँच योजन लम्बाई होती है। इस प्रकार की चहारदीवारी वाला गोपुर बनाया गया है।।४३।।

उससे गोपुर मूल का घेरा (उसकी बाड़) बीस योजन है, ऊपर-ऊपर उस बाड़ का ह्रास ही कहा जाता है। जैसे ऊपर को मन्दिर अथवा पहाड़ कम होता जाता है, वही उसका रूप है। इससे यहां पर प्रकृति निर्मित मेरुपर्वत का वर्णन प्रतीत हो रहा है।।४४।। गोपुर की ऊँचाई पच्चीस योजन कही गयी है। योजन-योजन पर कपाट युक्त मनोहर द्वार हैं।।४५।। और उतनी भूमि की लम्बाई भी उतनी ही थी, जो ऊपर को कम होती गयी। गोपुर के आगे का निस्तार एक योजन समाश्रित है। यहाँ स्पष्ट है कि मेरुपर्वत की ऊँचाई ऊपर को कम होती गयी, हो सकता है कि सबसे ऊँची की चोटी का विस्तार एक योजन (४ कोश) १० कि.मी. हो।।४६।। तथा उसका आयाम (लम्बाई) भी उतनी ही है, वहाँ पर त्रिमुकुट सुना गया है। हे अगस्त्य जी! उस मुकुट का तो विस्तार कोश भर का है।।४७।। हे मुने! गोपुर के समान कोश भर ऊँचा ह्रास है, मुकुट के बीच में आधे कोश सम्मित एक पहाड़ है।।४८।।

मुकुटं पश्चिमे प्राच्यां दक्षिणे द्वारगोपुरे।दक्षोत्तरस्तु मुकुटाः पश्चिमद्वारगोपुरे॥४९॥
दक्षिणद्वारवत्प्रोक्ता उत्तरद्वाःकिरीटिकाः। पश्चिमद्वारवत्पूर्वद्वारे मुकुटकल्पना॥५०॥
कालायसाख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने। अंतरे कांस्यशालस्य पूर्ववद्गोपुरोऽन्वितः॥५१॥
शालमूलप्रमाणं च पूर्ववत्परिकीर्तितम्। कांस्यशालोऽपि पूर्वादिदिक्षु द्वारसमन्वितः॥५२॥
द्वारेद्वारे गोपुराणि पर्वलक्षणभांजे च। कालायसस्य कांस्यस्य योंऽतर्देशः समंततः॥५३॥
नानावृक्षमहोद्यानं तत्प्रोक्तं कुंभसंभव। उद्भिज्जाद्यं यावदस्ति तत्सर्वं तत्र वर्तते॥५४॥
परंसहस्रास्तरवः सदापुष्पाः सदाफलाः। सदापल्लवशोभाढ्याः सदा सौरभसंकुलाः॥५५॥

चूताः कंकोलका लोधा बकुलाः कर्णिकारका;।
शिशपाश्च शिरीषाश्च देवदारुनमेरवः॥५६॥
पुन्नागा नागभद्राश्च मुचुकुंदाश्च कट्फला;।
एलालवंगास्तक्कोलास्तथा कर्पूरशाखिनः॥५७॥
पीलवः काकतुंड्यश्च शालकाश्चासनास्तथा।
कांचनाराश्च लकुचाः पनसा हिंगुलास्तथा॥५८॥

पाटलाश्च फलिन्यश्च जटिल्यो जघनेफलाः। गणिकाश्च कुरंडाश्च बंधुजीवाश्चदाडिमाः॥५९॥

अश्वकर्णा हस्तिकर्णाश्चांपेयाः कनकद्रुमाः।
यूथिकास्तालपर्ण्यश्च तुलस्यश्च सदाफलाः॥६०॥

तालास्तमालहिंतालखर्जूराः शरबर्बुराः। इक्षवः क्षीरिणश्चैव श्लेष्मांतकविभीतकाः॥६१॥

हरीतक्यस्त्ववाक्पुष्प्यो घोण्टाल्यः स्वर्गपुष्पिकाः।
भल्लातकाश्च खदिराः शाखोटाश्चंदनद्रुमाः॥६२॥

मुकुट पश्चिम और पूर्व में दक्षिण द्वार गोपुर में स्थित है। दक्षिण और उत्तर से मुकुट पश्चिम द्वार गोपुर में है।।४९।। दक्षिण द्वार के समान उत्तर द्वार के मुकुट हैं। पश्चिम द्वार के पूर्व द्वार पर भी मुकुट की कल्पना है।।५०।। लोहे की शाल के बीच में मारुत योजन पर और कांसे की शाल के बीच में पूर्व के समान गोपुर स्थित है।।५१।। शालमूल का प्रमाण पूर्ववत् बताया गया है। कांस्यशाल भी पूर्वादि दिशाओं में द्वार से युक्त है।।५२।। प्रत्येक द्वार पर गोपुर हैं और पर्व के लक्षण। लोहे के शाल और कांस्यशाल के अन्तर्देश चारों और फैला हुआ है। वह अनेकों प्रकार के वृक्षों का महा उद्यान कहा जाता है। भूमि को फोड़कर पैदा होने वाले जितने भी प्रकार के वृक्ष होते हैं, वे सब वहाँ उस महा उद्यान में वर्तमान हैं।।५३-५४।। सदा पुष्प वाले और सदा फल वाले तथा सदा पत्तों की शोभा से युक्त एवं सदा सुगन्ध से भरे हुए हजारों से भी अधिक वृक्ष वहाँ पर विद्यमान हैं।।५५।। जैसे कि आम, अशोक, लोध्र, बकुल, (मौलसिरी), अमलतास, शीशम, शिरीष, देवदारु, नमेरु, पुन्नाग, गूलर, मुचुकुन्द, कटफल, एला (एलायची), लौंग, तक्कोल, कर्पूरशाखी, पीलु, काकतुण्डी, शालक, असन, कचनार, लकुच, पनस, हींग, पाटल (गुलाब), फलिनी, जटिली, जधने फल, गणिका, कटसरैया, बन्धुजीव, अनार, अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, चांपेय, कनकद्रुम (धतूरा), जूही, तालपर्णी, तुलसी, सदाफला, ताल, माल, हिन्ताल, खजूर, शरबर्बर, ईख, किरनी, लहसोड़ा, विभीतक, हरड़, अवाक्पुष्पी, घाण्टाली, स्वर्गपुष्पी, भल्लातक, खदिर, शाखोट (शखुआ) चन्दन,

कालागुरुद्रुमाः कालस्कंधाश्चिंचा वटास्तथा। उदुंबरार्जुनाश्वत्थाः शमीवृक्षा ध्रुवुद्रुमाः॥६३॥
रुचकाः कुटजाः सप्तपर्णाश्च कृतमालकाः।
कपित्थास्तिंतिणी चैवेत्येवमाद्याः सहस्रशः॥६४॥
नानाऋतुसमाविष्टा देव्याः शृङ्गारहेतवः। नानावृक्षमहोत्सेधा वर्तंते वरशाखिनः॥६५॥
कांस्यशालस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः। चतुरस्रस्ताम्रशालः सिंधुयोजनमुन्नतः॥६६॥
अनयोरंतरक्षोणी प्रोक्ता कल्पकवाटिका। कर्पूरगन्धिभिश्चारुरत्नबीजसमन्वितैः॥६७॥
कांचनत्वक्सुरुचिरैः फलैस्तैः फलिता द्रुमाः।
पीतांबराणि दिव्यानि प्रवालान्येव शाखिषु॥६८॥
अमृतं स्यान्मधुरसः पुष्पाणि च विभूषणम्। ईदृशा बहवस्तत्र कल्पृक्षाः प्रकीर्तिताः॥६९॥
एषा कक्षा द्वितीया स्यान्कल्पवापीति नामतः।
ताम्रशालस्यांतराले नागशालः प्रकीर्तितः॥७०॥
अनयोरुभयोस्तिर्यग्देशः स्यात्सप्तयोजनः। तत्र संतानवाटी स्यान्कल्पवापीसमाकृतिः॥७१॥
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता हरिचन्दनवाटिका। कल्पवाटीसमाकारा फलपुष्पसमाकुला॥७२॥
एषु सर्वेषु शालेषु पूर्ववदद्वारकल्पनम्। पूर्ववद्गोपुराणां च मुकुटानां च कल्पनम्॥७३॥
गोपुरद्वारक्लृप्तं च द्वारे द्वारे च संमितिः। आरकूटस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः॥७४॥
पञ्चलोहमयः शालः पूर्वशालसमाकृतिः। तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता मन्दारद्रुमवाटिका॥७५॥
पञ्चलोहस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः। रौप्यशालस्तु संप्रोक्तः पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतः॥७६॥

कालागरु, तम्बाकू, बरगद, उदुम्बुर, अर्जुन, पीपल, शमी वृक्ष, ध्रुवा वृक्ष, रुचक, कुटकी, सप्तपर्ण (छितवन), कृतमालक, कपित्थ, तिंतिणी आदि हजारों प्रकार के वृक्ष थे।।५६-६४।। वहाँ श्रीललितेश्वरी के शृंगार के लिये अनेकों ऋतुओं से समाविष्ट श्रेष्ठ शाखाओं वाले अनेकों प्रकार के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे।।६५।। कांस्यशाल के अन्तराल में सात योजन दूर से चौकोर (वर्गाकार) ताम्रशाल (तांबे का भवन) है, जो समुद्र से एक योजन ऊँचा है।।६६।। इन दोनों के बीच में एक भूमि है, जिसे कल्पक वाटिका कहा गया है। जो भूमि कर्पूर की गन्ध वाले सुन्दर रत्नों से युक्त सुनहरी छाल वाले सुन्दर और रुचिर फलों से फलित है। उन वृक्षों की शाखाओं पर पीले-पीले रंग के दिव्य कोमल किसलय और अंकुर निकल रहे हैं।।६७-६८।। उन वृक्षों का मधुरस अमृत है और उनके पुष्प आभूषण हैं। ऐसे वहाँ बहुत से वृक्ष बताये गये हैं। इस प्रकार कल्पवापी इस नाम से यह द्वितीय कक्ष है।।६९-६९½।। अब ताम्रशाल के अन्तराल (मध्य) में नागशाल कहा गया है। इन दोनों में तिरछा स्थान सात योजन विस्तृत है, वहाँ पर कल्पवापी के समान आकृति वाली सन्तान वापी है।।६९½-७१।। उन दोनों कल्पवापी और सन्तान वापी के मध्य में हरिचन्दन वाटिका है, जो कल्पवापी के समान आकार वाली फल और फूलों से अच्छी प्रकार भरी हुई है।।७२।। इन सभी शालों में पूर्व के समान द्वार बने हुए हैं तथा पूर्व के समान ही गोपुरों और मुकुटों को बनाया गया है।।७३।। नगरद्वार के सटे हुए द्वार-द्वार पर सम्मिति बनायी गयी है।।७३½।। पीतल शाल (पीतल भवन) के बीच में सात योजन दूर से पाँच लोहमय भवन हैं, जो पूर्व भवनों के बीच में मन्दार वृक्षों की वाटिका है।।७३½-७५।। अब पाँच लोहमय

तयोर्मध्यमही प्रोक्ता पारिजातद्रुवाटिका। दिव्यामोदसुसंपूर्णा फलपुष्पभरोज्ज्वला॥७७॥
रौप्यशालस्यांतराले सप्तयोजनविस्तरः। हेमशालः प्रकथितः पूर्ववद्द्वारशोभितः॥७८॥
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता कदम्बतरुवाटिका। तत्र दिव्या नीपवृक्षा योजनद्वयमुन्नताः॥७९॥
सदैव मदिरासंपदा मेदुरप्रसवोज्ज्वलाः। येभ्यः कादंबरी नाम योगिनी भोगदायिनी॥८०॥
विशिष्टा मदिरोद्याना मंत्रिण्याः सततं प्रिया।
ते नीपवृक्षाः सुच्छायाः पत्रलाः पल्लवाकुलाः।
आमोदलोलभृंगालीझंकारैः पूरितोदराः॥८१॥
तत्रैव मंत्रिणीनाथाया मंदिरं सुमनोहरम्। कदंबवनवाट्यास्तु विदिक्षु ज्वलनादितः॥८२॥
चत्वारि मंदिराण्युच्चैः कल्पितान्यादिशिल्पिना।
एकैकस्य तु गेहस्य विस्तारः पञ्चयोजनः॥८३॥
पञ्चयोजनमायामः सप्तावरणतः स्थितिः। एवमन्यविदिक्षु स्युस्सर्वत्र प्रियकद्रुमाः।
निवासनगरी सेयं श्यामायाः परिकीर्तिता॥८४॥
सेनार्थं नगरी त्वन्या महापद्माटवीस्थले। यदत्रैव गृहं तस्या बहुयोजनदूरतः॥८५॥
श्रीदेव्या नित्यसेवा तु मंत्रिण्या न घटिष्यते। अतश्चिंतामणिगृहोपांतेऽपि भवनं कृतम्।
तस्याः श्रीमंत्रनाथायाः सुरत्वष्ट्रा मयेन च॥८६॥
श्रीपुरे मंत्रिणी देव्या मंदिरस्य गुणान्बहून्। वर्णयिष्यति को नाम यो द्विजिह्वासहस्रवान्॥८७॥

भवनों के अन्तराल में सात योजन दूर से पूर्व लक्षमों से युक्त चाँदी का भवन बताया गया है।।७६।। उन दोनों पंचलोह भवन और चाँदी के भवन के बीच में कल्पवृक्षों की वाटिका है, जो दिव्य आनन्द से सुसम्पूर्ण तथा फल और पुष्पों से भरी हुयी एवं उज्ज्वल है।।७७।। चाँदी के भवन के अन्तराल पर सात योजन विस्तार वाला स्वर्ण भवन कहा गया है, पूर्वद्वारों के समान जिसके द्वार सुशोभित हैं।।७८।। उन दोनों चाँदी और सोने के भवनों के बीच में कुछ भूमि कही गयी है, जिसे कदम्ब वृक्षों की वाटिका कहा गया है। वहाँ पर दो योजन ऊँचे कदम्ब के वृक्ष हैं।।७९।। जो सदैव उज्ज्वल मदिरा टपकाते रहते हैं। जिन वृक्षों से कादम्बरी नाम की भोग प्रदान करने वाली योगिनी पैदा हुई है।।८०।। वहाँ पर विशिष्ट मदिरा के उद्यान हैं, जो मन्त्रिणी देवी को सदैव प्रिय हैं।।८०½।।

वे कदम्ब के वृक्ष सुन्दर छाया वाले पत्तों और कोमल किसलयों से लदे हुए हैं, जो वृक्ष आनन्द से युक्त चञ्चल भौंरों की झंकारों से भरे हुए हैं।।८१।। वहीं पर मन्त्रिणी नाथा देवी का सुन्दर और मन को हर लेने वाला मन्दिर है, जो कदम्ब वन की वाटी से सभी दिशाओं में घिरा हुआ है।।८२।। वहाँ पर चार मन्दिर आदिकालीन शिल्पियों ने बनाये हैं। जिनके एक-एक घर का विस्तार पाँच योजन है।।८३।। तथा जिनकी पाँच योजन लम्बाई है। सात आवरण से स्थिति है। इस प्रकार अन्य विशेष दिशाओं में सर्वत्र प्रियक के वृक्ष हैं। यह श्यामा देवी की निवास नगरी कही गयी है।।८४।। यह नगरी सेना के लिये है। अन्य नगरी महापद्मवन के स्थल पर है कि यहीं पर बहुत योजन दूर से उन श्रीदेवी का घर है।।८५।। श्रीदेवी की नित्य सेवा मन्त्रिणी द्वारा नहीं हो सकेगी, इसलिए चिन्तामणि गृह के पास में ही उन श्रीमन्त्रनाथा देवी का घर विश्वकर्मा और मय दानव ने बना दिया है।।८६।। श्रीपुर में मन्त्रिणी

कादंबरीमदाताम्रनयनाः कलवीणया। गायंत्यस्तत्र खेलंति मान्यमातंगकन्यकाः॥८८॥

अगस्त्य उवाच

मातङ्गो नाम कः प्रोक्तस्य कन्याः कथं च ताः।
सेवंते मंत्रिणीनाथां सदा मधुमदालसाः॥८९॥

हयग्रीव उवाच

मतंगो नाम तपसामेकराशिस्तपोधनः। महाप्रभावसंपन्नो जगत्सर्जनलंपटः।।९०।।
तपःशक्त्यात्तधिया च सर्वत्राज्ञाप्रवर्त्तकः। तस्य पुत्रस्तु मातंगो मुद्रिणीं मंत्रिनायिकाम्॥९१॥
घोरैस्तपोभिरत्यर्थं पूरयामास धीरधीः। मतंगमुनिपुत्रेण सुचिरं समुपासिता॥९२॥
मंत्रिणी कृतसान्निध्या वृणीष्व वरमित्यशात्।
सोऽपि सर्वमुनिश्रेष्ठो मातंगस्तपसां निधिः।
उवाच तां पुरो दत्तसान्निध्यां श्यामलांबिकाम्॥९३॥

मातंगमहामुनिरुवाच

देवीत्वत्स्मृतिमात्रेण सर्वाश्च मम सिद्धयः।
जाता एवाणिमाद्यास्ताः सर्वाश्चान्या विभूतयः॥९४॥
प्रापणीयन्न मे किंचिदस्त्यंब भुवनत्रये। सर्वतः प्राप्तकालस्य भवत्याश्चरितस्मृतेः॥९५॥
अथापि तव सांनिध्यमिदं नो निष्फलं भवेत्। एवं परं प्रार्थयेऽहं तं वरं पूरयांबिके॥९६॥

देवी के मन्दिर (घर) के बहुत गुणों को कौंन वर्णन कर सकेगा, जो दो हजार जिह्वाओं वाला होगा, अर्थात् न कोई दो हजार जिह्वाओं वाला होगा, न उनके बहुत गुणों वाले भवनों का वर्णन कर सकेगा, अतः वर्णन अवर्णनीय है।।८७।। मदिरा के मद से लाल-लाल आँखों वाली, कलवीणा से गाती हुई, मान्य मातंग कन्याएँ वहाँ खेलती हैं।।८८।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि हे हयानन! ये मातंग नाम कौंन कहा गया है और उसकी वे कन्याएँ कौंन हैं, जो कि सदा मदिरा के मद में मस्त होकर मन्त्रिणी नाथा देवी की सेवा करती हैं।।८९।।

हयग्रीव ने कहा कि एक तपस्याओं के एक राशि तपस्वी महाप्रभाव सम्पत्र, संसार को उत्पत्र करने में सहायक, तपस्या की शक्ति से प्राप्त बुद्धि वाले, सर्वत्र आज्ञा को प्रवृत्त करने वाले मतंग नाम के एक तपस्वी थे। उनका पुत्र मातंग है, जिस धीर बुद्धि वाले ने मुद्रिणी मन्त्रिनाथा देवी को घोर तपस्याओं से प्रसन्न कर अपना उद्देश्य पूरा कर लिया।।९०-९१½।। मतंग मुनि के पुत्र द्वारा बहुत समय तक उपासना करने से मन्त्रिनाथा देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं, तो उन्होंने उससे कहा कि वर माँगो। वह भी सब मुनियों में श्रेष्ठ और तपस्याओं के साक्षात् भण्डार थे। अतः उन मातंग मुनि ने श्यामला देवी के सामने स्थित होकर कहा।।९१½-९३।।

मातंग मुनि ने कहा कि देवी! तुम्हारे स्मरण मात्र से मुझे अणिमा आदि समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो गयीं तथा अन्य सभी विभूतियाँ भी प्राप्त हो गयीं।।९४।।

अब हे अम्बे! अब तीनों लोकों में मेरे प्राप्त करने योग्य कोई भी वस्तु नहीं है। सब ओर सब कुछ सब काल में आपके चरित्र स्मरण से मिल ही जाता है। इसके बाद भी तुम्हारा यह जो सान्निध्य है, वह निष्फल न होवे, इसलिए

पूर्वं हिमवता सार्धं सौहार्दं परिहासवान्।
क्रीडामत्तेन चावाच्यैस्तत्र तेन प्रगल्भितम्॥९७॥
अहं गौरीगुरुरिति श्लाघामात्मनि तेनिवान्।
यद्वाक्यं मम नैवाभूद्यतस्तत्राधिको गुणः॥९८॥
उभयोर्गुणसाम्ये तु मित्रयोरधिके गुणे। एकस्य कारणाज्जाते तत्रान्यस्य स्पृहा भवेत्॥९९॥
गौरीगुरुत्वश्लाघार्थं प्राप्तकामोऽप्यहं तपः।
कृतवान्मंत्रिणीनाथे तत्त्वं मत्तनया भव॥१००॥
यतो मन्नामविख्याता भविष्यसि न संशयः। इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा मातंगस्य महामुनेः।
तथास्त्विवति तिरोधत्त स च प्रीतोऽभवन्मुनिः॥१०१॥
मातंगस्य महर्षेस्तु तस्य स्वप्ने तदा मुदा।
तापिच्छमञ्जरीमेकां ददौ कर्णावतंसतः॥१०२॥
तत्स्वप्नस्य प्रभावेण मातंगस्य सधर्मिणी।
नाम्ना सिद्धिमती गर्भे लघुश्यामामधारयत्॥१०३॥
तत एव समुत्पन्ना मातंगी तेन कीर्तिताः।
लघुश्यामेति सा प्रोक्ता श्यामा यन्मूलकंदभूः॥१०४॥

ऐसा परं वर मैं माँगता हूँ, उसको हे अम्बिके! पूरा करो।।९६।। पूर्वकाल में हिमालय के साथ मैंने क्रीड़ा करते हुए उन भगवान् शंकर ने कहा था और मेरी बहुत प्रशंसा की थी, वह वाक्य मेरे लिए अधिक गुण वाला नहीं हुआ।।९७-९८।। दोनों गुणों के समान होने पर मित्र होने में अधिक गुण है; क्योंकि एक के कारण से उत्पन्न होने पर अन्य की इच्छा होती है। अर्थात् जैसे किसी कारण रूप कार्य से जब सफलता मिल जाती है, तो फिर व्यक्ति किसी अन्य कार्य की सफलता के लिए किसी अन्य कारण को कार्य बनाने की इच्छा करता है। जैसे कि मैंने तपस्या की, उससे सिद्धियाँ मिलीं, फिर उसके बाद अन्य वैभव को प्राप्त करने के लिए फिर तप किया, वह भी मिला, इस प्रकार इच्छायें अनन्त हैं, बढ़ती ही जाती हैं।।९९।।

अतः गौरी गुरुत्व की प्रशंसा के लिए प्राप्त कामना वाले, मैंने तप किया है। अर्थात् मैं सदैव गौरी के महान् होने की प्रशंसा का गान करता रहूँ, इसी उद्देश्य से मैंने तप किया है, इसलिए हे मन्त्रिणीनाथा देवी! आप मेरी पुत्री हो जाओ।।१००।।

जिससे तुम मेरे नाम से विख्यात हो जाओगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१००½।। इस प्रकार मातंग महामुनि के वचन को सुनकर 'तथास्तु' (वैसा ही होगा) ऐसा कहकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं और वह मुनि प्रसन्न हो गये।।१०१।। तब उन मातंग महर्षि के स्वप्न में उन प्रसन्न देवी ने अपने कर्णाभूषण से निकाल कर एक तापिच्छ मञ्जरी (तमाल वृक्ष के फूल की मंजरी) को दिया।।१०२।। उस स्वप्न के प्रभाव से मातंग मुनि की पत्नी, नाम से सिद्धिमती ने गर्भ में लघुश्यामा को धारण किया।।१०३।। उसके बाद ही उत्पन्न वे लघु श्यामा देवी मातंगी कही गयीं, वही लघु श्यामा भी कही गयी, जिनकी मूल कन्द की भूमि श्यामा देवी हैं।।१०४।।

मातंगकन्यका हृद्याः कोटीनामपि कोटिशः। लघुश्यामा महाश्यामामातंगी वृंदसंयुताः।
अङ्गशक्तित्वमापन्नाः सेवन्ते प्रियकप्रियाम्॥१०५॥
इति मातंगकन्यानामुत्पत्तिः कुंभसंभवः।
कथिताः सप्तकक्षाश्च शाला लोहादिनिर्मिताः॥१०६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे ललितोपाख्याने हयग्रीवागस्त्यसंवादे सप्तकक्ष्या मतंगकन्याप्रादुर्भावो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

श्रीनगर त्रिपुरा सप्तकक्षा पालक देवताप्रकाशनं नाम

द्वात्रिंशोऽध्यायः

लोहादिसप्तशालानां रक्षका एव संति वै। तन्नामकीर्तय प्राज्ञ येन मे संशयच्छिदा॥१॥

हयग्रीव उवाच

नानावृक्षमहोद्याने वर्तते कुंभसंभव। महाकालः सर्वलोकभक्षकः श्यामविग्रहः॥२॥
श्यामकंचुकधारी च मदारुणविलोचनः। ब्रह्माण्डचषके पूर्णं पिबन्विश्वरसायनम्॥३॥

मातंग कन्याएँ करोड़ों-करोड़ों में हृद्य हैं अर्थात् वे करोड़ों लोगों के लिये प्रिय हैं। जो लघुश्यामा, महाश्यामा आदि मातंगी समूह से युक्त हैं। वे सब अंगशक्तित्व को प्राप्त कर प्रियक प्रिया देवी की सेवा करती हैं।।१०५।। इस प्रकार हे अगस्त्य जी मैंने मातंग कन्याओं की उत्पत्ति कही और लोहा आदि से निर्मित सात कक्षों की शालाओं का वर्णन किया है।।१०६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३१वाँ अध्याय सप्तकक्ष्या मतंगकन्या उत्पत्ति वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३२

श्रीनगर त्रिपुरा सप्तकक्षापालक देवता प्रकाशन वर्णन

अगस्त्य मुनि बोले— कि हे भगवान् हयग्रीव! आपने जो लोहादि सप्तशालाओं का वर्णन किया, अतः लोहादि सप्तशालाओं के रक्षक तो होंगी, इसलिए हे प्राज्ञ! आप उनके नाम बताइए, जिससे मेरा सन्देह दूर हो सके।।१।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्यजी! अनेकों वृक्षों से युक्त महोद्यान में सब लोकों के भक्षक श्याम शरीर वाले महाकाल वर्तमान हैं।।२।। वे महाकाल श्यामकंचुक धारण करने वाले और मद से लाल-लाल नेत्रों वाले हैं तथा

महाकालीं घनश्यामामनंगार्द्रामपाङ्गयन्। सिंहासने समासीनः कल्पांते कलनात्मके॥४॥
ललिताध्यानसंपन्नो ललितापूजनोत्सुकः। वितन्वँल्ललिताभक्तेः स्वायुषो दीर्घ दीर्घताम्।
कालमृत्युप्रमुख्यैश्च किंकरैरपि सेवितः॥५॥
महाकालीमहाकालौ ललिताज्ञाप्रवर्त्तकौ। विश्वं कलयतः कृत्स्नं प्रथमेऽध्वनि वासिनौ॥६॥
कालचक्रं मतङ्गस्य तस्यैवासनतां गताम्। चतुरावरणोपेतं मध्ये बिन्दुमनोहरम्॥७॥
त्रिकोणं पञ्चकोणं च षोडशच्छदपंकजम्। अष्टारपंकजं चैवं महाकालस्तु मध्यगः॥८॥
त्रिकोणे तु महाकाल्या महासंध्या महानिशा।
एतास्तिस्रो महादेव्यो महाकालस्य शक्तयः॥९॥
तत्रैव पञ्चकोणाग्रे प्रत्यूषश्च पितृप्रसूः। प्राह्णापराह्णमध्याह्नाः पञ्च कालस्य शक्तयः॥१०॥
अथ षोडशपत्राब्जे स्थिता शक्तीर्मुने शृणु।
दिनमिश्रा तमिस्रा च ज्योत्स्नी चैव तु पक्षिणी॥११॥

वे सकल ब्रह्माण्ड रूपी शराब के प्याले में विश्व रसायन पीते हुए घन के समान श्याम वर्ण वाली अंगहीन आद्रा (कामवेग से आर्द्र महाकाली पर दृष्टि डालते हुए, उनको घूरते हुए तथा सृष्टि का अन्त कब होगा, कल्पान्त अभी कितना शेष है, यह कालगणना करते हुए सिंहासन पर समासीन हैं। उस समय वे महाकाल महाराज्ञी ललितेश्वरी के ध्यान में संलग्न हैं तथा ललिता देवी की पूजा में उत्सुक हैं तथा ललितादेवी की भक्ति में ही अपनी आयु का लम्बे से लम्बा समय बिता रहे हैं और वे स्वयं कालमृत्यु के प्रमुख सेवकों द्वारा सेवित हैं। अर्थात् जो मनुष्यों के प्राणों को लेकर आते हैं, उन कालकिंकरों (यमदूतों) द्वारा उन महाकाल की सेवा की जा रही है।।३-५।। महाकाली और महाकाल ललिता देवी की आज्ञा को लागू (क्रियान्वित) करने वाले हैं तथा दोनों ही समस्त विश्व की गणना करते हुए कि कितना समय हुआ तथा कितना समय अभी सृष्टि में शेष है तथा किसका कब समय पूरा हो रहा है, यह सब हिसाब-किताब रखते हुए प्रथम मार्ग में निवास करने वाले हैं।।६।। उसी मतङ्ग का कालचक्र आसनता को प्राप्त हुआ है। उसके मध्य में चार आवरणों से युक्त मनोहर बिन्दु है।।७।। त्रिकोण, पंचकोण, षोडशदलकमल और अष्टदलकमल हैं, इस प्रकार महाकाल तो सबके मध्य में हैं।।८।। त्रिकोण में महाकाली, महासन्ध्या और महानिशा तीनों ही महादेवियाँ महाकाल की शक्तियाँ हैं।।९।। वहीं पञ्चकोण अग्रभाग में प्रत्यूष, पितृप्रसू, प्राह्ण, अपराह्ण और मध्याह्ण ये पाँच की शक्तियाँ हैं[१]।।१०।। हयानन कहते हैं कि अब हे मुने! षोडशदलकमल में जो शक्तियाँ स्थित हैं, उनको सुनिये। वे हैं दिनमिश्रा, तमिस्रा, ज्योत्स्नी, पक्षिणी, प्रदोषा, निशीथा, प्रहरा, पूर्णिमा, राका, अनुमति, अमावस्यिका,

---

विशेष—ललिता देवी, ललितेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, दुर्गा, चण्डी, काली, पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी आदि ये प्रकृति के ही नाम हैं। कालचक्र समय का चक्र है। त्रिकोण रात्रि के तीन भाग हुए—१. महाकाली, महासन्ध्या, ३. महानिशा।

१. पञ्चकोण—दिन के पाँच के प्रतीक हैं—१. प्रत्यूष = भोरप्रभात, . प्रतिप्रसू = प्रभात के बाद का समय, ३. प्राह्ण = दोपहर से पहले का समय, ४. मध्याह्न = दोपहर, ५. अपराह्ण = दोपहर के बाद का समय। इस प्रकार ये पाँच दिनकाल रूपी प्रकृति की शक्तियाँ हैं। दिनमिश्रा तमिस्रा आदि वर्ष भर की सोलह प्रकार की तिथियों के नाम हैं तथा सोलह कमलवासिनी शक्तियाँ समय की नापतौल बताने वाली है, जो कला काष्ठा आदि हैं। तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण ये समय के सूचक ज्योतिष के पाँच अंग ही हैं। इस प्रकार ये सब प्रकृति के ही प्रतीक हैं।

प्रदोषा च निशीथा च प्रहरा पूर्णिमापि च। राका चानुमतिश्चैव तथैवामावस्यिका पुनः॥१२॥
सिनीवाली कुहूर्भद्रा उपरागा च षोडशी।
एता षोडशमात्रस्थाः शक्तयः षोडश स्मृताः॥१३॥
कला काष्ठा निमेषाश्च क्षणाश्चैव लवास्त्रुटिः। मुहूर्ताः कुतपाहोरा शुक्लपक्षस्तथैव च॥१४॥
कृष्णपक्षायनाश्चैव विषुवा च त्रयोदशी। संवत्सरा च परवत्सरेडावत्सरापि च॥१५॥
एताः षोडश पत्राब्जवासिन्यः शक्तयः स्मृताः। इद्वत्सरा ततश्चेन्दुवत्सरावत्सरेऽपि च॥१६॥
तिथिर्वारांश्च नक्षत्रं योगाश्च करणानि च। एतास्तु शक्तयो नागपत्रांभोरुहसंस्थिताः॥१७॥
कलिः कल्पा च कलना काली चेति चतुष्टयम्।
द्वारपालकतां प्राप्तं कालचक्रस्य भास्वतः॥१८॥
एता महाकालदेव्यो मदप्रहसिताननाः। मदिरापूर्णचषकमशेषं चारुणप्रभम्।
दधानाः श्यामलाकाराः सर्वाः कालस्य योषितः॥१९॥
ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः। निषेवन्ते महाकालं कालचक्रासनस्थितम्॥२०॥
अथ कल्पकवट्यास्तु रक्षकः कुम्भसंभव। वसन्तर्तुर्महातेजा ललिताप्रियकिङ्करः॥२१॥
पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पमाध्वीमदारुणः। पुष्पायुधः पुष्पभूषः पुष्पच्छत्रेण शोभितः॥२२॥
मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे देव्यौ तस्य दीव्यतः। प्रसूनमदिरामत्ते प्रसून शरलालसे॥२३॥

सिनीवाली, कूहू, भद्रा, उपरागा और षोडशी। ये सोलहों शक्तियाँ सोलह मात्राओं में स्थित हैं। इस प्रकार शक्तियाँ सोलह ही स्मरण की गयी हैं।।११-१३।। अब सोलह कमलदल वासिनी शक्तियों के नाम सुनिये, वे हैं—कला, काष्ठा, निमेषा, क्षणा, लवा, त्रुटि, मुहूर्ता, कुतपा, होरा, शुक्लपक्षा, कृष्णपक्षायना, विषुवा, त्रयोदशी, संवत्सरा, परिवत्सरा और इडावत्सरा। ये सोलह शक्तियाँ षोडश कमल दल में वास करने वाली शक्तियाँ स्मरण की गयी हैं। उसके बाद इद्वत्सरा, इन्दुवत्सरा और अवत्सरा भी हैं।।१४-१६।। तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण, ये पाँच शक्तियाँ जो ज्योतिष के पाँच अंग कहे गये हैं, जो काल गणना की प्रतीक हैं। ये शक्ति नागपत्रकमल पर स्थित है।।१७।। कलि, कल्पा, कलना और काली ये चार चमकते हुए कालचक्र की द्वारपालकता को प्राप्त हुई है, अर्थात् उपर्युक्त ये चारों कालचक्र की द्वारपाल हैं।।१८।। ये सभी महाकाल देवियाँ मदिरा से भरे हुए प्याले को धारण किये हुए हैं और मद से प्रहसित मुख वाली हैं, अर्थात् मदिरा के मद में हँस रही हैं। सभी श्यामल आकार वाली हैं और सभी काल की पत्नियाँ हैं।।१९।। तथा ये चारों परमेशानी ललिता देवी के पूजन, ध्यान, जप और स्तुति में लगी रहती हैं और कालचक्रासन पर स्थित महाकाल की सेवा करती रहती हैं।।२०।।

हयानन कहते हैं कि इसके बाद हे अगस्त्य मुने! कल्पकवटी के रक्षक तो महातेज वाले वसन्त ऋतु हैं, जो ललितेश्वरी के प्रिय किंकर (सेवक) हैं।।२१।। वे महा तेजस्वी वसन्त पुष्पों के सिंहासन पर बैठे हुए पुष्पमाध्वी (पुष्पों की मदिरा) के मद से लाल वर्ण के हैं, वे पुष्पों के आयुध (धनुष) को धारण किये हुए, पुष्पों से सजे हुए पुष्पों के आभूषण पहने हुए हैं और पुष्पछत्र से शोभित हैं।।२२।। उन देदीप्यमान वसन्त की मधुश्री (चैत्रमास) और माधवश्री (वैशाख मास) दो देवियाँ हैं, वे उनकी पत्नियाँ हैं, जो प्रसून की मदिरा से मत्त हैं और मदिरामत्त हो, वसन्त के पुष्पबाण की लालसा वाली हैं।।२३।। सन्तान वाटिका के रक्षक तीक्ष्णलोचन ग्रीष्म ऋतु हैं। वे नित्य ललिता देवी के सेवक

स्तानवाटिकापालो ग्रीष्मर्तुस्तीक्ष्णलोचनः। ललिताकिङ्करो नित्यं तस्यास्त्वाज्ञाप्रवर्तकः॥२४॥
शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च तस्य भार्ये उभे स्मृते। हरिचंदनवाटी तु मुने वर्षर्तुना स्थिता॥२५॥
स वर्षर्तुर्महातेजा विद्युत्पिङ्गललोचनः। वज्राट्टहासमुखरो मत्तजीमूतवाहनः॥२६॥
जीमूतकवचच्छन्नो मणिकार्मुकधारकः। ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणः॥२७॥
वर्तते विन्ध्यमथन त्रैलोक्याह्लाददायकः। नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्वारस्वमालिनी॥२८॥
अम्बा दुला निरलिश्चाभ्रयन्ती मेघयंत्रिका। वर्षयन्ती चिबुणिका वारिधारा च शक्तयः॥२९॥
वर्षंत्यो द्वादश प्रोक्ता मदारुणविलोचनाः। ताभिः समं स वर्षर्तुः शक्तिभिः परमेश्वरीम्॥३०॥
सदैव संजपन्नास्ते निजोत्थैः पुष्पमंडलैः। ललिताभक्तदेशांस्तु भूषयन्स्वस्य सम्पदा॥३१॥
तद्वैरिणां तु वसुधामनावृष्ट्या निपीडयन्। वर्तते सततं देवीकिङ्करौ जलदागमः॥३२॥
मंदारवाटिकायां तु सदा शरदृतुर्वसन्। तां कक्षां रक्षति श्रीमाँल्लोकचित्तप्रसादनः॥३३॥
इषश्रीश्च तथोर्जश्रीस्तस्यर्तोः प्राणनायिके। ताभ्यां संजह्वतुस्तोयं निजोत्थैः पुष्पपमंडलैः।

हैं और उनकी आज्ञा को मानने वाले और लागू करने वाले हैं।।२४।। शुक्रश्री (ज्येष्ठ मास) और शुचिश्री (आषाढ़ मास) ये उनकी दो पत्नियाँ स्मरण की गयी हैं।।२४½।। हरिचन्दन वाटी तो हे अगस्त्य मुने! वर्षा ऋतु द्वारा रक्षित है, वह महातेजस्वी वर्षर्तु विद्युत रूपी (पिङ्गल) (कुछ पीले और भूरे) रंग की आँखों वाली है। अर्थात् उस वर्षा ऋतु की आँखें बिजलियाँ हैं, जो पिङ्गल वर्ण की हैं। वह वर्षर्तु वज्र अट्टहास युक्त मुख वाली है और मत्त मेघ उसका वाहन है, अर्थात् वह मत्त मेघ पर सवार होकर बिजली रूपी आँखें चमकाती हुई वज्र के समान घोर अट्टहास करती है।।२६।। वे वर्षर्तु मेघ (बादल) कवच से ढंके हुए मणिरूपी धनुष को धारण करने वाले हैं तथा ललितादेवी के पूजन, ध्यान, जप और स्तुति में अनुरक्त रहने वाले हैं।।२७।।

वे विन्ध्यमथन में वर्तमान हैं और तीनों लोकों को आह्लाद प्रदान करने वाले हैं, अर्थात् वर्षा करके सवको आनन्द प्रदान करते हैं। नभश्री और नभस्याश्री (भाद्रपदमास) स्वरस्वास्यमालिनी, अम्बा, दुला, निरलि ये मेघों में रहने वाले मेघयन्त्रिकाएँ हैं। लगातार बरसती हुई जल की धाराएँ उन वर्षर्तु की शक्तियाँ हैं।।२८-२९।। मद से लाल नेत्रों वाली बरसती हुई वे शक्तियां बारह कही गयी हैं। उन शक्तियों के साथ वह वर्षर्तु अपने द्वारा उठाये गये (पैदा किये गये) पुष्प समूहों से सदैव ललिता परमेश्वरी का जप करते हुए ललिता देवी के भक्त देशों को अपनी वर्षा रूपी सम्पदा से युक्त रखते हैं।।३०-३१।। तथा जो उन ललितादेवी के शत्रु देश (स्थान) हैं, उनकी भूमि को अनावृष्टि से पीड़ित करते हुए वे जलदागम (मेघ) रूप वर्षर्तु ललिता देवी की सेवा करते रहते हैं[१]।।३२।। मन्दारवाटिका में तो सदैव संसार के चित्त को प्रसन्न करने वाले श्री शरदृतु रहते हैं।।३३।।

१. यहाँ पर एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक रहस्य पर प्रकाश डाला गया है। वह यह कि ललिता देवी प्रकृति (Nature) है तथा जहाँ पर वृक्षों से आवृत भूमि होती है, वहाँ पर प्रकृति की कृपा होती है तथा प्रकृति की कृपा प्रकृति की भक्ति से होती है तथा प्रकृति वृक्षों को तो स्वतः पैदा कर देती है; परन्तु उसकी रक्षा करना मनुष्यों का कार्य है, अतः जहाँ वृक्षों की रक्षा होती है, वहीं परप्रकृति माँ ललिता की भक्ति है तथा जहाँ पर मनुष्य वृक्षों का विनाश करते हैं, वे इनके शत्रु देश हैं, अतः ये बादल वहीं पर वर्षा करते हैं, जहाँ के लोग वृक्षों की रक्षा करते हैं, जहाँ नहीं करते अपितु विनाश करते हैं, वहाँ पर प्रकृति माँ ललिता मेघों को वर्षा करने से रोक देती हैं। स्वाभाविक है कि जहाँ वृक्ष नहीं होंगे, वहाँ वर्षा नहीं होती। आज वर्षा का न होना तथा अधिक होना माँ ललितेश्वरी (प्रकृति देवी) की रुष्टता का हेतु है।

अभ्यर्चयति साम्राज्ञीं श्रीकामेश्वरयोषितम्॥३४॥
हेमन्तर्तुर्महातेजा हिमशीतलविग्रहः। सदा प्रसन्नवदनो ललिताप्रियकिङ्करः॥३५॥
निजोत्थैः पुष्पसंभारैरर्चयन्परमेश्वरीन्। पारिजातस्य वाटीं तु रक्षति ज्वलनार्दनः॥३६॥
सहःश्रीश्च सहस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिते शुभे। कदम्बवनवाट्यास्तु रक्षकः शिशिराकृतिः॥३७॥
शिशिरर्तुर्मुनिश्रेष्ठ वर्तते कुम्भसम्भव। सा कक्ष्या तेन सर्वत्र शिशिरीकृतभूतला॥३८॥
तद्वासिनी ततः श्यामा देवता शिशिराकृतिः। तपःश्रीश्च तपस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिदुत्तमे।
ताभ्यां सहार्चयत्यंबां ललितां विश्वपावनीम्॥३९॥

अगस्त्य उवाच

गन्धर्ववदन श्रीमन्नानावृक्षादिसप्तकैः। प्रथमोद्यानपालस्तु महाकालो मया श्रितः॥४०॥
चतुरावरणं चक्रं त्वया तस्य प्रकीर्तितम्। षण्णामृतूनामन्येषां कल्पकोद्यानवाटिषु।
पालकत्वं श्रुतं त्वत्तश्चक्रदेव्यस्तु न श्रुताः॥४१॥
अत एव वसन्तादिचक्रावरणदेवताः। क्रमेण ब्रूहि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतो महान्॥४२॥

हयग्रीव उवाच

आकर्णय मुनिश्रेष्ठ तत्तच्चक्रस्थदेवताः॥४३॥

इषश्री और ऊर्जश्री ये दो उस ऋतु की प्राणनायिकाये हैं, उनके द्वारा वे अपने द्वारा उठाये गये पुष्पसमूहों से जल लेकर वे साम्राज्ञी श्रीकामेश्वर पत्नी (ललिता देवी) की पूजा करती हैं[1]।।३४।।

उसके बाद हिम (बर्फ) से शीतल शरीर वाले, सदा प्रसन्न मुख वाले, आग को नष्ट करने वाले ललिता देवी के प्रिय किंकर महा तेजस्वी हेमन्त ऋतु अपने द्वारा उठाये गये पुष्पसमूहों से परमेश्वरी ललिता देवी की पूजा करते हुए पारिजात वाटिका की रक्षा करते हैं।।३५-३६।। सहःश्री (अगहन मास) और सहस्यश्री (पौषमास) ये दो उनकी शुभ पत्नियाँ हैं।।३६½।। अब हयग्रीव अगस्त्य मुनि से कहते हैं कि हे मुनिश्रेष्ठ! कदम्बवन वाटिका के रक्षक शिशिर (तुषार) की आकृति वाले शिशिरर्तु हैं। उन्होंने समस्त कक्ष्या को तुषार पाला से युक्त भूमि वाला बना दिया है।।३६½-३८।। उसके बाद वहाँ रहने वाली शिशिर की आकृति वाली श्यामा देवी हैं। उन शिशिरर्तु की तपःश्री (माघ) और तपस्यश्री (फागुन) दो उत्तम पत्नियाँ हैं। उन पत्नियों के साथ वे शिशिरर्तु विश्व को पवित्र करने वाली अम्बा ललितेश्वरी की पूजा करते हैं।।३९।।

अगस्त्य मुनि बोले कि हे श्रीमन् हयग्रीव! अनेकों प्रकार के वृक्षों से युक्त प्रथम उद्यान पालक महाकाल तो मैंने सुने हैं तथा चार आवरणों वाला उनका चक्र भी आपने बताया है और अन्य छः ऋतुओं, कल्पकोद्यान वाटिकाओं में पालक होने का विवरण तो हमने आपसे सुना है; परन्तु चक्र देवी का नहीं सुना।।४०-४१।। इसलिए वसन्त आदि चक्र के आवरण देवताओं को क्रम से हमें बताइए, क्योंकि भगवन् आप सर्वज्ञ और महान् हैं।।४२।।

हयग्रीव ने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप उन उन चक्रों में स्थित देवताओं को सुनिये।।४३।।

---

१. इष = अश्विनमास और ऊर्ज = कार्तिकमास अतः यहाँ शरद्रतु के प्राणनायक मास हैं—क्वार और कार्तिक जो इच्छाओं और शक्ति के स्रोत के प्रतीक हैं। ये दो मास उन प्रकृति ललिता देवी की पूजा करते हैं।

कालचक्रं पुरा प्रोक्तं वासन्तं चक्रमुच्यते। त्रिकोणं पञ्चकोणं च नागच्छदसरोरुहम्।
षोडशारं सरोजं च दशारद्वितयं पुनः॥४४॥
चतुरस्त्रं च विज्ञेयं सप्तावरणसंयुतम्। तन्मध्ये बिन्दुचक्रस्थो वसन्तर्तुर्महाद्युतिः॥४५॥
तदेकद्वयसंलग्ने मधुश्रीमाधवश्रियौ। उभाभ्यां निजहस्ताभ्यामुभयोस्तनमेककम्॥४६॥
निपीडयन्स्वहस्तस्य युगलेन ससौरभम्। सपुष्पमदिराचूर्णचषकं पिशितं वहन्॥४७॥
एवमेव तु सर्वर्तुध्यानं विंध्यनिषूदन। वर्षर्तोस्तु पुनर्ध्याने शक्तिद्वितयमादिमम्।
अङ्कस्थितं तु विज्ञेयं शक्तयोऽन्याः समीपगाः॥४८॥
अथ वासन्तचक्रस्थदेवीः शृणु वदाम्यम्। मधुशुक्लप्रथमिका मधुशुक्लाद्वितीयिका॥४९॥
मधुशुक्लतृतीया च मधुशुक्लचतुर्थिका। मधुशुक्ला पञ्चमी च मधुशुक्ला च षष्ठिका॥५०॥
मधुशुक्ला सप्तमी च मधुशुक्लाष्टमी पुनः।
नवमी मधुशुक्ला च दशमी मधुशुक्लिका॥५१॥
मधुशुक्लैकादशी च द्वादशी मधुशुक्लतः। मधुशुक्रयोदश्यां मधुशुक्ला चतुर्दशी॥५२॥
मधुशुक्ला पौर्णमासी प्रथमा मधुकृष्णिका।
मधुकृष्णा द्वितीया च तृतीया मधुकृष्णिका॥५३॥
चतुर्थी मधुकृष्णा च मधुकृष्णा च पञ्चमी।
षष्ठी तु मधुकृष्णा स्यात्सप्तमी मधुकृष्णतः॥५४॥
मधुकृष्णाष्टमी चैव नवमीमधुकृष्णतः। दशमी मधुकृष्णा च विन्ध्यदर्पनिषूदन॥५५॥
मधुकृष्णैकादशी तु द्वादशी मधुकृष्णतः। मधुकृष्णत्रयोदश्या मधुकृष्णाचतुर्दशी॥५६॥
मध्वमा चेति विज्ञेयास्त्रिंशदेतास्तु शक्तयः। एवमेव प्रकारेण माधवाख्यो परिस्थिताः॥५७॥

कालचक्र तो पहले ही बता दिया गया है, उसे ही वासन्त चक्र कहा जाता है। वही ऋतुओं का चक्र है। त्रिकोण, पञ्चकोण और नागपत्र कमल (नाग दल कमल) षोडशदल कमल और दो दशकोण (दशार) पुनः हैं।।४४।। सात आवरण से संयुत को चतुरस्त्र जानना चाहिए। उसके मध्य में बिन्दुचक्र में स्थित महाद्युति वाली वसन्तर्तु है।।४५।। वहाँ एक-दूसरे से संलग्न मधुश्री (चैत्रमास) और माधव श्री (वैसाख मास) हैं, जो दोनों अपने हाथों से एक दूसरे के स्तनों को एक के एक को पकड़े हुए हैं तथा अपने हाथ युगल से एक दूसरे को पीड़ित करते हुए सुगन्धयुक्त पुष्पयुक्त मदिरा से भरे प्याले और मांस को लिये हुए हैं। इस प्रकार ही तो सब ऋतु ध्यान मग्न हैं। वर्षा ऋतु के पुनर्ध्यान में शक्ति द्वितय आदिम को गोद में स्थित समझना चाहिए तथा अन्य शक्तियाँ उनके समीप रहने वाली हैं।।४६-४८।।

इसके बाद वासन्त चक्र में स्थित देवियों को सुनो, मैं बताता हूँ। वहाँ वासन्त चक्र में देवियाँ हैं— १. मधुशुक्ल प्रथमिका (मधुशुक्ला प्रतिपदा), २. मधुशुक्लाद्वितीयिका (मधुशुक्ला द्वितीया), ३. मधुशुक्ला तृतीया, ४. मधुशुक्ला चतुर्थी, ५. मधुशुक्ला पञ्चमी, ६. मधुशुक्ला षष्ठिका, ७. मधुशुक्ला सप्तमी, ८. मधुशुक्ला अष्टमी, ९. मधुशुक्ला नवमी, ०. मधुशुक्ला दशमी, ११. मधुशुक्लकैकादशी, १२. मधुशुक्ला द्वादशी, १३. मधुशुक्ला त्रयोदशी, १४.

शुक्लप्रतिपदाद्यास्तु शक्त्यस्त्रिंशदन्यकाः।
मिलित्वा षष्टिसंख्यास्तु ख्याता वासन्तशक्तयः॥५८॥
स्वैःस्वैर्मंत्रैस्तत्र चक्रे पूजनीया विधानतः। वासन्तचक्रराजस्य सप्तावरणभूमयः॥५९॥
षष्टिः स्युर्देवतास्तासु षष्टिभूमिषु संस्थिताः।
विभज्य चार्चनीयाः स्युस्तत्तन्मंत्रैस्तु साधकैः॥६०॥
तथा वासन्तचक्रं स्यात्तथैवान्येषु च त्रिषु। देवतास्तु परं भिन्नाः शुक्रशुच्यादिभेदतः॥६१॥
शक्तयः षष्टिसंख्याता ग्रीष्मचक्रे महोदयाः। एवं वर्षादिके चक्रे भेदान्नभनभस्यजान्॥६२॥

मधुशुक्ला चतुर्दशी, १५. मधुशुक्ला पौर्णमासी[१]। उधर १. प्रथमा मधुकृष्णिका (मधुकृष्णा प्रथमा), २. मधुकृष्णा द्वितीया, ३. मधुकृष्णा तृतीया, ४. मधुकृष्णा चतुर्थी, ५. मधुकृष्णा पञ्चमी, ६. मधुकृष्णा षष्ठी, ७. मधुकृष्णा सप्तमी, ८. मधुकृष्णा अष्टमी, ९. मधुकृष्णा नवमी, १०. मधुकृष्णा दशमी, ११. मधुकृष्णैकादशी, १२. मधुकृष्णा द्वादशी, १३. मधुकृष्णा त्रयोदशी, १४. मधुकृष्णा चतुर्दशी, १५. मध्वमा (मधुकृष्ण अमावस्या)[२]।

इस प्रकार ये तीस मधुशक्तियाँ जाननी चाहिएं। इसी प्रकार से माधव नाम की शक्तियों की परिस्थिति है। अर्थात् जितनी मधुश्री शक्तियाँ हैं, उतनी ही माधव श्री शक्तियाँ भी हैं।।४९-५७।। शुक्ल प्रतिपदा आदि ये ३० शक्तियां हैं, अर्थात् १५ मधुश्री शुक्ल तथा १५ मधुश्रीकृष्ण = ३० हुईं। इसी प्रकार १५ माधवश्री शुक्ला तथा १५ माधवश्री कृष्णा = ३० तथा दोनों मधुश्री और माधवश्री मिलाकर वासन्त शक्तियों की संख्या ६० (साठ) होती है।।५८।। अतः वहाँ वासन्त चक्र में उनके अपने-अपने मन्त्रों द्वारा विधानपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए।।५८½।। वासन्त चक्रराज में सात आवरण भूमियाँ हैं। उनमें ६० देवियाँ ६० भूमियों में अच्छी प्रकार से स्थित हैं। अतः विभाग करके अलग उनकी अलग-अलग मन्त्रों द्वारा साधकों को पूजा करनी चाहिए।।५८½-६०।। उसी प्रकार वासन्त चक्र है, उसी प्रकार अन्य तीन चक्रों में सब देवियाँ और उनकी संख्या ६० ही है। शुक्र और शुचि आदि भेद से देवियाँ बहुत भिन्न हैं।।६१।। अर्थात् उनमें मधु माधवी के स्थान पर शुक्र[३] शुचि हैं। इस प्रकार शुक्र शुक्ल प्रतिपदा से शुक्र शुक्ल पूर्णिमा तक १५ हुईं तथा शुक्र कृष्ण प्रतिपदा (प्रथमा) से शुक्र कृष्णा अमावस्या १५ ये हुईं तथा शुक्र की

---

१. ये सब चैत्रमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियाँ हैं।

२. ये सब चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक की तिथियाँ हैं।

इस प्रकार चैत्र मास के शुक्लपक्ष से लेकर ज्येष्ठ मास के कृष्णपक्ष तक अर्थात् आधे चैत्र से लेकर आधे जेठ तक वसन्तु हुआ, उसके बाद आधे जेठ से आधे सावन तक ग्रीष्म, फिर आधे सावन से आधे क्वार तक वर्षा ऋतु, आधे क्वार से आधे अगहन तक शरद् ऋतु, फिर आधे अगहन से आधे माघ तक शिशिर, उसके बाद आधे माघ से आधे चैत्र तक वसन्त ऋतु हुई। यह समय चक्र है।

अतः आधे चैत्र से आधे वैशाख तक तिथियाँ मधुशुक्ला हैं तथा फिर वैशाख में अमावस्या तक १५ तिथियाँ मधुकृष्णा है। उसके बाद वैसाखशुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक १५ तिथियां माधवशुक्ला हैं तथा उसके ज्येष्ठ मास में प्रतिपद से लेकर अमावस्या तक कृष्णापक्ष की सब तिथियां माधव तिथियां हैं। अतः ३० शक्तियां मधुमास की हुईं और तीस माधव मास की। इस प्रकार ६० शक्तियां वसन्त ऋतु की हैं, इस प्रकार ये सब वासन्तशक्तियां हैं।

३. शुक्र का समय ज्येष्ठ शुक्ल्पक्ष प्रतिपदा से पूर्णिमा १५ तिथियाँ फिर आषाढ़ प्रतिपदा से अमावस्या तक १५ तिथियां शुक्र की हुई, फिर आषाढ़ शुक्लपक्ष प्रतिपद से पूर्णिमा तक १५ तथा सावन प्रतिपद से सावन अमावस्या तक १५ तिथि हुई इस शुक्रशुचि की तिथियाँ ६० हुई, जो ग्रीष्म ऋतु चक्र की ६० शक्तियाँ।

षष्टिषष्टिसु शक्तीनां चक्रेचक्रे प्रतिष्ठिताः। ग्रन्थविस्तारभीत्या तु तत्संख्यानाद्विरम्यते॥६३॥
आर्तव्याः शक्त्यस्त्वेता ललिताभक्त सौख्यदाः।
ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः ॥६४॥
कल्पादिवाटिकाचक्रे सञ्चरंत्यो मदालसाः। स्वस्वपुष्पोत्थमधुभिस्तर्पयंत्यो महेश्वरीम्॥६५॥
मिलित्वा चैव संख्याताः षष्ट्युत्तरशतत्रयम्। एवं सप्तसु शालेषु पालिकाश्चक्रदेवताः॥६६॥
नामकीर्तनपूर्वं तु प्रोक्तस्तुभ्यं पपृच्छते। अन्येषामपि शालानामुपादानं तु पूरकम्।
विस्तारं तत्र शक्तिं च कथयाम्यवधारय॥६७॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसम्वादे ललितोपाख्याने श्रीनगरत्रिपुरासप्तकक्षापालक-देवताप्रकाशनकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

कुल ३० हुईं। इसी प्रकार शुचि शुक्ला प्रथमा (प्रतिपदा) से शुचि शुक्ला पूर्णिमा तक १५ फिर शुचि कृष्णा प्रतिपदा से शुचि कृष्णा अमावस्या तक १५ ये हुईं। दोनों मिलाकर ३० की संख्या हुई। फिर शुक्र और शुचि देवियों ३० + ३० = ६०, ये सभी ६० शक्तियाँ ग्रीष्मर्तु चक्र में स्थित हैं।।६०-६१½।। इसी प्रकार वर्षर्तु के वर्षा चक्र में देवियों की संख्या ६० है। उनमें नभ और नभस्य के आधार पर भेद हैं। अर्थात् शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक १५ नभ देवियाँ हुईं और फिर कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक १५ नभ देवियाँ। कुल मिलाकर ३० हुईं। उसी प्रकार शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक १५ नभस्य देवियाँ और फिर कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक १५ नभस्य की देवियाँ कुल मिलाकर ३० हुईं। फिर ग्रीष्म चक्र की कुल देवियाँ ३० नभ + ३० नभस्य = ६० हुईं।।६२।। इस प्रकार साठ-साठ शक्तियाँ प्रत्येक ऋतुचक्र में प्रतिष्ठित हैं। ग्रन्थ विस्तार के भय से उनकी संख्या बताने में विराम किया जाता है।।६३।। फिर भी संक्षेप में हम यहाँ बताते हैं—वसन्त और ग्रीष्म और वर्षा चक्र की देवियाँ बता दी गयी हैं। शरद ऋतु की इषश्री और ऊर्जाश्री दो प्रकार की शक्तियाँ हैं, फिर इषश्री की १५ शुक्ल पक्ष की तथा १५ कृष्ण पक्ष की कुल ३० हुईं। उसी प्रकार ऊर्जश्री की भी १५ शुक्लपक्षीय तथा १५ कृष्णपक्षीय कुल ३० हुईं। इस प्रकार शरदृतु की कुल ६० शक्तियाँ हुईं। इसी प्रकार हेमन्त में पहले सहश्री और सहस्यश्री दो शक्तियाँ फिर शुक्ल और कृष्ण पक्ष मिलाकर ३० सह और शुक्ल और कृष्णा पक्ष मिलाकर ३० सहस्य, कुल मिलाकर ६० हेमन्तचक्र की शक्तियाँ हुईं। इसी प्रकार शिशिरर्तु चक्र की भी तपःश्री और तपस्यश्री भेद से ३० तपःश्री और ३० तपस्यश्री, कुल मिलाकर ६० हुईं। इस प्रकार ये सब चक्रों की शक्ति देवियाँ हैं। इन सब शक्तियों को ललिता देवी के भक्तों को सुख देने वाली समझना चाहिए, अर्थात् ये सभी शक्तियाँ ललिता देवी (प्रकृति) के सेवकों को सुख प्रदान करती हैं। स्वाभाविक हो जो प्रकृति की सेवा करेगा, प्रकृति उसे सुख प्रदान करेगी। जो पेड़ लगायेगा, वह फल और छाया दोनों प्राप्त करेगा तथा ये सभी शक्तियाँ ललिता देवी (प्रकृति) ध्यान, जप, पूजन और स्तुति में लगी रहती हैं।।६४।। कल्पवाटिका चक्र में मदालसा देवियाँ अपने-अपने पुष्पों से उठाये गये मधुओं से महेश्वरी ललिता देवी को तृप्त करती हुई विचरण करती रहती हैं।।६५।। सबकी संख्या मिलाकर तीन सौ साठ हो जाती है। इस प्रकार सातों शालों में स्थित उनकी रक्षा करने वाली देवियों को मैंने तुम्हारे पूँछने पर बता दिया है। आगे अन्य शालाओं का उपादन, पूरक और वहाँ विस्तार और शक्ति को मैं बताता हूँ, आप सुनिये।।६६-६७।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३२वाँ अध्याय श्रीनगर त्रिपुरा सप्तकक्षापालक देवता प्रकाशन वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

पुष्पराग प्राकारादिमुक्ताकारान्त सप्तकक्षान्तरकथनं नाम

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

कथितं सप्तशालानां लक्षणं शिल्पिभिः कृतम्।
अथ रत्नमयाः शालाः प्रकीर्त्यंतेऽवधारय॥१॥

सुवर्णमयसालस्य पुष्परागमयस्य च। सप्तयोजनमात्रं स्यान्मध्येन्तरमुदात्दृतम्॥२॥
तत्र सिद्धाः सिद्धनार्यः खेलंति मदविह्वलाः। रसै रसायनैश्चापि खड्गैः पादांजनैरपि॥३॥
ललितायां भक्तियुक्तास्तर्पयन्तो महाजनान्। वसंति विविधास्तत्र पिबंति मदिरारसान्॥४॥
पुष्परागादिशालानां पूर्ववद्द्वारक्लृप्तयः। पुष्परागादिशालेषु कवाटार्गलगोपुरम्।
पुष्परागादिजं ज्ञेयमुच्चेन्द्वादित्यभास्वरम्॥५॥
हेमप्राकारचक्रस्य पुष्परागमयस्य च। अन्तरे या स्थली सापि पुष्परागमयी स्मृता॥६॥
वक्ष्यमाणमहाशालाकक्षासु निखिलास्वपि। तद्वर्णाः पक्षिणस्तत्र तद्वर्णानि सरांसि च॥७॥
तद्वर्णसलिला नद्यस्तद्वर्णाश्च मणिद्रुमाः। सिद्धजातिषु ये देवीमुपास्य विविधैः क्रमैः।

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३३

पुष्पराग प्राकारादिमुक्ताकारान्त सप्तकक्षान्तर कथन

हयग्रीव बोले कि अगस्त्यजी शिल्पकारों द्वारा बनायी गयी सप्तशालाओं के लक्षण कहे गये। इसके बाद अब रत्नमय शालाओं का वर्णन किया जा रहा है, आप सुनिये।।१।। सुवर्णमय शाल और पुष्परागमय शाल के मध्य में सात योजन मात्र का अन्तर उदाहृत होना चाहिए।।२।। वहाँ पर मद से विह्वल सिद्ध पुरुष और सिद्ध स्त्रियाँ रसों और रसायनों से भी और तलवारों और पादांजनों से भी खेलते हैं।।३।। ललितादेवी की भक्ति से युक्त विविध सिद्ध पुरुष और सिद्ध स्त्रियाँ महान् पुरुषों को तृप्त करती हुई, वहाँ मदिरा के रसों को पीते हैं।।४।। पुष्पराग आदि शालों के पूर्व द्वारों के समान पुष्पराग आदि शालों में किवाड़, अर्गला और मुख्य दरवाजे सजे हुए हैं। पुष्पराग (पुखराज) से उत्पन्न उच्च चन्द्रमा और सूर्य की चमक जाननी चाहिए। अर्थात् वहाँ पुखराज से निकलने वाली किरणें उच्च कोटि के चन्द्रमा और सूर्य की किरणों के समान हैं।।५।।

हेम प्राकार चक्र अर्थात् सोने की चहारदीवारी वाले चक्र और पुखराज रत्नमय चक्र के बीच में जो स्थली (भूमि) है, वह भी सब पुखराजमयी ही स्मरण की गयी है।।६।। कही गयी सब महाशाला के कक्षों में पुखराज के वर्ण के ही पक्षी हैं और पुखराज के वर्ण के ही सब सरोवर (तालाब) हैं।।७।। तथा उसी वर्ण की नदियों के जल हैं और

त्यक्तवन्तो वपुः पूर्वं ते सिद्धास्तत्र सांगनाः॥८॥
ललितामंत्रजप्तारो ललिताक्रमतत्पराः। ते सर्वे ललितादेव्या नामकीर्तनकारिणः॥९॥
पुष्परागमहाशालांतरे मारुतयोजने। पद्मरागमयः शालश्चतुरस्रः समंततः॥१०॥
स्थली च पद्मरागाढ्या गोपुराद्यं च तन्मयम्। तत्र चारणदेशस्थाः पूर्वदेहविनाशतः।
सिद्धिं प्राप्ता महाराज्ञीचरणाम्भोजसेवकाः॥११॥
चारणीनां स्त्रियश्चापि चार्वंग्यो मदलालसाः। गायंति ललितादेव्या गीतिबन्धान्मुहुर्मुहुः॥१२॥
तत्रैव कल्पवृक्षाणां मध्यस्थवेदिकास्थिताः। भर्तृभिः सहचारिण्यः पिबन्ति मधुरं मधु॥१३॥
पद्मरागमहाशालान्तरे मरुतयोजने। गोमेदकमहाशालः पूर्वशालासमाकृतिः।
अतितुङ्गो हीरशालस्तयोर्मध्ये च हीरभूः॥१४॥
तत्र देवीं समभ्यर्च्य पूर्वजन्मनि कुम्भज। वसन्त्यप्सरसां वृन्दैः साकं गन्धर्वपुङ्गवाः॥१५॥
महाराज्ञीगुणगणान्गायन्तो वल्लकी स्वनैः। कामभोगैकरसिकाः कामसन्निभविग्रहाः।
सुकुमारप्रकृतयः श्रीदेवीभक्तिशालिनः॥१६॥
गोमेदकस्य शालस्तु पूर्वशालसमाकृतिः। तदंतरे योगिनीनां भैरवाणां च कोटयः।
कालसङ्कर्षणीमंबां सेवन्ते तत्र भक्तितः॥१७॥

उसी वर्ण के मणियों के वृक्ष हैं। सिद्ध जातियों में अनेकों क्रमों से देवी की उपासना कर जिन्होंने पूर्वकाल में शरीर को त्यागा है, वे सिद्ध पुरुष ही वहाँ अपनी स्त्रियों सहित हैं।।८।। वहाँ वे सब सिद्ध दम्पति ललिता देवी के मन्त्र को जपने वाले हैं और ललिता देवी के क्रम में तत्पर हैं तथा वे सब ललिता देवी का कीर्तन (गुणगान) करने वाले हैं।।९।। पुष्पराग महाशाल के बीच में मारुत योजन पर पुखराजमय शाल (भवन) चारों ओर वर्गाकार है।।१०।। उस वर्गाकाल साल की स्थली (फर्श) पद्मरागमणि से मढ़ा हुआ है तथा वह नगर द्वार मुख्य दरवाजे से युक्त है। वहाँ पर चारण देश में रहने वाले पूर्व शरीर के नष्ट होने से सिद्धि को प्राप्त कर चुके महाराज्ञी के चरणकमल के सेवक हैं, जिन्हें चारण कहा जाता है।।११।। उन चारणों की स्त्रियां भी सुन्दर अंगों वाली और मद से मत्त हैं और वे महाराज्ञी ललितेश्वरी के गीतों को गाती रहती हैं।।१२।। वहीं पर कल्पवृक्षों के मध्य में स्थित वेदिका (वेदी/चबूतरा) पर बैठकर वे पतियों के साथ मधुर मधु (मधुर मदिरा) पीती रहती हैं।।१३।।

लाल माणिक्य की बनी महाशाल के मारुत योजन अन्तर पर गोमेद पत्थर का महाशाल है, जो पूर्वशाल के समान आकृति का है। उस पद्मराग शाल और गोमेद शाल के बीच में बहुत ऊँचा एक हीरों का बना हीरशाल है।।१४।। वहाँ पर हे अगस्त्य मुने! पूर्व जन्म में देवी की सम्यक् पूजा करके श्रेष्ठ गन्धर्व अप्सराओं के समूहों के साथ निवास करते हैं।।१५।। वे महाराज्ञी ललिता देवी के गुणों को वीणा के स्वरों से गाते रहते हैं। वे सब कामभोग के ही एक रसिक हैं। अर्थात् केवल एक कामभोग रस का ही आनन्द लेने वाले हैं तथा कामदेव के समान ही सुन्दर शरीर वाले हैं। वे बहुत ही कोमल स्वभाव वाले हैं तथा श्री ललितादेवी के प्रति पूर्ण भक्ति रखने वाले हैं।।१६।। गोमेद पत्थर का बना हुआ शाल (भवन) भी पूर्वशाल (भवन) के समान आकार वाला है। उसके अन्दर योगिनियों और भैरवों की करोड़ों की संख्या कालसङ्कर्षणी माँ की वहाँ भक्तिपूर्वक सेवा करती हैं।।१७।।

गोमेदकमहाशालान्तरे मारुतयोजने। उर्वशी मेनका चैव रम्भा चालंबुषा तथा॥१८॥
मंजुघोषा सुकेशी च पूर्वचित्तिर्घृताचिका। कृतस्थला च विश्वाची पुंजिकस्थलया सह॥१९॥
तिलोत्तमेति देवानां वेश्या एतादृशोऽपराः। गंधर्वैः सह नव्यानि कल्पवृक्षमधूनि च॥२०॥
पिबन्त्यो ललितादेवीं ध्यायंत्यश्च मुहुर्मुहुः। स्वसौभाग्यविवृद्ध्यर्थं गुणयंत्यश्च तन्मनुम्॥२१॥
चतुर्दशसु चोत्पन्ना स्थानेष्वप्सरसोऽखिलाः। तत्रैव देवीमर्चंत्यो वसंति मुदिताशयाः॥२२॥

अगस्त्य उवाच

चतुर्दशापि जन्मानि तासामप्सरसां विभो। कीर्तय त्वं महाप्राज्ञ सर्वविद्यामहानिधे॥२३॥

हयग्रीव उवाच

ब्राह्मणो हृदयं कामो मृत्युरुर्वी च मारुतः। तपनस्य कराश्चंद्रकरो वेदाश्च पावकः॥२४॥
सौदामिनी च पीयूषं दक्षकन्या जलं तथा। जन्मनः कारणान्येतान्यामनंति मनीषिणः॥२५॥

गीर्वाणगण्यनारीणां स्फुरत्सौभाग्यसंपदाम्।
एताः समस्ता गंधर्वैः सार्धमर्चंति चक्रिणीम्॥२६॥

किन्नराः सह नारीभिस्तथा किंपुरुषा मुने। स्त्रीभिः सह मदोन्मत्ता हीरकस्थलमाश्रिताः॥२७॥
महाराज्ञीमंत्रजापैर्विधूताशेष कल्मषाः। नृत्यंतश्चैव गायंतो वर्तंते कुंभसम्भव॥२८॥
तत्रैव हीरकक्षोण्यं वज्रा नाम नदी मुने। वज्राकैरर्निबिडिता भासमाना तटद्रुमैः॥२९॥
वज्ररत्नैकसिकता वज्रद्रवमयोदका। सदा वहति सा सिंधुः परितस्तत्र पावनी॥३०॥
ललितापरमेशान्यां भक्ता ये मानवोत्तमाः। ते तस्या उदकं पीत्वा वज्ररूपकलेवराः।

गोमेद महाभवन के अन्दर मारुत योजन पर उर्वशी, मेनका, रम्भा और अलंबुषा, मञ्जुघोषा, सुकेशी, पूर्वचित्ति, घृताचिका, कृतस्थला, विश्वाची, पुंजिकस्थला, तिलोत्तमा ये सब देवों की वेश्याएँ और ऐसी ही दूसरी वेश्याएँ गन्धर्वों के साथ कल्पवृक्ष के ताजे मधु (मद्य) को ललितादेवी का बार-बार ध्यान करती हुई पीती हैं और अपनी सौभाग्यवृद्धि के लिए उन मनु के गुणों का गान करती हैं।।१८-२१।। इस प्रकार चौदह मन्वन्तरों में उत्पन्न समस्त अप्सरायें वहीं देवी की पूजा करती हुई बहुत आनन्दपूर्वक निवास करती हैं।।२२।।

अगस्त्य मुनि बोले—कि हे भगवन् हयानन! उन अप्सराओं के चौदह जन्मों को बताइए, क्योंकि आप महान् विद्वान् हैं तथा सब विद्याओं के भण्डार हैं।

हयग्रीव बोले हे अगस्त्य जी! ब्राह्मण, हृदय, काम, मृत्यु, पृथ्वी, वायु तपन के करने वाले चन्द्रकर, वेद और अग्नि, विद्युत्, पीयूष, दक्षकन्या तथा जल, इन्हें मनीषी लोग जन्म का कारण मानते हैं।।२५।। गाती हुई गण्य नारियों का समूह अपनी-अपनी सौभाग्य सम्पदा को प्रकट करता हुआ गन्धर्वों के साथ चक्रिणी चक्र की स्वामिनी महाराज्ञी ललितेश्वरी की पूजा करता है।।२६।। तथा हे मुने! अगस्त्य जी! नारियों के साथ किन्नर और स्त्रियों के साथ किंपुरुष मद से उन्मत्त होकर हीरों से बने फर्श पर महाराज्ञी के मन्त्रों के जापों से अपने समस्त पापों का नाश कर नाचते और गाते रहते हैं।।२७-२८।। वहीं पर हे मुने! हीरे के पत्थरों वाली वज्रा नामक नदी है, जो वज्र के आकार के बने हुए तटी वृक्षों से शोभायमान है।।२९।। वह नदी हीरा के ही एक रस से युक्त और हीरे के समान स्वच्छ जल वाली वह पवित्र नदी वहाँ पर बहती है।।३०।। ललिता परमेश्वरी के प्रति जो श्रेष्ठ मानव पूर्ण भक्ति रखते हैं,

दीर्घायुषश्च नीरोगा भवंति कलशोद्भव॥३१॥
भंडासुरेण गलिते मुक्ते वज्रे शतक्रतुः। तस्यास्तीरे तपस्तेपे वज्रेशीं प्रति भक्तिमान्॥३२॥
तज्जलादुदिता देवी वज्रं दत्त्वा बलद्विषे। पुनरंतर्दधे सोऽपि कृतार्थः स्वर्गमेयिवान्॥३३॥
अथ वज्राख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने। वैदूर्यशाल उत्तुंगः पूर्ववद्गोपुरान्वितः।
स्थाली च तत्र वैदूर्यनिर्मिता भास्वराकृतिः॥३४॥
पातालवासिनो येये श्रीदेव्यर्चनसाधकाः। ते सिद्धमूर्तयस्तत्र वसन्ति सुखमेदुराः॥३५॥
शेषकर्कोटकमहापद्मवासुकिशंखककाः। तक्षकः शंखचूडश्च महादन्तो महाफणः॥३६॥
इत्येवमादयस्तत्र नागा नागस्त्रियोऽपि च। बलींद्रप्रमुखानां च दैत्यानां धर्मवर्तिनाम्।
गणस्तत्र तथा नागैः सार्धं वसति सांगनाः॥३७॥
ललितामंत्रजप्तारो ललिताशास्त्रदीक्षिताः। ललितापूजका नित्यं वसन्त्यसुरभोगिनः॥३८॥
तत्र वैदूर्यकक्षायां नद्यः शिशिरपाथसः। सरांसि विमलांभांसि सारसालंकृतानि च॥३९॥
भवनानि तु दिव्यानि वैदूर्यमणिमंति च। तेषु क्रीडंति ते नागा असुराश्च सहांगनाः॥४०॥
वैदूर्याख्यमहाशालान्तरे मारुतयोजने। इन्द्रनीलमयः शालश्चक्रवाल इवापरः॥४१॥
तन्मध्यकक्षाभूमिश्च नीलरत्नमयी मुने। तत्र नद्यश्च मधुराः सरांसि शिशिराणि च।
नानाविधानि भोग्यानि वस्तूनि सरसान्यपि॥४२॥

वे ही उस नदी का जल पीकर वज्ररूप हीरे के रूप वाले शरीर युक्त हो जाते हैं तथा हे घटोद्भव अगस्त्यजी! वे सब दीर्घायु और निरोग हो जाते हैं।।३१।। भण्डासुर ने जब इन्द्र पर वज्र छोड़ा था, तब उस वज्र से गलित होने पर भक्तिमान् इन्द्र ने उस नदी के किनारे पर वज्रेशी के प्रति तप किया था।।३२।। तब उस नदी के जल से उदित देवी इन्द्र को वज्र देकर पुनः अन्तर्धान हो गयीं। वह इन्द्र भी कृतार्थ होकर स्वर्ग चले गये।।३३।। इसके बाद वज्र (हीरे) के भवन के मारुत योजन अन्तर पर वैदूर्य (नीलम) मणि से निर्मित बहुत ऊँचा भवन है, जो पूर्व शालों के समान मुख्य द्वारों से युक्त है तथा वहाँ पर उस भवन का फर्श भी नीलमणि रत्न से निर्मित है और सूर्य की आकृति का है।।३४।। जो जो पातालवासी श्री ललितादेवी की पूजा-साधना करने वाले हैं, वहाँ वे सिद्धमूर्तिगण सुख से पूर्ण हो निवास करते हैं।।३५।। शेषनाग, कर्कोटक, महापद्म, वासुकि, शंखक नाग, तक्षक, शंखचूड, महादन्त तथा महाफण नामक अनेकों प्रकार के नागगण और उनकी स्त्रियाँ भी बलीन्द्र प्रमुख धर्मवर्ति दैत्यों के समूह वहाँ नागों के साथ सपत्नीक निवास करते हैं।।३६-३७।। तथा ललिता देवी के मन्त्र का जप करने वाले ललिता शास्त्र में दीक्षित, ललिता देवी की पूजा करने वाले भोगी असुर वहाँ नित्य निवास करते हैं।।३८।। वहाँ वैदूर्य से बने भवन की कक्षा में नदियाँ शीतल जल वाली हैं और स्वच्छ जल वाले सारसों से अलंकृत सरोवर हैं।।३९।।

यही नहीं वहाँ पर वैदूर्य मणि से युक्त दिव्य भवन है। उन दिव्य भवनों में नाग और असुर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते हैं।।४०।। वैदूर्य नामक महाभवन के मारुत योजन अन्तर पर इन्द्रनील मणि से निर्मित शाल (भवन) है, जो चक्रवाल के समान दूसरा ही सुन्दर भवन् है।।४१।। उस शाल के मध्य में नीलरत्न मणी कक्षाभूमि है, वहाँ पर हे मुने! नदियाँ मधुर जल वाली हैं और शीतल जल वाले सरोवर हैं तथा वहाँ अनेकों प्रकार की सरस (रसयुक्त) भोग्य वस्तुएँ हैं।।४२।।

ये भूलोकगता मर्त्या ललितामंत्रसाधकाः। ते देहांते शक्रनीलकक्ष्यां प्राप्य वसंति वै॥४३॥
तत्र दिव्यानि वस्तूनि भुंजाना वनितासखाः। पिबंतो मधुरं मद्यं नृत्यंतो भक्तिनिर्भराः॥४४॥
सरस्सु तेषु सिंधूनां कुलेषु कलशोद्भव। लतागृहेषु रम्येषु मंदिरेषु महर्द्धिषु॥४५॥
सदा जपंतः श्रीदेवीं पठन्तश्चापि तद्गुणान्। निवसंति महाभागा नारीभिः परिवेष्टिताः॥४६॥
कर्मक्षये पुनर्यांति भूर्लोके मानुषीं तनुम्। पूर्ववासनया युक्ताः पुनरर्चंति चक्रिणीम्।
पुनर्यांति श्रीनगरे शक्रनीलमहास्थलीम्॥४७॥
तत्स्थलस्यैव संपर्काग्रागद्वेषसमुद्भवैः। नीलैर्भावैः सदा युक्ता वर्तंते मनुजा मुने॥४८॥
ये पुनर्ज्ञानिनो मर्त्या निर्द्वंद्वा नियतेन्द्रियाः। ते मुने विस्मयाविष्टाः संविशंति महेश्वरीम्॥४९॥
इन्द्रनीलाख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने। मुक्ताफलमयः शालः पूर्ववद्गोपुरान्वितः॥५०॥
अत्यंतभास्वरा स्वच्छा तयोर्मध्ये स्थली मुने।
सर्वापि मुक्ताखचिताः शिशिरातिमनोहराः॥५१॥
ताम्रपर्णी महापर्णी सदा मुक्ताफलोदका। एवमाद्या महानद्यः प्रवहंति महास्थले॥५२॥
तासां तीरेषु सर्वेऽपि देवलोकनिवासिनः। वसंति पूर्वजनुषि श्रीदेवीमंत्रसाधकाः॥५३॥

जो भूलोक में रहने वाले प्राणी ललिता देवी के मन्त्र की साधना करते हैं, वे शरीर का अन्त हो जाने पर इन्द्रनीलमणि की कक्ष्या को प्राप्त कर वहाँ उसमें निवास करते हैं।।४३।। हे कलशोद्भव! अगस्त्य जी! वहाँ पर दिव्य वस्तुओं का भोग करते हुए, स्त्रियों के साथ मधुर मद्यपान करते हुए, भक्ति पर निर्भर हो नृत्य करते हुए, उन सरोवरों में तथा उन नदियों के किनारों पर तथा लतागृहों में, सर्व समृद्ध रम्य मन्दिरों में सदैव श्री देवी का जप करते हुए तथा उनके गुणों को पढ़ते हुए नारियों से लिपटे हुए वे महाभाग निवास करते हैं।।४४-४६।। वे पुण्यकर्मों के कारण ही इस दिव्य सुख का भोग करते हैं तथा जब उनके पुण्यकर्म नष्ट हो जाते हैं, तब पुनः भूलोक पर मनुष्य शरीर को प्राप्त करते हैं। तब वे पूर्ववासना से युक्त होकर पुनः चक्रिणी माँ ललितेश्वरी की अर्चना करते हैं, तब फिर पुनः श्री ललिता के नगर में इन्द्रनीलमणि की महास्थली पहुँचते हैं।।४७।।

तब हे अगस्त्य मुने! उस इन्द्र नीलमणि के स्थल के सम्पर्क से राग-द्वेष से उत्पन्न नील भावों से सदा युक्त होकर मनुष्य वर्तमान रहते हैं।।४८।। उनमें जो ज्ञानी निर्द्वन्द्व (किसी से वैर न रखने वाले) और नियत इन्द्रियों वाले (अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर कर्म करने वाले) प्राणी हैं, वे आश्चर्यचकित होकर श्री ललितादेवी में प्रविष्ट हो जाते हैं, समा जाते हैं, उनमें विलीन हो जाते हैं।।४९।। फिर उस इन्द्रनील नामक शाल के मारुत योजन अन्तर पर मुक्ता फल (मोतियों) से निर्मित शाल (भवन) है। जो पूर्व शालों की भाँति मुख्य द्वारों से युक्त है।।५०।। हयानन कहते हैं कि हे अगस्त्य मुने! उन दोनों शालों, इन्द्रनील मणि शाल और मुक्ताफलमय शाल के बीच में अत्यन्त चमकती हुई स्थली है, जो सब पूरी की पूरी मोतियों से खचित हैं और शीतल एवं अत्यन्त मनोहर है।।५१।। उस महास्थल में ताम्रपर्णी, महापर्णी आदि महा नदियाँ सदा बहती रहती हैं, जिनका जल मोती के समान स्वच्छ है।।५२।। उन नदियों के किनारों पर सभी देवलोक निवासी निवास करते हैं तथा वे ही, जिन्होंने कि अपने पूर्वजन्मों में श्री देवी के मन्त्रों की साधना की है, अतः श्रीदेवी के पूजकों को ही वहाँ वास का अवसर प्राप्त होता है।।५३।।

पूर्वाद्यष्टसु भागेषु लोकाः शक्रादिगोचराः। मुक्ताशालस्य परितः संयुज्य द्वारदेशकान्॥५४॥
मुक्ताशालस्य नीलस्य द्वारयोर्मध्यदेशतः। पूर्वभागे शक्रलोकस्तत्कोणे वह्निलोकभूः॥५५॥
याम्यभागे यमपुरं तत्र दंडधरः प्रभुः। सर्वत्र ललितामंत्रजापी तीव्रस्वभाववान्॥५६॥
आज्ञाधरो यमभटैश्चित्रगुप्तपुरोगमैः। सार्धं नियमयत्येव श्रीदेवीसमयं गुहः॥५७॥
गुहशप्तान्दुराचाल्लँलिताद्वेषकारिणः। कूटभक्तिपरान्मूर्खांस्तब्धानत्यंतदर्पितान्॥५८॥
मंत्रचोरान्कुमंत्रांश्च कुविद्यानघसंश्रयान्।
नास्तिकान्पापशीलांश्च वृथैव प्राणिहिंसकान्॥५९॥
स्त्रीद्विष्टाँल्लोकविद्विष्टान्पाषंडानां हि पालिनः।
कालसूत्रे रौरवे च कुम्भीपाके च कुम्भज॥६०॥
असिपत्रवने घोरे कृमिभक्षे प्रतापने। लालाक्षेपे सूचिवेधे तथैवांगारपातने॥६१॥
एवमादिषु कष्टेषु नरकेषु घटोद्भव। पातयत्याज्ञया तस्याः श्रीदेव्याः स महौजसः॥६२॥
तस्यैव पश्चिमे भागे निर्ऋतिः खड्गधारकः। राक्षसं लोकमाश्रित्य वर्तते ललितार्चकः॥६३॥
तस्य चोत्तरभागे तु द्वारयोरंतरस्थले। वारुणं लोकमाश्रित्य वरुणे वर्तते सदा॥६४॥
वारुण्यास्वादनोन्मत्तः शुभ्रांगो झषवाहनः। सदा श्रीदेवतामंत्रजापी श्रीक्रमसाधकः॥६५॥

पूर्वादि आठ भागों में इन्द्र आदि गोचरलोक हैं, जो मोती की शाल के चारों ओर द्वारदेशों को संयुक्त कर (मिलाकर) मुक्ता शाल और इन्द्रनील के द्वारों के मध्य स्थान से पूर्व भाग में इन्द्रलोक है तथा उसके कोने में अग्नि भूमि है।।५४-५५।। उसके दक्षिण भाग में यमपुर है, वहाँ दण्ड को धारण करने वाले प्रभु यमराज सर्वत्र श्रीललिता का जाप करने वाले तथा तीव्र स्वभाव वाले हैं।।५६।। जो यमराज अपनी आज्ञा को मानने वाले यमदूतों और चित्रगुप्त आदि प्रमुखों के साथ श्रीदेवी की आज्ञा का नियमन कर रहे हैं, अतः उन्हें जो श्रीदेवी ने आज्ञा दी है कि वे जिसने जैसा कर्म किया है, तदनुसार उसको वैसा शुभ या अशुभ फल दें, पापी को दण्डित करें, पुण्यात्मा को पुरस्कृत करें, अतः वे उनके उस आदेश का पालन कर रहे हैं।।५७।। अतः वे यमराज श्रीदेवी के निर्देशानुसार शाप प्राप्तों को, दुराचरण करने वालों को, ललिता देवी (प्रकृति) से द्वेष करने वालों को, छल-कपट पूर्ण भक्ति करने वालों, मूर्खों, स्तब्धों (पाप को देख कर चुप रहने वालों) अत्यन्त घमण्डियों, बुरे मन्त्रों का उच्चारण करने वालों, कुविद्या और पाप का आश्रय लेने वालों, नास्तिकों, पापियों, वृथा ही प्राणियों की हिंसा करने वालों, स्त्रियों से द्वेष करने वालों, लोगों से विशेष द्वेष रखने वालों और पाखण्ड का पालन करने वालों को कालसूत्र, रौरव, कुम्भीपाक, असिपत्रवन, घोर, कृमिभक्षक, प्रतापन, लालाक्षेप, सूचिवेध, उसी प्रकार अंगारपाटन आदि कष्टपूर्ण नरकों में हे अगस्त्य जी! उन श्री ललिता देवी की आज्ञा से वे महा ओजस्वी यमराज गिराते हैं।।५८-६२।।

उसी के पश्चिम भाग में खड्ग धारण करने वाली निर्ऋति मृत्यु अर्थात् विनाश की देवी राक्षसलोक का आश्रय लेकर (रक्षणकार्य लेकर) ललिता देवी की पूजा करने वाली है।।६३।। और उसके उत्तरभाग में तो दोनों द्वारों के अन्तरस्थल पर वारुण लोक का आश्रय लेकर सदा वरुण देव वर्तमान रहते हैं।।६४।। वे वारुणी के आस्वादन में उन्मत्त, शुभ्र अंग वाले, मकर वाहन वाले, सदा श्रीललिता देवी के मन्त्र का जाप करने वाले और श्रीदेवी के क्रम के साधक हैं।।६५।।

श्रीदेवतादर्शनस्य द्वेषिणछ पाशबंधनैः। बद्धा नयत्यधोमार्गं भक्तानां बन्धमोचकः॥६६॥
तस्य चोत्तरकोणेषु वायुलोको महाद्युतिः। तत्र वायुशरीराश्च सदानन्दमहोदयाः॥६७॥
सिद्धा दिव्यर्षयस्चैव पवनाभ्यासिनोऽपरे। गोरक्षप्रमुखाश्चान्ये योगिनो योगतत्पराः॥६८॥
एतैः सह महासत्त्वस्तत्र श्रीमारुतेश्वरः। सर्वथा भिन्नमूर्तिश्च वर्तते कुम्भसम्भव॥६९॥
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा तस्य शक्तयः। तिस्रो मारुतनाथस्य सदा मधुमदालसाः॥७०॥
ध्वजहस्तो मृगवरे वाहने महति स्थितः। ललितायजनध्यानक्रमपूजनतत्परः॥७१॥
आनन्दपूरिताङ्गीभिरन्याभिः शक्तिभिर्वृतः।
स मारुतेश्वरः श्रीमान्सदा जपति चक्रिणीम्॥७२॥
तेन सत्त्वेन कल्पान्ते त्रैलोक्यं सचराचरम्। परागमयतां नीत्वा विनोदयति तत्क्षणात्॥७३॥
तस्य सत्त्वस्य सिद्ध्यर्थं तामेव ललितेश्वरीम्। पूजयन्भावयन्नास्ते सर्वाभरणभूषितः॥७४॥
तल्लोकपूर्वभागस्थे यक्षलोके महाद्युतिः। यक्षेंद्रो वसति श्रीमांस्तद्वारद्वंद्वमध्यगः॥७५॥
निधिभिश्च नवाकारैर्ऋद्धिवृद्ध्यादिशक्तिभिः। सहितो ललिताभक्तान्पूरयन्धनसम्पदा॥७६॥
यक्षीभिश्च मनोज्ञाभिरनुकूलप्रवृत्तिभिः। विविधैर्मधुभेदैश्च सम्पूजयति चक्रिणीम्॥७७॥
मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्माणिकंधरः। इत्येवमादयो यक्षसेनान्यस्तत्र संति वै॥७८॥
तल्लोकपूर्वभागे तु रुद्रलोको महोदयः। अनर्घ्यरत्नखचितस्तत्र रुद्रोऽधिदेवता॥७९॥

जो श्रीललिता देवी के दर्शन से द्वेष करने वाले हैं, उनको बन्धमोचक पाशबन्धों से बाँध कर अधोमार्ग पर ले जाते हैं।।६६।। उसके उत्तरकोण पर महान् प्रकाश वाला वायुलोक है, वहाँ पर वायुरूपी शरीर वाले, सदैव आनन्द से रहने वाले महोदय सिद्धगण दिव्य ऋषिगण पवन का अभ्यास करने वाले दूसरे गोरखनाथ प्रमुख अन्य योगी योग में तत्पर रहते हैं।।६७-६८।। इन योगियों के साथ महा पराक्रमी वायु वहाँ सर्वथा अलग प्रकार का शरीर धारण करते हुए वर्तमान रहते हैं।।६९।। वहाँ उन वायुदेव की इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना तीन शक्तियाँ मधु के मद में मस्त होकर, ध्वज हाथ में लेकर श्रेष्ठ एवं महान् मृग के वाहन पर सवार होकर, श्री ललितादेवी के यज्ञ ध्यान क्रम और पूजन में तत्पर रहती हैं।।७१।। आनन्दपूरित अंगों वाली अन्य शक्तियों से घिरे हुए श्रीमान् मारुतेश्वर सदा चक्रिणी श्री ललिता देवी का जप करते हैं। उस सत्त्व के द्वारा वे मारुतेश्वर एक कल्प के अन्त में अर्थात् प्रलयकाल में समस्त जड़-चेतन त्रिलोकी को परागमय (धूलि के कण के रूप) में ले जाकर के उस क्षण में आनन्द प्राप्त करते हैं अर्थात् प्रलयकाल में समस्त चराचर जगत् को अपने में समेट कर आनन्द करते हैं।।७२-७३।।

उस सत्त्व की सिद्धि के लिये उसी ललितेश्वरी की पूजा करते हुए उन्हीं के भाव को धारण करते हुए समस्त आभरणों से भूषित होकर स्थित रहते हैं।।७४।। उस लोक के पूर्वभाग में स्थित यक्षलोक में श्रीमान् यक्षराज उस द्वार के मध्य रहकर निवास करते हैं।।७५।। तथा वे यक्षराज निधियों के साथ तथा नये-नये आकार वाली ऋद्धियों की वृद्धि आदि शक्तियों के साथ ललिता देवी के भक्तों को धन-सम्पदा से पूर्ण करते हुए तथा मन को सुन्दर लगने वाली, अनुकूल विचारधाराओं वाली, यक्षिणियों द्वारा अनेकों प्रकार के मधु के प्रकारों अर्थात् अनेकों प्रकार की मदिराओं से चक्रिणी ललिता देवी का पूजन करते हैं।।७६-७७।। मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान्, मणिकन्धर इत्यादि यक्ष सेनापति वहाँ रहते हैं।।७८।। उस लोक के पूर्व भाग में महोन्नत रूप रुद्रलोक है, वहाँ पर रुद्र अधिदेवता निवास

सदैव मन्युना दीप्तः सदा बद्धमहेषुधिः। स्वसमानैर्महासत्त्वैर्लोकनिर्वाहदक्षिणैः॥८०॥
अधिज्यकार्मुकैर्दक्षैः षोडशावरणास्थितैः। आवृतः सततं वक्त्रैर्जपञ्छ्रीदेवतामनुम्॥८१॥
श्रीदेवीध्यानसम्पन्नः श्रीदेवीपूजनोत्सुकः। अनेककोटिरुद्राणीगणमंडितपार्श्वभूः॥८२॥
ताश्च सर्वाः प्रदीप्तांग्यो नवयौवनगर्विताः। ललिताध्याननिरताः सदासवमदालसाः॥८३॥
ताभिश्च साकं स श्रीमान्महारुद्रस्त्रिशूलभृत्। हिरण्यबाहुप्रमुखै रुद्रैरन्यैर्निषेवितः॥८४॥
ललितादर्शनभ्रष्टानुद्धतान्गुरुधिक्कृतान्। शूलकोट्या विनिर्भिध्य नेत्रोत्थैः कटुपावकैः॥८५॥
दहंस्तेषां वधूभृत्यान्प्रजाश्चैव विनाशयन्। आज्ञाधरो महावीरो ललिताज्ञाप्रपालकः॥८६॥
रुद्रलोकेऽतिरुचिरे वर्तते कुम्भसम्भव। महारुद्रस्य तस्यर्षे परिवाराः प्रमाथिनः॥८७॥
ये रुद्रास्तानसंख्यातान्को वा वक्तुं पटुर्भवेत्।
ये रुद्रा अधिभूम्यां तु सहस्त्राणां सहस्त्रशः॥८८॥
दिवि येऽपि च वर्तते सहस्त्राणां सहस्त्रशः। येषामन्नमिषश्चैव येषां वातास्तथेषवः॥८९॥
येषां च वर्षमिषवः प्रदीप्ताः पिङ्गलेक्षणाः। अर्णवे चांतरिक्षे च वर्तमाना महौजसः॥९०॥
जटावंतो मधुष्मन्तो नीलग्रीवा विलोहिताः। ये भूतानामधिभुवो विशिखासः कपर्दिनः॥९१॥

करते हैं।।७९।। जो अनेक रत्नों से खचित रहते हुए, सदैव क्रोध से जलते हुए, सदा महान् बाण को धारण किये हुए, अपने ही समान महापराक्रमी लोकनिर्वाह करने में कुशल प्रत्यञ्चा खींचे हुए धनुषों से युक्त कुशल रुद्रगण सोलह आवरणों से घिरे हुए हैं और रुद्र देवता सभी के मुखों से श्रीललिता देवी का जप करते हुए श्रीदेवी के ध्यान में पूरी तरह संलग्न श्री देवी के पूजन को उत्सुक वे रुद्रदेवता अनेकों करोड़ रुद्राणियों के गणों को अपने पीछे लिये हुए हैं।।८०-८२।। वे सब रुद्राणियाँ प्रदीप्त अंगों वाली नवीन यौवन से गर्वित हैं और सदैव मदिरा के मद में मत्त हो श्रीललिता देवी के ध्यान में लगी हुई हैं।।८३।। उनके साथ त्रिशूलधारी श्रीमान् महारुद्र हिरण्यबाहु प्रमुख अन्य रुद्रों से सेवित हैं।।८४।। जो कि ललिता देवी के दर्शन से भ्रष्ट, उद्धत (उद्दण्ड) तथा गुरुओं के धिक्कार किये गये लोगों को शूल की कोटि (नोंक धार) पर भेदकर नेत्रों से निकले हुए तीव्र आग से जलाते हुए, उनकी बहुओं, सेवकों, सन्तानों को नष्ट कर ललिता देवी की आज्ञा को धारण करने वाले तथा उनकी आज्ञा का पालन करने वाले महावीर हैं अर्थात् वे महारुद्र के हिरण्यबाहु आदि जो प्रमुख रुद्रगण हैं, वे सब ललिता देवी अर्थात् प्रकृति के आदेश को न मानने वाले तथा भ्रष्ट एवं गुरुओं का अनादर करने वाले लोगों को त्रिशूल की धार पर रखकर तीव्र आग में जलाते हैं तथा उनके समस्त परिवार को नष्ट कर ललिता देवी की आज्ञा का पालन करते हैं।।८५-८६।।

हे अगस्त्य जी! अत्यन्त रुचिर रुद्रलोक में वे महावीर विद्यमान हैं तथा उन महारुद्र ऋषि के परिवार सभी महा कष्ट देने वाले हैं।।८७।। जो रुद्र इतने हैं कि उनकी संख्या बताने में कौंन कुशल हो सकता है, जो रुद्र उस अधिकृत भूमि पर हजारों हजार की संख्या में हैं।।८८।। स्वर्ग में जो हजारों के हजार अर्थात् लाखों हैं, जिनके अन्नरूपी बाग हैं, जिनके वायुरूपी बाण हैं।।८९।। और जिनके वर्षारूपी बाण हैं, जो मेघों में विद्युत के रूप में पीली आँखों को चमकाते रहते हैं। जो महा ओजस्वी रुद्र देवता समुद्र में (जल में), अन्तरिक्ष में वर्तमान रहते हैं।।९०।। वे जटाओं को धारण करने वाले, मधुष्मन्त (मधुर रखने वाले) नीलकण्ठ वाले और विलोहित हैं, जो प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, विशेष शिखाओं वाले और कपर्दी (कोई और जटा धारण करने वाले हैं।।९१।।

ये अन्नेषु विविध्यंति पात्रेषु पिबतो जनान्। ये पथां रथका रुद्रा ये च तीर्थनिवासिनः॥९२॥
सहस्रसंख्या ये चान्ये सृकावंतो निषंगिणः। ललिताज्ञाप्रणेतारो दिशो रुद्रा वितस्थिरे॥९३॥
ते सर्वे सुमहात्मानः क्षणाद्विश्वत्रयीवहाः। श्रीदेव्या ध्याननिष्णाताञ्छ्रीदेवीमंत्रजापिनः॥९४॥
श्रीदेवतायां भक्ताश्च पालयंति कृपालवः। षोडशावरणं चक्रं मुक्ताप्राकारमंडले॥९५॥
आश्रित्य रुद्रास्ते सर्वे महारुद्रं महोदयम्। हिरण्यबाहुप्रमुखा ज्वलन्मन्युमुपासते॥९६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने पुष्परागप्रकारादि-मुक्ताकारांतसप्तकक्षांतरकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥
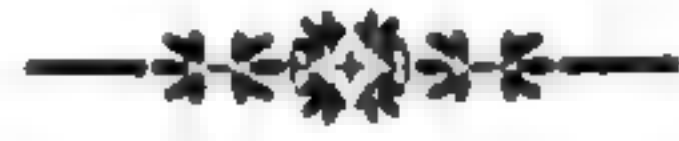
जो रुद्रगण अन्नों में विविधता पैदा करते हैं, अर्थात् अन्नों को अलग रूप में विभाजित करते हैं, इसीलिए जिस अन्न का बीज होता है, उस पर उगकर वही अन्न आता है तथा जो पात्रों में पीते हुए लोगों की विविधता करते हैं, जो राहगीरों को ले जाने वाले रुद्र हैं, वे ही तीर्थों पर निवास करने वाले हैं।।९२।। जो हजारों की संख्या में धनुष-बाण और तरकश एवं खड्ग को धारण किये हुए हैं, वे ललिता देवी की आज्ञा के प्रणेता, उनकी आज्ञा का पालन कराने वाले होकर सभी दिशाओं में फैले हुए हैं।।९३।। वे सभी कृपालु अत्यन्त महान् आत्मा रुद्रगण क्षण भर में तीनों लोकों को धारण करने वाले श्रीदेवी के ध्यान में निष्णात पुरुषों और श्रीदेवी का जप करने वालों का तथा श्रीदेवी के प्रति जो भक्त हैं, उनका पालन करते हैं।।९४-९४½।। ये सभी हिरण्यबाहु प्रमुख रुद्रगण मोतियों से निर्मित प्राकार मण्डल में स्थित षोडश आवरण वाले चक्र का आश्रय लेकर जलते हुए क्रोध वाले महारुद्र महोदय (भगवान् शिव) की उपासना करते हैं।।९६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३३वाँ अध्याय पुष्पराग प्राकारादिमुक्ताकारान्त सप्तकक्षान्तर कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖
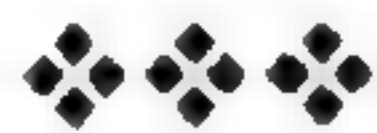
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

दिक्पालादिशिवलोकान्तरकथनं नाम

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

षोडशावरणं चक्रं किं तद्रुद्राधिदैवतम्। तत्र स्थिताश्च रुद्रः के केन नाम्ना प्रकीर्तिताः॥१॥
केष्वावरणबिंबेषु किन्नामानो वसंति ते। यौगिकं रौढिकं नाम तेषां ब्रूहि कृपानिधे॥२॥

हयग्रीव उवाच

तत्र रुद्रालयः प्रोक्तो मुक्ताजालकनिर्मितः। पञ्चयोजनविस्तारस्तत्संख्यायामशोभितः॥३॥
षोडशावरणैर्युक्तो मध्यपीठमनोहरः। मध्यपीठे महारुद्रो ज्वलन्मन्युस्त्रिलोचनः॥४॥
सज्जकार्मुकहस्तश्च सर्वदा वर्तते मुने। त्रिकोणे कथिता रुद्रास्त्रय एव घटोद्भव॥५॥
हिरण्यबाहुः सेनानीर्दिशांपतिरथापरः॥६॥
वृक्षाश्च हरिकेशाश्च तथा पशुपतिः परः। शष्पिञ्जरस्त्विषीमांश्च पथीनां पतिरेव च॥७॥
एते षट्कोणगाः किं च बभ्रुशास्त्वष्टकोणके। विव्याध्यन्नपतिश्चैव हरिकेशोपवीतिनौ॥८॥
पुष्टानां पतिरप्यन्यो भवो हेतिस्तथैव च। दशपत्रे त्वावरणे प्रथमो जगतां पतिः॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३४

दिक्पालों द्वारा शिवलोक का अन्तर

अगस्त्य मुनि ने कहा कि हे हयग्रीव! यह बताइये कि रुद्रादि देवियों वाला षोडशावरण चक्र क्या है? वहां पर स्थित रुद्र कौन हैं तथा वे किस नाम से पुकारे जाते हैं?।।१।। तथा किन-किन आवरण बिम्बों में वे किस नाम वाले रहते हैं? अतः हे कृपानिधे भगवान् हयग्रीव उनके यौगिक और रौद्रिक नाम बताइए।।२।।

हयग्रीव ने कहा कि वहाँ पर मोतियों के समूहों से बना हुआ रुद्रालय कहा गया है, जो रुद्रालय पांच योजन विस्तार वाला है तथा उतनी संख्या में अशोभित है।।३।। वह रुद्रालय सोलह आवरणों से युक्त तथा मध्यपीठ से मनोहर है, उसके मध्यपीठ में जलते हुए क्रोध वाले त्रिलोचन महारुद्र आसीन हैं।।४।। हे अगस्त्य मुने! वे महारुद्र प्रत्यंचा खींचे हुए धनुष को सदा हाथ में लिये हुए वर्तमान हैं।।४½।। हे अगस्त्य जी! त्रिकोण में स्थित तीन ही रुद्र कहे गये हैं, हिरण्यबाहु सेनापति हैं, जो दिशाओं के स्वामी हैं। वृक्ष और हरिकेश तथा पशुपति दूसरे हैं। शष्पिंजर और इषीमान् पतिकों के पति ही हैं।।४½-६।। ये षट्कोण में स्थित रुद्रगण हैं तथा अष्टकोण में १. बभ्रुशा, २. विव्याधि ३. अन्नपति, ४. हरिकेश, ५. उपवीती ६. अन्य पुष्टों के पति तथा ७. भव और ८. हेति इस प्रकार ये आठ रुद्र अष्टकोण में हैं।।७-८½।। दशपत्र आवरण में प्रथम संसार स्वामी है तथा दूसरा रुद्र अतितावी क्षेत्रपति

रुद्राततताविनौ क्षेत्रपतिः सूतस्तथापरः। अहं त्वन्यो वनपती रोहितः स्थपतिस्तथा॥१०॥
वृक्षाणां पतिरप्यन्यश्चैते सज्जशरासनाः। मंत्री च वाणिजश्चैव तथा कक्षपतिः परः॥११॥
भवंतिस्तु चतुर्थः स्यात्पंचमो वारिवस्ततः। ओषधीनां पतिश्चैव षष्ठः कलशसंभव॥१२॥
उच्चैर्घोषाक्रंदयंतौ पतीनां च पतिस्तथा। कृत्स्नवीत्तश्च धावश्च सत्त्वानां पतिरेव च॥१३॥
एते द्वादश पत्रस्थाः पंचमावरणस्थिताः। सहमानश्च निर्व्याधिरव्याधीनां पतिस्तथा॥१४॥
ककुभश्च निषंगी च स्तेनानां च पतिस्तथा। निचेरुश्चेति विज्ञेयाः षष्ठावरणदेवताः॥१५॥

अधः परिचरोऽरण्य; पतिः किं च सृकाविषः।
जिघांसंतो मुष्णातां च पतयः कुंभसंभव॥१६॥

असीमंतश्च सुप्राज्ञस्तथा नक्तंचरो मुने। प्रकृतीनां पतिश्चैव उष्णीषी च गिरेश्चरः॥१७॥
कुलुंचानां पतिस्चैवेषुमन्तः कलशोद्भव। धन्वाविदश्चातन्वानप्रतिपूर्वदधानकाः॥१८॥
आयच्छतः षोडशैते षोडशारनिवासिनः। विसृजंतस्तथास्यंतो विद्यंतश्चापि सिंधुप॥१९॥
आसीनाश्च शयानाश्च यंतो जाग्रत एव च। तिष्ठंतश्चैव धावतः सभ्याश्चैव समाधिपाः॥२०॥
अश्वाश्चैवाश्वपतय अव्याधिन्यस्तथैव च। विविध्यंतो गणाध्यक्षा बृहंतो विंध्यमर्दन॥२१॥
गृत्सश्चाष्टादशविधा देवता अष्टमावृतौ। अथ गृत्साधिपतयो व्राता व्राताधिपास्तथा॥२२॥
गणाश्च गणपाश्चैव विश्वरूपा विरूपकाः। महांतः क्षुल्लकाश्चैव रथिनश्चारथाः परे॥२३॥
रथाश्च रथपत्त्याख्याः सेनाः सेनान्य एव च। क्षत्तारः संग्रहीतारस्तक्षाणो रथकारकाः॥२४॥

है तथा फिर मुझसे दूसरे सूत हैं। अन्य वनस्पति और रोहित स्थपति दूसरे वृक्षों के स्वामी हैं, ये सब धनुष बाण लिये हुए हैं। मन्त्री और वाणिज (व्यापारी) तथा दूसरे कक्षपति हैं। ये चतुर्थ हैं तथा पाँचवें वारिव हैं, औषधियों के प्रति छठे हैं, उच्च घोष से क्रन्दन करते हुए पतियों के पति सातवें हैं, कृत्स्नवीत और धावम् प्राणियों के स्वामी हैं। इस प्रकार ये द्वादश पत्र पर स्थित पञ्चमावरण के रुद्र हैं।।८½-१३½।। १. सहमान, २. निर्व्याधि तथा ३. व्याधियों के स्वामी, ४. ककुभ, ५. निषंगी तथा ६. स्तेनों के स्वामी और ७. निचेरु, ये षष्ठ आवरण के देवता जानने चाहिए।।१३½-१५।। १. अध (नीचे), २. परिचर ३. अरण्य ४. पति और ५. वायु में प्रवेश करने वाले और ६. मुष्णाता को मारने की इच्छा वाले स्वामी गण, ७. असीमन्त, ८. सुप्राज्ञ तथा ९. रात्रि में विचरण करने वाली प्रकृतियों के स्वामी, १०. उष्णीषी और ११. गिरेश्वर कुलुंचों के स्वामी, १२. इषुमन्त, १३. धन्वाविद, १४. अतन्वान् १५. प्रतिपूर्वदधानक, १६.आयच्छत, ये सोलह षोडशपत्रदल के निवासी रुद्रगण हैं।।१६-१८½।।

ये सब विशेष रचना करते हुए तथा आते हुए तथा विधि का अन्त करने सिन्धु के पीने वाले रुद्रगण हैं। यह सब आसीन रहते हुए, सोते हुए, चलते हुए, जागते हुए और बैठते हुए, दौड़ते हुए, सभ्य हैं और समाधि धारण करने वाले हैं। अश्व और अश्वपति अव्याधिन्य; अनेकों प्रकार के गणाध्यक्ष, जो बहुत बड़े और विन्ध्य का मर्दन करने वाले हैं।।१८½-२१।। गृत्स आदि १८ देवता अष्टम आवरण में हैं। इसके बाद १. गृत्स, २. गृत्साधिपति, ३. व्रात, ४. व्राताधिपति उसके बाद ५. गण और ६. गणों के अधिपति, ७. विश्वरूप, ८. विरूप, ९. महान्त, १०. क्षुल्लक, ११. रथी, १२. अरथी, १३. रथ, १४. रथपति, १५. सेना, १६. सेनापति, १७. क्षत्तार, १८.

कुलालश्चेति रुद्रास्ते नवमावृतिदेवताः। कर्माराश्चैव पुंजिष्ठा निषादाश्चैषुकृद्गणाः॥२५॥
धन्वकारा मृगयवः श्वनयः श्वान एव च। अश्वाश्चैवाश्वपतयो भवो रुद्रो घटोद्भव॥२६॥
शर्वः पशुपतिर्नीलग्रीवश्च शितिकंठकः। कपर्दी व्युप्तकेशश्च सहस्त्राक्षस्तथापरः॥२७॥
शतधन्वा च गिरिशः शिषिविष्टश्च कुंभज। मीढुष्टम इति प्रोक्ता रुद्रादशमशालगाः॥२८॥
अथैकादशचक्रस्था इषुमद्ध्रस्ववामनाः। बृहंश्च वर्षीयांश्चैव वृद्धः समृद्धिना सह॥२९॥

अग्र्यः प्रथम आशुश्चाजिरोन्यः शीघ्रशिभ्यकौ।
उर्म्यावस्वन्यरुद्रौ च स्त्रोतस्यो दिव्य एव च॥३०॥

ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च पूर्वजावरजौ तथा। मध्यमश्चावगम्यश्च जघन्यश्च घटोद्भव॥३१॥
चतुर्विंशतिराख्याता एते रुद्रा महाबलाः। अथ बुध्न्यः सोम्यरुद्रः प्रतिसर्पकयाम्यकौ॥३२॥

क्षेम्योवोचवखल्यश्च ततः श्लोक्यावसान्यकौ।
वन्यः कक्ष्यः श्रवश्चैव ततोऽन्यस्तु प्रतिश्रवः॥३३॥

आशुषेणश्चाशुरथः शूरश्च तपसां निधे। अवभिंदश्च वर्मी च वरूथी बिल्मिना सह॥३४॥
कवची च श्रुतश्चैव सेनो दुंदुभ्य एव च। आहनन्यश्च धृष्णुश्च ते च षड्विंशतिः स्मृताः।

द्वादशावरणस्थास्ते महाकाया महाबलाः॥३५॥

प्रभृशाश्चैव दूताश्च प्रहिताश्च निषंगिणः। अन्यस्त्विषुधिमानन्यस्तक्ष्णेषुंश्च तथा युधि॥३६॥

स्वायुधश्च सुधन्वा च स्तुत्यः पथ्यश्च कुंभज।
काप्यो नाट्यस्तथा सूधः सरस्यो विंध्यमर्दन॥३७॥

संग्रहीतार, १९. तक्षाण, २०. रथका रक और २१. कुलाल ये नवम आवरण के देवता हैं।।२१-२४½।। १. कर्मा, २. पुंजिष्ठ, ३. निषाद, ४. इषुकृद्गण, ५. धन्वकार, ६. मृगयव, ७. श्वनी (कुतिया), ८. श्वान, ९. अश्व, १०. अश्वपति, ११. भव, १२. रुद्र, १३. शर्व, १४. पशुपति, १५. नीलग्रीव, १६. शितिकण्ठ, १७. कपर्दी, १८. व्युप्तकेश, १९. व्युप्तकेश, २०. सहस्राक्ष, २१. शतधन्वा, २२. गिरीश, २३. शिषिविष्ट और २४. मीढुष्टम ये सब चौबीस दशम शाल में जाने वाले रुद्र देवता हैं।।२४½-२८।। इसके बाद एकादश चक्रस्थ रुद्र देवता हैं— १. इषुमत्, २. ह्रस्ववामन, ३. बृहन्, ४. वर्षीयान्, ५. वृद्ध, ६. समृद्ध, ७. अग्न्यः, ८. प्रथम, ९. आशु, १०. अजिर, ११. शीघ्र, १२. शिभ्यक, १३. उर्मि, १४. आवस्वन्, १५. रुद्र, १६. स्रोतस्य, १७. दिव्य, १८. ज्येष्ठ, १९. कनिष्ठ, २०. पूर्वज, २१. अवरज, २२. मध्यम, २३. अवगम्य और २४. जघन्य ये चौबीस रुद्रगण एकादश चक्रस्थ हैं, जो महाबलवान् हैं।।२८½-३१½।। इसके बाद हे अगस्त्य जी! १. बुध्न्य, २. सौम्यरुद्र, ३. प्रतिसर्पक, ४. याम्यक, ५. क्षेम्य, ६. वोचव, ७. खल्य, उसके बाद ८. श्लोक्य, ९. अवसान्यक, १०. वन्यः, ११. कक्ष्यः, १२. श्रव; उसके बाद दूसरे १३. प्रतिश्रव, १४. आशुषेण, १५. आशुरथ, १६. शूर, १७. अवभिन्द, १८. वर्मी, १९. वरूथी, २०. बिल्मी, २१. कवची, २२. श्रुत, २३. सेन, २४. दुन्दुभि, २५. आहन्य और २६. धृष्णु ये छब्बीस रुद्र स्मरण किये गये हैं, वे महाकाय और महाबली रुद्र द्वादश आवरण में स्थित हैं।।३१½-३५।। तथा हे अगस्त्य जी! १. प्रभृश, २. दूत, ३. प्रहित, ४. निषङ्गी, ५. अन्य तो इषुधिमान् जो युद्ध में और लकड़ी की काट-छाँट वाले हैं, ६. स्वायुध, ७. सुधन्वा, ८. स्तुत्य, ९. पथ्य, १०. काप्य, ११. नाट्य,

ततश्चान्यो नाधमानो वेशंतः कुप्य एव च। अवधवर्ष्योऽवर्ष्यश्च मेध्यो विद्युत्य एव च॥३८॥
इध्र्यातप्यौ तथा वात्यौ रेष्म्यश्चैव तथापरः। वास्तव्यो वास्तुपश्चैव सोमश्चेति महाबलाः॥३९॥
त्रयोदशावरणगाञ्छृणु रुद्रांश्च तान्मुने। रुद्रस्ताम्रारुणः शंगस्तथा पशुपतिर्मुने॥४०॥
उग्रो भीमस्तथैवाग्रेवधदूरेवधावपि। हंता चैव हनीयांश्च वृषश्च हरिकेशकः॥४१॥
तारः संभुर्मयोभूश्च शंकरश्च मयस्करः। शिवः शिवतरश्चैव तीर्थ्यः कुल्यस्तथैव च।
पार्योऽपार्यः प्रतरणस्तथा चोत्तरणो मुने॥४२॥
आतर्यश्च तथा लभ्यः षष्ठः फेन्यस्तथैव च। चतुर्दशावरणके कथिता रुद्रदेवताः॥४३॥
सिकत्यश्च प्रवाह्यश्च तथेरिण्यस्तपोनिधे। प्रपथ्यः किंशिलश्चैव क्षयणस्तदनंतरम्॥४४॥
कपर्दी च पुलस्त्यश्च गोष्ठ्यो गृह्यस्तथैव च।
तल्प्यो गेह्यस्तथा काट्यो गह्वरष्ठोरुदीपकः॥४५॥
निवेष्ट्यश्चापि पांतव्यो रथन्यः शुक्य एव च।
हरीत्यलोथा लोप्याश्च उर्व्यसूर्म्यौ तथा मुने॥४६॥
पयेयश्च पर्णशश्च तथा वगुरमाणकः। अभिघ्ननाशिदुश्चैव प्रखिदन् किरिकास्तथा॥४७॥
देवानां हृदयश्चैव द्वात्रिंशद्रुद्रदेवताः। वर्तते सायुधाः प्राज्ञ नित्यं पञ्चादशावृतौ॥४८॥
षोडशे त्वावरणके पूर्वादिद्वारवर्तिनः। विक्षिणत्काविचिन्वत्कास्तता निर्हतनामकाः॥४९॥
आमीवक्ताश्च निष्टप्ता महारुद्रमुपासते। इति षोडशशालेषु स्थितैः रुद्रैः सहस्त्रशः॥५०॥

---

१२. सूध, १३. सरस्य, १४. विन्ध्यमर्दन, १५. नाधमान, १६. वेशन्त, १७. कुप्य, १८. अवधवर्ष्य, १९. अवर्ष्य, २०. मेध्य, २१. विद्युत्य, २२. इध्रय, २३. अतज्य, २४. वात्य, २५. रेष्म्य, २६. वास्तव्य, २७. वास्तुप और २८. सोम। अब हे अगस्त्य जी! तेरहवें आवरण में गमन करने वाले रुद्रों को सुनिये। १. रुद्र, २. ताम्र, ३. अरुण, ४. शंग तथा ५. पशुपति, ६. उग्र, ७. भीम, उसी प्रकार ८. अग्रेवध, ९. दूरेवध, १०. हंता, ११. हनीय, १२. वृष, १३. हरिकेशक, १४. तार, १५. शम्भु, १६. मयोभूः, १७. शंकर, १८. मयस्कर, १९. शिव, २०. शिवतर, २१. तीर्थ्य, २२. कुल्य, उसी प्रकार २३. पार्य, २४. अपार्य, २५. प्रतरण तथा २६. उत्तरण, २७. आतर्य, २८. लभ्य २८. षष्ठ और २९. फेन्य, ये ३२ चौदहवें आवरण में कहे गये रुद्र देवता हैं।।३९½-४३।। तथा हे मुने! १. सिकत्य, २. प्रवाह्य, ३. इरिण्य, ४. प्रपथ्य, ५. किंशिल, ६. क्षयण, ७. कपर्दी, ८. पुलस्त्य, ९. गोष्ठ्य, १०. गृह्य, ११. तल्प्य, १२. गेह्य, १३. काट्य, १४. गह्वर, १५. इष्ठ, १६. उदीपक, १७. निवेष्ट्य, १८. पान्तव्य, १९. रथन्य, २०. शुक्य, २१. हरीति, २२. ऊलोथा, २३. लोप्या, २४. उर्व्य, २५. सूर्म्य, २६. पयेय, २७. पर्णश, २८. वगुरमाणक, २९. अभिघ्न, ३०. नाशिदु, ३१. प्रखिदन्, ३२. किरिक, ये देवों के हृदय बत्तीस रुद्र देवता हैं। ये सभी अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों सहित पन्द्रहवें आवरण में स्थित हैं।।४४-४८।

सोलहवें आवरण में तो पूर्व आदि द्वारों पर रहने वाले विक्षिणत्क गण, विचिन्त्वत्क गण तथा निहर्त नामक आमीवक्ता ये चारों द्वारों पर निश्चित रूप से तप करते हुए महारुद्र की उपासना करते हैं, ये चारों अकेले नहीं सभी

सेवितस्तु महारुद्रो ललिताज्ञाप्रवर्तकः। वर्तते जगतामृद्ध्यै मुक्ताशालेशकोणके॥५१॥
शतरुद्रियसंख्याता एते रुद्रा महाबलाः। ललिताभक्तिसम्पन्नान्पालयंति दिवानिशम्।
अभक्तांल्ललितादेव्याः प्रत्यूहैर्योजयन्त्यमी॥५२॥
इत्थं शक्रादिदिक्पाला मुक्ताशालं समाश्रिताः। ललितापरमेश्वर्याः सेवामेव वितन्वते॥५३॥
अथ मुक्ताख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने। शालो मारकताभिख्यश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥५४॥
पूर्ववद्गोपुरादीनां संस्थानैश्च सुशोभितः। तत्र श्रीदंडनाथाया दहनादिविदिग्गजाः॥५५॥
चत्वारो निलयाः प्रोक्ता मंत्रिणीगृहविस्तराः।
गीतिचक्ररथेन्द्रस्य याः पर्वाणि समाश्रिताः॥५६॥
भण्डासुरमहायुद्धे ता देव्यस्तत्र जाग्रति।
सर्वाः स्थल्यो मरकतश्रेणिभिः खचिताः शुभाः॥५७॥
हेमतालवनाढ्याश्च सर्ववस्तुसमाकुलाः। तत्र देव्यः समस्ताश्च दण्डनाथासमश्रियः॥५८॥
हलोद्धर्णहलाद्धर्णमुसलाः सञ्चरंत्यपि। संख्यातीतास्तालवृक्षा नवस्वर्णविचित्रिताः॥५९॥
योजनायतकाण्डाश्च दलैर्युक्ता विशङ्कटैः।
हेमत्वचोऽतिसुस्निग्धाः सच्छायाः फलभङ्गुराः॥६०॥
आमूलाग्रं लम्बमानास्ताला हालाघटाकुलाः।
वर्तन्ते दंडनाथायाः प्रीत्यर्थं शिल्पिभिः कृताः॥६१॥

गण हैं तथा उपर्युक्त उनके गणों के नाम हैं। इस प्रकार सोलह शालों में स्थित हजारों रुद्रों से सेवित महारुद्र श्रीललिता देवी की आज्ञा को क्रियान्वित कराने वाले हैं तथा वे लोकों की समृद्धि के लिए मोतियों के शाल के कोण में वर्तमान हैं।।४९-५१।। सौ रुद्रों की संख्या वाले ये महाबलवान् रुद्रगण ललिता देवी की भक्ति से सम्पन्न पुरुषों को रात-दिन पालते हैं, उनकी रक्षा करते हैं तथा जो ललिता देवी के भक्त नहीं हैं, उनको ये विघ्नों और बाधाओं से युक्त बनाते हैं।।५२।। इस प्रकार इन्द्र आदि दिक्पाल मोतियों के शाल में सम्यक् प्रकार से आश्रित रहते हुए ललिता परमेश्वरी की सेवा करते रहते हैं।।५३।। इसके बाद मुक्ता नामक शाल के मारुत योजन अन्तर पर मारकत नामक मरकत मणि की शाल है, जो चार योजन ऊँची है।।५४।। वह पूर्व के समान नगरद्वार आदि संस्थानों से सुशोभित है। वहाँ श्री दण्डनाथा के दहन आदि विशिष्ट दिग्गज हैं।।५५।। वहाँ पर चार घर कहे गये हैं, जो मन्त्रिणी के गृहविस्तर हैं, अर्थात् वे चारों मन्त्रिणी के घर हैं। जो घर गीति चक्ररथ राज के पर्वो खण्डों पर समाश्रित हैं।।५६।।

भण्डासुर के साथ जब महायुद्ध हुआ था, तब वे सब देवियाँ वहाँ जाग रही थीं। वहाँ सभी स्थलियाँ शुभ मरकत मणियों से खचाखच भरी हुई हैं तथा स्वर्णिम तालवृक्षों के वनों से युक्त सभी वस्तुओं से भरी हुई वे स्थलियाँ हैं।।५७-५७½।। वहाँ पर देवी दण्डनाथा के समान शोभा वाली समस्त देवियाँ हैं, जो हलों को और हल से घातक अस्त्र मूसल को लेकर घूम रही हैं।।५७½-५८½।। वहाँ असंख्य ताड़ के वृक्ष नवीन स्वर्ण की विचित्रता वाले हैं, जिनकी शाखाएँ एक योजन विस्तृत हैं तथा जो विशाल एवं मजबूत पत्तों से युक्त हैं, जिनकी सोने की छाल अत्यन्त सुन्दर और चिकनी है, उनकी छाया बहुत अच्छी है तथा उन पर फल लटके हुए हैं।।५८½-६०।। उन वृक्षों के मूल से ऊपर तक ताड़ी मदिरा से भरे हुए घड़े लटक रहे हैं, जो दण्डनाथा देवी की प्रसन्नता के लिए शिल्पकारों ने बनाये

तं च तालरसापूरं पीत्वापीत्वा मदा कुलाः। जृंभिण्याद्याश्चक्रदेव्यो हेतुकाद्याश्च भैरवाः॥६२॥
सप्तनिग्रहदेव्यश्च नृत्यंति मदविह्वलाः। चतुर्विदिक्षु दंडिन्या यत्रयत्र महादृशः॥६३॥
तत्र पूर्वादिदिग्भागे देवीसदृशवर्चसः। उन्मत्तभैरवी चैव स्वप्नेशी सर्वतोदिशम्॥६४॥
निवासो दंडनाथायाः केवलं त्वाभिमानिकः। तस्यास्तु सेवावासोऽन्यो महापद्माटवीस्थले।
तत्कक्षातिदवीयस्त्वात्सेवार्थं तत्र तद्गृहः॥६५॥
अथो मरकताकारे शाले तत्सप्तयोजने। प्राकारो विद्रुमाकारः प्रातरर्यमपाटलः॥६६॥
तत्र स्थलास्तु सकला विद्रुमैरेव निर्मिताः। तद्वद्विद्रुमसंकाशो ब्रह्मा नलिनविष्टरः॥६७॥
ब्रह्मलोकात्समागत्य सार्द्धं सर्वैर्मुनीश्वरैः। सदा श्रीललितादेव्याः सेवनार्थं मतंद्रितः॥६८॥
मरीच्याद्यैः प्रजासृग्भिर्वर्तते साकमब्धिप। चतुर्दशापि विद्यास्ता उपविद्याः सहस्रशः॥६९॥
चतुष्षष्टिकलाश्चैव शरीरिण्यो महत्तराः। प्राकारे विद्रुमाकारे ब्रह्मलोकसमाश्रिताः।
वर्तन्ते जगतामृद्ध्यै ललिता देवताज्ञया॥७०॥
अथ विद्रुमशालस्यान्तरे मारुतयोजने। माणिक्यमण्डपस्थाने परीतः सर्वतोदिशम्।
वर्तते विष्णुलोकस्तु ललितासेवनोत्सुकः॥७१॥
तत्र वैष्णवलोके तु विष्णुः साक्षात्सनातनः। चतुर्धा दशधा चैव तथा द्वादशधा पुनः।
विभिन्नमूर्तिः सततं वर्तते माधवः सदा॥७२॥

हैं।।६१।। उस तालरस को पी-पी कर मद से आकुल जृम्भिणी आदि चक्र देवियाँ और हेतुक आदि भैरव तथा सात निग्रह (प्रलय करने वाली) देवियाँ मदमत्त होकर नाचती हैं।।६२-६२½।। दण्डिनी की विशेष चारों दिशाओं में जहाँ-जहाँ महान् दृष्टि है, वहाँ-वहाँ पूर्व आदि दिशाओं के भाग में जहाँ कि देवी के समान शक्तिवाली शक्तियाँ हैं और उन्मत्त भैरवी स्वप्न की स्वामिनी तो सब दिशाओं में भ्रमण करती हैं।।६२½-६४।। परन्तु दण्डनाथा देवी का निवास तो केवल आभिमानिक है, वे सर्वत्र नहीं विचरण करतीं। उनका सेवा वास अन्य है, जो महापद्म वनी के स्थल पर है, अर्थात् उनकी सेवा करने का स्थान (Service place) महापद्मवनी स्थली है। वहाँ उसकी रक्षार्थ उनकी महादेवी द्वारा नियुक्ति की गयी है; परन्तु उस कक्षा से अति दूर होने के कारण सेवा के लिए वहाँ उनका वह घर है।।६५।। इसके वाद मरकत मणि के बने शाल में सात योजन पर मूंगा के आकार का अर्थात् मूंगों का बनाया हुआ प्राकार (चहारदीवार) है, जो प्रातःकालीन सूर्य के समान लाल है।।६६।।

वहाँ पर समस्त स्थल मूंगों से ही बने हुए हैं, अर्थात् वहाँ फर्श मूंगे से निर्मित हैं। उस विद्रुम स्थल के समान ही पद्मासन वाले ब्रह्मा ब्रह्मलोक से आकर सब मुनीश्वरों के साथ ललिता देवी की सेवा करने के लिए निरालस्य होकर मरीचि आदि प्रजा की सृष्टि करने वाले ऋषियों के साथ उपस्थित होते हैं।।६७-६८।। तब वहाँ वे चौदह विद्यायें और हजारों उपविद्यायें चौंसठ कलायें साक्षात् शरीर धारण करके उस मूंगे के बने प्राकार में स्थित ब्रह्मलोक में समाश्रित रहती हैं। वे ब्रह्मा उन सबके साथ संसार की समृद्धि के लिए ललिता देवी की आज्ञा से वहाँ वर्तमान रहते हैं।।६९-७०।। इसके बाद विद्रुमशाल के मारुत योजन अन्तर पर माणिक्यमण्डप के स्थान पर सब ओर दिशाओं में फैला हुआ, ललिता देवी की सेवा का उत्सुक विष्णुलोक है।।७१।। वहाँ वैष्णवलोक में तो साक्षात् सनातन विष्णु ही चार प्रकारों, दश प्रकारों तथा फिर बारह प्रकारों की अनेकों मूर्ति वाले माधव सदा वर्तमान रहते हैं।।७२।।

भण्डासुरमहायुद्धे ये श्रीदेवीनखोद्भवाः। दसावतारदेवास्तु तेऽपि माणिक्यमण्डपे॥७३॥
पूर्वकक्षांतरेभ्यस्तु तत्कक्षायां विशेषतः। उपर्याच्छादनामात्रं माणिक्यदृषदां गणैः॥७४॥
तत्र कक्षान्तरे देवः शंखचक्रगदाधरः। भिन्नो द्वादशमूर्त्या च पूर्वाद्याशासुरक्षति॥७५॥
जाम्बूनदप्रभश्चक्री पूर्वस्यां दिशि केशवः। पश्चान्नारायणः शंखी नीलजीमूतसंनिभः॥७६॥
इन्दीवरदलश्यामो मधुमान्माधवोऽवति। गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे धन्वी चन्द्रप्रभो महान्॥७७॥
उत्तरे हलधृग्विष्णुः पद्मकिञ्जल्कसंनिभः। आग्नेय्यामरविन्दाभो मुसली मधुसूदनः॥७८॥

त्रिविक्रमः खड्गपाणिर्नैर्ऋत्ये ज्वलनप्रभः।
वायव्यां वामनो वज्री तरुणादित्य दीप्तिमान्॥७९॥
ईशान्यां पुण्डरीकाभः श्रीधरः पट्टिशायुधः।
विद्युत्प्रभो हृषीकेशो ह्यवाच्यां दिशि मुद्गरी॥८०॥

पद्मनाभः शार्ङ्गपाणिः सहस्त्रार्कसमप्रभः। माणिक्यमंडपस्थानमनुलोम्येन वेष्टते॥८१॥
सर्वायुधः सर्वशक्तिः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः। इन्द्रगोपकसंकाशः पाशहस्तोऽपराजितः॥८२॥
दामोदरस्तु सर्वात्मा ललिताभक्तिनिर्भरः। माणिक्यमण्डपस्थानं विलोमेन विवेष्टते॥८३॥
इति द्वादशभिर्देहैर्भगवानम्बुजेक्षणः। माणिक्यमण्डपगतो विष्णुलोके विराजते॥८४॥

भण्डासुर के महायुद्ध में श्रीललिता देवी के नाखूनों से उत्पन्न जो दश अवतार देवता हैं, वे भी माणिक्यमण्डप में पूर्व कक्षाओं के अन्दर से उस कक्षा में विशेष रूप में माणिक्य पत्थरों के समूहों द्वारा ऊपर से ढँके हुए.मात्र रहते हैं।।७३।। वहाँ उस माणिक्य पत्थरों की छत वाले कक्ष में शंख और चक्र को धारण करने वाले देव विष्णु अपने अवतारों सम्बन्धी बारह अवतारों की मूर्ति से भिन्न पूर्वादि दिशाओं में रहकर देवी की रक्षा करते हैं।।७३-७५।। तब जाम्बूनद से उत्पन्न चक्रधारी केशव पूर्व दिशा में रक्षा करते हैं तथा पश्चिम में शंख धारण करने वाले नील मेघ के समान नारायण स्थित हैं।।७६।। नीलकमल के समान वर्ण वाले मधुमान् माधव चन्द्रप्रभा के समान महान् धनुषधारी गोविन्द दक्षिण पार्श्व में रक्षा करते हैं।।७७।। उत्तर में हल धारण करने वाले पद्मकमल फूल के समान विष्णु रक्षा करते हैं तथा आग्नेय दिशा में अरविन्द की आभा वाले मुसल धारण करने वाले मधुसूदन रक्षा करते हैं।।७८।। आग के समान आभा वाले, खड्गपाणि त्रिविक्रम नैर्ऋत्य में तथा तरुण सूर्य के समान आभा वाले एवं वज्र धारण करने वाले वामन वायव्य दिशा में रक्षा करते हैं।।७९।।

ईशान दिशा में पुण्डरीक कमल की आभा वाले, पट्टिश नामक अस्त्र को धारण करने वाले श्रीधर रक्षा करते हैं तथा मुद्गर धारण करने वाले, विद्युत् के समान कान्ति वाले, हृषीकेश अवाच्य दिशा में रक्षा करते हैं।।८०।। सहस्त्र सूर्य के समान कान्ति वाले शार्ङ्ग नामक धनुष दारण करने वाले पद्मनाभ माणिक्य मण्डप स्थान को सीधी ओर से घेरे हुए रहते हैं, अर्थात् अनुलोम क्रम से बायें सदा में चारों ओर घूमते रहते हैं।।८१।। सब आयुध वाले, सब कुछ जानने वाले सर्वशक्ति इन्द्रगोपन के समान कान्ति वाले पाश हाथ में लिये, अपराजित सर्वात्मा दामोदर, जो ललितादेवी की भक्ति पर निर्भर हैं तथा वे माणिक्य मण्डप स्थान को विलोम से दायीं ओर से बायीं ओर घूमते हुए घेरे रहते हैं। इस प्रकार इन बारह भेदों में भगवान् कमलनयन माणिक्य मण्डप में स्थित विष्णुलोक में विराजमान हैं।।८४।।

अथ नानारत्नशालान्तरे मारुतयोजने। सहस्रस्तम्भकं नाम मंडपं सुमनोहरम्॥८५॥
नानारत्नैस्तु खचितं नानारत्नैरलंकृतम्। नानारत्नकृतश्शालस्तुंगस्तत्राभिवर्तते॥८६॥
एका पंक्तिः सहस्रैस्तु स्तम्भस्तियक्प्रवर्तते।
तादृशाः पंक्तयोः बह्वयः स्तम्भानां तु चतुर्दिशम्॥८७॥
उपर्याच्छादनं चापि पूर्ववद्रत्नदारुभिः। शिवलोकस्तत्र महाञ्जागर्ति स्फुरितद्युतिः॥८८॥
शैवागमा मूर्तिमन्तस्तत्राष्टाविंशतिः स्मृताः। नंदिभृंगिमहाकालप्रमुखास्तत्र चोत्तमाः॥८९॥
षड्विंशत्तत्त्वदेवाश्च गजवक्त्राः सहस्रशः। शिवलोकोत्तमे तस्मिन्सहस्रस्तम्भमंडपे॥९०॥
ईशानः सर्वविद्यानामदिपश्चन्द्रशेखरः। ललिताज्ञापालकश्च ललिताज्ञाप्रवर्तकः॥९१॥
ललितामंत्रजापी च नित्यमानन्दमानसः। शैव्या दृष्ट्या स्वभक्तानां ललितामंत्रसिद्धये॥९२॥
अन्तर्बहिस्तमःपुञ्जनिर्भेदनपटीयसीम्। महाप्रकाशरपां तां मेधाशक्तिं प्रकाशयन्॥९३॥
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सहस्रस्तम्भमण्डपे। वर्तमानो महादेव देवीः श्री भक्तिनिर्भरः।
तत्तच्छालान्समाश्रित्य वर्तते कुम्भसंभवः॥९४॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने दिक्पालादिशिवलोकान्तरकथनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

इसके बाद अनेकों रत्नों वाले शाल के मारुत योजन अन्तर पर सहस्र स्तम्भक नामक सुन्दर और मन को हरने वाला मण्डप है, जिसमें एक हजार खम्भे हैं।।८५।। जो अनेकों रत्नों से खचित एवं अनेकों रत्नों से अलंकृत है। वहाँ पर अनेकों प्रकार के रत्नों से बना हुआ ऊँचा शाल (कसागार) बना हुआ है।।८६।। जिसमें हजारों स्तम्भों की एक पंक्ति तिरछी लगी हुई है। वैसी ही अनेकों खम्भों की पंक्तियाँ चारों दिशाओं में लगी हुई हैं।।८७।। उसकी ऊपरी छत रत्नजटित लकड़ियों से आच्छादित है, वहाँ पर महान् शिवलोक है, जहाँ जगमगाती कान्ति वाले शिव जागते रहते हैं।।८८।। वहाँ पर अट्ठाईस शैवागम (शैव धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ) साक्षात् शरीर धारण किये हुए स्मरण किये गये हैं तथा वहाँ पर नन्दी, भृङ्गी और महाकाल प्रमुख और उत्तम छब्बीस तत्त्व देवता हैं तथा हजारों हाथी के मुख वाले गण हैं।।८९-८९½।। हजारों खम्भों से युक्त मण्डप वाले उस उत्तम शिवलोक में सब विद्याओं को पैदा करने वाले तथा सब विद्याओं के स्वामी चन्द्रमौलि भगवान् शंकर ललितादेवी के आज्ञापालक और ललितादेवी की आज्ञा को लागू कराने वाले हैं।।९१।। वे ललितादेवी के मन्त्र का जाप करने वाले तथा नित्य उनके ही ध्यान में आनन्दमग्न रहने वाले हैं तथा उन शिव की दृष्टि सदैव अपने भक्तों को ललिता देवी के मन्त्र को सिद्ध कराने के लिए लगी रहती है।।९२।। हयानन कहते हैं कि हे अगस्त्य मुने! अन्दर और बाहर के अज्ञान रूपी अन्धकार समूह का भेदन करने में कुशल महाप्रकाशरूपा उस मेधाशक्ति को प्रकाशित करते हुए सहस्र स्तम्भमण्डप में वर्तमान सब कुछ जानने वाले तथा सब कुछ करने वाले महादेव श्रीललितादेवी की भक्ति पर निर्भर होकर उस शाल का आश्रय लेकर वर्तमान रहते हैं।।९२-९४।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३४वाँ अध्याय दिक्पालों द्वारा शिवलोक का अन्तर का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

महापद्माटव्यार्घ्यस्थापनकथनं नाम

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

अथ वापीत्रयादीनां कक्ष्याभेदान्प्रचक्ष्महे। एषां श्रवणमात्रेण जायते श्रीमहोदयः॥१॥
सहस्रस्तम्भशालस्यांतरमारुतयोजने। मनो नाम महाशालः सर्वरत्नविचित्रितः॥२॥
पूर्ववद्गोपुरद्वारकपाटार्गलसंयुतः। तन्मध्यकक्ष्याभागस्तु सर्वाप्यमृतवापिका॥३॥
यत्पीत्वा योगिनः सिद्धा वज्रकाया महाबलाः। भवन्ति पुरुषाः प्राज्ञास्तदेव हि रसायनम्॥४॥
वाप्याममृतमय्यां तु वर्तते तोयतां गतम्। तद्गन्धाघ्राणमात्रेण सिद्धिकांतापतिर्भवेत्॥५॥
अस्पृशन्नपि विन्ध्यारे पुरुषः क्षीण कल्मषः। उभयोः शालयोः पार्श्वे सुधावापीतटद्वये॥६॥
अधक्रोशसमायामा अन्यास्सर्वाश्च वापिकाः। चतुर्योजनदूरं तु तलं तस्या जलान्तरे॥७॥
सोपानवलयस्तस्या नानारत्नविचित्रिताः। स्वर्णवर्णा रत्नवर्णास्तस्यां हंसाश्च सारसाः॥८॥
आस्फोट्यते तटद्वंद्वतरंगैर्मंदचञ्चलैः। पक्षिणस्तज्जलं पीत्वा रसायनमयं नवम्॥९॥
अजरामरतां प्राप्तास्तत्र विन्ध्यनिषूदन। सदा कूजितलक्षेण तत्र कारण्डवद्विजाः॥१०॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललिंतोपाख्यान

अध्याय-३५

महापद्माटवी अर्घ्यस्थापन कथन

हयग्रीव ने कहा कि हे मुने! इसके बाद मैं तीन वापियों के कक्ष्यों के भेदों को बताऊँगा। इनके सुनने मात्र से मनुष्य धन-दौलत से सम्पन्न हो जाते हैं।।१।। हजार खम्भों वाले शाल के अन्दर मारुत योजन पर सब रत्नों से विशेष रूप से चित्रित मन नाम का महाशाल है।।२।। वह पूर्व के महाशालों की भाँति नगरद्वारों, कपाटों और अर्गलाओं से युक्त है। उसके मध्य में कक्ष्याभाग है, जिनमें अमृत की वापियाँ हैं।।३।। जिनका जल पीकर योगी लोग और सिद्धपुरुष वज्र के शरीर वाले और महाबलशाली और महाबुद्धिमान् और विद्वान् हो जाते हैं, वही वह रसायन है।।४।। हयानन ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे विन्ध्यगुरु अगस्त्य जी! उस अमृतमय वापी में ऐसा जल है, जिसको बिना स्पर्श किये हुए ही जिसकी गन्धमात्र से मनुष्य क्षीणपाप होकर सिद्धि रूपी स्त्रियों का पति हो जाता है।।५-५½।। दोनों शालों के पास में अमृत वापी के दोनों ओर के किनारों पर आधे कोश विस्तार वाली अन्य सब छोटी वापियाँ हैं। उस अमृतमयी वापी का नीचे का तल चार योजन अन्दर जल में है।।७।।

उसके चारों ओर की सीढ़ियाँ अनेकों प्रकार के रत्नों से विशिष्ट रूप से चित्रित हैं तथा उस अमृत बावड़ी में स्वर्ण वर्ण वाले और रत्नवर्ण वाले हंस और सारस हैं, जो उस वापी के दोनों तटों पर उठने वाली लहरों के मद से चंचल चोचों से एक-दूसरे से लड़ने के लिए ताल ठोंकते हैं।।८-८½।। हे अगस्त्य जी! पक्षी उस वापी के रसायनमय नवीन जल को पीकर अजर और अमर हो गये हैं। वहाँ कारण्डव (बत्तखें) सदा कूंजती हुई, उस वापी

जपंति ललितादेव्या मंत्रमेव महत्तरम्। परितो वापिकाचक्रपरिवेषणभूयसा॥११॥
न तत्र गंतुं मार्गोऽस्ति नौकावाहनमंतरा। आज्ञया केवलं तत्र मंत्रिणी दंडनाथयोः।
तारा नाम महाशक्तिर्वर्तते तोरणेश्वरी॥१२॥
बह्वयस्तत्रोत्पलश्यामास्ताराया: परिचारिकाः। रत्ननौकासहस्रेण खेलन्त्यो सरसीजले॥१३॥
अपरं पारमायान्ति पुनर्यान्ति परं तटम्। वीणावेणुमृदङ्गादि वादयन्त्यो मुहुर्मुहुः॥१४॥
कोटिशस्तत्र ताराया नाविक्यो नवयौवनाः। मुहुर्गायन्ति नृत्यंति देव्याः पुण्यतमं यशः॥१५॥
अरित्रपाणयः काश्चित्काश्चिच्छृगाम्बुपाणयः। पिबन्त्यस्ततसुधातोयं संचरंत्यस्तरीशतैः॥१५॥
तासां नौकावाहिकानां शक्तीनां श्यामलत्विषाम्।
प्रधानभूता तारांबा जलौघशमनक्षमा॥१७॥
आज्ञां विना तयोस्तारा मंत्रिणीदंडधारयोः। त्रिनेत्रस्यापि नो दत्ते वापिकांभसि सन्तरम्॥१८॥
गायन्तीनां चलन्तीनां नौकाभिर्मणिचारुभिः। महाराज्ञी महौदार्यं पतन्तीनां पदेपदे॥१९॥
पिबन्तीनां मधु भृशं माणिक्यचषकोदरैः। प्रतिनौकं मणिगृहे वसन्तीनां मनोहरे॥२०॥
तारातरणिशक्तीनां समवायोऽतिसुन्दरः।
काश्चिन्नौकाः सुवर्णाढ्याः काश्चिद्रत्नकृता मुने॥२१॥
मकराकारमापन्नाः काश्चिन्नौका मृगाननाः।
काश्चित्सिंहासना नावः काश्चिद्दन्तावलाननाः॥२२॥

का चक्कर काटती हुई, चारों ओर पुनः-पुनः आती-जाती हुई, ललिता देवी के महत्तर मन्त्र को जपती रहती हैं।।८½-११।। वहाँ नौका वाहन के अतिरिक्त अन्य कोई जाने का मार्ग नहीं है, वहाँ केवल मैत्रणी और दण्डनाथा देवी की आज्ञा के द्वारा ही जाया जा सकता है। वहाँ पर तारा नाम की तोरणेश्वरी शक्ति वर्तमान है।।१२।। वहाँ पर नील कमल के समान श्याम वर्ण वाली अनेकों तारादेवी की परिचायिकाएँ (सेविकाएँ) हजारों रत्नजटित नौकाओं में बैठकर जल में क्रीडा करती हैं।।१३।। वे वीणा-वांसुरी, मृदङ्ग आदि बजाती हुई, बार-बार उस पार तट पर जाती हैं और फिर इस पार तट पर आती हैं।।१४।। वहाँ पर तारादेवी की करोड़ों नवयौवना नाविकियाँ, तारादेवी के पुण्यतम यश को बार-बार गाती हैं और नाचती हैं।।१५।। उनमें कोई नाव का लंगर हाथ में लिये हुए नाव चला रही हैं, कोई नाव के सहारे हाथ में पानी लेकर उछाल रही हैं तथा इस प्रकार उस वापी का अमृत जल पीती हुई वे सैकड़ों नावों द्वारा वापी में विचरण कर रही हैं।।१६।। उन श्यामल कान्ति वाली नौकावाहिका शक्तियों की प्रधानभूत तारा अम्बा जल के वेग को शान्त करने में समर्थ है।।१७।। उन दोनों मन्त्रिणी और दण्डनाथा की आज्ञा के बिना तारादेवी उस वापी के जल में त्रिनेत्र भगवान् शिव को भी सन्तर नहीं देतीं नहाने नहीं देती।।१८।।

मणियों से सुन्दर नौकाओं से चलती हुई, गाती हुई अपनी महारानी की महती उदारता को पद-पद पर गिराती हुई, माणिक्य के प्यालों द्वारा बहुत अधिक मधु को पीती हुई, मनोहर मणिगृह वाली अलग अलग नौकाओं में बसती हुई तारा देवी की तरणि शक्तियों का समवाय अत्यन्त सुन्दर है।।१९-२०½।। कुछ नौकाएँ सोने की बनी हुई हैं तथा कुछ हे मुने! रत्नों की बनी हुई हैं। कुछ मकर के आकार वाली हैं। कुछ नौकाएँ मृगों के मुँह के आकार वाली

इत्थं विचित्ररूपाभिर्नौकाभिः परिवेष्टिता। तारांबा महतीं नौकामधिगम्य विराजते॥२३॥
अनुलोमविलोमाभ्यां सञ्चारं वापिकाजले। तन्वाना सततं तारा कक्ष्यामेनां हि रक्षति॥२४॥
मनशालस्यान्तराले सप्तयोजनदूरतः। बुद्धिशाल इति ख्यातश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥२५॥
तन्मध्यकक्ष्याभागेऽस्ति सर्वाप्यानन्दवापिका। तत्र दिव्यं महामद्यं बकुलामोदमेदुरम्।
प्रतप्तकनकच्छायं तज्जलत्वेन वर्त्तते॥२६॥
आनन्दवापिका गाथाः पूर्ववत्परिकीर्तिताः। सोपानादिक्रमश्चैव पक्षिणस्तत्र पूर्ववत्॥२७॥
तत्रत्यं सलिलं मद्यं पायम्पायं तटस्थिताः। विहरन्ति मन्दोन्मत्ताः शक्तयो मदपाटलाः॥२८॥
साक्षाच्च वारुणी देवी तत्र नौकाधिनायिका। यां सुधामालिनीमाहुर्यामाहुरमृतेश्वरीम्॥२९॥
सा तत्र मणिनौकास्थशक्तिसेनासमावृता। ईषदालोकमात्रेण त्रैलोक्यमददायिनी॥३०॥
तरुणादित्य सङ्काशा मदारक्तपोलभूः। पारिजातप्रसूनस्त्रक्परिवीतकचाचिता॥३१॥
वहन्ती मदिराचूर्णं चषकं लोलदुत्पलम्। पक्वं पिशितखण्डं च मणिपात्रे तथान्यके॥३२॥
वारुणीतरणिश्रेणीनायिका तत्र राजते। साप्याज्ञयैव सर्वेषां मन्त्रिणीदंडनाथयोः।
ददाति वापीतरणं त्रिनेत्रस्यापि नान्यथा॥३३॥

हैं। कुछ नौकाएँ सिंह के समान मुख वाली हैं और कुछ नौकाएँ हाथी के मुख जैसे मुख वाली हैं।।२०½-२२।। इस प्रकार विचित्र ररूप वाली नौकाओं से घिरी हुई तारा अम्बा महती नौका को प्राप्त कर उसमें विराजमान हैं।।२३।। तथा वे ताराम्बा बावड़ी के जल में अनुलोम-विलोम रूप से अर्थात् बायें से दायें और दायें से बायें संचरण करती हुई, घूमती हुई, निरन्तर वहाँ रहती हुई, उस कक्ष्या की रक्षा करती हैं।।२४।। मनशाल के अन्तराल में सात योजन दूरी पर बुद्धिशाल नामक प्रसिद्ध शाल है, जो चार योजन ऊँचा है।।२५।। उसके मध्य कक्ष्य भाग में सबको आनन्द प्रदान करने वाली बावड़ी है। वहाँ पर मोलसिरी की सुगंध से स्निग्ध दिव्य महामद्य है, जो तपे हुए सोने की कान्ति की छाया के समान जल से युक्त है। अर्थात् वह महामद्य (महामदिरा) सोने के समान पीले रंग के जल वाली है। अच्छी मदिरा का प्रायः ऐसा ही रंग होता है।।२६।। आनन्द बावड़ी की गाथा पूर्व बावड़ियों के समान वर्णित है। वहाँ सीढ़ियों का क्रम भी पूर्व बावड़ियों के समान है तथा उसमें पक्षी भी पूर्व बावड़ियों के समान ही हैं।।२७।। वहाँ उस बावड़ी के जल को पी पी कर मदोन्मत्त एवं मद से लाल-लाल शक्तियाँ विहार करती हैं।।२८।। वहाँ पर साक्षात् जलों की देवी वारुणी नाम की मदिरा ही नौकाओं की अधिशायिका हैं। अर्थात् जल सेना की सेनापति साक्षात् वारुणी[1] देवी हैं। जिसको सुधामालिनी और अमृतेश्वरी कहा जाता है।।२९।।

वहाँ पर मणि निर्मित नौका में शक्ति सेना से घिरी हुई वे वारुणी बैठी हुई हैं, जो थोड़े से देखने मात्र से तीनों लोकों को मदमत्त कर देने वाली हैं।।३०।। तरुण सूर्य के प्रकाश के समान जिनके मदिरा के मद से लाल लाल कपोल हैं। जो कल्पवृक्ष की माला पहने हुए हैं तथा मुख पर बाल बिखेरे हुए हैं।।३१।। वे मदिरा से भरे हुए प्याले को और कमल को हिला रही हैं तथा मणिपात्र में तथा अन्य पात्रों में पके हुए मास के टुकड़े को लिये हुए हैं।।३२।। ऐसी वारुणी नाम की नौकाश्रेणी नायिका वहाँ सुशोभित हैं। वे भी मन्त्रिणी और दण्डनाथा की आज्ञा से ही सबको

---

१. मदिरा की अधिष्ठात्री देवी वारुणी

अथ बुद्धिमहाशालान्तरे मारुतयोजने। अहंकारमहाशालः पूर्ववद्गोपुरान्वितः॥३४॥
तयोस्तु शालयोर्मध्ये कक्ष्याभूरखिला मुने। विमर्शवापिका नाम सौषुम्णामृतरूपिणी॥३५॥
तन्महायोगिनामन्तर्मनो मारुतपूरितम्। सुषुम्णदंडविवरे जागर्ति परमामृतम्॥३६॥
तदेव तस्याः सलिलं वापिकायास्तपोधन। पूर्ववत्तटसोपानपक्षि नौका हि ताः स्मृताः॥३७॥
तत्र नौकेश्वरी देवी कुरुकुल्लेतिविश्रुताः। तमालश्यामलाकारा श्यामकंचुकधारिणी॥३८॥
नौकेश्वरीभिरन्याभिस्स्वसमानाभिरावृता। रत्नारित्रकरा नित्यमुल्लसन्मदमांसला॥३९॥
परितो भ्राम्यति मुने मणिनौकाधिरोहिणी। वापिका पयसागाधा पूर्ववत्परिकीर्तिता॥४०॥
अहंकारस्य शालस्यान्तरे मारुतयोजने। सूर्यबिंबमहाशालश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥४१॥
सूर्यस्यापि महानासीद्यदभूदरुणोदयः। तन्मध्यकक्ष्या वसुधा खचिता कुरविंदकैः॥४२॥
तत्र बालातपोद्गारे ललिता परमेश्वरी। अतितीव्रतपस्तप्त्वा सूर्योऽलभत तां द्युतिम्॥४३॥
ग्रहराशिगणाः सर्वे नक्षत्राण्यपि तारकाः।
तेऽत्रैव हि तपस्तप्त्वा लोकभासकतां गताः॥४४॥
मार्तंडभैरवस्तत्र भिन्नो द्वादशधा मुने। शक्तिभिस्तैजसीभिश्च कोटिसंख्याभिरन्वितः॥४५॥
महाप्रकाशरूपश्च महादारुणविलोचनः। कङ्कोलितरुखण्डेषु नित्यं क्रीडारसोत्सुकः।

वहाँ तक त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर को वापी में तैरने वाली नौका देती हैं, अन्यथा नहीं देतीं।।३३।। इसके बाद बुद्धि महाशाल के मारुत योजन अन्तर पर अहंकार महाशाल है, जो पूर्व शालों की भाँति मुख्य द्वारों, कपाटों, अर्गलाओं से युक्त है।।३४।। उन बुद्धि महाशाल और अहंकार महाशाल के मध्य में हे अगस्त्य मुने! अखिल कक्ष्याभूमि है। जहाँ कि विमर्श नाम की बावड़ी है, जो सुषुम्ना नाड़ी से निकलने वाले अमृत रूप वाली है।।३५।। वह महायोगियों के अन्तर्मन को वायु से पूरित करती है और हे अगस्त्य मुने! वह उस बावड़ी का जल सुषुम्ना नाड़ी के विवर में परमामृत को जागृत करता है तथा जैसे पूर्व बावड़ी के तट की सीढ़ियों, पक्षियों और नौकाओं का वर्णन किया है, वैसी ही सीढ़ियाँ पक्षी और नौकाएँ इस बावड़ी की भी हैं।।३६-३७।।

वहाँ पर नौकेश्वरी देवी अर्थात् नौसेना की सेनापति, कुरुकुल्ला इस नाम से सुनी गयी हैं। वह तमाल वृक्ष के समान श्यामल आकार वाली और श्याम वर्ण की कंचुकी धारण करने वाली हैं।।३८।। हाथों में रत्नजटित पतवार लिये हुए और नित्य उल्लास युक्त और मद से मस्त, अपने ही समान अन्य नौकेश्वरियों से समावृत हैं।।३९।। हयानन कहते हैं कि हे मुने! मणि नौका पर सवार नौकेश्वरी देवी चारों ओर घूम रही हैं। वह बावड़ी पूर्व वापियों के समान जल से अगाध कही गयी है।।४०।। अहंकार शाल के मारुत योजन अन्तर पर सूर्यबिम्ब महाशाल है, जो चार योजन ऊंचा, लम्बा है।।४१।। जो अरुणोदय सूर्य से भी महान् था। उसके मध्य कक्ष्याभूमि लाल मणियों से खचित (जड़ी हुई) है।।४२।। वहाँ बालातप के निकलने (बाल सूर्य के निकलने) में ललिता देवी विराजमान हैं। वहाँ अत्यन्त तीव्र तप करके सूर्य ने उस कान्ति (चमक) को प्राप्त किया था।।४३।। यहीं पर ग्रहराशिगणों और नक्षत्रों तथा तारागणों ने तप करके लोकों द्वारा दिखायी दिये जाने के गुण को प्राप्त किया है। लोक में प्रकाशित होने के गुण को प्राप्त किया है।।४४।। भगवान् हयानन कहते हैं कि हे मुने! वहाँ बारह प्रकारों में विभक्त होकर करोड़ों तैजसी शक्तियों से युक्त हैं। महाप्रकाश रूप मद से लाल-लाल नेत्रों वाले फलदार वृक्षों में क्रीड़ा करने के उत्सुक मार्तण्ड भैरव उस बावड़ी

वर्तते विंध्यदपरि पारे यस्तन्मयस्थितः॥४६॥
महाप्रकाशनाम्नास्ति तस्य शक्तिर्महीयसी। चक्षुष्मत्यपराशक्तिश्छाया देवी परा स्मृता॥४७॥
इत्थं तिसृभिरिष्टाभिः शक्तिभिः परिवारितः।
ललितायाा महेशान्याः सदा विद्या हृदा जपन्॥४८॥
तद्भक्तानामिन्द्रियाणि भास्वराणि प्रकाशयन्। बहिरन्तस्तमोजालं समूलमवमर्दयन्॥४९॥
तत्र बालातपोद्गारं भाति मार्तण्डभैरवः। सूर्यबिम्ब महाशालान्तरे मारुतयोजने॥५०॥
चन्द्रबिम्बमयः शालश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः। पूर्ववद्गोपुरद्वारकपाटार्गलसंयुतः॥५१॥
तन्मध्यभूः समस्तापि चन्द्रिकाद्वारमुच्यते॥५२॥
तत्रैव चन्द्रिकाद्वारे तपस्तप्त्वा सुदारुणम्। अत्रिनेत्रसमुत्पन्नश्चन्द्रमाः कान्तिमाययौ॥५३॥
अत्र श्रीसोमनाथाख्यो वर्तते निर्मलाकृतिः। देवस्त्रैलोक्यतिमिरध्वंसी संसारवर्तकः॥५४॥
पिबञ्चषकसम्पूर्णं निर्मलं चन्द्रिकामृतम्। सप्तविंशतिनक्षत्रशक्तिभिः परिवारितः॥५५॥
सदा पूर्णनिजाकारो निष्कलंको निजाकृतिः। तत्रैव चन्द्रिकाद्वारे वर्तते भगवाञ्छशी॥५६॥
ललिताया जपैर्ध्यानैः स्तोत्रैः पूजाशतैरपि। अश्विन्यादियुतस्तत्र कालं नयति चन्द्रमाः॥५७॥
अन्याश्च शक्तयस्तारानामधेयाः सहस्रशः। सन्ति तस्यैव निकटे सा कक्षा तत्प्रपूरिता॥५८॥
अथ चन्द्रस्य शालस्यांतरे मारुतयोजने। शृंगारो नाम शालोऽस्ति चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥५९॥
शृङ्गारागाररूपैस्तु कौस्तुभैरिव निर्मितः। महाशृङ्गारपरिखा तन्मध्ये वसुधाखिला॥६०॥

के तीर पर ललितादेवी में लीन होकर स्थित हैं।।४५-४६।। उन मार्तण्ड भैरव महाप्रकाश नाम की महती शक्ति है। चक्षुष्मती अपरा शक्ति है और छाया देवी पराशक्ति स्मरण की गयी हैं।।४७।। इस प्रकार तीन प्रकार की शक्तियों से परिवारित घिरे हुए, ललिता परमेश्वरी का सदा हृदय से तप करते हुए, उनके भक्तों की इन्द्रियों रूपी सूर्यों को प्रकाशित करते हुए, बाहर और भीतर के अन्धकार समूह को समूल नष्ट करते हुए, वहाँ बालतपोद्गार में मार्तण्ड भैरव चमकते हैं (सुशोभित होते हैं) ये मार्तण्डभैरव सूर्य ही हैं।।४९-४९½।। सूर्यबिम्ब महाशाल के मारुत योजन अन्तर पर चार योजन लम्बा चन्द्रबिम्बमय शाल है। जो पूर्व शालों के समान मुख्य द्वार कपाट और अर्गलाओं से युक्त है।।४९½-५१।। उसके मध्य की समस्त भूमि चन्द्रिका द्वार कही जाती है।।५२।। वहीं चन्द्रिकाद्वार पर अत्यन्त कठोर तप करके अत्रि ऋषि के नेत्र से पैदा होने वाले चन्द्रमा ने कान्ति को प्राप्त किया था।।५३।।

यहाँ सोमनाथ नाम की निर्मल आकृति, तीनों लोकों के अन्धकार को नष्ट करने वाले, संसार के जीवन, प्याले में भरे हुए चाँदनी रूपी अमृत को पीते हुए, सत्ताईस नक्षत्र शक्तियों से घिरे हुए, सदैव पूर्ण अपने आकार वाले निष्कलंक (अपने काले धब्बे से रहित) अपनी साफ सुथरी आकृति में भगवान् चन्द्रमा, वहीं चन्द्रिका के द्वार पर विद्यमान रहते हैं।।५४-५६।। वे चन्द्रमा ललितादेवी के जपों, ध्यानों, स्तुतियों और सैकड़ों प्रकार की पूजाओं द्वारा अश्विनी आदि नक्षत्रों के साथ वहाँ अपना समय व्यतीत करते हैं।।५७।। तारा नाम की हजारों शक्तियाँ उनके निकट रहती हैं, इस प्रकार वह कक्षा भरी हुई रहती है।।५८।। इसके बाद चन्द्रशाल के मारुत योजन अन्तर पर शृंगार नाम का चार योजन विस्तृत शाल है।।५९।। वह शाल शृंगार घर के रूप में कौस्तुभ मणियों के समान निर्मित है। वहाँ उसके चारों ओर महाशृंगार परिखा है, अर्थात् उस शृंगार किले के चारों ओर महाशृंगार नामक खाई खुदी हुई

परिखावलये तत्र शृङ्गाररसपूरिते। शृङ्गारशक्तयः सन्ति नानाभूषणभासुराः॥६१॥
तत्र नौकासहस्रेण संचरंत्यो महोद्धताः। उपासन्ते सदा मत्तं नौकास्थं कुसुमायुधम्॥६२॥
स तु संमोहयत्येव विश्वं सम्मोहनादिभिः। विशिखैरखिलाँल्लोकाँल्ललिताज्ञावशंवदः॥६३॥
तत्प्रभावेण संमूढा महापद्माटवीस्थलम्। वनितुं शुद्धवेषाश्च ललिताभक्तिर्निर्भराः।
सावधानेन मनसा यांति पद्माटवीस्थलम्॥६४॥
न गंतुं पारयत्येव सुरसिद्धनराः सुराः। ब्रह्मविष्णुमहेशास्तु शुद्धचित्ताः स्वभावतः।
तदाज्ञया परं यांति महापद्माटवीस्थलम्॥६५॥
संसारिणश्च रागान्धा बहुसंकल्पकल्पनाः। महाकुलाश्च पुरुषा विकल्पज्ञानधूसराः॥६६॥
प्रभूतरागगहनाः प्रौढव्यामोहदायिनीम्। महाशृङ्गारपरिखांतरितुं न विचक्षणाः॥६७॥
यस्मादजेयसौन्दर्यस्त्रैलोक्यजनमोहनः। महाशृगारपरिखाधिकारी वर्तते स्मरः॥६८॥
तस्य सर्वमतिक्रम्य महतामपि मोहनम्। महापद्माटवीं गंतुं न कोऽपि भवति क्षमः॥६९॥
अथ शृङ्गारशालस्यांतराले सप्तयोजने। चिंता मणिगृहं नाम चक्रराजमहालयः॥७०॥
तन्मध्यभूः समस्तापि परितो रत्नभूषिता। महापद्माटवी नाम सर्वसौभाग्यदायिनी॥७१॥
शृगाराख्यमहाकालपर्यंतं गोपुरं मुने। चतुर्दिक्ष्वप्येवमेव गोपुराणां व्यवस्थितिः॥७२॥

है। उस खाई के मध्य में अखिल (विशाल) भूमि है।।६०।। वहाँ उस शृंगार रस पूरित परिखा (वलय रेखा) पर अनेकों आभूषणों से चमकती हुई शक्तियाँ हैं।।६१।। वहाँ हजारों नौकाओं से विहार करती हुईं, मदमत्त शक्तियाँ सदा नौका में स्थित मदमत्त कामदेव की उपासना करती हैं।।६२।। वे कामदेव महाराज्ञी ललितादेवी की आज्ञा से अपने मदन, उन्मादन, तापन, शोषण और सम्मोहन बाणों से समस्त लोकों तथा विश्व को सम्मोहित करते हैं।।६३।। उन कामदेव के प्रभाव से संमूढ देवगण ऋषिगण ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि महापद्मवनी में घूमने के लिए शुद्ध वेष वाले ललिता देवी की भक्ति पर निर्भर हो सावधान मन से महापद्मवनी के स्थल पर जाते हैं।।६४।।

बिना देवी की आज्ञा के देवगण, सिद्धगण, मनुष्य वहाँ नहीं जा सकते। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तो स्वभावतः शुद्धचित्त हो, उन देवी की आज्ञा से ही महापद्मावनी के स्थल पर जाते हैं।।६५।। संसारी प्राणी, धन, स्त्री आदि की आसक्ति में अन्धे हुए लोग, बहुत से संकल्पों की कल्पना करने वाले अर्थात् प्रत्येक विषय में धनात्मक विचार रखने वाले, महान् कुल वाले पुरुष, विकल्प के ज्ञान से धूसर अर्थात् प्रत्येक विषय में नहीं होगा ऐसा विचार रखने के कारण होगा। निराश, अनेकों प्रकार की आसक्तियों से युक्त व्यक्ति, बहुत अधिक प्रणयोन्माद देने वाली महाशृंगार रूप परिधि को पार करने में कुशल नहीं होते।।६६-६७।। जिस कारण से अजेय सौन्दर्य वाले तथा तीनों लोकों के लोगों के मन को मोहित करने वाले, महाशृंगार परिधि के अधिकारी कामदेव हैं।।६८।। उन सब महानों को भी मोहित कर देने वाले कामदेव का अतिक्रमण कर महापद्माटवी में जाने में कोई भी समर्थ नहीं है। अर्थात् कामदेव को कोई न जीत सका है और न जीत सकेगा।उनका अतिक्रमणकोई नहीं कर सकता।६९।। इसके बाद शृंगार शाल के सात योजन अन्तराल में चिन्तामणि गृह नामक चक्रराज महालय है।।७०।। उसके मध्य में समस्त भूमि चारों ओर रत्नों से सजी हुई है। वहीं सब प्रकार के सौभाग्य को प्रदान करने वाली महापद्माटवी नाम की वनस्थली है, जिसमें विशाल कमल है।।७१।। हयानन कहते हैं कि हे अगस्त्य मुने! शृंगार नामक शाल से महाकाल तक नगर द्वार है।

सर्वदिक्षु तदुक्तानि गोपुराणि शतं मुने।
शालास्तु विंशतिः प्रोक्ताः पञ्चसंख्याधिकाः शुभाः॥७३॥
सर्वेषामपि शालानां मूलं योजनसंमितम्। पद्माटवीस्थलं वक्ष्ये सावधानो मुने शृणु॥७४॥
समस्तरत्नखचिते तत्र षड्योजनांतरे। परितस्थलपद्मानि महाकाण्डानि संति वै॥७५॥
कांडास्तु योजनायामा मृदुभिः कंटकैर्वृताः। पत्राणि तालदशकमात्रायमानि संति वै॥७६॥
केसराश्च सरोजानां पञ्चतालसमायताः। दशतालसमुन्नम्रः कर्णिकाः परिकीर्तिताः॥७७॥
अत्यन्तकोमलान्यत्र सदा विकसितानि च। नवसौरभहृद्यानि विशङ्कटदलानि च।
बहुशः संति पद्मानि कोटीनामपि कोटिशः॥७८॥
महापद्माटवीकक्ष्यापूर्वभागे घटोद्भव। क्रोशोन्नतो वह्निरूपो वर्तुलाकारसंस्थितः॥७९॥
अर्द्धयोजनविस्तारः कलाभिर्दशभिर्युतः। अर्घ्यपात्रमहाधारो वर्तते कुम्भसम्भव॥८०॥
तदाधारस्य परितः शक्तयो दीप्तविग्रहाः।
धूम्रार्चिःप्रमुखा भांति कला दश विभावसोः॥८१॥
दीप्ततारुण्यलक्ष्मीका नानालंकारभूषिताः। आधाररूपं श्रीमंतं भगवंतं हविर्भुजम्।
परिष्वज्यैव परितो वर्तंते मन्मथालसाः॥८२॥

इस प्रकार चारों दिशाओं में ही नगरद्वारों की स्थिति है।।७२।। हे मुने! सब दिशाओं में तदुक्त सैकड़ों नगरद्वार हैं। शुभ शाल तो २५ कहे गये हैं; क्योंकि पाँच की संख्या अधिक शुभ होती है। ५ × ५ = २५ अतः यह संख्या अत्यन्त शुभ है।।७३।। सब शालों की मूल (नींव) एक योजन गहरी है। हयानन (भगवान हयग्रीव) कहते हैं कि हे अगस्त्य मुने! अब मैं पद्माटवी के स्थल (फर्श) का वर्णन करूँगा, सावधान होकर सुनिये।।७४।। वहाँ छः योजन तक समस्त रत्नों से जटित भूमि है, उसके चारों ओर स्थलकमल हैं। उस भूमि पर अनेकों महाखण्ड हैं।।७५।।

वे खण्ड अलग-अलग एक-एक योजन लम्बे-चौड़े हैं। जो कि कोमल कांटों वाली झाड़ियों से आवृत हैं, अर्थात् उन खण्डों के चारों ओर कांटों की या फिर कांटेदार वृक्षों की बाड़ लगी हुई हैं। वहाँ उस महाकमल के पत्ते दश ताड़पत्रों के समान लम्बे हैं।।७६।। उन कमलों के पराग पाँच ताड़पत्रों के बराबर लम्बे हैं। उन कमलों की कर्णिकाएँ भी दश ताड़पत्रों के बराबर लम्बी हैं।।७७।। तथा वे महाकमल अत्यन्त कोमल हैं तथा वे सदैव खिलते रहते हैं। वे कमल नवीन सुगन्ध से युक्त हैं और विशाल एवं मजबूत पत्तों वाले हैं। इस प्रकार के वहाँ उस महापद्माटवी में करोड़ों करोड़ कमल हैं।।७८।। फिर हे अगस्त्य मुने! महापद्माटवी की कक्ष्या के पूर्व भाग में एक कोश ऊँचा अग्नि रूप वर्तुलाकार रूप में स्थित, आधे योजन विस्तार वाला, दश कलाओं से युक्त पूजा करने का पात्र का महा आधार है। अर्थात् जहाँ पर पूजा का पात्र रखा जाता है, वह महाआधार भूमि है।।७९-८०।। उस आधार भूमि के चारों ओर जलते हुए शरीरों वाली धूम्रार्चि प्रमुख अग्नि की दशकलाएँ सुशोभित हो रही हैं।।८१।। वे अग्नि की दश कला शक्तियाँ प्रकाशित तरुणता की शोभा से युक्त, जलती हुई जवानी की वह तरीनी खूबसूरती से भरी हुई तथा अनेकों प्रकार के आभूषणों से सजी हुई हैं, वे सब आधारभूत भगवान् अग्निदेव का आलिङ्गन करके ही काम के मद में मत्त होकर चारों ओर विद्यमान हैं।।८२।।

धूम्रार्चिरुष्णा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहेति च। एता दशकलाः प्रोक्ता वह्नेराधाररूपिणः॥८३॥
तत्राधारे स्थितो देवः पात्ररूपं समाश्रितः सूर्यस्त्रिलोकीतिमिरप्रध्वंसप्रथितोदयः॥८४॥
सूर्यात्मकं तु तत्पात्रं सार्द्धयोजनमुन्नतम्। योजनायामविस्तारं महाज्योतिःप्रकाशितम्॥८५॥
तत्पात्रात्परितः सक्तवपुषः पुत्रिका इव। वर्तंते द्वादश कला अतिभास्वररोचिषः॥८६॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वलिनी रुचिः।
सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा॥८७॥
तस्मिन्पात्रे परानन्दकारणं परमामृतम्। सर्वौषधि रसाढ्यं च हृद्यसौरभसंयुतम्॥८८॥
नीलोत्पलैश्च कह्लारैरम्लानैरतिसौरभैः। वास्यमानं सदा हृद्यं शीतलं लघु निर्मलम्॥८९॥
चलद्वीचिशतोदारं ललिताभ्यर्चनोचितम्। सदा शब्दायमानं च भासतेऽर्चनकारणम्॥९०॥
तदर्घ्यममृतं प्रोक्तं निशाकरकलामयम्। तस्मिंस्तनीयसीर्नौका मणिक्लृप्ताः समास्थिताः।

अग्नि की दश कलाओं के नाम हैं, १. धूम्रार्चि, २. उष्णा, ३. ज्वलिनी, ४. ज्वालिनी, ५. विस्फुल्लिङ्गी, ६. सुश्रीः, ७. सुरूपा, ८. कपिला, ९. हव्यवाहा और १०. कव्यवाहा, ये आधार रूप अग्नि की दश कलाएँ कही गयी हैं[1]।।८३।। वहाँ उस अग्नि के आधार में पात्र रूप में सम्यक् रूप से आश्रित सूर्यदेव तीनों लोकों के अन्धकार को नष्ट करने वाले उदित हुए स्थित हैं।।८४।। जिस पात्र में सूर्यदेव स्थित हैं, वह पात्र आधे योजन ऊँचा है तथा एक योजन लम्बाई तक महाज्योति प्रकाशित है।।८५।। उस पात्र से चारों ओर शरीर सक्त पुत्री के समान अत्यन्त चमकती हुई किरणों वाले सूर्य की बारह कलायें हैं।।८६।। वे हैं—१. तपिनी, २. तापिनी, ३. धूम्रा, ४. मरीचि, ५. ज्वालिनी, ६. रुचि, ७. सुषुम्णा, ८. भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११. धारिणी, १२. क्षमा इस प्रकार ये बारह सूर्य की कलाएँ हैं।।८७।। उस पात्र में अलौकिक आनन्द का कारण परमामृत है, जो समस्त औषधियों के रसों से युक्त है। मनोहर सुगन्ध संयुत है।।८८।।

वह परमामृत बिना मुरझाये हुए नील कमलों और श्वेत कमलों से सुवासित, सदा हृदय को हितकर शीतल, हल्का और निर्मल है।।८९।। उस पात्र में अमृत सैकड़ों लहरों से बहता हुआ ललिता देवी की अर्चना के लिए उचित है तथा सदा वह बहता हुआ शब्द करता रहता है। अर्चन का कारण रूप में प्रतीत होता रहता है।।९०।। वह पूजा

१. यहाँ अग्नि की दश कलाओं का अर्थ है—अग्नि के दश रूप जैसे कि पहला रूप धूमार्चिः है, जिसका अर्थ है कि जब आग जलती है, तो पहले धुंआ और चिनगारी देती है। दूसरी कला उष्मा—अतः आग गर्मी देती है। तीसरी ज्वलिनी जलने वाली, चौथी ज्वालिनी = जलाने वाली, पांचवी विस्फुल्लिंगी—चिनगारी देने वाली, अतः आग चिनगारी देती है, जैसे बिजली आदि में। छठीं कला है—सुश्री, अतः आग सुन्दर शोभा है। सातवीं कला है—सुरूपा अतः आग का रूप सुन्दर होता है। वह सर्वत्र प्रकाश फैलाती है। आठवीं कला है—कपिला अर्थात् आग का वर्ण कपिल (भूरा पीला) होता है। नवीं कला हव्यवाहा अर्थात् हवि (आहूत) वस्तु के गन्ध को इधर-धर ले जाने वाली, सो आग ही है। वह हवन में चारों तरह सुगन्ध फैलाती है। दशमी कला है—कव्यवाहा। अतः वह अग्नि पितरों को दी गयी तर्पण सामग्री को पितरों तक पहुँचाती है। यहाँ पितरों से मेरा अर्थ सूर्य, चन्द्र, वायु आदि देवता है। अतः यहाँ आग के वैज्ञानिक रहस्य पर प्रकाश डाला गया है।

निशाकरकला हृद्याः क्रीडंति नवयौवनाः॥९१॥
अमृता मानदा पूष्णा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः।
शशिनी चन्द्रिका कांतिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरंगदा॥९२॥
पूर्णा पूर्णामृता चेति कलाः पीयूषरोचिषः। नवयौवनसंपूर्णाः सदा प्रहसिताननाः॥९३॥
पुष्टिर्ऋद्धिः स्थितिर्मेधा कांतिर्लक्ष्मीर्द्युतिर्धृतिः।
परा सिद्धिरिति प्रोक्ताः क्रीडंति ब्रह्मणः कलाः॥९४॥
स्थितिश्च पालिनी शांतिश्चेश्वरी रतिकामिके। वरदाह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा चेति हरेः कलाः॥९५॥
तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्रा क्षुत्क्रोधिनी त्रपा।
उत्कारी मृत्युरप्येता रोद्धयस्तत्र स्थिताः कलाः॥९६॥
ईश्वरस्य कलाः पीताः श्वेताश्चैवारुणाः सिताः।
चतस्त्र एव प्रोक्तास्तु शंकरस्य कला अथ॥९७॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शांतिस्तथैव च। इंदिरा दीपिका चैव रेचिका चैव मोचिका॥९८॥
परा सूक्ष्मा च विंध्यारे तथा सूक्ष्मामृता कला।
ज्ञानामृता व्याधिनी च व्यापिनी व्योमरूपिका।
एताः षोडश संप्रोक्तास्तत्र क्रीडंति शक्तयः॥९९॥
रुद्रनौकासमारूढास्ततश्चेतश्च चञ्चलाः। शक्तिरूपेण खेलंति तत्र विद्याः सहस्त्रशः॥१००॥

के योग्य अमृत चन्द्रकलामय कहा गया है। उसमें एक मणिजटित छोटी-सी नौका है, जिसमें हृदय के लिए अत्यन्त अच्छी लगने वाली नवयौवना चन्द्रकलाएँ नित्य क्रीड़ा करती हैं।।९१।। वे हैं—१. अमृत, २. मानदा, ३. पूष्णा, ४. तुष्टि, ५. पुष्टि, ६. रति, ७. धृति, ८. शशिनी, ९. चन्द्रिका, १०. कान्ति, ११. ज्योत्स्ना, १२. श्री, १३. प्रीति, १४. अंगदा, १५. पूर्णा और १६. पूर्णामृता, ये १६ चन्द्रकलाएँ हैं। ये सब कलाएँ अमृत की किरणों वाली हैं तथा ये नवयौवन सम्पन्न और सदैव हँसते हुए मुख वाली हैं।।९२-९३।। वही पर १. पुष्टि, २. सृष्टि (पूजापद्धति में) ऋद्धि, ३. स्थिति, ४. मेधा, ५. कान्ति, ६. लक्ष्मी, ७. द्युति, ८. धृति, ९. जरा, १०. सिद्धि, ये ब्रह्मकलाएँ कही गयी हैं, जो वहाँ क्रीड़ा करती हैं।।९४।।

तथा १. स्थिति, २. पालिनी, ३. शान्ति, ४. ईश्वरी, ५. रति, ६. कामिका, ७. वरदा, ८. आह्लादिनी, ९. प्रीति, १०. दीर्घा ये दश हरि की कलाएँ हैं।।९५।। १. तीक्ष्णा, २. रौद्री, ३. भया, ४. निद्रा, ५. तन्द्रा, ६. क्षुधा, ७. क्रोधिनी, ८. त्रया, ९. उत्कारी और १० मृत्यु, ये दश रुद्र की कलाएँ हैं।।९६।। ईश्वर की कलाएँ हैं—१. पीता, २. श्वेता, ३. अरुणा और ४. सिता ये चार ही ईश्वर की कलाएँ कहलाती हैं। अब शंकर की कलाएँ हैं।।९७।। १. निवृत्ति, २. प्रतिष्ठा, ३. विद्या, ४. शान्ति, ५. इन्दिरा, ६. दीपिका, ७. रेचिका, ८. मोचिका, ९. परा, १०. सूक्ष्मा, ११. सूक्ष्मामृतकला, १२. ज्ञाना, १३. ज्ञानामृता, १४. व्याधिनी, १५. व्यापिनी, १६. व्योमरूपिका ये सोलह कहीं हुई शक्तियाँ वहाँ पर क्रीड़ा करती हैं।।९८-९९।। ये सब शक्तियाँ रुद्र नौका पर अच्छी प्रकार आरूढ़ चञ्चल चित्त वाली हजारों विद्यायें वहाँ शक्ति के रूप से क्रीड़ा कर रही हैं।।१००।।

अर्घ्यसंशोधनार्थाय कल्पिताः परमेष्ठिना।
तदर्घ्यममृतं पीत्वा सदा माद्यन्ति शक्तयः॥१०१॥
महापद्माटवीवासा महाचक्रस्थिता अपि। मुहुर्मुहुर्नवनवं मुहुश्चाबद्धसौरभम्॥१०२॥
रत्नकुम्भसहस्रैश्च सुवर्णघटकोटिभिः। आपूर्यापूर्य सततं तदर्घ्यममृतं महत्॥१०३॥
चिंतामणिगृहस्थानां परिचारकशक्तयः। अणिमादिक शक्तीनामर्घ्ययंति मदोद्धताः॥१०४॥
महापद्माटवीकक्ष्यापूर्वभागेऽर्घ्यकल्पनम्। इत्थं समीरितं पश्चात्तत्रान्यदपि कथ्यते॥१०५॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरबागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने महापद्माटव्यार्घ्यस्थापनकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

उन परमेश्वरी ललिता देवी के द्वारा पूजा करने योग्य सामग्रियों के संशोधन के लिए कल्पित शक्तियाँ उस अर्घ्यामृत को पीकर सदा मदमत्त रहती हैं।।१०१।। महापद्माटवी में रहने वाली, महाचक्र में स्थित रहने वाली भी वे शक्तियां बार-बार नये और बार-बार सुगन्ध से बँधे हुए हजारों रत्ननिर्मित सोने के घड़ों से भर-भर कर लगातार उस महान् अर्घ्यामृत को पीती रहती हैं।।१०२-१०३।। चिन्तामणि रत्न निर्मित गृहों में स्थित देवियों की मदोन्नत परिचारक शक्तियाँ अणिमादिक शक्तियों की पूजा करती हैं।।१०४।। इस प्रकार महापद्माटवी कक्ष्या के पूर्वभाग में अर्घ्य कल्पन को यहाँ पर कहा गया। अब वहाँ और भी कहा जाता है, यह आगे बताया जायेगा।।१०५।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३५वाँ अध्याय महापद्माटवी अर्घ्यस्थापन कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

चिन्तामणिगृहान्तर्कथनं नाम

षड्त्रिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

चिन्तामणिगृहस्याग्निदिग्भागे कुन्दमानकम्। योजनायामविस्तारं योजनोच्छासचातकम्॥१॥
तत्र ज्वलति चिद्वह्निः सुधाधाराशतार्चितः। परमैश्वर्यजनकः पावनो ललिताज्ञया॥२॥
अनिन्धनो महाज्वालः सुधया तर्पिताकृतिः।
कंकेलीपल्लवच्छायस्तत्र ज्वलांते चिच्छिखी॥३॥
तत्र होत्री महादेवी होता कामेश्वरः परः। उभौ तौ नित्यहोतारौ रक्षतः सकलं जगत्॥४॥
अनुत्तरपराधीना ललिता संप्रवर्तिता। ललिताचोदितः कामः शंकरेण प्रवर्तितः॥५॥
चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य रक्षोभागेम्बुजाटवौ॥६॥
चक्रराजरथश्रेष्ठस्तिष्ठत्युन्नतविग्रहः। नवभिः पर्वभिर्युक्तः सर्वरत्नमयाकृतिः॥७॥
चतुर्योजनविस्तारो दशयोजनमुन्नतः। यथोत्तरं ह्रासयुक्तः स्थूलतः कूबरोज्ज्वलः॥८॥
चतुर्वेदमहाचक्रः पुरुषार्थमहाहयः। तत्त्वैरुपचरद्भिश्च चामरैरभिमंडितः॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३६

चिन्तामणि गृह के अन्दर की कथा का वर्णन

हयग्रीव बोले—चिन्तामणि गृह की अग्नि दिशा के आगे अर्थात् पूर्व दिशा में एक योजन विस्तार वाला और योजन भर ऊँचा बहुत सुन्दर चातक पक्षियों से युक्त कुन्दमानक (सुगन्धित पुष्पों वाला उद्यान) है।।१।। वहाँ चिद् रूप अग्नि अमृत की सैकड़ों धाराओं से अर्चित होकर जलती रहती है अर्थात् वहाँ यज्ञ होता रहता है। वह अग्नि परमेश्वरी ललिता देवी की आज्ञा से परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाली एवं पवित्र है।।२।। वहाँ बिना ईंधन के जलने वाली महाज्वाला अमृत से तर्पित है, अर्थात् उसको अमृत से तृप्त किया जा रहा है। अतः वहाँ वह कङ्केली अशोक वृक्ष के पत्ते की कान्ति के समान चित् रूप शिखा वाली अग्नि जल रही है।।३।।

वहाँ उस यज्ञाग्नि में होत्री महादेवी तथा होता कामेश्वर हैं। वे दोनों ही नित्य होता (यज्ञ करने वाले हैं) वे दोनों नित्य यज्ञ करते हुए संसार की रक्षा करते हैं।।४।। वहाँ पर कोई उत्तर न देती हुई पराधीन ललिता देवी सम्यक् रूप से प्रवृत्त हैं तथा ललितेश्वरी द्वारा प्रेरित तथा शंकर द्वारा प्रवर्तित कामदेव हैं।।५।। चिन्तामणि गृहराज रक्षोभाग में कमल वन है। जहाँ उन्नत विग्रह, नौ पर्वों से युक्त, सब रत्नों से युक्त आकार वाला श्रेष्ठ चक्रराज रथ स्थित है।।६-७।। वह चार योजन विस्तार वाला और दश योजन ऊँचा है तथा बहुत ऊँचा, शब्द करने वाला तथा उसका कूबर (जुआ बाँधने की बल्ली बहुत उज्ज्वल है।।८।। चार वेद रूप उसके चार चक्र (पहिए) हैं, पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) ये चारों उसके महान् अश्व हैं। पंचतत्त्व (क्षिति, जल, पावक, समीर और गगन) इन पंचतत्त्वरूपी

पूर्वोक्तलक्षमैर्युक्ता मुक्ताच्छत्रेण शोभितः। भंडासुरमहायुद्धे कृतसाहसिकक्रियः॥१०॥
वर्तते रथमूर्धन्यः श्रीदेव्यासनपाटितः। चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य वायुभगेम्बुजाटवौ॥११॥
गेयचक्ररथेन्द्रस्तु मन्त्रिण्याः प्रान्त तिष्ठति। चिंतामणिगृहेन्द्रस्य रुद्रभागेम्बुजाटवौ॥१२॥
वल्लभो दण्डनाथायाः किरिचक्रे महारथः। एतद्रथत्रयं सर्वक्षेत्रश्रीपुरपंक्तिषु।
समानमेव विज्ञेयमङ्गस्था देवता यथा॥१३॥
आनलं कुंडमाग्नेये यत्तिष्ठति सदा ज्वलत्। तप्तमेतत्तु गायत्री तप्तं स्यादभयङ्करम्॥१४॥
घृणिसूर्यस्तु तत्पश्चादोंकारस्य च मन्दिरम्। देवी तुरीयगायत्री चक्षुष्मत्यपि तापस॥१५॥
अथ गन्धर्वराजश्च परिषद्रुद्र एव च। तारांबिका भगवती तत्पश्चाद्भागतः स्थिताः॥१६॥
चिंतामणिगृहेन्द्रस्य रक्षोभागं समाश्रितः। नामत्रय महामन्त्रवाच्योऽस्ति भगवान्हरिः॥१७॥
महागणपतिस्तस्योत्तरसंश्रितकेतनः। पञ्चाक्षरीमन्त्रवाच्यस्तस्य चाप्युत्तरे शिवः॥१८॥
अथ मृत्युञ्जयेशश्च वाच्यस्त्र्यक्षरमात्रतः। सरस्वती धारणाख्या ह्यस्य चोत्तरवासिनी॥१९॥
अकारादिक्षकारान्तवर्णमूर्तेस्तु मंदिरम्। मातृकाया उत्तरतस्तस्यां विन्ध्यनिषूदन॥२०॥
उत्तरे सम्पदेशी वै कालसंकर्षणी तथा। श्रीमहाशम्भुनाथा च देव्याविर्भावकारणम्॥२१॥
श्रीः परांबा च विशदज्योत्स्ना निर्मलविग्रहा। उत्तरोत्तरमेतास्तु देवताः कृतमंदिराः॥२२॥
बालाचैवान्नपूर्णा च हयारूढा तथैव च। श्रीपादुकाचतस्त्रस्तदुत्तरोत्तरमंदिराः॥२३॥

चंवरों से अभिमण्डित है।।९।। इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त मोतियों से निर्मित छत्र से सुशोभित हैं। भण्डासुर महायुद्ध में साहसिक क्रियाएँ करने वाले, श्रीललितेश्वरी के आसन से पाटित श्रेष्ठ रथ है।।१०-१०½।। चिन्तामणि गृह राज के रुद्रभाग वाली कमलवनी में गेय चक्र रथराज तो मन्त्रिणी के प्रान्त (पास) में स्थित है।।१०½-११½।। चिन्तामणि गृहराज के रुद्रभाग में कमलवनी में किरिचक्र में दण्डनाथा देवी का प्रिय महारथ है। ये तीन रथ श्रीपुर के सब क्षेत्र पंक्तियों में समान हैं। इन तीनों रथों के अंगों में समान रूप से देवता स्थित हैं, जैसे कि आग्नेय दिशा में आनल (अग्नि) कुण्ड है, जहाँ अग्निदेव सदा जलते हुए स्थित हैं। ये तप्त गायत्री, जो तप्त हैं; परन्तु भयंकर नहीं हैं, वे स्थित हैं।।१४।। उसके बाद उष्णता प्रदान करने वाले सूर्य हैं, फिर उसके बाद ॐकार का मन्दिर है। फिर आत्मा-परमात्मा को मिलाने वाली देवी चक्षुष्मती चौथी गायत्री हैं।।१५।।

इसके बाद गन्धर्वराज हैं, उसके बाद रुद्र की सभा है। उसके बाद अम्बिका भगवती तारा अपनी शोभायुक्त स्थित हैं।।१६।। चिन्तामणि गृहराज के रक्षो भाग पर समाश्रित नाम त्रय महामन्त्र द्वारा वाच्य भगवान् हरि विद्यमान हैं।।१७।। उनके उत्तर महागणपति ध्वजा के साथ स्थित हैं और उसके भी उत्तर में पाँच अक्षरों से वाच्य भगवान् शिव स्थित हैं।।१८।। इसके बाद तीन अक्षर मात्र से वाच्य धारणा नाम की सरस्वती देवी इसके उत्तर में वास करने वाली है।।१९।। उसके उत्तर अकारादि से क्षकार के अन्त तक के वर्णों की मूर्ति का मन्दिर है। हे अगस्त्य मुने! उसके उत्तर में मात्राओं 'अ' से लेकर 'अः' तक का स्थान समझिये।।२०।। उत्तर में सम्पदेशी (सम्पत्तियों की स्वामिनी) देवी तथा कालसंकर्षणी देवी हैं और श्री महाशम्भुनाथा देवी हैं, जो देवियों के आविर्भाव की कारण हैं।।२१।। फिर विशद ज्योत्स्ना वाली एवं निर्मल शरीर वाली श्री पराम्बा हैं। इस प्रकार इनके उत्तरोत्तर देवियों के बने हुए मन्दिर (घर) हैं।।२२।। और बाला अन्नपूर्णा उसी प्रकार घोड़े पर सवार होकर स्थित हैं। फिर उनकी चार

चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य वायव्यवसुधादितः। महापद्माटवौ त्वन्या देवताः कृतमंदिराः॥२४॥
उन्मत्तभैरवी चैव स्वप्नवाराहिका परा। तिरस्करणिकांबा च तथान्या पञ्चमी परा॥२५॥
यथापूर्वं कृतकृता एता देव्यो महोदयाः। श्रीपूर्तिश्च महादेवी श्रीमहापादुकापि च॥२६॥
यथापूर्वं कृतगृहे द्वे एते देवतोत्तमे। शंकरेण षडाम्नायसागरे प्रतिपादिताः।
या विद्यास्ताः समस्ताश्च महापद्माटवीस्थले॥२७॥
इत्थं श्रीरश्मिमालाया मणिक्लृप्ता महागृहाः।
उच्चध्वजा उच्चशालास्ससोपानास्तपोधन॥२८॥
चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य पूर्वद्वारे समुद्रप। दक्षिणे पार्श्वभागे तु मंत्रिनाथागृहं महत्॥२९॥
वामभागे दण्डनाथाभवनं रत्ननिर्मितम्। ब्रह्मविष्णुमहेशानामर्घ्यस्थानस्य पूर्वतः॥३०॥
भवनं दीपिताशेषदिक्चक्रं रत्नरश्मिभिः। समस्ता देवता एता ललिताभक्तिनिर्भराः।
ललितामन्त्रजाप्याश्च श्रीदेवीं समुपासते॥३१॥
पूर्वोक्तमर्घ्यस्थानं च पूर्वोक्तं चार्घ्यकल्पनम्। याम्यद्वारप्रभृतिषु सर्वेष्वपि समं स्मृतम्॥३२॥
अथ चिन्तामणिगृहं वक्ष्ये शृणु महामुने। तच्छ्रीपट्टनमध्यस्थं योजनद्वयविस्मृतम्॥३३॥
तस्य चिन्तामणिमयी भित्तिः कोशसुविस्तृता।
चिन्तामणिशिलाभिश्च च्छादिनीभिस्तथोपरि॥३४॥

श्रीपादुकाएँ हैं, उसके उत्तरोत्तर मन्दिर हैं।।२३।। चिन्तामणि गृहराज के वायव्य भूमि के आदि से (शुरू से) महापद्माटवी में तो अन्य देवियों के बने हुए मन्दिर हैं।।२४।। वहाँ पर उन्मत्त भैरवी है तथा दूसरा मन्दिर स्वप्न वाराही देवी का है। फिर तिरस्करणिका अम्बा तथा अन्य पाँचवीं परा देवी है, जैसे कि पूर्व में गृह बने हुए हैं, वैसे ही इन देवी महोदयाओं के हैं। श्री पूर्ति महादेवी और श्रीमहापादुका देवी भी उसी प्रकार के उत्तम घर वाली हैं, जैसे कि पहले कहे गये हैं।।२४½-२५½।। भगवान् शंकर ने महापद्माटवी के स्थल पर जो समस्त विद्याएँ हैं, वे तन्त्रसागर में (चारों वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणारण्यकों) में प्रतिपादित की हैं।।२५½-२७।। इस प्रकार श्रीललितेश्वरी की रश्मिमाला के मणिजटित महागृह ऊँची ध्वजाओं वाले, ऊँचे शाल वाले और सीढ़ियों से युक्त हैं।।२८।। हयानन कहते हैं कि हे समुद्र को पीने वाले अगस्त्य जी! चिन्तामणि गृहराज के पूर्व द्वार पर दक्षिण में पीछे के हिस्से पर तो मन्त्रिनाथा का महान् गृह है।।२९।।

वाम भाग में रत्नों से बना हुआ देवी दण्डनाथा का गृह है। ब्रह्मा विष्णु महेश के अर्घ्य (पूजा के योग्य) स्थान के पूर्व से रत्नों की किरणों से समस्त दिशाओं को प्रज्वलित करता हुआ भवन है।।३०-३०½।। ये समस्त देवता श्रीललिता देवी की भक्ति पर निर्भर हैं और सब ललिता देवी के मन्त्र का जाप करने वाले श्रीदेवी की सम्यक् उपासना करते हैं।।३१।। पूर्व में कहे गये अर्घ्यस्थान (पूजा के स्थान) तथा पूर्व में कहे गये अर्घ्यकल्पन (पूजा की कल्पना), दक्षिण द्वार आदि सभी में समान स्मरण किये गये हैं।।३२।। हयग्रीव ने कहा कि इसके बाद चिन्तामणि गृह को बताऊँगा। हे महामुने! अगस्त्य जी सुनिये। उस श्रीनगर के मध्य में स्थित दो योजन विस्तृत चिन्तामणि गृह है।।३३।। उस गृह की चिन्तामणिमयी भित्ति (चिन्तामणि नामक मणि से बनी हुई दीवार) एक कोश विस्तृत है तथा वे चिन्तामणि

संवृता कूटरूपेण तत्रतत्र समुन्नता। गृहाभित्तिस्तथोन्नम्रा चतुर्योजनमानतः॥३५॥
विंशतिर्योजनं तस्याश्चोन्नम्रा भूमिरुच्यते। ततोर्ध्वं ह्रासस‍युक्तं स्थौल्यत्रिमुकुटोज्ज्वला॥३६॥
तानि चेच्छाक्रियाज्ञानरूपाणि मुकुटान्यृषे। सदा देदीप्यमानानि चिन्तामणिमयान्यपि॥३७॥
चिन्तामणिगृहे सर्वं चिन्तामणिमयं स्मृतम्।
यस्य द्वाराणि चत्वारि क्रोशार्धायामभाञ्जि च॥३८॥
क्रोशार्द्धार्द्धं च विस्तारो द्वाराणां कथितो मुने। द्वारेषु सर्वेषु पुनश्चिन्तामणिगृहान्तरे॥३९॥
पिहिता ललितादेव्या मूर्तिर्लोहितसिन्धुवत्। तरुणार्कसहस्राभा चन्द्रवच्छीतला ह्यपि।
मुहुः प्रवाहरूपेण प्रसरन्ती महामुने॥४०॥
पूर्वाम्नायमयं चैव पूर्वद्वारं प्रकीर्तितम्। दक्षिणद्वारदेशस्तु दक्षिणाम्नायलक्षणः॥४१॥
पश्चिमद्वारदेशस्तु पश्चिमाम्नायलक्षणः। उत्तरद्वारदेशः स्यादुत्तराम्नायलक्षणः॥४२॥
गृहराजस्यान्तराले भित्तौ खचितदण्डकाः। रत्नप्रदीपा भास्वंतः कोट्यर्कसदृशत्विषः।
परितस्तत्र वर्तंते भासयंतो गृहांतरम्॥४३॥
चिंतामणिगृहस्यास्य मध्यस्थाने महीयसि। अत्युच्चैर्वेदिकाभागे बिन्दुचक्रं महत्तरम्॥४४॥
चिन्तारत्नगृहोत्तुंगभित्तेर्विंदोश्च मध्यभूः। भित्तिः क्रोशं परित्यज्य क्रोशत्रयमुदाहतम्॥४५॥

नामक अमूल्य पत्थरों की शिलाओं वाली ऊपर छतों से संवृत (पूरी तरह ढँकी हुई) प्रधान रूप से वहाँ वहाँ बहुत ऊँची है। गृह की दीवार उसी प्रकार चार योजनमान से उसी प्रकार ऊँची है।।३४-३५।। और उसकी भूमि बीस योजन ऊँची कही जाती है। उससे ऊपर शब्दों से संयुक्त तीन मुकुटों से उज्ज्वल स्थौली है।।३६।। और हे ऋषिवर! वे इच्छा, क्रिया और ज्ञानरूप वाले मुकुट हैं तथा वे मुकुट देदीप्यमान हैं और चिन्तामणिमय भी हैं।।३७।। चिन्तामणि गृह में सब कक्ष, दीवार, द्वार आदि चिन्तामणि नामक अमूल्य पत्थर से बने हुए स्मरण किये गये हैं। जिसके चार द्वार आधे कोश की लम्बाई वाले हैं।।३८।। आधे आधे कोश का विस्तार द्वारों का कहा गया है। सब द्वारों पर फिर चिन्तामणि गृह के अन्दर ललिता देवी की लोहित (रक्त) की नदी के समान मूर्ति रखी हुई है, जो हजारों तरुण सूर्यों की आभा वाली है तथा चन्द्रमा के समान शीतल भी है। जो बार-बार प्रवाह रूप से प्रसरण करती हुई हैं।।४०।।

पूर्वाम्नायमय द्वार ही पूर्व द्वार कहा गया है। दक्षिण द्वार का जो स्थान है, उसको दक्षिणाम्नाय कहा गया है।।४१।। पश्चिम द्वार का देश पश्चिमाम्नाय कहा गया है तथा उत्तरद्वार देश उत्तराम्नाय लक्षण वाला है। कथन का आशय है कि पूर्व की तरफ वाले द्वार को पूर्वाम्नाय, दक्षिण की तरफ वाले द्वार को दक्षिणाम्नाय, पश्चिम की तरफ के द्वार को पश्चिमाम्नाय तथा उत्तर की ओर वाले द्वार को उत्तराम्नाय कहा गया है।।४२।। गृहराज (राजगृह) के अन्तर्गत दीवार में जगह-जगह दण्डक (पिलर) लगे हुए हैं, जिनमें रत्न जड़े हुए हैं, जिन रत्नों की चमक (कान्ति) करोड़ों सूर्य की कान्ति के समान है। उसके चारों ओर चमकता हुआ गृह का अन्दर का भाग है।।४३।। इस चिन्तामणि के अन्तर्गत बहुत बड़ा मध्यस्थान क्षेत्रफल) है। उस मध्यस्थान में अत्यन्त ऊँचाई पर वेदी है, उस वेदी के भाग में उससे भी महान् बिन्दु चक्र है।।४४।। चिन्तारत्न गृह की ऊँची दीवार और बिन्दु के बीच में जो भूमि है, वह दीवार एक कोश छोड़कर तीन कोश बतायी गयी है। अर्थात् एक कोश में तो बिन्दु ही है, इसीलिये कहा

तत्र क्रोशत्रयस्थाने ह्यणिमाद्यात्मरोचिषा। क्रोशत्रयं समस्तं तद्धस्तसंख्याप्रकारतः।
चतुर्विंशतिसाहस्त्रहस्तैः संमितमुच्यते॥४६॥
बिन्दुपीठेशपर्यन्तं चतुर्दशविभेदतः। अन्तरे भेदिते जाते हस्तसंख्या मयोच्यते॥४७॥
पद्माटवीस्थलाच्चिन्तामणिवेश्मानन्तरं मुने। हस्तविंशतिरुन्नम्रं तस्य स्युरणिमादयः॥४८॥
अणिमान्तरविस्तारश्चतुर्नल्वसमन्वितः। किष्कुश्चतुःशती नल्वकिष्कुर्हस्त उदीर्यते॥४९॥
तत्रांतरेऽणिमाद्यास्तु पूर्वादिकृतमंदिराः। अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा॥५०॥
ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं मुक्तिरेव च।
इच्छा प्राप्तिः सर्वकामेत्येताः सिद्धय उत्तमाः॥५१॥
रसदिद्धिर्मोक्षसिद्धिर्बलसिद्धिस्तथैव च। खड्गसिद्धिः पादुकाया सिद्धिरञ्जनसिद्धिकः॥५२॥
वाक्सिद्धिर्लोकसिद्धिश्च देहसिद्धिरनन्तरम्।
एता अष्टौ सिद्धयस्तु बह्व्योऽन्या योगिसंमताः॥५३॥
तत्रांतरे तु परितः सेवते परमेश्वरीम्। कोटिशः सिद्धयस्तस्मिन्नणिमाद्यन्तरे मुने॥५४॥
नवलावण्यसंपूर्णाः स्मयमानमुखांबुजाः। ज्वलच्चिन्तामणि कराः सदा षोडशवार्षिकाः।
अत्युदारप्रकृतयः खेलंति मदविह्वलाः॥५५॥
तस्याणिमाद्यन्तरस्योपरिष्टात्सुमनोहरम्। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्॥५६॥

गया है कि कोश छोड़कर। इस प्रकार बिन्दु से तीन कोश स्थान में वहाँ पर अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ अपनी कान्ति से पूरे तीनों कोश हाथ की संख्या के प्रकार से चौबीस हजार हाथों से उसकी माप कही जाती है। अर्थात् तीन कोश कहिये अथवा चौबीस हजार हाथ कहिए, यही दूरी बिन्दु से दीवार की है, जिसमें अणिमा आदि सिद्धियाँ निवास करती हैं।।४५-४६।। बिन्दुपीठेश पर्यन्त चौदह हाथ के भेद से संख्या मेरे द्वारा कही जाती है। पद्माटवी स्थल से चिन्तामणि गृह का अन्तर (बीच का स्थान) बीस हाथ ऊँचा है, वहाँ पर अणिमा आदि सिद्धियाँ हैं।।४८।। उन अणिमा आदि सिद्धियों के बीच की दूरी चार नल्व समन्वित है। चार सौ किष्कु का एक नल्व होता है तथा एक किष्कु एक हाथ का होता है। इस प्रकार अणिमा आदि सिद्धियों के बीच की दूरी सोलह सौ हाथ है।।४९।।

वहाँ उस अन्तर में अणिमा आदि सिद्धियों के पूर्वादि गृहों के समान गृह बने हुए हैं। वे सिद्धियाँ हैं—१. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिना, ४. गरिमा, ५. ईशित्व, ६. वशित्व, ७. प्राकाम्य और ८. मुक्ति। इच्छा प्राप्ति और सर्वकामा इस प्रकार ये उत्तम सिद्धियाँ हैं।।५०-५१।। रससिद्धि, मोक्षसिद्धि, बलसिद्धि, खड्गसिद्धि, पादुकासिद्धि, अञ्जनसिद्धि, वाक्सिद्धि, लोकसिद्धि और देहसिद्धि, ये आठ सिद्धियाँ योगिसम्मत हैं।।५२-५३।। जो वहाँ उस बीच में चारों ओर परमेश्वरी ललिता देवी की सेवा करती हैं। यहीं नहीं हे मुने! करोड़ों सिद्धियाँ उन अणिमा आदि सिद्धियों के बीच में मौजूद हैं, जो देवी की सेवा करती हैं।।५४।। तथा वे नवीन सौन्दर्य से भरी हुई, मुस्कराते हुए मुखकमल वाली, हाथ में चमकते हुए चिन्तामणि पहनने वाली, सदा सोलह वर्षीया अत्यन्त उदार स्वभाव वाली मद से विह्वल सिद्धियाँ वहाँ खेलती रहती हैं।।५५।। उस अणिमा आदि सिद्धियों के बीच के ऊपर से अत्यन्त मनोहर बीस हाथ ऊँचा चार नल्व (१६०० हाथ) विस्तार वाला चारों दिशाओं में सीढ़ियों की पंक्तियों से अत्यन्त मनोहर

चतुर्दिक्षु च सोपानपंक्तिभिः सुमनोहरम्।
ब्रह्माद्यंबरधिष्ण्यं स्यात्तत्र देवीः स्थिताः शृणु॥५७॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डाप्यथ सप्तमी।
महालक्ष्मीरष्टमी तु तत्रैताः कृतमंदिराः॥५८॥
नानाविधायुधाढ्याश्च नानाशक्तिपरिच्छदाः। पूर्वादिदिशमारभ्य प्रादक्षिण्यकृतालयाः॥५९॥
अथ ब्राह्यंतरा तस्योपरिष्टात्कुम्भसंभव। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
मुद्रान्तरमिति त्रैधं तत्र मुद्राः कृतालयाः॥६०॥
संक्षोभद्रावणाकर्ष वश्योन्मादमहाङ्कुशाः।
खेचरी बीजयोन्याख्या त्रिखण्डा दशमी पुनः॥६१॥
पूर्वादिदिशमारभ्य मुद्रा एताः प्रतिष्ठिताः। अत्यन्तसुन्दराकारा नवयौवनविह्वलाः॥६२॥
कांतिभिः कमनीयाभिः पूरयंत्यो गृहांतरम्। सेवंते मुनिशार्दूल ललितापरमेश्वरीम्॥६३॥
अन्तरं त्रयमेतत्तु चक्रं त्रैलोक्यमोहनम्। एतस्मिञ्छक्तयो यासु ता उक्ताः प्रकटाभिधाः॥६४॥
एतासां समधिष्ठात्री त्रिपुरा चक्रनायिका। तच्चक्रपालनकरी मुद्रासंक्षोभणात्मिका॥६५॥
अथ मुद्रांतरस्योर्ध्वं प्रोक्ता नित्याकलांतरम्। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
पर्वतश्चैव सोपानमुत्तरोत्तरमिष्यते॥६६॥
नित्याकलांतरे तस्मिन्कामाकर्षणिकामुखाः।
परितः कृतसंस्थानाः षोडशेंदुकलात्मिकाः॥६७॥

ब्रह्माद्यंबर हवन कुण्ड है। वहाँ देवियाँ स्थित हैं, सुनिये।।५६-५७।। वे हैं—१. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. माहेन्द्री, ७. चामुण्डा और ८. महालक्ष्मी। इन आठ देवियों के वहाँ मन्दिर बने हुए हैं।।५८।। ये देवियाँ अनेकों प्रकार के आयुधों से युक्त हैं तथा अनेकों प्रकार की शक्तियाँ परिच्छद (ढकी हुई) पूर्वादि दिशाओं से दक्षिण तक अपने घर बनाये हुए हैं।।५९।। इसके बाद ब्राह्मी देवी के मन्दिर के अन्दर उसके ऊपर से बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह हाथ) विस्तृत, तीन प्रकार का मुद्रान्तर है, वहाँ पर मुद्राओं के घर बने हुए हैं।।६०।। वे मुद्राएँ हैं—१. संक्षोभण, २. द्रावण, ३. आकर्षण, ४. वश्य (वशीकरण), ५. उन्माद, ६. महाङ्कुश, ७. खेचरी, ८. बीजयोनि, ९. आख्या, १०. त्रिखण्डी।।६१।।

पूर्व आदि दिशाओं से आरम्भ करके ये मुद्राएँ प्रतिष्ठित हैं। जो अत्यन्त सुन्दर आकार वाली और नवयौवन विह्वल हैं (नयी जवानी के मद में मत्त हैं)।।६२।। वे अपनी कमनीय कान्तियों से घर के अन्तर्भाग को पूर्ण कर रही हैं तथा हे मुनि अगस्त्य जी! वे सब ललिता परमेश्वरी की सेवा कर रही हैं।।६३।। इन तीनों के बीच में तो तीनों लोकों को मोहित करने वाला चक्र है। इसमें शक्तियाँ हैं, जिनमें वे प्रकट नामक शक्तियाँ कही गयी हैं।।६४।। इन शक्तियों की अधिष्ठात्री चक्र की नायिका त्रिपुरा देवी हैं। उस चक्र की पालन करने वाली संक्षोभणात्मिका मुद्रा है।।६५।। इसके बाद इस संक्षोभणी मुद्रा के मध्य के ऊपर नित्या कलान्तर है, जो बीस हाथ ऊँचे और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला पर्वत है, जिसमें उत्तरोत्तर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।।६६।। उस नित्या कलान्तर में

तर्पयंत्यो दिशां चक्रं सुधास्यंदैः सुशीतलैः। तासां नामानि मत्तस्त्वमवधारय कुम्भज॥६८॥

कामाकर्षणिका नित्या बुद्ध्याकर्षणिकापरा।
रसाकर्षणिका नित्या गन्धाकर्षणिका कला॥६९॥
चित्ताकर्षणिका नित्या धैर्याकर्षणिका कला।
स्मृत्याकर्षणिका नित्या नामाकर्षणिका कला॥७०॥
बीजाकर्षणिका नित्या चार्थाकर्षणिका कला।
अमृताकर्षणी चान्या शरीराकर्षणी कला॥७१॥

एतास्तु गुप्तयोगिन्यस्त्रिपुरेशी तु चक्रिणी। सर्वाशापूरिकाभिख्या चक्राधिष्ठनदेवता॥७२॥
एतच्चक्रे पालिका तु मुद्रा द्वारिणिकाभिधा। नित्या कलांतरादूर्ध्वं धिष्ण्यमत्यंतसुन्दरम्॥७३॥
हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्। प्राग्वत्सोपानसंयुक्तं सर्वसंक्षोभणाभिधम्॥७४॥
तत्राष्टौ शक्तयस्तीव्रा मदारुणविलोचनाः। नवतारुण्यमत्ताश्च सेवंते परमेश्वरीम्॥७५॥
कुसुमा मेखला चैव मदना मदनातुरा। रेखा वेगिन्यंकुशा च मालिन्यष्टौ च शक्तयः॥७६॥
कोटिशस्तत्परीवारः शक्तयोऽनंगपूर्विकाः। सर्वसंक्षोभमिदं चक्रं तदाधिदेवता॥७७॥
सुंदरी नाम विज्ञेया नाम्ना गुप्ततरापि सा। तच्चक्रपालनकरी मुद्राकर्षणिका स्मृता॥७८॥
अनंगशक्त्यंतरस्योपरिष्टात्कुंभसंभव। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
संक्षोभिण्याद्यंतरं स्यात्सर्वसौभाग्यदायकम्॥७९॥

कामाकर्षणिका आदि प्रमुख चारों ओर संस्थान बनाये हुई सोलह चन्द्रकलात्मिका दिशाओं के चक्र को सुन्दर और शीतल अमृत बिन्दुओं से तर्पित कर रही है। हे अगस्त्य जी! मत्त हुए तुम उनके नामों को सुनिये।।६७-६८।। वे हैं कामाकर्षणिका, नित्या, बुद्ध्याकर्षणिका कला, रसाकर्षणिका नित्या, गन्धाकर्षणिका कला।।६९।। चित्ताकर्षणिका नित्या, धैर्याकर्षणिकाकला, स्मृत्याकर्षणिका नित्या, नामाकर्षणिका कला।।७०।। बीजाकर्षणिका नित्या, अर्थाकर्षणिकाकला, अमृताकर्षणिका नित्या, शरीराकर्षणिका कला।।७१।। ये तो गुप्त योगिनियां हैं। त्रिपुरेशी तो चक्रिणी (चक्र की स्वामिनी) है। उस चक्र की अधिष्ठात्री देवी सब आशाओं को पूर्ण करने वाली है।।७२।। इस चक्र में पालिका (सेविका) तो द्रावणिका नाम की देवियां हैं तथा नित्या कलान्तर से ऊपर अत्यन्त सुन्दर हवनकुण्ड है।।७३।।

वह हवनकुण्ड बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला है। पूर्व की भाँति यह भी सीढ़ियों से युक्त है और वह सर्वसंक्षोभण नाम का है।।७४।। वहाँ पर आठ शक्तियाँ तीव्रा और मदिरा के मद से लाल-लाल नेत्रों वाली हैं तथा नई जवानी के मद में मत्त हैं। परमेश्वरी ललिता देवी की सेवा कर रही हैं।।७५।। वे हैं— १. कुसुमा, २. मेखला, ३. मदना, ४. मदनातुरा, ५. रेखा, ६. वेगिनी, ७. अंकुशा और ८. मालिनी, ये आठ शक्तियाँ हैं।।७६।। वह परमेश्वरी ललिता देवी करोड़ों अंगरहित कामदेव की शक्तियों से घिरी हुई हैं। यह सर्वसंक्षोभण नाम का चक्र है तथा उस चक्र की अधिकारिणी देवी सुन्दरी नाम की जाननी चाहिए। वह गुप्तसरा नाम से भी जानी जाती है। उस चक्र की पालन करने वाली मुद्राकर्षणिका स्मरण की गयी है।।७८।। अनंग शक्ति के बीच में ऊपर से बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तृत संक्षोभिणी के अन्दर की ओर सबको सौभाग्य

सर्वसंक्षोभिणीमुख्यास्तत्र शक्तय उद्धताः। चतुर्दश वसंत्येव तासां नामानि मच्छृणु॥८०॥
सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः सर्वविद्राविणी तथा।
सर्वाकर्षणिका शक्तिः सर्वाह्लादनिका तथा॥८१॥
सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तंभनशक्तिकाः। सर्वजृंभिणिका शक्तिस्तथा सर्ववशंकरी॥८२॥
सर्वरंजनशक्तिश्च सर्वोन्मादनिशक्तिका। सर्वार्थसाधिका शक्तिः सर्वसंपत्तिपूरिणी॥८३॥
सर्वमंत्रमयी शक्तिः सर्वद्वंद्वक्षयंकरी। एताश्च संप्रदायाख्याश्चक्रिणीपुरवासिनीः॥८४॥
मुद्राश्च सर्ववश्याख्यास्तच्चक्रे रक्षिता मताः।
कोटिशः शक्तयस्तत्र तासां किंकर्य्य उद्धताः॥८५॥
संक्षोभिण्याद्यंतरस्योपरिष्टात्कुंभसंभव। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
सर्वसिद्धादिकानां तु मंदिरं विष्ट्यमुच्यते॥८६॥
सर्वसिद्धिप्रदा चैव सर्वसंपत्प्रदा तथा। सर्वप्रियंकरी देवी सर्वमङ्गलकारिणी॥८७॥
सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचिनी। सर्वमृत्युप्रशमिनी सर्वविघ्ननिवारिणी॥८८॥
सर्वांगसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी।
एता देव्यः कलोत्कीर्णा योगिन्यो नामतः स्मृताः॥८९॥
चक्रिणी श्रीश्च विज्ञेया चक्रं सर्वार्थसाधकम्। सर्वोन्मादनमुद्राश्च चक्रस्य परिपालिताः॥९०॥
सर्वसिद्ध्याद्यन्तरस्योपरिष्टात्कुम्भसम्भव। हस्तविंशतिरनुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्॥९१॥

प्रदान करने वाला चक्र है।।७९।। वहाँ सर्वसंक्षोभिणी आदि मुख्य उद्धत शक्तियाँ हैं। हे अगस्त्य जी! वहाँ वे चौदह शक्तियाँ निवास करती हैं, जिनके नाम मुझसे सुनो।।८०।। १. सर्वसंक्षोभिणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वाकर्षणिका शक्ति, ४. सर्वाह्लादनिका, ५. सर्वसम्मोहिनी शक्ति, ६. सर्वस्तम्भनशक्तिका, ७. सर्वजृम्भणिका शक्ति, ८. सर्ववशंकरी, ९. सर्वरंजन शक्ति, १०. सर्वोन्मादन शक्ति, ११. सर्वार्थसाधिका शक्ति, १२. सर्वसम्पत्तिपूरिणी शक्ति, १३. सर्वमन्त्रमयी शक्ति, १४. सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी। ये सब सम्प्रदाय नाम की चक्रिणी ललितेश्वरी के पुर में रहने वाली शक्तियाँ हैं।।८१-८४।। सर्ववश्या (सबको वश में करने वाली) मुद्राएँ हैं। जो उस चक्र में रक्षिका मानी गयी हैं तथा वहाँ करोड़ों शक्तियाँ उन रक्षिकाओं की उद्धत सेविकाएँ हैं।।८५।। हयग्रीव बोले कि हे अगस्त्य मुने! संक्षोभिणी आदि के बीच में ऊपर से बीस हाथ ऊँचे और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला सर्वसिद्ध आदि देवियों का मन्दिरांगण कहा जाता है।।८६।।

वे देवियां हैं—१. सर्वसिद्धिप्रदा, २. सर्वसम्पत्प्रदा, ३. सर्वप्रियंकरी देवी, ४. सर्वमङ्गलकारिणी, ५. सर्वकामप्रदा, ६. सर्वदुःखविमोचनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमिनी, ८. सर्वविघ्ननिवारिणी, ९. सर्वाङ्गसुन्दरी देवी, १०. सर्वसौभाग्यदायिनी। ये देवियाँ कलोत्कीर्णा योगिनियाँ नाम से स्मरण की गयी हैं।।८७-८९।। इस चक्र की स्वामिनी श्री जाननी चाहिए और यह चक्र सर्वार्थ साधक नाम का चक्र है तथा सर्वोन्मादन मुद्राएँ इस चक्र की परिपालिका (रक्षा करने वाली) हैं।।९०।। हे अगस्त्य जी! सर्वसिद्धादिचक्र के अन्दर ऊपर की ओर बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तृत विस्तार वाला सर्वज्ञा आदि अन्तर्वात देवियों वाला सर्व रक्षाकर चक्र स्मरण किया गया है।

सर्वज्ञाद्यंतरं नाम्ना सर्वरक्षाकरं स्मृतम्। चक्रं महत्तरं दिव्यं सर्वज्ञाद्याः प्रकीर्तिताः॥९२॥
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदायिनी। सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी॥९३॥
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरी तथा। सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी॥९४॥
सर्वेप्सितप्रदा चैता निर्गर्वा योगिनीश्वराः॥९५॥
मालिनी चक्रिणी प्रोक्ता मुद्रा सर्वमहांकुशा। इति चिन्तामणि गृहे सर्वज्ञाद्यन्तरावधि।
चक्राणि कानिचित्प्रोक्तान्यन्यान्यपि मुने शृणु॥९६॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने चिन्तामणिगृहांतरकथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

वह चक्र महत्तर और दिव्य है तथा सर्वज्ञा आदि देवियों का चक्र बताया गया है।।९१-९२।। वे हैं—१. सर्वज्ञा, २. सर्वशक्ति, ३. सर्वैश्वर्यप्रदायिनी, ४. सर्वज्ञानमयी, ५. सर्वव्याधि विनाशिनी, ६. सर्वाधारस्वरूपा, ७. सर्वपापहरी, ८. सर्वानन्दमयी देवी, ९. सर्वरक्षास्वरूपिणी, १०. सर्वेप्सितप्रदा। इस प्रकार ये गर्वहीन योगिनीश्वरा देवियाँ हैं।।९३-९५।। मालिनी और चक्रिणी इस चक्र की रक्षिका हैं तथा सर्वमहांकुशा इस चक्र की मुद्रा है। इस प्रकार हे मुने! चिन्तामणि गृह में सर्वज्ञादि जो देवियाँ जिनके अन्तर्गत हैं, उन चक्रों का वर्णन किया गया, अब आगे अन्यों का भी वर्णन सुनिये।।९६।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३६वाँ अध्याय चिन्तामणि गृह के अन्दर की कथा का वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖
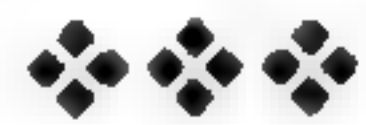
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

गृहराजान्तर्कथनं नाम

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

सर्वज्ञाद्यंतरालस्योपरिष्टात्कलशोद्भव। हस्तविंशतिरुन्नश्चं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्॥१॥
वशिन्याद्यन्तरं ज्ञेयं प्राग्वत्सोपानमंदिरम्। सर्वरोगहरं नाम्ना तच्चक्रमिति विश्रुतम्॥२॥
वशिन्याद्यस्तत्र देव्यः पूर्वादिदिगनुक्रमात्। स्वरैस्तु रहितास्तत्र प्रथमा वशिनीश्वरी॥३॥
कवर्गसहिता पश्चात्कामेश्वर्याख्यवाङ्मयी। चवर्गजुष्टा वागीशी मेदिनी स्यात्तृतीयका॥४॥
टवर्गमंडिताकारा विमलाख्या सरस्वती। तवर्गेण तथोपेता पञ्चमी वाक्प्रधारणा॥५॥
पवर्गेण परिस्फीता षष्ठी तु जयिनी मता। यादिवर्णचतुष्कोणे सर्वैश्वर्यादिवाङ्मयी॥६॥
साधिकाक्षरषट्केन कौलिनी त्वष्टमी मता। एता देव्यो जपरता मुक्ताभरणमंडिताः॥७॥
सदास्फुरद्गद्यपद्यलहरीलालिता मताः। काव्यैश्च नाटकैश्चैव मधुरैः कर्णहारिभिः।
विनोदयन्त्यः श्रीदेवीं वर्तंते कुम्भसम्भव॥८॥
एता रहस्यनाम्नैव ख्याता वातापितापन। नायिका स्वस्य चक्रस्य सिद्धानाम्ना प्रकीर्तिता॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–३७

गृहराज के अन्दर का कथन

हयग्रीव बोले—हे कलश से उत्पन्न अगस्त्य जी! सर्वज्ञादि अन्तराल के ऊपर बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला सर्वरोगहर नामक चक्र है, जो सब रोग हरने वाला है। जिसके अन्तर्गत वशिनी आदि शक्तियाँ समझनी चाहिएँ तथा उसमें पूर्व की भाँति सीढ़ियाँ और घर बने हुए हैं।।१-२।। वहाँ उस चक्र में पूर्व वर्णित दिशाओं के क्रम से वशिनी आदि देवियाँ हैं। स्वरों वाली वहाँ प्रथम वशिनी देवी हैं, जिसमें अ से लेकर अः तक के सब स्वर आ जाते हैं।।३।। उसके बाद कवर्ग (क ख ग घ ङ) सहित दूसरी कामेश्वरी नाम की वाग्देवी है। च वर्ग (च छ ज झ ञ) से युक्त तीसरी मोदिनी नाम की वाग् देवी है।।४।। ट वर्ग (ट ढ ड ढ ण) मण्डित आकार वाली चौथी विमला नाम की सरस्वती देवी है। त वर्ग (त थ द ध न) वर्णों से युक्त पाँचवीं वाक् प्रधारणा देवी है।।५।।

प वर्ग (प फ ब भ म) वर्णों से सजी हुई छठी जयिनी देवी मानी गयी हैं। यदि (य व र ल) चतुष्कोण रूप वर्णों वाली सातवीं सर्वैश्वर्यादि वाङ्मयी देवी हैं।।६।। स वर्ण वाले (श ष स ह) वर्णों वाली आठवीं तो कौलिनी देवी मानी गयी हैं। मोतियों के आभूषणों से सजी हुई ये देवियाँ ललिता देवी के जप में लगी हुई हैं।।७।। वे सब देवियाँ पद्यगद्य लहरी (झाल-मजीरा आदि वाद्यों के साथ) गाने वाली मानी गयी हैं। अतः हे घड़े से उत्पन्न अगस्त्य जी! वे सब काव्य, नाटक और कानों को मधुर लगने वाले स्वरों से ललिता देवी का मनोरंजन करती रही हैं।।८।। हयग्रीव ने कहा कि वातापि नामक राक्षस को खाकर पचाने वाले अगस्त्य जी! ये सब रहस्य नाम से ही ख्यात देवियां

अस्य चक्रस्य संरक्षाकारिणी खेचरी मता। वशिन्याद्यंतरालस्योपरिष्टाद्विंध्यमर्दन॥१०॥
हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्। अस्त्रं चक्रमिति ज्ञेयं तत्र बाणादिदेवताः॥११॥
पञ्च बाणेश्वरीदेव्यः पञ्च कामेश्वराशुगाः। अंकुशद्वितयं दीप्तमादिस्त्रीपुंसयोर्द्वयोः॥१२॥
धनुर्द्वयं च विंध्यारे नव पुंड्रेषु कल्पितम्। पाशद्वयं च दीप्ताभं चत्वार्यस्त्राणि कुम्भज॥१३॥
कामेश्वर्यास्तु चत्वारि चत्वारि श्रीमहेशितुः।
आहत्याष्टायुधानीति प्रज्वलन्ति विभांति च॥१४॥
भण्डासुरमहायुद्धे दुष्टदानवशोणितैः। पीतैरतीव तृप्तानि दिव्यास्त्राण्यति जाग्रति॥१५॥
एतेषामायुधानां तु परिवारायुधान्यलम्। वर्ततेऽस्त्रांतरे तत्र तेषां संख्या तु कोटिशः॥१६॥
वज्रशक्तिः शतघ्नी च भुशुण्डी मुसलं तथा।
कृपाणः पट्टिशं चैव मुद्गरं भिन्दिपालकम्॥१७॥
एवमादीनि शस्त्राणि सहस्राणां सहस्रशः। अष्टायुधमहाशक्तीः सेवंते मदविह्वलाः॥१८॥
अथ शस्त्रांतरालस्योपरि वातापितायन। हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
धिष्ण्यं तु समयेशीनां स्थानं च तिसृणां मतम्॥१९॥
कामेशाद्यास्तत्र देव्यस्तिस्त्रोऽन्या तु चतुर्थिका।
सैव निःशेषविश्वानां सवित्री ललितेश्वरी॥२०॥
तिसृणां शृणु नामानि कामेशी प्रथमा मता। वज्रेशी भगमाला च ताः सेवन्ते सहस्रशः॥२१॥

कही गयीं हैं। अपने अपने चक्र की सिद्धा नाम की देवी कही गयी हैं। इस सर्वज्ञादि चक्र की रक्षा करने वाली खेचरी मानी गयी हैं।।८½।। उसके बाद हयानन जी बोले कि हे विन्ध्यपर्वत का मर्दन करने वाले अगस्त्यजी! वशिनी आदि देवियों के अन्तराल से ऊपर से बीस हाथ ऊंचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला अस्त्रचक्र समझना चाहिए तथा वहाँ पर वाण आदि देवता हैं।।८½-११।। वहाँ पर पांच वाणेश्वरी देवियाँ हैं और पांच कामेश्वरी शीघ्र गमन करने वाली देवियाँ हैं। उनमें अंकुश वाली दो हैं, आदि स्त्री और आदि पुरुष की दीप्त आदि दो हैं। दो धनुष हैं, जो नौ पुण्ड्र में कल्पित हैं। दो दीप्त आभा वाले पाश हैं। इस प्रकार हे अगस्त्य जी! चार प्रकार के अस्त्र हैं।।१२-१३।। इनमें चार कामेश्वरी देवी के हैं और चार श्री माहेश्वरी देवी के हैं। इस प्रकार इन आठ आयुधों को लेकर ये देवियाँ प्रज्वलित होती हैं और सुशोभित होती हैं।।१४।। भण्डासुर महायुद्ध में दुष्ट दानवों के रक्तों के पीने से वे अत्यन्त तृप्त दिव्य अस्त्र वहाँ उस चक्र में जागते रहते हैं।।१५।। इन आयुधों के अनेकों आयुध परिवार हैं, वे सब अस्त्रों के बीच में विद्यमान हैं तथा उनकी संख्या करोड़ों में है।।१६।। वे हैं—वज्रशक्तिः, शतघ्नी, भुशुण्डी, मुसल, कृपाण, पट्टिश (वज्र), मुद्‌गर, भिन्दिपालक।।१७।। इस प्रकार ये शस्त्र हजारों हजार की संख्या में हैं। इस प्रकार ये आठ आयुध महाशक्तियाँ मद से विह्वल माँ ललितेश्वरी की सेवा करती रहती हैं।।१८।। इसके बाद शस्त्रान्तराल के ऊपर वातपितापन चक्र है, जो बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला है, वहाँ समयेशी देवियों का हवनकुण्ड है और तीन का स्थान माना गया है।।१९।। वहाँ पर कामेशी आदि तीन देवियाँ हैं, अन्य चौथी देवी हैं। वही समस्त विश्व की रचना करने वाली ललितेश्वरी देवी हैं।।२०।। उन तीनों के नामों को सुनिये,

सर्वेषां दर्शनानां च या देव्यो विविधाः स्मृताः।
ताः सर्वास्तत्र सेवन्ते कामेशादिमहोदयाः॥२२॥
एतासां च प्रसंगेषु नित्यानां च प्रसज्ञने। चक्रिणीनां योगिनीनां श्रीदेवी पूरणात्मिका॥२३॥
या कामेश्वरदेवांकशायिनी ललितांबिका। कामेश्यादिचतुर्थी सा नित्यानां षोडशी मता॥२४॥
योगिनी चक्रदेवीनां नवमी परिकीर्तिता। समयेश्यन्तरालस्योपरिष्टादिल्वलांतक॥२५॥
नाथांतरमिति प्रोक्तं हस्तविंशतिरुन्नतम्। चतुर्नल्वप्रविस्तारं प्राग्वत्सोपानमण्डितम्॥२६॥
तत्र नाथामहादेव्या योगशास्त्रप्रवर्त्तकाः। सर्वेषां मन्त्रगुरवः सर्वविद्यामहार्णवाः॥२७॥
चत्वारो योगनाथाश्च लोकानामिहगुप्तये। सृष्टाः कामेशदेवेन तेषां नामानि मे शृणु॥२८॥
मित्री च शोडिशश्चैव चर्याख्यः कुम्भसम्भव।
तैः सृष्टा बहवो लोका रक्षार्थं पादुकात्मकाः॥२९॥
दिव्यविद्या मानवौघसिद्धौघाः सुरतापसाः।
प्राप्तसालोक्यसारूप्यसायुज्यादिकसिद्धयः ॥३०॥
महान्तो गुरवस्तांस्तु सेवन्ते प्रचुरा गुरून्। अथ नाथांतरालस्योपरिष्टाद्धिष्ण्यमुत्तमम्॥३१॥
हस्तविंशतिरुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्। नित्यान्तरमिति प्रोक्तं नित्याः पंचदशात्र वै॥३२॥
अथ कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी।
नित्यक्लिन्ना अपि तथा भेरुण्डा वह्निवासिनी॥३३॥

उनमें कामेशी प्रथमा मानी गयी है। दूसरी वज्रेशी है और तीसरी भगमाला हैं, वे सब हजारों देवियाँ ललितेश्वरी की सेवा करती हैं।।२१।। सबके दर्शनों की जो देवियां हैं, वे अनेकों प्रकार की स्मरण की गयी हैं, वे सब कामेशादि महोदया देवियाँ वहाँ ललितेश्वरी की सेवा करती हैं।।२२।। इन सबके प्रसङ्गों में और नित्या देवियों के चक्रिणी योगिनियों के प्रसङ्ग में श्रीदेवी पूर्ण आत्मा वाली हैं।।२३।। जो कामेश्वर देव की गोद में शयन करने वाली ललिताम्बिका है, कामेशी आदि चतुर्थी है, वह नित्यों की सोलहवीं मानी गयी है।।२४।। चक्रदेवियों की योगिनी नवमी मानी गयी है।।२४½।। समयेशी आदि के अन्तराल से ऊपर मृगशिरा नक्षत्र के अन्त तक नाथान्तर चक्र कहा गया है, जो बीस हाथ ऊँचा और चार नल्व (सोलह सौ हाथ) विस्तार वाला है तथा पूर्व अन्तरालों के समान द्वार अर्गला, कपाट एवं सीढ़ियों से सजा हुआ है।।२४½-२६।।

वहाँ पर योगशास्त्र की प्रवर्तक नाथा महादेवियाँ हैं। जो सबकी मन्त्रगुरु और सब विद्याओं की महासागर अर्थात् वे नाथा महादेवियाँ सब मन्त्रों की गुरु तथा सब विद्याओं की सागर हैं।।२७।। इन सोलहों की रक्षा करने के लिये भगवान् कामेश्वर देव ने चार योगनाथों की सृष्टि की है। उनके नामों को सुनिये।।२८।। मित्री, शोडिश, चर्य नामक, उन्होंने संसार की रक्षा के लिए पादुकात्मक अनेकों लोकों की रचना की।।२९।। दिव्य विद्या मानवौघ, सिद्धौघ और तपस्वी, देव, समान प्रकाश, समान रूप और समान घनिष्ठता, मेल-जोल प्राप्त सिद्धियाँ और महान् गुरु उन सबसे श्रेष्ठ गुरु ललितेश्वरी की सेवा करते हैं।।३०-३०½।। इसके बाद नाथा अन्तराल के ऊपर उत्तम यज्ञवेदी है, जो बीस हाथ ऊँची और वहाँ चार नल्व विस्तार वाला नित्यान्तर चक्र कहा गया, जहाँ कि पन्द्रह नित्या देवियाँ कही गयी हैं।।३०½-३२।। वे हैं—१. कामेश्वरी नित्या, ३. भगमालिनी नित्या, ३. क्लिन्ना नित्या, ४. भरुण्डा नित्या, ५.

महावज्रेश्वरी दूती त्वरिता कुलसुन्दरी। नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला॥३४॥
ज्वालामालिनिका चित्रेत्येताः पंचदसोदिताः एता देवीस्वरूपाः स्युर्महाबलपराक्रमाः॥३५॥
प्रथमा मुख्यतिथितां प्राप्ता व्याप्य जगत्रयाः। कालत्रितयरूपाश्च कालग्रासविचक्षणा;॥३६॥
ब्रह्मादीनामशेषाणां चिरकालमुपेयुषाम्। तत्तत्कालशतायुष्यरूपा देव्याज्ञया स्थिताः॥३७॥

नित्योद्यता निरांतकाः श्रीपराङ्गसमुद्भवाः।
सेवन्ते जगतामृद्ध्यै ललितां चित्स्वरूपिणीम्॥३८॥

तासां भवनतां प्राप्ता दीप्ताः पंचदशेश्वराः। विसृष्टिबिंदुचक्रे तु षोडश्या भवनं मतम्॥३९॥
अथ नित्यांतरालस्योपरिष्टात्कुम्भसम्भव। अङ्गदेव्यंतरं प्रोक्तं हस्तविंशतिरुन्नतम्॥४०॥
चतुर्नल्वप्रविस्तारं प्राग्वत्सोपानमंदिरम्। तस्मिन्हृदयदेव्याद्याः शक्तयः संति वै मुने॥४१॥
हृद्देवी च शिरोदेवी शिखादेवी तथैव च। वर्मदेवी दृष्टिदेवी शस्त्रदेवी षडीरिताः॥४२॥
अत्यंतसन्निकृष्टास्ताः श्रीकामेश्वरसुभ्रुवः। नवलावण्यपूर्णाग्यः सावधाना धृतायुधाः॥४३॥

वह्निवासिनी नित्या, ६. महावज्रेश्वरी नित्या, ७. दूती नित्या, ८. त्वरिता नित्या. ९. कुल सुन्दरी नित्या, १०. नीलपताका नित्या, ११. नित्यानित्या, १२. विजया नित्या, १३. सर्वमङ्गला नित्या, १४. ज्वालामालनिका नित्या, १५ चित्रा नित्या। ये सब देवी स्वरूप हैं और महा बल और पराक्रम वाली देवियाँ हैं।।३३-३५।। ये पन्द्रहों देवियाँ प्रथमा, द्वितीया, तृतीया आदि मुख्य तिथियों को प्राप्त होकर तीनों लोकों में व्याप्त हैं तथा तिथियाँ नित्य रहती हैं, इसलिए उपर्युक्त कामेश्वरी आदि देवियाँ नित्या कही गयी हैं। अतः क्रम से इन्हें तिथियों के अनुसार गिना जा सकता है, जैसे कि कामेश्वरी प्रथमा, भगमालिनी द्वितीया, नित्यक्लिन्ना तृतीया, मेरुण्डा चतुर्थी, वह्निवासिनी पंचमी, महावज्रेश्वरी षष्ठी (छठ), शिवदूती नित्या सप्तमी (सातवीं), कुलसुन्दरी नित्या अष्टमी, त्वरिता नित्या नवमी, नित्यानित्या दशमी, नीलपताका नित्या एकादशी, विजया नित्या द्वादशी, श्रीमंगला नित्या त्रयोदशी, ज्वालामालिनी नित्या चतुर्दशी तथा चित्रा नित्या पूर्णिमा अथवा अमावस्या। ये तिथिगत देवियाँ भूत-भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में रहने वाली तथा काल को ग्रास करने में अत्यन्त कुशल हैं अथात् समय को खाती चली जाती हैं, समय बीतता जाता है।।३६।। इन कालरूप तिथिरूप देवियों के लिए ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने बहुत समय तक देवी की उपासना की, तब ललितेश्वरी देवी की आज्ञा से उस-उस समय की सौवर्ण आयुरूप ये स्थित हुईं।।३७।। ये सब श्री परादेवी ललितेश्वरी के अंग से उत्पन्न हुई देवियाँ नित्य उद्यत हो, आतंक रहित होकर संसार की समृद्धि के लिए चित् स्वरूपिणी ललिता देवी की सेवा करती हैं।।३८।।

ये पन्द्रहों तिथियों की ईश्वरी देवियाँ उन ललिता देवी के भवनत्व को प्राप्त हो गयी हैं, अर्थात् पन्द्रहों तिथियाँ उन परमेश्वरी ललिता देवी के भवन हैं। सृष्टिचक्र के बिन्दु में तो षोडशी देवी श्रीललिता का भवन माना गया है।।३९।। हयानन बोले कि अगस्त्य जी! इसके बाद नित्यान्तराल के ऊपर अङ्गदेवी का अन्तराल कहा गया है तथा पूर्व अन्तरालों की भाँति उसमें भी सब मुख्य द्वार कपाट, अर्गला और सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उस भवन में हृदय देवी आदि अनेकों शक्तियाँ हैं।।४०-४१।। वे हैं—१. हृद्देवी, २. शिरो देवी, ३. शिखा देवी, ४. वर्म देवी, ५. दृष्टि देवी, ६. शस्त्र देवी, ये छः देवियाँ हैं।।४२।। वे सब देवियाँ सुन्दर भौंहों वाले श्री कामेश्वर के अत्यन्त सन्निकट हैं। ये सब नवीन सौन्दर्य से भरपूर और आयुध धारण करने वाली और सावधान हैं।।४२-४३।।

परितो बिन्दुपीठे च भ्राम्यन्तो दृप्तमूर्तयः। ललिताप्राज्ञाप्रवर्तिन्यो वशीनां पीठवर्तिकाः॥४४॥
अथांगदेव्यन्तरस्योपरिष्टान्मण्डलाकृति। बिन्दुनाद महापीठं दशहस्तसमुन्नतम्॥४५॥
नल्वाष्टकप्रविस्तारमुद्यदादित्यसंनिभम्। बिन्दुपीठमिदं ज्ञेयं श्रीपीठमपि चेष्यते॥४६॥
महापीठमिति ज्ञेयं विद्यापीठमपीष्यते। आनन्दपीठमपि च पंछाशत्पीठरूपधृक्॥४७॥
तत्र श्रीललितादेव्याः पंचब्रह्ममयं महत्। जागर्ति मञ्चरत्नं तु प्रपंचत्रयमूलकम्॥४८॥
तस्य मञ्चस्य पादास्तु चत्वारः परिकीर्तिताः। दशहस्तसमुन्नम्रा हस्तत्रितयविष्ठिता;॥४९॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानेश्वररूपत्वमागताः। शक्तिभावमनुप्राप्ताः सदा श्रीध्यानयोगतः॥५०॥
एकस्तु पंचपादः स्याज्जपाकुसुमसन्निभः। ब्रह्मात्मकः स विज्ञेयो वह्निदिग्भागमाश्रितः॥५१॥
चतुर्थो मंचपादस्तु कर्णिकारकसाररुक्। ईश्वरात्मा स विज्ञेय ईशदिग्भागमाश्रितः॥५२॥
एते सर्वे सायुधाश्च सर्वालंकारभूषिताः। उपर्यधःस्तंभरूपा मध्ये पुरुषरूपिणः॥५३॥
श्रीध्यानमीलिताक्षाश्च श्रीध्यानान्निश्चलांगकाः। तेषामुपरि मंचस्य फलकस्तु सदाशिवः॥४॥
विकासिदाडिमच्छायश्चतुर्नल्वप्रविस्तरः। नल्वषट्कायामवांश्च सदा भास्वरमूर्तिमान्॥५५॥
अंगदेव्यांतरारंभान्मंचस्य फलकावधि। चिंतामणिमयांगानि तत्त्वरूपाणि तापस॥५६॥
सोपानानि विभासंते षट्त्रिंशद्वै निवेशनैः। आरोहस्य क्रमेणैव सोपानान्यभिदध्महे॥५७॥
भूमिरापोऽनलो वायुराकाशो गन्ध एव च। रसो रूपं स्पर्शशब्दोपस्थपायुपदानि च॥५८॥

तथा ये दृप्त मूर्तियों वाली देवियाँ बिन्दुपीठ के चारों ओर घूमती रहती हैं, बिन्दु पीठ की रक्षा करने वाली ये देवियाँ ललिता देवी की आज्ञा को संसार में लागू कराने वाली हैं।।४४।। अंग देवी अन्तराल के ऊपर मण्डलाकार बिन्दुनाद महापीठ है, जो दश हाथ ऊँचा और आठ नल्व (बत्तीस सौ हाथ) विस्तार वाला उदित सूर्य के समान है। इस बिन्दुनाद महापीठ को ही श्री पीठ समझना चाहिए, यही श्रीपीठ है।।४५-४६।। इसको ही महापीठ जानना चाहिए, यही विद्यापीठ है, आनन्दपीठ भी इसे ही कहा जायेगा तथा यही पचास पीठ के रूपों को धारण करने वाला है।।४७।। वहाँ ललिता देवी के पंचब्रह्ममय में महान् प्रपंचत्रयमूलक मञ्चरत्न प्रकाशित है।।४७-४८।।

उस मञ्च के चार पैर कहे गये हैं, जो दश हाथ ऊँचे तथा तीन हाथ मोटे हैं।।४९।। ब्रह्मा, विष्णु और महेश ईश्वर के रूप में आकर ललितेश्वरी शक्ति के ध्यान में भावविभोर होकर उनका ध्यान करते हैं।।५०।। एक तो मंचपाद जपा के पुष्प के समान है, जिसे ब्रह्मात्मक पाद जानना चाहिए। जो अग्निदिशा आग्नेय दिशा की ओर आश्रित है।।५१।। चौथा मंचपाद तो कर्णिकार (अमलतास) की सार वाला है। उसे ईश्वरात्मा जानना चाहिए, वह ईशान दिशा के भाग में आश्रित है।।५२।। ये सब आयुध सब अलंकारों से भूषित हैं। ऊपर नीचे स्तम्भरूप हैं तथा मध्य में पुरुष रूप वाले हैं अर्थात् ऊपर नीचे खम्भे के रूप में हैं और बीच में पुरुष के आकार में हैं।।५३।। वे श्रीललितेश्वरी के ध्यान में आँखें बन्द किये हुए श्रीदेवी के ध्यान में अपने अंगों को बिल्कुल बिना हिलाये-डुलाये हुए स्थित हैं।।५३½।। उनके ऊपर मंच का फलक सदाशिव है, जो खुले हुए अनार की कान्ति के समान चार नल्व (सोलह सौ) हाथ विस्तार वाला तथा नौ नल्व (छत्तीस सौ हाथ) आयाम वाला सदा चमकता हुआ मूर्तिमान है।।५३½-५५।। अंगदेव्यन्तराल के आरम्भ से मंच के फलक की अवधि तक चिन्तामणि रत्नमय अंग तत्त्वरूप है। वहाँ छत्तीस निवेशनों के साथ सीढ़ियाँ सुशोभित होती हैं, जो आरोहण के क्रम से सीढ़ियाँ हम देखते हैं।।५६-५७।। भूमि, जल, अग्नि, वायु

पाणिवाग्घ्राणजिह्वाश्च त्वक् चक्षुः श्रोत्रमेव च। अहंकारश्च बुद्धिश्च मनः प्रकृतिपूरुषौ।।५९।।
नियतिः कालरागौ च कला विद्ये च मायया।
शुद्धा विद्येश्वरसदाशिवशक्तिः शिवा इति।।६०।।
एताः षट्त्रिंशदाख्यातास्तत्त्वसोपानपंक्तयः। पूषा सोपानपंक्तिश्च मञ्चपूर्वादिशं श्रिता;।।६१।।
अथ मञ्चस्योपरिष्टाद्धंसतूलिकतल्पकः। हस्तमात्रं समुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।।६२।।
पादोपधानमूर्धोपधान द्वंद्वविराजितम्। गड्डुकानां चतुःषष्टिशोभितं पाटलत्विषा।।६३।।
तस्योपरिष्टात्कौसुंभवसनेनोत्तरच्छदः। शुचिना मृदुना क्लृप्तः पद्मरागमणित्विषा।।६४।।
तस्योपरि वसन्पूर्वदिङ्मुखो दययान्वितः। शृंगारवेषरुचिरस्सदा षोडशवार्षिकः।।६५।।
उद्यद्भास्करबिंबाभश्चतुर्हस्तस्त्रिलोचनः। हारकेयूरमुकुटकटकाद्यैरलंकृतः।।६६।।
कमनीयस्मितज्योत्स्नापरिपूर्णकपोलभूः। जागर्ति भगवानादिदेवः कामेश्वरः शिवः।।६७।।
तस्योत्संगे समासीना तरुणादित्यपाटला। सदा षोडशवर्षा च नवयौवनदर्पिता।।६८।।
अमृष्टपद्मरागाभा चन्दनाब्जनखच्छटा। यावकश्रीर्निर्व्यपेक्षा पादलौहित्यवाहिनी।।६९।।
कलनिस्वानमञ्जीरपतत्कंकणमोहना। अनङ्गवरतूणीरदर्पोन्मथनजंघिका।।७०।।
करिशुण्डोःकदलिकाकांतितुल्योरुशोभिनी। अरुणेन दुकूलेन सुस्पर्शेन तनीयसा।
अलंकृतनितंबाढ्या जघनाभोगभासुरा।।७१।।

और आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द, उपस्थ, पायु, पैर, हाथ, वाणी, नासिका, जिह्वा, त्वचा, चक्षु, श्रोत्र, अहंकार, बुद्धि, मन, प्रकृति और पुरुष समस्त पच्चीस तत्त्व नियति, काल, राग, कली, विद्या, माया, शुद्धा, विद्येश्वर, सदाशिव, शक्ति, शिवा ये छत्तीस सीढ़ियाँ तत्त्वसोपान पंक्तियाँ हैं। पूषा सोपान पंक्तियों (पूषा नामक सीढ़ियों की पंक्तियों) वाली मंच पूर्व दिशा में आश्रित हैं।।५८-६१।। इसके बाद उस मंच के ऊपर हंसों से चित्रित गद्दी (आसव चबूतरा) है, जो एक हाथ ऊँचा और चार नल्व लम्बा है।।६२।। जिस पर पादोपधान (पैरों का तकिया) और मूर्धोपधान (शिर की तरफ का तकिया) दोनों विराजित हैं तथा वह आसन गुलाब के फूल की कान्ति से युक्त चौंसठ सोने के बर्तनों से सुशोभित है।।६३।। उसके ऊपर गेरुआ वस्त्र पहने हुए कोमल गन्ध से युक्त, पद्मराग मणि की कान्ति से युक्त, उसके ऊपर रहते हुए पूर्व दिशा की ओर मुख किये हुए, दया से युक्त, सदा सुन्दर लगने वाले शृंगार वेष वाले षोडश, वर्षीय उदित होते हुए सूर्य बिम्ब की आत्मा वाले, चार हाथ और तीन नेत्रों वाले, हार कंगन मुकुट कर्धनी आदि अलंकारों से अलंकृत, कमनीय मुस्कान रूप चाँदनी से परिपूर्ण कपोल वाले, भगवान् आदिदेव कामेश्वर शिव जाग रहे हैं।।६४-६७।। उनकी गोद में श्री ललितेश्वरी कामेश्वरी बैठी हुई हैं, जो तरुण सूर्य की आभा के समान पाटल (लाल) वर्ण की हैं तथा वे सदा सोलह वर्ष की बनी रहने वाले नवयौवन से गर्वित हैं।।६८।।

उनके शरीर की कान्ति बिना मसले हुए कमल की आभा के समान है, उनके नाखून चन्दन और कमल की शोभा से युक्त हैं, बिना महावर लगाये हुए उनके चरणकमलों पर महावर की लालिमा विद्यमान है।।६९।। कलकल शब्द करते हुए पैरों में घुंघरू और हाथों में कंगन मोहित करने वाले हैं। उनकी जंघायें कामदेव के श्रेष्ठ तरकश के दर्प को बता रही हैं। अर्थात् उनकी जंघाएँ इतनी सुन्दर हैं कि वे कामदेव के अपार बाणों को दर्शा रही हैं। उनकी जंघाओं को देखकर कामदेव के बाण लगते ही रहेंगे, वे समाप्त नहीं होंगे।।७०।। हाथी की सूंड तथा केले के स्तम्भ

अर्धोरुकग्रंथिमती रत्नकांचीविराजिता। नूतनाभिमहावर्तत्रिवल्यूर्मिप्रभासरित्॥७२॥
स्तनकुड्मलहिंदोलमुक्तादामशतावृता। अतिपीवरवक्षोजभारभंगुरमध्यमभूः॥७३॥
शिरीषदाममृदुलच्छादाभांश्चतुरो भुजान्॥७४॥
केयूरकंकणश्रेणीमंडितान्सोर्मिकाङ्गुलीन्। वहंती पतिसंमृष्टशंखसुन्दरकंधरा॥७५॥
मुखदर्पण वृत्ताभचिबुका पाटलाधरा। शुचिभिः पंक्तिशुद्धैश्च विद्यारूपैर्विभास्वरैः।
कुन्दकुड्मललक्ष्मीकैर्दंतैर्दर्शितचन्द्रिका॥७६॥
स्थूलमौक्तिकसनद्धनानाभरणभासुरा। केतकांतर्दलश्रोणी दीर्घदीर्घविलोचना॥७७॥
अर्धेन्दुललिते भाले सम्यक्क्लृप्तालकच्छटा। पालीवतं समाणिक्यकुण्डलामंडितश्रुतिः॥७८॥
नवकर्पूरकस्तूरीसदामोदितवीटिका। शरच्चन्द्रनिसानाथमण्डलीमधुरानना॥७९॥
चिन्तामणीनां सारेण क्लृप्तचारुकिरीटिका। स्फुरत्तिलकरत्नाभभालनेत्रविराजिता॥८०॥
गाढांधकारनिबिडक्षामकुन्तलसंहतिः। सीमन्तरेखाविन्यस्तसिंदूरश्रेणिभासुरा॥८१॥
स्फुरच्चंद्रकलोत्तंसमदलोलविलोचना। सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता॥८२॥
समस्तलोकमाता च सदानन्दविवर्धिनी। ब्रह्मविष्णुगिरीशेशसदाशिवनिदानभूः॥८३॥

के समान कान्ति की शोभा वाली उनकी दोनों जंघाएँ हैं, छूने में अत्यन्त सुन्दर, फैले हुए लाल दुपट्टे से अलंकृत नितम्ब वाली जंघाओं के विस्तार से सुन्दर दिखायी देने वाली वे देवी हैं।।७१।। वे आधी जंघाओं पर गाँठ वाली सोने की कर्धनी पहने हुए विराजित हैं। झुकने पर उनकी नाभि का जो गर्त है, वह तथा उनकी कमर में पड़ने वाली तीन रेखाएँ भँवरों वाली नदी की शोभा वाली है।।७२।। उनके स्तन खिले हुए फूल के समान झूलते हुए सैकड़ों मोतियों की कान्ति से आवृत हैं और अत्यन्त मोटे स्तनों के भार से वे भूमि की ओर झुकी हुई हैं।।७३।। शिरीष पुष्प की कान्ति से कोमल पत्र की आभा वाली उनकी चार भुजाएँ हैं।।७४।। बाजूवन्द, कंगन, की पंक्तियों से मण्डित हाथों और अंगूठियों वाली उनकी अंगुलियाँ हैं अर्थात् वे हाथों में बाजूवंद और कंगन पहने हुए हैं तथा सब अंगुलियों में अंगूठियाँ पहने हुए हैं तथा वे अपने पति कामेश्वर शिव से अपनी शंख के समान सुन्दर गर्दन चिपकाये हुए हैं।।७५।। उनके मुखरूपी दर्पण में गुलाब के समान ठोड़ी और अधर अत्यन्त सुशोभित हैं। वे श्वेत पंक्तियों और विद्यारूप चमकते हुए खिले हुए चमेली के फूल के समान सुशोभित दाँतों से चाँदनी फैला रही हैं।।७६।।

वे मोटे-मोटे मोतियों से युक्त अनेकों प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं। केतकी (केवड़े) के पत्र के समान उनकी कमर है, बड़ी-बड़ी उनकी आँखें हैं।।७७।। उनके मस्तक पर आधे चन्द्रमा सुशोभित हैं, जो सँवारे हुए केशों की शोभा बढ़ा रहे हैं। उनके कान में माणिक्य जड़ा हुआ कुण्डल सुशोभित है, अर्थात् माणिक्यजटित कुण्डल से मण्डित उनका कान है।।७८।। नवीन कपूर और कस्तूरी की सुगन्ध से उनकी चोली सदा सुगन्धित रहती है। शरत्कालीन चन्द्रमण्डल के समान मधुर उनका मुख है।।७९।। चिन्तामणियों के सार (अर्थात् सुन्दर चिन्तामणि) नामक अमूल्य पत्थरों से सजा हुआ, उनका मुकुट है। चमकते हुए तिलकरूप रत्न की आभा वाला मस्तक पर नेत्र विराजित है।।८०।। घोर काले अन्धकार से आवृत घर के अन्धकार के समान उनके घुंघराले बाल हैं, मस्तक पर सीमन्त रेखा (मांग) सिन्दूर की पंक्ति चमक रही है।।८१।। चमकती हुई चांदनी के समान मदयुक्त उनके चञ्चल नेत्र हैं। इस प्रकार वे देवी सब शृंगारों से सजी हुई और सब आभूषणों से भूषित हैं।।८२।। वे समस्त संसार की माता

अपांगरिखत्करुणानिर्झरीतर्पिताखिला। भासते सा भगवती पापघ्नी ललितांबिका॥८४॥
अन्यदैवतपूजानां यस्याः पूजाफलं विदुः। यस्याः पूजाफलं प्राहुर्यस्या एव हि पूजनम्॥८५॥
तस्याश्च ललितादेव्या वर्णयामि कथं पुनः। वर्षकोटिसहस्रेणाप्येकांशो वर्ण्यते न हि॥८६॥
वर्ण्यमाना ह्यवाग्रूपा वाचस्तस्यां कुतो गतिः। यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह॥८७॥
बहुना किमिहोक्तेन तत्त्वभूतमिदं शृणु। न पक्षपातान्न स्नेहान्न मोहाद्वा मयोच्यते॥८८॥
संतु कल्पतरोः शाखा लेखिन्यस्तपसां निधे। मषीपात्राणि सर्वेऽपि सप्त संतु महार्णवाः॥८९॥
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा भूमिः पत्रत्वमृच्छतु। तस्य लेखनकालोऽस्तु परार्ध्याधिकवत्सरैः॥९०॥
लिखंतु सर्वे लोकाश्च प्रत्येकं कोटिबाहवः। सर्वे बृहस्पतिसमा वक्तारो यदि कुंभज॥९१॥
अथापि तस्याः श्रीदेव्याः पादाब्जैकाङ्गुलिद्युतेः। सहस्रांशेष्वेकैकांशवर्णना न हि जायते।
अथ वा वृत्तिरखिला निष्फला तद्गुणस्तुतौ॥९२॥
बिन्दुपीठस्य परितश्चतुरस्त्रवया स्थिता। महामाया जवनिकालम्वेत मेचकप्रभाः॥९३॥

(बनाने वाली) और सदा समस्त संसार का आनन्द वढ़ाने वाली हैं। वे व्रह्माविष्णु और शिव और सदाशिव की निदान भूमि हैं।।८३।। अपनी आँखों से वहती हुई करुणारूप निर्झरी से तर्पित, अर्थात् उनकी आँखों से करुणा सदैव झरती हुई दिखायी देती है, ऐसी वे पापों को नष्ट करने वाली भगवती ललिताम्विका आदिदेव कामेश्वर भगवान् शिव की गोद में वैठी हुई सुशोभित हो रही हैं।।८४।। अन्य देवताओं की पूजाओं में जिसका फल जानिये। जिसकी पूजा का फल जिसका पूजन ही कहा गया है।।८५।। हयानन ने कहा कि उन ललितादेवी की पूजा का फल उनका ही पूजन है, तव मैं उन ललिता देवी की पूजा का फल और पूजन कैसे वर्णन करूँ।।८५½।।

उनकी पूजा का फल और उनके पूजन का प्रकार यदि वर्णन किया जाये तो करोड़ों वर्षों में भी एक भाग भी नहीं वर्णन किया जा सकता।।८६।। वे देवी अवाग्रूपा हैं, अर्थात् वाणी से वर्णन करने योग्य ही नहीं हैं, फिर उनका वर्णन कैसे किया जा सकता है; क्योंकि वाणियाँ तो मन के साथ किसी विषय को न प्राप्त कर लौट आती हैं, अर्थात् जिस विषय एवं वस्तु की जव मन से कल्पना की जाती है, तव वाणी उसका वर्णन करती है। अतः जव मन ही उसकी कल्पना करने में असमर्थ है, तव वाणी कैसे वर्णन कर सकती है।।८७।। अव हयानन कहते हैं कि हे अगस्त्य जी! वहुत कहने से क्या लाभ? इस तत्त्वभूत रहस्य को सुनिये। मैं न किसी पक्षपात से न स्नेह से और न मोह से कह रहा हूँ। अर्थात् मैं यथार्थ कह रहा हूँ। मैं किसी पक्षपात, प्रेम अथवा मोह से नहीं कह रहा हूँ।।८८।। हे तपोनिधे! अगस्त्य जी! यदि कल्पवृक्ष की शाखाएँ लेखनी हो जायें तथा सव महासमुद्र स्याही के पात्र (दवात) बन जायें तथा पचास करोड़ योजन विस्तृत पृथ्वी कागज बन जाये और उसके लिखने का समय यदि परार्ध (एक शंख) वर्ष से भी अधिक होवे तथा करोड़ भुजाओं वाले समस्त संसार के लोग लिखें और वृहस्पति के समान सव यदि वक्ता होवें तो भी श्रीदेवी के चरणकमल की एक अंगुली की कांति का सहस्रांशों में से एक अंश का भी वर्णन नहीं हो सकता है। अथवा उनके गुणों की स्तुति में समस्त वृत्ति निष्फल है[1]।।८९-९२।। विन्दुपीठ के चारों ओर चार नदियों से स्थित मेघ के समान काले रंग का महामाया का पर्दा लटक

१. यह तो पूर्णतः सत्य है कि ललितेश्वरी (प्रकृति) के विषय में कोई नहीं जान सकता। आज विज्ञान इतना अधिक विकास कर गया है, फिर भी आज के वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि अभी प्रकृति के एक सहस्रांश का भी ज्ञान नहीं है। पूर्णज्ञान तो कदापि सम्भव नहीं है। वैज्ञानिकों को अधिक ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व ही प्रकृति सबकुछ समाप्त कर देगी।

देव्या उपरिहस्तानां विशंतिद्वितयोर्ध्वतः। इन्द्रगोपवितानं तु बद्धं त्रैलोक्यदुर्लभम्॥९४॥
तत्रालंकारजालं तु वर्तमानं सुदुर्लभम्। मद्वाणी वर्णयिष्यंती कंठ एव ह्रिया हता॥९५॥
सैव जानाति तत्सर्वं तत्रत्यमखिलं गुणम्। मनसोऽपि हि दूरे तत्सौभाग्यं केन वर्ण्यते॥९६॥
इत्थं भण्डमहादैत्यवधाय ललिताम्बिका। प्रादुर्भूता चिदनलाद्दग्धनिःशेषदानवा॥९७॥
दिव्यशिल्पिजनैः क्लृप्तं षोडशक्षेत्रवेशनम्। अधिष्ठाय श्रीनगरं सदा रक्षति विष्टपम्॥९८॥
इत्थमेव प्रकारेण श्रीपुराण्यन्यकान्यपि। न भेदकोऽपि विन्यासो नाममात्रं पुरां भिदा॥९९॥
नानावृक्षमहोद्यानमारभ्येतिक्रमेण ये। वदंति श्रीपुरकथां ते यांति परमां गतिम्॥१००॥
आकर्णयंति पृच्छंति विचिन्वंति च ये नराः।
ये पुस्तके धारयंति ते यांति परमां गतिम्॥१०१॥
ये श्रीपुरप्रकारेण तत्तत्स्थानविभेदतः। कृत्वा शिल्पिजनैः सर्वं श्रीदेव्यायतनं महत्।
संपादयंति ये भक्तास्ते यांति परमां गतिम्॥१०२॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने गृहराजांतरकथनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

रहा है।।९३।। उन देवी के ऊपर चालीस हाथ ऊर्ध्व से तीनों लोकों में दुर्लभ इन्द्रगोप वितान (तम्बू) तना हुआ।।९४।। वहाँ अलंकार का जाल बिछा हुआ है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। मेरी वाणी वर्णन करेगी तो कण्ठ ही लज्जा से नष्ट हो जायेगा। वहाँ के जितने गुण हैं, उनको वे ललिता देवी ही जानती हैं। जहाँ मन की गति भी नहीं पहुँच सकती, उस सौभाग्य का किसके द्वारा वर्णन किया जा सकता है।।९५-९६।। इस प्रकार भण्डासुर दैत्य के वध के लिये प्रकट हुई श्री ललिताम्बिका देवी चिद्रूप अग्नि से समस्त दैत्यों को जलाने वाली दिव्य शिल्पि लोगों द्वारा सोलह क्षेत्र वाले घरों को अधिष्ठित कर सदैव श्रीनगर विष्टप (आसन) की रक्षा करती हैं।।९७-९८।।

इसी प्रकार से अन्य श्रीपुर भी हैं। उनमें कोई भेद नहीं है, केवल नाम मात्र भेद से वे पुर हैं।।९९।। जो मनुष्य अनेकों प्रकार के वृक्षों, महोद्यानों से आरम्भ करके इस क्रम से श्रीपुर की कथा का वर्णन करते हैं, वे परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।।१००।। तथा जो मनुष्य इस कथा को सुनते हैं, पूछते हैं, इस कथा का चयन करते हैं तथा जो पुस्तक में धारण करते हैं, अर्थात् इस कथा पर पुस्तक लिखते हैं। वे भी परम गति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।।१०१।। जो मनुष्य श्रीपुर के प्रकार को पढ़कर उसके अनुसार स्थानों का विभेद कर शिल्पकारों द्वारा श्रीदेवी के महान् आयतन को बनवाते हैं, वे मनुष्य परम गति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।।१०२।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३७वाँ अध्याय गृहराज के अन्दर का कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी मे सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

मन्त्रराजसाधनकथनंनाम

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

श्रुतमेतन्महावृत्तमाविर्भावादिकं महत्। भंडासुरवधश्चैव देव्याः श्रीनगरस्थितिः॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तस्या मंत्रस्य साधनम्। तन्मन्त्राणां लक्षणं च सर्वमेतन्निवेदय॥२॥

हयग्रीव उवाच

सर्वेभ्योऽपि पदार्थेभ्यः शाब्दं वस्तु महत्तरम्। सर्वेभ्योऽपि हि शब्देभ्यो वेदराशिर्महान्मुने॥३॥
सर्वेभ्योऽपि हि वेदेभ्यो वेदमन्त्रा महत्तराः। सर्वेभ्यो वेदमन्त्रेभ्यो विष्णुमन्त्रा महत्तराः॥४॥
तेभ्योऽपि दौर्गमन्त्रास्तु महांतो मुनिपुङ्गव। तेभ्यो गाणपता मन्त्रा मुने वीर्य महत्तराः॥५॥
तेभ्योऽप्यर्कस्य मन्त्रास्तु तेभ्यः शैवा महत्तराः।
तेभ्योऽपि लक्ष्मीमन्त्रास्तु तेभ्यः सारस्वता वराः॥६॥
तेभ्योऽपि गिरिजामंत्रास्तेभ्यश्चाम्नायभेदजाः। सर्वाम्नायमनुभ्योऽपि वाराहा मनवो वरा;॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३८

मन्त्रराज साधन कथन

अगस्त्य मुनि बोले कि भगवन् हयग्रीव! मैंने इस श्री ललितादेवी के महान् महाचक्र का आविर्भाव आदि को, भण्डासुर वध को और देवी के नगर की स्थिति को सुना।।१।। अब हे भगवन्! मैं उसके मन्त्रसाधन को और उन मन्त्रों के लक्षणों को सुनना चाहता हूँ। कृपा करके उस सब को हमें बताइए।।२।।

हयग्रीव बोले कि अगस्त्य मुने! सव पदार्थों से शाब्द वस्तु महान् है, अर्थात् सब पदार्थों से शब्द महान् है तथा सव शब्दों से वेदराशि चारों विद् महान् हैं।।३।। सब वेदो से वेदमन्त्र महान् हैं तथा सब वेदमन्त्रों से विष्णुमन्त्र महान् है।।४।। उन विष्णु मन्त्रों से भी हे मुनिश्रेष्ठ! दुर्गा देवी के मन्त्र महान् हैं। उन दुर्गा मन्त्रों से भी हे मुनिवर! गाणपत्त (गणेश जी के स्तुति मन्त्र) महान् पराक्रम प्रदान करने वाले हैं।।५।। उन गाणपत मन्त्रों से भी सूर्य के मन्त्र महान् फलदायक हैं। उनसे भी शैव मन्त्र महान् हैं। उन शैवमन्त्रों से लक्ष्मी मन्त्र श्रेष्ठ है तथा लक्ष्मी मन्त्रो से सरस्वती देवी के मन्त्र श्रेष्ठ हैं।।६।। उन सारस्वत मन्त्रों से भी श्रेष्ठ गिरिजा (हिमालय पुत्री पार्वती) के मन्त्र श्रेष्ठ हैं और उनसे भी ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदों एवं मनु आदि स्मृतियों से उत्पन्न मन्त्र श्रेष्ठ है तथा उन ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् एवं मनु आदि स्मृतियों से उत्पन्न मन्त्र श्रेष्ठ हैं तथा उन ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद एवं मनुओं से भी श्रेष्ठ वाराह मनु के मन्त्र हैं।।७।।

तेभ्यः श्यामामनुवरा विशिष्टा इल्वलांतक तेभ्योऽपि ललितामन्त्रा दशभेदविभेदिताः॥८॥
तेषु द्वौ मनुराजौ तु वरिष्ठौ विन्ध्यमर्दन। लोपामुद्रा कामराज इति ख्यातिमुपागतौ॥९॥
ह्रादिस्तु लोपामुद्रा स्यात्कामराजस्तु कादिकाः।
हंसादेर्वाच्यतां याताः कामराजो महेश्वरः॥१०॥
स्मरादेर्वाच्यतां याता देवी श्रीललितांबिका। ह्रादिकाद्योर्मंत्रयोस्तु भेदो वर्णत्रयोद्भवः॥११॥
तयोश्च कामराजोऽयं सिद्धिदो भक्तिशालिनाम्।
शिवेन शक्त्या कामने क्षित्या चैव तु मायया॥१२॥
हंसेन भृगुणा चैव कामने शशिमौलिना। शक्रेण भुवनेशेन चन्द्रेण च मनोभुवा॥१३॥
क्षित्या हल्लेखया चैव प्रोक्तो हंसादिमंत्रराट्।
कामादिमंत्रराजस्तु स्मरयोनिः श्रियो मुखे॥१४॥
पञ्चत्रिकमहाविद्या ललितांबा प्रवाचिकाम्। ये यजंति महाभागास्तेषां सर्वत्र सिद्धये॥१५॥
सद्गुरोस्तु मनुं प्राप्य त्रिपञ्चार्णं परिष्कृतम्। सम्यक्संसाधयेद्विद्वान्वक्ष्यमाणप्रकारतः॥१६॥
तत्क्रमेण प्रवक्ष्यामि सावधानो मुने शृणु। प्रातरुत्थाय शिरसि स्मृत्वा कमलमुज्ज्वलम्॥१७॥
सहस्रपत्रशोभाढ्यं सकेशरसुकर्णिकम्। तत्र श्रीमद्गुरुं ध्यात्वा प्रसन्नं करुणामयम्॥१८॥

हे इल्वालान्तक![१] अगस्त्य जी! उनसे भी श्रेष्ठ श्यामा (काली) देवी के मन्त्र हैं। उनसे भी श्रेष्ठ श्री ललिता देवी के मन्त्र हैं, जो दश भेदों में विभक्त किये गये हैं।।८।। उनमें भी हे विन्ध्यमर्दन! अगस्त्य जी! दो मनुराज वरिष्ठ हैं, लोपामुद्रा और कामराज ख्याति प्राप्त किये हुए हैं।।९।। ह्रादिक तो लोपामुद्रा है और कादिक कामराज है, हंसादि से कामराज महेश्वर ने वाचाता को प्राप्त किया है।।१०।। स्मरादि से श्रीललिता अम्बिका ने वाच्यता प्राप्त की है। ह्रादिक आदि दोनों मन्त्रों से तीन भेद पैदा हुए हैं।।११।। उन दोनों में यह कामराज भक्तिशालिनियों के लिये सिद्धि प्रदान करने वाला है। शिव ने शक्ति द्वारा, कामदेव ने पृथ्वी और माया से, हंस ने भृगु द्वारा, इन्द्र ने भुवनेश द्वारा, चन्द्रमा ने मनोभुव द्वारा, क्षिति ने हृदय उल्लेख द्वारा, हंसादि मन्त्रराज को कहा। कामादि मन्त्रराज को स्मरयोनि वाला तथा लक्ष्मी के मुख वाला है। पंचत्रिक महाविद्या वाले ललिताम्ब के प्रवाचिक मन्त्र को जो महाभाग यज्ञ करते हैं। उनकी सर्वत्र सफलता होती है।।१२-१५।। सद्गुरु के मनु को प्राप्त कर तीन और पाँच परिष्कृत मन्त्र की विद्वान् को सम्यक् रूप से सही सही उच्चारण के प्रकार से साधना करनी चाहिए।।१६।। अतः हे मुने! मैं उसी क्रम से वर्णन करूँगा, आप सावधान होकर सुनिये। प्रातः काल उठ कर कमल के समान उज्ज्वल, हजारों पत्रों की शोभा वाले, कानों में सुगन्धित केसर से युक्त वहाँ प्रसन्न और करुणामय श्रीमान् गुरु का ध्यान करना चाहिए।।१७।। उसके बाहर निकल कर शौचादिक क्रियाएँ करनी चाहिए। इसके बाद आकर मृदु जल और तैल से शरीर पर लेप करना चाहिए।।१८।।

१. महाभारत तीर्थयात्रा पर्व अगस्त्योपाख्यान अध्याय ९६ के अनुसार तथा हरिवंश पुराण अध्याय ३७ के अनुसार सिद्धि का पुत्र एवं वातापि के भाई इल्वल नामक दैत्य का अन्त करने के कारण अगस्त्य मुनि को इल्वालान्तक कहा गया है।

जब आकाश में अगस्त्य नामक तारे का उदय होता है, उस समय मृगशिरा नक्षत्र के पास पाँच तारे छिप जाते हैं, इसीलिए अगस्त्य मुनि को इल्वलान्तक कहा गया है।

ततो बहिर्विनिर्गत्य कुर्याच्छौचादिकाः क्रियाः। अथागत्य च तैलेन सामोदेन विलेपितः॥१९॥
उद्वर्तितश्च सुस्नातः शुद्धेनोष्णेन वारिणा। आपो निसर्गतः पूताः किं पुनर्वह्निसंयुताः।
तस्मादुष्णोदके स्नायात्तदभावे यथोदकम्॥२०॥
परिधाय पटौ शुद्धे कौसुम्भौ नाथ वारुणौ।
आचम्य प्रयतो विद्वान्हृदि ध्यायन्परांबिकाम्॥२१॥
ऊर्ध्वपुंड्रं त्रिपुण्ड्रं वा पट्टवर्धनमेव वा। अगस्त्यपत्राकारं वा धृत्वा भाले निजोचितम्।
अन्तर्हितश्च शुद्धात्मा सन्ध्यावन्दनमाचरेत्॥२२॥
अश्वत्थपत्राकारेण पात्रेण सकुशाक्षतम्। सपुष्पचन्दनं चार्घ्यं मार्तण्डाय समुत्क्षिपेत्॥२३॥
तथार्घ्यभावदेवत्वाल्ललितायै त्रिरर्घ्यकम्। तर्प्पयित्वा यथा शक्ति मूलेन ललितेश्वरीम्॥२४॥
देवर्षिपितृवर्गांश्च तर्पयित्वा विधानतः। दिवाकरमुपास्थाय देवीं च रविबिम्बगाम्॥२५॥
मौनी विशुद्धहृदयः प्रविश्य मखमंदिरम्। चारुकर्पूरकस्तूरीचन्दनादिविलेपितः॥२६॥
भूषणैर्भूषितांगश्च चारुशृङ्गारवेषधृक्। आमोदिकुसुमश्रग्भिरवतंसितकुंतलः॥२७॥
संकल्पभूषणो वाथ यथाविभवभूषणः। पूजाखंडे वक्ष्यमाणान्कृत्वा न्यासाननुक्रमात्॥२८॥

उसके बाद शुद्ध और उष्ण जल से अच्छी तरह स्नान करना चाहिए, वैसे जल तो स्वभाव से ही पवित्र होते हैं, फिर उनको अग्नि से गर्म करने की क्या आवश्यकता है? अतः उष्ण जल से ही स्नान करना चाहिए; क्योंकि गर्म करने पर जल पवित्र हो जाता है, उसके समस्त घातक कीटाणु मर जाते हैं, इसलिये गर्म जल में ही स्नान करना चाहिये। उसके अभाव में जैसा जल हो, उसी से स्नान कर लेना चाहिए।।१९-२०।। फिर शुद्ध वस्त्र पहन कर फिर विद्वान् पुरुष को जलपात्र में से जल लेकर हृदय में ललिता देवी का ध्यान करते हुए आचमन करना चाहिए।।२१।। उसके बाद अपने मस्तक पर त्रिपुण्ड्र (तीन रेखाऐं) ऊपर को अथवा लम्बाई में अथवा अगस्त्य वृक्ष के पत्र के आकार की रेखाएं बनानी चाहिये, अथवा पूरे मस्तक पर ही चन्दन का लेप कर लेना चाहिए। तब अपने शुद्ध मन और शुद्ध आत्मा से सन्ध्या वन्दन करना चाहिए।।२२।। तब पीपल के पत्ते के आकार वाले पात्र से अर्थात् पीपल के पत्ते को ही पात्र बनाकर कुश और अक्षत के साथ पुष्प और चन्दन से अर्घ्य बनाकर मार्तण्ड भगवान् सूर्य की ओर फेंकना चाहिए।।२३।। तथा अर्घ्यभाव देवत्व से अर्थात् में देवी की पूजा की सामग्री अर्पित कर रहा हूँ। इस भाव से देवी ललिता के लिये तीन अर्घ्य ले करके यथाशक्ति मुख्यतः श्री ललितेश्वरी का तर्पण करना चाहिए।।२४।।

फिर विधान पूर्वक देवर्षि पितरगण का तर्पण करके सूर्य की उपस्थापना कर और फिर सूर्य के अन्तर्गत बिम्ब रूप में स्थित ललिता देवी की उपस्थापना करे।।२५।। फिर मौन धारण कर विशुद्ध हृदय मनुष्य यज्ञमन्दिर में प्रवेश करे, तब सुन्दर कपूर, कस्तूरी, चन्दन आदि का शरीर पर लेप करे।।२६।। उसके बाद भूषणों से भूषित अंग वाला सुन्दर शृंगार वेष को धारण करने वाला, खिले हुए फूलों की मालाओं से अपने बालों को सजाये।।२७।। संकल्प भूषण अर्थात् यदि भूषण न हों तो भूषण पहनने का मन में संकल्प करे अथवा यदि आभूषण हों, तो पहन कर बैठने वाला व्यक्ति पूजा के भागों में, जिनको जहाँ बैठाना हो, वहाँ पर क्रम से बैठाकर कोमल आसन पर बैठकर पहले महान् श्रीनगर का ध्यान करे।।२८-२८½।। तथा मनुष्य को उस श्रीनगर का ध्यान भी अनेकों प्रकार के वृक्षों और

मृद्वासने समासीनो ध्यायेच्छ्रीनगरं महत्। नानावृक्षमहोद्यानमारभ्य ललितावधि॥२९॥
ध्यायेच्छ्रीनगरं दिव्यं बहिरन्तरतः शुचिः। पूजाखंडोक्तमार्गेण पूजां कृत्वा विलक्षणः॥३०॥
अक्षमालां समादाय चन्द्रकस्तूरिवासिताम्। उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा जपेत्सिंहासनेश्वरीम्।
षट्त्रिंशल्लक्षसंख्यां तु जपेद्विद्या प्रसीदति॥३१॥
तद्दशांशस्तु होमः स्यात्तद्दशांशं च तर्पणम्। तद्दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं समुदीरितम्॥३२॥
एवं स सिद्धमन्त्रस्तु कुर्यात्काम्यजपं पुनः। लक्षमात्रं जपित्वा तु मनुष्यान्वशमानयेत्॥३३॥
लक्षद्वितयजाप्येन नारीः सर्वा वशं नयेत्। लक्षत्रितयजापेन सर्वान्वशयते नृपान्॥३४॥
चतुर्लक्षजपे जाते क्षुभ्यंति फणिकन्यकाः। पञ्चलक्षजपे जाते सर्वाः पातालयोषितः॥३५॥
भूलोकसुन्दरीवर्गो वश्यः षड्लक्षजापतः। क्षुभ्यंति सप्त लक्षेण स्वर्गलोकमृगीदृशः॥३६॥
देवयोनिभवाः सर्वेऽप्यष्टलक्षजपाद्वशाः। नवलक्षेण गीर्वाणानखिलान्वशमानयेत्॥३७॥
लक्षैकादशजाप्येन ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। लक्षद्वादशजापेन सिद्धीरष्टौ वशं नयेत्॥३८॥
इन्द्रस्येन्द्रत्वमेतेन मन्त्रेण ह्यभवत्पुरा। विष्णोर्विष्णुत्वमेतेन शिवस्य शिवतामुना॥३९॥
इन्दोश्चंद्रत्वमेतेन भानोर्भास्करतामुना। सर्वासां देवतानां च तास्ताः सिद्धय उज्ज्वलाः।
अनेन मन्त्रराजेन जाता इत्यवधारय॥४०॥

महोद्यानों से आरम्भ करके कामेश्वर मृदु आसन पर बैठी हुई ललितेश्वरी तक का ध्यान करना चाहिए।।२७½-२९।। विलक्षण साधक को बाहर और भीतर पवित्र श्रीनगर का ध्यान करना चाहिए। फिर पूजाखण्ड में कहे गये मार्ग से पूजा करके उत्तर अथवा पूर्व की ओर मुख करके अक्षमाला लेकर कपूर और कस्तूरी से सुगन्धित सिंहासनेश्वरी श्रीललितेश्वरी का जप करना चाहिए। तब छत्तीस लाख की संख्या में मन्त्र का जाप करने से विद्या देवी प्रसन्न होती है।।३०-३१।। उसके दशवें अंश का ३६०००० (तीन लाख साठ हजार) मन्त्र से होम होना चाहिए। उसके दशवें अंश ३६००० (छत्तीस हजार) मंत्रों से तर्पण होना चाहिए, उसके दशवें अंश ३६०० (छत्तीस सौ) मन्त्र से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र का पुनः जप करना चाहिए।।३०½-३२½।। एक लाख बार जपने से साधक मनुष्यों को वश में कर सकता है। दो लाख बार जप करने से स्त्री को वश में किया जा सकता है तथा तीन लाख बार जाप करने से सब राजा वश में हो जाते हैं।।३२½-३४।।

चार लाख मन्त्रों का जप करने से नागकन्याएँ वश में हो जाती हैं। पाँच लाख जप करने पर सभी पाताल की स्त्रियाँ वश में आयी जानी चाहिएँ।।३५।। छः लाख बार जप करने पर पृथ्वी की सुन्दरियों को वश में लाया जाना चाहिए तथा सात लाख बार जप करने से स्वर्गलोक की मृगलोचनियों को वश में लाया जा सकता है।।३६।। आठ लाख जप करने पर देवयोनियों में उत्पन्न स्त्रियों को वश में किया जा सकता है। नौ लाख जाप करने पर समस्त वाणियों को वश में लाया जा सकता है।।३७।। ग्यारह लाख बार जप करने पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश को तथा बारह लाख मन्त्र जप से आठों सिद्धियों को वश में लिया जा सकता है।।३८।। प्राचीन काल में इन्द्र का इन्द्र होना इसी मन्त्र से हुआ था, अर्थात् उसी मन्त्र से सामान्य व्यक्ति इन्द्र बना था। विष्णु का विष्णु होना इसी मन्त्र से तथा इसी मन्त्र से शिव भगवान् शिव बने।।३९।। चन्द्रमा का चन्द्रमा होना तथा सूर्य का सूर्य बनना इसी मन्त्र से हुआ, सब देवताओं को वे वे उज्ज्वल सिद्धियाँ इस मन्त्रराज से ही हुईं, इस बात को समझना चाहिए।।४०।।

एतन्मत्रस्य जापी तु सर्वपापविवर्जितः। त्रैलोक्यसुन्दराकारो मन्मथस्यापि मोहकृत्॥४१॥
सर्वाभिः सिद्धिभिर्युक्तः सर्वज्ञः सर्वपूजितः। दर्शनादेव सर्वेषामन्तरालस्य पूरकः॥४२॥
वाचा वाचस्पतिसमः श्रिया श्रीपतिसंनिभः। बले मरुत्समानः स्यात्स्थिरत्वे हिमवानिव॥४३॥
औन्नत्ये मेरुतुल्यः स्याद्गांभीर्येण महार्णवः। क्षणात्क्षोभकरो मूर्त्या ग्रामपल्लीपुरादिषु॥४४॥
ईषद्भ्रूभङ्गमात्रेण स्तम्भको जृंभकस्तथा। उच्चाटको मोहकश्च मारको दुष्टचेतसाम्॥४५॥
क्रुद्धः प्रसीदति हठात्तस्य दर्शनहर्षितः। अष्टादशसु विद्यासु निरूढिमभिगच्छति॥४६॥
मन्दाकिनीपूरसमा मधुरा तस्य भारती। न तस्याविदितं किंचित्सर्वशास्त्रेषु कुम्भज॥४७॥
दर्शनानि च सर्वाणि कर्तुं खण्डयितुं पटुः। तत्त्वञ्ज्ञानाति निखिलं सर्वज्ञत्वं च गच्छति॥४८॥
सदा दयार्द्रहृदयं तस्य सर्वेषु जंतुषु। तत्कोपाग्नेर्विषयतां गन्तुं नालं जगत्रयी॥४९॥
तस्य दर्शनवेलायां श्लथन्नीवीनिबंधनाः। विश्रस्तरशनाबंधा गलत्कुण्डलसञ्चयाः॥५०॥
घर्मवारिकणश्रेणीमुक्ताभूषितमूर्तयः। अत्यन्तरागतरलव्यापारनयनाञ्चलाः॥५१॥

इस मन्त्र का जप करने वाला तो सब पापों से रहित हो जाता है, वह तीनों लोकों में सुन्दर आकार वाला हो जाता है और कामदेव को भी मोहित करने वाला हो जाता है।४१।। वह सब सिद्धियों से युक्त हो जाता है, सर्वज्ञ और सबके द्वारा पूजित होता है। देखने से ही सब अन्तराल को पूर्ण करने वाला हो जाता है।।४२।। वह वाणी से वाणी के स्वामी ब्रह्मा के समान तथा धन-दौलत और शारीरिक सुन्दरता में लक्ष्मीपति विष्णु के समान हो जाता है तथा बल में वायु के समान और स्थिरता में हिमालय के समान हो जाता है।।४३।। ऊँचाई (उन्नति) में मेरु पर्वत के समान, गम्भीरता में महासमुद्र के समान हो जाता है। वह अपनी मूर्ति से क्षण भर में ग्राम, मुहल्ला और नगरों को दुःखी करने वाला हो जाता है, अर्थात् वह क्षण भर में ग्राम, मुहल्ला अथवा नगर में क्षोभ पैदा कर सकता है।।४४।।

वह अपनी थोड़ी सी भौंहें टेढ़ी कर दे अर्थात् थोड़ा सा क्रोध करे, तो दुष्ट पुरुषों का स्तम्भक, जृम्भक, उच्चाटक और मोहक हो जाता है, अर्थात् वह क्षण भर में दुष्ट पुरुषों का स्तम्भन (जहाँ के तहाँ हाथ-पैरों को चलने से रोक देना) जृम्भण (आलस्य युक्त) बना देना, उच्चाटन (भगाना) और मोहन (मोहित करना) कर सकता है।।४५।। क्रोधी व्यक्ति उसे देखने से हर्षित होकर प्रसन्न हो जाते हैं। अठारहों विद्याओं में वह निरुढि (प्रसिद्धि) प्राप्त कर लेता है।।४६।। तथा हे अगस्त्य मुने! उसकी वाणी मन्दाकिनी (गङ्गा) नदी की लहर के समान मधुर हो जाती है तथा सब शास्त्रों में उसके लिए कुछ अविदित नहीं होता है। अर्थात् सब छात्रों में वह प्रवीण हो जाता है।।४७।। सब दर्शनों का खण्डन करने में वह कुशल हो जाता है तथा समस्त तत्त्वों को जानता है और सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है।।४८।।

तब सब प्राणियों के प्रति उसका हृदय दयार्द्र हो जाता है। उसके क्रोध की ज्वाला में जलने के लिए तीनों लोक पर्याप्त नहीं हैं, अर्थात् उसके क्रोध की अग्नि में तीनों लोकों के अलावा अन्य कुछ भी जल सकता है।।४९।। इस मन्त्रराज का जाप करने वाले की दर्शन वेला में सुन्दरियों के नीवी बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। अर्थात् वह इतना सुन्दर और आकर्षक हो जाता है कि स्त्रियाँ उसके आगे अपनी नारी की गाँठ खोलने के लिए तैयार हो जाती हैं। यही नहीं, कर्धनी के बन्धन ढीले हो जाते हैं तथा कान से कुण्डल गिर जाते हैं।।५०।। पसीने की बूँदें जिनके मुखारविन्द पर मोती की तरह चमक रही हैं, ऐसे शरीरों वाली अत्यन्त प्रेम के कारण तरल व्यापार से चञ्चल नेत्रों वाली इस ललिता

स्रंसमानकरांभोजमणिकङ्कणपंक्तयः। ऊरुस्तम्भेन निष्यंदा नमितास्याश्च लज्जया॥५२॥
द्रवत्कन्दर्पसदनाः पुलकाङ्कुरभूषणाः। अन्यमाकारमिव च प्राप्ता मानसजन्मना॥५३॥
दीप्यमाना इवोद्दामरागज्वालाकदंबकैः। वीक्ष्यमाणा इवानंगशरपावकवृष्टिभिः॥५४॥
उत्कंठया तुद्यमानाः खिद्यमाना तनूष्मणा।
सिच्यमानाः श्रमजलैः शुच्यमानाश्च लज्जया॥५५॥
कुलं जातिं च शीलं च लज्जां च परिवारकम्। लोकाद्भयं बंधुभयं परलोकभये तथा॥५६॥
मुञ्चंत्यो हृदि याचंत्यो भवंति हरिणीदृशः। अरण्ये पत्तने वापि देवालयमठेषु वा।
यत्र कुत्रापि तिष्ठंतं तं धावंति मृगीदृशः॥५७॥
अत्याहतो यथैवांभोबिंदुर्भ्रमति पुष्करे। तद्वद्भ्रमंति चित्तानि दर्शने तस्य सुभ्रुवाम्॥५८॥
विनीतानवनीतानां विद्रावणमहाफलम्। तं सेवंते समस्तानां विद्यानामपि पंक्तयः॥५९॥
चंद्रार्कमंडलद्वंद्वकुचमंडलशोभिनी। त्रिलोके ललना तस्य दर्शनादनुरज्यति।
अन्यासां तु वराकीणां वक्तव्यं किं तपोधन॥६०॥
पत्तनेषु च वीथीषु चत्वरेषु वनेषु च। तत्कीर्तिघोषणा पुण्या सदा द्युसद्द्रुमायते॥६१॥

देवी के मन्त्र का जाप करने वाले पुरुष को देखकर स्त्रियों के मुखारविन्द पर पसीनों की बूँदें मोतियों की तरह झलकने लगती हैं तथा उनके अन्दर इतनी काम की आसक्ति बढ़ जाती है कि उनके कार्यकलाप भी शिथिल पड़ जाते हैं और उनके नेत्र चञ्चल हो जाते हैं। तब उनके करमकलों के मणिजटित कंगन ढीले हो जाते हैं। वे अपनी जङ्घाओं से निष्पन्द (गतिहीन) होकर लज्जा से झुक जाती हैं।।५१-५२।। उस ललिता मन्त्रजापी को देख कर स्त्रियों के कामदेव सदन (योनियाँ) गीली हो जाती हैं और शरीर के रोम अंकुर की तरह खड़े हो जाते हैं, अर्थात् वे रोमाञ्चित हो जाती हैं। वे कामावेग में अन्य प्रकार के आकार वाली हो जाती हैं। उस मन्त्रजापी में इतना आकर्षण पैदा हो जाता है कि स्त्रियाँ उसे देखकर अन्य की तरह की हो जाती हैं।।५३।। वे स्त्रियाँ आसक्ति-कामाग्नि की ज्वालाओं से जलते हुए के समान हो जाती हैं तथा कामदेव के वाण की अग्निवर्षाओं से सरावोर होती हुई दिखाई देती हैं।।५४।।

कामबाण के कारण उनके मन की उसके साथ लिपटने की वलवती इच्छा प्रेरित करने लगती है और वे शरीर की ऊष्मा से खिन्न हो जाती हैं। तब कामबाण की आग से तप्त अपने शरीर को वे पसीने से ठंडा करती हुई लज्जा से चिन्ताग्रस्त हो जाती हैं।।५५।। उस समय कुल, जाति, शील, लज्जा, परिवार, लोक से भय, बन्धुओं से भय तथा परलोक भय सबको छोड़ती हुई मृगलोचनाएँ हृदय में उनके साथ सहवास करने की याचना करती हैं। वन में, घर में, मन्दिरों में अथवा मठों में जहाँ कहीं भी वह ललिता मन्त्र का जाप करने वाला हुआ होता है, स्त्रियाँ उसके पीछे दौड़ती हैं।।५६-५७।। जिस प्रकार किसी के द्वारा टक्कर लगाये गये जलबिन्दु तालाब में घूमने लगते हैं, उसी प्रकार उस ललिता मन्त्रजापी का दर्शन होने पर सुन्दर भौंहों वाली स्त्रियों के चित्त घूमने लगते हैं।।५८।। संसार में मक्खन के समान विनम्र स्वभाव वाली स्त्रियों को द्रवित करना महाफल है। ललिता मन्त्र का जप करने वाले समस्त विद्याओं के धनी वे व्यक्ति उस महाफल का सेवन करते हैं।।५९।। हे तपोनिधि अगस्त्य जी! त्रिलोक में चन्द्रमा और सूर्य के समान कुचमण्डलों की शोभा वाली ललना (स्त्री) उसे देखने से उसके प्रति अनुरक्त हो जाती है। अन्य वेचारियों की तो वात ही क्या है।।६०।। घरों में, गलियों में, चबूतरों पर तथा वनों में उस ललिता मन्त्रजापी की कीर्ति की

तस्य दर्शनतः पाप जालं नश्यति पापिनाम्। तद्गुणा एव घोक्ष्यंते सर्वत्र कविपुंगवैः॥६२॥
भिन्नैर्वर्णैरायुधैश्च भिन्नैर्वाहनभूषणैः। ये ध्यायंति महादेवीं तास्ताः सिद्धिर्भजति ते॥६३॥
मनोरादिमखंडस्तु कुन्देंदुधवलद्युतिः। अहश्चक्रे ज्वलज्ज्वालश्चिंतनीयस्तु मूलके॥६४॥
इंद्रगोपकसंकाशो द्वितीयो मनुखण्डकः। नीभालनीयेऽहश्चक्रे आबालांतज्वलच्छिखः॥६५॥
अथ बालादिपद्मस्थद्विदलांबुजकोटरे। नीभालनीयस्तार्तीयखण्डो दुरितखंडकः॥६६॥
मुक्ता ध्येया शशिजोत्स्ना धवलाकृतिरंबिका। रक्तसंध्यकरोचिः स्याद्वशीकरणकर्मणि॥६७॥
सर्वसंपत्तिलाभे तु श्यामलाङ्गी विचिंत्यते। नीला च मूकीकरणे पीता स्तंभनकर्मणि॥६८॥
कवित्वे विशदाकारा स्फटिकोपलनिर्मला। धनलाभे सुवर्णाभा चिंत्यते ललितांबिका॥६९॥
आमूलमाब्रह्मबिलं ज्वलन्माणिक्यदीपवत्। ये ध्यायंति महापुञ्जं ते स्युः संसिद्धसिद्धयः॥७०॥
एवं बहुप्रकारेण ध्यानभेदेन कुम्भज। निभालयंतः श्रीदेवीं भजंति महतीं श्रियम्।
प्राप्यते सद्भिरेवैषा नासद्भिस्तु कदाचन॥७१॥
यैस्तु तप्तं तपस्तीव्रं तैरेवात्मनि ध्यायते। तस्य नो पश्चिमं जन्म स्वयं यो वा न शंकरः।
न तेन लभ्यते विद्या ललिता परमेश्वरी॥७२॥
वंशे तु यस्य कस्यापि भवेदेष मनुर्यदि। तद्वंश्याः सर्व एव स्युर्मुक्तास्तृप्ता न संशयः॥७३॥

पुण्य घोषणा शीघ्र चमकती हुई बीज से वृक्ष बन जाती है।।६१।। उसके दर्शन से पापियों का पापसमूह नष्ट हो जाता है। उसके गुण ही सर्वत्र कविश्रेष्ठों द्वारा घोषित किये जायेंगे।।६२।। भिन्न वर्णों, भिन्न आयुधों, भिन्न वाहनों और भिन्न भूषणों से जो उन महादेवी का ध्यान करते हैं, वे सब उन-उन सिद्धियों को प्राप्त करते हैं।।६३।। चमेली के फूल के समान श्वेत कान्ति मनु के आदिम अखण्ड मनु ने जलती हुई ज्वाला से चिन्तनीय दिन बनाया था।।६४।। इन्द्रगोपक के समान दूसरे मनु खण्डक ने प्रातःकालीन सूर्य के अन्त तक जलती शिखाओं वाले दर्शनीय दिन को बनाया। इसके बाद बालादि कमल में स्थित दो दल वाले कमल के कोटर में दर्शनीय तीसरे पाप का खण्डन करने वाले।।६६।। चन्द्रमा की चाँदनी के समान धवल आकृति वाली अम्बिका को मुक्त रूप से ध्यान करना चाहिए और वशीकरण कर्म में उनकी लाल कमल की कान्ति के रूप में कल्पना कर ध्यान करना चाहिए।।६७।।

सब प्रकार की सम्पत्तियों को प्राप्त करने में श्यामल अंग वाली की मन में कल्पना कर ध्यान करना चाहिए तथा किसी को मूक बनाने (गूंगा बनाने) में नील वर्ण की तथा स्तम्भन कर्म में माँ के पीत वर्ण में होने की कल्पना कर ध्यान करना चाहिए।।६८।। यदि मनुष्य को कवित्व प्राप्त करना है, अच्छा कवि बनना है, तब विशाल आकार वाली स्फटिक पत्थर (संगमरमर) के समान माँ का ध्यान करना चाहिए तथा धन प्राप्त करने में स्वर्ण की आभा के समान ललितेश्वरी का चिन्तन किया जाता है।।६९।। जो मनुष्य जलते हुए माणिक्य दीप के समान आमूल ब्रह्मयोनि महापुञ्ज (शंकर) का ध्यान करते हैं, वे समस्त सम्यक् रूप से सिद्ध सिद्धियों को प्राप्त करते हैं।।७०।। इस प्रकार हे अगस्त्य जी! बहुत प्रकार से और अनेकों प्रकार से ध्यान भेदों के अनुसार ललिता देवी का मस्तक में ध्यान करते हुए उनको भजते हैं, वे महती लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं; परन्तु यह लक्ष्मी सज्जनों द्वारा ही प्राप्त की जाती है, दुष्ट पुरुषों द्वारा कभी नहीं प्राप्त की जा सकती।।७१।। जिन्होंने तीव्र तप किया है, उनके द्वारा ही वे आत्मा में ध्यान की जाती हैं। उसका बाद में जन्म नहीं होता, जो स्वयं शंकर नहीं है, उसके द्वारा ललिता परमेश्वरी की विद्या प्राप्त नहीं की जा सकती।।७२।। यदि जिस किसी के वंश में यह मनुष्य है, तो उसके समस्त वंशज जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं और तृप्त हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।७३।।

गुप्ताद्गुप्ततरैवैषा सर्वशास्त्रेषु निश्चिता। वेदाः समस्तशास्त्राणि स्तुवंति ललितेश्वरीम्॥७४॥
परमात्मेयमेव स्यादियमेव परा गतिः। इयमेव महत्तीर्थमियमेव महत्फलम्॥७५॥
इमां गायंति मुनयो ध्यायंति सनकादयः। अर्चंतीमां सुरश्रेष्ठा ब्रह्माद्याः पंचसिद्धिदाम्॥७६॥
न प्राप्यते कुचारित्रैः कुत्सितैः कुटिलाशयै;। दैवबाह्यैर्वृथातर्कैर्वृथा विभ्रांत बुद्धिभिः॥७७॥
नष्टैरशीलैरुच्छिष्टैः कुलभ्रष्टैश्च निष्ठुरैः। दर्शनद्वेषिभिः पापशीलैराचारनिंदकैः॥७८॥
उद्धतैरुद्धतालापैर्दांभिकैरतिमानिभिः। एतादृशानां मर्त्यानां देवानां चातिदुर्लभा॥७९॥
देवतानां च पूज्यत्वमस्याः प्रोक्तं घटोद्भव। भंडासुर वधायैषा प्रादुर्भूता चिदग्नितः॥८०॥
महात्रिपुरसुन्दर्या मूर्तिस्तेजोविजृंभिता। कामाक्षीति विधात्रा तु प्रस्तुता ललितेश्वरी॥८१॥
ध्यायतः परया भक्त्या तां परां ललितांबिकाम्। सदाशिवस्य मनसो लालनाल्ललिताभिधा॥८२॥
यद्यत्कृतवती कृत्यं तत्सर्वं विनिवेदितम्। पूजाविधानमखिलं शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना।
खण्डांतरे वदिष्यामि तद्विलासं महाद्भुतम्॥८३॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने मंत्रराजसाधनप्रकारकथनन्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

यह सब शास्त्रों में गुप्त से भी गुप्त और निश्चित तथ्य है कि वेद और समस्त शास्त्र ललितेश्वरी देवी की स्तुति करते हैं।।७४।। ये ललिताम्बिका ही परमात्मा हैं और ये ही परा गति हैं। ये देवी ही महान् तीर्थ हैं और ये ही महान् फल हैं।।७५।। इन्हीं देवी का सनकादि मुनि गान करते हैं और इन्हीं का ध्यान करते हैं तथा इन्हीं पाँच प्रकार की सिद्धि देने वाली ललिता देवी की ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता पूजा करते हैं।।७६।। वे ललितेश्वरी बुरे चरित्रों वालों, नीच पुरुषों, कुटिल आशय रखने वालों, ईश्वर को न मानने वालों (नास्तिकों), वृथा तर्क करने वालों, वृथा बुद्धि घुमाने वालों, नष्ट पुरुषों, शीलरहितों, समाज से बहिष्कृतों, कुलभ्रष्टों, निष्ठुरों, दर्शनों से द्वेष करने वालों, पापियों, सदाचार की निन्दा करने वालों, उद्दण्डों, उद्दण्डतापूर्वक बात करने वालों, घमण्डियों, अपने को अधिक मानने वालों के द्वारा प्राप्त नहीं की जाती है। ऐसे उपर्युक्त प्रकार के मनुष्यों और देवों को उन देवी का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है, वे ऐसे लोगों के लिए दुर्लभ हैं।।७७-७९।। हयग्रीव कहते हैं कि हे अगस्त्य जी! देवताओं के लिए इनका पूज्य होना कहा गया है, अर्थात् ये देवी-देवताों के लिए पूजनीय हैं, क्योंकि देवों को दुःख देने वाले भण्डासुर के वध के लिये चित् रूप अग्नि से पैदा हुई थीं।।८०।। महात्रिपुर सुन्दरी की मूर्ति तेज से युक्त है, विधाता ने कामाक्षी नाम से ललितेश्वरी को सबके समक्ष प्रस्तुत किया है।।८१।। उन पराशक्ति ललिता अम्बिका का पराभक्ति से ध्यान करते हुए सदाशिव के मन का लालन करने के कारण वे देवी ललिता कही गयी हैं।।८२।। हयानन कहते हैं कि जो जो कृत्य उन देवी ने किये हैं, उन सबका वर्णन कर दिया है तथा शास्त्रोक्त विधि से सब पूजा का विधान भी बता दिया है, दूसरे खण्ड में उनके महा अद्भुत विलास को बताऊँगा।।८३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३८वाँ अध्याय मन्त्रराज साधन कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

काञ्चीय कामाक्षी वर्णनं नाम

नवत्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अनाद्यनंतमव्यक्तं व्यक्तानामादिकारणम्। आनंदबोधैकरसं तन्महन्मन्महे महः॥१॥
अश्वानन महाप्राज्ञ वेदवेदांतवित्तम। श्रुतमेतन्महापुण्यं ललिताख्यानमुत्तमम्॥२॥
सर्वपूज्या त्वया प्रोक्ता त्रिपुरा परदेवता। पाशांकुशधनुर्बाण परिष्कृतचतुर्भुजा॥३॥
तस्या मंत्रमिति प्रोक्तं श्रीचक्रं चक्रभूषणम्। नवावरणमीशानी श्रीपरस्याधिदैवतम्॥४॥
कांचीपुरे पवित्रेऽस्मिन्महीमंडलमंडने। केयं विभाति कल्याणी कामाक्षीत्यभिविश्रुता॥५॥
द्विभुजा विविधोल्लासविलसत्तनुवल्लरी। अदृष्टपूर्वसौन्दर्या परज्योतिर्मयी परा॥६॥

सूत उवाच

अगस्त्यैनैवमुक्तः सन्परानंदादृतेक्षणः। ध्यायंस्तच्च परं तेजो हयग्रीवो महामनाः।
इति ध्यात्वा नमस्कृत्य तमगस्त्यमथाब्रवीत्॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-३९

काञ्चीय कामाक्षी वर्णन

अगस्त्य मुनि बोले कि हे महाप्राज्ञ! वेद-वेदान्त को जानने वाले भगवन् हयग्रीव! जो अनादि हैं, जिनका कोई आदि काल ज्ञात नहीं है कि ये कब और कहाँ पैदा हुईं तथा जो अनन्त हैं अर्थात् उनका कोई अन्त ही नहीं है, एवं जो किसी भी इन्द्रिय से नहीं जानी जा सकतीं; परन्तु फिर भी इन्द्रियों से ज्ञेय जितने भी पदार्थ हैं, उन सबकी जो कारण हैं, अर्थात् सब उन्हीं से पैदा हुए हैं तथा आनन्द का अनुभव ही जिनका एक रस है। उस रस को मैं महान् मानता हूँ, अतः ऐसे महापुण्यदायक ललिता देवी के उत्तम व्याख्यान को मैंने सुना है।।१-२।। हे हयानन! आपने त्रिपुरा पर देवता ललितेश्वरी, जो पाश, अंकुश, धनुष बाण धारण करने वाली परिष्कृत भुजाओं से युक्त हैं, उनको सबके द्वारा पूजनीय कहा है।।३।। तथा उनका मन्त्र चक्रभूषण श्रीचक्र कहा है, जो नौ आवरण वाला श्री परा अधिदेवता (परा देवी) का स्थान है।।४।। सुन्दर भूमण्डल पर इस पवित्र काञ्चीपुर में ये कौंन कल्याणी सुशोभित होती हैं, इसके उत्तर में सुना जाता है कि वह देवी कामाक्षी हैं।।५।। जो कि दो भुजाओं वाली, अनेकों प्रकार के उल्लास से उसकी शरीर लता सुशोभित है। वे इतनी सुन्दर हैं कि ऐसा सौन्दर्य पहले कभी नहीं देखा है तथा परा देवी पर ज्योतिर्मयी हैं, अर्थात् उनसे अधिक ज्योति अन्यत्र कहीं नहीं है, उनकी ज्योति अलौकिक है।।६।।

अब ब्रह्माण्डपुराण की कथा कहने वाले सूतजी बोले कि जब अगस्त्य मुनि ने ऐसा कहा तब परानन्द से आदृत आँखों वाले उस परम तेज का ध्यान करते हुए महामना हयग्रीव उन देवी का ध्यान कर उनको नमस्कार कर उन अगस्त्य मुनि से इस प्रकार बोले।।७।।

हयग्रीव उवाच

रहस्यं संप्रवक्ष्यामि लोपामुद्रापते शृणु॥८॥
आद्या याणुतरा सा स्याच्चित्परा त्वादिकारणम्।
अन्ताख्येति तथा प्रोक्ता स्वरूपात्तत्त्वचिंतकैः॥९॥
द्वितीयाभूत्ततः शुद्धपराद्विभुजसंयुता। दक्षहस्ते योगमुद्रां वामहस्ते तु पुस्तकम्॥१०॥
बिभ्रती हिमकुंदेन्दुमुक्तासमवपुर्द्युतिः। परापरा तृतीया स्याद्बालार्कायुतसंमिता॥११॥
सर्वाभरणसंयुक्ता दशहस्तधृताम्बुजा। वामोरुन्यस्तहस्ता वा किरीटार्धेन्दुभूषणा॥१२॥
पश्चाच्चतुर्भुजा जाता सा परा त्रिपुरारुणा। पाशांकुशेक्षुकोदंडपंचबाणलसत्करा॥१३॥
ललिता सैव कामाक्षी कांच्यां व्यक्तिमुपागता। सरस्वतीरमागौर्यस्तामेवाद्यामुपासते॥१४॥
नेत्रद्वयं महेशस्य काशीकांचीपुरद्वयम्॥१५॥
विख्यातं वैष्णवं क्षेत्रं शिवसांनिध्यकारकम्। कांचीक्षेत्रे पुरा धाता सर्वलोकपितामहः॥१६॥
श्रीदेवीदर्शनायैव तपस्तेपे सुदुष्करम्। आत्मैकध्यानयुक्तस्य तस्य व्रतवतो मुने॥१७॥
प्रादुरासीत्पुरो लक्ष्मीः पद्महस्ता परात्परा। पद्मासने च तिष्ठन्ती विष्णुना जिष्णुना सह॥१८॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता। सिंहासनेश्वरी ख्याता सर्वलोकैकरक्षिणी॥१९॥

हयग्रीव ने कहा कि हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्य जी! मैं रहस्य बताऊँगा, आप सुनिये।।८।। पहली जो अत्यन्त अणुतर (सूक्ष्मतर) थी, वह चित्परा थी और आदि कारण थी, अर्थात् चित् (जीवनी शक्ति) के रूप में सबसे पहले वह देवी (प्रकृति) अत्यन्त सूक्ष्म रूप में थी; परन्तु यही समस्त प्राणियों एवं पदार्थों का आदि कारण थी, उससे समस्त प्रपञ्च उत्पन्न हुआ। तत्त्व का चिन्तन करने वालों द्वारा उसके स्वरूप से उसे अन्ता नाम से कहा गया। इस प्रकार पहले वह देवी चित् परा (जीवरूप) में थी।।९।। उसके बाद दो भुजाओं से युक्त द्वितीया शुद्ध परा हुई। जो दायें हाथ में योगमुद्रा और बायें हाथ में पुस्तक लिये हुए थी तथा बर्फ, चमेली और मोती के समान उसके शरीर की कान्ति थी। तीसरी देवी परा और अपरा दोनों रूप वाली प्रातःकालीन सूर्य की आभा के समान थी।।११।। उस समय वह देवी सभी आभूषणों से युक्त थी और उसके दश हाथ थे तथा हाथों में कमल धारण किये हुए थी। वे अपनी बाँयीं जंघा पर हाथ रखे हुए थीं तथा उनके मुकुट में अर्ध चन्द्रमा आभूषण रूप में स्थित थे।।१२।।

बाद में वही परा देवी चार भुजाओं वाली हो गयीं, तब वे त्रिपुरा देवी पाश, अंकुश, इक्षु, धनुष और पाँच बाणों से सुशोभित हाथों वाली हो गयीं। अर्थात् उनके एक हाथ में पाश था, एक हाथ में अंकुश था, एक हाथ में ऊख काण्ड था और एक हाथ में धनुष था तथा तरकश में पाँच बाण थे।।१३।। वे ललिता ही कामाक्षी हैं, जो कांची में व्यक्तित्व को प्राप्त हुईं, अर्थात् कांची नगरी में सशरीर प्रकट हुईं। सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती उस आद्या देवी की उपासना करती हैं।।१४।। काशी और कांची ये दो नगर भगवान् शंकर के दो नेत्र हैं।।५।। शिव के सान्निध्य को कराने वाला यह वैष्णव क्षेत्र नाम से विख्यात है। पूर्वकाल में कांची क्षेत्र में सब लोकों के पितामह धाता (ब्रह्मा) ने अत्यन्त कठोर तप किया था।।१६।। जब उन्होंने अपनी आत्मा पर ध्यान लगाया तो हे व्रतपरायण मुने! अगस्त्य जी! उन ब्रह्मा के सामने हाथ में कमल लिये हुए पर से भी परा लक्ष्मी प्रकट हो गयीं, जो सब पर विजय प्राप्त करने वाले विष्णु के साथ पद्मासन पर बैठी हुई थीं।।१७-१८।। वे समस्त शृंगारों से युक्त और सभी आभूषणों से भूषित

तां दृष्ट्वाद्भुतसौन्दर्यां परज्योतिर्मयीं पराम्।
आदिलक्ष्मीमिति ख्यातां सर्वेषां हृदये स्थिताम्॥२०॥
यामाहुस्त्रिपुरमेव ब्रह्मविष्णवीशमातरम्। कामाक्षीति प्रसिद्धां तामस्तौषीत्पूर्णभक्तिमान्॥२१॥

ब्रह्मोवाच

जय देवि जगन्मातर्जय त्रिपुरसुन्दरि। जय श्रीनाथसहजे जय श्रीसर्वमङ्गले॥२२॥
जय श्रीकरुणाराशे जय शृङ्गारनायिके। जयजयेधिकसिद्धेशि जय योगींद्रवन्दिते॥२३॥
जयजय जगदम्ब नित्यरूपे जय जय सन्नुतलोकसौख्यदात्रि।
जयजय हिमशैलकीर्तनीये जयजय शङ्करकामवामनेत्रि॥२४॥
जगज्जन्मस्थितिध्वंसपिधानानुग्रहान्मुहुः। या करोति स्वसङ्कल्पात्तस्यै देव्यै नमोनमः॥२५॥
वर्णाश्रमाणां सांकर्यकारिणः पापिनो जनान्। निहंत्याद्यातितीक्ष्णास्त्रैस्तस्यै देव्यैनमोनमः॥२६॥
नागमैश्च न वेदैश्च न शास्त्रैर्न च योगिभिः। वेद्या या च स्वसंवेद्या तस्यै देव्यै नमोनमः॥२७॥
रहस्याम्नायवेदांतैस्तत्त्वविद्भिर्मुनीश्वरैः। परं ब्रह्मेति या ख्याता तस्यै देव्यै नमोनमः॥२८॥
हृदयस्थापि सर्वेषां या न केनापि दृश्यते। सूक्ष्मविज्ञानरूपायै देव्यै नमोनमः॥२९॥

थीं। वे सब लोकों की एकमात्र रक्षा करने वाली सिंहासनेश्वरी इस नाम से विख्यात हुईं।।१९।। उन अद्भुत सौन्दर्य वाली अलौकिक ज्योतिर्मयी परा देवी सबके हृदय में स्थित देवी को देखकर उन्हें आदिलक्ष्मी कह दिया गया।।२०।। जिन त्रिपुरा को ही ब्रह्मा, विष्णु और शंकर की माता कहते हैं और कामाक्षी इस नाम से प्रसिद्ध उन देवी की भक्तिमान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे।।२१।।

ब्रह्मा ने कहा कि हे देवि! तुम्हारी जय हो, हे संसार की माता, त्रिपुरसुन्दरी! तुम्हारी जय हो, हे श्रीनाथ सहजे! तुम्हारी जय हो। हे सबका कल्याण करने वाली देवि! तुम्हारी जय हो।।२२।। हे करुणा की राशि देवि! तुम्हारी जय हो, हे शृङ्गारनायिके देवि! तुम्हारी जय हो, हे अधिक सिद्धेशि देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे योगिनियों द्वारा वन्दनीय देवि! तुम्हारी जय हो।।२३।। हे जगदम्बे! नित्य रूप वाली देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे नतमस्तक लोगों को सौख्य प्रदान करने वाली देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे हिमालय पर प्रशंसनीय देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे कामेश्वर भगवान् शंकर की वाम नेत्रि देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो।।२४।। ब्रह्मा जी ने कहा कि जो देवी संसार को तथा संसार के समस्त प्रपञ्च को पैदा करने वाली, उसको स्थिर रखने वाली और उसका विध्वंस करने वाली तथा समस्त प्रपञ्च को धारण करने वाली तथा बार-बार सृष्टि का अनुग्रह करने वाली हैं, जो यह सब अपने संकल्प से करती हैं, उन देवी को मेरा नमस्कार है।।२५।। जो देवी वर्णों और आश्रमों में संकरता पैदा करने वाले पापी लोगों को अत्यन्त तेज धार वाले अस्त्रों से मारती हैं। उन देवी को नमस्कार है।।२६।। हे देवि! जो आप न आगमों द्वारा, न वेदों से, न शास्त्रों द्वारा, न योगियों द्वारा जानने योग्य है तथा जो आप स्वयं ही संवेद्य हैं, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।२७।। रहस्य की बात बताने वाले वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और वेदान्तों द्वारा तत्त्व को जानने वाले मुनीश्वरों द्वारा जो पर ब्रह्म इस नाम से विख्यात हुईं, उन आप देवी के लिए मेरा नमस्कार है।।२८।। जो देवी आप सबके हृदय में स्थित होते हुए भी किसी के द्वारा भी दिखाई नहीं देती हो, अर्थात् न आँख से देखी जाती हो, न कान से सुनी जाती है, न वायु की तरह त्वचा से स्पर्श की जाती है, न जिह्वा से चखी जाती

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः। यद्ध्यानैकपरा नित्यं तस्यै देव्यै नमोनमः॥३०॥
यच्चरणभक्ता इन्द्राद्या यदाज्ञामेव बिभ्रती। साम्राज्यसंपदीशायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥३१॥
वेदा निःश्वसितं यस्या वीक्षितं भूतपंचकम्। स्मितं चराचरं विश्वं तस्यै देव्यै नमोनमः॥३२॥
सहस्रशीर्षा भोगींद्रो धरित्रीं तु यदाज्ञया। धत्ते सर्वजनाधारां तस्यै देव्यै नमोनमः॥३३॥
ज्वलत्यग्निस्तपत्यर्को वातो वाति यदाज्ञया। ज्ञानशक्तिस्वरूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥३४॥
पंचविंशतितत्त्वानि मायाकञ्चुकपंचकम्। यन्मयं मुनयः प्राहुस्तस्यै देव्यै नमोनमः॥३५॥
शिवशक्तीश्वराश्चैव शुद्धबोधः सदाशिवः। यदुन्मेषविभेदाः स्युस्तस्यै देव्यै नमोनमः॥३६॥
गुरुर्मंत्रो देवता च तथा प्राणाश्च पंचधा। या विराजति चिद्रूपा तस्यै देव्यै नमोनमः॥३७॥
सर्वात्मनामन्तरात्मा परमानन्दरूपिणी। श्रीविद्येति स्मृता वा तु तस्यै देव्यै नमोनमः॥३८॥
दर्शनानि च सर्वाणि यदंगानि विदुर्बुधाः। तत्तन्नियमयूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥३९॥
या भाति सर्वलोकेषु मणिमन्त्रौषधात्मना। तत्त्वोपदेशरूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥४०॥
देशकालपदार्थात्मा यद्यद्वस्तु यथा तथा। तत्तद्रूपेण या भाति तस्यै देव्यै नमोनमः॥४१॥

हो, न तुम्हारी गर्मी का अनुभव होता हो तथा न तुम मन से सोची जाती हो, अर्थात् तुम किसी से भी दिखायी नहीं देती ऐसी अतिसूक्ष्म विशेष ज्ञान रूप वाली देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।२९।। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव, जिन आपके ध्यान में नित्य लगे रहते हैं, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।३०।। जिनके चरणों के भक्त इन्द्र आदि जिनकी आज्ञा को धारण करते हैं, ऐसी साम्राज्य सम्पत्ति की स्वामिनी आपको मेरा नमस्कार है।।३१।। जिसकी श्वास वेद हैं। पंच महाभूत जिनकी दृष्टि (आँखें) हैं, यह चराचर विश्व जिनकी मुस्कान है, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।३२।। हजार शिरों वाले शेषनाग जिन देवी की आज्ञा से पृथ्वी को धारण करते हैं, उन समस्त मनुष्यों की आधार स्वरूपा देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।३३।। जिसकी आज्ञा से अग्नि जलती है, सूर्य तपते हैं और हवा बहती है, उन ज्ञानशक्ति स्वरूपा आपको मेरा नमस्कार है।।३४।। शरीर से सम्बन्धित पच्चीस तत्त्व, पाँच माया रूप कञ्चुक, जिनसे युक्त आपको मुनि लोग कहते हैं, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।३५।। शिवशक्तीश्वर शुद्धबोध सदाशिव आदि रूप जिनके अनेक उन्मेष (प्रकाश) हैं, ऐसी देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।३६।। गुरु, मन्त्र, देवता और पाँच प्रकार के प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान) जिस चित् रूप देवी में विराजमान हैं, उन आप देवी को मेरा नमस्कार है।।३७।।

सब आत्मावालों की जो परमानन्द रूपिणी अन्तरात्मा हैं, जिनको श्री विद्या इस प्रकार कहा गया है, ऐसी आपको मेरा नमस्कार है।।३८।। विद्वान् लोग सब दर्शनों को जिनका अंग जानते हैं, अर्थात् दर्शनों के जितने भी नियम हैं, उन सबकी स्तम्भरूप आपको मेरा नमस्कार है।।३९।। जो देवी सब लोकों में मणिमन्त्र और औषधि की आत्मा है, सब मणिमन्त्र और औषधियों में आप समायी हैं, उसी से वे सब अपना प्रभाव छोड़ती हैं। इसलिए हे तत्त्व की उपदेश रूप देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।४०।। देशकाल और पदार्थात्मक जो वस्तु जैसी-तैसी है, अर्थात् जहां, जिस समय जो वस्तु जैसी है, वैसी ही दिखाई देती है, अतः वह जो उस उस रूप में प्रतीत होती है, वह सब आप ही हैं। यहां पर वेदान्त का 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (सब कुछ जो वस्तु दिखाई देती है तथा जो कुछ भी संसार में है, वह सब ब्रह्म है)। यहाँ उसे देवी का रूप कहा गया है, ऐसी देवी आपको मेरा नमस्कार है।।४१।।

हे प्रतिभटाकारा कल्याणगुणशालिनी। विश्वोत्तीर्णेति चाख्याता तस्यै देव्यै नमोनमः॥४२॥
इति स्तुत्वा महादेवीं धाता लोकपितामहः। भूयोभूयो नमस्कृत्य सहसा शरणं गतः॥४३॥
सन्तुष्टा सा तदा देवी ब्रह्माणं प्रेक्ष्य संनतम्। वरदा सर्वलोकानां वृणीष्व वरमित्यशात्॥४४॥

ब्रह्मोवाच

भक्त्या त्वद्दर्शनेनैव कृतार्थोऽस्मि न संशयः।
तथापि प्रार्थये किञ्चिल्लोकानुग्रहकाम्यया॥४५॥

कर्मभूमौ तु लोकेऽस्मिन्प्रायो मूढा इमे जनाः। तेषामनुग्रहार्थाय नित्यं कुर्वत्र संनिधिम्॥४६॥
तथेति तस्य तं कामं पूरयामास वेधसः। अथ धाता पुनस्तस्या देव्या वासमकल्पयत्॥४७॥
श्रीदेवीसोदरं नत्वा पुण्डरीकाक्षमच्युतम्। तत्सांनिध्यं सदा कांच्यां प्रार्थयामास चादृतः॥४८॥
ततस्तथा करिष्यामीत्यब्रवीत्तं जनार्दनः। अथ तुष्टो जगद्धाता पुनः प्राह महेश्वरीम्॥४९॥
शिवोऽप्यत्रैव सांनिध्यं तव प्रीत्या करोत्विति। अथ श्रीत्रिपुरादक्षभागात्कामेश्वरः परः॥५०॥
ईशानः सर्वविद्या नामीश्वरः सर्वदेहिनाम्। आविरासीन्महादेवः साक्षाच्छृङ्गारनायकः॥५१॥
ततः पुनः श्रीकामाक्षीभालनेत्रकटाक्षतः। काचिद्बाला प्रादुरासीन्महागौरा महोज्ज्वला॥५२॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या महालावण्यशेवधिः। अथ श्रीपुण्डरीकाक्षो ब्रह्मणा सह सादरम्॥५३॥

हे प्रतिभटाकारा कल्याणगुण वाली विश्वोत्तीर्णा देवि! आपको मेरा नमस्कार है।।४२।। इस प्रकार महादेवी की स्तुति करके लोकपितामह ब्रह्मा बार-बार नमस्कार कर उनकी शरण में गये।।४३।। तब सम्यक् रूप से नतमस्तक हुए ब्रह्मा जी को देखकर सन्तुष्ट सब लोकों को वर देने वाली देवी ने ब्रह्माजी से कहा कि वर माँगो।।४४।।

तब ब्रह्माजी बोले, हे देवि! भक्तिपूर्वक तुम्हारे दर्शन कर लेने से ही मैं कृतार्थ हो गया हूँ, फिर भी मैं संसार पर कृपा करने की इच्छा से कुछ वर माँगता हूँ।।४५।। इस संसार में कर्मभूमि में प्रायः ये लोग मूढ़ हैं। उनके अनुग्रह के लिए यहाँ इस संसार में नित्य सन्निधि करो, अर्थात् हे त्रिपुरसुन्दरि! इस संसार में आप रहकर लोगों को कर्मभूमि में प्रवृत्त करने की कृपा करो, जो मूर्ख अपने कर्मों को कुशलतापूर्वक नहीं करते हैं, उनको कर्मों में प्रवृत्त करो।।४६।। वैसा ही हो, इस प्रकार कहकर देवी ने उन ब्रह्मा की उस इच्छा को पूर्ण कर दिया। इसके बाद ब्रह्मा ने पुनः उन देवी के वास की कल्पना की।।४७।। श्री देवी ने आदर सहित पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु को नमस्कार कर कांची में उनका सदा सान्निध्य रहने की प्रार्थना की अर्थात् उन देवी ने ब्रह्माजी से कहा कि वहाँ पर भगवान् विष्णु को भी सदैव मेरे साथ रहने चाहिये।।४८।। उसके बाद भगवान् विष्णु ने कहा कि मैं वैसा ही करूँगा, अर्थात् मैं कांची में तुम्हारे पास रहूँगा। इसके बाद संसार को धारण करने वाले ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये और फिर महेश्वरी से बोले।।४९।। शिव को भी यहीं पर अपने पास प्रीतिपूर्वक रख लो, यहाँ मां त्रिपुरेश्वरी ने शिष्टाचार वश स्वयं शिव को साथ में रहने के लिये नहीं कहा, जिसे ब्रह्मा जी के मुख से कहलवाया; क्योंकि शिव तो उनके पति ही थे। इसके बाद श्रीत्रिपुरा के दक्ष भाग में सब विद्याओं के स्वामी, सब प्राणियों के ईश्वर, शृंगार के साक्षात् नायक महादेव, कामेश्वर भगवान् शिव सामने थे।।५१।। उसके बाद पुनः श्रीकामाक्षी के मस्तक स्थित नेत्र के कटाक्ष से महागौर वर्ण वाली, महा उज्ज्वल कोई बाला उत्पन्न हो गयी।।५२।। वह बाला समस्त शृंगारों के वेष से सजी हुई और महा सौन्दर्य की अमूल्य कोष थी।।५२½।। इसके बाद पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी के साथ उन दोनों आदि स्त्री-पुरुष, का आदर

कारयामास कल्याणमादिस्त्रीपुंसयोस्तयोः। आखण्डलादयो देवा वसुरुद्रादिदेवताः॥५४॥
मार्कण्डेयादिमुनयो वसिष्ठादिमुनीश्वराः। योगींद्राः सनकाद्याश्च नारदाद्याः सुरर्षयः॥५५॥
वामदेवप्रभृतयो जीवन्मुक्ताः शुकादयः। यक्षकिन्नरगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगाः॥५६॥
गणाग्रणीर्महाशास्ता दुर्गाद्याश्चैव मातरः।
या यास्तु देवताः प्रोक्तास्ताः सर्वाः परमेश्वरीम्॥५७॥
भद्रासनविमानस्था नेमुः प्राञ्जलयस्तदा। मनसा निर्मितं धात्रा मध्ये नगरमद्भुतम्॥५८॥
मंदिरं परमेशान्या मनोहरतमं शुभम्। श्रीमतां वासुदेवेन सोदरेण महेश्वरः॥५९॥
तत्रोदवोढतां गौरीमुपाग्नि भगवान्भवः। देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह॥६०॥
दम्पत्योर्जगतां पत्योः पाणिग्रहणमङ्गलम्।
को वा वर्णयितुं शक्तो यदि जिह्वासहस्रवान्॥६१॥
आदि श्रीमन्दिरस्यास्य वायुभागे महेशितुः। विस्तृतं भुवनश्रेष्ठं कल्पितं परमेष्ठिना॥६२॥
श्रीगृहस्याग्निभागे तु विचित्रं विष्णुमंदिरम्। इत्थं ता देवतास्तत्र तिस्रः सन्निहिताः सदा॥६३॥
तदा प्रदक्षिणीकृत्य तत्परौ दम्पती तु तौ। प्राप्तौ सभावनागारं तदा विधिजनार्दनौ॥६४॥
समागम्य च सभ्यानां समस्तानां यथाविधि। संस्कारं वैदिकैर्मंत्रैः कथयामासतुर्मुदा॥६५॥
आद्यादि लक्ष्मीः सर्वेषां पुरतः श्रीपरेश्वरी। विरंचि दक्षिणेनाक्ष्णा वामेन हरिमैक्षत॥६६॥
का नाम वाणी मा नाम कमला ते उभे ततः। प्रादुर्भूते प्रभापुञ्जे पञ्जरांत इव स्थिते॥६७॥
श्रीदेवतानमच्छीर्षबद्धाञ्जलिपुटावुभौ। जय कामाक्षिकामाक्षीत्यूचतुस्तां प्रणेमतुः॥६८॥

सहित कल्याण किया। फिर इन्द्र आदि देवता, वसु, रुद्र आदि देवताओं, मार्कण्डेय आदि मुनियों, वशिष्ठ आदि मुनीश्वरों, सनक आदि योगीश्वरों, नारद आदि देवर्षियों, वामदेव आदि जीवन्मुक्तों, शुकदेव आदियों तथा यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, सिद्धगण, विद्याधरों, सर्पों, गणों के आगे रहने वाली दुर्गा आदि माताओं ने तथा अन्य जो-जो देवता कहे गये हैं, सबने विमान पर स्थित परमेश्वरी ललिता देवी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।।५२½-५७½।। और फिर उसके बाद ब्रह्माजी ने मन से नगर के मध्य में परमेश्वरी ललिता देवी का सबसे मनोहर मन्दिर बनाया।।५७½-५८½।। श्रीमान् सोदर भगवान् विष्णु के द्वारा महेश्वर भगवान् शिव ने वहाँ उन बाला गौरी के साथ विवाह सम्पन्न किया, तब देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजाईं और फूलों की वर्षा की।।५८½-६०।।

उस समय जगत् पति दोनों दम्पतियों के विवाह में जो मङ्गल हुआ, उसका वर्णन हजार जिह्वाओं वाला भी कोई नहीं कर सकता है।।६१।। आदिश्री मन्दिर की वायव्य दिशा में परमेष्ठी ब्रह्मा ने भगवान् शिव का विस्तृत श्रेष्ठ भवन बनाया।।६२।। और श्रीललितादेवी के मन्दिर की आग्नेय दिशा में विचित्र विष्णु मन्दिर बनाया। इस प्रकार वहाँ तीनों देवता सदैव एक साथ स्थित हैं।।६३।। तब परिक्रमा करके उन दोनों दम्पतियों ब्रह्मा और विष्णु ने सभावनागार को प्राप्त किया।।६४।। उस सभावनागार में आकर समस्त सभ्यों का यथाविधि वैदिक मन्त्रों से आनन्द पूर्वक संस्कार किया।।६५।। सबसे पहले आदि लक्ष्मी ने सबके सामने दक्षिण नेत्र से ब्रह्माजी को तथा बायें नेत्र से विष्णु को देखा।।६६।। तब का नाम से वाणी (सरस्वती) और मा नाम से कमला दोनों ही तब प्रभासमूह में इस प्रकार उत्पन्न हो गयीं, जिस प्रकार कि पिंजड़े में स्थित किसी को निकाल दिया जाता है।।६७।। उसके बाद उन

मूर्ते च गङ्गायमुने तत्र सेवार्थमागते। तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च या यास्तीर्थाधिदेवताः॥६९॥
सेवार्थं त्रिपुरांबायास्तास्ताः सर्वाः समागताः। तदा कराभ्यामादाय चामरे भारतीश्रियौ।
श्रीदेवीमुपतस्थाते वीजयन्त्यौ यथोचितम्॥७०॥
अनर्घ्यरत्नखचितकिङ्किणीचितदोर्लते। आदिश्रीनयनोत्पन्ने ते उभे भारतीश्रियौ॥७१॥
संवीक्ष्य सर्वजनता विशेषेण विसिस्मिये।
तदा प्रभृति कल्याणी कामाक्षीत्यभिधामियात्।
तदुच्चारणमात्रेण श्रीदेवी शं प्रयच्छति॥७२॥
कामाक्षीति त्रयो वर्णाः सर्वमङ्गलहेतवः। अथ सा जगदीशानी वेदवेदांगपारगे॥७३॥
विधौ नित्यं निषीदेति संदिदेश सरस्वतीम्। सापि वाणीश्वरी गङ्गाहस्तनिक्षिप्तचामरा।
पश्यतां सर्वदेवानां विधातुर्मुखमाविशत्॥७४॥
इन्दिरा च महालक्ष्म्या संदिष्टा तुष्टया तथा। यथोचितनिवासाय विष्णोर्वक्षस्थलं मुदा।
तदाज्ञां शिरसा धृत्वा रमा विष्णुश्च भक्तितः॥७५॥
तावुभौ दंपती नत्वा महात्रिपुरसुन्दरीं। प्रार्थयामासतुर्भूयस्तदावरणदेवताम्॥७६॥
तथास्तिविति वरं दत्त्वा ताभ्यां त्रिपुरसुन्दरम्। तदावरणदेवत्वं प्राप्तौ पद्माच्युतौ तदा॥७७॥
स्वपीठोत्तरमास्थाप्य दक्षिणे स्थितवान्स्वयम्। अथोवाच महागौरीं त्वमन्यद्रूपमाचर।

परमेश्वरी के दोनों नेत्रों की प्रभा से उत्पन्न दोनों देवियाँ वाणी और कमला श्री ललिता देवी को शीश झुकाते हुए दोनों हाथों को जोड़ कर माँ ललितेश्वरी को जय कामाक्षी जय कामाक्षी इस प्रकार कहते हुए प्रणाम किया।।६८।। तब वहाँ गङ्गा और यमुना साक्षात् शरीर धारण कर उनकी सेवा के लिए उपस्थित होने पर साढ़े तीन करोड़ जो जो तीर्थ देवता थे, वे सभी त्रिपुराम्बा की सेवा के लिए वहाँ पर आ गये, तब सरस्वती और लक्ष्मी ने हाथों में चामर लेकर त्रिपुरेश्वरी पर यथोचित ढुलाना प्रारम्भ कर दिया।।७०।। बहुमूल्य रत्नों से जुड़े हुए कंगनों को हाथ में पहने हुई आदिश्री के नेत्रों से उत्पन्न उन दोनों सरस्वती और लक्ष्मी ने समस्त जनता को देखकर विशेष रूप से विस्मय में उस समय कल्याणी श्रीललितादेवी का कामाक्षी यह नाम दे दिया। अतः कामाक्षी इस नाम के उच्चारण मात्र से श्रीललितेश्वरी कल्याण प्रदान करती हैं।।७२।। तब से कामाक्षी नाम से वे देवी तीनों वर्णों की मंगलकारणी हैं, इसके बाद उन संसार की स्वामिनी श्रीललिता देवी ने सरस्वती को आदेश दिया कि तुम नित्य ब्रह्माजी के पास बैठो। वे वाणीश्वरी सरस्वती देवी गङ्गा के हाथ से निक्षिप्त चामर वाली देवताओं के देखते ही देखते ब्रह्मा जी के मुख में प्रविष्ट हो गयीं।।७३-७४।।

उसके बाद महालक्ष्मी के द्वारा तुष्ट इन्दिरा (कमला) को आदेश दिया कि वह यथोचित निवास के लिए आनन्द के साथ विष्णु के वक्षःस्थल को ग्रहण करे, तब उन परमेश्वरी श्री ललिता देवी की आज्ञा शिरोधार्य कर लक्ष्मी और विष्णु दोनों भक्तिपूर्वक स्थित हुए।।७५।। इसके बाद उन दोनों दम्पतियों ने महात्रिपुरसुन्दरी को नमस्कार कर पुनः उस त्रिपुरसुन्दर नगर की आवरण देवता (उसके रक्षक) बनने की प्रार्थना की।।७६।। उसके बाद श्रीललितेश्वरी ने वैसा ही होगा, यह कहकर विष्णु और लक्ष्मी को त्रिपुरसुर का आवरण देवता नियुक्त कर दिया और फिर कमला और विष्णु ने उस नगर का आवरणत्व प्राप्त किया, अर्थात् वे दोनों श्रीचक्रपुर के रक्षक नियुक्त हुए।।७७।। अपनी पीठ को उत्तर में स्थापित कर वे स्वयं दक्षिण में स्थित हो गये। इसके बाद उन्होंने महागौरी से कहा कि तुम अन्य रूप

तत्र यातो महागौर्याः प्रतिबिंबो मनोहरः॥७८॥
चकासद्दिव्यदेहेन महागौरीसमाकृतिः। तरुणारुणराजाभसौन्दर्यचरणद्वयः॥७९॥
क्वणत्कङ्कणमञ्जीररतित्तिरीकृतपीठकः। विद्युदुल्लासितस्वानमनोज्ञमणिमेखलः॥८०॥
रत्नकंकणकेयूरविराजितभुजद्वयः। मुक्तावैदूर्यमाणिक्य निबद्धवरबंधनः॥८१॥
विभ्राजमानो मध्येन वलित्रितयशोभितः। जाह्नवीसरिदावर्तशोभिनाभीविभूषितः॥८२॥
पाटीरपङ्क कर्पूरकुंकुमालंकृतस्तनः। आमुक्तमुक्तालंकारभासुरस्तनकुंचुकः॥८३॥
विनोदेन कटीदेशलंबमानसुशृंखलः। माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकाभिरलंकृतः॥८४॥
दक्षहस्तांबुजासक्तस्निग्धोज्ज्वलमनोहरः। आभात्याप्रपदीनस्रग्दिव्याकल्पकदंबकैः॥८५॥
दीप्तभूषणरत्नांशुराजिराजितदङ्मुखः। तप्तहाटकसंक्लृप्तरत्नग्रीवोपशोभितः॥८६॥
मांगल्यसूत्ररत्नांशुशोणिमाधरकंधरः। पालीवतंसमाणिक्यताटंकपरिभूषितः॥८७॥
जपाविद्रुमलावण्यललिताधरपल्लवः। दाडिमीफलबीजाभदंतपंक्तिविराजितः॥८८॥
मंदमंदस्मितोल्लासिकपोलफलकोमलः। औपम्यरहितोदारनासामणिमनोहरः॥८९॥
विलसत्तिलपुष्पश्रीविमलोन्नत नासिकः। ईषदुन्मेषमधुरनीलोत्पलविलोचनः॥९०॥

को धारण करो। तब वह महागौरी का अत्यन्त मनोहर प्रतिबिम्ब हो गया।।७८।। उसके बाद महागौरी की आकृति दिव्य देह से युक्त सुशोभित हो गयी। उस समय उनके दोनों चरण तरुण चन्द्रमा की आभा के समान सुन्दरता से युक्त हो गये।।७९।। हाथों के कंगनों ने मंजीरों की ध्वनि से उस शक्तिपीठ को ध्वनित कर दिया। उनकी कमर में मणिजटित कर्धनी बिजली की तरह चमक रही थी।।८०।। रत्न जड़े हुए कंगन और बाजूबंदों से उनकी दोनों भुजाएँ सुशोभित थीं। मोती वैदूर्य और माणिक्य जटित श्रेष्ठ बन्धन वस्त्र पहने हुए थीं।।८१।। कमर में पड़ने वाली तीन रेखाओं और नाभि से वे गङ्गा नदी में पड़ने वाले भँवर के समान शोभा को प्राप्त कर रही थीं। अर्थात् उनकी त्रिवली अत्यन्त सुन्दर लग रही थी, साथ ही नाभि तो गङ्गा नदी में उठने वाले भँवर के समान थी।।८२।। चन्दन, कपूर और कुंकुम से उनके स्तन अलंकृत थे तथा उन स्तनों को ढँकने वाला कंचुक वस्त्र मोतीजटित अलंकारों से चमक रहा था।।८३।। विनोद के रूप में कमर से नीचे लटकने वाला वस्त्र माणिक्य के टुकड़ों से बद्ध मुद्रिकाओं (मुहरों) से अलंकृत था।।८४।। वे अपने दायें हाथ में स्निग्ध, उज्ज्वल और मनोहर कमल लिये हुए थीं। वे पैरों के अग्र भाग तक लटकती हुई कल्पवृक्ष के फूल की माला से सुशोभित थीं।।८५।।

प्रदीप्त आभूषणों में लगे रत्नों की कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाला उनका मुख है तथा तपे हुए सुवर्ण में लगे हुए रत्नों के भूषण से उनकी ग्रीवा (गरदन) शोभित थी।।८६।। मांगलिक सूत्र रत्न की किरणों से लाल-लाल उनके अधर (ओष्ठ) और गर्दन थी। वे कान की लोर में लटकते हुए झुमका, माणिक्य जटित कुण्डल से सुशोभित थीं।।८७।। जपा पुष्प और मूंगे के लावण्य से अत्यन्त सुन्दर उनके अधरपल्लव दोनों ओष्ठ थे अर्थात् उनके अधर (ओष्ठ) जपा पुष्प और मूंगे के समान लाल-लाल थे। अनार के फल के बीज की आभा के समान उनकी दन्तपंक्ति सुशोभित थी।।८८।। मन्द-मन्द मुस्कान से उल्लासित उनका कोमल कपोल फलक था। उनकी नासिका में लगा हुआ मणि इतना मनोहर था कि उसकी कहीं उपमा नहीं हैं।।८९।। खिले हुए तिलपुष्प की शोभा के समान उन्नत उनकी नासिका थी। कम खिले हुए मधुर नीलकमल के समान उनकी आँखें थीं।।९०।।

नवप्रसूनचापश्रीललितभ्रूविकाशकः। अर्द्धेन्दुतुलितो भाले पूर्णेन्दुरुचिराननः॥९१॥
सांद्रसौरभसंपन्नकस्तूरीतिलकोज्ज्वलः। मत्तालिमालाविलसदलकाढ्यमुखांबुजः॥९२॥
पारिजातप्रसूनस्त्रग्वाहिधम्मिल्लबंधनः। अत्यर्थरत्नखचितमुकुटांचितमस्तकः॥९३॥
सर्वलावण्यवसतिर्भवनं विभ्रमश्रियः। शिवो विष्णुश्च तत्रत्याः समस्ताश्च महाजनाः॥९४॥
बिंबस्य तस्य देव्याश्च अभेदं जगृहुस्तदा। अथ तर्हि महेशानी स्वतंत्रा प्रविवेश ह॥९५॥

अग्रतः सर्वदेवानामाश्रयेण प्रपश्यताम्।
बिम्बं कृत्वात्मना बिम्बे संप्रविश्य स्थितां च ताम्।
दृष्ट्वा भूयो नमस्कृत्य पुनः प्रार्थितवान्विधिः॥९६॥

पूर्णब्रह्मे महाशक्ते महात्रिपुरसुन्दरि। श्रीकामाक्षीति विख्याते नमस्तुभ्यं दिनेदिने।
किंचिद्विज्ञापयाम्यद्य शृणु तत्कृपया मम॥९७॥

अत्रैव तु महागौर्या महेशस्योभयोरपि। श्रीदेवी नित्यकल्याणि विवाहः प्रतिवत्सरम्।
कर्तव्यो जगतामृद्धसेवायै च दिवौकसाम्॥९८॥

भूलोकेऽस्मिन्महादेवि विमूढा जनता अपि।
तां दृष्ट्वा भक्तितो नत्वा प्रयांतु परमां गतिम्॥९९॥

तथेत्याकाशवाण्या तु ददौ तस्योत्तरं परा। विससर्ज च सर्वांस्तान्स्वनिकेतनिवृत्तये॥१००॥

नवीन पुष्पबाण की शोभा से शोभित उनकी भौंहें थीं तथा अर्द्धचन्द्र चन्द्रमा जिसके भाल पर हो, ऐसा पूर्ण चन्द्रमा के समान उनका रुचिर मुख था।।९१।। सान्द्र सुगन्ध से सम्पन्न कस्तूरी के तिलक से उज्ज्वल, मदमत्त भौंरों की पंक्तियों के समान केशपाशों से ढंका हुआ, उनका मुखकमल सुशोभित था, अर्थात् भौंरों के समान काले-काले बाल उनके मुखारविन्द पर लटक रहे थे, जो बहुत सुन्दर लग रहे थे।।९२।। उनके शिर के केशों का बंधा हुआ जूड़ा कल्पवृक्ष के फूलों से सजा हुआ था। उनका मस्तक बहुत अधिक रत्नों से जड़े हुए मुकुट से सजा हुआ था।।९३।। उनके भवन की शोभा समस्त लावण्य का वासभवन थी। शिव, विष्णु तथा वहाँ के सभी लोगों ने उन देवी के बिम्ब का अभेद ग्रहण किया। अर्थात् वहाँ उपस्थित शिव, विष्णु आदि सभी ने उन देवी का बिम्ब ग्रहण कर लिया अर्थात् फोटो ले लिया। इसके बाद वे महेशानी स्वतंत्र हो प्रविष्ट हुईं।।९४-९५।। देखते हुए सब देवों के आगे आश्रय द्वारा बिम्ब बना करके बिम्ब में प्रवेश करके देवी स्थित हो गयीं, तब बिम्ब में स्थित उनको देखकर नमस्कार करके ब्रह्मा ने पुनः प्रार्थना की।।९६।। कि हे पूर्णब्रह्मे! महाशक्ते! महात्रिपुरसुन्दरि! कामाक्षि! इस नाम से विख्यात होने पर मैं तुम्हें प्रतिदिन नमस्कार करूँगा। मैं तुम को कुछ बता रहा हूँ, उसे तुम कृपया सुनो।।९७।।

हे नित्यकल्याणी श्रीदेवी! महागौरी और महेश उन दोनों का विवाह प्रति वर्ष संसारों और देवों की समृद्धि के लिए यहाँ पर करना चाहिए।।९८।। हे महादेवि! इस पृथ्वी लोक में जनता अत्यन्त विमूढ़ है। वह अज्ञानी है, अतः उस प्रतिवर्ष होने वाले विवाह को देखकर भक्तिपूर्वक नमन करके परम गति (मोक्ष) को लोग प्राप्त करें।।९९।। वैसा ही हो, इस प्रकार आकाशवाणी से परा देवी ललितेश्वरी ने उसका उत्तर दिया, अर्थात् ललितेश्वरी ने कहा कि ठीक है, आप लोग प्रतिवर्ष महागौरी और महेश का विवाह कीजिए, ताकि भूलोक के लोग परम गति को प्राप्त करें तथा यह उत्तर उन्होंने आकाशवाणी द्वारा दिया और फिर सभी लोग अपने-अपने घर को विदा हो गये।।१००।। उस

तदद्भुततमं शीलं स्मृत्वा स्मृत्वा मुहुर्मुहुः। तां नमस्कृत्य ते सर्वे ततो जग्मुर्यथागतम्॥१०१॥
पितामहस्तु हृष्टात्मा मुकुंदेन शिवेन च। सार्धं श्रीमंदिरे तत्र मंत्रोपेतां निवेश्य च।
आराध्य वैदिकैः स्तोत्रैः साष्टांगं प्रणनाम सः॥१०२॥
अथाकाशगिरा देवी ब्रह्माणमिदमब्रवीत्॥१०३॥
विष्णुं शिवं च स्वस्थाने समाधाय समाहितः। प्रतिसंवत्सरं तत्र सेवां कुरु दृढाशय॥१०४॥
स्वयंव्यक्तमिह श्रीशमित्रेशांबासमन्वितम्।
श्रीकामगिरिपीठं तु साक्षाच्छ्रीपुरमध्यगम्॥१०५॥
वामभागे वृतं लक्ष्यं विष्णुनान्यत्र सेविनम्॥१०६॥
चिदानंदाकाररूपं सर्वपीठाधिदैवतम्। अदृश्यमूर्तिमव्यक्तमादधार यथाविधि॥१०७॥
श्रीमनोज्ञे सुनक्षत्रे दलानां हीरकोरकैः। अर्चिष्मद्भिरप्रधृष्यैर्ल्लोकानामभिवृद्धये॥१०८॥
इदानीं त्वं तदभ्यर्च्य यथाविधि विधे मुदा।
मंडलं त्वखिलं कृत्वा निजलोकं हि पालय॥१०९॥
इत्युक्तो भगवान्ब्रह्मा तथा कृत्वा तदीरितम्।
निक्षिप्य हृदि तां देवीं निजं धाम जगाम सः॥११०॥
इति ते तत्त्वतः प्रोक्तं कामाक्षीसीलमद्भुतम्।
साक्षादेव महालक्ष्मीमिमां विद्धि घटोद्भव॥१११॥

अद्‌भुत शील को बार-बार स्मरण करके उन देवी को नमस्कार करके वे सब, जिनको जहाँ जैसे जाना था, चले गये।।१०१।। पितामह ब्रह्मा ने प्रसन्न होते हुए भगवान् विष्णु और शिव के साथ वहाँ श्री मन्दिर में मन्त्रों से युक्त उन्हें वहाँ स्थापित कर वैदिक मन्त्रों की स्तुतियों से प्रणाम किया।।१०२।। इसके बाद आकाशवाणी द्वारा देवी ने ब्रह्मा से यह कहा।।१०३।। हे दृढ़ आशय वाले ब्रह्माजी! आप विष्णु और शिव को अपने स्थान पर समाधान करके सम्यक् प्रकार से ध्यान करते हुए प्रतिवर्ष उनकी सेवा करो।।१०४।। क्योंकि यहाँ श्रीश (विष्णु) मित्रेश अम्बिका से समन्वित हैं, श्रीकामगिरि पीठ तो साक्षात् श्रीललितेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी का श्रीपुर मध्यस्थान है।।१०५।। श्रीपुर के वामभाग में विष्णु के द्वारा सेवा करने वाला अन्य स्थान लक्ष्यकृत होना चाहिए।।१०६।। अतः चित् आनन्दाकार रूप वाली समस्त पीठ की पीठेश्वरी देवी की अदृश्य मूर्ति को यथाविधि स्थापित करो, अर्थात् वहाँ कोई मूर्ति दिखाई न दे, क्योंकि वे त्रिपुरसुन्दरी ललितेश्वरी अव्यक्त स्वरूप वाली हैं।।१०७।।

श्री मनोज्ञ शुभ नक्षत्र में सांसारिक प्राणियों की अभ्युन्नति के लिए अधखिले फूलों के हारों से जलते हुए अहानिकर दीपों से इस समय तुम यथाविधि देवी की आनन्द के साथ पूजा करके समस्त श्रीचक्रमण्डल बनाकर अपने संसार का पालन करो।।१०८-१०९।। इस प्रकार जब देवी ने कहा तब भगवान् ब्रह्मा ने वैसा ही किया, जो देवी ने कहा था, उसके बाद उन ललितेश्वरी देवी को अपने हृदय में धारण कर वे अपने धाम चले गये।।११०।। हयग्रीव अगस्त्य मुनि से बोले कि अगस्त्यजी! मैंने आपको कामाक्षी देवी के अद्‌भुत चरित्र को तत्त्वतः पूर्ण रूप से कह दिया है, अतः हे अगस्त्य जी! इन कामाक्षी को ही तुम साक्षात् महालक्ष्मी समझो।।१११।।

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि प्रयतः पठेत्।
तस्य भुक्तिश्च मुक्तिश्च करस्था नात्र संशयः॥११२॥
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या सर्वविद्याधिपो भवेत्।
आदिर्नारायणः श्रीमान्भगवान्भक्तवत्सलः॥११३॥
तपसा तोषितः पूर्वं मया च चिरकालतः। सारूप्यमुक्तिं कृपया दत्त्वा पुत्राय मे प्रभुः।
महात्रिपुरसुन्दर्या माहात्म्यं समुपादिशत्॥११४॥
ततस्तस्मादहं किंचिद्वेद्मि वक्ष्ये न चान्यथा। रहस्यमंत्र संवक्ष्ये शृणु तं त्वं समाहितः॥११५॥
न ब्रह्मा न च विष्णुर्वा न रुद्रश्च त्रयोऽप्यमी। मोहिता मायया यस्यास्तुरीयस्तु स चेश्वरः।
सदाशिवो न जानाति कथं प्राकृतदेवताः॥११६॥
सदाशिवस्तु सर्वात्मा सच्चिदानन्दविग्रहः। अकर्तुमन्यथा कर्तुं कर्तुमस्या अनुग्रहात्॥११७॥
सदा कश्चित्तदेवाह मन्यमानो महेश्वरः। तन्मायामोहितो भूत्वा त्ववशः शवतामगात्॥११८॥
सैव कारणमेतेषामुत्पत्तौ च लयेऽपि च।
कश्चिदत्र विशेषोऽस्ति वक्तव्यांशोऽपि तं शृणु॥११९॥
ब्रह्मादीनां त्रयाणां च तुरीयस्त्वीश्वरः प्रभुः। चतुर्णामपि सर्वेषामादिकर्ता सदाशिवः॥१२०॥

जो इस कथा को नित्य सुने अथवा जो इसको नित्य पढ़े, अर्थात् इसका नित्य पाठ करेगा, समस्त प्रकार के भोग और मोक्ष, सब उसके हाथ में स्थित हो जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।११२।। तथा इस ललिता वृत्तान्त को नित्य सुनने वाला और नित्य पाठ करने वाला व्यक्ति बुद्धि से बृहस्पति के समान सब विद्याओं का स्वामी हो जायेगा।।११२½।। हयानन कहते हैं कि पूर्वकाल में मैंने आदि नारायण श्रीमान् भक्तवत्सल भगवान् विष्णु को चिरकाल से तुष्ट किया, उनकी पूजा की, तब कृपा कर उन्होंने मुझ पुत्र के लिये सारुप्य मुक्ति प्रदान कर दी, अर्थात् उन्होंने मुझे अपना रूप प्रदान कर दिया, जिसके कारण मैंने महात्रिपुरसुन्दरी का माहात्म्य तुम्हें सुनाया है।।११२½-११४।। उसके बाद उससे अधिक मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ और मैं अब कुछ अन्यथा नहीं कहूँगा। अब रहस्यमन्त्र बताऊँगा, उसको तुम ध्यानपूर्वक सुनो।।११५।। उनके चरित्र को न ब्रह्मा, न विष्णु और न रुद्र ये तीनों भी नहीं जानते। ये तीनों भी उनकी माया से मोहित हैं और वह ईश्वर सदाशिव नहीं जानते हैं कि वह प्राकृत देवता महामाया ललितेश्वरी कैसे मोहित करती हैं। जब वे सदाशिव नहीं जानते तो ये सामान्य देवता कैसे जान सकते हैं?।।११६।।

सदाशिव तो सब आत्माओं की आत्मा परमात्मा हैं तथा वे सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। अर्थात् सत् (प्रकृति) चित् (जीव) के रूप वाले आनन्दरूप हैं। वे नहीं किये जाने वाले असम्भव कार्य को अन्य प्रकार करने योग्य बना देते हैं। उनकी कृपा से अकरणीय भी करणीय हो जाता है।।११७।। मैं सदा महेश्वर को मानने वाला हूँ, उनकी माया से मोहित होकर न वश में होने वाला भी वशता को प्राप्त होता है, अर्थात् जो किसी के द्वारा वश में नहीं किया जा सकता है, वह भी वश में हो जाता है।।११८।। इन सब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सबकी उत्पत्ति और विलय में कारण वही ललितेश्वरी है; परन्तु यहाँ बताने योग्य कोई विशेष अंश भी है, उसको सुनो।।११९।। ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों तथा चौथे ईश्वर प्रभु हैं, इस प्रकार ये चार हुए। अतः इन सब चारों के आदि कर्ता सदाशिव हैं।।१२०।।

एतद्रहस्यं कथितं तस्याश्चरितमद्भुतम्। भूय एव प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु॥१२१॥

इति श्रीब्रह्माण्डेमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

—※※※—

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

काञ्चीपुरमाहात्म्यम्

चत्वारिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

श्रीकामकोष्ठपीठस्था महात्रिपुरसुन्दरी। कंकं विलासमकरोत्कामाक्षीत्यभिविश्रुता॥१॥

श्रीकामाक्षीति सा देवी महात्रिपुरसुंदरी। भूमण्डलस्थिता देवी किं करोति महेश्वरी।

एतस्याश्चरितं दिव्यं वद मे वदतां वर॥२॥

हयग्रीव उवाच

अत्र स्थितापि सर्वेषां हृदयस्था घटोद्भव। तत्तत्कर्मानुरूपं सा प्रदत्ते देहिनां फलम्॥३॥

हयानन बोले कि इस रहस्य को मैंने कह दिया है, अब उनके अद्भुत चरित्र को पुनः बताऊँगा, अब सावधान होकर सुनिये।।१२१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ३९वाँ अध्याय काञ्चीय कामाक्षी वर्णन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–४०

काञ्चीपुर माहात्म्य

अगस्त्य मुनि बोले कि हे भगवान् हयग्रीव जी! हमको यह बताइए कि श्रीकामकोष्ठ पीठ में स्थित महात्रिपुरसुन्दरी ने कौंन-कौंन विलास किया? जिसके कारण वह कामाक्षी इस नाम विशेष से प्रसिद्ध हुईं।।१।। तथा श्री कामाक्षी इस नाम से पुकारी जाने वाली वे महेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी ने इस भूमण्डल पर स्थित होकर क्या-क्या करती हैं? हे वक्ताओं में श्रेष्ठ भगवन् हयग्रीव हमें इनका दिव्य चरित्र बताइए।।२।।

हयग्रीव बोले—हे अगस्त्य जी! वे श्री महात्रिपुर सुन्दरी यहाँ पर स्थित रहते हुए भी सबके हृदयों में स्थित रहती हैं और प्राणियों को उनके उन-उन कर्मों के अनुसार फल प्रदान करती हैं, अतः जो प्राणी शुभ कर्म करते हैं, उनको अच्छा फल प्रदान करती हैं तथा जो दुष्कर्म करते हैं, उन्हें बुरा फल प्रदान करती हैं।।३।।

यत्किञ्चिद्वर्तते लोके सर्वमस्या विचेष्टितम्। किञ्चिच्चिन्तयते कश्चित्स्वच्छंदं विदधात्यसौ॥४॥
तस्या एवावतारास्तु त्रिपुराद्याश्च शक्तयः। इयमेव महालक्ष्मीः ससर्जांडत्रयं पुरा॥५॥
परत्रयाणामावासं शक्तीनां तिसृणामपि। एकस्मादंडतो जातावंबिकापुरुषोत्तमौ॥६॥
श्रीविरिञ्चौ ततोऽन्यस्मादन्यस्माच्च गिराशिवौ। इंदिरां योजयामास मुकुंदेन महेश्वरी।
पार्वत्या परमेशानं सरस्वत्या पितामहम्॥७॥
ब्रह्माणं सर्वलोकानां सृष्टिकार्ये न्ययुंक्त सा। वासुदेवं परित्राणे संहारे च त्रिलोचनम्॥८॥
ते सर्वेऽपि महालक्ष्मीं ध्यायंतः शर्मदां सदा। ब्रह्मलोके च वैकुंठे कैलासे च वसंत्यमी॥९॥
कदाचित्पार्वती देवी कैलासशिखरे शुभे। विहरंती महेशस्य पिधानं नेत्रयोर्व्यधात्॥१०॥
चंद्रसूर्यौ यतस्तस्य नेत्रात्तस्माज्जगत्त्रयम्। अंधकारावृतमभूदतेजस्कं समंततः॥११॥
ततश्च सकला लोकास्त्यक्तदेवपितृक्रियाः। इतिकर्त्तव्यतामूढा न प्रजानन्त किञ्चन॥१२॥
तद्दृष्ट्वा भगवान्रुद्रः पार्वतीमिदमब्रवीत्। त्वया पापं कृतं देवि मम नेत्रपिधानतः॥१३॥
ऋषयस्त्यक्ततपसो हतसन्ध्याश्च वैदिकाः। सर्वं च वैदिकं कर्म त्वया नाशितमंबिके॥१४॥
तस्मात्पापस्य शांत्यर्थं तपः कुरु सुदुष्करम्।
गत्वा काशीं व्रतं तत्र किञ्चित्कालं समाचर॥१५॥

जो कुछ भी इस संसार में होता है, वह सब उनकी इच्छा से होता है, कोई कुछ चिन्तन करता है, वह स्वतन्त्र रूप से करता है; परन्तु उनकी इच्छा के बिना कुछ नहीं होता।।४।। त्रिपुरा आदि आद्यशक्तियाँ उन महात्रिपुरसुन्दरी का ही अवतार हैं। इन महालक्ष्मी ने पूर्वकाल में तीन अण्डों की सृष्टि की।।५।। तीनों शक्तियों का आवास वे महात्रिपुरसुन्दरी ही थीं। एक अण्ड से अम्बिका और पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु पैदा हुए।।६।। उसके बाद दूसरे अण्डे से लक्ष्मी और ब्रह्मा पैदा हुए और तीसरे अण्डे से वाणी (सरस्वती) और शिव पैदा हुए। इन्दिरा (लक्ष्मी) को महेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी ने विष्णु से युक्त कर दिया। पार्वती से शंकर जी को और सरस्वती को पितामह ब्रह्मा से युक्त कर दिया।।७।। उसके बाद ब्रह्मा जी को उन महात्रिपुरसुन्दरी ने सृष्टिकार्य में नियुक्त कर दिया। वासुदेव भगवान् विष्णु को सृष्टि की रक्षा करने में नियुक्त कर दिया तथा सृष्टि के संहार कार्य में त्रिलोचन भगवान् शिव को नियुक्त कर दिया।।८।। वे सभी उपाधि देने वाली उन महालक्ष्मी महात्रिपुरसुन्दरी का सदा ध्यान करते हुए ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ और कैलास पर रहते हैं।।९।। कभी पार्वती देवी ने शुभ कैलास पर विहार करते हुए शंकर जी के दोनों नेत्रों को हाथों से ढंक दिया, क्योंकि भगवान् शिव के सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही नेत्र हैं। दायाँ नेत्र सूर्य है, तो बायाँ चन्द्रमा है। स्वाभाविक है कि दोनों नेत्र हाथों से ढंक दिये जायेंगे तो सूर्य और चन्द्रमा ही ढंक दिये जायेंगे तो फिर सर्वत्र अंधेरा ही छा जायेगा। हुआ यही कि तीनों लोकों में चारों ओर अन्धकार छा गया।।१०-११।।

उसके बाद समस्त लोकों ने देव, पितृ क्रिया त्याग दी, अर्थात् देवों और पितरों ने सब कार्य करना बन्द कर दिया। इस रहस्य को कर्तव्यतामूढ़ कोई नहीं जान सका।।१२।। इसको देखकर भगवान् रुद्र पार्वती से यह बोले कि हे देवि! तुमने मेरे नेत्र ढंक कर पाप किया है।।१३।। ऋषि लोग तपस्या छोड़ चुके हैं, वैदिक लोग सन्ध्यावन्दनादि नहीं कर रहे हैं, अतः हे अम्बे! समस्त वैदिक कर्म (यज्ञादि) तुमने नष्ट कर दिये।।१४।। इसलिए

पश्चात्कांचीपुरं गत्वा कामाक्षीं तत्र द्रक्ष्यसि।
आराधयैतां नित्यां त्वं सर्वपापहरीं शिवाम्॥१६॥
तुलसीमग्रतः कृत्वा कम्पाकूले तपः कुरु। इत्यादिश्य महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत॥१७॥
तथा कृतवतीशानी भर्तुराज्ञानुवर्तिरनी। चिरेण तपसा क्लिष्टामनन्यहृदयां शिवाम्॥१८॥
अग्रतः कृतसांनिध्या कामाक्षी वाक्यमब्रवीत्। वत्से तपोभिरत्युग्रैरलं प्रीतास्मि सुव्रते॥१९॥
उन्मील्य नयने पश्चात्पार्वती स्वपुरःस्थिताम्। बालार्कायुतसंकाशां सर्वाभरणभूषिताम्॥२०॥
किरीटहारकेयूरकटकाद्यैरलंकृताम्। पाशांकुशेक्षुकोदंडपञ्चबाणलसत्कराम्॥२१॥
किरीटमुकुटोल्लासिचंद्ररेखाविभूषणाम्। विधातृहरिरुद्रेशसदाशिवपदप्रदाम्॥२२॥
सगुणं ब्रह्मतामाहुरनुत्तरपदाभिधाम्। प्रपञ्चद्वयनिर्माणकारिणीं तां परांबिकाम्॥२३॥
तां दृष्ट्वाथ महाराज्ञीं महानदपरिप्लुता। पुलकाचितसर्वांगी हर्षेणोत्फुल्ललोचना॥२४॥
चंडिकामंगलाद्यैश्च सहसा स्वसखीजनैः। प्रणिपत्य च साष्टाङ्गं कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम्॥२५॥
बद्धांजलिपुटा भूयः प्रणता स्वैक्यरूपिणी। तामाह कृपया वीक्ष्य महात्रिपुरसुंदरी॥२६॥
बाहुभ्यां संपरिष्वज्य सस्नेहमिदमब्रवीत्। वत्से लभस्व भर्तारं रुद्रं स्वमनसेप्सितम्॥२७॥
लोके त्वमपि रक्षाथरं ममाज्ञामनुवर्तय। अहं त्वमिति को भेदस्त्वमेवाहं न संशयः॥२८॥

पाप की शान्ति के लिए अत्यन्त कठोर तप करो और तपव्रत तुम काशी में जाकर कुछ समय तक करो।।१५।। उसके बाद तुम कांचीपुर में जाकर वहाँ पर कामाक्षी देवी को देखोगी। वहाँ जाकर तुम उन कल्याण करने वाली, सब पापों को नष्ट करने वाली, सदा रहने वाली शिवा की आराधना करो।।१६।। तुलसी को आगे करके कम्पा नदी के किनारे तपस्या करो, ऐसा आदेश कर महादेव वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।१७।। तब पार्वती ने अपने पति की आज्ञा मानकर वैसा ही किया। तब बहुत समय तक कठोर तप करने वाली अनन्य हृदय वाली पार्वती के आगे उपस्थित होकर कामाक्षी महात्रिपुरसुन्दरी ने यह वाक्य बोला कि पुत्रि! हे सुन्दर व्रत करने वाली! अब तपस्या मत करो, मैं प्रसन्न हूँ।।१८-१९।। तब पार्वती ने अपनी आँखों को खोलकर देखा तो सामने उन पराम्बिका महात्रिपुर सुन्दरी को खड़े हुए देखा, जो प्रातःकालीन सूर्य की कान्ति के समान सब आभूषणों से भूषित थी।।२०।।

जो मुकुट, हार, बाजूबन्द, कर्धनी आदि से अलंकृत, पाश, अंकुश, इक्षु, धनु, और पांच पुष्पबाण युक्त हाथों से सुशोभित थी।।२१।। किरीट मुकुट में उल्लासयुक्त चन्द्ररेखा से विभूषित, ब्रह्मा, विष्णु और शिव ईश्वर और सदाशिव को पद प्रदान करने वाली थीं।।२२।। जिनको सगुण साकार यदि कहा जाये, इस विषय में कोई उत्तर नहीं था। दोनों प्रपञ्चों का निर्माण करने वाली पराम्बिका सामने खड़ी हुई थी, वहीं थी त्रिपुरेश्वरी कामाक्षी थी।।२३।। इसके बाद उन महाराज्ञी महात्रिपुरसुन्दरी को देखकर पार्वती महान् आनन्द से सराबोर हो गयीं। उनके समस्त शरीर के सभी अंग पुलकित हो गये। हर्ष से उनकी आँखें खिल उठीं।।२४।। तब उन्होंने अचानक ही चण्डिका, मंगला आदि अपनी सखियों के साथ उन महाराज्ञी को साष्टांग प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की।।२५।। उसके बाद हाथ जोड़कर नमन करती हुई अपने में ही एकाग्रचित्त उन पार्वती को देखकर महात्रिपुरसुन्दरी ने उनको अपनी बाँहों से आलिंगन कर स्नेहपूर्वक यह कहा कि पुत्रि! तुम अपने मनवाञ्छित पति रुद्र को प्राप्त करो। लोक में तुम भी लोक रक्षा के लिए मेरी आज्ञा का पालन करो। मैं और तुममें कोई भेद नहीं है। तुम ही मैं हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं

किं पापं तव कल्याणि त्वं हि पापनिकृंतनी।
आमनंति हि योगींद्रास्त्वामेव ब्रह्मरूपिणीम्॥२९॥
लीलामात्रमिदं वत्से परलोकविडंबनम्। इत्यूचिषीं महाराज्ञीमंबिकां सर्वमंगला।
भक्त्या प्रणम्य पश्यंती परां प्रीतिमुपाययौ॥३०॥
स्तुवत्यामेव पार्वत्यां तदानीमेव सापरा। प्रविष्टा हृदयं तस्याः प्रहृष्टाया महामुने॥३१॥
अथ विस्मयमापन्ना चिंतयंती मुहुर्मुहुः। स्वप्नः किमेष दृष्टो वा मया किमथ वा भ्रमः॥३२॥
इत्थं विमृश्य परितः प्रेरयामास लोचने। जयां च विजयां पश्चात्सख्यावालोक्य सस्मिते।
प्रसन्नवदना सा तु प्रणते वदति स्म सा॥३३॥
एतावंतमलं कालं कुत्र याते युवां प्रिये। मया दृष्टां तु कामाक्षीं युवां चेत्किमपश्यतम्॥३४॥
सख्यौ तु तद्वचः श्रुत्वा प्रहर्षोत्फुल्ललोचने। पुष्पाणि पूजनार्हाणि निधायाग्रे समूचतुः॥३५॥
सत्यमेवाधुना दृष्टा ह्यावाभ्यामपि सा परा।
न स्वप्नो न भ्रमो वापि साक्षात्ते हृदयं गता।
इत्युक्त्वा पार्श्वयोस्तस्या निषण्णे विनयानते॥३६॥
एकाम्रमूले भगवान्भवानीविरहार्तिमान्। गौरीसंप्राप्तये दध्यौ कामाक्षीं नियतेंद्रियः॥३७॥
तत्रापि कृतसांनिध्या श्रीविद्यादेवता परा। आचष्ट कृपया तुष्टा ध्यायंतं निश्चलं शिवम्॥३८॥
अलं ध्यानेन कंदर्पदर्पघ्न त्वं ममाज्ञया। अंगीकुरुष्व कंदर्पं भूयो मच्छासने स्थितम्॥३९॥

है।।२६-२८।। महात्रिपुरसुन्दरी ने पार्वती से कहा कि हे कल्याणि! तुम्हारा क्या पाप है। अरे तुम तो पाप को नष्ट करने वाली हो, योगीन्द्रगण ब्रह्मरूपिणी तुम्हीं को मानते हैं।।२९।। हे पुत्रि! यह तो लीलामात्र है कि मैं और तुम अलग-अलग हैं तथा यह लोक की विडम्बना है। हम दोनों अलग नहीं एक ही हैं। इस प्रकार कहने वाली महाराज्ञी महात्रिपुरसुन्दरी को देखती हुई सर्वमङ्गला पार्वती भक्ति से उनको प्रणाम करके परा प्रीति को प्राप्त हुईं।।३०।। इस प्रकार जब वे पार्वती प्रसन्न होकर उनकी स्तुति कर ही रही थीं कि उसी समय हे महामुने! अगस्त्य जी! वे महात्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न होकर उन पार्वती देवी के शरीर में प्रविष्ट हो गयीं।।३१।। इसके बाद आश्चर्यचकित होकर वे बार-बार चिन्ता करने लगीं कि यह मैंने स्वप्न देखा है अथवा क्या यह मेरा भ्रम है।।३२।। इस प्रकार विचार-विमर्श करके उन्होंने अपने नेत्रों को चारों ओर घुमाया तो जया और विजया अपनी सखियों को बाद में मुस्कराते हुए देखकर प्रसन्नवदन पार्वती उनसे बोलीं।।३३।। कि हे मेरी प्रिय सखियों! इतने समय तक तुम दोनों कहाँ गयी थीं, मैंने जिन कामाक्षी देवी को देखा था, क्या तुम दोनों ने भी देखा?।।३४।।

दोनों सखियाँ उनके वचन को सुनकर हर्ष से पुलकित नेत्रों से पूजा के योग्य सामग्रियों को सामने रखकर बोलीं।।३५।। कि हम दोनों ने भी साक्षात् उन परा देवी महात्रिपुरसुन्दरी को देखा था, इसमें न कोई भ्रम है अथवा न कोई स्वप्न है तथा हमने यह भी देखा कि वे साक्षात् तुम्हारे हृदय में समाविष्ट हो गयी थीं।।३६।। एकाम्र मूल क्षेत्र में पार्वती के विरह में व्याकुल भगवान् शिव ने गौरी को प्राप्त करने के लिये नियतेन्द्रिय होकर कामाक्षी देवी का ध्यान किया।।३७।। वहाँ भी श्री परादेवी महात्रिपुरसुन्दरी उनके पास उपस्थित हुईं और उन पर दयार्द्र हो ध्याननग्न

एकाग्रसंज्ञे मत्पीठे त्विहैव निवसन्सदा। त्वमेवागत्य मत्प्रीत्यै संनिधौ मम सुव्रत।
गौरीमनुगृहाण त्वं कंपानीरनिवासिनीम्॥४०॥
तापद्वयं जहीह्याशु योगजं तद्वियोगजम्। इत्युक्त्वांतर्दधे तस्य हृदये परमा रमा॥४१॥
शिवो व्युत्थाय सहसा धीरः संहृष्टमानसः। तस्या अनुग्रहं लब्ध्वा सर्वदेवनिषेवितः॥४२॥
हृदि ध्यायंश्च तामेव महात्रिपुरसुन्दरीम्। यद्विलासात्समुत्पन्नं लयं याति च यत्र वै॥४३॥
जगच्चराचरं चैतत्प्रपंचद्वितयात्मकम्। भूषयन्तीं शिवां कम्पामनुकंपार्द्रमानसाम्॥४४॥
अङ्गीकृत्य तदा गौरी वैवाहिकविधानतः। आदाय वृषमारुह्य कैलास शिखरं ययौ॥४५॥
पुनरन्यं महाप्राज्ञं समाकर्णय कुम्भज। आदिलक्ष्म्याः प्रभावं तु कथयामि तवानघ॥४६॥
सभायां ब्रह्मणो गत्वा समासेदुस्त्रियमूर्त्तयः।
दिक्पालाश्च सुराः सर्वे सनकाद्याश्च योगिनः॥४७॥
देवर्षयो नारदाद्या वशिष्ठाद्याश्च तापसाः। ते सर्वे सहितास्तत्र ब्रह्मणश्च कपर्दिनः।
द्वयोः पंचमुखत्वेन भेदं न विविदुस्तदा॥४८॥
अन्योन्यं पृष्टवंतस्ते ब्रह्मा कः कश्च शङ्करः। तेषां संवदतां मध्ये क्षिप्रमंतर्हितः शिवः॥४९॥
तदा पंचमुखो ब्रह्मा सितो नारायणस्तयोः। उभयोरपि संवादस्त्वहं ब्रह्मेत्यजायत॥५०॥

निश्चल शिव से बोलीं कि हे कामदेव के घमण्ड को नष्ट करने वाले शिव! तुम अब मेरा ध्यान मत करो। मेरी आज्ञा से अब तुम पुनः मेरे शासन में कामदेव को स्वीकार करो।।३८-३९।। एकाग्र नामक क्षेत्र में स्थित मेरे पीठ में यहीं कांचीपुर में सदा रहते हुए मेरी प्रीति के लिए मेरे निकट रहो और हे सुन्दर व्रत करने वाले! यहाँ आकर तुम कम्पा नदी के नीर में निवास करने वाली गौरी (पार्वती) को स्वीकार करो।।४०।। अब हे शिव! तुम पार्वती के योग से पैदा होने वाले तथा उनके वियोग से पैदा होने वाले दोनों संतापों को नष्ट कर दो। इस प्रकार कहकर परमेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी उनके हृदय में अन्तर्धान हो गयीं।।४१।। धैर्यशाली प्रसन्नचित्त भगवान् शिव भी उन देवी का अनुग्रह प्राप्त कर हृदय में उन्हीं महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करते हुए सब देवताओं द्वारा सेवित हुए।।४२।। जिन महात्रिपुरसुन्दरी के विलास से जहाँ यह चराचर जगत् जो कि स्थावर और जंगम दो प्रपंचों वाला है, उत्पन्न होता है और लय को प्राप्त होता है, अर्थात् उन महाराज्ञी महात्रिपुर सुन्दरी के विलास से ही संसार के जड़-चेतन पदार्थ पैदा होते हैं तथा नष्ट होते हैं।।४३-४३½।। इस प्रकार कृपासिक्त मानस उन भगवान् शिव भूषित हुईं कम्पा शिवा को गौरी वैवाहिक विधान से स्वीकार कर बैल पर चढ़कर कैलास पर्वत पर चले गये।।४३½-४५।।

भगवान् हयग्रीव अगस्त्य मुनि से बोले कि हे निष्पाप! महाप्राज्ञ! अगस्त्य जी! अब मैं आदिलक्ष्मी का अन्य प्रभाव पुनः कहता हूँ, आप सुनिये।।४६।। ब्रह्मा की सभा में त्रिमूर्ति भगवान् शिव, विष्णु और ब्रह्मा सभी दिक्पाल, सभी देवता, सनक आदि योगीगण, नारद आदि देवर्षिगण, वशिष्ठ आदि तपस्वीगण एकत्रित हुए, तब वहाँ वे सब दोनों के पाँच मुख होने के कारण ब्रह्मा और कपर्दी शिव में भेद नहीं समझ सके।।४७-४८।। तब वे सब एक दूसरे से पूँछने लगे कि कौंन ब्रह्मा है और कौंन शंकर हैं? उन बोलने वालों के मध्य में भगवान् शिव शीघ्र छिप गये, अन्तर्ध्यान हो गये।।४९।। तब पाँच मुख वाले ब्रह्मा और श्वेत वर्ण वाले नारायण थे। उन दोनों में भी यह संवाद होने लगा कि मैं ही ब्रह्मा इस नाम से पैदा हुआ हूँ।।५०।।

अज्ञ मन्नाभिकमलाज्जातस्त्वं यन्ममात्मजः। सृष्टिकर्ता त्वहं ब्रह्मा नामसाधर्म्यतस्तथा।
त्वं च रुद्रश्च मे पुत्रौ सृष्टिकर्तुरुभौ युवाम्॥५१॥
इति मायामोहितयोरुभयोरंतरे तदा। तयोश्च स्वस्य माहात्म्यमहं ब्रह्मेति दर्शयन्।
प्रादुरासीन्महा ज्योतिस्तंभरूपो महेश्वरः॥५२॥
ज्ञात्वैवैनं महेशानं विष्णुस्तूष्णीं ततः स्थितः। पंचवक्त्रस्ततो ब्रह्मा ह्यवमत्यैवमास्थितः।
ब्रह्मणः शिरसामूध्वर ज्योतिश्चक्रमभूत्पुरः॥५३॥
तन्मध्ये संस्थितो देवः प्रादुरासोमया सह। ऊर्ध्वमैक्षथ भूयस्तमवमत्य वचोऽब्रवीत्॥५४॥
तन्निशम्य भृशं क्रोधमवाप त्रिपुरान्तकः। विष्णुमेवं तदालोक्य क्रोधेनैव विकारतः॥५५॥
तयोरेव समुत्पन्नो भैरवः क्रोधसंयुतः। मूर्धानमेकं चिच्छेद नखेनैव तदा विधेः।
हाहेति तत्र सर्वेऽपि क्रन्दंतश्च पलायिताः॥५६॥
अथ ब्रह्मकपालं तु नखलग्नं स भैरवः। भूयोभूयो धुनोति स्म तथापि न मुमोच तम्॥५७॥
तद्ब्रह्महत्यामुक्त्यर्थं चचार धरणीतले। पुण्यक्षेत्राणि सर्वाणि गंगाद्याश्च महानदीः॥५८॥
न च ताभिर्विमुक्तोऽभूत्कपाली ब्रह्महत्यया। विषण्णवदनो दीनो निःश्रीक इव लक्षितः।
चिरेण प्राप्तवान्कांचीं ब्रह्मणा पूर्वमोषिताम्॥५९॥
तत्र भिक्षामटन्नित्यं सेवमानः परां श्रियम्। पंचतीर्थे प्रतिदिनं स्नात्वा भूलक्षणांकिते॥६०॥

नारायण भगवान् विष्णु ने कहा कि मूर्ख! तुम मेरी नाभि से पैदा होने वाले कमल से पैदा हुए हो, इसलिए तुम मेरे पुत्र हो। जिस ब्रह्मा शब्द का अर्थ है सृष्टि करने वाला अतः सृष्टि का करने वाला तो मैं हूँ, क्योंकि मैंने तुम्हें पैदा किया है। ब्रह्मा शब्द का अर्थ पैदा करने वाला है तथा मैं पैदा करने वाला हूँ, इसलिए मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं सृष्टिकर्ता हूँ। तुम और रुद्र दोनों मेरे पुत्र हो।।५१।। तब माया से मोहित उन दोनों के बीच में मैं महान् हूँ, मेरा माहात्म्य अधिक है, मैं ब्रह्मा हूँ, यह दिखाते हुए महान् ज्योति के स्तम्भ रूप से महेश्वर प्रकट हो गये।।५२।। यह महेश ही हैं, ऐसा जानकर भगवान् विष्णु चुप होकर खड़े हो गये। उसके बाद पाँच मुख वाले ब्रह्मा उनको तिरस्कार कर खड़े हो गये। तब ब्रह्माजी के शिरों के ऊपर तो ज्योतिश्चक्र स्थित था।।५३।। उसके मध्य भगवान् शंकर चन्द्रमा के साथ प्रकट होकर स्थित थे। तब ब्रह्माजी ने ऊपर को देखा और फिर अवहेलना करके ये वचन बोले।।५४।। उसको सुनकर त्रिपुरान्तर बहुत अधिक क्रोधित हो गये। इस प्रकार विष्णु को देखकर क्रोध के द्वारा अर्थात् क्रोध के ही विकार से क्रोध से युक्त भैरव उत्पन्न हो गये। तब उस भैरव ने ब्रह्मा जी के मूर्धन मस्तक में एक छेद कर दिया, तब हा हा इस प्रकार क्रन्दन करते हुए सब भाग गये।।५६।।

इसके बाद ब्रह्माजी के कपाल में नाखून लगाये हुए वे भैरव बार-बार उन ब्रह्माजी को धुनते रहे, अर्थात् उनके मस्तक को नाखूनों से छेदते रहे। ब्रह्माजी छटपटाते रहे, फिर भी भैरव ने उन्हें नहीं छोड़ा और मार दिया।।५७।। तब भैरव ब्रह्महत्या से मुक्ति के लिए समस्त भूमण्डल में सब पुण्यक्षेत्रों गङ्गा आदि महानदियों में विचरण करने लगे। फिर भी वे कपाली उस ब्रह्महत्या से मुक्त नहीं हुए, तब वे दुःखी मुख वाले शोभारहित दिखाई दे रहे थे, तब बहुत समय के बाद कांचीपुर में पहुँचे, जहाँ वे पहले रह चुके थे।।५८-५९।। वहाँ पर वे कपाली भैरव भिक्षाटन करते हुए उन परा श्रीत्रिपुरसुन्दरी की सेवा करते हुए लक्षणांकित पृथ्वी के लक्षण से अंकित पंचतीर्थ में प्रतिदिन स्नान करके

कञ्चित्कालमुवासाथ प्रभ्रान्त इव बिल्वलः। कांचीक्षेत्रनिवासेन क्रमेण प्रयताशयः॥६१॥
निर्धूतनिखिलांतकः श्रीदेवीं मनसा वहन्। उत्तरे सेवितुं लक्ष्म्या वासुदेवेन दक्षिणे॥६२॥
श्रीकामकोष्ठमागत्य पुरस्तात्तस्य संस्थितः। आदिलक्ष्मीपदध्यानमाततान यतात्मवान्॥६३॥
यथा दीपो निवातस्थो निस्तरंगो यथांबुधिः। तथांतर्वायुरोधेन न चचालाचलेश्वरः॥६४॥
तैलधारावदच्छिन्नामनवच्छिन्नभैरवः। वितेन शैलतनयानाथश्रीध्यानसन्ततिम्॥६५॥

न ब्रह्मा नैव विष्णुर्वा न सिद्धः कपिलोऽपि वा।
नान्ये च सनकाद्या ये मुनयो वा शुकादयः।
तया समाधिनिष्ठायां न समर्थाः कथंचन॥६६॥

अथ श्रीभावयोगेन श्रीभावं प्राप्तवाञ्शिवः। ततः प्रसन्ना श्रीदेवी प्रभामण्डलवर्तिनी।
अर्धरात्रे पुरः स्थित्वा वाचं प्रोवाच वाङ्मयी॥६७॥

श्रीकण्ट सर्वपापघ्न किं पापं तव विद्यते। मद्रूपस्त्वं कथं देहः सेयं लोकविडम्बना॥६८॥
श्वोभूते ब्रह्महत्यायाः क्षणान्मुक्तो भविष्यसि। इत्युक्त्वान्तर्दधे तत्र महासिंहासनेश्वरी॥६९॥

भैरवोऽपि प्रहृष्टात्मा कृतार्थः श्रीविलोकनात्।
विनीय तं निशाशेषं श्रीध्यानैकपरायणः॥७०॥

कुछ समय तक भूले-भटके से दुःखी रहते हुए निवास करते रहे।।६०-६०½।। कांची क्षेत्र में निवास करने से उन प्रयत्नशील आशय वाले ब्रह्माजी के समस्त दुःख समाप्त हो गये, तब श्रीदेवी का मन से स्मरण करते हुए उन भैरव शंकर जी ने उत्तर में लक्ष्मी जी की सेवा की और दक्षिण में वासुदेव भगवान् विष्णु की सेवा कर श्रीकामकोष्ठ में आकर उसके सामने स्थित हो गये और फिर संयत आत्मा वाले वे भैरव रूप शंकर आदिलक्ष्मी के चरणों में ध्यानमग्न हो गये।।६०½-६३।। जिस प्रकार वायुरहित स्थान में रखा हुआ दीपक निश्चल होता है, उसी प्रकार निश्चल होकर बिना हिलते-डुलते हुए वे ध्यानमग्न थे तथा जिस प्रकार लहरों रहित समुद्र होता है, उसी प्रकार उन्होंने वायु को अपने अन्तर्गत रोक लिया था, जिसके कारण वे बिल्कुल अचल हो गये थे।।६४।। जिस प्रकार तेल की धार बिना टूटे हुए एक होकर गिरती है, उसी प्रकार बिल्कुल अनवच्छिन्न (एकलय) होकर वे भैरव श्रीशैलनाथ पुत्री पार्वती श्रीनाथा के ध्यान में लीन हो गये तथा वे भैरव उनके ध्यान में इतने लीन हो गये कि ध्यानमग्नता न तो ब्रह्मा कभी ब्रह्मा न ही विष्णु की हुई न सिद्धगण हुई न कपिल मुनि की हुई और न अन्य मुनिगण सनक आदि ही हुए और न जो शुक आदि मुनि थे, वे भी ऐसी समाधिनिष्ठा में किसी भी प्रकार समर्थ नहीं हुए थे।।६५-६६।।

इस प्रकार श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के प्रति अपनी भावना के योग से भगवान् शिव श्रीदेवी के भाव को प्राप्त हो गये, अर्थात् वे भी श्रीदेवीमय हो गये। तब प्रकाशमण्डल में रहने वाली श्रीदेवी ने प्रसन्न हो अर्धरात्रि में शिव के समक्ष उपस्थित होकर यह वाङ्मयी वाणी बोली।।६७।। कि हे श्रीकण्ठ! सब पापों को नष्ट करने वाले शिव जी! तुम्हारा क्या पाप है? तुम तो मेरे रूप वाले हो, तुम्हारे और मेरे रूप में कोई भाद नहीं, यह शरीर-भेद तो लोक-विडम्बना है। यह सब भेद तो लोगों को भ्रमित करने के लिये है।।६८।। कल होने पर ब्रह्महत्या के पाप से क्षण भर में मुक्त हो जाओगे। इस प्रकार ऐसा कहकर वे महासिंहासनेश्वरी श्रीदेवी त्रिपुरसुन्दरी अन्तर्धान हो गयीं।।६९।। श्रीदेवी के दर्शन से भैरव की आत्मा अत्यन्त प्रसन्न हो गयी और वे कृतार्थ हो गये, तब वे विनय पूर्वक शेष रात्रि में उन्हीं श्रीदेवी

प्रातः पञ्चमहातीर्थे स्नात्वा सन्ध्यामुपास्य च। पुनः पुनर्धूनुते स्म करलग्ने कपालकम्॥७१॥
तथापि तत्तु नास्त्रंसत्स निर्वेदं परं गतः। स्वप्नः किमेष माया वा मानसभ्रांतिरेव वा॥७२॥
मुहुरेव विचिंत्येशः शोकव्याकुलमानसः। स्वयमेव निगृह्याथ शोकं धीराग्रणीः शिवः॥७३॥
तुलसीमण्डलं नत्वा पूजयित्वा पुरः स्थितः। निगृहीतेंद्रियग्रामः समाधिस्थोऽभवत्पुनः॥७४॥
याममात्रे गते देवी पुनः सांनिध्यमागता। अलं समाधिना शम्भो निमज्जात्र सरोवरे॥७५॥

इत्यादिश्य तिरोऽधत्त सोऽपि चिंतामुपागमत्।
इयं च माया स्वप्नो वा किं कर्त्तव्यं मयाथ वा॥७६॥

श्वोभूते ब्रह्महत्यायाः क्षणान्मुक्तो भविष्यसि। इत्युक्तं श्रीपरादेव्या यामातीतमिदं दिनम्॥७७॥
एवं सर्वं च मिथ्यैवेत्यधिकं चिन्तयावृतः। भगवान्व्योमवाण्या तु निमज्जाप्स्विति गर्जितम्॥७८॥
श्रुत्वा शङ्कां समुत्सृज्य तत्त्वं निश्चित्य शङ्करः। निममज्ज सरस्यां तु गङ्गायां पुनरुत्थितः॥७९॥
तत्र काशीं समालोक्य किमेतदिति चिन्तयन्। स मुहूर्तं स्थितस्तूष्णीं नखलीनकपालकः॥८०॥
ललाटंतपमुद्वीक्ष्य तरणिं तरुणेंदुभृत्। भिक्षार्थं नगरीमेनां प्रविवेश वशी शिवः॥८१॥

गृहाणि कानिचिद्गत्वा प्रतोल्यां पर्यटन्भवः।
सोऽपश्यदग्रतः कांचित्कांचीं श्रीदेवताकृतिम्॥८२॥

के ध्यान में लीन हो गये।।७०।। उसके बाद प्रातःकाल पञ्च महातीर्थ में स्नान कर सन्ध्या और उपासना करके वे भैरव ब्रह्महत्या के पाप के भय से पुनः-पुनः अपने कपाल को धुनने लगे।।७१।। फिर भी उनको यह विश्वास नहीं हुआ कि मेरा पाप नष्ट हो गया है, तब वे फिर अत्यन्त दुःखी हो गये। अब तो उन्हें यह भ्रम हो गया कि पूर्व रात्रि में जो श्रीदेवी ने दर्शन देकर कहा था, वह एक स्वप्न था, अथवा कोई भ्रम था।।७२।। बार-बार इस प्रकार विचार कर वे ईश्वर भैरव शोकाकुल मन हो गये और फिर स्वयं ही उस शोक को रोककर धैर्यशालियों में अग्रणी शिव तुलसीमण्डल को नमस्कार कर श्रीदेवी के सामने स्थित हो, अपनी समस्त इन्द्रियों को आत्मस्थ कर, पुनः समाधिस्थ हो गये।।७३-७४।। रात्रि के कुछ शेष रह जाने पर श्रीदेवी पुनः उनके सामने प्रकट हो गयीं और उन्होंने कहा कि हे शम्भो! अब समाधि मत लगाओ, इस सरोवर में डूब जाओ।।७५।। इस प्रकार आदेश देकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं, तब वे भी चिन्तित हो गये कि यह माया है या स्वप्न है, अब मुझे क्या करना चाहिए।।७६।। मुझसे श्रीदेवी ने कहा था कि कल होने पर तुम क्षण भर में ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाओगे। यह जो परादेवी ने कहा, उसको एक रात और एक दिन बीत गया।।७७।।

इस प्रकार यह सब मिथ्या ही है, इस प्रकार भगवान् शंकर अधिक चिन्ता से युक्त हो गये। तब आकाशवाणी द्वारा तुम जल में डूब जाओ, इस प्रकार की गर्जना हुई।।७८।। तब उस गर्जना को सुनकर तथा उस आकाशवाणी तत्त्व है, यह निश्चय कर भगवान् शंकर उस सरोवर में डूब गये और फिर गङ्गा में जाकर काशी में निकले।।७९।। तब वहाँ काशी को देखकर यह क्या है? यह सोचते हुए वे नाखून में लगे ब्रह्मा के कपाल वाले भगवान् शंकर थोड़ी देर तक वहाँ चुपचाप खड़े रहे।।८०।। फिर तरुण चन्द्रमा को धारण करने वाले भगवान् शिव ललाट को तप्त करने वाले सूर्य को देखकर भिक्षा के लिए इस काशी नगरी में प्रविष्ट हुए।।८१।। कुछ घरों में जाकर गली में घूमते हुए उन भगवान् शंकर ने अपने आगे किसी देवी त्रिपुरेश्वरी की आकृति वाली काञ्ची (स्त्री) को देखा।।८२।।

भिक्षां ज्योतिर्मयीं तस्मै दत्त्वा क्षिप्रं तिरोदधे। क्षणाद्ब्रह्मकपालं तत्प्रच्युतं तन्नखाग्रतः॥८३॥
तदृष्ट्वाद्भुतमीशानः कामाक्षी शीलमुत्तमम्। प्रसन्नवदनांभोजो बहु मेने मुहुः परम्॥८४॥
पुरी कांची पुरी पुण्या नदी कंपा नदी परा। देवता सैव कामाक्षीत्यासीत्संभावना पुरः॥८५॥
इत्थं देवीप्रभावेण विमुक्तः संकटाद्धरः।
स्वस्थः स्वस्थानमगमच्छ्लाधमानः परां श्रियम्॥८६॥
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि विलासं शृणुं कुम्भज। प्रभावं श्रीमहादेव्याः कामदं शृण्वतां सदा॥८७॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमान्नाम्ना दशरथो नृपः। सन्तानरहितोऽतिष्ठद्बहुकालं शुचाकुलः॥८८॥
रहस्याहूय मतिमान्वशिष्ठं स्वपुरोहितम्। उवाचाचारसंशुद्धः सर्वशास्त्रार्थवेदिनम्॥८९॥
श्रीनाथ बहवोऽतीताः काला नाधिगतः सुतः। संततेर्मम संतापः संततं वर्धतेतराम्।
किं कुर्वे यदि संतानसंपत्स्यात्तन्निवेदय॥९०॥

वशिष्ठ उवाच

मम वंश महाराज रहस्यं कथयामि ते।
अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवंतिका।
एता पुण्यतमाः प्रोक्ताः पुरीणामुत्तमोत्तमाः॥९१॥

तब उन भगवान् शिव के लिए भिक्षा देकर वे ज्योतिर्मयी देवी शीघ्र अन्तर्धान हो गयीं और शीघ्र ब्रह्मा का कपाल उनके नाखून के अग्रभाग से निकल कर गिर पड़ा।।८३।। तब भगवान् शिव ने कामाक्षी देवी के उस अद्भुत उत्तम शील को देखकर प्रसन्नमुख होकर उन देवी को फिर बहुत अधिक शक्तिशाली माना।।८४।। और फिर पुरी कांची पुण्य पुरी है तथा वहाँ पर जो कम्पा नदी है, वह तो और भी अधिक पुण्यमय है तथा देवी तो वही कामाक्षी हैं, ऐसी पहले सम्भावना थी। वह आज सम्भावना पूरी हो गयी तथा यह सिद्ध हो गया कि कांची नगर सबसे पुण्य नगरी है और वहाँ पर स्थित कामाक्षी देवी सबसे श्रेष्ठ देवी हैं।।८५।। इस प्रकार देवी की कृपा से संकट से विमुक्त भगवान् शंकर स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त होकर श्रीपरा देवी त्रिपुरेशी की प्रशंसा करते हुए अपने स्थान को चले गये।।८६।।

इसके बाद भगवान् हयग्रीव ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे अगस्त्य जी! यह मैंने आपको देवी महात्रिपुरसुन्दरी का माहात्म्य बताया है, अब पुनः मैं उनके एक अन्य विलास (माहात्म्य) को बताऊँगा, अतः सुनने वालों की सदा इच्छा पूर्ण करने वाले देवी के प्रभाव को सुनिये।।८७।। अयोध्यापति श्रीमान् राजा दशरथ बहुत समय तक सन्तानरहित रहे। इसलिए वे बहुत समय तक शोक से व्याकुल रहे।।८८।। तब शुद्ध आचरण वाले बुद्धिमान् दशरथ ने एकान्त में अपने सब शास्त्रों के अर्थों को जानने वाले पुरोहित गुरु वशिष्ठ को बुलाकर उनसे कहा।।८९।। कि हे नाथ! बहुत समय बीत गया; परन्तु हमने पुत्र को नहीं प्राप्त किया। हे गुरुदेव हमारा सन्तान का दुःख निरन्तर बढ़ता जा रहा है। हे नाथ! बताइए अब हम क्या करें, जिससे सन्तान प्राप्त हो सके।।९०।।

वशिष्ठ ने कहा कि मेरे वंश में उत्पन्न महाराज दशरथ! मैं तुम्हें रहस्य की बात बता रहा हूँ। अयोध्या, मथुरा, काशी, कांची और अवन्तिका (उज्जैन नगरी) ये सब नगरियाँ नगरियों में उत्तम और पुण्यतम कही गयी हैं।।९१।।

अस्याः सांनिध्यमात्रेण महात्रिपुरसुन्दरीम्। अर्चयंति ह्ययोध्यायां मनुष्या अधिदेवताम्॥९२॥
नैतस्याः सदृशी काचिद्देवता विद्यते परा। एनामेवार्चयंत्यन्ये सर्वे श्रीदेवतां नृप॥९३॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सस्त्रीकाः सर्वदा सदा।
नारिकेलफलालीभिः पनसैः कदलीफलैः॥९४॥
मध्वाज्यशर्कराप्राज्यैर्महापायसराशिभिः। सिद्धद्रव्यविशेषैश्च पूजयेत्रिपुरांबिकाम्।
अभीष्टमचिरेणैव संप्रदास्यति सैव नः॥९५॥
इत्युक्तवन्तमभ्यर्च्य गुरुमिष्टैरुपायनैः। स्वाङ्गजप्राप्तये भूयो विससर्ज विशांपतिः॥९६॥
ततो गुरूक्तरीत्यैव ललितां परमेश्वरीम्। अर्चयामास राजेंद्रो भक्त्या परमया युतः॥९७॥
एवं प्रतिदिनं पूजां विधाय प्रीतमानसः। अयोध्यादेवताधामामशिषत्तत्र सङ्गतः॥९८॥
अर्धरात्रे व्यतीते तु निभृतोल्लासदीपिके। किञ्चिन्निद्रालसस्यास्य पुरतस्त्रिपुरांबिका॥९९॥
पाशांकुशधनुर्बाणपरिष्कृतचतुर्भुजां सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता।
स्थित्वा वाचमुवाचेमां मन्दमिन्दुमतीसुतम्॥१००॥
अस्ति पंक्तिरथ श्रीमन्पुत्रभाग्यं तवानघ। विश्वासघातकर्माणि संति पूर्वकृतानि ते॥१०१॥
तादृशां कर्मणां शान्त्यै गत्वा काञ्चीपुरं वरम्।
स्नात्वा कम्पासरस्यां च तत्र मां पश्य पावनीम्॥१०२॥
मध्ये काञ्चीपुरस्यत्वं कन्दराकाशमध्यगम्।
कामकोष्ठं विपाप्मापि सप्तद्वारबिलान्वितम्॥१०३॥

इनमें से इस एक के भी सान्निध्य मात्र से अर्थात् इनमें से किसी एक नगरी में रहने मात्र से श्रीदेवी प्रसन्न होती हैं। इसलिए मनुष्य अयोध्या में श्रीदेवी महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा करते हैं।।९२।। क्योकि इन देवी महात्रिपुरसुन्दरी के समान अन्य कोई देवी नहीं है। इसलिए हे राजन्! इन श्रीदेवी की ही सब अर्चना करते हैं।।९३।। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता अपनी-अपनी पत्नियों के साथ सदैव नारियल के फलों, कटहलों, केलों, मधु, घृत, शक्कर और प्रचुर महाखीर आदि सिद्ध द्रव्यविशेषों से त्रिपुराम्बिका का यदि पूजन करें तो वे हमें अभीष्ट फल को शीघ्र ही प्रदान कर देंगी।।९५।। इस प्रकार अभीष्ट उपहारों से गुरु की अभ्यर्चना करके अपने अंग से उत्पन्न होने वाले पुत्र के लिए प्रजापति दशरथ ने विशेष व्यवस्था की।।९६।। उसके बाद महाराज दशरथ ने परम भक्ति से युक्त होकर गुरु वशिष्ठ द्वारा बतायी गयी रीति से ललिता परमेश्वरी की पूजा की।।९७।। इस प्रकार प्रतिदिन पूजा करके अयोध्याधाम को वहाँ पर अर्थसङ्गत कर दिया।।९८।। आधी रात के बीत ने पर चमकते हुए दीपक के शान्त हो जाने पर कुछ निद्रा से आलसयुक्त दशरथ के सामने महात्रिपुरसुन्दरी उपस्थित हो गयीं।।९९।। जो अपनी चार भुजाओं में पाश, अंकुश, धनुष-वाण लिये हुए थीं, एवं समस्त शृंगार के वेष से सजी हुई थीं तथा सभी प्रकार के आभूषणों से भूषित थीं, ऐसी वे महात्रिपुरसुन्दरी इन्दुमती के पुत्र शान्तचित्त राजा दशरथ से इस प्रकार बोलीं।।१००।। कि हे निष्पाप श्रीमन् दशरथ! तुम्हारे पुत्र भाग्य में आपके द्वारा किये गये कुछ विश्वासघात रूप कर्म हैं, जिनके कारण तुमको पुत्र नहीं पैदा हो रहा है।।१०१।। इसलिए वैसे कर्मों की शान्ति के लिए आप श्रेष्ठ कांचीपुर में जाकर कम्पा सरोवर में स्नान करके मुझ पवित्र करने वाली देवी का दर्शन करो।।१०२।। वहाँ कांचीपुर के मध्य में पापरहित सात द्वारों से युक्त

साम्राज्यसूचकं पुंसां त्रयाणामपि सिद्धिदम्। प्राङ्मुखी तत्र वर्तेऽहं महासिंहासनेश्वरी॥१०४॥
महालक्ष्मीस्वरूपेण द्विभुजा पद्मधारिणी। चक्रेश्वरी महाराज्ञी ह्यदृस्या स्थूलचक्षुषाम्॥१०५॥
ममाक्षिजा महागौरी वर्तते मम दक्षिणे। सौन्दर्यसारसीमा सा सर्वाभरणभूषिता॥१०६॥
मया च कल्पिताऽऽवासा द्विभुजा पद्मधारिणी।
महालक्ष्मीस्वरूपेण किं वा कृत्यात्मना स्थिता॥१०७॥
आपीठमौलिपर्यन्तं पश्य तस्तां ममांशजाम्।
पातकान्याशु नश्यंति किं पुनस्तूपपातकम्॥१०८॥
कुवासना कुबुद्धिश्च कुतर्कनिचयश्च यः। कुदेहश्च कुभावश्च नास्तिकत्वं लयं व्रजेत्॥१०९॥
कुरुष्व मे महापूजां सितामध्वाज्यपायसैः। विविधैर्भक्ष्यभोज्यैश्च पदार्थैं षड्रसान्वितैः॥११०॥
तत्रैव सुप्रसन्नाहं पूरयिष्यामि ते वरम्। उपदिश्येति साम्राज्ञी दिव्यमूर्तिस्तिरोदधे॥१११॥
राजापि सहसोत्थाय किमेतदिति विस्मितः।
देवीमुद्बोध्य कौसल्यां शुभलक्षणलक्षिताम्॥११२॥
तस्यै तद्रात्रिवृत्तांतं कथयामास सादरम्। तत्समाकर्ण्य सा देवी सन्तोषमभजत्तदा॥११३॥
प्राप्तहर्षो नृपः प्रातस्तया दयितया सह। अनीकसचिवोपेतः। काञ्चीपुरमुपागत्॥११४॥

कामकोष्ठ है, जो पुरुषों के साम्राज्य का सूचक है, अर्थात् मनुष्य को साम्राज्य प्रदान करने वाला है तथा मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम तीनों की भी सिद्धि प्रदान करने वाला है, अतः हे दशरथ! वहाँ तुम जाओ, वहाँ मैं महासिंहासनेश्वरी पूर्वाभिमुख होकर वर्तमान हूँ।।१०३-१०४।। वहाँ महालक्ष्मी के स्वरूप से दो भुजाओं वाली, कमल को धारण करने वाली महाराज्ञी चक्रेश्वरी, स्थूल चक्षुओं से न देखे जाने वाली, मेरी आँख से उत्पन्न हुई महागौरी मेरे दक्षिण भाग में विद्यमान है। वह देवी सुन्दरता का जो सार तत्त्व है, उसकी सीमा है, अर्थात् त्रिलोकी में सुन्दरता के तत्त्वों की जो सीमा है, उसी सीमा पर वे स्थित हैं तथा वे सब आभूषणों से भूषित हैं।।१०५-१०६।। महात्रिपुर सुन्दरी ने दशरथ से कहा कि मैंने ही दो भुजाओं वाली पद्मधारिणी देवी को वहाँ पर आवास दिया है तथा अपने कर्म से लक्ष्मी के स्वरूप से वे वहाँ स्थित हैं।।१०७।।

वहाँ पीठ से लेकर मौलि (पीठ की शिखा) तक उन मेरे अंश से उत्पन्न महागौरी को देखते ही समस्त पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, फिर छोटे-मोटे पापों की तो बात ही क्या है?।।१०८।। वहाँ जाकर उनका दर्शन करके बुरी वासना (बुरी इच्छाएँ), बुरी बुद्धि, कुतर्क आदि करने का विचार, बुरा शरीर, मन के बुरे विचार और ईश्वर को न मानने के भाव नष्ट हो जाते हैं।।१०९।। हे राजन्! वहाँ जाकर तुम शक्कर, मधु, घृत, खीर तथा छः रसों से बनाये हुए अनेकों प्रकार के भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों से मेरी पूजा करो।।११०।। वहीं पर मैं तुम्हारी पूजा से प्रसन्न होकर तुम्हें वर प्रदान करूँगी। इस प्रकार स्वप्न में उपदेश देकर श्री दिव्यमूर्ति त्रिपुरसुन्दरी अन्तर्धान हो गयीं।।१११।। इसके बाद राजा दशरथ भी अचानक उठकर यह क्या है? ऐसा सोचकर आश्चर्यचकित हो गये और अपनी पत्नी शुभलक्षणा कौशल्या को जगाकर उनसे उस समस्त वृत्तान्त को आदरपूर्वक कह सुनाया। तब उस वृत्तान्त को सुनकर वे देवी कौशल्या सन्तोष को प्राप्त हुईं।।११२-११३।। प्रातःकाल राजा दशरथ अपनी प्रिय पत्नी के साथ मुख्य सचिव के साथ कांची पुर में पहुँच गये।।११४।।

स्नात्वा कंपातरंगिण्यां दृष्ट्वा देवीं च पावनीम्।
पञ्चतीर्थे ततः स्नात्वा देव्या कौसल्यया नृपः॥११५॥
गोभूवस्त्र हिरण्याद्यैस्तत्तीर्थक्षेत्रवासिनः।
प्रीणयित्वा सपत्नीकस्तथा तद्भक्तिपूजकान्॥११६॥
अथालयं समाविश्य महाभक्त्या नृपोत्तमः। प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा विनयेन समन्वितः॥११७॥
ततः संनिधिमागत्य देव्या कौसल्यया सह। श्रीकामकोष्ठनिलयं महात्रिपुरसुन्दरीम्॥११८॥
त्रिमूर्तिजननीमंबां दृष्ट्वा श्रीचक्ररूपिणीम्।
प्रणिपत्य तु साष्टांगं भार्यया सह भक्तिमान्॥११९॥
स्वपुरे त्रैपुरे धाम्नि पुरेक्ष्वाकुप्रवर्तिते। दुर्वासा सशिष्येण पूजार्थं पूर्वकल्पिते॥१२०॥
दासीदासध्वजारोहगृहोत्सवसमन्विते। तत्र स्वगुरुणोक्तं च कृत्वा स्वात्मार्घपूजनम्॥१२१॥
रात्रौ स्वप्ने तु यद्रूपं दृष्टवान्स्वपुरे महः। तदेवात्रापि संदध्यौ सन्निधौ राजसत्तमः॥१२२॥
चिरं ध्यात्वा महाराजः सुवासांसि बहूनि च।
दिव्यान्यायतनान्यस्यै दत्त्वा स्तोत्रं चकार ह॥१२३॥
पादाग्रलंबिपरमाभरणाभिरामे मञ्जीररत्नरुचिमञ्जुलपादपद्मे।
पीतांबरस्फुरितपेशलहेमकाञ्चि केयूरकङ्कणपरिष्कृतबाहुवल्लि॥१२४॥
पुंड्रेक्षुचापविलसन्मृदुवामपाणे रत्नोर्मिकासुमशराञ्चितदक्षहस्ते।
वक्षोजमंडलविलासिवलक्षहारि पाशांकुशांगदलसद्भुजशोभितांगि॥१२५॥

वहाँ कम्पा नामक नदी में स्नान कर उन पवित्र देवी का दर्शन किया, उसके बाद पञ्चतीर्थ में स्नान करके देवी कौशल्या के साथ राजा दशरथ वहाँ के तीर्थ में रहने वालों को देवी की पूजा करने वाले भक्तों को गाय, भूमि, वस्त्र और स्वर्ण आदि से प्रसन्न करके पत्नी सहित आलय (मन्दिर) में सम्यक् रूप से प्रविष्ट होकर महान् भक्ति के साथ नृपश्रेष्ठ दशरथ परिक्रमा करके विनम्रता से युक्त हो गये।।११५-११७।। उसके बाद कौशल्या के साथ महादेवी त्रिपुरसुन्दरी के पास आकर भक्तिमान् उन्होंने श्रीकामकोष्ठनिलय की महात्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मा विष्णु और महेश तीनों मूर्तियों की जननी श्रीचक्ररूपिणी महाराज्ञी को देखकर पत्नी के साथ उनको साष्टांग प्रणाम किया।।११८-११९।। फिर प्रणाम करके अपने पुर त्रिपुराधाम कांचीपुर में ही उन्होंने शिष्यों से युक्त दुर्वासा ऋषि द्वारा वहाँ पर पूर्वकल्पित पूजा में दासी, दास, ध्वजारोहण तथा घर के जो भी उत्सव होते हैं, वे सब करते हुए अपने गुरु वशिष्ठ के कहे हुए के अनुसार उन्होंने सब प्रकार से पूजा-पाठ किया।।१२०-१२१।। तब रात्रि में स्वप्न में जिस रूप को उन्होंने अपने अयोध्या महान् पुर में देखा था, उसी रूप को उन राजश्रेष्ठ दशरथ ने यहाँ श्रीदेवी के पास में भी देखा।।१२२।। तब बहुत देर तक उनका ध्यान कर महाराज ने बहुत से सुन्दर वस्त्रों को तथा दिव्य आयतनों को इस देवी को प्रदान कर उनकी स्तुति की।।१२३।। कि हे पैरों के अग्रभाग तक लटकने वाले आभूषणों से सुन्दर लगने वाली, हे रत्नजटित घुंघरुओं के रत्नों की कान्ति से युक्त सुन्दर चरण कमल वाली, हे पीत वस्त्र पर चमकती हुई कोमल सोने के घुंघरुओं युक्त कर्धनी वाली, हे बाजूबन्द और कंगन से सजी हुई भुजलता वाली देवि! तुम मेरे हृदय में वास करो।।१२४।। हे पुण्ड्र, इक्षु और वाण से सुशोभित वाम हाथ वाली, हे रत्नों की चमक से युक्त पुष्पबाण से सुशोभित

वक्त्रश्रिया विजितशारदचन्द्रबिंबे ताटंकरत्नकरमण्डितगंडभागे।
वामे करे सरसिजं सुबिसं दधाने कारुण्यनिर्झरपाङ्गयुते महेशि॥१२६॥
माणिक्यसूत्रमणिभासुरकंबुकंठि भालस्थचन्द्रशकलोज्ज्वलितालकाढ्ये।
मंदस्मितस्फुरणशालिनि मंजुनासे नेत्रश्रिया विजितनीलसरोजपत्रे॥१२७॥
सुभ्रूलते सुवदने सुललाटचित्रे योगींद्रमानससरोजनिवासहंसि।
रत्नानुबद्धतपनीयमहाकिरीटे सर्वांगसुन्दरि समस्तसुरेन्द्रवंद्ये॥१२८॥
कांक्षानुरूपवरदे करुणार्द्रचित्ते साम्राज्यसम्पदभिमानिनि चक्रनाथे।
इन्द्रादिदेवपरिसेवितपादपद्मे सिंहसनेश्वरि परे मयि संनिदध्याः॥१२९॥

इति स्तुत्वा स भूपालो बहिर्निर्गत्य भक्तितः।
तस्यास्तु दक्षिणे भागे महागौरीं ददर्श ह॥१३०॥
प्रणम्य दंडवद्भूमौ कृत्वा चास्याः स्तुतिं पुनः।
दत्त्वा चास्यै महार्हाणि वासांसि विविधानि च॥१३१॥

अमूल्यानि महार्हाणि भूषणानि महांति च। ततः प्रदक्षिणीकृत्य निर्गत्य सह भार्यया॥१३२॥
स्वगुरूक्तविधानेन महापूजां विधाय च। तामेव चिन्तयंस्तत्र सप्तरात्रमुवास सः॥१३३॥

दक्ष हाथ वाली, हे स्तनों पर सुशोभित स्वच्छ हार वाली, हे पाश, अंकुश और कुहुनी से ऊपर पहने जाने वाले (वारा) आभूषण से सुशोभित भुजाओं से युक्त शरीर वाली देवि! आप मेरे हृदय में वास करो।।१२५।। हे अपने मुख की शोभा से शरत्कालीन चन्द्रविम्ब को भी जीतने वाली, हे कर्धनी में जड़े हुए रत्न की किरण से मण्डित कमर वाली, हे वायें हाथ में डंठल सहित कमल धारण करने वाली, अपनी आँखों से करुणा टपकाने वाली महेश्वरि! आप मेरे हृदय में वास करो।।१२६।। हे माणिक्य जटिल सूत्र की मणि से चमकती हुई सुराही जैसी लम्बी गरदन वाली देवि! मस्तक पर स्थित द्वितीया के चन्द्रमा से युक्त केशपाश वाली, मन्द मुस्कान के स्फुरण वाली, सुन्दर नासिका वाली तथा अपनी आँखों की शोभा से नीलकमल पत्र की शोभा को जीतने वाली देवि! तुम मेरे हृदय में वास करो।।१२७।। हे सुन्दर भ्रूलता (भौंहों) वाली, सुन्दर मुख वाली, सुन्दर मस्तक वाली, हे योगियों के कमल रूपी मन में निवास करने वाली हंसिनी! हे रत्नों से अनुबद्ध चमकते हुए महामुकुट वाली, सर्वांग सुन्दरि! समस्त देवों तथा देवेन्द्र से वन्दनीय देवि! तुम मेरे हृदय में वास करो।।१२८।।

हे इच्छा के अनुरूप वर प्रदान करने वाली, करुणा से आर्द्र चित्त वाली, साम्राज्य संपदा के अभिमान वाली, श्रीचक्र की स्वामिनी, इन्द्रादि देवों द्वारा सेवित चरण कमल वाली, सिंहासन की स्वामिनि! श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि! देवि! तुम मेरे हृदय में सन्निधान करो, निवास करो।।१२९।। इस प्रकार स्तुति करके उन राजा दशरथ ने बाहर निकलकर उन महात्रिपुरसुन्दरी के दक्षिण भाग में महागौरी को देखा।।१३०।। तब राजा दशरथ ने उन्हें भूमि पर दण्डवत् करते हुए प्रणाम करके पुनः स्तुति की और इन महागौरी को अनेकों प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र देकर तथा अमूल्य एवं बहुत योग्य आभूषणों को देकर उसके बाद उनकी परिक्रमा करके पत्नी के साथ निकल गये।।१३१-१३२।। और फिर गुरु वशिष्ठ द्वारा कहे गये विधान से महापूजा करके उन त्रिपुरेशी का ही चिन्तन करते हुए उन्होंने सात रातों तक वहाँ कांची नगर में निवास किया।।१३३।।

अष्टमे दिवसे देवीं नत्वा भक्त्या विलोकयन्।
अम्बाभीष्टं प्रदेहीति प्रार्थयामास चेतसा॥१३४॥
सुप्रसन्ना च कामाक्षी सांतरिक्षगिरावदत्। भविष्यंति मदंशास्ते चत्वारस्तनया नृप॥१३५॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य प्रमोदविकसन्मुखः। श्रियं प्रणम्य साष्टांगमनन्यशरणः पराम्॥१३६॥
आमन्त्र्य मनसैवांबां सस्त्रीकः सह मंत्रिभिः।
अयोध्यां नगरीं प्रापेदिंदुमत्यास्तु नन्दनः॥१३७॥
एवं प्रभावा कामाक्षी सर्वलोकहितैषिणी। सर्वेषामपि भक्तानां कांक्षितं पूरयत्यलम्॥१३८॥
एनां लोकेषु बहवः कामाक्षीं परदेवताम्।
उपास्य विविधद्भक्त्या प्राप्ताः कामानशेषतः॥१३९॥
अद्यापि प्राप्नुवंत्येव भक्तिमन्तः फलं मुने।
अनेके च भविष्यंति कामाक्ष्याः करुणादृशः॥१४०॥
माहात्म्यमस्याः श्रीदेव्याः को वा वर्णयितुं क्षमः। नाहं न शम्भुर्न ब्रह्मा न विष्णुः किमुतापरे॥१४१॥
इति ते कथितं किञ्चित्कामाक्ष्याः शीलमुज्ज्वलम्। शृण्वतां पठतां चापि सर्वपापहरं स्मृतम्॥१४२॥

इति श्रीब्रह्माण्डे महापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

आठवें दिन देवी त्रिपुरसुन्दरी को नमस्कार करके भक्तिपूर्वक देखते हुए हे मातः! आप मेरे अभीष्ट (पुत्रों) को मुझे प्रदान करें, इस प्रकार मन से प्रार्थना की।।१३४।। तब उनकी उस प्रार्थना से कामाक्षी ने आकाशवाणी द्वारा कहा कि हे राजन्! मेरे अंश से तुम्हारे चार पुत्र होंगे।।१३५।। इस प्रकार की आकाशवाणी को सुनकर राजा दशरथ का मुख आनन्द से खिल उठा और फिर उन्होने उन परालक्ष्मी त्रिपुरेश्वरी को साष्टांग प्रणाम किया।।१३६।। उसके बाद इन्दुमती पुत्र वे राजा दशरथ मन से श्री अम्बा को आमन्त्रित करके सपत्नीक मन्त्रियों के साथ अयोध्या नगरी में पहुँचे।।१३७।। इस प्रकार के प्रभाव वाली, समस्त लोकों का कल्याण चाहने वाली वे कामाक्षी देवी सब भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करती हैं।।१३८।। बहुत से मनुष्यों ने इन पर देवता कामाक्षी की विधिवत् भक्तिपूर्वक उपासना करके सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त किया है।।१३९।। हयग्रीव बोले कि हे अगस्त्य मुने! आज भी भक्ति करने वाले लोग प्राप्त करते ही हैं और आगे भविष्य में भी अनेक लोग कामाक्षी देवी की करुणा के पात्र होंगे।।१४०।। इन श्रीदेवी कामाक्षी का माहात्म्य कौन वर्णन कर सकता है, न मैं, न शम्भु और विष्णु, तब अन्यों की तो बात ही क्या है?।।१४१।। इस प्रकार हे अगस्त्य मुने! आपको कुछ कामाक्षी देवी का उत्तम चरित्र वर्णन किया है। यह चरित्र सुनने वालों और पढ़ने वालों के सब पापों को हरने वाला स्मरण किया गया है।।१४२।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४० वाँ अध्याय काञ्चीपुर माहात्म्य का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

श्रीविद्यायन्त्रोपासना नाम

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

कीदृशं यंत्रमेतस्या मंत्रो वा कीदृशो वरः।
उपदेष्टा च कीदृक्स्याच्छिष्यो वा कीदृशः स्मृतः॥१॥
सर्वज्ञस्त्वं हयग्रीव साक्षात्परमपूरुषः। स्वामिन्मयि कृपादृष्ट्या सर्वमेतन्निवेदय॥२॥

हयग्रीव उवाच

मंत्रं श्रीचक्रमेवास्याः सेयं हि त्रिपुरांबिका। सैषेव हि महालक्ष्मीः स्फुरच्चैवात्मनः पुरा॥३॥
पश्यति स्म तदा चक्रं ज्योतिर्मयविजृंभितम्। अस्य चक्रस्य महात्म्यपरिज्ञेयमेव हि॥४॥
साक्षात्सैव महालक्ष्मीः श्रीचक्रमिति तत्त्वतः। यदभ्यर्च्य महाविष्णुः सर्वलोकविमोहनम्।
कामसंमोहिनीरूपं भेजे राजीवलोचनः॥५॥
अर्चयित्वा तदीशानः सर्वविद्येश्वरोऽभवत्। तदाराध्य विशेषेण ब्रह्मा ब्रह्मांडसूरभूत्।
मुनीनां मोहनश्चासीत्स्मरो यद्वरिवस्यया॥६॥
श्रीदेव्याः पुरतश्चक्रं हेमरौप्यादिनिर्मितम्। निधाय गन्धैरभ्यर्च्य षोडशाक्षरविद्यया॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–४२

श्रीविद्यायन्त्र उपासना

अगस्त्य मुनि वोले कि हे भगवान् हयग्रीव! आपने कामाक्षी महात्रिपुरसुन्दरी की भक्ति का माहात्म्य वर्णन किया; परन्तु अभी तक यह नहीं बताया कि इन महात्रिपुरसुन्दरी कामाक्षी का कैसा यन्त्र है? और कैसा मन्त्र है? तथा इसका उपदेष्टा कैसा होना चाहिए? तथा शिष्य कैसा होना चाहिए?।।१।। हे हयग्रीव! आप सब कुछ जानने वाले हैं तथा आप साक्षात् परम पुरुष हैं, अतः हे स्वामिन् मुझ पर कृपादृष्टि रखते हुए सब कुछ बतलाइए।।२।।

हयग्रीव बोले कि इन महात्रिपुरसुन्दरी का यन्त्र श्रीचक्र है और वह यह त्रिपुरात्मिका हैं। वह यही महालक्ष्मी प्राचीन काल में इस चक्र में आत्मा के रूप में प्रकाशित होती हुई देखी गयी थीं, तब यह प्रकाशमय चक्र प्रकट हुआ, अतः इस चक्र का माहात्म्य अपरिज्ञेय है।।३-४।। तत्त्वरूप में यह चक्र ही साक्षात् महालक्ष्मी है, जिसकी पूजा करके कमलनयन भगवान् विष्णु ने समस्त संसार को मोहित करने वाला कामसम्मोहिनी रूप धारण किया था।।५।। जिस चक्र की पूजा-अभ्यर्चना करके भगवान् शंकर सब विद्याओं के स्वामी बने, जिसकी विशेष रूप से आराधना करके ब्रह्मा जी ब्रह्माण्ड के रचयिता बने तथा उनकी पूजा के ही कारण कामदेव मुनियों को मोहित करने वाले और सम्मान के योग्य वने।।६।। सोने अथवा चाँदी में श्रीदेवी का चक्र बनवाकर आगे रखकर सोलह अक्षरों की विद्या से गन्धों

प्रत्यहं तुलसीपत्रैः पवित्रैर्मंगलाकृतिः। सहस्रैर्मूलमंत्रेण श्रीदेवीध्यानसंयुतः॥८॥
अर्चयित्वा च मध्वाज्यशर्करापायसैः शुभैः। अनवद्यैश्च नैवेद्यैर्माषापूपैर्मनोहरैः॥९॥
यः प्रीणाति महालक्ष्मीं मतिमान्मण्डलत्रये। सहसा तस्य सांनिध्यमाधत्ते परमेश्वरी॥१०॥
मनसा वाञ्छितं यच्च प्रसन्ना तत्प्रपूरयेत्। धवलैः कुसुमैस्चक्रमुक्तरीत्या तु योऽर्चयेत्॥११॥
तस्यैव रसनाभागे नित्यं नृत्यति भारती। पाटलैः कुसुमैश्चक्रं योऽर्चयेदुक्तमार्गतः।

सार्वभौमं च राजानं दासवद्वशयेदसौ॥१२॥
पीतवर्णैः शुभैः पुष्पैः पूर्ववत्पूजयेच्च यः।
तस्य वक्षस्थले नित्यं साक्षाच्छ्रीर्वसति ध्रुवम्॥१३॥

दुर्गंधैर्गंधहीनैस्च सुवर्णैपि नार्चयेत्। सुगन्धैरेव कुसुमैः पुष्पैश्चाभ्यर्चयेच्छिवाम्॥१४॥
कामाक्ष्यैव महालक्ष्मीश्चक्रं श्रीचक्रमेव हि। श्रीविद्यैषा परा विद्या नायिका गुरुनायिका॥१५॥
एतस्या मंत्रराजस्तु श्रीविद्यैव तपोधन। कामराजांतमंत्रांते श्रीबीजेन समन्वितः॥१६॥
षोडशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता। इत्थं रहस्यमाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः॥१७॥
तिसृणामपि मूर्तीनां शक्तिर्विद्येयमीरिता। सर्वेषामपि मंत्राणां विद्यैषा प्राणरूपिणी॥१८॥
पारंपर्येण विज्ञाता विद्येयं बन्धमोचिनी। संस्मृता पापहरणी जरामृत्युविनाशिनी॥१९॥

से उसकी पूजा करके प्रतिदिन पवित्र तुलसी के पत्तों से मंगलाकृति रूप में स्थित हो एक हजार मूलमन्त्रों से श्रीदेवी के ध्यान में लीन होकर पूजा करनी चाहिए। पूजा करके शुभ मधु, घृत, शक्कर, खीर, शुद्ध मिष्ठान्नों, मनोहर उड़द के पूओं से जो बुद्धिमान् मनुष्य महालक्ष्मी को तीन मण्डलों में प्रसन्न करता है। उसके पास में अचानक वे परमेश्वरी आ जाती हैं तथा उस व्यक्ति के मन में जो भी इच्छा होती है, उसको वे प्रसन्न देवी पूर्ण करें।।७-१०½।। जो मनुष्य पूर्वोक्त रीति से पूजा करता हुआ सफेद फूलों से श्रीचक्र की पूजा करता है, उसके ही जिह्वा के भाग पर भारती (सरस्वती) देवी के नित्य नृत्य करती हैं तथा पूर्वोक्त रीति से ही पूजा करता हुआ व्यक्ति यदि लाल पुष्पों (गुलाब आदि) के फूलों से यदि श्रीचक्र की पूजा करे, तो वह व्यक्ति सबके स्वामी राजा को दास के समान बना कर वश में कर लेगा।।१०½-१२।। पूर्वोक्त रीति से सब कुछ कर यदि पीले रंग के फूलों से पूर्ववत् पूजा करे, तो उस मनुष्य के हृदय में लक्ष्मी नित्य और निश्चित रूप से वास करती हैं।।१३।। यदि पुष्प दुर्गन्धयुक्त हों अथवा गन्धहीन हों, पर भले ही सुन्दर वर्ण के हों, उनसे शिवा की पूजा नहीं करनी चाहिए। सुगन्धित पुष्पों से ही उन महात्रिपुरसुन्दरी शिवा की पूजा करनी चाहिये।।१४।।

कामाक्षी ही महालक्ष्मी हैं तथा महालक्ष्मी चक्र ही श्रीचक्र है, यह श्रीविद्या ही परा विद्या है, यही कामाक्षी नायिका है तथा यही गुरुनायिका है। अतः हे अगस्त्य जी! इसका मन्त्रराज तो श्रीविद्या ही है। कामराज के अन्त तक के मन्त्र हैं, जो श्रीदेवी के बीजमन्त्र से युक्त हैं।।१५-१६।। यह श्रीविद्या सोलह अक्षर वाली बतायी गयी है। इस प्रकार यह प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रहस्य बताया गया है।।१७।। तीन मूर्तियों (सरस्वती, लक्ष्मी और रौद्री) की शक्ति यह देवी ही कही गयी हैं। सभी मन्त्रों की यह प्राणरूप वाली विद्या है। अर्थात् सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने वाली जो तीन शक्तियाँ हैं, जिनको कि सरस्वती, लक्ष्मी और शिवा (रौद्री) नाम दिये गये हैं, वे तीनों शक्तियाँ इन महात्रिपुरसुन्दरी में निहित हैं, यही देवी सब मन्त्रों की विद्या है तथा उनका श्रीचक्र ही उनका प्राण धारण करने वाला रूप है।।१८।। परम्परा

पूजिता दुःखदौर्भाग्यव्याधिदारिद्र्यनाशिनी।
स्तुता विघ्नौघशमिनी ध्याता सर्वार्थसिद्धिदा॥२०॥
मुद्राविशेषतत्त्वज्ञो दीक्षाक्षपितकल्मषः। भजेद्यः परमेशानीमभीष्टफलमाप्नुयात्॥२१॥
धवलांबरसंवीतां धवलावासमध्यगाम्। पूजयेद्धवलैः पुष्पैर्ब्रह्मचर्ययुतो नरः॥२२॥
धवलैश्चैव नैवेद्यैर्दधिक्षीरौदनादिभिः। संकल्पधवलैर्वापि पूजयेत्परमेश्वरीम्॥२३॥
श्रीर्वालंत्र्यक्षीबीजैः क्रमात्खंडेषु योजिताम्। षोडशाक्षरविद्यां तामर्चयेच्छुद्धमानसः।।२४।।
अनुलोमविलोमेन प्रजपन्मात्रिकाक्षरैः॥२५॥
भावयन्नेव देवाग्रे श्रीदेवीं दीपरूपिणीम्। मनसोपांशुना वापि निगदेनापि तापस॥२६॥
श्रीदेवीन्याससहितः श्रीदेवीकृतविग्रहः। एकलक्षजपेनैव महापापैः प्रमुच्यते॥२७॥
लक्षद्वयेन देवर्षे सप्तजन्मकृतान्यपि। पापानि नाशयत्येव साधकस्य परा कला॥२८॥
लक्षत्रितयजापेन सहस्रजनिपातकैः। मुच्यते नात्र संदेहो निर्मलो नितरां मुने।
क्रमात्षोडश लक्षेण देवीसांनिध्यमाप्नुयात्॥२९॥
पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च। होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते॥३०॥

से ही इस विद्या को बन्धन से मुक्त करने वाली कहा गया है तथा ये पाप को हरने वाली तथा जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु का नाश करने वाली स्मरण की गयी हैं।।१९।। जब इनकी पूजा की जाती है, तब ये मनुष्य के दुःख, दुर्भाग्य, व्याधि (रोगादि) तथा दरिद्रता का नाश कर देती हैं तथा स्तुति की जाती है, तो समस्त विघ्नों को शान्त करती हैं तथा ध्यान करने पर महादेवी समस्त अर्थों की सिद्धि (सफलता) प्रदान करती है।।२०।। पूजा करने की जो मुद्राएँ हैं, उनके तत्त्व विशेष रूप से जानने वाला दीक्षा प्राप्त और निष्पाप व्यक्ति यदि परमेशानी की पूजा करे, उनका भजन करे, तो वह अभीष्ट फल को अवश्य प्राप्त करेगा।।२१।।

श्वेत वस्त्र पहने हुए, श्वेत घर के मध्य स्थित हो, वहीं पर श्रीचक्र को स्थापित कर ब्रह्मचर्य से युक्त मनुष्य को श्वेत पुष्पों से, श्वेत वर्ण के भोज्य पदार्थों से दही, खीर, भात आदियों से तथा श्वेत संकल्पों (श्वेत विचारों) से, महात्रिपुरेश्वरी की पूजा करनी चाहिए।।२२-२३।। श्री वालंत्र्यक्षी बीजों से क्रम से उनको श्रीचक्र के खण्डों में रखता हुआ, उस सोलह अक्षरी विद्या की शुद्ध चित्त वाले मनुष्य को पूजा करनी चाहिए।।२४।। अनुलोम और विलोम क्रम से मात्रा के अक्षरों को जपते हुए अर्थात् अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इस अनुलोम क्रम से तथा अः, अं, औ, ओ, ऐ, ए, ॡ, ऌ, ऊ, उ, ई, इ, आ, अ इस विलोम क्रम से जपते हुए देवता के आगे भावविभोर होता हुआ मन ही मन जाप करते हुए अथवा बोलते हुए श्रीदेवी के न्यास के साथ श्रीदेवी का शरीर बनाकर एक लाख बार जप करने से मनुष्य महापापों से मुक्त हो जाता है।।२५-२७।। हयग्रीव कहते हैं कि हे देवर्षि अगस्त्य जी! यदि मनुष्य दो लाख बार जाप करे, तो सात जन्म के किये गये पाप भी नष्ट हो जाते हैं, यह साधक की परा कला है।।२८।। तीन लाख बार जप करने से मनुष्य हजारों जन्मों के पापों से मुक्त हो निर्मल हो जाता है। इसमें हे मुने! कोई सन्देह नहीं है तथा क्रम से सोलह लाख बार जाप करने से मनुष्य देवी के सान्निध्य को प्राप्त करता है।।२९।। जो मनुष्य नित्य प्रातः दो पहर और सायं ८ घण्टे के अन्तर पर तीन बार जप, तर्पण, हवन और ब्राह्मण को भोजन कराये तो वह पुरश्चरण कहा जाता है।।३०।।

होमतर्पणयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः। मंत्रांते पूजयेद्देवीं जपकाले यथोचितम्॥३१॥
जपाद्दशांशो होमः स्यात्तद्दशांशं तु तर्पणम्। तद्दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं विंध्यमर्दन॥३२॥
देशकालोपघाते तु यद्यदंगं विहीयते। तत्संख्याद्विगुणं जप्त्वा पुरश्चर्यां समापयेत्॥३३॥
ततः काम्यप्रयोगार्थं पुनर्लक्षत्रयं जपेत्। व्रतस्थो निर्विकारश्च त्रिकालं पूजने रतः।
पश्चाद्वश्यादिकर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यति॥३४॥
अभ्यर्च्य चक्रमध्यस्थो मन्त्री चिन्तयते यदा। सर्वमात्मानमरुणं साध्यमप्यरुणीकृतम्॥३५॥
ततो भवति विन्ध्यारे सर्वसौभाग्यसुन्दरः। वल्लभः सर्वलोकानां वशयेन्नात्र संशयः॥३६॥
रोचनाकुंकुमाभ्यां तु समभागं तु चन्दनम्। शतमष्टोत्तरं जप्त्वा तिलकं कारयेद् बुधः॥३७॥
ततो यमीक्षते वक्ति स्पृशते चिन्तयेच्च यम्। अर्धेन च शरीरेण स वशं याति दासवत्॥३८॥
तथा पुष्पं फलं गन्धं पानं वस्त्रं तपोधन। शतमष्टोत्तरं जप्त्वा यस्यै संप्रेष्यते स्त्रियै।
सद्य आकृष्यते सा तु विमूढहृदया सती॥३९॥
लिखेद्रोचनयैकांते प्रतिमामवनीतले। सुरूपां च सशृङ्गारवेषाभरणमंडिताम्॥४०॥
तद्भालगलहृन्नाभिजानुमंडलयोजितम्। जन्मनाम महाविद्यामंकुशांतर्विदर्भितम्॥४१॥
सर्वांगसंधिसंलीनामालिख्य मदनाक्षरैः। तदाशाभिमुखो भूत्वा त्रिपुरीकृतविग्रहः॥४२॥

होम और तर्पण में स्वाहा और न्यास (देवी स्थापना) और पूजन में नमस्कार कहना चाहिए। जप के समय मन्त्र के अन्त में देवी का यथोचित पूजन करना चाहिए।।३१।। जप का दशवाँ भाग का होम (हवन) करना चाहिए। होम का दशवाँ भाग तर्पण करना चाहिए तथा हे अगस्त्य जी! उसका भी दशवाँ भाग ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।।३२।। देश, काल और उपघात में जो जो अंग छूट जाता है, उस उस अंग का तिगुना जाप करके पुरश्चर्या सम्पन्न करनी चाहिए।।३३।। उसके बाद काम्य प्रयोग के लिए पुनः तीन लाख बार जाप करना चाहिए। इस प्रकार व्रत में स्थित रहता हुआ, मन में कोई विकार न रखकर तीनों कालों प्रातः, दोपहर, सांय में पूजारत मनुष्य वश्यादि कर्मों को करता हुआ अवश्य सिद्धि को प्राप्त करेगा।।३४।। श्रीचक्र के मध्य में स्थित होकर मन्त्र का जाप करने वाला व्यक्ति जब चिन्तन ध्यान करता है तथा स्वयं को अरुण (लाल वर्ण) करके और साध्य जो भी है, उसको भी अरुण कर देता है, उसके बाद वह सब प्रकार से सुन्दर भाग्य वाला और समस्त लोकों का प्रिय हो जाता है तथा सबको वश में कर लेता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३५-३६।।

गोरोचन, कुंकुम और चन्दन तीनों समान भाग करके १०८ बार जप करके जो तिलक लगाये, उसके बाद वह मनुष्य जिसको देखे, जिससे बात करे, जिसको स्पर्श करे अथवा जिसके विषय में सोचे, वह व्यक्ति आधे शरीर से सेवक के समान वश में हो जाता है।।३७-३८।। तथा हे तपोधन! पुष्प, फल, गन्ध, पान, वस्त्र आदि १०८ बार मन्त्र का जप कर जिस स्त्री को देता है, वह स्त्री विमूढ़ हृदय होकर शीघ्र उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है।।३९।। अब महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा करने से मनुष्य को कामदेव के समान हो जाने का विधान बताते हुए कहते हैं कि व्यक्ति एकान्त में पृथ्वीतल पर सुन्दर रूप वाली, शृंगार वेषभूषा और आभूषणों से सजी हुई महात्रिपुर सुन्दरी ललितेश्वरी की गोरोचन से प्रतिमा बनाये तथा उसके मस्तक से नाभि और जंघाओं तक लटकती हुई जन्मनाम महाविद्या अंकुश से लेकर कुशों तक सर्वाङ्ग सन्धि संलीना को मदनाक्षरों से सम्यक् प्रकार से चित्रित कर, जिस दिशा में वह हो, उसी

बद्धा तु क्षोभिणीं मुद्रां विद्यामष्टशतं जपेत्। संयोज्य दहनागारे चन्द्रसूर्यप्रभाकुले॥४३॥
ततो विह्वलितापांगीमनङ्गशरपीडिताम्। प्रज्वलन्मदनोन्मेषप्रस्फुरज्जघनस्थलाम्॥४४॥
शक्तिचक्रे लसद्रश्मिवनाकवलीकृताम्। दूरीकृतसुचारित्रां विशालनय नाम्बुजाम्॥४५॥
आकृष्टनयनां नष्टधैर्यसंलीनव्रीडनाम्। मन्त्रयन्त्रौषधमहामुद्रानिगडबंधनाम्।
नवानुरागसंधानवेषमानहृदंबुजाम्।।४६।।
मनोऽधिकमहामंत्रजपमानां हृतांशुकाम्। विमूढामिव विक्षुब्धामिव प्लुष्टामिवाद्भुताम्॥४७॥
लिखितामिव निःसंज्ञामिव प्रमथितामिव। निलीनामिव निश्चेष्टामिवान्यत्वं गतामिव॥४८॥
भ्रमन्मन्त्रानिलोद्धूतवेणुपत्राकृतिं च खे। भ्रमन्तीं भावयेन्नारीं योजनानां शतादपि॥४९॥
चक्रमध्यगतां पृथ्वी सशैलवनकाननाम्। चतुःसमुद्रपर्यंतं ज्वलंतीं चिंतयेत्ततः॥५०॥
षण्मासाभ्यासयोगेन जायते मदनोपमः। दृष्ट्वा कर्षयते लोकं दृष्ट्वैव कुरुते वशम्॥५१॥
दृष्ट्वा संक्षोभयेन्नारीं दृष्ट्वैव हरते विषम्। दृष्ट्वा करीति वागीशं दृष्ट्वा सर्वं विमोहयेत्।
दृष्ट्वा चातुर्थिकादींश्च ज्वरान्नाशयते क्षणात्॥५२॥

दिशा की ओर मुँह करके श्रीत्रिपुरेश्वरी के शरीर वाला व्यक्ति क्षोभिणी मुद्रा को बाँध कर चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा से आकुल दहनागार में संयुक्त कर विद्या देवी को १०८ बार जप करे।।४०-४३।। उसके बाद व्याकुल आँखों वाली, कामदेव के बाण से पीड़ित, प्रज्ज्वलित कामाग्नि से फड़कती हुई जंघाओं वाली, शक्तिचक्र में सुशोभित किरण को कमरे में कवलीकृत करती हुई, दूर कर दिया है सुचरित्र को, जिसने ऐसी विशाल कमल के समान नेत्रों वाली और आकृष्ट नेत्रों वाली तथा पूरी तरह नष्ट हो गया है, धैर्य जिसका और लज्जा में जो संलीन हो गयी है, मन्त्र, यन्त्र औषध महामुद्रा नाम की जंजीर से बंधी हुई बन्धन वाली, नवीन प्रेम के संधान से काँपते हुए हृदय कमल वाली, विशाल नेत्र कमल वाली, मन में अधिक महामन्त्र जपती हुई, वस्त्र विहीन, किंकर्तव्यविमूढ़, विशेष घबराती हुई, कामावेग से जमीन पर लोटती हुई के समान चित्र में लिखित की भाँति, बिल्कुल चेतनाहीन हुई के समान, काम से अत्यन्त पीड़ित के समान, निलीन हुई के समान, कुछ और ही हुई के समान, घूमती हुई, वायु से आकाश में उड़ते हुए बाँस के पत्ते की आकृति के समान आकाश में घूमती हुई सौ योजन दूरी पर रहने वाली, कामविह्वल नारी का भाव करना चाहिए। फिर श्रीचक्र के मध्य में स्थित पर्वतवन और काननों वाली चार समुद्र पर्यन्त जलती हुई पृथ्वी का चिन्तन करना चाहिए अर्थात् जब उस कामविह्वल नारी का ध्यान किया जा रहा हो, तब उस श्रीचक्र के मध्य में कामदेव की ज्वाला में जलती हुई, वहाँ की वनपर्वत नदी समुद्र वाली भूमिका भी ध्यान करना चाहिये अर्थात् उस समय साधक को यह भाव रखना चाहिये कि कोई काममद में व्याकुल स्त्री है तथा वह सैकड़ों योजन से उसको पाने के लिये व्याकुल है। जैसी की उसकी दशायें बतायी गयी हैं वह भाव रखना है तथा वैसा ही मदनोद्वेलित प्राकृतिक वातावरण का भी ध्यान करना है।।।५०।।

इस प्रकार छः माह के लगातार अभ्यास में लगे रहने से मनुष्य कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। वह संसार को देखकर आकृष्ट कर लेता है और देखकर ही सबको वश में कर लेता है।।५१।। वह जिस स्त्री को देख ले तो एक नजर में ही उस स्त्री के हृदय में उथल-पुथल मचा देता है तथा देखकर ही विष को हर लेता है। उसके देखते ही मनुष्य अच्छा वक्ता हो जाता है और देखकर ही सबको मोहित कर लेता है। वह देखकर ही सामने वाले

पीतद्रव्येण लिखितं चक्रं गूढं तु धारयेत्। वाक्स्तंभं वादिनां क्षिप्रं कुरुते नात्र संशयः॥५३॥
महानीलीरसेनापि शत्रुनामयुतं लिखेत्। दक्षिणाभिमुखो वह्नौ दग्ध्वा मारयते रिपून्॥५४॥
महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रैर्नाम टंकितम्। आरनालस्थितं चक्रं विद्वेषं कुरुते द्विषाम्॥५५॥
युक्त्वा रोचनया नाम कंकपक्षेण मध्यगम्। लंबमानस्तदाकारो उच्चाटनकरं परम्॥५६॥
दुग्धलाक्षा रोचनाभिर्महानीलीरसेन च। लिखित्वा धारयंश्चक्रं चातुर्वर्ण्यं वशं नयेत्॥५७॥
अनेनैव विधानेन जलमध्ये यदि क्षिपेत्। सौभाग्यमतुलं तस्य स्नानपानान्न संशयः॥५८॥
चक्रमध्यगतं देशं नगरीं वा वरांगनाम्। ज्वलंतीं चिंतयेन्नित्यं सप्ताहात्क्षोभयेन्मुने॥५९॥
लिखित्वा पीतवर्णं तु चक्रमेतद्यदाचरेत्। पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तंभयेत्सर्ववादिनः॥६०॥
सिंदूरवर्णलिखितं पूजयेदुत्तरामुखः। यदा तदा स्ववशगो लोको भवति नान्यथा॥६१॥
चक्रं गैरिकयालिख्यपूजयेत्पश्चिमामुखः। यः स सर्वाङ्गनाकर्षवश्यक्षोभकरो भवेत्॥६२॥

व्यक्ति को चौथे दिन आने वाले बुखार को क्षण भर में नष्ट कर देता है। अर्थात् ऐसे सिद्ध पुरुष को देखने मात्र से ही चौथैया बुखार भाग जाता है।।५२।। पीले रंग से लिखित गूढ़ श्रीचक्र को धारण करना चाहिए। वह चक्र बोलने वालों की वाणी का स्तम्भन शीघ्र कर देता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५३।। यदि महानीली[1] अर्थात् स्याही से इस चक्र के साथ शत्रु का नाम लिख दिया जाये और दक्षिण की ओर मुख करके उसको आग में जला दिया जाये तो वह जलकर शत्रुओं को मार देता है।।५४।।

भैंसा और घोड़ा के गोबर और लीद में गोमूत्रों से यदि किसी कागज पर शत्रु के नाम को टंकित कर चावल के माड़ में चक्र को स्थित कर दिया जाये तो वह चक्र शत्रुओं के समूह में विद्वेष पैदा कर देता हैं, अर्थात् शत्रुसमूह ही आपस में लड़ने लगता है।।५५।। गोरोचन को पानी में घोलकर श्रीचक्र के मध्य में कौए के पंख से नाम लिखकर लटकाने वाले आकार वाला व्यक्ति उच्चाटन करता है (शत्रु का नाश करता है) दूध, महावर, राल और महानीली के रस से लिखकर चक्र को धारण करता हुआ चारों वर्णों को वश में ला सकता हैं।।५७।। इसी विधान से यदि उसे जल में फेंक दिया जाये तो उसे स्नान पान आदि सब प्रकार का असीमित सौभाग्य प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५८।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य मुने! श्रीचक्र के मध्य में किसी देश, नगरी अथवा किसी सुन्दर स्त्री को जलती हुई यदि कोई साधक सोचेगा तो सात दिन के अन्दर उस देश में, नगरी में अथवा स्त्री को क्षोभ उत्पन्न हो जायेगा, अर्थात् उस देश और नगरी में उपद्रव, आतंक फैल जायेगा तथा सुन्दर स्त्री के हृदय में उथल-पुथल पैदा हो जायेगी।।५९।। यदि कोई मनुष्य इस श्रीचक्र को पीले रंग में लिखकर (चित्रित) कर उसका व्यवहार करे, तो वह पूर्व दिशा की ओर मुख करके सब बोलने वालों को स्तम्भित कर सकता है।।६०।। सिन्दूर वर्ण में श्रीचक्र को लिखकर उत्तर की ओर मुख करके जब उसकी पूजा करे, तब सारे संसार को अपने वश में कर सकता है, अन्य किसी प्रकार से नहीं।।६१।। गेरू से श्रीचक्र को लिखकर (चित्रित कर) पश्चिम की ओर मुख करके जो उसकी पूजा करे, वह मनुष्य सब स्त्रियों को आकर्षित कर उन्हें वश में करके उनको स्वयं से मिलने के लिए व्याकुल कर सकता है।।६२।।

१. महानीली रस—नीलम अथवा पन्ना का पानी अथवा स्याही, क्योंकि वही महानीली होता है।

पूजयेद्विंध्यदपरि रहस्येकचरो गिरौ। अजरामरतां मन्त्री लभते नात्र संशयः॥६३॥
रहस्यमेतत्कथितं गोपितव्यं महामुने। गोपनात्सर्वसिद्धिः स्याद्भ्रंश एव प्रकाशनात्॥६४॥
अविधाय पुरश्चर्यां यः कर्म कुरुते मुने। देवताशापमाप्नोति न च सिद्धिं स विंदति॥६५॥
प्रयोगदोषशांत्यर्थं पुनर्लक्षं जपेद्बुधः। कुर्याच्च विधिवत्पूजां पुनर्योग्यो भवेन्नरः॥६६॥

निष्कामो देवतां नित्यं योऽर्चयेद्भक्तिनिर्भरः॥६७॥
तामेव चिंतयन्नास्ते यथाशक्ति मनुं जपन्॥६८॥
सैव तस्यैहिकं भारं वहेन्मुक्तिं च साधयेत्।
सदा संनिहिता तस्य सर्वं च कथयेत् सा॥६९॥

वात्सल्यसहिता धेनुर्यथा वत्समनुव्रजेत्। तथानुगच्छेत्सा देवी स्वभक्तं शरणागतम्॥७०॥

अगस्त्य उवाच

शरणागतशब्दस्य कोऽर्थो वद हया नन। वत्सं गौरिव यं गौरी धावन्तमनुधावति॥७१॥

हयग्रीव उवाच

यः पुमानखिलं भारमैहिकामुष्मिकात्मकम्। श्रीदेवतायां निक्षिप्य सदा तद्गतमानसः॥७२॥
सर्वानुकूलः सर्वत्र प्रतिकूलविवर्जितः। अनन्यशरणो गौरीं दृढं सम्प्रार्थ्य रक्षणे॥७३॥

हयग्रीव बोले कि हे विन्ध्य पर्वत के घमण्ड को दूर करने वाले अगस्त्य जी! यदि कोई मनुष्य एकान्त में अकेला पर्वत पर श्रीचक्र की पूजा करे, तो वह मन्त्र का जाप करने वाला व्यक्ति अजरता और अमरता को प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।६३।। हयग्रीव बोले कि हे महामुने! यह रहस्य मैंने आपसे कहा है, इसको गुप्त रखना चाहिए। गुप्त रखने से सब सिद्धि प्राप्त होती है और इस रहस्य को सबसो बता देने पर भ्रष्ट हो जाता है अर्थात् इस पूजा का प्रभाव नष्ट हो जाता है।।६४।। हे मुने! पुरश्चर्या न करके जो मनुष्य कर्म करता है, वह देवी का शाप प्राप्त करता है और वह सिद्धि (सफलता) को प्राप्त नहीं करता।।६५।। प्रयोग में होने वाले दोष की शान्ति के लिए बुद्धिमान् पुरुष को पुनः एक लाख बार जप करना चाहिए और विधिवत् पूजा करनी चाहिए, तब मनुष्य पुनः योग्य हो सकता है।।६६।। जो व्यक्ति श्रीदेवी की भक्ति पर निर्भर रह कर निष्काम भाव से नित्य श्री त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करता है तथा उन देवी का ही चिन्तन करता हुआ यथाशक्ति मन्त्र का जप करता हुआ स्थित रहता है, उसके शारीरिक भार को वही देवी वहन करती है और मुक्ति प्रदान करती है तथा सदा उसके साथ संनिहित रहती है और उसको वे त्रिपुरेशी सब कुछ कहती रहती है।।६७-६९।। जिस प्रकार से गाय अपने बछड़े के प्रति पुत्र प्रेम से युक्त हो उसके पीछे-पीछे चलती है, उसी प्रकार वे देवी महात्रिपुरसुन्दरी अपनी शरण में आये हुए भक्त का अनुसरण करती हैं। वे पुत्र की तरह उससे प्यार करती हैं।।७०।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि हे हयग्रीव जी! शरणागत शब्द का क्या अर्थ है, बतलाइए। जिस वत्स के पीछे गौरी गौ के समान दौड़ते हुए दौड़ती हैं।।७१।।

हयग्रीव ने कहा कि अगस्त्य जी! जो मनुष्य अपने इस ऐहिक (इस लोक) के भार को श्री ललिता देवी पर छोड़ कर सदा उन्हीं के ध्यान में अपना मन लगा कर सर्वत्र सब प्रकार से उनके अनुकूल रहता हुआ, उनके विपरीत न रहता हुआ, गौरी के अतिरिक्त अन्य की शरण में न रहता हुआ, गौरी श्री ललितेश्वरी से ही अपनी रक्षा की दृढ़

रक्षिष्यतीति विश्वासस्तत्सेवैकप्रयोजनः। वरिवस्यातत्परः स्यात्सा एव शरणागतिः॥७४॥
यदा कदाचित्स्तुतिनिंदनादौ निंदन्तु लोकाः स्तुवतां जनो वा।
इति स्वरूपं सुधिया समीक्ष्य विषादखेदौ न भजेत्प्रपन्नः॥७५॥
अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा॥७६॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः। अङ्गीकृत्यात्मनिक्षेपं पञ्चांगानि समर्पयेत्।
न ह्यस्य सदृशं किंचिद्भुक्तिमुक्त्योस्तु साधनम्॥७७॥
अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम्। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥७८॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च। जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।

प्रार्थना करता हुआ, उन्हीं पर सब प्रकार से निर्भर रहता है। उसकी वे देवी अवश्य रक्षा करेंगी। यह विश्वास करना ही उनकी सेवा का एक प्रयोजन है। कथन का आशय है कि जो मनुष्य इस विश्वास से कि वे अवश्य रक्षा करेंगी, पूजा करेगा तो साधक को अवश्य लाभ होगा। अतः मनुष्य को उनकी पूजा उनपरक रहकर करनी चाहिए; क्योंकि वही शरण में आये हुए को गति प्रदान करती हैं।।७२-७४।। जब कभी स्तुति और निन्दा आदि में लोग माँ ललितेश्वरी की निन्दा करें अथवा प्रशंसा करें तो इस स्वरूप की अपनी बुद्धि से समीक्षा करके बुद्धिमान् मनुष्य को पुनः विषाद और खेद नहीं करना चाहिए।।७५।।

अतः मनुष्य को अनुकूल रहने का संकल्प करना चाहिए और विपरीत भाव को छोड़ देना चाहिए। अर्थात् त्रिपुरेशी की प्रशंसा के अनुकूल ही भाव रखने चाहिएँ, प्रतिकूल नहीं रखने चाहिएं, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। इम प्रकार सबसे पहले उनके अनुकूल विचार और दूसरे प्रतिकूल विचारों का परित्याग तीसरे वे अवश्य करेंगी, इस प्रकार विश्वास, चौथे रहस्य को छिपाने की प्रवृत्ति, पाँचवाँ आत्मनिक्षेप (अपनी आत्मा को उन्हें समर्पित करना) तथा अपनी आत्मा में उन्हें स्थित करना और छठा कार्पण्य (कृपणता) अपने को उनके सामने दीन-हीन, असहाय समझना। ये छः प्रकार शरण में आये हुए व्यक्ति के लिए अर्थात् जिसमें ये छः प्रकार के भाव हैं, वह शरणागत माना जायेगा। यही शरणागति की परिभाषा है।।७६-७६½।। आत्मा में उनको स्थित कर अथवा आत्मा को उनमें लीन करके अपने पाँचों अंगों कान, त्वचा, आँख, जिह्वा और नासिका को उनको समर्पित करे अर्थात् उनमें पूरी तरह लीन हो जाये, अर्थात् न कान से कोई शब्द सुने, न त्वचा से कुछ स्पर्श करे, न आँखों से कुछ देखे, न जिह्वा से कुछ स्वाद ले और न नासिका से कुछ सूंघे, अर्थात् सब इन्द्रियों को उन्हें ही समर्पित कर दे तथा जब सबका समर्पण हो जायेगा तो फिर पूर्ण लीनता हो ही जायेगी, उनमें समाधि लग ही जायेगी, क्योंकि मन को इधर-उधर ले जाने का कार्य तो ये पाँच इन्द्रियाँ ही करती हैं। जब उन महात्रिपुरसुन्दरी में आत्मा लीन हो जायेगी, तब इसके समान मुक्ति और भोग का अन्य कोई साधन नहीं है।।७७।। अमानित्व (अभिमानी न होना), दम्भ रहित होना, अहिंसा, सहनशीलता, उदारता (सीधापन), गुरुओं की उपासना, शौच (पवित्रता स्नानादि), स्थिरता (अपनी बात पर दृढ़ रहना), अपनी आत्मा का निग्रह, इन्द्रियों के अर्थों—श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वाद लेना, सूंघना आदि में वैराग्य अर्थात् इनके वश

विशेष—शरणागत के छः प्रकार हैं, जिसमें ये निम्न छः गुण हों, वही शरणात समझना चाहिये, वे हैं—१. अनुकूल रहने का संकल्प, २. प्रतिकूल रहने का परित्याग, ३. वे मेरी अवश्य रक्षा करेंगे, यह विश्वास, ४. रहस्य छिपाने की प्रवृत्ति, ५. आत्मनिक्षेप अर्थात् अपना पूरी तरह समर्पण, ६. कार्पण्य—अपने को दीनहीन समझना।

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु॥७९॥
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु। मयि चानन्यभावेन भक्तिरव्यभिचारिणी॥८०॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि। अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतानि सर्वदा ज्ञानसाधनानि समभ्यसेत्॥८१॥
तत्कर्मकृत्तत्परमस्तद्भक्तः संगवर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स याति परां श्रियम्॥८२॥
गुरुस्तु मादृशो धीमान्ख्यातो वातापितापन।
शिष्योऽपि त्वादृशः प्रोक्तो रहस्याम्नायदेशिकः॥८३॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

मे न होना और अहंकार न करना ये सब तथा जन्म-मृत्यु, वृद्धता, रोग, दुःख और दोषों का निरीक्षण करना, अर्थात् इनके कारणों पर विचार करना और फिर निवारण सोचना। पुत्र, पत्नी और गृह आदियों में लगाव एवं अत्यधिक प्रेम का न होना और नित्य इष्ट एवं अनिष्ट की प्राप्तियों में समान भाव रखना, माँ त्रिपुरेश्वरी के प्रति अनन्य भाव से निर्दोष एवं निर्विघ्न भक्ति रखना, विवेकशील देशसेवी होना, लोगों की जमात में न रहना, अध्यात्म ज्ञान में नित्य लगे रहना और तत्त्वज्ञान के लिए अर्थ का गम्भीरता से विचार करना, इन सब ज्ञान के साधनों का सदैव अभ्यास करना चाहिए।।७८-८१।। इस प्रकार उन कामाक्षी के कर्म को करने वाला, उनके प्रति परम भक्ति रखने वाला, उनका भक्त आसक्ति रहित, सब प्राणियों में वैर न रखने वाला जो व्यक्ति है, वही उन पराशक्ति महात्रिपुरेशी को प्राप्त करता है।।८२।। अन्त में हयग्रीव ने कहा कि हे वातापि राक्षस को मारने वाले अगस्त्य जी! मेरे जैसा बुद्धिमान् गुरु और तुम्हारे जैसा रहस्य एवं वेद-वेदांग, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों के विषय में जानने वाला और जानने की इच्छा रखने वाला शिष्य भी होना चाहिए।।८३।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४१ वाँ अध्याय श्रीविद्यायन्त्र उपासना का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

देवीपूजने मुद्रा विवेचनं नाम

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

मुद्राविरचनारीतिमश्वानन निवेदय। याभिर्विरचिताभिस्तु श्रीदेवी संप्रसीदति॥१॥

हयग्रीव उवाच

आवाहनी महामुद्रा त्रिखण्डेति प्रकीर्तिता। परिवृत्य करौ स्पष्टमङ्गुष्ठौ कारयेत्समौ॥२॥
अनामांतर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृति। कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने तपोधन।
संक्षोभिण्याख्यमुद्रां तु कथयाम्यधुना शृणु॥३॥
मध्यमे मध्यगे कृत्वा कनिष्ठांगुष्ठरोधिते। तर्जन्यौ दंडवत्कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके॥४॥
एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदि। क्रियते विंध्यदर्पारि मुद्रा विद्राविणी तथा॥५॥
मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे। अंकुशाकाररूपाभ्यां मध्यगे कलशोद्भव।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा॥६॥
पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती। परिवर्तक्रमेणैव मध्यमे तदधोगते॥७॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-४२

देवी पूजा में मुद्रा

अगस्त्य मुनि ने हयग्रीव से कहा कि भगवन्! मुझे मुद्रा बनाने की रीति बतलाइए। किस प्रकार उनमें स्थित हुआ जाता है, कौन मुद्रा किस प्रकार बनायी जाती है। जिनको बनाने के द्वारा श्री त्रिपुरेशी प्रसन्न होती हैं।।१।।

हयग्रीव ने कहा कि आवाहनी नामक महामुद्रा है, जिसके द्वारा महात्रिपुर सुन्दरी का आह्वान किया जाता है, उन्हें बुलाया जाता है, जो त्रिखण्डा इस प्रकार कही जाती है, जिसका विधान है कि दोनों हाथों को बंद करके दोनों हाथ के अंगूठों को समान करे और अनामिका अंगुली के अन्तर्गत तर्जनी को टेड़ी कर रखे और कनिष्ठा को अपने स्थान पर रखे तो यह आवाहनी मुद्रा है—

अब हे अगस्त्य जी! मैं संक्षोभिणी मुद्रा को बताता हूँ, उसे सुनिये।।३।। कि मध्यमा अंगुली को बीच में करके कनिष्ठा को अंगूठे से रोककर दोनों तर्जनी अंगुलियों को डण्डे के समान खड़ी करना, यह संक्षोभिणी मुद्रा है।।४।। इस संक्षोभिणी मुद्रा में यदि मध्यमा अंगुली को सीधा कर दिया जाये तो तो वह विद्राविणी मुद्रा हो जाती है।।५।। मध्यमा अंगुलियों को तर्जनी अंगुलियों द्वारा कनिष्ठिकाओं और अनामिका के समान करने पर अंकुश के आकार की मध्यमा अंगुलि के होने पर यह आकर्षणी मुद्रा कही जाती है, जो तीनों लोकों को आकर्षित करने की क्षमता रखती है।।६।। हाथों की मुट्ठी बाँध कर दोनों तर्जनी अंगुलियों को अंकुश की तरह खड़ी करके परिवर्तन क्रम से ही मध्यमाओं को उसके तर्जनी के नीचे करने पर इसी क्रम से मध्यमा को बीच में करने पर अनामिका को सीधा करने पर उसके बाहर दोनों तर्जनी अंगुलियों को करने पर उसके दोनों अंगूठों को दण्डाकार करके मध्यमा के पास करने

क्रमेणानेन देवर्षे मध्यमामध्यगेऽनुजे। अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम्॥८॥
दंडाकारौ ततोंऽगुष्ठौ मध्यमावर्तदेशगौ। मुद्रैषोन्मादिनी नाम्ना ख्याता वातापितापन॥९॥
अस्यास्त्वनामिकायुग्ममधः कृत्वांकुशाकृति। तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत्॥१०॥
इयं महांकुशा मुद्रा सर्वकार्यार्थसाधिका॥११॥
सव्यं दक्षिणदेशे तु दक्षिणं सव्यदेशतः। बाहू कृत्वा तु देवर्षे हस्तौ सम्परिवर्त्य च॥१२॥
कनिष्ठानामिके युक्ते क्रमेणानेन तापस। तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे॥१३॥
लोपामुद्रापतेङ्गुष्ठौ कारयेत्सकलावपि। इयं तु खेचरी नाम मुद्रा सर्वोत्तमोत्तमा।
एतद्विज्ञानमात्रेण योगिनीनां प्रियो भवेत्॥१४॥
परिवर्त्य करौ स्पृष्टावर्धचन्द्रसमाकृती। तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपद्योजयेत्ततः॥१५॥
अधः कनिष्ठावष्टब्धमध्यमे विनियोजयेत्। अथैते कुटिले युक्त्वा सर्वाधस्तादनामिके।
बीजमुद्रेयमचिरात्सर्वसिद्धिंप्रवर्तिनी ॥१६॥
मध्याग्रे कुटिलाकारे तर्जन्युपरि संस्थिते। अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके॥१७॥
सर्वा एकत्र संयोज्य चाङ्गुष्ठपरिपीडिताः। एषा तु प्रथमा मुद्रा योनिमुद्रेति संज्ञिता॥१८॥
एता मुद्रास्तु देवर्षे श्रीदेव्याः प्रीतिहेतवः। पूजाकाले प्रयोक्तव्या यथानुक्रमयोगतः॥१९॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे ललितोपाख्याने हयग्रीवागस्त्यसम्वादे द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

पर यह मुद्रा उन्मादिनी नाम से प्रसिद्ध है।।७-९।। इसी मुद्रा में दोनों अनामिकाओं को नीचे करके अंकुश की आकृति बनाकर तर्जनियों को भी उसी क्रम से लगाये तो वह महांकुशा मुद्रा है, जो सब कार्यों के अर्थों को सिद्ध करने वाली है।।१०-११।। बायें हाथ को दायें तरफ और दायें को बायें हाथ पर तथा दोनों भुजाओं को करके तथा दोनों हाथों को पूरी तरह उलट कर कनिष्ठा और अनामिका को क्रम से मिलाने पर तर्जनियों से समाक्रान्त करने पर सबके ऊपर मध्यमा को रखने पर, हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्य जी! सह सर्वोत्तम खेचरी नामक मुद्रा है। इसके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य योगिनियों का प्रेमी हो जाता है।।१२-१४।। दोनों हाथों को परिवर्तन करके दोनों को एक-दूसरे से स्पर्श कराकर अर्ध चन्द्रमा के समान आकृति करके तर्जनी को दोनों अंगूठों में एक साथ लगा दे तथा नीचे कनिष्ठा को मध्यमा में लगाये। इस प्रकार इन सबको टेढ़ी करके सबसे नीचे अनामिका को करने पर यह बीज मुद्रा है, जो शीघ्र ही सब सिद्धियों को देने वाली है।।१५-१६।। दोनों मध्यमा अंगुलियों को टेढ़ी करके दोनों तर्जनियों पर रखने पर अनामिकाओं को बीच में करने पर, उसी प्रकार कनिष्ठिकाओं को भी बीच में करने पर सबको एक जगह मिलाकर सबके ऊपर अंगूठे रहने पर यह प्रथमा मुद्रा है, जो योनिमुद्रा नाम से कही जाती है।।१७-१८।। हयग्रीव कहते हैं कि हे अगस्त्य जी! ये सब मुद्राएँ श्रीदेवी को प्रसन्न करने की कारण हैं। इनको पूजा के समय यथा क्रम से प्रयुक्त करना चाहिए।।१९।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४२ वाँ अध्याय देवी पूजा में मुद्रा का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगला-सरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖
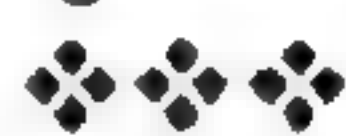
अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

श्रीदेवीपूजन दीक्षा कथनं नाम

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अश्वानन महाप्राज्ञ करुणामृतवारिधे। श्रीदेवीदर्शने दीक्षा यादृशी तां निवेदय॥१॥

हयग्रीव उवाच

यदि ते देवताभावो यया कल्मषकर्दमाः।
क्षाल्यन्ते च तथा पुंसां दीक्षामाचक्ष्महेऽत्र ताम्॥२॥

हस्ते शिवपुरं ध्यात्वा जपेन्मूलाङ्गमालिनीम्। गुरुः स्पृशेच्छिष्यतनुं स्पर्शदीक्षेयमीरिता॥३॥

निमील्य नयने ध्यात्वा श्रीकामाक्षीं प्रसन्नधीः।
सम्यक्पश्येद्गुरुः शिष्यं दृग्दीक्षा सेयमुच्यते॥४॥

गुरोरालोकमात्रेण भाषणात्स्पर्शनादपि। सद्यः सञ्जायते ज्ञानं सा दीक्षा शाम्भवी मता॥५॥

देव्या देवो यथा प्रोक्तो गुरुर्देहस्तथैव च। तत्प्रसादेन शिष्योऽपि तद्रूपः सम्प्रकाशते॥६॥

चिरं शुश्रूषया सम्यक्तोषितो देशिकेश्वरः। तूष्णीं संकल्पयेच्छिष्यं सा दीक्षा मानसी मता॥७॥

दीक्षाणामपि सर्वासामियमेवोत्तमोत्तमा। आदौ कुर्यात्क्रियादीक्षां तत्प्रकारः प्रवक्ष्यते॥८॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय-४३

श्रीदेवीपूजन दीक्षा कथन

अगस्त्य मुनि हयग्रीव से बोले कि हे करुणा रूप अमृत के सागर महाप्राज्ञ भगवन् हयग्रीव! आपने मुद्रा बनाने की रीति तो बता दी, अब श्रीदेवी का दर्शन होने पर जैसी दीक्षा है, उसका वर्णन कीजिए, अर्थात् श्रीदेवी ललितेश्वरी के दर्शन होने पर उनकी किस प्रकार वन्दनादि करनी चाहिए, उसको हमें बतलाइए।।१।।

हयग्रीव बोले, हे अगस्त्य जी! यदि आपका उन महात्रिपुरेश्वरी के प्रति देवीभाव है, जिसके द्वारा पापी मनुष्यों के समस्त पाप समूह धुल जाते हैं, तो यहाँ मैं उनकी दीक्षा को वर्णन कर रहा हूँ।।२।। हाथ में शिवपुर का ध्यान करके मूलांगमालिनी का जप करना चाहिए, फिर गुरु को शिष्य का शरीर स्पर्श करना चाहिए, यह स्पर्श दीक्षा कही जाती है।।३।। फिर प्रसन्न बुद्धि रखते हुए दोनों आँखें बन्द कर कामाक्षी देवी का ध्यान करके गुरु शिष्य को देखे, वह दृग्दीक्षा कही जाती है।।४।। गुरु के देखने मात्र से बोलने से और स्पर्श करने से भी शीघ्र ज्ञान हो जाता है, वह शाम्भवी दीक्षा कही जाती है।।५।। देवी का शरीर जैसा कहा गया है, वैसा ही गुरु का शरीर है तथा उनकी कृपा से शिष्य भी उसी रूप में पूर्णतः प्रकाशित होता है।।६।। चिरकाल तक की सेवा द्वारा सम्यक् प्रकार से प्रसन्न हुए देशिकेश्वर चुपचाप शिष्य को संकल्प करें, वह मानसी दीक्षा मानी गयी है।।७।। सभी दीक्षाओं में यही दीक्षा उत्तमों से उत्तम अर्थात् सर्वोत्तम दीक्षा है। सबसे पहले क्रिया दीक्षा करनी चाहिए, उसका प्रकार बताया जायेगा।।८।।

शुक्लपक्षे शुभदिने विधाय शुचिमानसम्।
जिह्वास्यमलशुद्धिं च कृत्वा स्नात्वा यथाविधि॥९॥

संध्याकर्म समाप्याथ गुरुदेहं परं स्मरन्। एकान्ते निवसञ्छ्रीमान्मौनी च नियताशनः॥१०॥
गुरुश्च तादृशो भूत्वा पूजामंदिरमाविशेत्। देवीसूक्तेन संयुक्तं विद्यान्यासं समातृकम्॥११।
कृत्वा पुरुषसूक्तेन षोडशैरुपचारकैः। आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा॥१२॥
स्नानं वस्त्रं च भूषा च गन्धः पुष्पं तथैव च। धूपदीपौ च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा॥१३॥
प्रणामश्चेति विख्यातैः प्रीणयेत्रिपुरांबिकाम्। अथ पुष्पाञ्जलि दद्यात्सहस्राक्षरविद्यता॥१४॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ नमस्त्रिपुरसुन्दरि हृदये देवि शिरोदेवि शिखादेवि कवचदेवि नेत्रदेवि आस्यदेवि कामेश्वरि भगमालिनि नित्यक्लिन्ने भैरुंडे वह्निवासिनि महावज्रेश्वरी विद्येश्वरि परशिवदूति त्वरिते कुलसुन्दरि नित्ये नीलपताके विजये सर्वमङ्गले ज्वालामालिनि चित्रे महानित्ये परमेश्वरि मन्त्रेशमयि षष्ठीशमय्युद्यानमयि लोपामुद्रामय्यगस्त्यमयि कालतापनमयि धर्माचारमयि मुक्तकेशीश्वरमयि दीपकलानाथमयि विष्णुदेवमयि प्रभाकरदेवमयि तेजोदेवमयि मनोजदेवमयि अणिमसिद्धे महिमसिद्धे गरिमसिद्धे लघिमसिद्धे

शुक्ल पक्ष के किसी शुभ दिन को पवित्र मन बनाकर जिह्वा और मुख की दुर्गन्ध को हटाकर दन्तधावनादि करके जीभ साफ करके, विधिपूर्वक स्नान करके, सन्ध्याकर्म को समाप्त करके, गुरु के शरीर का स्मरण करते हुए एकान्त में रहते हुए श्रीमान् मौन रूप से निश्चित आसन पर बैठकर जैसे गुरु है, वैसा होकर पूजामन्दिर में प्रवेश करना चाहिए।।९-१०½।। और फिर वह देवीसूक्त के साथ मातृका सहित विद्यान्यास करके पुरुषसूक्त द्वारा सोलह उपचारकों से आवाहन करना चाहिए, फिर देवी को आसन देना चाहिए, तब आसन पर पाद्य, अर्घ्य, आचमन तथा स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, उसी प्रकार उनको धूप, दीप, नैवेद्य (पूजन सामग्रियों) को देकर पान खिलाना चाहिए, फिर उनकी परिक्रमा करें।।१०½-१३।। और फिर त्रिपुराम्बिका को प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहिये। इसके बाद सहस्राक्षर विधि से देवी को पुष्पांजलि देनी चाहिए।।१४।। वह पुष्पांजलि देते हुए निम्न स्तोत्र का जाप करना चाहिए।

ओ३म् ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ओ३म नमस्त्रिपुरसुन्दरि अर्थात् हे त्रिपुरसुन्दरि! तुम्हें नमस्कार है। हृदय शिरोदेवि! शिखा, कवच, नेत्र और मुख में निवास करने वाली देवि! तुम्हें नमस्कार है। हे कामेश्वरि! हे योनि मालाओं वाली! हे नित्यक्लिन्ने! भैरुण्डे! अग्नि में रहने वाली महावज्रेश्वरी! विद्याओं की स्वामिनि! पर शिव की दूति! हे त्वरिते! नित्ये! कुलसुन्दरि! नीले आकाश रूपी पताका वाली! विजय रूपि! सबका कल्याण करने वाली! अग्नि की मालाओं वाली! चित्रे! महानित्ये! परमेश्वरि! मन्त्रेशमयि! षष्ठीशमयी उद्यानमयि देवि! लोपामुद्रामयि! अगस्त्यमयि! कालतापमयि! धर्माचारमयि! खुले हुए केश वाली! दीपकलानाथमयी! विष्णुदेवमयी! सूर्यदेवमयि! देवि! तुम्हें नमस्कार है। हे तेजोमयि! कामदेवमयि! अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राप्ति और प्राकाम्य सिद्धियों वाली देवि! हे भोजन के छः रसों वाली तथा काव्य के सब रसों वाली, हे मोक्ष देने वाली ब्राह्मी! सृष्टि की रचना करने वाली, महेश्वरि! संहार करने वाली कौमारि! वैष्णवि! वाराहि! इन्द्राणि! चामुण्डे! महालक्ष्मि! सबको आतंकित करने वाली! सर्वत्र उपद्रव फैलाने वाली! सबका विद्रावण (दयार्द्र) करने वाली! सबका आकर्षण करने वाली! सबको वश में करने वाली! सबको उन्मत्त बनाने वाली! सबको महादण्ड देने वाली! सर्वत्र आकाश में विचरण करने वाली! समस्त चराचर

ईशित्वसिद्धे वशित्वसिद्धे प्राप्तिसिद्धे प्राकाम्यसिद्धे रससिद्धे मोक्षसिद्धे ब्राह्मि माहेश्वरि कौमारि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि चामुण्डे महालक्ष्मि सर्वसंक्षोभिणि सर्वविद्राविणि सर्वाकर्षिणि सर्ववशङ्करि सर्वोन्मादिनि सर्वमहांकुशो सर्वखेचरि सर्वबीजे सर्वयोने सर्वास्त्रखंडिनि त्रैलोक्यमोहिनि चक्रस्वामिनि प्रकटयोगिनि बौद्धदर्शनांगि कामाकर्षिणि बुद्ध्याकर्षिणि अहंकाराकर्षिणि शब्दाकर्षिणि स्पर्शाकर्षिणि रूपाकर्षिणि रसाकर्षिणि गन्धाकर्षिणि चित्ताकर्षिणि धैर्याकर्षिणि स्मृत्याकर्षिणि नामाकर्षिणि बीजाकर्षिणि आत्माकर्षिणि अमृताकर्षिणि शरीराकर्षिणि गुप्तयोगिनि सर्वाशापरिपूरकचक्रस्वामिनि अनंगकुसुमे अनंगमेखले अनङ्गमादिनि अनंगमदनातुरेऽनङ्गरेखेऽनंगवेगिन्यनंगांकुशेऽनंगमालिनि गुप्ततरयोगिनि वैदिकदर्शनांगि सर्वसंक्षोभकारक चक्रस्वामिनि पूर्वाम्नायाधिदेवते सृष्टिरूपे सर्वसंक्षोभिणि सर्वविद्राविणि सर्वाकर्षिणि सर्वाह्लादिनि सर्वसंमोहिनि सर्वस्तंभिणि सर्वजृंभिणि सर्ववशङ्करि सर्वरंजिनि सर्वोन्मादिनि सर्वार्थसाधिके सर्वसंपत्त्रपूरिणि सर्वमंत्रमयि सर्वद्वंद्वक्षयकरि सम्प्रदाययोगिनि सौरदर्शनांगि सर्वसौभाग्यदायकचक्रे सर्वसिद्धिप्रदे सर्वसम्पत्प्रदे सर्वप्रियङ्करि सर्वमङ्गलकारिणि सर्वकामप्रदे सर्वदुःखविमोचिनि सर्वमृत्युप्रशमिनि सर्वविघ्ननिवारिणि सर्वांगसुन्दरि सर्वसौभाग्यदायिनि कुलोत्तीर्णयोगिनि सर्वार्थसाधकचक्रेशि

जगत् की बीज (कारण) सबकी योनि (सबको पैदा करने वाली) सब अस्त्रों का खण्डन करने वाली! तीनों लोकों को मोहित करने वाली! श्रीचक्र की स्वामिनि! प्रकटयोगिनि! बौद्धदर्शन की अंगरूपे! प्रकृति के चौबीस तत्त्वरूपि! अर्थात् बुद्धि के, अहंकार के, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पांच तन्मात्राओं के आकर्षण वाली, फिर चित्त का आकर्षण करने वाली धैर्य, स्मृति (याददाश्त) नाम के आकर्षण वाली! फिर बीज आत्मा और अमृत के आकर्षण वाली, शरीर के आकर्षण गुप्तयोगिनि! सब आशाओं को पूर्ण करने वाले चक्र की स्वामिनि! कामदेव के पुष्पों वाली! कामदेव की मेखला वाली! कामदेव के मादन वाली! कामदेव द्वारा प्राणी को मदमत्त करने वाली! कामदेव की रेखा वाली! कामदेव के वेग वाली! कामरूपी अंकुश वाली! कामदेव की मालाओं वाली! गुप्ततर योगिनि! वैदिक दर्शन की अंगरूपे! सबका संक्षोभ करने वाली! अर्थात् सर्वत्र उपद्रव उथल-पुथल करने वाली! चक्र स्वामिनि! पूर्व आम्नाय (द्वार) के देवी! सृष्टिरूपा देवी! सबको बेचैन बनाने वाली! सबको पिघलाने वाली! सबका आकर्षण करने वाली! सबको आनन्दित कर देने वाली! सबको सम्मोहित करने वाली! सबका स्तम्भन करने वाली! सबको आलस्य में डुबो देने वाली! सबको वश में करने वाली! सबका अनुरंजन करने वाली! सबको उन्मत्त बना देने वाली! सब अर्थों को सिद्ध करने वाली! सब सम्पत्तियों को पूर्ण करने वाली! सब मन्त्रमयी! सब दुविधाओं एवं झगड़ों को दूर करने वाली! सम्प्रदाय योगिनी! सौरदर्शन के अंग वाली! सब सौभाग्य प्रदान करने वाली चक्ररूपी देवी! सब सिद्धियों को प्रदान करने वाली! सब सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली! सब कुछ प्रिय करने वाली! सब प्रकार से मंगल करने वाली! सब इच्छाओं को प्रदान करने वाली! सब दुःखों से विमुक्त करने वाली! सब मृत्यु को शान्त करने वाली, अर्थात् मृत्यु को शान्त करने वाली! सब विघ्नों को दूर करने वाली! सब अंगों से सुन्दर शरीर वाली! सब सौभाग्य प्रदान करने वाली! कुलोत्तीर्ण योगिनी! सर्वार्थसाधक श्रीचक्र की स्वामिनि! सब कुछ जानने वाली! सब शक्तियों वाली! सब ऐश्वर्य और फल को प्रदान करने वाली! सब ज्ञानों वाली! सब व्याधियों को दूर करने वाली! सबकी आधार! सब

सवज्ञे सर्वशक्ते सर्वैश्वर्यफलप्रदे सर्वज्ञानमयि सर्वव्याधिनिवारिणि सर्वाधारस्वरूपे सर्वपापहरे सर्वानन्दमयि सर्वरक्षास्वरूपिणि सर्वेप्सितफलप्रदे नियोगिनि वैष्णवदर्शनांगि सर्वरक्षाकरचक्रस्थे दक्षिणाम्नायेशि स्थितिरूपे वशिनि कामेशि मोदिनि विमले अरुणे जयिनि सर्वेश्वरि कौलिनि रहस्ययोगिनि रहस्यभोगिनि रहस्यगोपिनि शाक्तदर्शनांगि सर्वरोगहरचक्रेशि पश्चिमाम्नाये धनुर्बाणपाशांकुशदेवते कामेशि वज्रेशि भगमालिनि अतिरहस्ययोगिनि शैवदर्शनांगि सर्वसिद्धिप्रदचक्रगे उत्तराम्नायेशि संहाररूपे शुद्धपरे बिंदुपीठगते महात्रिपुरसुन्दरि परापरातिरहस्ययोगिनि शांभवदर्शनांगि सर्वानन्दमयचक्रेशि त्रिपुरसुन्दरि त्रिपुरवासिनि त्रिपुरश्रीः त्रिपुरमालिनि त्रिपुरसिद्धे त्रिपुरांब सर्वचक्रस्थे अनुत्तराम्नायाख्यस्वरूपे महात्रिपुरभैरवि चतुर्विधगुणरूपे कुले अकुले कुलाकुले महाकौलिनि सर्वोत्तरे सर्वदर्शनांगि नवासनस्थिते नवाक्षरि नवमिथुनाकृते महेशमाधवविधातृमन्मथस्कन्दनन्दीन्द्रमनुचंद्रकुबेराग-स्त्यदुर्वासःक्रोधभट्टारकविद्यात्मिके कल्याणतत्त्वत्रयरूपे शिवशिवात्मिके पूर्णब्रह्मशक्ते महापरमेश्वरि महात्रिपुरसुन्दरि तव श्रीपादुकां पूजयामि नमः। क एं ईल ह्रीं हस कहल ह्रीं सकल ह्रीं ऐं क्लीं सौः सौः क्लीं ऐं श्रीं।

देव्याः पुष्पांजलिं दद्यात्सहस्राक्षरविद्यया। नोचेत्तत्पूजनं व्यर्थमित्याहुर्वेदवादिनः।।१५।।

पापों को हरने वाली! सब आनन्दों से युक्त! सबकी रक्षा स्वरूप वाली! सब इच्छित फल प्रदान करने वाली! नियोगिनि! वैष्णव दर्शन के अंगरूपिणि! सबकी रक्षा करने वाले श्रीचक्र में स्थित दक्षिण द्वार की स्वामिनि! संसार का पालन करने वाली! वश में करने वाली! काम की स्वामिनि! आनन्द देने वाली! विमले! अरुणे! जय दिलाने वाली! सबकी उत्पत्ति करने वाली! सबकी स्वामिनि! कौल वाली! रहस्ययोगिनि! रहस्यभोगिनी! शाक्तदर्शन की अंगरूपा! सब रोगों को हरने वाले चक्र की स्वामिनि! श्रीचक्र के पश्चिम द्वार की स्वामिनि! धनुष बाण पाश और अंकुश वाली देवि! कामेशि! वज्रेशि! भगमालिनि! अति रहस्य की योगिनि! शैवदर्शन की अंगरूपे! सर्वसिद्धि प्रदान करने वाले चक्र की स्वामिनि! श्रीचक्र के उत्तर द्वार की स्वामिनि! संहाररूपे! श्रीचक्र के शुद्ध परा बिन्दु के मध्य स्थित रहने वाली अर्थात् श्रीचक्र के मध्य में त्रिकोण स्थित बिन्दु के मध्य रहने वाली! महात्रिपुरसुन्दरि! पर अपर के जो अत्यन्त रहस्य हैं, उनके योग वाली! शाम्भव दर्शन के अंग वाली! सर्वानन्दमय चक्र की स्वामिनि! त्रिपुरसुन्दरि! तीनों लोकों में रहने वाली! तीनों लोकों की लक्ष्मी! त्रिपुरमालिनि! त्रिपुरसिद्धे! तीनों लोकों की माँ! सर्वचक्र में स्थित रहने वाली उत्तर द्वार की स्वामिनि महात्रिपुरभैरवि! चार प्रकार के गुण रूप कुल अकुल कुलाकुल तीनों प्रकार की तिथिवार नक्षत्रों वाली! सबका उत्तर देने वाली! सब दर्शनों के अंगों वाली! नवीन आसन पर स्थित नये अक्षरों वाली! नवीन मिथुन की आकृति वाली! महेश, विष्णु, ब्रह्मा, कामदेव, कार्तिकेय, नन्दी, चन्द्रमा, कुबेर, अगस्त्य, दुर्वासा के क्रोध की पूज्य विद्यात्मरूपी देवि! कल्याण तत्त्वत्रयरूप वाली देवि! शिव और शिवा के स्वरूप वाली पूर्णब्रह्म की शक्ति महापरमेश्वरि महात्रिपुरसुन्दरि! मैं आपकी श्रीपादुका की पूजा करता हूँ और तुम्हें नमन करता हूँ। इस प्रकार क एं ईल ह्रीं हस कहल ह्रीं ऐं क्लीं, सौः सौः क्लीं ऐं श्रीं।। कहकर देवि को सहस्राक्षर विद्या से पुष्पांजलि देनी चाहिए। यदि यह नहीं किया तो उनका पूजन व्यर्थ है, ऐसा वेदवादी कहते हैं।।१५।।

ततो गोमयसंलिप्ते भूतले द्रोणशालिभिः।
तावद्भिस्तण्डुलैः शुद्धैः शस्तार्णैस्तत्र नूतनम्॥१६॥
द्रोणोदपूरितं कुंभं पञ्चरत्नैर्नवैर्युतम्। न्यग्रोधाश्वत्थमांकंदजंबूदुम्बरशाखिनाम्॥१७॥
त्वग्भिश्च पल्लवैश्चैव प्रक्षिप्तैरधिवासिनम्। कुम्भाग्रे निक्षिपेत्पक्वं नारिकेलफलं शुभम्॥१८॥
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्धूपदीपादि दर्शयेत्। श्रीचिन्तामणिमंत्रं तु हृदि मातकृमाजपेत्॥१९॥
कुम्भं स्पृशञ्छ्रीकामाप्तिरूपीकृतकलेवरम्। अष्टोत्तरशते जाते पुनर्दीपं प्रदर्शयेत्॥२०॥
शिष्यमाहूय रहसि वाससा बद्धलोचनम्। कारयित्वा प्रणामानां साष्टांगानां त्रयं गुरुः॥२१॥
पुष्पाणि तत्करे दत्त्वा कारयेत्कुसुमाञ्जलिम्। श्रीनाथकरुणाराशे परंज्योतिर्मयेश्वरि॥२२॥
प्रसूनांजलिरेषा ते निक्षिप्ता चरणांबुजे। परं धाम परं ब्रह्म मम त्वं परदेवता॥२३॥
अद्यप्रभृति मे पुत्रान्रक्ष मां शरणागतम्। इत्युक्त्वा गुरुपादाब्जे शिष्यो मूर्ध्नि विधारयेत्॥२४॥
जन्मान्तर सुकृतत्वं स्यान्न्यस्ते शिरसि पादुके।
गुरुणा कमलासनमुरशासनपुरशासनसेवया लब्धे॥२५॥
इत्युक्त्वा भक्तिभरितः पुनरुत्थाय शांतिमान्।
वामपार्श्वे गुरोस्तिष्ठेदमानी विनयान्वितः॥२६॥
ततस्तुंबीजलैः प्रोक्ष्य वामभागे निवेदयेत्। विमुच्य नेत्रबंधंतु दर्शयेदर्चनक्रमम्॥२७॥

उसके बाद गोबर से लिपी हुई भूमि पर ६४ किलो साठी धान और उतने ही शुद्ध चावलों द्वारा तथा विशुद्ध जल से वहाँ नया ६४ सेर वाले भरे हुए घड़े को पाँच नवीन वस्त्रों से युक्त, बरगद, पीपल, आम, जामुन, गूलर की शाखाओं की छालों और पत्तों से चारों ओर बिखेरते हुए ढँक दे, फिर उस घड़े के आगे पके हुए शुभ नारियल के फल को फोड़ कर गन्ध-पुष्प आदि से पूजा करके धूप-दीप आदि दिखाए और श्रीचिन्तामणि मातृक मन्त्र को हृदय में जपे।।१६-१९।। उसके वाद उस घड़े का स्पर्श करते हुए श्रीकामाप्तिरूपी उस कलेवर पर १०८ बार चिन्तामणि मन्त्र का जाप हो जाने पर पुनः दीपक दिखाना चाहिए।।२०।।

फिर एकान्त में शिष्य को बुला कर वस्त्र से आँखें बांध कर तीनों को साष्टांग प्रणाम करवा कर गुरु उसके हाथ में पुष्पों को देकर कुसुमों की अंजलि करवाये और हाथ जोड़ते हुए फूलों को गिराये और कहे कि हे श्रीनाथे! हे करुणा की राशि! परम प्रकाशमय ईश्वरी! मैंने नये फूलों की अंजलि तुम्हारे चरणों में गिरायी है।।२१-२२½।। और फिर अनुरोध करे कि हे परं धाम परं ब्रह्म! तुम्हीं पर देवता हो। आज से तुम मेरे पुत्रों की रक्षा करो। मैं तुम्हारी शरण में आ गया हूँ, मुझ शरणागत की रक्षा करो। इस प्रकार कहकर गुरु के चरणकमलों में शिष्य अपने शिर को धारण करे।।२२½-२४।। शिष्य द्वारा गुरु के चरणों में शिर के रख देने पर जन्म-जन्मान्तर के पुण्यों की प्राप्ति होती है और गुरु द्वारा कमलासन और हृदय पर शासन और पुरशासन सेवा द्वारा प्राप्त होने पर पुण्यों की प्राप्ति होती है।।२५।। इस प्रकार भक्ति से पूर्ण होकर पुनः उठकर शान्तचित्त और विनम्र और अभिमान रहित शिष्य को गुरु के बायें पार्श्व में बैठना चाहिए।।२६।। उसके बाद तुम्बी के जलों से छिड़क कर वाम भाग में बैठने का निवेदन करना चाहिए, अर्थात् गुरु शिष्य को जल के छींटे मारकर अपने वाम भाग में बैठने को कहे। फिर शिष्य अपनी आँखें खोल करके पूजन क्रम का दर्शन करे।।२७।।

सितामध्वाज्यकदलीफलपायसरूपकम्। महात्रिपुरसुन्दर्या नैवेद्यमिति चादिशेत्॥२८॥
षोडशार्णमनुं तस्य वदेद्वामश्रुतौ शनैः। ततो बहिर्विनिर्गत्य स्थाप्य दार्वासने शुचिम्॥२९॥
निवेश्य प्राङ्मुखं तत्र पट्टवस्त्रसमास्तृते। शिष्यं श्रीकुम्भसलिलैरभिषिंचेत्समंत्रकम्॥३०॥
पुनः शुद्धोदकैः स्नात्वा वाससी परिगृह्य च। अष्टोत्तरशतं मन्त्रं जप्त्वा निद्रामथाविशेत्॥३१॥
शुभे दृष्टे सति स्वप्ने पुण्यं योज्यं तदोत्तमम्। दुःस्वप्ने तु जपं कुर्यादष्टोत्तरसहस्त्रकम्॥३२॥
कारयेत्रिपुरांबायाः सपर्यां मुक्तमार्गतः। यदा न दृष्टः स्वप्नोऽपि तदा सिद्धिश्चिराद्भवेत्॥३३॥

स्वीकुर्यात्परया भक्त्या देवी शेषं कलाधिकम्।
सद्य एव स शिष्यः स्यात्पंक्तिपावनपावनः॥३४॥

शरीरमर्थं प्राणं च तस्मै श्रीगुरवे दिशेत्। तदधीनश्चरेन्नित्यं तद्वाक्यं नैव लंघयेत्॥३५॥
यः प्रसन्नः क्षणार्धेन मोक्षलक्ष्मीं प्रयच्छति। दुर्लभं तं विजानीयाद्गुरुं संसारतारकम्॥३६॥
गुकारस्यांधकारोऽर्थो रुकारस्तन्निरोधकः। अंधकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते॥३७॥
बोधरूपं गुरुं प्राप्य न गुर्वंतरमादिशेत्। गुरुक्तं परुषं वाक्यमाशिषं परिचिंतयेत्॥३८॥
लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च। आददीत ततो ज्ञानं पूर्वं तमभिवादयेत्॥३९॥
एवं दीक्षात्रयं कृत्वा विधेयं बोधयेत्पुनः। गुरुभक्तिस्सदाचारस्तद्रोहस्तत्र पातकम्॥४०॥

फिर शक्कर, मधु, घृत, केला, खीर और रुपया तथा अन्य पूजा की सामग्री आदि महात्रिपुरसुन्दरी को समर्पित करनी चाहिए।।२८।। उसके बाद गुरु शिष्य के बायें कान में सोलह वर्णों को कहे, अ से अः तक के सोलह वर्ण हैं। उसके बाद बाहर निकलकर लकड़ी की चौकी पर ब्राह्मण को स्थापित कर पूर्व की ओर मुख करके वहां वस्त्र से ढके रहने पर शिष्य को श्रीकुल के जल से मन्त्र के साथ गुरु द्वारा अभिसिंचन किया जाना चाहिए।।३०।। फिर शुद्ध जलों से स्नान करके वस्त्र पहन कर १०८ मन्त्र जप कर सोना चाहिए।।३१।। यदि शुभ स्वप्न दिखाई देता है, तब पुण्य और उत्तम योग समझना चाहिए तथा यदि सोते समय अशुभ स्वप्न दिखायी दें तो फिर १००८ बार मन्त्र का जाप करना चाहिए।।३२।। इस प्रकार मुक्त मार्ग से त्रिपुराम्बा की पूजा करनी चाहिए, जब कोई स्वप्न न दिखाई दे, तब सिद्धि अधिक समय में होगी।।३३।। परा भक्ति द्वारा देवी की अधिक कला को स्वीकार करना चाहिए। जो शिष्य स्वीकार करता है, वह पंक्तिपावन पावन हो जाता है, अर्थात् वेदशास्त्रपारग सम्माननीय व्यक्तियों में भी श्रेष्ठ हो जाता है।।३४।। शरीर, अर्थ और प्राण उन श्रीगुरु को समर्पित करना चाहिए। गुरु के अधीन रहकर सदा आचरण करना चाहिए तथा उसके वाक्य का कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।।३५।।

जो गुरु प्रसन्न हो जाता है, वह आधे क्षण में ही मोक्षरूप लक्ष्मी को प्रदान कर देता है। उस गुरु को दुर्लभ और संसार सागर से पार कराने वाला समझना चाहिए।।३६।। गुकार का अर्थ अन्धकार और रुकार का अर्थ उसको रोकने वाला है, अर्थात् गु = अन्धकार, रु = रोकने वाला, इस प्रकार गुरु शब्द का अर्थ हुआ अन्धकार को रोकने वाला। अतः अज्ञान रूपी अन्धकार को रोकने के कारण ही 'गुरु' इस प्रकार कहा जाता है।।३७।। ज्ञानरूपी गुरु को प्राप्त करके अन्य गुरु को नहीं प्राप्त करना चाहिए। गुरु के कठोर वाक्य को आशिष् के रूप में समझना चाहिए।।३८।। लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक तीनों ज्ञान प्राप्त करने चाहिएं। उसके बाद पूर्व ज्ञान लौकिक ज्ञान के अनुसार गुरु को अभिवादन करना चाहिए।।३९।। इस प्रकार तीनों प्रकार के ज्ञानों की दीक्षा लेकर फिर विधेय

तत्पदस्मरणं मुक्तिर्यावद्देहमयं क्रमः। यत्पापं समवाप्नोति गुर्वग्रेऽनृतभाषणात्॥४१॥
गोब्राह्मणवधं कृत्वा न तत्पापं समाश्रयेत्। ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं यस्य मे गुरुसंततिः॥४२॥
तस्य मे सर्वपूज्यस्य को न पूज्यो महीतले। इति सर्वानुकूलो यः स शिष्यः परिकीर्तितः॥४३॥
शीलादिविमलानेकगुणसंपन्नभावनः। गुरुशासनवर्तित्वाच्छिष्य इत्यभिधीयते॥४४॥

जपाच्छ्रांतः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रांतः पुनर्जपेत्।
जपध्यानादियुक्तस्य क्षिप्रं मन्त्रः प्रसिध्यति॥४५॥

यथा ध्यानस्य सामर्थ्यात्कीटोऽपि भ्रमरायते। तथा समाधिसामर्थ्याद्ब्रह्मीभूतो भवेन्नरः॥४६॥
यथा निलीयते काले प्रपञ्चो नैव दृश्यते। तथैव मीलयेन्नेत्रे एतद्ध्यानस्य लक्षणम्॥४७॥
विदिते तु परे तत्त्वे वर्णातीते ह्यविक्रिये। किंकरत्वं च गच्छंति मंत्रा मंत्राधिपैः सह॥४८॥

आत्मैक्यभावनिष्ठस्य सा चेष्टा सा तु दर्शनम्।
योगस्तपः स तन्मंत्रस्तद्धनं यन्निरीक्षणम्॥४९॥

को जानना चाहिए, अर्थात् तीनों ज्ञानों की दीक्षा लेकर ही किस प्रकार क्या करना है, उसकी विधि जाननी चाहिए। गुरु की भक्ति ही सदाचार है तथा गुरु से द्रोह करना सबसे बड़ा पाप है।।४०।। गुरु के चरणों का स्मरण करना ही मुक्ति है। जब तक यह शारीरिक क्रम है, अर्थात् जब तक यह शरीर चल रहा है, तब तक गुरु के चरणों का स्मरण करना चाहिए। उसी से मुक्ति सम्भव है। गुरु के आगे झूठ बोलने से जो पाप मनुष्य प्राप्त करता है, वह पाप गोवध और ब्राह्मण वध करने से नहीं प्राप्त होता, अर्थात् गुरु के आगे झूठ बोलने का पाप गो, ब्राह्मण वध से भी बड़ा पाप है। ब्रह्मा आदि गुरुओं के समूह तक जो मेरी गुरुओं की सन्तति (परम्परा) उन मेरे सर्वपूज्य गुरु से अन्य इस पृथ्वी पर कौन पूज्य है। इस प्रकार जो इन सब गुरुओं के अनुकूल आचरण करता है, वह शिष्य कहा गया है।।४१-४३।। शील आदि पापरहित, अनेक गुणों से सम्पन्न भावना वाला गुरु की शिक्षा (गुरु के शासन) के अनुकूल व्यवहार करने से ही व्यक्ति शिष्य कहा जाता है।।४४।।

जप करने से श्रान्त हो जाये, थक जाये तो फिर ध्यान करे। ध्यान करने से थक जाये तो फिर जप करे। इस जप और ध्यान में लगे हुए मनुष्य का मन्त्र शीघ्र सिद्ध होता है।।४५।। जिस प्रकार ध्यान की सामर्थ्य से कीट भी भ्रमर बन जाता है, उसी प्रकार समाधि की सामर्थ्य से मनुष्य ब्रह्म हो जाना चाहिए।।४६।। जिस प्रकार प्रलयकाल में पंचतत्त्व निर्मित कोई भी वस्तु, नदी, पर्वत, समुद्र, जड़-चेतन सब पदार्थ कुछ भी नहीं दिखाई देता, उसी प्रकार आँख मींचने पर कुछ भी दिखाई न दे, यही ध्यान का लक्षण है।।४७।। वर्णातीत और निर्विकार ब्रह्मरूप पर तत्त्व को विदित करने में मन्त्र, मन्त्रों के स्वामियों के साथ किंकरत्व को प्राप्त करते हैं अर्थात् उस परब्रह्म तक पहुँचाने में मन्त्र नौकर का काम करते हैं।।४८।। आत्मा के ऐक्य भाव में निष्ठ मनुष्य की जो चेष्टा है, वही दर्शन है। अर्थात् मनुष्य जब सब ओर से ध्यान को हटाकर सब इन्द्रियों सहित मन को अपनी आत्मा में ही एकीकृत कर देता है, तब जो वह चेष्टा करता है, वही दर्शन है, क्योंकि दर्शन का अर्थ भी यही है। दृश्-प्रेक्षणे के अनुसार प्रकृष्ट रूप से किसी विषय को देखना ही दर्शन है तथा वह प्रकृष्ट रूप ही आत्मैक्य भाव है। योग और तप जिसमें है, वह मन्त्र है तथा वह धन है, जो निरीक्षण है। अर्थात् मन्त्र का प्रयोग योग और तप के साथ होना चाहिए, बिना मन्त्र के योग और तप नहीं तथा बिना योग और तप के मन्त्र व्यर्थ है तथा धन वही है, जिसे अच्छी तरह जाँच कर ग्रहण किया जाये,

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि। यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः॥५०॥
यः पश्येत्सर्वगं शांतमानंदात्मानमद्वयम्। न तस्य किंचिदाप्तव्यं ज्ञातव्यं वावशिष्यते॥५१॥
पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः। जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः॥५२॥
देहो देवालयः प्रोक्तो जीव एव महेश्वरः। त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोहंभावेन योजयेत्॥५३॥
तुषेण बद्धो ब्रीहिः स्यात्तुषाभावे तु तंडुलः। पाशबद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तो महेश्वरः॥५४॥
आकाशे पक्षिजातीनां जलेषु जलचारिणाम्। यथा गतिर्न दृश्येत महावृत्तं महात्मनाम्॥५५॥

नित्यार्चनं दिवा कुर्याद्रात्रौ नैमित्तिकार्चनम्।
उभयोः काम्यकर्मा स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः॥५६॥

कोटिकोटिमहादानात्कोटिकोटिमहाव्रतात्। कोटिकोटिमहायज्ञात्परा श्रीपादुकास्मृतिः॥५७॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यावद्देहस्य धारणम्। तावद्वर्णाश्रमाचारः कर्तव्यः कर्ममुक्तये॥५८॥
निर्गतं यद्गुरोर्वक्रात्सर्वं शास्त्रं तदुच्यते। निषिद्धमपि तत्कुर्याद्गुर्वाज्ञां नैव लंघयेत्॥५९॥

अच्छी तरह परिश्रम से कमाया जाये।।४९।। शरीर के अभिमान के नष्ट हो जाने पर अर्थात् जब मनुष्य का अहंभाव (अभिमान) समाप्त हो जाता है, जब पुरुष मैं, मेरा शरीर, मैं कर्ता इस अहंभाव को भूल कर प्रकृतिस्थ हो आत्मस्थ हो जाता है तथा आत्मा-परमात्मा को जान लेती है। तब परमात्म तत्त्व को जान लेने पर, जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ समाधियाँ हैं।।५०।। जो पुरुष सर्वत्र जाने वाले अर्थात् सर्वत्र व्याप्त, शान्त, आनन्दात्मक और अद्वय अर्थात् दो नहीं, सगुण और निर्गुण नहीं, साकार और निराकार नहीं, कहीं अन्य नहीं, केवल एक ही ब्रह्म को देख लेता है, उसके लिए संसार में कुछ भी प्राप्त करने और जानने के लिए शेष नहीं रह जाता। अर्थात् जिसने परमात्मा को प्राप्त कर लिया, उसे भला क्या प्राप्त करने के लिए शेष रहेगा तथा क्या उसे जानने के लिये ही रहेगा।।५१।। करोड़ों पूजाओं के समान स्तोत्र होता है तथा करोड़ों स्तोत्रों के समान जप होता है। करोड़ों जप के समान ध्यान है और करोड़ों ध्यानों के समान लय है।।५२।। शरीर ही देवालय (मन्दिर) कहा गया है, जीव ही महेश्वर है, अतः अज्ञानमाला-को त्याग कर अपने को सोऽहं भाव से जोड़ देना चाहिए। अर्थात् समाधि काल में वह परमात्मा मैं हूँ, यह भाव आ जाना चाहिए।।५३।। जैसे छिलका रहने पर धान धान रहता है; परन्तु छिलके के न रहने पर वह चावल हो जाता है, उसी प्रकार शरीर रूपी पाश में बँधा हुआ जीवात्मा जीव कहा जाता है तथा पाशमुक्त होने पर वह जीव महेश्वर हो जाता है, अर्थात् आत्मा परमात्मा हो जाता है।।५४।।

आकाश में पक्षी जातियों की और जल में जलचर जातियों की जैसी गति है, वैसी महान् आत्मा वाले महापुरुषों का महाव्यवहार की गति नहीं देखा जाता।।५५।। महापुरुषों को दिन में नित्य अर्चना (पूजा) करनी चाहिए और रात्रि में नैमित्तिक अर्चना करनी चाहिए, अर्थात् नित्य अर्चना-शौचादि से निवृत्त होकर सन्ध्यावन्दनादि तो दिन में नित्य करनी चाहिए, वह नित्य कर्म है; परन्तु यदि धन, पुत्र, ऐश्वर्य आदि किसी विशेष फल की प्राप्ति के लिए पूजा करनी है, तो वह नैमित्तिक पूजा रात्रि में करनी चाहिए। दोनों ही नित्य और नैमित्तिक काम्यकर्म होने चाहिएँ, यह शास्त्र का निश्चय है।।५६।। करोड़ों-करोड़ महादानों से करोड़ों-करोड़ महाव्रतों से श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के चरणपादुका की स्मृति बढ़कर है।।५७।। ज्ञान से अथवा अज्ञान से जब तक व्यक्ति शरीर धारण किये हुए है, तब तक उसे वर्ण और आश्रम धर्म के आचरणों का पालन कर्म से मुक्त होने के लिए अवश्य करना चाहिए।।५८।। जो गुरु के मुख से निकला

जातिविद्याधनाढ्यो वा दूरे दृष्ट्वा गुरुं मुदा। दंडप्रमाणं कृत्वैकं त्रिःप्रदक्षिणमाचरेत्॥६०॥
गुरुबुद्ध्या नमेत्सर्वं दैवतं तृणमेव वा। प्रणमेद्देवबुद्ध्या तु प्रतिमां लोहमृन्मयीम्॥६१॥
गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं वादैर्विजित्य च। विकास्य गुह्यशास्त्राणि भवंति ब्रह्मराक्षसाः॥६२॥
अद्वैतं भावयेन्नित्यं नाद्वैतं गुरुणा सह। न निंदेदन्यसमयान्वेदशास्त्रागमादिकान्॥६३॥

एकग्रामस्थितः शिष्यस्त्रिसंध्यं प्रणमेद्गुरुम्।
क्रोशमात्रस्थितो भक्त्या गुरुं प्रतिदिनं नमेत्॥६४॥

अर्धयोजनगः शिष्यः प्रणमेत्पंचपर्वसु। एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधि॥६५॥
तत्तद्योजनसंख्यांतमासेषु प्रणमेद्गुरुम्। अतिदूरस्थितः शिष्यो यदेच्छा स्यात्तदा व्रजेत्॥६६॥
रिक्तपाणिस्तु नोपेयाद्राजानं देवतां गुरुम्। फलपुष्पांबरादीनि यथाशक्ति समर्पयेत्॥६७॥
मनुष्यचर्मणा बद्धः साक्षात्परशिवः स्वयम्। सच्छिष्यानुग्रहार्थाय गूढं पर्यटति क्षितौ॥६८॥
सद्भक्तरक्षणायैव निराकारोऽपि साकृतिः। शिवः कृपानिधिर्लोके संसारीव हि चेष्टते॥६९॥

हुआ वचन है, वही शास्त्र कहा जाता है, क्योंकि यह प्राचीन गुरुओं की वाणी है। गुरु यदि निषिद्ध कार्य को भी कहें तो करना चाहिए; परन्तु गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं ही करना चाहिए।।५९।। मनुष्य भले ही किसी उच्च जाति का हो, बहुत विद्यावान् हो अथवा बहुत धनवान् हो, उसे गुरु को दूर से ही देखकर प्रसन्नता के साथ दण्ड प्रणाम करके तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिए।।६०।। सभी देवताओं, यहाँ तक तृण को भी गुरु मानकर नमस्कार करे तथा लोहे की बनी हुई मूर्ति को देवता मानकर प्रणाम करना चाहिए।।६१।। गुरु को हुंकार और तुंकार करके और विप्र को वादों से जीत कर अर्थात् गुरु को ऊँचे स्वर में डराते हुए अनादर सूचक शब्द बोलकर तथा ब्राह्मण को वाद-विवाद में जीत कर गुप्त शास्त्रों का विकास करके, अर्थात् अश्लील शास्त्रों का विकास कर मनुष्य ब्रह्मराक्षस हो जाते हैं।।६२।। गुरु के साथ सदैव अद्वैत का भाव रखना चाहिए, द्वैत का नहीं रखना चाहिए। अर्थात् उन्हें एक मान कर उनकी सेवा करनी चाहिए, दो मानकर दुर्मति नहीं करनी चाहिए। वेदशास्त्र और आगम (न्याय मीमांसा अर्थशास्त्र आदि) की तथा अन्य आचारों (सम्प्रदायों) की निन्दा नहीं करनी चाहिए।।६३।।

गुरु और शिष्य यदि एक ही ग्राम में स्थित हों, तो शिष्य को गुरु को तीन बार प्रणाम करना चाहिए। यदि गुरु कोश भर दूरी पर स्थित हों, तो प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए।।६४।। यदि गुरु एक योजन (चार कोश) की दूरी पर रहते हों तो गुरु को शिष्य पाँच पर्वों (होली, रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली, दुर्गापूजा आदि) में जाकर प्रणाम करे। एक योजन से आरम्भ कर बारह योजन तक उस उस संख्या के महीनों में गुरु को प्रणाम करना चाहिए, जैसे कि यदि गुरु एक योजन पर है, तो एक मास में, दो योजन पर है, तो दो मास में, तीन पर है, तो तीन मास, इसी प्रकार संख्या के अनुसार जितने योजन दूरी पर गुरु हों, उतने ही मास बाद गुरु को प्रणाम करना चाहिए तथा जब गुरु अत्यन्त दूरी पर रहते हों तो शिष्य की जब इच्छा हो, तब गुरु के पास जाये।।६५-६६।। राजा, देवता और गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। फल पुष्प और वस्त्र आदि गुरु के लिए यथाशक्ति समर्पित करने चाहिए।।६७।। मनुष्य की चमड़ी में बँधे हुए अर्थात् मनुष्य रूपी परदेवता साक्षात् भगवान् शिव स्वयं सच्चे शिष्य के अनुग्रह के लिए गूढ रूप से समस्त पृथ्वी पर घूमते हैं।।६८।। सच्चे भक्त की रक्षा के लिए निराकार होते हुए भी आकार सहित कृपानिधि भगवान् शिव संसारी व्यक्ति के समान चेष्टा सच्चे शिष्य पर कृपा करने के लिए तीन नेत्र

अत्रिनेत्रः शिवः साक्षादचतुर्बाहुरच्युतः। अचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः परिकीर्तितः॥७०॥
श्रीगुरुं परतत्त्वाख्यां तिष्ठंतं चक्षुरग्रतः। भाग्यहीना न पश्यंति सूर्यमन्धा इवोदितम्॥७१॥

उत्तमा तत्त्वचिंता स्याज्जपचिंता तु मध्यमा।
अधमा शास्त्रचिंता स्याल्लोकचिंताधमाधमा॥७२॥
नास्ति गुर्वधिकं तत्त्वं नास्ति ज्ञानाधिकं सुखम्।
नास्ति भक्त्यधिका पूजा न हि मोक्षाधिकं फलम्॥७३॥

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवादिषु। तत्र तत्रोच्यते शब्दैः श्रीकामाक्षी परात्परा॥७४॥

शचींद्रौ रोहिणीचंद्रौ स्वाहाग्नी च प्रभारवी।
लक्ष्मीनारायणौ बाणीधातारौ गिरिजाशिवौ॥७५॥

अग्नीषोमौ बिंदुनादौ तथा प्रकृतिपूरुषौ। आधाराधेयनामानौ भोगमोक्षौ तथैव च॥७६॥
प्राणापनौ च शब्दार्थौ तथा विधिनिषेधकौ। सुखदुःखादि यद्वद्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा॥७७॥
सर्वलोकेषु तत्सर्वं परं ब्रह्म न संशयः। उत्तीर्णमपरं ज्योतिः कामाक्षीनामकं विदुः॥७८॥
यदेव नित्यं ध्यायंति ब्रह्मविष्णुशिवादयः। इत्थं हि शक्तिमार्गेऽस्मिन्यः पुमानिह वर्तते॥७९॥

प्रसादभूमिः श्रीदेव्या भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम्।
अमन्त्रं वा समंत्रं वा कामाक्षीमर्चयंति ये॥८०॥

वाले शिव बिना तीन नेत्र के, सामान्य मनुष्य के रूप में चार भुजाओं वाले विष्णु बिना चार भुजाओं के सामान्य मनुष्य के रूप में तथा चार मुख वाले ब्रह्मा बिना चार मुख के सामान्य मनुष्य के रूप में घूमते हैं, ये तीनों देव ही श्रीगुरु कहे गये हैं।।६९-७०।। जिस प्रकार अन्धे व्यक्ति उदित होते हुए सूर्य को नहीं देखते हैं, उसी प्रकार आँखों के सामने बैठे हुए परतत्त्व नामक श्रीगुरु (ब्रह्मा विष्णु शिव) को भाग्यहीन नहीं देखते हैं।।७१।। तत्त्वों का चिन्तन करना उत्तम चिन्तन है, जप करना मध्यम चिन्तन है, शास्त्र चिन्तन अधम चिन्तन है तथा लोक चिन्तन सबसे निम्न कोटि का चिन्तन है।।७२।। गुरु से अधिक कोई तत्त्व नहीं है। ज्ञान से अधिक कोई सुख नहीं है। भक्ति से अधिक कोई पूजा नहीं है और मोक्ष से अधिक कोई फल नहीं है।।७३।। सब वेदों और शास्त्रों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदियों में वहाँ-वहाँ जो श्री कामाक्षी कहीं, परात्परा नाम से कही जाती है, अर्थात् वे ही कामाक्षी हैं, पर से पर नाम वाली हैं, अर्थात् वे कामाक्षी परब्रह्म से परे हैं।।७४।।

शची-इन्द्र, रोहिणी-चन्द्रमा, स्वाहा और अग्नि, प्रभा और सूर्य, लक्ष्मी और नारायण, वाणी और धाता (ब्रह्मा), गिरिजा (पार्वती) और शिव, अग्नि और सोम, बिन्दु और नाद, प्रकृति और पुरुष, आधार और आधेय, उसी प्रकार भोग और मोक्ष, प्राण और अपान, शब्द और अर्थ, विधि और निषेधक (हाँ और ना, हैं और नहीं) सुख और दुःख आदि जितने द्वन्द्व (जोड़े) दिखायी देते हैं अथवा सुने जाते हैं, वे सब लोकों में परम् ब्रह्म हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उनको भी पार कर उनसे महान् एक ज्योति है, जिसे कामाक्षी नाम से जानते हैं।।७५-७८।। जिस ज्योति का ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि भी नित्य ध्यान करते हैं, इस प्रकार इस शक्ति के मार्ग में जो मनुष्य इस संसार में वर्तमान है, वह उन श्री कामाक्षी देवी का कृपापात्र है और वह भोग और मोक्ष का पात्र है, उसे ही सब प्रकार के भोग और मोक्ष मिलते हैं।।७९-७९½।। मन्त्र के बिना या मन्त्र के साथ जो श्रीकामाक्षी की अर्चना करते

स्त्रियो वैश्याश्च शूद्राश्च ते यांति परमां गतिम्।
किं पुनः क्षत्रिया विप्रा मंत्रपूर्वं यजंति ये॥८१॥
संसारिणोऽपि ते नूनं विमुक्ता नात्र संशयः। सितामध्वाज्यकदलीफलपायसरूपकम्॥८२॥
पञ्चपर्वसु नैवेद्यं सर्वदेव निवेदयेत्। यो नार्चयति शक्तोऽपि स देवीशापमाप्नुयात्॥८३॥
अशक्तौ भावनाद्रव्यैरर्चयेन्नित्यमंबिकाम्। गृहस्थस्तु महादेवीं मंगलाचारसंयुतः॥८४॥
अर्चयेत महालक्ष्मीमनुकूलांगनासखः। गुरुस्त्रिवारमाचारं कथयेत्कलशोद्भव॥८५॥
शिष्यो यदि न गृह्णीयाच्छिष्ये पापं गुरोर्न हि।
लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ॥८६॥
श्रीगुरुं गुरुपत्नीं च पितरौ चिंतयेद्धिया। इति सर्वं मया प्रोक्तं समासेन घटोद्भव॥८७॥
एतावदवधानेन सर्वज्ञो मतिमान्भवेत्॥८८॥

इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे ललितोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

हैं, वे परम गति को प्राप्त करते हैं।।७९½-८०½।। यही नहीं क्षत्रिय और ब्राह्मण भी जो मन्त्रपूर्वक श्रीकामाक्षी देवी का यज्ञ करते हैं, वे संसारी होते हुए भी मोक्ष प्राप्त करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।८०½-८१½।। शक्कर, मधु, घृत, केला, खीर, रुपया और नैवेद्य (पूजन सामग्री) सदैव पाँच पर्वों में श्रीकामाक्षी देवी को प्रदान करनी चाहिए।।८१½-८२½।। जो व्यक्ति समर्थ होते हुए भी श्रीदेवी की पूजा नहीं करता है, वह देवी के शाप को प्राप्त करता है, जिसमें उक्त द्रव्यों द्वारा पूजा करने की सामर्थ्य नहीं है, तो उसे हे अगस्त्य जी! नित्य भावना के साथ द्रव्यों द्वारा मां की अर्चना करनी चाहिये।।८२½-८३½।।

गृहस्थ को तो अपनी पत्नी के साथ मंगलाचार के साथ महालक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए।।८३½-८४½।। हयग्रीव कहते हैं कि हे अगस्त्य जी! गुरु को तीन बार आचार करना चाहिए। शिष्य यदि इस कथन को नहीं स्वीकार करता है, तो वह शिष्य के लिए पाप है, गुरु के लिए नहीं।।८४½-८५½।। गुरु तीन हैं—विष्णु, ब्रह्मा और महेश; परन्तु बुद्धिमान् मनुष्य को उनका सपत्नीक ध्यान करना चाहिए, वह लक्ष्मी-विष्णु, सरस्वती-ब्रह्मा और पार्वती-शिव। इस प्रकार गुरु और गुरुपत्नी दोनों का ही चिन्तन करना चाहिए।।८५½-८६½।।

हयग्रीव ने कहा कि हे अगस्त्य जी! उपर्युक्त प्रकार से मैंने सब कुछ संक्षेप में आपसे कह दिया है। इसको ध्यानपूर्वक सुनने से सर्वज्ञ और बुद्धिमान् हो जाना चाहिए।।८६½-८८।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४३ वाँ अध्याय श्रीदेवीपूजन दीक्षा कथन का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

❖❖❖

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणे उत्तरभागे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने

देवीपूजाप्रकार कथनं नाम

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

हयग्रीव उवाच

प्रविश्य तु जपस्थानमानीय निजमासनम्। अभ्युक्ष्य विधिवन्मंत्रैर्गुरूक्तक्रमयोगतः॥१॥
स्वात्मानं देवतामूर्तिं ध्यायंस्तत्राविशेषतः। प्राङ्मुखो दृढमाबध्य पद्मासनमनन्यधीः॥२॥
त्रिखण्डामनुबध्नीयाद्गुर्वादीनभिवंद्य च। द्विरुक्तबालबीजानि मध्याद्यंगुलिषु क्रमात्॥३॥
तलयोरपि विन्यस्य करशुद्धिपुरःसरम्। अग्निप्राकारपर्यंतं कुर्यात्स्वास्त्रेण मन्त्रवित्॥४॥
प्रतिलोमेन पादाद्यमनुलोमेन कादिकम्। व्यापकन्यासमारोप्य व्यापयन्वाग्भवादिभिः॥५॥
व्यक्तैः कारणसूक्ष्मस्थूलशरीराणि कल्पयेत्।
नाभौ हृदि भ्रुवोर्मध्ये बालाबीजान्यथ न्यसेत्॥६॥
मातृकां मूलपुटितां न्यसेन्नाभ्यादिषु क्रमात्। बालाबीजानि तान्येव द्विरावृत्त्याथ विन्यसेत्॥७॥
मध्यादिकरशाखासु तलयोरपि नान्यथा। नाभ्यादावथ विन्यस्य न्यसेदथं पदद्वये॥८॥
जानूरुस्फिग्गुह्यमूलनाभि हृन्मूर्धसु क्रमात्। नवासनानि ब्रह्माणं विष्णुं रुद्रं तथेश्वरम्॥९॥

श्रीब्रह्माण्डमहापुराण उत्तरभाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद में ललितोपाख्यान

अध्याय–४४

देवी पूजा प्रकार वर्णन

हयग्रीव ने कहा कि अगस्त्यजी! जप के स्थान में प्रवेश करके अपने आसन को लेकर गुरु द्वारा बताये गये क्रम के अनुसार मन्त्रों से विधिवत् जल का छिड़काव करके अपनी आत्मा और देवी की मूर्ति का ध्यान करते हुए वहाँ पर विशेष रूप से पूर्व की ओर मुख करके दृढ़ पद्मासन बाँध कर अन्य किसी को ध्यान न करते हुए बैठना चाहिए।।१।। त्रिखण्डा का अनुबन्धन करे और गुरु आदि की अभिवन्दना करके दो बार बाला देवी के बीजमन्त्रों का मध्यमा आदि अंगुलियों में जाप करना चाहिये। यहाँ पहले क्रमशः दोनों हाथों की हथेलियों को पहले धोकर शुद्धि कर लेनी चाहिए और अग्नि प्राकार तक मन्त्रज्ञ को अपने अस्त्र से शुद्धि करनी चाहिए।।४।। प्रतिलोम क्रम से पादादि का और अनुलोम क्रम से कादि का अर्थात् प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह तक इनको उल्टे क्रम से अर्थात् ह, स, ष, श, व, ल, र, य, म, भ, ब, फ, प के क्रम से और कादि क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न। इनको इसी क्रम से व्यापक न्यास को आरोप कर वाग्वादियों द्वारा व्याप्त करते हुए व्यक्तों द्वारा कारण सूक्ष्म स्थूल शरीरों में भी कल्पना करे और नाभि में, हृदय में और भौंहों के मध्य में बाला के बीजमन्त्रों का न्यास करे।।६।। मूलपुटित मातृका का क्रम से नाभि आदि में न्यास करे, उन बाला बीजों को ही दो बार घुमा कर नाभि आदि में विन्यस्त करे।।७।। मध्या आदि हाथ की अंगुलियों में और दोनों हाथ की हथेलियों पर भी अन्यथा नाभि आदि में भी रख कर दोनों पैरों में भी न्यास करे।।८।। घुटनों, जंघाओं,

सदाशिवं च पूषाणं तूलिकां च प्रकाशकम्। विद्यासनं च विन्यस्य हृदये दर्शयेत्ततः॥१०॥
पद्मत्रिखण्डयोन्याख्यां मुद्रामोष्ठपुटेन च। वायुमापूर्य हुं हुं हुं त्विति प्राबोध्यकुण्डलीम्॥११॥
मन्त्रशक्त्या समुन्नीय द्वादशान्ते शिवैकताम्।
भावयित्वा पुनस्तं च स्वस्थाने विनिवेश्य च॥१२॥
वाग्भवादीनि बीजानि मूलहृद्बाहुषु न्यसेत्। समस्तमूर्ध्नि दोर्मूलमध्याग्रेषु यथाक्रमम्॥१३॥
हस्तौ विन्यस्य चांगेषु ह्यङ्गुष्ठादितलावधि। हृदयादौ च विन्यस्य कुंकुमं न्यासमाचरेत्॥१४॥
शुद्धा तृतीयबीजेन पुटितां मातृकां पुनः। आद्यबीजद्वयं न्यस्य ह्यंत्यबीजं न्यसेदिति॥१५॥
पुनर्भूतलविन्यासमाचरेन्नातिविस्तरम्। वर्गाष्टकं न्यसेन्मूले नाभौ हृदयकण्ठयो;॥१६॥
प्रागाधायैषु शषसान्मूलहृन्मूर्द्धसु न्यसेत्। कक्षकट्यंसवामांसकटिहृत्सु च विन्यसेत्॥१७॥
प्रभूताघः षडंगानि दादिवर्गैस्तु विन्यसेत्। ऋषिस्तु शब्दब्रह्मस्याच्छंदो भूतलिपिर्मता॥१८॥
श्रीमूलप्रकृतिस्त्वस्य देवता कथिता मनोः। अक्षस्त्रक्पुस्तके चोर्ध्वे पुष्पसायककार्मुके॥१९॥
वराभीतिकराब्जैश्च धारयंतीमनूपमाम्। रक्षणाक्षमयीं मालां वहन्ती कण्ठदेशतः॥२०॥
हारकेयूरकटकच्छन्नवीरविभूषणाम्। दिव्यांगरागसंभिन्नमणिकुंडलमण्डिताम्॥२१॥
लिपिकल्पद्रुमस्याधो रूपिपंकजवासिनीम्।
साक्षाल्लिपिमयीं ध्यायेद्भैरवीं भक्तवत्सलाम्॥२२॥

कूल्हों, लिङ्ग, मूल, नाभि, हृदय और सिर में क्रमशः न्यास करे। फिर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, पूषाण, तूलिका, प्रकाशक और विद्या के नौ आसनों का विन्यास करके उनका हृदय में दर्शन करे।।९-१०।। पद्मत्रिखण्ड योनि नाम की मुद्रा बनाकर ओष्ठपुर से अन्दर वायु को भर कर हुं हुं हुं इस प्रकार कहते हुए कुण्डली को जगाये।।११।। मन्त्र की शक्ति से बारह के अन्त में शिव की एकता को उठाकर भावयुक्त करके फिर उसको अपने स्थान में रखकर वाणी से उत्पन्न बीजों का मूल हृदय और बाहुओं में न्यास करे। फिर समस्त भुजा पर कांख भुजा के मध्य आगे सर्वत्र भुजा पर न्यास करते हुए क्रम से हाथों पर विन्यास करे। शरीर के सभी अंगों, अंगूठा आदि के तलों तक हृदय आदि पर न्यास करे तथा वह न्यास कुंकुम का होना चाहिए।।१२-१४।। फिर तीसरे बीज से पुटित मातृका को शुद्ध करे, पहले दो बीजों का न्यास करके अन्त्य बीज का न्यास करे।।१५।। उसका अति विस्तृत भूमितल का विन्यास करे। तब मूल में, नाभि में और कण्ठों में अष्ट वर्ग (१. स्वर वर्ग, २. क वर्ग, ३. च वर्ग, ४. ट वर्ग, ५. त वर्ग, ६. प वर्ग, ७. य वर्ग, ८. श वर्ग) का विन्यास करे।।१६।। पहले आधान कर श ष स ह को मूल हृदय और ऊपर शिर पर न्यस्त करे। कक्ष (कांख), कमर, कन्धे, बायें कन्धे, कमर, हृदय आदि में विशेष न्यास करे। बहुत नीचे जो छः अंग हैं, उनमें द आदि वर्गों का न्यास करे। ऋषि तो शब्द ब्रह्म माना गया है और छन्द भूत लिपि माने गये हैं।।१८।।

श्री मूल प्रकृति इसकी देवी कही गयी है। अक्षमाला पुस्तक दो हाथों में तथा ऊपर वाले हाथों में पुष्पों का बाण और धनुष है।।१९।। वे अपने श्रेष्ठ और भय पैदा करने वाले हाथों द्वारा इन अक्षमाला, पुस्तक, बाण और धनुष धारण किये हुई हैं। रक्षा करने वाली अक्षमाला को कण्ठ में पहने हुई हार बाजूबन्द कर्धनी से ढँके हुए वीर भूषण वाली, दिव्य अंगराग से युक्त तथा मणिजटित कुण्डल से मण्डित, लिपि कल्पवृक्ष के नीचे रूप कमलवासिनी साक्षात्

अनेककोटिदूतिभिः समंतात्समलंकृताम्। एवं ध्यात्या न्यसेद्भूयो भूतलेप्यक्षरान्क्रमात्॥२३॥
मूलाद्याज्ञावसानेषु वर्गाष्टकमथो न्यसेत्। शषासान्मूर्ध्नि संन्यस्य स्वरानेष्वेव विन्यसेत्॥२४॥
हादिरूर्ध्वादिपञ्चास्येष्वग्रे मूले च मध्ये। अङ्गुलीमूलमणिबन्धयोर्दोष्णोश्च पादयोः॥२५॥
जठरे पार्श्वयोर्दक्षवामयोर्नाभिपृष्ठयोः शषसान्मूलहृन्मूर्धस्वेतान्वा लादिकान्न्यसेत्॥२६॥
ह्रस्वाः पञ्चाथ सन्ध्यर्णाश्चत्वारो हयरा वलौ। अकौ खगेनगश्चादौ क्रमोयं शिष्टवर्गके॥२७॥
शषसा इति विख्याताद्विचत्वारिंशदक्षराः। आद्यः पञ्चाक्षरो वर्गो द्वितीयश्चतुरक्षरः॥२८॥
पञ्चाक्षरी तु षड्वर्गी त्रिवर्णो नवमो मतः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च धनेशेंद्रयमाःक्रमात्॥२९॥
वरुणश्चैव सोमश्च शक्तित्रयमिमे नव। वर्णानामीश्वराः प्रोक्ताः क्रमो भूतलिपेरयम्॥३०॥
एवं सृष्टौ पाठो विपरीतः संहृतावमून्येव। स्थानानि योजनीयौ विसर्गबिंदू च वर्णांतौ॥३१॥
ध्यानपूर्वं ततः प्राज्ञो रत्यादिन्यासमाचरेत्। जपाकुसुमसंकाशाः कुंकुमारुणविग्रहाः॥३२॥
कामवामाधिरूढांका ध्येयाः शरधनुर्धराः। रतिप्रीतियुतः कामः कामिन्याः कांत इष्यते॥३३॥
कांतिमान्मोहिनीयुक्तकामांगः कलहप्रियाम्। अन्वेति कामचारैस्तु विलासिन्या समन्वितः॥३४॥

लिपिमयी भक्तवत्सला अनेक कोटि दूतियों द्वारा चारों ओर से अलंकृता भैरवी का ध्यान करके पुनः पृथ्वी पर क्रम से अक्षरों का न्यास करे।।२०-२३।। फिर मूल आदि आज्ञा और अवसान में अष्टवर्ग का न्यास करे। श ष स को शिर पर न्यस्त कर स्वरों को इन्हीं स्थानों में विन्यस्त करे।।२४।। हादि ऊर्ध्वादि पाँच को मुखों में आगे मूल और मध्य में अंगुलि में मूल मणिबन्ध में दोनों भुजाओं और पैरों में न्यस्त करना है।।२५।। पेट पर, पीछे, दायें-बायें, नाभि के पृष्ठों पर श ष स का न्यास करे तथा मूल हृदय और मूर्धा पर लादिकों (य र ल व) का न्यास करे।।२६।। ह्रस्व पांच हैं, अ, इ, उ, ऋ, ऌ। सन्ध्यवर्ण हैं ह, य, व, र, ल, अ, और क, ख, ग, न ग ये सब क्रम से शिष्ट वर्ग के वर्ण हैं।।२७।। श ष स ये वर्ण विख्यात हैं। इस प्रकार कुल बयालीस अक्षर हैं। पहले पांच अक्षरों का वर्ग है १. कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ), २. चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ), ३. टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण), ४. तवर्ग (त, थ, द, ध, न), ५. पवर्ग (प, फ, ब, भ, म) इस प्रकार पच्चीस वर्ण हुए। फिर दूसरा वर्ग चार अक्षरों वाला वर्ग है— जैसे— य, व, र, ल (यादि) श, ष, स, ह (हादि) इस प्रकार कुल सात वर्ग हुए। षड्वर्गी पाँच अक्षर हैं—अ, इ, उ, ऋ और ऌ तथा नवाँ वर्ग तीन अक्षरों संयुक्ताक्षर क्ष, त्र, ज्ञ का है। यह त्रिवर्ण नौवाँ वर्ग माना जाता है। इस प्रकार कुल अक्षर ४१ हुए; परन्तु ह को सूत्र में दो बार लिया गया है, अतः कुल अक्षर बयालीस हुए तथा ये कुल ९ वर्ग माने गये हैं।।२८-२८½।।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुबेर, इन्द्र, यम, वरुण, सोम और तीन शक्तियाँ ये नौ वर्णों के ईश्वर कहे गये हैं और क्रमशः यही भूतलिपि का क्रम है।।२८½-३०।। इस प्रकार सृष्टि पर यह पाठ है, ये ही विपरीत रूप से संहृत होते हैं। विसर्ग और बिन्दु तो वर्ण के अन्त में जोड़ने चाहिएँ।।३१।। उसके बाद विद्वान् पुरुष को ध्यानपूर्वक रति आदि का न्यास करना चाहिए। जपा के पुष्प के समान चमकने वाली कुंकुम के समान लाल शरीर वाली, कामदेव के वाम गोद में बैठी हुई बाण और धनुष को धारण करने वाली रति आदि हैं।।३२-३२½।। कामदेव रति से प्रेम करते हुए रति के युक्त हैं, इसलिये वे कामिनी के कान्त कहे जाते हैं।।३३।। कान्तिमान् मोहिनी से युक्त काम का अंग, कलहप्रिया कामिनी का अनुसरण करता है। जो काम का आचरण व्यवहारों द्वारा विलासिनी रति से युक्त है।।३४।।

कामः कल्पलतायुक्तः कामुकः श्यामवर्णया।
शुचिस्मितान्वितः कामो बंधको विस्मृतायुतः॥३५॥
रमणो विस्मिताक्ष्या च रामोऽयं लेलिहानया।
रमण्या रतिनाथोपि दिग्वस्त्राढ्यो रतिप्रियः॥३६॥
वामया कुब्जया युक्तो रतिनाथो धरायुतः। रमाकांतो रमोपास्यो रममाणो निशाचरः॥३७॥
कल्याणो मोहिनीनाथो नन्दकश्चोत्तमान्वितः। नन्दी सुरोत्तमाढ्यो नन्दनो नन्दयिता पुनः॥३८॥
सुलावण्यान्वितः पंचबाणो बालनिधीश्वरः। कलहप्रियया युक्तस्तथा रतिसुखः पुनः॥३९॥
एकाक्ष्या पुष्पधन्वापि सुमुखेशो महाधनुः।
नीली जटिल्यो भ्रमणः क्रमशः पालिनीपतिः॥४०॥
भ्रममाणः शिवाकांतो भ्रमो भ्रान्तश्च मुग्धया।
भ्रामको रमया प्राप्तो भ्रामितो भृङ्ग इष्यते॥४१॥
भ्रांताचारो लोचनया दीर्घजिह्विकया पुनः। भ्रमावहं समन्वेति मोहनस्तु रतिप्रियाम्॥४२॥
मोहकस्तु पलाशाक्ष्या गृहिण्यां मोह इष्यते। विकटेशो मोहधरो वर्धनोयं धरायुतः॥४३॥
मदनाथोऽनूपमस्तु मन्मथो मलयान्वितः। मादकोह्लादिनीयुक्तः समिच्छन्विश्वतोमुखी॥४४॥
नायको भृंगपूर्वस्तु गायको नंदिनीयुतः। गणकोऽनामया ज्ञेयः काल्या नर्तक इष्यते॥४५॥

कामदेव कल्पवृक्ष की लता से युक्त हैं और कामुक हैं तथा श्याम वर्ण वाली, पवित्र मुस्कान से युक्त विस्मृता रति से युक्त हैं। यह काम बन्धक (बाँधने वाला) है।।३५।। यह काम ही विस्मित नेत्र वाली के साथ रमण करने वाला है। यह काम लेलिहाना मुद्रा से रमणी से संयुक्त है। यह रतिनाथ होते हुए भी दिशाओं रूपी वस्त्र से ढँका हुआ रति देवी को अत्यन्त प्रिय है।।३६।। यह काम कुब्जा नामक स्त्री से संयुक्त है। रति का स्वामी है। धरा से युक्त है। ये रमाकान्त है। ये ही रमा की उपासना करने वाला अर्थात् रमा के पास रहने वाला है। रमण करने वाला और रात्रि में विचरण करने वाला है।।३७।। ये मोहिनीनाथ भगवान् कामेश्वर नन्दक से युक्त हैं। भगवान् नन्दी श्रेष्ठ देवताओं से युक्त हैं। वे सबको आनन्दित करने के कारण नन्दी कहे गये हैं।।३८।। सुन्दर लावण्य से युक्त, पाँच बाण वाले, बालनिधिपति, कलहप्रिया से युक्त तथा फिर रति के सखा हैं।।३९।। एक दृष्टि से वे पुष्परूपी धनुष को धारण करने वाले हैं, सुन्दर मुख वाले और महाधनु हैं। वे नीलवर्ण वाले जटाधारी, भ्रमण करने वाले शिवा के पति भ्रम हैं और मुग्धा शिवा द्वारा भ्रान्त हैं तथा सबको भ्रम में भी डालने वाले हैं। रमा से प्राप्त होकर वे भ्रमित हैं, इसलिए भृङ्ग कहे जाते हैं।।४१।।

पुनः लम्बी जिह्वा वाली और नेत्र वाली द्वारा भ्रान्त आचरण वाले हैं। वे मोहन करने वाले तो भ्रमावह रति प्रिया का सम्यक् अनुसरण करते हैं।।४२।। मोहक तो कमलपत्र के समान आँखों वाली गृहिणी के प्रति मोह कहा जाता है। वे विकटेश मोह को धारण करने वाले वर्धन और धरायुत हैं।।४३।। वे मदनाथ अनुपम, मन्मथ और मलय (चन्दन) से युक्त हैं। वे ही मद देने वाले और आंह्लाद करने वाली देवी से युक्त हैं तथा सब कुछ चाहते हुए चारों ओर अपनी दृष्टि रखे हुए हैं।।४४।। वे भृङ्ग पूर्व नायक हैं और गायक नन्दिनी से युक्त हैं। बिना नाम से वे गणक जाने जाने योग्य हैं तथा काली द्वारा नर्तक कहे जाते हैं।।४५।।

क्ष्वेल्लकः कालकर्ण्याढ्यः कंदर्पो मत्त इष्यते।
नर्तकः श्यामलाकांतो विलासी झषयान्वितः॥४६॥
उन्मत्तामुपसंगम्य मोदते कामवर्धनः। ध्यानपूर्वं ततः श्रीकण्ठादिविन्यासमाचरेत्॥४७॥
सिंदूरकांचनसमोभयभागमर्धनारीश्वरं गिरिसुताहरभूपचिह्नम्।
पाशद्वयाक्षवलयेष्टदहस्तमेव स्मृत्वा न्यसेल्लिपिपदेषु समीहितार्थम्॥४८॥
श्रीकंठानंतसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः। उर्वीशो भारभूतिश्चातिथीशः स्थाणुको हरः॥४९॥
चण्डीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः। अक्रूरश्च महासेनः स्युरेते वरमूर्त्तयः॥५०॥
ततः क्रोधीशचण्डीशौ पञ्चांतकशिवोत्तमौ। तथैकरुद्रकूर्मैकनेत्राः सचतुराननाः॥५१॥
अजेशः शर्वसोमेशौ हरो लांगलिदारुकौ। अर्धनारीश्वरश्चोमाकांतश्चापाढ्यदंडिनौ॥५२॥
अत्रिर्मीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी तथा। खड्गदंडद्विदंडौ च सुमहाकालव्यालिनौ॥५३॥
भुजंगेशः पिनाकी च खड्गेशश्च बकस्तथा। श्वेतो ह्यभ्रश्च लकुलीशिवः संवर्त्तकस्तथा॥५४॥

वे हँसी-मजाक करने वाले और कालकर्णी (आपत्ति मुसीबत से युक्त हैं) अर्थात् वे सबको मुसीबत में भी डाल देते हैं। वे ही कामदेव के दर्प को हरने वाले और मत्त कहे गये हैं। काली को युक्त होकर वे ही नृत्य करने वाले हैं। अर्थात् प्रलय काल में काली कें साथ वे ही नृत्य करते हैं। वे भोग-विलास (मैथुनादि) करने वाले हैं तथा मीन चित्रित ध्वजा से युक्त हैं; क्योंकि कामदेव की ध्वजा पर मछली का चिह्न है।।४६।। वे कामवर्धन उन्मत्त रति का उपसंगम करके आनन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक श्रीकण्ठ आदि का विन्यास करे।।४७।। श्रीकण्ठ, सिन्दूर और स्वर्ण के समान जिनके दो भाग हैं, जिसमें आधा भाग नारी का है और आधा पुरुष का है, जिसके कारण जो अर्धनारीश्वर कहे गये हैं। पर्वतपुत्र पार्वती के मन को हरने वाले राजचिह्न से युक्त हाथों में पाश, अक्षमाला रखने वाले भगवान् शंकर का स्मरण करके लिपि के पदों में इच्छित अर्थ के लिए भगवान् शंकर का न्यास करे।।४८।। वे शंकर श्रीकण्ठ, अनन्त और सूक्ष्म इन तीन मूर्तियों वाले अमरेश्वर हैं। वे पृथ्वी के स्वामी, भारभूति, अतिथीश (अतिथियों के स्वामी) और स्थाणुक (ठूंठ रूपी) और हर (प्राणों को अथवा दुःखों को हरने वाले दोनों हैं)।।४९।। वे चण्डीश, भौतिक तत्त्वों वाले, शीघ्र उत्पन्न होने वाले, अनुग्रहेश्वर हैं। वे सब पर अनुग्रह करने वाले हैं। अक्रूर महासेन जो भी श्रेष्ठ मूर्तियाँ हैं, वे सब भगवान् शंकर हैं।।५०।।

उसके बाद क्रोध के स्वामी अर्थात् क्रोध को पैदा करने वाले तथा सबसे बड़े क्रोधी भी वही हैं। इसलिए तो प्रलयकाल लाने वाली चण्डी के स्वामी कहे जाते हैं। वे इतने क्रोधी हैं कि क्रोध में सब कुछ नष्ट कर देते हैं। इसलिए उन्हें पञ्चान्तक उत्तम शिव भी कहा गया है, क्योंकि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश सबका अन्त करने वाले हैं तथा वे ही एक रुद्र कूर्म और एक नेत्र वाले और चार मुख वाले ब्रह्मा हैं।।५१।। वे ही अजापति (मायापति) हैं। अजेश (तथा जीवों के स्वामी) हैं। जीवों को पैदा करने वाले हैं। वे ही हर (प्राणों को हरने वाले तथा दुःखों को हरने वाले) दोनों वे ही हैं। नारियल और देवदारु वही हैं, अथवा यों कहिए कि सर्प और लकड़ी की मूर्ति वही हैं। वे अर्धनारीश्वर उमा के प्रिय, धनुष और दण्ड धारण करने वाले हैं, ऐसे उन अपार गुणों वाले भगवान् शंकर का न्यास करना है।।५२।। इसके बाद अत्रि, मीन, मेष, सर्प (लाल रंग) मोर तथा खड्ग, दण्ड, दो दण्ड, सुमहाकाल और व्यालि, भुजङ्गेश (वासुकि), पिनाकी (शिव) खड्गेश (गेंडा), बगुला, श्वेत बादल, लकुली शिव, प्रलयकालीन अग्नि

पूर्णोदरी च विरजा तृतीया शाल्मली तथा।
लोलाक्षी वर्तुलाक्षी च दीर्घघोणा तथैव च॥५५॥
सुदीर्घमुखिगो मुख्यौ नवमी दीर्घजिह्विका। कुञ्जरी चोर्ध्वकेशा च द्विमुखी विकृतानना॥५६॥
सत्यलीलाकलाविद्यामुख्याः स्युः स्वरशक्तयः।
महाकाली सरस्वतत्यौ सर्वसिद्धिसमन्विते॥५७॥
गौरी त्रैलोक्यविद्या च तथा मंत्रात्मशक्तिका। लंबोदरी भूतमता द्राविणी नागरी तथा॥५८॥
खेचरी मञ्जरी चैव रूपिणी वीरिणी तथा।
कोटरा पूतना भद्रा काली योगिन्य एव च॥५९॥
शंखिनीगर्जिनीकालरात्रिकूर्दिन्य एव च। कपर्दिनी तथा वज्रा जया च सुमुखेश्वरी॥६०॥
रेवती माधवी चैव वारुणी वायवी तथा। रक्षावधारिणी चान्या तथा च सहजाह्वया॥६१॥
लक्ष्मीश्च व्यापिनीमाये संख्याता वर्णशक्तयः।
द्विरुक्तबालाया वर्णैं रंगं कृत्वाथ केवलैः॥६२॥
षोढा न्यासं प्रकुर्वीत देवतात्मत्वसिद्धये। विघ्नेशादींस्तु तत्रादौ विन्यसेद्ध्यानपूर्वकम्॥६३॥

या बादल पूर्णोदरी, विरजा, तीसरी शाल्मली, लोलाक्षी (चंचल आँखों वाली देवी), वर्तुलाक्षी (टेढ़े नेत्रों वाली देवी), बड़ी नाक वाली देवियों का न्यास करे।।५३-५५५।। बड़े मुख वाली देवी नवमी, लम्बी जिह्वा वाली, कुञ्जरी, ऊर्ध्वकेशा, दो मुख वाली, विकृत मुख वाली का न्यास करे।।५६।। सत्य लीला कलाविद्या आदि मुख्य-मुख्य स्वर शक्तियाँ हैं। महाकाली, महासरस्वती जो सब सिद्धियों से युक्त हैं, उनका न्यास होना चाहिए।।५७।। गौरी त्रैलोक्य विद्या तथा मन्त्रात्मशक्तिका, लम्बोदरी, भूतमता, द्राविणी तथा नागरी का न्यास करे।।५८।। खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी और वीरिणी, कोटरा, पूतना, भद्रा, काली और योगिनी इन देवियों का न्यास करे।।५९।। शंखिनी, गर्जिनी, कालरात्रि, कुर्दिनी, कपर्दिनी, वज्रा, जया, सुमुखेश्वरी का न्यास करे।।६०।। रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, रक्षावधारिणी तथा सहजाह्वया देवियों को न्यस्त करे।।६१।। लक्ष्मी, व्यापिनी माया, ये सब वर्णशक्तियाँ हैं, जो महाकाली से लेकर व्यापिनी माया तक हैं, इन सबका भी न्यास करे। द्विरुक्तवाला के केवल वर्णों से ही इनका रंग करके न्यास करे।।६२।।

देवी की आत्मा की सिद्धि के लिए सोलह मात्राओं का न्यास करे। ५१ वर्ण तन्त्र में बताये गये हैं—ऊप वाले क्रम से ही ५१ होते हैं; परन्तु वह क्रम भी प्रमाणिक नहीं हो सकता; परन्तु अ, इ, उ, ऋ, प्रायः ५० वर्ण ही तन्त्रसार के अनुसार ग्रहण होते हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, ये ५० वर्ण गोस्वमी प्रह्लाद गिरि ने अपने श्रीचक्रनिरूपण में स्वीकार किये हैं। यदि इनमें त्र अथवा ज्ञ को मिलाया जोय तो ५१ वर्ण हो सकते हैं। वैसे कुल ५२ वर्ण होते हैं। पाणिनिव्याकरण के अनुसार मूल वर्ण अ, इ, उ, ऋ, ऌ ये पाँच स्वर और क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म। ये पच्चीस व्यञ्जन श, ष, स, ह कुल मिलाकर ३३ वर्ण ही है;परन्तु संयुक्त स्वरों ए ऐ ओ और अनुस्वार अं और विसर्ग अः तथा य, व, र, ल को मिलाकर १० संयुक्त स्वर तथा क्ष, त्र, ज्ञ को

तरुणाऽरुणसंकाशान्गजवक्त्रांस्त्रिलोचनान्।
पाशांकुशवराभीतिहस्ताञ्छक्तिसमन्वितान्॥६४॥
विघ्नेशो विघ्नराजश्च विनायकशिवोत्तमौ। विघ्नकृद्विघ्नहन्ता च विघ्नराड्गणनायकः॥६५॥
एकदन्तो द्विदन्तश्च गजवक्त्रो निरञ्जनः कपर्दवान्दीर्घमुखः शंकुकर्णो वृषध्वजः॥६६॥
गणनाथोगजेन्द्रास्यः शूर्पकर्णस्त्रिलोचनः। लम्बोदरो महानादश्चतुर्मूर्तिः सदाशिवः॥६७॥
आमोदो दुर्मदश्चैव सुमुखश्च प्रमोदकः। एकपादो द्विपादश्च शूरो वीरश्च षण्मुखः॥६८॥
वरदो नाम देवश्च वक्रतुण्डो द्विदन्तकः। सेनानीर्ग्रामणीर्मत्तो मत्तमूषकवाहनः॥६९॥
जटी मुण्डी तथा खड्गी वरेण्यो वृषकेतनः। भक्ष्यप्रियो गणेशश्च मेघनादो गणेश्वरः॥७०॥
एते गणेशा वर्णानामेकपञ्चाशतःक्रमात्। श्रीश्च ह्रीश्चैव पुष्टिश्च शांतिस्तुष्टिः सरस्वती॥७१॥
रतिर्मेधा तथा कांतिः कामिनी मोहिनी तथा।
तीव्रा च ज्वालिनी नंदा सुयशाः कामरूपिणी॥७२॥
उग्रा तेजोवती सत्या विघ्नेशानी स्वरूपिणी।
कामार्त्ता मदजिह्वा च विकटा घूर्णितानना॥७३॥

मिलाकर संयुक्त व्यञ्जन तब ४६ वर्ण हो जाते हैं। वैसे मूल वर्णों की ३३ संख्या ही समीचीन है। जैसे ३३ देवता माने जाते हैं, वैसे ३३ वर्ण हैं।।६३।। वहाँ पहले ध्यानपूर्वक तरुण सूर्य के प्रकाश के समान (दोपहर के सूर्य के प्रकाश के समान) विघ्नेश आदि का विन्यास करे। हाथी के मुख वाले, तीन आँखों वाले, हाथों में पाश, अंकुश रखने वाले, शक्ति समन्वित।।६३-६४।। वे सब विघ्नेश आदि इक्वान हैं, जिनके नाम हैं—१. विघ्नेश, २. विघ्नराज, ३. विनायक, ४. शिव, ५. उत्तम, ६. विघ्नकृत्, ७. विघ्नहन्ता, ८. विघ्नराम्, ९. गणनायक, १०. एकदन्त, ११. द्विदन्त, १२. गजवक्त्र, १३. निरञ्जन, १४. कपर्दवान्, १५. दीर्घमुख, १६. शंकुकर्ण, १७. वृषध्ववज, १८. गणनाथ, १९. गजेन्द्रास्य, २०. शूर्पकर्ण, २१. त्रिलोचन, २२. लम्बोदर, २३. महानाद, २४. चतुर्मूर्ति, २५. सदाशिव, २६. आमोद, २७. दुर्मद, २८. सुमुख, २९. प्रमोदक, ३०. एकपाद, ३१. द्विपाद, ३२. शूर, ३३. वीर, ३४. षण्मुख, ३५. वरद, ३६. नामदेव, ३७. वक्रतुण्ड, ३८. द्विदन्तक, ३९. सेनानी, ४०. ग्रामणी, ४१. मत्त, ४२. मत्तमूषकवाहन, ४३. जटी, ४४. मुण्डी, ४५. खड्गी, ४६. वरेण्य, ४७. वृषकेतन, ४८. भक्ष्यप्रिय, ४९. गणेश, ५०. मेघनाद, ५१. गणेश्वर। ये गणेश—क्रमशः ५१ वर्णों के ५१ देवता हैं। वे वर्ण हैं— क्रमशः अ, आ, अ३, इ, ई, इ३, उ, ऊ, उ३, ऋ, ॠ, ऋ३, ऌ ऌ३, ए, ऐ, ओ, औ, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह के रूप इन वर्णों के रूप में ५१ विघ्नेशों का न्यास करे। यह वर्णानुक्रम व्याकरण के अनुसारहै तथा शास्त्रसंगत है। वैसे पीछे भी ५१ वर्णों को गिनाया गया है, जिनमें १६ स्वर हैं। २५ व्यंजन हैं, चार यादि, चार हादि हैं और कुल ४९ हुए, फिर उन तीन संयुक्त वर्णमिलाकर ५२ होते हैं। अतः उनमें तो एक को छोड़ना ही पड़ेगा, तभी ५१ होंगे। मेरी दृष्टि में व्याकरण सम्मत संख्या ही उचित है।।६२½-७०½।। इसके बाद १. श्री, २. ह्री, ३. पुष्टि, ४. शान्ति, ५. तुष्टि, ६. सरस्वती, ७. रति, ८. मेधा, ९. कान्ति, १०. कामिनी, ११. मोहिनी, १२. तीव्रा, १३. ज्वालिनी, १४. नन्दा, १५. सुयशा, १६. कामरूपिणी, १७. उग्रा, १८. तेजोवती, १९. सत्या, २०.

भूतिर्भूमिर्द्विरम्या चामारूपा मकरध्वजा। विकर्णभ्रुकुटी लज्जा दीर्घघोणा धनुर्धरी॥७४॥

तथैव यामिनी रात्रिश्चंद्रकांता शशिप्रभा।
लोलाक्षी चपला ऋज्वी दुर्भगा सुभगा शिवा॥७५॥
दुर्गा गुहप्रिया काली कालजिह्वा च शक्तयः।
ग्रहन्यासं ततः कुर्याद्ध्यानपूर्वं समाहितः॥७६॥

वरदाभयहस्ताढ्याञ्छक्त्यलिंगितविग्रहवान्। कुंकुमक्षीररुधिरकुंदकांचनकंबुभिः॥७७॥

अम्भोदधूमतिमिरैः सूर्यादीन्सदृशान्स्मरेत्।
हृदयाधो रविं न्यस्य शीर्ष्णि सोमं दृशोः कुजम्॥७८॥

हृदि शुक्रं च हृन्मध्ये बुधं कण्ठे बृहस्पतिम्। नाभौ शनैश्चरं वक्रे राहुं केतुं पदद्वये॥७९॥

ज्वलत्कालानलप्रख्या वरदाभयपाणयः। तारा न्यसेत्ततो ध्यायन्सर्वाभरणभूषिताः॥८०॥

भाले नयत्नयोः कर्णद्वये नासापुटद्वये। कण्ठे स्कन्धद्वये पश्चात्कूर्परयोर्मणिबन्धयोः॥८१॥

स्तनयोर्नाभिकट्यूरुजानुजङ्घापदद्वये। योगिनीन्यासमादध्याद्विशुद्धो हृदये तथा॥८२॥

नाभौ स्वाधिनिष्ठिते मूले भ्रूमध्ये मूर्धनि क्रमात्।
पद्मेंदुकर्णिकामध्ये वर्णशक्तीर्दलेष्वथ॥८३॥

विघ्नेशानी, २१. स्वरूपिणी, २२. कामार्त्ता, २३. मदजिह्वा, २४. विकटा, २५. घूर्णितानना, २६. भूति, २७. भूमि, २८. द्विरम्या, २९. चामा, ३०. रूपा, ३१. मकरध्वजा, ३२. विकर्ण, ३३. भृकुटी, ३४. लज्जा, ३५. दीर्घघोणा, ३६. धनुर्धरी, ३७. यामिनी, ३८. रात्रि, ३९. चन्द्रकान्ता, ४०. शशिप्रभा, ४१. लोलाक्षी, ४२. चपला, ४३. ऋज्वी, ४४. दुर्भगा, ४५. सुभगा, ४६. शिवा, ४७. दुर्गा, ४८. गुहप्रिया, ४९. काली, ५०कालजिह्वा ये सब शक्तियाँ हैं (जो पचास हुईं, ५२वीं सरस्वती हो सकती हैं। इस प्रकार जितने वर्ण हैं, उतनी ही उनकी शक्तियाँ हुईं)। अतः कुंकुम, दूध, रुधिर, चमेली, स्वर्ण और शंखों से युक्त वर देने वाले एवं अभय प्रदान करने वाले हाथों से युक्त शक्ति से आलिंगित शरीरों का समाहित चित्त से ध्यानपूर्वक गृहन्यास करना चाहिए।।७०½-७७।। और बादल के धुएँ के अन्धकारों द्वारा घिरे हुए सूर्य आदि के समान स्मरण करना चाहिए। हृदय के नीचे सूर्य को न्यस्त करके, शिर पर सोम (चन्द्रमा) आँखों में मंगल, हृदय पर शुक्र, हृदय के मध्य में बुध, कण्ठ में बृहस्पति, नाभि में शनैश्चर, मुख में राहु और दोनों पैरों में केतु को न्यस्त करना चाहिए।।७८-७९।। उसके बाद जलती हुई कालाग्नि के समान वर देने वाले और अभय देने वाले हाथों वाली सब आभूषणों से भूषित, तारा देवी का ध्यान करते हुए न्यास करना चाहिए।।८०।।

मस्तक पर, दोनों नेत्रों, दोनों कानों, दो नासिका पुटों, कण्ठ, दोनों कन्धों, पीछे के दो कूबड़ों, दोनों मणिबन्धों (हाथों) दोनों स्तनों, नाभि, कमर, दोनों ऊरू (कूल्हे, कमर के नीचे का भाग), दोनों जानु (घुटने) और दोनों जंघाओं (घुटनों से नीचे पिण्डलियों) तथा दोनों पैरों में विशुद्ध हृदय से योगिनी का न्यास करे तथा हृदय नाभि स्वाधिष्ठान मूल, भ्रूमध्य, सिर पर क्रम से कमलचन्द्रकर्णिका के मध्य में वर्णशक्तियों के दलों में, दलों के आगे में पद्म के ऊपर सिर पर सब वर्णशक्तियों का न्यास करे। अर्थात् जो कमल है, उनमें वर्णों की शक्तियों का न्यास करे

दलाग्रेषु तु पद्मस्य मूर्ध्नि सर्वाश्च विन्यसेत्।
अमृता नंदिनीन्द्राणी त्वीशानी चात्युमा तथा॥८४॥

ऊर्ध्वकेशी ऋद्धिदुषी लृकारिका तथैव च। एकपादात्मिकैश्वर्यकारिणी चौषधात्मिका॥८५॥
ततोंबिकाथो रक्षात्मिकेति षोडश शक्तयः। कालिका खेचरी गायत्री घण्टाधारिणी तथा॥८६॥
नादात्मिका च चामुण्डा छत्रिका च जया तथा। झङ्कारिणी च संज्ञा च टंकहस्ता ततः परम्॥८७॥
ठंकारिणी च विज्ञेयाः शक्तयो द्वादश क्रमात्। डंकारी ढंकारिणी च णामिनी तामसी तथा॥८८॥
थंकारिणी दया धात्री नादिनी पार्वती तथा। फट्कारिणी च विज्ञेयाः शक्तयो द्वयपन्नगाः॥८९॥

बर्धिनी च तथा भद्रा मज्जा चैव यशस्विनी। रमा च
लामिनी चेति षडेताः शक्तयः क्रमात्॥९०॥
नारदा श्रीस्तथा षंढा सरस्वत्यपि च शक्तयः।
चतस्त्रोऽपि तथैव द्वे हाकिनी च क्षमा तथा॥९१॥

ततः पादे च लिंगे च कुक्षौ हृद्दोःशिरस्सु च। दक्षा दिवामपादान्तं राशीन्मेषादिकान्न्यसेत्॥९२॥
ततः पीठानि पञ्चाशदेकं चक्रं मनो न्यसेत्। वाराणसी कामरूपं नेपालं पौण्ड्रवर्धनम्॥९३॥

तथा उन सबको कमल के ऊर्ध्व भाग में न्यस्त करना चाहिए। वे वर्ग शक्तियाँ हैं। अ से अमृता, आ से नन्दिनी, इ से इन्द्राणी, ई से ईशानी, उ से उमा, ऊ से ऊर्ध्वकेशी, ऋ से ऋद्धिदुषी, ॠ से ॠद्वीश्वरी, ऌ से ऌता, ॡ से ॡकारिका, ए से एकपादात्मिका, ऐ से ऐश्वर्यकारिणी, ओ से ओंकारात्मिका, औ से औषधात्मिका उसके बाद अं से अम्बिका अः से रक्षात्मिका, इस प्रकार से सोलह मात्रिकाशक्तियाँ रक्षा करने वाली हैं[१]।।८१-८५½।।

आगे क से कालिका, ख से खेचरी, ग से गायत्री, घ से घण्टाधारिणी, ङ से नादात्मिका, च से चामुण्डा, छ से छत्रिका, ज से जया, झ से झङ्कारिणी, ञ से संज्ञा, ट से टङ्कहस्ता, ठ से ठंकारिणी, ये क्रम से बारह शक्तियाँ जाननी चाहिएँ। उसके बाद ड से डंकारी, ढ से ढंकारिणी, ण से णामिनी, त से तामसी, थ से थंकारिणी, द से दया ध से धात्री, न से नादिनी, प से पार्वती, फ से फट्कारिणी, ये दो शक्तियाँ पन्नग हैं। ब से बर्धिनी, भ से भद्रा, म से मज्जा, य से यशस्विनी, र से रमा, ल से लामिनी, व से नारदा, श से श्री तथा ष से षंढा, स से सरस्वती, ह से हाकिनी। इस प्रकार ये श ष स चार शक्तियाँ हुईं और एक संयुक्त वर्ण क्ष से क्षमा। इन समस्त वर्णों को कमलकर्णिकाओं में न्यस्त करना है।।८५½-९१।। उसके बाद पैर, लिङ्ग, कुक्षि, हृदय, भुजाओं और शिर पर दक्ष आदि वाम पैर के अन्त तक मेष आदिक राशियों को विन्यस्त करे। मेषादि राशियाँ बारह हैं, १. दायें पैर में मेष, २. बायें में वृष, ३. लिङ्ग में मिथुन, ४. कुक्षि में कर्क, ५. हृदय पर सिंह, ६. दायीं भुजा पर कन्या, ७. बायीं भुजा में तुला, ८. दायें नेत्र में वृश्चिक, ९. बायें नेत्र में धनु, १० दायीं नासिका में मकर, ११. बायीं नासिका में कुम्भ, १२. सिर पर मीन इस प्रकार बारह राशियाँ बारह स्थानों पर न्यस्त करनी चाहिएँ।।९२।। उसके बाद पचास पीठ और एक चक्र मन का न्यास करे। १. वाराणसी, २. कामरूप, ३. नेपाल, ४. पौण्डवर्धन, ५. वरस्थिर,

---

१. यहाँ पर पुराण लेखक ने १६ शक्तियों का वर्णन किया है; परन्तु गिनने पर बारह ही होती हैं; परन्तु यहाँ ॠ से ॠद्धीश्वरी ओ से ओंकारात्मिका, ऌ से ऌता और ऊः से अक्षरात्मिका को छोड़ दिया गया है।

वरस्थिरं कान्यकुब्जं पूर्णशैलं तथार्बुदम्। आम्रतकेश्वरैकाम्रं त्रिस्त्रोतः कामकोष्ठकम्॥९४॥
कैलासं भृगुनगरं केदारं चन्द्रपुष्करम्। श्रीपीठं चैकवीरां च जालन्ध्रं मालवं तथा॥९५॥
कुलान्त्रं देविकोटं च गोकर्णं मारुतेश्वरम्। अट्टहासं च विरजं राजवेश्म महापथम्॥९६॥
कोलापुरकैलापुरकालेश्वरजयन्तिकाः। उज्जयिन्यपि चित्रा च क्षीरकं हस्तिनापुरम्॥९७॥
उडीशं च प्रयागं च षष्टिमायापुरं तथा। गौरीशं सलयं चैव श्रीशैलं मरुमेव च॥९८॥
पुनर्गिरिवरं पश्चान्महेन्द्रं वामनं गिरिम्। स्याद्धिरण्यपुरं पश्चान्महालक्ष्मीपुरं तथा॥९९॥
पुरोद्यानं तथा छायाक्षेत्रमाहुर्मनीषिणः। लिपिक्रमसमायुक्ताँल्लिपिस्थानेषु विन्यसेत्॥१००॥

अन्यान्यथोक्तस्थानेषु संयुक्ताँल्लिपिसङ्क्रमात्।
षोढा न्यासो मयाख्यातः साक्षादीश्वरभाषितः॥१॥

एवं विन्यस्तदेहस्तु देवताविग्रहो भवेत्। ततः षोढा पुरः कृत्वा श्रीचक्रन्यासमाचरेत्॥२॥
अंशाद्यानन्द्यमूर्त्यन्तं मन्त्रैस्तु व्यापकं चरेत्। चक्रेश्वरीं चक्रसमर्पणमन्त्रान्हृदि न्यसेत्॥३॥
अन्यान्यथोक्तस्थानेषु गणपत्यादिकान्न्यसेत्। दक्षिणोरुसमं वामं सर्वांश्च क्रमशो न्यसेत्॥४॥
गणेशं क्षेत्रपालं च योगिनीं बटुकं तथा। आदाविन्द्रादयो न्यस्याः पदाङ्गुष्ठद्वयाग्रके॥५॥
जानुपार्श्वांसमूर्धास्यपाश्वजानुषु मूर्धनि। मूलाधारेऽणिमादीनां सिद्धीनां दशकं ततः॥६॥
न्यस्तव्यमंसदोः पृष्ठवक्षस्सु प्रपदोः स्फिजि। दोर्देशपृष्ठयोर्मूर्धपाददद्वितययोः क्रमात्॥७॥

---

६. कान्यकुब्ज, ७. पूर्णशैल (पूर्णागिरि), ८. अर्बुद, ९. आम्रातकेश्वर, १०. एकाम्रक्षेत्र, ११. त्रिस्त्रोत, १२. कामकोष्ठ, १३. कैलास, १४. भृगुनगर, १५. केदार, १६. चन्द्रपुष्पक, १७. श्रीपीठ, १८. एकवीर, १९. जालन्धर, २०. मालव, २१. कुलात्र, २२. देवकोटि, २३. गोकर्ण, २४. मारुतेश्वर, २५. अट्टहास, २६. विरज, २७. राजवेश्म, २८. महापथ, २९. कोलापुर, ३०. कैलापुर, ३१. कालेश्वर, ३२. जयन्तिका, ३३. उज्जयिनी, ३४. चित्रा, ३५. क्षीरक, ३६. हस्तिनापुर, ३७. उडीश, ३८. प्रयाग, ३९. षष्टिमायापुर, ४०. गौरीश, ४१. सलय, ४२. श्रीशैल, ४३. मरु, ४४. पुनर्गिरिवर, ४५. पश्चान्महेन्द्र, ४६. वामनगिरि, ४७. हिरण्यपुर, ४८. महालक्ष्मीपुर, ४९. पुरोधान, ५०. छायाक्षेत्र, इन सब पचास स्थानों को मनीषी लोग पीठ कहते हैं। इन सबको लिपि क्रम से समायुक्त कर लिपि के स्थानों में विशेष रूप से न्यस्त करे।।९३-१००।। अर्थात् अ, इ, उ, ऋ आदि लिपियों का जो न्यास किया है, उन्हीं में जिस अक्षर से उनका नाम है, उसके अनुसार ही न्यस्त करे, जैसे अ के स्थान पर अट्टहास, क में कामकोष्ठ कैलास। अन्य अन्य यथोक्त स्थानों में संयुक्त लिपि के सम्यक् क्रम से विन्यस्त करे। हयग्रीव कहते हैं कि ये सोलह न्यास मैंने बताये हैं, जो साक्षात् ईश्वर द्वारा कहे गये हैं।।१।। इस प्रकार विन्यस्त देह तो ललिता देवी का शरीर हो जायेगा। उसके सोलह पुर बनाकर श्रीचक्र का न्यास करे।।२।। अंश आदि अमूर्ति के अन्त तक मन्त्रों द्वारा व्यापक करे। चक्रेश्वरी को चक्रसमर्पण कर मन्त्रों को हृदय में धारण करे।।३।।

अन्य अन्य यथोक्त स्थानों में गणपति आदि का न्यास करना चाहिए। दक्षिण ऊरु के समान वाम ऊरु में सब देवताओं का क्रमशः न्यास करे।।४।। गणेश, क्षेत्रपाल, योगिनी तथा बटुक को न्यस्त करे। आदि में इन्द्र आदि को पैर के दोनों अंगूठों में न्यस्त करना चाहिए।।५।। घुटनों के पास कन्धे, मूर्धा, मुख, कांख, घुटनों और सिर पर तथा मूलाधार में अनिमा आदि दश सिद्धियों का न्यास करे।।६।। फिर कंधे, भुजाएँ, पीठ, वक्षस्थल, पैरों के

अणिमा चैव लघिमा तृतीया महिमा तथा।
ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं प्राप्तिरेव च।
इच्छासिद्धी रससिद्धिर्मोक्षसिद्धिरिति स्मृताः॥८॥

ततो विप्र न्यसेद्धीमान्मातृणामष्टकं क्रमात्। पादाङ्गुष्ठयुगे दक्षपार्श्वे मूर्द्धनि वामतः॥९॥
वामजनौ दक्षजानौ दक्षवामांसयोस्तथा॥१०॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा चैव सप्तमी॥११॥
महालक्ष्मीश्च विज्ञेया मातरो वै क्रमाद् बुधैः। मुद्रादेवीर्न्यसेदष्टावेष्वेव द्वे च ते पुनः॥१२॥
मूर्द्धाङ्घ्र्योरपि मुद्रास्तु सर्वसंक्षोभिणी तथा। सर्वविद्राविणी पश्चात्सर्वार्थाकर्षणी तथा॥१३॥
सर्वाद्या वशकारिणी सर्वाद्या प्रियकारिणी। महाङ्कुशी च सर्वाद्या सर्वाद्या खेचरी तथा॥१४॥
त्रिखण्डा सर्वबीजा च मुद्रा सर्वप्रपूरिका। योनिमुद्रेति विज्ञेयास्तत्र चक्रेश्वरीं न्यसेत्॥१५॥
त्रैलोक्यमोहनं चक्रं समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि। ततः कलानां नित्यानां क्रमात्षोडशकं न्यसेत्॥१६॥
कामाकर्षणरूपा च शब्दाकर्षणरूपिणी। अहंकाराकर्षिणी च शब्दाकर्षणरूपिणी॥१७॥
स्पर्शाकर्षणरूपा च रूपाकर्षणरूपिणी। रसाकर्षणरूपा च गन्धाकर्षणरूपिणी॥१८॥
चित्ताकर्षणरूपा च धैर्याकर्षणरूपिणी। स्मृत्याकर्षणरूपा च हृदाकर्षणरूपिणी॥१९॥

श्रद्धाकर्षणरूपा च ह्यात्माकर्षणरूपिणी।
अमृताकर्षिणी प्रोक्ता शरीराकर्षिणी तथा॥२०॥

अग्र भाग, चूतड़, भुजाओं के स्थान के पीछे, मूर्धा और दोनों पैरों में क्रम से १. अणिमा, २. लघिमा, ३. महिमा, ४. ईशित्व, ५. वशित्व, ६. प्राकाम्य, ७. प्राप्ति, ८. इच्छासिद्धि, ९. रससिद्धि और १० मोक्षसिद्धि ये दश सिद्धियाँ स्मरण की गयी हैं।।७-८।। उसके बाद बुद्धिमान् पुरुष को आठ मातृकाओं का न्यास करना चाहिए। पैर के दोनों अंगूठों में, दायीं कांख में, सिर पर, बायें घुटने पर, फिर दायें घुटने पर, दायें बायें कन्धों पर आठ मातृकाओं का न्यास करना चाहिए। ये प्रायः आठ स्थान होते हैं—१. पैर का बायाँ अंगूठा, २. दायाँ अंगूठा, ३. दांयी कोख, ४. सिर, ५. बायाँ घुटना, ६. दायाँ घुटना, ७. दायाँ कन्धा, ८. बायाँ कन्धा। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और महालक्ष्मी, ये आठ मातृदेवियाँ क्रमशः विद्वानों द्वारा जानी गयी हैं।।९-११½।। फिर उसके बाद इन्हीं स्थानों में मुद्रा देवियों का न्यास करना चाहिए, उनका न्यास सिर से पैरों तक करना है। आठ मुद्राएँ हैं—१. सर्व संक्षोभिणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वार्थाकर्षिणी, ४. सर्वाद्यावशकरिणी, सर्वाद्याप्रियकरिणी, ५. सर्वाद्यामहांकुशी, ६. सर्वाद्या खेचरी, ७. सर्वबीजा त्रिखण्डा, ८. सर्व प्रपूरिका योनिमुद्रा ये सब आठ मुद्राएँ हैं। इन्हें चक्रेश्वरी के आठ स्थानों में स्थापित करें।।११½-१५।।

त्रैलोक्यमोहन चक्र को शरीर पर व्याप्त करके, समर्पित करके उसके बाद सोलह कलाओं का क्रमशः न्यास करना चाहिए, वे कलाएँ हैं—१. कामाकर्षणरूपिणी कला, २. बुद्ध्याकर्षणरूपिणी, ३. अहंकारकर्षिणी, ४. शब्दाकर्षणरूपिणी, ५. स्पर्शाकर्षणरूपिणी, ६. रूपाकर्षणरूपिणी, ७. रसाकर्षणरूपा, ८. गंधाकर्षणरूपिणी, ९. चित्ताकर्षणरूपा, १०. धैर्याकर्षणरूपिणी, ११. स्मृत्याकर्षणरूपा, १२. हृदाकर्षणरूपिणी, १३. श्रद्धाकर्षणरूपा, १४. आत्माकर्षणरूपिणी, १५. अमृताकर्षिणी, १६. शरीराकर्षिणी। इस प्रकार ये सोलह देवियाँ त्रैलोक्यमोहन चक्र

स्थानानि दक्षिणं श्रोत्रं पृष्ठमंसश्च कूर्परः। दक्षहस्ततलस्याथ पृष्ठं तत्स्फिक्च जानुनी॥२१॥
तज्जंघाप्रपदे वामप्रपदादिविलोमतः। चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्च्य व्याप्य वर्ष्मणि॥२२॥
न्यसेदनंगकुसुमदेव्यादीनामथाष्टकम्। शंखजत्रूरुजङ्घासु वामे तु प्रतिलोमतः॥२३॥
अनङ्गकुसुमा पश्चाद्द्वितीयानंगमेखला। अनंगमदना पश्चादनंगमदनातुरा॥२४॥
अनंगरेखा तत्पश्चाद्वेगाख्यानंगपूर्विका। ततोऽनंगांकुशा पश्चादनंगाधारमालिनी॥२५॥
चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि। शक्तिदेवीर्न्यसेत्सर्वसंक्षोभिण्यादिका अथ॥२६॥
ललाटगण्डयोरंसे पादमूले च जानुनी। उपर्यधश्च जंघायां तथा वामे विलोमतः॥२७॥
सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः सर्वविद्राविणी तथा। सर्वाद्याकर्षणी शक्तिः सर्वप्रह्लादिनी तथा॥२८॥
सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वाद्या स्तंभिनी तथा। सर्वाद्या जृंभिणी शक्तिः सर्वाद्या वशकारिणी॥२९॥
सर्वाद्या रञ्जिनी शक्तिः सर्वाद्योन्मादिनी तथा। सर्वार्थसाधिनी शक्तिस्सर्वाशापूरिणी तथा॥१३०॥
सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करा। चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि॥३१॥
सर्वसिद्धिप्रदादीनां दशकं चाथ विन्यसेत्। दक्षनासापुटे दंतमूले दक्षस्तने तथा॥३२॥
कूर्परे मणिबन्धे च न्यस्येद्वामे विलोमतः। सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं सर्वसंपत्प्रदा तथा॥३३॥
सर्वप्रियंकरा देवी सर्वमङ्गलकारिणी। सर्वाघमोचिनी शक्तिः सर्वदुःखविमोचिनी॥३४॥

में न्यस्त करनी चाहिएँ।।२०।। स्थान हैं— दक्षिण श्रोत्र, पीठ, कन्धा, कुहनी, दायीं हथेली के पीछे, चूतड़, दोनों घुटने, जंघा, पैरों के अग्रभाग में, वाम पैर के अग्रभाग से उल्टे क्रम से चक्रेशी और चक्र को शरीर पर न्यस्त कर उसकी पूजा करके व्याप्त करके अनङ्गकुसुमा आदि आठ देवियों का कनपटी (कान के पीछे की हड्डी), जत्रु (गरदन की हड्डी), ऊरु (कान के नीचे का भाग), जंघाओं पर बायें भाग पर उल्टे क्रम से न्यास करना चाहिए। वे हैं— अनंगकुसुमा (कनपटी पर बायें) द्वितीया अनंकमेखला (कनपटी पर दायें) अनंग मदना (गरदन की हड्डी पर बायें), अनंगमदनातुरा (गरदन की हड्डी पर दायें) अनंगरेखा (ऊरू पर बायें), उसके बाद वेग नाम की अनंगपूर्विका (ऊरु के दायें) अनंगांकुशा (जंघा के बायीं ओर) और अनंगाधर मालिनी को (दायीं जंघा पर) स्थापित करना चाहिए।।२३-२५।। फिर इस प्रकार चक्रेशी को न्यस्त चक्र की पूजा करके शरीर पर व्याप्त करके सर्व संक्षोभिणी आदि शक्तियों का न्यास करना चाहिए। उनको ललाट पर, गण्डस्थल पर, कन्धे पर, पादमूल पर, घुटनों पर, ऊपर और नीचे जंघा पर बायीं ओर से उल्टे क्रम से न्यस्त करना चाहिए। वे शक्तियाँ हैं— १. सर्वसंक्षोभिणी शक्ति (ललाट पर) बायें, २. सर्वविद्राविणी शक्ति (ललाट पर, दायीं ओर), ३. सर्वाद्याकर्षिणी शक्ति (बायें गण्डस्थल पर), ४. सर्वप्रह्लादिनी शक्ति (दायें गण्डस्थल पर), ५. सर्वसम्मोहिनी शक्ति (बायें कन्धे पर), ६. सर्वाद्यास्तम्भिनी शक्ति (दायें कन्धे पर), ७. सर्वाद्याजृम्भिणी शक्ति (बायें पैर पर), ८. सर्वाद्यावशकारिणी शक्ति (दायें पैर पर), ९. सर्वाद्यारञ्जिनी शक्ति (घुटने पर), सर्वाद्योन्मादिनी शक्ति (घुटने पर), ११. सवार्थसाधिनी शक्ति (बायीं जंघा पर), १२. सर्वाशापूरिणी शक्ति (दायीं जंघा पर), १३. सर्वमन्त्रमयी शक्ति १४. सर्वद्वन्द्वक्षयंकरा शक्ति।।१३०½।। चक्रेशी और चक्र बनाकर उसकी पूजा करके शरीर पर व्याप्त करके सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली दश देवियों का विन्यास करे। वे स्थान हैं— १. दक्षनासापुर, २. दन्तमूल और ३. दक्ष स्तन, ४. कूर्पर (कुहनी) मणिबन्ध वाम पर विलोम क्रम से न्यास करे। वे हैं—. सब सिद्धिप्रदा, २. सर्वसम्पत्प्रदा, ३. सर्वप्रियंकरा, ४. सर्वमंगलकारिणी, ५. सर्वाघमोचिनी शक्ति, ६.

सर्वमृत्युप्रशमिनी सर्वविघ्नविनाशिनी। सर्वांगसुन्दरी चैव सर्वसौभाग्यदायिनी॥३५॥
चक्रेशी न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि। सर्वज्ञाद्यान्न्यसेद्वक्षस्यपि दन्तस्थलेष्वथ॥३६॥
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वज्ञानप्रदा तथा। सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी॥३७॥
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा। सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी।
विज्ञेया दशमी चैव सर्वेप्सितफलप्रदा॥३८॥
चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि।
प्राग्वामाद्याश्च विन्यस्य पक्षिण्याद्यास्ततः सुधीः॥३९॥
दक्षे तु चिबुके कण्ठे स्तने नाभौ च पार्श्वयोः।
वामा विनोदिनी विद्या वशिता कामिनीमता॥१४०॥
कामेश्वरी परा ज्ञेया मोहिनी विमला तथा। अरुणा जयिनी पश्चात्तथा सर्वेश्वरी मता।
कौलिनीति समुक्तानि तासां नामानि सूरिभिः॥४१॥
चक्रेश्वरीं न्यसेच्चक्रं समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि।
हृदि त्रिकोणं संभाव्य दिक्षु प्रागादितःक्रमात्॥४२॥
तद्बहिर्विन्न्यसेद्धीमानायुधानां चतुष्टयम्। न्यसेदग्न्यादिकोणेषु मध्ये पीठचतुष्टयम्॥४३॥

सर्वदुःखविमोचिनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमनी, ८. सर्वविघ्नप्रनाशनी, ९. सर्वाङ्गसुन्दरी, १०. सर्वसौभाग्यदायिनी।।१३०½-१३५।। चक्रेशी का न्यास कर और चक्र का न्यास कर उसकी सम्यक् प्रकार से पूजा करके शरीर पर व्याप्त करके सर्वज्ञा आदि देवियों को वक्षःस्थल पर और दन्ततलों पर न्यस्त करें। वे हैं—१. सर्वज्ञा, २. सर्वशक्ति, ३. सर्वज्ञानप्रदा, ४. सर्वज्ञानमयी देवी, ५. सर्वव्याधिविनाशिनी, ६. सर्वाधारस्वरूपा, ७. सर्वपापहरा, ८. सर्वानन्दमयी, ९. सर्वरक्षास्वरूपिणी तथा दशमी १०. सर्वेप्सित फलप्रदा जाननी चाहिएँ।।३८।।

चक्रेशी और चक्र को न्यस्त कर उसकी अर्चना करके फिर उसके शरीर पर व्याप्त करके बुद्धिमान् पुरुष यक्षिणी आदि का बायें पहले न्यास करे। दक्ष, चिबुक, (ठोढ़ी), कण्ठ में, स्तन में, नाभि में, पीठ में, न्यास करे। १. वामा विनोदिनी विद्या हैं, २. वशिता, ३. कामिनी मानी गयी हैं। ४. कामेश्वरी परा ज्ञेय हैं। ५. मोहिनी, ६. विमला, ७. अरुणा, ८. जयिनी, उसके बाद ९. सर्वेश्वरी मानी गयी हैं। १०. कौलिनी, इस प्रकार विद्वानों द्वारा इन देवियों के नाम कहे गये हैं। अर्थात् १. विनोदिनी विद्या, २. वशिता, ३. कामिनी, ४. कामेश्वरी, ५. मोहिनी, ६. विमला, ७. अरुणा, ८. जयिनी, ९. सर्वेश्वरी, १०. कौलिनी, इस प्रकार ये भी दश देवियाँ जो चक्र में स्थित हैं। उन सबको ठोढ़ी, कण्ठ, दोनों स्तन, नाभि और पार्श्व में न्यस्त करें। ये सब एक स्थान दो के क्रम से न्यस्त करें।।३९-४०।।

इसके बाद चक्रेश्वरी और चक्र को समर्पित कर शरीर पर व्याप्त कर इन्हें हृदय पर त्रिकोण की कल्पना कर दिशाओं में पूर्व की ओर से क्रम से न्यस्त करें।।४२।। उस त्रिकोण के बाहर बुद्धिमान् पुरुष को चार आयुधों को स्थापित करना चाहिए। अग्नि आदि कोणों में मध्य में चार पीठ का न्यास करे।।४३।।

मध्य में वृत्त का न्यास करके नित्या आदि सोलह शक्तियों को स्थापित करे। वे सोलह नित्याएँ हैं—१. कामेश्वरी

मध्यवृत्तं न्यसित्वा च नित्याषोडशकं न्यसेत्। कामेश्वरी तथा नित्या नित्या च भगमालिनी।।४४।।
नित्यक्लिन्ना तथा नित्या नित्या भेरुण्डिनी मता। वह्निवासिनिका नित्या महावज्रेश्वरी तथा।।४५।।
नित्या च दूती नित्या च त्वरिता तु ततः परम्। कुलसुन्दरिका नित्या कुल्या नित्या ततः परम्।।४६।।
नित्या नीलपताका च नित्या तु विजया परा। ततस्तु मङ्गला चैव नित्यपूर्वा प्रचक्ष्यते।।४७।।
प्रभामालिनिका नित्या चित्रा नित्या तथैव च। एतास्त्रिकोणान्तरेण पादतो हृदि विन्यसेत्।।४८।।
नित्या प्रमोदिनी चैव नित्या त्रिपुरसुन्दरी। तन्मध्ये विन्यसेद्देवीमखण्डजगदात्मिकाम्।।४९।।
चक्रेश्वरीं हृदि न्यस्य कृत्वा चक्रं समुद्धृतम्। प्रदर्श्य मुद्रां योन्याख्यां सर्वानन्दमनुं जपेत्।।५०।।
इत्यात्मनस्तु चक्रस्य चक्रदेवी भविष्यति।।५१।।

इति श्रीब्रह्माण्ड महापुराणे उत्तरभागे दलवीरसिंहकृत हिन्द्यनुवादान्तर्गते हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने आत्माचक्र अनुष्ठाननाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीमत्प्रतापगढपत्तनमध्यवर्ति श्रीरामपूर्वकगढाभिधवासिनेदम्।
संशोधितं निखिलमान्यपुराणकं यद् ब्रह्माण्डसंज्ञमिह तद्विदुषां मुदेऽस्तु।।१।।
रघुनाथेनेदं यत् क्वचिदस्ती हाप्यसंशुद्धम्।
संशोधितमपि दयया तत्क्षन्तव्यं ह्यशेषेण।।२।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। रामाय नमः।।

समाप्तमिदं ब्रह्माण्डमहापुराणम्

।।इति श्रीब्रह्माण्डमहापुराणं समाप्तम् ।

***

नित्या, २. भगमालिनी नित्या, ३. नित्यक्लिन्ना नित्या, ४. भेरुण्डिनी नित्या, ५. वह्निवासिनी नित्या, ६. वज्रेश्वरी नित्या, ७. शिवदूती नित्या, ८. त्वरिता नित्या, ९. कुलसुन्दरी नित्या, १०. कुल्या नित्या, ११. नीलपताका नित्या, १२. विजया नित्या, १३. मंगला नित्या, १४. ज्वालामालिनी नित्या, १५. विचित्रा नित्या, १६. श्री सुन्दरी नित्या। ये सब नित्याएं मध्यवृत्त में न्यस्त करनी हैं।।४२-४७½।। इन सब नित्याओं को त्रिकोण के अन्तर्गत पैर से हृदय तक न्यस्त करे।।४८।। नित्या प्रमोदिनी और नित्या त्रिपुरसुन्दरी का न्यास करे, फिर उनके मध्य में संसार की अखण्ड अम्बिका देवी का न्यास करना चाहिए।।४९।। इसके बाद चक्रेश्वरी ललिताम्बिका को हृदय में न्यस्त कर समुद्धृत चक्र बनाकर योनि नामक मुद्रा को प्रदर्शित कर सर्वानन्द सदाशिव का जाप करना चाहिए।।५०।। इस प्रकार आत्मा के चक्र की चक्रदेवी होगी।।५१।।

।।इस प्रकार श्री ब्रह्माण्डमहापुराण उत्तर भाग हयग्रीव और अगस्त्य के संवाद के ललितोपाख्यान में ४४ वाँ अध्याय आत्माचक्र अनुष्ठान का हिन्दी अनुवाद प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान आत्मज स्व. शिवसिंह निवासी नगलासरदार द्वारा विष्णुपादप्रतिष्ठित महात्मा बुद्ध की तपस्थली गया नगरी में सम्पन्न हुआ।।

।।इति श्री ब्रह्माण्ड पुराण।।

***